Ajnta

Hindi

LIB. G. K. V.

079512

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या 76441

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

COMPILED

Stock Verification 2

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

Stock Verification 2

अजन्ता

पुस्तकालय
COMPILED
~~76411~~
079512

परिवर्तनार्थ

५.२.५८

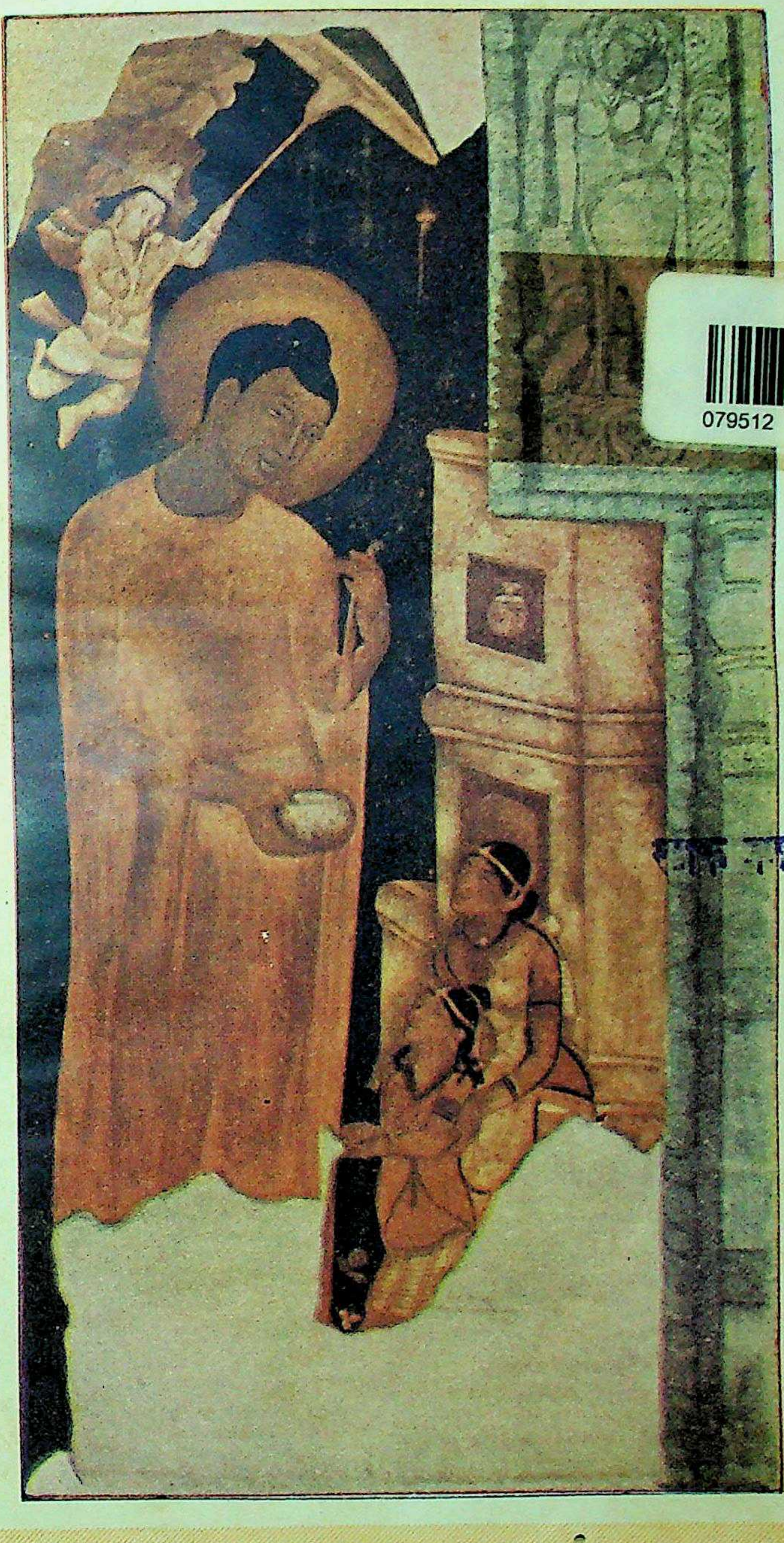

079512

[illegible] तारीकरण १९८४-

वर्ष ६ जनवरी १९५४ अंक १

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के

शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

परामर्शदात्री समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
श्री भगवतशरण उपाध्याय
श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त
श्री विश्वनाथ मुकर्जी
श्री श्रीनिवासाचार्य
श्री युद्धवीर

“अजन्ता” का वार्षिक मूल्य :— ६)   एक अङ्क का :— १)

आवश्यक सूचना :— नमूने की प्रति के लिए १ रु० म. ऑर्डर द्वारा अग्रिम भेजिए।

सम्मति तथा समालोचनार्थ

और....
अब....
आनन्द लीजिए....

आपके कपड़े आपकी शान हैं

ऋतु में सर्वोत्कृष्ट प्रकार के वस्त्र
ऊनी-रेशमी-कमीज़
और
अन्य प्रकार के

बूलचन्द अण्ड को०

"सिल्क पैलेस"

आबिद रोड ::: हैदराबाद-द.

हर प्रकार का
रेशमी-ऊनी और सूती कपड़ा
प्राप्त करने का स्थान

रीवा अण्ड को०

पार्क लेन, सिकन्दराबाद

जीवन साहित्य

हिन्दी के उन मासिक पत्रों में से है जो

१. लोक रुचि को नीचे नहीं, ऊपर ले जाते हैं,
२. मानव को मानव से लड़ाते नहीं, मिलाते हैं,
३. सच्ची और स्थायी शान्ति को असंभव नहीं, संभव बनाते हैं,
४. आर्थिक लाभ के आगे झुकते नहीं, सेवा के कठोर पथ पर चलते हैं,

जीवन साहित्य की सात्विक सामग्री को छोटे बड़े, स्त्री-बच्चे सब निःसंकोच पढ़ सकते हैं। उसके विशेषांक तो एक से एक बढ़ कर होते हैं।

जीवन साहित्य विज्ञापन नहीं देता। केवल ग्राहकों के भरोसे चलता है। ऐसे पत्र के ग्राहक बनने का अर्थ होता है राष्ट्र की सेवा में योग देना।

वार्षिक शुल्क के ४) रु. भेज कर ग्राहक बन जाइए।

ग्राहक बनने पर मण्डल की पुस्तकों पर
आपको कमीशन पाने की भी सुविधा हो जाएगी।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

त्रैमासिक

*

आलोचना

के

दो विशेषांक

इतिहास विशेषांक-अक्तूबर १९५२
५) रु०

इतिहास शेषांक-जनवरी १९५३
३) रु०

विशेष रूप से संग्रहणीय हैं।
इन दोनों अंकों में प्रकाशित लेख हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास का अद्वितीय आकलन बन गये हैं।

वार्षिक-१२) रु० :: एक प्रति-३) रु०

राजकमल प्रकाशन,
१, फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान शाला का मासिक पत्र

दर्शन और मनोविज्ञान की

आधुनिक प्रवृत्तियों पर

प्रकाश डालनेवाला

हिन्दी में अपने ढङ्ग का

अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ सिद्धगिरि, बनारस

राष्ट्रभारती

सम्पादक
मोहनलाल भट्ट
हृषिकेश शर्मा

सस्ती, सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका। इस पत्रिका को, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान् साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी, नाटक, रेखा-चित्र और शब्दचित्र। बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, उर्दू, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं।

वार्षिक चन्दा ६) रुपए। नमूने की प्रति १० आने मात्र।

ग्राहक बना देने वालों को विशेष सुविधा दी जाएगी

पता : व्यवस्थापक,
'राष्ट्रभारती' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
पो० हिन्दी नगर, वर्धा (मध्य प्रदेश)

कथा साहित्य में चरित्र चित्रण

का

महत्वपूर्ण प्रयोग

'मेघदूत' के महत्वपूर्ण प्रकाशन के बाद

प्रेरणा का छठा-सातवाँ अंक

'प्रेमचन्द के पात्र'

विशेषांक होगा

* इस अंक में प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों के सभी महत्वपूर्ण पात्रों पर अधिकार पूर्ण लेख होंगे।

* विशेषांक का मूल्य लगभग ४) होगा।

* प्रेरणा के स्थाई ग्राहकों के लिए वही मूल्य रहेगा।

शीघ्र ही वार्षिक ग्राहक बन कर

इस सुविधा का लाभ उठाएँ।

अग्रिम आर्डर 'प्रेरणा' के पते से भेजिये।

प्रेरणा : सोजतीगेट, जोधपुर.

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

सम्पादक

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी. ए.

संचालक-**श्री विश्वेश्वरानन्द,**

विश्व हित की साधना के लिए :

[क] शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
[ख] प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
[ग] बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण,
[घ] अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
[ङ] सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा : ८) रुपए

१०) रु. वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता :

व्यवस्थापक, 'विश्व ज्योति' साधु आश्रम,
होश्यारपुर, (पंजाब)

सस्ता, सरल, आकर्षक और शिक्षाप्रद

राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

* कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।

* हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।

* देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं : मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व, आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)-छमाही ३)-एक प्रति ८ आना

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

मद्रास विहार तथा पंजाब सरकार द्वारा समस्त स्कूल तथा लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत

देशबन्धुः पुस्तकालय मथुरा एवं व्रज का निराला मासिक पत्र

* प्रधान सं० कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०

* सम्पादक—ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी

* स० सम्पादक—बैजनाथ दाग़ी

❁ देशबन्धु ❁

वार्षिक मूल्य ४-०-० :: एक प्रति ०-६-०

नमूना के लिए ०-६-० की टिकट भेजें

व्रज संस्कृति, व्रज की ललित कलाएँ, स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत कला, रासलीला, रामलीला, भगत व्रज के लोक गीत, लोक कहानियाँ वेशभूषा, लोक व्यवहार आदि पर सुन्दर लेख पढ़िए।

पता—व्यवस्थापक "देशबन्धु" कार्यालय
मथुरा (यू० पी०)

बौद्धिक विकास के लिए
नवीनतम पुस्तकों को पढ़ते रहना आवश्यक है।

हमारे यहाँ से खरीदिए
हर तरह की अंग्रेज़ी की पुस्तकें
और
उम्दा स्टेशनरी

आक्सफोर्ड बुक डिपो
पार्क लेन, सिकन्दराबाद-द.

अच्छी फ़ोटोग्राफी
के
लिए

★ सेन्ट्रल स्टुडियो ★

कभी न भूलिए

कोडाक के प्रमाणित विक्रेता

बशीरबाग :: हैदराबाद :: दक्षिण

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

Telephone : 4610 [Estd. MARCH 1915] Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :
PATHERGATTI, UNIVERSITY
BRANCH (ADIKMET)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMANI,
HYDERABAD-DECCAN.

Branch Office :
THUNGABHADRA PROJECT
(MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at 1½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
DEPUTY GENERAL MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
SUPERVISING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT.

* * *

FIRE: ACCIDENT: MARINE:

THE HYDERABAD UNITED INSURANCE CO., LTD.,

SPONSORED BY

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164, Abid Road, HYDERABAD-Dn.

Telegram: ***HUICOL*** *Telephone:* ***5579***

Chairman:
L. N. GUPTA Esq. I. A. S.,

General Manager:
H. D. MEHTA Esq.,

BRANCHES : Bombay, Calcutta, Madras, Nizamabad & Manchirial.

'HIND'

Education

Start - in - Life

Marriage of your children

Assured without any

embarrassment

Besides a comfortable old age

for you

for All Types Of Insurance

Consult:-

THE
HYDERABAD CO-OPERATIVE
INSURANCE SOCIETY Ltd.
Bashir Bagh Road, Hyderabad-Dn.

सिकन्दराबाद में साहित्यिक पुस्तकों
का
एक मात्र प्रतिष्ठान

पुस्तक भवन,

१३१/१ सरोजनी देवी रोड, सिकन्दराबाद
हिन्दी प्रचार सभा, सिकन्दराबाद
नगर शाखा द्वारा स्थापित
सभी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम, पुस्तकालयों के लिए
उत्तमोत्तम ग्रन्थ, और बाल-साहित्य
हमारी विशेषताएँ

निम्न लिखित
प्रकाशकों की पुस्तकें थोक भाव से हमसे लीजिए:-

१ हिन्दी प्रचार सभा, : : २ विनोद पुस्तक मन्दिर,
हैदराबाद आगरा

हिन्दी के प्रकाशन-क्षेत्र में अभिनव आयोजन

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की समस्त कृतियों का अनमोल संग्रह

बेनीपुरी ग्रन्थावली

दस खण्डों में

पहला खण्ड प्रकाशित हो गया, इसमें श्री बेनीपुरी जी की निम्न कृतियाँ संशोधित परिवर्द्धित रूप में संकलित हैं (पृष्ठ संख्या ६२२, चित्र संख्या १०७, मोनो की छपाई, सुनहरी जिल्द, तिरंगा नयनाभिराम आवरण) माटी के मूरतें, पतितों के देश में, चिता के फूल, गेहूँ और गुलाब, लाल तारा, क़ैदी की पत्नी

बेनीपुरी की लेखनी फौलाद उगलती है
—माखनलाल चतुर्वेदी

यह लेखनी है या जादू की छड़ी है, आपके हाथ में
—मैथिलीशरण गुप्त

प्रति खण्ड मूल्य १२-८-०

पूरी ग्रन्थावली का अग्रिम मूल्य १००-०-०

बेनीपुरी प्रकाशन, : ❁ : पटना ६

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६ जनवरी १९५४ अङ्क १

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

प्रबन्ध सम्पादक

हरिकृष्ण पुरोहित एम. ए.

संचालक

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद.

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या
१ गीत
निराला १
२ तेरे चरण
रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु० मुरलीधर श्रीवास्तव 'शेखर' २
३ इसलिए
डा० सुधीन्द्र एम. ए., पी एच. डी. ३
४ तीनों चाँद
श्रीकान्त वर्मा ४
५ गीत
मदनलाल नकफोफा 'मदन' ७
६ हिन्दी ग़ज़ल
शिवगोपाल मिश्र एम. एस सी. ८
७ भारतीय लोक साहित्य की परम्परा
तिलक ९
८ फ्रेंच साहित्यकार फ्रेंक्वा मारिएक
कृष्णशंकर व्यास २२
९ चीन के संस्मरण
अमृतराय २४
१० कन्नड़ की कहावतें
डी. एस. नारायणराव ३४
११ आधुनिक काल की शिक्षा की समस्या
लालजीराम शुक्ल ३५
१२ हिमालय और भारतीय प्रतिरक्षा
अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार ३८
१३ शुक्र तारा
कुसुमाग्रज ४१
अनु० जगन्नाथ टंकसाली (मराठी से)
१४ महाकवि मधुसूदन दत्त का 'व्रजाङ्गना' काव्य
जयन्तप्रसाद बागची एम. ए: साहित्य रत्न ४२

पृष्ठ संख्या
१५ हिन्दी का यह अपमान क्यों ?
चन्द्रवली पाण्डे ४८
१६ आन्ध्र देश की कविता और
लोकगीतों से उसका विकास
वाविलाल वेंकटेश्वर शास्त्रुलु
अनु० कुमारी डी. शान्ता एम. ए. ५१
१७ वह भीतर रो रही है
राजेन्द्र यादव एम. ए. ५५
१८ चिट्ठी-पत्री ६६
[१] परशुराम चतुर्वेदी
[२] चिरंजीत
[३] भगवतीप्रसाद वाजपेयी
[४] आनन्दकन्द मिश्र
[५] रावी
[६] विनयमोहन शर्मा
[७] उषादेवी शास्त्री
[८] श्याम परमार
१९ नीर-क्षीर ६९
[१] श्रीराम शर्मा
[२] आदित्य मिश्र
[३] हरिकृष्ण पुरोहित
[४] शिवकुमार शास्त्री
२० सामयिक ७४
[१] आधुनिक अंग्रेज़ी उपन्यास
[२] क्षेत्रय्या के पदम
[३] हालैण्ड में संस्कृत का अध्ययन
२१ सम्पादकीय
वंशीधर विद्यालंकार ७८

चित्र : इटगी का सिखारा मन्दिर : पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद के सौजन्य से

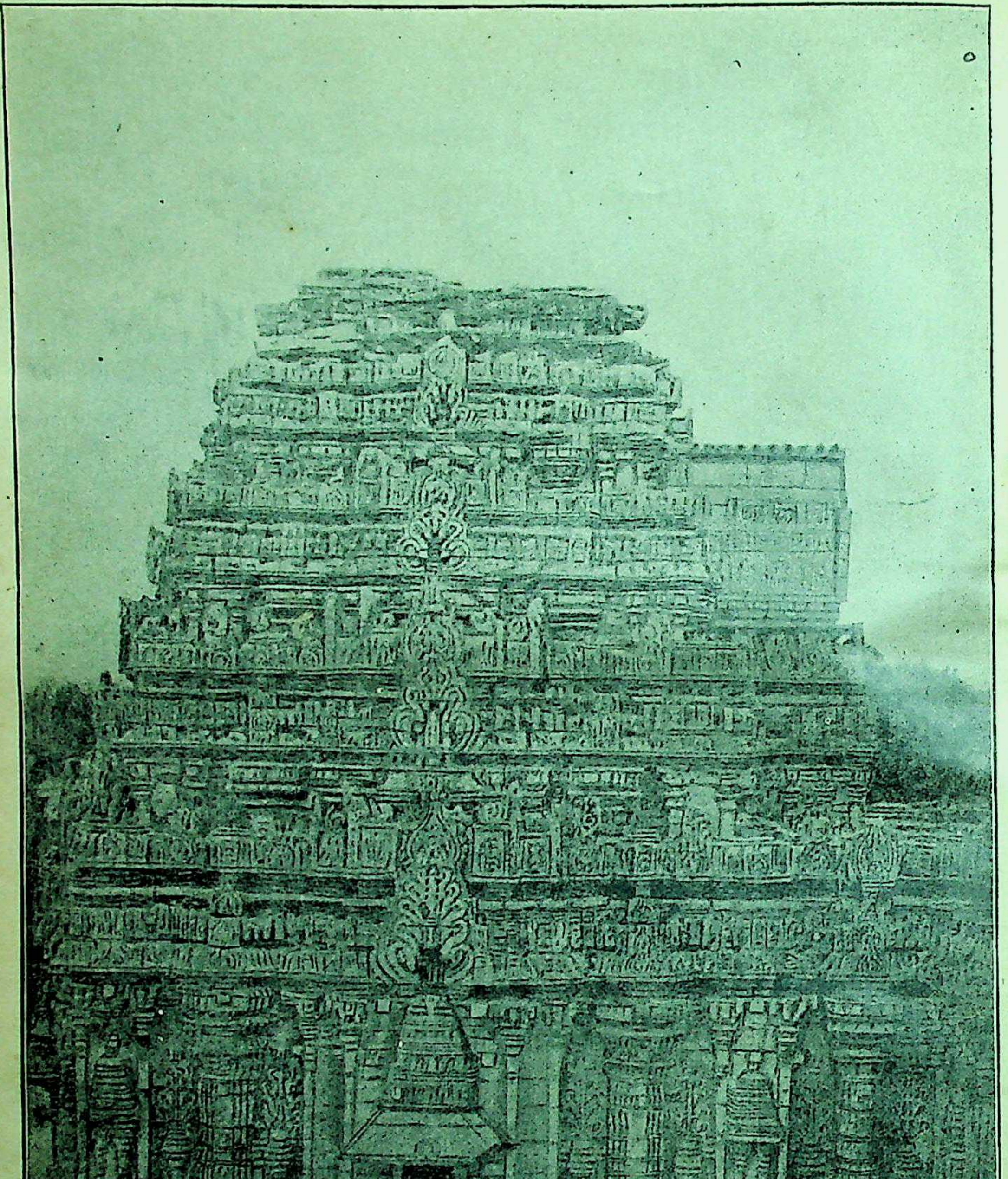

इटागी का सिखारा मन्दिर

पुरातत्व विभाग, हैदराबाद
के सौजन्य से

अजन्ता

वर्ष ६ | जनवरी १९५४ | अङ्क १

गीत

चल समीर, चल कलिदल,
चल पल्लव, चल अञ्चल।

चल सौरभ, चल चितवन,
चल वन, उपवन, जीवन,
चल यौवन, चल कल मन,
चल सुरसरि, जल निर्मल।

चल रवि, शशि, तारादल,
चल ग्रह, उपग्रह चञ्चल,
पृथ्वी, जल, अनिल, अनल,
अग, जग, जड़, जीव चपल।

१२. शहराराबाग,
इलाहाबाद
२-१२-५३

—निराला

तेरे चरण

सब से अधम जहाँ रहते हैं और दीन से दीन
सब के पीछे, सब के नीचे, परम रंक के बीच
वहीं चरण तेरे रहते हैं

तुझको जब प्रणाम करता हूँ
जाने कहाँ प्रणति रुक जाती
पर अपमान तले ही तेरे चरण झुके रहते हैं
किन्तु प्रणाम वहाँ पर मेरे कभी नहीं झुकते हैं
सब के पीछे, सब के नीचे परम रंक के बीच
वहीं चरण तेरे रहते हैं

अहंकार यह वहाँ न जाता, जहाँ कि तू रहता है
भूषण रिक्त दरिद्र दीन-सा वेष जहाँ धरता है

भरा हुआ धन मान जहाँ पर
जाता वहाँ मिलन-आशा भर
जहाँ सखाहीनों के घर में सखा बना रहता है
किन्तु वहाँ पर हृदय हमारा कभी नहीं झुकता है।
सब के पीछे, सब के नीचे, परम रंक के बीच
सदा चरण तेरे रहते हैं

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

'गीताञ्जलि' से

अनु: मुरलीधर श्रीवास्तव 'शेखर'

इसलिए

इसलिए रूप हैं इस जग में
मैं उन सबको समझूँ अपना !
जिसमें होती है सुन्दरता
वह प्रेम जगा देता मन में,
मेरे मन में पर प्रेम—पा रहा
मैं सुन्दरता जीवन में,
इसलिए स्वप्न ये बनते हैं
मिलनेवाला है सत्य मुझे,
जो सत्य बना है जीवन का
कैसे उसको कह दूँ सपना ?
इसलिए रूप हैं इस जग में मैं उन सबको समझूँ अपना

मैं थकन मिटा लूँ सब तन की
इसलिए यामिनी मिलती है,
मैं तपन मिटा लूँ इस मन की
इसलिए चाँदनी खिलती है,
जीवन की थकन मिटाने को
मैं शरण जगत् की खोज रहा
इसलिए प्रेम है इस मन में
मैं प्यारा सबको सकूँ बना
इसलिए रूप हैं इस जग में मैं उन सबको समझूँ अपना

इसलिए कामना है मन में
नयनों में कोई मन-मोहन
इसलिए मधुर है यह चुम्बन
इसलिए सरस है आलिंगन
इसलिए प्राण है इस तन में
मुझ को जीवन में प्रेम मिले
इसलिए दिशाएँ हैं इतनी—
मेरा पथ, है सब ओर बना !
इसलिए रूप हैं इस जग में मैं उन सबको समझूँ अपना

बलंवत राजपूत कालेज,
आगरा

—सुधीन्द्र

तीनों चाँद

दूज का चाँद

चाँद दूज का
जैसे किसी सुंदरी की सुकुमार
कलाई का टूटा चाँदी का कंगन
गिरा हुआ आकाश मार्ग पर
जिससे हर ले गया सुंदरी को
कोई ज़ुल्मी रावण रथ पर बैठा कर
चाँदी की है झील-ज्योत्स्ना
जिसमें उतर दिशाओं की परियाँ
उतार कर अंधकार का चीर नहातीं
और स्वप्न की किश्ती खेती नींद
चली जाती अनजाने स्वर्गंगा की ओर।

चाँद दूज का
जैसे वंग सुंदरी की वेणी में
सज्जित क्लिप चाँदी का
जिसे चूमने चला आ रहा
मस्ती में बादल लहराता
पूर्व दिशा से मलय चला है
ऐरावत सा
कुसुम झील से सुवास जल भर
भू लक्ष्मी पर,
सूंड उठा कर गंध छिड़कता !

चाँद दूज का,
किसी खंजड़िन के सिर के रूमाल सरीखा !
तारों के कंजड़

क्षितिजों के ताल किनारे,
अंधकार-जंगल में गाड़े
नीलगगन का खेमा, बैठे,
ताप रहे अलाव ज्योत्स्ना का
नक्षत्रों की भेड़ चराती
चली जा रही रात-पहाड़िन
पच्छिम की सोई घाटी को
वह हँसिये सा चाँद दूज का,
चला जा रहा
नाल काटने,
क्षितिज प्रसविनी की माटी को ।
जन्म ले रहा है प्रभात शिशु !

× × ×

ग्रहण का चाँद

शशि कपोत पर
झपट रहा है बाज़ राहु का,
गगन नीड़ में दुबके
वे पक्षी तारों के भीत हुए हैं,
काँप रहीं जिनकी छायाएँ
नील झील की लहर लहर में
साँझ हँसी हँस,
पहरवाल निशि की वंशी पर
छेड़ रहा स्वर-अंधकार का
दिशा ग्वालिनें
देख रही हैं ग्रहण धूलि में
छिपता जाता वृषभ चाँद का
देख रहे नक्षत्र जौहरी
गगन अंगूठी में
वह जड़ा चंद्र का हीरा
जो कोयला हुआ जाता है
देख रही है पृथ्वी गृहिणी

यह चाँदी का थाल
बना तसला जाता है
क्षितिज गाल पर
अंगुली रख कर,
सोच रही शर्वरी नायिका—
राहु 'विलन' के आते ही
शशि नायक का मुख स्याह पड़ गया

× × ×

पूरा चाँद

वह चन्दा का कमल खिला है गगन ताल में
तारों की बतखें सरवर में तैर रही हैं
नक्षत्रों के कछुए भू को देख रहे हैं
क्षितिज महावट की शाखाओं पर बैठे वे
वानर चार दिशा का कुहरा लेख रहे हैं
भर कर तम की वायु रात के महा पाल में
नभ गंगा की डगर पड़ी है सूनी सूनी
किसी विधुर की तरुणाई सी गगन छाँव में
यह ज्योत्स्ना की परी; विदा लेती जो प्रातः
रचा भोर की मेंहदी अपने शिथिल पाँव में
चाँद उगा यह जैसे चुम्बन जड़ा गाल में
यह पृथ्वी की हाट, शोर-सामान उठा कर,
नींद नगर में डेरा डाले अब सोयी है
सपनों के खानाबदोश जो भटक रहे हैं,
उन पर निशि अंगना ओस आँसू रोई है
चाँद कि जैसे मैदे की रोटी अकाल में
पूरब के आले में सूरज दीप जलेगा,
उषा सुहागिन जब उदयों के पाँव धरेगी
रात शरण लेगी तब पच्छिम की बाँहों में,
वह जागरण नर्स निंदिया के घाव भरेगी
फूल चाँद का छिप जाएगा दिवस-बाल्ल में

चाटापारा,
बिलासपुर (म. प्र.)

—श्रीकान्त वर्मा

गीत

मुझको तुम पर ही जाने क्यों है इतना विश्वास
धीरे-धीरे, स्वजन-पराये
सब देते जब छोड़,
देख विवशता मेरी, सपने
भी लेते मुँह मोड़,
सुधि ही केवल एक तुम्हारी रहती मेरे पास

एक-एक कर झंकृत होते
मन-वीणा के तार
अंतर की वीणा में जगती
सोई हुई पुकार,
याद तुम्हारी उकसाती है सोई मन की प्यास

मरण-शूल पर मुसकाता है
जीवन का पट फूल,
अपना काजल धोते रहते
किन आँखों के कूल
सजल मेघ से घिर जाता है जब सूना आकाश

स्मृति-घन की होती रहती
जब-तब आकुल बरसात
सुलझ न पाती है जब कोई
उलझी मन की बात
सुधि से भींगी ही आती है बार बार यह साँस

बहुआर चौरा,
गया

—मदनलाल नकफोफा 'मदन'

हिन्दी ग़ज़ल

हमें भय न रवि की प्रबल ज्योति से है
अमा की निशा तममयी ही भगेगी
चमकती तड़ित, ले चमक, बात ही क्या ?
धरा की अमर-शस्य-चोली सजेगी
दिशाएँ प्रलय उग्र झंझा-व्यथित हों,
परम शान्ति ही अन्त में फिर बनेगी
बिगाड़ा जिसे सौ-करों ने, उन्हीं से
नया रूप ले सृष्टि फिर यह बसेगी
हमारी समझ में न आती प्रगति है—
वही करुण-क्रन्दन, निराशा, अगति है
हमें दुख न होता, किसी बात से है,
छिपी-मृत्यु से कष्ट होता हमें है
बुरे को बुरा कह रहे, बात सच है—
बुराई, भलाई किसी दिन बनेगी

शीलाधर रिसर्च इन्स्टिट्यूट,
इलाहाबाद

—शिवगोपाल मिश्र

भारतीय लोक-साहित्य की परम्परा

मानव सभ्यता और संस्कृति हज़ारों साल के उन संघर्षों और समझौतों की कहानी है जो मानव और प्रकृति, जड़ और चेतन में ही नहीं वरन् मनुष्य मात्र के बीच होते रहे हैं। युग के इन झंझावातों में सभ्यता और संस्कृति की अनेक तहें जैसे दब-सी गई हैं परन्तु उनकी आत्मा मरी नहीं, वह आज भी जीवित है, उसे देखा जा सकता है—लोक मानस की अनेक लहरियों में।

अमराइयों में भीगती हुई ग्राम वधुओं के गीत, पूस की रात को अलाव के पास की लोकवार्ताएँ, ग्वालों के मस्त तराने, खेत खलिहानों में बिरहा और कजली का मादक संगीत किसकी अन्तर वीणा के तारों को नहीं छू देते? जनता के इस साहित्य में किसी चिरन्तन सत्य की अनुगूँज है। सौन्दर्य और सज्जा उसका परिधान है। इस तरह यौवन और प्रेम, सत्यं, शिवं, सुन्दरं, से युक्त इस साहित्य की परिधि में जड़, चेतन, प्रकृति, आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी अनेक रहस्य भरे पड़े हैं।

यों तो लोकचेतना की धरती मानव का हृदय है और उसका क्षेत्र है सारी दुनिया। उसके दो पहलू हैं—संस्कृति और सभ्यता। एक है नैसर्गिक और दूसरा है कृत्रिम, एक है आत्मा और दूसरा है शरीर, एक है चेतन और दूसरा है अर्ध चेतन। जीवन की परिस्थितियों के आतंक से हृदय में जाने कितने रहस्य छिपे रहते हैं। "यही लोक मानस की एक एक रेखा, सामयिक बोध की एक एक अवस्था, सामूहिक सुख दुःख, विजय पराजय, प्रकृति की गतिविधि, वृक्ष, पशु, पक्षी और मानव के पारस्परिक सम्बन्धों की अनुभूति है, जिसे लोक हृदय निर्बन्ध होकर अनायास ही उगलता रहा है। यहीं हमें काव्य का यथार्थ रूप भी देखने को मिलता है।" कविवर वर्ड्सवर्थ ने भी लिखा है, "काव्य तीव्रानुभूतियों का धाराप्रवाह है।"

वात्सल्य, प्रिय के लिए मंगल कामना, उसकी रक्षा की उत्कण्ठा, सुख में बाधक वस्तुओं के प्रति क्रोध, ईर्ष्या, आत्मीयता और परकीयता की भावना के अनुसार स्नेह, द्वेष, घृणा, आशा-निराशा सभी ऐसे मनोवैज्ञानिक आधार हैं जिन पर मानव जीवन की आधार-शिला टिकी हुई है।

"उसमें मनुष्य के अन्तर्जगत, बहिर्जगत, जीविका, श्रम, लोक सुधार धर्मज्ञान संग्रह और मनोविनोद की चित्तवृत्तियाँ अन्तर्जगत का बहुरंग रूप दिखाती चलती हैं। वहीं शोक के साथ आह्लाद, प्रेम के साथ वैराग्य, ललक के साथ घृणा, मस्ती के साथ उदासीनता छाया की तरह छाई रहती है।"

चेतना की अनेक धाराएँ—ज्ञात और अज्ञात, हृदय के किसी कोने में बैठी पनपती रहती हैं। समुचित वातावरण मिलते ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वे फूट पड़ती हैं: "आदिम मानव की इस अभिव्यक्ति का एक नैसर्गिक प्रवाह है जिसके दौर में संसार के अनेक जनपद और युग, अतीत से लेकर आज तक अपनी बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक और सामाजिक गतिविधि की भेंट चढ़ा कर चले गए हैं। भारत में यह धारा शान्तिपूर्ण सहयोग और निर्विरोध आदान प्रदान के द्वारा प्रवाहित हुई है।" इसलिए भारतीय लोकसाहित्य में चिरन्तन प्रेम की कहानी, जीवन में बिखरे हुए संस्कार और मानव के वे व्यापार जिन्होंने लोक कलाकारों और लोकचेतना को प्रभावित किया है, समाए हुए हैं। यही उनके सृजन का इतिहास है।

मकई की रोटी जैसा सूर्य उदय होता है। फिर सांझ होती है। चाँदनी से सराबोर और अन्धेरे में डूबी हुई रातें होती हैं। दिन, महीने, साल और युग बीतते जाते हैं और समयचक्र के साथ लोक-साहित्य के पहिए निरन्तर घूमते रहते हैं। जीवन की पृष्ठभूमि में यही परम्परा अतीत को छूती हुई धरती की आस्था में बँधी रहती है। यह मौखिक परम्परा आरम्भ से ही श्रुति रूप में अपौरुषेय है। उसकी अनेक परते हैं जिनके आधार पर देश की आयुष्मती आत्मा का इतिहास लिखा जा सकता है। उसके स्रष्टा सदैव अज्ञात ही रहे हैं; आत्मख्याति से जैसे उन्हें चिढ़ रही हो "बाल वीविल सांग" का यह अन्तिम चरण इसी की शहादत देता है:

"यदि तुमसे कोई पूछे
यह गीत किसने बनाया था?

केवल इतना कहना
कि वह एक काला किसान था
दुख के नीले रंग में रंगा
और उसका कोई घर नहीं था
उसका कोई घर नहीं था ।"

उसमें कोरा भावावेश नहीं है । वह लोक का साहित्य है । उसमें मानव की मुद्रा विशेष या क्षण क्षण उठते गिरते भाव ही नहीं बाँधे गये वरन् जीवन की स्थूल सत्यता पर उसकी बुनियाद रखी गई है । समग्र जीवन पर उसकी छाप है और इसी व्यापकता ने उसे अमरत्व दिया है । सांस्कृतिक उत्थान पतन के हजारों वर्षों की कहानी के गर्भ में भी वह जीवित रहा है । युग के अनुरूप वह बदला है, क्योंकि युग और कलाकार दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं । वह मिटा नहीं क्योंकि जनता की संस्कृति को कोई मिटा नहीं सकता । वास्तव में लोक-साहित्य के तत्वों में मिट्टी के चिरन्तन विकास की शक्ति होती है । अंग्रेज़ी पथगीत की इन पंक्तियों में यही सत्य तो छिपा है ।

"तुम कहते हो
समय बीत जाता है
पर नहीं
अफ़सोस, कि बीत जाते हैं हम ।"

वह एक स्थान से चल कर दूर दूर की सैर करता है । एक हृदय और एक ज़बान से हज़ार ज़बानों और कोटि कोटि कंठों का हार बन जाता है । समय, स्थान और दूसरे व्यवधान उसके मार्ग में बाधक नहीं हो सकते, क्योंकि उसके मूल में वही भाव, वही विचार रहते हैं जो युग-युग से मानव को आकृष्ट करते रहे हैं ।

विश्व–साहित्य के प्रथम चरणों में ही मानव चेतना गति रूप में फूट उठी । "अचेतन ने जब आँख खोली तो ऊषा में गान उसका हो गया मुखरित" और उसी के सोपान पर चढ़ कर आदि मानव ने साहित्य के अन्य क्षेत्रों को भी मुखरित किया । वह अनुगूँज देश काल की सीमाओं को लाँघ गई । मानव की चेतना और अनुभूति में गहरा साम्य जो है । "युग-युग से बैल के कन्धे पर अन्न उगाने का भार है ।" गंगा मय्या की कृपा भी । फिर कोई "नील के वरदान" और "कंगारु की देन" को कैसे भूल जाता । यही रहस्य है लोक साहित्य के रूपान्तर का ।

धरती माँ है और स्वर्ग है पिता । उन्हीं की देन है लोक मंगल । अनिष्ट की छाया से वही तो बचाते हैं । यह विश्वास जीवन के समस्त पक्षों में छाया हुआ है । "पास के गाँवों और सुदूर देहातों का जीवन खुली पुस्तक के समान हमारे चारों ओर फैला हुआ है । एक एक व्यक्ति उसका रहस्य भरा पृष्ठ है ।" यह रहस्योद्घाटन मानव का आदिम स्वभाव है । अपने कलेवर में इन्हीं रहस्यों को छिपाए लोक-साहित्य गाँव गाँव में बिखरा पड़ा है और लोकगीत इस साहित्य की रग रग में रमे हुए हैं । प्रस्तुत फ्राँसीसी गीत में यही तथ्य अंकित है :

"न कोई नदी है बिना मछलियों के
न कोई पहाड़ बिना घाटियों के
न बसंत बिना निलोफरों के
न कोई प्रेमी बिना प्रेयसी के
न कोई गाँव है बिना गीतों के ।"

निर्जन के फूल की तरह, सरिता के उन्मुक्त प्रवाह की भाँति और वन-उपवन की तरह लोक-साहित्य भी आभा, खुशी और माधुर्य बिखेरता रहता है । युग युग से जो देखा सुना है वही आज भी तृप्ति की सामर्थ्य रखता है । कालिदास के रघुवंश में स्त्रियों के लोकगीत, भागवत और लोककथाओं की स्वच्छन्द भावधारा कहीं भी अपना तादात्म्य नहीं खोती । उनमें अतीत से ले कर अब तक का सम्पूर्ण सौन्दर्य, संगीत और आकर्षण जो भरा है । एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को संस्कृति, अनुभूति और विचारों की एक अदृश्य-सी डोर जो थमाती चलती है । यह ऐतिहासिक परम्परा युग युग से चलती आई है और कयामत तक चलती ही रहेगी ।

लोक-साहित्य अपने आँचल में अपना इतिहास, अपनी कला, अपनी सौंदर्य श्री और अपना परिचय लिए स्वयं अपनी भूमिका है । वह एक शुद्ध देशी चीज़ है । लोकवार्त्ता अथवा लोकगीत कोई नई चीज़ नहीं है । अंग्रेज़ी शब्द "फाक लोर" या "फोक सौंग" से वह कहीं अधिक अर्थपूर्ण है । युग युग से जनता जो कहती और सुनती आई है, उसी मौखिक परम्परा की समूची सामग्री लोक-साहित्य के अन्तर्गत आ जाती है । मानव स्वभाव, उसके विश्वास, उसके रीति रिवाज़, पारस्परिक सम्बन्ध,

उसकी मान्यताएँ, उसके रहस्य, गुत्थियाँ और अनुष्ठान, और इस तरह समग्र मानव जीवन इसके अन्तर्गत आ जाता है। धर्म गाथाएँ, उपाख्यान, लोक कथाएँ "बैलड गीत" किम्वदन्तियाँ, पहेलियाँ और लोरियाँ इसके विषय हैं। यों लोक-साहित्य समूची संस्कृति का पहरेदार है और मानव जीवन है उसकी धरोहर। वह स्वयं एक शाश्वत वरदान है।

कलाओं का जन्म वरदानों के रूप में हुआ है, ऐसा लोक विश्वास है। ब्रह्मा जी के शब्दों में, "आमोद प्रमोद अथवा मन-बहलाव इस कला का उद्देश्य नहीं है, बल्कि जीवन का यथार्थ अभिव्यक्त करने के लिए, तीनों लोकों के भाव और भावनाओं के प्रदर्शन के लिए इसकी रचना हुई है। मैंने इसका निर्माण सृष्टि की हर अवस्था और गति को लक्ष्य में रख कर किया है।" इसी से मिलती-जुलती है यूक्रेनी लोकगीतों की कहानी। कहा जाता है, भगवान् ने जब उपहार बाँटे तो उन्होंने यूक्रेन निवासियों को पूर्णतया भुला दिया और अन्त में संगीत का उपहार दे कर खुश किया। इसीलिए कहा जाता है कि यूक्रेनी लोकगीत जर्मनी लोकगीतों से कहीं अधिक गहरे और रूसी गीतों से कहीं अधिक मधुर होते हैं।

जो भी हो "फाक लोर" शब्द पहले पहल १८४६ ई० में डब्लू० जे० थामस ने सभ्य जातियों में मिलनेवाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीतिरिवाज़ों और मूढ़ाग्रहों को अभिव्यक्त करने के लिए गढ़ा था। "फाक-लोर" की परिधि में वैसे तो मेहनतकश ग्रामीण जनता की लोकप्रिय कलाएँ, भौतिक और सांस्कृतिक चेतना सभी कुछ आ जाना चाहिए, किन्तु आरम्भ की व्याख्या से इन तत्वों को दूर ही रखा गया। सी० एस० बर्न के कथनानुसार "फाकलोर" एक जातिबोधक संज्ञा के रूप में चल पड़ा, जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों के विश्वास, रीतिरिवाज़, जड़ चेतन जगत के सम्बन्धों की व्यञ्जना, लोकगीतों, कथाओं, लोकोक्तियों आदि के माध्यम से व्यक्त हुई है। किन्तु शब्दों के अर्थ परिभाषाओं द्वारा नहीं वरन् उनके प्रयोग द्वारा निर्धारित होते हैं। हिन्दी में लोकवार्ता शब्द को "फाक लोर" के पर्यायवाची रूप में प्रचलित करने का श्रेय श्री, कृष्णानन्द गुप्त को है और आज लोक साहित्य की व्याख्या का अर्थ है लोकजीवन की व्याख्या।

जन जीवन स्वयं उतना ही विस्तृत और अगाध है जितना कि स्वयं मानव। मानव के बिना लोक भी निस्पन्द और निर्जीव है। पारखी के बिना कला कहाँ? आत्मा के बिना शरीर क्या? फिर मानव जीवन के बिना लोक-साहित्य स्वयं कुछ भी नहीं रह जाता। लोक-साहित्य में मनुष्य का हृदय धड़कता है। कला के रंग उभरते हैं, खेत खलिहान साँसें लेते हैं और समाज परखता है कला और जीवन के इस मर्म को। मानस की रेखा-से वह बनाया करता है अपने आदर्श, अपनी आस्था। यही तो प्रगति के सोपान हैं। इसलिए लोक साहित्य की वातावरण प्रधान वार्त्ताओं को हृदयंगम रखने के लिए लोक जीवन का पूर्व परिचय नितान्त आवश्यक है। वह जीवन के विभिन्न सम्बन्ध-सूत्र भावों को प्रदीप्त करने की महान् सामर्थ्य रखता है। पर इस आत्मव्यञ्जना के लिए भी तो अवसर की अपेक्षा होती है। लोक-साहित्य का यद्यपि सम्पूर्ण जीवन से गहरा सम्बन्ध है पर फिर भी कुछ अवसर होते हैं जब वह किसी भी कण्ठ से निसृत हो उठता है।

क्या नृत्य, क्या संगीत, और क्या लोक-साहित्य सभी मानव हृदय और मस्तिष्क की नैसर्गिक देन हैं, जिसमें कृत्रिमता का बाह्याडम्बर नाम मात्र को नहीं। उसकी रग रग में लोक जीवन का स्पन्दन, परिस्थितियों के घात प्रतिघातों का लेखा जोखा रहता है। चक्की की घुरुर घुरुर, माता के गीतों, कर्कशा सास की फटकारों से ले कर संतवाणी तक में यही रंग समाया हुआ है। इस गाथा में प्रत्येक व्यक्ति, समूचे कुटम्ब, जाति या राष्ट्र का प्रतिबिम्ब नजर आता है। व्यवहार क्षेत्र में ही नहीं, साहित्य क्षेत्र में भी लोक की महत्ता आँकी गई है। तुलसी ने, "गिरा ग्राम सिय राम यश, गावहिं सुनहिं सुजान" कह कर इसी को आँका है। कालिदास ने मेघदूत और रघुवंश के चौखटे में ग्राम वधुओं और ग्राम वृद्धों की सरस कथाओं को संजोया है। अत एव स्पष्ट है कि लोक साहित्य ग्रामीण जन की ही बपौती नहीं वरन् जन-सामान्य की चीज है। चिर परिचित शब्द, चिर परिचित बातें, चिर परिचित स्वर, यही उसकी शक्ति हैं। यदि ये पद, ये दोहे, ये कथाएँ, ये गीत हृदय में गुदगुदी पैदा कर देते हैं तो कला सार्थक हो गई और कलाकार भी कृतकार्य।

लोक-साहित्य जनता की अपनी चीज़ है। उसकी अनेक शैलियाँ हैं। प्रत्येक जनपद का अपना रूप है, अपना रंग। भाषा के भेद तो वेश भूषा और सज्जा मात्र हैं लोक-साहित्य की चित्रमंजूषा में सांस्कृतिक एकता,

ध्वनि चमत्कार और भाव व्यंजना दीख पड़ती है। अनेकता के धागों में गुथी हुई एकता और विभिन्न गलियों के बीचोंबीच "फैली हुई चतुर्दिक एकता" पर फिर भी एक रंग ऐसा होता है जो सौ रंगों के बीच भी दबता नहीं जो गीत की टेक की तरह आदि से अन्त तक पूरी शक्ति के साथ छाया रहता है। जैसे पहाड़ के इस पार से उस पार जाने से नया ही दृश्य सामने आता है ठीक वैसे ही एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त के लोक-साहित्य में थोड़ी बहुत भिन्नता तो होगी ही। कमायूँनी गीतों और साहित्य में गढ़वाली ध्वनि और भाषा का परिधान है, किन्तु कमायूँ के साहित्य का कथानक बिल्कुल स्वदेशी है। जौनसार प्रदेश की चियाँ वियाँ, देहरादून के सुदूर आभ्यन्तर से "छामड़िया दानों" की वार्ताओं ने लोक-साहित्य में स्थानीय "शेड" दे दिए हैं।

जन सामान्य के इस साहित्य और गीतों के अतिरिक्त जाति और वर्णगत गीतों की कोटि है, जिनमें उनके सामाजिक जीवन के चित्र अंकित हैं। अहीरों के बिरहे, कहारों के कहरवे, धोबियों के धुब्ब राग, अपनी अपनी लय में अपनी अपनी जातिगत विशेषताएँ लिए रहते हैं। छत्तीसगढ़ी से ददरिया, कर्मा, बांस वीरम गीत जाति विशेष से सम्बन्ध रखते हैं। बारहट, चारण, भाट नट, गूज़र ये सब विगत महत्ता के गायक हैं। उनके गीतों में ऐतिहासिकता का पुट और अतीत की स्मृतियाँ सुरक्षित मिलती हैं।

पारिवारिक जीवन के प्रिय और अप्रिय दोनों ही अंगों का सफल चित्रण हमें सभी देशों और जातियों के लोक-साहित्य में मिलता है। पारिवारिक जीवन के चित्र में दैनिक जीवन की घटनाओं के विभिन्न रंग हैं। एक रंग गहरा होते ही सारे चित्र के रूप में परिवर्तन हो जाता है। लोक-साहित्य में शील, शिक्षा, व्यथा, सहनशीलता, दैन्य, और ज्यादती के विभिन्न "शेड" मिलते हैं। इनमें कुछ समस्याएँ तो शाश्वत हैं और कुछ हैं क्षणिक।

शुभ अवसरों पर इष्ट वन्दना, पूर्वजों का संस्मरण, भारतीय लोकाचारों में परम्परागत है। जन्म और छठी से ले कर अन्न प्राशन और मुण्डन, जनेऊ, मंगनी, टीका, विवाह की एक एक रश्म-मण्डप, सेल, हल्दी, सोहाग, सांझ, भोर, टोना, राई परिछन, भात, द्वारपूजा, घुड़चढ़ी, कन्यादान, भाँवर, सिन्दूरदान यह भी ऐसे संस्कार और लोकाचार हैं जो लोकगीतों की लय में बँधे हुए हैं। इन सभी के पीछे एक न एक विश्वास किम्वदन्ती के रूप में नत्थी है। सम्मिलित परिवार प्रणाली भारतीय जीवन की अपनी विशेषता है। पारस्परिक स्नेह की बुनियाद पर वह स्थिर है। दुर्व्यवहार की दरारें उसे छिन्न भिन्न कर देती हैं। सास, बहू, ननद, भौजाई, और पति पत्नी के सम्बन्ध, सौतिया डाह, दैनिक जीवन का यथार्थ और उसकी घटनाएँ, सभी तो पारिवारिक जीवन की बहुरूपता है।

संस्कारों और लोकाचारों के अतिरिक्त बहुत-सी प्रचलित प्रथाओं और धारणाओं के उल्लेख लोक-साहित्य में मिलते हैं। सन्तानहीनत्व एक अभिशाप मान लिया गया है। तज्जन्य सामाजिक लांछन और मानसिक वेदना लोक-साहित्य में कसकती हैं। पुरुषों के बहुविवाह की प्रथा ने नारी जीवन को झकझोर डाला है, वही विवशता, वही डाह लोकसाहित्य में व्यक्त हुआ है। अनमेल और बाल-विवाह का भी भारतीय समाज में प्रचलन रहा है, तभी तो कन्या और पिता की बेबसी के आँसुओं से लोक-साहित्य भीगा हुआ है। लोक-साहित्य की आत्मा पर एक तरह से सामाजिक जीवन के कोहबर लिखे गए हैं। लोक-साहित्य, लोक चित्रांकन की वाणी है। लोकनृत्य और लोक संगीत से उसका चोली दामन का साथ है। वास्तव में ये सभी कलाएँ मानव की सामूहिक चेतना की उपज हैं। उनमें पुराने समाज के अनेक चित्र, आदर्श, ऐतिहासिक घटनाएँ और धार्मिक भावनाएँ आदि सुरक्षित हैं।

लोकगीतों की चर्चा करते हुए गुरुदेव ने कहा था, "वे भारत की अन्तरात्मा का दिग्दर्शन कराते हैं।" गाँव सचमुच ही हमारी संस्कृति के जन्मदाता हैं। सही मानों में वे ही धरती के लाल हैं। उनके पास जनजीवन का टिकाऊ आधार है। हज़ारों वर्ष पुरानी और अटूट परंपरा उनकी थाती है। जनसत्ता, जनवाणी, जनसंस्कृति, जन-महिमा और ग्रामों की अपनी स्वाभाविकता वहाँ आज भी बाहरी अंकुशों से सुरक्षित है। सत्येन्द्र जी के कथनानुसार, "जनपदों ने अपने जीवन का मथा हुआ मक्खन पुरों को भेंट चढ़ाया है और पुरों ने उपकृत हो कर संस्कृति के वरदान से जनपदों को संवारा"। इस महान् सांस्कृतिक आदान-प्रदान की गौरव गाथा लोकसाहित्य के अलिखित पन्नों पर अंकित है। ग्राम्य जीवन के वे धूमिल चित्र पाण्डुलिपियों और ध्वंसावशेषों की तरह लोकसाहित्य के व्यापक क्षेत्र में बिखरे हुए हैं।

अशोक की व्याख्या के अनुसार समस्त मानव जीवन जिन सामाजिक नीति नियमों में बँधा है वे धर्म हैं। मानव धर्म का प्रधान तत्व मनुष्य के लिए मनुष्य की सहिष्णुता का भाव है। वनों के निषाद् और शबरी के प्रति भी इसी मानव धर्म ने सहिष्णुता की साँझी सजाई है। "भक्ति का प्रेमदर्शन अंग स्वतः इतना अगाध और अथाह है कि जिस समय नृत्य करती हुई राधा कृष्ण के अंक में गिरती है, भक्त बेसुध हो जाता है" किन्तु धर्म का एक रहस्यमय रूप भी है। ब्रह्म और आत्मा की तरह पेचीदा यही रहस्य, विश्वास, टोना, तन्त्र, अनुष्ठान आदि की तहों में छिपे हुए हैं। जो भी हो लोक-साहित्य में सहिष्णुता है, भक्ति और प्रेम है, धर्म की गुत्थियों को सरल ज़बान में समझाने का प्रयत्न भी है और फिर उन आदिम विश्वासों का चित्रण भी जिन्होंने धर्म और देवी देवताओं को मान्यता प्रदान की। पारिवारिक जीवन में पग पग पर, उठते बैठते, पर्व पूजन, यात्रा अनुष्ठान या किसी भी शुभ कार्य के श्रीगणेश में ये भावनाएँ सामाजिक प्राणी का पथप्रदर्शन करती हैं। इसके अतिरिक्त भी गृहस्थी, सामाजिक, ग्राम्य और लोक जीवन में इसका उन्मुक्त प्रवाह देखने को मिलता है। रमते हुए साधु, सन्यासी, जोगी, भगत, मीरासी और भिखमंगे अपने गीतों, कहावतों, कथाओं और पदों में यही भावना बिखेरते रहते हैं। तीर्थों और घाटों पर पुण्य के खोजी इसी भावना में डूबते उतराते रहते हैं। इस तरह लोक साहित्य की परम्परा में धर्म के यह विभिन्न तत्व, उनका रूप रूपान्तर, और सामाजिक चेतना का क्रमिक विकास खोजा जा सकता है।

लोकगीत नारी हृदय की धड़कनें हैं। वे इन्हें जन्म देती हैं। परवरिश करती हैं, संकलित करती हैं और आने वाले युगों के लिए धरोहर रूप में छोड़ जाती हैं। स्वभावतः वे हैं भावुक, करुणामयी, कल्पना और सौंदर्य की प्रतीक और जन्मजात कवि भी। "वियोगी" कवि की तरह लोकमानस का एक एक रेखापात, उनके गीतों का तानाबाना इस तरह साहित्य की अमर थाती बन कर रह जाते हैं। कभी वे ग्राम वधुएँ बन कर सुसराल जाती हैं। यौवन के भार से बोझिल हो कर पनघट जाती हैं। सत्यार्थी जी की कल्पनाजनित नारी का लंहगा, "एक गोल दायरे में तैर जाता है, हवा की लहरों पर झूमर नाच उठती हैं। गोटे के लहंगे की उठान के साथ साथ धरती की आशाएँ और उमंगें उड़ती हैं। क्योंकि गोरी का लहंगा भी तो धरती की देन है। तभी कोई दिलजली कह उठती है।

"एक रोटी के पचासन हैं खिवैया,
इनके जियरवा के लागनवा हजार।"

चूड़ियां खनकाती वह गाँव वापिस आती है। मानस की किसी भी ठेस से उसके गीत फूट उठते हैं और छलक उठती हैं उनमें जनपद की भीगी पलकें। कुछ और उमंग से भरी मिलन यामिनी की गोद में वह गुनगुनाती-सी जाती हैं। उसके इर्दगिर्द गीतों की दुनियाँ होती है, बच्चे और बुड्ढे, खलिहान और खेत भी। हलजोता उसका पति है, पनघट है, अलाव है, नीरव दोपहरियाँ और उदास रातें। सभी के अपने अपने गीत हैं और अपनी अपनी कहानी भी। नाच के गीत अलग हैं और खेल के अलग; पर सभी से उसका गहरा नाता है। बाला और युवती का और डुकरिया पुराणवाली बूढ़ी काकी का भी।

लोक साहित्य के निर्माण में जड़ चेतन सभी का समान योगदान है। उनमें धरती गाती है। पहाड़ सर्दी से ठिठुरते हैं, लहरें नाचती हैं, फसलें मुस्कराती हैं। तारे कहानियाँ कहते हैं और वृक्षों की आड़ में हवा आहें भरा करती है। किन्तु ऋतु और रुचि परिवर्त्तन के साथ साथ गीतों और लोकवार्त्ता की दिशा भी बदलती रहती है। पतझड़ के बाद बहार और बसंत के बाद आती है गर्मी। आकाश से आग बरसती है और झुलस जाती है धरती। यों ऋतुक्रम के साथ गीत बदल जाते हैं। बरसा में कजली, बारहमासे और हिंडोला की गूंज होती है तो बसन्त में होली की। इसी तरह सावन के गीतों में शृंगार और चैत के गीतों में एक विशेष कोमलता होती है। उदास दोपहरी का रंग और होता है और अंधेरी रातों का और। सुनहरी सांझ और रुपहरे भोर का और। "प्रत्येक ऋतु, प्रत्येक उत्सव, कातने बुनने के धन्धे, जुताई, बुवाई, कटाई, निराई की सामाजिक क्रियाएँ, सभी के साथ लोकवार्त्ता के टांके लगे हुए हैं।"

लोक साहित्य जीवन साहित्य है। अतः इसमें परिवर्त्तन अनिवार्य है। घटना, आदर्श, सांस्कृतिक आदान प्रदान आदि सभी तत्व जो जीवन में परिवर्त्तन लाते हैं वही लोक साहित्य की आत्मा और शरीर को भी बदलते

रहते हैं। विगत पचास वर्षों में जहाँ लोक साहित्य पर एक ओर फ़ारसी और उर्दू शब्दावली की छाप लगी है वहीं इसकी आत्मा में राष्ट्रीयता समाई है।

भारत की शस्य श्यामल भूमि पर इसे पनपने के लिए व्यापक क्षेत्र मिला। पहाड़ी प्रदेशों में मनोरम सौंदर्य से भर कर अभिसारिका की भाँति वह आभा से चमक उठा। व्रज की लीलाभूमि में इसे बंसी, माखन मिला बुंदेलखण्ड की वीरभूमि में इसने शस्त्रास्त्रों से शृंगार किया। जंगली कही जाने वाली जातियों के बीच सन्तप्त मानव की भावनाओं का रूप धारण किया। जन सामान्य की बोली में इसका रूप निखर उठा। इसके मिठास पर विद्यापति बरबस कह उठे, "देसिल बयना सब जन मिट्ठा।"

हिन्दी लोकगीतों के अन्तर्गत उपभाषाओं के गीत और साहित्य के अन्तर्गत उनकी मौलिक परम्परा आ जाती है यथा—अवधी, व्रज, बुंदेलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, खड़ी बोली आदि। तुलना के लिए राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, आसामी और काश्मीरी भी विचारणीय हैं। प्रान्त अथवा उपभाषा विशेष के साहित्य को भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि साहित्य नहीं कहा जा सकता। हिन्दी का आज जो विस्तार क्षेत्र है वहीं भारतीय सभ्यता सदा से केन्द्रित रही है। अतः यहीं के लोक-साहित्य में भारतीय संस्कृति की आत्मा निवास करती है।

लोक साहित्य में, लोक जीवन, लोक हृदय, लोक संस्कृति, लोक धर्म, ही नहीं वरन् लोक चेतना के तत्व भी मिले हुए हैं। समय समय पर सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों के घात प्रतिघातों को लोक हृदय ने अनुभव किया है, उनका लेखा लोक-साहित्य को प्रभावित करता रहा है। उसमें मानव सभ्यता के क्रमिक विकास की कड़ियाँ और उसकी आधारभूत मानव मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के ध्वंसावशेष यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। यही वे तत्व हैं जो समाज और साहित्य को नित नई प्रेरणा और नित नया जीवन प्रदान करते हैं।

लोक-साहित्य के अन्तर्गत वह सभी मौखिक परम्परा आ जाती है जिसे साहित्यक दृष्टिकोण से कथा, वार्ता, भजन, लोकगीत, चुटकले, कहावतें, पहेलियाँ, टोने, टोटके और जन्त्र मन्त्र की श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। ये सभी युगयुगान्तर से चले आने वाले विश्वासों से नाता स्थिर किए हुए हैं। जड़ चेतन और संस्कृति के त्रिभुज बन कर वे अतीत, वर्तमान और भविष्य से अपना सम्बन्ध निर्धारित करते हैं।

लोक-साहित्य में बहुरूपता दिखती है। उसका एक रंग यदि पहाड़ी पगडण्डी के समान ऊँचा नीचा है तो दूसरा पहाड़ी दामन के समतल प्रदेश में क्षितिज की छवि लिए। डा० सत्येन्द्र ने सी० एस० बने महोदय के आधार पर लोकवार्त्ता का निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किया है :

(अ) विश्वास, आचरण और अभ्यास १ पृथ्वी और आकाश से २ वनस्पति जगत् से, ३ पशुजगत् से, ४ मानव से ५ मनुष्य निर्मित वस्तुओं ६ आत्मा तथा दूसरे जीवन से ७ परामानवी व्यक्तियों अर्थात् देवी देवताओं से ८ शकुन अपशकुनों, भविष्यवाणियों और आकाशवाणियों से ९ जादू टोनों से १० रोगों तथा स्थानीय कला से, सम्बन्धित हैं।

(ब) रीतिरिवाज़ जो १ सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं से २ व्यक्तिगत जीवन के अधिकारों से ३ व्यवसाय धन्धे तथा उद्योग से ४ तिथियों, व्रत त्यौहारों से ५ खेलकूद और मनोरंजन से सम्बन्धित हैं।

(स) कहानियाँ तथा कहावतें जो १ सच्ची समझ कर कही जाती हैं अथवा जो केवल मनबहलाव के लिए हैं २ सभी प्रकार के गीत ३ पहेलियाँ और कहावतें ४ पद्यबद्ध स्थानीय कहावतें।

लोक-साहित्य का सृजन जनता की भाषा में हुआ है। दुर्भाग्य से आज का मध्यम वर्ग अनभिज्ञ है। अनुसन्धान से उस खाई का पता चलता है जो हमारी भाषा और जनभाषा के बीच है। भाषा की दरिद्रता जनता के दारिद्रय की सूचक है। किन्तु लोकसाहित्य का अपना असीम शब्द भण्डार है। यद्यपि वे शब्द सुघड़ "डायमण्ड कटे" तो नहीं पर फिर भी हज़ार वर्षों के संघर्ष, अनवरत आँधी तूफ़ान और तोड़ मरोड़ में न तो उनका रूप ही विकृत हुआ है और न उनके वज़न में कमी आई है। जनपदीय अध्ययन के विद्यार्थी के लिए यह कुबेर भण्डार खुल जाता है। किसान की शब्दावली में सदियों के शब्द संचित हैं। ईण्डू से ईडुरी, यून से मूंज और जूना जैसे न जाने कितने शब्द हैं। इससे ऐसी शब्दावली का उद्धार हो सकता है जिसका उल्लेख भी शिष्ट-साहित्य में नहीं हुआ। लोक-साहित्य के अनुसन्धान से नए शब्द मिलेंगे, शब्दावली की कमी मिटेगी, भाषा की अनेक धातुओं, मुहावरों और बुद्धिमत्ता सूचक कहावतों का

अनुपम शब्द भण्डार प्राप्त हो सकेगा। और यह भी निश्चत है कि यह शब्दावली डा० रघुवीर की टकसाल में ढले हुए सिक्कों से अधिक लोकप्रिय और चलताऊ होगी।

यह ध्यान देने योग्य है कि ग्रामीण नामों तक में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देशी शब्दों का रोचक सम्मिश्रण मिलता है। यथा शिव अथवा शिवदत्त से शिवक, सिबह, सिब्बा। कल्याणचन्द्र या कल्याणदत्त से कल्लू, ज्ञानदत्त से नानक, विपुलचन्द्र से बूलचन्द्र, निग्रोध से निगोह, प्लक्ष से पिलखुआ, तमसा से टौंस, मिहरकुल से मिहरौली, पांचाली से पटियाली आदि ऐसे ही छीतर फिक्कू, पघारु और घिराऊ की अपनी विकास गाथा है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी लोकसाहित्य का काम कम महत्वपूर्ण नहीं है। शब्दों की व्युत्पत्ति और उनका इतिहास भाषा विज्ञान का मुख्य अंग है। शिष्ट साहित्य में सजीवता और व्यञ्जना उसी की देन है। अहकना, बिसूरना, निहुरना, फोकट, ताबड़तोड़, हलकोरना, गींजना आदि देहाती शब्द होते हुए भी कितने सजीव और भाव व्यंजक हैं। आम का लसियाना, जेठ की हवा पुरवईया, फागुन की फगुनैटा, पश्चिम की पंछईया और प्रचण्ड वायु हडउरा की अपनी विशेषताएँ हैं।

लोक-साहित्य में विदेशी भाषा के रूपान्तर भी प्रचुरता से मिलते हैं यथा "ग्लेशियर" से बाँक, "मोरेनिक" से दाँको गाँको, "हार्न" से भोंपू, "लैन्टर्न" से लालटेन, "बायसिकिल" से पाँयगाड़ी, "एरोप्लैन" से चीलगाड़ी, "मोटर साइकिल" से फटफटिया, ठीक इसके विपरीत शिष्ट साहित्य के शब्द रूपान्तर में वह शक्ति नहीं है। उदाहरण के लिए 'पी० एम० जी०' के अनुवाद महागुरुघंटाल, "सीमैन्ट" के वज्रचूर्ण, "सैफ़टीरेज़र" के कैशलंचन यन्त्र को लिया जा सकता है। इस प्रकार भाषा और साहित्य की सर्वांगीण श्रीवृद्धि के लिए लोक-साहित्य निश्चय ही कामधेनु के समान है।

लोक-साहित्य में इतिहास की कड़ियाँ भी मिलती हैं। आदिम विश्वासों, मान्यताओं और घटनाओं का पुराना इतिहास उसमें सुरक्षित है। "विकास परम्परा में कौन कहाँ से कहाँ पहुँच गया, लोक-साहित्य में यह स्पष्ट दिखता है।" वह हमें लोक संस्कृति के मूल और विगत के इतिहास की एक अमूल्य निधि से परिचित कराता है।

लोक-साहित्य के अन्तर्गत जड़, चेतन सभी की चर्चा है। पहाड़, नदियाँ, रेगिस्तान, झाड़, झंखाड़ और भगवान की रचना के तीनों दल—चींटी दल, टिड्डी दल और चिड़ीदल सभी की आदि मानव ने आरती उतारी है। शंखपुष्पी, स्वर्णजीरी, काकजंघा, सर्पाक्षी, हंसपक्षी, अकौआ, विसखपरा, बथुआ आदि शब्दों से वनस्पतिशास्त्र के विषय में उसके अपरिमित ज्ञान का पता चलता है।

"कोकिल वसन्त की उष्णता लेकर आती है।" पक्षियों के इस तरह के अध्ययन से "डुगलस डैवर" की तरह वह भी वर्ष का पंचांग बनाया करता था। पशु-पक्षियों से मानव के सम्बन्ध आज भी टूटे नहीं हैं और लोक-साहित्य में उन्हें सुरक्षित देखा जा सकता है। फिर "चार्ल्स डार्विन" के विकासवादी मतानुसार मानव का विकास पशुओं से हुआ है। अत एव आनन्द, क्रोध, प्रफुल्लता, प्रतिस्पर्धा, प्रेममय संगीत और नृत्य मनुष्य से उतने ही सम्बन्धित हैं जितने उनसे। इसी प्रकार नर मादा की प्रीति, प्रजनन और पालन-पोषण के ढंग, परिवार रक्षा सभी क्षेत्रों में एक गहरी समानता है। भौंरे, मोर, पपीहे सभी गाते हैं। लोक-साहित्य में यत्र तत्र उनकी चहचहाहट भी है और कहीं कहीं तो वे संदेशवाहक के रूप में भी दिखाई देते हैं। गाय से भारतीयजन का पुराना सम्बन्ध है। शुकदेव जी महाराज ने चिन्तन की नई दिशा दी है तो गजानन ने चूहे पर ही सवारी गाँठी है।

इस प्रकार लोक-साहित्य में समाज विज्ञान और व्यावहारिक ज्ञान का असीम भंडार भरा पड़ा है। घाघ की कहावतें कृषि सम्बन्धी तथ्य हैं। मौसम, ज़मीन की नस्ल, बीज, पशु चिकित्सा आदि की असीमित ज्ञानराशि उसमें मिलती है। "पाँचै आम पचीसै महुआ, असी बरस मां इमिली कटहुआ" तो उदाहरण मात्र है। लालबुझक्कड़ की सूझ बूझ बौद्धिक चमत्कार का अनुपम उदाहरण है। एक राजा और सात रानी से आरम्भ होने वाली इन कहानियों में हमें जहाँ लोक कल्पना की थाह मिलती है वहीं समय समय पर बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था का आभास भी।

धरती के लालों की यह मौखिक परम्परा अनन्त काल से चलती आ रही है और जनस्मृति के रूप में आज भी सुरक्षित है। विदेशों में लोकवार्त्ता, नृशास्त्र, समाज विज्ञान, भाषा शास्त्र, इतिहास, पुरातत्व और

मनोविज्ञान से इसका घनिष्ट सम्बन्ध माना जाता है।

सामान्य साहित्य के अतिरिक्त भारत के सभी प्रान्तों में वीरगाथा परम्परा के गीत मिलते हैं। पंजाब में हीर-रांझा, मारवाड़ में ढोलामारु, उत्तरप्रदेश में आल्हा, बिहार में लोरिक, छत्तीसगढ़ी में ढोला और रसालू लोकप्रिय हैं। इन प्रबोध गीतों में कोरी भटैती नहीं वरन् नैसर्गिक काव्यसरिता अपने उन्मुक्त प्रवाह में बहती है। ढोल, डमरु और चंग की ताल से बंधे हुए हैं। समय के साथ वे लीन हुए हैं किन्तु नश्वर स्वर से निःसृत अनश्वर स्वर के गान आज भी उनके काव्य शरीर को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।

राष्ट्रीय भावना इनमें एकरस हो कर बहती है। विगत डेढ़ सौ वर्षों में भारतीय लोकगीतों ने नये-नये परिधान पहिने हैं। मुगल राज को फिरंगी का बाना मिला है तो अंग्रेजी राज्य की उपमा निष्ठुर जवानी तक से दी गई है। "गांधी बाबा दूल्हा बने" जैसी अनेक कड़ियों में अमर शहीदों, चर्खे और राष्ट्रमुक्ति के प्रयासों को कोटि-कोटि श्रद्धाञ्जलियां भेंट की गई हैं। देश की एकता के साथ साथ राष्ट्रीय भावना में भी एकता के धागे जुड़ते गए हैं। लोकचेतना और उसके दृष्टिकोण की व्यापकता अथवा संकीर्णता लोक-साहित्य को सदा से प्रभावित करती रही है। भारतीय लोक-साहित्य में "वसुधैव कुटुम्बकम्" के प्रति आस्था ने अनेकता में राष्ट्रीय एकता को जन्म दिया है।

आज के सभ्य कहे जानेवाले समाज में ग्राम्य साहित्य की उपेक्षा हुई है। कुछ साहित्यकारों का कहना है कि उसमें सुरुचि नहीं, सौष्ठव नहीं और गूढ़ कला का अभाव है। किन्तु क्या पारखी की आँख इनके पास है? गांव की गोरी का सौन्दर्य देखने के लिए कवि हृदय चाहिए। सागर की अनन्त जलराशि में मोती खोजने के लिए मांझी का हौसला जरूरी है। जड़ पदार्थों के अणु अणु में बिखरी प्राणशक्ति को समझने के लिए हमें धूल मिट्टी से लगाव होना चाहिए। फिर बिना देखे समझे इस तरह का तिरस्कार असंगत ही कहा जायगा, क्योंकि 'इगनोरैंस इज नो सब्सिट्यूट फार कन्डैम्नैशन।' वास्तव में जनपद की रग रग में रमी रूढ़ियां लोक संस्कृति की रीढ़ हैं और उसकी एक एक कड़ी बिखरी पड़ी है हमारे लोक-साहित्य में।

लोक-साहित्य शब्दजाल और छन्द बन्धनों से मुक्त लोकहृदय का सरल उद्‌गार है। टीकम और घसीटे के भजन, और रमई काका की कहानियाँ हर उस व्यक्ति को जिसके कलेजे में दिल है बाग़ बाग़ कर देती हैं। साधारण जीवन, लोक-जीवन और ग्राम्य-जीवन पर्यायवाची शब्द हैं। यह तथ्य शिष्ट-साहित्य के आलोचकों की आँखों से ओझल रहा है और इसी दूरी की देन है "ग्रामत्व दोष"। पर वास्तव में वह शिष्ट काव्य और शिष्ट साहित्य की रचना के लिए अनुपम उपादान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है, "जब पंडितों की काव्य-भाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुई लोकभाषा से दूर पड़ जाती है......तब शिष्ट समुदाय लोकभाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य परम्परा से नया जीवन डालता है।"

नवोदित कवि के लिए लोक-साहित्य प्रेरणा का स्रोत है और जनपदीय अध्ययन के लिए समृद्ध पृष्ठभूमि। शिष्ट साहित्य के जो कलाकार जनजीवन से घुले-मिले रहे हैं, लोक-साहित्य से जीवन लेते रहे हैं और उनका साहित्य सामान्य जनता का साहित्य बन गया है। यही नहीं "वह तो जनता की विराट् अलिखित पुस्तक पर अंकित हो गया है।" लोक कलाकार, "व्योमकुंजों की परी, अयि कल्पने" कह कर चुप नहीं हो गया वरन् उसने, कल्पना लोक से उतर कर समाज के उस शोषित और युग युग से उपेक्षित अंश को, जो यथार्थ की चट्टानों से टकरा टकरा कर लहूलुहान हो गया है, देखा है और वाणी का सुधारस देकर सहानुभूति का मरहम लगाया है।

यही नहीं मर्यादाओं का जो निर्वाह लोक-साहित्य में हुआ है शिष्टसाहित्य उसे नहीं पा सका। जनकवि तुलसी सीता द्वारा लक्ष्मण का परिचय इन शब्दों में दिलाते हैं, "बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी, पिय तन चितै भौंह करि बाँकी।" गुप्त जी वही चीज़ प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं, "शुभे तुम्हारे कौन उभय ये श्रेष्ठ हैं?" "गोरे देवर श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं।" परन्तु शिष्टसाहित्य के अधकचरे हिमायती तो, "हलो डीयर, हीयर इज मिस्टर लक्ष्मण, माय ब्रदर इन ला, एण्ड हीयर इज मिस्टर राम माय हबी" का रूपान्तर ही प्रस्तुत कर सकते हैं।

सौन्दर्यमूलक होते हुए भी, लोक-साहित्य में जीवन के प्रति मोह, श्रद्धा और आस्था है और एक तरह का

स्वस्थ आकर्षण भी। ज़िन्दगी की रंगीनियों के साथ साथ उसमें एक यथार्थवादिता है और लोक-जीवन के प्रति एक सहृदय दृष्टि। सच तो यह है कि वह जन-जीवन की ईमानदारी का साहित्य है। इन तत्त्वों को सामाजिक चेतना के तत्त्वों के साथ लेकर लोक-साहित्य अधिकाधिक अग्रगामी हो सकता है।

लोकवार्ता यदि वैज्ञानिक के शुष्क कुतूहल के लिए हो तो वह जीवन के लिए अनुपयोगी ही रह जाय। मानव के प्रति सहानुभूति, मानव कल्याण की भावना, यही तो लोकवार्ता शास्त्र को सफलता प्रदान करती है। उसकी प्रतिष्ठा मनोवैज्ञानिक आधार की स्वीकृति है।

कला क्या है? क्या उसका लक्ष्य है? और क्या उसकी सार्थकता है? यह एक विवादास्पद विषय है पर यह तय है कि उसने प्रत्येक जाति के विकास और उन्नति के युग की कहानी में निवास किया है। प्रकृति की अंचल छाया में ग्रामीणों के बीच वह फूली फली है। प्रकृति के सौन्दर्य और शाश्वत सत्य को अपने शब्दों, रेखाओं और रंगों में संजो कर अमर कर देना उसका लक्ष्य है। लोक-साहित्य में वह अपने प्राकृत, सहज और सुकुमार रूप में पाई जाती है।

लोक-साहित्य की अपनी भाषागत विशेषताएँ हैं, जैसे, अलंकार, उक्ति वैचित्र्य, ध्वनि आदि—पर वह भी परिष्कृत रूप में नहीं। यही सादगी उसका सौन्दर्य भी है। कल्पना की ऊँची उड़ान उसमें न सही पर स्वाभाविक व्यंजना तो है ही जिसके सम्मुख बड़े बड़े कवियों की नक्काशी भी आडम्बरपूर्ण लगती है। यों तो कलापक्ष में नये उपमान, सम्बोधन, अभिव्यंजना, संगीत के लिए लय, ध्वनिपट, नृत्य के नये रूप-प्रकार, विषय से ताल मेल, प्रणाली, गठन, संकेत सभी कुछ आ जाता है। "किन्तु बन्धनों और आयासकारी कठोर कृत्रिमता से सुकुमार कला स्वभावतः त्रस्त हो उठती है।"

लोक-साहित्य इससे सदैव अछूता ही रहा है क्योंकि वह तो एक तरह से "कर्त्तव्य के होमकुंड में दिये जानेवाले जीवनाहुति के मन्त्रों से भरपूर है।" झोंपड़ी के वे कलाकार जिनकी छेनी में पत्थर को जीवन प्रदान करने की शक्ति है, वे किसान जो ऊसर बंजर में फसलें उगाना जानते हैं, वे राजमजूर जो वैभव की उच्च अट्टालिकाओं की नींव अपनी अपनी पसलियों पर रखने की सामर्थ्य रखते हैं—लोक-साहित्य उन्हीं की कलाप्रिय आत्मा का सृजन तो है। "साजन तेरे हेत, अंखियाँ तो नदियाँ भईं, मन भयो बारु रेत, गिरि गिरि परत करार ज्यों" से बढ़ कर ध्वन्यात्मक व्यंजना का और क्या उदाहरण हो सकता है। यहीं आ कर कला सार्थक हुई है और सचमुच ही जीवन साहित्य की अनुगामिनी बन गई है।

शब्द सम्पदा और छन्द वैचित्र्य न होते हुए भी उसमें भाव सम्पदा की कमी नहीं। वह तो कोमलता, करुणा और रस में डूबा रहता है। यही नहीं साहित्य की सभी विशेषताएँ उसमें किसी न किसी रूप में पाई जाती हैं। उसे कोई शिष्ट साहित्य की संज्ञा चाहे न दे किन्तु वह लोक-साहित्य तो है ही, इससे कौन इन्कार कर सकता है। लोक-साहित्य में रस की कोमलता और कारुण्य का वह भाव है, इसके सृजन में रचना और सृष्टि की वे विशेषताएँ हैं जिसके कारण हज़ार बार सुनने पर भी तबियत नहीं भरती। नित नया निखार मिलता है।... "नित नित नूतन होय" और सुरुचिपूर्णता का इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है। भावपक्ष को वर्जनी ठहराते हुए राजेश्वर ने भी लिखा है, "उक्त बिसेसो कव्वं, भासा जा होउ सा होउ।" इस नैसर्गिक सौन्दर्य की महत्ता स्पष्ट होती है इन पंक्तियों से :

"बछेरी डोले पीहर में
जा पै को होइगी असबार।"

अथवा

"लपट आवै निबुअन की
रस बगिया है कितनी दूर।"

अथवा

"उठीए जुआनी जा ढब से,
जैसे आँधी में भूबड़ो बल खाय।"

लोक-साहित्य में ऐसे अनेक गीत तैरते रहते हैं और इस तरह जीवन रस से निमज्जित लोक-साहित्य में रस परिपाक चरमता की सीमाओं को छू लेता है। सत्यार्थी जी ने एक जगह लिखा भी, "इट इज़ नाट दी क्वश्चन आव एज आर आथरशिप दैट इज इम्पारटण्ट इन अ फाक सांग बट दैट आफ स्पान्टेनिटी एण्ड ब्यूटी।"

मौखिक परम्परा की आदि प्रेरणा का स्रोत है मानव हृदय। यों उनके कई पक्ष हैं। अनुभव, भाव और [illegible] भारतीय लोक-साहित्य में इन तीनों का

सुन्दर सामञ्जस्य हुआ है । उसमें श्रृङ्गार और करुण रस की प्रधानता है, वात्सल्य और वीर रस भी यथेष्ठ है । हाँ, रौद्र और वीभत्स की विरलता है । सितार के तारों की तरह इन रसों की अपनी अपनी झंकार है । किन्तु मानव ने स्वभावतः कोमल तारों को ही छेड़ना अधिक पसन्द किया है । पर उन सभी का उद्गम एक है—अन्तरवीणा ।

साहित्यकार जीवन की व्यंजना के लिए अपनी अभिप्रेत कथा या भावप्रदर्शन के लिए एक कथानक चुनता है । फिर वह कल्पना की तूलिका से जीवन का छायाचित्र प्रस्तुत करता है । पौराणिक कथाएँ नया जन्म लेती हैं पर सामयिक जरूरत पूरी करने के लिए कलाकार उन्हें नया परिधान भी पहिना देता है । चिरन्तन काल से चले आए कलाकार के इस प्रयत्न में दन्तकथाओं के पौराणिक स्वरूप की रक्षा हुई है । साथ ही वातावरण और रुचि-परिवर्तन के साथ उनका सुन्दर सम्यक् सामञ्जस्य उपस्थित हुआ है ।

पारिवारिक और सामाजिक जीवन की घटनाएँ भी यहाँ अतिरंजित नहीं होने पातीं । कल्पित पात्रों के माध्यम से भी दैनिक जीवन के सम्बन्धों की मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना हुई है । राम,कृष्ण और दशरथ जैसे महान् पात्र भी केवल आदर्श रूप में प्रयुक्त हुए हैं । शिष्ट साहित्य में जिन महान् चरित्रों को देवत्व ने ढंक लिया है वही लोक-साहित्य में प्रवेश पा कर जनसामान्य से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं । ऐसे प्रतीकों में समाई हुई व्यंजना की गहराई और गहरे असर ने उन कथा, किम्वदन्तियों और वार्ताओं को जन मन पर अंकित कर दिया है । यही अंकन ढोला मारु और राजा गोपीचन्द की गाथा के समय चंग और डप की ताल के साथ उभरता है ।

साहित्य में जब जब कृत्रिमता की बाढ़ आई है तब तब लोक कलाकारों का ध्यान स्वच्छन्द और नई शैलियों की ओर गया है । महाकाव्यों के युग के पश्चात 'गीत-गोविन्द' की शैली ने जोर पकड़ा । इसी प्रकार ब्रिटेन में गाते विहगों के युग का पुनरुत्थान ही अठारहवीं शताब्दी की साहित्यिक प्रवृत्तियों के रूप में दिखाई देता है । ठीक इसी तरह हिन्दी साहित्य में सिद्धों और संतों की पदावली शैली के पश्चात जब रीतिकालीन कृत्रिमता की अति हो गई तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आधुनिक काल में प्रगीतों का अभ्युत्थान हुआ ।

कथा विस्तार, पात्र संख्या, लय, वाद्य सम्बन्धों की दृष्टि से लोक गीतों की विभिन्न शैलियाँ मिलती हैं । तुक और मात्रा के बन्धनों से मुक्त होने पर भी लोकगीतों में लय का सुन्दर निर्वाह होता है और मौलिक परम्परा होने के कारण उसमें परिवर्तन भी होता रहता है । तात्पर्य यह है कि लोक-साहित्य को मोटे रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है : एक चेतन मस्तिष्क की उपज और दूसरी अर्धचेतन मन की परम्परागत उपज । पहली कोटि के दो भेद हैं, १ ग्राम्य नागरिक साहित्य २ नागरिक ग्राम्य साहित्य यथा ख्याल । नागरिक साहित्य के पुनः दो अंग हैं—सहज यथा रसिया, विशिष्ट यथा जिकड़ी के भजन । अर्धचेतन मस्तिष्क की परम्परागत उपज के अन्तर्गत गेय प्रबन्ध काव्य आते हैं यथा, नरसी ढोला, श्रमण और भरथरी गीत ।

लोक-साहित्य के अन्तर्गत आने वाले रसिया, जिकड़ी के भजन, ख्याल, नरसी ढोला, श्रमणों के गीत सभी की शैलियों के अलग अलग रंग हैं । कोई रंग हृदय को छूता है तो कोई मस्तिष्क को, कोई नेत्र प्रिय दृश्य उपस्थित करते हैं तो कोई अन्तर की आँखें खोल देते हैं । कोई भक्ति में डुबो देता है तो कोई श्रृंगार में ।

प्रतीकों का प्रयोग मूलतः गहन तत्वों की व्यंजना और उन्हें जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए हुआ है । मुहावरों का प्रयोग भाषा के लाक्षणिक चमत्कार से परिपूर्ण है । भाषा भावों की अनुगामिनी है । शब्दों के चयन में वीणा के तारों की कसक है । व्यंजना की चुस्ती, भावों का निखरा हुआ रूप उनकी उपज है । यही है लोक साहित्य की शैली का आंशिक परिचय ।

शिष्ट और लोक-साहित्य की रचना प्रणाली में भिन्नता अवश्य है किन्तु वे एक दूसरे से दूर नहीं कहे जा सकते । जयदेव का 'गीतगोविन्द', अपभ्रंश की कुछ कविताओं, विद्यापति की ललित 'पदावली', तुलसी की 'रामलला नहछू', 'जानकी' और 'पार्वती मंगल' जैसी उत्कृष्ट रचनाओं में लोकगीतों की शैली को ही अपनाने का प्रयत्न किया गया है । उत्कट कल्पना और परिष्कृत शैली का अभाव भले ही लोक-गीतों और उनसे प्रभावित इस काव्य में हो किन्तु वैसे ध्यानगम्य प्रसंगों की अवतारणा, आधुनिक प्रगीत नहीं कर सके ।

आरम्भ में गड़रियों और कृषकों के गीत 'लायर'

नामक वाद्य यन्त्र पर गाये जाने के कारण 'लिरिक्स' कहलाते थे। लोक-गीत भी उसी तरह जनसामान्य की काव्यात्मक अनुभूति से ट निकले हैं। उनमें तत्वतः अंग्रेज़ी लोक-गीतों से अन्तर है। उनकी अपनी आत्मा है। अपना हृदय और अपना परिधान।

गायकों और कथकों के जीवन के साथ साथ इस मौखिक परम्परा का भी अन्त सम्भाव्य है। युग परिवर्तन के साथ विदेशी भाषा, साहित्य एवम् संस्कृति उस पर हावी हुई है। बेटा, बन्नी या लाढ़ी अब नाज़ी बनती जा रही है। ऐसी दशा में बन्ने के बंगले और 'माई डीयर माई डीयर' से उसकी रक्षा अवश्य हो गई है। लोक-साहित्य धरती की उपज है, किसान की अपनी चीज़। अनातोले ने एक बार लिखा था, "किसान जब देता है तो कहता है युवा कन्या की तरह इसे सम्हाल कर रखना।" अत एव लोक-साहित्य रूपी इस युवा कन्या को इसके भाग्य पर छोड़ देना निरी भूल होगी।

अत एव आज की महती आवश्यकता है लोक–साहित्य का संकलन। इस कार्य से शोध और अध्ययन में बड़ी सुविधा सम्भव हो सकेगी। नए चीन से लौटे हुए एक सज्जन से मुझे पता चला कि चीनी कलाकार वर्तमान के प्रकाश में अतीत के धुन्धले चित्रों को संवार रहे हैं। किसी पुराने पैगाड़े पर उन्होंने यह अंकित किया है कि कलाकार और मज़दूरों ने इसे बनाया था। मज़दूर आज भी हैं। कुशलता और कारीगरी उनके नाम की सार्थकता है।" ठीक इसी तरह लोक-साहित्य के अनेक पैगोडे हमें मशीनी युग के धमाकों से बचाने हैं ताकि अध्ययन की आँख उन्हें देख सके, ताकि आगे आनेवाली पीढ़ी उन गायकों की मौखिक परम्परा पर अनश्वरता के लेख खोद सके।

सफल संकलन के कार्य के लिए उपयुक्त अवसर है, उत्सव, मेले, लोकाचार और धार्मिक अनुष्ठान आदि। ग्रामीण जनों के अतिरिक्त घुमक्कड़, जोगी, मीरासी, भराई, भाट और अन्य जरायमपेशा कही जानेवाली जातियाँ, पहाड़ी कुली, राय और भिखमंगे अपनी खाली झोली में पर्याप्त सामग्री लिए फिरते हैं। सफल संकलन तभी सम्भव है जब उसे १ ग्रामीण की बोली में लिखा जाय। २ उसके उद्गार को बिना भेदभाव अपनाया जाय। ३ अस्पष्ट स्थलों में विशेष सावधानी बरती जाय और इसके साथ साथ ही वातावरण और उसकी भूमिका तथा जनपद की तहों को भी भली प्रकार समझ लिया जाए।

ग्रामीणों की भावनाएँ उनके अन्तरतम के किसी किसी कोने में पनपती रहती हैं। साहित्य के इस क्षेत्र में अन्वेषण के लिए सूक्ष्म चेतना नितान्त आवश्यक है। समय और बुद्धिमत्ता की मांग है कि : १ ऐसी संस्थाओं का निर्माण किया जाए जो लोकवार्ता के संकलन और अध्ययन की व्यवस्था कर सके। २ विशेषज्ञ संकलन और अध्ययन के महान् कार्य में भरसक योगदान दें। ३ लोक-साहित्य को निरी साहित्यिक दृष्टि से देखने के बजाय उसे समाजशास्त्रीय और नृशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी देखा जाए। ४ उपलब्ध सामग्री को प्रतिपाद्य विषय की सिद्धि के लिए तोड़ा मरोड़ा न जाए। ५ जनसाहित्य को ही आर्थिक भौगोलिक विषयों में एकमात्र आधार न माना जाए। युग युग की विकास परम्परा को ध्यान में रख कर ही सफल तथा तथ्यपूर्ण खोज सम्भव है।

"साहित्य सेवा और उसकी उन्नति का जो गुरुतर भार है वह महान् होने के साथ साथ इतना विस्तृत है कि बालक से लेकर बूढ़े तक, विद्वान से लेकर अपढ़ मज़दूर तक, राजा रंक सभी की सेवाएँ उसमें खप सकती हैं और फिर भी वह कार्य बचा रह सकता है।" विद्यापति से लेकर भारतेन्दु तक के लेखकों, कवियों और गायकों, स्वयम् नाटककारों पर न जाने कितने साहित्य शोधकों ने डाक्टरेट प्राप्त करली हैं, किन्तु फिर भी वे अमर साहित्यकार साहित्य के विद्यार्थियों के लिए पूरे तौर से स्पष्ट नहीं हुए। लोक-साहित्य का विषय तो इससे भी अगाध है।

लोक-साहित्य की सामग्री के केवल संकलन, संरक्षण और खोज की ही आवश्यकता नहीं वरन् उसका ठीक-ठीक अनुशीलन किया जाय तो उसमें इतिहास, समाजव्यवस्था, सामयिक संघर्ष आदि के मनोवैज्ञानिक, सुन्दर और कलापूर्ण स्वरूप का असीम भण्डार मिल सकेगा, गुणगत और परिमाणगत महत्ता से भरपूर।

इसके लिए यह भी आवश्यक है कि तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक भाषा के माध्यम द्वारा विभिन्न बोलियों के गीतों और वार्ताओं के रूपान्तर एवम् अनुवाद प्रस्तुत किए जाएँ। अनुवाद के विषय में यद्यपि लोक–साहित्य विशेषज्ञों ने विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया है और उन्हें कुछेक मूलभूत विचारों ने ऐसा करने

के लिए विवश किया है। अनुवाद में १ मूल कविता के ताल लय को तुकान्त बनाना और २ पाठक की रुचि के लिए अनुवाद की ताल, लय में परिवर्त्तन की भावना पग पग पर उनके सम्मुख द्विधा उपस्थित करती रही है। कविता के रूप के कथावस्तु के साथ न्याय हो जाता है। सत्यार्थी जी के मतानुसार "मूल कविता अनुवाद के काव्य में ठीक से उतर नहीं पाती। इसीलिए जहाँ एक ओर कथावस्तु को प्रधानता देना अनिवार्य हो जाता है वहीं अनुवाद के लिए गद्यानुवाद का सहारा लेना पड़ता है।"

सत्यार्थी जी का कहना है कि "अनुवाद की वह पद्धति खतरनाक है जिसमें आनुवादिक तुकान्त के लिए साड़ी का अनुवाद गाउन और मचिया के लिए स्टूल का प्रयोग करना पड़े।" आर्थर वैली की मान्यता, उनके अपने शब्दों में इस प्रकार है: "सबसे ऊपर छवियों—इमेजेज को कविता की आत्मा मानते हुए मैं अपनी ओर से छवियां जोड़ने या मूल कविता की छवियों को दबाने से हट कर ही चलता हूँ।" एजरा पाउण्ड के कथनानुसार, "कुछ गीतों का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद हो सकता है। एक कला एक छवि ढाल सकती है। संगीत प्रायः अनुवाद में नहीं ढल पाता।" इसलिए संगीत का मोह छोड़ कर मूल कविता की प्रत्येक छवि को हूबहू उतारना ही श्रेयस्कर है।

तुलनात्मक अध्ययन से व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्ध ही नहीं वरन् कितने ही शाश्वत तथ्यों का भी उद्घाटन सम्भव हो जाएगा। "यदि सब देशों के गीत संकलित किए जा सकें और उनका तुलनात्मक अध्ययन हो तो यह प्रत्यक्ष हो जायगा कि उनमें एक ही मन, और एक ही हृदय छिपा है।" गुरुदेव रवीन्द्र के इन शब्दों से तुलनात्मक अध्ययन की महत्ता और भी स्पष्ट हो जाती है।

बीते हुए अनेक युगों की परम्परा वर्त्तमान पीढ़ी के मनुष्य में साक्षात् प्रकट होती है। पूर्वजों की सिद्धि ही हमारी थाती है। यह एक गम्भीर उत्तराधिकार है। मानव जीवन के ताने बाने के भीतर सदियों और युगों के सूत्र ओत-प्रोत हैं। विचारों और संस्थाओं की तहें एक दूसरी पर जमी हुई मिलती हैं। यदि इन तहों को सावधानी से अलग किया जा सके तो अनेक युगों की संस्कृतियों का विचित्र आदान प्रदान और समन्वय दिखाई देगा। लोक-साहित्य का यह अध्ययन नीरस नहीं है। उसमें अपनी कथा है, सजीवता है और उससे अधिक वह अनुराग और आकर्षण है जो मानव स्वभाव से मेल खाता है।

यहाँ आदिम युग से आज तक की, चेतना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रेखाएँ अंकित हैं। इसके बिना न तो अतीत की झांकी देखना ही सम्भव है और न वर्त्तमान में उसकी उपादेयता का मूल्यांकन करना ही। भारतीय जीवन और लोकगीतों के तार जोड़ते हुए सितम्बर १९३४ के 'माडर्न रिव्यू' में श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने लिखा था, "नो पिक्चर अव इन्डिया केन कन्वे मोर फोर्सिब्ली एन्ड क्लीयरली टू अवर माइण्डस द मैनर्स एण्ड हैबिट्स एण्ड सायक्लॉजीकल डैप्थ आव हर इनर लाइफ देन एन इनसायट इनटू दीज सांग्स।"

"साहित्य समाज का जीवन, स्वास्थ्य, अमरत्व और मानसिक भोजन है। नैतिकता, सामर्थ्य, मार्गनिर्देशन, सफलता, सबलता, सम्पन्नता ही नहीं वरन् समाज की सर्वांगीण उन्नति उसी की देन है।" युग परिवर्त्तन के साथ जहाँ वह स्वयं नए परिधान पहिनता है वहीं समाज से सड़ा गला निकाल फेंकना उसकी सार्थकता है। इन अर्थों में वह प्रगतिवादी है। समाज और साहित्य एक दूसरे का साज श्रृंगार करते हैं, एक दूसरे को परिष्कृत करते हैं। अतः नये समाज की रचना के लिए जिस प्रकार अतीत की इस थाती की असीम महत्ता है उसी प्रकार नये साहित्य के सृजन के लिये भी है।

जागरण के इस युग में जनता राष्ट्र की महती देवता है। सभी आयोजनों के मूल और सभी विचारों के केन्द्र में जनता प्रतिष्ठित है। जब जब जनसत्ता जागती है तब तब जनपद समृद्ध बनते हैं। जब जन सो जाता है तब पुर विलास करते हैं। आज फिर जानपद जन की प्रतिष्ठा और जनपदों के उत्थान का युग आया है। समय की मांग है कि जनवाणी मुखरित हो क्योंकि उसी में हमारा भाषागत, साहित्य और राष्ट्रगत हित निहित है।

आज कला कला के लिए नहीं जीवन के लिए है। प्रयोगों ने उसकी परिभाषा बदल दी है। इसलिए साहित्य केवल धर्म और संस्कृति का सन्देशवाहक ही नहीं, मनोभावों का प्रणेता बन चला है। सब कुछ होने के साथ साथ वह जनता का एक हथियार है। लोक-साहित्य इस कसौटी पर खरा उतरने के कारण लोक जीवन में प्रतिष्ठित होना ही चाहिए। शान्ति, प्रगति

76411

और राष्ट्रीय एकता के लिए उसका मूल्यांकन होना ही चाहिए। लोक-साहित्य की नींव शाश्वत है। वह मर नहीं सकता, मिट नहीं सकता।" गीत का अन्त कहाँ? नृत्य का अन्त कहाँ? मछुए की रागिनी का अन्त कहाँ? वह मानव की तरह धरती की उपज है, की प्रकृति तरह अनन्त है, अगाध, अमर है, शक्ति सम्पन्न है और इसलिए नवयुग को ग्राह्य भी।

लोक-साहित्य का उद्‌गम एक है और वह है स्वयं मानव जीवन। "धरती है उस मानव की जननी, जिसकी बाहें", सत्यार्थी जी के शब्दों में, "अगाध प्रेम और सहानुभूति की प्रतीक हैं।" मानव मानव के लिए सहानुभूति के द्वार खोले यही मानवधर्म है। गंगा की शाश्वत धारा जिस प्रकार उत्तरापथ के निर्माण में शिलाखंडों को चूर चूर करती हुई रजकणों को एक दूसरे से मिला देती है उसी प्रकार लोक-साहित्य के द्वारा विश्वमानव एक दूसरे के निकट आ सकता है और एक दूसरे को समझ कर पारस्परिक सहयोग और सद्‌भावना द्वारा संसार का सृजन कर सकता है।

—तिलक

६, सरोजनी नायडू मार्ग,
लखनऊ

पुस्तकालय
079512
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

लेखक

दो प्रकार के लेखक होते हैं: एक तो वे जो यह अच्छी तरह जानते हैं कि वे क्या लिख रहे हैं। जो कुछ वे लिखते हैं उसे वे पहले से ही सोच विचार लेते हैं और दूसरी प्रकार के वे लेखक होते हैं जो जबतक पूर्णतया लिख नहीं लेते तब तक वे यह नहीं जानते कि वे क्या लिखनेवाले हैं। पहली प्रकार के लेखकों में बर्नर्ड शा का नाम लिया जा सकता है। वे अपने लिखने के विषय में स्वयं लिखते हैं: "मैं काग़ज पर लिखने से पूर्व अपने विषय पर पूर्णतया विचार कर लेता हूँ। मैं शार्टहैण्ड में उसे लिख लेता हूँ और फिर टाइप किए हुए लेख को अच्छी तरह देख लेने के बाद ही उसे मुद्रक को छपने के लिए देता हूँ। मैं प्रूफों को देखता हूँ और फिर पढता हूँ, विचार करता हूँ और अपने लेख को ठीक करता हूँ।" बर्नर्ड शा उतनी ही सुगमता से लिखते थे जितनी कि सुगमता से वे बातचीत करते थे। अधिकांश लेखकों को लिखने के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है। थैकरे (Thackary) ने स्वयं स्वीकार किया है कि एक विशेष परिच्छेद को उन्होंने नौ बार लिखा था।

—'स्वतंत्र' से

फ्रेंच साहित्यकार फ्रैंक्वा मारिएक

फ्रेंच साहित्यकार निरन्तर ही उच्चकोटि के साहित्य-निर्माण कार्य में लगे रहते हैं। फ्रेंच साहित्य को विश्व-साहित्य में इतना महत्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिए गत तीन शताब्दियों से वहाँ के साहित्यकारों ने अथक परिश्रम किया है। फलस्वरूप उनमें से कई साहित्यकारों को नोबल पुरस्कार भी प्रदान किया गया है। इन फ्रेंच साहित्य के युग निर्माताओं में फ्रैंक्वा मारिएक का नाम उल्लेख्य है। गत वर्ष इसने नोबल पुरस्कार प्राप्त कर फ्रेंच साहित्य-महारथियों की परम्परा में एक नई कड़ी जोड़ दी है।

फ्रैंक्वा मारिएक

फ्रैंक्वा मारिएक का जन्म फ्रान्स देश के वोर्डो नामक स्थान में ११ अक्तूबर १८८५ में हुआ था। एक कैथोलिक स्कूल में इसने आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। उसके बाद उसने वोर्डो विश्व विद्यालय में अध्ययन किया। वोर्डो की प्राकृतिक पृष्ठभूमि ने उस पर अपनी छाया डाली और उसका स्पष्ट संकेत उसकी रचनाओं में हमें मिलता है। बाल्यकाल से ही ईश्वर की आस्तिकता में उसका विश्वास है।

फ्रैंक्वा मारिएक केवल एक उपन्यासकार ही नहीं है। युद्धोत्तरकाल में उसने कविता और नाटक भी लिखे हैं। साथ ही वह सफल पत्रकार भी है। प्रथम महायुद्ध के बाद उसने अब तक पचीसों उपन्यास लिखे हैं और उनके प्रणयन में उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है। इन उपन्यासों को देखने से पता चलता है कि उसकी जन्मभूमि वोर्डो ने उसे उनके प्रणयन में पर्याप्त उत्साह प्रदान किया है। विभिन्न उपन्यासों में उसने अर्थलोलुपों का तथा वासना के संकेत पर अपने जीवन को धूल में मिलानेवाले व्यक्तियों का सफल मनोवैज्ञानिक चित्र खींचा है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद वह विशेषतः राजनीति से सम्बद्ध हो गया। उसने पेरिस में 'ला फिग्रो' नामक पत्र में कार्य किया। वहाँ उसने अपने चुभते हुए लेखों तथा सम्पादकीयों द्वारा जनता का ध्यान साम्यवादियों के आतंक तथा नास्तिकवाद के भविष्य की ओर आकृष्ट किया। निष्पक्ष तथा निर्भीक आलोचना उसकी अपनी विशेषता रही है।

फ्रैंक्वा मारिएक का फ्रेंच साहित्य के युग निर्माताओं में क्या स्थान है उसे देखने के लिए हमें फ्रेंच साहित्य के कथा विकास पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालनी होगी।

फ्रेंच कथा साहित्य का आरम्भ वस्तुतः १६ वीं शताब्दी में हुआ। इससे पहले तो मुख्यतः फ्रेंच साहित्यकार अपने कहानी किस्सों में व्यस्त दीखते हैं। स्वतन्त्र उपन्यासों के प्रणयन का कार्य ओनोरे घूरफे ने आरम्भ किया। इनका उपन्यास 'अस्त्री' फ्रेंच का पहला प्रामाणिक उपन्यास कहा जा सकता है। धीरे धीरे फ्रेंच उपन्यास-साहित्य प्रगति की ओर अग्रसर हुआ। उपन्यास में प्राचीनता के साथ नवीनतम विषय के समावेश का प्रयत्न फ्रेंच साहित्यकार सदा करते रहे हैं।

इसके बाद यथार्थवादी उपन्यासों की परम्परा चली। इसको चलाने का श्रेय मुख्यतः जोवर-वील तथा स्क्यूदेरी को दिया जा सकता है। मदमोआजेलद स्क्यूदेरी ने फ्रेंच साहित्य के पुराने ढांचे को कायम रखते हुए भी नवीनता को प्रश्रय दिया। इनका उपन्यास 'रोमनस ए क्लेफ' बहुत ही सुन्दर है।

युग की माँग के अनुसार उपन्यासकारों ने भी अपनी रचना की धारा बदली। एक नवीन पीढ़ी के उपन्यासकार ने लिखा है ''जनता झूठे उपन्यास चाहती है किन्तु यह उपन्यास सत्य पर आधारित है। प्रस्तुत पुस्तक में आनन्द के छिन्न भिन्न चित्र नहीं हैं। इसमें प्रेम के आन्तरिक स्वरूप का विश्लेषण है।''

बीसवीं सदी के फ्रेंच उपन्यास अधिकतर यूरोपीय युद्ध तथा उसके पहले तथा बाद की घटनाओं से प्रभावित

हैं। इनमें से बहुतों का सम्बन्ध तो १९ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग से कहा जा सकता है। इस शताब्दी के फ्रेंच कथानकों में स्वाभाविकता का प्रवाह मिलता है। इनमें कारण तथा कार्य का प्रतिपादन किया गया है।

इसी युग में मनोविज्ञान सम्बन्धी बहुत सी रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं। इनके कथानकों का उद्देश्य मानव समाज के सम्मुख आध्यात्मिक, सामाजिक और भौतिक जीवन का आदर्श उपस्थित करना तथा उसका सफल चित्रण करना था।

बीसवीं शताब्दी की नई पीढ़ी के उपन्यासकारों में हम फ्रैंक्वा मारिएक को रख सकते हैं। अध्ययनकाल की समाप्ति के बाद उसने साहित्य साधना आरम्भ की और आज ६७ वर्ष की अवस्था में भी इसी कार्य में लगा हुआ है। उसकी विभिन्न उच्चकोटि की रचनाओं में 'लीक्सेर एन ली प्रेक्स', 'ली डीसरी डी ला', 'अरमर' 'थ्रीस' 'डीसम्वेराक्स', 'ली नारोड़', 'ग्रेन्ट्रीक्स एन्ड एसमौटी' आदि विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

फ्रैंक्वा मारिएक 'रायल एकेडेमी आव आर्टस' का सम्मानित सदस्य रहा है। उसने साहित्य साधना के साथ राजनीति में भी भाग लिया। उसने विगत महायुद्ध के अवसर पर 'फोवर' उपनाम से लेखादि लिखे हैं। 'ला फ्रिगो' नामक पत्र में तो उसने बराबर ही लेख लिखे हैं।

फ्रान्स को युरोप के साहित्य, कला और संस्कृति की राजधानी कहना अनुपयुक्त न होगा। सन् १९०१ से लेकर अब तक फ्रांस के आठ साहित्यकारों ने नोबल पुरस्कार प्राप्त किए हैं। प्रथम नोबल पुरस्कार विजेता भी फ्रान्स का अमर साहित्यकार रेनेसुली प्राउहोमे था। बीसवीं शताब्दी के पहले पचास वर्षों में एच० एफ० मिस्ट्राल, रोम्याँ रोलाँ, आनातोले फ्रान्स, हेनरी बर्गसं, आर० एम० डर्काड, तथा आन्दे जींद हैं। इसके अतिरिक्त सन् १९५२ का नोबल पुरस्कार जीत कर फ्रैंक्वा मारिएक ने अपने देश के लिए एक नया सम्मान प्राप्त किया है।

इस सम्बन्ध में एक बात स्मरणीय है कि इधर नोबल पुरस्कारदाताओं ने विगत दो वर्षों से उन्हीं साहित्यकारों को सम्मानित किया है जिन्होंने श्रद्धा, विश्वास तथा परम्परा के स्नेहभाव को आधार केन्द्र मान कर उपन्यास तथा नाटकों का प्रणयन किया है। गत वर्ष स्वीडन के उपन्यासकार पार लैगर्के विस्ट को उसके उपन्यास 'बारावास' पर नोबल पुरस्कार दिया गया था। इसमें मुख्यतः 'परस्पर स्नेह भाव रखो' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। फ्रैंक्वा मारिएक ने भी इसी सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार के कारण इस वर्ष नोबल पुरस्कार प्राप्त किया है।

वस्तुतः आज मानव समाज युद्ध के विकराल मुख से बचने के लिए प्रबल इच्छुक है और इसीलिए वह ऐसे ही व्यक्तियों को चाहते हैं जो युद्ध और अशान्ति के वातावरण को हटाने के लिए प्रयत्नशील हैं। नोबल पुरस्कार विजेताओं ने भी ऐसे साहित्यकारों को सम्मानित कर विश्व की महती एवं गम्भीर समस्या को हल करने का अप्रत्यक्ष रूप से प्रयत्न किया।

फ्रैंक्वा मारिएक ने जब नोबल पुरस्कार पाया तो उसने कहा : "यह मेरा जीवन का सबसे बड़ा सम्मान मुझे मिला है। यह मेरा सम्मान नहीं अपि तु फ्रान्स का सम्मान है। मैं कितना भी छोटा ही क्यों न होऊँ, लेकिन मेरे कारण जन्म भूमि को जो कुछ सम्मान मिलता है वह तो मेरे लिए सौभाग्य की बात है।" फ्रेंच साहित्य के इस युग निर्माता ने आगे कहा कि वर्तमान तथा आगामी पीढ़ियाँ किस प्रकार का साहित्य चाहती हैं इसका पता हमें प्रतिवर्ष नोबल पुरस्कारदाताओं की कृपा से लगता रहा है। वस्तुतः श्री फ्रैंक्वा मारिएक का यह कथन सच कहा जा सकता है।

३१।५१ कालभैरव,
बनारस

—कृष्णशंकर व्यास

आप अपनी निर्बलता से भाग नहीं सकते। एक-न-एक दिन या तो आपको उसे समाप्त करना पड़ेगा या स्वयं समाप्त हो जाना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में अभी और इसी अवस्था में क्यों नहीं ?

—आर. एल. स्टीवनसन

चीन के संस्मरण

मैं एशियाई और प्रशान्त क्षेत्रीय शान्ति सम्मेलन के एक भारतीय सदस्य की हैसियत से चीन गया था। यह सम्मेलन दो अक्तूबर से १३ अक्तूबर तक पीकिंग में हुआ।

मैं २२ सितम्बर को नए चीन में दाखिल हुआ और ७ नवम्बर को बाहर आया।

लौटते समय मैंने करीब ३ रोज़ हांगकांग में गुज़ारे। मैंने १० ता. की दोपहर बैंकाक के लिए बी. ओ. ए. सी. का हवाई जहाज़ लिया। शाम को ६ बजे बैंकाक पहुँचा। २४ घण्टे बैंकाक में गुज़ारे, ११ की शाम को फिर हवाई जहाज़ पकड़ा और ११ तारीख को आधी रात डमडम के हवाई अड्डे पर उतरा।

अपने संस्मरणों में मैं सिर्फ उन सीधी सादी मानवी बातों की चर्चा करूँगा जिनका संस्कार मेरे मन पर है, जो कि एक साधारण भारतीय नागरिक का मन है जिसका अकेला दावा यह है कि उसे अपने देश से प्यार है।

बहुत सी किताबें हैं और बड़ी अच्छी अच्छी योग्य व्यक्तियों की लिखी हुई किताबें हैं जिन्होंने नये चीन की कहानी कही है, उसकी महान् आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सिद्धियों की कहानी।

बहुत से अंग्रेज़ और अमरीकी लेखकों और पत्रकारों ने अपने हवाले दिए हैं। और खुद हमारे देश में दो महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें से एक विख्यात गान्धीवादी नेता पं० सुन्दरलाल की है और दूसरी प्रगतिशील "ब्लिट्ज" पत्र के सम्पादक करन्जिया की है। इन दोनों का चित्रफलक बड़ा है और उन्होंने बहुत से आंकड़ों और नक़शों की मदद से नये चीन की चौमुखी प्रगति का विवरण दिया है।

इन संस्मरणों में आपको ऐसी कोई चीज़ नहीं मिलेगी। इनका दायरा बहुत छोटा है। इनमें आपको नये चीन की महान सफलताओं की कहानी उस सीधे सादे मानवीय तत्व के माध्यम से मिलेगी जिसके बग़ैर इन सफलताओं की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिन साधारण पुरुषों और स्त्रियों के संपर्क में मैं आया उनके माध्यम से मैंने चीन की ज़िन्दगी के नये लय और सुर को समझने की कोशिश की है। इस दृष्टिकोण से भी यह कहानी कहना ज़रूरी था क्योंकि इन्हीं साधारण पुरुषों और स्त्रियों ने जनक्रान्ति के लिए संघर्ष किया और वे ही आज अपने तहस-नहस देश को फिर से बनाने में लगे हुए हैं। वे ही नए चीन के निर्माता हैं।

अपने संस्मरण देते समय मैंने इस बात का विशेष ध्यान रक्खा है कि अतिरंजना से काम न लूँ। बहुत बार बात को बढ़ा चढ़ा कर, सजा कर, सँवार कर कहना सत्य को कमज़ोर कर देता है। नंगे, अनलंकृत सत्य से बढ़ कर शक्तिवान कोई शब्द नहीं होता। इसलिए मैंने सच और केवल सच कहने की कोशिश की है। और इसीलिए मुझे विश्वास है कि अगर इस सत्य में कोई बल होगा तो वह मेघ गर्जन के स्वर में अपनी बात बोलेगा और मैं जानता हूँ कि मेघ का नाद किसी भी ढोल से बढ़ कर होता है। अगर आज चीन ज़िन्दगी के नए प्रभात की आभा से दीप्त है तो वह इसीलिए कि यह नया प्रभात सत्य है। उसकी ज्योति और उसके रंग को कोई न देखे, यह नहीं हो सकता। मुझे लगता है कि मैंने उनके इस नए प्रभात को उनके चेहरे पर देखा, उनकी आँखों में देखा और उनके दृप्त, विश्वासपूर्ण पदक्षेप में देखा। और मैं केवल उसी का आभास आपको देना चाहता हूँ।

लोहे के परदे, बाँसों की टट्टियाँ : नाटक शुरू होने के पहले परदा उठता है न! सो चीनी नाटक शुरू होने के पहले मुझे भी एक परदा उठाना पड़ा। एक भारी-सा खादी का परदा .. ..

लोहे के परदों और बाँस की टट्टियों की बात अक्सर कही जाती है। लेकिन जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है वे परदे तो केवल एक एक बात थे मगर यह खादी का परदा तो खुरदुरा यथार्थ था। मैंने चीन के लिए पासपोर्ट की दरख्वास्त दी थी और उसे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने "शासन प्रबन्ध सम्बन्धी कारणों से" रद कर दिया था। मैंने जब इस फैसले के खिलाफ़ गृह मन्त्री के यहाँ अपील

की जो कि मुझे बरसों से जानते थे तो उन्होंने बहुत भोलेपन से इस विषय में कुछ भी कर सकने में अपनी असमर्थता दिखलाई और कारण उन्होंने यह दिया कि मेरी दरख्वास्त "शासन प्रबन्ध सम्बन्धी कारणों से" रद हुई है! मानो चाहे न मानो। मैं चला आया लेकिन यही सोचता रहा कि अगर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ही सब कुछ है और उसके ऊपर कोई नहीं है जिसके यहाँ सुनवाई हो सके तो फिर गृह मन्त्री की ज़रूरत ही क्या है?

मगर ख़ैर यह मेरा पहला अनुभव नहीं था। ऐसी ही चीज़ क़रीब पाँच साल पहले एक बार और हो चुकी थी। तब सोवियत यूनियन के पासपोर्ट की बात थी। मुझे महान् ताजिक राष्ट्र कवि अली शेर नवई की पाँचवीं शतवार्षिकी के सिलसिले में ताजिकिस्तान से निमन्त्रण आया था। मगर तब भी मेरी सुनवाई नहीं हुई। उस बार और इस बार में फ़र्क़ बस इतना था कि उस बार सरकार मेरी दरख्वास्त को एकदम पी गई और हाँ ना कुछ भी नहीं कहा, जब कि इस बार उन्होंने बड़ी मुस्तैदी से मेरी दरख्वास्त रद कर दी। तब भी खादी राज था और अब भी खादी राज है। इसलिए मानना पड़ता है कि खादी का पर्दा एक असलियत है। लोहे का पर्दा हो चाहे न हो, बाँस का पर्दा हो चाहे न हो मगर खादी का पर्दा तो है, यह मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ। मगर ख़ैर यह बात भी मुझे यहाँ जोड़नी ही चाहिए कि केन्द्रीय सरकार में ज़्यादा खुले दिमाग के लोग हैं। उन्होंने मुझे इतना बहुत ख़तरनाक नहीं समझा और मुझे पासपोर्ट दे दिया। गरज़ अब पासपोर्ट मेरे पास था। पासपोर्ट यानी वह जादू का कालीन जिस पर उड़ कर मैं चीन पहुँच सकता था।

अपने देश के करोड़ों लोगों की तरह मेरे मन में भी चीनी जनता के सफल स्वातन्त्र्य संग्राम के लिए बड़ा आकर्षण था और मेरी हार्दिकतम कामना थी कि मैं अपनी आँख से जाकर देखूँ कि विजयी स्वातन्त्र्य संग्राम जनता की ज़िन्दगी के संग क्या कीमिया कर देता है। हमें १९४७ में आज़ादी मिली। चीनियों ने दो बरस बाद १९४९ में, अपनी आज़ादी हासिल की। जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, हमारी आज़ादी से जनता की ज़िन्दगी में कोई परिवर्तन नहीं आया है और अगर कोई परिवर्तन आया है तो वह उनकी ज़िन्दगी को और भी दूभर बनाने वाला ही है। मेरी ही तरह आप ने भी बहुत लोगों को कहते सुना होगा कि इस कांग्रेस राज से तो अंग्रेज का राज ही अच्छा था। लिहाज़ा मैं अपनी आँखों से देखना चाहता था कि आख़िर वे कौन से करिश्मे हैं जो चीनियों की ने तीन साल के छोटे से अर्से में कर दिखाए हैं और जिनकी प्रशंसा वहाँ से लौटनेवाले हर आदमी ने की है, चाहे मुक्त कण्ठ से चाहे कुछ कम मुक्त कण्ठ से। सरकारी और ग़ैर सरकारी प्रतिनिधि मण्डल चीन होकर आए हैं और उन सब ने नए चीन की महान् आर्थिक और सामाजिक सफलताओं की बात कही है। कुछ ज़ोर से बोले हैं, कुछ धीमे बोले हैं लेकिन शायद एक फ्रैंक मोरेज़ को छोड़ कर दूसरा कोई नहीं है जिसने चीनियों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा न की हो। उनकी प्रशंसा का आधार इतने कम समय में ऐसी समाज व्यवस्था का निर्माण है जिसमें से भूख और चोरी, वेश्यावृत्ति और रिश्वतख़ोरी को देशनिकाला दे दिया गया है, जिसमें नारी को स्वाधीनता मिली है और शिक्षा व संस्कृति की दिशा में कल्पनातीत प्रगति हुई है।

चीन में यह चीज़ें हो चुकी हैं और हिन्दुस्तान में हम, करना तो दूर रहा, इनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। स्वभावतः जो सवाल मुझे सबसे ज़्यादा तंग कर रहा था वह यही था कि आख़िर नये चीन की इन सफलताओं का रहस्य क्या है? क्या मनुष्य के नाते चीनी हमसे श्रेष्ठतर हैं? क्या हमारे यहाँ के आदमियों में कोई ख़राबी है?

सदा से मेरा यह दृढ़ विश्वास रहा है कि जनता सब जगह एक है, कि हमारे पास इस शिकवे का कोई कारण नहीं है कि हमारे देश की जनता ख़राब है। मैं समझता हूँ कि हमारे देश की जनता संसार की किसी भी जनता से घटकर नहीं है। विद्या में, बुद्धि में, प्रतिभा में, त्याग में, कर्मठता में वह किसी से भी पीछे नहीं है। तब फिर गड़बड़ी क्या है? हम लोग भी उसी तरह प्रगति क्यों नहीं करते जैसे कि मैंने चीनियों को करते देखा?

गड़बड़ी के मूल में वह समाजिक स्थिति है जिसमें हमारे देश की जनता अपने आप को पाती है, एक ऐसी सामाजिक स्थिति, जिसमें भारतीय जनता की रचनात्मक प्रतिभा के विकास के लिए क्षेत्र ही नहीं है और इसीलिए हमारी अच्छी से अच्छी मानवी पूंजी बर्बाद हो

जाती है और नतीजा होता है वह रेगिस्तान जिसमें हमारा यह बाग तबदील होता जा रहा है, रेगिस्तान जिसमें सिर्फ़ नागफनी उग सकती है।

इसके विपरीत चीन एशिया को और सारी दुनिया को दिखला रहा है कि एक बार जनता की सृजनात्मक प्रतिभा को राह मिल जाने पर हर करिश्मा उनके लिए आसान हो जाता है। वे चाहें तो पहाड़ों को यहां से उठ कर वहाँ रख दे सकते हैं। बस उनके इच्छा भर करने की देर है। मेरे लिए तो चीन की कहानी की यही सीख है।

नया चीन पूरब के दुखी देशों को आज़ादी की राह दिखला रहा है, सच्ची आज़ादी जो एक ही वक़्त में धरती को भी आज़ाद करती है और आत्मा को भी आज़ाद करती है और आज़ाद करती है उनकी सोती हुई शक्तियों को, उनकी विराट् सृजनात्मक प्रतिभा को। यह चीन की आज़ादी ही है जिसने अब तक के सोते हुए पूरब में बिजली दौड़ा दी है और उपनिवेश जाग पड़े हैं। आज पूरब के देशों की जनता जो अपनी साम्राजी सामंती बेड़ियों को काटने के लिए, अपने को आज़ाद करने के लिए, अपनी क़िस्मत अपने हाथ में लेने के लिए, अपने सुखी भविष्य की रचना के लिए कृतसंकल्प है तो इसका भी रहस्य नये चीन में मिलता है। चीन उनको बर्बर प्राक्-इतिहास के घेरे से निकल कर इतिहास के प्रांगण में खड़े होने की क्रान्ति-दीक्षा दे रहा है।

और हो सकता है कि इसीलिए खादी का पर्दा खड़ा किया गया हो ताकि आड़ रहे......

मायानगरी हांगकांग : हमारा पैन अमेरिकन क्लिपर वाइकिंग रात २ बजे डमडम के हवाई अड्डे से उड़ा। उसे ठीक आधी रात को उड़ना था मगर मौसम ख़राब होने की वजह से दो घण्टे के लिए रुकना पड़ा।

सवेरे साढ़े सात बजे हम लोग बैंकाक पहुँचे। नाश्ता किया और आध घण्टे बाद जो फिर उड़े तो अपनी घड़ियों से बारह बजे और हांगकांग की घड़ियों से सोलह बजे हांगकांग पहुँचे।

हांगकांग बहुत ख़ूबसूरत शहर है। शक्ल सूरत में वह बहुत कुछ बम्बई जैसा है। लेकिन हांगकांग का प्राकृतिक दृश्य शायद बम्बई से भी अधिक नेत्राभिराम है। वह बम्बई से भी छोटा और अधिक सुगठित तथा शायद अधिक मनोरम है। पहाड़ियों की गोद में गहरा नीला चीन सागर बड़ा ही सुन्दर दीख पड़ता है। शाम होने पर जब चिराग़ जल जाते हैं तब इस पार काऊलून से हांगकांग का दृश्य बिलकुल दीप-मालिका जैसा जान पड़ता है। पहाड़ और समुन्दर दोनों ही यहाँ बड़े सुन्दर हैं।

लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि यह तसवीर का सिर्फ़ एक ही पहलू है। दूसरा पहलू अत्यन्त वीभत्स और ग्लानिकर है। हांगकांग की सड़कों पर घूमिए या कहीं होटल रेस्तोराँ में बैठिए तो ऐसा जान पड़ता है कि आप किसी ब्रिटिश फ़ौजी छावनी में बैठे हैं। दिन दहाड़े, नशे में चूर ब्रिटिश सिपाही लड़कियों को बग़ल में दबाए, फ़ोहश बातें बकते हुए सड़क पर घूमते रहते हैं।

कभी शांघाई पूरब में गुनाहों का सब से बड़ा अड्डा था। अब हांगकांग के सिर वह सेहरा है। हांगकांग दूसरी शराबों के साथ साथ साम्राज्यवादी अभिमान की शराब पिए टामियों, ब्लैकमार्केट करने वालों, चोरों डकैतों, रंडियों और उनके दलालों, भिखमंगों और गिरहकटों, ख़ूनियों और बदमाशों का शहर है। चोरों के माल का ज़बरदस्त व्यापार वहाँ चलता है। चोरी के मालों की तरह आदमी की जिन्दगी भी हाँगकाँग में बहुत सस्ती है और दिन दहाड़े ख़ून हो जाना काफ़ी आम बात है। जहाँ भी जाइए अपको सड़ती हुई मछली, शराब, सस्ते पौमेड, औरत के बिके हुए गोश्त और साम्राज्यवाद की बदबू मिलेगी। शाम होने के बाद कोई महिला तो क्या ही सड़क पर निकलेगी, कोई शरीफ़ आदमी भी नहीं निकल सकता। मैं अपने होटल से निकल कर यों ही जहाज़ के घाट तक घूमने के लिए जाना चाहता था। मैं आपको कैसे बतलाऊँ कि रास्ते में मुझे कितने रिक्शेवाले और कुछ सफ़ेदपोश लोग भी मिले जो मुझे इस या उस कमसिन छोकरी के यहाँ ले जाना चाहते थे! हर क़दम पर दलाल थे और मानना होगा कि उन्हें अपने माल का इश्तिहार करना आता था।......हुज़ूर देखियेगा तो जानियेगा......अभी बिलकुल लड़की है......ज़रा चल कर तो देखिए......और और भी बहुत कुछ जो लिखा नहीं जा सकता।

उफ़, ऐसी बेशरमी! बड़ी वीभत्स चीज़ थी। आज भी सोचता हूँ तो मुँह का ज़ायका ख़राब हो जाता है। मैं घाट तक नहीं जा सका और आधे रास्ते ही लौट आया। मगर होटल में भी वही क़िस्सा जारी

था.........ह्विस्कियों और लड़कियों का दौर चल रहा था और नंगी बेशर्म खिलखिलाहट बुलबुलों की तरह शराब के प्याले से उठ रही थी।

यह है हाँगकाँग, आकर्षक और वीभत्स, सुन्दर और कुत्सित, अपरूप प्राकृतिक श्री और आदमी के पैदा किये हुए कोढ़ के ग़लीज़ दाग़...सब एक में गडमड और सचमुच यही है हाँगकाँग - एक प्यारा शरीर जिसमें आत्मा नहीं है और जिसकी शिराओं में साम्राज्यवाद की पीप बह रही है।

मैंने कुछ चीनियों से बातें कीं। हाँगकाँग की प्रायः ९९ प्रतिशत आबादी इन्हीं की है। उनमें से कुछ पर तो वहाँ का रंग चढ़ गया है मगर अधिकांश अभी ठीक हैं, उनकी आत्मा स्वस्थ है। वे खड़े होकर, पच्चीस मील दूर नये चीन की सीमा की ओर देखते हैं और उनकी निगाहों में प्यास होती है। मैंने एक चीनी को उंगली से पहाड़ के दूसरी तरफ़ इशारा करते हुए टूटी फूटी अंग्रेज़ी में कहते सुना : "वे चीनी। हम चीनी। हम भाई भाई। वे सुखी। हम कुत्ते। हे भगवान !"

मैंने जब चीनी सीमा के लिए लोकल पकड़ी तो मेरे मन में एक ही बात गूँज रही थी कि वह दिन कब आएगा जब हाँगकाँग के पास अपना यह सुन्दर शरीर ही नहीं, बल्कि वैसी ही सुन्दर आत्मा भी होगी।

जहाँ हमने चीनी धरती पर पैर रखा : हांगकांग से नए चीन के बार्डर स्टेशन शुनचुन की दूरी पच्चीस मील नहीं, एक युग है।

नए चीन की धरती पर पैर रखते ही फ़र्क मालूम होता है। महसूस होने लगता है कि यह हवा कुछ और है। जो लोग हाथ मिलाते हैं या गले मिलते हैं, वे भी कुछ और हैं। उनके चेहरे से मालूम होता है कि यह आज़ाद और खुश लोग हैं, कि यह भिखारियों और रण्डियों, दलालों और ठगों, पंडों और ज़िन्दगी से ऊबे हुए बुद्धिजीवियों की दुनिया नहीं बल्कि एक नई ही दुनिया है। इनके चेहरे नये हैं और आज़ादी ने उनको ये नये चेहरे दिये हैं। वे बहुत संयत स्वर में धीमे धीमे बात करते हैं मगर सुननेवाले को महसूस होता है कि उनके शब्दों में एक खास भराव है। जब वे हाथ मिलाते हैं तो लगता है कि उस हाथ मिलाने में कुछ ज़्यादा सगापन, कुछ आत्मीयता है। उनको चलते हुए देखिये तो उनके क़दमों से उनके गहरे आत्मविश्वास की आहट मिलती है।

हांगकांग की ओर का आख़िरी स्टेशन लोवू है और नये चीन का पहला स्टेशन "शुनचुन" है। एक छोटा-सा लकड़ी का फाटक और दोनों ओर खड़े हुए कुछ सन्तरी इन दोनों दुनियाओं को एक दूसरे से अलग करते हैं। दोनों को अलग करनेवाली वह चीज़ दो इंच से ज्यादा मोटी न होगी मगर दोनों हिस्सों में कैसा ज़मीन आसमान का फ़र्क है ! उधर है "लोवू"—वीरान, उजड़ा उजड़ा-सा गन्दा "लोवू" का स्टेशन और उस पर बैठे हुए वे मुसाफ़िर जिनके चेहरे भूखे और पीले हैं, जिनकी आँखें किसी चीज़ पर ज्यादा देर नहीं ठहरतीं और जो ऊटपटाँग, थके और उकताए हुए बैठे हैं। और इधर यह "शुनचुन" है—जहाँ हर चीज़ कितनी साफ़ सुथरी और सुव्यवस्थित है और लोगों के चेहरे खुशी से चमक रहे हैं। मुसाफिरों का सामान प्लेटफार्म पर एक तरफ़ क़ायदे से सजाकर रक्खा हुआ है और कहीं कोई गन्दगी नहीं है। सभी मुसाफ़िर कुछ न कुछ कर रहे हैं। बुड्ढे लोग बैंचों पर बैठे गपशप कर रहे हैं। जवान लोग कैरम या शतरंज खेल रहे हैं। बच्चे मस्ती से इधर उधर दौड़ लगा रहे हैं। एक बड़ी-सी मेज़ पर बहुत-सी चीनी किताबें और पत्र-पत्रिकाएँ रक्खी हुई हैं और कुछ लोग बैठे पढ़ रहे हैं। हर ओर शान्ति और व्यवस्था है। देखकर लगता है कि जैसे एक सुखी परिवार के लोग अपने घर के बरामदे में बैठे हों।

किसी भी खुले दिमाग़ पर जो पहला जबरदस्त असर पड़ता है वह शायद चारों ओर फैली हुई इसी खुशी और लोगों के आत्मविश्वास का है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अगर किसी के मन में द्वेष नहीं है तो यह असंभव है कि इस चीज़ का संस्कार उसके मन पर न पड़े। वह इतनी प्रबल है कि बहा ले जाती है।

चारों ओर खुशी के इस वातावरण के अलावा जो दूसरी चीज़ मन पर तत्क्षण अपना गहरा असर डालती है और जिसका असर वक़्त गुजरने के साथ और भी गहरा होता चलता है, वह है सफ़ाई। उसका अन्दाज़ा देना बहुत मुश्किल है और सुननेवाले को यक़ीन करना और भी मुश्किल होगी क्योंकि वह सफ़ाई का इतना ऊँचा स्टैण्डर्ड है कि हम एक पिछड़े हुए, जाहिल, कृषि प्रधान, अर्ध औपनिवेशिक देश के संग उसका कुछ मेल ही नहीं बिठा पाते। चीन हमारे देश से कुछ ज़्यादा ही पिछड़ा

हुआ रहा होगा, कम नहीं। तब फिर यह कैसे मुमकिन हुआ कि रातोंरात एक पिछड़ा हुआ देश इतना साफ़ और सफ़ाई पसन्द हो गया? हमारा आश्चर्य और बढ़ जाता है जब हम इस बात को याद करते हैं कि एक समय चीन अपनी गन्दगी के लिए मशहूर था और कहा जाता था कि चीन के लोगों के शरीर से बदबू आती है। तब फिर यह चमत्कार कैसे हो गया? चीन के लोग हमें अपने ही जैसे साफ़ और सुथरे नज़र आए और उनकी सड़कें और सिनेमा, आपरा हाऊस और पार्क, होटल और स्टेशन, शहर और गाँव तो इतने साफ़ हैं कि आज हम उस सफ़ाई की कल्पना भी नहीं कर सकते। मैंने यूरोप के देश नहीं देखे हैं लेकिन मुझे बहुत-से लोग वहाँ मिले जो यूरोप के ही थे या वहाँ होकर आए थे। उन्होंने मुझे बतलाया कि पीकिंग, पेरिस, लन्दन और न्यूयार्क से भी ज़्यादा साफ़ है। तब सवाल उठता है कि यह चमत्कार कैसे हुआ? यह चमत्कार इसीलिए सम्भव हुआ कि मुहल्ले मुहल्ले और गाँव गाँव कमेटियाँ बना दी गई हैं और हर आदमी अपने घर और पास पड़ोस को साफ़ रखने में सच्ची दिलचस्पी लेता है और सफ़ाई विभाग के कर्मचारी अन्य विभागों के लोगों की ही तरह खूब जी लगा कर काम करते हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि अपने देश को साफ़ रखना हर व्यक्ति की निजी ज़िम्मेदारी है। करोड़ों आदमियों को यह बात सिखाई गई है कि वह सफ़ाई को अपने राष्ट्र के सम्मान की चीज़ समझें। करोड़ों आदमियों के अन्दर सफ़ाई की आदतें डालना खुद एक बहुत बड़ा काम है। मगर मानना होगा कि यह काम पूरा किया गया है और हर आदमी के अन्दर इस बात की कर्तव्य चेतना जगाई गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जनता के सम्पूर्ण सहयोग के बिना कोई भी सफ़ाई विभाग जिसका आधार केवल पैसा है, किसी देश को ऐसा साफ़ नहीं रख सकता, चाहे कितना ही पैसा क्यों न खर्च किया जाए। यह सफ़ाई क्या चीज़ है, इसे आप इस रूप में समझिए कि तमाम गन्दगी, गलाज़त और कूड़े करकट और मक्खियों, मच्छरों, खटमलों, चूहों, पिस्सुओं और और लावारिस कुत्तों के खिलाफ़ समूची कौम ने जंग छेड़ दी है। ऐसी बड़ी चीज़ का परिणाम भी स्वभावतः वैसा ही बड़ा है और उसे देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। यक़ीन मानिए यह सच बात है कि कहीं कोई गन्दगी नहीं मिलती, न सिर्फ़ राजमार्गों पर बल्कि गलियों में भी, न सिर्फ़ शहरों में बल्कि गाँवों में भी। कमोबेश सब जगह बहुत कुछ एक ही सी सफ़ाई है। लोग यहाँ वहाँ थूकते नहीं और न सिगरेट के टुकड़े और जली हुई दियासलाइयाँ ही इधर उधर फेंकते हैं। वह इस बात का बहुत ध्यान रखते हैं कि थूकदानों और डस्टबिनों का इस्तेमाल करें। यह बात बहुत कुछ उनकी आदत में दाखिल हो गई है। कुछ लोग अब भी इधर उधर थूक देते हैं और गन्दगी फैलाते हैं लेकिन वे अपवाद ही हैं। आम तौर पर कोई ऐसा नहीं करता। मेरे आँख के सामने उस दिन की तसवीर है जब एक मज़दूरों के सांस्कृतिक भवन में घूमते समय हममें से किसी ने जली हुई सिगरेट का टुकड़ा बरामदे में फेंक दिया और एक मज़दूर ने खामोशी से उठा लिया और ले जाकर एक थूकदान में डाल दिया। बात बहुत छोटी-सी थी मगर उसने हमें पूरी नसीहत कर दी और हम आगे से ज़्यादा सावधान रहने लगे।

यहाँ पर मैं तियेन्जिन की एक सरकारी सूती मिल की बात बतलाना चाहता हूँ। यह कपड़े की मिल थी मगर तमाम विभागों में उसका फ़र्श ऐसा साफ़ और चिकना था जैसा नाच के हाल का होता है। रुई के तमाम टुकड़े हवा में उड़ रहे थे और फ़र्श पर यहाँ वहाँ गिर रहे थे मगर गिरते ही एक बड़ा सा झाड़ू आकर उन्हें साफ़ कर जाता था। एक आदमी इसी काम पर तैनात था और वह जी लगा कर अपना काम कर रहा था। तो क्या ताज्जुब कि वहाँ इस क़दर सफ़ाई थी।

इस सफ़ाई के पीछे आश्चर्यजनक संगठन है। मुझको मालूम हुआ कि हर सड़क और हर छोटे बड़े गाँव को संगठन और अनुशासन की डोर में बाँधा गया है। जनता की कमेटियाँ बना दी गई हैं और दूसरी चीज़ों के साथ साथ अपने मुहल्ले टोले या सड़क की सफ़ाई की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं को सौंप दी गई है।

इस सफ़ाई आन्दोलन का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है मक्खी, मच्छर वग़ैरह की सफ़ाई जो कि सचमुच आन्दोलन के रूप में वहाँ पर चलाई गई थी और अब भी चल रही है। दुनिया जानती है कि चीन में अमरीकी, चीनी जनता के खिलाफ़ कीटाणु युद्ध चला रहे हैं और अपने इस मानव-संहारक काम में मक्खियों, मच्छरों, पिस्सुओं, चूहों वग़ैरह का इस्तेमाल किटाणुओं के वाहक के रूप में कर रहे हैं। इस लिहाज़ से इन कीड़े मकोड़ों

की सफ़ाई चीनी जनता के लिए और भी जीवन मरण की समस्या बन जाती है। चीनियों की व्यवहार बुद्धि तो प्रसिद्ध ही है। इसके साथ यह भी है कि वे बहुत विशाल पैमाने पर सोचने की ताक़त रखते हैं। इसलिए ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने यही तय किया है कि सारे कीड़े मकोड़ों की सफ़ाई कर डालेंगे ताकि न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। हम अपने देश से जब एक एक मच्छर, मक्खी, पिस्सू, चूहा बीन बीन कर ख़तम कर देंगे तब यह अमरीकी क्या करेंगे? देखना है बच्चू, तुम डाल डाल तो हम पात पात! मुझे तो इस सफ़ाई आन्दोलन के पीछे गहरे संकल्प का यही मनोभाव मिला। यह सच बात है कि दुनिया में शायद ही और कोई देश इस काम का बीड़ा उठा सकता हो।

यहाँ मैं एक छोटी-सी घटना का ज़िक्र करना चाहता हूँ। पीकिंग से क़रीब दस मील दूर एक बड़े-से गाँव में हम लोग गए थे। हमारी तहसीलों के बराबर था यह गाँव। इसका नाम काओबेई पे था। दूसरी जगहों की तरह यहाँ भी देखने दिखाने का नक़्शा वही था। यहाँ गाँव के मुखिया ने हमें पहले बड़ी विशद रिपोर्ट गाँव के सम्बन्ध में दी और जो कुछ बतलाया जा सकता था सभी कुछ बतलाया, जैसे कि गाँवों में कुल कितनी ज़मीन पर काश्त होती है, कुल कितने परिवार हैं, कितने काम करने वाले हैं, आज़ादी के पहले किस चीज़ की कितनी पैदावार होती थी और आज़ादी के बाद अब कितनी होती है वग़ैरह वग़ैरह। यह सब तो ठीक था मगर मुझे उस वक़्त हँसी आई जब मुखिया ने और बातों के साथ साथ यह भी बतलाया कि उस महीने में कुल कितने लाख, कितने हज़ार, कितने सौ कितनी मक्खियाँ मारी गईं! मैं मानूँगा कि पहले मुझे यह चीज़ बड़ी दिल्लगी-सी मालूम हुई। लेकिन जब यह बात ज़रा गहरे उतरी और मैंने इस पर ग़ौर किया तो फिर मुझे हँसी नहीं आई बल्कि अचरज मालूम हुआ। ज़ाहिर-सी बात है कि मुखिया ने ये आंकड़े अपने दिमाग़ से निकाल कर तो दिए नहीं होंगे। लोगों ने वाक़ई जितनी मक्खियों का ख़ातमा किया होगा, उनका बाक़ायदा रेकार्ड रक्खा होगा, मुखिया को बराबर नियमित रूप से सूचना दी होगी तब तो ये आंकड़े उसके पास जमा हुए। और आप ज़रा यह सोचिए कि मक्खी और मच्छर मारने जैसे काम में लोगों की ऐसी गहरी राजनीतिक दिलचस्पी पैदा करना क्या कोई हंसी खेल है? सच पूछिये तो यह स्तब्ध कर देने वाली बात है।

मैं समझता हूं कि इस छोटे-से उदाहरण से यह साफ़ हो गया होगा कि नये चीन के सामाजिक स्वास्थरक्षा-आन्दोलन के पीछे देश के बच्चे बच्चे का कैसा कल्पनातीत सहयोग है। इसके बाद अब शायद आप मेरी बात का ज़्यादा यक़ीन करें कि अपने लगभग पांच हज़ार मील के सफ़र में मुझे एक मच्छर कहीं नहीं मिला और सिर्फ़ पाँच छः मक्खियाँ मिलीं। बात इतनी बड़ी है कि विश्वास करने को जी नहीं चाहता मगर सच्ची है यह मैं हलफ़िया कह सकता हूँ। कैंटन, पीकिंग, तियेंजिन, नानकिंग, शांघाई, हांगचो,—कहीं भी मुझे एक मक्खी या मच्छर नहीं मिला। चन्द मक्खियां जो मिलीं वह भी हवाई नदी के तरीवाले इलाके में मगर वहाँ भी मच्छर नहीं मिले।

'पश्चिमी जनतन्त्र' अपनी इन्हीं सिद्धियों पर बड़ा गर्व करते हैं। लेकिन जब आप उसकी तुलना नए चीन के साथ करते हैं तो इस नतीजे पर पहुँचना ही पड़ता है कि चीन की सफलता कहीं बड़ी है। ज़रा ग़ौर कीजिए कि देश कितना बड़ा है, कितनी ग़रीब जाहिल पिछड़ी हुई हालत से उसने शुरुआत की और कैसी बिजली की तेज़ी से उसने इस काम को पूरा कर डाला और इतने पर भी यह जनता के शासन की कोई मुख्य सिद्धि नहीं बल्कि गौण-सी ही चीज़ है जब कि साम्राज्यवादी देशों के पास गर्व करने के लिए इसके अलावा और कुछ नहीं।

हमारे देश की ही तरह पुराना चीन भी गन्दा था क्योंकि वह पिछड़ा हुआ था। पिछड़ापन आख़िर क्या चीज़ है? जब लोगों के अन्दर विकास करने का न तो सामर्थ्य हो न संकल्प तब उसी को तो पिछड़ापन कहते हैं। और संकल्प भी तो सामर्थ्य से ही आता है? इसी नियम को जब हम सफ़ाई के क्षेत्र में लागू करते हैं तो इसका मतलब होता है कि साम्राजी, सामन्ती, गुलामी अत्याचार की पिछड़ी हुई हालत में जनता के अन्दर सफ़ाई से रहने के लिए न तो सामर्थ्य होता है और न इच्छा ही। इच्छा उनके अन्दर इसीलिए नहीं होती कि एक तो वे अशिक्षित होते हैं और सफ़ाई के महत्व को नहीं समझते और दूसरे जहाँ उनकी ज़िन्दगी की बड़ी बड़ी समस्याओं का ही कोई हल न हो वहाँ सफ़ाई सुघड़पन की चिन्ता भला किसे हो सकती है। रही सामर्थ्य की बात

सो सामर्थ्य उसमें नहीं होता क्योंकि वे भयंकर गरीबी के शिकार होते हैं। अक्सर उनके पास खाने के लिए नहीं होता और तन ढाँकने के लिए चीथड़े होते हैं और राज्य को इसकी खाक धूल परवाह नहीं होती कि लोग कहाँ रहते हैं, क्या खाते हैं, कैसे अपना तन ढाँपते हैं। जाहिर-सी बात है कि यह सामाजिक हालत ऐसी नहीं है जिससे सफ़ाई की चेतना को बल मिले। नए चीन में लोगों के पास सफ़ाई से रहने का संकल्प भी है और सामर्थ्य भी। चीन में जो क्रान्तिकारी युग परिवर्तन हुआ है वह दूसरी चीज़ों ही की तरह उनकी लाजवाब सफ़ाई में भी दिखलाई देता है।

शान्तिदूतो स्वागत! यहाँ मैं उन स्वागतों की बात करना चाहता हूँ जिन्होंने सब जगह हमको गद्गद् कर दिया।

इस वर्णन का शीर्षक मैंने पीकिंग के मेयर 'पेंगचेन' की दावत से लिया है। जिस हाल में दावत थी, उसके सामने लकड़ी का बड़ा-सा फाटक तैयार किया गया था। यह फाटक लाल कपड़े से ढँका हुआ था और उस पर सुनहले अक्षरों से यह चीज़ चीनी अक्षरों में लिखी हुई थी। यह दावत भी एक ही चीज थी। बिना उसको अपनी आँख से देखे कोई इस बात का यक़ीन भी नहीं कर सकता कि इस तरह की दावत में इतनी मस्ती की जा सकती है। किसी तरह का कोई बन्धन नहीं था और सब जी खोल कर खुशियाँ मना रहे थे। मैं इसके बारे में और विस्तार से बात करूंगा क्योंकि मैं समझता हूँ कि चीनी आतिथ्य सत्कार का यह एक चरम शिखर था। तोरण के ये शब्द 'शान्तिदूतो, स्वागत।' बहुत अच्छी तरह दावत के मूड को बतलाते हैं। उनसे उन मस्तियों का तो कोई अन्दाज़ा नहीं मिलता जो कि हमने उस रात वहाँ पर कीं मगर मैं समझता हूँ कि उनसे इस चीज़ का पता जरूर बहुत अच्छी तरह लग जाता है कि तमाम चीनी जनता उन लोगों को कितना प्यार करती है और उनका कितना आदर करती है जो दुनिया में शान्ति और जीवन के पक्षधर हैं। अगर यह स्वागत मुर्दा रस्मिया चीज़ होती तो उसके बारे में कुछ कहने की ज़रूरत न होती। लेकिन उनके बारे में कहना जरूरी है क्योंकि उनसे एक नये जागे हुए राष्ट्र के शान्ति प्रेम और देशों के बीच आपसी भाईचारे की भावना का पता चलता है। सारे स्वागतों में एक ऐसी सच्ची मार्मिकता थी जो दिल को छुए बिना नहीं रह सकती थी। हर बार हर जगह उसी स्नेह की आवृति होती थी लेकिन हर बार हर जगह मन गद्गद् हो जाता था क्योंकि वह चीज़ सच्ची होती थी और दिल के तारों को छू जाती थी।

पहले मैं रेलवे स्टेशनों पर होनेवाले स्वागतों को लेता हूँ। प्लेटफ़ार्म खचाखच भरा हुआ है। लोग स्वागत में बेतहाशा तालियाँ बजाये जा रहे हैं। नारे लगा रहे हैं, गा रहे हैं, नाच रहे हैं। उन में तरुणों और तरुणियों का प्राधान्य है मगर बूढ़े दादा दादी भी हैं और अपनी माँओं के गोद में नन्हें नन्हें दूध पीते गोलमटोल बच्चे भी हैं। छोटे छोटे लड़के लड़कियाँ लाल लाल स्कार्फ़ बाँधे खड़े हैं। ये यंग पायनियर हैं। सचमुच वह एक दृश्य होता ....

गाड़ी रुकी। आप अपने डब्बे में से बाहर आये। प्लेटफ़ार्म "होपिंग वान स्वै" (शान्ति चिरजीवी हो, अमन जिन्दाबाद), चीन भारत मैत्री ज़िन्दाबाद, दुनिया के सब देशों की जनता का भाईचारा ज़िन्दाबाद के नारों से गूँज रहा है। आप अभी अपने डब्बे से उतरे हैं और इधर उधर नजर दौड़ा रहे हैं जबकि एक छोटा-सा यंग पायनियर लड़का चाहे लड़की, आपके पास आता है आपको पायनियर का सलाम देता है, फूलों का एक गुच्छा आपके हाथ में पकड़ा देता है और आपकी बाँह में अपनी छोटी-सी बाँह डाल कर आपके संग संग खड़ा हो जाता है। और फिर आप आगे बढ़ना शुरू कर देते हैं। और आपकी ऐसी ले लपक होती है और लोग इतने सम्भ्रम में खड़े आपको देखते रहते हैं कि लगता है जैसे आप कोई बड़ा क़िला फतेह करके घर लौट रहे हों। उस वक़्त आदमी अपने गरेबान में मुँह डाल कर देखे तो उसे हँसी आये बिना न रहे। लेकिन उस वक़्त भला इसकी किसे फ़ुरसत है। प्लेटफ़ार्म के दोनों ओर तालियाँ बजाते और गाते हुए लोग ठट के ठट खड़े हैं। इसी भीड़ में एक से एक रंगबिरंगे कपड़े पहने वे खूबसूरत नाचनेवाले भी खड़े हैं जिनकी कमर पर ढोल या मृदंग जैसी चीज बँधी है। और रंगों की तो ऐसी बहार है कि कुछ मत पूछिये। खून का सा लाल और कत्थई और सुनहला और हरा और बैंगनी और गुलाबी और नीला--सभी रंगों का एक मेला-सा लगा हुआ है। स्पष्ट ही चीनियों को रंगों से बहुत प्रेम है। यह भी सही होगा कि उन्हें शोख रंग बहुत भाते हैं लेकिन उस शोख

O29512

रंग का जोड़ वह किसी हलके रंग से ऐसा मिलाते हैं कि शोख़ी ग़ायब हो जाती है और एक नई ही बात पैदा हो जाती है। उस वक़्त जवान गलों से निकली हुई बुलन्द आवाज़ें हवा में गूँजती रहती हैं और आप धीरे धीरे आगे बढ़ते हैं तो आपको ऐसा महसूस होता है कि जैसे फूलों और रंगों, गाने और नाच, प्रेम और शान्ति की हरी भरी वाड़ी में से आप गुज़र रहे हैं।

और इस तरह एक नन्हे-से यंग पायनियर के हाथ में हाथ डाले, बड़ा-सा एक फूलों का गुच्छा लिये हुए, दोनों ओर खड़ी हुई स्वागत करती गाती हुई क़तारों के बीच से और रंगबिरंगे कपड़े पहने हुए स्वागत नृत्य करते हुए लड़कों और लड़कियों के पास से आप आगे बढ़ते हैं और उस बस पर पहुँचते हैं जो आपको होटल ले जाने के लिए बाहर खड़ी है। आप तेज़ चलने की कोशिश करते हैं, (गोकि मैं समझता हूँ कि आप पूरी कोशिश नहीं करते, क्योंकि इस दृश्य में ऐसा कोई वशीकरण जादू है जो आपको पीछे की तरफ़ खींचता है!) लेकिन आप तेज नहीं चल पाते क्योंकि बड़ी भीड़ है और आपको अगर हज़ारों नहीं तो सैकड़ों लोगों से तो हाथ मिलाना ही है। हो सकता है कि आप अपनी समझदारी में आकर खुद हाथ आगे न बढ़ाएँ लेकिन जब हर क़दम पर दोनों तरफ़ से बीसियों हाथ आपकी तरफ़ बढ़े हों तो आप उन हाथों को न पकड़ें, ऐसा कैसे हो सकता है, हाथ जो आपके दादा दादी और काका काकी की उम्र के लोगों के हाथ हैं और आपके भाई बहनों के हाथ हैं और ज़रा ज़रा से लड़कों और लड़कियों के हाथ हैं यहाँ तक कि कभी कभी गोद के बच्चों के हाथ हैं जिन्हें माँ उठा कर हमारे हाथ में देना चाहती है! नहीं, यह हो ही नहीं सकता कि आप उन हाथों को न थामें। वह सचमुच विभोरता की सी स्थिति होती है और कोई कितना ही मनहूस और घुन्ना क्यों न हो उस पर भी इस चीज़ का जादू चल ही जाता है। इस मुहब्बत का जादू ही कुछ ऐसा है कि आगे पीछे वह सबके पैर उखाड़ देता है और सबको अपने संग बहा ले चलता है। मैं कितनी ही कोशिश क्यों न करूँ, उस दृश्य का वर्णन नहीं कर सकता, शायद जादू कहने से ही उसका बोध हो। जब लाखों शान्ति-प्रेमी, स्नेही लोग अपने प्यार को वाणी देते हैं तब यह अनोखा जादू पैदा होता है। यह जादू जो शराब की तरह रग रग में चढ़ने लग जाता है।

मैंने जब इस चीज़ का ज़िक्र कलकत्ते पहुँचने पर एक दोस्त से किया तो उन्होंने कहा, "आप कैसे कह सकते हैं कि इसके पीछे कोई सरकारी मजबूरी नहीं थी? आप दावे के साथ कह सकते हैं कि सब लोग जो आये थे, स्वेच्छा से आये थे?" मैं जानता हूँ आज की दुनिया में सरकारी मजबूरी बहुत-सी चीज़ें करा लेती है। लेकिन मैं समझता हूँ कि कठोर से कठोर तानाशाह भी हज़ारों लाखों लोगों की सच्ची भावनाओं को सांचे में नहीं ढाल सकता। यह हज़ारों लाखों लोग जो जगह जगह हमारे स्वागत के लिए आये थे, और जिनकी सच्ची भावनायें उनके चेहरों पर ऐसी लिखी हुई थीं कि अन्धा भी पढ़ सकता था, उनको कोई भी सरकारी मजबूरी प्रेम का ऐसा सफल अभिनय करने के लिए विवश नहीं कर सकती। कहीं ऐसा मुमकिन है कि जो भावनायें लोगों के दिलों में नहीं हैं, उनको वह इस तरह अपने चेहरे पर चढ़ा लें कि झूठ सच की तमीज़ करना मुश्किल हो जाय? मैं जानता हूँ कि चीन की अभिनय कला बहुत बढ़ी चढ़ी है और मैंने उनके नाटक और आपरा देखे हैं, लेकिन मैं समझता हूँ कि उनके लिए भी ऐसा धोखा देना मुमकिन नहीं। क्योंकि यह चीज़ नहीं की जा सकती, क्योंकि दिल को दिल से राह होती, क्योंकि यह अभिनय नहीं सच्चाई थी। अभिनय और सच्ची भावना दो अलग अलग चीज़ें होती हैं और दोनों में विवेक करना इतना कठिन है? सच्चाई मुझे उसी वक़्त पता चल गई जब मैंने उन हाथों को अपने हाथों में लिया, उन हाथों को, जिनके उगलियों के पौर पौर में उत्सुकता थी, जो हमारे पास तक पहुँचने के लिए आपस में लड़ रहे थे, उनके हाथों को जिनके पास अपनी जान थी, वे सभी छोटे बड़े हाथ, किसानों मज़दूरों के खुरदरे हाथ और लेखकों कलाकारों के अपेक्षाकृत सुकुमार हाथ, बच्चों के हाथ और बुड्ढों के हाथ, लड़कियों के हाथ और लड़कों के हाथ। उन हाथों को पकड़ना जैसे स्नेह और आत्मीयता की लहर में बह जाना था। उस वक़्त आपके चेहरे पर भी एक कोमलता आ जाती है, वही कोमलता जो उनके चेहरों पर है और आपका हाथ मिलाना केवल हाथ मिलाना न रह कर जैसे एक शपथ बन जाता है, एक प्रतिज्ञा कि हम विश्व शांति को बचाएँगे, इस मुहब्बत और इस दोस्ती को बचाएँगे। यह दुनिया बड़ी खूबसूरत जगह है जहाँ इतना प्यार और इतना सुख है और कोई भी भावुक आदमी जिसे

इस दुनिया से प्यार है, इसको कभी तबाह नहीं होने दे सकता । वह आदमी सचमुच भूल का पुतला होगा जो इस खूबसूरत दुनिया को मुट्ठी भर गिद्धों के खून टपकते पंजों से बचाने के लिए आप्राण संघर्ष न करे । यह गोलमटोल छोटे छोटे तुतलाते बच्चे मेरे अपने बच्चों की तरह हैं । ये लड़के लड़कियाँ मेरे अपने छोटे भाई बहन हैं और यह मजबूत तगड़े जवान भी, जिनकी जिन्दगी मेरी जिन्दगी है, जिनकी इज़्ज़त मेरी इज़्ज़त है और यह गालों और पेशानियों पर झुर्रियाँ लिए बुड्ढे लोग भी तो हमारे ही हैं । वे सब मेरा हाथ दबाते थे और जैसे कानों में कहते थे :

"तुम मेरे भाई हो । मैं तुम्हारा भाई हूँ । सारे इन्सान भाई भाई हैं । जनता सब जगह एक है । हम शान्ति चाहते हैं । संसार के सभी लोग शान्ति चाहते हैं । हमारे जिस्म का एक एक रग और रेशा जानता है कि जनता कभी लड़ाई नहीं चाहती मगर तब भी बहुत बार लड़ाइयाँ हुई हैं और बहुत खून बहा है । यह दुनिया बहुत खूबसूरत जगह है । वह अब और इस ज़िल्लत को नहीं बर्दाश्त कर सकती कि भाई भाई का गला काटे । हमें इस ज़िल्लत को दफ़न करना होगा । हम जानते हैं कि यह काम आसान नहीं होगा मगर तब भी हमें अपनी इस क़दीम ज़िल्लत को दफ़न करना ही होगा और इसके लिए हमें जंग करनेवालों से जंग करनी होगी । जंग एक बाँझ कुतिया है जो सिर्फ़ लाशों को जन्म देती है, लाशें जिन्हें गिद्ध खाते हैं । इसलिए हमें एक होना होगा ताकि हम एक होकर अपनी हिफ़ाज़त, अपने बाल बच्चों की हिफ़ाज़त, अपने घरों और खेल खलिहानों की हिफ़ाज़त के लिए लड़ सकें । यह सब नाच और गाना, यह जवानी और यह हुस्न, ये फूल और ये बच्चे, यह मुहब्बत और यह इज्ज़त इस सबको बचाना होगा । इस काम से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता । लड़ाई हर चीज़ को तबाह कर देती है । इसलिए हमको अपनी रक्षा के लिए और पास आना होगा—और भी पास, और भी, और भी......"

लिहाज़ा आदमी हाथ मिलाता है और मिलाता जाता है । ज़्यादा से ज़्यादा लोगों से और हर हाथ मिलाने में जैसे अपने दिल की सारी मुहब्बत और सारी गरमी को उण्डेल देता है । यहाँ तक कि यह चीज़ एक पागलपन की हद तक पहुँच जाती है और नौजवान ताकतवर हाथ इन शान्तिदूतों को झण्डों की तरह अपने कन्धों पर बिठा लेते हैं और झण्डा हवा में फहराने लगता है । ऊपर ही ऊपर एक कन्धे से दूसरे कन्धे की यात्रा हवा में फहराने से ज़्यादा भिन्न नहीं होती । मुझे इस चीज़ का अनुभव नानकिंग में हुआ ।

गरज यह है कि जब आप इन सारी मधुर आपदाओं को पार करके बस में पहुँचते हैं और अपनी सीट पर बैठते हैं तो उस वक़्त आपके दाहिने हाथ में दर्द हो रहा होता है मगर आपका दिल अन्दर ही अन्दर गाता रहता है और आपकी आँखों में एक छोटा-सा मोती चमक रहा होता है......

सभी जगहों पर हमारा स्वागत बहुत ही शानदार था । लेकिन यांगजो नाम के उस छोटे-से शहर में जो स्वागत हुआ उसने तो हमको बिलकुल चकित ही कर दिया । यांगजो हवाई नदी के इलाक़े में पचास हज़ार की आबादी का एक छोटा-सा शहर है । यांगजो ही वह मुक़ाम है जहाँ से हम लोग हवाई नदी पर बने काओलिएँगचेंग और सैनखो नाम के बाँधों को देखने के लिए बसों के ज़रिए सौ मील अन्दर, देहातों में होकर गए थे । यह भ्रमण हमारी यात्रा के शेष पर्व में हुआ था और तब तक हम इन स्वागतों से आदी-से हो चुके थे मगर यांगजो में मैंने जो चीज़ देखी उसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे । नगर में कुछ पचास हज़ार लोग और सड़क के दोनों तरफ़ आठ-आठ दस-दस आदमी एक के पीछे एक खड़े हुए कोई डेढ़ मील तक चले गए थे । ठट लगा हुआ था । ऐसा लगता था कि सिवाय बीमारों के अब घर के अन्दर कोई नहीं रह गया है और औरत, मर्द, बच्चे, बूढ़े, जवान सब सड़क पर निकल आए हैं । देख कर कुछ अजीब ही एहसास होता था । नौजवान माएँ अपने बच्चों को गोद में लिए हुए और बुड्ढी नानियाँ और दादियाँ पेशानी पर झुर्रियाँ लिए हुए । उस भीड़ में जो कि फ़ौज की क़तार की तरह खड़ी थी, नन्हें-नन्हें बच्चे भी थे और सत्तर अस्सी, नब्बे साल के बुड्ढे भी, किशोर-किशोरियाँ, तरुण-तरुणियाँ, मजदूर, किसान, विद्यार्थी एक पूरा समुन्दर था जो उबला पड़ता था । उन्हीं के बीच-बीच खूब चटख रंग के कपड़े पहने हुए नाचने वाले भी थे जिनकी कमर पर अपना चीनी मृदंग बंधा हुआ था और जो तन्मय होकर नाच रहे थे । ऐसे दृश्य जीवन में बहुत बार देखने को नहीं मिलते ! और सच बात यह है कि मैंने इसके

पहले ऐसी कोई चीज नहीं देखी थी। न तो ऐसा उत्साह और न ऐसा अनुशासन। कहना न होगा कि यह सारे लोग जो आए थे अपनी खुशी से आए थे उनके संग किसी तरह की ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं की गई थी। उन्हें किसी फ़ौजी कानून के रास्ते से बांधकर यहाँ नहीं ले आया गया था। उन्हें हुकुम नहीं मिला था कि अमुक लोग तुम्हारे यहाँ से गुज़रेंगे, उनकी अगवानी के लिए खड़े मिलना, नहीं तुम्हारे सिर पर डण्डा पड़ेगा! ऐसी कोई चीज़ नहीं थी। मुझे कहीं भी पुलिस या फ़ौज का एक सिपाही नहीं नज़र आया और सिपाही तो दरकिनार उन चेहरों पर किसी तरह की ज़ोर-ज़बर्दस्ती की, डर या घबराहट की कोई छाया नहीं थी। उनको भी जाने दीजिए, मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि उन चेहरों पर ऊब या उकताहट तक का कोई निशान नहीं था। वे खुली हुई किताब की तरह खुले हुए चेहरे थे जिनमें आप उनके नैसर्गिक आह्लाद, उनके सीधे-सच्चे प्यार और आदर भाव को पढ़ सकते थे। और यह चीज़ बिलकुल वही थी जो हमारे संग होती है, जब हमारा कोई प्यारा अतिथि हमारे घर आता है। इसमें रहस्य की ऐसी कोई बात नहीं। मगर याद रखने की ज़रूरत है कि सिर्फ़ रहस्यमयी चीज़ें ही आश्चर्यजनक नहीं होतीं, कभी-कभी एकदम सीधी-सादी साधारण चीज़ें सबसे ज़्यादा आश्चर्यजनक हो जाती हैं। जैसे लाखों-करोड़ों आदमियों की यह खुशी जिसका कारण इससे ज़्यादा कुछ नहीं था कि कुछ थोड़े से शान्ति-सैनिक, शान्ति के रखवाले हमारे देश में आए हैं। कौन कहेगा कि यह कोई बड़े आश्चर्य की बात है मगर तब भी लोग हैं कि खुशी और उमंग से फूटे पड़ते हैं।

लेकिन मैंने जो बात अभी कही है, मैं नहीं चाहता कि उसका यह मतलब लगाया जाय कि ये जो हजारों-लाखों आदमी शहर-शहर में गांव-गांव में इकट्ठा हुए इस चीज के पीछे कोई संगठन नहीं था। निस्सन्देह यह सारे स्वागत संगठित किए गए थे। लेकिन संगठन और फ़ौजी जकड़बन्दी दो चीज़ें हैं। दोनों के अन्तर को ठीक से समझ लेना ज़रूरी है क्योंकि बहुत बार कुछ लोग हर संगठन को फ़ौजी जकड़बन्दी की शकल में पेश करने की कोशिश करते हैं जब कि असलियत में दोनों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। संगठन फ़ौजी जकड़बन्दी में भी होता है लेकिन इस संगठन का आधार जनता की स्वेच्छा नहीं, ज़ोर-ज़बर्दस्ती और आतंक होता है। और यहाँ मैं जिस संगठन की बात कर रहा हूँ, उसका आधार जनता की स्वेच्छा थी। आप पूछ सकते हैं कि मैं कैसे इतने दावे के साथ यह बात कह रहा हूँ। जवाब में मैं सिर्फ़ उस साक्ष्य की दुहाई दूँगा जो कि मैंने अपनी आँखों से देखा है। मैं समझता हूँ कि मेरी आँखें जल्दी धोखा नहीं खातीं और यहाँ तो धोखे की कोई गुंजाइश भी नहीं थी क्योंकि सारे वातावरण से यह बात स्पष्ट थी और लोगों के चेहरों पर उनके दिल की उमंग, उनका उल्लास, उनका प्यार सब कुछ लिखा हुआ था। जनता ने खुद संगठित होकर हमारा स्वागत किया था। कई विशाल जन-संगठनों ने मिल कर इस चीज की तैयारी की थी। चीन की शान्ति-कमेटी, मज़दूर-सभा, जनवादी महिला संघ, जनवादी-युवक-संघ, चीन भारत मैत्री संघ, यंग पायनियर, नौजवान कम्युनिस्ट लोग वग़ैरह वग़ैरह जन संगठन जिनके लाखों सदस्य हैं, जी-जान से इस काम के प्रचार, आन्दोलन और संगठन में लगे रहे थे। उनके बग़ैर ऐसी चीज़ की भी नहीं जा सकती थी। क्या हम लोग इतने संगठन-द्रोही हैं कि यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि स्वागत-सत्कार भी संगठित रूप से किया जा सकता है? हम लोग चीनी जनता के मेहमान थे तो फिर इसमें क्या अजब बात थी कि चीनी जनता अपने जन-संगठनों के माध्यम से हमारे स्वागत के लिए अनथक उद्योग करती। जाहिर-सी बात है कि यह लाखों लोग जमीन फोड़ कर नहीं निकल आये और न आसमान से टपक पड़े। वे अपने घरों से ही आये और बड़ी कसरत से आये और वह इतनी बड़ी तादाद में आये, इसके लिए उनका आवाहन किया गया, उनको समझाया गया, संगठित किया गया।

इस जगह पर मैं फ़ौजी जकड़बन्दी का भूत खड़ा करनेवाले आदमी की आवाज अपने कानों में बजते सुन रहा हूँ: "हाँ, अब आप आये ठीक रास्ते पर! मैंने क्या कहा था? मैंने भी तो यही कहा था न कि इस चीज के पीछे बहुत ठेल-ठाल है, इधर उधर से बहुत तार खींचे ताने गये होंगे तब यह चीज मुमकिन हुई होगी! आप भी तो दूसरे शब्दों में यही बात कह रहे हैं!"

मैं जानता हूँ कि मैं क्या कह रहा हूँ और मुझे हँसी मालूम होती है। ऐसे व्यक्ति को कोई जवाब दे भी-

तो क्या दे ? बस यही कह सकता हूँ कि ज़रा कुछ लोगों को, इससे कहीं छोटे पैमाने पर, ठेल-ठालकर लाने की कोशिश कीजिये तब आपको आटे दाल का भाव मालूम होगा । इतना आसान खेल नहीं है । आपको शायद, उन स्वागतों की याद हो जो हमारे गौराँग महाप्रभु लोग अपने आला अफ़सरों के लिए सजाया करते थे ! याद है न कैसी मुर्दा, बेजान, दीमक-चटी चीज़ होती थी वह ! और कोई एक बार की बात नहीं थी वह । उसका सदा यही हश्र होता था ! क्योंकि जनता कभी उस चीज़ का साथ नहीं देती थी, सारी ठेलठाल के बावजूद ज़ोर जबर्दस्ती के बावजूद । नतीजा होता था कि दस-बारह टोडी बच्चे, राय साहब और खान साहब, स्टेशन पर इकट्ठा हो जाते थे और थोड़ी देर खीसें निपोरकर मुस्कराते थे, 'अहो रूपम् अहो ध्वनि' के कुछ चषक चलते थे और उसके अनन्तर सब जल्दी जल्दी अपने घर की राह लेते थे ।

कहने का मतलब यह कि लाखों करोड़ों लोगों की फ़ौजी जकड़बन्दी मुश्किल काम है और उससे भी मुश्किल काम यह है कि यह चीज़ की भी जाय और इस तरह की जाय कि इसका कोई दाग किसी के चेहरे पर दिखाई न दे । फ़ौज़ी जकड़बन्दी और मुस्कराहट में सौतिया डाह है । किसी हालत में दोनों संग नहीं रह सकते और जब तक कि आदमी एकदम आँख का अन्धा नहीं है वह झूठी और सच्ची मुस्कराहट में फ़र्क भी कर ही सकता है । और जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं अपने को कतई अन्धा नहीं समझता और फिर उनकी मुस्कराहट को सच्चा समझने में मुझे इस बात से भी मदद मिलती है कि मैंने उनको जी-जान से अपना नया घोंसला बनाते देखा और जो घोंसला बनाता है, वह अपने घोंसले की हिफ़ाजत के लिए दुनिया में शान्ति चाहता है और मुस्कराहट शान्ति और प्रेम की वाणी है ।

सरस्वती प्रेस,
इलाहाबाद पो. बा. २४

—अमृतराय

कन्नड की कहावतें

गिळि बिळिदादरे चोद्य; हंस बिळिदादरे चोद्यवे जगकें !
तोता सफ़ेद हो तो ताज्जुब, हँस सफ़ेद हो तो दुनिया को क्या ताज्जुब !

गूळि नडेव हेज्जे नोडबहुदल्लदे, गाळिय हेज्जे तोरुवदे ।
चलनेवाले साँड के पद देखे जाते हैं, लेकिन हवा के चलने से उसके पद नहीं देखे जाते ।

कोडुव कै मेलु; कोंबुव कै केळगे ।
देनेवाले का हाथ ऊपर, लेनेवाले का नीचे ।

अरसुपिडिये तृण पर्वतवहुदु; पुण्यवंतरु मुट्ट मण्णु होन्नहुदु ।
राजा पकड़े तो तिनका पर्वत हो सकता है, पुण्यवान् छूए तो मिट्टी कनक बन जाती है ।

मोलेय मेलिद्दु योगियुंटु, बेट्टद शिलेय मेलिह मोहियुट्ट ।
थन पर रहे योगी भी है पर्वत की चट्टान पर बैंठे मोही भी है ।

मैसूर

—डी० एस० नारायणराव

आधुनिक काल की शिक्षा की समस्या

आधुनिक काल की शिक्षा की प्रधान समस्या मनुष्य की बुद्धि और उसकी श्रम-शक्ति (शारीरिक श्रम) में समन्वय स्थापित करने की है। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हो रहा है मनुष्य की इन दो शक्तियों में अन्तर बढ़ता जा रहा है। मनुष्य की शरीरिक शक्ति सीमित है, परन्तु उसकी बौद्धिक शक्ति असीम है। अत एव जिस व्यक्ति को बुद्धि का बल होता है वह शीघ्र ही शरीर बल रखने वाले व्यक्तियों को अपना दास बना लेता है। मनुष्य ने पहले पहल अपने बुद्धिबल से संसार के पशुओं को अपना दास बनाया। जो उसके लिए उपयोगी थे उन्हें पालतू बना लिया और जो अनुपयोगी थे अथवा उसे हानि पहुँचा सकते थे, उन्हें विनष्ट कर डाला। पशु के बाद मनुष्य, मनुष्य को ही गुलाम बनाने के व्यवसाय में लग गया। इस तरह संसार के प्रखर बुद्धि के लोग किसी न किसी प्रकार कम बुद्धि के लोगों को अपना दास बना लेते हैं। दास के नाम चाहे जो रहें परन्तु मानव समाज में दासता सदा उपस्थित रहती है। सभ्य समाज की सबसे बड़ी समस्या यही हो सकती है कि मनुष्य की दूसरों को दास बनाने की भावना कैसे समाप्त हो जाय।

आधुनिक काल में सम्पूर्ण मानव जाति में वर्ग-संघर्ष चल रहा है। यह वर्ग-संघर्ष ऊपर से देखने में श्रमजीवियों और बुद्धिजीवियों का संघर्ष है। श्रमजीवी लोग बुद्धिजीवी लोगों की बराबरी करना चाहते हैं और बुद्धिजीवी लोग सदा उन्हें वश में करके रखना चाहते हैं। बुद्धिजीवियों की भौतिक आवश्यकताएँ भी होती ही हैं। वे आवश्यकताओं की पूर्ति श्रमजीवी व्यक्तियों के द्वारा सदा करते रहना चाहते हैं। जब श्रमजीवी उनके श्रम शोषण का विरोध करते हैं तो वर्ग-संघर्ष उपस्थित हो जाता है। आधुनिक समाजवाद और साम्यवाद श्रमजीवियों की माँग को बुद्धिजीवियों के समक्ष रखते हैं और उनके द्वारा उन मांगों के ठुकराए जाने पर वे बल पूर्वक उन से भोग सामग्री का बँटवारा कराते हैं। बुद्धजीवी ही पूँजीपति बन जाते हैं। अत एव यह संघर्ष पूँजीवाद और श्रमवाद के बीच का संघर्ष हो जाता है।

साम्यवाद का मार्ग पहले पहले बड़ा आकर्षक दिखाई देता है। साम्यवाद के नेता स्वयं बुद्धि में प्रवीण होते हैं। वे श्रमिकों का संगठन करते हैं और उन्हें पूंजीपतियों के विरुद्ध खड़ा करते हैं। इस तरह वे राजसत्ता को श्रमिकों की सहायता से अपने हाथ में ले लेते हैं। फिर एक ऐसी राजसत्ता और समाजसत्ता का गठन होता है, जिसमें शक्ति थोड़े-से बुद्धि के प्रवीण व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रीभूत हो जाती है और उसका समर्थन सारी जनता करती है। इस छोटे दल का विरोध करने की न तो किसी में हिम्मत होती है और न विरोध का विचार ही मन में आता है। ज्ञान-प्रचार के सभी साधन इस दल के हाथ में रहते हैं, अत एव जनता के मन में ऐसे विचार ही उठने नहीं दिए जाते जिससे वह राजसत्ता के विरोध की इच्छा करे अथवा इसके लिये शक्ति संचय करे। पूँजीवादी राज्य प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यही है कि उसमें समाज की अधिक से अधिक सम्पत्ति समाज के थोड़े-से चतुर लोगों के हाथ में आ जाती है और सामान्य जनता गरीब ही रह जाती है। बुद्धि के प्रवीण लोग श्रमजीवियों को गुलाम बना कर रखते हैं। यही स्थिति साम्यवादी समाज व्यवस्था में भी हो जाती है। जितनी विचार स्वतन्त्रता साधारण मनुष्य को पूँजीवादी सत्ता में रहती है उतनी विचार स्वतन्त्रता भी उसे साम्यवादी समाज व्यवस्था में नहीं रहती। दोनों प्रकार की व्यवस्था में शक्ति का थोड़े-से मनुष्यों के हाथ में केन्द्रीकरण होता है।

इस प्रकार की दूषित प्रणाली का अन्त कैसे किया जाय? इस प्रणाली के अन्त करने का एक उपाय यह बताया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसी प्रकार श्रमिक भी बनाना होगा जिस प्रकार कि बुद्धि में वह प्रवीण हो। राष्ट्र के सभी बालकों को ऐसी शिक्षा दी जा सकती है, जिससे प्रत्येक बालक चाहे वह बुद्धि में प्रवीण हो अथवा नहीं, कुछ न कुछ समाज के लिए उत्पादक शारीरिक श्रम करे। समाज में भूमि और धन

का भी बँटवारा किया जा सकता है, जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे लोगों के द्वारा श्रम कराने का अवसर ही न मिले और अपनी आजीविका के लिए उसे स्वयं श्रम करना पड़े। यदि राष्ट्र की भूमि का बँटवारा इस प्रकार हो जाय कि राष्ट्र के किसी व्यक्ति के पास सैकड़ों एकड़ जमीन न रह कर केवल पाँच एकड़ जमीन ही रहे, तो उसे अपनी आजीविका के लिए स्वयं शारीरिक परिश्रम करना पड़ेगा। इस प्रकार की समाज व्यवस्था में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के श्रम का शोषण न कर सकेगा। प्रत्येक व्यक्ति को शरीर से काम लेना होगा। हर एक बालक की शिक्षा में शारीरिक श्रम अनिवार्य कर देने से उसकी शारीरिक श्रम करने की प्रारंभ ही से आदत पड़ जायगी और वह शारीरिक श्रम करने में रुचि लेने लगेगा। किसी व्यक्ति का एकांगी बौद्धिक विकास न हो सकेगा। इससे आशा की जाती है कि जो समाज निर्मित होगा वह शोषक और शोषितों का समाज न होकर ऐसे व्यक्तियों का समाज होगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वावलम्बी होगा।

उपर्युक्त प्रकार की समाज व्यवस्था तथा शिक्षा-प्रणाली कई प्रकार से आकर्षक है। यह पूँजीवाद और साम्यवाद के दोषों से मुक्त दिखाई देती है। परन्तु मानव स्वभाव जैसा है उसे देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि बुद्धि के प्रवीण लोग श्रमिक वर्ग के लोगों का शोषण बन्द कर देंगे। यदि ऐसी कोई योजना बनाई गई जिससे किसी प्रकार बुद्धिजीवियों और श्रमजीवियों को बराबरी में लाए जाने की सम्भावना हुई, तो उसकी असफलता की बातें इस योजना के साथ ही उत्पन्न हो जाएँगी। जिस प्रकार अहिंसा की ओट में हिंसा छिपी रह जाती है है और उदारता की आड़ में स्वार्थपरायणता, उसी प्रकार ऊपरी समानता की आड़ में विषमता छिपी रहती है। जो नेता समाज में समानता का प्रचार करता है वह इस प्रचार के कारण इतना शक्तिशाली बन जाता है कि उसी से सभी प्रकार की असमानता का प्रारम्भ हो जाता है। किसी प्रकार के वाद का प्रचार बुद्धि के प्रखर लोग ही कर सकते हैं। उस वाद के सफल होने पर यही लोग सत्ताधारी बन जाते हैं। उस वाद के सफल होने पर यही लोग सत्ताधारी बन जाते हैं। न्यून बुद्धि की जनता प्रखर बुद्धिवाले प्रचारकों के विचारों से 'सम्मोहित होकर, जो कुछ वे बताते हैं, उसी के अनुसार करने लगती है। इस प्रकार बुद्धि में प्रवीण लोग सदा समाज के शासक बने रहते हैं।

उक्त व्यवस्था में दूसरी त्रुटि यह है कि मनुष्य का बौद्धिक विकास अत्यन्त सीमित हो जाता है। मनुष्य के बौद्धिक विकास के लिए आर्थिक व्यवस्था का सुविकसित रहना नितान्त आवश्यक है। जहाँ देश के रोजगार धन्धों का विकास नहीं होता, जहाँ वैज्ञानिक आविष्कारों से उपयोग की सामग्री के पैदा करने में काम नहीं लिया जाता, वहाँ सूक्ष्म बुद्धि का विकास भी नहीं होता। ऐसी अवस्था में देश के धन की भी वृद्धि नहीं होती। धन की वृद्धि केवल शारीरिक श्रम का परिणाम नहीं है। इसकी वृद्धि के लिए विज्ञान द्वारा आविष्कृत नवीनतम यन्त्रों के उपयोग की आवश्यकता होती है। जिस देश में धन नहीं रहता और जिस देश में आधुनिक यन्त्रों को काम में लाने की क्षमता नहीं रहती, वह देश चाहे जनसंख्या अथवा क्षेत्रफल में कितना ही बड़ा क्यों न हो, छोटे से भी देश का गुलाम बन जाता है। अत एव किसी भी देश के लिए आधुनिक युग के वैज्ञानिक आविष्कारों का जानना, उनके उपयोग करने की शिक्षा नवयुवकों को देना और इसके द्वारा देश का धन बढ़ाना नितान्त आवश्यक है।

अब प्रश्न यह होता है कि फिर बुद्धि और श्रम का विरोध अर्थात बुद्धिजीवी और श्रमजीवी वर्गों का विरोध कैसे मिटाया जाय। बुद्धि का विकास रोक कर इस विरोध को मिटाना आत्मघातक है। बुद्धिजीवी व्यक्तियों को श्रमजीवी व्यक्तियों के बराबर बना देना न ही उपादेय है न सम्भव। बुद्धिजीवी संख्या में थोड़े ही रहेंगे और वे समस्त समाज का शासन उसी प्रकार करेंगे जिस प्रकार मनुष्य का मस्तिष्क उसके सारे शरीर पर शासन करता है। अब प्रश्न केवल इतना ही है कि बुद्धि की वृद्धि के साथ साथ यदि मनुष्य में किसी ऐसी बात की वृद्धि हो जाय जिससे मनुष्य स्वार्थी न बन कर परोपकारी बने, तो हमारे समाज की सबसे महत्व की समस्या हल हो जाय और इसके साथ साथ हमारी शिक्षा की भी समस्या हल हो जाए।

बुद्धि और शारीरिक श्रम में सामंजस्य हो सकता है। समानता होना सम्भव नहीं। यह सामंजस्य मनुष्य के हृदय को शिक्षित करने से सम्भव है। मनुष्य का बौद्धिक विकास जैसे जैसे होता है और जितना अधिक

उसका लौकिक ज्ञान बढ़ता है, उतना ही उसका स्वार्थीपन और अभिमान भी बढ़ता है। इस अभिमान को कम करने के लिए प्रारम्भ से ही बालक को उचित भावात्मक शिक्षा देना आवश्यक है, जिससे कि वह सबकी महानता में अपनी महानता देखने लगे। इसके लिए बालक को लोक सेवा के कार्य में अभ्यस्त करना होगा। उसकी रुचि अपने आप की बुद्धि में न लगाकर सबकी बुद्धि में लगानी होगी।

इस प्रसंग में चार्ल्स युंग महाशय की मनोवैज्ञानिक खोजें बड़े महत्व की हैं। युंग महाशय का कथन है कि मनुष्य की ज्ञानात्मक और भावात्मक क्रियाशक्तियों में विरोध का सम्बन्ध है। अत्यधिक बुद्धि की वृद्धि से मनुष्य के भावों का दमन होता है और वे अविकसित रह जाते हैं। यदि हम मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना चाहते हैं तो न केवल उसके बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा देना आवश्यक है, वरन उसके भावात्मक विकास के लिए शिक्षा देना भी आवश्यक है। मनुष्य का मन जिस शक्ति की वृद्धि का अभ्यास करता है वही शक्ति उसकी बढ़ती है और दूसरी मानसिक शक्ति अविकसित रह जाती है। सदा के बौद्धिक व्यवसाय से मनुष्य की बौद्धिक शक्ति विकसित होती है और उसकी भावात्मक शक्ति अविकसित रह जाती है। यही कारण है कि संसार में बड़े-बड़े वैज्ञानिकों और दार्शनिकों में भी क्रूर-कर्मी अथवा विक्षिप्त व्यक्ति भी पाए जाते हैं। जिस अंग का विकास नहीं हो पाता वह दूसरे अंग से अपना सामंजस्य स्थापित न कर सकने के कारण अन्तर्विरोध का कारण बन जाता है।

युंग महाशय ने दूसरी जो बात बताई है वह प्रौढ़ अवस्था में सतत अन्तर्दर्शन की आवश्यकता की है। चालीस वर्ष के पश्चात प्रत्येक व्यक्ति को लौकिक ज्ञान की वृद्धि करने की चेष्टा न करके आत्मज्ञान की वृद्धि करने की चेष्टा करनी चाहिए। बाहरी सफलता की ओर अपनी दृष्टि न रख कर आन्तरिक सफलता की ओर अपनी दृष्टि रखने का प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य की चेतना जिस ओर अपना प्रकाश डालती है उसी ओर उसका आलोक फैलता है और इसके कारण वह क्षेत्र समृद्धिशाली हो जाता है। साधारण मनुष्य अपनी चेतना का प्रकाश जगत् के पदार्थों पर डालता है इससे उसका लौकिक ज्ञान बढ़ता है और वह लौकिक जीवन में सफलता प्राप्त कर लेता है। परन्तु उसका आन्तरिक जीवन अँधकार में रह जाता है। इसके कारण अनेक प्रकार की व्याधियाँ इसके जीवन में आ जाती हैं। वह बाह्य जगत् से समन्वय स्थापित करने में समर्थ तो हो जाता है परन्तु वह अपने आप से समन्वय अथवा सामंजस्य प्राप्त नहीं कर पाता। वह मानसिक एकीकरण नहीं प्राप्त कर पाता। इसी कारण सब प्रकार की लौकिक सफलता होते हुए भी उसका जीवन दुखी रहता है। फिर वह अनेक प्रकार की भूलें करता है और इस प्रकार सफल हो कर भी असफल हो जाता है।

मनुष्य की बुद्धि और क्रियाशक्ति में सामंजस्य स्थापित करने का सर्वोत्तम उपाय मनुष्य की बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ उसे हृदय की भी शिक्षा देना है। हृदय की शिक्षा से मनुष्य अपनी बुद्धि से जो सोचेगा और जो काम अपने हाथ से करेगा वह शैतानी न हो कर लोकोपकारी होंगे। मनुष्य को केवल हाथ का काम करने की क्षमता मिल जाने से उसमें भलाई की क्षमता नहीं आ जाती। हाथ के काम में प्रवीण लोगों का नैतिक स्तर ऊँचा होना अनिवार्य नहीं है। जब तक मनुष्य को हृदय की उचित शिक्षा नहीं मिलेगी और जब तक उसे जीवन के उच्चतम मूल्यों का ज्ञान न होगा तथा जब तक इन मूल्यों की प्राप्ति के लिए अभ्यास न कराया जाएगा तब तक वह अपनी निम्न कोटि की वासनाओं से मुक्त न होगा और वह अपनी सभी प्रकार की क्षमताओं से समाज का लाभ न कर, उसका शोषण करने की ही चेष्टा करेगा। हमारी शिक्षा की सर्वोपरि महत्व की समस्या का हल व्यक्ति को श्रमवादी बनाने मात्र में नहीं है, वरन उसके हृदय को शुद्ध करने में और उसके आत्मज्ञान के बढ़ाने में है। संसार के सभी महान पुरुषों ने लोकोपकारार्थ इसी प्रकार की शिक्षा का प्रसार किया था। सच्चे धर्म का लक्ष्य भी यही है कि मनुष्य का हृदय उदार हो और उसका आत्मज्ञान बढ़े। बिना इनके समाज सुख और शांति से नहीं रह सकता और समाज की चाहे जैसी व्यवस्था हो बुद्धि के प्रवीण व्यक्ति कम बुद्धिवाले लोगों के श्रम का सदा शोषण करते रहेंगे।

सिद्धगिरि, मनोविज्ञानशाला,
बनारस

—लालजीराम शुक्ल

हिमालय और भारतीय प्रतिरक्षा

'कुमारसंभव' में कालिदास ने हिमालय का वर्णन करते हुए उसको 'देवतात्मा' कहा है। हिमालय को हम सदा श्रद्धा और भक्ति से देखते रहे हैं। हिमाच्छादित उत्तुंग श्रृंगों को भय एवं विस्मय मिश्रित आह्लाद से देखते रहे हैं और आज भी देखते हैं। गौरीशिखर (माउण्ट एवरेस्ट) पर शेरपा तेनजिंग और हिलेरी द्वारा आरोहण करने के बाद भी हिमालय आज भी हमारे मन में आतंक और श्रद्धा उत्पन्न करता है। इस श्रद्धा का एक कारण भी है। हिमालय की उत्तुंग और अलंघ्य श्रृंगों को पार करने का साहस आज तक किसी साहसी आक्रांता ने नहीं किया। किन्तु अब जब हवाई शक्ति का युग है, राकेट, तोपख़ाना और अन्य क्रान्तिकारी तत्त्व युद्ध के भूगोल को बदल रहे हैं, ऐसे समय में भी हिमालय भारत का रक्षक प्रहरी क्या सिद्ध होगा? हवाई जहाज़ की चाल एवं गति बढ़ती जाती है, और वे रोज़ ऊँचे ही ऊँचे उड़ रहे हैं; तब भी क्या हिमालय भारत को सबसे अलग रखने में समर्थ होगा? विमानों, अणुबम, स्वचालित तोपख़ाने और अन्य नए नए आविष्कारों का गतिविस्तार बढ़ता जाता है और इनके कारण प्रतिरक्षा के अन्दर नए तत्त्वों का समावेश हुआ है, इस अवस्था में भारतीय प्रतिरक्षा की योजना प्राचीन परम्परा के अनुसार हिमालय को प्राचीर मान कर आज भी क्या बनाई जा सकती है?

हवाई शक्ति के निर्माण और विकास के साथ अवरोध विषयक पुराने विचार में भारी परिवर्तन हो गया है। आकाश की दृष्टि से जब तक भौगोलिक मूल्यों में परिवर्तन न करेंगे तब तक प्रतिरक्षा को हम ठीक ठीक न समझ सकेंगे। इस समय की भौगोलिक कल्पना का आधार विश्व का समुद्री विचार है। हेनरी कोलम्बस, डा० गामा, मैगेलन और कुक की समुद्री यात्राओं ने बताया कि कहाँ समुद्र लहरा रहा है और कहाँ ज़मीन है आज भी उन्हीं की कल्पना से काम लिया जा रहा है। द्वीप, प्रायः द्वीप, द्वीप समूह आदि परिभाषाएँ भी समुद्र के अनुसार हैं। पर ये परिभाषाएँ आज ठीक नहीं रही हैं। समुद्र का एक छोटा भाग एक भू-भाग को अलग करता है। किन्तु हवाई दृष्टि से वह भू-भाग अलग नहीं कहा जा सकता। ऐसा भू-भाग जो प्राकृतिक अवरोधों के कारण विमानों के लिए अगम्य हो, आकाश-द्वीप कहा जाएगा। सीमा का अर्थ अब दूसरा हो गया है। क्योंकि युद्ध का तरीक़ा बदल गया है। हवाई दृष्टि से नदी अब सीमा नहीं रही है। विस्तृत समुद्र भी अब सीमित ही अर्थ में सीमा रहा है। माहेन का यह विचार कि सामुद्रिक दृष्टि सर्वत्र सर्वोपरि है, आज के बदले युग में पुराना पड़ता दीखता है। रेगिस्तान एक समय भयंकर अवरोध थे पर वैमानिकों के लिए अब ये भय के कारण नहीं रहे हैं। वैमानिकों के भूगोल में परिभाषाओं, दूरी, अवरोधों, जलवायु का सामुद्रिक क्षेत्र के भूगोल की अपेक्षा सामरिक दृष्टि से अधिक महत्व है।

इस बदले दृष्टिकोण को देखते हुए पूछा जा सकता है, क्या भारत की प्रतिरक्षा में हिमालय पहले के समान महत्वपूर्ण है? यदि विशुद्ध भौगोलिक दृष्टि से हिमालय को देखा जाय और उत्तर के पठार को भूल कर केवल हिमालय पर्वतराजि की १५० मील चौड़ाई को लिया जाय, तो कहना होगा कि उत्तुंग ऊंचाई के होते हुए भी हिमालय अब प्रभावशाली अवरोधक नहीं रहा है। किन्तु हिमालय का महत्व उसकी १५० मील चौड़ाई के कारण नहीं है, बल्कि उसके पीछे जो १५००० फुट ऊँचा पठार है और जो चारों ओर से ऊँचे ऊँचे पर्वतों से घिरा हुआ है उसके कारण उसका यह महत्व है। हिमालय के पीछे इस पठार के होने से ही हिमालय गहराई में अकल्पनीय प्रतिरक्षा का साधन प्रदान करता है। इस पर्वतराजि के ही कारण इसके नज़दीक कोई शक्तिशाली केन्द्र स्थापित नहीं किया जा सकता। पठार के ऊपर

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥

की जलवायु हवाई कार्रवाई के सर्वथा अनुपयुक्त एवं प्रतिकूल है। दूसरे गंगा-यमुना के द्वावे पर हिमालय की ओर से किसी दूर के स्थान से भी सतत हमला करना सम्भव नहीं। इस दृष्टि से हिमालय आज भी अभेद्य पर्वतमाला है।

उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त की स्थिति इससे भिन्न है। हिन्दुकुश पर्वतराजि न तो हिमालय के समान है और न गहरी है। राजि के पीछे केन्द्र बना कर बराबर हमला किया जा सकता है। भारी बम-वर्षकों की दौड़ १००० मील तक की है। इसका अर्थ है कि ताशकन्द से पंजाब पर भारी बम वर्षा की जा सकती है। सिंकियांग से दिल्ली भी बम-वर्षा की मार के अन्दर आ सकता है। किन्तु गंगा घाटी और भारत के मुख्य भाग पर जहाँ इसकी औद्योगिक और सैनिक शक्ति है, विनाशक एवं विध्वंसात्मक वर्षा सम्भव नहीं। न जनता की हिम्मत तोड़ने वाली और उसको हताश करने वाली बम-वर्षा करना सम्भव है।

हवाई शक्ति के प्रभाव की भी एक सीमा है। नौ-रणनीति में जो 'स्टीमिंग व्यासार्द्ध' प्रसिद्ध है, वह विमान के साथ भी लागू है। इसको हम 'इंधन व्यासार्द्ध' कह सकते हैं। एक हवाई जहाज जितनी मात्रा में पेट्रोल ले जा सकता है उसी अनुपात में उतनी दूर तक बम-बारी कर सकता है। जापान पर अमरीकी बम-वर्षा का इतिहास इसका साक्षी है। बम-वर्षा जहाँ से की जा सके उस अड्डे को धीरे-धीरे जापान के नजदीक ले जाने पर ही अमरीकी हवाई शक्ति की मार के अन्दर जापान लाया जा सका। आस्ट्रेलिया से यह प्रक्रिया शुरू हुई और धीरे धीरे सैपान और ओकीनावा जब तक नहीं पहुँची जापान पर अमरीकी हवाई सेना का निरन्तर हमला नहीं हो सका।

सामुद्रिक शक्ति के समान हवाई शक्ति को भी स्थल पर भारी तैयारी करनी पड़ती है। १००० बम-वर्षकों को भरने के लिए पेट्रोल से भरी २८ गाड़ियाँ चाहिएँ। इसी के समान भूमि पर और तैयारी भी करनी पड़ती है। इसका अर्थ है कि हवाई कार्रवाई के लिए अड्डे के समीप बड़े परिमाण में सैनिक प्रशासन और औद्योगिक शक्ति आवश्यक है। बर्मा तक पहुँच कर भी जापान भारत पर क्यों नहीं आक्रमण कर सका? कलकत्ता और पूर्वीय तट के कुल स्थानों पर घुट-पुटी बम-वर्षा करने के सिवाय जापान भारत के किसी सामरिक लक्ष्य या औद्योगिक प्रदेश पर बम वर्षा न कर सका।

बँगाल-बिहार के कोल और लोह क्षेत्र और जमशेदपुर का इस्पात का कारखाना अराकान से जापानी बम-वर्षकों की मार के अन्दर था। पर जापान ने इन पर हमला नहीं किया। विमानवाही जहाजों द्वारा कोलम्बो और त्रानकोमलली पर किया गया उसका हमला स्पष्ट बताता था कि वे इसकी संभावना से परिचित थे। किन्तु वे कर नहीं सके, क्योंकि बर्मा और थाईलैण्ड सैनिक दृष्टि से पिछड़े देश हैं और जापान के पास विशाल परिमाण में संगठन नहीं था।

उत्तर-पश्चिम भारत पर बड़े हवाई हमले करने के लिए बड़े परिमाण में तैयारी करना संभव है। रूसी औद्योगिक केन्द्रों द्वारा विरोधी पक्ष की ओर से बाधा दिए जाने के भय के बगैर सब सामग्री सीमा प्रदेश पर लाकर जमा की जा सकती है। फिर भी दूरी बहुत अधिक है और भारत के अन्दर प्रतिरक्षा के लिए की गई कार्रवाई उसमें प्रभावशाली बाधा दे सकती है। यदि भारत के लड़ाकू और जंगी हवाई जहाज उनको रोकने में विफल हुए तो पंजाब के शहर खाक में मिलाए जा सकते हैं। किन्तु यह भी सरल नहीं। दूसरे महायुद्ध ने बताया है कि सामर्थ्यशाली हवाई शक्ति से भी निर्बल राष्ट्र अपनी रक्षा कर सकता है। रैडर, जंगी विमान, विमान वेधी तोपों आदि ने इंगलैण्ड की जर्मनी से उस समय रक्षा की जब जर्मनी की हवाई शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। 'रिवोल्यूशन इन वारफेयर' के लेखक कैप्टेन लिड्डेल हार्ट ने लिखा है कि तांत्रिक दक्षता की प्रगति के कारण धक्का और आकस्मिक हमला समाप्त होने के बाद प्रतिरक्षा बहुत अधिक मजबूत हो जाती है। कोरिया की लड़ाई ने भी इस बात को सिद्ध कर दिया है। उत्तरी कोरिया की हवाई शक्ति अमरीका के मुकाबले नगण्य थी। फिर भी अमरीकी हवाई शक्ति उत्तरीय कोरिया को न जीत सकी।

दूसरी बात यह उल्लेख योग्य है कि हवाई-शक्ति विनाशक तो है, पर युद्ध की निर्णायक नहीं। कैप्टैन डेल हार्ट ने इस विषय में लिखा है:

"विजय के साधन के रूप में हवाई शक्ति के अन्दर अन्तर्निहित कमज़ोरी है कि यद्यपि यह कार्रवाई में तेज और धक्के में आकस्मिक है परन्तु सामरिक व्यूह रचना की दृष्टि से शीघ्रगामी निर्णयात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के

उपयुक्त नहीं है। स्थल सेनाएँ अनेक बार केवल एक लड़ाइ में विरोधी पक्ष की मुख्य सेना को हराने में समर्थ हुई हैं। बेड़े विपक्षी बेड़े को पंगु बनाने और इस प्रकार शत्रु देश का तट आक्रमण करने के वास्ते पाने में समर्थ हुए हैं। इसके अलावा अपने पक्ष के वास्ते समुद्र में अप्रतिहत संचार प्राप्त कर सके हैं। किन्तु हवाई शक्ति अभी तक इस प्रकार का निर्णायक प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकी। किसी भी संघर्ष में कमज़ोर पक्ष को दुर्बल बेड़े की अपेक्षा बच निकलने का अधिक अवसर है और कमज़ोर सेना की तुलना में तो उसको बहुत ही अधिक है। हवाई सेना फिर अपने एक भाग से काम करती है और स्थल सेना और बेड़े की उपेक्षा अपने को कम केन्द्रित कर सकती है।

हवाई सेना उच्च कोटि का गुरिल्ला साधना है। फलतः यह धीरे विनाश का क्षेत्र विस्तृत करती जाती है और बाद में इसका प्रभाव घातक होता है। सिद्धांततः अधिक शक्तिशाली हवाई शक्ति को, दुश्मन की राजधानी और अन्य मुख्य केन्द्रों को एक प्रहार में तहस-नहस कर शीघ्र फैसला करना चाहिए। छोटे और प्रतिरक्षाहीन देशों में यह भी सम्भव है। परन्तु एक दूसरी महाशक्ति को रणक्षेत्र से एक हमले में भगा देने के लिए कितनी हवाई शक्ति और सामर्थ्य चाहिए यह जानने का अभी कोई उपाय नहीं ढूँढ़ा जा सकता है।

मई १९४३ में सर विन्स्टन चार्चिल ने वाशिंगटन में जानना चाहा कि अकेले हवाई हमले से जर्मनी और इटली को हराया जा सकता है या नहीं। जब तक अन्य उपायों को बहिष्कृत नहीं किया जाता तब तक इसको अजमाने में कोई हर्ज नहीं, यह अन्त में ठहरा। इसके बाद जर्मनी पर भारी बम वर्षा की गई। जर्मन शहरों पर लगातार नौ मास तक भीषण बम-वर्षा करने के बाद १९४५ के वसन्त में इस नीति में परिवर्तन किया गया। बम-वारी का परिमाण बढ़ा कर प्रति मास १०००,००० टन कर दिया गया। किन्तु इसका बड़ा भाग उन जगहों पर गिराया गया, जिनका सामरिक स्थिति पर तत्काल प्रभाव होने वाला था। भू-कार्रवाई की तैयारी की सहायता में सामरिक व्यूह बम-वारी की तुलना में युद्ध औद्योगिक बम-वर्षा का स्थान गौण हो गया। इस नीति का लक्ष्य रेलें यातायात को नष्ट करने के साथ जर्मनी की हवाई-शक्ति का भी नाश करना था। मध्य मार्च में अमरीकी हवाई सेनापति ने भविष्यवाणी की कि हवाई युद्ध का निर्णय ३० से ६० दिन में होने वाला है।

पर परिणाम आशानुकूल नहीं हुआ।

प्रतिरक्षा के अन्दर एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व दूरी-शक्ति है। क्षेत्र का विस्तार ही प्रतिरक्षा में शक्ति का स्रोत हो गया है। नेपोलियन और हिटलर ने रूस पर आक्रमण करते हुए इसको अनुभव किया था। चीन में जापान को यही अनुभव हुआ। प्रतिरक्षा की दृष्टि से भारत भूमि का विस्तृत क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिमालय के पीछे के पठार से यदि कोई आक्रमण करे तो इसका विशेष रूप से महत्व है। भारत की प्रतिरक्षा-रेखा की सीमा पर पंजाब और सीमा प्रान्त हैं। इनके पीछे दुश्मन की मारक कार्रवाई के परे बड़े परिणाम में प्रतिरक्षा की व्यवस्था करना सम्भव है। इस सुरक्षा में हिमालय का एक बड़ा भाग है।

भारत पर बड़े परिणाम में हवाई हमला होना सम्भव है। पर भूमार्ग से नहीं, बल्कि समुद्र मार्ग से। यदि भारत का हिन्द महासागर पर से नियंत्रण जाता रहे तो न केवल इसके चारों ओर घेरा ही डाल दिया जाएगा और इसका आर्थिक जीवन धीरे-धीरे गला घोंट कर समाप्त कर दिया जाएगा बल्कि इसके औद्योगिक केन्द्र विमानवाही जहाजों के विमानों द्वारा ध्वस्त कर दिए जावेंगे। निस्संदेह यहाँ भी दूरी और भारत का विस्तार प्रतिरक्षा में सहायक होगा। प्रशान्त युद्ध में अमरीका के हवाई दुर्गों ने कितनी सफलता इस क्षेत्र में पाई, यह हमें पता है। जर्मनी पर जैसी भारी बम-वर्षा की गई थी, वैसी बम-वारी के लिए विमानवाही जहाजों के विमान पर्याप्त न होंगे। पर बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, जमशेदपुर, झरिया कोल-क्षेत्र आदि भारत के मुख्य औद्योगिक केन्द्र उसकी मार के अन्दर होंगे। दक्षिण में त्रिचनापल्ली, बसीन, पूना, कल्याण, दादर, आसनसोल आदि स्थानों में रेलवे पर भी हमला किया जा सकेगा।

अणुबम द्वारा आक्रमण करने के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि उसको वहन करके ले जाने वाला कोई हवाई जहाज ही होगा। इसलिए अणुबम के मार का क्षेत्र भी विमान जाने के क्षेत्र तक ही होगा। विमान जहाँ तक पहुँच सकेगा, वहीं वह गिराया जा सकेगा। भारत हवाई द्वीप है और सतत हवाई हमले के

क्षेत्र से बाहर है। यदि भारत के समीप ऐसा अड्डा बनाया जा सकेगा, जहाँ से इस देश पर आक्रमण किया जा सके, तो भारत भी उस अड्डे पर जवाबी हमला कर सकेगा।

'बी' हथियारों के बारे में अभी विशेष रूप से ज्ञात नहीं। जर्मनों ने अवश्य उसकी मार ३००० मील दूर तक की बना दी थी किन्तु इस समय इसकी मार १०० मील से परे नहीं जाती। यदि अणुबम और 'बी'हथियारों के सिद्धान्तों को परस्पर मिला दिया जाय तो भारत के लिए यह भयंकर खतरे का कारण होगा क्योंकि तब दो या तीन हजार मील की दूरी से बम फेंके जा सकेंगे। परन्तु यह बात दोनों पक्षों के लिए एक समान होगी, यह न भूलना चाहिए।

भारत यदि अपने विस्तार का लाभ लेकर अपने आर्थिक और औद्योगिक जीवन को लन्दन के समान केन्द्रित न करे तो वह भी अमरीका और रूस के समान प्रत्याक्रमण के लिए प्रभावशाली अड्डे बना सकता है। ये आण्विक हमलों के लिए कम खुले होंगे। यहाँ हिमालय इस प्रतिरक्षा योजना में महत्वपूर्ण भाग लेगा क्योंकि भारत पर हिमालय की ओर से हमला न किया जा सकेगा और केवल दोनों बाजुओं से ही हमला हो सकेगा।

भारत की स्थल सीमा की प्रतिरक्षा-योजना का आधार हिमालय है। काराकोरम से लुसाई पर्वत तक फैली पर्वत माला गहराई में प्रतिरक्षा का अवसर देती है इसलिए प्रतिरक्षा की दृष्टि से भविष्य में भी हिमालय का महत्व बना रहेगा।

—अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार

इतिहास सदन, कनॉट सर्कल,
नई दिल्ली

शुक्र तारा

तेजपूरित शुक्र तारा देख कर
वह पागल बन गया।
उसने निश्चय किया, वह शुक्र पर जाएगा।
अपना आधा आयुष्य उसने व्यय किया
और एक प्रचण्ड निसैनी बनायी
और एक दिन वह शुक्र पर चढ़ गया।
सन्तुष्ट हो उसने वहाँ से आकाश में नजर दौड़ायी
उसने देखा—
और एक शुक्र-सा तेजःपुँज सितारा आसमान में चमक रहा था।
उर्वरित आयु व्यय करके—
उसने और एक प्रचण्ड सीढ़ी बनायी
और वह पृथ्वी पर पहुँच गया।

—कुसुमाग्रज
अनु० जगन्नाथ टंकसाली
(मराठी से)

महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त का 'ब्रजाङ्गना' काव्य

> 'राधिकार बेड़ि भाङ्ग ए मम मिनति'—ब्रजाङ्गना

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बँगला साहित्य-क्षेत्र में एक ऐसा व्यक्तित्व देखने में आया, जिसकी अभिव्यंजना-पद्धति, कल्पना आदि सभी बातें नवीन थीं। यह प्रतिभाशाली लेखक था—माइकेल मधुसूदन दत्त। रवीन्द्रनाथ तो बँगला-साहित्य-गगन के सूर्य हैं। उनके उज्वल प्रकाश ने अधिकांश कवियों की प्रतिभा को आच्छन्न-सा कर रखा है। दुर्भाग्यवश माइकेल मधुसूदन दत्त भी रवीन्द्रनाथ के कारण हतप्रभ-से हो गए हैं—यहाँ तक कि बँगाल की साधारण जनता उन्हें भूल-सी गई है। परन्तु सच तो यह है कि आधुनिक बंगाली वाङ्मय में, जिसका अभ्युत्थान हम राजा राममोहन रांय से मान सकते हैं, रवीन्द्रनाथ के पश्चात् दूसरा स्थान माइकेल को ही मिलना चाहिए।

वैसे तो मधुसूदन की प्रसिद्धि की आधारशिला है "मेघनादवध" काव्य जिसकी अतुकान्त काव्य के रूप में रचना करके उन्होंने यह सिद्ध किया कि नाद-सौन्दर्य, प्रवाह आदि पर संस्कृत अतुकान्त काव्य का ही एकाधिकार नहीं, वरन् आधुनिक आर्य भाषाओं में भी सुन्दर अतुकान्त रचना हो सकती है। उनकी रुचि भी अतुकान्त रचना की ओर है, जैसा कि "मेघनादवध", "तिलोत्तमा-सम्भव", "वीराङ्गना" आदि प्रसिद्ध रचनाओं से स्पष्ट है। परन्तु 'ब्रजाङ्गना' काव्य की रचना करके उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वे तुकान्त रचना में भी सिद्धहस्त हैं। सबसे बढ़ कर विस्मय की बात तो यह है कि जब कवि अतुकान्त छन्दों का प्रयोग कर रहे थे, उसी समय इस काव्य की रचना हुई (सन् १८६०--६१)।

"अमित्राक्षर" छन्द में "तिलोत्तमा सम्भव" काव्य की रचना करते समय मधुसूदन दत्त ने अपनी रुचि से प्रेरित हो कर "ब्रजाङ्गना" काव्य की रचना की थी। वे इस समय निधु गुप्त, राम वसु, हरु ठाकुर, आदि अर्वाचीन और जयदेव, विद्यापति आदि प्राचीन गीति-काव्यकारों की पदावलियों का विशेष रूप से अध्ययन कर रहे थे। सन् १८६० ई. के २४ अप्रैल को अपने मित्र, तत्कालीन प्रसिद्ध साहित्यालोचक श्री राजनारायण वसु को उन्होंने एक पत्र में लिखा था :

"अपने 'मेघनाद वध' का प्रस्तावना अंश भेज रहा हूँ—अपनी सम्मति अवश्य लिखना। हाँ, अच्छी बात याद आ गई। गीति-कविता की एक छोटी पुस्तिका छपने दे दी है। हमारी चिरन्तनी राधारानी और उनका विरह इसका विषय है।"

इसी वर्ष जुलाई के महीने में अपने इन्हीं मित्र को कवि ने एक पत्र में लिखा :

"राधा का विरह (ब्रजाङ्गना) छप रहा है। पता नहीं क्यों पुस्तक प्रकाशित कराने में मुझे संकोच हो रहा है। तुकबन्दी के झगड़े में मैं क्यों पड़ूँ?"

इससे स्पष्ट है कि मधुसूदन दत्त ने "ब्रजाङ्गना" काव्य की रचना हृदय की प्रेरणा या आवेग से ही की थी, कोरे परीक्षण (Experiment) के लिए ही नहीं। इसकी रचना करके उन्हें संकोच-सा हो रहा था। इस छोटे-से काव्य के प्रति उनका भाव ममता की अपेक्षा कुतूहल का ही अधिक था, यद्यपि उन्होंने श्री राजनारायण वसु को एक पत्र में लिखा था :

"क्या तुम्हें गीति-कविताओं (ब्रजाङ्गना) की एक प्रति मिली है? दुहाई है, अगर मिली हो तो इस विषय में चुप न बैठना। यहाँ तो कुछ लोग ऐसा मनोभाव दिखा रहे हैं कि जैसे इसे पढ़ कर मोहित हो गए हों।"

राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला काव्य के लिए कोई नवीन विषय नहीं, बँगला-साहित्य के आदि युग से न मालूम कितने कवियों ने इस विषय पर सरस भावोल्लासनीय रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। जयदेव के अमर गीति-काव्य 'गीतगोविन्दम्' की रचना के पश्चात् चैतन्य महाप्रभु की प्रेरणा से मध्यकालीन बँगला साहित्य में वैष्णवता की एक ऐसी लहर आई कि सारा "गौड़देश" कृष्ण भक्ति की सरिता में अवगाहन करने के लिए लालायित हो उठा।* विस्मय की बात तो यह है कि वह कवि, जो ईसाई था, जिसे अपनी युवावस्था में हिन्दु-संस्कृति के प्रति घृणा थी,

---

* देखिए जुलाई १९५१, की 'अजन्ता' में लेखक का 'मध्यकालीन बँगला वैष्णव काव्य' लेख।

जिसने अपना रहन-सहन साहबी रखा, किस प्रकार राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला के स्वरूप को पहचान सका। उसकी यह पहली तुकान्त रचना, सो भी एक ऐसे विषय पर जिससे उसका इतना कम परिचय था, फिर भी इतनी प्रौढ़, प्रगल्भ। यह बात जरा आश्चर्य में डालने वाली है। कुछ लोगों का यह रचना भारतीय परम्परा से मेल न रखनेवाली तथा यूरोपीय भावों की छाया प्रतीत हुई है। इसके उत्तर में मुझे केवल इतना ही कहना है कि इस काव्य की प्रत्येक पंक्ति में एक भावोन्मत्त भारतीय कवि के चित्त की झलक है।

जैसा कि हम कह चुके हैं राधा-कृष्ण भावना बँगला साहित्य में कोई नवीन वस्तु नहीं है। ११वीं शताब्दी में पीयूषवर्षी जयदेव ने अपने सुललित, "गीतगोविन्दम्" की रचना की, जिसकी भाषा संस्कृत होने पर भी बँगाल की जनता में उसकी विशेष प्रसिद्धि हुई।

उसके बाद विद्यापति और चण्डीदास का समय आता है। मिथिला–निवासी होते हुए भी विद्यापति ने अपनी सुमधुर पदावलि के आधार पर बँगालियों के हृदय-सिंहासन पर ऐसा अधिकार जमाया कि वे कार्यतः बँगला-साहित्य के अविच्छेद्य अंग बन गए। चण्डीदास ने भी जिन पदों की रचना की, उनका साहित्यिक मूल्य विद्यापति के पदों की अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं आँका जा सकता। वैष्णव कवियों में बँगाल की जनता के हृदय पर ऐसा अधिकार रखने वाला विद्यापति को छोड़ कोई दूसरा कवि नहीं है। इसी समय के आसपास महाप्रभु चैतन्य का आविर्भाव हुआ, जिनके "हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्" महामन्त्र ने वैष्णवता को एक नई सजीवता प्रदान की। उन्हीं के दिखाए हुए आदर्श पर वृन्दावन में "गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय" की स्थापना हुई तथा पदावलि कीर्तन का सारे उत्तरी भारत में प्रचार हुआ। सारांश यह कि बँगला–साहित्य के अभ्युत्थान काल से ही वैष्णव-काव्य-धारा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित हो रही थी।

माइकेल का "ब्रजाङ्गना" काव्य वैष्णव-साहित्य की एक अमूल्य निधि है, इसमें सन्देह नहीं। इसकी भाषा सरस एवं रसानुगुण, तुकबन्दी अनूठी एवं उद्भावनाएँ मौलिक एवं भावोल्लासमयी हैं। कवि ने इस काव्य को दो भागों में बाँटने का विचार किया था—विरह और संयोग। परन्तु किसी कारणवश उन्होंने वियोग अंश तो सविस्तार लिखा लेकिन संयोग के केवल तीन ही छन्द हैं। अतः यह समूचा काव्य विप्रलम्भ-शृंगार की रचना ही माना जाएगा।

काव्य का विभाजन इस प्रकार किया गया है—वंशी–ध्वनि, जलधर, यमुना-तट, मयूरी, पृथ्वी, प्रति-ध्वनि, मलय मारुत, गोधूलि, गोवर्द्धन गिरि, सारिका, कृष्णचूड़ा, निँकुंजवन, सखी, वसन्त। काव्य के शीर्षकों से ही इस बात का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि कवि की यह रचना परम्पराभुक्त (Conventional) नहीं है—उन्होंने काव्य का कलेवर नवीन ढंग से सजाने का पूर्ण प्रयास किया है।

" ब्रजाङ्गना " से कवि का अभिप्राय राधा से है। इस काव्य के प्राक्कथन में मधुसूदन दत्त ने श्री कृष्णचन्द्र शर्मा विरचित प्रसिद्ध संस्कृत काव्य "पदाङ्कदूतम्" का पहला श्लोक उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है:—

"गोपी भर्त्तुर्विरहविधुरा काचिदिन्दीवराक्षी
उन्मत्तेव स्खलितकबरी निःश्वसन्ती विशालम्।
तत्रैवास्ते मुररिपुरिति प्राण दूती सहाया
त्यक्त्वा गेहं झटिति यमुनामंजुकुंजे जगाम ॥ "

"कोई कमललोचना गोपीनाथ के विरह में अधीर हो पगली की तरह स्खलित केश दशा में दीर्घ निःश्वास लेती हुई, मुरारि वहाँ हैं, इस भ्रान्त धारणा की वश–वर्त्तिनी हो द्रुत घर छोड़ कर यमुना तटवर्ती मंजु कुँज में गई।" इसी विरहोन्मत्ता राधिका की विविध मनोदशाएँ दिखाने के लिए 'ब्रजांगना' काव्य की रचना हुई है।

काव्य का आरम्भ 'मुरली-ध्वनि' से होता है। जिस प्रकार विद्यापति अपनी पदावलि का आरम्भ यह कह कर करते हैं:

" नन्द क नन्दन कदम्ब क तरु तर
धीरे धीरे मुरली बजाव "

उसी प्रकार इस काव्य की राधा कह उठती है:

"नाचिछे कदम्बमूले, बाजाये मुरली रे
राधिकारमण !
चल सखि त्वरा करि, देखिगे प्राणेर हरि
ब्रजेर रतन। +

+ यद्यपि कविवर मैथिलीशरण जी गुप्त ने 'ब्रजाङ्गना' का सुन्दर हिन्दी अनुवाद किया है, परन्तु मैंने मूल पुस्तक से ही उद्धरण दिये हैं—ले०

"राधिकारमण कदम्ब के वृक्ष के नीचे मुरली बजाते हुए नाच रहे हैं। हे सखि, शीघ्र चलो, चल कर ब्रज के रत्न उस प्राण प्यारे हरि के दर्शन कर लें।"

राधिका को लोक-मर्यादा की भी चिन्ता नहीं, क्योंकि उसीके शब्दों में:

"कमलिनी कोन छले, थाकिबे डुबिया जले
वंचिया रमणे
ये याहारे भालबासे, से जाइबे तार पाशे
मदन राजार विधि लंघिब केमने ?
यदि अवहेला करि, रुषिबे शम्बर अरि
के सम्बरे स्मर-शरे ए तीन भुवने ?"

"कमलिनी किस प्रकार अपने प्रियतम सूर्य से वंचित रह कर जल में छिपी रह सकती है ? जैसे यह सम्भव नहीं उसी प्रकार लोक-लाज मुझे प्रियतम से अलग नहीं रख सकती। जो जिससे प्रेम करता है, वह उसी के समीप जाता है—यह तो कामदेव का अटल विधान है—इसका मैं कैसे उल्लंघन करूँ ? अगर अवहेलना करती हूँ तो शम्बरारि—कामदेव मुझ से रुष्ट हो जायगा। भला कामदेव के बाणों से बचने की सामर्थ्य इस संसार में किसमें है ?।"

मुरली ध्वनि सुन कर राधिका विह्वल हो जाती है। सूर की गोपियाँ तो मुरली को यह कह कर कोसती हैं कि-

"मुरली तऊ गुपालहिं भावति।

सुनरी सखी जदपि नँदनँदहि नाना भाँति नचावति॥"

पर "ब्रजाङ्गना" काव्य की राधा कहती है—

"ओई शुन, पुनः बाजे भजाइया मन रे,
मुरारिर बाँशी
सुमन्द मलय आने, ओ निनाद मोर काने,
आमि श्याम दासी
जलद गरजे जबे, मयूरी नाचे से रबे,
आमि केन ना काटिब शरमेर फाँसी ?"

"सुनो, मन को भाव-विभोर बनाती हुई मुरारि की बाँसुरी फिर बज रही है। शीतल, मन्द, सुगन्ध मलय पवन वह शब्द मेरे कानों में डाल रहा है—मैं तो श्याम की दासी हूँ। जब आकाश में बादल गरजते हैं मोरनी वह शब्द सुन कर सानन्द नाच उठती है। भला मैं भी श्याम की बाँसुरी सुन लाज-सरम की फाँस क्यों न काट डालूँ ?"

इस "मुरली ध्वनि" नामक काव्यांश की अन्तिम चार पंक्तियाँ बहुत मार्मिक हैं।

कवि भी मुरारि की बाँसुरी सुन कर गद्गद् हो उठता है—वह ब्रजाङ्गनाओं को यही उपदेश देता है कि जब यौवन इतना क्षणस्थायी है तब व्यर्थ लाज-सरम की फाँस गले में डाल कर आनन्द से वंचित रह जाने से क्या लाभ ?

"मधु कहे ब्रजाङ्गने, स्मरि ओ राङ्गा चरणे
जाओ यथा डाके श्री मधुसूदन !
यौवन मधुर काल, आशु विनाशिबे काल,
काले पियो प्रेम मधु करिया यतन !"

"मधु कहता है कि, हे ब्रजाङ्गना राधिके ! उन अनुराग रंजित चरणों का स्मरण करके वहीं चली जाओ, जहाँ से श्री मधुसूदन बाँसुरी पर तुम्हें पुकार रहे हैं। यौवन जीवन का सब से मधुर समय है, जिसे निष्ठुर काल शीघ्र नष्ट कर डालेगा। इसलिए समय का सदुपयोग करती हुई प्रेमामृत साग्रह पान करो।"

परम्परानुसार कवियों ने प्रकृति के सुखद पदार्थों को विरह के समय दुखद रूप में देखा है। उदाहरण के लिए सूर ने यद्यपि मेघ को परोपकारी-रूप में भी देखा है, जैसे—

"बरु ये बदराऊ बरसन आये,
अपनि अवधि जानि नँदनन्दन गरजि गगन घन छाये।

× × ×

सुनियत सुरलोक वसत सखि, सेवक सदा पराए,
चातक कुल की पीर जानि कै तेउ तहाँ ते धाए॥"

परन्तु साथ ही मेघ को ऐसे भयानक दुखदायी रूप में भी देखते हैं :

"लखियत चहुँ दिसि ते घन घोरे।
मनौ मदन के मत्त हथियनु बल करि बन्धन तोरै॥"

'ब्रजाङ्गना' काव्य की राधा 'जलद' को भयानक रूप में नहीं देखती—हाँ, प्रियतमा सौदामिनी को प्रियतम जलधर के आलिंगन में बद्ध देख कर, मोरनी को हर्ष से नाचती देख कर, उसका हृदय 'घनश्याम' के मिलन के लिए थोड़ी देर के लिए व्याकुल हो उठता है :

"मदन उत्सवे एवे, माति घनपति सेवे
रतिपति सह रति भुवन मोहन
चपला चंचला हये, हासि प्राणनाथे लये
तुषिछे ताहारे दिये घन आलिङ्गन।

× × ×

नाचिछे शिखिनी सुखे केका रव करि,
हेरि व्रज कुंजवने, राधा राधाप्राण धने
नाचित जेमति यत गोकुल सुन्दरी

× × ×

हाय रे कोथा आजि श्याम जलधर

× × ×

तव अपरूप रूप हेरि गुणमणि
अभिमाने घनेश्वर जाबे काँदि देशान्तर

× × ×

नाचिबे गोकुल नारी, यथा कमलिनी
नाचे मलय हिल्लोले सरसी—रूपसी कोले
रुणु रुणु मधु बोले बाजाये किंकिणी।"

"रतिपति कामदेव अपनी भुवनमोहिनी रति को साथ ले कर बड़ी उमंग के साथ जलधर की सेवा कर रहा है। चपला चंचला बन हँस हँस कर अपने प्राणनाथ जलधर को बार बार आलिङ्गन दे कर उसका मनोरंजन कर रही है। ××× मोरनी केका ध्वनिपूर्वक उसी प्रकार नाच रही है जैसे पहले व्रज के कुंजवन में राधा और राधिकारमण को युगल रूप में देख गोकुल की सुन्दरियाँ सहर्ष नाचा करती थीं। ××× हाय श्याम जलधर! आज तुम कहाँ हो? ×× हे गुणों की खान! तुम्हारी अलौकिक छटा देख कर यह जलधर लज्जित और दुखी हो कर अन्यत्र चला जाएगा और तुम्हें देख गोकुल की नारियाँ रुनझुन रुनझुन स्वरों में अपनी किंकिणियाँ बजा कर फिर उसी प्रकार हर्ष से नाचेंगी जैसे सुन्दर सरोवर की गोद में बैठी हुई कमलिनी मलयानिल के झोंकों के साथ नाचने लगती है।"

"व्रजाङ्गना" काव्य की यमुनासम्बन्धी उद्भावनाएँ अनूठी हैं। उन्माद की दशा में राधिका यमुना को सजीव मान बैठती है—उसे यही अनुभव होने लगता है कि जिस प्रकार मैं प्रियतम श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल हूँ, उसी प्रकार कदाचित् वह भी सागर के विरह में है, इसीलिए वह यमुना से कहती है :

"मृदु कलरवे तुमि, ओहे शैवलिनि
कि कहिछ भाल करे कह ना आमारे।
सागर-विरहे यदि, प्राण तब काँदे नदि,
तोमार मनेर कथा कह राधिकारे—
तुमि कि जान ना धनि, से ओ विरहिनी?"

"अरी शैवलिनी यमुने! इस मृदु कलरव के साथ तुम क्या कह रही हो, स्पष्ट बताओ न! हे नदी! यदि तुम्हारे प्राण सागर के विरह में विलख रहे हों, तो अपने हृदय का रहस्य राधा को बताने में संकोच न करो—क्या तुम्हें मालूम नहीं कि वह भी तुम्हारी तरह वियोगिनी है?"

अपनी दीन-दशा की ओर संकेत करके राधा यमुना की सहानुभूति उद्रिक्त करना चाहती है :

"फेलिया दियाछि आमि यत अलंकार—
रतन मुकुता, हीरा, सब आभरण।
छिंड़ियाछि फूल माला जुड़ाते मनेर ज्वाला
चन्दन चर्चित देहे भस्मेर लेपन

× × ×

तबे ये सिन्दुर-बिन्दु देखिछ ललाटे
सधवा बलिया ललाटे आमि रेखेछि इहारे।
किन्तु अग्नि-शिखा सम, हे सखि, सीमन्ते मम
जलिछे ए रेखा आजि—कहिनु तोमारे—
गोपिले ए सब कथा प्राण जेन फाटे॥"

"मैंने रत्न, मुक्ता, आदि सभी आभरण त्याग दिए हैं। मन की ज्वाला शान्त करने के लिए फूलों की माला भी तोड़ कर फेंक दी है। जिस शरीर पर चन्दन लेपती थी उसी पर (अब) राख मल रही हूँ—भला राधा को शृङ्गारों की क्या आवश्यकता है? ×× अगर पूछो कि माथे पर सिन्दूर की बिंदी क्यों लगा रखी है, तो सुनो—यह मेरे माथे पर अभी तक इसीलिए है कि मैं सधवा हूँ—यह है मेरे सुहाग का चिह्न। लेकिन हे सखी! यह मेरे सीमन्त में अग्नि-शिखा के समान दुःखदायिनी बन गई है। मैंने अपने हृदय के सारे रहस्य बता दिए, क्योंकि इन्हें गुप्त रखने से बोझ के कारण जैसे हृदय फटा जाता है।"

राधिका को अकस्मात इस बात का भी अनुभव-सा होने लगता है कि उसने व्यर्थ ही अपना दुखड़ा रोया, उदासिनी यमुना पर इसका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा।

इसीलिए वह उलाहने दे कर यमुना से कहती है :

"कि आश्चर्य ! एत को करिनु मिनति,
तबू कि आमार कथा शुनिले ना धनि ?
× × ×
हाय रे तोमारे केन दोषि भाग्यवति ?
भिखारिणी राधा एवे तुमि राजरानी"

"कितने आश्चर्य की बात है ! इतनी विनय की, परन्तु हे धनी, क्या फिर भी तुमने मेरी बात न सुनी ? हे भाग्यवती ! तुम्हें क्या दोष दूँ । सारा दोष मेरे भाग्य का ही है । निदान अब राधिका तो भिखारिन है और तुम हो राजरानी ।"

'प्रतिध्वनि' नामक काव्यांश कवि की मौलिक उद्भावना है । राधिका को इस तरह का अनुभव होने लगता है कि 'प्रतिध्वनि' केवल शब्दों का प्रत्यावर्तन मात्र नहीं वरन् यह तो कोई युवती है जो उसके सुख-दुख की समभागिनी है ।

"के तुमि, श्यामेरे डाको, राधा यथा डाके
हाहाकार रवे ?
के तुमि, कोन् युवती, डाक ए विरले, सति,
अनाथा राधिका यथा डाके माधवे ?"
जानि आमि, हे स्वजनि, भाल बास तुमि,
मोर श्यामघने
शुनि मुरारिर बाँशी, गाइते तुमि गो आसि
शिखिया श्यामेर गीत मंजु कुंजवने ।
राधा राधा बलि जने डाकितेन हरि—
राधा राधा बलि तुमि डाकिते सुन्दरी ।"

"तुम कौन हो जो राधा के हाहाकार के स्वर में स्वर मिला कर पुकारती हो ? तुम कौन युवती हो, इस निर्जन में बैठी अनाथा के साथ माधव को बुलाती हो ? हे सखी, मुझे मालूम है कि तुम भी मेरे घनश्याम से प्रेम करती हो । मुरारि की बाँसुरी सुन कर, मुरारि के गीत सीख कर तुम उन्हें सुन्दर कुंजवन में आ कर गाती थीं । जब जब श्रीहरि 'राधा', 'राधा' कह कर पुकारते थे, तब तब, हे सुन्दरी, तुम भी 'राधा', 'राधा' कह कर पुकारती थीं ।"

जैसा कि इस लेख के प्रारम्भ में कहा जा चुका है 'व्रजांगना' काव्य १७–१८ शीर्षकों में कहा जा चुका है। प्रत्येक के अन्तर्गत प्रकृति का कोई जड़ पदार्थ सामने लाया गया है; विरहिणी राधिका भावोन्माद के कारण उसे सजीव रूप में देखती एवं उसे अपनी वियोग-व्यथा सुनाती है । यहाँ हम "गोवर्धन गिरि", "सारिका" और "निकुंजवन" इन तीन अंशों से एक एक उद्धरण प्रस्तुत करते हैं ।

(१) गोवर्द्धन गिरि

"हे गिरि, ये वंशीधर व्रज दिवाकर
त्यजि आजि व्रजधाम गियाछेन तिनि
नलिनी नहे गो दासी रूपे शैलेश्वर
तबुओ नलिनी यथा भजे प्रभाकर
भजे श्यामे राधा अभागिनी !
हाराये ए हेन धने, अधीर हइया मने
एसेहि तव चरणे काँदिते भूधर ॥"

"हे गिरिराज ! जो वंशीधर व्रज के सूर्य हैं, वे आज व्रजधाम छोड़ कर चले गए हैं । हे शैलेश्वर यद्यपि रूप के विचार से कमलिनी सूर्य की दासी नहीं है, तथापि जिस प्रकार वह सूर्य की आराधना करती है, उसी प्रकार अभागिनी राधा भी श्याम की । ऐसी अमूल्य निधि खो कर, हे भूधर ! मैं अपना दुखड़ा सुनाने तुम्हारे चरणों में आई हूँ ।"

(२) सारिका

"छाड़ि देह विहगीरे मोर अनुरोधे रे—
हइया सदय ।
छाड़ि देह जाक चलि, हासे यथा वनस्थली—
शुके देखि सुखे ओर जुड़ावे हृदय !
सारिकार व्यथा सारि, ओलो दयावति,
राधिकार बेड़ि भाङ्ग, ए मम मिनति ।"

"हे सखी, मेरे अनुरोध पर, सदय हो कर सारिका को छोड़ दो । उसे छोड़ दो ताकि वह उस रम्य वनस्थली में जा कर अपने प्रियतम शुक को देख कर अपना हृदय जुड़ा सके । हे दयावती, सारिका को विरह-व्यथा से मुक्त करके अभागिनी राधा को भी विवशता की शृंखला से मुक्त करो, यही मेरी विनती है ।"

(३) निकुंजवन

"यमुना पुलिने आमि भ्रमि एकाकिनी,
हे निकुंजवन,
ना पाइया व्रजेश्वरे, आइनु हेथा सत्वरे,

हे सखे, देखाओ मोरे जेर व्ररंजन
सुधांशु सुधार हेतु, बाँधिया आशार सेतु
कुमुदीर मन यथा उठे गो गगने
हेरिते मुरलीधर——रूपे जिनि शशधर—
आसियाछि आमि दासी तोमार सदने—
तुमि हे अम्बर, कुंजवर, तव चाँद नन्देर नन्दन !"

"हे निकुंजवन ! वियोग के कारण मैं अकेली यमुना के तट पर भटक रही हूँ। ब्रजेश्वर को न पा कर, हे सखे, मैं यहाँ बड़ी आशा ले कर आई हूँ—शीघ्र मुझे ब्रजरंजन के दर्शन दिखाओ। जिस प्रकार कुमदिनी का मन आशा का सेतु बना कर सुधांशु की सुधा के लिए आकाश की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार शशधर के समान रूपवाले मुरलीधर को देखने मैं तुम्हारे सदन में आई हूँ। हे कुंजवर तुम हो आकाश और नन्द के नन्दन तुम्हें सुशोभित करने वाले चन्द्र।"

'ब्रजाङ्गना' विप्रलंभ शृंगार काव्य ही है। कवि ने 'विहार' नाम से संयोग शृंगार के पद लिखने का भी विचार किया था, परन्तु वे केवल तीन ही संयोग शृंगार के पद लिख सके। यहाँ एक छन्द उद्धृत किया जाता है :

"साज, साज, ब्रजाङ्गने, रंगे त्वरा करि।
मणि मुक्ता परो केशे, मेखला लो कटिदेशे
बाँध लो नूपुर पाये, कुसुमे कवरी ॥
लेप सुचन्दन देहे, कि साधे रहिबे गेहे ?
आई शुन, पुनः पुनः बाजिछे बाँशरी ॥"

"हे ब्रजाङ्गने, आनन्द-विभोर हो शीघ्र सोलह शृंगारों से सज लो। कमर में मेखला, केशों में मणि-मुक्ता, पैरों में नूपुर और जूड़े में कुसुम धारण करो। शरीर पर शीतल चन्दन लगाओ, अब घर में क्यों रहो—सुनो, मुरलीधर की मुरली बार बार बज रही है।"

निष्कर्ष रूप में हम यही कह सकते हैं कि हृदय-पक्ष की दृष्टि से 'ब्रजाङ्गना' एक अनूठी कृति है, वैष्णव-काव्य परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी। इसके भाषा-सौष्ठव, अलंकार नैपुण्य आदि पर मैंने जान बूझ कर विचार नहीं किया क्योंकि वैष्णव कवियों ने भावुकता को ही प्राधान्य दिया है, कला पक्ष उनके लिए साधन मात्र है, साध्य नहीं।

'ब्रजाङ्गना' काव्य की मार्मिकता का अन्दाज़ा मधुसूदन दत्त के जीवन की एक घटना से लगाया जा सकता है। एक बार बंगाल के वैष्णव-धर्म के प्रधान केन्द्र नवद्वीप धाम से एक वैष्णव, कवि से मिलने आए। वे 'ब्रजाङ्गना' काव्य पढ़ कर इतना मुग्ध हो गए थे कि उन्होंने यही धारणा बना ली थी कि इसका लेखक जिसे उन्होंने पहले कभी न देखा था अवश्य ही कोई परम निष्ठावान् वैष्णव होगा। जब उन्होंने उस ईसाई कवि को सोलह आने साहबी लिबास में देखा तो पहले तो वे कुछ देर तक बोल ही न सके; तदुपरान्त भाव गद्गद् हो 'ब्रजाङ्गना' के पदों की आवृत्ति करते हुए कवि से लिपट गए और बोले, "आज मैं कृतकृत्य हुआ—मैंने सच्चे वैष्णव के दर्शन किए।"

१८५, मैरिस रोड
अलीगढ़

—जयन्तप्रसाद बागची

प्रगति

पुरानी वस्तुओं में अनेक बातें सृजनात्मक तथा आवश्यक हैं। उन्हें एकमात्र आत्म-विनाश की क़ीमत पर ही छोड़ा जा सकता है। प्रगति कोई सर्वथा नवीन वस्तु नहीं है। प्रगति प्राचीनता और नवीनता दोनों का सम्मिश्रण होती है। प्राचीन वस्तुओं के सम्मान का अर्थ रूढ़िवादिता नहीं है।

(एक व्याख्यान से) —हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय

हिन्दी का यह अपमान क्यों ?

आज से प्रायः बीस वर्ष पहले की बात है कि हिन्दी संसार में राधा को ले कर एक गहरा विवाद छिड़ गया था जिसमें उस समय की दो प्रतिष्ठित पत्रिकाओं- 'सरस्वती' और 'माधुरी' ने विशेष योग दिया था, उसी संघर्ष में हिन्दी के एक उपासक ने संवत् १९९१ वि० की मार्गशीर्ष की 'माधुरी' में राधिका की प्राचीनता के सम्बन्ध में लिखा था :

"पर 'सरस्वती' देवी के उपासकों से यह कह देना अनुचित नहीं जान पड़ता कि वे 'ध्वन्यालोक, के इन श्लोकों पर विचार करें और देखें कि जयदेव की 'रहःकेलि' और ब्रह्मवैवर्त की 'खंडिता' का सम्बन्ध किस सदी से है—

"तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहः साक्षिणां
क्षेमं भद्रकलिन्दशैलतनयातीरे लतावेशमनाम् ।
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनमृदुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठीभवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः ॥
दुराराधा राधा सुभग यदनेनापि मृजत-
स्तवैतत्प्राणेश ! जघनवसने नाश्र पतितम् ।
कठोरं स्त्रीचेतस्तदलमुपचारैर्विरम हे
क्रियात्कल्याणं वो हरिरनुनयेष्वेवमुदितः ॥"

किन्तु 'सरस्वती' के उपासकों ने इधर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया और राधा की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए जहाँ तहाँ आनन्दवर्धन का उल्लेख करते रहे। यहाँ तक कि काशी-विश्व-विद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष आचार्य डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी को संवत् २००९ में 'बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्' के तत्त्वावधान में यह भाषण करना पड़ा :

"इसमें राधा का नाम आया देख कर बिदकने की कोई जरूरत नहीं है। यह विश्वास बिलकुल ग़लत है कि जयदेव के पहले उत्तर भारत में राधा शब्द अपरिचित था। मैंने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में दिखाया है कि दसवीं शताब्दी में आनन्दवर्धन को इस राधा का परिचय था। उन्होंने एक पुराना श्लोक उद्धृत किया है जिसमें श्रीकृष्ण उद्धव से राधा का कुशल पूछ रहे हैं।

श्लोक इस प्रकार है :

"तेषां गोपवधूविलाससुहृदः
राधारहः साक्षिणाम् ।
भद्र भद्र ! कलिंदराजतनया
तीरे लतावेश्मनाम् ?" इत्यादि।

—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ११०

पता नहीं आचार्य द्विवेदी को यह 'बिदकने' की कहाँ से सूझ गई जब कि 'रासो' में स्वयं कहा गया है :

"सतं डंडमाली उलाली कवित्तं ।
जिनैं बुद्धि तारंग गंगा सरित्तं ॥
जयद्देव अठ्ठं कवी कब्बिरायं ।
जिनैं केवलं कित्ति गोविंद गायं ॥
गुरं सब्ब कब्बी लहू चंद कब्बी ।
जिनैं दंसियं देवि सा अंग हब्बी ॥
कवी कित्ति कित्ती उकत्ती सुदिख्खी ।
तिनैं की उचिष्टी कवी चंद भख्खी ॥२॥"

—आदिपर्व

गोविंद की कीर्ति का गुणगान जिस जयदेव ने किया है उस में राधा की प्रमुखता है न ? फिर यदि 'रासो' के 'दसम' में अथवा चन्द की किसी भी रचना में राधा का उल्लेख हो गया तो हिन्दी के किसी सपूत के 'बिदकने की कोई जरूरत नहीं,' यह तो अत्यन्त स्वाभाविक है। हाँ, बिदकने की बात यह अवश्य है कि एक हिन्दी का लब्धप्रतिष्ठ आचार्य और लखनऊ विश्वविद्यालय का एक सम्मानित डाक्टर यह कह क्या रहा है ? क्या वह इतना भी नहीं जानता कि राधा शब्द से जयदेव के पहले भी यहाँ के लोग भली-भाँति परिचित थे। राधासुत कर्ण को कौन नहीं जानता। रही 'राधातत्त्व' अथवा राधिका की 'रहःकेलि' की बात। सो उसको भी थोड़े में यहीं देख लें कि आपके इस भाषण के पहले ही हिन्दी के लोग उससे कितने अभिज्ञ थे।

काशी के श्री व्रजरत्नदास को भी कभी कुछ लिखते रहने का व्यसन हो गया है और 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' को कुछ प्रकाशित करते रहने का धन्धा भाता है। फलतः संवत् २००६ वि० में 'नन्ददास-ग्रन्थावली' का प्रकाशन वहीं से दृष्टिपथ में आ गया। उसमें राधा के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उसकी चर्चा न कर संक्षेप में हम उसका कुछ अंश उद्धृत कर देते हैं और फिर आचार्य द्विवेदी जी से जानना चाहते हैं कि इसका पता आपको था या नहीं, जो 'बिदकने' की बात हिन्दीवालों पर कस दी गई। देखिए उनका अनुशीलन है :

'काव्यालंकार' के रचयिता रुद्रट का समय ईसवी नवीं शताब्दी माना जाता है और इस पर जैन विद्वान् नेमि साधु ने सं० ११२५ वि० में टीका लिखी है। इसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में सं० ११७६ वि०

दिया है। नेमि साधु ने टीका में अपने से प्राचीन टीकाकारों का उल्लेख किया है तथा पाणिनि, भरत, कालिदास आदि से प्राचीन साहित्यकारों की रचनाओं से उद्धरण भी दिये हैं। ऐसे ही एक उद्धरण में राधा मधुसूदन का इस प्रकार उल्लेख हुआ है :

"कृष्णः सोऽपि हताशया व्यपहृतः कान्तः कयाप्यद्य मे ।
किं राधे मधुपूदनो नहि नहि प्राणाधिकश्चोलकः ॥"

क्षेमेन्द्र का समय ग्यारहवीं शताब्दी विक्रमीय का आरम्भ है। इनका नाटक 'बाल-चरित' अप्राप्त है पर इनके 'दशावतार-चरित' में (८, ८३, १६०, १७१, १७६) श्री राधाकृष्ण का वर्णन है, जिसका रचनाकाल सं० ११२८ वि० है। धाराधिपति भोजराज के पूर्वज वाक्पतिराज के दसवीं शताब्दी के दान-पत्र में (इंडियन एंटिक्वेरी जिल्द ६ पृ० ५१) एक श्लोक है जिसमें श्री राधिका जी का उल्लेख यों है :

"यल्लक्ष्मीवदनेन्दुना न सुखितं यन्नार्दितं वारिधे
र्वारायन्त निजेन नाभिसरसीपद्मेन शान्ति गतम् ।
यच्छेषाहिफणासहस्रमधुरश्वासैर्न चाश्वासितं
तद्राधाविरहातुरं मुररिपोर्वेल्लद्वपुः पातु वा ॥"

आनंदवर्धनाचार्य ने स्वरचित 'ध्वन्यालोक' में, जिसकी रचना विक्रमीय नवीं शताब्दी के अंत में हुई थी, एक श्लोक दिया है जिसमें श्री राधाजी का वर्णन है :

"दुराराधा राधा सुभगवदने नापि मृजत
स्तवैतत्प्राणेशजघनवसने नाश्रु पतितम् ।
कठोरं स्त्रीचेतस्तदलमुपचारै र्विरम हे
क्रियात् कल्याणं वो हरिरनुनयेष्वेवमुदितः ॥"

श्री भट्टनारायण का समय सातवीं शताब्दी का अंत तथा आठवीं का आरंभ माना गया है। इन्होंने अपने नाटक 'वेणीसंहार' के मंगलाचरण में श्री राधा कृष्ण के रास-विहार का वर्णन किया है। श्लोक इस प्रकार है :

"कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते—
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयिताहृष्टस्य पुष्णातु वः ।"

'पंचतंत्र' का समय विक्रम संवत् के आरंभ के कुछ पूर्व माना जाता है। इसमें विष्णु-रूप कौलिक की कथा है, जिसमें वह कौलिक अपने को विष्णु तथा उस राजकन्या को श्री राधा का अवतार कहता है :

"सत्यं अभिहितं भवत्या परं किन्तु राधा नाम मे भार्या,
गोपकुलप्रसूता प्रथमं आसीत् सा त्वं अवतीर्णा ॥"

'पंचतन्त्र' के प्रायः समकालीन हालसातवाहन की 'गाथा सप्तशती में एक श्लोक इस प्रकार है :

"मुहमारुएण तं कह्न गोरअं राहिआएं अवणेन्तो ।
एताशां वल्लवीणं अराणाण वि गोरअं हरसि ॥
मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन्
एतासां वल्लवीनामन्यासामपि गौरवं हरसि ॥"

—काव्यमाला गाथासप्तशती पृ० ४४
—नन्ददास-ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ७५-७६

श्री व्रजरत्नदास ने जिस क्रम से 'राधा' की प्राचीनता का परिचय दिया है उसको दृष्टि में रखते हुए डाक्टर द्विवेदी के क्रम पर ध्यान दें तो पता चले कि वस्तुतः डाक्टर द्विवेदी किस दृष्टि और किस ढब के प्राणी हैं। पता नहीं किस प्रमाण, किस आधार और किस बूते पर आपने आनन्दवर्धन को दसवीं शताब्दी में माना है। फिर भी आपके बड़प्पन को दृष्टि में रखते हुए कुछ क्षण के लिए मान लीजिए कि वस्तुस्थिति ऐसी ही है। 'इत्यादि' पर उनका जो अवतरण समाप्त हुआ था उसी के आगे का क्रम है :

"इसी तरह ग्यारहवीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र ने भी अपने 'दशावतार चरित' में राधा की चर्चा की है। श्लोक इस प्रकार है :

"गच्छन् गोकुलमूढकुञ्जगहनान्यालोकयन् केशवः,
सोत्कंठं वनितानतो वनभुवा सख्येव रुद्धाञ्चलः ।
राधाया न न नेति नीविहरणे वैक्लव्यलक्ष्याक्षराः ,
सस्मार स्मरसाध्वसाद्भुततनोरर्द्धोक्तिरुक्ता गिरः ॥"

इसी प्रकार 'वेणी संहार' नाटक के इस श्लोक में भी राधा नाम है :

"कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्यरासे रसं,
गच्छन्ती मनुगच्छतोऽत्र कलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयिताहृष्टस्य पुष्णातु वः ॥"

हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण में जो अपभ्रंश के दोहे संगृहीत हैं वे उनके समय के पहले के हैं। कुछ ऐसे भी होंगे जो उनके या उनके समसामयिक कवियों के लिखे होंगे। उनमें भी राधा का प्रधान गोपी रूप में ही उल्लेख है। इस दोहे में राधा के वक्षःस्थल की महिमा इस प्रकार बताई गई है कि इसने आँगन में तो हरि को नचा ही दिया, लोगों को विस्मय के गर्त में गिरा ही दिया (इस से बड़ी सफलता इसकी क्या हो सकती है) सो, अब इसका जो होना हो सो हो :

"हरि णाच्चाइव पंगणइ विम्हइ पाडिउ लोइ ।
एम्वहिं राह पयोरहं जं भावइ तं होइ ॥"

वही पृ० १११

इस क्रम में ध्यान देने की बात यह है कि 'दसवीं शताब्दी में 'आनन्दवर्धन' और 'ग्यारवीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र' का तो उल्लेख हुआ है, किन्तु 'वेणीसंहार' नाटक

एवं 'हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण' का कोई समय नहीं दिया गया है। पता नहीं उक्त आचार्य जी को ऐसा क्यों करना पड़ा है? 'वेणी संहार' नाटक बीच में अनभिज्ञता के कारण आ गया हो तो आश्चर्य नहीं। वस्तुतः काल-क्रम की दृष्टि से उसका स्थान आनन्दवर्धन के पहले है जैसा कि व्रजरत्नदास जी के अवतरण में इसका स्पष्ट उल्लेख है। हेमचन्द्राचार्य बारहवीं सती के प्राणी हैं और कह सकते हैं चन्द के समसामयिक हैं। ऐसी स्थिति में उनके प्रमाण की आवश्यकता क्यों पड़ी, यह नहीं कहा जा सकता। सच पूछिए तो राधा का यह सारा प्रसंग ही प्रपंच भाग है। इसकी यहाँ कोई आवश्यकता न थी। अपनी अनभिज्ञता का ऐसा अभिमान आचार्य द्विवेदी ही को हो सकता है। देखिए. आप किस दर्प से लिखते हैं:

"जो लोग 'गाथासप्तशती' में आए हुए राधा शब्द को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं उन्हें आश्वस्त हो कर इतना तो कम-से-कम मान लेना चाहिए कि नवीं-दसवीं शताब्दी में राधा का नाम उत्तर भारत में अत्यन्त परिचित हो चुका था। इसलिए वर्तमान 'पृथ्वीराज रासो' में संयोजित 'दसम' अर्थात् 'दशावतार चरित' में राधा नाम आ जाने मात्र से यह नहीं सिद्ध होता कि यह रचना चन्द की नहीं है।"

वही पृ० १११

आचार्य द्विवेदी का आश्वासन ठहरा। उनके वचन को टाला कैसे जा सकता है, किन्तु यदि कोई नम्रता से निवेदन कर दे कि महाराज! दसवीं शताब्दी का उदाहरण तो आनन्दवर्धन में मिल गया, किन्तु नवीं शताब्दी का उल्लेख आप की रचना में कहाँ? आप के आश्वासन से तो कहीं अधिक आश्वस्त होने की सामग्री उपलब्ध है श्री व्रजरत्नदास जी के उक्त अवतरण में फिर आप की यह उछल-कूद कैसी? 'पृथ्वीराज रासो' में दशावतार चरित के प्रसंग में राधा का उल्लेख सहज और स्वाभाविक है। उसका न होना ही आश्चर्य का कारण होता, इसको आप भली भाँति जान लें और अपनी अनभिज्ञता का आरोप कृपा कर भविष्य में अपने श्रोताओं या हिन्दी के अध्येताओं पर न करें। इससे अज्ञों और अनधिकारियों में आप का आदर अवश्य बढ़ेगा किन्तु अभिज्ञों और अधिकारियों की दृष्टि में सारा समाज ही उपेक्षा और उपहास का पात्र हो जाएगा। हिन्दी का निर्माण बहुत ही श्रम और अध्यवसाय से हुआ है। इसीसे द्विवेदी नाम संस्कार और व्यवस्था का प्रतीक बन गया है। उसे घपले और गड़बड़ झाले का प्रतीक न बनाएँ। रासो के 'दसम' को ले कर आप ने जो अनुशीलन के साथ खिलवाड़ किया है वह ऐसा ही है। देखिए न, आप ही का तो निष्कर्ष है:

"दशावतार का कोई प्रसंग नहीं था। यदि था भी तो बहुत थोड़ा, उसको इतने विस्तार से कहने की वहाँ कोई आवश्यकता नहीं थी। जान पड़ता है कि 'रासो' में कुछ थोड़ा-सा प्रसंग देख कर किसी ने बाद में इस पुस्तक को उसमें जोड़ दिया है और 'विनयमंगल' तो स्पष्ट रूप से अलग पुस्तक है। उसके समाप्त हो जाने के बाद भी रासो में 'विनयमंगल' का प्रसंग चलता रहता है। इस से यह प्रमाणित होता है कि उस स्थान पर 'विनयमंगल' का थोड़ा-सा प्रसंग देख कर किसी ने वहाँ पर इस पूरी पुस्तक को जोड़ दिया है। वस्तुतः यह दोनों ही भक्ति काल के काव्य रूपों के उत्तम नमूने हैं।"

वही पृ० १११

भला जब 'वस्तुतः ये दोनों ही भक्ति काल के काव्यरूपों के उत्तम नमूने हैं' तब हम किस न्याय से इन्हें आदि काल की रचना मान लें। इसका भी तो कुछ कारण होना चाहिए। समझ में नहीं आता कि आपके परन्तु के 'पर' कहाँ तक उड़ान भरते हैं। सच पूछिए तो आपका यह विवेचन और कुछ नहीं केवल 'परन्तु मेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि यह 'दसम' नामक पुस्तक चन्द की रचना होगी ही नहीं' एवं 'परन्तु मैं यह भी नहीं कह रहा कि यह रचना चन्द की है ही' के वाग्जाल के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं और है भी तो धाक जमाने की मृदु चेष्टा अथवा जान बचाने की दिव्य सूझ। बुझौवल का यह मार्ग आप के लिए तो प्रशस्त अवश्य है किन्तु विवेक और विज्ञान के लिए वा ग्रस्त। वादग्रस्त तो अब वह कहा नहीं जा सकता। कारण कि अब आप की दौड़ अतीत के कोने कोने में है। यह बात दूसरी है कि दिखाई सामने का भी नहीं देता। अन्यथा आप कुछ कहते कहते कर कुछ और ही क्यों जाते। आपने अपने प्रथम व्याख्यान में कहा था:

'जिस आकार में यह 'दशावतार चरित' है वह सम्भवतः परवर्ती रचना है। मेरे इस विश्वास का कारण मैं तीसरे व्याख्यान में बताऊंगा।'

वही पृ० १२

परन्तु तीसरे व्याख्यान में कारण का पता नहीं। हाँ, पाँचवें व्याख्यान में उसका प्रवर्तन अवश्य है। 'मेरे इस विश्वास' के स्थान पर कदाचित् हिन्दी के लोग 'अपने इस विश्वास का स्वागत करेंगे। आशा है स्थिति को स्पष्ट करने के लिए इतना ही पर्याप्त है अन्यथा इस 'हिन्दी-साहित्य का आदिकाल' की नाम-लीला अपार है। उसके कई नाम आप ही की कलम से पढ़ने को मिले। अधिक क्या?

मंगलकरण, लंका,
बनारस

—चन्द्रबली पाण्डे

आंध्र देश की कविता और लोकगीतों से उसका विकास

भारत की सब से अधिक जनता हिन्दी भाषा भाषी है, उसके बाद तेलुगु भाषा भाषियों का नम्बर आता है। आंध्र लोग अपना उद्‌गम पाँच द्राविड़ों की प्राचीन शाखाओं में से, एक से मानते हैं, जिन्होंने आर्यों से पहले ही अपनी एक सभ्यता क़ायम कर ली थी। उसी समय से उन लोगों ने अपनी भाषा को विकसित किया, यद्यपि इस कार्य में उनको आर्यों से भी बहुत कुछ लेना पड़ा।

भाषा का यह विस्तार और विकास तेलुगु साहित्य की बुनियाद बना। तेलुगु भाषा का बहुत-सा शब्द भंडार संस्कृत से लिया गया है, फिर भी तेलुगु में अपनापन भी है। संस्कृत व्याकरण के नियमों, वाक्य रचना के प्रकार तथा छन्द शास्त्र के सहारे तेलुगु भाषा में कई विदेशी शब्द सहज ही अपना लिए गए। इस प्रकार आन्ध्र लोगों ने संस्कृत की परम्परा को अपनाया।

तेलुगु कविता का प्रारम्भ प्राचीन लोकगीत और वीरगाथाओं से हुआ है जिन्हें सामान्य जनता गाया करती थी। वीर-गीतों के आधार पर कुछ आंध्र विद्वानों ने छन्द शास्त्र के कतिपय नियम बनाए। प्राचीन वीरगीत का ही उन्होंने विकास किया और छन्द शास्त्र का रूप निर्धारित किया। इसके आधार पर उत्तम गीतों और कविताओं की रचना हुई। इस प्रकार साहित्यिक तत्वों को लिये हुए तेलुगु कविता और गीतों का निर्माण हुआ और भावपूर्ण भजन स्तोत्रों की रचना हुई।

थाल्लपक्कम परम्परा : यहाँ पर श्री थाल्लपक्क अन्नमाचार्य जी की चर्चा असंगत नहीं होगी जो १५ वीं शताब्दी के थे। ये तिरुपति के वेंकटेश्वर भगवान के मन्दिर में कीर्त्तनिया थे। इन्होंने १, २०० तेलुगु कीर्तनों की रचना की। इनके पुत्र श्री पेद्दा तिरुमलय्या और पिन्नन्ना ने मिल कर ६०० कीर्त्तनों की रचना की। इन सब कीर्त्तनों को जो ताम्र-पत्रों पर लिखे गये थे, उनकी वंश परम्परा ने कायम रखा है।

सोलहवीं शताब्दी के दूसरे प्रधान कवि श्री क्षेत्रय्या हैं जिन्होंने ४,००० पद रचे हैं। इन लोगों की रचनाएँ और इनसे आगे की रचनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि तेलुगु साहित्य का बीज लोकगीतों में निहित है, यद्यपि आलोचकों की दृष्टि में शुद्ध कविता ही तेलुगु साहित्य में प्रधान स्थान पा सकती है न कि कीर्तन। तेलुगु साहित्य प्रधानतः चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। आसु कविता (पूर्व कल्पना किये बिना लिखना) प्रगीत (lyrics), श्लेषपूर्ण कविता और महाकाव्य।

साहित्य के ये सभी अंग १० वीं शताब्दी में मौजूद थे पर केवल महाकाव्य और शास्त्रीय ग्रन्थों को ही प्रधानता दी गई। तेलुगु साहित्य में अनुसन्धान का कार्य करनेवाले विद्यार्थियों की उपेक्षा से शेष अंगों पर पूर्ण प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

महाभारत तेलुगु का प्रथम महाकाव्य है। संस्कृत के महाभारत का तेलुगु भाषा में उस समय अनुवाद हुआ जबकि उसका रूपान्तर अभी अन्य प्रान्तीय भाषाओं में नहीं हुआ था। तेलुगु महाभारत तीन कवियों के सम्मिलित परिश्रम का रूप है। श्री नन्नय्या जी ने उसके पूर्व भाग का अनुवाद किया, श्री तरी दुगडा ने उसके आगे के अंश का अनुवाद किया और शेष भाग का अनुवाद श्री तिक्कन्ना सोमयाजी ने किया। उस समय से महाभारत केवल पथ प्रदर्शक ही नहीं रहा है वरन् भावी साहित्य के लिए प्रमाण भी सिद्ध हुआ। आंध्र लोग उसे 'पंचम् वेद' मानते हैं। इसके पश्चात् भास्कर के 'रामायण' और श्री पोतन्ना के 'भागवत' का स्थान है। यह तीन शास्त्रीय (Clasiscal) ग्रंथ तेलुगु भाषी जनता के लिए पथ प्रदर्शक सिद्ध हुए।

एरी दुगडा और नायक सोमनाथ द्वारा रचित 'हरिवंश' के दो पाठान्तर और श्री नाथ द्वारा रचित 'निषादम्' अन्य शास्त्रीय ग्रंथ हैं। और भी समकालीन महती पुस्तकें पाई जाती हैं, जैसे कि पावलूरि मल्लन्ना द्वारा रचित "गनित", केतयान द्वारा रचित "आंध्र भाषा भूषण" "विज्ञानेश्वरीयमुं" आदि जो पद्य में विरचित हैं। कुछ पद्य और गद्य दोनों में रची गई और ये 'चंपू' कही जाने लगीं।

वीर शैव धर्म सम्प्रदाय : श्री नन्नय्या के "महाभारत" रचना के एक शताब्दी पश्चात् १२ वीं शताब्दी में, आन्ध्र देश में वीर शैव धर्म सम्प्रदाय का विकास हुआ। परिणाम स्वरूप शैव कवियों की एक परंपरा देखने में आती है। नन्नचोड कविराज मल्लिकार्जुन पण्डित, पालकुर्की सोमनाथ, अन्नय्या आदि इस सम्प्रदाय के प्रमुख कवि हैं। इन लोगों ने अपनी कृतियों से तेलुगु साहित्य के 'प्रबन्ध', 'द्विपदं',और 'शतकं' अंगों को समृद्ध किया।

इन सब में प्रधान कवि श्री नन्नयोडा हैं। ये सूर्यवंश के एक राजकुमार थे। उनकी महान् कृति 'कुमारसम्भव' कालिदास की कथा का अनुवाद है। प्रबन्ध रचयिताओं के इस मार्गदर्शक ने स्कंद और शैव पुराणों में से कुमार के जन्म की कथा अपनाई और संस्कृत, तेलुगु और कन्नड रचनाओं की परम्पराओं को भी अपनाया, और इस तरह एक नवीन तेलुगु साहित्य का निर्माण किया।

श्री मल्लकार्जुन पण्डित ने आन्ध्र देश में शैव धर्म सम्प्रदाय की स्थापना की और 'शिवतत्व सारम्' की रचना की। पालकुर्की सोमनाथ संस्कृत, कन्नड, मराठी, तामिल और मलयालम् के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने 'बसव पूर्ण' और 'पंडिताराध्य चरित' की रचना पद्य में की और अपनी रचनाओं से तेलुगु साहित्य को समृद्ध किया। 'त्रिषाधिप शतकम्' 'बसवोधरना' और 'बसव शतक' की रचना करके उन्होंने साहित्य के एक नए विधान का परिचय कराया। वे वीर शैव साहित्य के भारत भर में पितामह माने जा सकते हैं।

श्री अन्नय्या ने "सर्वेश्वर स्तोत्र" की रचना की। यह एक धार्मिक ग्रंथ है। इसमें भगवान शिव की स्तुति के भजन हैं।

उपरोक्त सभी कृतियाँ संस्कृत से अनुदित नहीं हैं। कथा—अंश, भाषा और चरित्र निर्माण सभी में तेलुगुपन लिए हुए हैं। अतः तेलुगु के अन्य शास्त्रीय ग्रंथों के समक्ष ये मौलिक ग्रंथों के रूप में समादृत हुए।

मध्यकाल के कवि : मध्यकाल में, श्री नाथ, जक्कन्ना, पिल्लमर्रि पिनवीरभद्रा, नंदि मल्लय्या, और घंटा लिंगय्या आदि कवियों ने साहित्य के पुराण और प्रबन्ध अंगों की पूर्ति की। श्री नाथ प्रकाण्ड पण्डित और कवि थे। उन्होंने पूरे आन्ध्र देश का पर्यटन किया था और कई राजाओं के आदर के पात्र बने थे जिन्होंने उन्हें उनके वज़न जितने स्वर्ण की भेंट दी थी। वे 'कवि सार्वभौम' के नाम से प्रसिद्ध हुए। शैव कवियों की परम्परा में भी उनकी गणना की जाती है। अन्य कृतियों के साथ उनकी कुछ प्रमुख कृतियाँ 'भीमखांडा' 'हरविलास' 'शिवरात्रि-महात्म्य' और 'काशिखाना' आदि हैं। इनमें से बहुत-सी कृतियों में १५ वीं शताब्दी के आन्ध्र लोगों के राजनीतिक और सामाजिक जीवन की झांकी मिलती है।

चालुक्य, काकतीय और रेड्डी राजाओं के शासन के बाद विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हुई और श्रीकृष्णदेवराय के शासन काल में उसका सम्पूर्ण विकास हुआ। वह तेलुगु साहित्य का स्वर्ण काल था। श्री कृष्णदेवराय के दरबार में आठ कवि थे जो 'अष्टदिग्गज' के नाम से प्रसिद्ध थे। उनमें से पेद्दना 'मनु चरित्र' के लेखक थे, मुक्कु तिम्मा 'पारिजातापहरन' के रचयिता थे, शैव कवि धूरजति 'कालहस्ति महात्म्य' के लेखक थे, मल्लना 'राजशेखर चरित्र' के रचयिता थे, राजभद्र कवि 'सकलार्थ सार संग्रह' के लेखक थे, एल्लना 'राधा माधवम्' के रचयिता थे और हास्य पूर्ण शास्त्रीय कवि तेनालि रामलिंगम् थे जिन्होंने 'पाण्डुरंग महात्म्य' की रचना की थी। ये सब श्री कृष्णदेवराय के समय में विद्यमान थे और स्वयं कृष्ण देवराय एक बड़े कवि थे जिन्होंने 'अमुक्त माल्यदा नामक प्रबंध की रचना की थी। श्री कृष्णदेवराय के समय में वैष्णव सम्प्रदाय को एक नई प्रेरणा मिली।

इसी समय के अन्य प्रधान कवियों में से पिंगलि सूरन्ना और रामराज भूषण के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री रामराज भूषण कवि होने के साथ ही संगीतज्ञ के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। उनकी कृतियों में से 'वसु चरित्र' और 'हरिश्चन्द्र नलोपाख्यान' प्रधान हैं और श्री पिंगल सूरन्ना की अमर लेखनी से 'कला पूर्णोदय' 'राघव पाण्डवीयम्' और 'प्रभावती प्रद्युम्नम्' की रचना हुई।

सन् १५६५ में विजयनगर साम्राज्य की उन्नति रुक गई। अतः तेलुगु कवियों के नवीन सहायकों में मदुरा, तंजौर, पुद्दुकोटा, मैसूर, कालहस्ती और करवेन्टंगार के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रत्येक केन्द्र में साहित्य की एक विशेष शाखा का विकास हुआ। तंजौर में पांडित्यपूर्ण शास्त्रीय रचना, वीर-गीत और गीति-नाट्य (opera) का विकास हुआ। मदुरा में गद्य पुस्तकों का विकास पाया जाता है और पुद्दुकोटा में विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों का।

तंजौर के शासकों में रघुनाथ नायक ने 'बाल्मीकि

चरित्र' और 'लाला चरित्र' की रचना की थी। इसके अतिरिक्त वे संगीत में भी दक्ष थे और उन्हीं के समय में चेमकूर वेंकट कवि ने 'विजय विलास' की रचना की और उसे रघुनाथ राजा नायक के नाम समर्पित किया था। उसी वंश के दूसरे राजा विजय राघव नायक ने कई वीर-गीत और गीति-नाट्यों की रचना की थी।

प्रसिद्ध कवयित्रियाँ, यथा रनगंजम्मा, राम-भद्रम्मा, और मधुर वाणी, इनके दरबार को अलंकृत करती थीं, प्रथम कवयित्री, जिनका अब तक पता चला है, मोल्ला हैं जिन्होंने रामायण की रचना की थी। मोल्ला के बाद मुद्दुपलनी ने अपनी कविता 'राधिका स्वान्तनमु' के कारण कीर्ति प्राप्त की।

मदुरा के राजा विजयरंग स्वयं कई गद्य पुस्तकों के रचयिता थे, उनके दरबारी कवियों में कुंडर्ति वेंकटाचल कवि, समुखम् वेंकट कृष्णाज नायक और 'तारा शशांक विजयमु' के लेखक शेषम् वेंकट पति प्रधान हैं।

इस समय में, मैसूर में तेलुगु साहित्य के विकास को इन कवियों की कृतियों से आँका जा सकता है—कोल्लूरि वीर राजु और उनके पुत्र नान राजु जिन्होंने क्रमानुसार गद्य में 'भारत' और 'हालस्य मटलयम्' की रचना की और कांतिरव नरसराजु जिन्होंने 'सिद्ध बसंत विलास' की रचना की और हाथी पर एक पुस्तक लिखी।

प्रथम तेलुगु शब्दकोष—पुदुदुकोट के एक शासक रंगनाथ टोंडमन ने 'पार्वती परिणय' और 'कविजन संजीवनी' की रचना की जब कि नुहुरपति वेंकय्या ने 'आंध्र भाषार्नवम्' और 'नारायणप्पा खडका लक्षणमु' की रचना की। आंध्र लोगों में ऐसा कदाचित् ही कोई होगा, जो तेलुगु के प्रथम शब्दकोष 'आंध्र भाषार्नवम्' से अपरिचित हो।

चंदलवाड मल्लन कवि ने 'विप्र नारायण चरित्र' की रचना की और उसे करवेट नगर के माकराजु के नाम समर्पित किया। उनके पोते के समय में जिनका भी नाम 'माकराजु' था सारंगपाणि ने 'पदमुलु' (पदों) की रचना की। ऋगवेदी वेंकटचलपति ने अपनी कृति 'चंपु-रामायणम्' को करवेट नगर के दूसरे राजकुमार के नाम समर्पित किया। तेलुगु साहित्य ने करवेट नगर के शासकों के हाथों बहुत सहायता प्राप्त की। इसी समय में निम्नलिखित कवियों की भी प्रधानता पाई जाती है – आडिदमु सूरन्ना, एनुगु लक्ष्मण कवि, पुष्पगिरि तिम्मन्ना, कूयर्यंपि तिम्मन्ना, और कनकंटि पापराजु। इसी समय में अर्थात् १६ वीं शताब्दी में 'तपति समवरनोपाख्यानम्' की रचना हुई और यह एक मुसल्मान प्रधान के नाम समर्पित किया गया था।

इसी समय में 'ययाति चरित्र' की भी रचना हुई, पर इसकी रचना ठेठ तेलुगु में हुई है।

गद्य: १६ वीं शताब्दी में तेलुगु साहित्य का अनेक दिशाओं में विकास हुआ। अब हम गद्य के विकास का प्रधान रूप पाते हैं। पेद्दापुरम्, वेंकटगिरि, पिठापुरम्, विजयनगरम्, जटप्रोल, गद्वाल, नूजिवीडु और यानपर्ति आदि संस्थानों ने तेलुगु साहित्य को प्रोत्साहन दिया। विश्वनाथ का रचित 'शेषधर्मा' और येनुगु लक्ष्मण कवि रचित 'हरिभक्ति सुभोदम्' और 'द्रौपदी परिणयम्' पेद्दापुरम् के तिम्मराजु के नाम अर्पित किए गए थे। बलवंतराजु जो तिम्मराजु के भाई थे, 'किरातार्जुनीय' और 'राम शतक' के रचयिता थे। येनुगु लक्ष्मण कवि के पोते ने 'सुभाषित रत्नावली' की रचना की और पेद्दापुरम् के जमींदार के नाम अर्पित किया। वेंकटगिरि के राजा सरवंगसिंगम् नीडु स्वयं विद्वान् और कवि ही नहीं थे बल्कि कई विद्वानों और कवियों का आदर सत्कार और सहायता भी करते थे। इस सम्बन्ध में इन कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं: आनंदरंग पिल्लै, रायो रघुनाथ, सेलम् कृष्णमानायुडु और श्री रेड्डि वेंकटाद्रि। विख्यात् विद्वान् और कवि मुलुगु पापयजाध्या ने 'देवी भागवत्' और 'स्वरमधुरम्' को श्री. वेंकटाद्रि के नाम अर्पित किया।

इस काल में, जब कि साहित्य का विविध भागों में विकास हुआ निम्नलिखित लक्षण देखने में आते हैं:

प्रबन्ध: छन्दशास्त्र और व्याकरण पर पुस्तकें, विज्ञान शास्त्र और नगरकाव्यों, शतकों, दंडकों, गेयों और यक्षगानों के अनुवाद।

१० वीं शताब्दी से, १४ वीं शताब्दी तक 'भारत' 'भागवत' 'भास्कर रामायण' 'हरिवंश' और अन्य सब प्रबन्धों में गद्य का अंश केवल इधर उधर ही देखने को मिलता है। १४५० में ही हमें प्रथम गद्य ग्रंथ के दर्शन होते हैं जब काशी स्वरप्पा ने प्रथम गद्य ग्रंथ 'प्रताप चरित्र' की रचना की। फिर १५३५ में विश्वनाथ नायक ने 'राय वाचकम्' की रचना की। नरसिंह कवि ने गद्य में 'भारत सावित्री' और रामन्ना ने 'श्री रंग महात्म्य' की रचना की।

उपरोक्त लेखकों में से बहुत से तामिल देश के रहने वाले थे। विगत शताब्दी में देशीय भाषाओं के साहित्य-सृजन में जैसे अकाल-सा पड़ गया। मद्रास में 'मद्रास स्कूल बुक' और 'वरनाक्युलर लिटरेचर सोसाइटी' का आरंभ हुआ। तामिल, तेलुगु, मलयालम्, कन्नड़ और हिन्दुस्तानी में, गद्य में पाठ्य पुस्तकों के विस्तार के लिए उपरोक्त संस्थाओं की स्थापना हुई थी। इस संस्था का तेलुगु विभाग स्वर्गीय दिवान बहादुर वि. कृष्णमायारि जी को सौंपा गया और इस संस्था के शुभारम्भ के लिए 'जगत् विनोदिनी' नामक एक तेलुगु पत्रिका भी निकाली गई। इसके संपादक स्वर्गीय श्री चदलवाड सीताराम शास्त्रलु थे जो मद्रास के प्रेसिडेन्सी कालेज में तेलुगु पंडित थे। बिना किसी मतभेद के यह बात कही जा सकती

है कि ये ही प्रथम तेलुगु गद्य रचयिता थे और इसका प्रमाण है उनकी 'दक्षिण के विगत दिन' नामक पुस्तक 'दशकुमार चरित्र' और 'संस्कृत नाटकों की कथाएँ' भी उन्हीं के द्वारा रचित पुस्तकें हैं।

कुछ लोग श्री कंदुकूरि वीरेश लिंगम् पंतुलु को ही तेलुगु के प्रथम गद्य लेखक मानते हैं। पर यह ठीक नहीं है। रविपति गुरुमूर्ति शास्त्रुलु की रचित 'पंचतंत्रमु', महामहोपाध्याय श्री कोकंडा वेंकटरत्नम् पंतुलु की रचित 'संधि विग्रहम्' और 'प्रिंस आफ़ वेल्स संदर्शन' आदि पुस्तकें श्री वीरेश लिंगम् की गद्य पुस्तकों से पहले ही प्रकाशित होगई थीं।

पहले ही तेलुगु के कवि पिंगलि सूरन्ना और रामराज भूषण का ज़िक्र किया गया है। पिंगलि सूरन्ना श्री कृष्णदेवराय के दरबारी कवि थे। (१५०६-१५३०) और सूरन्ना का घर पिंगलि में था जो गुंटूर ज़िले में है (जो पहले कृष्णा ज़िला कहलाता था)। उस समय में पलनाडु में पिंगलि ही पिन्नलि के नाम से भी कहा जाता था। राम राज भूषण भी श्री कृष्णदेवराय के दरबार में रहते थे। उनका घर पलनाडु के भट्राजुपल्लि में था। वे प्रबन्दनक तिम्मराजु के पोते थे और सूर्वराजु के बेटे थे। कई लोग राम राजु भूषण को 'नरसा भूपालयमु' के रचयिता मानते हैं पर यह ठीक नहीं है। मूर्ति राजु भी प्रबन्दनक तिम्मराजु के पोते थे, पर वे वेंकटराय भूषण के बेटे थे। अभी कुछ दिन पहले तक इन दोनों कवियों के वंशज भटराजपल्लि में रहते थे। 'अप्प कवियम्' के रचयिता श्री काकमूरि अप्पय्य कवि ने कई ग्रन्थों का अध्ययन किया था और अपनी कृति में उन्होंने कई सौ कवियों के नामों का उल्लेख किया है। याट हवक्कुल बन्नमय्या जिन्होंने 'सर्वेश्वर शतक' की रचना की, सथुसाला (पलनाडु) में रहते थे। उनका समय करीब १२४१ था। पलनाडु के दूसरे प्रधान कवि श्री नाथ हैं जो १३८४ में पैदा हुए थे। कई प्रबन्धों के अतिरिक्त उन्होंने 'द्विपद पलनाटि वीर चरित्रमु' की भी रचना की थी जिसकी छपाई वाविलाला प्रेस में, विद्याशेखर श्री अक्किराजु उमाकांतम् के अनुरोध पर हुई।

दूसरे कवि कांडय्या ने भी 'द्विपद पलनाटि वीर चरित्र' की रचना की पर उसकी छपाई अभी तक नहीं हुई है। मल्लन्ना ने भी 'द्विपद पलनाटि वीर चरित्रमु, की रचना की पर वह भी छापी नहीं गई। नंदिगामा के दूसरे कवि ने 'वीर भागवत्' की रचना की थी (पद्य में) पर वह भी छापी नहीं गई, गुरुजाला हाई स्कूल के पंडित श्री नरसय्या ने 'मगुव माचाला' की रचना पद्य में की।

आधुनिक कवियों में पाटिवडु गुरुमूर्ति ने, जो मायली के रहने वाले थे, ऋष्यश्रृंगोपाख्यानमु' की रचना की, विद्या शेखर अक्किराजु उमाकांतम् गुट्टुकोंडा के रहने वाले थे और बाद में मद्रास में आकर रहने लगे। वे कुछ दिनों तक बेजवाडा हिन्दी हाई स्कूल में तेलुगु पंडित रह चुके थे। उस समय उन्होंने 'पलनाटि वीर चरित्रमु' पर एक विद्वत्तापूर्ण संपादकीय लेख लिखा था। इस संपादकीय ने श्री जयंति रामय्या पंतुलु और पिठापुरम् के महाराजा का ध्यान आकर्षित किया और वे तेलुगु एकेडमी के मैनेजर नियुक्त किये गये। उसके कुछ ही समय बाद वे मद्रास के प्रेसिडेन्सी कालेज में प्रधान अध्यापक नियुक्त हुए।

वे कई गद्य पुस्तकों के रचयिता थे और एक साल तक 'त्रिलिंग' के संपादक रह चुके थे। वे पाणिनि का तेलुगु में अनुवाद कर रहे थे, पर कम उम्र में ही उनका स्वर्गवास हो गया। पलनाडु के दूसरे कवि जानपाटि पट्टाभि रामय्या हैं जो जीवन पर्यन्त 'अभिनव सरस्वती' के संपादक रहे थे। उन्होंने 'नागर खण्डमु' की पद्य रूप में रचना की। इसके अतिरिक्त उनकी लिखी कई सौ कविताएँ 'नागर खण्डमु' में छप चुकी थीं। वे पलनाडु में ही रहते थे।

पलनाडु के और एक कवि विश्व ब्राह्मण (सुनार) थे और उन्होंने दो नाटकों और एक शतक की रचना की। वे तक्केल्लपाडु के रहने वाले थे। सूरपुराणु वेंकटरमणय्या मायन्तां के रहनेवाले थे। वे यानवेलिक ब्राह्मण थे और उन्होंने 'तारा शशांकमु' नाटक की रचना की। गंगावरम् के और एक कवि तिरुनगारि वेंकट नरस सूरि ने 'रामदेवशतकमु' की रचना की।

तँगेडु रामकृष्णय्या ने, जो कि नियोगी ब्राह्मण थे 'गौरी परिणयमु' आदि की रचना की। राम कृष्णय्या ही के एक सम्बन्धी नरसिंहराव ने 'दीक्षित स्तुति' की रचना की और दूसरे सम्बन्धी लक्ष्मीकान्त कवि ने 'जगन्मोमोहिनी नाटकमु' और 'समुद्र मन्थनमु' की रचना की। दायपल्ली के रहनेवाले गोलि कमल नाभ ने, जो कलावन्तुमूलु (वेश्या जाति) थे, 'अम्बरीषोपाख्यानमु' की रचना की। द्रगिराजु नरसय्या ने 'भागवत कंदार्थ सीसमुलु' की रचना की। दैदा, के घटम् कान्तया ने 'घटकंटोपदेशमु' और 'रुक्मिणी परिणयमु' की रचना की। वेमवरम् के रहनेवाले एक विश्वब्राह्मण कोंडा भवानी शंकरय्यार्मुलु ने 'वीर ब्रह्मयोगि नाटकम्' और दो शतकों की रचना की। धमीवरम् के कम्मा कवि चिरुमामिल्ल सुब्बय्या ने दो शतकों की रचना की। ब्राह्मण कवि गजलक्ष्मीपति सन्निगंडा ने 'भक्त चिन्तामणि' की रचना की। रेटला के कवि बुरुगुपल्ली पुरुषोत्तन् ने एक सर्वप्रि शतक की रचना की।

जी. सी. डब्ल्यू,
गुण्टूर

—वाविलाल वेंकटेश्वर शास्त्रुलु
—अनु. कुमारी डी. शान्ता

कहानी

वह भीतर रो रही है

और मैं चुपचाप लौट आया हूँ। चाहूँ, तो मैं उसे चुप कर सकता हूँ लेकिन सोचता हूँ कि क्या उसे चुप कर देना ही उसके रोने का इलाज है ? तभी कोई जैसे हुङ्कार कर कहता है, चुप तो हम उसे युग युग से करते आए हैं आज उसे रो लेने दो, फूट-फूट कर चीख-चीख कर, कि इन पिघले लावे जैसे उबलते आँसुओं के फव्वारे में युग-युग से नसों को जकड़ कर बैठी निष्क्रियता बह जाए ! लेकिन मुझे कुछ करना चाहिए। यह ठीक नहीं हो रहा, वह भीतर रोती रहे, और मैं बाहर ओठ भींच कर टहलता रहूँ। आखिर मैंने उसे अपने हृदय का निचोड़, अपने अन्तस्तल का अजस्र स्नेह दिया है, जिसके लहराते फ़व्वारों की झालरों में वह किलकते बच्चे की अबोध मासूमियत से नहा उठी थी ! मैं क्या करूँ ? अविराम यह प्रश्न मेरे मस्तिष्क में इधर से उधर भटकती भीषण गम्भीर गूँज की तरह टकरा रहा है। मेरी भौंहे तन गई हैं, माथे पर सिकुड़नें पड़ गई हैं, और बड़ा उद्विग्न होकर मैं इस छत पर कस कर मुट्ठी बाँधे, कभी इधर से उधर, उधर से इधर घूम रहा हूँ। पास ही मेरी खाट पड़ी है और चाँदनी की दूधिया मसहरी झिलमिल-झिलमिल कर रही है ! लेकिन जैसे ही मेरा ध्यान दो कमरे छोड़ कर भीतर कोठरी में जलती हुई बत्ती की ओर जाता है, या शीशों में से बिजली की हलकी रोशनी को छन-छन कर बाहर आती देखता हूँ तो घन की भारी चोट की तरह यह बात मेरे मस्तिष्क में धमक उठती है कि वह भीतर रो रही है, इन पिछले तीन वर्षों से कोई क्षण शायद ऐसा नहीं रहा जब वह नहीं रोती रही है. और उसकी आँखों, भावहीन आँखों की निस्तेज पुतलियों से छन-छन बाहर निकलती हृदय की रोशनी इतनी धुंधली मनहूस रही है कि आदमी उसे देखते ही चौंक जाय। जैसे सामने चिता जलती देखली हो, जैसी यह इस कमरे के धुंधले शीशों से झाँकती रोती रोशनी ! और उसका शेष मुँह, ओठ इस तरह बन्द रहते होंगे जैसे कमरे के किवाड़ बन्द हैं !— रह रह कर यह धमक मैं अनुभव कर रहा हूँ कि वह भीतर रो रही है ! और इस चोट की भारी 'घनन्' से मेरे मस्तिष्क का अणु अणु काँप उठता है।

बैलगाड़ी के पहिए की तरह तुमने कुँए की उस बड़ी चर्खी को देखा है, जिसमें रस्सी लिपटती चली जाती है, और जिसका एक एक खूंटा पकड़ कर पानी खींचते हैं।

तुमने फुलझड़ी के चक्र को देखा है ?

तुमने घड़ी या ग्रामोफोन के उस 'स्प्रिंग' या 'फनर' को देखा है जो उन्हें चलाया करता है।

फुलझड़ी में आग लगते ही भन्ना कर घूम उठने वाले ज्योतिर्मय चक्र की तरह--

अधिक चाबी भरने से टूट कर बुरी तरह झन्ना कर खुल उठने वाली फ़नर की तरह—

और खूँटा छूट जाने पर बड़ी भीषण तेजी से, बड़े धमाके के साथ चर्खी को घुमाते हुए पानी में जा गिरनेवाले डोल की तरह—अभी मेरे मस्तिष्क में कुछ ज्योतिर्मय भन्ना कर घूम रहा है, स्प्रिंग की तरह झन्ना कर खुल गया है और अर्रर धड़ाम् करके कोई चीज़ घन-घना उठी है। तीन चार दृश्य, एक दूसरे के बाद, एक दूसरे के ऊपर जैसे चढ़े चले आते हैं, और न जाने कहाँ चले जाते हैं।

× × ×

विस्मृति के अँधेरे बादलों से एक मंच उठता चला आ रहा है--उठता चला आ रहा है और आँखों के आगे आ कर एक दम रुक गया है। बड़े द्वार जैसे आयत आकार का मंच है, जिसके ऊपर झालर लटक रही है, इधर-उधर सुनहले पर्दे सिमटे हैं। बिल्कुल पीछे लम्बा चौड़ा काला पर्दा है जो पृष्ठभूमि का काम दे रहा है। दोनों ओर से सधे और सन्तुलित प्रकाश की किरणें—क्षण क्षण पर कम और अधिक होती हैं और चारों तरफ़ अँधेरा है, तबले और सारंगी की निश्चित ताल और लय में बँधा मंच पर कोई नाच रहा है—प्रकाश उस पर कभी फैल जाता है कभी केंद्रित हो जाता है. वेणी नाग की तरह फुँकार उठती है और रंगबिरंगे कीमती वस्त्रों में जैसे चाँदनी बँध गई है। काले बादलों में बिजली की रेखा की तरह नर्तकी तड़प उठती है ! उसकी एक-एक मुद्रा, अंग संचालन, तन्मय भावविभोर नृत्य की स्थितियाँ—जैसे ऐन्द्रजालिक अज्ञात् शक्तियों का जाल फेंक दे और आँखों में आँखें डाल कर नस-नस की चेतना को धीरे से समेट ले। एक सम्मोहन में बँधा एक दर्शक रस सागर की लहरों में थपेड़े खाता हुआ बादलों की तरह हल्का—शारीरिकता छोड़ कर एक चेतना मात्र—शून्य की लहरों में तरता चला गया है, तैरता चला गया है—दिशा और काल का ज्ञान भूल कर अहम् और इदम् का मान भूल कर—और कुछ क्षण बाद पुनः एक झटके से संभलता है और देखता है कि नृत्य पूर्ववत् चल रहा है। पल और क्षणों की भागती धारा पर नृत्य चल रहा है। जैसे पत्थर-पत्थर पर सिर पटक कर पछाड़ें खाते, भागते

उद्दाम झरने के अंग-अंग में उठती मरोड़ जैसी लहरों पर पूनम का चाँद तैरता चला जाय—लहरों के साथ लहरों के ऊपर उछलता कूदता चाँद !

और अचानक जब दोनों ओर के पर्दे सिमट आते हैं तो वह चौंक उठता है, और देखता है कि उसके हाथों में तो पान सिगरेट, इत्र का थाल है जिन्हें दर्शकों को दे कर, वह रखने जा रहा था कि इस बीच में नृत्य पुनः शुरू हो गया था। उसके आने से एक गहरी साँस निकल गयी है, फिर अचानक उसे ध्यान आता है कि काफ़ी देर हो गयी है, और फिर यह नृत्य तो रात भर चला जा सकता है। उसे घर भी तो लौटना है, वह अकेला होता तो कोई बात नहीं थी—पर...

"चलना नहीं है तुम्हें, जीजी मुझे डाँटेंगी, उनकी दम निकली जा रही होगी कि लड़की को ले कर न जाने कहाँ चला गया......" चिन्तित स्वर में वह कहता है।

"बस-बस अभी चलती हूँ, भैय्या तुम्हें मेरी कसम है बस एक आइटम और है।" अत्यधिक अनुरोध से वह खुशामद करती है।

"नहीं भाई, नाच गाने का क्या है। यह तो रात भर चला जा सकता है, तुम्हारी क्या है तुम तो दाँत निकाल कर एक तरफ़ चल दोगी—मुझे लगता है बुरा"

"नहीं--नहीं बस एक-।" और वह भाग जाती है कहती हुई-"बस यही तो उन्होंने इस शादी के लिए ख़ास तौर से तैयार किया है...पहला तो पुराना था।"

और जब वे लोग लौटते हैं तो रात के ग्यारह बजे हैं। त्रयोदशी की चाँदनी, हलका गुलाबी शीत और रात का सन्नाटा। चाँदनी के जादू में सुनमान बिछी सड़कें आस पास चुपचाप खड़े मकान,—सोए हुए। किसी-किसी खिड़की के शीशों से रोशनी झाँकती है—और फिर एक दम बुझ जाती है— कहीं रेडियो से कोई नाटक आ रहा है जो समाप्ति पर है ! सड़क पर चाँदनी में बिजली के खम्भों और तारों की परछाइयाँ लकीरें खींचती चली गई हैं...

"कर दी न इतनी देर—अब घर पर चल कर तुम्हीं भुगतना। मैं तो सीधा अपने घर में चला जाऊंगा—वहीं से सुनूंगा कैसा महाभारत होता है।"

"हुँह, जीजी क्या जानती नहीं हैं शादी ब्याह में देर-सबेर हो ही जाती है।" सिर झटक कर लापरवाही से वह कहती है।

"तो आओ चलो, थोड़ी देर पार्क में बैठें।"

"पार्क में बैठें ! शर्म तो आ नहीं रही होगी" वह बनावटी क्रोध से कहती है—'पार्क में बैठना और रीता बहिन जी का डान्स देखना एक ही बात है न, यही है कला के लिए आपके मन में आदर..."

"अरे यों दुनियाँ भर में कला देखते फिरने से क्या है, यों तो हम कहीं भी देख आएँगे। तुम ऐसा डान्स दिखाओ फिर देखो हम आदर करते हैं या नहीं .."

"नहीं सच भैया आज तो मैंने निश्चय कर लिया है कि चाहे कुछ हो जाए, डान्स ज़रूर सीखना है।" फिर अचानक चिन्तित हो कर वह कहती है—"लेकिन हमारे साथ रोना तो वही है। ज़रा कहीं साल छः महीने में किसी जगह साथ ले जाने को कहो तो आपके नखरे ही नहीं मिलते —डान्स को रोज़-रोज़ कौन ले जाएगा। जीजी मुझे अकेली जाने नहीं देंगी वर्ना मैं तो अकेली ही चली जाऊँ। अब यहाँ लाने के लिए तो दुनिया भर के हाथ पैर जुड़वाए। भगवान ऐसा भी भाई किसी को..."

"नहीं जी मैं तुम्हारा भाई-वाई कुछ नहीं हूँ—साफ़ सुन लो। मै तुम्हारा पड़ौसी हूँ। आज बाबूजी का तबादला हो जाय—दूसरी जगह पहुँच जायँ।" वह अचानक हाथ झटक कर कहता है लेकिन देखता है सुलेखा गम्भीर हो रही है तो कहता है—"तो वाक़ई तुम्हें तुम्हारी रीता बहन जी ने इतना मोह लिया है ?"

"हटिये, हम नहीं बोलते— मोहने का क्या सवाल है ? अच्छा, डान्स अच्छा नहीं था ?" उत्सुकता से वह उसकी ओर देखती है।

"अच्छा था, पर तुम्हारा तो नहीं था ! तुम जिस दिन ऐसा डान्स सीख लोगी, मैं ढोल ले कर दुनिया भर में हल्ला मचाऊँगा—रेखा डान्स सीख गयी।"

"ढोल नहीं तबला— उसी पर तो डान्स सीखूँगी।" हँस कर वह कहती है। फिर एकदम अनुरोध से उसका हाथ पकड़ कर कहती है—"नहीं भैय्या सच मैं सीख लूँगी। मैं कुछ नहीं जानती हूँ। तुम्हें रोज़ लाना ले जाना पड़ेगा, चाहे कुछ भी काम क्यों न छोड़ना पड़े : जीजी को मैं तैयार कर लूँगी—दोस्तों के साथ भी तो इतना वक्त बरबाद करते हो। मैं साफ़ कह देती हूँ जिस दिन भी नहीं ले गए, सारी किताबों में तुम्हारी मैं ताला बन्द कर दूँगी, फिर चाहे सिर पटक-पटक कर रह जाना..."

"अरे तो डान्स तुम सीखोगी, मेरे ऊपर इतनी धौंस क्यों दिखा रही हो —कुछ मेरे लिए तो सीखोगी नहीं—सीखोगी जिसके लिए उसके लिए सीखोगी।"

"आप तो नाराज़ हो जाते हैं, भई आप ही की वजह से तो सब सीखा है—नहीं तो मेरा अपना क्या है।"

"तो मेरे लिए सीखा है ?" तुनक कर वह कहता है

"हाँ आपके लिए सीखा है।"

"होश है क्या कह रही हो ?—हाँ आपके लिए सीखा है !'—विद्रूप से दोहराता है। "फिर पूछोगी भी नहीं।"

घर आ गया है। जीजी शायद राह ही देख रही

है—फौरन् किवाड़ खोल देती है—"बड़ी देर लगा दी ?"

"इन्हीं से पूछिए—मैंने तो हज़ार बार कहा चलो, चलो-अपनी बहन जी का डान्स ही देखने में चिपक गयीं..."

"मैं उन्हें तैयार कर लूँगी—कल से ले चलना पड़ेगा"—भीतर जाते हुए वह कहती है ।

"कहाँ ?" जीजी उत्सुकता से पूछती है ।

"डान्स सीखने जाऊँगी—रीता बहन जी से कल से—ये मुझे लाएँगे ले जाएँगे ।"

अपने घर की ओर चलते हुए वह कहता जाता है—तुम्हारे नौकर हैं, जो लाएँगे ले जाएँगे ।

एक और दृश्य :

बाबूजी का तबादला हो गया है और वे लोग दूसरी जगह जा रहे हैं । यह आठ वर्ष का पड़ौस, दिन रात का साथ । विदा लेते समय सुरेखा के पिताजी कहते हैं—"तो आज तुम्हारा आखिरी सामान भी चला गया । यह साथ भी बड़ी विचित्र चीज़ है । और तो जो है, ठीक है लेकिन तुम दोनों की बड़ी घनिष्ठता थी—लड़ते थे भिड़ते थे ख़ास भाई बहिन की तरह हो गये थे । शुरू से ही यही रहा । और ये तो चौबीस घण्टे बस तुम्हारा ही गीत गाती है कि भैया न होते तो मैं कुछ भी नहीं सीख पाती, इतना कुछ भी नहीं पढ़ पाती । उन्हीं का बढ़ावा है, उन्हीं की मेहनत है । तुम न होते तो खाली स्कूल जानेवाली लड़की रह जाती...।" और भावावेग के कारण कुछ और शब्द भी उनके हृदय में उठते हैं, पर वे चुपचाप कुर्सी के हत्थे पर हाथ फिराते रहते हैं ।

वह युवक जैसे एक दम अचकचा उठा है । यह विदा अप्रत्याशित ज़रा भी नहीं है लेकिन जैसे इसे वह बिल्कुल ही भूल गया था—आत्मप्रशंसा से वह सकुच उठता है । शिष्टता के नाते कहता है—"यह तो आपकी कृपा है, लेकिन वास्तव में सुरेखा के अपने झुकावों ने ही उसे इस तरफ़ बढ़ाया है—किसी में स्वयं ही गुण न हों तो साथ और सहायता से इतना सब कुछ थोड़े ही होता है ।"

"हाँ......" फिर वे अपनी बात पर आ जाते हैं—"दिल में जो दुख हो रहा है वह तो हमीं जानते हैं । कभी इस तरफ़ आना हो तो तुम इधर जरूर आओगे......"

"आप कैसी बातें कर रहे हैं—यदि इधर आया तो मेरे लिए जगह ही दूसरी कहाँ है ।"

अपने को संयत करके वह युवक कहता है—बड़ी कठिनाई से कह पाता है । वास्तव में उसे कैसा लग रहा है बताया नहीं जा सकता । हृदय में जैसे कोई चीज़ उमड़ी चली आ रही है । सुरेखा दिन भर उसी के गीत गाती है—एक विचित्र व्यथा उसके मन में पुलक उठी है । सच, इस बात को तो वह बिल्कुल ही भूल चुका था कि कभी वे लोग जा भी सकते हैं । उसे अनुभव होता है कि कभी-कभी अनजाने ही कच्चे धागों का ताना बाना धीरे-धीरे चलता रहता है और एक दिन जब उसे तोड़ने का वक्त आता है तो हम देखते हैं कि वे कच्चे धागे कितने मज़बूत हो गये हैं कि उनसे मुक्ति प्राप्त करने के प्रयत्न में हृदय का सभी अस्तित्व जैसे डगमगा उठता है । लेकिन अपनी किसी भी दुर्बलता को वह प्रगट नहीं होने देना चाहता, इसीलिए जब सुरेखा के पिताजी, उठ कर चले गए हैं तो वह चुपचाप सुरेखा से चलते हुए अपने पहले बातचीत के सूत्र को जोड़ना चाहता है—लाख प्रयत्न करने पर भी वह ऐसा नहीं कर पाता......

"ऐं...ऐं क्या कह रहा था मैं..."अटक-अटक कर बात पूरी कर देना चाहता है । उसकी इस कमज़ोरी को कहीं वह लक्ष्य तो नहीं कर रही—यह विचार कभी-कभी उसे बहुत अधीर बना देता है । क्योंकि मनुष्य की भावुक कमज़ोरियों की सुरेखा बहुत बड़ी आलोचिका है इसे वह जानता है । सुरेखा जैसी निष्ठुर लड़कियाँ उसने बहुत कम देखी हैं—एक भी नहीं देखी ।

एक बार की बात उसे याद आती है । दो एक दिन को वह बाहर चला गया । आ कर देखा तो लगा सारे घर पर मुर्दनी छाई हुई है । अपने घर पता चला कि मधु—सुरेखा की छोटी बहन मर गयी—अचानक बीमार हो गयी, मर गयी । लेकिन सुरेखा उसके पास आई तो वही स्वाभाविक मुद्रा । वह उसकी माता जी—जीजी—के पास जा कर सान्त्वना इत्यादि देने जाने की बात सोच ही रहा था । सुरेखा आई तो वह सुस्त बैठा रहा । भर्राए गले से उसने कहा—"रेखा यह तो बड़ा बुरा हुआ । अचानक कैसे मर गई ?"

"हाँऽऽ—मर ही गई, जैसे सब मर जाते हैं ।" वह निर्विकार भाव से किताब के पन्ने पलटती रही । शायद वह कोई मानी या एक्सप्लेनेशन पूछने आई थी ।

उस युवक की आँखों के आगे वे दृश्य आ गए जब मधु खेलते खेलते उनके पढ़ने में, खेलने में बाधा डालती थी, जिद कर बैठती थी, कैरम बोर्ड के बीच में जा बैठती थी—वह उसे बन्दर आ जाने का भय दिखा कर भगा देता, मिठाई का लालच दे कर हटाता—या मारने की धमकी देता । कैसी चंचल गुड़िया-सी थी । उसके हृदय में बड़ी करुणा-सी हुई । लोग कैसे मर जाते हैं, फिर कहाँ चले जाते हैं—वही अनादि समस्या ? जहाँ मनुष्य की बुद्धि विवश है । अपनी असमर्थता पर वह झुँझला उठता है—

"भई आज मैं तुम्हें कुछ भी नहीं बताऊँगा—तुम जाओ ।"

'तुम भी क्या बात करते हो भैया । मैं तो ज़रा भी नहीं रोई ।" एक हल्की मुस्कुराहट उसके होठों में

फड़क उठती है ।

"तुम नहीं रोईं ? कम्बख़्त, तू तो उसे बहुत प्यार करती थी ।"

"प्यार करती थी तो अब क्या करू । सच भैया मुझे रुलाई ही नहीं आती । घरवाले कभी कभी इस बात से बहुत नाराज़ हो जाते हैं पर मेरी समझ में नहीं आता, मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध कैसे रो पड़ूँ ?"

"तुम लोगों का रोना और रूठना ही मशहूर है । जानती हो इसकी दूसरी वजह क्या है ? जहाँ हमें नुकसान होता है, हमें कष्ट होता है हम वहा नहीं रोते—हम रोते हैं जब उस सब को हम पूरा नहीं कर पाते--अपनी असमर्थता पर । जहाँ कष्ट और नुकसान के कारण को नहीं जान पाते या जान कर भी प्रतिकार नहीं कर पाते, हम वहीं रोते हैं । और चूकि आज की स्त्री पद पद पर असमर्थ है, इसलिए पद पद पर रोती है । लेकिन इस बहस से क्या है । मधु तो लौट नहीं सकती, बहुत प्यारी थी..."

"फिर भी असमर्थता तो अपने मन की होती है न ।"

"तुम्हारी बहुत बुरी आदत है सुरेखा, मैं एक बात कह रहा हूँ और तुम बहस पर उतर आई हो । यह नहीं कि अपनी गलती स्वीकार करो......"

"रोओ, रोओ, मेरी तो बड़ी आफ़त है उधर जीजी पीछे पड़ी रहती हैं अब तुम आ गए जान को---जब आँसू हीं नहीं आते तो पानी के लगा लूँ । ग्लीसरिन ला दीजिए—एक्ट्रेसों की तरह रो लूँगी । मुझे अच्छी लगती थी, प्यारी लगती थी, मेरी छोटी बहन थी—अब मर गई तो मैं कैसे उसके साथ मर जाऊँ ?"

"अच्छा मत रोओ बाबा, मेरी जान मत खाओ ।" और वह चुप हो कर पढ़ने लगता है । वह चुपचाप पन्ने पलटती रहती है । फिर सिर झुकाए ही कहती है—बड़े कोमल स्वर में–"भैया, मुझे रुलाई ही नहीं आती, मैं क्या करूँ । इसका कारण यह है कि मुझे कभी किसी की याद ही नहीं आती । सच बात तो यह है कि जो सामने नहीं है मैं उसके बारे में कुछ भी नहीं सोच पाती ।"

"ऐसी तो बे मुरव्वत हो ही तुम—पत्थर ।"

सुरेखा का दावा है कि जब से उसने होश सम्भाला है, अपनी याद में वह कभी नहीं रोई । विदा लेते समय ऐसी लड़की के सामने अपने को कमज़ोर साबित करने में उसे झेंप लगती है । वह कोई कमज़ोरी नहीं दिखाना चाहता ।

वे लोग चुपचाप बैठे रहे ! संगीत के प्रति सुरेखा के हृदय में अदम्य उत्साह था । वह उसकी हर चीज़ का भक्त था । सुरेखा की हर बात में आत्मविश्वास का तेज और प्रतिभा की प्रखरता बोलती थी । उसे विश्वास था कि एक अत्यन्त सफल अभिनेत्री की रूपराशि समेटे फिरनेवाली यह लड़की किसी दिन महान् संगीतज्ञ बनेगी । उसकी सुरुचि की छाप घर की हर चीज़ पर थी । बैठक, जिसमें वे लोग अक्सर बैठा करते, सुरेखा ही सजाती थी —उसकी हर बात में वह एक अनोखापन देखता था—एक ऐसी बात जो दूसरों में नहीं दिखाई देती । यह वह हर क्षण अनुभव करता था कि यह लड़की कुछ विशिष्ट है– असाधारण है । वह मानता था कि जब मनुष्य के पास एक सजग और सावधान प्रतिभा होती है तो वह उसके व्यक्तित्व के सारे पहलुओं पर छा जाती है । उसके द्वारा किये जानेवाले प्रत्येक कार्य में उस प्रतिभा की प्रचण्ड रश्मियाँ फूटा करती हैं । उसे कभी कभी तो सुरेखा एक अलौकिक ज्योतिर्वलय से मण्डित दिखाई देती । उसे लगता यह चिनगारी आग बन कर निश्चय ही एक दिन सारे संसार को आश्चर्य चकित कर देगी ।

वह अपने इन मानसिक चित्र खण्डों में उलझा ही बैठा रहा । कुछ न कुछ कहता रहा । सुरेखा उठ कर भीतर चली गई । थोड़ी देर में चाय की ट्रे और हलुए की तश्तरी उसके आगे थी लेकिन उसके हृदय में आज वास्तव में बड़ी करुणा का धुआँ धुमड़ने लगा है ।

"अरे – चलते चलते यह क्या तकल्लुफ़ ।" उसके मुँह से निकला ।

वह उत्तर न दे कर कप में चाय डालने लगी । दूध और चीनी चम्मच से चलाती रही ।

"और तुम ?"

"अच्छा ।" दूसरा 'कप' बनता है । वातावरण में जैसे बड़ा बोझ और खिंचाव है । क़रीब क़रीब हमेशा के लिए यह सब कुछ छूट जाएगा । कौन जाने यह निकटता की स्निग्धता भी दूरी के अन्तराल में समा जाएगी । कुछ बातें हैं जिन्हें वह चलते समय कह देना चाहता है । एक बात पूछने की बड़ी प्रबल इच्छा उसके हृदय में होती है "क्यों सुरेखा क्या हमारा तुम्हारा सम्बन्ध सिर्फ दो पड़ौसी परिवारों के बच्चों का ही है—और कुछ नहीं ।" पर बात मन में डूब जाती है—वह कोई कमज़ोरी नहीं दिखाएगा । ज़बान पर लाने का साहस नहीं कर पाता । तब भी बड़े साहस से चाय के दो तीन सिप ले कर वह उन बातों को कहने का प्रयत्न करता है--"रेखा, इस पिछले सालों में हम जो कुछ भी लड़े झगड़े यह ठीक है । लेकिन तुम्हारी बुद्धि और प्रतिभा का मैं शुरू से ही क़ायल हूँ । आज मैं बहुत साफ़ बात कहना चाहता हूँ—वास्तव में ऐसी प्रतिभा कम से कम लड़कियों के पास नहीं होती । मुझे विश्वास है तुम अपनी प्रतिभा से निश्चय ही एक दिन लोगों को चमत्कृत कर दोगी । अगर तुम बुरा न मानों तो मैं बात कहूँ, मैं तुम्हें कुछ भी नहीं समझता । जैसी और लड़कियाँ होती हैं—वैसी ही एक तुम भी हो लेकिन चूँकि एक

अद्भुत और दुर्लभ प्रतिभा ने तुम्हें अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है तो मुझे तुम्हारा आदर करना पड़ता है। मैं चाहता हूँ बजाय गर्व और अभिमान में नष्ट करने के तुम इस धन की, इस थाती की रक्षा करो। तुम अधिक से अधिक इसे चमकाने में यत्नशील हो—देख कर बड़ा सन्तोष होता है।" और चाय का 'सिप' लेने के बहाने वह सुरेखा की मुखकृति देखता है—अपनी प्रशंसा से कृत्रिम संकोच और लज्जा का वहाँ किंचित आभास भी नहीं है। बड़े ध्यान से वह चुपचाप सुन रही है।

"इसके लिए तुम मुझ से जैसी भी सहायता चाहोगी मैं देने को तैयार हूँ हमेशा। कभी सकुचाना मत। हम लोग अब जा रहे हैं इस बात का जरा भी ध्यान मत करना। वास्तव में मैं तुम्हारी प्रतिभा का आदर करता हूँ तुम लड़की हो और सौ में एक लड़की हो, यह बात कहने में मुझे कोई झिझक नहीं है। लेकिन जहाँ तक मेरा विचार है लड़की और लड़के की तरह मैंने तुम्हें कभी नहीं देखा। मैंने सदैव तुम में और अपने में उस माली का सम्बन्ध देखा है जिसके आम का पौधा बड़ी इठलाती और मस्त गति से ऊपर उठ रहा है और अपने सारे परिश्रम की साध से वह उस दिन की साध लगाए है जब यह तरुण हो जाएगा और दिग्दिगन्त में कोयल अपने 'कुहू' के पंखों पर लाद कर इसकी मदिर सुरभि का यश चारों ओर बिखेर देगी। तुम जैसी लड़की के साथ रहने में वास्तव में मुझे में गर्व रहा है। हम लोग जा रहे हैं—ठीक है लेकिन कोई भी आवश्यकता पड़ने पर तुम उसे दबाना मत, बेझिझक हो कर मुझे बुला लेना।" वह चम्मच से हलुआ खाता रहता है लेकिन उसे लगता है जैसे उसकी आँखों में पानी भर आएगा। वह दूसरी ओर देखने लगता है।

"आप कभी छुट्टी में आ सकेंगे?" अपनी उसी सधी और स्वाभाविक वाणी में सुरेखा कप रखती हुई पूछती है।

"हाँ जरूर।" वह चुपचाप हलुआ खा रहा है। तब सहसा उसे याद आता है उसे सुरेखा से भी पूछना चाहिए। वह उसकी ओर एक चम्मच बढ़ा देता है। उसी प्लेट में वह चुपचाप खाने लगती है।

"तुम भी तो कभी आओगी न।" चलते समय वह इतना ही कह पाता—सुरेखा संगीत का अभ्यास मत छोड़ना। वहाँ से आ कर वह विवश रो पड़ता है। वह चाहता है उसके यह वाक्य अमोघ आशीर्वाद बन कर सुरेखा पर छाए रहें। जब वह वहाँ से बिदा ले कर आता है तो उसके पाँव डगमगा रहे हैं।

× × ×

और वही सुरेखा आज रो रही है। मैं जानता हूँ कि मैं जा कर यदि उसे चुप करूंगा तो उसमें इतना साहस नहीं है कि एक सिसकी भी ओठों से निकाल सके। लेकिन उस बेचारी को चुप कर देने से ही क्या होगा। सदा से ही तो हम उसे चुप करते आ रहे हैं...तो... तो कोई रास्ता है भी आखिर दुनिया में? मेरे हृदय में कुछ इतनी जोर से मचल रहा है कि किस पहाड़ को बारूद बना कर तोड़ दूँ कि रास्ते ही रास्ते दिखाई देने लगें...। किन कन्धों को जोर से झंझोड़ कर पूछूँ कि तुम्हारे पास है कोई रास्ता?

मैं और भी तेजी से एक बार उस कमरे की ओर दृष्टि डाल कर घूमने लगा हूँ। आह सुरेखा तू रो रही है।

× × ×

और वह समय-समय पर आता रहा।

एक दिन छुट्टी के समय जब वह आता है तो देखता है सुरेखा का संगीत का अभ्यास चल रहा है। वह सामान बैठक ही में रख कर चुपके-से उसके कमरे से झाँक कर निकलता है—सुरेखा जमीन पर बैठी एक वृद्ध सज्जन से सितार सीख रही थी। उसने पत्र में भी सितार सीखने की बात लिखी थी—वह इस समय उसी की ताल में उलझी थी। शिक्षक महोदय गिलौरियाँ मुँह में रखे हुए सिर हिलाते हुए कहे जा रहे थे—"दादिरदारा हाँ बिटिया—दादिरदारा हाँ बिटिया।" इस पर उस युवक को हँसी भी आ जाती है, दादिरदारा की कैसी लय मिला दी है। उसने इस 'हाँ बिटिया' के साथ। वह बाहर खड़ा ही सितार गोद में ले कर बैठी हुई सुरेखा को देख रहा है। एक क्षण को उसके मस्तिष्क में टकराता है—सरस्वती की कामना क्या इस मूर्ति से कोई भिन्न वस्तु है? तब उसके हृदय में जैसे कोई अत्यन्त गम्भीर वाणी में कह उठता है कभी नहीं-कभी नहीं। अन्दर वह सितार बजा रही है और बाहर वह खड़ा है। एक क्षण को एक और विचार उसके मस्तिष्क में टकराता है, सिर से पाँव तक वह काँप उठता है-"काश सुरेखा उसके संरक्षण में आ पाती, क्या यह जरा भी असम्भव था?" इस भाव के उठते ही तेज़ी से मन ही मन प्रश्नों की बौछार उस पर होने लगती है—"क्या यह सम्भव है? क्या यह शोभन है? उसके घरवालों ने उसे रात-रात भर क्या तुम्हारे विश्वास पर इसीलिए छोड़ा था? उसको संरक्षण में करने की कल्पना से पहले क्या उस उत्तरदायित्व को एक क्षण को भी तुमने अनुभव किया है कि इस प्रचण्ड प्रतिभा की रक्षा तुम कैसे करोगे? उसकी वृद्धि में सहायता देने के लिए तुम्हारे पास क्या साधन है? तो फिर केवल बच्चों की तरह हठ करने और एक अमूल्य और दुर्लभ वस्तु को ले कर तोड़-फोड़ करने से क्या लाभ?" लेकिन चाहे उसके विवेक ने उसके इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया हो पर उसे वह कल्पना बड़ी ही मधुर

लगी, और उसका सारा शरीर इस कल्पना के मादक संस्पर्श से पुलक उठा। उसने एक बार फिर सुरेखा को देखा, आह वह कितनी सुन्दर है। एक गहरी साँस उसके मुँह से निकल गई, और इस साँस से हठात् वह चौंक उठा एकदम मन में उठा —"अरे कोई देख लेता तो ?–उसके प्रति ऐसी भावनाएँ क्यों, जो देवी-सी पवित्र है।' गंगा-सी निर्मल है और चाँद-सी उज्ज्वल है।"

वहाँ से हट कर वह जीजी के पास जाता है। आवभगत होती है। एक दूसरे की घर की बातें पूछी जाती हैं—बहिन जी कैसी हैं। अब हमें तो याद करती नहीं होंगी। अरे पड़ोसियों को कौन याद रखता है—यहाँ तो कोई ही दिन जाता होगा जब उनका जिक्र न कर लेते होंगे। बातों में ही पता चलता है, आज सुरेखा के सम्भावित पति की बड़ी बहन आई थी—घर जा कर ही अपना निर्णय लिखेगी। सुन कर एक सन्तोष की साँस ली उसने, चलो यह बोझ और चिन्ता छूटी। नहीं तो लड़कियों पर लड़कियों के घरवालों पर न जाने कितना बोझ इस बात का होता है। अच्छा है, सुरेखा अब निश्चिन्त हो कर अपनी साधना करेगी। तभी अपनी इस प्रवृत्ति पर उसे आश्चर्य हुआ। साथ ही कितने ही लड़कों और कहानियों के पात्रों का ध्यान उसे हो आया, जो इतनी बात सुन कर एकदम आत्महत्या के अतिरिक्त दूसरी बात सोचते ही नहीं! हिश्—मूर्ख। क्योंकि उनका प्रेम वासना का प्रेम है—शारीरिक प्रेम है। और उसका ?—उसने कभी वासना स्वप्न में भी नहीं आने दी। उसकी छाती गर्व से तन गयी! वह केवल उसकी प्रतिभा का आदर करता है—सांसारिकता से ऊँचा प्रेम करता है।

वहीं से उसने उन वृद्ध सज्जन को जाते देखा। वह उठ कर सुरेखा के कमरे की ओर चल दिया। इस विषय को ले कर किस तरह सुरेखा से परिहास करेगा—हमें ख़बर भी नहीं। मिठाई को तो पूछता ही कौन है। तुम तो विवाह करने से इन्कार कर रही थी। द्वार पर जा कर देखा सुरेखा सितार उठा कर रखने जा रही है। उसे देख कर वह एक दम पुलक उठी "अरे भैया कब आए ?—सच आज मैं तुम्हें लिखने को ही सोच रही थी—।"

"तुम तो जिन्दगी भर सोचती ही सोचती मर जाओगी। हाँ भई आँख ओट पहाड़ ओट। अब कौन पूछता है। "मुझे लिखने की क्या आफ़त आ गई थी ?" मुस्करा कर उसने पूछा। उसे स्पष्ट लगा उनके सम्बन्धों में दिनरात पास रह कर जो चीज़ नहीं आने पाई थी—वह अब आ गयी है—जिसकी पहले शायद कल्पना भी नहीं की जा सकती थी—कुछ सरस, कुछ मधुर, कुछ पीड़क-सा न जाने कैसा एक खिंचाव आकर्षण। अपनी बात काट कर एकदम वह बोला—"अरे अरे इस सब को रखे कहाँ दे रही हो, सुनाओ तो सही। क्या-क्या सीखा इतने दिनों! हम तो इतनी दूर से चले आ रहे हैं सुनने।"

"अच्छा सुनाऊँ—हाँ अभी आपको कहाँ सुनाया है।"

"हमें कौन सुनाता है ?', फिर कुर्सी की ओर बढ़ते हुए पूछता है—"नृत्य का क्या हुआ ?"

"हुआ आपका सर! चले तो गये; न कोई लाने ले जाने वाला रहा न कुछ हुआ।" फिर खिल कर बोली—"कहिये क्या सुनाऊँ। फिर आप ये मत कहिये कि सुनाने बैठ गयी—पानी को भी नहीं पूछा।"

"हाँ—हाँ सुनाओ बको मत, तुम ने जो भी गाना सीखा हो। क्या क्या और सीख लिया—क्या सीख रही हो ?" कुर्सी पर आराम से बैठ कर उसने पूछा।

"आपको अच्छा क्या लगता है ?"

"अच्छा जी, अब तो बड़े रौब से पूछने लगी हैं—जैसे सभी कुछ जानती हों। अच्छा सुनाओ, देखते हैं तुम्हें भी। अपनी तो पसन्द तीन बाजों की है, सितार वायलिन और वंशी।"

"बस!" अपने बाजों की आल्मारी के पास खड़ी वह मुस्कुरा रही थी—"कुछ और कह दो, फिर यों कहो रियायत कर दी थी। अच्छा तो यही सुनो, लो।"

"दुनिया भर की सब चीजें सीख रखी हैं क्या! ऐसी ही शर्त है तो तीन-चार चीजों का नाम और ले दूँ। अच्छा, खैर यही सुनाओ" उसने हंस कर कहा। मन में विचार आया स्वर्ग का यह फूल यहाँ कहाँ से आ पड़ा है· इस वातावरण में, इस परिस्थिति में और इस समय में! कीचड़ में उठते हुए कमल का बिम्ब उसे अपने हृदय में दिखाई दिया।

"नहीं..." उसने जरा झेंपने का अभिनय किया-"बस यही सब तो मुझे भी अच्छा लगता है इसके साथ तबला और अच्छा लगता है, इन्हीं पर जरा अभ्यास है।"

"हिष्ट!, तबला भी कोई संगीत की चीज है-तुम तो बस हमें यहाँ तीनों सुनाओ।"

"जी हाँ संगींत सीखिए, तबला ही केवल संगीत की चीज़ है।" धृष्टता से वह कहती है।

और उस दिन उसने तीनों वाद्ययन्त्र बजा कर सुनाए। इतनी देर वह बैठा क्या करता रहा याद नहीं। जब तक वह बजाती रही, अपलंक नेत्रों से वह उसे देखता रहा। पहले सितार-फिर वॉयलिन और तब वंशी। वंशी सुनते सुनते उसकी आँखों से तब कुछ बूँदें टपक पड़ीं, इसका न तो उसे पता रहा, और न वंशी में लय सुरेखा ही इसे जान पाई। इतनी देर उसने क्या सुना यह भी पता नहीं, लेकिन युगों तक इन तीनों वाद्यतन्त्रों के मधुर स्वर एक साथ मिल कर, एक अद्भुत अतीन्द्रिय वातावरण का सृजन करते हुए निरन्तर उसके हृदय में गूँजते रहे।

कभी उसे लगता फूले हुए बेले के फूलों-सी छिटकी चाँदनी में दूर पिछले सोने सी थरथराती नदी के किनारे कोई एक 'शिलुएट' छाया-सी बैठी है उसके हाथ में वंशी है और हल्की हल्की धुनें वहाँ से उठ उठ कर चाँदनी की किरणों में छहर-छहर कर एक अनोखे इन्द्रधनुष का निर्माण कर रही हैं, जो उस छाया के चारों ओर ज्योति-मण्डल-सा तन कर न जाने किस दिव्य लोक में चला गया है। वह वंशी ध्वनि कितनी करुण है, कितनी मादक ! और इस बाँसुरी की पृष्ठभूमि में वॉयलिन के स्वर गमकते उठते लगते हैं। जब कभी वह इस वंशी ध्वनि में परिव्याप्त गायक के हृदय की करुणा की अजस्र धारा के विषय में सोचता तो जैसे वही धारा उठ कर वॉयलिन की आवाज़ बन जाती, और इस गूँज में मिजराबों के घुँघरुओं में नाचते झन-झन करते सितार के तार झमक उठते।—मुग्ध नाग की तरह वह झूम उठता।

सुरेखा की बाँसुरी चुप हो गई तब भी वह बैठा रहा। अचानक उसके हृदय से एक गहरी साँस निकल गई। सुरेखा ने उसे देखा और चुपचाप बाँसुरी, वॉयलिन उठा कर आलमारी में रखने चल दी। जब वह पूर्ण रूप से संयत हुआ तो देखा चटाई पर बैठी सुरेखा अपनी सितार पर नीले मखमल का गिलाफ़ चढ़ा चुकी है।

वह बोलना चाहता था लेकिन सब कुछ भूल गया था। उसे लगा वह इतनी देर जिसे उस समय उसने 'युगों' शब्द दिया—किसी ऐसे लोक की भाषा सुनता रहा है, जहाँ मनुष्य की इस बोली की पहुँच नहीं है। और उस भाषा को सुनते-सुनते वह ऐसा अभ्यस्त हो गया है कि इस भाषा को जैसे वह बिलकुल ही भूल गया हो। वर्षों किसी और देश की भाषा सुनते-सुनते बोलते-बोलते अचानक पुरानी भाषा बोलने में शायद शुरू शुरू में ऐसी ही कठिनाई आ पड़ती होगी।

"कुछ गलत हो गया है क्या ? इस बार मुस्कुरा कर सुरेखा ने पूछा।

"नहीं ..नहीं..." बड़ी मुश्किल से वह कहता है—"सुरेखा सच मुझे यह शब्द बड़े हल्के लग रहे हैं कि तुम बहुत सुन्दर बजा लेती हो। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम अभ्यास छोड़ना मत। वास्तव में तुम यदि इसी तरह चलती रहीं तो एक दिन सारा भारत तुम्हारे ऊपर गर्व करेगा।

"तुम अपना स्नेह और शुभ आकांक्षाएँ देते रहो।" बड़े आश्वस्त स्वर में वह पलकें ऊँची करके कहती है। उस समय उसमें इतना साहस नहीं है उन पलकों के नीचे जलती तेजवन्त स्निग्ध शिखा की ओर एक क्षण को भी देख सके।

"और कहो पढ़ाई कैसी चल रही है ?" विषय बदल कर वह पूछता है। फिर अचानक उसे विवाह की याद आ जाती है, एकदम चौंक कर वह कहता है—"हाँ तुम बड़ी खराब लड़की हो गई हो।"

"क्यों ?" सुरेखा एकदम झटक कर देखती है।

"मिठाई पान की तो बात भी दूर तुमने यह भी नहीं बताया कि आज तुम्हारा 'इन्टरव्यू' था।" वह आशा करता है एक विचित्र आभा झिलमिलाती हुई उसके गालों पर दिखाई देगी।

"मुझे कहने लायक उसमें कोई बात ही नहीं लगी।" वह बिलकुल इस ढग से उत्तर देती है जैसे स्वेटर या किसी ऐसी ही साधारण वस्तु के विषय में बोल रही है।

उसके ढग से वह युवक कुछ सहम-सा गया है। फिर भी कहता है—"तुम्हें नई बात क्यों लगने लगी उसमें ?"

"नहीं भैया मज़ाक़ की बात नहीं है।" अत्यन्त गम्भीर और विचित्र मुर्झाए स्वर में वह कहती है—"मुझे इस विषय में ज़रा भी उत्साह नहीं है। मुझे विवाह में ज़रा भी रुचि नहीं है। न अभी आवश्यकता ही लगती है। बिना मेरी इच्छा के ये सब लोग ज़बर्दस्ती कर रहे हैं लेकिन......"वह बड़े भयंकर रूप से उदास हो गई है।

"लेकिन क्या ?" वह पूछता है।

"लेकिन क्या ?" तुम लड़की होते तो तुम्हें पता चलता। लोग उस लड़की को जिन्दा नहीं रहने देना चाहते जो विवाह नहीं कर रही। सगे सम्बन्धी पास पड़ौस आने जानेवाले सभी दिन रात पूछते हैं, ऐसे देखते हैं जैसे खा जाएँगे। जंगल में छूटी शेरनी को भी कोई ऐसे नहीं देखता होगा। ऐसा गुस्सा आता है कि इनका मुँह नोच ले और दीवाल से अपना सिर फोड़ ले। तुम्हें क्यों खाना नहीं हज़म होता ? कभी-कभी तो सच जीजी रो पड़ती हैं। अब क्या करें चुप हो जाना पड़ता है। वैसे कह रही थीं कोशिश करेंगे, विवाह के बाद भी अभ्यास पढ़ाई चलती रहे। लेकिन भैया न जाने क्यों, मन में बड़ा डर लगता है।"

"तुम तो हो बेवकूफ़। इसमें डरने की क्या बात है ?" वह झिड़क देता है। लेकिन जब उसकी बात में कितनी सचाई और विवशता की व्यथा है तो उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे उसके मन को कोई मरोड़ने लगा है। लड़की कैसी भी प्रतिभावान हो, कितनी महत्वाकांक्षिणी, कम से कम भारतवर्ष में यह विवाह की समस्या उसके जीवन का अनिवार्य संघर्ष है। सुरेखा ने उसके आगे कन्धा डाल दिया है पराजय की तिक्तता उसके मन में भी कम नहीं है। उसे क्यों कुरेदा जाय। सान्त्वना से शायद वह अपने आप को संयत कर सके। कुछ देर चुप रह कर पूछा—"हाँ तो बताया नहीं कौन

आया था ? क्या हुआ ?"

"होता क्या ? सच भैया, हमें तो उनके देखने का ढंग ही बहुत बुरा लगा। लड़की को क्या बिलकुल इस तरह देखा जाता है जैसे कि गाय। घोड़ी खरीदते समय देखी जाती है। आते ही बोली—"लड़की दिखाओ—लड़की दिखाओ !" मुझे तो बहुत ही गुस्सा आया—यह कोई देखने का तरीका है। मेज़ कुर्सी लगवाई गई। चाय आई उनकी सिस्टर और वे खुद बैठे, हमें बुलवाया गया—सर्व करने। हम चुपचाप आ कर प्यालियों में चाय बनाने लगे। वे टकटकी लगाए उगलियों की तरफ़ देख रहे थे, उनकी सिस्टर ने पूछा "क्या करती हो आज कल ?" मैं उत्तर की बात सोच ही रही थी कि जीजी ने कहा—"पढ़ रही है आजकल थर्ड इयर में। इण्टर फर्स्ट डिवीजन में पास किया था।" तभी उनकी सिस्टर बोली—"अजी ये तो हमें सब मालूम ही है, आपने लिख ही दिया था ! और जब लड़की है तो सीना-पिरोना खाना पहिनना सब आता ही होगा। अब इनसे पूछा भी क्या जाए। मेरा मतलब कुछ गाना बजाना।" सच, भैया मेरा मुँह तमतमा गया—यह भी कोई पूछने का ढंग है। चीनी चला रही थी, मेरा हाथ काँपने लगा। तभी उन्होंने कोमल स्वर में पूछा-"मतलब किसी आर्ट में 'इण्टरैस्टैड' है।" जीजी ने बताया कि साहित्य में बहुत अधिक रुचि रखती है-संगीत तो प्राण ही है—एक भी बाजा नहीं छोड़ा। फिर उन्होंने मेरी सब कारीगरी दिखाई-कढ़े हुए गिलाफ़, मेजपोश—यहाँ तक कि कभी पुराने हाइजीन में काढ़े हुए डाइग्राम्स तक भी दिखा डाले। मैं झेंप के मारे मरी जा रही थी कि जीजी यह सब क्यों दिखाए जा रही हैं। मेरे सब बाजे देख कर जब मुझसे उन्होंने सितार बजाने को कहा तो मैं तो भैया, तुम्हारी क़सम झेंप के मारे मर गई। पर साब निस्तार नहीं था, बजाया; चलते चलते वह बोली-"बीबी जी, बुरा मत मानना, दो एक जगह हमने लड़कियाँ देखीं, वे लोग कहते खाना बनाना जानती है सीना-पिरोना जानती है—ये देंगे वो देंगे। हमने पूछा आखिर तुम्हारी लड़की कुछ और भी जानती है या सिर्फ खाना बनाना और सीना पिरोना ही जानती है ? सच्ची बात है, हमारे यहाँ तो गुजारा नहीं है सिर्फ खाने और सीनेवाली का। अम्मा ने बड़े भैया की शादी की, खुद जा कर भाभी को निरख परख लिया था। बहू दस में देखने दिखाने लायक तो हो......अब तुम्हारी लड़की है...... मैं वहीं जा कर लिखूगी...।" तो साहब ये हमारा इन्टरव्यू हुआ। जी में तो आया चलते वक्त कह दूँ—मुझे तुम्हारा लड़का जरा भी पसन्द नहीं आया; पर चुप रह गई।" सुरेखा ने भाभी, ननद के प्रति मुँह बिचकाया।

"उनके व्यवहार से कैसा लगा, सन्तुष्ट है ?" उसने कुछ अनमने स्वर में पूछा "उसके व्यवहार से तो लगता है बड़े प्रसन्न गए हैं, अब देखें क्या लिखते हैं जा कर। लेकिन विश्वास मानो भैया, मुझे तो सिवा पढ़ने और संगीत सीखने के किसी तरफ भी रुचि नहीं है जरा भी मन नहीं भरता इस झंझट में पड़ने को।"

"अच्छा है, वे भी तो कला प्रेमी हैं। तुम्हारी प्रतिभा का मार्ग प्रशस्त है। मैं तो अपनी आत्मा की सारी पवित्र शक्ति से चाहता हूँ कि—तुम इस क्षेत्र में बढ़ती चली जाओ।" और उस युवक की आँखों के आगे बाँसुरी के रन्ध्रों पर फुदकती, लय में डूब कर गति बदलती, सितार के तारों पर नाचती सुरेखा की पतली-पतली उँगलियाँ थिरकने लगती हैं। उसकी आँखों के आगे आता है जैसे यह छोटी-छोटी अप्सराएँ मिजराब के नूपुर पहिनकर तारों पर सधी नटियों की तरह नृत्य कर रही हों—और वायलिन के गज पर झूमते उसके हाथ कितने सधे हुए—कितने सजीव ! और स्वर निकलता है कि जैसे कुछ दिव्य-अलौकिक सुरों की लपटों में साकार होता चला जा रहा है। जैसे अलिफ़ लैलाई युग में परियाँ साकार हो जाया करती थीं। नेत्र बन्द हैं और न जाने किस लोक से वह बोलती है—"सुरेखा मेरा विचार था—और विचार क्या दृढ़ निश्चय समझो कि लड़कियाँ मूलतः मूर्ख होती हैं—कहावत है औरत की अक्ल एड़ी में होती है—लेकिन तुम्हारे साथ रहा तो लगा प्रतिभा किसी की बपौती नहीं है।" तभी कभी हँसी में कहे गये वाक्य याद आ गये "ईश्वर वास्तव में पात्र अपात्र का ध्यान नहीं रखता। अब बोलो, एक लड़की को यह सब देने की क्या जरूरत थी। यह तो बन्दर के हाथ में उस्तरा देना है। प्रतिभा देनी थी तो हम जैसे किसी को देता कि कुछ करके भी दिखाते।" इस पर दोनों खिलखिला कर हँस पड़े थे। इस बात का ध्यान आते ही एक हल्की मुस्कुराहट उसके होठों पर फैल गई है। तभी एक हल्की-सी साँस, चुभते नश्तर के दर्द की तरह उसके हृदय से उठती है, जिसे उतने ही वेग से वह दबा लेता है और दर्द उसकी रग-रग में उतरता चला जाता है... सुरेखा—काश मेरे संरक्षण में आ पाती।

× × ×

तीन वर्ष पहले ये सब चित्र इतनी तेजी से मेरे आँखों के आगे घूम गये हैं कि मैं चमत्कृत और चकाचौंध रह गया हूँ। जल चादर की भाँति एक हल्का-सा आँसुओं का पर्दा मेरी आँखों पर तन गया है। और आज तीन वर्ष बाद मैं उस से मिलने आया हूँ। इतने दिनों सुरेखा का क्या हुआ इसे सुदूर कलकत्ते में रह कर काफ़ी प्रयत्न करने पर भी मैं नहीं जान सका। कुछ दिन तो उसके पत्र आए, उसका संगीत के साथ-साथ नृत्य का अभ्यास भी बहुत ही अच्छा चल रहा है। आजकल तो वह जलतरंग

का अभ्यास कर रही है। फिर लिखा, जब से उदयशंकर की 'कल्पना' देखी तब से हृदय में बड़ी अभिलाषा है कोई अच्छा नृत्य सीखा जाए। मैं जानता हूँ उसने इस दिशा में कोई भी मेहनत उठा नहीं रखी होगी। कुछ पता ही नहीं चला बाद में क्या हुआ। न जाने किसके मुँह से सुना था शायद उसी का पत्र आया था ठीक से याद नहीं है, कि उसके सुसराल वाले तैयार हैं। और वे इतना खर्च उठाने को तैयार हो गए हैं कि सुरेखा छः आठ महीने मद्रास जा कर उदयशंकर का नृत्य सीख आए। मैं उसके विषय में अधिक चिन्ता न करूँ! तब बड़ा सन्तोष जैसे हृदय को मिला, चलो कद्रदाँ मिले तो सही। वर्ना प्रतिभा के साथ बड़ी चोट है कि वह यों ही एकान्त में उपेक्षित और निरुत्साहित-सी पड़ी मुरझा जाती है।

यहाँ—उसकी ससुराल में—सब मुझे जानते हैं कि मैं उसका भाई हूँ।

जैसे ही उसे पता चला और मैंने सूचना भिजवाई वही चाय और उसका 'पेटेण्ट' हलुआ आया। देख कर चित्त खिल उठा, वास्तव में, आज ठीक तीन वर्ष पश्चात् मैं यह हलुआ और ऐसी चाय पी रहा था। ससुराल में सास है उसकी जिठानी है और उसके दो बच्चे हैं। ननद अपने घर रहती है। उनके साथ ही उसके स्वर्गीय ससुर के छोटे भाई भी लगभग एक दर्जन बाल बच्चों के साथ तीन-चार कमरे—एक अच्छा खासा मकान—घेरे हुए हैं। सुरेखा से मिलने की, उससे बातचीत करने की बड़ी प्रबल इच्छा होती रही। न जाने कितने उपालम्भ। उलाहने, हृदय से उठ उठ कर आने लगे। एकाध बार मैंने उनकी जिठानी के छोटे बच्चे से उसके विषय में पूछा भी तो उसने बताया कि उनके सिर में जोर का दर्द है, सिर पर पट्टी बाँध रखी है। मैं चौंक कर रह गया·· जैसे सारा उत्साह मर गया।

और उस कमरे में बैठा व्यर्थ एक किताब के पन्ने पलटता रहा। सिर में दर्द है बस इसीलिए नहीं मिलेगी? यह तो ठीक नहीं है। कैसी हो गई होगी? तो क्या फिर बुलाऊँ? मेरा मन दिन भर नहीं लगा। मैं जैसे उठता-उठता उठा।

साढ़े ग्यारह के लगभग मुझे खाना दिया गया। इस बीच में मैं दोनों भाइयों से मिल चुका था। सुरेखा का पति मुझे सब कुछ मिला कर पसन्द आया। देखने में सुन्दर हँस-मुख एम० ए० करने के बाद मिनिस्टर का सेक्रेटरी। उस मिनिस्टर की बड़ी बड़ी बेवकूफियाँ बताता रहा। कैसे वे हर समय भाषण देते हैं। एक बार तो उन्होंने भाषण में यह बता दिया कि हिन्दुस्तान में जो कहीं बाढ़ आ जाती है, कहीं अति वर्षा होती है, कहीं भूकम्प होता, कहीं सूखा पड़ता इसका कारण है कि न तो लोग पेड़ लगाते हैं और न बच्चे पैदा करना रोकते हैं। और कोई समय होता तो मैं जरूर उसे मिनिस्टर बना देने-वालों और खुद उसकी बुद्धि पर जी भर कर हँसता। सुरेखा कैसी है? उसे क्या हो रहा है।

खाना खाते समय छोटी-सी लड़की मेरे पास आ कर खड़ी हो गई। तभी दूसरे कमरे से आवाज आई—"विमल, भैया से पूछो, अब याद आ गई है हमारी तीन साल बाद।"

तरकारी में लगा लेने के बाद मैं अब कौर को मुँह की ओर ले जा रहा था कि जैसे किसी ने एकदम छाती में घूँसा मारा, और मैं 'धक्' से रह गया। कौर-वाला हाथ जहाँ का तहाँ रुक गया। उस समय बड़े जोर की इच्छा हुई कि मैं चीख चीख कर रो पड़ूँ। दरवाजे पर पर्दा पड़ा था और उसके पीछे एक काली परछाईं की तरह सुरेखा खड़ी थी। उसके पाँव की गोरी-उँगलियाँ मुझे दिखाई दे रही थीं। लगा जैसे सारा खाया हुआ खाना वमन के रूप में ऊपर ही उठा चला आ रहा है। कुछ अधिक न पूछ कर सुरेखा चली गई। मुझे पानी पीने का ध्यान रहा या नहीं मुझे नहीं मालूम।

रात को नौ बजे तक मैं दिमाग में एक अजब वहशत लिए उस शहर की सड़कों पर भटकता रहा—सुना और उद्विग्न! बार-बार लौट जाने की इच्छा होती, अपने यहाँ आने पर क्षोभ होता और जैसे हृदय में कोई अविराम दुहराता—यह सुरेखा? यह? तब जैसे उसका उत्तर-सा मन में उठता—मुझे अपने को जबर्दस्ती उस पर लादने का क्या अधिकार है। मैं केवल उसका पड़ौसी रहा हूँ, इस से अधिक उस से आशा भी क्यों करूँ? तब जैसे कोई दुहराता—फिर भी उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था। उसे कम से कम ऐसा नहीं करना चाहिए था!—यह पर्दा हमारे और उसके बीच में कब आ पड़ा—वहाँ तो कभी कोई पर्दा नहीं था!—यह छोटी लड़की उसकी आवाज कैसे बन गई—उसे तो अपनी आवाज के लिए कभी किसी माध्यम की जरूरत नहीं पड़ी। और क्या यह पर्दा इतना अनिवार्य है कि वह हाथ बढ़ा कर हटा नहीं

सकती ! न जाने कौनसी जमी हुई करुणा, न जाने कब के जमे हुए विश्वास, कट-कट कर गल-गल कर बाहर बह पड़ने की खींचा-तानी सी करते रहे ! मुझे उस समय बिलकुल स्पष्ट लगा मन में कोई अत्यन्त उन्मत्त, विक्षिप्त अपने भीषण ठोकरों, घूँसों, पंजों, दाँतों और झटकों से सब कुछ तोड़े डाल रहा है। हरेक चीज को इधर-उधर फेंक रहा है। बाल उसके बिखर गये हैं। और आँखें निकल आई हैं। पसीने से लथपथ है और अविराम उत्कुद्ध 'हुँ' की अस्फुट गर्जना, दाँतों का घिसना, उसके होठों से निकल कर एक विचित्र तंकोत्पादक प्रतिध्वनि बन कर लरजने लगती और मैं जैसे काँप जाता था !

नौ बजे जब मैं लौट कर आया तो मेरे लिए छत पर बिस्तर बिछा है यह नौकर ने बता दिया। मैं छत पर पहुँचा। छत पर चाँदी की वर्षा हो रही थी और झिलमिल-झिलमिल किरणें नाच रही थीं। स्वच्छ दूध-सा बिस्तरा बिछा था। जैसे ही बैठा, पास के बरामदे के बीच दिखाई देनेवाले बंद दरवाजे को खोल कर कोई बाहर आया। मैंने निगाह उठा कर देखा—अरे सुरेखा ही तो है, पीछे बिजली का प्रकाश हो रहा था—खुले द्वार से थोड़ी दूर तक आया था।

"बड़ी देर लगादी भैया खाने के लिए।" स्वर वैसा ही स्निग्ध कोमल और स्वाभाविक था। मेरी आँखों में एकदम आँसू आ गए। इच्छा हुई अब नहीं बोलूँ। चुप रहा। अब आई है।

वह चुपचाप आ कर खड़ी हो गई—"खाना लाऊँ?"

मैं दूसरी तरफ़ मुँह करके उमड़ते आँसुओं को निचला ओंठ काट कर रोकने लगा, फिर भी न जाने कैसे एक ठंडी साँस उमड़ी चली आ रही थी।

वह एकदम धरती पर बैठ गई। चारपाई पर कुहनी रख कर बड़े अनुरोध और आग्रह के स्वर में बोली—"नाराज है न।" फिर थोड़ी देर चुप रह कर—"भैया तुम किसी की परिस्थितियाँ तो समझते नहीं हो।"

मैंने एकदम मुड़ कर सुरेखा की आँखों में देखा—सफेद चाँदनी में उसकी आँखों में आँसु चमक रहे थे। फिर जैसे घूँट भर कर वह उन्हें सटक गई।—ऐं, सुरेखा का मुँह एकदम सूखा-सा है, क्या हो गया है इसे, बीमार थी क्या ! और उसका वह एक वाक्य मुझे न जाने कितने अर्थ भरा जान पड़ा। मुझे अपना सारा व्यवहार मूर्खतापूर्ण और व्यर्थ का लगा।

"क्या हुआ, बीमार रही क्या?" मैं एकदम सहानुभूति से पूछ उठता हूँ !

"नहीं तो।"

"तो !"

"कुछ नहीं। खाना लाऊँ?—ठण्डा हो रहा है।"

"नहीं सुरेखा, सच जरा भी भूख नहीं है।" और मैं लेट जाता हूँ। औंधा लेट कर तकिया छाती के नीचे खिसका कर उसकी ओर देखने लगता हूँ—"मेरी बात का जवाब दो।"

"दूध लाऊँ?" फिर जैसे हल्के झेंप कर कहती है—"कुछ नहीं भैया पिंजरे की चिड़ियाँ हैं हम लोग तो।"

"अरे छोड़ो भी !" आश्चर्य मुझे भी कम नहीं होता। लेकिन उसके स्वर में झनझनाती व्यथा को लक्ष्य करके मैंने जानबूझ कर विषय को टाल दिया, व्यर्थ की बातों से क्या लाभ?—मैंने पूछा—"क्या कर रही थी अब?"

"अब?—कुछ नहीं। तुम्हारी ही राह देख रही थी। भाभी और भैया सिनेमा गये हैं, बच्चे सो रहे हैं, माता जी (सास) अपनी जिठानी से गपशप लड़ाने चली गयी हैं।"

"और तुम्हारे 'वो'?" मैं पूछता हूँ।

"उहँ ! उनका क्या ठीक है एक एक दो-दो बजे आते हैं आराम से।" सुरेखा दूसरी ओर देख रही है—और मैं उसके भाव लक्ष्य नहीं कर पाया हूँ।

"हूँ" मैं जैसे सन्तोष की सांस ले कर सीधा लेट जाता हूँ—"और कहो तुम्हारी प्रगति के विषय में नहीं सुना बहुत दिनों से। अभ्यास तो वैसा ही चल रहा होगा। तुम्हारे उस सीखने का क्या हुआ?—संगीत में ये लोग अधिक 'इण्टरेस्टेड' मालूम पड़ते हैं।" ऊपर चांद को देखते हुए मैं पूछता हूँ।

"हूँ ऽ ऽ.........."उसका हल्का-सा उत्तर मुझे सुनाई देता है।

एकदम चौंक कर मैं फिर औंधा हो गया हूँ—"अच्छा रेखा देखो कितने दिन हो गये तुम्हारा सितार सुने? इस समय जरा सुनवा सकती हो। सच, तुम्हारे

इन तीन बाजों के लिए तो मैं तरस गया—बड़ी याद आती थी। रोज़ सोचता था, जाऊँगा तो अवश्य सुनूँगा। अब तो खूब अभ्यास कर लिया होगा।"

"अब इस वक्त ?" सुरेखा भी चौंकती है।

"हाँ, क्या हुआ ?—वे लोग अभी सिनेमा से काफ़ी देर में आएँगे। सुनाओ रेखा। हमारी रेखा बड़ी अच्छी है—कहाँ रखे हैं यह सब ? नीचे हैं क्या ?" मैं उठ कर बैठ गया हूँ ?

"रखे तो यहीं हैं पर अब ठीक नहीं है।"

"क्या हुआ ? चलो मैं उठाए लाता हूँ—बस पाँच मिनट को ही सही।" मैं बच्चों की तरह मचल गया हूँ। उसे बाँह पकड़ कर कमरे की ओर ले चलता हूँ। वह बड़ी ठिठक-ठिठक कर चल रही है। बरामदा पार करके हम लोग कमरे में आते हैं। यहाँ बिजली का बल्ब बड़ी तेज़ी से जल रहा है। एक ओर एक पलंग पड़ा है, एक श्रृंगार-मेज है, दो चार सन्दूकें हैं। हाँ आ कर मैं उसे छोड़ देता हूँ कि वह स्वयं ही उधर चले जहाँ ये सब रखे हैं।

कमरे के एक ओर बन्द किवाड़ों को वह बड़े धीरे धीरे अनिच्छा से जा कर खोलती है। भीतर कमरा है लेकिन अँधेरा है एक ओर हाथ बढ़ा कर वह खट से 'स्विच' दबा कर प्रकाश कर देती है। यह एक छोटा-सा कमरा है इसमें एक ओर छः सात सन्दूकें बड़ी छोटी रखी हैं। एक बड़ी-सी खाट पड़ी है, इस पर बहुत से बिस्तर इत्यादि लदे हैं—यह शायद सामान रखने का कमरा है। बिलकुल सामने ही आल्मारी के किवाड़ दिखाई देते हैं—जो बन्द हैं।

सुरेखा सीधी, बड़े हिचकिचाते-से क़दम रखती हुई जा कर, दो तीन बार झटक कर आल्मारी के किवाड़ भड़ाक से खोल देती है—और कुछ देखती चुपचाप खड़ी रहती है। एक मिनट.........दो मिनट...... आख़िर बात क्या है—वह ऐसी क्यों खड़ी रह गयी है—स्तब्ध। मैं कुछ आगे बढ़ कर सुरेखा के कन्धों के ऊपर से देखता हूँ। आल्मारी में सारे वाद्ययन्त्र और पुस्तकें रखी हुई हैं।

अचानक सुरेखा के पाँव डगमगाते हैं—वह अपनी धोती का पल्ला आँखों पर रख कर सुबकने लगती है। मैं आश्चर्यचकित हूँ।

"क्या बात है रेखा ?" मैं बड़ी मृदुलता से हाथ उसके कन्धे पर, पीछे से जा कर रख देता हूँ—कि वह धड़ाम से गिर पड़ती है। अब ज़ोर ज़ोर से रोने लगी है।

मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया हूँ। क्या करूँ-क्या न करूँ! यह कभी नहीं रोई, आखिर वह रो क्यों रही है। तभी मेरा ध्यान सहसा आल्मारी की ओर जाता है, मैं चौंक उठता हूँ—ए ?

आल्मारी में रखे सारे वाद्ययन्त्रों पर एक बड़ी मोटी और पुरानी तह धूल की जम गई है। हारमोनियम की चाबियों और तबलों की डोरियों में मकड़ियों ने जाले तान दिये हैं। तबलों का मसाला चटख कर उखड़ने लगा है, उनके चमड़े में जगह-जगह किन्हीं कीड़ों ने छेद कर दिये हैं—अब वहाँ से दो एक झींगुर झाँक रहे हैं। वंशी में बर्रों ने अपना स्थान बना लिया है।

और पुस्तकों को देख कर मैं और भी जोर से चिहुक उठता हूँ—ये सारी पुस्तकें मेरी भेंट दी हुई हैं और उनके दो बण्डल ठीक उसी ढँग से, उन्हीं फीतों में बाँधे रखे हैं जिस तरह और जिस रेशमी फीतों में बाँध कर मैंने सुरेखा के विवाह पर इन्हें भेंट किया था।

मैं भी बिलकुल स्तम्भित और जड़वत् खड़ा रह गया हूँ। सुरेखा बेचारी अब ज़मीन पर बिखर कर और भी बुरी तरह रोने लगी है—जैसे बाँध टूट गया है, या ज्वालामुखी फूट गया है। टूटे-फूटे वाक्य उसके मुँह से निकल रहे हैं—"जो कुछ मैंने तुम्हें लिखा था सब झूठ था,—सब गलत था—सब लिखाया गया था, कि तुम्हारी भावनाओं को कष्ट न पहुँचे।"—भैया तुम्हारा यह अफ़लातूनी प्रेम मुझे खा गया...मैं...मैं...!" वह और भी ज़ोर ज़ोर से रोने लगी है। अचानक मेरा ध्यान उसके हाथ पैरों की ओर गया है। कहारियों की महरियों की तरह उसके हाथ काले पड़े हैं—पैरों में बिवाइयाँ फटी हैं।

मैं चुपचाप बरामदे में आ गया हूँ। मुट्ठियाँ मेरी कस गयी हैं, लेकिन यह ध्यान कि वह भीतर रो रही है, मेरी रग रग में तेजाब बन कर मुझे जलाए दे रहा है। निष्क्रिय विक्षोभ के विषबुझे तीरों की शैया पर पड़ी वह भीतर रो रही है।

—राजेन्द्र यादव

"ज्ञानोदय"
स्टेशन रोड, सहारनपुर

चिट्ठी-पत्री

['चिट्ठी-पत्री' के स्तम्भ को हम अधिक लोकप्रिय बनाना चाहते हैं। साहित्य की गतिविधि और अन्य स स्याओं पर हम 'अजन्ता' के पाठकों के विचार को जानना चाहते हैं। इस स्तम्भ में वे अपने विचार प्रकाशित करने लिए भेज सकते हैं। इस स्तम्भ द्वारा लेखकों और पाठकों के बीच में निकट सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इ स्तम्भ में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ पत्रों पर विशेष पारिश्रमिक की योजना की गई है। पत्र संक्षिप्त और निर्वैयक्तिक होने चाहिएं पत्र अधिक से अधिक 'अजन्ता' के दो कालम होने चाहिएँ—सं०]

(१)

अजन्ता के सम्बन्ध में

प्रिय महोदय,

'अजन्ता' का नवम्बर '५३ अंक मिला। अनेक धन्यवाद।

इस अंक में प्रायः सभी प्रकार के उपयोगी विषयों का समावेश है और उन पर लिखे गए लेख ज्ञान वर्द्धक एवं पठनीय हैं। आपके पत्र का 'चिट्ठी-पत्री' वाला स्तम्भ मुझे बहुत प्रिय है और मैं उसे सबसे पहले पढ़ा करता हूँ। 'अजन्ता' की उत्तरोत्तर उन्नति के लिए आपको हार्दिक बधाई।

बलिया —परशुराम चतुर्वेदी

(२)

...कुछ दिन हुए 'अजन्ता' का एक अंक देखने को मिला। तबीयत फड़क उठी। इतनी सुंदर और उच्च कोटि की पत्रिकाएँ बहुत कम हैं हिन्दी में। इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। इस पत्रिका द्वारा आप हैदराबाद जैसे सुंदर प्रदेश में हिन्दी की ठोस सेवा कर रहे हैं।

आल इण्डिया रेडियो,
नई दिल्ली —चिरंजीत

(३)

....'अजन्ता' का नवम्बर का अङ्क मिला। लेख मुझे उच्च कोटि के जान पड़े। काव्य में मूर्त्ति-कल्पना' जैसा विचारोत्तेजक लेख मुझे बहुत दिनों बाद पढ़ने को मिला डा० श्री महादेव साहा हिन्दी में इतना सुन्दर लिख लें हैं, यह देख कर आश्चर्य्य हुआ। 'विक्टर ह्यूगो' प पहले भी हिन्दी पत्रिकाओं में कुछ लेख पढ़ने को मिले थे पर इसमें नवीनता है। ऐसे लेखों से हमें कुछ मिलता है शेष भी सब ठीक हैं। कृपया मौलिक कविताओं में वाल्ट ह्विटमैन और विक्टर ह्यूगो जैसी तीव्रता, प्रखरत और आधुनिकता का ध्यान रखिए। पर 'अजन्ता' कहानी का पक्ष दिखाई नहीं पड़ा। क्या बात है?

['अजन्ता' में प्रमासति एक कहानी और एक एकां प्रकाशित करने का हमारा प्रयत्न रहता है। कभी स्था या उपयुक्त सामग्री के अभाव में दोनों में से हम एक ही पाते हैं। हम समझते हैं ठोस साहित्यिक सामग्री प्रस्त करनेवाले मासिक पत्रों में कहानियों का आधिक्य उस उद्देश्य-पूर्त्ति में सहायक नहीं होता।—सं०]

चन्दिकादेवी रोड,
देवनगर कानपुर, —भगवतीप्रसाद वाजपे

(४)

...हिन्दी भाषा और साहित्य की सर्वांगीण उन्नति निमित्त उसके अन्तर्गत सभी प्रकार के विषयों का समुचि ज्ञानागार अनिवार्य है। वैज्ञानिक विषयों का ज्ञान हि के माध्यम से पर्याप्त साहित्य के अभाव के कारण हि भाषा-भाषी जनता को नहीं उपलब्ध होता। इसी कार

हिन्दी को अपूर्ण अथवा अनुपयोगी समझना अदूरदर्शिता होते हुए भी आश्चर्यजनक नहीं। 'अजन्ता' द्वारा जनता यह जाने कि दुनिया किधर जा रही है--युग के विकास का सच्चा चित्र, विज्ञान के अनुसंधान और अन्वेषकों के विषयों में पूर्ण सामग्री स्वरूप प्राप्त कर के ही देश का उत्थान संभव है। अस्तु, मेरी यह अभिलाषा है कि 'अजन्ता' में वैज्ञानिकों अथवा तत्सम्बन्धी खोजों पर साहित्यिक निबन्ध प्रकाशित हों। इस विषय में यह और चेता देना चाहता हूँ कि एल्बर्ट आईंस्टाइन की बड़ी ही सुन्दर जीवनी अजन्ता के सितम्बर या अक्तूबर के अंक में निकली थी पर वह 'सामयिक' स्तम्भ में कहीं से अनूदित थी। यदि इसी प्रकार के मौलिक लेख अजन्ता में निकलते रहें तो साहित्य के इस रिक्त गड्ढे का कुछ न कुछ अंश अवश्य भर जाएगा।

२६ मोर्वी छात्रालय,
बनारस—५.

—आनन्दकन्द मिश्र

(५)

'अजन्ता' में...श्री मदनमोहन शर्मा का 'हिन्दी में गद्यगीत' लेख पढ़ा। उसमें दयालबाग से मेरे सम्बन्ध की जो बात लेखक ने लिखी उससे मैंने अनुमान लगाया कि मेरा उनसे कुछ और भी परिचय निकलना चाहिए। मेरी किन्हीं रचनाओं से हठयोग के सम्पर्क का जो निष्कर्ष लेखक ने निकाला वह मुझे आश्चर्यजनक लगा—यदि किसी योग से मेरा सम्पर्क आए तो उसे में 'हठ' के विपरीत एकदम 'सहज' योग का ही नाम दे सकता हूँ।

हिन्दी में निकलनेवाले ऐसे आलोचनात्मक लेख प्रायः बहुत अधूरे ही होते हैं—किसी विषय के सभी प्रमुख लेखकों और उनकी सभी रचनाओं की जानकारी आलोचक को नहीं होती। इसका कारण विशेष तो यही हो सकता है कि लेखक को पूर्णांग अध्ययन की सामग्री और सुविधाएँ एक जगह नहीं मिल पातीं। गद्यगीत के कम से कम ५-६ प्रमुख लेखकों को लेखक ने छोड़ दिया है यथा केशवप्रसाद, 'काक', भँवरमल सिंघी, रामकुमार वर्मा आदि।

मेरी दूसरी गद्यकाव्य पुस्तक 'शुभा' सन् ४० में प्रकाशित हुई थी, तीसरी 'संयोग' अप्रकाशित ही है। 'कमलेश' जी ने गद्य-काव्य पर ही अपना थीसिस लिखा है—लेखक महोदय को शायद मालूम हो। गद्य-गीत के भविष्य के सम्बन्ध में आपके और कमलेश जी के निष्कर्ष विपरीत हैं। आपके समर्थन में मैं अपनी लघुकथा को गद्यगीत की ही एक शाखा कह सकता हूँ।

कैलास, सिकन्दरा,
आगरा

—रावी

(६)

नागरी लिपि में सुधार

...दिसम्बर की 'अजन्ता' में लिपि सुधार और राष्ट्रभाषा संस्कृत पर आपके विचार पढ़े। लिपि-सुधार परिषद् ने यह अच्छा ही किया कि वर्तमान नागरी लिपि में अधिक सुधार नहीं किए। उसका एक सुझाव मुझे अटपटा लगा है। उसने छोटे 'इ' की मात्रा को वर्ण के आगे लिखना तय किया है। याने किताब को 'कीताब' लिखा जाएगा। इस प्रस्ताव को पुरस्सर करनेवालों का तर्क यह है कि जब 'कि' का उच्चारण करते हैं तब पहले 'क' बोलते हैं और बाद में 'इ'। अत एव हम जिस प्रकार बोलते हैं उसी प्रकार हमें 'इ' की 'मात्रा' भी 'वर्ण' के आगे लगानी चाहिए! ध्वनि-शास्त्र के हिसाब से उसका यह प्रस्ताव तो समझ में आता है पर इससे व्यावहारिक असुविधा और गड़बड़ी होने की संभावना है। दीर्घ मात्रा भी थोड़ी हट कर आगे लगेगी। गुजराती, बंगला, मराठी आदि आर्य भाषाओं में तो 'इ' की मात्रा वर्ग के पीछे ही लगती है। सारा साहित्य इसी नियम का अनुकरण कर प्रकाशित हुआ है और होता जा रहा है। लिपि-सुधार का मैं विरोधी नहीं हूँ। पर मैं यह तर्क स्वीकार करने में असमर्थ हूँ कि सुधार प्रेस या टाइपराइटर की सुविधा को ही लक्ष्य कर किए जाएँ। विज्ञान क्या हमारी प्रचलित लिपि को 'टाइपराइटर या प्रेस' की सुविधा के अनुसार नहीं बना सकता। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि हम प्रेस-कलाविदों से कहें कि वे वर्तमान लिपि के अनुरूप सुधार आविष्कार करें पर जैसा कि आपने लिखा है, ऐसी परिषदों में मुद्रण-कलाविदों को पूछता ही कौन है? परिषद् ने हिन्दी में नई ध्वनियों के संकेत भी अनिर्णीत रखे हैं। मराठी का 'ल' स्वीकार कर ठीक ही किया, 'ए' और 'ऐ' 'ओ' और 'औ' के बीच की ध्वनि के चिन्तन भी अपेक्षित हैं। वर्धा राष्ट्रभाषा द्वारा संचारित 'अ' की बारहखड़ी अस्वीकृत कर दी गई है। इस रूप में बहुत सा साहित्य उसमें निकल रहा है।

क्या इस निर्णय को वर्धा के राष्ट्र-भाषा प्रचारक मान्यता देंगे ?

संस्कृत को राष्ट्र-भाषा बनाने की चर्चा ही अब क्यों उठाई जा रही है ? संविधान में "हिन्दी" को राज या राष्ट्र-भाषा मान लिया गया है। अत एव हमें 'हिन्दी' ही को राष्ट्र-भाषा के रूप में पुष्ट करने का यत्न करना चाहिए। संस्कृत का नारा उठानेवाले विधान के विरुद्ध बग़ावत कर रहे हैं। यह तो सभी जानते हैं कि हिन्दी को व्यावहारिकता के कारण राष्ट्र व राज भाषा का पद प्राप्त हुआ है, साहित्य की दृष्टि से नहीं। जो भाषा राष्ट्र में बहु-संख्यक व्यक्ति बोलते-समझते हैं, वही राष्ट्र-भाषा कहलाती है। यह भी निर्विवाद है कि हिन्दी भारत में सबसे अधिक संख्या में बोली और समझी जाती है। अब हमारा कर्तव्य जनता को भ्रमित करना नहीं होना चाहिए। संस्कृत जन भाषा नहीं हो सकती। वह राष्ट्र-भाषा नहीं बन सकती। हिन्दी विरोधी हिन्दी का सीधा विरोध न कर नया शिगूफ़ा छोड़ते रहते हैं। संस्कृत का नारा इसी प्रकार का एक शिगूफ़ा है। आज हमारे नेताओं को राष्ट्र को संगठित करने के लिए राष्ट्र-भाषा को परिपुष्ट और प्रचारित करने की ठोस योजना बना कर अग्रसर होना चाहिए।

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू हिन्दी का भारतीय भाषाओं में वही स्थान बनाना चाहते हैं जो आज तक अँग्रेज़ी का रहा है। वह प्रादेशिक भाषाओं की विरोधिनी नहीं है, वह तो उन्हीं की सहायता से व्यापक होना चाहती है; पोषित होना चाहती है।

धर्मपेठ, नागपुर —**विनयमोहन शर्मा**

कम्ब रामायणम्-एक अध्ययन

नई दिल्ली में दिल्ली तमिल संगम है। इस संगम की ओर से अभी एक पुस्तक अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुई है। पुस्तक का नाम है—'Kamba Ramayanam—A study'। पुस्तक के लेखक हैं श्रीयुत वी. वी. एस. ऐय्यर। कम्बन ने अपनी रामायण तमिल में ९वीं सदी में लिखी थी। कम्बन अपनी रामायण को विद्वानों की सभा में पढ़ कर सुनाता था। उसे लोग कवि चक्रवर्ती कहते थे। श्रीयुत ऐय्यर ने 'कम्बन रामायण' का गम्भीर अध्ययन किया है और उसकी यूरोपीय वीर-काव्यों से तुलना की है। श्रीयुत ऐय्यर महोदय ने इस पुस्तक का अध्ययन जेल में किया था। उन्होंने 'कम्ब रामायण' का अनुवाद अंग्रेज़ी पद्य में किया है। अनुवाद सुन्दर है। तुलसीदास ने १६ वीं सदी में अपनी रामायण लिखी और कम्बन ने तो अपनी रामायण ९ वीं सदी में लिखी थी और यह रामायण दक्षिण की जनता में बहुत लोकप्रिय है। दिल्ली के तमिल संगम को स्थापित हुए अभी ६ या ७ वर्ष हुए हैं। क्या ही अच्छा होता यदि इस पुस्तक को दिल्ली की तमिल संगम संस्था हिन्दी में भी प्रकाशित करती। इस प्रकार की पुस्तकों के प्रकाशन से एक तो भारतीय भाषाएँ एक-दूसरे के निकट आती हैं। दूसरा तुलनात्मक अध्ययन में भी बड़ी सहायता होती है। यदि हिन्दी प्रचार सभा इस पुस्तक का हिन्दी में प्रामाणिक अनुवाद प्रकाशित करेगी तो बड़ा उपकार होगा।

हैदराबाद —**उषा देवी शास्त्री**

साहित्य में चोर बाज़ारी

…'अजन्ता' के जुलाई १९५३ अङ्क में मेरा लेख 'लोक साहित्य में बारहमासी' छपा था। वही लेख पूर्ण 'आस्तेय प्रवृत्ति' के उत्कर्ष सहित किसी कान्तिलाल मोदी ने 'हमारे बारहमासी लोकगीत' शीर्षक से 'प्रतिभा' के दिसम्बर १९५३ के अङ्क में छपाया है। कृपया 'प्रतिभा' का लेख और 'अजन्ता' का लेख मिला कर देखिए और अपनी ओर से इस प्रवृत्ति के विरुद्ध कुछ कीजिए।

उज्जैन —**श्याम परमार**

['अजन्ता' के 'चिट्ठी-पत्री' के इन्हीं कालमों में 'साहित्य में चोर बाज़ारी' शीर्षक से कुछ मास पहले हमारे सुधी लेखकों ने बहुत से ऐसे तथ्यों पर प्रकाश डाला था जो श्रेष्ठ साहित्य-सृजन में रोड़े नहीं तो उसकी प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचानेवाले अवश्य हैं। अन्य लेखकों की चीज़ों को ले कर थोड़े-से भाषा के हेर-फेर के साथ कुछ नए लेखक (!) उन्हें प्रकाशित करा के उनके साथ अपने नाम का सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं। इस अपावन गठबन्ध से साहित्य का मन्दिर कलुषित होता है। हम समझते हैं साहित्य-सृजन एक साधना है जिसमें बिना योग्यता के सफलता नहीं मिल सकती। हमारे नए लेखकों को चाहिए 'नकल में अकल' लगाने के बदले वे मौलिक अध्ययन की ओर प्रवृत्त हों तब लिखने के लिए उनके पास विषयों की कमी नहीं रहेगी। इस प्रकार की चोर बाज़ारी के जो केस हमारे सामने आएँ सम्पादकों का कर्त्तव्य है कि उन छद्म-वेषी लेखकों (!) का बहिष्कार करें। —सं०]

नीर-क्षीर

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिएँ]

बीज

लेखक : अमृतराय
प्रकाशक : हँस प्रकाशन, इलाहाबाद
पृष्ठ संख्या : ५२७
मूल्य : साढ़े सात रुपए।

५२७ पृष्ठ के इस वृहत् उपन्यास में हम अनेक पात्रों से साक्षात्कार करते हैं। राज, महेन्द्र, मालती, उषा, सत्य, प्रफुल्ल, अमूल्य, ज्योति, प्रमिला, वीरेन्द्र ऐसे पात्र हैं जो उपन्यास पढ़ते समय और उसके बाद भी हमारा साथ देते हैं, लेकिन कुछ और पात्र भी हैं जो दो-चार क्षण के लिए हमारे सामने आते हैं और चले जाते हैं। उदाहरण के तौर पर उषा के पिता हैं, बहुत ही भले आदमी। जब कभी हमारी उनसे भेंट होती है काफ़ी भलमनसाहत से मिलते हैं और अपनी दो-चार क्षण की मुलाकात में हमें तरोताजा कर जाते हैं। इसी तरह अमूल्य—ज्योति की माँ है। सत्य की माता जी भी हैं और पार्वती भी है जो प्रमिला की जीवन धारा को बदल देती है। बहुत साहस भरा है उस लड़की में जो देखने में काली-कलूटी लगती है। इस तरह एक ही उपन्यास में इतने अधिक व्यक्तियों को पा कर पाठक का दिल घबराएगा नहीं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हम उन पात्रों को एक दूसरे से पृथक, केवल अपनी सनक में बहता हुआ नहीं पाते। यदि ऐसा होता तो एक-एक पात्र पाठक की नाक में दम कर देता और वह सौ दो सौ पृष्ठ पढ़ने के बाद उपन्यास आल्मारी में रख देता। बड़ी बात यह है कि पात्र अपने व्यक्तित्व में न सिमट कर हमारे समाज के सजीव अङ्ग हैं और वे सब मिल कर उस समाज को ही हमारे सामने पेश करते हैं। हम उन पात्रों के सहारे अपने समाज का ही दर्शन करते हैं। इसीलिए पात्रों की यह अनेकता नहीं खटकती। यहीं यह उपन्यास हमारे साहित्य की उस परम्परा से जुड़ता है जो अभी आरंभिक अवस्था में है किन्तु अपने शैशव में भी काफ़ी शक्तिशाली है।

साहित्य में हम घरेलू जीवन और राजनीतिक चेतना को एक ऐसे धरातल पर चित्रित करते आए हैं जो सामान्य जनता की पहुँच से बाहर होता है। इस प्रकार का चित्रण काफ़ी मन मोहक होता है, अपने स्वप्निल भावों से पाठक को बहुत देर तक ललचाए रहता है किन्तु जीवन को स्पर्श नहीं कर पाता। सामान्य जीवन को एक प्रकार का रहस्य घेर लेता है और वह रहस्य ही सब कुछ हो जाता है। जीवन हमारे लिए कुछ भी नहीं रहता। 'बीज' में इस दोष से बचने की पूरी पूरी कोशिश की गई है। 'बीज' के पात्र अधिकतर मध्यम वर्ग के हैं। महेन्द्र और साहनी परिवार इस वर्ग से सम्बन्धित नहीं हैं। लेकिन उनका उपयोग स्वतन्त्र रूप से न हो कर मध्यम वर्ग की स्थिति को निखारने में हुआ है।

सत्य और उषा का दाम्पत्य जीवन पाठक को अपनी ओर अनायास आकर्षित करता है। मध्यमवर्गीय जीवन बहुत ही सरलता से किन्तु संजीदगी के साथ चित्रित हुआ है। सत्य का उषा के साथ विवाह होता है। इस विवाह के लिए दोनों को किसी लम्बे-चौड़े रास्ते का चक्कर नहीं काटना पड़ता। वे एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं लेकिन यह आकर्षण हमारी सामाजिकता के अनुकूल होता है। विवाह के बाद उषा ससुराल आती है। एक शिक्षित लड़की होने पर भी वह गृहस्थी में डूबने

की कोशिश करती है। सास इस नवागता के प्रति बहुत सहानुभूति नहीं रखती और धीरे धीरे घर में कलह का वातावरण बन जाता है। सत्य उस वातावरण से अलग हटने की कोशिश करता है, इस कारण नहीं कि वह बुढ़िया माँ से मुक्ति पा ले बल्कि वह अनुभव करता है कि इस तरह पृथक् होने पर माँ को भी सुखी रख सकेगा।

पति-पत्नी पृथक् रहने लगते हैं। सत्य को बच्चा होता है। उसे अपनी घर-गृहस्थी चलाने के लिए एक समाचार पत्र में काम करना पड़ता है। रात को थका माँदा लौटता है। वीरेन्द्र के कारण उसमें जो राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई वह उसका बहुत-सा समय ले लेती है। स्पष्ट है कि इन सब बातों के कारण पत्नी उससे दूर दूर रहने लगती है और दाम्पत्य जीवन नीरस बन जाता है। उषा साहनी परिवार के सुखों को देखती है और उसका जी चाहता है लड़के को रखने के लिए और घर के काम काज के लिए एक नौकरानी रख ले। पति उसकी इन इच्छाओं को पूरा करने में असमर्थ है। धीरे-धीरे पत्नी समझने लगती है कि उसके पति का प्यार घट रहा है। किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। सत्य अपनी पत्नी से बेहद प्यार करता है किन्तु गरीब का प्यार नौकरानी थोड़े ही रख सकता है। उषा के बालक को बग्गी में बिठा कर घुमा तो नहीं सकता। भौतिक आवश्यकताएँ किस प्रकार पति-पत्नी को पृथक् करती हैं इसका चित्रण बहुत ही अच्छे ढंग से हुआ है। और इस दूरी को पृथक् करने की चेष्टा भी सत्य ही करता है।

जब तक सत्य अपने जीवन से उषा को अपरिचित रखता है वह भी उस जीवन में रस नहीं लेती और स्वयं उसका अपना जीवन नीरस होता जाता है, लेकिन ज्यों ही वह अपने पति को पहचानती है या यों कहिए सत्य जब उसे अपने भावों से अवगत करा देता है तो उसके सामने सारी परेशानियाँ गायब हो जाती हैं! वह किसी उद्देश्य को पा लेती है। इसी उद्देश्य के कारण वह पति को जेल के लिए बिदा करती है और स्वयं अपने पिता या सास के घर में न जा कर मेहनत से, बहादुरी से अपना और अपने बच्चे का पालन करती है। इतना ही नहीं आगे चल कर उषा अपने पति की तरह ही सामाजिक उत्थान में अपने आपको लगा देती है।

यह जीवन का पूरा चित्रण बिना किसी आडम्बर के हुआ है। यह जीवन सर्वांगीण है और साथ ही पूरी तरह मानवीय है। जरा मनुष्य के इस बच्चे को देखिए :

"अरुण पालने में पड़ा पैर फटकार रहा था। उसके सिर के ऊपर एक कपड़े की चिड़िया रबर से लटक रही थी। उसी को पकड़ लेने की यह सब कोशिशें थीं। अपना सब जोर बेचारा लगाए जा रहा था। नन्हें नन्हें हाथ चिड़िया को पकड़ पाने के लिए कितने उतावले हो रहे थे। आँख, कान, नाक, मुँह, हाथ, पैर सब से उसकी आतुर चाह टपक रही थी।"

पति-पत्नी के जिस जीवन का उल्लेख किया गया है उसके सम्बन्ध में बीज रूप से उपन्यासकार ने स्वयं कहा है :

"यह सही है कि पति-पत्नी एक दूसरे से ऊबते भी हैं, करोड़ों पति-पत्नी एक दूसरे से ऊबे हुए, एक ठण्डी ऊब की रस्सी से बंधे हुए जिन्दगी बसर करते हैं, यह एक सच्चाई है और हमें भी सतर्क रहना होगा, उद्योग करना होगा कि कभी हमारे बीच उस आपसी थकान और ऊब की प्रेत-छाया आकर न खड़ी हो।"

जब उषा इस सतर्कता का उपाय पूछती है तो सत्य कहता है :

"जब समाज की विशाल कर्म भूमि पर पति-पत्नी संग-संग क़दम से क़दम मिला कर साथी के रूप में आगे नहीं बढ़ते तो आगे-पीछे यह हालत पैदा हो जाती है और जरूर होती है और सबके साथ होती है।"

किन्तु यह कर्म भूमि हमारे पृथ्वी-लोक से परे चन्द्रलोक में नहीं है, यह वही कर्म भूमि है जिस पर हम खेल-कूद कर बड़े हुए हैं और जिस पर हम खुशी से खेलते, कूदते, हँसते हैं और दुःख में जिस पर आँसू बरसाते हैं। मध्यम वर्गीय मनुष्य के जीवन की प्रसन्नता और दुःख अपने स्वाभाविक ढंग में इस उपन्यास में चित्रित हुई है। लेखक ने इस जीवन की गुत्थियों के साथ न तो खेल किया है और न उन्हें अधिक उलझाने की कोशिश की है। जहाँ तक कोशिश हुई है उसने इन गुत्थियों को सुलझाया है। वह मानसिक उलझनों में अपने पाठकों को फँसा कर स्वयं तमाशा नहीं देखता बल्कि स्वयं उसके साथ चल कर किनारे पहुँचाने की चेष्टा करता है।

हमारे यहाँ साहित्य में जिस तरह जीवन को रहस्यमय बनाने की कोशिश की गई है उसी तरह राजनीतिक चेतना को भी रहस्यात्मक बनाने की चेष्टा हुई है। वामपन्थी राजनीति तो हमारे साहित्य में परियों और

उड़नखटोलों की कहानियों की पुनरावृत्ति करती रही है। उन व्यक्तियों को इस तरह चित्रित किया गया है कि पाठक उनका अध्ययन दिलचस्पी से करे लेकिन उन्हें अपनी पहुँच से सदा परे समझे। दादा लोगों को हमने इसी तरह अपने साहित्य में पेश किया है। व्यक्ति की तरह वे बहुत कम साहित्य में आये हैं। केवल वामपन्थी राजनीति ही नहीं दक्षिणपन्थी, यहाँ तक कि गांधीवादी राजनीति भी बहुत करके व्यक्तिगत रूप में ही चित्रित हुई है, हालाँकि इस राजनीति ने बहुत बड़े समुदाय को प्रभावित किया है। इन दिनों जनता में जो प्रगतिशील विचार या राजनीतिक चेतना काम कर रही है उसके प्रति भी हमारे साहित्यिक बहुत सजग नहीं हैं। कई लोगों ने साम्यवादी विचारधारा का उपयोग भी इस तरह किया है जैसे वह व्यक्ति को बड़ा बना कर या अद्भुत बना कर समाज से अलग कर देती है। इस विचार-धारा के प्रति इस से बढ़ कर कोई अन्याय नहीं हो सकता। यदि विचार-धारा की कोई सफलता हो सकती है तो यह कि वह साधारण जनता तक पहुँच सकती है और इस धारा को अपना कर भी कोई मनुष्य मनुष्य ही रहता है। बल्कि सम्पूर्ण मनुष्य बनता है।

यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि हमारे साहित्य में लोगों ने राजनीतिक चेतना को भी भगवद्भक्ति की तरह सांसारिकता से पृथक् माना है। राजनीतिक चेतना का सामान्य जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोई भी व्यक्ति उस से दूर नहीं रह सकता। प्रत्येक व्यक्ति इस चेतना को अपनाता है या प्रभावित करता है। हमारा लेखक इस बात को बहुत कम स्वीकार करता है इसीलिए वह जनता के मनोभावों को, खास कर अपने भविष्य के लिए वह जो कुछ सोचता है और वर्तमान के प्रति उसमें जो झुंझलाहट है उसे दरगुजर कर देता है।

'बीज' में इस बात जी चेष्टा की गई है कि राजनीति का साधारण जीवन से मेल किया जाए। यह मेल हम सत्य और उषा के जीवन में देखते हैं। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि लेखक को घरेलू जीवन के चित्रण में जो सफलता मिली है वह इस राजनीतिक चेतना को चित्रित करने में नहीं मिल सकी। प्रफुल्ल बाबू और वीरेन्द्र ऐसे व्यक्ति हैं जो हमारे साहित्य के दादाओं से पृथक् अवश्य लगते हैं किन्तु हैं उसी परम्परा के। प्रफुल्ल बाबू का उस परम्परा में होना कुछ विचित्र नहीं लगता क्योंकि उनका राजनीतिक जीवन उसी काल से शुरू होता है किन्तु जब वे असूल्य और ज्योति के जीवन पर प्रभाव डालते हैं तो सामयिक नहीं लगता। असूल्य और प्रफुल्ल बाबू दो अलग पीढ़ियों के व्यक्ति हैं। इन पीढ़ियों में जो अन्तर होना चाहिए वह यहाँ दिखाई नहीं देता। यही बात वीरेन्द्र के भी बारे में कही जा सकती है। वीरेन्द्र बिल्कुल नई पीढ़ी का व्यक्ति है। उसका दृष्टिकोण भी बहुत सुलझा हुआ है किन्तु उसका व्यक्तिगत जीवन दादाओं से मिलता है। बहरहाल राजनीतिक चेतना को व्यक्त करने में लेखक बहुत आगे नहीं बढ़ सका।

इस बृहत् उपन्यास में कई स्थानों पर तारतम्य टूटा हुआ लगता है, इतनी बहुत-सी बातें लेखक जनता के सामने रखना चाहता है या रखता है कि उन सब में सामञ्जस्य बनाए रखना सरल काम भी नहीं है। कई स्थानों पर यह उपन्यास घटनाक्रम या चरित्र के सामञ्जस्य को तोड़ कर घटनाओं और चरित्रों को इस तरह अपनाता है जैसे उन्हें बाहर से जोड़ा गया है और उनके छोड़ने का लोभ लेखक संवरण नहीं कर सकता। उपन्यास में कई स्थानों पर जब किसी घटना के विश्लेषण या विचार-धारा की व्याख्या की चेष्टा की गई है तो बहुत से पृष्ठ उस व्याख्या या विश्लेषण के कारण घिर जाते हैं। उपन्यास में जो पात्र आए हैं, खास कर सत्य इस काम को बहुत अधिक करता है। पाठक पहले घटना को पढ़ता है फिर उस घटना के प्रभाव को पढ़ता है। इस तरह पाठक को दुहरा परिश्रम करना पड़ता है। यदि कहीं केवल घटना या कहीं केवल पात्र के हृदय पर पड़े प्रभाव को व्यक्त किया जाता तो शायद उपन्यास की शिथिलता अवश्य कम हो जाती और पाठक अधिक दिलचस्पी से उपन्यास पढ़ता।

गुलबर्गा —**श्रीराम शर्मा**

लोहे की दीवार के दोनों ओर

लेखक : यशपाल
प्रकाशक : 'विप्लव कार्यालय' २१ शिवाजी मार्ग,
लखनऊ

पृष्ठ संख्या ३४५
मूल्य : सात रुपए

इधर कुछ वर्षों से हमारे देश के अनेक साहित्यकारों, पत्रकारों और कलाकारों को विदेश यात्रा का अवसर प्राप्त हुआ, जिसके फल-स्वरूप एक प्रकार के नए 'यात्रा-साहित्य'

की प्रवृत्ति प्रगतिशील साहित्य में फिर से दृढ़ हुई। जो साहित्यकार और कलाकार चीन तथा रूस गए—उन्होंने इस प्रकार का साहित्य अधिक उत्साह से लिखा। ऐसा तो नहीं हुआ कि हमारे देश से साहित्यकार अमरीका और इंग्लैण्ड न गए हों—फिर भी उन लोगों ने कम ही यात्रा साहित्य लिखा। इसकी वजह क्या हो सकती है? क्या यहाँ पर दो व्यवस्थाएँ मूल कारण हैं जिनका तुलनात्मक विवरण यशपाल जी ने अपनी इस नवीनतम रचना में दिया है? यशपाल जी गत 'विश्व शान्ति कांग्रेस' में उत्तर-प्रदेशीय तथा भारतीय शान्ति कमेटी की ओर से प्रतिनिधि होकर आस्ट्रिया की राजधानी वियाना गये थे। वहाँ से सोवियत भूमि और इंग्लैण्ड की यात्रा कर वे भारत लौटे। यह पुस्तक उसी यात्रा का साहित्यिक और यथार्थमूलक विवरण है।

परिस्थितियों और चरित्रों को सजीव रूप में उपस्थित करने में कथाकार और उपन्यासकार यशपाल की सिद्ध-हस्तता में शङ्का नहीं की जा सकती। वह तो उनका सहज गुण है जिसकी छाप पुस्तक की हर पंक्ति पर है। अगर पूरी रचना सिर्फ़ यात्रा-विवरण मात्र ही होती तो भी उसका एक साहित्यगत और कलागत मूल्य हो सकता था। लेकिन 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' एक सचेत कलाकार की कृति है जिसकी वजह से उसका कलाकार सिर्फ़ देख कर ही नहीं रह जाता—देख कर भी शंकित होने का दार्शनिक अभिनय भी नहीं करता, वरन् एक निर्णय की ओर पहुँचने की चेष्टा भी करता है। यशपाल की यह प्रवृत्ति इस रचना में इतनी शक्तिमान है कि 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' उन सब यात्रा-विवरणों से भिन्न और मौलिक है जो अभी तक लिखी गई हैं। पूरी रचना में अनुभव को सिद्धान्त के रूप में बदलने का दृढ़ प्रयास दिखाई देता है। इसीलिए इस सलक्ष्य यात्रा का मुख्य विषय, शान्ति, संस्कृति और सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं।

यशपाल जी ने अपनी रचना में सोवियत समाज की नई व्यवस्था के यथार्थ वर्णन द्वारा, पूँजीवादी देशों की सामाजिक व्यवस्था के साथ उसकी तुलना करते हुए यह दिखाया है कि सोवियत देश में व्यक्ति अधिक आज़ाद है—क्योंकि दरिद्रता, विपन्नता, रंगभेद, सामाजिक उत्पीड़न और शोषण को उसकी सामान्य जनता पराजित कर चुकी है। वहाँ भिखमंगे नहीं होते—अपना शरीर बेचनेवाली वेश्याएँ भी नहीं होतीं। वहाँ पूँजी का नरकगामी ताण्डव नहीं वरन् मानव-श्रम की पूरी प्रतिष्ठा है। वहाँ पर क्रियाशीलताओं का मूल स्रोत प्रतिस्पर्धा और कपट नहीं वरन् सहयोग और सामाजिक सहयोग है।

"मास्को स्टेशन पर लेनिन की चेतावनी में उँगली उठाए धातु की विशाल मूर्ति नवागन्तुक को याद दिला देती है कि वह नयी संस्कृति और नई व्यवस्था के नगर में प्रवेश कर रहा है।......" पृष्ठ १२२

इस नई संस्कृति और नई व्यवस्था का निर्माण सोवियत देश की जनता ने लेनिन और स्तालिन के नेतृत्व में सफलतापूर्वक किया। इस नई व्यवस्था में विज्ञान का रचनात्मक चरम रूप विकसित हो सका जिसकी छाप सोवियत यूनियन की संस्कृति के प्रत्येक स्तंभ पर अङ्कित है। स्कूल, हस्पताल, फैक्टरी, खेती, सेना, यातायात आदि का उन्नत रूप विज्ञान इसीलिए स्पष्ट कर सका क्योंकि सामाजिक व्यवस्था विज्ञान के इस चरम-विकास को आत्मसात् कर सकी। पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था ने अपनी प्रतिस्पर्धा और व्यक्तिपरकता के कारण विज्ञान को ध्वंसात्मक शक्ति में बदल दिया। विज्ञान की यह ध्वंसात्मक छाया जब सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ी तब व्यक्ति, धर्म और उनकी संस्कृतियाँ स्वयं घातक हो कर गुलामी और शोषण से ही अपना जीवन रस खींचने लगीं। ऐसी अवस्था में सोवियत संस्कृति का विकास और पूँजीवादी संस्कृतियों का ह्रास आरम्भ होना अनिवार्य था।

इस अनिवार्यता के चित्र "लोहे की दीवार के दोनों ओर" में स्पष्ट रूप से उतरे हैं। रचना में स्थान स्थान पर यह स्पष्ट होता रहता है कि सोवियत संस्कृति पूँजीवादी संस्कृतियों की भाँति संकटग्रस्त होना नहीं जानती। इसलिए उस समाज में न तो अशान्ति का व्यापार है और न दूसरे देशों पर आक्रमण कर—अथवा अपनी पूँजी द्वारा दूसरे देशों का शोषण करने की कुत्सित आकांक्षा का अस्तित्व है। सुखी और सम्पन्न सोवियत देश की व्यवस्था विश्व-शान्ति के आधार पर अग्रसर हो रही है जब कि पूँजीवादी व्यक्तियों का अल्पप्राण विश्व-युद्ध पर निर्धारित हो गया है। अमरीका के पूँजीपति और उनकी सरकार विश्व शान्ति में अपना ह्रास देखती है। ऐसी दशा में विश्व की विकासोन्मुखी संस्कृति का अग्रदूत सोवियत देश सहज ही पूँजीवादी संस्कृतियों के रक्षकों की दृष्टि में काल

के रूप में दिखाई देता है जो एक मिथ्या भय है। इस मिथ्या भय के आवेश में वे अन्य देशों में अराजकता के बीज बो कर अपना त्राण चाह रहे हैं।

सोवियत देश की इस शक्तिमान नई सामाजिक व्यवस्था के सफल चित्र देने के बाद यशपाल जी ने इंगलैण्ड के नवीन ह्रास से ग्रसित समाज के कुछ चित्र दिए हैं। लन्दन के बाजार और रेस्तराँ, उसके भिखमंगे और लाजवती भिखमंगियाँ तथा उसके साहित्य और पत्रों में सर्वत्र एक ह्रास व्याप्त हो गया है। इस समाज व्यापी ह्रास को लेकर किसी भी प्रकार की सांस्कृतिक और व्यक्ति की आजादी की कल्पना नहीं की जा सकती। उनकी कला या तो व्यक्ति की कुण्ठा के दल-दल में फंस गई है-या व्यापारियों की वस्तुओं के विज्ञापन के रूपों में प्रस्फुटित होती है।

इस सांस्कृतिक भेद के प्रति सचेत हो कर यशपाल जी ने प्रत्यक्ष रूप से साहित्यकार के उत्तरदायित्व को और अप्रत्यक्ष रूप में 'शान्ति' के लक्ष्य को पूरा किया है। हमारे विचार में इस वर्ष की मौलिक रचनाओं में 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' सर्वोत्कृष्ट है।

लखनऊ —**आदित्य मिश्र**

अपना-पराया

लेखक : श्री राधिकारमण प्रसाद सिंह
प्रकाशक : श्री राजराजेश्वरी साहित्य मन्दिर, पटना ६.
मूल्य : २ रुपए।

मनुष्य जन्म से बुरा होता है या परिस्थितियाँ उसके भला-बुरा बनने के लिए उत्तरदायी हैं यह मनोविज्ञान के अन्तर्गत 'वंशानुगतिता और वातावरण' विषय से सम्बन्धित प्रश्न है। श्री राधिकारमण प्रसाद सिंह के नए नाटक 'अपना पराया' में इसी समस्या को छुआ गया है। लेखक ने यही दर्शाया है कि "लहू का कोई मोल नहीं-माँ के आँचल के दूध का भी कोई तथ्य नहीं।" और एक आदिवासी का बच्चा भी सभ्य समाज की पाँति में पैर रोप सकेगा क्योंकि "आखिर तो वह वही ठहरा जो हम हैं या तुम-एक मनुष्य।" सुरेश के गर्भ को लिए नई रोशनी की युवती रानी को मनचले गैर जिम्मेवार यूसुफ से शादी करनी पड़ती है और परिस्थितिवश सुरेश यूसुफ द्वारा सताई हुई युवती से शादी करता है। इस प्रकार सुरेश के घर यूसुफ का लड़का (रणवीर) सुरेश का कहला कर पलता है और यूसुफ के घर सुरेश का (गुलाब) यूसुफ का बेटा कहला कर। परन्तु रणवीर वातावरण के प्रभाव से विद्वान और शरीफ और गुलाब धूर्त व मक्कार बन जाता है। हिन्दु-मुस्लिम दंगे के समय रणवीर अपनी बहिन को बचाने में प्राणोत्सर्ग करता है जब कि गुलाब अपनी उस बहिन (सुरेश की दूसरी सन्तान) पर बलात्कार करने के लिए उद्यत होता है। नाटक संकुचित भावनाओं से ऊपर है। और उसमें रंगमंच के उपयुक्त संवाद और क्रिया का समावेश हुआ है।

हैदराबाद —**हरिकृष्ण पुरोहित**

दिव्यालोक

सम्पादक : डा० रघुनन्दन प्रसाद शर्मा,
एम. ए; ज्योतिषाचार्य
वार्षिक मूल्य : चार रुपए—एक प्रति का १) रुपया
प्रकाशक—ज्योतिष आलोक गृह,
६२१, दारागंज इलाहाबाद।

ज्योतिष शिक्षा की सर्वव्यापकता न होने से आज यह विषय पढ़े लिखे जन समुदाय में कुछ ही को छोड़ कर अधिकांश लोगों के लिए प्रायः उपेक्षित हो गया है। हमारे प्रातः स्मरणीय ऋषि-महर्षियों ने पावन तपस्या के बल में इस विद्या को सर्वोपयोगी सिद्ध किया है। अति प्राचीन काल से यह विद्या जनता की सेवा में लगी हुई है, पर काल-चक्र के कारण इसके प्रति लोगों की अनास्था सी हो रही है। इसकी सत्यता प्रमाणित करने के लिए अन्वेषण कार्य की परम आवश्यकता है, जिसमें प्रत्येक भारतीय का सहयोग अपेक्षित है। इस विचार से तथा ज्योतिष-शिक्षा को सर्व सुलभ करने के उद्देश्य से हिन्दी भाषा में "दिव्यालोक" का प्रकाशन आरम्भ हुआ है।

'पत्र' विद्वत्तापूर्ण लेखों से परिपूर्ण है तथा इसकी भाषा ऐसी सरल सुबोध एवं सरस है कि 'पत्र' बिना आद्यन्त पढ़े हृदय नहीं मानता।

'दिव्यालोक' दो अंशों में विभक्त है। (१) साधारण तथा (२) विशिष्ट। साधारण अंश में शिक्षण विषय भिन्न-भिन्न शैलियों में वर्णित है तथा विशिष्ट अर्थात् फलादेश अंश कतिपय उप अंशों में बटा है जिनमें 'आपका भविष्य', 'शुभाशुभ तारीखें', तथा 'हमारे पाठकों के पत्र' अति ही सुन्दर, रुचिकर एवं आकर्षक प्रतीत होते हैं।

इलाहाबाद —**शिवकुमार शास्त्री**

सामयिक

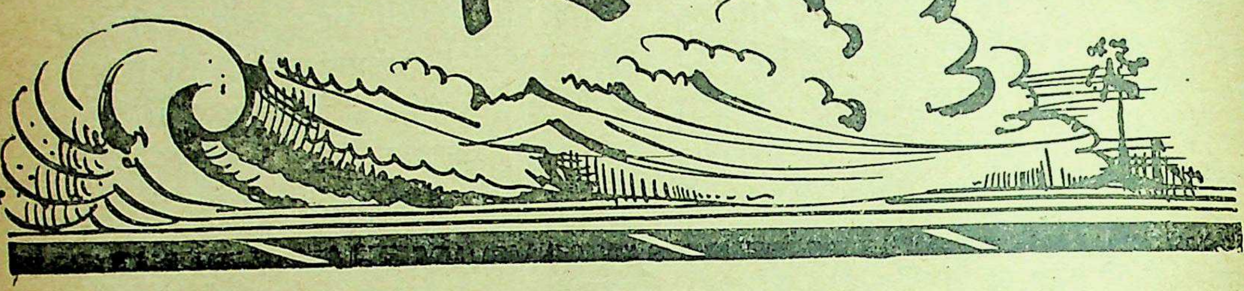

॥

आधुनिक अंग्रेज़ी उपन्यास

मद्रास के अंग्रेज़ी साप्ताहिक पत्र 'स्वतन्त्र' में 'आधुनिक अंग्रेज़ी उपन्यास' विषय पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें से निम्न अंश दिया जाता है :

"इस शती में अंग्रेज़ी उपन्यास में कौन-से परिवर्त्तन और क्या उन्नति हुई है? प्राचीन और नवीन उपन्यासों में क्या भेद है? आज के अंग्रेज़ी उपन्यासकार व्यक्तिगत-काल्पनिक विचारों का अनुसरण करते हैं और उन्होंने भूत के साथ अपने सम्बन्ध को तोड़ दिया है। आधुनिक अंग्रेज़ी उपन्यासों में हमें दो बातें दृष्टिगोचर होती हैं। एक तो विभिन्नता (अपना अपना व्यक्तित्व) और घबराहट। विभिन्नता ने एक प्रकार की अस्तव्यस्तता को उत्पन्न कर दिया है और घबराहट ने प्राचीन विक्टोरियाई परम्पराओं, सिद्धान्तों और आदर्शों के प्रति विद्रोह को उत्पन्न कर दिया है। डिकन्स, थैकरे, जार्ज इलियट और ट्रिलोप आदि उपन्यासकार अपने उपन्यासों में कुछ सिद्धान्तों और आदर्शों का पालन करते हैं। विक्टोरियाई लेखक एक विशेष प्रकार का कथानक प्रस्तुत करते हैं, उनका नायक उच्च ईसाई आदर्शों का अनुकरण करता है, उनमें अच्छाई की जीत होती है और बुराई की पराजय। उन उपन्यासों में एक प्रकार की नैतिकता का आधार कथानक में दिखाई देता है। आज के उपन्यासों में यह बात नहीं रह गई है।

इसका कारण १८५० से १९५० तक हुई घटनाएँ हैं। विज्ञान के प्रचार के कारण ईसाई सिद्धान्तों में लोगों का विश्वास कम हो गया। अब लोगों का ध्यान आर्थिक अवस्था की ओर जितना है उतना आध्यात्मिकता की ओर नहीं। मनुष्य अब आर्थिक प्राणी बन गया है। अब सब वस्तुओं का माप तोल रुपए पैसे और आर्थिक अवस्था से किया जाता है। विश्व युद्ध ने एक प्रकार की नैतिक उथल पुथल उत्पन्न कर दी है और सर्व साधारण में अविश्वास और असन्तोष बढ़ गया है। इन अवस्थाओं पर व्यक्तिगत रूप से विचार किया जा रहा है क्योंकि किसी को आज मार्ग स्पष्टतया दिखाई नहीं दे रहा है। चारों ओर एक प्रकार का क्षोभ और घबराहट है। प्रत्येक लेखक स्वयं इस पर विचार करके मार्ग को ढूँढ़ रहा है। फ्राइड के सिद्धान्तों ने भी इस विचारधारा को विशेषतया स्त्री-पुरुष के क्षेत्र में इन विचारों को बल प्रदान किया है।

आज के उपन्यासों में नायक अच्छाई के मार्ग पर चलने वाला नहीं होता। वह परस्पर विरोधी भावों का एक पुतला होता है। उसमें अच्छाई और बुराई दोनों का सम्मिश्रण होता है। विक्टोरियाई साहित्य का नायक मर चुका है और उसके स्थान पर उससे विपरीत नायक का जन्म हो गया है। वह एक परित्यक्त जाति का या कोई चोर-उचक्का हो सकता है जिसके लिए पाठक के हृदय में सहानुभूति होती है। आज का उपन्यासकार अपने अच्छे या बुरे चरित्रों के लिए पाठक की सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। इस समय के उपन्यासकार का सबसे महान् गुण है कि मनुष्यों और वस्तुओं का वास्तविक चित्रण करे—ऐसा चित्रण जैसा कि वह देखता या अनुभव करता है। अब उपन्यासकार किसी विशेष सिद्धान्त का मानने वाला नहीं रह गया है। यदि आज के परित्यक्त और जाति बहिष्कृत लोगों के मन का अध्ययन करना हो तो परम्परा द्वारा माने हुए सिद्धान्तों के प्रति विरोध प्रदर्शित करना परमावश्यक है।

इस विद्रोह का क्या परिणाम हुआ है? इन लोगों

ने एक सुकुमार विचार प्रणाली बनाई है परन्तु इससे एक प्रकार का धुँधलापन और अस्पष्टता ही उत्पन्न हुई है। इन उपन्यासकारों में कई श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं : ग्राहम ग्रीन, एवेलीन ग्रीन, एलिज़ाबेथ बोवेन, हैनरी ग्रीन आदि। इन्होंने सावधानी, सत्यता और अपनी प्रणाली से उपन्यासों में एक नवीनता को उत्पन्न कर दिया है परन्तु किसी विशेष विचारधारा के अभाव में उनके उपन्यासों में किसी प्रकार की एकता दृष्टिगोचर नहीं होती और इसलिए वे उपन्यास के क्षेत्र में सामूहिक रूप से अपनी किसी विचारधारा या परम्परा का निर्माण नहीं कर सके हैं। उनके उपन्यास प्रायः असंयम के प्रदर्शक हैं ; वे अस्त-व्यस्त जगत को ठीक बनाने का व्यर्थ प्रयत्न करते-से नज़र आते हैं। काग़ज़ के संसार में वे गत्ते के चरित्रों का निर्माण करते हैं। मानों वे अपने मानसिक क्षोभ और पृथकता का ही चित्रण करते हैं। फिर भी इस समय में अंग्रेज़ी में कई श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि अंग्रेज़ी उपन्यासों का भविष्य उज्वल है।........"

॥

क्षेत्रय्या के पदम

'दि इंडियन लिसनर' में श्री डबल्यू. एस. कृष्णस्वामी नायडू की 'क्षेत्रय्या के पदम' शीर्षक रेडियो-वार्त्ता प्रकाशित हुई है जिसका निम्न अंश यहाँ दिया जा रहा है :

"कर्णाटक के महान् संगीतज्ञों की पंक्ति में श्री क्षेत्रय्या का नाम अग्रगण्य है। जहाँ श्री थीगरय्या, मुथुस्वामी दीक्षितार और सामा शास्त्री की त्रिवेणी अमूल्य कीर्त्तनों की रचना करने और उन कीर्त्तनों की शास्त्रीय महानता, संगीत पूर्ण मधुरता और भक्ति पूर्ण विह्वलता के लिए प्रसिद्ध है वहाँ क्षेत्रय्या के गीत कर्णाटक के संगीत में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। क्षेत्रय्या ने पद या पदमों की रचना की है जिन्हें साधारण स्तर के गीत समझा जाता है परन्तु वास्तव में वे भक्ति से पूर्ण और संगीत के गुणों से वेष्ठित हैं। 'पद' या 'पदम' का शाब्दिक अर्थ 'शब्द' है और साधारणतया उससे 'गीत' या 'गीत के अंश' का अभिप्राय लिया जाता है। इन्हें 'शब्द' की संज्ञा देना महत्त्व रखता है क्योंकि इसमें शब्द अर्थ से गर्भित होते हैं। सरल किन्तु विशुद्ध तेलुगु के ये शब्द आसानी से समझ में भी आते हैं और गहरा प्रभाव डालते हैं। श्री क्षेत्रय्या सत्रहवीं शताब्दी में हुए थे और आंध्र-देश में कुचिपुडि के पास मूवा ग्राम के निवासी थे। उनका नाम मूवा वाराधि है और उन्होंने दक्षिण के प्रायः सभी तीर्थों की यात्रा की थी। क्षेत्रय्या नाम से उनकी प्रसिद्धि इसीलिए हुई क्योंकि अनेक 'क्षेत्रम्' अथवा तीर्थ स्थानों की उन्होंने यात्रा की थी और उन स्थलों पर देवताओं की प्रशंसा में पदम गाए। उनके पदमों में उन सभी देवताओं के नामों का उल्लेख हुआ है। उनके इष्ट-देव मूवा गोपाल हैं जिस नाम से स्वयं उनके ग्राम में एक मन्दिर प्रतिष्ठापित है।

ये पद मुख्यतः 'प्रेम गीतों' के रूप में लिखे गए हैं जिनमें प्रेमिका प्रेमी को सम्बोधित करती है। नायक-नायिका के लक्षणों पर इनकी रचना हुई है जो कृष्ण की भक्ति की एक पद्धति है और ये पद श्रृंगार रस से पूर्ण हैं। क्षेत्रय्या के पदों के नायक मूवा गोपाल हैं। उनके गीतों में वरद, कारी वरद, काँची वरद, रंगनाथ, वित्रय, श्री व्यंकटेश्वर, चिदम्बरम् गोविन्द राज, तिरुवेलोर वीर राघव, कांडी कदिरकम कँडा स्वामी और अन्य देवताओं का भी नामोल्लेख हुआ है। यद्यपि मूवा गोपाल उनके पदों में प्रधान नायक हैं फिर भी अन्य देवताओं का उल्लेख उनके उदार दृष्टिकोण का द्योतक है और उन्होंने विष्णु और शिव में किसी प्रकार का भेद नहीं समझा है। क्षेत्रय्या की गीतों में कथा श्रृंगार-रस से पूर्ण है जिसके द्वारा उन्होंने अपने भक्ति-भाव को प्रदर्शित किया है परन्तु क्षेत्रय्या इस प्रकार के पहले गायक नहीं हैं। तिरुमलाई-तितुपति देवस्थानों के प्रकाश में आने से पता चला है कि क्षेत्रय्या ने इस दिशा में अपने पूर्ववर्ती श्री अन्नमाचार्यलु की परम्परा को ही विकसित किया है यद्यपि अन्नमाचार्यलु के गीत इतने कलापूर्ण और सुन्दर नहीं हैं।

उदाहरण के लिए तिरुपव्वी के गीत को लिया जाय जिसमें भक्त अन्दल किसी मनुष्य के बदले केवल भगवान कृष्ण से विवाह करने का हठ करती हैं। सम्पूर्ण कथा तीस गीतों में कही गई है। सर्वशक्तिमान परमात्मा के सम्मुख मानव-आत्मा स्त्री का रूप धारण करती है और अपने प्रेमी को प्राप्त करने के लिए अनवरत प्रयत्नशील रहती है। नायक-नायिका रूप में वर्णन केवल प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें 'अहं' 'इदं' से मिलने को अग्रसर होता है। क्षेत्रय्या के पदों में यही भावना सरल और सुललित भाषा में व्यक्त हुई है।

संगीत की दृष्टि से ये पद अपनी श्रेष्ठता में बेजोड़ हैं। अनेक रागों में उन्हें गाया जाता है परन्तु क्षेत्रय्या ने मुख्यतया उनके लिए इन प्रधान रागों को अपनाया है : कम्बोजी, मुखड़ी, केदारा, गोवला, इदुकला, कम्बोजी, भैरवी, कल्याणी, आदि। इन पदों की विशिष्टता यह है कि इन्हें मन्द्र अन्तराल में गाया जाता है जिससे कि कलाकार राग को विकसित कर सकता है और उसे राग के संचार का पूरा अवसर मिल जाता है। मन्द्र अन्तराल में गाने का दूसरा लाभ यह भी है कि श्रोताओं को गीत के भाव या अर्थ को समझने में आसानी रहती है और कलाकार भी सरलतापूर्वक भाव की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति कर सकता है। गीत को इस प्रकार से गाने से सुर और अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए पूरा अवसर रहता है।

गीत विशेष को गाने के लिए विशिष्ट राग अपनाई जाती है जो उसके भाव के अनुकूल होती है। यदि इन पदों को उन विशिष्ट रागों में गाया जाय तो शब्दों की योजना इस प्रकार की गई है कि सम्पूर्ण गीत में राग विकासमान होती हुई दिखाई देती है और इनमें से अधिकांश गीतों में पल्लवी में ही राग का पूर्ण विकास दिखाई देता है। भक्ति की रागनियों में आनन्द सेहानी, उसेनी, इदुकला, कम्बोजी, नीलम्बरी आदि को हिन्दु महिलाएँ संगीतशास्त्र में शिक्षित पुरुषों की अपेक्षा प्रभावपूर्ण ढंग से गाती हैं। इन रागों को गाने के लिए नारी कण्ठ बहुत उपयुक्त है और क्षेत्रय्या के पद जिनकी रचना इन रागों में हुई है अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से गीतों के सुरों और राग को अभिव्यक्त करते हैं।

क्षेत्रय्या के पदों का सबसे अधिक महत्व तो इस बात के कारण है कि वे केवल संगीत के आवश्यक तत्त्वों से पूर्ण या संगीत कला की विशेषताओं और राग के भावों से युक्त ही नहीं हैं वरन् अभिनय में भावों के सूक्ष्म परिवर्तनों की अभिव्यक्ति के सर्वोत्तम साधन भी हैं, जैसे इसी के लिए उनका सृजन हुआ है। अतः अभिनय में भावों को प्रदर्शित करने के लिए इन पदों का प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः क्षेत्रय्या के पद भरत नाट्यम् के कलाकारों के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं। भरत नाट्यम् के प्रदर्शन में क्षेत्रय्या के एक या दो पदों को रखे बिना कार्यक्रम अपूर्ण ही रहता है। अभी कुछ समय पहले तक भरत नाट्यम् एक जाति विशेष की सम्पदा समझा जाता था जो मन्दिरों में नृत्य करती थी। परन्तु उस कला की ओर वर्तमान समय में जन-सामान्य का ध्यान आकृष्ट हुआ है। फलतः भरत-नाट्यम् हमारे देश की कलाओं में अपना प्राचीन गौरव प्राप्त कर रहा है। भरत नाट्यम् के कलाकारों के लिए चाहे वह पुरुष हो या नारी अपनी कला में दक्ष होने के लिए क्षेत्रय्या के कुछ पदों पर अधिकार प्राप्त करना आवश्यक है।"

॥

हालैण्ड में संस्कृत का अध्ययन

मद्रास के अंग्रेजी दैनिक 'हिन्दु' के रविवारीय संस्करण में श्रीयुत डा० वी. राघवन का 'हालैण्ड में संस्कृत का अध्ययन' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसका निम्न अंश यहाँ दिया जा रहा है :

"केवल मात्र एक टैकनिकल यूनिवर्सिटी को छोड़कर हालैण्ड के चारों विश्व-विद्यालयों—लैडन, एमस्टरडम, यूट्रेच और ग्रोनिनगेन में संस्कृत के अध्ययन की ओर अधिकाधिक रुचि बढ़ रही है। इनमें से प्रथम तीन विश्व विद्यालयों में तो संस्कृत का पूरा विभाग है जिससे सम्बन्धित सभी अध्यापक पश्चिम में संस्कृत और भारतीय विषयों के अध्यनन के लिए सर्वप्रसिद्ध हैं। लैडन में सर्वप्रथम १८६५ ई० में संस्कृत विभाग की स्थापना हुई थी। और उसके आचार्य अनेक भाषाओं के ज्ञाता और अनेक ग्रंथों के रचयिता प्रसिद्ध लेखक एच. केरन थे (१८३३-१९१७) जिनके बड़े ग्रन्थों को यदि छोड़ दें तो भी उनकी केवल विविध रचनाएँ ही पन्द्रह भागों में विभाजित तथा सत्रह जिल्दों में संकलित हैं। उनके शिष्यों में जे. एम. स्पियेर ने संस्कृत में लिखित बौद्ध-साहित्य का विशेष अध्ययन किया था। उनके अन्य प्रधान शिष्य डब्ल्यू. सालांड और सी. एस. यूलेनबेक थे। यह उचित ही है कि लैडन में उनके नाम से एक संस्था ही स्थापित की गई जहाँ भारतीय पुरातत्त्व का अध्ययन किया जाता है और अत्यन्त उपयोगी जौर सुप्रसिद्ध वार्षिक पत्र 'भारतीय पुरातत्व की ग्रन्थ-सूची' प्रकाशित होता है। इस अन्तिम और अन्य कार्यों के लिए सबसे बड़ी कठिनाई यह रहती है कि भारत से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें हालैण्ड में आसानी से प्राप्त नहीं हो सकतीं। 'केरन इन्स्टिट्यूट' एक नृवंश संग्रहालय में स्थित है जो कि हिन्देशिया की शिल्प मूर्तियों और हिन्दु-जावा युग की प्राचीन

वस्तुओं का अच्छा संग्रहालय है और यहाँ शोध-कार्य के लिए एक पुस्तकालय भी है जिसमें भारतीय विषयों पर मुद्रित पुस्तकें और संस्कृत के ४०० हस्तलिखित ग्रन्थ संगृहीत हैं जिनमें से अधिकांश डॉ० वन मानेन ने उस समय संग्रह करके भेंट किए थे जब कि वे अडियार और कलकत्ता में निवास करते थे। केरन इन्स्टिट्यूट में समय समय पर नवागतों और अन्य विद्वानों के भाषण आयोजित किए जाते हैं। उसके सदस्यों को सम्बोधित करने का मुझे भी गौरव मिला था। सदस्यों में से डॉ० जी. पी एच. वोगल ने मेरा परिचय कराया। मैंने प्राचीन भारतीय मेलों के सम्बन्ध में भाषण दिया था। आजकल इस संस्था के अध्यक्ष प्रो० बोस्क हैं। प्रो० बोस्क पहले हिन्देशिया में डॉ० एन. जे. क्रोम के बाद उनकी जगह कार्य कर चुके थे। क्रोम महोदय ने नीदरलैण्ड हिन्देशिया पुरातत्व विभाग को संगठित किया था जिसके हम इस बात के लिए अभारी हैं कि उसके प्रयत्नों से हिन्देशिया में हमारे देश की अनेक सांस्कृतिक प्राप्तियों का पता चला। प्रो० बोस्क हिन्देशियाई और भारतीय कला के विशेषज्ञ हैं और उन्होंने "हिरण्यगर्भ" नाम की एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने अपना यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि भारतीय, हिन्देशियाई और केमर शिल्प-कला में प्रयुक्त विचार और प्रतीक यथा-—मकर, काल-मुख, आदि की उत्पत्ति पौराणिक जानवरों से न होकर पुष्पों के आकार से हुई है। अपने इस डेनिश भाषा में लिखे हुए ग्रन्थ का वे अंग्रेज़ी रूपान्तर प्रकाशित करनेवाले हैं। डॉ० पी. एच. पॉट इस संस्था के मन्त्री और प्रतिभाशाली नवयुवक विद्वान् हैं। उन्होंने अपने 'योग और यन्त्र' प्रबन्ध पर डाक्टर की पदवीं प्राप्त की है और तिब्बत के साहित्य के संग्रह पर उन्होंने भूमिका लिखी है जो लेडन के 'राष्ट्रीय नृवंश संग्रहालय' में सुरक्षित है। वे भारत में रहे थे और उनकी भारतीय कला और भारतीय पुरातत्त्व में विशेष रुचि है। इन्स्टिट्यूट के लायब्रेरियन श्री केल्डकर संस्कृत के उत्साही अध्येता हैं और उच्च डिग्री प्राप्त करने के लिए अध्ययन कर रहे हैं।

लैडन विश्व–विद्यालय में प्रो० कूपर संस्कृत पढ़ाते हैं। वैदिक भाषा और वेदों और ईरानी ग्रन्थों का अध्ययन उनका विशिष्ट विषय है और अन्य सामान्य विद्यार्थियों के अतिरिक्त दो विद्यार्थी उनके पास शोध का कार्य कर रहे हैं। द्राविड़ी और मुण्डा भाषाओं में भी उनकी रुचि है और उनके एक ग्रन्थ का विषय संस्कृत पर मुण्डा भाषा का प्रभाव दर्शाना ही है।

एमस्टरडम में संस्कृत के प्राध्यापक भाषाविद् श्री यूलेनबेक थे जिनके ध्वनि-नियमों का हम तुलनात्मक भाषा-विज्ञान में अध्ययन करते हैं। बाद में श्री फादेगोन ने इस पद को सम्हाला। इन्होंने 'वैशेषिक दर्शन' पर एक ग्रन्थ लिखा। इस समय गेन्ट के प्राध्यापक शारपा इस पद पर हैं।

एमस्टरडम में 'अयन क्षेत्रों के संग्रहालय' में जावा के संगीत के विशेषज्ञ श्री कुन्स्त के संरक्षण में भारतीय जावा पुरातत्त्व सामग्री रखी गई है। श्री कुन्स्त ने हाल ही में यूगोस्लाविया के पहाड़ी लोक संगीत का संग्रह करने के लिए वहाँ यात्रा की और उन्हें पता चला कि ये लोग सर्प-पूजा करते हैं और अपने क्षेत्र में उसे 'नाग' नाम से पुकारते हैं। यहाँ के राष्ट्रीय संग्रहालय में काँसे की भारतीय प्रतिमाएँ संगृहीत हैं।

यूट्रेच में संस्कृत विभाग के सर्वप्रथम अध्यक्ष श्री वैदिक (Vaidik) थे। वर्तमान समय में अध्यक्ष श्री जे. गोण्डा निश्चय ही हालैण्ड में संस्कृत के सबसे महत्त्वपूर्ण विद्वान् हैं। इस समय वे विष्णु सम्बन्धी आरम्भिक विचारों के अध्ययन में लगे हैं। इस समय उनके पास संस्कृत के आठ शिष्य हैं जो केवल संस्कृत या शास्त्रीय विषय (Classics) के अंतर्गत संस्कृत का अध्ययन कर रहे हैं। उच्च डिग्री प्राप्त किये हुए उनके शिष्यों में से श्री जे. एच. बी. वान बुइतेनेन ने रामानुज के 'गीता-भाष्य' पर एक पुस्तक लिखी है और उनके 'गीता-भाष्य' का संक्षिप्त अंग्रेज़ी अनुवाद भी किया है। उन्होंने डच भाषा में कुछ संस्कृत की कथाएँ भी लिखी हैं। श्री बुइतेनेन शीघ्र ही भारत आनेवाले हैं और यहाँ वे जावा भाषा पढ़ाने का कार्य और विशिष्टाद्वैत का और भी गम्भीर अध्ययन करना चाहेंगे।

डा. के. डी. ब्रेइसी पाली और अपभ्रंश का अध्ययन कर रहे हैं। अस्सी वर्ष से अधिक परन्तु "विद्या अर्जन" के लिए "अजर अमर" डॉ० वोगेल इस समय "भारतीय कला और साहित्य में हंस" विषय का अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने अभी डच भाषा में 'मृच्छकटिक' का संशोधित संस्करण निकाला है। इस भाषा में संस्कृत के आठ नाटक रूपान्तरित मिलते हैं जिनमें से 'शकुन्तला' और 'मृच्छकटिक' का हालैण्ड में एक से अधिक बार रंगमंच पर अभिनय भी किया जा चुका है।"

सम्पादकीय

लिपि की एकता का प्रश्न

समस्त राष्ट्र में लिपि की एकता के प्रश्न को उठाया जा रहा है। यह कहा जा रहा है कि यदि भारत के समस्त राज्यों की भाषाओं की एक ही नागरी लिपि हो जाए तो एक तो एक लिपि का पूर्ण रूप से विकास हो सकेगा दूसरा भारत के भिन्न भिन्न राज्यों की भाषाओं को सीखने में भी बहुत सुगमता हो जाएगी। इस विषय में "नागरी-लिपि-सुधार-परिषद्" में श्री राधाकृष्णन ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहा : "……हमारे समस्त राष्ट्र में एक प्रकार की लिपि दो लिपियों के रूप में होनी चाहिएँ। एक तो नागरी लिपि और दूसरी रोमन लिपि के रूप में। यदि दोनों लिपियों का साथ साथ प्रयोग किया जाएगा तो इससे हम संस्कृत और पाश्चात्य संस्कृति से निकट सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे। भारतीय भाषाओं में वर्णमालाएँ तो एक जैसी हैं परन्तु लिपियाँ भिन्न भिन्न हैं। हम रोमन अक्षरों को भी संस्कृत की वर्णमाला के ढंग पर बना सकते हैं। इससे हिन्दी अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में सुगमता से पढ़ी जा सकेगी।……यह कहा जाता है कि रोमन लिपि भी यूरोपीय नहीं है वह वास्तव में एशिया से ही ली गई है। नागरी लिपि को भारत की समस्त भाषाओं के लिए प्रयुक्त किए जाए—इस बात पर हमें सावधानी से विचार करना होगा। हमारे देश में संस्कृत के लिए भी नागरी लिपि का प्रयोग कुछ बहुत पुराना नहीं है। यूरोप के संस्कृत के विद्वानों के प्रयत्नों से संस्कृत को नागरी लिपि में लिखा जाने लगा।……उससे पहले संस्कृत को भी बंगाली, आसामी, उड़िया, नेपाल की नेवारी, काश्मीर की शारदा, मैथिली, तेलुगु, कन्नड़, तामिल में ग्रन्थ में और मलयालम में लिखा जाता था। एकमात्र राजस्थान, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और हिन्दी के क्षेत्रों में संस्कृत को नागरी लिपि में लिखा जाता था। यह कहना कि देशीय लिपियों को हटा कर नागरी लिपि का प्रयोग किया जाए क्रियात्मक नहीं प्रतीत होता। स्थानीय और नागरी लिपियाँ पुरानी ब्राह्मी लिपि से ली गई हैं। जब हमारे राष्ट्र के समस्त राज्यों के लोग और नागरी लिपि को साधारणतया स्वीकार कर लेंगे उस समय वे वैकल्पिक रूप से इस लिपि का प्रयोग कर सकेंगे। इन विषयों में स्वाभाविक विकास ही हमारा तरीक़ा होना चाहिए न कि किसी प्रकार का सरकारी दबाव.....।"

श्रीयुत राधाकृष्णन ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भारत में लिपि के एकता के प्रश्न पर अपने विचार नहीं प्रकट किए। यदि सब भारतीय भी भाषाओं की एक ही लिपि हो जाए तो इससे भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों की भाषा को जानने में सुविधा हो जाएगी और वे एक दूसरे के निकट सम्पर्क में सुगमतया आ सकेंगी। कम से कम उनमें लिपि की भिन्नता तो नहीं रह जाएगी। उन्होंने अपने भाषण में यह स्वीकार किया है कि इन सब भाषाओं की वर्णमाला एक-सी है परन्तु उन्होंने लिपि की एकता की आवश्यकता पर कुछ विशेष बल नहीं दिया। इसके विपरीत उन्होंने यह कहा कि संस्कृत के ग्रन्थ नागरी लिपि में यूरोपीय विद्वानों के कारण लिखे जाने लगे और उनसे पूर्व भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में संस्कृत अपनी प्रादेशीय लिपियों में ही लिखी जाती थी। वे यह समझते हैं कि वर्तमान समय में नागरी लिपि के लिए प्रादेशिक लिपियों का स्थान लेना क्रियात्मक नहीं है और यदि नागरी उनका स्थान ले तो वह धीरे-धीरे और वह भी "वैकल्पिक" रूप से। उन्होंने अपने भाषण में रोमन लिपि का पक्ष लिया है। उनके विचारों में रोमन लिपि को लेने से एक तो हम पाश्चात्य संस्कृति के निकट आ जाएँगे और दूसरा इसके द्वारा अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी को आसानी से लोकप्रिय बना सकेंगे। वे इसे रोमन लिपि की वर्णमाला के ढंग पर ढाल देना चाहते हैं। क्या यह संभव हो सकता है और क्या यह प्रस्ताव क्रियात्मक है? अहिन्दी भाषी राज्यों की अधिकांश जनता रोमन लिपि से सर्वथा अपरिचित है। उनमें हिन्दी रोमन लिपि द्वारा किस प्रकार लोकप्रिय बनाई जा सकती है इसे समझना कठिन है। समस्त हिन्दी के साहित्य को रोमन लिपि में प्रकाशित करना भी सम्भव प्रतीत नहीं होता जब कि दोनों लिपियों में इस साहित्य को प्रकाशित करना होगा। यूरोपीय संस्कृति की निकटता से अधिक आवश्यकता इस बात की है कि भारत के प्रान्त एक दूसरे के अधिक निकट आएँ और समस्त भाषाओं की एक लिपि की इसी के लिए परम आवश्यकता है। इसमें सरकारी तौर से किसी लिपि के लादने का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि जनमत की

स्वीकृति के बिना प्रजातन्त्र देशों में इस प्रकार के परिवर्तनों का करना किसी प्रकार संभव ही नहीं हो सकता ।

शिक्षक और उनकी आजीविका

हमारे देश में शिक्षकों का वेतन असन्तोषजनक है और उसमें अवश्य सुधार होना चाहिए परन्तु क्या अध्यापकों के वेतन में वृद्धि हो जाने से ही हमारे देश की शिक्षा की समस्या हल की जा सकती है ? शिक्षकों के कम वेतन से तो स्पष्टतया इसी बात का ज्ञान होता है कि हमारे देश में शिक्षा का क्षेत्र सबसे अधिक उपेक्षित है । जब तक इस शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन नहीं होगा तब तक एक तो शिक्षकों के वेतन में भी कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ सकता और दूसरा यदि उसमें परिवर्तन भी हुआ तो भी इसका शिक्षा के क्षेत्र पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ सकता । हमारे देश में शिक्षा की अवनति का कारण जितना हमारी शिक्षा-प्रणाली है उतना शिक्षकों का कम वेतन होना नहीं । हमारा यह लिखने से यह तात्पर्य नहीं है कि हमारे देश में शिक्षकों को उचित वेतन दिया जाता है या उसमें सुधार नहीं होना चाहिए । शिक्षकों को उचित वेतन अवश्य दिया जाना चाहिए परन्तु क्या वेतन में उन्नति हो जाने से शिक्षक वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में या शिक्षा की स्थिति में कुछ विशेष परिवर्तन कर सकेंगे ?

अभी पिछले दिनों दिल्ली-विश्वविद्यालय में केन्द्रीय शिक्षा-संस्था (Central Institute of Education) का छठा वार्षिकोत्सव हुआ था जिसके अध्यक्ष थे भारत के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री श्रीयुत डा० अमरनाथ झा। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में अध्यापकों के वेतन की उन्नति का प्रबल समर्थन किया । उन्होंने कहा... "वैसे तो समस्त विश्व में ही अध्यापकों को कम वेतन दिया जाता है परन्तु हमारे देश में इस विषय में अवस्थाएँ और भी अधिक शोचनीय हैं । हमारे देश में कोई व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र को तभी ग्रहण करता है जब कि वह अन्य समस्त क्षेत्रों से सर्वथा निराश हो जाता है । उसे इतना वेतन नहीं प्राप्त होता जिसमें वह अपना गुज़ारा भी कर सके। एक भूखा और असन्तुष्ट शिक्षक समस्त राष्ट्र के लिए एक अभिशाप है क्योंकि प्रारम्भ में ही वह जीवन के स्रोत को विषयुक्त कर देता है...।" हमारे देश में सरस्वती और लक्ष्मी का सम्बन्ध प्रायः असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य समझा जाता रहा है । इसीलिए कुछ ऐसा विश्वास-सा प्रचलित हो गया है कि लक्ष्मी और सरस्वती प्रायः एक स्थान पर निवास नहीं करतीं । "अस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च" और इसी प्रकार "संगतं श्रीसरस्वत्योः" आदि कालिदास की उक्तियाँ इसी प्रचलित विश्वास को परिपुष्ट करती हैं । प्रश्न यह है कि क्या एक अध्यापक आर्थिक दृष्टि से असन्तुष्ट होने के कारण समस्त राष्ट्र के लिए अभिशाप रूप है और क्या वह भूखा रहने के कारण ही 'जीवन के स्रोत को विषाक्त कर देता है...।' सत्य तो यह है कि इस देश के अध्यापकों ने भूखे रह कर भी शिक्षा प्रदान करने का प्रयत्न किया है। इस आर्थिक युग में सब वस्तुएँ आर्थिक तुला में ही तोली जाती हैं और यहाँ तक कि सरस्वती का गौरव भी आर्थिक दृष्टि से ही किया जाता है । यह समझा जा रहा है कि यदि शिक्षकों को उच्च वेतन दिया जाएगा तो हमारे राष्ट्र के उत्तम दिमागवाले व्यक्ति और विद्वान् शिक्षा के क्षेत्र के प्रति वैसे ही आकर्षित होंगे जैसे कि वे अपने देश के प्रशासन के क्षेत्र के प्रति आकर्षित होते हैं । अध्यापकों में अपने वेतन के प्रति असन्तोष है और उसे अवश्य दूर किया जाना चाहिए । अध्यापकों के वेतन का इतना कम होना कि वे अपना गुज़ारा तक न कर सकें हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का ही एक अंग है और जब तक इसमें परिवर्तन नहीं होगा इस विषय में भी कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हो सकता । भूखा शिक्षक और अध्यापक ही क्यों --कोई एक भी भूखा और असन्तुष्ट व्यक्ति समस्त राष्ट्र के लिए अभिशाप रूप है । हमारा समस्त शिक्षा का क्षेत्र ही जीवनहीन है और हमारी समस्त शिक्षा-प्रणाली एक अभिशाप से कम नहीं है । इस शिक्षा-प्रणाली का आधार भी मुख्यतया आर्थिक है—शिक्षा का प्रसार या विस्तार नहीं । परिणाम यह है कि हमारे देश में आज विद्या के प्रति विशेष प्रेम या आकर्षण दृष्टिगोचर नहीं होता । हमारे देश का प्रशासन भी शिक्षा की समस्याओं के प्रति उदासीन है । एक सच्चे अध्यापक के लिए विद्या की प्रगति और उन्नति जितना बड़ा प्रलोभन हो सकता है क्या अर्थ का प्रलोभन उतना बड़ा हो सकता है ? भूखे और असन्तुष्ट अध्यापक जीवन के स्रोत को उतना विषयुक्त नहीं कर रहे हैं जितना कि हमारे देश की शिक्षा-प्रणाली इसे विषयुक्त कर रही है । हमारे देश की शिक्षा-प्रणाली ही

निर्जीव है। यदि हमारे देश की शिक्षा प्रणाली में ही आमूल परिवर्तन किया जाएगा तो शिक्षकों की आर्थिक समस्या स्वयमेव बहुत कुछ हल हो जाएगी।

संयुक्त-राष्ट्र-संघ और सामूहिक योजनाएँ

प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त में लीग आफ़ नेशन्स की स्थापना की गई थी जिससे कि राष्ट्रों में पारस्परिक झगड़ों को शान्तिपूर्वक निपटाया जा सके परन्तु शक्तिशाली राष्ट्रों की स्वार्थपरता ने लीग आफ़ नेशन्स जैसी समस्त राष्ट्रों की संस्था को सफल न होने दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र-संघ की स्थापना उन्हीं महान् उद्देश्यों को लक्ष्य में रख कर की गई। संयुक्त राष्ट्र-संघ जैसी महान् संस्था उसी अवस्था में सफल हो सकती है यदि एक तो उसे समस्त राष्ट्रों का सहयोग प्राप्त हो और दूसरा राष्ट्रों के पारस्परिक वैमनस्य और झगड़ों के अपनी स्वार्थपरता की दृष्टि से नहीं परन्तु अपने महान् उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए युक्तिसंगत समय में निष्पक्ष और न्याय पूर्ण निर्णय किए जाएँ। संयुक्त राष्ट्र-संघ में कुछ सदस्य तो विशेष रूप से शक्तिशाली हैं और अन्य राष्ट्र वैसे शक्तिशाली नहीं हैं। शक्तिशाली राष्ट्र एक तो अपने मामलों को संयुक्त राष्ट्र संघ में उचित रीति से ले ही नहीं जाते; वे अपनी शक्ति पर जितना निर्भर करते हैं उतना संयुक्त-राष्ट्र-संघ की शक्ति पर नहीं और दूसरा जो मामले वहाँ पेश होते हैं उनका निर्णय जितना वे अपनी स्वार्थपरता की दृष्टि से कराना चाहते हैं उतना निष्पक्ष हो कर मानवोचित न्याय की दृष्टि से नहीं। इसका परिणाम यह है कि संयुक्त राष्ट्र-संघ जिस प्रकार की शक्तिशालिनी संस्था बननी चाहिए वह उस प्रकार की संस्था नहीं बन पाती। अन्ततः न्याय शक्ति के हाथों में खेलनेवाला एक खिलौना नहीं बन सकता। द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति पर एक ओर तो संयुक्त-राष्ट्र-संघ की स्थापना की गई और दूसरी ओर यूरोप का एकीकरण करके वहाँ संयुक्त-सैनिक-प्रतिरक्षा की योजना प्रारम्भ की गई। इसी प्रकार मध्य पूर्व में प्रतिरक्षा की योजना बनाई गई। यदि किसी राष्ट्र को किसी अन्य राष्ट्र से शिकायत है तो वह संयुक्त-राष्ट्र-संघ में आनी चाहिए। यदि विश्व के राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़ों को शान्तिपूर्वक सुलझाना हो तो उन्हें संयुक्त-राष्ट्र-संघ में समस्त राष्ट्रों के सम्मुख शान्तिपूर्वक सुलझाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए परन्तु जब शक्तिशाली राष्ट्र विश्व के राष्ट्रों के बीच में शान्ति की स्थापना करने में संयुक्त-राष्ट्र-संघ को असमर्थ समझते हैं या असमर्थ बनाते हैं तो वे स्वयं ही इस प्रकार की महान् संस्थाओं को असफल बनाने का निमित्त बनते हैं। शक्तिशाली राष्ट्र जब सैनिक योजनाएँ बना कर लड़ने की पूरी तरह तैयारी कर रहे हैं और दूसरे निर्बल राष्ट्रों को आर्थिक, सैनिक या अन्य प्रकार की सहायता देकर लड़ाई के समय अपने साथ मिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं तो क्या वे संयुक्त-राष्ट्र-संघ जैसी महान् संस्थाओं की स्थिति को उपहासास्पद नहीं बना रहे जिसकी कि उन्होंने स्वयं मिल कर स्थापना की है। प्रश्न यह है क्या भिन्न भिन्न देशों में सामूहिक सैनिक योजनाएँ बना कर विश्व में शान्ति स्थापित की जा सकती है? यदि इसी प्रकार प्रत्येक शक्तिशाली राष्ट्र भिन्न भिन्न राष्ट्रों में सामूहिक सैनिक योजनाएँ बनाएँ तो संयुक्त-राष्ट्र-संघ से क्या विशेष लाभ हो सकता है?

अभी पिछले दिनों भारत स्थित अमरीकी राजदूत श्री जार्ज एलन ने अमेरिका और पाकिस्तान के पारस्परिक सैनिक समझौते के विषय में अपने एक वक्तव्य में कहा: "अमेरिकी सरकार ने यह अनुभव किया है कि रूसी आक्रमण पर प्रभावपूर्ण अंकुश लगाने के लिए संयुक्त-राष्ट्र संघ पर्याप्त शक्तिशाली नहीं है। इसलिए स्वतन्त्र राष्ट्रों के लिए सामूहिक सुरक्षा का आयोजन किया जा रहा है।" यदि संयुक्त-राष्ट्र-संघ पर्याप्त शक्तिशाली नहीं है तो यह किसका दोष है? यदि अमेरिका अपनी शक्ति लगा कर "स्वतंत्र राष्ट्रों के लिए सामूहिक सुरक्षा का आयोजन" कर सकता है तो क्यों वह अपनी शक्ति के द्वारा संयुक्त-राष्ट्र-संघ को शक्तिशाली नहीं बना सकता। इस प्रकार की सामूहिक सैनिक योजनाओं से यह संभव है कि कुछ राष्ट्र अपने को सुरक्षित समझ लें परन्तु इससे "आक्रमण पर प्रभावपूर्ण अंकुश का लगाया" जाना कैसे सम्भव हो सकता है? इससे जहाँ एक ओर संयुक्त-राष्ट्र-संघ खोखला और निःशक्त बनेगा वहाँ विश्व में शान्ति सद्भावना और विश्वास के आधार पर उत्पन्न नहीं हो सकेगी। संयुक्त-राष्ट्र-संघ को एक जीवित और जाग्रत संस्था बनाने के लिए "सामूहिक सुरक्षा आयोजनाओं" से अधिक राष्ट्रों की पारस्परिक सद्भावनाओं में विश्वास रखने की आवश्यकता है।

अखिल

भारतीय
औद्योगिक
प्रदर्शिनी

हैदराबाद

१ जनवरी से १० फरवरी १९५४

प्रतिदिन खुलने का समय

मध्यम ३ बजे से सायं ६ बजे तक

इन स्थानों को देखना न भूलें

- ❀ व्यापार मेला
- ❀ प्रदर्शन शाखा
- ❀ अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक कला प्रदर्शिनी
- ❀ मनोरंजन-उपवन

मिस्टर हैदराबाद प्रतियोगिता,

स्त्रियों और पुरुषों के खेलकूद,

उद्यान का प्रदर्शन,

बच्चों का प्रदर्शन,

बतख़ों-चिड़ियों आदि का प्रदर्शन

दिन-प्रतिदिन के कार्यक्रम के विशेष आकर्षण होंगे।

स्थान : मुकर्रमजाही रोड, हैदराबाद दक्षिण.

काशक:— प्रियबन्धु, हिन्दी प्रेस, हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हिन्दी भवन, हिन्दी मार्ग, नामपल्ली हैदराबाद-द.

हृदय रोगों की उपेक्षा करना हानिप्रद है !

- कभी कभी नाड़ी का रुक रुक कर चलना
- मूर्च्छा की सी दशा होना
- थकान और पीड़ा का अनुभव
- तेज़ साँस चलना
- चेहरे पर नीलापन
- दाँई बाँह में दर्द
- टाँगों का सूजना, हृद्गति का बढ़ना और तुरन्त सर्दी लगना

ये सब हृदय रोग के निश्चित लक्षण हैं।

नवरत्न कल्प

(हीरा, मानिक, मोती, नीलम पुष्पराग तथा अन्य बहुमूल्य नौ रत्नों का यौगिक)

के सेवन से

हृदय रोगों में पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कीजिए।

आविष्कर्त्ता

कविराज पं० दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति

विवरण के लिए लिखि
प्रबन्धक
नवरत्न कल्प फार्मे
जालंधर शहर (इंडि

तार : नवरत्न

फोन : ४०१

egd. 41

2-48

अजन्ता

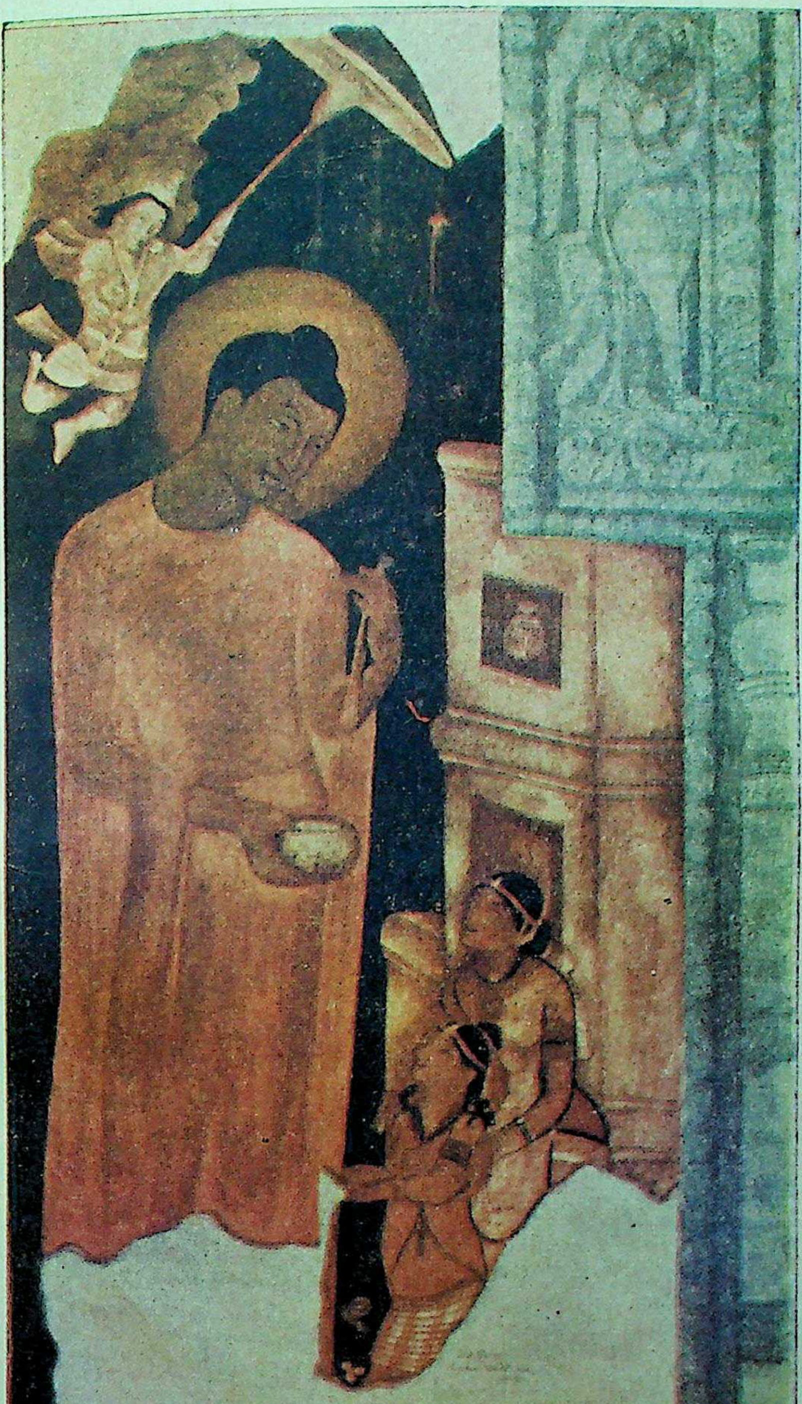

के लिए लिखि

प्रबन्धक

कल्प फार्मे

शहर (इंडि

वर्ष ६ फरवरी १९५४ अंक २

हैदराबाद राज्य हिंदी प्रचार सभा

बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के

शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

'अजन्ता'

की

परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच-डी.
जनरल सेक्रेटरी,
इन्सटीच्यूट ऑफ एशियन स्टडीज, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुखर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल आफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद-द.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच-डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

"**अजन्ता**" का वार्षिक मूल्य :— ६)   एक अङ्क का :— १)

आवश्यक सूचना :— नमूने की प्रति के लिए १ रु० म. ऑर्डर द्वारा अग्रिम भेजिए ।

जे. बी. ग्लुकोस बिस्किट

जो कोई

जे.
बी.
ग्लु
को
स

MANGHARAM'S
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
MANGHARAM'S
J.B.GLUCOSE
BISCUITS

इसको चख चुका है, उसके आनन्ददायक स्वाद तथा पौष्टिकता के गुण के कारण हमेशा, उसी को खरीदता है।

बच्चों के लिए आदर्श भोजन!

मलाईयुक्त दूध और ग्लुकोस से बना......।

नकली बिस्किटों से होशियार! विश्वास तथा पवित्रता के लिए...

जे. बी.

निशान को देखिये.

तालाब कट्टा
एजेन्टस

जे. बी. मन्घाराम अण्ड कं.

हैदराबाद-दक्षिण

स्वादिष्ट भोजन
और
रहने की उत्तम व्यवस्था के लिए
अवश्य पधारिए

नामपल्ली हैदराबाद द०
फोन ५४६२

रायल होटल

The Royal Hotel
ESTD. 1929
PHONE • 5462

Nampally, Hyderabad-Dn.

Just two minute's walk from
Railway Station

अवन्तिका का काव्यालोचनांक

(द्वितीय वर्ष का प्रथम अंक)

सम्पादक
लक्ष्मीनारायण सुधांशु

वार्षिक १०)
इस अंक का ३)

- जिसमें हिन्दी कविता के सभी युगों और प्रायः सभी पद्यों की व्याख्या अधिकारी अलोचकों द्वारा की गई है।
- जिसमें संस्कृत और अंग्रेज़ी के आचार्यों के समीक्षा सिद्धान्तों के सुचिन्तित विवेचन हैं।
- जिसमें छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद पर बीसों लेख रहेंगे।
- जो हिन्दी-कविता के सिंहद्वार की एक नई कुंजी प्रस्तुत के करता है।

आज ही मँगाइए :

:: प्रकाशक ::

श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना—४

त्रैमासिक

आलोचना

के

दो विशेषांक

इतिहास विशेषांक-अक्तूबर १९५२

५) रु०

३) रु०

विशेष रूप से संग्रहणीय हैं।

इन दोनों अङ्कों में प्रकाशित लेख हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास का अद्वितीय आकलन बन गए हैं।

वार्षिक-१२) रु० ❀ प्रति-३) रु०

राजकमल प्रकाशन

१ फ़ैज़, बाज़ार दिल्ली

हमेशा याद रक्खें?

हमारे पास सोने की मोहरें तो नहीं

रबर की सुन्दर

मोहरें तैयार की जाती है।

घर बैठे
आर्डर
भेज कर
सुन्दर
मोहरें
प्राप्त करें।

सुंदर
रब्बर की मोहरें
हर प्रकार व हर
भाषामें बनाई जाति हैं
सुलतान बाजार
सन्मुख तार ऑफिस
हैद्राबाद - ८.

సుందర్
రబ్బరు ముద్రలు
అన్నివిధముల
అన్నిభాషలలో చేయ
బడును సుల్తాన్ బాజారు
తౌరాఫీసు ఎదుట
హైద్రాబాద్.

Sunder
ALL KINDS OF RUBBER STAMP MAKERS
SULTAN BAZAR opp TELE OFFICE
HYDERABAD.

इसे आप कभी मत भूलिए!

ट्वीड्, गेबरडीन, पनामा, सिल्क शर्टिंग

आदि का हमारा नया स्टाक आपकी पसन्द की अवश्य ही पूर्ति करेगा।

आर. पेण्टोजी
क्लॉथ मर्चेण्ट

पत्थरगट्टी, हैदराबाद (दक्षिण)

●

तार का पताः-'ट्वीड्' फो. नं. ४७६९

फाउण्टेन पेन जिसकी सबसे अधिक मांग है

लीडर

भारत में बने हुए फाउण्टेन पेनों में सर्व श्रेष्ठ

१४ कैरेट सोने की रेडियम
पाइराटेड निब
रोल्ड गोल्ड क्लिप व बॅण्डस्

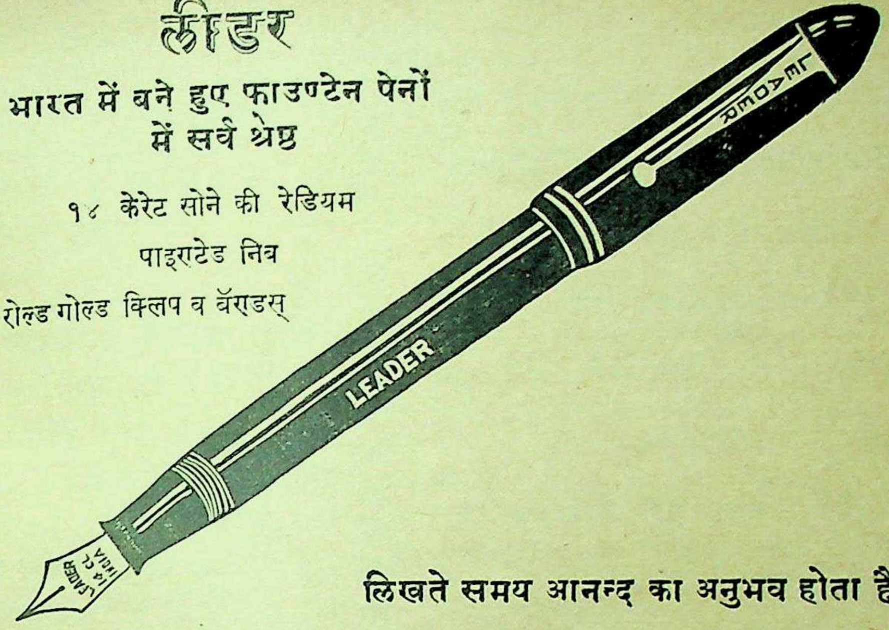

लिखते समय आनन्द का अनुभव होता है ...

मूल्य : ७-८-० से २५-०-० रु. तक

प्राप्ति स्थान : दक्कन पेन स्टोर्स शाहराह-ए-उस्मानी, है. द.

निर्माता : लीडर फाउण्टेन पेन वर्क्स, मेन रोड, राजमुन्दरी (आन्ध्र)

सचमुच सुन्दर वस्त्रों के परिधान से मनुष्य का व्यक्तित्व
निखर उठता है !

याद रखिए !

हमारे पास से आपको हर तरह के सुन्दर वस्त्र मिल सकते हैं।

सिल्क, मखमल, बनारसी व नागपुरी साड़ियाँ
आपको अवश्य मोह लेंगी।

*

एन० नरसिमलू क्लाथ मर्चेण्ट

निकट कोठी सुलतान बाजार, हैदराबाद

Education

Start - in - Life

Marriage of your children

Assured without any

embarrassment

Besides a comfortable old age

for you

for All Types Of Insurance

Consult:-

THE

HYDERABAD CO-OPERATIVE

INSURANCE SOCIETY Ltd.

Bashir Bagh Road, Hyderabad-Dn.

सिकन्दराबाद में साहित्यिक पुस्तकों
का
एक मात्र प्रतिष्ठान

पुस्तक भवन,

११३/१ सरोजनी देवी रोड, सिकन्दराबाद
हिन्दी प्रचार सभा, सिकन्दराबाद
नगर शाखा द्वारा स्थापित
सभी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम, पुस्तकालयों के लिए
उत्तमोत्तम ग्रन्थ, और बाल-साहित्य
हमारी विशेषताएँ

निम्न लिखित
प्रकाशकों की पुस्तकें थोक भाव में हमसे लीजिए:-

१ हिन्दी प्रचार सभा, : : २ विनोद पुस्तक मन्दिर,
हैदराबाद आगरा

हिन्दी के प्रकाशन-क्षेत्र में अभिनव आयोजन

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की समस्त कृतियों का अनमोल संग्रह

बेनीपुरी ग्रन्थावली

दस खण्डों में

पहला खण्ड प्रकाशित हो गया, इसमें श्री बेनीपुरी जी की निम्न कृतियाँ संशोधित परिवर्द्धित रूप में संकलित हैं (पृष्ठ संख्या ६२२, चित्र संख्या १०७, मोनो की छपाई, सुनहरी जिल्द, तिरंगा नयनाभिराम आवरण) माटी की मूरतें, पतितों के देश में, चिता के फूल, गेहूँ और गुलाब, लाल तारा, क़ैदी की पत्नी

बेनीपुरी की लेखनी फौलाद उगलती है
—माखनलाल चतुर्वेदी

यह लेखनी है या जादू की छड़ी है, आपके हाथ में
—मैथिलीशरण गुप्त

प्रति खण्ड मूल्य १२-८-०

पूरी ग्रन्थावली का अग्रिम मूल्य १००-०-०

बेनीपुरी प्रकाशन, : ❀ : पटना ६

१९५४

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

[Estd. MARCH 1915]

Telephone : 4610

Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :
PATHERGATTI, UNIVERSITY
BRANCH (ADIKMET)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMNI,
HYDERABAD-DECCAN.

Branch Office :
THUNGABHADRA PROJECT
(MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at 1½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.

SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
DEPUTY GENERAL MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
SUPERVISING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT.

* * *

FIRE: ACCIDENT: MARINE:

THE HYDERABAD UNITED INSURANCE CO., LTD.,

SPONSORED BY

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164, Abid Road, HYDERABAD-Dn.

Telegram: **HUICOL**

Telephone: **5579**

Chairman:
L. N. GUPTA Esq. I. A. S.,

General Manager:
H. D. MEHTA Esq.

'HIND'

BRANCHES : Bombay, Calcutta, Madras, Nizamabad & Manchirial.

सस्ता, सरल, आकर्षक और शिक्षाप्रद

राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

- कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।
- हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।
- देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं : मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत्, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व, आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)-छपाही ३)-एक प्रति ८ आना।

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

मद्रास बिहार तथा पंजाब सरकार द्वारा
समस्त स्कूल तथा लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत

देशबन्धुः पुस्तकालय मथुरा एवं ब्रज का निराला मासिक पत्र

* प्रधान सं० कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०
* सम्पादक—ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी
* स० सम्पादक—बैजनाथ दाणी

❀ देशबन्धु ❀

वार्षिक मूल्य ४-०-० :: एक प्रति ०-६-०

नमूना के लिए ०-६-० की टिकट भेजें

ब्रज संस्कृति, ब्रज की ललित कलाएँ, स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत कला, रासलीला, रामलीला, भगत ब्रज के लोक गीत, लोक कहानियाँ वेशभूषा, लोक व्यवहार आदि पर सुन्दर लेख पढ़िए।

पता—व्यवस्थापक "देशबन्धु" कार्यालय
मथुरा (यू० पी०)

कथा साहित्य में चरित्र चित्रण का महत्वपूर्ण प्रयोग

'मेघदूत' के महत्वपूर्ण प्रकाशन के बाद
प्रेरणा का छठा-सातवाँ अंक

'प्रेमचन्द के पात्र'

विशेषांक है

* इस अंक में प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों के सभी महत्वपूर्ण पात्रों पर अधिकार पूर्ण लेख है।
* विशेषांक का मूल्य लगभग ४) है।
* प्रेरणा के स्थाई ग्राहकों के लिए वही मूल्य।

शीघ्र ही वार्षिक ग्राहक बन कर
इस सुविधा का लाभ उठाएँ।
आर्डर 'प्रेरणा' के पते से भेजिये।

प्रेरणा : सोजतीगेट, जोधपुर.

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

सम्पादक
श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी. ए.
संचालक—**श्री विश्वेश्वरानन्द,**

विश्व हित की साधना के लिए :

[क] शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
[ख] प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
[ग] बौद्धिक कांति और नई चेतना का जागरण,
[घ] अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
[ङ] सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा : ८) रुपए

१०) रु. वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ़्त।

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, 'विश्व ज्योति' साधु आश्रम,
होशियारपुर (पंजाब)

जीवन साहित्य

हिन्दी के उन मासिक पत्रों में से है जो

१. लोक रुचि को नीचे नहीं, ऊपर ले जाते हैं,
२. मानव को मानव से लड़ाते नहीं, मिलाते हैं,
३. सच्ची और स्थायी शान्ति को असंभव नहीं, संभव बनाते हैं,
४. आर्थिक लाभ के आगे झुकते नहीं, सेवा के कठोर पथ पर चलते हैं,

जीवन साहित्य की सात्विक सामग्री को छोटे बड़े, स्त्री-बच्चे सब निःसंकोच पढ़ सकते हैं। उसके विशेषांक तो एक से एक बढ़ कर होते हैं।

जीवन साहित्य विज्ञापन नहीं देता। केवल ग्राहकों के भरोसे चलता है। ऐसे पत्र के ग्राहक बनने का अर्थ होता है राष्ट्र की सेवा में योग देना।

वार्षिक शुल्क के ४) रु. भेज कर ग्राहक बन जाइए।

ग्राहक बनने पर मण्डल की पुस्तकों पर
आपको कमीशन पाने की भी सुविधा हो जाएगी।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

वार्षिक मूल्य ८ रु. टेलीफोन नं. २५८७३

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम तथा राष्ट्र निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए 'सम्पदा' सबसे उपयोगी पत्र है।

'सम्पदा' के **योजना अंक** में पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा है **वस्त्र उद्योग** अंक मूल्य १।) रु.

अभी से ग्राहक बनिए।

नमूने के लिए ।।।) आने के टिकट भेजिए।

मैनेजर 'सम्पदा' *अशोक प्रकाशन मन्दिर*
रोशन-आरा रोड—दिल्ली

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र

दर्शन और मनोविज्ञान की
आधुनिक प्रवृत्तियों पर
प्रकाश डालनेवाला
हिन्दी में अपने ढङ्ग का
अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ सिद्धगिरि, बनारस

राष्ट्रभारती

सम्पादक
मोहनलाल भट्ट
हृषिकेश शर्मा

सस्ती, सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका। इस पत्रिका को, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान् साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखा-चित्र और शब्दचित्र। बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, उर्दू, तामिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं।

वार्षिक चन्दा ६) रुपए। नमूने की प्रति १० आने मात्र।

ग्राहक बनाने वालों को विशेष सुविधा दी जाएगी

पता : व्यवस्थापक,
'राष्ट्रभारती' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
पो० हिन्दी नगर, वर्धा (मध्य प्रदेश)

After Finest Ice-creams

Ambassador Cafe & Bar

Now Presents
THE FINEST CAKES, PASTRIES
AND BREAD
IN TWIN CITIES
BOOK YOUR ORDERS FOR
RETAIL AND WHOLESALE.

AMBASSADOR CAFE & BAR
LIBERTY BUILDINGS, HYDERABAD-Dn.

THE SCIENTIFIC SYNDICATE

DAMIAN BUILDING
Abid Road, HYDERABAD-Deccan.

Dealers in

Biological Materials And Equipment
Chemical, Physical, Agricultural
And Veterinary Equipment
and
LABORATORY CHEMICALS & STAINS.

76441

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६ फरवरी १९५४ अङ्क २

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

प्रबन्ध सम्पादक

हरिकृष्ण पुरोहित एम. ए.

संचालक

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

ज्योति-हास
आरसीप्रसाद सिंह १

मार्ग और मंजिल
शम्भुनाथ 'शेष' ४

गीन
रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु० मुरलीधर श्रीवास्तव 'शेखर' ५

पनिहारी
जगदीश किशोर चतुर्वेदी 'शलभ' ६

भारतीय चित्रकला में हिन्दु-मुसल्मानों की संयुक्त साधना
क्षितिमोहन सेन
अनु० रामेश्वर प्रसाद मेहरोत्रा ९

आदर्शवादी चित्रकला
रामचन्द्र शुक्ल, एम. एड; पी. डिप. १५

राजा शिवप्रसाद का एक निबन्ध
संकलनकार : के. सजनलाल एम. ए. १८

तेलुगु कहावतें
एम. आर. वर्मा २४

कन्नड़ साहित्य में रामायण की परम्परा
मा. देवेगोड़, "बोम्मरणा" एम. ए. २५

भारतीय लोकगीतों में नारी
कृष्णलाल 'हंस' एम. ए. ३१

वीर-काव्यों में चरित्र-चित्रण की सामान्य प्रवृत्तियाँ
डॉ. टीकमसिंह तोमर, एम. ए; डी. फिल. ३८

महानुभाव पन्थ के कवि नरेन्द्र और रुक्मिणी-स्वयंवर
नारायणराव नांदापुरकर ४०

पृष्ठ संख्या

मेरी काश्मीर यात्रा —(१)
गोपाल गुप्त, एम. ए. ५०

अन्तराल (कहानी)
ललित सहगल ५२

समझौता (ध्वनि रूपक)
अनिलकुमार ६१

राजस्थानी कहावतें
एजाजुल नबी खां 'विशारद' ६५

चिट्ठी-पत्री ६६
कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, देवीशंकर 'अवस्थी' रामनारायण मेहरोत्रा, गोपीनाथ तिवारी, अखिल विनय, कमला दीक्षित, कश्चित्, आदित्य मिश्र

नीर-क्षीर ६९
साहित्य, शिक्षा और संस्कृति : डा० राजेन्द्र प्रसाद, आधुनिक हिन्दी साहित्य परिचायिका : श्री कृष्णदेव प्रसाद, मेरे साहित्यिक अनुभव : श्री किशोरीदास वाजपेयी, रविन्द्रनाथ की लघुकथाएँ : राधेश्याम पुरोहित, कसौटी : कंचनलाल सब्बरवाल-भैरवप्रसाद गुप्त, आत्म-विज्ञान : म. दा. गाडगील, धर्म की धुरी : राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, संताप : बालकृष्ण बलदुआ, पाञ्चजन्य : अर्थ अंक।

सामयिक ७४
[१] अँग्रेज़ी के भिन्न-भिन्न रूप
[२] साहित्य में आदान-प्रदान
[३] नन्दलाल बसु

सम्पादकीय ७८
वंशीधर विद्यालङ्कार
श्रीराम शर्मा

चित्र : जय बजरंग : विश्वनाथ मुखर्जी (चित्रकार के सौजन्य से)

जय बजरंग

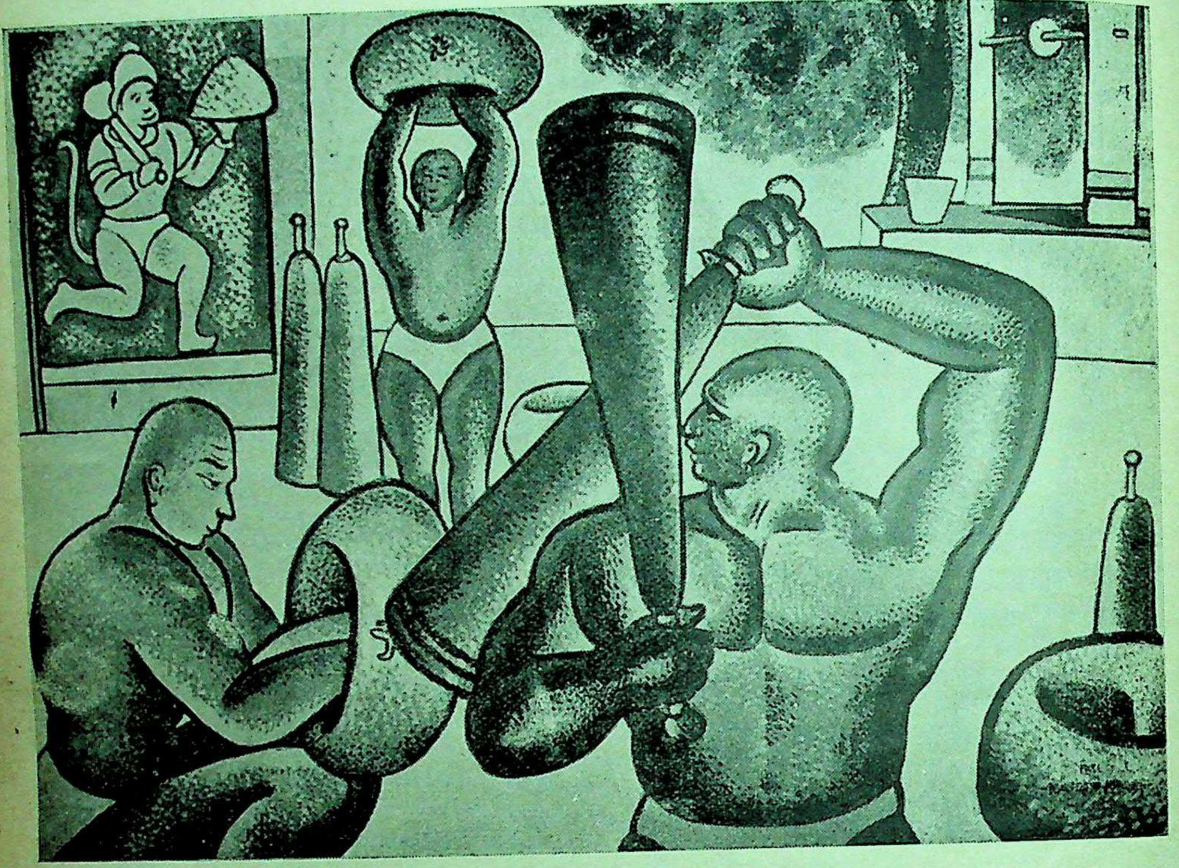

चित्रकार के सौजन्य से

चित्रकार : विश्वनाथ मुखर्जी

['जय बजरंग' चित्र सन् १९५२ में दिल्ली में आयोजित अन्तर्-एशियाई कला-प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया गया था। इस प्रदर्शनी का यह एकमात्र पुरस्कृत चित्र है। यह चित्र हैदराबाद राज्य के मुख्य मन्त्री डा० बी० रामकृष्ण राव के संग्रहालय में संगृहीत है।

श्री विश्वनाथ मुखर्जी लखनऊ स्कूल आफ आर्ट्स के कलाकार हैं जहाँ सात वर्ष तक उन्होंने कला साधना की तथा अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। दिल्ली में आठ वर्ष तक रहे जहाँ उन्होंने व्यक्तिशः अपने चित्रों की कई प्रदर्शनियाँ कीं जिनका उद्घाटन स्वर्गीय श्रीमती सरोजिनी नायडू, डा० एस० एस० भटनागर, श्री यू० एन० सेन आदि ने किया। आपके चित्र रायल एकेडेमी लन्दन, यूनेस्को, पेरिस, काबुल, कायरो, इस्तमबोल, अंकारा, बग़दाद, नैरोबी, मास्को, पीकिंग, शंघाई केन्टोनमेन्ट टोकियो, ओसाका, सिडनी, आदि में प्रदर्शित किए जा चुके हैं। पिछले दशक में हमारे देश में आयोजित कला प्रदर्शनियों में मुखर्जी ने लगभग २६ पुरस्कार (स्वर्ण पदक, धन और प्रमाणपत्र आदि) प्राप्त किए। सन् १९५१ में श्री मुखर्जी रायल सोसायटी आफ आर्ट्स, लन्दन के फ़ैलो चुने गए। इस समय आप गवर्नमेंट स्कूल आफ़ आर्ट्स, हैदराबाद दक्षिण के प्रिन्सिपल हैं। भविष्य में 'अजन्ता' के पाठकों को श्री मुखर्जी की कला का हम और अधिक परिचय देंगे--सम्पादक]

अजन्ता
S.NALANDKER

वर्ष ६ | फरवरी १९५४ | अङ्क २

ज्योति-हास

मुसकरा दो ज्योति के हे
पुष्प ! क्षण भर मुसकरा दो !
और अपने हास से जग-
कुंज-वन को जगमगा दो

इस रजत हिम-प्रात में
जब रश्मियों के बाण कोमल
हैं गुंथे प्रत्येक पल्लव के
हृदय में स्वप्न चंचल !

वायु के भी चरण मस्ती से
भरे, पड़ते न भू पर !
और रह पाता न सुख से
मौन खगकुल-कण्ठ का स्वर !

क्षितिज पर पुलकित उषा की
कनक-शोभा को खिला दो
मुसकरा दो ज्योति के हे
पुष्प ! क्षण भर मुसकरा दो

जागती है रूप-चञ्चल
चञ्चरीकों की विकलता
और प्रति छवि के सरोवर में
तरंगों की चपलता !
विश्व के मधु चक्र में
आनन्द का कल रव निरन्तर !
अनवरत गुँजन प्रणय-मधु
मक्षिकाओं का मनोहर !

सुरभि का दीपक मधुर
सुकुमार वन-वन में जला दो !
मुसकरा दो ज्योति के हे
पुष्प ! क्षण भर मुसकरा दो !

चेतना के दिव्य विद्युत्—
स्पर्श से खिलते मनोरथ

ज्योति-हास

हास के मधु मास से
संगीतमय है शान्त जनपथ
जो सजे थे शर्वरी की
व्योम-कबरी में अभी तक,
मोतियों की मंजरी बन
छा गये वे रजत तारक!

उदय-गिरि पर स्वर्ण-ज्वाला—
घट भरा, भू पर बहा दो!
मुसकरा दो ज्योति के हे
पुष्प! क्षण भर मुसकरा दो!

तोड़ कर जड़-बन्ध मिट्टी का
चली बह शक्ति-धारा!
टूटता जाता तरल
आघात से तम का किनारा!
झाँकते नव बीज जीवन की
गुहा में फूटने को
हो रहे नूतन विभा के
बाण व्याकुल छूने को

सुप्त रज कण के अचेतन
मर्म की वीणा बजा दो
मुसकरा दो ज्योति के हे
पुष्प! क्षण भर मुसकरा दो!

पो. बा. १०७,
पटना—१

—आरसीप्रसाद सिंह

मार्ग और मंज़िल

सितलाए हुए रक्त को गतिमान् करें
सँवलाए हुए क्षितिज को द्युतिमान् करें
युग चरण बढ़ा, युग को नया दें वरदान
मंज़िल के लिए मार्ग का निर्माण करें

पद-चिन्ह का संधान नहीं था जग में
इतिहास का वरदान नहीं था जग में
मानव ने था जब मार्ग का निर्माण किया
मंज़िल का कहीं निशान नहीं था जग में

इतिहास बने विश्व का तव अधर हिले
तव दृष्टि उठे, शूल से ही फूल खिले
मंज़िल की तुझे व्यर्थ ही चिन्ता है सखे
तू पाँव बढ़ाए तो नई राह मिले

पृथिवी के सहज सत्य से पहचान बढ़ा
आकाश के सपनों को न तू व्यर्थ बता
मरना है तो मंज़िल के नए रूप पै मर
जीना है तो जीवन को नया मार्ग दिखा

जीवन का नए कोण से हम ज्ञान करें
नव भूमि से, नव क्षितिज से पहचान करें
पुस्तक में कहाँ पाएगी तू पथ की खोज
चल, क़दम मिला, मार्ग का निर्माण करें

आकाशवाणी,
नई दिल्ली

—शम्भुनाथ 'शेष'

गीत

सुन्दर तुम आए आज प्रात
कर लिए गुलाबी पारिजात

निद्रित पुर नहीं पथिक पथ पर
एक चल गए कनक रथ पर
मम वातायन दिशि ज़रा ठहर

देखा कर सकरुण नयन पात
सुन्दर तुम आए आज प्रात

भर गया स्वप्न में कौन गंध !
गृह-तम सिहरा आनन्द-स्पन्द
मम धूल-सनी वीणा नीरव

बज उठी अनाहत कौन घात
सुन्दर तुम आए आज प्रात

सोचा कितनी ही बार उठूँ
आलस तज पथ पर निकल पड़ूँ
जब तलक उठूँ, तुम चले गए

दर्शन हो पाया नहीं साथ
सुन्दर तुम आए आज प्रात

'गीताञ्जलि' से
—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु : मुरलीधर श्रीवास्तव 'शेखर'

राजेन्द्र कालेज,
छपरा

पनिहारी

पहन कर ओढ़नी सतरंगिया
गागर कमर पर धर;
महावर से सजे पग धर
चलीं पनिहारियाँ सुन्दर

पपीहा बोलता है
कोयलें मल्हार गातीं हैं;
भरी अल्हड़ जवानी में
कली सी झूम जाती हैं

कई गोरी कई हैं साँवली
लम्बी छरहरी सी;
कई काली, ज़रा मोटी
कई सहमी लजीली सी

पवन भी सनसनाता है
ज़रा आँचल हटाता है;
चकोरा चहचहा कर
प्रीत की गाथा सुनाता है

मगर उस षोडशी के
रूप की शोभा अजब न्यारी
पहन कर चूनरी सुन्दर
लिए गागर खड़ी भारी

जुही-सा तन, कली-सा मन
जहाँ धड़कन मचलती है;
कभी भर नयन लख लेती
जहाँ मदिरा छलकती है

लिए है हाथ में रस्सी
किसी पहुँचे शिकारी सी;
झुका कर चारु अंगों को
झुकी पागल पुजारी सी

सुनहली सी, उलझ कर लड़ रहीं
अलकें कपोलों से;
सहम कर उठ रहीं पलकें
निगाहों के झकोरों से

कभी बिछुए खड़कते हैं
धरा पर बीन बजती है;
कभी बाजू लटकने से
हृदय की साँस चलती है

निकट जा पहुँचता संवाद
रस्सी से भँवर तल में;
निगाहें लूटतीं अनुराग
गागर के भरे जल में

उठा कर चाँद-सा मुखड़ा
झुका कर रस भरी पलकें;
सुला कर प्यार सीने में
झुला कर नाग सी अलकें

अधर पर रेशमी मुसकान
प्यासी सी, लुभाती सी;
गुलाबी पाँखुड़ों के बीच
ऊषा गान गाती सी

कि जैसे प्यार के दो दीप
नयनों में समाए हैं;
कि जैसे ज़िन्दगी के गीत
साँसों में बसाए हैं

लखा इक बार नयनों से
कि शरबत में भरा गागर;
तका इक बार सहनों से
कि गागर में भरा सागर

किसी मदहोश गायक-सी
किसी स्वर्गिक सलोनी-सी;

कि जैसे अप्सरा कोई
किलकती मस्त छौनी-सी

उठा गागर, झुका आँचल
छिपा कर चाँद को अन्दर
गुलाबी से, सजे पग धर
चली नवयौवना सुन्दर

पहुँच कर दुग्ध फेनिल
श्वेत मंदिर से सजे घर में;
उतारी गागरी सर से
रखा जो जाल था कर में

किलक कर आँगना में जा
लगी वह गीत-सा गाने;
कि जैसे योगिनी कोई
व्यथित हो ईश को पाने

किसी भोले कृषक की
प्राण की झनकार पनिहारी !
किसी निर्धन अपढ़ की
झोंपड़ी की ज्योति पनिहारी !

चमकती ज्योति जिसमें
शान्त, मृदु सौन्दर्य छाया है
उमगती ज्वाल जिसमें
मौत की रंगीन माया है

उसे क्या भूल मैं पाया !
कभी क्या भूल पाऊँगा ?
कुसुम-सुकुमार पनिहारी
उसी के गीत गाऊँगा

माधव कालेज,
उज्जैन (म. भा.)

—जगदीश किशोर चतुर्वेदी 'शलभ'

भारतीय चित्रकला में हिन्दु–मुसलमानों की संयुक्त साधना

भारतीय स्थापत्य की साधना में अनेक स्थलों पर हिन्दु मुसलमानों के संयुक्त प्रयास देखे जाते हैं किन्तु भारतीय मूर्तिकला या चित्रकला में मुसलमानों की साधना की सहायता पाना अपेक्षाकृत कठिन है। मुस्लिम धर्म शास्त्रों में मूर्ति, चित्र तथा गान आदि निषिद्ध हैं। किन्तु इस पर भी देखा यह जाता है कि गान विद्या में इस देश के मुसल्मान ही अग्रणी हैं। मूर्तिकला में भारतीय मुसलमानों की साधना के संबन्ध में हमें विशेष जानकारी नहीं है। चीन, तिब्बत, गान्धार, जावा द्वीप और बृहत्तर भारत के अन्यान्य स्थानों के साथ भारतीय मूर्ति शिल्प का यथेष्ट योग और लेन देन था। इन सब बातों की आज हम यहाँ आलोचना नहीं करेंगे। यहाँ केवल भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों की मिली जुली कला सृष्टि की आलोचना करेंगे। भारत के बाहर चीन देश में तुहियान या सहस्र बुद्ध की गुफा के चित्र, लुंग सेन की मूर्ति प्रभृति बहुत दिनों से हमारे मन को आकर्षित करते आ रहे हैं। तिब्बत और भारत की धातुओं की मूर्तियाँ भी कम मनोज्ञ नहीं हैं। यूरोप के साथ भी प्राच्य और भारतीय कला के तरह तरह के आदान प्रदान हुए। भारतीय संस्कृति के साथ अन्यान्य देशों की संस्कृति का जहाँ उदार योग हुआ है वहीं नाना प्रकार के कला और शिल्प का भी हृदय देखा जाता है।

प्रकृति और मानव के वास्तविक रूप के प्रति यूरोप का प्रधान आकर्षण रहा और भारतीय शिल्प की प्रधान बात मानव के ध्यान और भाव को रूप देती रही। दैहिक विशेषत्व के संबंध में भारत के अच्छे अच्छे शिल्पी अज्ञ नहीं थे तब भी भाव और ध्यान ही उनका लक्ष्य था।[1]

भारतीय चित्रकला की प्राणवस्तु है भारत का धर्म, भारत का भाव, भारत का ध्यान, एवं साथ ही साथ भारतीय प्रवृत्ति आदि को कोई यूनान या रोम से आयात हुई प्रतीच्य वस्तु नहीं कह सकता।[2]

जिस समय भारतीय धर्म प्रचारक भारत के बाहर गए उस समय उनके साथ साथ शिल्पियों और कलाविदों के दल भी थे। धर्म-गुरुओं में अनेकों कलाकार थे। इन सब दलों के लोगों में उस समय यूनान या रोम से प्रेरणा लेने का प्रयोजन भी न था और न ऐसा करना ही संभव था। चीन, तिब्बत, सिंहल, जावा द्वीप आदि में इसी प्रकार भारतीय शिल्प गया था। इसी से सिंहल के सिगारिया या जापान के नारा एवं हरियूजी आदि मंदिरों में भारतीय अजन्ता कला शैली गई और प्रतिष्ठित हुई।[3] मंगोलों में भी भारतीय शिल्प इसी प्रकार गया। धर्म प्रचारक संकीर्ण विचार के होते हुए भी कलाकार तो चिरकाल से उदार रहे हैं। शिल्पियों में जाति भेद या धर्म भेद नहीं वे तो सार्वभौम सिद्धान्तों के माननेवाले होते हैं। यूरोप में प्राच्य शिल्प धारा जिसे मंगोल लोग लेकर गए थे उसे कोई स्वीकार करे या न भी करे। कुछ दिन आगे ई० ब्लोचेट (E. Blochet) ने फ्रेंच भाषा में बारहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक की मुसलमानी चित्रकला के संबन्ध में एक इतिहास लिखा था—सी. एम. बनियन (C. M. Binyon) ने उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद किया।[4]

ब्लकेट के अनुसार शिल्पधारा की जितनी प्राणवस्तु है वह सब यूनान और रोम में है। मध्य-एशिया के लोगों की शिक्षा दीक्षा उसके बाद। उन्होंने चीन के कुछ लईलेड चित्रों को शिल्प के वर्ण और रूप रीति में प्रतीच्य के रूप में लिया है। यह सब बातें पुरानी बातों की ही तरह अचल हैं।

यूरोपीय विद्वान् यूरोप के सामने भारत के कलाकारों के ऋण की बातें ही प्रकाशित करने में व्यस्त हैं। किन्तु भारत के सामने क्या यूरोप ऋणी नहीं है? सिकन्दर के समय से मध्य युग के रेनासाँस काल तक भारत से क्या कम शिल्प-ऐश्वर्य यूरोप गया है? भारतीय विज्ञान, दर्शन, शिल्प, शिल्पी के प्रभाव इधर प्रसारित नहीं हुए। हूण और मुगलों के असभ्य हिंसक अभिमानों

---

[1] हैवेलः इंडियन स्कल्पटर एण्ड पेन्टिंग, पृष्ठ २२, २६, ५५. [2] वही पृष्ठ १६८. [3] वही १६६, १७०, १७२, १७३. [4] Mussalman Painting Twelfth to Seventeenth Century by E. Blochet. Translated from the French by C. M. Binyon with an introduction by Sir E.D. Ross.

के साथ ही साथ कितने ही शिल्पी और कारीगर यूरोप गए थे। यूरोप के स्थापत्य और शिल्प में अनेकों दृष्टि से प्राच्य प्रभाव दिखाई पड़ता है। यह सब बातें शिल्प प्रेमी हैवेल ने अच्छी तरह से बताई हैं।[५]

मुग़ल काल के स्वल्पाकार चित्रों अथवा Miniature Painting की आलोचना करते हुए हैवेल ने कहा है कि पोर्तुगीज़ कलाकार Rambrandt की विश्व विख्यात चित्रकाएँ जो लुके और लण्डन म्युजियम में सुरक्षित हैं, उनमें बहुत सी हूबहू नकल अथवा अन्य चित्रिकाओं से उद्धृत हैं। अध्यायक सेर्रे (Sarre) ने इन सब चित्रों के मूल मुग़ल चित्रों की प्रतिलिपि के साथ मुद्रित कर के इसे और भी प्रत्यक्ष कर दिया हैं। १६३१ ई० में Rembrandt एमस्टरडम (Amesterdam) में रहते थे और वही उस समय पोर्तुगीज़ ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रधान स्थान था। इस कम्पनी के बहुत से लोग अपने साथ प्राच्य देश से बहुत से मुग़ल चित्र ला ला कर वहाँ उपस्थित करते थे।[६] Rembrande की अपनी प्रतिभा और महत्त्व भी काफ़ी था, तब भी वे निस्संदेह प्राच्य चित्रों के भी मर्मज्ञ थे।[७] इन सब चित्रों से वे प्राण वस्तु लेने अथवा कभी कभी हूबहू नकल करने में भी संकोच नहीं करते थे। सेर्रे (Sarre) की पुस्तक में जो कुछ भी है उसमें भारतीय चित्रों के आङ्गिक ऐश्वर्य के भाण्डार से उन्होंने बहुत से स्थानों पर ऋण लिया था।

ईसा के बाद प्रायः हजार वर्षों तक यूरोप में सर्वत्र प्राच्य विचार और शिल्प फैला हुआ था। उस समय शक्ति का केन्द्र ऐशिया था और उसी प्रकार शिल्प एवं कला की प्रेरणा का मूल भी एशिया था। बैजन्टाइन (Byzantine) एवं गोथिक (Gothic) शिल्प के जन्म के मूल में भी प्राच्य और प्रतीच्य भावधारा का योग था। वेनिस के सेंट मार्कस के मोजाइक शिल्प में भारतीय भावधारा का ही परिचय मिलता है।[८] फारस में मुग़ल युग में जो चित्र शिल्प का नव जागरण हुआ था उसके मूल में चीन देश का प्रभाव था। बौद्ध प्रचारक ईसा के जन्म के पहले ही भारत से शिल्प धारा चीन ले गए थे। भारत और चीन के शिल्प और कला के बीच में घनिष्ट योग हुआ था। ईसा की सातवीं शताब्दी में भारतीय चित्र कला की प्रेरणा से चीन देश की इस प्रकार की उन्नति हुई जिसकी तुलना नहीं की जा सकती।[९] डाक्टर एण्डरसन कहते हैं कि ईसा की सातवीं सदी से तेरहवीं सदी तक चीन की जो अपूर्व चित्र सम्पदा है उसके साथ उस युग के यूरोपीय चित्रों की कोई तुलना नहीं हो सकती।

चीन-भारतीय शिल्पकला इस बार ईरानी शिल्प से मिल कर समृद्ध हो कर भारत लौटी। मुग़ल सम्राट बाबर ने बहुत से सुदक्ष शिल्पियों को इस कार्य में लगाया था। मुस्लिम धर्म के अनुशासन से शिल्प साधना नाना प्रकार से कुंठित हो गई थी। उसे सम्पूर्ण मुक्ति न देने पर भी मुग़ल सम्राटों ने उसके बंधन को बहुत स्थानों से ढीला अवश्य कर दिया।[१०] मुग़ल बादशाहों के समय में मृत्यु-पाश से काफ़ी मुक्ति पाकर भारतीय मुसल्मानों में चित्र-कला ने एक बार साँस ली थी।

हमने बचपन में बंगाल के गाँवों में विवाह के पिड़ँचित्र आदि में मेघ, आकाश, पेड़-पल्लव, आदि आंकने की जो रीति देखी थी बाद में देखा कि चीन और कांगड़ा कलम से उसका बड़ा मेल है। बौद्ध धर्म के द्वारा बोध होता है यह योग साधित होता रहा है। तिब्बती लामाओं के मठों के चित्रशैली से भी उसका मेल है।

तिब्बतियों द्वारा अंकित स्वर्ग नरक आदि अनेकों चित्र भी हमने देखे हैं। उनके आंके बुद्ध चित्र, स्वर्ग चित्र नरक चित्र, यमराज, यमदूत, आदि चित्रपट पर आँक कर अभी तक लामा लोग गान करते हैं और प्रदर्शन करते हैं। बंगाल में भी गान के साथ इसी प्रकार पट चित्र घर-घर दिखाई पड़ते हैं। बहुत से बौद्ध और हिन्दु पटुया लोग जो इस समय मुसल्मान हो गए हैं अब भी गीत के साथ पट दिखाना उनका व्यवसाय है। किसी किसी को गाज़ी का पट नाम देने पर भी उसके चित्रवस्तु और गायनों का पुरानी चीज़ों से काफ़ी मेल है। बचपन में हमने गाज़ी के पट का गाना सुना था :

"यमदूत कालदूत डाइने आर बाँय।
तार मध्ये वैसा आछे यम राजार माय॥
गाज़ीर कोन गुने तराईया लड़ भाई गाज़ीर नामे।..."
इत्यादि

इस प्रकार के गाज़ी के पट गायकों में अनेक पटुआ

---

[५] वही पृष्ट १८३,१८६. [६] वही पृष्ट २०२,२०८. [७] वही पृष्ट २०८. [८] वही पृष्ठ १८६. [९] वही पृष्ठ १८६. [१०] वही पृष्ठ १८८.

हैं। उनके आँके हुए पट उसी तिब्बती भाव से चित्रित होते हैं। उनमें भारतीय, चीनी, तिब्बती और हिमालय प्रदेशीय चित्रशैली को भी देखा जा सकता है।

चीन देश के सम्राट गण विभिन्न देशों के धर्म गुरुओं के चित्रों को संग्रह करके रखते थे। ८७२ ई० में सम्राट (I. Tsung). के पास पैगम्बर मुहम्मद का एक ऐसा चित्र था जिसे देख कर पैगम्बर वंशीय इब्न उयाहब ने पहिचान लिया था। यह बात यहाँ विषयान्तर है।

मुगल बादशाओं के दरबार में हिन्दु-मुसल्मान उभय धर्म के कलाकार थे। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, बादशाह उनका सम्मान भी करते थे। ये कलाकार महल की प्राचीरों पर और पुस्तकों में प्राकृतिक दृश्य और पुराने ऐतिहासिक आख्यान आदि चित्रित करते थे। फ़ारसी के बहुत से काव्य ग्रन्थों को इन्हीं कलाकारों ने चित्रित किया था। उनके द्वारा अंकित चित्रिकाओं (Minature Painting) की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। किन्तु उनके लिए भी किसी धार्मिक पुरुष अथवा देवताओं के चित्र बनाना संभव न था क्योंकि यह मुस्लिम शास्त्र के विरुद्ध था।[11]

मुगल काल के प्राचीर चित्र प्रायः नष्ट हो चुके हैं, केवल फतेहपुर सिकरी में एकाध अवशेष मिलते हैं। तब भी उस समय के तमाम श्रेष्ठ चित्र अब भी मिलते हैं—फ़ारसी पुस्तकों के चित्र कर्म में। हमजा का उपाख्यान बारह खण्ड के १४ सौ शेरों में लिखा है—उसमें कितने ही अपूर्व चित्र भी हैं। 'चङ्गेजनामा' 'जाफ़रनामा' 'रज़्मनामा' 'फ़ारसी रामायण' 'फ़ारसी नलदमयन्ती कथा' 'फ़ारसी पञ्चतन्त्र' 'आयार दानिश' आदि पुस्तकों में यह सब चित्रकारी और रचना वस्तु के निर्वाचन में हिन्दु-मुसल्मान कह कर कुछ भेद भाव नहीं किया गया है।

मुगल काल का अब भी जो कुछ परिचय मिलता है उसका ठीक स्वरूप उनकी चित्रिकाओं (Minature Painting) में ही है। हाथ से ही तैयार किये गए चीना कागज़ या हाथ से तैयार किये गए देशी कागज़ों पर आंके गए ये चित्र इतने समय गुज़ारने के बाद भी अभी तक सुरक्षित हैं— यही आश्चर्य की बात है।[12]

ये कलाकार जीव, जन्तु, पेड़, पल्लव, तथा प्रकृति के के विभिन्न रूपों को चित्रित करते थे। इतिहास के, पुरातत्त्व के कथा, कहानियों को भी उन्होंने चित्रित किया था। कदाचित इन सब चित्रों को एक कलाकार रेखांकित करता था और दूसरे रंग भरते थे।[13] यह सारा काम हिन्दु-मुसलमान साथ ही साथ करते थे।

मुगल काल के शुरु में तैलचित्र बनाने का रिवाज नहीं था। दीवारों पर, पुस्तकों में, या पटों पर ही चित्र बनाए जाते थे। पटों को मढ़ कर रख लिया जाता था एवं विशेष अवसरों पर उन्हें खोल कर मर्मज्ञ लोग रसास्वादन करते थे।[14] ब्रिटिश म्युजियम में एक सचित्र बहुमूल्य 'बाबर नामा' है। जयपुर के महाराज के पास 'रजम नामा' पुस्तक है—कहते हैं उसे तैयार कराने में अकबर को छः लाख रुपए खर्च करने पड़े थे। भारत में और यूरोप में बहुत से व्यक्तिगत एवं साधारण पुस्तकालयों में मुगल काल की बहुत चित्रिकाएँ बिखरी पड़ी हैं।[15]

पहले फ़ारसी चित्रों में बड़ा ही संकुचित भाव रहता था। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार प्रकृति से कलाकार लोग कुछ आंकने नहीं पाते थे। अकबर और जहाँगीर के समय में कलाकारों ने इस संकुचित बंधन से मुक्ति पाने की चेष्टा की।[16]

कलकत्ता आर्ट गेलरी में सोलहवीं शताब्दी के कुछ चित्र हैं। उनको देखने से पता चलता है कि मुस्लिम कलाकारों पर प्रत्यक्ष भारतीय प्रभाव पड़ा था। १५३४ ई० में—खुरासान के कलाकार साबू ने एक चित्र बनाया जिसका विषय है सुलतान मुहम्मद तुगलक के दरबार की नृत्य गीत की एक मजलिस। इस चित्र में अजन्ता चित्रों का प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है। इस प्रकार के सहज प्राणवान चित्रण और प्रकृति का आनन्द इस देश के पूर्ववर्ती चित्रों में दुर्लभ है। इस चित्र में अपूर्व वर्ण और असाधारण सौंदर्य है। उसका वर्ण और रेखा समावेश का ढंग अजन्ता और बोरोवड़ की कला से जैसे स्पष्ट किया गया है।[17]

कोई कोई कहते हैं कि प्राकृतिक दृश्यों (Landscape) के चित्र यूरोप से भारत में आए किन्तु यूरोप से

---

११ वही पृष्ठ १८८,१८९. १२ वही पृष्ठ १८९. १३ वही पृष्ठ २०७. १४ वही पृष्ठ १८९. १५ वही पृष्ठ १९७. १६ वही पृष्ठ १९९. १७ वही पृष्ठ १९०,१९१.

पहले ही प्राकृतिक दृश्यों को आंकने का रिवाज़ चीन देश में देखा गया है और भारत और चीन का घनिष्ट संबंध चिर काल से रहा है।[१८]

अकबर के समय के बहुत से चित्रकारों का परिचय अबुल फज़ल सुरक्षित कर गये हैं। उन्होंने विशेषतौर पर चार कलाकारों का नाम लिया है। पहला नाम है ताब्रिज के मीर सैयद अली का। ये जूद्दी के नाम से मशहूर थे। अच्छे कवि भी थे। अमीर हमज़ा की किताबों में इनके बनाये हुए चित्र सुरक्षित हैं। दूसरा नाम ख्वाज़ा अब्दुल समद का है। ये सिराज के रहने वाले थे। तीसरे थे दशवन्त (यशोवन्त)। ये जाति के कहार थे और इनके पिता पालकी ढोते थे। बचपन से ही ये चित्र कला के लिए दीवाने थे। जहाँ तहाँ वे चित्र ही बनाया करते थे। अकबर ने उनकी प्रतिभा देख कर अब्दुल समद के साथ उन्हें लगा दिया। थोड़े समय में ही यशोवन्त उस समय के सर्व श्रेष्ठ कलाकार बन गए। उन्होंने बहुत से अपूर्व चित्रों को बनाया। चौथे थे बसावन। यह भी हिन्दु थे किन्हीं किन्हीं विषयों में इन्होंने यशोवन्त या यशवन्त को भी पछाड़ दिया था।[१९]

इनके अलावा अन्य तेरह चित्रकारों का भी परिचय अब्दुल फज़ल ने दिया है। इनमें हिंदु और मुसलमान दोनों ही थे--जो नामों से ही स्पष्ट हो जाता है :

१ केशव २ ज़ाल ३ मुकुन्द ४ मुशकिन
५ फ़ारुक ६ माधव ७ जगन (जगन्नाथ)
८ महेश ९ खेमकरण १० तारा ११ श्यामल
१२ हरिवंश १३ राम

इनके अनेकों चित्र अभी तक प्राप्य हैं[२०] जो विभिन्न संग्रहों एवं संग्रहालयों में बिखरे हुए हैं। अकबर हमेशा कलाकारों से कहते थे कि "प्रकृति के सौंदर्य को प्रत्यक्ष करके जिस तरह चित्र आंका जाता है उसी तरह जीवन को अंकित न करने से भी चित्रों में प्राण नहीं आते।"[२१]

विक्टोरिया और अलबर्ट म्युज़ियम में 'अकबरनामा' का जो अंश सुरक्षित है उस पर भी उस युग के कलाकारों के ११० चित्र हैं। बसावन के हस्ताक्षरयुक्त चित्र भी उनमें हैं।[२२]

फ़ारूक के जो चित्र मिलते हैं वे बहुत ही सुंदर हैं किन्तु वे चीनी क़लम पर आंके गए हैं।[२३] मुग़लों के लिए यह अत्यन्त स्वाभाविक भी था।

कलाकार अब्दुल अहमद के पुत्र शरीफ़ खाँ को जहाँगीर बादशाह के दरबार में काफ़ी सम्मान दिया गया था। उसी समय आक़ा रज़ा (Aka Raza) के पुत्र चित्रकार अबुल हसन भी अपनी चित्र निपुणता के लिए विशेषतौर पर पुरष्कृत किए गए थे। मन्सूर चित्रकार की ख्याति और जीवनी भी जहाँगीर के समय की लिखी हुई मिलती है। अबुल हसन और मन्सूर का उल्लेख अबुल फ़जल ने नहीं किया। हो सकता है कि इन लोगों ने 'आईने अक़बरी' के लिखने के बाद ख्याति प्राप्त की हो।[२४]

जहाँगीर को चित्रकला से बहुत प्रेम था। चित्रों के वे अच्छे मर्मज्ञ भी थे। चित्रों को देख कर ही वे चित्रकारों के नाम बता सकते थे। इसके अतिरिक्त भी यदि किसी चित्र को कई कलाकार मिल कर बनाते तो उसमें कौन-सी रेखा किस चित्रकार की है वे बता सकते थे।[२५] जहाँगीर में सचमुच इतनी शक्ति थी कि नहीं यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु उस युग के जो भी चित्र प्राप्य हैं वे कला की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि के अवश्य हैं। मुग़ल युग के एक एक कलाकार की तूलिका की बारीक़ी और सुकुमारता इस समय भी दुनिया भर के कलाकारों को विस्मय में डाल देती है।[५६]

१६२१ ई० में कलाकार गुलाम ने एक चित्र बनाया था। शाहजहाँ के पुत्र मुराद इक़बाल नामक हाथी पर बैठे हैं—उनके साथ और कई हाथियों का चित्र है। हाथी बिगड़ गया है। सूंड़ उठा कर चीत्कार कर रहा है और महावत का कहना नहीं मान रहा है। शाहज़ादा मुराद हाथी को शांत करने की चेष्टा कर रहे हैं। इतना प्राणवन्त और प्रभावकारी चित्र अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।[२७]

तेरहवीं शताब्दी के प्रथम भाग में महाकवि सादी भारत आए थे। संभवतः चित्रकारों ने उस समय के कुछ चित्रों को आंक कर रख छोड़ा था। जहाँगीर के संग्रह में उनके जो प्रतिचित्र हैं उनको देखने से मालूम होता है—जैसे वे बोलना ही चाहते हों।[२८] उस

---

[१८] वही पृष्ठ २२०. [१९] वही पृष्ठ १६४-१६५. [२०] वही पृष्ठ १६४-१६५. [२१] वही पृष्ठ १६५. [२२] वही पृष्ठ १६५. [२३] वही पृष्ठ १६६. [२४] वही पृष्ठ १६८. [२५] वही पृष्ठ १६८-१६९. [२६] वही पृष्ठ २०९. [२७] वही पृष्ठ २०९-२१०. [२८] वही पृ० २१०.

समय भारतीय जीवन के एक अपूर्व चित्र-संग्रह शेख़ सादी रचित विख्यात् काव्यग्रंथ 'गुलिस्ताँ' में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त अभी भी मुग़लकाल के बहुत से चित्र अनेकों संग्रहों में उपलब्ध हैं।

जहाँगीर के समकालीन मन्सूर उस्ताद द्वारा अंकित एक 'श्वेत सारस' का चित्र (१६२४ ई०) आज भी सभी के लिए विस्मय की चीज़ है। एक तुर्की मुग़ल के चित्र में जहाँगीर की मुद्रा अंकित है। यह भी मन्सूर का बनाया मालूम होता है।[२८] फ़ारस के 'रथचाइल्ड' संग्रह में एक 'फेज़ान्ट' (Pheasant) पक्षी का चित्र है। संभवतः यह भी मन्सूर का ही चित्र है। चित्र १६२५ ई० में अंकित है। पेरी ब्राउन (Perey Browne) के 'Indian Paintings under the Moghals' ग्रन्थ के १४६ वें पृष्ठ पर इस चित्र की प्रतिलिपि भी छपी है।

मुग़ल लोग गथ, वेण्डाल और हूणों की तरह केवल आग, ध्वंस और बर्बरता ले कर ही आगे नहीं बढ़े। इनके साथ तरह तरह की कला और साहित्य के पुराने सब निर्जीव बंधनों को समाप्त करके नवजीवन के अंकुर भी मिलते हैं। इन मंगोलों ने किसी भी धर्म को नहीं छोड़ा। फ़ारस में मुसल्मान साम्राज्य इनके हाथों ध्वंस हुआ था—तब भी फ़ारस के नए साहित्य और शिल्प के सृजन में मुग़लों के अभ्युदय ने कम सहायता नहीं की थी।

फ़ारसी साहित्य के विख्यात ऐतिहासिक अध्यापक ई. जी. ब्राउन ने इस सत्य को चमत्कारिक ढंग पर लिखा है।[२९]

"एक दिन चारों ओर से शिक्षा, सभ्यता और जीवन को विध्वस्त करने के लिए मुग़ल लोग आगे बढ़े थे। विशेषतः इन्होंने अरब संस्कृति को बिल्कुल ही नष्ट किया। प्रायः छः सात सौ वर्षों से अरबों ने फ़ारस को पराजित कर के गुलाम बना लिया था। मुग़लों ने फ़ारस की इस गुलामी को उखाड़ फेंका। तभी यह भी देखा गया कि मुग़लों की भयंकरता के अन्दर भी जीवनप्रद एवं कल्याणकर शक्तियाँ निहित थीं। जहाँ चारों तरफ़ मानसिक जड़ता और रूढ़िवाद सैकड़ों वर्षों से जमा हुआ था वहाँ इन मुग़लों ने आश्चर्यजनक रूप में दूर दूर की जातियों को ला ला कर एकत्रित किया। फलतः उस समय की रूढ़ियाँ ढीली पड़ीं और नवजीवन का संचार हुआ।

कदाचित् यूरोप के रेनासाँस युग के प्रवर्तन के कारणों में भी यही मुग़ल थे। कारण इन लोगों के लिए इतने समय खुरासाम के अन्धकार में अवरुद्ध अटोमान तुर्कों के कान्स्टेन्टिनोपुल में आकर सभी के दृष्टिकोण समृद्ध हो गए थे। इन्हीं लोगों के लिए ही वाह ज़ानटाइन साम्राज्य भी ध्वंस हुआ। इसी से यूनानी विद्वानों ने उनके ज्ञान-भाण्डार को ले कर सारे यूरोप के विभिन्न स्थानों पर बिखेर दिया।

इसी से एशिया में फ़ारसी, अरबी, चीनी और तिब्बती का पारस्परिक मेल दिखाई पड़ा। इस मेल से पहले केवल विरोध और संघर्ष के बाद क्रमशः पारस्परिक बातचीत और आलोचना को देखा गया। छः सौ वर्ष से सभी में जो वैषम्य विराजमान था सहसा वह दूर हो कर सर्वत्र एक समता पैदा हो गई। मुसल्मान मौलवी, ईसाई पादरी, बौद्ध लामा, और मुग़ल ओझा एवं जितने सभी धर्म और सम्प्रदाय थे, सभी के प्रतिनिधि दल परस्पर मिलने को बाध्य हुए। कोई भेद अब वहाँ ठहर न सका।

पठान और मुग़लों ने भारत में आकर बहु संस्कृति एवं शिल्प शैली का सम्मिलन किया। इसी से मुग़लकालीन भारतीय चित्र शिल्प अपूर्व ऐश्वर्य से भरपूर हो उठा। उन शिल्पियों में हिन्दु-मुसलमान दोनों ही थे। अकबर काल के शिल्पियों में भी विभिन्न जातियों के लोग थे। कायस्थ, चितेरा, (चित्रकार) शिलावत (संगतराश) बढ़ई यह सभी जातियाँ थीं। यशवन्त को छोड़ कर और भी तीन कलाकार कहार जाति के थे। काम में छोटी जातियों को

---

[२८] वही पृ० २१४

[२९] Infinitely destructive and disastrous as it was to life, learning and civilization and especially to the Arab culture, which as have already seen, maintained itself with such extraordinary vitality in Persia for six centuries, long after the war of Arab conquest had utterly subsided, the Mangol invasion did, perhaps, contain some quickening elements, and the Mangol character, for all its reckless ferocity, some potentialities of good. One of its few good effects was the extraordinary inter-mixture of remote peoples, resulting in a refreshing of some what stagnant mental reservoirs, which

अलग नहीं रखा जाता था ।[३०] काश्मीर और गुज़रात में भी मुग़ल-काल में अनेकों अच्छे चित्रकार थे । गुज़रात के बहुत से चित्रकारों का उल्लेख भी मिलता है [३१] उनमें भीम, सूर और केशव के नाम प्रमुख हैं ।

मुग़ल शिल्प-कला की जहाँगीर के समय में सबसे अधिक उन्नति हुई । मुग़ल काल के हिन्दु और मुसल्मान चित्रकारों के नामों की एक सूची पेरी ब्राउन (Perey Browne) ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ के परिशिष्ट में दी है ।[३१] उनमें हिन्दुओं की संख्या अधिक होने पर भी मुसलमानों की संख्या बहुत कम नहीं है ।

श्रीयुत नन्दलाल बसु ने हमें मुग़लकाल के कलाकारों की जो तालिका दी है उससे मालूम होता है कि उस समय के सुप्रसिद्ध १०८ हिन्दु और ६१ मुसल्मान कलाकार थे ।

मुग़ल काल के बाद ही यूरोपीय युग का आरम्भ हुआ। यह युग विशेषतः अंग्रेज़-युग था । इस युग में भारतीयों ने पहले अपना रास्ता छोड़ कर यूरोपीय चित्रों को नकल करना शुरू किया । बाद में श्रीयुत अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपना पथ पकड़ ही लिया । उनके सुयोग्य शिष्य सुरेन्द्र गांगुली, नन्दलाल बसु आदि ने उसी साधना को आगे बढ़ाया । स्वर्गीय सुरेन्द्र गांगुली की अकाल मृत्यु से हमारी बहुत क्षति हुई । नए कलाकारों में भी हिन्दु-मुसल्मान दोनों ही हैं । यहाँ के हिन्दु कलाकारों के नाम तो बहुत लोग जानते हैं—तब भी दो चार मुसल्मान कलाकार अपना नाम कर रहे हैं ।

आचार्य अवनीन्द्रनाथ के शिष्य हाकिम मुहम्मद एवं शमी-उज़-ज़मा, श्रीयुत समरेन्द्र गुप्त के शिष्य अब्दुर रहमान चग़तई, कलकत्ता आर्ट स्कूल के छात्र जैन-उल-आबदीन, शान्ति निकेतन में श्री नन्दलाल बसु के जयपुर निवासी शिष्य अबुल क़लाम, मैमनसिंह के मुहम्मद हसन, अली मियाँ, बोलपुर के सैयद फज़ल-उर-रहमान का नाम प्रमुख है ही ।

इस युग के चित्रकारों का कथन पूरा करने के लिए गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का नाम भी लेना आवश्यक है—तब भी वे इन सभी दलों से बाहर हैं—उनकी पूर्णता तो उन्हीं में थी ।

देवी दयाल भवन, महाजनी टोला,
फैज़ाबाद (उ० प्र०)

—क्षितिमोहन सेन
अनु० रामेश्वर प्रसाद मेंहरोत्रा

एक शिष्ट व्यक्ति की अन्तिम पहचान है—उन लोगों के प्रति सम्मान
जो उसकी किसी प्रकार कोई सेवा नहीं कर सकते ।

---

it brought about. In Europe it was cause if not the chief cause, of the Renaissance, for it thrust the Ottoman Turks out of the obscurity of Khura San into the prominance of Constantinople, and was thus ultimately responsible for the destruction of the By-Zantine Empire and the dispersion of the Greeks and their treasures in Europe........And within Asia first in conflict and then in consultation, Persians and Arabs with Chinese and Tibetans, and confronted, on terms of equality which had not existed for five or six centuries, the Doctors of Islam with Christian Monks, Buddhist Lamas, Mangol ":Bakh This" or medicinemen and the representatives of other religions and sects.

Quoted from Ibid Pp. 181, 182

[३०] Perey Browne Indian Paintings under the Moghals *Pp. 121-122*

[३१] वही पृष्ठ १२३. वही पृ० १६५-१६८

आदर्शवादी चित्रकला

मनुष्य बुद्धि की शक्तियाँ ले कर संसार में जन्म लेता है। अपनी बुद्धि से संसार का अनुभव करता है। सबसे महान् अनुभव उसे आनन्द या सुख पाने की लालसा में होता है। यह अनुभव एक ऐसा अनुभव है, जिसके इर्द गिर्द मनुष्य के दूसरे अनुभव चक्कर काटा करते हैं। सुख पाने के चक्कर में मनुष्य तमाम वस्तुओं का अनुभव करता है और यह निश्चय करना चाहता है कि सबसे अधिक सुख की प्राप्ति उसे कहाँ और किसमें होगी। यही निश्चय या विचार उसका आदर्श बन जाता है, जिसकी खोज में वह भ्रमण करता फिरता है। जिसका जैसा अनुभव होता है, वैसा आनन्द मिलता है, और उसी के अनुरूप उसका आदर्श बनता है। इस प्रकार आदर्श केवल एक सूक्ष्म निश्चित विचार है, जो अनुभव पर आधारित है। जो व्यक्ति या समाज अपना एक निश्चित विचार तथा आदर्श बना लेता है और उसी के अनुकूल कार्य करने लग जाता है, उसी को आदर्शवादी पुरुष या समाज कहते हैं। चित्रकार भी इसी प्रकार अपने अनुभव पर आधारित अपना एक आदर्श बना लेता है और वह एक आदर्शवादी चित्रकार कहलाता है। ऐसा भी होता है कि एक ही समय में कई चित्रकार या चित्रकारों का समाज अपना एक ही आदर्श बनाए तब उस समय की चित्रकला आदर्शवादी चित्रकला कहलाती है। प्रत्येक देश तथा समय में प्रायः एक ही आदर्श का सर्वग्राह्य प्रचार हो जाता है, जैसे ब्राह्मण काल में ब्राह्मण आदर्श, बुद्धकाल में बौद्ध आदर्श तथा आधुनिक काल में जनतन्त्र तथा साम्यवादी आदर्श। युग युग में, देश देश में, इसी प्रकार समाज के विभिन्न आदर्श बन जाते हैं और व्यक्ति इन्हीं आदर्शों के अनुसार कार्य करता है। हम कह सकते हैं, प्रत्येक देश तथा काल में केवल आदर्शवादी कला का ही प्रादुर्भाव हुआ करता है, या प्रत्येक कला आदर्शवादी है।

परन्तु संसार में ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जो जीवन भर कार्य करते रहते हैं, उन्हें अनुभव भी होता जाता है परन्तु कभी भी वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँचते, न उनका कोई आदर्श बन पाता है। हम कार्य करते हैं, परन्तु यह विचार नहीं कर पाते, क्यों। हम नहीं जानते हम क्यों कार्य करते हैं। ऐसे व्यक्ति का कोई आदर्श नहीं होता और न उसका कोई लक्ष्य ही होता है। वह नदी के प्रवाह में उस तृण की भाँति है, जो जल की लहरों के चपेट के सहारे बहता जाता है। उसे इसका भी ज्ञान नहीं होता। यह तो हम उसके सम्बन्ध में टीका कर रहे हैं। हम जानवरों को बुद्धिहीन कहते हैं, परन्तु जानवर न यही जानता है कि वह बुद्धिहीन है, न उसे हमारी टीका की परवाह है। वह अपनी गति से चलता जाता है। इसी प्रकार बहुत से मनुष्य भी कार्य करते हैं। वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते, न प्रयत्न ही करते हैं इसके लिए। ऐसे मनुष्य अधिकतर अपनी सहज प्रवृत्तियों की प्रेरणा से कार्य करते जाते हैं, परन्तु वे कभी विचार नहीं करते। केवल कार्य करते जाते हैं। ऐसे मनुष्य सुधार और भूल (Trial and error) के सहारे अपना सब कार्य कर लेते हैं। यह भी एक प्रकार का दर्शन है। इसमें कोई आदर्श नहीं होता न कभी बनता है। जैसी समस्या उपस्थित होती है तुरन्त उसका हल निकाल लेते हैं, और आगे बढ़ते हैं। इस प्रकार की कार्य प्रणाली में विश्वास करनेवाले भी बहुत से दार्शनिक हैं जो (Pragmatists) 'उपयोगितावादी' कहलाते हैं। इस दर्शन का पाश्चात्य देशों में बहुत प्रचार हुआ है। पाश्चात्य दार्शनिक डेवी (Dewey) इसी का प्रचारक है। कुछ लोग इस दर्शन को समझ कर चेतन रूप में कार्य करते हैं, कुछ बिना इसे समझे स्वभावतः ऐसा करते हैं। इसी के अनुसार बहुत से चित्रकार भी कला का कार्य करते हैं, इन्हें आदर्शवादी कलाकार नहीं कहा जा सकता।

आदर्शवाद का प्रचार सब से अधिक पूर्वी देशों में हुआ, जहाँ की संस्कृति और सभ्यता का इतिहास अति प्राचीन है। आधुनिक पाश्चात्य देशों की सभ्यता तथा इतिहास इतना प्राचीन नहीं है,इसलिए यदि हम कहें कि उनका पूर्ण विकास भी.अभी नहीं हो पाया है तो अतिशयोक्ति न होगी। ऐसी स्थिति में उस समाज के आगे उदाहरण कम होते हैं, और उसकी स्थिति अभी खोज की है, उनका भविष्य खोज पर आधारित है। इसलिए

उन्हें अपनी सहज प्रवृत्तियों के सहारे ही चलना पड़ता है। ऐसे देश यथार्थवाद में अधिक विश्वास करते हैं। उनका आदर्श धीरे-धीरे बनता है। जैसे-जैसे उनकी प्रगति होगी वैसे-वैसे उनका आदर्श निश्चित होगा। भारत एक अति प्राचीन देश होने के नाते, यहाँ बहुत से आदर्श बन चुके हैं, और यहाँ का व्यक्ति तथा समाज अधिकतर आदर्शवादी होता है। इसी प्रकार भारतवर्ष की कला भी अधिकतर आदर्शवादी रही है। भारत में विभिन्न दर्शनों का प्रचार हुआ, और उसी के अनुसार विभिन्न चित्र-कलाओं का प्रादुर्भाव हुआ।

जब किसी देश, जाति या व्यक्ति का आदर्श निश्चित हो जाता है, तो उसका रास्ता अधिक सरल हो जाता है। आदर्श के अनुसार व्यक्ति अपना लक्ष्य निश्चित करता है। वहाँ तक पहुँचने का मार्ग निश्चित करता है, उस मार्ग पर चलने का सिद्धान्त बनाता है, और उसी प्रकार उसकी कार्य-प्रणाली में परिवर्तन होता है। सभी बातें निश्चित हो जाती हैं, उसकी सफलता भी निश्चित हो जाती है। कला के कार्य का भी यही मार्ग हो जाता है और उसमें सफ़लता का आधार दृढ़ हो जाता है।

भारतवर्ष की सम्पूर्ण कलाएँ आदर्शवादी रही हैं और इसीलिए उनके सिद्धान्त, उसकी कार्य प्रणाली सभी निश्चित रही है। भारतीय कला के आदर्श, उनके सिद्धान्त तथा कार्य-प्रणाली का निश्चित विवरण हमें अपने वेदों, पुराणों तथा शास्त्रों में प्राप्त होता है, यद्यपि इस प्रकार के ग्रन्थों की खोज भलीभाँति नहीं हुई है। कला के सम्बन्ध में लिखे हुए ग्रन्थ बहुत कम प्राप्त हैं, परन्तु विविध पुराणों में इन आदर्शों तथा सिद्धान्तों का उल्लेख किया हुआ मिलता है। इन पुराणों में वास्तु विद्या, शिल्प विद्या तथा चित्र विद्या के नाम से बहुत से अध्याय मिलते हैं, जिनसे हम अपने भारतीय चित्रकला के आदर्श तथा सिद्धान्त जान सकते हैं। अभी तक जो खोज हुई है उसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण "विष्णु पुराण" तथा श्रीकुमार का "चित्र लक्षणम्" हैं। वैसे तो अन्य सभी पुराणों में कला के बारे में लेख प्राप्त हैं पर चित्रकला की दृष्टि में "विष्णु पुराण" तथा "चित्र लक्षणम्" महत्वपूर्ण हैं।

आदर्शवादी चित्रकला में यद्यपि उसका आदर्श, सिद्धान्त तथा कार्य प्रणाली निश्चित रहती है, पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि कला में स्वतन्त्रता नहीं रहती है। आदर्शवादी कला में कल्पना का बड़ा महत्व होता है और प्रत्येक व्यक्ति को पूरी स्वतन्त्रता होती है कि वह अपने अनुभव के अनुसार कल्पना करे, परन्तु दृष्टिकोण निश्चित होना चाहिए अर्थात् कल्पना का कोई निश्चित आधार होना चाहिए। कल्पना के योग से आदर्श की और भी पुष्टि होती है। मनुष्य की कल्पना का भी लक्ष्य होना चाहिए। कल्पना के आधार पर मनुष्य पुनः आदर्श की सृष्टि करता है। परन्तु यह आदर्श कोई नया आदर्श नहीं होता। परम्परागत आदर्शों का एक नया अनुभवगत स्वरूप होता है। ऐसे व्यक्तिगत रूप बनाने के लिए प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्रता है। यह नया अनुभव प्राचीन आदर्शों से भिन्न न होगा केवल व्यक्ति के लिए अनुभूति होगी, जिसे वह नये रूप में समाज के सम्मुख उपस्थित करेगा।

आदर्शवादी कलाकार अपने अनुभूति के अनुसार एक आदर्श लोक की कल्पना करता है। यह आदर्श लोक उसके वर्तमान वातावरण से परे होता है। ऐसी कल्पना वही करता है जो अपने वर्तमान वातावरण से सन्तुष्ट नहीं होता। अधिकतर मनुष्य अपने वर्तमान वातावरण से सन्तुष्ट नहीं होता, परन्तु साधारण मनुष्य अपने को उपायहीन समझकर किसी प्रकार उनको सहता है, या उसमें रहने का प्रयत्न करता है। ज्ञानी मनुष्य इस वातावरण से बचने का उपाय अपनी कल्पना से बनाता है। अपनी कल्पना के योग से वह अपने वर्तमान वातावरण को भी बदलने में बहुत कुछ सफल होता है। वह वातावरण को अपने अनुकूल बनाता है। यही कार्य वैज्ञानिक का भी है। वह विज्ञान के आधार पर अपने वातावरण को अधिक रुचिकर बनाता है। यही कार्य कलाकार का भी है। वह अपनी कल्पना के योग से अपने वातावरण को अधिक सुन्दर तथा आनन्दयुक्त बनाता है। इसी प्रकार दार्शनिक एक आदर्श काल्पनिक जगत् की सृष्टि कर उसी में भ्रमण करता है, और अपने वर्तमान कटु वातावरण से बचता है।

आदर्शवादी चित्रकला में रंग, रूप, आकार, रेखा, भाव, रस और इसी प्रकार उसकी कार्य-प्रणाली निश्चित होती है। ऐसी चित्रकला का रूप सदैव एक-सा होता है।

चित्र देख कर ही कोई उसके आदर्श को भाँप सकता है। आदर्शवादी चित्रकार के चित्र सदैव एक-से होते हैं, उनकी कार्य प्रणाली (Technique) में भी भेद नहीं होता। प्रत्येक चित्र की कार्य प्रणाली एक-सी होती है। चित्रों की रचना का आधार एक-सा होता है। चित्रों के रूप में परिवर्तन नहीं होता। आदर्शवादी चित्रकला के आलोचक ऐसी चित्रकला को प्रगतिवादी नहीं समझते। आधुनिक युग में प्रगतिवाद का बहुत प्रचार है। जिस कार्य में प्रगति न हो उसका कोई अर्थ नहीं होता। प्रगतिवादी चित्रकार केवल खोज में तथा अनुभव में विश्वास करते हैं, और अनुभव तथा खोज का कोई अन्त नहीं है अर्थात् निरंतर खोज और अनुभव का कार्य चलता रहना चाहिए। आधुनिक कलाकार इसी में विश्वास करते हैं। यही हम उनका आदर्श कह सकते हैं और इस प्रकार वह भी आदर्शवादी चित्रकार है, जो चित्र में किसी भाव (Feeling) को महत्व देता है, अर्थात् जो किसी विचार (Idea) को चित्रित करता है। आधुनिक समय में आदर्शवादी चित्रकारों में श्री क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार तथा नन्दलाल वसु के नाम उल्लेखनीय हैं।

कला संगीत महाविद्यालय,
हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस

—रामचन्द्र शुक्ल

अहंकार

अहंकार समस्त महान् ग़लतियों की तह में होता है।

—रस्किन

मनुष्य जितना छोटा होता है उसका अहंकार उतना ही बड़ा होता है।

—वोल्टेयर

अहंकारी मनुष्य में कृतज्ञता बहुत कम होती है क्योंकि वह समझता है कि उसे उतना कभी प्राप्त नहीं होता जितना कि उसे प्राप्त होना चाहिए।

—एच. डब्ल्यू. बीचर

अहंकारपूर्ण व्यक्ति अहंकार से बहुत उत्तेजित हो उठता है।

—कूपर

अहंकार—चुम्बक की तरह सदा एक ही वस्तु का निर्देश करता है—स्व का, परन्तु चुम्बक की तरह वह अपनी ओर आकर्षित नहीं करता वह अपने से दूर हटा देता है।

—सी. सी. कोल्टन

राजा शिवप्रसाद का एक निबन्ध

कुछ बयान अपनी ज़बान का

[इस निबन्ध से राजा शिवप्रसाद के उर्दू हिन्दी भाषा के विषय में जो विचार थे उन पर प्रकाश पड़ता है। इस निबन्ध के कुछ हिस्से १८६८ ई० के अख़बारों में प्रकाशित हुए थे। अब सौभाग्यवश हमको इनका सम्पूर्ण निबन्ध 'कुछ बयान अपनी ज़बाँ का' हाथ लगा है। काग़ज़ पुराना होने के कारण कुछ कट फट गया है और इस कारण बहुत-से शब्द छूट गए हैं। इस निबन्ध में बहुत-सी बातें ऐसी हैं जिनसे बहुत-से विद्वान् सहमत नहीं हो सकते —सं०]

"इस मुल्क के आदि वासी कौन थे और उनकी ज़बान क्या थी यह बात केवल विचार और कल्पना से सम्बन्ध रखती है। वे भाषाएँ तमिल और तेलुगु की जड़ थीं जो अब तक दक्षिण में जारी हैं और संस्कृत से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं था अथवा उन बहुत सी ज़बानों में से किसी की जड़ थीं जो आज विन्ध्य के आसपास जंगल और झाड़ियों के रहने वाले. पहाड़ों के दरमियान प्रचलित हैं। हमको इस प्रसंग में इतना ही कहना है कि वह संस्कृत क़दापि न थी। संस्कृत के मुतअल्लिक़ इस मुल्क में आला लोगों के साथ यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के साथ जिनकी वह बोली थी जानिब शुमाल और मग़रिब यानी हिन्दूकुश हिमालय पार उतर कर देश से आई। साबित है कि यहाँ के इब्तिदाई बाशिन्दे इस मुल्क के हर हिस्से में जुदा-जुदा क़िस्म की बोलियाँ बोलते थे। इससे मतलब नहीं कि किस क़द्र इब्तिदाई बाशिन्दे क़दम-ब-क़दम हटते हुए दक्षिण को चले गए और दुश्वारगुज़ार जंगल पहाड़ों में पनाहगीर हुए। इसमें शक नहीं कि उनकी जमात ने शूद्र के नाम से अपने ज़फ़रयान (विजेता) गोरे दुश्मनों की यानी आर्य लोगों की इताअत खिदमत (Subjugation) कबूल की और उनकी नई-नई आबादियों में आबाद हो कर शुमाल में आये। जो निहायत ख़्वार (नीच), ज़लील और खिदमतगुज़ार थे वे ही निहायत कारामद थे। परदेसियों को अकसर औरतों की तलाश रहती है और इसी बायस (कारण) से ऊँचे बदन वालों को शूद्रों की औरतें लेने में यक़ीन है कि कुछ ज़्यादा परहेज़ न रहा हो। पस इस हालत में ज़रूर वह खतरा बरहमनों के दिल में गुज़रा होगा कि जिससे इब्तिदाई बाशिन्दों के साथ राह-ओ-रसम (मेलजोल) पैदा होने से उनकी ज़बान यानी वेद की ज़बान पड़ गई थी और वे बड़े शुक्रगुज़ार हुए होंगे। पाणिनि ने जब अपनी अद्वितीय और आश्चर्यजनक व्याकरण 'अष्टाध्यायी' लिख कर इनकी भाषा को स्थाई रूप दिया तो इसको किसी प्रकार भाषा में प्रचलित मिलावट को काट छांट कर इसका शुद्धिकरण करना पड़ा होगा। इसीलिए इसका नाम संस्कृत पड़ा क्योंकि 'सन्' अर्थात् पूर्ण और दुरुस्त और 'कृत' अर्थात् बना हुआ है। 'संस्कृत' के अर्थ कोश में (१) विषय (२) संवारा हुआ (३) परिमार्जित (४) पूर्ण (५) पवित्र (६) क्रमबद्ध और व्याकरण के आधार पर बनाई हुई भाषा के हैं। ब्राह्मणों का कार्य पठन-पाठन था और इनकी श्रेष्ठता इसी संस्कृत भाषा के कारण थी। निःसंकोच मनुष्य के नाते इनको द्वेष रहा होगा कि कहीं जनता यानी मूल निवासी जिनको मनु ने अन्तर प्रभु लिखा है, इस भाषा को सीख न लें। इन्होंने इकबारगी इनके लिए इस भाषा का दरवाज़ा बन्द कर दिया और इन्होंने इसके पठन-पाठन का विरोध किया। इस विरोध का कारण यह बताया कि पाणिनि का व्याकरण जो कि वेदांग है इसको कोई शूद्र सुन तक नहीं सकता फिर इनको पढ़ाने की बात तो दूर रही। इसका नाम इन्होंने देववाणी रखा यानी देवताओं की वाणी। संस्कृत में देव ईश्वर, राजा और ब्राह्मण को कहते हैं। इसके अतिरिक्त जनता को संस्कृत के कठिन शब्दों का उच्चारण करना भी बड़ा कठिन पड़ा होगा और प्राकृत के नाम से उनकी नई नई भाषाओं का जन्म हुआ होगा जिनका संस्कृत से निकटतम सम्बन्ध रहा होगा। प्राकृत शब्द निकला है प्रकृति से यानी नैसर्ग। जब एक भाषा से दूसरी भाषा निकलती है, तो असली भाषा को उस दूसरी भाषा की प्राकृत कहते हैं। हेमचन्द्र कोषकार (लुग़तदां) लिखता है कि प्राकृत की मूल संस्कृत है। प्राकृत की असल संस्कृत है क्योंकि जितनी भाषाएँ

प्राकृत से निकलीं इनका नाम प्राकृत रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक और भी भेद इन दोनों शब्दों संस्कृत और प्राकृत से मालूम होता है। संस्कृत उनको, जो सभ्य हैं प्राकृत उनको जो असभ्य हैं, कहते हैं अस्तु प्राकृत उन बोलियों का नाम रहेगा जिनको जनता बोलती है।

तात्पर्य यह कि प्राकृत वह भाषा है जो संस्कृत शब्दों से मिल कर बनी, परन्तु जनता में आ कर यहाँ के मूल निवासियों के शब्द उसमें मिल गए और प्रत्येक प्रान्त में वहाँ के स्थानिक वातावरण के लिहाज़ से उच्चारण में फ़र्क़ हो गया था और जिसमें संस्कृत-व्याकरण की गम्भीरता जाती रही थी। हम उदाहरणार्थ कुछ शब्द बताते हैं जो इस देश के मूल निवासियों के हैं और संस्कृत से सम्बन्ध नहीं रखते:—

पुरानी प्राकृत	नई प्राकृत यानी हिन्दी	संस्कृत
गोडम्	गोड़	पादम्
पोट	पेट	उदरम्
छिणालिया	छिनाल	पुंश्चली
खूंटा	खूंटा	स्तम्भ
डुब्बन्तम	डूबना	मज्जन्तम्
घोट्ट	घूटना	पिब

नीचे ऐसे शब्द दिये जाते हैं जो संस्कृत से प्राकृत में आ गये हैं :

संस्कृत	पुरानी प्राकृत	नई प्राकृत हिन्दी
शृणु	सुणु	सुन
घृतम्	घिअम	घी
दधि	दहि	दही
मुखम्	मुहम	मुँह
बिधर	बहहि	बहिरा
मेघ	मेहो	मेह
कथय	कहहि	कहू
वधूः	वहू	वहू
कार्यम्	कज्ज	काज
अद्य	अज्ज	आज
चर्मकार	चम्मारओ	चमार
कुम्भकार	कुम्भारो	कुम्हार
सर्वम्	सव्वम	सब
सत्यम्	सच्चम	सच
हस्त	हत्थ	हाथ
वृद्ध	बुड्ढ	बुड्ढा
श्रेष्ठी	सेट्ठि	सेठ
शुष्क	सुक्ख	सूखा
पुस्तकम्	पोत्थओ	पोथी
पुष्कर	पोक्ख	पोखरा
दक्षिण	ढहिणाम	दहिना
क्षेत्रम्	खते	खेत
मृत्तिका	मट्टिआ	मट्टी
ऋक्ष	रिच्छ	रीछ
मयूर	मोरिण	मोर
भगिनी	बहिण	बहिन
हरिद्रा	हलद्दी	हलदी
संध्या	स्झा	संझा
सूची	सई	सूई
गभीरम्	गहिरम	गहिरा
षष्ठि	छट्ठी	छठ
त्रयोदश	तेरह	तेरह
षट्	छ	छ
विंशति	वीसई	बीस
दुहिता	धीआ	धी
यष्टि	लट्ठी	लाठी
वाष्प	बाप्पो	बाफ
मत्स्य	मच्छ	मछली
यः	जो	जो

जो हो यह तमाम प्राकृत भाषाएँ यानी यहाँ की प्रान्तीय बोलियाँ मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची आदि उच्च वर्णवालों के पास तो गँवारू और बहुत नीच थीं। राज-दरबारों और कचहरियों की भाषा तो संस्कृत बनी रही यहाँ तक कि ५४३ वर्ष ईसा पूर्व में गौतम बुद्ध ने एक ऐसी महान् क्रान्ति पैदा की कि इससे पूर्व दुनिया में इसका उदाहरण नहीं मिलता। बुद्ध ने जन साधारण के लिए एक नवीन धर्म की स्थापना की और जनसाधारण की बोली ही में इसने इस धर्म का प्रवचन द्वारा प्रचार किया। मागधी (प्राकृत) जिसको स्त्रियाँ, बच्चे, पढ़े-लिखे और अपढ़ सब समझते थे और जो दक्षिणी बिहार (जो कि बुद्ध धर्म के प्रचार का केन्द्र बन गया था) की बोली थी इसमें उन्होंने धर्म प्रचार किया।

अब यह भाषा प्राकृत उन्नतशील बन गई । यही भाषा धार्मिक तथा दरबारी बनी । कला तथा विद्या का विकास हुआ और इसी प्राकृत के बड़े बड़े पुस्तकालय बन गए और १६०२ वर्ष होते हैं वार्च ने इस भाषा का व्याकरण बना दिया । संस्कृत गोया अपनी वृद्धावस्था को पहुँच गई और उसका मरणकाल समीप आ गया । कहीं-कहीं पर जहाँ के राजाओं ने बौद्धिक मत नही छोड़ा या संस्कृत जीवित रह सकी यहाँ तक कि बुद्धों ने बाप को बेटा और बेटे को बाप बना दिया और लिख दिया कि ‘‘एक भाषा है जो तमाम भाषाओं की मूल है और संसार के प्रारम्भ में जब मनुष्य ने और ब्राह्मण ने कभी कुछ कहा सुना था तो इसी भाषा में । तथा सर्वशक्तिमान् बौद्ध भी इसी भाषा में बोलते थे इसका नाम मागधी है ।’’

“सा मागधि मूल भाखा नरा ये यदि कप्पिका
ब्राह्मनो चस्सु तालिषा सम्बुद्धा चापिभासरे”

आठवीं या नवीं शती के समीप जब शंकराचार्य ने बौद्धों को यहाँ से निकाला तब संस्कृत को फिर से व्यवहार में लाने का प्रयत्न किया गया परन्तु शंकरस्वामी के भी बस से बाहर था कि प्राकृत को मिटा दें और संस्कृत को प्रतिदिन के व्यवहार तथा आपस की बोलचाल की भाषा बनाएँ । गो इसमें शक नहीं कि चन्द दिनों के लिए संस्कृत धार के राजा भोज तथा कन्नौज-राजा राठोर के दरबारों में अपने पूरे प्रकाश से चमक गई थी परन्तु प्राकृत को (यहाँ तात्पर्य उस प्राकृत से है जो मगध से लेकर मथुरा के आगे तक मागधी और शौरसेनी के नाम से बोली जाती थी) कुछ दिन बाद ऐसे सशक्त शत्रुओं से काम पड़ा कि इससे पूर्व ऐसा अनुभव न हुआ था—यह मुसलमान थे जो फ़ारसी बोलते थे और इन्हीं के साथ फ़ारसी इस देश में आई ।

इन लोगों ने अपनी फ़ारसी भाषा के मुक़ाबले में प्राकृतों का नाम हिन्दी यानी हिन्द की भाषा रखा । इस काल तक प्राकृत बोलियों में बड़ी बड़ी तबदीलियाँ हो गई थीं । इख़तेसार और उच्चारण की सरलता के कारण बहुत-से शब्द बिलकुल बदल गए थे । शुद्धलेखन में भी अन्तर आ गया था । नए-नए शब्द सम्मिलित हो गए थे । पुराने शब्दों का रूप इतना बदल गया था कि उनको आसानी से पहचाना नहीं जा सकता था । चुनांचे सब लौकिक भाषाओं का यही नियम है । ‘सर चार्ल्स लायल’ एक महान् विद्वान् कहता है कि दुनिया में कोई भाषा भी हज़ार वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहती । आज जो भाषाएँ बोली जाती हैं हज़ार वर्ष पूर्व इनमें से किसी का भी अस्तित्व नहीं था अर्थात् ठीक आज के रूप में वे बोली नहीं जाती थीं । इस प्रकार बहुत-सी प्राचीन काल की भाषाओं में बहुत कुछ परिवर्तन के बाद वे आज के रूप में हमें दीख रही हैं । अब इस काल की प्राकृत वह प्राकृत नहीं रही थी जिस प्राकृत के माध्यम से बुद्ध अपना प्रवचन किया करते थे । प्रयाग और देहली की बोलियाँ (व्रज) अब वे नहीं थी जो दो हज़ार वर्ष पहले बोली जाती थीं और जिसमें महाराज अशोक का हुकुमनामा शिलालेख में लिखा जाता था । बहुत कुछ अन्तर आ गया था । इस अन्तर को देखने के लिए ऊपर की अनुक्रमणिका (फ़ेहरिस्त) में हमने एक खाने में नई प्राकृत अर्थात् हिन्दी के नाम से इन शब्दों को भी लिख दिया है जो इस समय बोले जाते हैं । इनके देखने से मालूम हो जाएगा कि पहले प्राकृत में इनके क्या रूप थे, अब इस हिन्दी में क्या हो गए । मुसलमानी राज्य में यह फ़ारसी शब्दों तथा फ़ारसी मुहावरों से बिलकुल भर गई । फ़ारसी का प्राचीनतम-रूप ज़िन्दावस्था संस्कृत से निकटतम सम्बन्ध रखता है बल्के एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं । उदाहरणार्थ कुछ शब्द हम यहाँ लिखते हैं जिनके उच्चारण और अर्थ-बोध से हमारा दावा पूर्णतया सिद्ध हो जाएगा ।

प्राचीन फ़ारसी	संस्कृत
पैतर	पितृ
ब्रातर	भ्रात
पैति	पति
अस्य	अश्व
वाच	वाच
जेनु	जानु
मधु	मधु
वश्र	वस्त
बैरि	वारि
मैध्य	मध्य

परन्तु यह फ़ारसी भाषा जिसने हमारी प्राकृत को सम्पन्न बनाया स्वयं अरबी से निकली हुई है और अरबी संस्कृत से बिलकुल कोई सम्बन्ध नहीं रखती । प्राकृत ने फ़ारसी के साथ अरबी को भी अपने अन्दर जगह दी और

अहकाम शरा जो इस समय हिन्दुस्तान में प्रचलित थे अरबी में थे और इसी कारण नीचे से ऊपर और छोटे से बड़े तक सब में प्रतिदिन के व्यवहार की बोली अरबी बन गई।

अब इस नवीन भाषा को अर्थात् ऐसी प्राकृत जिसमें फ़ारसी और अरबी मिली और हिन्दी भी। इसे चाहे हिन्दुस्तानी भाषा कहो चाहे ब्रज भाषा, रेख़्ता कहो या खड़ी बोली; उर्दू कहो या उर्दू-ए-मुअल्ला, इस के बीज उसी समय बोए गए थे जब कि मुसल्मानों की दृष्टि इस देश पर पड़ी और महमूद ग़ज़नवी ने चढ़ाइयाँ शुरू कीं। आठ सौ वर्ष से अधिक समय बीत गया है।

देहली और आगरा उस समय गुमनाम थे, कन्नौज गोया हिन्दुओं की राजधानी का स्थान माना जाता था। संस्कृत वहाँ अपनी उन्नति के शिखर पर थी। कन्नौज ही से बङ्गाल के राजा आदिस्सर ने कुलीन ब्राह्मण मंगवाए थे। बनारस कन्नौज के आधीन था। मथुरा का नगर भी बड़ी उन्नति पर था। महमूद ग़ज़नवी ने इन दोनों नगरों की बड़ी प्रशंसा की है। परन्तु शत-शत दुःख की बात है कि उस समय की भाषा में लिखी हुई कोई प्राचीन पुस्तक पर्याप्त नहीं है। भाषा की सब से प्राचीन पुस्तक जो हमारे हाथ लगी है विख्यात भाट चन्द की 'पृथ्वीराजरासो' है। कहते हैं चन्द काँगड़े का रहनेवाला था। पृथ्वीराज अजमेर के राजा सोमेश्वर का बेटा था। इसके नाना अनंगपाल दिल्ली के राजा ने इसको गोद लिया था। शहाबुद्दीन गौरी ने ११९३ ई० में इसके गले पर छुरा फिरवाया और तब ही से मुसल्मानी राज्य स्थापित हुआ। पृथ्वीराज के आधीन देहली और अजमेर एकत्र होने के कारण देहली किसी प्रकार प्रसिद्ध हो गई थी। परन्तु देहली की अधिक प्रसिद्धता का कारण यह है कि वह उस समय से बराबर मुसल्मानों की राजधानी रही। यह बताना कठिन है कि जिस भाषा में चन्द ने 'पृथ्वीराज रासो' लिखा है उसकी भाषा कन्नौज की थी या मथुरा की, काँगडे की, देहली या अजमेर की। या यह कि इन सब स्थानों की बोलियों में कोई विशेष अन्तर नहीं था। परन्तु हम नीचे कुछ पंक्तियाँ लिखते हैं जिनसे यह ज्ञात होगा कि उत्तर और पश्चिम देशों की भाषा तब से अब तक कितनी बदल गई और कितनी जल्दी फ़ारसी शब्द इसमें मिलने लगे थे।

"मिले सेनं सुरितान हिसा अन्नेक हिव्य भर
पिव्य हाणिपद्धरी सुकरि सावस्य पर
गहि केदुसज्जिगज्ज निसुवरअ
आवत पंग सारथ सयन मिलिमन था प्पय धानलरि
तव कहै राह साहब अहो तातारखान सुनि
खुरासान रुस्तमा जमन मासूक खान पुनि"

अब इस देश में दो श्रेणियाँ मनुष्यों की हो गईं। एक तो जिन्होंने इस देश को विजय किया वे विजयी ठहरे दूसरे विजित थे जो हिन्दू थे। दरबार की भाषा फ़ारसी थी। दरबार की भाषा प्रत्येक देश में और प्रत्येक काल में छोटे बड़े सब समझते हैं। केवल बिलकुल वज़ादारी की वह जड़ हो जाती है। हिन्दुस्तानियों का सबसे बड़ा हौसला यही था कि जहाँ तक बन पड़े विद्वत्ता में मुसल्मानों से निकटता प्राप्त करें। इनकी प्रशंसनीय चीज़ यह हो सकती थी इस समय कि इनकी कविताएँ आज भी बिलकुल विदेशियों की जैसी मालूम होती हैं यानी ईरानियों की मालूम पड़ती हैं! उस समय के हिन्दू न केवल आपस में पत्र-व्यवहार फ़ारसी में करते और अपने घर का हिसाब फ़ारसी में लिखते, बल्कि अगर लफ़्ज़ सही होता, मैं कह सकता मुफ़र्रस बन गए। जिस प्रकार वे पश्चिमी सभ्यता और भाषा के शिकार हो गए थे। उसी प्रकार वे फ़ारसी भाषा के शिकार हो गए थे। उस समय के हिन्दू लेखकों का हाल जो सर हेनरी इलियट ने अपनी पुस्तक में लिखा है देखने योग्य है। सर साहब लिखते हैं कि हिन्दू लेखक की पुस्तक में कोई चीज़ हमें ऐसी नहीं मिलती जिससे उसकी राष्ट्रीयता और उसका धर्म प्रकट हो सके, हाँ अलबत्ता किसी प्रकार लिखावट की अशुद्धता और पुर तकल्लुफ होना इस बात की ओर इंगित करता है कि इसने (लेखक ने) दूसरों की पोशाक अपने बदन पर कस रखी है जो अशोभनीय है। वह हिन्दुओं को काफ़िर लिखता है और मुसल्मानों को मोमिन। वह पीरों का इतना आदर मान करता है कि "दाखले फिन्नारे वस्साखर शुदन्द" और जब कभी मुसल्मान मारे जाते हैं तो लिखता है "शरीअत शहादत नवीशदन्द" वह अपने शासकों के मामूली शब्द तथा मुहावरों का इतना अभ्यस्त हो गया है कि 'नूरुल इस्लाम', 'मेहरुल हराम', 'कुरान शरीफ़', और 'बिस्मिल्ला', के बिना तो कुछ शुरू ही नहीं करता। और हम्द (ईश्वर प्रार्थना) भी वह अपने

प्राक्कथन (दीबाचा) में लिखना आवश्यक समझता है। एक बूढ़ा हिन्दू लेखक जो मानता होगा कि बहुत जल्द ही वह चिता में ढेर हो जाएगा और उसकी राख गंगा में बहाई जाएगी। अपने लिए 'बरसरेताबू' तथा 'बर किनारा गोर' (क़बर के समीप, क़बर के किनारे) लिखता है। इसमें कोई शंका नहीं कि इनमें से बहुत से लेखक जान बूझ कर भी अपने मुसलमान शासकों की ख़ुशामद तथा उनको प्रसन्न रखने के लिए लिखते थे। फिर भी हमें यह दिखलाने के लिए कि प्राकृत की नहरों में फ़ारसी शब्दों की बाढ़ कैसे आई यह वर्णन काफ़ी लाभदायक है।

यहाँ हम यह दिखाना चाहते हैं कि हिन्दुओं और मुसल्मानों के मेल-जोल का यह एक अच्छा उदाहरण है। दोनों संस्कृतियाँ एक दूसरे से कैसे मिल गईं।

इसके बाद राजा शिवप्रसाद ने कबीर के जीवन पर प्रकाश डालते हुए यह लिखा है कि "क़बीर पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त में सिकन्दर लोदी के काल में हुए थे। वह बनारस में एक मुसल्मान जुलाहे के घर पैदा हुए थे और पढ़े लिखे न थे। रामानन्द के शिष्य बने और फिर कबीर पंथ मत निकला। इनकी तसनीफ़ात से बहुत कुछ बचा है जो अब भी पाया जाता है।"

"छोड़ बदवख्त तू क़हर के नज़र कू।
खोज दिल बीच जहां बसत हक्का॥
अजब दीदार है अजब महबूब है।
करन कारन जहां सबद सच्चा॥
खड़े दरदमंद दरबस दरगाह में।
खैर और मिहिर मौजूद मक्का॥
चिकर कर कर फिकर को दूर कर।
कहे कबीर यह सख़ुन पक्का॥"

इसके बाद ही राजा शिवप्रसाद तुलसीदास के हालात बयान करते हैं। "बाबा तुलसीदास ब्राह्मण थे, पण्डित थे, कवि थे, और साधु थे। अकबर शाह के समकालीन थे। ज़िला बाँदा में जमुना किनारे राजापूर में पैदा हुए थे और सतरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गङ्गा किनारे ·········में परलोक सिधारे। इनकी रामायण ही अपने ढंग...की है। इससे बढ़ कर इस समय हिन्दुओं में कोई पुस्तक प्रचलित नहीं है। अगरचे कि भाषा किसी प्रकार . है तथा संस्कृत शब्द और मुहावरों से भरी है परन्तु कविता की दृष्टि से अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। घोड़े की प्रशंसा यूँ की है :

"जगमगाति जीजराब जो जसु...तिमान कातेहि लगे किंकिनि
ललाम लगाम ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥"

इसके बाद ही सूरदास के कुछ पद प्रस्तुत करते हैं। सूरदास के सम्बन्ध में लिखते हैं "उसी ज़माने के समीप हुए। उन्होंने कृष्ण के जस गाए। इनके पद प्रसिद्ध हैं।

"कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज
मैं हूँ पतित कबहूँ नहिं आयौ नैकु तुम्हारे काज॥
माया सबल धन-धन बनिता,
बाँध्यो हौ इह साज॥
देखत सुनत सबै जानत हौं,
तऊ न आयो बाज।
कहियत बहुत काहि तुम ताने,
स्रवनन सुनीं अवाज़॥
दियो न जात...उतराई।
चाहत चढ़न...हाज़॥
लीजै पार उत...सूर कों
महाराज व्रजराज॥
नई न करत...हत प्रभु तुमसों।
सदा गरीबनिवाज़॥"

इसके बाद ही लिखते हैं अगर हम चाहें बहुत से उदाहरण नानक, दादू, नाभा आदि के, जो समकालीन हैं दे सकते हैं। परन्तु इनमें कोई इतना प्रसिद्ध नहीं है। और हमारे पास इस बात का अब प्रमाण प्राप्त हो चुका है कि अगरचे कि भारतवासियों ने देवनागरी लिपि, अपना विशेष उच्चारण तथा बहुत कुछ व्याकरण के नियमों की रक्षा की फिर भी उन्होंने फ़ारसी शब्दों का बहुत स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग किया है।

राजा शिवप्रसाद ने मुसल्मानों के आने के बाद के प्रभाव का उल्लेख किया है "मुसल्मान अपने गर्व के कारण अपनी आधीन जनता की बोली का प्रयोग करना निःसंकोच अपने लिए अपमानास्पद समझते होंगे, परन्तु उनके प्रासाद हिन्दू लड़कियों से भरे हुए थे और इन्हें दिन-रात ऐसे हिन्दुओं से काम पड़ता था जो फ़ारसी की बहुत कम जानकारी रखते थे। फलतः यह घमंड आहिस्ता आहिस्ता कम हो गया और बिलकुल पत्र व्यवहार न सही

परन्तु हिन्दुओं के साथ उनकी भाषा में बोलचाल उचित समझी जाने लगी। कविता भी उनकी भाषा में "नुदरद (शौक़) तौर पर कही जाने लगी चाहे गर्वोक्ति सही ख़ाजा अबुल हसन जिसको अमीर खुसरो कहते हैं गयासुद्दीन बलबन के दरबार में कवीन्द्र (मल्कुल्शोअरा) था तेरहवीं सदी में इस प्रकार की ग़ज़लें कहने लगा था :

"जे हाल मसकींन मकुन तग़ाफुल,
दुराए नैना बनाए बतियाँ"

यह बड़ी प्रसिद्ध ग़ज़ल है।

परन्तु सभी खुसरो की तरह तूती बंद न थे। हिन्दी में बहुत ही साधारण ग़लतियाँ करते थे। इनकी हिन्दी भाषा पर तो हम साहब लोगों की हिन्दी को अधिक महत्व दे सकते हैं। उदाहरणार्थ सादी-ए-दकन से कुछ सुनिए। लोग इसे ग़लती से सादीए शीराज़ी समझते हैं। यह चौदहवीं सदी में हुआ था।

"हम ना तुमने......तुम दिल लिया और दुख दिया।
हम यह-क्या तुम वह क्या-ऐसी भली यह रीत है॥"

इसके बाद राजा शिवप्रसाद मलिक मुहम्मद जायसी का जिक्र करते हैं 'मलिक मुहम्मद जायसी वाले की मसनवी पदमावत ऐसी त्रुटियों से पाक है और इसकी भाषा में मधुरता टपकती है। वह सोलहवीं सदी में शेरशाह का समकालीन था।

मसनवी की भूमिका—

"सय्यद अशरफ पीर पियारा।
जेहि मोहि पन्थ दीन्ह उजियारा॥
लेसा हिये प्रेम कर दिया
उठी जोति भा निर्मल हिया॥
मा रगहुत जो अंधरे असूझा।
भा उजार सब जाना बूझा॥
ख़ार समुद्र पाप मोर मेला।
बोहित धर्म लीन्ह कै चैला॥
जाके ऐस होहिं कंडहारा।
तुरत बस सो पावै पारा॥
दस्तगीर गाढ़े के साथी॥
जिहिं अवगाह दीन्ह तिहिं हाथी॥"

मुग़ल काल में देश भर में शांति तथा सुव्यवस्था थी। फलतः विद्या तथा कला की वृद्धि आवश्यक थी जिसकी ओर राजा शिवप्रसाद संकेत करते हुए लिखते हैं :

"यह अकबर, जहांगीर और शाहजहां का ज़माना था जब कि देश में किसी प्रकार शान्ति स्थापित हुई और विद्या तथा कला की उन्नति की ओर जनता का मन आकृष्ट हुआ। अनुवाद करने के लिए संस्कृत की पुस्तकें खोजी जाने लगीं और हिन्दुओं से घनिष्टता बढ़ने के कारण मुसल्मान भी (जो कोई भी राज परिवार से न होगा) यहाँ की बोली में कविता करने लगे। वली इसी प्रकार का प्रथम कवि कहा जाता है। इसको तीन सौ वर्ष से अधिक हुए होंगे।

यह पद उसी का है—

ताक़त नहीं किसी को एक हरफ़ सुन सके।
अहवाल गर कहूँ मैं दिले बेकरार का॥
आए वली हमारी तरफ़ तेग़े नाज़ ले।
इस शोख़ को ख़याल अगर है शिकार का॥
मसनद गुल मंज़िल शबनम हुई।
देख रकबा दीदए बेदार का॥

परन्तु विषय निर्माण के लिए इन शायरों के पास प्रेम (इश्क) के सिवा कुछ न था। कभी वे किसी को सम्पूर्ण नाज़-ओ-अन्दाज़ बयान करते हैं कभी वे दर्द फुरक़त (विरह) में व्याकुल हैं। इसके सिवा उनको और कुछ सूझता ही नहीं था। ऐसे विषयों के लिए शब्द चयन अति कोमल तथा मधुर आवश्यक है। अगर फ़ारसी की बाराखड़ी (अलफाबेट्स) पर ध्यान किया जाय तो पता चलेगा कि संसार भर में इससे अधिक कोमल तथा मधुर भाषा कोई नहीं है। यही कारण था कि हिन्दी कवियों के लिए हिन्दी के शब्द कठोर और फ़ारसी के शब्द कोमल तथा मधुर मालूम होने लगे और फ़ारसी के साथ अरबी शब्द भी जमा होने लगे। उदाहरणार्थ पहले पंखड़ी शब्द का प्रयोग होता था –

"यार के उन लबों की क़्या कहिए।
पंखड़ी एक गुलाब की-सी है॥"

परन्तु बाद के कवियों को पंखड़ी का शब्द कर्णकटु मालूम हुआ और उन्होंने शीघ्र बर्गे गुल से बदल दिया।

"बर्गे गुल पर यार की तसवीर का धोखा हुआ।
गोया सिने नज़ाकत से दो बर्गे गुल्तर लब॥"

इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते हम मिर्जा असद-उल्ला-ख़ान ग़ालिब और मिर्ज़ा रज्जब अली बेग सरूर उर्दू-ए-मोअल्ला तक पहुँचते हैं। दोनों सुप्रसिद्ध नाज़िम व नासरा (कवि तथा प्रकाशक) एक देहली के दूसरे लखनऊ के अभी जीवित हैं। देहली राजधानी थी और मुल्क के मशरिक़ के आदमी हमेशा "कलाम-उल-मुल्क" को "मुलूकुल कलाम" समझते थे। देहली क़िले की भाषा सबके लिए प्रमाणपत्र बन गई परन्तु वह केवल क़िला की ही भाषा थी। ज़िले भर में गूजरों से बढ़ कर शायद किसी की भाषा में ग्रामीणता नहीं मिलती।[1]

चुनांचे रिवायत है कि जब एक कवि देहली के समीप पहुँचा तो पूछा कि क़िला कितनी दूर है। लोगों ने उत्तर दिया कि पास है। आगे बढ़ कर फिर पूछा, उत्तर मिला कि नज़दीक़ है। आगे बढ़ कर फिर पूछा, कहा गया क़रीब है। जब क़िले का द्वार दिखलाई दिया तो फिर पूछा। वहाँवालों ने कहा बाज़ू है (मुत्तसिल)। इस घटना से आपको क़िलेवालों की उर्दू-ए-मुअल्ला का ज्ञान हो जायगा। १६वीं सदी के प्रारम्भ में डॉ० ग़िलक्रिस्ट साहब ने 'बाग़ोबहार' के लेखक मीर आमन देहलवी तथा 'प्रेमसागर' के लेखक लल्लूजीलाल अकबराबाद के निवासी को हुक्म दिया कि गद्य की कुछ ऐसी पुस्तकें लिखें जिनको पढ़ कर साहब लोग इस मुल्क की भाषा समझ सकें और साहब लोग जो कुछ बोलें इस मुल्कवाले उनको समझ सकें। दोनों लेखक अचम्भे में पड़ गए होंगे कारण उनके लिए यह एक बिलकुल नई बात थी। दोनों ने किताब लिखी पर इन्हें एक नई ज़बान बनानी पड़ी। लल्लूजी ने तो अपनी 'प्रेमसागर' में से फ़ारसी शब्दों को बिलकुल निकाल दिया। यहाँ तक कि अपने सरपरस्त डॉ० ग़िलक्रिस्ट के लिए अरबी का शब्द साहब (साहब) नहीं लिखा। अफ़सोस लल्लूजी यह भी भूल गए कि स्वयं इनका आधा नाम 'लाल' फ़ारसी शब्द है। मीर मोमिन ने कहीं कहीं निदां (निदां) और टुक आदि ऐसे हिन्दी शब्द लिखे हैं जो अब प्रचलित नहीं हैं फिर भी 'बाग़ो बहार' के आरंभ में फ़ारसी गठन का एक ऐसा शब्द लिखा है जो साहब लोगों को शायद जिन्दगी भर में इससे साबेका नहीं पड़ेगा। वह शब्द है "दलक़ पोश"।

सजनलाल स्ट्रीट,
सिकन्दराबाद द.

संकलनकार : के. सजनलाल

तेलुगु कहावतें

पिट्ट चिन्नदि कूत पेद्ददि
नन्हीं चिड़िया बड़ी आवाज़।

नोटिलो वे्लु वेसुकोनि कूर्चुंड्टा
मुँह में उंगली डाल कर बैठना।

चिलुक पलुकुलु
तोते की बातें।

पुव्वुलम्मिन ऊरिलो कट्टेलम्मवलसि वच्चे
फूल बेचनेवाले गाँव में लकड़ियाँ बेचने की नौबत।

पुट्टिच्चिनवाड्डु गिट्टिच्चुनु।
पैदा करनेवाला मार डालता है।

—एम. आर. वर्मा

कामारेड्डी

---

[1] इस काल में दोनों परलोकवास कर गए।

मसागर' के
को हुक्म
जिनको
सकें और
नको समझ
ारण उनके
ों ने किताब
लल्लूजी ने
को बिलकुल
गिलक्रिस्ट
हीं लिखा।
नका आधा
कहीं कहीं
शब्द लिखे
र' के आरंभ
ई जो साहब
नहीं पड़ेगा।

सजनलाल

कन्नड़ साहित्य में रामायण की परम्परा

राम की कथा को ले कर काव्य लिखने की प्रवृत्ति भारत की सभी भाषाओं में दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत से ले कर आज तक की किसी भी भारतीय भाषा के सम्बन्ध यह बात सत्य है। हर भाषा के साहित्य में रामायणों की भरमार दिखाई देती है। यह बात कन्नड़ साहित्य के सम्बन्ध में तो पूर्ण रूप से घटित होती है। तभी तो कन्नड़ का महाकवि 'कुमार व्यास' कहता है :

> "तिणुकिदनु फणिराय रामायणदा भारदलि
> तिंतिणिय रघुवर चरितेयलि कालिडलु तेरपिल्ला ॥"

तात्पर्य यह कि शेष नाग रामायणों के भार से दब कर तड़प उठा, क्योंकि रघुवर की कथा-समूहों के बीच पग धरने की जगह नहीं रह गई। कवि का कहना सर्वथा सत्य है। कन्नड़ साहित्य में कुल साठ-सत्तर रामायण महाकाव्य भरे पड़े हैं। इनके अतिरिक्त राम के जीवन से सम्बद्ध सैकड़ों व्याख्याएँ और छोटी-मोटी कथाएँ भी प्राप्त होती हैं। यह लेख तो उनमें से कुछ प्रधान काव्यों की जानकारी और विशेषता के बारे में कुछ संकेत करने का प्रयत्न मात्र है।

कन्नड़ साहित्य में रामायण की परम्परा की दो मुख्य शाखाएँ हैं। एक तो जैन धर्म से प्रभावित होकर, अपना आधार प्राकृत-जैन-रामायणों में पाती है, और दूसरी हिन्दू-धर्म से अपनी स्फूर्त्ति पाती है और संस्कृत के वाल्मीकीय रामायण पर अवलम्बित है। इसके अतिरिक्त शैव-सम्प्रदाय में एकाध रामायण भी मिलती हैं जो संख्या में कम होने से और सुप्रसिद्ध न होने के कारण उतनी महत्वपूर्ण नहीं समझी जातीं, फिर भी उनकी चर्चा यथास्थान की जाएगी।

अब इन दो प्रमुख शाखाओं के बारे में लिखने के पहले यह समझ लेना ठीक होगा कि रामायण का काव्य के रूप में लिखना कन्नड़-साहित्य में कब आरम्भ हुआ। इस बात को स्पष्ट करने के लिए २००० ई० से पूर्व की कोई भी रामायण-काव्य पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त होती। फिर भी नवीं शताब्दी के लिखे 'कवि राजमार्ग' में रामायण के कुछ पद्य उद्घृत किए गए हैं। 'कविराजमार्ग' एक लक्षण-ग्रन्थ है। इसका कर्ता राजा नृपतुंग था। यह राष्ट्रकूट-वंश का राजा था। इसका राज्य-काल ८१४-८७७ ई० तक था। मान्यखेट (आजकल हैदराबाद का मालखेड़) इसकी राजधानी थी। इस राजा ने अपने इस ग्रन्थ में सैद्धान्तिक पक्ष का निरूपण करते हुए उदाहरणार्थ किसी पूर्व-कवि-कृत रामायण से कुछ पद्य उद्धृत किए हैं। इन पद्यों को देखने से ज्ञात होता है कि नवीं शताब्दी से भी पहले कन्नड़ में रामायण-काव्य लिखी जाने लगी थीं।

पहले ही कहा जा चुका है कि कन्नड़-साहित्य में रामायण की परंपरा की दो शाखाएँ हैं। एक तो जैन-रामायण की शाखा और दूसरी हिन्दू-रामायण की शाखा। अब इन दोनों शाखाओं का वर्णन क्रमशः होगा। वैसे तो कन्नड़-साहित्य के काल-विभाग में भी इन धर्मों का बड़ा हाथ है। उसमें आदिकाल को जैन-काल, पूर्वमध्यकाल को वीरशैवकाल, उत्तरमध्यकाल को ब्राह्मण-काल और आधुनिक-काल को इसी नाम से पुकारते हैं। इस तरह धर्मों के हाथों में पड़ कर रामायण पर इन धर्मों का रंग चढ़ा हो तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं।

रामायण की परंपरा की जैन-शाखा : इस शाखा की रामायणों के भी दो संप्रदाय हैं। इनमें से एक संप्रदाय प्राकृत के जैन कवि विमलसूरी के 'पउम चरिय' का अनुयायी है। उनकी कथा, और पात्र सभी विमलसूरी से प्रभावित हैं। इस संप्रदाय में नागचन्द्र-कृत 'पंपरामायण', कुमुदेंदु-कृत 'कुमुदेंदु रामायण' तथा देवचन्द्र-कृत 'रामकथावतार' मुख्य हैं।

दूसरा संप्रदाय संस्कृत के जैन कवि गुणभद्र के 'उत्तरपुराण' की रामकथा का अनुसरण करता है। इनमें चाउंडराय-कृत 'चाउंडराय पुराण' की रामकथा, नागराज-कृत 'पुण्याश्रव' की रामकथा है। यह संप्रदाय तो पूर्णरूप से गुणभद्र की कृति से प्रभावित है। इतना ही नहीं, इन दोनों संप्रदायों में कथन-निरूपण तथा पात्र-रचना में भी बहुत ही अन्तर है। थोड़े में इन दोनों संप्रदायों का भेद ज्ञात कराने के पूर्व इन दोनों संप्रदायों के कविगण के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेना अनुचित न होगा।

जैन-धर्म के पहले संप्रदाय के कवि और उनकी रामायण : इस संप्रदाय का सर्वप्रथम कवि नागचन्द्र है। 'रामचरित पुराण' या 'पंप रामायण' इसकी रचना है। यह चंपू काव्य है। रचनाकाल सन् ११०० माना जाता है। कवि का 'अभिनव-पंप' दूसरा नाम रहा होगा। इस रामायण में कथा इस तरह आरंभ होती है : कवि कहता है कि विपुलाचल में वीरजिन पार्श्व में गणाग्रणी गौतम ने जो रामकथा मगधाधिप से कही, वही कथा मैं भी कहता हूँ। कथा गुरुपरंपरागत है। काव्य प्रौढ़ है। इसकी कथा वाल्मीकीय रामायण की कथा से भिन्न है। इसमें विश्वामित्र का नाम-निशान तक नहीं। राम की माँ कौशल्या नहीं अपि तु अपराजिता है। शत्रुघ्न की सुप्रभा है। सुमित्रा का एक ही बेटा है जिसका नाम लक्ष्मण है। सुग्रीवादि लोग कपि नहीं किन्तु कपिध्वज हैं। राम और लक्ष्मण के दूसरे नाम हैं—बल और अच्युत। ये दोनों कारण-पुरुष हैं। लक्ष्मण के और नाम कृष्ण, केशव और वसुदेव हैं। उसका रंग काला है। वह अनेक विवाह करता है। राम गौरांग है। इसमें लक्ष्मण ही प्रधान पात्र है। वही रावण को मारता है। सीता के एक भाई है जिसका नाम प्रभामंडल है। यहाँ की सीता तो लव कुश के जन्म के बाद अग्नि प्रवेश करके जिन-दीक्षा लेती है। इस तरह वाल्मीकीय रामायण और जैन धर्म की इस रामायण में बहुत कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

इस संप्रदाय का दूसरा कवि कुमुदेन्दु है। इसकी रचना का नाम 'कुमुदेन्दु रामायण' है। रचना काल सन् १२७५ माना जाता है। जिन-स्तुति, कवि-स्तुति, सरस्वती और केवली-स्तुति, गुरु-स्तुति, कथा और पात्र-निरूपण आदि सब 'पम्प रामायण' के जैसे ही हैं। हाँ, इसमें छंदों की विविधता का प्रयोग है। सब षट्पदियाँ, रगळे (कन्नड़ के ठेठ छंद) आदि काम में लाए गए हैं।

इस संप्रदाय का तीसरा कवि देवचन्द्र है। इसकी कृति का नाम 'राम कथावतार' है। यह चंपू-काव्य है। कवि का जीवित काल सन् १७७० से १८४२ तक माना जाता है। यह भी 'पम्प रामायण' के आदर्श पर ही चलता है।

जैन-धर्म के दूसरे संप्रदाय के कवि और रामायण :

इस संप्रदाय का प्रथम कन्नड़ कवि चामुंडराय या चाउंडराय है। इसने 'चाउंडराय पुराण' लिखा है। यद्यपि यह ग्रन्थ अधिकतर पुरानी कन्नड़ के गद्य में लिखा गया है तथापि बीच-बीच में कुछ पद्य भी हैं। इससे पुरानी कन्नड़ की शैली जानने में सहायता मिलती है। इस ग्रन्थ में चतुर्विंशति तीर्थंकरों के चरित्र के साथ-साथ रामायण की कथा भी है। पुराण के आदि में लिखित एक पद्य के आधार पर इसका रचना-काल शालिवाहन शक ६०० ई० अर्थात् सन् ९७८ प्रमाणित होता है।

इस संप्रदाय का दूसरा कवि नागराज है जिसने नगर के लोगों के कहने पर संस्कृत से कन्नड़ में इस कथा को लिखा। यह भी चंपू काव्य है। रचना का नाम 'पुण्याश्रव' है और रचना काल सन् १३३२ है। इस ग्रन्थ में बारह 'अधिकार' और बावन कथाएँ हैं। इन बावन कथाओं में राम की कथा भी सम्मिलित है। कवि गुणचन्द्र के संप्रदाय के ही होने के कारण इसमें और 'चाउंडराय पुराण' की राम कथा में अधिक समानता है।

उपरोक्त दोनों जैन संप्रदायों में अंतर : वस्तुतः धार्मिक तत्वों के विषय में इन दोनों संप्रदायों में कोई अंतर नहीं है। जो अंतर है वह इनके कथा निरूपण में है। विमलसूरी के संप्रदाय में कथा इस तरह है : शरीर के साथ स्वर्ग जाने के लिए वर्णाश्रम धर्मों के विरुद्ध तपस्या करनेवाले शूद्र शंबूक की कथा को परिवर्तित करके इस संप्रदाय के कवियों ने कथा में चमत्कार भर दिया है। यहाँ तो शंबूक रावण की बहन चन्द्रनखी (शूर्पनखी) का बेटा है। अनजान में लक्ष्मण से उसकी हत्या हो जाती है। इससे क्रुद्ध हो, चन्द्रनखी रावण से जा कर फ़रियाद करती है। उसको सीतापहरण करने के लिए उकसाती है। इस तरह सीतापहरण का कारण बनती है। सुग्रीव और हनुमान आदि लोग जैन भी हैं और रावण के रिश्तेदार भी। वरुण से युद्ध करते समय हनुमान ने रावण की सहायता की थी। बाद में रावण को लक्ष्मण ही मारता है। यहाँ का रावण भी वासुदेव है और लक्ष्मण भी वासुदेव ही। इसलिए वासुदेव को मारने प्रतिवासुदेव ही का होना आवश्यक है। राम तो कर्मबंधन से मुक्त हो कर सिद्धि प्राप्त करनेवाला था। उसे जीव हिंसा का पाप नहीं लगना चाहिए। इधर रावण को मार कर लक्ष्मण नरक में जात है। इस तरह का परिवर्तन धार्मिक दृष्टि से कुछ मह रखता है।

अब गुणभद्र के सम्प्रदाय की कथा का अवलोक करें तो वह कुछ अजीब ही प्रतीत होता है। रत्नपुर क

राजा प्रजापति और उसकी पत्नी गुणकान्ता के चन्द्रचूल नामक एक सन्तान थी। उसके मन्त्री का कुमार विजय था। ये दोनों बड़े मित्र थे। उसी शहर में कुबेर नामक एक आदमी रहता था। उसकी बेटी रूपवती थी। उस लड़की से प्रेम करने के कारण इन दोनों को देश निकाले का दण्ड मिलता है। महाबल नामक जिनमुनि ने इन दोनों को दीक्षा दी। इसके तीन जन्म बाद, ये दोनों काशी के राजा दशरथ के यहाँ पैदा होते हैं। इन्हीं का नाम राम और लक्ष्मण है। दशरथ के काशी के राजा होने के सम्बन्ध में पं० राहुल सांकृत्यायन भी अपनी 'वोल्गा से गंगा' में उल्लेख करते हैं। इसके बाद राजधानी साकेतपुरी होती है। वहीं भरत और शत्रुघ्न का जन्म होता है। उधर मिथिला के राजा जनक और रानी वसुधा देवी को भूशोध करते समय एक बच्ची मिलती है। वही सीता है।

लंका के राजा पुलस्त्य और उसकी पत्नी मेघश्री के एक संतान हुई। इसी संतान का नाम रावण था। यह सोधर्मकल्प से आकर उनका पुत्र बना था। तपस्विनी मणिमती को रावण जब तंग करता है तो वह रावण को मारने की प्रतिज्ञा करके मन्दोदरी के पेट से पैदा होती है। इसके पैदा होते ही अनेक अमंगल कार्य होते हैं। मारीच उस शिशु को ले जा कर मिथिला के समीपस्थ एक बाग़ में गाड़ कर आ जाता है। यही आगे जनक को मिलती है और सीता कहलाती है।

कुछ दिन बाद राम और सीता का विवाह होता है। राम विवाह के बाद लक्ष्मण और सीता के साथ विहारार्थ वारणासी आता है। वे एक दिन चित्रकूटोद्यान में विहार करते रहते हैं। इस बीच में, नारद जी जा कर रावण से सीता का रूपवर्णन करते हैं जिससे वह सम्मोहित हो जाता है। सीता को पाने के लिए वह शूर्पनखी को भेजता है। वह कुट्टिनी का रूप धारण किए चित्रकूटोद्यान में आ कर सीता से मिलती है, पर वह सीता से तिरस्कृत होती है। इसके बाद रावण अपनी माया से मारीच को मणिहरण बना कर छोड़ देता है। जब राम उसका पीछा करता है तो रावण स्वयं राम का वेष धारण किये सीता से शहर लौटने को कहता है। जब सीता पालकी रूपी पुष्पक पर चढ़ती है तो उसे लङ्का ले जाता है। वहाँ जा कर जब निज स्थिति मालूम होती है तो सीता राम को पाने तक अनशन व्रत धारण करती है। इधर सीता की खोज में राम और लक्ष्मण निकलते हैं। रास्ते में सुग्रीव, हनुमानादि से उनकी मैत्री होती है। लक्ष्मण बालि को मारता है। हनुमान सीतान्वेषण करके आता है। लंका पर चढ़ाई होती है। युद्ध में रावण को लक्ष्मण मारता है। सीता को लिए वारणासी आते हैं। इसके बाद राम वैराग्य से केवली होता है और लक्ष्मण पंकप्रभा नामक नरक में जाता है।

इस तरह इन दोनों संप्रदायों के कथा-निरूपण में थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाता है। धार्मिक प्रभाव में पड़ कर रामायण की कथा बहुत ही परिवर्तित हो सकती है—इस बात का एक और मनोरंजक प्रमाण भी है। वह बौद्ध धर्म के जातकों में आनेवाली कथा है जिसका कन्नड़ में गद्यानुवाद हो चुका है। थोड़े में उसका भी परिचय करा दें तो असंबद्ध प्रतीत नहीं होगा। 'दशरथ' जातक के अनुसार रामायण की कथा में रावण का बिलकुल पता ही नहीं है। इतना ही नहीं, वहाँ सीतापहरण भी नहीं, उसके बाद की कथा तो बिलकुल नहीं है। यहाँ राम, सीता और लक्ष्मण एक ही माता की संतानें हैं। दशरथ की रानियां सोलह हज़ार हैं। उनमें भरत की माता प्रधान रानियों में एक है। दशरथ ने कभी उस रानी को एक वर दिया था। राज्याभिषेक के समय वही वर बाधा के रूप में उपस्थित होता है। राम, सीता और लक्ष्मण वन जाते हैं। दशरथ मर जाता है। भरत जा कर राम को मनाता है। परन्तु राम वनवास की अवधि के समाप्त होने पर ही वापस आता है। सीता से विवाह करके राज्य भार को संभालता है। कथा की विचित्रता को देख कर यही कहना पड़ता है कि इस पर शाक्येय धर्म का प्रचुर प्रभाव पड़ा हुआ है। प्रायः शाक्य कुल में यह भाई-बहन की विवाह-विधि प्रचलित रही होगी। यहाँ का राम सत्व गुण प्रधान है। बुद्ध के समान व्यक्ति है। बौद्ध लोग तो राम को बुद्ध के पिछले जन्मों में भी मानते हैं।

इतना ही नहीं, 'लंकावतार सूत्र' नामक एक बौद्ध ग्रन्थ में रावण का नाम मिलता है। परन्तु वह परम तपस्वी है। उसमें धर्म-शक्ति है, वह बुद्ध भगवान से चर्चा करता रहता है। जिज्ञासा तो उसका प्रधान स्वभाव मालूम होता है।[१] इस प्रकार आश्चर्य नहीं, यदि रामायण की कथा और भी अनेकों धर्मों के हाथ में पड़ कर एक-

---

[१] देखिए—पंप रामायण संग्रह की पीठिका—श्री डी० एल० नरसिंहाचार्य—पृ० सं० २२-२३।

दम बदल भी गई हो। भास महाकवि के 'पंचरात्र' को देखने से भी कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है और भारत की कथा को दूसरा ही रूप प्रदान करनेवाली कलि-स्वतन्त्रता को देख कर, हैरान हो, इसी निष्कर्ष पर आना पड़ता है कि यह कोई नई बात नहीं है।

रामायण की परम्परा की हिन्दू अथवा वैदिक धर्म की शाखा : अब हमें हिन्दू धर्म की रामायण-शाखा के सम्बन्ध में कुछ विचार करना चाहिए। इस शाखा को हम 'वैदिक धर्म की शाखा' भी कह सकते हैं। इन दोनों—जैन तथा वैदिक-शाखाओं के बीच में आ सकनेवाली एक और शाखा है। वह शैव सिद्धान्तों को ले कर चलती है और कथा तो वाल्मीकीय रामायण की कथा के आधार पर होने के कारण, उस शाखा के ग्रन्थों के न मिलने के कारण, उसको अलग महत्व नहीं दिया जा सकता। शैव सिद्धान्तों को रामायण की कथा में दिखाने के प्रयत्न हुए हैं, यह बात कन्नड के कवि-चरितों को देखने से ज्ञात होती है। अतः इसको भी वैदिक धर्म के अन्तर्गत ही मानकर चलना अनुचित न होगा।

वैदिक धर्म की शाखा के प्रमुख कवि और कृतियाँ : इस शाखा का सर्व प्रथम कवि 'बत्तलेश्वर' (नंगा ईश्वर) है। यह वीरशैव कवि है। इसकी रचना का नाम 'रामायण' है। रचनाकाल १४३० ई० ठहरता है। वाल्मीकीय रामायण इसका आधार है और इसमें कोई विशेषता नहीं है। यह काव्य अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त नहीं हो सका।

'तोखे रामायण' इस शाखा का दूसरा काव्य है। इसका कर्ता 'नरहरि' नामक कवि है। कुमार वाल्मीकि, कवि राजहंस आदि उसके उपनाम हैं। यह कवि ब्राह्मण कवि है। सोमलपुर जिले में 'तोखे' एक गाँव है। इसी गाँव में कवि पैदा हुआ। 'तोखे रामायण' का छन्द 'भामिनी षट्पदी' है। काव्य के आरम्भ में तोखे नरसिंह देव, कवि, शिव, लक्ष्मी, पार्वती, ब्रह्मा, सरस्वती, आंजनेय, भारद्वाज गुरु, वाल्मीकि आदि की स्तुति की गई है। ब्राह्मण कवियों में रामायण लिखनेवाला यही पहला कवि है। रचनाकाल १५०० ई० के आसपास समझा जाता है। अब तक तो कन्नड की सभी रामायणों में नागचन्द्र कृत 'पंप रामायण' और कुमार वाल्मीकि कृत 'तोखे रामायण' ही प्रसिद्ध हैं। इनमें भी जनसाधारण में सर्वप्रिय 'तोखे रामायण' ही है।

इसके बाद अनेक रामायण-काव्य लिखे गए हैं। उनमें केवल मुख्य काव्यों की ही चर्चा आगे चलकर होगी। 'मूलक रामायण' के कवि के सम्बन्ध कुछ ज्ञात नहीं। फिर भी इसका महत्व है। यह काव्य षट्पदी में लिखा गया है। रचना काल सन् १६०० के लगभग होगा। इसमें कथा यों है : रावण का पुत्र मूलकासुर लंका पर आक्रमण करके विभीषण को पराजित करता है। इसके बाद बदला लेने की तीव्र प्रवृत्ति से उत्तेजित होकर अयोध्या पर चढ़ाई करता है। युद्ध में भरत और शत्रुघ्न को हरा देता है। फिर कुश के साथ उसे युद्ध करना पड़ता है। युद्ध में कुश के हाथों मर जाता है। यह है इस काव्य की विचित्र कथा।

'अद्वैत रामायण' नामक काव्य निजगुणार्य कृत है। यह वीरशैव कवि है। वचनों में इसने काव्य लिखा है। इस काव्य में रामायण कथा का अद्वैत-बोधक गूढार्थ बताया गया है। 'दशशिरोत्तम' और 'दशरथोत्तम' इन दोनों का मिलाप ही राम-गुण है। भक्ति और भावों का मिलाप ही लक्ष्मण-गुण है। कमल सूर्य का मिलाप ही सीता-गुण है। मन और धन के मिलने से भरत-गुण होता है। जीव और भूमि के मिलने से शत्रुघ्न-गुण होता है। इन पांचों गुणों के मिलाप से ही देह-गुण बनता है।" इस काव्य का रचनाकाल सन् १६५० ई० के लगभग माना जाता है। यह उतना प्रसिद्ध नहीं हो सका।

इनके अतिरिक्त, तिम्मरस कृत सन् १६५० ई० का 'मार्कण्डेय रामायण' है जिसमें युधिष्ठिर से मार्कण्डेय की कही रामकथा है। तिम्ममात्य कृत सन् १७५० ई० का 'रामाभ्युदय कथाकुसुम मंजरी' है जिसमें इतर सब रामायणों का सार है। 'हनुमद्रामायण' या 'हनुमद्राम विजय' कवि सुब्रह्मण्य की कृति है। यह कंदों (कन्नड का छन्द जिसमें चार पंक्तियाँ होती हैं) में लिखा गया है। इसका रचनाकाल १७५० ई० है। इसमें रामायण के साथ हनुमान का जीवन चरित्र भी है।

'वरद विट्ठल रामायण' एक और काव्य है जो भामिनी षट्पदी में लिखा गया है। रचनाकाल सन् १७५१ है। इसमें रामायण की कथा यों है : कोशल के राजा कुशल की कन्या से दशरथ का विवाह निश्चित होता है। पर रावण उस कन्या का अपहरण करके समुद्र के बीच में रख देता है। फिर भी दैवयोग से दशरथ और कौशल्या के समागमन से उनका विवाह हो जाता है।

इसके बाद रामायण की कथा और मूलकासुर की कथा भी है। इसमें मूलकासुर राम लक्ष्मण को भी हरा देता है और कुश से हत हो जाता है।

इसके बाद वेंकामात्य कृत रामायण उल्लेखनीय है। वेंकामात्य हैदर अली के यहाँ मन्त्री था। इसने रामायण वार्धक षट्पदी में लिखा है। रचनाकाल सन् १७७० है। इस कथा को पहले शिवजी पार्वती से कहते हैं। बाद में सूत जी ऋषियों से कहते हैं। 'शंकर रामायण' एक और काव्य है जिसके कवि का नाम ज्ञात नहीं। यह भामिनी षट्पदी में रचित है। ब्रह्मा ने नारद को रामकथा का उपदेश दिया। बाद में, ईश्वर ने रामतारक मन्त्र की महिमा बताने के लिए यह कथा पार्वती जी से कही। रचनाकाल १७०० ई० के आस पास माना जाता है।

'श्रीरामकथा कल्पवृक्ष' इस सिलसिले में एक और रचना है। इसके कर्तृ मैसूर के महाराजा स्वर्गीय श्री मुम्मड़ी कृष्णराज ओडेयर हैं जो सन् १७९४ से १८६८ ई० तक राज्य करते रहे। ग्रंथ चार स्तबकों में विभाजित है। इसमें की 'रामकथा', 'श्रीमद्रामायण', 'विष्णुपुराण', 'पद्मपुराण कूर्मपुराण', 'आध्यात्म रामायण', शिवधर्मोत्तर', 'विष्णुधर्मोत्तर', 'जैमिनी भारत' आदि ग्रन्थों में आनेवाली रामकथाओं के परिशोध से प्राप्त सार-संग्रह के रूप में है। राजा साहब बड़े विद्वान् और रसिकशिरोमणि थे। साथ ही विद्वान् और कवि लोगों के आश्रयदाता थे। इन्होंने स्वयं पचासों ग्रन्थ लिखे और दूसरे पचासों से ग्रन्थ लिखवाए। आश्रित कवियों में एक अळिय (दामाद) लिंगराज थे जिन्होंने 'रामोदय कथा', 'वनवास रामायण' आदि को यक्षगान के रूप में लिखा।

न्यापती लक्ष्मीनरसिंह कृत 'राम कथा रंजन' का रचनाकाल सन् १८६० माना जाता है। इसमें वृत्त, गीत, सीस पद्य और कन्दों आदि कन्नड़ के ठेठ छन्दों का प्रयोग किया गया है। काव्य पर तेलुगु का प्रभाव दीख पड़ता है। 'अच्च कन्नड़ रामायण' (ठेठ कन्नड़ रामायण) एक भिन्न काव्य है जिसके कर्ता सिद्धान्ती सुब्रह्मण्य शास्त्री जी हैं जो उन्नीसवीं शताब्दी में जीवित थे। यह षट्पदियों ही लिखा गया है, परन्तु असमग्र है।

'वसिष्ठ रामायण' भी एक काव्य है जिसके रचयिता बागलूर रामस्वामी हैं जो उन्नीसवीं शताब्दी में वर्तमान थे। इसमें भी कन्द, वृत्त, गीत, षट्पदी आदि छन्दों की भरमार दिखाई देती है। 'रामपट्टाभिषेक' एक और काव्य ग्रन्थ है जिसकी कर्ता 'लक्ष्मी' नामक कवियत्री मानी जाती थी। परन्तु बाद में इसके असली रचयिता 'मुद्दणा' का पता चला है। 'मुद्दणा' भी काव्य-नाम था। इनका असली नाम 'नन्दळि के लक्ष्मीनारायणप्पा' था। यह किसी स्कूल में कसरत के मास्टर थे। इन्होंने 'रामपट्टाभिषेक', 'अद्भुत रामायण' और 'रामाश्वमेध' की रचना की। प्रथम दोनों काव्य हैं और तीसरा गद्य-ग्रन्थ है। इसे पुरानी कन्नड़ में लिखा गया है। इसमें कथा को आदिशेष वात्सायन कहते हैं। उसी कथा को 'मुद्दणा' अपनी पत्नी 'मनोरमा' से मनोहर ढँग से कहते हैं। कहने का यह ढँग बहुत ही अनूठा है। यह ग्रन्थ कन्नड़ साहित्य में अति प्रसिद्ध है। रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दी है। अस्तु, कन्नड़-साहित्य में उपरोक्त काव्यों के अतिरिक्त पचासों और रामायण-काव्य हैं जो अप्रसिद्ध होने के कारण छोड़ दिए गए हैं।

इसके उपरान्त बीसवीं शताब्दी की कुछ रचनाएँ हैं इनमें प्रथम है साली रामचन्द्रराव कृत 'रामायण'। यह सांगत्य में लिखी गई है। यह बच्चों का अति प्रिय काव्य रहा है। दूसरी भत्ती लिंगराजे अरसु कृत रामायण है। यह भामिनी षट्पदी में रची गई है। परन्तु उतनी प्रसिद्ध नहीं हो सकी। ये दोनों बहुत ही संक्षेप में हैं।

इनके साथ एक और ग्रन्थ है जिसे अळसिंगराचार्य ने लिखा है। यह वाल्मीकीय रामायण का विशद गद्यानुवाद है। आधुनिक कन्नड़ में होने के कारण, मनोरम ढंग से लिखे जाने से, सर्व-प्रिय होने से इसका नाम छोड़ा नहीं जा सकता। कन्नड़ में, गद्य रूप में रामायण बीसों हैं। परन्तु उनका कोई महत्व नहीं। फिर भी, वे गद्य में हो कर भी काव्य ग्रन्थों से होड़ कर सकती हैं। और तो और, कन्नड़ साहित्य में वे रत्न के समान शोभायमान हैं।

अब एक रामायण और बची है जिसकी चर्चा करने के बाद इस लेख की समाप्ति हो जाती है। यह रामायण, जिसकी चर्चा अब होनेवाली है, कन्नड़-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ है। उसका नाम "श्री रामायण महादर्शनम्" है। इसका रचना काल सन् १९३७ से १९४६ है। इस अनुपम काव्य के यशस्वी कवि कन्नड़ के जीवित महाकवि "कु. वें. पु." हैं। आपका पूरा नाम श्रीमान् के. वी. पुट्टप्पा है। आप आजकल मैसूर विश्वविद्यालय के कन्नड़-विभाग के अध्यक्ष हैं। आपको आधुनिक कन्नड़ के 'कविकुल गुरु' कह सकते हैं।

श्रीरामायण दर्शनम् : कन्नड़-साहित्य के अनगिनित रत्नों के बीच अनमोल जवाहरों से जड़े मुकुट के समान शोभित होनेवाली यह रामायण 'महाछन्दस्' (कवि का अपना छन्द है) में लिखी गई है। इसकी कथा वाल्मीकि की कथा होने पर भी इसमें जो नवीनता, जो दार्शनिकता, जो भक्ति, कर्म और ज्ञान के सिद्धान्त पाए जाते हैं वे अन्यत्र कहीं नहीं पाए जाते। कवि कहते हैं कि इनकी रामकथा तो प्रतिदिन हमारी आँखों के सामने होनेवाली रामकथा है। कथा की रेखाओं को छोड़ कर अन्य सभी वस्तुएँ इसमें नूतन हैं। यदि यह काव्य राष्ट्रभाषा में रचा गया होता तो बेजोड़ प्रमाणित होता और समूचे राष्ट्र की एक निधि बन जाता। इस काव्य की विशेषताएँ बताने चलें तो एक ग्रन्थ ही लिखना पड़ेगा। फिर भी यहाँ अत्यंत संक्षेप में कहा जाएगा। काव्य गुणों के अतिरिक्त, इस काव्य पर अरविन्द दर्शन का प्रभाव पड़ा है। इतना ही नहीं इसको ठीक समझने के लिए भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन और मनोविज्ञान के सम्यक् ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। शिलायुग से लेकर अणु बम के इस युग तक की मानव प्रगति की झलक, संस्कृति की प्रगति, सभ्यता की उन्नति आदि सब इस काव्य में प्रतिबिम्बित है। साहित्य के सब अंगों की, सब वादों की सब विशेषताओं के सम्यक् ज्ञान के बिना कवि को समझना कठिन होगा।

इस काव्य का एक-एक पात्र एक-एक उज्ज्वल तारा है। इसकी मंथरा ममता की पुतली है। इसका संपाती रामकथा संकीर्तन सुन कर फिर अपना यौवन प्राप्त कर के शाप से मुक्ति पाता है। वह रावण से बदला लेने की प्रतिज्ञा करके राम का सहायक बनता है। इसमें बालक राम चन्द्रमा को पाने के लिए जब मचलता है और दशरथ सार्वभौम राजा हो कर भी बालक की एक इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकने पर जब तड़प उठता है तब मंथरा ही एक आइना ले आ कर उसमें चन्द्र का प्रतिबिंब दिखा कर राम को चुप कराती है। रामपट्टाभिषेक का विराट दर्शन भी महत्वपूर्ण तथा गरिमामय है। महानता और सामान्यता के महत्व का वर्णन तो भव्य हुआ है। पग-पग पर इस काव्य में बहुत-सी ऐसी चीज़ें मिलेंगी जिन्हें देख कर आदमी चकित रह जाएगा। जो जिस योग्य होगा वह उतना ही पाएगा इस माणिक खान से। संक्षेप में कहें तो यह काव्य इस संसार भर को एक वर के रूप में प्राप्त हुआ है। इसमें परमज्ञान, परमभक्ति और परमकर्म का त्रिवेणी संगम हुआ है। इसमें जो गोता लगाएगा वही मुक्त हो जाएगा।

यह है संक्षेप में कन्नड़-साहित्य में रामायण की परम्परा।

महारानी कालेज,
मैसूर

—मा. देवेगौड़ "बोम्मण्णा"

तर्क और न्याय दोनों से ही मुझे ज्ञात होता है कि बिजली और भाफ़ में दया और निरामिषता से मानव जाति के प्रति अधिक प्रेम है।

× × × ×

मैं प्रत्येक रूप में असत्य और हिंसा से घृणा करता हूँ। मैं इन्हें विज्ञान, धर्म और नई पीढ़ी में देखता हूँ। मैं लेबलों और ट्रेडमार्कों को पूर्वग्रह समझता हूँ। मेरे लिए पवित्र से पवित्र वस्तु मानव शरीर, स्वास्थ्य, मन, प्रतिभा, प्रेरणा और समस्त अवस्थाओं में असत्य और हिंसा से छुटकारा प्राप्त करना है।

—एण्टन चेख़ोव

क-एक उज्ज्वल
ली है। इसका
र अपना यौवन
रावण से बदला
बनता है। इसमें
जब मचलता है
बालक की एक
प उठता है तब
न्द्र का प्रतिबिंब
ामपट्टाभिषेक का
य है। महानता
भव्य हुआ है।
ज़ि मिलेंगी जिन्हें
जो जिस योग्य
खान से। संक्षेप
क वर के रूप में
और परमकर्म
ा लगाएगा वही

में रामायण की

ह "बोम्मरणा"

भारतीय लोकगीतों में नारी

भारतीय नारी करुणा की मूर्ति है वह विद्रोह करना नहीं जानती। जब विद्रोह की ज्वाला उसके हृदय में उठती है तब वह उसे मौन में छिपा लेती है और अपने आँसुओं के साथ बहा देती है। वह जानती है कि विश्व में उसका जन्म केवल साधना के लिए हुआ है। उसे जन्म से मृत्यु पर्यन्त एक कठिन साधना की अग्नि में तिल-तिल कर अपने समस्त जीवन की बलि दे देनी होती है। उसके सामने चमकते हुए आकर्षण होते हैं, अठखेलियाँ करता विलास होता है और उसके हृदय में स्वर्णिम लालसा होती है, किन्तु उसके जीवन की सीमा तिरस्कार, प्रतारणा और लघुत्व के कण्टकों से आबद्ध होती है। अतः वह अपने आपको चमकते आकर्षण और इठलाते विलास तक नहीं पहुँचा पाती। हृदय की आकांक्षाएँ उसके स्वभावगत लज्जा के अवगुण्ठन में दुबक कर रह जाती हैं।

उसके बाल्यकाल के कुछ भोले दिवस लाड़-प्यार में अवश्य बीतते, पर शैशव के सोपान पर पैर रखते ही वह माता-पिता और परिवार के चिन्ता का कारण बन जाती; और इसी दिन से उसके जीवन की साधना आरंभ हो जाती है। हिन्दी ही नहीं, वरन् सभी भाषाओं के कवियों ने नारी को अपनी कविता का विषय बनाया है और उसके भिन्न-भिन्न रूपों का चित्रण अपने काव्य में किया है। भारतीय लोकगीतों में भी नारी के विभिन्न रूपों के चित्रण का अभाव नहीं है। निम्नांकित एक भोजपुरी गीत देखिए, जिसमें बालिका के जन्म पर चिन्ता प्रकट की गई है :

"जाहि दिन बेटी हो तोहार जनम भइले,
पेडुरी मोर घहराइ ए।
माँस मछरिया बेटी मन ही न भावेला,
पेडुरी मोर घहराइ ए॥
जाहि दिन बेटी हो तोहारो जनम भइले,
भइली भदउआ के रात ए।
सासु ननद घरे दिअरो न बारेली,
उ तो प्रभु बोलेले कुबोल ए॥
जाहि दिन बेटी हो तोहरो बिआह होइहें,
बाबा के हिरदया जुड़ाइ ए।
धन-धन बेटी हो तोहरो जनम भइले,
देवतन लिहले बसेढ़ हो॥
भइले बिआह परेला सिर सेनुर,
नव लाख मांगे दहेज ए।
घर में के भांडा आंगन देई पटकवि,
सतरु के धिया जनि होइ ए॥
जाहु हम जनितीं कि धिआ, कोखि जनमिहें
कोखि जनमिहें पिहितीं हम मरिचि झरार ए।
मरिचि के झारे-झुरे धिया मरि जइती,
छूटि जइते गरे हुआ सन्ताप ए॥"

माता पुत्री का जन्म होते ही अपने आप को एक बड़े संकट में घिरी देखती है। जन्म के दिन ही उसके सामने बालिका के भावी जीवन और उस जीवन से सम्बद्ध कठिनाइयाँ चित्रपट के चित्रों की तरह उपस्थित हो जाती हैं। उसके सामने उस बालिका के विवाह की चिन्ता के साथ ही अपनी आर्थिक कठिनाई और उस कठिनाई के फलस्वरूप उत्पन्न दुरावस्था का चित्र कल्पना के पर्दे पर उभर आता है और वह सिहर उठती है। जिस पुत्री को जन्म दे कर उसकी बन्ध्यात्व के अभिशाप से मुक्ति हुई और उसका नारी-जन्म सफल हुआ, उसी को वह अपने जीवन का अभिशाप मानने को विवश है। हाय रे नारी जीवन!

बालिका किशोरी भी नहीं हो पाती कि उस पर समाज के बन्धन लगना आरंभ हो जाते हैं। उसे मनचाहे खेलने-कूदने और बाहर आने-जाने पर भी रोक लगा दी जाती है। नीमाड़ी का एक लोक गीत देखिए, जिसमें किशोरावस्था की ओर बढ़ती हुई एक भोली बालिका अपने पिता से खेलने के लिए बाहर जाने की आज्ञा माँगती है। पिता बड़े संकोच से उसे आज्ञा तो दे देता है पर बाहर जाने के पूर्व उसे कुछ उपदेश दे कर लोक-मर्यादा बाँध देता है :

"पिता जी की गोदी बठी रनुबई विनवऽ।
कवौ तो पिताजी हम वा रमदा जावां॥
जावो बेटी रनुबाई रमवा जावो।

लम्बो बजार देखि, दौड़ी मत चलजो ।
उच्यो बरलो देखि जार मत बठजो ।
परायो पुरुष देखि हंसी मत बोलजो ।
नीर देखिन बेटी चीर मत धवजो ।
पाटो देखिन बेटी आड़ी मत घँसजो ॥
परायो वालो देखि हाय मत करजो ।
संपत देखिन ढोटी चढ़ी मत चलजो ॥
विपत देखिन बेटी रड़ी मत बठजो ।
जाओ बेटी रनुबाई रमवा जाओ ॥"

बालिकाएँ भी अपने परिवार की अपने प्रति व्यक्त की जानेवाली हीन भावनाओं, उपेक्षाओं और लघुत्व के भावों से अपरिचित नहीं होतीं । वे ज्यों-ज्यों बड़ी होती जाती हैं, त्यों-त्यों विवाह होने के पूर्व ही अपने भावी जीवन की कुरूपता और विद्रूपता की कल्पना करने लगती हैं। वे यह समझ लेती हैं कि जिस गृह में उनका जन्म हुआ है, वह सदैव के लिए उनका अपना नहीं रह सकता । एक दिन उन्हें अपने माता पिता का दुलार, भाई बहिनों का प्यार और सखी-सहेलियों का अनुराग त्याग कर एक अपरिचित घर में प्रवेश करना होगा और एक अपरिचित परिवार के जीवन से समरस होना पड़ेगा । निम्नांकित राजस्थानी गीत में अविवाहित बालिका की यही मनोकथा उसके अपने शब्दों में चित्रित हुई है :

"अम्मा ये, खेलण द्यौ दिन च्यार
फिर खेलण नहीं आऊँ, मेरी अम्मा ये,
खेलण द्यौ दिन च्यार ॥
मैं हूँ अम्मा तोरी चिड़ी ये चिड़कली
डैल गेस्यां उड़ जाय, अम्मा ये,
खेलण द्यौ दिन च्यार ॥
मैं हूँ अम्मा तेरी गाय की बछिया
जित मोड़ि मुड़ जाय, अम्मा ये ।
खेलण द्यौ दिन च्यार ॥
कै आऊँगी मैं औसर-मोसर
के वीरांरे, व्यांव अम्मा ये ।
खेलन द्यौ दिन च्यार ॥
फेर खेलण नहीं आऊँ, मेरी अम्मा ये ।
खेलण द्यौ दिन च्यार ॥"

कितनी दयनीय स्थिति है नारी की !

बालिका विवाह के योग्य होती है और उसके माता-पिता पर गहन चिन्ता का भार आ पड़ता है।

"जेहि घर कन्या कुवँरि नींद कैसे आवइ ।"

कन्या के लिए सुयोग्य वर का ढूँढ़ना और उसका विवाह कर देना सदैव से एक बड़ी समस्या रही है। स्वाभिमानी से स्वाभिमानी पिता को भी वर के एक साधारण-सी स्थितिवाले पिता के सामने नत मस्तक होने को विवश होना पड़ता है । अपनी इसी स्थिति को लक्ष्य कर एक भोजपुरी कन्या का पिता कहता है :

"गिरि नए पर्वत नए हम कबहु ना नए
बेटी तोहरे करनवाँ जग में इ माथ नवाए ।"

कितना हृदयबेधी और वास्तविक है पिता का यह कथन ! किसी प्रकार वर की खोज की जाती है और अनेक आपत्तियाँ उठा कर कन्या के विवाह की व्यवस्था होती है । एक अपरिचित लड़के के साथ सात भाँवर घूमने के पश्चात् कन्या अपने माता-पिता, परिवार और घर का मोह त्याग पराई हो जाती है। बेटी की विदा का वह अवसर आता है, जिस समय सारे घर में विछोहजन्य शोक की एक भयानक घटा छा जाती है । यह वह अवसर है जब कण्व के समान महान् त्यागी और संसार से विरक्त ऋषि का हृदय भी अपनी पोषित कन्या को बिदा होते देख करुणा से सिहर उठा, तब यदि साधारण गृहस्थों का हृदय करुणा से द्रवित हो उठे और उनके परिवार के नेत्रों से अश्रु की अविरल धारा प्रवाहित हो उठे तो कौन आश्चर्य ! निम्नांकित नीमाड़ी का एक लोकगीत मातृ-हृदय की यही वेदना व्यक्त करता है :

"इसी धरती आदो नीयज्यो ।
आदा चीकड़ा ते पान जी ॥
इनी कूक दुल्लव जी नीवज्यो ।
माँग छे कन्या को दान जी ॥
कन्या को दान ते बाबुल बहोत देखलो ।
मूरख-सी दियो नी जाय ॥
लड़की कायं खपा लई रे बाबुल कायं खपोसी ।
काय खपियाया जी मिट्ठो दूध ॥
माया खपा कई रे बाबुल माया खपोसी ।
माया ख पियायो काचो दूध जी ॥
चखो भी दीयो, रे बाबुल गगाल भी दीनी

तोबी नी समझ्या दयाल जी ॥
घर की मारडण बेटी अमुक बाई दीनी।
तब जाई समझ्या दयाल जी ॥"

एक ही कोख से जन्म लेनेवाले पुत्र और पुत्री की स्थिति में कितना अन्तर है ! कन्या वास्तव में माया का रूप है। पालन-पोषण कर जब वह वयस्क होती है, तब विवशता पूर्वक उसे दूसरों को आजीवन के लिए सौंप देना कितना विषादपूर्ण है। कन्या की इस स्थिति की दृष्टि से निम्नांकित राजस्थानी गीत पठनीय है :

"धीयड़ तेरी सासरिए चली ये
रातादेई, कुण करसी घर रो काम
धीयड़ तेरी सासरिए चली ये।
रातादेई, खड़ी रैसी ठाणां मांय
गांया ने कूण दुवासी ये
धीयड़ तेरी सासरिए चली ये।
रातादेई, घर को चानण चोक
धीया बिन कूण बुवरि ये
धीयड़ तेरी सासरिए चली ये।
रातादेई, आँगण रोवै भतीज
भतीजे ने कूण खेलावै ये
धीयड़ तेरी सासरिए चली ये।
रातादेई, वीरो उड़ीकै खेतां मांय
छाक वांरी कुण ले ज्यासी ये
धीयड़ तेरी सासरिए चली ये।
रातादेई, ईंधन रो अब बांध
भरोटो घर कुण ल्यासी ये
धीयड़ तेरी सासरिए चली ये।
रातादेई, गायां को लाग्यो वाग
गायां ने कूण चरासी ये
धीयड़ तेरी सासरिए चली ये।
लाड़ो बेटी, इतनी सी चिन्ता न कर
सावण में फेर मंगास्या ये
धीयड़ तेरी सासरिए चली ये।
लाड़ो बेटी, रुणझुण बैल जुपाय
वीरो ने लेणिहार भेजस्यां ये
धीयड़ तेरी सासरिए चली ये।
लाड़ो बेटी, इतणी चिन्त्या न कर
तीज्यां ने फेर बुलास्यां ये
धीयड़ तेरी सासरिए चली ये !"

कितना करुण दृश्य होता है कन्या की विदा का ! विवाह के पश्चात् कन्या ससुराल से अपने पिता के घर आती है। कुछ दिनों के पश्चात उसे पुनः ससुरालवाले लेने आते हैं। उसका विवाह हो चुका है, किन्तु माता-पिता की ममता उससे न छूट सकी। वह कुछ दिनों तक पितृ-गृह में ही रहने को उत्सुक है। इसीलिए वह पिता से ससुरालवालों को लौटा देने का आग्रह करती है। नवविवाहिता कन्या की यह मनःस्थिति निम्न नीमाड़ी लोकगीत में देखिए :

"सोना रूपा का घड़ा घड़ीला,
रेशम लम्बी डोर हो, झालरिया।
रनुबाई गंगा भरिया, जमना भरिया,
जाय कवेरी झकोल हो, झालरिया।
बेटी म्हारी पहेलाज आण, ससुराजी आया,
कालो घोड़ो लाया हो झालरिया।
पिताजी अबको आणो, पछो फिरइ देवो,
हम खेली लेवाँ फूल न पाती हो झालरिया।"

श्वसुर के पश्चात् क्रमशः उसका जेठ और देवर उसे लेने आता है, पर उन्हें भी वह अपने पिता से कह कर वापस करा देती है। अन्त में स्वयं उसका पति उसे लेने आता है। उसे भी वह वापस लौटाना चाहती है। यह उसका पिता उचित नहीं समझता। वह अपनी बेटी को समझाता हुआ कहता है :

"बेटी म्हारी ससुरो भी फिरी गयो,
जेठ भी फिरी गयो,
देवर भी फिरी गयो।
हाड़ाराव को कुँवर कन्हैयो,
ओ नी पाछ फिराओ झालरिया।"

अन्त में विवश हो कर कन्या को अपनी ससुराल जाना ही पड़ता है।

नारी का गृहिणी रूप : विवाह के पश्चात् नारी गृहिणी रूप धारण कर लेती है। उसके पति का घर ही उसका अपना घर हो जाता है। धीरे-धीरे गृह-व्यवस्था का उत्तरदायित्व उस पर आ जाता है। आरंभ में गृह स्वामिनी के समस्त अधिकार प्राप्त होते हुए भी वह अपने को एक अधिकारहीन गृह-सेविका के रूप में देखती है।

सास-श्वसुर, देवर, जेठ, ननद, पति आदि सभी की उस पर और उसकी गतिविधियों पर तीक्ष्ण दृष्टि रहती है। छोटी-छोटी त्रुटियों के लिए वह डाँटी जाती, दंडित की जाती, उपेक्षित होती, अपमानित होती और सब की टीका-टिप्पणी एवं व्यंग्य की शिकार होती है । निम्नांकित राजस्थानी गीत में उसकी इसी स्थिति का चित्रण है :

"अम्मा ये मैं पच-पच
मरूँ ये एकली ये माय ।
अम्मा ये तेरी ये धीवड़ली
पच-पच हारी ये माय ।
अम्मा ये बड़ी ये जेठाणी बैठी
हुकुम करावती ये माय;
अम्मा ये छोटी ये देराणी
नूँई आयी लाडली ये माय ।
अम्मा ये तेरी धीवड़ली
पच-पच हारी एकली ये माय ॥
अम्मा ये छोटीसी नणदूली
लांडा-कोड़ां सास रे ये माय;
अम्मा ये सारां रे बिच
एम चाकरणी धीवड़ी ये माय ।
अम्मा ये थारी धीवड़ली
पच-पच हारी एकलड़ी ये माय ॥"

कितना दुखी जीवन होता है नवविवाहिता नारी का हमारे समाज में ! वह लाख प्रयत्न करने पर भी अपने को तिरस्कार और प्रतारणा से नहीं बचा पाती !

विवाह होने को थोड़ा ही समय नहीं हो पाता कि घर-भर के लोग उसे पुत्रवती देखने को उतावले हो उठते हैं और उनकी इस इच्छा की पूर्ति में ज्यों-ज्यों विलम्ब होता जाता है त्यों-त्यों नववधू के प्रति उनकी खीझ बढ़ती जाती है । वह स्वयं भी संतानवती होने में गौरव अनुभव करती है । नारी की यही आकांक्षा निम्नांकित भोजपुरी गीत में व्यक्त की गई है :

"सून लागे दिया बिनु मन्दिल;
मांग सेनुर बिनु हो ।
ललना ओइसन सून तिरिया गोद;
एक बालक बिनु हो ।
सून लागे महल अटरिया,
अवरु खेत धरतिया नु हो ।
ललना नाहीं नीक लागे सुख-भोग;
से एक संतति बिनु हो ।
बड़-बड़ भइले जतनवा,
अइया उपचारवा नु हो ।
ललना जब रे किरिया, भइले राम के
गोदिया बालक खेले हो ।"

एक नीमाड़ी का लोकगीत देखिए जिसमें एक नव-वधू देवी के मंदिर में जा कर उससे पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना करती है :

"माथा पर ली गोबर टोपली हो ।
तू कआँ चली नार ॥
जे मठ रनुबाई-आसन बठिया ।
ओ मठ लिपण जावां ओ रनादेव ॥
एक बालुड़ो दऽ ।
एक बालुड़ा का कारण म्हारो
जनम अकारथ जाय ।
एक दीजे लूलो पांगलो हो,
म्हारी सम्पत्ति को रखवालो ॥
म्हारा कुल को हो रैंहसे उजालो ।
एक बालुड़ो दऽ ॥"

बेचारी नीमाड़ी गृहिणी लूला-लंगड़ा पुत्र पा कर भी अपने नारी-जीवन को सार्थक मानने को तैयार है ।

हमारे समाज की परम्परागत भावना पति को पत्नी का सर्वस्व स्वीकार करती आई है । नारी पति सेवा में अपने जीवन का उत्सर्ग कर देना ही अपना महान् कर्त्तव्य मानती आई है । यही हमारी संस्कृति की विशेषता है । भारतीय नारी का यह जीवनोत्सर्ग किसी भी अभारतीय समाज में दुर्लभ है । पत्नी को अपने पतिगृह में कितना ही कष्ट क्यों न हो, उसका पति कितना ही पतित क्यों न हो और उसके व्यवहार से उसका जीवन नारकीय ही क्यों न बनता जा रहा हो, किन्तु वह उसके अहित की कभी कल्पना भी नहीं करती। उसका कुछ क्षण का वियोग भी उसकी चिन्ता का कारण बन जाता है और उसका हृदय पति-दर्शन को आकुल हो उठता है । हिन्दी काव्य में विरहिणी नारी के हंस, काग और यहाँ तक कि वायु और मेघों द्वारा भी अपने पति को संदेश भेजने का उल्लेख है । लोकगीतों में भी इस भावना का अभाव नहीं है। उदाहरणार्थ यह राजस्थानी गीत देखिए, जिसमें विरहिणी

अपने दूरदेशीय पति को काग के द्वारा संदेश भेजती है। कितना सौन्दर्य है इस गीत में :

"उड़ ज्या रे काग गिगन का वासी;
खबर तो ल्याव म्हारे राजन की।
नांव नहीं जाणूं मै गाँव नहीं जाणूं,
सूरत न जाणूं थारे राजन की।
नाँव बतास्यां; गाँव बतास्यां
सूरत बतास्यां म्हारे राजन की।
तीखी-तीखी नाक फिरंगी को नौकर;
चाल चले अमरावां की।"

यह राजस्थानी लोकगीत आधुनिक जान पड़ता है। प्रयुक्त 'फिरंगी' शब्द अंग्रेज़ों का द्योतक है।

भारतीय नारी जीवन में दुःख ही दुःख नहीं है, उसमें जीवन का उल्लास, प्रिय मिलन का सुख और उच्च आकांक्षाएँ भी हैं। नवागत वधू के जीवन के साथ समाज के परम्परागत संघर्ष के साथ ही पति का स्नेह, दुलार और यौवन सुलभ श्रृंगार-सौन्दर्य भी आ कर नारी जीवन के संघर्ष को कुछ क्षणों के लिए विनोद और गार्हस्थ्य सुख में परिवर्तित कर देता है। वह अपने इस क्षणिक सुख की बेला में जीवन का द्वंद्व विस्मृत कर सुखानुभव करने लगती है। निम्नांकित भोजपुरी लोकगीत में नवागत नारी की प्रिय-मिलन आकांक्षा देखिए :

"आज सुहाग के रात कि,
चन्दा तुम निकरेहु हों।
चन्दा तुम निकरेहु,
सुरिज जिन आयेहु हो।
मोर हिरदै विरस जिनि,
केहेव, मुरग जनि बोलेहु हो।
मोर छतिया बिदरि,
ना जाय कि पौ जनि फाटेउ हो।
आज करौ लम्बी राति कि,
चन्दा तुम निकरेहु हो।
धीरे धीरे चलि मोरे सुरज
बिलम करि आयेउ हो।"

एक दूसरे अवधी के गीत पर भी दृष्टिपात कीजिए इसमें नायिका के हृदय में उमड़नेवाले उस हर्ष का चित्रण है, जो उसे प्रिय-मिलन में प्राप्त होता है।

"रसिया आए गरद उड़ी गोरी।
जब मोरे रसिया मेंड़वा पै आए;
भूरि दूब हरियानी गोरी।
रसिया आए गरद उड़ी गोरी॥
जब मोरे रसिया कुइयां पै आए;
रीते कुआ भरि आए गोरी!
रसिया आए गरद उड़ी गोरी॥
जब मोरे रसिया दुआरा पै आए;
मोतियन चौक पुराए गोरी।
रसिया आए गरद उड़ी गोरी॥
जब मोरे रसिया सेजिया पै आए;
सोनवा कलस धराए गोरी।
रसिया आए गरद उड़ी गोरी॥"

गृहिणी के रूप में नारी के दो रूप होते हैं; एक निर्माणकारी और दूसरा विध्वंसकारी। विध्वंस रूप में उसका हठ ही प्रधान होता है। नारी की इस प्रवृत्ति का चित्रण अवधी के निम्नांकित गीत में बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। इस गीत में नारी की उमड़ती आकांक्षा, तीव्र अभिलाषा, आभूषण विशेष के प्रति आकर्षण और नारी-जीवन के एक सहज अकृत्रिम और निर्धनता से पूर्ण हठवादिता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। बेचारी अवधी-गृहिणी को अपने पति के आर्थिक संकट का उतना ध्यान नहीं है, जितना कि लटकन प्राप्ति की अभिलाषा। गीत इस प्रकार है :

"करब बिकी जाय मोहे लटकन लैइ द्यो।
मोहे लटकन लै द्यो! मोहे लटकन लैइ द्यो!!!
करब बिकी जइहै तो बैल कहा खइहैं?
कि बैल बिकी जाय मोहे लटकन लैइ द्यो।
बैल बिक जइहैं तो खेती कहाँ हुई है?
कि खेत जली जायं मोहे लटकन लैइ द्यो।
रे खेत जलि जइहैं तो लरिका कहा खइहैं?
कि लरिका मरी जायँ मोहे लटकन लैइ द्यो।
रे लरिका मरी जइहैं तो घर को कहा हुइ है?
कि घर भी बिकी जाय, मोहे लटकन लैइ द्यो।
रे घर जो बिकी जइहै तो हम हूँ कहां रहिहैं?
कि तुम भी भगी जाव मोहे लटकन लैइ द्यो!"

प्रत्येक माता-पिता अपनी पुत्री का ससुराल जीवन सुखमय देखने के इच्छुक होते हैं और इसीलिए वे विवाह के पूर्व अनुकूल घर और वर ढूँढने का प्रयत्न करते हैं।

अपनी बेटी को ससुराल बिदा करते समय उसे वे तरह-तरह के उपदेश देकर यह प्रयत्न करते हैं कि वह ससुराल में सब की प्रिय बन कर रहे। इस प्रकार के उपदेशपूर्ण गीतों का भी भारतीय लोक साहित्य में अभाव नहीं है। उदाहरणार्थ नीमाड़ी का निम्नांकित लोकगीत देखिए :

> "कुल न लजावना सयाणी ॥टेक॥
> अपना ससराजी-ख बाप करी राखजो;
> ए सासू-ख माय करी राखनी।
> लज्ञान पति बात नी मिलखना सयाणी ॥
> अपना जेठजी स झीना झीना बोलना
> अपनी जेठानी-स बात नी मिलावना,
> सयाणी ॥२॥
>
> अपना देवरजी-ख भाई करि राखना,
> अपनी देवरानी-ख बेन करि राखना।
> गांव-म हा-हा न करावना सयाणी ॥३॥"

वधू को पूर्ण प्रसन्न करने पर भी प्रायः देखा जाता है कि वह ससुराल में जाकर सुखी नहीं रह पाती। उसे गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करते ही चार दिन के दुलार के पश्चात् कंटकों के बीच रहनेवाले पुष्प की तरह अपना जीवन बिताना पड़ता है। किन्तु भारतीय नारी सदैव से सहिष्णुता की मूर्ति रही है। वह हर प्रकार के त्याग और सहिष्णुता की अग्नि में अपने जीवन को तप्त करते रहना पसन्द करती है, पर यह नहीं चाहती कि उसके जीवन की कष्टकथा उसके पितृ-गृह पहुँचे और उसके माता-पिता अथवा परिवार के अन्य सदस्यों को कोई दुःख हो। भारतीय नारी की यही सहिष्णुता निम्न-गीत में व्यक्त हुई है। एक ग्रामीण नारी का भाई उससे मिलने आता है। वह उसे रो रो कर अपने कष्ट सुनाती और हृदय की वेदना व्यक्त करती है, पर जाते समय उससे कह देती है :

> "ई दुःख जिनि कह्यो भय्या भौजी अगवां रे ना;
> भौजी दुइ चारि घर कहि अइहीं रे ना।
> ई दुःख जनि कह्यो भय्या माई के अगवां रे ना;
> माई छतिया बिदारि मरि जैहैं रे ना।
> ई दुःख जिनि कह्यो भय्या बाबा के अगवां रे ना।
> सभवै बैठि बाबा रोइहैं रे ना।
>
> × × ×
>
> ई दुःख तुम भय्या मनही में राखेउ रे ना
> भय्या करम लिखा तस भोगब रे ना"

यह नारी की मर्मव्यथा व्यक्त करनेवाला एक हृदय-द्रावी चित्रण है—नारी की अन्तर-पीड़ा का कटु सत्य अपने नग्न रूप में इस गीत में उपस्थित है। नारी की सहनशीलता की उस समय पराकाष्ठा हो जाती है, जब वह असत्य वेदना का अनुभव करती हुई भी उसे व्यक्त नहीं करना चाहती। पूर्ण गीत करुणा से ओत-प्रोत है।

मातृ रूप में नारी : नारी जहाँ कन्या, पत्नी, गृहिणी और बहन है वहाँ वह माता भी है। मातृत्व में नारी-जीवन का पूर्ण विकास होता है। जिस दिन एक नारी को मातृत्व प्राप्त हो जाता है, उस दिन वह अपना जन्म सफल मान लेती है। इस मातृत्व की प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए वह अपना सर्वस्व त्याग करने, अपने समस्त सुखों की बलि देने, अपार कष्टों को सहन करने और विविध साधनाओं में अपने शरीर को होम देने को तैयार रहती है। मातृत्व प्राप्त करने पर उसके जीवन को एक नया मोड़ मिलता है। उसका जो स्नेह अभी तक केवल पति तक ही सीमित था, वह अब सन्तान तक विकसित हो जाता है। उसके हृदय में एक के प्रति अनुराग, पूज्य भावना और सुख-दुःख, सहयोगी-भाव होता है और दूसरे के प्रति ममता, दुलार तथा वात्सल्य का उभार होता है। नारी-हृदय की इस मातृत्व भावना की अभिव्यक्ति इस भोजपुरी गीत में देखिए। अपने बाहर गए बालक के घर आने में विलम्ब होता देख माता का हृदय अधीर हो उठता है :

> "पैर में सोहे पैजनियां कमर करधनिया
> ललन दूरि खेलत जनि जाव ढूंढन हम ना अउबे॥
> सात बिरन के बहिनिया बाप धिया एकै
> हरिजी के परम पियारी ढुंढन कैसे अइबो॥
> भोर भए भिनुसार कलेनवा की जुनिया
> होइगै कलेनवा के बेर ललन नहीं आए॥
> अंगिया तो फाटै बंदै वंद अंचरा करै कर
> छतिया उठी हहराय ढूंढ़न हम आइन।
> सात विरन की बहिनिया वाप कै एकै
> मैया बाबू के परमपियारि ढूंढ़न कैसे आइन
> छाड़ेउ मैं सातो विरनवा बापके नइहर,
> छोड़ दिन्हों हरि की सेजरिया ढूंढन हम आइन॥
> जैसे कुम्हार के अउआं न भभकि भभकि रहै
> बेटा वैसे माई क करेजवा त धधकि धधकि रहै॥"

लोक-साहित्य ही वास्तव में मानव-जीवन-साहित्य

है। उसमें मानव-जीवन की विविधता की अभिव्यक्ति अपने यथार्थ रूप में हुई है। उनमें चाहे काव्य-शास्त्रों के नियमों की उपेक्षा भले ही हुई हो किन्तु अपनी स्वाभाविकता, यथार्थता और सादगी के कारण उनमें जो सौन्दर्य है, जो रसानुभूति है, जो प्रभावोत्पादकता है और संगीत का जो माधुर्य है वह विद्वत्ता की ऊँचाई पर निर्मित काव्य साहित्य में कभी भी संभव नहीं है। कितने ही ऐसे लोकगीत हैं, जिनके प्रभाव, आकर्षण और माधुर्य पर हमारी अलङ्कार और छन्द-शास्त्र की शृंखलाओं से आबद्ध काव्य-गरिमा न्यौछावर की जा सकती है।

टेकड़ी रोड, सीताबल्डी,
नागपुर

—कृष्णलाल 'हंस'

आदिवासियों के गीत

(१)

जहाँ मंजीरे झनझनाते हैं
और मन्दार* बजते हैं
वहाँ हम जाते हैं
जहाँ हमें संगीत बुलाता है
वहाँ हम जाते हैं
जीवन के अंतिम साँस तक
वहाँ हम जाते हैं......

(२)

मन्दार की धमक पर
हम नृत्य करते हैं
ग्वाले मध्य रात्रि तक बाँसुरी बजाते हैं
मन्दार के संगीत पर
हमारी नींद भाग जाती है
जो सोते हैं वे भी जाग उठते हैं और नाचने लगते हैं
ज्यों ही मन्दार धमकते हैं.........

---

* मन्दार एक प्रकार का मृदंग होता है जो लकड़ी का या मट्टी का बना होता है और जिसके दोनों ओर चमड़ा लगाया जाता है।

वीर-काव्यों में चरित्र-चित्रण की सामान्य प्रवृत्तियाँ

वीर काव्यों के अध्ययन से विदित होता है कि पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर इन कवियों का ध्यान विशेष रूप से नहीं गया था। ये ग्रन्थ ऐतिहासिक काव्य थे, इसलिए अधिकांश कविगण इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण करके ऐतिहासिक घटनावली, पात्रों, स्थानों तथा अन्य सामग्री की सूची का उल्लेख भर कर दिया करते थे। इनमें पात्रों की अधिक भरमार होती थी। लूटमार तथा युद्ध-सामग्री की विस्तृत-सूची, अलंकार प्रयोग, चमत्कारवादिता तथा रीति परम्परा का अनुसरण आदि कुछ ऐसे कारण थे जिनके फलस्वरूप चरित्र-चित्रण की ओर इन कवियों का ध्यान बहुत कम गया था।

उपर्युक्त कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि उक्त काव्यों में चरित्र-चित्रण का एकदम अभाव है, किन्तु इतना सत्य है कि इन कवियों ने अधिकतर परम्परागत कुछ विशिष्ट गुणों का ही उल्लेख अपने पात्रों के सम्बन्ध में किया है। पर कुछ प्रबन्ध काव्यों में चरित्रों का अच्छा चित्रण हुआ है। रासो-परम्परा के ग्रन्थों में 'पृथ्वीराज रासो' की छाप स्पष्ट रूप से मिलती है। मुक्तक-ग्रन्थों में कुछ विशेष बातों को लेकर ही चित्रण कर दिया गया है। स्त्री-पात्रों के सम्बन्ध में भी एक बँधी हुई धारा का अनुकरण किया गया है। नीचे चरित्र-चित्रण सम्बन्धी कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है, जिससे उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो सके।

कुछ अपवादों के साथ प्रायः सभी पात्रों, विशेष कर नायकों में एक ही प्रकार की विशेषताओं के उल्लेख सभी ग्रन्थों में मिलते हैं। पात्रों को मृगया, मल्ल-युद्ध तथा गज-युद्ध से विशेष प्रेम होता था। वे अस्त्र-शस्त्र-संचालन में अधिक दक्षता प्राप्त किया करते थे। युद्ध में सेना के अग्रभाग में रह कर वे युद्ध की गति-विधि का स्वयं निरीक्षण करते थे और विजयी वीरों का समुचित आदर करते थे।

इन ग्रन्थों के नायक प्रायः युद्ध-वीर के रूप में ही चित्रित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त वे दान-वीर एवं धर्म-वीर भी हुआ करते थे। वेद, गौ, ब्राह्मण और हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए ये पात्र सदैव परिकर बद्ध रहा करते थे। वे दान में मन चाहा धन लुटाया करते थे। ये भाटों एवं कवियों को सदैव सम्मानित किया करते थे।

कुछ पात्र बड़े यशस्वी तथा कर्मवीर हुआ करते थे। शत्रु से लोहा लेना, अपनी विजय के लिए सर्वस्व न्यौछावर करना और हँसते-हँसते अपने प्राणों की बलि चढ़ा देना इन वीर-पुंगवों के लिए साधारण बात थी। उनमें से कुछ वीरों ने अपने बाहुबल पर साधारण स्थिति से उठकर और दिल्ली राज्य की जड़ें हिला कर विस्तृत राज्यों की स्थापना की थी। ऐसे पात्रों के वर्णन में सच्ची वीरता, अदम्य उत्साह, असीम अध्यवसाय और कार्यकुशलता के दर्शन होते हैं। प्रायः सभी प्रमुख पात्रों की यह विशेषता थी कि वे शत्रु को तंग करने के लिए छिप कर छापा मारते, राज्यों को लूटते, आग लगा देते, चौथ उगाहते और जंगलों एवं सुरक्षित स्थानों में जा छिपते थे। दिल्ली राज्य के शत्रुओं और विद्रोहियों में परस्पर मित्रता स्थापित हो जाया करती थी। ऐसे मेल मिलाप द्वारा वे अपने शत्रु को पराजित करने के सदैव प्रयत्न करते रहते थे। अवसर पड़ने पर विश्वासघात, हत्या आदि करने से भी कुछ पात्र नहीं चूकते थे, किन्तु अधिकांश पात्र सत्यानुसार आचरण करनेवाले और महान व्यक्ति थे।

इन पात्रों में और विशेष रूप से नायकों में सच्ची राजपूत वीरता एवं कर्मण्यता के गुण वर्तमान थे। प्रतिद्वन्द्वी से लोहा लेना और कर मिटने अथवा मर-मिटने की भावना उनमें रहा करती थी। उनकी वीरता, क्रूरता एवं नृशंसता की भित्ति पर अवलम्बित नहीं थी। हाहा खाते पर हाथ उठाना, धोखे से शत्रुओं को मारना आदि बातें उन्हें रुचिकर नहीं थीं। प्रार्थना किए जाने पर वे शत्रु को धर्मद्वार प्रदान कर दिया करते थे। वे जितने वीर होते थे, उतने ही दयालु और जितने कठोर होते थे, उतने ही उदार।

इन पात्रों में स्वामि-भक्ति, कृतज्ञता आदि गुण वर्तमान थे। सेनापति आदि कर्मचारी अपने स्वामी के कार्य को बड़ी तत्परता और सच्ची लगन के साथ किया करते थे। यह उनके चरित्र की एक अलौकिक विशेषता थी।

इन ग्रन्थों में कुछ ऐसे पात्र भी मिलते हैं जो छल, कपट, विश्वासघात एवं धूर्त्तता के साक्षात अवतार थे।

अपने स्वार्थ की पूर्ति करना ही एकमात्र उनका लक्ष्य होता था, नीति, अनीति, उचितानुचित का ध्यान करना तथा ऐसी ही अन्य बातों पर विचार करना उनके लिए सदैव अनावश्यक था। कुछ ऐसे भी पात्र थे जो आत्म-श्लाघा, दूसरों को उपदेश देना आदि ही सच्ची वीरता का आदर्श समझा करते थे।

कुछ ग्रन्थों में नायक, और उसके पक्ष के पात्रों के गुणों को बढ़ा-चढ़ा कर अंकित किया गया है। उनके प्रतिपक्षियों को प्रायः अधिक ऊँचा उठाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। ऐसे बहुत कम कवि हैं जिन्होंने प्रति नायक के आतंक, गौरव और वैभव आदि का उदारता-पूर्वक वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में मान और सूदन के नाम लिए जा सकते हैं। रासो-परम्परा के अनुयायी जोधराज ने अपने ग्रन्थ के उपनायक के चरित्र को बहुत गिरा दिया है। सूदन, पद्माकर आदि कवियों ने अपने आश्रयदाता के शत्रु की भी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

इन ग्रन्थों में नारी पात्रों का उल्लेख अपेक्षाकृत कम हुआ है। जटमल ने नारी जाति-वर्णन और जोधराज ने स्त्री-चित्रण में रीति तथा रासो-परम्परा का अनुसरण किया है।

उक्त सभी ग्रन्थों में नारी-पात्र प्रायः दो रूप में हमारे सामने आते हैं। कुछ ऐसे स्त्री पात्र हैं जिनके नख-शिख, सौन्दर्य आदि का वर्णन किया गया है। यह स्पष्ट ही शृंगारिक भावना का प्रभाव है। नारी का यह रूप उद्दीपक, साधना में बाधक और कर्तव्यपथ से विमुख कराने वाला है।

नारी का दूसरा रूप भी इन ग्रन्थों में देखने को मिलता है। उनका यह स्वरूप अत्यन्त उज्ज्वल एवं महान है। इस रूप में स्त्री सच्ची क्षत्राणी, सती, साध्वी, माता और पत्नी के रूप में आती है। उसका यह रूप अधिक वास्तविक, वीरता से पूर्ण और स्थायी है। उसका यह चित्रण रीतिकाल के अश्लील प्रभाव से बचा हुआ है। यह इस काव्य-धारा की अपनी निजी विशेषता है जिसकी उपमा अन्यत्र मिलना कठिन है। यद्यपि इन कवियों ने अपने ग्रंथों में बहुत कम स्त्री पात्रों का समावेश किया है, किन्तु जहाँ पर भी उन्होंने नारी के इस आदर्श को रक्खा है वह सच्ची घटनाओं पर निर्भर होने के कारण अधिक सत्य एवं प्रभावोत्पादक हो गया है। नारी का यह रूप चारण, भक्ति और रीतिकालीन साहित्य सबसे अलग अपनी विशेषता रखता है। सूक्ष्म होते हुए भी नारी का यह चित्रण आदर्श और स्थायी है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि कतिपय कवियों ने अपने प्रबन्ध-काव्यों में इतिहास के अनुकूल और कुछ ने ऊहात्मक शैली के अनुसार अपने पात्रों के चरित्र अंकित किए हैं। कई ग्रंथों में अतिशयोक्तिपूर्ण चरित्र चित्रण भी मिलते हैं। कुछ ग्रन्थों में रासो की शैली पर चरित्रों का वर्णन किया गया है। मुक्तक ग्रन्थों में भी दो प्रकार के चरित्र चित्रण मिलते हैं। अधिकांश कृतियों में यशस्वी नायक को लेकर उसकी वीरता आदि का वर्णन किया गया है, और कुछ में कोरी प्रशस्ति मात्र। कुछ कवियों ने चरित्र-चित्रण के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित की है। पर प्रायः सभी कवियों ने एक विशिष्ट शैली ही का अनुकरण किया है। जैसा कि कहा जा चुका है कि नारी पात्र कम आए हैं, पर उनके चरित्रों की अपनी निजी विशेषताएँ हैं।

बलवन्त राजपूत कालेज,
आगरा

—टीकमसिंह तोमर

जो कवि या चित्रकार अपनी कविता या चित्र को आकृति नहीं प्रदान कर सकता—वह कुछ नहीं कर सकता क्योंकि उसमें किसी प्रकार की आत्माभिव्यक्ति नहीं होती।

—क्रोचे

महानुभाव पन्थ के कवि नरेन्द्र और रुक्मिणी-स्वयंवर

रुक्मिणी-स्वयंवर की कथा भारतीय वाङ्मय में बहुत लोकप्रिय है। विशेषतया महाराष्ट्र में तो अनेक कवियों ने इस विषय को लेकर काव्य रचना की है। भागवत धर्मवाले महाराष्ट्रीय लेखक तथा महानुभाव पंथ के लेखक दोनों ने इस कथा के आधार पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें नरेन्द्र कवि का 'रुक्मिणी-स्वयंवर' नामक काव्य भी है। नरेन्द्र महानुभाव पन्थ के थे, इस कारण प्रथम इस पन्थ का थोड़ा परिचय आवश्यक है।

सात सौ वर्ष पहले महाराष्ट्र में धर्म तथा भाषा के सम्बन्ध में एक बड़ा आन्दोलन हुआ जिसका समस्त महाराष्ट्र पर प्रभाव पड़ा। मराठी भाषा में ग्रन्थ रचना का प्रारम्भ होने के साथ साथ या उससे भी पहले भागवत धर्म का प्रसार हो रहा था। इसका केन्द्र पंढरपुर था और भाषा के आन्दोलन का केन्द्र प्रतिष्ठान तथा देवगिरि प्रान्त था। इसी समय बराड में भी एक घटना घटित हुई। अमरावती विभाग के रिद्धपुर गाँव में गोविंद प्रभु (गुंडम राउल) नाम के काण्व-शाखीय ब्राह्मण विदेह अवस्था में रहते थे। एक बार गुजरात के एक प्रधानपुत्र-चक्रधर उनके पास आए और उन्होंने गोविन्द प्रभु का अनुग्रह प्राप्त किया। वे प्रतिष्ठान गए और वहाँ उन्होंने संन्यासाश्रम स्वीकार किया। यही चक्रधर महानुभाव पन्थ के संस्थापक हैं। इन्होंने संपूर्ण महाराष्ट्र का और तैलंग देश के एक भाग का परिभ्रमण किया जिसमें उनको चारों ओर धर्म की अवनत अवस्था दिखाई दी। अतः उन्होंने धर्म को स्थिर करने के कारण अपने मत के प्रसार की चेष्टा की। उनके जीवन काल में ही उनके ५०० शिष्य थे। यह शिष्यपरिवार दिनों दिन बढ़ता गया और अन्त में चक्रधर के पश्चात् उनके प्रमुख शिष्य नागदेवाचार्य ने उसे संगठित स्वरूप दे कर उसका एक स्वतंत्र और प्रभावशाली पन्थ बनाया।

यह पन्थ द्वैत संप्रदाय के भक्ति-मार्ग पर अधिष्ठित है। भागवत संप्रदाय के समान यह भी भक्ति में जाति का भेदभाव नहीं मानता। अहिंसा, सन्यास, सगुण भक्ति, सदाचार, नामस्मरण ये इसके प्रधान अंग हैं। इस पन्थ में अवतार कल्पना भी मान्य है। पर इसमें चार ही अवतार मान्य हैं। कृतयुग में हंसावतार, त्रेतायुग में दत्तावतार, द्वापर में द्वारकाधीश श्रीकृष्ण और कलियुग में स्वयं श्री चक्रधर। इसी प्रकार इस पन्थ में पाँच कृष्ण माने जाते हैं। एक द्वारावती के श्रीकृष्ण, दूसरे दत्तात्रेय प्रभु, तीसरे द्वारावती के एक सिद्ध पुरुष चांगदेव राउल, चौथे रिद्धपुर के गोविन्द प्रभु और पाँचवे स्वयं श्री चक्रधर। इनका भजन, पूजन, स्मरण आदि करने से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। इस पन्थ में गुरु-भक्ति को विशेष महत्त्व प्राप्त है। इसमें और भागवत-सांप्रदाय में बहुत साम्य है। दोनों में भक्ति की प्रधानता है पर इस पन्थ में श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय ये ही दो प्रमुख देवता हैं। दोनों पन्थ जातिभेद नष्ट करना चाहते हैं, परन्तु भागवत-संप्रदाय वर्णाश्रम को अक्षुण्ण रख कर केवल भक्ति में ही जातिभेद नष्ट करने की शिक्षा देता है। महानुभाव पन्थ इससे कुछ आगे बढ़ा हुआ दीखता है। संपूर्णतया जातिभेद नष्ट करने की चेष्टा करने का आक्षेप इस पन्थ के विरुद्ध किया जाता है पर वह सत्य नहीं है। इसमें जो गृहस्थ हैं वे अपना वर्ण धर्म मानते हैं, तदनुसार आचरण भी करते हैं। हाँ, इस पन्थ में संन्यासाश्रम में जातिभेद नहीं माना जाता। "स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्" इस भगवद्वचन को इस पंथ ने व्यापक बनाया और सब वर्णों के व्यक्तियों का प्रवेश संन्यासाश्रम में होने लगा। इस पन्थ में भगवद्गीता, और भागवत के दशम, एकादश स्कन्ध को बहुत मान्यता दी जाती है। इसी प्रकार पन्थ के "साती ग्रन्थ" भी आदरणीय समझे जाते हैं। ('शिशुपाल', 'उद्धवगीता', 'वच्छहरण', 'रुक्मिणी-स्वयंवर', 'ज्ञानबोध', 'सह्याद्रि-वर्णन' और 'रिद्धपुर वर्णन') इस पन्थ की उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि इसकी संपूर्ण रचनाएँ मराठी भाषा में हैं।

प्रस्तुत काव्य 'रुक्मिणी-स्वयंवर' इस पन्थ में बहुत सम्मानित है। यह 'साती ग्रंथों' में से एक है। काव्यगुणों के कारण इसे मराठी साहित्य में भी उच्च स्थान प्राप्त है। पर इसके रचयिता के विषय में हम बहुत कम जानते हैं। ग्रन्थ में कवि ने अपना नाम नरेन्द्र दिया है। महानुभाव पन्थ के अन्य ग्रन्थों में नरेन्द्र का निम्नलिखित चरित्र मिलता है। महाकवि नरेन्द्र यादव सम्राट् रामदेवराव के

आश्रित थे। साल (शैल) और नृसिंह उनके दो भाई थे। तीनों विद्वान् थे। पन्थ संघटक नागदेवाचार्य से नरेन्द्र को पन्थीय तत्त्वज्ञान का "श्रवण" प्राप्त हुआ था। राजाश्रय में कुछ काल व्यतीत करने के पश्चात् वे पन्थ में प्रविष्ट हुए। स्वर्गीय पांगारकर का उपनाम 'अयाचित' कहा जाता है।

ग्रन्थ निर्मिति : नरेन्द्र ने जो काव्य-रचना की, इसका कारण पन्थीय ग्रंथों में एक आख्यायिका के स्वरूप में निम्नलिखित प्रकार से दिया गया है। नृसिंह कवि ने नलोपाख्यान पर रचना की और साल ने रामायण पर। एक बार साल कवि राजा रामदेव की सभा में अपनी रामायण की कथा पढ़ रहे थे। वहाँ नरेन्द्र भी थे। उन्होंने साल से कहा "ऐसा द्वारकेचा रामहाटु वर्णिते तरि तुमचेया पाया पुरश्चरण होते।"—"यदि आप श्रीकृष्ण चरित्र पर इसी प्रकार रचना करते तो आपका पाप नष्ट हो जाता।" इस पर साल ने कहा, आप स्वयं ही ऐसा काव्य लिखिए, तो आपकी विद्वत्ता का परिचय मिलेगा। इस पर नरेन्द्र ने 'रुक्मिणी-स्वयंवर' की रचना की। यह काव्य भी राजसभा में सुनाया गया। राजा संतुष्ट हुआ और ग्रन्थ कर्तृत्त्व का 'अभंग' अपने नाम से करा देने की नरेन्द्र को प्रार्थना की, और धन का लालच भी बतलाया। नरेन्द्र जान गए कि ग्रंथ राजा के हाथों से नहीं बचेगा। समय टालने के लिए उन्होंने राजाज्ञा मान ली। पर कहा "हा ग्रंथ अशोधी आहे; तरी याचें शोधन करूं; मग आपल्या दफ़्तरी ठेवा"—ग्रंथ इस समय अशुद्ध है। शुद्धीकरण होने पर सेवा में प्रस्तुत करूँगा। घर लौट कर तीनों भाइयों ने तीन-तीन सौ ओवियाँ (एक मराठी छन्द) मिला कर नौ सौ ओवियाँ लिख लीं। दूसरे दिन राजदूत आ कर ग्रंथ ले गए। इस घटना के पश्चात् नरेन्द्र ने राजाश्रय छोड़ दिया और पन्थ प्रवेश किया और पन्थ की दीक्षा ली।

यह आख्यायिका कहाँ तक सत्य है यह कहना कठिन है। राजा रामदेवराव के समय यह पंथ बढ़ रहा था और राजा के अन्तःपुर में भी इस पंथ का प्रवेश हुआ था। नागदेवाचार्य रामदेवराव को 'निपखमु' (निष्ठुर)। राजा कहते हैं—इस बात से और अन्य घटनाओं से यह दिखाई पड़ता है कि पन्थानुयायी राजा से असन्तुष्ट थे। अतः हो सकता है कि यह कथा काल्पनिक भी हो। कवि नरेन्द्र की रचना में इस कथा का कोई आधार नहीं मिलता। उसने आरम्भ से ही अपनी रचना महानुभावीय पद्धति के अनुसार की है। आरम्भ में गणपति और सरस्वती का निर्देश है किन्तु उनको नमन नहीं किया गया है। गणेश के पास सिद्धि है, उनके दान रूपी मन्दाकिनी की शीतलता से विद्याओं का नन्दन वन पल्लवित होता है, गणेश जी ने मेरे मनोरथों पर मुद्रा लगा कर काव्य सजाया। इस प्रकार गणेश वर्णन है। सरस्वती के वर्णन में वे लिखते हैं "ते देवता तरी शब्दब्रह्मीची। पुनः विद्यावन्ती राया मुरारीची।"—वह शब्द ब्रह्म की देवता है पर वह श्रीकृष्ण की गायिका है, स्तुतिपाठिका है।..."कवि चालती तेणें उजियेडें। वरि गुरुकृपाचें अंजन जोडे। तैंचि ठेवे दीसती चोखडें। श्रीकृष्ण कथेचे।"—सरस्वती की कृपा से कवि काव्य करते हैं पर गुरु कृपा का अंजन मिलने पर ही श्रीकृष्ण कथा की निधि दृष्टिगोचर होती है।" इन ओवियों के परीक्षण से प्रतीत होता है कि यह वर्णन पौराणिक कथाओं के अनुसार है। इसी प्रकार कवि ने महादेवादि देवताओं का भी वर्णन किया है किन्तु उनको देवता मान कर कवि ने उनको नमन नहीं किया। महानुभाव श्रीकृष्ण और दत्त को प्रमुख देवता मानते हैं पर अन्य देवताओं की उपेक्षा नहीं करते। उनका केवल इतना ही कहना है कि अन्य देवता गौण हैं, उनमें मोचन सामर्थ्य नहीं। अन्त की ओवी में तो वे स्पष्ट ही कहते हैं कि गणपति, सरस्वती की कृपा से साधारण काव्य की ही रचना हो सकती है; परन्तु जब गुरु कृपा का अंजन नेत्रों में लग जाए तभी श्रीकृष्ण कथा की निधि दीखती है। यह गुरु कृपा और कुछ नहीं; यह महानुभाव पन्थ प्रवेश की है। इससे स्पष्ट है कि नरेन्द्र ने अपना काव्य महानुभाव पन्थ की दीक्षा लेने के पश्चात् लिखा। रामदेवराव की कथा कल्पित है, उसमें सत्यांश नहीं। जो कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ नरेन्द्र ने बनाया है। इसकी ओवी संख्या ८७६ है और रचनाकाल शाके १२१४ (ई. स. १२९२) है।

महानुभाव पन्थ तथा ग्रन्थकार के विषय में इतना परिचय देने के बाद अब हम इस ग्रन्थ का आलोचन करेंगे। ग्रन्थ का विषय तो उसके नाम से ही व्यक्त है पर कवि ने उसकी रचना कुछ निराले ही ढंग से की है। कुण्डिन्यपुर नगरी में राजा भीमक राज्य करते थे। उनके पत्नी का नाम शुद्धमति था। उनके 'रुक्मी' आदि पाँच पुत्र थे और रुक्मिणी नाम की एक कन्या थी। एक समय राजा

अपनी सभा में विराजमान थे तब रुक्मिणी अपनी सखियों सहित वहाँ उपस्थित हुई और राजा के पास बैठी। वह यौवनावस्था प्राप्त कर चुकी थी। और राजा को उसके विवाह की चिन्ता लगी हुई थी। इतने में काशीश्वर के भाट 'कल्याणकीर्ति' वहाँ पहुँचे। उन्होंने "कोटीसर्वं आसी पढिनला। भीम चक्रवर्ती वरी।" राजा को आशीर्वाद दिया। राजा ने भाट से प्रार्थना की कि आप देशदेशान्तर में भ्रमण करते हैं। यदि हमारी पुत्री के अनुगुण और अनुरूप वर देखा हो तो बताइए। कल्याणकीर्ति ने यह मान लिया। उसके साथ एक किन्नर था। उस किन्नर के मुख से समस्त क्षत्रियों का वर्णन करा के अन्त में श्रीकृष्ण ही रुक्मिणी के साथ विवाह करने के योग्य हैं यह उन्होंने कहा।

यह कथानक बहुत अद्भुत है। पक्षी के मुख से श्रीकृष्ण-कथा सुन कर वाचक चकित रह जाता है और उसकी उत्कंठा जागृत होती है। कवि ने ऐसा आरम्भ करने में बड़ी चतुराई और कलात्मकता व्यक्त की है। किन्नर का पूर्व वृत्तान्त भी इसी प्रकार का अद्भुत और कुतूहलजनक है। "मधुवन में वेदघोष ऋषि तप कर रहे थे। रम्भा उन पर अनुरक्त हो गई। ऋषि ने उसको स्वीकार न किया; इस कारण रम्भा ने ऋषि को शाप दिया कि तुम किन्नर बनोगे।" ऋषियों के तप में विघ्न डालने के लिए अप्सराएँ भेजी जाती थीं। कई ऋषि उनके विलोभन से चकरा कर मोह में फँस जाते थे। परन्तु अप्सराएँ डरती थीं कि ऋषि महाराज उनको शाप से भस्म न कर डालें पर यहाँ सब प्रकार उलटा है। अप्सरा ही ऋषि को शाप देती है। यह कथा रामदेवराव के कथा के समान ही प्रतीत होती है।

किन्नर की यह बात सुन कर "तेणें सभे सुखाचें भरितें चढलें। सर्वांगीं सात्विक दाटलें रुक्मिणीच्या।" समस्त सभाजन सुखासन्न हुए और अष्ट सात्विक भावों से रुक्मिणी का अंग प्रत्यंग पुलकित हुआ। राजा ने नागारी की यथोचित संभावना की और वह चला गया। राजा ने श्रीकृष्ण को रुक्मिणी का वर निश्चित किया किन्तु बाद में रुक्मिणी का विरोध देख कर राजा ने श्रीकृष्ण का विचार छोड़ दिया। शिशुपाल को रुक्मिणी परिणय के लिए निमन्त्रण भेजा गया। यह समाचार सुन कर रुक्मिणी अत्यन्त व्यथित हुई, श्रीकृष्ण की विरह वेदना से छटपटाने लगीं। सखियों ने बहुत उपचार किए पर वे सब निष्फल हुए। लज्जा के कारण उसने अपने हृदय की बात किसी से न कही। अन्त में उनकी सखी 'भावकलना' ने उनके मन का भाव ताड़ लिया। बहुत आग्रह के पश्चात् रुक्मिणी ने उससे अपनी दुख की कहानी निवेदन की। भावकलना बड़ी चतुर थी। उसने एक युक्ति बताई। उसके अनुसार रुक्मिणी ने सुदेव ब्राह्मण को बुला कर उससे सहायता माँगी। सुदेव ने श्रीकृष्ण जी को साथ ले आने का आश्वासन दिया। रुक्मिणी ने प्रेम-पत्रिका लिख कर सुदेव के हाथ दी और उनको श्रीकृष्ण के पास भेज दिया। मार्ग में मनोहर प्राकृतिक सौन्दर्य देखते-देखते सुदेव द्वारका पहुँचे। द्वारका नगरी के वर्णन के साथ-साथ ग्रन्थ समाप्त हो जाता है।

स्पष्ट है कि यह कथानक दोषपूर्ण है। इसमें मूल कथा का केवल पूर्वार्द्ध आया है। पत्रिका द्वारा रुक्मिणी अपना प्रेम प्रगट कर चुकी हैं। पर उनका प्रेम द्वारकाधीश को ज्ञात नहीं होता। अतः उत्तरार्ध के सुंदर और मार्मिक प्रसंग इस ग्रन्थ में नहीं हैं। ऐसे त्रुटिपूर्ण ग्रन्थ को समाज में मान्यता न मिलती, पर 'पंथ' ने इस त्रुटिपूर्ण ग्रन्थ को 'साती' ग्रन्थों में स्थान दिया है किन्तु हमें यहाँ धार्मिक दृष्टि को छोड़ कर साहित्यिक दृष्टि से उसका विवेचन करना है। इस दृष्टि से देखने पर सबसे पहले हमारा ध्यान इस बात पर जाता है कि इस कथानक का प्रारंभ बड़ी आश्चर्योत्पादक घटना के साथ किया गया है। प्रमुख पात्रों के अपने स्थान पर उपस्थित होते ही एक किन्नर द्वारा कथा का प्रवेश किया जाता है। यह है तो पक्षी पर इसकी वाणी मनुष्य की है। इसके कथन से देवी रुक्मिणी का प्रेम उद्दीप्त होता है। इस प्रसंग से पाठकों का चित्त कथानक की ओर आकृष्ट होता है, और वह उसके साथ आगे बढ़ता है। इसी प्रसंग को अधिक गति देने के लिए रुक्मिणी का विरोध काम में आता है और उससे कथानक को विरुद्ध दिशा प्राप्त होती है। यहाँ दूसरे प्रसंग कवि ने नहीं उठाए। राजा की अगतिकता, शिशुपाल का निमन्त्रण, विवाह सिद्धता, श्रीकृष्ण विरोधी शक्तियों का प्रदर्शन, राजपत्नी की विवशता इत्यादि प्रसंग अ… अभाव से कथानक की गति मंद करते हैं। यहाँ एक बात कहना आवश्यक है कवि की धर्मिक भावना तथा धर्म … बहुत कोमल है। वे श्रीकृष्ण का विरोध कल्पना में … नहीं सह सकते। उनके मन में श्रीकृष्ण और रुक्मि…

इनके अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति का अस्तित्व ही नहीं। इसी कारण लौकिक घटनाओं को टाल कर वे जहाँ श्रीकृष्ण का गुण-वर्णन है ऐसे ही प्रसंग चुनते हैं। इसी कारण उन्होंने रुक्मि विरोध का केवल दिग्दर्शन करके उस विरोध का परिणाम जो देवी रुक्मिणी पर हुआ उस प्रसंग —देवी की विरहावस्था को चित्रित किया। वे कहते हैं "किन्नरासि श्रीकृष्णातें वानिता। भीम की वेधली श्रुतावस्था। जैसी कोमाइली कल्पलता। जीवनेंवीण॥ जयातें जिवीं वाहे भीम-कुमरी। तो रुक्मिणी ये नालौनि मुरारी। शिशुपाल मानविला वैरी। तो सिनु कैसा सांधों? जैसी पद्मिनी उवा उकड़े। वरि निटालाची वोसाई पड़े। नां तरि जौहरी सांपडे। तैसी ते रुक्मिणी" (३७८–३८०) --"किन्नर-मुख से श्रीकृष्ण वर्णन सुन कर लुब्ध हुई हैं और रुक्मि उनको शिशुपाल को देना चाहता है। अब मैं जीवन बिना मुर्झानेवाली कल्पलता, या निदाघ में शुष्क होने वाली पद्मिनी, या अगनधर में जलनेवाली नलिनी जैसी अवस्था में क्या कहूँ?" इस प्रकार रुक्मिणी की विरहावस्था सूचित करके उसका संपूर्ण चित्रण करते हैं और विरह-वेदना को दूर करनेवाले उपचारों का वर्णन करते हैं। यह वर्णन अत्यन्त रमणीय है। इसमें कवि ने बहुत सुन्दर संवाद लिखे हैं। पर इनसे कथानक की अभिवृद्धि नहीं होती। केवल एक ही प्रसंग निराले ढंगों से व्यक्त किया है। इन सुदीर्घ वर्णनों के बाद सुदेव का आगमन तथा पत्रिका समवेत उनका निर्गमन ये ही दो प्रसंग हैं। इसमें कथानक बहुत थोड़ा है और उसकी गति भी मन्द है। कथा का प्रवाह ऐसा प्रभावशाली होना चाहिए कि आरंभ से अन्त तक वाचक विवश हो कर उसमें बह जाए। यह प्रभाव विविध घटनाओं के तारतम्यपूर्ण आयोजन से निष्पन्न होता है। पर यहाँ तो घटना ही नहीं है। एक ही कथानक मन्द गति से चलता है और स्थान-स्थान पर वर्णन की प्रवृत्ति से शिथिल भी है। परन्तु नरेन्द्र का चातुर्य तो यही है कि उन्होंने अपने संवाद चातुर्य से, वर्णन कौशल से और भाव निर्दशन से कथानक में नीरसता को नहीं आने दिया। जिस अद्भुतता की भूमि पर प्रारंभिक अधिष्ठान है वही सम्पूर्ण ग्रन्थ में बिखर कर उनके वर्णन, संवाद, भाव निर्भरता आदि में सम्मिलित होकर सुख-संवेदना निर्माण करती है।

काव्य में कथानक के पश्चात् व्यक्ति-दर्शन या स्वभाव चित्रण का क्रम आता है। इसमें प्रमुख व्यक्ति श्रीकृष्ण, रुक्मिणी और भीमक हैं। भीमक उदार, शूर, गृहस्थ धर्म पालन करनेवाला है पर इसके यही गुण हैं। उसका पुत्र वात्सल्य, कन्या प्रेम, कृष्ण भक्ति, दुष्ट निग्रह, पराक्रम, धर्म भीरुता इत्यादि गुण उसमें प्रगट नहीं होते। वैसी घटना ही यहाँ नहीं है। श्रीकृष्ण का वर्णन अत्यन्त सुन्दर है, वे दैवी गुणमंडित हैं, संसार के उद्धारक हैं, सब कुछ हैं पर उनके मानवी कर्तृत्व का आलेखन यहाँ नहीं है। सच तो यह है कि यहाँ श्रीकृष्ण के रूप-सम्पादन का ही केवल चित्रण है। स्वयं श्रीकृष्ण का दर्शन यहाँ नहीं होता। रुक्मिणी ने भी उनके प्रत्यक्ष चरण नहीं देखे और उनकी पत्रिका ले जानेवाले सुदेव को भी उनके दर्शन का भाग्य नहीं प्राप्त हुआ क्योंकि यह काव्य उस प्रसंग से पहले ही समाप्त हो जाता है। जहाँ नायक कर्मभूमि पर आता ही नहीं वहाँ उसका कर्तृत्व कैसे दिखेगा और कृती नहीं, उक्ति नहीं तो व्यक्तित्व कैसे प्रकट होगा? तीसरा चरित्र रुक्मिणी का चित्रण कवि ने मार्मिकता से किया है। पर इनके सौन्दर्य और विरह भाव के अतिरिक्त इनके स्वभाव के दूसरे पहलू नहीं दीख पड़ते। सभा में उनका आगमन और श्रीकृष्ण पर मोहित होना, अपना भाव छुपाना, विरह से व्यथित होना और अन्त में पत्रिका भेजना बस यही रुक्मिणी का व्यक्ति-दर्शन यहाँ होता है। विविध घटना निर्माण करके उसमें बहुत छोटे मोटे प्रसंगों की अनेक तरंगें एक दूसरे पर आघात-प्रत्याघात करते हुए जब कथानक में घूमती हैं तब ही व्यक्ति का एक एक गुण व्यक्त होता है और वे सब मिल कर सम्पूर्ण व्यक्ति-दर्शन कराते हैं। यहाँ प्रसंगों की उद्भवना नहीं हुई है। इस विषय में नरेन्द्र को यशःसिद्धि नहीं मिली। कथा में विषयभूत व्यक्ति के स्वभाव विशेष यदि प्रतिबिम्बित न हुए तो फलप्राप्ति एक अंश तक लुप्त हो जाती है। स्वभाव तो घटना तथा विचारधारा के अनुकूल प्रतिकूल संचालन से प्रकट होता है और इस काव्य में इन दोनों का अत्यन्त अभाव है।

घटना तथा व्यक्ति-दर्शन के सम्बन्ध में विचार करने के बाद इसके दूसरे गुणों का आलोचन करना आवश्यक है क्योंकि ये दोनों विषय आक्षेपपूर्ण होने पर भी इस ग्रन्थ की श्रेष्ठता निराबाधित है। पन्थीय तो इसकी ओर धार्मिकता से देखेंगे, पर पन्थेतर भी इसे असीम सुन्दर समझते हैं। किसी रचना को काव्यत्व तब ही प्राप्त होता है जब कि उसमें काव्यगुणों का प्रकर्ष

हो। वाचकों के अन्तःकरण आनन्द संप्लव में उसी समय डूब जाते हैं, उसी समय उनके हृदय में सुख-संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं जब कि काव्य में अनेक गुण हों। कथानक तथा व्यक्ति-दर्शन ये भी इस प्रकार के काव्य के प्रधान अंग हैं। महाराष्ट्र कवि श्री एकनाथ, सामराज, विट्ठल आदि महात्माओं ने इन दो बातों को पुष्ट करते हुए अपनी रचनाएँ लिखीं। इस दृष्टि से उनकी रचना नरेन्द्र की अपेक्षा श्रेष्ठ है। पर नरेन्द्र ने अपने ग्रन्थ में काव्य विषयक दूसरे गुणों का उत्कर्ष इतनी अधिकता से किया है कि वे कुतूहल का विषय बन कर उच्चासन के अधिकारी बन गए हैं।

नरेन्द्र एक प्रतिभासम्पन्न महाकवि थे। उनकी प्रतिभा का विकास इस काव्य के पद पद में प्रगट होता है। कथा की लघुता को उन्होंने कल्पनारम्य वर्णन, हार्दिक भाव दर्शन और चतुर संवाद के द्वारा मिटा दिया। उनका वर्णन कौशल और कल्पना की उड़ान असीम और अप्रतिम है। मराठी साहित्य में ज्ञानदेव, भास्कर भट्ट बोरीकर, मुक्तेश्वर और मोरोपंत के अतिरिक्त ऐसे सुंदर वर्णन और भावलेखन दुष्प्राप्य हैं। रुक्मिणी का यह वर्णन देखिए: "तयांमाजी रुक्मिणीचें रूप। जैसें सिद्धरसाचें लेप। कीं चन्द्राने पडीय निकोप। कांडारिलें॥ कीं ते सुखाची सैंभ। कीं परिमळाची अक्षोभ। कीं रूपासी आली भांभ। श्रृंगाराची॥ कीं ते यवन मठीची अंबिका। कीं सौन्दर्य लोकींची तारका। ना तरि जन्मपत्रिका मदनाची॥ पातां दिठीचें अनियाळपण।. कमळदळें होति साधारण। जे कां मन्मथाचें बाण। भरंवसे याचे॥ आधींचि रूप गोरें सावळें ऐसें। वरि तरुणें अंग उठतसे। तेणें संपिवळ छाया येतसे। क्षिरोदकांसी॥ आंगाचेनि उजळपणें। भासलत ठिकांचें लेणें। म्हणौनि मोतियांचीं अलंकरणें। भीमकुमारीसी॥ कानिचे भुळुंबके करिती विराट। कृत्तिकांसी॥ मोतियांचा भांगु मखरू। जैसा श्रृंगारगंगेचा अवतारु। आला जीववूँ अनंगसगरू। वादे चन्द्रमौळीसी॥ रूप सुपाणी चोख कैसें। मागां वेणी रुळत दिसे। ते रोमावलियेचेनि मिसें। पुढां दिसत॥ कवळी अंगांची वखवरी तारुण्याची उबावा। मनानें मुसिति ते भाव। अव्येवांचे॥ तिया मदनाचा गोसावी लाचाविला। सावेळा अनंगु जियविला। तेया रूपाचा उठावा पहिला। तो कैसा सांधो?" ॥ ८६–१०१॥

"सखी समाज में रुक्मिणी ऐसी दीखती थी कि सुधारस का लेप ही साकार है, या चन्द्रमा को छील कर उसके अन्तर्भाग की मूर्ति बनी है। वह श्रृंगार रस की प्रतिमा है या यौवन-मंदिर की देवी है या सौन्दर्य लोक की तारिका या मदन की जन्मपत्रिका है। दृष्टि की तीक्ष्णता देख कर कमल पत्र लज्जित होते हैं। उसके दृष्टिक्षेप तो मदन के अचूक बाण हैं, पहले ही वर्ण श्यामलगौर, उस पर यौवन की कान्ति चढ़ी हुई—इस कारण पहना श्वेत वस्त्र पीतगौर दीखता है। अंग की कान्ति अत्यन्त उज्जवल थी और वे मौक्तिकाभूषण धारण किए थीं। कानों का मुक्तागुच्छ तो कृत्तिकापुञ्ज से स्पर्धा करता था। उसकी मोतियों की मांग श्रृंगार गंगा की स्वर्गावतरण-सी दीखती थी मानों चन्द्रमौली से प्रतिज्ञा करके वह अनंगरूप सगरपुत्रों को पुनः सजीव करने चली है। उसका रूप बड़ा ही स्वच्छ था, पृष्ठ भाग पर विहरती गवरी उसमें प्रतिबिम्बित हो कर पुरः प्रदेश में रोमावली के रूप से दृश्यमान होती थी। शरीर की कान्ति पहले ही कोमल और अब उसमें यौवन काल का प्रस्फोट इस कारण अंग प्रत्यंग के भाव मन को मूर्छित करते हैं। उसकी लचक से मदन के स्वामी श्रीकृष्ण ने अनंग को सजीव किया। उस रूप का पहला प्रभाव कैसे शब्दनिबद्ध हो सकता है।"

इसी प्रकार श्रीकृष्ण वर्णन भी देखिए: सौन्दर्यें चन्द्रासारिखे मुख। कमळापासौनि डोळे सुलेख। आजान बाहु सुरेख। विशाळ वक्षस्थळ॥ उदरीं त्रिवळीचे लक्षण। कवण मापाचें मोहकेपण। घणावट कढिवा करिताए माजवण। मदनसुखासी॥ सुवट मांडिया भरिवां। कैसिया पोटरिया आटिवा। काइ साधों चरणांचा मेळावा। जें जन्मस्थान तीर्थांचें॥ पांतां ठाण मांजौळें। पुनः लावण्य सृष्टीवेगळें। तिही लोकांतें माजविती डोळे वेल्हाळपणें॥ कैसी सांवळी सर्वांगे। तेणें इन्द्रनीळातें म्हणे उगे। अंगीचेनि प्रेमें लक्ष्मी ओळगे। नीलोत्पळांची॥ देवरायाचें देखौनि मुखवटें। कृष्णपक्षी चंद्र दिश दिश तुटे। तेवींचि लाजाहियें फुटे मिसें कळांचेनि॥ श्रीकृष्णांचिया कटाक्षधारसा। पडत वेधांचा वळसा। तेथौनि निगावा नाहीं मानसां। मनेश्वराच्चिया॥ मुखप्रहसित कैसें। सुश्रीक माधुर्यें रसें। कपोल प्रभे कवळी होतसे। स्मितचंद्रिकेसी॥ तें देवाचें सौन्दर्य वानूँ कैसें। जें मदनु अपत्य लिहिया आपैसे। रूपाचा वेध नारीसि असे। तैसाचि

मुनेश्वरां ॥ कीं ते सुखाची मूर्ति चोखड़ी । कैसी ते जगीं तेजाची गोडी । अमृताची चवीं होय ताटकाडी । तें बोलणें पाहोनिया ॥ सौन्दर्य देखोनि ऐतार । श्रीमूर्ति वेधले मुनीश्वर । तिहीं लोकाचिया रिगों पांती घर । परि तो स्वीकरीना ॥ कुमारी तापसा दीक्षिणी । वेधें भुललिया चक्रपाणी । तेथ पाठीं धांवती गौळणी । हें काइं बोलों ? ॥ ते वेधाची मूर्ति सांधों कैसी । कामिनी रमतां प्राणेश्वरेंसी । हृषीकेशु न धरी मानसीं । ऐसी कवणी असे ? ॥ ३२१–३४२ ॥"

श्रीकृष्ण जी के सम्मुख ब्रह्म-सुख तुच्छ है। वह सौन्दर्य तो भूगोल के माप से तोलना चाहिए। मुख चन्द्रमा समान, नेत्र कमलाधिक सुन्दर और चरण तो तीर्थों के उद्गम स्थान हैं। उनका वक्षःस्थल विशाल; मध्य-भाग सुन्दर, मोहक और मदन-सुख लेने के लिए पूर्ण समर्थ, बाहु अजानु, ऊरु भरीव और पोटरियां घोटीव हैं। शरीर का आकार अतीव आकर्षक और लावण्य अलौकिक आनन्द देनेवाला है और तीनों जगत् के नेत्रों को लुभाता है। सर्वांग श्यामल पर इन्द्रनील से अधिक तेज मुख देख कर चन्द्रमा लज्जा से कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन घटता है। नेत्र कटाक्ष तीक्ष्ण और उनका आक्रमण ऐसा कि मुनीश्वर भी उनमें फंसे तो निकल नहीं सकते। हास्य तो माधुर्य का रसभरित वैभव है। स्मितचन्द्रिका और कपोल कांति एक दूसरे को आलिंगन देती हैं। उनका सौन्दर्य देख कर मदन स्वयं उनका पुत्र बना। मुनि और नारी सब ही उस पर आसक्त होते हैं। बोलना इतना मधुर कि अमृत की माधुरी उसकी "ताटकाड़ी'—उच्छिष्ट थाली उठानेवाली दासी बनती है। जहाँ कुमारी, तापसी, यज्ञ-पत्नियाँ उन पर अनुरक्त होती हैं वहाँ गोपिकाएँ उसके पीछे दौड़ती थीं। यह कहने में आधिक्य क्या और अनुचित क्या है? उनके सौन्दर्य का तेज मैं क्या कहूँ? कामिनियाँ जब अपने प्रेमियों के साथ शृंगार-सुख अनुभव करती हैं तब ऐसी कौन है जो उस समय श्रीकृष्ण जी का चिन्तन नहीं करती।

दूसरी जगह उन्होंने रुक्मिणी का वर्णन इस प्रकार से किया है: "सुकु म्हणे आइकै परीक्षिता। रुक्मिणी आयुनेचें रूप पातां। ते लावण्याची वेधवंती अव्यक्त मज पातां। व्यक्तीसि आली ॥ तें हृदय क्षीर-सागराचें। ध्यान करीत होतें देवाचें। तेंचि भूमीसि आलें साचें। माणूस पणाचिये ॥ जो देवो धाला ब्रह्मरसीं। तो मानु दे जेथचिया ऊधरासी। तें मुख वानु कवणेसीं सारिसी। विश्वामाझारीं ॥ पातां डोळेयांचे भाव। ते मृगी कमळासी नाहीं वरव। ब्रह्मसुख भोगावया दैव। कवणासि असे ॥ रुक्मिणीचें राजसपण। जगीं वानितसें कवण। परब्रह्म गार्हस्थ्य करी आपण। जेणें रूपेसीं ॥" ६८–७२

"रुक्मिणी देवी ऐसी दीखती हैं जैसे कि सौन्दर्य की आकर्षण शक्ति अव्यक्तावस्था छोड़ कर प्रस्फुटित और व्यक्त हुई है। क्षीरसागर का हृदय ईश-चिन्तन में मग्न था। बस यही मानिए कि वह मानव रूप से प्रगट हुआ है। ब्रह्म रस में तल्लीन रहनेवाले देव जिन अधरोष्ठों का सम्मान करते हैं उस मुख का विश्व में उपमान कहाँ ढूँढ़ना? नेत्रों के भाव देख कर हिरनियाँ और कमल सकुचाए। रुक्मिणी का सौकुमार्य संसार में कौन वर्णन कर सकता है? उसी के कारण तो परब्रह्म को 'गृहस्थ' बनना पड़ा।"

इन मानवी वर्णनों में कवि ने अपनी कल्पना के अप्रतिम विलास दिखाए हैं। उनकी कल्पना विशाल और व्यापक है; सूक्ष्म और गम्भीर है। यथार्थ चित्रण करने में उनका हाथ बड़ा ही चतुर है। उन्होंने अपने उपमान बिखरे हुए प्राकृतिक सौन्दर्य से चुन लिए हैं और पौराणिक कथाओं के परिवेश में व्यावहारिक चातुर्य से सजा कर पाठकों के सम्मुख रखे हैं। इन तीनों का हृदयंगम संगम करके वे अपनी आन्तरिक कलात्मकता अभिव्यक्त करते हैं। इसी कारण वे पाठकों के अन्तःकरण में सुलभतया प्रवेश करते हैं।

नरेन्द्र ने जैसा मानवी सौन्दर्य का आलेखन किया है वैसा ही प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रकटीकरण करने में संयोजन चातुर्य बतलाया है। उनके प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन भी नितांत रमणीय हैं। उन्होंने सूर्यास्त, संध्या समय, चन्द्रोदय, चाँदनी रात, नक्षत्र शोभा, दीप दर्शन, वन वर्णन, ऋतु वर्णन, उपवन वसंत शोभा, धान की खेती, समुद्र, नगर आदि विपुल विषयों पर रचना की। इन वर्णनों में उनका प्रतिभा-विहंग कल्पना के आकाश में संगीत का संचार करता है और अपनी उड़ान से पाठकों के हृदय को आह्लादित करता है। इन अनेकविध दृश्यों का प्रदर्शन करते हुए उन्होंने इस पर अवश्य ध्यान दिया कि इनका चित्रित व्यक्ति पर क्या परिणाम होता है। बृहद् काव्य में ऐसे वर्णन आते हैं तो उसमें यह आवश्यक है कि इन दृश्यों का परिणाम काव्यगत व्यक्ति पर भी पड़े। उसी के अनुसार इन दृश्यों का चित्रण होना चाहिए।

यह कार्य नरेन्द्र ने औचित्य का पालन करते हुए सहज-सुन्दरता से किया है। इसमें भाव दर्शन का भी अ तर्भाव होता है पर यहाँ इस बात का विस्मरण न हो कि ऐसा भाव-कथन व्यक्ति-दर्शन का काम नहीं कर सकता। नरेन्द्र के वर्णित इन दृश्यों में सौन्दर्य है तथा भावना भी है पर वे अति सूक्ष्म तथा दूर से सम्बन्धित होने के कारण कथानक की प्रगति नहीं कर सकते। एक-एक वर्णन स्वयं पूर्ण और अत्यन्त मनोहर है। मैं यहाँ उनके छोटे-छोटे दो तीन वर्णन प्रसंग उद्धृत क'ता हूँ। यह अस्ताचल पर उतरने वाले सूर्य का वर्णन देखिए :

"तंव उचित चंद्रिका म्हणे। सूर्या अस्ताचळीं होत उपेणें। जैसें तेजातें सांठवतें। वोपणें। मठी पोवळयांचा॥ कीं कुंकुमवनीं सरागू। झेंपावत श्रृंगारविहंगु। कीं त्रिनेत्रें तप्तता अनंगु। रिगत पश्चिम समुद्रीं॥ कीं ठेविला प्रकाश ला मुड़ा। पाताळीं येणें होत गरुडा। कीं श्रीकृष्णु अर्घिला पश्चिमिला कडा। कमळकांतिचेनि॥ कीं संध्या सागरीं सारसीचा गिंवसू। करूं आला सोनेयाचा सारसू। तैसा सूर्या होताच प्रवेशु। अस्ताचलीं॥" ४६८-४७०॥ चंद्रिका उचित कहती है "सूर्य अस्तमित हो रहा है जैसे प्रवाल के मन्दिर में तेजोनिधि समेट रहा है केशर के वन में सानुराग श्रृंगार विहंग ही झड़प ले रहा है। या शिवजी के तृतीय नेत्र से दाह से जलता हुआ अनंग पश्चिम समुद्र में शान्ति पाने को प्रवेश कर रहा है। यह एकत्रित प्रकाशपुञ्ज है या गरुड़ का पाताल गमन है? यह तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई सोने का सारस अपनी सारसी को संध्या सरोवर में ढूंढ़ने जा रहा है।" यह वर्णन कैसा सुन्दर और कितना स्वाभाविक है। विरहिणी की पृष्ठभूमि में यह सूर्यास्त का दृश्य है। इसी का'ण कवि ने इसमें श्रृंगारिक कल्पनाओं से विरह-वेदना की स्मृति उज्ज्वल रखी है।

उसी प्रकार यह अंधकार का वर्णन देखिए : "तेथ फुटले इन्द्रनीळाचे बोरे। तैसा माथा उचलिला अन्धारें। कीं डोंगर उन्मळिले गरुडोद्गारें। पाचिचे हे॥ कीं दाटत कस्तुरियेचें मेघ। माजिरे। कीं पिल्लीं पसरिलीं गगन सागरें॥ कीं ब्रह्मगोळकु भरला पुरें। कृष्णगंगेचेनि॥ कीं बांवळेली तमाची वाडी। कीं मदमोहाची धुपाडी। कीं चरत द्यावा-पृथ्वीयेचां पाडीं। ढौळ कांति लोहाचें॥ ना तरी कमळौनि अ ाभिले। कन्दर्पाचेति दळवयें वसंतें। भँवराचें घालणें घातलें अवचितें। विरहिणीवरी॥ की भूगोळकाचां देउळीं। रति-अनंगें पूजिली गगन-काळी। तें पुजा दिसतसे निळी। निळोपळांची॥ ४७१-४७५"

इन्द्रनील के भीतर से जैसी श्यामलता बाहर निकलती है उसी प्रकार अंधकार अपना सिर ऊँचा कर रहा है। अरे ये तो गरुड़ के उद्वमन से बाहर आए हुए पाचू के पहाड़ हैं। यहाँ अन्धकार के फैलने पर, बिखरे हुए नील मणि और पाचू के पहाड़ की कल्पना अभिनव और आल्हादकारी है। इसी प्रकार वे आगे उत्प्रेक्षा करते हैं कि ये कस्तूरी के खचाखच भरे हुए मेघ हैं या गगन-पक्षिणी ने अपने बालक चारों ओर भेजे हैं। अरे यह बाढ़ तो 'कृष्णा गंगा' है जिससे से ब्रह्मलोक भर गया है। ऐसी उत्प्रेक्षा करके कवि ने बहुत औचित्य के साथ अपनी श्रीकृष्ण भक्ति प्रकट की है। वे यह भाव यहाँ सुझाते हैं कि संपूर्ण विश्व ही कृष्णमय हो गया है। इस प्रकार स्थान स्थान पर अपनी भक्ति भावना व्यक्त करते हुए अपना कथासूत्र चालू करते हैं। वे आगे कहते हैं, क्या यह तमाल की वाड़ी है? या महामोह की धूपदानी है? क्या कृष्णवर्ण कपिलाओं के 'खिल्लार' ही द्यावा पृथ्वी की कुरणों में चर रहे हैं। नहीं, यह तो ऐसा दीख पड़ता है कि कंदर्प'ाज के दलपति वसंत ने अपनी भँवरों की सेना कमलों पर से हटा कर किसी विरहिणी पर आकस्मिक आक्रमण किया है जिसका यह चारों दिशाओं से किया हुआ धावा है। यह तो ऐसा भासित होता है कि भूगोल के मंदिर में रति-अनंग ने आकाशरूपी काली की नीलकमलों से रची हुई यह पूजा की है।" यह कल्पना विलास कितना मधुर और समुचित है। इसमें श्रृंगार भावना है और कवि-कल्पना है, विरह वेदना की जैसी आत्यंतिकता है वैसी इच्छापूर्त्ति की जिज्ञासा भी है और श्रृंगार विषय होने पर भी सर्वत्र पावनता व प्रसन्नता है और इन सब से अधिक यह कि यह सब भावना-विलास कवि की व्यंजना सामर्थ्य से सूचित करती हैं। काव्य में व्यंजना शक्ति का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। यही शक्ति रसिक जनों के अन्तःकरण को लुभाती है और रस-निष्पत्ति करती है। नरेन्द्र के सिर पर जैसे शक्ति ने अपना वरद हस्त रखा है। इसी प्रकार की कल्पना उनके संपूर्ण काव्य में ओत-प्रोत है। उनके सभी वर्णन मनोहर हैं। पाठक पढ़ कर चकित रह जाते हैं। यह नक्षत्र वर्णन देखिए :

"तंव गगनीं नक्षत्रें उमटत। जैसी आकाशीं घाटौं

फुलत। ना तरि मेघविरिण साधित ! मोतियांची ॥ कीं पाखधुनी करीती चकोरें। ते सँग मन्दाकिनीचे थेंब गोरे। कीं दीसती बाणलिंगें ऐतारे। गगन-नर्मदेचीं'' ॥ ४८६-४८७.॥-- नक्षत्र निकलते हैं तो इस प्रकार प्रतीत होता है कि आकाश मण्डप पर बटमोगरे के फूल खिले हुए हैं या ऐसा समझिए कि मेघ मोतियों को उत्पन्न कर रहे हैं। ये तो चकोर पक्षी गगन मन्दाकिनी में अपनी 'पांखें' धो रहे हैं। पाखधुनी करते समय जब वे अपने पंख फड़फड़ाते हैं तो मन्दाकिनी के शुभ्र जल कण जो इतस्ततः बिखरते हैं वे ही ये तेजस्वी नक्षत्र हैं अथवा ये गगन-नर्मदा में मिलनेवाले बाण ही हैं।'' क्या ये असाधारण कल्पना के उन्मेष नहीं हैं ?

इन प्राकृतिक दृश्यों के वर्णनों में तो उनका हृदय है ही पर उसके अतिरिक्त उन्होंने भावनाओं का भी सम्यक् चित्रण किया है और वह भी अत्यन्त मधुर है। नरेन्द्र की ख्याति इन्हीं पर अवलम्बित है। इस काव्य की नायिका रुक्मिणी के भावों का प्रदर्शन कवि ने 'साधनाराम् अनेकता' तथा 'साधनानाम् शुचिता' इस तत्त्व के अनुसार बहुत उत्तम किया है। यहाँ की कल्पना और वर्णन प्रकार अनेक हैं। वे बड़े शुद्ध और पावन भी हैं। यह रुक्मिणी की विरहावस्था देखिए : "नावेक घालौनि उसासु। बोळावेया केला पैसु। म्हणे हा वैरिया मिनला दिसु। केधवा स्तवैली ॥ तंव सांजवेळ होतां समीप। सेजारीं उजळत रत्नांले दीप। तिरीवीची न साहवे झडप। दृष्टी विरहिणीचिये ॥ .....॥ पाय न धरिती वेंविळे। सर्वांगें जाति विकाळें। अधे उघडे केळे डोळे। न धरे कठनाळ ॥......॥ विरहवरें पान ऐसी कापे। पावो ठेवितां पाताळ पळिपे। तेथ स्फटिकांची भोयळासावे तापें। हें नवल काई ? ॥ ऐसी श्रीकृष्णाची श्रुतावस्था म्हणे। देविये होले मोतियांचें लेणें। तिये लाह्याजालीं तत्क्षणें। तो तापु कैसा सांधावा ? ॥ मोतियांची ढिळौनि अळंकरणें। मग ओळगिलीं पोतासाचीं भूषणें। तिये आंगीं पळिपलीं केधवां नेणे। मग लेइलीं कळेकाम'' ॥४४५-४५४. —विरह वेदना से हृदय भरा हुआ होने के कारण वह बात नहीं कर सकती थी इसलिए उसने उच्छवास छोड़ कर हृदय देश में थोड़ी जगह बनाई और कहने लगी कि यह दिन वैरी के साथ मिल गया है। कब इसका अस्त होगा। पर जब अस्तमान हुआ और शयन मंदिर में रत्नदीप प्रकाशित हुए तो उनकी तिरछी किरणें उसकी दृष्टि को असहनीय हुईं। उसने उठने की चेष्टा की तो पांव लड़खड़ा गए, सब गात्र गलित हो गए, नेत्र आधे खुले और आधे बन्द होने लगे और कंठनाल पर से शिर-कमल ढलने लगा। प्रधान पुत्री ने उसे संभाला और लड़खड़ाती अवस्था में उसे बाहर लाया गया। देखा कि उसकी अंगकांति भस्म-सी फीकी पड़ गई है। विरहज्वर से वह पत्ते की भांति कांपती थी। ज्वर ऐसा तीव्र था कि मानों भूमि पर पाँव रखते ही पाताल तक आग लग जाएगी। अतः स्फटिक की भूमि तप्त हो उठी यह कोई बड़ी बात नहीं। श्रीकृष्ण के गुण-वर्णन से उसे ऐसी 'श्रुतावस्था' प्राप्त हुई थी। उसके शरीर पर मोतियों के आभूषण थे पर उस दाह से उन मोतियों की फटकड़ियां बन गईं। यह देख कर मौक्तिकालंकार उतार कर उसे कर्पूर के अलंकार पहनाए गए पर वे कब जल गए पता ही नहीं। अन्त में उसे फूलों का साज पहनाया गया। इस अवस्था में जब चन्द्रोदय हुआ तो उसकी और भी अधिक दुर्दशा होने लगी। "समोर चांदणी ये देखौनि दृष्टि। तेणें लक्ष्मी ये सुटली चटपटी। म्हणे हा वडवानलु न संडी पाठी। आमचीये क्षीराब्धीचा ॥ कीं वसंतिय ऋतूंच्या वेळी। नवल अनंगे पाजळिली होळी। चांदिणेयांची धुळवाडी वेगळी। वनवित आंगातें ॥......॥ राजहंसु देखौनि दचके। चकोरां चक्रवकां चवके। शब्दासवें विथानके। सागौराचिया ॥ कस्तुरी मृगाचिये वोसाइलिये मांबाने। भवराचिये श्रुती आडवे। कोकिळाकुंजनीं जिउमुसावे। तेणें वेगें॥......॥ मुखें दीर्घ स्वासु घालित। तेणें फुकें विरहाग्नि पेटत। नन्दनवन पाजळत। अवयवांचे।" ५२४-५३४.— "चारों ओर चांदनी-चन्द्र-ज्योत्स्ना-देख कर उसकी लगभग होने लगी। वह कहने लगी क्षीरसागर में मेरे साथ जो बड़वानल था वह यहां भी मेरा पीछा नहीं छोड़ता। यह समय ऋतु वसंत का है और अनंग ने मेरे तन में एक अनोखी होली प्रदीप्त की है। वही मुझे जलाने में समर्थ है और उस दुःख को भयानक करने के लिए यह चांदनी रात की 'धुधहँडी' आई है। यह मुझे अत्यधिक संत्रस्त कर रही है। उससे दशा अब बहुत ही दयनीय हो गई। राजहंसों को देख कर वह हिचकती थी, और चकोर-चक्रवाकों को देख कर चौंकती थी। सागौर पक्षियों की आवाज सुन कर वह बिदकती थी। कस्तूरी-मृगों की बैठक की जगह देख कर तो उसकी सुध बुध समाप्त हो गई और भँवरों की गुंजार सुन कर उसकी गति रुद्ध हो गई।

कोयल का कूजन कानों पर आते ही उसे मूर्च्छना हो आई। वह दुःख के दीर्घ श्वास छोड़ रही थी। पर उसी की फूँक से विरहाग्नि धधकने लगी और उसमें उसके अंग-प्रत्यंग का नंदन वन जलने लगा। इस प्रकार वह विकल हो उठी। जिस उपवन में वह विरह-दाह हलका करने आई थी वहीं उस पर अग्नि-वर्षा हो रही थी।

इसी प्रकार पूरे ग्रंथ में कृष्ण के प्रति रुक्मिणी के मनोभाव भिन्न-भिन्न रूपों से व्यक्त किए गए हैं और अन्यान्य दृश्यों का भी चित्रण है। इनमें कवि की विकसित प्रतिभा-शक्ति का विविध रूपों में परिचय मिलता है। उक्ति रूप में किसी भाव को अभिव्यक्त करने का उनका सामर्थ्य अगाध है। एक ही भाव को वे भिन्न-भिन्न प्रकार से ऐसे प्रगट करते हैं कि मन मुग्ध हो जाता है। इसी कारण उनकी बहुत सी 'ओवियां' सुभाषित बन गई हैं और जिस रचना में ऐसे सहज सुभाषित हैं उसमें काव्य नहीं ऐसा कहने की किसकी मजाल है। सुभाषित का अर्थ ही अच्छा कहना, सुंदर उक्ति और सद्भावपूर्ण सत्यार्थक शब्द संहति है। इन वर्णनों में तो यह स्पष्ट अनुभव होता है कि कवि का संयोजन सामर्थ्य अप्रतिम है। उनके उपमान बड़े ही समर्थ हैं। वर्ण्य व्यक्ति की भावनाओं की अभिव्यक्ति यथार्थ प्रकार से करते हैं। इसी में कवि का कौशल है। ऐसी ही रेखाकृति रसिक के अन्तःकरण में दीर्घ काल तक निवास करती हैं, उसके मन को प्रसन्न करती है और भावनाओं को उदात्त बनाती हैं। कवि का प्रथम तथा अंतिम उद्देश्य ही यह है कि अपने चित्रण से भावनाओं को उदात्त बनाए। भावना का उदात्तीकरण ही कवि का अभिप्रेत है; "प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते" जहाँ अन्तःकरण प्रसन्न है वहीं बुद्धि स्थिर रहती है। यहाँ ही रस कि निष्पत्ति हो कर, आनन्द का अनुभव होता है; और वाचक, रसिक काव्यानन्द होता है। इस प्रकार भावनाओं का उदात्तीकरण करने के लिए ही विषय के औचित्य की आवश्यकता होती है। काव्य क्षेत्र में इस औचित्य का बहुत महत्व है। "अनौचित्याद्ऋते नान्यत् रसभंगस्य कारणम्" रस हानि होने का कारण औचित्य हानि के उपरान्त अन्य कोई नहीं है। यदि कवि औचित्य का पालन न करे तो रसागम सर्वथैव असंभवनीय हैं। यहाँ तो 'रुक्मिणी' विषय की अधिष्ठात्री देवी हैं और कवि ने उनका भावदर्शन अभिनव कल्पनाओं से औचित्य का परिपालन करते हुए किया है।

नरेन्द्र की वर्णन शैली बड़ी प्रौढ़ और गंभीर है। उनकी भाषा बहुत अलंकृत है। अलंकार कल्पना शक्ति की अनेक प्रकार की क्रीडा होते हैं। जिसकी कल्पनाशक्ति भव्य है, उत्तुंग है वही कवि उसको भिन्न-भिन्न प्रकारों से निबद्ध करने की चेष्टा करता है। इस क्षेत्र में नरेन्द्र ने बहुत लाघव बताया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, पर्यायोक्ति चेतन गुणोक्ति, श्लेष, व्यतिरेक आदि अलंकार बड़ी उदारता से उन्होंने अपनी कविता कामिनी पर चढ़ाए हैं। इनमें उनका सब से प्रिय अलंकार उत्प्रेक्षा है। उत्प्रेक्षा तो कवि कल्पना का निकष माना जाता है। इसकी रचना में वे सिद्धहस्त दीखते हैं। अलंकार उसी समय मन को लुभाते हैं जब कि वे किसी भावना को आन्दोलित करें अन्यथा केवल वस्तु वर्णन करने वाले अलंकार हृदय नहीं लुभा पाते। अलंकार कवि के हृदय मंदिर में प्रवेश कर देखने के गवाक्ष हैं। यदि उन से कवि के मनोगत, तथा वस्तुगत भाव व्यक्त हों तभी सहृदय को आनंद होता है। इसी कारण काव्य क्षेत्र में क्रीड़ा करनेवाली आलंकारिकता आकर्षक और रमणीय मानी जाती है। नरेन्द्र ने अलंकारों का विनियोग ऐसा ही किया है। अपने काव्य को अलंकारों से सजा कर रसिक संज्जनों को आनंद संप्लव में निमग्न किया है।

इस काव्य की रचना यादव सम्राट् के समय हुई थी। उसको ६५० वर्ष बीत चुके हैं। इस कारण उनकी भाषा में थोड़ी कठिनता है पर जो लोग अर्थ को दृष्टि में रख कर ज्ञानेश्वरी पढ़ते हैं उनके लिए यह उतनी कठिन नहीं है। उस समय के भाषा का अत्यन्त प्रौढ़ स्वरूप इसमें प्रतिबिम्बित है। तत्सम और तद्भव शब्दों का मिश्रण बड़ा मधुर लगता है और भाषा की प्रौढ़ गम्भीरता को प्रकट करता है। नरेन्द्र का शब्द योजना चातुर्य अपूर्व है। वे शब्दों को इस प्रकार रखते हैं कि वहाँ से उनको काव्य-सौन्दर्य को नष्ट किए बिना निकालना संभव नहीं है। शब्दों की अपरिहार्यता काव्य का आवश्यक अंग है। जहाँ जो शब्द उचित है वहीं उसका आयोजन होना चाहिए। यह संयोजन कौशल कवि की श्रेष्ठता का एक चिन्ह है। देवी सरस्वती का रत्न भण्डार नरेन्द्र के सामने खुला था और वे स्वयं कहते हैं कि "तिया सलगि देवाचिये भांटिवेची दीधली सामग्री"—देवी सरस्वती ने

बड़े प्रेम से, अपना समझ कर मुझे यह सामग्री दी है। यहाँ वे 'मराठी' का निर्देश बड़े अभिमान से करते हैं और अपना आत्मविश्वास भी प्रकट करते हैं—"जिये भाषेच्यिये रसवृत्ति। सा भाषांचे कृपे कीजेति निगुनी। ते म्हारी कवण जाणे निरुती। जे रसांचें जीवन ॥ ते म्हारे बोल रसिक। वरि दावीन देशियेचें विक। म्हणौन सव्या ख्यान श्लोक। मिसें बोवियेनोनि" ॥ ४६, ४७ ॥ मराठी तो निसर्ग सिद्ध ही रसवती है। उसकी अपेक्षा प्राकृतादि छः भाषाओं के समान दीखती है। उस मराठी को कौन संपूर्ण जान सकता है? वह रसों का जीवन है। मराठी भाषा तो स्वयं ही रसवती है पर मैं उसमें भी उसके देशी स्वरूप की, नागर स्वरूप की शोभा दिखाऊँगा। 'ओवी' के रूप में मैं ऐसी रचना करूँगा कि व्याख्या सहित वह संस्कृत श्लोक की समानता प्रस्थापित करेगी।

यह नरेन्द्र का अभिमान और आत्मविश्वास कितना यथार्थ है! उनकी रचना अत्यन्त मनोहर और प्रौढ़ है। उनके "ओवी" के चरण-चरण में संस्कृत पाण्डित्य और काव्य कल्पना के विन्यास जड़े हुए दीख पड़ते हैं। विद्वत्ता और रसिकता का इनमें अपूर्व संयोग प्रतीत होता है। संगीतादि कलाओं की आलोचना, कल्पना का परिरम्भन, मराठी भाषा का विशुद्ध संस्करण और भावनाओं का पावन सिंचन इस काव्य की ओवी-ओवी में अनुभव होता है। वाचक की चित्तवृत्ति को आंदोलित करके उसे समवेत बनाने की इसमें सामर्थ्य है। इसी कारण मराठी साहित्य में नरेन्द्र का विशिष्ट स्थान है और वह भी बहुत ऊँचा है।

उस्मानिया यूनिवर्सिटी,
हैदराबाद दक्षिण

—नारायणराव नांदापुरकर

जीवन का सामान्यकरण

……आपने अपने पत्र में परीचिति पर विशेष बल दिया है—यह देख कर मुझे प्रसन्नता हुई। इस परिचिति को जीवन का अनुभव कहा जा सकता है। इसके विरुद्ध है सामान्यकरण। इस सामान्यकरण के द्वारा ऐसे काव्यों की रचना की जाती है जिनसे तात्कालिक लोकप्रियता प्राप्त होती है; जनसाधारण को संगठित किया जाता है और राजनैतिक सफलता को प्राप्त किया जाता है।……जीवन कभी दूसरी बार उसी प्रकार का नहीं होता और इसलिए उसका कभी सामान्यकरण नहीं हो सकता।……

(यीट्स के पत्रों से)

—डब्ल्यू. बी. यीट्स

मेरी काश्मीर-यात्रा

[१]

उत्तरीय रेल्वे-लाईन का यह अन्तिम छोर पठानकोट, ऐसा कुछ वीरान, सुनसान-सा प्रतीत हुआ कि इसके आगे मानव जीवन की संभावना प्रायः असंभव-सी प्रतीत हुई। इस स्थान के चारों ओर कुछ दूरी तक सपाट मैदान, झुरमुटवाली भूमि और तत्पश्चात् खँडहर की भाँति उजड़े हुए तरुहीन टीले दृष्टिगोचर हुए। यह अप्रैल का महीना था। सूखी उत्तप्त धूल हवा में उड़ती हुई चारों ओर धुँधलापन फैला कर रुक्षता एवं शुष्कता को बढ़ा रही थी। शरीर के भीतर-बाहर सिवाय गरमाहट के और कुछ भी अनुभव नहीं होता था। प्रचण्ड मार्तण्ड की जीवन-शोषक उष्णता को अपने में न समा पाने के कारण धरती पथिकों को विकलता प्रदान कर रही थी। इसके अतिरिक्त स्टेशन से लगे भारतीय सेनाओं के डेरों (Transit Camps) ने उस रूखे वातावरण में भयानकता का भी संचार कर दिया था। तथापि रूप-नगर श्रीनगर देखने की उत्कट अभिलाषा ने बाह्य वातावरण में व्याप्त रूक्षता एवं भयानकता से हमें अप्रभावित ही रखा।

मध्याह्नोपरान्त हम मोटर में बैठे; उत्सुकता से सिर बाहर किए भारत का उत्तरीय भू-भाग सकौतुक निहारने लगे। शीघ्र ही हमारी दाहिनी ओर एक विशालकाय सीमाबद्ध वेगवान जलौघ, मानो किसी पर आ गिरता हुआ, सुदूर से हमारी ओर बहता हुआ नजर आया। जमीन से छूती बहती विपुल जल राशि को देख कर बाल-मन प्यास बुझाने को आतुर हो उठा। उस झरने के दोनों ओर हरित भूमि और हरे भरे सघन छाया के पेड़ों ने हमारी आँखों को अपनी ओर खींचते हुए आबद्ध कर लिया। जलौघ के सन्निकट विचरित एवं क्षालनादि कार्य मग्न नर-नारियाँ तथा छायाश्रित चरता हुआ मानवेतर संसार तटवर्ती प्रदेश को अपनी विद्यमानता से सजीवता प्रदान कर रहा था। अन्यत्र तो निर्जीवता एवं शून्यता ही फैली हुई थी जो स्वतन्त्र भारत सरकार द्वारा विरचित इस जलौघ के द्वारा भविष्य में पोषित होने की सुदृढ़ सम्भावना प्रकट कर रही थी। ज्यों ज्यों हम जलौघ के उद्गम की ओर मोटर में बैठे बैठे अग्रसर होते गए त्यों त्यों लगभग एक एक फर्लांग की दूरी पर जलधारा की ऊपर से नीचे और फिर नीचे से ऊपर उठ कर आगे बढ़ने की नाद-मिश्रित गति अधिकाधिक सुस्पष्ट होती गई। अन्त में रावी का वह लगभग एक मील लम्बा पुल दिखाई दिया जिसके निकट से ही रावी का पानी इस मानव-विरचित विशाल नहर में उद्दाम गति से प्रवहमान लक्षित हो रहा था।

पुल को पार करते ही सुदूर आगे आग-सी लगी हुई दिखाई दी किन्तु आश्चर्य यह कि वह हमारी आँखों में भयानकता के स्थान पर सरसता निर्माण कर हमारे मुख-मण्डल को विकसित करने लगी; उस अग्नि-सदृश लालिमा में समाई हुई सजलता ने हमें ऐसा कुछ मोह लिया कि हम उस ओर हँसमुख ताकते ही रह गए। क्रमशः उस सजल लालिमा में श्यामलता को भी झलकती देख कर प्रकृति-प्रेमी "सेनापति" की ग्रीष्म ऋतु पर विरचित पलाश पेड़ विषयक कविता की पंक्तियाँ मुँह से बलात् निकल पड़ी—"कोयला पराए हैं।"

उक्त पंक्तियों का वास्तविक आनन्द पाने का सौभाग्य आज कहीं हमें प्राप्त हुआ। सत्य है, कवि काव्य सृष्टि का सम्यक् दर्शन प्रत्यक्षानुभव पर बहुत कुछ निर्भर रहता है। पलाश वृक्ष की राजियाँ ग्रीष्म ऋतु में रहती तो हैं भारतीय-युवक-समाज सदृश्य अस्थिपंजरोपम पत्रहीन लेकिन अपने डंठलों पर स्थान स्थान गुच्छ रूप में काजल की टोकरी में खिलनेवाले गहरे लाल सुमनों को धारण कर ऐसी कुछ शोभा बिखेरती हैं जो देखनेवालों को उन्मत्त और वियुक्तकामी जनों को कामाभिभूत बना देती हैं। मांसहीन हड्डियों के ढाँचे में प्राणों की प्रस्थापना भूतों के रूप में कितनी भयानक लेकिन इन पेड़ों के रूप में कितनी विलोभक थी--,कितनी सरस थी। इसका अद्भुत अनुभव 'मदनमस्त' का नासिकाद्वार से पान करनेवाला ही कुछ कुछ कर सकता है। पलाश के फूलों पर की गई कवि-कल्पनाओं की सचाई का साक्षात्कार कर वही कवि की-सी दर्शकों की भी उन्मनी अवस्था हो जाती है—यद्यपि प्रतिभा भाववश वे रसिक लिपिबद्ध रसधारा बहा

नहीं पाते । नीरस से नीरस हृदय भी टेसू के इन रस भरे कुसुमों को आँखों से पी कर काल्पनिक मनोमय संसार में विचरण करता हुआ कहने लग गया इस रज भरे पथरीले पथ के दोनों ओर मानों सजल आग की कतार लगी है अथवा वसंत ऋतुराज ने होलिकोत्सव मनाने के लिए ढेरों गुलाल बगरा दिया है । बात भी सच थी, गरमी के दिन थे, रास्ता धूल भरा था जो आगे-पीछे सर-से निकलनेवाली मोटरों से प्रकुप्त होकर उन पर धूल झोंकता हुआ सम्पूर्ण वातावरण को धूमिल बना रहा था और इस धूमिलता में से झाँकती हुई, टेसू के फूलों की श्यामल पर झलकती हुई गहरी लालिमा विरल लाल गुलाल सदृश ही प्रतीत हो रही थी । आसपास की रुखी-सूखी, ऊँची-नीची पाषाण बहुला धरती, गोल-मटोल गिट्टियों से बनी पक्की पर पुरानी धूल भरी सड़क और पग पग पर उसे काटती हुई निर्जल, विस्तीर्ण, पथरीली एवं रेतीली उथली छोटी-बड़ी नदियाँ रह रह कर कुछ कुछ मरुस्थल का भी आभास दे रही थीं । भारवाही ऊष्ट्रों ने यत्र तत्र दर्शन दे कर हमारी इस धारणा को हृदय में स्थान देने का भी मानों बीड़ा उठा लिया था । तात्पर्य एक ही प्रदेश में विराजमान जलौघ समीपस्थ हरीतिमा, कामदेव के अग्नि बाणों –टेसू के कमनीय फूलों की सजल अंगार-सी लालिमा और निर्जल नदियों से भासमान मरुस्थलीय शुष्कता—इन तीनों का त्रिवेणी संगम अपने अनोखे मायाजाल से हमें परिप्लावित करता हुआ चट्टानों में छिपे जम्मू नगर के किनारे कब कैसे ले आया, कुछ ज्ञात नहीं हुआ । पठानकोट से जम्मू तक तीस पैंतीस मील का यह विगत मध्याह्न-प्रवास सुख दुःख से परे एक अनिर्वचनीय भावना में हमें डुबोये एकाएक समाप्त हो कर आगामी रूप-नगर की झाँकी का संकेत कर गया ।

जम्मू नगर का दर्शन मात्र एक रियासती राज्य की झलक दिखा जाता है जो पथरीली पर्वतीय भूमि पर दूर से छितरा हुआ, कागजों के बिखरे हुए टुकड़ों के समान परिलक्षित होता है और विशालकाय क्षीण-धारामयी सरिता से आवेष्ठित अपनी एक अनोखी शान दिखाता है । मोटर में बैठे बैठे ही सड़क के दोनों ओर से दिखाई देनेवाली जम्मू नगर की झाँकी मन को ऐसी विमोहित कर गई कि श्रीगर से नागपुर लौटने तक "आनन ओप उजारु" का हम जाने-अनजाने अनुभव करते रहे । वहाँ के नागरिकों की वे बादामी आँखें, वह हिमालय-सी सुडौल ऊँची नाक, वे उभरे गोरे गाल, वह विशाल वक्ष, भव्य भाल और वह ऊँचे कद का भरा-पुरा अंग सभी कुछ बड़ा ही मनोरम लगा । जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थिति के अनुरूप शारीरिक मानवीय गठन एवं उनकी रहन-सहन की सत्यता का यहाँ हमने प्रमाण पाया जो हमारे मुख पर मुस्कान बिखराता हुआ अलक्षित रूप से हमारे मन को श्रीगर की स्वप्निल माया का आभास देता रहा ।

भगवान मरीचिमाली अस्ताचल पर पहुँच चुके थे परन्तु हम जम्मू से उधमपुर पहुँचने को थे । मेखलाकार आवेष्ठित बालों-सी पतली नदी जम्मू को अपनी लुका-छिपी का खेल दिखाती हुई हम से पीछे दूर जा पड़ी । अब हम नगर छोड़ चट्टानों की विजन एवं धूमिल पहाड़ियों पर से गुजरने लगे । रास्ते का सीधापन सर्पाकार में और प्रकाश अंधेरे में परिणत हो चला । चट्टानों के छोटे-बड़े टीले उस तमसावृत प्रदेश में राक्षस-परिवार से मानवों को खाने के लिए दौड़ते हुए प्रतीत हुए । ठीक इसी समय मोटर ड्राइवर ने कहा, उस सामने की मोड़ पर किसी एक प्रमुख सेनानी की अपघात से एकाएक अकाल मृत्यु हुई थी । हम सब अपने आपको अपने में अधिकाधिक समेटते हुए ड्राइवर से सँभल कर चलाने को कह ही रहे थे कि उसने उस मोड़ पर ऐसी कुछ मोटर घुमाई कि हम परस्पर टकराते टकराते बच गए । तमसाच्छन्न भू-भाग एकाकार हो गया । ठीक इसी समय हम उधमपुर पहुँचे जो तमोमय अतः अलक्षित भू पर टिमटिमाते हुए दीपक की भाँति अपना अस्तित्व जता रहा था ।

सिटी कालेज
नागपुर

—गोपाल गुप्त

संसार में आदरपूर्वक जीवन व्यतीत करने का सब से लघु और निश्चित मार्ग यह है कि हम जैसे बनते हैं वास्तव में भी वैसे ही हों ।

—सोक्रेटीज़

अन्तराल

प्रिय भैया धीर !

तुमको मेरी चिन्ता है, साथ ही उनकी भी। पर कुछ बातें ही ऐसी होती जा रही हैं कि क्या बताऊँ ?

कल मैं ऊपर गई थी। कितनी देर तक उनकी प्रतीक्षा करती रही, यह जानना आवश्यक होगा। जब वह आए भी तो पहला वाक्य उन्होंने यही कहा कि तुम ऊपर न आया करो। आए भी पर जलाने के लिए।

कहने को तो वह कहते हैं कि मैं उन बातों को भूल चुका हूँ, पर बार-बार भुवन की बातें करना मैं अच्छा नहीं समझती। वही पुराना इतिहास दोहराने लगे—भुवन का पत्र आया था, उसने तुम से विवाह करने से तो इन्कार किया ही न था; जो कुछ भी हुआ, क्या पता कि वह तुम से विवाह करने के लिए ही यह सब कर रहा हो।

भैया ! एक तो वही परिचित स्थान, जहाँ हम कभी मिलते थे और वह भी पूरे एक वर्ष के बाद। मेरा हृदय यूँ ही भर रहा था, ऊपर से वह ऐसी बातें कह रहे थे कि भैया, थोड़ी देर के लिए तुम स्वयं को मेरे स्थान पर रख कर देखो, उस समय यदि मैंने भरे हुए दिल से इतना कह दिया कि तुम स्पष्ट क्यों नहीं कह देते कि तुम मेरे मार्ग से हट जाओ ! भैया, भुवन की बात की आड़ ले कर वह मुझे रोज़ ही ऐसा कहते रहेंगे पर……

आखिर मेरा भी तो हृदय है। क्या वह मुझे जला-जला कर राख ही कर देना चाहते हैं ? यही सही। मैंने तुम्हें कह दिया था कि जिसमें उनकी खुशी है, मैं वह सब करने को तैयार हूँ।

आगे पुनः भुवन की बातें स्मरण कराने लगे। कहने को तो बहुत कुछ था पर मैं केवल मात्र इतना कहते हुए चल दी कि मैं भुवन को बिल्कुल-बिल्कुल पसन्द नहीं करती। उन्होंने रुकने के लिए आग्रह किया पर मैं चल पड़ी थी। यदि नीचे आ कर सिर को नल के नीचे न रख देती तो पागल ही हो जाती।

अब तुम ही बताओ मैंने क्या भूल की ? आखिर मेरे सीने में हृदय ही है पाषाण नहीं। तुम चिन्ता कर रहे होगे, ठीक है। किन्तु तुम ही बताओ मैं क्या करूँ ? घर में रोज़-रोज़ डाँट पड़ने से स्वभाव भी कुछ विचित्र-सा हो गया है।

वे कहते हैं कि वह मनोरंजनों के साधनों से कोसों दूर हैं, तो वे यह भी देखें कि मैं कहाँ उसके पास हूँ। मैं मानती हूँ वे दुःखी हैं पर……

वे नहीं आना चाहते, उनकी इच्छा ! मेरी आँखें तो प्रतीक्षा में ही रहेंगी।

अधिक क्या लिखूँ।

तुम्हारी दीदी
हेम

पुनश्च :

सिर को नल के नीचे रख देने से सर्दी लग गई है। मानसिक अवस्था ठीक न होने से तबीयत भी सुस्त है। क्या करूँ, मैं तो सोचते-सोचते परेशान हो गई हूँ।

काश, वे समझ पाते !

—हेम

स्नेही भाई,

तुमने जो कुछ लिखा, उसके लिए धन्यवाद ! पर यह उस समय बताया जब कि मैं अपने को बदलने का पक्का निश्चय कर चुकी हूँ, खैर……

तुम्हें मालूम ही है उस दिन की मेरा अवस्था। थोड़ी देर के लिए मान लो कि मैं आत्म…तो……पर शुक्र है भगवान् का जिसने मुझे इस कायरता से बचा लिया। हृदय ने कहा : पगली, इतने-से ही घबरा गई। उठ, और संघर्ष कर ! पर वाह रे मेरे भाग्य ! उस छोटे से कागज़ ने मेरे जीवन के उद्देश्य को ही बदल दिया।

जब मुझे स्वयं की सुध-बुध न थी तो बहन जी ने हाथ-पैर दबाने पर हाथ में कुछ देखा……और उसके बाद……मुझे कहा कि डूब मर ! जिसके लिए तू अपने को बलिदान कर रही थी, उसने ठोकर मार ही दी न ? देख लिया प्रेम का स्वाद !

जब मैं जा रही थी तो वह नीचे दवाइयों की दुकान के बाहर खड़े थे। मैंने सोचा आखिरी बार बिदा

माँग लूँ। जब उन्होंने मुझे खड़ी देखा तो अन्दर दुकान में चले गए। मैं तब भी वहीं खड़ी रही उनके निकलने तक, और जब वह बाहर निकले तो मेरे हाथ अपने देवता को प्रणाम करने के लिए अनायास उठ ही गए।

सोचा था उनको दिखा दूँ कि मैं उनकी सहायता रहित भी बहुत कुछ कर सकती हूँ। पर नहीं, मैं उनका एक बार हाथ पकड़ चुकी थी, और तब यह विचार जहाँ से आया था, वहीं लुप्त हो गया।

मैं यहाँ से गई, क्यों गई......मैं स्वयं नहीं जानती। पर भैया, उस समय हृदय इतना विदीर्ण था कि शीघ्र कोई परिवर्तन चाहता था। बहन के घर नहीं जाती तो उस स्थान पर चली जाती जहाँ अपना कहने को कोई नहीं होता। अब भी कभी-कभी ऐसा ही विचारती हूँ।

मैंने वहाँ जा कर उन्हें भूलने का प्रयास किया मगर कहाँ भूल पाई। और उस दिन जब मैंने तुम्हें और उन्हें बाजार में खड़े देखा तो सोचा शायद उन्हें अपनी भूल का ज्ञान हो गया है। उस समय मेरा उनके साथ कैसा कठोर व्यवहार था, मुझे स्वयं आश्चर्य होता है। किन्तु जब मैंने तुम्हारी अवस्था देखी तो हृदय रो उठा और मैं सोचने लगी कि आखिर तुम्हें क्या हो गया है। मैंने बहन से कहा : मुझे छोड़ आओ! दूसरे दिन मैं यहाँ आई भी थी—एक सहेली का विवाह था। जब यहाँ आई तो यहाँ की प्रत्येक वस्तु से एक प्रकार का भय लगने लगा। जहाँ भी देखती एक छाया मेरी ओर बढ़ती......

मुख्य विषय तो भूल ही बैठी। वे यही बार-बार कहते हैं कि मैंने तुम्हारे लिए यह किया, वह किया। तुमने मेरे लिए क्या किया, मुझे क्या दिया? मैं तुमसे कहना तो नहीं चाहती पर गुप्त रखना भी ठीक न होगा। मैंने उनके लिए वही किया जो एक प्रेमिका अपने प्रेमी के लिए; एक पुजारिन अपने देवता के लिए; एक पत्नी अपने पति के लिए करती है। उनके लिए मैंने क्या नहीं किया, अपने आपको कष्ट दिया; अपनी आत्मा को रुलाया, अपने स्वतन्त्र जीवन को परतन्त्रता की शृंखलाओं में जकड़ा। एक बन्दी का भी जीवन इससे अच्छा होता होगा शायद।

मेरे भाई, मेरे जीवन में कुछ ऐसे दाग लग चुके हैं जिन्हें मैं मिटा नहीं पाती। अब वह प्रेमावेश में विवाह के लिए उद्यत हैं, किन्तु जब आवेश की ज्वाला शान्त हो जाएगी तो उस समय मेरी क्या अवस्था होगी? नारी सब कष्टों को सहर्ष स्वीकार कर लेती है जब तक उसे उसका पति प्रेम करता हो। उनका स्वभाव है परीक्षा लेने का। पहले रुला दिया और फिर कह दिया—परीक्षा ले रहा था।

भैया, मैं उस अवस्था में पहुँच चुकी हूँ जहाँ से निकलना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। मेरे रोम-रोम में व्याप्त वे दूर रह कर भी दूर नहीं। पर कभी-कभी मनुष्य इच्छा-रहित भी उस कार्य को कर बैठता है जिसे वह स्वप्न में भी पसन्द नहीं करता।

मैं नहीं जानती कि मैं इतना सब कैसे लिख गई। तुम्हारा समय तो नष्ट ही होगा लेकिन फिर मैं किसे सुनाऊँ? एक बात और...तुम्हें इस बात से मालूम हो जाएगा कि उनके विचार कितने संकीर्ण हैं। सुषमा से कहा : अब वह क्यों आएगी, जीजा हैं, जीजा के भाई हैं। मेरा हृदय रो उठा, पर करती क्या? खैर! शेष पुनः।

तुम्हारी दीदी
हेम

पुनश्च :

तुमने भी प्रभाकर परीक्षा में बैठने की सोची है। चलो, यह भी अच्छा हुआ। मैंने अभी तैयारी की ही नहीं। क्या कुछ सहायता करोगे मेरी? नोट्स आदि लिखो तो पढ़ने के लिए दे देना। किसी पुस्तक की आवश्यकता हो तो मँगवा लेना। बस, अब बन्द भी करूँ।

—हेम

धीर,

तुम्हारा स्नेह-युक्त पत्र मिला। तुमने पूछा कि मैंने किस प्रकार अपने आपको बदलने का निश्चय कर लिया है।

तुम समझे नहीं, धीर! मेरी अवस्था उस पक्षी के समान है जिसके पर काट कर अथाह सागर में डाल दिए जाए, वह उड़ना चाहे तो उड़ न सके। या तो वह जीवनपर्यन्त छटपटाता प्राणों को उत्सर्ग कर दे या निश्चेष्ट पड़ा रहे।

भविष्य में मैं क्या करूँगी, यह मैं अभी सोच ही नहीं सकती। परिस्थितियाँ बड़ी शीघ्रता से परिवर्तित होती जा रही हैं। मैं क्या करूँ, क्या न करूँ; बड़ी

चिन्तित हूँ, किन्तु है सब कुछ भविष्य के गर्भ में। न मैं जान सकती हूँ, न तुम।

उनको पत्र लिखना तो चाहती थी पर अब नहीं। मैं जानती हूँ वे मेरे पत्र की प्रतीक्षा में होंगे पर मैं स्वयं विवश हूँ। मैं अभी उनसे मिल भी नहीं सकती। अब तो देख कर ही जीवित रहना चाहती हूँ।

तुम्हारी पढ़ाई तो ठीक चल रही है न? मेरी मानसिक अवस्था ठीक नहीं, भगवान जाने सफलता मिलेगी भी या नहीं। फिर भी शायद तुम्हारी सहायता से सफल हो जाऊँ। हाँ, सुषमा को तुमने ही बताया था कि वह लखनऊ गए हैं।

उत्तर देना चाहो तो दे देना पर इसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती क्योंकि तुम मेरे किसी भी प्रश्न का ठीक उत्तर नहीं देते, मेरी उलझन सुलझने के स्थान पर और उलझती ही जाती है।

मालूम नहीं भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है? मैं अति निराश हो चुकी हूँ।

अच्छा, भगवान की इच्छा!

—हेम दीदी

प्रिय भाई,

पुस्तक के लिए और 'नोट्स' के लिए क्या धन्यवाद दूँ? नाट्य साहित्य की व्याख्या तुमने बहुत अच्छी तरह से की है। इस प्रकार तो कोई अध्यापक भी नहीं समझा सकता। किसी और पुस्तक के 'नोट्स' लिखे हों तो भेज देना।

और हाँ, जो पुस्तक तुमने भेजी थी, वह ठीक नहीं है; लक्षण और उदाहरण तो जरा भी शुद्ध नहीं हैं। तुम भी मत पढ़ना। मेरी पुस्तक आ गई है, ले जाना।

अखबार वापस भेज रही हूँ, 'गाईड' कल दे दूँगी। शायद मैं कल बहन जी के यहाँ जाऊँ। जाने का कोई विचार तो नहीं है फिर भी यदि चली गई तो 'गाईड' सुषमा को दे जाऊँगी। अभी पूर्ण नहीं पढ़ पाई। शनिवार को भी क्या 'लैक्चर' होगा?

वह जो पत्र मैंने तुम्हें भेजा था, ध्यान से पढ़ने के लिए था। तो मैं उसके उत्तर की आशा करूँ? यद्यपि मैंने लिखा था कि उत्तर की कोई आवश्यकता नहीं, पर अब बहुत है।

तुम्हारा उत्तर आने पर ही मैं कुछ सोच सकती हूँ।

प्रतीक्षा में—

—हेम

प्रिय भाई,

कल तुम कुछ उदास या चिन्तित थे। क्या कारण है? कल से ही सोच रही हूँ पर अभी तक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाई। शीघ्र सूचित करना, मैं बहुत चिंतित हूँ।

तुम्हारी पढ़ाई तो ठीक चल रही होगी। मैं भी वहाँ पढ़ आई हूँ। इतने दिन तक 'गाईड' न दे सकी और तुम्हारे कार्य में बाधा भी अवश्य उपस्थित हुई होगी, क्षमा प्रार्थी हूँ।

एक बात मैं तुम से कहना चाहती हूँ। वह यह है कि उन्हें और उनकी माँ को न जाने क्या हो गया है। वे कहते हैं कि मैं हेम के साथ......और भैया, तुम ही बताओ इसमें कितना यथार्थ है? कितने पागल हैं वे, असत्य कहते कुछ तो उन्हें सोचना चाहिए!

जब से यह सुना है तबीयत ही नहीं करती कि उनको कभी स्मरण भी करूँ। और वे तो हैं ही पर उनकी माँ कहती है कि हेम का विवाह हो रहा है। विवाह तो होगा ही, यह मैं मानती हूँ, पर अफ़वाह फैलाने से क्या लाभ?

देखा तुमने! आजकल के प्रेमी-युवकों में प्रतिशोध की भावना कितनी अधिक मात्रा में होती है। मैंने उनके सारे पत्र जला दिए हैं।

—हेमवती

धीर भैया,

पुस्तक अच्छी थी पर विशेष कुछ न था। जो था, मैं जानती थी।

कल सुषमा से पता लगा कि वे परीक्षा में सफल नहीं रहे। सुन कर अतीव दुःख हुआ।

मेरे भाई, मैं तो आजकल बड़ी दुविधा में हूँ। समझ ही नहीं पाती कि क्या किया जाए। तुमने कहा था : कोई किसी का कुछ नहीं करता, स्वयं करो। धीर, तुम्हीं बताओ मुझे, आखिर करूँ क्या? कल सारा दिन रोती रही। जानती हूँ कब तक रोऊँगी, कुछ न कुछ तो करना ही है। भैया, केवल इतना बताना कि यदि कोई स्त्री अपने प्रिय को भूलने का प्रयत्न करे पर भूल न सके तो उसे क्या करना चाहिए?

भाई, मुझ में इतनी भी तो शक्ति नहीं कि कुछ कर सकूँ, अपना कुछ तो अस्तित्व समझ सकूँ। जीवन में जितना संघर्ष है उतना समझौता नहीं। क

मनुष्य कभी शान्त न होगा ?

मैं बहुत प्रयत्न करती हूँ-कि वे स्मरण न आएँ पर होता विपरीत ही है। हालांकि ये सब मुझे तुमसे नहीं कहना चाहिए पर इसलिए कह देती हूँ कि तुम से मेरी कोई भी अवस्था छिपी नहीं।

इतना बता दो मुझे क्या करना चाहिए जिससे तुम्हारी दीदी कुछ तो अपना निर्माण कर सके। परीक्षा तो शायद जून के प्रथम सप्ताह से प्रारम्भ होगी ?

वे कहते हैं कि तुमसे न बोला करूँ। कहीं ऐसा हो सकता है, भाई ! मैं उनकी यह बात कदाचित् कदापि नहीं मान सकती। तुमने गत पत्र में बार-बार अपने को घृणा योग्य लिखा है। यह ठीक नहीं। घृणा योग्य तुम नहीं, मैं हूँ। आगे से मैं यह शब्द नहीं सुनना चाहती। तुम्हें क्या पता कि मैं तुम्हें कितना स्नेह करती हूँ। उत्तर में कमला का पता भी लिख देना। आजकल तुम क्या कर रहे हो ? कल से मैं बहुत चिन्तित हूँ। कुछ अनुचित लिख गई हूँ तो भुला देना।

तुम्हारी शुभाकाँक्षी
हेम

मेरे भाई धीर जी,

तुमने मेरी सब बातों का शक्ति-भर उत्तर देने का प्रयास किया किन्तु कोई भी सुझाव मेरी समझ में न आया। मुझे किसी बात की सुविधा नहीं। फिर मैं क्या करूँ ?

शान्ति के विषय में जो कुछ भी तुमने लिखा, उसे तो पाठ्य पुस्तकों में पढ़ते-पढ़ते मस्तिष्क भी बौखला जाता था। वही सुझाव तुमने दिया, कोई नूतनता नहीं थी। मनुष्य कभी शान्त नहीं होगा, यह मैं भी समझती हूँ। पर मेरे भाई मैं योगियों-सी शान्ति तो नहीं चाहती। केवल इतना चाहती हूँ—बस, अपनी स्थिति पर संतोष करना सीख लूँ। मैंने तुमसे इतना पूछा था कि क्या मनुष्य कभी शान्त नहीं हो सकता ? इस बात को दृष्टि में रखते हुए तुम्हारा सुझाव पूर्ण ठीक है। पर मेरा आशय अपनी शान्ति से है, समग्र मानव समाज से नहीं।

एकान्त पा कर मेरी भावनाएँ फूट पड़ती हैं। किन्तु कोई भी, कुछ भी सुविधा न पा कर न जाने कहाँ विलीन हो जाती हैं। क्या भैया, मैं कुछ भी न कर सकूँगी ? यहाँ भी मैं बता दूँ कि मेरा आशय अपने व्यक्तित्व से है। आजकल कुछ भी नहीं लिख पाती।

मैं अपना ही रोना रोने बैठ गई, तुम्हारा तो कुछ भी नहीं पूछा। अब मैं अपनी बातें पीछे बतलाऊँगी, पहले तुम्हारे विषय में पूछ लूँ। मैं तुम्हें देख तो पाती नहीं जिससे अनुमान लगा सकूँ कि मेरे भाई का क्या हाल है। परीक्षा से पूर्व सोचा करती थी कि तुम्हें परीक्षा के बाद कोई भी उदासी या दुःख न होगा। पर अब देखती हूँ मेरी धारणा कितनी खोखली थी। तुम्हारा 'मूड' नहीं है लिखने का। कोई बात नहीं, कुछ समय और प्रतीक्षा करो; प्रतीक्षा का फल मीठा होता है। क्या मैं भी झगड़ूँ तुम से ? अरे भाई, तुम तो कुछ अपने व्यक्तित्व को प्रस्फुटित करो। हमारे तो भाग्य में रोना ही लिखा है। पर घबराओ नहीं भैया, मैं तुमसे ईर्ष्या नहीं करती, मेरा तुमसे हार्दिक स्नेह है। शायद तुम यह बात न मानो, खैर..... न सही। जब अपना 'भाग्योदय' नाटक समाप्त कर लो तो हमें भी दिखला देना।

भूमिका तो बड़ी सुन्दर लिखते हो अपने मित्र के (उनके) विषय में, उनको लज्जित होने से बचा लिया। बड़े शरीर हो गए हो तुम !

उस दिन का तो मुझे स्मरण नहीं कि कौन सी तिथि थी। हाँ इतना कह सकती हूँ उस समय कोई साढ़े-चार बजे होंगे, नभ मेघाच्छादित था; ठण्डी वायु चल रही थी। मैं अनायास ही छत पर चली गई। मैं नहीं जानती ऐसा क्यों हुआ। छत पर वे भी थे। उन्हें देख कर मैं घबरा उठी और शीघ्रता से सीढ़ियों के पास आ कर बैठ गई। होठों से एक पूर्व-परिचित-सा गीत निकल पड़ा। इतने में वे स्वयं ही आ गए। भगवान साक्षी है भैया, इतने समय के पश्चात् उन्हें अपने इतने समीप पा कर मेरा शरीर काँपने लगा। ऐसी घटना मेरे जीवन में प्रथम थी। ऐसा क्यों हुआ ?

बातें क्या हुईं, मुझे स्मरण नहीं। वे क्या कहते रहे, यह भी मैं सुन नहीं पाई। केवल इतना बता सकती हूँ कि आदि से अन्त तक मैं जो कुछ बोली, केवल इतना था : "यदि तुम ऐसा चाहते तो न होता, तुम चाहते ही न थे।" अस्तु, तुम्हीं अनुमान लगा लो उन्होंने क्या कहा होगा ?

इधर मैं तुम्हें अपने घर का कुछ हाल बताऊँ। जब से परीक्षा समाप्त हुई है, काम से जरा-सा भी अवकाश नहीं मिलता। उस पर भाभी के पुत्रोत्पन्न हुआ है। प्रसन्नता तो तुम्हें भी होगी ? देखा न, मेरे नाते वह तुम्हारा भी भतीजा हुआ, क्यों ?

हाँ, मुख्य बात मैं कहना भूल ही गई। कल से अजय भाई में एक अद्भुत परिवर्तन पा रही हूँ। वह मुझे बात-बात पर डाँट देता है। इधर कुछ दिन हुए विमला और सुषमा मुझे को देखने आई थीं। यहाँ तक तो कोई बात नहीं थी पर साथ में जितेन्द्र भी आ गया। भला उसको साथ लाने की क्या आवश्यकता थी, और जब वह आ ही गया तो इसमें मेरा क्या दोष। न मैं कभी उससे बोली, न जानती और भला मेरा उससे क्या सम्बन्ध हो सकता है। पर क्या करूँ—मैंने तुम्हें बताया न कि मेरे भाग्य में रोना ही लिखा है। तुम कहोगे यह भाग्य-वाग्य मैं नहीं मानता, पर भाई, मेरे लिए तो यही एक सम्बल रह गया है जिस पर मैं संतोष कर सकती हूँ, नहीं तो तुम्हीं बताओ। गत पत्र में जो तुमने सुझाव दिए हैं, उनमें से तो एक भी नहीं होने का। हाँ, तो मैं कह रही थी कि जितेन्द्र को मैंने तो बुलाया नहीं था पर वह आ ही गया था। रघुवीर भाई और जीजा जी वहाँ बैठे थे। मुझ से पूछने लगे कि वह कौन है? मैंने बता दिया। जब विमला, सुषमा और जितेन्द्र मुझे को देख कर चले गये तो लखनऊवाली बहन जी लगीं डाँटने—यह है, वह है इत्यादि, मुझे भी क्रोध आ गया और मैंने भी ईंट का जवाब पत्थर से देना शुरू कर दिया। भैया, मुझे अब दुःख होता है अपने ऊपर कि क्यों न उस समय मैं संयम रख सकी? वह जो भी कह रही थीं, कहती जातीं, मेरा क्या बिगड़ता था। क्या करूँ—कभी-कभी मैं बहुत व्याकुल-सी हो जाती हूँ और बिना सोचे-समझे उत्तर दे देती हूँ।

उस दिन काफ़ी रात तक रोती रही, खाना भी नहीं खाया। फलस्वरूप मेरी आँखें बहुत दर्द करने लगीं और दो बार डाक्टर से धुलवाने भी जाना पड़ा। अभी परसों फिर इसी विषय पर एक बहस हो गई। कभी-कभी मेरा मन संयम की सीमा का उल्लंघन कर विद्रोह कर ही बैठता है और उस विद्रोह का दमन मेरे आँसुओं द्वारा ही होता है। खैर......छोड़ो, इन बातों को।

रहा चित्र का, सो चित्र जरूर ले लेना। यदि समय मिले तो स्वयं खींच लेना अन्यथा मैं ही दे दूँगी। पर शरीर भैया, भला तुम चित्र का क्या करोगे?

मैं अब क्या करूँ? जरा मेरी सुविधानुसार कुछ सुझाव देना। मैं उसका पालन करूँगी।

इसी प्रकार कट रहे हैं दिन। अच्छा, अब अपना हाल लिखना। शेष पुनः

तुम्हारी दीदी
हेम

भाई,

कल तुम्हारा पत्र मिला, बड़ा दुःख हुआ। धीर, तुम्हारी दीदी बुरी हो सकती है, पतिता नहीं। फिर किसी भी अवस्था में वह अपने भाई से अपना कोई भी पापाचरण गुप्त नहीं रखेगी। क्या तुम्हें अपनी दीदी पर इतना भी विश्वास नहीं?

रहा आनन्द का। तुम्हें वचन देने के बाद न मैं उससे मिली हूँ और न बोली हूँ। परसों की बात है: वह अजय भाई को आवाज़ लगा रहा था। अजय था नहीं, मैंने उसकी अनुपस्थिति की सूचना दी। उस समय मैं सुषमा के प्रेमी से नहीं, भाई के मित्र से बोल रही थी। इससे अधिक मैं कुछ भी नहीं जानती कि क्यों मुझ पर झूठे इल्जाम लगाए जाते हैं।

तुम्हें यह सब बता कर अब मैं तुम्हारी बातों का उत्तर दे रही हूँ। उनसे मैं बोलना नहीं चाहती थी पर जब उन्होंने मुझे अपना एक पत्र दिया तो मेरे तन-बदन में जैसे आग लग गई। वह मुझे इतना जलील करते हैं तो मैं ही क्यों चुप रहूँ। इस बार मैंने भी वो बातें लिखी हैं जो वे भी याद रखेंगे। उनसे मेरा अब कोई सम्बन्ध नहीं और न भविष्य में होगा; यह तुम अनुमान लगा लोगे। एक बात—जब वे तुमसे मिलने आएँ तो उनसे मेरा अन्तिम पत्र ले कर पढ़ लेना। फिर शायद तुम्हें अपनी दीदी पर विश्वास आ जाए।

चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं, मेरे भाई! तुम्हारी दीदी अब किसी बहाव में भी नहीं बह सकती। बहुत कुछ देख लिया हृदय लगा कर। अब न तो वह उमंग है, न वह भाव। वह समय और था जब हृदय की मात्रा लुट जाती थी, अब तो वह संचय से अधिक हो कर मेरे उर में समा चुकी है। फिर मैं कह सकती हूँ कि मैंने कभी प्रेम नहीं किया—आकर्षण और प्रेम में अन्तर है, आकर्षण समय आने पर प्रसुप्त हो जाता है पर प्रेम नहीं। इस अनुभव के आधार पर यही कहा जा सकता है कि किसी से मेरा प्रेम नहीं था। आकर्षण था, सो अब वह भी नहीं रहा। अब मैं इस आकर्षण को ले कर दुःखी नहीं होऊँगी।

मेरी असुविधाएँ देखी जाएँ तो बहुत हैं, यदि न

देखी जाएँ तो कुछ भी नहीं। अपनी इन असुविधाओं को मैं अगले पत्र में बताऊँगी क्योंकि बातें बहुत कहनी हैं पर समय है कम। धीर, तुम जो कुछ कहोगे, मैं करने को तैयार हूँ, समझे !

एक बात मैं और तुम्हें नहीं बता पाई — वह भी अगले पत्र में बताऊँगी।

रहा उनसे विवाह—वह स्वप्न हो सकता है, यथार्थ नहीं। किसी भी मूल्य पर मैं उनसे विवाह नहीं कर सकती।

मैं अपना कौन-सा लक्ष्य बनाऊँ ? मेरी परिस्थितियों का अनुमान लगाते हुए कुछ तो बताओ।

कहानी कैसी लगी ? तुम से ही प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर मैं भविष्य में कुछ कर सकूँगी। तुम्हारी ही कृपा का फल है कि मैं अपनी वास्तविक स्थिति को पहचान पाई। थोड़े से 'फुलस्केप' के कागज़ भेज देना जिससे अगली कहानी आरम्भ कर दूँ। अगली कहानी की नायिका कल्पना होगी, नायक का नाम क्या रखा जाए यह तुम बताना !

तुम्हारी सब बातों का पूर्ण उत्तर मैं दो-तीन दिन में दे पाऊँगी, तब तक मुझे कागज़ भेज देना। यह कहानी मैं इलाहाबाद भेज दूँ ? छप गई तो ठीक। धीर, हँसना नहीं ! यह मेरा प्रथम प्रयास है, उत्साहित करो; शायद तुम्हारी दीदी कुछ बन सके। शेष फिर।

तुम्हारी दीदी
हेम

धीर भैया,

गत पत्र में मैंने जो कुछ लिखा था, शायद तुम उस पर क़तई भी विश्वास नहीं कर पाए, क्यों ? खैर... ..तुम्हारी जैसी इच्छा !

मैं अपनी असुविधाएँ तुम्हें क्या बताऊँ, यदि एक एक बात लिखने लगूँ तो शायद कोई भी बात पूर्ण न हो।

तुमने बताया था कि जीवन संघर्षमय है ! उसी को ले कर क्या मैं कुछ भी उन्नति न करूँ ? जहाँ देखती हूँ, कुछ ऐसा ही दिखाई देता है, घर में मेरी बात किसी को भी अच्छी नहीं लगती, इसके लिए किसे दोष दूँ ? मैं रोती हूँ, किसी को चिन्ता नहीं, मैं यह नहीं कहती कि सब मुझे प्रेम करें, पर भैया, केवल इतना कहती हूँ कि मुझ से जो कुछ भी हो चुका है, उसे भूल कर घर में मेरे व्यक्तित्व को कुछ तो समझें।

पर ऐसा कौन करे ? आज की महँगाई ने सब को स्वार्थी बना दिया है, भगवान् की कृपा से घर में शान्ति थी, किन्तु अब जानते हो क्या हो रहा है...रघुवीर भाई उदास रहते हैं, कभी तंग आकर कह देते हैं कि मैंने सब का सारी उम्र के लिए ठेका नहीं लिया। ये शब्द कितने कटु हैं, पर वे भी क्या करें ! कभी कहते हैं घर के प्रत्येक प्राणी को कार्य करना चाहिए। तुम्हीं बताओ, धीर ! यह सब कैसे हो सकता है ? परसों की ही बात लो—मुन्ना जब से हुआ है, बीमार ही रहता है, डॉ॰ हाण्डा को दिखाया था, चालीस रुपये लग गए। इधर माता जी भी बीमार हैं, घर का ख़र्चा है; फिर मेरी शादी—कहाँ से आए इतना रुपया ? इसी चिन्ता से रघुवीर भाई ग्रस्त रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनको हृदय रोग हो गया है—रोज़ उनके लिए भी दवाई चाहिए।

अभी दो बहनें और हैं जिनका भी विवाह होना है। रघुवीर भाई अब एक बच्चे के पिता हैं। उनके बच्चे के लिए भी तो कुछ चाहिए, सब कुछ हमें ही तो नहीं दे देना। अजय भाई से जितना होता है, वह करता है लेकिन मैं क्या करूँ ? इस अवस्था में मेरे जीवन का क्या लक्ष्य होना चाहिए ?

मेरे भविष्य का क्या कार्यक्रम है—यह तुमने पूछा था। भैया, मनुष्य कल्पनाशील है। जो कुछ मैं सोचती हूँ, वह भी तो एक कल्पना ही है। भाई-वाई तो मुझे पढ़ाने से रहे और मैं चाहती हूँ पढ़ना। इसलिए मैं ऐसे मनुष्य से विवाह करूँगी जो मुझे और मेरी कल्पनाओं को समझे, जो नारी को घर की रानी नहीं अपि तु जीवन संग्राम में सहयोगिनी समझे, ऐसा मनुष्य जो खूब पढ़ा लिखा हो, सम्पन्न विचारों का हो; जहाँ जाकर मैं खूब पढ़ूँ और फिर अपने जीवन का कुछ लक्ष्य बनाऊँ। तुम हँसोगे मेरी इस कल्पना पर, है भी हँसने योग्य।

मैं एक परिश्रमी लड़की हूँ, खाली बैठ कर मैं खाना नहीं खा सकती, दिन भर काम करती हूँ। तुम्हें क्या मालूम मैं किसी पर भार बन कर नहीं रह सकती।

अभी मैं आगे पढ़ाई नहीं आरम्भ कर पाई। घर का कार्यक्रम अभी ठीक नहीं है, सारा काम मुझ पर है, ऐसी अवस्था में पढ़ने का समय ही नहीं मिलता और हाँ, कुछ अच्छी कहानी या उपन्यासों की पुस्तकें भेज देना। कॉलेज खुल गया है और तुमने जाना आरम्भ कर दिया है—यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई, पढ़-पढ़ कर क्या

बनेगा, मेरा भाई ! केवल तुम्हें ड्रामानवीस ही नहीं देखना चाहती।

ऐसा प्रतीत होता है कि तुम मुझ से बेहद नाराज़ हो और मेरी कहानी तुम्हें ज़रा भी पसन्द नहीं आई। तो भाई, तुम्हें यदि पसन्द नहीं तो हम लिखना ही छोड़ देते हैं।

कल देखा था उनको, पत्र देने लगे...मैंने नहीं लिया। शायद भविष्य में अब वह ऐसी हरकत भी न करें। सुषमा का जो पत्र तुम्हारे पास है, वह उत्तर के साथ ही भेज देना।

अब तुम बताना कि मेरा क्या ध्येय होना चाहिए ? एक बात और...मैं उस मनुष्य से विवाह के लिए कदापि स्वीकृति न दूँगी जो अभिमानी हो, समझे !

पत्रोत्तर कब मिलेगा ?

—हेम

मेरे प्रिय भाई,

तुमने मेरी किसी बात का भी उत्तर नहीं दिया। क्यों ?

हमारी भाभी स्वभाव की कैसी लगीं ? हमारी भाभी आईं और मैं देख भी न पाई। कैसी विडम्बना है !

पुस्तक अन्त में फटी हुई थी। क्या बताऊँ, सारा आनन्द किरकिरा हो गया। कोई और पुस्तक भेज देना। प्रसाद का 'कंकाल' या डा० रांगेय राघव का 'मुर्दों का टीला' मिल सके तो बड़ा अच्छा हो। मैंने ये उपन्यास पढ़े नहीं, प्रशंसा बहुत सुनी है। तुम्हें यह जान कर प्रसन्नता होगी कि मैंने अंग्रेज़ी पढ़नी शुरू कर दी है। अभी गाँव की 'स्टोरी' पढ़ रही हूँ। तुम भी कुछ सहायता देना।

विवाह के सम्बन्ध में अभी कुछ निश्चय नहीं हुआ। भैया ! वह तो मेरी कल्पना थी और तुम्हें पता ही है कि मैं सारे दिन बैठे-बैठे कुछ न कुछ सोचा करती हूँ। जब कोई ऐसी बात होगी तो मैं अपने अच्छे भाई से अवश्य-अवश्य परामर्श लूँगी।

एक और कहानी लिखनी आरम्भ की है। कैसी होगी वह ? यह कहानी तुम्हारे सुपुर्द होगी।

आजकल के हाल चाल अच्छे ही हैं, वैसे दिल नहीं लगता। परसों रात भर ज्वर रहा था। कल सारा दिन उठ न सकी। इन दिनों बड़े विचित्र स्वप्न देखा करती हूँ।

बड़े मज़े की बात बताऊँ ? कुछ दिन पूर्व मैंने एक स्वप्न देखा था......बड़ा विचित्र ! बड़ा विलक्षण !! सुनोगे ? सुनो !

एक बहुत बड़ा घर है जहाँ सीढ़ियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं ! वहाँ एक विवाह हो रहा है। अनायास न जाने क्या बात हो जाती है कि सारे घर में भगदड़-सी मच जाती है। मैं घबरा जाती हूँ। उस समय तुम आ जाते हो और मुझे अपने साथ ले जाते हो। रघुवीर भाई यह सब छिप कर देखते हैं। तुम भागते भी जाते हो और यह भी कहते जाते हो, "शीघ्रता करो, दीदी! कहीं हमारे पुनीत आचरण पर लोगों को संदेह न हो।" भागते-भागते मेरे पैरों में छाले पड़ जाते हैं। एक कंटीले मैदान में चारों ओर से घिर जाने के कारण दो खाइं हमारे सामने आती हैं। एक में मैं और एक में तुम गिर जाते हो। तब........

इसका निष्कर्ष निकालना तुम ! उस दिन से इसी को सोच रही थी। उसी दिन तुम्हें बताना चाहा पर तुम यहाँ थे जो नहीं।

लोग भी बड़े संदेही होते हैं। सुषमा कमला से कह रही थी—हेम की तो अब धीर से दोस्ती हो गई है। वाह रे संसार ! पर तुम घबराना नहीं। तुम्हारी दीदी लोगों की इन बातों पर तनिक भी ध्यान नहीं देती।

मैंने तुम्हारा 'लक्की नम्बर' देखा था। उसे स्पष्ट करने के लिए उसकी सम्पूर्ण नकल भेज रही हूँ, साथ में हल की विधि भी। शब्दों को केवल मात्र बदल देने ही से अपने आपको भाग्यशाली बनाया जा सकता है।

लक्की नम्बर्स : ए=१, बी=२, सी=३, डी=४, ई=५, एफ=८, जी=३, एच=५, आई=१, जे=१, के=२, एल=३, एम=४, एन=५, ओ=७, पी=८, क्यू=१, आर=२, एस=३, टी=४, यू=६, वी=६, डब्ल्यू=६, एक्स=५, वाई=१, ज़ेड=७।

१, ३, ५, ६, ९ और १० हैं फॉर मनी, ३, ६, ९ हैं इक्वली गुड और १, १० हैं स्प्रीच्यूअल एण्ड मैटीरियल साईड ऑफ करैक्टर। अनलक्की नम्बर्स हैं २, ४, ७ और ८।

इस प्रकार मेरा नाम है हेमवती। इसको हमने इस प्रकार लिखा :

एच	ई	एम	ए	वी	ए	टी	आई
५	५	४	१	६	१	४	१

अब इस संख्या को हमने जोड़ा और संख्या २७ निकली। अब २ और ७ को जोड़ा तो ९ बने। इस प्रकार मेरा लक्की नम्बर है फॉर मनी एण्ड इक्वली गुड।

तुम भी इस प्रकार देख लेना। वैसे मैं यह जानती हूँ कि तुम ऐसी चीज़ों में विश्वास नहीं रखते। शेष पुनः

—हेम दीदी

पुनश्च :

यदि बुरा न मानो तो......तुम मुझ से तीन-चार मास ही छोटे हो फिर भी मुझे 'आप' मत कहा करो। तुम्हारा जन्म-दिवस भी पास ही है।

क्या तुमने अपनी जगह बदल ली है? तुम्हारे लिफ़ाफ़े पर लिखा था, यदि मैं भूल नहीं रही, क्वाटर न० ७ और ब्लॉक न० ३।

मुझे अभी अंग्रेज़ी पढ़ने में कठिनाई होती है। क्या करूँ?

—हेम

मेरे स्नेही भाई धीर,

आज भैया दूज है न? कितनी प्रसन्नता से मैं तुम्हें टीका लगाना चाहती थी पर यह सब छिप कर करना पड़ता है। अस्तु......!

मेरे भैया, संसार संदेही तो होता ही है, साथ में निर्दय भी। मैं तुम से अनिश्चित समय तक के लिए बिदा माँग रही हूँ। अब मिल न सकूँगी। न जाने भैया मेरे, मैं यह सब कर भी सकूँगी या नहीं पर कभी समष्टि हेतु अपना बलिदान करना ही पड़ता है।

मुझे तुम से एक-दो बातें पूछनी थीं पर अब समय ही कहाँ। मेरी सब शंकाओं का समाधान तुम्हारी पुस्तक ने कर दिया है। पुस्तक अत्यन्त अच्छी थी। वह पुस्तक राजेन्द्र ले गया है, दो-तीन दिन में भिजवा दूँगी।

तुमने जो कहानी के विषय में निर्देश किया है, उसका अक्षरशः पालन करूँगी।

एक आवश्यक बात तो मैं भूल ही गई, वे हैं न अतिथि। – तुम्हारे भावी बहनोई साहब क्रिकेट टैस्ट-मैच देखने आ रहे हैं। वें 'रीगल होटल' में ठहरेंगे। उनका नाम है विनोदकुमार जगिया। यदि तुम उनसे मिलना चाहो तो मैच के समय से पूर्व मिल लेना और उनसे कह देना कि वे 'भेंट' की बात किसी से कहें नहीं। वे तुम्हारी बात को मान लेंगे क्योंकि स्वभाव के बड़े अच्छे हैं और इसी से मैं उन्हें पसन्द करती हूँ। हाँ, उन से मेरी कोई भी बात गुप्त नहीं। तुम प्रत्येक विषय पर निस्संकोच बात कर लेना। वे हिन्दी नहीं जानते, उनके दाहिने पैर में कुछ लचक भी है। तुम इस बात को कैसा समझते हो? मैं उनके इन अवगुणों को कुछ भी महत्व नहीं देती क्योंकि वे मेरी बातों को जानते हुए भी कुछ महत्व नहीं देते। उन्हें मेरे बचपन की भूल समझते हैं और ये सब उन्होंने मुझ से कहा था।

सुविधा के लिए उनका एक चित्र भी भेज रही हूँ; अधिक परिचय के लिए मेरा एक पत्र ले जाना। मैंने अजय भाई से अभी कुछ नहीं कहा और न ही उसके मानने की सम्भावना है। अब तो मैं तुमसे विवाह के बाद ही मिला करूँगी। अधिक फिर यदि सुविधा हुई तो। उदास न होना, भैया! बस, मैं यही चाहती हूँ।

"सूरज छड्डियाँ रश्मियाँ, तारयाँ छड्डी लो!
बहन टिक्का लाँवदी, मेरा वीर वड्डा हो!!"

तुम्हारी
हेम दीदी

मेरे भैया!

मुझे तुम से बहुत कुछ कहना था। वह सब कहती पर तुम जानते हो—समय कितना कम होता है हम लोगों के पास, अस्तु!

आज मुझे कुछ नई बातें मालूम हुई हैं तुम्हारे विषय में। मैं तुम से कोई बात गुप्त नहीं रखती किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि मेरे स्नेह को तुम इस प्रकार पद-दलित करो। अब तो जो हो चुका, हो गया; फिर भी मैं तुम से यह पूछती हूँ कि तुमने पराए लोगों को विनोद कुमार का चित्र क्यों दिखाया और उनका पता भी क्यों बताया? यदि नहीं बताया है तो ठीक। लेकिन जब मैं तुम्हारी मार्केटवाली बात को ध्यान में रखती हूँ तो मेरे भैया, सुषमा को चित्र और 'रीगल होटल' का कैसे पता चला? सुषमा सविश्वास कहती है कि यह सब धीर ने बताया है।

मेरे भैया, क्यों तुम सब लोग मुझे पागल बनाना चाहते हो? सत्य, धीर! मैं बहुत घबरा गई हूँ इन बातों से, और मैं नहीं जानती कि इन बातों का मेरे भविष्य पर क्या परिणाम निकलेगा। मैं तुम्हें कष्ट देती हूँ, इसके लिए क्षमा कर देना।

अधिक फिर। मैं इस बात का समाधान चाहती हूँ।

—हेमवती

भैया धीर,

तुम रुष्ट हो क्या मुझ से? जब मैंने तुम्हें कुछ लिखा था, उस समय मैं बहुत ही दुःखी थी। उन दिनों मैं रोती रहती थी। फिर वे लोग भी आए हुए थे; मैं बड़ी उलझन में थी।

उस दिन तुम्हें पथ में देखा। मैं पूछती हूँ मेरे भैया, तुम्हारी आँखें लाल क्यों थीं? निराशा तुम्हारे भोले मुख पर दृष्टिगोचर हो रही थी। मैं तुम्हें ऐसी अवस्था में नहीं देखना चाहती। यदि मुझे पराया नहीं समझते तो अपनी उदासी का कारण बताना।

तुम्हारी परीक्षा निकट है। सारा ध्यान पढ़ाई में ही लगाना। 'भाग्योदय' प्रकाशित हो गया हो तो दे देना। मेरी भी एक कहानी जनवरी में प्रकाशित हो रही है—शीर्षक है 'वह भुलाए न गए'। 'अर्चना' मैंने इलाहाबाद भेज दी है। आज 'सुगम वर्ग पहेली' भी भेज रही हूँ।

मेरे अच्छे भैया, अपना समाचार मुझे देते रहना। मुझे भय है कि तुम्हारे उपदेश न मिलने पर मैं अब भी गिर सकती हूँ, किन्तु मैं गिरना नहीं चाहती। सब से अधिक मैं तुम्हारी बात को मान्यता देती हूँ क्योंकि तुम मेरे भाई भी हो और हमदर्द मित्र भी! आशा है तुम अपनी अभागी दीदी की इतनी बात मान लोगे।

तुम्हारा जन्म-दिवस निकट है। बहनें अपने भाइयों को कितना देती हैं और वह भी छोटे भाई हों, तो फिर कहना ही क्या! तुम मुझसे छोटे हो। यदि मैं तुम्हें जन्म-दिवस पर कुछ उपहार देना चाहूँ तो स्वीकार करोगे न? क्योंकि मैं परिश्रम से बनाऊँ और तुम स्वीकार न करो तो? तुम्हें मना नहीं करना चाहिए। हाँ, यदि कोई तुम से पूछेगा तो क्या कहोगे? क्योंकि वह चीज़ है सबके देखने की।

मैं तो नित्य अपने भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि मेरा भैया इतना अच्छा लेखक बने कि समस्त विश्व में उसके नाम की धूम मच जाए!

तुम नहीं जानते—मैं तुम्हें कितना स्नेह करती हूँ। अधिक फिर।

तुम्हारी अभागी
दीदी

२ दीवान हाल,
दिल्ली

प्रिय भैया धीर!

न तो तुम स्वयं मिले और न ही उत्तर भेजा। कारण मैं क्या समझूँ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम मुझ से अब बोलना कतई पसन्द नहीं करते।

कमला से तुमने कुछ मेरे विषय में कहा है क्या? मेरे भैया, मैं नवाब ही सही, पर क्या नवाब बहनों के भाई नवाब बहनों से बोला नहीं करते? शायद तुम्हारा दृष्टिकोण ऐसा हो कि इधर दीदी व्याकुल रहे और उधर भाई रुष्ट रहे। खैर.....

अब मैं यह पूछना चाहती हूँ कि क्या तुम प्रतिशोध ले रहे हो? यदि मैं अपने भैया से यह पूछना चाहूँ कि अब मुझे क्या करना चाहिए तो क्या इससे मेरे भैया की महानता प्रकट नहीं होती?

मैं स्पष्ट उत्तर चाहती हूँ—मुझ से बोलना है या नहीं? क्या कोई अपनी नादान बहनों से भी रूठा करता है?—यह मैंने तुम से ही सुना है।

मैं तुम्हारे उपकारों से लदी हूँ और जन्म-जन्म तक तुम्हारा उपकार मानूँगी। भगवान तुम्हें इतनी बुद्धि दे कि तुम्हें किसी की भी सहायता की आवश्यकता न रहे।

अच्छा, तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा में हूँ......क्या मेरा......कहना......मानोगे?

आजकल बहुत व्यस्त दिखाई देते हो।

मैंने तुम्हारा समय नष्ट किया—इसके लिए क्षमा कर देना।

अच्छा .. ..

तुम्हारी मुँह बोली दीदी
हेम

—ललित सहगल

शैतान की चालाकी है कि वह क्षुद्र दोषों को बड़ा करके दिखलाता है परन्तु उनसे भी भयंकर दोषों पर धूमिल पर्दा डाल देता है।

(टाइम से)

समझौता

[चार-पाँच साल का लड़का रो रहा है। माँ दो तमाचे और जड़ देती है। लड़का और भी गला खोल कर रोने लगता है। रोने की आवाज़ सुन कर बुढ़िया आती है।]

बुढ़िया : अरे! क्या हुआ बहू? क्यों मारती है बच्चे को। दस बार कहा कि बच्चों पर गुस्सा न उतारो। ये क्या आदत है। ज़रा खट-पट हुई बच्चे को पीट दिया। आपस में दोनों देवरानी जेठानी तुम लड़ो, मरो, कुछ भी करो...बच्चे ने क्या बिगाड़ा है? . आ बेटा... (चुप करती है) चुप...चुप ..आ (लड़का धीरे-धीरे सुबकता रहता है)

मीरा : इसी के लिए दाँत किटकिटाने पड़ते हैं। कलूटे ने मुँह में काजल पोत कर बेशरम बना दिया है न! मेरी ही तकदीर में दाग़ है तो क्या करेगा। सौ बार कहा किसी की बराबरी न करो, लेकिन यह मानता है?

बुढ़िया : कैसी बातें करती है मीरा! ज़रा बात करने का शऊर तो सीखो। धीरे बोलने की तो आदत ही नहीं! लीला सुनेगी तो फिर चिक-चिक मच जाएगी।

मीरा : मच जाने दीजिए न! कभी तो निपटारा हो। यहाँ किसको रोज-रोज की झंझट अच्छी लगती है। हम लोग अपना मुँह काला कर किसी दिन घर से निकल पड़ेंगे तब किसी की छाती ठण्डी होगी!

बुढ़िया : इतनी भुनभुनाती क्यों है! कुछ कहेगी भी......

मीरा : हम लोग बेशर्म हैं। टुकड़ेखोर हैं...... आता क्या है हम लोगों को! लीला चाहे जो कहती जाए हम को दो बार डकार लेने के लिए मिल जाए काफ़ी है। दिन कट ही जाता है।

बुढ़िया : अब किसी ने कुछ कहा है! अपने आप ही जो मन में आया कहती जा रही है......

मीरा : मैं हूँ ही वैसी। सारा दिन लड़ती फिरती हूँ। मुझे सीधे मुँह बात करना थोड़े ही आता है?

बुढ़िया : (खीझ कर) अरे कुछ बोलेगी भी .....

मीरा : बोलूँ क्या! कोई आज की बात तो नहीं, रोज़ का रोना है। अपनी खोट को किसके आगे रोऊँ! क्या जानती नहीं इस घर में क्या चल रहा है। अब अगर .....बँटवारा हो जाए तो क्या......

बुढ़िया : (बुरा मान कर) खबरदार मीरा। ऐसी बात दुबारा मत निकालना मुँह से। मेरे हाथ-पाँव काट कर बँटवारा करना चाहती है।

मीरा : एक जगह निभनेवालों के लक्षण ऐसे होते हैं। यहाँ आप दौड़-दौड़ कर मेल कराती हैं, उधर लीला दिन-रात काटने दौड़ती है। उसका बेटा लाड़ला हुआ तो दो कप दूध पियेगा और मेरे बेटे ने क्या किया जो चुल्लू भर दूध देकर टला दिया। मचलने पर घुड़क दिया। हम लोग भिखमंगे हैं जो खैरात बाँटी जाती है? कोई घुड़कता है...कोई धौंस दिखाता है!

बुढ़िया : (बात समझ कर) अच्छा, तो आज फिर आपस में टकरा गईं? अब मेरी सौगन्ध चुप रह जा। कहीं सोहन आ गया तो और हंगामा मच जाएगा।

मीरा : उन से कब तक छिपा रहेगा। आखिर सहने की भी हद होती है। जा कर अपनी लाड़ली बहू को समझाइए।

बुढ़िया : लेकिन तू तो समझती है मीरा। लीला ज़रा ज़बान की हलकी है। बात तौल कर बोलती नहीं। पाँचों उँगलियाँ क्या बराबर होती हैं। एक घर में रहनेवाले नरम गरम होते ही हैं। कभी दब जाना पड़ता है।

मीरा : जब बड़ी हो कर नहीं दबती तो मुझे क्या पड़ी है। एक बार हुआ, दो बार हुआ, दस बार हुआ। सहने की भी हद होती है। कोई तो सीधे मुँह बात न करे और मैं पाँवों पर झुकती फिरूँ?

बुढ़िया : झुकने से क्या गर्दन टूट जाएगी? जा... जा, कटघरे का दरवाजा खुला है कहीं गाएँ बकरी घुस जाएँ तो फूलों की क्यारियाँ खराब कर देंगी। सबेरे-सबेरे झगड़ा लिए बैठी है। (बच्चे से) आ बेटा, चल तुझे बड़ी माँ से बहुत-सी मिठाइयाँ दिला दूँगी। चुपचाप खा लेना हाँ,......दीनू को नहीं दिखाना...नहीं तो दीनू तेरी सब मिठाई छीन कर भाग जाएगा! और तू रोता रहेगा!

मीरा : (ताने से) मेरे बच्चे को लाड़-प्यार भी चोरी-चोरी और उधर भंडार खुला है। चोरी के लड्डू से

किसी का पेट नहीं भरता। अब बहुत हो गया माँ जी! अपनी अपनी तक़दीर लेकर सभी आते हैं। आप जायदाद के टुकड़े नहीं देखना चाहतीं तो हम मजदूरी करके जी सकते हैं। लेकिन अब इस घर का घी-दूध भी ज़हर है हमारे लिए!

[दृश्य परिवर्तन]

सोहन: अरे? तुम अब तक जाग रही हो! कितनी बार कहा, मेरी बाट न देखा करो (ठहर कर) मुन्ना सो गया क्या?

मीरा: (ख़ामोश)

सोहन: तुमने खाना खा लिया!...क्या बनाया है? कस कर भूख लगी है भई! (विस्मय से) अरे! (कुढ़ कर) तुम्हारे मुँह में दही क्यों जम गया!...बात क्या है! मुँह लटका लिया, जो पूछो चुप, जो पूछो चुप...अरे, कुछ बोलोगी भी! गूंगी तो नहीं हो गई!

मीरा: (करुणा एवं व्यंग) गूंगी हो जाती तो काहे का रोना था। भगवान ने मुँह दिया है तो दिन भर बक-बक करती रहती हूँ, घर में कलह मचाती हूँ...भाई-भाई में फूट कराती हूँ।

सोहन: (जैसे सब कुछ जान कर) हूँ...तो ये बात है। तभी आज सबेरे चुपचाप खाना मिला। सब लोग थे इसलिए कुछ पूछा नहीं। अच्छा बताओ, किसी ने कुछ कहा था!

मीरा: यहाँ दिन रात कौन क्या-क्या कहता है, मैं क्या सुनती रहती हूँ।

सोहन: माँ ने जरूर कुछ कहा होगा!

मीरा: माँ जी बेचारी क्या कहेंगी! (ताने से) आशीर्वाद दे रही थीं।

सोहन: तो सीधे मुँह नहीं बताना है क्या? (प्रेम से) मालूम होता है पिटना चाहती हो।

मीरा: हाँ, इस घर में एक यही सुख बाकी रह गया था। अब तक सुख पाते पाते ऊब गई हूँ। इतनी-सी कसर क्यों बाकी रह जाए।

सोहन: भई देखो,...नाहक गुस्सा न दिलाओ। मैं कहता हूँ, तुम सब बता क्यों नहीं देती! मैं तो तुम्हारे लिए सौगन्ध खाये बैठा हूँ। जहाँ तुम्हें अड़चन हो वहाँ मैं भी नहीं रह सकता।

मीरा: तब समझ लीजिए मैं भी यहाँ नहीं रहना चाहती। रात-दिन दाँत नहीं किटकिटाना चाहती।

सोहन: मैं समझता था, कि अलग हो जाने से तुमको दिक्कत होगी, इसलिए अब तक बराबर ख़ामोश रहा। नहीं, कब का बँटवारे पर तुल जाता। आजकल भैया भी सीधे मुँह बात नहीं करते। भाभी तो नाक-भौंह चढ़ा कर ही बोलती है।

मीरा: और माँ जी क्या कम फूल बरसाती हैं? उनके उलाहने न उगलते बनते हैं न निगलते।

सोहन: तो सचमुच तुम बँटवारा चाहती हो?

मीरा: मैं काहे को चाहती हूँ? इन लोगों का रुख देखते हो न! चाहते हैं, हमारी बला अपने आप टले तो ठीक है। नहीं तो बात-बात पर परेशान करेंगे। बस, आज नहीं कल तंग आ कर निकल भागेंगे।

सोहन: लेकिन माँ तो......

मीरा: (उकसाने के लिए) माँ जी के लिए बैठे हो! उनके चबाने के दाँत अलग हैं दिखाने के अलग। (बात बदल कर) चलो खाना खा लो!

सोहन: मुझे तो भूख नहीं मालूम पड़ती मीरा। ...तुम खा लो।

मीरा: वाह। अभी तो कह रहे थे बड़ी भूख लगी है। मेरी सौगन्ध......तुम्हें खाना होगा। भूखे पेट क्या नींद आएगी?

सोहन: सौगन्ध न दिलाओ मीरा......मेरा मन आपे में नहीं है। मुझे कोई न कोई हल निकालना ही होगा। सोचने दो......

(दृश्य परिवर्तन: परिवर्तनसूचक संगीत)

मायाराम: अब नहीं निभ सकती माँ। मैं इ घर में पानी भी नहीं पी सकता!

बुढ़िया: अरे बेटा, कुछ साफ़-साफ़ भी बताएगा या बेकार ही मन के मन में उबलते रहेगा?

मायाराम: आखिर तुम से कुछ छुपा तो है नहीं। लेकिन तुम हो कि जब तक बात टलती जाए टालने की आदत डाल रखी है।

बुढ़िया: गर्मागर्मी किसी बात का क्या नतीजा निकलेगा बेटा? नाहक फूट डालोगे। जाओ मायाराम, थोड़ा बाहर टहल आओ बेटा। गुस्सा उतर जाएगा...मैं सोहन को समझा दूँगी!

मायाराम: ये बातें अब बहुत हो गईं। मैं आ दो टूक फ़ैसला चाहता हूँ। छोटा भाई हुआ तो निठल्ला बना बैठा रहे?

बुढ़िया : (समझाती है) छोटे की गलती पर लाठी नहीं मारते बेटा। बड़े को धीरज रखना चाहिए।

सोहन : (क्रोध में फुफकारता हुआ आता है) हाँ हाँ...मैं तो निठल्ला हूँ माँ। लेकिन अपने कमाईपूत की करतूत देखती जाओ न!

बुढ़िया : (चिढ़ कर) मैं बुझाने की कोशिश करती हूँ तुम सुलगा रहे हो। आखिर तुम लोग चाहते क्या हो?

सोहन : क्या चाहते हैं? मैं अपना हिस्सा चाहता हूँ। जहाँ दाल से रोटी का मेल नहीं मिलता वहाँ कितने दिन निभ सकती है? बँटवारा हो कर रहेगा!

बुढ़िया : वाह रे मेरे सपूतो! वाह! एक हँसिया लेकर पहले मेरा बँटवारा कर लो! जब देखो तब किच-किच, जब देखो तब किच-किच! सिर पक गया है। लड़ो बेटा!...यही दिन देखने के लिए भगवान ने अब तक जिलाया है। जिस कटोरे से दूध पिया था उसी से एक दूसरे का लहू पियो...लहू!

सोहन : तुम्हारी ऐसी ऐसी बहुत सुन चुका माँ। अब तक बहुत ख्याल किया! फूँक-फूँक कर क़दम रखा लेकिन अब बेखबर नहीं हूँ। कोई दिन दहाड़े मेरे बच्चे की दूध रोटी का सहारा हड़प ले और मैं मुँह देखता रहूँ। महज इसलिए कि वह भाई बनने का ढिंढोरा पिटवाता है।

मायाराम : बड़ा आया है बच्चे की दुहाई देनेवाला। कितनी फ़िक्र रखता है बच्चे की। अभी कमाने का ढंग नहीं आया और...

सोहन : काम तो यहाँ सब करते हैं और दो बार खिला कर हमको पालते हैं। अमराई का ठेका गया रुपये नदारद। संतरे का बगीचा उठा, रुपयों का पता नहीं। और ये मुझे खिलाने का दम भरता है।

मायाराम : (व्यंग से) रुपये मैंने धरती में दबा रखे हैं और इतने बड़े घर का खर्च तुम चला लेते हो! निठल्ला कहीं का। गाँव भर मटरगश्ती करता फिरता है, मुँह लड़ाता है। कभी रस पानी उड़ रहा...कभी शतरंज बिछी है। दाँव पर रुपया चढ़ रहा है। ये तो रंग ढंग हैं, मुझ से काम धाम का हिसाब पूछता है!

सोहन : मैं सब समझता हूँ। ये सारी जायदाद हड़पने की चालें हैं। लेकिन पाई पाई बँटवा लूँगा।

मायाराम : तुमने अपने पसीने से ईंट पर ईंट जोड़ रखी है न जो पाई-पाई बँटवाने की धमकी दे रहे हो। पूछता क्यों नहीं, माँ तो खड़ी है। जब पिता जी की मृत्यु हुई जायदाद पर कितना देना बाकी था! और आज दस साल सारा क़र्ज किसने चुकाया!

सोहन : तुमने चुकाया और कौन चुकाएगा! मैं तो सिर्फ टुकुर-टुकुर देखता रहा। सबेरे शाम दूध पीता था और दिन-रात शतरंज खेलता था।

बुढ़िया : अरे अड़ियल। सीधे मुँह क्यों नहीं बोलता रे। छोटी बहू बड़ी भलमनसिन आई है न। हमेशा तेजाब छिड़कती रहती है। आज भाई-भाई को लड़ाया, कल माँ-बेटों को लड़ाएगी। एक-एक बहू ऐसी होती है कि सुख की रोटी चैन से नहीं खाती। अरे अब भी आँखें खोलो बेटा। मायाराम ने तेरे लिए क्या-क्या नहीं किया! उसने होश संभाल कर लोगों का क़र्ज चुकाया और अब तक जायदाद दुगनी कर दिखाई। उसकी सहायता करना तो रहा...पाँव खींचता है।

सोहन : जहर की बेल हूँ तो निकाल कर फेंक दो चैन की बंसी बजेगी। आज मालूम हुआ माँ तुम भी उसी रंग में रंगी हो। देनेवाला चट से देता है, न देनेवाले के सौ बहाने। सदा हीले-हवाले। बँटवारे की बात आई तो झट कह दिया मायाराम ने कमा कर जोड़ा है। पिता जी पर हजारों का क़र्ज था, बरसों की लगान पड़ी थी अब तुम लोगों ने दिन-रात खून-पसीने से सींचा और मूँगा-मोती उगाया तभी तो घर के आगे-पीछे हाथी झूल रहे हैं। मेरी शादी में भैया ने मुठ्ठी भर-भर सोना-चाँदी दान किया था।

मायाराम : सुना माँ कैसा उलाहना दे रहा है?

बुढ़िया : शर्म नहीं आई बात करते। तेरी शादी ने दो साल की आमदनी पर पानी फेर दिया था। मायाराम ने अकेले बोझ उठाया और उफ नहीं किया। तुम बाल-बच्चेवाले हुए तब भी काम करते काँटे चुभते हैं। खुले हाथों रुपया उड़ाने से रोका तो मायाराम बुरा हो गया!

सोहन : (व्यंग) बेचारा बड़ा भाई है! रोज दूध से नहलाता है। मुझे क्यों बुरा लगेगा!

बुढ़िया : भूल गया बड़े भाई की नेकी! तेरी आँखों पर पट्टी बँधी है न! जरा ये पट्टी हटा कर देख पट्टी!

सोहन : न मेरी आँखों पर पट्टी बँधी है, न मैं

अन्धा हूँ। मैं साफ देख रहा हूँ, तुम लोग मेरी रुकावट बन रहे हो। मेरी हिस्से की जायदाद हड़प रहे हो। मेरा हक, मेरा लहू पी रहे हो!

बुढ़िया : (वेदना से) बेरुख़ ! तेरे मुँह से यही सुनना बाकी रह गया था। भगवान! क्या यही दिन दिखाने के लिए बचाया था। (माथा पीट कर) हाय रे तक़दीर! जिसको दूध पिलाया उसका रक्त पीने के लिए जिन्दा हूँ। इस से मौत क्या बुरी थी!!

मायाराम : चलो माँ! इसकी क्या सुनती हो। दौलत का नशा ही ऐसा होता है। इसकी आँखें बँटवारे का सपना देख रही हैं। हल बैलों का बँटवारा, जमीन जायदाद का बँटवारा और बीच में न टूटनेवाली दीवार...न हिलनेवाली मेंड़ .....

बुढ़िया : नहीं। मायाराम......मैं नहीं सुनना चाहती... ..

मायाराम : मेरा छोटा भाई यही सपना देख रहा है लेकिन मैं उसे सच नहीं बनने दूँगा। मुझे चाहे जितनी कीमत देनी पड़े।...कल पौ फटने से पहले मैं ही बाल-बच्चों को ले कर इस घर से चला जाऊँगा। मुझे बँटवारा नहीं चाहिए...जायदाद भी नहीं चाहिए। जिसके लिए कभी अपना पराया नहीं समझा उसके साथ जायदाद बाटूँगा! मुझे कुछ नहीं चाहिए...एक पाई भी नहीं... (वाक्य पूरा होने के पहले ही फेड आउट)

बुढ़िया : बेटा! माया!...मायाराम!...सुनो मायाराम! (वेदना से) हे भगवान! (खीझ कर) ले लोभी! अब सारी दौलत खुरच-खुरच कर जुए की आग में झोंक दे! अब तेरी बहू का कलेजा ठण्डा पड़ेगा...जा...उसे जा कर बता दे......

[संगीत स्वर लहरी]

मीरा : कुछ हुआ भी या हाथ मलते आ गए!

सोहन : बहुत हो गया मीरा...बहुत हो गया। भगवान के लिए अब थोड़ी देर चुपचाप सोच लेने दो!

मीरा : अब और क्या सोचना है। एक बार बँटवारा हो जाए फिर हम अलग वो अलग!

सोहन : दुख तो इसी का है कि बँटवारा नहीं हुआ।

मीरा : क्या कहते हो। बँटवारा नहीं हुआ। इतनी बड़ी जायदाद में से हमें कुछ भी नहीं मिलेगा। ऐसा अन्धेर तो कहीं नहीं देखा। सब का सब बड़ा भाई छीन ले और छोटा भाई तमाशा देखता रहे। तुम जरू कोर्ट में लड़ना!

सोहन : अब कहीं नहीं जाना पड़ेगा। बड़े भा ने सब मेरे नाम छोड़ दिया है। कल पौ फटने से पहले वे खाली हाथ निकल जाएँगे। कुछ समझ में नहीं आता... क्या किया जाय!

मीरा : तब तो समझ लो बिना दवा के खाँसी मिट गई।...मगर नहीं, ये सब धोखा देने के ढंग हैं। मैं कहे देती हूँ, तुम चकमे में न आना। मैं इन लोगों को खूब जानती हूँ। तुम क्या जानो...तुम्हारे पीछे यहाँ कैसी-कैसी चालें सोची जाती हैं! अगर बड़े भैया जाना भी चाहें तो क्या तुम्हारी भाभी चुप रहेंगी। वह जरू तूफान खड़ा करेंगी!

सोहन : तू नहीं समझेगी मीरा...तुझे तो बँटवारा चाहिए।

मीरा : फिर जैसा तुम तय करो...मैं क्या बताऊँ?

सोहन : अगर भैया को जाने से रोक दूँ तो कैसा रहे!

मीरा : (ताने से) वाह! बड़ा अच्छा रहेगा। रोज लीला मेरी छाती पर मूँग दलेगी और माता जी फू बरसाएँगी।

सोहन : न जाने मीरा! तेरा मन कैसा कठो है। तू भैया को नहीं जानती वे जो कहते हैं हो क रहता है। उन्हें मनाने में ही खैर है......देख, मैं मान ले.....

मीरा : मैं मनाने न मनानेवाली कौन होती हूँ जो जी चाहे करिए......।

सोहन : (बिगड़ कर) तो तू भाई-भाई को लड़ाने पर तुल गई है। बँटवारे का कौर चबाये बिना तेरी भूख नहीं मिटेगी। देख लिया, तेरे पेट में भी ज़हर की गाँ है। लेकिन अब तेरी नहीं चलेगी। तेरे भुलावे में प कर बड़े भैया के उपकार भूल गया था। मैं जुआ खेलते पकड़ा गया और थानेदार को रिश्वत दे कर मुझे कौन छुड़ा लाया? मेरी बीमारी में किसने सेवा की......! तू क्या जानेगी मीरा......तू क्या जानेगी! भैया इस घ से हमेशा के लिए निकल न जाएँ। वे बढ़ा हुआ क पीछे नहीं रखेंगे... . भैया..... भैया...... भैया.. ... (ज़ोर से पुकारी हुई आवाज़ का दूर जाना और नि

आना) भया......भैया... !

मायाराम : (चौंक कर) कौन है ?......क्या है !

सोहन : भया !...

मायाराम : सोहन ! क्या है सोहन !

सोहन : भैया......मुझे माफ़ कर दो भैया ! माफ़ी माँगता हूँ । मेरी मान जाओ भैया !

मायाराम : अरे, तो हुआ क्या !

सोहन : तुम्हें घर से नहीं जाने दूँगा...... नहीं जाने दूँगा... ...भैया......

बुढ़िया : (आ कर) कौन है ?......सोहन ! क्या हुआ ?

सोहन : मुझे अपने गुलामी में रख लो लेकिन तुम्हें जाने न दूँगा ! अब तुमको नहीं छोड़ सकता । मुझे माफ़......

मायाराम : (प्रसन्नता से) चल उठ ! मैं जानता था, तेरा दिल भी पसीजेगा । आखिर मेरा ही तो भाई है । आ, अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा ।

बुढ़िया : (आनन्दातिरेक से) मेरे बेटे । (पुकारती है) लीला ! मीरा ! आओ...आओ...देखो मेरे बेटों को......। बहुओं ने लड़ाया और भाइयों ने समझौता कर लिया । जुग-जुग जिओ बेटा ! जुग-जुग जिओ । आखिर मेरा ही तो लहू है ! !.....

मीरा : (आ कर) क्या हुआ माँ जी ?

बुढ़िया : कुछ नहीं बहू। चाँद पर बदली आई थी, अब हट गई है ।

इतवारी,
नागपुर २

—अनिलकुमार

राजस्थानी कहावतें

रोयां राबड़ी कुण घाले ?
रोने से राबड़ी कौन देता है ?

राइ का भाव तो रात्यां ई गया
राइ का भाव रात को ही बीत गया अर्थात् वह समय चला गया ।

खेड़ जणां रो खेत न चढ़ जणां रो घोड़ो
खेती करे उनका खेत और सवारी करे उनके घोड़े ।

फोकट खाणों चोर कहाणो ।
मुफ़्त का खाना चोर कहलाना ।

फूट्या करम फ़क़ीर का भरी चिलम गुड़ जाय ।
फ़क़ीर के तक़दीर न होने के कारण उसकी भरी हुई चिलम गिर जाती है ।

तहसील चिड़ावा,
राजस्थान

—एजाजुल नबी खां 'विशारद'

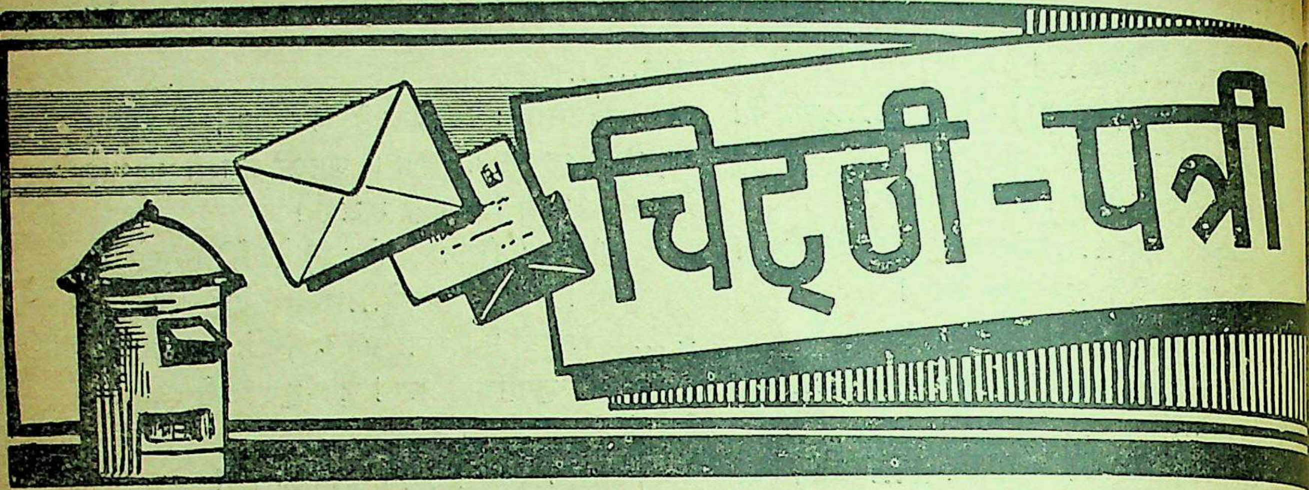

चिट्ठी-पत्री

['चिट्ठी-पत्री' के स्तम्भ को हम अधिक लोकप्रिय बनाना चाहते हैं। साहित्य की गतिविधि और अन्य समस्याओं पर हम 'अजन्ता' के पाठकों के विचार को जानना चाहते हैं। इस स्तम्भ में वे अपने विचार प्रकाशित करने के लिए भेज सकते हैं। इस स्तम्भ द्वारा लेखकों और पाठकों के बीच में निकट सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस स्तम्भ में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ पत्रों पर विशेष पारिश्रमिक की योजना की गई है। पत्र संक्षिप्त और निर्वैयक्तिक होने चाहिएं पत्र अधिक से अधिक 'अजन्ता' के दो कालम होने चाहिएँ—सं०]

(१)

अजन्ता के सम्बन्ध मे

'अजन्ता' एक सुन्दर सामयिक (पत्रिका) है। मैं इसकी सफलता चाहता हूँ।

८-१-१९५४ —**कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी**
(राज्यपाल, उत्तर प्रदेश)

(२)

प्रिय महोदय,

'अजन्ता' के जनवरी अंक के लिए बधाई। बहुत सुन्दर अंक निकला है। भारतीय लोकसाहित्य से ले कर चीन के संस्मरण और फ्रेंच साहित्य के परिचय तक को पाठक तक पहुँचाने का आपका प्रयत्न सचमुच श्लाघनीय है। इस अंक की कविताओं में श्रीकान्त वर्मा की तीनों कविताएँ (तीनों चांद) अत्यधिक प्रशंसनीय हैं। 'Poetry without imagery' की कल्पना करनेवाले इस युग में इतना सुन्दर दृश्य विधान अभिनन्दनीय है। विराट दृश्य सूचित करने वाली उपमाएँ, पैस्टोरल पोएट्री की स्वाभाविकता चित्रित करने वाले कंजडों आदि के रूपक, प्राचीन कथाओं एवं घटनाओं (राहु, रावण, ऐरावत और लक्ष्मी आदि) का नवीन सन्दर्भों में समावेश सब मिला कर सचमुच अद्भुत है। नरेश मेहता के 'समय देवता' की-सी उपमाएँ और समस्त पद परन्तु अधिक हृदयग्राही दृश्य चित्रण करनेवाले इस कवि को मेरी ओर से बधाई भेज दें।

डी० ए० वी० कालेज,
कानपुर —**देवीशंकर अवस्थी**

(३)

···'अजन्ता' की जनवरी की प्रति पढ़ने में आई। इतने अच्छे स्तर की पत्रिकाएँ जिनमें लेख, कविताएँ, कहानी, आलोचना आदि सभी अंगों का समुचित समावेश हो, हिन्दी में बहुत कम हैं। आप वास्तव में बधाई के पात्र हैं।

यह तो अच्छा ही है कि आप सारगर्भित और गम्भीर लेखों को ही अधिक स्थान देते हैं। यदि आप एक ऐसा स्तम्भ और खोलें जिसमें केवल उन्हीं नवीन लेखकों व कवियों की कृतियों को स्थान मिले जिनकी रचनाएँ पहले कभी कहीं प्रकाशित न हुई हों, तो हिन्दी साहित्य को आपकी एक अनूठी देन होगी।

इस अंक का भारतीय लोकसाहित्य की परम्परा वाला लेख यद्यपि विचारपूर्ण है, पर कुछ लम्बा हो गया-सा लगता है। 'नीर-क्षीर' में पुस्तकों की समालोचनाएँ निष्पक्ष-सी प्रतीत होती हैं।

आपकी पत्रिका निरन्तर प्रगति के पथ पर चलती रहे, यही आकांक्षा है।

राजकुमार कालेज,
रायपुर —**रामनारायण मेहरोत्रा**

(४)

…श्री लक्ष्मीरंजनम् का लेख "तेलुगु नाटक साहित्य" 'अजन्ता' नवम्बर १९५३ में पढ़ा। धन्यवाद। हम उत्तर प्रदेश में हिन्दी पाठी अन्य भाषाओं के लेखों में अधिक आनन्द पा रहे हैं। मुझे यह लेख बहुत भाया। बधाई है। क्या हिन्दी में तेलुगु नाटक साहित्य पर कोई पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसमें तेलुगु नाटक साहित्य का प्रामाणिक इतिहास हो? यदि है तो कृपया उसका पता लिखने का कष्ट कीजिएगा।

— गोपीनाथ तिवारी

सेंट एंड्रूज कालेज,
गोरखपुर (उ० प्रदेश)
(अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग)

(५)

…'अजन्ता' का जनवरी अंक प्राप्त हुआ। आपके सुसम्पादकत्व में पत्रिका दिनों दिन उन्नति कर रही है। आप लोकसाहित्य को प्रकाश में ला रहे हैं।……

पो० बॉ० १०३,
राँची

—अखिल विनय

(६)

नव वर्ष की शुभ कामनाओं के साथ 'अजन्ता' के लिए कृतज्ञ हूँ। 'अजन्ता' दिन पर दिन प्रगति के मार्ग पर है। कल श्री सोहनलाल द्विवेदी ने 'अजन्ता' की बहुत तारीफ़ की—मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।……

चाँदा

—कमला 'दीक्षित'

(७)

इट्टगी का मन्दिर

…जनवरी १९५४ की 'अजन्ता' में इट्टगी के मंदिर के चित्र को प्रकाशित किया गया है। इट्टगी के स्थान में भूल से 'इटागी' छप गया है। इट्टगी एक छोटा सा ग्राम है। यह हैदराबाद राज्य में रायचूर जिले में हैं। सदर्न रेलवे के कोपबल और गदग के बीच में वेन्नीकोप्पा एक स्टेशन है। इस स्टेशन से तीन मील की दूरी पर दक्षिण में यह मन्दिर है। इसी ग्राम में यह महादेव का मन्दिर है। चालुक्य राजाओं ने जो मन्दिर बनवाये थे उनमें यह सुन्दरतम मन्दिर है। यह मन्दिर इतना सुन्दर है कि इसे "देवालय चक्रवर्ती" के नाम से कहा जाता है। इस मन्दिर को १११२ ई० में दण्डनायक ने बनवाया था जो कि कल्याणी के पश्चिमीय चालुक्य राजा त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य षष्ठ का सेनापति था। मन्दिर स्थापत्य कला और सजावट की दृष्टि से परम अद्भुत और प्रशंसनीय है। मन्दिर का ऊपर का भाग गायब हो गया है।

हैदराबाद

— कश्चित्

(८)

यथार्थवाद

… नवम्बर मास की 'अजन्ता' में श्री दीननाथ सिद्धान्तालंकार का लेख 'जीवन के प्रति दृष्टिकोण' प्रकाशित हुआ है। लेख की मान्यताएँ स्पष्ट और प्रभावशाली हैं। लेकिन लेखक ने यथार्थवाद (रिअलिस्टिक व्यू आफ़ लाईफ़) का जो परिचय दिया है वह बहुत-से यथार्थवादियों को ग्राह्य नहीं होगा। वे कहते हैं:

"इसका (यानी यथार्थवाद) का अभिप्राय यह है कि, संसार में अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य, भलाई-बुराई कुछ नहीं है। यह सद्यः प्रेरित दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। जीवन में जो चीज़ जिस प्रकार सामने आये, उसे वैसा ही लेना चाहिए। किसी घटना के भूत-भविष्य के कारण-कार्य पर विचार करना व्यर्थ है। वर्तमान ही सब-कुछ है। हाल ही के कुछ कम्युनिस्ट लेखकों ने इस यथार्थवाद के साथ दो उद्देश्य और जोड़ दिये हैं—(१) "सिम्पल लिविंग एण्ड हाई थिंकिंग" के बदले मनुष्य "हाई लिविंग एण्ड नो थिंकिंग"—अर्थात् जीवन व्यय खूब बढ़ाओ और कोई चिन्ता मत करो (२) पलायनवाद (इस्केपिज़्म) "जीवन में कोई संकट दुविधा आये तो उस से बचने का प्रयत्न करो।"

सिद्धान्तालंकार जी ने अपनी इस व्याख्या के उत्तरार्ध में एक मिथ्या प्रचार किया है और पूर्वार्ध में 'व्यक्तिगत भौतिकवाद" को 'यथार्थवाद" मान लिया है। वास्तव में दार्शनिक यथार्थवाद जिसका प्रतिपादन अपनी रचनाओं में सब से सबल रूप से एरिस्टोटिल ने यूरोप में और कणाद तथा गौतम ने अपने दर्शन सूत्रों में भारत में किया, (३) व्यक्तिवादी भौतिकवाद (यूरोप में एपीक्यूरियन सिद्धान्त और भारत में चार्वाक सिद्धान्त) का खण्डन करता था। इसके साथ-साथ वह उस आदर्शवाद का भी सबल आलोचक था जो बहिर को अन्तर की छाया और अपने में माया मात्र मानता था। यथार्थवाद का पहला दार्शनिक सिद्धान्त यह है कि इंद्रियों के संसर्ग से बुद्धि द्वारा

जाना गया बहिर जगत् कोई छाया, माया या कल्पना नहीं है, वरन् एक ऐसा यथार्थ है जो मानव की बौद्धिक समझ में एक स्वतन्त्र सत्ता रखता है। वह किसी विराट चेतना की इच्छा अथवा कल्पना से स्वतन्त्र रह कर स्वयं अपने नियमों द्वारा परिचालित होता है। वस्तुपूर्ण बहिर जगत् मानव-बुद्धि, मानव-चेतना से स्वतन्त्र एक अस्तित्व है जिसको जाना जा सकता है, जिनके साथ में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है—यह यथार्थवाद की पहली मान्यता है। उसकी दूसरी मान्यता यह है कि इस यथार्थ को विश्लेषणात्मक युक्ति (एनालिटिक रीज़न) से और भी गहराई से समझा जा सकता है। यह युक्ति सम्पूर्ण विज्ञान की जननी है। इस यथार्थवादी दृष्टिकोण को ले कर ही एरिस्टॉटिल अनेक विज्ञानों को जीवन दे सका था जिनका विकास परवर्ती काल में हुआ। हमारे भारत में भी इसी यथार्थवाद को ले कर वैशेषिक और न्याय के दर्शनकार 'अणुवाद' और 'प्रामाण्यवाद' की गहरी छानबीन कर सके। बिना यथार्थवाद के प्रत्येक विज्ञान एक असफल और असंभव वस्तु है। यथार्थवाद की दूसरी मान्यता यह है कि विश्व एक नहीं अनेक तत्वों से निर्मित हुआ है। आदर्शवाद अनैतिक इसलिए है कि वह संसारगत पाप, अन्याय, अत्याचार, दुर्बलता को वही आधार सौंपता है जो पुण्य, न्याय, दया और शक्ति का आधार है और यह मानता है कि पाप, अन्याय आदि भ्रम और अज्ञान मात्र हैं।

सिद्धान्तालंकार जी द्वारा प्रतिपादित यथार्थवाद का सिद्धान्त भ्रममूलक है। यथार्थवाद की नैतिकता मानववाद है जो बुराई को अक्षम्य मानती है।

यह भी कहना कि यथार्थवाद "किसी घटना के भूत भविष्य के कारण-कार्य पर विचार करना व्यर्थ मानता है" और भी मिथ्या है। वास्तव में 'कार्य-कारण' का सम्बन्ध यथार्थवाद ने जिस गहरी दृष्टि से हल किया उसका शतांश भी अध्यात्मवादी नहीं कर सका क्योंकि वह कार्य-कारण के सम्बन्ध को भ्रम और 'विवर्त' मात्र को सत्य मानता था। विवर्तवाद के विरोध में 'परिणामवाद' अथवा 'कार्यकारणवाद' यथार्थवाद की अपनी प्रतिष्ठा हैं जिससे सांख्य दर्शन का 'सत्कार्यवाद' और न्याय दर्शन का 'असत्कार्यवाद' विकसित हो सका। यथार्थवाद कार्य और कारण के सम्बन्ध को यथार्थ मानता है। वह शंकर का अद्वैतवाद होगा जो कार्य और कारण के सम्बन्ध को अज्ञान-जनित और भ्रम मानता हो—यथार्थवाद नहीं।

'यथार्थवाद' को इस अग्राह्य रूप में उपस्थित करने के उपरांत सिद्धान्तालंकार जी ने हाल के कुछ कम्यूनिस्ट लेखकों की ओर इशारा किया है जिन्होंने यथार्थवाद में दो दोष और मिला दिए हैं—एक तो जीवन व्यय खूब बढ़ाओ और कोई चिन्ता मत करो' इस मान्यता का प्रतिपादन किया है और दूसरे 'पलायनवाद' को जोड़ दिया है।

हमारा अपना विचार है कि किसी भी कम्यूनिस्ट लेखक की चेतना इतनी भ्रष्ट नहीं होगी कि वह 'हाई लिविंग और नो थिंकिंग' का सिद्धान्त एक ओर प्रतिपादित करे और दूसरी ओर 'पलायनवाद' का दर्शन ले कर भाग निकले। ये दोनों मान्यताएँ एक दूसरे पर निर्भर हैं और उस 'जीवन-दृष्टिकोण' को व्यक्त करती हैं जो मूलतः समाज-द्रोही है।

'कम्यूनिस्ट' के जीवन-दृष्टिकोण, उसके सामाजिक यथार्थवाद को स्पष्ट करने के लिए 'ल्यू-शाओ-ची' ने "हाउ टु बी ए गुड कम्यूनिस्ट" (हम अच्छे कम्यूनिस्ट कैसे बनें) में सच्चे कम्यूनिस्ट की परिभाषा इन शब्दों में दी है : "कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्यों के पास मानवता के महानतम लक्ष्य होते हैं; संघर्ष के उच्चतम उद्देश्यों के साथ साथ उनके पास 'ठोस वास्तविकता के बीच में से सत्य को खोज लेने की व्यवहारिक क्षमता होती है। वे व्यवहारिक कामों को सफलतापूर्वक कर सकते हैं। ये कम्यूनिस्टों की साधारण विशेषताएँ हैं।" पृष्ठ ४७।

'नो थिंकिंग' की बात तो उन आध्यात्मवादियों में उठती है जो 'भाग्यवाद' को सब दर्शनों का सार समझते हैं।

यही बात 'पलायनवाद' के बारे में भी लागू होती है। कम्यूनिस्ट लेखक अगर पलायनवाद का प्रतिपादन अपनी रचनाओं में करते होते तो सामाजिक क्रान्ति के विरोधी शासक उनको अपनी सभी पाठशालाओं के 'कोर्स' में अवश्य ही रखते। इस विषय में एक कम्यूनिस्ट की हैसियत से लिखी गई राहुल जी की 'भागो मत दुनिया (या समाज ?) बदलो' पुस्तक कम्यूनिस्ट विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती है।

रक्ताभ कार्यालय, रकाबगंज,
लखनऊ

—आदित्य मिश्र

नीर-क्षीर

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिएँ।]

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति

लेखक : डॉ. राजेन्द्रप्रसाद
प्रकाशक : आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
पृष्ठ संख्या : १८८
मूल्य : पाँच रुपए ।

बाबू राजेन्द्रप्रसाद की रुचि हिन्दी साहित्य की ओर सदा से रही है । आप अ. भा. हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व भी ग्रहण कर चुके हैं । गत वर्ष नागरी प्रचारिणी सभा ने आपकी 'आत्म-कथा' पर एक सुवर्ण पदक भी भेंट किया था । अतः आप हिन्दी भाषा और साहित्य पर लिखने के अधिकारी हैं । प्रस्तुत पुस्तक में आपके समय-समय पर हिन्दी भाषा पर ही दिए गये भाषणों का संकलन है, हिन्दी साहित्य पर एकाध स्थल पर विहङ्गम दृष्टिमात्र है, विवेचना नहीं है । हिन्दी भाषा पर जो विचार सन् १९२३ में आपने व्यक्त किये थे, उनमें आज भी कोई विशेष महत्व का परिवर्तन नहीं हुआ है । इसलिए विरोधाभास तो देखने में नहीं आता पर पिष्टपेषण अवश्य हो गया है जो स्वाभाविक भी है, क्योंकि हिन्दी भाषा की समस्याएँ आज भी ज्यों की त्यों हैं । हिन्दी और उर्दू की एक समता को स्थापित करने में आपने जिन प्रमाणों को प्रस्तुत किया है वे अकाट्य हैं ! उर्दू को हिन्दी से पृथक कह कर जो राजनीतिक क्षेत्र में बावेला मचा रहे हैं—उर्दू प्रान्त की मांग उठा रहे हैं—उनकी आँख खुल जानी चाहिए । संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन पर भी आपके विचार मननीय हैं । हमारे जातीय जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं जो हमारे संस्कृत वाङ्मय से प्रतिपादित सिद्धान्तों और उनमें अभिव्यक्त आदर्शों और भावनाओं से ओत प्रोत न हो । हिन्दी भाषा के अतिरिक्त शिक्षा और संस्कृति पर भी आपके भाषण रूप में व्यक्त विचारों का संग्रह किया गया है । शिक्षा-पद्धति को भारतीय बनाने और विश्वविद्यालय को पुनर्गठित करने का संकेत आपने किया है। पर केन्द्रीय शासन देश की इस आतुर आवश्यकता पर कहाँ तक सक्रिय ध्यान दे रहा है, यह विदित नहीं हो पाया । भारतीय-संस्कृति के समन्वय के सम्बन्ध में आपका सुझाव है—'प्रत्येक भाषा की साहित्यिक संस्थाएँ उस भाषा की कृतियों को संघ-लिपि अर्थात् देवनागरी में भी छपवाने का आयोजन करें ।' इससे दो बातें सिद्ध होंगी । पहली तो एक राष्ट्र-लिपि के निर्माण तथा प्रचार में सहायता होगी, दूसरी यह कि प्रादेशिक भाषाएँ राष्ट्र-भाषा जाननेवालों के अधिक सन्निकट आ सकेंगी । परिणामतः बहुत से विशिष्ट अर्थ-व्यंजक शब्दों का उसमें आदान हो सकेगा । हिन्दी आज राष्ट्र-भाषा है, अतः उसे हिन्दी भाषियों को ही क्यों, अहिन्दी भाषियों को भी समुन्नत करना चाहिए । राजेन्द्र बाबू के चिन्तन पुनरुक्तियाँ भले ही हों पर उनकी स्पष्टता असंदिग्ध है । वे हिन्दी को अंग्रेज़ी का स्थानमात्र दिलाना चाहते हैं, किसी प्रादेशिक भाषा का दर्जा नहीं छीनना चाहते, क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति से राष्ट्र-भाषा और भी पुष्ट होगी ।

पुस्तक सामयिक है, संग्राह्य है ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य परिचायिका

लेखक : श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़
प्रकाशक : हिन्दी भवन, जालंधर और प्रयाग
पृष्ठ संख्या : १४७
मूल्य : दो रुपए ।

हिन्दी का व्यापक प्रचार होने से हिन्दी साहित्य के

परिचयात्मक इतिहासों का प्रकाशन भी व्यापक हो गया है। प्रायः प्रत्येक प्रकाशक 'गुटका इतिहास' लिखा रहा है जो हाई स्कूल या इंटर में खप जाए क्योंकि इन श्रेणियों में छात्रों की संख्या अधिक होती है। अतः ये "गुटके" पूर्व प्रकाशित दो तीन इतिहासों का निचोड़ मात्र होते हैं। दो चार नए नामों के भी दर्शन हो जाते हैं। प्रस्तुत इतिहास लगभग इसी कोटि का है। इसमें उत्तर प्रदेश के बाहर भी आज जो साहित्य रचा जा रहा है, उसकी ओर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का विश्लेषण नगण्य है। हम किसी 'वाद' की विचारधारा से सहमत हों या न हों पर उसकी चर्चा को 'इतिहास' से लुप्त नहीं कर सकते। आधुनिक समीक्षा पर साम्यवादी या प्रगतिवादी समीक्षकों का भी प्रभाव पड़ा है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता पर इस 'परिचायिका' में उनका नामोल्लेख तक नहीं है। जहाँ तहाँ लेखकों को चढ़ाने-गिराने की प्रवृत्ति भी झलकती है। 'नोकझोंक' काफ़ी है। आलोचना व्यंग्यात्मक अधिक है।

मेरे साहित्यिक अनुभव

लेखक : श्री किशोरीदास वाजपेयी
प्रकाशक : हिमालय एजेन्सी,
कनखल (यू. पी.)
मूल्य : ?

हिन्दी साहित्य की प्राचीन परम्परा के प्रतिष्ठित लेखकों में वाजपेयी जी का सम्मानपूर्ण स्थान है। आपका साहित्यिक जीवन कई दशक पूर्व से प्रारम्भ होता है। आपका हिन्दी के प्राचीन नवीन लेखकों तथा कई हिन्दी संस्थाओं से सम्पर्क हुआ है। अतः आपके इन संस्मरणों में हिन्दी साहित्य के लगभग चालीस वर्षों के इतिहास की एक झलक मिल जाती है। आपकी लेखन शैली चटपटी है। कई स्थलों पर तो नाटकीय छटा भी आ गई है। कहीं-कहीं इन संस्मरणों में उग्रता, आत्म-प्रशंसा और दंभ की सी गंध आ गई है पर इसे हम इसलिए क्षम्य मान सकते हैं कि वे हिन्दी जगत् की उनके प्रति की गई उपेक्षा के परिणाम हैं। इसमें सन्देह नहीं पुस्तक आदि से अन्त तक रोचक एवं उद्बोधक है।

नागपुर —विनयमोहन शर्मा

रवीन्द्र की लघुकथाएँ

अनुवादक : राधेश्याम पुरोहित
प्रकाशक : आदर्श पुस्तक भण्डार,
कलकत्ता
मूल्य : ?

लघुकथाओं में कथा एक लघु गद्य काव्य के रूप में प्रस्तुत की जाती है और इन कथाओं में कथा से अधिक उसका अन्तर्निहित काव्य हृदय को अधिक स्पर्श करता है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक ओर महान् कवि थे और दूसरी ओर एक महान् कथाकार भी थे। इन लघुकथाओं में उनकी कथा और कविता दोनों की प्रतिभा का अद्भुत और आनन्दमय सम्मिलन हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की २५ लघुकथाओं का अनुवाद और संग्रह किया गया है। इनमें से कुछ कथाएं ऐतिहासिक हैं और कुछ काल्पनिक भी हैं परन्तु प्रत्येक कथा में अपनी ही एक विशेषता है और इस विशेषता को एकदम सरलता से अनुभव किया जा सकता है। लघुकथाओं में किसी एक विशेष घटना या भाव को इस प्रकार केन्द्रित रूप में प्रस्तुत कर देते हैं कि उससे समस्त लघुकथा एक बिजली के प्रदीप के समान जगमगा उठती है। लघुकथाओं का अनुवाद सरल और सुपाठ्य है। इन लघुकथाओं को "काव्य कथाओं" के नाम से कहा जाना उचित ही है। ये कथाएँ पहले ही भावमय हैं और फिर यह उनका 'भावानुवाद' प्रस्तुत किया गया है। इन कथाओं को पढ़ने से कथाओं के पढ़ने की रुचि होती है और भावनाएँ परिष्कृत होती हैं और लेखक के हृदय की व्यक्तिगत रूप से परिचिति प्राप्त होती है। इन लघुकथाओं को पढ़ने से रवीन्द्रनाथ के उन्नत और महान् भावनामय व्यक्तित्व की झलक प्राप्त होती है।

—वंशीधर विद्यालंकार

हैदराबाद

कसौटी

लेखक : कंचनलता सब्बरवाल
भैरवप्रसाद गुप्त
प्रकाशक : दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
त्याग नगर, मद्रास
मूल्य : २ रुपए

'कसौटी' दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी प्रचार पुस्तकमाला का १३४ वाँ 'पुष्प' है

पुस्तक में श्री कंचनलता सब्बरवाल के दो एकांकी—'दूसरा दिन' और 'अपराधिनी' तथा श्री भैरवप्रसाद गुप्त के तीन एकांकी—'शाम', 'परिचारिका' और 'कसौटी'—कुल पाँच एकांकी संगृहीत हैं। 'दूसरा दिन' भारत के विभाजन के समय के साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि लिए है जिसमें एक हिन्दू और एक मुसलमान युवक की मानवी आदर्श के लिए लड़ते हुए हत्या की जाती है। 'अपराधिनी' में अर्द्धाङ्गिनी कहलानेवाली नारी की पुरुष के सामने निरीहता चित्रित की गई है। 'कसौटी' में एक सरल हृदय व्यक्ति अपने मित्रों को सहायता देने की इच्छा से अपनी आवश्यकताओं को रोक कर भी उधार देता है। परन्तु अपने ही उधार दिए हुए रुपए, वह बच्चे को निमोनिया हो जाने पर भी वापस नहीं प्राप्त कर सकता। इन एकांकियों की कथा-वस्तु साधारण जीवन की घटनाओं से ली गई हैं परन्तु ऐसी घटनाओं को नाटकीय रूप देने के लिए जिस कौशल की आवश्यकता होती है उनका इनमें अभाव है और ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक अपना तर्क पेश करने के लिए (यद्यपि वह तर्क कोई मौलिक या गम्भीर उद्भावना नहीं हैं) घटनाओं को जुटा रहे हैं। 'शाप' में एक ऊटपटांग कल्पना की गई है—विश्वकर्मा सृष्टि का निर्माण करने के उपरान्त ब्रह्मा को उसे दिखाने के लिए ले जाते हैं, साथ में ब्रह्माणी जाती हैं, पुरुष को अकेले देख कर उसके एकाकीपन पर वे दया दिखाती हैं। विश्वकर्मा बाद में ब्रह्मा के आदेश से नारी की रचना करते हैं। ब्रह्माणी फिर देखने जाती हैं तो मनुष्य के अन्दर का 'पुरुष' जाग उठता है और वह ब्रह्माणी की ओर लपकता है पर बीच में शिलाखण्ड से टकरा कर गिर जाता है। ब्रह्माणी शाप देती है कि मनुष्य जिस वासना के वश हो कर लपका उसी में हमेशा भटकता रहे। पौराणिक चरित्रों को इस नए (!) रूप में रखने से क्या बात बनती है कुछ समझ में नहीं आता।

पुस्तक प्रचार के लिए लिखी गई है यद्यपि इस उद्देश्य से चाहे सरल परन्तु श्रेष्ठ प्रतिनिधि साहित्य हिन्दीतर भाषियों के सामने रखा जाना चाहिए। प्रत्येक एकांकी की कथा आरम्भ में संक्षेप में लिखी हुई है। अन्त में शब्दार्थ दिए गए हैं जो हिन्दी से अंग्रेज़ी में हैं। ये शब्दार्थ हिन्दी से अंग्रेज़ी में न दिए जा कर या इसी के साथ प्रादेशिक भाषाओं में भी दिए जा सकते थे, इससे अंग्रेज़ी न जाननेवालों के लिए भी उसका कुछ अर्थ होता।

आत्म विज्ञान

लेखक : म. दा. गाडगील
प्रकाशक म. दा. गाडगील
इंजीनियर, आनन्द विलास
काचीगुडा, हैदराबाद-द.
मूल्य : ५ रुपए

'आत्म विज्ञान' में शंकराचार्य के वेदान्त दर्शन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में शंकराचार्य के ग्रन्थों के आधार पर उनके मत का प्रतिपादन किया गया है और ब्रह्म सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियों के निवारण करने का लेखक ने प्रयत्न किया है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'जगन्मिथ्या', के यथार्थ बोध को लेखक ने दर्शाया है और उनका मत है कि अद्वितीय चैतन्य के सत् सामर्थ्य पर ही निखिल द्वैतभाव, माया प्रपंच की उत्पत्ति, स्थिति, लय होते हैं। परन्तु 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का एक विपथगामी अर्थ, वेदान्त पण्डितों में रूढ़ हो गया है, कि यहाँ एक ब्रह्म ही ब्रह्म है, दूसरा कोई पदार्थ है ही नहीं! यह एक असत्य धारणा है। पुस्तक को पढ़ कर यह अनुभव हुए बिना नहीं रहता कि हमारे प्राचीन दर्शन और साहित्य वर्तमान ज्ञान के प्रकाश में पुनर्व्याख्या करने की अत्यन्त आवश्यकता है और प्रस्तुत पुस्तक में इसी ओर किया गया एक प्रयास है। लेखक ने मूल ग्रन्थों से अपने प्रमाणों को लिया है—प्रस्थान त्रयी, मूल दशोपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्म-सूत्र का शङ्कर भाष्य आदि ब्रह्म विद्या के ज्ञान के लिए आवश्यक ग्रन्थों से कई उदाहरण दिए हैं। पुस्तक का दूसरा खण्ड 'ईशावास्योपनिषद्' है जिसमें इस उपनिषद् की व्याख्या की गई है और बाद में उपनिषद् का हिन्दी में अनुवाद किया गया है। लेखक ने पुस्तक में कई विवरण पत्रक दिए हैं जो विशेष उपयोगी हैं। इतिहास-क्रम से सामाजिक पृष्ठभूमि में लिखा हुआ यह दर्शन-ग्रन्थ लेखक के गम्भीर अध्ययन और मौलिक चिन्तन का परिचायक है। आशा है पुस्तक दर्शन-शास्त्र के जिज्ञासुओं का ध्यान आकर्षित करेगी।

धर्म की धुरी

लेखक : राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह एम. ए.
प्रकाशक : श्री राजराजेश्वरी साहित्य मंदिर, पटना ६
मूल्य : २ रुपए

भारत के विभाजन के अवसर पर जो साम्प्रदायिक

दंगे हुए उसके आधार पर 'धर्म की धुरी' नाटक लिखा गया है। संतसरन जी एक वैष्णव मठाधीश हैं। वे गांधीवादी विचारों को मानते हैं और करुणा और अहिंसा उनके जीवन के मूल मन्त्र हैं। उनके मन्दिर में निम्न जाति के लोग भी प्रवेश करते हैं। साम्प्रदायिक दंगों के अवसर पर उस मन्दिर के आस-पास रहनेवाले थोड़े-से मुसल्मान घरों को संतसरन जी का ही सहारा है। मुसल्मानों को भी वे प्रेम का पाठ पढ़ाते हैं। गाँव में पाकिस्तान से किसी तरह जान बचा कर कुछ शरणार्थी आ बसते हैं—उनमें बदले की भावना उमड़ती है। पास के मुहल्ले में जब मुसल्मानों का जोश बढ़ता है तो इस गाँव से अहमद मुसल्मानों को रोकने के लिए जाता है परन्तु वह दंगाई मुसल्मानों के हाथों मारा जाता है, यद्यपि वहाँ कई मुसल्मान ऐसे भी होते हैं जो हिन्दुओं को बचाने में सहायता करते हैं।

संतसरन जी के विरुद्ध हिन्दू शरणार्थी और अन्य लोग बुरा-भला कहते हैं। पड़ोस के गाँव के महन्त दुर्गादास भी उनका विरोध करते हैं। ठाकुर राजकिशोर के नेतृत्व में महावीरी सेना बनती है। लहनासिंह और रायसाहब गुलजारीलाल पंजाब से भाग कर आए हुए शरणार्थी हिन्दुओं को भड़काने वालों में अग्रगण्य हैं। जाने माने रईस वकील साहब भी उनका साथ देते हैं और एक दिन यह महावीरी सेना मुहल्ले के मुसल्मान घरों पर टूट पड़ती है। परन्तु वहाँ रहनेवाले हिन्दू ही मुसल्मानों को अपने घरों में छुपा लेते हैं—किसी का पता नहीं चलता। केवल एक झाड़ के पीछे छुपा हुआ बुड्ढा मुसल्मान क़त्ल कर दिया जाता है। अहमद की बीबी और लड़के को संतसरन जी अपने मन्दिर में प्रवेश कराके उन्हें हिन्दुओं के वस्त्र पहिना कर भगवान की आरती कराते हैं। दंगाइयों का दल जब वहाँ पहुँचता है तो वे उन्हें शरणार्थी बतलाते हैं। इन दंगाइयों में वकील साहब और राय साहब भी हैं जिनकी नज़र अहमद की बीबी के रूप पर जाती है, पतिता से भगवान की पूजा कराने का वे विरोध करते हैं और दूसरे दिन अहमद की बीबी के लिए आने का संकेत करके चले जाते हैं। परन्तु संतसरन जी पुलिस के पास अहमद की बीबी और बच्चों को पहुँचा देते हैं। इस प्रकार उनकी प्राण रक्षा होती है।

इधर मुसल्मानों से सताई जा कर कमला—जो रायसाहब की भतीजी है शरण ढूँढ़ने आती है। संतसरन जी उसे ढाढ़स बँधाते हैं और अपने शिष्य मुकुन्द को उससे विधिवत् विवाह करके अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। मुकुन्द उससे पाणिग्रहण करता है और इस प्रकार एक दुखिया का जिसे मुसल्मान आततायी से गर्भ रह गया है, उद्धार होता है।

इस प्रकार चाहे हिन्दू शरणार्थी हो या मुस्लिम दोनों की रक्षा करना संतसरन जी अपना धर्म समझते हैं। विधि निषेधों की परम्परा का पालन भी धर्म नहीं है—धर्म की धुरी है समदृष्टि—करुणा प्रत्येक पीड़ित के साथ। इस प्रकार यह नाटक मानवीय आदर्श, सब धर्मों की एकता और प्रेम का संदेश देता है। कथा साधारण-सी है। उसमें भी नाटककार ने ऐसे दृश्यों का विधान नहीं किया है जो हमारी भावनाओं को उभार सके क्योंकि जिस समस्या को नाटककार ने लिया है वह क्षणिक भावुकता के आधार पर हल नहीं हो सकती उसके लिए विधि-निषेधों और परम्परागत विश्वासों को निर्मूल करने की आवश्यकता है—इसलिए संतसरन जी ठण्डे दिल से अपनी दलीलें पेश करते हैं और मनुष्य की मनुष्यता में हमारा विश्वास जगाते हैं—मनुष्य मनुष्य पहले है हिन्दू, मुसल्मान या और कुछ बाद में। यद्यपि नाटक की भाषा मुहावरेदार है (कहीं कहीं अंग्रेज़ी मुहावरों को हिन्दी में अनुवाद करके प्रयुक्त किया गया है) और इसी कारण पाठक या दर्शक उसकी न-कुछ भी कथा होने पर भी ऊबता नहीं परन्तु बार बार काव्य-पंक्तियों के उद्धरणों से लगता है जैसे संवाद किसी महफिल में हो रहे हैं।

संताप

लेखक : बालकृष्ण बलदुआ
प्रकाशक : करेन्ट बुक डिपो,
दि माल, कानपुर
मूल्य : एक रुपया।

'संताप' श्री बालकृष्ण बलदुआ के ११ राजनीतिक पद्यों का संग्रह है जिसके लिए कवि का शीर्ष-वाक्य है 'विकृत स्वाधीनता और बरबाद आज़ादी के चिन्तन।' इन पद्यों में कवि के हृदय का विक्षोभ प्रकट हुआ है जो कि आज़ादी के बढ़ते हुए समय के साथ तीव्रतर होता गया है, क्योंकि आज़ादी के बाद जिस स्वतन्त्र देश की कल्पना कवि ने की थी वह कल्पना अत्यन्त भोंडी वास्तविकता में परिणित हो गई है। श्री बलदुआ जी के

इस अनुभव की साक्षी देनेवाले इस देश में अनेक हैं। उन्हें इन कविताओं को पढ़ कर संतोष की साँस मिलेगी।

"सत्य दबेगा, किन्तु मरेगा नहीं दमन से;
दब-दब कर प्रत्येक बार उमड़ेगा
प्रबल, प्रबलतर हो कर
मिलते ही जाएँगे इसको नित-नित नूतन रक्षक।"

और यह 'सत्य' यह है कि 'गोरों' और 'कालों' के राज में, हमारे देश में अन्तर नहीं आया……जनता के दुःख-दर्द चाहे बढ़ गए हों, घटे नहीं।

कविताएँ सामयिक हैं। कवि हृदय से चाहता है कि गाँधी के आदर्शों को भुला देनेवाले सत्ताधारी लोग और सत्य की राह अपनाएँ, जो ब्रिटिश राज्य काल में नौकरशाही के पोषक थे, उनकी ओर मुखापेक्षी न रह कर कांग्रेस चाहे कम शिक्षित परन्तु सच्चे जन-सेवकों का साथ ले। कवि चीन का उदाहरण ले कर पूछता है, यदि दो वर्षों में आज़ादी के फल मिलने लग गए तो भारत में ही पांच-छः वर्षों में उसके कोई आधार भी क्यों नहीं दीखते। 'फूल' कोमलता और सौन्दर्य का प्रतीक है तो 'वृक्ष' दृढ़ता का।

कवि कहता है :

"निश्चय, वृक्ष न फूल सदृश मृदु, सज्जित, संस्कृत,
निश्चय, वृक्ष न फूल सदृश इंगित व्रत पर अवनत
निस्सन्देह, पर वृक्ष शक्ति का पुंज, एक व्रत
उन्नत भाल, कुलिश भी जिसको कर न सके नत
आज़ादी को फूल नहीं दृढ़ वृक्ष चाहिए……"

और यह दृढ़ता जनता के सहयोग से ही मिल सकती है।

कवि की भावनाएँ सच्ची हैं और वे लोगों को प्रभावित भी करेंगी। शायद उन पर काव्य की दृष्टि से विचार करने की भी आवश्यकता नहीं है—भावों की गहराई, कल्पना की उड़ान, कलात्मक अभिव्यंजना की ओर कवि का ध्यान ही नहीं जाता। वह सरल हृदय से स्पष्ट बात कहता है—शायद दो टूक भी। अवश्य इन कविताओं में कवि के आत्म-दर्शन नहीं होते और कदाचित इस अभाव को वे सामयिक से शाश्वत नहीं बना सकने की क्षमता नहीं रखतीं—वे आज के सामाजिक क्षोभ को दर्शाती हैं—इस क्षोभ के दूर होने पर या बढ़ने पर इनका क्या मूल्य होगा इसकी चिन्ता की आवश्यकता नहीं।

पाञ्चजन्य (अर्थ अंक)
संपादक : महेन्द्र कुलश्रेष्ठ
प्रकाशक : राष्ट्र धर्म प्रकाशन, लखनऊ कैंट
मूल्य : १ रुपया

'पाञ्चजन्य' के 'राजनीति अंक' की समालोचना 'अजन्ता' के किसी पिछले अंक में की गई थी। उस पर प्रस्तुत अंक के सम्पादक जी को आपत्ति है "हमारे पिछले समाज की जो समालोचनाएँ विद्वान पाठकों तथा विभिन्न पत्रों ने कीं उनमें से अनेकों ने तो 'अध्यात्म' के सही अर्थ को समझा लेकिन कुछ ने उसे धर्म, मत या संप्रदाय के संकुचित रूप में ही देखा। 'अजन्ता' (हैदराबाद) की आलोचना इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।"

निश्चय ही हमें उस अध्यात्मिकता के बारे में कुछ नहीं कहना है जो जीवन को अधिक उदात्त बनाती है और नैतिकता की ओर हमें अग्रसर करती है, यद्यपि प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक का विश्वास है कि नैतिकता मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा का ही परिणाम है, अपने को किसी बाह्य-सत्ता (चाहे वह आध्यात्मिक हो) के प्रति समर्पित करना नहीं—"I am moral because I Want to be moral" मानवीय स्वतन्त्रता के प्रति विश्वास का स्वस्थ दृष्टिकोण ही हमारे जीवन की समस्याओं का उचित समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

'पाञ्चजन्य' के प्रस्तुत 'अर्थ अंक' में जिन विचारों को प्रतिपादित किया गया है वे प्रधानतया ये हैं : पूँजीवाद और साम्यवाद—दोनों की आर्थिक प्रणाली आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में अयोग्य सिद्ध हुई है, नियोजन की प्रणाली उचित है परन्तु अर्थ के क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण ही समुचित है। आध्यात्मिकता पर आधारित भारतीय अर्थ प्रणाली में इसी विकेन्द्रीकरण को महत्व दिया गया है। वस्तुतः इन विचारों में हमें कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती। विकेन्द्रीकरण के साथ सहकारिता और मानवीय सहयोग आवश्यक है जिसके बिना आज की आर्थिक परम्पराओं का समाधान सम्भव नहीं है।

हैदराबाद **—हरिकृष्ण पुरोहित**

॥

अंग्रेजी के भिन्न भिन्न रूप

श्री ई. बी. ब्रुक ने दिल्ली के आल इन्डिया रेडियो से "अंग्रेज़ी का प्रयोग" विषय पर एक भाषण दिया था। यह भाषण जनवरी ३, १६५४ के 'लिसनर' में प्रकाशित हुआ है। इस भाषण में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि भारतवर्ष में किस प्रकार अंग्रेज़ी का प्रयोग हो रहा है। इस भाषण का कुछ अंश हम नीचे दे रहे हैं :

"कुछ वर्ष पूर्व कुछ ब्रिटिश साप्ताहिक पत्रों ने एक लेखमाला और कुछ पत्रों को प्रकाशित किया था जिसमें इस बात पर बहस की गई थी कि सब से उत्तम अंग्रेज़ी कहाँ बोली जाती है। कुछ लेखकों ने इस सम्बन्ध में आक्सफ़ोर्ड का, कुछ ने एडिनबर्ग और बेलफ़ास्ट का और कुछ ने अन्य स्थानों का नाम लिया था परन्तु सभी लेखक इस विषय में एकमत थे कि वह क्षेत्र जहाँ अंग्रेज़ी अत्यन्त शुद्धतया बोली जाती है बहुत-ही छोटा और सीमित है। उसमें बहुत से परिवर्तन हो गए हैं। जब कुछ गिरमिट (Emigrants) अंग्रेज़ी ऐसे क्षेत्रों में ले जाते हैं जिसमें एकमात्र वे ही रहते हैं—जैसे कि अंग्रेज़ आस्ट्रेलिया में गए—तो वहाँ अंग्रेज़ी लगभग इंग्लैण्ड जैसी ही रह सकती है क्योंकि उसमें किसी अन्य राष्ट्र के शब्द मिश्रित नहीं होते। यदि वहाँ कोई खराबी रह सकती है तो यही कि वहाँ कुछ पुरानी परिपाटी के शब्द प्रयुक्त होते रह सकते हैं। एक भाषा अपने देश की राजधानी में ही बड़ी तेज़ी के साथ विकसित हो सकती है क्योंकि वहाँ उसमें स्थानीय बोलचाल की भाषा और अशुद्ध उच्चारण प्रविष्ट होते रहते हैं।

दूसरी अवस्था में जब कि एक भाषा को दूसरे देशों में ले जाया जाता है जैसे कि उपनिवेशों की स्थापना करने वाले अंग्रेज़ अंग्रेज़ी को उत्तरी अमेरिका में ले गए—वहाँ उस भाषा में जहाँ ऐसे शब्द प्रचलित रहते हैं पुराने हो जाते हैं वहाँ उसमें ऐसे शब्दों का भी प्रचल हो जाता है जो मूल रूप से उस भाषा के नहीं होते यू. एस. ए. की अंग्रेज़ी और इंग्लैण्ड की अंग्रेज़ी पिछ दो सौ वर्षों में बहुत भिन्न हो गई है क्योंकि यू. एस. में मध्य और दक्षिण यूरोप से बहुत से लोग जा बस गए हैं। युद्ध के समय अमेरिकी और ब्रिटिश लोगों के हृदय को आघात पहुँचा जब कि उन्हें एक दूसरे की भाषा को ठीक तरह समझने के लिए एक अमेरिकन-इंग्लिश-डिक्शनरी तैयार करानी पड़ी। यह डिक्शनरी छपे हुए २५० पृष्ठों की थी।

भारतवर्ष में अंग्रेज़ी बहुत ही स्वल्प लोगों की मातृ-भाषा है। अधिकांश ने इसके ज्ञान को सीख कर प्राप्त किया है। भारतवर्ष में अंग्रेज़ी के विषय ध्यान देने योग्य केवल यही बात नहीं है कि प्रायः विस्ता में अंग्रेज़ी ग़लत बोली जाती है अपि तु यह है कि यहाँ अंग्रेज़ी जैसी बोली जाती है लिखी भी वैसी ही जाती है मैं प्रसंगवश यह कह सकता हूँ कि इस विशाल देश के भिन्न राज्यों में अंग्रेज़ी के भाषणों को सुन कर ऐसा अनु भव होता है कि अंग्रेज़ी कोई एक भाषा नहीं है परन् आधी-दर्जन भाषाएँ हैं।

साधारणतया भारतवर्ष में पुरानी परिपाटी की अंग्रेज़ी बोली जाती है। कई शब्द ऐसे हैं जो कि १७ सदी के हैं और जिनका प्रचलन अब अंग्रेज़ी में से निक गया है। यहाँ की अंग्रेज़ी में बहुत से अप्रचलित शब्दों का चलन है। अखबारों की ऐसी शीर्ष-पंक्तियाँ 'Students urged to eschew Politics' इंग्लैण्ड में हँसी और आश्चर्य को उत्पन्न कर देंगी क्योंकि Eschew श

का अब वहाँ प्रचलन बिलकुल नहीं रह गया है। बहुत से शब्द अशिक्षित लोगों से आए हुए हैं जिनका कि प्रयोग भारतवर्ष के अंग्रेज़ी के अच्छे-से-अच्छे लेखक करते हैं। उदाहरणार्थ : "Fag-end of a Session", a "full-fledged" meeting, या a "full-dress" debate—ऐसा प्रतीत होता है कि 'Fag-end' प्रयोग ब्रिटिश सैनिकों की देन है। पहले इस शब्द का प्रयोग सिगरेट के अन्तिम सिरे के लिए होता था। इससे भी अधिक भारतीय अंग्रेज़ी पर भारतीय मुहावरों का प्रभाव है। भारत में कर्तृ-वाच्य से कर्म-वाच्य का अधिक प्रयोग किया जाता है। इससे वाक्य अनावश्यक रूप से लम्बे और बोझल बन जाते हैं। जब कोई यह लिखना चाहता है एक प्रसिद्ध डाक्टर तो वह लिखता है a Reputed doctor जिसका अर्थ ठीक उल्टा होता है। इसका अर्थ यह होता है कि वह डाक्टर वास्तव में है या नहीं इसमें कुछ सन्देह है। एक साधारण अशुद्धि और है 'Welcome address' इसका अंग्रेज़ी में यह अर्थ होता है कि 'अच्छा एड्रेस' न कि वह 'एड्रेस' जो स्वागत के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारतवर्ष में 'हाइफ़न' का अंग्रेज़ी लिखने में बहुत प्रयोग किया जाता है। यह ग़लती अधिकाधिक बढ़ती जा रही है। अक्षरों तक को हाइफ़न लगा कर अलग कर दिया जाता है। Welcome, Nowadays, nevertheless, Inasmuch शब्दों को अलग अलग करके लिखा जाता है।

अंग्रेज़ी एक कठिन भाषा है। इसकी व्याकरण के लिए बहुत-से स्थानों पर कोई युक्ति नहीं दी जा सकती। डेफ़िनिट आर्टिकल का प्रयोग निश्चित रूप से कब होना चाहिए; कब 'एस्पैशली' Especially का प्रयोग होना चाहिए और कब 'स्पैशली' Specially का यह जानना कठिन है। डेफ़िनिट आर्टिकल का प्रयोग कुछ अमेरिकी प्रभाव के कारण और कुछ अंग्रेज़ी की शिक्षा का ह्रास हो जाने के कारण भारतीय अंग्रेज़ी में घटता जा रहा है और सम्भव है उसका प्रयोग समाप्त हो जाए।

भारतीय अंग्रेज़ी पिछले दस वर्षों में मूल अंग्रेज़ी से दूर हो गई है। अमेरिका में अंग्रेज़ी लघु और संक्षिप्त हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में अंग्रेज़ी अधिक अनावश्यक शब्दों से पूर्ण हो जाएगी।"

॥

साहित्य में आदान-प्रदान

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के रविवारीय संस्करण में श्री एच. सी. के. का लेख 'साहित्य में आदान-प्रदान' प्रकाशित हुआ है जिसका निम्न अंश यहाँ दिया जा रहा है :

"साहित्य के प्रेमियों को वर्तमान समय में जो अत्यन्त उत्साह-वर्धक बात दिखाई देती है, वह यह कि विभिन्न भारतीय भाषाओं और साहित्यों के बीच अधिकाधिक निकट सम्बन्ध स्थापित हो रहे हैं। इससे पूर्व विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों के बीच कभी इतना गहरा परिचय नहीं था और सहवर्ती भाषाओं और साहित्यों की प्रवृत्तियों को जानने की इतनी उत्कट जिज्ञासा भी नहीं थी।

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के पाठक जानते हैं, आजकल एक भाषा से दूसरी भाषा में कितनी अधिक संख्या में अनुवाद प्रकाशित हो रहे हैं विशेषकर कहानियों और उपन्यासों के। बंगाल के वनफूल और गुजराती के धूमकेतु के नाम हिन्दी में लोक-प्रिय हैं। बंगाल के प्रसिद्ध हास्य-लेखक परशुराम की रचनाएँ अभी भी हिन्दी पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित होती रहती हैं और हिन्दी के किसी भी हास्य-लेखक से यदि उनके पाठकों की संख्या अधिक नहीं तो कम भी नहीं हैं। कदाचित् शरत्‌चन्द्र की एक भी कहानी या उपन्यास ऐसा नहीं है जिसका हिन्दी में अनुवाद न हुआ हो। अवश्य टागौर के 'गोरा' और 'गीतांजलि' की लोकप्रियता सर्वजनीन है और प्रायः प्रत्येक भारतीय भाषा में उनका अनुवाद प्रकाशित हो गया है। प्रस्तुत प्रसंग में हमारे सामने मुंशी, काका कालेलकर, खाण्डेकर, वामन मल्हार जोशी, हरिनारायण आप्टे, ताराशंकर बंदोपाध्याय और प्रबोधकुमार सान्याल के नाम भी प्रमुख रूप से सामने आते हैं। मुंशी की एक दर्जन से अधिक पुस्तकें हिन्दी में अनूदित हो चुकी हैं।

भारतीय आर्य भाषाओं के परिवार की मराठी, गुजराती, हिन्दी, सिन्धी, पंजाबी आदि भाषाओं के बीच तो किसी रूप में सदैव आदान-प्रदान होता रहा है परन्तु द्रविड़ परिवार की भाषाएँ अब तक एक प्रकार से अलग-सी थीं। अंग्रेज़ी का स्वास्थ्यदायक प्रभाव और साहित्य तथा संस्कृति के निकटतर सम्पर्क से अब ये भाषाएँ भी निकट आ गई हैं। हिन्दी की बहुत-सी कहानियाँ दक्षिण भारत के पत्रों में प्रकाशित हुई हैं और धारावाहिक रूप

में प्रकाशित होनेवाले कुछ उपन्यासों को भी सफलता मिली है। दक्षिण के जिस साहित्य-प्रेमी से भी मैं मिला, वह प्रेमचन्द की 'कफ़न' कहानी को पढ़ा हुआ था। भारत के सभी प्रान्तों में शरत् की 'बिन्दोर छेले' और टागौर की 'काबुलीवाला' कहानियाँ भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

विभाजन के पश्चात् उर्दू का बहुत-सा सम-सामयिक साहित्य हिन्दी में अनूदित हुआ। कृशनचन्द्र की प्रायः सभी पुस्तकें हिन्दी में प्राप्त हैं और जो कुछ भी वे नया लिखते हैं उसका हिन्दी में तुरन्त ही अनुवाद हो जाता है। इसी प्रकार बलवन्तसिंह, रामानन्द सागर और अब्बास के अनुवाद भी हुए हैं यद्यपि उन के अनुवादों को इतनी सफलता नहीं मिली है। कृशनचन्द्र की बीस पुस्तकें हिन्दी में अनूदित हुई हैं जब कि अन्य लोगों की चार से अधिक नहीं हुईं।

अनुवाद कार्य को कई वर्ष पूर्व स्वर्गीय प्रेमचन्द ने स्वयं आरम्भ किया था। रतननाथ शरहार की 'फ़सान-ए-आज़ाद' का उन्होंने सर्व प्रथम हिन्दी में अनुवाद किया। इसके पश्चात उर्दू के प्रसिद्ध हास्य-लेखकों अज़ीमबेग चुग़ताई और शौक़त थानवी के अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित हुए। हिन्दी में उस समय हास्य-रस की कमी थी अतः इन लेखकों के अनुवादों से उसकी आरम्भ में कमी पूरी की गई।

कविता के क्षेत्र में भी हिन्दी के सम-सामयिक पत्रों में उर्दू के कवि अकबर इलाहाबादी, नज़ीर और हाली की कविताओं के अनुवाद देखने में आते हैं। उर्दू के कवि रघुपति सहाय 'फ़िराक़' ने हिन्दी में अपनी पुस्तक 'धरती की करवट' में अपनी हाल ही की कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया है। 'शेर-ओ-सुख़न' और 'शेर-ओ-शायरी' नामक उर्दू कविताओं के हिन्दी में प्रकाशित संग्रहों का अच्छा स्वागत हुआ है। उर्दू के वे लेखक और कवि जो हिन्दी में भी लिख सकते हैं उन्होंने हिन्दी में लिखना आरम्भ कर दिया है। 'अश्क' और 'सत्यार्थी' पहले से ही समय की गति को पहचान कर हिन्दी में लिखने लगे थे अब ऐसे लेखक एक से अधिक भाषाओं में लिखते हैं।

पंजाबी साहित्य से भी अमृता प्रीतम के 'डा. देव' और 'पिंजर' तथा कर्त्तारसिंह दुग्गल के 'चोली दामन', 'छील और छत्तन' और 'नया घर' उपन्यास हिन्दी में अनूदित हुए हैं। पंजाबी 'हीर और रांझा' पुस्तक उर्दू और हिन्दी दोनों में अनूदित हुई है। उसके कुछ हिस्सों का अनुवाद अंग्रेज़ी में भी हुआ है।

यह दुख की बात है कि अधिकांश उत्तर भारतीय दक्षिण की भाषाओं के साहित्य से अपरिचित हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि दक्षिण की भाषाओं में अधिक अनुवाद नहीं हुए हैं। राजा जी की 'अभागी गाड़ी और अन्य कहानियों' का पहले अंग्रेज़ी में और फिर हिन्दी में अनुवाद हुआ। तामिल के प्रसिद्ध उपन्यासकार कल्कि के 'कालवनिन कादिल' का श्री पी. सोमसुन्दरम ने सीधे तामिल से हिन्दी में अनुवाद किया। 'आजकल' और 'नवनीत' पत्रिकाओं के द्वारा मुझे तेलुगु के संगीतज्ञ और कवि त्यागराज और तामिल के संत कवि भारती और स्वामिहाल का परिचय मिला तथा कन्नड़ के डी. आर. बेन्द्रे और के. वी. कुटप्पा और मलयालम के वल्लातोल और जी. शंकर कुरुप्प की रचनाएँ भी जहाँ-तहाँ देखने को मिली हैं। भारतीय भाषाओं के प्रमुख कवियों का प्रभाकर माचवे ने 'व्यक्ति और वाङ्मय' हिन्दी पुस्तक में अध्ययन प्रस्तुत किया है जिसमें भारती, वल्लातोल, बेन्द्रे पर एक-एक अध्याय लिखा है। दक्षिण भारत के लेखकों की बहुत-सी कहानियाँ भी अनूदित हुई हैं।

दक्षिण भारतीयों को छोड़ कर हमें दक्षिण भारत के निकट अन्य कोई नहीं ला सकता। दक्षिण भारतीय ही अपनी भाषा से हिन्दी में अच्छे अनुवाद दे सकते हैं। सौभाग्यवश दक्षिण भारतवासियों में ऐसे लोग हैं जो राष्ट्र भाषा में अच्छा लिखने लगे हैं।"

॥

नन्दलाल बसु

'स्टेटसमैन' (अंग्रेज़ी दैनिक) के रविवारीय संस्करण में श्री नीरद सी. चौधरी का 'नन्दलाल बसु' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें से निम्न अंश यहाँ दिया जा रहा है :

"अन्य सभी भारतीय चित्रकारों की तरह श्री नन्दलाल बसु के साधन सीमित थे परन्तु उन सीमाओं के रहते भी उन्होंने जो सफलता प्राप्त की वह किसी अन्य चित्रकार को प्राप्त नहीं हुई। भारतीय चित्रकारों के लिए वर्त्तमान युग में कोई ऐसी परम्परा नहीं रही जिसे वे अपना आदर्श मान कर चलें। साथ ही ऐसी जीवित परम्परा का भी अभाव था जिसका हूबहू या यन्त्रवत

अनुकरण किया जा सके। फलतः वर्तमान भारतीय रंगचित्रण कला का सैद्धान्तिक आधार पर विकास हुआ और विभिन्न कला-रूपों के सामञ्जस्य के आधार पर कला सृजन किया जाने लगा। यह सामञ्जस्य एक विचित्र सम्मिश्रण था और सम्भवतः इसके प्रति प्रतिक्रिया स्वरूप ही यूरोप की आधुनिक रंगचित्रण कला के प्रति भारतीय कलाकारों का आकर्षण बढ़ा। विगत दो दशकों में भारतीय रंगचित्रण कला इसी प्रकार का विचित्र सम्मिश्रण थी।

भारत में किसी शक्तिशाली सामाजिक और कलात्मक लक्ष्य की अनुपस्थिति में सामान्य रूप से सभी कलाएँ और विशेष रूप से रंगचित्रण कला साहित्यिक और कथात्मक बन गई। रंगचित्रण कला के मूल तत्वों की एक प्रकार से उपेक्षा-सी होने लगी। चाक्षुक तथ्यों के बदले रोगर फ्राई के शब्दों में वह 'मनोवैज्ञानिक बहुलता' की उपासक बन गई।

नंदलाल बसु इन सीमाओं से मुक्त नहीं हो सकते थे और न वे उन आधारभूत पूर्व कल्पनाओं का अन्त ही कर सकते थे जिन पर आधुनिक रंगचित्रण कला का उदय हुआ। परन्तु इन पूर्व कल्पनाओं की शृंखला से बँधे होने पर भी वे उसकी सीमा रेखा से ऊपर उड़ सके।

नंदलाल बसु ने उन अधिकांश चित्रों का गम्भीर अध्ययन किया है—जिनके आधार पर हमारे अधिकांश चितेरे रंगचित्रण किया करते हैं। वे हल्के रंग चित्रण से उसी प्रकार परिचित हैं जैसे कि अजन्ता शैली से। अपनी युवावस्था में उन्होंने श्रीमती हैरिंगम के साथ कला-साधना की थी। तथापि उनकी कला बिखरे हुए रूपों में हमारे सामने नहीं आती जैसे कि हमारे अधिकांश कलाकारों की चित्र रचनाएँ प्रतीत होती हैं और यह बहुत दुःख की बात है कि हमारे अधिकांश कलाकार द्वारा अंकित चित्र-विभिन्न स्रोतों से लिए हुए उदाहरणों का जमघट दिखाई देते हैं। नंदलाल बसु का चित्रांकन अपने में सम्पूर्ण है, दूसरे शब्दों में वे उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हैं।

साथ ही मुझे उनमें एक ऐसी विशेषता मिलती है जो कि श्रेष्ठतम चित्रकारों यथा लियोनार्डो या माइकेल एञ्जेलो या रेम्ब्रेण्ड में पाई जाती है—वस्तु और रूप का समन्वय जो श्रेष्ठ रंगचित्रण कला का सब से महत्वपूर्ण गुण है। उनके रामायण के चित्रों को हम चाक्षुक तत्वों से युक्त पाते हैं यद्यपि उनके इधर के चित्रों में चाक्षुक तथ्यों की प्रधानता है—और उनमें कथात्मक प्रवृत्ति का रुझान है तथापि वह मात्र मासिक पत्रों में प्रदर्शित की जाने वाली प्रवृत्ति नहीं है।

भारत और प्राच्य देशों में नंदलाल बसु इस समय रेखा-चित्रों की शैली के सर्वश्रेष्ठ चित्रकार हैं।

यूरोपीय कला-आलोचक उस रंगचित्रण को हेय समझते हैं जिसमें पलस्तरकारी और त्रिरेखात्मक गुण नहीं होता। बेरेनसोन (Berenson) और रौगर फ्राई दोनों ही ने उसके महत्व पर ज़ोर दिया। परन्तु नंदलाल बसु की कला बहुत भिन्न प्रकार की है। उन्होंने भारतीय रंगचित्रण कला के रेखाङ्कन और समतल चित्राङ्कन की विशेषताओं को और इस नाते फ़ारसी, चीनी और जापानी चित्रकला की विशेषताओं को सुरक्षित रखा है और साथ ही अलंकार-बाहुल्य-प्रियता के रूप में उसे पतित होने से भी बचाया है। सजावट और वास्तविक कला के बीच जो भेद है उसका उन्होंने सदैव ध्यान रखा है। वे सदैव भारत की महान् फ्रेस्को शैली का स्मरण करते हैं यद्यपि वास्तव में फ्रेस्को रंगचित्रकार के रूप उनकी कला का क्या स्वरूप होता यह दिखलाने का उन्हें कभी अवसर प्राप्त नहीं हुआ। टैगोर ने यद्यपि उनके लिए बहुत किया फिर भी वे नन्दलाल बसु के लिए वह नहीं कर सके जो जूलियस द्वितीय ने माइकेल एन्जलो के लिए किया।

नंदलाल बसु की जो बात सब से अधिक प्रभावित करती है वह यह है कि वे अपने धर्म के प्रति अटल रहते हैं—कलाकार का धर्म जिसको स्वयं उन्होंने अपनी कला-साधना के लिए निर्धारित किया है यद्यपि स्वयं उनके देशवासियों और रंगचित्रण कला के प्रेमियों की उसके प्रति उपेक्षा-सी रही है। वे कभी उस रूप में एक लोकप्रिय चित्रकार नहीं रहे जिस रूप में यामिनी राय हैं।

हम नंदलाल बसु के कलाकार के रूप में प्रायः उनके मानव रूप को भूल जाते हैं। परन्तु मानव-हृदय की महानता के बिना कोई चित्रकार महान् नहीं होता। कोई केवल भौतिक मापदण्ड लेकर ही निर्णय करने न बैठे तो कहना होगा कि यदि नंदलाल बसु चित्रकार के रूप में महान् हैं तो उनके मानव रूप ने उन्हें यह महानता प्रदान की है।"

सम्पादकीय

इंडियन साइन्स कांग्रेस और हिन्दी :

इस वर्ष इंडियन साइन्स कॉंग्रेस का ४१ वाँ अधिवेशन उस्मानिया यूनिवर्सिटी के तत्वाधान में हैदराबाद में सम्पन्न हुआ। इसमें बहुत-से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त देश-विदेश के वैज्ञानिक एकत्रित हुए थे। हमारे देश में विज्ञान और अंग्रेज़ी का कुछ ऐसा पारस्परिक सम्बन्ध हो गया है कि यह समझा जाता है कि विज्ञान की शिक्षा और अनुशीलन आदि बिना अंग्रेज़ी के संभव ही नहीं हो सकते। हमारे देश में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र और प्रेमचन्द आदि ऐसे महान् साहित्यकार उत्पन्न हुए जिन्होंने अपनी भाषाओं में मौलिक साहित्य का निर्माण किया परन्तु हमारे देश में ऐसे वैज्ञानिक उत्पन्न नहीं हुए जिन्होंने अपनी भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया हो। यदि हमारे देश के वैज्ञानिक हमारे राष्ट्र की भाषाओं और राष्ट्रभाषा में वैज्ञानिक साहित्य को उत्पन्न करने का प्रयत्न करेंगे तो इन भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य मौलिक रूप से अवश्य प्रगति कर सकेगा। क्या इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि भारतीय साइन्स कॉंग्रेस में हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का भी एक विभाग हो जिसमें हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान के अनुसन्धानात्मक मौलिक लेख पढ़े जाया करें। भारत की प्रान्तीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा में मौलिक वैज्ञानिक साहित्य को उत्पन्न करने के लिए इसकी परम आवश्यकता है। अन्य देशों में इस प्रकार के सम्मेलन या कॉंग्रेसें अपनी ही राष्ट्रभाषा में की जाती हैं। एकमात्र हमारे ही देश में यह समझा जाता है कि साइन्स का कार्य अंग्रेज़ी के बिना चल ही नहीं सकता। साइन्स में लिखने के लिए सब से बड़ी कठिनाई पारिभाषिक शब्दों की समझी जाती है। जब जब साइन्स को भारतीय भाषाओं में पढ़ाने या लिखाने आदि का प्रश्न उठता है तभी पारिभाषिक शब्दों की कठिनाई को हिमालय के पहाड़ के समान खड़ा कर दिया जाता है। यदि पारिभाषिक शब्दों का ही प्रश्न है तो क्या हमारे देश के समस्त वैज्ञानिक मिल कर इस समस्या को हल नहीं कर सकते? फिर भारतीय केन्द्रीय शिक्षा-सचिवालय से इस बात को उद्घोषित किया जा चुका है कि विज्ञान और अन्य ज्ञान के क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। क्या इस निर्णय को हमारे देश के वैज्ञानिक क्रियात्मक रूप दे कर अपनी भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण नहीं कर सकते? क्या १५ वर्षों के पश्चात् भी साइन्स कॉंग्रेस का कार्य अंग्रेज़ी में ही किया जाएगा और यदि इस प्रकार कॉंग्रेसें १५ वर्ष पश्चात् हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में की जाएँगी तो क्या हमारे देश के वैज्ञानिकों का यह कर्तव्य नहीं है कि वे इसके लिए अभी से प्रयत्नशील हों? इंडियन साइन्स कॉंग्रेस में रूस के वैज्ञानिक अंग्रेज़ी जानते हुए भी रूसी भाषा में ही भाषण देते थे और पीछे से अंग्रेज़ी में उनका अनुवाद कर दिया जाता था। यदि यह अनुवाद अंग्रेज़ी में किया जा सकता है तो हिन्दी और हमारी भाषाओं में भी किया जा सकता है। यदि हमारे देश के वैज्ञानिक अपने विचारों और अनुशीलनों को अपनी भाषाओं में लिखेंगे तो जहाँ हमारी भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण होगा वहाँ हमारे देश में विज्ञान की लोकप्रियता बढ़ेगी, वैज्ञानिक विचार-धारा और पद्धति को विस्तार रूप में प्रोत्साहन प्राप्त होगा और हमारे देश के वैज्ञानिक अपनी भाषाओं में ही विज्ञानसम्बन्धी चिन्तन और अनुशीलन को गति और प्रगति प्रदान कर सकेंगे।

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद ने इंडियन साइन्स कॉंग्रेस में सम्मिलित होने के लिए पधारे हुए रूसी वैज्ञानिकों का अपने भवन में स्वागत किया था। उन वैज्ञानिकों से यह प्रश्न किया गया कि रूस में वैज्ञानिक अनुशीलन में अंग्रेज़ी का क्या स्थान है? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि रूस में वैज्ञानिक साहित्य और अनुशीलन में अंग्रेज़ी का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने अपने उत्तर में इस बात को स्पष्ट किया कि रूसी भाषा वैज्ञानिक साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न और समृद्ध है और उन्हें अंग्रेज़ी की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। रूसी वैज्ञानिक अपने वैज्ञानिक अनुशीलनों को रूसी भाषा में ही लिखते हैं और उन्हें वे अंग्रेज़ी में प्रकाशित नहीं करते। यदि राष्ट्र के लोग चाहें तो वे उनकी पुस्तकों आदि का अंग्रेज़ी में अनुवाद कर सकते हैं। यह प्रश्न किए जाने पर कि रूसी भाषा में विज्ञान में किस पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है उन्होंने उत्तर दिया कि रूसी भाषा

में वैज्ञानिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली का ही प्रयोग किया जाता है यद्यपि शब्दों के उच्चारण वे रूसी भाषा के ढंग पर ही करते हैं। क्या इसी प्रकार हमारे देश के वैज्ञानिक अपनी भाषाओं में अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करते हुए वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण नहीं कर सकते? यदि यह अन्य देशों में किया जा सकता है तो हमारे देश में विज्ञान के लिए अंग्रेज़ी को कब तक सर्वथा अनिवार्य समझा जाता रहेगा? क्या हमारे देश के वैज्ञानिक विज्ञान और अंग्रेज़ी का सार्वकालिक गठबन्धन करके अपनी अपनी भाषाओं के प्रति सर्वथा उदासीन बने रहेंगे? यदि इंडियन साइन्स कांग्रेस के अधिवेशनों में रूसी वैज्ञानिक अपनी भाषा में ही अपने लेख पढ़ सकते हैं या भाषण दे सकते हैं तो हमारे वैज्ञानिक क्यों अपने देश में ही विज्ञान के लिए हिन्दी और अपनी भाषाओं का प्रयोग नहीं कर सकते? क्या इस प्रकार हमारे देश के वैज्ञानिक इंडियन साइन्स काँग्रेस के अधिवेशनों में विदेशी वैज्ञानिकों के सम्मुख इस बात की अप्रत्यक्ष रूप से घोषणा नहीं करते कि हमारे देश की भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य को उत्पन्न करने की क्षमता नहीं है?

भारतीय विज्ञान-परिषद् और साहित्यिक :

प्रतिवर्ष भारतीय विज्ञान परिषद् अधिवेशनों में इंग्लैण्ड, फ्रान्स आदि यूरोपीय देशों के वैज्ञानिक संगठन अपने प्रतिनिधि भेजते हैं, किन्तु संभवतः यह पहला अवसर था जब कि रूसी वैज्ञानिकों ने भारतीय वैज्ञानिकों के प्रति अपनी तथा अपने देश की ओर से सहानुभूति और सौहार्द का प्रकाशन किया। विज्ञान-परिषद् के अधिवेशन का महत्व उसके प्रतिनिधियों की योग्यता और संख्या के आधार पर लगाया जा सकता है। हैदराबाद अधिवेशन में यह बात स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुई कि देश के वैज्ञानिक इस अधिवेशन को पर्याप्त महत्व देते हैं और इस बात का पूरा पूरा प्रयत्न किया जाता है कि देश के वैज्ञानिक केवल पारस्परिक परिचय ही प्राप्त न करें अपितु अपने चिन्तन तथा साधना से भी एक-दूसरे को अवगत कराएँ। अन्य देशों के वैज्ञानिकों की उपस्थिति इस बात में सहायक होती है कि हमारे देश के वैज्ञानिक विज्ञान की अद्यतन प्रगति तथा स्थिति से सम्पर्क रख सकें और जिन बातों में आवश्यकता हो विश्व के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों के अनुभव से लाभ उठा सकें।

अधिवेशन का उद्घाटन प्रतिवर्ष प्रायः श्री जवाहरलाल नेहरू करते हैं। नेहरू जी स्वयं एक बार एक वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष भी रह चुके हैं, यद्यपि वे कारावास के कारण इस अधिवेशन में सम्मिलित नहीं हुए थे। श्री नेहरू की उपस्थिति से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत सरकार इस अधिवेशन को कितना महत्व प्रदान करती है। श्री नेहरू की उपस्थिति के कारण यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस राज्य में विज्ञान-परिषद् का अधिवेशन होता है, वह राज्य अधिवेशन के बारे में कितनी दिलचस्पी लेता होगा।

विज्ञान का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसके सम्बन्ध में पृथक् गोष्ठी में विचार न होता हो। विज्ञान के अन्तर्गत केवल वनस्पति, जीव, भौतिक अथवा रसायनिक विज्ञान तथा उनके अंगोपांग ही समाविष्ट नहीं हैं। पुरातत्व, दर्शन, समाजशास्त्र, नृवंश शास्त्र जैसे विषयों को भी विज्ञान के अन्तर्गत ही माना जाता है और इन विषयों के लिए पृथक्-पृथक् गोष्ठियाँ आयोजित होती हैं।

प्रत्येक सभा-सम्मेलन में ऐसे लोगों की कमी नहीं रहती जो केवल उद्घाटन-समारोह देख कर गोष्ठियों में उपस्थित नहीं होते और स्थानीय ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक स्थलों के निरीक्षण में व्यस्त हो जाते हैं। भारत तथा विदेश में अतिथियों के लिए हैदराबाद नगर और वेरूर (एलोरा) तथा अजिरठा (अजन्ता) की गुहाओं और लेणियों का कम आकर्षण नहीं है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि विज्ञान परिषद् के बहु-संख्यक प्रतिनिधियों ने इन गोष्ठियों से अधिकाधिक लाभ उठाया। गोष्ठियों में जो लेख पढ़े गए और जिस स्तर पर वहाँ चर्चा हुई उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय वैज्ञानिकों और चिन्तकों के सोचने का स्तर काफ़ी ऊँचा है और इस स्तर को अधिक ऊँचा करने के लिए चेष्टा की जा रही है।

इस परिषद् के अवसर पर देश विदेश के वैज्ञानिकों का खुले अधिवेशन में उपस्थित जनता से प्रत्यक्ष परिचय कराया गया। उनके दर्शन और परिचय से प्रसन्नता और प्रेरणा प्राप्त होती थी।

जहाँ तक परिषद् के संचालन और उसकी व्यवस्था का प्रश्न है हैदराबाद ने अपनी ख्याति के अनुरूप ही प्रबन्ध किया और इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वागत-समिति के प्रयत्न आगत प्रतिनिधियों को पूरी तरह सन्तुष्ट रख सके।

विज्ञान-परिषद् के इस अधिवेशन के बाद मन में एक प्रश्न उठता है। क्या वैज्ञानिकों की तरह भारत के साहित्यिकों का एक केन्द्रीय संगठन नहीं बनाया जा सकता? विज्ञान-परिषद् की तरह देश में कुछ अन्य परिषदें भी प्रतिवर्ष आयोजित होती हैं। प्राच्य परिषद् का अधिवेशन प्रतिवर्ष किसी न किसी नगर में होता है, किन्तु प्राच्य परिषद् के अधिवेशनों में साहित्यिक समस्याओं पर कम ही विचार किया जाता है। और फिर उसके अधिवेशन को वह महत्व भी प्राप्त नहीं है जो विज्ञान-परिषद् के अधिवेशन को प्राप्त है। पी. इ. एन. नामक संस्था भी देश में विद्यमान है जो पूर्णतः साहित्यिकों की संस्था है। इस संस्था का अधिवेशन कई साल पहले स्वर्गीय सरोजनी नायडू की अध्यक्षता में जयपुर में आयोजित हुआ था। पी. ई. एन. के जयपुर अधिवेशन ने यह प्रमाणित किया था कि इस प्रकार के अधिवेशन का काफ़ी अच्छा स्वागत होता है किन्तु जयपुर के बाद इस संस्था का कहीं अधिवेशन नहीं हुआ, हुआ भी है तो उतने उत्साह के साथ नहीं।

देश की प्रत्येक भाषा के साहित्यिकों का अलग-अलग संगठन है। इस प्रकार के संगठनों में अनेक सक्रिय हैं और उन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में प्रशंसनीय काम किया है। कुछ संगठनों ने साहित्यकों की अपेक्षा प्रचारकों और राजनीतिज्ञों के प्रयासों के कारण उल्लेखनीय कार्य नहीं किया किन्तु इस प्रकार के प्रयासों के कारण संगठनों के शुभ-प्रयत्नों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आवश्यकता इस बात की है कि सभी भाषाओं के साहित्यिक एक केन्द्रीय संगठन का निर्माण करें। इस केन्द्रीय संगठन के कारण संभवतः क्षेत्रीय संगठन भी अधिक सफलता के साथ गतिशील हों। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय देश की सभी भाषाओं के साहित्यकारों के निकट आने से अनेक शुभ परिणाम निकल सकते हैं। इस प्रकार का संगठन देश के साहित्यिक मानदण्ड को ऊँचा करने तथा जनता की रुचि को परिष्कृत करने में सहायक होगा, साथ ही उन अनिष्टों को दूर करने में भी इस संगठन से सहायता मिल सकती है जो इन दिनों प्रान्तीयता के कारण हमारी राष्ट्रीय एकता के सम्मुख उपस्थित हो रहे हैं।

यदि भिन्न भिन्न भाषाओं के साहित्यिक एक स्थान पर आते हैं तो उनके द्वारा लिखा गया साहित्य देश की विभिन्न भाषा-भाषी जनता में सौहार्द तथा सौमनस्य अवश्य उत्पन्न करेगा। कुछ साहित्यिक इस प्रकार के संगठनों से विरक्त दिखाई देते हैं, किन्तु उनकी उदासीनता का कोई ठोस आधार नहीं है। वे इस प्रकार के संगठनों में आ कर अपना विशेष प्रभाव डाल सकते हैं, जब कि उनकी उदासीनता वर्त्तमान स्थिति को बिगड़ाने में ही सहायक होती है।

आरम्भ में इस प्रकार के संगठन को महत्व देने के लिए व्यक्तित्व की आवश्यकता है। एक बार परम्परा बन जाए तो फिर यह संगठन आगे बढ़ सकता है। राज्य सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार में इस प्रकार के व्यक्तियों की कमी नहीं है जो इस काम में सहायक हो सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के व्यक्ति अपनी राजनीतिक आभा को दूर रख कर शुद्ध साहित्यिक भावना से इस संगठन को बल दें। स्वयं नेहरू जी इस काम को काफ़ी आगे बढ़ा सकते हैं। विज्ञान के विद्यार्थी के नाते श्री नेहरू पर वैज्ञानिकों का अधिकार हो सकता है किन्तु अपनी लेखनी और भावनाओं के कारण वे स्वयं साहित्यिकों की जाति के हैं, अतः उनसे इस प्रकार के संगठन में सहयोग की आशा की जा सकती है।

इससे पहले अखिल भारतीय आधार पर जो साहित्यिक संगठन हुए उनकी विफलता का विश्लेषण कर लेना भी आवश्यक है। कुछ लोगों ने विशेष राजनीतिक धारणाओं के साथ इस प्रकार का संगठन बनाया तो अन्य लोगों ने देश की किसी भाषा को अपने साथ न ले कर अंग्रेज़ी के सहारे इस प्रकार की संस्था में प्राणप्रतिष्ठा करनी चाही। उसे व्यापक नहीं बनाया जा सका। स्पष्ट है कि यह दोनों मार्ग मूल रूप से दोषयुक्त थे। राजनीति के आधार पर एक संगठन होना संभव नहीं था और अंग्रेज़ी के आधार पर इन दोनों कारणों से उद्देश्य सफल नहीं हो सका। पहले विभाग के लोगों ने अपने प्रयत्नों की असफलता को भली प्रकार जान लिया है लेकिन दूसरे विभाग के लोग आज भी प्रभावरहित नहीं हैं। इस बात की बहुत आवश्यकता है कि इस संगठन में अंग्रेज़ी के स्थान पर भारत की सभी भाषाओं को पनपने का अवसर दिया जाए।

COALSITE

IDEAL FOR USE
IN
Homes, Hospitals, Hostels & Hotels

BURNS LONGER THAN
CHARCOAL & FIREWOOD
AND LESS IN QUANTITY

'COALSITE' is proprietary name given to a product produced by the low temperature carbonisation of Hyderabad non-caking coals by the Lurgi internally heated process.

'COALSITE' compares favourably in its properties and uses with the best quality charcoal and coke.

'COALSITE' can be used amongst other things as smokless-domestic fuel, as coke in producer gas plants and as coke in foundries and cupolas, i. e., for all such purposes where charcoal and coke are used except in blast furnaces for steel-production.

'COALSITE' has attractive properties of slow and steady combustion rates which can however be regulated through a suitable draft.

'COALSITE' is produced on an experimental scale for the first time in the country in a specially erected plant at the CENTRAL LABORATORIES FOR SCIENTIFIC & INDUSTRIAL RESEARCH, UPPAL ROAD, HYDERABAD-DECCAN.

The total quantity of 'COALSITE' available for sale is at present only about 20 tons/day. Available in bags or in wagon loads. For enquiries, please address to :

GLENWEN & Co.
ENGINEERS.
135/C Prenderghast Road,
SECUNDERABAD-Dn.

Phone No. **7350**

पागलपन चिकित्सा-विज्ञान के लिए एक पहेली है।

मनुष्य जन्मजात पागल नहीं होता

- वस्त्रों और व्यवहारों में अजीबपना
- खोई खोई-सी नज़र
- उदासी और निराशा
- स्मरण शक्ति की हीनता
- निर्णय शक्ति की कमी
- आत्म-संयम का अभाव
- भ्रम, डर और प्रेतबाधा

ये पागल होने के पूर्व-लक्षण हैं।

इन्हें आरंभ में ही

विश्व-विख्यात दवाई *"नवरत्न-कल्प"* का सेवन कर के

नष्ट कर दीजिए।

"नवरत्न कल्प"

(हीरा, मानिक, मोती, नीलम, पुष्पराग तथा अन्य बहुमूल्य नौ रत्नों का यौगिक)

आविष्कर्त्ता
कविराज पं दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति

विवरण के लिए लिखिए :

प्रबन्धक : नवरत्न कल्प फार्मेसी
जालंधर शहर (इंडिया)

तार : नवरत्न फोन : ४०

अजन्ता

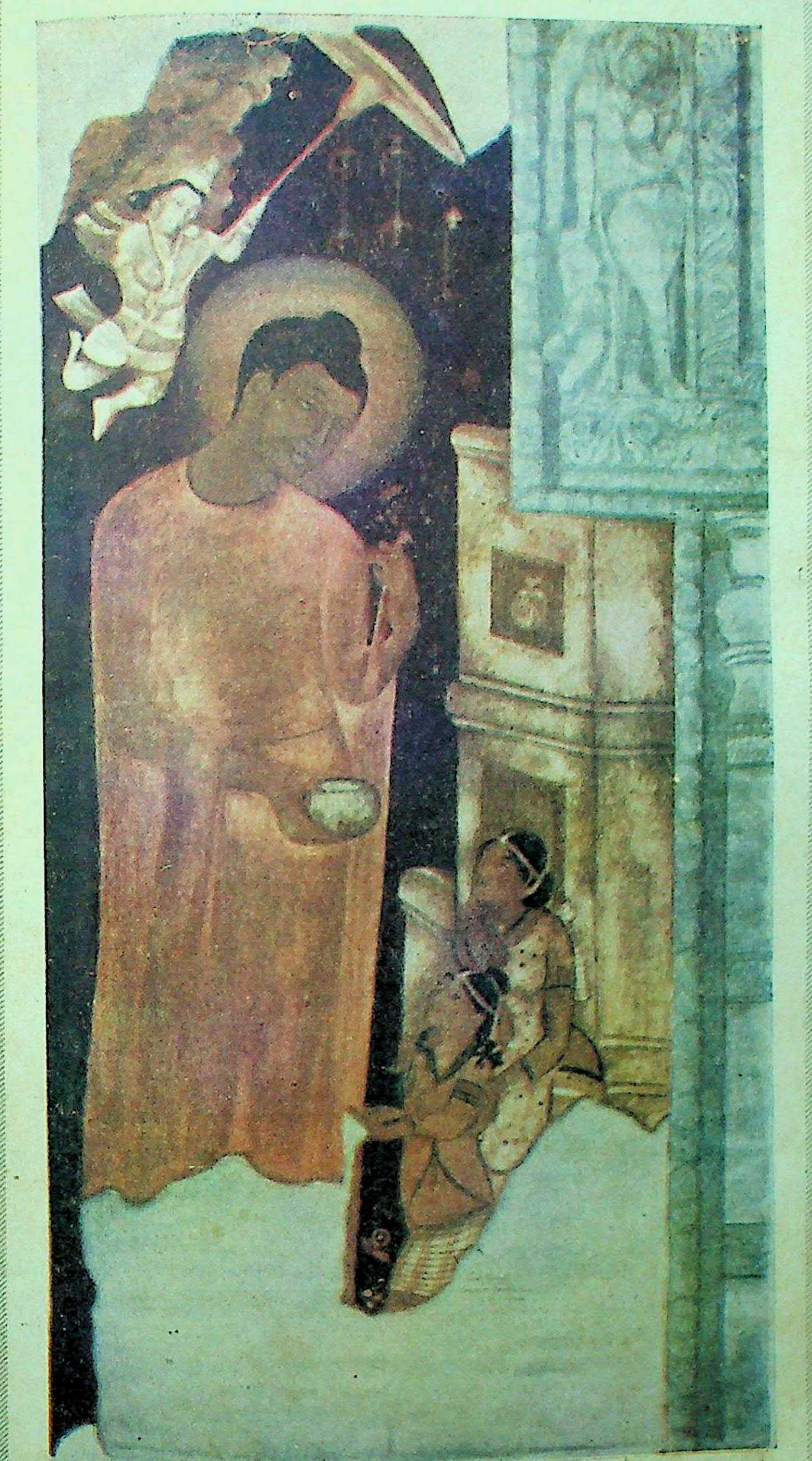

वर्ष ६ मार्च १९५४ अंक ३

ताज ग्लास वर्क्स लिमिटेड

पो. आ. सनतनगर, हैदराबाद-द.

★

काँच के सामान के सर्वश्रेष्ठ निर्माता

सभी प्रकार की सुन्दर और मज़बूत काँच की बोतलें, ग्लोब

और

ग्लासें प्राप्त करने का स्थान

मकान की सजावट और सौन्दर्य वृद्धि के लिए सभी प्रकार के काँच का सामान

'अजन्ता'
की
परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच-डी.
जनरल सेक्रेटरी,
इन्स्टीट्यूट ऑफ एशियन स्टडीज, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुकर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल आफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद-द.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच-डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

हैदराबाद आल्विन मेटल वर्क्स लिमिटेड

सनतनगर, हैदराबाद-द. १८

सर्वोत्तम स्टील फर्निचर के निर्माता

हर प्रकार का फर्निचर

मकान, दफ्तर, दूकान और अस्पतालों के लिए

खरीदिए !

राष्ट्र की सुन्दरतम और मज़बूत बसों के निर्माता।

स्वादिष्ट भोजन
और
रहने की उत्तम व्यवस्था के लिए
अवश्य पधारिए

रायल होटल नामपल्ली, हैदराबाद-दक्षिण.
फोन ५४६२

The Royal Hotel

ESTD. 1929

PHONE • 5462

Nampally, Hyderabad-Deccan.

Just two minute's walk from
Railway Station.

★

कल्पना मासिक

पढ़िए

जिसमें उच्चकोटि के साहित्यकों और कलाकारों की रचनाएं आपको मिलेंगी।

प्रत्येक अङ्क में एक रंगीन चित्र

कलाप्रसंग -- विनोदबिहारी मुकर्जी

सांस्कृतिक टिप्पणियाँ — दिनकर कौशिक

साहित्यधारा — इस स्तम्भ के अन्तर्गत पाठकों, लेखकों आदि द्वारा उठाए गए साहित्यिक प्रश्न आदि हैं।

पुस्तक समालोचना-'कल्पना' अपनी निर्भीक समीक्षा के लिए प्रसिद्ध है।

वार्षिक मूल्य १२) * एक प्रति का १)

पृष्ठ संख्या ८०

८३१, बेगम बाज़ार, हैदराबाद

इसे आप कभी मत भूलिए !

टुवीड्, गेबरडीन, पनामा, सिल्क शर्टिंग

आदि का हमारा नया स्टाक आपकी
पसन्द की अवश्य ही
पूर्ति करेगा।

आर. पेण्टोजी क्लॉथ मर्चेण्ट

पत्थरगट्टी, हैदराबाद (दक्षिण)

●

तार का पता:-'टुवीड्' फो. नं. ४७६९

हमेशा याद रक्खें ?

हमारे पास सोने की मोहरें तो नहीं रबर की सुन्दर मोहरें तैयार की जाती है।

घर बैठे आर्डर भेज कर सुन्दर मोहरें प्राप्त करें।

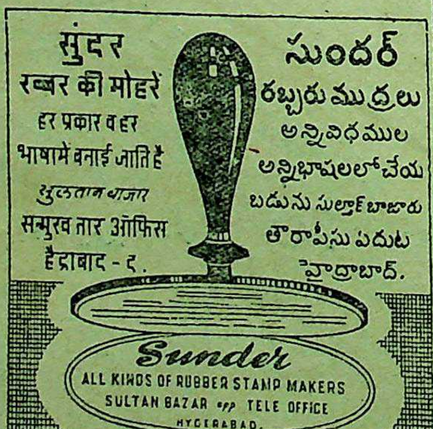

सुंदर
रब्बर की मोहरें
हर प्रकार व हर
भाषामें बनाई जाति हैं
सुलतान बाजार
सन्मुख तार ऑफिस
हैद्राबाद - ९.

సుందర్
రబ్బరు ముద్రలు
అన్నివిధముల
అన్నిభాషలలో చేయ
బడును సుల్తాన్ బాజారు
తారాపీసు ఎదుట
హైద్రాబాద్.

Sunder
ALL KINDS OF RUBBER STAMP MAKERS
SULTAN BAZAR opp TELE OFFICE
HYDERABAD.

त्रैमासिक

आलोचना

के

दो विशेषांक

इतिहास विशेषांक-अक्तूबर १९५२

५) रु०

३) रु०

विशेष रूप से संग्रणीय हैं।

इन दोनों अङ्कों में प्रकाशित लेख हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास का अद्वितीय आकलन बन गए हैं।

वार्षिक-१२) रु० ❀ प्रति-३) रु०

राजकमल प्रकाशन

१ फ़ैज़, बाज़ार दिल्ली

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

[Estd. MARCH 1915]

Telephone : 4610
Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :
PATHERGATTI, UNIVERSITY
BRANCH (ADIKMET)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMANI,
HYDERABAD-DECCAN.

Branch Office :
THUNGABHADRA PROJECT
(MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at 1½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
DEPUTY GENERAL MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
SUPERVISING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT.

CHINA NILGIRI'S
Lasa
Special Tea
REGD TRADE MARK
FINEST QUALITY
Lasa
Special
CHINA NILGIRIS FAMOUS TEA

लासा
स्पेशल
चाय

दी चायना नीलगिरी टी इम्पोरियम
मोज़मजाही मार्केट के सामने
हैदराबाद-दक्षिण.

स्वादिष्ट शाकाहारी भोजन
और
आधुनिक युग की सुविधाओं के लिए
सुप्रसिद्ध होटल
अपेक्षतया कम दरें

●

फोन : ४३६०
तार : 'माइकेफे'

नव्य मैसूर केफे

रेस्टूरॉं, भोजन और ठहरने का प्रबन्ध
(शहर के बीच में)

नामपल्ली, स्टेशन रोड :: हैदराबाद-दक्षिण.

सिकन्दराबाद में साहित्यिक पुस्तकों
का
एक मात्र प्रतिष्ठान

पुस्तक भवन,

१.१३/१ सरोजनी देवी रोड, सिकन्दराबाद
हिन्दी प्रचार सभा, सिकन्दराबाद
नगर शाखा द्वारा स्थापित
सभी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम, पुस्तकालयों के लिए
उत्तमोत्तम ग्रन्थ, और बाल-साहित्य
हमारी विशेषताएँ

*

निम्न लिखित
प्रकाशकों की पुस्तकें थोक भाव में हमसे लीजिए:-
१ हिन्दी प्रचार सभा, : : २ विनोद पुस्तक मन्दिर,
हैदराबाद आगरा

Education

Start - in - Life

Marriage of your children
Assured without any
embarrassment
Besides a comfortable old age
for you

for All Types Of Insurance

Consult:-

THE
HYDERABAD CO-OPERATIVE
INSURANCE SOCIETY Ltd.

Bashir Bagh Road, Hyderabad-Dn.

हमारे सुविख्यात प्रकाशन

स्वामी विवेकानन्दजी की सुप्रसिद्ध पुस्तकें

भारत में विवेकानन्द : जैकेट सहित, सचित्र ५।) "आज की परिस्थिति के उपयुक्त राष्ट्र-निर्माण संबन्धी वैध एवं ठोस विचारों से भरे, स्वामी जी द्वारा भारत में दिए गए भावयुक्त स्फूर्तिप्रद भाषण।"

विवेकानन्द जी के संग में : आकर्षक जैकेट सह ५।) "स्वामी जी के आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, कला-विषयक तथा भक्ति संबन्धी संभाषणों का रोचक, महान् शिक्षाप्रद तथा पथ प्रदर्शक संग्रह।"

पत्रावली : दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २=) "स्वामी जी के शक्ति सम्पन्न पत्रों का सङ्कलन।"

देववाणी : सचित्र, २=). "अमृततुल्य, आध्यात्मिक अन्तः प्रेरणा से भरे उपदेश।" शक्तिदाई विचार ।।=); भारतीय नारी ।।।); व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १=); मेरे गुरुदेव ।।=); विवेकानन्द जी की कथाएँ १।); कवितावली ।।=)

धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : दो भागों में, सजिल्द, आकर्षक जैकेट सह, प्रत्येक का २।।।) "धर्म-जीवन की उलझनों का सरस भाषा में सूक्ष्म विवेचन करते हुए उनके परिहार का मार्ग दर्शाया है।"

विवेकानन्द-चरित : हिन्दी में स्वामी जी की एक मात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकेट ६)

श्री रामकृष्ण लीलामृत : विस्तृत जीवनी, दो भागों में, महात्मा गांधी की भूमिका सहित, प्रत्येक का ५)

श्रीरामकृष्ण वचनामृत : तीन भागों में, संसार की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित, सजिल्द, जैकेट प्र. भा. ६); द्वि. भा. ६); तृ. भा. ७)

गीतातत्व : स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु भाई स्वामी शारदानन्द कृत, सुन्दर जैकेट सहित, २।=)

स्वामीजी की अन्यान्य लोकप्रिय पुस्तकें

ज्ञान योग३); भक्तियोग १।=); राजयोग ।।); कर्मयोग १।।=); प्रेम योग १।=); सरल राजयोग ।।); आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १।); हिन्दू धर्म १।।); धर्म रहस्य १।); धर्म विज्ञान १।।=); हिन्दू धर्म के पक्ष में ।।=); शिकागो वक्तृता ।।=); मरणोत्तर जीवन ।।); स्वाधीन भारत जय हो १=); प्राच्य और पाश्चात्य १।); वर्तमान भारत ।।)

नए प्रकाशन : जाति, संस्कृति और समाजवाद १); चिन्तनीय बातें १); विविध प्रसङ्ग १=)

विस्तृत सूची पत्र के लिए लिखिए : श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली (अ) नागपुर—१ (म० प्र०)

FIRE!

ACCIDENT!

MARINE!

The Hyderabad United Insurance Company;

(LIMITED)

Sponsored by

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164.

ABID ROAD, HYDERABAD-Dn.

Telegram: **HUICOL**

Telephone: **5579**

Chairman
L. N. GUPTA Esq. I. A. S.

General Manager
H. D. MEHTA. Esq.

Branches :

BOMBAY, CALCUTTA, MADRAS, NIZAMABAD & MANCHIRIAL.

'HIND'

सस्ता, सरल, आकर्षक और शिक्षाप्रद
राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

- कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।
- हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।
- देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं : मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत्, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व, आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)-छमाही ३)-एक प्रति ८ आना

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

कथा साहित्य में चरित्र चित्रण
का
महत्वपूर्ण प्रयोग

'मेघदूत' के महत्वपूर्ण प्रकाशन के बाद
प्रेरणा का छठा-सातवाँ अंक

'प्रेमचन्द के पात्र'

विशेषांक है

- इस अंक में प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों के सभी महत्वपूर्ण पात्रों पर अधिकार पूर्ण लेख है।
- विशेषांक का मूल्य लगभग ४) है।
- प्रेरणा के स्थाई ग्राहकों के लिए वही मूल्य।

**शीघ्र ही वार्षिक ग्राहक बन कर
इस सुविधा का लाभ उठाएँ।
आर्डर 'प्रेरणा' के पते से भेजिये।**

प्रेरणा : सोजतीगेट, जोधपुर.

मद्रास विहार तथा पंजाब सरकार द्वारा
समस्त स्कूल तथा लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत

देशबन्धुः पुस्तकालय मथुरा एवं व्रज का निराला मासिक पत्र

- प्रधान सं० कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०
- सम्पादक—ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी
- स० सम्पादक—बैजनाथ दाणी

❀ देशबन्धु ❀

वार्षिक मूल्य ४-०-० :: एक प्रति ०-६-०

नमूना के लिए ०-६-० की टिकट भेजें

व्रज संस्कृति, व्रज की ललित कलाएँ, स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत कला, रासलीला, रामलीला, भगत व्रज के लोक गीत, लोक कहानियाँ वेशभूषा, लोक व्यवहार आदि पर सुन्दर लेख पढ़िए।

**पता - व्यवस्थापक "देशबन्धु" कार्यालय
मथुरा (यू० पी०)**

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

❧ विश्व ज्योति ❧

सम्पादक

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी. ए.
संचालक-**श्री विश्वेश्वरानन्द,**

विश्व हित की साधना के लिए :

[क] शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
[ख] प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
[ग] बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण,
[घ] अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
[ङ] सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा : ८) रुपए

१०) रु. वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ़्त।

**पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, 'विश्व ज्योति' साधु आश्रम,
होश्यारपुर (पंजाब)**

जीवन साहित्य

हिन्दी के उन मासिक पत्रों में से है जो

१. लोक रुचि को नीचे नहीं, ऊपर ले जाते हैं,
२. मानव को मानव से लड़ाते नहीं, मिलाते हैं,
३. सच्ची और स्थायी शान्ति को असंभव नहीं, संभव बनाते हैं,
४. आर्थिक लाभ के आगे झुकते नहीं, सेवा के कठोर पथ पर चलते हैं,

जीवन साहित्य की सात्विक सामग्री को छोटे बड़े, स्त्री-बच्चे सब निःसंकोच पढ़ सकते हैं। उसके विशेषांक तो एक से एक बढ़ कर होते हैं।

जीवन साहित्य विज्ञापन नहीं देता। केवल ग्राहकों के भरोसे चलता है। ऐसे पत्र के ग्राहक बनने का अर्थ होता है राष्ट्र की सेवा में योग देना।

वार्षिक शुल्क के ४) रु. भेज कर ग्राहक बन जाइए।

ग्राहक बनने पर मण्डल की पुस्तकों पर आपको कमीशन पाने की भी सुविधा हो जाएगी।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

वार्षिक मूल्य ८ रु. **टेलीफोन नं. २५८७३**

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम तथा राष्ट्र निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए **'सम्पदा'** सबसे उपयोगी पत्र है।

'सम्पदा' के **योजना अंक** में पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा है **वस्त्र उद्योग** अंक मूल्य १।) रु.

अभी से ग्राहक बनिए।

नमूने के लिए ।।।) आने के टिकट भेजिए।

मैनेजर 'सम्पदा' *अशोक प्रकाशन मन्दिर*
रोशन-आरा रोड—दिल्ली

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र

卐

दर्शन और मनोविज्ञान की

आधुनिक प्रवृत्तियों पर

प्रकाश डालनेवाला

हिन्दी में अपने ढङ्ग का

अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ सिद्धगिरि, बनारस

राष्ट्रभारती

सम्पादक
मोहनलाल भट्ट
हृषिकेश शर्मा

सस्ती, सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका। इस पत्रिका को, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान् साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखा-चित्र और शब्दचित्र। बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, उर्दू, तामिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं।

वार्षिक चन्दा ६) रुपए। नमूने की प्रति १० आने मात्र।

ग्राहक बनाने वालों को विशेष सुविधा दी जाएगी

पता : व्यवस्थापक,
'राष्ट्रभारती' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
पो० हिन्दी नगर, वर्धा (मध्य प्रदेश)

लेखकों से निवेदन

१. 'अजन्ता' में प्रकाशनार्थ रचनाएँ हाशिया छोड़ कर एक ओर टाइप कर के भेजी जाएँ—यदि टाइप न की जाएँ तो स्वच्छ अक्षरों में लिखी हों।

२. रचना की एक प्रति लेखक स्वयं अपने पास रखें, रचना के लौटने की जिम्मेदारी कार्यालय पर नहीं होगी।

३. रचना भेजते समय इस बात का ध्यान रखा जाए कि उसे अन्यत्र प्रकाशनार्थ नहीं भेजा गया है।

४. किसी भी रचना के संशोधन आदि का अधिकार सम्पादक को रहेगा।

५. 'अजन्ता' में प्रकाशित रचनाओं का अन्यत्र उपयोग प्रकाशक की अनुमति ले कर किया जाए।

६. रचना के अन्त में लेखक अपना पता लिखना न भूलें।

'अज़न्ता', हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली, स्टेशन रोड, :: हैदराबाद-दक्षिण.

'अजन्ता' की पुरानी फाइलें जिल्द बँध कर तैयार हो गई हैं

●

'अजन्ता' का प्रकाशन अक्टोबर १९४९ से आरम्भ हुआ। विगत पाँच वर्षों में 'अजन्ता' ने हिन्दी साहित्य के भण्डार को बहुमूल्य रचनाओं से भरा है। 'अजन्ता' के अङ्क इन वर्षों में हिन्दी साहित्य की प्रगति को जानने के लिए संग्रहणीय हैं।

जिल्द में संगृहीत अङ्कों का वास्तविक मूल्य ही रखा गया है। ज़िल्द और डाक-व्यय मुफ्त। निजी और सार्वजनिक पुस्तकालय के लिए शीघ्र आर्डर भेजिए।

'अजन्ता', हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली, स्टेशन रोड, :: हैदराबाद-दक्षिण.

'अजन्ता'

सचित्र सांस्कृतिक मासिक

●

बिहार

राजस्थान

पंजाब

मध्यप्रदेश

हैदराबाद

मैसूर

त्रावणकोर

मद्रास

राज्यों के

शिक्षा विभाग द्वारा

स्वीकृत।

❁

वार्षिक मूल्य :— ६) रु०

एक अङ्क का :— १) रु०

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६ मार्च १९५४ अङ्क ३

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

प्रबन्ध सम्पादक

हरिकृष्ण पुरोहित एम. ए.

संचालक

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

अनुक्रम

उपेमसि
जगन्नाथ एम. ए. १

वह तारिका
सुरेन्द्रमोहन मिश्र ५

गीत
विद्यावती मिश्र ७

डालर से महँगा
कश्चित् ८

देवनागरी-लिपि
डा० रघुवीर,
एम. ए., पी एच. डी., डी. लिट्., एट् फिल. ९

गणतन्त्रों की परम्परा
भगवतशरण उपाध्याय १४

जिन्दा दिलों का कवि बायरन
घनश्याम सेठी १६

धर्म की सामाजिक परिभाषा
आदित्य मिश्र २४

पूर्वी अफ्रीका में प्रवासी भारतीय
उषर्बुध आर्य २८

गृह समस्या
रामगोपाल शुक्ल एम. ए. ३३

एक दिलचस्प कविता
अर्धेन्द्रकुमार गंगोपाध्याय ३६

जानते हो कौन-सा वह देश है ?
मोहन वुल्फ गाङ्ग फौन गेटे अनु० प्रेमकिशोर ४०

जैन साहित्य में रामकथा
अगरचन्द नाहटा ४१

भोजपुरी कहावतें
अनवर आगेवान ४८

'अयोध्याकाण्ड' का तुलनात्मक अवलोकन
हनुमच्छास्त्री एम. ए. 'अयाचित' ४९

विशेष संवाददाता (कहानी)
अनन्तगोपाल शेवड़े ५४

फाइल (एकांकी)
कैलाश शर्मा ५७

कला चर्चा
विश्वनाथ मुकर्जी ६१

चिट्ठी-पत्री ६२
विद्याधर शास्त्री, कीर्तिकान्त, वि. भ. कोलते, हरिभजनलाल त्रिवेदी, जगदीशचन्द्र, ललित सहगल, ललिता देवी, धर्मवीर, डी. शान्ता एम. ए.

नीर-क्षीर ६७
सुवेता : शम्भुनाथ 'शेष', स्थायी प्रेम : मेरी स्टोप्स, वेलि क्रिसन रुक्मिणी री : आनन्द प्रकाश दीक्षित, आलोचना, इतिहास तथा सिद्धान्त : डा० एस. पी. खत्री, जय दोल : अज्ञेय, अवन्तिका : लक्ष्मीनारायण सुधांशु

सामयिक ७३
[१] एण्टनी पैविश्रोविच चेखोव
[२] इंग्लैण्ड में राजनीतिक उपन्यास
[३] यक्षिणी, चातन और माडन

सम्पादकीय ७८
वंशीधर विद्यालङ्कार
हरिकृष्ण पुरोहित

चित्र : गाँव का दृश्य, प्रतीक्षा, ग्राम्य सौन्दर्य, रेशम पर रंगचित्रण
आल इण्डिया स्कूलस् ऑफ आर्ट प्रदर्शिनी के सौजन्य से।

आल इण्डिया स्कूल्स ऑफ आर्ट प्रदर्शिनी १९५४

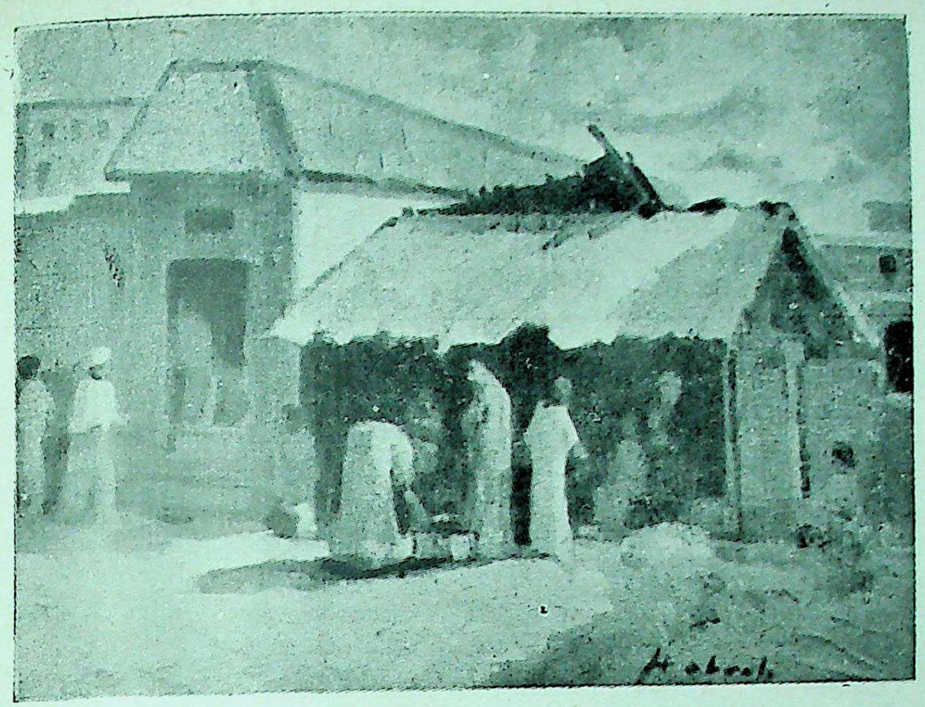

गाँव का एक दृश्य चित्रकार : एन. ए. रहमान

गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट, हैदराबाद द.

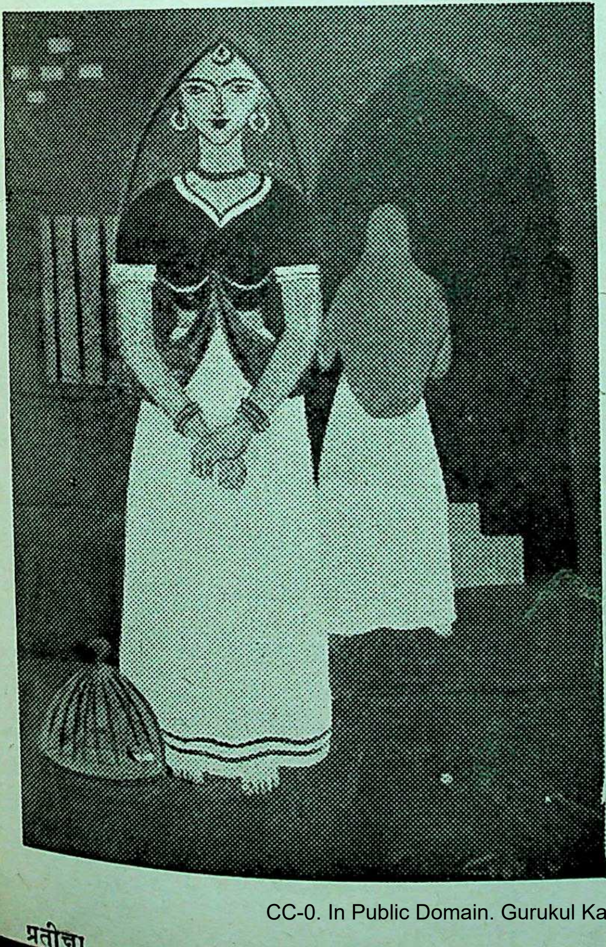

प्रतीक्षा चित्रकार : ओ. पी. गुलाटी

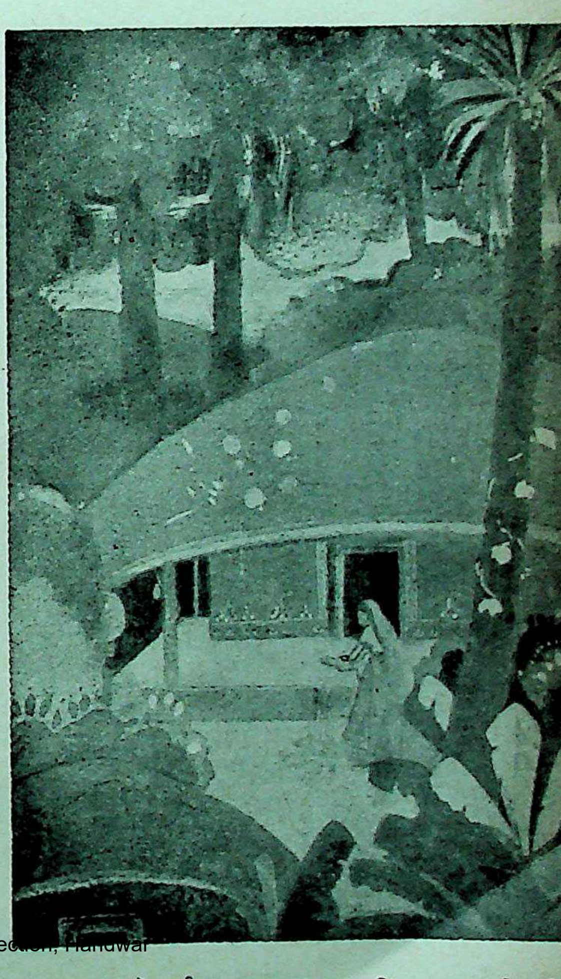

ग्राम्य सौन्दर्य चित्रकार : के.

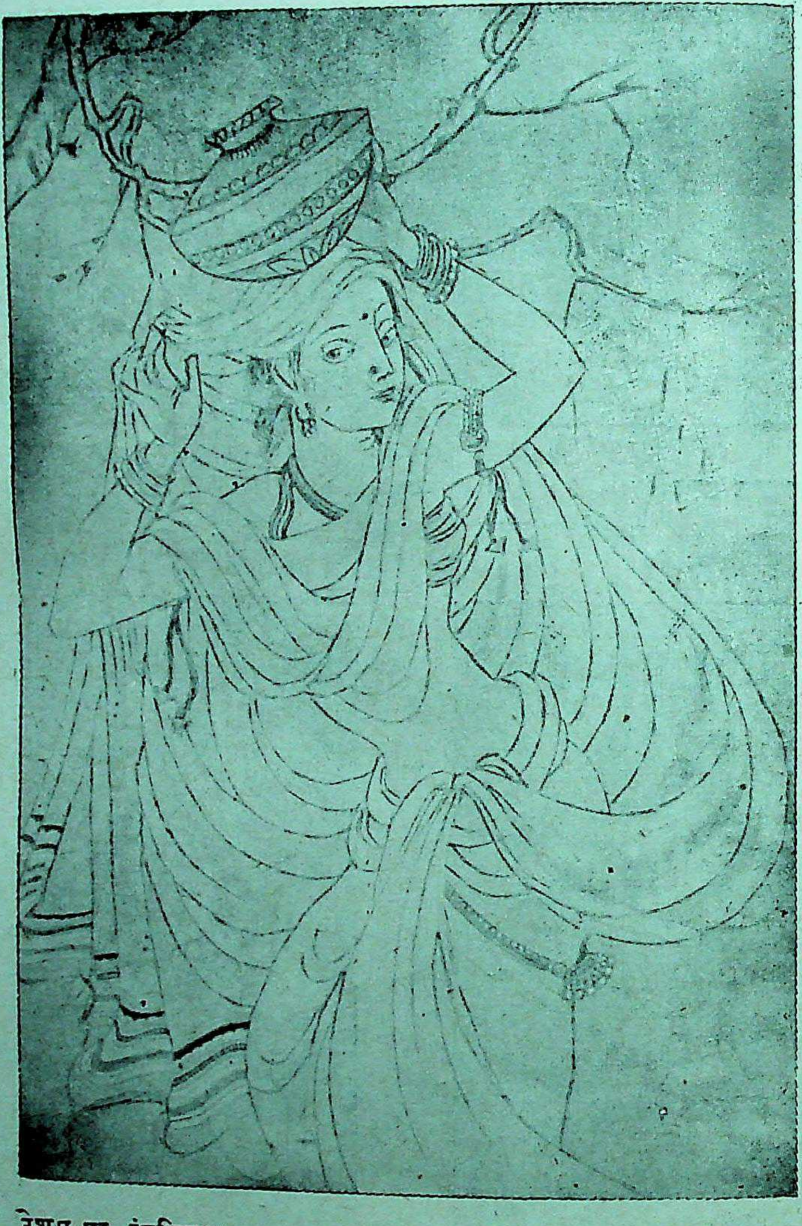

रेशम पर रंगचित्रण

चित्रकार : कुमारी शांता गुह

शारदा उकील स्कूल ऑफ़ आर्ट, दिल्ली

आल इण्डिया स्कूलस् ऑफ आर्ट प्रदर्शिनी, १९५४ में प्रदर्शित

S. NALANDKER

अजन्ता

वर्ष ६ मार्च १९५४ अङ्क ३

उपेमसि

ऋषि : मधुच्छन्दा
देवता : अग्निः
छन्द : गायत्री
स्वर : षड्जः

उप त्वाऽग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥

(ऋक् १, १, ७. साम पूर्वार्चिक १, १, ४.)

आ रहा हूँ पास तेरे !

मैं समझता था कि यह दिन रात का है चक्र निर्दय
मैं समझता था कि यह करता सभी को मृत्यु में लय
प्रश्न उठता था कि है यह कौन क्रीड़ा, कौन अभिनय
जान पर आई यहाँ बन और तुमको सुख दयामय

रात दिन, संध्या सबेरे,
आ रहा हूँ पास तेरे ॥

अब खुला, मैंने स्वयं यह शोक अभिनय देव खेला
पाल करके पास अपने इन्द्रियों का यह झमेला
किन्तु तेरी नित्य की संयोजिका यह सन्धि बेला
छेड़ जाती है मुझे एकान्त में पा कर अकेला
झिलमिलाते मुँह अंधेरे
आ रहा हूँ पास तेरे!

अब समझने लग गया कुछ कुछ मगर तेरे इशारे
हैं भवन तेरे वहीं उस पार से भी दूर न्यारे
आज तक जिनके निकट पहुँचे न यह रवि चंद्र तारे
रात दिन की सीढ़ियाँ ले जा रहीं उनके किनारे
तू जिन्हें स्वयमेव घेरे
आ रहा हूँ पास तेरे!

जानता हूँ सीढ़ियाँ भी, सीढ़ियाँ हैं यह निराली
है कहीं लाली उषा की, है कहीं पर रात काली
है कहीं रंगीन आशा, है कहीं नैराश्य वाली
है कहीं पर वास्तविक कुछ, है कहीं पर स्वप्न खाली
हैं अनोखे यह बसेरे
आ रहा हूँ पास तेरे!

सीढ़ियाँ यह मृत्यु-सी बिलकुल कहीं टूटी हुई हैं
यह कहीं बिगड़ी हुई तक़दीर-सी फूटी हुई हैं
पददलित हैं रूढ़ि-सी, अरमान-सी लूटी हुई हैं
यह भविष्यत्-सी कहीं पर सर्वथा छूटी हुई हैं
कल्पना से भी परे रे
आ रहा हूँ पास तेरे!

76441

बेड़ियाँ सी प्रलय और विराम के पद भी जकड़ कर
ये अनोखी सीढ़ियाँ ले जा रहीं सब को निरन्तर
हैं पुरातन की मगर विद्युत् भरे अतुलित चपलतर
आज कल के यन्त्र से जाती कहीं हैं और ऊपर
सब तरफ़ से पीठ फेरे
आ रहा हूँ पास तेरे !

राह में कुछ दूर तक ही धूल से यह धूसरित हैं
इस तरह सामान्य जन से ये न आगे पददलित हैं
किन्तु तब यह ज्योति ही में हैं ढली छवि में निहित हैं
और पग पग पर नई मंज़िल सदृश करती चकित हैं
सब तरफ़ मोती बिखेरे
आ रहा हूँ पास तेरे !

फिर न संध्याएँ उषाएँ इस तरह विष घोलती हैं
फिर न इस निर्दय तरह से हृदय स्नेह टटोलती हैं
फिर न पत्थर-सी बनीं कुछ भी न हिलती-डोलती हैं
फिर नहीं मुँह फेर लेतीं किन्तु हँसती बोलती हैं
और रहतीं डाल डेरे
आ रहा हूँ पास तेरे !

आज ही से अग्रणी हे अग्नि दुस्साहस करूँगा
रात दिन की इन अपरिमित सीढ़ियों पर मैं चढ़ूँगा
पैर दायाँ मैं दिवस पर रात पर बायाँ धरूँगा
हर क़दम पर मैं सजग रह कर सदा आगे बढ़ूँगा
जानता हूँ, हैं लुटेरे
आ रहा हूँ पास तेरे !

है सुना इन सीढ़ियों पर से बड़े गुणवान फिसले
है सुना इन सीढ़ियों पर से महर्षि महान फिसले

और इस हद तक सुना स्वयमेव शिव भगवान फिसले
किन्तु निज उद्देश्य से दिन रात के न विधान फिसले
यह न मेरे यह न तेरे
आ रहा हूँ पास तेरे !

किन्तु यह होते हुए भी मैं सदा बढ़ता रहूँगा
क्या हुआ इससे कि मैं इस राह में गिरता रहूँगा
क्या हुआ इससे कभी जीता कभी मरता रहूँगा
नित्य गिर गिर कर उठूँगा, मैं सदा चढ़ता रहूँगा
प्रति अहो निशि के सबेरे
आ रहा हूँ पास तेरे !

जानता हूँ भेंट देने की सदा से रीति प्रचलित
जानता हूँ बुद्धि मेरी है असीम नितान्त परिमित
और सब सत्कर्म भी मेरे अधूरे और खण्डित
किन्तु फिर भी कर रहा हूँ मैं इन्हें तेरे समर्पित
सिर झुकाए लाज से रे
आ रहा हूँ पास तेरे !

कर्म भी तुझको समर्पित, कर्म की यह कामना भी
भाव भी तुझको समर्पित, भाव की यह भावना भी
मुक्ति भी तुझको समर्पित, मुक्ति की यह साधना भी
अन्त की भी सिद्धि अर्पित, आदि की प्रस्तावना भी
और क्या है पास मेरे ?
हे चिरन्तन स्वप्न मेरे !

आ रहा हूँ पास तेरे !

—जगन्नाथ

२५, रामतीर्थ नगर,
लखनऊ, पो. बॉ. १२

१९५४

वह तारिका

रात जाड़ों की
कि मैं सोआ हुआ था
स्वप्न की सुकुमार
कोमल बाहुओं में
तभी जैसे मैं
किसी की चीख़ को सुन कर
गया जग
आ गया बाहर
लिए औत्सुक्य मन में
व्यथित-सी ध्वनि में
तभी सर-सर --
हवा बोली
हृदय को वेध कर :
"हर रोज़ की यह बात है
बिलकुल नई कोई नहीं
ये रात भी रोई नहीं
सुन कर किसी की चीख़ को ।"
पर चाँद की आवाज़ भर्राती हुई
आकाश का उर चीर कर आती हुई
बोली कि :
"कवि तेरी धरा ने
एक मेरी तारिका को
खींच अपनी बाहुओं में धर लिया है
बस उसी की याद में
सारे सितारे रो रहे हैं"
"ओह मेरे चाँद
तुम कितने दुखी हो !"
आह भर कर
कहा मैंने
और तब फिर
स्वप्न की सुकुमार

लतिका-सी
भुजाओं में पड़े देखा
कि वह मृदु तारिका
मेरे बगीचे के
हरे मैदान में ही गिर गई है
और जब फिर
प्रात की पहली किरण ने
सामने के नीम के
तरु की खड़ी
उच्चस्थ डाली का
किया चुम्बन
तभी मेरे बगीचे के
हरे मैदान में
एक कलिका
फूल कर बोली, कि
"मैं वह तारिका हूँ
रात के नीरव भरे
पहले प्रहर में
जो धरा की बाहुओं में
आ गई थी
टूट कर आकाश से"
और कलिका के कलित
कोमल कपोलों से
ढुलक कर
अश्रु की दो बूँद
धरती पर गई गिर
मैं न पाया जान
ये आँसू
लिए थे हर्ष
अथवा शोक अन्तर का

काव्य कुटीर,
चन्दौसी (उ. प्र.)

—सुरेन्द्रमोहन मिश्र

१६५४

गीत

चलते चलते चरण थके पर लक्ष्य न अब भी पास है
समझ नहीं पाती क्यों फिर भी यह मन नहीं निराश है

जीवन संध्या पर सूनापन घिरता चारों ओर से
पथ बंदी होता जाता है घने तिमिर की डोर से
नीड़ मौन हो गए, विश्व का कोलाहल निष्पंद है
सब कुछ सुप्त-प्राय पर केवल नीरवता स्वच्छंद है

अर्ध-खुले यह लोचन मेरे भय से त्रस्त निहारते—
पर तुम मेरे साथ अभी भी मुझ को यह विश्वास है

नभ पर चढ़ा निशीथ कह रहा तेरा साहस व्यर्थ है
मुरझाई कौमुदी कह रही संभव बहुत अनर्थ है
ढलता चाँद इशारा करता तू पदगति को मोड़ दे
और तीसरा प्रहर मनाने लगा कि तू हठ छोड़ दे

पर मैं तो वह कोकिल जिसका पतझर ही आधार है—
श्वासें स्वयं उड़ान अकेला नीड़ बना आकाश है

जहां कि अंतिम चरण पड़ेगा, रुक जाएगी साधना
शीश झुकेगा, हो जाएगी शांत युगों की भावना
बन जाएगी अमिट अधूरी रह कर मन की कामना
पत्थर बन कर मूर्तिमान हो जाएगी आराधना

मैं, मेरे पूजित का मंदिर, मौन नियति की चेतना—
साधन दुर्लभ किन्तु सिद्धि का मिला मुझे आभास है

बशीरतगंज,
लखनऊ

—विद्यावती मिश्र

डालर से महँगा

समय कुछ हुआ—अमरीका के
अति लोकप्रिय एक पत्र में

लेख छपा है नहरू जी पर
"सारा सोना, सारे डालर
अमरीका के यदि हम लाकर
नहरू जी पर करें निछावर

तो भी उन्हें खरीद न सकते
उनके दिल को जीत न सकते"

इसीलिए भारत का रुपया
डालर से है कितना महँगा !

हैदराबाद —कश्चि

देवनागरी-लिपि

देवनागरी हमारी राष्ट्रलिपि है। पिछली १० शताब्दियों से यह लगभग इसी रूप में चली आई है। यदि हम और १५०० वर्ष पूर्व चले जाएँ तो हम भारत की प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी तक पहुँच जाते हैं। लंका के भी पुरातन शिलालेख ब्राह्मी में ही उपलब्ध होते हैं। ब्राह्मी में लिखे हुए अशोक के शिलालेख नैपाल, उत्तर-प्रदेश, उड़ीसा, गुजरात और मैसूर आदि में उपलब्ध हुए हैं।

२५०० वर्षों के इतिहास में ब्राह्मीलिपि के अनेक रूप बने। गुप्तकाल तक इन रूपों में बहुत विषमता नहीं आई। किन्तु गुप्तकाल के पाँच छः शताब्दियों पश्चात् इन रूपों में इतना अन्तर आ गया कि एक लिपि के जाननेवाला व्यक्ति दूसरी लिपि को नहीं पढ़ सकता था।

१० वीं शताब्दी से भारत की लिपियों के आधुनिक रूप का प्रारम्भ हुआ। किन्तु कन्नड़ और तेलुगु का भेद बहुत अर्वाचीन है। शिरोरेखाहीन गुजराती का आविष्कार तो १६ वीं शताब्दी में किया गया। उड़िया लिपि भी बहुत पुरानी नहीं। इनके विपरीत अनेकों भारतीय प्राचीन लिपियाँ धीरे धीरे अप्रयोग के कारण लुप्त हो गईं। जैसे सिन्धी। काश्मीर में शारदा का प्रयोग आज केवल ज्योतिषी करते हैं।

भारत की आधुनिक राजनैतिक सीमाएँ भारतीय लिपियों की सीमाएँ नहीं हैं। भारत के उत्तर में तिब्बत देश की लिपि का आविष्कार काश्मीर की लिपि से किया गया। आज भी यह लिपि नागरी से इतना अधिक साम्य रखती है कि नागरी जाननेवाला व्यक्ति इसको आधे घण्टे में पढ़ना प्रारम्भ कर देता है।

चीन की अपनी लिपि संसार की विचित्रतम लिपि है। इसमें स्वर और व्यंजनों के आधार पर नहीं लिखा जाता है। आधारभूत २१५ चिह्न हैं। ये चित्र-रूप मूलाक्षर हैं। इन मूलाक्षरों के अतिरिक्त अन्य सहस्रों अक्षर हैं जिनका मूलाक्षरों से संयोग करके प्रत्येक शब्द लिखा जाता है। सामान्य रूप से ऐसा समझना चाहिए कि प्रत्येक शब्द के लिए नया चित्र जानना और बनाना पड़ता है। चीनी लिपि ब्राह्मी जितनी ही प्राचीन है किन्तु पिछले २००० वर्षों में इसमें विशेष अन्तर नहीं हुआ है। बुद्ध धर्म के सम्पर्क से भारतीय लिपि चीन में गई और बौद्ध तथा तान्त्रिक मन्त्रों के लिखने के लिए चीन में बौद्ध भिक्षु और आचार्य भारतीय लिपि का प्रयोग करते रहे। ८ वीं शताब्दी के पश्चात् भारत का उत्तर पश्चिम मार्ग मुसलमानों ने रोकना आरंभ किया और ११ वीं शताब्दी में यह मार्ग लगभग सर्वथा रुक गया। इसीलिए चीन के विहारों में वर्त्तमान प्रयुक्त भारतीय लिपि ७ वीं ८ वीं शताब्दी के समीप की लिपि है। एकाध घण्टा परिश्रम करने से ही देवनागरी के ज्ञाता इसको अच्छी प्रकार पढ़ सकते हैं।

इस लिपि का नाम सिद्धम् है। इसका प्रयोग मंगोलिया के गाँव गाँव में होता रहा है। मंचूरिया और कोरिया होते हुए सिद्धम् लिपि ने जापान में प्रवेश किया। जापान में इसका प्रयोग स्थान स्थान पर मिलता है। कोई मन्दिर ऐसा नहीं जहाँ अवलोकितेश्वर का वाची आँखों को आकर्षित न करता हो।

मध्य एशिया १० वीं शताब्दी तक अनेक भारतीय लिपियों का प्रयोग करता रहा। इस्लाम के प्रसार के पश्चात् वहीं अरबी और फ़ारसी आरम्भ हुई।

भारत के पूर्व में बर्मा की लिपि ब्राह्मी की पुत्री है। बर्मा से पूर्व की ओर श्याम, कम्बोज आदि की लिपियाँ देवनागरी की बहिनें हैं। किन्तु पिछले ८०० वर्षों से सम्पर्क न होने के कारण इनके और देवनागरी के रूप में समता ढूँढ़नी पड़ती है जो स्थूल दृष्टि से दिखाई नहीं पड़ती।

छठी से बारहवीं शताब्दी तक कम्बोज देश की राष्ट्रभाषा संस्कृत थी। इस तथ्य का भारतवर्ष के प्रत्येक बालक और बालिका को पता होना चाहिए। बारहवीं शताब्दी में भारतवर्ष स्वयं अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा और तभी से उसके विदेशी सम्पर्क बन्द हुए।

जावा, सुमात्रा, बालि आदि द्वीपों की लिपियाँ भी ब्राह्मी की पुत्रियाँ और देवनागरी की बहिनें हैं। जावा की नवीं शताब्दी की पाषाण मूर्तियों पर देवनागरी खुदी हुई मिलती है। यह देवनागरी का रूप बिहार से गया हुआ प्रतीत होता है। भारतवर्ष के अनेकों साम्राज्यों की

जन्मदात्री मगध की वीरभूमि रही है।

ब्राह्मी और उसकी पुत्रियों के विस्तार का सिंहावलोकन करने के पश्चात् हम इन लिपियों के विशेष लक्षणों की ओर आते हैं। ये लक्षण भारतीय लिपियों की आत्मा हैं। इनको बनाए रखना अपनी आत्मा की रक्षा करना है।

सर्वप्रथम वर्णमाला का स्वर और व्यंजनों में विभाजन तथा इनका स्थान और प्रयत्न के अनुकूल क्रमविन्यास। इस विशेषता को बुद्धिपूर्वक ग्रहण करने के लिए हमें दूसरी वर्णमालाओं की ओर दृष्टिपात करना होगा। संसार में मुख्य रूप से चीनी जापानी वर्ग के अतिरिक्त अरबी-फ़ारसी तथा यूनानी-रोमीय वर्ग हैं।

अरबी-फ़ारसी और यूनानी-रोमीय वर्गों की वर्णमालाएँ सर्वथा ही वैज्ञानिक क्रमहीन हैं। स्वर और व्यंजनों का कोई क्रम नहीं।

इन लिपियों में इतनी विभिन्न भाषाएँ लिखी जा रही हैं कि वैज्ञानिक तथा पूर्ण समालोचना के लिए प्रत्येक लिपि और प्रत्येक भाषा पर अलग विचार करना चाहिए। प्रस्तुत लेख में हम पश्तो से लेकर आंग्ल तक सभी भाषाओं को न ले कर केवल दिग्दर्शन के लिए रोमीय लिपि और आंग्ल भाषा को ही लेंगे।

ह्रस्व और दीर्घ का स्वरभेद करने के लिए भी रोमीय लिपि में आंग्ल-भाषियों को अनेक कठिनाइयाँ पड़ती हैं। दीर्घ ई के लिए Feet में ee, Sieve में ie, beat में ea, event में प्रथम e, surfeit में ei, Od,enology (मदिराविज्ञान) में oe, aegis (शरण) में ae इत्यादि।

ध्वनि-विज्ञान के विद्यार्थी भारतीय वर्णमालाओं के क्रम के महत्व को भलिभाँति जानते हैं।

विषयान्तर होने से यहाँ इसका निर्देश मात्र करना पर्याप्त है। अल्पप्राण और महाप्राण स्पर्शवर्ण हमारी लिपियों की विशेषताएँ हैं। यूनानी में भी ख थ फ विद्यमान थे। हमारे यहाँ अघोष और घोषवान् दोनों प्रकार के ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ विद्यमान हैं। यह पूर्णमाला अन्य लिपियों में विद्यमान नहीं। इसी प्रकार कण्ठ्स, तालव्य और मूर्धन्य नासिक्य वर्ण हमारी विशेषता हैं। क वर्ग आदि पाँचों वर्गों के साथ अपना विशेष अनुनासिक केवल भारत की ही लिपियों में विद्यमान है। इनमें से ञ की व्यवस्था स्पेन आदि की भाषाओं में भी करनी पड़ी। किन्तु आंग्ल और फ्रेंच आदि में तो ऋ g आदि साहचर्य से इनकी अभिव्यक्ति की गई है। King में न और ग का वाची नहीं किन्तु शुद्ध ङ का वाची है इस सिद्धान्त को न जान कर आज हिन्दी में किंग Kin और विण्ड Wind के स्थान पर किन्ग और वि लिखे जा रहे हैं। भला ङ के साथ न कैसे? हिन्दी जन समझती है कि अंग्रेज़ी में केवल दो ही अनुनासिक न औ म हैं। यह उनकी रोमीय लिपि का दोष है। कि देवनागरी में लिखते समय तो हमको उनका लिपयन्तर करके उच्चारण का द्योतन ही करना चाहिए। त Ghost को उच्चारण के अनुसार गोस्ट, न कि घो लिखना चाहिए।

भारतीय लिपियों की दूसरी विशेषता स्वर मात्र हैं। शब्द के आरम्भ में तथा स्वर के पश्चात् तो स का पूर्ण रूप लिखा जाता है किन्तु व्यंजन के पश्चा स्वर का पूर्ण रूप न लिख कर उसका छोटा-सा प्रती मात्रा के रूप में लिखा जाता है। ये मात्राएँ ऊपर नी तथा पीछे और आगे चारों ओर लगती हैं। इन मात्रा के प्रयोग से भारतीय लिपियों में विशेष गुण आया है लिखने में जो बचत हुई है उसका अनुमान आ इस बात से कर सकते हैं कि महाभारत जैसे शब्द अंग्रे में Mahabharata ग्यारह वर्णों से लिखा जा र है। भारतीय लिपि में मात्रा व्यंजन के साथ मिल जा है। अतः नागरी में ग्यारह के स्थान में केवल पाँ लिखित चिह्न रह गए। देवनागरी के एक वर्ण म आंग्ल मे दो वर्णों से द्योतन करना पड़ा।

हमारी भाषाओं में ह्रस्व अ की प्रधानता है इसलिए इसकी मात्रा न रख कर केवल इसके अभा का ही द्योतन करने के लिए भारतीय लिपियों ने विशे व्यवस्था की है।

जब व्यंजन के परे दूसरा व्यंजन हो तब ब्राह्मीलि में दूसरा व्यंजन पहले के नीचे लिखा जाता था। य पद्धति अनेक ब्राह्मी की पुत्रियों में अभी तक विद्यमान है इस पद्धति से भी जहाँ स्वर के अाव का स्पष्ट निर्देश है वहाँ स्थान की बचत भी होती है।

आंग्ल की वैज्ञानिक परिभाषा में भारतीय लिपि को Syllabic scripts कहा जाता है। Syllab का अर्थ है अनेक व्यंजन और उनके साथ ए स्वर। हमारी लिपि केवल एक दो वर्ण लिखने में ही

समर्थ नहीं किन्तु उसका एकक Syllable है। पारिभाषिक प्रयोग में Syllable को अक्षर कहते हैं। हमारी लिपि केवल वर्णात्मक नहीं अक्षरात्मक है। इसका अर्थ हम पूर्वनिर्दिष्ट उदाहरण से स्पष्ट करेंगे। यदि हमारी लिपि वर्णात्मक होती तो महाभारत इस प्रकार लिखा जाता—म अ ह आ भ आ र अ त अ :

चालीस पचास वर्षों से भारत में मुद्रलिख (TypeWriter) आए। आगे चलने से पूर्व मैं शब्द की व्याख्या कर दूँ। नाम में यन्त्र की विशेषता निहित है। लिखने का जो काम व्यक्ति कलम से करता था, वह इस यन्त्र द्वारा मुद्र अथवा छाप लगानेवाले अक्षर से होने लगा। अतः इसका नाम मुद्रलिख "मुद्र से लिखने वाला" अथवा Typewriter हुआ। थाई देश की भाषा में इसको अंगुलिलिख कहते हैं। अंगुलिलिख फ्रेंच भाषा के Dactylo-graph में Dactylo अंगुलि graph-लिख का प्रतिशब्द है। कार्यालयों में इनका प्रयोग अधिकाधिक होने लगा। इनके कारण कार्य में अनेक प्रकार की सुविधाएँ हुईं, शीघ्रता, सुवाच्यता अनेक प्रतिलिपिता आदि।

हिन्दी भाषियों को भी इस यन्त्र के प्रयोग की आवश्यकता अनुभव होने लगी। अंग्रेजी निर्माताओं ने अंग्रेजी अक्षरों के स्थान में नागरी के अक्षर लगा दिए। किन्तु यह अक्षर संख्या में आवश्यकता के लिए पर्याप्त न थे। यन्त्रों के निर्माताओं ने देवनागरी के पूर्ण अक्षरों को यन्त्रों में स्थान देने के प्रति अक्षमता प्रकट की। हिन्दी प्रयोक्ता यन्त्र-संसार से अधिकांश अपरिचित थे। उन्होंने विदेशी यन्त्र निर्माताओं की अक्षमता को स्थायी और अटल समझा। हिन्दी संसार में सामान्यतः विचार फैल गया अथवा फैलाया गया कि नागरी लिपि में परिवर्तन होना आवश्यक है।

मुद्रलिखों के पश्चात् एकमुद्र (Monotype) और तदनु पंक्तिमुद्र (Linotype) यन्त्रों के आयात से यह समस्या और भी जटिल दिखाई पड़ी। इस क्षेत्र में अन्तिम आविष्कार दूरमुद्रक (Teleprinter) है। जिसमें केवल ६४ अक्षरों तथा चिन्हों का स्थान है।

इस प्रसंग में आशुलिपि (Shorthand) और प्रवाहीलिपि (Cursive hand) शिकस्ता का उल्लेख भी अनिवार्य है। प्रवाहीलिपि के लिए हिन्दी जगत् में एक ओर बंगीय पद्धति का अनुसरण किया गया। दूसरी ओर गुजराती की शिरोरेखाहीनता का आशुलिपि के लिए पिट्मैन पद्धति के दो तीन रूपान्तर किए गए।

किन्तु यन्त्रों के क्षेत्र में कोई सन्तोषजनक आविष्कार नहीं हुआ। भारतीय वैज्ञानिक अधिकांश पुस्तकों का अध्ययन करते रहे हैं। यन्त्रों के निर्माण में उनकी दक्षता और अनुभव बहुत सीमित हैं। विश्व-वियालयों का यन्त्रनिर्माण से कोई सम्बन्ध ही नहीं। प्रत्येक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में यन्त्र विदेश से बन कर आ रहे हैं। भारतीयों को यह उत्साह ही नहीं कि एक २ यन्त्र हमारे वे हाथ का बना हुआ हो। विज्ञान और यन्त्र उनके जीवन का लक्ष्य नहीं। वे केवल उदरपूर्ति के साधन हैं। फिर भी दस बीस भारतीयों ने इस ओर अपना समय दिया। इनको शासन अथवा व्यापारियों का सहारा न था। विदेशी यन्त्रों में ही इन्होंने उसको छोटे-छोटे परिवर्तन करके नागरी लिपि के लिए इनको अधिक उपर्युक्त बनाने का यत्न किया। किन्तु मूल समस्या वैसी की वैसी खड़ी रही। विदेशी मुद्रलिखों में ८४ से ९२ तक के वर्णों का स्थान है। इससे अधिक का नहीं। किन्तु नागरी लिपि के पूर्ण प्रयोग के लिए हमको अधिक वर्णों की व्यवस्था चाहिए। जर्मनी में इस दृष्टि से नागरी नाम का एक यन्त्र बनाया गया किन्तु वह इतना बेढंगा था कि चल न सका। तत्पश्चात् उस दिशा में यत्न बन्द हो गए और एकमुद्र तथा पंक्तिमुद्र जैसे महंगे यन्त्रों के आयात से नागरीलिपि को ही सुधारने का यत्न किया जाने लगा। विदेशी व्यापार को यह लाभकारी था।

साहित्य समितियों के अतिरिक्त प्रशासनों ने भी इस ओर ध्यान दिया। बम्बई, उत्तरप्रदेश और केन्द्रीय प्रशासन की ओर से समितियाँ नियुक्त हुईं। देवनागरी के परिवर्तन पर विचार किया गया। परिवर्तन की दिशा संकोच की ओर गई, विस्तार की ओर नहीं। और इस परिवर्तन को परिवर्तन अथवा संकोच न कह कर सुधार का नाम दिया गया जिसका अर्थ यह हुआ कि जो परिवर्तन किया जा रहा है वह दोषों का निवारण है। वास्तव में दोष अथवा अदोष का प्रश्न ही नहीं है।

विदेशियों ने अपनी २६ अक्षरोंवाली लिपि के लिए ६४,८८,९० और २५२ वर्णों तक के यन्त्र बनाए। हमें अपनी ४५ शुद्ध वर्णों की तथा अनेक संयुक्त वर्णों की लिपि के लिए १२० से आरम्भ करके ८०० तक वर्णोंवाले यन्त्रों का आविष्कार तथा निर्माण चाहिए। हम इस

पर निर्भर क्यों रहें कि विदेशी ही निर्माण करें। चीनी-जापानी लिपि अत्यधिक विस्तृत है। उन्होंने अपना मुद्रलिख ३००० अक्षरोंवाला बनाया है। यन्त्र दर्शनीय है और मूल्य है केवल ८०० रुपए।

किसी भी समिति ने शासन को अभिस्ताव नहीं किया कि भारतीय लिपियों के लिए मुद्रलिख आदि यन्त्र हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल हों और उनके आविष्कार के लिए भारतीय शासन की ओर से वैज्ञानिक नियुक्त किए जाएँ, और अपेक्षित मात्रा में भारत में ही उनका निर्माण हो। भारत का कोटिशः धन विदेशों में जाने से बचे और भारत में एक नए धंधे का आरम्भ हो।

लिपि का संकोचन किस प्रकार हो जिससे कि विदेशों में निर्मित यन्त्र यहाँ यथापूर्व बिकते रहें, इसी का आग्रह किया गया। केन्द्रीय समिति ने केवल एक स्वर अ के रूप को रख कर अन्य स्वरों के स्वतन्त्र रूपों को उड़ाने का आग्रह किया। मनोविज्ञान, बच्चों, जंगलियों और ग्रामीणों की शिक्षा आदि के अनेकों कारण दिए गए। ख और र तथा व में अन्तर होना चाहिए; इसके लिए भी सुझाव आए। र का आधुनिक रूप त्याग दिया जाए। क्ष, ज्ञ, त्र और अन्य संयुक्त वर्णों के स्वतन्त्र अथवा पिण्डीभूत रूपों का बहिष्कार हो, इत्यादि परिवर्तन अथवा सुधार आवश्यक बतलाए गए।

स्वर-मात्राएँ अक्षरों के ऊपर अथवा नीचे न लगाएँ केवल आगे की ओर लगाएँ। ह्रस्व इ की मात्रा बाईं ओर से दाईं ओर को हटा दी जाए। ये विचार बलपूर्वक रखे गए।

इन सब का परिणाम क्या होगा यह किसी ने नहीं विचारा।

साहित्य की दृष्टि से परिणाम यह होगा कि आज तक जो साहित्य नागरी लिपि में प्रकाशित हुआ है वह भावी पीढ़ियों के लिए अपाठ्य हो जाएगा। यह परिणाम भयंकर है। इसी भयंकरता के कारण योरोप की किसी लिपि में परिवर्तन का विचार भी किसी के मन में नहीं आता। अनेक दोषपूर्ण होते हुए भी अपने ज्ञान विज्ञान की परम्परा को अविच्छिन्न रखने के लिए लिपि को जैसे का तैसा रहने दिया जा रहा है। धनी से धनी और उद्योगी से उद्योगी शासन और जनता भी १५० वर्ष के प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य का पुनः नई लिपि में मुद्रण करने में असमर्थ होगा।

देवनागरी केवल हिन्दी की ही लिपि नहीं। इसमें नैपाली, मराठी और प्राकृत तथा संस्कृत के ग्रन्थ भी ए सहस्र वर्षों से लिखे जाते रहे हैं। नागरी का अस्तित्व केवल हिन्दी पर ही निर्भर नहीं।

आश्चर्य की बात है कि जितने आघात नागरी प हुए हैं वे भारत की अन्य लिपियों पर नहीं हुए। यदि कुछ समय के लिए अथवा किसी विशेष प्रयोजन के लिए कोई परिवर्तन कभी लिपि में किया भी जाता है तो यह नियम तो नहीं बनाया जाता कि वह सर्व कालिक और सार्वत्रिक हो।

ऐतिहासिक दृष्टि से नागरी लिपि अकेली नहीं है। वह एक अभिज्ञात कुल की लिपि है। उसका सम्बन्ध गौरव और बन्धुता प्रकट करनेवाला है। ह्रस्व इ 'ि' की मात्रा जैसी नागरी में है वैसी ही गुरुमुखी, गुजराती और बंगला में है। इसी प्रकार संयुक्त स्वर्ण की पद्धति लगभग सभी स्वदेशी और विदेशी ब्राह्मी की पुत्रियों में विद्यमान है।

आर्थिक दृष्टि से लिपि के परिवर्तन का अर्थ यह होगा कि प्रत्येक मुद्रणालय की विद्यमान सामग्री परिवर्तन के अंश तक व्यर्थ हो जाएगी।

जिस समय नागरी के भक्त अपनी लिपि को भारत की एकमात्र लिपि बनाने का विचार कर रहे हैं उस समय यह और भी अधिक आवश्यक है कि नागरी के स्वरूप को विकृत न किया जाए। नागरी लिपि का प्रचार संस्कृत के द्वारा भारत के समस्त प्रान्तों में हुआ है। इसका प्रचार भारत से बाहर अनेक सभ्य देशों के विद्वानों में है। नागरी के मुद्रणालय जापान, रूस, जर्मनी, इटली, फ्रांस, हालैंड, इंग्लैंड आदि पश्चिमी देशों में विद्यमान हैं। इस विस्तार को हम नागरी के भावी प्रचार के लिए पूर्णतया प्रयोग में लाएँ। इसकी अवहेलना न करें।

पिछले नवम्बर मास में उत्तर-प्रदेश के मुख्य मन्त्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने अखिल भारतवर्षीय सम्मेलन बुलाया। इसमें बम्बई, बंगाल, हैदराबाद, मध्यप्रदेश, अजमेर, राजस्थान आदि के मुख्य मन्त्रियों ने भाग लिया। अनेक विद्वान् भी सम्मिलित हुए। डा० राधाकृष्णन् ने सभापति का आसन ग्रहण किया। दो दिन की चर्चा के पश्चात् अनेक छोटे मोटे निश्चय किए गए। कुछ नकारात्मक कुछ रचनात्मक।

मराठी और हिन्दी क्षेत्रों में प्रयुक्त भिन्न रूपों में से

एक-एक रूप लिया गया जैसे अ और झ मराठी के लिए। इसी प्रकार १५८९ अंकों के रूपों का भी निश्चय किया गया।

ह्रस्व इ 'ि' की मात्रा बाईं ओर से हटा कर दाईं ओर कर दी गई और उसका रूप तामिल के समान पाई रहित बनाया गया। यह रूप ब्राह्मी की अनेक पुत्रियों में मिलता है। आज दूरतम बलिद्वीप में भी यही रूप विद्यमान है। किन्तु इस परिवर्तन से नागरी लिपि को कोई लाभ हुआ हो सो संदिग्ध है। किन्तु परिवर्तन तो कुछ न कुछ करना ही था, इस छिपी हुई मनोवृत्ति का यह परिणाम है, अथवा इस मनोभावना की सान्त्वना है।

संयुक्त व्यंजनों के सम्बन्ध में पाईहीन वर्णों के नीचे हल् चिह्न लगाने का निश्चय किया गया। यदि यह निश्चय वैकल्पिक होता तब तो यह भारतीय परम्परा के अनुकूल था किन्तु यह हठ करना कि द्वार के स्थान में द्वार, राजेन्द्र प्रसाद के स्थान में राजेन्दर प्रसाद ही लिखा जावे सो यह लिपि के इतिहास और उसकी आत्मा के विरुद्ध है। जो उच्चारण दोष उर्दू जाननेवालों के हिन्दी उच्चारण में होता है उसी दोष की नींव अब डाली जा रही है। जिस प्रकार पश्चात् और जगत् के अन्तिम व्यंजन का हल् चिह्न प्रायः देखने में नहीं आता, उसी प्रकार द्वार दवार बन जाएगा और पंजाबियों के समान लोग राजेन्दर पढ़ा और बोला करेंगे। अरबी लिपि के अनेक स्वर चिह्न फ़ारसी लिपि में आ कर लुप्त हो गए। हल् चिह्न की भी वही दशा होती हुई दिखाई पड़ती है।

परिवर्तनों का सब से बड़ा दोष यह है कि अब तक जो यत्न यन्त्रों को नागरी लिपि के अनुकूल बनाने के लिए हो रहे थे, यह यत्न इस सम्मेलन के पश्चात् न होंगे ऐसी सम्भावना है।

हम यन्त्रयुग में रहते अवश्य हैं किन्तु अभी तक हम इसकी आत्मा से कोसों दूर हैं। हमें यन्त्रों पर विजय प्राप्त करनी है। लिपि के छोटे से क्षेत्र में हमने पराजय स्वीकार की!

मुझे आशा है और विश्वास है कि भारतीय जनता आज नहीं तो कल अपनी लिपि के ऐतिहासिक महत्व को अनुभव करेगी और तदनुरूप यन्त्रों के आविष्कार ही उसको सन्तुष्ट करेंगे। नागरी लिपि के यन्त्र भारत और एशिया की अन्य लिपियों के लिए भी उपयुक्त सिद्ध होंगे। रोमन लिपि के लिए बनाए हुए यन्त्रों की गति केवल आगे की ओर है, ऊपर, नीचे और पीछे की ओर नहीं। चतुर्मुखी गति वाले यन्त्र समस्त संसार के लिए उपकारी होंगे। इनका मूल्य और परिमाण आजकल के यन्त्रों की अपेक्षा अधिक न होना चाहिए। इनकी गति भी न्यून न होनी चाहिए। यन्त्रों से अपरिचित जगत् को यह मांग अटपटी-सी लगती है। वे इसको समझने में असमर्थ हैं। किन्तु आविष्कार के इतिहास को अध्ययन करनेवाले व्यक्तियों के लिए यह केवल स्फूर्तिमात्र है।

पुराना रेस्ट हाउस,
नागपुर

—डा. रघुवीर

यह मेरी अपरिवर्तनीय धारणा बन गई है कि इस संसार में सच्चे और वास्तविक सुख का अनुभव वही कर सकता है जिसने अपनी आत्मा की महानता को पहचान लिया है और जो सदा उसके निर्मल प्रकाश में अपने जीवन के मार्ग को ढूँढता है।

—लार्ड सेलिसबरी

गणतन्त्रों की परम्परा

फैले पहाड़ और मैदान, फैले आदिम जंगल, फैली गहरी घाटी में अपने आप खिल कर बिखर जानेवाले फूलों का अञ्चल, हरी घास का हाशिया---उन्मुक्त प्रकृति के खुले आंगन में बिखरी विभूतियाँ।

और उसमें जहाँ-तहाँ रक्त के लाल धब्बे। धब्बे पैरों के भी, पंजों के भी, ताजी टपकी बूंदों के भी। जब इन्सान अकेला था, शेर भी अकेला था। शेर के पंजे थे, उदर बिदार डालनेवाले नाखून थे, हड्डियाँ तोड़ देनेवाली दाढ़। इन्सान निहत्था। गुफाओं में चीख-पुकार, जंगल की गहनता में वेदना भरी करुण पुकार, हवा में उसकी बिखरती गूँज और पैरों की आहट। बीसों सैकड़ों पैरों की क्योंकि आदमी पुकार सकता था, उसने पुकारा था। शेर दुम दबा जाता और तब तक अपनी माँद से न निकलता जब तक आदमी की भीड़ छँट न जाती, आदमी फिर अकेला न हो जाता।

आदमी ने अपनी शक्ति पहचानी—इकाइयों के गुणन की शक्ति। अकेला वह कुछ न था, एक साथ सब कुछ। हॉब्स और रूसो की सामाजिक चेतना का धूमिल संसार उठ रहा था—हॉब्स की भरमी भूल से दूर रूसो की जनसत्ताक प्रेरणा के पास।

क़बीले जग चले। प्राची के गगन द्वार से उषा का फेंका आलोक क़बीलों का था, प्रतीची के आकाश पर बिखरी सोने की ललाई उनकी थी, आसमान और जमीन के बीच बहता स्वच्छन्द पवन उनका था, पृथ्वी पर अपने आप खिले फूल उनके थे, पेड़ों में लगे फल उनके थे, पौधों से झड़ता पका अन्न उनका था, जानवर मवेशी उनके, खुले चारागाह उनके, फैली जमीन उनकी। कबीलाई जीवन, क़बीलाई पञ्चायती इन्साफ़—गणतन्त्रों की बुनियाद, उनका फैलता दामन।

सिंधु की घाटी में क़बीलों की पहली बस्ती, दजला-फरात की घाटी में भी, नील के कांटे में, यांगत्सी की तटवर्ती भूमि में भी। क़बीले उठे और गिरे। उनके बिखरते ही उनकी कमाई सत्ता जहाँ तहाँ केन्द्रित हुई, अतिमानव राजा बना।

पर जनसत्ताक प्रवृत्तियों ने अति मानव को निरंकुश न होने दिया, सर्वत्र उसकी महत्वाकांक्षाओं पर छाएँ रहीं, उसे रोकतीं, मर्यादित करतीं। सप्त सिन्धु में जब शक्ति भटक चली और काबुल की ऊँचाइयों से सरदारों ने जनता को अपने वैभव का साधन बनाना चाहा तब गणतन्त्र की आदिम चेतना 'विदथों' में गरज उठी, 'समिति' और 'सभा' एकाधिपत्य को निरवलम्ब करने लगीं।

अतिमानव न रुका, वह राजा बना, अधिराट और चक्रवर्ती। पर साथ ही गणों की काया भी अपने मस्तक से आसमान टेकने लगी। भरत, कुरु, द्रुह्यु, यदु, पुरु, पंचजन। फिर कठ जिन्होंने पिछले काल उपनिषदों की काया रची, भद्रक, वीरकर्मा, यौधेय, कर्मठ कोसल, चिन्तक विदेह उठे। राजक शासनों में भी वर्ग, श्रेणी पूग, पौर और जन पद मुखर हुए। वह गणों की पहली परम्परा थी। उन्हीं के साथ गणों की एकीभूत शक्ति गँठी अन्धकवृष्णी संघ साम्राज्यों से लोहा लेने लगा। पांडवों की साम्राज्य-शक्ति के निर्माता अन्धक-वृष्णियों के प्रधान कृष्ण अपने प्रयत्नों के बावजूद काठियावाड़ की उस जनसत्ता को कुंठित न कर सके।

दूसरी परम्परा में, पुरानी गिरती और नई उठती सदियों के दौरान में अनेक शक्तिम गणराज्य उठ खड़े हुए। लिच्छवी, विदेह, ज्ञातृक, वज्जी, मल्ल, शाक्य, भग्ग, बुली, कालाम, कोलिय और मोरिय उत्तर बिहार, पावा, कुसीनारा, कपिलवस्तु, सुंसुमगिरि, अल्लकप्प, रामग्राम और पिप्पलिवन में अपनी जागरूक कर्मठता का विस्तार करने लगे। महावीर, बुद्ध और आलम्ट कालाम इन्हीं गणराज्यों में हुए। साम्राज्य-निर्माता चन्द्रगुप्त मौर्य भी पहले उन्हीं के वातावरण में पला। ईसा पूर्व छठी सदी में भारतीय इतिहास के प्रारंभिक साम्राज्यों से इन जनवादी गणराज्यों ने गज़ब का लोहा लिया। उनसे बार बार मार खाए मगध के अजातशत्रु ने जब बुद्ध से उनको जीतने का उपाय पूछा तो तथागत ने गम्भीर हो उसके छद्मवेषी मंत्री को सुना कर आनन्द से कहा—"आनन्द, जब तक वज्जियों के अधिवेशन एक पर एक और सदस्यों की प्रचुर उपस्थिति में होते हैं, जब तक वे अधिवेशनों

में एक मन
से संघ-कार्य
व्यवस्था के
निर्मित निय
नहीं करते
वज्जियों की
कार्य करते
का सम्मान
सुनते हैं, ज
और अपचा।
बनाई जातीं
भक्ति रखते
हैं, तब तक
है, उनका
की गिनाई
संघ भी का
की प्रवृत्ति ब
न कर सके,
कोसल की

डोरि

ग्रीस में बा
मिनोई-मिके
अपने राजा
कबीलों ने
कबीलों में
क्रूर प्रकृति
के सामने
तक ठहर प

नयो
राज्य खड़े
बटोरे। एथे
तन्त्र अपनी
की अनेक
खड़े किए
हो पाती।
हुए, वैभव
अकेले नहीं
सी लिए
के हथकण्डे

में एक मन से बैठते, एक मन से उठते, और एक मन से संघ-कार्य सम्पन्न करते हैं, जब तक वे पूर्व प्रतिष्ठित व्यवस्था के विरोध में नियम निर्माण नहीं करते, पूर्व निर्मित नियमों के विरोध में नव-नियमों की अभिसृष्टि नहीं करते और जब तक वे अतीत काल में प्रतिस्थापित वज्जियों की संस्थाओं और उनके सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करते हैं, जब तक वे वज्जि अर्हन्तों और गुरुजनों का सम्मान करते हैं, उनकी मंत्रणा को भक्ति-पूर्वक सुनते हैं, जब तक उनकी नारियाँ और कन्याएँ शक्ति और अपचार से व्यवस्था विरुद्ध व्यसन का साधन नहीं बनाई जातीं, जब तक वे वज्जि-चैत्यों के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखते हैं, जब तक वे अपने अर्हन्तों की रक्षा करते हैं, तब तक, हे आनन्द, वज्जियों का उत्कर्ष निश्चित है, उनका अपकर्ष संभव नहीं।" और जब तक बुद्ध की गिनाई मान्यताएँ कायम रहीं वे गणराज्य और संघ भी कायम रहे। पर धीरे धीरे जब स्वार्थ और फूट की प्रवृत्ति बढ़ी तब वे साम्राज्यों की चोट से अपनी रक्षा न कर सके, उनके अन्तराल में समा गए। मगध और कोसल की बढ़ती हुई सीमाओं ने उन्हें लील लिया।

डोरियन क़बीलों ने ईजियन सागर के तट पर ग्रीस में बारहवीं सदी ईसा पूर्व डेरा डाला। क्रीट की मिनोई-मिकीनी सभ्यता अभी जाग रही थी, नगरों में अपने राजाओं के स्वार्थ व वैभव पर इतराती। बर्बर कबीलों ने उसे उनके नगरों से उखाड़ फेंका। डोरिय कबीलों में आदिम इन्सान की ताज़गी अभी बनी थी। क्रूर प्रकृति से सफल लोहा लेनेवाले उन आर्य कबीलों के सामने भला मिकीनियों की सुकुमार नागरिकता कहाँ तक ठहर पाती, टूट कर बिखर गई।

नयों ने नए का निर्माण किया। ग्रीस के नगर-राज्य खड़े हो गए, अपने भीतर पुरखे क़बीलों की सत्ता बटोरे। एथेन्स, कोरिन्थ, स्पार्ता और कौन-कौन। गण-तन्त्र अपनी निखार पर आया। उसने जनसत्ताक शासन की अनेक परतें खोली, अनेक जनकान्त विजय-स्तम्भ खड़े किए। काश उनकी जनवादी प्रेरणा चिरकालिक हो पाती। शक्ति से विस्तार मिला, दूसरों पर आक्रमण हुए, वैभव ने जनवादियों को कापुरुष बना दिया। ऐश्वर्य अकेले नहीं आता, अपनी रक्षा के लिए स्वार्थमयी प्रवृत्तियाँ भी लिए आता है। उसकी संभाल के लिए अनेक प्रकार के हथकण्डे अपनाने होते हैं। स्वार्थ की टक्करें होतीं हैं, राष्ट्र बिखर जाते हैं। ग्रीस के नगर-राज्यों में एक स्वतन्त्र नागरिक के पीछे चार गुलामों का अनुपात उनकी जनवादिता पर विकराल व्यंग बन गया। आपसी फूट बराबर बढ़ती गई और एक-एक कर वे सारी प्रवृत्तियाँ वहाँ फूल चलीं जिन से बुद्ध ने भारतीय गणराज्यों को सावधान किया था। पहले ईरान के साम्राज्य ने एथेन्स को तलवार के घाट उतारा फिर मकदूनिया के साम्राज्य ने। पहली बार तो एथेन्स ने देश प्रेम के कुछ झण्डे भी माराथान और थरमापीली में गाड़े, अपने मलबे पर वह एक बार सीना तान कर पेरिक्लीज़ की छाया में खड़ा भी हुआ पर मकदूनिया की चोटों ने तो उसे चूर-चूर कर दिया। सिकन्दर के पिता फ़िलिप की साम्राज्य लिप्सा उन्हें डकार गई और वे सिकन्दर के साम्राज्य के अन्तराल में वैसे ही खो गए जैसे वज्जि अजातशत्रु की महत्वाकांक्षा में।

तीसरी परम्परा उन गणराज्यों की थी जो पुराकाल से चले आ रहे थे और जिन्होंने पंजाब में सिकन्दर से गज़ब का लोहा लिया। अस्सक, कठ, मालव, क्षुद्रक, अग्रश्रेणीय, यौधेय, अरट्ट, अम्बष्ठ और अनेक अन्य अस्सकों की नर-नारियों की सम्मिलित सेना ने जिस गौरव का प्रदर्शन किया वह देशप्रेम के इतिहास में एक ख़ास मंज़िल है। पर सिकन्दर ने जिस विश्वासघात द्वारा उनका संहार किया वह भी इतिहास के पन्नों से मिट नहीं सकता। कठों का जनतन्त्र राष्ट्र के सुन्दरतम व्यक्ति को अपना शासक नियुक्त करता था। अपने प्रधान नगर संगल में कठों ने जिस वीरता का परिचय दिया वह ग्रीक विजेता के सपनों पर निश्चय पानी फेर देती अगर पोरस ने देशद्रोह कर सिकन्दर की सहायता न की होती। संगल को मिटा कर सिकन्दर ने उनकी देशभक्ति को पुरस्कृत किया। मालवों ने शौर्य के क्षेत्र में वैसा ही साका चलाया जैसा शासन के क्षेत्र में। उनका गणतन्त्र रावी के दोनों ओर बसा था। व्यास के तट पर जब ग्रीक सेना ने हथियार डाल दिए और सिकन्दर उनके बीच से उनके नगरों को बरबाद करता लौटा तो मालव किसानों ने खड़े खेतों में अपनी हँसिया छोड़ तलवार पकड़ी थी और ग्रीकों की राह कदम-कदम पर रोक दी थी। संसार के इतिहास में शायद यह पहला मौका था जब विश्व-विजेता के घोड़ों की बागडोर किसानों ने पकड़ ली थी। मालवों के तीर का सिकन्दर जो वहाँ शिकार हुआ तो

परिणामस्वरूप उसका उत्तर ब्राबुल में उसकी मौत के साथ उतरा।

पंजाब के उन मालवों का पराक्रम फिर भी चोट से अक्षुण्ण न रह सका। सिकन्दर की सेनाओं ने उनके खेत रौंद डाले थे, उनके नगर जमीन में मिला दिए थे, और अब चन्द्रगुप्त मौर्य और उसके यशस्वी आचार्य तथा कूटनीति के निष्णात पण्डित चाणक्य की सम्मिलित मार उन पर पड़ी। साम्राज्य के लिए उन्होंने गणराज्यों को तोड़ देना आवश्यक समझा। उनके आक्रमण से मध्य देश और पंजाब के गणराज्य टूक-टूक हो गए। अनेक मध्य भारत के वन प्रधान प्रदेशों की ओर आगे भागे। केवल पंजाब में यौधेय और मालव प्रकृत बने रहे। मालवों ने फिर भी अपने सुख के बदले अस्तित्व को बचा रखना चाहा जिससे उनका वहाँ ठहरना कठिन हो गया। वे दक्खिन-पूर्व की ओर सरके। मरु-प्रदेश की ओर, राजपूताने के विविध प्रदेशों में ठहरते, अपने सिक्के ढालते, साका चलाते। उन्हीं का साका—मालव-संवत् पीछे विक्रम-संवत् के नाम के प्रसिद्ध हुआ। मालवगण अब उस ओर बढ़े जिधर अवन्ति में विजातीय शकों का शासन अनुल्लंघनीय हो चुका था। उनके नेता विक्रम ने अवन्ति के शकों की शक्ति तोड़ मालवों की विशिष्ट विजय के उपलक्ष में ५७-५६ ई० पू० अपना प्रसिद्ध विक्रम-संवत् चलाया जो आज भी भारतीय गणना-क्रम में प्रधान स्थान रखता है। मालव संवत् ही विक्रम के पराक्रम की स्वीकृति में विक्रम-संवत् कहलाया और अवन्ति का वह भाग जहाँ मालव जा बसे उनके नाम से मालवा।

दूर पश्चिम में इटली के रोम नगर में एक गणराज्य स्थापित हुआ। पहले वह इत्रुस्की जाति का इटली में प्रधान नगर था जिसे उनसे उत्तर से आए आर्यों की एक शाखा ने छीन लिया। यही शाखा आगे चल कर रोम जाति के नाम से प्रसिद्ध हुई। जब मौर्य भारतीय गणराज्यों को तोड़ कर राजा के हाथ में सत्ता केन्द्रित कर रहे थे तब रोम का वह गणराज्य प्यूनिक युद्धों में प्रबल कारथेज के वणिक्-राज्य से मरणान्तक समर में गुंथा था। हैनिबल जब मेडीटेरियन लाँघ स्पेन को रौंदता दक्खिनी फ्राँस की राह इटली पहुँचा तो लगा कि रोमनों का वह उदीयमान गणराज्य चूर-चूर हो जाएगा। पर एकाएक पासा पलटा और सोपीओ ने ज़ामा में उस असाधारण विजेता को धूल चटा दी और उसे पूरब में शरण खोजते हुए ज़हर खा कर मरना पड़ा। दूसरी सदी ई० पू० का अन्त हो रहा था, जब इस प्रकार रोम का गणराज्य अजेय हो गया। उसके सेनापतियों ने ग्रीस को जीत सिकन्दर के पश्चिमी साम्राज्य पर कब्ज़ा कर लिया और गाल तथा इंगलैंड तक उनकी ध्वजा फहराई।

गणतन्त्र का साम्राज्य कभी इतना न फैला परन्तु शक्ति का विस्तार ही जनसत्ता का राहु बन गया। अभिजात कुलों के लाड़ले भ्रष्टाचार में डूबे जनवादी के पाहरू बने और उसे समूचा लील गए। पम्पेई, सीज़र, अन्तोनी सभी। आए दिन रोम की सड़कों पर दिन रात लहू बहने लगा। हिन्दी मलमल और मोती मुँह मांगे दामों ख़रीदनेवाले रोम के छैले भारतीय वणिकों के दास बन गए। रोमन महिलाएँ शृंगार के लालच में मोती और मलमल के बदले लुट चलीं। रोम का सोना दीनारों के रूप में भारत के पश्चिमी तट पर भरुकच्छ और सोपारा के बन्दरों में धारासार बरसने लगा। इतिहासकार प्लिनी विदेशी माल के ख़िलाफ चीख़ता रहा। सिनेटर सिसेरो सिनेट में व्याख्यान पर व्याख्यान देता रहा। पर भारतीय मलमल की बारीकी और मोती का आब रोमनों के दिलों में बस गया था। उनकी बाढ़ न रुकी और न अपनी सुगन्ध से रसोई को गमका देनेवाले मालाबार के गरम-मसालों की ही। रोमन महिलाओं ने जिन्हें पति के प्रेम से हिन्द की मलमल और मोती अधिक भाते थे' हिन्दी व्यापार को बचा लिया। अन्तोनी ने सिसरो का सिर काट सिनेट के द्वार पर टाँग दिया। तलवार ने दर्शन का मुँह बन्द कर दिया।

गणराज्य साम्राज्य बना और आगुस्तस अपने सेनापति अग्रिप्पा की मदद से रोम का पहला सम्राट्। उसके सिंहासन के पाये कितनी इन्सानी ईंटों और खून के गारे से बने थे उन्होंने कभी न जाना जिनकी ज़बान पर साहित्य का आगुस्ती ज़माना हावी है और जो वर्जिल और होरेस के काव्यों के नीचे नहीं देख पाते। और न देख पाते हैं मज़बूत हाथों तलवार पकड़नेवाले उस अग्रिप्पा की घिनौनी आँखों को जिन्होंने सीज़र की लाई क्लियोपात्रा के सीने में गढ़े कर दिए थे।

उस प्रसिद्ध रोमन साम्राज्य को जिसने अपने पूर्ववर्ती गणराज्य को तोड़ डाला था अत्तिला के हूणों ने चूर-चूर कर दिया। उन्हीं हूणों ने जिनकी दूसरी शाखा ने भारत के व्यापक गुप्त साम्राज्य की रीढ़ तोड़ दी। गुप्त

१९५४

साम्राज्य चाहे जितना भी विनम्र रहा हो था वह भी गणराज्य विरोधी। समुद्रगुप्त ने जहाँ आर्यावर्त के राज्यों को उखाड़ फेंका था वहाँ उसने भारतीय गणराज्यों को भी अछूता न छोड़ा। उनकी उसने श्री छीन ली, उन्हें अपना करदायी बना लिया। मालव, आर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खरपरिक सभी एक-एक कर आत्मसमर्पण कर बैठे। वे मालव भी, जिन्होंने पञ्जाब से मालवा तक पश्चिमी भारत में अपनी शक्ति के झण्डे गाड़े थे और वे आभीर (अहीर) भी जिन्होंने दक्षिण पश्चिम में कभी साम्राज्य खड़ा किया था। समुद्रगुप्त के पुत्र विक्रमादित्य उपाधिधारी चन्द्रगुप्त ने अपनी मधुर नीति द्वारा उनको सर्वथा मिटा दिया।

भारत के गणराज्य मिट गए। अहीर, गूजर और जाट फिर भी अपने पंचायती शासन में जब तब उनका मोह जीवित रखते रहे।

उधर नए उठते साम्राज्यों और सामन्ती शासन के बावजूद यूरोप में नगर गणतन्त्रों का आभास अपने 'चार्टरों' और 'गिल्डों' (श्रेणियों) आदि के ज़रिए फिर प्रस्तुत कर चले। नगरों और सामन्तों में, नगरों और सम्राटों में ग़जब की कशमकश हुई, और सदियों, पर नगर विजयी हुए। उनके 'चार्टरों' को सामन्तों और सम्राटों को स्वीकार करना पड़ा।

धीरे धीरे इटली के नगर राज्य ड्यूकों की संरक्षा में खड़े हुए, फैले। जेनोवा, फ्लोरेन्स, पादुआ, वेनिस। धीरे ही धीरे वेनिस इटली के नगरों पर हावी हुआ, फिर भूमध्य सागर पर, फिर तटवर्ती राज्यों पर उसका साम्राज्य अन्त में तुर्कों के साम्राज्य ने तोड़ डाला। वेनिस की सत्ता में भी गणतन्त्र का आभास था परन्तु गणतन्त्र स्वार्थ पर साम्राज्य का रूप धारण कर अपनी ही विषमताओं के कारण तुर्कों की चोट का शिकार हो गया। उसके आकाश पर अपनी क्रूर व्यापकता से कुस्तुन्तुनिया छा गई।

फ्रांस की राजकीय केन्द्रित शक्ति जब और अधिक दो हाथों में सिमट न सकी तब जनता ने एक बार अपनी शक्ति का हल्ला बोला। कुछ ही दिन पहले इंग्लैण्ड के उपनिवेश अमेरिका ने स्वामी के चंगुल को तोड़ नई दुनियाँ में अपना प्रजातन्त्र क़ायम किया था और इन्सान के बुनियादी हकों का ऐलान किया था। उस देश की आज़ादी में अनेक फ्रेंच नेता लड़े थे। वरनाम के महलों में वाशिंगटन की चीज़ों के साथ-साथ उस लाफ़ाएत का पलंग भी आज तक सुरक्षित है जिसने उस आज़ादी की लड़ाई में अंग्रेज़ों के खिलाफ़ लड़ते हुए जनरल का आतिथ्य भोगा था। अमेरिका की जनक्रांति उस प्रकार की इतिहास में पहली क्रांति थी, रोमनों के विरुद्ध उठ पड़नेवाले उनके गुलामों की बग़ावत के विपरीत, सफल।

परन्तु फ्रांस की राजक्रांति उससे भी कहीं सफल, कहीं व्यापक हुई, यद्यपि उसकी ज्वाला अभी नरम भी न पड़ने पाई थी कि उसे नेपोलियन के साम्राज्य ने समाप्त कर दिया। जनक्रांति फिर फ्रांस में एक के बाद एक आई और आखिरी वह पेरिस कम्यून की क्रांति जिसके परिणाम स्वरूप हज़ारों मज़दूरों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। परन्तु पेरिस की हर सड़क पर एक-एक फर्लांग पर बाड़ों की आड़ खड़ी कर इञ्च-इञ्च ज़मीन के लिए उन्होंने सौ-सौ जानें बिछा दीं और अपने सच्चे जनतन्त्र के लिए वे कुर्बान हो गए। उसके बाद जो नाम का गणराज्य फ्रांस में क़ायम हुआ वह आज भी अपने काले कारनामों से बदनाम है, घर में कमज़ोर और डावाँडोल, बाहर वियतनाम और ट्यूनिशिया में अपनी खूँरेज़ी से बदनाम।

इंग्लैंड सदियों से अपनी जनसत्ता के लिए प्रसिद्ध है। सदियों पहले उसने अपने राजा से संघर्ष किया, उसका सिर कलम कर जनतन्त्र की प्रतिष्ठा की। उसकी रक्षा में वह फिर फिर लड़ा, फिर-फिर उसने राजकीय निरंकुशता की गरदन नाप दी। परन्तु आज की अंग्रेज़ी जनसत्ता में कितना जनवाद है कितना साम्राज्यवाद यह कहना कुछ ऐसा कठिन नहीं। अपने साम्राज्य की धुरी में किस क़दर उसने दूसरे देशों को पीसा है यह आम इतिहास की बात है। उसका सबूत हिन्दुस्तान, ईरान, मिस्र और मलाया देंगे और वे अनगिनत उपनिवेश जिन पर वह आज भी क़ाबिज़ है। उसका गणतन्त्र उसी प्रकार घर में जनता के हक़ों का दम भरता है और विदेशों में साम्राज्यवाद का पोषक है जैसे प्रशान्त महासागर और जापान पर प्रगट रूप से तथा अन्य देशों में अपनी अर्थनीति से परोक्षरूप से हावी अमेरिका।

१९१७ में मार्क्सवाद के उसूलों के अनुकूल रूस में राज्य क्रांति हुई और सही माने में वहाँ जनतन्त्र की सत्ता प्रतिष्ठित हुई। सर्वहारा शक्ति जारशाही के वर्गों को

तोड़ सोवियत नाम से स्थापित हुई। सोलह राजशक्तियों ने उस पर लगातार हमले किए पर वह न टूटा, न टूटा। उसका आज का रूप शुद्ध समाजवादी सत्ता के पहले का संक्रमण-काल है। अभी उसने जर्मनी की उस शक्ति का सर्वनाश किया है जो क़ैसर की राजसत्ता के बाद गण-राज्य के रूप में उठ कर भी हिटलर की तानाशाही बन शिकार हो गई थी। अनेक राष्ट्र गुट्ट बना कर यद्यपि उसको नष्ट करना चाहते हैं परन्तु उसके उस जनवाद की हानि संभव नहीं जिसने स्तालिनग्राड के मोर्चे पर लाखों जानें कुर्बान कर और बर्लिन पर कब्ज़ा कर अपनी शक्ति का परिचय दिया था।

सन् ४७ में हिन्दुस्तान भी लम्बे संघर्ष के बाद आज़ाद हुआ और उसने अपना नया जनतन्त्र स्थापित किया। पुराने भारतीय गणराज्य कब के विनष्ट हो चुके थे, साम्राज्य-विरोधी उस विष्णुपुराणकार की ललकार के बावजूद भी जिसने कहा था—"साम्राज्य काल की धारा में डूब जाते हैं। वे सम्राट आज नहीं हैं जिन्होंने कहा था कि 'भारत मेरा है।' स्वयं राम के अस्तित्व में आज संदेह हो चला है। साम्राज्य को धिक्कार! साम्राज्य के ऐश्वर्य्य को धिक्कार!"

चीन सदियों की विदेशी मार झेल स्वदेशी सम्राटों और बराएनाम गणमुखियों की सत्ता तोड़ आज सच्चे जनतन्त्र के पथ पर आरूढ़ है। यह गणराज्य भी मार्क्सवाद के उसूलों पर ही खड़ा जनता का सच्चा नेतृत्व कर रहा है। उसका इतिहासकार कोमो-रो भी जैसे विष्णुपुराणकार की ललकार दुहरा रहा है—"साम्राज्य काल की धारा में डूब जाते हैं। वे सम्राट आज नहीं है जिन्होंने कहा था कि 'भारत मेरा है।' स्वयं राम के अस्तित्व में आज संदेह हो चला है। साम्राज्य को धिक्कार! साम्राज्य के ऐश्वर्य्य को धिक्कार!"

थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद

—भगवतशरण उपाध्याय

समाज की प्रगति

सोसाइटी कभी आगे नहीं बढ़ती। वह एक ओर जितनी शीघ्रता से आगे को बढ़ती है उतनी ही शीघ्रता से वह दूसरी ओर पीछे को सरक जाती है। इसमें लगातार परिवर्तन होते रहते हैं; यह असभ्य होती है, सभ्य होती है, धनी होती है, वैज्ञानिक होती है परन्तु इन परिवर्तनों को हम सुधार नहीं कह सकते। जो भी वस्तु दी जाती है उसके बदले कोई-न-कोई वस्तु ले ली जाती है। सोसाइटी यदि नई कलाएँ प्राप्त करती है तो अपनी स्वाभाविक वृत्तियों को खो बैठती है। एक सूट-बूट पहने, अध्ययनशील, विचारवान पेन्सिल और घड़ी रखनेवाले अमरीकी और एक नंगे न्यूज़ीलैण्ड के निवासी में कितना भेद है!

—आर. डब्ल्यू. एमसेन

ज़िन्दा दिलों का कवि : बायरन

सौ वर्ष पूर्व के इस व्यक्ति का नाम सुन कर, प्रसन्नता से खिल उठते हैं आज के नवयुवक और नवयुवतियाँ और सभी उसके चाहनेवाले झुँझला उठते हैं, उस व्यवहार पर जो नवविद्वेषी और सनातनी इंग्लैण्ड ने उसके प्रति दर्शाया। रोचडेल के छठे लार्ड — बायरन, जॉर्ज गार्डन ने २२ जनवरी सन् १७८८ के दिन लन्दन में जन्म लिया। वह एक ऐसे परिवार का सदस्य था, जिसके सभी सदस्य विलासप्रियता के कारण इंग्लैण्ड में विशेष ख्याति प्राप्त कर चुके थे। बायरन की माता कैथरीन एक अत्यन्त धनवान परिवार से सम्बन्धित थी। वह सदा बायरन और उसके पिता पर इस फ़िज़ूलखर्ची के कारण सदा क्षुब्ध रहीं। गर्भावस्था में ही किसी कारण बायरन के एक पैर में नुक्स हो गया, जो जीवन भर रहा और जिसने कवि के जीवन को तलखी से भर दिया।

सन् १७६१ में महाजनों के तकाज़ों से घबरा कर बायरन का पिता लार्ड जॉन, फ्रान्स की ओर भाग गया, और कालान्तर में वहीं उसकी मृत्यु भी हो गई। तब बायरन और उसकी माता दोनों एब्रडीन चले गए और अपनी संपत्ति की आय से, जो लगभग १५० पौण्ड थी, जीवन निर्वाह करते रहे। सन् १७६८ में बायरन के नाना की मृत्यु हो गई और बायरन एक बहुत बड़ी संपत्ति का उत्तराधिकारी हो गया।

बायरन की प्रारंभिक शिक्षा देवच के स्कूल में हुई। यद्यपि वह पढ़ने लिखने से जी चुराता था परन्तु उसकी निजी प्रतिभा ही ऐसी थी, कि संस्था के मुख्याध्यापक ने सन् १८०५ में संस्था की ओर से ही उसे ट्रिनिटी कालेज केम्ब्रिज में भिजवा दिया। विद्यार्थी जीवन में ही बायरन अगास्टा बायरन की ओर आकृष्ट हो चुका था वह सम्बन्ध में उसकी निकटवर्ती बहन थी और सम्बन्ध इतना निकट था कि विवाह की कल्पना भी अपराध-तुल्य थी। बायरन का दूसरा शिकार मेरी चावर्थ थी। परन्तु वह बायरन की उपेक्षा करती रही। उसका विवाह एक और जगह हो गया परन्तु यह विवाह असफल रहा (और इस असफलता का उत्तरदायित्व भी कुछ हद तक बायरन पर ही है क्योंकि विवाह के पश्चात भी वह उसे प्रेम पत्र लिखता रहा और अपनी कविताओं के संग्रह उसकी भेंट करता रहा)। विवाह के पश्चात् जब बायरन मेरी चावर्थ से मिला तो मेरी के मुँह से अनायास निकल गया "ऐ बीते हुए दिनों की याद, मुझे अधिक मत सता!"

केम्ब्रिज जाते ही बायरन की सुन्दरता और व्यक्तित्व की धूम मच गई। यद्यपि उसके एक पैर में दोष था, तो भी वह कालेज के खेलों में बड़े जोश के साथ भाग लेता। वह कुश्ती लड़ने और निशाना लगाने में दक्ष था। उसकी माता ने इस काल में उसकी देख-रेख नहीं की और फलस्वरूप बायरन फिसल गया। धन और साधनों की प्रचुरता तो थी ही — प्याले में जुम्बिश आ गई और वाजिदअली शाही दौर चलने लगा। बायरन का ऐव इन्द्र का अखाड़ा बन गया। मनुष्य की खोपड़ियों को मधुकलश बना कर लालपरी उँडेली जाने लगी। कवि तो वह था ही। उन्हीं दिनों उसकी प्रथम पुस्तक "अवकाश के क्षण" प्रकाशित हुई। शृंगार-रस-प्रधान कविताएँ ही इस संग्रह में संकलित थीं। इस संग्रह की दैनिक "एडनबेरा रिव्यू" ने कड़ी आलोचना की। बायरन अपने विरुद्ध नवविद्वेषियों की आलोचना पढ़ कर बहुत बिगड़ा और उसने एक और पुस्तक "अंग्रेज कवि और स्कॉच आलोचक" [इंग्लिश बार्डस एण्ड स्कॉच रिव्यूज़] शीर्षक प्रकाशित कराई। पुस्तक में उस समय के सभी मुख्य-मुख्य कवियों की कड़ी आलोचना की गई थी। यहाँ तक कि महाकवि वर्डस्वर्थ के विषय में उसने लिखा था कि "उसका गद्य पद्य है और पद्य गद्य!" परन्तु जब बायरन महाकवि के संपर्क में आया तो उसे अपनी भूल का आभास हुआ इसीलिए उसने पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित ही नहीं होने दिया। उसके स्वभाव के दो पक्ष थे चंचल वृत्ति और उग्र क्रोध जिनको वश में रखना उसके लिए असंभव था। पैर में दोष तो था ही, उस पर किसी ने घूर कर देखा नहीं कि उसका पारा चढ़ा और मिज़ाज तुनका। कई बार नौबत बक-झक के बाद हाथा-पाई तक पहुँच जाती। उसे विश्वास था कि हर देखनेवाला उसके पैर के नुक्स की ओर ही

दृष्टि जमाता है—फिर भी लड़कियाँ उस पर मुग्ध थीं। लंगड़ा कर चलना उन दिनों एक फैशन बन गया था, क्योंकि बायरन लंगड़ा था—और लंगड़े बायरन पर लड़कियाँ जान देती थीं। एक बार उसने कहा था "इंग्लैण्ड का कोई लार्ड परिवार ऐसा नहीं है, जिसके किसी न किसी व्यक्ति की धमनियों में मेरा रक्त न दौड़ रहा हो।" बाज़ार से वह गुज़रता तो बड़ी बूढ़ियाँ चिल्ला चिल्ला कर कहतीं "लेडीज़ शट योर डोरस बायरन इज़ कमिंग।" यह है बायरन की आवारगी, ज़िन्दादिली, विलासिता और रसिकता का एक छोटा-सा उदाहरण! रसिकता का उसकी यह हाल था कि क्षण भर में वह बड़ी-बड़ी पाषाण हृदयवाली अप्सरा-समान रमणियों का मन मोम बना देता था—मोह लेता था; और वह उसके द्वार के चक्कर काटने लगती थीं। उसे रिझाने के लिए भाँति भाँति की भेंटें भेजतीं। एक लार्ड की पत्नी उसकी ओर इतनी आकृष्ट थी कि वह दिनों उसके लिए मारी-मारी फिरी! एक बार तो वह घण्टों तक युवक का वेष बनाए, उसे देखने के लिए सड़क के किनारे खड़ी रही और यह 'डचेस' इतनी सुन्दर थी कि सारा इंग्लैण्ड उसकी एक झलक देखने तक को उत्सुक रहता।

सन् १८०८ में बायरन ने अपने मित्र केम-हॉवहाउस के साथ यूरोप की यात्रा की। लिज़बन, सियोल, केडार, जेब्राल्टर, सारडीनिया, माल्टा और एलबानिया होता हुआ वह ग्रीस पहुँचा; और वहाँ, एक अत्यन्त रूपवती रमणी के इश्क में मजनूँ बन कर उसने अपनी प्रसिद्ध कविता "एथन की सुन्दरी" की रचना की। "ट्रैवल्ज़ इन एलबानिया" बायरन की तत्कालीन दूसरी महत्वपूर्ण रचना है। दो वर्ष से अधिक का समय यूनान में व्यतीत करके जुलाई १८११ में वह इंग्लैण्ड लौट आया। इसी बीच उसकी माता का देहान्त हो चुका था।

१८१२ की फरवरी के दिनों में बायरन की अमर कलाकृति "चाइल्ड हेरॉल्ड" प्रकाशित हुई। इंग्लैण्ड के साहित्यिक क्षेत्र में एक हलचल मच गई। सर वाल्टर स्कॉट ने कहा कि इतनी प्रभावशाली रचना विगत सौ वर्षों में उनकी दृष्टि से नहीं गुजरी। यह वह युग था जब बायरन की प्रत्येक रचना अंग्रेज़ी भाषी संसार को आँधी के समान लपेट में ले रही थी। "गयायूर", "दी ब्राइड आव एबीडॉस", "दी प्रिज़नर आव शिलोन" तथा "कोरसियर" अंग्रेज़ी साहित्य को बायरन की अमर देन हैं। उपयुक्त सभी रचनाओं का रचना-काल सन् १८११-१८१५ है। "दी प्रिज़नर ऑव शिलोन" में वह एक स्थान पर कहता है :

"मेरे बाल सफ़ेद हो गए हैं
किन्तु यह एक ही रात में सफ़ेद नहीं हुए
जैसा कि अत्यन्त आतंक और भय के कारण होता है
मेरे हाथ पैर बेकार हो चुके हैं
किन्तु कड़े श्रम से नहीं
वरन् कई वर्ष
बेकार रहने से......
और मैं उन अभागों में से हूँ
जिनके लिए
स्वतन्त्र हवाओं में श्वास लेना निषेध है

... ...

कालान्तर,
एक दिन कुछ व्यक्ति
मेरे लिए स्वतन्त्रता की सौगात लाए
मैंने उनसे कोई कारण नहीं पूछा
क्योंकि मेरे लिए स्वतन्त्रता और पराधीनता एक समान थी
मैं निराशा से प्रेम करना सीख चुका था...

... ...

कारागार की दीवारें मेरे लिए पवित्र थीं...
और मुझे लगा वह मुझे मेरे घर से जुदा करना चाहते हैं

... ...

मुझे शृंखलाओं से प्यार हो गया था,
क्योंकि देर तक साथ रहने से हम मित्र बन चुके थे।
मैंने स्वाधीनता के वातावरण में जा कर
एक निःश्वास छोड़ा।"

"बायरन विरह और मिलन का कवि था। उसकी आँखों में मिलन के स्वप्न और पलकों में वियोग के आँसू थे। संसार के न जाने कितने युवकों ने उसे अपना इष्ट देवता मान कर उसकी कविताएं कण्ठस्थ की होंगी। न मालूम कितनी युवतियों ने उसके छन्द रेशमी रूमालों पर काढ़े होंगे, और प्रेम पत्रों में लिखे होंगे।" परन्तु वही बायरन जिसने जीवन भर विश्व के एक एक अणु को देखा और गहन पर्यवेक्षण किया—मानव हृदय की अन्तर्वेदना को समझा, वह अपनी पत्नी के हृदय में उठती हुई, पलती हुई भावनाओं को न समझ सका—

उसकी मानसिक उद्विग्नता की टोह न लगा सका। २२ जनवरी १८१५ को बायरन का व्याह इज़ाबिला के साथ हुआ। इज़ाबिला एक सुन्दर आकृति की आदर्श महिला थी। परन्तु थी तो नारी ही! व्याह के पश्चात् छः महीने कवि ने ठीक से काटे, परन्तु स्त्रियों के विषय में कवि की सैलानी तबीअत रंग लाए बिना न रही और तत्पश्चात् बाजारू तथा उच्च घरानों की दिल फैंक रमणियों का आना-जाना पुनः आरम्भ हो गया। बोतलें खाली होने लगीं और जाम छलकने लगे, पैमाने भरने लगे और बायरन उन में डूब गया। उधर इज़ाबिला की सहन-शक्ति का पैमाना भी भर गया था, बस छलकना शेष रह गया था।

उसका व्यवहार अपनी पत्नी के प्रति बड़ा निर्मम और असहनशील था। एक स्त्री सब कुछ सह सकती है, परन्तु यह वर्दाश्त नहीं कर सकती कि उसका पति रखैलों एवं कुमारी नौकरानियों के साथ गुलछर्रे उड़ाए, उनके स्वास्थ्य के लिए प्याले खाली करता फिरे और फिर मदहोश हो कर खिड़कियों के शीशे तोड़े—घर में प्रलय मचाए। उसने चाहा कि डाक्टर बायरन को पागल होने का सर्टीफिकेट दे दें ताकि सम्पत्ति बची रहे और इस प्रकार उसके होनेवाले शिशु के लिए भी कुछ बचा रहे परन्तु उसे कोई पागल सिद्ध नहीं कर सका।

सन् १८१६ में इज़ाबिला ने एक अत्यन्त सुन्दर कन्या को जन्म दिया परन्तु थोड़े ही दिनों के पश्चात् उसने कोमल कवि परन्तु पिशाच पति के घर को सदा के लिए नमस्कार कर लिया। यह बायरन के लिए बहुत बड़ी सज़ा थी। उसके विरोधी अवसर की टोह में थे। उन्होंने बायरन को आड़े हाथों लिया। उसके विरुद्ध लच्चर किस्म के, बे-सिर पैर के अभियोग लगाए गए — जो उसके प्रशंसक थे वही उसकी निन्दा करने लगे। कुछ दिनों में ही इंग्लैण्ड की फिज़ा बदल गई। वह स्वयं अपनी स्थिति लिखते हुए कहता है: "मैंने अनुभव किया कि यदि लोगों के बीच जो कुछ फुसफुसाया जा रहा है, भड़भड़ाया और बड़बड़ाया जा रहा है यदि यह सत्य है तो मैं इंग्लैण्ड के लिए अनुपयुक्त हूँ और यदि यह असत्य है तो इंग्लैण्ड मेरे लिए अनुपयुक्त है"

सन् १८१६ में बायरन ने इंग्लैण्ड, अपनी मातृभूमि को छोड़ दिया और नई मंजिल की खोज में निकल पड़ा किन्तु इस सत्य की छाप को मन पर अंकित किए हुए, कि रास्ते मंजिल को बनाते हैं, मंजिलें रास्तों की रचना नहीं करतीं। निर्वासन से उसका कुछ न बिगड़ा। उल्टे उसका विरोध द्विगुणित हो गया—और वह प्रकृति की संहार करने वाली शक्ति का उपासक हो गया। वह बरसेल्ज होता हुआ वाटरलू पहुँचा जहाँ उसने 'नेपोलियन' की रचना की——

"विजय और गर्व,
युद्ध की प्रसन्नता,
हर्ष के आकाशचुम्बी नारे,
तुम्हारे जीवन की प्रेरणा थे।
तलवार, कलम और सत्ता,
जिनके बूते पर तुमने ख्याति प्राप्त की,
प्रलय के देवता,
तुमने संसार को थरथरा दिया।"

इस कविता में नेपोलियन पर व्यंग कसा गया है।[1] जीवन के इस मोड़ के पश्चात् बायरन बन्धनवादी समाज की प्रत्येक व्यवस्था पर झुंझलाया है, गुर्राया है। प्रत्येक व्यवस्था का उसने खण्डन किया है। १८१६ से १८२४ तक वह जेनेवा में रहा जहाँ उसकी भेंट शैले से हुई और वह शैले की रचनाओं और व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुआ कि उसकी तत्कालीन रचनाओं[2] में विज्ञानवाद और आदर्शवाद की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगी।

उधर टर्की का सिर फिरा सुल्तान यूनान की जनता पर अत्याचारों की वर्षा कर रहा था। सन् १८२४ में वह ग्रीस के स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय सहयोग देने के लिए मसोलेंगी पहुँचा जहाँ उसने अपनी विद्युद्वाहिनी वाणी से ग्रीस के वीरों में वज्र शक्ति का संचार किया परन्तु ग्रीस की विजय देखना उसके भाग्य में नहीं था। सन् १८२४ की २९ अप्रैल को उसका असामयिक निधन हो गया। मृत्यु के समय उसकी अवस्था ३६ वर्ष की थी। इसी अल्पायु में बायरन के पिता और उसकी एकमात्र पुत्री एडा की मृत्यु भी हुई थी। उसकी प्रबल इच्छा थी कि वह अपने नाम पर लगे धब्बे को धो दे,

---

[1] तब नेपोलियन कैद कर लिया गया था।

[2] Manfred, Childe Harold, Don Jaun, Maid of Saragossa

यह एक आवारा और ऐशपरस्त व्यक्ति के समान जीवन व्यतीत करता रहा था, परन्तु मरा वह एक सैनिक के समान जिससे कि जीवन की एय्याशी का धब्बा उसके नाम पर से धुल जाए !

बायरन रसिया और विलासप्रिय व्यक्ति था। परन्तु उसका हृदय रूप और रोमांस के साथ साथ साहस और पराक्रम से भी परिपूर्ण था। अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध उसने हमेशा आवाज़ बुलन्द की। किन्तु उसके स्वभाव का एक पक्ष और भी था—वह अपनी गलती का आभास हो जाने पर, विनम्र बन कर समझौता करना भी जानता था। निम्नांकित पत्र, जो बायरन ने अपनी पत्नी को, निर्वासन काल में लिखा था, इस कथन का प्रमाण है :

१७ नवम्बर १८२१

"प्रिय इज़ाबिला,

एडा के कमनीय कुंतल मिले। ये केश नर्म और मुलायम हैं और इसी प्रकार काले हैं, जिस प्रकार बारह वर्ष की आयु में मेरे थे। परन्तु यह घुंघराले नहीं हैं।

तुम ने तिथि और नाम अपने हाथ से लिखा है, इसके लिए धन्यवाद। मैं तुम्हें बताऊँगा कि क्यों? मेरे विचार में यही दो-तीन शब्द हैं, जो तुम ने अपने हाथ से लिखे हैं, क्योंकि मैंने तुम्हें, तुम्हारे पत्र सौंपा दिए थे, और संभवतः दो या तीन शब्दों के अतिरिक्त, जो तुमने हिसाब-किताब की एक कापी पर लिखे हैं, मेरे पास तुम्हारी कोई लिखावट नहीं है। मैंने तुम्हारी अन्तिम लिखावट जला दी थी क्योंकि एक तो पत्र का टोन उपयुक्त न था और दूसरे कोई दस्तावेज़ किए बिना ही मैं तुम्हारे शब्दों पर विश्वास करता हूँ। दस्तावेज़ तो वही लोग रखते हैं जो एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। मेरा अनुमान है कि यह पत्र तुम्हें एडा के जन्म दिवस पर १० दिसम्बर को मिलेगा। इस समय एडा की अवस्था लगभग छः वर्ष की होगी और फिर सम्भवतः, मज़ीद १२ वर्ष के बाद मैं उससे मिल सकूँगा, और यदि मुझे व्यापार के सिलसिले में इससे पूर्व ही इंग्लैण्ड आना पड़ा तो संभवतः इससे पहले ही उसे देख सकूँ। किन्तु चाहे तुम दूर रहो या निकट, हर रोज़ जो हमें एक दूसरे से दूर रखता है, हमारी आपसी भावनाओं को विनम्र बनाएगा। जब तक हमारी बच्ची मौजूद है, हमारे आपसी मेल की आशा बनी रहेगी।

हमारी अलहेदगी के बाद अब तक जो समय बीत चुका है, वह हमारे मिलाप के समय से अधिक है। परन्तु हमारी जान-पहचान उससे भी पुरानी थी। हम दोनों ने एक बड़ी भारी भूल की। परन्तु अब समय गुज़र चुका है और कोई चारा नहीं रहा। मेरी आयु ३३ वर्ष की है, तुम्हारी आयु इस से कुछ कम होगी। फिर भी यह ऐसी उमर है जब मानव के विचार और आदतें इतनी पक्की हो जाती हैं कि उनमें कोई फेर बदल नहीं हो सकता। हम युवावस्था में एक दूसरे के समीप नहीं थे, तो अब होना कितना कठिन है।

मैं यह बातें इसलिए लिख रहा हूँ कि बिछोह के एक वर्ष बाद तक यद्यपि मैं यह समझता रहा कि हमारा पुनः मिलना असम्भव नहीं परन्तु तदुपरान्त मैंने यह आशा सदा के लिए त्याग दी। परन्तु पुनः मिलाप का अपूर्ण होना एक ऐसी बात है, जिससे मैं समझता हूँ, कि हमारे बीच, जो भी मसला आता है उस पर संयम और शायस्तगी से काम लेने का उत्तरदायित्व बढ़ गया है। जहाँ तक मेरा सन्बन्ध है मैं क्रोधी स्वभाव का हूँ, परन्तु मेरी नीयत बुरी नहीं है। एक नया विस्फोट ही मुझ में क्रोध उत्पन्न कर सकता है। तुम अवश्य ही ठण्डे दिमागवाली और संयमशील हो। मैं केवल यह लिखूँगा कि प्रायः तुम क्रोध को आत्म सम्मान समझ लेती हो। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने मस्ती में कुछ भी क्यों न किया हो, परन्तु अब मुझे तुम से कोई नाराज़गी नहीं है और फिर यदि तुमने मेरे हृदय पर चोट भी पहुँचाई तो तुम्हें क्षमा भी किया जा सकता है और यदि मैंने तुम्हारी भावनाओं की अवहेलना और उपेक्षा की है तो उसे क्षमा कर देना और भी आवश्यक हो जाता है।

भूल केवल मेरी थी, तुमने ज़बानी तौर पर की थी या मात्र तुम्हारी ही थी, मैंने अब इस बिन्दु पर सोचना ही छोड़ दिया है। मैं तो अब केवल दो बातें सोचता हूँ—एक, कि तुम मेरी बच्ची की माँ हो और दूसरी यह कि हम दोनों के शीघ्र मिलने की कोई आशा नहीं है। मेरा विचार है यदि तुम भी मेरे विषय में यही सोचो तो हम तीनों का कल्याण होगा।

सदा तुम्हारा
बायरन"

वह तबीअत से भीरु, दयावान और दरियादिल था। वह जिन्हें आवश्यकता होती, उनकी धन से भी

सहायता करता, किन्तु इसलिए नहीं कि वह उन पर दया करना चाहता था वरन् इसलिए कि वह स्वयं की कठिनाइयों से भिज्ञ था और मनुष्य के प्रति हमदर्दी की भावना उसके मन में कूट कूट कर भरी हुई थी। यही वह भावना थी जो उसे ग्रीस ले गई और यही वह भावना थी जिस के कारण बायरन को अक्षय कीर्ति मिली। परन्तु यह कीर्ति भी ऐशपरस्ती से मिली, बदनामी के धब्बे, और पत्नी के प्रति निर्मम व्यवहार करने से मिली निर्दयता के धब्बे को नहीं धो सकी। जार्ज फिनले ने कितना ठीक कहा है : "ऐसा प्रतीत होता है कि दो विरोधी आत्माएँ उसके शरीर में एक दूसरे के बाद प्रवेश करती रहती थीं। एक नारी-आत्मा थी जो सहानुभूति से पूर्ण थी दूसरी थी पुरुष-आत्मा जिसमें उन तथ्यों को प्रकाशित करने की अपार शक्ति थी जो किसी निर्णय पर पहुँचने में सहायक होते हैं और वह तुरन्त स्पष्ट निर्णय पर पहुँच जाता था। उसके शरीर में जब एक आत्मा प्रवेश करती तो दूसरी विदा हो जाती। जब वह बहुत-से लोगों के साथ होता तो सहानुभूतिशील आत्मा उस पर बरबस आ बैठती। जब वह अकेला या केवल किसी एक व्यक्ति के साथ होता तो उसका निर्णयशील पौरुष उसका सहायक होता था।"

कहा जाता है कि बायरन सा सुन्दर व्यक्ति इंग्लैण्ड ने पैदा नहीं किया। रूप और ऐश्वर्य दोनों उसमें थे। वैभव और सम्पन्नता की भी कमी नहीं थी, यह उसे वंशागत सम्पदा के रूप में प्राप्त हुई थी। वह एक समय भोजन करता था और मांसाहारी नहीं था। वाल्टर स्कॉट कहता है "वह फरिश्तों की आकृति का व्यक्ति था।" चार्ल्स मेथ्यू लिखता है "बायरन ही एक ऐसा पुरुष था जिसे सुन्दर कहा जा सकता है।" कोलिरिज कहता है "यदि तुम उसे देख लेते तो उसकी किसी बात से इन्कार नहीं कर सकते थे। उसकी सुन्दर आंखों को सूर्य ने ज्योति दी थी। वह रोमन देवता अपॉलोबलोए डीर का प्रतीक था।"

इंग्लैण्ड के कवियों में बायरन का स्थान सर्वोपरि है। स्कॉट के शब्दों में ही "बायरन अंग्रेजी के चार बड़े कवियों में से एक है।" उसके काव्य में एक शोर है, एक टंकार है—उसकी पंक्तियों में समाज की समस्त व्यवस्थाओं के प्रति घृणा है, पराधीनता के प्रति आक्रोश है। उसके प्रत्येक शब्द में क्रांति मचलती है। उसके काव्य में रचनात्मक तथ्य को समझते हुए यूरोप के क्रांतिकारी बायरन के सबसे बड़े क़द्रदां बन गए।

उसने अपने काव्य की टंकार से इटली और ग्रीस के लोगों को जगाया, गर्माया और ग्रीस के बीते वैभव को जिलाया भी। परन्तु इंग्लैण्ड के तत्कालीन साहित्यिक महारथियों ने बायरन की उपेक्षा की। इंग्लैण्ड सदा से ही सनातनी और नवविद्वेषी रहा है। अपनी राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्पराओं से, एक क्षण के लिए भी उसने कभी जुदा होना पसन्द नहीं किया। यही कारण था कि कारलायल ने कहा : "बायरन को छोड़ कर गेटे की रचनाओं का अध्ययन करो।" किन्तु बायरन की कविता तूफ़ान का तोटा या बारूद के समान भक से उड़ जानेवाली वस्तु नहीं वरन् वह तो कभी न बुझने वाली आग है—जमा हुआ शोला है!

"उठ ऐ सोए हुए ग्रीस,
जाग ऐ मेरी सोई हुई अन्तरात्मा,
सोच और गौर कर,
जिनके माध्यम से, जीवन का रक्त,
चेतन की धमनियों में दौड़ता है
(उन) भावनाओं को कोई पामाल कर दे,
यह जवानी की शान के विरुद्ध है।

यदि तुम्हें अपनी जवानी पर खेद है—
तो तुम्हारी जवानी किस काम की?
तुम्हारा जीना किस अर्थ?
सादर मृत्यु के लिए रणक्षेत्र निकट है,
उसकी ओर बढ़ो—
और प्रयत्न करो उस वस्तु की प्राप्ति के लिए
जिसे पाने का प्रयत्न कम ही किया जाता है।"

और एक हिन्दी आलोचक के कथनानुसार "मानवीय हृदय की अन्तर्वेदना को बायरन ने जितना समझा, साहित्यिक क्षेत्र में उतना शायद ही किसी और ने समझा हो। उसने आँसू की आर्द्रता को—उसकी मौन जलन और प्रशान्त हिममयता को अमर अभिव्यक्ति दी है।"

सेठी ब्रदर्स, अमीरा कादल,
श्रीनगर (काश्मीर)

—घनश्याम सेठी

धर्म की सामाजिक परिभाषा

'धर्म' के विषय को लेकर आज भी दँगा-फ़साद, संघर्ष और युद्ध, करने की प्रवृत्ति हम लोगों के बीच ख़तम नहीं हो गई है। "धर्म संकट में है" यह घोषणा विवेक को मूर्च्छित और आवेश को जागृत करने में सफल हो ही जाती है और तब यह अपने आप प्रत्यक्ष प्रमाणित सा होने लगता लगता है कि 'धर्म' अभी है और उसकी जड़ें मानव-स्वभाव में बहुत गहरे पैठी हुई हैं—इतनी गहरे कि उनको देखा भी नहीं जा सकता। जिन विद्वानों ने प्राचीन जातियों के विकास का गम्भीर अध्ययन किया है उनके रीति-रिवाजों, युद्ध संघर्षों का वर्णन अपने ग्रंथों में किया है वे इशारा करते हुए धर्म की इन जड़ों को आज से हजारों वर्ष पहले के समाज में दिखायेंगे जहाँ पर "धर्म संकट में है" का अर्थ जाति, और जाति-समूह का प्रत्येक व्यक्ति संकट में है" होता था। वे कहेंगे कि धर्म की जड़ें इस या उस व्यक्ति में नहीं हैं, बल्कि समाज और उसकी परंपराओं में है। जो जातियाँ अथवा जो धर्म जितने ही प्राचीनता के निकट होंगे अथवा पिछड़े हुए होंगे उनमें 'धर्म' की यह सामाजिक भावना उतनी ही तीव्र होगी, धर्म की रक्षा में वे उतने ही कट्टर हो कर अपने प्राणों को देने और प्राणों को लेने में तत्पर होंगे। इन धार्मिक युद्धों का क्रम-बद्ध इतिहास प्रत्येक धार्मिक देश के इतिहास में मिलेगा। केवल 'धर्म संकट में है" यही घोषणा करते हुए धार्मिक नहीं लड़े हैं वरन् औरों को मलेच्छ, काफ़िर, विधर्मी कह कर उन पर आक्रमण करने, उनको नष्ट करने की ओर भी बढ़े हैं। इस सामान्य सत्य को प्रमाणित करने के लिए अधिक युक्तियों की आवश्यकता नहीं है।

लेकिन आज धर्मों में एक नई प्रवृत्ति जाग रही है। उस प्रवृत्ति की ओर दृष्टि डालना आवश्यक है। कुछ समय पहले आधुनिक धार्मिक दृष्टिकोण से लिखी हुई एक पुस्तक को पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। पुस्तक का नाम था "विश्वास की घोषणा।" * यह पुस्तक सन् १९५२ ई० में प्रकाशित की गई है, इसलिए लेखक की मान्यताओं की आधुनिकता पर शंका नहीं की जा सकती। पुस्तक की भूमिका में लेखक ने कहा है :

"आज एशिया प्रसन्न होते हुए हमारे शासन से बाहर निकला जा रहा है। लेकिन अपनी इस नई स्वतंत्रता को प्राप्त करने के बाद भी वह दरिद्र है उसकी जन-संख्या अधिक है, और वह भूखा है। हमीं लोगों से एशिया ने मशीनों के चमत्कार पर विश्वास करना सीखा है, जिसके कारण वह अपने इस संकट को मौन रह कर नहीं सह पाएगा। फिर भी वह अपनी रक्षा नहीं कर सकेगा। रूस के पास भी इतना अतिरिक्त-उत्पादन नहीं है कि वह एशिया को बचा सके। केवल हम ही हैं जो यथार्थ में उसकी सहायता कर सकेंगे। लेकिन इसके पहले हमें विश्वास से अपने को दृढ़ करना पड़ेगा वह विश्वास जो हमको संगठित करते हुए दृढ़ और बलशाली बनाएगा।

"बिना विश्वास और एकता के हमें और भी अधिक वर्ग-घृणा, आत्म-ध्वंसक महायुद्ध, लड़खड़ाती हुई मानवता और ऊँचे उठते हुए भय का सामना करना पड़ेगा। जल्दी ही हमारी शक्तियाँ इतनी दुर्बल हो जाएँगी कि हम किसी की भी, यहाँ तक कि अपनी भी मदद नहीं कर पाएँगे। इसलिए हम विनम्रता से कह सकते हैं कि अपनी आत्माओं पर अधिकार करने की हमारी इस चेष्टा पर मानव का कल्याण अथवा ध्वंस निर्भर है। पश्चिम के पास साधन और ज्ञान है। अगर वह अन्तर की शक्ति प्राप्त कर सके तो वह फैलते हुए ह्रास को रोक सकता है।"

लेखक ईसाई धर्म का पोषक है और उसे पश्चिम की 'विश्वासहीनता' खटकती है। इस विश्वासहीनता में वह मानव का ह्रास देखता है। इस 'विश्वास' की सबलता के आधार पर आज की मानवता—विशेषकर एशिया की भूखी असंख्य जनता को मदद दी जा सकती है। 'विश्वास', 'अन्तर की शक्ति', 'आत्माओं पर अधिकार' ये सब क्या है? और इनकी जड़ें कितनी गहराई में छि

---

* "The Declaration of Faith by Herbert Agar

१९५४

हुई हैं ? लेखक इस विश्वासहीनता को इस अथवा उस व्यक्ति में नहीं देखता—वह इसे पूर्ण पश्चिम की दुर्बलता समझता है। पूर्ण मानवता की रक्षा के लिए पश्चिम के अध्यात्म को जागृत करना होगा—यह लेखक का मूल स्वर है। कुछ भी हो पश्चिम का यह नया अध्यात्म एशिया की दरिद्रता, क्षुधा, जनसंख्या की अतिरिक्तता को मदद देने के लिए उद्यत होगी। लेखक की कल्पना है कि अब एशिया मशीनों के चमत्कार पर विश्वास (भौतिकवाद) करेगा और छला जाएगा—इस बीच में अगर हम आन्तरिक शक्तियों को विकसित करलें तो अध्यात्मवाद भौतिकवाद पर विजयी हो सकेगा।

हमारे एशिया में भी इसी धार्मिक दृष्टिकोण के चिह्न प्रत्यक्ष-रूप से उन घोषणाओं में मिल सकते हैं जिनमें यह कहा जाता है कि एशिया का प्राचीन अध्यात्मवाद ही समग्र मानवता की रक्षा में समर्थ हो सकेगा। विश्व के महान् धर्मों की परम्परा को लेकर चलनेवाला 'एशिया' पश्चिम के भौतिकवाद पर विजय पाएगा। एशिया को अपनी आत्मा—अपना अध्यात्म—अपनी आन्तरिक शक्तियों को विकसित करना चाहिए। एशिया का यह अध्यात्म पश्चिम के भौतिकवाद को एक नई दिशा दिखाने में समर्थ होगा।

यह अध्यात्म, यह आत्मिक शक्ति, अथवा यह विश्वास पूर्व की अपनी निधि है। यह यदि जागृत हो जाए तो सम्पूर्ण मानवता एक महान् ध्वंस से अपनी रक्षा कर सकती है।

आधुनिक काल की यह धार्मिक अथवा अध्यात्मिक प्रवृत्ति ध्यान देने योग्य है जो सम्पूर्ण मानवता के रक्षक के रूप में उठ खड़ी होना चाहती है। धर्म की यह प्रवृत्ति भी व्यक्तिपरक न हो कर समाजपरक है। इसकी गहरी जड़ें भी सामाजिक इतिहास की परम्परा में हैं—यद्यपि यह संभव नहीं है कि इसको हजारों वर्ष पहले की जातियों में इस रूप में पाया जा सके।

मध्यकाल में मानवता धार्मिक विश्वासों की रक्षा के लिए युद्ध में तत्पर हुई थी, आधुनिक काल में धार्मिक विश्वास मानवता की रक्षा की घोषणा करना चाहता है। उन दिनों में धर्म संकट में आते थे, आज सम्पूर्ण मानवता पर ही जैसे संकट छाया जा रहा है। उन दिनों में मानवता की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा धर्म की रक्षा में थी, आज धर्म की सम्पूर्ण गरिमा मानवता की रक्षा में निहित हो गई है।

धर्म और मानवता का यह सम्बन्ध महत्वपूर्ण और कौतूहल वर्धक है।

वह कैसा समाज था जिसमें धर्म की सृष्टि हो सकी—जिसमें उस धर्म के ईश्वर और शैतान, स्वर्ग और नरक, सुर और असुर, धार्मिक संस्कारों के जटिल विधान एवं विधि निषेध उत्पन्न होकर शक्तिशाली हो सके, और यह आधुनिक समाज कैसा है जो उन सबको ध्वंस कर एक नई मानवता को जन्म देना चाहता है जिसमें प्राचीन धर्म साध्य के पद से गिर कर साधन के पद पर आ गया है?

इस प्रश्न का समुचित उत्तर धर्म की सामाजिक परिभाषा होगी।

एक बार फिर मानव को आदिम समाज की ओर लौटना पड़ेगा जहाँ पर अल्प-ज्ञान और अल्प साधनों को लेकर वह भौतिकवाद से नहीं वरन् भौतिक शक्तियों से संघर्ष कर आत्म-चेतना प्राप्त कर रहा था। यह प्राचीन मानव समाज यदि पशु-जगत् से भिन्न था तो इसी बात को लेकर कि उसमें आत्म-चेतना थी जब कि पशु इस आत्म-चेतना से विहीन था। मानव और प्रकृति के उस संघर्ष में आत्म-चेतनामय यह मानव समाज प्रकृति की शक्तियों को आत्मानुकूल बनाने में लगा हुआ था और उन अल्प साधनों के सहारे वह जितनी भौतिक शक्तियों पर विजय पाता हुआ अपने जीवन को सुरक्षित, समृद्ध और विकासगामी बना सका उतनी ही सीमा तक वह अपनी आत्म-चेतना को भी विकसित कर सका। इस संघर्ष में ही आत्म-चेतना के एक स्तर पर पहुँच कर उसने उन कृतियों को जन्म दिया जिनसे उसका प्रकृति की ध्वंसकारी शक्तियों के मध्य में आत्म-विश्वास जागृत हो सका। इस आत्म-विश्वास ने एक ओर उसकी सामूहिकता को शक्तिवान बनाया, दूसरी ओर उसके परिश्रम को और भी प्रभावशाली बनाया। यथार्थ की कठोरताओं ने उस आत्म-चेतन मानव को कल्पना की शक्ति सौंपी जिसको यथार्थ में उतारने के लिए उसने 'कला-शक्ति' का प्रयोग किया। इस कला-शक्ति ने सबसे पहले 'अभिचार' का रूप लिया जिसका प्रयोग 'आत्म-रक्षा' में 'दुर्जेय शक्तियों को जेय' बनाने में तथा 'विरोधी शक्तियों को नष्ट करने' में प्राचीन मानव समाजों में समान रूप से किया गया। ऐसे वातावरण में—समाज

की इन परिस्थितियों में सबसे पहले धार्मिक विश्वास का अंकुर फूटा। इन प्राचीन समाजों में धर्म एक सामाजिक अभिचार के रूप में था। जहाँ पर जो परिश्रम और साधनों से अनुकूल नहीं बनाया जा सकता था उसको कल्पना में जीतने का वह प्रयास करता था। इस कल्पना में यथार्थ का आधार ले अलौकिक जागता था—वह अलौकिक जो लोक को और भी अनुकूल बना सकता। आज के समाज में चलती हुई सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत उपासनाएँ, अर्चनाएँ, प्रार्थनाएँ, जटिल साधनाएँ इसी 'अभिचार' का उन्नत रूप हैं जिनके पीछे शक्ति को अनुकूल बनाने की कल्पना क्रियाशील रहती है।

लेकिन अपने यथार्थ परिश्रम और उपयोगी साधनों से एक समय मानव-समाज ने अपने को इतना उन्नत बना लिया कि उसकी प्राचीन एकात्मता खण्डित हो गई—समाज में श्रम-विभाजन संभव हुआ। यह श्रम-विभाजन वर्ग-विभाजन हुआ, जिसके आधार पर 'धर्म' की व्यवस्था संभव हुई। यह धर्म प्राचीन समाजों जैसा सरल अभिचार मात्र ही नहीं था, वरन् एक व्यवस्था के रूप में था। यह केवल यही निर्धारित नहीं करता था कि मानव-जाति का प्राकृतिक शक्तियों से क्या सम्बन्ध है वरन् यह भी निर्धारित करता था कि एक मानव का पूरे समाज में क्या स्थान है और उसका क्या सम्बन्ध है। इस समाज की 'कल्पना' का ही नाम धर्म नहीं था जो विशेष धार्मिक अभिचार कृत्यों में व्यक्त होती, वरन् एक यथार्थ नियमन था जिसके अनुसार ब्राह्मण यज्ञ करता था, क्षत्रिय रक्षा करता था, वैश्य खेती करता था, और शूद्र दास था। श्रम-विभाजन जब वर्ग-विभाजन हो गया—यानी पूरे समाज की आत्म-चेतना जब खण्डित (यथार्थ में) हो गई तब 'धर्म' उसकी आत्म-चेतना में व्यक्त हुआ। ऐसे ही समाज की आत्म-चेतना में नरक और स्वर्ग, परलोक और पाताल-लोक की कल्पना का विकास हो सकता था। ऐसे ही समाज में पाप और पुण्य को वरदान और शाप देनेवाले देवता अस्तित्व में आ सकते थे। इसी रूप के समाज में बहिर के द्वंद्व (जो मानव के समाज की खण्डित आत्म-चेतना थी) को आवृत्त करने के लिए आन्तरिक चेतना के अध्यात्म को विकसित करने का अवसर मिल सका।

बाहर का यथार्थ द्वंद्वात्मक है—इसलिए अद्वैत की साधना व्यक्तिपरक और आन्तरिक हो उठी।

प्राचीन समाज में 'धर्म' एक काल्पनिक यथार्थ इसलिए था कि उसने यथार्थ को कल्पना से जीतने का प्रयास किया—अभिचार के द्वारा।

मध्यकाल के समाज में 'धर्म' एक काल्पनिक यथार्थ इसलिए था कि उसने बाहर के यथार्थ को मिथ्या मान कर—शायद पाप या मल समझ कर—आन्तरिक एकता, आत्मचेतना की अखण्ड साधना की।

दोनों ही रूपों में धर्म, सामाजिक यथार्थ का कल्पित रूप ही रह सका। उसका यह कल्पित रूप उस समय स्पष्ट हुआ जब सामाजिक यथार्थ, विज्ञान को हाथों में लेकर अपने परिश्रम से और भी तीव्र गति से प्रकृति की शक्तियों पर विजय पाने के हेतु आगे बढ़ने लगा। इस संघर्ष में प्राकृतिक शक्तियों को इस प्रकार अपने अनुकूल बनाने में मानव-श्रम ने जिस आत्म चेतना को प्राप्त किया उसको मध्यकालीन धार्मिक-नियंत्रण रोक नहीं सके। जिस खण्डित एकात्मता के समाज पर आन्तरिक एकता की मणि को धारण कर 'धर्म' शासन शक्ति की दुर्जेयता लेकर आसीन था जब वह (एकात्मता) दूर होने लगी और सामाजिक क्रान्तियों के मध्य में ऐसा लगने लगा कि वर्गहीन समाज एक बहिर् यथार्थ होने के लिए जागरूक है तब 'धर्म' साध्य के पद से उतर कर साधन (नई मानवता की चेतना को विकासमान करने के हथियार ?) के रूप में आया।

इसके पहले धर्म मध्यकालीन सामन्तवादियों के हाथ में सामाजिक व्यवस्था को नियंत्रित करने में साधन और शासित लोगों का साध्य रह चुका था। मध्यकाल की सामाजिक उत्पादक शक्तियों को लेकर जिस संस्कृति, कला, साहित्य और प्रतिष्ठाओं का जन्म हुआ वे केवल समाज के शासन वर्ग को ही भूषित करती थीं, जब कि सामान्य परिश्रमशील जनता संस्कृति विहीन, कलाहीन, साहित्य शून्य और स्वयं में अप्रतिष्ठित थी। उसकी विवशता, दयनीयता, कभी कभी कटु आलोचना उसके अन्धविश्वासों में व्यक्त होती रहती थी। दुःख और जीवन जैसे यथार्थवादी शब्द हो गए थे। धार्मिक दीनता समाज की यथार्थ दीनता का प्रतिबिम्ब थी, भगवद्भक्ति सामाजिक विषमता का करुण चीत्कार थी।

आधुनिक विज्ञान का युग इस असंस्कृत, कलारहित, अप्रतिष्ठित सामान्य लोगों के हाथों में बिना शक्ति सौंपे आगे नहीं बढ़ सका। मध्यकालीन सामाजिक सम्बन्ध

टूटने लगे, और धर्म की वह व्यवस्था भग्न होने लगी जिसका निर्माण उसने सामन्तवादी शासकों की छत्रच्छाया में किया था। समाज की इस विषमता को डाँवाडोल देख कर, अपने संकट की गम्भीरता समझ कर धर्म ने अपना सामाजिक रूप छोड़ कर व्यक्तिपरक रूप धारण किया और जिस प्रकार से प्रत्येक धार्मिक अपने ऊपर आए हुए घोर संकट को टालने के लिए यथार्थ से विमुख होकर अपने पुण्य कृत्यों को पुकारने लगता है, उसी प्रकार से धर्म ने उस व्यक्तिपरक नैतिकता को सामाजिक आदर्श के रूप में नई मानवता के स्वभावजन्य धर्म के रूप में उपस्थित किया जिनको उसने अपनी सामाजिक व्यवस्था का एक दिन घोर विद्रोही समझा था। सत्य, अहिंसा, विश्व प्रेम, आत्मा की एकता, सम्पूर्णता और चिरन्तनता, परस्पर त्याग और करुणा, क्षमा और दया, शुचिता और उदारता, क्या ये मानव के शाश्वत मूल्य नहीं थे? इन शाश्वत मूल्यों का यथार्थरूप मध्यकालीन धार्मिक विधि-निषेधों में, उसके यथार्थ अधिकारों कर्त्तव्यों में स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है, और इन मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठाओं (?) से मण्डित वर्ग के लोगों के यथार्थ चित्रण के ज्ञान के द्वारा यह प्रत्यक्ष होता है कि शास्त्र में इन गुणों की स्तुति तो बहुत की है पर समाज के यथार्थ सम्बन्धों के रूप में इन पर घृणा से थूका ही गया है।

लेकिन आधुनिक युग की भूमिका में विश्व भर के धर्मों का सत्त्व रूप (सब धर्मों की शाश्वत मान्यताएँ) पूँजीभूत होकर सामान्य मानवता की शान्ति, समृद्धि, उन्नति और वर्गहीनता के लक्ष्य को पूरा करने की चेष्टा में संलग्न होने की कल्पना में निमग्न है। उसके सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि समाज की इस नई एकात्मता (वर्गहीनता) की भूमिका में उसका वह कल्पना-पक्ष क्या होगा जिसको लेकर वह आत्म-चिन्तन को अध्यात्म का सर्वस्व, आत्म-दर्शन को दार्शनिक की सबसे बड़ी सफलता और अलौकिक विश्वास (जो उतना ही गहरा होता था जितनी गहरी लौकिक विवशता होती थी) मानता आया है।

क्या जिस तरह से एक दिवस 'आत्म चिन्तन परक' अद्वैत ने बाहर के द्वैत, संघर्ष और आत्मविरोध को मिथ्या, माया, कल्पना, रस्सी से साँप का भ्रम प्रमाणित किया था, वही एकात्म, आत्मविरोधहीन, यथार्थभूत होकर आन्तरिक अध्यात्म को काल्पनिक तो प्रमाणित नहीं कर देगा?

इस द्विधा के कारण आधुनिक धार्मिक प्रवृत्ति फिर से एक नए काल्पनिक यथार्थ के रूप में उठी है जिसका व्यक्त रूप अध्यात्मवाद और भौतिकवाद के संघर्ष में फूट निकलना चाहता है। इस प्रवृत्ति की काल्पनिकता इस बात में है कि अध्यात्मवाद की ओर से संघर्ष करनेवालों का, अथवा भौतिकवादियों पर सशस्त्र आक्रमण करनेवाले गुटों का सामाजिक वर्गरूप शोषकों का ही है जो अपनी भौतिकता के गतिरोध के कारण समाज विरोधी हो उठे हैं। उनकी आन्तरिक एकात्मता, उनकी अध्यात्मबाजी अन्दर ही अन्दर विशृंखल हो उठी है। यह विशृंखलता, यह विश्वासहीनता, और ये काल्पनिक भय उनके एक नए संकट का द्योतक है जिसको वे लक्षण न मान कर मूल रोग मान रहे हैं।

मानवता की आत्म-चेतना आज धर्म लोकों की सीमाओं को पार कर रही है—अपने समाज में वर्ग-संघर्ष और प्रकृति-संघर्ष के मार्ग से उनको आगे बढ़ना पड़ रहा है। वह मानवता द्विधारहित, विश्वासपरक तथा नूतन के सृजन में परिश्रमशील है—उसके ऊपर अपने वर्ग के लाञ्छन भौतिकवाद का आरोप कर उसको न तो लाञ्छित किया जा सकता है और न कलंकित। मानवता की रक्षा के नाम पर यदि धर्म की यह काल्पनिक प्रवृत्ति ध्वंसकारी अस्त्रों को लेकर इस नई मानवता पर आक्रमण करेगी तो संसर्ग दोष के कारण वह स्वयं लाञ्छित हो जाएगी, जिसका निवारण असंभव होगा।

रक्ताभ कार्यालय,
रकाबगंज, लखनऊ

—आदित्य मिश्र

प्रशंसा उन्नत मनवालों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है
और कमजोर मनवालों का उद्देश्य और अन्त होती है।

—कोल्टन

पूर्वी अफ्रीका में प्रवासी भारतीय

हिन्द महामागर के दूसरे किनारे पर पूर्वी-अफ्रीका में १,८३,७५४ भारतीय बसे हुए हैं। पूर्वी अफ्रीका वस्तुतः चार देशों में विभक्त है; इनमें केनिया ब्रिटिश वसति (कालोनी), युगांडा ब्रिटिश संरक्षित (प्रोटेक्टरेट) अफ्रीकी रियासतों का समुच्चय, टांगानिका (१६१८ तक जर्मन पूर्वी अफ्रीका) लीग ऑफ नेशन्स द्वारा ब्रिटेन को प्रबन्धार्थ दिया गया प्रदेश (मेंडेट वा ट्रस्टीशिप) एवं जंज़ीबार द्वीप जिसके साथ पेम्बा द्वीप भी सम्मिलित है—ब्रिटिश संरक्षित (प्रोटेक्टरेट) अरब रियासत है। इनमें से केनिया में ६०,५२८ युगांडा में ३३,७६७ टांगानिका में ४४,२४८ एवं जंज़ीबार और पेम्बा में १५,२११ भारतीय रहते हैं; जब कि यूरोपियों की संख्या कुल मिला कर ४४,०७२ है। इस देश की शेष आबादी अफ्रीकी है (कुछ अरब आदि भी हैं) जिन्हें मिला कर कुल जनसंख्या १,८०,०५,३२५ है, इस प्रकार यहाँ यूरोपीय लोग अपने से ४०७½ गुनी जनसंख्या के अधिकारों को छीन कर शासन कर रहे हैं। भारतीयों की संख्या यूरोपियों से चार गुनी होते हुए भी इन्हें विशेषतः केनिया में उतने नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो यूरोपियों को हैं; वर्णभेद कानून में तो नहीं है तो भी केनिया के होटलों आदि से प्रतिष्ठित भारतीयों को बाहर निकाल देने की घटनाएँ आए दिन होती रहती हैं, कितने ही मोहल्लों और बाज़ारों में भारतीय वा अफ्रीकी बस नहीं सकते, न ही व्यापार कर सकते हैं यद्यपि वहाँ भारतीयों की सम्पत्ति होती है जो किराए पर यूरोपीयों को ही दी जा सकती है, कई स्थानों पर यह सम्पत्ति भी नहीं बनाई जा सकती। तो भी राजनैतिक उच्चता की दृष्टि से समस्त ब्रिटिश 'वसतियों' में से यहाँ के भारतीयों की स्थिति ब्रिटिश गणना के पश्चात् सर्वोत्तम है, आर्थिक दृष्टि से भी सर्वोच्च है। विधानसभाओं में भारतीयों की स्थिति निम्न प्रकार है :

केनिया	
भारतीय	४
अफ्रीकी	४
यूरोपीय	८

युगांडा	
भारतीय	४
यूरोपीय	४
अफ्रीका	८

टांगानिका	
भारतीय	७
अफ्रीका	७
यूरोपीय	७

इसी प्रकार जंज़ीबार में भी दो भारतीय सुल्तान नामज़द होते हैं।

उपर्युक्त चारों प्रदेशों में से केनिया में भारतीय की स्थिति अत्यन्त असन्तोषजनक है, भारतीयों का नेतृत्व माडरेट ढंग का है जो अपने अधिकारों के लिए लड़ता भी है और साम्राज्ञी के प्रति वफ़ादार कहलाने में भी गर्व अनुभव करता है। मुसल्मानों की मांग और यूरोपियों की 'भेद और शासन' की नीति के परिणामस्वरूप विधान-सभा में मुसल्मानों को पृथक् स्थान दे दिए गए हैं। अब कुछ सिख भी इसी प्रकार की मांगे कर रहे हैं, जिससे भारतीयों की एकता कुछ खतरे में पड़ गई है, ऐकमत्य नहीं रहा है, कुछ लोग पूर्वी अफ्रीका के विषय में नेहरू जी की विदेश नीति के पक्ष में हैं तो कुछ उन्हें अनुत्तरदायित्वपूर्ण गालियां देने में भी नहीं चूकते। यूरोपीय प्रेस की नीति के विषय में तो कुछ लिखना ही व्यर्थ है, भारतीय पक्ष को प्रस्तुत करने वाला कोई ऊँची कोटि का पत्र यहाँ अभी तक प्रकाशित नहीं होता।

इस ओर भारतीयों का आगमन कब प्रारम्भ हुआ इस विषय में इतिहास असन्दिग्ध नहीं है, तथापि समझा जाता है कि ईसवी सन् से पूर्व भी, मिस्री, असीरियन, फ़ीनीशियन, बेबोलोनियन, अरब, तथा भारतीय जातियों का यातायात था। सन् १४६८ में जब वास्को डि गामा भारत की ओर यात्रा करता हुआ जंज़ीबार आया था तब उसका पथ प्रदर्शक कान्हा नाम का भारतीय था जो इतिहास में काना मालम के नाम से प्रसिद्ध है। इससे सिद्ध है कि यूरोपीय अन्वेषकों के इधर आने से पूर्व ही भारतीयों का यातायात और व्यापारिक सम्बन्ध इस ओर था। जंज़ीबार अफ्रीका का प्रवेश द्वार था—हिन्द-महासागर के सभी यात्रियों के लिए।

इस दिशा में भारतीयों का स्थायी निवास सर्व प्रथम

१९५४

जंजीबार में ही प्रारम्भ हुआ जिनमें सर्व प्रथम गुजरात के दो भाटिया सद्गृहस्थ श्री बिशन जी हरिदास मीमानी तथा श्री शिवजी टोपण थे। श्री बिशन जी हरिदास मीमानी को जंजीबार के सर्वप्रथम सुल्तान श्री सैयद सईद (१८०४-१८५६) मस्कत से अपने साथ लाए थे, शिवजी टोपण पीछे बिशन जी मीमानी के साथ आए। शिवजी अपनी बुद्धिमत्ता और व्यवस्था चातुर्य के द्वारा शीघ्र ही सुल्तान के प्रिय अधिकारी बन गए, राज्य का सारा कारोबार उनके हाथ आ में गया। जंजीबार का कस्टम उनके हाथ में था जिसके लिए वे सुल्तान को नियत धन-राशि भेजते थे। शिवजी टोपण के पुत्र जयराम शिवजी ने पिता की सम्पत्ति और पितृप्राप्त अधिकारों में और वृद्धि की। पूर्वी अफ्रीका के समुद्रतट पर तथा अन्दर जंगली बतियों में भी, लामू, मुम्बासा, किस्मायु, बागामोयो, दारेसलाम, मगदीशो आदि स्थानों पर अपने कार्यालय खोले। सब कार्यालय जंजीबार के अरब सुल्तान के आधीन होते हुए भी इनमें हिन्दू विशेषतः भाटिया लोग ही मैनेजर होते थे। इस विशाल कारोबार की व्यवस्था के लिए गुलाम रखे जाते थे जिनके द्वारा ही अफ्रीका के आन्तरिक प्रदेशों में व्यापार चलता था। यह वही काल था जब अमेरिका में बतियों की प्रगति की जा रही थी और तदर्थ अफ्रीका से गुलाम बना कर नीग्रो लोगों को अमेरिका भेजा जाता था, गुलामों का यह व्यापार जयराम शिवजी आदि भारतीयों तथा अरबों के हाथ में था, जंजीबार ही इसकी मुख्य मण्डी थी। सन् १८६२ से १८६७ तक ६७,२०३ गुलाम किलवा से जंजीबार भेजे गए थे। इससे इस व्यापार की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस गुलामी प्रथा को बन्द करने के लिए सर्व प्रथम प्रयत्न सुल्तान सैयद सईद ने सन् १८२८ में किया। १८७३ में अंग्रेजों के साथ सन्धि के द्वारा मंडी बन्द कराने का निश्चय किया गया और प्रथा का पूर्ण विनाश १८६६ की डिक्री द्वारा किया गया। उन दिनों जहाँ गुलामों के व्यापार की मंडी थी, आज ठीक उसी स्थान पर आर्यसमाज का विशाल भवन, पुस्तकालय और कन्या पाठशाला है। १८०४ से १८६२ तक जंजीबार के द्वारा सारे पूर्वी अफ्रीका का व्यापार और वर्चस्व भाटिया जाति के हाथों में था, इस समय भी इनके वंशज जंजीबार में व्यापार करते हैं और अपने को अन्य लोगों से ऊँचा समझते हैं। जंजीबार नगर की गलियों में जाने पर ऐसा अनुभव होता है कि भटक कर देहली के चांदनी चौक की गलियों में आ गए हैं।

पूर्वी अफ्रीका के समुद्र तट पर दस मील चौड़ा और ५२ मील लम्बा प्रदेश जंजीबार के सुल्तान का है, जिसके लिए ब्रिटिश सरकार ग्यारह हजार पाउंड वार्षिक किराया सुल्तान को देती है। इस प्रदेश पर भारतीयों को बसे हुए कई पीढ़ियाँ हो चुकी हैं। इस प्रकार पूर्वी अफ्रीका को सर्व प्रथम बसाने वाले अंग्रेज नहीं, अपि तु अरब और भारतीय ही हैं।

१६ वीं शताब्दी के अन्त में जब अंग्रेजों ने पूर्वी अफ्रीका में अपनी बस्तियाँ बसाना प्रारम्भ किया तब उन्हें भारतीय मजदूरों, इंजीनियरों आदि की आवश्यकता पड़ी, जो सहस्रों की संख्या में ले जाए गए। घने जंगलों में, वर्षा, धूप और रोग कीटाणुओं के बीच तम्बुओं में रह कर हाथियों और शेरों के शिकार बन कर भारतीयों ने रेलों, सड़कों और नगरों का निर्माण किया। सभ्यता के लिए किए गए उन बलिदानों की कहानियाँ आज भी बड़े-बूढ़ों के मुँह से सुनी जा सकती हैं। उस समय तक अंग्रेज लोग भारतीयों को 'कुली' ही समझते थे उन्हें पता नहीं था कि ये परिश्रमी लोग पर्याप्त भोजन वस्त्र के बिना ही यहाँ आकर कुछ समय पश्चात् व्यापार और राजनीति में यूरोपीयों के प्रतियोगी हो जाएँगे अन्यथा शायद उन्हें यहाँ लाने की भूल न की जाती!

जब यूरोपीयों ने यह देखा कि पूर्वी अफ्रीका ब्रिटिश के स्थान पर भारतीय 'बसति' बनता जा रहा है और श्रीनिवास शास्त्री ने यहाँ तक कह दिया कि "If East Africa is lost, all the colonial India is lost", अर्थात् यदि पूर्वी अफ्रीका चला जाता है तो भारतीय सारी विदेश स्थित बस्तियाँ चली जाती हैं—यूरोपीयों के कान खड़े हो गए और उन्होंने तत्काल भारतीयों को दबाने के लिए नाना प्रकार के उपायों की सृष्टि प्रारम्भ कर दी। इमिग्रेशन विभाग बनाया गया, जिसके नियम कहने के लिए तो यूरोपीयों पर भी लागू होते थे किन्तु वास्तव में वे भारतीयों के ही लिए थे। अफ्रीकी जाति को भारतीयों के विरुद्ध भड़काने का यत्न किया गया, यहाँ तक स्थिति आई कि अफ्रीकी नौकरों ने भारतीय घरों और दूकानों का बहिष्कार भी किया जो कि माओ-माओ प्रारम्भ होने पर ही समाप्त हुआ।

पूर्वी अफ्रीका में एक औसत भारतीय के रहन-सहन की तुलना भारत के उच्चवर्गीय धनिकों से की जा सकती है, केनिया की राजधानी नैरोबी का स्थान मोटरकारों की प्रति व्यक्ति आनुपातिक संख्या की दृष्टि से विश्व में तीसरा है, युगांडा की अधिकांश शक्कर बनाने और रुई धुनने की फैक्टरियाँ भारतीयों की हैं। चारों प्रदेशों के किसी भी नगर में चले जाने पर एक नए प्रवासी को सर्वथा यह अनुभव नहीं होता कि वह कहीं विदेश में आ गया है। भारतीय फिल्में प्रायः प्रत्येक सिनेमाघर में दिखलाई जाती हैं जिनके गीत अफ्रीकी नौकरों के मुँह से सुने जा सकते हैं। आर्यसमाज, भारतीय स्वयंसेवक संघ, आर्यवीर दल आदि संस्थाएँ हैं, लगभग एक दर्जन आर्यसमाज भवन हैं। सारे पूर्वी अफ्रीका में सबसे बड़ा कन्या विद्यालय नैरोबी की आर्य कन्या पाठशाला है। विद्यालयों में हिन्दी और गुजराती ऐच्छिक भाषाएँ हैं।

यह सब होते हुए भी भारतीयों की क़ानूनी स्थिति असन्तोषजनक है, भारतवर्ष से जाकर वहाँ बसने के लिए अनेकों प्रतिबन्ध हैं। जिसका कारण स्थान की कमी बतलाया जाता है जब कि लाखों एकड़ भूमि यूरोपीयों के अधिकार में बिना जोते बोए, खाली पड़ी हुई है जिस पर बसाने के लिए तीस हज़ार यूरोपीय और लाए जा रहे हैं जिनमें ब्रिटेन के भूतपूर्व शत्रु जर्मन लोग भी सम्मिलित हैं, इससे स्पष्ट है कि अंग्रेज़ इस देश में अपने शत्रुओं को लाकर बसाने के लिए उद्यत हैं किन्तु भारतीयों को नहीं। कई स्थानों पर यूरोपीयों द्वारा भारतीय व्यापार का बॉयकाट किया गया है जिसके विरोध में आवाज़ उठाते हुए भारतीय नेताओं ने कहा है कि इसके बदले में बम्बई और कलकत्ता में स्थित यूरोपीय फर्मों का व्यापार भारत के व्यापारियों द्वारा चौपट किया जा सकता है। स्मरण रहे कि केनिया के भारतीयों की कुल व्यापारिक सम्पत्ति से दस गुनी व्यापारिक सम्पत्ति केवल बम्बई में यूरोपीय फर्मों की हैं। अतः पूर्वी अफ्रीका में भारतीयों के व्यापार के प्रति यूरोपीयों द्वारा की जानेवाली किसी भी हानि का पूरा बदला भारत में बखूबी लिया जा सकता है।

पूर्वी अफ्रीका में विशेषतः केनिया में भारतीयों की संख्यावृद्धि को रोकने के लिए कुछ ऐसे नियम बनाए गए हैं जिन्हें सुन कर हँसी आए बिना नहीं रहती। उदाहरणार्थ—सामान्यतः केनिया में आनेवाले भारतीयों को स्थायी रूप से बसने की अनुमति नहीं मिलती; हाँ, यदि प्रवेशार्थी की पत्नी यहाँ हो तो यह अनुमति प्राप्त हो सकती है। इस कारण यहाँ बसे भारतीयों ने भी उपाय खोज निकाला, वे भारत से कुँवारे व्यक्तियों को भ्रमणार्थ लाते और यहाँ लड़कियों से विवाह करा उन्हें बसा लेते। पीछे यह नियम बनाया गया कि यदि केनिया की एक लड़की पूर्वी अफ्रीका के बाहर किसी प्रदेश में विवाह कर आई हो तो पति को उसके साथ आकर बसने की अनुमति मिल सकती है, इसी प्रकार बाहर से विवाह कर आए पति की पत्नी को भी।

पूर्वी अफ्रीका में बसे भारतीयों के नागरिक अधिकार की स्थिति भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् से संकटमय हो गई है। १५ अगस्त '४७ से पूर्व ब्रिटिश भारत तथा ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका दोनों स्थानों के भारतीय समान रूप से ब्रिटिश प्रजाजन थे। सन् '४८ में ब्रिटेन की पार्लियामेंट में "ब्रिटिश राष्ट्रीयता क़ानून १९४८" पास हुआ जिसके अनुसार वे पूर्वी अफ्रीकी भारतीय जिनका जन्म ब्रिटिश भारत में हुआ था, नागरिकता-अधिकार से रहित ब्रिटिश प्रजाजन कहलाए तथा जो भारतीय रियासतों में उत्पन्न होने से ब्रिटिश प्रजाजन तो नहीं थे अपितु ब्रिटिश संरक्षित (Protected) थे और भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति के साथ उक्त संरक्षण को खो बैठे थे, राष्ट्रहीन (Stateless) हो गए। अतः उनके लिए यह आवश्यक हो गया कि वे पहले भारतीय नागरिकता को प्राप्त करें फिर ब्रिटिश प्रजाजन बन कर पूर्वी अफ्रीका में रहें। भारतीय संविधान ने उन्हें इसकी सुविधा दी जिसके अनुसार भारत से बाहर रहनेवाला प्रत्येक वह भारतीय जो स्वयं या जिसके पितृपक्ष व मातृपक्ष की दो पीढ़ियों में से कोई भारत में उत्पन्न हुई हो, भारत का नागरिक हो सकता है।

इस प्रकार अनेकों भारतीयों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे पहले नैरोबी स्थित भारतीय दूतावास में अपने को भारतीय नागरिक के रूप में सूचित करें। फिर पूर्वी अफ्रीका में ब्रिटिश प्रजाजन के रूप में रहें, और ऐसा ही किया भी गया। इस प्रकार उन्हें दो देशों की नागरिकता साथ-साथ प्राप्त हो गई, पूर्वी अफ्रीका का कोई भी भारतीय आज केनिया, युगांडा आदि की विधानसभा के लिए अपना मत देकर, वायुयान द्वारा भारत आ कर अगले

दिन भारतीय संविधान सभा के लिए चुनाव के लिए अपना मत दे सकता है।

भारत से नौकरी, व्यापार या भ्रमण आदि के लिए पूर्वी अफ्रीका जाने के लिए केनिया, युगांडा, टांगानिका में से किसी भी प्रदेश की सरकार से प्रवेश-पत्र लेना पड़ता है जो नौकरी या व्यापार के लिए तो अत्यन्त कठिनता से ही मिल पाता है। चार वर्ष तक पूर्वी अफ्रीका में रहने के पश्चात् स्थायी निवास की अनुमति और ब्रिटिश पासपोर्ट प्राप्त हो सकता है किन्तु नागरिकता का अधिकार नहीं, अतः किसी भी स्थायी निवासी को कभी भी इमिग्रेशन विभाग बाहर निकाल सकता है।

पिछले दिनों प्रधान मंत्री नेहरू जी ने पूर्वी अफ्रीका के भारतीयों की स्थिति पर विचार प्रकट किए हैं और उन्हें उक्त देशों के मूल-निवासियों की अनुमति से अतिथि रूप में ही वहाँ रहने का अधिकारी बतलाया है, इसके कारण भारतीयों में दो दल हो गए हैं, एक दल के मत में नेहरू जी के वक्तव्य इस देश में भारतीयों के अधिकारों की स्थिति को ख़राब कर रहे हैं तो दूसरे दल के मत में इनसे भारत और अफ्रीका की मैत्री दृढ़ हो रही है और भारतीयों की सुरक्षा सम्पन्न हो रही है अन्यथा 'माओ-माओ' दल जितना यूरोपीयों के विरुद्ध है उतना ही भारतीयों के भी विरुद्ध हो जाता। यह सत्य है कि माओ-माओ दल से सम्बन्धित वा असम्बन्धित अफ्रीकियों ने कुछ भारतीयों को लूटा वा मारा भी है, किन्तु राजनैतिक नहीं, आर्थिक कारणों से; क्योंकि माओ-माओ को शस्त्रास्त्रों आदि के लिए धन की आवश्यकता है, यदर्थ भारतीयों को लूटना सुगम रहता है। नेहरू जी की नीति के विरोधी दल में अधिकांश संख्या पाकिस्तानियों और कुछ गोआवासियों की है, दो-चार हिन्दू सिख भी हैं। ये लोग अवसर से लाभ उठा अपने को ब्रिटिश सरकार का वफ़ादार दिखला कर स्वार्थसिद्धि करना चाहते हैं। भारतीयों की एकमात्र संस्था "इंडियन एसोसिएशन" है, जिसका उत्तम संगठन केनिया में "केनिया भारतीय काँग्रेस" के नाम से है (एक वर्ष पूर्व इसका नाम 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पूर्वी अफ्रीका' था)। इसके नेताओं की नीति भी यही है कि भारत को इस देश के भारतीयों की स्थिति के विषय में चुप ही रहना चाहिए। पिछले दिनों जब दीवान चमनलाल श्री जोवो केनियाता के मुक़दमे में वकालत करने के लिए केनिया गए और उन्होंने भारतीय और अफ्रीकी जनता में तथा भारतीय नेताओं में नेहरू जी की पूर्वी अफ्रीका सम्बन्धी नीति के विषय में जनमत तैयार करना चाहा तो माडरेट ढंग के ये नेता लोग उन पर बुरी तरह बिगड़े और श्री दीवान चमनलाल का जितना अपमान भारतीय नेताओं ने किया उतना ही सम्मान अफ्रीकियों ने किया। भारतीय जनता मुख्यतः हिन्दुओं के सामान्य वर्ग के हृदय श्री नेहरू जी के साथ है, किन्तु इनमें अधिकतर नौकरी पेशा लोग ही हैं। व्यापारी लोगों के लिए यह सोचना ही असंभव है कि वे अफ्रीकियों के कहने से अपनी सम्पत्ति छोड़ कर भारत लौट आएँगे जब कि वे जानते हैं कि भारत में उन्हें वे व्यापारिक और आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं जो पूर्वी अफ्रीका में हैं। हाँ, अफ्रीकी के सामान्य अधिकारों के लिए वे अहिंसात्मक वैधानिक संघर्ष में सहायता देने के लिए उद्यत हैं। भारतीयों ने अफ्रीकियों को जंगलीपन से सभ्यता की स्थिति में लाने के लिए बहुत कुछ किया है किन्तु अब इन दोनों जातियों में व्यापारिक और आर्थिक प्रतियोगिता आ जाने से कटुता बढ़ रही है। भारतीय इस समय दो चक्कियों में पिस रहा है, एक ओर अफ्रीकी उसे सन्देह की दृष्टि से देखता है तो दूसरी ओर यूरोपीय भी अपनी शक्ति पर उसे कुचल देना चाहता है। यूरोपीय से प्रश्न करने पर उत्तर मिलता है—"क्या आप नहीं जानते कि यह ब्रिटेन की बस्ती है, भारत की नहीं?" अफ्रीकी कहता है, "यह मेरी ज़मीन है, यहाँ किसी विदेशी को रहने का अधिकार नहीं है।"

यह सत्य है कि पूर्वी अफ्रीका विशेषतः केनिया में भारतीयों का भविष्य भारत और अफ्रीका तथा भारतीयों और अफ्रीकियों की मैत्री पर ही निर्भर है, माओ-माओ आन्दोलन का रुख भारतीयों की ओर अधिक नहीं मुड़ा। इसका कारण नेहरू जी की विश्व-स्वातन्त्र्य प्रिय नीति के वक्तव्यों, भारत सरकार के द्वारा अफ्रीकियों को दी जानेवाली छात्रवृत्तियों आदि को ही कहा जा सकता है। अपनी एक वर्ष की अफ्रीका यात्रा में मैंने पाया है कि नेहरू जी का नाम अफ्रीकियों में जादू भर देता है, खादी के पाजामे और काली अचकन के राष्ट्रीय वेष में देख कर न जाने कितनी बार राह चलते अपरिचित अफ्रीक़ियों ने मुझे पुकार कर कहा—"जाम्बो बवाना या नेहरू" अर्थात्—ओ नेहरू जी के आदमी! नमस्कार।—यही कारण है कि रोडेशिया के अफ्रीकियों में पं० नेहरू जी का

जीवनचरित बाँटने पर पूर्वी अफ्रीका के गोरे पत्र चिल्ला उठे।

आज पूर्वी अफ्रीका में अमानुषिकता का नग्न तांडव देखा जा सकता है, किकूयुओं द्वारा की गई हत्याओं को खूब रंग देकर विदेशों में प्रकाशित किया गया जब कि गोरी सेनाओं द्वारा किए जानेवाले निर्मम दानवीय अत्याचारों की कोई सूचना संसार को नहीं है। भारतीय प्रेस ने इस कार्य को कुछ अंशों तक अपने हाथों में लिया लेकिन उसमें प्रकाशित सूचनाएँ कई बार बड़ी निराधार होती हैं। कौन जानता है कि समान योग्यतावाले यूरोपीय भारतीय और अफ्रीकी को समान कार्य के लिए पृथक्-पृथक् वेतन पूर्वी अफ्रीका में दिया जाता है। कौन जानता है कि अफ्रीकी अपने खेत में कॉफी आदि कुछ वस्तुएँ उगा ही नहीं सकता और अपनी मकई आदि की उपज भी सीधे बाजार में नहीं बेच सकता अपि तु यूरोपीयों की "केनिया फ़ार्मर्स एसोसिएशन" को यूरोपीयों की उपज से कम दामों पर ही बेच सकता है। इस प्रकार के कितने ही अत्याचारों के विरुद्ध भारतीयों और अफ्रीकियों के सम्मिलित आन्दोलन की आवश्यकता है, जिसमें सबसे बड़ी बाधा माओ-माओ की हिंसावृत्ति और भारतीयों की अहिंसावृत्ति का भेद है। तो भी भविष्य में ऐसा आन्दोलन अवश्य होगा इसमें सन्देह नहीं; क्या कहा जा सकता है कि ब्रिटिश गायना के समान पूर्वी अफ्रीका में भी कभी भारतीय प्रधान मन्त्री बन सके।

दक्षिणी अफ्रीका के विषय में भारतीय जनता काफ़ी परिचित हो चुकी है इसका कारण वहाँ के भारतीयों के नेतृत्व द्वारा ठीक दिशा का ग्रहण ही है, किन्तु पूर्वी अफ्रीका के विषय में ऐसी बात नहीं है। भारत में बहुत से लोगों को तो यह भी विदित नहीं है कि केनिया कहाँ है! एक प्रसिद्ध सचित्र हिन्दी साप्ताहिक में यह पढ़ कर बड़ा आश्चर्य हुआ—"दक्षिण अफ्रीका के केनिया उपनिवेश में जो कुछ हो रहा है......।" इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि भारतवर्ष की जनता पूर्वी अफ्रीका से भी उसी प्रकार परिचित हो जिस प्रकार दक्षिण अफ्रीका से है। अभी तो यह स्थिति है कि कई बार भारत सरकार से ही आनेवाले पत्रों पर "नैरोबी, केनिया (साउथ अफ्रीका)" लिखा होता है।

मिस्र से ब्रिटिश सेनाओं के हटाए जाने की सम्भावना उत्पन्न हो जाने पर अब उन सेनाओं का केन्द्र केनिया में मैकिनन रोड नामक स्थान पर बनाए जाने की गुप्त योजना बन रही है; केनिया और भारत के बीच हिन्द महासागर ही लहराता है, कोई भू भाग नहीं है, अतः केनिया में जो कुछ होगा उसका सीधा प्रभाव भारत की आर्थिक और व्यापारिक स्थिति पर उतना नहीं, जितना प्रतिरक्षा पर पड़ेगा; पूर्वी अफ्रीका स्थित भारतीय उस प्रभाव को न्यून वा अधिक कर सकता हैं अतः इस विषय में भारतीय सरकार तथा जनता को अत्यन्त सुपरिचित एवं सावधान रहना होगा। पूर्वी अफ्रीका के भारतीयों का प्रश्न केवल उनका अपना ही नहीं है, किसी दिन वह स्वेज़ के समान ही सारे एशिया की यूरोपीय साम्राज्यवाद से रक्षा का प्रश्न बन सकता है।

नैरोबी, केनिया
पूर्वी अफ्रीका

—उषर्बुध आर्य

पुरानी लकड़ी जलाने के लिए अच्छी होती है,
पुरानी शराब पीने के लिए अच्छी होती है,
पुराने मित्र विश्वसनीय होते हैं,
पुराने लेखक पढ़ने के लिए अच्छे होते हैं

—बेकन

गृह समस्या

रोटी, कपड़ा और मकान—यह जीवन की तीन प्रमुख आवश्यकताएँ हैं जो हमारे देश में अपर्याप्त हैं। भारतवर्ष की भारी जनसंख्या ग्रामों में बसी है, इसीलिए ग्रामों में घरों की समस्या का रूप दूसरा है और नगरों में दूसरा। ग्रामों में मकान अच्छे, साफ़-सुथरे, हवादार और खुले होने चाहिएँ। शहरों में घरों की समस्या का स्वरूप ही और है। नगरों में मकान तो सीमित हैं परन्तु उद्योग-धन्धों के विकास, नए कल कारखानों के खुलने और नए आविष्कारों से नगरों की जनसंख्या में अपार वृद्धि हुई है। फलस्वरूप जनसंख्या का घनत्व बढ़ता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप कानपुर, अहमदाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और दिल्ली आदि बड़े शहरों में फुटपाथ पर सोनेवालों और जागरण कर रात काटनेवालों की कमी नहीं।

१९५१ की जनगणना के अनुसार नई दिल्ली की जनसंख्या १९७·७ प्रतिशत, मद्रास की ८३·९ प्रतिशत बम्बई की ६३·१ प्रतिशत, कलकत्ता की २०·९ और उत्तर प्रदेश के लगभग १६ बड़े शहरों की जनसंख्या ३३·७ प्रतिशत बढ़ी है। इस बढ़ती हुई आबादी का कारण भारतीय श्रमिकों का अस्थाई स्वभाव, नए आविष्कार और नवीन धन्धों का खुलना है, इसके अतिरिक्त गृह समस्या के विकास की योजना का समुचित प्रबंध न होना भी प्रमुख कारण है।

बम्बई में एक या एक से अधिक परिवार एक कमरे में रहते हैं जो बम्बई की जनसंख्या का ९१·२४ प्रतिशत है। बम्बई सरकार ने मज़दूरों के लिए चालें (Chawls) बनवाई हैं। एक-एक चाल अस्सी-अस्सी कमरों की है और कुल मिला कर यह चालें २०७ से अधिक हैं। इन चालों में १६८४० मज़दूर अपना निर्वाह करते हैं। बम्बई में गृहोन्नति समिति ने ११३७५ मकान बनवाए। साथ ही बम्बई म्युनिसिपल कार्पोरेशन ने एक-एक कमरे की ५००० चालों का आयोजन किया है। बम्बई के पोर्ट ट्रस्ट ने लगभग ३० प्रतिशत मज़दूरों के लिए रहने का प्रबंध किया है। कुछ चालें जमींदारों और सेठों ने भी बनवाई हैं जिनकी दशा बड़ी शोचनीय है। बम्बई श्रम कार्यालय १९३९ की जाँच के अनुसार ९१·२४ प्रतिशत लोग एक कमरे में रहते हैं और औसतन एक कमरे में ३·८४ आदमी रहते हैं। यह एक कमरे के मकान कुल मकानों के अनुपात में ८१ प्रतिशत हैं। गृहोन्नति समिति आदि के विशाल गृह निर्माण कार्य के बाद भी श्रमिकों की घरों की स्थिति शोचनीय है। अधिकांश लोगों को पानी की परेशानी सदा बनी रहती है। अधिकतर मजदूर स्नानागार और पाखानों का सामूहिक प्रयोग करते हैं।

अहमदाबाद की दशा कोई अच्छी नहीं है। म्युनिसिपल बोर्ड ने हरिजनों के लिए ३८३ घर और ४५४ घर सवर्णों के लिए बनवाए हैं। साथ ही अहमदाबाद मिल गृह कम्पनी (मिल-मालिकों की संस्था) ने ८०० मकान बनवाए हैं। टेक्सटाइल श्रम संघ अहमदाबाद ने ६० घरों की एक कालोनी बनवाई है। इसके साथ ही श्रमिक सरकारी गृह समिति जैसी छः संस्थाएँ अहमदाबाद में श्रमोन्नति के लिए प्रयत्न कर रही हैं। इस संस्था का योग ४०० मकान है।

कानपुर में विकास ट्रस्ट ने १९४८ तक २८१ मकान बनवाए थे। १९४३ और १९४४ में प्रान्तीय सरकार ने विकास संघ को २४०० मकान बनवाने के लिए ३०·३ लाख रुपए की सहायता प्रदान की थी। १९३८ की मिल मालिकों की गृह योजना के फलस्वरूप ३००० घर बनवाए गए। कानपुर के मिल मालिकों ने कुल आबादी में से १० प्रतिशत लोगों के लिए घरों का प्रबन्ध किया है। ब्रिटिश इंडिया कार्पोरेशन ने एलनगंज और मैकराबर्टगंज में १६६० मकान बनवाए हैं। जुग्गीलाल कमलापति ने भी मज़दूरों के लिए बड़ी-बड़ी बस्तियाँ बनवाई हैं। कानपुर म्युनिसिपल बोर्ड ने भी गृह निर्माण कार्य में सराहनीय योग दिया है। कानपुर जाँच-पड़ताल समिति (Labour Inquiry Committee) यू० पी० इकनामिक इन्टेलीजेंस ब्यूरो ने १९३८ और १९३९ में जाँच पड़ताल कर निष्कर्ष निकाला कि ६५ प्रतिशत परिवार एक कमरे के मकानों में, ३१ प्रतिशत दो कमरों के मकानों में, ४ प्रतिशत लोग तीन या चार

कमरों के मकानों में रहते हैं। कानपुर के मज़दूरों के अहातों के १२ प्रतिशत कमरों में खिड़कियाँ और रोशनदान नहीं हैं और ७२ प्रतिशत कमरों की फर्श कच्ची है। केवल ७ प्रतिशत परिवार निज के बम्बों से पानी लेते हैं और लगभग ५० प्रतिशत लोग कुओं से पानी लेते हैं तथा शेष लोग सरकारी बम्बों का उपयोग करते हैं। एक सरकारी नल का उपयोग लगभग ३१३ व्यक्ति करते हैं। मलत्याग के लिए २६ प्रतिशत परिवारों के लिए कोई प्रबन्ध नहीं है। फलस्वरूप यह सभी लोग सरकारी बमपुलिस का उपयोग करते हैं। एक बमपुलिस से लगभग ८०० आदमी प्रतिदिन लाभ उठाते हैं। इन्हीं सब त्रुटियों के कारण श्रमिकों का नैतिक पतन हुआ है।

कलकत्ता में ४५ प्रतिशत मजदूरों के रहने का प्रबन्ध मिल मालिकों ने किया है और ४० प्रतिशत मजदूरों के लिए कलकत्ता पोर्ट कमिश्नर द्वारा प्रबन्ध है। इंडियन जनरल नैवीगेशन और रेल्वे कम्पनी, हावड़ा ट्रेडिंग कम्पनी, दवाओं के कारखाने, सिगरेट और शीशे के धन्धों में श्रमिकों के रहने के लिए भी प्रबन्ध है। इंडियन जूट मिल्स संघ ने ४२४६६ क्वार्टर बनवाए। हाल ही में बिड़ला ने जूट मिल कालोनी बनवाई जिसमें लगभग १२०० क्वार्टर हैं। और जिसमें लगभग ४३ प्रतिशत जूट मिलों के मजदूर रहते हैं। ५३ जूट मिल के मालिकों ने लगभग ४२०० से अधिक मकान बनवाए हैं जिनमें लगभग १४०००० मज़दूर रहते हैं।

मद्रास में मद्रास कार्पोरेशन ने ३५ प्रतिशत घरों का प्रबन्ध किया है। इस संस्था ने ३५४ क्वार्टर बनवाए हैं जिनमें २४४ एक कमरे के हैं और ११० दो कमरों के। बकिंघम और कर्नाटक मिलों ने लगभग १० प्रतिशत घर दिए हैं। इन्होंने ६५६ घर चार बस्तियों में बनवाए हैं। मद्रास में २०० से ऊपर चेरी (Chery मजदूरों के लिए घर) जमींदार और धनी बनियों ने बनवाई हैं। २६ चेरी सरकार ने, २५ कार्पोरेशन और २७ ट्रस्ट ने बनवाई हैं। पानी का प्रबन्ध बहुत खराब है। ४६० नलों में १८३००० व्यक्ति पानी पीते हैं। १०६ चेरियों में केवल १२१ पाखाने हैं और ७२ चेरियों में एक भी नहीं। इन चेरियों में हवा और धूप का कोई प्रबन्ध नहीं है। सीलन और गन्दगी की तो बात ही दूर। मज़दूरों की आय का १६ प्रतिशत किराए में ही निकल जाता है। यह दशा मद्रास के साथ ही मदुरा, कोयमबटूर, टुटीकोरम और कोचीन आदि में भी पाई जाती है।

जमशेदपुर में मज़दूरों के रहने का प्रबन्ध गनीमत है। टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी ने ८४२८ क्वार्टर बनवाए हैं जिसमें लगभग ३४ प्रतिशत मज़दूर रहते हैं। घरों में बिजली का भी प्रबन्ध है। कम्पनी की बिल्डिंग लोन स्कीम के अनुसार ३०१५ क्वार्टर बने हैं। टिन प्लेट कम्पनी ने ९१३ पक्के और ५०० कच्चे मकान बनवाए हैं। यहाँ मिल मालिकों और मज़दूरों के सम्बन्ध अच्छे हैं।

झरिया और रानीगंज की खानों में भी मकानों का प्रबन्ध बड़ा शोचनीय है। झरिया के धौराओं (मज़दूरों के लिए घर) की संख्या १६४४ के अनुसार ३३६३८ है। रानीगंज के खानों में ८० प्रतिशत मजदूरों के रहने का प्रबन्ध है। कोलार के सोने की खानों में ७६ प्रतिशत मज़दूरों के लिए प्रबन्ध है। खानों के धौराओं में ८५ प्रतिशत मज़दूर एक कमरे के मकानों में, १० प्रतिशत मज़दूर दो कमरे के मकानों में, ३ प्रतिशत मज़दूर तीन कमरे के मकानों में और २ प्रतिशत मज़दूर चार कमरों के मकानों में रहते हैं। लगभग २० प्रतिशत लोगों के रहने का कोई प्रबन्ध नहीं हैं।

आसाम के चाय के बागानों के मज़दूरों के लिए बैरकों की दशा बहुत शोचनीय है। ६० प्रतिशत बैरकें (मज़दूरों के लिए रहने का स्थान) कच्ची बनी हैं। यह बाँस और फूस की बैरकें स्वास्थ्य के लिए बड़ी हानिकारक होती हैं। इनमें आग लग जाने का भय सदा बना रहता है। बैरकों के मालिक मज़दूरों के सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य बाहरी लोगों को बैरकों में जाने की आज्ञा नहीं देते जिसके फलस्वरूप मज़दूरों के संगठन कमज़ोर हैं। इन बाग़ानों के मजदूरों के लिए पानी, हवा, रोशनी और सफाई का प्रबन्ध बहुत ख़राब है।

कार्यकुशलता, मृत्यु और बुरी लतें: यथोचित घरों के न होने से श्रमिकों के रहन-सहन का स्तर गिर जाता है जिसका परिणाम अन्ततोगत्वा मजदूरों की कार्य कुशलता पर पड़ता है। दिनचर्या ठीक न होने और कटु जीवन से मज़दूरों की कार्य कुशलता में ह्रास होता है।

कानपुर में मज़दूर कुल जनसंख्या के ४० प्रति-

शत हैं और उनके बच्चों की मृत्यु का औसत लगभग ४६·३२ (१०० में) है।[१] बिहार के कोयले की खानों में विहार श्रम जाँच-पड़ताल समिति के अनुसार (Bihar Labour Inquiry Committee Report) १०३० परिवारों में ५२३ बच्चे मरते हैं (१५ वर्ष का औसत) जिनमें २५० एक वर्ष के अन्दर, १२५ तीन वर्ष के होकर और शेष १५ वर्ष के होते होते मृत्युलोक सिधारते हैं।

रहने का उचित प्रबन्ध न होने से पुराने विचारों के लोग गाँव में बीवी बच्चों को छोड़ आते हैं। फलस्वरूप पुरुष और स्त्री के अनुपात में बहुत अन्तर देखने को मिलता है अर्थात् स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक। इसीलिए मज़दूरों की बस्तियों में वेश्याएँ प्रचुरता से पाई जाती हैं जो बीमारी का घर होती हैं। तब फिर मज़दूर स्वस्थ और हट्टे कट्टे कैसे हों?

कलकत्ता में	५०० स्त्रियाँ	१००० पुरुषों में	
बंगाल की जूट मिलों में	५२६ स्त्रियाँ	,,	,,
बम्बई में	५२४ स्त्रियाँ	,,	,,
कानपुर में	६९८ स्त्रियाँ	,,	,,[२]

अतः बीमारी से बचने, कार्यक्षमता में विकास और श्रमिकों के दिन प्रतिदिन गिरते हुए जीवन के स्तर के लिए उचित गृह व्यवस्था का होना अति आवश्यक है। डा० मुकर्जी के शब्दों में : "निस्सन्देह भारतीय औद्योगिक केन्द्रों के सहस्त्रों गंदे घरों में मानवता के साथ पाशविकता का व्यवहार होता है, नारीत्व का अपमान किया जाता है और शैशव का स्रोत आरम्भ में ही दूषित हो जाता है।"[3]

विकास कार्य : भारत सरकार की १९४८ की योजना के अनुसार दस वर्षों में १० लाख घर बनने को थे। इसकी आर्थिक व्यवस्था के लिए केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार, मिल-मालिक और मज़दूर सभी के सहयोग का आयोजन था। श्रम मन्त्री श्री जगजीवनराम के ही शब्दों में : "नए मकानों में दो कमरे, एक रसोईघर जिसमें खाने और जलाने का सामान रखने की व्यवस्था होगी और एक अलग स्नानागार और एक शौचालय। सामने और पीछे की ओर बरांडे तथा एक मंज़िल के मकान में बाहर की ओर खुला मैदान रखने की योजना की जा रही है।"[४]

पञ्चवर्षीय योजना में १९४७ के श्रम हितवर्धिनी धारा (Labour Welfare Act) के अनुसार ५०००० क्वार्टर बनवाने का आयोजन किया गया था। यह क्वार्टर कोयले की खानों के लिए बनवाए जानेवाले थे। इनमें ३१००० क्वार्टर बिहार में, १५५०० बंगाल में और ३५०० मध्यप्रदेश में बनवाने के लिए हैं।

बम्बई सरकार की योजना के अनुसार ९६०० क्वार्टर बनवाए गए जो मार्च १९५१ में जा कर पूर्ण हुए। यह क्वार्टर मज़दूरों की आवश्यकता का कुल ९·६ प्रतिशत थे। कम से कम एक लाख क्वार्टर और बनवाए जाएँ तब कहीं काम चलेगा।

आरम्भ में गृह समस्या की ओर १९१८ में औद्योगिक कमीशन (Industrial commission) ने ध्यान आकर्षित किया। इसके बाद सरकारी श्रम कमीशन (Royal commission of labour) ने अपनी शिफारिश पेश की। तत्पश्चात् स्वास्थ्य जाँच और विकास समिति (Health survey and developement committee) ने अपने सुझाव केन्द्रीय सरकार को दिए जिसके फलस्वरूप सरकार ने १९४६ में कुछ योजनाएँ बनाई। परन्तु यह योजनाएँ असफल रहीं। १९४७ में त्रिदल सम्मेलन हुआ जिसमें सरकार, मिल-मालिकों

---

[१] Report of Royal Commission of Labour—Volume III, Part I. Page 153-154.

[२] Dr. R. K. Mukerjee—The Indian Labour Problems—Page 294.

[३] In the thousand slums of the Indian industrial centres, manhood is, inquestionably, brutalized, womanhood dishonoured and childhood poisoned at its very source—Dr. R. K. Mukerjee. (The Indian Labour Problems Page—215)

[४] It is proposed to provide in the new houses, two rooms, a kitchen, with space for storing food and fuel, and an independent bath room, a lavatory, verandah both in front and at the back, and a courtyard in the case of single story houses—R. C. Saxena (Labour Problems and Social Welfare Page 195)

और मज़दूरों के प्रतिनिधियों ने अपने अपने सुझाव दिए। योजना यह बनी कि खर्च का २/३ भाग केन्द्रीय सरकार और शेष १/३ प्रान्तीय सरकार वहन करे और यह केन्द्रीय सरकार का रुपया प्रान्तीय सरकारें पच्चीस वर्षों में अदा कर देंगी। परन्तु यह भी सफल न हो सकी। फिर अप्रैल १९५० में नेशनल प्लानिंग कमीशन ने अपनी योजना सरकार के सामने रखी। इसके अनुसार १० लाख मकान बनवाए जाने चाहिए जिसकी कुल लागत लगभग ४०० करोड़ रुपया होगी। यह सुझाव तत्कालिक तौर पर केवल एक लाख मकान बनवाने का था। और यह योजना दस वर्षों में पूर्ण होगी। एक मकान में दो कमरे, एक रसोईघर, स्नानागार और शौचालय होगा। इसकी आर्थिक व्यवस्था निम्न लिखित है :

कुल लागत १२ करोड़ रुपया
३ करोड़ रुपया मज़दूर दें।
३ ,, ,, मिल मालिक दें।
३ ,, ,, प्रान्तीय सरकारें दें।
३ ,, ,, केन्द्रीय सरकार दे।

और इस १२ करोड़ रुपए की देख-रेख नेशनल हाउसिंग बोर्ड (National Housing Board) करेगा।

इसके बाद प्लानिंग कमीशन (Planning commission) ने १९५० में अपनी योजना रखी परन्तु यह भी कार्यरूप में परिणत न हो सकी। वास्तव में न मालूम कितने कमीशन आए और गए, न मालूम कितनी जाँच-पड़ताल समितियों ने अपने-अपने सुझाव दिए और न जाने कितने ही सरकारी क़दम उठने को हुए परन्तु वे सब रहे कागज़ी। जैसे कुछ बातें कहने की होती हैं और कुछ करने की, सो यह योजनाएँ कभी करने की लिए नहीं बनाई गईं प्रत्युत इनका केवल ढोल पीटा गया। कभी भी गृह समस्या सम्बन्धी विशाल योजना वास्तविकता का जामा नहीं पहन सकी।

वैसे गृह निर्माण कार्य की ओर विकास संघ (Improvement Trust) म्युनिसिपल बोर्ड और मिल मालिकों तथा कुछ पैसे वाले लोगों ने ध्यान दिया है परन्तु वह अपने स्वार्थ—आर्थिक लाभ के लिए न कि मज़दूरों के घरों की समस्या सुलझाने अथवा उनकी उन्नति के लिए। इसीलिए भारतवर्ष में मज़दूरों की दशा इतनी शोचनीय है जैसी किसी भी अन्य देश में नहीं। और पूर्ण आशा ही नहीं विश्वास भी है कि यह समस्या तब तक नहीं सुधरती जब तक समाज नहीं बदल जाता; मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण का अन्त नहीं हो जाता।

मार्क्स और घर : मार्क्स के अनुसार घरों की समस्या के मूल छोटे-छोटे उद्योग धँधों के स्थान पर बड़े-बड़े उद्योग धँधों का विकास है। छोटे-छोटे धँधों में काम करनेवाले ग्रामीण नए और विशाल उद्योगों में काम करने के लिए ग्रामों को छोड़ कर नगरों में आ बसे हैं। मार्क्स इसी नई ग्रामीण जनता की बढ़ती हुई आबादी को नगरों की गृह समस्या का एक कारण मानते हैं। मार्क्स के शब्दों में : "किसी प्राचीन संस्कृति वाले देश में जब गृह उद्योगों के बदले बड़े उद्योगों का विकास होता है, ऐसा संक्रान्ति-काल आता है जिसमें अनुकूल परिस्थियों के उत्पन्न होने पर परिवर्तन और तीव्र हो जाता है—तब उस समय मकानों की कमी भी अनुभव की जाती है। एक ओर गाँवों के मज़दूर अचानक बड़े शहरों में आ जाते हैं और ये शहर बड़े औद्योगिक केन्द्रों में परिवर्तित हो जाते हैं; दूसरी ओर इन पुराने शहरों में नवीन बड़े उद्योगों के साथ मकानों और यातायात की आवश्यकता होती है; गलियाँ चौड़ी बनाई जाती हैं और नई सड़कें बनती हैं और रेलों के सीधे मार्ग बनते हैं।"[५]

मार्क्स का दावा है कि जो शहर प्रारम्भ से ही

---

[५] The period in which a country with an old culture makes such a transition from manufacture and small scale production to large scale industry, a transition which is, moreover, accelarated by such favourable circumstances is at the same time predominantly a period of housing shortage. On the one hand, masses of rural worker suddenly drawn into the big towns, which develop into industrial centres; On the other hand the building arrangement of the old towns of the new large scale industry and the corresponding traffic; streets are widened and new ones cut through, and railway run right across—Karl Marx (Selected Works Volums I. Page 495)

औद्योगिक केन्द्र रहे हैं उन स्थानों पर घरों की समस्या नहीं के बराबर है जैसे मैनचेस्टर, लीड्स, ब्रेडफोर्ड और बारमेन एलबरफेल्ड आदि। दूसरी ओर लंदन, पेरिस, और विएना इत्यादि में सदा घरों की कठिनाई रही है। इसका कारण मार्क्स के अनुसार इन नगरों का आरम्भ में ही औद्योगिक होना है। मार्क्स अपने इसी अध्याय में आगे कहते हैं: "उन शहरों में जो कि प्रारम्भ से ही औद्योगिक केन्द्रों के रूप में बसे वहाँ मकानों की कभी कमी अनुभव नहीं की गई यथा मैनचेस्टर, लीड्स और ब्रेडफोर्ड। दूसरी ओर लंदन, पेरिस, बर्लिन, विएना ऐसे शहर हैं जहाँ मकानों की समस्या ने तीव्र रूप धारण किया। और अधिकांश में वह समस्या वैसी ही उग्र बनी हुई है।"[६]

मार्क्स घरों की समस्या को हल करने के लिए सुझाव भी देते हैं। गृह समस्या का हल तभी हो सकता है जब श्रम के पूँजी द्वारा शोषण का अन्त हो जाय। न कोई शोषक हो न शोषित और मानवता को उगने, पनपने का पूर्ण अवसर प्राप्त हो। मार्क्स इसी अध्याय में घरों की समस्या को सुलझाने के लिए सुझाव देते हैं: "शासक वर्ग द्वारा श्रमिक वर्ग के शोषण और दमन को पूर्णतः समाप्त करना।" मार्क्स इसी शोषण को सामाजिक क्रान्ति का कारण बना समाज को बदलने का आह्वान करते हैं। वर्त्तमान पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति श्रमिकों की श्रम शक्ति का क्रय करता है और उस श्रम शक्ति से लाभ उठाता है। यह लाभ वह (पूँजीपति) स्वयं उठाता है और अपने साझीदारों को भी देता है। वह अपने मुनाफ़े में से मज़दूरों को फूटी कौड़ी भी नहीं देता। क्योंकि श्रमिकों में मोलतोल की शक्ति (Bargaining capacity) कम होती है और पूँजीपतियों की अधिक। अतः पूँजीपति मज़दूर को एक टुकड़ा मात्र देकर उसकी श्रम शक्ति से अपनी तिजोरियाँ भरता है।

घरों की समस्या का दूसरा कारण मार्क्स बढ़े हुए उद्योग-धँधों को मानते हैं। मार्क्स का कथन है कि बड़े धँधों में मज़दूर और पूँजी के बीच की खाई और गहरी होती जाती है। पूँजीपति के बढ़े हुए मुनाफ़े से उसकी हवस और बढ़ती है जिससे मज़दूरों के रहन-सहन का दर्जा और नीचे गिरता जाता है। पूँजीपति-धनिकवर्ग अपने ऐश के लिए, अपनी वासना और कामनाओं की पूर्ति के लिए विशाल अट्टालिकाएँ बनवाता है, हरम बनवाता है और सुन्दरता खरीदता है। वह भी मज़दूरों की हड्डियों, गरीबों की आहों, भूख और प्यास की नींव पर। तब फिर घरों की समस्या कैसे सुलझे? उल्टे मज़दूरों के खून और पसीने से लथपथ उस पैसे से शराबखाने, नाचघर और चँडूखाने खुलते हैं जहाँ इन्सानियत को ठगा जाता है, यौवन का मोल होता है और आदमी को मर-मर कर जीना सिखाया जाता है, जानवर बनना सिखाया जाता है।

मार्क्स घरों की समस्या का उत्तरदायित्व दो दलों पर डालते हैं। एक किराएदार और दूसरे मकान मालिक। किराएदार मकान मालिक को किराया देकर उसके घर की उपयोगिता खरीदता है। मकान मालिक को इसके बदले में किराएदार किराया देता है। मार्क्स के शब्दों में मकान का किराया इस प्रकार निश्चित किया जाता है: "(१) एक भाग जो कि ज़मीन का किराया होता है (२) एक भाग जो कि मकान में लगी हुई पूँजी का व्याज होता है जिसमें मकान बनानेवाले का लाभ भी सम्मिलित रहता है। (३) एक भाग जो कि मकान के सुधारने और बीमा इत्यादि में खर्च होता है। (४) एक भाग मकान की पूँजी को जमा रखता है जिसमें लाभ के रूप में शनैः शनैः इमारत के नष्ट होने का खर्च सालाना किश्तों में संग्रह होता रहता है।"[७] किराए में इस प्रकार मकान

---

[६] In towns which grew up from the very beginning as industrial centres, this housing shortage is as good as unknown; for instance, Manchester, Leeds and Bradeford. On the other hand, in London, Paris, Berlin and Vienna,, the shortage took an acute form at the time, and has, for the most part, continued to exist in a chronic form—Karl Marx (Ibid. Pp. 496)

[७] House rent is composed as follows : (1) A part which is ground rent; (2) A part which is interest on the building capital, including the profit of the builder; (3) A part which goes for repairs and insurance; (4) A part which has to amortize the building capital inclusive of profit in annual deductions

का व्याज, टूट-फूट, हानि और लागत तथा भूमि का लगान शामिल है। यह सब किराएदार धीरे-धीरे किश्तों में किराए के रूप में मकान मालिक को देता है। इसी सम्बन्ध में मार्क्स के विचार देखिए: ''हम यह समझते हैं कि किराए के रूप में मकान की लागत की दुगनी, तिगुनी पांचगुनी या दसगुनी कीमत वसूल करना—जैसे कि की जा रही है ऐसे कानून पर आधारित है जो कि शाश्वत न्याय के नियम के विरुद्ध है।''[८]

मार्क्स के अनुसार किराएदार जब मकान-मालिक को उसके मकान की लागत से कई गुना अधिक किराए के रूप में दे चुका हो तब मकान का स्वामित्व मकान-मालिक से हट कर किराएदार को मिल जाना चाहिए। आगे मार्क्स कहते हैं: ''किराए के मकान पुनः ख़रीद लिए जाएँगे। पहले के मकान-मालिक को उसके मकान की क़ीमत पाई-पाई चुका दी जाए जब कि किराए के रूप में मकान मालिक को पूँजी का मालिक होने के कारण ही धन दिया जा रहा है। जिस दिन से इन मकानों को पुनः खरीदने की घोषणा की जाएगी उस दिन से एक निश्चित् रक़म की अदायगी वार्षिक किश्तों में मकान में रहनेवाले व्यक्ति द्वारा की जाएगी और वही व्यक्ति उस मकान का मालिक होगा।[९]

मार्क्स के साथ ही प्रौधों (Proudhon) के विचार भी गृह समस्या के विषय पर विचारणीय हैं: ''प्रौधों ने प्रस्ताव रखा कि किराएदारों को ही किश्तों में मकान का खरीददार बनाना चाहिए और दिया गया वार्षिक किराया उक्त मकान की क़ीमत में से कम करते रहना चाहिए जिससे कि कुछ समय के पश्चात् किराए पर रहनेवाला व्यक्ति ही उस मकान का मालिक बन सके।''[१०]

मज़दूरों के घरों की समस्या का पूर्ण हल पूँजीवादी व्यवस्था में सम्भव नहीं है क्योंकि पूँजीवादी आवश्यकता या उपयोग की ओर ध्यान नहीं देता उसका मुख्य लक्ष्य मुनाफ़ा उठाना होता है। यह मुनाफ़े की प्रवृत्ति मानव सभ्यता की कीमत पर आज के युग में युद्ध का प्रमुख कारण बन रही है। यदि मानव सभ्यता को अँधेरी गली में नहीं खो जाना है और बर्बरता के युग की पुनरावृत्ति भावी युग में नहीं देखनी है तो निश्चय ही मुनाफ़े की प्रवृत्ति को नष्ट करके जनहित को प्रधानता देनी होगी। मकान-मालिक न केवल किराएदारों से मकान की कीमत ही वसूल करते हैं वरन् उसे आमदनी का अमिट स्रोत बनाते हैं। यह किराएदारों की आर्थिक असहायता का भी अनुचित लाभ उठाना है जिसकी किसी भी सभ्य समाज में भर्त्सना होना आवश्यक।

कोतवाली रोड,
हरदोई यू० पी०

—रामगोपाल शुक्ल

---

according to the rate at which the house gradually depreciates.—Karl Marx (Ibid Pp. 521)

[८] We have the assurance that the two, three, five or ten-fold repayment of the original cost price of a house in the form of rent, as it actually takes place is based on a legal title in contradiction to eternal justice—(Ibid Pp. 514)

[९] Rented dwellings will be redeemed. The previous house owner will be paid the rent of his house to the last farthing, where rent represents, as previously the tribute which the tenants pay to the perpetual title of capital, from the day when the redemption of rented dwellings is proclaimed the exactly fixed sum paid by the tenant will become the annual instalment paid for the dwellings which has passed into his possession. (Ibid Pp. 514)

[१०] Proudhon proposed that tenants should be converted into buyers on the instalment plan, that the rent paid annually be booked as an instalment on the redemption payment of particular dwellings, so that after a certain time the tenants would become its owner (Ibid. Pp. 517)

एक दिलचस्प कविता

प्राचीन हिन्दी भाषा की उत्पत्ति के बारे में बड़े-बड़े भाषाविद्, शब्द-शास्त्री तथा गवेषक पंडितों ने अनेक गवेषणापूर्ण विचार प्रकट किए हैं। इन सब के सिद्धान्तों में बहुत मतभेद है। तो भी इस विषय में कोई सन्देह नहीं है कि सौरसेनी, अवन्ती और अर्धमागधी इत्यादि प्राकृत भाषाओं से हिन्दी भाषा की विभिन्न शाखाओं की उत्पत्ति हुई है। तथा प्राकृत भाषा के मूल वृक्ष की दोनों शाखाएँ (१) अर्धमागधी तथा (२) मागधी परस्पर निकट सम्बन्धी हैं। मागधी शाखा से ही बिहारी, बंगाली, उड़िया तथा असमिया भाषाएँ उत्पन्न हुई हैं। इसीलिए मैथिल और बंगाली भाषाओं में बहुत सादृश्य रहा है। द्वारभांगा ज़िले के बिशपी गाँव के विद्यापति ठाकुर ने जिस भाषा में कृष्णलीला के पदों की रचना की है वह मैथिल के रूप में बंगाली तथा बंगाली के रूप में मैथिल भाषा-सी मालूम होती है। बंगाल में जो वैष्णव सम्प्रदाय है वे दावा करते हैं कि विद्यापति ठाकुर का लीलापद बंगाली भाषा में रचित हुआ है लेकिन विद्यापति स्वयं मैथिल भाषा-भाषी थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मागधी की प्राथमिक अवस्था में बंगाली और बिहारी भाषाओं में भेद अल्प ही था। विद्यापति के समकालीन कवि उमापति ठाकुर ने केवल मैथिली अथवा केवल बंगाली भाषा में कविता की रचना की है।

उल्लिखित मन्तव्य के प्रमाणस्वरूप मैं नीचे एक पद उद्धृत करता हूँ। इसकी भाषा हिन्दी-भाषा के प्रेमियों को कौतुक और आनन्द पहुँचाएगी। यह सोचने की बात है कि इस कविता का स्थान हिन्दी भाषा के किस श्रेणी में होगा :

"वाणी जैदेव जीउ की (राग मार)
चन्द सत भेदिया नादसत पूरिया
सूरसत खोउसा दत्तु किया।
अबल बल तोड़िया, अचल चल थाप्पिया
अघड़ घड़िया तहाँ आंपिउ ॥
मन आदि गुण आदि बखानिया
तेरी दुविधा द्रिस्टी सम्मानिया रहाउ ॥
अर्ध-कौ अरधिया, सार्धि-कौ सरधिया
सलल-कौ सलालि सम्मानि आया ॥
बदति जैदेव जैदेव-कौ रखिया
ब्रह्म-निर्वाण लिव लीन पाया ॥"

'खोड़सा' और 'दत्तकीया' इन पदों में प्राच्य हिन्दी का रूप प्रकट हुआ है। संस्कृत 'षोड़श' शब्द का प्राकृत रूप है 'खोड़सा'। 'दत्तुकीया' संस्कृत और हिन्दी का मिश्रित रूप होगा। यह शुद्ध हिन्दी नहीं है—यह "मिश्र अपभ्रंश" है। दूसरे पद में एक अद्भुत शब्द का प्रयोग है—'आपिउ' यह है अपभ्रंश शब्द। इस विचित्र शब्द का स्वरूप छठी, सातवीं पीढ़ी में प्रकट होता है : "आपि - उ=अप्पिउ=अबिउ=अम्बि - अउ अम्बिअ= अम्रित=अमृत।

सिख सम्प्रदाय का प्रधान धर्मग्रन्थ : 'ग्रंथसाहब' में इस पद को उद्धृत किया गया है। इस में संकेत है—विख्यात् बंगाली वैष्णव कवि जयदेव ने इस पद में योग साधना के बहुत मूल्यवान उपदेश को वाणीबद्ध किया है और 'ग्रंथसाहब' में इसी वाणी को सम्भ्रम के साथ उद्धृत किया है क्योंकि इस उपदेश वाणी को योगमार्गिक लोग बहुत कार्यकारी तथा अमूल्य मानते हैं। उन लोगों के लिए इस पद की आक्षारिक व्याख्या नीचे दी जाती है :

'चन्दसत भेदिया'—इसका अर्थ यह है कि चन्द्र को मतलब ईड़ा वा बाँ नासारन्ध्र के सत्तं अर्थात् प्राणवायु से भेद कर चुका — मतलब यह है कि मैंने स्वयं को प्राणायाम का पूरक बनाआ 'नादसत पूरिया' अर्थात् 'सहत' प्राणवायु से 'नाद' अर्थात् 'सुषुम्ना' नाड़ी को पूर्ण किया अर्थात् कुम्भयोग बनाया। 'सत खोड़ सा दत्तूकीया' अर्थात् सत्ता वा प्राणवायु को सुर से अर्थात् सूर्य्य वा पिंगला नामक दक्षिण नासारन्ध्र से सोलह बार निकाल दिया अर्थात् मैंने रेचक से निःश्वास छोड़ कर प्राणायाम पूर्ण किया। 'अबल बल तोड़िया' अर्थात् इस बलहीन तथा भंगुर देह-पिण्ड का बल तोड़ दिया है। 'अचल चल

थप्पिया' चल अर्थात् चंचल मन को अचल में—ब्रह्म में स्थापित किया है। अघटित मन को घटित अर्थात् सुगठित किया। उसके बाद अपिउ अर्थात् अमृत पी लिया है।

वझा : जो मन के आठ स्थान पर है तथा सत्त, रचः, तमः ये तीन गुणों के अटयस्थान पर भी हैं—उनकी व्याख्या करने से तुम्हारी द्विविधा दृष्टि—अर्थात् ब्रह्म और जीव में भेद-दर्शन विलुप्त हो गया।

जो असाध्य हैं—उनकी आराधना की गई जो श्रद्धा के पात्र हैं उनको प्रब्धा किया है—सलिल के सलिल में प्रवेश किया। जैदेव कहता है : जययुक्त देव के साथ अर्थात् परमेश्वर के साथ रमण हो गया। ब्रह्म-निर्वाण में लीन हो गया।

२ आशुतोष मुकर्जी रोड,
कलकत्ता २०

—**अर्धेन्द्रकुमार गंगोपाध्याय**
(ओ. सी. गांगुली)

जानते हो कौन-सा वह देश है ?

[मूल जर्मन से अनूदित]

जानते हो कौन-सा है देश वह,
जहाँ नींबू महकते हैं,
चमकती हैं सुनहरी नारंगियों की अपरिचित-सी पत्तियाँ,
बहा करती मलय-वातस जहाँ नीलाकाश से,
जहाँ मेंहदी शांत, लौरल वृक्ष की ऊँची चमकती पत्तियाँ हैं,
जानते हो तुम इन्हें क्या ?—वहीं पर है, वहीं पर !

प्रिय, रुको तुम, चाहता हूँ मैं तुम्हारे साथ चलना
जानते हो कौन-सा वह घर ?
जहाँ छत टिक रही है उन बड़े खम्भों सहारे,
जगमगाते हॉल जिसके, चमकते हैं अन्य कमरे,
संगमरमर की अनेकों मूर्त्तियाँ हैं खड़ी, मुझको ताकती हैं :
अरे बालक, तुझे यह क्या हो गया है ?
जानते हो तुम इन्हें क्या ?—वहीं पर है, वहीं पर।

रुको स्वामी, चाहता हूँ मैं तुम्हारे साथ चलना।
जानते हो तुम कहाँ है वह पहाड़ी,
और उसके मेघ-पथ भी ?
खोजता है जहाँ कुहरे से दबा निज मार्ग भोला पशु बेचारा,
जहाँ चोटी पर बसे हैं भयंकर शिशु अजगरों के,
जहाँ चट्टानें सदा ही टूटती हैं, फूटती हैं,
और जिन पर प्रलय-प्लावन !
जानते हो तुम इन्हें क्या ?—वहीं पर है, वहीं पर !
भटकते हम मार्ग अपना, हे पिता, तू हमें अपने साथ ले चल !

एत्मादपुर,
आगरा, उ० प्र०

—**योहन वुल्फगाङ्ग फॉन गेटे**
अनुवादक : **प्रेमकिशोर**

जैन साहित्य में रामकथा

भारत के चारों महापुरुषों में महावीर एवं बुद्ध धर्मवीर एवं राम और कृष्ण कर्मवीर के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनमें पुरुषोत्तम रामचन्द्र का चरित्र बड़ा ही आदर्श माना गया है। भारतीय लोक-जीवन पर इसकी अमिट छाप है। जैन, बुद्ध और वैदिक तीनों धर्मों ने इन महापुरुषों को अपना बतलाते हुए इनके चरित्र को लिखा है। बृहत्तर भारत के जावा सुमात्रादि देशों में भी राम-कथा का प्रचार हुआ है।[1] बौद्ध प्राचीन साहित्य के 'दशरथ जातक' में रामचन्द्र के चरित्र को प्रसिद्ध कथा से कुछ भिन्न रूप से वर्णन किया गया है। इसमें राम और सीता दोनों को दशरथ की सन्तान अर्थात् परस्पर भाई बहिन बतलाते हुए पीछे से इन दोनों का पति-पत्नी सम्बन्ध भी बतलाया है। बौद्ध साहित्य में राम चरित्र सम्बन्धी अधिक लेख नहीं लिखे गए पर जैन और वैदिक साहित्यों में इस सम्बन्ध में बहुत लिखा गया है। इन दोनों में भी राम कथा के दो रूप मिलते हैं।

'वाल्मीकि रामायण' संस्कृत का आदिकाव्य माना जाता है और सब से अधिक प्रचार इसी का रहा है पर उसमें वर्णित कथा से कुछ भिन्न प्रकार की कथा की श्रुति परम्परा आज से २००० वर्ष पूर्व भी प्रचलित रही है जिसका पता हमें 'अद्भुत रामायण' और जैनों के 'पउम चरिय' और 'उत्तर पुराण' से मिलता है। इनकी कथाओं के अन्तर के सम्बन्ध में श्रीयुत नाथुराम प्रेमी ने अपने 'पद्म चरित्र और पउम चरिय' लेख में अच्छा प्रकाश डाला है। यह लेख उनके 'जैन साहित्य और इतिहास' ग्रन्थ में भी प्रकाशित हो चुका है। अतः इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए पाठकों को उसे देख लेने का निवेदन करते हुए प्रस्तुत लेख में 'प्राचीन जैन साहित्य में राम चरित' इस विषय पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाएगा।

प्राचीन जैन साहित्य में जैनागमों का स्थान सर्वप्रथम है। उनके अनुसार २४ तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव —इन ६३ व्यक्तियों को महापुरुष संज्ञा दी गई है। प्रति-वासुदेवों का विनाश वासुदेवों द्वारा होने से कहीं कहीं उनका महत्व नहीं माना गया। अतः महापुरुषों की संख्या ५४ भी मानी जाती है। इनमें से राम आठवें बलदेव थे, लक्ष्मण आठवें वासुदेव और रावण आठवाँ प्रति-वासुदेव था। २० वें तीर्थङ्कर मुनि सुव्रत के समय में ये हुए हैं। राम का नाम जैन आगमों में 'पउम' अर्थात् 'पद्म'[2] भी लिखा है और समवायांग, आवश्यक और नन्दी सूत्र में इनके चरित्र सम्बन्धी कुछ निर्देश पाए जाते हैं। स्वतन्त्र रूप में राम चरित सम्बन्धी सब से प्राचीन ग्रन्थ विमलसूरि का 'पउम चरिय' है। जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण[3] संस्कृत का आदि काव्य है, वैसे ही 'पउम चरिय'[4] प्राकृत का आदि काव्य है। इसमें ११८ पर्व हैं और परिमाण लगभग दस हजार श्लोक है। विमलसूरि के निर्देशानुसार वीर निर्माण के ५३० वर्ष बीत जाने पर इस ग्रन्थ की रचना की गई। इसका अपरनाम 'राहव चरिय' भी है। कवि ने प्रारम्भ में लिखा है यह कथा नमावलि निबद्ध थी। आचार्य परम्परा से जैसे उन्हें मिली यहाँ गुंफित की गई है। मूलतः भगवान् महावीर ने अपने शिष्य इन्द्रभूति गौतम को बतलाई और उन्होंने मगधेश श्रेणिक राजा को सुनाई। इसकी रचना का कारण बतलाया गया है कि लोक शास्त्र में यह कहा गया है रावण राक्षस था, मांसाहारी था, रावण का भाई कुम्भकर्ण छः महीने की निद्रा में पड़ा रहता था। रावण ने इन्द्र को संग्राम में जीत कर कैदी बनाया इत्यादि। ये बातें युक्ति विरुद्ध हैं इसलिए सही बात

---

[1] विशेष जानकारी के लिए हिन्दी परिषद्, प्रयाग से प्रकाशित रेवरण्ड फादर कामिल बुल्के की थीसिस 'रामकथा' द्रष्टव्य है।

[2] जैनेतर 'पद्म पुराण' भी इसी नाम की पुष्टि करता है।

[3] इसका उल्लेख जैनागम नंदी एवं अनुयोग द्वार सूत्र में भी मिलता है। वहाँ कर्त्ता का नाम तो नहीं पर 'रामायण' शब्द है। संभव है कि 'वाल्मीकि रामायण' का सूचक हो।

[4] रावण का चरित्र जैन रामायण में बड़ा सहानुभूतिपूर्ण है। इसके लिए देखिए जैन सिद्धान्त भास्कर वर्ष ६ अं० १.

को प्रकाश में लाने के लिए इसकी रचना की गई है। न रावण राक्षस था और न हनुमान बन्दर। ये दोनों विद्याधर थे।[५]

'पउम चरिय' का अनुसरण परवर्ती अनेक कवियों ने किया है। दिगम्बर आचार्य रविषेण ने तो इसकी रचना के ६७३ वर्षों के बाद महावीर निर्वाण के १२०३ में 'पद्म चरित्र' नामक ग्रन्थ संस्कृत छायानुवाद के रूप में पल्लवित किया। इसमें १२३ पर्व हैं और ग्रन्थ का परिमाण १५००० श्लोकों का है। आचार्य हेमचन्द्रादि ने 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र' में 'पउम चरिय' ही का अनुसरण किया है।

'पउम चरिय' के पश्चात् परवर्ती ग्रन्थों में 'वसुदेव हिंडी' जैन कथा साहित्य का अनुपम ग्रन्थ है। इसके १४ वें 'मदन वेगालंभक' में अन्तर-कथा के रूप में रामायण की कथा अति संक्षेप से दी गई है, जिसका कथानक पाठकों की जानकारी के लिए इस लेख में आगे दिया जाएगा। 'वसुदेव हिंडी' श्वेताम्बर संघदास गणि रचित प्राकृत-गद्य का कथा-कोष है। इसकी रचना ५ वीं शताब्दी में हुई है। इसके सम्बन्ध में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में मैं प्रकाश डाल चुका हूँ। पुरुषोत्तम कृष्ण के पिता वसुदेव के भ्रमण वृत्तान्त के रूप में इसकी रचना हुई है पर अवान्तर कथाएँ भी बहुत-सी मिलती हैं। इस ग्रन्थ में वर्णित कृष्ण चरित्र के सम्बन्ध में भी एक स्वतन्त्र लेख में मैंने प्रकाश डाला है।

'वसुदेव हिंडी' के परवर्ती[६] रामचरित्र सम्बन्धी ग्रन्थ रविषेण के 'पद्म चरित्र' का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है जिसका रचना काल वि० सं० ७३४ है। इसके पश्चात् महाकवि स्वयंभू ने अपभ्रंश में 'पउम चरिय' बनाया। इसका समय भी आठवीं, नौवीं शताब्दी का है। अपभ्रंश का यह महाकाव्य बहुत ही सुंदर रचना है। इसकी प्रशंसा महापण्डित राहुल ने भी मुक्त कंठ से की है। स्वयंभू दिगम्बर कवि था। इसके पश्चात् श्वेताम्बर निवृत्ति गच्छ के मानदेव सूरि के शिष्य शीलाचार्य ने वि० सं० ९२५ में प्राकृत भाषा में गद्यमय १२६०० श्लोक परिमाण 'चउपन्न महापुरुष चरिय' ग्रंथ बनाया, जिसकी सं० १२२८ की कुमारपाल के राज्य में लिखित ताड़पत्रीय प्रति जैसलमेर के भण्डार में है। इसमें आठवें बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव के रूप में राम, लक्ष्मण और रावण की कथा है। इसके पश्चात् 'पउम चरिय' से कुछ भिन्न प्रकार की कथा सं० ९५५ में दि० गुणभद्र रचित 'उत्तर पुराण' में रामचरित पाया जाता है। ११ वीं शती के अपभ्रंश के महाकवि पुष्पदंत ने अपने महापुराण के परिच्छेद ६९ से ७९ तक में उत्तर-पुराण में वर्णित रामकथा का अनुसरण किया है। कन्नड़भाषा में महामात्य चामुण्डराय के त्रिषष्ठि लक्षण महापुराण अमरनाम 'चामुण्डराय-पुराण' में एवं कृष्ण कठि के 'पुष्पचन्द्रोदय पुराण' और नागराज के 'पुलाश्रव' ग्रन्थ में भी इसी कथा का अनुसरण है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के किसी विद्वान् ने उसका अनुसरण नहीं किया।

१२ वीं शताब्दी के श्वेताम्बर जैनाचार्य भद्रेश्वरसूरि की प्राकृत-गद्य में रचित 'कथावली' नामक ग्रन्थ में भी रामायण की कथा है। १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र ने महाराजा कुमारपाल की प्रार्थना से संस्कृत में दस पर्वोंवाला ३२००० श्लोक परिमाण का 'त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र' नामक महाकाव्य बनाया, जिसके ७ वें पर्व में 'जैन रामायण' है। यह ग्रंथ मूल और गुजराती अनुवाद जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर से प्रकाशित हो चुका है। इसका अंग्रेजी अनुवाद अमेरिकन विदुषी मिस हेलन एम्. जौनसन ने किया है जो गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज़ से छप रहा है।

हेमचन्द्र के पश्चात् दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों संप्रदायों के कई विद्वानों ने रामायण की कथा लिखी है। इनमें से कतिपय ज्ञात ग्रंथों का निर्देश यहाँ कर दिया जाता है। श्वेताम्बर संस्कृत रामचरित्रों में तो हेमचन्द्र के पश्चात् सं० १६५२ में तपागच्छ के मुनिदेव विजय ने

---

[५] इसका उल्लेख सं० ८३५ में रचित कुवलज माला में मिलता है। इसकी ताड़पत्री प्रति सं० १७४८ भरौंच की लिखित जैसलमेर के जैन भण्डार में प्राप्त है। यह प्रकाशित भी हो चुका है।

[६] सं० १३३४ में रचित 'प्रभावक चरित्र' मल्लवादी आचार्य नमी का २४००० श्लोक परिमित पद्य चरित्र बताया गया है पर वह उपलब्ध नहीं होता। आचार्य मल्लवादी दो हो गए हैं। प्रथम नयचक्र लिखित ५ वीं शती दूसरे में १० वीं में।

रामचरित्र गद्य में लिखा जो "जैन रामायण" के नाम से प्रसिद्ध हो चुका है। श्वेताम्बर मूर्त्ति पूजक समाज में व्याख्यान आदि के समय आजकल सुगम होने से इसे अधिक पढ़ा जाता है। हेमचन्द्र के पश्चात् श्वेताम्बर विद्वानों का लिखा संस्कृत में यह एक ही रामचरित्र ज्ञात हुआ है। १६ वीं शताब्दी से श्वेताम्बर विद्वानों ने राजस्थानी व गुजराती भाषा में पद्यबद्ध राम काव्य अधिक लिखे जिनका संक्षिप्त विवरण आगे दिया जाएगा।

आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् दिगम्बर समाज में रामकथा प्रचार अधिक रहा प्रतीत होता है। उस समाज के विद्वानों के रचित २०।२५ ग्रन्थों का मुझे पता चला है। ये ग्रन्थ अपभ्रंश, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और कन्नड़—इन पाँच भाषाओं में रचे गए हैं। विवरण इस प्रकार है :

अपभ्रंश में दिगम्बर कवि स्वयंभू और पुष्पदंत ने 'पउम चरिय' और 'महापुराण' बनाया। इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है। इनके अतिरिक्त और भी कई कवियों ने अपने अपभ्रंश में रामकाव्य बनाए, जिनमें से कुछ का केवल उल्लेख ही मिलता है—उनकी प्रतियाँ प्राप्त नहीं हुईं। प्राप्त ग्रन्थों में १६ वीं शताब्दी के अपभ्रंश भाषा के सुकवि रइधू रचित 'पद्मपुराण' अपरनाम 'रामचरित' उल्लेखनीय है।

संस्कृत में 'पद्मपुराण' के नाम से निम्नोक्त कवियों की रचनाएँ मिलती हैं :

१ सोमसेन—इनके ग्रन्थ का अपरनाम 'रामपुराण' भी है। रचना सं. १६५.६

२ धर्मकीर्त्ति—सं. १६६९

३ चन्द्रकीर्त्ति

४ विश्वभूषण

५ भट्टारक शुभचन्द्र

६ ब्रह्मचारी जिनदास—१६ वीं शताब्दी।

७ वीरसेन

८ आशाधर—इनके त्रिषष्टि स्मृतिशास्त्र में।

९ भोजराज का चम्पू 'रामायण'।

१० रामचन्द्र मुमुक्षु का 'पुण्याश्रव कथाकोष'।

११ कृष्णकवि का 'पुण्य चन्द्रोदय पुराण'।

१२ नेमिदत्त का 'सीता चरित्र'।

१३ हस्तीमल्ल का 'मैथिली कल्याण नाटक'।

१४ धनञ्जय के राघव पांडवीय काव्य।

१५ पद्मनाभ का 'रामचरित्र'।

१६ कुमुदचन्द्र की 'रामायण'।

१७ मल्लिषेण के त्रिषष्ठि लक्षण महापुराण।

कन्नड़ भाषा के चामुंडराय रचित 'त्रिषष्ठि लक्षण महापुराण' का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त (१) महाकवि पम्प रचित 'पम्प रामायण' (२) नागचन्द्र अपरनाम अभिनवपम्प रचित 'रामचन्द्र पुराण' या 'पम्प रामायण चम्पू' (३) 'कुमुदेन्दु रामायण' (४) सांगल्य-देवप्प का 'रामविजय' (५) देवचन्द्र का 'रामकथावतार चम्पू' (६) चन्द्रसागरवर्णी की 'जिन रामायण' (७) चन्द्रशेखर रचित 'रामचन्द्र चरित्र' ज्ञात हुए हैं।

हिन्दी भाषा में सं. १७१३ में कवि रामचन्द्र का 'सीता चरित्र' १७ वीं शताब्दी के कवि रायमल का 'सीता चरित्र' भगवतीदास का 'सीतासत' रामसिंह का 'सीता चरित्र' सं० १७८३ में खुशालचन्द्र रचित 'पद्मपुराण काव्य' और अजितदास रचित 'जैन रामायण' उल्लेखनीय हैं। अजितदास कवि वृन्दावन के सुपुत्र थे। कवि वृन्दावन की इच्छा जैन रामायण बनाने की अति प्रबल थी, पर इसी बीच उनका स्वर्गवास हो जाने से वह पूर्ण न हो सकी। मरते समय उन्होंने अपनी इच्छा सुपुत्र अजितदास के समक्ष व्यक्त की और उसने उसे स्वीकार किया। आपने ७१ सर्ग की जैन रामायण बनाई, फिर उनका भी स्वर्गवास हो गया इसलिए यह अधूरी रह गई जिसे बाबू हरिदास ने पूर्ण करने का विचार किया था, पर पता नहीं वह कार्य हुआ या नहीं।

हिन्दी गद्य में 'पद्मपुराण वचनिका' के नाम से १९ वीं शताब्दी के विद्वान् दौलतराय ने रामकथा को प्रचारित किया। दिगम्बर समाज में 'पद्मपुराण' के नाम से कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

गुजराती भाषा में दिगम्बर कवि जयसागर का 'सीताहरण' नामक एक ही काव्य मिलता है, जिसकी रचना सं० १७३२ में हुई है।

श्वेताम्बर विद्वानों की राजस्थानी भाषा में रचित १६ वीं शताब्दी से १९ वीं तक के १०-१२ ग्रन्थ मिले हैं जिनमें ७ तो रामायण की पूरी कथा को लेकर बने हैं और शेष में सीता चरित्र संक्षेप में है। इनमें से मुनि केशराज रचित 'रामयशो रसायन' का प्रचार जैन समाज में गत २०० वर्षों से तो बहुत अधिक रहा है। इसकी रचना सं० १६८० में हुई है। इसके २-३ संस्करण

प्रकाशित हो चुके हैं। स्थानकवासी संप्रदाय में इसका प्रचार था ही, पर तेरापंथी संप्रदाय में तो चातुर्वास के समय रात को मुनिगण इस रास को गाकर बड़े उच्च स्वर में सुनाया करते हैं। श्रावक-श्राविका एकत्रित होकर इसकी ढालों को गाने में सहयोग देते हैं। कुछ पद्य गाने के अनन्तर गद्य में उनका विवेचन किया जाता है। इस प्रकार चार महीने तक निरंतर यह कथा चलती रहती है। कई मुनियों को तो प्रतिवर्ष गाने से यह रामायण कण्ठस्थ हो चुकी है, यद्यपि इसका ग्रन्थ परिमाण ५००० श्लोक परिमित है। जिन्हें यह कण्ठस्थ नहीं होती वे भी जैन कवियों के आचारानुसार रात्रि में प्रकाश का उपयोग न कर सकने के कारण, दिन के समय रात को जितना अंश पाठ सुनाया जाना आवश्यक होता है, कण्ठस्थ करते हैं।

राजस्थानी भाषा का दूसरा महत्वपूर्ण राम काव्य कविवर समयसुन्दर रचित सीताराम चौपाई है। इसकी रचना भी लगभग उपर्युक्त 'रामयशो रसायन' के समय की है। इसका ग्रन्थ परिमाण ३७५० श्लोकों का है।

तीसरी उल्लेखनीय राजस्थानी रामायण चरित्र धर्म और विद्याकुशल रचित है। इसकी रचना सं० १७६१ में हुई है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि कवि जैन होते हुए भी उसने इसके निर्माण में जैन रामायण का उपयोग न कर जैनेतर वाल्मीकि रामायण आदि का अनुसरण किया है। सात काण्डों में यह विभक्त है। इसका नाम भी 'रामायण' या 'रामचरित' रखा गया है।

इस प्रकार रामकथा सम्बन्धी ज्ञात जैन साहित्य का संक्षिप्त परिचय यहाँ उपस्थित किया गया है। आज भी रामायण पर काव्यादि जैन विद्वानों द्वारा लिखे जाते हैं। हेमचन्द्र के जैन रामायण का कृष्णलाल वर्मा ने अनुवाद करके कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित करवाया था जो शीघ्र ही बिक गया, अब प्राप्त नहीं होता। स्थानकवासी और तेरापन्थी सम्प्रदाय के मुनियों में से हाल ही में हिन्दी और राजस्थानी भाषा में रामकाव्य रचने की बात ज्ञात हुई है।

अब जैन साहित्य में रामकथा के जो दो रूप मिलते हैं उनमें से श्वेताम्बर 'वसुदेव हिंडी' ग्रन्थ में जो कि पांचवीं शताब्दी की रचना है, रामायण की कथा मिलती है। उसका हिन्दी रूपान्तर और दिगम्बर गुणभद्राचार्य के उत्तर-पुराण के ६८ वें पर्व में वर्णित रामचरित का पं० नाथूराम जी प्रेमी ने जो अति संक्षिप्त सार लिखा है उसे आगे दिया जा रहा है जिससे रामकथा जैन-साहित्य में किस प्रकार से वर्णित है उसका पता लग जाएगा और जैनेत्तर वाल्मीकि रामायण, महाभारत, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, आदिपुराण, वायुपुराण, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण में वर्णित रामकथा का तुलनात्मक अध्ययन करने में सुविधा होगी।

'वसुदेव हिंडी' में वर्णित रामायण : अयोध्या नरेश दशरथ के तीन रानियाँ थीं, कौशल्या, कैकयी और सुमित्रा। कौशल्या के पुत्र राम, सुमित्रा के लच्मण और कैकयी के भरत, शत्रुघ्न थे। देवों जैसे सुंदर ये चारों कुमार तरुणावस्था को प्राप्त हुए। इधर रावण की पटरानी मंदोदरी ने कन्या को जन्म दिया। फिर उसे एक रत्नमञ्जूषिका में रख कर अमात्य को देकर आज्ञा दी कि इसे कहीं छोड़ आओ। अमात्य ने राजा जनक की राजधानी मिथिला के उद्यान में तिरस्करणी विद्या द्वारा हल के अग्र भाग में उसे रख दिया। यह कन्या राजा जनक को यह कह कर सौंपी गई कि इसे हल के द्वारा ज़मीन से निकाला गया है। राजा ने अपनी प्रिया धारिणी देवी को यह पुत्री दी। क्रमशः चन्द्रकला की भांति बढ़ती हुई यह कन्या लोगों के नेत्र और मन को आकर्षित करने लगी। राजा ने इस रूपस्विनी कन्या—सीता के स्वयंवर का आदेश दिया। बहुत से राजकुमारों की उपस्थिति में उसने राम को वरमाला पहनाई। दूसरे भ्राताओं को भी धन सम्पन्न और कन्याएँ वरण में दीं, जिन्हें लेकर दशरथ अपने नगर लौटे।

एक समय कैकयी की सेवाओं से सन्तुष्ट होकर दशरथ ने उसे वर माँगने की आज्ञा दी थी जिसे उसने उस समय न माँगा, वरन आवश्यकता पड़ने पर माँगने का वचन लिया था। फिर एक बार पड़ोसी राजा के साथ सीमा-सम्बन्धी विरोध में युद्ध करते हुए दशरथ गिरफ़्तार कर लिए गए। कैकयी से कहा गया कि राजा पकड़े गए हैं अतः तुम्हें (रण क्षेत्र से) चले जाना चाहिए! उसने कहा—"शत्रु प्रयत्न करने पर तो हमें भागते हुए भी पकड़ सकेगा, अतः मैं स्वयं युद्ध करूँगी। मैं तो हारी नहीं, भागा हुआ कौन कहलायगा?" उसने कवच धारण कर रथ में बैठ कर युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया, छत्र उसके सिर पर सुशोभित था। "जो पीछे हटे उसे मारो! मारो!" उच्चारण करती हुई कैकयी शत्रु सेना का पराभव करने लगी। स्वामि के भक्तिवश उत्साह पूर्वक लड़ते हुए योद्धाओं को मान सम्मान पारितोषिक देते हुए

देवी कैकई ने शत्रुओं को हरा कर दशरथ को छुड़ा लिया। राजा दशरथ ने कहा: "देवी! तुम्हारा यह कार्य उत्तम पुरुषों के जैसा है, अतः वर माँगो।" उसने उत्तर दिया: "मेरा दूसरा वर भी आपके पास जमा रहा, समय पड़ने पर माँगूँगी।"

इस प्रकार बहुत वर्ष बीत जाने पर पुत्रों के युवावस्था प्राप्त होने पर वृद्ध राजा दशरथ ने राम के राज्याभिषेक की तैयारी करने की आज्ञा दी। कुब्जा मंथरा ने कैकई को यह समाचार दिया जिसकी बधाई में उसने मंथरा को आभरण दिया। मंथरा ने देवी कैकई से कहा: "विषादजनक घटना से मैं तो अपमान के समुद्र में डूब रही हूँ और तुम्हें आनंद आता है? क्या तुम यह नहीं जानती कि कौशल्या और राम की तुम्हें चिरकाल सेवा करनी पड़ेगी, उनके टुकड़ों पर आश्रित रहना होगा। अतः मोह के प्रमाद में न आ कर राजा ने तुम्हें जो दो वर दिए थे उन्हें माँगने का यही तो मौक़ा है, भरत का राज्याभिषेक और राम का वनवास, ये दोनों वर माँग लो।" मंथरा के वचनों को सुनकर कैकई ने कुपित होकर कोपगृह में प्रवेश किया। दशरथ ने उसे बहुत मनाने की कोशिश की पर उसने कोप का त्याग नहीं किया। दशरथ ने कहा: "कहो! क्या करूँ?" उसने कहा: "अगर सत्यवादी हो तो अपने दिए हुए वर मुझे दो!" राजा ने कहा: "क्या दूँ?" अब संतुष्ट होकर उसने कहा: "एक वर से तो भरत राजा हो और दूसरे से राम का बारह वर्ष वनवास हो।" यह सुन, दुःखी होकर दशरथ ने कहा: "देवी! यह दुराग्रह छोड़ो, राम गुणों का भण्डार है और पृथ्वी का पालन करने योग्य है और कुछ माँग लो!" कैकई ने कहा: "यदि आप सत्यवादी हैं तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए, आपकी जैसी इच्छा हो कीजिए!" राजा ने कड़वे मीठे वचनों द्वारा बहुत समझाया, आखिर राम को बुला कर अश्रुपूर्ण नेत्रों और भरे हुए गले से कहा: "पुत्र! मेरे पहले के दिए हुए वर को देवी यों माँगती है कि भरत को राज्य मिले और राम बारह वर्ष वन में रहे! अतः तुम ऐसा कार्य करो कि मैं झूठा न पड़ूँ!" राम ने यह आज्ञा शिरोधार्य की। फिर सीता और लक्ष्मण के साथ राम वीरवेश धारण कर लोगों के मन, नेत्र और मुखकमल को म्लान करते हुए कमलवन संकोचकारी अस्ताचल गामी अंशुमाली की भाँति निकल पड़े। दशरथ राजा, "हाय पुत्र! हा श्रुतनिधि, हा सुकुमार! हा अदुःखोचित! मुझ भाग्यहीन द्वारा वनवास! तुम किस प्रकार वन में समय निर्गमन करोगे?"—आदि विलाप करते हुए पंचत्त्व को प्राप्त हुए।

यहाँ का सारा वृतान्त ज्ञात कर भरत अपने मामा के घर से आए और उन्होंने माता को बड़ा उपालंभ दिया और अपने परिजनों के साथ राम के पास गए। उसने राम से पिता का मृत्यु संवाद सुनाया। पिता की उत्तरक्रियानन्तर राम से कैकई ने कहा: "बेटा तुमने पितृवचन निभाया। अब मुझे अपयश के कीचड़ में से निकालो और अपनी कुल क्रमागत राज्यलक्ष्मी और भ्राताओं का प्रतिपालन करो!" राम ने कहा: "माता! तुम्हारा वचन अनुल्लंघ्य है पर कारण सुनो, यदि राजा सत्य प्रतिज्ञावाला हो तो वह प्रजा का पालन कर सकता है अन्यथा अपनी स्त्री का भी पालन नहीं कर सकता। पितृवचन पालन करने के हेतु ही मैंने वनवास स्वीकार किया है अतः अब मुझसे लौटने का आग्रह मत करो!" भरत को राम ने आज्ञा दी कि यदि मेरा तुम पर अधिकार है और मैं बड़ा हूँ तो मेरी आज्ञा से तुम माता को किसी भी प्रकार का उपालंभ दिए विना प्रजा का पालन करो! अब अश्रुपूर्ण मुखवाले भरत ने प्रार्थना की: "आर्य! यदि शिष्य की तरह मुझे प्रजापालन के कार्य में संलग्न किया जाता हो तो मुझे पादुकाएँ देने की कृपा करें!" राम ने उसका कथन स्वीकार किया और पादुकाएँ प्राप्त कर भरत नगर में लौटे।

इधर सीता-लक्ष्मण के साथ राम तपस्वियों के आश्रम देखते हुए दक्षिण दिशा की ओर निर्जन स्थान में पहुँचे और एकान्त वन प्रदेश में सीता सहित रहने लगे। नयन मधुर देवकुमार जैसे राम को देख कर रावण की बहिन सूर्पणखा मुग्ध होकर उनसे काम प्रार्थना करने लगी। राम ने कहा: "मैं तपोवन में रहनेवाला, पर-स्त्री सेवन नहीं करता।" सीता ने कहा: "बलात्कार से पर-पुरुष की प्रार्थना करने से तुम निर्लज्ज और मर्यादा उल्लंघन करनेवाली हो!" उसने स्पष्ट होकर भीषण रूप धारण कर सीता को डराते हुए कहा: "तुम्हारे सतीवाद का मैं नाश करूँगी, तू मुझे जानती नहीं?" राम ने स्त्री होने के कारण अवध्य है – ऐसा विचार कर नाक-कान उतार लिए। अब सूर्पणखा खरदूषण के पास जा रोती हुई कहने लगी: "बेटा! तपोवन में विचरती हुई मुझ निरपराधिनी को दशरथ के पुत्र राम ने इस दशा में पहुँचाया है।" यह सुन क्रुद्ध होकर उसने कहा: "माता! विषाद को छोड़ो, मैं आज ही तीरों से बेध कर राम लक्ष्मण का रुधिर

गृद्धों को पिला दूँगा। तदनन्तर वह राम के पास गया और सूर्पणखा के नाक काटने का अभियोग लगा कर राम से कहा: "वीर! युद्ध के लिए तैयार हो! अब यम और वैश्रमण जैसे पराक्रमी राम लक्ष्मण धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा कर सन्नद्ध हो गए और बाहुबल व शस्त्रबल, के द्वारा लड़ते हुए खरदूषण का नाश कर दिया।

अब पुत्रवध से भड़की हुई क्रोधाग्नि वाली सूर्पणखा रावण के पास गई। अपनी नाक काटने और पुत्र को मारने की बात कह कर बोलीं: "देव! राम की स्त्री इतनी सुन्दर है कि मानो समस्त तरुणियों का रूप दोहन कर के ही इस नयनाभिराम सुन्दरी का निर्माण किया गया हो! वह अवश्य ही तुम्हारे अन्तःपुर के योग्य है।

सीता के रूप श्रवण से उन्मत्त हो रावण ने अपने अमात्य मारीच को सूचित किया कि "तुम आश्रमपद में जाकर रत्नखचित मृग का रूप विद्वुर्वण कर तापसवेश धारी योद्धाओं को लुब्ध करो। मेरा काम बन जाएगा।" पीछे मारीच रत्नखचित मृग का रूप धारण कर घूमने लगा। सीता ने राम से कहा: "आर्यपुत्र! इस अपूर्व सुन्दर मृगशावक को पकड़ो तो मेरे मनोरंजन करने में काम आएगा!" राम, सीता का कथन स्वीकार कर धनुष हाथ में लेकर उसके पीछे पीछे जाने लगे। पहले तो मृग धीरे धीरे फिर वेग से दौड़ने लगा। "तुम कहाँ जाओगे?" कहते हुए राम भी उसके पीछे जोर से दौड़ने लगे। इस प्रकार बहुत दूर जाने पर राम ने "यह वेग में मुझे जीतना चाहता है, तो यह मृग नहीं कोई मायावी है" यह सोच कर बाण फेंका। उसने मरते मरते सोचा स्वामी का कार्य तो कर दूँ। फिर उसने "हे लक्ष्मण मुझे बचाओ!" चिल्लाते हुए कहा। सीता ने चिल्लाहट सुन कर लक्ष्मण से कहा—"स्वामी त्रस्त होकर पुकारते हैं, जल्दी जाओ! अवश्य ही शत्रु सैन्य होगा!" लक्ष्मण: "भय तो कुछ नहीं है, आप कहती हैं तो जाता हूँ"—कह कर धनुष ले जिस मार्ग से राम गए थे उसी मार्ग पर शीघ्रता पूर्वक दौड़ा।

मौका पाकर रावण विश्वसनीय तापस का रूप धारण कर सीता के निकट आया। सीता के सौन्दर्य से मुग्ध रावण पीछे से आनेवाले विघ्नों की परवाह न कर उसे अपहरण कर ले चला। लौटे हुए राम लक्ष्मण सीता को न पाकर चिन्तित हो उसकी खोज करने लगे। रावण को मार्ग में जटायु विद्याधर ने रोका, जिसे हरा कर रावण किष्किन्धि गिरि के ऊपर से होकर लंका पहुँच गया। सीता के निमित्त विलाप करते हुए राम से लक्ष्मण ने कहा: "आर्य! स्त्री के निमित्त शोक करना शोभा नहीं देता, यदि मृत्यु ही वांछनीय है तो शत्रु के पराजय का प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता?" जब मार्ग में जटायु द्वारा समाचार मिला कि रावण ने सीता का अपहरण कर लिया है तो राम लक्ष्मण ने विचार किया कि युद्ध करनेवाले को विजय या मृत्यु दोनों में से एक मिलती है, विषाद करने वाले निरुत्साही के लिए तो मृत्यु ही निश्चित है। अतः पुरुषार्थ करना श्रेयस्कर है।

राम और लक्ष्मण अनुक्रम से किष्किन्धि गिरि पर पहुँचे जहाँ बालि और सुग्रीव नामक दो भ्राताओं का निवास था। इन दोनों में स्त्री के निमित्त विरोध हुआ और बालि के द्वारा पराजित हो सुग्रीव अपने हनुमान और जांबवन नामक दो अमात्यों के साथ जिनायतन का आश्रय ग्रहण कर रहता था। सुन्दर और धनुर्धर राम-लक्ष्मण को देख कर भय से पलायमान सुग्रीव को हनुमान ने कहा: "बिना कारण जाने दौड़ना उचित नहीं पहले इनका परिचय प्राप्त करें, फिर जैसा उचित हो किया जाए।"

हनुमान सौम्यरूप धारण कर राम-लक्ष्मण के पास आए और युक्तिपूर्वक उनसे पूछा: आप कौन हैं? और दुःख सहने योग्य न होने पर भी आप वन में कैसे आए?" लक्ष्मण ने कहा: "हम इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न दशरथ के पुत्र राम लक्ष्मण हैं और पितृ आज्ञा से वन में आए हैं। हमें मृग के द्वारा मोहित कर रावण सीता का हरण कर ले गया है जिसकी शोध में हम भटक रहे हैं। आप लोग कौन हैं? और वन में किस लिए रहते हैं?" हनुमान ने कहा: "हम विद्याधर हैं। हमारा स्वामी सुग्रीव है। अपने शक्तिशाली भ्राता बालि से पराजित हो हमारे साथ जिनायतन के आश्रम रहते हैं और आपके साथ मित्रता करना चाहते हैं।" राम के स्वीकार करने पर परस्पर अग्नि की साक्षी से मित्र सम्बन्ध स्थापित किया। बल की परीक्षा करने के बाद सुग्रीव ने राम को बालि का वध करने के लिए नियुक्त किया। वे दोनों भाई समान रूप आकृतिवाले और सुवर्णमाला सुशोभित होने से विशेष अन्तर न जान राम ने बाण छोड़ा, बालि ने सुग्रीव का पराजय किया। पीछे वनमाला धारण कर सुग्रीव की बालि से भिन्नता

दर्शाने से राम ने एक ही बाण से बालि का नाश कर सुग्रीव को राजा बनाया। तदन्तर सीता का वृतान्त जानने के लिए हनुमान गए। उन्होंने लौट कर सीता की राम को खबर दी। फिर राम की सूचना से सुग्रीव ने भरत के पास विद्याधर भेजे। भरत ने चतुरंगिणी सेना तैयार कर भेजी। सुग्रीव सहित विद्याधरों द्वारा पोषित यह सेना समुद्र तट पर आई, समुद्र पर सेतु बंध किया गया और लंका के समीप सेना उतरी। वहाँ शुभ मुहूर्त में पड़ाव डाले गए। अपने परिवार और सेना के गर्व से रावण ने राम और उनकी सेना की कोई परवाह नहीं की।

विभीषण ने रावण को सविनय प्रणाम कर निवेदन किया : "राजन्! हित वचन यदि अप्रिय भी हो तो बड़ों, सेवकों या बन्धुजनों को अपने स्वामी से निवेदन करना चाहिए। राम की भार्या सीता का अपहरण करके आपने अयोग्य कार्य किया है! कदाचित् भूल भी हो जाती है पर अब आप सीता को लौटा दीजिए। कुलक्षय मत कराइए! खरदूषण और बालि के विद्यासहित होने पर भी राम ने अनायस ही उनका नाश कर दिया। स्वामी को तो सेवक (निर्बल) की पत्नी की भी इच्छा नहीं करनी चाहिए फिर दूसरे बलवान पुरुष की स्त्री की तो बात ही क्या? राजाओं की तो जितेन्द्रियता में ही विजय है। मेधावियों ने मेधा, श्रुति, वितर्क और शुभकार्य में अभिनिवेश—चार प्रकार की बुद्धि का वर्णन किया है। आप मेधावी और मतिमान हैं और किसी भी प्रकार कार्य सिद्धि के कारण रूप है। किन्तु आपका अभिनिवेश दुराग्रह अनुचित है, अतः आपसे प्रार्थना है कि जो ग्रास खा सके, पच जाए और फिर पथ्य हो वही खाना चाहिए! इस प्रकार हे हित-बुद्धिवाले! आप विचार कर रामभार्या को वापस कर दें। जिससे परिजनों का कल्याण हो।"

विभीषण के इस प्रकार कहने पर भी रावण ने जब सुनाई नहीं की तो वह चार मंत्रियों के साथ राम के पास गया। सुग्रीव की अनुमति से राम ने विभीषण को विनीत ज्ञात कर उसका सम्मान किया। विभीषण के परिवार में जो विद्याधर थे, वे राम की सेना में मिल गए। फिर उनका—रामपक्ष और रावणपक्षवालों का, विद्याधर और धरणि गोचरों का युद्ध हुआ। राम का सैन्य दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। प्रधान योद्धाओं का नाश हो जाने पर भी संग्राम में विजयाकांक्षी रावण ने सर्व विद्याओं का छेदन करनेवाली 'ज्वालवती' विद्या का साधन करना प्रारंभ किया। उसे विद्या साधन-परायण ज्ञात कर राम के योद्धा नगर में प्रवेश कर के उसका पराभव करने लगे। इससे रावण क्रुद्ध हुआ और कवच धारण कर रथारूढ़ होकर निकला। वह दारुण युद्ध करता हुआ लक्ष्मण के साथ लड़ने लगा। सब शास्त्रों के निष्फल हो जाने पर अविषण्ण चित्त और रोषयुक्त नेत्रोंवाले रावण ने लक्ष्मण का वध करने के लिए चक्र छोड़ा। परन्तु वह चक्र लक्ष्मण के पुण्यप्रभाव से उसके वक्षस्थल पर आड़ा पड़ा। विचक्षण और धैर्यवान् लक्ष्मण ने उस चक्र को ग्रहण कर रावण के वध के लिए वापस छोड़ा। वह देवाधिष्ठित चक्र कुण्डल और मुकुट सहित रावण का मस्तक छेदन कर लक्ष्मण के पास आया। गगन मण्डल में अवस्थित ऋषिवादित और भूतवादित देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। उन्होंने आकाशवाणी की "भारतवर्ष में यह आठवाँ वसुदेव उत्पन्न हुआ है।"

युद्ध शान्त होने पर विभीषण सीता को लाया। परिवृत विद्याधर वृद्धाओं को विसर्जन कर उसे राम को सौंपा। विभीषण ने अनुमति पा कर रावण की अन्त्येष्टि क्रिया की। तदनन्तर राम-लक्ष्मण ने अरिंजय नगर के लिए विभीषण का और विद्याधर श्रेणि नगराधीश्य से सुग्रीव का राज्याभिषेक किया। फिर अपने परिवार के साथ सुग्रीव और विभीषण राम-सीता को विमान में बैठा कर अयोध्या ले गए। नागरिक जन और मंत्रियों के साथ भरत-शत्रुघ्न ने राम का राज्याभिषेक किया। पीछे सुग्रीव के साथ महाप्रभावशाली राम ने अर्द्ध भरत को विजय किया। राजा विभीषण अरिंजयनगर में रहा।

उत्तर पुराण की रामकथा का सार : राजा दशरथ काशी देश की वाराणसी के राजा थे। राम की माता का नाम सुबाला और लक्ष्मण की माता का नाम कैकई था। भरत और शत्रुघ्न किसके गर्भ में आए थे—यह स्पष्ट नहीं लिखा है। केवल 'कस्यांचित् देव्याम्' लिख दिया है। सीता मंदोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं, परन्तु भविष्यद् वक्ताओं के यह कहने से कि वह नाशकारिणी है, रावण ने उसे मंजूषा में रखवा कर मारीचि के द्वारा मिथिला में भेज कर जमीन में गड़वा दिया था। दैवयोग से हल की नोक में उलझ जाने से वह राजा जनक को मिल गई और उन्होंने उसे अपनी पुत्री के रूप में पाल लिया। इसके बाद जब वह व्याह योग्य हुई, तब जनक को चिन्ता हुई। उन्होंने एक वैदिक यज्ञ किया और उसकी रक्षा के लिए

राम-लक्ष्मण को आग्रहपूर्वक बुलवाया। फिर राम के साथ सीता को व्याह दिया। यज्ञ के समय रावण को आमंत्रण नहीं भेजा गया। इससे वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और इसके बाद जब नारद के द्वारा उसने सीता के रूप की प्रशंसा सुनी तब वह उसको हर लाने की सोचने लगा।

कैकई के हठ करने, राम को वनवास देने आदि का इस कथा में कोई जिक्र नहीं है। पंचवटी, दंडकवन, जटायु, सूर्पणखा, खरदूषण आदि के प्रसंगों का भी अभाव है। बनारस के पास के ही चित्रकूट नामक वन से रावण सीता को हर कर ले जाता है और फिर उसके उद्धार के लिए लंका में राम-रावण युद्ध होता है। रावण को मार कर राम दिग्विजय करके लौटते हैं और फिर दोनों भाई बनारस में राज्य करने लगते हैं। सीता के अपवाद की और उसके कारण उसे निर्वासित करने की चर्चा इसमें नहीं है। लक्ष्मण एक असाध्य रोग में ग्रसित होकर मर जाते हैं और इससे राम को उद्वेग होता है। वे लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीसुन्दर को राजपद पर और सीता के पुत्र अजितांजय को युवराज पद पर अभिषिक्त करके अनेक राजाओं और अपनी सीता आदि रानियों के साथ जिन-दीक्षा ले लेते हैं। सीता के आठ पुत्र थे, पर लव कुश का नाम नहीं है। रावण विनमी विद्याधर के वंश में पुलस्त्य का पुत्र था। शत्रुओं को रुलाने से रावण कहलाया।

नाहटों की गवाड़,
बीकानेर

अगरचन्द "नाहटा"

भोजपुरी कहावतें

अपना के जुरे ना अनकाके दानी।
अपने को मिले नहीं दूसरे को दान करने को तैयार।

एकका तीते तीनों तीत।
एक चीज कड़वी होने से तीनों कड़वी हो जाती हैं।

नौआ देखले कांखेबार।
साधन देख कर काम करने को जी करता है।

मोरे बाप के उपजल कपास, मेरे लेखे पड़ल तुसार।
बाप जितना भी धनी क्यों न हो जाय पर उसकी लड़की का हिस्सा नहीं होता।

लंगट पड़ले, उधार के पाले।
बेशरम नंगे के पाले पड़ गया।

शिवराजगढ़ (सौराष्ट्र)

—अनवर आगेवान

'अयोध्याकाण्ड' का तुलनात्मक अवलोकन

'श्रीमद्रामायण' के कथा-प्रवाह में 'अयोध्याकाण्ड' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें मनोविज्ञान की दृष्टि से सूक्ष्म स्थलों का वर्णन हुआ है, साथ ही जीवन नदी के पात-प्रपात तथा संक्षोभ-विक्षोभ का जीता जागता चित्रण भी है। यह निर्विवाद है कि समूचे हिन्दी साहित्य में तुलसीदास की रामायण की निरुपम प्रशस्ति है। राम की कथावस्तु ले कर लिखी गई इनी गिनी दूसरी किताबें भी हैं परन्तु महामना गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का स्थान सर्वोपरि है। तेलुगु साहित्य में रामायण का सम्मान्य स्थान है परन्तु वह सर्वोपरि नहीं है। तेलुगु की साहित्यिक सर्जना का श्री गणेश 'श्रीमदान्ध्र महाभारत' से हुआ। उस बृहद् ग्रन्थ का निर्माण प्रतिभाशाली कवियों के द्वारा हुआ। प्रायः जो मतवैभिन्न्य आन्ध्रों में दर्शनीय है, वह महाभारत में भी अनुभाव्य है। इस कारण से भी महाभारत का स्थान तेलुगु साहित्य में सर्वोपरि है। तेलुगु में भी रामायण काव्य प्राचीन काल से ही उपलब्ध हैं। इन सब का प्रचार भी यथेष्ट मात्रा में हुआ है। इनमें से (१) 'भास्कर रामायण' (२) 'रंगनाथ रामायण' (३) 'श्री कृष्ण रामायण' (४) 'रामायण कल्पवृक्ष' मुख्य हैं। यहाँ 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड के साथ इन रामायणों के 'अयोध्याकाण्ड' रचना का तुलनात्मक अवलोकन करना हमारा उद्देश्य है।

मुख्यतः वैसे तो सभी रामायणों का प्रधान स्रोत 'वाल्मीकि रामायण' ही है, फिर भी कवि अपनी अपनी अभिरुचि के अनुसार, क्या वर्णन में, क्या पात्रों के चरित्र चित्रण में अपनी अपनी चतुराई का प्रदर्शन करते आए हैं। प्रथमतः शैली के बारे में। गोसाँई जी ने दोहा-चौपाई की पद्धति अपना कर महर्षि वाल्मीकि की 'मधुमय भणिति' का अनुकरण एवं अनुसरण किया। 'मधुमयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः'। जैसे वाल्मीकि ने छोटे से छन्द में सरस तथा सरल भाषा के द्वारा रामायण की कथा गाई वैसे ही तुलसीदास ने भी किया।

उदाहरण लीजिए :

"सोहं विश्राममिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते
संनिकृष्टानिमान्सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान्
अनुजानीहि मां सर्वैर्गुणैः श्रेष्ठो ममात्मजः
पुरन्दरसमो वीर्य्ये रामः परपुरन्दरः
पुण्येन युक्तं धर्मभृतां वरम्।
यौवराज्ये नियोक्तास्मि प्रातः पुरुषपुंगवम्"

तुलसीदास जी की शैली :

"कहइं भुआलु सुनिअ मुनिनायक,
भए राम सब बिधि सब लायक।
सेवक सचिव सकल पुर वासी,
जे हमारे अरि मित्र उदासी।
सबहि रामु प्रिय जेहि विधि मोही,
प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही।

... ...

अब अभिलाषु एक मन मोरे,
पूजहिं नाथ अनुग्रह तोरे।
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू,
कहेउ नरेस रजायसु देहू।"

इन चरणों से यह स्पष्ट है कि तुलसी के छन्द में संयम और ऋषिवद् व्याहार है। तेलुगु के कवियों में अकेले रंगनाथ ने इस प्रकार 'द्विपद' नामक छोटे छन्द में सारा काव्य लिखा। अतः तेलुगु भाषा–भाषियों में 'रंगनाथ रामायण' का बहुत प्रचार है। विशेष कर कथा वाचकों में। शैली देखिए :

"श्री लील दशरथोर्विपालु,
डवनिपालिंचुचुंडि चोप्पड नोक्कनाडु।
सुतुल नलुवुंर लोन शुभतर मूर्ति,
यतुल यशोनिधि यगुचुन्नवानि
ननुदिनंबुनु बेदलगुवारि नेल्ल,
मनमुन मुदमोंद मन्निंचुवानि
हितबुद्धि यगुवानि, नेल्ल भूतमुल हितमुनु,
गरुणा नन्वेषिंचुवानि

सैरण धरतोड सरिवच्चुवानि
भूरिगुणंबुल पोलुपोंदुवानि
कोदंड दीक्षैक गुरुडगु वानि,
आदिम पुरुषुडै यलराह वानि
श्रीरामु पट्टाभिषिक्तुनि जेसि,
धारणि बालिंप दलपोसि यंत
दलकोश कडकतो, दशरथेश्वरुड,
कोलुवु कूटमुनकु गौमरोप्प वच्चि"

—दशरथ ने एक दिन श्री रामचन्द्र जी का युवराज्याभिषेक करना चाहा। (राम के गुण इस प्रकार वर्णित हैं) चारों पुत्रों में शुभ्रतर मूर्ति थे, अतुल यश से भरे थे। दीनों के प्रति आदर भाव रखने वाले थे, सर्व जीवों की हित कामना करने वाले, सहनशीलता में धरती के समान थे, धनुर्विद्या में पारंगत और आदि पुरुष थे। ऐसे श्री रामचन्द्र जी के पट्टाभिषेक के बारे में सोचते हुए राजा दशरथ सभा में प्रविष्ट हुए।

द्विपदा छन्द तेलुगु भाषा का छन्द है। इस छन्द में तेलुगु वैसे ही ढलती जाती है जैसे बरवै चौपाइयों में अवधी तथा कवित्त सवैयों में व्रज-भाषा।

तुलसीदास ने अयोध्याकांड में प्रकृति सुषमा का गरिमामय वर्णन किया है। विशेष रूप से चित्रकूट वर्णन सराहनीय है। यह प्रसिद्ध है कि तुलसीदास चित्रकूट के अत्यन्त प्रेमी थे। 'विनय पत्रिका' में तो उन्होंने 'जी भर गया अब चित चेति चित्रकूट हि चलु' लिखा और 'मानस' में भी चित्रकूट पर उनकी कलम बहुत दूर तक चली है।

"कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन,
जौं सत सहस होहिं सह सानन॥

… … …

चित्रकूट के विहग मृग वेलि विटप तृन जाति,
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति॥"

तेलुगु में भी चित्रकूट पर्वत का वर्णन जहाँ तहाँ मिलता है परन्तु इतनी सहजता तथा हृदयोद्रेक के साथ नहीं। तेलुगु के वर्णनों में काव्य-कला का बहुत सुन्दर रूप है। 'भास्कर रामायण' का निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य है :

"अटजनि कांचि रंत वसुधाधिपुला रतिलोल किन्नरी
घटित गुहा कुटी कनक कम्र कवाटमु, सन्मणि प्रभा
हटदुरु श्रृंग जूटमु समावृत माल्यवती तरंगिणी
तटतरु पाटमुन्, बहुलतापस कूटमु चित्रकूटमुन्"

—श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण ने ऐसे चित्रकूट के दर्शन किए जो किन्नर स्त्रियों के द्वारा विनिर्मित गुहा मंदिरों से विराजित था, रत्नों से भरा पड़ा था, जहाँ माल्यवती नदी बह रही थी और जहाँ पर कई ऋषि मुनियों का आवास था।

इस पद्य से तेलुगु कवियों में देखी जानेवाली अनुप्रास-प्रियता की झलक भी मिलती है।

तुलसीदास जी की आत्मकथा पर प्रकाश डालनेवाली निम्नलिखित पंक्तियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं :

"तेहि अवसर एक तापसु आवा
तेजपुंज लघुवयस सुहावा।
कवि अलखित गति वेषु विरागी
मन क्रम वचन राम अनुरागी।"

श्री रामचन्द्र जी शुक्ल के अनुसार 'तापस' स्वयं तुलसीदास हैं। ऐसी उदात्त भावना लेकर, तन्मयता के साथ लिखने वाला कवि तेलुगु में अद्यावधि कोई नहीं हुआ। गुसाईं जी ने मानस में ग्राम-वधूटियों और सीता जी के वार्तालाप की आयोजना करके नम्र हास का जो विलास दिखाया, वह अत्यन्त स्तुत्य है। इसमें मनोविज्ञान का रहस्य भरा पड़ा है। कवि का वैदग्ध्य भी स्पष्ट है।

"कोटि मनोज लजावनि हारे
सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी
सकुची सियमन महुँ मुसकानी।
तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी
दुहुँ सकोच सकुचति वर वरनी।
सकुचि सप्रेम बालमृग नयनी
बोली मधुर वचन पिक बयनी।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे
नामु लखन लघु देवर मोरे।
बहुरि वदनु विधु अंचल ढाँकी
पियतन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि
निजपति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि।

भईं मुदित सब ग्राम बधूटी,
रंकन्ह रामरासि जनु लूटी।"

ये पंक्तियाँ पढ़ते पढ़ते हमारा हृदय उत्फुल्ल हो जाता है। कुछ देर तक हम श्रीराम-वनवास क्लेश को भूल से जाते हैं। ऐसी मार्मिक आयोजनाओं का तेलुगु की रामायणों में अभाव है।

रानी कैकई वर माँगती है, स्वतः प्रेरणा के बल पर नहीं परन्तु दैवी प्रेरणा से। यह सूचना हमें तुलसी रामायण में मिलती है। वह सरस्वती के प्रभाव का फल था। देवी देवताओं की प्रार्थना से सरस्वती ने ऐसा किया। इससे कैकई के चरित्र चित्रण में बड़ी उज्ज्वलता आ गई। तेलुगु के 'श्रीकृष्ण रामायण' में कवि ने कैकई का चरित्र और भी समुज्ज्वल करने के लिए एक नया उपाय निकाला। कैकई किसी देवता के वश में हो वर माँगती है। परन्तु जब रामचन्द्र जी वनवास के लिए निकल पड़े तब वह रो पड़ती है और श्री रामचन्द्र जी को वन जाने से उसी समय मना करती है। साधारणतया, तुलसी के 'मानस' में अथवा दूसरी रामायणों में कैकई आरम्भ में ही पछताती नहीं। कैकई राम से कहती है:

"आवेशिंचेनु नादुमेनि पयि दय्यंबो महाभूतमो
नाविज्ञान मदेल्ल नेटगलिसेन् गावोलु, नेनेमि ने
ना वेलं बचरिंचियुंटिनो, कुमारा! रामचन्द्रा! मदी
या वेशागत दोषमुल् समिचि नार्यंदु दयन्त्रिल्पवे।"

—हे कुमार रामचन्द्र! मुझे क्षमा करो। उस समय कोई भूत मुझ पर सवार था। मेरा सारा विज्ञान कहीं चला गया था। मैंने क्या क्या प्रलाप किया, मुझे एक सी अब ज्ञात नहीं। अतः मेरी खातिर तुम वन गमन की चिन्ता छोड़ दो।

"ग्रहमु सोकि नपुड्डु गलिगिन माटलु
पाटि चेसि नीवु प्रभुत विडिचि
अडिवि करुग दगदु विड्डवु मी वेषमु
निलुपु. नादु प्राणमुलनु दंड्रि"

—अतः मैंने भूत के वश में हो जो कहा उसका पालन करने की आवश्यकता नहीं है। यह मुनिवेश छोड़ दो और मेरी प्राण रक्षा करो।

राम के वनगमन की वार्ता सुन कर लक्ष्मण जी आग बबूला हो जाते हैं। लक्ष्मण का क्रोधमय रूप सभी रामायणों में एक-सा है। तेलुगु के 'भास्कर रामायण' के निम्नलिखित पद्य ओज गुण से विभूषित हैं:

"अपुड्डु सौमित्रि कोप रक्तास्यु डगुचु
बोमलु गीलिंचि विस्फुलिंगमुलु चेदर
नतुल खड्गंबु नंकिंचि यन्न तोड।"

—तब लक्ष्मण का चेहरा क्रोध के मारे तमतमा उठा। भृकुटि चढ़ गईं। आँखों से क्रोध रूपी ज्वाला निकलने लगे। ऐसी दशा में म्यान से तलवार निकाल कर अपने भाई से यों कहने लगा।

"अस्मत्कार्मुक मुक्त बाण विसरं बा भील दंभोलि सं
घस्मेराग्रमु गाग युष्मदभिषेक प्रातिकूल्यंबु दा
नस्मार्थं बट्टु गाक तक्किन नयोध्यापट्टणं बंतयुन्
भस्सी भूतमु सेसि पुच्चेद महीपालान्वय ग्रामणी"

—मेरे धनुष से छोड़े हुए बाण तुम्हारे अभिषेक के लिए जो विघ्न उपस्थित हैं, उनको दूर कर देंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो सारा अयोध्या नगर भस्मीभूत कर दूँगा। हे राजन्य (मतलब यह है कि तुम्हारे सिवा और कोई राजा नहीं हो सकता)।

तुलसीदास जी ने इस अवसर पर लक्ष्मण का जो वर्णन किया है वह अत्यन्त दुर्लभ है परन्तु हम नहीं कह सकते कि लक्ष्मण का ऐसा चित्रण कहाँ तक औचित्यपूर्ण है। पाठक ही स्वयं निर्णय कर लें। तुलसीदास जी के इस वर्णन में हमें लक्ष्मण अपनी प्रकृति के विरुद्ध मालूम पड़ते हैं। तुलसीदास ने इस अवसर पर लक्ष्मण जी में संयम और ज्ञान के दर्शन किए हैं:

"बोले लखन मधुर मृदुबानी
ग्यान बिराग भगति रस सानी
काहुन कोउ सुख दुख कर दाता
निज कृत करम भोग सबु भ्राता
... ...
सपने होइ भिखारि नृप रंकु नाकपति होय
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोय।"

मुनि कुमार श्रवण की कथा तुलसीदास में और तेलुगु रामायणों में भी सूचित की गई है। केवल 'रामायण कल्पवृक्ष' में इसका विस्तृत तथा रोचक वर्णन काव्यत्व के साथ किया गया है। कवि की वाणी इस खण्ड में मार्मिक तथा हृदय-वेधक रूप में निकली है:

"ननु नें दियो मृगं बनि मनं बुन नें चिति वेमो यन्न, नौ
ननि गजपान विभ्रममु नंदिति जेसिति निद्दि पापमुन्
जनुवुन दीररानि दन, जालमुनि नन्नुनु जूचि, नीवु चं
पिनयदि नन्नुगादु विनु वृद्धुल ना यल तल्लि दंडुलन्"

श्रवणकुमार और राजा दशरथ के बीच जो वार्तालाप चला उसका संपूर्ण चित्रण इसी एक छन्द में कवि ने कर दिखाया जिसके लिए कवि में संग्रह शक्ति अत्यन्त अपेक्षित है।

श्रवण : "शायद तुमने मुझे कोई मृग समझा होगा।"

दशरथ : "हाँ। मैंने समझा कि कोई हाथी पानी पी रहा है। इसलिए मैंने ऐसा पाप किया। तब मुझ पापी (दशरथ) को देख कर उसने कहा कि "तुमने मेरी हत्या नहीं की परन्तु दूरस्थ रहने वाले उन मेरे माँ बाप की हत्या की।"

'रामायण कल्पवृत्त' की विशेषता इस विषय में है कि इसमें कवि काल-कला की प्रधानता मानते हैं फलतः पादुका खण्ड और अनसूया खण्ड भी बहुत विस्तृत रूप में लिखे गए :

"प्रभुरूप कल्पना प्रथम सद्यः स्फुर
त्पादाब्जयुग कनत्परम भूष
वैकुण्ठ मंगल द्वार्देदलीदत्त
भक्तितर्पणमु दीपांकुरम्बु
सनक सनंदनादि सकल देवर्षि दत्त
लतान्त मो हनता निधानमु।"

—श्री रामचन्द्र जी के उपानहों का वर्णन है। प्रभु के रूप की कल्पना के अवसर पर प्रथम भासित होनेवाले पद-पद्मों का अलङ्कार है। वैकुण्ठ लोक के मंगल द्वार पर, रखे हुए, आँखों को तृप्त करनेवाले दीपांकुर हैं। सनक-सनन्दन आदि ऋषिमुनियों के द्वारा समर्पित कुसुमों के द्वारा मनोमोहक जो हैं।

प्राचीन कवयित्रियों में मोल्ल ने रामायण की रचना बड़े संक्षेप में साथ ही बड़ी रोचकता के साथ की। एक उदाहरण लीजिए :

"सुडि गोनि रामुपादमुलु सोकिन धूलिवहिंचि रायिये,
पर्डनोक कान्त यॅयेनट पन्नुग नीतनि पादरेणुवि
य्येड वडि नोड सोक निदि येमगुनो यनि संशयात्मुडै
कडिगे गुहुंड्ड रामपद कंजयुगंबु भयंबु पेंपुनन्।"

—"राम के पद-स्पर्श से पत्थर नारी में बदल गया न जाने, इनके पद-रज के स्पर्श से अब मेरी नाव क्या क्या बन जाए। अतः मैं पहले उनके पदों का प्रक्षाल करूँगा," ऐसा सोच कर केवट ने डरते डरते श्री रा चन्द्र जी के चरण कमलों का प्रक्षालन किया।

इसी भाव को गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़ी मृ एवं भक्तिभरी भाषा में यों प्रगट किया। केवट की पंक्तियों में भोलापन और भक्ति का सम्मिश्रण गुड़ न्याय से हुआ था।

"छुवत सिला भइ नारि सुहाई
पाहन तें न काठ कठिनाई।
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई
बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।
एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू
नहिं जानउँ कछु और कबारू।
जो प्रभु पार अवसि गा चहहु
मोहि पद पदुम पखारन कहहु।"

कैकई के चरित्र चित्रण में तुलसीदास ने औचि का पोषण किया है परन्तु इस अवसर पर तेलुगु के सम्राट् श्री विश्वनाथ सत्यनारायण जी ने अपने 'रामाय कल्पवृत्त' में जो ग़ज़ब कर दिखाया वह देखते ही ब है। तुलसीदास की कैकई मन्थरा के प्रति इस प्र कहती है :

"जेठ स्वामि सेवक लघु भाई
यह दिन कर कुल रीति सुहाई।
... ...
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरे......
भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ"

परन्तु 'सुरमाया' के वश हो वह मन्थरा की बा में आ जाती है। 'कल्पवृत्त' में स्त्रियोचित स्वभाव वर्णन मनोविज्ञान के आधार पर सुचारु रूप में हुआ है मन्थरा की संवाद कुशलता ने कैकई के भावों में परिव कर दिया। उसके विचारों के क्रम परिवर्तन का चि मनमोहक ढंग पर बड़े विस्तार के साथ हुआ, जिस निर्देश इस छोटे-से लेख में नहीं हो सकता।

भरत मिलाप के संदर्भ में महामना तुलसीदास जी अपने भक्त-हृदय को उँडेल कर रख दिया था। उस वर्णन

प्रत्येक अक्षर से भक्ति का सुधारस शिवजटाजूट से विनिर्गत पावन गंगा की भाँति निकल पड़ता है। ऐसा गरिमामय वर्णन तेलुगु की रामायणों में नहीं है। यह खेदजनक विषय है फिर भी अवांछनीय सत्य है।

> "हरषहिं निरखि रामपद अंका
> मानहुँ पारसु पायउ रंका।
> रज सिर धरिहियँ नयनन्हि लावहिं
> रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं।
> देखि भरत गति अकथ अतीवा
> प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा।"

सारांश यह है कि जहाँ तुलसीदास के अयोध्याकाण्ड में मनोविज्ञान, भक्ति भावना आदि विषयों का सुन्दर समावेश है, वहाँ तेलुगु रामायणों में काव्यकला का निखरा रूप प्राप्त है। यह विषय 'रामायण कल्पवृक्ष' की रचना से और भी स्पष्ट है। यह कहे बिना नहीं रह सकते कि रामायण-रूपी हार में अयोध्याकाण्ड तरल जैसा जगमगा रहा है।

> "भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं
> सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति"

—हनुमच्छास्त्री 'अयाचित'

ए. वी. आर्ट्स कॉलेज,
तिरुपति

महान् साहित्य का सृजन

सम्भवतः लोगों की यह धारणा हो सकती है कि जो कुछ हम देखते हैं उसका हूबहू वर्णन कर देने से अथवा जो कुछ हम अनुभव करते हैं उसकी बौद्धिक स्तर पर अभिव्यक्ति करने से हम महान् साहित्य की सर्जना कर रहे हैं। परन्तु महान् साहित्य के सृजन के लिए आत्मा की महानता की आवश्यकता होती है जो निरन्तर अनुवीक्षण और गहरे चिन्तन के बिना प्राप्त नहीं हो सकती। एक महाकवि गम्भीर अध्येता और चिन्तक भी होता है। महान् साहित्य के सृजन के लिए महान् आत्माओं का सृजन आवश्यक है। परन्तु प्रति दिन एक महाकवि पैदा नहीं होता और न प्रति मास एक महान् उपन्यास ही प्रकाशित होता है। उनका कभी कभी ही सृजन होता है जब कि कोई महान् आत्मा प्रगट होती है।

(एक भाषण से)

—डॉ. राधाकृष्णन्

विशेष संवाददाता

आज प्रधान सम्पादक की घुड़की खा कर रणधीर का मन बैठ गया। दो महीने हो गए, उसकी नगर के सबसे बड़े दैनिक के "विशेष संवाददाता" के रूप में नियुक्ति हुई थी। पर अब तक उसके हाथ से ऐसी कोई अख़बार की रिपोर्ट नहीं मिल पाई थी जिससे वाहवाही मिले और दैनिक की प्रतिष्ठा बढ़े और यदि एकाध महीना यही हाल रहा तो फिर इस नौकरी से छुट्टी ही समझनी चाहिए। इसलिए वह मन ही मन झुँझलाया और घबड़ाया भी।

आज दोपहर को जब प्रधान सम्पादक का चपरासी उसे बुलाने के लिए आया तभी वह समझ गया कि आज पेशी होगी, और खरी-खोटी सुननी पड़ेगी। बात हुई भी वही। उसके अन्दर क़दम रखते ही प्रधान सम्पादक जी ने बेरुखी आवाज़ में कहा :

"देखो रणधीर! तुम शर्मा मिनिस्टर साहब की सिफ़ारिश ले कर आए थे इसलिए मैंने तुम्हें इस दैनिक का 'विशेष प्रतिनिधि' नियुक्त कर लिया। इसका मतलब यह नहीं कि मैं किसी मिनिस्टर से दबता हूँ। वे तो मेरे पुराने मित्र हैं इसलिए मैंने उनकी बात का आदर किया, बस! पर साथ ही मैंने तुम्हें यह भी कह दिया था कि यदि दो महीने के भीतर तुम्हारी प्रतिभा का प्रकाश नहीं दिखा तो तुम्हें बर्खास्त कर दिया जाएगा। यह बात मैंने माननीय शर्मा साहब से भी कह दी थी और तुमने भी स्वीकार कर ली थी। पर अब तक तुमने कुछ नहीं कर दिखाया। अब एक महीने का मौक़ा तुम्हें और देता हूँ। उसके भीतर यदि तुम्हारा करतब नहीं दिखा तो आज की बातचीत को ही तुम अपना नोटिस समझो। दैनिक पत्र में इस तरह की ढीला-पोली से काम नहीं चलता है। उसे तो नित्य नई खबरें चाहिए—जानदार, सनसनीदार, तहलका मचानेवाली, बढ़िया! और वे भी दूसरे अख़बारों से पहले। यह काम ही ऐसा है कि स्पर्धा में फिसड्डी रहे कि गए। समझे?"

रणधीर ने सुनने को तो सब कुछ सुन लिया। बात समझ में भी आ गई। वह कड़वी ज़हर थी पर थी सच इसलिए क्या करता? पर दिल में ठान लिया कि अब वह जल्दी से जल्दी ऐसे समाचार की रिपोर्ट लाएगा कि बस, लोग देखते ही रह जाएँगे। उसकी और शर्मा मिनिस्टर की इज़्ज़त का सवाल था वह! अपने आपको निकम्मा कैसे साबित होने देगा?

और सचमुच एक मौक़ा उसी रात को हाथ आ गया।

शहर के चौक में कारिटनेराटल बीमा कम्पनी की एक बड़ी इमारत थी। इतनी भव्य और आलीशान इमारत और किसी बीमा कम्पनी की नहीं थी। इसमें दो-एक बैंकों के दफ़्तर थे, सिनेमा-वितरक मोटर कारखाने पेट्रोल के पम्प—सभी कुछ उसमें या उससे संलग्न थे। कोई भी विदेशी कम्पनी उस शहर में यदि अपना ऑफिस खोलती तो सबसे पहले इसी बिल्डिंग में जगह पाने की कोशिश करती। उसके सामने एक बड़ा पार्क था। पास ही एक बड़े होटल की बिल्डिंग थी, थिएटर था। वह चौक यानी शहर की नाक थी, और वह बिल्डिंग यानी नाक का बाल! बड़ा बोलबाला था उसका। उसकी बनावट, डिज़ाइन सब कुछ ऐसा आधुनिक था, इतना अपटुडेट था जैसे उसे किसी ने लन्दन से उठा कर यहाँ ला रखा हो। बीमा कम्पनी के स्थानीय डायरेक्टर तो यही कहते थे कि कई लोगों ने तो महज़ बिल्डिंग की तरफ़ देख कर ही अपने बीमे उस कम्पनी में करवाए। बात कुछ ग़लत नहीं थी। उसका रोब ही कुछ ऐसा था।

उसी बिल्डिंग में उस रात को करीब डेढ़ बजे भयंकर आग लग गई। आग शायद उस कमरे से लगी जहाँ बीमा कम्पनी के काग़जात और रिकॉर्ड रखे हुए थे। आग इस भीषणता से लगी कि पास ही के पेट्रोल की टाँकी तक पहुँच गई और इसके पहले की आग बुझाने का इंजिन वहां पहुँच सके, उसने ऐसा भयंकर रूप धारण कर लिया कि जैसे प्रलय काल आ गया हो। आसमान से होड़ करनेवाली ज्वाला की लपलपाती लपटों को देख कर ऐसा लगता था जैसे सारी दुनिया ही भस्मीभूत होने जा रही हो।

पर इस हाहाकार भरे वातावरण में यदि शांत चित्त और स्थिर कर्तव्य-बुद्धि से कोई आदमी काम कर

१६५४

रहा था तो वह था दैनिक समाचार पत्र का विशेष संवाददाता – रणधीर ! पुलिस या फ़ायर ब्रिगेड के पहुँचने के पहले ही वह वहाँ मौजूद था । उसकी सतर्कता और कार्य तत्परता अद्भुत थी । पुलिस और आग बुझानेवाले खूब मुस्तैदी से अपना काम कर रहे थे, और एक रणधीर था कि जिसका ध्यान अपनी रिपोर्ट लिखने को छोड़ कर और किसी ओर नहीं था । भयंकर दुर्घटना हो जाने के बाद डॉक्टर यदि रोगी की फ़ौरन शल्यक्रिया करने के बजाय उस दुर्घटना पर अपना शोक प्रकट करने लगे तो उसका काम ही चौपट हो जाय । कुछ इसी तरह की भावना से रणधीर हाथ में पेंसिल और छोटी-सी पॉकेट नोट बुक लिए अपना काम कर रहा था । उस दुर्घटना की बारीक से बारीक खबर लिख रहा था । वहाँ जो विशाल भीड़ जमा हो गई उसमें भी लोगों ने कहा—"वाह भई ! इसे कहते हैं कर्त्तव्य-निष्ठा !—सेन्स ऑफ ड्यूटी ।"

जब दूसरे दिन ही प्रातःकाल लोगों ने उस दैनिक में इस भयंकर अग्निकाण्ड की सजीव और सिलसिलेवार रिपोर्ट देखी तो दंग रह गए । इस दुर्घटना की एक एक बात उसमें लिखी गई थी । आग दुर्घटना के कारण नहीं लगी, किसी ने जान बूझ कर लगाई होगी ऐसा संवाददाता का ख़याल था । हो सकता है कि वह दुष्ट व्यक्ति किसी दूसरी प्रतिस्पर्धी बीमा कम्पनी का एजेन्ट हो जो उसके उत्कर्ष से जलता हो । वह आदमी कहाँ से ऊपर चढ़ा होगा, किस खिड़की में से अन्दर घुसा होगा, साथ में दियासलाई कैसे लाया होगा, पेट्रोल के टीन का क्या किया होगा, कितने बजे पहली चिनगारी लगी होगी, और स्फोट कितने बजे हुआ, यह सब हूबहू वर्णन उस रिपोर्ट में इतना सही, इतना सजीव था कि प्रधान सम्पादक की तबीयत फड़क उठी । दूसरे अखबारों ने तो महज़ छोटी सी रिपोर्ट देकर ही अपने दिल की तसल्ली की, क्योंकि दुर्घटना डेढ़ बजे हुई और तीन बजे समाचार पत्र का आखिरी फॉर्म मशीन पर जाने को था । इस थोड़े-से समय में और क्या हो सकता था ?

पर रणधीर ने इतने थोड़े-से समय में ही इतनी विस्तृत रिपोर्ट लिख डाली, इतनी जानदार और जीती-जागती, कि ग़ज़ब हो गया । कमाल की बात यह थी कि उस रिपोर्ट के साथ ही बीमा कम्पनी की उस शानदार इमारत का चित्र भी दिया गया था जिसके नीचे लिखा गया था :

"नगर की शोभा और वैभव की प्रतीक यह इमारत जो अग्निदेव के कोप के कारण अपना सौन्दर्य लुटा चुकी ।"

प्रधान सम्पादक महोदय ने कहा—"शाबाश रणधीर ! तुमने मेरी और माननीय शर्मा जी की नाक रख ली । आज तो अपने दैनिक ने सारे प्रति-स्पर्धियों को इस बुरी तरह पछाड़ा है कि कई दिनों तक वे अब सिर नहीं उठा सकेंगे । बधाई, हार्दिक बधाई ! आज मैं तुम्हारा ज़ाहिरा तौर पर सत्कार करूँगा—"

और सचमुच उस दिन दोपहर को उस दैनिक के कार्यालय में एक समारोह हुआ जिसमें सारे कर्मचारी-गण उपस्थित थे । रणधीर को फूल मालाएँ पहनाई गईं, प्रधान संपादक महोदय ने एक प्रशस्ति-पत्र तथा चाँदी का तमगा प्रदान किया और अपने भाषण में उसका-सा आदर्श पालन करने के लिए दूसरे संवाददाताओं को हिदायतें दीं । उन्होंने कहा :

"सतर्कता और ज़िन्दादिली ये गुण एक सफल संवाददाता बनने के लिए आवश्यक हैं । आपको घटनाओं की आत्मा पकड़नी चाहिए और उन्हें इस क़दर सजीव शब्दों में बद्ध करके प्रस्तुत करना चाहिए कि पाठकों को मालूम पड़े जैसे सारी घटना हूबहू उन्हीं की आँखों के सामने घट रही है । इतनी अपूर्व सफलता बिना लगन और तन्मयता के नहीं आ सकती । इस दृष्टि से आज हमारे विशेष संवाददाता रणधीर ने तो कमाल कर दिया । कल तक इसे मैं निकम्मा समझता था और कल ही मैंने उसकी भर्त्सना भी की थी क्योंकि मैं जानता था कि इस युवक में चिनगारी है, प्रतिभा है, जो आलस और महत्वाकाँक्षा के अभाव के कारण सोई हुई है । उसी को जगाने के लिए मैंने उसे कुरेदा, उसे ललकारा ! और देखिए, नतीजा आज ही आपके सामने हाज़िर हो गया—"

इसके बाद रणधीर की सफलता के उपलक्ष्य में जो चाय पार्टी हुई उसमें एक उप-संपादक ने कहा भी—कि मानना होगा, हमारे प्रधान सम्पादक जी आदमियों की परख करना और उनसे काम लेना जानते हैं । इसी को तो कहते हैं मिट्टी से आदमी बनाना । केवल एक ही घटना ने रणधीर को निकम्मे से एकदम बड़ा कर्मण्य व्यक्ति बना दिया । चारों तरफ उसकी शोहरत फैल गई । भाग्य

जब पलटा खाता है तब ऐसा ही होता है ।

प्रतिस्पर्धी दैनिक पत्र के कार्यालय में उस दिन जरा मायूसी छाई थी । उसकी एक प्रतिक्रिया यह हुई कि जिस संवाददाता के जिम्मे नगर की दुर्घटनाओं की रिपोर्ट लाना था उसे सुस्ती और अयोग्यता के इलज़ाम में नौकरी से हाथ धोना पड़ा । रणधीर के प्रधान संपादक महोदय को जब यह बात मालूम हुई तो उन्हें और भी अधिक आत्म-सन्तोष हुआ । आज उनके दैनिक की ख्याति का सारे शहर में बोलबाला था ।

पर लोगों को दूसरे दिन सुबह स्थानीय समाचार-पत्रों में यह पढ़ कर आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि नगर के सर्वश्रेष्ठ दैनिक का विशेष संवाददाता रणधीर काण्टिनेण्टल बीमा कम्पनी के दफ़्तर को आग लगाने के इलज़ाम में गिरफ्तार कर लिया गया ।

उस पर दूसरा इलज़ाम यह भी था कि बीमा कम्पनी के रिकार्ड रूम से उसने कम्पनी की विशालकाय बिल्डिंग के चित्र का ब्लॉक भी चुराया था ।

नागपुर टाइम्स,
नागपुर

—अनन्तगोपाल शेवड़े

एकमात्र रोटी से नहीं

मनुष्य एकमात्र रोटी से ही जीवित नहीं रहता
वह जीवित रहता है :
सुन्दरता से और संगीत से
सत्यता से और भद्रता से
परिश्रम से और आराम से
प्रेम से और मित्रता से
आशा से और विश्वास से

मनुष्य एकमात्र रोटी से ही जीवित नहीं रहता
वह जीवित रहता है :
रात्रि में नक्षत्रों की जगमगाहट से
प्रभात में आकाश की लालिमा से
सन्ध्या के समय रंगों के सम्मिश्रण से
फूलों से लदे हुए वृक्षों की सुषमा से
पर्वतों की महानता से

फाइल

पात्र

श्रीनिवास
श्रीश
सरला
माया
बीनू
शैला
सुरेश
माँ

[**स्थान :** एक मध्यमवर्गीय परिवार का घर जिसकी हालत को वस्तुतः मँहगाई और दैनिक जीवन के स्तर की भावना ने और भी निम्नतर बना दिया है तथा आर्थिक अवस्था में उससे निम्न श्रेणी के परिवार की हालत कहीं अधिक बेहतर है। सामने ही एक छोटा-सा कमरा है जिसमें कि दीवार से लग कर एक खाट पड़ी है। दाहिनी तरफ़ दीवार से सट कर एक टूटी सी मेज़ पड़ी हुई है जिस पर कई सालों से पालिश नहीं हुआ है। बाँई ओर दूसरे कमरे में जाने का रास्ता है जिस पर एक मैला-सा छींट का पर्दा लगा हुआ है, जैसा कि साधारणतः एक शिक्षित मध्यमवर्गीय परिवार में रहता है। कमरे में गृहस्थी का सामान भी इधर उधर पड़ा हुआ है। यही कमरा बैठक शयनागार आदि सभी का काम निकाल देता है। श्रीश २० या २२ वर्षीय युवक है जिसे कि कुछ ही दिन हुए नौकरी की वजह से पढ़ना छोड़ना पड़ा था किन्तु फिर भी छँटनी में उसका नाम आ जाता है इसलिए भविष्य की चिन्ता में व्यग्र है। उधर आफिस में एक फाइल खो जाने से उसके बहनोई श्रीनिवास को सस्पेंड कर दिया गया है जिसका उम्र के लिहाज़ से भविष्य बिलकुल अंधकारमय बन गया है। आजकल श्रीश के ही यहाँ सपरिवार हैं। इधर श्रीश की दूसरी बहन भी आज बच्चों के साथ आ गई है। आगे के कमरे में बच्चे खेल रहे हैं। समय दिन के दो तीन बजे हैं। बाहर हवा चल रही है। रह रह कर हवा के झोंके धूल लिए कमरे में आ जाते हैं। पर्दा खुलता है। बीनू बाँस की सीकें छील रहा है। बीनू की उम्र लगभग १२-१३ वर्ष की है। सुरेश की ५ तथा शैला की उम्र ६ वर्ष के लगभग हैं। खेल खेल में बच्चे झगड़ पड़ते हैं।]

बीनू : (सीकें छीलता हुआ) देख, मानता नहीं है।

सुरेश : (उसी प्रकार शैला की चोटी खींचते हुए) ऐ……घोड़े घोड़े इधर चल।

शैला : (कुछ रोनी-सी आवाज़ में) भैया…देखो, सुरेश नहीं मान रहा है।

बीनू : क्यों रे, उठूँ क्या ?

सुरेश : (अनसुनी करके) नहीं छोड़ते जाओ, हमारा घोड़ा इधर चलेगा,…ऐ…ऐ घोड़े (शैला रो देती है।)

बीनू : ऐ……

सुरेश : (मुँह बनाता है) ऐ…ऐ…ऐ…

बीनू : (गुस्से में आकर) नहीं मानेगा ? (एक चपत लगाता है, तथा शैला की चोटी छुड़ाता है। सुरेश रोता हुआ अपनी माँ के पास कमरे में जाता है।)

बीनू : (शैला से) बैठजा चुपचाप, नहीं तो एक तुझे भी दूँगा। (बीनू फिर से बैठ कर अपना काम करने लग जाता है। शैला भी चुपचाप उसकी तरफ़ देखने लग जाती है। माया का प्रवेश। माया की उम्र लगभग ३५ वर्ष की है, उसने सफ़ेद साड़ी तथा छींट का ब्लाऊज़ पहिन रखा हैं। सुरेश भी अपनी माँ के साथ आँख मलता हुआ आता है।)

माया : क्यों भाई, क्या हो गया था ?

बीनू : हो क्या गया। इतने देर से कह रहा हूँ पट्ठा सुनता ही नहीं।

सुरेश : (सिसकियाँ भरता हुआ) माँ. मैंने कुछ भी नहीं किया। मामा ने व्यर्थ में मुझे चांटा मार दिया।

बीनू : तुमने ही इसे सिर पर चढ़ा रखा है।

माया : अब भई क्या करूँ।

बीनू : बस क्या करूँ, क्या करूँ करके ही लड़के को बिगाड़ कर रख दिया।

माया : मैं तो परेशान हो गई इसके मारे।

बीनू : अभी क्या हुआ है…?

माया : मुझे न इधर चैन न उधर चैन, आए दो दिन हुए नहीं कि कंजरवाड़ा मचा दिया।

बीनू : अभी तो और चढ़ाओ सिर पर (सुरेश से)

अब करना तू ?

माया : (गुस्से में आकर) परेशान कर दिया मुझे (सुरेश को दो तीन चाँटें जमा देती है) हज़ार बार कहा कि इधर मत आया कर। (सुरेश चिल्लाता है। शोरगुल सुन कर बीनू की माँ तथा शैला की माँ आती हैं। बीनू की माँ सफेद मैली-सी धोती पहने हुए है। उम्र लगभग ५० या ५५ वर्ष की है। चिन्ताओं ने उसे पूर्ण रूप से वृद्धा का स्वरूप दे दिया है। बदन बिलकुल छरहरा तथा शरीर पर तमाम झुर्रियाँ पड़ गई हैं। शैला की माँ एक प्रौढ़ स्त्री है। बदन कुछ मोटा-सा पर ढीला ढाला। आसमानी छींट की धोती पहने हुए है, चेहरे पर भविष्य की चिन्ता ने एक स्पष्ट सी रेखा खींच दी है।)

दोनों : क्यों, क्या हुआ ?

माया : (रोष में) इसीलिए मैं नहीं आती हूँ।

माँ : आखिर हुआ क्या ?

बीनू : माँ, सुरेश शैला की चोटी पकड़ कर कभी से घोड़ा घोड़ा करके खींच रहा था। मैंने मना किया पर वह तो और ज़ोर से खींचने लगा। शैला रो दी और मैं कहने गया तो मेरे चिगत्थे चाने लगा। मैंने धीरे से मार दिया तो बहिन ने गुस्सा हो कर सुरेश को पीटा।

माया : (सुरेश से गुस्से में) देख, आज शाम को ही तुझे रवाना करती हूँ।

सरला : (शैला को खींच कर एक चांटा लगाती है) कितना ही कहो इसे नहीं मानती है। सब कलह की जड़ तो यही है न। यह ही नालायक रोज़ाना झगड़ा करती है। (और मारती है! इतने में माँ झट से आगे बढ़ कर उसे बचा लेती है।)

माँ : (शैला को पुकारते हुए) इसने क्या बिगाड़ा था जो इसे मार दिया।

सरला : यह इधर आती नहीं तो न इतनी बात होती और न झगड़ा ही होता।

श्रीश : (बाहर से) अच्छा दोस्त, पाँच मिनट ठहरो मैं अभी आता हूँ।

मित्र : हाँ, जल्दी आना, देखो देर मत करना।

श्रीश : बस गया और आया।

(श्रीश का प्रवेश। श्रीश पैन्ट तथा खुली कमीज़ पहिने हुए है। साधारण-सा कद है। रंग गेहुँआ तथा मूछें तलवार कट बनी हुई हैं जिस पर सारा व्यक्तित्व आश्रित है।)

श्रीश : अररर, यह क्या कोहराम मचा रखा है।

मां : यों ही बच्चे आपस में झगड़ पड़े हैं।

श्रीश : (खाट पर बैठते हुए) इतनी-सी बात और इतना बवाल ?

मां : बवाल क्या, दोनों ने अपने अपने लड़कों को पीटा है।

श्रीश : (आवाज़ देता है) बीनू।

(बीनू आता है)—जा एक गिलास पानी ला—और हाँ, देख, वह अलमारी में रखा हुआ कागज़ भी लेते आना।

मां : क्यों श्रीश क्या हुआ तुम्हारा ?

(बीनू पानी लाता है)

श्रीश : (पानी का गिलास लेते हुए) एक जगह गया था, कोई जवाब नहीं दिया। अब जीजा जी के ऑफीसर के घर पर जा रहा हूँ। उन्होंने आज बुलाया था।

(बीनू जाता है)

मां : तुम्हारे जीजा जी का क्या हुआ ?

श्रीश : अभी तो कुछ भी नहीं हुआ है। यदि फाइल मिल जाएगी तो ठीक है, नहीं तो घर पर आराम करें।

(एक हवा का झोंका आता है जिससे मेज पर पड़ा हुआ अख़बार गिर जाता है व पर्दा हिलता है। तथा कमरे में धूल भर जाती है।)

माया : फाइल का झगड़ा अभी तक नहीं मिटा।

सरला : झगड़ा ही मिट जाता तो फिर बात ही क्या थी। नहीं मिटा है तभी तो पड़े हुए सबकी बातें सुन रहे हैं।

(बीनू कागज़ लाता है)

श्रीश : (कागज़ लेते हुए) क्या बात हो गई ?

मां : ऐसे ही आज काका आए थे और ऊटपटांग बातें बक गए।

सरला : (श्रीश से) आज तुम्हारे जीजा जी आएँ तो सही। मैं साफ साफ़ उनसे कह दूँगी कि जल्दी से हमारा इन्तज़ाम करें और यदि इन्तज़ाम न हो तो इस घर में न तो पैर रखें और न एक ग्रास भी खाएँ।

श्रीश : अरे वाह जी, घर तो हमारा है। पहले फैसला तो हो जाने दो (ज़रा कुछ गरम होकर माँ से) क्यों माँ, ये काका कौन होते हैं हमारे घर के बीच में

बोलने वाले। पहिले भी मैं कुछ नहीं बोला और सब चुपचाप सुन लिया।

सरला : (आह भर कर) हमारे दिन ही खराब हैं, क्या करें।

श्रीश : (सरला से) तुम्हें मेरी क़सम है, जीजी, तुम उन्हें कुछ भी मत कहना। तुम तो समझती हो—उन्हें तुम्हारी कुछ भी परवाह नहीं है पर मैं जानता हूँ उन पर क्या गुज़र रही है।

सरला : फ़िक़र ही होती तो यह बात न होती। यदि यहाँ पर कोई आशा नहीं तो दूसरी जगह तलाश क्यों नहीं करते।

श्रीश : तुम तो कुछ नहीं जानती। इधर तो उन्हें इतनी फ़िक़र लगी हुई है और यहाँ आने पर तुम उन्हें उल्टी सीधी बातें सुनाओगी। अच्छा तुम ही सोचो कि इतना होने पर उन पर क्या असर होगा।

मां : तुम उधर जा ही रहे हो। ज़रा कुछ बात करना।

श्रीश : यदि समय देखूँगा तो बात निकालूँगा। वैसे तो वे बहुत ही चमार आदमी हैं।

(जाता है)

मां : अरे, हाँ, जी, आदमी का दिमाग़ ठीक हो तो सब बातें अच्छी लगती हैं। नहीं तो सारा घर खाने को दौड़ता है।

माया : इन काका का भी दिमाग़ खराब हो गया।

मां : हाँ, और नहीं तो क्या। इनको सब बातों से क्या पंचायत।

(श्रीनिवास का प्रवेश। श्रीनिवास की उम्र लगभग ४० वर्ष की है। ऊँचाई लगभग ५॥ फ़ीट तथा बदन बिलकुल दुबला पतला। गालों में गड्ढे पड़े हुए हैं तथा चेहरे पर झुर्रियों ने ख़ासी ड्रॉइंग बना रखी है। दाढ़ी बढ़ी हुई है तथा बाल भी रूखे-से हैं। सिर पर एक मैली-सी टोपी है। पाजामा तथा कोट पहिने हुए हैं। चिन्ताओं से चेहरे की मुस्कान जैसे कोसों दूर चली गई हो।)

(सरला और माया दोनों चली जाती हैं। श्रीनिवास आकर उदास से खाट पर बैठ जाते हैं।)

मां : क्या हुआ, लगा पता?

श्रीनिवास : अभी तो कुछ भी नहीं हुआ है। दिन भर हो गया काग़ज़ टटोलते टटोलते। कहीं पर भी पता नहीं लगा। इधर फ़ाइल भी ज़रूरी थी। समझ में नहीं आता क्या होगा।

(माँ चली जाती है। श्रीनिवास पास में पड़ा हुआ अख़बार उठा कर पढ़ने लग जाते हैं। इतने में सरला का प्रवेश।)

श्रीनिवास : मुँह चढ़ा हुआ क्यों है, क्या हो गया।

सरला : हो गया, बस आप दिन भर फिरते फिरो और मैं यहाँ पर बातें सुनती रहूँ।

श्रीनिवास : मैं फ़ालतू फिरता रहता हूँ क्या?

सरला : (गला भरकर) अब मुझसे नहीं रहा जाता, आख़िर कोई बात की भी तो हद होती है। रहना हो तो तुम रहो यहाँ पर और इनके टुकड़े तोड़ो! मैं अब नहीं रहूँगी मुझे घर पहुँचा दो।

श्रीनिवास : मैंने तुम से लाख बार कहा कि चुपचाप सुन लिया करो। अभी अपने दिन खराब हैं। पर तुम मानो जब ना?

सरला : बस मैंने कह दिया...

श्रीनिवास : आज मैं साहब से मिला था, जल्दी ही फ़ैसला हो जाएगा।

सरला : मुझसे अब फ़ालतू की तानाकशी नहीं सुनी जाती।

(श्रीनिवास चुपचाप गम्भीर दृष्टि से सरला की ओर देखते हैं फिर आकाश की ओर देखने लगते हैं। हवा का झोंका फिर आता है तथा पर्दा हिलता है। अन्दर से आवाज़ आती है)

बीनू : ले, अपने जीजा जी को चाय दे आ। (बीनू जाता है।)

सरला : आपने और क्या किया?

श्रीनिवास : करता क्या, जब तक फ़ैसला नहीं हो जाता और कोई दूसरा काम तो कर नहीं सकता। फिर बेकार तलाश करते फिरने से फ़ायदा?

(अख़बार देखते हैं) इतने में बीनू चाय लाता है।

श्रीनिवास : (चाय लेते हुए) श्रीश कहाँ गया?

बीनू : आपके ही आफ़िस गए हैं।

श्रीश : (आवाज़ लगाता हुआ आता है) माँ, माँ, जीजा जी आए या नहीं?

सरला : क्यों क्या बात है?

श्रीश : (आ कर) जीजा जी एक ख़ुशख़बरी?

माँ : (आ कर) क्या हुआ ?

श्रीश : आपकी फाइल मिल गई।

श्रीनिवास : (हर्ष तथा विस्मय जिसमें कि विस्मय की मात्रा ही कुछ अधिक है।) सचमुच ?

श्रीश : हाँ ?

श्रीनिवास : कैसे ?

श्रीश : मैं अभी गया था जब आपके साहब के साहबजादे काग़ज़ फाड़ फाड़ कर नाव गटर में बहा रहे थे। मैंने देखा तो वही फाइल निकली।

श्रीनिवास : तुमने साहब से कह दिया।

श्रीश : कह भी दिया और बची हुई ले भी आ हूँ। (देता है। सरला, माँ, आदि विस्मय से दे रह जाते हैं।)

श्रीनिवास : (एक विस्मृत सी मुस्कान के साथ हाँ वह आफिस में आया भी था।

(श्रीनिवास सरला की ओर देखते हैं। वह मुस्क देती है। एक बार पुनः हवा का हल्का सा झोंका आ है और पर्दा हिल उठता है। पटाक्षेप।)

—कैलाश श

सखिपुरा,
उज्जैन, (म० भा०)

जनसत्ता की पहिचान

प्रतिदिन के जीवन में समानता का व्यवहार

......जब मैं देखता हूँ कि वाशिंगटन का एक टैक्सी ड्राइवर एक सीनेटर के साथ वैसे ही बात करता है जैसे कि मानों वह उसके बराबरी के दर्जे का हो; जब मैं देखता हूँ कि श्रीमती रूज़वेल्ट केनाडा के एक मंत्री को अपने हाथ से भोजन बना कर खिलाती हैं; जब कि मैं देखता हूँ कि अमेरिका में प्रत्येक यात्री अपने व्यक्तिगत मामलों के विषय में आप से स्पष्ट रूप से बातचीत करता है; तब मैं कहता हूँ कि यह ही भद्र व्यवहार है — क्योंकि इससे हमें ज्ञात होता है कि अमेरिका में एक मनुष्य उतना ही अच्छा है जितना कि दूसरा। यह इस बात का प्रमाण है कि अमेरिका में जनसत्ता एकमात्र विधान की ही वस्तु नहीं है वह अमरीकी जनता के प्रतिदिन के जीवन की वस्तु है।

रीडर्स डाइजस्ट से

—ब्रूस हटचीसन
(केनाडा का एक लेखक)

कला—चर्चा

गत छः महीनों में हैदराबाद राज्य में कला सम्बन्धी प्रगति अपेक्षाकृत विशेष रूप से दिखाई दी। गवर्नमेंएट स्कूल ऑफ आर्ट के विद्यार्थी श्री आञ्जेय के रंग-चित्रणों की हैदराबाद आर्ट सोसायटी के तत्वावधान में प्रदर्शिनी आयोजित की गई। श्री आञ्जेय ने अपने ७५ रंग-चित्रणों का प्रदर्शन किया और उनके प्रायः ७०० रु० के चित्र हैदराबाद के कला-प्रेमियों श्री एल. एन. गुप्त, आई. ए. एस और राजा बद्रीविशाल पित्ती तथा अन्य लोगों द्वारा खरीदे गए। प्रदर्शिनी प्रायः सप्ताह भर खुली रही और बहुत से लोग पब्लिक गार्डन में "अजन्ता पॅविलियन" में उनके चित्र देखने के लिए जमा हुए।

हैदराबाद आर्ट सोसायटी ने 'कला और पुरातत्त्व' विषय पर कुछ अभिभाषण भी आयोजित किए। भाषण देनेवालों में प्रमुख नाम हैं: श्री ए. घोष तथा श्री टी. एन. रामचन्द्र केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग के डाइरेक्टर जनरल तथा सहायक डायरेक्टर जनरल, श्री जे. वेंकटचलम और श्री एन. एस. केलकर। इन भाषणों के साथ लैन्टर्न स्लाइड भी दिखाई गईं और बहुत से कला-विद्यार्थियों और जनता ने अपने उपस्थिति से उत्साह प्रदर्शित किया।

हैदराबाद राज्य के शिक्षा-विभाग द्वारा प्रार्थना करने पर संयुक्त-राष्ट्र-संघ दिवस पर गवर्नमेंएट स्कूल ऑफ आर्ट ने बच्चों के रंग-चित्रणों की एक प्रदर्शिनी आयोजित की। सम्पूर्ण राज्य भर से पब्लिक गार्डन के जुबिली हाल में बच्चों के प्रायः १७५ रंग-चित्रण प्रदर्शित किए गए।

३ जनवरी १९५४ को भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा पब्लिक गार्डन के 'लौह महल' में अन्तर्राष्ट्रीय बाल कला प्रदार्शिनी का उद्घाटन किया गया। यह प्रदर्शिनी गवर्नमेंएट स्कूल ऑफ आर्ट द्वारा आयोजित की गई थी। इसमें ब्रिटेन, चीन, जापान, हांगकांग, मिस्र, टर्की, स्वीडन, नार्वे, लंका और भारत के प्रायः ४०० रंग-चित्रण संगृहीत किए गए। औद्योगिक शिक्षा विभाग (Department of Technical Education) के द्वारा गवर्नमेंएट स्कूल ऑफ आर्ट ने हैदराबाद प्रशासन के सम्मुख इस प्रदर्शिनी को स्थायी रूप देने की योजना रखी जिसे स्वीकार कर लिया गया है। प्रदर्शिनी के उद्घाटन होने के बाद हाल ही में फ्रांस के बच्चों के रंग-चित्रण प्राप्त हुए हैं जिन्हें यथा समय प्रदर्शित किया जाएगा।

अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शिनी मैदान में ५ जनवरी १९५४ को द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सामयिक कला-प्रदर्शिनी के साथ एक अन्तर्राष्ट्रीय बाल-कला प्रदर्शिनी का भी उद्घाटन किया गया।

हैदराबाद आर्ट सोसायटी ने द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सामयिक कला प्रदर्शिनी आयोजित की जो कि एशिया में अब तक आयोजित की गई कला प्रदर्शिनियों में सबसे विशाल थी और इसमें २२ देशों के रंग-चित्रणों का प्रदर्शन किया गया। हैदराबाद राज्य के मुख्य मंत्री डा० रामकृष्ण राव ने ५ जनवरी १९५४ को इस प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया। सबसे पहले इस प्रदर्शिनी का ५ मई १९५३ को भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने उद्घाटन किया था। तत्पश्चात् यह प्रदर्शिनी कलकत्ता, पटना और कानपुर में खोली गई। हैदराबाद में प्रदर्शित किए जाने के पश्चात् बम्बई में इसका प्रदर्शन किया जाएगा। प्रथमतः यह प्रदर्शिनी ऑल इंडिया फाइन आर्टस् अएड क्राफ्टस् सोसायटी, नई दिल्ली की ओर से नई दिल्ली में दिखाई गई तथा हैदराबाद में यह प्रदर्शिनी अत्यन्त सफल रही।

इस वर्ष हैदराबाद आर्ट सोसायटी ने देश के विभिन्न भागों के कला विद्यालयों में कला का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने के लिए अखिल भारतीय आधार पर कला विद्यार्थियों के रंग-चित्रणों की एक प्रदर्शिनी करके अपने कार्य को नई गति प्रदान की। भविष्य में इस प्रदर्शिनी का संगठन करके इसे प्रतिवर्ष दिखाया जाएगा। सूचना तथा जनसम्पर्क विभाग, हैदराबाद ने सर्वोत्तम कला का प्रदर्शन करनेवाली संस्था को एक चक्र ट्राफी (Rolling Trophy) प्रदान की। इस वर्ष यह ट्राफी गवर्नमेंएट स्कूल ऑफ आर्ट, हैदराबाद को प्रदान की गई। प्रदर्शित रंग-चित्रणों के निर्णायक श्री जी. वैंकटचलम् (मद्रास) श्री एन. एस. केलकर (बम्बई) और श्री अनिल

राय चौधरी (नई दिल्ली) थे। इस प्रदर्शिनी में सम्पूर्ण देश के १२ कला-स्कूलों के प्रतिनिधि विभिन्न शैलियों और कला-साधनों द्वारा निर्मित प्रायः ३१७ रंगचित्रणों को प्रदर्शित किया गया। प्रदर्शिनी का उद्घाटन प्रदर्शिनी मैदान में कला प्रदर्शिनी पॅविलियन पर २३ जनवरी १९५४ को हैदराबाद राज्य के तत्कालीन लोक कर्म और स्वास्थ्य मन्त्री नवाब मेहदी नवाज़ जंग बहादुर द्वारा किया गया।

गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट ने अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शिनी में एक प्रदर्शन स्टाल खोला जिसमें रेखाचित्रण, खुदाई, नमूने और आकृति बनाने का प्रदर्शन किया गया। यह अत्यन्त ही लोकप्रिय स्टाल था और इसे देखने के लिए जनता बहुत अधिक संख्या में एकत्रित होती थी। हैदराबाद प्रशासन और केन्द्रीय प्रशासन के मंत्रियों ने भी इसमें अपनी रुचि दिखाई और डा० चन्ना रेड्डी, श्री विनायकराव कोरटकर विद्यालङ्कार, डा० बी. रामकृष्णराव, डा० जी. एस. मेलकोटे, श्री के. सी. रेड्डी, मन्त्री केन्द्रीय प्रशासन और अन्य लोगों ने गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट के विद्यार्थियों द्वारा अंकित किए गए चित्रों की अत्यन्त प्रशंसा की। इस स्टाल को कार्य-कुशलता के लिए विशेष पुरस्कार प्रदान किया गया।

स्टाल के विभिन्न विभागों में प्रौद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा विभाग द्वारा प्रदर्शित की गई वस्तुएँ भी आकर्षक थीं। गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट द्वारा प्रदर्शित रंगचित्रण और मूर्तिकला के नमूने व्यवसायिक बालिका विद्यालय सिकन्दराबाद द्वारा प्रदर्शित सुन्दर खिलौने, औद्योगिक शिक्षा केन्द्र काचीगुडा द्वारा निर्मित उपयोगी औज़ार और मशीनें तथा गवर्नमेण्ट टेकनिकल कालेज द्वारा प्रदर्शित मशीनें सभी वस्तुएँ अत्यन्त आकर्षक थीं। अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शिनी समिति द्वारा इन सभी प्रदर्शनों पर विशेष पुरस्कार दिए गए।

हाल ही में गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट के शिल्प विभाग के विद्यार्थियों द्वारा बनाए हुए शिल्प कला के नमूने और मूर्तियों की एक प्रदर्शिनी आयोजित की गई जिसका उद्घाटन हैदराबाद राज्य के मुख्य मन्त्री डा० श्री रामकृष्ण राव ने किया। इसके साथ ही स्वर्गीय श्री एम. देवस्कर भूतपूर्व प्रिन्सिपल, गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट के कुछ मौलिक रंग-चित्रणों का उद्घाटन किया गया। इस प्रदर्शिनी को देखने के लिए बहुत से लोग एकत्रित हुए और जनता की माँग पर इसे एक सप्ताह के लिए और बढ़ाया गया। हैदराबाद राज्य के गृह मन्त्री श्री डी. जी. बिन्दु ने इस प्रदर्शिनी को देखा और इसकी प्रशंसा की।

गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट के कलाकारों और कला विद्यार्थियों की एक अध्ययन यात्रा औरंगाबाद और एलुरा के लिए आयोजित की गई है जहाँ पर वे उस क्षेत्र में प्राप्त कला वस्तुओं और पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण सामग्री के चित्र अंकित करेंगे। गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट के कुछ विद्यार्थी भारतीय सरकार द्वारा आयोजित कम मूल्य के मकानों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी का अवलोकन करने के लिए भी गए हैं।

हैदराबाद

—विश्वनाथ मुकर्जी

अकर्मण्यता-जनित सुख की कल्पित आशा से अपने को बहलाना व्यर्थ है। जीवन का वास्तविक सुख परिश्रम में सन्निहित है। मेरे लिए प्रयासहीन जीवन की कल्पना भी असह्य-सी है।

—प्रेज़िडेण्ट हार्डिङ्ग

चिट्ठी-पत्री

['चिट्ठी-पत्री' के स्तम्भ को हम अधिक लोकप्रिय बनाना चाहते हैं। साहित्य की गतिविधि और अन्य समस्याओं पर हम 'अजन्ता' के पाठकों के विचारों को जानना चाहते हैं। इस स्तम्भ में वे अपने विचार प्रकाशित करने के लिए भेज सकते हैं। इस स्तम्भ द्वारा लेखकों और पाठकों के बीच में निकट सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस स्तम्भ में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ पत्रों पर विशेष पारिश्रमिक की योजना की गई है। पत्र संक्षिप्त और निर्वैयक्तिक होने चाहिएँ। पत्र अधिक से अधिक 'अजन्ता' के दो कॉलम होने चाहिएँ—सं०]

अजन्ता के सम्बन्ध में

(१)

मैं नियम से 'अजन्ता' पढ़ता हूँ। दक्षिण भारत में हिन्दी के ऐसे विद्वत्तापूर्ण पत्र प्रकाशन के लिए धन्यवाद और बधाई।

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
डूंगर कालेज, बीकानेर

—विद्याधर शास्त्री

(२)

...''अजन्ता'' हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा की ओर से प्रकाशित एक सुन्दर, सुपाठ्य और संग्रहणीय मासिक पत्र है जो स्थायी मूल्य की गवेषणा पूर्ण सामग्री के प्रस्तुतीकरण की दिशा में आज के हिन्दी सामयिक पत्र-जगत् में निस्सन्देह अग्रणी है।

...अंक में काव्य, भाषा-विज्ञान, जीवनी, भूगोल, आलोचना आदि गम्भीर विषयों पर लेख सामग्री के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध कवियों की ललित रचनाएँ, कहानी तथा एकांकी हैं। इसके बाद ''अजन्ता'' की अपनी निराली अत्यन्त उपादेय स्तम्भ-श्रृंखला है जिसके समायोजन में सम्पादकीय सुरुचि भली भांति परिलक्षित होती है। पृष्ठपाद मानवीय विचारों तथा सुभाषितों से समलंकृत हैं तथा उनका चुनाव सम्पादकीय पाटल की ओर इंगित करता है। सम्पादन के सदृश मुद्रण की सजधज भी आकर्षक है। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि एक अहिन्दी भाषी राज्य से निकलने वाली यह हिन्दी पत्रिका हिन्दी भाषी क्षेत्रों से प्रकाशित होने वाली बहुत-सी पत्रिकाओं से बहुत अधिक आगे है।

जय हिन्द,
जबलपुर

—कीर्तिकान्त

(३)

''अजन्ता'' का फरवरी अंक प्राप्त हुआ। इस अंक में डा० नांदापुरकर का 'नरेन्द्र और रुक्मिणी स्वयंवर' का परिचय देने वाला लेख है। वह मैंने उत्सुकता से पढ़ा। कुछ प्रसंगों में मतभेद हो सकते हैं परन्तु डा० साहब ने लेख सुन्दर लिखा है, इसमें सन्देह नहीं। तदर्थ धन्यवाद।

नागपुर विश्वविद्यालय,
नागपुर

—वि. भ. कोलते

(४)

...'अजन्ता' जनवरी अंक देखने को मिला। आपके चिट्ठी-पत्री स्तम्भ में एक पत्र श्री श्याम परमार का भी था। उन्होंने लिखा है कि उनका लेख कुछ बदल कर दूसरे पत्र में किसी महाशय ने लिखा है। यह प्रवृत्ति इधर काफी देखने में आती है। क्या आप इस ओर कोई

ठोस कदम उठा कर साहित्यिक चोर बाज़ारी को रोक कर हिन्दी का उपकार करेंगे।

ए. के. कालेज, हरियावन,
हरदोई (उ० प्र०) **—हरिभजनलाल त्रिवेदी**

[इस प्रकार के उदाहरण प्रकाश में लाकर 'हिन्दी जगत्' के सम्मुख प्रस्तुत करना क्या स्वयं अपने में ठोस कार्य नहीं है? चोरी के विरुद्ध एक नैतिक वातावरण उत्पन्न करना ही उसका सब से प्रबल विरोध है।—सं०]

(५)

...फरवरी ५४ की 'अजन्ता' मिली। धन्यवाद। आपका प्रादेशिक भाषाओं, विशेषतया दक्षिणी भाषाओं की साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि और परम्परा से हिन्दीवालों का परिचय, संगम कराने का कार्य प्रशंसनीय है। इस क्षेत्र में अभी बहुत करना है। भारतीय जन संस्कृति का लोक निर्माण दोनों के समागम एवं समन्वय हुए बिना संभव नहीं। आपके पत्र में एक बहुत बड़ी कमी खटकती है—स्वस्थ, चेतन, जीवित, आन्दोलन पूर्ण कविताएँ, कहानियाँ, स्केच, रिव्यूज़ जिनमें नये युग और मानव का स्पन्दन हो। दूसरी कमी विश्व-साहित्य के विषय में भी कोई स्तम्भ नहीं है। तीसरी बात आपके पत्र में लिखने वालों का दायरा बहुत सीमित है। लगता है आप भी दूसरे पत्रों की तरह उसी दकियानूसी फार्मूले को लेकर चलते हैं जिसमें प्रसिद्धिप्राप्त लेखकों या परिचित जनों का ही एकाधिपत्य रहता है। इस प्रकार रचनात्मक कार्य संभव नहीं, न नए लेखकों को उभारा ही जा सकता है।

आप इन सुझावों को सहिष्णुता से देखें और सोचें। मेरा आशय किसी पर प्रहार करने का नहीं—एक सम्बन्ध स्थापित करने का है जिसमें हम सभी एक दूसरे से सीख सकते हैं।

पुरुषोत्तम नगर,
इलाहाबाद **—जगदीशचन्द्र**

['अजन्ता' में प्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में आपके सुझाओं का स्वागत है। प्रत्येक पाठक की अपनी धारणा होती है और होनी भी चाहिए। विपरीत धारणा-वाले पाठकों की चिठ्ठियाँ भी इन्हीं स्तम्भों में समय समय पर प्रकाशित होती रही हैं। 'दकियानूसी फार्मूले, के हम क़ायल नहीं हैं। "अजन्ता" ने दक्षिण के जितने हिन्दी लेखकों के नए नाम हिन्दी जगत् को दि हैं उसे वह अपने गर्व का विषय मानती है। हम विश्वास दिलाना चाहते हैं "अजन्ता" में नाम देख कर नहीं रचना की श्रेष्ठता पहचान कर उसे प्रकाशित किया जाता है। 'नए युग और मानव का स्पन्दन' यह माँग लेखकों से है जिसमें 'अजन्ता' भी आपके साथ है। 'अजन्ता' नए लेखकों और साहित्य में नई प्रवृत्तियों का सदा स्वागत करता रहा है—सं०]

(६)

"अजन्ता" का फरवरी अंक मिला। धन्यवाद! पृष्ठ ७६ पर प्रथम कालम में नीचे से पहली पंक्ति में कर्त्तारसिंह दुग्गल के उपन्यास का नाम 'छील और छत्तान' छपा है जब कि वह 'चील और चट्टान' है। लगता है अंग्रेज़ी अनुवाद के कारण ऐसा हो गया है।

३ दीवान हाल,
दिल्ली **—ललित सहगल**

[आपका विचार ठीक है अनुवाद की भूल से ऐसा हुआ। पाठक सुधार कर पढ़ें। ध्यान आकृष्ट करने के लिए धन्यवाद, भूल के लिए क्षमा—सं०]

(७)

रामायण-परम्परा

फरवरी, १९५४ की 'अजन्ता' में महारानी कालेज के हिन्दी के लेक्चरर श्रीयुत मा. देवेगौड़ "बोम्मरण्णा" का "कन्नड़ साहित्य में रामायण-परम्परा" पर लेख पढ़ कर प्रसन्नता हुई। इससे ज्ञात होता है कि रामायण की कहानी हमारे देश की जनता में चाहे वह किसी वर्ग या धर्म की हो कितनी लोक-प्रिय है। रामायण की कहानी हमारे देश की एक राष्ट्रीय कहानी है। वह कथा किसी एक वर्ग-विशेष, धर्म-विशेष या सम्प्रदाय-विशेष की कहानी नहीं है; जिस प्रकार एक भाषा में साहित्यिक शब्द और परिभाषाएँ समय और प्रचलित विचार-पद्धति के अनुसार अपनी एक रूपता और अखण्डता को स्थिर रखते हुए भी नए अर्थ ग्रहण करती रही हैं उसी प्रकार ये कथाएँ भी निरन्तर काल और अवस्था के अनुसार नए रूप धारण करती रही हैं। इससे यह तो बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि रामायण आदि की कथाएँ हमारे देश के एक वर्ग या धर्म की कथाएँ नहीं हैं—वे भारत के समस्त राष्ट्र की और समस्त लोक की कथाएँ हैं। इन्हें एक वर्ग की कहानी कहना भूल है।

इन कथाओं में अन्य वस्तुओं के साथ व्यक्ति-विशेषों के चरित्र-चित्रण में भी लगातार परिवर्तन होता रहा है। जिस समय और अवस्था में जिस प्रकार के विचार, रीतियाँ, प्रवृतियाँ और आदर्श आदि प्रचलित थे—उन्होंने मानों कहानी में स्वयं सम्मिलित होकर कहानी को अपने समय और देश-विशेष की कहानी न रख कर तत्कालीन समय और अवस्था की कहानी बना दिया है। इन चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन बड़ा मनोरंजक है। पहले तो एक भाषा में ही समय और अवस्थाओं के अनुसार ये चरित्र भी अपनी एकात्म्य को रखते हुए भी परिवर्तित होते रहे हैं—फिर भिन्न भिन्न भाषाओं में भिन्न भिन्न समयों में उन्होंने भिन्न भिन्न रूप धारण किया है। इन चरित्रों का भी विकास होता रहा है जो मनोरंजक होने के साथ साथ अपने समय और अवस्थाओं और आदर्शों पर बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं।

क्या ही अच्छा हो यदि आप इसी प्रकार तमिल, तेलुगु, मलयालम और अन्य प्रान्तीय भाषाओं में रामायण, महाभारत और अन्य लोक-प्रिय कथाओं की परम्परा के साहित्य पर 'अजन्ता' में लेख प्रकाशित करें। इससे हमें रामायण की कथा के विकास और विस्तार का कुछ पता लग सकेगा। रामायण की कथा तो भारतवर्ष के बाहर भी लोक-प्रिय रही है। लंका में और इसी प्रकार कुछ अन्य भारतवर्ष से प्रभावित देशों में इसके रूप में बहुत परिवर्तन हुआ है।

साहित्य की कथाओं और इतिहास की कथाओं में यही अन्तर है। इतिहास की कथाएँ एक ही रूप में रहती हैं; उनमें परिवर्तन नहीं हो सकता और उनमें परिवर्तन अवाञ्छनीय है परन्तु साहित्य की लोकप्रिय कथाएँ भिन्न भिन्न मुखों, रुचियों, कालों और अवस्थाओं के साथ अन्दर से अपने रूप को स्थिर रखते हुए भी भिन्न भिन्न रूप धारण करती हैं। उनमें यह भिन्न रूपता जितनी ही अधिक होगी उससे उनकी लोकप्रियता का उतना ही अधिक परिचय प्राप्त होगा। साहित्य की कथाओं का प्रत्यक्ष जीवन से सम्बन्ध रहता है और जिस प्रकार जीवन में परिवर्तन होता रहता है उसी प्रकार इन कहानियों की वस्तु, पात्रों के चरित्र, संवाद और अन्य विशेषताओं में भी परिवर्तन होता है। समय, अवस्था, रुचि और आदर्श के अनुसार इन कहानियों में कुछ जुड़ जाता है और कुछ घट जाता है। यह सत्य है कि इस कथा चरित्र और वस्तु आदि के आन्तरिक रूप और संघटन में कोई परिवर्तन नहीं होता—आदर्श चरित्र आदर्श ही रहते हैं उनकी मर्यादा में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, दूसरे चरित्र भी अपनी स्थिति को कायम रखते हैं परन्तु फिर भी वे अपने समयानुरुचि, आदर्श और अवस्थाओं के अनुकूल हो जाते हैं और इस प्रकार वह एक कहानी नाना रूपों में अपने को अभिव्यक्त करती चली जाती है। यदि ऐसा न हो तो वह कहानी लोकप्रिय साहित्यिक नहीं रह सकती, उसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष जीवन से नहीं रह सकता। इसलिए साहित्य की लोकप्रिय कहानियों को ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करना ठीक नहीं है। 'पृथ्वीराज रासो' आदि की कहानियों का अध्ययन भी इसी प्रकार किया जाना चाहिए। इतिहास की कहानी एककालिक होती है और साहित्य की कथाएँ सार्वकालिक होती हैं।

करोल बाग,
देहली

—धर्मवीर

(७)

चित्रकला प्रदर्शिनी

हाल ही में हैदराबाद में अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शिनी दिखाई गई। उसमें एक विभाग में अन्तर्राष्ट्रीय चित्रकला की प्रदर्शिनी का आयोजन किया गया था। हैदराबाद की इस चित्रकला प्रदर्शिनी में भारत की चित्रकला का प्रदर्शन नहीं किया गया है यद्यपि कला-प्रदर्शनी का जो सूचीपत्र प्रकाशित किया गया उसमें भारत के चित्र और चित्रकारों की सूची भी दी गई है। अन्तर्राष्ट्रीय चित्रों की इस प्रदर्शिनी को देखते हुए मनुष्य अपने आपको अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में अनुभव करता है, उसका हृदय अपने देश की सीमाओं से उठ कर सब देशों की सुन्दरता, महानता, संस्कृति, कलापूर्ण हृदयता और मानव की एकता का अनुभव करता है। संसार के चित्रकार अपने चित्रों की रेखाओं और रंगों की एकता में जिस प्रकार विश्व की एकता का परिदर्शन करा देते हैं वैसा अन्य कलाकार नहीं करा सकते। भाषाओं में भिन्नता और विविधता होती है और इसलिए उसकी तह तक पहुँचने में कठिनाई होती है परन्तु चित्रों में रेखाएँ और रंगों के विविध होने पर भी उनमें एक प्रकार की ऐसी सार्वत्रिक एकता होती है जिसका अनुभव सुगमता

से हो जाता है । इस चित्रकला प्रदर्शिनी में चीन, जापान इंडोनेशिया, फिलिप्पाइन्स, केनाडा, अमेरिका, जर्मनी, इटली, नौर्वे, जेचोस्लोवेकिया, अफ़गानिस्तान, ईरान और इराक आदि देशों के महान् चित्रकारों की चित्रकला का प्रदर्शन किया गया था । सबसे अधिक कीमतें जर्मनी और जेचोस्लोवेकिया के चित्रों की थीं । जर्मनी से आए हुए कई चित्रों की क़ीमत दस हज़ार से ऊपर है और जेचोस्लोवेकिया के एक चित्र का मूल्य बीस हज़ार रुपए से अधिक था ।

हैदराबाद —ललिता देवी

(८)

प्रकृति का मुकुर, संगम् जागल्लमूडि

कुछ दिन पहले हमारे कालेज की विद्यार्थिनियों और अध्यापिकाओं की एक पार्टी संगम्-जागल्लमूडि देखने और पिकनिक के लिए गई थी ।

...संगम जागल्लमूडि पर बहुत बड़ा तालाब बना हुआ है जिसमें से सारे गुण्टूर के लिए पानी देने का प्रबन्ध किया जाता है ।

तालाब के कगार पर हम चल रही थीं और नीचे सड़क पर बैलगाड़ियों का एक तांता अपनी मंद चाल में चल रहा था । बैलों की क्षुद्र घंटियों की ध्वनि हमारे कहकहे और वार्तालाप में डूब-सी जाती थीं । फिर हमने सीधे रास्ते को पकड़ा । इमली के पेड़ों की छाया में वह रास्ता बहुत सुखद था । रास्ते से लगी हुई जल की एक धारा बह रही थी और उसके दूसरी ओर झोंपड़ियों की एक बस्ती थी । हमारी इस मंडली को देख कर वहीं नंगे और ग्रामीण बच्चे ताली बजा बजा कर नाचने और कूदने लगे और अपने नन्हें नन्हें हाथों से बुला कर हमारा स्वागत करने लगे । माताएँ उन्हें अपनी गोद में ले लेतीं और चुप रहने का आदेश देतीं । उन धूल से भरे और फटे चिथड़ों में लिपटे बालकों की आँखों में एक ऐसा आकर्षण था जिसकी ओर खिंचे बिना नहीं रहा जा सकता था । परन्तु जीवन में कितने कम ऐसे क्षण आते हैं जब आर्त मानवता की आशाओं का हम सद्भावनाओं से उत्तर दे पाते हैं । हमारी मंडली इमली तोड़ती जाती थी, खाती जाती थी और कुछ होस्टल में रह गई लड़कियों के लिए इकट्ठी करती जाती थीं । नाले के जल में सूर्य किरणों का प्रकाश पड़ रहा था मानों चाँदी का तरल लेप कर दिया गया हो । वृक्षों की घनी छाया के कारण पानी का रंग भी हरा दीखता था । पूरा दृश्य ऐसा लगता था मानों प्रकृति देवी ने अपने को हरी साड़ी में लपेट लिया हो और झिलमिल साड़ी में से उसका शुभ्र शरीर झांकना चाहता हो । नाले में बाह्य प्रकृति का प्रतिबिम्ब बहुत ही मनोहर था ।

नाले को पार किया । नाले के दूसरी ओर भगवान् शिव का मंदिर था । आकाश में बगलों की पंक्ति उड़ रही थी, उनकी छाया पानी में दर्शनीय थी । कुछ बगले किनारे पर मछली के इंतज़ार में बैठे थे, एक शुष्क वृक्ष की सभी शाखाओं पर बगले थे और उनकी धवलता में उसकी शुष्कता भी छिप जाती थी । नाले के नीचे मानों उसी तरह का एक दूसरा संसार बसा हुआ था । वे ही मंदिरों के शिखर, वे ही पेड़, वही नीला आकाश और उसके नीचे बगलों की वही धवल पंक्ति । मंदिर की दूसरी ओर एक तालाब था जिसमें श्वेत, रक्तिम और नील कमल खिले हुए थे, लोभी भौंरे उनका रस ले रहे थे । इन विभिन्न रंगों के नीचे हरे पत्ते बिछे हुए थे अपनी ही निराली शोभा के साथ । उन पर पड़े हुए तरल बिन्दु दमक रहे थे शुभ्र, धवल, ज्योतिर्मय ।

हम बाग़ों में से होकर गुजरीं । वहाँ काँटे भी थे और कलियाँ भी । कुछ रास्ते ऐसे थे जहाँ काँटों को हाथों से हटा कर चलना पड़ता था परन्तु वे शरीर से लग ही जाते थे मानों अपनी स्मृति की रेखा खींच ही देना चाहते हों । कहीं कहीं सिर को ज़मीन तक झुका कर चलना पड़ता था और इस व्यायाम के फलस्वरूप पके नींबू, कच्चे अमरूद, संपंग फूल आदि मिल जाते थे । आम, अमरूद, आंवला, नींबू, सुपारी आदि कई तरह के वृक्ष वहाँ थे । पान की लता बाँस से लिपटी हुई खड़ी थी, बाहरी संसार से बिलकुल निरपेक्ष अपनी ही भावना में लीन । रास्ते में ऐसे कई छोटे छोटे सुंदर फूल मिले जिनकी ओर कार्य में व्यस्त इस दुनिया को आँख उठा कर देखने तक का समय नहीं है । सुकुमार फूलों में कितनी सुंदरता छिपी है—सुकुमार पंखड़ियाँ, विभिन्न रंग और आकार । परन्तु उनका जीवन भी कितना क्षणिक था । हाथ में लेने के थोड़ी ही देर बाद कुम्हला जाते थे शायद स्वार्थ, कठोरता और निर्ममता के स्पर्श के कारण ।

जी. सी. डब्ल्यू., —डी. शांता
गुण्टूर

नीर-क्षीर

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिएँ।]

सुवेला

लेखक: शम्भुनाथ 'शेष'
प्रकाशक: राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
दिल्ली
मूल्य: दो रुपए

यह कविता की पुस्तक "एक शरद् पूर्णिमा की सुवेला को" समर्पित की गई है। कविताओं का प्रारम्भ 'नये सूर्य का स्वागत' से प्रारम्भ होता है। नए युग की 'सुवेला' में नवीन आशाओं और भावनाओं से कवि इसका स्वागत और अभिनन्दन करता है। आलस्य, निराशा, अविश्वास, अकर्मण्यता और अन्धकार का स्थान जागृति, आशापूर्णता, विश्वास, कर्मशीलता और प्रकाश ने ले लिया है। इन कविताओं में नया जीवन, नई स्फूर्ति और नई प्रेरणाएँ हैं। "लोक-भावना", "मानव-विश्वास", "जन-जन का अभ्युदय", "कर्मलोक के अन्तरिक्ष में समता" और "प्रेम का संगीत" इन्हीं विचारों और भावनाओं का कोमल और मधुर संगीत इन कविताओं के स्वरों में गूँज रहा है। कहीं कहीं शब्द-योजना में शिथिलता अभिव्यक्ति के अधूरेपन और पुनः पुनः एक ही बात को एक ही जैसे दुहराए जाने पर भी 'शेष' जी की इन कविताओं को पढ़ने से चित्त को प्रसन्नता होती है। 'शेष' जी की कविताओं में उनके हृदय का स्पन्दन स्पष्टतया सुनाई देता है। उनकी कविताओं का सम्बन्ध उठते हुए जीवन से है जिसमें प्रेम, माधुर्य और उल्लास है, जो एक फूल की तरह विकसित होना चाहता है, जो कठिनाइयों की परवाह नहीं करता, जो गतिमान् है, जिसमें उत्साह और अमर-विश्वास है और जो प्रत्येक क्षेत्र में नव-निर्माण के पथ पर अग्रसर हो रहा है। उनकी प्रेम की कविताओं में भी यही भावनाएँ अभिलक्षित होती हैं:

"आज यह क्षण का मिलन,
बन जाएगा सम्बल हृदय का!
चिर विरह की शून्यता में
भाव भर देगा प्रणय का
प्राण-मन्दिर जगमगा देगी
अमर-विश्वास रेखा,
तुम उषा-सी कल्पना में
रंग भरना नव उदय का!"

'जीवन के बद्ध द्वार कब खुलेंगे?' इस विषय में 'शेष' जी कहते हैं:

अविश्वास की कन्था ओढ़े
मानव अब तक सोता,
वह क्या जाने स्वर्ण उषा का
दर्शन कैसा होता!
... ...
सुषमा से भर जाए अन्तर
तभी खुलेंगे द्वार

मैं तू का आवरण हटे,
तो एक रूपता दरसे!
मानव अपने खोये धन को पाए
जीवन सरसे!
सरल स्नेह व्यापार!
तभी खुलेंगे द्वार!
... ...

"तुम जगो ज्योति बन कर उदार
मम मानस की गहराई में
कविता-विहगी हो उठे मुखर
जैसे कोयल अमराई में
तुम विहरो मेरे नयनों में
तो प्राणों को मधुमास मिले !
तुम विचरो मेरे मानस में
तो जीवन को विश्वास मिले !
तुम गूँजो मेरी वीणा में
तो गीतों को स्वर-तान मिले !
तुम कहीं मार्ग में मिल जाओ
तो मंज़िल की पहचान मिले !"
... ...
"आज घिरी है श्यामल घन-सी
उर अम्बर में निपट निराशा
आशा बन कर छिटक पड़ो तुम
भाव-क्षितीज पर मधु राका-सी"

"सतलज की भीगी रेती में" श्री 'शेष' जी "उगता जीवन" देख रहे हैं। वे कहते हैं :

"अपनी धुन में गाए जा कवि
गीत-प्रदीप जलाए जा कवि
तेरी वाणी में इस युग का
पट-परिवर्तन देख रहा हूँ"

'शेष' जी के इस कविता-के संग्रह के कई गीत सिनेमा के कुछ गीतों की कड़ियों के सादृश्य पर बने हैं। उनमें से कुछ में उनके जीवन की झलक भी दिखाई पड़ती है :

"यह अस्त-व्यस्त वेश-भूषा
अटपटी अपरिचित-सी वाणी
इस युग में 'शेष' भला ऐसे
स्वरकार की चिन्ता कौन करे

'शेष' जी अन्धकार में प्रकाश और मृत्यु में जीवन देखते हैं :

"अन्धकार की अन्तिम रेखा
अरुणोदय से दूर नहीं है
... ...
जीवन की कोई भी रचना
विश्व-प्रलय से दूर नहीं है"

शब्दों और भाषा में कहीं कहीं शिथिलता "अटपटापन" होने पर भी 'शेष' जी की वाणी सरसता है और जीवन और प्रकृति के समान जीवन नैसर्गिकता है।

स्थायी प्रेम

लेखक : मेरी स्टोप्स
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य : दो रुपए आठ आने

प्रस्तुत पुस्तक मेरी स्टोप्स की पुस्तक Enduri Passion का हिन्दी रूपान्तर है। मेरी स्टोप्स ने अं में स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें लिखी हैं इस विषय पर अधिकार और प्रामाणिकता से लि हैं। राजकमल प्रकाशन अनुवाद की दृष्टि से भी हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है। पुरुष सम्बन्धी स्वस्थ साहित्य हिन्दी में बहुत कम है आशा है कि इस प्रकार की पुस्तकों के अनुवाद के द्वा इस अभाव की पूर्त्ति का प्रयत्न किया जाएगा। अनुवाद सामर्थ्य और प्रवाह है परन्तु क्योंकि पुस्तक में बहुत शब्द पारिभाषिक हैं इसलिए अच्छा होता यदि पुस्तक अन्त में इस प्रकार के शब्दों का स्पष्टीकरण दे दि जाता और साथ ही जिन अंग्रेज़ी के शब्दों के लिए उन प्रयोग किया गया है उन्हें भी दे दिया जाता। इन पा भाषिक शब्दों की अस्पष्टता के कारण कई स्थानों बहुत-से पाठकों को पुस्तक के समझने में कठिनाई सकती है। आशा है कि पुस्तक के अगले संस्करणों इस प्रकार की शब्द-सूची को भी जोड़ दिया जाएगा।

पुस्तक को पढ़ने से बहुत-सी बातों पर प्रका पड़ता है! लेखिका इस पुस्तक के द्वारा स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को मधुर और सुखी बनाना चाहती हैं औ इसीलिए उसने एक डाक्टर की हैसियत से इस पुस्तक लिखा है। शारीरिक सुख का आधार भी एकमात्र शा नहीं हो सकता। वे लिखती हैं : "अक़सर .....शारीरि पहलुओं पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है। आत्मिक प की अवहेलना करने के परिणामस्वरूप शारीरिक का स्वरूप भी उतना स्थायी तथा मधुर नहीं रहता।" लिखती हैं : "हमारा कर्तव्य है कि हम सम्पूर्ण जीवन सन्तुलित बनाने के-लिए लोगों को प्रेम में भी शि करें। ऐसा करने से प्रेम का स्वरूप विशाल तथा आध्यात्मि

हो जाएगा। प्रेम पहले की अपेक्षा अधिक मज़बूत और स्थायी होगा क्योंकि शारीरिक सौन्दर्य के स्थान पर उसकी जड़ें आत्मा में होंगी।... ..यदि किसी पुरुष को प्रेम के शारीरिक तथा आध्यात्मिक दोनों पहलुओं का अनुभव नहीं होता तो उसका जीवन अपूर्ण है।''

इस सम्बन्ध में जो बहुत-सा साहित्य प्राप्त होता है वह अस्वस्थ होने के साथ अप्रामाणिक भी होता है। अमरीका में इस प्रकार का जो साहित्य उत्पन्न हो रहा है यह भी बहुत-से स्थानों पर उसी प्रकार का प्रतीत होता है। यह पुस्तक यद्यपि एक डाक्टर महिला द्वारा लिखी गई है और यद्यपि इसका आधार अनुभव और वैज्ञानिक ज्ञान बताया गया है तो भी इसकी प्रामाणिकता में विश्वास करना कठिन ही प्रतीत होता है।

वेलि क्रिसन रुकमणी री

राठौड़राज प्रिथीराज री कही

सम्पादक : आनन्द प्रकाश दीक्षित

प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन,
गोरखपुर

मूल्य : पाँच रुपए

प्रस्तुत पुस्तक को सरल अर्थ और सुबोध टिप्पणियों के साथ विद्यार्थियों के लिए प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी बना कर सम्पादित करने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक की भूमिका लगभग पौने दो सौ पृष्ठ की है जब कि मूल पुस्तक जिसका टाइप भी कुछ बड़ा है और जिसके नीचे शब्दार्थ भी दिए गए हैं एकमात्र ६२ पृष्ठों की है। पुस्तक के अन्त में सरलार्थ दिए गए हैं। राजस्थानी साहित्य के अध्ययन में शब्द-रूपों और भाषा विषयक कठिनाई होने के कारण इस प्रकार की पुस्तक के अध्ययन में बड़ी कठिनाई होती है। यद्यपि इस प्रकार की सरल, सुबोध और टिप्पणी सहित पुस्तकों से विद्यार्थियों को पुस्तक के समझने में सुगमता होती है परन्तु इसका यह भी एक परिणाम होता है कि विद्यार्थी मूल पुस्तक के विषय में अपनी धारणाएँ मूल पुस्तक के आधार पर उतना बनाने का प्रयत्न नहीं करते जितना सम्पादक की भूमिका और टिप्पणियों के आधार पर करते हैं। पुस्तक को सम्पादित करने में परिश्रम किया गया है।

हैदराबाद

वंशीधर विद्यालंकार

आलोचना : इतिहास तथा सिद्धान्त

लेखक : डा० एस. पी. खत्री

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
बम्बई, नई दिल्ली

पृष्ठ संख्या : ५८०

मूल्य : ११ रुपए।

हिन्दी में आधुनिक आलोचना अर्थात् यूरोपीय प्रभाव से युक्त आलोचना को आरम्भ हुए आधी शताब्दी से भी कम समय हुआ है। जब तब क्लासीसिज़्म, रोमांटिसिज़्म, समाजवादी यथार्थवाद, मनोविश्लेषणवाद, कलावाद, अति-वस्तुवाद और अस्तित्ववाद के प्रभाव के नारे सुनाई देते हैं। साहित्य के क्षेत्र में आदान-प्रदान एक अनिवार्य तथ्य है—दो जातियों का परस्पर सम्पर्क होने पर उनके साहित्यों के बीच की दीवारें ढह जाती हैं। इस दृष्टि से आधुनिक हिन्दी साहित्य पर अंग्रेज़ी के माध्यम से पड़ने वाले यूरोपीय प्रभाव का सम्यक् अध्ययन अपेक्षित है। इस प्रकार का अध्ययन भिन्न भिन्न प्रकार से किया जा रहा है। सर्व प्रथम श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने 'विश्व-साहित्य' पुस्तक द्वारा यूरोप के प्राचीन साहित्यकारों का परिचय दिया था। उसी परम्परा में हाल ही में श्रीमती शचीरानी गुर्टू के 'साहित्य-दर्शन : प्रथम भाग' का प्रकाशन उल्लेखनीय है। 'साहित्य दर्शन' में हिन्दी के साहित्यकारों को विश्व की अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्यकारों के समक्ष बिठा कर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि यह अध्ययन संतुलित नहीं कहा जा सकता और उसमें विवेचना के बदले कल्पना-विलास ही अधिक मुखर हो गया है, अनेक अनुच्छेद सुन्दर गद्य-काव्य का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और कुछ तुलनाएँ अनपेक्षित हैं, यथा—अज्ञेय की टी. एस. इलियट से तुलना की गई है। यह बात दूसरी है कि अज्ञेय जी कहें 'इलियट की बात सोचने लायक होती है', परन्तु उनका साहित्य सृजन डी. एच. लारेन्स के ही अधिक अनुकूल है—हम यहाँ उनकी आलोचना की बात नहीं कहते। अस्तु, यह एक प्रवृत्ति की ओर इंगित है—हिन्दी साहित्य को विश्व-साहित्य की पृष्ठभूमि में रख कर मूल्यांकन करना। जहाँ एक ओर विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यों को निकटतर लाने की आवश्यकता है वहाँ दूसरी ओर हमारे साहित्य का विश्व-साहित्य से भी संबंध

स्थापित होना चाहिए जिसके अभाव में हम संकुचित राष्ट्रीयता के घेरे में ही बँधे रह सकते हैं और उसका परिणाम एक अंश तक हमारे विकास को रोकनेवाला सिद्ध हो सकता है। विश्व-साहित्य से सम्पर्क बढ़ाने की आज दोहरी आवश्यकता है क्योंकि मुख्यतया उसका एक ही साधन हमारे पास है—अंग्रेज़ी भाषा जिसका प्रयोग भारत में क्रमशः कम होता जाएगा और तब विश्व-साहित्य से सम्बन्ध रखने में हमारे सामने अधिक कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी। अतः ऐसी परिस्थिति में वे सभी प्रयत्न अभिनन्दनीय हैं जिनके द्वारा विश्व-साहित्य के रत्नों को हम अपने साहित्य-कोश में जमा कर सकें। जहाँ तक आलोचना का प्रश्न है हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं या पुस्तकों में यूनानी आलोचना सिद्धान्तों या आधुनिक यूरोपीय साहित्य सिद्धान्तों पर छुट पुट लेख प्रकाशित होते रहे हैं। प्रगतिवादी दृष्टिकोण के पक्ष और विपक्ष में बहुत-सी पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। एकाध पुस्तक अभिव्यंजनावाद या कलावाद और रोमांटिसिज़्म पर भी प्रकाशित हुई परन्तु ऐसी सर्वव्यापी पुस्तक का अभाव था जो पश्चिमीय आलोचना सिद्धान्तों का एक जगह पर गम्भीरता से विवेचन करे। यह हर्ष का विषय है कि डा० एस. पी. खत्री की प्रस्तुत पुस्तक 'आलोचना : इतिहास तथा सिद्धान्त' से इस कमी की बहुत अंश तक पूर्त्ति होती है। यूरोपीय साहित्य सिद्धान्तों की विवेचना के साथ ही साथ इसमें भारतीय सिद्धान्तों का भी उल्लेख किया गया है यद्यपि भारतीय सिद्धान्तों का वर्णन एक प्रकरण में ही समाप्त कर दिया गया है।

पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है—पहले खण्ड में इतिहास है, दूसरे खण्ड में सिद्धान्त। इतिहास का खण्ड नौ प्रकरणों में विभाजित है जिनमें यूनानी, रोमीय, संस्कृत साहित्य सिद्धान्तों, नवजागरण काल के साहित्य-सिद्धान्तों और उन्नीसवीं सदी में आलोचना की प्रगति का विवेचन किया गया है। प्राचीन आलोचना काल को लेखक ने तीन भागों में विभाजित किया है : पाँचवी और चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व जब कि यूनान की राजधानी एथेन्स विद्या और कला की केन्द्र थी। इस काल की अधिकांश पुस्तकें प्राप्त नहीं हैं और जो कुछ रचनाएँ प्राप्त हैं उनसे पता चलता है कि यूनान में आलोचना की साहित्य के अन्य अंगों से स्वतन्त्र सत्ता नहीं थी। दर्शन तथा भाषण-शास्त्र पर पुस्तकें लिखते समय साहित्य सम्बन्धी जो प्रश्न उठे उसी पर टिप्पणी रूप में उन्होंने अपने विचा अभिव्यक्त किए। यूनान आदर्श प्रजातन्त्र राष्ट्र था वहाँ कला राष्ट्रीय धर्म की चेरी थी—धर्म और रा यही उनके देवता थे। फलतः नैतिक और सौंदर्यानुभू के सिद्धान्तों में वहाँ विभिन्नता नहीं रही जिस कलाका ने नैतिक परिष्कार में सहयोग नहीं दिया उसे निर्वासन प्राणदण्ड भी मिला।

यद्यपि यूनानी आदि कवि होमर और साहित्यका हिसिऑड में ही आलोचना सिद्धान्तों के आरंभिक संकेत मिलते हैं परन्तु स्पष्ट रूप में सर्व प्रथम प्लेटो ने कला और काव्य के विषय में परिभाषाएँ बनाईं। उन्होंने कला को अनु करणात्मक बताया और कला अनुकरण का अनुकरण है अतः उसका अधिक महत्त्व नहीं है क्योंकि यह मूर्त्त-संसार एक अमूर्त्त संसार का अनुकरण है और कला उसका भी अनुकरण है। उन्होंने काव्य का वर्गीकरण गीत, नाटक तथा महाकाव्य के रूप में किया और सुखान्तकी के मूल तत्व बताए। प्लेटो के कला-सिद्धान्तों को पढ़ कर ऐसा भी लगता है कि उसने कला को हेय बतलाया है परन्तु इसके लिए हमें तत्कालीन सामाजिक अवस्थाओं को भी देखना चाहिए। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने लिखा है: "अफलातूँ को स्वभावतः ऐसे साहित्य से बहुत घृणा थी जो न तो व्यक्तिगत चरित्र को उन्नत करे और न सामाजिक जीवन को श्रेष्ठ बनाए। यद्यपि उनका ध्येय साहित्य सिद्धान्तों का अनुकरण नहीं था परन्तु उन्हें विवश होकर साहित्य की आलोचना इसलिए करनी पड़ी कि उनके आदर्श राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन पर उसकी कलुषित छाया पड़ती जा रही थी। जब जब उन्होंने देखा कि साहित्य उनके लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर रहा है—तब तब वह क्षुधित हुए और क्रोधवश तत्कालीन साहित्यकारों को खूब खरी-खोटी सुनाई।" इस प्रकार लेखक ने स्थान स्थान पर सामाजिक प्रभावों का भी चित्रण किया है परन्तु वह काफी नहीं है। अरस्तू और लाँजीनस के सिद्धान्तों का भी सम्यक् विवेचन किया गया है। अरस्तू किसी के 'रेचन सिद्धान्त'—'समुचित सीमा के अन्दर किसी गम्भीर, महत्वपूर्ण, सम्पूर्ण तथा विशाल कार्य का रंगमंच पर ऐसा अनुकरण जो भाषा के माध्यम से सुन्दर तथा आनन्ददायी बन कर भय और करुणा के संचार से उनके हमारे मानवी भावों के अति का परिमार्जन करके उनमें सामञ्जस्य प्रस्तुत करता है'—के सम्बन्ध में पश्चिम में अनेक

प्रश्न उठे हैं। लेखक ने संक्षेप में यही कहा है : "वास्तव में दुःखान्तकी के अनेक तत्वों में क्रमशः महत्व का आंकना सरल नहीं और उसका प्रश्न भी नहीं उठना चाहिए।" लांजीनस रोम के सर्वमान्य आलोचक हुए हैं-शैली (Style) के सम्बन्ध में उनके विचारों को इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात् लेखक ने संस्कृत साहित्य के सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दिया है तथा लेखक इस निर्णय पर पहुँचा है : "संस्कृत साहित्य की हज़ार वर्ष की साहित्य-साधना में जिन प्रश्नों पर विचार हुआ, उनमें प्रायः वे ही प्रश्न मिलेंगे जिन पर पश्चिमी साहित्यकारों ने भी विचार किया। काव्य-प्रयोजन तथा कवि धर्म, कवि की शिक्षा-दीक्षा तथा दैवी प्रेरणा का महत्व, काव्य का वर्गीकरण, भाषा का वर्गीकरण, वस्तु का वर्गीकरण, साहित्य का वर्गीकरण, औचित्य इत्यादि पर दोनों ही साहित्यों के महारथियों के विचारों में विचित्र साम्य है जो संसार की सांस्कृतिक एकता का महत्वपूर्ण प्रमाण है।"

आधुनिक आलोचना का बीजारोपण चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शती में पुनर्जागरण-युग (Renaissance Age) में हुआ। इस काल में यूनानी और रोमीय साहित्य के अध्ययन के प्रति नया आकर्षण उत्पन्न हुआ और कुछ परिवर्तनों के साथ वे साहित्यिक सिद्धान्त पुनः प्रतिष्ठित हुए। उसके पश्चात् १९ वीं सदी में पुनः उन प्राचीन सिद्धान्तों की विचार आबद्धता के प्रति विद्रोह हुआ और रोमांटिक विचारधारा का प्रतिपादन हुआ जिसमें युद्धकाल के पश्चात् विविध ज्ञान-विज्ञानों के प्रभाव से फिर नए मूल्यांकन हुए जिनका थोड़ा-सा विवरण लेखक ने दिया है।

सिद्धान्त खण्ड में उन्होंने आलोचना और साहित्य का सम्बन्ध, आलोचक के गुण, वर्गीकरण की समस्या और विविध साहित्यकारों और आलोचकों के आलोचना सम्बन्धी मत बतलाए हैं। प्रगतिवादी आलोचना पर भी एक प्रकरण है।

यह नहीं कि लेखक के मत से सहमत होना आवश्यक हो, न इसके लिए उन्होंने अपने विशेष तर्क ही उपस्थित किए हैं परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक गम्भीर अध्ययन के पश्चात् लिखी गई है और उसका पर्यवेक्षण काफी मानसिक भोज्य-सामग्री देता है हालाँकि पाठक अनुभव करेगा आधुनिक आलोचना के साथ पूरा न्याय नहीं हुआ है और वर्गीकरण की तालिका बहुत बहुत लम्बी है जो अनपेक्षित एकेडेमी की प्रवृत्ति प्रकट करती है।

जय दोल

लेखक : अज्ञेय
प्रकाशक : प्रतीक प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य : तीन रुपए।

'जय दोल' का पाठक चाहे जिस युग में इन कहानियों को पढ़े इस बात को अनुभव करेगा कि वह युद्ध के प्रति एक स्वतन्त्र चेता कलाकार की मानसिक प्रतिक्रिया का निकटवर्ती द्रष्टा है; अर्थात् ये कहानियाँ क्षण स्थायी नहीं हैं चाहे 'क्षण का, मनःस्थिति का सत्य' हों—'एक दौड़ती लहर का गति चित्र।' अज्ञेय जी ने भूमिका में कहा है : "कुल मिला कर जीवन के बारे में मेरे कुछ विचार अवश्य हैं, और मैं यह भी चाहता हूँ कि आपको वे रुचें, क्योंकि जीवन से, जीने की भावना से मुझे प्रेम है, और मैं चाहता हूँ कि वह प्रेम आपका अनुमोदन और सम्मान पा सके।" हमने पहले युद्ध की बात कही है परन्तु कहानियों का विषय प्रेम—आदिम वासना भी है, मध्यम-वर्ग की असंतोषपूर्ण जीवन के प्रति झुंझलाहट भी है।

ये एक एक पंक्ति में भी कही जा सकती हैं इस प्रकार : 'पठार का धीरज'—प्रमीला और किशोर ने आखिर पहचाना कि तीतर किसी का नाम लेकर नहीं पुकारता, जो चाहे सो उसमें पढ़ना व्यर्थ है। 'साँप' : जंगल में उसने पाया कि वह निरीह है, सुन्दर, तिक्त साँप की तरह। 'आदम की डायरी' : सत्य तो आदम ने उस दिन जाना जब यवा ने आदम से ही रूप को जन्म देकर पुकारा। 'वसंत' : सकत भी होनी चाहिए तो कुछ, पर उसके अभाव में नारी बालक से कहेगी तुम हो युग युग के वसंत। 'हीलीबोन की बतखें' : एकाकिन हीलीबोन ने कैप्टन दयाल के पीछे जाकर देखा कि नर लोमड़ी मर गई है और उसके मादा और बच्चे चारों ओर लिपटे हैं—वह लौट आई और बतखों से मार दिया—एक दो दस, और इसी प्रकार 'वे दूसरे', 'कवि प्रिया', 'नागा-पर्वत की एक घटना', 'गैंग्रीन, 'मेजर चौधरी की वापसी' और 'जय दोल'।

यदि कहानी को किसी एक पंक्ति में बाँधा जा सके तो यह उसकी सफलता की कसौटी नहीं है परन्तु अवश्य यह पंक्तियाँ इस बात की सूचक हैं कि अज्ञेय टैकनिशायन हैं ही

और जैसा कुछ आलोचक समझते हैं। 'शेखर' के बाद उनका यह 'दम्भ' भी टूट गया है व्यर्थ-सी बात है। शायद अज्ञेय को ठीक नहीं समझा जा रहा है, शायद प्रगति के नाम का ढोल पीटते हुए अगर मगर सुनाई दे तो उसे सुनने से इन्कार कर दिया जा रहा है, अन्यथा 'जीवन के बारे में मेरे कुछ विचार अवश्य हैं' को तूल देने की आवश्यकता नहीं थी। अतः एक खेमे के द्वारा प्रतिक्रियावादी करार दिए जाने पर भी अज्ञेय के विचारों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

परन्तु इन कहानियों के बारे में क्या कहा जाए जो गति की लहर मात्र हैं। सेक्स सम्बन्धी कहानियों में इतनी ही बात है कि लेखक सेक्स को भी प्रेरणा मानता है। तो उसमें इन्कार क्या? 'पठार का धीरज' में 'प्लेटोनिक लव' के विरोध में अज्ञेय ने कितना कुछ कहा है "नहीं यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है कि तीतर किसी का नाम लेकर पुकारे पठार की अपनी एक वास्तविकता है, उनकी अपनी एक वास्तविकता है।" परन्तु वह सेक्स की विकृतियों के प्रति भी अनजान नहीं है उदाहरण 'हीलीबोन की बतखें'। एकाकिन हलीबोन मरी हुई नर लोमड़ी के लिए जब उसकी मादा और बच्चों को विकल देखती है, जिस अभाव से वह स्वयं पीड़ित है उसी में मादा लोमड़ी को भी डाल देती है तो उसका मन बतखों के विरुद्ध प्रतिहिंसा से भर जाता है जिनकी रक्षा के लिए उसने नर लोमड़ी के प्राण लिए। और जीवन का सत्य! अज्ञेय की प्रसिद्ध 'रोज़' कहानी ही 'गैंग्रीन' नाम से इसमें प्रकाशित हुई है—मध्यम वर्ग पर घिर आनेवाली छाया का वीभत्स रूप। युद्ध के बारे में 'मेजर चौधरी की वापसी' में वह लिखता है: "युद्ध में इन्सान का गुण दोष सब चरम रूप लेकर प्रकट होता है। मुश्किल यही है कि गुण प्रकट होते हैं तो मृत्यु के मुख में ले जाते हैं, दोष सुरक्षित लौटा लाते हैं—प्रत्येक युद्ध के बाद इन्सान चारित्रिक दृष्टि से और गरीब होकर लौटता है।" युद्ध के विरुद्ध यह कम महत्वपूर्ण तर्क नहीं है! और वह मानव मात्र की अदम्य स्वतंत्रता प्रेरणा का अभीत अज्ञेय 'जय दोल'!

'जय दोल' की कहानियाँ मानवीय स्वतन्त्रता में, विकृतियों के दूरीकरण में और शान्ति की स्थापना में हमारा विश्वास जगाती हैं। वे कलात्मक आनन्द या बात के बना कर कहने का निरानन्द भी प्रदान करती हैं यदि निरानन्द उसे कहा जा सके।

अवन्तिका (काव्यालोचनांक)
सम्पादक : लक्ष्मीनारायण सुधांशु
प्रकाशक : अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना ४
मूल्य : ३ रुपए

'अवन्तिका' के काव्यालोचांक में काव्य सिद्धान्तों, काव्य प्रवृतियों के मूल्यकांन एवं प्रसिद्ध कवियों सम्बन्धी लेखों को प्रकाशित किया गया है। जहाँ एक ओर इसमें भारतीय साहित्य शास्त्र के पाँचों सम्प्रदायों—अलङ्कार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और रस का विवेचन किया गया है, काव्य के दोषों और वृत्ति पर प्रकाश डाला गया है वहाँ हिन्दी कविता की मुख्य धाराओं का भी मूल्यांकन किया गया है और प्रसिद्ध कवियों पर स्वतंत्र लेख दिए गए हैं। सभी लेख अधिकृत लेखकों द्वारा लिखे गए हैं। पश्चिमी काव्य सिद्धान्तों पर भी कुछ लेख दिए गए हैं यद्यपि वे बहुत संक्षिप्त हैं तथा कुछ महत्त्वपूर्ण विचारकों की छोड़ भी दिया है।

काव्यलोचनांक का एक विशेष आकर्षण छायावाद पर परिसंवाद—सिम्पोज़ियम—है। 'छायावाद का आरम्भ कब हुआ?' इस प्रश्न को लेकर सुधी लेखकों ने अपने विचार प्रकट किए हैं जिनमें सर्व श्री रामनरेश त्रिपाठी, रायकृष्णदास, सियारामशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पंत, नन्ददुलारे वाजपेयी, इलाचन्द्र जोशी, आरसीप्रसाद सिंह, विनयमोहन शर्मा आदि ने भाग लिया है। एक तो अभिमत बहुत संक्षेप में प्रकट किए गए हैं दूसरे तत्सम्बन्धी सामग्री की पूरी छानबीन के साथ अपने पक्ष की बातें नहीं रखी गईं अतः इस परिसंवाद से निश्चित सर्वमान्य धारणा बनाना कठिन होगा फिर भी यह एक मार्ग-निर्देश है और यह इंगित करता है कि साहित्य जगत् की कुहेलिका को सम्मिलित चिन्तन से स्पष्ट किया जा सकता है।

प्रस्तुत अंक में भारतीय साहित्य-सिद्धान्तों पर प्रायः एक दर्जन लेखों के अतिरिक्त हिन्दी के प्रमुख कवियों: कबीर, विद्यापति, सूर, तुलसी, केशव, भूषण, घनानन्द और भारतेन्दु पर स्वतन्त्र लेख हैं। हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों में भक्तिकाल, रीतिकाल, द्विवेदी-युग, छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद पर लिखा गया है। पश्चिम के विचारकों में टालस्टाय, क्रोचे, इलियट, लीविस, काडवेल, आरनाल्ड और एडलर के विचारों से परिचित कराया गया है। कुछेक लेखों में नवीन स्थापनाएँ भी की गई हैं। दृष्टि से विशेषकर काव्य की प्रवृत्तियों वाले लेख पठनीय हैं।

—हरिकृष्ण पुरोहित

हैदराबाद

सामयिक

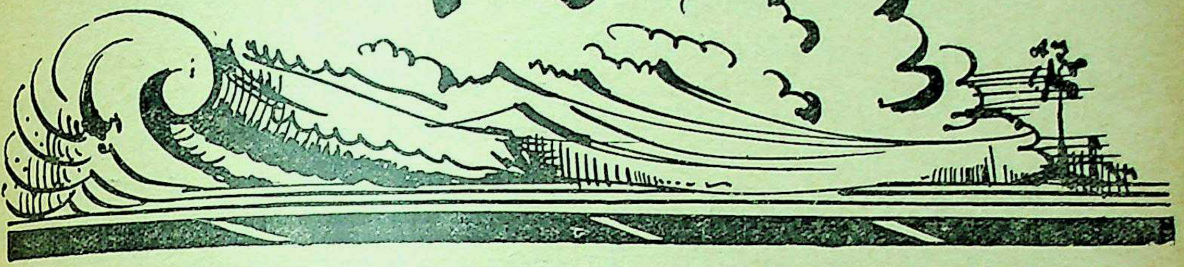

॥

एण्टनी पैविओविच चेख़ोव

मद्रास के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी साप्ताहिक पत्र 'स्वतन्त्र' में रूस के प्रसिद्ध कथाकार श्री एण्टनी पैविओविच चेख़ोव की एक कहानी की पुस्तक की समालोचना करते हुए श्री मंजरी एस. ईश्वरन ने उनकी जीवनी पर भी कुछ प्रकाश डाला है। उसमें से निम्न अंश दिया जाता है :

“......समस्त संसार में मनुष्य तो एक ही जैसे हैं चाहे वे किसी देश के निवासी हों। एण्टनी चेख़ोव की कहानियों को पढ़ने से हमें उस समय के रूसी साम्राज्य का, रूस के मध्यम वर्ग के जीवन का, उनकी समस्याओं, आदर्शों और महान् अभिलाषाओं, बुराइयों और निराशाओं का पता चलता है। एण्टनी पैविओविन चेख़ोव का जन्म तगनरोग, दक्षिणी रूस के एक छोटे-से नगर में १८६० ई. में हुआ। वह एक स्वतन्त्र किए हुए दास का पुत्र था जो कि पंसारी तक पहुँचा था। उसका बड़ा परिवार था, उसके कई भाई और कई बहनें थीं। उसके पिता को व्यापार में सफलता प्राप्त न हुई और उसे बचपन में भूख के कष्ट का अनुभव हुआ। जब उसका परिवार मास्को चला गया तब वह कुछ वर्षों तक अकेला ही रहा। इसी बीच में वह सर्दी खा गया और यह सर्दी क्षय में बढ़ गई और इससे ४१ वर्ष की कम आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई। वह बचपन में जहाँ पढ़ता था वहाँ वह निम्न स्तर की नौकरियाँ भी करता रहा। १८७९ में वह मास्को गया और वहाँ की यूनिवर्सिटी में खाली समय में वह डाक्टरी पढ़ने लगा। उसके जीवन की अवस्था शोचनीय थी। इसी समय में उसने कहानियों को लिखना प्रारम्भ किया, उसने कुछ सुन्दर रेखाचित्र लिखे परन्तु इन सब से उसे कुछ विशेष आमदनी नहीं होती थी। उसका जीवन उसके अन्दर की दासवृत्ति को निकालने का एक लम्बा और निरन्तर संघर्ष था। इसमें उसे सफलता प्राप्त हुई। उसकी कहानियाँ उसकी सफलता की स्मारक हैं। वे संशयवाद और निराशा की सड़क पर उसके एक वर्ष से दूसरे वर्ष में यात्रा के मील-चिन्ह हैं। अन्त में उसे मानसिक शान्ति प्राप्त हुई। जब वह तीसियों के बीच में था उस पर टॉल्स्टाय का गहरा प्रभाव पड़ा परन्तु बाद में उसने उसके विचारों के प्रति विद्रोह किया। वह मानव की उन्नति में, भाप, बिजली और यांत्रिक उन्नति में विश्वास करता था। फिर भी वह टॉल्स्टाय का अन्त तक प्रशंसक रहा। उसने १९०४ में टॉल्स्टाय की मृत्यु के समय लिखा था : “जब तक टॉल्स्टाय जीवित है साहित्य में कुरुचि, छोटापन, धृष्टता और कटुता नहीं आ सकती।” चेख़ोव की साहित्यिक रुचि अत्यन्त परिष्कृत थी। स्त्रियों के सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, उनकी आध्यात्मिक स्तर पर पुरुष से उच्चता को मानना, उसका सद्व्यवहार और शिष्टता, उसकी बुद्धि और व्यंग्य और उसकी दयालुता आदि हमें उसकी कहानियों में दृष्टिगोचर होती हैं। १९४१ ई. में जोज़ेफ़ स्टालिन ने चेख़ोव के विषय में कहा था : “चेख़ोव का नाम अत्यन्त प्रिय और यशस्वी नामों में से है और रूसी लोग सदा उस पर अभिमान करते रहेंगे।” १९१६ में चेख़ोव की कहानियों की आलोचना करते हुए रौबर्ट लिण्ड ने लिखा था : “चेख़ोव की कहानियों में विविधता है, मनुष्य के हृदय की प्रचुरता और कोमलता है और उसका गहरा अध्ययन है। वह संसार का सबसे महान् कहानी लेखक है।” चेख़ोव के विषय में डा. कोलिन ने कहा था : “आप चेख़ोव को रूस का लेखक समझते हैं। चेख़ोव अब अंग्रेज़ी का लेखक बन गया है। चेख़ोव के दो रूप हैं एक रसायन

शास्त्री का क्योंकि वह एक वस्तु बिलकुल अलग होकर एकमात्र बाह्य दृष्टि से देखता है—दूसरा रूप कवि का जिसमें कला, सौन्दर्य और सत्य के लिए प्रेम है। वह हिंसा और भूठ को प्रत्येक दृष्टि से घृणा करता है। मैक्सम गोर्की और टॉलस्टाय ने भी चेखोव की कहानियों की बहुत प्रशंसा की है।"

II

इंग्लैण्ड में राजनैतिक उपन्यास

फरवरी १९५४ के 'मॉडर्न रिव्यू' में श्रीयुत दर्शन सिंह मैनी का "इंग्लैण्ड में राजनैतिक उपन्यास" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें से निम्न अंश दिया जाता है :

"इंग्लैण्ड में राजनैतिक उपन्यास का इतिहास छोटा-सा है। यद्यपि कल्पनात्मक साहित्य की यह भी एक शैली है तो भी अभी इसका कोई सुलक्षित क्षेत्र नहीं है। अन्य यूरोप के देशों में जिनमें लोग अपने राजनैतिक प्रश्नों के प्रति अधिक सतर्क हैं राजनैतिक उपन्यास निखर उठा है परन्तु इंग्लैण्ड में इसके लिखनेवाले इस समय तो बहुत कम हैं। इंग्लैण्ड में उपन्यासों का इतिहास विस्तृत है परन्तु इनमें राजनैतिक उपन्यासों की गिनती नहीं की जा सकती। हाँ, इस सम्बन्ध में कुछ छोटे-मोटे और साधारण उपन्यासकारों के नाम लिए जा सकते हैं। प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड में भी समस्त महत्वपूर्ण कथाओं और उपन्यासों में राजनैतिक स्वर मिश्रित हो गया है। रूस की क्रान्ति, इटली, स्पेन, और जर्मनी में वर्तमान शक्तियों के बलशाली होने का यह आवश्यक परिणाम था। इन दोनों संसारों में भेद इतना स्पष्ट था कि लेखक और कलाकार जो कि समाज के हृदय की धड़कनों को रेकार्डित करते हैं—शुद्ध कला के सुरक्षित स्थानों में अपने को संवर्धित न कर सके। उन्हें इन दोनों सुव्यवस्थित शक्तियों की ओर बाध्य होकर ध्यान देना पड़ा जो कि क्रान्तिकारी मानसिक परिवर्तन कर रही थीं। यूरोप में लेखकों ने पर्दे को फेंक दिया, वे नग्न रूप में अपने विचारों को अभिव्यक्त करने लगे और एक ओर हो गए।...वे मार्क्सवाद के जय-गीतों को उच्च स्वर से गाने लगे। मार्क्सवाद नव जागृति के (Renaissance) पश्चात् संभवतः सबसे महान् क्रान्तिकारी विचारधारा है। अब राजनीति महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञों का ही एकमात्र विषय नहीं रह गया; यह विधान सभाओं और परिषदों से हट कर साधारण पुरुषों और स्त्रियों में पहुँच गया।

इंग्लैण्ड में इसका प्रभाव कुछ ही लेखकों पर पड़ा। इसका कारण कुछ तो भौगोलिक था और कुछ ऐतिहासिक—यद्यपि अन्तिम विश्लेषण में इसका कारण आधारतः आर्थिक था। इंग्लैण्ड की स्थिति एक तो सबसे अलग-सलग है, दूसरा वहाँ किसी प्रकार की घरेलू लड़ाइयाँ नहीं हैं, तीसरा साम्राज्य और उपनिवेशों के कारण उनका रहन-सहन काफ़ी ऊँचा था। इन्हीं कारणों से ग्रेट ब्रिटेन में साम्यवाद में एकमात्र दार्शनिक दिलचस्पी थी। स्पेन के गृह-युद्ध से एक नवीन सतर्कता उत्पन्न हुई परन्तु इंग्लिश जनता को इनका अनुभव द्वितीय विश्व-युद्ध के समय कुछ हुआ। इससे हमें ज्ञात होता है कि इंग्लैण्ड में राजनैतिक उपन्यास क्यों अपेक्षाकृत इतने कम लिखे गए। राजनैतिक उपन्यास ने जो रूप धारण किया वह भी अधिकांश में कल्पनात्मक और अलंकारात्मक था। जब एक उपन्यासकार अपनी कहानी को कल्पनात्मक या अलंकारात्मक बनाता है तब वह अपने समय की वास्तविकता से अप्रत्यक्ष रूप में भागने का प्रयत्न करता है।

इंग्लैण्ड में राजनैतिक उपन्यास विशेषतया साधारण जनता या श्रमिक वर्ग का उपन्यास बहुत कम लिखा गया है और वह नीरस है। लौइवल, ब्रिटेन, वाल्टर ग्रीनवुड, जौन समरफ़ील्ड आदि के उपन्यासों में राजनैतिक पुट है। एच. जी. वैल्स, अल्डुअस हक्स्ले, रैक्स वार्नर और जार्ज औरवेल के उपन्यासों में अपने समयों की कुछ राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। वैल्स और हक्स्ले मुख्यतया सामाजिक विचारों के जितने उपन्यासकार हैं उतने राजनैतिक प्रश्नों को सुलझानेवाले नहीं हैं। फिर वे कल्पनात्मक हैं और उनमें स्वच्छन्द विचारशीलता है। कुछ का भविष्य से सम्बन्ध है और कुछ में साम्यवाद और एकाधिकारवाद पर राजनैतिक व्यंग्य है।

इस कल्पना और अलंकार का कारण क्या है? इसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। इसके और भी कारण हैं। इस प्रकार की परम्परा अंग्रेज़ी साहित्य में है और इन उपन्यासकारों ने उसी परम्परा को प्रचलित रखा। परन्तु ये कारण पर्याप्त नहीं हैं। इसके और भी कारण हैं।

राजनैतिक वस्तु-स्थिति कठोर और कटु है। इसके लिए साहसपूर्ण विचारशीलता की आवश्यकता है। इसमें राजनैतिक दम्भ और पाखण्डों की पोल खोलनी पड़ती है। इसमें वर्ग और श्रेणी का विरोध करना पड़ता है। इसी कारण वर्तमान को वास्तविक रूप में उपस्थित करने में कठिनाई होती है और इसी कारण लेखक कल्पना और अलंकार का सहारा ग्रहण करते हैं। वे उपन्यासकार जो समाजवादी हैं ऐसा नहीं करते परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। फिर कार्टूनों की तरह व्यंग्य कुछ अधिक प्रभावकारी भी होता है।

राजनैतिक कल्पनात्मक और अलंकारात्मक लम्बी कहानियों का बनाना कठिन होता है इसलिए इस प्रकार के उपन्यास छोटे होते हैं। छोटे होने के कारण इनमें गहराई है। कल्पना और अलंकारात्मकता के कारण इनका सम्बन्ध वर्त्तमान से टूट जाता है। फिर कल्पना और अलंकार प्रतीकवाद और लाक्षणिकता पर निर्भर करते हैं। जिस उपन्यास में राजनैतिक वस्तुस्थिति की जगह लाक्षणिक प्रतीकों को दी जाती है वे भावात्मक असर उत्पन्न करते हैं और अपने को नकली संसार की सृष्टि प्रमाणित करते हैं। इस प्रकार राजनैतिक प्रश्न भावात्मकता का रूप धारण कर लेते हैं। इस वजह से इनमें आलोचनकारी पाठकों को वास्तविकता का अभाव खटकता है।

ग्रेट ब्रिटेन में राजनीति अभी तक जमी हुई है; इसमें वह चिनगारी नहीं है जो कि उपन्यास में कथानक को प्रज्वलित कर देती है। आज की बूर्ज्वा सोसायटी के पारस्परिक विरोधों को शान्त न करते हुए और वर्तमान समय की दो मुख्य विचारधाराओं के ऐतिहासिक संघर्ष को न समझते हुए इंग्लैण्ड में राजनैतिक उपन्यासों के लेखकों ने कल्पना और अलंकारिक रूप में राजनैतिक उपन्यासों को लिखा है। अमेरिका में ऐसी स्थिति नहीं है क्योंकि वहाँ संघर्ष उग्र और तीव्र है।...”

॥

यक्षिणी, चातन और माडन

‘दी इंडियन लिसनर’ में श्री के. वी. कृष्ण अय्यर का ‘यक्षिणी, चातन और माडन’ शीर्षक एक लेख प्रकाशित किया गया है जिसका निम्न अंश यहाँ दिया जा रहा है:

“सभी जगहों पर प्रेतलोक के प्राणियों में विश्वास पाया जाता है: केवल विभिन्न जगहों पर उन्हें विभिन्न नामों से पुकारते हैं। पश्चिमी तट पर यक्षिणी, चातन और माडन नाम से ये प्रसिद्ध हैं। उनके बहुत-से मन्दिर उनसे वरदान पाने या उनके भय से मुक्त होने के लिए प्रतिष्ठित किए गए हैं।

यक्षिणी स्त्री जाति हैं। आरम्भ में उनका सम्बन्ध पेड़ों, जंगलों और झीलों से था और वे जन्म देनेवाली शक्तियाँ समझी जाती थीं तथा जीवन के इन्द्रिय जनित सुखों और जन्म देने पर उनका अधिकार माना जाता था। धन के पौराणिक देवता कुबेर और ज्ञानवान् बुद्ध की परिचारिकाओं के रूप में हिन्दू और बौद्ध साहित्य तथा शिल्प में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। उनमें से कुछ उदार होती हैं और प्रसन्न होने पर दिव्य दृष्टि, दिव्य श्रवण शक्ति, अदृश्य होने की शक्ति और हवा में उड़ने की शक्ति प्रदान करती हैं। परन्तु लोकगीतों में वर्णित यक्षिणियाँ अहितकर चित्रित की गई हैं। अत्यधिक कामुकता और भोग के जीवन से उत्पन्न सभी रोगों और बुराइयों का उन्हें कारण समझा जाता है। इनमें से कुछ तो पिशाचिनी भी समझी जाती हैं। वे मनुष्यों को छल कर उनका रुधिर पान करती हैं तथा उनसे अपना मन बहलाती हैं और अन्त में उन्हें मृत्यु के घाट उतारती हैं।

श्मशान, खुले मैदान जहाँ कोई नहीं बसता और घने जंगल उनके रहने के प्रिय स्थान हैं। वे एकाकी यात्री को दोपहर में या मध्य रात्रि में रास्ता भुला देती हैं और उन्हें विनाश की ओर खींचती हैं। ग्रीक पुराणों में वर्णित पिशाचिनियाँ संगीत के द्वारा मनुष्यों को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं परन्तु यक्षिणियाँ केवल मात्र कामुकता से उन्हें अपनी ओर खींचती हैं। उनका विलासमय शृंगार, दृष्टि-निक्षेप, सुमधुर वाणी, संकेत आदि भटके हुए मनुष्य को संत महात्मा की तरह फुसलाने के लिए जैसे भोग और ऐश्वर्य का द्वार-सा खोल देती हैं। वे मनुष्य को अपने साथ चलने का स्पष्ट आमन्त्रण देती हैं। त्रिचुर के समीप अपने स्थानीय उत्सवों और आतिशबाजी के लिए प्रसिद्ध यक्षिपरम्मा मैदान है जिसका शाब्दिक अर्थ यक्षों का मैदान है। अभी भी उधर से गुजरनेवाले यात्री ताड़ वृक्षों के उस झुण्ड की ओर संकेत करते हैं जहाँ कई लोग यक्षिणियों के भुलावे में आकर वहाँ मृत्यु के शिकार हुए थे और वे यात्री उस कुण्ड की ओर भी संकेत करते हैं जहाँ एक याज्ञिक ने यज्ञ करके पड़ोस में रहनेवाली यक्षिणियों को यज्ञ

की ज्वाला में जलने के लिए बाध्य किया था ।

लोकगीतों में वर्णित इन यक्षिणियों की वास्तविकता को समझना कठिन नहीं है । या तो वे माया-भ्रम हैं अथवा हाड़ माँस की वास्तविक स्त्रियाँ हैं । जिस समय और स्थान पर वे दिखाई देती हैं उनसे प्रेतात्माओं का सम्बन्ध पहले से ही जुड़ा रहता है । कल्पना उन आकृतियों को आकार प्रदान करती है जिन्हें देखने के लिए मस्तिष्क पहले से ही आँखों को तैयार किए होता है । मनुष्य की विवेक शक्ति अन्धी हो जाती है, उसका साहस साथ छोड़ देता है और वह भय से प्राण छोड़ देता है । इन यक्षिणियों से अपनी रक्षा करने के लिए एक सफल और लोकप्रिय उपाय काली की प्रार्थना करना है । दूसरे शब्दों में प्रेतात्मा के भय के ग्रहण किए हुए भाव के प्रभाव को देवी माता की प्रार्थना से एक विपरीत भाव ग्रहण करके कम कर लिया जाता है । यदि अर्द्ध निशा के एकान्त में दिखाई देनेवाली ये युवतियाँ काल्पनिक मूर्तियाँ मात्र नहीं हैं तो वे ऐसी निशाचर हैं जो अपने यौवन का मोल करके जीवन यापन करती हैं अथवा वे उत्कट रति-लालसावाली स्त्रियाँ होती हैं जिनकी कामवासना अत्यधिक और अतृप्त रही हो । यक्षिणियों की प्रचलित कहानियाँ कदाचित् किसी समय वहाँ नर माँस भक्षण की प्रथा के प्रचलन की सूचक भी हैं जब कि या तो ये स्त्रियाँ स्वयं मनुष्य के माँस का भक्षण करती थीं अथवा वे निर्बल और भूले हुए राहगीरों को प्रलोभन देकर फँसाती थीं ।

चातन और माडन पुरुष जाति के हैं । ये मनुष्यों को तंग करने वाले प्रेत हैं और एक ही श्रेणी के हैं । कुछ लोग इन्हें अपने वश में रखने का दावा करते हैं और उनका कहना है कि वे इनसे घरेलू नौकरों का काम लेते हैं और दूसरों को कष्ट देने के लिए भी इन्हें बाध्य करते हैं । यह केवल लोगों के अंध-विश्वासों का फायदा उठा कर अपना रोब ग़ालिब करना है । जिन घरों में इन प्रेतों का प्रवेश होता है वहाँ का जीवन नरक से भी अधिक कष्टप्रद हो जाता है । चातन कई रूपों में प्रकट होता है । रात्रि में आपकी नींद अजीब प्रकार की आवाज़ों से टूट जाती है । आपको अजीब प्रकार की आग दिखाई देती है परन्तु उसके कारण का पता नहीं लगता । दिया जलाने के लिए जाने पर मालूम होता है कि बत्ती को उसकी जगह से हटा दिया गया है और तेल की जगह किसी ने पानी भर दिया है । आप गाय को दुहने के लिए जाते हैं परन्तु यह जान कर आपको आश्चर्य होता है कि बछड़ा पहले से ही किसी ने छोड़ दिया है और थन ख़ाली और सूखे हैं। आप दूध के बर्त्तन को उठाते हैं परन्तु वह मक्खनवाले दूध से भरा मिलता है । रात में जब आप सोने के लिए जाते हैं तो सारे घड़े पानी से भरे हुए छोड़ कर जाते हैं परन्तु सुबह उठ कर देखते हैं कि वे सब ख़ाली हैं और किसी ने उनको उल्टा रख दिया है । आप क्षण भर के लिए रसोईघर के बाहर जाते हैं परन्तु वापस लौट कर देखते हैं कि आग बुझी पड़ी है, सब कुछ उल्टा-सीधा है—कुर्सियाँ, मेज़, पलंग, पालने सभी उल्टे डाल दिए गए हैं या इधर उधर बिखरे पड़े हैं । मारपीट भी असाधारण बात नहीं है । घर के प्राणियों में से किसी के पत्थर आकर लगते हैं, कोई पीठ पर घूंसे और मुँह पर चपत सहता है । कोई अभागी औरत रात में सोती है तो सुबह उठने पर उसके सिर के बाल साफ़ कटे नज़र आते हैं ।

यह कठिनाई दिनों, सप्ताह और महीनों चलती है। मकान बदलने पर भी उससे कोई लाभ नहीं होता । नए मकान में चातन पीछा नहीं छोड़ता ।

क्या इस मुसीबत का कोई उपाय नहीं है ? क्या इस अदृश्य शत्रु पर किसी प्रकार अधिकार नहीं पाया जा सकता ? परिस्थिति इतनी निराशाजनक नहीं है। केवल थोड़ा धैर्य रखने की आवश्यकता है । थोड़ा सावधान रहिए और चातन को रंगे हाथों पकड़ा जा सकता है ।

बहुत-सी क्रियाओं के तो प्राकृतिक कारण होते हैं। केवल मात्र असावधानी, आलस्य या अंध-विश्वास के कारण हमारा ध्यान उनकी ओर नहीं जाता । उदाहरणतः जो अजीब आवाज़ें सुनाई देती हैं सम्भवतः वह चूहों की हो, खिड़कियों से हवा के कारण पेड़ों के टकराने की आवाज हो अथवा अचानक किसी चीज़ के गिरने से हुई हो यथा छप्पर से ईंट का गिरना अथवा दीवार पर टंगे चित्र का गिरना । हवा के रुख में रहनेवाले मकान—ऐसे मकान जो समुद्र के किनारे या खुले मैदान में हों उनमें छोटे से छोटे छेद या दरार के कारण जब हवा निकलती है तो अजीब प्रकार की आवाज़ होती है । अनजान लोग इन आवाज़ों को भूत-प्रेतों की आवाज़ समझते हैं । चातन के सम्बन्ध में एक विशेषता यह पाई जाती है कि वह ऐसी वस्तुओं को ही इधर उधर

बिखेरता है जो आसानी से पाई जा सकती हैं ! ट्रंक की चीज़ें निकाल कर तितर बितर की जाती हैं क्योंकि चाबी होने पर आसानी से उसका दरवाज़ा खोला जा सकता है परन्तु कोई ऐसी चीज़ जो पहले से कस कर बाँध कर रखी हुई हो इधर उधर नहीं बिखरी मिलती क्योंकि उसे खोलने आदि में समय चाहिए। अवश्य ही अंधविश्वासी कहेगा कि चातन के केवल अँगुलियाँ होती हैं अँगूठे नहीं होते अतः वह बँधी हुई चीज़ों को नहीं खोल सकता।

यूरोप में भी इसी प्रकार की प्रेतात्माएँ पाई जाती हैं। वहाँ एक प्रेत पोलटरजिस्ट कहा जाता है। परन्तु पोलटरजिस्ट चातन की अपेक्षा अधिक सभ्य प्रतीत होता है। वह कूड़े और गलीज़ चीज़ों का प्रयोग करना घृणास्पद समझता है। इससे पता चलता है कि प्रेतात्माओं में भी सभ्यता और संस्कृति के अनुसार अन्तर पाया जाता है, वे भी अपने वातावरण से उसी प्रकार प्रभावित होते हैं जिस प्रकार साधारण मनुष्य। उन पर भी वातावरण का प्रभाव पड़ता है। उनकी रुचि और अरुचि इच्छाएँ और अनिच्छाएँ वैसी ही होती हैं जैसी कि उन लोगों की जिन्हें वे पीड़ा पहुँचाते हैं।

वास्तव में चातन और पोलटरजिस्ट, यदि वास्तव में प्रेतात्माओं के रूप में उनका अस्तित्व हैं तो वे मनुष्यों के द्वारा ही अपना प्रभाव डालते हैं; घर का कोई अत्यन्त जानकार व्यक्ति—नौकर अथवा घर का प्राणी ही उनका जरिया होता है। परम्परा से प्राप्त अंध-विश्वासों को थोड़े समय के लिए भुला दिया जाए और सरलॉक होम्स की तरह सचाई को जानने के लिए प्रयत्न किया जाए तो जिस व्यक्ति पर सन्देह होगा ९० प्रतिशत शैतानी करने वाला वही व्यक्ति है। चातन को कभी आत्महत्या करते हुए नहीं सुना गया। यदि बच्चे को वह कष्ट देता हुआ दिखाई दे तो उस बच्चे की माँ पर निगरानी रखिए ९० प्रतिशत आप सही रास्ते पर हैं।''

॥

उपन्यासकार की कला

अंग्रेज़ी साप्ताहिक "स्वतन्त्र" में श्री मंजेरी एस. ईश्वरन् का 'उपन्यासकार कलाकार के रूप में' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है जिसका निम्न अंश यहाँ दिया जारहा है :

"एक अवस्था ऐसी होती है जब प्रत्येक व्यक्ति कुछ लिखने के लिए अपने हृदय में प्रबल आन्तरिक प्रेरणा का अनुभव करता है। प्रायः किशोरावस्था में किसी प्रिय लेखक के प्रति आकर्षण के कारण अत्यधिक उत्साह से व्यक्ति लिखने के लिए प्रेरित होता है। उम्र के बढ़ने पर बहुत से व्यक्तियों का यह उत्साह समाप्त हो जाता है परन्तु जिन लोगों में यह उत्साह बना रहता है उनके सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि अपने प्रिय लेखक और उनमें एक हार्दिक सम्बन्ध स्थापित हो गया है जो नवसृजन के लिए प्रोत्साहित करता है। कला के रूप में उपन्यास लेखक की विशिष्ठ मानसिक परस्थिति का आकलन होता है। वह विशिष्ठ मानसिक स्थिति ही शैली को जन्म देती है और शैली ही उपन्यासकार के व्यक्तित्व को प्रकट करती है।

परम्परा रूप में उपन्यास लिखनेवाला लेखक अभिव्यक्ति के तत्कालीन साधनों को अपने अनुरूप पाता है परन्तु प्रयोगवादी लेखक के लिए वे साधन अनुपयुक्त होते हैं और वह नए माध्यमों को खोजता है उपन्यास के सभी रूपों में। उपन्यास किसी भी प्रकार का हो ऐतिहासिक, राजनैतिक, दुःखान्त, सुखान्त सभी में उपन्यासकार का अपना व्यक्तित्व प्रकट होना चाहिए। कथा में वर्णित भाव अपने आप में लक्ष्य नहीं होते वे तो लक्ष्य पूर्ति—व्यक्तित्व-प्रकाशन के साधन होते हैं।

कलाकार के रूप में उपन्यासकार कथावस्तु और प्लाट में समन्वय स्थापित करता है। उसके संवाद और वर्णनात्मक अनुच्छेद बिखरे हुए-से नहीं होते। वह अपने चरित्रों में कलात्मक सौन्दर्य ही नहीं लाता वरन् उन्हें नैतिक मान्यता भी प्रदान करता है। ई. एम. फोरेस्टर का कथन है कि मानवीय क्रियाओं को जब हम उनके सामाजिक प्रसंग से अलग कर स्वयं उनके आन्तरिक महत्त्व को पहचानने की दृष्टि से देखना चाहते हैं तो असम्बद्धता और विशृंखलता नज़र आती है।

उपन्यासकार अपने चरित्रों, घटनाओं और वातावरण को वास्तविकता से भी अधिक स्वाभाविक चित्रित करता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक महान् उपन्यासकार की अपनी मौलिक सुगन्ध होती है।

उपन्यास कला के रूप सदैव नए रहते हैं और उन रहस्यों को प्रकट करते हैं जो पेड़ की डाली पर बैठा हुआ पक्षी स्वप्नों के रूप में देख रहा हो अथवा उगते हुए सूर्य को कमल अपनी स्फुट वाणी में कुछ कह रहा हो।''

सम्पादकीय

क्या अंग्रेज़ी हमारी है ?

श्रीयुत कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने पिछले दिनों अपने एक रेडियो के भाषण में अपने देश में अंग्रेज़ी के ज्ञान की आवश्यकता पर बल देने के लिए यह कह डाला कि अंग्रेज़ी हमारी भाषा है । प्रश्न यह है कि हमारे देश में अंग्रेज़ी किन लोगों की अपनी भाषा कही जा सकती है ? सब से पूर्व हमारे देश के एँग्लो-इंडियन लोग अंग्रेज़ी को अपनी भाषा कहेंगे—इसके पश्चात् संभवतः हमारे देश के शासक वर्ग के वे लोग जो अंग्रेज़ों के द्वारा इस देश के राज्यतन्त्र को विदेशियों के लिए चलाते रहे हैं और जिन्हें कि अंग्रेज़ी को सीखने के लिए सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं । इसके पश्चात् संभवतः हमारे देश में अंग्रेज़ी को अपनी भाषा समझनेवालों में वे लोग आएँगे जो इस देश में अंग्रेज़ी के द्वारा वकालत, अध्यापन, लेखन और व्यापार आदि चलाने में सफल हुए हैं और जिन्हें अंग्रेज़ों या अंग्रेज़ी जाननेवाले देशों के द्वारा मान्यता प्राप्त हुई है । हमारे देश के अधिकांश नवयुवक स्कूलों और कालेजों में अंग्रेज़ी का बचपन से लगातार अध्ययन करके भी अंग्रेज़ी को किसी प्रकार अपना नहीं बना सकते । वे इसके पीछे अपने जीवन की कितनी शक्ति लगाते हैं फिर भी उन्हें अंग्रेज़ी पर उस शक्ति के अनुसार कितना अधिकार प्राप्त होता है ? हमारे देश के जिन विद्वानों का अंग्रेज़ी पर अधिकार है उनमें से अधिकांश इस प्रकार के हैं कि वे अंग्रेज़ी में ही एकमात्र अपने विचार अभिव्यक्त कर सकते हैं—वे अपने देश की किसी भी भाषा में समर्थ रीति से अपने विचारों को अभिव्यक्त नहीं कर सकते । कुछ अत्यन्त अल्प इस प्रकार के विचारक या साहित्यकार हैं जो अपने देश की भाषा पर प्रभुत्व रखते हुए अंग्रेज़ी में भी अपने विचारों को उतनी ही सुगमता और समर्थता के साथ प्रकट कर सकते हैं परन्तु इस वर्ग के लोगों के विषय में हमें यह मानना ही पड़ेगा कि वे जिस प्रकार अपनी भाषा के साहित्यकार या लेखक हैं उसी प्रकार अंग्रेज़ी के नहीं और इसलिए वे भी किस प्रकार अंग्रेज़ी को अपनी भाषा कह सकते हैं ?

श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर बंगाली के एक महान् साहित्यकार थे और उनकी पुस्तकों के अंग्रेज़ी में अनुवाद हुए । रवीन्द्रनाथ ठाकुर उन लोगों में से नहीं थे जो बंगाली के सामने अंग्रेज़ी को अपनी समझते यद्यपि उनका अंग्रेज़ी भाषा पर भी असाधारण अधिकार था । उन्हें अंग्रेज़ी "गीतांजली" पर नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ । इतने पर भी उन्होंने तो अंग्रेज़ी को अपनी भाषा नहीं कहा—परन्तु क्या अंग्रेज़ साहित्यकार या आलोचक उन्हें एक महान् कवि और साहित्यकार मानते हुए भी अंग्रेज़ी को उनकी अपनी मातृभाषा समझते हैं ? अंग्रेज़ी के साहित्य के आलोचक श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विषय में जो विचार रखते हैं उनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे अंग्रेज़ी को उनकी भाषा नहीं समझते ।

कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त "कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ लिटरेचर" में एँग्लो-इंडियन अंग्रेज़ी साहित्य की चर्चा करते हुए श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विषय में लिखा गया है : "......But his position in English Literature is less secure for he is a Bengali poet who has translated his verses into English prose......" (पृ. सं. ६१५) "...परन्तु अंग्रेज़ी साहित्य में उनकी स्थिति इतनी दृढ़ नहीं है क्योंकि वे एक बंगाली कवि हैं जिन्होंने अपनी बंगाली कविताओं का अंग्रेज़ी गद्य में अनुवाद किया है ।"

एक दूसरी पुस्तक है "कैसेल्स इन्साइक्लोपीडिया आफ लिटरेचर" । इसमें श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता की प्रशंसा करते हुए उनके अंग्रेज़ी अनुवादों के विषय में लिखा गया है : "... But fully to appreciate him, he must be read in his original Bengali rather than in his banal English versions of his poems......" (पृष्ठ सं. २०३८) "उनकी कविताओं को ठीक तरह समझने के लिए उनकी कविताओं के ग्राम्य अंग्रेज़ी अनुवादों को पढ़ने की अपेक्षा उनको बंगाली में पढ़ना चाहिए...।" जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे महान् साहित्यकार की अंग्रेज़ी के विषय में अंग्रेज़ समालोचक यह कहते हैं तो हमारे देश के अन्य अंग्रेज़ी के लेखक और साहित्यकारों के विषय में उनकी क्या सम्मति हो सकती है—इसकी कल्पना की जा सकती है । किस बूते पर भारतीय लोग अंग्रेज़ी को अपनी भाषा स्वीकार करलें ? क्या इसी आधार पर क्योंकि अपने देश में अंग्रेज़ों के राज्य में हमने अंग्रेज़ी

को सीखा है और जिस प्रकार हम अंग्रेज़ों के शासनकाल में अपने अंग्रेज़ी के ज्ञान के द्वारा अंग्रेज़ों से अपना सम्बन्ध बनाए हुए थे—उसी प्रकार अब भी उन देशों से जिनमें अंग्रेज़ी प्रचलित है अपना सम्बन्ध बनाए रखें ? अंग्रेज़ी का ज्ञान प्राप्त करना और उसको अनिवार्य रूप से पढ़ना एक बात है परन्तु उसको "अपनी भाषा" समझना बिलकुल दूसरी बात है । हमारे देश की अधिकांश जनता अशिक्षित है; वह अपनी मातृभाषा में ही अपने विचारों को ठीक तरह अभिव्यक्त नहीं कर सकती। वह तो किसी भी अवस्था में अंग्रेज़ी को अपनी भाषा के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती । हमें समझ में नहीं आता कि इस जनसत्ता के युग में जनसत्ता के प्रतिनिधि होते हुए श्रीयुत कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी क्यों अपने भाषणों में अंग्रेज़ी के लिए इस प्रकार के स्लोगन बना रहे हैं कि अंग्रेज़ी हमारी भाषा है । यदि अंग्रेज़ों के प्रभुत्वकाल में अंग्रेज़ी हमारी नहीं बन सकी जब कि हमारे देश में अंग्रेज़ी को सब प्रकार की शिक्षा का माध्यम बनाया गया, जब कि उसे हाईकोर्ट की भाषा, सब प्रान्तों में कार्यालयों की भाषा बनाया गया, जब कि शिक्षितों की समस्त प्रकार की उन्नति अंग्रेज़ी के ज्ञान पर ही अवलम्बित थी—तब इस समय जब कि अंग्रेज़ों का युग बीत चुका है' जनसत्तात्मक शासन प्रणाली का अभ्युदय हो चुका है, देश की भाषाएँ ही सब स्थानों पर अपने उचित अधिकार को प्राप्त करती जा रही हैं, शिक्षा का माध्यम परिवर्तित हो रहा है—यह कैसे आशा की जा सकती है कि अंग्रेज़ी हमारी बन सकेगी ।

श्री एम. एन. राय

विगत पच्चीस जनवरी को श्री मानवेन्द्रनाथ राय के निधन से एक महान् विचारक और क्रान्तिकारी के जीवन पर पर्दा पड़ गया है । श्री राय बीसवीं सदी के उन महत्वपूर्ण व्यक्तियों में थे जिनका सम्बन्ध इस युग के इतिहास को प्रभावित करनेवाली घटनाओं से निकटतम था और अब उस वंश-परम्परा के व्यक्ति प्रायः जीवित नहीं रहे हैं ।

६१ वर्ष पूर्व बंगाल के चौबीस परगना ज़िले में अरबलिया गाँव में उस व्यक्ति का जन्म हुआ जिसे आगे चल कर केवल अपने देश के ही नहीं वरन् विदेशों के क्रान्तिकारियों के बीच अग्रणी होना था । बंगाल में वे सशस्त्र क्रान्ति के दिन थे । जब शेष भारत में ब्रिटिश शासन के अत्याचारों के विरोध में केवल प्रस्ताव रखे जा रहे थे उस समय बंगाल में रूस को पराजित करने वाले जापान से प्रेरणा लेकर सशस्त्र क्रान्ति का सूत्रपात किया गया जिसके प्रवर्तक अरविन्द घोष और जितेन्द्रनाथ मुकर्जी थे । केवल बारह वर्ष की अवस्था में राय उस क्रान्तिकारी पार्टी के सदस्य बने । अनेक षडयन्त्रों के अभियोग उन पर लगाए गए, इस उम्र में उनका तूफ़ान की तरह जीवन था । इस बीच प्रथम विश्व-युद्ध की घटना घटित हुई । राय ने स्वतन्त्रता का युद्ध देश के बाहर से छेड़ने की ठानी । प्रथम महायुद्ध एशिया की दृष्टि से एक घरेलू युद्ध था । युद्ध के आरम्भ होने से पूर्व यूरोपीय शक्तियों में एक समझौता हो गया था कि उनके कुछ भी आपसी मतभेद हों परन्तु एशियाई देशों के सम्मुख उन्हें अपनी सम्मिलित शक्ति का प्रयोग करना चाहिए । रूसी-जापानी युद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड और रूस में इस प्रकार की संधि हो गई थी । परन्तु किसी प्रकार जर्मनी की उपेक्षा की गई । फलतः बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मनी ने युद्ध करके यूरोपीय राजनीतिक रंगमंच पर अपना महत्त्व स्थापित करना चाहा । राय ने शत्रु के शत्रु—इंग्लैण्ड के शत्रु जर्मनी को अपना मित्र बना कर देश को विदेशी शासन से मुक्त करने की योजना बनाई । यह योजना विश्व-युद्ध में जर्मनी के हारने और स्वदेश में समुचित संगठन के अभाव में असफल रही । तत्पश्चात् राय अमेरिका में मैक्सिको प्रान्त में पहुँचे जहाँ वे साम्यवादी विचारक बोरोडिन के सम्पर्क में आए । यहाँ उन्होंने मार्क्सवाद का गम्भीर अध्ययन किया । राय ने रूस से बाहर मैक्सिको में सब से पहले कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की । राय की प्राप्तियों से प्रभावित होकर लेलिन ने उन्हें रूसी-क्रान्ति की प्राप्तियों को संगठित करने के लिए आमन्त्रित किया । वे कम्यूनिस्ट इन्टरनेशनल के पूर्वी विभाग के अध्यक्ष बनाए गए । रूसी क्रान्ति के प्रति उनकी सेवाओं के महत्त्व को किसी प्रकार कम करके नहीं देखा जा सकता । १९२७ में चीन में कोमितांग और कम्युनिस्टों के बीच होने वाले संघर्ष के संचालन के लिए उन्हें चीन भेजा गया । वहाँ की क्रान्ति की असफलता का कारण राय की दुर्व्यवस्था को प्रचारित किया गया जब कि विशेषज्ञों की राय में लेलिन की मृत्यु के पश्चात् रूस में स्तालिन का सत्ता-हस्तान्तरित करने का षड्यन्त्र ही रूस के

बाहर के देशों में साम्यवादी क्रान्तियों की असफलता का प्रमुख कारण था । १६२६ में राय ने जर्मनी में फासिस्ट विरोधी मोर्चा बनाने के लिए ज़ोर दिया जब कि वहाँ कम्युनिस्ट हिटलर के उदय में अनिवार्य सहायक बन रहे थे और इसी प्रश्न पर राय को साम्यवादी आन्दोलनों से निकाला गया । राय ने देखा विभिन्न देशों के साम्यवादी दल जन-आन्दोलनों के वास्तविक प्रतीक न रह कर रूस की नीति की मात्र कठपुतलियाँ बन गए हैं । स्टालिन का रूस किसी शक्तिशाली व्यक्तित्व को बर्दाश्त नहीं कर सकता था । राय के लिए अब वहाँ जगह नहीं थी । राय ने स्टालिन को अपने अन्तिम पत्र में यह शब्द लिखे : "मैं इस बात का कदापि अनुमोदन नहीं कर सकता कि बोल्शविक मान्यताओं के कोश में शिष्टता, विश्वास और ईमानदारी को कोई जगह न रहे ।" परन्तु, राय के हृदय में अपनी मातृभूमि की परतन्त्रता की पीड़ा अभी कम नहीं हुई थी । मित्रों के और स्वयं अपनी पत्नी के मना करने पर भी राय भारत लौटे—जहाँ उनके लिए अधिक नहीं तो कम-से-कम कारागार के द्वार खुले थे । सोलह वर्ष तक विदेशों में भटकते रहने के बाद छः वर्ष का कठोर कारावास राय ने सहा । काँग्रेस में रह कर कुछ दिन उन्होंने कार्य किया । परन्तु द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर मतभेद हुआ । राय के अनुसार यह युद्ध जनवाद और अधिनायकवाद में था, किसी प्रकार की शर्त रखे बिना विश्व-सभ्यता को खतरे से बचाने के लिए फासिस्टवाद का विरोध आवश्यक था और उन्होंने बताया कि युद्ध के बाद आर्थिक परिस्थितियाँ ऐसी होंगी कि अंग्रेजों को स्वयं भारत छोड़ कर जाना पड़ेगा क्योंकि उनके साम्राज्यवाद का आधार पूँजी समाप्त हो गई है । अतः अनेक लांछनों को सहते हुए भी उन्होंने युद्ध में मित्र राष्ट्रों का सहयोग दिया और स्वतन्त्रता के लिए देश को तैयार होने के लिए प्रेरित किया । जब राय ने देखा कि स्वतन्त्रता का अर्थ जनता के कष्टों का कम करना सिद्ध नहीं हुआ है तो वे सत्ता को हस्तान्तरित करने की अंधी दौड़ से हट गए । जीवन के अमूल्य अनुभव और गहरे चिन्तन ने उन्हें नवीन दृष्टि प्रदान की । उन्होंने नए दर्शन, जीवन के नए अर्थ को लोगों के सामने रखा और स्वतन्त्र चिन्तकों के मानववादी आन्दोलन का सूत्रपात किया ।

कैसेण्ड्रा को अभिशाप था कि वह जो भविष्यवा करेगी वह सत्य तो होगी परन्तु उस पर कोई विश्वास न करेगा । राय को भारतीय कैसेण्ड्रा कहा गया है । उन्हों जर्मनी में फासिस्ट विरोधी मोर्चे की स्थापना पर ज़ो दिया था जिसके लिए उन्हें कामिन्टर्न से निकाला ग परन्तु छः वर्ष बाद कामिन्टर्न ने उसी नीति को अपनाया। द्वितीय विश्व-युद्ध को राय ने फासिस्ट विरोधी कहा त भारतीय साम्यवादियों ने शोर किया था परन्तु तीन व बाद जैसे अचानक उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ यह 'लोकयुद्ध है । कुछ हो, राय का जीवन एक सच्चे स्वतन्त्रता प्रे का जीवन था । देश की स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने अप सर्वस्व समर्पित किय। । विचारों में उदार होते हुए भ वे कभी अपने आदर्शों से समझौता नहीं कर सकते थे यदि उन्होंने स्टालिन की हाँ में हाँ मिलाई होती तो रूस में बहुत ऊँचे पद पर होते । भारत में सन् ३६ देश के भावी नेता के रूप में वे सम्मानित किए जाते और यदि उन्होंने राष्ट्रीय नेताओं से समझौता कि होता तो भी ऊँची सत्ता पर होते परन्तु यह सब राय के लिए घृणित था । दूसरी ओर वे अपने आदर्शों के लि बड़े से बड़े लांछन सहने के लिए तैयार थे अतः द्विती विश्व-युद्ध में उन्होंने मित्र राष्ट्रों का साथ दिया चा उन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवाद का एजेन्ट करार दिया ग हो । वे स्वतन्त्र चिन्तक थे साथ ही महान् आशावादी थे। यही कारण है ज्ञान के प्रकाश में वे स्वनिर्मित धारणाओं को भी तोड़ कर आगे जा सकते थे औ साम्यवादी सीमाओं को जान कर वे उसे केवल 'पत्थर के देवता' कह कर नहीं रहे वरन् मौलिक दर्शन की उद्भावना की और वह दर्शन भी आध्यात्मवादी प्रत्यावर्त्तन नहीं वरन् मनुष्य की मौलिक शक्तियों में विश्वास प आधारित था ।

स्वतन्त्रता मंजिल नहीं रास्ता है, अपवित्र साधनों से पवित्र लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकती—यह स्वयं उनके जीवन का अनुभव था । अधिनायकवाद के विरुद्ध वे व्यक्ति स्वातन्त्र्य के प्रबल समर्थक थे, बुद्धिवाद में उनका द विश्वास था । राय के जीवन-काल में उनके प्रति मतभेदों की आँधी उठी वह चाहे अभी शान्त न हुई है परन्तु उसके शान्त होने पर निश्चय ही उनके मूल्यवा सिद्धान्तों का समुचित मूल्यांकन होगा जिनकी पूर्ति लिए उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था ।

हिन्दी के उत्तमोत्तम

तथा

उच्च श्रेणी के

सा
हि
त्य

की प्राप्ति के लिए

एकमात्र स्थान

हिन्दी प्रचार सभा

श्रीराम हिन्दी भवन, नामपल्ली, स्टेशन रोड

हैदराबाद-द.

टेलिफ़ोन : २४४० तार : हिन्दी

:: दक्षिण भारत ::

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का

सांस्कृतिक मासिक पत्र

इस पत्र के द्वारा :

- दक्षिण की प्राचीन और आधुनिक संस्कृति सम्बन्धी जानकारी ... ...
- दक्षिण के साहित्य, राजनीति, शिक्षा, कला, रचनात्मक कार्यक्षेत्रों के विवरण और उनके उन्नायकों का परिचय ... ...
- दक्षिण की तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम, और उत्तर के विद्वानों का साहित्य सृजन का परिचय पाइए ...

वार्षिक चन्दा : रु. ६) अर्ध-वार्षिक ३।।)

एक प्रति ०-१०-०

इस पते पर लिखें :

व्यवस्थापक, पत्रिका विभाग
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
त्यागराय नगर, मद्रास १७

तार : फेन्सी पेपर फोन : ७३३२

हर प्रकार के

कागज़, छपाई और स्टेशनरी

सामान

के

थोक व्यापारी

•

गोली ईश्वरय्या

जनरल बाज़ार :: सिकन्दराबाद

एक लाख मुफ़्त

राय बहादुर

कैपटेन भण्डारी, बैरिस्टर

के प्रबन्ध से हमारी एक पुस्तक

'यौवन रक्षा'

बिना मूल्य वितरण की जा रही है; क्योंकि राय बहादुर साहब का यह विश्वास है कि "इस पुस्तक की शिक्षा पर आचरण करने वाले, बिना औषधि, ५५ वर्ष अथवा अधिक आयु तक निश्चय ही पूर्ण युवा और स्वस्थ बने रहेंगे।" मिलने का पता:—

१. कविराज हरनामदास बी० ए० एण्ड सन्ज़, गौरी शंकर मन्दिर, चाँदनी चौक (लाल किले के पास), देहली।

पागलपन चिकित्सा-विज्ञान के लिए एक पहेली है!

मनुष्य जन्मजात पागल नहीं होता

- वस्त्रों और व्यवहारों में अजीबपना
- खोई खोई-सी नज़र, उदासी और निराशा
- स्मरण शक्ति की हीनता, निर्णय शक्ति की कमी
- आत्म-संयम का अभाव, भ्रम, डर और प्रेतबाधा

ये पागल होने के पूर्व-लक्षण हैं।

इन्हें आरंभ में ही
विश्व-विख्यात दवाई "नवरत्न-कल्प" का सेवन कर के नष्ट कर दीजिए।

"नवरत्न कल्प"

(हीरा, मानिक, मोती, नीलम, पुष्पराग तथा अन्य बहुमूल्य नौ रत्नों का यौगिक)

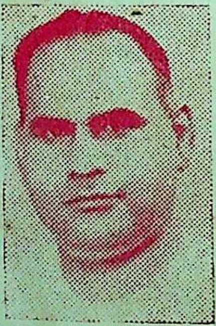

आविष्कर्त्ता
कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति

विवरण के लिए लिखिए :

प्रबन्धक : नवरत्न कल्प फार्मेसी
जलंधर शहर (इंडिया)

फोन :

तार : नवरत्न

अजन्ता

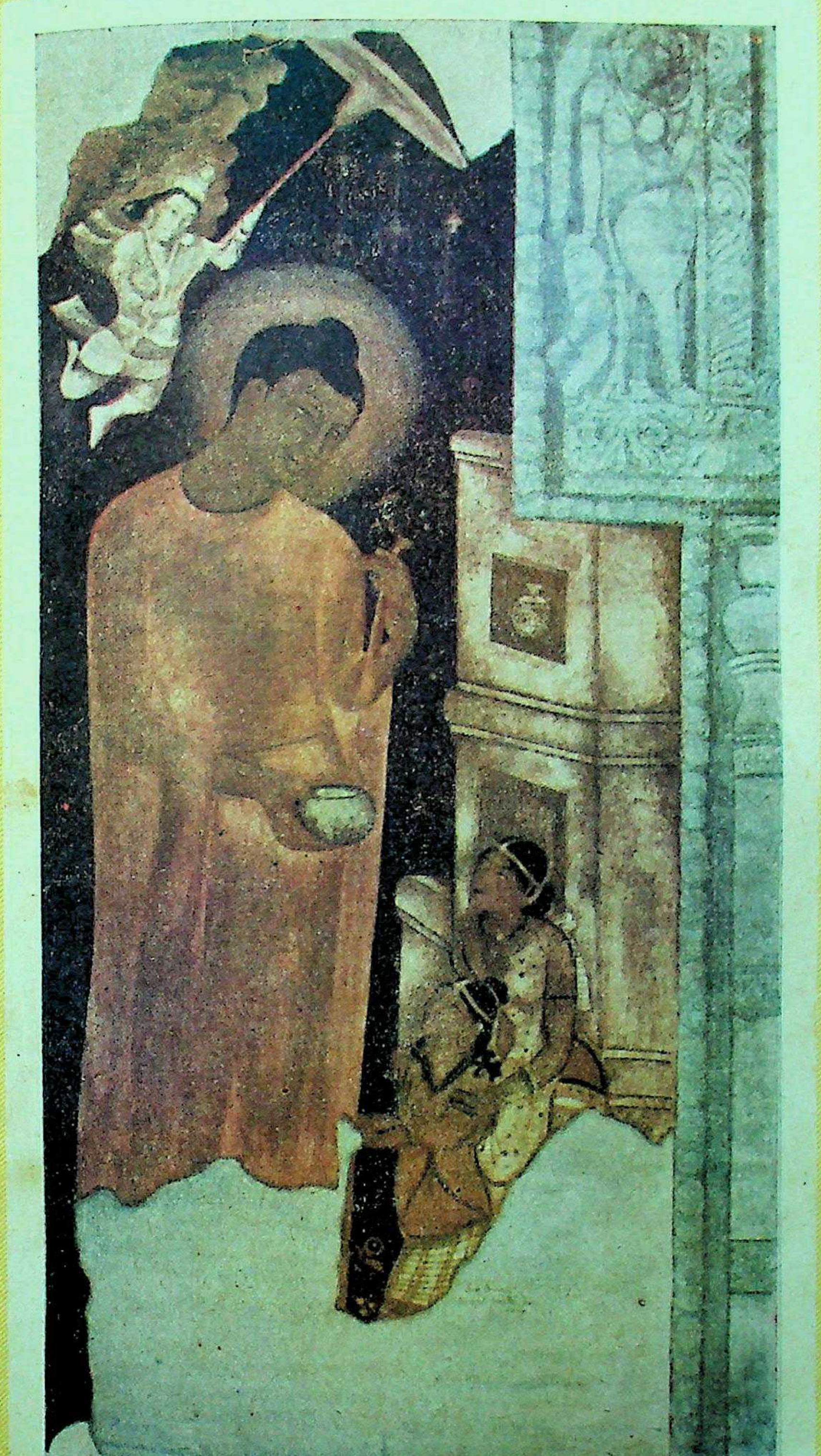

वर्ष ६ अप्रैल १९५४ अंक ४

अजन्ता
की
परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद-

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर
इन्स्टीट्यूट ऑफ एशियन स्टडीज़, हैदराबाद-द.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुकर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल आफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

ताज ग्लास वर्क्स
लिमिटेड
पो० आ० सनतनगर, हैदराबाद-द.

काँच के सामान के सर्वश्रेष्ठ निर्माता

सभी प्रकार की सुन्दर और मज़बूत काँच की बोतलें, ग्लोब
और
ग्लासें प्राप्त करने का स्थान

मकान की सजावट और सौन्दर्य वृद्धि के लिए
सभी प्रकार के काँच का सामान

हैदराबाद आल्विन मेटल वर्क्स

लिमिटेड

सनतनगर, हैदराबाद-द. १८

सर्वोत्तम स्टील फर्निचर के निर्माता

हर प्रकार का फ़र्निचर

मकान, दफ्तर, दूकान और अस्पतालों के लिए

खरीदिए !

राष्ट्र की सुन्दरतम और मज़बूत बसों के निर्माता।

स्वादिष्ट भोजन
और
रहने की उत्तम व्यवस्था के लिए
अवश्य पधारिए

रायल होटल

नामपल्ली, हैदराबाद-द. फोन नं. ५४६२

The Royal Hotel

ESTD. 1929

PHONE • 5462

Nampally, Hyderabad-Dn

Just two minuts's walk from
Railway Station

इसे आप कभी मत भूलिए !

ट्वीड्, गेबरडीन, पनामा, सिल्क शर्टिंग

आदि का हमारा नया स्टाक आपकी
पसन्द की अवश्य ही
पूर्ति करेगा ।

आर. पेण्टोजी
क्लॉथ मर्चेण्ट

पत्थरगट्टी, हैदराबाद (दक्षिण)

●

तार का पता:-'ट्वीड्' फो. नं. ४७६९

तार : गोली पेपर फोन : ७३३२

हर प्रकार के

कागज़, छपाई और स्टेशनरी
सामान
के
थोक व्यापारी

●

गौली ईश्वरय्या

जनरल बाज़ार :: सिकन्दराबाद

आपके कपड़ों की सुरक्षा
के लिए
सुन्दरतम बनियनों
एवं
मज़बूत मोजों
के निर्माता

दी
हैदराबाद फाइन होजरी
लिमिटेड
इण्डस्ट्रियल एरिया
आजमाबाद-हैदराबाद-दक्षिण.

हमेशा याद रक्खें ?
हमारे पास सोने की मोहरें तो नहीं
रबर की सुन्दर
मोहरें तैयार की जाती हैं ।

घर बैठे
आर्डर
भेज कर
सुन्दर
मोहरें
प्राप्त करें ।

सुंदर
रब्बर की मोहरें
हर प्रकार व हर
भाषामें बनाई जाति हैं.
सुलतान बाजार
सन्मुख तार ऑफिस
हैद्राबाद - ९ .

సుందర్
రబ్బరు ముద్రలు
అన్నివిధముల
అన్నిభాషలలో చేయ
బడును సుల్తాన్ బాజారు
తారాఫీసు ఎదుట
హైద్రాబాద్.

Sunder
ALL KINDS OF RUBBER STAMP MAKERS
SULTAN BAZAR opp. TELE OFFICE
HYDERABAD.

'अजन्ता' की पुरानी फाइलें जिल्द बँध कर तैयार हो गई हैं

●

'अजन्ता' का प्रकाशन अक्टोबर १९४९ से आरम्भ हुआ। विगत पाँच वर्षों में 'अजन्ता' ने हिन्दी साहित्य के भण्डार को बहुमूल्य रचनाओं से भरा है। 'अजन्ता' के अङ्क इन वर्षों में हिन्दी साहित्य की प्रगति को जानने के लिए संग्रहणीय हैं।

जिल्द में संगृहीत अङ्कों का वास्तविक मूल्य ही रखा गया है। ज़िल्द और डाक-व्यय मुफ़्त। निजी और सार्वजनिक पुस्तकालय के लिए शीघ्र आर्डर भेजिए।

'अजन्ता', हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली, स्टेशन रोड, :: हैदराबाद-दक्षिण.

स्वादिष्ट शाकाहारी भोजन
और
आधुनिक युग की सुविधाओं के लिए
सुप्रसिद्ध होटल
अपेक्षतया कम दरें

फोन : ४३६० तार : **'माइकेफे'**

न्यू मैसूर केफे

रेस्टूराँ, भोजन और ठहरने का प्रबन्ध
(शहर के बीच में)
नामपल्ली, स्टेशन रोड :: हैदराबाद-दक्षिण.

CHINA NILGIRI'S
Lasa
Special Tea
REGD. TRAD MARK
FINEST QUALITY
Lasa
Special

लासा
स्पेशल
चाय

दी चायना नीलगिरी टी इम्पोरियम
मोज़मजाही मार्केट के सामने
हैदराबाद-दक्षिण.

सिकन्दराबाद में साहित्यिक पुस्तकों
का
एक मात्र प्रतिष्ठान

* **पुस्तक भवन,** *

११३/१ सरोजनी देवी रोड, सिकन्दराबाद
हिन्दी प्रचार सभा, सिकन्दराबाद
नगर शाखा द्वारा स्थापित
सभी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम, पुस्तकालयों के लिए
उत्तमोत्तम ग्रन्थ, और बाल-साहित्य
हमारी विशेषताएँ

❀

निम्न लिखित
प्रकाशकों की पुस्तकें थोक भाव में हमसे लीजिए:-

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

Education
Start - in - Life
Marriage of your children
Assured without any
embarrassment
Besides a comfortable old age
for you
for All Types Of Insurance

Consult:-

THE
HYDERABAD CO-OPERATIVE
INSURANCE SOCIETY Ltd.
Bashir Bagh Road, Hyderabad-Dn.

हमारे सुविख्यात प्रकाशन
स्वामी विवेकानन्दजी की सुप्रसिद्ध पुस्तकें

भारत में विवेकानन्द : जैकेट सहित, सचित्र ५) "आज की परिस्थिति के उपयुक्त राष्ट्र निर्माण संबन्धी वैध एवं ठोस विचारों से भरे, स्वामी जी द्वारा भारत में दिए गए भावयुक्त स्फूर्तिप्रद भाषण"

विवेकानन्द जी के संग में : आकर्षक जैकेट सहित ५।) "स्वामी जी के आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, कला-विषयक तथा भक्ति संबन्धी संभाषणों का रोचक, महान् शिक्षाप्रद तथा पथ प्रदर्शक संग्रह।"

पत्रावली : दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २=) "स्वामी जी के शक्ति सम्पन्न पत्रों का सङ्कलन।"

देववाणी : सचित्र, २=) "अमृततुल्य, आध्यात्मिक अन्तः प्रेरणा से भरे उपदेश।" शक्तिदाई विचार ॥=); भारतीय नारी ॥।); व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १=); मेरे गुरुदेव ॥=); विवेकानन्द जी की कथाएँ १।); कवितावली ॥=)

धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : दो भागों में, सजिल्द, आकर्षक जैकेट सहित, प्रत्येक का २॥।) "धर्म-जीवन की उलझनों का सरस भाषा में सूक्ष्म विवेचन करते हुए उनके परिहार का मार्ग दर्शाया है।"

विवेकानन्द-चरित : हिन्दी में स्वामी जी की एक मात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकट ६)

श्री रामकृष्ण लीलामृत : विस्तृत जीवनी, दो भागों में, महात्मा गांधी की भूमिका सहित, प्रत्येक का ५)

श्रीरामकृष्ण वचनामृत : तीन भागों में, संसार की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित, सजिल्द, जैकेट प्र. भा. ६); द्वि. भा. ६); तृ. भा. ७)

गीतातत्व : स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु भाई स्वामी शारदानन्द कृत, सुन्दर जैकेट सहित, २=)

स्वामीजी की अन्यान्य लोकप्रिय पुस्तकें

ज्ञान योग३); भक्तियोग १।=); राजयोग ॥); कर्मयोग १॥=); प्रेम योग १।=); सरल राजयोग ॥); आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १।); हिन्दू धर्म १॥); धर्म रहस्य १; धर्म विज्ञान १॥=); हिन्दू धर्म के पक्ष में ॥=); शिकागो वक्तृता ॥=); मरणोत्तर जीवन ॥); स्वाधीन भारत जय हो १=); प्राच्य और पाश्चात्य १।); वर्तमान भारत ॥); **नए प्रकाशन :** जाति, संस्कृति और समाजवाद १); चिन्तनीय बातें १); विविध प्रसङ्ग १=)

विस्तृत सूची पत्र के लिए लिखिए : श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली (अ) नागपुर—१ (म० प्र०)

FIRE!

ACCIDENT!

MARINE!

The Hyderabad United Insurance Company;

(*LIMITED*)

Sponsored by

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164.

ABID ROAD, HYDERABAD-Dn.

Telegram: **HUICOL** *Telephone:* **5579**

Chairman
L. N. GUPTA Esq. I. A. S.

General Manager
H. D. MEHTA. Esq.

Branches :

BOMBAY, CALCUTTA, MADRAS, NIZAMABAD & MANCHIRIAL.

"HIND"

सस्ता, सरल, आकर्षक और शिक्षाप्रद

राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

* कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।

* हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।

* देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं: मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत्, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व, आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)-छमाही ३)-एक प्रति ८ आना

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

कथा साहित्य में चरित्र चित्रण
का
महत्वपूर्ण प्रयोग

'मेघदूत' के महत्वपूर्ण प्रकाशन के बाद
प्रेरणा का छठा-सातवाँ अंक

'प्रेमचन्द के पात्र'

विशेषांक है

* इस अंक में प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों के सभी महत्वपूर्ण पात्रों पर अधिकार पूर्ण लेख हैं।

* विशेषांक का मूल्य लगभग ४) है।

* प्रेरणा के स्थाई ग्राहकों के लिए वही मूल्य।

शीघ्र ही वार्षिक ग्राहक बन कर
इस सुविधा का लाभ उठाएँ।
आर्डर 'प्रेरणा' के पते से भेजिये।

प्रेरणा : सोजतीगेट, जोधपुर.

मद्रास बिहार तथा पंजाब सरकार द्वारा
समस्त स्कूल तथा लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत
देशबन्धुः पुस्तकालय मथुरा एवं ब्रज का निराला मासिक पत्र

* प्रधान सं० कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०
* सम्पादक—ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी
* स० सम्पादक—बैजनाथ दाणी

❀ देशबन्धु ❀

वार्षिक मूल्य ४-०-० :: एक प्रति ०-६-०

नमूना के लिए ०-६-० के टिकट भेजें

ब्रज संस्कृति, ब्रज की ललित कलाएँ, स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, रासलीला, रामलीला, भगत ब्रज के लोक गीत, लोक कहानियाँ, वेशभूषा, लोक व्यवहार आदि पर सुन्दर लेख पढ़िए।

पता—व्यवस्थापक "देशबन्धु" कार्यालय
मथुरा (यू० पी०)

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

सम्पादक
श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी. ए.
संचालक-**श्री विश्वेश्वरानन्द,**

विश्व हित की साधना के लिए :
[क] शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
[ख] प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
[ग] बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण,
[घ] अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
[ङ] सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा : ८) रुपए

१०) रु. वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, 'विश्व ज्योति' साधु आश्रम,
होश्यारपुर (पंजाब)

जीवन साहित्य

हिन्दी के उन मासिक पत्रों में से है जो

१. लोक रुचि को नीचे नहीं, ऊपर ले जाते हैं,
२. मानव को मानव से लड़ाते नहीं, मिलाते हैं,
३. सच्ची और स्थायी शान्ति को असंभव नहीं, संभव बनाते हैं,
४. आर्थिक लाभ के आगे झुकते नहीं, सेवा के कठोर पथ पर चलते हैं,

जीवन साहित्य की सात्विक सामग्री को छोटे बड़े, स्त्री-बच्चे सब निःसंकोच पढ़ सकते हैं। उसके विशेषांक तो एक से एक बढ़ कर होते हैं।

जीवन साहित्य विज्ञापन नहीं देता। केवल ग्राहकों के भरोसे चलता है। ऐसे पत्र के ग्राहक बनने का अर्थ होता है राष्ट्र की सेवा में योग देना।

वार्षिक शुल्क के ४) रु. भेज कर ग्राहक बन जाइए।

ग्राहक बनने पर मण्डल की पुस्तकों पर
आपको कमीशन पाने की भी सुविधा हो जाएगी।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

वार्षिक मूल्य ८ रु. **टेलीफोन नं. २५८७३**

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम तथा राष्ट्र-निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए **'सम्पदा'** सबसे उपयोगी पत्र है।

'सम्पदा' के **योजना अंक में** पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा **है वस्त्र उद्योग अंक** मूल्य १।) रु.

अभी से ग्राहक बनिए।

नमूने के लिए ।।।) आने के टिकट भेजिए।

मैनेजर **'सम्पदा'** *अशोक प्रकाशन मन्दिर*
रोशन-आरा रोड—दिल्ली

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र

卐

दर्शन और मनोविज्ञान की
आधुनिक प्रवृत्तियों पर
प्रकाश डालनेवाला
हिन्दी में अपने ढङ्ग का
अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ **सिद्धगिरि, बनारस**

सम्पादक

राष्ट्रभारती

मोहनलाल भट्ट
हृषिकेश शर्मा

सस्ती, सुन्दर, साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका। इस पत्रिका को, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान् साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखा-चित्र और शब्दचित्र। बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, उर्दू, तामिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं।

वार्षिक चन्दा ६) रुपए। नमूने की प्रति १० आने मात्र।

ग्राहक बनाने वालों को विशेष सुविधा दी जाएगी

पता : व्यवस्थापक,
'राष्ट्रभारती' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
पो० हिन्दी नगर, वर्धा (मध्य प्रदेश)

राज्य भर में एकमात्र प्रदर्शन गृह

आधुनिकतम डिजाइनों से युक्त

रेशम : साड़ियाँ : ऊन

और

अनेक आकर्षक विविधताओं से पूर्ण

बूलचन्द अण्ड को०

सिल्क पेलेस

आबिद रोड —❀❀— हैदराबाद-दक्षिण

ईमानदारी सेवा सहानुभूति

औषधि जीवन के लिए वरदान है

मृत्यु पर विजय पानेवाली है

अतः अमृत है

हमेशा याद रक्खें

हर तरह की औषधियाँ प्राप्त करने का

एकमात्र स्थान

अनन्त मेडिकल हाल

केमिस्ट एण्ड ड्रगिस्ट

आक्सफोर्ड स्ट्रीट —❀❀— सिकन्दराबाद

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६ अप्रैल १९५४ अङ्क ४

सम्पादक
वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

प्रबन्ध सम्पादक
हरिकृष्ण पुरोहित एम. ए.

संचालक
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

अनुक्रम

शरत् चाँदनी
आरसीप्रसाद सिंह १
क्या अच्छा ?
जगन्नाथ एम. ए. ३
गीत
नीरज ५
स्वप्न पलते रहे जलता रहा घुल कर मन
उदयशंकर भट्ट ७
हिन्दी गजल
मनोहर 'प्रभाकर' ८
कवि और कविता
हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ९
अंग्रेजी के दिग्भ्रमित 'सप्तकी'
नरेश मेहता एम. ए. १५
भारतीय कला : इतिहास के पृष्ठों में
गौरीशंकर गुप्त १६
१३ वीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रतियाँ
अगरचन्द नाहटा २२
उपहासास्पद क्या है ?
चन्द्रबली पाण्डे २७
जोधराज और उनका 'हम्मीर रासो'
डा. टीकमसिंह तोमर एम. ए., डी. फिल. ३३
वासंती : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु० राधेश्याम पुरोहित ३७
राम काव्य की परम्परा
दुर्गाशंकर मिश्र "पारिजात" साहित्यरत्न ३८
आधुनिक पंजाबी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
कर्त्तारसिंह दुग्गल ४४
लेपाक्षी की कला-संपत्ति
बालशौरि रेड्डी ५१
पूर्वी कहावतें
अनवर आगेवान ५४
खुली खिड़की (कहानी)
मोहनलाल "जिज्ञासु" एम. ए., एल-एल. बी. ५५
कला-चर्चा ६१
विश्वनाथ मुखर्जी
अनिलकुमार
चिट्ठी-पत्री ६३
रमाकान्त श्रीवास्तव, आर. के. मूर्त्ति, शिवपूजन सहाय, मा० देवेगौड़ 'बोम्मरण्णा'
नीर-क्षीर ६६
ज्योति : विद्यावती मिश्र, प्रतीक्षा : विद्यावती मिश्र, चीनी जनता के बीच : डा. जगदीशचन्द्र जैन, श्री रमणवाणी (भाग १-२) : प्रकाशक श्री टी. एन. वेंकटरामन, तत्वबोध : प्रकाशक टी. एन. वेंकटरामन, गंगामैया : भैरवप्रसाद गुप्त, स्वप्न और सत्य : भगवन्त शरण जौहरी, चन्द्र किरणें : चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र'
सामयिक ७२
[१] औसतन अमरीकी
[२] जौनपुर की शर्क़ी वास्तुकला
[३] तोरुदत्त : उन्नीसवीं सदी की भारतीय कोकिल
सम्पादकीय ७८
वंशीधर विद्यालङ्कार

चित्र : गाँव का जीवन, मजदूर
(हैदराबाद आर्टस् सोसायटी के सौजन्य से)
चित्रकार श्री पी. सुब्बाराव, लाल आकाश, कुब्ज, राजदण्ड, व्यवधान, राम-रामी, ओ वह रात्रि
(चित्रकार के सौजन्य से)
लेपाक्षी के मन्दिर में एक मूर्त्ति

वार्षिक मूल्य :— ६) रु०
एक अङ्क का :— १) रु०

आल इण्डिया स्कूल्स ऑफ आर्ट प्रदर्शिनी, १९५

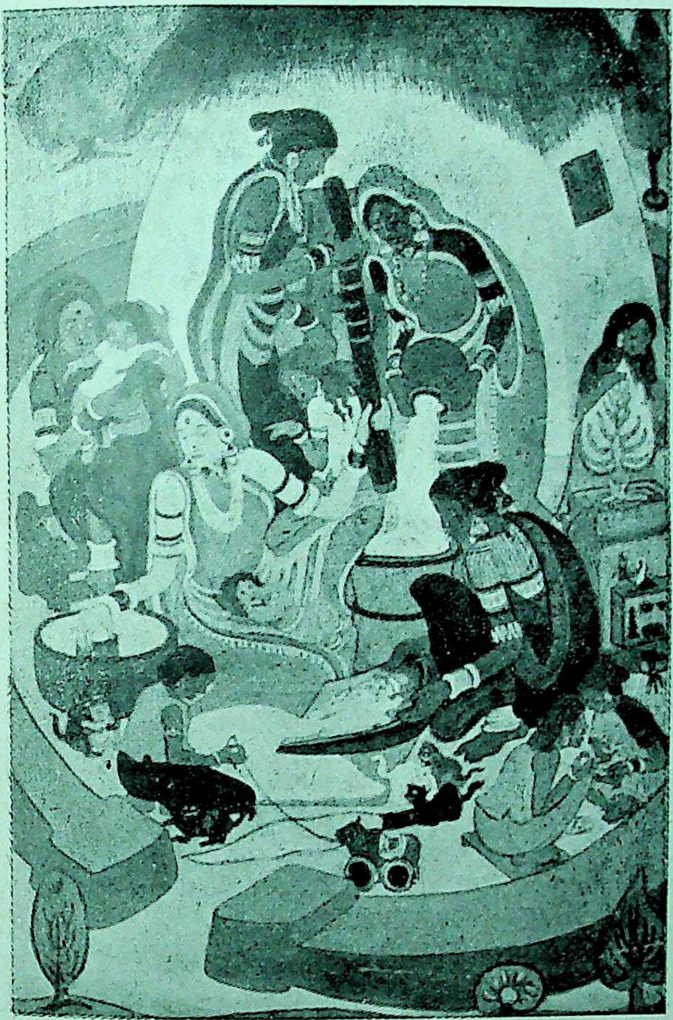

गाँव का जीवन चित्रकार : कुमारी रजनी डोंगरा

(नागपुर स्कूल ऑफ आर्टस्, नागपुर)

हैदराबाद आर्टस् सोसायटी के सौजन्य से

आल इण्डिया स्कूलस् ऑफ आर्ट प्रदर्शिनी १९५४

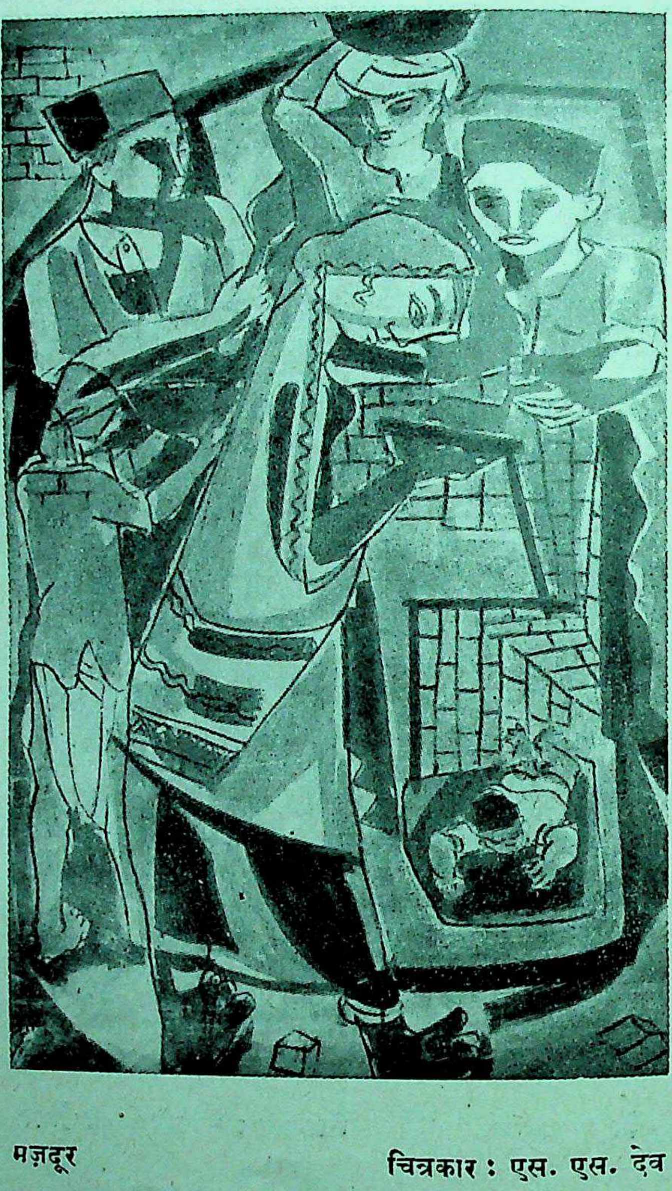

मज़दूर चित्रकार : एस. एस. देव

(ललित कला विभाग, बड़ौदा यूनिवर्सिटी)

हैदराबाद आर्टस् सोसायटी के सौजन्य से

S. NALANDKER

अजन्ता

वर्ष ६ | अप्रैल १९५४ | अङ्क ४

शरत्-चाँदनी

यह शरत् की चाँदनी, यह जगमगाती रात
आज उतरी है धरा पर रूप-रस से स्नात
खिल रहे एकान्त वन में ज्योति-हरसिंगार
आ रहा मर्मर उमड़ता सुरभि-पारावार
एक छवि-हिल्लोल से हैं काँपते तरु-पत्र
दीपमाला-से सुशोभित व्योम के नक्षत्र
मुस्कराता है सरोवर में विमल जलजात
यह शरत् की चाँदनी, यह जगमगाती रात

आज आकुल हो रहे हैं क्यों हठीले प्राण ?
कल्पना के विहग करते हैं विकल-स्वर गान
देखता हूँ मैं, छलकता आ रहा जो छन्द
फूटता जो दिग्दिगन्तर में विकल आनन्द

शस्य के उत्फुल्ल मुख पर रश्मि का संगीत
वायु के मधु स्पर्श में है एक कोमल शीत
आ रहे हैं हर्ष से मादक विभा के बाण
आज आकुल हो रहे हैं क्यों हठीले प्राण ?

क्यों किसी ने आज छेड़ा है हृदय का तार ?
कर उठे शत-शत भ्रमर-दल मर्म में गुँजार
चाहता हूँ, कर उठूँ मैं भी पुलक-झंकार
इस शरत् की चाँदनी से एक क्षण अभिसार
मग्न हो जाऊँ अतल में, उठ रहा जो ज्वार
क्यों किसी पर जागता फिर आ रहा है प्यार ?
खींचता क्यों आज अपनी ओर बारम्बार ?
क्यों किसी ने आज छेड़ा है हृदय का तार ?

यह शरत् की चाँदनी, यह कल्पना रंगीन !
बज रही मेरे हृदय में वेदना की बीन
है समीरण में भरा उल्लास का मकरन्द
किन्तु, मन में मच रहा है एक भीषण द्वन्द्व
है कहाँ वह, देखता था जो शरत्-उल्लास ?
था तरंगित तड़ित्-सा जिसके अधर पर हास
हो गया क्यों आज मानव हाय, इतना दीन ?
यह शरत् की चाँदनी, यह कल्पना रंगीन

उठ रहा इस ओर अनुपम चाँदनी का ज्वार !
आ रहा उस ओर से है एक हाहाकार !
चिर-क्षुधानल-दग्ध, जर्जर नर तृषा-संत्रस्त
और मुझको है बुलाता चाँद नभ से मस्त
कौन सुनता आज स्वप्निल चाँदनी की बात ?
फूल-वन है मौन, पत्थर कर रहा आघात
भावना मूर्च्छित, द्विधा से ग्रस्त है संसार
उठ रहा इस ओर अनुपम चाँदनी का ज्वार

पो० बा० २७,
पटना—१

—आरसीप्रसाद

१६५४

क्या अच्छा ?

बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

अपना तम तज कर परद्युति से जो लेने जाता नवजीवन
वह परवानों-सा दीपक से करता है घातक आलिंगन
बहिरंग तरंगों से अच्छा अपने आसू का जल विहार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

पथ सजा हुआ, रथ सजा हुआ, जयमाला जयध्वनि सुमन वृष्टि
रंगीन मंच, रंगीन शब्द, पर नहीं प्रेम की कहीं सृष्टि
स्वागत विडम्बना से अच्छा खुल कर कर देना तिरस्कार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

बन में कितना उलझाव मगर उपवन के सुलझे वृक्ष दास
उपवन में माली का विकास बन में हरियाली का विकास
परशासन के दुख से अच्छा अपने शासन का दुःखभार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

आगे होने को आवश्यक हैं नहीं तीव्रगामी वाहन
जब परिक्रमा में अग्रणीय निकला गणेश का लघु वाहन
रत्नाकर-मन्थन से अच्छा अपनी सीमाओं पर विचार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

ईर्ष्यालु शूल, क्रोधी झँझा, लोभी माली, कामी अलिगण
इन सब का जो सहले प्रहार उस सहन शक्ति का नाम सुमन
जग परित्याग से तो अच्छा सहना जगती का अनाचार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

विस्तृत से विस्तृत धारा के स्रोतों का गुरु आकार नहीं
हर स्रोत के लिए आवश्यक निर्मलता है, विस्तार नहीं

जग के सुधार से तो अच्छा पहले अपना अपना सुधार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

गन्दे जल का भी मीन नहीं सह पाती है जल का वियोग
निर्मल विचारधारा वालों को सह्य विरह का राजरोग
विभु विश्व प्रेम से तो अच्छा संकुचित मोह का ठोस प्यार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

आसानी में भी कठिनाई, कठिनाई में भी आसानी
दुर्गम चढ़ाव में नहीं किन्तु गिरते उतार में हैं प्राणी
अनुकूल हवाओं से अच्छी तट प्राप्ति हेतु उलटी बयार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

परधर्मयुक्त अरुणोदय से अपने सुधर्म की रात बड़ी
हर समय ज्ञान की चर्चा से है सीधी सादी बात भली
शिक्षित वर्गों से तो अच्छा अपना भोला भाला गँवार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

संख्या के बल पर जीतों से हैं स्वावलम्बिनी हार बड़ी
जैसे बलयुक्त प्रभंजन से है शीतल मन्द बयार बड़ी
कल्पित आधारों से अच्छा, हो जाना अशरण निराधार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

इस ओर रेत उस ओर रेत में बहती धारा के समान
विस्तृत अतीत विस्तृत भविष्य से परिमंडित लघु वर्त्तमान
गुण दोष विवेचन से अच्छी, विश्वास सरल की सरस धार
बाहरी प्रकाशों से अच्छा, अपने अन्तर का अन्धकार !

२५ रामतीर्थनगर,
लखनऊ, पोस्ट बॉक्स १२

—आगा

१९५४

गीत

जिन मुश्किलों में मुस्कराना हो मना
उन मुश्किलों में मुस्कराना धर्म है

जिस वक्त जीना ग़ैर-मुमकिन-सा लगे
उस वक्त जीना फ़र्ज़ है इन्सान का
लाज़िम लहर के साथ है तब खेलना
जब हो समुन्दर पर नशा तूफ़ान का
जिस हवा का दीपक बुझाना ध्येय हो
उस हवा में दीपक जलाना धर्म है
जिन मुश्किलों में मुस्कराना हो मना
उन मुश्किलों में मुस्कराना धर्म है

हो ही नहीं मंज़िल कहीं जिस राह की
उस राह चलना चाहिए संसार को
जिस दर्द से सारी उमर रोते कटे
वह दर्द पाना है ज़रूरी प्यार को
जिस चाह का हस्ती मिटाना नाम है
उस चाह पर हस्ती मिटाना धर्म है
जिन मुश्किलों में मुस्कराना हो मना
उन मुश्किलों में मुस्कराना धर्म है

आदत पड़ी हो भूल जाने की जिसे
हर दम उसी का नाम हो हर साँस पर
उसकी ख़बर में ही सफ़र सारा कटे
जो हर समय हो हर नज़र से बेख़बर
जिस आँख का आँखें चुराना काम हो
उस आँख से आँखें मिलाना धर्म है
जिन मुश्किलों में मुस्कराना हो मना
उन मुश्किलों में मुस्कराना धर्म है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kāngri Collection, Haridwar

तलवार सीने पर तनी हो जिस समय
उस समय ही सर को उठाना चाहिए
जिस वक्त शूली जागने पर हो लगी
उस वक्त ही सब को जगाना चाहिए
जब गीत गाना गुनगुनाना जुर्म हो
तब गीत गाना गुनगुनाना धर्म है
जिन मुश्किलों में मुस्कराना हो मना
उन मुश्किलों में मुस्कराना धर्म है

जब हाथ से टूटे न अपनी हथकड़ी
तब माँग लो ताक़त स्वयं जंजीर से
जिस दम न थमती हो नयन-सावन-झड़ी
उस दम हँसी ले लो किसी तस्वीर से
जिस हाल में बेहोश हो सारी ज़मी
उस हाल में ही होश आना धर्म है
जिन मुश्किलों में मुस्कराना हो मना
उन मुश्किलों में मुस्कराना धर्म है

अधिकार जब अधिकार पर शासन करे
तब छीनना अधिकार ही कर्त्तव्य है
संहार ही हो जब सृजन के नाम पर
तब सृजन का संहार ही भवितव्य है
बस गर्ज़ यह गिरते हुए इन्सान को
हर तरह, हर विधि से उठाना धर्म है
जिन मुश्किलों में मुस्कराना हो मना
उन मुश्किलों में मुस्कराना धर्म है

१०६/१६, नेहरू नगर
कानपुर

—नीरज

स्वप्न पलते रहे जलता रहा घुल कर मन

मिलन की भीगी घटाओं में उठे उन्माद
लगी लहराने समीरण पर तुम्हारी याद
मुस्कराई फूल की रंगीनियाँ हर ओर
लगी गाने साँस की चिड़ियाँ नशे में भोर
देखता मैं रहा लट में बादलों की आग
बिजलियों की परी छूती प्राण स्वर्ग सुहाग
गीत गाता रहा स्वर थे किन्तु भीगे घन
स्वप्न पलते रहे जलता रहा घुल कर मन

आँसुओं से धुले मेरे स्वप्न के शृंगार
सुरभि ने छवि में डुबो जिनको किया साकार
एक स्मय पर सहस्रों यौवन जगे सोल्लास
स्वर लहर में तरंगित कल्लोलिनी की प्यास
छवि उदधि की बूंद में मधुमास शत छलके
और आँखों में हँसे इतिहास पल पल के
जलन बढ़ती रही खिलता रहा पागल मन
स्वप्न पलते रहे जलता रहा घुल कर मन

सान्ध्य वीणा में निशा की रागिनी बोली
ज्योत्स्ना में स्वप्न की अनुरागिनी बोली
दीप में आशा जगी उल्लास इतराया
स्वर्ग के आकाश में खग्रास की छाया
और प्राणों के गगन में तिमिर स्तर की धूल
भर गई मृदु कल्पना के कंठ में आमूल
बिजलियाँ छलती रहीं गलता रहा यौवन
स्वप्न पलते रहे जलता रहा घुल कर मन

आल इण्डिया रेडियो,
दिल्ली

—उदयशंकर भट्ट

हिन्दी ग़ज़ल

नहीं गाता स्वयं हूँ मैं हृदय का दर्द गाता है
कि कोई और है जो गीत के मोती लुटाता है

मुखर मेरे स्वरों में उस हृदय की रागिनी मधुरिम
अभावों के बिना जो ज़िन्दगी निस्सार पाता है

गला हो आँसुओं में जो पला हो पीर में पल-पल
नशीले प्रणय-गीतों की वही तो थाह पाता है

व्यथा की रश्मियों से जब कि जीवन-मरु झुलसता है
तुम्हारा रूप मस्ती की मदिर सरिता बहाता है

तिमिर दुर्भाग्य का जीवन-क्षितिज पर जब कि घिरता है
तुम्हारे साथ का सौभाग्य-शशि तब मुसकराता है

न आए स्वप्न तक में तुम कभी इस देह से मुझ तक
यही है दिल तुम्हारा जो कि दिल के पास आता है

—मनोहर प्रभाकर

'अमर ज्योति'
जयपुर . . .

कवि और कविता

[१]

उस्मानिया विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो और स्नातको,*

प्रायः अर्द्ध शताब्दी से कुछ समय पूर्व इस महान् नगर में जब मेरा जन्म हुआ उस समय मुझे यह कल्पना नहीं थी कि आपके विश्वविद्यालय के तत्वाधान में आज आपके सम्मुख खड़े हो कर मुझे "कवि और कविता" विषय पर भाषण देना होगा। आरम्भ में ही मैं हैदराबाद के प्राकृतिक सौन्दर्य और वैसी ही सुन्दर यहाँ की संस्कृति के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करना चाहता हूँ जो कविता के प्रति, मेरे प्रेम और सौन्दर्य-शास्त्र के प्रति, मेरे लगाव के मुख्य कारण रहे हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य, उत्सवों और प्रेम-भावना, भावुकता एवं विद्वत्ता से पूर्ण वह संस्कृति मेरे मस्तिष्क को एक कवि का मस्तिष्क बनाने में अत्यन्त सहायक रही है। जब मैं पीछे अपने बचपन की ओर देखता हूँ और उन सुनहले दिनों की याद करता हूँ—जब जातियों और धर्मों के बीच पारस्परिक सहिष्णुता थी, जब सुख-समृद्धि के दिन थे और लोभ, चोरबाज़ारी तथा चरमराते हुए आर्थिक ढाँचे से लोग अभी अपरिचित थे तो मैं अनुभव करता हूँ कि उस समय भी सौन्दर्य के मूल्यों के प्रति मेरी कल्पना सजग थी। उस छोटी उम्र में भी इन्द्रधनुषों और चट्टानों, रहस्यमय जंगलों और आकाश को देख कर मेरे हृदय में धड़कन पैदा होती थी। मुझे वे जादू की कहानियाँ भी स्मरण आती हैं जो कि हमें एक मुसल्मान महिला सुनाया करती थी। यह महिला सप्ताह या पखवाड़े भी हमारे यहाँ रह जाया करती थी और हम उसे 'पीरानी खाला' कहा करते थे। वे कहानियाँ जो हमेशा संध्या में दीपक जलाने के बाद हम सुनते थे मेरे काल्पनिक अनुभव की अमूल्य निधि थीं। आठ वर्ष की उम्र में मैंने पद्य लिखना आरम्भ कर दिया था। मैं अपने हृदय में गीतों का उल्लास या लय लेकर पैदा हुआ था जैसे कि सभी बच्चे पैदा होते हैं या होने चाहिएँ। परन्तु अधिकांश बच्चों के विपरीत मुझे भाग्य से ऐसे माता-पिता मिले जिन्होंने मेरे तुकबन्दी के प्रयत्नों को चाहे वे कैसे ही बचकाने या मूर्खतापूर्ण क्यों न रहे हों बहुमूल्य और प्रोत्साहन देने के योग्य समझा।

लय का जन्म सृष्टि के साथ ही हुआ। मानवीय सृष्टि के आरम्भ से पहले भी ब्रह्माण्ड पानी की तरंगों और गोलकों के नृत्य से गर्भित था। सृष्टि पर मनुष्य के आगमन के पश्चात् एक नया लय और उसकी अभिव्यक्ति का एक नया प्रकार दिखाई दिया। एक दृष्टि से और केवल उस दृष्टि से ही वह नया था क्योंकि मनुष्य के अन्तर का लय सृष्टि के विशालतर लय में सम्मिलित है तथा किसी रहस्यपूर्ण तरीके से उससे सम्बन्धित है। जड़ प्रकृति के विपरीत जो कि आकस्मिक घटनाओं से पूर्ण है, मनुष्य के अन्तर की समस्वरता समय और मानव-मस्तिष्क के विकास की प्रक्रिया में ढल कर विशिष्ट और नियमानुकूल बन गई है। अपने व्यापक अर्थ में लय की परिभाषा "संग्रथित क्रम से स्वर की तीव्रता और काल व्यवधान-द्वारा ध्वनियों की शृंखला से निर्मित आकृतियाँ" हो सकती है। प्रारम्भिक अवस्था में वह अनुकरणात्मक भी हो सकती है। अन्य पशुओं के समान ही मनुष्य में भी लय की भावना पाई जाती थी; यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि लय का सम्बन्ध हृदय की धड़कनों से है। इस दृष्टि से प्रकृति के चेतन स्वरूपों में समस्वरता का जैविक तथ्य के रूप में आरम्भ हुआ।

शताब्दियों की शिक्षा से मस्तिष्क के कुशल होने से क्रमशः मनोमय स्वरैक्य का अविर्भाव हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से लय का सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से मनुष्य द्वारा प्रयोग में लाए जानेवाले औज़ारों से जोड़ा जा सकता है जिससे कि मनुष्य और अन्य पशुओं के बीच एक विभाजक रेखा खींची जा सकती है। किसी परिश्रम का कार्य करते हुए यथा—भारी पत्थरों को उठाते हुए या धान के बोरे उठाते समय किसने मानवीय आवाज़ को सरस लय में प्रकट होते नहीं सुना है? वैज्ञानिक विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्रत्येक शारीरिक परिश्रम की अधिकता पर मनुष्य क्षण भर सुस्ताने के लिए भीतर साँस खींचता है जो उपजिह्वा के बन्द होने पर भीतर रहती है, परिश्रम के बाद जैसे ही वह सुस्ताता है रुकी हुई हवा के प्रवाह से उपजिह्वा खुल पड़ती है और वह हवा ध्वनि की शिराओं को प्रकम्पित करती है

---

*उस्मानिया विश्व-विद्यालय के तत्वाधान में पढ़ा गया अभिभाषण

जिससे कि कार्य की गति के साथ निरन्तर लययुक्त ध्वनि निकलती रहती है। यहाँ मैं आपका ध्यान अपनी एक कविता 'जहाज का मजदूर' (Dock Worker) की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ।

प्रत्येक देश में जहाँ इस पृथ्वी पर मनुष्य खेतों में काम करते हैं या चक्की चलाते हैं; मनुष्य जो भारी गाड़ियाँ या नावें खींचते हैं; नाविक जो नदी या समुद्र के गतिमान पानी को हटाने के लिए भारी डाँड़ें चलाते हैं वे सब गीतों की रचना करते हैं और उनके ये गीत उनके श्रम के भार को हल्का करते हैं। आधुनिक मशीनों के काम में लाए जाने से, जो स्वयं अपने विशेष ढंग से लययुक्त होती ही हैं—उनकी झनझनाहट, खड़खड़ाहट और धमाके से भी विशेष लय उत्पन्न होती है—परन्तु, उसके पश्चात् मानवीय श्रम के साथ उत्पन्न होनेवाले गीत समाप्त हो गए और कहीं खो गए हैं। इन गीतों में लय के साथ श्रम को हल्का करने की शक्ति होने के कारण सामान्य लोगों में उनकी रहस्यमय शक्ति के प्रति विश्वास जागृत होने लगा। अतः बहुत प्राचीन समय से लययुक्त ध्वनियों के जादुई तत्व के प्रति लोगों का विश्वास रहा है। यह विश्वास केवल सामान्य लोगों तक ही सीमित नहीं रहा वरन् उच्च श्रेणी के लोगों यथा पुजारी और पंडितों ने भी, जैसा कि हम सभी जानते हैं, सुन्दर शब्दाकृतियों के विशिष्ट ध्वनि-संयोजनों की संरचना की जो मनुष्यों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के लिए पर्याप्त थे और उन्हें मन्त्र या जादुई गीत कहा गया। इन मन्त्रों के रचयिता उच्च कुलोत्पन्न कवि-ऋषि होते थे: ऐसे व्यक्ति जिनके लिए एक शब्द का अर्थ प्रकम्पन और ध्वनि से युक्त सम्पूर्ण विश्व था और जिसे सही रूप में समझने पर सृष्टि के मूल में छुपे हुए अदृश्य रहस्य को समझा जा सकता था। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि महान् कविता जादू-सा प्रभाव डालनेवाली होती है और सभी महान् कविताएँ श्रोता या पाठक में कुछ ऐसी बात जगाती हैं जो कि स्वयं शब्दों की शक्ति और प्रक्रिया से परे होती है। एक महाकवि के हाथों में शब्द वे संकेत होते हैं जो कि मस्तिष्क को शाश्वत सौन्दर्य के मार्ग पर गतिशील करते हैं। जब वे ऐसा नहीं कर पाते तो मेरी दृष्टि में वह साहित्य महान् और शाश्वत बनने में असफल होता है।

बच्चों के लिए बाल-तुकें जादुई प्रभाव डालनेवाली होती हैं और वे उसके छोटे-से कल्पनाशील मन को परी-लोक में विचरण करने के लिए प्रेरित करती हैं। उस उम्र से पहले ही जब वह इन बाल-तुकों को सीखता या बोलने लगता है वह लय के जादू का अनुभव करता है। अपने दादा के घुटने पर बैठे हुए उसके हिलने के साथ वह स्वयं स्वेच्छापूर्वक हिलने लगता है और ऐसा करते हुए वह कल्पना करता है कि मानो वह वास्तव में घोड़े पर बैठे हुए है जो कि उसे अभी सप्त समुद्रों, सप्त झरनों और सप्त रंगीन इन्द्र-धनुषों के पार ले जाने को है। संसार में ऐसा कौन-सा बच्चा है जो टिन के डिब्बे को पुरानी लकड़ी से पीटने के लिए नहीं उत्सुक होता! अवश्य, तथाकथित बड़े लोग अपनी अधिकारपूर्ण आवाज से बच्चे को शोरगुल न करने के लिए आज्ञा देते हैं परन्तु वे इस बात का अनुभव नहीं करते कि यह केवल मात्र शोर नहीं है वरन् ऐसा शोर है जिसका बालक के मस्तिष्क में निरन्तर समस्वरता प्राप्त करने के लिए स्वाभाविक उद्रेक होता है; जिसे वह अपनी पूर्ण शक्ति से बिना किसी विकृति के प्रकट करने का प्रयत्न करता है। हममें से कौन ऐसा है जिसने अपने बचपन से किशोर होने तक रेल-यात्रा करते समय रेल के पहियों की आवाज से अपने मस्तिष्क के लय को सम्बन्धित नहीं किया। अस्तु, लय सभी के जीवन का केन्द्र बिन्दु है जिसे पुनः इस तर्क से सिद्ध किया जा सकता है कि एक के बाद दूसरी साँस लेने में एक निश्चित समय लगता है और जब इस अन्तराल की एकरूपता नष्ट हो जाती है तो मनुष्य अस्वस्थ हो जाता है।

छापेखानों के आविष्कार के पहले मनुष्य को अपनी स्मृति पर अधिक भरोसा करना पड़ता था। प्राचीन कवियों की रचनाओं के हजारों प्रतियों के संस्करण प्रकाशित नहीं होते थे जिन्हें कि एकान्त में बैठ कर पाठक पढ़ते हों; कवियों को केवल अपनी स्मृति पर और उन श्रोताओं की स्मृति पर जो कविताओं को सुन कर एक वंश के बाद दूसरे वंश के लोगों को ये कविताएँ पहुँचाते थे भरोसा करना पड़ता था। कवि लिखने नहीं बैठता था। जब उसके हृदय में भावोद्रेक होता वह जनता के सामने आ कर रंगमंच पर खड़ा हो जाता या बैठ जाता और काव्य-गायन करने लगता। वह सच्चे अर्थ में जनता का कवि था और जनता उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी; इसलिए नहीं क्योंकि यह कोई अलौकिक बात थी वरन् अपने

आसपास के लोगों के भावों और विचारों को अधिक बल के साथ प्रकट करने की उसमें शक्ति थी। कुछ हो, किसी भी देश की जनता काव्यानुभूति और यहाँ तक कि काव्य-भाषा के भी अधिक निकट होती है जिसकी व्यक्ति-प्रधान समाज में शब्दों के व्यक्तिगत निर्माता से अपेक्षा नहीं की जा सकती।

होमर जन-कवि था। उसने अपने काव्य-गायन का वर्णन लिखा है तथा काव्य-गायन का जो प्रभाव स्वयं उस पर और उसके श्रोताओं पर पड़ता था उसकी भी उसने चर्चा की है : "जब मैं कोई करुण कथा कहता हूँ तो मेरी आँखों में आँसू भर आते हैं, भयंकर या आश्चर्यपूर्ण घटना का वर्णन करते हुए मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं और हृदय धड़कने लगता है एवं जब कभी रंगमंच से मैं अपने दर्शकों की ओर देखता हूँ तो वे मुझे रोते हुए दिखाई देते हैं और उनकी आँखों से भयंकरता झाँकती दिखाई देती है; जिन शब्दों को वे सुनते हैं ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनमें वे खो गए हैं।" रडलोव ने जनकवि खिरगिज़ के सम्बन्ध में जो लिखा उससे उपरोक्त वर्णन की आश्चर्यजनक साम्यता है; ऐसा ही वर्णन कज़्ज़ाक के प्रसिद्ध कवि जम्बुल का मिलता है। जम्बुल का जन्म १८४८ में हुआ था और एक शताब्दी तक वह जीवित रहा। उसने साम्राज्यों को उठते और गिरते हुए देखा और जब कज़ाकिस्तान गणराज्य बना उस समय उसने अपनी लोक-प्रेरणा को नवीन परिस्थितियों के अनुकूल अभिव्यक्त किया और उसने स्वतन्त्रता के महान् गीत और कविताएँ गाईं जिनकी शैली और दृष्टिकोण में उसकी जातीय शक्ति और सचाई प्रकट हुई।

प्रत्येक देश की जनता अगणित सम्भावनाओं की स्रोत होती है; परन्तु पूँजीवादी देशों में ये सम्भावनाएँ बहुत कम प्रकट होती हैं। प्रतिभाशाली व्यक्ति वास्तव में जिन्हें हम जानते हैं उनसे संख्या में अधिक होते हैं और अनेक तो अनुचित श्रम और शोषण के भार से दब कर नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार का अनुचित श्रम और शोषण पूँजीवादी व्यवस्था का अनिवार्य तथ्य है क्योंकि पूँजीवाद व्यक्तियों को वर्गों में विभाजित करता है और एक ऐसे सामाजिक ढाँचे को निर्मित करता है जिसमें केवल कुछ ही लोगों को अवसर मिल सकता है जो इस संरचना को निर्मित करने में सहायक हों। आज उन देशों में जहाँ वास्तविक जनतन्त्र है कलाकारों की बाढ़-सी दिखाई देती है : सृष्टाओं की जो साहित्य और जीवन को गति देते हैं, जो रंग, प्रस्तर, अनुभव और शब्दों से निर्माण करते हैं। कला-निर्माण के क्षेत्र में कलाकार सदैव अपने देश की सबसे महान् और सबसे महत्त्वपूर्ण सन्तान थे और रहेंगे। वे अन्य लोगों की अपेक्षा अपने देश के उत्कट प्रेमी और अधिक उत्साही होते हैं। एक कलाकार, निर्माता या कवि निस्सन्देह किसी भी अन्य व्यक्ति से इस बात को अधिक सच्चाई के साथ जानता है कि संस्कृति और कला बिना राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के जीवित नहीं रह सकतीं और जहाँ कला और संस्कृति नहीं है वहाँ जीवन भी नहीं है। बिना तीव्रभेदी दृष्टि के लोगों का जीवन अंधकारमय हो जाता है और इस मूल्यवान दृष्टि और स्थायी सम्पत्ति को कवि परम्परा और पुरातनता से प्राप्त करता है। कलाकार इस तथ्य के प्रति सचेत होता है कि स्वतन्त्रता के बिना कला और संस्कृति जीवित नहीं रह सकती अतः स्वभावतया वह देश के दुर्भाग्य की अवस्था में उसकी स्वतन्त्रता के लिए संघर्षशील होता है। उस समय कवि की लेखनी तलवार के रूप में बदल जाती है; संकटकाल में वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति अन्याय, असमानता और गुलामी के विरुद्ध लगा देता है फिर चाहे यह दशा विदेशी शासन या स्वयं अपने देश के लोगों के शासन के कारण उपस्थित हुई हो और उसके देश की जनता की आवाज़ को कुचला जा रहा हो। ईश्वर के गुण गानेवाला कवि जनता का नेता बन जाता है और कविता और युद्ध के बीच कोई अन्तर नहीं रहता। इस प्रकार के ऐतिहासिक कालों में अपना नमक अदा करनेवाले कवियों ने अत्यन्त उद्बोधक गीत और राजनैतिक और क्रान्तिकारी आन्दोलनों को प्रेरित करनेवाली कविताएँ लिखी हैं; वे गीत और कविताएँ जिनका प्रत्येक शब्द आग है, जिसकी ध्वनि और अर्थ में विजय सन्निहित है। स्वयं हमारे देश के महाकवि रवीन्द्रनाथ ने विशेषकर बंगाल के और सामान्यतया भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन से प्रेरित होकर क्रान्तिकारी कविताएँ लिखी हैं। उदाहरण के लिए बंगाल के विभाजन के समय के उनके गीतों को (बीसवीं सदी के साहित्य के इतिहास में) अत्यन्त शक्तिशाली और हृदय-उद्बोधक गीतों की सूची में रखना होगा। जंगखोर जापानी कवि योन नोगुची और कुमारी राथबोन को उन्होंने जो शक्तिशाली और प्रेरणादायक पत्र लिखे वे भी उनके उत्कट देश-प्रेम के अमिट उदाहरण हैं,

और जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के तत्काल पश्चात् उन्होंने अंग्रेज़ी सल्तनत को जो महान् ऐतिहासिक पत्र लिखा वह एक प्रामाणिक कवि की आत्मा का ज्वलन्त प्रतीक है। महान् कवि (और अपेक्षाकृत सामान्य कवि भी) देश के संकट-काल में कभी शान्त नहीं बैठते। शैली की प्रसिद्ध कविता 'इंग्लैण्ड के लोग' (Men of England) उसके देशवासियों के जीवन का इतिहास बनाने वाली सिद्ध हुई :

"इंग्लैण्ड के लोगो किनके लिए हल जोतते हो
क्या उन सामन्तों के लिए जिन्होंने तुम्हें नीचे गिराया है ?
किनके लिए इतने श्रम और सावधानी से बुन रहे हो
क्या इसलिए कि आततायी भड़कीले वस्त्र पहनें ?
किसको खिलाते पहिनाते और किसके लिए बचाते हो
पालने से कब्र के लम्बे जीवन भर
उन कृतघ्न बड़े मक्खों के लिए जो तुम्हारे
पसीने को बहाते हैं—नहीं, पीते हैं उष्ण रक्त ?
किसके लिए ओ इंग्लैण्ड की मधु-मक्खियो
शस्त्र, जंजीरें और कोड़ों का उत्पादन
क्या इसलिए कि मर्म भेदक ये मधु-मक्खे
तुम्हारे श्रम से दबाव डाल कर पैदा की हुई
वस्तुओं से सुख और विलास करें
बोओ, पर किसी आततायी को फसल मत काटने दो
धन कमाओ, पर सावधान! कोई लुटेरा उसे न ले जाए
कपड़े बुनो पर किसी आलसी के पहिनने को नहीं
शस्त्रास्त्र बनाओ पर स्वयं अपनी रक्षा के लिए"

और वह उन्हें स्मरण दिलाता है : "तुम हो बहुत-से और वे थोड़े हैं।" बायरन ने यूनान के लिए स्वतन्त्रता की आवाज उठाई और आधुनिक समय में भी हम बहुत से ऐसे साहित्यकारों के नाम जानते हैं जिन्होंने केवल अपने देश में होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध ही आवाज़ नहीं उठाई वरन् अन्य देशों में भी जहाँ कहीं अत्याचार दिखाई दिया वहाँ स्वतन्त्रता आन्दोलन को सहायता दी। कलाकार के लिए संकीर्ण भौगोलिक सीमाओं का कोई अर्थ नहीं होता : उसके लिए सारा आकाश एक है, और उस आकाश के नीचे समस्त मानवता भी एक है। मानवता की स्वतन्त्रता के लिए जहाँ कहीं भी संघर्ष आवश्यक हो, उसमें भाग लेने की आवश्यकता है क्योंकि संसार के किसी भी भाग का दासत्व सम्पूर्ण संसार को प्रभावित करता है।

टी. एस. इलियट ने किपलिंग पर अपने लेख में कहा है कि देश-प्रेम कविता के लिए उपयुक्त विषय नहीं है और कुछ अंशों में उसका कथन सत्य भी हो सकता है। संकीर्ण दृष्टि से देश-प्रेम दूसरे देशों के प्रति घृणा और अपने ही देश से प्रेम के रूप में भी प्रकट हो सकता है और उस देश-प्रेम की कभी प्रशंसा नहीं की जा सकती। महान् कवियों की लेखनी से देश-प्रेम भी कविता का वैसा ही सुन्दर विषय हो सकता है जैसा कि सूर्यास्त, तारों और नारी का सौन्दर्य। परन्तु अपेक्षाकृत अल्प महत्त्व के कवियों के हाथ में देश-प्रेम एकांगी, संकुचित, अनावश्यक तूल का विषय हो जाता है। पुनः इस प्रकार का देश-प्रेम जीवन और मानवता को व्यापक दृष्टि से देखने में बाधक होता है और वह व्यक्ति को अपने स्वार्थ में एकांगी बना देता है तथा शेष जगत् से अलग कर देता है। दूसरे शब्दों में वह व्यक्ति को 'कुएँ का मेंढक' बना देता है और प्रायः वह उसे कृत्रिम फैशन की तरह भी अपनाता है जिसमें भावों का संतुलन और वास्तविकता का अंश नहीं रहता। तथापि यह सत्य है कि जब किसी देश पर विदेशी आक्रमण हो या वह देश अपनी गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए विकल हो उस समय ऐसे देश का कवि अपने भावातिरेक में अपने देश की महानता का स्मरण दिलाता है : यह आत्म-रक्षा का एक तरीक़ा है—भौतिक और मानसिक दोनों दृष्टि से। कवि के लिए देश माता और पिता का प्रतीक बन जाता है। कवियों ने प्रत्येक देश में ऐसे ऐतिहासिक क्षणों में पितृभूमि की भक्ति में गीत लिखे हैं; भारतवासियों ने मातृभूमि के गीत लिखे हैं क्योंकि भारतीय परम्परा में माता की पूजा प्रधान रही है। परन्तु राजनीतिक संघर्ष के समय ही इस प्रकार के देश-प्रेम के साहित्य की रचना होती है और थोड़े समय के लिए वह लोकप्रिय रहता है—उसकी लोकप्रियता का कारण समय की माँग को पूरा करना है। परन्तु सत्य यह है कि देश-भक्ति के ये गीत और कविताएँ साहित्य के इतिहास में बीती हुई कथा हो जाते हैं—मील के वे पत्थर जो किसी राष्ट्र के राजनीतिक इतिहास में संघर्ष के कालों को प्रकट करते हैं। भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय देश भर में हमने निरन्तर देश-प्रेम के सुन्दर गीत गाए और सुने हैं। बंगाली लेखकों ने इस प्रकार के असंख्य गीत रचे—यहाँ तक कि कभी कभी

उनका देश-प्रेम केवल मात्र बंगाल की प्रशंसा करने में समाप्त हो जाता है और वे सम्पूर्ण भारत के एक रूप को भी भुला बैठते हैं। इसका भी कारण यही है कि बंग-भंग के पश्चात् क्रान्तिकारी आन्दोलन बंगाल तक ही सीमित रहा था। 'वन्दे मातरम्' और 'जन-गण-मन' गीत नदियों और पर्वतों से मण्डित भारत के अनन्त सौन्दर्य का वर्णन करते हैं और स्वतन्त्रता संग्राम में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं—उन्हें पूर्णतया प्रशंसा-गीत (Hymns) कहा जा सकता है। दक्षिण भारत में भारती ने शक्तिशाली क्रान्तिकारी गीत लिखे—गीत जिनमें घृणा को उभारा गया था और जो अंग्रेज़ों के विरुद्ध हमारे संघर्ष के समय दक्षिण में लोकप्रिय हुए।

"वी डू नॉट वांट दी व्हाइट मैन'स बर्डन"—गोरे लोगों का राज्य-भार हमारे लिए असह्य है—आज भी इतिहास बनानेवाले गीत के रूप में स्मरण किया जाता है। किन्तु, जहाँ ये गीत एक ऐतिहासिक लक्ष्य की पूर्ति में अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं वहाँ गम्भीरता पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि वे अमर साहित्य की रचनाएँ हैं। एक महाकवि का काव्य-सौन्दर्य से पूर्ण यह गीत—"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा"—फिर भी संकीर्ण प्रतीत होता है, विशेषकर आज की परिस्थितियों में जब कि हम जानते हैं स्वयं हमारे देश से बाहर बहुत से ऐसे देश हैं जो राजनीति, कला और संस्कृति की दृष्टि से दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति कर रहे हैं। पुनः रूपर्ट ब्रुक के प्रसिद्ध सॉनेट के रूप में हमें देश-प्रेम का अत्यन्त संकीर्ण रूप मिलता है :

"जब मैं मर जाऊँ तो मेरे बारे में केवल यही सोचो
कि दूर किसी विदेश के एक मैदान में कोई एक कोना है
जो सदैव के लिए इंग्लैण्ड बन गया है......"

यह दुःखद, निन्दापूर्ण और संकीर्ण, अयथार्थ दृष्टिकोण है क्योंकि अन्ततः संसार के सभी देश अन्योन्याश्रित हैं और उनमें न केवल व्यापार में वरन् सांस्कृतिक मूल्यों के रूप में भी सूक्ष्म आदान-प्रदान जारी रहता है। आयरलैण्ड के कवियों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि राजनैतिक कारणों से उनकी देशभक्ति की कविता आवरण में ढँकी हुई है और आयरलैण्ड के सम्बन्ध में लिखनेवाले कवियों ने अत्यन्त काव्यात्मक शब्दों में सूक्ष्म रूप में लिखा है। यीट्स की 'काउन्टेस केथलीन' (Countess Cathlene) देशभक्ति पूर्ण राजनैतिक नाटक है परन्तु उसमें सीधे वक्तव्यों का प्रयोग नहीं हुआ है, उसमें भावुक कवि की आत्मा अपने देशवासियों के लिए काव्य-प्रतिभा से मुद्रित शब्दों और मुहावरों को अभिव्यक्त करती है और कवि कभी स्वप्नदर्शी की ऊँचाई से नीचे नहीं आता। इस प्रकार की रचनाएँ इलियट की इस परिभाषा को कि देशभक्ति कविता के लिए उपयुक्त विषय नहीं है गलत सिद्ध करती हैं।

कवि जितना ही महान् होगा उतना ही वह अपने देश की जनता के निकट होगा; जनता जो श्रम करती है, उसे खिलाती और पहनाती है और शान्ति के काल में उसे अवसर और आराम का समय देने का विश्वास दिलाती है जिससे कि वह स्वतन्त्रता पूर्वक कला-साधना कर सके। यदि किसान खेत में परिश्रम न करे तो कवि को प्रतिदिन खाने के लिए रोटी नहीं मिल सकती चाहे उसका खाना कितना ही कम हो। यदि कारखाने में मशीन पर मजदूर काम न करें तो कवि के लिए अपने आराम की उन वस्तुओं को प्राप्त करना भी सम्भव नहीं होगा जिन्हें वह आज उनके मौन परिश्रम के फलस्वरूप प्राप्त करता है और जिससे उसे अपनी प्रतिभा को प्रकट करने का अवसर मिलता है। एक दृष्टि से कलाकार और श्रमिक दोनों भाई होते हैं; शारीरिक श्रम और मानसिक सृजन में वास्तविक अन्तर नहीं होता; जनता की सामूहिक सृजनात्मक क्रियाएँ जिन पर किसी के हस्ताक्षर नहीं होते और एक व्यक्तिगत साहित्यिक या कलात्मक प्रतिभा जिसके नाम का उसकी क्रिया के साथ विज्ञापन होता है दोनों में अन्तर नहीं होता। वास्तव में अन्तिम विश्लेषण में श्रम ही सम्पूर्ण मानव संस्कृति का स्रोत पाया जाएगा।

मानव-इतिहास के आरम्भ से हमें पता चलता है कि पृथ्वी पर महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित करनेवाले महत्त्वहीन सामान्य जन थे। महान् व्यक्तियों का बाद में—वास्तव में बहुत बाद में प्रादुर्भाव हुआ। वे उन सामान्य लोगों की सृष्टि कहे जा सकते हैं जो कि उनके जनक थे। निश्चय ही स्वभावतः मनुष्य एक कवि, कलाकार या स्रष्टा है। अतः कला किसी विशेष वर्ग या व्यक्तियों के समूह जिसे बुद्धि-जीवी कहा जाता है उन्हीं का अधिकार नहीं है और न हो सकती है। सौन्दर्य-प्रेम मानव-स्वभाव में निहित है। शायद ही किसी मनुष्य की आँखों का जोड़ा हो जो रंगों से आकर्षित न हुआ हो चाहे

वह कपड़ों पर चढ़ा हुआ रंग हो अथवा जैसा कि यीट्स ने कहा है "कसीदा निकाले हुए स्वर्गिक वस्त्र" हों। यह सत्य है कि कुछ लोगों के लोभवश बहुसंख्यक लोगों के जीवन में जो दुःख और कष्टों का प्रवेश होता है उसका प्रतिकार जनता में आबद्धमूल सौंदर्य की प्यास के कारण होता है और उसी से देश की आत्मा बर्त्तन, कपड़े, खिलौने, रंगचित्रण, शिल्प और कविता आदि साधनों से जीवित रहती है। तथाकथित क्षुद्र लोगों की आत्मा फिर भी सौन्दर्य के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करती है जो कि बिना किसी अवरोध के जीवित रहती है। सभ्यता का अर्थ यही है कि हम मानवीय विचार, जीवन और व्यवहार में सौन्दर्य की आवश्यकता को अधिकाधिक बढ़ाएँ आज हम अपने को हारे हुए और थके-से अनुभव करते हैं उसका मुख्य कारण यही है कि हमने प्रगति और संस्कृति के स्वाँग का एक ऊपरी ढाँचा (Super structure) बना लिया है जो हमें लक्ष्य से भ्रष्ट करता है। सौन्दर्य के साथ विश्वासघात करके हमने अपने ही प्रति विश्वासघात किया है, अपने जीवन की जड़ के प्रति विश्वासघात किया है जो कि अभी भी प्रत्येक देश की जनता के जीवन का अंग है और वहाँ की जमीन में गहरी पैठी हुई है; तथाकथित संस्कृति का वृक्ष थोड़ी-सी वेगपूर्ण हवा के आने पर सिहर उठता है और प्रतीत होता है जैसे अभी पृथ्वी पर गिर जाएगा। छोटे कहलानेवाले मनुष्य साहित्य में जीवित रहे हैं इसके लिए प्रमाण-स्वरूप यही कहना पर्याप्त होगा कि पौराणिक कथा, परियों की कहानियाँ, गीत और कहावतों का न हमारे साहित्य से और न दैनिक जीवन से ही बहिष्कार किया जा सकता है वे हमारी वंशानुगत सम्पत्ति हैं।

सुसंस्कृत कवि जनता से अपना सम्बन्ध तोड़ कर ऐसी भाषा में लिखने लगते हैं जो बहुत विशिष्ट होती है और उनके शब्दों में वह सहज उद्रेक नहीं मिलता जो सामान्य जनता की भाषा में पाया जाता है। उनकी कल्पना भी बौनी रह जाती है और उनकी मूर्त्ति-कल्पनाएँ असार होती हैं। जीवन और सौन्दर्य के प्रति कृत्रिम मान्यताएँ एक स्थल से दूसरे स्थल पर पहुँचती हैं और परिवर्तित वातावरण में आत्मा के भोले शैशव को सुरक्षित रखना सम्भव नहीं होता जो उस प्रिज़्म की तरह होता है जिसमें से सफ़ेद किरण निकल कर सात रंगों में प्रकट होती है। जनता की भाषा और कल्पना का यही चमत्कारिक गुण है। यहाँ मुझे एक मुहावरा स्मरण आता है जिसे मैंने दक्षिण कनड़ा में एक किसान के घर में शादी के अवसर पर सुना था। वह केवल दो शब्दों का मुहावरा था, बहुत साधारण शब्द परन्तु उनके समन्वय में विवाह का सारा रहस्य भरा था : वधू की लज्जा और वर के प्रेम का रहस्य : 'दोम्पा नाचिगे' जिसका अनुवाद करने पर मौलिक स्वाभाविकता और संकेत का आनन्द नहीं आता : 'विवाह मण्डप शरमा रहा है।' विवाह के बारे में यह एक मुहावरा ही बहुत कुछ कह देता है जो हम सभ्य कवियों की लम्बी कविताओं में भी सम्भव नहीं है।

नई दिल्ली

—हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय

......हम गरीबी और बेरोज़गारी के विरुद्ध लड़ाई लड़ रहे हैं। हम शान्तिपूर्ण उपायों से देश का चेहरा बदल डालेंगे। हमारा कर्तव्य है कि हम कमर कस कर अपनी उन्नति के इस महान् संघर्ष में सम्मिलित हों और अपने आपसी मतभेदों को भुला कर देश की सम्पत्ति बढ़ाने के कार्य में जुट जाएँ। यह सम्पत्ति सोना या चाँदी नहीं है, बल्कि कृषि और उद्योगों का उत्पादन है। हम सब को यह प्रयत्न करना चाहिए कि यह बढ़ी हुई सम्पत्ति जनता के सभी वर्गों में न्याय के साथ समुचित रीति से वितीर्ण हो और गरीब और अमीर के बीच का मौजूदा भेद मिट जाए।

एक भाषण से

—जवाहरलाल नेहरू

अंग्रेज़ी के दिग्भ्रमित 'सप्तकी'

अंग्रेज़ी कविता ने बहुत पहले से विश्व-काव्य को प्रभावित किया है। शेक्सपीयर, शैली, बायरन, कीट्स, किपलिंग, जौन मेसफील्ड जैसे अनेक नाम गिनाए जा सकते हैं जिन्होंने विश्व-साहित्य का नेतृत्व किया है। अमरीकी-अंग्रेज़ी में वाल्ट ह्विटमैन के आगमन ने सारे विश्व साहित्य को सन् १८५५ में ही नई चेतना, नई ऐतिहासिक मानवता के आते हुए क्रांतिकारी स्वरों से भर दिया। उस वैतालिक के स्वर, सूर्य के नीचे बिछती हुई सारी भूमि और सिन्धुओं में निनादित हुए। शेक्सपीअर और ह्विटमैन की अंग्रेज़ी का नाम आते ही मन में एक लोक, एक सृष्टि, रोमहर्ष सभी हो जाता है।

दोनों विश्वयुद्धों से मानवता ने राजनीतिक, सामाजिक एवं नैतिक शिक्षा ली और अपनी अपनी अभिव्यक्तियों से नवपथ निर्माण किया। साहित्य में भी यह नई भाव-भाषा में युद्ध-शिक्षा आई। युद्धजन्य-विभीषिकाएँ यूरोप के साथ इंग्लैण्ड को भी देखनी पड़ीं, प्रमुख भागीदार होने के नाते। तब क्या कारण है कि फ्रांस या अन्य राष्ट्र बिल्कुल ही भिन्न प्रतिक्रिया करते हैं और इंग्लैण्ड दूसरी प्रकार ? वही फ्रांस जो कभी पतनोन्मुख साहित्यिक वादों का 'गुरुकुल' था—देश देश से छात्र उस 'गुरुकुल' में दीक्षित होने जाते थे, लेकिन नाज़ी शासक भी जिसकी वेगवान जीवनी शक्ति को न कुचल सके, और वहाँ के साहित्यकारों ने उस पतनोन्मुख झिल्ली को फाड़ कर नई उपमाओं, प्रतीकों की फ़सलें उगाईं जब कि युद्ध दिनों के 'लेफ्ट' अंग्रेज़ी के कवि आज कण्ठीमाला, पूजापतरा, गीता-उपनिषद् के पारलौकिक चक्ररथ के सार्थवाह एवं सारथी हो रहे हैं। कुछ कहते हैं कि वे 'साम्यवाद के मुखौटे में झाँक सके' और वे अब सांस्कृतिक पथों के 'पंथजन' हैं। 'दुतावासी' करनेवालों का मत है कि वे 'डिसइल्यूज़न' हुए हैं। किन्तु अत्यन्त नम्र निवेदन है कि उन '१००० ईसा पूर्व गोष्ठी'— प्रिय रथियों से; कि हमें पता है...ऐसे 'पंथजनों' की उर्ध्वपदी लम्बी पांत, लन्दन, न्यूयार्क के राजपथों पर 'माचिसी' शिल्प के भवनों में निवास करती है और जिसका नेतृत्व टी. एस. इलियट जैसे कवि ने एंग्लीकन चर्च में उस दिन इस घोषणा के साथ शिरोधार्य किया था :

"धर्म से मैं एंग्लो कैथोलिक हूँ, साहित्य में मैं, क्लेसिस्ट हूँ तथा राजनीति में मैं रायलिस्ट हूँ" और नेता, तब नोबल पुरस्कार से अभिमंडित किए गए। किन्तु यहाँ यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि यह भी राजनीति की एक 'राजनीति' है, जिसमें साहित्यिक ही राजदूत बनाए जाते हैं।

उसी इंग्लैण्ड अमरीका से नई कविता आ रही है—(किसी प्लान या पैक्ट के अन्तर्गत नहीं) हमें देखना होगा कि वह क्या है ?

ऐसा कहते हैं, तथा सुना है कि इंग्लैण्ड और फ्राँस में सिर्फ़ २४ मील चौड़ी खाड़ी है, जिसके उस ओर इलियट हैं और इस ओर अरागां। किन्तु जो लोग नहीं गए हैं—(जैसे मैं ही नहीं गया हूँ) दोनों देशों की नई कविता पढ़ने पर यह नहीं सोच सकते कि दूरी उनकी सिर्फ़ २४ मील ही है। भूगोल की यह बात लोग सच ही कहते होंगे लेकिन साहित्य पढ़ कर दूरी ठीक वैसी लगती है जो कि टी० बी० के रोगी में तथा स्वस्थ व्यक्ति में। और होनी भी चाहिए।

चर्चा 'स्प्रिंगटाइम' नामक संकलन पर निकली है।

यह संकलन, अंग्रेज़ी के अत्याधुनिक कवियों का काव्य संकलन !! उत्कंठा सहज थी ही. कवि होने के नाते। फिर जिन मित्र ने इसे दी, कुछ ऐसा ही कहा था :

"यह ज़रूर देखिए, अंग्रेज़ी का 'दूसरा सप्तक' है।"

मोह भी कह सकता हूँ और लोभ भी. कि देखा जाए कि ये अंग्रेज़ी के 'सप्तकी' कैसे हैं ? हम से साम्यता है तो कितनी ? जीवन की विभीषिकाओं, समस्याओं को किस प्रकार अभिव्यक्त कर पाए हैं—क्योंकि वे अधिक समर्थ भाषा के उत्तराधिकारी है।

लाया, पढ़ा --डिक्शनरी देख देख कर पढ़ा, लाइनों के बीच बीच में पढ़ा और अब जो पढ़ा वह सुना रहा हूँ। पढ़ने के बाद गुना क्यों नहीं ? अगर आप इस सबको गुनना पसन्द करेंगे तब आप मुझे शौक से पंक्ति बाहर कर सकते हैं।

संकलन कर्त्ताओं की दृष्टि में इसमें यह मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं :

(१) साहित्यिक (२) एम्सनवादी (३) कुंठावादी (४) नग्न ऐन्द्रीयवादी (५) रूपवादी और (६) प्रादेशिक।

यह प्रवृत्ति-विश्लेषण महत्वपूर्ण है जो कि यह प्रदर्शित करता है कि कवि या तो 'विशुद्ध' साहित्यिक हैं, या मानसिक गुत्थियों को एम्सन की भाँति अपनी विश्लेषण बुद्धि के द्वारा उघार कर रख देना या 'कुंठावादी' तथा 'नग्न ऐन्द्रीयवादी' शब्द स्वयं अपना परिचय दे रहे हैं, या फिर नया भेस (वेष का भदेस ही 'भेस' समझिए) खोजने की प्रवृत्ति और कुछ 'लोकोन्मुख उद्बुद्धिका' के हैं।

प्राक्कथन कहता है कि आज की कविता—प्रयोग के लिए प्रयोग—के स्थान पर ठोस, सबल तथा सरलता की ओर जा रही है। आज साहित्य का आदर्श, इन नए कवियों की दृष्टि में नूतनता न होकर अलंकरण बन गया है।

इस कथन का परीक्षण यों किया जाएगा कि :

१ यदि ये कविताएँ—प्रयोग के लिए प्रयोग—नहीं तो फिर 'प्रयोग' किन रचनाओं को कहा जाएगा? हिन्दी में ऐसी रचनाओं को भी 'प्रयोग' नाम प्राप्त हुआ।

२ ये ठोस, सबल तथा सरल (कुछ 'सरल' को छोड़ कर) कितनी हैं यह ऊपर का प्रवृत्ति-विश्लेषण ही परिचय दे रहा है।

३ इनमें नूतनता नहीं—इस भाव का क्या अर्थ?

(अ) यदि रूपगत नूतनता से तात्पर्य है तो वह यहाँ है।

(ब) यदि विषयगत नूतनता से तात्पर्य है, तो यौन वर्जनाओं तथा कुंठाओं को छोड़ कर यहाँ कुछ भी नहीं। इसलिए लगता है संकलन कर्त्ताओं का संकेत है :

जीवन सम्बन्धी नूतनता—नए संघर्ष, नई अनुभूतियाँ आदि।

लेकिन, प्रश्न उठता है कि अपने इस संकलन में उस नूतनता को क्यों नहीं स्थान दिया? क्या कामनवेल्थ तथा विश्व भर के अंग्रेज़ी के नए कवियों की उन सारी पांडुलिपियों में एक भी 'नूतनता' का स्वस्थ स्वर नहीं मिला? यदि था तो वह इस काली छपाई में तो नहीं दिखता। और यदि वह 'नूतनता' का स्वर एक भी पांडुलिपि में नहीं मिला तो साहित्य से ज्यादा फैल तो अंग्रेज़ी बोलनेवाली सारी की सारी जाति, इंग्लैण्ड, अमरीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड आदि सब देशों में यह राष्ट्रीय संकट बन कर उपस्थित होता है। इस जाति तथा इसके राष्ट्रों के मध्यमवर्ग, निम्न मध्यम-वर्ग, बाबू वर्ग, मज़दूर वर्ग के सामने यह प्रश्न एकदम उठ खड़ा होना चाहिए कि उनके सुख, दुःख, दर्द, जीत-हारों को गीतों, कविताओं में बाँधनेवाला नए कवियों में भी एक भी—एक भी, नहीं है।

सहसा जो बात उठ खड़ी होती है वह यह कि फिर 'अनूतन' 'अलंकरणी' संग्रह प्रकाशित क्यों किया! और यदि किया तो फिर इस 'नूतनता' का बखेड़ा क्यों खड़ा किया?

निष्कर्ष हुआ—

संकलन कर्त्ताओं का 'नूतनता'—कहने के लिए कहना—माना जाए। आगे कहते हैं कि आज के कवियों की भाषा भी रूप या ढांचे की तरह ही सरल होती जा रही है, उसमें बोलचाल का स्तर भर आ रहा है, स्वयं बोलचाल नहीं। किन्तु ऐसा सबके साथ नहीं है—कुछ भाषा की दृष्टि से अभी भी परम्परावादी हैं। इन परम्परावादियों (भाषागत) में १६ वीं सदी के उत्तरार्द्ध की मनोवृत्ति पाई जाती है।

मनोवृत्ति—उनमें धर्म के प्रति यौनात्मक दृष्टिकोण है या धर्म प्रचालिता यौन भावना।

संकलन कर्त्ताओं का 'क्रांतिकारी' संतोष है कि—

यौन और धर्म (या ईश्वरीय सत्ता) की इस टकराहट में जो उन दिनों धर्म की विजय होती थी, वह आज के इन कवियों में नहीं—

संकेत—इनमें यौन विजय मिलेगी।

संकलन कर्त्ताओं की शिकायत इन कवियों से सिर्फ यह है कि इनमें गीति तत्व या गीतात्मकता नहीं। यौन की विजय को 'लिखने' और 'कहने' के स्थान पर 'गाना' चाहिए था।

इस छोटी-सी भूमिका के बाद नए कवियों का संकलन है। ये नए कवि संसार के सभी देशों के निवासी हैं। उनकी विभिन्न परिस्थितियाँ भी होंगी; सामाजिक संघर्ष भी निश्चित् रूप से अलग अलग होंगे, उनके अपने वर्ग भी विभिन्न। लेकिन हासोन्मुखता का इतना विश्वव्यापी प्रचार कर लेने के बाद भी 'यारलोग' शोर पर तुले हुए

१९५४

हैं कि :

सबसे बड़ा प्रचारक कौन ? — कम्यूनिस्ट
सबसे ज़्यादा प्रचार किसका ?—कम्यूनिज़्म का"

आइए अब हम कुछ कविताएँ देखें। सबसे पहले पच्चीस वर्षीय ए० एल्वरेज़ की कविता लें—पोइटिक लाइस :

"वो देखो कहाँ बैठा, दुराचारी झाड़ पर
विचारी डेक़न
लाज तेरी, मुकुट-सा पहने हुए वह,
देवि संग व्यभिचारऽ सिर्फ़,
सूरज देख सकता है जिसे।
इधर यह रस्सियों के बँट रहा तिनके
उधर प्राचीन संस्कृतियाँ डुबी जातीं।
इन तीलियों के हैट के ही वास्ते
कदाचित् वह हैटवाला बिना भीगा रह सका हो :
'न भागो कहीं ये गाउन हमारे हवा में उड़ जाए
बुद्धि जिसका अनवरत है कर रही पीछा,
वही दिख जाए'
यदि कहीं वे अंगुलियाँ इक बार भी
तोड़ पाएँ शोकमग्ना छातियों से [नारियों की]
उसे, जिससे गर्व रहता है,
और फिर वह दूरी पर की चीख़—उनकी
(विवशता का रुदन, निश्चय व्यर्थ है)
बाढ़ का यह ढोंग संग में—कापुरुषता
दोनों हाथों से छुपाना कृत्य अपने...
जो कि जगजाहिर
और उस पर ढोंग देखो...(कि)
नहीं इच्छा या कि कोशिश
वक़्त भी तो नहीं औ' फिर शक्ति
ताकि समझौता करें कुछ लाभ हित !!"

थामस ब्लेक वर्न इस संग्रह के दूसरे महत्वपूर्ण कवि हैं। एल्वरेज़ की भाँति ये एम्सनवादी नहीं जो कि विश्लेषणात्मक बुद्धि द्वारा विशेष प्रकार की परिस्थिति-जन्य ग्रन्थियों को अभिव्यक्त करें। एल्वरेज़ की ऊपरवाली कविता को हमें थोड़ा सहृदय होकर देखना पड़ेगा जिसमें युद्धकालीन जो पाशविक मनोवृत्ति सेनाओं और सिपाहियों के कारण नारी के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई, उसे हल्के आक्रोश के साथ एल्वरेज़ ने रखा है। किन्तु हम देखते हैं कि इसमें शक्ति नहीं। युद्ध के कारण जो बर्बरता आया करती है उसके प्रति भी जो घृणा उत्पन्न की जानी चाहिए इस प्रकार के 'एंगल' से वह भी नहीं उत्पन्न होती। लेकिन इसमें फिर भी हल्का व्यंग है। ब्लेक वर्न की 'पेसिफाई' नामक कविता के दो तीन छन्द देखिए :

"आज रात वह कामातुर इस शहर बीच से
पथराए पग धरती गुजरी राजद्वार से
झाड़ी कुचली, मंदगान जिसके अधरों पर
बर्बर के संग रतिसुख लेने सिन्धु तटों पर

लेट गई वह खारी उजली उस कछार पर
'अन्धकार अब ढँक लो' बोली क्षीण आह भर
गहरी साँसों से अब उसका वक्ष भर उठा
और वासना भूत साँड सा फूँ फूँ करता
अपनी भारी जंघाओं से उसकी टाँगे लगा खोलने

भोर हुई, कुचली बालू पर ख़ून जमा था
उस कामातुर के कपड़े में ख़ून, बाल में झाग भरी थी
फेंक रही थी शिथिल हाथ से जल में कंकर
शून्य और पथराई आँखों में किरनें तिरतीं रह रह कर"

इस लम्बी कविता में यह कामातुर रमणी फिर लुका छिपी खेलती है। कवि ने यौन प्रतीकों का आगे के छन्दों में 'प्रयोग' किया है। आर्थर बायर्स की एक एक कविता है 'लवर्स इन पार्क' या जिसे हम कह सकते हैं 'पार्क में युगल प्रेमी'—प्रेम, आज युवक मन में वर्जना होता जा रहा है। यह 'वर्जना' जब अधिकतर कवियों में होती है तो वह एक सामाजिक प्रश्न बन जाती है। वाल्ट ह्विटमैन, नेरूदा या अरागाँ की-सी शक्ति इनमें क्यों नहीं है ? लगता है व्यक्तिवादी कुण्ठाओं का जीवन अंग्रेज़ी बोलनेवाली जाति के ये कवि जीते हैं। जब समाज के ये प्रतिनिधि इस प्रकार हैं तब क्या भविष्यवाणी की जाए। शेले और कीट्स की-सी अभिव्यक्ति हम जाने भी दें तो भी पॉल वरलेव की-सी तड़प तथा स्वस्थ पृष्ठभूमि भी तो नहीं। यह एक सामाजिक प्रश्न है उनके लिए भी और हमारे लिए भी। हमारे यहाँ भी इसकी बहुत बड़ी जमात है जो ऐसा सब कुछ पढ़ती है और लिखती है। यह विश्व के पतनोन्मुख साहित्य की भावधारा है जो अपनी अपनी जातीय अनुभूतियों के या विशेष ध्येय से अभिव्यक्त की जाती है और जिसे 'शाश्वत' की संज्ञा दी जाती है। स्वयं कवि होने के नाते ताथ

लगभग समवयस्क होने के नाते इस संग्रह के कवियों को सद्बुद्धि प्राप्त हो यही कामना कर सकता हूँ।

इस संग्रह में एक भारतोत्पन्न महिला हैं ईथिल कालक्यूडाउन। इनकी कविता में ही हम कह सकते हैं कि प्रेम का उदात्त, स्वस्थ और धूप की तरह गरम रूप आया है। इनकी सभी कविताएँ बहुत ही छोटी हैं पर उनमें अनुभूति बहुत है और वे सरल हैं—'पीड़ा का नक्षत्र' उनकी सारी भावभूमि पर रोशनी डालता है।

उनकी एक कृति है—'डिवाइनेशन' या 'सत्यबोध' देखिए :

"जब संदेशा कुछ नहीं मुझको मिला
प्रिय का,
पूछ देखा हरी दूबों से
क्या मुझे वह प्यार करता है ?
और वे बोलीं
बहुत, सच में बहुत !!
जब रहा कुछ भी न बस अपना
ऽ प्रिय पर,
प्रार्थना की मूर्त्ति से
[जो कि फव्वारे लगी]
छुआ जल, की थी विनय (कि)
मुझे लौटा दो उसे
वर्ष बीता,
और फव्वारा हुआ झूठा,
वर्ष फिर बीता
हरी दूबें भी अरे मुरझा गईं।"

इस संग्रह में दो चार यूरोप की अन्य भाषाओं की भी कविताएँ हैं। उदाहरणार्थ : इसमें फ्रान्सीसी कविताओं के भी अनुवाद हैं। जिन युवक कवियों की कविताएँ यहाँ संकलित हैं वे स्पष्ट बताती हैं कि संकलनकर्त्ताओं का उद्देश्य एक विशेष प्रकार की ही भावधारा को दिया जाए वरना कोई कारण नहीं था कि चार्ल्स दोवज़िस्की, ज़ाक दुयुआ और ज़ाक रूबो इस संकलन में न होते। फ्रान्स आज जिन कवियों की ओर आशाभरी दृष्टि से देखता है उनका प्रतिनिधित्व तक नहीं हुआ। हमें यह याद रखना चाहिए कि यह 'मेकार्थिज़्म' राजनीति में ही नहीं बल्कि साहित्य में भी होता है—यूरोप में ही नहीं बल्कि मुनियों के इस भारत देश में भी लोगों ने एजेन्सियाँ ले रखी हैं।

यह लेख एक हिब्रू कवि माइकेल हरारी की कविता से समाप्त किया जाएगा। वह इस संग्रह की छोटी एवं स्वस्थ कविताओं में प्रमुख है। इसका शीर्षक है: 'चक्र'

"मैं अपनी गंदी सेंडल उतार कर
पृथ्वी को दूँगा नंगे चरणों का चुम्बन
भोर, दोपहर और साँझ ये
किसी पालतू कुत्ते-सी मेरे संग-संग में
पांव चाटती चला करेंगी।
रात; नखत डलिया में सिर पर रक्खे
मदद करेगी ढोर डंगरों के हँकवाने में वह मेरी
मुझे आज तक पता नहीं था
गिलबोआ पर्वत में इतने ऊँचे, नीचे, टेढ़े रस्ते !!"

अन्त में मुझे यही कहना है कि अंग्रेज़ी काव्य की वह दूसरी धारा जिसमें जीवन के स्वर, उनके संघर्ष, वेदनाओं को अभिव्यक्त करते होंगे—अभी सूखे नहीं होंगे। इस संग्रह में 'स्प्रिंग' या वसन्त नहीं है....चाहे दूसरा सब कुछ हो। आशा करता हूँ कि वसन्त के गायकों का भी शीघ्र ही संकलन सामने आएगा। इसे 'वसन्त बेला' के स्थान पर 'पतझर बेला' कहा जाना चाहिए था।

३३, केनिंग लेन
नई दिल्ली

—नरेश मेहता

स्वास्थ्य बीमारी न होने का नाम नहीं है। स्वास्थ्य निषेधात्मक नहीं, भावात्मक वस्तु है। स्वास्थ्य कार्य करने की प्रचुर शक्ति है और अचानक आवश्यकता पड़ने पर खर्च करने के लिए एक निधि है।

—डा. जे. बी. नैश

भारतीय कला : इतिहास के पृष्ठों में

भारतीय कला जनता की अपनी थाती है और कला के द्वारा ही जनता के अनुभव मूर्त रूप में प्रकट हुए। साहित्य, धर्म तथा दर्शन को युग युग के अनुभव से जनता ने जिस प्रकार जाना, उसी प्रकार कला ने उसे प्रकट किया। भारतीय कला की अपनी वार्ता लोकजीवन की आत्मगाथा है। भारतीय इतिहास का सर्वांग अध्ययन कला के ज्ञान के बिना अपूर्ण ही रहता है। भारत में कला और लोक—दोनों का वास्तविक रूप एक ही रहा है। लोक के उत्थान से ही कला भी आगे बढ़ी और लोक के पतन के साथ कला भी कुम्हलाने लगी। लोक-जीवन की नव चेतना से कला के नवमंगल की सूचना मिलती है।

कला संस्कृति का मुख्य अंग है। रूप, रेखा एवं रंग के विधान से एक के हृदय की आशाएँ, आकांक्षाएँ, स्वप्न, भावनाएँ तथा आदर्श सजीव और मूर्तिमान् होते हैं। कला की प्रत्येक रम्य कृति में असंख्य प्राणियों को पुलकित करने की अद्भुत क्षमता रहती है। कभी एक ऐसा क्षण भी आता है जब कलाकार का मानस रससिन्धु से पूरित हो जाता है एवं उसकी वह रम्यानुभूति उसकी कलाकृति के रूप में साकार हो जाती है। कवि की रम्य रचना का जन्म भी इसी प्रकार होता है। काव्य से जिस भाँति हम अनन्त-काल तक सुख शान्ति का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार रम्य कलापूर्ण कृतियाँ भी दीर्घ-काल तक आनन्द एवं रस का स्रोत बन जाती हैं। वस्तुतः नानाविध कलाकृतियों के शिल्पियों के भव्यतम रूप शिल्प तथा चित्रों में अमर होकर आज भी हमारे समक्ष प्रस्तुत हैं और विश्व की अनुपम निधि बन गए हैं। कला के इस वैशिष्ट्य के प्रति हमें अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए।

कलाकार अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का आधार ग्रहण करता है और जब उसकी प्रवृत्ति इस दिशा में हो जाती है तब प्रकृति के सादृश्य को प्रकट करना उसके लिए आवश्यक हो जाता है। सादृश्य के बिना हमारे मानस में भावोत्पत्ति करना कलाकार के लिए संभव नहीं है। कलाकार की यही भाषा है। जिसके माध्यम से वह भावों को प्रगट करता है।

अपने भावों को शब्दों के द्वारा कवि जिस भाँति हमारे सामने उपस्थित करता है, संगीतज्ञ जिस भाँति स्वर-लहरी द्वारा हमें आकर्षित करता है, उसी भाँति मूर्त्तिकार एवं चित्रकार भी आकृति के चित्रण द्वारा हमसे वार्तालाप करता है।

कलाकार शास्त्रीय नियमों से जकड़ा नहीं जा सकता, वह तो स्वच्छन्द वायु में विचरण करनेवाले पक्षियों की भाँति अव्याहत गति से मुक्त होता है और ईश्वर प्रदत्त शक्ति से एक अभिनव एवं अनोखे जगत् का निर्माण करता है। अत एव द्रष्टा अथवा आलोचक को कलाकार की कला के अन्तर्हित भावों से परिचित होना आवश्यक है और कला की परख उन्हीं नियमों के अनुसार होनी चाहिए जो काव्य के लिए उपयुक्त हैं। सौन्दर्य सृजन के पुजारी के भावों का सम्मान करना उचित ही है।

यदि भावों के प्रकाशनार्थ कला उपयोग में न लाई जाती तो निश्चय ही हम अपने अतीत के विषय में सर्वथा अनभिज्ञ ही रहते। अलंकरण की सरसता एवं असंख्य रूपों की दृष्टि से भारतीय कला विश्व की अन्यान्य कलाओं में अपना विशिष्ठ स्थान रखती है। इतिहास साक्षी है कि सभ्यता में आर्य जाति का सर्वोच्च स्थान था और यह स्पष्ट है कि आर्य सभ्यता में ही कलाओं की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति हुई थी।

अशोक के समय भारतीय कला में एकाएक नवीन विचारों और नए जीवन का संचार हुआ। इस कला का दृष्टिकोण वास्तविकता पर आधारित है। अध्यात्मवाद अथवा नैतिकवाद की यहाँ छाप नहीं मिलती। यह कला वास्तविकता से सम्बद्ध है। परिणामतः इसमें तत्कालीन जीवन के आमोद-प्रमोद, सुख-दुःख तथा इन्द्रिय वासना की झलक और सामाजिक परिस्थितियों का परिचय मिलता है।

उस समय कितने ही कला-केन्द्रों की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। उनमें से सारनाथ, साँची, तक्षशिला, अमरावती के नाम उल्लेखनीय हैं। साँची के स्तूप आज भी

अपनी गौरवगाथा सुना रहे हैं। उस समय बुद्ध की कितनी ही जातक कथाएँ पाषाण-मूर्त्तियों में व्यक्त की गईं। साँची तथा अमरावती की कला-कृतियों का वैशिष्ट्य, शारीरिक अंगों का आनुपातिक निर्माण, रेखांकण दक्षता, जीव-जन्तु-जगत् का विशेष ज्ञान, रमणी के अंग-प्रत्यंग के लावण्य के प्रति आकर्षण प्रसिद्ध हैं। तत्कालीन भारतीय कला जन-जीवन का मुख्य अंग थी। अतः इन कृतियों में इन्द्रियवासना का प्राबल्य प्रतीत होता है।

बौद्ध धर्म का प्रभाव भारत के सीमावर्त्ती क्षेत्रों पर भी पड़ा। यह सर्वविदित है कि यूनान के कलाकारों को भी मूर्त्तियाँ निर्मित करने की उनसे प्रेरणा मिली। मथुरा तो अपनी कला की विशेषता के लिए इतना प्रख्यात हो चुका था कि वहाँ की बनी हुई देवी देवताओं की मूर्त्तियाँ दूर-दूर के स्थानों को भेजी जाती थीं। उधर, दक्षिण में आन्ध्र-कला का उदय हो रहा था। प्रकृति देवी की प्रजनन-शक्ति की प्रतीक मूर्त्तियों की रचना का काल भी यही था।

गुप्त काल में बौद्ध धर्म का प्रभाव कम हो गया था। तत्कालीन चित्रकला और वास्तुकला पर गम्भीर विचारों की विशेष छाप है। अजन्ता की कला उस समय की भारतीय कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। किन्तु भारतीय कला ने और भी उन्नति की। ९ वीं और १० वीं शताब्दी की अलीफेण्टा गुफाएँ भारतीय कला की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में हैं।

इनके पश्चात् भारतीय कला का ह्रास प्रारम्भ हुआ; किन्तु दक्षिण में सुन्दर मन्दिरों तथा शिव की मूर्त्तियों का निर्माण १७ वीं शताब्दी तक प्रचलित रहा है।

भारत के विभिन्न प्रान्तों में अपने-अपने ढंग के मन्दिर बने हैं, जिनमें स्थानिक प्रथाओं की छाप पड़ी हैं; किन्तु मन्दिर निर्माण की मुख्य विचारधाराएँ दो ही हैं: एक उत्तर भारत की और दूसरी दक्षिण भारत की। इन दोनों ही शैलियों का सम्मिश्रण दक्षिण मन्दिरों में हुआ है प्रागैतिहासिक ढंग तथा आरम्भिक विचारधाराएँ अपने संशोधित एवं आवृत रूपों में बाद के मन्दिरों में भी देखने को मिलती हैं।

हिन्दू मन्दिरों को हम भारतीय कला का पूर्ण रूप कह सकते हैं। इनके निर्माण में वस्तुमूर्त्ति तथा चित्रकलाओं का अर्थात् सभी दृश्य कलाओं का सुन्दर समन्वय हुआ है; किन्तु मूर्त्तिकला उनमें प्रधान है। ८ वीं शताब्दी से लेकर ५०० वर्षों तक, भारत में जिन मं का निर्माण हुआ, उनमें पूर्व-युगीन परम्पराओं का पू हमें देखने को मिलता है।

जीवन और धर्म के विभिन्न रूपों को व्यक्त करने के हेतु भारतीय कलाकारों ने रचनात्मक तथा मौलिक कल्प का परिचय दिया है। नटराज के रूप में शिव शांतिद के रूप में बुद्ध और लम्बोदर के रूप में गणेश की कितने ही भव्य मूर्त्तियाँ निर्मित की गईं। यक्ष, किन्नर, अप्स तथा देवताओं को विविध रूपों में व्यक्त किया गया। कोमल कमनीय रमणियों की मनोमुग्धकारी मूर्त्तियाँ भारतीय कलाकारों की मौलिक कल्पना के उत्कृष्ट प्रमाण हैं।

भारतीय वास्तुकला और चित्रकला से नृत्यकला का गहरा सम्बन्ध रहा है। चित्रकारों तथा मूर्त्तिकारों ने अपनी रचनाओं में विभिन्न नृत्य-मुद्राओं को विशेष स्थान दि है। कांगड़ा के चित्र तथा मन्दिरों पर विद्याधरों और अप्सराओं की भव्य मूर्त्तियों में नृत्यकला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

हड़प्पा तथा मोहन-जो-दड़ो की कला सम्भवतः मिस्रकला की सम-सामयिक है क्योंकि दाढ़ी युक्त मूर्तियाँ भारतीय कला की अपेक्षा मिस्र या बेबीलोनिया की कला का अधिक स्मरण कराती हैं। मोहन-जो-दड़ो की कला प्राचीन कला नहीं है। हम उसे उच्च सभ्यता तथा परिमार्जित संस्कृति का प्रतीक कह सकते हैं। मोहन-जो-दड़ो की कला तथा यक्षों की प्रस्तर मूर्त्तियों के बीच एक अथवा दो सहस्र वर्षों का अन्तर अवश्य है। यह तो असम्भव-सी बात है कि इस बीच कला निर्माण ही न हुआ हो। अशोक-युग से पूर्व की कुछ मूर्त्तियाँ हमें उपलब्ध होती हैं। उनमें अभिव्यंजना की अपेक्षा आकार-प्रकार पर अधिक ध्यान दिया है।

अजन्ता की कला के पश्चात् प्रतीत होता है कि चित्रकला की शैली में परिवर्तन हो गया। मुगलकालीन चित्रकला का झुकाव शृंगार रस की ओर अधिक होने लगा। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने चित्रकला को प्रोत्साहित किया। तत्कालीन चित्रों में दरबारी जनों और दरबारी घटनाओं का चित्रण विशेष मिलता है।

१७ वीं शताब्दी के अन्त में मुगलकाल का ह्रा प्रारम्भ हो गया। १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बासोली शैली को अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और इस शैली के रंग-बिरंगे चित्र अपना सानी नहीं रखते। मुगल साम्रा

१९५४

के पतन के उपरान्त चित्रकारों ने छोटे-मोटे राज्यों में शरण ली और चित्रकला की कई शैलियों को जन्म दिया। तत्कालीन चित्रों में विशेषतः नायक-नायिकाओं के अंग-प्रत्यंग का चित्रण मिलता है। उस समय बीकानेर, जयपुर, जोधपुर, दतिया, ओरछा, चम्बा, मण्डी, नाहन, टिहरी गढ़वाल आदि इस कला के केन्द्र थे।

१९ वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय कला का रचनात्मक युग समाप्तप्राय था। किन्तु लगभग अर्द्ध शती के उपरान्त पुनः उसका उदय हुआ। भारत अपनी कला के ५००० वर्ष प्राचीन इतिहास से विश्व की कला के उत्थान में महत्त्वपूर्ण सहयोग दे सकता है।

कुछ समय से भारतीय कला के प्रति पाश्चात्य रसज्ञ भी आकर्षित हुए हैं और आशा है कि हमारे नवयुवकों में भी शीघ्र ही कला के प्रति सम्मान की भावना जागृत होने लगेगी। पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा के नए प्रकाश से हमारी आन्तरिक ज्योति कुछ मन्द-सी पड़ गई है और हमारे आर्थिक दारिद्रय ने हमारे आदर्शहीन जीवन में और भी भयंकरता उत्पन्न कर दी है। नवीन शिक्षा से भाववादी कल्पना-शक्ति का अभाव-सा हो गया और हमारी सभ्यता की नींव डगमगाने लगी है। जब किसी देश के वासी अपना आदर्श भूल कर समस्त जीवन-सृष्टि की रचना कृत्रिम आचार-विचारों, साधनों तथा विदेशी अनुकरण से करना चाहते हैं तब उनके स्वतंत्र अस्तित्व की आशा नहीं की जा सकती।

भारत की उस चित्रकला और मूर्त्तिकला का जिस पर हमें गर्व है, यशःसूर्य अस्तप्राय है। फिर भी, निराशा नहीं है। आज भी चित्रकारों और मूर्त्तिकारों की प्रतिभा का परिचय हमें मिलता है।

कला का क्षेत्र अति विस्तृत होने के कारण विवेचन कठिन है। प्रस्तुत निबन्ध में उसकी संक्षिप्त झाँकी कराने की चेष्टा की गई है। स्वतंत्र भारत में कला की उपासना में नित्य प्रति वृद्धि के साथ ही हमें कलाकारों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करनी चाहिए।

राष्ट्रकवि परिषद्, गायघाट,
काशी (उ० प्र०)

—गौरीशङ्कर गुप्त

मैं परस्पर विरोध का एक बंडल हूँ और मैं इसी में आनन्द का अनुभव करता हूँ।

मैं किसी पर किसी प्रकार का प्रभाव डालना नहीं चाहता। मैं सहज और स्वाभाविक रूप से जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। मेरे लिए नैसर्गिक रूप में रहने का अर्थ स्वर्ग में निवास करना है।

सच्ची हँसी ओछे, बुद्धिहीन और मनोविकारी व्यक्तियों को कभी नसीब नहीं होती।

—लिन युटांग

१३ वीं शताब्दी की हस्त-लिखित प्रतियाँ

भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार यहाँ ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा मौखिक रूप से ही दी जाती रही है। प्राचीन काल में इन लोगों की स्मृति बहुत तेज थी। उनकी आवश्यकताएँ सीमित होने से उनके मन, वचन, काया की प्रवृत्तियाँ भी आज के युग की तरह इतनी बिखरी हुई न थीं। इसलिए शिष्य गुरु-परम्परा से जो भी पाठ प्राप्त करता, उसे ध्यान से स्मरण कर मौखिक रूप में ही स्मरण रखने का प्रयत्न करता। आज तो उतने बड़े बड़े ग्रन्थों को स्मरण रखना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है पर उस युग में वह बिल्कुल सहज था।

प्राचीन ग्रन्थों में लिपियों आदि के जो उल्लेख मिलते हैं उनसे भिन्न भिन्न प्रान्तों एवं वर्ग के लोगों में कई प्रकार की लिपिएँ प्रचलित थीं, विदित होता है पर उनका उपयोग, लिखने का काम कम पड़ने से, बहुत कम ही एवं सीमित होता होगा। ब्राह्मी लिपि उन लिपियों में सबसे प्राचीन एवं प्रसिद्ध थी। जैन आगमों के अनुसार इस अवसर्पिणि काल के प्रथम तीर्थंकर भ० ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को सर्व प्रथम लिखने की जो वर्णमाला सिखाई उसी का नाम उस ब्राह्मी कन्या के नाम से ब्राह्मी लिपि पड़ा। भगवती सूत्र में सर्व प्रथम 'नमो बंभिए लिविए' इन शब्दों में ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया गया है जो इस लिपि के महत्व को भली भाँति सूचित करता है।

वेदों की भाँति जैनागम भी शताब्दियों तक मौखिक परम्परा से ही सिखाए व स्मरण रखे जाते रहे हैं। समय समय पर जब कि उनके पाठादि में विस्मृति एवं विविध व्यक्तियों के द्वारा बोले जाने के कारण आए हुए अन्तर से कुछ असंगति व विशृंखलता नजर आई तो श्रुत परम्परा के संरक्षकाचार्यों ने मथुरा आदि में प्रधान श्रमणों को एकत्रित कर पुनः व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया।[1] पर जब तक उनको लिपिबद्ध नहीं कर लिया गया गड़बड़ी होती ही रही होगी इसलिए वीर निर्वाण के ९८० वर्ष बाद देवर्धिगणि क्षमा श्रमण ने वल्लभी (सौराष्ट्र) में उस समय के समस्त जैना-श्रुत को लिपिबद्ध करवा दिया, ऐसी परम्परा है।

यद्यपि विक्रम की छठी शताब्दी के प्रारम्भ ही से जैन ग्रन्थों को लिखा गया था पर उस समय की कोई प्रति वर्तमान में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध प्रतियों में 'जैसलमेर वृहत् ज्ञान भण्डार' में सुरक्षित विशेषावश्यक भाष्य की प्रति ही सबसे प्राचीन है जो मुनि पुण्य विजय जी के मतानुसार ९ वीं शताब्दी की है, यह ताड़पत्र पर लिखी हुई है। इसका ताड़पत्र पतला, चिकना व बहुत बढ़िया है। अभी तक भारतवर्ष में इससे पुरानी कोई भी हस्त-लिखित प्रति कहीं भी प्राप्त या ज्ञात नहीं है। मध्य एशिया के यारकन्द शहर के दक्षिण की ओर ६० मील पर कुगियर स्थान से प्राप्त कागज के ४ ग्रन्थ ई० के ५ वीं शताब्दी के माने जाते हैं पर भारत में इतनी कोई प्राचीन प्रति प्राप्त नहीं है।

जैनागम यद्यपि ६ ठी शताब्दी में लिखे गए पर उसमें आए हुए उल्लेखों से लेखन प्रणाली बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है, ऐसा सिद्ध होता है। 'रामपषेणी' नामक सूत्र में स्वर्गलोक की एक पुस्तक 'पुत्थगरयणं' का वर्णन पाया जाता है जिसमें लेखन कला से सम्बन्धित साधनों में से पत्र, कम्बिका, डोरा ग्रन्थि, रिमप्यासन, छदंन, सांकल और मषिम का उल्लेख है। इससे हमें प्राचीन पुस्तकों के लिखने के साधनों का भली भाँति परिचय मिल जाता है। प्राचीन समय में पुस्तक किस पर लिखी जाती थी, इसका स्पष्ट निर्देश तो नहीं मिलता पर 'रामपषेणी' के पाठ से और अनुयोग द्वार चूर्णि निशीथचूर्णि के उल्लेखों से मुख्य रूप से ताड़पत्र पर ही पुस्तक लिखे जाने की प्राचीन परम्परा प्रतीत होती है।

कागज का आविष्कार भारतवर्ष में कब से हुआ, निश्चित रूप से कहने का कोई साधन नहीं है। अनुमान किया जाता है कि अन्य देशों से यह उद्योग, अनुकरण में यहाँ पनपा हो। अभी तक कागज पर लिखा जाना १४ वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ माना जाता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने "पुस्तक शब्द लगभग ५ वीं शताब्दी के मध्य में ईरान से अपनी भाषा में आया पलहवी भाषा में पुस्तक का अर्थ खाल होता है।

---

[1] इस समय के निर्णीत आगम पाठ को माथुरी वाचना कहा जाता है।

ईरान में चमड़े पर ग्रन्थ लिखे जाते थे—इसी कारण पुस्तक का अर्थ ग्रन्थ हुआ," यह मत अपने 'हर्ष चरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन' में व्यक्त किया है। इस अनुमान के ठीक न होने के सम्बन्ध में मैं अन्य लेख द्वारा प्रकाश डाल चुका हूँ। आपके इसी ग्रन्थ में ताड़-पत्रों पर ग्रन्थ लिखे जाने की प्रथा १२ वीं १३ वीं शती तक रही, फिर १४ वीं शती के शुरू में कागज़ का प्रयोग ग्रन्थ लेखन के लिए चल गया, लिखा है। अन्य विद्वान् भी अभी तक जैन ज्ञान भण्डारों की हस्तलिखित प्रतियों का ठीक पता न होने से यही भाव व्यक्त करते पाए जाते हैं। इसलिए मैं इस लेख में १४ वीं शताब्दी के पहले की कागज़ की लिखी हुई प्रतियों का परिचय करा रहा हूँ।

जैसा कि मैंने पहले निर्देश किया है ताड़पत्रीय सबसे प्राचीन प्रति ६ वीं शताब्दी की मिली है। कई विद्वान् मानते हैं कि १४ वीं शताब्दी तक ही ताड़पत्र पर लिखा जाता रहा है, पर यह मान्यता ठीक नहीं। १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही सैकड़ों प्रतियाँ ताड़पत्र पर लिखी गईं, जो जैसलमेर आदि के ज्ञान भण्डारों में बड़ी संख्या में प्राप्त हैं। वैसे १६ वीं शताब्दी में भी कुछ प्रतिएँ लिखी गई मिलती हैं पर इस समय कागज़ का प्रचार बहुत अधिक हो गया। ताड़पत्र की अपेक्षा कागज़ सस्ते मूल्य में सुलभता से मिलने लगा इसलिए १६ वीं शताब्दी में थोड़ी सी प्रतियाँ ताड़पत्र पर लिखी जाकर फिर यह प्रथा बन्द-सी हो गई, यद्यपि एकाध प्रति १७ वीं शताब्दी की भी लिखी प्रतीत होती है। वैसे जैन मुनियों के आज भी ताड़पत्र पर ग्रन्थ लिखाने को उद्यत होने की सूचना अभी अभी मिली है। मुनि केवल विजय जी का अभी एक कार्ड मेरे नाम से आया है जिसमें पाटण में ताड़पत्र पर ग्रन्थ लिखाए जाने की व्यवस्था की गई है; आप लहीयों (पुराने लेख की प्रतियों) को भेजें—यह मुझे सूचित किया गया है।

जैन मुनिगण हस्तलिखित प्रतियों की संभाल बड़े ही जतन से करते आ रहे हैं। इसलिए आज दूसरे सब सम्प्रदायों की अपेक्षा जैन ज्ञान भण्डारों में ही प्राचीन से प्राचीन और अधिक से अधिक और विशिष्ट प्रतिएँ पाई जाती हैं। मुसलमानी साम्राज्य के समय उन्होंने जब चारों ओर मूर्तियों एवं मन्दिरों को टूटते-फूटते और हस्तलिखित प्रतियों को जलाते व नष्ट करते देखा तो तुरन्त ही उन्होंने अपने ग्रन्थों को सुरक्षा के लिए विशेष सुरक्षित स्थानों में भेज दिया व रखवा दिया। मूर्तियाँ भी भूमिगृह में रखवा दी जाने लगीं। इसलिए इस काल के मन्दिरों में भूमिगृहों का निर्माण विशेष रूप से देखा जाता है। गुजरात में राजस्थान की अपेक्षा मुसलमानों द्वारा अधिक विनाश हुआ क्योंकि राजस्थान में ही मुसलमानों से यहाँ के राजा लोग बराबर टक्कर लेते रहे। अतः यह प्रान्त सबसे अधिक सुरक्षित रहा। १५ वीं शताब्दी में खरतर गच्छ के आचार्य जिनभद्र सूरि जी ने साहित्य संरक्षण के लिए एक बहुत बड़ा दीर्घदर्शी क़दम उठाया। उन्होंने जैन ग्रन्थों को एक ही भण्डार में रखना खतरे से खाली न समझा इसलिए प्राचीन प्रतियों की प्रतिलिपिएँ करवा कर जैसलमेर, जालौर, देवगिरि, नागौर और पाटण आदि विभिन्न स्थानों में ज्ञान भण्डार स्थापित किए।

जैसलमेर अपनी प्राकृतिक विशेषताओं के कारण राजस्थान में मुसलमानों से विशेष आक्रान्त नहीं हुआ। अतः सबसे अधिक सुरक्षित यही रहा। दीर्घदर्शी आचार्य जिनभद्र सूरि जी ने भी सबसे प्राचीन प्रतियों को यहीं पर सुरक्षित रखा और एक ऐसे गुप्त व सुरक्षित स्थान पर ज्ञान भण्डार बनवाया जिसमें किसी भी प्रकार का भय न हो। जो जैसलमेर गए हैं और जिन्होंने वहाँ इस भण्डार को देखा है उन्हें अवश्य ही आचार्य जी की विलक्षण सूझ की दाद देनी पड़ेगी। दो जैन मन्दिरों के बीच एक भूमिगृह में छोटे से दरवाज़े का यह ज्ञान भण्डार है। भीतर एक कमरा है उसके भीतर यह ज्ञान भण्डार है। अलमारियाँ व पटरिएँ सभी पत्थर की होने से दीमक आदि ग्रन्थ भक्षक जन्तुओं की भी उत्पत्ति वहाँ नहीं हो सकी। फलतः साढ़े पाँच सौ वर्ष बीत जाने पर भी यह भण्डार बहुत कुछ सुरक्षित रह सका यद्यपि व्यवस्थापकों की असावधानी से समय समय पर इस भण्डार को बहुत हानि पहुँची है। सैकड़ों महत्वपूर्ण प्राचीन प्रतिएँ यहाँ से गायब हो गईं व टूट-फूट कर नष्ट हो गईं। फिर भी भारतवर्ष भर में ताड़पत्र व कागज़ की सबसे प्राचीन प्रतियाँ और अनेक अलभ्य ग्रन्थ यहीं सुरक्षित रह सके हैं।

११ वर्ष पूर्व हमने जैसलमेर के ज्ञान भण्डारों का निरीक्षण किया। वहाँ की अनमोल साहित्य समृद्धि को देख कर बड़ा ही आनंद हुआ। जैसलमेर में जैनभण्डार कई हैं। स्वर्गीय चीमनलाल दलाल ने ४ भण्डारों को ही देखा

था। अतः हमने जा कर उन्हें एवं अन्य ३-४ भराडार जिन्हें वे देख नहीं पाए थे, देखा। उनमें से २ भराडार तो वर्षों से ही बंद पड़े थे। एक के आगे तो दीवार ही चुना दी गई थी—उनको भी बड़े प्रयत्न के बाद हमने खुलवा के देखा। बड़े ज्ञान भराडार की कुछ प्रतियों को रद्दी में नष्ट होते देख हमें बड़ा ही दुःख हुआ। अनेकों ताड़पत्रीय प्रतियों का तो चूरा चूरा हो गया था। छोटे छोटे सैकड़ों त्रुटित पत्र, विविध शताब्दियों के लिखे हुए और कई प्रकार की लिपियों के उदाहरण रूप इस रद्दी में पड़े थे। इसी प्रकार कुछ काग़ज़ की प्राचीन प्रतिएँ भी उसी रद्दी के टोकरे में बाहर के भराडार में रखी देख हमें बड़ा खेद और आश्चर्य हुआ। इसी रद्दी में से हमें दो महत्वपूर्ण ग्रंथ प्राप्त हुए और एक काग़ज़ की लिखी हुई प्रति का अन्तिम पत्र, जो अभी तक भारत भर में प्राप्त काग़ज़ की प्रतियों में से सबसे प्राचीन प्रति का अवशेष था, देख हमने उसकी लेखन प्रशस्ति की प्रतिलिपि अपने नोट बुक पर कर ली और वह पत्र वहीं भराडार के व्यवस्थापकों को संभाल के रखने की सूचना के साथ दे दिया। हमारे वापस आने के पश्चात् पुरातत्व आचार्य मुनि जिनविजय जी जैसलमेर पधारे और ५-६ महीनों तक अपनी मंडली के साथ डट कर काम किया। उन्होंने कुछ विशेष महत्वपूर्ण ग्रंथों की नकलें करवाईं, कुछ के फोटो लिए, और कुछ अपने साथ लेते पधारे। साथ लानेवाली सामग्री में हमारा अवलोकित वह काग़ज़ का पुराना पत्र भी है। इसका फोटो मुनि जी ने अपनी संपादित 'भारतीय विद्या' के तीसरे भाग में अपनी जैसलमेर यात्रा के विशेष विवरण के साथ प्रकाशित किया है और इस पत्र का परिचय देते हुए पृ. २४२ में निम्नोक्त विवरण दिया है :

"१० चित्रांक (६) ऊपर एक अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण पानानुं चित्र छे पानु काजगनुं छें, ताडनुं नहिं, जैसलमेरनां भराडारमां रद्दीपानां भेगुं नाखी राखेलुं आ पानुं मलयुं हतुं एनी विशेषता ए छे के ए पानावालुं पुस्तक उक्त जिनदत्तसूरिना खास पट्टधर शिष्य जिनचन्द्रसूरिए पोते लखावेलुं हतुं आनंदवर्द्धनाचार्य कृत 'ध्वन्यालोक लोचन' नामना पुस्तकनुं ए अंन्तिम पत्र छे. पानानी नीचेनी कोरो खरी गएली होवा थी अन्तनो पुष्पिका लेख अखराड न थी रह्यो अने ते थी एमां लख्यानी साल विगेरेनी जे नोंध ते नष्ट थई गई छे. परंतु एमां जिनदत्तसूरि अने तेमना शिष्य जिनचन्द्रनुं नाम स्पष्ट वांची शकाय छे. छेल्ली पंक्तियाँ 'जिनचन्द्र नाम्नाउलेखि' ए वाक्य स्पष्ट देखाय छे. एटले ए पुस्तक तेमनुं पोतानुं लखावेलुं हतुं ए स्पष्ट थाय छे. जिनचन्द्रसूरि वि० सं० १२२३ मां, २० वर्ष जेटली अल्प उम्रमां ज स्वर्गवासी थई गया हता. तेथी तेमणे ए पुस्तक १२१३ अने १२२३ नी वच्चे क्यारेक लखाव्युं हशे, एम पानी शकाय. आ पुस्तक कागल उपर लखेलुं हतुं कागजनुं आटालुं जूनुं लखेलुं बीजुं पुस्तक हजी मारी जाणमां न थी आव्युं तेथी हुं एने कागज ना एक जूनामां जूना पुस्तक ना नमूना तरीके गणवा ललचाऊं छुं।

एनां अन्तनो पुष्पिका लेख आ प्रमाणे उकेली शकायो छे :

(१)……पूर्णं चेदं काव्यालोकलोचनं……

(२)……लब्धप्रसिद्धेः श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तस्य ॥छ॥
समाप्तं चेदं लोचनग्रंथः ॥………

(३)……घ सु. १ खौ ॥ श्रीमज्जिनवल्लभ सूरिशिष्यः
श्रीमज्जिनदत्तसूरिः प्रवरविधि धर्म्मसर………

(४)……प्रतिवादिकरटिकरटविकटदपा………
चरणेन्दीवरमधुकरो विज्ञातसकलशास्त्रार्थ………

(५)……जिनचंद्रनाम्नामलेखि………"

जैसलमेर के इस भराडार में १३ वीं शताब्दी के काग़ज़ पर लिखी हुई पूरी प्रतिएँ सात और अपूर्ण आठ प्राप्त हुई हैं जिनमें से एक प्रति में लेखन सं० दिया हुआ नहीं है पर मेरी राय में सबसे प्राचीन काग़ज़ की प्रति वही होनी चाहिए। उसकी लिपि और काग़ज़ को देखते हुए मुझे वह सं० १२०० से १२५० के बीच की ही निश्चित रूप से लगती है। वह प्रति है "जम्बू रचित मणिपति चरित्र" की, जो सं० १००५ में रचा गया है। इस प्रति की पत्र संख्या १०७ है। इसका फोटो मैंने नहीं लिया और लेखन प्रशस्ति भी इसमें नहीं है और प्रति के अभी पास न होने से विशेष विवरण नहीं दिया जा सका।

मुनिपुरायविजय जी के अवलोकन में जिनविजय जी का परिचय दिया हुआ 'ध्वन्यालोक लोचन' का उपर्युक्त पत्र नहीं आया। इसीलिए उन्होंने अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद् अहमदाबाद अधिवेशन की साहित्य प्रदर्शिनी के भाषण में लाई गई खम्भात स्थित जैनशाला के भराडार की सं० १२३४ (?) के लिखित जिनेश्वर सूरि के कथा कोष की प्रति को "जैन भराडारों में पाई जानेवाली काग़ज़ की पोथियों में सबसे पुरानी बतलाया है।

८०० वर्ष के बाद आज भी उसके कागज़ की स्थिति अच्छी है" ऐसा अपने साहित्य प्रदर्शनी के उपलक्ष में दिए हुए प्रवचन में सूचित किया है।

१३ वीं शताब्दी की जो ८–१० प्रतियाँ मेरे अवलोकन में आई हैं उनके कागज़ दो प्रकार के हैं। 'ध्वन्यालोक लोचन' का जो अन्तिम पत्र मिला है। वह पतला कागज़ है और दूसरी प्रतियों का कागज़ उससे मोटा है। आकार के लिहाज से भी १३ वीं शती के कागज़ की प्रतियाँ तीन भागों में विभक्त हो जाती हैं। संवत् १२४६ के 'मणिपति चरित्र' की प्राचीन प्रति का आकार काफ़ी छोटा है। लम्बाई और चौड़ाई दोनों ही कम हैं जब कि 'न्यायवार्तिक' और 'सनतकुमार चरित' महाकाव्य की प्रतियाँ लम्बाई और चौड़ाई में ड्योढ़ी बड़ी हैं। 'ध्वन्यालोक लोचन' का प्राप्त पत्र तो इन सबसे निराला है, उसकी चौड़ाई को देखते हुए कुछ कटा होने पर भी वह परवर्त्ती कागज़ की प्रतियों का सबसे प्राचीन प्रतीक मालूम होता है।

जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है १३ वीं शताब्दी की कागज़ की प्रतियों में से ८ तो जैसलमेर भण्डार में ही हैं। अन्यत्र के भण्डारों में केवल खम्भात के जैन शास्त्र के भण्डार में १ प्रति पाई गई है। अन्य किसी भण्डार में अभी तक इस काव्य की लिखी हुई कोई प्रति नहीं मिली। 'ध्वन्यालोक लोचन' के बाद संवतोल्लेखवाली प्रतियों में खम्भात की प्रति का ही स्थान आता है। अतः उस प्रति की लेखन पुष्पिका पहले दी जाकर फिर जैसलमेर की अन्य प्रतियों की पुष्पिकाएँ दी जाएँगी।

१ कथाकोश जिनेधरसूरि : लेखन पुष्पिका संवत १२३२ आ(षा)ढ़ सुदि २ आदित्य दिने अद्येह श्री—पुरी स्थिताभ्यां। श्री मद्वाचनाचार्य गुणचन्द्र गणि सन्नि—कर्मक्षय।

अब जैसलमेर की प्रतियों का परिचय दिया जा रहा है :

२ (अ) सूक्ष्मार्थ विचारसार टिप्पनमू (आ) षरशीति विचारसार टिप्पनमू। जिनवल्लभसूरि, टिप्पन उनके शिष्य रामदेव रचित यह प्रति १०५ पत्र की है। (इ) संवत् १२४६ माघ वदि १० सोमे (भिन्नाक्षरों में पशश्चद्रगणे)

३ आचारांग सूयगंडाम, दशवैकालिक व उत्तराध्ययन की नियुक्तियाँ—पत्र ७५—यह प्रति सं. १२८७ में प्रल्हादनपुर व बीजापुर में ख० पूर्णभद्र की लिखित है। पुष्पिका लेख इस प्रकार है—(अ) उत्तराध्ययन निञ्जुति के अन्त में (पत्रांक ४७ वें में)

अश्वस्वरद्युमणिसम्मित विक्रमाब्दे।
ज्येष्ठस्यवदर्शदिवसे शुभलग्ने ग्रहणे च भानोः।
बीजापुरे जिनपते र्यतिपस्य शिष्यो
निर्युक्ति मालिखदिमां मुनिपूर्णभद्रः॥

(आ) आचारांग निर्युक्ति के अन्त में (पत्रांक ६४वां)

मुनिभयरविसंख्ये विक्रमादित्यवत्सरे
अश्वयुक् प्रथमक्षस्याष्टमी दिवसे रवौ ॥१॥
प्रह्लादनपुरस्थेन पूर्णभद्रेण साधुना।
निर्युक्ति प्रथमांगस्यालेखि कर्मविमुक्तये ॥२॥

४ सनतकुमार महाकाव्य (जिनपाल रचित) का पुष्पिका लेख "संवत् १२७८ वैशाख वदि ५ लिखित।"

कुछ स्तोत्र पत्र भी इसी समय के लिखित उस प्रति के साथ हैं। संभवतः यह ग्रन्थकार के स्वयं लिखित हैं।

५ न्यायवार्तिक (भारद्वाज रचितु, पत्र १५७) पुष्पिका इस प्रकार है : संवत् १२७६ वर्षे फागुण शुदि ६ बुधे प्रह्लादनपुरस्थितेन ठ० विल्हणेन न्यायवार्तिक पुस्तकं समाप्तमिदं। श्री मज्जिनपति सूरि शिष्य श्री जिनेश्वर सूरीणां ॥७॥ उपदेशेन ॥

६ न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका (वाचस्पति मिश्र रचित, पत्र ५ से २८०) सं. १२ (७६) भाद्रपद वदि १३ लिखितं।"

न्यायवार्तिक की अन्य टीकाओं की भी प्रति उपर्युक्त दोनों प्रतियों के साथ उन्हीं व्यक्ति द्वारा लिखी हुई है पर अपूर्ण (१ प्रति पत्र २८१ से ३५०) होने से उनका पुष्पिका लेख प्राप्त नहीं है।

७ लक्ष्मीचन्द्र की सूची के अनुसार प्रति सं. ५१३ संबधोद्योत पत्र २५ में सं. १२८६ जिनेश्वरसूरि शिष्य के उल्लेखवाली प्रशस्ति थी पर यह प्रति अभी मेरे देखने में नहीं आई।

७ मुनिपति चरित्र की प्रति जिसमें संवतोल्लेख का उल्लेख नहीं पर मेरी राय में सबसे पुरानी है।

उपर्युक्त सभी प्रतियाँ श्वे. संप्रदाय के खरतर गच्छ के विद्वानों के लिखित और लिखापित हैं। १३ वीं शताब्दी में इस गच्छ में अनेक विद्वान् हो गए हैं और

उनकी परम्परा एक विद्वत् परम्परा के रूप में आज भी विद्यमान है। जैसलमेर का भण्डार तो इसी गच्छ का है पर खंभातवाली प्रति भी इस गच्छ के प्रवर्त्तक आचार्य जिनेश्वरसूरि की रचित है। खम्भात में भी खरतरगच्छ का अच्छा भण्डार था पर उस ओर खरतरगच्छ के साधुओं का विहार विशेष न होने से संभवतः अभी वह तपगच्छ की देख रेख में चला गया है पर कथाकोष की प्रति पूर्वकालीन उक्त खरतरगच्छ के भण्डार की ही निश्चित है।

इन प्रतियों का विविध दृष्टियों से बड़ा महत्व है। कई प्रतिएँ तो ग्रन्थ रचनाकाल के समकालीन या बहुत थोड़े समय के भीतर की लिखी हुई हैं। सनतकुमार महाकाव्य की प्रति तो यथा-संभव प्रथमादर्श के रूप में है। ग्रन्थ रचे जाने के बाद जो पहली प्रति शुद्ध रूप में तैयार की जाती है उसे प्रथमादर्श कहते हैं। षटशीति टिप्पण और सूक्ष्मार्थ विचारसार के टिप्पनकार रामदेव का समय सं. ११७० से १२०० के बीच का है और इनकी प्रति सं. १२४६ की है अर्थात् टिप्पण के रचे जाने के ५० वर्ष बाद की ही लिखी हुई है।

न्यायवार्तिक की टीका सं. १२७६ की है। यह टीका अन्यत्र अप्राप्य होने से महत्वपूर्ण है ही और उसकी इतनी प्राचीन प्रति अन्य कहीं प्राप्त है ही नहीं। इस दृष्टि से भी इन प्रतियों का महत्व बहुत बढ़ जाता है। यह प्रति कुछ दीमक की शिकार बन गई थी और जीर्ण हो गई थी अतः मुनि पुण्य विजय जी ने इसको बहुत बढ़िया जिल्द करवा दी है जिससे अब पाँच सात सौ वर्ष की इसकी आयु बढ़ गई है।

सं. १२७७ में प्रल्हादनपुर और बीजापुर में लिखित आचारांग, उत्तराध्ययन आदि की निर्युक्तियों की प्रति के लेखक विद्वद्वर पूर्णभद्र हैं जो खरतर गच्छ के आचार्य जिनपतिसूरि के शिष्य थे। ये बहुत अच्छे विद्वान् एवं सुकवि थे। आपके रचित दशश्रावक चरित (प्राकृत, सं. १२७५ में रचित), अतिमुक्तचरित्र (सं. १२८२ पालणपुर), धन्ना शालिभद्र चरित्र काव्य (सं. १२८५ जैसलमेर), कृतपुण्यचरित्र (सं १३०५) और कई स्तोत्र प्राप्त हैं। ऐसे एक विद्वान् के हाथ की लिखी हुई प्रति करीब ७५० वर्ष के बाद भी प्राप्त होना एक महत्वपूर्ण घटना है।

इन प्रतियों में जिस प्रकार के कागज़ का उपयोग हुआ है वह काफ़ी टिकाऊ है। करीब ८०० वर्ष हो जाने पर भी यह कागज़ बहुत अच्छी हालत में है। यदि अभी ठीक से रखी जाएँ तो ये प्रतिएँ ४-५ सौ वर्ष और भी मजे में टिक सकती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि कागज़ भी ठीक ढंग से बनाया जाए तो १०००-१५०० वर्ष तक टिक सकता है। कहने के लिए तो आज का युग विज्ञान का युग है, नित्य नए आविष्कार व अन्वेषण हो रहे हैं पर आज के अच्छे से अच्छे बने कागज़ भी इतने टिकाऊ नहीं मालूम देते। इससे हमारी वैज्ञानिक प्रगति को चुनौती मिलती है। प्राचीन काल में वस्तुओं का टिकाऊपन अधिक से अधिक हो, इसका अधिक ध्यान रख कर उनके निर्माण में बहुत श्रम किया जाता था। कागज़ की भाँति स्याही को भी लीजिए १०००-१२०० वर्ष पहले की लिखी प्रतियों की स्याही आज भी चमक रही है। पर वर्त्तमान समय की स्याही मूल रूप में कब तक टिकेंगी, प्रश्न है।

ये प्राचीन प्रतियाँ हमारी अनमोल निधि हैं। इनकी सुरक्षा अधिक से अधिक होनी चाहिए। इनकी फोटो ली हुई प्रतियाँ अनेक स्थानों में प्रदर्शित की जाना वांछनीय है।

नाहटों की गवाड़,
बीकानेर

—अगरचन्द नाहटा

दुःख की जितनी शक्ति है उससे कहीं अधिक प्रकृति ने आदमी को सहन-शक्ति दी है। जिस तरह दुःख की कोई निश्चित सीमा नहीं उसी तरह मनुष्य की सहन-शक्ति भी असीम है।

—("गंगा मैया" से)

उपहासास्पद क्या है ?

‘उपहासास्पद क्या है’ की मीमाँसा हमारा विषय नहीं कि हम दर्शन की दृष्टि से इसकी व्याख्या करें अथवा न्याय की दृष्टि से इसकी परिभाषा कर सब को इसमें रमा लें। हमारा सीधा-सा उद्देश्य तो यहाँ यह है कि हम वास्तव में आप से सरलता से जान लें कि इसके आगे जो कुछ कहा जा रहा है वस्तुतः उसमें उपहासास्पद क्या है? और क्या है भविष्य में उससे बचने एवं समाज को बचाने का उपाय? सो लीजिए। कहना है एक हिन्दी के सम्मानित डा० तथा प्रतिष्ठित आचार्य का। देखिए तो सही। आप का मत है, अमर्ष है :

“यह भी बताया गया है कि जब मुसलमान हिन्दुओं पर अत्याचार करने लगे तो निराश होकर हिन्दू लोग भगवान् का भजन करने लगे। यह बात अत्यन्त उपहासास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मन्दिर तोड़ रहे थे तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान् की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिन्ध में और फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में।”[१]

वस्तुतः हम समझने में असमर्थ हैं कि ‘उपहासास्पद’ वास्तव में है क्या? प्रथम वाक्य के निमित्त इसका उल्लेख तो हुआ नहीं। कारण कि ‘यह बात अत्यन्त उपहासास्पद है’ के उपरान्त विराम नहीं संयोजक ‘कि’ है जिससे इसका सम्बन्ध इसी द्वितीय वाक्य से दिखाई देता है। परन्तु पूरे प्रसंग पर ध्यान देने से स्फुट होता है कि खण्डन प्रथम का ही इष्ट है, कुछ दूसरे का नहीं।

जो हो, विचारणीय यहाँ यह है कि वास्तव में ‘भक्ति’ के उदय का कारण क्या है और क्या है उक्त महानुभाव का पक्ष। किन्तु इस विचार में पड़ने के पहले वास्तव में जानना यह है कि सचमुच इस देश में ‘मुसलमान’ की स्थिति है क्या? सो इतिहास का कोई भी विद्यार्थी सरलता से कह सकता है :

“उस समय के अरब निवासी बड़े गुणग्राहक थे। बाद के मुसलमानों जैसी उनकी तोड़फोड़ की नीति नहीं थी। मोहम्मद साहब के उपदेशों को उन्होंने अच्छी तरह हृदयंगम किया था। भारत से सम्पर्क होने पर उन्होंने भारतीय विद्याएँ और गुण सीखने का बड़ा प्रयत्न किया था। सिंध-विजय के पहले भी अरब व्यापारी गुजरात और दक्षिण में जाते थे। हिन्दू राजाओं ने उन्हें वहाँ बसने की सुविधाएँ दी थीं और उनके लिए मस्जिदें भी बनवा दी थीं।”[२]

‘सन्मार्ग’ के सम्पादक श्री गंगाशङ्कर मिश्र जी ने सिंध के ‘मुसलमान’ के विषय में जो कुछ लिखा है उसका भाव आपको मिल गया। अब इसी के साथ ‘सेन्ट्रल हिन्दू कालेज’ के प्रिन्सिपल डाक्टर रमाशङ्कर त्रिपाठी जी का मत भी जान लीजिए। उनके कथन का मुख्यांश है :

“सिन्धु में विजेताओं ने सहिष्णुता की दूरदर्शी नीति अपनाई। इसमें सन्देह नहीं कि इस्लाम का प्रचार हुआ परन्तु हिन्दुओं के मन्दिर, ‘ईसाइयों के गिरिजाघरों, यहूदियों के सिना-गागों तथा मगों की वेदिकाओं की भाँति पावन’ समझे गए। ब्राह्मणों को मंदिरों के निर्माण तथा जीर्णोद्धार कराने की अनुमति मिली थी। यद्यपि स्थान-स्थान पर अरब सेनाएँ नियत थीं परन्तु देश का भीतरी शासन अधिकतर स्थानीय हिन्दुओं के हाथ में ही था और ये ख़िराज (भूमि-कर) तथा जज़िया (जान-कर) देते थे। भारतीय परिस्थितियों ने भी धीरे-धीरे अरबों के ऊपर अपना रंग चढ़ाया। उदाहरणतः उन्होंने हिन्दुओं से ज्योतिष और गणित सीखी और चरक के ग्रन्थ तथा पञ्चतन्त्र की कथाओं के अरबी अनुवाद किए।”[३]

फिर भी यदि हमारे देश के ‘ज्योतिषाचार्य’ सिंध के ‘मुसलमान’ में ‘अत्याचार’ का ही दर्शन करें तो इसमें ‘उपहासास्पद’ क्या है? इतिहास में यह देश पक्का कब रहा? किन्तु नहीं। आपका इतिहासानुराग इतना प्रबल है कि आपकी क़लम से बरबस निकल पड़ता है :

---

[१] हिन्दी साहित्य, पृ० ८८-९. [२] भारत इतिहास पृ० १२७-८. [३] प्राचीनभारत का इतिहास, सन् १९५१, पृ० २५.

"अलाउद्दीन मुहम्मद गोरी का चाचा था और उसी की ओर से राज्य करता था। रासो में भी दुर्गा केदार और माधव भाट नामक दो कवियों की चर्चा आती है और चन्द बरदाई के साथ उनकी प्रतिद्वंद्विता का भी विस्तारपूर्वक वर्णन दिया है। यह नहीं समझना चाहिए कि गोरी के दरबार में हिन्दू कवियों का आना असम्भव है। वस्तुतः महमूद के पहले गज़नी में ब्राह्मण वंश का राज्य था और यह बिलकुल असंभव नहीं है कि पुराने राजवंश के नष्ट हो जाने के बाद उसके आश्रित कवि नए राजाओं की सेवाओं में लग गए हों।[४]

झटके में एक साथ ही यहाँ इतना कुछ कह दिया गया है कि सत्य और प्रतिपाद्य का पता नहीं। अच्छा होगा, स्थिति को स्पष्ट करने के लिए पहले 'वस्तुतः' को लीजिए आप से कहा जाता है किस अधिकार के साथ :

"वस्तुतः महमूद के पहले गज़नी में ब्राह्मण वंश का राज्य था।" किन्तु इतिहास डपट कर कहता है : कदापि नहीं। 'गजनी' नहीं 'काबुल' में कभी 'ब्राह्मण वंश' का राज्य था। कभी इसलिए कि उन्हीं डा० त्रिपाठी का लेख है :

"यह भी पता चलता है कि गोपालवर्मन् (लगभग ९०२-९०४ ई०) के मन्त्री प्रभाकरदेव ने जिस अज्ञातनामा 'विद्रोही शाही' को बुरी तरह परास्त किया था वह सामन्द अथवा सामन्त ही था। उसे 'उद्भाण्डपुर का शाही' कहा गया है क्योंकि हिजरी २५६=८७०-७१ ई० में सफ़्फ़ारिद याकूब इब्नलेथ द्वारा काबुल-विजय के बाद राजधानी वहाँ हट आई थी।"[५]

स्मरण रहे, डा० त्रिपाठी ने इस प्रकरण को नाम दिया है 'काबुल और पंजाब के शाही' और विभक्त किया है इसे 'तुर्की शाही' तथा 'हिन्दू शाही' में। हाँ, उसी क्रम में आगे चल कर आपने यह भी स्पष्ट लिखा है कि :

"जयपाल के समय से मुसल्मानों ने शाहियों के ऊपर आक्रमण करने शुरू किए। उनका दबाव इतना भारी पड़ा कि शाहियों के हाथ से अफ़गानिस्तान निकल गया और उन्हें बाध्य होकर अपनी राजधानी भटिंडा (पटियाला स्टेट में) हटानी पड़ी।"[६]

इन अवतरणों से अवगत हो गया होगा कि 'वस्तुतः महमूद के पहले गज़नी में ब्राह्मण वंश का राज्य था' कितना निराधार और अललटप्पू है। रही उसके नष्ट हो जाने की बात सो भी एक दिन में नहीं हो गई। उसके विलीन होने में धीरे धीरे अनेक वर्ष बीत गए। सबुक्तगीन के समय में ही उसके हाथ से अफ़गानिस्तान निकल गया। हाँ, महमूद सुल्तान बना तो किया यह कि:

"भारत के समृद्धिशाली तथा वैभवपूर्ण नगर और मन्दिर लूट कर उसने धन एकत्र करने की योजना बनाई। नए मुसल्मान तुर्की सैनिकों में उसने खूब धार्मिक जोश भरा और उन्हें यह पाठ पढ़ाया कि 'काफ़िरों के लूटने-मारने से स्वर्ग प्राप्त होता है।' इस तरह 'जेहाद' अर्थात् धर्मयुद्ध के रूप में उसने भारत पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया।"[७]

फिर भी आप यह नहीं बताते कि 'उसके आश्रित कवि' 'अलाउद्दीन' के दरबार में पहुँच गए। नहीं। आपका कथन तो यह है कि उस 'ब्राह्मण वंश' के नष्ट हो जाने पर 'उसके आश्रित कवि नए राजाओं की सेवाओं में लग गए।' और लगे न भी हों तो भी संभावना तो ऐसी है ही। यह भी सही। किन्तु क्या अलाउद्दीन की गणना 'नए राजाओं' में हो सकती है? भूलिए नहीं 'महमूद' का निधन हुआ ४२१ हिजरी अर्थात् १०३० ई० में और अलाउद्दीन 'गज़नी' को फूँक कर 'जहाँसोज़' बना ५४७ हि० अर्थात् ११५२ ई० में और मरा ५५१ हि० (११५६ ई०) में। हाँ, उसके उपरान्त कुछ दिनों के पश्चात् शासन-सूत्र हाथ में आ गया 'ग़ियासुद्दीन' के जो अपने भाई मुईज्जुद्दीन मुहम्मद बिन साम अर्थात् मुहम्मद गोरी के साथ शासन करता रहा, सन् ५९८ हि० (१२०१ ई०) तक। उसके उपरान्त मुहम्मद गोरी ने अपने चचेरे भाई अलाउद्दीन को महत्व दिया। प्रश्न उठता है कि उक्त महोदय के इस कथन का अर्थ क्या कि :

"अलाउद्दीन मुहम्मद गोरी का चाचा था और उसकी ओर से राज्य करता था।"

पहला अलाउद्दीन तो वह हो नहीं सकता। कारण कि वह 'मुहम्मद गोरी' की ओर से राज्य नहीं करता था। दूसरा कहा जा सकता है। पर वह उसका चाचा नहीं चचेरा भाई था। तो भी मान लीजिए कि हिन्दी के किसी सम्मानित डाक्टर की शोध के अनुसार ऐसा ही हुआ, पर हुआ तो यह सन् १२०१ ई० के बाद ही न! तो क्या आप अपने इस अद्भुत अनुसन्धान के द्वारा यह

---

[४] हिन्दी साहित्य, पृ० ५३. [५] वही, पृष्ठ २५५. [६] वही, पृ० २५५. [७] भारत का इतिहास, १९५१ ई०, पृ० १३०.

१९५४

बताना चाहते हैं कि आपके तथाकथित उक्त ब्राह्मण वंश के आश्रित कवि इतने दीर्घजीवी रहे कि 'गज़नी' के पतन अथवा महमूद गजनवी के पहले के कवि इस अलाउद्दीन के समय में आ गए ? कह तो दीजिए कितने वर्ष जीवित रहे आपके ये भट्ट ? भूलिए नहीं, आप ही का कथन है :

"इसी प्रकार भट्ट केदार और मधुकर नामक दो भाट कवियों के विषय में कहा जाता है कि इन्होंने जयचन्द्र के यश वर्णन के लिए 'जयचन्द्र प्रकाश' और 'जयमयंकजसचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ लिखे थे।"[८]

'जयचन्द' का निधन हुआ ११९४ ई० में, किन्तु उसके वंश का नहीं। भाट का किसी वंश से जो लगाव होता है उसकी उपेक्षा कर उसे इस प्रकार अंकित करना किसी परम शोधालु का ही कार्य हो सकता है, हम इसकी मीमांसा में अधिक क्या कहें ? आप ही तो स्वयं कह जाते हैं :

"जो हो जब तक इन कवियों की पुस्तकें नहीं मिल जातीं तब तक इस विवाद में पड़ना व्यर्थ है कि ये कवि जयचंद के दरबारी थे अथवा गोरी के।"[९] सो तो ठीक, पर तब तक विद्यार्थी आपकी इस अनुपम खोज को क्या करे ? कारण ? आप ही का तो निवेदन है :

"परन्तु पुस्तक को संक्षिप्त रूप देते समय ध्यान रखा गया है कि मुख्य प्रवृत्तियों का विवेचन छूटने न पाए और विद्यार्थी अद्यावधिक शोध-कार्यों के परिणाम से अपरिचित न रह जाएँ।"

तो क्या 'विद्यार्थी' को घोखना होगा कि :

१ "अलाउद्दीन मुहम्मद गोरी का चाचा था और उसी की ओर से राज्य करता था।"

२ "वस्तुतः महमूद के पहले गज़नी में ब्राह्मण वंश का राज्य था।"

और यदि अनुचित न हो तो कह लें आपही के शोधाधार पर कि :

३ वास्तव में मुहम्मद गोरी और 'महमूद' में कोई भेद नहीं।

अन्यथा आपके उक्त विवेचन का आधार क्या ?

अच्छा तो 'मुसलमान' के 'अत्याचार' और 'भक्ति' के उत्कर्ष अथवा भगवान्-भजन के विषय में ध्यान देने की बात है कि आपके ही कथनानुसार :

"९ वीं १० वीं शताब्दी के बाद से भारतीय साहित्य में 'दशावतारचरित' नाम देकर अनेक काव्य लिखे गए।"[१०]

प्रश्न उठता है -- पहले क्यों नहीं ? समाधान की चिन्ता न कर कृपया देखें यह कि :

"दसवीं शताब्दी के कवि क्षेमेन्द्र के 'दशावतारचरितम्' में गोपियों के मुख से एक भजन गवाया गया है जो बहुत कुछ 'गीतगोविन्द' की पद्धति पर है। भजन इस प्रकार है :

"ललितविलासकलासुखखेलन—
ललनालोभनशोभनयौवन मानितनवमदने।
अलिकुलकोकिलकुवलयकज्जल—
व्यालकलिन्दसुताविव लज्जल, कालियकुलदमने।
केशिकिशोरमहासुरमारण,
दारुणगोकुलदुरितविदारण गोवर्धनधरणे।
कस्य न नयनयुगं रतिसंगे,
मज्जति मनसिजतरलतरङ्गे, वररमणीरमणे।"[११]

इससे यह सूचित होता है कि पश्चिम भारत में भी लोक भाषा में भी उस प्रकार के गान प्रचलित थे जिनका पता 'गीतगोविन्द' के भजनों में लगता है।[१२]

अच्छा तो आपका कहना है कि क्षेमेन्द्र 'दसवीं शताब्दी के कवि' हैं और हैं न साथ ही 'पश्चिम भारत' के भी ? किन्तु देखिए न, आप ही का कथन तो है यह भी :

"क्षेमेन्द्र (११ वीं शताब्दी) के 'दशावतारचरितम्' में कवि ने एक जगह लिखा है कि जब गोविन्द यानी श्रीकृष्ण मथुरापुरी को चले गए तो वियोगक्षिप्तहृदया गोपियाँ गोदावरी (?) के किनारे पर गोविन्द का गुणगान करने लगीं :

"गोविन्दस्य गतस्य गतस्य कंसनगरीं
व्याप्ता वियोगाग्निना।
स्निग्धश्यामलकूललीनहरिणे
गोदावरीगह्वरे।
रोमन्थस्थितगोगणैः परिचयादु-
त्कर्णमाकर्णितम्

---

[८] हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ५२. [९] वही पृ० ५३. [१०] पृ० ९३. [११] दशावतारचरित, ८-१७३. [१२] पृ० ९७.

गुणं गोकुलपल्लवे गुणगणं
गोप्यः सरागा जगुः ।''[१३]

गोपियों ने जो गान गाया उसे कवि ने मात्रिक छंद में लिखा है। अनुमान किया जाता है कि क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार के गान अपने आस-पास सुने थे और इस गान में उन्होंने उन्हीं लौकिक गीतों का अनुकरण किया है। गीत इस प्रकार है :

''ललितविलासकलासुखखेलन
ललनालोभनशोभनयौवन
मानितनवमदने ।
अलिकुलकोकिलकुवलयकज्जल
कालकलिन्दसुताविव लज्जल
कालियकुलदमने ।
केशिकिशोरमहासुरमारण
दारुणगोकुलदुरितविदारण
गोवर्धनधरणे ।
कस्य न नयनयुगं रतिसङ्गे
मज्जति मनसिजतरलतरंगे
वररमणीरमणे ।''

इस गान से यह अनुमान होता है कि जिस प्रकार के पद बंगाल और उड़ीसा में प्रचलित थे उसी प्रकार के पद सुदूर काश्मीर में भी प्रचलित थे अर्थात् पूर्व से पश्चिम तक संपूर्ण भारत में ऐसे पद व्याप्त थे।''[१४]

हम मानते हैं कि, 'संपूर्ण भारत' की बात हमारी समझ में नहीं आती। 'बंगाल और उड़ीसा' से 'काश्मीर' तक का बोध तो हो जाता है किसी प्रकार इस कथन से अपने बल पर यह जान कर कि 'गीतगोविन्द' की रचना बंगाल-उड़ीसा में हुई तो 'दशावतारचरित' की 'काश्मीर' में। किन्तु शेष भारत इसमें कैसे सिमिट गया ? और क्या 'काश्मीर' है 'पश्चिम' में ? 'पश्चिम भारत' से आपका तात्पर्य ? वह 'काश्मीर' कब से हो गया ?

जी। ध्यान देने की बात है कि जहाँ एक ओर समझाया जाता है 'गोविन्द यानी श्रीकृष्ण' वहीं यह उचित नहीं समझा जाता कि तुलना के लिए एक 'गीत' अथवा 'गाना' दे दिया जाए 'गीतगोविन्द' का। कारण कुछ समझ में नहीं आता। पाठक स्वयं इस पहेली को सुलझा लें यानी समझ लें कि क्षेमेन्द्र की इस रचना का दोहरा उपयोग क्यों और जयदेव की रचना की यह उपेक्षा क्यों ? क्यों इस गीत की पुनरुक्ति ? सो भी भिन्न शैली में।

फुटकर बातों को छोड़ कर देखिए यह कि वास्तव में क्षेमेन्द्र हैं किस शती के जीव ? कारण यह कि पहले आपने कहा था 'दसवीं शताब्दी के कवि क्षेमेन्द्र' और अभी अभी आपने बताया है 'क्षेमेन्द्र ११ वीं शताब्दी के।' तो फिर आपका 'विद्यार्थी' उनको कब का समझे ! रहा 'क्षेमेन्द्र' का विद्यार्थी सो भली भाँति जानता है कि 'दशावतारचरित' का रचना काल है उसी की भाषा में :

''एकाधिकेऽब्दे विहितश्चत्वारिंशे सकार्तिके।
राज्ये कलशभूभर्तुः कश्मीरेष्वच्युतस्तवः ॥''

और पाद-टिप्पणी में इसका स्पष्टीकरण है :

''एकचत्वारिंशन्मिते लौकिकाब्दे।
१०६६ मिते खिस्ताब्द इत्यर्थः।''

फिर भी यदि हिन्दी के सम्मानित डाक्टर और प्रतिष्ठित आचार्य यह नहीं कह पाते कि वास्तव में उनका अथवा उनके कवि का ठीक समय क्या है तो इस हिन्दी की रक्षा कौन करे ? परमात्मा तो आज रहा नहीं। नहीं तो भला इतने पर भी कोई 'आचार्य' क्यों लिख देता अपने 'निवेदन' में इस अभिमान भरी भाषा में यह :

''उन अनावश्यक अटकलबाजियों और अप्रासंगिक विवेचनाओं को छोड़ दिया गया है जिनसे इतिहास नामधारी पुस्तकें प्रायः भरी रहती हैं।''

परन्तु कोई भी सतर्क पाठक इतने से ही स्वयं कह सकता है कि इसमें इनके अतिरिक्त और कुछ है भी तो नहीं। और यदि है भी तो 'विद्यार्थी' को 'विमुग्ध' करने के लिए न कि उसे 'विदग्ध' बनाने के लिए।

हाँ, तो यहीं इतना और भी जान लें कि भक्त क्षेमेन्द्र की प्रार्थना है यहीं :

''स्तुतिसंकीर्तनाद्विष्णोर्विपुलं यन्मयार्जितम्।
तेनास्तु सर्वलोकानां कल्याणकुशलोदयः ॥''

बस, सदा के लिए कण्ठ कर लें कि यही 'सर्वलोक' के 'कल्याण' और 'कुशलोदय' की भावना भक्ति के मूल

---

[१३] वही, पृ० ८-१७३. [१४] वही, पृ० १६६-७०

१९५४

में है और यह आप ही उपजती और सर्वत्र फैल जाती है तब जब मानव का मन आपदाओं और अत्याचारों से भर जाता है। 'महमूद' के बाद 'क्षेमेन्द्र' का उदय इसी का द्योतक है। गत महायुद्धों का परिणाम आँख से ओझल नहीं। हाँ, जो बात सहसा समझ में नहीं आती वह है 'द्रविड़' देश में भक्ति का उदय। परन्तु यदि इतिहास की दृष्टि से देखा जाए और आजकल के वर्तमान तमिल आन्दोलन को भी दृष्टि में रख कर विचार किया जाए तो इसका रहस्य भी आप ही खुल जाए। 'आर्य' को आज वह किस 'मुसल्मान' से कम समझता है ? अत्याचार की कमी हो सकती है पर आक्रमण और आक्रान्त की स्थिति तो थी न ? स्वच्छ चित्त से विचार कर देखें तो पता चले कि पराधीन और विपदाग्रस्त द्रविड़ 'सर्वलोकहित' की प्रेरणा से 'भगवान भजन' में लगा और अपने त्याग तथा निष्ठा से उसमें सब को रमा दिया। आप ही तो कहते हैं :

"सन् ईस्वी की सातवीं शताब्दी से—और किसी के मत से तो और भी पूर्व से—दक्षिण में वैष्णव भक्ति ने बड़ा जोर पकड़ा।"

जी। कारण वही संघर्ष था। पल्लव इतिहास पर ध्यान दें और द्रविड़ तथा अद्रविड़ वा द्रविड़ेतर की स्थिति को समझें फिर स्वस्थ और सम्पन्न चित्त से कहें कि वास्तव में उपहासास्पद क्या है। आपका शोध अथवा परकथन ? 'शकार' चित्त से नहीं। इतना ही नहीं आचार्य जी का यह भी कथन है :

"दसवीं में चौदहवीं शताब्दी में एक ओर जहाँ उत्तर भारत में समस्त हिन्दू राज्य नष्ट हो गए वहीं दूसरी ओर सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता से हिन्दू जाति अभिभूत हो गई। विचार के क्षेत्र में यह युग टीकाओं का है।"[१५]

कह तो नहीं सकता, पर विचार करने पर व्यक्त होगा कि भक्ति के क्षेत्र में भी यह युग 'टीका' का ही था। किस सम्प्रदाय का ललाट किस तिलक वा टीका से सुशोभित हो इसका प्रचार कब हुआ ? किन्तु इन बातों को बढ़ाना अभी इष्ट नहीं। इतिहास की ठोस भूमि छोड़ कर अतीत की इस उलझन से अभी कोई लाभ नहीं। आचार्य जी की अभिज्ञता को प्रत्यक्ष देखिए और कह तो दीजिए कि किस देश की बात हो रही है जो चौदहवीं के बाद वहाँ कोई हिन्दू राज्य नहीं रहा। सकपकाने की बात नहीं। 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष' का मत है कि :

"दसवीं से चौदहवीं शताब्दी में...उत्तर भारत से समस्त हिन्दू राज्य नष्ट हो गए" हाँ, स्मरण रखने की बात है कि प्रयोग 'से' का हुआ है कुछ 'के' का नहीं। तो क्या हम आपके कथनानुसार मान लें कि इसके उपरान्त फिर 'उत्तर-भारत' में 'हिन्दू राज्य' रहे ही नहीं ? आखिर आपके इस 'से' का अर्थ क्या है और क्या है आपके इस 'में' का तुक ? आपकी भाषा है :

'दसवीं से चौदहवीं शताब्दी में'

क्या 'में' के स्थान पर 'तक' का प्रयोग ठीक नहीं होता ? जो हो, भाषा तो भाव की भूखी है न ? सपूत किसी लीक पर कब चलता है ? सो तो ठीक। परन्तु हम उस इतिहास को क्या करें जिसमें पढ़ने को मिलता है :

"अलाउद्दीन प्रथम मुसल्मान शासक था, जिसने मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पर अधिकार किया, किन्तु उसकी शक्ति टूटने पर गुहलौतवंश की एक उपशाखा के कुमार हम्मीर ने १३२६ में चित्तौड़ पर पुनः अधिकार कर लिया। हम्मीर के घराने में सीसोदा गाँव की जागीर थी, इसीलिए उसके वंशज 'सीसोदिया' कहलाए। मेवाड़ के राणा कुम्भ ने उसकी शक्ति बहुत बढ़ाई। १४३३ से १४७६ तक उसने राज्य किया। मालवा और गुजरात के मुसल्मान शासकों से उसका बराबर युद्ध होता रहा। मालवा के सुलतान पर विजय पाने के उपलक्ष्य में ही उसने चित्तौड़ में एक कीर्तिस्तम्भ बनाया, जो अब तक विद्यमान है। उसने कई दुर्ग तथा मंदिर बनवाए। वह एक योग्य विद्वान्, कवि, नाटककार और संगीतज्ञ था। उसके उत्तराधिकारियों में राणा सांगा बड़ा प्रतापी रहा। १५०९ में वह मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा।...दिल्ली-सल्तनत टूटते देख कर उसने राजपूत-शक्ति पुनः स्थापित करने का विचार किया, पर क़ाबुल के मुग़ल बाबर ने उसका यह स्वप्न सच्चा न होने दिया।"[१६]

हिन्दी के सम्मानित वीर कुछ भी लिखते रहें, पर

---

[१५] वही, पृ० १०१. [१६] भारत का इतिहास, वही पृ० १६३.

कृपा कर इतिहास की ऐसी हत्या कर हिन्दी को कलंकित न करें। 'भक्ति' के विषय में वास्तव में कुछ समझना है तो कृपया टाँक लें कि उत्तर-भारत में उसके प्रसार का कारण है कि :

"दिल्ली में सल्तनत स्थापित होने के साथ हिन्दुओं ने देख लिया कि मुसलमानों का पैर अच्छी तरह जम गया और बिना दोनों के मेल-जोल के काम नहीं चल सकता। मुसलमानों ने भी समझ लिया कि यदि भारत में रहना है तो हिन्दुओं से मेल बढ़ाना होगा।"१७

भाव यह कि दोनों में भक्ति का उदय हुआ। एक ने राजभक्त बनना चाहा तो दूसरा प्रजाभक्त बना। राजनीति के क्षेत्र में पट न सकी और सदा कुछ न कुछ खटपट होती रही। हाँ, साहित्य और साधना के क्षेत्र में बहुत कुछ सफलता मिल गई और काव्य में चारों ओर भक्ति-धारा फूट निकली। सब की कहाँ तक कहें? एक संत आचार्य क्षितिमोहन सेन, शान्तिनिकेतन, की ही क्यों न कह दें? आप कहते हैं। सुनिए :

"लेकिन फिर भी अनेक परिडत पूछा करते हैं 'हिन्दी कविता के प्रारम्भ में चारण कवियों की युद्ध-गाथा ही क्यों दिखाई देती है? इन युद्ध-गाथाओं के बाद तो सन्त कवियों का युग है?' इसके उत्तर में कहना यह कि शुरू-शुरू में सभी ग्रह अग्निमय थे। इसीलिए पृथ्वी अग्निमय, वाष्पमय नानायुग अतिक्रम करके क्रमशः श पादपश्यामला जीवधात्री धरित्री हो उठी। भाषा के इतिहास में भी ठीक एक ही पद्धति काम करती है।"१८

इस अप्रिय प्रसंग को छेड़ने का एक ही कारण और वह यह कि अपने अविवेक और लिप्सा के कारण हम अपनी राष्ट्रभाषा को कलंकित न करें और प्रमा में आकर अपनी ज्ञानबन्धुता का ऐसा प्रदर्शन न करें कि अभिज्ञों के बीच वह उपहास का कारण बने और हिन्दी की सारी प्रतिष्ठा पर पानी फिर जाए। अनभिज्ञों की मराडली की वाहवाही ने अपना जौहर दिखा दि अब कुछ जौहरी का काम करना है। भला जो स्वतन्त्र के इस युग में भी 'हम्मीर', 'कुम्भ' और 'साँगा' को नहीं समझता वह 'हिन्दी साहित्य' का इतिहास क्या लिखेगा? और लिखेगा भी तो वस्तुतः होगा वह 'हिन्दी का उपहास' ही उपहास। अन्यथा यह 'हिन्दी साहित्य' कैसा? शकार शैली का दिव्य नमूना।

मंगलकरण, लंका,
बनारस

—चन्द्रबली पाण्डे

आगे की ओर

बीसवीं सदी के प्रथम वर्षों के भ्रम के दूर हो जाने के पश्चात् यह कहना एक फैशन-सा हो गया था कि प्रगति नाम की कोई वस्तु नहीं है और प्रगति का विचार ही एक प्रकार का इन्सानी वहम है। उन्नीसवीं सदी में ठीक इससे उल्टा आशावाद था और प्रगति की न केवल घोषणा की जाती थी अपि तु इसे अनिवार्य समझा जाता था......अब मनुष्य विकास का ट्रस्टी बन गया है और यदि उसे अपने और उसी तरह समस्त जीवन के लिए आगे की ओर प्रगति करनी है तो उसे योजनाएँ बनानी पड़ेंगी और और दृढ़ता से कार्य करना होगा।

—जूलियन हक्सले

---

१७ वही, पृ० १६८. १८ संस्कृति संगम, १६५२ ई०, पृ० १७४-५।

जोधराज और उनका 'हम्मीर रासो'

हिन्दी के अधिकांश कवियों के समान जोधराज का भी जीवन-वृत्त अप्राप्य है। इसने अपने ग्रन्थ में आत्म-परिचयात्मक जो छन्द लिखे हैं उनका सारांश यह है कि "यह अलवर राज्यान्तरगत नीमराणा के चौहान-वंशीय राजा चन्द्रभान का आश्रित था। इसके पिता का नाम बालकृष्ण था। इसका निवास स्थान बीजवार ग्राम था। जोधराज अत्रि गोत्रीय गौड़ वंश कुलोत्पन्न ब्राह्मण था। यह काव्य-कला और ज्योतिष-शास्त्र का पूर्ण पंडित था। इसने अपने आश्रयदाता की आज्ञा से 'हम्मीर रासो' की रचना की, जिसमें उसने रणथम्भोर के राव हम्मीर और अलाउद्दीन खिलजी के युद्धों का वर्णन किया है।"[1]

रचना-तिथि : जोधराज का केवल एक ही ग्रन्थ 'हम्मीर रासो' प्राप्त है, जिसकी रचना तिथि के सम्बन्ध में उसने यह दोहा दिया है :

"चन्द्र नाग वसु पंचगिनि संवत् माधव मास।
शुक्ल सुतृतिया जीव जुत ता दिन ग्रन्थ प्रकास[2] ॥"

नागों की संख्या साधारणतया आठ मानी गई है, यथा :

"अनन्तो वासुकि पद्मो महापद्मश्च तक्षक।
कुलीरः कर्कटः शंखश्चाष्टौ नागा प्रकीर्तिताः[3] ॥"

अर्थात् अनन्त, वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कट तथा शङ्ख ये आठ नाग होते हैं।

विलियम महोदय[4] नाग को सात की संख्या का सूचक मानते हैं। श्री अगरचन्द नाहटा[5] के मतानुसार उक्त शब्द सात और आठ दोनों संख्याओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

नाग को ७ का पर्यायवाची मानने से 'रासो' की रचना तिथि सं० १७८५ वि० वैशाख शुक्ला ३ जीव (गुरुवार) ठहरती है। गणना करने पर ज्ञात होता है कि सं० १७८५ वि० में वैशाख शुक्ल तृतीया को गुरुवार नहीं पड़ा था।

नाग का अर्थ ८ लेने से जोधराज कथित तिथि १८८५ वि० वैशाख शुक्ल तृतीया बृहस्पतिवार आती है :

वैशाख अमाचन्द्र का मध्यस्थ समाप्ति काल	२ अप्रैल	१४.५७
तीन तिथियों का समस्त समाप्ति काल	२+१	२.६५
	५	१७.५२

बृहस्पतिवार, १७ अप्रैल, १८२८ ई०

उपर्युक्त गणना से सिद्ध होता है कि जोधराज ने 'हम्मीर रासो' की रचना सं० १८८५, वि० वैशाख शुक्ल ३, बृहस्पतिवार तदनुसार, १७ अप्रैल १८२८ ई० को की थी।

'शिवसिंह सरोज' में इस ग्रन्थ का उल्लेख नहीं है। ग्रियर्सन महोदय ने इसका समय १४२० वि० (१३६३ ई०) लिखकर इसकी शुद्धता पर सन्देह प्रकट किया है।[6]

इसकी रचना तिथि का विवेचन करते हुए मिश्र बन्धुओं ने लिखा है कि "सम्भवतः अनन्त को ईश्वर समझ कर इनको नागों की गणना से निकाल कर नाग से ७ का बोध कराया हो। जो हो, यथार्थ संवत् १७८५ (१७२८ ई०) ही जँचता है।"[7]

उक्त उद्धरण पर विचार करने से विदित होता है कि मिश्र बन्धुओं ने केवल अनुमान का ही आश्रय लिया है, अत एव उनके द्वारा स्वीकृत तिथि अमान्य है।

बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने इसका समय संवत् १७८५ वि० (१७२८ ई०) माना है। उक्त बाबू साहब को खवा (जयपुर) के महाराज कुमार ने एक पत्र में लिखा था कि नीमराणा (नीवागढ़) के वर्तमान महाराजा श्री १०८ श्री जनकसिंह जी राजा चन्द्रभान की दसवीं या ग्यारहवीं पीढ़ी में है। एक पीढ़ी लगभग बीस वर्ष की

---

[1] हम्मीर रासो, छं० ५-१३. [2] वही, छं० ६६८. [3] मिश्रबन्धु-विनोद, द्वि० भाग, ६०३. [4] प्रैक्टीकलसंस्कृत इंग्लिश डिक्शरी, पृ० ५३६. [5] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४६, १९८ वि० पृ० ११६. [6] मिश्रबन्धु विनोद, द्वि० भाग, पृ० ६०२. [7] वही पृष्ठ.

पड़ती है, सो इस हिंसाब से भी संवत् १७८५ वि० (१७२८ ई०) ग्रन्थ निर्माण का ठीक जान पड़ता है।[८]

ऐतिहासिक ठोस प्रमाणों से रहित, अनुमान पर अवलम्बित उक्त पत्र के आधार पर आश्रित यह कथन भ्रामक अतः त्याज्य है।

लाला सीताराम[९] ने इस ग्रन्थ की रचना तिथि १७८५ वि० (१७२८ ई०) और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[१०] ने १८७५ वि० (१८१८ ई०) मानी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अन्य विद्वानों के समान उक्त महानुभावों के मत भी निराधार ही हैं।

ऐसी परिस्थितियों में गणना द्वारा सिद्ध बृहस्पतिवार वैशाख शुक्ल तृतीया, १८८५ वि० तदनुसार १७ अप्रैल, १८२८ ई० ही हम्मीर रासो की रचना तिथि ठीक ठहरती है।

'हम्मीर रासो' की उक्त रचना तिथि के आधार पर जोधराज का उक्त तिथि के आस पास वर्तमान रहना सिद्ध हो जाता है।

कथानक चित्रण : जोधराज ने 'हम्मीर रासो' के आरम्भ में गणेश और सरस्वती की स्तुति, आश्रयदाता का तथा अपना परिचय दिया है। तदनन्तर उसने सृष्टि और मानव रचना, चन्द्र और सूर्य वंश का वर्णन किया है, जिसका आधार पौराणिक गाथाएँ हैं। इसके आगे उसने आबू पर्वत पर किए गए यज्ञ से अग्नि वंशीय क्षत्रियों की उत्पत्ति का उल्लेख किया है, जिस पर 'पृथ्वीराज रासो' की स्पष्ट छाप विद्यमान है। तदनन्तर पद्म ऋषि के तप भंग होने और हम्मीर तथा अलाउद्दीन के जन्म सम्बन्ध में जोधराज ने पौराणिक, काल्पनिक एवं मनगढ़न्त बातों का उल्लेख किया है जिनका मूल कथानक से विशेष सम्बन्ध नहीं है। इसके सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इस घटना का आश्रय लेकर कवि ने ऋतुओं और शृंगार का विस्तृत वर्णन किया है। पर उसके ये वर्णन परम्परानुसरण मात्र हैं और कहीं कहीं पर सीमा का उल्लंघन कर गए हैं। अतएव यह घटनावली कथानक के लिए भूषण नहीं, वरन् दूषण है।

जोधराज ने हम्मीर और अलाउद्दीन के पारस्परिक बैर के कारणों का उल्लेख करते हुए मीर महिमा तथा शाही बेगम रूप विचित्रा के प्रेम, मीर द्वारा सिंह के मारने, इस घटना से सुल्तान ने अप्रसन्न होकर मीर महिमा को निकाल देने तथा मीर महिमा के हम्मीर के यहाँ जाकर शरण लेने का वर्णन किया है।

इस कथा से मिलती जुलती एक घटना 'मीर हुसेन कथा' का 'पृथ्वीराज रासो' में उल्लेख है। इन दोनों ग्रन्थों में वर्णित दोनों कथाओं में अत्यधिक साम्य है। 'हम्मीर-रासो' के रचना काल से पूर्व ही 'पृथ्वीराज रासो' का वर्त्तमान रूप निश्चित हो चुका था। ऐसी परिस्थिति में यह विदित होता है कि जोधराज इस कथा के लिए चन्द बरदाई का ऋणी है।

मीर महिमा और रूप-विचित्रा की कथा ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण न होते हुए भी अपना निजी महत्व रखती है। इस प्रसंग में कवि ने सेना, झंझावात, मीर महिमा के चरित्र और शृंगार के वर्णन में निशदता का परिचय दिया है, पर शृंगार के वर्णन में वह अश्लीलता की पराकाष्ठा तक पहुँच गया है। साथ ही उसने अलाउद्दीन के द्वारा चूहे को मरवा कर उसके चरित्र को अधिक गिरा दिया है। इस दृष्टि से विचार करने पर कथानक का यह अंश कवि के द्वारा उचित ढंग से वर्णित नहीं किया गया है, यही कहने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

आगे चल कर जब दूत अलाउद्दीन के समक्ष मीर महिमा के राव हम्मीर की शरण में जाने का समाचार देता है, उस अवसर पर शाही मन्त्री बहराम खाँ का यह कथन कि मीर तो सागर के पार चला गया है कुछ अस्वाभाविक लगता है। उसकी इस उक्ति के और किसी उत्तर का उल्लेख न करके कवि ने एकदम हम्मीर को पत्र लिखने के लिए शाही आज्ञा उल्लेख करके कथानक के पूर्वापर-सम्बन्ध निर्वाह को आघात पहुँचाया है।

इसके अनन्तर जोधराज ने दूत के मुख से राव हम्मीर के राजसी वैभव, वाटिका आदि का विस्तृत वर्णन कराया है, जो परम्परा का पालन मात्र है। इसमें कवि ने अपने आश्रयदाता के पूर्वजों की प्रशंसा करके उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया है, ऐसा अनुमान होता है। इसी प्रकार वज़ीर के मुख से कराए गए हम्मीर के पूर्वजों के गुणगान को समझना चाहिए। इन वर्णनों में कथा की धारा एकदम मन्द पड़ गई है।

---

[८] वही पृष्ठ ६०२. [९] सिलेक्शन्स फ्राम हिन्दी लिट्रेचर, भाग १, पृ० १६५. [१०] हिन्दी साहित्य का इतिहास, नवीन संस्करण पृ० ३५१.

इसके आगे यथास्थान अलाउद्दीन का मन्त्री उसे राव हम्मीर से युद्ध न करने की मंत्रणा देता है और तुरन्त ही आक्रमण के लिए सेना की तैयारी की सूचना मिल जाती है। इसको कथानक में क्रम-भंग ही कहना उचित जँचता है। इसी प्रसंग में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उक्त सेना में कवि ने देश विदेश की विविध सेनाओं के नाम गिनाए हैं जो काल्पनिक एवं परम्परागत हैं।

कथानक सम्बन्धी जोधराज की त्रुटियों का यहीं पर अन्त नहीं हो जाता। उसने चौहानों और मुसल्मानों के पराम्परागत वैर का वर्णन किया है जो 'पृथ्वीराजरासो' के आधार पर प्रतीत होता है और जिसका प्रमुख घटनावली से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

यही नहीं, इस कवि ने दोनों पक्षों में दैवी-शक्ति की सहायता की भी कल्पना की है। राव हम्मीर और अलाउद्दीन देवों और पीरों को अपनी-अपनी सहायता के लिए बुलाते हैं। वे देव और पीर एक बार नहीं अनेक बार आ कर अपने-अपने उपासकों की सहायतार्थ युद्ध में सम्मिलित होते हैं। ऐसे स्थलों पर कथानक बच्चों का खिलवाड़ और उपहासास्पद हो गया है तथा मुख्य कथानक का रूप उनमें न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। इसी प्रकार जमाल खाँ का मुहम्मद गोरी के आदेश से पृथ्वीराज को पकड़ना और अलाउद्दीन के आदेश को पा कर हम्मीर के विरुद्ध रण-क्षेत्र में आना भी कवि की असावधानी का परिचायक है। उसने मुहम्मद गोरी और अलाउद्दीन के समय का ध्यान नहीं रखा है, जिसके परिणामस्वरूप इस स्थल पर कथानक एकदम काल्पनिक एवं निराधार हो गया है।

आगे चल कर चित्तौड़ के कुमारों के प्रसंग में भी जोधराज ने अपनी ऐतिहासिक अज्ञानता का परिचय दिया है, जिसके परिणामस्वरूप कथानक की स्वाभाविकता नष्ट हो गई है और ग्रन्थ को इसके समावेश से अकारण ही विस्तार दे दिया गया है।

चन्द्रकला-नृत्यान्तर्गत मीर महिमा द्वारा अलाउद्दीन के मुकुट गिराये जाने का उल्लेख किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जोधराज ने यह घटना तुलसी द्वारा वर्णित अंगद के द्वारा फेंके गए रावण के मुकुट के प्रसंग से ली है।

सुर्जन के विश्वासघात के कथानक में जोधराज ने सम्भवतः अकबर के समकालीन रणथंभौर दुर्गाध्यक्ष राव सुर्जन के नाम का उल्लेख करके अपनी अज्ञानता का परिचय दिया है।

इस प्रकार अलाउद्दीन के द्वारा हिन्दू देवों की पूजा करना, अलाउद्दीन के द्वारा संधि प्रस्ताव, सम्राट का पराजित होकर बन्दी बनना तथा मुक्ति पाकर दिल्ली को प्रस्थान करना, शिवजी को अर्पित किए गए राव हम्मीर के शीश की आज्ञा मान कर अलाउद्दीन का रामेश्वरम् में जाकर सागर में समाधिस्थ होकर प्राण विसर्जन करना ऐसे प्रसंग हैं जो एक दम इतिहास विरुद्ध और काल्पनिक हैं। इन कथानकों के कारण मुख्य घटनावली का रूप विकृत हो गया है। पर ऐसा करने से कवि को अपनी कल्पना शक्ति का परिचय देने का अच्छा अवसर मिल गया है। साथ ही अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करके पुष्कल धन प्राप्त करने का भी अवसर उसे मिल गया होगा, जैसा कि उसने ग्रन्थ के अन्त में स्वीकार भी किया है।

कथानक सम्बन्धी उपर्युक्त त्रुटियों और भूलों के होते हुए भी उसमें कुछ विशिष्ट गुण भी हैं। जोधराज ने वीरोक्ति, रौद्र, आदि के अच्छे उदाहरणों द्वारा कथानक को अधिक स्वाभाविक बनाने की सफल चेष्टा की है। जोधराज ने युद्ध के सुन्दर चित्रण द्वारा, वीररस का अच्छा परिपाक किया है, यद्यपि ऐसा करने में उसने कल्पना का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। उसने पात्रों के चरित्र को ऊँचा उठाने की भी चेष्टा की है। पर कहीं कहीं पर उसमें उपदेश की प्रधानता हो गई है, उदाहरणार्थ हम्मीर की रानी का चरित्र क्षत्राणी के अनुरूप होते हुए भी उपदेशात्मक हो गया है। कहीं कहीं पर जोधराज ने वीर और शृंगार के सुन्दर चित्रण द्वारा कथानक को अधिक रोचकता प्रदान की है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने वीरकाव्य की सूदन की नाम गिनाने वाली परिपाटी का एकदम बहिष्कार किया है। केवल एक दो स्थानों पर ही राजपूतों, घोड़ों, गजों का उल्लेख हुआ है। कवि की इस नीति के कारण कथानक की सरसता और रोचकता की पर्याप्त मात्रा में रक्षा हो गई है।

ऊपर किए गए विवेचन का यह सार निकलता है कि 'हम्मीररासो' में कथानक के वर्णन में कवि ने बहुत-सी भूलें की हैं। पर उसमें ऐसे विशिष्ट स्थल भी हैं जो कवि

की प्रबन्ध-कल्पना पटुता का प्रमाण देते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि जोधराज ने इतिहास विश्रुत नायक को अपने काव्य के लिए चुना है। यही कारण है कि उसे अपने उद्देश्य में कुछ सफलता मिली है। उसके सामने 'पृथ्वीराज रासो' की परम्परा थी जिससे उसने पूर्ण लाभ उठाया है। परम्परा से ऊँचा उठने की मौलिक प्रतिभा संभवतः जोधराज में वर्तमान नहीं थी, इसीलिए वे अपने काव्य में कथानक के प्रवाह की रक्षा करने में उतने सफल नहीं हो सके जितना कि उन्हें होना चाहिए था। साथ ही चारणों की आश्रयदाताओं की ऊहात्मक प्रशंसा करके प्रचुर धन प्राप्त करने की परिपाटी और लालसा ने भी कथानक के रूप को विकृत करने के लिए उन्हें विवश कर दिया था। यह सब होते हुए भी कथानक चित्रण की दृष्टि से जोधराज का निजी स्थान है इसमें किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

शैली और भाषा : शैली और भाषा की दृष्टि से जोधराज का एक विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अपने काव्य की रचना के लिए 'पृथ्वीराज रासो' की शैली को अपनाया है, पर एकदम उसी का अनुकरण न करके अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है। विषय और भाव के अनुरूप उन्होंने शैली और भाषा में परिवर्तन करके अपने काव्य को सरस और रोचक बनाने में यथेष्ट मात्रा में सफलता प्राप्त की है। सबसे अधिक महत्व की बात है कि वीर-काव्य की संयुक्ताक्षर शैली और द्वित्व वर्णात्मक शैली का इन्होंने नहीं के बराबर प्रयोग किया है। इस प्रकार के शब्दों की भड़ाभड़ और तड़ातड़ से युक्त शब्दावली का बहिष्कार करके अपने विषय का प्रतिपादन करने में जोधराज को पर्याप्त सफलता है।

जोधराज के ग्रन्थ को देखने से विदित होता है कि वे गोस्वामी तुलसीदास की शैली से भी बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित हुए हैं। कतिपय स्थलों पर तो तुलसीदास की कुछ पंक्तियाँ ज्यों की त्यों 'हम्मीर रासो' में मिलती हैं, यथा :

(क) जोधराज : का नहिं पावक जरि सकै,
का नहिं सिंधु समाय।
का न करै अबला प्रबल,
किंहि जग काल न खाय॥

तुलसी : काह न पावक जारि सक,
का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल,
केहि जग कालु न खाइ॥

(ख) जोधराज : सुनि वजीर के वचन सुहाए।
मीर जामाल खान बुलवाए।
सुनि गमरू के वचन सुभाए।
महिमा फूल खेत में आए॥

तुलसी : जामवंत के वचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।

(ग) जोधराज : चारि दरा घाटी जितौ,
कीने घाटा रोह.........

तुलसी : अस बिचारि गुह ज्ञाति सन,
कहेउ सजग सब होहु।
हथ बासहु बोरहु तरनि,
कीजिय घाटा रोह.........

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण दिए जा सकते हैं इससे स्पष्ट होता है कि 'हम्मीर रासो' की रचना करते स कवि ने 'रामचरितमानस' तथा अन्य ग्रंथों की ज्यों की उक्तियों को स्वतन्त्रता पूर्वक स्थान ही नहीं दिया है, व उनकी शैली का प्रभाव उसने ग्रंथ के अधिकांश अंश वर्तमान है।

जोधराज ने बीच-बीच में गद्य की वचनिका प्रयोग किया है, जिससे उसमें रोचकता आ गई है।

'हम्मीर रासो' में व्रज-भाषा के साहित्यिक रू दर्शन होते हैं, पर कहीं-कहीं पर उसने बोलचाल भाषा का रूप धारण कर लिया है। उसकी भाषा में कोम कान्त-पदावली के भी दर्शन होते हैं, विशेष कर शृंगार रस वर्णन में।

जोधराज ने फ़ारसी के शब्दों का तद्भव रूप प्रयोग किया है, जैसे : हुरम (फ़ा०=हरम) उज (वज़ीर)।

इसी प्रकार संस्कृत के स्यंदन के लिए सि कुमार=कुँवर के लिए कौर का उसने प्रयोग किया है।

उसने कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी प्र मात्रा में किया है, जिनके कुछ उदाहरण ये हैं :

विश्वाबीस, अहि ज्यूं गहि छछून्दरी।

इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा उसने भाषा को अधि सबल, व्यापक एवं प्रौढ़ शक्ति प्रदान करने की

१९५४

की है।

कहीं-कहीं पर सबरे (सब), सुद्धा (सहित) जैसे ग्रामीण शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं। साथ ही सु जैसे निरर्थक शब्दों को भी इस रचना में स्थान दिया गया है।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि जोधराज अपने समय तक की प्रचलित शैलियों से प्रभावित हुए हैं। भाषा पर जोधराज का पूर्ण अधिकार था इसी कारण भावानुकूल भाषा जुटाने में उन्हें पर्याप्त मात्रा में सफलता मिली है।

बलवन्त राजपूत कॉलेज,
आगरा,

—डा० टीकमसिंह तोमर

वासंती

वासंती, हे भुवनमोहिनी
दिक् प्रान्तों में, वन वनान्त में,
श्याम प्रान्तर में, आम्रछाया में,
सरोवर के तीर पर, नदी के नीर में,
नील आकाश में, मलय हवा में,
तव अनन्त माधुरी व्यापी हुई है

नगर में, गाँव में, बगीचों में, दिन रात
पिक-संगीत और नृत्य-गीत से विश्व आनन्दित हैं
भवनों में वीणा की तान झंकृत हो रही है

मधु मद मोदित हृदयों में
आज नवप्राण की धारा उछल पड़ी है,
उन्मादना से चित्त विचलित है
नूपुरों में झन-झन ध्वनि जाग उठी है

शान्ति निकेतन,
प० बंगाल

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु० राधेश्याम पुरोहित

राम काव्य की परम्परा

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि की 'वाल्मीकि रामायण' में ही सर्वप्रथम बार राम का महत्व वर्णन किया गया है। जे. एन. फर्कुहर ने 'वाल्मीकि रामायण' का रचना काल ईसा के ४०० या ६०० वर्ष पूर्व माना है। इस प्रकार ईसा के ४०० या ६०० वर्ष पूर्व ही राम का महत्व भारतवर्ष में स्वीकार किया जा चुका था। यद्यपि 'वाल्मीकि रामायण' के प्रथम और सप्तम काण्ड प्रक्षिप्त ही माने जाते हैं परन्तु द्वितीय से षष्ठ काण्ड तक की मौलिकता और प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। यह अवश्य है कि उनकी वास्तविकता पर अविश्वास भी किया जाता है परन्तु उनका रूप उतना अधिक विकृत न हो सका और इस प्रकार उन पर सन्देह करना व्यर्थ ही है। 'वाल्मीकि रामायण' में हिन्दू धर्म के स्वरूप का यथार्थ चित्रण किया गया है तथा उसमें अन्धविश्वासपूर्ण रूढ़ग्रस्त विचारों का भी निरा अभाव ही है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वाल्मीकि ने 'वाल्मीकि रामायण' का सृजन लौकिक दृष्टिकोण से ही किया था और लौकिक दृष्टिकोण रहने के फलस्वरूप उन्होंने धर्म का भी लौकिक स्वरूप ही चित्रित किया है। 'वाल्मीकि रामायण' में राम एक महापुरुष मात्र हैं और उसमें कहीं भी वे अवतार के रूप में चित्रित नहीं किए गए। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कहीं भी राम में देवत्व की भावना दृष्टिगोचर नहीं होती और वे केवल मनुष्य मात्र ही माने गए हैं। अत एव 'वाल्मीकि रामायण' और 'रामचरितमानस' में चरित्र चित्रण में जो विभिन्नता हमें देख पड़ती है उसका भी यही एक विशेष कारण है कि आदि कवि ने राम को एक महापुरुष मात्र ही माना है परन्तु तुलसी ने तो राम को लोक-रक्षक और लोकरंजक ईश्वर के रूप में ही चित्रित किया है। बंग साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् श्री दिनेशचन्द्र सेन ने अपनी 'रामायण कथा' नामक पुस्तक में 'वाल्मीकि रामायण' के पात्रों के चरित्रों के दोष दर्शन पर विशद प्रकाश डाला है। उदाहरणार्थ 'वाल्मीकि रामायण' में अयोध्याकाण्ड के २६ वें सर्ग में श्री रामचन्द्र जी सीता से कहते हैं :

"ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम्।
तस्मान्न ते गुणाः कथ्या भरतस्याग्रतो मम॥"

अर्थात् ऋद्धियुक्त पुरुष अपने सामने दूसरे पुरुष की प्रशंसा कभी नहीं सहन कर सकते अतः तुम कभी भरत के सामने मेरी प्रशंसा मत करना।

सेन महोदय ने इस वर्णन पर अपनी आपत्ति प्रदर्शित की है और उसे राम के चरित्र की दुर्बलता माना है। उनका विचार है कि आदि कवि ने राम के द्वारा भरत के प्रति ऐसे वचन व्यक्त करवा कर न केवल भरत के प्रति अन्याय किया है परन्तु साथ ही अपने आदर्श चरित्र और उदार मानस की दुर्बलता भी दिखाई है। यदि हम लौकिक दृष्टिकोण से विचार करें तो राम के ये वचन अनुपयुक्त प्रतीत नहीं होते क्योंकि उन्होंने यहाँ मानव हृदय की दुर्बलता का स्पष्ट चित्रण किया है और चूँकि 'वाल्मीकि रामायण' में उन्हें अलौकिक रूप में न प्रस्तुत कर लौकिक रूप में ही प्रस्तुत किया गया है अतः सेन महोदय के विचारों से सहमत होना आवश्यक भी नहीं प्रतीत होता। इसी प्रकार राम वनवास के उपरान्त जब दशरथ कौशल्या के भवन में पहुँचे तब महारानी कौशल्या ने उन्हें जो वचन कहे उनमें भर्त्सना के स्थान पर मातृहृदय की वात्सल्यपूर्ण भावनाओं की प्रधानता ही देख पड़ती है परन्तु कुछ सहृदय समालोचक इस आवरण के आधार पर आदि कवि की कड़ी टीका करते हैं परन्तु वास्तव में कौशल्या के निम्नांकित कथन में पुत्र शोक की प्रबलता ही विशेष रूप से है और बुद्धिवादी दृष्टिकोण से उसमें यथार्थता की ही प्रधानता है। देखिए :

"स तादृशः सिंहबलो वृषभाक्षो नरर्षभः।
स्वयमेव हतः पित्रा जलजेनात्मजो यथा॥
गतिरेका पतिर्नार्याः द्वितीया गतिरात्मजः।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते॥
तत्र त्वं ममनैवासि रामश्च वनमाहितः।
न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया॥"*

---

* वा० रा० अ० सर्ग ६१

१९५४

जिस प्रकार बड़ी मछलियाँ अपनी सन्तानों का अर्थात् छोटी छोटी मछलियों का भक्षण कर डालती हैं उसी प्रकार आपने पिता होकर भी वृषभकंध और सिंह के समान साहसी राम को वन में भेज कर ऐसा ही कार्य किया है। नारी की सबसे प्रथम गति पति, द्वितीय पुत्र, और तृतीय कुटुम्बीजन होते हैं; चतुर्थ कोई अन्य गति नहीं होती। आप पति होकर भी मेरे नहीं हैं, मेरे पुत्र राम वन में हैं और मैं वन जाना नहीं चाहती। इस तरह आपने सब प्रकार से मुझे मार डाला।

इस प्रकार आदि कवि ने राम को एक महात्मा या महापुरुष मात्र ही माना है और वेदों में मान्य देवताओं के रूप में ही ग्रहण किया है जिनमें इन्द्र को अन्य सब देवताओं से कुछ ऊँचा माना गया हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य देवी देवताओं का भी उल्लेख है तथा ऋग्वेद के सदृश विष्णु और शिव का भी वर्णन किया गया है परन्तु विष्णु और राम में कोई सम्बन्ध चित्रित नहीं किया गया और न राम को अवतार ही माना गया।

मौर्यवंश के उपरान्त भारतवर्ष में सुंगवंश की स्थापना हुई और बौद्धधर्म अपनी समुन्नत अवस्था में जा पहुँचा। गौतम बुद्ध को भी देवत्व के गुणों से विभूषित किया जा रहा था और बौद्धधर्मावलम्बी तो उन्हें ही ईश्वर समझ रहे थे। इन्हीं दिनों 'वायुपुराण' का सृजन हुआ और उसमें प्रथम बार राम विष्णु के अवतारों के अन्तर्गत माने गए। 'वायुपुराण' में ही राम वास्तव में परमात्मा के पद पर प्रतिष्ठित किए गए हैं। हो सकता है कि बौद्धधर्मावलम्बियों की नूतन प्रवृत्तियों से ही प्रभावित हो राम को भी ईश्वर माना जाने लगा हो। 'वायुपुराण' की अभी तक कोई निश्चित प्रामाणिक तिथि ज्ञात नहीं हो सकी है परन्तु कुछ इतिहासकारों ने उसका रचना काल ईसा से ५०० वर्ष पूर्व माना है। यह तो स्वाभाविक ही है कि 'वायुपुराण' किसी न किसी रूप में बौद्ध मत से अवश्य ही प्रभावित हुआ होगा और चूँकि बौद्धमतावलम्बियों ने गौतमबुद्ध के निर्वाण के उपरान्त उन्हें ही देवत्व के गुणों से विभूषित करना प्रारम्भ कर दिया अतः हो सकता है उसी प्रकार किसी समय केवल महापुरुष समझे जाने वाले राम 'वायुपुराण' में ईश्वर मान लिए गए हों। यह तो स्पष्ट है कि 'वायुपुराण' में राम विष्णु के अवतारों में माने गए हैं। यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि 'वाल्मीकि रामायण' के जिन अंशों को प्रक्षिप्त माना जाता है उनमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामक त्रिदेवों को समान रूप से मान्यता दी गई है और कुछ अंशों में राम विष्णु के अवतार भी मान लिए गए हैं तथा इन्द्र की महानता को कुछ कम कर विष्णु को उनसे श्रेष्ठ समझा गया है। हो सकता है 'वायुपुराण' के सृजन के उपरान्त ही ये अंश लिखे गए हों। यद्यपि इन अंशों को प्रक्षिप्त माना जाता है तथा इनकी प्रामाणिकता पर भी सन्देह किया जाता है परन्तु चूंकि ऋग्वेद में भी विष्णु का उल्लेख किया गया है अतः इतना तो स्पष्ट है कि विष्णु की उपासना की ओर लोगों का ध्यान वैदिक काल में ही आकर्षित हो चुका था और 'वायुपुराण' में तो विष्णु का महत्व विशेष रूप से स्वीकार किया गया है।

ईसा के लगभग दो सौ वर्ष उपरान्त 'मानव धर्मशास्त्र' में अनुगीता के अन्तर्गत विष्णु के अवतारों पर प्रकाश डाला गया है। उसमें वाराह, नृसिंह, वामन, मत्स्य, राम और कृष्ण नामक छः अवतार विष्णु के माने गए हैं। 'मानव धर्मशास्त्र' में ही मोक्षधर्म के अन्तर्गत नारायणीय नामक एक विशेष भाग में वैष्णव धर्म के विकसित रूप पर प्रकाश डाला गया है। इसमें विष्णु को 'व्यूह' रूप में प्रस्तुत करते हुए उन्हें सृष्टि का निर्माता भी स्वीकार कर लिया गया है और उनके चतुर्व्यूह रूप का वर्णन किया गया है। वैष्णवमत के हेतु वासुदेव, सात्त्वत और पंचरात्र नाम भी स्वीकार किए गए हैं। विष्णु के अवतारों की संख्या छः से बढ़ा कर दस कर दी गई है और संहिता में तो शक्ति का सम्बन्ध भी विष्णु से माना गया है। रामभक्ति में इसी शक्ति को सीता का रूप माना गया है। इस प्रकार हम निस्संकोच कह सकते हैं कि गुप्तकाल में राम का पूर्णरूपेण महत्त्व वर्णन किया गया है। 'विष्णुपुराण' जिसका कि रचना काल ईस्वी सन् ४०० माना जाता है, राम के महत्व को वास्तव में पूर्ण रूप से चित्रित करने में समर्थ हो सका है। अतः वास्तव में गुप्तकाल में ही राम का पूर्ण रूप से चरित्र चित्रण करने का प्रयास किया गया।

ईसा की छठवीं शताब्दी के उपरान्त 'राम पूर्व तापनीय उपनिषद्' और 'राम उत्तर तापनीय उपनिषद्' में रामभक्ति का अपूर्व विकास हुआ। इन उपनिषदों में राम को ब्रह्म का अवतार माना गया है और उन ब्रह्म

का जिनके कि वे अवतार हैं विष्णु नाम से नामकरण किया गया है। इसके उपरान्त 'अगस्त सुतीदण संवाद संहिता' में राम का महत्व अलौकिक रूप से वर्णित किया गया है तथा कुछ समय उपरान्त आगे चल कर 'अध्यात्म रामायण' में राम को ईश्वरत्व की सबसे ऊँची शिखर पर आरूढ़ किया गया। 'अध्यात्म रामायण' में राम और सीता का आध्यत्मिक रूप ही अंकित किया गया है। राम को पुरुष माना गया है और सीता को प्रकृति; राम परम ब्रह्म भी मान लिए गए हैं और सीता को उनकी अनिवर्चनीया माया माना गया है। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं की लीला का क्षेत्र माना गया है। देवताओं द्वारा वसुधा के भार को उतारने के लिए प्रार्थना किए जाने पर ब्रह्म और माया ने ही विश्व में आ कर अपनी लीला प्रदर्शित की थी। इस ब्रह्म और माया की अद्भुत लीलाओं से परिपूरित रामचरित ही 'अध्यात्म रामायण' में वर्णित किया गया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ करते समय ही ग्रंथकार ने अपने इस आशय की सूचना मंगलाचरण के निम्नांकित श्लोक में स्पष्ट कर दी है :

> "यः पृथिवी भरवारणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः
> सञ्जातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः।
> निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
> कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे॥"

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में श्रीमद्भागवत पुराण द्वारा श्री रामचन्द्र के महत्व का विस्तृत विवरण प्रचारित किया गया। अत एव श्री सर आर. जी. भण्डारकर महोदय ने 'वैष्णविज़्म, शैविज़्म और अन्य धार्मिक मतवाद' (Vaisnavism, Savism and minor Religious Systems) नामक पुस्तक में उचित ही लिखा है : "The cult of Ram, therefore, must have come into existence about the elventh century" वास्तव में ग्यारहवीं शताब्दी में ही रामभक्ति एक प्रबल सम्प्रदाय का रूप धारण कर सकी तथा इसके पूर्व तो राम के महत्व वर्णन में परिवर्तन-परिवर्धन ही किया जाता रहा।

उत्तर भारत में रामानन्द ने ही सर्वप्रथम बार जनसाधारण के मध्य रामभक्ति का प्रचार किया। आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल ने उनका समय विक्रम की १५ वीं शती के चतुर्थ या १६ वीं शती के तृतीय चरण के अन्दर माना है। यद्यपि रामानन्द के पूर्व अनेक वैष्णव भक्त हो चुके थे परन्तु रामभक्ति का प्रचार करने का सर्वप्रथम प्रयास उन्होंने ही किया। रामानन्द यद्यपि रामानुजाचार्य के मतावलम्बी ही थे जो कि उनकी गुरु परम्परा में उनसे १४ पीढ़ी पूर्व हो चुके थे तदापि इन्होंने अपनी उपासना-पद्धति का विशेष माना। शुक्ल जी ने यद्यपि रामानन्द को तत्त्व दृष्टि से रामानुजाचार्य का ही मतावलम्बी माना है परन्तु कुछ विद्वानों ने दोनों आचार्यों का उतना अधिक सन्निकट सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया। डा० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' नामक पुस्तक में रामानुजीय और रामानन्दीय संप्रदाय का अन्तर स्पष्टता के साथ दिखलाया है तथा तालिका देकर उसे समझाया भी है। रामानन्द जी ने लोक में लीला विस्तार करनेवाले राम की उपासना की और इस प्रकार अपना इष्टदेव राम को माना तथा मूलमन्त्र रामनाम स्वीकार किया। यों तो रामानन्द के पूर्व भी रामोपासक भक्त हो चुके हैं परन्तु विशेष रूप से इन्होंने ही विष्णु के अन्य रूपों में 'रामत्व' को ही श्रेष्ठ मान कर अंगीकार किया और उसकी उपासना की ओर सर्व-साधारण को प्रेरित किया तथा एक सबल संप्रदाय का संगठन किया। जाति बन्धन को शिथिल कर उन्होंने समस्त जातियों के लिए रामभक्ति के द्वार खोल दिए और रामनाम की महिमा का वर्णन किया तथा सर्व जाति के लोगों को रामभक्ति का उपदेश भी दिया।

यद्यपि कबीर ने भी रामानन्द का शिष्यत्व ग्रहण कर राम नाम का अवलम्ब लेकर संत मत का प्रचार किया था तथापि रामभक्ति का पूर्णरूपेण विकास तुलसी की ही कृतियों में हुआ। जैसा कि डा० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"रामानन्द के प्रधान उपदेश अनन्य भक्ति को कबीर ने शिरसा स्वीकार कर लिया था। बाकी तत्वज्ञान को उन्होंने अपने संस्कारों, रुचि और शिक्षा के अनुसार एकदम नवीन रूप दे दिया था" यह वास्तव में पूर्णतः उचित ही है। इस बात पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए कि कबीर के राम वास्तव में पुराणों द्वारा प्रतिपादित अवतार नहीं थे बल्कि उन्होंने तो निर्गुण राम की उपासना पर ही ज़ोर दिया है। देखिए :

> "ता साहिब कैं लागौ साथा।
> दुख सुख मेटि जौ रह्यौ अनाथा॥

१९५४

नां दसरथ घरि औतरि आवा।
नां लंका का रांव सतावा॥
देवै कूख न औतरि आवा।
न जसवै लै गोद खेलावा॥
ना वो ग्वालन के संग फिरिया।
गोवरधन ले ना कर धरिया॥
बावन होय नहीं बलि छलिया।
धरनी वेद लेन उधरिया॥
गराडक सालिगराम न कोला।
मच्छ कच्छ है जलहिं न डोला॥
बद्री बैठा ध्यान नहिं लावा।
परसराम ह्वै खत्री न सतावा॥
द्वारमती सरीर न छाड़ा।
जगननाथ ले प्यराड न गाड़ा॥
कहै कबीर विचार करि, ये ऊले व्यवहार।
याही थें जे अगम है, सो वरति रह्या संसार॥"*

गोस्वामी तुलसीदास ने तो रामानन्द के सदृश्य ही दास्यभाव से राम की उपासना की है। उन्होंने रामानन्द के सिद्धान्तों का आधार लेकर अपनी प्रखर प्रतिभा के बल से हिन्दी साहित्य में राम काव्य की अबाध धारा प्रवाहित की जो केवल उनके ही काल में नहीं बल्कि उनके उपरान्त भी रामभक्ति का प्रचार करने में समर्थ रह सकी। रामचरित वर्णन सर्वप्रथम तुलसी ने ही जन-साधारण की भाषा में किया है यद्यपि जैसा कि नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०६, १९०७ और १९०८ की खोज रिपोर्टों से पता चलता है कि तुलसी के पूर्व कुछ और ऐसे कवि हो गए हैं जिन्होंने राम कथा का वर्णन किया है तथापि 'मानस' ही राम काव्य की परम्परा में हिन्दी साहित्य की अग्रणीय रचनाओं में माना जाता है। तुलसीदास ने स्वयं ही स्वीकार किया है कि वे ही राम-भक्ति के सर्वप्रथम कवि नहीं है:

"कलि के कविह करउँ परनामा।
जिन बरने रघुपति-गुन-ग्रामा॥
जे प्राकृत कवि परम सयाने।
भाषा जिह हरि चरित बखाने॥"

खोज रिपोर्टों के अनुसार संवत् १३४२ में भूपति नामक कवि ने सर्व प्रथम बार राम की कथा दोहे चौपाई में लिखी। संवत् १६४२ में मुनिलाल ने भी 'रामप्रकाश' नामक ग्रन्थ लिखा परन्तु रामकाव्य के सर्व प्रधान हिन्दी कवि गोस्वामी तुलसीदास ही माने जाते हैं और डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में: "तुलसी की प्रतिभा और काव्य कला इतनी उत्कृष्ट प्रमाणित हुई कि उनके बाद किसी भी कवि की रामचरित सम्बन्धी रचना उनके मानस की समानता में प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकी।"

तुलसी के उपरान्त केशव ने 'रामचन्द्रिका' में राम का चरित्र चित्रण किया है परन्तु चूँकि उनमें कवि और आचार्य दोनों के व्यक्तित्व का सहज सामञ्जस्य था अतः कहीं कहीं उनका कवित्व उनके आचार्यत्व के बोझ से बोझिल-सा हो गया है। 'रामचन्द्रिका' में कथाविस्तार तो है ही नहीं तथा कथावस्तु भी विशेषतः 'वाल्मीकि रामायण' से ही प्रभावित है अतः हम देखते हैं कि डा० रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में उचित ही लिखा है: "रामचन्द्रिका में न तो कोई दार्शनिक और धार्मिक आदर्श है और न लोक शिक्षा का कोई रूप ही, जैसा 'मानस' में है।" केशव के उपरान्त स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचन्द चौहान और हृदयराम आदि कई कवियों ने रामकथा का वर्णन किया है तथा विक्रम की १९ वीं और २० वीं शताब्दी में भी रामचरित सम्बन्धी कई कृतियाँ लिखी गईं जिनमें रामचरणदास, रघुनाथदास और महाराज रघुराजसिंह की रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। सेनापति ने 'कवित्त-रत्नाकर' की चौथी तरंग में भी रामचरित्र चित्रण किया है। परन्तु तुलसी के उपरान्त आगे चल कर रामभक्ति की काव्यधारा में भक्ति-भावना की वह विशुद्धता और प्रबलता न रह सकी जो तुलसी के 'मानस' में थी। जैसा कि आचार्य शुक्ल जी ने लिखा है: "तुलसीदास जी ने भक्ति को अपने पूर्णरूप में, श्रद्धा-प्रेम समन्वित रूप में, सबके सामने रखा और धर्म या सदाचार को उसका नित्य लक्षण निर्धारित किया।" परन्तु आगे चल कर श्रद्धा की अपेक्षा भक्ति साधना में प्रेम की ही प्रधानता हो गई और इस प्रकार शनैः शनैः धर्म से विमुख हो शृंगारोपासना तथा माधुर्यभाव की ओर कवियों के आकर्षण में वृद्धि होने लगी। कृष्णभक्ति शाखा के कवियों ने तो कृष्ण के लोक-रक्षक और लोकरंजक स्वरूप को त्याग कर केवल माधुर्योपासना की ही ओर जनसाधारण को प्रेरित किया।

---

* कबीर ग्रन्थावली पृ० २४२-३.

वल्लभाचार्य ने यद्यपि तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए 'पुष्टिमार्ग' की उपासना कर उचित ही कार्य किया था परन्तु वल्लभ संप्रदाय में साधना का जो स्वरूप स्वीकार किया गया उसमें भोगविलास के प्रदर्शन की ही प्रधानता रही और आगे चल कर तो भक्ति साधना की अपेक्षा विलासिता और ऐन्द्रिकता की ओर ही जनसाधारण को प्रेरित किया गया। राधाकृष्ण की प्रेमलीला का ही गुणगान विशेष रूप से होने लगा और 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित कृष्ण के मधुर स्वरूप की ही ओर आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता रहा। कृष्णोपासक कवियों की भक्तिसाधना के इन सिद्धान्तों से रामभक्ति शाखा के कवि भी विशेष रूप से प्रभावित हुए और उन्होंने भी राम के केवल माधुर्य रूप की ही ओर ध्यान दिया तथा रामभक्ति को भी शृंगार रस की रसधारा से अभिसिंचित कर दिया। यों तो तुलसी भी 'सूर सागर' के शृंगार रसपूर्ण चित्रों से प्रभावित हुए हैं और उन्होंने भी सूर का अनुसरण कर 'गीतावली' में राम को भी हिण्डोला विहार करते और होली खेलते चित्रित किया है परन्तु इतना होते हुए भी राम के प्रति पूज्य भाव ही उन्होंने व्यक्त किए हैं। पर तुलसी की-सी पवित्र भावनाएँ आगे अक्षुण्ण न रह सकीं और अयोध्या के बाबा रामचरणदास ने तो 'स्वसुखी' नामक भक्ति की नवीन शाखा को प्रारम्भ कर पति पत्नी भाव की उपासना पर जोर दिया है। इस नवीन शाखा का प्रवर्तन करने वाले 'कोशल खण्ड' नामक एक ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है कि रासलीला तो वास्तव में राम ने की थी और रामावतार में तो वे ९९ रास कर चुके थे केवल अवशेष एक के लिए उन्हें कृष्ण का अवतार लेना पड़ा। इस प्रकार इस नवीन शाखा के प्रवर्तकों ने राम की रासलीला आदि के कई वासनामूलक कल्पित वृत्तों का प्रसार करना प्रारम्भ किया। यही 'पति-पत्नी' भाव की उपासना आगे चल कर 'सखी भाव' के नाम से संबोधित की जाने लगी और 'कृपानिवास पदावली' तथा 'श्री रामावतार भजन तरंगिणी' जैसी अश्लील तथा कुरुचि उत्पादक पदों से परिपूर्ण पुस्तकें प्रकाश में आईं। गोस्वामी जी ने जिस राम भक्ति का पुनीत दिव्यालोक चारों ओर फैलाया था वह इस प्रकार की रचनाओं द्वारा धूमिल किया जाने लगा। एक उदाहरण देखिए :

"हमारे पिय ठाढ़े सरजू तीर।
छोड़ि लाज मैं जाय मिली जहँ खड़े लखन के वीर॥
मृदु मुसकाय पकरि कर मेरो खैंचि लियौ तब चीर।
झाऊ वृक्ष की झाड़ी भीतर करन लगे रति धीर॥"

आधुनिक हिन्दी काव्य में भी रामचरित का निरूपण कई कवियों ने किया है यद्यपि बुद्धिवाद की प्रधानता है और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रभाव से शिक्षित और विचारवान पुरुषों ने ईश्वर के अवतारवाद के सिद्धान्त पर अविश्वास भी प्रकट किया है। अवतारवाद के प्रति आर्य समाज के विरोधी विचारों का प्रभाव तो स्वाभाविक रूप से पड़ा ही तथा अन्ध-विश्वास के स्थान पर तर्क शक्ति की प्रबलता होने से राम और कृष्ण के अति मानुषिक कार्यों पर भी सन्देह व्यक्त किया जाने लगा। अतः राम और कृष्ण पुनः मानव चरित्र के रूप में चित्रित किए जाने लगे। 'प्रिय प्रवास' की भूमिका में 'हरिऔध' जी ने लिखा भी है—"मैंने श्री कृष्णचन्द्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरुष की भाँति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं। अवतारवाद की जड़ में 'श्रीमद्भगवद्गीता' का यह श्लोक मानता हूँ :

"यद् यद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छत्वं ममतेजोशसंभवम्।"

श्री रामचरित उपाध्याय ने 'रामचरित चिन्तामणि' में राम की कथा को सर्वथा ही एक विभिन्न दृष्टिकोण से चित्रित किया है। कृष्ण चरित्र की भाँति राम चरित्र में अलौकिक घटनाओं की बहुलता नहीं है और आदि कवि ने तो राम के लौकिक रूप का ही चित्रण किया है। श्री रामचरित उपाध्याय ने राम का चरित्र चित्रण राजनैतिक दृष्टिकोण से ही किया है यद्यपि उन्हें अपने कार्य में पूर्णतः सफलता न प्राप्त हो सकी और डा० श्रीकृष्णलाल के शब्दों में : "परन्तु इस दृष्टिकोण से राम, सीता, भरत और लक्ष्मण के आदर्श चरित्र का निर्वाह नहीं हो सका वरन् मोतियों के स्थान पर कवि ने काँच के टुकड़े सजा दिए।" आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने भी साकेत, पंचवटी तथा प्रदक्षिणा में राम का चरित्र चित्रण किया है। वाल्मीकि के मानव राम में तुलसी ने देवत्व का समावेश कर 'रामचरितमानस' में राम को देवता ही माना है परन्तु गुप्त जी के राम तो परम ब्रह्म होते हुए भी मनुष्य ही हैं तथा अवतार होते हुए भी हम से भिन्न नहीं हैं :

"राम राजा ही नहीं पूर्णावतार पवित्र ।
पर न हम से भिन्न है साकेत का गृह चित्र ॥"

हरिऔध जी की भाँति गुप्त जी भी आधुनिक युग की बौद्धिकता से स्वाभाविक ही प्रभावित हुए हैं और इसीलिए धार्मिक भावनाओं की प्रधानता होते हुए भी गुप्त जी के राम तुलसी की अपेक्षा लौकिक अधिक हैं और 'साकेत' में राम को एक आदर्श समाज-सेवक के रूप में ही चित्रित किया गया है तथा वे "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" नामक उक्ति को पूर्ण रूप से चरितार्थ भी करते हैं । 'साकेत' के राम समाज सेवा के विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं :

"निज रक्षा का अधिकार रहे जन जन को ।
सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को ।
मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं ।
जो विवश विकल बलहीन दीन शापित हैं ॥
हो जाय अभय वे जिन्हें कि भय शासित हैं ।
जो कोणपकुल से मूक सदृश शासित हैं ॥"

साथ ही राम स्वर्ग या मुक्ति का सन्देश लेकर नहीं आए थे बल्कि इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने के लिए आए थे :

"संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ॥"

हरिऔध जी ने जिस प्रकार 'प्रिय प्रवास' में कृष्ण को एक महापुरुष या महात्मा के रूप में चित्रित किया है उसी प्रकार 'वैदेही वनवास' नामक ग्रन्थ में राम को भी मानवता की महान् विभूति माना है । उन्होंने 'वैदेही वनवास' की भूमिका के ६ वें पृष्ठ पर लिखा भी है : "महाराज रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम लोकोत्तर चरित और आदर्श नरेन्द्र अथच महीपाल हैं, श्रीमती जनकनंदिनी सती शिरोमणि और लोक पूज्य आर्य बाला हैं । इनका आदर्श आर्य संस्कृति का सर्वस्व है, मानवता की महान् विभूति है, और है स्वर्गीय-सम्पत्ति-सम्पन्न । इसीलिए इस ग्रन्थ में इसी रूप में इसका निरूपण हुआ है । सामयिकता पर दृष्टि रख कर इस ग्रन्थ की रचना हुई है । अत एव इसे बोधगम्य और बुद्धिसंगत बनाने की चेष्टा की गई है ।" इन काव्य-कृतियों के साथ साथ 'श्री रामचन्द्रोदय काव्य', 'कोशलकिशोर', और 'साकेत सन्त' आदि उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थों का उल्लेख भी रामकाव्य की परम्परा में परमावश्यक है जिनमें रामकाव्य का विकसित रूप दृष्टिगोचर होता है । आधुनिक युग में यद्यपि साहित्य विभिन्न विभिन्न वादों से प्रभावित-सा होता जा रहा है परन्तु रामकाव्य की परम्परा अभी भी उसी प्रकार अक्षुण्ण बनी हुई है और निराला जी की प्रसिद्ध कविता 'राम की शक्ति पूजा' तो उल्लेखनीय कृति है । हाल ही में ब्रजभाषा में श्री हरदयालु सिंह का 'रावण' नामक महाकाव्य भी प्रकाशित हुआ है जो कि हिन्दी साहित्य के महाकाव्यों के अन्तर्गत अपना विशेष स्थान रखता है । आशा है भविष्य में भी रामकाव्य की यह परम्परा अक्षुण्ण बनी रहेगी ।

हंसापुरी, भंडारा रोड,
नागपुर (म० प्र०)

—दुर्गाशंकर मिश्र 'पारिजात'

जापान में घरों की सादगी और भव्यता का मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा । जापान में मकान लकड़ियों के होते हैं । अलमारियों में काँच के स्थान पर एक प्रकार का कागज़ लगाया जाता है जो कि घास से बनाया जाता है । इन अलमारियों में ताला नहीं लग सकता । फिर भी जापान में सब वस्तुएँ सुरक्षित रहती हैं यह देख कर आश्चर्य होता है ।

—अम्मु स्वामीनाथन

आधुनिक पंजाबी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

"सुपने विच तुसी मिले असानूँ
असी धा गलवक्कड़ी पाई
निरा नूर तुसी हत्थ न आए
साडी कम्बदी रई कलाई
सपने में तुम हमें मिलें
हम ने दौड़ कर तुम्हें भींच लिया
तुम केवल प्रकाश थे, तुम हमारे हाथ न लगे।
हमारी कलाई काँपती रही।"[1]

भाई साहब भाई वीर सिंह 'कम्बदी कलाई' (काँपती हुई कलाई) में पंजाबी कविता की प्राचीन परम्परा को उसके उच्च शिखर तक ले गए थे।

यह बात उस समय की है, जब पश्चिम में इटली एबीसीनिया को रौंदे दे रहा था, जब हेल सिलासी चिल्ला चिल्ला कर कह था — यदि मेरे साथियों ने मेरी सहायता न की, तो मेरी बात याद रखना, सारा पश्चिम मेरी ही तरह बर्बाद होकर रहेगा। यह उस समय की बात है, जब मुसोलिनी बार बार कहता था : सदा ही शान्ति रहे, यह एक असम्भव बात है। अंग्रेज बड़े आराम से इन बातों को सुन रहा था। फ्रान्स मदमस्त पड़ा था। उस समय जब हिटलर ने 'लीग आफ़ नेशन्स' को ठुकरा कर 'सार' को निगल लिया था, जब जापान ने 'लीग' से त्यागपत्र दे दिया था और जब स्पेन में विद्रोह आरम्भ हो गया था उस समय दुनिया भर के लेखकों ने अपने उत्तरदायित्व को समझा और १६३५ में पेरिस में एक कांफ्रेंस हुई। उस कांफ्रेंस में भारत की ओर से मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर सम्मिलित हुए। १६३६ में प्रगतिशील साहित्यिकों की एक कांफ्रेंस लखनऊ में बुलाई गई। इसके प्रधान थे मुंशी प्रेमचन्द। सज्जाद जहीर, राहुल सांकृत्यायन, डा० अख्तर हुसैन रायपुरी, डा० रशीद जहाँ और अहमद अली आदि प्रख्यात हिन्दुस्तानी लेखक इस कांफ्रेंस में सम्मिलित हुए थे।

इन दोनों कांफ्रेंसों में बहुत दिनों से चले आ रहे इस मत का खण्डन किया गया कि कला कला के लिए है। उसकी जगह इस मत की स्थापना की गई कि कला जीवन के लिए है और कलाकारों से कहा गया कि वे अपने आसपास की वास्तविकता और युग-सत्य से विमुख न रहें। जहाँ दुनियाँ के राजनीतिज्ञ और वैज्ञानिक दुनिया को विनाश की ओर ले जा रहे थे, संसार के लेखकों और कलाकारों में यह विचार जागा कि वे जनता को इस विनाश से सावधान कर दें।

उन दिनों खालसा कालेज अमृतसर में कुछ नौजवान प्रोफ़ेसर काम कर रहे थे। इनमें संतसिंह सेखों और मोहनसिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मोहनसिंह माने हुए पंजाबी कवि थे। 'सावे पत्तर' नामक उनका कविता-संग्रह यद्यपि अभी प्रकाशित नहीं हुआ था, तो भी उसकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं। संतसिंह सेखों अंग्रेजी भाषा में लिखते थे, लेकिन इस सच्चाई को वह हर क्षण महसूस करते थे कि लिखना उन्हें अपनी भाषा में ही चाहिए था। पंजाबी में नए प्रयोग करनेवाले यही लोग थे। प्रो० तेजासिंह भी उन्हीं दिनों खालसा कालेज में थे। नए लेखकों को उनसे बराबर आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती थी।

उस समय 'लिखारी' नामक एक मासिक पत्र मोहनसिंह के सम्पादकत्व में निकाला गया। नए पंजाबी साहित्य के पुराने से पुराने नमूने इसी पत्र में मिलते हैं। आजकल के प्रगतिशील कलाकारों ने पहली बार 'लिखारी' में ही लिखना आरम्भ किया था। प्रो० मोहनसिंह की प्रगतिशील कविताएँ भी सबसे पहले इसी पत्र में प्रकाशित हुईं। प्रो० सन्तसिंह सेखों की नई शैली की कहानियाँ 'प्रेमी दे नियाणे' और 'मंझधार' आदि 'लिखारी' में ही सबसे पहले छपीं। "पंजदरया" नामक पत्र मोहनसिंह की उसी लगन का एक दूसरा उदाहरण है। वास्तव में कुछ दिनों बाद 'लिखारी' का नाम बदल कर "पंजदरया" पाठकों को भेजा जाने लगा था।

उस समय तक नए लेखकों ने यह बात पूरी तरह अनुभव करली थी कि जिस तरह की कविता फ़िरोज़दीन 'शरफ़' लिखता है, जिस प्रकार की कहानियाँ

---

[1] 'कम्बदी कलाई' : वीर सिंह

76441

जोशुआ फज़लदीन ने लिखीं और जो नाटक कृपासागर ने प्रस्तुत किए, वे प्रगतिशील साहित्य के मापदण्डों पर पूरे नहीं उतरते । । लेकिन जो कुछ पेरिस में कहा गया और जिसे लखनऊ में भी दोहराया गया, उसे न पाश्चात्य लेखक अभी तक हृदयंगम कर सके थे और न हमारे देश के कलाकार ही ।

हमारे देश में उन बातों को ग्रहण न कर सकने के कई कारण थे ।

तब हम पराधीन थे । न हमें बोलने की स्वतन्त्रता थी और न लिखने की । जो कुछ हमारे कलाकार कहना चाहते थे, उसे कई कारणों से नहीं कह पाते थे । इस अभाव और विवशता ने संकेत से बात कहने की रीति को जन्म दिया । भाई साहब भाई वीरसिंह की 'गंगाराम' नामक रचना में जो कटु स्पष्टवादिता थी, वह मोहनसिंह और प्रीतमसिंह 'सफीर' की रचनाओं में केवल प्रतीक मात्र होकर रह गईं ।

"हिटलर एटीला चंगेज़ खा
रत्ते गट गट भरे प्याले
मत्ते गुडलक पींदे,
ज़र-ख़रीद गोरी विच न्हेरे
कोफ़े ते बलवान विषय दे
सुंगडी विच कलावे ।"[2]

हिटलर, एटीला और चंगेज़ खाँ
रुधिरपूर्ण प्याले
मस्ती में 'गुडलक' कह कर गट गट पी रहे हैं ।
क्रीत नवयौवना अँधेरे में
कुरूप और बलवान वासना के
भुजपाश में सिकुड़ी हुई है "

प्रीतमसिंह अपनी काव्याभिव्यक्ति के लिए जब प्रतीक भारतीय परम्परा, लोकसाहित्य, संस्कृति या प्राचीन भारतीय इतिहास से लेते हैं, तो उन्हें समझने में पाठकों को इतनी कठिनाई नहीं होती । लेकिन कभी कभी कवि अपनी भावनाओं के वेग और अपने स्वभाव की चंचलता के कारण उन्हें सुलझाए, सँवारे बिना ही छोड़ देता है ।

"इक मिट्टी दी मुट्ठी
भर के
नैनां लाल नीझ ला तक्की
नक्श गवाचे होए न दिस्से
होठ हँसा ना सक्की,
लभ लभ चमकीलियाँ घुंघरालियाँ
नज़र सैहक के थक्की
केर केर उँगलां चों भौं ते
कूक अन्त में उट्ठी
हाय नी
इक मिट्टी दी मुट्ठी ।"[3]

माटी की एक मुट्ठी
भर कर
नैनों के समीप ले जा कर उसे निहारा
खोए हुए नक्श नज़र न आए
वह होठों पर मुस्कान न ला सकी ।
ढूँढ ढूँढ कर चमकीले घूँघट
नज़र तरस तरस कर थक गई
उँगलियों के बीच से ज़मीन पर गिरा गिरा कर
आखिर में चिल्ला पड़ी
हाय री
माटी की मुट्ठी"

नए पंजाबी लेखकों में अमृता प्रीतम ने प्रतीकात्मक शैली का शायद सबसे अधिक प्रयोग किया है ; इसलिए कि वह नारी है । एक नारी जो कवि है, और अपनी कविताओं में हमारे जीवन पर व्यंग्य करती है, कहीं कहीं उसे ऐसी बात कहनी होती है, जिसे यदि हमारे समाज की कोई नारी कहे तो अच्छा नहीं समझा जाता । स्त्री की बेबसी का अमृता प्रीतम ने यों वर्णन किया है :

"रत्ती मेंदी नाल लबेड़ी
सूहे सालू विच लपेटी
पीले सोने नाल वलेटी
मास दी बोटी, कुख दी बेटी ।
वाह वाह दानी
वाह वाह दाते
चिड्डे करम कमाए
ज्हेडी झोली तक्कन
ओहो ही परवाण ।"[4]

---

[2] 'अधवाटे' : मोहनसिंह. [3] 'कत्तक कूँजाँ' : प्रीतम सिंह सफीर. [4] 'कन्यादान' : अमृता प्रीतम.

“मेंहदी से हाथ पीले किए हुए
लाल दुपट्टे में लिपटी
पीत स्वर्ण से मढ़ी
मांस की बोटी, कोख से जन्मी
धन्य हैं दानी
धन्य हैं दाता
कितने बड़े कर्मवीर हैं
जो झोली देखते हैं
वही उन्हें स्वीकार है ।”

आर्थिक विवशता के कारण एक भारतीय नारी किसी की हो गई। सारे जीवन के लिए बलात् वह एक ऐसे मनुष्य के साथ बांध दी गई, जिसके लिए उसके हृदय में कोई भावना नहीं, कोई स्थान नहीं। आजकल के युग में चाहे वह इस अन्याय के प्रति भीतर ही भीतर विद्रोह कर ले, किन्तु उसके विरुद्ध वह खुले शब्दों में अक्सर अपनी आवाज़ बुलन्द नहीं कर सकती। यदि उस पर कटाक्ष भी करना चाहेगी तो किसी बहाने या ओट से ही वह कर सकती है।

“अनदाता !
कामें माँ बाप
दित्ते कामे ने जम
कामे दा कम है
सिर्फ़ कम
बाकी बी तां कम
कर दें एहोई चम
ए वी इक कम
अनदाता ।
मैं चम दी गुड्डी
खेड लै, खिडा लै
लहू दा प्याला
पी लै, पिला लै ।”[५]

“अन्नदाता !
मेरे माता पिता श्रमिक थे
जिन्होंने मुझ श्रमिक को जन्म दिया,
श्रमिक का काम है
केवल काम करना
शेष काम भी तो
यही शरीर करता है
यह भी एक काम है
अन्नदाता !
मैं माँस की गुड़िया हूँ
खेल ले, खिला ले
लहू का प्याला हूँ,
पी ले, पिला ले ।”

पंजाबी में कहानी का जन्म सही मानों में १६३५-३६ में ही हुआ था। उस युग की पंजाबी कविता की प्रतीकात्मक शैली ने गद्य में चेतना की अन्तर्धारा (Stream of Consciousness) का रूप ग्रहण किया। किसी पात्र से कुछ कहलवाना इतना सरल नहीं, जितना उसकी उपचेतना का अध्ययन करके उसमें समा जाना। इस तरह समय, स्थान और वास्तविकता के बन्धनों से ऊपर उठ कर कई बार लेखक कम से कम शब्दों में कुछ कह सकता है जो यों ही किसी पात्र से कहलवाना असंभव-सा प्रतीत होता है। पाश्चात्य देशों में इस शैली का कविता में भी प्रयोग किया गया। हमारे देश के उर्दू के कवि 'मीरा' जी ने चेतना की धारा को अपनी रचनाओं में बड़ी सुघरता से निखारा। पंजाबी में इस तरह की कविता कम लिखी गई। किन्तु पंजाबी कहानी में इस नवीनता को ग्रहण करके इसके सुन्दर प्रयोग किए गए। जब उर्दू में हसन अस्करी की प्रसिद्ध कहानी ‘हरामज़ादी’ छपी, उससे पहले पंजाबी में इस प्रकार की कई कहानियाँ छप चुकी थीं। हमारे देश में चेतना की धारा की चर्चा पाश्चात्य उपन्यासकार जेम्स जायस के प्रसिद्ध उपन्यास ‘यूलिसिस’ के द्वारा हुई थी। ‘सवेर सार’ कहानी संग्रह में इसी नाम की कहानी पूर्णरूपेण चेतना की धारा के आधार पर ही लिखी गई। एक सुबह एक नौजवान सो कर उठता है। पलंग पर लेटे लेटे उसे जो जो ख्याल आते हैं, उन्हीं ख्यालों की लड़ी ही अन्त में एक कहानी बन जाती है। ‘आन्द्रों’ नामक उपन्यास में ज़मींदार को यह पता लगता है कि जिसको वह मरवा रहा है, वह उसी के खून का खून है, उसी के अंग का अंग है। इस द्वंद्व, इस उलझन को लेखक ने चेतना की लहर के द्वारा ही व्यक्त किया है।

नए लेखकों ने यह भी सोचा कि साहित्य को जीवन के निकट होना चाहिए। हमारा साहित्य सामान्य

---

[५] ‘अनदाता’ : अमृता प्रीतम

१९५४

जीवन का, वह जैसा भी है, दर्पण होना चाहिए।

फलतः हमारे नए लेखकों और कलाकारों ने जीवन की साधारण से साधारण घटनाओं को, घिनौने से घिनौने पहलुओं को, भद्दे से भद्दे पात्रों को चित्रित करना आरम्भ कर दिया। इस तरह, एक तो वे यह दिखाना चाहते थे कि उन्होंने पुराने बन्धनों को तोड़ फेंका है और दूसरे यह प्रमाणित करना चाहते थे कि हमारे चारों ओर का धूलि-धूसरित जीवन भी कला का विषय बन सकता है। बस वे ज़िन्दगी की नालियों को उलीचने लगे। समतल और सुन्दर को उखाड़ कर उसके नीचे की मुद्दतों की गन्दगी को सजा-संवार कर, उस भद्देपन और उलझन को सविस्तार प्रस्तुत करने लगे।

उर्दू के कुछ लेखकों ने भी गन्दगी और भद्देपन को प्रश्रय दिया। 'लिहाफ़' और 'काली सलवार' जैसी कहानियाँ लिखी गईं। इस्मत और मंटो पर मुक़दमे चले। पंजाबी साहित्य भी इस असर से न बच सका। कविता में प्रीतमसिंह 'सफ़ीर' के ये शब्द कुछ ज्यादा सख्त महसूस किए गए :

"किसे कुआरी दे कजले रंगे नैन
प्रीत नकशयाँ नाल भरे होय
सत अठवार झनाँ नूँ तरे होय
घुग्गी वाँग बना के मुखड़ा
कँत नू वरदे है न।"[६]

"किसी क़ुमारी के कजरारे नयन,
प्रीति के डोरों से चित्रित,
सात आठ बार चनाब को जो
पार कर चुके हैं,
फ़ाख़्ता की तरह अपना मुख बना कर
कन्त को अपनाते हैं।"

'कुडी कहानी करदी गई' नामक कहानी संग्रह को लड़कियाँ लुक-छिप कर पढ़ती थीं। लड़कियों के कालेजों की लाइब्रेरी में तो इस संग्रह को स्थान नहीं मिला लेकिन कालेज की प्रिन्सिपल और लाइब्रेरी की अध्यक्षा निजी कापी खरीदने के लिए उतावली रहती थीं। इसलिए कि 'कुडी कहानी कर दी गई' संग्रह में 'खरीद' नामक कहानी में एक ऐसे अध्यापक का चित्र खींचा गया है जो दूसरी तीसरी कक्षा में पढ़नेवाले एक लड़के से इस तरह प्यार करता है, जैसे एक मर्द एक औरत से। इसी तरह 'मनमारे' नामक कहानी में एक पढ़ी लिखी औरत अपने शरीर की गर्मी देकर एक गरीब भूखे नंगे ठण्ड से ठिठुरे हुए नौकर को मौत के मुँह से बचा लेती है। 'गुलाम' नामक कहानी एक ऐसी अंग्रेज़ औरत का चित्र सामने लाती है जो एक हिन्दुस्तानी नौकर को दूर नदी के किनारे ले जाकर हरी घास के ऊपर बिछे हुए एक बहुत क़ीमती क़ालीन पर बैठने को कहती है, एकान्त में अपने साथ शराब पीने पर मजबूर करती है। उसे अपने शरीर का गोरापन दिखाती है और वह नौकर घबराया हुआ उस अंग्रेज़ औरत की बाँहों से अपने को छुड़ा कर भाग जाता है।

बलवन्त गार्गी के नाटक 'लोहाकुट' में काकू अपनी बेटी बेणों की लिपटी हुई सलवार का बार बार ज़िक्र करता है। 'निक्की निक्की वाशना' में मोहनसिंह का एक पात्र अपनी बेटी रेशमा से उसके घर देर से आने पर इस तरह के प्रश्न पूछता है जो शायद ही कोई बाप अपनी बेटी से पूछेगा।

इसी तरह ज़िन्दगी के गन्दे चित्रों को और भी गन्दा प्रस्तुत करना, जानबूझ कर भद्दी चीज़ों को ढूँढ़ना और उन्हें उनके स्वाभाविक वातावरण से अलग करके पेश करना उस युग के साहित्य का एक विशेष गुण था। जिन स्थानों, जिन वस्तुओं का उल्लेख करना साहित्य में वर्जित था, उन्हें विशेष रूप से उभारा जाने लगा।

एक समय था कि राजे, महाराजे, अमीर, जागीरदार, पण्डित, सन्त, विद्वान, फ़ौजी, चाँद जैसी सुन्दर हीरें, फूल जैसे कोमल 'राँझे' और 'यूसुफ़' साहित्य की चेतना में बसे हुए थे। फिर एक समय यह आया जब मध्यम श्रेणी के पात्र भी साहित्य के मन और प्राण में स्थान पाने लगे।

"मेरी नाजो नांर
नई कोई हीर
ना मैं हां रांझा
………………………
भावें नक मेरी नाजो दा कुछ बेडोला
मुख तों झाँके मुढ हड्डियाँ दी नक शिख हौला

---

[६] अमृतसरी प्रीत : प्रीतमसिंह सफ़ीर

बाकी वी मूं मन्था मसाँ गुज़ारा"[७]

"मेरी नाज़ भरी पत्नी
न तो कोई हीर है
और न मैं राँझा हूँ।

... ...

चाहे मेरी नाज़ भरी पत्नी की नाक बेडौल सी है
उसके मुखड़े पर हड्डियाँ झाँक रही हैं
और उसका नख-शिख साधारण है
बाकी भी उसका चेहरा-मोहरा बस मामूली है"

इस तरह "मसां गुज़ारा" से हटते हटते हमारे कलाकार उन पात्रों की ओर आए जो गन्दे थे, बहुत गन्दे, जिन से आम लोगों को घिन आती थी। लेकिन जो हमारे समाज में थे ज़रूर।

'आन्द्राँ' नामक उपन्यास में इसी तरह के पात्र ढेरों हैं।

पर यह सब नवीनता क्या स्वस्थ थी? १६४६ में पंजाबी के नए लेखकों ने सोचा कि हम किधर जा रहे हैं। हमारे साथी उर्दू के लेखक भी उस समय भटके हुए थे। हमने अपने आपसे पूछा कि दुनिया में जो इतनी बड़ी लड़ाई हुई, उसका हमने साहित्य में कितना और कैसे चित्रण किया। १६४२ में हमारे देशवासियों ने स्वतन्त्रता के लिए एक बड़ा प्रयत्न किया था। हमारे साहित्यिकों ने उस पर क्या लिखा? १६४३ में बंगाल भूख से मर गया। हमारे कवि, कहानी लेखक, उपन्यासकार और नाटककार उस दुर्घटना से कहाँ तक प्रभावित हुए। महात्मा गान्धी के अहिंसा-दर्शन पर सारे विश्व की नज़रें लगी हुई थीं। हमारे लेखकों ने उस दर्शन को कभी अपना विषय बनाया? अपनी मातृभूमि, अपने देश की बड़ाई में 'वन्दे मातरम्' और 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' के अतिरिक्त सारे के सारे देश में इस तरह के कितने गीत लिखे गए? हम नए लेखक बगलें झाँकने लगे। हमें ऐसा लगा जैसे हम अभी तक अपनी जिन्दगी से, वास्तविकता से, स्वस्थ मूल्यों से बहुत दूर पडे हैं। जो कुछ हमारे कवि गा रहे थे, जो कुछ हमारे कहानीकार लिख रहे थे, जो कुछ हमारे नाटककार खेल रहे थे, जो कुछ हमारे उपन्यासकार चित्रित कर रहे थे, वह सब कुछ फीका फीका-सा, गलत गलत-सा लगने लगा। इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जो खेल हमारे देशवासियों ने १६४७ में खेला, जो खून की होली हमारी साम्प्रदायिक भावनाओं ने हमसे खिलवाई, उसे हमारे साहित्यकार पहले से भाँप न सके। जनता हम से चेतावनी न पा सकी। नए लेखकों की यह सबसे बड़ी हार थी। यदि हम सही अर्थों में प्रगतिशील होते तो अपने पाठकों को सीधे और सही रास्तों पर चला सकते।

१६४६ में हमने फिर अपने दृष्टिकोण को बदला और यह फैसला किया कि प्रगतिशील साहित्य वह है जिसमें प्रति दिन के साधारण जीवन को विकासोन्मुख दिखाया जाए, जिसमें जीवन की स्वस्थ भावना का चित्रण हो, जीवन के स्वस्थ मूल्यों को उभारा जाए, लूट-खसोट, गन्दगी, अन्ध-विश्वास, अज्ञानता, भूख और बीमारियों के प्रति घृणा पैदा की जाए। स्वस्थ साहित्य वह है जिसमें इन्सान की इन्सानियत को उसके सारे उपकरणों के साथ सजा-संवार कर प्रस्तुत किया जाए। कला और जनसाधारण के बीच जो खाई है उसे पाट दिया जाए। स्वस्थ साहित्य में नकारात्मक चरित्र (Negative Characters) नहीं होते, गन्दी बातें करके मज़ा नहीं लिया जाता। स्वस्थ साहित्य में जीवन की वास्तविकता को उसकी सुन्दरता और उसके स्वस्थ उद्देश्यों के साथ चित्रित किया जाता है। 'लहू मिट्टी' नामक उपन्यास के पात्रों में आम आदमियों की सामान्य सुन्दरता झलकती है। इस उपन्यास के पात्र इसलिए अच्छे नहीं कि वे निर्धन भूखे हैं और उनके प्रति हमारे हृदय में दया पैदा होती है, वरन् इसलिए कि वे पुराने बन्धन, रीतियों और जीवन के अस्वस्थ मूल्यों की उपेक्षा कर के, नई राहों पर विचरना चाहते हैं।

इस तरह प्रगतिशील साहित्य के बारे में हम पंजाबी लेखक अपने विचार सुलझाने लगे। नई विचार-धारा और भावनाओं के अनुसार इस तरह की रचनाएँ हमें पसन्द आने लगीं।

"सवेरे सवेरे
आज मुँह हनेरे
किसान इक दे बेटे
फसलाँ च खल के

---

[७] मेरी नाजो नार : देवेन्द्र सत्यार्थी

घुमाणी घुमाई
ते बदलाँ दे पिच्छे
चिरां दे सुत्ते हाये
अण दिसदे रब्बां नूँ
पत्थर ने मारे ।
परोई होई ए लडी टुट जासी
आकाशाँ दे विच इक शोर होर पैसी
सिथिल पैंतरे दा गला घुट जासी
तारे, लथ जासन ए तारे ।"[८]

"सबेरे सबेरे
आज मुँह अँधेरे
एक किसान के बेटे ने
खेतों में खड़े होकर
गोफना घुमा घुमा कर
बादलों के पीछे
चिर काल से सोए हुए
अदृश्य देवताओं पर
ढेले मारे ।
यह पिरोई हुई लड़ी टूट जाएगी ।
आकाश में एक ओर शोर होगा,
शिथिल पैंतरे का गला घोंट दिया जाएगा
तारे, उतर जाएँगे ये तारे ।"

इस तरह की 'पगडंडियाँ' हम ढूँढ ही रहे थे कि १९४७ में देश स्वतन्त्र हो गया । देश की स्वतन्त्रता के साथ देश के टुकड़े भी हो गए । देश के बँटवारे में जो खून-खच्चर हुआ उसका उदाहरण शायद ही कहीं मिले ।

अगस्त १९४७ के बाद के प्रगतिशील पंजाबी साहित्य में अन्य बोलियों की तरह दो विशेष प्रवृत्तियाँ पाई जाने लगीं ।

देश के विभाजन और उसके साथ हुए अत्याचारों ने कई प्रगतिशील साहित्यकारों की कड़ी परीक्षा ली । उर्दू के प्रसिद्ध साहित्यिक सआदत हसन मंटो और हसन अस्करी जैसे मुस्लिम लीगी हो गए । हमारे कुछ पंजाबी साहित्यिकों ने भी पाकिस्तानी नमक और फलों का बायकाट कर दिया । साम्प्रदायिक झगड़ों के सम्बन्ध में पंजाबी साहित्य में कुछ लेखकों ने सारा अपराध मुसल्मानों पर थोपा है, किन्तु इससे समझदार पाठक सन्तुष्ट नहीं हो पाता । कइयों ने जहाँ मुसल्मानों को बुरा भला कहा है, तो साथ साथ हिन्दू और सिक्खों की भी निन्दा की है । इस तरह जान-बूझ कर केवल दोनों पार्टियों में अपराध को बाँटना कुछ बनावटी-सा मालूम होता है । कइयों ने इस अत्याचार का उत्तरदायी आदमी के अन्दर की पैशाचिक प्रवृत्ति को ठहराया है, नेताओं के माथे दोष मढ़ा है । अमृता प्रीतम की साम्प्रदायिक झगड़ों के बारे में प्रसिद्ध कविता इस विषय पर एक सुलझा हुआ उदाहरण है :

"आज आँखाँ वारस शाह नूं,
कित्ते कबरां विच्चों बोल
……………………………
इक रोई सी धी पंजाब दी,
तूं लिख लिख मारे वैण,
अज लक्खां धीआं रोंदियां,
तनूं वारिसशाह नूं कैण
वे दर्दमन्दाँ दया दर्दिया,
उठ तक अपना पंजाब,
अज बेले लाशां विच्छियां,
ते लहू दी भरी चिनाव ।"

आज वारसशाह से कहती हूँ,
कहीं कब्रों में से बोलो
……………………
एक रोई थी बेटी पंजाब की,
तुम करुण गान लिखते चले गए
आज लाखों बेटियाँ रोती हैं,
वारसशाह, और तुम से कहती हैं
ओ दुखियों के हमदर्द,
उठ देख अपना पंजाब
आज जंगल में लाशें बिछी हुई हैं,
और चनाब लहू से भरपूर है ।"

'अग खाणवाले' नामक कहानी संग्रह में साम्प्रदायिक झगड़ों के बारे में ही लिखा गया है । इसमें रावलपिण्डी-काँड से लेकर महात्मा गांधी की हत्या तक के रक्तिम युग का चित्रण है । नानकसिंह के दो उपन्यासों

---

[८] तारे लथ जासन : दुग्गल

का विषय भी यही साम्प्रदायिक भावना ही है ।

अगस्त १९४७ में देश आज़ाद हुआ । किन्तु आज़ादी का उत्साह पंजाबियों में अधिक नहीं पाया गया । लाखों बेघर हो गए, लाखों जानें चली गईं । मन्दिरों को जलते हमने देखा, मस्जिदों की ईंट से ईंट हमारे सामने बजाई गई । इस तरह मिली हुई आज़ादी पर कोई क्या खुशी मनाता ! अमृता प्रीतम ने 'मेरी इकरारों वाली रात' नामक एक कविता लिखी । पर मोहनसिंह मानते हैं कि सही स्वतन्त्रता तभी मिलेगी जब हम इस भुखमरी के अभिशाप से मुक्त होंगे, जब हमारी दरिद्रता की काली चादर उतर जाएगी ।

लेकिन आज़ादी का एक लाभ अवश्य हुआ कि हमारे साहित्यिकों ने आज़ाद देश के लेखकों की तरह सोचना शुरू कर दिया । मोहनसिंह, प्रीतमसिंह 'सफ़ीर' अमृता प्रीतम आदि साहित्यिक जन-साधारण के पास आकर खड़े हो गए हैं और उसने साथ हो रहे अन्याय की बात दुनियाँ को पुकार पुकार कर सुनाने लगे हैं ।

नया पंजाबी साहित्य आज बड़े योग्य और समर्थ हाथों में है । प्रथम बार साहित्य के सभी अंगों की समान रूप से उन्नति हो रही है—जहाँ आज सुरेन्द्रसिंह नरूला पंजाबी जीवन को सुचारु रूप से अपने उपन्यासों में चित्रित कर रहा है, जहाँ बलवन्त गार्गी पंजाबी रहन-सहन को अपने नाटकों में स्वस्थ ढंग से अंकित कर रहा है, जहाँ मोहनसिंह, सफ़ीर, अमृताप्रीतम, आदि पंजाबी के कवि ऐसे काव्य का सृजन कर रहें हैं, जिस पर कोई भी साहित्य गर्व कर सकता है ।

ऑल इण्डिया रेडियो,
नई दिल्ली

—कर्त्तारसिंह दुग्गल

……मेरा अधिकांश समय लिखने में ही व्यतीत होता है । मैं प्रायः किसी एकान्त स्थान में चला जाता हूँ कि कुछ लिख सकूँ ।…मैं लिखता चला जाता हूँ और एक ही बैठक में लिख डालता हूँ । पुनः उसमें किसी प्रकार का संशोधन नहीं करता और जो लिखता हूँ उसे तत्काल प्रेस में छपने के लिए भेज देता हूँ । मैं कम-से-कम शब्दों में अपने विचारों को अभिव्यक्त करता हूँ । मैं जब छोटा बालक था उस समय मैं यही खेल खेला करता था कि किस प्रकार अपने विचारों को कितने कम शब्दों में अभिव्यक्त कर सकता हूँ । मैंने लिखने में अपने बचपन के खेल से बहुत कुछ सीखा है ।…

—बर्ट्रैण्ड रसेल

लेपाक्षी की कला-संपत्ति

दक्षिणापथ में विजयनगर साम्राज्य के वैभव काल में कलाओं का पूर्ण विकास हुआ था। विजयनगर के अधीन प्रदेशों में भी उसी कला-शैली पर चित्रों का निर्माण हुआ था। इसी शैली में चित्रित लेपाक्षी मन्दिर के 'भित्ति चित्र' अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। लेपाक्षी बहुत समय तक अज्ञात ही रहा। इधर १० सालों से इस मंदिर की कला की महानता की ओर लोगों का ध्यान गया है।

लेपाक्षी आन्ध्र देश में अनन्तपुरम ज़िले के हिन्दूपुर से नौ मील की दूरी पर स्थित है। यह अत्यन्त छोटा-सा गाँव है। विजयनगर साम्राज्य के वैभव काल में यह व्यापार और वाणिज्य का बड़ा केन्द्र था। राजा कृष्णदेवराय के समय में ही विरुपन्ना और वीरभद्रन्ना नामक दो भक्तों ने शैव मन्दिर बनवाया। उन भक्तों ने उस समय के प्रसिद्ध शिल्पियों एवं चित्रकारों को बुला कर मन्दिर को शिल्प और चित्रकला से अलंकृत कराया। यह वास्तव में शैव मन्दिर है फिर भी इसमें विष्णु की मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित की गई हैं। इससे हमें पता चलता है कि उस समय समन्वय की भावना कितनी उत्कट थी तथा कला में भेद भाव नहीं माना जाता था।

यह मंदिर लेपाक्षी नामक एक छोटे-से टीले पर बना है। इसके चारों तरफ़ मज़बूत चहारदीवारी बनी हुई है। यह दीवार दुर्ग की दीवार से भी अधिक मज़बूत है। इस मंदिर के गोपुर आदि भग्नावस्था में पड़े हुए हैं। इस कारण मंदिर के पार्श्व से गुज़रनेवाले यात्री भी इस मंदिर की महानता को नहीं जान पाए। इस मंदिर के शिल्प, चित्र एवं नक़्क़ाशी को देखते रहने पर ऐसा अनुभव होता है कि संसार से क्रमशः कलाओं का विकास रुकता जा रहा है तथा कला जड़-प्राय बनती जा रही है। यहाँ असंख्य मूर्त्तियाँ, चित्र एवं नक़्क़ाशी के इतने बारीक काम हैं कि इसे शिल्प और चित्र कला का भण्डार कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। यहाँ के प्रत्येक चित्र और मूर्त्ति में शिल्पियों के हस्तकौशल और निपुणता का परिचय मिलता है। यहाँ पर एक बहुत बड़ी शिला पर खुदे दो देवताओं की मूर्त्तियाँ अत्यन्त सुंदर हैं। एक गणेश की और दूसरी नागभूषण की है। इन प्रतिमाओं पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा जा सकता।

लेपाक्षी-मंदिर की नक़्क़ाशी में अनेक प्रकार की कला-संपदा है। यही इस मंदिर की विशेषता कही जा सकती है। कल्याण मण्डप में मानव परिमाण में खुदे अनेक शिल्प हैं। इनमें सूर्य, नंदकेश्वर, गंगा और तुम्बुरु की मूर्त्तियाँ विशेष रूप से प्रमुख हैं। ये मूर्त्तियाँ पार्वती और शिवजी के विवाह-महोत्सव में उपस्थित-सी चित्रित हैं। यहाँ की मूर्त्तियों में तथा भारत के अन्य मंदिरों की मूर्त्तियों में बहुत अन्तर है। यहाँ की मूर्त्तियाँ पुराणों में कथित समस्त मूर्त्ति-लक्षणों की प्रतिरूप हैं। इन मूर्त्तियों का यथातथ्य वर्णन नहीं किया जा सकता, देखते ही बनता है। इन चित्र और मूर्त्तियों के विशेष अध्ययन के द्वारा मंदिर के सही निर्माण-काल का पता लग सकता है तथा विजयनगर साम्राज्य संबन्धी अनेक ऐतिहासिक आधार भी प्राप्त हो सकते हैं। यहाँ के चित्रों में ऐसे उत्तम रंगों का उपयोग किया गया है कि वे आज भी देखने में ऐसे दिखाई देते हैं मानों अभी अभी बनाए गए हों। इससे उस समय की चित्रकला की उन्नति का अनुमान लगाया जा सकता है।

भारतवर्ष के 'भित्ति चित्र' हमारी संस्कृति के अमिट चिह्न हैं। ये चित्र अनेक प्रकार के होते हैं। देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार इन चित्रों के गुणों का मूल्य निर्धारित किया जा सकता है। लेपाक्षी की भी बात यही है। यहाँ के चित्रों में स्थानीय जनता की रूप-रेखाओं का भी पता चलता है। प्रत्येक प्रान्त के चित्रों में उन प्रान्तवासियों की अभिरुचियों का स्पष्ट चित्रण मिलता है। चित्रों में भी काल एवं प्रान्त-भेदों के अनुसार भिन्नता होती है परन्तु भारत की संस्कृति अखण्ड होने के कारण सांस्कृतिक समन्वय या समानता अवश्य रहती है।

हमारे देश की कला-सृष्टि में अनन्य सौन्दर्य का परिचय मिलता है। लेपाक्षी के चित्र व मूर्त्तियाँ सौन्दर्य के पुतले हैं। इन चित्रों के देखने के बाद हम यह अनुभव करने लगते हैं कि चित्रकारों ने यथार्थ जीवन के निर्वाह में सुख दुःखों की गहराई को देख लिया है। यहाँ की उनकी अपूर्व कला-सृष्टि को देख कर हमें यह समझने में कोई

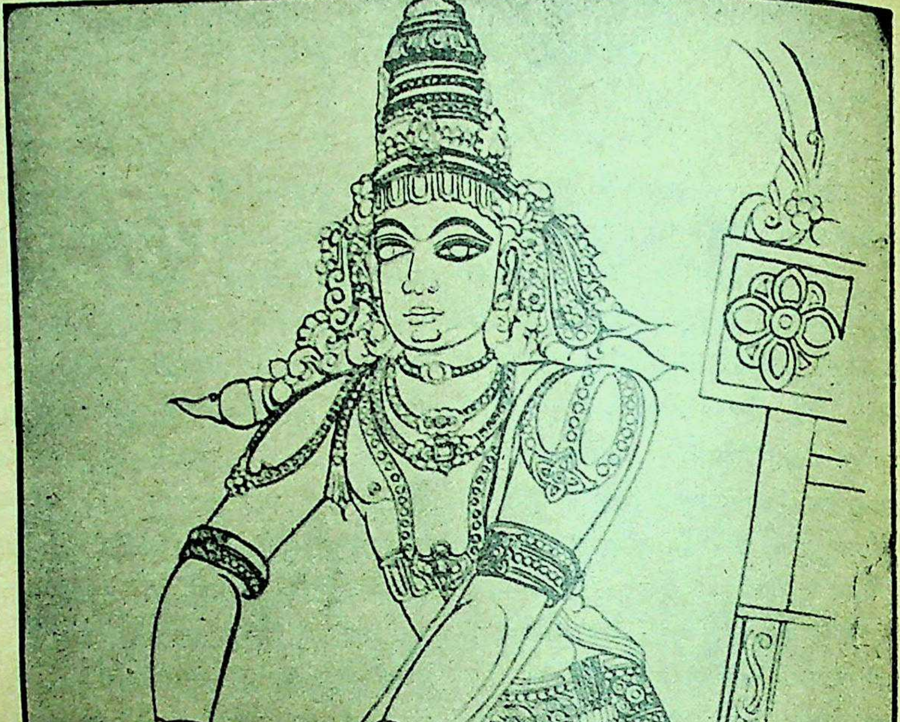

लेपाची के मंदिर में एक मूर्त्ति

कठिनाई न होगी कि चित्रकारों के जीवन का उनकी कला के साथ कैसा अटूट और अभिन्न सम्बन्ध था ।

यह मन्दिर बहुत बड़ा नहीं है । कला की दृष्टि से इसका महत्व एवं मूल्य निर्धारण किया जा सकता है । इस मन्दिर के पास ही इससे सम्बन्धित अनेक मण्डप हैं जो आज मकानों के रूप में परिवर्तित किए गए हैं । इनमें मुसलमान भी रहते हैं । एक मुसलमान प्रतिदिन 'रा संकीर्तन' करके वहाँ के लोगों को सन्तुष्ट किया करता है। उन

इस मन्दिर का प्रधान देवता वीरभद्र है । उन बाईं ओर पापनाशेश्वर और दाईं ओर रामलिंगेश्वर धू अगरबत्ती, नैवेद्य आदि ग्रहण कर रहे हैं । इस मन्दिर आकर्षणों में प्रवेश द्वार का मुख-मण्डप, उसके बा

का अर्ध म
गृह, दूसरी
मातृक मूर्ति
देवी-देवता
खुदी हुई मू
लेपा
चित्रों का
हैं, तो भी
दे रहे हैं ज
पर चित्रित
कहीं अस्पष्ट
दिखाई दे र
यहाँ
किरातार्जुनी
रूप से चि
भित्तियों प
की छत के
रमणीय हैं
भागवत, र
चित्र अंकित
गाथाएँ रंग
क्रम नवीन
स्त्रियों के
चित्र क्रम
अत्यन्त ग
अवतार क
शयन-गृह
लेप
दर्शनीय है
और वह ह
दिलाता है
बनाने तक
प्रधान रंग
भी प्रयोग
देखने में सु
चित्रों में
आभरणों
भी बढ़
मालूम हो

का अर्ध मराडप मुख्य हैं। मन्दिर के एक तरफ़ शयन-गृह, दूसरी ओर कल्याण मराडप हैं। पीछे के भाग में सप्त-मातृक मूर्तियाँ और शेष भाग में सीताजी तथा अन्य कई देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त स्तम्भों पर खुदी हुई मूर्तियाँ भी अत्यन्त सुन्दर एवं मनमोहक हैं।

लेपाक्षी के मन्दिर में मूर्तियों से अधिक महत्वपूर्ण चित्रों का स्थान है। अब तक सैकड़ों चित्र नष्ट हो गए हैं, तो भी अनेक सुन्दर चित्र अभी भी यत्र-तत्र दिखाई दे रहे हैं जो चित्रकला के उज्ज्वल नमूने हैं। भित्तियों पर चित्रित अनेक चित्र नामावशिष्ट रह गए हैं। कहीं कहीं अस्पष्ट रूप से मस्तक, हाथ इत्यादि एकाध अंग दिखाई दे रहे हैं।

यहाँ के चित्रों की कथावस्तु शिव-लीलाएँ हैं। किरातार्जुनीयम्, माधव वर्मा की कहानियाँ अत्यन्त उदात्त रूप से चित्रित हैं। नृत्य मराडप के स्तम्भों पर तथा भित्तियों पर गंधर्व, यक्ष आदि के चित्र हैं। मन्दिर की छत के निचले हिस्से में दशावतारों के चित्र अत्यन्त रमणीय हैं। महामराडप के भीतरी भित्तियों पर भारत, भागवत, रामायण आदि ग्रन्थों के विषय सम्बन्धी कथा चित्र अंकित किए गए हैं। दीवारों पर नर-नारायण की गाथाएँ रंग-बिरंगे चित्रों में वर्णित हैं। चित्रों का अंकन-क्रम नवीन पद्धति को लेकर है। दीवार के मध्य भाग में स्त्रियों के चित्र हैं और उसके दोनों ओर पुरुषों के चित्र क्रम में चित्रित हैं। प्रधान देव वीरभद्र का चित्र अत्यन्त गम्भीर है। दशावतार के चित्रों में नृसिंह अवतार का रंग आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। शयन-गृह के स्त्रियों के चित्र अत्यन्त रमणीय हैं।

लेपाक्षी के चित्रों में रेखाओं की निपुणता अधिक दर्शनीय है। इन रेखाओं में लालित्य और वेग दोनों हैं और वह हमें जापानी चित्ररेखा पद्धति का बरबस स्मरण दिलाता है। ये रेखाएँ चित्र के प्रारम्भ से आकृति के बनाने तक बिना तूलिका उठाए बनाई गई हैं। रेखाओं के प्रधान रंग लाल और काले हैं। कहीं कहीं हरे रंग का भी प्रयोग हुआ है। ये निकट से कुछ दूरी पर से देखने में सुन्दर लगते हैं। हल्के रंगों के उपयोग से चित्रों में अधिक सौन्दर्य व आकर्षण भर गया है। आभरणों की अधिकता के कारण चित्रों का सौन्दर्य और भी बढ़ गया है। रंगों की मिलावट बनावटी नहीं मालूम होती। भावों में प्रधान रस के अनुसार रेखाओं का चुनाव हुआ है। 'वीरभद्र' के चित्र में रेखाएँ टेढ़ी-मेढ़ी बनाई गई हैं।

चित्रों की प्रमुख विशेषता विस्फारित नेत्र हैं। एक आँख विशाल चित्रित है तो दूसरी में आधा अंश ही दिखाई देता है। नखों के अग्रभाग लम्बे व नुकीले हैं। ये देखने में अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। लेपाक्षी के चित्रों की सुन्दरता हमें आँखों, नखों तथा वेणी में अधिक झलकती दिखाई देती है, जो देखते ही बनता है। चित्रों के ऊपर व नीचे सुन्दर बेल-बूटे चित्रित हैं। उनमें लताएँ और पक्षी मुख्य हैं। क़तारों में अनेक हंस चित्रित हैं। कहीं एक दूसरे का पीछा कर रहे हैं; कहीं अर्ध निमीलित नेत्र होकर विश्राम कर रहे हैं; कहीं गर्दन मोड़े अत्यन्त सुन्दर दिखाई दे रहे हैं।

चित्रों में स्त्रियों के पहने हुए चीरों में मयूर नेत्र, खड़ी रेखाएँ, चौरंगी आदि को देख आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है। वहाँ के शिल्प और चित्रों में अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। चित्रों के ऊपर व नीचे अर्ध-शिल्प खुदे हुए हैं। इनको देखते देखते नेत्र तृप्त नहीं होते। एक स्थान पर नर्तकियाँ एक ही पंक्ति में खड़ी दिखाई देंगी तो दूसरे स्थान पर मत्त हाथी को जंजीरों को तोड़ कर महावत का पीछा करते देख सकते हैं। इनके साथ साथ एक शिला वेदिका पर विश्राम करनेवाली हरिणी का चित्र, हंस कन्याएँ, नृत्यभंगिमा में चित्रित नर्तकियों के चित्र जहाँ तहाँ दिखाई देते हैं। इन निर्जीव चित्रों में सजीवता दृष्टि-गोचर होती है। देखते देखते दर्शक तन्मय हो जाते हैं। चित्रकारों ने चित्रों में अपनी तूलिका से प्राण प्रतिष्ठा करके कला की साधना की है। उनकी तपस्या का फल साकार रूप में अंकित होकर यात्रियों कलाकारों एवं दर्शकों को आनंदित करता है।

आज वहाँ के लोगों की प्रधान देवी दुर्गा है। एक समय का वीरभद्रालय आज दुर्गालय बना हुआ है। प्राचीन समय में हमारी वर्ण-व्यवस्था के अनुसार अपने अपने गाँव में अपने इष्टदेव की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करके मंदिर बनवा कर, पूजा-उपासना, उत्सव-जुलूस आदि मनाने या निकालने की परिपाटी थी। उस समय की सामाजिक व्यवस्था में पेशों के आधार पर अनेक घरेलू उद्योग-धन्धों का विकास हुआ और साथ ही कला को प्रोत्साहन मिला। जहाँ-तहाँ की शिलाएँ सुन्दर मूर्त्तियों के रूप में परिवर्तित हुईं। मंदिर, नृत्य, शिल्प एवं चित्रकलाओं के

निकेतन बन गए। वहीं पर शास्त्रार्थ होता था। पठन-पाठन, पूजा-उपासना होने लगी। उस समय की मूर्त्ति-कला केवल पत्थरों तक ही सीमित नहीं रही बल्कि सोने, चाँदी, काँसा, तांबे की मूर्त्तियाँ भी बनीं। इस प्रकार शिल्पियों ने प्रोत्साहन पाकर हमारी शिल्पकला को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। उस समय की कला-सृष्टि को देखने से हमारे हृदय में संदेह पैदा होने लगता है कि हम सांस्कृतिक एवं कला की दृष्टि से उन्नति कर रहे हैं अथवा पतन के गड्ढे में गिर रहे हैं। उस मंदिर के सामने प्रतिष्ठित वृषभ-मूर्त्ति की सुन्दरता का वर्णन करना कठिन है, उसे देखते ही बनता है। हमें उस समय ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों वृषभ महोदय कैलास शिखर से लेपाक्षी के स्निग्ध सौन्दर्य के दर्शन करने चले आए हों। मंदिर के सामने स्थित होने के कारण यह भी संदेह होता है कि देवताओं के देव शिवजी को अपनी पीठ पर बिठा कर कैलास ले जाने के लिए मानों उनकी प्रतीक्षा में बैठा हो। वृषभ-मूर्त्ति इतनी सुंदर है कि उसकी प्रशंसा हम कहाँ तक करें! मूर्त्ति इस प्रकार अंकित है कि वृषभ अपने खुरों से पृथ्वी को खोद रहा है। उसकी कमर में छोटी घण्टियां बंधी हुई हैं। उसके सींग इतने सुंदर हैं कि उनकी ओर हम सहज ही आकर्षित हो जाते हैं।

हमारे देश में प्राचीन कला का महत्व न जानने तथा धार्मिक विद्वेष के कारण हमारी कला-संपदा विनष्ट हो गई है। जो बची हुई है वह भी उजड़ी हुई है। अनेक गाँवों में जान बूझ कर मूर्त्तियाँ तोड़ी गई हैं। किसी मूर्त्ति का शिरोच्छेदन हुआ है, किसी की नाक टूटी है। इन्हें देख हमारा हृदय द्रवीभूत हो जाता है। ये मूर्त्तियाँ धन की अपेक्षा से अथवा विलासार्थ नहीं बनाई गई हैं। ये कलाकारों के सत्य, तपस्या और सौन्दर्योपासना की प्रतीक हैं।

हर्ष की बात है कि इधर भारत स्वतन्त्र होने के उपरान्त इस ओर हमारे देश के नेताओं, कलाकारों और सरकार का ध्यान गया है। लेपाक्षी के शिल्प और चित्रों को सुरक्षित रखने के लिए भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के रसायनिक विशेषज्ञ श्री तांबेकरजी (बड़ौदा) रसायनिक पद्धतियों द्वारा चित्रों की जाँच कर रहे हैं। भावी पीढ़ी के उपयोगार्थ इनकी प्रति-कृतियाँ एवं फ़ोटो निकाल कर संग्रह कर रहे हैं। विशेष प्रयत्न के साथ चित्रों को बनाए रखने का प्रयत्न हो रहा है। यदि इससे फिर हम लोगों में कला चेतना जगे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी।

हिन्दी प्रचार सभा,
मद्रास

—बालशौरि रेड्डी

पूर्बी कहावतें

अनकर गोड़वा धोय नौनियाँ अपना धोवत लजाय
नाई औरों के पैर धोता है, अपना धोते लजाता है।

अन्न धन अनेक धन, सोना रुपा कितेक धन
अन्न बड़ा धन है, सोना-चांदी उसके सामने कुछ नहीं।

अपना ठीक ना, अनकर नील ना
मूर्ख दूसरे की अच्छी सलाह को नहीं मानता।

आज बसेरवा नियर, कल बसेरवा दूर
आज का घर पास है, कल का घर दूर है।

जात पांत पूछे नहीं कोय, कुरती पहन तिलंगवा होय
वर्दी पहिनने से ही सिपाही हो जाता है, चाहे किसी जात का क्यों न हो।

शिवराजगढ़ (सौराष्ट्र)

—अनवर आगेवान

खुली खिड़की

दिवाली का दिन है। उमंग और उत्साह से राजधानी उछल रही है। सब लोग तेज़ी से अपने-अपने घरों को सजाने में लगे हुए हैं। घर के मुखिया लक्ष्मी-पूजन की सामग्री जमा रहे हैं, बालक आतिशबाजी छोड़ने की इज़ाजत के लिए बड़ों का मुँह ताक रहे हैं और नए वस्त्रों तथा आभूषणों से सुसज्जित कुल-वधुएँ पकवान बनाने में लगी हुई हैं। आज ग़रीब भी अमीर है, दुःखी भी सुखी हैं, और अभागा भी सभागा है।

इस बार दिल्ली की दिवाली मनाने का निश्चय कर विपिन और विनोद अपने गाँव नहीं गए। जाकर करते भी क्या ? दोनों प्रोषितपतिकाओं से मुक्त हैं। आगरा से साथ साथ बी. ए. करने के बाद यहाँ आकर अकस्मात् संयोग हो गया है। दोनों रेल्वे में साधारण क्लर्क हैं। दरियागंज के पुराने कूचा में ऊपर की मंज़िल पर मुश्किल से एक कमरा हाथ लगा है। हवा और रोशनी से यह एक कमरा भी काम का नहीं है। एक खिड़की ज़रूर है, जिसका उन्हें भारी सहारा है। कमरे के एक कोने में पानी का घड़ा, दूसरे में खाने पीने का समान, तीसरे में बिस्तर और चौथे में एक दूसरे के ऊपर जूते रखे हुए हैं। बीच में चटाई डाल रखी है। रात में यहीं बिस्तर लगा कर सो जाते हैं। उनके सिरहाने अपने अपने संदूक हैं। दीवारों पर छुट्टियों की ओर संकेत करनेवाला एकमात्र कलेण्डर टँगा हुआ है। और हाँ, कमरे के बीचों-बीच से होकर दोनों कोनों को मिलाती हुई एक डोरी अवश्य बंधी हुई है, जिस पर सूखे और गीले कपड़े लटकते रहते हैं। खाना-पीना, उठना-बैठना और पढ़ना-लिखना सब कुछ इसी कमरे में होता है। एक तड़के उठ कर पानी भर देता है, तो दूसरा अंगीठी जला कर खाना बनाने में जुट जाता है। जैसा तैसा खा-पी लेते हैं। भूखे कभी नहीं रहते और न भूखे रहने के आदी ही हैं। चढ़ी उमर है, गठा बदन है, इसलिए घर और दफ़्तर दोनों की परिस्थितियों को अपने अनुकूल मोड़े हुए हैं। आठ महीने होने आए हैं, दोनों में अच्छी निभ रही है।

चार बजते ही विपिन ने विनोद से कहा : "चलो आज खाना बना कर पिक्चर हो आएँ। लौटते समय रोशनी भी देखते आएँगे। खाना-पीना लौटने पर ही ठीक रहेगा।"

"लेकिन बनेगा क्या, पहले यह तो तय हो जाए ?"—विनोद ने उत्तर दिया।

"मुझे तो भाई वही हलवा-पूरी बनाना आता है, कहो तो तैयार कर दूँ।"

"हलवा-पूरी ही सही। राजा भोजन है लेकिन बने ऐसा कि शायद ही किसी ने खाया हो ?"

"हाँ इतना-सा अवश्य ध्यान रखना कि तुम्हारा हलवा उस दिन जैसा लेई न बन जाए। ज़रा घी की मात्रा समुचित रहे, ख़ास चीज़ भी यही है।"

"अब रहने भी दे, विनोद ! एक तो हलवा बना कर देता हूँ और उल्टा मुझ पर ही व्यंग्य करता है।"

'मेरे अच्छे दोस्त ! बुरा न मानो। लो अंगीठी जलाता हूँ, तुम सामान तैयार करो।"

विनोद ने अंगीठी जलाई और विपिन धोती कस कर खाना बनाने लगा। ठीक साढ़े पाँच बजे हलवा-पूरी और आलू-गोभी की सब्जी बन कर तैयार हो गई। आज का हलवा घी में डूबा हुआ था। विपिन ने उसमें अन्तिम कलात्मक रूप देकर बादाम, पिश्ते और केशर भी डाल दी थी। केवल दो-चार शुरू की पूरियों को छोड़ कर शेष सभी फूली हुई थीं और क्यों न फूलतीं; दिवाली का फूला हुआ दिन जो ठहरा। सब्जी का रंग इतना बढ़िया था कि देख कर दोनों के मुँह में पानी आ गया। वापस लौटने तक का धैर्य धारण करना ही पड़ा। पिक्चर का समय होने आया था। विनोद ने जल्दी से दरवाजा बंद किया। बन-ठन कर बाहर निकले। 'बस' पकड़ी और पहुँचे नई दिल्ली। 'ओडियन' में 'मि० सम्पत' चल रहा था। टिकट लेकर अपनी जगह पर बैठ गए।

ठीक नौ बजे खेल समाप्त हुआ। दोनों बाहर आए दीपमालिका से उच्च अट्टालिकाएँ जगमगा रही थीं। राष्ट्र-

पति-भवन और पार्लियामेंट हाउस की सजावट अपूर्व थी। वहाँ के वृक्षों की डाल-डाल में रंग बिरंगे बल्ब दर्शकों का मन मोह रहे थे। आज आसमान के नक्षत्रों का प्रकाश फ़ीका था, मानो वे 'केन्द्र' की शोभा को देखने के लिए पृथ्वी पर उतर आए हों। सड़क पर विविध कारें एक लम्बी कतार बनाती धीमी स्पीड से उर्वरा भूमि की सलिला के समान गुज़र रहीं थीं। दोनों ओर दुकानों की शोभा दर्शनीय थी। वे दोनों भी देखते गए और आगे से आगे बढ़ते गए। बीच बीच में हवाई के धूम-धड़ाके शून्य से नक्षत्र वृष्टि कर रहे थे। सृष्टि अलकापुरी बनी हुई थी।

करीब एक मील पैदल चल कर विनोद ने विपिन से कहा: "कोई सवारी नहीं मिलेगी?"

विपिन ने उत्तर दिया: "आज सवारी वालों के दिमाग़ सातवें आसमान पर चढ़े हुए हैं। चुपचाप चले चलो। थक गए हो तो, बात दूसरी है।"

"नहीं। मेरा मतलब था, राह लम्बी है। इधर सूनापन भी है। मन रमाने के लिए कोई मनोरंजक बात, चुटकला या चित्ताकर्षक कहानी चाहिए ताकि रास्ता तय हो जाए और पता भी न चले। कहोगे?"

"लेकिन मैं कोई कहानीकार तो हूँ नहीं।"

"तो तुम्हारा अभिप्राय यह है कि देवी-देवता, राजा-रानी, सियार-गिरगिट अथवा लैला-मजनूँ और शीरीं-फरहाद जैसे दास्तान सुनानेवाले ही कहानीकार होते हैं। माफ़ करना, विपिन! तुमने आधुनिक कहानी की मूल भित्ति को पहिचाना नहीं है। कहानी तो मन की मौज है, हृदय की तरंग है चित्त लगाने का साधन है और चातुर्य से तैयार की गई एक कलात्मक पूर्णता है। जमाना करवटें ले रहा है। वर्षों के पुराने उपदेश और प्रेम सड़-गल कर बदबू देने लग गए हैं। कुछ आप बीती, कुछ जग बीती, थोड़ा बहुत नमक मिर्च लगा कर कह दो न कोई मज़ेदार बात।"

"कहता हूँ, लेकिन तुम्हें भी फिर कोई न कोई कहानी सुनानी पड़ेगी।"

"स्वीकार है! शुरू तो करो।"

विपिन ने अपनी कहानी आरम्भ करते हुए कहा: "बैरिस्टर लक्ष्मीचन्द मेहता का नाम सुना है?"

"सुना क्यों नहीं है? उनको तो मैं बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ। आगरे में उनके बराबर और किसी की प्रैक्टिस नहीं चलती है। महीने के हज़ार-डेढ़ हज़ार तो मार ही लेते हैं।" विनोद उगल पड़ा।

"तब तो तुम उन्हें जानते हो। अच्छा बताओ, उनकी कुल जायदाद कितने की होगी?"

"चार बड़े मकान हैं। कपड़े की एक मिल है बैंक में अतुल धन राशि जमा है। चालू आमदनी की कमी नहीं। कुल मिला कर पन्द्रह बीस लाख की मिल्कियत होनी ही चाहिए। चाचाजी का भी यह अनुमान है।"

"और मासिक खर्च?"

"दो प्राणियों का मासिक खर्च डेढ़ सौ, दो सौ क्या ज्यादा होता होगा? बैरिस्टर हैं तो सौ पचास और जोड़ दो।"

एक मिनट के लिए इतना सुनकर विपिन का ध्यान मि० सम्पत की ओर चला गया। उसने विचार किया, "मेहता साहब की लोग इज्ज़त करते हैं, प्रशंसा करते हैं। क्यों? क्या केवल इसलिए कि वे मनुष्य हैं, बैरिस्टर हैं? यदि यह सत्य है तो फिर इस संसार में मनुष्यों की कमी नहीं, बैरिस्टर भी बहुत हैं। लोग उनकी इज्ज़त करते हैं, प्रशंसा करते हैं, इसलिए कि उन्होंने पैसा जोड़ना सीख लिया है। जिसे पैसा जोड़ना नहीं आता, वह और कुछ भले ही हो जाए मनुष्य नहीं हो सकता। आखिर मनुष्य कहते किसे हैं?"

विपिन को चुप होते देख विनोद ने कहा: "चुप क्यों हो गए, विपिन? तुम कहानी कह रहे थे।"

तंद्रा भंग हुई। विपिन ने गला साफ़ करते हुए कहा: "हाँ वही तो कह रहा हूँ। लो सुनो...

पिछले वर्ष बैरिस्टर मेहता की भानजी का ब्याह था। उन दिनों मैं आगरे में दूर के एक सम्बन्धी के यहाँ ठहरा हुआ था। लोहे के बड़े व्यापारी हैं, हज़ारों का लेन देन करते हैं। मेहता साहब से मेरा परिचय उन्हीं के द्वारा हुआ था। सुबह जब हम लोग चाय पी रहे थे तो मेहता साहब ने कहला भेजा कि शाम का खाना उन्हीं के यहाँ होगा। मुझे उन्होंने खास तौर से किया। जब हम लोग सुबह का खाना खा रहे थे मेहता साहब ने बाकायदा एक शानदार निमन्त्रण-पत्र भेजा। पाँच बजे का समय छपा था। मेरे लिए निमन्त्रण पत्र अलग से भेजा गया था। दोपहर में मेहता साहब स्वयं उपस्थित हुए और इस बात पर विशेष रूप से दिया कि हम लोग शाम का खाना उन्हीं के यहाँ खाएं।

बोलो, कोई अपराध तो नहीं किया हमने ?"

"खाना और अपराध ! क्या बात कर रहे हो, विपिन ?" आश्चर्य से विनोद ने उत्तर दिया ।

"सुनते जाओ । अब बीच में न बोलना । जब मैं साढ़े चार बजे मेहता साहब के यहाँ चलने के लिए तैयार हुआ तो मेरे सम्बन्धी ने नौकर को बुला कर कहा : "जाओ दस के नगद रुपए ले आओ ।"

दो मिनट में नौकर दस के नक़द रुपए ले आया । मैं विचार करने लगा, "ये नक़द रुपए क्यों मंगाए गए हैं ? किसी को देने के लिए ? लेकिन नोट भी तो दिया जा सकता है । पूरे दस न देने हों पर दस का नोट भुनाया जा सकता है । जिसे जितना लेना हो, वह लेकर शेष दाम लौटा भी तो सकता है । नक़द रुपयों के ऊपर जो बल दिया गया है, इसमें कुछ रहस्य अवश्य होना चाहिए । यकायक ध्यान आया, ये रुपए तो शादी के लिए ही होने चाहिए । कन्यादान में रुपया डाला नहीं है, लेकिन सुना जरूर है कि उसमें नक़द रुपया देना अच्छा रहता है ।"...

फिर भी मन का संदेह नहीं मिटा । मैं पूछ ही बैठा : "क्षमा कीजिए, ये दस नक़द रुपए आपने क्यों मँगाए हैं ?"

वे मेरी शंका को ताड़ गए । व्यावसायिक नेत्रों से मेरी ओर देखते हुए एक साथ बोले : "मेहता साहब की बिरादरी दूसरी जरूर है, लेकिन हम एक दूसरे के यहाँ आते जाते रहे हैं । शादियाँ होती हैं, कन्यादान देते आए हैं ।" फिर बात बदलते हुए कहने लगे : "देना तो तब होता है जब लिया जाता है । फिर मेहता साहब और आपका परिचय अभी हुआ ही है ।"...

बात स्पष्ट थी, लेकिन उनकी नजरों में बड़ा बनने के लिए कहना ही पड़ा : "उससे क्या ? धर्म में कन्यादान का बड़ा भारी महत्व है ।"

"हुआ करे, लेकिन दुनिया में व्यवहार भी तो कोई चीज़ होती है ।"

"माफ़ कीजिए, मैं ऐसे व्यवहार का पक्षपाती नहीं हूँ कि आप सब लोग तो कन्यादान करें और मैं मुँह छिपाऊँ । लोग मेरी ओर थूकेंगे नहीं ?"

उन्होंने उठते हुए कहा—"आप स्वयं देख लीजिएगा । मेहता साहब आपका कन्यादान कदापि नहीं रखेंगे ।"

"यह बात दूसरी है । अब आप चलिए ।"—मैंने उत्तर दिया ।

मेहता साहब अधिक दूर नहीं रहते थे, इसलिए हम लोग उनके यहाँ ठीक पाँच बजे पहुँच गए । उनके विशाल भवन को देख कर मैं दंग-सा रह गया । बाहर पन्द्रह-बीस कारें खड़ी थीं । दीवारों पर रंग-बिरंगी चित्रकारी विशेष रूप से चित्रित थी । द्वार पर शहनाई बज रही थी बन्दनवार सजे थे । अन्दर खुले आँगन में शामियाने लगे हुए थे । शादी का पूरा ठाट-बाट था ।

प्रवेश करते ही मेहता साहब ने अदा से हमारा स्वागत किया । एक विशेष लोच के साथ बोले—"आप श्रीमानों के बैठने का प्रबन्ध ऊपर किया गया है । चलिए, मैं थोड़ी देर में हाजिर होता हूँ ।" नीचे जूते उतार कर हम लोग ऊपर पहुँचे । एक बड़ा हॉल था; जिसमें दो बड़ी बड़ी शतरंजियाँ बिछी हुई थीं । बीच में क़ालीन शोभा दे रहा था । उस पर बीस-पच्चीस अतिथि विराजमान थे । देखने में सब रईस मालूम होते थे । हम लोग कोने में बैठ गए ।

अतिथियों में लड़के लड़कियों के विवाह अविवाह को लेकर वाद-विवाद चल रहा था । एक सज्जन इस विषय पर भारी असन्तोष प्रकट करते हुए बोले : "हमारी जाति में लड़कीवाले शगुन के लिए दस-पन्द्रह हज़ार से कम पर राजी ही नहीं होते । लेन-देन बन्द करने के लिए पंचायतें भी कीं, लेकिन कोई सुधार नहीं हुआ ।"

दूसरे सज्जन ने इस कथन की युक्ति संगत जाँच करते हुए कहा : "जब तक दिल और दिमाग़ साफ़ नहीं होंगे, तब तक कितनी ही पंचायतें क्यों न की जाएँ, कोई सुधार नहीं होगा ।"

तीसरे सज्जन, जो एक कॉलेज के विद्यार्थी जान पड़ते थे, चट से बोल उठे : "अब तो जातीय और प्रान्तीय भेद-भाव से ऊपर उठ कर ही हम इस समस्या को हल कर सकते हैं ।"

इस पर चौथे सज्जन ने हँसते हुए कहा : "तो आप अपने कॉलेज से ही इसकी शुरुआत कीजिए और फिर देखिए कि कुल की मर्यादा कितनी ऊँची चढ़ जाती है ।"

यह सुन कर हमारे राम के मुँह से न जाने कैसे निकल पड़ा : "भगवान् करे मेरा दूसरा जन्म आप लोगों

की जाति में हो और मेरे यहाँ सब लड़कियों का ही जन्म हो।" सब लोग खिलखिला कर हँसने लग गए। मेरे परिचय की मांग पेश हुई। मेरे सम्बन्धी ने सब बता दिया।

और अन्त में एक प्रौढ़ सज्जन सब सुन कर गंभीर भाव से बोले: "हमारी जाति में विवाह एक व्यवसाय हो गया है। जब तक व्यवसायिक मनोवृत्ति को तिलाञ्जलि नहीं दी जाएगी, तब तक विवाह ही क्यों, जीवन के किसी भी कार्य में पवित्रता नहीं आ सकती। हमारे यहाँ के लोग दक्षिण-भारत की 'नारी शालाओं' में से निम्न-जातियों की रूपवती स्त्रियों को उड़ा कर यहाँ ले आते हैं, महीनों तक अपने घरों में रखते हैं, लोगों के पूछने पर उन्हें अपनी भानजी-भतीजी बतलाते हैं और अन्त में आठ-दस हज़ार लेकर विवाह करा देते हैं। कल केवलचन्द जी के यहाँ पुलिस ने ऐसी ही एक चमारिन को पकड़ा था। बैठे बैठे मेहता साहब की जान आफ़त में आ गई। घण्टों की जिरह के बाद तब कहीं जा कर ज़मानत पर रिहा करा सके।"

यह सुन कर मेरे कान खड़े हो गए। मैंने व्यग्रता से अपने सम्बन्धी से पूछा: "ये केवलचन्द जी कौन हैं?"

"केवलचन्द जी केवल केवलचन्द जी हैं," हँसते हुए उन्होंने उत्तर दिया।

"फिर भी?"

"मेहता साहब के एक रिश्तेदार हैं।"

बातों ही बातों में साढ़े छः बज गए। लोग आते जाते रहते थे। मेला लगा था। मुझे कुछ प्यास लगी, लेकिन यह सोच कर कि शादी का शरबत पीने को अवश्य मिलेगा, मैं अपनी प्यास रोके रहा। चारों ओर दृष्टि डाली, लेकिन सब कुछ होते हुए भी जैसे लगा, वहाँ कुछ न था। धैर्य और प्रतीक्षा के बाद एक नौकर ट्रे में पाँच छः चाँदी के गिलास सजा कर लाया। गिलास देखते ही बदन में आनन्द की लहर दौड़ आई। मैं सँभल कर बातें करने लगा। बीच बीच में दृष्टि उन गिलासों पर पड़ती जाती थी। लेकिन अफ़सोस! वे मेरे पास आते आते साफ़ हो गए और फिर तो वे आए ही नहीं। नहीं आए, इनका मुझे दुःख नहीं हुआ। दुःख हुआ, इसलिए कि मैं जिन्हें शरबत के गिलास समझे बैठा था, वे सादे पानी के गिलास साबित हुए।

सात बजे कि मेहता साहब का एक आदमी हमारे पास आकर पूछने लगा: "आपने माहेरा देखा है?"

"नहीं तो"—मैंने उत्तर दिया।

"तो पहले चल कर उसे देख लीजिए। शादी में खास चीज़ तो यही है। जल्दी कीजिए। मेहता साहब बिगड़ रहे हैं। रहे सहे अतिथियों को बुलाने के लिए अभी उनके घर जाना है," उसने कहा। इस 'पहले चल कर' से मुझे बड़ा धैर्य मिला। चलो, अब दूसरा नम्बर खाने पीने का ही है। उत्सुकता से हम लोग माहेरा देखने चले। अनेक छोटे मोटे कमरों में से हम उस कमरे में पहुँचे, जहाँ माहेरे को और लोग भी देख रहे थे। द्वार पर देख रेख के लिए नौकर खड़ा था। कमरे में सौ वाल्ट का बल्ब जल रहा था। सुगन्धित मसाले और इत्र से कमरा महक रहा था। फ़र्श पर गलीचा बिछा था। उस पर चिकन के काम से सजी और जरी की बहुमूल्य चार दर्जन ओढ़नियाँ रखी थीं। और गोटा और किनारी के तीन दर्जन लहँगे अलग से रखे हुए थे। मोतियों से गुँथी हुई कमर पेटियों की तो कोई गिनती ही नहीं थी। चालीस तोला सोना और सौ तोला चाँदी के विविध आभूषण एक बड़े चाँदी के थाल में सुन्दर ढंग से सजाए गए थे। उसी थाल में एक ओर पंजाब नेशनल बैंक के नाम पाँच हज़ार का चेक रखा पड़ा था, जिस पर एक छोटा सा बल्ब पृथक् रूप से प्रकाश डाल रहा था। मैं यह देख कर किंकर्तव्य विमूढ़ रह गया।

मैंने अपने सम्बन्धी से पूछा: "आप कितने हज़ार का माहेरा समझते हैं?"

"यही बीस पच्चीस हज़ार का" सहज भाव से उन्होंने उत्तर दिया।

हमारी इस बात को सुन कर उपस्थित दर्शकों में से एक व्यक्ति बोला: "यही तो खानदान की शोभा है। मेहता साहब ने वह कर दिखाया है जो उनकी बिरादरी में आज तक किसी ने नहीं किया है।"

दूसरा व्यक्ति: "मेहता साहब का क्या कहना भाई! सरकार ने सरोपा और सोना बख़्श रखा है। इनके यहाँ बड़े बड़े राजा महाराजा आते रहते हैं।"

तीसरा व्यक्ति: "पैसा होने से ही क्या होता है? आदमी के पास दिल भी तो होना चाहिए।" मेरे मुँह से यह सुन कर न जाने कैसे निकल गया: "मेहता साहब और तो सब कुछ कर सकते हैं, लेकिन मरे हुए को तो

भी ज़िन्दा नहीं कर सकते ।"

मेरे इस वाक्य को सुन कर सब चुप हो गए । घूर घूर कर लगे मेरी ओर देखने । लेकिन हम लोग फिर वहाँ खड़े न रह कर फ़ौरन अपने अपने स्थान पर आकर बैठ गए । आठ बज चुके थे । पेट पिचका जा रहा था । कमरे में दस-पन्द्रह अतिथि रह गए थे । मैंने निश्चय किया—संकोच से काम नहीं चलेगा । किसी से पूछना चाहिए कि आखिर यहाँ भोजन की भी व्यवस्था है या नहीं, लेकिन यह सोच कर कि लोग क्या समझेंगे, मैं चुप हो गया ।.........

फिर भी मन का विकार किसी न किसी रूप में उछल ही पड़ा । मैंने अपने सम्बन्धी से पूछा : "आखिर कब तक साधना करते होंगे ?"

'अब भोजन का ही कार्यक्रम होना चाहिए ।'—उन्होंने उत्तर दिया ।

"लेकिन मैदान साफ़ दिखाई दे रहा है । मुझे भय है, कोई पेच न हो ।"

"आप भी कैसी बातें करते हैं ? मेहता साहब के यहाँ खाने-पीनेवालों की कड़ी हाज़िरी ली जाती है, कोई रह नहीं सकता है ।"

"लेकिन 'खाने पीनेवालों की हाज़िरी' का यह नियम कुछ विचित्र नज़र आता है," मैंने हँसते हुए उत्तर दिया ।

साढ़े आठ बज गए ! बात तो समय काटने के लिए करनी ही पड़ती थी, लेकिन मन थाल में लगा हुआ था । एक मादक स्वप्न चल रहा था..."छोटी छोटी चटाइयाँ बिछी हुई थीं । हम मज़े से उन पर विराजमान थे । मीठा, खट्टा, चरका, फरका सभी तो परोसा हुआ था । हाथ मुँह हिलाने की देर थी । लोगों ने हाथ जोड़ कर कहा—खाना ठण्डा हो जाएगा । शुरू कीजिए । किसका इन्तज़ार कर रहे हैं ! और हम बड़े चाव से प्रीति भोज कर रहे थे ।......"

करीब नौ बजे मेहता साहब ऊपर आए । सुनहरी लड़ी टूट गई । उन्होंने बैठ कर तर्ज़ के साथ सबसे पहला सवाल किया : "माहेरा कैसा लगा ?"

"इससे सुन्दर तो फिर कवियों की कल्पना है"—मैंने उत्तर दिया ।

इसके बाद उपस्थित अतिथि विधिवत् मेहता साहब को अपनी अपनी जेब से निकाल कर नक़द रुपए देने लगे । मेहता साहब एक एक को देखते हुए रुपए लेकर जेब में रखते जाते थे । कोई छूटने नहीं पाया । कोई पाँच देता था, कोई दस, कोई पच्चीस । मेहता साहब के चुँगल से बच कोई नहीं सकता था । मेहता साहब गिन कर बिना हाँ-ना के सिर झुका कर स्वीकार कर रहे थे । मेरे सम्बन्धी की बारी आई । निकाल कर वे दस नक़द रुपए थमा दिए । मेहता साहब ने गिनकर चट से जेब में डाल लिए । रह गया मैं । सोचने लगा—"दूँ या नहीं । देता हूँ तो जाते हैं । नहीं देता हूँ तो भद्दा लगता है । विकट समस्या है । पास में केवल यही दस रुपए हैं । अपने सम्बन्धी की बात याद आई—आप स्वयं देकर देख लीजिएगा । आपका कन्यादान मेहता साहब कदापि नहीं रखेंगे—सोचा, अच्छा देकर देखूँ रखते हैं कि नहीं ।"

मैंने जेब से सबको दिखाते हुए पाँच पाँच के दोनों नोट निकाले । फिर मुट्ठी में दबा कर बैठा रहा । इसमें लोगों को पता चल गया कि मेरा उद्देश्य तो रुपए देने का ही है, लेकिन उचित अवसर की तलाश में हूँ । मन कह रहा था—बुरे फँसे, पार हो जाओ । साँप भी मर जाएगा और लाठी भी नहीं टूटेगी । लेकिन ऐसा सोचने से मेरी खैर कहाँ थी ? उधर मेहता साहब बात तो किसी दूसरे से कर रहे थे, लेकिन गिद्ध-दृष्टि थी, मेरे उन पाँच पाँच के दो नोटों पर ।

बाध्य होकर मुझे वे दोनों नोट उन्हें अर्पण करने पड़े । मेहता साहब मुस्कराते हुए बोले—"नहीं, नहीं आपके रुपए.........

इस अधूरे वाक्य के साथ उनकी अक्षय जेब में दोनों नोट समा गए । इसके बाद मेरे सम्बन्धी ने कहा : "मेहता साहब ! अब आज्ञा हो तो चलें ।"

"ऐसे ही चले जाएँगे ? चाय-वाय तो पी लीजिए ।"

मेहता साहब की कानूनी आँखों में रात्रि के नौ बजे अपनी भानजी के विवाह के शुभ अवसर पर चाय पीने का समय था । मैंने संयम से विनम्रता-पूर्वक प्रार्थना की—"क्षमा कीजिए, हमने चाय पी ली है । अब तो आज्ञा हो ही जानी चाहिए ।"

मेहता साहब ने उठ कर दूनी विनम्रता के साथ हाथ जोड़ कर कहा—"तब फिर आप शौक़ से पधार सकते हैं ।"

हम लोग एक क्षण में सीढ़ियों से नीचे उतरे और तेज़ी से निकल कर बाहर आए, मानों किसी के घर चोरी

करके भागे हुए हों। घड़ी साढ़े नौ बजा रही थी। मेरे संबंधी से कुछ भी बोलते न बना। अपनी ओर से अब उन्हें छेड़ना भी व्यर्थ था। दस बजे घर पहुँचे तो नौकरानी बरतन मल चुकी थी। सब लोग मजे से नींद ले रहे थे। मेहता साहब के यहाँ दो दिन का खा कर आए थे, हमारी चिन्ता आज कोई क्यों करने लगा? भूख हवा हो गई। हम लोगों ने दुम दबा कर अपनी अपनी शय्या की शरण ली। अपने सम्बन्धी की अन्तर्दशाओं को विचार छोड़ कर मैं अपने मि० सम्पत की निधड़क कमाई और अपनी जेब कटाई की घूंट पी कर चुपचाप सो गया भगवान् से विनती करते हुए कि वह भविष्य में केवल लक्ष्मी 'चंदों' से मेरी रक्षा करे। बहुत देर तक नींद नहीं आई। आँखों के सामने मनुष्य की परिभाषा साकार रूप में खड़ी थी – नई अदा, तर्ज और लोच के साथ बात बनाना सीखो, बोलते समय सरलता का अभिनय करो और कुछ कमी रह जाय तो दो-चार आप्त वाक्यों को कंठस्थ कर जोड़ दो। इसके अतिरिक्त दूसरों को फंसाने के लिए जलपान का निमंत्रण दो। फिर देखो, भोला हृदय फंसा या नहीं। पूरा फंस जाने के बाद खूबी के साथ पैसे की चपत मार कर चलता करो। फिर दूसरे की तलाश करो। इस प्रकार अविरत जीवन पथ पर बढ़ते रहो। भेद न खुले, इसका बराबर ध्यान रखो। आज की दुनियाँ में यह जीने की कला है और सब कलाओं में श्रेष्ठ है। जिसे दूसरे आँखों में धूल झोंक कर पैसे की चपत लगाना न आता, उसे 'मनुष्य' कहना आँखों को धोखा दे है।"

"बस इतनी-सी बात है, विनोद! कैसे लगी।"—विपिन ने साँस लेते हुए पूछा।

"कुछ न पूछो। इस समय की जब उस रात तुलना करता हूँ तो जैसे 'दर्शन का अद्वैत' व्यवहार साकार हो गया है।"

कहानी सुनते-सुनाते मंजिल दिखाई दी। कमरा केवल पन्द्रह बीस गज़ दूरी पर था। विपिन ने विनोद कहा: "और तुम्हारी कहानी तो रह गई।"

"इतने उत्कण्ठित न हो, अवसर आने दो," विनो ने उत्तर दिया।

दोनों कमरे के निकट पहुँचे। विनोद ने ताल खोलने के लिए जेब से चाबी निकाली। वह देखते ही ठिठक गया। आँखें तरेरते हुए दो बिल्ले-चन्द ऐसे ता रहे थे, मानो दो हृष्ट-पुष्ट रण-बाँकुरे एक दूसरे के सामने डटे हों।

कुछ गम्भीरता किन्तु कुछ विवशता-पूर्ण मनोरंज के साथ विनोद ने गला साफ़ करते हुए कहा—"और य रही मेरी करुण कहानी।"

जसवन्त कालेज,
जोधपुर

—मोहनलाल 'जिज्ञासु'

चरित्र का निर्माण

हमें महान् चरित्र का निर्माण करना है क्योंकि सामूहिक स्वार्थ-भावना सार्वभौम प्रेम की अपेक्षा बुरी चीज है। समाज को छोटे छोटे दायरों और वर्गों में बाँटना धर्म नहीं है—समाजों में एक भावना को निरूपण करना ही धर्म है। समाज को खंड खंड करना निश्चित रूप से अधर्म है। यदि हमें चरित्र का निर्माण करना है तो हमें सामाजिक ऐक्य की स्थापना करनी होगी।

एक भाषण से —सर्वपल्ली राधाकृष्णन

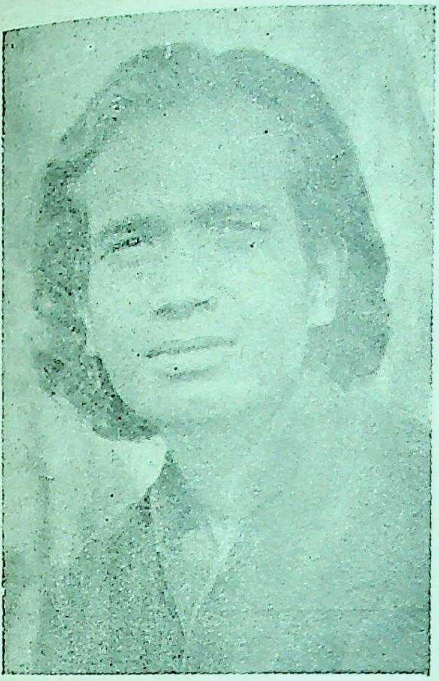

चित्रकार
श्री पी. सुब्बाराव

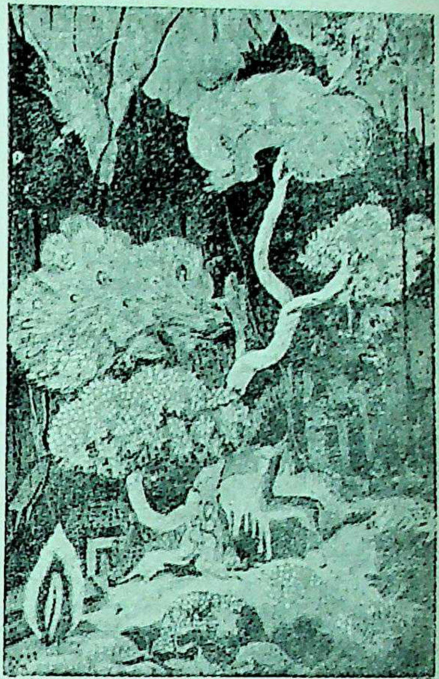

लाल आकाश

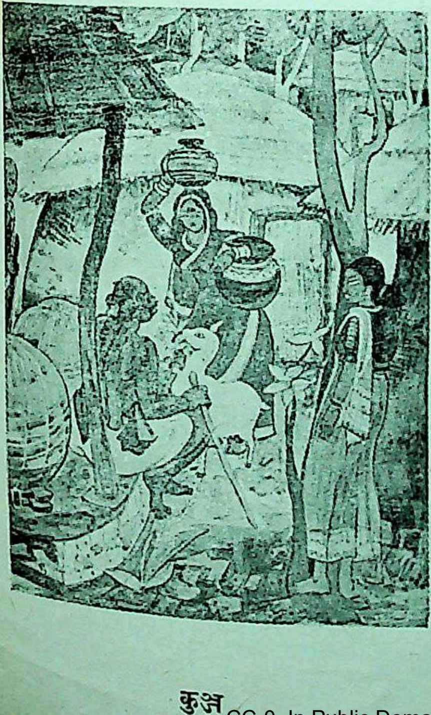

कुञ्ज

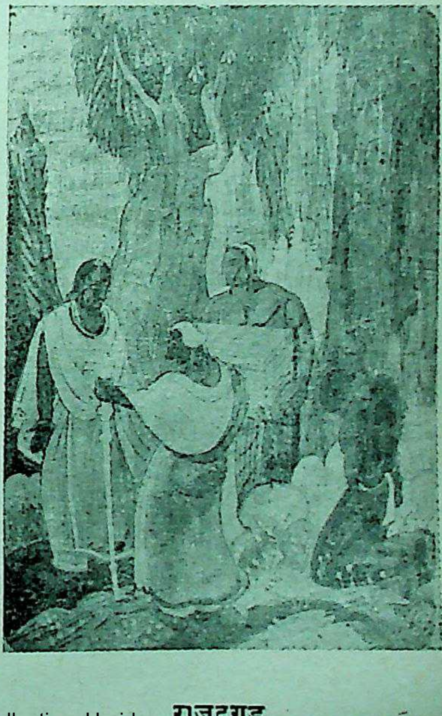

राजदण्ड

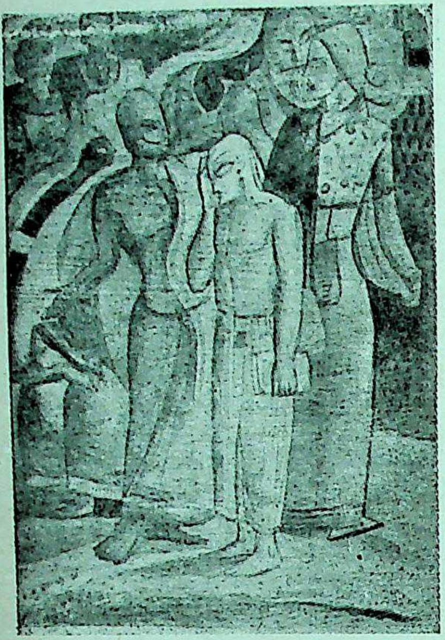

व्यवधान

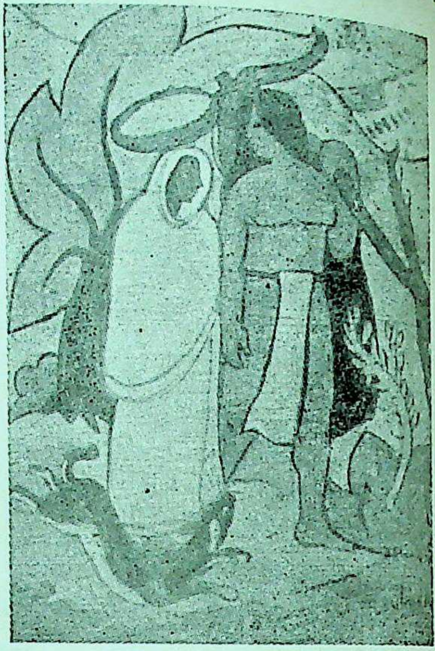

राम-रामी

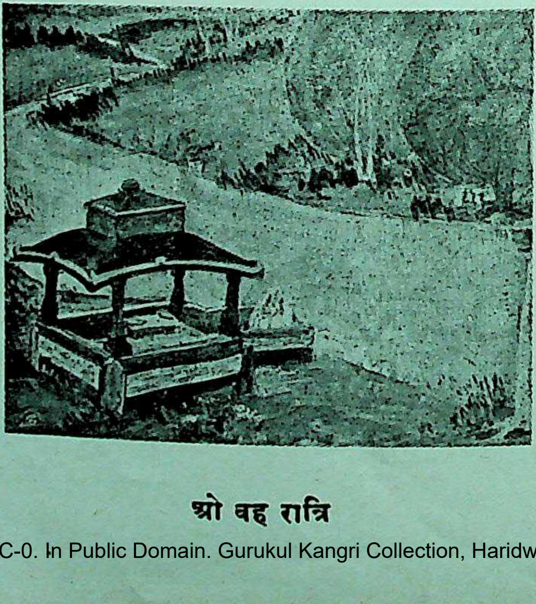

ओ वह रात्रि

कला-चर्चा

गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट के भवन में शनिवार २७ फरवरी १९५४ को ऑल इंडिया फाइन आर्टस् अण्ड क्राफ्टस् सोसायटी, नई दिल्ली के प्रधान मन्त्री श्री बारादा उकील के रंगचित्रणों और हैदराबाद के कलाकारों की अन्य कला-वस्तुओं की प्रदर्शिनी खोली गई। कदाचित् यह पहला अवसर है जब कि एकमात्र हैदराबाद के कलाकारों की कला-वस्तुओं को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से यह बिल्कुल अलग प्रदर्शिनी आयोजित की गई। राज्य भर से प्रायः अस्सी कलाकारों ने इसमें भाग लिया और विभिन्न शैलियों और विभिन्न सामग्रियों से बनी प्रायः तीन सौ पचास कला-वस्तुओं को प्रदर्शित किया गया। श्रेष्ठ कला-वस्तुओं पर पुरस्कार (धन और तमगे) भी प्रदान किए गए। कुछ रंगचित्रणों को हैदराबाद संग्रहालय के सामयिक कला-विभाग में सम्मिलित करने के लिए चुना गया है और इस संग्रह में से कुछ रंगचित्रणों को सूचना तथा जन-सम्पर्क विभाग के डाइरेक्टर ने अपने विभाग के लिए प्राप्त किया है। यह प्रदर्शिनी एक सप्ताह तक खुली रही और पुरस्कार वितरणोत्सव के पश्चात् समाप्त हुई। शिक्षा विभाग की सहायक मंत्री श्रीमती संगम लक्ष्मीबाई ने ७ मार्च १९५४ को गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट के भवन में पुरस्कार वितरित किए। हैदराबाद आर्ट सोसायटी के उपाध्यक्ष श्री विनोद यू० राव ने मुख्य अतिथि का स्वागत किया।

... ...

गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट के विद्यार्थी औरंगाबाद, एलुरा, बम्बई, आगरा और दिल्ली की यात्रा समाप्त करके लौट आए हैं। विद्यार्थियों को तीन दलों में भेजा गया था। पहला दल औरंगाबाद और एलुरा गया और उसके सदस्यों ने वहाँ के स्मारकों और मूर्तियों के रेखाचित्र खींचे। दूसरे दल में कुछ महिलाएँ थीं जो बम्बई गईं और उन्हें वहाँ सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट और द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सामयिक कला प्रदर्शनी का अध्ययन करने का अवसर मिला। तीसरा दल वास्तु-कला के विद्यार्थियों का था जो आगरा और दिल्ली गया और उसके सदस्यों ने वहाँ मुगलकालीन भवन-निर्माण कला का अध्ययन किया तथा दिल्ली विविध कला भवन (Polytechnic), शारदा उकील स्कूल ऑफ आर्ट, आल इंडिया फाइन आर्टस् अण्ड क्राफ्टस् सोसायटी के भवन में आयोजित प्रदर्शिनी और कम-दरों पर भवन-निर्माण की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी को देखा।

आशा है इस यात्रा काल में विद्यार्थियों द्वारा जो कला-नमूने तैयार किए गए हैं उन्हें प्रदर्शित करने के लिए प्रस्तुत महीने में किसी समय अजन्ता पॅविलियम में एक प्रदर्शिनी आयोजित की जाएगी।

... ...

विक्टोरिया और एल्बर्ट म्यूजियम लंदन के भारतीय विभाग के अध्यक्ष श्री डब्ल्यू. जी. आर्कर हाल ही में हैदराबाद पधारे और उन्होंने अजन्ता पॅविलियन, पब्लिक गार्डन्स में विशिष्ट दर्शकों के सामने लेन्टर्न स्लाइडें दिखाते हुए मंगलवार १६ मार्च १९५४ को ६ बजे सायं एक भाषण दिया। यह भाषण हैदराबाद आर्ट सोसायटी के तत्वाधान में आयोजित किया गया था। हैदराबाद आर्ट सोसायटी के अध्यक्ष श्री एल. एन. गुप्त आई. ए. एस. ने विद्वान वक्ता का परिचय देते हुए बताया कि सौभाग्य से श्री आर्कर को भारत में सुदीर्घ काल तक रह कर अध्ययन करने का अवसर मिला है फलतः पश्चिमी कला के बारे में भारतीय दृष्टिकोण से कदाचित् वे अपेक्षाकृत अधिक परिचित हैं। श्री गुप्त ने यह भी बताया कि भारतीय प्रशासन के शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा श्री आर्कर को आमन्त्रित किया गया है और यह एक हर्ष का विषय है कि भारत सरकार ने श्री आर्कर के कार्यक्रम में हैदराबाद को भी सम्मिलित किया।

श्री आर्कर के भाषण का विषय था: "भारतीय दृष्टि में अंग्रेजी रंगचित्रण।" श्री आर्कर ने मुगल, राजपूत और पहाड़ी शैली की बहुत-सी स्लाइडें प्रदर्शित कीं और साथ ही साथ प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक-युग के कुछ अंग्रेजी चित्रकारों की स्लाइडें भी दर्शाईं। श्री आर्कर ने सफलता पूर्वक यह दर्शाया कि पूर्व और पश्चिम के कलाकारों में विचारों की साम्यता पाई जाती है चाहे उनमें काल और दार्शनिक विचारों आदि में कैसी भी

भिन्नता क्यों न पाई जाती हो।

श्री आर्कर ने अपने भाषण में बताया कि वर्षा-ऋतु में मानसून उठने के समय उमड़ते हुए बादलों का जिस प्रकार भारतीय चितेरों ने प्रत्येक युग में उल्लास सहित चित्रण किया है उसी प्रकार इंग्लैण्ड के चित्रकारों ने भी इन उमड़ते बादलों से प्रेरणा ली है और उन्होंने अपने ब्रुश और रंगों से बादलों के कई सुन्दर रंगचित्रण अंकित किए हैं। श्री आर्कर ने अपनी सम्मति प्रकट की कि भारतीय कला के विकास में जिन दो तत्वों—प्रतीकवाद और ध्वनि (Suggestion) को प्रधानता मिली है उन्हें अंग्रेज़ी रंगचित्रण कला में भी उसी प्रकार महत्व मिला है। उन्होंने अपने मत की सत्यता सिद्ध करने के लिए इंग्लैण्ड के कुछ आरम्भिक कला-चित्र प्रदर्शित किए।

अन्त में हैदराबाद आर्ट सोसायटी के अध्यक्ष ने विद्वान वक्ता के सुन्दर अभिभाषण पर उन्हें बधाई दी। हैदराबाद आर्ट सोसायटी के अवैतनिक मन्त्री श्री ख्वाजा अहमद ने धन्यवाद का प्रस्ताव रखा।

हैदराबाद

—विश्वनाथ मुखर्जी

(२)

श्री पी. सुब्बाराव

श्री पी. सुब्बाराव मैसूर निवासी, कन्नड़ भाषी युवक चित्रकार हैं। आपने अपनी कला की शिक्षा मैसूर के "कला मन्दिरम्" नामक टेकनिकल स्कूल में पाई। बाद में सन् १९३१ में बम्बई के जे. डी. गौंधलेकर से आपने कला की शिक्षा ग्रहण की। आपके कई चित्र बम्बई की कला प्रदर्शनियों में दिखाए गए हैं। यहाँ आपके द्वारा अंकित निम्नलिखित छः चित्र दिए जा रहे हैं:

(१) व्यवधान
(२) राम रामी
(३) कुँज
(४) लाल आकाश
(५) ओ वह रात्रि
(६) राजदण्ड

इनमें "व्यवधान" और "राजदण्ड" शीर्षक चित्रों की रेखाओं में भावों को दर्पणवत् बिम्बित करने की शक्ति प्रतीत होती है। अतः इनका प्रभाव दर्शकों को अभिभूत किए बिना नहीं रहता। चित्रों में उपस्थित पात्रों की भंगिमाओं में मूर्त नाटकीयता (Teblo) का अंकन हुआ है। "व्यवधान" की मुद्राएँ शिल्पित हैं। अतः भावों में जड़त्व है। किन्तु "राजदण्ड" की मुद्राओं में गतिशीलता विद्यमान है। एक नवीन शक्ति, सूक्ष्म व्यंग और खुले दिक् (स्पेसेज़) के इनमें दर्शन होते हैं।

"राम रामी" और "कुँज" में मानव परिवार का चित्रण हुआ है। जीवन की स्थितियाँ दोनों में कैसे भिन्न हैं यह साथ साथ तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है। "कुँज" में दक्षिण-भारत के ग्राम का एक परिवार चित्रित है। "राम रामी" मानव की आदिम अवस्था की स्थिति विशेष का द्योतक है।

"लाल आकाश" केवल प्रकृति के माध्यम से नवीन दृष्टि (Vision) का संकेत दे रहा है। चित्र में खड़े मृग को देखिए—निर्भय और दृढ़। "ओ वह रात्रि" कोरा स्थल चित्रण (लैण्ड स्केप) नहीं है। मन के आवरण में दबी सूक्ष्म स्मृतियों के स्पंदनों को कैसे समग्र चित्र में विस्तार मिला है। नदी के उस पार विशाल विटप के नीचे देखिए तीन मृग शावक। चित्रकार कि ग्रहण शक्ति कितनी पैनी है।

सुब्बाराव 'वादों' के चक्कर में खोना नहीं चाहते इसी से उनसे भविष्य में बड़ी आशाएँ हैं।

—अनिलकुमार

नागपुर

प्रेम को बोलने की आदत मत डालो
लोगों के कान प्रेम को सुन नहीं सकते
शब्दों की सम्पत्ति के बिना भी प्रेम अमीर है!

… … …

मुहब्बत कोई मौसम नहीं है
जो आ कर गुज़र जाएगा!

(पंजाबी गीत से) — अमृता प्रीतम

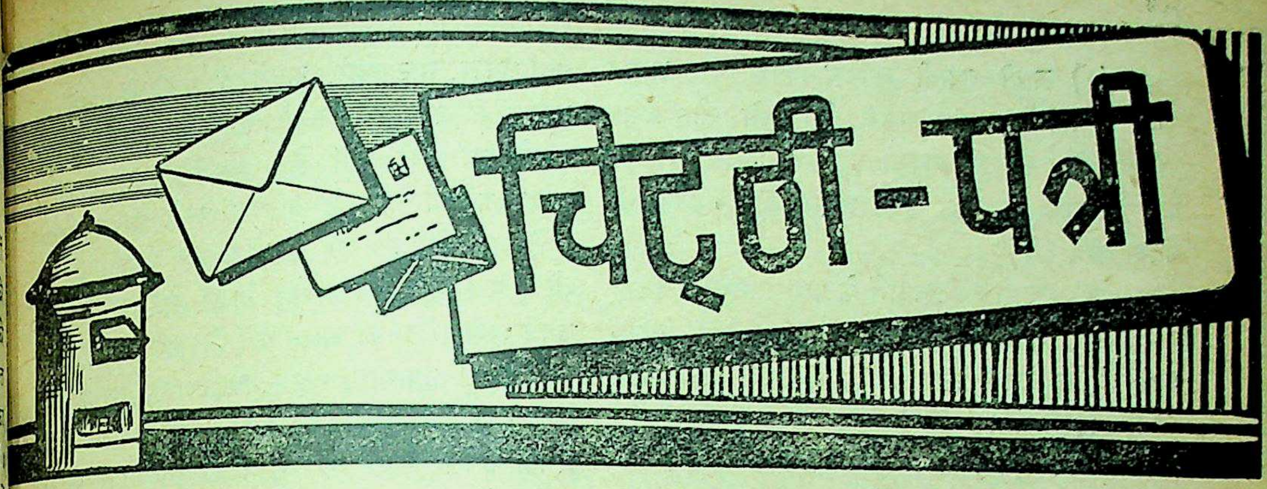

चिट्ठी-पत्री

[‘चिट्ठी-पत्री’ के स्तम्भ को हम अधिक लोकप्रिय बनाना चाहते हैं। साहित्य की गतिविधि और अन्य समस्याओं पर हम ‘अजन्ता’ के पाठकों के विचारों को जानना चाहते हैं। इस स्तम्भ में वे अपने विचार प्रकाशित करने के लिए भेज सकते हैं। इस स्तम्भ द्वारा लेखकों और पाठकों के बीच में निकट सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस स्तम्भ में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ पत्रों पर विशेष पारिश्रमिक की योजना की गई है। पत्र संक्षिप्त और निर्वैयक्तिक होने चाहिएँ। पत्र अधिक से अधिक ‘अजन्ता’ के दो कॉलम होने चाहिएँ—सं०]

(१)

अजन्ता के सम्बन्ध में

...अजन्ता को देख कर गर्व होता है। हैदराबाद दक्षिण जैसे अहिन्दी क्षेत्र से ऐसी उच्च कोटि की साहित्यिक पत्रिका प्रकाशित करने के लिए कोटिशः धन्यवाद। ‘अजन्ता’ की एक एक वस्तु पठनीय एवं संग्रहणीय है। आज जब कि सस्ती पत्रिकाओं का बाहुल्य है, ‘अजन्ता’ उच्चतम साहित्य की गौरव-पताका ऊँचे फहरा रही है। ऐसी सुन्दर पत्रिका प्रकाशित करने के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

१०६/१ सीसामऊ,
कानपुर

—रमाकान्त श्रीवास्तव

(२)

...फरवरी अंक में प्रकाशित श्री आरसीप्रसाद सिंह की कविता ‘ज्योति-हास’ बहुत सुन्दर है। श्री मा. देवेगोड का लेख ‘कन्नड़ साहित्य में रामायण की परम्परा’ विचारपूर्ण है। कृपया मेरी ओर से धन्यवाद पहुँचा दीजिए। ‘अजन्ता’ में विविध भाषाओं की कहावतों का चयन बहुत सुन्दर रहता है। कला-प्रसंगों के लिए ‘अजन्ता’ में अलग स्तम्भ होना चाहिए। ‘सामयिक’ या ‘चिट्ठी-पत्री’ में उनका समावेश समुचित नहीं लगता। लेख के समाप्त होने पर रिक्त स्थान की पूर्त्ति के लिए कहावतों या सुभाषितों के स्थान पर रेखाचित्र आदि भी दिए जा सकते हैं।

हैदराबाद —आर. के. मूर्त्ति

[गत मास से ‘अजन्ता’ में ‘कला-चर्चा’ नया स्तम्भ आरम्भ किया गया है, आशा है तद्विषयक सामग्री से पाठकों की रुचि के अनुसार पाठ्य-सामग्री मिलती रहेगी—सं०]

(३)

साहित्यकारों की समस्याएँ

...आपका दिनाङ्क २८-१-५४ का कृपा-पत्र मिला। मैं इस समय अस्पताल में रोगशय्या पर हूँ। १९५२ के आरम्भ से ही रोग-शय्याग्रस्त होने के कारण साहित्य की गतिविधि से कुछ अपरिचित-सा हो गया हूँ। तब भी आपके आदेशों को शिरोधार्य करके अपने विचारों को लिख रहा हूँ। यद्यपि मेरे विचार बहुत अप्रगतिशील और असामयिक होंगे तथापि आप विद्वानों के सामने उन्हें रख देना मैं आवश्यक समझता हूँ—शायद ये कुछ काम के भी हों।

काव्य, नाटक, उपन्यास, समीक्षा, निबन्ध आदि साहित्य के विशुद्ध रचनात्मक अंगों के विकास का प्रयास नहीं या कम हो रहा है ऐसा अनुभव होता है। मेरी छोटी बुद्धि में इसके कुछ कारण अवश्य हैं, जिन्हें मैं नीचे लिख रहा हूँ। विद्वान् साहित्यिक सज्जन विचार पूर्वक सार ग्रहण करें और हिन्दी सेवा के निमित्त कृत संकल्प हों।

(१) त्यागी तपस्वी साहित्य-सेवियों का अभाव होता जा रहा है। स्वार्थ-साधक की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है। सेवा की शुद्ध भावना का क्रमशः ह्रास हो रहा है। श्रद्धाभक्ति घट रही है। श्रद्धेय और श्रद्धालु की संख्या छीज रही है।

(२) हज़ारों साहित्यकारों के पास उनकी रचनाएँ पड़ी हुई हैं, जिनमें कई रचनाएँ हिन्दी का गौरव बढ़ानेवाली हैं, पर उनके लिए अच्छे प्रकाशक नहीं मिल रहे हैं। हिन्दी-संसार की पैमाइश और छानबीन हो; असंख्य उत्तम पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ ऊपर होंगी।

(३) सुरुचि-सम्पन्न और समर्थ प्रकाशकों की संख्या बहुत ही कम है। स्वार्थी प्रकाशकों ने साहित्यिकों का शोषण पहले भी किया है, आज भी कर रहे हैं। सार्वजनिक प्रकाशन संस्थाओं में अर्थाभाव के कारण शिथिलता आ गई है। कितने ही लेखक हताश और हतोत्साह होकर स्वयं प्रकाशक बन गए हैं। इससे लेखकों की शक्ति बिखर जाती है।

(४) राजा-महाराजा और रईस तो अब रहे नहीं कि साहित्य के पुजारियों को आश्रय मिले। कुछ दिनों में शायद सेठ-साहूकार भी न रहेंगे। तब तो केवल जनता और जनता की सरकार का ही भरोसा रह जाएगा। आज भी वही हाल है। जनता की चेतना तो कुछ जाग भी रही है, मगर हिन्दी के लिए अभी जनता की सरकार की चेतना नहीं जाग रही है। कारण सर्वविदित है।

(५) हमारा भारतीय साहित्य गो-माता के दूध, दही, घी और फलों के रस की धार से सींचे हुए मस्तिष्कों की उपज है। हमारे लेखकों और कवियों तथा पत्रकारों को आजकल दालदा, वातापी छल रहा है। चाय और अण्डे की उत्तेजना से निकला हुआ साहित्य क्षणजीवी ही होगा। भूखे और अधपेटे साहित्यकार कहाँ तक खोपड़ी खुरचेंगे?

(६) गुरु-शिष्य परम्परा का युग लद गया है। अब तो सभी गुरु हैं, चेला कोई नहीं। पोले स्वाभिमान ने परामर्श या सलाह लेने की प्रथा तोड़ दी है। इसलिए अधकचरी चीजें साहित्य के बाजार में अधिक चालू हो रही हैं। भाषा में तो घोर अराजकता फैल गई है। जो सच्चे पारखी और सुधी समीक्षक हैं वे मौन दर्शक मात्र रहने को विवश हैं।

(७) हिन्दी में इस समय भी कई अच्छे कथाकार, निबन्धकार, नाटककार, आलोचक आदि हैं। उन्हें तरह से निश्चिन्त करके उनसे हिन्दी के अभावों की करानेवाला कोई नहीं है। जो हैं वे भी हिन्दी आवश्यकताओं का अनुभव कम करते हैं। अभावग्रस्त साहित्यिक लोग इस घोर महँगी के युग में जो कुछ रहे हैं वही बहुत है। उनकी विषम आर्थिक स्थिति उनसे विशेष सेवा की आशा कैसे की जाए?

(८) उपन्यास, नाटक, आलोचना, निबन्ध और सभी तरह के पाठकों के लिए चाहिए। बालकों और स्त्रियों के लिए ख़ास तौर से लिखे गए उपन्यासों ज़रूरत है। ऐसे ही नाटक, निबन्ध, आलोचना भी। दक्षिणी और पहाड़ी लोगों के लिए उनकी के अनुकूल उपन्यास बहुत कम हैं। हमारे लेखक अहिन्दी क्षेत्रों और प्रवासी भारतीयों से भरे विदेशों में कर के पाठकों की रुचि एवं प्रवृत्ति परखें तथा साहित्य की रचना तदनुकूल करें। जंगल, पहाड़, स्तान, समुद्र आदि से जिनके जीवन का निकट सम्बन्ध है उनके मन के लायक़ उपन्यास और नाटक भी हिन्दी में चाहिएँ।

(९) जो लेखक परिस्थितिवश प्रकाशक बन गए हैं वे अपनी छोटी पूँजी की रक्षा और वृद्धि में ही व्यस्त रहकर साहित्य-सेवा से कुछ विमुख हो जाते हैं; समस्त हिन्दी-संसार में शायद दो चार ही ईमानदार पुस्तक-विक्रेता हैं जिन्हें अपनी पुस्तकें बिक्री के लिए देकर लेखक निश्चिन्त हो सकता है। नहीं तो हिन्दी-संसार में ईमानदारी बहुत सस्ती हो गई है।

(१०) सब तरह की योजनाएँ बनती हैं, पर साहित्य की समृद्धि के लिए कोई योजना नहीं बनती। अगर कहीं कोई बनती भी है तो अनेक कठिनाइयों के कारण कार्यान्वित नहीं हो पाती। सरकारी योजनाओं में हिन्दी का कोई महत्व ही नहीं। काशी की 'सभा' और प्रयाग के 'सम्मेलन' के रहते 'जामिया मिल्लिया' [illegible] विराट कोष गढ़ रही है। काशी-नरेशवाला विशाल महाभारत अब अप्राप्य है और अरबी का महाभारत छपने वाला है।

(११) असंख्य पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी में हैं सही, पर अधिकांश मुफ़्तखोर हैं। दस-बीस साहित्यिक भी उनके भरोसे स्वतन्त्र जीवन नहीं बिता सकते। अनेक तो फालतू ही हैं। पत्रकार अधिकतर दुर्दिन झेल रहे हैं।

होनहार युवकों को भी प्रोत्साहन देनेवाले सम्पादक इने-गिने ही हैं। पाठकों की संख्या लेखकों से कम नजर आती है। फिर भी हिन्दी लेखक साहस के साथ संघर्ष कर रहे हैं।

किमधिकं विज्ञेषु ?

नम्र निवेदन है कि मेरे अनर्गल प्रलाप के लिए कृपया क्षमा कीजिएगा। रोगशय्या पर जो सूझा सो लिखवाता चला गया, फिर भी अभी बहुत कुछ कहना और लिखवाना है। परन्तु अनावश्यक विस्तार से आप लोग ऊबेंगे, इसलिए तत्काल जो ध्यान में आया सो विद्वन्मण्डली की सेवा में उपस्थित कर दिया। नीर-क्षीर-विवेकी विद्वान् तो तत्व निकाल ही लेंगे और मेरे दोष-दूषणों को दूर करके मुझे क्षमा भी कर देंगे। अन्त में यही निवेदन है कि हिन्दी के लिए आज जैसा दुर्दिन कभी नहीं था। हम सब हिन्दी भक्तों को मिलकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि साहित्य के अविकसित अंगों की भली-भाँति पुष्टि हो और अहिन्दी भाषियों की मनोवृत्ति हिन्दी के अनुकूल हो जाए तथा राष्ट्रभाषा के अभावों की पूर्ति बराबर होती रहे। तथास्तु।

यक्ष्माकेन्द्र चिकित्सालय,
(टी. बी. सेन्टर), पटना ४

—शिवपूजन सहाय

(४)

...'कन्नड़ साहित्य में रामायण की परम्परा' नामक लेख फरवरी '५४ में छपा है। इस लेख में कुछ भूलें हो गई हैं जिनको ठीक करना मेरा कर्त्तव्य है। लेख में छपाई की भूलें भी हैं। कृपया 'अजन्ता' के चिठ्ठी-पत्री स्तम्भ में इसे प्रकाशित करके इस दोष का निवारण कर दें।

लेख में जहाँ से "रामायण की परंपरा की जैन शाखा"...वाक्य शुरू होता है वहाँ से लेकर सत्ताईसवें पृष्ठ के अन्त तक (जहाँ '१' लगाकर पाद टिप्पणी में 'देखिए' छपा है वहाँ तक) जिस बीच में "दशरथ के काशी के राजा होने के सम्बन्ध में पं० रा० सांकृत्यायन भी अपनी 'वोल्गा से गंगा' में भी उल्लेख करते हैं" को छोड़ कर श्री डी० एल० नरसिंहाचारी के पंप-रामायण-संग्रह की पीठिका के आधार पर लिखा हुआ है—यह मान लेना छूट गया है साथ ही इसी २७ वें पृष्ठ पर द्वितीय कालम, द्वितीय अनुच्छेद में ५ वीं और ६ ठी लाइन "जिसका कन्नड़ में गद्यानुवाद हो चुका है" नामक वाक्य है वह ठीक नहीं है। उसको निकाल देना चाहिए। 'वास्तव में उसका कन्नड़ में गद्यानुवाद नहीं हुआ' अपि तु उसका जिक्र हुआ है ऊपर के श्री नरसिंहाचारी जी के ही संग्रह में। विषय निर्देश में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है।

इसके बाद २८ वें पृष्ठ में "वैदिक धर्म की शाखा के प्रमुख कवि और कृतियाँ" जहाँ से प्रारम्भ होता है, वहाँ से लेकर २९ वें पृष्ठ में 'रामपट्टाभिषेक' एक और काव्य ग्रन्थ है। तब "कर्नाटक कवि चरिते" संपुट १-२-३ लेखक आर. नरसिंहाचारी के आधार पर लिखा हुआ है इसका भी निर्देश लेख में छूट गया है।

साथ ही इस लेख में आनेवाली "सालि रामचन्द्रराव कृत सांगत्य रामायण" के बारे में मुझे श्री नरसिंहाचारी से मालूम हुआ था। इस तरह मैं उनका आभारी हूँ।

अब छपाई संबन्धी भूलें: पृष्ठ २५ में प्रथम कालम, अन्तिम अनुच्छेद, चतुर्थ लाइन '२००० ई. से पूर्व' के बदले 'एक हजार ई. से पूर्व' होना चाहिए। और वहीं, 'पूर्व की कोई भी रामायण-काव्य पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त होता' के बदले 'पूर्व का कोई भी रामायण-काव्य पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त होता' होना चाहिए। फिर 'कन्नड़ में रामायण-काव्य लिखी जाने लगी थी' के बदले 'लिखा जाने लगा था' होना चाहिए।

'मणिहरण' के बदले 'मणिहरिण' होना चाहिए और उसी पृष्ठ में 'शाक्तकल' 'शाक्यकुल' होना चाहिए। इसके ऊपर की पंक्ति में 'इस पर शक्तेय धर्म का' के बदले 'इस पर शाक्यकुल का' होना चाहिए। ये अशुद्धियाँ मूल लेख को लिखाने के कारण लिपिक की गलती में रह गई हैं, इसी प्रकार 'तोखे' के बदले 'तोरवे' (Thorave) होना चाहिए।

फिर पृष्ठ संख्या २९, द्वितीय कालम, तृतीय अनुच्छेद में अन्तिम दो वाक्य यों हों—'फिर भी, वह गद्य में होकर भी काव्य ग्रन्थों से होड़ कर सकता है। और तो और कन्नड़ साहित्य में वह रत्न के समान शोभायमान है।' यहाँ 'वह', 'सकता है' आदि शब्दों के बदले 'वे', 'सकती हैं' 'वे' 'हैं' छप गए हैं। बस इतना ठीक करने की आवश्यकता है।

मैसूर

—मा० देवेगौड़ 'बोम्मण्णा'

नीर-क्षीर

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिएँ।]

'ज्योति' कविता-संग्रह
लेखक : विद्यावती मिश्र
प्रकाशक : दयाशंकर मिश्र
श्रद्धानन्द-नगर, लखनऊ
मूल्य : एक रुपया

इधर कुछ दिनों से हमारे साहित्य के कुछ कला-मर्मज्ञों ने कविता के ह्रास अथवा उस पर आए हुए एक अवसाद के संकट की ओर संकेत करना आरंभ कर दिया है। इस जटिल जीवन में कविता अंधेरी गलियों में भटकती हुई कभी गद्य की ओर झुक जाती है अथवा कभी शब्दों की योजना मात्र ही रह जाती है। दोनों ही परिस्थितियों में वह जीवन को झंकृत नहीं कर पाती। अगर कविता जीवन की सामान्य भावनावों का स्पर्श नहीं कर सकती, उसकी चेतना का प्रेरणामय गान नहीं बन सकती तो उसको दीक्षागम्य बनाने का प्रयास एक तरह से अनिवार्य हो जाता है। यह दीक्षागम्यता कला की दृष्टि से उन्नत किन्तु तत्व की दृष्टि से कुछ इने-गिने कला-मर्मज्ञों के ही अन्तस्तल का स्पर्श कर पाती है। ऐसे समय में "ज्योति" का प्रकाशन वास्तव में ज्योति का प्रकाशन है। उस ज्योति ने जीवन की चेतना पर छाए हुए अवसाद पर मानों निर्मम परन्तु मानवीय प्रहार करते हुए कहा :

"मनुज हो न यदि पीर तुम झेल पाए
नहीं शूल पर पैर तुमने बढ़ाए—
जरा-सा पड़ा बोझ कंधे झुकाए,
बदल भूमि का भाग्य यदि तुम न पाए
समझ विश्व लेगा कि तुममें छिपा देवता सो चुका है।"

वास्तव में 'ज्योति' की कविताओं में ये पाँच पंक्तियाँ कवयित्री की चेतना का चरम रूप व्यक्त करती हैं इसलि पूरे काव्य के मंगलाचरण के रूप में उनको स्वीकार करना चाहिए। भूमि के भाग्य को बदलने की बात उठा कर कवयित्री ने उस सामाजिक व्यवस्था अथवा दुर्व्यवस्था को बदलने की ओर संकेत किया है जो जन-जीवन को घुन कीट के समान जर्जर बना रहा है। उसी सहजता से कवयित्री ने मानवता के लक्ष्य को प्राप्त करने की आशा को इन पंक्तियों में व्यक्त किया है :

"लक्ष्य न नयनों से विचलित हो
बाधा से मन हार न पाए—
विमल विश्व मंदिर में इसकी, आभा अक्षय हो अक्षर हो।"

अथवा :

"तुम रुके तो विश्व की प्रगति रुकी
मनुष्य की अचल विजय-ध्वजा रुकी
रुको नहीं!"

मनुष्य के चरम-विकास के अभिनन्दन का भाव लेकर कवयित्री ने कहा :

"पुनीत दीप मालिका छिपी न अन्धकार से
न जीत रात ही सकी, प्रभात की पुकार से
अजय मनुष्य के चरम विकास को प्रणाम है
प्रकाश को प्रणाम है।"

कवयित्री का यह स्वर और भी दृढ़ हो जाता है जब वे यह कहती हैं :

"अपार हिम-शिखर सदैव पन्थ पर अड़ा रहे
अथाह सिन्धु मुक्त राह रोक के पड़ा रहे
बनी रहे परन्तु साधना पुनीत आमरण।"

१९५४

इस संग्रह की दूसरी कोटि की वे रचनाएँ हैं जिनमें भारतीय नारी का वह अध्यात्म व्यक्त हुआ है जिसको सम्बल के रूप में लेकर वह युगों की दैन्यता और विकट आध्यात्मिक उत्पीड़नों से जर्जर होती हुई पार करती आई है। यह अध्यात्म करुणा और श्रद्धा का है :

"है न मैंने तो अभी तक कुछ चढ़ाया
है चढ़ाने को न कुछ भी पास मेरे,
एक ही विश्वास पर मेरा रहा है,
नीड़ मेरे और तुम आकाश मेरे
मैं भवन निर्माण करती हूँ निरंतर---
अर्चना के फूल बिन, बिन
देव तुम, मैं हूँ पुजारिन ।"

इस आत्म-निवेदन के मूल में समाज की गहरी यथार्थता प्रच्छन्न रूप में वर्तमान है जो व्यक्ति को असीम और रहस्य-मयी शक्तियों की ओर अपनी कठोरता और निर्ममता के कारण प्रेरित करती आ रही है।

संग्रह की तीसरी कोटि की रचनाएँ प्रकृति से संबंधित हैं जिन पर मानवीय करुणा की छाया डालते हुए कवयित्री ने सजीव वर्णन किया है। "जेठ की जलती दुपहरी" एक मार्मिक रचना है जिसकी अन्तिम पंक्तियाँ हैं :

"सुमन मुरझाए नहीं हैं
पात कुम्हलाए नहीं हैं
वृक्ष थक पाए नहीं हैं
क्यों कि उनके हृदय में करुणा अनन्त पिघल रही है
जेठ की जलती दुपहरी ढल रही है ।"

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे सुन्दर गीत भी हैं जो व्यक्तिगत तीव्र भावनाओं से सीप में मोती के समान प्रस्फुटित हुए हैं। 'किसी को देखने की कामना' 'गीत मेरे स्वर तुम्हारा', 'दूर रह कर भी तुम्हारे पास' ऐसी ही रचनाएँ हैं।

कवयित्री की सहज सुकुमार स्वर साधना ने अपने प्रथम चरण में ही मानवता, शान्ति और प्रगति की चेतना को आत्मसात् कर लिया है जो उसके भावी विकास और शक्ति को अनिवार्य रूप से सबलता सौंपेगी।

'प्रतीक्षा' काव्य-संग्रह
कवयित्री : विद्यावती मिश्र
प्रकाशक : दयाशंकर मिश्र, बी. ए.
संचालक : हिन्दी परिषद्, श्रद्धानगर, लखनऊ
मूल्य : १।)

'प्रतीक्षा' विद्यावती मिश्र की कविताओं का दूसरा संग्रह है। इसमें उनकी ५७ कविताएँ संगृहीत की गई हैं। 'ज्योति' की कविताओं से इस संग्रह की कविताओं की भाव और चिन्तना-भूमि अधिक गम्भीर और पुष्ट है। ऐसा लगता है कि 'ज्योति' की कविताओं में 'गति' के प्रति जो वेग था वह चिन्तना से भारान्वित हो गया है, इसलिए 'प्रतीक्षा' की कविताएँ अन्तर्मुखी हो उठी हैं। 'प्रतीक्षा' की कविताओं में नारी का वह स्वर है जो अपने व्यक्तित्व की माँग को नए रूप में उठा रहा हो—वह व्यक्तित्व जो मध्यकालीन धर्मों और सामन्तवादी सामाजिक व्यवस्था द्वारा अपहृत किया गया था। इस संग्रह की प्रथम रचना में ही कवयित्री ने कहा है :

"उजड़ें नीड़, डालियाँ टूटें, बिखर पड़ें अमराइयाँ
देवलोक का स्वप्न न दो, बस पंख और आकाश दो
आने का विश्वास दो... ...।"

यह स्वर "पाप-पुण्य के दृढ़ बन्धन से मुझे न बाँधो" शीर्षक कविता में और भी स्पष्ट हो जाता है।

"मैंने केवल बुरा उन्हीं कर्मों को समझा
जिनको करने के पहले कर रुक जाता है
करने के उपरान्त स्वयं ही मेरा मस्तक
आत्म-ग्लानि की आशंका से झुक जाता है
धर्म ग्रन्थ के खँडहर पर की मीनारों के
रागहीन निस्सार रुदन से मुझे न बाँधो
पाप-पुण्य के दृढ़ बन्धन से मुझे न बाँधो !!"

कवयित्री का स्वर विद्रोही हो जाता है जिस समय वे उस धर्मवाद पर निर्मम रूप से मानवीय प्रहार करती हुई कहती हैं :

"कर्मकाण्ड के निर्मम प्रहरी, और रूढ़ियों की जंजीरें
खींच रहीं जीवन के पट पर, कुछ अटपटी अजब तसवीरें
भाग्यवाद की अमिट लकीरें
घोंट रहा है गला मनुज का, धर्मवाद का वैभव सारा।

× × ×

नथा पंथ कब बतला पाए, मृतकों के पद-चिह्न पुराने
नव-विहान के नए तराने
जहाँ कहीं मरुथल बाक़ी हो, मोड़ो वहीं श्वास की धारा।"

मध्यकालीन पौराणिक धर्म के प्रति आधुनिका का यह भाव उसकी चेतना की प्रगतिशीलता का द्योतक है। यह चेतना जितनी तीव्र और जितनी गम्भीर होगी उतना ही समाज और संस्कृति का कल्याण होगा।

आत्म-चेतना के जागरण को प्रतिबिम्बित करनेवाली इन कविताओं के साथ साथ वे कविताएँ भी इसमें संग्रहीत हैं जिनमें भावनाओं का अस्पष्ट रहस्यवाद अपनी अभिव्यक्ति पा गया है। इस रहस्यवाद की अपनी एक मर्यादा है जो अदृश्य के प्रति आकर्षणशील और दृश्य के प्रति निश्चेष्ट बना देती है। प्रकृति के उस पार [?] जो पुँजीभूत चेतना का लोक है उसको जानने की अथवा अनुभव करने की एक लालसा जाग उठती है। प्रकृति उस समय जड़ प्रकृति मात्र ही नहीं रह जाती वरन् उस दिव्य चेतना की स्वरवाहिका अथवा सन्देश-वाहिका बन जाती है जो उसको नियन्त्रित किए हुए है। इस प्रकार की कविताएँ चार पाँच ही हैं और युग की एक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं।

वास्तव में इस काव्य-संग्रह की कविताओं की मूल चेतना रहस्यवाद की भावना नहीं वरन् एक समाजपरक स्वस्थ मानवतावाद की कामना है। इस मानवतावाद की मर्यादाएँ निर्धारित करते हुए कवयित्री ने कहा है :

"इसीलिए वह अर्थ-व्यवस्था है मुझको प्यारी
जहाँ शक्ति छल सके नहीं मानव की लाचारी।"

अथवा :

"प्रिय मुझको वह लोक जहाँ पर पाएँ सब समता
मिले मनुज को सुख से जीवित रहने की क्षमता।"

मानव-समाज के प्रति यह चेतना स्वस्थ और प्रेरणाशील है जिसकी उपेक्षा कोई भी प्रतिभा नहीं कर सकती।

इसी मानवतावाद के दृष्टिकोण को कवयित्री ने जब भावना की भूमि पर उतार कर व्यक्त किया तो करुणा, प्रेम आदि मानवीय गुणों का विकास उनमें प्रतीकात्मक ढँग से व्यक्त न होकर सहज और सरल रूप में अपनी अभिव्यक्ति पा सका। 'अधूरी अभी कहानी है', 'शक्ति अपनी ही तुझे कब ज्ञात', 'केवल अवलम्ब तुम्हारा है' अथवा 'जीवन क्या है' शीर्षक कविताएँ इसी कोटि की हैं। 'जीवन क्या है' में कवयित्री ने अपने वर्तमान समाज के तीन (धनी, मध्यम और धनहीन) वर्गों के चित्र अंकित कर बार बार यह प्रश्न दोहराया है आखिर 'जीवन' क्या है। निर्धनता का चित्र मार्मिक होकर सामने आया है :

"मिट्टी जिसका वसन, शून्यता ही आभूषण
है अभाव से होता प्रतिक्षण का अभिसिंचन
जहाँ सृजन को शोषण का अधिकार मिला है
महानाश ही का जीवन को प्यार मिला है
अन्नपूर्णा कहला करके भी जो भूखी
निर्धनता शरमा कर मुझसे पूछ रही है—
जीवन क्या है ?"

"अधूरी अभी कहानी है" शीर्षक कविता में कवयित्री को इस तथ्य का आभास है :

"सजग कब अब भी चरण हुआ
न जय मिल पाई जीवन को—
पराजित अभी न मरण हुआ
न मरुथल मधुबन कर पाई
अभी तक कवि की बानी है
अधूरी अभी कहानी है।"

इस कहानी को पूरा करने के लिए कविता को अपने सामाजिक यथार्थ के प्रति और भी वेग से बढ़ाना होगा और उन चित्रों को काव्य में बाँधना पड़ेगा जो सजीव और दृढ़ होकर बाधाओं से न पराजित होते हुए मरुथल को मधुबन बनाने की चेष्टा में संलग्न हैं।

—आदित्य मिश्र

लखनऊ

चीनी जनता के बीच

लेखक : डा० जगदीशचन्द्र जैन
प्रकाशक : पीपल्स पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड,
बम्बई-४
मूल्य : चार रुपया

इस समय यद्यपि चीन और भारतवर्ष दोनों देश स्वतंत्र हैं तो भी जिस प्रकार चीन में सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्रान्ति हुई है वैसी भारतवर्ष में नहीं हुई। दोनों देश प्राचीन हैं, दोनों की संस्कृति पुरानी है और दोनों भौगोलिक दृष्टि से भी महान् देश हैं। निकटवर्ती होने और कई अन्य बातों में समानता होने के

कारण दोनों देशों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। प्रस्तुत पुस्तक में डा० जगदीशचन्द्र जैन ने चीन की अपनी यात्रा का वर्णन किया है और चीन से सम्बद्ध प्रायः सभी विषयों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। चीनी भाषा, आधुनिक चीनी साहित्य, चीन के कतिपय लेखक, चीन की चित्रकला, सहकारी संस्थाएँ, भूमि-सुधार आन्दोलन, स्त्रियों की मुक्ति, चीनी शब्दों के उच्चारण आदि विषयों पर जो कुछ लिखा गया है उससे चीनी जनता के जीवन के भिन्न पहलुओं से परिचय प्राप्त होता है। यद्यपि पुस्तक का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है तो भी उसे एक विशेष दृष्टिकोण से ही लिखा गया है और लेखक ने जिस वातावरण में इस पुस्तक को लिखा है वह उससे बहुत अधिक प्रभावित है और संभवतः यह स्वाभाविक भी है। चीन में जनता की महान् जागृति से कोई भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। चीन की नाट्यकला के विषय में पढ़ने से कई मनोरंजक बातों का पता चलता है: "विश्वासपात्र या धार्मिक व्यक्ति तथा सम्राटों के चेहरे लाल रंग से, ईमानदार लेकिन कुरूप व्यक्तियों के चेहरे काले रंग से तथा विश्वासघाती और चालाक व्यक्तियों के चेहरे सफ़ेद रंग से रंगे जाते हैं। स्त्रियों और नायिकाओं के चेहरे स्वाभाविक रहते हैं।" लेखक यदि इसके कारणों पर भी कुछ प्रकाश डाल सकते तो अच्छा होता। काले रंग को ईमानदारी के साथ और सफ़ेद रंग को विश्वासघास और चालाकी से सम्बद्ध करने का तात्पर्य यही प्रतीत होता है कि संभवतः चीन में गोरा आदमी चालाकी और शोषक का और काला ईमानदारी से परिश्रम करनेवाला और शोषितों का प्रतीक बन गया है। हमारे यहाँ तो पाप का, मृत्यु का, और विष का रंग काला है और इसी प्रकार पुण्य, यश, और अमृत का रंग श्वेत है। चीन की चित्रकला के विषय में लेखक लिखते हैं: "आजकल चीन में भोग-विलास या कल्पनाप्रधान चित्रों की अपेक्षा जन-संघर्ष, जनता की सहनशीलता और उसकी विजय के द्योतक यथार्थवादी चित्रों की माँग बहुत बढ़ गई है।" नए चीन का किसान गाता है:

'मैं अस्सी वर्षों तक जिया,
मैं अस्सी वर्षों तक रोया।
अब मेरे पास खेत है,
यह खेत है--शहद से मीठा।
शहद पैदा करता है क्षणिक मिठास
किन्तु खेत देता रहता है सदा मिठास।"

पुस्तक के अन्त में चीनी शब्दों के उच्चारणों को दिया गया है। उन्हें पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि चीनी भाषा "ङकार-बहुला" है। कोई आश्चर्य नहीं कि कभी कोई भाषाशास्त्री किसी दिन यह सिद्ध कर दे कि हमारी भाषाओं में "ङ" वर्ण चीन की देन है। इसी प्रकार तालव्य शकार और मूर्धन्य षकार की अवस्था प्रतीत होती है। लेखक ने बहुत-से 'श' के शब्दों के उच्चारण में "श" के स्थान में "ष" लिखा है। बहुत अच्छा होता यदि वे "श" और "ष" के उच्चारण में चीन में जो भेद है उस पर भी कुछ प्रकाश डालते। चीन की भाषा के विषय में इस पुस्तक में लिखा गया है: "चीनी भाषा एक वर्ण की (Mono-Syllabic) भाषा है।........चीनी भाषा का बोलना कठिन नहीं है—हाँ इसमें स्वरभेद की कठिनाई है।" स्वर-भेद से शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। चीनी भाषा को पढ़ना और लिखना कठिन है। परन्तु इतने पर भी चीन में — "चीनी भाषा द्वारा ही सब शिक्षा दी जाती है। विदेशियों के लिए चीनी का ज्ञान अनिवार्य है। चीनी के शिक्षित लोग अपनी भाषा में बातचीत करने में गौरव समझते हैं।"

पुस्तक को यदि राजनैतिक वातावरण से हट कर लिखा जा सकता तो पुस्तक की उपादेयता और भी अधिक बढ़ जाती। राजनीति समस्त विषयों को एक ऐसा रूप दे देती है कि एक बात सत्य होते हुए भी प्रोपेगैण्डा-सी प्रतीत होने लग जाती है। पुस्तक को पढ़ने से जहाँ चीन और वहाँ के जन-जीवन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है वहाँ इससे नवीन चेतना जागृत होती है, नई प्रेरणा प्राप्त होती है और जन-जीवन की शक्ति और विकास की क्षमता का आभास भी प्राप्त होता है।

श्री रमण वाणी (भाग-१, २)

प्रकाशक : श्री टी. एन. वेंकटरामन
मैनेजर-प्रेज़ीडेण्ट, श्री रमणाश्रम,
तिरुवण्णामलै, दक्षिण भारत

मूल्य : एक रुपया

प्रस्तुत पुस्तक में "भक्तों के विविध प्रश्नों के श्री रमण महर्षि के दिए हुए उत्तरों का संग्रह" किया

गया है । ये प्रश्न उनसे भिन्न भिन्न प्रसंगों पर पूछे गए थे । "तमिल तथा गुजराती मूल प्रति के आधार पर इस पुस्तक का अनुवाद किया गया है ।" पुस्तक के दो भाग हैं । प्रथम में नौ और दूसरे में पाँच विषय हैं । श्री महर्षि रमण कहते हैं : "जीवात्मा का अर्थ मन है । यह मन परिमित है परन्तु विशुद्ध चैतन्य सीमाओं से परे है ।" इसी प्रकार वे 'एकान्त' के विषय में कहते हैं : "आत्मा की अनुभूति ही एकान्त है ।" और वे आत्मा की अनुभूति के विषय में कहते हैं : "आत्मा की अनुभूति ही एकान्त है ।" आगे चल कर इसी सम्बन्ध में वे कहते हैं : "निश्चलता या शान्ति ही आत्मानुभूति है ।...शान्ति...सहज स्थिति है । इस सहज स्थिति में बाधा डालनेवाला मन है । ...आनन्द शान्ति से उत्पन्न होता है । शान्ति वहीं टिक सकती है जहाँ चंचलता न हो ।...जिन महानुभावों ने जब कभी सत्य का दर्शन किया उनको अपनी आत्मा की प्रशान्त गहराई में से ही मिला है ।" पुस्तक को पढ़ने से महर्षि रमण के विचार समझ में आते हैं । पुस्तक पठनीय एवं मननीय है ।

तत्त्वबोध (मूल तमिष "उपदेश मंजरी" का अनुवाद)

प्रकाशक : श्री टी. एन. वेंकटरामन,
श्री रमणाश्रम,
तिरुवरणामलै— दक्षिण भारत

मूल्य : आठ आना

प्रस्तुत पुस्तक में श्री महर्षि रमण और श्री नटनानन्द के बीच में "समय समय पर आत्मबोध के सम्बन्ध में जो बातचीत हुई थी" उसी को संगृहीत किया गया है । यह पुस्तक महर्षि रमण के जीवन-काल में ही प्रकाशित हुई थी । इस पुस्तक को पढ़ने से श्री महर्षि रमण के गम्भीर आध्यात्मिक विचारों से परिचय प्राप्त होता है । पुस्तक के चार प्रकरण हैं : उपदेश, अभ्यास, अनुभव आरुढ़ । इसमें उपदेश, ज्ञान, मोक्ष, बन्धन, अभ्यास, भक्ति, माया, ध्यान आदि की इस प्रकार व्याख्या की गई है कि उनका तात्पर्य स्पष्टतया समझ में आ जाता है । पुस्तक में आध्यात्मिक सूक्ष्म तत्वों को सरलता से और अनुभव के आधार पर समझाने का प्रयत्न किया गया है । तद्बोध का अर्थ किया गया है : "मैं रूपी या अहंकार रूपी जीव को तद्बोध कहते हैं । जैसे चिद्रूप आत्मा में अहंभाव नहीं होता वैसे ही जड़ देह को भी "मैं" का भान नहीं होता । इस चित् और जड़ के बीच में अवान्तर रूप में उठनेवाले इस माया रूपी जीव का अहंभाव ही सभी अनर्थों का मूल है ।" श्री रमण की पुस्तकें हिन्दी में आध्यात्मिक साहित्य की अपूर्व निधि हैं।

गंगा मैया

लेखक : भैरवप्रसाद गुप्त
प्रकाशक : राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई
मूल्य : १रु. १४ आ.

इस छोटे-से उपन्यास को बड़े नाटकीय ढंग से प्रारम्भ किया गया है परन्तु कहानी रोचक और कौतूहलपूर्ण होती हुई भी ज्यों ज्यों आगे बढ़ती है वह उतनी नाटकीय नहीं रहती । यद्यपि इस कहानी का प्रारम्भ गोपी और उसकी भाभी से होता है और अन्त भी उन्हीं दोनों के सम्मिलन से होता है और यह सम्मिलन सामाजिक सुधार और कहानी की दृष्टि से वाञ्छनीय है तो भी इस कहानी का मुख्य चरित्र और वास्तविक नायक 'मटरुन' है जो राजनैतिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से अपना एक विशेष व्यक्तित्व रखता है और गोपी की उलझी हुई समस्याओं को इतनी अधिक सुगमता से हल कर देता है जिसकी कि कहानी में वर्णित परिस्थितियों में कल्पना नहीं की जा सकती । वह जेल में जाता है और उसे कुछ कष्ट भी झेलने पड़ते हैं परन्तु उसका व्यक्तित्व उपन्यासकार ने कुछ ऐसा बताया है कि उसे वास्तविक और कठिन प्रश्नों को सुलझाने में किसी विशेष कष्ट का सामना नहीं करना पड़ता । वह अकेला बिना किसी की सहायता से अपने विचारों के अनुसार अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर लेता है । क़ायदे क़ानूनों की उसे परवाह नहीं । वह कहता है : "क़ानून-क़ायदे की बात वह घर बैठे बघारा करें, मुझे कोई परवाह नहीं । मैं तो यही जानता हूँ कि यह धरती गंगा मैया की है । जो चाहे, आए मेहनत करे, कमाए, खाए ।" गोपी की भाभी का चरित्र जिस प्रकार पर्यवसित हुआ है वह अपनी विशेषताओं को पूर्णतया प्रस्फुटित नहीं कर सका है। इस उपन्यास में समस्याएँ उतने विषम रूप में प्रकट नहीं हुई हैं जितनी कि आसानी से उन्हें हल कर दिया गया है । फिर भी उपन्यास में नवीन चेतना है और "गंगा मैया" का वर्णन गंगा की मट्टी और तरंगों की तरह स्फूर्तिप्रद और आकर्षक है ।

हैदराबाद　—वंशीधर विद्यालङ्कार

स्वप्न और सत्य

लेखक : भगवन्त शरण जौहरी
प्रकाशक : लायल बुक डिपो, सरस्वती सदन
लश्कर, ग्वालियर
मूल्य : तीन रुपए

'स्वप्न और सत्य' श्री भगवन्त शरण जौहरी का तीसरा कविता संग्रह है जिसमें पिछले दशक में रची हुई उनकी इक्यावन कविताएँ संगृहीत हैं। कविताओं का विषय राष्ट्र और प्रेम है। कुछ कविताएँ सामयिक घटनाओं पर भी लिखी गई हैं जिनमें साम्प्रदायिक दंगों के प्रति क्षोभ प्रकट किया गया है या आर्थिक विषमता के जघन्य चित्र हैं। सामान्यतया कविताओं में जीवन की निराशा, बलिदान की आकुलता, अपने देश या उससे भी सीमित अपने प्रान्त से प्रेम और नारी प्रेम को संघर्ष पथ का बाधक समझने के स्वर सुनाई पड़ते हैं यद्यपि उस प्रेम की विफलता पर कवि समस्त विश्व को अपना शत्रु भी समझने लगता है :

"दुर्दशा है यहाँ केवल प्यार
दृष्टि को जब फेरता हूँ
देखता हूँ, शत्रु है संसार !"

राष्ट्र सम्बन्धी कविताओं में पुराना स्वर ही मुखर है :

"मन की बात सुनाता जाऊँ इतना अवसर शेष नहीं है
उधर गूँजती है रणभेरी, मिलन-विरह लवलेश नहीं है"

आज की परिवर्तित परिस्थितियों में उद्बोधन के इन घिसे पिटे स्वरों में नवजीवन के संचार और नवीन दृष्टि प्रदान करने की सामर्थ्य नहीं प्रतीत होती। आवेग की कविताओं का ऐतिहासिक महत्त्व एक युग पीछे छुट गया है।

श्री जौहरी जी की कविताओं में अनुभूति की सचाई और भाषा का प्रवाह है, कुछ शब्द चित्र बहुत सुन्दर बन पड़े हैं :

"वह दृष्टि
पलक गिरते ही सुनहले पंकजों के ढेर की सी सृष्टि !
मैं चकित
वंचित
थकित-सा
समझ ही पाया न
यों कैसे मरुस्थल पर
उमड़ आई
सुधा की यह छरहरी वृष्टि !"

संग्रह की सभी कविताएँ एक कोटि की नहीं हैं कदाचित् इसका कारण उनके रचना-काल का दस साल की लम्बी अवधि में फैला हुआ होना है। कवि ने अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को स्वप्न का रूप माना है और उन भावनाओं के जाल को तोड़ कर समष्टि के साथ बलिपथ पर बढ़ने के सत्य को जानने की अपनी आकांक्षा प्रदर्शित की है। स्वप्न और सत्य कवि के लिए दो विरोधी तत्व बन जाते हैं परन्तु यह प्रश्न है क्या कवि का स्वप्न ही सत्य बन कर धरा पर नहीं अवतरित हो, यदि इस तथ्य को पहचाना जाता तो कदाचित् यह आत्म-ग्लानि पूर्ण उक्ति लिखने की आवश्यकता न होती :

"धिक्कार हमें धिक्कार
अन्त तक भूख रहे
जग का भय ही खा गया
सदा यह हूक रहे"

नई कविता में आशा और आत्म-विश्वास के स्वर क्यों इतने क्षीण बनें ? चिनगारी के तेज में विश्वास किए बिना अग्नि पुञ्ज की प्राप्ति प्रायः सम्भव नहीं होती।

चन्द्र किरणें

लेखक : चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र'
प्रकाशक : लोकोदय प्रकाशन वर्धा
मूल्य : आठ आना

'चन्द्रकिरणें' १६ पत्रों का संग्रह है जो पुत्र के नाम पिता द्वारा लिखे गए हैं। मूल रूप में लेखक ने ये पत्र अपने पुत्र को 'विद्या मन्दिर', अकोला में पढ़ते समय भेजे थे जो विद्या मन्दिर के संचालकों को पसन्द आए और उनके आग्रह से इनका प्रकाशन किया गया। पत्र संक्षिप्त और सरल भाषा में हैं। वर्णनात्मक होने के साथ ही उनके द्वारा उपदेश भी दिया गया है। कुछ पत्र महापुरुषों की जयन्तियों पर लिखे गए हैं और शेष में हमारे त्योहारों के महत्व को दर्शाया गया है। पुस्तक बालकों के लिए पठनीय है। इसे पढ़ते हुए वे शिक्षा ग्रहण करने के साथ उसे पढ़ते हुए आनन्द का भी अनुभव करेंगे।

हैदराबाद हरिकृष्ण पुरोहित

सामयिक

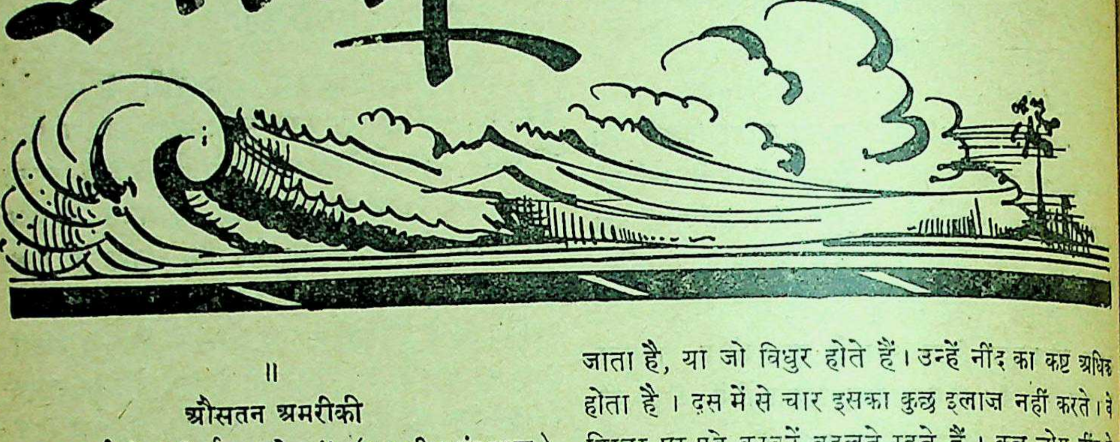

॥

औसतन अमरीकी

मार्च के "रीडर्स डाइजेस्ट" (भारतीय संस्करण) में "औसतन अमरीकी" पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

औसतन अमरीकी ५ फुट ६ इञ्च लम्बा और उसका वज़न १ मन और ३६ सेर होता है। वह भूरी और काली आँखवाली स्त्री, गोमांस, बेजबाल और तले हुए आलू पसन्द करता है। वह अपनी पत्नी की सबसे बड़ी विशेषता यही समझता है कि वह घर का सब प्रबन्ध कुशलतापूर्वक कर सके।

औसतन अमरीकी स्त्री ५ फुट, ४ इंच लम्बी होती है और उसका वज़न १ मन, २४ सेर होता है। वह बिना हजामत किए चेहरे को सहन नहीं कर सकती। वह अपने पति को बहुत पियक्कड़ समझती है, किसी प्रकार के कार्य से विवाह को अधिक पसन्द करती है और चाहती है कि विवाह संस्कार से "आज्ञा-पालन" शब्द को निकाल दिया जाए।

तीन अमरीकियों में एक रोता-धोता है जब कि उसके पैर को चोट लग जाती है, पाँच में से एक कष्ट में कराहता है और तीन में से दो ऐनक पहनते हैं।

अमरीकी लोग अपने वज़न के विषय में सदा सोचते रहते हैं। वे समझते हैं कि वे बहुत मोटे हैं और पतला होने की चिन्ता करते रहते हैं यद्यपि चार में से एक ही इसके लिए प्रयत्नशील होता है। स्त्रियाँ पतला होने के लिए अधिक चिन्तित रहती हैं।

अमरीका के लगभग आधे व्यक्तियों को नींद नहीं आती। विवाहित लोगों को नींद का कष्ट इतना अधिक नहीं होता जितना उन लोगों को जिनका विवाह-सम्बन्ध टूट जाता है, या जो विधुर होते हैं। उन्हें नींद का कष्ट अधिक होता है। दस में से चार इसका कुछ इलाज नहीं करते। वे बिस्तर पर पड़े करवटें बदलते रहते हैं। कुछ लोग नींद के लिए दवाएँ खाते हैं। विवाहित अमरीकी लोग अधिकांश में डबल-बेड पर सोते हैं। आठ में से एक अमरीकी जोड़वाँ शय्या पर सोता है।

३० वर्ष की आयु से कम अमरीकी स्त्रियों के उंगलियों के नखों को रंगना पसन्द करते हैं; ३० वर्ष की आयु से अधिक के लोग इसे पसन्द नहीं करते। इस विषय में पुरुषों की सम्मति लगभग बराबर विभक्त है कि स्त्रियाँ सुन्दर होनी चाहिएँ या अच्छे मस्तिष्क की।

अमरीकी कन्या के विवाह की श्रेष्ठ आयु २१ और पुरुष की २५ समझी जाती है। अल्पकालीन विवाहसम्बन्ध से दीर्घकालीन विवाह-सम्बन्ध को अच्छा समझा जाता है। अल्पकालीन सम्बन्ध में जल्दी विच्छेद हो जाता है। विवाहित दम्पति क्रोध को बुरा समझते हैं। पति चुगली और गप्पबाज़ी को बुरा समझते हैं और स्त्रियाँ शराब पीने, धुँआँने, जुआ खेलने और उपेक्षा को बुरा समझती हैं। स्त्रियाँ-पुरुषों से अधिक ऐब निकालती हैं। सौ में से सत्तर स्त्रियाँ पतियों के दोष निकालती हैं और सौ में से चौवन पुरुष स्त्रियों के दोष निकालते है।

६२ प्रतिशत अमरीकी पति घर के कार्य में सहायता करते हैं। १०० में से ३३ प्रायः नियमपूर्वक रकाबियों को धोते हैं। प्रत्येक पाँच में से दो भोजन बनाते हैं। शिक्षित पुरुष अशिक्षितों से अधिक गृह-कार्य में सहायता करते हैं।

अपने बचपन पर एक दृष्टि डालते हुए अधिक अमरीकी लोग कहते हैं कि उन पर पिता की अपेक्षा

माता का अधिक प्रभाव पड़ा है। २२ प्रतिशत अमरीकी माता-पिता के असर को अधिक मानते हैं। अमरीकी माता-पिता इस बात पर विश्वास नहीं करते कि आजकल के नवयुवक पहले से खराब और निकम्मे हैं। अधिकतर लोगों का विचार है कि आज के नव-युवकों का साधारण ज्ञान पहले से अच्छा है।

अमरीकी लोग अधिकतर समाचार-पत्र और मेगज़ीन पढ़ते हैं। यदि अमरीकी लोगों से पूछा जाय कि क्या आप इस समय कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं तो २१ प्रतिशत लोग कहते हैं“ : हाँ” और ७९ कहते हैं : “नहीं।”

अमरीकी पुरुष बेज़बाल और फुटबाल के खेल को बड़े शौक़ से देखते हैं। ७ प्रतिशत लोग गोल्फ़ खेलते हैं और इतने ही टैनिस खेलते हैं। यदि अमरीकी लोगों को पानी में तैरना पड़े तो आधे अमरीकी डूब जाएँगे, केवल ५२ प्रतिशत तैरना जानते हैं।

औसतन अमरीकी सप्ताह के दिनों में रात को दस बजे सोता है और शनिवार को ११ बजे। सप्ताह के दिनों में वह प्रातःकाल ६½ बजे उठता है और रविवार को ७ बजे। सप्ताह के दिनों में वह ७ प्रातः बकफ़स (Breakfast) करता है, १२ बजे लंच और सायंकाल ६ बजे डिनर या सपर खाता है। पारिवारिक भोजनों में ⅓ अमरीकी लोग धन्यवाद की प्रार्थना करते है।

औसतन अमरीकी अपने पड़ोसियों को पसन्द करता है – केवल २० प्रतिशत उनके विरुद्ध शिकायत करता है। लगभग आधे अमरीकी अपने पड़ोसियों के लिए वस्तुएँ खरीद कर लाते हैं; १० में से ६ उधार देते और लेते हैं और लगभग ¾ अमरीकी अपने पड़ोसी के घर में न होने पर संदेश, तार, पार्सल आदि ले कर उसे पहुँचा देते हैं।

अमरीकियों का विश्वास है कि अमरीकी मनुष्य उदार, मित्रशील, दूसरों का खयाल रखनेवाला, धार्मिक, स्वतंत्रता-प्रेमी और प्रगतिशील होता है। उसके बड़े दोष हैं उथलापन, आत्मपरता, फ़िज़ूलखर्ची और धन के पीछे पागलपन।

अमरीकी लोगों के दो मोटो हैं—पहला : “दूसरों के साथ वही व्यवहार करो जो तुम अपने साथ करना चाहते हो” और दूसरा : “जियो और जीने दो।” ६४ प्रतिशत अमरीकी कहते हैं कि वे परमात्मा में और ६८ प्रतिशत मृत्यु के बाद के जीवन में विश्वास करते हैं। ६५ प्रतिशत अमरीकी प्रार्थना में विश्वास रखते हैं।

दस में से सात अमरीकी यह समझते हैं कि किसान नगर में रहनेवाले से अधिक सुखी है और किसान भी इस बात को स्वीकार करते हैं। स्त्रियों और पुरुषों में जो सारा दिन घर से बाहर कार्य करते हैं ५५ प्रतिशत अपनी नौकरी को पसन्द करते हैं।

यदि आशावादी का यह अर्थ हो कि संसार अच्छा होता जा रहा है और निराशावादी का यह अर्थ हो कि संसार बुरा होता जा रहा है तो हमें यह कहना पड़ेगा कि अमरीका में निराशावादियों से आशावादी अधिक हैं। अमरीका में पाँच में से चार आशावादी हैं।

युद्ध, भारी टैक्स और क़ीमतों की वृद्धि के बावजूद भी बहुसंख्यक अमरीकी यह समझते हैं कि वे अपने माँ-बाप से अच्छे हैं केवल १ प्रतिशत यह समझते हैं कि उनकी अवस्था खराब है।”

॥

जौनपुर की शर्क़ी वास्तुकला

मार्च के “माडर्न रिव्यू” में श्री एम. यासीन सिद्दीक़ी का “जौनपुर की शर्क़ी वास्तुकला” पर एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

“तैमूर के आक्रमण ने दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता को छिन्न-भिन्न कर दिया। दूर के प्रान्त स्वतंत्र हो गए। यह समय कला और स्थापत्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्व का था। यह आन्दोलन सन् १४०० ई० में हुआ। स्वतंत्र राज्यों ने दिल्ली की वास्तुकला की शैली से भिन्न शैली को अपनाया। इसी तरह की स्वतंत्र सल्तनतों में एक शर्क़ी सल्तनत भी थी जिसकी राजधानी जौनपुर थी। जौनपुर बनारस से ४० मील उत्तर-पश्चिम में है। जौनपुर के शहर की १३५९-६० में फ़िरोजशाह तुग़लक़ ने स्थापना की थी जब कि वह जाफ़राबाद में कैम्प किए हुए था। यह नगर गोमती नदी के दक्षिण तट पर है। फ़िरोजशाह तुग़लक़ ने इसे अपने ज्ञाति बन्धु शाहज़ादा जुना के स्मृति में बनवाया था जो इतिहास में मुहम्मद तुग़लक़ के नाम से प्रसिद्ध है। जौनपुर स्वतन्त्र होने से पूर्व दिल्ली साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण गढ़ था।

मुहम्मद तुग़लक़ ने फ़िरोज तुग़लक़ के बाद ख़्वाजा जहान को पूर्वी प्रदेशों के लिए मलिक-उस-शर्क़ बना कर भेजा था। यही शर्क़ी खानदान का स्थापक था। ख़्वाजा जहान का वास्तविक नाम मलिक सरवर

था। वह षण्ढ था जिसे सालार रजब ने अपने पोते मुहम्मद को दिया था। ख़्वाजा जहान १३६६ ई. में मर गया। उसने १३६४ ई. में अपने को स्वतन्त्र घोषित किया। उसने मुबारक को अपनी गोद में लिया। उसके पश्चात् वही उसका उत्तराधिकारी बना। सबसे पूर्व उसने अपने नाम के आगे 'सुलतान-उस-शर्क़' का ख़िताब लगाया जिसका अर्थ था: 'पूर्व का सुलतान'। १४०१ ई. में उसकी मृत्यु हुई और उसका छोटा भाई इब्राहीम-शम्सुद्दीन इब्राहीम शाह शर्क़ी के नाम से राजगद्दी पर बैठा। वह गुणवान् था। उसका राज्य बिहार से क़न्नौज और बहराइच से इटावा तक विस्तृत था। उसका उत्तर हिन्दुस्तान के काफ़ी बड़े इलाक़े पर प्रभुत्व था।

इब्राहीम शर्क़ी की हिन्दुस्तान के मध्य में एक ऐसा नगर बनाने की बड़ी इच्छा थी जो भारतवर्ष में इस्लाम की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक राजधानी हो। यह उसी का प्रताप था कि जौनपुर को वह महत्व प्राप्त हुआ और यह दूसरा बग़दाद बना। शर्क़ी ख़ानदान लगभग समस्त ९ वीं हिजरी में शासन करता रहा।

जौनपुर की वास्तुकला प्रायः बिलकुल मुसल्मानों की मसजिदों के बनाने तक ही सीमित है। शर्क़ी बादशाह जहाँ निर्माणकारी थे वहाँ विध्वंसकारी भी थे। प्रत्येक मसजिद उसी स्थान पर खड़ी की गई जहाँ कि कोई हिन्दुओं का मन्दिर था। फिर किसी नगर को मुसल्मानों ने इतना नष्ट भ्रष्ट नहीं किया जितना कि इस नगर को। १४५२-७८ में सिकन्दर लोदी ने क्रोध में आकर बदला लेने के लिए इसको तोड़ा फोड़ा और नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जब कि उसने जौनपुर के अन्तिम सुलतान हुसैन को युद्ध में हरा दिया। उसने मसजिदों के दरवाज़ों को तोड़ दिया और वह मसजिदों को भी तहस-नहस कर देता परन्तु उसने मुल्लाओं के रोष और विरोध प्रदर्शित करने पर इस विचार को छोड़ दिया। शर्क़ियों के महलों के भग्नावशेष कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते।

जौनपुर का क़िला जिसका पुराना नाम करारकोट था अब टूटी-फूटी अवस्था में है। यह गोमती के उत्तरी तट पर है। इसमें फ़िरोज़शाह तुग़लक़ के भाई इब्राहीम नायब बरबर ने एक मसजिद और हमाम बनवाया था। यह हमाम देखने के योग्य है और तुर्किस्तान के हमाम का पूर्ण नमूना है और क़िले की मसजिद भी जौनपुर की इमारतों में सबसे पुरानी है। इसका निर्माण प्रारंभिक बंगाली इमारतों के ढंग पर हुआ है। इसमें मीनारें नहीं हैं और इसके गुम्मज भी बीच में छोटे हैं। शर्क़ियों के समय जो मसजिदें बनी हैं वे अनुपम हैं। इनको देखने के लिए समस्त विश्व के लोग आते हैं। ये मसजिदें एकमात्र पत्थर, रेत और चूने आदि से बनी हुई हैं।

इन मसजिदों में सबसे सुन्दर अताला मसजिद है। इस पर बहुत सुन्दर कार्य किया हुआ है। इसे १३७७ ई. में बनाया गया था। इसे १४०८ ई. में इब्राहीम शाह शर्क़ी ने पूर्ण किया था। यह अताला देवी के मन्दिर के पुराने स्थान पर बनाई गई है और उसी मन्दिर की सामग्री से बनाई गई है। यह मसजिद देहली और अजमेर के नमूनों पर ही बनाई गई है। दूसरी मसजिद ख़लिस मख़लिस मसजिद है। यह विजयचन्द्र के मन्दिर के स्थान पर बनाई गई है। इसमें एक पत्थर लगा हुआ है जिसको किसी तरह भी नापने से चार उँगली का ही रहता है इसलिए इसे "चार उँगली" कहते हैं। इस पत्थर की हिन्दू और मुसल्मान दोनों पूजा करते हैं। इस मसजिद का प्रसिद्ध नाम 'चार उँगली मसजिद' है।

एक और मसजिद झाँझरी मसजिद है। यह भी गोमती नदी के तट पर है। इसका नाम झँझरी (जाली) पर रखा गया है। इसे इब्राहीम शाह शर्क़ी ने स्वयं बनवाया था। इसे मुक्काघाट के पास प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर जयचन्द्र के स्थान पर बनवाया गया था। अब सामने के भाग को छोड़ कर और कुछ अवशिष्ट नहीं रह गया है।

१४४०-१४५६ की एक और मसजिद है। इसका नाम बीबी राजी या लाल दरवाज़ा मसजिद है। इसके बड़े दरवाज़े को सिन्दूर से रंगा गया है जो कि एक महल का था जिसे बीबी राजी ने बनवाया था। बीबी राजी मुहम्मदशाह शर्क़ी की बेगम थी। यह सब मसजिदों से छोटी है। लाल दरवाज़ा मसजिद हिन्दुओं के ढंग पर बनाई गई है।

जामा मसजिद सबसे बड़ी मसजिद है। इसके निर्माण के विषय में बहुत-सी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। यह मसजिद अताला मसजिद के नक्शे पर बनी हुई है। इसके पाँच भाग हैं। इसका गुम्बज कला का अद्भुत नमूना है। स्तम्भों के कमरों को 'छत', बीच के कमरे को 'गुम्बद' और किनारे के कमरों को 'छपरा' कहा जाता है। छतों पर दूसरी मंज़िल है। ऊपर के कमरों में

झँझीरी या जाली है।

इन मसजिदों में हिन्दू और मुसलमान दोनों शैलियों का मेल है। यह निर्विवाद है कि इन मसजिदों को हिन्दू और बुद्ध मन्दिरों को तोड़ कर उनकी सामग्री से बनवाया गया यद्यपि पत्थरों को काट कर फिर ठीक किया गया।

इन मसजिदों के विषय में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें जो अनुलेख प्राप्त होते हैं वे सब नागरी अक्षरों में हैं। एक मसजिद के बन जाने पर वे उस पर अपना नाम और तारीख़ लिख देते थे जब कि उसका निर्माण पूर्ण हो जाता था। सजाने की समस्त कला हिन्दू है। कमल का चिह्न इसका प्रमाण है और क़िबलों (मक्का की दिशा) पर बौद्ध घण्टों पर अल्लाह का नाम उत्कीर्ण है। फ़रगुसन इसका कारण यह समझता है कि मसजिदों के बनानेवाले कारीगर हिन्दू थे या वे नव-मुस्लिम हिन्दू थे जो निर्माणकला में अपनी पुरानी परम्पराओं का अनुसरण करते थे।"

॥

तोरुदत्त : उन्नीसवीं सदी की भारतीय कोकिल

अंग्रेज़ी दैनिक 'स्टेट्समैन' में श्रीयुत इज्जत यार खाँ का 'तोरुदत्त : उन्नीसवीं सदी की भारतीय कोकिल' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें से निम्न अंश यहाँ दिया जा रहा है :

"तोरुदत्त (१८५६-७७) को आधुनिक भारतीय आँग्ल कविता का प्रवर्त्तक कहना सर्वथा उचित है। डॉ० अमरनाथ झा ने एक स्थल पर लिखा है : "एक यूनानी विचारक ने कहा है कि जिनको देवता प्यार करते हैं वे कम उम्र में मर जाते हैं और बहुत-से लोग इस प्रकार कीर्ति के उच्च शिखर पर पहुँचने से वंचित रह जाते हैं।" यह कथन तोरुदत्त के सम्बन्ध में अक्षरशः सही जान पड़ता है।

जन्म से ही वह कोमल और क्षीणकाय थी। अपनी संतान के अतिशय प्रेमी पिता के संरक्षण में वह पली जिसने उसका पूरी सावधानी से पालन किया और उसे कभी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया। यद्यपि उसका जन्म हिन्दू घराने में हुआ था परन्तु शीघ्र ही उसके पिता ईसाई बन गए थे। उसने पुस्तकें पढ़ कर और लोगों से सुन कर हिन्दुओं की पौराणिक गाथाओं और लोक-कथाओं से परिचय प्राप्त किया था। उसने यूरोप में शिक्षा प्राप्त की और उसके हृदय में इंग्लैण्ड लौटने की प्रबल इच्छा बनी रहती थी। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह संस्कृत की ओर आकृष्ट हुई और घण्टों संस्कृत के व्याकरण के जटिल नियमों को सीखने में बिताए। उसने फ्रेंच और अंग्रेज़ी भाषा में पुस्तकें लिखीं यद्यपि स्वयं अपनी मातृभाषा में नहीं लिखा और इन दोनों भाषाओं में उसकी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। जो लोग उसे जानते थे उनके हृदयों में तोरुदत्त ने अपने अत्यन्त सौम्य व्यक्तित्व की ज्वलन्त स्मृति छोड़ दी है। बाइस वर्ष की कम उम्र में तोरुदत्त का असामयिक निधन उस दुःखान्त जीवन का उदाहरण है जब व्यक्ति अपने कार्य को पूर्ण करने से पहले ही मृत्यु की अँधेरी गुफ़ा में प्रवेश कर जाता है।

इस कोकिल की वाणी अत्यन्त मधुर परन्तु करुणा से पूर्ण थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी दूसरे लोक से वह कुछ समय के लिए इस धरती पर आई है। मृत्यु की छाया उसके जीवन पर बहुत जल्दी पड़ने लगी थी और जब मौत आई तो उसके लिए वह तैयार थी। परन्तु किसको यह सोच कर पीड़ा का अनुभव नहीं होगा कि साहित्यिक अपने को अभिव्यक्त करने से पहले ही एक श्रेष्ठ प्रतिभा और महान् व्यक्तित्व का इतना जल्दी अन्त हो गया।

तोरुदत्त की सर्वप्रथम पुस्तक 'फ्रांस के खेत से काटी हुई फ़सल' (A Sheaf Gleand in French Fields) का प्रकाशन १८७६ में हुआ था और उसे उसने अपने पिता को समर्पित किया था। इस पुस्तक में सत्तर या अस्सी लेखकों की रचनाओं के अनुवाद हैं और विक्टर ह्यूगो की तीन कविताओं के अनुवाद दिए गए हैं। कुछ कविताओं—प्रायः आठ का अनुवाद तोरु की बहिन अरुदत्त ने किया था। इस पुस्तक से तोरुदत्त का फ्रेंच साहित्य से घनिष्ट परिचय प्रकट होता है।

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि इस पुस्तक में फ्रेंच साहित्य के रोमांटिक-युग की कविताओं के अनुवाद प्रकाशित किए गए हैं यद्यपि कुछ ऐसे कवियों की कविताएँ भी संकलित हैं जिनका रोमांटिक आन्दोलन से सम्बन्ध नहीं था। शीघ्र ही इस पुस्तक का दूसरा और तीसरा संस्करण भी प्रकाशित हुआ। तीसरे संस्करण में एडमण्ड गूज़ ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी।

इस पुस्तक के प्रथम संस्करण ने फ्रांस में अन्द्रे थूरिएट का ध्यान आकर्षित किया जिन्होंने "Revue des

Deux Mondes" में उसकी समालोचना प्रकाशित की। इंग्लैण्ड में एडमण्ड गूज़ ने भी 'दी एग्जामिनर' में इस पुस्तक का परिचय प्रकाशित किया। डन ने इस पुस्तक-समालोचना का मनोरंजक विवरण लिखा है : "श्री एडमण्ड गूज़ 'दी एग्जामिनर' के कार्यालय में बैठे थे और पत्र के सुप्रसिद्ध सम्पादक विलियम मिण्टो से शिकायत कर रहे थे कि नवीन प्रकाशनों में कोई वास्तव में अच्छी पुस्तक ढूंढ़ने से भी नहीं मिलती। जिस समय वे यह कह रहे थे उसी समय एक डाकिया हिन्दुस्तान से एक पैकेट लेकर आया जिसमें अजीब रंगवाली एक पुस्तिका थी जो भवानीपुर के 'सप्तिक-संवाद' प्रेस में मुद्रित हुई थी। जिन लोगों को कलकत्ते के प्रेसों की छपाई और जिल्दसाजी की जानकारी है वे समझ सकते हैं कि जिस समय लंदन निवासी पत्र-सम्पादक ने नारंगी रंग के आवरण-पृष्ठवाली यह पुस्तक उस पर छपे हुए रहस्यपूर्ण नामों को पढ़ाते हुए समालोचक की ओर बढ़ाई उस समय उसे कितना विस्मय हुआ होगा। मिण्टो ने वह पुस्तक श्री गूज़ की ओर बढ़ा दी जिन्होंने विक्टर ह्यूगो की एक कविता का अनुवाद तत्काल पढ़ा :

"अब भी तुम्हारा द्वार बंद है : पूरब से हवा
चलने लगी है
प्रातःकाल की निर्बंध और प्रफुल्ल हवा !
जिस क्षण उपवन में गुलाब
आँख खोलता है क्या उसी क्षण
तुम्हें भी नहीं उठ जाना चाहिए ?
तुम्हारी राह देख रहे हैं
प्यार, प्रकाश और गीत !
ऊपर आकाश से बिखर रहा है
गहरा, लाल प्रकाश
सुदृढ़ देवदार वृक्ष पर लावा
के कंठ में गीत फूटा है
और मेरे हृदय में सच्चा प्रेम
उमड़ रहा है
क्यों हम अपनी प्रकृति के लक्ष्य से
अनजान बनें ?
कहो क्यों स्वयं अपने भाग्य के
साथ विश्वासघात करें ?
क्या मेरा प्रेम तुम्हारी आत्मा के लिए
नहीं बना है ?
क्या तुम्हारा सौन्दर्य मेरी आँखों की
प्यास बुझाने के लिए नहीं है ?
अब अधिक मत सोओ
प्रिय सुनो
मैं तुम्हारी इन्तजार में खड़ी हूँ
और रो रही हूँ
परन्तु तुम कहाँ हो ?"

एडमण्ड गूज़ ने भूल से यह अनुवाद तोरुदत्त समझा था परन्तु इसका अनुवाद अरुदत्त ने किया था ई. जे. थोम्पसन ने सबसे पहले इस भूल को पहचाना आलोचक के ध्यान को आकृष्ट करने के लिए इन पंक्ति में पर्याप्त सौन्दर्य था।"

समालोचना करते समय पुस्तक की प्रशंसा की गई थी। अनुवाद में प्रौढ़ता के अभाव की ध्यान जाना स्वाभाविक था। कवयित्री अभी दिन के लिली के फूल की तरह अठारह वर्ष की मुग्ध अवस्था में ही थी। श्री गूज़ ने लिखा : "The Shea Gleand in French Fields" निश्चय ही की अपरिपक्व रचना है। वह शक्ति और कमज़ोरी आश्चर्यजनक सम्मिश्रण है। कमज़ोरी निश्चय ही बड़ी कठिनाइयों को पार कर जाती है और प्रतिभा अज्ञान के सामने घुटने टेक देती है। यह कविताएँ लिखी गईं यही तथ्य कवयित्री की असाधारण प्रतिभा का द्योतक है और हम उनकी असमानताओं पर आश्चर्य करना भूल जाते हैं। अंग्रेज़ी पद्य कहीं कहीं बहुत सुंदर हैं परन्तु अधिकांश में हमारे यहाँ के कविता के नियमों की अवहेलना की गई है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह हिन्दू कवयित्री स्वयं अपने ही लिए गा रही है और उसका संगीत अंग्रेज़ी कानों को मधुर नहीं प्रतीत होता।" परन्तु समालोचक ने अन्त में उत्साहपूर्ण शब्दों में लिखा, "यदि वर्त्तमान फ्रेंच साहित्य किसी कारण सम्पूर्णतया नष्ट हो जाए तो इस हिन्दुस्तानी पुस्तक के आधार पर बहुत-सी श्रेष्ठ कविताओं का पुनर्निर्माण करना असम्भव नहीं होगा। संक्षेप में सांस्कृतिक विकास के मार्ग में यह एक महत्त्वपूर्ण क़दम है।"

तोरुदत्त ने फ्रेंच भाषा में "Le Journal de Medemoi Selle d' Arvers" नामक एक उपन्यास भी लिखा। उसने अंग्रेज़ी में एक अपूर्ण प्रेम-कथा "बियनका या स्पेन की नवयुवती" लिखी। उसकी मृत्यु

पश्चात् उसकी मौलिक कविताओं का एक संग्रह 'प्राचीन वीर गाथाएँ और हिन्दुस्तान की लोक-कथाएँ' (Ancient Ballads & Legends of Hindustan) प्रकाशित हुआ। इनमें अधिकांश कथाएँ भारतीय पुराणों से ली गई हैं और केवल कुछ में उसकी मनःस्थितियों या व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है।

तोरुदत्त ने पूर्ण सहृदयता के साथ हिन्दू जनश्रुतियों और महाकाव्यों की कथाओं को अपनाया और वह महत्त्वपूर्ण प्रथम आंग्ल-भारतीय कवयित्री थी जिसने भारत के हृदय को और भारतीय वातावरण को सच्चाई के साथ अंग्रेजी में अभिव्यक्त किया। उसने अपने विचारों पर अंग्रेजी रंग नहीं चढ़ने दिया। उसकी कविताओं में अंग्रेजी विचारों और जीवन का अनुकरण नहीं है वरन् अपने देश की सांस्कृतिक परम्परा का गर्व उनमें स्पष्ट झलकता है। उसकी कविताओं में मौलिकता की सुगंधि है जिसने १६ वीं सदी के बंगाली साहित्य के लिए अंग्रेजी में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया।

तोरुदत्त की अधिकांश कविताओं में आत्माभिव्यक्ति नहीं मिलती। वे प्रधानतया वर्णनात्मक हैं। 'दी केजुएरिना ट्री' (The Casuarina Tree) में उनके शैशव की स्मृतियाँ मूर्त्तिमान हो उठी हैं। 'दी लोटस' (The Lotus) में उन्होंने कमल की उत्पत्ति का वर्णन किया है। यह एक सॉनेट है और इसमें तोरुदत्त का सॉनेट पर जो अधिकार दिखाई देता है इसकी तुलना टेनीसन के सॉनेट 'अकबर'स ड्रीम', (Akbar's Dream) से की जा सकती है। उसने अतुकान्त छंद भी लिखे। इन कविताओं में प्रकृति का बहुत सुन्दर चित्रण मिलता है। उसकी वर्णन करने की प्रतिभा अत्यन्त शक्तिशाली है। जनश्रुति पर आधारित उसकी कविता 'सीता' में यम का चित्रण इस प्रकार किया गया है :

"उसके सिर पर पहना हुआ मुकुट
धुंधले प्रकाश में भी चमचमा रहा था
उसके गले का दुपट्टा बहुत नीचे तक
लटक रहा था
वह कमर में सुनहला पट्टा बांधे हुआ था
उसका चर्म काँसे की तरह काला था
उसका चेहरा लाल, चमकीला फिर भी गंभीर था
उसकी आँखों में प्रेम और लालित्य भरा था
परन्तु वे इतनी तेज़ चमक रही थीं कि
उन्हें देख कर हृदय में भय उत्पन्न होता था।"

यद्यपि तोरुदत्त को पाश्चात्य शिक्षा मिली थी और धर्म से वह ईसाई थी परन्तु उसने भारतीयता का कभी त्याग नहीं किया। उसकी कविताओं में भारतीय दृष्टिकोण के प्रतिनिधि पद जहाँ तहाँ बिखरे मिलते हैं। वेदान्त का उसके काव्य पर स्पष्ट प्रभाव है। सीता, सावित्री, प्रह्लाद, ध्रुव आदि की पौराणिक कथाओं का उसने भावुकता और हृदय की सच्चाई के साथ वर्णन किया है। हिरण्यकश्यप के यह पूछने पर कि देवता कहाँ हैं—क्या वे मर गए हैं या मेरे भय से काँप कर छुप गए हैं, प्रह्लाद उत्तर देता है :

"परमात्मा केवल एक है
वह साकार है या निराकार
मैं यह नहीं जानता और न
यह जानने की इच्छा रखता हूँ
वह उस प्रकाश में रहता है
जिसके सामने सूर्य का प्रकाश
अंधेरा है, वह अपने
नीचे सबको देखता है परन्तु
स्वयं किसी को नहीं दिखाई देता।"

प्राचीन काल की इन अर्द्ध विस्मृत कथाओं के प्रति उपेक्षा रखनेवाले व्यक्ति चाहे उन्हें असम्भव और चमत्कारिक कह कर टाल दें परन्तु तोरुदत्त का इन कथाओं के साथ विशेष मानसिक लगाव है। एक कविता के अन्त में वह कहती है :

"मैं जो कथा कह रही हूँ
वह चाहे बेवकूफ़ी से भरी हो
और आज के प्रगतिशील समय
के उपयुक्त न हो
परन्तु मैंने उन ओठों को
प्यार किया है
जिन्होंने मुझे यह कथाएँ कही हैं
अतः इन्हें मेरे गीतों के बीच में स्थित
रहने दो।"

तोरुदत्त की कविताएँ प्रेम और कोमल भावनाओं की प्रतीक हैं, वे चिर नवीन हैं।"

सम्पादकीय

क्या अंग्रेज़ी के कारण ?

किसी प्रकार की अतिशयोक्ति क्यों न हो वह तभी तक अच्छी और सहृदय-समाज में समादृत होती है जब तक कि वह अपने आपको समुचित सीमाओं में रखती है। जब कोई कवि अपनी कविता में इस प्रकार की अतिशयोक्ति करता है कि वह अपनी सीमाओं का उल्लंघन कर जाता है तब वह उससे अपने स्वाभाविक अर्थ और रस को उत्पन्न न कर हास्य-रस को उत्पन्न करता है और स्वयं उपहासास्पद हो जाता है इसी प्रकार जब कोई राजनीतिज्ञ अपनी किसी बात को इस प्रकार बढ़ा-चढ़ा कर कहता है कि वह अपनी स्वाभाविक मर्यादा का उल्लंघन कर जाती है तब वह बात न केवल एक प्रोपेगैण्डा-सी प्रतीत होने लगती है अपि तु एक प्रकार की दूषित मनोवृत्ति का भी प्रदर्शन करती है जिसका परिणाम आशा से विपरीत होता है। हमारे देश में 'अंग्रेज़ी' के महात्म्य को प्रदर्शित करने के लिए पिछले कुछ दिनों से हमारे राजनीतिज्ञों में होड़-सी लग गई है। वे हमारे देश में अंग्रेज़ी के ज्ञान की आवश्यकता को साधारण शब्दों में न कह कर अतिशयोक्तिपूर्ण असाधारण शब्दों में अभिव्यक्त कर रहे हैं। "अंग्रेज़ी तो हमारी भाषा है" एक राजनीतिज्ञ कहते हैं। "अंग्रेज़ी को अब अंग्रेज़ों की भाषा नहीं कहा जा सकता—वह तो अब विश्व की भाषा है"—दूसरे राजनीतिज्ञ कहते हैं। इन सब राजनीतिज्ञों से आगे बढ़ कर बम्बई प्रदेश की कांग्रेस कमेटी के प्रेज़ीडेण्ट श्री एस. के. पाटिल ने एलेग्ज़ेण्ड्रा गर्ल्स इन्स्टीट्यूशन की एक सभा में यहाँ तक कह दिया : "......Our country was in the map of the world, not because we had a large population or that we had an oriental heritage but because we still had with us that international language-English" "......हमारा देश आज दुनिया के नक़्शे पर इसलिए नहीं है क्योंकि हमारे देश की विशाल जन-संख्या है या इसलिए क्योंकि हमारे पास प्राचीन सांस्कृतिक और साहित्यिक उत्तराधिकार है परन्तु क्योंकि हम अभी तक अंग्रेज़ी बोलते हैं जो कि एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है..।" उपर्युक्त कथन का सीधा-सादा अर्थ यह है कि हमारे देश की पूछ या उसका जो कुछ भी महत्व है वह उसके अपने कारण नहीं है—परन्तु अंग्रेज़ी के कारण है और यदि दुर्भाग्य से हमारे देश का सम्बन्ध अंग्रेज़ी से टूट गया है हम विश्व में कहीं के न रह जाएँगे। कल संभवतः हमारे देश का कोई महान् राजनीतिज्ञ यह कहेगा कि भारतवर्ष का विश्व में जो कुछ आदर है वह इसलिए क्योंकि भारत में अंग्रेज़ों का प्रभुत्व रहा है और हमारे देश के पास सबसे बड़ी सम्पत्ति यही है जो कि अंग्रेज़ हमारे पास उत्तराधिकार के रूप में छोड़ गए हैं।

इन राजनीतिज्ञों की दृष्टि विश्व के ऊपर तो पड़ती है और विश्व में भी उन देशों पर जहाँ अंग्रेज़ी बोली और समझी जाती है—परन्तु अपने देश पर नहीं पड़ती। हमारे देश की असंख्य जनता निरक्षर और अशिक्षित है—वह अपनी मातृभाषा में ही अपने विचारों को अभिव्यक्त नहीं कर सकती। क्या उनके लिए अंग्रेज़ी का कुछ महत्त्व हो सकता है और क्या यदि वे अंग्रेज़ी में बोलने लग जाएँगे तो उनकी पूछ या उनका आदर विश्व में बढ़ जाएगा? सत्य तो यह है कि जब हमारी आँखों में ही हमारी इज़्ज़त कुछ नहीं है तो हमारी इज़्ज़त दूसरों की आँखों में क्या हो सकती है? भारतवर्ष का आदर संसार में यदि इस कारण है कि वह अभी तक अंग्रेज़ी बोल सकता है तो इसका आदर उस समय तो और भी अधिक होना चाहिए था जब कि अंग्रेज़ों का इस देश में शासन था और अंग्रेज़ी का हर तरफ़ बोलबाला था। भारतवर्ष का आदर विश्व में आज इसलिए है क्योंकि वह एक स्वतंत्र देश है और क्योंकि उसकी कला, संस्कृति और सभ्यता प्राचीन और महान् है अंग्रेज़ी के कारण नहीं। अंग्रेज़ी तो और भी बहुत से देशों में बोली जाती है फिर दोनों देशों में अंग्रेज़ी की समानता होते हुए भी भेद क्यों है और दोनों का समान आदर क्यों नहीं है? हमारे ही पास में हमारे देश का पड़ोसी देश है—क्या विश्व में उसकी पूछ या इज़्ज़त अंग्रेज़ी के कारण है? यदि हमारे राष्ट्र की इज़्ज़त या पूछ विश्व में इसलिए है क्योंकि हमारे देश अभी तक अंग्रेज़ी बोलता है तो उसकी पूछ और इज़्ज़त जितनी जल्दी समाप्त हो जाए उतनी ही हमारे और हमारे देश के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगी।

अंग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम हटाने या उसको एक अनिवार्य विषय न रखने का यह अर्थ नहीं है कि हमारे देश के विद्यालयों या विश्वविद्यालयों में अंग्रेज़ी को कोई स्थान न

दिया जाएगा। अब वह समय चला गया है जब कि भारतवर्ष में अंग्रेज़ी को वही महत्व प्राप्त हो सकेगा जो कि अंग्रेज़ों के शासनकाल में था। यदि पाटिल जैसे राजनीतिज्ञ यह समझते हैं कि वे अब इस देश में अंग्रेज़ों के प्रभुत्व के चले जाने के पश्चात् अंग्रेज़ी के प्रभुत्व को स्थिर रख सकते हैं तो वे ग़लती पर हैं। समय बदल चुका है और अब पुराना समय वापस नहीं आ सकता। यदि अंग्रेज़ी का इतना ही बड़ा महत्व था तो अंग्रेज़ यहाँ से चले कैसे गए? हम अंग्रेज़ी के स्तोत्रपाठक राजनीतिज्ञों से पूछते हैं कि क्या विश्व में इंग्लैण्ड की पूछ इसलिए है क्योंकि वहाँ अंग्रेज़ी बोली जाती है? दुर्भाग्यवश यदि अन्य दृष्टियों से विश्व में इंग्लैण्ड की वह स्थिति न रहे जो कि आज है तो क्या अंग्रेज़ी बोलने के कारण वह विश्व में अपनी इस स्थिति को क़ायम रख सकेगा? क्या अमरीका की पूछ या इज़्ज़त विश्व में इस कारण है क्योंकि अमरीका में अंग्रेज़ी बोली जाती है? यदि आज अमरीका इतना शक्तिशाली, समृद्ध और समुन्नत देश न रहे तो क्या अंग्रेज़ी बोलने के कारण अमरीका महान् बना रह सकेगा? इंग्लैण्ड और अमरीका को जन-साधारण के असाधारण सक्रिय जीवन और लोकसत्ता की जीवित परम्पराओं ने महानता प्रदान की है—अंग्रेज़ी ने नहीं। अंग्रेज़ी में जो कुछ महानता है वह इन देशों के जीवन की महानता के कारण ही है—यह इन देशों का उन्नत जीवन है जो अंग्रेज़ी को जीवन प्रदान करता और महान् बनाता है। जिस दिन इन देशों के जीवन में शक्ति और महानता नहीं रह जाएगी उस दिन अंग्रेज़ी की महानता भी भूतकाल की वस्तु बन जाएगी।

हमारा यह सब लिखने का तात्पर्य कदापि नहीं है कि हम अंग्रेज़ी भाषा के महत्व को स्वीकार नहीं करते या हम अपने देश में अंग्रेज़ी की शिक्षा की आवश्यकता को अनुभव नहीं करते। हमारे देश की शिक्षा में अंग्रेज़ी को उचित स्थान अवश्य प्राप्त होना चाहिए और इससे किसी भी समझदार व्यक्ति का विरोध नहीं हो सकता। प्रश्न यह है कि क्या अंग्रेज़ी को अब उसका पुराना स्थान या महत्व प्राप्त हो सकता है? यदि आज भी हमारे देश में अंग्रेज़ी को वही स्थान दिया गया जो अंग्रेज़ों की सत्ता के समय था तो हम प्रदेशीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा को न तो उनका समुचित स्थान प्रदान कर सकेंगे और न इन भाषाओं की समुन्नति और विकास संभव हो सकेगा। भाषा की शक्ति जन-जीवन की शक्ति है और जन-जीवन को अभिव्यक्तिपूर्ण और शक्तिशाली बनाने के लिए हम जन-सत्ता के युग में अपनी भाषाओं की उपेक्षा नहीं कर सकते।

देरी या जल्दी ?

अभी पिछले दिनों नागरी-प्रचारिणी-सभा, बनारस की हीरक-जयन्ती मनाई गई। इस अवसर पर हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों ने इस प्रकार के विचार अभिव्यक्त किए कि हिन्दी को हमारे देश की राष्ट्रभाषा बनाने में असाधारण विलम्ब किया जा रहा है। १५ वर्ष की अवधि में ज्यों ज्यों समय की कमी होती जा रही है। राष्ट्रभाषा की स्थिति उसी गति से दृढ़ नहीं हो रही है और यदि यही अवस्था रही तो १५ वर्ष के पूर्ण हो जाने के पश्चात् भी राष्ट्रभाषा को उसका उचित स्थान प्राप्त न हो सकेगा, इसलिए अब और देरी नहीं की जानी चाहिए। दूसरी ओर हमारे देश के बहुत-से राजनीतिज्ञ यह अनुभव कर रहे हैं कि भाषा के विषय में हिन्दीवाले उजलत या शीघ्रता कर रहे हैं। भाषाओं का प्रश्न बड़ा नाज़ुक प्रश्न है। इस समस्या को यदि सावधानी से हल न किया गया तो भाषा का प्रश्न और भी अधिक जटिल बन जाएगा और देश की एकता को खतरा उत्पन्न हो जाएगा। अन्ततः राष्ट्रभाषा की आवश्यकता देश की एकता के लिए ही तो है परन्तु यदि इस प्रश्न के उठाने से हमारे देश की एकता ख़तरे में पड़ जाए तो हम राष्ट्रभाषा के कार्य को आगे नहीं बढ़ा सकेंगे। हमें इस विषय में किसी प्रकार की असावधानी या शीघ्रता से काम नहीं करना चाहिए। पूर्वी बंगाल में मुस्लिम लीग की पराजय के कारणों में बंगाली और उर्दू का पारिस्परिक विरोध एक कारण है। पूर्वी बंगाल पर बंगाली के विरोध में उर्दू को लादने का प्रयत्न किया गया और कहा जाता है इसका परिणाम हुआ कि पूर्वी बंगाल में इतना तीव्र मतभेद हुआ जिससे मुस्लिम लीग का अधः पतन हो गया। यदि हम भाषा के विषय में शीघ्रता से कार्य करेंगे तो कहीं हमारे देश में भी वही स्थिति न उत्पन्न हो जाए जो पूर्वी पाकिस्तान में हुई। इधर राष्ट्रभाषा की उन्नति में दिलचस्पी रखनेवाले यह समझ रहे हैं कि राष्ट्रभाषा के प्रसार और उसको उचित स्थान दिलाने में अनावश्यक देरी की जा रही है और यदि यही अवस्था रही तो १५ वर्ष की अवधि के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी वर्त्तमान स्थिति में कुछ विशेष परिवर्त्तन नहीं होगा। इसमें रुकावटें

उत्पन्न करने के लिए एक ओर अंग्रेज़ी है और दूसरी ओर प्रदेशीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा में स्पर्धा और विरोध। जब जब राष्ट्रभाषा का प्रश्न उठाया जाता है प्रदेशीय और अंग्रेज़ी भाषा का प्रश्न खड़ा हो जाता है। समय के व्यतीत हो जाने से या इस समय इस प्रश्न को टाल देने से क्या स्थिति में कुछ विशेष परिवर्तन या सुधार हो सकेगा?

देरी का यह अर्थ तो कदापि नहीं हो सकता कि इस विषय में किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए और धीरे चलने का अर्थ बिलकुल न चलने के तो नहीं होने चाहिएँ। यदि इस समय अवस्थाएँ अनुकूल न हों तो अवस्थाएँ क्या स्वयमेव अनुकूल हो जाएँगी? धीरे चलने का यही अर्थ हो सकता है कि अवस्थाओं को कुशलता पूर्वक अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया जाए। अवस्थाओं को अनुकूल बनाने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रभाषा और प्रदेशीय भाषाओं में स्वास्थ्यकर और निकटतम सम्बन्ध स्थापित किए जाएँ, एक दूसरे के साहित्य में स्वतन्त्रता पूर्वक आदान-प्रदान हो, भारतीय भाषाओं को सीखने और सिखाने का यथासंभव प्रत्येक विद्यालय और विश्वा विद्यालय में प्रबन्ध हो और इन सब भाषाओं की लिपि और पारिभाषिक शब्दावलि एक हो जाए। शिक्षा-सचिवालय की ओर से यह तो घोषित कर दिया जाता है कि इस वर्ष हिन्दी के प्रचार के लिए इतनी धन-राशि स्वीकृत की गई है परन्तु राष्ट्रभाषा के प्रसार और समुन्नति के लिए क्या क़दम उठाए जा रहे हैं, इस दिशा में क्या संगठित प्रयत्न किए जा रहे हैं और उनकी योजनाएँ क्या हैं इस विषय पर कुछ विशेष प्रकाश नहीं डाला जाता। राष्ट्रभाषा के प्रसार और समुन्नति के लिए इस प्रकार की योजनाएँ बनाई जानी चाहिएँ जिससे भारतवर्ष की प्रादेशीय भाषाओं और हिन्दी में पारस्परिक सद्भावना उत्पन्न हो सके, एक भाषा दूसरी के विकास में सहायक हो सके और किसी भाषा में किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा या विरोधी भावनाएँ न रहें। राष्ट्रभाषा का प्रसार और उन्नति उसी अवस्था में हो सकती है जब कि भारत की प्रत्येक भाषा को स्वन्त्रतापूर्वक विकसित होने का अवसर प्राप्त हो और भाषाओं में पारस्परिक सहयोग की भावना हो। भाषाओं में पारस्परिक सहयोग की भावना के द्वारा राष्ट्रभाषा के प्रश्न को सुलझाना सुगम हो जाएगा और प्रत्येक राज्य राष्ट्रभाषा की उन्नति में उसी प्रकार अग्रसर होगा जैसे कि वह अपने प्रदेश की भाषा में होगा। जब तक अंग्रेज़ी के प्रति हमारा मोह है और जब तक अंग्रेज़ी की चकाचौंध बाकी है तब तक हम अपनी देशी-भाषाओं को न तो उनके ठीक स्वरूप में पहचान सकेंगे और न भाषा के प्रश्न को ठीक तरह हल कर सकेंगे। राष्ट्रभाषा में हिन्दी के साथ साथ इस देश की समस्त भाषाओं की उन्नति का प्रश्न स्वयमेव समाविष्ट है। हिन्दी का प्रश्न अपने में कोई अलग प्रश्न नहीं है और न उसे किसी प्रकार अलग बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस समय अवस्था कुछ इस प्रकार की हो गई है कि राष्ट्रभाषा के विषय में एक ओर हमारे राजनीतिज्ञ कह रहे हैं 'धीरे चलो', 'जल्दी मत करो', 'अभी समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए,' 'देरी करनी चाहिए' आदि और दूसरी ओर राष्ट्रभाषा के प्रेमी कह रहे हैं: 'समय बीतता जा रहा है', 'पहले ही बहुत देरी हो गई है', 'यदि भाषा का प्रसार या समुन्नति इसी गति से होती रही तो युगों के व्यतीत हो जाने पर भी राष्ट्रभाषा अपने उचित स्थान को प्राप्त न कर सकेगी', 'इसके लिए शीघ्र ही संगठित प्रयत्न होने चाहिएँ' और 'इसके लिए एक मन्त्रालय की स्थापना होनी चाहिए' आदि। यह अवस्था अब प्रतिदिन असहनीय होती चली जा रही है। यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इतने दिनों की प्रतीक्षा और विलम्ब ने इस प्रश्न को सुलझाने की अपेक्षा और भी अधिक उलझा दिया है। यह अवस्था अब बहुत दिन नहीं चल सकती। यह सत्य है कि प्रतीक्षा, देरी और समय से बहुत से प्रश्न हल हो जाते हैं परन्तु कई बार परिणाम विपरीत भी हो जाते हैं। देर हो या जल्दी यदि भाषा के प्रश्न को कुशलता, सद्भावना और पारस्परिक सहयोग से सुलझाया जाएगा तो न केवल यह समस्या हल हो जाएगी अपि तु इससे भारतीय भाषाओं की उन्नति और प्रगति में भी विशेष सहायता प्राप्त हो सकेगी। हमारे देश में भाषा का प्रश्न आज का प्रश्न नहीं है। इसे पहले भी हमारे देश के विद्वानों और राजनीतिज्ञों ने सुलझाया है। हमें इस प्रश्न का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करना चाहिए और उस आधार को भी दृष्टि में रखना चाहिए जिससे पहले इन भाषाओं में सहयोग और एकता को उत्पन्न किया गया था। निर्माणात्मक प्रयत्न करने से देरी या शीघ्रता का प्रश्न ही नहीं रह जाएगा।

Hyderabad State Bank

Constituted under the Hyderabad State Bank Act with Liability of Members Limited.

Paid-up Capital	..... O. S. Rs.		75,00,000.
Reserve Fund	..... ,,	,,	75,00,000.
Deposits as on 30-9-1953	..... ,,	,,	16,39,27,000.

Offers complete Banking Service through a network of 51 of its offices and through its correspondents all over India.

FOREIGN EXCHANGE BUSINESS OF ALL TYPES UNDERTAKEN.

Head Office : HYDERABAD-DECCAN.

OFFICES IN BOMBAY :

FORT BRANCH : New India Assurance Building, Mahatma Gandhi Road, Fort, Bombay.
HAMAM STREET BRANCH : 20, Hamam Street, Fort, Bombay.
MANDVI BRANCH : 262—270, Narsi Natha Street, Bhat Bazar, Bombay-9.
MADRAS OFFICE : 41, Linghi Chetty Street.

FOR FURTHER PARTICULARS APPLY TO ANY OFFICE OF THE BANK.

K. P. R. Menon,
Managing Director

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

Telephone : 4610 **[Estd. MARCH 1915]** Telegram : **DOMINBANK**

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :	*Head Office :*	*Branch Office :*
PATHERGATTI, UNIVERSITY BRANCH (ADIKMET)	SHAHRAH-E-OSMANI, HYDERABAD-DECCAN.	THUNGABHADRA PROJECT (MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at 1½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.
- SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
DEPUTY GENERAL MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
SUPERVISING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT.

पागलपन चिकित्सा-विज्ञान के लिए एक पहेली है

मनुष्य जन्मजात पागल नहीं होता

- वस्त्रों और व्यवहारों में अजीबपना
- खोई खोई-सी नज़र, उदासी और निराशा
- स्मरण शक्ति की हीनता, निर्णय शक्ति की कमी
- आत्म-संयम का अभाव, भ्रम, डर और प्रेतबाधा

ये पागल होने के पूर्व-लक्षण हैं।

इन्हें आरंभ में ही
विश्व-विख्यात दवाई "नवरत्न-कल्प" का सेवन कर के नष्ट कर दीजिए।

"नवरत्न कल्प"

(हीरा, मानिक, मोती, नीलम, पुष्पराग तथा अन्य बहुमूल्य नौ रत्नों का यौगिक)

आविष्कर्त्ता
कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति

विवरण के लिए लिखिए :

प्रबन्धक : नवरत्न कल्प फार्मेसी
जलंधर शहर (इंडिया)

फोन

तार : नवरत्न

अजन्ता

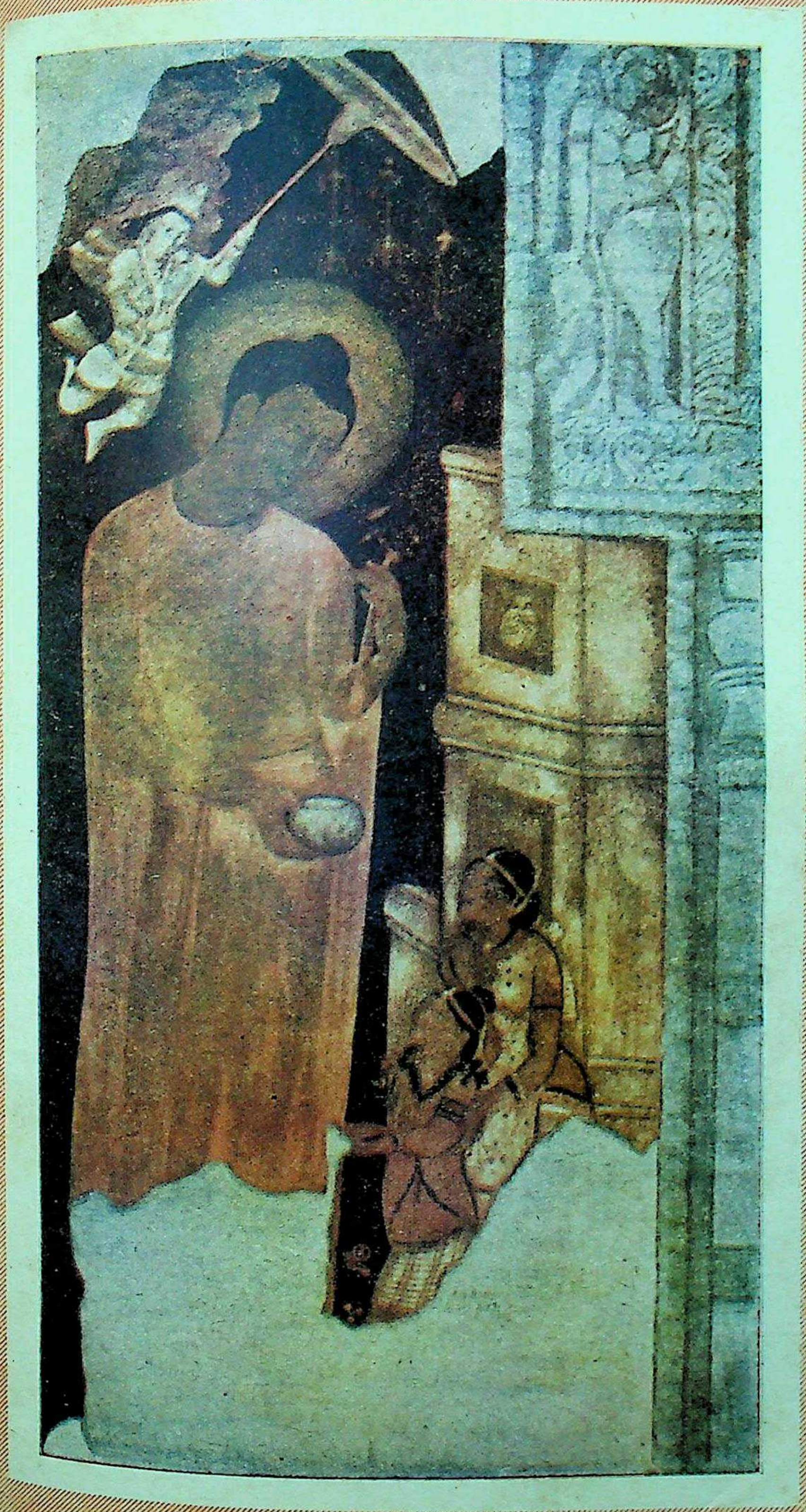

वर्ष ६ मई १९५४ अंक ५

ताज ग्लास वर्क्स

लिमिटेड

पो० आ० सनतनगर, हैदराबाद-द.

काँच के सामान के सर्वश्रेष्ठ निर्माता

सभी प्रकार की सुन्दर और मज़बूत काँच की बोतलें, ग्लोब

और

ग्लास प्राप्त करने का स्थान

मकान की सज़ावट और सौन्दय वृद्धि के लिए

सभी प्रकार के काँच का सामान

हैदराबाद आल्विन मेटल वर्क्स

लिमिटेड

सनतनगर, हैदराबाद-द. १८

सर्वोत्तम स्टील फर्निचर के निर्माता

हर प्रकार का फ़र्निचर

मकान, दफ्तर, दूकान और अस्पतालों के लिए

खरीदिए !

राष्ट्र की सुन्दरतम और मज़बूत बसों के निर्माता ।

जे० बी० गुलुकोस बिस्कुटों से

विहार के समय अल्प आहार का कार्यक्रम सरलता पूर्वक
सम्पन्न किया जा सकता है।

J.B.

जे० बी०
गुलुकोस बिस्कुट

जो कि
- * शुद्ध तथा उत्तम गेहूँ का मैदा
- * मलाईयुक्त दूध
- * गुलुकोस (जीवन शक्ति-प्रद)

से तैयार किये
जाते हैं।

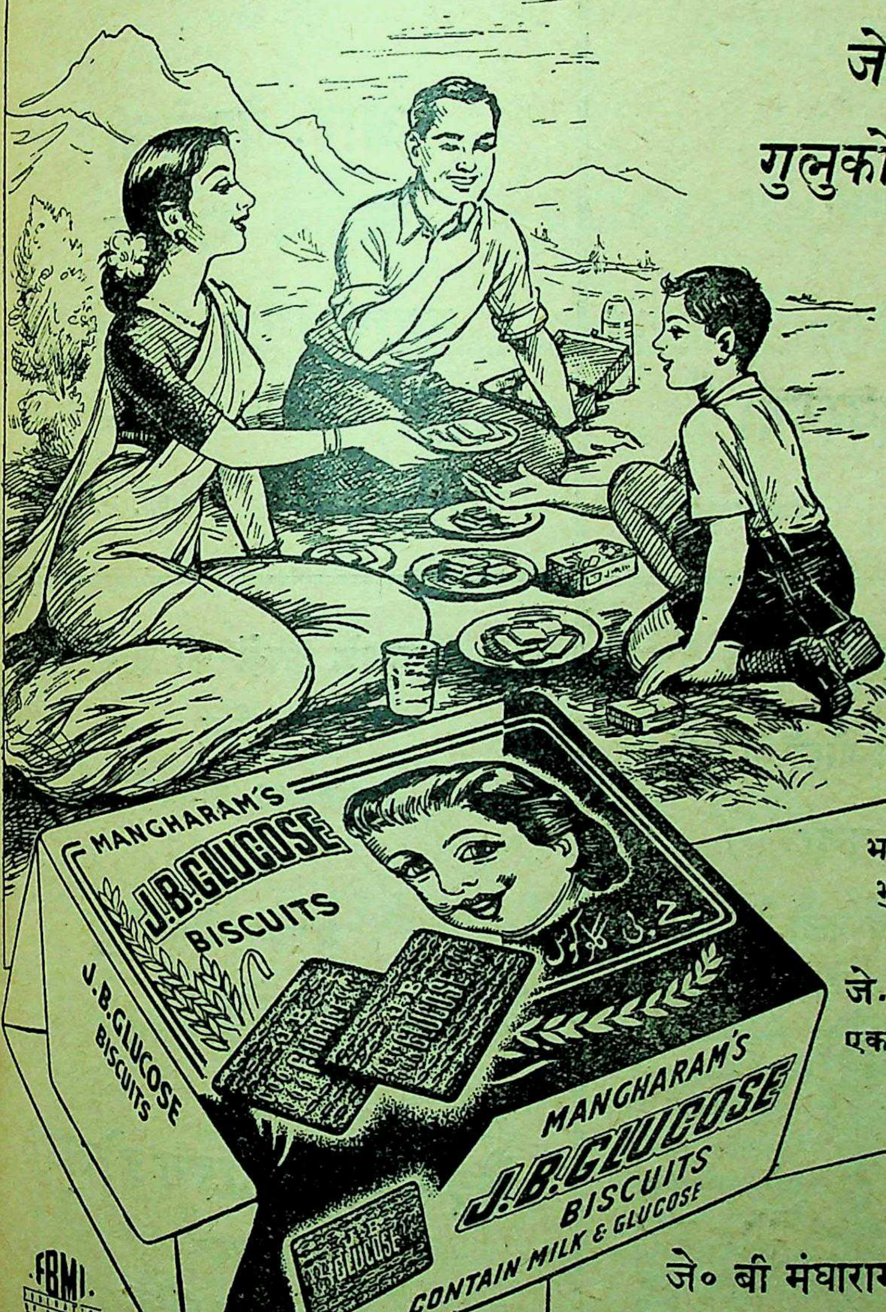
MANGHARAM'S
J.B. GLUCOSE
BISCUITS
J.B. GLUCOSE
BISCUITS
MANGHARAM'S
J.B. GLUCOSE
BISCUITS
CONTAIN MILK & GLUCOSE

भट्टी से निकले हुए ताज़े
भुरभुराहटयुक्त बिस्किट
के लिए
जे. बी. के सही चिह्न को
एक बार ज़रूर देख लीजिए!

जे० बी मंघाराम एण्ड कम्पनी
तालाब कट्टा, हैदराबाद (द०)

स्थानीय एजन्ट : के० मोतीराम एण्ड कम्पनी बेगम बाज़ार, आबिद रोड़, हैदराबाद
स्टेशन रोड़, सिकन्दराबाद

तार : फेन्सी पेपर फोन : ७३३२

हर प्रकार के

कागज़, छपाई और स्टेशनरी

सामान

के

थोक व्यापारी

●

गौली ईश्वरय्या

जनरल बाज़ार :: सिकन्दराबाद

इसे आप कभी मत भूलिए !

टुवीड्, गेबरडीन, पनामा, सिल्क शर्टिंग

आदि का हमारा नया स्टाक आपकी
पसन्द की अवश्य ही
पूर्ति करेगा ।

आर. पेण्टोजी
क्लॉथ मर्चेण्ट

पत्थरगट्टी, हैदराबाद (दक्षिण)

●

तार का पता:-'टुवीड्' फो. नं. ४७६१

हमेशा याद रक्खें ?

हमारे पास सोने की मोहरें तो नहीं

रबर की सुन्दर

मोहरें तैयार की जाती हैं ।

घर बैठे
आर्डर
भेज कर
सुन्दर
मोहरें
प्राप्त करें ।

सुंदर
रब्बर की मोहरें
हर प्रकार व हर
भाषामें बनाई जाति है
सुलतान बाजार
सन्मुख तार ऑफिस
हैद्राबाद - ८.

సుందర్
రబ్బరు ముద్రలు
అన్నివిధముల
అన్నిభాషలలో చేయ
బడును సుల్తాన్ బాజారు
తారాపీసు ఎదుట
హైద్రాబాద్.

Sunder
ALL KINDS OF RUBBER STAMP MAKERS
SULTAN BAZAR opp TELE OFFICE
HYDERABAD.

आपके कपड़ों की सुरक्षा
के लिए
सुन्दरतम बनियनों
एवं
मज़बूत मोजों
के निर्माता

दी
हैदराबाद फाइन होजरी
लिमिटेड
इण्डस्ट्रियल एरिया
आजमाबाद-हैदराबाद-दक्षिण.

FIRE!

ACCIDENT!

MARINE!

The Hyderabad United Insurance Company;

(*LIMITED*)

Sponsored by

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164.

ABID ROAD, HYDERABAD-Dn.

Telegram: **HUICOL** *Telephone:* **5579**

Chairman
L. N. GUPTA Esqr. I. A. S.

General Manager
H. D. MEHTA Esqr.

Branches :

BOMBAY, CALCUTTA, MADRAS, NIZAMABAD & MANCHIRIAL.

'HIND'

Eductaion

Start - in - Life

Marri..ge of your children

Assured without any

embarrassment

Besides a comfortable old age

for you

for All Types Of Insurance

Consult:-

THE

HYDERABAD CO-OPERATIVE

INSURANCE SOCIETY Ltd.

Bashir Bagh Road, Hyderabad-Dn.

सिकन्दराबाद में साहित्यिक पुस्तकों

का

एक मात्र प्रतिष्ठान

* **पुस्तक भवन,** *

११३/१ सरोजनी देवी रोड, सिकन्दराबाद

हिन्दी प्रचार सभा, सिकन्दराबाद

नगर शाखा द्वारा स्थापित

सभी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम, पुस्तकालयों के लिए

उत्तमोत्तम ग्रन्थ, और बाल-साहित्य

हमारी विशेषताएँ

❀

निम्न लिखित

प्रकाशकों की पुस्तकें थोक भाव में हमसे लीजिए:-

हिन्दी प्रचार सभा, विनोद पुस्तक मन्दिर,

हैदराबाद आगरा

हमारे सुविख्यात प्रकाशन

स्वामी विवेकानन्दजी की सुप्रसिद्ध पुस्तकें

भारत में विवेकानन्द : जैकेट सहित, सचित्र ५) "आज की परिस्थिति के उपयुक्त राष्ट्र-निर्माण संबन्धी वैध एवं ठोस विचारों से भरे, स्वामी जी द्वारा भारत में दिए गए भावयुक्त स्फूर्तिप्रद भाषण"

विवेकानन्द जी के संग में : आकर्षक जैकेट सहित ५।) "स्वामी जी के आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, कला-विषयक तथा भक्ति संबन्धी संभाषणों का रोचक, महान् शिक्षाप्रद तथा पथ प्रदर्शक संग्रह।"

पत्रावली : दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २=) "स्वामी जी के शक्ति सम्पन्न पत्रों का सङ्कलन।"

देववाणी : सचित्र, २=) "अमृततुल्य, आध्यात्मिक अन्तः प्रेरणा से भरे उपदेश।" शक्तिदाई विचार ॥=); भारतीय नारी ॥।); व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १=); मेरे गुरुदेव ॥=); विवेकानन्द जी की कथाएँ १।); कवितावली ॥=)

धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : दो भागों में, सजिल्द, आकर्षक जैकेट सहित, प्रत्येक का २॥।) "धर्म-जीवन की उलझनों का सरस भाषा में सूक्ष्म विवेचन करते हुए उनके परिहार का मार्ग दर्शाया है।"

विवेकानन्द-चरित : हिन्दी में स्वामी जी की एक मात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकट ६)

श्री रामकृष्ण लीलामृत : विस्तृत जीवनी, दो भागों में, महात्मा गांधी की भूमिका सहित, प्रत्येक का ५)

श्रीरामकृष्ण वचनामृत : तीन भागों में, संसार की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित, सजिल्द, जैकेट प्र. भा. ६); द्वि. भा. ६); तृ. भा. ७)

गीतातत्व : स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु भाई स्वामी शारदानन्द कृत, सुन्दर जैकेट सहित, २।=)

स्वामीजी की अन्यान्य लोकप्रिय पुस्तकें

ज्ञान योग३); भक्तियोग १।=); राजयोग ॥); कर्मयोग १॥=); प्रेम योग १।=); सरल राजयोग ॥); आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १।); हिन्दू धर्म १॥); धर्म रहस्य १); धर्म विज्ञान १॥=); हिन्दू धर्म के पक्ष में ॥=); शिकागो वक्तृता ॥=); मरणोत्तर जीवन ॥); स्वाधीन भारत जय हो १=); प्राच्य और पाश्चात्य १।); वर्तमान भारत ॥) समाजवाद १);

नए प्रकाशन : जाति, संस्कृति और समाजवाद १); चिन्तनीय बातें १); विविध प्रसङ्ग १=)

विस्तृत सूची पत्र के लिए लिखिए : श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली (अ) नागपुर—१ (म० प्र०)

'अजन्ता' की पुरानी फाइलें जिल्द बँध कर तैयार हो गई हैं

◆

'अजन्ता' का प्रकाशन अक्टोबर १९४९ से आरम्भ हुआ। विगत पाँच वर्षों में 'अजन्ता' ने हिन्दी साहित्य के भण्डार को बहुमूल्य रचनाओं से भरा है। 'अजन्ता' के अङ्क इन वर्षों में हिन्दी साहित्य की प्रगति को जानने के लिए संग्रहणीय हैं।

जिल्द में संगृहीत अङ्कों का वास्तविक मूल्य ही रखा गया है। ज़िल्द और डाक-व्यय मुफ्त। निजी और सार्वजनिक पुस्तकालय के लिए शीघ्र आर्डर भेजिए।

'अजन्ता', हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली, स्टेशन रोड, :: हैदराबाद-दक्षिण.

मैल का दुश्मन कपड़ों का दोस्त!

दाम में सस्ता प्रयोग में बढ़िया

हमारी ईमानदारी—ग्राहक का सन्तोष

इसलिए

★ सन्तोष बार सोप ★

(शुद्ध साबुन)

का ही हमेशा प्रयोग करें। सभी दूकानों से प्राप्त

एक बार ज़रूर आज़माइए

निर्माता :—जे० पी अण्ड कम्पनी

इण्डस्ट्रियल एरिया, हैदराबाद-दक्षिण.

कथा साहित्य में चरित्र चित्रण

का

महत्वपूर्ण प्रयोग

'मेघदूत' के महत्वपूर्ण प्रकाशन के बाद

प्रेरणा का छठा-सातवां अंक

'प्रेमचन्द के पात्र'

विशेषांक है

- * इस अंक में प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों के सभी महत्वपूर्ण पात्रों पर अधिकार पूर्ण लेख हैं।
- * विशेषांक का मूल्य लगभग ४) है।
- * प्रेरणा के स्थाई ग्राहकों के लिए वही मूल्य।

शीघ्र ही वार्षिक ग्राहक बन कर
इस सुविधा का लाभ उठाएँ।

आर्डर 'प्रेरणा' के पते से भेजिये।

प्रेरणा : सोजतीगेट, जोधपुर.

कल्पना

पढ़िए

जिसमें उच्चकोटि के साहित्यिकों और
कलाकारों की रचनाएँ आपको मिलेंगी।

कला प्रसंग : विनोदबिहारी मुखर्जी

सांस्कृतिक टिप्पणियाँ : दिनकर कौशिक

साहित्यधारा : इस स्तम्भ के अन्तर्गत पाठकों, लेखकों आदि द्वारा उठाए गए साहित्यिक प्रश्न आदि हैं।

पुस्तक समालोचना : "कल्पना" अपनी निर्भीक समीक्षा के लिए प्रसिद्ध है।

वार्षिक मूल्य १२) एक प्रति का १)

पृष्ठ संख्या ८०

८३१, बेगम बाज़ार हैदराबाद

मद्रास बिहार तथा पंजाब सरकार द्वारा
समस्त स्कूल तथा लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत

देशबन्धुः पुस्तकालय मथुरा एवं व्रज का निराला मासिक पत्र

* प्रधान सं० कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०
* सम्पादक—ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी
* स० सम्पादक—बैजनाथ दाणी

❀ देशबन्धु ❀

वार्षिक मूल्य ४-०-० :: एक प्रति ०-६-०

नमूना के लिए ०-६-० के टिकट भेजें

व्रज संस्कृति, व्रज की ललित कलाएँ, स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, रासलीला, रामलीला, भगत व्रज के लोक गीत, लोक कहानियाँ, वेशभूषा, लोक व्यवहार आदि पर सुन्दर लेख पढ़िए।

पता—व्यवस्थापक "देशबन्धु" कार्यालय
मथुरा (यू० पी०)

सस्ता, सरल, आकर्षक और शिक्षाप्रद
राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

- * कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।
- * हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।
- * देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं: मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व, आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)-छमाही ३)-एक प्रति ८ आना

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

टेलीफोन नं. ३५८४

वार्षिक मूल्य ८ रु.

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम, राष्ट्र-निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए **'सम्पदा'** सबसे उपयोगी पत्र है।

'सम्पदा' के योजना अंक में पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा है **वस्त्र उद्योग अंक** मूल्य १।) रु.

अभी से ग्राहक बनिए।

नमूने के लिए ।।।) आने के टिकट भेजिए।

मैनेजर **'सम्पदा'** *अशोक प्रकाशन मन्दिर*
रोशन-आरा रोड—दिल्ली

सम्पादक
मोहनलाल भट्ट
हृषिकेश शर्मा

राष्ट्रभारती

सस्ती, सुन्दर, साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका। इस पत्रिका को, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान् साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखा-चित्र और शब्दचित्र। बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, उर्दू, तामिल, तेलगु, कन्नड़. मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं।

वार्षिक चन्दा ६) रुपए। नमूने की प्रति १० आने मात्र।

ग्राहक बनाने वालों को विशेष सुविधा दी जाएगी

पता : व्यवस्थापक,
'राष्ट्रभारती' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
पो० हिन्दी नगर, वर्धा (मध्य प्रदेश)

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र

卐

दर्शन और मनोविज्ञान की
आधुनिक प्रवृत्तियों पर
प्रकाश डालनेवाला
हिन्दी में अपने ढङ्ग का
अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ सिद्धगिरि, बनारस

जीवन साहित्य

हिन्दी के उन मासिक पत्रों में से है जो

१. लोक रुचि को नीचे नहीं, ऊपर ले जाते हैं,
२. मानव को मानव से लड़ाते नहीं, मिलाते हैं,
३. सच्ची और स्थायी शान्ति को असंभव नहीं, संभव बनाते हैं,
४. आर्थिक लाभ के आगे झुकते नहीं, सेवा के कठोर पथ पर चलते हैं,

जीवन साहित्य की सात्विक सामग्री को छोटे बड़े, स्त्री-बच्चे सब निःसंकोच पढ़ सकते हैं। उसके विशेषांक तो एक से एक बढ़ कर होते हैं।

जीवन साहित्य विज्ञापन नहीं देता। केवल ग्राहकों के भरोसे चलता है। ऐसे पत्र के ग्राहक बनने का अर्थ होता है राष्ट्र की सेवा में योग देना।

वार्षिक शुल्क के ४) रु. भेज कर ग्राहक बन जाइए।

ग्राहक बनने पर मण्डल की पुस्तकों पर आपको कमीशन पाने की भी सुविधा हो जाएगी।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

युग की पुकार के समाधान के लिए

हैदराबाद चलिए !

जन जन के प्रतिनिधि आर्य समाज का

अष्टम सार्वदेशिक आर्य महा सम्मेलन

२८, २९, ३० मई १९५४

को धूमधाम से मनाया जा रहा है। गम्भीर परिस्थितियों के समय सम्मेलन का होना निश्चय ही महत्वपूर्ण है।

२४, २५, २६, २७ मई तक

आर्य समाज सुलतान बाज़ार की हीरक जयन्ती एवं गोमेध यज्ञ

१ गोरक्षा सम्मेलन
२ वेद सम्मेलन
३ संस्कृति सम्मेलन
४ समाज सुधार सम्मेलन
५ युवक सम्मेलन
६ आर्य वीरदल सम्मेलन
७ महिला सम्मेलन
८ वर्णाश्रम सम्मेलन
९ राजार्य सम्मेलन
इत्यादि का अपूर्व आयोजन

स्थान :—**प्रदर्शनी प्राङ्गण (नुमायशी मैदान)**

गांधी भवन, हैदराबाद-दक्षिण.

निवेदक

कविराज हरनामदास बी. ए.
प्रधान मन्त्री, सार्वदेशिक सभा

गंगाराम बी. एस्. सी.
स्वागताध्यक्ष

कोत्तूर सीतय्या गुप्त
स्वागत मन्त्री

Remember !

MODERN CAFE

Laxmi Nivas

BOARDING
&
LODGING

★

RASTRAPATI ROAD

SECUNDERABAD

दी चायना नीलगिरी टी इम्पोरियम
मोज़मजाही मार्केट के सामने
हैदराबाद-दक्षिण.

स्वादिष्ट शाकाहारी भोजन
और
आधुनिक युग की सुविधाओं के लिए
सुप्रसिद्ध होटल
अपेक्षतया कम दरें

फोन : ४३६० तार : **'माइकेफे'**

न्यू मैसूर केफे

रेस्टॉं, भोजन और ठहरने का प्रबन्ध
(शहर के बीच में)
नामपल्ली, स्टेशन रोड :: हैदराबाद-दक्षिण.

आपको हमारे पास एक से एक
बढ़िया नमूने की
ट्वीड़, सिल्क, बनारसी साडियाँ
और
हर तरह के उत्तम वस्त्र
प्राप्त कर सकेंगे।

*

आर० आर० गोपाल
जनरल क्लॉथ मर्चेण्ट
पत्थर गट्टी, हैदराबाद दक्षिण
स्थापना : १९१६
फोन नं. [illegible]

'आर्थिकसमीक्षा'

अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी के आर्थिक, राजनीतिक
अनुसंधान विभाग का पाक्षिक पत्र।

प्रधान सम्पादक : श्री आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल
सम्पादक : श्री हर्षदेव मालवीय

हिन्दी में अनूठा प्रयास :

आर्थिक विषयों पर विचारपूर्ण लेख
आर्थिक सूचनाओं से ओतप्रोत
भारत के विकास में रुचि रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए
अत्यावश्यक तथा पुस्तकालयों के लिए
अनिवार्य रूप से आवश्यक।

वार्षिक चन्दा : ५ रुपए * एक प्रति का ३। आना

व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग
अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी
७, जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली.

'अजन्ता'
की
परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद-द.

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर
इन्स्टीट्यूट आफ एशियन स्टडीज़, हैदराबाद-द.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुकर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल आफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

हिन्दी प्रचार सभा के कुछ प्रकाशन

★

बाल साहित्य

(१) **बालपद** : ले० श्री पं० वंशीधर जी विद्यालङ्कार — मूल्य ॥)
(२) **बालकों की कहानियाँ** : ले० श्री पं० श्रीरामजी शर्मा — मूल्य ॥)
(३) **गाँवों की कहानियाँ** : ले० श्री पं० रामनिरंजन जी पाण्डेय — मूल्य ॥)
(४) **दक्षिण के महापुरुष भाग १** : ले० श्री राजकिशोर जी पाण्डेय — मूल्य ॥)
(५) **हैदराबाद के ऐतिहासिक और कला-स्थल** : श्रीमती कमलारानी संघी. — मूल्य [illegible])
(६) **दो एकाँकी** : श्रीमती विमला लूथरा — मूल्य [illegible])
चाबुक *(कहानी-संग्रह)* : ले० श्री पं० विनायकराव जी कोरटकर विद्यालंकार — मूल्य १॥)
दक्खिनी का पद्य और गद्य : श्री पं० श्रीरामजी शर्मा — मूल्य ११)
तुलसीदास (नाटक) : ले० श्री पं० श्रीरामजी शर्मा — मूल्य १=)

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६ मई १९५४ अङ्क ५

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

प्रवन्ध सम्पादक

हरिकृष्ण पुरोहित एम. ए.

संचालक

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के
शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

तार : **हिन्दी** फोन : ५५५०

अनुक्रम

गीत
रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु० मुरलीधर श्रीवास्तव 'शेखर' १
पग बढ़ाता चला जा रहा
बालकृष्ण उपाध्याय २
किसान बाला
रमाकान्त श्रीवास्तव ४
बम्बई की शाम
अनन्त कुमार 'पाषाण' ६
गीत
रामानुग्रह प्रसाद 'शान्तिप्राण' ८
कवि और कविता
हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ९
विचारक मैकियावेली
रामनन्दन प्र० सिंह, एम. ए. १६
नियोजन काल में भारतीय रेलवे
अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार २२
बंगाली कहावतें
अनदर आगेवान २८
दार्शनिकों की उपहासप्रियता
रामशंकर भट्टाचार्य २९
गद्य गीत
विद्या मेहरोत्रा ३२
'गोविन्द रामायण' की रामकथा
परशुराम चतुर्वेदी ३३
काशी का महान् जन-कवि बिहारी
विश्वनाथ मुखर्जी ४०
मुंशी प्रेमचन्द और उनके पात्र
(सोवियत साहित्यकार की दृष्टि में)
रामेश्वर प्रसाद मेहरोत्रा ४२
शिल्पकला और काश्मीर के गृह-उद्योग
तिलक ४६
महाकवि अलसानि पेद्दन
कृष्ण शंकर व्यास ५३
असन्तोष (कहानी)
श्रीराम शर्मा 'राम' ५६
कला-चर्चा
विश्वनाथ मुखर्जी ६१
चिट्ठी-पत्री ६३
हिन्दी भवन : बनारसीदास चतुर्वेदी
नीर-क्षीर ६६
आँखों देखी कहानियाँ : रामनरेश त्रिपाठी, आर्य संस्कृति के मूल तत्व : सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार, गद्य सोपान : सं० श्रीराम शर्मा, मौत के मुँह में : सूर्या कमलानी, हीरे की चोरी : सूर्या कमलानी ७२
सामयिक
[१] भारतीय अंग्रेज़ी का भविष्य
[२] इंग्लैण्ड के लोगों में अन्धविश्वास
[३] अमेरिका के प्रतिनिधि लेखक
सम्पादकीय ७८
वंशीधर विद्यालङ्कार

चित्र

लालित्य : चित्रकार श्री विद्याभूषण
आशा : ,, कुमारी प्रेम व्यास
गोपी : ,, रिचर्ड लोब्रो

वार्षिक मूल्य ९) रु० एक अङ्क का १) रु०

मुद्रक:—प्रियबन्धु, हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हिन्दी भवन, हिन्दी मार्ग, नामपल्ली हैदराबाद द.

न राज्यों के

फ़ोन : ५४५०

)

४२

४६

५३

५६

६१

६३

दी

६६

ा त्रिपाठी, आर्य

सिद्धान्तालङ्कार,

मौत के मुँह में:

सूर्या कमलानी

७२

श्वास

क

७८

द अङ्क का १) ८०

राबाद द.

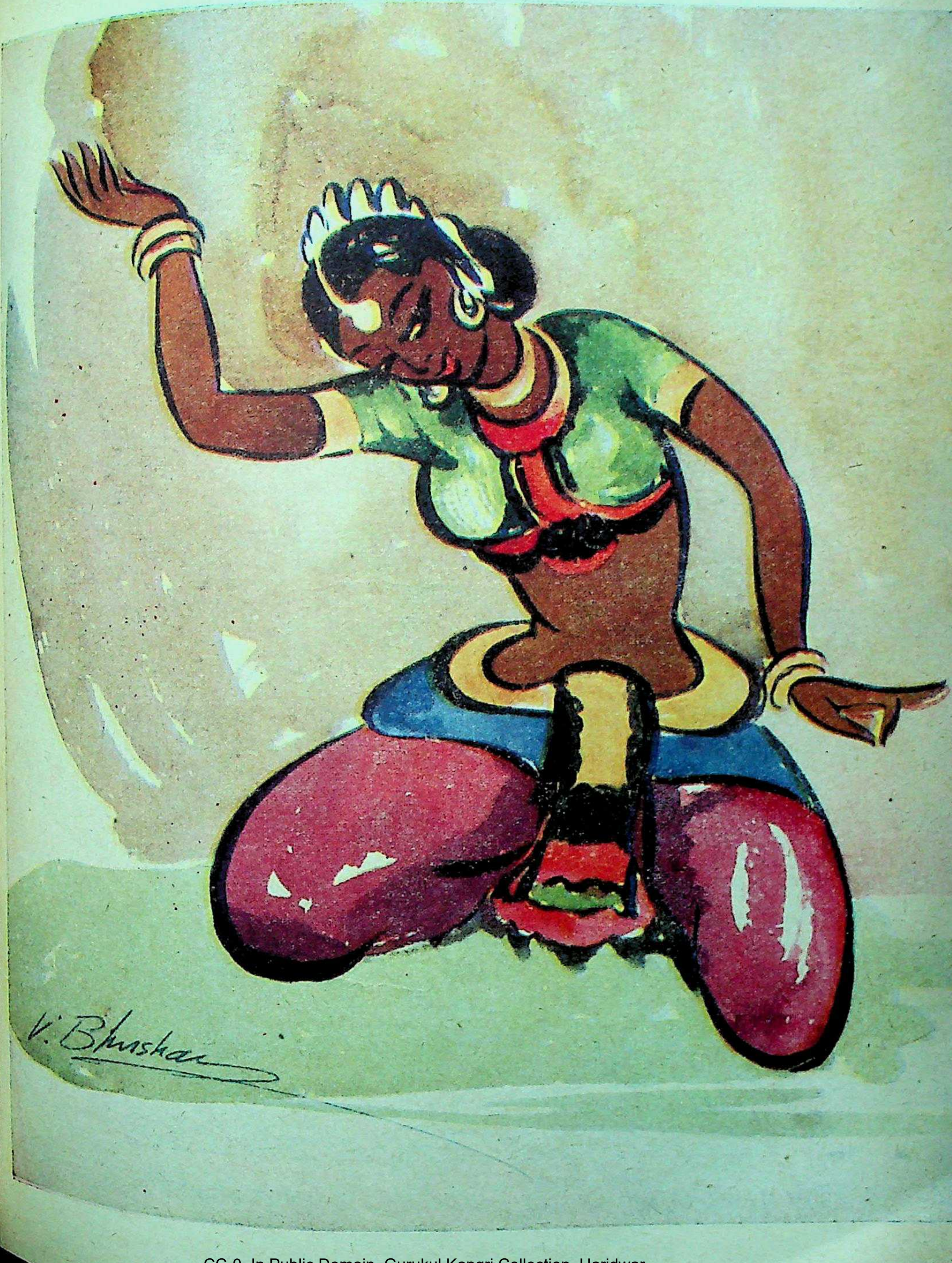

लालित्य

चित्रकार : विद्याभूषण

ऑल इण्डिया स्कूल्स् ऑफ आर्ट प्रदर्शिनी, १९५४

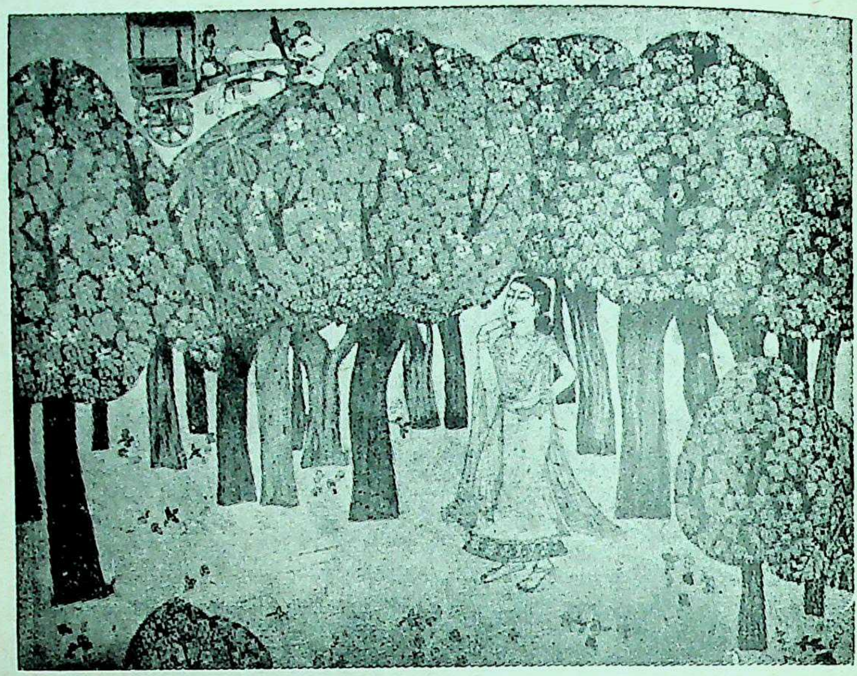

आशा चित्रकार : कुमारी प्रेम व्यास

वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर, राजस्थान

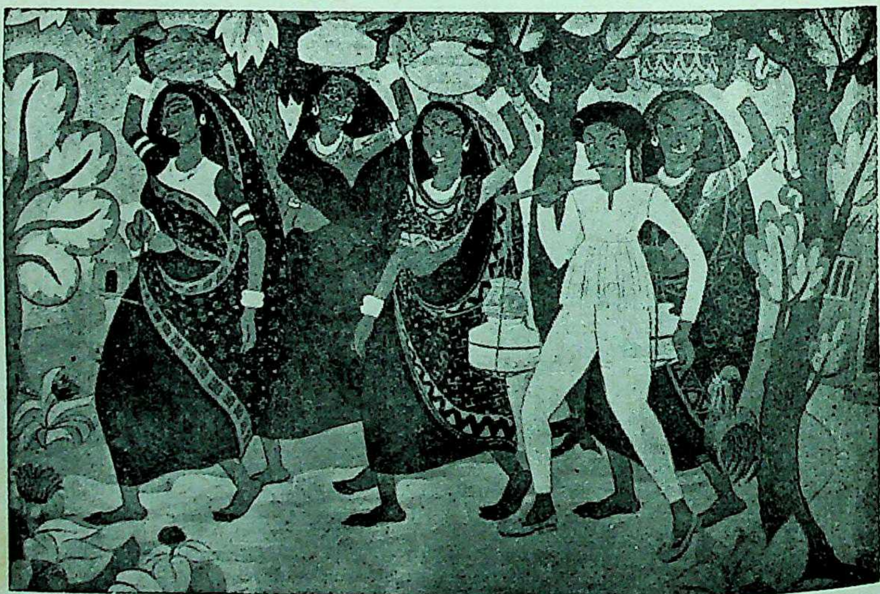

गोपी चित्रकार : रिचर्ड लोबो

मॉडर्न आर्ट इन्स्टीट्यूट, बम्बई

हैदराबाद आर्ट्स सोसायटी के सौजन्य से

अजन्ता

वर्ष ६ मई १९५४ अङ्क ५

गीत

मेरा माथा नाथ नवा दो चरण-धूलि के तल में
अहंकार मम सकल डुबा दो, इन नयनों के जल में
निज को करके गौरव दान
करता बस निज का अपमान
केवल निज को घेर-घेर कर मरता हूँ पल-पल में

अपना करूँ प्रचार न जिससे केवल अपना काज
अपनी इच्छा करो पूर्ण हे मम जीवन के माँझ
माँग रहा हूँ परम शान्ति तव
प्राणों में वह परम क्रान्ति तव
मुझ को अन्तराल कर स्थित हो हृदय पद्म के दल में

'गीताञ्जलि' से

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनु० मुरलीधर श्रीवास्तव 'शेखर'

पग बढ़ाता चला जा रहा

दूर मंज़िल भले, राह तो बन रही
इसलिए पग बढ़ाता चला जा रहा

साधना कब बँधी जीत औ' हार से
वेदना से हुआ कब उसे द्रोह है
बात मानों न मानों मगर कह रहा,
सच, मुझे आपदा से बड़ा मोह है
झूलता आँधियों की लहर पर सदा
दीप-सा मैं तिमिर–पंथ पर जल रहा,
भोर को वर्त्तिका में संजोए हुए
रात की गोद में मौन मैं पल रहा,
जब तलक स्नेह है प्राण में कण्ठ में
स्वर्णिका मैं लुटाता चला जा रहा

राह में सुन पड़ा 'ओ, चकोरी बता
क्या मिला है तुम्हें चाँद को प्यार कर ?'
मैं सहम-सा गया पर पछाड़ें उधर
खा गईं सिन्धु की गोद में उठ लहर
वह प्रकृति औ' पुरुष के हिये की व्यथा
की लहर जो युगों से कि उफना रही,
नाव जिसका सहारा लिए ज़िन्दगी
की बढ़ी मुस्कराती चली जा रही

१६५४

इसलिए हर कड़ी पर लहर की, नये
स्वप्न अपने मिटाता चला जा रहा

एक दिन चाँद भी रात से पूछ बैठा
कि क्या मोल है ज़िन्दगी का, बताओ
आह भर रह गई रात बोला शलभ-
अधजले दीप से ओ निठुर लौ बढ़ाओ
चाँद पीला पड़ा रात भी ढल गई
साथ लौ के शलभ राख बन सो गया
दूसरी रात को फिर नए रूप से
प्रश्न वह ज़िन्दगी का जटिल हो गया
इसलिए मौत की राह पर जब तलक
साँस है गीत गाता चला जा रहा

गति न बँधती प्रलय औ' सृजन से कभी
बात मैं तो यही सिर्फ़ हूँ जान पाया,
इसलिए जब चुभे शूल से भी हिया
जब मिले फूल तो चूम कर मुस्कराया,
हास औ' अश्रु तो पन्थ पाथेय हैं
भर रहे हर निमिष ज़िन्दगी में रवानी
बाँध कर आँधियों को बढ़ी जा रही
ज्वाल-पथ पर कि जिसके सहारे जवानी
पी ज़हर इसलिए मैं सँभाले लहर
राह पर मुस्कराता चला जा रहा

१३८, केनिंग स्ट्रीट,
कलकत्ता—१

—बालकृष्ण उपाध्याय

किसान-बाला

यह तो किसान की बाला है, इसकी आँखों में शील शरम
नागिन-सी बाहें लचकदार, उँगलियाँ बड़ी औ' नरम-नरम

आँखें हैं पानीदार बड़ी, है घनी बरौनी की छाया
रेशमी बाल उलझे-उलझे, साँवली सलोनी-सी काया

यौवन इसका है स्पर्श रहित, शेफाली की कलिका-सी स्मित
चाँदनी रात में धुली-धुली, मासूम कुमुदिनी-सी विकसित

पतली-पतली कटि लचकदार, उभरा-उभरा-सा वक्षस्थल
नयनों की सुन्दर सीपी में, पुतलियाँ मीन-सी रहीं मचल

दाँतों की द्युति पर तारावलि, शारदीय रात्रि में न्योछावर
संगीत छलकता वाणी से, फीका कोयलिया का भी स्वर

अनभिज्ञ निपट भोली-भाली, चंचल यौवन में अल्हड़पन
हर रोम स्वप्न के अधरों-सा, मुसकाता अस्त व्यस्त वसन

है शिरा-शिरा में लाल रक्त, है सजल और निर्मल काया
माथे की बिंदिया लगती ज्यों, शबनम में मंगल की छाया

चटकीली चूनर के ऊपर, साँवनी इन्द्रधनु की करवट
उन्मुक्त प्रकृति के साथ खेलती, इठलाती चंचल नटखट

यह दूर नगर की सड़कों से, खेतों की मेड़ों पर चलती
उभरे-उभरे वक्षस्थल पर, है दृष्टि न पापी की पड़ती

यह किसी युवक से झिझक, दूसरे से न कभी भी टकराती
यह खड़ी फसल के नंदन में, घूमती शची-सी इठलाती

इसके स्वरूप को देख प्रकृति, ईर्ष्या से इतनी भर रहती
अनुकरण इसी का कर बिल्कुल, इसकी जैसी बनने चलती

पावों की उँगली जैसी ही, ये मूँग उरद की हैं छीमीं
हाथों की उँगली जैसी ही, खेतों में लोबिया की छीमीं

१९५४

किसान-बाला

इसके जूड़े को देख ज्वार के भुट्टे सुन्दर लहराते
इसके अधरों को देख फूट के, अधर सलोने मुसकाते

इसकी मादक गति से गतिमय, हो उठता वन का शान्त पवन
ओढ़नी पवन में लहराती जब, सर में भर जाती कम्पन

गेहूँ के, जौ के नव अंकुर, चंचल हैं इसकी चितवन में
इसके मन का उल्लास हास, सम्पूर्ण प्रकृति के तन मन में

माथे के उज्वल स्वेद बिन्दु से, हरसिंगार के फूल झरें
जो स्थिर लख उनको पुरइन पर, जल की लघुतम बूँदें ठहरें

उड़ते आतुर हो मोर न जाने कितनी ईर्ष्या भर रहती
जब बोझ ज्वार के पेड़ों का, शिर के ऊपर धर कर चलती

यह प्रकृति वृन्त पर कुसुमित है, सौन्दर्य कुसुम की कलिका-सी
यह फ़सल कल्पतरु से वेष्टित, जीवनप्रदायिनी लतिका-सी

इसकी पग ध्वनि की तालों से, भर जाता खेतों में कम्पन
पलकों के खुलने मुँदने से, सुख-दुख, निशि-दिन औ' जनम-मरण

यह अन्नपूर्णा देवी-सी षटरस से जीवन भर देती
जठराग्नि तपन का कर निरसन, सरसिज-सा जीवन कर देती

उत्साह उमंगों की प्रेरक, यह श्रम के अन्दर शक्ति निहित
वसुधा के पूजन अर्चन में, हृद् स्थल की है अनुरक्ति निहित

प्रात स्फूर्ति से स्नात हँसी-सी, विगत स्वप्न की मधु स्मृति-सी
श्रम के प्रतिफल की सुषमा-सी, श्रम के आराधक की कृति-सी

यह चिर सुहागिनी वसुधा के, सौभाग्य चिह्न की कीर्ति ध्वज
इसकी क्रीड़ाओं से सच ही, वसुधा का चिर मातृत्व सफल

नभश्री, वनश्री औ' खेतश्री तीनों से युक्त मधुर सजला
इस वंद्य त्रिवेणी को छू कर, वसुधा बनती सुजला, सुफला

१०६।१ सीसामऊ,
कानपुर

—रमाकान्त श्रीवास्तव

बम्बई की शाम

ठुँसे रेस्त्राँ, फूल-पत्तियों से बचकानी रँगी दिवारें,
पीले-पीले दीप काँपते विद्युत-सरि के अन्त-बिन्दु पर,
बाँए कोने से ग्राहक की
फटे टीन-सी ध्वनि उठती है,
और छोकरा होंठ काटता दौड़-दौड़ कर सब कोनों से
'आडर' लेता घूम रहा है।
'छुकरे' ने 'सलाम' साहब को
किया उठा बख्शीस दुअन्नी,
और जॉन ने टाइप करने वाली लड़की
मार्गरेट के लिए मँगाई
छः आने की पीली 'जेली'
गोल पीन भद्दे प्याले में,
मार्गरेट ऐसे हँसती है जैसे 'मोना लिसा' हँसी थी
चित्रकार डा विंची के सुन्दर 'कन्वस' पर;
मार्गरेट ने वैसे हँसने की प्रैक्टिस में
बार-बार दर्पण के आगे होंठ दबा कर
उमस-भरी रातें काटी हैं।

शहर कुन-कुने ख़्वाबों में बेचैन पड़ा है!
जैसे गिल्टी कठिन प्लेग की जहर छिपाए फूल रही है,
'क्यूबिस्टिक' नव चित्रकला सी—सीधी-सीधी जामिति-रूपा
नंगी गलियाँ—कहीं उजाला,
कहीं अँधेरा—बड़े-बड़े 'टिन' के तख़्तों पर विज्ञापन हैं—
'लक्स टॉयलट सोप', 'जिलेट' के ब्लेड,

११५४

सिनेमा के पोस्टर हैं।
डी भोटो, हिलमैन, कैडलक,
ट्रॅक, गाड़ियाँ, पीत खोपड़ी लिए टैक्सियाँ
दौड़ रही हैं—मार्गरेट औ' जॉन खड़े हो देख रहे हैं!
आत्मा-रस गाढ़ा बनता है,
मानव-तन चमड़ा बनता है,
टूटी घड़ियाँ लँगड़ाती हैं,
अगन सूइयाँ घूम रही हैं!

दूर शहर के लैम्प झँप रहे, रेलों का 'शटिङ्ग' होता है,
खामोशी पैबन्द लगा कर अपनी साड़ी जोड़ रही है!
"आज रात की गाड़ी से मुझको जाना है,
आओ चित्र तुम्हारा ले लूँ!"—बॉक्स कैमरा
आँख खोल कर, चुप होता है आँख बन्द कर

रेस्त्राँ में हो रहा शोर है—
'सेव-ओसामण', 'दाल-गाँठिया', 'बेदा-सैंडविच',
'जेली-बिस्किट', 'मस्का-बेदा', 'केक'—सभी है,
और गन्ध है भोजन की, उन्मत्त गन्ध है
भोजन की, उत्तप्त गन्ध है भोजन की,
मैं बाहर आ देख रहा हूँ—
ट्राम लाइन्स पर नीचा मुँह कर
एक दार्शनिक कुत्ता ऐसे चला जा रहा
जैसे उसके लिए सकल वसुधा कुटुम्ब है

चंदन निवास, कुर्ला रोड,
अंधेरी (बम्बई)

—अनन्तकुमार पाषाण

गीत

जितना उसे भूलना चाहा
उतना वह सुधि-भार बन गया !

हो जाए स्वर लुप्त हमारा
वीणा के तारों को छेड़ा !
किन्तु प्रबलतम विरह विकल स्वर
ही वीणा-झँकार बन गया !

हो जाए शीतल वह ज्वाला
मैंने उसमें चन्दन डाला !
किन्तु विषम परिणाम हुआ जो
चन्दन ही अँगार बन गया !

मेरे गीले नयन निलय में
निराकार था रूप किसी का,
किन्तु आज वह निराकार ही
सम्मुख आ साकार बन गया !

जितना उसे भूलना चाहा
उतना वह सुधि-भार बन गया !

छोटा केशवपुर, जमालपुर,
मुंगेर (बिहार)

—रामानुग्रह प्रसाद 'शान्तिप्रभ'

कवि और कविता

[२]

मेरे आध्यात्मिक गुरु श्री रमन महर्षि ने कहा था कि जितने मनुष्य हैं उतने ही संसार हैं : किसी भी व्यक्ति की दो आँखें संसार को कभी एक ही रूप में नहीं देखतीं न दो मस्तिष्क एक ही रूप में कभी प्रतिक्रिया करते हैं। विलियम ब्लेक के अनुसार : "एक मूर्ख उसी पेड़ को नहीं देखता जिसे कि बुद्धिमान् मनुष्य देखता है।" विलियम वर्डस्वर्थ के पीटरबेल के लिए :

> "नदी तट का प्रिमरोज़
> उसके लिए एक पीला प्रिमरोज़ था
> इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

कोई भी व्यक्ति जब वह हाड़-माँस की आँखों से देखता है तो अपने सामने से दूर नहीं देख पाता। यदि हम पदार्थ (Matter) के मूल में जाना चाहें तो वास्तव में उसकी निरपेक्षता समानान्तर चलनेवाली आन्तरिक प्रक्रिया से संयोजित होती है और स्वयं अन्तर्मन भी व्यक्ति के अनुभव के सार पर आधारित होता है जिसे वह वंशानुगति से शिक्षा या वातावरण से अथवा इन सब के सम्मिलन से प्राप्त करता है। अनुभव कवि के जीवन का सार है, यह वह रंग है जो मस्तिष्क के प्रिज़्म को पार करके निकलता है; रंग जो विचार के रूप में प्रतिच्छायित होता है। विश्व के सौन्दर्य का यथार्थ अस्तित्व है जिसका समानुपात सदैव मस्तिष्क द्वारा प्रकम्पनों को बाह्य अभिव्यक्ति देने की शक्ति और हृदय द्वारा भावों को अभिव्यंजित करने एवं भावनाओं की व्याख्या करने के रूप में तोला जाना चाहिए। शुद्ध निर्वैयक्तिक कवि—यदि ऐसे प्राणी का वास्तव में अस्तित्व हो तो जो कुछ वह देखता है उसे विस्तृत रूप से संग्रह करता है और उसकी तुलना एक कैमरा की आँख से की जा सकती है इस अन्तर के साथ कि जहाँ कैमरा रेखाओं और बाह्य-आकृति को बिना व्याख्या किए अंकित करता है वहाँ कवि स्वयं अपने मन के अनुकूल व्याख्या के साथ प्रकाशित करता है। ब्लेक के अनुसार निर्वैयक्तिक कवि आँखों से देखता है जब कि गहरा स्वप्नदर्शी, रहस्यवादी महान् कवि आँखों के आर-पार देखता है। आँखों के आर-पार देखना क्ष-किरण प्रक्रिया की तरह है जो "ठोस और मिश्रित पदार्थ" को भेद कर देखती है चाहे वह शरीर या धरती हो और सब कुछ टटोल कर आवश्यक तत्व को प्राप्त करती है; यह आन्तरिक दृष्टि पेड़ की बाह्य आकृति के पीछे जैसे 'पेड़त्व' का सम्पूर्ण इतिहास देख लेती है, अँधेरे में सोई हुई पृथ्वी की नवीनता को जन्म देनेवाली गुप्त प्रेरणा को जगाती है और बदलती हुई ऋतुओं, उदय और अस्त होते सूरज, चाँद और तारों के लय से संयोजित करती हुई इसके हरे-भरे उत्पादन की प्रक्रिया को देखती है। दूसरे शब्दों में जैसा कि वर्डस्वर्थ ने कहा यह अन्तर्दृष्टि है और उसके प्रयोग ने पश्चिम के सामने एक सम्पूर्ण नए विश्व का द्वार खोल दिया और जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। यह अन्तर्दृष्टि हम लोगों के लिए कोई नवीन वस्तु नहीं है जिनकी परम्परा ही सौन्दर्य के पीछे अनन्त सौन्दर्य, हमारे अस्तित्व का ताना-बाना बुननेवाले छोटे-छोटे असंख्य सत्यों के पीछे अमर सत्य देखने की रही है। इसी दृष्टि से हमारे पूर्वजों ने देखा था और आज भी एक वास्तविक भारतीय कवि जीवन और प्रकृति के प्रश्नों पर चिन्तन किए बिना नहीं रह सकता। बाह्य उपमाएँ थोड़े-से संकेत करके समाप्त हो जाती हैं, वे स्वयं अपने अतिरिक्त और किसी अन्य वस्तु की ओर संकेत नहीं करतीं और कहीं दूर की बात नहीं बतातीं परन्तु आँखों के आर-पार देखनेवाले कवि एक सीमाहीन सांकेतिकता का संसार उपस्थित करते हैं, असंख्य तारों से भरा एक स्वर्ग। शब्दों की एक पूर्ण सत्ता है, वे केवल ध्वनि मात्र नहीं हैं; प्रत्येक शब्द जब कभी उसका प्रयोग होता है नवीन साँस लेता हुआ प्रतीत है। शब्दों के व्यवहार से एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न होता है। कविता की प्रत्येक पंक्ति एक विशिष्ट संरचना है जो कि एक फ़क़ीर के कपड़ों की किनारी पर या परियों के कपड़ों की किनारी पर क़सीदे के रूप में शोभित हो सकती है। कवि एक महान् क़सीदाकार है, उसी पर सम्पूर्ण वैभव, शब्दों का विभिन्न रूप में सामञ्जस्य जो कि सीमाबद्ध या असीम सौन्दर्य की ओर

उसमानिया विश्व-विद्यालय के तत्वाधान में पढ़ा गया अभिभाषण

संकेत करता है, निर्भर रहता है और बहुत कुछ उन संरचनाओं के निर्माता, शब्दों का उपयोग करनेवाले के स्वर्गिक असंतोष पर भी आधारित होता है। जब रॉबर्ट हैरिक कहते हैं: "उसके वस्त्र पानी की तरह बह चले" तो केवल शारीरिक शिराओं में सुरसुराहट उत्पन्न होने की ध्वनि आती है तथा मानवीय प्रेम और उत्तेजना की अनुभूति जागृत होती है जिनका कविता में स्थान अवश्य है परन्तु उनका सर्वोच्च स्थान नहीं है। गीत के रूप में वह हमारे सामने पानी की ऊपरी सतह को हिला कर रह जाती है परन्तु वह हमारे सामने महान् समुद्र का दृश्य उपस्थित नहीं करती। इस पंक्ति में ध्वनि का वह वेग नहीं है जैसा कि मैकबेथ की इस सुप्रसिद्ध पंक्ति में है मानों स्वयं समुद्र का गम्भीर घोष है :—

"विशालतर समुद्रों का भैरव रूप"

जिससे कि तत्काल साधारण और महान् कवि का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। साहित्य में हमें ऐसी सैकड़ों पंक्तियाँ मिलेंगी जो कि अतीन्द्रिय के स्वप्न के छोर को छूती हैं यथा, शेली की पंक्तियाँ :

"जीवन बहुरंगी काँच के ढक्कन की तरह है
जो अनंतता के धवल प्रकाश को मलिन करता है।"

ये पंक्तियाँ सामान्य दृष्टि से परे हमारे हृदय में नया अनुभव जागृत करती हैं, हम तुरन्त उस स्थिति पर पहुँच जाते हैं जहाँ ईश्वर को रंगहीन पाते हैं और अपने सामान्य जीवन के सम्बन्ध में अनुभव करते हैं जैसे यह उसके सम्मुख छोटे छोटे रंगीन काँच के आकार बनाने का उपक्रम है। मनुष्य का हृदय दूरस्थ को पाने के लिए व्याकुल रहता है, टागौर कहते हैं : 'आमि सुदूरेर पियासी'— दूरस्थ की प्यास से मेरा हृदय व्याकुल है। शेली के शब्दों में वह 'नक्षत्र के लिए पतंग की चाह—भूख' है जो कि हमारे सामान्य दुःख से बहुत दूर की वस्तु है। किसने इस भयंकर पीड़ा का अनुभव नहीं किया है—अपने से परे 'कुछ' की दर्द भरी चाह नहीं की है? वॉल्टर डिला मरे ने इसे 'विवश नश्वरता की लालसा' नाम से सम्बोधित किया है और उनके अनुसार वही कविता लिखने के लिए प्रेरणा देती है। वह व्यक्ति चाहे बालक हो या बड़ी उम्र का मनुष्य। मनुष्य के हृदय की यह इच्छा अकथनीय है, विशेषकर कल्पनाशील व्यक्ति के हृदय में यह जागृत होती है। यह—इस क्षणिक संसार में किसी रूप में अच्छा बनने की अभिलाषा है; वॉल्ट विटमैन ने जिसके सम्बन्ध में कहा : "अज्ञात इच्छा, यही मेरा भाग्य!" यहाँ मैं अपनी एक कविता को प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता हूँ जिसमें यह इच्छा केवल तीन छोटे छोटे पदों में अभिव्यक्त हुई है :

"प्रिय! मैं शापित
मुझे अमिट पिपासा का अभिशाप मिला है
जिस क्षण प्यास बुझाने का उपक्रम करता हूँ
यह और भी दुर्दान्त हो उठती है

इन पैरों में आग की लपटें हैं
जो क्षण क्षण प्रज्वलित होती हैं
और उच्च से उच्चतर उठते हुए
कभी थकतीं नहीं

मुझे जलन से प्यार है
मैं उच्च गिरि-शृंगों का साथी हूँ
गति में ही शान्ति है
ओह! असह्य है रुक जाना।"

"गति में ही शान्ति है, ओह! असह्य है रुक जाना" और कवि की कल्पना सदैव कुछ खोजती रहती है—उच्च से उच्चतर ऊँचाईयों पर; क्योंकि कवि अनन्त के पथ का यात्री है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर मानवीय रूपों और प्रकृति के दृश्यों को देखता हुआ प्रत्येक पद पर 'नेति', 'नेति' यह नहीं है, यह नहीं है पुकारता जाता है......क्योंकि जिस पूर्णता की चाह में वह भटकता है स्वयं पथ की तरह उसकी पहुँच से वह दूर और दूरतर होती जाती है। उसकी प्रत्येक कविता उस डगर पर मील के पत्थर की तरह पीछे छूटती जाती है और राह के काँटों की परवाह न करते हुए वह अबाध गति से बढ़ता जाता है। वास्तव में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पैरों के वही घाव मानवता के इतिहास में गुलाब के फूल बन कर महक उठते हैं। उसके पास उपमाओं का अक्षय भण्डार होता है, मूर्त्ति और मूर्त्ति-कल्पनाओं का अन्त नहीं दिखाई देता। कवि जिस विषय का वर्णन करता है उसे अपने कल्पना लोक में अपनी विशिष्ट मानसिक स्थिति का रंग प्रदान कर देता है। उदाहरण के लिए प्रतिदिन के जीवन की प्रकृति की दो सामान्य वस्तुओं को लिया जाय—यदि उन पर अलौकिकता की छाप न लगाई जाय तो वे अत्यन्त सामान्य हैं क्योंकि वे अनन्त काल से वैसे ही आती-जाती दिखाई देती हैं; मेरा संकेत सूरज और चाँद

की ओर है। सूरज हमेशा के लिए सूरज ही रहता है परन्तु मनुष्य के दृष्टि-भेद और विभिन्न प्रतिक्रियाओं से वह सहस्रों रूप धारण करता है। एक बालक के लिए कदाचित् वह साबुन का बड़ा बुलबुला है जिसे आकाश के पीछे छुपे हुए किसी बालक ने फेंका है। लकवे से पीड़ित व्यक्ति को जिसे अत्यन्त कष्ट हो रहा हो सूरज कदाचित् खून से भरे हुए घाव की तरह दिखाई देगा। उपवन और कुञ्जों के प्रेमी को वह पके हुए लाल फल का प्रतीक जान पड़ेगा जो कि आकाश में उगे हुए किसी पेड़ की डाल से लटक रहा है। मकान बनानेवाले उद्यमशील कारीगर को लाल ईंट की तरह दिखाई देगा और प्रतिदिन उगनेवाला सूर्य एक नई ईंट रखी हुई प्रतीत होगा और इस प्रकार एक नई इमारत खड़ी होती हुई प्रतीत होगी। जब हम चाँद के सम्बन्ध में सोचते हैं तो एक पागल प्रेमी को वह अपनी प्रेयसी का मुख ही प्रतीत होता होगा। भारतीय कवि और पाश्चात्य कवि भी चाँद को प्रेयसी के मुख से और प्रेयसी के मुख की चाँद से समानता बतलाते हुए कभी नहीं अघाते। चाँद को देख कर बालक के मन में आकाश में उड़ते हुए बुलबुले का विचार आता होगा। मेरी बहन सरोजिनी ने एक बार चाँद को 'स्वर्ग की भौंह पर झूलता हुआ शीर्ष-फूल' कहा था। जेल के एक क़ैदी को जो प्रतिदिन जेल की रोटियाँ देखता रहता है चाँद केवल एक रोटी की तरह नज़र आता है जिसे परमात्मा परिश्रमपूर्वक पन्द्रह दिन में बनाता है और अगले पन्द्रह दिन में धीरे धीरे कौर तोड़ कर खाता है। यहाँ मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव को स्मरण किए बिना नहीं रह सकता जिसका मुझे कलकत्ते में रहते हुए उस समय अनुभव हुआ जब उस नगर पर जापानियों के बम्ब गिरे थे। चाँद का उदय हुआ तो उसे देख कर मेरा मन घृणा से भर गया। मुझे वह एक बड़े आकार का बम्ब प्रतीत हुआ जो अभी अभी जन-समुदाय पर, आदमियों, स्त्रियों और बच्चों पर गिरनेवाला है। वह एक ध्वंसकारी अस्त्र के रूप में परिणत हो गया। उन दिनों मैंने एक कविता लिखी जिसकी पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं :

'बहुत देर तक अन्तर और बाह्य में
संघर्ष-सा होता रहा—ना-समझ—दोनों
एक दूसरे पर आरोप करते रहे कुछ देर
बाह्य ने अन्तर से कहा : तुम सब मिल
कर क्या हो ? केवल वायवी न-कुछ
कोरी बकवास ; जब कि मैं प्रत्येक युग में
ठोस, स्वयं, प्रतिवाद रहित ज्वलंत तथ्य हूँ
प्रत्येक मोड़ और प्रत्येक परिचित स्थान पर
मृत्यु और स्वर्ग-लोक का परिचित व्यक्तित्व
तुम मेरी सत्ता चाहे स्वीकार करो, न करो
मूर्ख ! मैं यह तथ्य
भली प्रकार जानता हूँ कि वह मैं
ही हूँ जो जगत् में सत्य के रूप में
रहता हूँ ;

वैज्ञानिक के लिए एक सत्य वस्तु
क्रोध में प्रबल होते लाल औ' और लाल
अन्तर ने बाह्य को ललकारा :
क्या तुमने दुनिया को यह कहते नहीं सुना
कि मै स्वयं प्रकाश्य हूँ और तुम हो अँधकार
मूर्ख ! मेरे बिना तुम अपनी प्रकृति, रूप और आकार
भी प्राप्त नहीं कर सकते

क्योंकि मैं ही वह सत्ता हूँ जो कि सुन्दर रूप
प्रदान करती है और मेरी ही मनःस्थितियों
पर तुम्हारे वस्त्र-परिधान बदलते हैं।
मेरे बिना न तुम लजा सकते हो न हिल सकते हो
मैं तुम्हारा पति हूँ : स्वयं अपने प्रकाश को
मैं शीघ्र तुम्हारे चेहरे की कान्ति में बदल देता हूँ
और भर लेता हूँ तुम्हें अनन्त आलिंगन में;
तुम मेरी सत्ता स्वीकार करो या नहीं
मैं तुम्हारी लड़खड़ाती बुद्धि से परे हूँ
मेरा अस्तित्व शाश्वत मूल्यों से जड़ा हुआ
अपनी ही प्रकृति के प्रेम में लिपटा है—
अपने ही गौरव से विचुम्बित
चाहे तुम यह न जानते हो परन्तु प्रतिक्षण मैं
कवि का सुन्दर ताना-बाना बुननेवाला जुलाहा हूँ

जब अन्तर और बाह्य में
इस प्रकार झड़प चल रही थी
स्थिर पहाड़ी की चोटी पर
पीला चाँद उग आया, जैसे
पहाड़ी के शिखर पर एक धब्बा हो।

बाह्य ने कहा :

वहाँ समुद्र के ऊपर कैसा सुन्दर
पीला चाँद उग आया है
जिससे आकर्षित होकर लहरें ऊँची उठ रही हैं
चट्टानों पर गिरती हुई लहरों की ध्वनि
जैसे आरकेस्ट्रा का संगीत उठ रहा है।

उसी क्षण एक तीव्रभेदी स्वर सुनाई दिया—
क्रूर, नृशंस जिसने चाँद से मण्डित नभ को
खण्ड खण्ड कर दिया

अन्तर ने कहा :
समुद्र की भटकती हुई लहरें
भयंकर आवाज़ को सुन कर सहम गई हैं
यह चाँद गहरे घाव की तरह प्रतीत होता है
जैसे ईश्वर के असहाय गले में किसी ने
छुरा भोंक दिया हो
उस गन्दे धब्बे से ख़ून चू रहा है
मैं समझता हूँ चाँद अब फिर कभी नहीं उगेगा
आज रात न जाने क्या अनर्थ होनेवाला है
न जाने मृत्यु का व्यापारी
कोई वायुयान यहाँ क्या गज़ब ढा देगा ?
अब मौन छायाएँ नहीं दिखाई देतीं
दुःखी धरती की साँस रुक गई है
भौहों पर चिन्ता की रेखाएँ खिंची हैं
वक्ष जैसे मौत का काला फूल है !

अन्तर और बाह्य दोनों अपने झगड़े को
भूल कर शीघ्रता से तेज़ पाँव रखते
निकटतम सुरक्षा के स्थान की ओर भागे"

शेली ने चाँद का वर्णन एक रुग्ण नारी के रूप में किया है जो सीढ़ियों पर चढ़ रही है। टॉमस हार्डी इसके विपरीत उसे अनन्त-पथ का यात्री समझते हैं और मृत्यलोक के ऊपर विचरण करते समय उसने जो कुछ देखा है उसके सम्बन्ध में पूछते हैं :

"चाँद जब तुम इस राह से जाते हो
बताओ इन सब के बारे में क्या सोचते हो ?
...हाँ, मैं इनके बारे में सोचता हूँ, प्रायः
सोचा करता हूँ—ये सब छायाएँ हैं
जिनको परमात्मा शीघ्र ढाँप देना चाहता है
जैसे जैसे मैं अपनी राह पर बढ़ता हूँ..."

वर्त्तमान समय में जब पागलपन ही बुद्धिमत्ता का प्रमाण बनता जा रहा है और कुछ उन्मत्त लोग दुनिया को एटम बम के द्वारा सर्वनाश के मुँह में ढकेलने को आतुर दिखाई देते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं कोई आनेवाला कवि चाँद को शताब्दियों की पृथ्वी की घटनाओं के इतिहासकार और भविष्यद्वक्ता के रूप में देखे।

ऐसे ही समय कवि अपनी कलम पकड़ता है और शान्ति का नारा लगाता है। क्योंकि वह शान्ति से उतना ही प्रेम करता है जितना युद्ध से घृणा। शान्ति और सुरक्षा के बिना जीवन या संस्कृति का विकास सम्भव नहीं है और शान्ति के बिना कवि की कौन कहे अन्य कोई व्यक्ति भी कैसे अवकाश पा सकता है। कवि के लिए, स्रष्टा के लिए अवकाश आराम का समय नहीं वरन् एक आवश्यकता है। उसका अवकाश समय नष्ट करना नहीं है। अवकाश सृजन का समय है :

"वह जीवन क्या जो चिन्ताओं में ही बीत जाय
क्षण भर रुकने और देखने का अवसर न मिल पाए"

डेविस ने कहा था। हाँ, ठहरने और देखने के लिए अवसर; दूसरे शब्दों में समय की शाश्वतता और व्यापकता में झाँकने के लिए अवसर; काल के सम्बन्ध में ब्लेक की निम्न पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं :

"धूल के एक कण में समस्त विश्व
जंगल के एक फूल में अनन्त स्वर्ग
हाथ की हथेली में शाश्वतता को थामे
एक क्षण में समाया हुआ शाश्वत काल"

प्रत्येक सच्चे कवि की यह पुकार होनी चाहिए, जो मैन पुकारता है :

"...एक छोटा-सा महान् क्षण
जब मैं अकेला अपने में लीन हो सकूँ !"

और कवि के लिए अपने में लीन होने का अर्थ अपने 'अपनत्व' को सभी वस्तुओं में लीन करना होता है ऐसी रहस्यमय वस्तुओं में – गिलहरियाँ—और बादल, नाले चट्टानें और घास; कवि को स्वयं अपने आप को अपने प्रति अभिव्यक्ति करने के लिए अवकाश की आवश्यकता होती है। अवकाश चिन्तन के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है जिससे कि सभी बातें अपने उचित स्थान पर समादृत होकर एक महान् रचना (Masterpiece) की उपादान बनती हैं।

१९५४

कविता में नवीन क्षेत्र में हमारा पुनर्जन्म होता है; और प्रत्येक बार जब हम कोई महान् कविता पढ़ते हैं तो हमारे ऊपर जो धूल जमा होती है, थकान, बुराई और पतन की धूल उसका कुछ अंश दूर हो जाता है। बालक परी-लोक में विचरण करता है क्योंकि उसके अन्तर में कवि का निवास होता है; और कवि इसीलिए कवि होता है क्योंकि उसमें शैशव का अंश विद्यमान रहता है; शैशव जो जीवन और सृष्टि के आश्चर्यों की ओर चौड़ी खुली आँखों से आश्चर्यचकित होकर देखा करता है। उसके पैरों की अँगुलियों के अग्रभाग सदैव किसी नए अनुभव के किनारों को छूने के लिए अग्रसर रहते हैं जो यह प्रकट करता है कि ज्ञान की खोज में उसकी दृष्टि एक अनुभवहीन की-सी रहती है। अनुभवहीनता की यह भावना ही किसी व्यक्ति को कवि बनाती है। किसी वस्तु के छुपे हुए रहस्य को पहिचानना ही कवि का कर्म है—उस आश्चर्य को पहिचानना जो कि किनारे के प्रत्येक पत्थर, गली के प्रत्येक घुमाव और जंगल के प्रत्येक मोड़ पर किसी अन्वेषक का ध्यान आकर्षित करने की आकांक्षा लिए प्रतीक्षा में खड़ा रहता है। कवि सौन्दर्य के साथ आँख-मिचौली खेलता है उसी प्रकार जैसे सौन्दर्य उसके साथ लुकाछुपी करता है। अनजान होने की यह भावना जो सदैव नया अनुभव प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया करती है कवि की कल्पना को जागृत करने में सहायक होती है जिसके आधार पर वह अज्ञात सौन्दर्य का निर्माण करता है।

कविता की परिभाषा करना उसी प्रकार कठिन है जैसे सत्य की और इस पर भी कोई व्यक्ति पूछ बैठता है : 'कविता क्या है ?' और वह उसका उत्तर सुनने के लिए ठहरता तक नहीं। जब हम कविता की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य पद्य से होता है परन्तु पद्य कविता से उसी प्रकार भिन्न है जैसे एक नक़ली काग़ज़ का फूल वास्तविक फूल से। फिर भी एक प्रकार का ऐसा पद्य होता है जो वास्तविक कविता के समान होता है यद्यपि तब भी कविता नहीं होता। एक ऐसा गद्य भी होता है जिसको कविता कहना ही अधिक उपयुक्त होता है—और बहुत-सी ऐसी कविताएँ होती हैं जो केवल गद्य ही कहलाने के योग्य हैं यद्यपि बहुत-सी ऐसी भी रहती हैं जो अच्छा गद्य भी नहीं कही जा सकतीं। जो कवि इस प्रकार की कविताएँ लिखते हैं वे सच्चे कवियों की अपेक्षा भावुक होते हैं। एक नवयुवक के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसे विश्वास था कि वह एक जन्मजात कवि है। किसी को ऐसा सोचने से रोका नहीं जा सकता—क्या आप रोक सकते हैं ? उसने रीम के रीम काग़ज़ लिख डाले और अपनी लिखित कविताओं को वह अमर-काव्य समझता था। उसने अपनी पाण्डुलिपियों को प्रकाशकों के पास भेजना आरम्भ किया। सभी प्रकाशकों ने प्रशंसा करते हुए उसकी पाण्डुलिपि को लौटा दिया। उस नवयुवक को बहुत क्रोध आया और एक प्रकाशक के घर में घुस कर वह जोर से चिल्लाया : "महोदय, क्या आप नहीं जानते कि मैं जन्मजात कवि हूँ।" प्रकाशक ने शान्ति से उत्तर दिया : "महाशय, अपने दोष को अपने माता-पिता के सिर पर थोपने का प्रयत्न मत करो।" कवि बनता नहीं पैदा होता है—यह कथन किसी सीमा तक सत्य है परन्तु जिस युग और वातावरण में वह रहता है वे भी उसके निर्माण में सहायक होते हैं। कुछ कवि ऐसे होते हैं जो अच्छा लययुक्त पद्य न लिख पाने के कारण अपनी असमर्थता को छुपाने का एक बहाना बना लेते हैं और अपने को प्रगतिशील मुक्त-छन्द लिखनेवाला कवि घोषित करते हैं। मुक्त-छन्द में केवल ऐसे कवि ही सफल रचना कर सकते हैं जिनका लय और तुक पर पूर्ण अधिकार हो। इसीलिए मिलटन 'सम तुकान्त की टन् टन् ध्वनि' को कर्ण कटु कहने का अधिकारी था। परन्तु तुकान्त कविता को एकदम बुरी बताना पागलपन है। जब एक महाकवि तुकान्त कविता लिखता है तो तुक स्वयमेव अपनी आकृतियाँ धारण करते हैं और कवि को इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। कवि के अवचेतन में पहले ही तुकों का सम्बन्ध और पदों का विवाह संस्कार हो चुका होता है। कवि इस बात को केवल सब के सामने प्रकट करता है। अधिकांश में मुक्त-छन्द के नाम से कविता के जिस रूप का प्रचार है वह केवल साहित्यिक पराजय का उदाहरण है। अवश्य एजरा पाउण्ड, इलियट, ऑडेन और स्पेन्डर जैसे प्रसिद्ध साहित्यकार भी हैं जो अपनी रचनाओं में बौद्धिक ताना-बाना बुनते हैं—यद्यपि उनमें महान् दृष्टि का प्रायः अभाव रहता है फिर भी उनका लेखन महत्त्वपूर्ण होता है। वाल्ट ह्विटमैन के चुने हुए पदों और अनुच्छेदों को पढ़ने से वह मुक्त-छन्द का बहुत सफल लेखक प्रतीत होता है परन्तु यदि उसके पूरे साहित्य को

देखा जाए तो वह श्रमपूर्वक लिखा हुआ बृहद् विवरण है जिसे उसने स्वयं अपनी आँखों से देख कर आश्चर्य-जनक नवीन रूप प्रदान किया है। तथापि कुछ ऐसे क्षण दिखाई देते हैं जब धरती से निकले हुए लावा की चमकती हुई चिनगारियों की तरह उसकी पंक्तियाँ सत्य को प्रकट करती हैं और उन्हीं के कारण साहित्य के इतिहास में ह्विटमैन का नाम महान् प्रतिभाओं के बीच लिया जाता है। लययुक्त तुकान्त अमर कविताएँ केवल नवीन दृष्टि (Vision) से सम्पन्न प्रतिभावान व्यक्ति ही लिख सकते हैं जो जीवन के लय को जानते हैं, ध्वनि और रंग के मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभाव से परिचित होते हैं। इसके अतिरिक्त मुक्तछन्द की अपेक्षा तुकान्त पद्य स्मरण रखना बहुत आसान होता है और महान् पद्य या अमर कविता की कसौटी यह है कि वह जनता की स्मृति में कितने समय रहती है। जो लोग तुकान्त कविता की हँसी उड़ाते हैं वे या तो कपटी हैं या विवाहोत्सव में भोज में आए हुए ऐसे अतिथि हैं जिन्होंने दूल्हे का मुँह अभी नहीं देखा। मैं पहले ही कह चुका हूँ सफल मुक्तछन्द की रचना केवल तुक और लय पर अधिकार रखने वाला कवि ही कर सकता है। शेक्सपीयर जिसने अद्भुत सॉनेट लिखे—मुक्तछन्द का महान् कवि था। मुक्तछन्द में एक आन्तरिक लय होती है जो एक भिन्न प्रकार के रंग और भिन्न प्रकार के स्वर-मेल का ही नाम है। स्वयं मिलटन ने अपनी सुन्दर रचना 'कोमस' (Comus) और उससे सुन्दरतर सॉनेट 'अपने अंधेपन पर' (On his Blindness) लिखा और यह दोनों ही कविताएँ तुकान्त हैं परन्तु इनमें झनझनाहट मात्र नहीं है। शब्दों की झनझनाहट उसी प्रकार थोथी होती है जैसे कि सच्चे तुक या लय गर्भित। 'तीस दिन होते हैं' सितम्बर, अप्रैल, जून और नवम्बर में' (Thirty days hath September, April, June & November)—निश्चय ही स्विनबर्न के भी तुकान्त पद्य इस पंक्ति से भिन्न हैं यह स्वीकार करना पड़ेगा यद्यपि उसके तुकों में शब्दों की झनझनाहट मात्र होने का डर रहता है। फिर भी क्योंकि वह एक सच्चा कवि है अतः उसका पद्य 'तीस दिन होते हैं सितम्बर .....' वाली शब्दों की झनझनाहट मात्र से मुक्त है :

"When the hound of spring are on winters traces.
The mother of months in meadow and plain.
Fills the shadows and windy places.
With lisp of leaves & ripple of rain."

"जब वसन्त के शिकारी कुत्ते शरद् के पदचिन्हों
की टोह में होते हैं
महीनों की माँ कुँजों और मैदानों में
छाया-पथों और हवादार जगहों में
पल्लवों की तुतली बोली और वर्षा की रिमझिम से
उन जगहों को भर देती है।"

हमारा देश कविता और नवीन दृष्टि की भूमि रहा है परन्तु इस समय कुछ विपरीत स्थिति दिखाई देती है। कवियों को लिखने का समय नहीं मिलता। वे अपनी आजीविका के पालन के लिए व्यस्त रहते हैं और उन्हें कविता लिखने के लिए अवसर ही नहीं मिलता। यदि वह लिखता भी है तो उसमें निराशा और दर्द से भरी हुई आह-सी सुनाई पड़ती है। यहाँ तक कि जब वह प्रेम के गीत गाता है तब भी उसकी वाणी पतनोन्मुखी होती है। आज कविता में ही जीवन प्रदायक रक्त की कमी नहीं दिखाई देती वरन् हमारी रंगचित्रण कला, संगीत और नृत्य-कला में भी निराशा का स्वर सुनाई देता है। अनुकरण की प्रवृत्ति अधिकाधिक दिखाई देती है और यह इस बात की द्योतक है कि जीवन के मूल्यों के प्रति आस्था रख कर हम दृढ़ता से उनका पालन करने में असमर्थ हैं। युग के राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन तथा अकाल, शोषण आदि दुर्घटनाओं के बीच कविता के लिए कोई स्थान नहीं रहता और यदि कवि लिखता भी है तो उसके स्वर में घृणा और विनोद की वाणी मुखर होती है, केवल वर्त्तमान परिस्थितियों के प्रति ही नहीं वरन् स्वयं जीवन के प्रति उसकी शत्रुता की भावना प्रकट होती है। पतनोन्मुखी भावनाएँ जहाँ कहीं भी हों पराजय और आध्यात्मिक पतन की सूचक हैं फिर भी मैं एक आशावादी हूँ और ईश्वर का धन्यवाद मानता हूँ कि अभी हमारे बीच कुछ आशावादी लेखक शेष हैं, चाहे जीवन की परिस्थितियाँ कितनी ही निराशाजनक हों। मुझे यीट्स की इन पंक्तियों में विश्वास है :

"गाते रहो, कहीं किसी नए चन्द्रोदय के समय
हम यह जान सकेंगे कि सोने का अर्थ मृत्यु नहीं है
और हम सुनेंगे सारी पृथ्वी का स्वर बदल रहा है"

१९५४

महान् गीत लौट कर आएँगे, उन्हें आना होगा; चीन में वे लौट कर आ रहे हैं, चीन जो पुरानी और नई संस्कृति का उत्तराधिकारी है। भारत भी उस प्रभाव से नहीं बच सकेगा जो मानवता को अपने अपनत्व को पहचानने के लिए जगा रहा है।

जनता के ओठों पर गीत लौट कर आएँगे, जनता जिसके रूप में किसी राष्ट्र का अस्तित्व रहता है, और जिसके रूप में कोई देश जीवित रहता है।

—हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय

नई दिल्ली

वक्तृत्व-कला

……प्रत्येक व्यक्ति अपने भाषण को कंठस्थ नहीं कर सकता और कंठस्थ करके भी उसे स्वाभाविक रूप से नहीं बोल सकता। इसके लिए एक विशेष प्रकार की प्रतिभा और नाटक के पात्र से मिलते-जुलते एक खास तरह के प्रशिक्षण की आवश्यकता है।……

……अब्राहम लिंकन अपने भाषणों को पहले से ही लिख लिया करता था। जब वह १५ वर्ष का था, वह अपने भाषणों को झुकती हुई अनाज की पंक्तियों और पड़े हुए भारी कुम्हड़ों के सम्मुख दिया करता था। उसकी स्मृति अत्यधिक धारणाशील थी। वह अपने लिखे हुए भाषण को बिना किसी प्रयत्न के अपनी स्मृति के आधार पर शब्द प्रति शब्द दुहरा सकता था। वह अपने विचारों को पहले काग़ज़ के छोटे टुकड़ों पर लिख लिया करता था और वह इन काग़ज़ के टुकड़ों को अपने हैट के नीचे रख लेता था। जब वह पूर्णतया विचार कर चुकता था तब वह इन काग़ज़ के टुकड़ों को एकत्रित कर उपयुक्त क्रम में रख लेता था। इसके बाद वह अपना भाषण लिख डालता था। सायङ्काल वह बिना किसी नोट के शब्दशः उसी प्रकार अपनी वक्तृता देता था जैसी कि वह लिखता था।……

सर विन्स्टन चर्चिल अन्तिम अवशिष्ट वक्ताओं में से एक हैं। जब कि वे स्कूल में बालक थे उन्होंने मैकाले के "लेज आफ़ एन्शेएट रोम" की १२०० पंक्तियों को बिना एक अशुद्धि किए सुना कर अपने अध्यापकों को आश्चर्य-चकित कर दिया था और अपनी स्मृतिशक्ति के इस करतब के लिए पारितोषिक प्राप्त किया था। विश्व के गत महायुद्ध के समय वे 'हाउस आफ़ कामन्स' में अपने भाषणों को पहले से ही तैयार करने में कठोर परिश्रम करते थे। कभी कभी तो अपने भाषण को तैयार करने में उन्हें ६ सप्ताह लग जाते थे। एक बार उन्होंने अपने एक भाषण को तैयार कर समाचारपत्रों के पास उसकी एक प्रति को अग्रिम ही भिजवा दिया। सम्पादकों को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वक्ता ने पहले से ही अपने भाषण के बीच में "तालियाँ" लिख कर विराम चिन्हित कर दिया था।……

—मैक्स ईस्टमैन

विचारक मैकियावेली

विचारक मैकियावेली का जन्म फ्लोरेन्स में १४६६ ई० में और मृत्यु १५२७ ई० में हुई थी। वह फ्लोरेन्स राज्य का एक उच्च पदस्थ अधिकारी था तथा तेईस बार एक राजदूत के रूप में उसने अपने राज्य का प्रतिनिधित्व किया था। पेरिस और रोम जैसे महत्वपूर्ण स्थानों में रह कर उसने राजनीतिक गुत्थियों का सम्यक् अध्ययन कर लिया था।

उसके राजनीतिक दर्शन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस पर तत्कालीन राजनीतिक प्रवृत्तियों और बौद्धिक विचारधाराओं का गहरा प्रभाव पड़ा था। सोलहवीं सदी के आरम्भ होने के साथ ही कोन्सिलियर आन्दोलन की प्रजातांत्रिक प्रवृत्तियाँ, जो चर्च और राज्य में वैधानिक सरकार की स्थापना का प्रचार कर रही थीं, राजकीय प्रतिक्रियावादी शक्ति की लहर में समाकर लुप्त हो चुकी थीं। वस्तुस्थिति तो यह थी कि चर्च-कौन्सिलों में पोप का एकछत्र अधिकार था, और दूसरी ओर विभिन्न राज्यों में निरंकुश राज्यतंत्र का बोलबाला था। इसके साथ ही राष्ट्रीयता की भावना उभरती जा रही थी और सामन्तों का प्रभाव नष्ट होता जा रहा था। किन्तु जिस प्रकार राष्ट्रीयता का विकास और राजाओं की शक्ति में अभिवृद्धि होती जा रही थी, उसका प्रभाव इटली पर बहुत अधिक नहीं था। यह पूर्णतः ज्ञात है कि सोलहवीं सदी के आरम्भ का युग सशक्त व्यक्तियों का युग था, किन्तु इटली के विभिन्न राज्यों—वेनिस, फ्लोरेन्स, नेपुल्स, मिलान आदि किसी भी राज्य में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह सारे इटली राज्य को एक छत्र के अन्दर लाने का प्रयास करता। अतः इटली, महत्वाकांक्षी अधिकारी पुरुषों के लिए, चाहे वे स्थानीय हों या विदेशी, षड्यन्त्रों की दृष्टि से युद्ध-क्षेत्र के रूप में परिवर्तित हो चला था। इस मध्ययुग में जब कि राजनीतिक दृष्टि से वातावरण अस्त-व्यस्त था और गृहयुद्धों की प्रधानता थी, तो जनता के नेताओं का ध्यान जनता की भलाई की ओर कम, आत्म स्वार्थ-सिद्धि की ओर विशेष था। जनता की नैतिक चेतना भी पूर्णतः गिर गई थी। इस प्रकार इटली के आसमान में विपत्ति के बादल घिर रहे थे, उसकी राजनीति जटिल और दूषित हो चली थी, और उसकी आन्तरिक स्थिति पूर्णतः डांवाडोल थी, जिसका प्रभाव मैकियावेली पर पड़े बिना नहीं रह सकता था। अतः उसके हृदय में इटली की स्वाधीनता और उसके नगरों के अभ्युत्थान की लालसा घर करने लगी। उसकी रचनाओं में 'दी प्रिन्स' और 'दी डिसकोर्सी' प्रमुख हैं, जो मैकियावेली की गहरी स्वदेश-भक्ति का प्रमाण उपस्थित करती हैं। उसने अनुभव किया था कि तत्कालीन राजनीति ईसाई धर्म-नीति पर आधारित न होकर राजनीतिक स्वार्थ और हिंसा पर आधारित थी। किन्तु इस स्वार्थान्धता के चलते 'होली रोमन इम्पायर' तथा पोप द्वारा प्राप्त एकता की दीवार धाराशायी होती जा रही थी और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में अराजकता की स्थिति उत्पन्न होती दिखाई दे रही थी।

इस प्रकार अगर इटली की दूषित राजनीति ने मैकियावेली को प्रभावित किया था, तो इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि इटली में नव-जागरण की जो शक्तियाँ फूट रही थीं, और जिनमें युग को नया बौद्धिक दृष्टिकोण तथा प्राचीन मान्यताओं को झटका मिला था, उनका भी मैकियावेली पर काफ़ी प्रभाव पड़ा था। विशेषतः उसका प्रान्त फ्लोरेन्स तो नव-जागरण का केन्द्र ही था, अतः मैकियावेली का इस प्रभाव से अछूता रह जाना असंभव था। मध्य-युग की प्रधान विशेषता यह भी थी कि उस समय चर्च और राज्य में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध था जिसमें चर्च की प्रधानता थी और वह राज्य की गति-विधि पर अपना प्रभाव पूर्णतः जमाए रखता था। नव-जागरण ने जनता को बाध्य किया कि वह प्राचीन मान्यताओं को नए आलोक में देखने का प्रयत्न करे। अब राजनीतिक सिद्धान्तों को धार्मिक बाधा बन्धनों से दूर हटा कर व्यावहारिक धरातल पर परखने की रीति अपनाई जाने लगी। अवश्य ही मैकियावेली इस नई विचारधारा का जन्मदाता है। वह प्राचीन और नवीन युग के सन्धि-स्थल पर खड़ा है, जहाँ नई और पुरानी मान्यताएँ आकर एक साथ मिलती हैं। धर्म के अत्याचार से राजनीति को मुक्त कर मैकियावेली

१६५४

ने एक नए युग का सूत्रपात किया, जिसके लिए अवश्य ही हम उसका अभिनन्दन करते हैं।

मध्य-युग में ईसाई मान्यताओं के आलोक में मानव केवल धर्म और ईश्वर में विश्वास करता था। उस काल में मानव का मानव के रूप में कोई महत्व न था। किन्तु नव-जागरण के प्रथम प्रभात में जो रश्मियाँ फैलीं, उनके आलोक में मानव ने मानव को पहले-पहल उचित स्थान का अधिकारी बताया और वही अब अध्ययन का केन्द्र बन गया। इस नई परिस्थिति में परलोक को छोड़ इस लोक पर विचार केन्द्रित किया जाने लगा, मानव ने व्यक्तित्व के विकास की ओर ध्यान दिया और सौन्दर्य का उपयोग पूर्णतः किया जाने लगा। इसके साथ-साथ व्यक्तिवाद जोर पकड़ने लगा, जिसने मानव की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिए और उसकी शक्ति बढ़ने लगी। नव-जागरण ने मनुष्य को बुद्धिवाद की ओर आकर्षित किया, फलतः मानव ईश्वर, मनुष्य और प्रकृति को भी बुद्धि की आँखों से देखने का प्रयास करने लगा जिससे चर्च तथा राज्य की प्राचीन मान्यताएँ अस्तव्यस्त होने लगीं। नव-जागरण के फलस्वरूप जीवन का नया आदर्श पनपने लगा जिसके अनुसार व्यक्ति इसी संसार में और इसी जीवन में वैयक्तिक सफलता की कामना करने लगा। इस सफलता ने प्राचीन नैतिकता को नीचा दिखाया और व्यक्ति अपने अहं को अधिक महत्व देने लगा। अब देवी देवताओं के स्थान पर शक्ति की पूजा की जाने लगी और यही मनुष्य का ध्येय हो चला। अतः इस पृष्ठभूमि पर जब हम मैकियावेली की मानसिक प्रक्रिया, उसके उद्देश्य और आदर्श, उसके बुद्धिवाद और यथार्थवाद, उसके पाण्डित्य और उसकी आनन्दवादी नैतिकता तथा उसके बुद्धिवाद और राष्ट्रीयता को परखते हैं तो आसानी से पता चल जाता है कि वह अपने युग का सच्चा प्रतिनिधि था।

मैकियावेली के राजनीतिक विचारों पर अरस्तू के विचारों की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। उसका विश्वास था कि मानव-स्वभाव और मानव की समस्याएँ सब कालों में और सब स्थानों में समान थीं। इसलिए वह वर्त्तमान काल की समस्याओं का निदान प्राचीन के आलोक में ढूँढ़ना चाहता था। इसलिए उसके अध्ययन का क्रम ऐतिहासिक था। उसने समकालीन राजनीति का अध्ययन किया, उसका विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला और तब इतिहास की सहायता से उनको एक समन्वित रूप दिया विशेषतः रोमन इतिहास ने उसे राजनीतिक सत्यों को खोज निकालने में सहायता प्रदान की। मैकियावेली के लिए यह ऐतिहासिक रीति उपयुक्त सिद्ध हुई, क्योंकि वह काल्पनिक नहीं, वरन् व्यावहारिक राजनीति का विद्यार्थी था। राजनीति के क्षेत्र में यथार्थवाद होने के नाते, उसने राजनीतिक दर्शन की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। अतः उसकी रचनाओं में सरकार की बारीकियों पर तो गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है, किन्तु राज्य के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक निरूपण से उसने अपने को दूर रखा है। उसका सम्बन्ध विधान की बारीकियों और गुत्थियों की अपेक्षा सरकार की यथार्थ मशीनरी से था। उसकी दृष्टि में विधान को श्रेष्ठ बनाने की अपेक्षा राज्य को सुरक्षित रखना अधिक श्रेयस्कर था। इसीलिए उसने जो कुछ भी देखा और लिखा है, वह एक शासन की दृष्टि से, न कि शासित की दृष्टि से। मैकियावेली के विचार से एक व्यक्ति के लिए जो कार्य अनैतिक हो सकता है, वही अगर राज्य के हितों की दृष्टि से आवश्यक हो, तो शासन को निःसंकोच होकर उसे करना चाहिए। अतः उसकी दृष्टि में सामूहिक नैतिकता, वैयक्तिक नैतिकता से सर्वथा भिन्न एक पृथक वस्तु है। उसका विश्वास है कि मनुष्य के गुणों का निवास 'शक्ति' और 'बुद्धि' के समन्वय में है, अतः उसके गुणों को परखने के लिए उसकी शक्ति और प्रसिद्धि को ध्यान में रखना आवश्यक है।

कालविन और हॉब्स की भांति मैकियावेली मनुष्य की स्वभावगत सज्जनता में विश्वास नहीं करता था। उसके अनुसार मनुष्य दुर्बलता, मूर्खता और छल का विचित्र सम्मिश्रण है। सच पूछिए तो १५ वीं सदी के इटली में निवास करनेवाले मैकियावेली के लिए मनुष्य-स्वभाव के सम्बन्ध में बुरी धारणाएँ बन जाना सर्वथा स्वाभाविक था। हॉब्स की भांति उसका दृढ़ विश्वास था कि सभी मनुष्य दुष्ट और स्वार्थी हैं, और अहंभावना तथा स्वार्थ—ये ही दो मानव-व्यवहार की प्रेरक शक्तियाँ हैं! उसकी यह स्पष्ट घोषणा थी : "Men were ungrateful, fickle, deceitful, cowardly and avaricious" अर्थात् मनुष्य स्वभाव से ही कृतघ्न, अस्थिर, वंचक, कायर और लालची है। वह भला तभी हो सकता है, जब कि इससे उसे कुछ तत्काल लाभ होने

की संभावना हो। भय जीवन का प्रमुख तत्त्व है, जो प्यार से भी अधिक शक्तिशाली और व्यापक है। इसलिए एक राजकुमार को भय का मूर्त्तरूप होना चाहिए। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी प्रजा के मन में घृणा के स्थान पर भय उत्पन्न करे, तभी वह आदर्श नृपति हो सकता है। अतः मानव-स्वभाव के सम्बन्ध में मैकियावेली के विचार उच्च नहीं हैं। इसी मूल विचार पर उसका सारा राजनीतिक-विज्ञान आधारित है। किन्तु सच पूछिए तो मैकियावेली के मानव सम्बन्धी विचार पूर्णतः अवैज्ञानिक और असंगत हैं। क्योंकि मानव न केवल भला है, और न केवल बुरा। वह तो प्राकृतिक आवेग-संवेगों का पुञ्ज है और परिस्थितियों से प्रभावित होता है। इसी भ्रान्त धारणा पर उसकी राजनीति आधारित होने के कारण कहीं-कहीं असंगत हो गई है।

मैकियावेली की अमर-कृति 'प्रिन्स' छब्बीस अध्यायों में विभक्त है, जिसके मुख्यतः तीन भाग हैं। प्रथम भाग में उसने निरंकुश, स्वेच्छाचारी राज्य के स्वप्न तथा प्रकार की चर्चा की है। दूसरे भाग में उसने राष्ट्रीय सेना की स्थापना पर जोर दिया है और तीसरे भाग में मैकियावेली के दार्शनिक सिद्धान्तों का निचोड़ आ गया है। इसी भाग में नृपतियों के लिए कई सत्परामर्श दिए गए हैं, विशेषतः वैसे लोगों के लिए जिन्होंने पुरानी सरकार का तख़्ता उलट कर अपनी शक्ति के जोर से शासनाधिकार प्राप्त किया है। उसकी यह कृति न तो कोई वृहत् निबन्ध है, न राजनीति-विज्ञान की पुस्तक ही—जो विद्यार्थियों की ज्ञान-वृद्धि के लिए लिखी गई हो। वरन् वह तो सरकार चलाने की कला और राजनीतिक सफलताओं पर प्रकाश डालती है, जो एक अनुभवी, व्यावहारिक राजनीतिज्ञ के मस्तिष्क की उपज है। फ्लोरेन्स-राज्य के सचिव होने के नाते उसे राजनीति की बारीकियों को परखने का पूर्ण अवसर मिला था जिन्हें अपनी लेखनी के सहारे उसने मूर्त्तरूप दे दिया है। 'प्रिन्स' के सारे तर्क केवल दो बातों पर अवलम्बित हैं। पहली बात यह है कि राज्य मानवीय संस्थाओं में सर्वोपरि है और मानव की भलाई के लिए अनिवार्य है। जब तक मानव अपने राज्य से तादात्म्य प्राप्त नहीं कर लेता, अपनी सत्ता को उसमें विलीन नहीं कर देता, तब तक उसके उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः राज्य की भलाई का प्रश्न व्यक्ति या समूह की भलाई से अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाना चाहिए। दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य जिस पर मैकियावेली ने प्रकाश डाला है, वह यह कि मनुष्य की प्रेरक शक्तियों में भौतिक-तत्व सर्वाधिक शक्तिशाली है जो व्यक्ति या समूह के कार्यों द्वारा अभिव्यक्त हो पाता है। इसलिए सरकार-संचालन की कला इस बात में निहित है कि शासक धार्मिक विचारों को त्याग कर अपने स्वार्थ की दृष्टि से ही सारे कार्य-व्यापार में प्रवृत्त हो। आगे चल कर वह राज्य को शासक के साथ एक कर देता है। इन सारे तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जुलियस सीज़र राज्य का मानवीय कारण था, न कि ईश्वर जिसकी पूजा-अर्चना की जा सकती थी। सीज़र को शक्ति की प्राप्ति द्वारा ही इस श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी होना था। अतः मैकियावेली के अनुसार जो वस्तुएँ उस शक्ति प्राप्ति के कार्य में सहयोग देती हैं, वे ही मान्य हैं। इस प्रकार एक आदर्श नृपति के लिए वे ही वस्तुएँ कल्याणकर हैं, जो उसे शक्तिशाली और सफल बनाती हैं। नृपति के गुणों में उसने चातुर्य, छल और निर्दयता का स्थान महत्वपूर्ण माना है। उस पुस्तक के अठारहवें अध्याय में उसने कहा है कि सैद्धान्तिक रूप से नृपति की सच्चाई और पवित्रता, छल, कपट तथा दलबन्दी से अधिक श्रेष्ठ कही जा सकती है, किन्तु कभी-कभी चातुरी और सूक्ष्म बुद्धि भी बहुत सहायक सिद्ध होती है। मैकियावेली ने आगे चल कर बताया कि सफलता के दो माध्यम हैं -- क़ानून और शक्ति। अतः एक नृपति में बुद्धि और क्रूरता का समन्वय अपेक्षित है। उसके लिए सिंह की वीरता और लोमड़ी की चातुरी अनिवार्य है।

नृपति को अपनी इच्छाओं को प्रच्छन्न रखने के लिए कभी कभी पाखण्डी का रूप भी अपनाने से नहीं चूकना चाहिए। उसके लिए सभी पड़ोसी शत्रु-तुल्य हैं जिनकी ओर से उसे सावधान रहना चाहिए। एक चतुर नृपति के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने शत्रुओं को तैयार होने के पूर्व ही कुचल दे। उसे राज्य की एकता बनाए रखना चाहिए, किन्तु इसके लिए वह जनता के सामने आत्मसमर्पण न करे, वरन् श्रेष्ठ शासन-व्यवस्था को चालू करे। मानव-व्यवहार की मूल प्रेरक शक्ति 'अर्थ' है, इसलिए नृपति का कर्तव्य है कि जनता की आर्थिक स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयास करे जिससे कि उसमें असन्तोष न फैलने पावे। अगर कोई उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचे, तो उसे कठिन से कठिन दण्ड दे, किन्तु उसकी सम्पत्ति पर अधिकार न करे, क्योंकि इस कार्य से उसके

१६५४

परिवार को अत्यधिक असन्तोष और कष्ट होगा।

मैकियावेली ने बताया कि नृपति को भावुकता की धारा में नहीं बहना चाहिए किन्तु उसके लिए दूसरे की भावुकता से लाभ उठाने के लिए प्रयत्नवान होना श्रेयस्कर है ! उसे संयत और स्थिर चित्त का अवसरवादी होना चाहिए। बुराइयों का विरोध बुराइयों के माध्यम से किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त राज्य के हित के लिए वह निर्भय होकर पाप भी कर सकता है। उसे राज्य के प्रति प्रेम होना चाहिए, और अपनी आत्मा को भी उत्सर्ग कर राज्य की रक्षा के लिए प्रयत्नवान होना चाहिए। राज्य की रक्षा को प्रमुखता देते हुए मैकियावेली ने बताया कि उचित-अनुचित, अच्छा-बुरा, न्याय-अन्याय, प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा का विचार किए बिना उसे राज्य की रक्षा करनी चाहिए। उसने स्पष्टतः बताया कि कपट-नीति ही सर्वश्रेष्ठ नीति है ! वस्तुतः मैकियावेली अपने को राज्य का चिकित्सक मानता था, जिसे रोगी के जनप्रिय और धार्मिक कृत्यों से कोई सम्बन्ध नहीं था, वरन् उसका तो कार्य था अपने रोगी राज्य को स्वस्थ और उन्नत बनाए रखना। अतः उसके अनुसार राज्य का स्वार्थ सारे औचित्यों से बढ़ कर है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उद्देश्य की प्राप्ति या उद्देश्य ही कार्य-विधि को औचित्य प्रदान करता है। जनता की आवश्यकता कोई भी क़ानून नहीं जानती और राज्य के कार्यों का न्याय धर्मशास्त्र के आधार पर नहीं किया जा सकता। मैकियावेली का कहना है कि शासक और व्यक्ति-विशेष के कार्य व्यापार में भिन्नता अपेक्षित है, क्योंकि शासक तो क़ानून का निर्माता है और नैतिक मान्यताओं को स्थिर करता है किन्तु वह स्वयं इन मान्यताओं से ऊपर है। अतः अगर शासक के सामूहिक कार्यों को जिनका सम्बन्ध राज्य की बाहरी और भीतरी सुरक्षा से है, व्यक्ति की मान्यताओं के अनुसार परखा जाए तो उससे राज्य नष्ट हो जाएगा। सामूहिक और वैयक्तिक कार्य-व्यापार में पृथ्वी-आकाश का अन्तर है। एक व्यक्ति-विशेष के लिए झूठ बोलना पाप है, किन्तु कभी कभी राज्य की सुरक्षा के लिए शासक का झूठ बोलना आवश्यक हो जाता है। राज्य के लिए किसी धर्मशास्त्र की व्यवस्था नहीं दी जा सकती, और उसके अनुचित-उचित का निश्चय तो केवल उसके परिणाम के आधार पर ही किया जा सकता है। वह समस्त मान्यताओं से ऊपर है।

मध्ययुगीन लेखकों और मैकियावेली के विचारों में प्रधान अन्तर यह है कि इसने अपने राजनीतिक-दर्शन में धर्म और नीतिशास्त्र का स्थान नगण्य माना है। अरस्तू ने कहा था कि राजनीति और धर्मशास्त्र में अन्तर हैं किन्तु उसने दोनों का पार्थक्य स्पष्ट नहीं किया था। मैकियावेली ने दोनों के बीच एक ऊँची दीवार खड़ी कर दी। अपने विचारों में उसने नैतिक गुणों को कोई स्थान नहीं दिया, यद्यपि उन्हें अमान्य नहीं ठहराया। अतः मैकियावेली अनैतिक तो नहीं है, किन्तु अपनी राजनीति में वह नीतिशास्त्र को प्रधान मानने के पक्ष में नहीं है। जेसुइट्स के समान उसने भी बताया कि उद्देश्य ही साधन के औचित्य या अनौचित्य का निर्णायक है। उसकी इस उपयोगितावादी नीति के कारण ही कुछ विद्वानों ने उसे उपयोगितावादी नीतिशास्त्र का जनक माना है।

व्यक्ति की अपेक्षा राज्य की प्रधानता पर ज़ोर देते हुए उसने स्पष्टतः कहा कि किसी व्यक्ति विशेष के लिए हत्या करना अनुचित है, किन्तु राज्य दोषी को दण्डस्वरूप मृत्युदण्ड भी दे सकता है, जो पूर्णतः संगत है, क्योंकि राज्य एक हत्यारे को फांसी की सज़ा देता है, तो उसके मूल में जनता की सुरक्षा का भाव होता है और दोषी के वैयक्तिक स्वार्थ की अपेक्षा जन-समूह के स्वार्थ का महत्व अधिक होता है।

मैकियावेली मनुष्य के अलौकिक अन्त में विश्वास नहीं करता, अतः उसके लिए ईश्वरीय नियम जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। उसने राजनीति से धर्मशास्त्र या नीतिशास्त्र को न केवल पृथक बताया, वरन् धर्म को राजनीतिक व्यवस्था में बहुत ही निम्न-स्थान का अधिकारी बताया है। इसलिए यह कहा जाता है कि आधुनिक राजनीति का अध्ययन मैकियावेली के साथ ही आरंभ हुआ है। शताब्दियों तक राजनीति और धर्म एक दूसरे के साथ आबद्ध रहे। वस्तुतः उस प्राचीन व्यवस्था में राजनीति धर्म की दासी थी। मध्ययुग के कई विचारकों ने राज्य की अपेक्षा चर्च को ऊँचा स्थान दिया था। किन्तु एक व्यावहारिक और यथार्थवादी राजनीतिज्ञ होने के नाते मैकियावेली ने समझा कि ईसाई-धर्मशास्त्र के बताए गए गुण विनम्रता और सज्जनता का तत्कालीन इटली की राजनीति में कोई स्थान नहीं था। बल्कि उसके सर्वथा विपरीत उस युग में आवश्यकता थी साहस, छल और प्रपंच की-जिनके सहारे ही राजनीति के मैदान में सफलता मिल पाती थी। फिर भी मैकियावेली

इस बात को भलीभाँति समझता था कि धर्म जनता को सही रास्ते पर लाने के लिए कैसा अमोघ अस्त्र है जिसके बिना राज्य जी नहीं सकता। अतः उसकी दृष्टि में धर्म राजनीतिज्ञों के हाथ का अस्त्र है जिसका राज्य की सुरक्षा के लिए सुगमतापूर्वक व्यवहार किया जा सकता है। मध्ययुगीन विचारकों के सर्वथा विपरीत उसकी यह दृढ़ धारणा थी कि चर्च राज्य का एक विभाग है, जिसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं। किन्तु उचित ढंग से व्यवहार किए जाने पर वह नागरिकों के मन में राज्य के प्रति भक्ति उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखता है। वह राज्य के अन्तर्गत ही अपना अस्तित्व रख सकता है।

मैकियावेली ने सरकार के जो विभिन्न वर्ग बताए हैं, वे श्रेष्ठ विचारक के लिए असंगत लगते हैं। अरस्तू के अनुसार ही इसने भी राजतंत्र, कुलीनतंत्र, वैधानिक प्रजातंत्र—नाम से विभिन्न भेद बताए हैं। पोलिबियस और सीसेरो के इस कथन को मैकियावेली ने सत्य माना है कि मिश्रित वैधानिक सरकार ही सर्वश्रेष्ठ होती है जिसमें कुछ अधिकार के साथ-साथ अकुंश भी लगाए जाते हैं जिससे कि वह अत्याचारी न होने पाए। वह आर्थिक निर्णयवाद में विश्वास करता था और सम्पत्ति तथा राजनीतिक शक्ति के बीच निकट का सम्बन्ध मानता था। उसकी यह स्पष्ट घोषणा थी कि राजनीतिक स्वाधीनता के लिए चलाए गए सारे संघर्षों के मूल में आर्थिक मान्यताएँ रही हैं। उसके विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह राजतन्त्र की अपेक्षा प्रजातन्त्र में अधिक विश्वास रखता था, क्योंकि उसने स्पष्टतः बताया है कि उस व्यवस्था के लिए जहाँ आर्थिक समानता हो चुकी हो, प्रजातन्त्रीय शासन-प्रणाली ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो सकती है। उसके अनुसार प्रजातन्त्रीय शासन-व्यवस्था संस्थाओं को विकास का अवसर दे सकती है और बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने को परिवर्तित कर सकती है। इसके सर्वथा विपरीत एक नृपति के लिए इतनी शीघ्रतापूर्वक समय के साथ चल सकना असंभव प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त प्रजातन्त्रीय व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं की अपेक्षा प्रत्येक को समान अवसर दे पाती है और वह स्वतन्त्रता का अवसर भी अधिक देती है। इसके विपरीत कुलीनतंत्र में आपसी झगड़े-षड़यंत्र चलते रहते हैं जिससे अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और राज्य की भलाई नहीं हो पाती। किन्तु सच पूछिए तो वह हृदय से प्रजातंत्रीय या राजतंत्रीय व्यवस्था की विशेष परवाह न कर राज्य के सुव्यवस्था के पक्ष में था। उसने यह स्पष्ट अनुभव किया था कि विभिन्न प्रकार की सरकारें समय विशेष और स्थान विशेष के लिए उपयोगी सिद्ध होती हैं। यद्यपि वह प्रजातंत्रीय व्यवस्था में अधिक विश्वास करता था, किन्तु उस काल की इटालियन राजनीति को देखते हुए वह राजतंत्र को ही उपयुक्त मानता था। उस समय इटली की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता थी इटली को विदेशियों के चंगुल से मुक्त करना। अवश्य ही इस कार्य के लिए एक बुद्धिमान, सुयोग्य और सशक्त निर्वाचित नृपति की आवश्यकता थी। प्रजातंत्र के माध्यम से उस काल की इटालियन राजनीति का उद्धार असंभव था।

'दी प्रिन्स' और 'दी डिसकोर्सी' में मैकियावेली ने साम्राज्य-विस्तार पर ज़ोर दिया है। 'दी प्रिन्स' में उसने राजतंत्र सम्बन्धी सिद्धान्तों का और 'दी डिसकोर्सी' में प्रजातंत्रीय व्यवस्था का निरूपण हुआ है। इन पुस्तकों में उसने साम्राज्य-विस्तार की आवश्यकता बतलाते हुए स्पष्टतः कहा है कि राज्य को सदैव विस्तार के लिए प्रयत्न करना चाहिए अन्यथा वह अस्तित्वहीन हो जायगा। उसने सर्वत्र रोमनों के साम्राज्य-विस्तार की प्रशंसा की है और बताया है कि राजनीतिक साम्राज्य-विस्तार तथा राज्य की सुरक्षा के लिए सैनिक शक्ति आवश्यक है, किन्तु इस शक्ति के साथ-साथ चातुर्य की आवश्यकता भी भुलाई नहीं जा सकती। साम्राज्य-विस्तार का यह सिद्धान्त मैकियावेली के राजनीति-दर्शन का केन्द्र-बिन्दु है। दोनों अमर कृतियों में राज्य की सुरक्षा के लिए भी आवश्यक उपाय बताए गए हैं। इन्हीं उपायों में यह भी बताया गया है कि राजतन्त्र में शासक को उस राज्य की संस्थाओं और प्रथाओं के प्रति आदर प्रकट करना आवश्यक है, क्योंकि जनता स्वाधीनता की अपेक्षा परम्परा से चली आती हुई प्रथा और रीति-रस्मों को अधिक महत्त्व देती आई है। अन्ततः सरकार के लिए, जो शक्ति और भय पर आधारित है, यह आवश्यक है कि अपनी प्रजा को समुचित सामरिक शिक्षा देकर एक सुसंगठित सेना तैयार करे। उसे चाहिए कि अपनी सफलताओं और योजनाओं द्वारा वह जनता का ध्यान आकृष्ट करे। उन्हें सन्तुष्ट रखने के लिए कला और साहित्य को भी राजकीय संरक्षण प्राप्त होना चाहिए तथा इस बात की ओर भी

१९५४

ध्यान देना आवश्यक है कि कर के बोझ से जनता तबाह न होने पाए। इसके अतिरिक्त प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में विधान को लचीला और परिवर्त्तनीय होना चाहिए। उसने आगे चल कर यह भी कहा है कि कभी-कभी प्रजातन्त्रीय व्यवस्था के बीच से अधिनायकतन्त्र का उदय होता है, जो सुअवसर पा कर अधिक लाभदायक सिद्ध होता है।

आज की राजनीतिक-व्यवस्था पर मैकियावेली का प्रभाव अमिट है। स्मरणीय है कि फ्रेडरिक-दी-ग्रेट जैसे नृपति मैकियावेली के विचारों के ही मूर्त्त-रूप थे। उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन यह है कि उसने राजनीतिक सिद्धान्तों को राजनीतिक व्यवहार की पंक्ति में ला बिठाया, जो पहले से मध्ययुगीन व्यवस्था में सर्वथा पृथक् और सामंजस्यहीन थे। उसका राजनीतिक-दर्शन यथार्थवादी और तत्कालीन आवश्यकताओं का प्रतिबिम्ब है। यह यथार्थवादिता उसकी साम्राज्य-विस्तार सम्बन्धी नीति में स्पष्ट है जिसका प्रतिपादन उसने निर्भयता के साथ किया है। वस्तुतः उसके युग में साम्राज्य विस्तार की धूम थी और प्रत्येक राजनीतिज्ञ या शासक अपनी नीति इसी आधार पर निर्धारित किया करता था। अतः वह शक्ति पर आधारित राजनीति का प्रथम व्याख्याता और आधुनिक सर्व शक्तिसम्पन्न राज्य में विश्वास करनेवाला प्रथम विचारक कहा जा सकता है।

राजनीति-विज्ञान उसकी देन को कभी भुला नहीं सकता क्योंकि मैकियावेली ही वह विचारक है जिसने धर्म और राजनीति को पृथक् कर उच्चासन का अधिकारी सिद्ध किया। इसलिए वह आधुनिक राजनीति का सर्वप्रथम विचारक कहा गया है। एक ठोस राजनीतिज्ञ की भांति उसने राज्य की भलाई के लिए सारी मान्यताओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखने का परामर्श दिया और बताया कि श्रेष्ठ नृपति को राज्य की रक्षा के लिए अपने शरीर को भी उत्सर्ग करने से चूकना नहीं चाहिए, अगर उसकी आवश्यकता प्रतीत हो। ग्रीक विचारकों की भांति उसने राज्य के पक्ष में व्यक्ति के स्वार्थों को विलीन कर देने की राय दी। उसने केवल शक्ति की पूजा की और उसे ही देवत्व के आसन पर प्रतिष्ठित किया। साथ ही स्पष्टतः घोषणा की कि इतिहास शक्ति, छल और प्रपंच की कहानी है जो सदा से चलती आई है। मैकियावेली ने जिस प्रकार वैयक्तिक और सामूहिक नैतिकता में भेद किया है उसी प्रकार आज भी राजनीतिक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में यह पार्थक्य समझा जा रहा है। यदि राज्य के भीतर उसने वैयक्तिक-स्वार्थों के त्याग पर जोर दिया, तो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसने औचित्य-अनौचित्य का विचार ही त्याग दिया। मैकियावेली के स्वर में स्वर मिलाते हुए कैवूर ने कहा था कि "हम लोगों ने इटली के लिए जो कुछ किया है, वह अगर अपने निजी स्वार्थ के लिए करते तो प्रथम श्रेणी के पतितों और दुष्टों में स्थान पाते।" अतः मैकियावेली ही पहला राजनीति-विशारद है जिसने ऐसे राज्य की कल्पना की जो एक पूर्ण इकाई हो, लौकिक और राष्ट्रीय आशा-आकांक्षाओं का प्रतीक हो तथा अपने में पूर्ण हो।

नावकोठी,
मुंगेर (बिहार)

रामनन्दन प्र० सिंह

......आज विश्व को सबसे अधिक आवश्यकता अहिंसा की है। हिंसा से कभी कोई समस्या हल नहीं होती। यदि तीसरा युद्ध हुआ तो इस विश्व का अन्त हो जाएगा। पूर्व के दो विश्व-युद्धों ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि युद्ध के द्वारा न केवल किसी भी प्रकार कोई समस्या हल नहीं होती अपि तु और भी पेचीदा समस्याएँ और शत्रुता उत्पन्न हो जाती है।

एक भाषण से

—ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान

नियोजन-काल में भारतीय रेलवे

रेलवे भारत का सबसे महान् राष्ट्रीय उद्योग है। इसमें राष्ट्र की रु० ९,०९,०९ लाख पूँजी लगी हुई है। देश में इस समय यातायात और औद्योगिक विकास का यह एक प्रमुख संगठित आधार है। बसों और नदी-नौ-नयन का जब तक समुचित रूप से विकास और विस्तार न हो, तब तक रेलवे ही परिवहन का मुख्य आधार है। शरीर में स्नायु मण्डल का जो स्थान है, और रक्तवाहिनी नस-नाड़ियों का जो महत्व है, वही महत्व और स्थान हमारे राष्ट्र के आर्थिक शरीर में रेलवे का है। रेलवे का विस्तार अभी तक देश के आर्थिक और औद्योगिक विकास की दृष्टि से किया ही नहीं गया। कुमारी अन्तरीप से बम्बई तक तट के साथ-साथ रेल-मार्ग बनाना अभी शेष ही है। यह आर्थिक दृष्टि से ही नहीं स्वरक्षा की दृष्टि से भी आवश्यक है। दूसरा पंचवर्षीय नियोजन तैयार किया जा रहा है। इसमें प्रतिवर्ष ५०० मील नई रेलवे लाइन बनाने की योजना अवश्य रहनी चाहिए। प्रथम पंचवर्षीय नियोजन के तीन साल बीत गए हैं। १९५४-५५ का बजट बताता है कि रेलवे कार्यक्रम के अनुसार चल रही है। माल के दावों के भुगतान में चार-पाँच महीनों के बदले अब केवल ७१ दिन ही लगते हैं। रेलवे के लिए आवश्यक सब साज-सामान और सामग्री देश के ही अन्दर से प्राप्त की जाए, और इसके लिए आवश्यक इंजीनियरिंग व अन्य उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाए, यह नीति रेलवे ने अपनाई है। पर इसके साथ यह भी आवश्यक है, कि जब युद्ध की घटाएँ अधिक काली हो रही हैं, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और अधिक बिगड़ रहे हैं और शीत-युद्ध भारत की सीमा तक पहुँच गया है, अब तक जो पेटेंट कल-पुर्जे आयात किए जाते हैं, उनको भी इसी देश में बनाया जाए। रेलवे एंजिनों के लिए भारत का पराश्रित रहना ठीक नहीं। 'चित्तरंजन' और 'लोको' भारत की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकते। नियोजन के प्रारम्भ में चालीस साल से अधिक पुराने २५५४ रेलवे एंजिन थे। पांच साल के बाद २६०० रेलवे एंजिन ४० साल से अधिक पुराने होंगे। यह प्रगति का सूचक नहीं। अतः रेलवे एंजिन बनाने का एक और तीसरा कारखान खोलना और उन दोनों का अधिकतम क्षमता तक विस्तार करना आवश्यक है।

समृद्धि का युग समाप्त : रेलवे की समृद्धि का युग समाप्त हो गया है। उसकी बचत बराबर कम हो रही है। यथा :

रेलवे की बचत

(करोड़ रु० में)

१९५१–५२	२८·३४ (वास्तविक)
१९५२–५३	१३·१९ (वास्तविक)
१९५३–५४	३·१८ (आनुमानिक)
१९५४–५५	५·१४ (आनुमानिक)

बचत बराबर घट रही है। फिर भी नए साल बचत का अनुमान अधिक करके दिखाया गया है। यदि संयुक्त राज्य अमरीका में वस्तुतः मन्दी आई तो यह बचत शून्य में बदल सकती है, यह न भूलना चाहिए। परन्तु उसका संचालन व्यय बराबर हो रहा है। रेलवे के पुनर्वर्गीकरण से खर्च में कमी आने और कार्य-क्षमता बढ़ने का कोई भी प्रमाण नहीं मिला है। संचालन अनुपात बढ़ रहा है, यह नीचे के अंकों से प्रगट है :

प्रतिशत में

	१९५१–५२	१९५२–५३
संचालन-अनुपात	७७·०	८०·९
कुल लगी पूँजी (करोड़ रु.)	८५०·११	८५७·३८
विशुद्ध राजस्व का कुल पूँजी के प्रति अनुपात	७·३	५·५

विशुद्ध राजस्व भी घट रहा है, यह इससे स्पष्ट है। रेलवे के पुनर्वर्गीकरण से खर्च में कमी हुई है, या कार्य क्षमता बढ़ी है, यह नहीं कहा जा सकता। कोयले का खर्च घटने के बजाय बढ़ गया है। माल गाड़ियों में प्रति १००० मील पर छः टन और मुसाफिर गाड़ी पर प्रति १००० मील पर १·९ टन कोयले का खर्च बढ़ गया है, और इसके कारण १९५२–५३ में कोयले पर रु० ५० लाख

१९५४

अधिक खर्च हुआ है। ब्रॉड-गेज और मीटर-गेज दोनों पर मालगाड़ियों का चक्कर १०.८ (१९५०-५१) से घट कर १०.४ (१९५२-५३) रह गया है। कमी यद्यपि थोड़ी है पर यह बताता है कि सुधार होने के बदले यह कमी हुई है।

रेलवे की आय घट रही है। किराया जब तक बढ़ा हुआ है उस समय तक मुसाफिर-गाड़ियों की आमदनी बढ़ने की सम्भावना नहीं। रेलवे की आय घट रही है। यह निम्न सारिणी से प्रकट है :

रेलवे की आय

(करोड़ रु० में)

	१९५१–५२	२८३.७४
	१९५२–५३	२७०.५६
(बजट)	१९५३–५४	२७२.२८
(अनुवीक्षित)	१९५३–५४	२७२.००
(बजट)	१९५४–५५	२७३.२५

कुम्भ जैसा महा मेला होने पर भी १९५३-५४ की आय का अनुवीक्षित अनुमान २८ लाख रु० कम लगाया गया है। पर जब मंदी सिर पर है तब १.२५ करोड़ रु० अधिक आय का अनुमान किया गया है। रेलवे मन्त्री आशावादी हैं। उनको विश्वास है कि फ़सल अच्छी होने और औद्योगिक क्रिया-कलाप बढ़ने और उत्पादन बढ़ने के कारण आमदनी में १ प्रतिशत वृद्धि होना कुछ आश्चर्य-जनक नहीं। लेकिन सवाल तो यह है कि जिस प्रकार खर्च बढ़ रहा है उसी रूप में यदि वह बढ़ता गया तो क्या आमदनी में यह वृद्धि होनी सम्भव रहेगी ?

रेलवे का खर्च बढ़ रहा है। यह निम्न सारिणी से प्रकट है :

रेलवे का बढ़ता संचालन खर्च

(करोड़ रु० में)

१९५१-५२	१८४.०४
१९५२-५३	१८७.९६

(करोड़ रु० में)

१९५३-५४	(बजट)	१९०.९८
१९५३-५५	(अनु. बजट)	१९७.६३
१९५४-५५	(बजट)	१९४.३१

रेलवे मंत्री यह कहना ठीक है कि पहला दर्जा हटाने से रेलवे की आय पर कोई विशेष प्रभाव नहीं रहा है। रेलवे के तीसरे दर्जे को छोड़ कर इससे ऊपर के दर्जों से होनेवाली आय देखने से यह बात प्रकट है :

रेलवे के ऊपर के दर्जों की आय

(करोड़ रु० में)

१९५१–५२		१३.६३
१९५२-५३		११.६६
१९५३-५४	(बजट)	११.४०
१९५४–५५	(अनु. बजट)	११.४०
१९५४–५५		११.४०

१९५३ में पहला दर्जा ख़त्म करने का इरादा किया गया। इससे पहले रेलवे को उच्च दर्जों से जो आय होती थी वही इस समय भी हो रही है। लेकिन यही बात तीसरे दर्जे के बारे में नहीं कही जा सकती। किराया बढ़ाने का परिणाम मुसाफिरी से होनेवाली आय को घटाने का कारण हुआ है। यथा :

रेलवे की तीसरे दर्जे से आय

(करोड़ रु० में)

१९५१–५२		९६.२०
१९५२–५३		८८.४२
१९५३–५४	(बजट)	९०.३२
१९५३-५४	(अनु. बजट)	८९.८६
१९५३–५५	(बजट)	९०.११

किराया बढ़ाने के साथ १९५२-५३ में अनुमान किया गया था कि तीसरे दर्जे से आय ९०.९० करोड़ रु० होगी। पर हुई वस्तुतः रु० ८८.४२ करोड़। यदि रेलवे मंत्री का अनुमान सही भी निकला तो भी यह मानना होगा कि तीसरे दर्जे से किराया बढ़ाने के ही कारण रेलवे की आय में ६.१४ करोड़ रु० की कमी हो गई है। मुसाफिरों की संख्या घट गई है। १९५१-५२ में रेलवे यात्रा करनेवाले तीसरे दर्जे के मुसाफिरों की संख्या ११६३० लाख थी, पर १९५२-५३ में वह घट कर ११२०० रह गई। यद्यपि कमी ४३० लाख की है, पर यह अर्थसूचक है। यह इस बात का द्योतक है कि रेलवे के साथ आय ह्रास का सिद्धान्त लागू हो चुका है। यह ठीक है कि इस बीच आसनों की संख्या ८५६ हजार से बढ़ कर ८६४ हजार हो गई।

पर क्या आसनों की केवल संख्या बढ़ाने से यात्रियों की संख्या बढ़ जाएगी ?

तीसरे दर्जे के अन्दर यात्रा करना सुखद नहीं है। जब तक उस सुख-सुविधा और आराम का प्रमाण ड्योढ़े दर्जे का नहीं होता तब तक तीसरे दर्जे में यात्रा करना आकर्षक नहीं होगा। छात्रों, पर्वतारोहियों और सैलानियों को यात्रा के रियायती टिकट देना ठीक है पर यह समुद्र में नमक के बराबर है। लोग अधिक से अधिक संख्या में सफर करें इसके लिए आवश्यक है कि किराया कम हो और यात्रा सुखद हो। आज तीसरे दर्जे में यात्रा करना कठिनाइयों का सामना करना है और लोहे के चने चबाना है। भीड़ में जरूर कुछ कमी हुई है। पर दूर की यात्रा करना आज भी संतोषदायक नहीं है। यद्यपि अप्रैल १९५३ से नवम्बर १९५३ तक १९० ट्रेनें जारी की गईं और १२६ गाड़ियों का विस्तार किया गया। १९५१-५२ में ९६० लाख ट्रेन मील गाड़ियाँ चलीं थी पर १९५२-५३ में ९७६ लाख ट्रेन मील चलीं। इन आठ मासों में इनके कारण ब्रॉड गेज पर प्रतिदिन ७४५० ट्रेन मील, मीटर गेज पर ४६५६ ट्रेन मील और नैरो गेज पर ३९७ ट्रेन मील की वृद्धि हुई।

करार कायम रखा : रेलवे कन्वेन्शन के अनुसार रेलवे ने साधारण बजट का पिछले वर्षों में लाभांश इस प्रकार दिया :

साधारण बजट को रेलवे द्वारा लाभांश
(करोड़ रुपयों में)

१९५१-५२	३३.४१
१९५२-५३	३३.९९
(बजट) १९५३-५४	३४.७७
(अनुवीक्षित) १९५३-५४	३४.४६
(बजट) १९५४-५५	३३.७९

इसी प्रकार रेलवे ने अपनी मूल्य ह्रास निधि में इन वर्षों में इस प्रकार दिया है :

१९५१-५२	३०.०० ब्याज रहित
१९५२-५३	३०.०० रियासती रेलों को छोड़ कर
(अनु) १९५३-५४	३३.८३
(बजट) १९५४-५५	३३.७०

१९४८-४९ की अपेक्षा रेलवे का ५० करोड़ खर्च बढ़ गया है। प्रश्न यह है क्या इसका पूर्ण सदुपयोग हुआ ?

नियोजन दर : रेलवे ने नियोजन के पहले सालों में २१७.७२ करोड़ रुपए खर्च किया है। का नियोजन-व्यय कुल ४०० करोड़ रु० का है। अवस्था में रेलवे का १४.०७ करोड़ रुपए खर्च कुछ आश्चर्यजनक है और सरकार की इस आशा "आर्थिक पुनस्संस्थापन और बढ़े उत्पादन" के है। रेलवे का पूँजीगत व्यय १९४९-५० रु. में करोड़ था पर अब वह घट कर ७.०५ करोड़ ही गया है।

इस अवस्था में रेलवे नियोजन-कार्यक्रम को कर रही है। १९३८-३९ में १७७८०० लाख रेल से यात्रा करते थे। एक युग के बाद नियोजन पहले रेलवे यात्रा करने वालों की संख्या बढ़ कर लाख हो गई और माल वहन २१७८३० से लाख टन मील हो गया। युद्ध-काल में ८ प्रतिशत गेज रेलवे एंजिन, १५ प्रतिशत मीटर गेज माल-डब्बे ४००० मील रेल-पटरी, और ४० लाख भेजे गए और २६ ब्राँच लाइनें उखाड़ दी १ अप्रैल १९५१ को एक तिहाई रेलवे ऐंजिन, सवारी गाड़ियाँ और एक चौथाई माल गाड़ियाँ आयु समाप्त कर चुकी थीं। अभियान करने की प्रतीक्षा पड़ा माल ५८००० से बढ़ कर १०६,००० माल भार हो गया था। इस प्रकार गति अवरोध उत्पन्न रहा था। नियोजन का उद्देश्य रेलवे की यातायात में १० प्रतिशत वृद्धि करना था। इस अवस्था में रेलवे का पुनस्संस्थापन करना था। प्रश्न यह है, ने यह कार्य किस प्रकार किया ?

रेलवे ने रोलिंग (ऐंजिन सवारी व माल के भण्डार स्टाक और मशीनरी पर इस प्रकार खर्च किया :

(करोड़ रुपयों में)

१९४९-५०	२१.७५
१९५०-५१	२०.१६
१९५१-५२	३७.९१
१९५२-५३	४२.२५
नियोजन काल का कुल व्यय	२०७.९६

१९५४

नियोजन-काल ही में १४२.५ मील का आसाम रेल लिंक, और १५० मील का कांडला दीसा रेलवे का उपक्रम किया गया और इनमें से पहले को पूरा किया गया। यात्रियों की सुख-सुविधा को बढ़ाने के लिए प्रति वर्ष ३ करोड़ रु० खर्च किया जाएगा और इस प्रकार नियोजन-काल के अन्तर्गत १५ करोड़ रु० खर्च करने का इरादा है।

अप्रैल १९५१ में लाइन पर ८२०९ एंजिन थे। इनमें से ३५९६ अपना आर्थिक जीवन ४० साल पूरा कर चुके थे या नियोजन काल में पूरा करने वाले थे। पूर्णायु से अधिक काल के रेलवे एंजिनों की संख्या ४४ प्रतिशत थी। इस काल में कितने एंजिन किस लागत पर मँगाए गए, यह नीचे से मालूम होगा :

माल मंगाया गया							माल प्राप्त हुआ			
वर्ष	कुल	भारत		विदेश		लागत	प्राप्ति-वर्ष	भारत	विदेश	कुल
		ब्रा. गे.	मी. गे.	ब्रा. गे.	मीट	करोड़ रु.				
१९५१-५२	३७०	१००	५०	३०	१९०	१४.५७	१९५१-५२	२७	९३	१२०
१९५२-५३	२१४	१०७	५०	४७	१०	१०.०८	१९५२-५३	६३	१५०	२१३
१९५३-५४	१२४	५०	५०	६०	२५	८.२३	१९५३-५४	५६	७८	१३४
१९५४-५५ १९५५-५६	७३५			५००	२३६		(३१-१२-५३ तक)			

चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स ने अब तक निम्न संख्या में एंजिन तैयार किए हैं :

तैयार हुए एंजिनों की संख्या	
१९५१	१६
१९५२	३०
१९५३	५४
	१००

लाला लोकोमोटिव द्वारा तैयार किए गए एंजिन :

१९५१-५२	१०
१९५२-५३	३०
१९५३-५४	१०
दिसम्बर १९५३ तक	५०

प्रथम नियोजन की समाप्ति पर भी ९४३ रेलवे एंजिन पुनर्नवीनीकरण के लिए बचे रहेंगे। इसके साथ १०४२ अपनी आयु समाप्त कर चुके होंगे। १९५५-५६ के यातायात के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए ८८०० रेलवे एंजिनों की आवश्यकता होगी। इनमें से १९८५ एंजिन अपनी आयु समाप्त कर चुके होंगे।

रेलवे एंजिनों के समान सवारी गाड़ियों की दृष्टि से भारतीय रेलवे की स्थिति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। युद्ध के बाद विरासत में स्वाधीन भारत को जो मिला वह जीर्ण-शीर्ण था। नियोजन-काल में सवारी गाड़ियों का आर्डर इस प्रकार दिया गया :

(पाँच सालों में मँगाया गया)

वर्ष	ब्रॉड गेज			मीटर गेज			सर्व योग	लागत करोड़ रु. में
	भारत	विदेश	योग	भारत	विदेश	योग		
१९५१-५२	३९६	५०	४४६	३००	२५३	५५३	१००२	६.०६
१९५२-५३	३१७	५०	३६७	८०९	२२४	१०३३	१४००	११.८
१९५३-५४	६६६		६६६	४७६	२१२	६८८	१३८४	१२.६
१९५४-५५ १९५५-५६	८१०		८१०	११९०		११९०	२०००	२६.००

इस काल में जो आया

	१९५१-५२	५२-५३	५३-५४	योग
भारत से कुल प्राप्त	६७३	७६१	४७६	१९४०
विदेश से प्राप्त	९८	१०४	१३३	३३५
	७७१	८६५	६०९	२२७५

नियोजन के आरम्भ में ४९०० घटनाकों को अविलम्ब बदलने की जरूरत थी। पंचवर्षीय नियोजन के अन्त में २१३० घटकों को बदलने की ज़रूरत बनी रहेगी।

माल के डिब्बों की स्थिति पहले से कुछ अच्छी है। माल के डिब्बों के समाहरण का कार्यक्रम इस प्रकार है :

	कुल डिब्बों की संख्या	लागत (करोड़ रु० में)
१९५१-५२	१३८४०	१४.०९
१९५२-५३	७९५२	८.७०
१९५३-५४	१०५०१	११.२६
१९५४-५५ १९५५-५६	२७०००	२७.०० लगभग
	५९२९३	६१.०५

कहाँ से माल डिब्बे प्राप्त हुए :

	१९५१-५२	५२-५३	५३-५४ (३१-१२-५३ तक)	योग
भारत में बने	३७०७	६४६३	४४६९	१४६३९
विदेश से आए	२४५९	५२४८	७७१	८४७८
	६१६६	११७११	५२४०	२३११७

नियोजन के आरम्भ में ४२२५६ अर्थात् कुल माल डिब्बों का २३.७ प्रतिशत अपनी आयु समाप्त कर चुका था। नियोजन काल में और २६११५ का आर्थिक जीवन समाप्त हो जानेवाला है। इस प्रकार ६८३७१ माल-डिब्बों की जगह नए माल-डिब्बे आवश्यक थे। समाहरण कार्यक्रम यदि पूर्णतः सफल भी हुआ तो भी १४००० माल डिब्बों को नया करने की ज़रूरत बनी रहेगी। भारत में प्रतिवर्ष १२००० माल डिब्बे बनने लगें, इसका प्रबन्ध हो रहा है।

पूर्णतः नहीं : युद्ध काल में उखाड़ी गई रेलवे लाइनों का पुनः संस्थापन काम नियोजन काल में पूर्ण न होगा। उखाड़ी गई रेलवे लाइनों का ७६ प्रतिशत ही पुनः संस्थापित हो सकेगा। रेलवे नियोजन के इस विषयक कार्यक्रम को देखने से हम निम्न परिणाम पर पहुँचते हैं :

युद्ध काल में उखाड़ी हुई लाइनों का पुनस्संस्थापन

	ब्रा. गे.	मी. गे.	नै. गे.	योग
उखाड़ी गई लाइनों की संख्या	१७	४	५	२६
उखाड़ी गई लाइनों की मीलों में संख्या	५३८	७१	२४६	८५५
१९५५-५६ में जो लाइनें इस्तेमाल में होंगी	१०	१	१	१२
पुनः खुली लाइनें मीलों में	४१०	५३	३५	४९८
उखाड़ी गई लाइनें	७६%	७४.५%	१४.२५%	५७.७%

इससे प्रगट है कि उखाड़ी हुई पटरियों में से पुनः ५७.७ प्रतिशत ही बिछाई जा सकेंगी। इस काल में अनेक निर्माण कार्य जारी हैं, या नए शुरू किए गए हैं। बजट साल में हावड़ा-वर्दवान विभाग का विद्युतीकरण किया जायगा। इसके अलावा पठानकोट-माधोपुर रेल-मार्ग बनाया जायगा। लेकिन वास्तविक आवश्यकता पठानकोट को जम्मू से मिलाने की है। काश्मीर भारत का एक अविभाज्य अंग हो गया है। अतः रेल-मार्ग जम्मू तक बढ़ा कर ले जाने का प्रोग्राम बनाना चाहिए। रेलवे मंत्री ने कहा है कि कुछ की जाँच हो रही है, और जब तक उन रिपोर्टों पर विचार न कर लिया जाय, उनको स्थगित रखना चाहिए। लेकिन अनेक लाइनों की जाँच समाप्त हुए वर्षों बीत गए हैं पर फिर भी उनका काम अभी तक शुरू नहीं हुआ। ताम्बरम्-विल्लुपुरम् योजना दस साल पहले तैयार की गई थी। यह सारी कल्पना अत्यधिक लाभजनक मानी जाती है। पर अभी

१९५४

तक इसमें हाथ नहीं लगाया गया। इसलिए जाँच की रिपोर्ट आने के बाद निर्माण कार्य शुरू हो जायगा यह भूल है।

बढ़ता ख़र्च : रेलवे का ख़र्च बराबर बढ़ रहा है। १९४८-४९ में रेलवे की यातायात से विशुद्ध आय २८·१ प्रतिशत थी, पर १९५४-५५ में २२·५ प्रतिशत ही है और ५·६ प्रतिशत की कमी हो गई है। विशुद्ध आय के मार्जिन में सहसा कमी आई है। १९५१-५२ में यह ६१·७५ करोड़ रु० थी, पर १९५४-५५ में यह घट कर ४०·६४ करोड़ रु० रह गई। फलतः कुल पूँजी पर लाभ का अनुपात ७·३ प्रतिशत से घट कर ४·४ प्रतिशत रह गया है। इसका एक कारण यह है कि ३१ मार्च १९४८ से ३१ मार्च १९५३ के मध्य रेलवे कर्मचारियों का व्यय ६७·३४ करोड़ रु० से बढ़ कर १२६·८८ करोड़ रु० हो गया। यह ८८ प्रतिशत वृद्धि है। इसमें मंहगाई भत्ता का ५० प्रतिशत वेतन में शामिल करने के कारण हुई नई वृद्धि ३·१५ करोड़ रु० भी जोड़ना चाहिए। इस कारण अकेले रेलवे के कर्मचारी मण्डल की लागत का व्यय ही १० करोड़ रु० बढ़ गया है। मरम्मत और सम्भाल पर ६७ करोड़ रु० का व्यय होना बताया जाता है यह एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ बचत की जा सकती है।

रेलवे की निधियाँ : रेलवे को नियोजन कार्यक्रम पूरा करने के लिए अपने पास से रु० ३२० करोड़ देना है। इसमें से वह तीन सालों में १६५ करोड़ रु० के लगभग दे चुकी है। उसको रु० ६० करोड़ की कमी पड़ रही है और अपने पास से देने की उसको आशा नहीं। रेलवे अपने कार्यक्रम को पूरा करने के लिए अपनी तीन निधियों; मूल्य ह्रास सुरक्षा निधि; राजस्व सुरक्षा निधि; और विकास निधि पर आश्रित है। इस कारण इन निधियों की अवस्था को देखना ठीक होगा।

मूल्य ह्रास सुरक्षा निधि (लाख रुपयों में)

	निधि में विनियोग	निधि से लिया गया	वर्ष के अन्दर विशुद्ध वृद्धि	वस्तुतः बन्द रोकड़
१९४८-४९	२३·११	१७·२८	५·२३	१०१५७
१९४९-५०	२९·१७	११·७३	७·४४	१०६०१
१९५०-५१	३३·५९	२६·६३	६·९६	१२३६५
१९५१-५२	३३·७९	३५·८७	–२·०८	१२२०२
१९५२-५३	३४·४२	४०·८९	–६·४७	११६३६
१९५३-५४ (पुनःवीक्षित)	३३·८३	४२·३३	–८.५०	१०७८६
१९५४-५५ (बजट)	३३·६०	४३·३०	–९·७०	९८१६

इससे मालूम होगा कि पिछले चार वर्षों में निधि में वृद्धि होने के बजाय कमी हुई है। पुनस्संस्थापन कार्य इस निधि द्वारा होता है। उसकी क्या हालत है यह ऊपर की तालिका से प्रगट है।

राजस्व सुरक्षा निधि की अवस्था इस प्रकार है :

राजस्व सुरक्षा निधि

(लाख रु. में)

	निधि में विनियोग	निधि से लिया गया	निधि में विशुद्ध वृद्धि	बन्द रोकड़
१९४८-४९	३.	५	–२	६·८२
१९४९-५०	–	–	–	६·८२
१९५०-५१	५·४०	१	५·४१	१३·५८
१९५१-५२	१८·१२	१८	१९·३०	३३·७२
१९५२-५३	२·२६	४	२·३०	३६·०५
१९५३-५४ (अनुवीक्षित)	१·१३	–	१·१३	३७·१८
१९५४-५५ बजट	१·१८	–	१·१८	३८·३६

यह निधि संकट काल के लिए है। इस कारण इसकी बढ़ती राशि आशाजनक है। पर यह अधिक नहीं है। विकास निधि की अवस्था इस प्रकार है।

विकास निधि (लाख रु. में)

	निधि में विधियोग	निधि से निका I	विशुद्ध वृद्धि	बन्द रोकड़
१९४८-४९	१·२७	२·३३	१·०६	१३३२
१९४९-५०	०·४३	०·०५	०·४८	१३·८०
१९५०·५१	१०·५२	५·३५	५·१७	१९·४४
१९५१-५२	१०·६५	७·७०	२·९५	२२·४८
१९५२-५३	१२·७६	८१०	४·६६	२७·१४
	निधि में विनियोग	निधि से निकाला	विशुद्ध वृद्धि	
१९५३-५४ (अनु०)	३·८९	१२·४१	८·५२	१८·
१९५४-५४ (बजट)	५·६४	१०·५९	४·९५	१३·

नई रेल मार्ग के विस्तार : यात्रियों के सुविधा की वृद्धि और कर्मचारियों को सुख-सुविधा का कार्य इसी निधि से होता है। इस निधि के छः वर्षों में केवल ३५ लाख की वृद्धि हुई है। निधियों की स्थिति बताती है कि यदि समय रहते के व्यय में कोई कमी नहीं की गई तो रेलवे की रुक जाएगी।

इतिहास सदन, कनाट सर्कस
नई दिल्ली

—अवनीन्द्रकुमार विद्यालंका

बंगला कहावतें

अभागा जेखाने जाय समुद्र शुकाये जाय
जहाँ जाय भूखा वहाँ पड़े सूखा।

आतूरे नियमो नाशु
जरूरत के सामने क़ानून नहीं चलता।

आकाशेर दिले थू थू सिद्दे निजेर मुखे पड़े
आसमान पर थूका अपने ही मुंह पर पड़ता है।

आपनि बांचले आपेर नाम
पहले आत्मा फिर परमात्मा।

पापेर धन प्रायश्चित्ते जाय
सूम का धन शैतान खाय।

शिवराज गढ़
सौराष्ट्र

— अनवर आगेवान

दार्शनिकों की उपहासप्रियता

कोई भी मत यद्यपि निःसंशय रूप से किसी न किसी व्यक्ति की प्रतिभा का ही उपज है, और उस व्यक्ति के मनन के प्रकर्ष तथा अप्रकर्ष के अनुसार ही उस मत की दृढ़ता या अन्याय्यता होती है, तथापि यह एक सर्वलोक विदित शिष्टाचार है कि किसी भी मत की समालोचना में उस मत से सम्बन्धित न्याय या तर्कों का ही खण्डन-मण्डन किया जाता है, उस मत का प्रतिपादक आचार्य का उपहास करना समालोचना नहीं कहा जाता। किसी भी मत में प्रवक्ता आचार्य का संस्कार बहुत अंश तक कारण होता है, पर मत-समालोचना में आचार्य संस्कार का उल्लेख न करना ही शोभन होता है।

हमारे प्राचीन आचार्य भी परमत समालोचना के समय केवल मत का ही खण्डन–मण्डन करते थे, मत-प्रतिष्ठाता आचार्य या उस मत के अनुयायियों का उपहास प्रायः नहीं करते थे पर कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहाँ व्यक्तिगत आक्षेप की प्रवृत्ति दीख पड़ती है। शायद अपने मत के प्रति अत्यन्त अभिनिवेश के साथ साथ पर-मत के प्रति अत्यन्त अनादर ही इस प्रकार की प्रवृत्ति का कारण है। इन आक्षेपों में व्यंगात्मक प्रवृत्ति ही अधिक है—ऐसा प्रतीत होता है, और विरोधी के दोषों का उल्लेख गौण है—यह भी वाक्य-विन्यास से अनायास बोधगम्य होता है।

हम इस संक्षिप्त निबन्ध में प्राचीन आचार्यों के इस प्रकार उपहासात्मक वाक्यों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। किसी के प्रति आक्षेप करना इस निबन्ध का लक्ष्य नहीं है, केवल पाठकों का मनोविनोद ही इस लेख का उद्देश्य है—ऐसा जान कर इस निबन्ध का पाठ करना चाहिए।

आचार्य शंकर एक बहुत बड़े दार्शनिक थे। अपने ग्रन्थों में कई स्थानों पर उन्होंने विरुद्धवादी पर कठोर व्यंग किया है। चारुता की दृष्टि में वे उपहास अत्यन्त मनोहारी हैं, यद्यपि उस व्यंग से प्रतिपक्ष कुपित होगा—इसमें सन्देह नहीं है। बृहदारण्यक भाष्य में तार्किकों को लक्ष्य कर आचार्य ने एक कठोर व्यंग किया है यथा: "अहो अनुमानकौशलं दर्शितम् अपुच्छशृंगैः तार्किकवलीवर्दैः" अर्थात् पुच्छ शृंग से शून्य नैयायिक रूपी वलीवर्द से यह अनुमान दिखाया गया है।

एक दर्शन के ग्रन्थ में इस प्रकार के वाक्यों का होना असंगत प्रतीत होता है, पर जिस स्थल पर आचार्य ने ऐसा कहा है, वहाँ नैयायिकों का अनुमान इतना निःसार रूप से सिद्ध हुआ है कि यह व्यंग वाक्य वहाँ ठीक ही प्रतीत होता है, यद्यपि आजकल हम ऐसे उपहास वाक्यों के प्रयोगों का अनुमोदन नहीं कर सकते हैं।

तीक्ष्णतम उपहास-वाक्यों का प्रयोग सबसे अधिक जरन् नैयायिक जयन्त भट्ट की 'न्यायमञ्जरी' में दीख पड़ता है और यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि 'न्यायमञ्जरी' में व्यंगपूर्ण वाक्यों की जितनी चमत्कारिता है, उतनी शायद संस्कृत वाङ्मय में अन्यत्र कदाचित् ही मिले।

जयन्त ने कई स्थलों पर मीमांसकों के मतों का प्रचण्ड खण्डन किया है। एक स्थल पर मीमासकों को लक्ष्य कर वे कहते हैं: "मीमांसका यशः पिबन्तु, पयो वा पिबन्तु बुद्धिजाड्यापनयनाय ब्राह्मीघृतं वा पिबन्तु, वेदस्तु पुरुषप्रणीत एव नात्र भ्रान्तिः" (पृ. २३६) अर्थात् मीमांसक चाहे दूध या बुद्धि की जड़ता को दूर करने के लिए ब्राह्मी घृत का पान करें......इत्यादि। कितना सुन्दर उपहास है!

'न्यायमञ्जरी' में कई स्थानों पर उपहास उद्दण्ड शब्द प्रयोग के रूप में परिणत हो गया है, जो सर्वथा अवाञ्छनीय है। कई स्थलों पर प्रतिपक्ष को सम्बोधित कर जयन्त ने 'रे मूढ़' शब्द का प्रयोग किया है, जो जयन्त की ही अशिष्टता का परिचायक है। हाँ, एक स्थान पर नास्तिकों को लक्ष्य कर उन्होंने जो कहा है, वह विशुद्ध उपहास में गणित हो सकता है यथा:

> "ये स्वीकरं निरपवाददृढप्रमाण-
> सिद्धस्वरूपमपि नाभ्युपयान्ति मूढाः।
> पापाय तैः सह कथापि विलीयमाना
> जायेत नूनमितियुक्तमतो विरन्तुम्॥"

अर्थात् चूँकि नास्तिकों से आलोचना करने से पाप

होता है, अतः उनसे वाद न कर चुप रहना ही शोभनीय कार्य है । नास्तिकों के अन्तःसारशून्यत्व का प्रदर्शक यह एक व्यंगपूर्ण वाक्य है ।

दार्शनिक प्रवर श्रीहर्ष की उपहासप्रियता प्रसिद्ध है । यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि उनका 'खण्डन खण्डखाद्य' ग्रन्थ व्यंगात्मक मन्तव्यों से भरा पड़ा है, और विरोधी के प्रति तीक्ष्ण विद्रूपवाण की प्रखर वर्षा उन्होंने की है । कोई भी व्यक्ति इस ग्रन्थ का पारायण कर इस सत्य की उपलब्धि कर सकता है । हम यहाँ श्रीहर्ष के 'नैषध चरित' से एक व्यंग वाक्य का उदाहरण दे रहे हैं । खंडन का उदाहरण दार्शनिक तत्त्वसापेक्ष होने के कारण यहाँ नहीं दिया जा रहा है ।

गौतम के मुक्ति तत्व के विषय में नैषध में एक श्लोक है : 'मुक्तये यः शिलात्वाय...' इत्यादि । इस श्लोक में उन्होंने लिखा है कि गौतम गौतम ही हैं । यहाँ दूसरा गौतम शब्द उपहासार्थ है, जिसका अर्थ है गौ+तम=जो पूर्ण गौ-पशु है, अर्थात् मूर्खतम है । यहाँ हर्ष का तात्पर्य व्यंग में ही है, और यह व्यंग रसिक जनों से कितना उपभोग्य है—यह काव्य-रसिक ही जान सकते हैं ।

उपहासपूर्ण वाक्यों का रुचिर प्रयोग 'पतञ्जलि' के महाभाष्य में बहुत मिलते हैं । व्याकरण की तरह एक शुष्क विषय से सम्बन्धित ग्रन्थ में इतना मनोहारी व्यंग वाक्यों का प्रयोग कैसे सार्थक रूप से किया गया—यह केवल सोचने का ही विषय है । दो एक उदाहरण देकर हम पतञ्जलि की परिहासप्रियता के स्तर को दिखा रहे हैं :

(क) व्याकरण में 'नञ्' एक निपात है, जिसका अर्थ होता है निषेध । इस विषय के विचार में जब वादी ने कहा कि नञ् निवृत्त पदार्थक होता है, तब पतञ्जलि का मनोहारी उपहास वाक्य सुनिए : "नञ् से यदि पदार्थ की निवृत्ति हो जाए, तो राजाओं को हस्ती अश्व सेना आदि रखने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, जब शत्रु का आक्रमण हो, तो राजा केवल 'नञ्' शब्द का उच्चारण कर दे, और उसी से आक्रमण प्रतिहत हो जाएगा (महाभाष्य २।२।६)[1] । कितना सुन्दर व्यंग है । शब्दार्थ की चिन्ता में इस प्रकार व्यंगपूर्ण वाक्य कदाचित् ही उपलब्ध होता है ।

(ख) 'ऋलृक्' सूत्र भाष्य के अन्त में भी एक रोचक उपहास वाक्य है ।[2] वादी ने अनेक सूक्ष्म तर्कों से कई सूत्रों में हेर फेर करके यह सिद्ध कर दिया कि सूत्र में 'लृ' वर्ण की आवश्यकता नहीं है । अतः उसका प्रत्याख्यान किया जाए । पतञ्जलि ने वादी की इस कुचेष्टा के प्रति कहा है कि लृकार के प्रत्याख्यान के लिए तुम्हारा यह प्रयास मानो उसी प्रकार का है, जैसा कि कोई व्यक्ति बहुत परिश्रम कर बहुत बड़ा बाँस ले बहुत ऊँचे पेड़ से एक क्षुद्रतम फल को खींचता है' अर्थात् यह प्रयत्न जैसा बहु परिश्रम साध्य अल्प फलवान् है, वैसा तुम्हारा 'लृ' का प्रत्याख्यान । 'बह्वारम्भे लघुक्रिया' सम्बन्धी ऐसा व्यंग कदाचित् दृष्टिगोचर होता है ।

पतञ्जलि के महाभाष्य में लगभग १०० उपहास वाक्य हैं, एक स्वतन्त्र निबन्ध में जिनका सुविशद विचार बाद में किया जाएगा ।

योग के मोक्ष सिद्धान्त की असंभाव्यतासम्बन्धी युक्ति में बौद्धों का एक उपहास वाक्य योगभाष्य (२।२ में मिलता है । बात यह है कि—बुद्धि का प्रलय मुक्ति में होता है—ऐसा योगमत है । बौद्ध कहता है कि ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि विद्यमान चित्तवृत्ति (बुद्धि) यदि मुक्ति का साधक नहीं होती तो नष्ट होकर मुक्ति का साधक होगी—इसमें कौन विश्वास करेगा ? यह तर्क उपहास के रूप में निम्न प्रकार से आख्यायिका के रूप में बौद्ध कहता है, यथा : "किसी नपुंसक की पत्नी पति से कहती है आर्यपुत्र, मेरी भगिनी तो पुत्रवती है, पर मैं क्यों नहीं हूँ ?' नपुंसक ने कहा कि मरने के बाद मैं तुम्हारे गर्भ में पुत्रोत्पादन करूँगा ।" यह जैसे असंभव है, वैसे बुद्धि नष्ट (प्रलीन) होकर मुक्ति का साधक होगी, यह भी असंभव है इत्यादि ।

यह व्यंग भी उपभोग्य है, पर यह उच्चकोटि का नहीं है । यह वाक्य कुत्सा के लिए नहीं है, प्रत्युत उपहासार्थक ही है, जैसे वाचस्पति ने अपनी टीका में कहा है : 'पण्डकोपाख्यानेन उपहसति ।' खण्डन खण्ड-खाद्य में भी इस उपहास वाक्य का व्यवहार है।

---

(१) 'यद्येष नञो माहात्म्यं स्यात्, न जातुचिद्राजानो हस्त्यश्वं बिभृयुः नेत्येव राजानो ब्रूयुः ।'

(२) स एष सूत्रभेदेन लृकारोपदेशः प्लुत्याद्यर्थः सन् प्रत्याख्यायते, सैषा महतो वंशस्तम्बात् लट्वाऽनुकृष्यते।

१६५४

वाचस्पति मिश्र षट्दर्शनों के व्याख्याकार हैं। उनके ग्रन्थों में सूक्ष्मतम पांडित्य के साथ व्यंगपूर्ण वाक्य भी कई स्थलों पर दीख पड़ते हैं। सांख्य के 'प्रधान कारणवाद' की समालोचना (१।१।५) में उन्होंने सांख्य के प्रति उपहासात्मक वाक्य का प्रयोग किया है। यथा : चूँकि प्रधान अर्थात् प्रकृति जड़ है, अतः प्रकृतिजात बुद्धि आदि सब जड़ हैं, यद्यपि उनमें सत्व गुण हैं, तथापि ये पदार्थ किसी का अनुभव नहीं कर सकते। जैसे एक हजार अन्धे भी पथ को नहीं देख सकते परन्तु एक चक्षुष्मान् देख सकता है, उसी प्रकार एक आत्मा ही विज्ञाता है इत्यादि। यहाँ वाचस्पति मिश्र ने जो उदाहरण दिया, उसका तात्पर्य वस्तुतः व्यंग में है यह प्रतीत होता है।

मिश्र जी का दूसरा व्यंग 'न्याय-वार्तिक तात्पर्य टीका'[3] में है। नैरात्म्यवादी बौद्धों के मत की समालोचना में उन्होंने कहा है कि यदि आत्मा ही नहीं है तो कर्म, कर्मफल, प्रेत्यभाव आदि भी नहीं हैं। सुतरां दुःखहेतु संसार भी नहीं हैं। अतः संसार नाश के लिए चेष्टा की भी आवश्यकता नहीं है। इस मत में तब साधन, वैराग्य आदि सब व्यर्थ होगा। यह ऐसा है जैसा मानों कि कोई वृश्चिक के भय से भीत होकर पलायमान हो कर सर्प के मुख में पतित होता है। यहाँ जैसे वृश्चिक से साँप भयंकर है, अतः उसका पलायन मूर्खतापूर्ण है, उसी प्रकार कामना वासना के नाश के लिए नरात्म्यवाद का स्वीकार करना उतनी ही मूर्खता है, क्योंकि अन्त में उस वाद में साधनकारी आत्मा का ही स्वरूप नाश को प्राप्त होता है। यहाँ वाचस्पति ने जिस दृष्टान्त का उपन्यास किया है वह मूलतः व्यंगात्मक है और यह व्यंग कितना सुन्दर घटा है। कोई भी व्यक्ति इस स्थल को पढ़ कर इसका ज्ञान कर सकता है।

महानैयायिक उदयाचार्य ने भी उपहासपरक वाक्यों का व्यवहार किया है। उनका एक व्यंग वाक्य का उदाहरण देखिए। जब बौद्ध अपनी युक्ति से आत्मवाद का खण्डन करता है, तब उदयनजी बौद्धों की युक्ति से ही बौद्ध-पक्षों में दोष दिखा कर कहते हैं कि यह तो 'उष्ट्रलगुडक' की तरह हुआ, अर्थात् ऊंट जिस लगुड को वहन करता है, उससे उसको पीटा जाता है। उसी प्रकार बौद्धों की युक्ति से ही बौद्धमत निरस्त होता है (तज्जातीयस्य तु बाह्यवद् विज्ञानस्यापि विवेचनमेवेति स्वसंवेदनबाधितोऽयं विरुद्धधर्माध्यासो न भेदसाधक इत्युष्ट्रलगुडकं संवेदनेनैवास्य साधितत्वात्)[4]। यह कितना उच्च स्तर का व्यंग है, उद्धृत सन्दर्भ से इसका पता लग सकता है।

उदयन का एक दूसरा व्यंग देखिए। यह भी प्रागुक्त उपहास के समान है। जब वादी की युक्ति परपक्ष को काट कर स्वपक्ष की रक्षा नहीं कर सकती, प्रत्युत उन युक्तियों से अपने मत की भी हानि होती है, तब उदयन जी उपहास करते हैं कि वादी की युक्ति ठीक उसी प्रकार की है, जैसा कि मानों कोई साँप अपने ही विष से जर्जरित होकर अपने को ही काटता है। पाठकों को उपहास के स्वरूप-ज्ञान के लिए हम पूरा सन्दर्भ उद्धृत कर रहे हैं, यथा : "यदि हि न ज्ञातं किञ्चिदस्ति इत्यादि प्रतिज्ञार्थः प्रतिज्ञां स्पृशेत्, कथमयमर्थः प्रत्येतव्यः? न चेत् कथं साऽनुपपन्ना? तदुपपन्नत्वे च कथं पुनः प्रतिज्ञार्थ उपपद्यते? तदिदमायातं स्वविषमूर्छितो भुजंग आत्मानमेव दशतीति।"[5]

प्रसिद्ध दार्शनिक चित्रसुखाचार्य ने भी अपने ग्रंथ में श्रीहर्ष की तरह व्यंगात्मक वाक्यों का प्रयोग किया है। उनका एक व्यंग देखिए : "तत्रापि चेत् सा न स्यात् तदा गले पादुका-न्यायेन मृषात्वमेव पर्यवस्येत्।" (१।११) अर्थात् यदि उपर्युक्त मत संगत नहीं होता, तो वस्तुओं का मिथ्यात्व ही सिद्ध होता है, ठीक उसी प्रकार से जैसे एक व्यक्ति अपनी पादुका को गले में ही धारण करेगा, यदि पद में न पहने। यहाँ 'गले पादुका' शब्द उपाहासार्थ कहा गया है और सन्दर्भ में इस उपहास की उपयोगिता स्पष्ट है।

वेदान्तस्यमन्तक ग्रंथ में वेदान्त भाष्यकार बलदेव ने प्रत्यक्षप्रमाणवादी चार्वाक के प्रति जो व्यंग किया है, वह रसिकजनों के लिए चिरस्मरणीय है। चार्वाक प्रत्यक्ष-प्रमाण को छोड़ कर अनुमान का व्यवहार करना पड़ता है, इस असामञ्जस्य को व्यंगपूर्ण ढंग से बलदेव ने दिखाया है[6]।

---

[3] देखो न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका पृ० ५७

[4] आत्मतत्त्व-विवेक, पृ० ५४

[5] आत्म तत्त्व विवेक, पृ० ६७

[6] बलदेव का श्लोक निम्न प्रकार का है :

चार्वाक तव चार्वङ्गीं जारतो नीक्ष्य गर्भिणीम्।
प्रत्यक्षमात्रविश्वास! सदा श्वासं किमुज्झसि ॥

एक श्लोक में उन्होंने चार्वाक को संबोधित कर कहा है : "हे चार्वाक ! तुम प्रत्यक्ष छोड़ कर अनुमान नहीं मानते हो, पर तुम अपनी स्त्री को परपुरुषगमन से गर्भिणी जान कर क्यों दुःखित होते हो ? तुम तो गर्भ देख रहे हो, पर-पुरुष गमन तो तुमने देखा नहीं अतः गर्भमात्र को देख कर स्त्री को क्यों परपुरुषगामिनी कहते हो ? परपुरुष-गमन को तुमने प्रत्यक्ष तो नहीं किया है।" यह कितना उच्चस्तर का व्यंग है—यह रसिकों से छिपा नहीं है, पर कुछ अश्लीलता इसमें आ गई है जो उपहास की उच्चाङ्गता की दृष्टि में क्षम्य है।

उपसंहार में कहना है कि दार्शनिक लोग केवल शुष्क तार्किक ही होते हैं, यह बात ठीक नहीं है। दर्शन का अध्ययन साहित्य की तरह किया जा सकता है, और ऐसे अध्ययन की आवश्यकता है। पर उपहास-वाक्य यदि परुष-वाक्य हो गया है, तो उसका आदर नहीं होना चाहिए, जैसे बुद्धघोष ने कहा है : "तथागत की उक्ति सिंह की तरह है ××× और अन्य दार्शनिकों की जो उक्ति है, वह कुक्कुर के चीत्कार की तरह है" (विशुद्धिमग्गो ५६) ऐसा कहना उपहास नहीं है।

निर्दोष उपहास साहित्य की संपत्ति है, और उससे विशुद्ध मनोरंजन होता है। इसी दृष्टि से ये उदाहरण दिए गए हैं। आशा हैं पाठकों का इससे मनोरंजन होगा।

टीकमणि संस्कृत कालेज,
बनारस

—रामशङ्कर भट्टाचार्य

गद्य-गीत

प्रतीक्षा के पल जब सजग होते हैं, तब न आकर
जब वे पल बेसुध हो जाते हैं और चेतना शिथिल
तुम तब आते हो !

आशा की ज्योति से जब नयन दीप्त होते हैं तब न आकर
जब नयनों में निराशा की बदली घिर आती है,
तुम तब आते हो !

हृदय-बगिया में जब हास-सुमन खिलते हैं तब न आकर,
जब नयनों से अश्रुमुक्ता झरते हैं
तुम तब आते हो !

जीवन का सत्य समझ कर जब तुम्हें पुकारती हूँ तब न आकर,
जब तुम्हें स्वप्न समझ लेती हूँ
तुम तब आते हो !

जब साकार तुम्हें पाना चाहती हूँ तब न आकर
जब तुम्हें निराकार मान लेती हूँ
तुम तब आते हो !

१७/३ माल रोड,
कानपुर

विद्या मेहरोत्रा

'गोविन्द रामायण' की रामकथा

सिखों के दशम गुरु गोविन्दसिंह एक असाधारण महापुरुष थे और उनका कार्यक्षेत्र केवल धर्मोपदेश एवं सैन्य संचालन तक ही सीमित नहीं था। एक अनुभवी लोकनायक के रूप में उन्होंने नवीन 'खालसा पंथ' को जन्म देकर उसे संगठित किया और उसके अनुयायियों में जातीयता के भाव भरे। वे शस्त्र-विद्या के साथ साथ विविध शास्त्रों के भी जानकार थे और काव्य रचना में निपुण होने के अतिरिक्त, अच्छे कवियों को आश्रय देना भी जानते थे। कहते हैं कि उनके दरबार में ५२ कवि रहा करते थे और उन्हें उनसे अपने साहित्य-सृजन में सदा प्रोत्साहन मिला करता था। गुरु गोविंदसिंह ने संस्कृत भाषा एवं साहित्य का सम्यक् अध्ययन करने के लिए रामसिंह, कर्मसिंह, गंडासिंह, वीरसिंह तथा शोभासिंह नामक अपने पाँच सिखों को काशी भेजा था और उन जैसे संस्कृतज्ञ विद्वानों द्वारा अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थों का भाषानुवाद भी कराया था। परन्तु वे केवल संस्कृत साहित्य के ही प्रेमी नहीं थे। फ़ारसी, अरबी, ब्रज, राजस्थानी, एवं खड़ी बोली जैसी भाषाओं में वे पंजाबी की ही भांति अच्छी काव्य रचना भी कर सकते थे। दिल्ली के तत्कालीन मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब के यहाँ उन्होंने अपनी फ़ारसी रचना 'जफ़रनामा' भेज कर उसे समझाने की चेष्टा की थी। उनके आश्रित कवियों की समस्त रचनाओं के कलेवर अथवा संख्या का अनुमान केवल इस बात के आधार पर भी किया जा सकता है कि उनके संग्रह 'विद्याधर' को तोलने पर उन्हें नौ मन तक भारी पाया जा सकता था। स्वयं गुरु गोविंदसिंह की भी रचनाएँ संख्या में बहुत हैं और वे विभिन्न प्रकार की भी हैं। ये सिखों के 'दसम ग्रन्थ' में संगृहीत हैं और इन्हीं में उनकी रचना 'गोविन्द रामायण' भी आती है। जिस की रामकथा एवं रचना शैली का एक संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

'गोविन्द रामायण' की रचना अनेक प्रकार के छन्दों में हुई है और उनमें से कई एक ऐसे भी हैं जो बहुत दिनों से प्रचलित नहीं है। इस ग्रन्थ की भाषा भी मिश्रित है। इसी प्रकार इसके विषय का विभाजन भी, अन्य रामायणों की भांति कांडों के अनुसार न होकर विभिन्न शीर्षकों में किया गया मिलता है जिनके नाम ये हैं — १ रामावतार, २ सीता स्वयंवर, ३ अवध प्रवेश, ४ वनवास, ५ वन प्रवेश, ६ खरदूषण युद्ध, ७ सीताहरण, ८ सीता की खोज, ६ लंकागमन अथवा हनुमान शोध को पठैवो, १० प्रहस्त युद्ध, ११ त्रिमुँड युद्ध, १२ महोदर युद्ध, १३ इन्द्रजीत युद्ध, १४ अतिकाय युद्ध, १५ मकराद्द युद्ध, १६ रावण युद्ध. १७ सीता मिलन, १८ अयोध्या आगमन, १६ माता मिलन' २० सीता वनवास, २१ सीता द्वारा जीवन दान और २२ सीता अवध प्रवेश। इनमें से सब का विस्तार भी एक समान नहीं है। इसके छन्दों की विविधता, इसकी रचना शैली तथा इसके पात्रों के संवादों को देख कर हमें केशवदास की 'राम चन्द्रिका' का स्मरण हुए बिना नहीं रहता। इस रचना की प्रारंभिक पंक्तियों में ही कह दिया जाता है कि जब असुरों ने संसार में अपने अत्याचार आरंभ किए तो देवता लोग एकत्रित होकर क्षीरसिन्धु में पहुँचे जहाँ ब्रह्मा के साथ विष्णु निवास करते थे और सभी ने मिल कर वहाँ पर आर्त्तनाद किया तथा सबने मिलकर प्रार्थना की : "हे रघुनाथ, अवतार धारण करो और अयोध्या में चिरकाल तक राज्य करो।" कवि का कहना है, "शुक्र रघुवंश की कथा का सूत्रपात यही से होता है। किन्तु यदि ऊपरी बातें भी कहीं जाएँ तो ग्रंथ कलेवर बढ़ जाता है, इसलिए सभा संक्षेप में ही कही जाती है" और तदनुसार वह रामकथा आरंभ करने के पहले क्रमशः रघु एवं अज राजाओं की संक्षिप चर्चा करके आगे बढ़ जाता है।

रघु एवं अज-राजाओं के क्रमशः बहुत दिनों तक राज्य करके मर जाने पर उसका शासन भार अन्त में दशरथ ने संभाला। ये मृगया के बहुत प्रेमी थे। इन्होंने 'कुहराम' के कोशलराजा की कन्या कौशल्या और सुमित्रसेन की कन्या सुमित्रा का पाणिग्रहण स्वयम्वरों में जा कर किया। किन्तु जब इन दोनों पत्नियों के रहते भी इनके कोई संतान न हुई तो इन्होंने फिर केकय राज की पुत्री कैकेयी के साथ विवाह किया जिसने इनसे उसी समय दो वर

मांगे । इन दोनों वरों के संबंध में कैकेयी ने फिर उस समय भी पक्की करा ली जब देवासुर संग्राम के अवसर पर दशरथ के देवताओं की सहायता करते समय उसने उनके निहत सारथी का काम स्वयं सँभाला और इस प्रकार उनके साथ विजय लाभ में भी अपना हाथ बँटाया। इसके अनंतर जब मृगयाशील दशरथ एक वार वन में विहार कर रहे थे तो इन्होंने श्रवण को अपने माता-पिता के लिए घड़े में जल भरते समय धोखे में बाण से मार दिया और फिर जब ये अपनी भूल के कारण पछताते हुए उन दोनों को स्वयं जल पिलाने लगे तो उन्होंने दुःखित होकर इन्हें शाप दे दिया कि जिस प्रकार हम पुत्र वियोग में मर रहे हैं उसी प्रकार तुम भी एक दिन मर जाओगे। राजा दशरथ को इस इस बात के कारण अत्यन्त खेद हुआ किन्तु आकाशवाणी द्वारा यह जान कर कि मेरे घर स्वयं विष्णु अवतार लेंगे इन्हें कुछ अवलम्बन मिला। उस आकाशवाणी के आदेशानुसार ही इन्होंने एक 'राजसूय' यज्ञ किया जिसके परिणामस्वरूप यज्ञ पुरुष ने स्वयं प्रकट होकर इन्हें 'खीर' का पात्र प्रदान किया। अन्त में उस पात्र की खीर को राजा ने अपनी तीनों रानियों को बुला कर उन्हें इस प्रकार बांट दिया कि एक को आधा मिला और शेष दोनों को केवल चौथाई-चौथाई भाग मिला तथा उसके कारण गर्भवती होकर उन्होंने तेरहवें महीने के चढ़ते राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न नामक चार पुत्र उत्पन्न किए। राजा ने इस पर प्रसन्न होकर बहुत-सा दान दिया।

जब चारों राजकुमार कुछ बड़े हुए तो उन्होंने शस्त्र एवं शास्त्र की विधियाँ सीखीं और धनुषबाण लेकर खेलने और घूमने लगे। उन्हीं दिनों विश्वामित्र ऋषि 'पितृतोष' नामक यज्ञ कर रहे थे और हवन की सुगंधि से आकृष्ट होकर उसकी सामग्रियों को राक्षसों ने लूटना आरंभ किया इस बात पर क्रुद्ध होकर विश्वामित्र अयोध्या आए और उन्होंने दशरथ से कहा कि या तो मुझे तुम राम को दे दो या मैं तुम्हें यहीं भस्म कर दूँगा। इससे भयभीत होकर राजा ने उन्हें अपने दो पुत्र दे दिए और विश्वामित्र उन्हें लेकर लौट आए। आते समय मार्ग में उनका रास्ता रोक कर ताड़का खड़ी हुई जिसे राम ने अपने बाणों से मार गिराया। इसी प्रकार तैयारी के साथ युद्ध करने आए हुए सुबाहु आदि राक्षसों को भी उन्होंने नष्ट कर दिया। इस घोर युद्ध में जो मारे जाने से बच गए वे अपने भेष बदल कर भाग कर खड़े हुए और उनमें कुछ ने तो लंका तक में जा कर शरण ली। कवि ने युद्ध का वर्णन कुछ विस्तार के साथ किया है और इसी अनन्तर इस ग्रंथ का 'रामावतार' नामक प्रकरण समाप्त होता है।

इसका दूसरा प्रकरण राम एवं लक्ष्मण को ले विश्वामित्र सीता-स्वयंवर देखने के लिए मिथिला जाने आरंभ होता है वहाँ पर राम को देख कर सभी मुग्ध जाते हैं और अपने अपने भावानुसार उनके सौन्दर्य का यंगम करते हैं। सीता काम-पीड़ित होकर पृथ्वी पर जाती है और उठ कर उन्हें फिर देखती है, इसी बीच में दूत धनुष को राजाओं के बीच लाते हैं और उसे हाथ लेकर वीर भाव के साथ राम उसके दो टुकड़े कर देते तथा सीता उन्हें वरण कर लेती है। कवि ने यहाँ सीता के सौन्दर्य का वर्णन आलङ्कारिक भाषा में किया और उसकी ओर राम का आकृष्ट हो जाना भी बतला है। धनुर्भंग का समाचार पाते ही फिर वहाँ पर ओज (परशुराम) आ जाते हैं और राम को घेर कर उन्हें करते हैं जिसे देख कर कई योद्धा भी गर्जने लगते हैं नगाड़े तक बजने लग जाते हैं। युद्ध की तैयारी का दृश्य सामने आ जाता है। कवि ने यहाँ पर परशुराम वीर भेष का बड़ा ही विशद एवं सुनिर्दिष्ट चित्रण कि है। राम की उनके साथ फिर बातचीत होती है दोनों ही आवेश के साथ बोलते दीख पड़ते हैं। अन्त राम परशुराम का दिया हुआ धनुष चढ़ा देते हैं परशुराम हार मान कर चुप हो जाते हैं तथा अपनी फैला कर राम को गले भी लगा लेते हैं।

उक्त घटना के साथ 'अवधप्रवेश' नामक प्र का सी आरंभ होता है और दशरथ की बरात के आदि का भी वर्णन विस्तार के साथ किया जाता है चारों राजकुमारों की विवाह-विधि सम्पन्न होती है वर-वधू लौट कर अयोध्या आते हैं। किन्तु यहाँ अकस्मात् घोर घटा छा जाती है और चारों ओर उ के लक्षण दीखने लगते हैं जिसे अपशकुन मान दशरथ अश्वमेध यज्ञ की तैयारी करते हैं। इस य पूर्ण हो जाने पर राजा अपने राज्य की तीन दिशाएँ तीनों पुत्रों को बाँट देते हैं और अपनी राजधानी का राम को देने के लिए राज्याभिषेक का प्रबन्ध करते जाते हैं। इतने में मन्थरा के कहने में आ कर कैकेयी

१९५४

अपने पूर्वोक्त दोनों वर मांग बैठती है जिनके अनुसार भरत के राजा होने तथा राम के वनवास जाने का प्रस्तार छिड़ता है। दशरथ उसे बहुत डाँटते और समझाते हैं तथा स्त्री जाति के स्वभाव की घोर निंदा भी करते हैं, किन्तु वह कुछ भी नहीं समझती। अन्त में वशिष्ठ मुनि इस बात की चर्चा राम से करते हैं और वे अपना सारा धन लुटा कर वनयात्रा के लिए तैयार हो जाते हैं। सीता भी उनके साथ जाने का आग्रह करती है उधर लक्ष्मण इसका समाचार पाते ही कैकेयी को बुरा भला कहने लगते हैं और फिर दोनों भाई अपनी माताओं से आज्ञा लेकर सीता के साथ वन की ओर चल देते हैं।

इसके अनन्तर 'वनवास' प्रकरण आरम्भ होता है जिसमें पहले अयोध्या में राम के वियोग के कारण कौशल्यादि का दुःखी होना, दशरथ का प्राणत्याग करना भरत का अपने ननिहाल से आ कर राम से वन में मिलने जाना तथा उनसे उनकी पादुका लाकर राज्य कार्य देखने लगना आदि का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। कवि ने फिर एक बार सीता के सौन्दर्य का वर्णन किया है और विराध राक्षस के ससैन्य आकर राम के साथ युद्ध करने तथा उनसे मारे जाने का विस्तृत परिचय दिया है इसके साथ ही 'वन प्रवेश' का भी प्रकरण चलने लगता है जिसमें रामादि के अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाने, उनसे बाणों की भेंट ग्रहण करने तथा गोदावरी में स्नान करने का उल्लेख किया गया है और इसके पश्चात् शूर्पणखा का प्रसंग भी आरम्भ होता है। यहाँ पर कवि द्वारा शूर्पणखा के विषय में किए गए कथन 'नाक कटाई गई गृह को सब' से कुछ ऐसी भी ध्वनि निकलती है जैसे वह राम के यहाँ से केवल असफल और अपमानित होकर ही गई थी। इसके आगे फिर खर दूषण से युद्ध, सीताहरण एवं सीता की खोज के विषय में छोटे छोटे तीन प्रकरण आते हैं जिनमें कथा का केवल संक्षिप्त उल्लेख ही पाया जाता है। खोजवाले प्रकरण के अन्त में जटायु प्रसंग तथा हनुमान एवं सुग्रीवादि के साथ राम की मैत्री का भी वर्णन आ जाता है।

इसके आगे आनेवाले 'लंका गमन' प्रकरण में भी हनुमान के लंका जाने, लंका जला कर लौटने तथा सेतु बाँधने की चर्चा संक्षिप्त रूप में की गई है। विशेषता केवल यही है कि सेतु बाँधते समय लंका के कई वीर राम की सेना की रोक थाम के लिए युद्ध करते हैं और धूम्राक्ष, जांबमाली और अकम्पन मारे भी जाते हैं। फिर इधर से रावण के दरबार में अंगद जाते हैं और उसे समझाने बुझाने की असफल चेष्टा करते हैं तथा अन्त में वहाँ से विभीषण को साथ लेकर लौट आते हैं। उधर मंदोदरी अपने पति रावण को शत्रुता के अधिक न बढ़ाने का परामर्श देती है, किन्तु वह अपने घमण्ड में उसकी एक भी नहीं सुनता और अपने कई वीर पुत्रों को सुसज्जित करके रण में भेजता है जिनमें से नरान्तक और देवान्तक युद्ध में मार दिए जाते हैं और नारदादि प्रसन्नता के मारे नाचने लगते हैं। इस प्रकरण के अनन्तर फिर केवल युद्धों के ही दृश्य दीख पड़ते हैं और यह क्रम रावण के वध तक चला जाता है। 'रावण युद्ध' प्रकरण का आरम्भ होने के पहले प्रहस्त त्रिमुण्ड, महोदर, इन्द्रजित, अतिकाय तथा मकराक्ष नामक राक्षसों के नामों पर भी लिखे गए छः प्रकरण आते हैं जिनमें से पहले और पाँचवें को छोड़ कर सभी छोटे छोटे हैं। पहले में प्रहस्त के अतिरिक्त कुम्भकर्ण के युद्ध का भी वर्णन कुछ विस्तार के साथ किया गया है। इसी प्रकार इन्द्रजित-युद्ध वाले प्रकरण में मेघनाद के तीरों द्वारा रामादि के मूर्छित हो जाने पर रावण की आज्ञा के अनुसार त्रिजटा के साथ सीता का युद्ध का दृश्य भी निरीक्षण करना दिखलाया गया है। कवि का कहना है कि उस समय सीता ने ही नागमन्त्र पढ़ कर सभी लोगों को नागपाश से मुक्त कर दिया और लक्ष्मण को पुनर्जीवन प्रदान किया।

रावण युद्धवाला प्रकरण इस पुस्तक के बड़े बड़े खण्डों में से एक है और इसमें कवि ने युद्ध सम्बन्धी घटनाओं को कुछ अधिक विस्तार के साथ लिखा है। रावण के बीसों हाथों में से प्रत्येक में किसी न किसी हथियार का होना बतलाया गया है जिनमें अनेक प्रकार की तलवारों के अतिरिक्त परशु, त्रिशूल, हथनाल, गदा, छुरा, तीर--कमान, पाश, विछुवा, पटा, सँडसी, वरसी तथा गुलेल जैसी वस्तुएँ भी थीं। वह यदि अपने एक मुख से 'शिव शिव' कह रहा था तो दूसरे मुख की आँखों से सीता की सुन्दरता देख रहा था, तीसरे से वीरों को ललकार रहा था, चौथे से 'मारो, मारो' कहता जा रहा था, पाँचवें, छठवें तथा सातवें के द्वारा क्रमशः हनुमान्, विभीषण एवं सुग्रीवादि से घिरे राम की ओर देख रहा था, आठवाँ मुख केवल इधर उधर घुमाता था, नवें से

वीरों को उत्साहित करता जाता था और उसके दसवें मुख को देख कर ऐसा जान पड़ता था कि वह रोष के मारे लाल हो गया है। राम एवं रावण के युद्ध को देख कर चन्द्रमा चकरा गया और शंकर की भी समाधि टूट गई तथा सभी दिग्पाल प्रलय का अनुमान करने लगे। रावण ने एक बार लक्ष्मण को फिर मूर्छित कर दिया था और जब उसके रथ वाले घोड़े निहत हो गए थे तो वह बरछी, भाले आदि के साथ पैदल ही युद्ध करने लगा था। कवि का कहना है कि राम ने इस महासमर में विजय पाकर ऐसा कर दिखाया मानों उन्होंने युद्ध के इस स्वयंवर में सीता का एक बार फिर वरण किया हो।

इसके अनन्तर 'सीता मिलन' नाम के प्रकरण का आरम्भ होता है और रावण-वध से शोकाकुल हुई रानियों की दशा का वर्णन किया जाता है। वे रानियाँ राम को देख कर उनकी ओर आकृष्ट होती हैं और मंदोदरी से राम अपनी निर्दोषता भी प्रकट करते हैं। फिर राम की आज्ञा से हनुमान् सीता को लंका नगरी से बाहर लाते हैं, उसे अग्नि में प्रवेश करना पड़ता है और तदनन्तर सीता एवं राम के मिलन की प्रसन्नता में सर्वत्र विजय मनाई जाने लगती है। इसके पीछे 'अयोध्या आगमन' का प्रकरण आता है जिसमें राम पुष्पक-विमान पर चढ़कर अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। उनके अयोध्या में पहुँचने पर सभी उनका स्वागत करते हैं और उनके सौन्दर्य से आकृष्ट हुई वहाँ की नारियाँ उन्हें फिर से देखने के लिए दौड़ पड़ती हैं तथा बुद्धिमान् लोग दूर से ही उनका अभिनन्दन करते हैं। फिर 'माता मिलन' के प्रकरण में रामादि का अपनी माताओं के साथ भी मिलन कराया जाता है और तब राम के राजा होने की घोषणा की जाती है। इस अवसर पर अनेक राजा आमन्त्रित होते हैं और उनमें से कई उनके पैर छूते तथा चीन आदि देशों की बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट करते हैं। राम एक बहुत बड़े और प्रतापी राजा सिद्ध होते हैं और उन्हें जो कोई भी देखता है वह अपने भावों के अनुसार उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करता है। राम इस प्रकार सभी लोकों के स्वामी हैं, वे अभय हैं, अजेय हैं, अयोनि हैं, अजन्मा हैं, अलय हैं तथा स्वयं प्रकृति पुरुष भी कहे जा सकते हैं। वे भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न को भी राजपद प्रदान करते हैं। शत्रुघ्न को वे मथुरा भेजते हैं जहाँ पर उन्हें, शिव से त्रिशूल प्राप्त करने वाले लवणासुर को मार कर अपना राज्य स्थापित करना पड़ता है।

ग्रन्थ के अन्तिम तीन प्रकरण प्रधानतः सीता के चरित्र से सम्बन्ध रखते हैं और उनका उसी के अनुसार नामकरण भी किया गया है। इनमें से पहले अर्थात् 'सीता वनवास' प्रकरण में सीता जंगल देखने की इच्छा से ही लक्ष्मण के साथ वहाँ भेजी जाती हैं और वाल्मीकि आश्रम के निकट छोड़ दी जाती है। गर्भिणी सीता को उस आश्रम में रहते समय लव नाम का पुत्र उत्पन्न होता है, और फिर एक दिन उसी की आकृति का एक बालक वाल्मीकि ऋषि भी निर्माण कर उसका नाम कुश रख देते हैं तथा दोनों भाइयों का नियमानुसार पालन एवं शिक्षण कार्य भी चलने लगता है। उधर अयोध्या में राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया जाता है और इसके निमित्त छोड़े गए घोड़े के साथ जाने वाले शूरवीरों से लव एवं कुश युद्ध ठान देते हैं। कवि ने इस युद्ध का वर्णन विस्तार के साथ किया है और इसके अन्त में क्रमशः लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, भरत और स्वयं राम को भी उन दोनों भाइयों द्वारा निहत करा दिया है। अतएव इसके बाद वाले प्रकरण में सीता विलाप करती हुई सती होने का आयोजन करने लग जाती हैं और आकाशवाणी के अनुरोध से फिर सभी मृतकों को जल से सींच कर जिला भी देती हैं। इसके अनन्तर अन्तिम प्रकरण के अनुसार सभी अयोध्या लौट आते हैं और वहाँ पर एक बार फिर राम का राज्य आरम्भ होता है। राम अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और बड़ी सफलता के साथ दस-सहस्र वर्षों तक अपने राज्य का कार्य भी संभालते हैं। एक दिन कतिपय स्त्रियों के पूछने पर सीता एक दीवार पर रावण का चित्र बना देती हैं जिस कारण राम उनमें संदेह प्रकट करते हैं और इससे रुष्ट होकर सीता पृथ्वी में प्रवेश कर जाती हैं किन्तु राम सीता के इस वियोग को सहन नहीं कर पाते और योगाभ्यास द्वारा शरीर छोड़ कर परमधाम चले जाते हैं तथा इसके अनन्तर क्रमशः भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न भी वैसा ही करते हैं। फिर कुश तथा उनके तीन चचेरे भाई चारों दिशाओं में राज्य करना आरम्भ कर देते हैं और लव अयोध्या के केन्द्र में अभिषिक्त होते हैं।

गुरु गोविन्दसिंह ने इस रामायण के अन्त में कहा है : "श्रीराम की कथा प्रत्येक युग में अटल रहेगी और

१९५४

इसका वर्णन सब लोग अनेक प्रकार से करते हैं।''[1] इन्होंने स्वयं भी इसमें किसी एक ही परम्परा का अनुसरण नहीं किया है और न, इसकी रचना करते समय किसी एक ही शैली विशेष को अपनाया है। राम-कथा का आरम्भ ये वहाँ से करते हैं जब असुरों का वंश प्रकट होकर उपद्रव करने लगा था और कोई भी उन्हें हरा न पाता था। अतएव, देवता लोग एकत्र होकर क्षीर समुद्र में जाते हैं और वहाँ पर शयन करने वाले विष्णु से अवतार धारण करने का अनुरोध करते हैं। ये लोग विष्णु को अपना यह सुझाव भी देते हैं कि आप चलकर अवध में 'रघुनाथ' बन कर जन्म लें और वहाँ चिरकाल तक राज्य भी करें। यह प्रसंग वाल्मीकीय 'रामायण' में नहीं आता। गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थ 'रामचरित मानस' में भी भानुप्रताप राजा के सपरिवार रावणादि के रूप में जन्म लेकर उपद्रव करने लगने पर, स्वयं पृथ्वी 'धेनु' बन कर देवों, मुनियों, तथा गंधर्वादि से अपना दुखड़ा रोने लगती है, वे सभी ब्रह्मा के लोक में जाते हैं और वहाँ पर सबके मिल कर स्तुति करने पर 'हरि' की ओर से 'गगन-गिरा' होती है कि आप डरें नहीं, मैं आप लोगों के लिए नर शरीर धारण करूँगा और कश्यप एवं अदिति के घर जो दशरथ एवं कौशल्या के रूप में हैं, कौशलपुरी में जन्म लूँगा। गुरु गोविन्दसिंह के कथन से प्रतीत होता है कि राम विष्णु के अवतार थे, जहाँ गोस्वामी तुलसीदास उन्हें ऐसा समझते नहीं जान पड़ते। 'मानस' के ब्रह्मादिक 'पयनिधि' अर्थात् क्षीर-सागर तक नहीं जाते। जहाँ है वहीं एकत्रित होकर स्तुति करते हैं और वे 'अवध' में ही अवतार धारण करने का स्वयं प्रस्ताव भी नहीं करते।

'गोविन्द रामायण' की एक दूसरी विशेषता यहाँ पर इस रूप में देखी जाती है कि इसका कवि कथारम्भ के पहले रघु एवं अज के भी राज्यकाल का उल्लेख करता है तथा दशरथ को एक मृगयाशील नृप के रूप में चित्रित करता है। यह बात भी उपर्युक्त दोनों रचनाओं में यहाँ पर नहीं दिखाई पड़ती। इसके साथ ही साथ इस 'रामायण' में यहीं पर श्रवणकुमार की कथा भी आ जाती है जिसकी ओर 'मानस' के 'अयोध्या काण्ड' में केवल संकेत मात्र ही कर दिया गया है। दशरथ का कौशल्या एवं सुमित्रा से स्वयंवर के द्वारा विवाह करना तथा उनसे कोई पुत्र न होने पर कैकेयी का भी पाणिग्रहण करना और देवासुर संग्राम के अवसर पर कैकेयी द्वारा सहायता पाकर उसे दो वर प्रदान करने का वचन देना भी यहीं पर बतला दिया जाता है। श्रवणकुमारवाली घटना के अनन्तर दशरथ घर लौट कर राजसूय यज्ञ करते दीख पड़ते हैं और इस यज्ञ में ही अधिक आहुति देने पर उन्हें 'खीर' का पात्र मिल जाता है। इस 'रामायण' में न तो वाल्मीकीय 'रामायण' की भाँति, ऋष्यनृंग की कथा ही दी गई है और न उनके द्वारा अश्वमेध यज्ञ कराया गया है। यहाँ पर किसी पुत्रेष्टि यज्ञ के पृथक् किए जाने का भी उल्लेख नहीं है, किन्तु 'मानस' के 'अगिनि' की भाँति यहाँ पर भी 'यज्ञ-पुरुष' खीर पात्र लेकर उत्पन्न हो जाते हैं और उसे राजा को देते हैं। इस 'रामायण' के विश्वामित्र भी 'पितृतोष' नामक एक विशेष यज्ञ करते हैं और दशरथ को अपने पुत्रों को उन्हें देने में किसी प्रकार की हिचक प्रदर्शित न करने पर भी, वे स्वयं कह उठते हैं : ''मुझे अपने पुत्र राम को दे दो नहीं तो मैं तुम्हें यहीं पर भस्म कर दूँगा।'' वे क्रुद्ध होकर ही वहाँ आते भी हैं। उनके मार्ग में राम के साथ जाते समय का गंगावतरण वर्णन अथवा वामनावतार वर्णन इस रामायण में नहीं आता और न अहल्योद्धार की ही कथा आती है। यज्ञ-भूमि में उनके पहुँचने पर सुबाहु एवं मारीच राम से दो दिनों तक युद्ध करते हैं।

सीता स्वयंवर के प्रसंग में पशुराम का आना यहाँ पर भी 'मानस' की ही भाँति ठीक धनुर्भंग के अनन्तर दिखलाया गया है, किन्तु यहाँ पर उनके साथ लक्ष्मण की बातचीत नहीं कराई गई है और उन्हें डाँटने का काम भी यहाँ पर स्वयं राम के ही सुपुर्द है। विवाह के अनन्तर बरात के अयोध्या लौटने पर अकस्मात् घोर घटाओं का उठना और दिग्दाह के कारण अपशकुन का सूचित होना तथा उसके निवारणार्थ अश्वमेध यज्ञ का किया जाना 'मानस' में वर्णित नहीं है। अपशकुन का होना वाल्मीकीय 'रामायण' में अवश्य दिखलाया गया है किन्तु वहाँ पर भी ऐसा, दशरथ की बरात के लौटते समय, परशुराम मिलन के पहले, हो जाता है। राम के राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर कैकेयी को बहकाने

---

[1] 'रामकथा जुग जुग अटल, सब कोइ भाखत नेत'

वाली मंथरा को 'मानस' में चेटी कहा गया है, किन्तु इस 'रामायण' में वह ब्रह्मा द्वारा भेजी गई गंधर्विणी है जो, संभवतः 'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' तथा 'आनन्द रामायण' के आधार पर यहाँ लाई गई है। कवि ने रामादि के वन प्रवेश के समय वाले विराध के युद्ध का वर्णन बड़े विस्तार से किया है और इस अंश के रचयिता का नाम 'श्याम' कवि दिया है : 'सुकवि श्याम इह विध कह्यो, रघुवर युद्ध प्रसंग' जिससे प्रतीत होता है कि इनकी रचना कदाचित् उसी श्याम कवि ने की होगी जो गुरु गोविन्दसिंह के ५२ दर्बारी कवियों में से एक था। इस 'रामायण' के अन्तर्गत और भी युद्धों के अनेक विस्तृत वर्णन आए हैं, और उनमें विशेष रुचि भी प्रदर्शित की गई है, किन्तु वहाँ पर किसी कवि विशेष का स्पष्ट उल्लेख नहीं पाया जाता। इस 'रामायण' में ऐसे युद्धों के क्रम एवं स्वरूप का निर्देश भी कहीं कहीं एक निराले ढंग से किया गया है। प्रायः सभी युद्धों में हाथी और घोड़े रहते हैं और इन दोनों से जुते हुए रथ भी दीख पड़ते हैं। रावण के हाथों में विविध अस्त्र-शस्त्रादि के अतिरिक्त 'हाथी-नाल' नाम का एक हथियार भी दिखाया गया है जो संभवतः कोई छोटी-सी बँदूक है। बाजे अनेक प्रकार के बजते हैं और कुम्भकर्ण को जगाते समय तो उसके कानों के भीतर हाथी घोड़ों के साथ घुस कर 'कान्हड़ा राग' तक बजाया जाता है तथा इसके भी असफल होने पर उसे देव-कन्याएँ गा गा कर जगाती हैं। इस कुम्भकर्ण को पहले सुग्रीव गिरा देते हैं तब उसे राम अपने बाणों से मारते हैं। अतिकाय को लक्ष्मण अपनी तलवार द्वारा मार कर दो टुकड़े कर देते हैं और लक्ष्मण के रावण द्वारा (न कि इन्द्रजीत द्वारा) मूर्छित किए जाने पर हनुमान को संजीवनी बूटी लाने की आवश्यकता पड़ती है। सुबाहु वाले युद्ध के प्रकरण में कुछ भागने वाले राक्षस 'भगव वस्त्र' अर्थात् जोगियों के भगवावस्त्र पहन कर भागते दीख पड़ते हैं और सीता हरण के अवसर पर स्वयं रावण भी कदाचित् जोगी-भेष में ही 'अलख जगाता हुआ' भीख मांगने के लिए प्रस्तुत होता है।

'गोविंद रामायण' की राम कथा 'मानस' की भाँति केवल रामराज्य के वर्णन तक ही समाप्त नहीं हो जाती। इस में सीता-त्याग तथा अश्वमेध के अवसर पर होने वाले लवकुश के युद्धों तक का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। सीता-त्याग के लिए यहाँ पर लोकापवाद कारण नहीं दिया गया है और न इसमें किसी का ही वृत्तांत आता है जिसकी चर्चा अनेक रामायणों में पायी जाती है। सीता द्वारा किसी चित्र का निर्माण भी यहाँ पर उनके कारण न बन कर उनके पृथ्वी में प्रवेश कर भूमिका प्रस्तुत करता है। लवकुश के साथ राम के तथा अनुचरों का युद्ध दिखलाते समय यहाँ दोनों बालकों का ही उत्कर्ष प्रदर्शित किया गया है उनके हाथों स्वयं राम तक 'जूझ' जाते हैं 'जैमिनीय अश्वमेध' जैसे ग्रंथों में जहाँ राम की सेना को वाल्मीकि मुनि जिलाते हैं वहाँ इस में स्वयं सीता ही यह कार्य कर देती हैं। इस प्रकार युद्धोपरांत पुनर्जीवित हो उठने पर भी सीता के प्रवेश द्वारा शोकाकुल होकर राम के शरीर त्याग उनके सभी भाइयों के भी देहांत के कारण कथा दुःखांत हो जाता है और इसका मार्जन राज्य करने लगने से भी नहीं हो पाता। इस इस 'रामायण' के रचयिता ने 'वाल्मीकीय तथा भवभूति के 'उत्तर रामचरित' आदि का किया है।

'गोविन्द रामायण' की रचना बहुत कुछ कवि दास की 'रामचन्द्रिका' के आदर्शों पर हुई जान है। इसका रचयिता भी राम-कथा के घटना की ओर विशेष ध्यान न देकर उसके दृश्य ही अपने वर्णन का लक्ष्य बनाता है और इसमें नाटकीयता भी ला देना चाहता है। इस कारण अंतर्गत आए हुए कुछ संवादों में सजीवता आ और इसके युद्धों की सामग्रियों के कतिपय वर्णन बहुत स्पष्ट हो गए हैं। सीता एवं राम जैसे सौंदर्य एवं परशुराम जैसे व्यक्तियों के शौर्य का करते समय भी कवि ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का दिया है और ऐसे स्थलों पर प्रदर्शित की गई उसकी शयोक्ति भी बहुत कम खटकती है। उसका वीर, एवं रौद्र रसों का वर्णन तो विशेषतः उल्लेखनीय है। इन वर्णनों में वह बहुधा 'कविसंप्रदाय' का ही करता है, किन्तु इस ओर अपने विशेष आग्रह के वह कभी कभी आवेश में भी आ जाता है। अतएव ऐसे स्थलों पर हमें इसमें कालदोष (Anachron

१९५४

विषयक त्रुटि का भी आभास होने लगता है। युद्ध में प्रायः एक ही प्रकार डाकिनी, जोगिनी आदि के आकर उल्लास प्रदर्शित करने तथा अश्वादि के बढ़ने एवं शूरवीरों के लड़ने के विवरणों में भी अधिकतर द्विरुक्ति जान पड़ती है। फिर भी उनमें प्रयुक्त युद्धोचित कर्णकटु शब्दों तथा विचित्र छन्दों के कारण तज्जन्य अरुचि अथवा शिथिलता नहीं आने पाती। कवि की इस रचना शैली में एक विचित्र नवीनता और सरलता भी लक्षित होती है जो इसे कहीं भी अपठनीय नहीं बनने देती। युद्ध वर्णनों में आए हुए इसके अनेक बेडौल और कृत्रिम शब्द, अर्थहीन से दीख पड़ने पर भी, स्वाभाविक लगने लगते हैं।

'गोविन्द रामायण' की रामकथा के राम को विष्णु का अवतार कहा गया है, किन्तु वे अधिकतर एक महान् पुरुष के रूप में ही दीख पड़ते हैं। वे एक असाधारण व्यक्ति हैं जो एक ही साथ अनेक शूरवीरों का रणभूमि में सामना करते हैं और उनके ऊपर विजय भी पाते हैं। वे एक ऐसे प्रतापी राजा भी हैं जिनके यहाँ दूर दूर के सम्राट् आकर अपनी आधीनता स्वीकार करते हैं और उन्हें बहुमूल्य भेंट भी अर्पित करते हैं। किन्तु इसकी सीता उस समय अपने ऐसे पति से भी किसी प्रकार कम नहीं जान पड़तीं जब वे समर-स्थल पर त्रिजटा के साथ आकर राम की मरी एवं मूर्छित सेना को एक बार पुनरुज्जीवित कर देती हैं और अपने नागमन्त्र द्वारा स्वयं राम का भी नागपाश काट देती हैं। लवकुश द्वारा सभी लोगों के आहत होकर मर जाने पर तो उनकी यह शक्ति और भी प्रदीप्त हो उठती है। ऐसे ही गुणों को कवि ने कदाचित् उनके सतीत्व का उदाहरण माना है और इन्हीं के कारण, उनके पृथ्वी प्रवेश कर जाने पर, उनके वियोग में स्वयं राम का भी शरीर त्याग करा दिया है।

बलिया,
उत्तरप्रदेश

—परशुराम चतुर्वेदी

सौन्दर्य और कला का प्रभाव

......मालविदा वान मेयसनवर्ग एक सम्भ्रान्त और सुशिक्षित महिला थी। अपने जीवन में वह एक बार महान् कष्ट में थी। ऐसे महान् निराशा और दुःख के समय उसने विलिमय शेक्सपियर का प्रसिद्ध नाटक "औथेलो" को एक थिएटर में अभिनय करते हुए देखा। उसको इस नाटक को देख कर अपने जीवन में एक नवीन प्रेरणा प्राप्त हुई और उसका निश्चेष्ट, निष्क्रिय, निस्पन्द और निरानन्द जीवन आनन्दपूर्ण और सक्रिय हो गया। यह नहीं कहा जा सकता कि "औथेलो" किसी प्रकार का नैतिक नाटक है। सौन्दर्य और कला की वस्तु बिलकुल अज्ञात रूप से हमारे जीवन को शुद्ध और पवित्र बना देती है और हमारे जीवन को सौन्दर्य से पूर्ण कर देती है।

—रोम्यां रोलां

काशी का महान् जन-कवि बिहारी

एक बार स्वर्गीय डाक्टर श्यामसुन्दरदास से मैं मिलने गया था। बैठक में मैं बातें कर रहा था और बाहर एक अहीर करताल (लोहे के दो छड़) बजाते हुए 'विरहा' गा रहा था। बातचीत में बाधा पड़ते देख मैं उद्विग्न हो उठा। पर डाक्टर साहब कुछ देर शांतिपूर्वक विरहा सुनने के पश्चात् मुस्कराकर बोले : "गाने दो, आख़िर उन्हें भी तो कोई गीत चाहिए ही। वे हमारी कविता का रसास्वादन नहीं कर पाते परन्तु इसका रसास्वादन वे भली भाँति कर लेते हैं। भारतीय लोक साहित्य का यह भी एक अंग है, इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।"

मैं डाक्टर साहब की उक्ति पर अवाक् रह गया और कुछ देर हम लोग मौन विरहा का आनन्द लेते रहे। 'विरहा' बिहारी का था।

बिहारी के प्रति मुझे कौतूहल हुआ और मैंने अपनी खोज प्रारम्भ कर दी। ग्राम-गीतों के क्षेत्र से पंडित रामनरेश त्रिपाठी और देवेन्द्र सत्यार्थी वे जो प्रयास किए हैं वे सर्वथा स्तुत्य हैं। लोक-गीतों की धारा में भारत की आत्मा प्रवाहित होती है और उनमें भारतीय संस्कृति और सभ्यता की झाँकी मिलती है।

विरहा भारत के गाँवों में प्रचलित ग्राम-गीत है। गाँव गीतों से सदा गुँजारित होते रहे हैं। विरहा पहले विरह-गीत के रूप में सामने आया। गाँव से नगर में काम करने के लिए आनेवाले ग्रामीणों की विरहिणी पत्नियों की विरह गाथा का अधिकतर बखान होता रहा। पहले इन गीतों में अश्लीलता का आधिक्य था तथा भाव और भाषा साहित्य का अभाव था। सर्व प्रथम बिहारी ने विरहा का संस्कार किया।

कौन जानता था कि काशी का यह लम्बा गौर-वर्ण अनपढ़ अहीर जो हस्ताक्षर करना भी नहीं जानता था, वह महान् जन-कवि बन जाएगा। बिहारी आशुकवि था। उसने विरह के क्षेत्र में नूतन क्रान्ति कर दी। विरहा की धारा अश्लीलता की ओर से हटा कर बिहारी ने भक्ति की ओर मोड़ी। निर्गुण- पवित्र, देश और समाज के नवीन विषय चुने। अशिक्षित समाज के काव्य की नवीन प्रतिभा को पहचाना और बिहारी की लोकप्रियता बड़ी ज़ोरों से बढ़ी और कुछ ही दिनों में वह सर्वश्रेष्ठ विरहा-गायक बन गया। बिहारी के विरहा की ख्याति दूर दूर तक पहुँची और साथ ही बिहारी के विरहे भी दूर दूर तक फैल गए।

बिहारी का जन्म सन् ५७ के गदर के समय औड़िहार स्टेशन के समीप गोपालपुर नामक गाँव में हुआ था। आठ वर्ष की उम्र में यह नौकरी के लिए बनारस आया और यहीं लोहटिया के समीप बस गया। पन्द्रह वर्ष की उम्र में उसने सीर कठैया नामक गाँव में विवाह किया। दिन भर पेशराजी करता और खाली समय में बड़े लक्ष्मीकुण्ड के गोसाईं से—जो बिहारी के मन्त्र-दाता गुरु थे, कथा सुना करता था। स्वामी शिवानन्द भी उन्हें रामायण, महाभारत, भागवत इत्यादि धर्म ग्रन्थों की कथाएँ चाव से सुनाते थे : "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" इसमें सहसा काव्य भावना जागृत हुई और गुरु के आशीर्वाद से उन कथाओं को पद्य-बद्ध करने लगे।

देश में उन दिनों मौलिक विरहा की कमी थी। स्वरचित विरहा के गायक इने गिने थे। इस कारण बिहारी का नाम सर्वत्र तेज़ी से फैलने लगा। जिस प्रकार हम कवि सम्मेलन में कवियों की कविताओं का रसास्वादन करते हैं ठीक उसी प्रकार यह लोग भी विरहा दंगल का आयोजन कराते हैं। इसमें हज़ारों की भीड़ जुटती है। पुरस्कार की घोषणा होती है और देखा जाता है कि कौन दंगल में निरुत्तर रह जाता है। इस प्रकार के दंगलों ने बिहारी ने अनेकों बार भाग लिया था। आज़मगढ़ निवासी भुल्लन धोबी के साथ बाग़ बरियारसिंह में, कपली के मशहूर गायक भैरों से गऊमठ में और केवलापुर निवासी अवतार से रामनगर के गौशाले में होड़ लगी थी। जिसमें केवल अवतार ही बराबरी में आया बाक़ी दोनों पराजित होकर इनके शिष्य हो गए।

कहा जाता है कि एक बार कलकत्ते के किसी बगान में जब बिहारी का विरहा हुआ था, उस समय लोग बिहारी पर प्रसन्न होकर छतों पर से नोटों की वर्षा कर रहे थे। इसके अलावा एक बार काशी की नदे

१९५४ कोठी में एक अंग्रेज अफ़सर आया था। जिसने विहारी की मेधा-शक्ति पर प्रसन्न होकर पुरष्कृत किया था और कहा था कि तुम अपनी रचनाओं का प्रकाशन करा लो, मैं मदद दूँगा।

विहारी की स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र थी। जिस बात को वह एक बार सुन लेता था उसे कभी नहीं भूलता था जिसके कारण वह कभी भी पराजित नहीं हुआ। कहते हैं कि एक बार भैरों कजरीवाले के सामने एक ऐसा प्रश्न आया कि वह उत्तर नहीं दे सका उस समय उसने कलकत्ता से काशी में विहारी के पास तार भेज कर उक्त प्रश्न का उत्तर पूछा था।

वर्तमान भारत में जहाँ भी हिन्दी भाषा-भाषी हैं वहाँ विहारी के विरहे प्रचलित हैं। विहारी के प्रायः बारह हजार शिष्य हिन्दुस्तान भर में हैं। जिसमें पत्तू, गनेश, रम्भन, शिवचब, सरजू, विश्राम, विश्वनाथ, अकलू महावीर और अलगू इत्यादि एक हजार शिष्य तो विरहा के प्रमुख रचयिता हुए हैं।

सूरदासजी ने सवा लाख पद लिखे हैं जिसमें चार पाँच हजार ही प्राप्य हैं। परन्तु विहारी ने चार लाख पद लिखे हैं जो कि चार लाइन से लेकर तीस-तीस लाइन तक के हैं। विहारी को प्रत्येक वर्ष गुरुपूर्णिमा के दिन हजारों रुपए दक्षिणा के रूप में प्राप्त हो जाते थे। उसके शिष्य गुरु-पूजा पर विभिन्न शहरों से आते थे। सत्तर वर्ष की आयु में विहारी की मृत्यु काशी में हुई।

विहारी के एक विरहे का रसास्वादन कीजिए :

"पाँचो हैंगे जालिम जोर,
इनसे ना कछु काबू मोर
हरि तुम्हरे हाथ में है मेरो उबार,
पाँचों पाँच तत्व को जीता, ए लक्ष्मी के दुलहा।

जीत लिया पाँचों इस गढ़ के कर दीन्हों कमजोर,
एकौ अकिल कार ना करते जइबे कौने ओर
नाप लो मुझे ज्ञान के फीता से, ए लक्ष्मी के दुलहा।

जब जब भार पड़े भूमि पर,
तब तब लगौ सहाई
तीन लोक चौदहों भुवन में,
तुम्हरी जोति रही छाई
हउव हमरे एकै हीता, ए लक्ष्मी के दुलहा।

जब जब जन्म लियो वसुधा में,
तब तब संग में अइली
तुम्हरे चरण के प्रताप से,
खूब ऐश-लैश हम कइली
तू फिर बनै राम हम सीता, ए लक्ष्मी के दुलहा।

जब चाहे तब तौन करेला,
सब गुन नाथ तुम्हारे
राई से पर्वत करते,
पर्वत से धूर कर डारे
हउव सच्चे दिल कऽ मीता, ए लक्ष्मी के दुलहा।

करना हो सो करो नाथ
है अभी बहुत सबेरा
फिर पीछे कर मल पछतइबैं
नहीं मिली जब डेरा
तब का करब चढ़बै चीता, ए लक्ष्मी के दुलहा।

तुम्हरी महिमा अगम नाथजी,
कोई पार ना पावै
कवि कबेसर कथ के थाके,
बहु विधि दौड़ लगावै
कथा व तुमरी परम पुनीता, ए लक्ष्मी के दुलहा।

गर्भ-वास में कौल किया सो
बतियाँ सब खोई
जनम जनम की मइल
चुनरिया कर कृपा देव धोई
पढ़ पढ़ मरै भागवत गीता, ए लक्ष्मी के दुलहा।

गुरु का सेव साधु का संगत,
निश्चय दिल में धारौ
कहे 'विहारी' मोहि गरीब कौ
भवसागर से तारौ
दे दो अमर लोक में एक कीता, ए लक्ष्मी के दुलहा।"

—विश्वनाथ मुखर्जी

सिद्धगीर बाग,
बनारस

मुंशी प्रेमचन्द और उनके पात्र

सोवियत साहित्यकार की दृष्टि में

इतिहास के सन्धिकाल में मुंशी प्रेमचन्द का आविर्भाव हुआ। १९०५ ई० में रूसी क्रान्ति के बाद ही समस्त एशिया में जन-चेतना की एक नई लहर फैल गई। १९०५ से १९०८ के तीन सालों में भारतीय जन-आन्दोलन इतना तीव्र हो उठा कि उसके सम्बन्ध में लेनिन ने कहा : "भारत के मजदूर भी जाग उठे हैं और उनकी लड़ाई संघबद्ध राजनैतिक रूप ले रही है।" ठीक उसी समय उत्तर प्रदेश के दक्षिणी हिस्से में 'देश प्रेम' नामक छोटी-छोटी कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ। हमीरपुर के कलक्टर के वर्णन को राजद्रोहात्मक घोषित कर पुस्तक जब्त कर नष्ट कर दी गई। इस पुस्तक में पाँच छोटी-छोटी कहानियाँ थीं—जिनके लेखक थे प्रेमचन्द। प्रेमचन्द के साहित्यिक जीवन का सूत्रपात इसी प्रकार हुआ।

साहित्यिक प्रेमचन्द का वास्तविक विकास प्रथम महायुद्ध के बाद सन् १९१९ से १९२९ के बीच हुआ। साम्राज्यवादी शोषण के साथ ही साथ जमींदारों और महाजनों के अत्याचार से जन साधारण की जिन्दगी दूभर हो गई थी और चारों तरफ़ क्रान्ति की आग भड़क रही थी। रूसी-क्रान्ति की सफलता से भारतीय जनता ने भी चेतना और प्रेरणा ली।

प्रेमचन्द प्रायः दो सौ छोटी-छोटी कहानियों और दस उपन्यासों के लेखक हैं। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में इनके सभी उपन्यासों का अनुवाद हो चुका है। इनकी अधिकांश रचनाएँ भारतीय ग्राम्य जीवन और औपनिवेशिक जीवन को लेकर ही लिखी गई हैं। इनकी रचनाओं में जीवन की कठोर वास्तविकता स्पष्ट रूप में ही उभरी पड़ती है। जमींदारों और महाजनों के निर्दय जुए से मुक्ति पाने के लिए किसानों के विद्रोह, नौकरी-पेशा ग़रीब मध्यम श्रेणी की आत्मरक्षा के लिए आजीवन प्रयास, अन्धसंस्कार और अछूतों की ताड़ना, सहज स्वाभाविक मानवीय विश्वासों के विरुद्ध धर्म के नाम पर ढोंग, न्याय के नाम पर नीतिकुशल घूसखोर, विचारों के अविचार और पक्षपात, जमींदारों और सरकारी कर्मचारियों का नियमित अनाचार, विदेशी शासन के दोष—यही थे प्रेमचन्द की तमाम कहानियों और उपन्यासों विषय वस्तु !

जन जीवन का दर्शन : जन-साधारण के और उन्नत जीवन की आकांक्षा के यथार्थ चित्रण प्रेमचन्द की प्रतिभा ने असाधारण सफलता पाई है उनकी रचनाएँ सम-सामयिक भारत की साधारण और उनके जीवन के सम्बन्ध में प्रमाणिक भी कही सकती हैं। हिन्दी साहित्य में उनकी कीर्ति भी अतुल है। उनकी छोटी छोटी कहानियों और सामाजिक न्यासों ने हिन्दी साहित्य में एक नए युग की सूचना दी।

प्रेमचन्द पुरानी लकीरों पर नहीं चले। रचनाओं में अधिकतर किसानों को ही लिया गया जिनका भारतीय साहित्य में कहीं नाम भी न विषय-निर्वाचन से इस नए तत्व का चुनाव उनकी नाओं की मौलिकता है। उनके 'प्रेमाश्रम' उपन्यास भूमिका में विद्वान् और साहित्य-सेवी श्री रामदास गौड़ लिखा था : "भविष्य में भारतीय साहित्य के की जो भी रचना करेगा, उसे कृषक जीवन के चित्रण में प्रेमचन्द की दक्षता स्वीकार करनी ही केवल विषय वस्तु और रचना शैली ही नहीं, वरन् भाषा को भी उन्होंने नए ढंग से सजाया।"

प्रेमचन्द उत्तर-प्रदेश के एक हिन्दु अधिवासी थे उन्होंने पहले उर्दू में और फिर हिन्दी में लिखना किया किन्तु उनकी मानवता, शोषितों के प्रति हमदर्दी और उनके लिए समता तथा आज़ादी के कार को सर्वमान्य कराने के उनके अनवरत परिश्रम उन्हें समस्त प्रादेशिक बंधनों से ऊपर उठा कर भाषाओं में विभक्त भारत के अखिल भारतीय लेखक मर्यादा में अधिष्ठित किया था और कुछ इन्हीं कार से देश के बाहर भी स्वतंत्रता-प्रेमी मानव समाज उन्हें अपनाने में किसी किस्म की हिचकिचाहट नहीं हिन्दु मुसलमानों का आपसी विरोध उनकी रचनाओं स्थान न पा सका। कारण उनके खयाल से देश

१९५४

साधारण जनता में इस विरोध का अस्तित्व ही न था।

उर्दू को हिन्दी के क़रीब लाने के लिए प्रेमचन्द ने हिन्दी में लिखना शुरू किया। उनके मतानुसार अरबी शब्दों से लदी हुई उर्दू भाषा समसामयिक हिन्दु मुसलमानों की आम भाषा नहीं हो सकती। उनका कहना था: "जो भाषा मुट्ठी भर लोगों का प्रकाश माध्यम है, उस भाषा में जान नहीं वह तो केवल स्वांगमात्र है। आम जनता की धमनियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने उसमें सामर्थ्य भी नहीं। ऐसी भाषा बद्ध पुष्करिणी जैसी है, जिसके घाट को संगमरमर के पत्थरों से बाँध दिया गया है और उसके जल में बहुत से फूलों के होते हुए भी उसमें जल को निकालने एवं प्रवेश करने का कोई रास्ता नहीं।"

स्वस्थ विद्वेष एवं संघर्ष : मर खप कर दिन गुज़ारने वाले किसानों और मज़दूरों के साथ प्रेमचन्द की बड़ी आत्मीयता थी। इन्हीं कारणों से प्रेमचन्द में और उन्हीं की तरह के अन्य विचारकों में—जिन्होंने जीवन के सत्य और वास्तव रूप का दर्शन किया और केवल देखा ही नहीं वरन् दोषों को दूर करने के उपायों को भी देखा, काफ़ी सादृश्य है। लेनिन ने टॉलस्टाय के सम्बन्ध में कहा था: "उनमें एक स्वस्थ विद्वेष की भावना दिखाई पड़ती है, साथ ही उन्नत अवस्था के लिए एकाग्र आकांक्षा भी। पुरानी बुराइयों से मुक्ति पाने की उनमें प्रबल आकांक्षा तो थी, पर एकाग्रमन और अलीक कल्पना देकर उन्होंने स्वप्न सौध की रचना की, जिसमें न तो राजनीतिक अन्तर्दृष्टि थी और न क्रान्तिकारी दृढ़ता ही।" प्रेमचन्द के सम्बन्ध में—विशेष तौर पर १९१९ से १९२१ में देशव्यापी आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखी उनकी रचनाओं के बारे में भी यही बात कही जा सकती है।

किसानों के श्रेणी चरित्र का विश्लेषण करते हुए टॉलस्टाय की तरह प्रेमचन्द ने भी द्विधा-द्वन्द्व का परिचय दिया है। एक तरफ़ उन्होंने ज़मींदारी और औपनिवेशिक शोषण का यथार्थ चित्रण किया है, सरकारी अफ़सरों और कर्मचारियों के स्वरूप को उघाड़ कर सामने रखा है, ढकोसलों का मज़ाक उड़ाया है और कुसंस्कारों को चाबुक लगाया है; पर दूसरी तरफ़ असहनीय वास्तविक अवस्था से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने अवास्तविक गांधीवाद का पथ-निर्देश किया है। उनका 'प्रेमाश्रम' उपन्यास और 'संग्राम' नाटक १९१९-२१ के अहिंसक आन्दोलन को लेकर लिखा गया है। इसमें उन्होंने अंग्रेज़ों और ज़मींदारों के शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध किसानों में स्वतःस्फूर्त विद्रोह को देखा था, किन्तु इस विद्रोह का अवसान हुआ जब कि उपन्यास के ज़मींदार नायक ने अपनी ज़मींदारी में प्रेमाश्रम नामक एक संगठन खड़ा किया। 'संग्राम' नाटक में भी दिखाया गया है कि ज़मींदार नायक ने जनता का शोषण किया, अनेक कष्ट दिए; लेकिन इससे उसके मन में ग्लानि हुई और प्रायश्चित्त-स्वरूप उसने सारी प्रजा के सामने अपना अपराध स्वीकार किया और अपनी तमाम भूमि और सम्पत्ति उन्हें देकर स्वयं तीर्थ यात्रा करने चला गया। जाने के पहले ज़मींदारी प्रथा कितनी दोषयुक्त है और वह एक लम्बा वक्तव्य देता है। इससे टॉलस्टाय के 'रिसरेक्शन' उपन्यास के नखालिउडव-चरित्र की बात ध्यान में आ जाती है। इसी प्रकार 'प्रेमाश्रम' उपन्यास का तरुण ज़मींदार नायक अपनी तमाम पैतृक सम्पत्ति को जनता को सौंपने के पहले ज़मींदारों के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में लम्बा भाषण देता है।

गांधी और टॉलस्टाय का प्रभाव : प्रेमचन्द टॉलस्टाय के बड़े भक्त थे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि उन्होंने उनकी बीसियों कहानियों का अनुवाद अपनी भाषा में किया। प्रसंगतः यहाँ यह कहना भी अनुचित न होगा कि गांधी जी ने भी टॉलस्टाय की कहानियों का अपनी मातृभाषा गुजराती में अनुवाद किया है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास के आश्रम-अधिष्ठाता प्रेमशंकर में कोई कोई भारतीय समालोचक गांधी जी अथवा टॉलस्टाय की प्रतिच्छवि देखते हैं। गांधीजी ने ट्रांसवाल, नाटाल और गुजरात में इसी तरह संविक आश्रम स्थापन करने की चेष्टा की थी—यह सभी जानते हैं।

प्रेमचन्द ने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि केवल मज़दूर श्रेणी ही किसानों को उत्पीड़न से मुक्ति दे दे सकती है। फिर भी दिन-प्रतिदिन कृषक-परिवारों को टूटते हुए देख कर वे मज़दूरों को भी अपनाने के लिए बाध्य हुए। उन्होंने देखा कि शरणार्थी किसानों को पेट की ज्वाला बुझाने के लिए शहर में आकर मज़दूर बन जाना पड़ता है। प्रेमचन्द अवाक् विस्मय की दृष्टि से देखते थे कि किस तरह गांव मिट्टी में मिल रहे हैं और उनके ऊपर पूँजीवाद किस तरह निर्मम रूप से फल फूल रहा है। इसका मार्मिक वर्णन इन्होंने एक उपन्यास

में किया है।

प्रेमचन्द के ऊपर टॉलस्टाय का यथेष्ट प्रभाव है, फिर भी उनके सामाजिक विचारों के लिए टॉलस्टाय ही पूर्णतः ज़िम्मेदार नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में रूस की वास्तविक स्थिति और बीसवीं शताब्दी के प्रथम महायुद्ध के बाद के औपनिवेशिक भारत की स्थिति बिलकुल एक-सी न थी। इन्ही कारणों से प्रेमचन्द और टॉलस्टाय में पूरी तरह से साम्य होना भी संभव न था। आदर्श के प्रति दोनों ही के बीच जो मेल है, उसका कारण यह है कि 'इतिहास के वास्तविक विचार तमाम पूर्वी भूखण्ड पर—विशेषतः एशिया में—टॉलस्टाय के आदर्शों से मेल खाते हुए से हैं।" टॉलस्टाय के प्रभाव का बस यही एक मात्र कारण है एवं इसी कारण टॉलस्टाय के विचारों के लिए भारत की धरती भी उर्वरा थी। जिन परिस्थितियों के अन्दर रूस में टॉलस्टाय का उदय हुआ था, १६०५ की क्रान्ति के बाद उनका अवसान होने लगा। इस क्रान्ति से एशिया भी जागने लगा एवं भारतीय स्वाधीनता संग्राम का यह आदर्श हो उठा। इसके बाद ही रूस की महान् समाजवादी क्रान्ति ने दुनिया भर को सिखा दिया कि मजदूरों और किसानों में कितनी ताक़त है। भारतवर्ष में यह प्रभाव १६१६-२१ के इनक़िलाबी आन्दोलन में दिखाई पड़ा किन्तु औपनिवेशिक भारत में सामन्तवाद को बराबर आश्रय मिलता रहा। आज भी उस के प्रताप में कोई कमी नहीं हुई है। धार्मिक अन्धविश्वास और कुसंस्कार भारतीय समाज पर आज भी छाए हुए हैं। इसीलिए क्रान्ति से पहले के रूसी ग्रामों के साथ आधुनिक भारतीय ग्राम्यावस्था का कहीं कहीं सामंजस्य भी हैं; किन्तु उदय क्षेत्रों में उनके साहित्य का प्रतिपालन एक-सा नहीं रहा। इसी से प्रेमचन्द में भी हमें टॉलस्टाय के अन्तर्द्वन्द का एक विशिष्ट और परिवर्तन रूप देखने को मिलता है। एकमात्र उल्लिखित अवस्था की पृष्ठ भूमि पर ही इन दोनों लेखकों का तुलनात्मक विचार किया जा सकता है।

प्रेमचन्द और टॉलस्टाय के बीच जो समता दिखाई पड़ती है, वह यह है कि दोनों ने ही ग़रीबों के लिए लिखा, दोनों ने ही समाज के वास्तविक रूप को देखा, दोनों ने ही जीवन के सत्य की खोज करने में प्राणपण से चेष्टा की, एवं दोनों में एक ही तरह के भाव विकार मिलते हैं, जैसे कि ग़लत उपायों द्वारा और कोरी कल्पना के सहारे समाज-सुधार की अवास्तविक परिकल्पना करना। इसके अलावा और भी विषयों में दोनों के बीच यथेष्ट भेद भी दिखाई पड़ता है एवं स्थान और काल के व्यवधान से यह प्रभेद स्वाभाविक भी है। प्रेमचन्द के किसान ज़मींदारों और महाजनों को केवल शोषक ही नहीं समझते थे, वरन उन्हें विदेशी शासक के दलाल भी कहते थे। इसलिए वे इन्हीं ज़मीं-दारों और महाजनों का विरोध करते हुए सोचते थे कि विदेशी शासन के ख़िलाफ़ टक्कर ले रहे हैं। इतिहास के अमोघ निर्देश के अनुसार मुक्ति का एकमात्र उपाय था विद्रोह और सबसे पहले यह जागरण फैला किसानों में। जो शासन व्यवस्था देश का सर्वनाश करके उसे श्मशान बनाती हो, उसका खोखलापन भी किसानों की नज़रों से दूर न रह सका। 'संग्राम' नाटक का एक किसान कहता है: "ठीक तो कहती है, क्या सरकार के जोरू बच्चे नहीं है? इतनी बड़ी फौज बिना रुपए के ही रखी है। एक-एक तोप लाखों में आती है। हवाई जहाज़ कई कई लाख के होते हैं। सिपाहियों के कूच के लिए हवागाड़ी चाहिए। जो खाना यहाँ रईसों को मयस्सर नहीं होता, वह सिपाहियों को खिलाया जाता है। साल में ६ महीने सब बड़े-बड़े हाकिम पहाड़ों की सैर करते हैं। देखते तो हो छोटे-छोटे हाकिम भी बादशाहों की तरह ठाठ से रहते हैं, अकेली जान पर १०-१५ नौकर रखते हैं, एक पूरा बंगला रहने को चाहिए। जितना बड़ा हमारा गाँव है उससे ज़्यादा ज़मीन एक बंगले के हाते में होती है।" प्रेमचन्द ने दिखाया है, जो मुँह खोल कर कुछ बातें नहीं करते थे, मार खाना जिनके विधि का विधान था, परिस्थितिवश वे भी मुँह खोलते हैं, डट कर मोर्चा भी लेते हैं। ऐसे ही दुर्दिन में उनका हथियार होता है लाठी, जिसे वे कस कर मुट्ठी में पकड़े रहते हैं। इसी नाटक का प्रधान कृषक चरित्र (हलधर) कहता है: "मै भी घातक हूँ। पर मैं अबला औरतों का घातक नहीं, हत्यारों का ही घातक हूँ। जो धन के बल से ग़रीबों के लूटते हैं, उनकी इज्ज़त बिगाड़ते हैं, उनके घरों को भू का डेरा बना देते हैं।" "जिस आदमी के दिल में इतना अपमान होने पर भी क्रोध न आए, वह मरने मारने पर तैयार न हो जाए, उसका ख़ून न खौलने लगे, वह मर्द नहीं हिजड़ा है।" "क्या अहलकार, क्या ज़मींदार, सब कुत्तों से नीच समझते हैं। इसका कारण यही है कि हम

१९५४

बेहया हो गए हैं ।”

जीवन का उद्देश्य : जीवन की प्रकृत अवस्था से ही प्रेमचन्द ने समाज-सुधार का आदर्श रूप लिया था। टॉलस्टाय के सम्बन्ध में लेनिन ने जो कहा था, प्रेमचन्द के सम्बन्ध में भी वही बात कही जा सकती है : “टॉलस्टाय उन अनेक रूस-देशवासियों के मुख पात्र थे, जिन्होंने समाज के उच्चवर्गीय प्रभुओं से घृणा करना शुरू किया, जो अभी तक लड़ाई के उस सचेतन स्तर तक नहीं पहुँच पाए, जहाँ समझौता या भेद नहीं, लड़ाई जहाँ पर लड़ाई का अन्त करती हो।” इसी प्रसंग में यह कह देना भी उचित होगा कि भारत के किसी किसी साहित्यिक समालोचक ने आधुनिक भारतीय-साहित्य को समझने के लिए टॉलस्टाय के ऊपर लिखे लेनिन के लेखों से काफ़ी गुरुत्व उपलब्ध किया है। जैसे अख़्तर हुसैन रायपुरी ने अपने ‘साहित्य और जीवन’ नामक लेख में रवीन्द्रनाथ के रक्षणशील मनोभावों के कारणों का विश्लेषण करते समय लेनिन के ‘रूसी-क्रान्ति के प्रतीक—लिओ टॉलस्टाय’ नामक रचना से अंश विशेष को उद्धृत किया है।

ग्राम जनता के साथ प्रेमचन्द की आत्मीयता थी। इसी से भारतीय जन साधारण के मन में किस तरह आदर्शों का परिवर्तन होता है, किस तरह वे पुराने संस्कारों को छोड़ कर आगे बढ़ रहे हैं, प्रेमचन्द की रचनाओं में यह आसानी से दिखाई पड़ता है। तभी वस्तुनिष्ठ प्रेमचन्द अपने सामाजिक गठन की अवास्तविक धारणाओं का स्वयं ही कदम-कदम पर खण्डन करते हैं। उनकी रचनाओं में विशेषतः ‘प्रेमाश्रम’ और ‘संग्राम’ जैसी रचनाओं में—समाजगत और श्रेणीगत द्वन्द का यथार्थ चित्रण है जिसे पाठक आसानी से स्वयं ही समझ सकते हैं। एक जमींदार के व्यक्तिगत त्याग से सामाजिक जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होता। प्रकृत अवस्था के चित्रण में जो पथ-निर्देश उन्होंने किया है, वह अस्पष्ट और अवास्तविक ही है। उनके अन्तिम उपन्यासों में हमें देखने को मिलता है कि ग्राम्य जीवन के प्रति प्रेमचन्द का झुकाव कुछ कम हो गया एवं शहर की बुराइयों के रहते हुए भी ग्राम जीवन के उत्कर्ष में उनकी रुचि जैसे कम पड़ गई। परवर्ती काल के उपन्यास में हमें शहरी जीवन का भयावह चित्र देखने को मिलता है। भारतीय साहित्यिकों के ख़याल से यही उपन्यास क्रान्तिकारी है। यही बात प्रेमचन्द की सभी रचनाओं के बारे में न्यूनाधिक रूप में कही जा सकती है। इसका कारण यह है कि प्रतिवाद और प्रतिरोध का आदर्श उनकी सभी रचनाओं में है। ‘प्रेमाश्रम’ उपन्यास में प्रेमचन्द देहाती जिन्दगी के दुःखों और कष्टों का चित्रण करते हुए यह दिखाते हैं कि देहाती लोग औरों से पिछड़े नहीं हैं। यूरोप महादेश में रूसी क्रान्ति जैसी सभी बड़ी बड़ी घटनाओं की भी खबरें उनके पास पहुँचती हैं। उक्त उपन्यास के किसान आपस में बातचीत करते है।

डपट : ‘बस एक मरजाद रह गई है, दूसरे की मजूरी नहीं करते बनती। इसी बहाने से किसी तरह निर्वाह हो जाता है। नहीं तो बलराज की उमिर में हम लोग खेत के डाँड पर न जाते थे। न जाने क्या हुआ कि ज़मीन की बरक्कत ही उठ गई। जहाँ बीघा पीछे २०-२० मन होते थे, वहाँ अब ४-५ मन से आगे नहीं जाता।’

मनोहर : सरकार को यह हाल मालूम होता, तो जरूर कास्तकारों पर निगाह करती।

कादिर : मालूम क्यों नहीं है? रत्ती-रत्ती का पता लगा लेती है।

डपट : (हँसकर) बलराज से कहो, सरकार के दरबार में हम लोगों की ओर से फरियाद कर आए।

बलराज : तुम लोग तो हँसी उड़ाते हो, मानो कास्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है, लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है, उसमें लिखा है रूस देश में कास्तकारों का राज है। वह जो चाहते हैं; करते हैं। उसी के पास कोई और देश बलगारी है। वहाँ अभी हाल की बात है, कास्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है।

मनोहर : जब उस देश के किसान राज का बन्दोबस्त कर लेते हैं, तो क्या हम लोग लाट साहेब से अपना रोना भी न रो सकेंगे?

कादिर : तहसीलदार साहेब के सामने तो मुँह खुलता नहीं, लाट साहेब से कौन फ़रियाद करेगा?”

यहाँ प्रेमचन्द क्रान्तिकारी बलराज के साथ हैं। बलराज न्यायनिष्ठ है, बलराज स्वाधीनता का साधक है। प्रेमचन्द ने दिखाने की कोशिश की है कि भारतीय किसानों में आज़ादी पाने के लिए यह व्याकुलता सिर्फ़ ज़मींदारों

के अत्याचार के फलस्वरूप ही नहीं जगी है, वरन् इसका अन्यतम कारण रूसी क्रान्ति का प्रभाव भी रहा है। उद्धृत अंश से सोवियत के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के मनोभावों को आसानी से समझा जा सकता है।

'संग्राम' नाटक में एक किसान कहता है : "जितने दिनों तक हमें स्वराज्य नहीं मिलता, उतने दिनों तक हमारी हालत नहीं सुधर सकती। यदि हमारे देशवासियों पर देश का शासनभार होता, तब इस दुर्दिन में हम इतने असहाय न होते।" देश की आज़ादी और स्वराज्य के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के विचार समस्त भारतवासियों के लिए थे। उन्होंने अपने एक मित्र (पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को) को एक चिट्ठी में लिखा था "हमारी निज की कोई आकांक्षा नहीं। आजकल स्वभावतः हमारे मन में एक आकांक्षा तीव्र हो उठी है—स्वाधीनता की लड़ाई में हमें कामयाब होना ही होगा। यश, अर्थ, मकान, गाड़ी—हम कुछ नहीं चाहते। हमारे पास जो कुछ भी है उसमें खुश हैं। लेखक के नाते अच्छी अच्छी पुस्तकों को लिखने की इच्छा स्वाभाविक है, किन्तु उन सब पुस्तकों का एकमात्र उद्देश्य होगा—स्वराज्य प्राप्ति।"

प्रेमचन्द यह भली भाँति जानते थे कि उनके जीवन का उद्देश्य क्या है और उद्देश्य-साधन के लिए मजदूरों का स्थान कहाँ है? अपने को वे मजदूर कहते थे। इस पर उनकी पत्नी उन्हें कहती : "तब कंधे पर कुदाल रख कर खेत में काम क्यों नहीं करते?" वे पत्नी को उत्तर देते : "यदि कुदाल लेकर खेत नहीं गोड़ता तो क्या हुआ, फिर भी मैं कुदाल से ही काम करता हूँ। कलम ही मेरी कुदाल है।" विश्व साहित्य के सम्बन्ध में भी उनका ज्ञान कुछ कम न था। स्वाधीनता-संग्राम में साहित्य कितनी सहायता करता है ये वे अच्छी तरह जानते थे। प्रेमचन्द ऐसे ही साहित्य की सृष्टि करना चाहते थे कि उनके देश के साहित्य में नवजीवन का ऐसा ज्वार आए, जिसके स्रोत वेग में भारतीय समाज की तमाम सड़ी गली धारणाएँ अथवा जो कुछ भी कुसंस्कार हैं, वे बह जाएँ और वह परिष्कृत हो। प्रेमचन्द ने एकबार अपने एक भाषण में कहा था : "विश्व में मानव समाज के कल्याण के लिए जितने भी आन्दोलन देखे गए हैं, उनके लिए साहित्य ने अच्छी ज़मीन ही नहीं तैयार की वरन् उसमें बीज बोने और जल सींचने का भी काम किया। साहित्य राजनीति के पीछे नहीं चलता, वरन् वह अग्रदूत होता है, जिसका स्थान पहले है। प्रभुत्व, अन्याय औ आत्म-सर्वस्वता के विरुद्ध मनुष्य के मन में जो विद्रो जल उठता है वही साहित्य है। लेखक का काम है केवल इतना है कि वह विद्रोह को भाषा में रूपान्तरि कर दे।"

"मैं शांत नहीं बैठूँगा।"

प्रेमचन्द प्रगतिशील लेखक संघ के सभापति थे। क़लम का हथियार लेकर वे लड़ते थे। उन्होंने एक प में लिखा था : "मैं शान्त नहीं बैठूँगा। प्रतिक्षण साहि और देश के लिए कुछ न कुछ करता ही रहूँगा।" इन कारणों से वे पूरे पूरे कर्मवीर थे। वे देशवासियों के दुः दैन्य को दूर कर उन्हें जगाना चाहते थे। यही उनकी साधना थी। तथा कथित 'देश सेवक' या 'राष्ट्र सेवक' वे न थे। इसी से अपने उपन्यासों में स्वार्थी और ढों नेताओं का मौक़ा पाते ही वे मज़ाक भी उड़ाते थे। इस कोई सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द सभी के समान अधिकारों पर ही ज़ोर देते थे। उनके जीवन में सुख न था, दुः और कष्ट उनके रोज़ के साथी थे। वे किसी बड़े घर में पैदा नहीं हुए थे। वे केवल पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही माता-पिता के स्नेह से वंचित हो गए और इस नन्हीं-सी उम्र में ही उनके ऊपर घर और संसार का सारा दायि आ पड़ा। रक्त-सम्बन्ध से भी वे भूमिदासों और किसानों के, जिनके नित्यसंगी दुर्भाग्य और दुःख हैं, सगोत्री थे। प्रेमचन्द ने जो कुछ भी लिखा इन्हीं के लिए लिखा। किसी एक पत्र में वे कहते हैं : "कोई महान् व्यक्ति ब आदमी भी हो सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं क सकता। मेरे ऊपर से किसी भी कलाकार एवं कला क प्रभाव उसी समय उठ जाता है जब मुझे मालूम हो है कि वह धनी है। साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि वह व्यक्ति वर्तमान समाज व्यवस्था का भोंडा समर्थक है, जिस समाज व्यवस्था में ग़रीबों पर बड़े लोगों क खुला शोषण स्वीकार किया गया है।......मेरे भाग्य ने की जो गति ग़रीबों के साथ मिला कर एकाकार कर है सचमुच मैं उससे खुश हूँ। इससे मेरे मन को शांति मिलती है।" (यह पत्र भी मुंशी प्रेमचन्द ने पं० बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखा था–अनुवादक) इस भारतीय लेखक की अन्तिम उक्ति के साथ विख्यात रूसी साहित्यि की उन उक्तियों से तुलना की जा सकती है जिनमें क गया है : "साहित्यिकों और मनीषियों को जन साधार

१६५४

के दुःख का अंश लेना ही होगा। इसके बाद ही वे शांति और सार्थकता का संधान पा सकते हैं।"

प्रेमचन्द के स्वभाव में कहीं भी खोखलापन और जटिलता न थी। वे जो चाहते थे, वही करते भी थे। उन्होंने ज़िन्दगी भर जो कुछ भी अर्जन किया, वह सब जन साधारण को दे दिया। विख्यात कवि मैथिलीशरण गुप्त ने उनके बारे में कहा था : "हमारे वर्तमान के लिए उन्होंने अपने भविष्य को उत्सर्ग कर दिया।" असहयोग आन्दोलन के समय प्रेमचन्द ने सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। यदि वे यह नौकरी न छोड़ते, तो जीवन-यापन के लिए उन्हें कोई कष्ट न होता। 'हंस' और 'जागरण' नामक दोनों पत्रों का प्रकाशन भार उनके ऊपर था। हर महीने घाटा उठा कर भी उन्होंने दोनों पत्रों का प्रकाशन बन्द नहीं किया, यद्यपि उनकी व्यक्तिगत अवस्था उस समय संगीन थी। उनके खेत के मजदूरों की मजदूरी भी प्रायः उधार ही रहती थी। जब वे महोबे में एक शिक्षक के रूप में काम कर रहे थे, तब प्रचलित रिवाज के अनुसार वहाँ के किसानों को सरकारी कर्मचारियों को बिना मूल्य घी दूध देना पड़ता था पर प्रेमचन्द ने कभी भी इस अन्यायपूर्ण भेंट को स्वीकार नहीं किया।

प्रेमचन्द जहाँ एक तरफ़ असाधारण विनयी थे, वहाँ दूसरी तरफ़ तेजस्वी और स्वाभिमानी भी थे। वे गोरखपुर में मास्टरी करते थे। कभी कभी वहाँ स्कूल के इन्स्पेक्टर भी आया करते थे। एक बार स्कूल के मुआइने के दूसरे दिन वे अपने मकान के दरवाज़े पर बैठे अख़बार पढ़ रहे थे। इसी समय स्कूल इन्स्पेक्टर सामने के रास्ते से जा रहे थे। प्रेमचन्द ने नज़र उठा कर उनकी ओर देखा भी नहीं, और जिस तरह से अख़बार पढ़ते थे, उसी तरह से पढ़ते रहे। इन्स्पेक्टर महोदय ने इसे अपमान समझा और गाड़ी रोक कर कहा : "आप तो बड़े घमण्डी मालूम होते हैं। आप से ऊँचा अफ़सर आपके मकान के सामने से होकर जा रहा है, पर आपने उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने की आवश्यकता भी नहीं महसूस की ?" इसके उत्तर में प्रेमचन्द ने कहा : 'जितने समय तक मैं स्कूल में होता हूँ, उतने समय तक नौकर हूँ। इसके बाद अपने मकान पर मैं बादशाह हूँ।" इस निश्छल प्रकृति के व्यक्ति में किसी क़िस्म की मिथ्यावादिता और प्रपंच का कोई स्थान न था। जिस प्रकार अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने कुसंस्कार और जड़ता के साथ बराबर संघर्ष किया उसी प्रकार व्यक्तिगत जीवन में भी उन्होंने विधि निषेध के शासन को नहीं माना। उनका विधवा-विवाह प्रचलित सामाजिक संस्कार को खुली चुनौती थी।

क्या प्रेमचन्द घृणा के प्रचारक थे ? प्रेमचन्द के सम्बन्ध में उनके विरोधी कहते हैं कि उनकी रचनाओं में प्रेम का स्थान नहीं है, उन्होंने केवल घृणा का ही प्रचार किया है। इसलिए साहित्यिक के रूप में वे धर्म से च्युत हो गए हैं। विरोधियों ने उनके सम्बन्ध में लिखा है : "उन्होंने देखा है जहाँ अर्थ है, वहाँ दुर्नीति भी। प्रेमचन्द ने रवीन्द्रनाथ और गांधीजी के सम सामयिक होते हुए भी इस तरह के विद्वेष का बीज वपन किया है, यह सोच कर भी वास्तविक दुःख होता है। दरिद्रता और धन मनुष्य का चरित्र नहीं बनाता, व्यक्तिगत चेष्टा और प्रयास से ही चरित्र बनता है।" इस तरह की उक्ति उनके विरोधियों के ही मुँह में ही शोभा पा सकती है।

भारत की मौजूदा स्थिति में प्रेमचन्द की रचनाओं का बड़ा महत्व है। विषय वस्तु तो जोरदार है ही, साथ ही उनकी रचनाएँ पाठकों के मन में मानवोचित मर्यादा का उद्रेक और साहस का संचार कर उन्हें संग्राम के लिए भी तैयार करती हैं। उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ भी वर्तमान भारत की वास्तविक स्थिति की पृष्ठ-भूमि पर लिखी गई हैं। उन्होंने इतिहास के पन्नों में आज के मनुष्यों के दुःख कष्ट का संधान किया हैं। 'परीक्षा' कहानी में उन्होंने देश के राजाओं की दुर्नीति और चरित्रहीनता का वर्णन किया है। इसमें उन्होंने दिखाया है कि राष्ट्रीयता को खो कर किस तरह राजाओं ने अपने देश के शत्रुओं के सामने आत्म-समर्पण किया। इस कहानी में भारत विजयी नादिरशाह के मुँह से भारतीय बादशाह की अन्तःपुरवासिनियों का यह कह कर तिरस्कार कराया है : "जब किसी क़ौम की औरतों में गैरत नहीं रहती, तो वह क़ौम मुर्दा हो जाती है।"

बात बात में अंग्रेज़ी इस्तेमाल करने वालों का अपने उपन्यासों और कहानियों में उन्होंने जहाँ भी मौक़ा पाया मज़ाक उड़ाया है। 'सेवासदन' उपन्यास में म्युनिसिपैलिटी के कई सदस्यों को इसी तरह के 'देशी साहब' के रूप में चित्रित किया है। प्रेमचन्द ने अपने व्यंगों द्वारा नक़ली समाज सेवकों के प्रति जन साधारण में अविश्वास पैदा कर दिया है। प्रेमचन्द की चिट्ठियों में भी उनके

स्वभाव की छाप स्पष्ट रूप में मिलती है। वर्णन शैली की 'अनात्मता' उन्होंने स्वीकार नहीं की। व्यंग, कौतुक, श्लेष आदि उनकी रचनाओं में जगह-जगह पर मिलते हैं। विद्रूपात्मक नाटक 'संग्राम' से हमें पता चलता है कि प्रेमचन्द किस तरह पुलिस राज्य से घृणा करते थे।

प्रेमचन्द की रचनाओं के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से यहाँ लिखना संभव नहीं। भारतीय मनीषियों में प्रेमचन्द का एक विशेष स्थान है। पहले महायुद्ध, रूसी क्रान्ति पूँजीवाद के क्रमशः विकास ने भारतीय जनता की चेतना में जो असाधारण परिवर्तन ला दिया था, वह प्रेमचन्द की रचनाओं में लिपिबद्ध है। उन्होंने किसानों के बीच चलनेवाले तरह तरह के भाव, उनके राग द्वेष, दुःख और संघर्ष के प्रत्येक इतिवृत्त को अपनी रचनाओं में लाने की चेष्टा की है। यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं रचना शैली में उनके उपन्यास इस समय औपनिवेशिक जीवनधारा के प्रमाण के रूप में रहेंगे। अभी तक उनकी रचनाओं का यथार्थ अनुशीलन एवं मूल्य निर्धारित नहीं हुआ है किन्तु यदि भारत के इस क्रान्तिकारी लेखक ने अभी तक यथोचित मर्यादा न पाई हो एवं निकट भविष्य में न पाए, तो उसका कारण भी सहज और स्पष्ट है। एकमात्र हमारा ही देश है, जहाँ देशकाल के अनुसार तमाम साहित्यिकों को उचित सम्मान दिया गया है। प्रेमचन्द की रचनाएँ रूस में गम्भीर गवेषणा का विषय हो सकती हैं। इसके लिए प्राथमिक कार्यक्रम भी हो गया है। भविष्य के लिए हमारा कार्यक्रम है उनकी तमाम श्रेष्ठ रचनाओं का रूसी भाषा में अनुवाद करना और उन पर विभिन्न पहलुओं से विचार करना। इसमें उनकी साहित्यिक रचनाएँ, समालोचनाएँ एवं साहित्यिक लेख आदि होंगे।

देवीदयाल भवन, महाजनी टोला,
फ़ैज़ाबाद (उ० प्र०)

—रामेश्वर प्रसाद मेहरोत्र

बाइबल के आधार पर

इज़राइल में यद्यपि यहूदी रहते हैं तो भी वे अपने देश का पुनर्निर्माण बाइबल के आधार पर कर रहे हैं। पहले यह समझा जा रहा था कि इज़राइल में कोई धातु नहीं है। बाइबल के आधार पर वहाँ धातुओं का पता लगाया गया और अब वहाँ ताँबा, पीतल और लोहा प्राप्त होता है। इज़राइल में किस जगह कौन-सा अनाज अधिकता से होता है इसका पता भी बाइबल से लगाया गया है और अब वहाँ वैसा ही अनाज उत्पन्न हो रहा है। इसी प्रकार और भी बहुत-सी चीज़ों का बाइबल से पता लगाया गया-यहाँ तक कि इज़राइल की सुरक्षा का प्रबन्ध भी बाइबल के आधार पर किया जा रहा है। फ़िलस्तीन में इस समय दो करोड़ वृक्ष हैं जिन्हें कि बीस करोड़ तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इनके उगाने और संवर्धन में भी बाइबल से सहायता ली जा रही है। बाइबल में लिखा है : "...और यह उजड़ी हुई भूमि पुनः ईडन के बाग़ जैसी हो जाएगी।"

—ब्लेक कार्ट

शिल्प कला और काश्मीर के गृह-उद्योग

यों तो काश्मीरी लोग स्वभाव से ही परिश्रमी, शान्तिप्रिय और कला-प्रेमी होते हैं और उनके इसी स्वभाव की देन है-काश्मीर की ललित कलाएँ शिल्प, संगीत, चित्रकला और स्थापत्य। प्रवासियों के सतत प्रवाह से जहाँ उन्हें पाश्चात्य और प्राच्य कलाओं एवं रुचियों के अध्ययन का अवसर मिला है, वहाँ अपनी कलापूर्ण कृतियों को उनके हाथ बेच कर उन्होंने कला संसार में अपना स्थान बनाया है। .

काश्मीर की सौन्दर्यशालिनी घाटी में जन्म लेने वाले यह कारीगर जन्म से सौन्दर्य के पारखी होते हैं। रंगों के चुनाव और अपनी कला में वे इतने सिद्धहस्त होते हैं कि उनकी कृतियों में जहाँ नित नए रंग उभरते रहते हैं, वहीं उनकी चुस्त उँगलियाँ और सधे हाथ सामान्य से सामान्य चीज़ों को कला के उत्कृष्ट नमूनों में बदलने की क्षमता रखते हैं।

अज्ञात अतीत से अब तक उनकी कला के क्रमिक विकास की अपनी कहानी है। उनकी इस परम्परा ने उत्कर्ष और अपकर्ष के अनेक युग देखे हैं। अशोक के समय में जहाँ उसने अपने चरम विकास की सीमाओं को छुआ था और अपने को भारतीयता के रंग में रंगा वहीं मुग़ल शासन-काल में उसमें नई नई रंगीनियाँ, चिर नूतन कोमलता और चिर नवीन 'शेड' उत्पन्न हुए।

इन गृह-उद्योगों के क्रमिक विकास का इतिहास भी अत्यन्त हृदयग्राही है। एक स्थल यदि ऐसा है जहाँ शुष्क से शुष्क हृदयवाला व्यक्ति भी भावुक होकर झूम उठता है तो अन्यत्र टूटे खिलौनों की कल्पना से ही कलाकार का हृदय भग्न हो उठता है। मिट्टी के सामान्य खिलौनों से लेकर उत्कृष्ट चित्रों तक सभी में काश्मीर के इन लोक कलाकारों ने कला के सुन्दरतम रूप प्रस्तुत किए हैं। प्रत्येक युग और हुकूमत की अपनी संस्कृति और कलात्मकता की, इन कृतियों पर जो छाप अंकित हुई है वह भी अत्यन्त मार्मिक है।

जब जब हमलावरों ने काश्मीर के सौन्दर्य-श्री को मिटाने के दुष्प्रयत्न किए हैं, राज्यों की अदला बदली हुई है, कारीगरों के सिरों से विलासी सामन्तों की छत्रछाया हटी है अथवा प्रवासियों का अभाव हुआ है तब तब काश्मीरी शिल्प और कला केन्द्रों को गतिरोध के थपेड़े भी झेलने पड़े हैं किन्तु फिर भी काश्मीरी कारीगर हताश नहीं हुआ। भूखे रह कर भी उसने नक़्क़ाशी के सर्वश्रेष्ठ नमूने खोदे हैं। आँखों की ज्योति समाप्त होने तक उसकी क़सीदाकारी ने विश्राम नहीं किया, क्योंकि शैशव के आरम्भ से ही वह कला को जीवन का समानार्थी समझता रहा है। यही उसके लिए अमरत्व भी है।

राजनैतिक स्थिति, प्रवासियों का सतत प्रवाह और राजसंरक्षण के अतिरिक्त इन ललित कलाओं के फलने फूलने के दो मुख्य कारण हैं। एक तो यह कि कृषकों की अपेक्षा गृह-उद्योगों में लगे कारीगर ही यहाँ अधिक समृद्ध, खुशहाल और शोषणमुक्त रह सके हैं। दूसरे यह कि स्वभाव से ही शान्तिप्रिय एवं कला-प्रेमी होने के साथ ही उन्हें शान्तिपूर्ण सहयोग और सांस्कृतिक आदान प्रदान· द्वारा अपनी कलाकृतियों को क्रमशः सजाने, संवारने और परिष्कृत करने का अवसर मिला है। यही कारण है कि काश्मीरी शिल्प केन्द्रों ने संसार की सर्वोत्कृष्ट दस्तकारी प्रस्तुत की है। सदियों की संचित साधना और अनेक पीढ़ियों का अभ्यास ही इनकी विश्वख्याति का मूल है।

सच तो यह है कि आज का नया काश्मीर गृह· उद्योगों के मामले में छोटा-मोटा जापान है। अकेले श्रीनगर में इन शिल्पियों की संख्या पैंतीस हज़ार के आस पास यानी समूचे नगर की जनसंख्या का २७.८ प्रतिशत है। पग पग पर विद्युतचालित यन्त्रों का अभाव खटकता अवश्य है किन्तु यह अभाव भी कम से कम इस दृष्टि से अच्छा है कि अब तक यह लोक कलाकार स्वयं यन्त्र नहीं बने। उनके हृदय और मस्तिष्क दोनों ही समान रूप से नए नए रूपों की कृतियों का जन्म देते रहते हैं। अतएव उनकी समस्त दस्तकारी में उनकी बहुमुखी प्रतिभा प्रस्फुटित होती दिखाई देती है।

काश्मीरी औद्योगिक विकास समिति की योजना में भी गृह-उद्योगों को विशेष महत्व दिया है। सहकारिता के सिद्धान्त को अपनाने के साथ ही ऐसा प्राविधान रखा गया

है कि इन कुटीर उद्योगों में विद्युत-शक्ति चालित छोटे-छोटे यंत्रों को चालू कर अनावश्यक श्रम बचाया जाय। इस विधि से जहाँ उत्पादन वृद्धि की ओर एक ठोस प्रयत्न किया जा रहा है वहीं इन दस्तकारियों के कलात्मक मूल्य को अक्षुण्ण बनाए रखने में पूर्ण सजगता बरती जा रही है। योजना के कर्णधारों का अनुमान है कि इस तरह कारीगरों की प्रतिभा को चमकने का पूरा पूरा अवसर मिलेगा।

काश्मीर के यह गृह-उद्योग मशीनी उत्पादन, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और तजनित प्रतियोगिता के सम्मुख नत-मस्तक नहीं हुए। शाल दुशाले, पशमीने और क़ालीनों का उद्योग ही नहीं वरन् सभी के उदय और विकास में प्रकृति का गहरा हाथ रहा है। सचमुच ही उनकी भूरी और कजरारी भेड़ें उनके लिए कामधेनु हैं जो स्वयं शीत सह कर भी कारीगर के शरीर में गर्मी बनाए रखती हैं और जिनकी देन है ऊनी वस्त्रों का उद्योग। पिछले दिनों यहाँ 'मेरीनो' और अन्य विदेशी नस्लों की भेड़ें भी लाई गई हैं। अतएव दुसूतियाँ, नम्दे, क़ालीन और पट्टू के अतिरिक्त बुनाई के काम आनेवाली ऊन की कोटियों में भी द्रुतगति से परिष्कार की सम्भावनाएँ पैदा हो गई हैं।

ठीक इसी तरह फूल और तितलियों के इस देश में रेशम के कीड़े भी बहुतायत से पाए जाते हैं। श्रीनगर की सिल्कन मिल के अतिरिक्त गाँव गाँव में कच्चा रेशम तैयार होता है। फिर रेशम के साथ कढ़ाई और छपाई के जैसे टांके लगे हैं। हज़ारों कारीगरों की यही जीविका है। काश्मीरी रेशम की एक विशेषता यह भी है कि उसमें मिलावट नहीं होती और कोटि की दृष्टि से उसे चीनी रेशम के समकक्ष रखा जा सकता है। मूल्य की दृष्टि से वह आश्चर्यजनक रूप से सस्ता होता है। काश्मीरी जननायकों और लोकप्रिय सरकार के मिले-जुले प्रयत्न से काश्मीर आर्ट एम्पोरियम की सभी शाखाओं और चर्खा संघ द्वारा प्रमाणित रेशम की गांधी आश्रम की सभी दुकानों पर विक्रय-व्यवस्था हुई है और इस तरह रेशम उद्योग के विकास में एक नए युग का समारम्भ हुआ है।

आखेट के लिए जहाँ यह भूभाग संसार भर के शिकारियों को अपनी ओर आकृष्ट करता है वहीं आखेट की देन, खालें और फ़र का उद्योग भी कम आकर्षक नहीं है। फ़र के बने जूते, टोपियाँ, स्कार्फ़, जरकिन, आदि सभी मूल्य की दृष्टि से तो सस्ते होते ही हैं, उसके साथ ही काश्मीर फ़र की प्राकृतिक खूबियाँ, और ट्रेनिंग की पद्धतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है

चमड़े के क्षेत्र में यह उद्योग किसी तरह पी हैं। यहाँ के निर्मित जूते, चप्पल, सैन्डिल, आदि सभी में कोई न कोई दस्तकारी की ऐसी वि अवश्य रहती है जिनके कारण यह वस्तुएँ स्वयं उठती हैं, 'काश्मीर में उत्पादित'। भावी विकास की से राजकीय ट्रेनिंग फ़ैक्टरी उल्लेखनीय है। दस रुपए की लागत से आरम्भ हुए इस औद्योगिक विक प्रथम चरणों में कमाए हुए चमड़े के उत्पादन में प्राप्त की जा रही है तो दूसरे में तैयार शुदा माल लक्ष्य किया जा रहा है। इस तरह सन् १९५५ के तक इस उद्योगशाला में ३०० कारीगर अपने-अपने में कुशलता प्राप्त करके गृह-उद्योगों में जुट जाएँगे।

यहाँ के गृह-उद्योगों को जो प्रकृति का अन्य व मिला है वह है यहाँ के सघन वन। चीड़, दे आबनूस, चेनार, पोपलार, विल्लों और ओक पहाड़ी ढालों पर मेघमाला की भाँति छाए हुए हैं। कोष के दृढ़ स्तंभ होने के साथ ही वे सामान्य का के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। लकड़ी पर न के काम का इतिहास लगभग पाँच हज़ार वर्ष पुराना है छड़ी, संदूक़, शमादान छोटी-मोटी मेज़ कुर्सियाँ, रैक, फूल, और शृंगारदान आदि अनेक वस्तुएँ कु ढंग से बनाई जाती हैं और इनका मूल्य भी इतना होता है कि सब कुछ ख़रीदने की इच्छा होती है, मित्रों के लिए इस से सस्ता, अच्छा और विविध तोहफ़ा और क्या हो सकता है!

बेंत का सामान तो जैसे यहाँ की अनुपम भेंट है बड़ी-बड़ी दुकानों से लेकर सामान्य फेरीवाले तक बेंत बनी टोकरियाँ, पालने, पंखे, खिलौने आदि का अक्षय भंडार लिए रहते हैं। नित नए नमूने "मिट्टी जैसा मोल" यही उनकी विशेषता है। बेंत इस तानों बानों में प्रवासी का मन कुछ इस तरह उल जाता है कि ख़ाली हाथ लौटना उसके लिए असंभव रहता है।

काश्मीर की विभिन्न कलाकृतियों में जिस सुकुमा के दर्शन होते हैं उसे देखते ही बनता है। छोटी-

१९५४

कुटीर नुमा झोपड़ियाँ ही जैसे इन वरद कारीगरों के स्टूडियो हैं। अपने सजीव रंगों और तूलिका के सधाव से वे छोटी-मोटी डिबियों, शृंगार और क़लमदान, बल्बशेड और तश्तरियों पर भाँति-भाँति के बेल बूटे और डिज़ायनें अंकित करते हैं। पेपरमेशी के इन नमूनों पर मुगल-कालीन, चीनी और अजन्ता शैली की चित्रकारी भी इस खूबी से अंकित करते हैं कि दर्शक के मुँह से स्वतः निकल पड़ता है: "वाह! बहुत खूब।"

जेब में पैसे भर होने चाहिएँ: सुन्दर आभूषणों का भी यहाँ अभाव नहीं। जितनी रुचियों के प्रवासी यहाँ आते हैं शायद उतने ही प्रकार के आभूषण भी उपलब्ध हैं। सोलहवीं सदी के ऊँचे-ऊँचे बिछुएँ, करधनी और भारी-भरकम "हमेलों" से ले कर टी-सेट और सिरप-मिक्स्चर सभी कुछ। असली हीरे जवाहिरात के अतिरिक्त नक़ली नगों के मामले में भी काश्मीरी कला ने सम्भवतः अपने चरम विकास की सीमाओं को छू लिया है। बिना मूल्य पूछे कम से कम साधारण पारखी के लिए असली नक़ली का अन्तर पता चलाना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

प्रकृति ने काश्मीर की मनोरम घाटी को श्री सौन्दर्य से भर दिया है। फल, मेवे, दूध और पनीर के इस देश में शहद और केशर दोनों ही प्रकृति के सुन्दरतम उपादान हैं। काश्मीरी केशर संसार में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। केशर के फूल खिलते ही पम्पौर की धरती और फ़िज़ाँ मस्ती से सराबोर हो जाती है। कलियों के चटखते ही हवा में 'लाफ़िंग गैस' का आधिक्य हो जाता है और प्रवासी स्वयं उन्मत हो उठता है।

केशर के फूल चुनने से लेकर लच्छे और चूरे के चुनाव आदि सभी प्रक्रियाओं के साथ श्रम और साधना के टाँके लगे हुए हैं। इस उद्योग के सम्बन्ध में जो सबसे मनोरंजक बात मुझे जानने को मिली वह यह कि जिस वर्ष केशर का उत्पादन कम होता है उस वर्ष केशर का बाजार मन्दा रहता है। इसके विपरीत उत्पादन अधिक होने पर बाजार सी गरम हो जाता है।

काश्मीरी मधु का अपना मिठास है। घाटी के विभिन्न भागों में संचित मधु रूप, रस और गंध की दृष्टि से अपनी अपनी विशेषताएँ लिए रहता है मैदानों में मिलने-वाले शहद की भाँति मीठा तो नहीं पर हाँ उससे कहीं सुवासयुक्त होता है। मधु-संचय कार्य केवल कुछ ही लोग पेशे के रूप में अपनाए हुए हैं और वह भी केवल वसन्त के आरम्भ से ग्रीष्म के अन्त तक चलता है किन्तु फिर भी शहद के टीनों का पैकिंग आदि तो शरद् की बेकारी में भी चलता है।

फलों की दृष्टि से काश्मीर और भी समृद्ध है। सेब, अंगूर, लीची, आडू, आलूबुखारा, नख, नाशपाती, चेरी और स्ट्राबेरी तो इतने पैदा होते हैं कि उनकी खपत भी प्रायः एक सिर दर्द बन जाती है। पिछले कुछ दिनों से काश्मीर की लोकप्रिय सरकार आचार, मुरब्बे और 'फ्रूट कैनिंग' उद्योग को बढ़ावा देने के लिए प्रयत्नशील है। काजू, अखरोट और बादाम आदि के साथ ऐसी बात नहीं है। ग्रामीण बागवान परिवारों के छोटे-छोटे बच्चे बचपन से ही उनके संचय और सुरक्षा में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं। मेवा और फल उद्योग के आधुनिक ढंग से संगठित होने पर बागवानी की दिशा में एक नवयुग आरम्भ हो जाएगा, ऐसा अनुमान है।

काश्मीर के यह गृह-उद्योग कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। एक ओर तो शिल्पियों का रोटी, रोजगार उन पर निर्भर है। दूसरे शब्दों में शिल्पियों की यह समस्या वर्ष भर मजदूरी मिलने की समस्या है और इसी से सम्बन्धित हैं रहन-सहन के स्तर, काम के घंटे और मजदूरी के अन्यान्य प्रश्न। अतएव शिल्पियों का घोषणा-पत्र, नए काश्मीर की सुदृढ़ अर्थ-व्यवस्था और भावी औद्योगिक विकास की दिशा में अपने ढंग की निराली ही वस्तु है। दूसरी ओर गृह-उद्योग राज्यकोष के सुदृढ़ स्तम्भ हैं किन्तु राज्यकोष का प्रश्न उत्पादन की वृद्धि और उसी के साथ साथ विक्रय से सम्बद्ध है। राजकीय ट्रेड एजेन्सियाँ और आर्ट एम्पोरियम इस दृष्टि से काफ़ी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि क्रय-विक्रय के साथ ही वे काश्मीरी शिल्प को प्रचारित एवं प्रसारित करने में विशेष सहायक सिद्ध हो रहे हैं। नई सरकार इन शालाओं की आवश्यकता पूर्ति के लिए ४०० उत्पादन केन्द्र स्थापित करने की एक योजना को भी कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्नशील है।

काश्मीर की सांस्कृतिक और कलात्मक परम्परा को जीवित रखने का भी काफ़ी श्रेय यहाँ के गृह-उद्योगों को है। किन्तु उत्पादन के क्षेत्र में मशीनों और विद्युत-शक्ति के प्रवेश से यह उद्योग और परम्पराएँ स्वयं भयभीत रही हैं। इस ओर भी काश्मीर के जन-नायक बहुत पहले ही से सजग हैं। विज्ञान के नव-नवीन आविष्कारों, विद्युत-

शक्ति और नव चीन के गृह-उद्योगों की विकासगाथा से पूरा पूरा लाभ उठाते हुए वे अपने इन उद्योगों की कलात्मकता को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन कृतियों का 'स्टैण्डर्डाइज़ेशन' भी इस दिशा में सर्वथा मौलिक है।

इन गृह-उद्योगों की चिन्तनीय अवस्था और उनमें लगे शिल्पियों के रहन-सहन का स्तर और जीवन संघर्ष, राष्ट्रीय आन्दोलन के पहले से ही यहाँ के जननायकों के लिए चिन्ता का विषय रहा है। लोकप्रिय शासन की स्थापना के साथ साथ जो कार्य सुधार की इस दिशा में में किए गए हैं, भावी विकास की दृष्टि से वे अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं। इन प्रयासों के द्वारा एक ओर तो गृह-उद्योगों की हीनावस्था में क्रान्ति लाने की चेष्टा की गई है और दूसरी ओर काश्मीरी दस्तकारियों को लोकप्रिय बनाने के लिए महत्वपूर्ण क़दम उठाए जा रहे हैं।

शोषण और ऋण भार से अभिशप्त कलाकारों की अनेक पीढ़ियाँ सदियों की भूख और गरीबी से पीड़ित रही हैं। अतएव सहकारिता के सिद्धान्त पर बनी समितियों से उन्हें एक प्रकार की राहत होना स्वाभाविक है इन समितियों के द्वारा उनकी केवल पूँजीगत समस्याएँ ही हल नहीं हुईं वरन् उत्पादन की विधियों में भी एक अभूतपूर्व क्रान्ति का सूत्रपात हुआ है। नए कारीगरों को काम मिला है तो पुरानों को कार्य करने की प्रेरणा।

गृह-उद्योगों के विकास क्षेत्र में इस तरह एक ओर तो विज्ञान से पूरा पूरा लाभ उठा कर सामान्य कारीगर के जीवन स्तर को उठाने का प्रयास किया जा रहा है तो दूसरी ओर विकेन्द्रीकरण की अर्थनीति और नव चीन के अनुभवों से लाभ उठा कर इन उद्योगों को सुदूर गाँवों और पास के क़स्बों में एक सुनिश्चित योजना के अन्तर्गत फैलाने का प्रयत्न। इस भगीरथ प्रयत्न में हाथ बँटाने के लिए राष्ट्रीय, ज़िले, गांव और पंचायत वार विकास समितियाँ बनाई गई हैं। उनके अनेक कार्य हैं यथा, (१) विकास योजना का संचालन (२, स्थानीय कठिनाइयों को प्रकाश में लाते हुए योजना को नवजीवन से नत्थी करना (३) योजना के कार्यान्वित होने तक आवश्यक सुधार के सुझाव समुपस्थित करना (४) योजना कमीशन की जानकारी के लिए तथ्य और आँकड़ों का संग्रह (५) उद्योगों की विधिवत् देखभाल (६) कार्यकर्त्ताओं की भरती और (७) सहकारिता का प्रचार।

यहाँ यह बात जानने योग्य है कि काश्मीर के जन-नायकों में अधिकाँश ऐसे हैं जिनका किसी न किसी रूप में इन उपयोगों से सम्बन्ध रहा है। आज भी इस समूची विकास योजना के पीछे नव चीन के औद्योगिक सलाहकार प्रो० जे० बी० टेलर और काश्मीर के सुप्रसिद्ध व्यवसायी एवं विकास-मन्त्री श्री श्यामलाल सर्राफ़ जैसे अनेक मस्तिष्क कार्य कर रहे हैं।

नए काश्मीर में आज जिस नई सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था का विकास हो रहा है, उसके अन्तर्गत काश्मीर के गृह-उद्योगों में एक नवीन क्रान्ति का सूत्रपात हुआ है। कला जगत् का यह नव-जागरण देश-विदेश के कलाप्रेमी और उद्योगियों के लिए ही नहीं वरन् उन सभी के लिए जो कला और जीवन का सम्बन्ध समझना चाहते हैं, नव रचना के क्षेत्र में पूर्व और पश्चिम का सुन्दर समन्वय देखना चाहते हैं अथवा विज्ञान की दुनिया में चरखे और तूलिका का चमत्कार देखना चाहते हैं, दर्शनीय है। काश्मीर के कला-केन्द्र और शिल्पी स्वर्ग की इस मनोरम घाटी में उन सभी का स्वागत करते हैं।

—तिलक

६, सरोजनी नायडू मार्ग,
लखनऊ

दूसरों के विषय में सम्मति प्रदान करना ख़तरनाक है; इसलिए नहीं कि उसमें आप ग़लती कर सकते हैं परन्तु इसलिए क्योंकि उस सम्मति के द्वारा अपने आपको सच्चे रूप में प्रदर्शित कर देते हैं।

—फ़िनलैण्ड प्रेस

महाकवि अलसानि पेद्दन

तेलुगु साहित्य के सोलहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के काल को प्रवन्ध काल के नाम से जाना जाता है। इस काल के कवियों का मुख्यतः प्रबन्ध काव्यों के निर्माण की ओर झुकाव रहा है। यों तो पहले भी प्रबन्ध काव्यों की रचनाएँ हुई हैं परन्तु इस काल में प्रबन्ध काव्यों का निर्माण करते समय कवियों ने सदा यह ध्यान में रखने का प्रयत्न किया कि उनकी रचनाएँ संस्कृत के काव्यों से कम महत्व न रखती हों। प्रबन्धों में मुख्यतः नगरों, नदियों, नहरों, सूर्य तथा चन्द्रमा आदि का वर्णन होता रहा है।

इसी काल में आन्ध्र देश में कृष्णदेव राय नामक राजा हुए जिनकी अभिरुचि साहित्य की ओर विशेष रही। इनके संरक्षण में आन्ध्र कविता ने बहुत उन्नति की। इन्होंने स्वयं कई काव्य ग्रंथ लिखे हैं जिनमें केवल 'मुक्त-माल्यद' नामक काव्य ग्रंथ प्राप्य है। इनके दरबार में आठ महाकवि थे जिन्हें हम 'अष्ट दिग्गज' के नाम से जानते हैं। इन महाकवियों में पेद्दन का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

महाकवि पेद्दन का जन्म नंदवरी वंश के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके माता का नाम चोकन्नामाल्य था।

इन्हें विजयानगरम् के महाराज कृष्णदेव राय का संरक्षण प्राप्त था। महाराज कृष्णदेव राय के संरक्षण में उन्होंने कतिपय बहुत ही उच्च कोटि के ग्रन्थों की रचना की और इसीलिए उन्हें विजयनगरम् के दरबार में सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में सम्मानित किया गया।

महाकवि पेद्दन ने अपने सारे काव्यों का प्रणयन संस्कृत मिश्रित आन्ध्र भाषा में किया। साधारण तेलुगु भाषा में उनके कोई भी ग्रन्थ नहीं मिलते। उनकी रचनाओं में मनुचरित्र, हरिकथासार, सीसपद्यशतक आदि उल्लेख्य हैं जिनमें 'मनुचरित्र' सर्वश्रेष्ठ है।

श्री अलसानि पेद्दन ने 'मनुचरित्र' की रचना मार्कण्डेय-पुराण के आधार पर की है। मार्कण्डेय-पुराण की एक कथा विशेष को इन्होंने अपना आधार माना है और शृंगार रस के समावेश द्वारा उसमें एक नवीन प्राण डालने का सफल प्रयास किया है। इसमें स्वारोचिषं मनुसंभव (चौदह मनुओं में एक) के जन्म से कथा का आरम्भ होता है। सर्व प्रथम हम देखते हैं कि एक गरीव ब्राह्मण एक सिद्ध के आकर्षण द्वारा हिमालय पहुँच जाता है। वहाँ वह हिमगिरि पर जाकर फँस जाता है और घर लौटने में सफल नहीं हो पाता।

बहुत समय तक वह अकिंचन सहायता की प्रतीक्षा में रहा। अन्त में प्रकृति ने उस पर दया की और एक वायु इस प्रकार की चली जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि निकट ही कोई बस्ती है। उसने हवा के उद्‌गम स्थान की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया। ज्यों ही वह आगे बढ़ा उसे एक सुन्दर अप्सरा के दर्शन हुए। वह गंधर्व अप्सराओं में एक है और उसका नाम वरुधिनी है। बाद में उसका प्रेम भक्त प्रवर से हो जाता है। लेकिन वह अग्निदेव की सहायता से लौट आता है उस गन्धर्व कन्या के प्रेम की उपेक्षा कर। परन्तु बाद में वह गन्धर्व कन्या प्रवर का प्रेम पाने में समर्थ होती है और उन्हें एक पुत्र प्राप्त होता है जिसका नाम स्वारोचिष है और जो स्वारोचिष मनु का पिता है।

मनुचरित्र 'कुमारसंभव' से मिलता जुलता है। 'कुमारसंभव' में शिव और पार्वती ही मुख्य चरित्र हैं। उसी प्रकार इस महाकाव्य में प्रवर तथा वरूधिनी मुख्य चरित्र हैं। उनकी कहानी विशेष आकर्षक लगती है। जिस प्रकार कालिदास के 'कुमारसंभव' में 'कुमार' का चरित्र अप्रधान है उसी प्रकार 'स्वारोचिषं मनुसंभव' में स्वारोचिष मनु का चरित्र अप्रधान है।

'स्वारोचिष मनु' में प्रवर और वरुधिनी के मिलाप की आख्यायिका का वर्णन बहुत ही सुन्दर और स्वाभाविक हुआ है। शृङ्गार रस के प्रयोग ने काव्य ग्रन्थ को नवीन कलेवर प्रदान किया है। यह अपने ढंग की एक निराली कृति है। इस काव्य ग्रंथ को महाकवि पेद्दन ने महाराज कृष्णदेव राय को समर्पित किया। इसी महाकाव्य की महत्ता को देख कर उन्हें आन्ध्र कविता के पितामह की पदवी महाराज कृष्णदेव राय ने प्रदान की है।

श्री पेद्दन की कविता में शृंगार रस का प्राधान्य

मिलता है। उस काल में आन्ध्र जनता में शृंगार और सौन्दर्य के प्रति विशेष प्रेम रहा है। उस समय की मूर्त्ति के गहनों तथा इतर हस्त कलाओं में इसका नमूना दीखता है। सभी कवियों ने शृङ्गार रस को प्रधानता दी है और इसीलिए उस काल में 'श्रीमदांध्र भागवत' जैसे ग्रंथों में भी आवश्यकता से अधिक शृंगार रस का प्रयोग किया गया है।

श्री पेद्धन की शैली सरल और ओजपूर्ण है और उसमें उनकी अपनी विशेषता दीखती है। इसी कारण उनकी कविता को इतनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

उन्हें महाराजा का संरक्षण प्राप्त था और दीर्घकालीन अनुभव के कारण उनकी कविता निखर आई थी। अपनी कल्पना, भावना और सौन्दर्य के कारण वे उस काल के सर्वश्रेष्ठ कवि हो गए थे।

महाकवि पेद्धन ने सामाजिक विषयों का वर्णन भी अपने काव्य ग्रंथों में किया है। वैदिक सम्प्रदाय के चतुर्वर्णात्मक सामाजिक सिद्धान्तों का तथा आचार की रूढ़ि का आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया है। उनका कथन है कि संभव है समाज का यह स्वरूप उत्तर भारतीयों के जीवन तत्वों के अनुसार न हो परन्तु साहित्य की दृष्टि से कवि ने उसे लोकमान्य सिद्धान्तों के अनुरूप ही माना है। श्री अलसानि पेद्धन ने भाषा और सुन्दर भावों द्वारा सामाजिक तत्वानुरूप पात्रों के चरित्र का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

महाकवि पेद्धन में केवल ग्रंथों की रचना की ही कार्यक्षमता नहीं थी अपि तु वे एक महान् आशुकवि भी थे। उनके आशु कवित्व[1] से प्रभावित होकर 'कवि गंडपे डेर' नामक सुवर्ण कंगन महाराज कृष्णदेव राय ने उपहारस्वरूप प्रदान किया था।

कहा जाता है कि एक बार महाराज कृष्णदेव राय ने एक सम्मेलन बुलाया जिसमें उन्होंने शुद्धान्ध्र तथा संस्कृतान्ध्र काव्य का धारा प्रवाह रूप में वर्णन प्रस्तुत करने वाले को स्वर्ण कंकण उपहार में देने की घोषणा की। उन अष्ट दिग्गजों में केवल पेद्धन ही उठे और उन्होंने २६ पंक्तियों की एक कविता का सरस पाठ सुनाया। इस कविता की रचना उन्होंने उसी समय की थी और उसमें अद्भुत रचना चातुर्य था। इस कविता की प्रथम १६ पंक्तियों में संस्कृतान्ध्र साहित्य का सौंदर्य वर्णन था। उन्होंने क्रियापद तथा प्रत्ययों को छोड़कर आन्ध्र शब्द कहीं प्रयोग नहीं किया था। इस अद्भुत आशु कवित्व प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें सुवर्ण कंकण प्रदान किया।

महाकवि पेद्धन का तेलुगु काव्य के निर्माताओं बहुत उच्च स्थान है। इनको तेलुगु काव्य में उच्च स्थान क्यों मिला इसको जानने के लिए हमें ते काव्य परंपरा का संक्षिप्त विश्लेषणात्मक अध्ययन क होगा।

तेलुगु में काव्य ग्रंथों का निर्माण अनुमान ८०० ई० से किया जा रहा है। कवि नन्नया भट्ट सर्व श्रेष्ठ आन्ध्र कवि माने जाते हैं। इन्होंने संस्कृत महाभा के आधार पर एक स्वतन्त्र काव्य लिखने का प्र किया। इनका 'महाभारतम्' पूरा भी न हो पाया था इनकी मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् कई कवियों ने इ पूरा करने का प्रयत्न किया पर किसी को पूरी सफ नहीं मिली। अन्त में एरांप्रगड़ा नामक कवि ने इसे किया। इस प्रकार १४ वीं शताब्दी में इसे पूरा किया ग जब कि इसका आरम्भ ११ वीं शताब्दी में हुआ था। था तेलुगु काव्य का आरम्भिक रचना काल।

इसके बाद हम तेलुगु काव्य के मध्यकाल में आ हैं। इस युग में रामायण का निर्माण तेलुगु काव्य किया गया। सर्वप्रथम रंगनाथ भास्कर कवि मिल्लिका भट्ट आदि रुद्रदेव के शिष्यों ने 'भास्कर रामायण' निर्माण का प्रयत्न किया। इसी काल में श्रीनाथ (तेलुगु के बिहारी) ने 'शृंगार नैषध' की रचना की इनका सम्बन्ध उसी काल के सुप्रसिद्ध कवि बम्मेर पोत से था जिन्होंने 'भागवतम्' की रचना की है। श्रीनाथ आदर आन्ध्र के प्रत्येक राज्य में होता था परन्तु पोत ने अपने महाकाव्यों को राजाओं के हाथ बेचना अस्वी कर दिया। तेलुगु कविता परम्परा के मध्यकाल में बम्मे पोतन्ना का विशेष एवं विशिष्ट स्थान केवल रचनाओं कारण ही नहीं अपि तु स्वाभाविक रूप से प्रणीत स्व काव्यों के कारण है। इसके अतिरिक्त इस काल के अ कवियों ने भी कतिपय सुन्दर काव्य ग्रंथों का निर्माण कि जिनमें भट्टमूर्ति, वेमना आदि प्रमुख हैं।

इसके बाद हम प्रबंधकाल में आते हैं। इस का

---

[1] आशु कवित्व: एक आयोजन जिसमें एक व्यक्ति सौ व्यक्तियों के प्रश्नों का उत्तर देता है।

१९५४

में कवियों ने पुराण की कहानियों को मंजी हुई शैली में प्रस्तुत किया। पौराणिक कहानियों के कारण इन प्रबंधों की पृष्ठभूमि धार्मिक थी और स्वतन्त्र कथानक के निर्माण के कारण उनमें माधुर्य एवं रचना सौंदर्य की बहुत अधिक अभिवृद्धि हुई। इस काल में 'एपिक' (Epic) का महत्व घटा न था और उस कवि को प्रथम कोटि के कवियों में नहीं रखा जा सकता था जिसने वैसा ग्रंथ न लिखा हो।

इन नियमों को ध्यान में रखते हुए महाकवि अलसानि पेद्दन ने विभिन्न ग्रन्थों की रचना की। आन्ध्र कविता के पितामह अलसानि पेद्दन की कविता में माधुर्य, निर्मलता तथा पवित्रता मिलती है और इसी कारण उन्हें तेलुगु के प्रबंधकाल का सर्वोत्तम महाकवि कहना अनुपयुक्त न होगा।

दुःख है कि प्रबंधकाल के इस महाकवि की जीवनी अप्राप्य है। उनकी रचनाओं से तो उनकी बहुमुखी प्रतिभा का अनुमान लगाया जाता है। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित तिथि नहीं मिलती। इतना अनुमान अवश्य लगाया जाता है कि कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात् वे कुछ समय तक अवश्य ही जीवित रहे क्योंकि उस समय की एक कविता प्राप्य है जिसमें उन्होंने महाराज कृष्णदेव की मृत्यु पर शोक प्रकट किया है। श्री योगनन्दम्, ने उस कविता का आशय इस प्रकार दिया है। "जब राजा मेरे सम्मुख आते थे तो अपने हाथी को रोक कर मुझे उस पर चढ़ा लेते थे। मुझे कोकट आदि ग्राम उन्होंने दिया था। जब मैंने 'मनुचरित्र' महाराज को भेंट किया तो उन्होंने स्वयं ही मेरी पालकी अपने कंधों पर उठाकर गाँव भर में घुमाई और 'कवि गंडपे डेर' नामक कंकण को अपने हाथों से मेरे पैर में पहनाया। आन्ध्र कविता के पितामह अलसानि पेद्दन कहनेवाले महाराज कृष्णदेव राय के साथ में स्वर्ग न जा सका। यहाँ जीवित अवस्था में भी मैं मृतक के समान हूँ।"

वस्तुतः महाकवि अलसानि पेद्दन को तेलुगु काव्य के प्रबंध काल का सर्वश्रेष्ठ कवि कहना अनुपयुक्त न होगा। यह कहना कि उन्होंने किन परिस्थितियों में रहकर साहित्य साधना की थी यह कठिन है फिर भी उनकी महानता स्पष्ट है। भारतीय साहित्य में इस अमर कवि का स्थान सर्वदा सुरक्षित रहेगा।

व्यास निवास, ३१/५१ कालभैरव,
बनारस

—कृष्णशंकर व्यास

ज्यों ज्यों मनुष्य वृद्ध होता जाता है त्यों त्यों उसकी आशा और उसके भय की समाप्ति होती जाती है।

कुछ लोग विलास और आनन्द के लिए उत्पन्न ही नहीं होते। वे प्रत्येक अवस्था में इनसे बचने का प्रयत्न करते हैं।

पूर्ण भौतिकवाद लगभग असम्भव है। यह अनुभव भौतिकवादी को पागल और भयभीत कर देता है।

सच्ची विनयशीलता उसी समय आती है जब कि मनुष्य विश्व के नियमों को पहचान कर मनुष्य-समाज से प्रेम करते हुए भी उसे अपेक्षा की दृष्टि से देखना सीख जाते हैं।

—थिओडोर फ्रान्सिस पोईस
(ब्रिटिश उपन्यासकार)

असन्तोष

पूरा वर्ष हो गया पर मालती ने अपने वैवाहिक जीवन का इच्छानुकूल सुख नहीं अनुभव किया। विवाह से पूर्व उसके मानस में जितनी इच्छा और आकांक्षाएँ थीं, उन्हें बालू की दीवार के समान गिरती हुई पा कर, उसका हृदय एकाएक ही विक्षुब्ध और कोलाहल से पूर्ण बन गया। मालती का पति अनूप अपने उस एकाकी जीवन में रुपया नहीं उपार्जित कर सका। यश भी नहीं पा सका। उसने अपनी कुल-मर्यादा के अनुरूप, संस्कृत की जिस पाठशाला में अध्ययन किया, तो यह भी बुद्धिमत्ता की बात की कि संस्कृत का शास्त्री करके अंग्रेज़ी का बी० ए० भी कर लिया। कदाचित् मालती के पिता ने उसकी शिक्षा-दीक्षा को देख कर ही, अपनी पुत्री का पाणिग्रहण-संस्कार उसके साथ किया किन्तु इस बात का उस पिता को क्या पता था कि अनूप और मालती का दाम्पत्य-संयोग सुखपूर्ण नहीं रहेगा। और हुआ यही कि अनूप पत्नी के अनुरूप न तो अपनी आर्थिक स्थिति बना सका, न अनुकूल वातावरण ही पैदा कर सका। वह नगर के हाई स्कूल में संस्कृत का अध्यापक बन गया और वहाँ से जितना पाता, उसी से अपनी गृहस्थ-जीवन की गाड़ी को खींचने का प्रयत्न करता। वह यह भी जानता था कि मालती उसकी स्थिति से सन्तुष्ट नहीं। वह उस घर में रहते सुखी नहीं। परन्तु अनूप क्या करता! वह भी विवश था। वह असमर्थता का बखान एक बार नहीं, अनेक बार कर चुका था। वह यह भी बता चुका था कि वह पैसे के पीछे नहीं चलेगा, मनुष्यता की ओर जाएगा। जिसके उत्तर में उसे सदा ही, एक ही उत्तर मिलता: "ऐसा करना था, तो तुम्हें विवाह नहीं करना था।" यह सुन कर अनूप मौन रह जाता। कभी अपने और मालती के मन की स्थिति के विशाल अन्तर को पा, दयनीय और विषम भी बन जाता। वह मालती को समझाने का प्रयत्न करता। वह बतलाता: "ऐ मालती! तू वासनाप्रिय न बन! तू भी सावित्री और सीता बन! तू समाज की विशिष्ट और सभ्य नारी बन!" वह कहता: "जीवन के ये भोग, ये प्रसाधन, चेतना प्रदान नहीं करते। कामुकता और अन्त प्रदान करते हैं,—आदि।" परन्तु इतना सुन कर तो मालती का मानस और भी अधिक विक्षुब्ध बन जाता। उसे अनूप का वह सतयुगी तथा एकांगी भाषण जैसे निरा प्रलाप ही लगता। उसे सुन कर, वह हंसती और कभी रो देने की स्थिति में हो आती। ऐसे अवसर पर वह प्रायः क्रोध भी करती। वह दुःख से प्लावित बन, स्वयं अपने आपको ही नोंचने और मार देने का भाव मन में उठा हुआ पाती। वह अपने अन्तर को उद्वेलित हुआ देखती। परिणामस्वरूप, वह पति के प्रति निर्दय और कठोर बन जाती।

अनूप के मित्रों में यतीन ही एक ऐसा व्यक्ति था कि जो उसके परिवार के आन्तरिक मामलों में भी दखल देने की क्षमता रखता था। प्रायः वह अनूप और मालती के बीच में मध्यस्थ भी बन जाता। यद्यपि, उनके जो झगड़े थे, विवाद के प्रश्न थे, वे मालती की ओर से ही उठते। किन्तु जब अनूप अपनी सुन्दर पत्नी को समझाने में असमर्थ रहता, तो यह काम यतीन के ऊपर पड़ता। वह तब अपनी भाभी को आकर समझाता। वह बताता कि नारी-जीवन की यह देन नहीं... निष्ठा नहीं! अनूप भैया जैसे हैं, तुम्हारे लिए समर्पित हैं। इससे अधिक की गुंजाइश भी नहीं! किन्तु यतीन तो एक समर्थ युवक था। उसके पास पैसा था, मोटर थी, नौकर थे। उसकी पत्नी सुंदर तो थी ही, सांसारिक भोग-पदार्थों को पाकर सोने पर सुहागा बन गई थी। अपनी ऐसी स्थिति का यतीन, जब कभी अनूप के घरेलू झगड़े में मध्यस्थ बनता, तो वह अपने प्रयत्न में तो सफल होता ही। साथ में, यदा-कदा मालती से इतना कहना भी न भूल पाता कि भूलें दोनों ने कीं! अनूप के परिवारवालों के समान, तुम्हारे पिता ने भी की। वह कहता: "हाँ, भाभी! मैं इतना जानता हूँ कि भैया अनूप को विवाह करते समय अपनी स्थिति को भी देख लेना था। यह तो मैं आज भी मानता हूँ कि विवाह पीछे है,—जीवन की शान्ति पहले! इस प्रकार तुम सरीखी जीवन के आनन्द की लिप्सित, आकांक्षाओं से पूरित युवती से उन्हें विवाह नहीं करना था। मैं भी देखता

१९५४

हूँ कि आज का युग रंगीनियों का युग है। सजा हुआ संसार है। भोग्य पदार्थों से ही, विश्व का बाजार लगा है। जब मनुष्य अपनी इच्छाओं का सृजन करता है, तो नारी भी कुछ माँगती है...जेवर, कपड़ा और जीवन का सुख... सौन्दर्य प्रसाधन..."

निःसन्देह ऐसे समय वह यतीन जैसे मालती के मन की बात कहता। वह जैसे एकान्त रूप से मालती के अन्तर की दबी हुई आग को कुरेदता और उसे सुलगा कर, उस नारी को छटपटाती पाता। ऐसे क्षणों में, निश्चय ही, मालती के मन का परमेश्वर चीख उठता। वह हाहाकार कर बैठता और उस सम्पन्न यतीन को सुनाकर कह देना चाहता: "आओ, यतीनबाबू! हम चलें। दूर चलें। कहीं भी जाकर इस जीवन में डूब जाएँ ...हम एक दूसरे में लय हो जाएँ!"

किन्तु यह भी उस मालती की एक बड़ी विवशता थी कि वह अपने मन के अन्दर उठती हुई उन आकाँक्षाओं को पाकर, स्वयं भी सिहर जाती! काँप जाती! मौन बन जाती। वह देखती कि यतीन खिलाड़ी है। जीवन की दौड़ में विश्वास रखता है। अत एव, वह उससे दूर रहने का प्रयत्न करती। वह नहीं जानती कि उसकी उस दुर्बल भावना का कारण उसका जातिगत स्वभाव था, अथवा माता-पिता के संस्कारों की देन; कि वह उस सम्पन्न यतीन को अनुपम देखकर भी, भयंकर पाती... काला, भोंडा और क्रूर पाती...

यतीन कहता: "भाभी, जीवन भी अजीब है! एक समस्या है! जैसे एक खेल! एक श्रृंगार!"

मालती मानो कहीं दूर जाती हुई अनायास कह देती: "हाँ, एक खेल, श्रृंगार!"

यतीन फिर कहता: "ए भाभी! मानव के जीवन तो आते और जाते हैं। पर ऐसे कितने हैं कि जो जीवन को समझते और पाते हैं।"

अपने मन की उस अवस्था में डूबी-की-डूबी मालती फिर कह देती: "हाँ, ऐसे कितने हैं कि जो जीवन पाते हैं!"

"यह अनूप भैया संस्कृत के पण्डित हैं! धर्म-कर्म और पूजा-पाठ को मानते हैं। भला यह जीवन को समझे हैं? नहीं! और हमारे देश में ऐसे कितने व्यक्ति हैं कि जो जीवन की दौड़ में आगे बढ़ पाए हैं। दौड़ता यूरोप है, अमेरिका है, रूस है; वहाँ का समाज आगे जाता है! वहाँ की नारियाँ, वहाँ के पुरुष सभी तो अपने कर्म पहचानते हैं। वे जीवन की पूजा करते हैं। जीवन का श्रृंगार करते हैं। यहाँ न दीखनेवाले भगवान को मानते हैं। पत्थरों पर सिर रखते हैं।"

एक बार जब यही बात चली, तो मालती ने अपने मन में उठी बात को लेकर कहा: "पर तुम्हारे भैया तो नारी को चौके-चूल्हे की वस्तु मानते हैं। वह तो कहते हैं कि नारी सजे नहीं! नारी अपनी मर्यादा से बाहर न निकले!"

यतीन ने कहा: "यही मूर्खता की बात है! प्रलाप है! अपनी अकर्मण्यता और मूर्खता का सबूत है। पैसा नहीं, साधन नहीं; तो नारी के लिए ऐसा ही उपदेश सूझता है!'

ऐसे समय, जैसे नितान्त आतुर और उद्विग्न बन कर मालती कहती: "मेरे पिता मेरा गला घोंट देते, तो ठीक था! यों आज की तरह घुट-घुट कर मरना तो न दीखता...सच, यतीनबाबू, मुझे यह घर, यह पति नहीं शोभता! मेरे मन को नहीं रुचता!"

किन्तु मालती को ऐसी स्थिति में छोड़ कर, यतीन तो चला गया। वह उसके मानस में आग लगा कर दूर जा खड़ा होता। अनूप समझता था कि यतीन उसका सहायक है, मित्र है; परन्तु वह तो उसी के घर को फूँक कर तमाशा देखने वाला बन गया था!

एक बार पिकनिक के लिए यतीन जब गया, तो पत्नी सहित अनूप को भी ले गया। नगर से दूर एक पहाड़ी स्थान पर वे सब जाकर रुके, वहीं पर दरिया था। खान-पान भी वहीं पर होने वाला था। यतीन की पत्नी एक अल्हड़ तथा मादक कली के समान उस पर्वतीय स्थान में अधिक मनोविनोद करने के लिए प्रस्तुत थी। वह सुन्दर वस्त्र तथा अलंकारों से भी उस दिन विशेष रूप से सजी हुई थी। वह बार बार मालती को हँसाने का प्रयत्न करती और स्वयं भी हँसना गाना चाहती। हरे-हरे पेड़ों पर जो तरह-तरह के रंग-बिरंगे पक्षी बैठे हुए थे, वह उनको देख, मालती से कहती, "अहा! मैं भी एक चिड़िया बनती, ...मैं भी अपने चिड़े के साथ..."

उस समय मालती, दूर बैठे हुए अनूप को देख, जैसे जल-भुनकर राख बन गई। वह कुछ बोल नहीं पायी।

तभी हँसते हुए यतीन ने अनूप को आवाज दी:

"महाशयजी, उस पथरीली चट्टान पर बैठ कर, क्या तपस्या करने लगे ? यहाँ आओ ! यहाँ सुनो, चिड़ियाँ और चिड़ों की बातें ..."

किन्तु अनूप ने दूर बैठे हुए ही कह दिया : "मैं बैठा हूँ। मैं पर्वत की ओर देख रहा हूँ। दरिया का उमड़ता हुआ प्रवाह !"

तभी यतीन ने मालती की ओर देख कर कहा : "जो व्यक्ति नारी के यौवन का प्रवाह नहीं देखता, वह दरिया का प्रवाह देखता है,--मूर्ख !"

उसी समय, जैसे चिढ़कर, मानों शोख बनकर, यतीन की पत्नी प्रमदा ने कहा : "क्या कहते हो ! कुछ ही मुँह से निकाल बैठते हो !"

किन्तु यतीन ने मानों अपनी बात पर अड़ कर कहा : "हाँ, हाँ, ठीक कहता हूँ। जीवन पाया है, तो इसे भोगना चाहिए ! जीवन का तीव्र और गहरा प्रवाह भी दृष्टि से ओझल नहीं करना चाहि !"

प्रमदा बोली : "अनूपजी, कर्म-काण्डी ब्राह्मण हैं। सात्विक हैं।"

"तो दुनिया में ऐसे सात्विकों के लिए स्थान कहाँ है !" यतीन ने पूर्ववत् मालती को लक्ष करते हुए कहा : "यह संसार तो चतुर-चितेरों की भूमि है !" तदन्तर ही उसने कहा : "अच्छा, यह प्रसंग रोचक नहीं ! मालती भाभी के लिए शुभ भी नहीं। आओ, उठो, उधर चलें। ऊपर चढ़ें।"

सुन कर, प्रमदा ने मालती की ओर देखा। उठने के लिए कहा।

किन्तु मालती बोली : "तुम जाओ। मुझे छोड़ जाओ !"

यतीन बोला : "हाँ, इन्हें नहीं। हम जाएँगे, तभी तो अनूपबाबू उठ कर यहाँ आएँगे।" और वह ही-ही कर, ठहाका मार कर हँस दिया।

देख कर, प्रमदा भी हँसी। वह उठ कर चली। यतीन के साथ पर्वत के ऊपर चढ़ चली। वह हँसती, दौड़ती। जब यतीन उसे पकड़ता, तो जोर से किलकिलाती ! आश्चर्य नहीं था कि यह सब मालती देख रही थी। हँसना और मुक्त-भाव से दौड़ना वह भी चाहती थी। किन्तु हाय ! वह कितनी विवश थी ! कितनी दयनीय ! यतीन और उसकी पत्नी को सुखी और समर्थ पा, उसकी छाती के नीचे टीस उठ रही थी। लगता कि उन दो संगियों के समक्ष उसकी जीवन-नैया झँझरी और
थी। निरुद्देश्य ! निराभिमान ! उपहास्यास्पद ! उसी
उसने देखा कि एक चट्टान पर चढ़ाते हुए यतीन
प्रमदा को ऊपर उठाया और स्नेहभरी दृष्टि से देखते
साथ, उसके गुलाबी गालों को थपथपा दिया।
की बात कि उसी समय उन दोनों ने नीचे बैठी
मालती की ओर देखा, तो उसने तुरन्त अपना
फेर लिया। मानों उसने कुछ नहीं देखा। कुछ
समझा।

उसी समय अनूप मालती के पास आया
बोला : "मालती, तुम बैठी हो ! खेल नहीं रही हो !
क्यों नहीं ऊपर जाती हो !"

इतना सुन, मालती ने नितान्त क्षुब्ध भाव
अनूप की ओर देखा। कुछ कहना चाहा।

किन्तु अनूप ने फिर कहा : "नगर से आए हैं,
खेलना चाहिए, घूमना चाहिए। तुम्हें स्वस्थ मन
इस वन की बहार लेनी चाहिए, मालती !"

उसी समय मालती की वे क्षुब्ध और
आँखें गालों पर बह आईं। वह झटके के साथ घुटनों
अपना मुँह रख फफक कर रो पड़ी।

यह देख, अनूप सहम गया। वह कातर
दयनीय भी बन गया। तुरन्त मालती के सिर पर
रखकर बोला : "मालती बताओ, क्या है, तुम्हारे
में ! प्रकृति के इस विराट रूप को देख कर तुम्हें
आता है। पगली, हँसना चाहिए ! बताओ मेरी
बात से तुम्हें कष्ट हुआ। तुम मानों, आज भी
सुनो मेरी बात, मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारे प्रति समर्पित
मालती ! रुपया तो मेरे पास है नहीं। भोग्य-पदार्थों
साधन भी नहीं। किन्तु इतना मैं तुम्हें बताता हूँ कि
जीवन की साध तुम हो। तपस्या तुम ! और आज
बताओ कि क्या देखती हो ! क्या यतीन ? उसकी
उनका ऐश्वर्य ? अरी, मालती ! भला इसका भी
अन्त है। इस पर्वत के पार ही एक रियासत का
रहता है। उसकी रानी बड़ी रूपवती है। वह राज्य
महान् महल की अधिष्ठात्री है। हीरे जवाहरातों की
लेकिन वह भी अपने से सन्तुष्ट नहीं ? उसके मन में
नहीं। इसी प्रकार तुम भी ऊपर ही देखती हो।
देखो। दलित और हीन मानव की ओर भी
देखो, मालती देवी ! वहाँ दारुण कथा है, करुणा

१९५४

भूख है, पीड़ा है—जीवन का क्लेश है ! ऐसे मानव की विश्व में अधिक संख्या है ! अमीरों की नहीं !"

उसी समय मालती ने अपनी आँखें पोंछ लीं। एक साँस भरी और छोड़ दी। वह सामने बहते हुए दरिया की ओर देखने लगी।

अनूप ने कहा —"इस दरिया की धार देखो। समझो तो, इसकी अनुपमता और महानता की बूँद बूँद से एकत्र पानी दरिया बन गया है। यह नवीन उत्साह तथा उमंग लिए हुए हम प्राणियों के लिए जीवन-उजागर बना हुआ आगे बढ़ रहा है। यह जीवन देता है। प्यासों की प्यास बुझाता है। हाँ, मालती, तुम भी ऐसी ही एक विमल धारा बनो। तुम नारी हो ! देखने में तुम्हारा छोटा-सा एकाकी जीवन है, परन्तु इसमें कितनी महानता है, कितना यश सन्निहित है, इसे भला तुम अभी कहाँ समझी हो। न, तुम नहीं देख सकीं कि दरिया तुम भी हो—गंगा, यमुना और गोदावरी ! तुम पवित्र हो। तुम महान् ! तुम अपने इस पति के जीवन को भी निखार सकती हो ! तुम सर्वत्र ममता और प्रेम का दरिया बहा सकती हो ! जीवन तो आता और जाता है। परन्तु जिस जीवन में मानवता का अनुष्ठान किया जाता है, वही जीवन बड़ा है। वही सार्थक !"

उसी समय, हँसते-कूदते हुए यतीन और उसकी पत्नी दोनों वहाँ आ गए। आते ही, यतीन ने मालती को मौन बैठी पाया, तो बोला : "दिखता है, महाराज जी का उपदेश हो रहा है। बेचारा श्रोता सुन रहा है।"

अनूप बोला : "मैं उपदेश देता नहीं, जाता हूँ, मैं घमण्डी नहीं। मुझ में दम्भ और बड़प्पन नहीं।"

प्रमदा ने मालती से कहा—"सच, ऊपर बड़ा अच्छा है। मन लगता है, दृष्टि की सीमा तक हरा-ही हरा दिखाई पड़ता है।"

अनूप खड़ा हो गया और बोला—"आओ, मालती हम भी चलें। ये दोनों घूम आए, अब ये यहाँ बैठें। सामान की रखवाली करें।"

किन्तु मालती मौन ! मानो एकान्त !

अनूप ने उसका हाथ पकड़ कर कहा : "उठो ! सच, चलो।"

मालती ने आकुल स्वर में कहा : "मैं क्या करूँगी, तुम जाओ।"

परन्तु अनूप अड़ गया। बोला : "नहीं, चलो।"

उस समय यतीन और उसकी पत्नी ने भी साथ दिया और कहा : "हाँ, हाँ, जाओ। आई हो तो सब कुछ देखती भी जाओ।"

निदान, मालती खड़ी हो गई। वह हंस पड़ी। तभी यतीन बोला : "देखो, इसे कहते हैं जादू ! हम आए, तो भाभी हँस पड़ीं। हम गए, तो मौन बन गईं, उदास।"

मालती ने अपनी आँखों में विद्रूप लेकर कहा : "बस, बस ! देख ली तुम्हारी बहादुरी। क्यों प्रमदा।"

प्रमदा बोली : "मैं भी मानती हूँ।"

यतीन बोला : "हाँ, हाँ, चोर-चोर मौसेरे भाई।"

और अनूप मालती को साथ लेकर पर्वत के ऊपर चढ़ गया। वहाँ जा कर उसने मालती को हँसाया और अपेक्षाकृत प्रसन्न भी बना दिया। उसी अवस्था में मालती ने कहा : "सच, तुम निर्दयी हो,—मेरे लिए कठोर।"

अनूप ने बात सुनी और ज़ोर का ठहका मार दिया। वह आगे बढ़ कर एक पेड़ के नीचे खड़ा होता हुआ बोला : "इस संसार में भ्रम है, जीवन में भ्रम है, यह तुम्हें अभी तक नहीं मालूम, मालती देवी।"

मालती एक पेड़ के नीचे पहुँच कर थक, बैठती हुई अनूप के कोटों का सहारा लेकर बोली : "इस जीवन में क्या है, मैं नहीं जानती। मैं तुम्हें छोड़ कर और कुछ जानना भी पसन्द नहीं करती।"

अनूप ने मालती का हाथ सहलाया और कहा : "तुम मेरे मन की रानी।"

मालती हँस दी और तनिक देर के लिए अपनी आँखें बन्द कर अनूप की छाती से लग गई।

वह पार्टी उस दिन अधिक आनन्द भरी बन कर रात गए, नगर लौटी, अपने-अपने घर।

× × ×

किन्तु मालती के लिए एक दिन तो था नहीं,—जैसे एक जीवन नहीं। हर्ष और शोक, मान और अपमान मानों उसके जीवन के साथी बन गए थे। असन्तोष उसके रोम रोम में भर गया था। एक दिन की बात कि जब वह कई दिनों की इच्छा लिए असन्तोष से भरी, रात के प्रहर में यतीन के घर पहुँची, तो अवसर की बात थी कि यतीन और उसकी पत्नी जिस कमरे में थे, उनके ज़ोर-ज़ोर के शब्द सुन, मालती बाहर ही रुक गई। यतीन अपनी पत्नी को फटकार रहा था। शायद मार भी चुका

था। वह क्रोध से भरा हुआ चीख रहा था : "मैं अनूप नहीं हूँ कि जो अपनी पत्नी के मिजाज नहीं पा सका। सदा खुशामद करता है, उस पर प्राण उँडेलता है और तब भी वह औरत उस पर थूकना भी नहीं चाहती। वह ऐश्वर्य चाहती है,- भोग। मैं ऐसी नारी को वेश्या मानता हूँ—कुलटा।"

उसी समय, प्रमदा ने चीख कर कहा : "और तुम्हीं उसके पास जाते हो......मित्र की पत्नी को ठगना चाहते हो। तुम्हीं उस घर में आग लगाते हो।"

"चुप, चुड़ैल। मैं उस पर थूकना भी नहीं चाहता। लोग बाजार की चोट खाते हैं और झूठा पत्ता वहीं नाली में फेंक आते हैं। पर मैं ऐसी भी इच्छा नहीं रखता" यतीन चिल्लाया।

मालती उल्टे पैरों लौट पड़ी। वह तेज़ चल रही थी। चारों ओर प्रकाश था, परन्तु उसकी दृष्टि अन्धकार में घूम गई थी। उसकी छाती धड़क रही थी। साँस तेज़ चल रही थी। वह कहना नहीं चाहती, परन्तु उसके मन में बात थी कि स्वयं यतीन ने उसे इस बात के लिए प्रस्तुत किया कि यहाँ से चलें, दूर चलें, जीवन में डूबने के लिए कहीं भी चलें। और मालती उसके लिए तैयार हो, अपने घर से निकल आई थी।

किन्तु जब वह घर पहुँची, तो अनूप आ गया था वह प्रतीक्षा में बैठा था। देखते ही बोला : "लो, वेतन के रुपए रखो, मालती ! और मुझे भोजन दो।"

परन्तु कटी डाल की तरह, मालती उसकी गोद में गिर कर चीख पड़ी—"रक्षा करो, मेरे नाथ !"

अनूप ने उसके सुन्दर बालों पर हाथ फेरा और कहा : "आज भी परेशान हो,—खिन्न हो न। प्रसन्न हो, मालती ! सुन कर तुम प्रसन्न होगी, कि मुझे दूसरे नगर में प्रोफेसर का स्थान मिल गया। अब हमारी आर्थिक स्थिति अच्छी हो जायगी...तुम्हारी कुछ आर्थिक इच्छा पूरी हो सकेगी......।"

१२०, पार्लियामेंट हाऊस,
नई दिल्ली

—श्रीराम शर्मा 'राम'

जापानी भाषा

जापानी भाषा को सीखने में न केवल विदेशियों को कठिनाई होती है अपि तु इसे सीखने में जापानी बच्चों को भी कई वर्षों तक कठोर परिश्रम करना पड़ता है। जापान में या तो लोग सर्वथा शुद्ध रीति से बोलते हैं या फिर बोलते ही नहीं हैं। जापानी भाषा में हजारों वर्ण हैं परन्तु ४० या ५० ध्वनियाँ हैं। जरा-से ध्वनि-परिवर्तन से अर्थ कुछ-के-कुछ हो जाते हैं। कागज़ पर लिखने में भी कठिनाई होती है। किसी वर्ण को ठीक तरह पढ़ने के लिए प्रकरण से सहायता लेनी पड़ती है। लिखावट और मुहावरों का समझना कठिन होता है, वाक्य एक पहेली होते हैं। जापान में लैटिन वर्णमाला जिसे जापान में "रोमाज़ी" (रोमन लिपि) कहा जाता है पसन्द नहीं किया जाता......।

—मैल्विन जे. जैस्की

'एनकाउंटर' से

कला—चर्चा

हैदराबाद के चित्रकार

विद्याभूषण : उनकी कला

सन् १९४९ की बात है जब कि हैदराबाद में ऑल इन्डिया फाइन आर्टस् ऍन्ड क्राफ्टस् सोसाइटी की ओर से हैदराबाद में एक अखिल भारतीय चित्र-कला प्रदर्शिनी का आयोजन किया जा रहा था, यहाँ के कुछ स्थानीय चित्रकारों से भेंट हुई और उनमें से कुछ के चित्रों को हमने अपनी प्रदर्शिनी में प्रदर्शित किया। श्री भूषण के चित्रों को देख कर हमें इच्छा हुई कि उनके और भी चित्रों को देखें। अतः मैं और मेरे साथी चित्रकार श्री बद्री जो मेरे साथ देहली से आए थे भूषणजी के मकान पर गए। पहले तो वह अपने काम को दिखाने के लिए हिचकिचाते रहे। जब हमने देखा कि, उनके चित्र काफ़ी सुंदर और आकर्षक हैं हमने काबुल में होने वाली भारतीय प्रदर्शिनी के लिए उनके चार चित्रों को चुन लिया। कठिन परिस्थितियों का सामना उन्हें बचपन से ही करना पड़ा। इसके बावजूद भी अपनी कला में उन्होंने जो प्रगति की वह कोई साधारण बात नहीं है।

भूषण का जन्म उदगीर में एक किसान के घर मे सन् १९२२ में हुआ। माता-पिता के एकमात्र पुत्र होने के कारण इन्हें माँ-बाप का लाड़-प्यार मिला। किन्तु जब कि इनकी आयु १७ वर्ष की थी इनके पिता की मृत्यु हो गई। घर का सारा बोझ इनकी माँ ने संभाला और जिसके कारण यह चित्र-कला की साधना के लिए बिना किसी आर्थिक सहायता के गुलबर्गा चले गए। नूतन विद्यालय में कला भवन के मुख्याध्यापक श्री एस. एन. आलंदकर थे। वहाँ इन्हें प्रवेश प्राप्त हो गया। आर्थिक स्थिति इतनी ख़राब थी कि इन्हें कई बार बिना भोजन के दिन काटने पड़ते थे। जो लोग इनकी स्थिति से परिचित थे वे कुछ इनकी सहायता करते थे और इसी सहायता के आधार पर वे अपने चित्रों के कार्य को करते रहे। १९३८ में यह उदगीर में आर्य समाज में भाग लिया करते थे। उस समय उदगीर आर्य समाज समस्त स्टेट भर में आर्य समाज की प्रवृत्तियों का केन्द्र था। उस समय के अधिकारी वर्ग की नज़रों में भूषण जी खटकते थे। अचानक दशहरे के त्यौहार के दिन दंगा हुआ जिसमें भूषण जी को क़त्ल के अपराध में पकड़ लिया गया और जेल में ठूँस दिया गया। इन पर मुक़दमा भी चलाया गया और सौभाग्य से दस मास के पश्चात् जेल से रिहा कर दिया गया। यह वह समय था जब कि स्टेट में राजकीय 'आन्दोलन' ज़ोरों पर था।

फिर जेल से बाहर निकल कर उन्होंने सर जे. जे. स्कूल की परीक्षा की तैयारी ख़ानगी तौर से आरंभ की। इसी बीच में हैदराबाद में केशव मेमोरियल हाई स्कूल की स्थापना हुई और वे इस स्कूल में ड्राइंग टीचर की हैसियत से काम करने लगे। इनकी चित्रकला का प्रभाव बहुत जल्द लोगों पर हुआ और इन्हें प्रोत्साहन मिलता रहा। श्री पं० विनायकराव जी विद्यालंकार (वित्त-मन्त्री) इनकी बहुत आर्थिक सहायता करते रहे और ये इसी आधार पर अपनी परीक्षाएँ पास करते रहे।

सन् १९४१ में अखिल भारतीय चित्र-कला प्रदर्शिनी में इनको अपनी ही दो प्रति कृतियों (Self-portraits) पर सुवर्ण पदक मिला और हैदराबाद के कला-प्रेमियों तथा सरकारी अधिकारियों का ध्यान इनके प्रति आकृष्ट हुआ। इसी समय श्री एल. एन. गुप्त तथा श्री नवाब मेहदी नवाज़ जंग, जो आर्ट सोसायटी के संचालक भी थे भूषण जी की चित्र-कला की प्रतिभा को देख कर प्रसन्न हुए और इनकी आर्थिक सहायता की।

श्री एल. एन. गुप्तजी ने आर्थिक सहायता का पूर्ण प्रबन्ध कर इन्हें बम्बई स्कूल ऑफ़ आर्टस् में अंतिम परीक्षा पास करने के लिए भेज दिया। बम्बई में एक ही वर्ष में अपनी मेहनत और प्रतिभा से वे सर्व-प्रथम आए जिससे वहाँ के अध्यापकों को आश्चर्य हुआ। फिर हैदराबाद आकर अपने भाग्य की परीक्षा करते रहे। इनकी आर्थिक कठिनाई दिनोंदिन बढ़ती रही। इनके चित्रों को देख कर लोग आकृष्ट होते रहे और थोड़ा-थोड़ा इन्हें काम भी मिलने लगा। १९४५ तक इन्हें एक बार भोजन मिलने में भी कठिनाई होती थी। परन्तु यह

सहनशील कलाकार अपने पथ से कभी नहीं डगमगाए न इन्होंने कोई नौकरी क़बूल की। यह चाहते थे कि स्वतन्त्र रूप से केवल कला की सेवा करते रहें और इन्होंने वैसा ही किया। १९४६ से इनकी भाग्यरेखा बदलने लगी। कुछ बड़े काम मिले और हैदराबाद में इनकी ख्याति बढ़ने लगी। इन्हें देहली के हैदराबाद हाउस में चित्र बनाने के लिए १० हज़ार रुपए का काम मिला और इनके भाग्योदय के दिन आरंभ हुए। उच्च कला प्रेमियों की सहायता से इन्हें हैदराबाद स्कूल ऑफ़ आर्ट में कला की सेवा करने का अवसर मिला और अब वे हेड ऑफ़ दि पेन्टिंग डिपार्टमेंट की हैसियत से स्कूल में काम करते हुए भी अपने चित्रों के बनाने में लगे रहते हैं।

कुछ भूषण की कला के विषय में। गान्धी जी, सरदार पटेल, प्रधान मंत्री नेहरू, स्वर्गीय शारदाचरण उकील, वरदा उकील, सर सी. वी. रमण की (Portraits) प्रतिकृतियों से बहुत-से लोगों की यह धारणा हो सकती है कि भूषण मुख्यतया प्रतिकृतियों के चित्रकार हैं। उपर्युक्त और भूषण के द्वारा बनाई हुई बहुत-सी प्रतिकृतियाँ शाह-मंज़िल, उस्मानिया यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी, हैदराबाद हाई कोर्ट, शारदा उकील स्कूल आफ़ आर्ट, नई दिल्ली और अन्य बहुत-से स्थानों में लगे हुए हैं। भूषण भारतवर्ष के कुछ उन थोड़े-से भारतीय कलाकारों में से हैं जो तैल रंगों का विश्वास के साथ अत्यन्त सुगमता से उपयोग करते हैं और सामने बैठा कर सम्पूर्ण मुखाकृति को वे १½ घंटे में ख़ाली कैन्वस पर "बोलती प्रतिमा के रूप में" बना सकते हैं। भूषण के इन रंगचित्रों में विश्वास और साहस का विशेषतया अनुभव होता है। उनके चित्रों में रंगों की ताज़गी और प्रभावात्मक आलेख्य की सुन्दरता है परन्तु भूषण की कला का यह एक पहलू है।

नई दिल्ली के निज़ाम पैलेस में जो भूषण के चित्रों को देखेगा वह समझ सकता है कि वे एकमात्र प्रतिकृति के ही चित्रकार नहीं हैं। कुछ वर्ष पूर्व उन्होंने नि महल के लिए जो बड़े भित्तिचित्र तैयार किए थे विषय में उच्च हैं, रंगों में उज्ज्वल हैं और बना कलापूर्ण हैं। उनके अन्य चित्रों में ये सब विशेषताएँ जो कि "स्नान करनेवाली राजकुमारी" में स्प अभिलक्षित होती हैं।

हमारे देश में सामाजिक, राजनैतिक और स्व न्त्रता के आन्दोलनों का भूषण के हृदय पर गहरा प्र पड़ा है। उनके जीवन में एक ऐसा समय आया जब न तो हरी-भरी प्रकृति और न मनुष्य जीवन उन्हें चि बनाने के लिए प्रेरणा प्रदान कर सके। इस उन्होंने बापू के जीवन को अपनी तूलिका के द्वारा चित्रि किया। उनमें से एक चित्र "बापू और बा" श्री ए एन. गुप्त के घर में है और दूसरा जलरंगों में बना हुआ "बापू" का चित्र है जो कि हैदराबाद में सोवि शिष्ट मण्डल को भेंट में दिया गया था। इस तरह बापू के जीवन के चित्र और कुछ "खिड़की के पास" चित्र हैदराबाद की आर्ट गैलरी में हैं। उनसे भूषण के जलरंगों के प्रयोग की दक्षता का पता चलता है।

भूषण ने हैदराबाद में नानल नगर के कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर और १९५४ की अखि भारतीय औद्योगिक प्रदर्शनी के इन्फ़र्मेशन पैविलियन कुछ अस्थायी भित्तिचित्र बनाए थे जो बहुत सुन्दर और जो लोगों के सामने हमेशा रहेंगे।

भूषण के चित्रों में विषयों की विविधता है। चित्र कला में तरह तरह के परीक्षण करते रहते हैं। वे कैन्वस पर प्रतिकृति, कभी प्राकृतिक दृश्य और राजनैतिक और सामाजिक प्रश्नों पर अपने चित्रों में वि करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। भूषण में परीक्षण की स्वाभाविक प्रतिभा, विश्वास और दृष्टि है जो कि चित्रक में एक नवीनता को उत्पन्न करेगी।

हैदराबाद

—विश्वनाथ मुक

...दादी माँ मोजेज़ ने ७६ वर्ष की आयु में रंग-चित्रण को गंभीरतापूर्वक प्रारम्भ किया। उनके चित्र १५० डालर से ३००० डालर तक बिकते हैं। अच्छे आलोचक उनकी प्रशंसा करते हैं। वे कहती हैं: "मैं प्राचीन वस्तुओं को चित्रित करती हूँ।...उनमें से बहुत-से तो दिन के स्वप्न से प्रतीत होते हैं।..."

—टाइम से

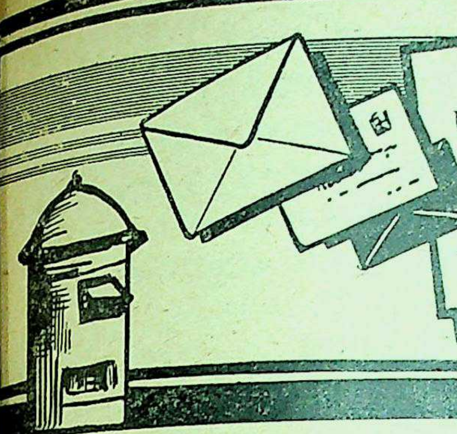

चिट्ठी-पत्री

['चिट्ठी-पत्री' के स्तम्भ को हम अधिक लोकप्रिय बनाना चाहते हैं। साहित्य की गतिविधि और अन्य समस्याओं पर हम 'अजन्ता' के पाठकों के विचारों को जानना चाहते हैं। इस स्तम्भ में वे अपने विचार प्रकाशित करने के लिए भेज सकते हैं। इस स्तम्भ द्वारा लेखकों और पाठकों के बीच में निकट सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस स्तम्भ में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ पत्रों पर विशेष पारिश्रमिक की योजना की गई है। पत्र संक्षिप्त और निर्वैयक्तिक होने चाहिएँ। पत्र अधिक से अधिक 'अजन्ता' के दो कॉलम होने चाहिएँ—सं०]

(१)

हिन्दी भवन

......आपको यह सुनकर हर्ष होगा कि दिल्ली में 'हिन्दी भवन' का कार्य आरंभ हो गया है। पहली अक्टूबर १६५३ से दो कमरे कनॉट सर्कल पर ले लिए गए हैं, यद्यपि उनका किराया बहुत ज़्यादा है यानी १८१) एक सौ इक्यासी रुपए महीने। कार्य-संचालन के लिए कुछ चन्दा भी इकट्ठा कर लिया गया है और सरकार से सहायतार्थ प्रार्थना भी की गई है।

प्रारम्भ में हमारे शुभ-चिन्तकों को भी इस बात की आशङ्का थी कि यह यज्ञ पूरा नहीं होगा और काम बीच में ही छोड़ देना पड़ेगा। सौभाग्य से काम चल निकला और अब यह आशा की जा सकती है कि वह निरन्तर जारी रहेगा।

इस सफलता का मुख्य श्रेय उन विभूतियों को है, जिन्होंने दिल्ली में हिन्दी के लिए क्षेत्र तैयार किया था। स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा विजय सम्पादक स्व० श्री हरिश्चन्द्र जी ने जिस कार्य का श्रीगणेश किया और जिसे आगे चल कर पंडित इन्द्र जी ने बीस-पच्चीस वर्ष तक बड़ी योग्यता से जारी रखा, दिल्ली का हिन्दी भवन उन्हीं के आशीर्वाद का फल है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हम लोग अपने पूर्वजों को भूलते जा रहे हैं। बहुत कम लोगों को इस बात का पता होगा कि सम्पादकाचार्य बाबू बालमुकुंद जी गुप्त के अंतिम दिन इसी नगरी में बीते थे और यहीं उनका स्वर्गवास हुआ था। अभी उस दिन हिन्दी भवन की एक मीटिंग में एक श्रोता ने भाई सत्यदेव जी विद्यालङ्कार से कहा : "सबसे पहले यहाँ स्वामी श्रद्धानन्द जी के चित्र का उद्घाटन होना चाहिए था।" श्री सत्यदेव जी को यह परामर्श अत्यन्त सामयिक लगा और तत्पश्चात् मैंने इस बारे में कई महानुभावों से प्रार्थना भी की है कि वे स्वामी जी के एक तैल चित्र का प्रबन्ध कर दें, पर आर्थिक असुविधा के कारण यह पुण्य-कार्य रुका पड़ा है!

चन्दा करना कितना मुश्किल काम है, इसका अनुभव मुझे अपनी ज़िन्दगी में पहले पहल ही हो रहा है। हिन्दी भवन की सदस्यता का वार्षिक शुल्क दस रुपए है, पर अभी तक बीस बाईस सदस्य ही हम लोग बना सके हैं! विशेष दान से एक अच्छी रक़म हमें प्राप्त हो गई जिससे छः महीने का किराया दिया जा सका और थोड़ा-सा पैसा भी जमा हो गया, जिससे चार महीने काम चल सकता है। पिछले आठ महीने इसी चक्कर में बीते और इस समय भी यही चिन्ता है कि आगे कार्य को किस प्रकार चलाया जाय। सरकार से सहायतार्थ प्रार्थना की गई है। यदि सहायता मिल गई तब तो ठीक, नहीं तो कार्य कुछ कठिन अवश्य हो जाएगा।

इस बीच में एक प्रश्न बराबर हमारे दिमाग में

चक्कर काटता रहा है। हम हिन्दी वालों में मिशनरी भावना की कमी क्यों है? हम यह मानते हैं कि नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर और नागरी प्रचारिणी सभा आगरा जैसी प्रभावशाली संस्थाएँ कितने ही निःस्वार्थ हिन्दी सेवकों की साधना का परिणाम हैं। स्व० बाबू श्यामसुन्दरदास जी, स्व० डा० सरजू प्रसाद जी स्व० पं० रामनारायणलाल जी मिश्र प्रभृति की सेवाओं को कौन भूल सकता है? और हमारे सौभाग्य से श्रद्धेय टंडन जी तो हमारे बीच में विद्यमान हैं ही। मेरा निवेदन केवल इतना ही है कि इन महानुभावों की परम्परा को क़ायम रखने वालों की संख्या अधिक नहीं है।

दिल्ली भारत की राजधानी सन् १९१२ से है। इन ४२ वर्षों में हम लोग अपनी मातृभाषा के लिए एक मंदिर का निर्माण भी नहीं कर सके! साहित्यिक तथा सांस्कृतिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए हम लोग कहीं एकत्रित होना चाहें तो अपनी स्वतन्त्र कोई जगह नहीं। किराये की जगह का क्या ठीक ठिकाना है? यदि एक दो महीने का किराया जमा हो न सका तो सरकार का हुक्म मिल जाएगा कि कमरे खाली करो! यह बतला देना जरूरी है कि वे कमरे पी० डब्ल्यू० डी० के हैं और छः रुपये रोज पर वे मिले हुए हैं।

सुना है दिल्ली में कई करोड़पति हैं, बीसियों लखपति हैं और हिन्दी के प्रभावशाली नेताओं का शुभागमन तो यहाँ बराबर होता रहता है। कितने ही यहाँ महीनों रहते भी हैं। फिर क्या कारण है कि हम लोग अपना हिन्दी भवन अब तक नहीं बनवा सके?

इस प्रसंग में मुझे महात्मा गान्धी जी की एक बात याद आती है। सन् १९२१ में उन्होंने साबरमती आश्रम में कहा था:

"मुझे ऐसा दीखता है कि हिन्दी वालों में 'मिशनरी स्प्रिट की बहुत कमी है। मैं चाहता हूँ कि गुजरात भर में हिन्दी शिक्षक फैला दूँ पर हम लोग एक शिक्षक पर तीस रुपये महीने से ज्यादा खर्च नहीं कर सकते। मुझे हिन्दी शिक्षक मिलते नहीं। हाँ महाराष्ट्र में चाहे जितने योग्य से योग्य कार्यकर्ता मिल जाते हैं।"

ईमानदारी के साथ हमें यह बात मान लेनी चाहिए कि पारस्परिक सहयोग द्वारा किसी कार्य को कर ले जाने की भावना हमारे यहाँ बहुत प्रबल नहीं है। 'सम्भूय समुत्थान' शायद इसी भावना का प्राचीन नाम है।

पर हम निराशावादी नहीं है। हमारा विश्वास है कि हिन्दी जनता में श्रद्धा का अखण्ड भण्डार विद्य है, पर इस श्रद्धा को जाग्रत करने के लिए जिस मा की ज़रूरत है, वह हम लोगों में नहीं है। किसी दूसरे दोष न देकर स्वयं अपनी त्रुटियों की ओर ध्यान दे चाहिए।

दिल्ली के 'हिन्दी भवन' की चर्चा करते हुए महानुभाव का शुभ नाम लेना अत्यन्त आवश्यक है वे हैं हमारे श्रद्धेय राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद। उन्हीं की कृपा का फल है कि केन्द्रीय स्थल पर दो मिल गए, नहीं तो वहाँ कोई भी जगह मिलना सम्भव था। और वे हिन्दी भवन के विषय में समय समय पूछते भी रहे हैं। बहुत संभव है कि उनकी कृपा से चल कर हिन्दी भवन के लिए ज़मीन भी मिल जा अभी तक जिन महानुभावों से हमें आर्थिक सहायता हुई है उनमें से केवल कुछ के नाम यहाँ दिए जाते हैं:

श्री घनश्यामदास जी बिड़ला
श्री भगीरथ जी कानोड़िया
श्री सीताराम जी सेकसरिया
श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार (कल्याण, गोरखपुर)
राजपाल श्री चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह जी
राजपाल श्री श्रीप्रकाश जी
सस्ता साहित्य मंडल
आत्माराम एण्ड सन्स् } दिल्ली
राजपाल एण्ड सन्स्
श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह जी
श्री मूलचन्द्र जी अग्रवाल

अपने पत्रकार बन्धुओं से भी समय समय पर योग मिलता रहा है। एक बात का हमें अनुभव हो है वह यह कि हिन्दी भवन जैसी संस्था की आवश्यकता थी। उन दो कमरों के सदुपयोग के इतनी अधिक अर्जियाँ या आदेश आते हैं कि सभी सन्तुष्ट करना कठिन हो जाता है।

एक बात और। दिल्ली का हिन्दी भवन लिखित संस्थाओं का संघ है:

(१) कलाकार संसद
(२) शनिवार समाज
(३) हिन्दी पत्रकार संघ

१९५४

(४) चित्रकला संगम
(५) जनपदीय परिषद्
(६) रोम्याँ रोलाँ क्लब

अब तक कितनी ही उपयोगी मीटिङ्ग हिन्दी भवन में हो चुकी हैं। हिन्दी भवन का समारम्भ स्व० प्रेमचन्द जी के चित्रोद्घाटन से हुआ और तत्पश्चात् स्व० रामानन्द चट्टोपाध्याय का चित्रोद्घाटन श्रद्धेय टंडन जी द्वारा कराया गया। कितने ही गण्यमान्य अतिथियों का अभिनन्दन हिन्दी भवन में हुआ—यथा श्रद्धेय पराड़कर जी, कविवर सनेही जी, बन्धुवर केला जी, भाई हरिशङ्कर जी शर्मा और श्री केदारनाथ जी भट्ट। अमर शहीद गणेश शङ्कर जी विद्यार्थी का बलिदान दिवस मनाया गया और साहित्यिक मीटिङ्ग तो प्रायः हुआ करती हैं। शनिवार समाज प्रति पक्ष में एक बार अपनी मीटिङ्ग करता है और पत्रकार संघ अपना कार्य वहीं से संचालित करता है। अभी उस दिन डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी और भाषाशास्त्रविज्ञों के बीच वार्तालाप हिन्दी भवन में हुआ था। उसके पूर्व श्री मुल्कराज आनन्द का सम्भाषण हुआ था और टैगोर सोसाइटी के तत्त्वावधान में कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर अंग्रेज़ी में एक मनोहर भाषण प्रो० आर. के. दासगुप्त ने दिया था। एक दिन कविवर दिनकर जी ने अपने 'रश्मिरथी' नामक काव्य ग्रन्थ के कुछ अंश अपने तेजस्वी कंठ से सुनाए।

हिन्दी भवन की कार्य कारिणी में जितने भी व्यक्ति हैं वे प्रायः सब के सब बहुत वर्षों से मुझ पर कृपा करते रहे हैं। बन्धुवर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी, कविवर गोपालप्रसाद जी व्यास, राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह जी, यशपाल जी जैन, जगदीशप्रसाद जी चतुर्वेदी और चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार से अपना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और इन सबकी कृपापूर्ण सहायता से ही यह कार्य अग्रसर हुआ है।

पर सबसे अधिक भार पड़ा है पूज्य बहन सत्यवती जी मल्लिक पर और मुख्य जिम्मेदारी भी उन्हीं की रही है। बीस वर्षों से दिल्ली में उनका निवास स्थान ही सांस्कृतिक केन्द्र का काम दे रहा था और यह सर्वथा स्वाभाविक ही है कि हिन्दी भवन की प्रधान मंत्री वे ही हैं।

निस्सन्देह 'हिन्दी भवन' इस समय एक बहुत छोटी-सी चीज़ है—एक ऐसा कोमल पौधा है जो निरंतर देखभाल तथा सेवा का अधिकारी है और जो सहानुभूति के अभाव में कभी भी मुरझा कर सूख सकता है।

अभी हिन्दी भवन को अलमारियों की जरूरत है, कुर्सियों की और एक पुस्तकालय तथा वाचनालय की भी। अमरीका के सुप्रसिद्ध अहिंसावादी गैरीसन के पौत्र लायड गैरीसन की कृपा से एक हज़ार रुपए के अंग्रेज़ी ग्रंथ हिन्दी भवन को प्राप्त हो गए हैं। यह बतला देना जरूरी है कि गैरीसन ने ही सर्व प्रथम अहिंसा का प्रयोग सार्वजनिक कार्यों में किया था—टॉल्सटाय तथा महात्मा जी से बहुत पहले और टॉल्सटाय तथा गांधी जी दोनों ही उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। कुछ धार्मिक ग्रंथ श्री जुगल किशोर जी बिड़ला की कृपा से शीघ्र ही प्राप्त होनेवाले हैं।

इस प्रकार वह छोटा-सा पौधा, जिसका बीजारोपण उस दिन की मीटिङ्ग में हुआ था, अब पल्लवित होने लगा है। यदि उसे संरक्षण मिलता रहा तो कभी वह वटवृक्ष का रूप भी धारण कर सकता है।

आपके आशीर्वाद तथा सहयोग का आकांक्षी हूँ।

१२३, नार्थ एवेन्यू,
नई दिल्ली

—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

[इस विषय में हमें बहन श्रीमती सत्यवती जी मल्लिक का भी पत्र प्राप्त हुआ है। जो लोग हिन्दी को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं उन पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। दिल्ली में 'हिन्दी-भवन' जिन उदात्त भावनाओं को लेकर बनाया जा रहा है—उनसे हमें पूर्ण विश्वास है कि इस कार्य में पूर्ण सफलता निश्चित रूप से प्राप्त होगी। हिन्दी-भवन एक ऐसा प्लेटफार्म और स्थान होगा जहाँ कि भारतवर्ष की प्रत्येक भाषा के साहित्यकार एकत्रित होंगे और जहाँ विचारों के आदान-प्रदान से हमारे देश की समस्त भाषाओं और साहित्यकारों में पारस्परिक सद्भावना और सहयोग उत्पन्न हो सकेगा। वह उसी समय संभव हो सकेगा जब कि हिन्दी इन समस्त भाषाओं के प्रेम और विश्वास को प्राप्त कर सकेगी। पूज्य बन्धुवर श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के इस शुभ प्रयत्न को सफल बनाने में हमें कुछ उठा नहीं रखना चाहिए। हमें स्वयं इसमें सहायता करनी चाहिए और दूसरों से भी सहायता दिलवानी चाहिए। कम-से-कम हमें स्वयं 'हिन्दी-भवन' का सदस्य बनना चाहिए और जितने सदस्य हम 'हिन्दी-भवन' के बना सकें बनाने चाहिएँ।
—वंशीधर विद्यालङ्कार]

नीर-क्षीर

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिएँ।]

आँखों देखी कहानियाँ

लेखक : रामनरेश त्रिपाठी
प्रकाशक : हिन्दी मन्दिर, प्रयाग
मूल्य : एक रुपया आठ आना

प्रस्तुत पुस्तक में श्री रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी ११ कहानियों का संग्रह किया है। अपनी इन कहानियों के विषय में वे कहते हैं : "इस संग्रह में जो कहानियाँ दी गई हैं वे घटना रूप में सब सच्ची हैं। 'वफ़ाती चाचा' और 'भीखिन मँगवश्र्' कहानियों को छोड़ कर शेष सभी कहानियों के पात्र जीवित हैं।" इसमें सन्देह नहीं कि कहानियाँ जीवन की घटनाओं से ही बनती हैं परन्तु घटना और कहानी एक वस्तु नहीं है। घटनाओं को कई प्रकार से लिखा जा सकता है—उन्हें संस्मरणों के रूप में लिखा जा सकता है, घटना के रूप में भी लिखा जा सकता है जैसे कि इतिहास में घटनाओं को रिकार्ड किया जाता है और उन्हें कहानी के रूप में भी लिखा जा सकता है। कहानी में जैसी पूर्णता होती है घटना में वैसी नहीं होती। इन ११ कहानियों में पहली कहानी "प्रेम की पहली पीड़ा" है। इस कथा का शीर्षक यद्यपि "प्रेम की पहली पीड़ा है" परन्तु इसमें 'प्रेम के पन्थ का यह पहला कांटा था" और अन्त में "प्रेम के पन्थ का यह दूसरा काँटा था" द्वारा प्रेम की दो पीड़ाओं का प्रदर्शन किया है। "काँटा" विशेष कर "पन्थ का काँटा" पीड़ा की इतनी अभिव्यंजना नहीं करता जितनी कि रुकावट की। इसलिए यहाँ काँटा शब्द का प्रयोग ठीक नहीं प्रतीत होता। पहली कहानी को पढ़ने से यह अनुभव नहीं होता कि वह कोई "आँखों देखी घटना" है। यह कथा तो पढ़ने से गद्य-काव्य-सी प्रतीत होती है। शेष कई कहानियों में घटनाओं का उल्लेख कुछ एकांगी रूप में हुआ है कि वे एक घटना का उल्लेख संस्मरण जितना प्रतीत होती हैं उतना कहानी नहीं। इन कहानियों में एक छोटी-सी घटना का वर्णन किया गया है और उसे पढ़ते हुए यह अनुभव होता है कि लेखक किन्हीं घटनाओं का विवरण दे रहा है और इन से कई घटनाओं का वर्णन भी कहानी के आकर्षक रूप नहीं हो पाया है। सातवीं कहानी "भीखिन मँगवश्र्" पता नहीं "अ" को क्यों हलन्त करके लिखा गया है व्यंजन तो हलन्त होते हैं परन्तु स्वर हलन्त नहीं होते।

आर्य-संस्कृति के मूल तत्व

लेखक : सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार
प्रकाशक : विजय कृष्ण लखनपाल, विद्या-विहार
बलवीर एवेन्यू, देहरादून
मूल्य : चार रुपया

पुस्तक की भूमिका में लेखक लिखते हैं : "आर्य संस्कृति के विषय में बहिरंग दृष्टि से कई पुस्तकें लिखी हैं। यह संस्कृति कब और कहाँ उत्पन्न हुई और ऐतिहासिक दृष्टि से कहाँ कहाँ पहुँची – हमने इस पुस्तक में अन्तरंग दृष्टि से विचार किया है।" लेखक ने 'सभ्यता' और 'संस्कृति' में भेद किया है : 'सभ्यता' भौतिक है और 'संस्कृति' आध्यात्मिक है। सभ्यता शब्द को अंग्रेजी 'सिविलिज़ेशन' से लिया गया है और 'संस्कृति' 'कल्चर' से। इन क्षेत्रों में जो भेद उन्होंने किया है स्पष्ट नहीं है। क्या एक "पैसे वाला, बड़े मकान रहनेवाला, मोटर और पाँच दस नौकर वाला",

१९५४

इन वस्तुओं को रखते हुए भी "असभ्य" नहीं हो सकता। क्या जो वैज्ञानिक सुविधाएँ धन द्वारा प्राप्त हो जाती हैं उनकी उपलब्धि ही सभ्यता है? सभ्यता में 'Manners' शिष्ट-व्यवहार भी अन्तर्गत होता है और शिष्ट-व्यवहार में संयम, नम्रता, साधुशीलता आदि आवश्यक हैं। फिर जब हम इस विषय में 'अच्छी संस्कृति और बुरी संस्कृति" शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसका यह अर्थ हो जाता है कि "संस्कृति" एकमात्र "आध्यात्मिक" नहीं है। लेखक की सम्मति में—"भोग और त्याग का समन्वय, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का मेल......आर्य-संस्कृति का आधार भूत मौलिक विचार है।" इसका अर्थ यह हुआ कि "संस्कृति" में 'भौतिकवाद' मिला हुआ है इसलिए 'संस्कृति' एकमात्र "आध्यात्मिक" नहीं हो सकती। 'आर्य-संस्कृति के मूल तत्व' अध्याय में वे लिखते हैं: "...आर्य-संस्कृति भौतिकवाद का तिरस्कार नहीं करती। उसे विकास के मार्ग में अपना साधन समझती है।... इस संस्कृति के दृष्टिकोण में शरीर आत्मा की तरफ़ ले जाने का साधन है।" 'आत्म-तत्व' के विषय में जो उन्होंने लिखा है वह अधिकतर एक तो दार्शनिक है और दूसरा वह कुछ इस प्रकार की पारिभाषिकता लिए हुए है कि जो एक साधारण पाठक के लिए समझना कठिन है। "वर्ण-व्यवस्था का आध्यात्मिक आधार" अध्ययन में लेखक लिखता है: "वैश्य के जीवन को ही पेशे या व्यवसाय का जीवन कहा जा सकता है ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के जीवन को नहीं इसलिए वैश्य-प्रवृत्ति तथा श्रम-विभाग का सिद्धान्त एक ही वस्तु है।" श्रम का सम्बन्ध वैश्य ही क्यों समस्त वर्णों से है। शूद्र का सम्बन्ध तो मुख्यतया श्रम से ही है। क्या श्रम और व्यवसाय एक ही वस्तु हैं? प्रत्येक वर्ण अपनी प्रवृत्ति या कार्य को क्या अपना पेशा नहीं बना सकता? पेशा या व्यवसाय वह कार्य है जिसके द्वारा एक मनुष्य श्रम या कार्य करके अपनी आजीविका चलाता है। आजीविका का साधन ही पेशा या व्यवसाय है परन्तु धीरे धीरे यह पेशा ही मनुष्य की जाति या वर्ण बन जाता है। एक कवि ने लिखा है: "पेशा समझे थे जिसे बन गई वह ज़ात अपनी।" पुस्तक को लिखने में परिश्रम किया गया है और उससे आर्य-संस्कृति के तत्वों का दार्शनिक रूप से पता चलता है, लेखक का अपना ही दृष्टिकोण है। इस प्रकार की पुस्तकें यदि वैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक ढंग से लिखी जा सकें तो हमारी सम्मति में वे सम्भवतः अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकेंगी।

हैदराबाद दक्षिण **—वंशीधर विद्यालङ्कार**

गद्य-सोपान

सम्पादक : श्रीराम शर्मा
प्रकाशक : हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद द.
मूल्य : २ रुपए
पृष्ठ : २५०

हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान मंत्री श्री श्रीराम शर्मा ने "गद्य सोपान" तृतीय भाग में मुल्ला वजही से लेकर श्री वंशीधर विद्यालङ्कार तक हिन्दी साहित्यकारों के गद्य के नमूने इकट्ठे किए हैं। शर्मा जी हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद के सक्रिय कार्यकर्ता हैं। उनके और वहाँ के दूसरे हिन्दी प्रेमियों के, सहयोग से जो काम किया जा रहा है, वह हैदराबाद के लिए ही नहीं, उत्तर भारत के लिए भी लाभकारी है। वह अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचारक हैं, इसलिए उनके अनुभव से उत्तर भारत के उन हिन्दी साहित्यकारों को लाभ उठाना चाहिए जो सारे देश में हिन्दी का प्रसार चाहते हैं। शर्मा जी ने अपने संकलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका लिखी है। उसमें प्रकट किए हुए उनके विचारों पर सभी हिन्दी हितैषियों को ध्यान देना चाहिए।

उत्तर भारत के कुछ हिन्दी प्रचारक यह कहते नहीं अघाते कि हम अपनी भाषा में जितने ही संस्कृत के शब्द डालेंगे, उतनी ही वह दक्षिणवालों के लिए सुबोध हो जाएगी। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, श्री राहुल सांकृत्यायन, श्री मौलिचन्द्र शर्मा आदि सम्मेलन के मंच से अनेक बार इस धारणा का समर्थन कर चुके हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने "हिन्दी वालों सावधान" नामक एक पुस्तक छापी थी जिसमें बहुत-से प्रचलित शब्दों को उर्दू का कह कर हिन्दी से निकाल देने की अपील की गई थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कुछ विद्वान् दक्षिण में हिन्दी प्रचार से असन्तोष भी प्रकट कर चुके हैं कि वहाँ हिन्दी के संस्कृतगर्भित रूप की रक्षा नहीं की गई। शर्मा जी "दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा" के कार्यकर्ता नहीं हैं यानी उन पर वर्धा से प्रभावित होने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

शर्मा जी ने हिन्दी और संस्कृत के सम्बन्ध पर

प्रकाश डालते हुए लिखा है :

"वर्त्तमान हिन्दी व्रज-अवधी आदि बोलियों से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। प्राकृत, अपभ्रंश और व्रजभाषा आदि में यह प्रवृत्ति रही है कि जहाँ तक हो सके संस्कृत से बचा जाय और जब आवश्यक हो तो संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग न करके तद्भव शब्दों का ही प्रयोग हो। संस्कृत के संयुक्ताक्षरवाले शब्द तो ज्यों के त्यों बहुत कम खप पाए हैं।..... आरंभिक काल के लेखकों की भरसक यह कोशिश रही कि जहाँ तक क्षेत्रीय बोली से शब्द मिल सकते हैं उन्हें लिया जाए और उनके अभाव में संस्कृत, फ़ारसी और अरबी आदि भाषाओं के तद्भव शब्द ग्रहण किए जाएँ।"

हिन्दी गद्य के विकास के लिए यह एकमात्र सही नीति है। यह नीति कितनी सही है, यह भारतेन्दु युग के लेखकों के अमल से साबित हो चुका है। इसी नीति पर चलते हुए प्रेमचन्द ने हिन्दी गद्य को लोकप्रिय बनाया और दक्षिण भारत में प्रेमचन्द की लोकप्रियता भी यह सिद्ध करती है कि ऊपर बताई हुई नीति सही है।

श्रीराम जी ने स्वामी दयानन्द सरस्वती का उदाहरण दिया है। लिखा है : "स्वामी जी प्राचीनता के इतने भक्त होते हुए भी सभी जगह संस्कृत के तत्सम शब्द लाने के आग्रही नहीं थे।" श्रीराम जी ने स्वामी दयानन्द के समकालीन लेखकों के गद्य का अध्ययन करके यह परिणाम निकाला है कि "उस युग के अधिकांश लेखकों ने सरल और स्वाभाविक भाषा में ही लिखा है।" शर्मा जी ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट और बालमुकुंद गुप्त के गद्य की प्रशंसा की है। इसमें सन्देह नहीं कि आज के लेखकों को सरल, मुहावरेदार और सजीव गद्य सीखने के लिए इन्हीं आचार्यों की शरण लेनी पड़ेगी।

वर्तमान हिन्दी गद्य के बारे में शर्मा जी ने लिखा है : "आज हिन्दी का सम्बन्ध उन बोलियों से बिलकुल कट सा गया है जिनके सामर्थ्य और अनुदान से यह इतनी समर्थ बन सकी है।"

तद्भव शब्दों को छोड़कर यदि हम तत्सम रूप अपनाएंगे तो इसका लाजमी नतीजा यह होगा कि हिन्दी भाषा व्रज, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियों से दूर होती जाएगी। हिन्दी की सबसे बड़ी शक्ति इन बोलियों के निकट होने में है। इन बोलियों के निकट होने का अर्थ है भाषा का जनता के लिए सुगम होना। हिन्दी को देश व्यापी बनाने के विचार से जो लोग उसका संस्कृतीकरण कर रहे हैं, उसकी अपनी जातीयता, उसका हिन्दीपन नष्ट कर रहे हैं, वे हिन्दी गद्य का क्षेत्र संकुचित करते हैं। जनता की जितनी सेवा हिन्दी गद्य कर सकता है, उस सेवा से हिन्दी गद्य को वंचित रखते हैं।

भारतेन्दु युग के गद्य से आज के गद्य की तुलना करते हुए शर्मा जी ने लिखा है : "आरंभिक काल के लेखकों ने अपनी रचनाओं को बहुत ही सरल बनाया है। आज के लेखकों में वह प्रसाद गुण बहुत कम देखने को मिलता है। उन लोगों ने बड़ी से बड़ी बात को इस सरलता से व्यक्त किया है कि अनपढ़ आदमी भी समझ सकता है।"

इस भेद का कारण क्या है? आजकल कुछ लेखक छोटी से छोटी बात कहते हुए भी शब्दजाल में क्यों फँस जाते हैं? शर्माजी का उत्तर है : "प्रारंभिक काल के लेखकों की सब से बड़ी बात यह है कि वे प्राचीनता के पक्षपाती होते हुए भी जनता की प्रगति के उपासक थे।...उन लेखकों में जो राजनीतिक और सामाजिक चेतना थी वह आज के बहुत कम लेखकों में देखने को मिलेगी।" और भी—"वास्तव में इन लोगों ने हिन्दी को मूक जनता के अभावों को व्यक्त करने का साधन बनाया।"

इन बातों से यह स्पष्ट परिणाम निकलता है कि हिन्दी गद्य के रूप का सवाल गद्य लेखकों की सामाजिक चेतना के साथ जुड़ा हुआ है। वे लेखक भारतेन्दु और प्रेमचन्द की परंपरा को आगे नहीं बढ़ा सकते जो जनता को अभावों की ही दुनिया में रखना चाहते हैं, जिनका गद्य प्राचीन संस्कृति की दुहाई देकर जनता को सामन्तों और पूँजीपतियों का गुलाम बनाकर रखने के लिए है, जिनका उद्देश्य साहित्य द्वारा जनता की सेवा करना नहीं है वरन् जनता द्वारा अपनी सेवा कराना है। इसीलिए हिन्दी साहित्य में आज विचार संघर्ष तीव्र होता जा रहा है। सवाल है, हिन्दी भाषा और साहित्य की उस क्रान्तिकारी विरासत की रक्षा करने और बढ़ाने का, जिसे हमारे पूर्वजों ने हमें सौंपा है। इस विरासत की रक्षा हिन्दी गद्य को हिन्दी की बोलियों से दूर ले जाकर, उसे संस्कृत-मय बनाकर, उसे जनता की आवश्यकताओं से तटस्थ रखकर या उसे निहित स्वार्थों का सेवक बनाकर नहीं की जा सकती।

१६५४

इसी ओर एक अमली कदम यह उठाया जा सकता है कि भारतेन्दु युग के लेखकों की गद्य रचनाओं के सस्ते संस्करण निकाले जाएँ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, बालकृष्ण भट्ट आदि लेखकों की रचनाओं का तुरन्त उद्धार करना जरूरी है अन्यथा पुरानी पत्रिकाओं की फ़ाइलों में उन्हें दीमक चाट जाएगा। इस ओर हैदराबाद की हिन्दी प्रचार सभा बहुत बड़ा काम कर सकती है।

शर्माजी ने हिन्दी गद्य के जिस दक्खिनी रूप की चर्चा की है, उसके भी संकलन निकलने चाहिएँ। बहुत कम हिन्दी लेखकों ने दक्षिण में हिन्दी गद्य के प्राथमिक विकास की ओर ध्यान दिया है। इसी लिपि भेद और कभी शैली भेद से हम इतने प्रभावित हो जाते हैं कि भाषा की जातीयता ही भूल जाते हैं। हिन्दी एक जाति विशेष की भाषा है; उसका अपना मूल शब्द भण्डार और व्याकरण है। उसके लिए न छूत-अछूत का भेद है, न हिन्दू-मुसलमान का। फ़ारसी लिपि में लिखे जाने से कोई भी रचना किसी दूसरी जाति या भाषा की नहीं हो जाती। जिस भाषा में हिन्दी का व्याकरण है, हिन्दी का मूल शब्द भंडार है, वह रचना हिन्दी की है। इसलिए उत्तर भारत के हिन्दी प्रेमियों को दक्खिनी हिन्दी से परिचय बढ़ाना होगा।

शर्मा जी ने इस धारणा का उचित खण्डन किया है कि प्रेम सागर से पहले हिन्दी गद्य का अभाव था। उनका यह दावा सही है कि लल्लूलाल से पहले हिन्दी गद्य काफ़ी परिष्कृत हो चुका था और उसमें बहुत-सा साहित्य उपलब्ध था। साम्राज्यवादी लेखकों का यह झूठा प्रचार है कि अंग्रेज़ों ने आकर हिन्दी गद्य की नींव डाली लल्लूलाल और बहादुरअली हुसेनी के गद्य की तुलना करते हुए शर्मा जी ने ठीक लिखा है कि आरंभिक काल में हिन्दी उर्दू गद्य एक दूसरे के बहुत निकट था। इससे पता चलता है कि हिन्दी-उर्दू गद्य के बीच एक गहरी खाई तैयार करने में अंग्रेज़ों का कितना बड़ा हाथ था। इससे यह विश्वास भी दृढ़ होना चाहिए कि हमारी हिन्दी भाषा एक है, उसे बोलने वाली जाति एक है, इसलिए आगे चल कर हिन्दी उर्दू गद्य फिर एक-दूसरे के नज़दीक आएँगे और साहित्य की एक ही भाषा रहेगी।

हिन्दी एक विशाल जाति की भाषा है। यह जाति अम्बाला से दरभंगा तक और दरभंगा से उज्जैन तक फैली हुई है। बंगला, उड़िया, तेलुगू, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी और पहाड़ी भाषाओं से घिरा हुआ हमारी भाषा का क्षेत्र है। इस जातीय क्षेत्र में ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि बहुत सी बोलियाँ हैं। १६वीं सदी के लगभग उत्तर भारत में नगरों की संख्या में बहुत बड़ी वृद्धि हुई। यहाँ व्यापार की इतनी बड़ी मंडियाँ क़ायम हुईं जिनकी तुलना यूरोप और एशिया के दूसरे नगर न कर सकते थे। इन नगरों में व्यापार का माध्यम बनी खड़ी बोली। पूर्व की तरफ़ के नगरों में व्यापारियों के साथ खड़ी बोली फैली। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और रामचन्द्र शुक्ल दोनों ने खड़ी बोली के प्रसार में पछाँह की व्यापारी जातियों का हाथ बताया है। अंग्रेज़ों ने यहाँ के कला-कौशल उद्योग-धन्धों को चौपट करके हमारे जातीय विकास को भारी नुक़सान पहुंचाया। फिर भी, साम्राज्यवाद से दबाए जाने पर भी, यहाँ के उद्योग-धन्धे बढ़े, नए औद्योगिक और व्यापार केन्द्र क़ायम हुए और इन नगरों की भाषा फिर वही खड़ी बोली थी। दिल्ली, आगरा, लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, पटना आदि नगर हिन्दी-भाषी जाति के सांस्कृतिक केन्द्र भी रहे हैं। इसलिए इन नगरों के आस-पास की बोलियाँ जातीय भाषा हिन्दी के मातहत बोलियाँ मात्र रह गई हैं। जो लोग किसान-प्रेम दिखला कर इन बोलियों के आधार पर प्रान्त बनाने की बात करते हैं, वे जातियों के विकास में पूँजीवादी संबंधों की भूमिका भूल जाते हैं। पूँजीवादी सम्बन्ध क़ायम होने पर ही जातियों का संगठन मुमकिन होता है। इसलिए ऐतिहासिक प्रगति पर आँसू बहाना व्यर्थ है। इस प्रगति से यह लाभ हुआ है कि गाँवों और जनपदों में बँटे हुए लोगों का अलगाव दूर हुआ है और अब वे संगठित हो कर अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति की राह पर आगे बढ़ सकते हैं। अन्य प्रान्तों की तरह हिन्दी भाषा के आधार पर एक ही प्रान्त में हिन्दी भाषी जनता का संगठित होना भी अनिवार्य है।

हैदराबाद के हिन्दी-उर्दू भाषी लोग हमारी विशाल हिन्दी जाति का एक अंग हैं। विशाल आन्ध्र प्रदेश में वे हमारी जाति के अल्पसंख्यक प्रतिनिधि हैं। हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा इन लोगों की सेवा करती हुई शेष जाति की सेवा भी करती है। गद्य-सोपान की यह भूमिका साबित करती है कि हैदराबाद के हिन्दी प्रचारक अपनी भाषा की क्रान्तिकारी विरासत के प्रति सचेत हैं

और हिन्दी गद्य के विकास में दक्षिण के लेखकों की भूमिका पर प्रकाश डाल रहे हैं। आशा है, उत्तर भारत के हिन्दी प्रेमी उनके अनुभव से लाभ उठाएँगे, हिन्दी को संस्कृत से लाद कर जनता से दूर न करेंगे और भारतेन्दु युग के यशस्वी साहित्यकारों की ओर अधिक ध्यान देंगे।

—डा० रामविलास शर्मा

आगरा युनिवर्सिटी,
आगरा

मौत के मुँह में
लेखिका : सूर्या कमलानी
प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद
मूल्य : १ रुपया

'मौत के मुँह में' श्रीमती सूर्या कमलानी द्वारा लिखित एक जासूसी उपन्यास है। इसमें जनार्दन गुह की कथा का वर्णन है जिस पर उसके श्वसुर राय साहब चुन्नीलाल की हत्या का आरोप लगाया जाता है और वह फ़रार हो जाता है। कोयला झोंकने की नौकरी करके वह बर्मा पहुँचता है जहाँ उसकी जीवनकृष्ण कौल नामक व्यक्ति से मित्रता हो जाती है। दोनों शोनान की पहाड़ियों में सोना खोजने के लिए जाते हैं और उन्हें ढेर-सा सोना मिल जाता है। रास्ते में जीवनकृष्ण कौल की मृत्यु हो जाती है और जनार्दन गुह उसका नाम धारण कर लेता है, सारा सोना उसे मिल जाता है और इस प्रकार वह एक करोड़पति बन जाता है।

अठारह वर्ष पश्चात् एक अख़बार में जीवनकृष्ण कौल (पहले जनार्दन गुह) समाचार पढ़ता है कि उसकी लड़की दीपा और मिस्टर राजवल्लभ ओझा का विवाह होनेवाला है। कौल जानता है कि रायसाहब चुन्नीलाल का वास्तविक हत्यारा ओझा है अतः वह इस विवाह को रोकने का निश्चय करके बाँदा के लिए रवाना होता है जहाँ यदि वह पहचाना गया तो किसी भी समय क़ैद किया जा सकता है और हत्या के अपराध में उसे फाँसी दी जा सकती है।

दीपा और उसकी माँ सरला वास्तव में दीपा का विवाह ओझा से नहीं करना चाहतीं परन्तु ओझा जनार्दन के नक़ली फ़ोटोग्राफ़ अपने कर्मचारी रंगनाथ से तैयार करा के उन दोनों को बतलाता है और दबाव डालता है कि यदि दीपा का विवाह उससे नहीं किया गया तो वह जनार्दन का पता पुलिस को दे देगा। इसी डर से सरला दीपा का अनिच्छापूर्वक ओझा से विवाह कराने की सहमति दे देती है।

जनार्दन के घर पर ओझा की कार खड़ी होती है उस समय कौल वहीं पेड़ों की आड़ में खड़ा होता है। ओझा लौट कर आता है तब तक वह 'यमराज आ गए हैं' की सूचना कार के काँच पर लिख देता है। ओझा का वह उसकी कम्पनी में भी पीछा करता है जहाँ ओझा आक्सिजन के पीपों में से एक पीपा निकालता है परन्तु ज़ोर लगाकर भी निकाल नहीं पाता तो सहायता के लिए रंगनाथ को बुलाने जाता है। तब तक कौल उसी आधे निकाले हुए पीपे को उठा कर ओझा की ही ब्यूक में रख कर उड़ जाता है। उस पीपे को वह पार्क में बनी राय चुन्नीलाल की मूर्ति के पीछे रख देता है और कार वहीं छोड़ कर चला जाता है। थोड़ी देर में पीपे से विषैली गैस फूटती है। और वह मूर्ति पिघल कर बह जाती है। इस घटना से प्रसिद्ध जासूस चौधरी ओझा के यहाँ छानबीन करते हैं। इधर 'यमराज' के रूप में जीवनकृष्ण कौल या जनार्दन ओझा को छकाते रहते हैं। उन तीनों में जासूसी घात-प्रतिघात चलते हैं। चौधरी और कौल एक दूसरे के सहायक बनते हैं और आवश्यकता पड़ने पर दोनों एक दूसरे की प्राण-रक्षा करते हैं। अन्त में जिस समय कौल के प्राण संकट में होते हैं वह ओझा से अन्तिम प्रश्न पूछता है : आख़िर उसने सेठ चुन्नीलाल की हत्या क्यों की और वह स्वयं अपने मुँह से कहता है कि वह रुपए चुरा रहा था उस समय सेठ ने उसे पहचान लिया। पीछे ही चौधरी और अन्य पुलिस के लोग होते हैं वे कौल को बचा लेते हैं और ओझा को पकड़ लेते हैं। कौल पहले ही जनार्दन गुह के रूप में पहचाने जा चुके थे परन्तु चौधरी ओझा की स्वीकारोक्ति कि वही राय-साहब का हत्यारा है, के लिए ठहरते हैं और इस प्रकार जनार्दन गुह मौत के हाथ में खेल कर मौत के मुँह से बच आते हैं।

जैसा कि किसी जासूसी उपन्यास से आशा की जाती है प्रस्तुत उपन्यास में घटनाओं की प्रधानता है। ये घटनाएँ अस्वाभाविक भी नहीं हैं परन्तु उनके गठन में शिथिलता प्रतीत होती है। पीपे से विषैली गैस निकलने का मूल-कथा से यही सम्बन्ध है कि जासूस चौधरी ओझा के यहाँ छानबीन करने में लगते हैं परन्तु इस घटना का रहस्य अन्त तक भी पाठक को नहीं मिलता कि ओझा यह गैस क्यों तैयार करता था और जहाज़ों को डुबाने में क्यों उसे काम में लाता था। केवल पाठक को अनुमान

१९५४

करना होता है कि कदाचित् इसका कारण यह हो कि ओझा अपने पीपों में आक्सिजन गैस भेजता ही नहीं था और जब माल बाहर भेजना होता अपने जहाज़ों को डुबवा देता। परन्तु जब ओझा की प्रयोगशाला की तलाशी ली जाती है तब भी यह संकेत नहीं किया जाता कि वे पीपे खाली होते हैं अथवा उनमें कोई निरर्थक पदार्थ केवल उन्हें भारी करने के लिए भर दिया जाता है। जासूसी उपन्यासों में घटनाओं की प्रधानता तो होती ही है परन्तु उन्हें अधिक रोचक बनाने के लिए मानवी पक्ष की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रस्तुत उपन्यास में मानवी-पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला गया है। वौन को एक जासूस की तरह ही हम काम करते देखते हैं—अठारह वर्ष के बाद में परदेश से लौट कर आए हुए पिता और पति के रूप में नहीं। उसके हृदय का अन्तर्द्वन्द्व निश्चय ही गहरा होगा। इतना किनारे पर नहीं जैसा कि पुस्तक में चित्रित किया गया है। जासूसी उपन्यास को साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग नहीं समझा जाता। रेनाल्ड के उपन्यासों का अंग्रेज़ी साहित्य के इतिहास में ज़िक्र नहीं आता चाहे वह कितना ही लोकप्रिय रहा हो। अतः जासूसी उपन्यासों का भविष्य केवल इस बात पर निर्भर रहता है कि उनमें घटनाओं को संयोजित करके भी मानवी-पक्ष को कितना प्रकाश में लाया जाता है। दूसरी बात है वातावरण की सृष्टि की—उपन्यास को पढ़ते हुए भय करुणा आदि मानवी भावों का वातावरण के द्वारा संचार हो सकता है। प्रस्तुत पुस्तक में प्रभावशाली वातावरण की भी सृष्टि नहीं हुई है।

हीरे की चोरी

लेखक : सूर्या कमलानी
प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद
मूल्य : १ रुपया

'हीरे की चोरी' एक रहस्यपूर्ण जासूसी उपन्यास है जिसमें रहस्य का उद्घाटन अंतिम पंक्तियों तक होता है। सम्पूर्ण कथा सनसनीखेज़ घटनाओं के आवर्त में बँधी है। कर्णसिंह नामधारी व्यक्ति के यहाँ रहस्यपूर्ण ढंग से स्याम की राजकुमारी सयान (जिसका असली नाम मुन्नी है) की हत्या की जाती है। उस समय विभव की प्रेयसी मधुरिमा वहाँ होती है। बाद में पुलिस को वहाँ चूड़ियों के टुकड़े और अंगुलियों के निशान मिलने से विभव का और पुलिस का, सभी का संशय मधुरिमा पर होता है। इस बीच कर्णसिंह का एक रहस्यमय पत्र करुणा के पास पहुँचाने के लिए विभव बम्बई चला जाता है। वहाँ करुणा उसकी हत्या का प्रयत्न करती है जिससे कि मधुरिमा को सहायता पहुँचाने वाला कोई नहीं रहे। इस अनुमान से कि सयात स्यामी नाम है विभव स्याम की पुलिस से जानकारी लेने के लिए जाता है। उसे पता चलता है कि सयात का असली नाम दूसरा है और वह राजकुमारी है। इधर करुणा पुलिस को सूचना भेजती है कि मधुरिमा ने सयात की हत्या की है, कर्णसिंह भी यही कहता है। परन्तु इसी बीच कर्णसिंह (स्वर्गीय) का नौकर सुखदास मसूरी के एक होटल में जासूस चौधरी, कर्णसिंह, करुणा, मधुरिमा, विभव आदि की उपस्थिति में सारे रहस्य का उद्घाटन करता है। वह बताता है कि किस प्रकार भीमसिंह ने उसके मालिक की हत्या करके स्वयं उसका नाम धारण कर लिया। स्याम के राजा ने एक हीरा कर्णसिंह को बेचा था, जिसे बिलकुल गुप्त रखना आवश्यक था। भीमसिंह ने उसकी हत्या करके वह हीरा हथिया लिया था। उसके पश्चात् स्याम के राजा को भीमसिंह ने खत लिखा कि वह किसी के साथ रुपए भेज कर हीरा ले जाए। रहस्यपूर्ण हीरा होने के कारण राजा ने स्वयं अपनी बहन को भेजा। परन्तु हीरा इससे पहले एक अमरिकी को बेचा जा चुका था। अत. सयात के रुपए हथिया लेने के लिए भीमसिंह ने सयात की हत्या कर दी। परन्तु यह हत्या का दोष मँढ़ा गया मधुरिमा पर जिसे भीमसिंह ने अपने पास बुलाया यह दिखलाने के लिए कि विभव किसी अन्य से प्रेम करता है और वह अन्य लड़की सयात बताई गई। मधुरिमा के मानसिक वेदना से पीड़ित होने पर करुणा ने उसे विषैली दवा पिला दी और भीमसिंह ने सयात की हत्या कर दी। जब मधुरिमा जागी तो उसके मस्तिष्क पर यह बात बिठा दी गई कि उसी ने ईर्ष्या के वश होकर सयान की हत्या कर दी है। उपन्यास में रहस्यमय सनसनीखेज़ वातावरण की अच्छी सृष्टि हुई है और इस प्रकार की घटनाओं में दिलचस्पी रखने वाले इसे पढ़ने में रुचि रखेंगे। मधुरिमा की विवशता का चित्रण लेखक ने कुशलता से निर्दिष्ट किया है और उसकी विवशता से पाठक सहज ही पसीज उठता है।

हैदराबाद —हरिकृष्ण पुरोहित

सामयिक

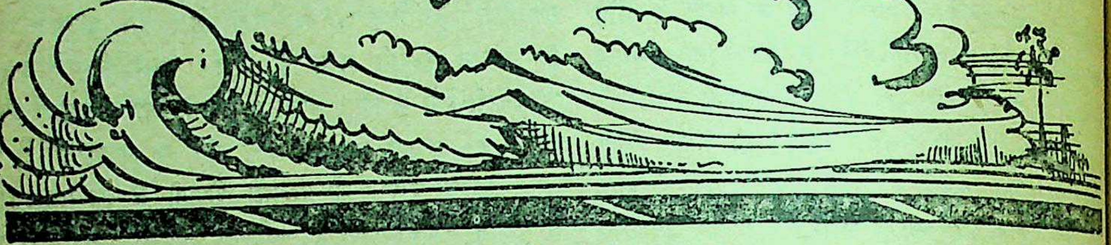

॥

भारतीय अंग्रेज़ी का भविष्य

अंग्रेज़ी दैनिक 'स्टेट्समैन' के रविवारीय संस्करण में श्रीयुत पी० एन० बाल का एक लेख 'भारतीय अंग्रेज़ी का भविष्य' प्रकाशित हुआ है, उसका निम्न अंश यहाँ दिया जा रहा है :

"विगत १२० वर्षों में जब कि अंग्रेज़ी भारत की लगभग राष्ट्र-भाषा थी उस समय अंग्रेज़ी में लिखनेवाले भारतीयों की अपेक्षा आज भारतीय अंग्रेज़ी लेखकों की संख्या अधिक है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रति वर्ष भारतीय लेखकों द्वारा लिखे हुए एक दो पठनीय अंग्रेज़ी उपन्यास प्रकाशित होते रहे हैं। कम-से-कम आधे दर्जन भारतीय अबाध गति से अंग्रेज़ी कविताएँ लिखते हैं। ये रचनाएँ भारतीय साहित्य परम्परा के अनुकूल ही हैं यद्यपि इन्हें समुचित राजाश्रय नहीं प्राप्त होता। यह स्मरणीय है कि उर्दू साहित्य का वास्तविक विकास मुग़ल साम्राज्य के पतन के कई वर्ष पश्चात् हुआ था।

अंग्रेज़ी के साथ भी यही स्थिति उत्पन्न हो सकती है जब प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य पूर्ण विकास को प्राप्त हो जाएँगे **और अंग्रेज़ी** भारत में राजकीय भाषा नहीं रहेगी। स्पष्टतः यह व्यक्तिगत अनुमान है और कम से कम दो दशकों का समय बीते बिना भारत में अंग्रेज़ी के भविष्य के सम्बन्ध में सही अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। १९७६ में जब कि तोरुदत्त की पुस्तक "फ्रांसीसी खेत से बटोरी हुई फ़सल" (A sheaf gleaned from French fields) की शताब्दी मनाई जाएगी उस समय एक शताब्दी के समय में भारतीय अंग्रेज़ी की प्राप्तियों का लेखा-जोखा भी लिया जा सकेगा **और** हम उसकी श्रेष्ठता या कमज़ोरियों का पता लगा सकेंगे।

अंग्रेज़ों के भारतीय जीवन के सम्बन्ध में लिखना प्रारंभ करने के पश्चात् भारतीयों ने भी अंग्रेज़ी में लिखना आरम्भ किया। भारत के सीमित क्षेत्र में अंग्रेज़ी का जो विकास हुआ उसे अभी तक महत्वपूर्ण नहीं समझा गया है परन्तु, भारतीय अंग्रेज़ी का भविष्य उज्ज्वल है क्योंकि विगत डेढ़ सौ वर्षों से भी अधिक समय तक अंग्रेज़ी प्रधानतः भारतीय विचारों और प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है।

निश्चय ही भारत में अंग्रेज़ी की स्थिति अजीब रही है। अंग्रेज़ी शासकों द्वारा उसे कभी संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ और दूसरी ओर उसे अपने को 'बाबूपने' से मुक्त रखने के लिए भी सदैव सचेष्ट रहना पड़ा। 'बाबू अंग्रेज़ी' की भारत में अंग्रेज़ों द्वारा हँसी उड़ाई जाती थी। साथ ही तीन वर्ष के लम्बे भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय में अंग्रेज़ी में उपन्यास या कविता लिखनेवाले भारतीयों को एक प्रकार से देशद्रोही समझा जाता था। भारतीय भी जिनका विदेशों से अंग्रेज़ी द्वारा सम्बन्ध स्थापित होता था, अंग्रेज़ी की उपेक्षा करते थे।

अंग्रेज़ी के भविष्य की आशा इसीलिए बँधती है क्योंकि अंग्रेज़ी साम्राज्यवादी भाषा मात्र नहीं रह गई है, वह अब समस्त विश्व की भाषा बन गई है और उस पर अंग्रेज़ों का एकाधिकार नहीं रह गया है। दो वर्ष पूर्व 'बुक सोसाइटी' ने 'चमकीला सूरज' (Brighter Sun) शीर्षक पुस्तक को तत्कालीन महीने की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक घोषित किया था। इस उपन्यास का लेखक ट्रिनिडाड निवासी एक भारतीय है। इस पुस्तक की भाषा की रचना नेसफ़ील्ड के व्याकरण के अनुकूल नहीं है और न उसमें फ़ाउलर द्वारा प्रतिपादित अंग्रेज़ी व्याकरण के नियमों का पालन किया गया है। इसके विपरीत वह अधिकतर

१९५४

'पिजन' (Pidgin) अंग्रेज़ी है, 'पिजन'—क्योंकि लेखक मज़दूर वर्ग का है। वह एक पढ़ा-लिखा 'बाबू' नहीं है।

भारतीय जनता का एक महत्त्वपूर्ण अंश—प्रायः तीन लाख लोगों का अंग्रज़ी से गहरा सम्बन्ध है और भाषासम्बन्धी वर्त्तमान मतभेदों में वे अंग्रेज़ी को सुरक्षित रखना चाहते हैं। उनकी यह घोषणा कि अंग्रेज़ी शिक्षा का माध्यम रखी जानी चाहिए यद्यपि अल्पसंख्यक लोगों की आवाज़ है परन्तु वह महत्त्वपूर्ण है।

ज्यों ज्यों समय बीतता जाएगा भविष्य में अंग्रेज़ी में लिखना देशद्रोह नहीं समझा जाएगा क्योंकि अब प्रादेशिक भाषाओं को राजकीय संरक्षण प्राप्त हो रहा है और अब उनका विकास प्रत्येक भारतीय के प्रयत्नों की उतनी अपेक्षा नहीं रखता। अब जातीयता के बंधन भी टूट रहे हैं जिनके कारण किसी एक विशिष्ट धर्म, जाति, पेशे या भाषा को अपनाने के लिए हम बाध्य से रहते थे। वंश-परम्परा और जन्म ही अब भाषा को अपनाने के लिए निर्णायक तत्व नहीं रह गए हैं। भाषा को अपनाने और परिवर्तित करने की अब स्वतंत्रता है और यद्यपि अधिक स्वाभाविक यही है कि कोई भी व्यक्ति किसी विदेशी भाषा की अपेक्षा अपनी मातृभाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त करेगा परन्तु निश्चय ही कुछ व्यक्ति ऐसे भी मिलेंगे जो किसी भी भारतीय भाषा की अपेक्षा अंग्रेज़ी में अपने भावों और विचारों को अधिक स्वाभाविक और शक्तिशाली रूप में अभिव्यक्त कर सकेंगे। भारत जैसे बहुभाषी देश में इस प्रकार के अपवादों की संख्या अधिक होने की सम्भावना है।

उपरोक्त कारणों से भारत में अंग्रेज़ी का भविष्य समुज्ज्वल जान पड़ता है तथापि उसका भविष्य मुख्यतया इस पर आधारित रहेगा कि हम वर्त्तमान अंग्रेज़ी में किस सीमा तक परिवर्त्तन करते हैं। मैं आधारभूत परिवर्त्तन का प्रचार नहीं कर रहा हूँ वरन् मेरा यही आशय है कि हमें 'बाबूपने' के प्रति आवश्यकता से अधिक सतर्क नहीं रहना चाहिए। जब एक बार हम इस अनपेक्षित अतिरिक्त सावधानी को भुला देंगे तो भारतीय अंग्रेज़ी का स्वयमेव स्वतंत्र स्वाभाविक विकास आरम्भ हो जायगा। इस प्रक्रिया में हम वर्तनी और उच्चारणसम्बन्धी अनेक सुधार करेंगे। सम्भवतः शब्दों का उच्चारण उसी रूप में होगा जो कि वर्तनी होगी; अंग्रेज़ी के व्याकरण और मुहावरों को हम सरल बनाएँगे उदाहरणतः वचन बताने के लिए हम बहुवचन का प्रयोग छोड़ सकते हैं। निश्चय ही 'दो गाएँ' (Two Cows) की अपेक्षा 'दो गाय' (Two Cow) अधिक संगत प्रतीत होता है, यह भारतीय भाषाओं के मुहावरे के भी अधिक निकट है। इस प्रकार के परिवर्त्तनों की पूर्व छाया अभी से 'बेसिक अंग्रेज़ी' के विशेषज्ञों के निर्णयों में दिखाई देती है। एक विश्व-भाषा के लिए व्याकरण के नियमों के जितना हो सके कम से कम बन्धन होने चाहिएँ जिससे कि सुगमतापूर्वक उसे सीखा जा सके और उसका प्रयोग किया जा सके।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन शब्द-भण्डार में दिखाई देगा। अनेक ऐसी भारतीय वस्तुएँ हैं जिनके अंग्रेज़ी नाम भारतीयों को अर्थ का स्पष्ट आभास नहीं देते अथवा वे सुनने में बुरे प्रतीत होते हैं। पपीहा को 'ब्रेन फीवर पक्षी' (Brain fever bird) कहना कौन पसन्द करेगा? और टीक को 'पिग टेल' (Pig-tail) कहना भी उसी प्रकार हास्यास्पद है। कुछ ऐसे शब्द हैं जिनका अंग्रेज़ी अनुवाद सम्भव नहीं है। 'गोधूलि' और 'नाज़' जैसे शब्दों को अंग्रेज़ी में अनूदित नहीं किया जा सकता। कुछ रंगों के नाम यथा, 'धानी' या 'वसंती' के अंग्रेज़ी रूपान्तर हमारे सामने कोई तस्वीर नहीं लाते। जैसा कि प्रत्येक प्रादेशिक वस्तु के विकास के सम्बन्ध में स्वाभाविक है भारतीय अंग्रेज़ी का अपना शब्द-भण्डार होना चाहिए। हमें अपनी अंग्रेज़ी रचनाओं में भारतीय शब्दों का प्रयोग करने में बिलकुल नहीं हिचकिचाना चाहिए। हमें यह तथ्य सदैव अपने ध्यान में रखना चाहिए कि हम ही भारतीय अंग्रेज़ी के लेखक हैं और हमारे हाथों इस भाषा के साहित्य का निर्माण हो रहा है।

तीसरा और अन्तिम महत्वपूर्ण संतुलन हमें श्रेणिक साहित्य के सम्बन्ध में करना होगा। यहाँ हमें संस्कृत का सहारा लेगा होगा। किसी भी भारतीय भाषा की अपेक्षा अंग्रेज़ी में संस्कृत की बहुत-सी श्रेणिक (Classical) पुस्तकों के अनुवाद हुए हैं। उनका प्रेरणा-स्रोत के रूप में उपयोग करने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए तथापि इस सम्बन्ध में अभी बहुत प्रयत्न करने होंगे। कालिदास के ग्रन्थों के अनुवाद और आर. सी. दत्त द्वारा संक्षिप्त किए गए दो महाकाव्यों के लघु संस्करण जिनका 'डेन्टस् एव्रीमन लाइब्रेरी' (Dent's Everyman Library) की मालाओं में प्रकाशन हुआ था,

पेंगुइन या पेलिकन पुस्तक-मालाओं में प्रकाशित नहीं हुए हैं। सौन्दर्य-शास्त्र पर संस्कृत के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अभी अंग्रेज़ी में अनुवाद नहीं हुआ है। एक विश्वभाषा के नाते अंग्रेज़ी में संस्कृत भाषा में व्यक्त विचारों का समुचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

उपरोक्त बातें एक घोषणा-पत्र या कार्यक्रम की भाँति प्रतीत होंगी परन्तु क्या एक ऐसी सामान्य भाषा की आवश्यकता हमें नहीं प्रतीत होती जो समस्त विश्व में समझी जा सके और उसमें स्थानीय विशेषताएँ भी हों—जो सर्व सामान्य की भाषा होने के साथ ही साथ प्रादेशिक भी हो। यदि एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है तो हमें उसके विकास में सहायक होना चाहिए और हम भारतवासी संसार को यह महत्वपूर्ण देन देने में अधिक सफल हो सकते हैं। इंग्लैण्ड में बोली जाने वाली अंग्रेज़ी से जो भिन्न रूप 'बाबू अंग्रेज़ी' ने धारण किया वह वास्तव में एक वरदान है जो अंग्रेज़ी भाषा में सरलता, परिवर्त्तन और प्रादेशिकता लाने के लिए आधार सिद्ध हो सकती है जिसकी आज अत्यधिक आवश्यकता प्रतीत होती है।"

II

इंग्लैण्ड के लोगों में अन्ध-विश्वास

मद्रास के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी दैनिक 'हिन्दु' के रविवारीय संस्करण में श्रीयुत एच. डे का 'इंग्लैण्ड में अन्ध-विश्वास' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसका निम्न अंश नीचे दिया जा रहा है:

"विज्ञान और प्रगति के इस युग में भी ब्रिटेन में हज़ारों ऐसे लोग हैं जो नित्य-प्रति मायाजालियों द्वारा छले जाते हैं। उन लोगों का यह विश्वास है कि भूत-प्रेत इन मायाजाली लोगों के वश में रहते हैं। इंग्लैण्ड के बहुत-से लोगों में अब भी भूत-प्रेतों में विश्वास पाया जाता है।

इंग्लैण्ड में उन लोगों की कमी नहीं है जो भाग्य में अत्यधिक विश्वास रखते हैं। सेंटकेन में कार्नवाल के 'पवित्र कुँओं' के जल में अलौकिक गुण बताए जाते हैं और उस जल को खरीदने के लिए हज़ारों की भीड़ अवकाश के दिनों में जमा होती है। युद्ध-काल के पूर्व इंग्लैण्ड में 'कॉर्निश फ्लेजिबल अर्थ कम्पनी' नामक एक संस्था ने विज्ञापन दिया: 'लचीली पृथ्वी, जिसका रहस्य जैक द्वारा नासपाती के पेड़ पर चढ़ने के पश्चात् अज्ञात रहा है।' अनेक अर्द्ध-बुद्धिमान् लोगों ने उस कम्पनी से २ शिलिंग ६ पैंस में चार पौंड की दर से बहुत-सी मिट्टी खरीदी। लोगों का यह विश्वास था कि उस मिट्टी का प्रयोग करने से पेड़-पौधे तीव्र गति से विकसित और सुदृढ़ होते हैं। जब मिट्टी का वैज्ञानिक विश्लेषण करके देखा गया तो यह बात झूठ निकली परन्तु आश्चर्य है कि इस पर भी उस मिट्टी की बिक्री में कोई कमी नहीं आई।

कॉर्नवाल में लोगों का अभी भी परियों में विश्वास है और इसके लिए उन्हें कौन बुरा कह सकता है क्योंकि ये परियाँ उन्हें चमत्कारिक कड़े, चमत्कारिक अंगूठियाँ और 'जॉन दी वाड' की छोटी मूर्तियाँ बेचने के बदले संतोषपूर्ण आय दिलाती हैं। 'बुद्धिहीन गृहिणियाँ' इन चमत्कारों में इतना विश्वास नहीं रखतीं हैं जितना एक परिश्रमशील व्यापारी इनमें विश्वास करता है। ऐसे उद्यमी व्यापारी भाग्य के कड़े पहनते हैं, चमत्कारों की परम्परा के कर्मकाण्ड करते हैं और किसी भी महत्वपूर्ण कार्य को करने के पहले ज्योतिषी से मुहूर्त्त पूछते हैं। वे भाग्यवान् और दुर्भाग्यपूर्ण दिनों को सूचित करनेवाले मानचित्रों को ध्यानपूर्वक देखते हैं और कौन से घंटे या मिनट उनके लिए सौभाग्यपूर्ण या दुर्भाग्यपूर्ण हैं इसका ध्यान रखते हैं। ऐसे व्यक्ति से बातचीत करते समय कोई अज्ञात कुलीन पुरुष मेज़ पर रखी हुई उसकी हथेली पर अपने हाथ से मार दे इस इच्छा से वह सदैव परिचालित होता है। वह स्वीकार करता है: "मैं अत्यन्त अन्ध-विश्वासी हूँ और जब कभी किसी से बात करता हूँ तो हमेशा लकड़ी को छूता हूँ।"

हममें से बहुत-से लोगों में अन्ध-विश्वास जन्मजात होता है। वह वंश परम्परागत होता है और उसका इतिहास पूर्व ऐतिहासिक युगों तक जाता है, जब कि मनुष्य वज्रपात और बादलों में चमकने वाली बिजली की प्रार्थना किया करता था और उसका विश्वास था कि नदियों में बाढ़ आने का कारण उनमें निवास करनेवाली प्रेतात्माएँ हैं।

हाल ही में सन् १९४५ में इंग्लैण्ड में वारविकशायर में एक वृद्ध जादूगर की प्रेत-लोक के विश्वासों के अनुकूल सूखी घास उठाने के लकड़ी के डंडे से हत्या की गई। पुराने समय से उस प्रान्त के लोगों में यह विश्वास प्रचलित है कि इस प्रकार किसी डायन को मारने से

१६५४

कोई व्यक्ति अपने दुर्भाग्य को टाल सकता है। वारविकशायर में इस प्रकार की दर्जनों घटनाएँ घटित होती हैं।

बहुत-से अंधविश्वासों का आरम्भ किसी दुर्घटना के कारण हुआ होगा। जिसने पहले नमक बिखेरा या सीढ़ी के नीचे हो कर गुजरा उसे किसी दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा होगा। परन्तु किसी बच्चे की खाँसी को दूर करने के लिए सैन्डविच (Sandwich) में कुत्ते के दो बाल रख कर खिलाने का अर्थ कैसे समझा जा सकता है? मैं एक पहाड़िन लड़की को जानता हूँ जो इस पुराने इलाज में दृढ़ विश्वास रखती है।

विज्ञान का सम्पूर्ण ज्ञान जिन लोगों का चमत्कारों में जो विश्वास है उसे दूर नहीं कर सकता। कुछ समय पूर्व इंग्लैण्ड के एक पत्र में हाथी की पूँछ के लिए एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ। विज्ञापनदाता हाथी की पूँछ के बालों से घड़ी के पट्टे, अंगूठियाँ और अन्य चमत्कारिक वस्तुएँ निर्मित करता था। इन वस्तुओं में प्रत्येक के साथ एक कार्ड लगा रहता था जिस पर यह लिखा गया था: 'यदि तुम सौभाग्य और सफलता की कामना करते हो तो वह सर्व-प्राप्य नहीं है, इसके लिए तुम्हें अपने पास एक हाथी का बाल अवश्य रखना चाहिए।' जिस व्यक्ति की यह सूझ थी उसे १९१७ में सेना से सेवा-मुक्त किया गया था और उसे थोड़ी-सी पेन्शन मिल रही थी परन्तु, जनता के अंधविश्वासों से लाभ उठा कर उसने विशाल सम्पत्ति बना ली है। हाथी का बाल निश्चय ही उसके लिए सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ है।

यदि आपका इस बात में विश्वास न हो कि आधुनिक सभ्यता केवल ऊपरी दिखावा-मात्र है तो आपको 'वेलकम हिस्टोरिकल मेडीकल म्यूज़ियम' में चल कर वहाँ सुदीर्घकाल से संसार भर के डाक्टरों और शुभेच्छुक आगन्तुकों द्वारा प्रदत्त वस्तुओं को देखना चाहिए। आप देखेंगे लोग यह विश्वास करते हैं कि वट में बिजली के देवता निवास करते हैं। वे वज्रपात और बिजली से सुरक्षा के लिए लोगों को जैतून के फलों की माला पहनाते हैं। कुछ लोग जैतून के फल सोने से मढ़ते हैं। वारविकशायर में जहाँ वट बहुतायत से पाए जाते हैं ऐसा विश्वास प्रचलित है। वेल्स के लोगों में जो छोटे छोटे सोने से मढ़े जैतून के फलों का नेकलेस पहनते हैं यह विश्वास पाया जाता है कि यह माला उनकी आने वाली दुर्घटनाओं से सुरक्षा करती है।

आप और हम प्रेतात्माओं की बात हँसी में टाल सकते हैं परन्तु इंग्लैण्ड में वेल्स, यार्कशायर, नार्दम्बरलैंड, कम्बरलैण्ड और वेस्टमोरलैण्ड में प्रेतात्माओं में लोगों का अटूट विश्वास पाया जाता है। 'वेलकम म्यूज़ियम' में एक गोला रखा हुआ है। यह गोला बेर्कशायर की प्रसिद्ध ग्रेनी हस्ग का है जो मिठाइयों की दुकान करती थी। यद्यपि उसकी मिठाई मीलों तक प्रसिद्ध थी परन्तु स्थानीय बच्चे कभी अपनी टोली बनाए बिना उसकी दुकान के पास अकेले नहीं फटकते थे क्योंकि यह विश्वास प्रचलित था कि ग्रेनी बच्चों को मार कर खा जाती है।

जब मैं बालक था उस समय दुकानों पर 'हजारों-सैकड़ों' नामक मिठाई सजा कर रखी जाती थी। कभी कभी इन मिठाइयों को घूमने वाली काँच की बेंतों में रखा जाता था। और यह विश्वास किया जाता था कि इससे बेंत प्रेत-बाधा से बचाती है। इंग्लैण्ड के भीतरी भागों में अभी भी इस प्रकार की बेंतों को इस विश्वास के साथ रखा जाता है।

प्रेमियों की मानसिक स्थिति प्रायः असंतुलित रहती है। हाल ही में एक न्यायलय में ज्ञात हुआ कि इंग्लैण्ड भर में वनस्पतियों के विक्रेता अजगर के खून का भारी व्यापार करते हैं और उसे उसी नाम के फूल का पाउडर बतलाते हैं। यदि यह पाउडर किसी लड़की के द्वारा छुपा कर अपने प्रेमी को दिए जानेवाले शराब में मिला दिया जाए तो उसका प्रेमी पूर्णतया उसके वश में हो जाएगा ऐसा विश्वास प्रचलित है। इस प्रकार के प्रेम की वस्तुएँ केवल गाँवों की अशिक्षित लड़कियाँ ही नहीं अपनातीं। हाल ही में मैनचेस्टर की एक धनवान लड़की ने पेरिस के एक भविष्यवेता के विरुद्ध बीस हज़ार पौण्ड का मुक़दमा चलाया था। उसका कहना था कि उसने यह रक़म भविष्यवेता को इस विश्वास से दी कि वह बेलजियम के एक करोड़पति को प्रभावित कर देगा जिससे कि वह उससे अपना विवाह सम्बन्ध जोड़ लेगा।

उस लड़की को अनेकों बार पेरिस के इस जादूगर के लिए दूरस्थ प्रदेशों से यथा—हॉलीवुड, हवाई, ताहिती आदि से यात्राएँ करनी पड़ी थीं। यह जादूगर शहर के अत्यन्त तड़क-भड़क वाले स्थान पर रहता था। जब पुलिस के लोग इस जादूगर के यहाँ गए तो उन्होंने उसे अपने पेशे की अनेक वस्तुओं के बीच घिरे हुए पाया:—गोले, बोतलें, पकड़े हुए साँप, पत्ते आदि। वह लड़की

फ्राँसीसी फिल्मों की अभिनेत्री थी। उसने बताया कि वह कोर्डा से अपने अभिनय का ठेका लेना चाहती थी। उसने बताया कि जो कुछ रक़म वह जादूगर को देती थी उसके लिए वह उसे रसीद देने में अनिच्छा प्रकट करता था। कैसा प्रभाव रहा होगा उस जादूगर का!

क्या आप सच्चाई-पूर्वक कह सकते हैं कि शुक्रवार १३ दिनाङ्क दुर्भाग्यपूर्ण दिवस नहीं है? यह व्यापार को प्रभावित करनेवाला दिन है और इस दिन कोई भी व्यापारी नया धंधा नहीं छेड़ता और दैनिक कार्य के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण काम हाथ में नहीं लेता। आँकड़ों से ज्ञात होता है कि शुक्रवार को २५ प्रतिशत व्यापार कम हो जाता है और शुक्रवार दिनाङ्क १३ को ५० प्रतिशत व्याषार कम होता है। एक ऐसी बीमा कम्पनी है जो शुक्रवार दिनाङ्क १३ को होनेवाले घाटे की क्षतिपूर्त्ति करती है।

शिक्षा के द्वारा चमत्कारों के प्रति अंधविश्वासों को दूर नहीं किया जा सकता। पोलैण्ड के विदेश मन्त्री कर्नल बेक कभी दिनाङ्क १३ को जहाज़ से नहीं उतरते थे। प्रेसीडेण्ट रूज़वेल्ट चुनाव के दिनों में हमेशा एक भारी सोने की चेन पहिना करते थे जिसके लिए उनका विश्वास था कि वह सौभाग्य लाने वाली है। युद्ध के पूर्व 'मौरिटानिया' न्यूयार्क से फरवरी दिनांक १३ को रवाना होनेवाली थी परन्तु उसके रवाना होने का समय आधी रात के कुछ समय बाद रखा गया। 'दी रायल स्टीम पैकेट लाइन' ने अपने दस्तों में १३ की संख्या नहीं रखी और 'मे फेअर होटल' ने इस समस्या का निदान अपने कमरों की संख्या १४ से आरम्भ करके किया।

ब्रिटिश युद्ध विभाग भावुकता और अंध-विश्वासों से पूर्णतया मुक्त नहीं है। उसने जिब्राल्टर में एक "एप पशुओं के निरीक्षक" (An officer Incharge of Apes) की नियुक्त की है जो इन पशुओं की देख-रेख करता है क्योंकि यह धारणा प्रचलित है कि ब्रिटेन तब तक क़ायम रहेगा जब तक कि वहाँ की चट्टान पर एप पशु क़ायम रहेंगे।"

॥

अमेरिका के प्रतिनिधि लेखक

मद्रास के अंग्रेज़ी साप्ताहिक 'स्वतन्त्र' में 'वे अमरीकी लोगों के लिए बोलते हैं' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसका निम्न अंश नीचे दिया जा रहा है:

"वाल्ट विटमैन अपने सहयोगी लेखकों की अपेक्षा अमेरिका का स्वन्तत्रचेता प्रतिनिधि साहित्यकार है। वह लिखता है: "मैं अपने आप को अभिव्यक्त करता हूँ परन्तु वाल्ट की महान् और अनगढ़ कविताओं का ... अनिवार्य रूप से 'तुम' भी है।" उनकी कविता के विषय अमरीकी प्रजातन्त्र और सामान्य जन का व्यक्ति-वैशिष्ट्य है। वह अमरीकी साहित्य का अब्राहम लिंकन था। यदि आप उसकी कविताओं को पढ़ा जाए तो उनमें से बहुत कुछ अनगढ़ प्रतीत होंगी और उनको समझने में कठिनाई अनुभव होगी। उसकी कविताओं में प्राणी मात्र के प्रति प्रेम और सहानुभूति का समुद्र हिलोरें लेता है; स्वतन्त्र स्त्रियों और पुरुषों के जीवन की समस्याओं को सुलझाने और सुखी जीवन व्यतीत करने में उसका अटल विश्वास है।

अमरीकी जीवन में हास्य का प्रयोग केवल सुखमय क्षणों को व्यतीत करने के लिए ही नहीं होता। जीवन की गम्भीर परिस्थितियों के प्रति यह उनकी विशेष्ट प्रतिक्रिया है। कुछ देशों के लोग कार्य में रत रहने के समय संगीत छेड़ते हैं, अमरीकी लोग ऐसे समय हँसते हैं। कारखानों में, दफ़्तरों में, घरों पर और युद्ध-भूमि में वे आपस में मज़ाक करते हैं। कदाचित् हँसी और स्वतन्त्रता का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है क्योंकि मज़ाक में वस्तुओं का दूसरा पहलू भी सामने आ जाता है और वह मन और दिमाग की गुरु-गम्भीरता का अच्छा इलाज है। अमरीकी जीवन की इस विशेषता को मार्क ट्वेन ने अत्यन्त सफलतापूर्वक चित्रित किया है। उसकी रचनाओं में उदार भावनाओं से युक्त हास्य मिलता है। वह घुड़सवारी, हास्यपूर्ण अत्युक्ति और शाब्दिक छेड़खानी का प्रेमी था। उसने सोने की खान में मज़दूर का, नाविक का और पत्रसंवाददाता का कार्य किया था। उसकी प्रत्येक हास्यपूर्ण बात के मूल में उन मानवीय मूल्यों के लिए गम्भीर चिन्ता प्रकट होती है जो उसके और उसके देशवासियों के द्वारा पवित्र समझे जाते हैं। उसने 'सम्राट आर्थर का दरबार' (King Arthur's Court) नामक पुस्तक में एक अमरीकी से कहलाया है कि अमरीकी धूम-धाम और गुरु गम्भीरता में विश्वास नहीं करते और मानव-समानता में विश्वास रखते हैं। अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाओं 'द एडवन्चर्स ऑफ टॉम सायर' (The Adventures of Tom Sawyer) और 'हकेल बेरी फिन' (Huckleberry Finn) में उसने हमारे मस्तिष्क में रहने वाले

स्वतन्त्रता के प्रतीक के रूप में बालक का चित्रण किया है जो नंगे पैर आवारा घूमता है, स्कूल नहीं जाता और एक बड़ी नदी में अतल में डूबती हुई भग्न नौका की तरह प्रतीत होता है।

अपने जीवन के उत्तर-काल में उसने जो रचनाएँ लिखीं उनमें कटुता और स्वप्न भंग की भावना मुखर हो उठी है। उसके अधिकाँश पाठक इस उलझन को नहीं समझ पाते ! ये किसी 'नए' मार्क ट्वेन की रचनाएँ नहीं हैं परन्तु इनसे प्रकट होता है कि वह उस आदर्शवादी की तरह है जिसे जीवन के सन्ध्याकाल में यह आशा नहीं रही कि लोगों के सामने उसने जो आदर्श रखे उनका वे उसके जीवन काल में पालन करेंगे; फिर भी वह उन आदर्शों के प्रति सम्मान प्रकट करता है। मार्क ने ईमानदारी, सरलता और मैत्री-भाव के प्रति कभी अपना विश्वास नहीं खोया; वह ऐसे लोगों को हृदय से प्यार करता था जो दूसरे लोगों की बातों में कभी टाँग नहीं अड़ाते और अन्य लोगों की स्वतन्त्रता में दखल देनेवालों को घृणा करते हैं। यदि पाठक लेखक के साथ हँसता है तो इसका यही अर्थ है कि वह उन जीवन मूल्यों में विश्वास करता है जिनके लिए लेखक परोक्ष अपील करता है।

हम सभी ने स्कूल के अध्यापक के संरक्षण में लाँगफेलो की कविताओं को पढ़ा है और उच्च स्वरों में उसकी 'दी रेक ऑफ दी हेस्पेरस' कविता का पाठ किया है। हममें से अनेकों ने दस वर्ष की उम्र में उसकी उन प्रसिद्ध पंक्तियों को कण्ठस्थ कर लिया था और अपने समसामयिक साथियों को धिक्कार था :

"इन निराशा भरे गीतों को मत गाओ
यह मत कहो कि जीवन एक दुःस्वप्न मात्र है
जो सो रहा है उसकी आत्मा मर चुकी है
जीवन का वह चित्र सच्चा नहीं है जिसे तुम दिखा रहे हो"

यदि लाँगफेलो की कविताओं को हमें जीवन के आरम्भ काल में ही पढ़ाया जाता है तो इसके लिए किसी प्रकार वह स्वयं उत्तरदायी नहीं है और उसकी रचनाओं में बहुत-से ऐसे तत्व हैं जिनके लिए हम आज भी उसकी कविताओं की प्रशंसा करते हैं। लाँगफेलो उन अमरीकी लेखकों में से एक था जिन्होंने मौलिक साहित्यिक विषयों की ओर सर्वप्रथम ध्यान दिया। उसके समय के पढ़े-लिखे लोग होमर को पढ़ा करते थे। लाँगफेलो ने ही सर्वप्रथम इस बात का अनुभव किया कि अमरीकी इण्डियन की कहानियों में भी महाकाव्य के लिए कथा मिल सकती है। 'हियावाथा के गीत' (Song of Hiawatha) में उसने गोरे लोगों के आगमन के पूर्व अमरीकी जीवन का चित्रण किया है। कोई भी व्यक्ति जो उसे पढ़ता है उसमें ध्वनित होनेवाली युद्ध के नगाड़ों की आवाज़, तोपों और तीरों की आवाज़ को नहीं भुला सकता; नदियों की कल-कल ध्वनि हरे घने जङ्गलों की सुवास उसे चिरकाल तक स्मरण रहेगी। 'दी कोर्टशिप ऑफ माइल्स् स्टेन्डिश' में उसने उपनिवेशों के आरम्भिक जीवन को चित्रित किया है जिसे पढ़ने से उस युग का जीवन मूर्तिमान हो उठता है। लाँगफेलो की कविताओं ने अमरीकी पाठकों में यह विश्वास जगाया कि वे स्थानीय घटनाओं और जीवन में से अपनी रचनाओं के लिए विषय चुन सकते हैं। यद्यपि लाँगफेलो की आवाज़ अधिक शक्तिशाली नहीं थी परन्तु उसकी वाणी ने जिन ध्वनि तरंगों को फैलाया उनकी प्रतिध्वनि आज भी सुनाई देती है।

एडगर एलन पो ने अपनी रचनाओं में एक ऐसे लोक का चित्रण किया है जहाँ कभी सूर्य नहीं चमकता। उसने भग्न खण्डहरों, काली छायाओं, मध्य रात्रि के डरावने पक्षियों का चित्रण किया है—जहाँ किसी स्वस्थ मनुष्य का चेहरा नहीं दिखाई देता। इस लोक के मनुष्यों की पैशाचिक इच्छाओं का उल्लेख भी नहीं किया जा सकता। संगीतपूर्ण नाम वाली भटकती लड़की को निरपवाद मृत्यु के मुख में जाते हुए देखा जा सकता है। पो बिना किसी हिंसा के भय का संचार करता है, कोई दुर्घटना अभी घटनेवाली है यह भार सदैव पाठक के मस्तिष्क पर छाया रहता है। मौन और प्रतीक्षा इतनी भारी प्रतीत होती हैं कि फ़र्श पर होनेवाली हल्की-सी आवाज़ सुन कर मस्तिष्क चीत्कार उठता है। उसकी सृष्टि काल और सीमा का व्यवधान नहीं रखती फिर भी हम उसमें प्रवेश करते हैं और उसे अच्छी तरह जानते हैं।

पो अन्य लेखकों के लिए एक महत्वपूर्ण लेखक था। अपराधी की खोज की उसकी कथाओं ने आधुनिक जासूसी कहानियों को लिखने की प्रेरणा दी है। लघु-कथाओं को लिखने में किन बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है इसके सम्बन्ध में उसके विचारों ने आधुनिक अमरीकी कहानी के स्वरूप को अत्यधिक प्रभावित किया है। वह मनुष्य की प्रकृति के अन्ध गह्वरों को खोलने में सिद्धहस्त है।"

सम्पादकीय

केन्द्रीय प्रशासन और हिन्दी

पिछले दिनों भारतीय संसद् में हिन्दी के विषय में जो बहस-मुबाहसा हुआ उससे इस बात का स्पष्ट पता चलता है कि एकमात्र अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में ही नहीं परन्तु स्वयं केन्द्र में भी हिन्दी की समुन्नति और प्रगति के विषय में जिस प्रकार का उत्साहपूर्ण और प्रेरणाशील वातावरण होना चाहिए उसका वहाँ सम्पूर्णतया नहीं तो अधिकांश में अभाव है। पाँच वर्ष व्यतीत हो गए हैं और यद्यपि इस बीच में हिन्दी ने सर्वतोमुखी पर्याप्त प्रगति की है तो भी इस उन्नति और प्रगति से बढ़ कर जिस वस्तु की आवश्यकता है वह है समस्त देश में हिन्दी के प्रति सद्भावना और अनुकूल वातावरण तैयार करना और यदि हमें कोई शिकायत है तो यही कि देश में अभी उस वातावरण को संगठित रूप से उत्पन्न नहीं किया जा रहा है जिसमें हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में पनप सकेगी। हिन्दी को समस्त देश में राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जब प्रश्न उठाया जाता है तो अहिन्दी प्रान्तों का पक्ष लेते हुए केन्द्रीय प्रशासन की ओर से एक प्रकार की क्षमा-सी माँगते हुए हमें कहा जाता है कि यह बड़ा नाज़ुक मसला है, इसमें किसी प्रकार की जल्दबाजी या ज़ोर-जबर्दस्ती नहीं की जा सकती इसलिए हमें शनैः शनैः इस दिशा में अग्रसर होना होगा। जब हिन्दी के प्रश्न को शिक्षा और अन्य क्षेत्रों के लिए उठाया जाता है तो हमें उत्तर दिया जाता है कि हिन्दी का साहित्य पूर्ण रूप से विकसित नहीं है; इसमें विज्ञान और अन्य विषयों के पारिभाषिक शब्द नहीं हैं और इसी प्रकार की युक्तियाँ हिन्दी को शासन-क्षेत्र में प्रचलित करने के विषय में दी जाती हैं। जब यह कहा जाता है कि इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए केन्द्रीय प्रशासन की ओर से क्या संगठित प्रयत्न किए जा रहे हैं तो उत्तर दिया जाता है कि आप हमें इस विषय में क्रियात्मक सुझाव देने की अपेक्षा हमारी नुक्ताचीनी करते हैं। इस विषय में यदि दूसरे लोग व्यक्तिगत रूप से कुछ क़दम उठाते हैं तो उन पर हिन्दी के प्रति अन्ध पक्षपात आदि के आक्षेप किए जाते हैं। क्या हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए केन्द्रीय सरकार अहिन्दी भाषी राज्यों में सद्भावना उत्पन्न करने के लिए कोई संगठित कार्य-क्रम नहीं बना सकती? अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी के विषय में जो बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ फैल हैं या फैलाई जा रही हैं उन्हें व्यक्तिगत रूप से ही न केन्द्रीय सरकार की ओर से भी दूर किए जाने के लिए ल तार संगठित प्रयत्न किए जाने चाहिएँ। हमारे देश भाषा की समस्या को हल करने के लिए अब केवल वि के पारस्परिक आदान-प्रदान और बहस-मुबाहसे से कार्य नहीं चल सकता, हमें इसके लिए लगातार स और जागरूक रह कर भाषाओं में सद्भावना और सह को इस प्रकार क्रियात्मक रूप में उत्पन्न करना होगा भाषा-विषयक कटुता और वैमनस्य के लिए हमारे देश कोई स्थान ही न रह जाए। इन पाँच वर्षों में भा विषयक प्रश्न में बहुत-सी उलझनें पैदा हो गई हैं धीरे धीरे ऐसा वातावरण उत्पन्न होता जा रहा है हिन्दी के प्रति सद्भावनापूर्ण नहीं प्रतीत होता है। इस पता इसी बात से चलता है कि जिस हिन्दी के द्वारा भारतवर्ष को एकता के सूत्र में पिरोना चाहते हैं विषय में अब उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तियों की ओर से कहा जाने लगा है कि हिन्दी के द्वारा न केवल में एकता उत्पन्न नहीं हो .सकती अपि तु इससे की एकता को खतरा है। साधारण तौर पर यह भव किया जा रहा है कि यह सब इसलिए हो है क्योंकि हिन्दी के प्रति केन्द्रीय सरकार की कोई नि नीति नहीं है और वह उसके प्रति सद्भावना को उ करने में संगठित रूप में सचेष्ट नहीं है। हिन्दी के केन्द्रीय सरकार की अनिश्चित नीति और उसके सर्वसाधारण में उत्साह उत्पन्न करने के लिए विशेष सचेष्टता न होने के कारण आज की स्थिति उत्पन्न हो गई है। हिन्दी के विकास प्रचार से भी अधिक आवश्यकता इस बात की है देश में हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कि जाए। इसके लिए सबसे पूर्व इस भ्रान्त धारणा को दूर का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि हिन्दी और प्रादे भाषाओं में किसी प्रकार का विवाद या विरोध है। तो यह है कि प्रादेशिक भाषाओं की जितनी अधिक होगी उतनी ही हिन्दी की उन्नति होगी। किसी भी प्रादे भाषा की उन्नति से हिन्दी का अहित नहीं हो सक यह असम्भव है कि हमारे देश की एक भाषा समृद्ध

१९५४

समुन्नत हो और उसका प्रभाव देश की अन्य भाषाओं पर न पड़े। इतना ही नहीं हिन्दी की उन्नति का अर्थ सबसे पूर्व प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति होना चाहिए। इन भाषाओं और हिन्दी में बहुत-सी बातें साधारण हैं और वे एक समान एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न भारतवर्ष की समस्त भाषाओं के लिए एक-सा ही है और इसी प्रकार अन्य कई प्रश्न हैं। हिन्दी के प्रश्न को अन्य भाषाओं के प्रश्न से किसी भी प्रकार पृथक् नहीं किया जाना चाहिए। हिन्दी के प्रश्न को पृथक् करने ही बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। दूसरा हिन्दी के प्रति केन्द्रीय सरकार की नीति में किसी प्रकार की निर्बलता या क्षमा-प्रार्थना नहीं होनी चाहिए। हिन्दी के विषय में जो भी भ्रान्त धारणाएँ फैलाई जाती हैं उनका संगठित रूप में पूर्णतया निराकरण किया जाना चाहिए। तीसरा हिन्दी और प्रान्तीय भाषाओं और साहित्यकारों में निकटतम सम्बन्ध उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिएँ। केन्द्रीय सरकार की ओर से हिन्दी में जो भी पत्र निकलते हैं उनमें भारतवर्ष की समस्त प्रान्तीय भाषाओं के उत्तम साहित्य को प्रकाशित किया जाना चाहिए और अन्य हिन्दी के पत्रकारों का भी यह कर्तव्य है कि वे अपने देश के प्रान्तीय भाषा के साहित्य को अपने पत्रों में समुचित स्थान प्रदान करें। अहिन्दी भाषी प्रान्तों के हिन्दी के लेखकों को इस प्रकार का प्रोत्साहन प्राप्त होना चाहिए कि जहाँ वे अपनी भाषाओं के साहित्य को हिन्दी में लाएँ वहाँ हिन्दी के साहित्य को अपनी भाषा में लोकप्रिय करने का प्रयत्न करें। इस प्रकार के साहित्यिक आदान-प्रदान से जहाँ हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यों और साहित्यकारों में निकट सम्बन्ध स्थापित होंगे वहाँ हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दी में सहयोग और सद्भावना और ऐक्यता उत्पन्न हो सकेगी। सिनेमा आदि में डाक्यूमेण्टरी फ़िल्मस् तैयार की जाती हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए इस प्रकार की फ़िल्मों को केन्द्रीय सरकार की ओर से तैयार करवाना चाहिए जिससे हिन्दी के प्रति सर्वसाधारण में रुचि, सद्भावना और उत्साह की वृद्धि हो। जिस प्रयत्न के द्वारा भी हमारे समस्त देश में राष्ट्रभाषा के प्रति जनता का उत्तरदायित्व जागृत हो सकता है वे सब प्रयत्न संगठित रूप से केन्द्रीय प्रशासन की ओर से किए जाने चाहिएँ। शिक्षा-मन्त्री मौलाना आज़ाद ने भारतीय संसद् में इस बात का आश्वासन दिया है कि पाँच वर्ष के बाद केन्द्रीय प्रशासन के कार्य पहले अंग्रेज़ी और हिन्दी दोनों में संचालित होंगे और पाँच वर्ष के पश्चात् अर्थात् १५ वर्ष की अवधि के समाप्त होने के पश्चात् भारत सरकार का समस्त पत्र-व्यवहार और कार्य एकमात्र हिन्दी में ही होगा। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने भाषण में बतलाया कि हिन्दी की साहित्यिक और अन्य संस्थाओं को धन आदि की सहायता प्रदान कर हिन्दी के विकास और प्रचार में केन्द्रीय प्रशासन किस प्रकार सहायता कर रहा है। अब एकमात्र इन आश्वासनों और धन की सहायता के प्रयत्नों से ही सन्तोष नहीं किया जा सकता। केन्द्रीय प्रशासन का सब से बड़ा कर्तव्य यह है कि वह समस्त राष्ट्र में हिन्दी के प्रति समस्त भ्रान्तियों का निराकरण करे, हिन्दी के लिए रुचि, सद्भावना, उत्साह को और हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण को उत्पन्न करे। वह अपने आप को कुछ हिन्दी वालों (?) से पृथक् रख कर इस कार्य को एकमात्र उन हिन्दी वालों (?) पर ही नहीं छोड़ सकता। भारतवर्ष के समस्त राज्यों के भिन्न भिन्न भाषाभाषियों को यह विश्वास होना चाहिए कि हिन्दी भाषा की उन्नति में भारतवर्ष की समस्त भाषाओं की उन्नति है और हिन्दी की उन्नति करना हिन्दी भाषी प्रान्तों का जितना बड़ा कर्तव्य है अन्य प्रान्तों का भी यह उतना ही महान् कर्तव्य है। इस कार्य में समस्त राष्ट्र के सहयोग की आवश्यकता है। वाद-विवाद और पारस्परिक आक्षेपों को छोड़ कर यदि भारतवर्ष की भाषाओं की उन्नति और विकास के लिए संगठित रूप से निर्माणात्मक कार्य किया जाएगा तो हमें विश्वास है कि न केवल हमारे देश की समस्त भाषाएँ समुन्नत और समृद्ध हो सकेंगी परन्तु वे इतनी अधिक निकट आ जाएँगी कि जिससे हिन्दी के लिए स्वयं अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो जाएगा और वह इस योग्य हो सकेगी कि वह भारतवर्ष की समस्त भाषाओं में न केवल एकता स्थापित कर सके परन्तु उन सब का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व भी कर सके। केन्द्रीय प्रशासन अपने आप को अब हिन्दी वालों से पृथक् नहीं रख सकता। हिन्दी के प्रति जो भावनाएँ अहिन्दी भाषी प्रान्तों में दिखाई दे रही हैं उन सब का उत्तरदायित्व हिन्दी के पक्षपातियों पर डाल कर ही वह अपने आपको नहीं बचा सकता।

नई दिल्ली में हिन्दी भवन

'अजन्ता' के इसी अंक में हम "चिट्ठी-पत्री" के स्तम्भों में पूज्य बन्धुवर श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का

"हिन्दी-भवन" पर एक पत्र प्रकाशित कर रहे हैं। उनके प्रयत्नों से दिल्ली में 'हिन्दी-भवन' के कार्य का प्रारम्भ हो गया है। हम उस समय दिल्ली में ही थे जब कि श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने बहन श्रीमती सत्यवती मल्लिक के घर पर भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों से आए हुए भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी के प्राध्यापकों और दिल्ली के हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों और हिन्दी-प्रेमियों को निमन्त्रित किया था और दिल्ली जैसे केन्द्रीय स्थान पर 'हिन्दी भवन' की आवश्यकता को समझाने का प्रयत्न किया था। हमें जहाँ यह जान कर प्रसन्नता हुई कि 'हिन्दी भवन' का कार्य आरम्भ हो गया है वहाँ यह जान कर दुःख भी हुआ कि दिल्ली जैसे स्थान में यह कार्य जितनी सुगमता से हो जाना चाहिए था उसमें इतनी ही अधिक कठिनाइयाँ उपस्थित हो रही हैं। हमें हिन्दी भवन की सब से बड़ी आकर्षक विशेषता यह प्रतीत हुई कि वहाँ "अहिन्दी भाषी विद्वानों को निमन्त्रित कर उनकी भाषाओं के साहित्य और विचारों से हिन्दी के साहित्यकारों और जनता को परिचित कराने का प्रयत्न किया जाता है। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अपने पत्र में लिखते हैं: "चन्दा करना कितना मुश्किल काम है इसका अनुभव मुझे अपनी जिन्दगी में पहले पहल ही हो रहा है। हिन्दी-भवन की सदस्यता का वार्षिक शुल्क दस रुपए है पर अभी तक बीस बाईस सदस्य ही हम बना सके हैं!...इस समय भी यही चिन्ता है कि आगे कार्य को किस प्रकार चलाया जाए। सरकार से सहायतार्थ प्रार्थना की गई है। यदि सहायता मिल गई तो ठीक, नहीं तो कार्य कुछ कठिन अवश्य हो जाएगा।.. ..हम हिन्दीवालों में मिशनरी भावना की कमी है....।"

साहित्यिक कार्यों के लिए चन्दा करना अत्यन्त कठिन होता है क्योंकि इस प्रकार के कार्य में किसी प्रकार की तड़क-भड़क नहीं होती जैसी कि ऐसे राजनैतिक या साम्प्रदायिक कार्यों में होती है जिनके प्रति सर्वसाधारण सुगमता से आकृष्ट हो जाते हैं, फिर श्री चतुर्वेदी जी का अपना व्यक्तित्व भी सर्वथा सरल और आडम्बरहीन है। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस कार्य में संभवतः कुछ देरी हो जाए परन्तु श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को अपने इस कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त होगी। हिन्दी का राजनैतिक पहलू भी है और उसमें आकर्षण भी है परन्तु यह अच्छा ही है कि श्री चतुर्वेदी जी ने हिन्दी के उस "राजनैतिक पहलू" को किसी प्रकार का महत्व नहीं प्रदान किया। इस कारण इस कार्य में कुछ और भी देरी हो सकती है। हिन्दी-भवन का हम सबको सदस्य बनना चाहिए और दूसरों को भी इसका सदस्य बनने का प्रयत्न करना चाहिए। जो भी इसका सदस्य बनना चाहें उन्हें—"हिन्दी-भवन, थिएटर कम्यूनिकेशन बिल्डिङ्ग, कनॉट सरकस, नई दिल्ली" को लिख कर सदस्यता का फार्म मँगा कर भर देना चाहिए और इसका चन्दा दस रुपया भेज देना चाहिए। इसके अतिरिक्त भी हिन्दी-भवन की धन आदि से सहायता करनी चाहिए। हमें विश्वास है कि हिन्दी-प्रेमी सज्जन 'हिन्दी-भवन' नई दिल्ली की आर्थिक और अन्य प्रकार की सहायता करने में कुछ उठा न रखेंगे। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी के उन गण्य-मान्य साहित्यकारों में से हैं जिन पर हिन्दी को गर्व है। उन्होंने इस कार्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया है—इसी से हमें पूर्ण विश्वास है कि इस कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त होगी। ये कठिनाइयाँ "हिन्दी-भवन" को गौरव प्रदान करेंगी। "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" वह अच्छा कार्य ही क्या जो सुगमता से हो जाए।

सदस्यता की वृद्धि और अन्य आर्थिक सहायता के अतिरिक्त 'हिन्दी-भवन' के लिए कुछ ऐसे उपक्रम भी किए जाने चाहिएँ जिनसे 'हिन्दी-भवन' को आर्थिक प्राप्ति हो। संगीत, नृत्य, कला प्रदर्शनी, लोक-नृत्य, कवि सम्मेलन, व्याख्यानमाला और इस प्रकार के सांस्कृतिक आयोजन किए जाने चाहिएँ जो आकर्षक हों और जिनसे कुछ अर्थ-प्राप्ति हो सके। इसके द्वारा कलाकारों की भी कुछ सहायता प्रदान की जा सकती है और 'हिन्दी-भवन' को भी लाभ हो सकता है। दिल्ली जैसे बड़े शहर में इनका आयोजन करना कुछ विशेष कठिन नहीं है। यह सच है कि इस कार्य में भी कठिनाइयाँ हैं परन्तु परीक्षण के तौर पर इनको अवश्य करना चाहिए। यूरोप और अमरीका के नगरों में तो व्याख्यान आदि भी टिकट लगा कर किए जाते हैं। टिकट लगाने का एक यह भी परिणाम होता है कि चुनी हुई और रुचि रखनेवाली जनता ही ऐसे आयोजनों में उपस्थित होती है। हम 'हिन्दी-भवन' की पूर्ण सफलता चाहते हैं और हिन्दी-प्रेमियों से यह प्रार्थना करते हैं कि वे "हिन्दी-भवन" नई दिल्ली के सदस्य बन कर उसकी अधिक से अधिक आर्थिक सहायता करें।

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

[Estd. MARCH 1915]

Telephone : 4610 Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :
PATHERGATTI, UNIVERSITY
BRANCH (ADIKMET)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMANI,
HYDERABAD-DECCAN.

Branch Office :
THUNGABHADRA PROJECT
(MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at 1½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
DEPUTY GENERAL MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
SUPERVISING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT.

समाज के सितमगरों! रुक जाओ !!

अबोध भोली अबला पर कलङ्क का टीका लगानेवालों चेत जाओ !

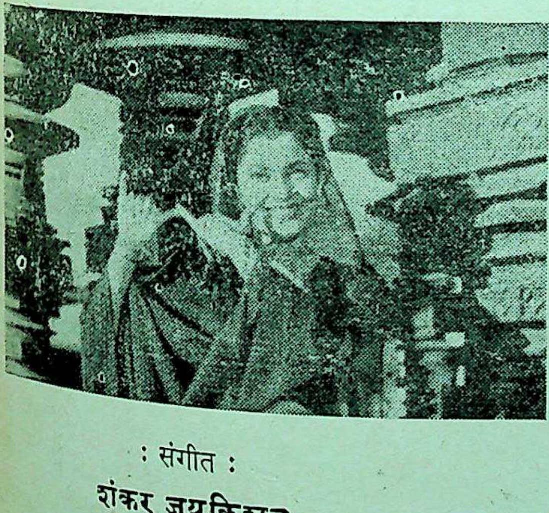

वर्मा फिल्म्स का सुन्दर सामाजिक चित्र

पूजा

: पात्र :

* पूर्णिमा * भारत भूषण * शकुन्तला
* हीरालाल * ओमप्रकाश

: संगीत :
शंकर जयकिशन

: गीत :
शैलेन्द्र हसरत

३० अप्रैल को शानदार उद्घाटन

: टाकीज :—
दिलशाद हैदराबाद
चित्रा सिकन्दराबाद

(वितरक :— बॉम्बे इण्डिया फिल्म्स कारपोरेशन)

स्वास्थ्य ही सुख की कुंजी है

आयुर्वेद शास्त्र की महानतम् प्राप्ति निरन्तर खरल की प्रक्रिया द्वारा नौ अमूल्य रत्नों की स्वास्थ्य प्रदायिनी शक्ति को विकसित करना है।

कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति
विश्व-विख्यात आविष्कर्त्ता
का
नया अविष्कार

"नवरत्न कल्प"

हीरा, मानिक, मोती, नीलम, पुष्पराग, मूँगा तथा अन्य
बहुमूल्य नौ रत्नों का यौगिक

पूर्णतया विषरहित निरापद औषधि जो सभी ऋतुओं में सभी उम्र के लोगों के लिए उपयोगी है।

हृदय-रोग, मानसिक दुर्बलता, अजीर्ण, रक्तदोष, पागलपन, मधुमेह, उन्माद,
बवासीर और श्वास-रोग का शर्तिया इलाज

विवरण के लिए आज ही लिखिए

प्रबन्धक : नवरत्न कल्प फार्मेसी
जलंधर शहर (भारत)

तार : नवरत्न

अजन्ता

२४-६-५४

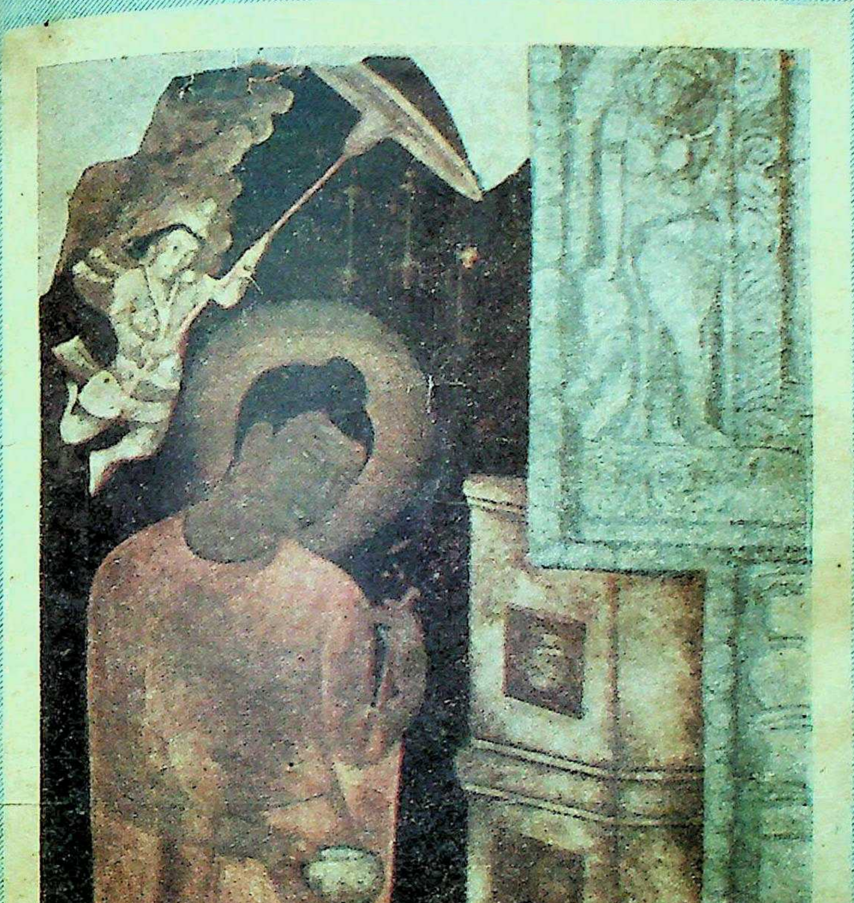

वर्ष ६

जून १९५४

अंक ६

ताज ग्लास वर्क्स

लिमिटेड

पो० आ० सनतनगर, हैदराबाद-द.

काँच के सामान के सर्वश्रेष्ठ निर्माता

सभी प्रकार की सुन्दर और मज़बूत काँच की बोतलें, ग्लोब

और

ग्लास प्राप्त करने का स्थान

मकान की सजावट और सौन्दर्य वृद्धि के लिए

सभी प्रकार के काँच का सामान

हैदराबाद आल्विन मेटल वर्क्स

लिमिटेड

सनतनगर, हैदराबाद-द. १८

सर्वोत्तम स्टील फ़र्निचर के निर्माता

हर प्रकार का फ़र्निचर

मकान, दफ़्तर, दूकान और अस्पतालों के लिए

ख़रीदिए !

राष्ट्र की सुन्दरतम और मज़बूत बसों के निर्माता

जे० बी० ग्लुकोस बिस्कुटों से

विहार के समय अल्प आहार का कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है।

J.B.

जे० बी०

ग्लुकोस बिस्कुट

जो कि

* शुद्ध तथा उत्तम गेहूँ का मैदा

* मलाईयुक्त दूध

* ग्लुकोस

(जीवन शक्तिप्रद)

से तैयार किये जाते हैं।

भट्टी से निकले हुए

ताज़ भुरभुराहट्युक्त

बिस्कुट के लिए

जे० बी०

के सही चिह्न को एक बार

ज़रूर देख लीजिए!

जे. बी.

मंघाराम एण्ड कम्पनी

तालाब कट्टा, हैदराबाद द०

स्थानीय एजेण्ट :

के० मोतीराम एण्ड कम्पनी

बेगमबाज़ार, आबिद रोड, हैदराबाद : स्टेशन रोड, सिकन्दराबाद

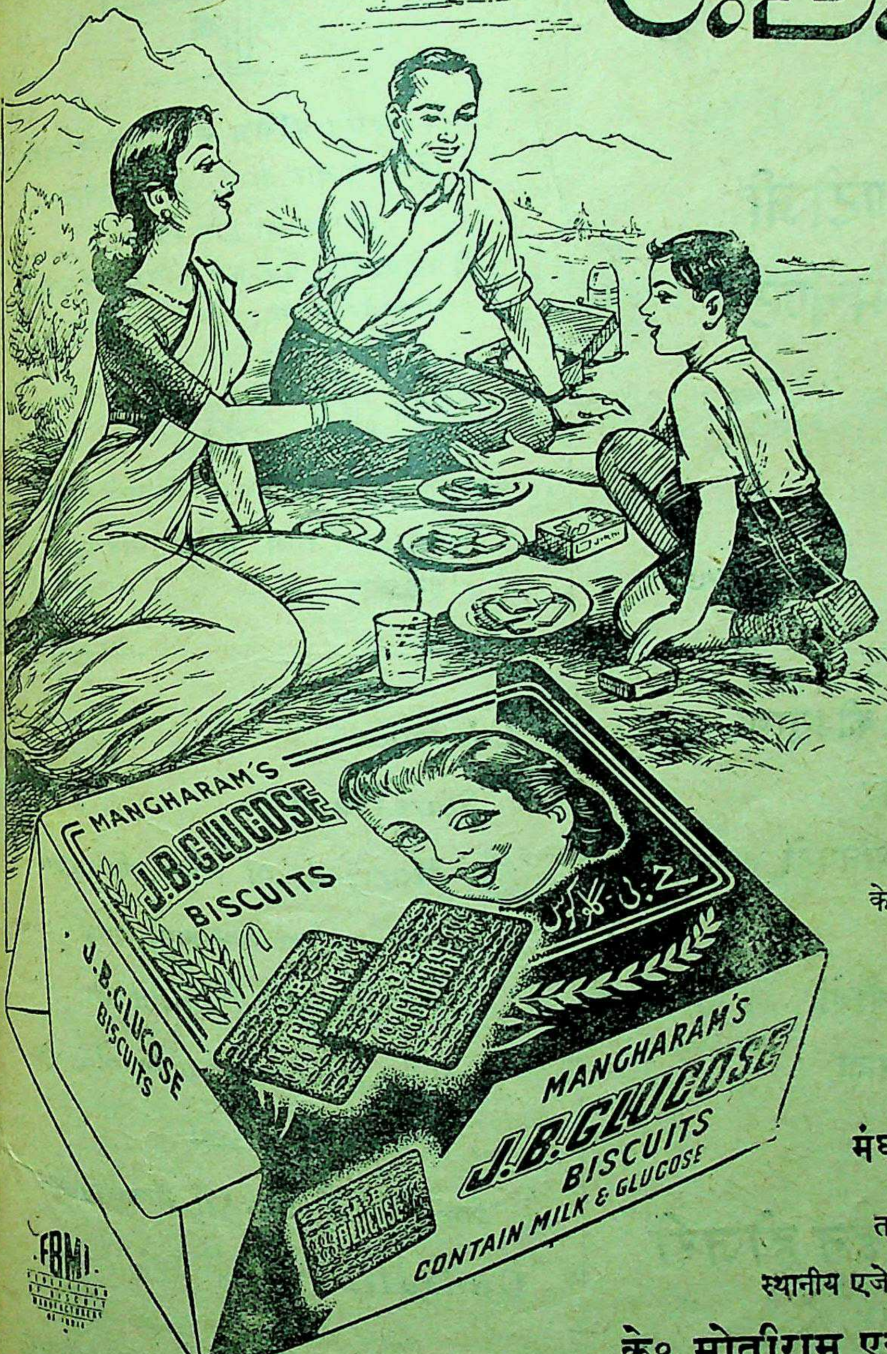
MANGHARAM'S
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
MANGHARAM'S
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
CONTAIN MILK & GLUCOSE
FBMI

इसे आप कभी मत भूलिए !

ट्वीड्, गेबरडीन, पनामा, सिल्क शर्टिंग

आदि का हमारा नया स्टाक आपकी
पसन्द की अवश्य ही
पूर्ति करेगा ।

आर. पेण्टोजी
क्लॉथ मर्चेण्ट

पत्थरगट्टी, हैदराबाद (दक्षिण)

●

तार का पताः-'ट्वीड्' फो. नं. ४७६९

सिकन्दराबाद में साहित्यिक पुस्तकों
का
एक मात्र प्रतिष्ठान

* **पुस्तक भवन** *

६५९२ महबूब कॉलेज लेन, सिकन्दराबाद
हिन्दी प्रचार सभा, सिकन्दराबाद
नगर शाखा द्वारा स्थापित
सभी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम, पुस्तकालयों के लिए
उत्तमोत्तम ग्रन्थ, और बाल-साहित्य
हमारी विशेषताएँ

❋

निम्न लिखित
प्रकाशकों की पुस्तकें थोक भाव में हमसे लीजिए:-

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

**आपके कपड़ों की सुरक्षा
के लिए
सुन्दरतम बनियनों
एवं
मज़बूत मोजों
के निर्माता**

**दी
हैदराबाद फाइन होजरी**
लिमिटेड
इण्डस्ट्रियल एरिया
आजमाबाद-हैदराबाद-दक्षिण.

Education
Start - in - Life
Marriage of your children
Assured without any
embarrassment
Besides a comfortable old age
for you
for All Types Of Insurance

Consult:-

***THE
HYDERABAD CO-OPERATIVE
INSURANCE SOCIETY Ltd.***

Bashir Bagh Road, Hyderabad-Dn.

FIRE!

ACCIDENT!

MARINE!

The Hyderabad United Insurance Company;

(*LIMITED*)

Sponsored by

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164.

ABID ROAD, HYDERABAD-Dn.

Telegram: ***HUICOL***

Telephone: ***5579***

Chairman
L. N. GUPTA Esqr. I. A. S.

General Manager
H. D. MEHTA Esqr.

Branches :

BOMBAY, CALCUTTA, MADRAS, NIZAMABAD & MANCHIRIAL.

'HIND'

अपील : 'साहित्यकार'

(द्वैमासिक संकलन)

माह जून से हम—अर्थात् हिन्दी के कई नव लेखक व कवि—मिलजुल कर नये साहित्य का एक प्रतिनिधि द्वैमासिक संकलन "साहित्यकार" निकाल रहे हैं। "साहित्यकार" कोई पूर्वाग्रह लेकर नहीं निकल रहा है। उसका मात्र आग्रह (यदि इसे आग्रह कहा जाय) नई प्रतिभाओं को अधिक से अधिक स्थान देना होगा। "साहित्यकार" की नीति उदार होगी। प्रयोग और परम्परा दोनों ही उसे समान रूप से ग्राह्य होंगे परन्तु प्रयोग तथा पागलपन में और परम्परा तथा पिछड़ेपन में यह भेद अवश्य करेगा। रचयिता किस गुट का है, किस स्तर का है, इससे "साहित्यकार" को कोई मतलब नहीं होगा, वह बस उसके कृतित्व को ही आँकेगा। इस पत्रिका के लिए हम हिन्दी के समस्त लेखकों व कवियों का सहयोग चाहते हैं। उनमें से जिन्हें हम जानते थे उनसे हम वैयक्तिक रूप से या पत्रों द्वारा सहयोग की याचना कर चुके हैं। पर हम समझते हैं कि कई लेखक ऐसे भी होंगे जिनसे हम अपरिचित हैं। ऐसे लेखक बन्धुओं से हम इस पत्र द्वारा अनुरोध करते हैं कि वे "साहित्यकार" को अपना अमूल्य सहयोग दें। सहयोग वे दो तरह से दे सकते हैं :

(१) अपनी रचनाएँ भेज कर।

(२) पत्रिका के ग्राहक बन कर।

(अर्द्ध-वार्षिक चन्दा चार रुपए है)

क्योंकि "साहित्यकार" एक ऐसा पत्र होगा जो लेखकों का लेखनों के द्वारा, लेखकों व सचेत पाठकों के लिए होगा, इसलिए उसे सहयोग देना लेखकों का कर्तव्य हो जाता है। हम सब सहयात्री हैं, हमारी सहायता ऐसे सहयोग द्वारा ही संभव है। इस पथ पर हम सहयात्रियों के अतिरिक्त और कोई नहीं है।

सम्पादक : **नरेश मेहता**

३३, कैनिंग लेन, नई दिल्ली—१

हमारे सुविख्यात प्रकाशन

स्वामी विवेकानन्दजी की सुप्रसिद्ध पुस्तकें

भारत में विवेकानन्द : जैकेट सहित, सचित्र ५) "आज की परिस्थिति के उपयुक्त राष्ट्र-निर्माण संबन्धी वैध एवं ठोस विचारों से भरे, स्वामी जी द्वारा भारत में दिए गए भावयुक्त स्फूर्तिप्रद भाषण।"

विवेकानन्द जी के संग में : आकर्षक जैकेट सहित ५।) "स्वामी जी के आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, कला-विषयक तथा भक्ति संबन्धी संभाषणों का रोचक, महान् शिक्षाप्रद तथा पथ प्रदर्शक संग्रह।"

पत्रावली : दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २=) "स्वामी जी के शक्ति सम्पन्न पत्रों का सङ्कलन।"

देववाणी : सचित्र, २=) "अमृततुल्य, आध्यात्मिक अन्तः प्रेरणा से भरे उपदेश।" शक्तिदाई विचार ॥=); भारतीय नारी ॥।); व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १=); मेरे गुरुदेव ॥=); विवेकानन्द जी की कथाएँ १।); कवितावली ॥=)

धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : दो भागों में, सजिल्द, आकर्षक जैकेट सहित, प्रत्येक का २॥।) "धर्म-जीवन की उलझनों का सरस भाषा में सूक्ष्म विवेचन करते हुए उनके परिहार का मार्ग दर्शाया है।"

विवेकानन्द-चरित : हिन्दी में स्वामी जी की एक मात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकट ६)

श्री रामकृष्ण लीलामृत : विस्तृत जीवनी, दो भागों में, महात्मा गांधी की भूमिका सहित, प्रत्येक का ५)

श्रीरामकृष्ण वचनामृत : तीन भागों में, संसार की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित, सजिल्द, जैकेट प्र. भा. ६); द्वि. भा. ६); तृ. भा. ७)

गीतातत्व : स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु भाई स्वामी शारदानन्द कृत, सुन्दर जैकेट सहित, २।=)

स्वामीजी की अन्यान्य लोकप्रिय पुस्तकें

ज्ञान योग३); भक्तियोग १।=); राजयोग ॥); कर्मयोग १॥=); प्रेम योग १।=); सरल राजयोग ॥); आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १।); हिन्दू धर्म १॥); धर्म रहस्य १); धर्म विज्ञान १॥=); हिन्दू धर्म के पक्ष में ॥=); शिकागो वक्तृता ॥=); मरणोत्तर जीवन ॥); स्वाधीन भारत जय हो १=); प्राच्य और पाश्चात्य १।); वर्तमान भारत ॥)

नए प्रकाशन : जाति, संस्कृति और समाजवाद १); चिन्तनीय बातें १); विविध प्रसङ्ग १=)

विस्तृत सूची पत्र के लिए लिखिए : श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली (अ) नागपुर—१ (म० प्र०)

हिन्दी प्रचार सभा के कुछ प्रकाशन

१ हिन्दी बोध प्रवेशिका	मूल्य	०	१०	०
२ मणियाँ *(जीवन चरित्र)* : ले० श्री राजकिशोर पाण्डेय	,,	०	१०	०
३ तुलसीदास *(नाटक)* : ले० श्री श्रीराम शर्मा	,,	१	२	०
४ गद्यसोपान—भाग १ संकलन	,,	०	१२	०
५ ,, भाग २ ,,	,,	१	०	०
६ ,, भाग ३ ,,	,,	२	०	०
बाल साहित्य माला :				
७ **बालपद** : ले० श्री पं० वंशीधर जी विद्यालङ्कार	,,	०	८	०
८ **बालकों की कहानियाँ** : ले० श्री पं० श्रीरामजी शर्मा	,,	०	८	०
९ **गाँवों की कहानियाँ** : ले० श्री पं० रामनिरंजन जी पाण्डेय	,,	०	८	०
१० **दक्षिण के महापुरुष भाग १** : ले० श्री राजकिशोर जी पाण्डेय	,,	०	८	०
११ **दो एकाँकी** : श्रीमती विमला लूथरा	,,	०	८	०
१२ **हैदराबाद के ऐतिहासिक और कला-स्थल** : श्रीमती कमलारानी संघी	,,	०	८	०
१३ **दक्खिनी का पद्य और गद्य** : श्री पं० श्रीराम जी शर्मा	,,	१०	४	०
१४ **वजही का रिसाला अलिफ़-बे** : ,,	,,	०	४	०
१५ **चाबुक** *(कहानी-संग्रह)* : ले० श्री पं० विनायकराव जी कोरटकर विद्यालंकार	,,	१	१२	०
१६ **विभूतियाँ** *(जीवन चरित्र)* : ले० श्री राजकिशोर पाण्डेय	,,	०	१२	०
१७ **हिन्दी रचना और निबन्ध** : ,,	,,	१	८	०
१८ **पञ्चामृत** *(तेलुगु)* : *(प्रेस में)* ले० श्री बाल शौरि रेड्डी				

कुछ सम्मतियाँ

चाबुक :

१. १७ कहानियों के इस संग्रह में अकृत्रिमता तो है ही चुस्त एवं पैनी वर्णनशैली ने उनकी रोचकता को और भी बढ़ा दिया है। उनके इस चाबुक में मराठी के प्रयोग चुटीलापन पैदा करते हैं—**नवभारत टाइम्स बम्बई २८-२-५४**

२. लेखक ने चुटकियाँ बड़े गम्भीर भाव से ली हैं। इसमें सन्देह नहीं कि लेखक की यह कृति उसे हिन्दी में प्रथम श्रेणी के कलाकारों में खड़ा करने के लिए काफी है—**'आज' बनारस विशेषांक**

बाल साहित्य माला :

१. हिन्दी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित बाल-साहित्य में बालकों की अभिरुचि और बाल-स्वभाव का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है। कहानियाँ, जीवन चरित्र तथा कविता संग्रह बड़े ही रोचक ढंग पर पेश किए गए हैं जिन्हें पाठ्यक्रम के अन्दर अनिवार्यतः पेश किया जाना चाहिए। बालकों की सुरुचि व ज्ञानवृद्धि के लिए माता पिता व अन्य अभिभावक इन्हें घर पर भी पढ़ा सकते हैं—**'हिन्दी मिलाप'**

२. छपाई, सफ़ाई आकर्षक। भाषा की सरलता, विषयों के चुनाव और प्रतिपादन की उत्कृष्टता तथा भारतीय दृष्टिकोण से लिखी होने के कारण बाल साहित्य माला की पुस्तकें बच्चों के लिए तो उपयोगी होंगी ही, प्रकाशकों को इस तरह की किताबें छापने की प्रेरणा भी देंगी—**नवभारत टाइम्स बम्बई २८-२-५४**

कथा साहित्य में चरित्र चित्रण

का

महत्वपूर्ण प्रयोग

'मेघदूत' के महत्वपूर्ण प्रकाशन के बाद

प्रेरणा का छठा-सातवाँ अंक

'प्रेमचन्द के पात्र'

विशेषांक है

* इस अंक में प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों के सभी महत्वपूर्ण पात्रों पर अधिकार पूर्ण लेख हैं।

* विशेषांक का मूल्य लगभग ४) है।

* प्रेरणा के स्थाई ग्राहकों के लिए वही मूल्य।

शीघ्र ही वार्षिक ग्राहक बन कर
इस सुविधा का लाभ उठाएँ।

आर्डर 'प्रेरणा' के पते से भेजिये।

प्रेरणा : सोजतीगेट, जोधपुर.

'आर्थिकसमीक्षा'

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के आर्थिक, राजनीतिक
अनुसंधान विभाग का पाक्षिक पत्र।

प्रधान सम्पादक : **श्री आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल**

सम्पादक : श्री हर्षदेव मालवीय

हिन्दी में अनूठा प्रयास :

आर्थिक विषयों पर विचारपूर्ण लेख
आर्थिक सूचनाओं से ओतप्रोत

भारत के विकास में रुचि रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए
अत्यावश्यक तथा पुस्तकालयों के लिए
अनिवार्य रूप से आवश्यक।

वार्षिक चन्दा : ५ रुपए * एक प्रति का ३॥ आना

व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी
७, जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली.

मद्रास बिहार तथा पंजाब सरकार द्वारा
समस्त स्कूल तथा लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत

देशबन्धुः पुस्तकालय मथुरा एवं ब्रज का
निराला मासिक पत्र

* प्रधान सं० कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०
* सम्पादक—ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी
* स० सम्पादक—बैजनाथ दाणी

❀ देशबन्धु ❀

वार्षिक मूल्य ४-०-० :: एक प्रति ०-६-०

नमूना के लिए ०-६-० के टिकट भेजें

ब्रज संस्कृति, ब्रज की ललित कलाएँ, स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, रासलीला, रामलीला, भगत ब्रज के लोक गीत, लोक कहानियाँ, वेशभूषा, लोक व्यवहार आदि पर सुन्दर लेख पढ़िए।

पता—व्यवस्थापक "देशबन्धु" कार्यालय
मथुरा (यू० पी०)

सस्ता, सरल, आकर्षक और शिक्षाप्रद
राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

* कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।

* हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।

* देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं: मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत्, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)—छमाही ३)—एक प्रति ८ आना

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

टेलीफोन नं. २५८७

वार्षिक मूल्य ८ रु.

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम, राष्ट्र-निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए **'सम्पदा'** सबसे उपयोगी पत्र है ।

'सम्पदा' के **योजना अंक** में पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा है **वस्त्र उद्योग अंक** मूल्य १।) रु.

अभी से ग्राहक बनिए ।

नमूने के लिए ।।।) आने के टिकट भेजिए ।

मैनेजर **'सम्पदा'** *अशोक प्रकाशन मन्दिर*
रोशन-आरा रोड—दिल्ली

सम्पादक

राष्ट्रभारती

मोहनलाल भट्ट
हृषिकेश शर्मा

सस्ती, सुन्दर, साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका । इस पत्रिका को, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है । ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखा-चित्र और शब्दचित्र । बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, उर्दू, तामिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं ।

वार्षिक चन्दा ६) रुपए । नमूने की प्रति १० आने मात्र।

ग्राहक बनाने वालों को विशेष सुविधा दी जाएगी

पता : व्यवस्थापक,
'राष्ट्रभारती' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
पो० हिन्दी नगर, वर्धा (मध्य प्रदेश)

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र

卐

दर्शन और मनोविज्ञान की
आधुनिक प्रवृत्तियों पर
प्रकाश डालनेवाला
हिन्दी में अपने ढङ्ग का
अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए ।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ सिद्धगिरि, बनारस

जीवन साहित्य

हिन्दी के उन मासिक पत्रों में से है जो

१. लोक रुचि को नीचे नहीं, ऊपर ले जाते हैं,
२. मानव को मानव से लड़ाते नहीं, मिलाते हैं,
३. सच्ची और स्थायी शान्ति को असंभव नहीं, संभव बनाते हैं,
४. आर्थिक लाभ के आगे झुकते नहीं, सेवा के कठोर पथ पर चलते हैं,

जीवन साहित्य की सात्विक सामग्री को छोटे बड़े, स्त्री-बच्चे सब निःसंकोच पढ़ सकते हैं । उसके विशेषांक तो एक से एक बढ़ कर होते हैं ।

जीवन साहित्य विज्ञापन नहीं देता । केवल ग्राहकों के भरोसे चलता है । ऐसे पत्र के ग्राहक बनने का अर्थ होता है राष्ट्र की सेवा में योग देना ।

वार्षिक शुल्क के ४) रु. भेज कर ग्राहक बन जाइए ।

ग्राहक बनने पर मण्डल की पुस्तकों पर
आपको कमीशन पाने की भी सुविधा हो जाएगी ।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

'अजन्ता'
की
परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद-द.

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर
इन्स्टीट्यूट आफ एशियन स्टडीज़, हैदराबाद-द.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुकर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल आफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

'अजन्ता' की पुरानी फ़ाइलें जिल्द बँध कर तैयार हो गई हैं

●

'अजन्ता' का प्रकाशन अक्टोबर १९४६ से आरम्भ हुआ। विगत पाँच वर्षों में 'अजन्ता' ने हिन्दी साहित्य के भण्डार को बहुमूल्य रचनाओं से भरा है। 'अजन्ता' के अङ्क इन वर्षों में हिन्दी साहित्य की प्रगति को जानने के लिए संग्रहणीय हैं।

जिल्द में संगृहीत अङ्कों का वास्तविक मूल्य ही रखा गया है। ज़िल्द और डाक-व्यय मुफ्त। निजी और सार्वजनिक पुस्तकालय के लिए शीघ्र आर्डर भेजिए।

'अजन्ता', हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली, स्टेशन रोड, :: हैदराबाद-दक्षिण.

76441

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६ जून १९५४ अङ्क ६

सम्पादक
वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

प्रवन्ध सम्पादक
हरिकृष्ण पुरोहित एम. ए.

संचालक
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के
शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

तार : **हिन्दी**

फोन : ५४५

अनुक्रम

कैदी सरदार का गीत
योहन वुल्फगाङ्ग गेटे
अनु० प्रेमकिशोर १

तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या
विद्यावती मिश्र ५

आँखमिचौनी
रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु० राजेन्द्र किशोर ६

अपनी धरती से प्यार अधिक
दीप्ति ७

ग़ज़ल
शम्भुनाथ 'शेष' ८

टॉलस्टाय की कला
स्टीफ़न ज़्विग
अनु० प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी ९

फ्रेञ्च कविता की वर्तमान प्रगति
गौरीशंकर ओझा १८

'शकुन्तला' के जर्मन अनुवाद
प्रेमकिशोर २१

मेरी यूरोप यात्रा के संस्मरण
काशीनाथ सीताराम वैद्य २५

अमर वैष्णव कवि चण्डीदास
जयन्त प्रसाद बागची २९

अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म का स्वरूप
लादूराम जोशी ३७

तमिल कहावतें
कु० वनिता नटराज ४१

नेपाली साहित्य की भूमिका
राजेश्वर देवकोटा ४२

मनोविश्लेषणवादी समीक्षा के सिद्धान्त
रवीन्द्र सहाय वर्मा, एम. ए., डी. फिल. ४५

कबीर और चक्रधर का तुलनात्मक अध्ययन
प्रभाकर माचवे ४८

संस्कृत के महान् पंडित सूर्यदेव
वंशीधर विद्यालङ्कार ५

अक्क महादेवी
एम० एस० कृष्णमूर्ति ५६

फ़ौज का सिपाही (रेखा चित्र)
हर्षनाथ श्रीवास्तव ६१

कला—चर्चा
विश्वनाथ मुखर्जी ६३

चिट्ठी-पत्री
रामचन्द्र वर्मा, राममूर्ति 'रेणु' ६५

नीर-क्षीर
हिन्दुस्तान की कहानी : मुल्कराज आनन्द, भारत दुर्दशा : स० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी साहित्य और साहित्यकार : श्री सुधांशु पाण्डेय, मैंने कहा : गोपालप्रसाद व्यास, ज़िन्दगी मुसकराई : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' स्तालिन : राहुल सांकृत्यायन, चाबुक : विनायकराव कोरटकर विद्यालङ्कार। ६७

सामयिक
(१) हो चि मिन्ह
(२) चीनी लिपि का उद्गम और विकास
(३) उपन्यासकारों की समस्याएँ
(४) चीन की समृद्ध लोककलाएँ और कारीगरी। ७

सम्पादकीय
वंशीधर विद्यालङ्कार ७

चित्र

विश्राम : चित्रकार श्रीमती फ्रेनी बहमन शाह
श्वेता : " " "

वार्षिक मूल्य ६) रु०

एक अङ्क का १)

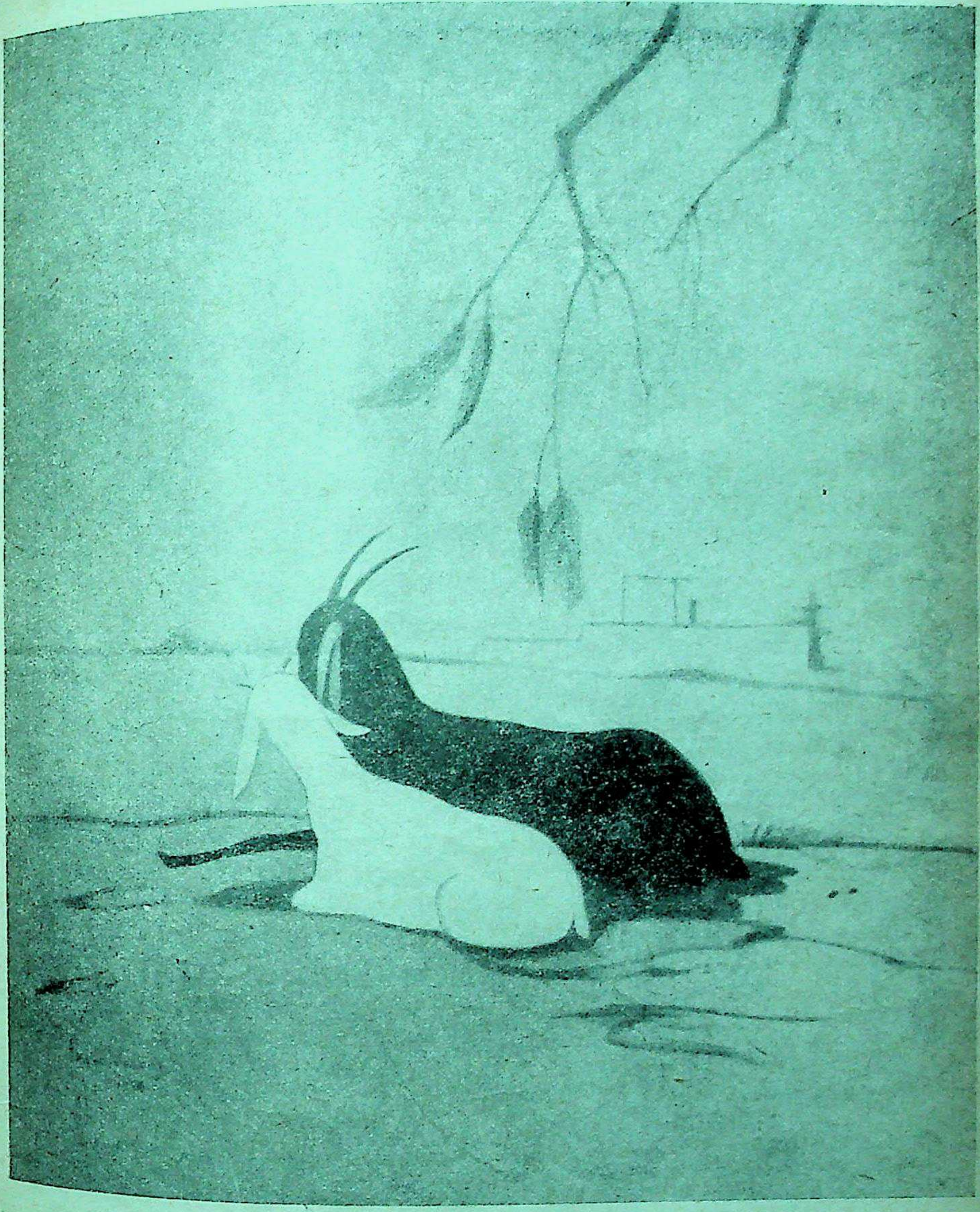

विश्राम

चित्रकार : श्रीमती फ्रेनी बहमनशाह
हैदराबाद

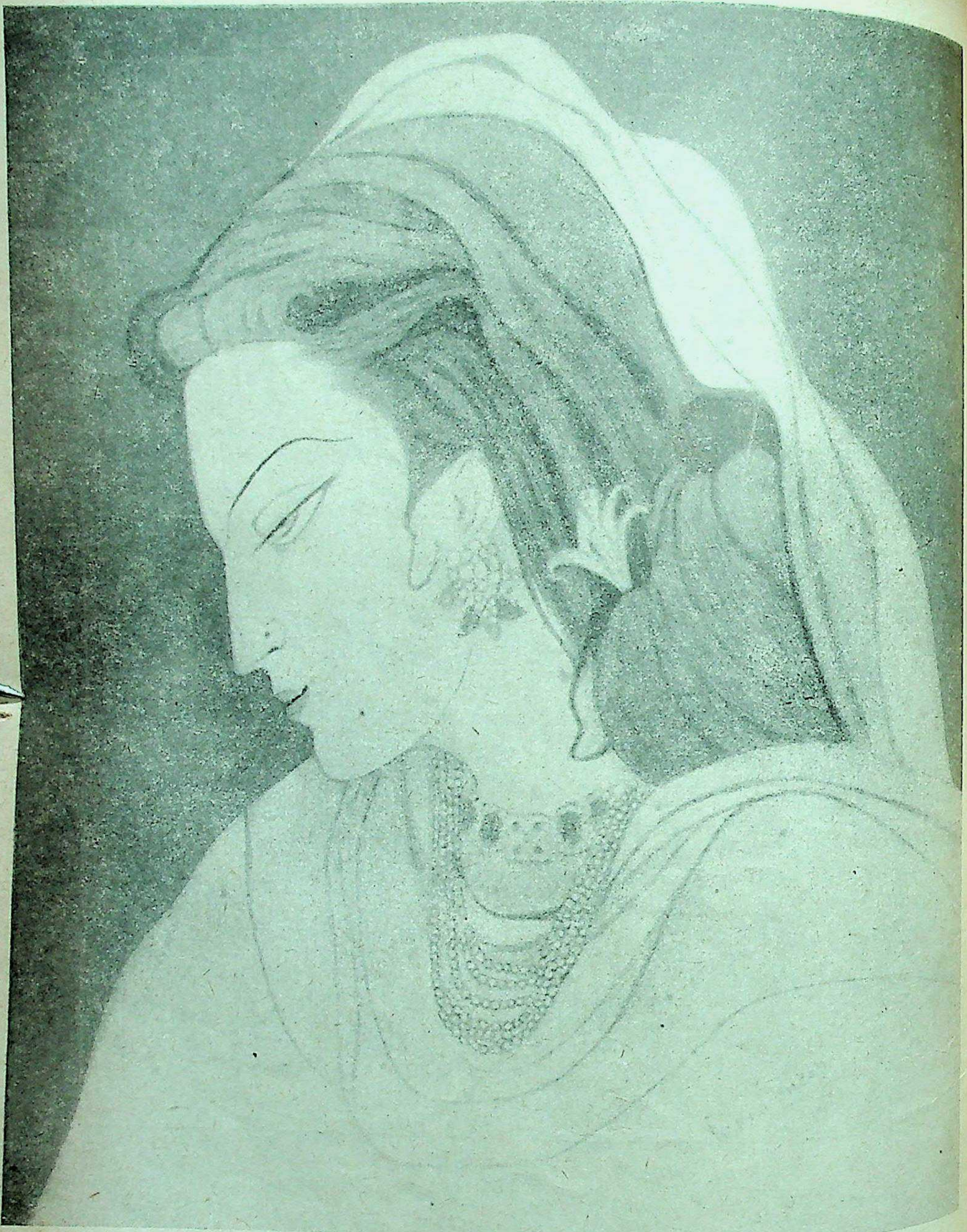

श्वेता

चित्रकार : श्रीमती फ्रेनी बहमनशाह
हैदराबाद

वर्ष ६ जून १९५४ अङ्क ६

एक जर्मन कविता
मूल जर्मन से

अद्भुत पुष्प

सन् १७९९ में गेटे स्विट्ज़रलैण्ड में भ्रमण कर रहा था, वहाँ उसने शूदी के समाचार-पत्र में पढ़ा कि जौरिख के शासकों ने किसी योहन ग्राफ फ़ॉन हाब्सबुर्ग-रप्पेर्सविले नामक व्यक्ति को राज्य-विरोधी षड्यन्त्र के अभियोग में क़ैद कर रखा है और उसने एक कविता बनाई है जिसके बोल हैं : 'एक नीली कली को पहचानता हूँ' (ईख वैज़ेऐन ब्लौएस ब्लॉमलेन)। केवल इसी पंक्ति के सहारे गेटे ने अपने इस विश्व-विख्यात गीत की रचना की है।

क़ैदी सरदार का गीत

सरदार : एक अद्भुत कली को मैं जानता हूँ
और उसको आज भी मैं चाहता हूँ;
चाहता हूँ आज जाकर फिर उसे मैं देख लूं,
किन्तु मैं हूँ क़ैद
इसका दर्द मुझको कम नहीं है;
क्योंकि जब आज़ाद था, मैं देखने उसको गया,

वह सदा मेरे निकट ही खिला करती
दुर्ग की प्राचीर कितने ढाल पर है
दृष्टि अपनी जब यहाँ से फेंकता हूँ,
क़िले के इस बुर्ज़ से,
तो आँख भी उस तक पहुँच सकती नहीं;
जा रहा है तोड़ने उसको वहाँ, मैं देखता हूँ,
दास होगा या कोई सरदार होगा,
किन्तु उसको था निभाना प्रेम मेरा

गुलाब : मैं मधुर विकसित, यहाँ इन जालियों के तले,
मैंने सुना तेरा कथन
ठीक है, लेकिन ग़रीबी से घिरा सरदार तू,
कह रहा था बात मेरी, सच !
दाद दूँ मैं, समझ तेरी है बड़ी,
वास्तव में फूल की रानी सदा
बस चुकी है हृदय में तेरे निकट

सरदार : इस हरी-सी ओढ़नी में झाँकती नीलाभ छाया
वह सदा तेरी प्रतिष्ठा की प्रतीक;
इसलिए ही युवतियों की कामना तेरे लिए,
स्वर्ण औ' बहुमूल्य आभूषण सदृश
और तुझसे बनी माला मधुरतम आकृतियों में
लगा देती चार चाँद;
किन्तु तू ही बस नहीं है पुष्प ऐसा,
पूजता हूँ मूक-स्वर में मैं जिसे

कुमुदिनी : देख कर निज मान्यता है गर्व-मस्तक यह गुलाब,
और अपनी महत्ता के लिए कितना मिट रहा;
किन्तु कोई प्रेयसी गहने सजाने के लिए
कुमुदिनी की ही प्रशंसा कर सकेगी
धड़कनें जिसके हृदय में दबी, सीने में पली हैं,

१६५४

और जिसको सब समझते हैं पवित्र, मेरी तरह,
वह मुझे सर्वोच्च पद पर विभूषित करता रहा है

सरदार : और मैं दावा करूँ, मैं शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ,
क्योंकि दोषों से अछूता;
मगर फिर भी क़ैद हूँ,
औ' सह रहा हूँ यातनाएँ—बस अकेला
और तू मेरे निकट सुकुमार, निर्मल रूप जैसी
उन अनेकों युवतियों के झुण्ड में से :
किन्तु फिर भी तू नहीं मेरी चहेती—
और ही कोई, जिसे मैं जानता हूँ

गुलनार : और शायद मैं वही हूँ—
मैं यहाँ इस जेल के उद्यान में;
मुझे कितनी नीठ से वह वृद्ध माली
सींचता है, देखता है
पत्तियों से भरे उस सुन्दर मुकुट में,
और अपनी ज़िन्दगी की यह महकती कान्ति लेकर
इन सहस्रों पुष्प-दल में हूँ विभूषित

सरदार : तू तिरस्कृत तो नहीं, सब जानते हैं,
वस्तुतः उद्यान का तू प्राण है :
अभी तो तू घाम में थी जगमगाती,
अभी उसने घाम से तुझको बचाया;
किन्तु जिसको देख कर सरदार सुख अनुभव करें,
वह नहीं है निहित बिखरी कान्ति में,
अरे, वह तो एक ही है शान्त पुष्प

बठनी : मैं खड़ी हूँ यहाँ नतमस्तक, छिपी,
चाहती हूँ मैं न कुछ अपनी कहूँ;

किन्तु फिर भी मैं कहूँगी बात अपनी, सरल, सीधी,
मौन मेरा तोड़ता है बाँध
सत्पुरुष ! यदि मैं वही हूँ
(जिसे बस तू चाहता है)
तो मुझे है दुःख अतिशय,
मैं न गर्दन उठा पाई
भेजने निज गन्ध तुझ तक

सरदार : नहीं, मैंने सदा तेरा मान चाहा—ढेर सारा :
वस्तुतः सुकुमार तू,
औ' गन्ध तेरी मधुरतर है ;
किन्तु इस उद्विग्न दुख में और कुछ मैं चाहता हूँ
मैं बताता हूँ अभी यह बात भी :
यहाँ, इस चट्टान की रूखी कठिन ऊँचाइयों पर,
मिल नहीं सकती अनोखी कली वह
किन्तु नीचे, उस जलाशय के किनारे,
है विहरती वहाँ रानी इस धरा की, सत्य-सुन्दर,
और मेरी मुक्ति की शुभ कामना ले
भर रही है आह अपनी साँस में
और उन नीलाभ-पुष्पों से अलंकृत
सदा मुझसे कहा करती : भूल-मत-जाना-मुझे !
दूर है वह, किन्तु उसकी याद मेरे साथ है
और देखो, प्रेम की है शक्ति ऐसी दूर पर भी,
दो जनों में प्यार सच्चा चाहिए :
तभी तो मैं क़ैद की इस रात में भी
आज तक जीवित पड़ा हूँ
और जब ये धड़कनें चुक जाएँगी,
बुदबुदाऊँगा यही केवल : मुझे-मत-भूल-जाना !
इस तरह ही ज़िन्दगी का दौर फिर चलता रहेगा

—योहन वुल्फगाङ्ग गेटे
अनु० : प्रेमकिशोर

ऐत्मादपुर, आगरा (उ० प्र०)

१९५४

तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या !

स्वीकृति का उठता प्रश्न कि जब फल की इच्छा
होती मन में तीव्र, प्राप्ति की अभिलाषा
पर मुझको विश्वास प्राण का यह चातक
रहा सदा से और रहेगा चिर प्यासा
बस एक याचना की थी तुम्हें बुलाने को, तुमने वह अंगीकार नहीं की तो भी क्या ?
तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या ?

यह मेरे श्रद्धा सुमन न मुरझाने वाले
सिंचित करता है आत्म समर्पण का अमृत
हैं अर्चन के उपकरण दूसरे यहाँ नहीं
प्रतिभा है, मैं हूँ, है चरणों में मस्तक नत
मैं रही बुलाती तुम्हें अकेलापन न खले, सार्थक वह करुण पुकार नहीं की तो भी क्या ?
तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या ?

निष्ठुरता मैंने कभी किसी से नहीं कही
है सुखद निराशा से आशा की क्षीण किरण
पाषाण सदृश दृढ़ रहना देव तुम्हारी हठ
सरिता बन युग-युग तक बहना है मेरा प्रण
तुमने उसमें अपने पद-पद्म छुआ करके, सुरसरि-सी पावन धार नहीं की तो भी क्या ?
तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या ?

बशीरतगंज,
लखनऊ

—विद्यावती मिश्र

आंखमिचौनी

'शिशु' संग्रह के 'लूकोचूरि' नामक कविता का अनुवाद

मैं यदि दुष्टता से
चम्पा के गाछ में चम्पा बन कर फूटता हूँ,
भोर के समय माँ री, डाल पर
नरम पत्तों पर लोट पोट करता हूँ,

तब तुम मुझ से हार जाती हो,
उस समय क्या माँ, मुझे पहचान पाती हो ?
तुम पुकारती हो—'बेटा कहाँ है रे ?'
मैं केवल हँसता हूँ मौन धरे

जिस समय तुम जिस काम में लगी रहोगी
मैं सब आँखों से देखता रहूँगा
स्नान करके, चम्पा तले होकर
आओगी तुम पीठ पर केश फैला कर—

यहीं से होकर तुम पूजा-घर में जाओगी,
दूर से तुम फूल की गन्ध पाओगी
उस समय तुम यह समझ नहीं पाओगी
तुम्हारे बेटे के शरीर से गन्ध आती है
दोपहर को तुम महाभारत हाथ में लेकर
बैठोगी जब सबके खा लेने पर,

गाछ की छाया घर के जंगले से
तुम्हारी पीठ और तुम्हारी गोद में आकर पड़ेगी
मैं- अपनी नन्ही-सी छाया
तुम्हारी पुस्तक पर लाकर झुलाऊँगा
उस समय तुम यह नहीं समझ पाओगी
तुम्हारी आखों में तुम्हारे बेटे की छाया पड़ रही है

सन्ध्या समय प्रदीप जला कर
जब तुम जाओगी बथानी में
तब मैं फूलों का खेल खेल कर
ढुप् से माँ, धरती पर झर पड़ूँगा

फिर मैं तुम्हारा बेटा बनूँगा,
'कहानी कहो' तुम से जाकर कहूँगा,
तुम कहोगी—"दुष्ट, कहाँ था ?"
मैं कहूँगा—"नहीं बताऊँगा"

३, पोस्ट ग्रेजुएट होस्टल,
पटना (बिहार)

मूल : श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु : राजेन्द्र किशोर

१९५४

अपनी धरती से प्यार अधिक !

देवों की नगरी से मुझको
अपनी धरती से प्यार अधिक !

सुनती हूँ, उस आभापुर में
मुसकाता है चिर उजियारा,
उसकी स्वर्णिम सीमाओं से
निर्वासित सा है अँधियारा,
जब तिमिर नहीं, तो शशि-तारे
कैसे नभ में होते होंगे,
फिर कैसे मन के गीत वहाँ
अपनी सुध-बुध खोते होंगे ?

सुनती हूँ, चिर मधुमास वहाँ
अक्षय मधुमयता ले बसता,
पतझर की काली छाया से
उन्मुक्त, सदा जी भर हँसता,
लेकिन पतझर की पीर बिना
मधुवेला में वह तृप्ति कहाँ ?
मुझको लगता, होगा अपूर्ण
पतझर-विहीन मधुमास वहाँ !

उन दिव्य त्रिदेवों से प्रियतर
मुझको अलि ! अपने राम-कृष्ण,
इक गान्धी के समकक्ष नहीं
सच पूछो शत-शत इन्द्र-वरुण;
संघर्षों में तप तप दिपती
मानवता की आभा अपनी,
उस मुक्ति एक-रस से रुचिकर
परिवर्तन की यह रंगीनी !

मिट मिट कर बनती सुन्दरतर
सखि, मेरी यह क्षण भंगुरता,
उस अमर अमरता से मुझको
निज नश्वरता से प्यार अधिक !

लखनऊ

—'दीप्ति'

गज़ल

उन अँखड़ियों का पा के इशारा कभी-कभी !
बीते दिनों को हमने पुकारा कभी-कभी !!

विश्वास का प्रभाव है, विश्वास की प्रभा,
मँझधार बन गई है किनारा कभी-कभी !

जाती हुई सी रात का गाता हुआ समय;
आँखों से बोलता है नज़ारा कभी-कभी !

दुविधा-तिमिर में रश्मि-सी सुधि यों उमग उठी;
जैसे गगन में, भोर का तारा कभी-कभी !

साधन है स्वल्प तो भी, बहुत है अभाव में;
तिनका है डूबते का सहारा कभी-कभी !

धरती का अश्रु व्यर्थ ही जाता नहीं सदा;
आकाश का बना है वह तारा कभी-कभी !

आया जो ध्यान फूल का, हिय-वन महक उठा;
देती है कल्पना भी सहारा कभी-कभी !!

चूनामंडी,
नई दिल्ली

—शम्भुनाथ

टॉलस्टाय की कला

"सृजन कर्म का आनन्द ही वास्तविक आनन्द है। आदमी किसी भी वस्तु का सृजन करें, पेंसिल, जूता, रोटी, बच्चे अर्थात् मानव। अन्य कोई भी आनन्द विशुद्ध नहीं है जिसमें चिन्ता, भय, कष्ट, आत्मवेदना या लज्जा का सम्मिश्रण न हो।"

(टॉलस्टाय के एक पत्र से)

किसी भी कलाकृति को श्रेष्ठ पद नहीं मिलता यदि उस पर मीमांसा करनेवाले यह न भूल जाएँ कि यह कलाकृति है और उसे विशुद्ध आवरणहीन सत्य न समझने लगें। टॉलस्टाय की कृतियाँ हमारे मन में प्रायः इसी महान् भ्रम की भावना पैदा करती हैं। वे एकदम वास्तविक प्रतीत होती हैं और हम यह भूल जाते हैं कि वे कहानी मात्र हैं और सारे पात्र काल्पनिक हैं। जब हम उनका अध्ययन करते हैं तो ऐसा लगता है मानों हम किसी वातायन में से वास्तविकता के संसार में झाँक रहे हैं।

यदि सभी कलाकार टॉलस्टाय की ही भाँति होते तो हम बड़ी आसानी से मान लेते कि कला बिलकुल सरल चीज़ है और कलाकार की ईमानदारी एक स्वतः सिद्ध गुण है, तथा जिसे हम कल्पनापूर्ण कृति कहते हैं, वह केवल यथार्थ का चित्रण है, ज्यों का त्यों लिपि परिवर्त्तन मात्र है। तब हम यह समझ लेते कि लेखक में (टॉलस्टाय के ही शब्दों में) केवल, "निषेधात्मक गुण होना चाहिए—वह झूठा न हो।" उनकी कृतियों में प्राकृतिक दृश्य की भांति परिपूर्णता है, सरल स्वाभाविकता है और प्रकृति के समान ही वे जीवन और रंगों से भरी हुई हैं। कवि सुलभ उन्माद, उल्लास, जगमगाते हुए सपने, स्वच्छन्द और तर्क बंधनहीन कल्पनाएँ, ये सब जो कलाकार के मूल तत्त्व हैं, मानो टॉलस्टाय की कृतियों में हैं ही नहीं। यह प्रतीत होता है कि उन्हें इनकी आवश्यकता भी नहीं है। उनकी कृतियों में कोई मद्योन्मत्त देव नहीं बल्कि एक सही दिमाग और दुरुस्त होश-हवास वाला मनुष्य ही तथ्यों को देखता, लिखता और आसानी से यथार्थ की प्रतिलिपि अंकित करता दिखाई देता है। इस प्रकार, हम उनकी कार्यप्रणाली का रूप अपने मन में निर्धारित करते हैं।

यहाँ इस कलाकार के कौशल ने हमें भुलावा दे दिया है क्योंकि सत्य से अधिक कठिन और क्या है? वास्तविकना और सरलता से भी अधिक दुस्साध्य और क्या हो सकता है? उनकी कृतियों की पाण्डुलिपियों से पता चलता है कि टॉलस्टाय आसानी से नहीं लिख लेते थे। वे सबसे अधिक श्रमशील लेखकों में से थे। उनके साहित्यिक भित्ति-चित्र लाखों छोटे छोटे रंगीन टुकड़ों को मिला कर बनते थे; असंख्य सूक्ष्म कणों को संवीक्षण के बाद सन्निविष्ट करके उनका निर्माण होता था। जो लम्बी चौड़ी, मोटी रूप-रेखाएँ हमें मामूली तौर पर खिंची दिखाई देती हैं वे वास्तव में उस कलाकार की कड़ी मेहनत का फल हैं जो चीज़ों को सरसरी तौर पर कल्पना में नहीं देखता बल्कि धीरे धीरे धैर्यपूर्वक मूर्त्तरूप में देखता है। जर्मनी के पुराने चित्रकारों की भांति उनके चित्र धीरे धीरे क्रम से बनते थे। पहले सतह तैयार की जाती थी; फिर बाहरी रेखाएँ बड़े कौशल से खींची जाती थीं, इसके बाद रंगों का योग दिया जाता था। इसके पहले के वे कभी अपनी महान् कथाओं में प्राण प्रतिष्ठा द्वारा जगमगाहट पैदा नहीं करते थे। "युद्ध और शांति" जो लगभग दो हज़ार पृष्ठों का एक महान् ग्रन्थ है, कुल मिला कर सात बार लिखा गया था। इस ग्रन्थ की तैयारी में तत्सम्बन्धी नोटों, प्रसंगों और संदर्भों से बड़े बड़े संदूक भर गए थे। प्रत्येक बारीकी की सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाप तौल की गई थी। बोरोदिशे के युद्ध का सही वर्णन करने के लिए टॉलस्टाय दो दिन तक बराबर घोड़े की पीठ पर हाथ में नक्शा लिए घूमते रहे थे। इस युद्ध से जीवित लौटे हुए लोगों से भेंट करने के लिए उन्होंने दूर-दूर की यात्रा की जिससे उन्हें सजीव चित्रण की सामग्री मिल सके। प्रकाशित पुस्तकों और बड़े-बड़े पुस्तकालयों की खोज से ही संतुष्ट न होकर उन्होंने बड़े बड़े परिवारों के बुज़ुर्गों को लिखा और उनसे

तत्सम्बन्धी पत्रादि तथा अन्य सामग्री माँगी जिससे सत्य की झलक मिल सके। वर्षों तक दिन प्रनिदिन की निरंतर मेहनत के बाद मानो पारे के असंख्य कणों को चुन चुन कर एक सुन्दर सुरूप गोला उन्होंने तैयार किया। जब तक उनकी यह सत्य की खोज समाप्त नहीं हुई तब तक उन्होंने अपना शोधन कार्य प्रारम्भ नहीं किया। सिद्धि-प्राप्ति को लक्ष्य मान कर चलने वाले अन्य कलाकारों की भांति टॉलस्टाय भी अपने गद्य को घिसने, माँजने और ठोकठाक कर चमकाने में, कम सतर्क नहीं थे। वृहदाकार ग्रन्थ में एक भी अनर्गल वाक्य, एक भी असंगत विशेषण उनको इतना खटकता था कि कभी कभी प्रूफ़ देख कर भेजने के बाद भी वे उसमें परिवर्त्तन के लिए तार देकर प्रेस रुकवा देते थे। पहली छपाई उनके दिमाग की भट्टी में फिर से गला कर ढाली जाती थी। यदि प्रयासपूर्ण कला नाम की कोई चीज़ होती है तो यह विशेषण टॉलस्टाय की नैसर्गिक, सरल स्वाभाविक और ऊपर से सहज दिखाई देनेवाली कला पर चरितार्थ होता है। सात वर्ष तक वे आठ-दस घंटे रोज़ परिश्रम करते रहे। फिर क्या आश्चर्य कि इतने हृष्ट-पुष्ट होते हुए भी प्रत्येक उपन्यास को समाप्त करने पर उनका मनो-स्वास्थ्य गिर जाता था? उनकी पाचन शक्ति काम करना बन्द कर देती थी; ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल हो जाती थीं और अभी अभी जिस महामानव ने एक महान् ग्रन्थ की रचना की है उस पर गहरी निराशा और निष्फलता की भावना एक रोग की हद तक छा जाती थी! तब उनका एकमात्र सहारा एकांतवास होता था; उन्हें सभ्यता से बहुत दूर चला जाना पड़ता था। वे एकांत में झोपड़ी में निवास और सरल भोजन पर निर्वाह करते थे तब कहीं अपनी सामान्य दशा को प्राप्त कर पाते थे। होमर के महाकाव्यों के समान महान् ग्रन्थों का यह लेखक, यह कथाकार, जिसकी कथाओं का मूल गुण स्वाभाविकता है; स्फटिक निर्मलता है, जिनमें जन भावनाएँ अपने आदिम रूप में विद्यमान हैं वह वास्तव में अत्यन्त आत्मालोचक और आत्म पीड़ित कलाकार है (और कलाकार का क्या अन्य कोई प्रकार भी होता है?) पर सबसे बड़ी चीज यह है कि इस निर्माण कार्य की थकान की कोई भी छाप उनकी कृति पर नहीं दिखाई देती। हमारे युग की होते हुए भी वह युग-बन्धन के परे है; यह गद्य जिसका मूलाधार "कला का गोपन ही वास्तविक कला" वाला सिद्धान्त है, ऐसा प्रतीत होता है मानो वह अनादि हो, स्वयंभू हो, प्रकृति के समान शाश्वत हो! किसी भी काल के वह युग विशेष की कृति नहीं मालूम पड़ती। यदि उनका कोई उपन्यास संयोगवश आपके हाथ पड़ जाए और बिना लेखक का नाम जाने उसका प्रथम बार पाठ करें तो आप यह अन्दाज़ लगाने में झिझकेंगे कि यह किस दशक या शताब्दी में लिखा गया। इसीलिए मैं उनकी कृतियों को 'युगातीत' का विशेषण देता हूँ। "तीन वृद्ध" और "आदमी को कितनी भूमि की आवश्यकता है" आदि जनकथाएँ मानो मुद्रण कला के आविष्कार के हज़ारों वर्ष पहले लिखी गई हों, उस ज़माने में जब कि वर्णमाला का निर्माण हुआ ही हो! "इवान इलिच की मृत्यु" और "पोलिकुश्का" उन्नीसवीं सदी की कृतियाँ भी हो सकती हैं, बीसवीं की भी और तीसवीं की भी क्योंकि इनमें उन्होंने स्टैंडल, रूसो और दास्तोवस्की की भाँति समकालीन विचारों को अभिव्यक्त नहीं किया, बल्कि उस आदि मन को जो अपरिवर्त्तनशील है, शाश्वत है, आदिम भावनाओं, आदि चिन्ता, और एकाकीपन को जिसकी अनुभूति मानव को अनन्त से अपनी तुलना करने पर होती है, जो सिद्ध समय के बंधन से अपने आपको मुक्त कर लेती है। टॉलस्टाय को कभी भी कहानी कहना सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ी और न कभी उनकी इस कला का तेज क्षीण हुआ। इस मामले में उनकी प्रतिभा नैसर्गिक थी; वह अक्षय थी, न उसमें विकृति होती और न सुधार। "कज्ज़ाक" के दृश्य वर्णन को लीजिए जिसे लेखक ने चौबीस वर्ष की आयु में लिखा था और उनके 'रिसरैक्शन' के ईस्टरप्रात के अतुलनीय ओजस्वी वर्णन से इसकी तुलना कीजिए, जिसे साठ वर्ष की आयु में लिखा था। एक पूरी तूफ़ानी पीढ़ी का अन्तर है, फिर भी दोनों प्रकृति के प्रभाव से पूर्ण हैं, दोनों ही समान रूप से इंद्रियगत आनन्द से ओतप्रोत हैं।

इस प्रकार उनकी कृतियाँ एक सम्पूर्णत्व को प्राप्त हैं, जिससे वे व्यष्टि-क्षेत्र से ऊपर उठ कर कालोत्तर हो जाती हैं; इसी कारण हमें उनमें कलाकार के व्यक्तित्व का अस्तित्व नहीं मिलता। हम उन्हें गल्पकार नहीं मानते. वे तो यथार्थ लेखा-जोखा रखते हैं। वास्तव में हम उन्हें 'कल्पनाशील लेखक' मानने में हिचकिचाते हैं क्योंकि इस संज्ञा से उन लोगों का भान होता है जो परिवर्तन करते हैं, नए साँचे में ढालते हैं, एक नए प्रकार की दृष्टि

१६५४

करते हैं, जिसमें अपार्थिवता और चमत्कार का समावेश होता है। यह संज्ञा लागू होती है उन आत्मविभोर होनेवाले कलाकारों पर जो अपनी स्वप्निल मादकता में, अपनी अवर्णय अनुभूतियों को दिव्यवाणी में अभिव्यक्त करते हैं; यह लागू होती है उस स्वप्नदर्शी पर जो एक प्रतीक में अज्ञेय के दर्शन करता है, जो एक लय में ही निगूढ़ का रहस्य प्राप्त कर लेता है।

टॉलस्टाय इस श्रेणी के कलाकार नहीं हैं। वे "महा" मानव नहीं हैं बल्कि एकदम लौकिक हैं; अपार्थिव नहीं वरन् जो कुछ भी इस भूतल पर स्थित है उस सबके सार तत्त्व रूप हैं। वे कभी स्पर्श्य, दृश्य और ज्ञेय की सीमा के बाहर क़दम नहीं रखते। फिर भी इस सीमा के भीतर ही कितना पूर्णत्व दिखा देते हैं। उनमें कोई ऐन्द्रजालिक शक्ति नहीं है। उनके गुण साधारण हैं, केवल उनका घनत्व अधिक है। सामान्य जन की अपेक्षा उनका मस्तिष्क अधिक क्रियाशील है, उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ अधिक पैनी हैं। वे अपेक्षाकृत अधिक गहराई से देखते हैं, सुनते हैं, सूँघते हैं। उनकी स्पर्शानुभूति अत्यन्त कोमल है; उनकी स्मरणशक्ति अधिक विश्वसनीय और तर्कयुक्त है, उनकी विचारधारा अधिक तेज़, ग्राही और सूक्ष्म है। वे कभी भी सामान्य और असामान्य की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। इसलिए लोग उन्हें प्रतिभाशाली मानने में हिचकते हैं जब कि दास्तोवस्की को बड़ी आसानी से मान लेते हैं. द्रष्टा और संतों की भाँति उनकी कृति कभी भी अज्ञेय की दिव्य प्रेरणा द्वारा प्रेरित नहीं होती। इसीलिए वे इतने बोधगम्य हैं; इसीलिए आप उनकी बात इतनी आसानी से समझ लेते हैं। उनकी भूमि-सम्बद्ध कल्पना सामान्य जन के अनुभव के बाहर किसी रहस्य का उद्घाटन करने के लिए यथार्थ के बाहर उड़ान नहीं भरती। इसलिए उनकी कला गोचर है, ज्ञेय है, एकदम मानवीय है; वह दीप्त है और यथार्थ का यथेष्ट गहराई से चित्रण करती है।

टॉलस्टाय स्वप्न के संसार का निर्माण नहीं करते; वे यथार्थ का वर्णन करते हैं। फलतः जब वे कहानी कहते हैं तो लगता है मानो कलाकार नहीं बल्कि तथ्य स्वयं अपनी कथा कह रहे हों। उनकी दुनियाँ में से आदमी और जानवर सब ऐसे निकल पड़ते हैं जैसे अपने सुखप्रद निवास स्थान से निकल रहे हों, अपने अपने स्वाभाविक लय के साथ। हमें यह महसूस नहीं होता कि पीछे से कोई अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्ति उन्हें चला रहा है, ज़ोर से चाबुक मार कर हाँक रहा है जिससे वे चीख़ते चिल्लाते हुए क्रोध में फूट पड़ते हैं। दास्तोवस्की अपने पात्रों को इसी भाँति हाँकता है। लेकिन जब टॉलस्टाय कहानी कहते हैं तो हमें उनकी श्वास नहीं सुनाई देती। वे ऐसे कहते हैं जैसे कोई पहाड़ी किसान अपनी जन्म-भूमि की पहाड़ियों पर चढ़ता है, धीरे धीरे, सधे क़दमों से, बिना भागे, बिना अधीरता के, बिना थकान और कमज़ोरी के; उसके हृदय की धड़कन कभी इतनी तेज़ नहीं होती कि उसके प्रवाहपूर्ण स्वर में बाधा डाले। इसीलिए उनके साहचर्य में हम अपना संतुलन नहीं खोते। दास्तोवस्की हमें आनन्द की चकरानेवाली ऊँचाई तक ले जाता है और एकाएक वेदना के अतल गर्त में ढकेल देता है—और फिर एक बार अपने साथ कल्पना के स्वप्नलोक में उड़ा ले जाता है। लेकिन टॉलस्टाय के साथ हम विज्ञान के विद्यार्थी की भाँति सजग रहते हैं; हम लड़खड़ाते हैं, शंका करते हैं, थकते हैं, लेकिन उनके मज़बूत हाथ का सहारा लिए हुए क्रम से उनके महान् पर्वत पर चढ़ते जाते हैं; ज्यों ज्यों ऊपर पहुँचते हैं त्यों त्यों क्षितिज का विस्तार बढ़ता जाता है। घटनाचक्र धीरे-धीरे खुलता जाता है, धीरे-धीरे दृश्य साफ़ होता जाता है। किन्तु प्रत्येक घटना घड़ी के यंत्र की भाँति पूर्ण विश्वसनीयता के साथ अबाध गति से घटित होती है, ठीक उस प्रकार जिस प्रकार कि सूर्योदय के समय किसी पहाड़ी पर से समतल भूमि पर तिल-तिल करके ज्योति-प्रसार दिखाई देता है। टॉलस्टाय कहानी कहते हैं आसानी से, निर्लिप्त होकर, प्राचीन काल के महाकवियों की भाँति, भजनानन्दियों और स्तुति-गायकों की भाँति, प्राचीन इतिहासकारों की भाँति जिनमें अधीरता नहीं आ पाई थी, जब, प्रकृति का जीव के साथ ऐक्य था, जीव का जब चर और अचर, मानव, पशु, वनस्पति तथा पत्थर आदि श्रेणियों में बलात् वर्गीकरण नहीं हुआ था, जब महान् और तुच्छ सभी वस्तुएँ समान रूप से श्रद्धेय थीं और ब्रह्माग्नि-युक्त थीं। वे प्रत्येक वस्तु को समष्टि के दृष्टिकोण से देखते हैं—सब में मानव का ही स्वरूप उन्हें दिखाई देता है। उनके लिए आसन्न मृत्यु कुत्ते के शरीर की ऐंठन और उसकी कराह, तमग़ा और पद प्राप्त सेनानायक की मृत्यु, तथा जड़ खोखली हो जाने के कारण वायुवेग से गिरे हुए वृक्ष के पतन में कोई मतभेद नहीं है। सुन्दर और असुन्दर,

मनुष्य और पशु, निर्मल और अस्वच्छ, इन सब का वे कलाकार के दृष्टिकोण से विचार करते हैं। सब में वे समान रूप से आत्मा का दर्शन पाते हैं। चाहे इसको कहिए कि वे मानव का प्रकृतीकरण करते हैं अथवा प्रकृति का मानवीकरण, एक ही बात है। इसका फल यह होता है कि पार्थिव क्षेत्र में कुछ भी उनसे छिपा नहीं है। स्त्रियाँ प्रायः चकित होकर यह प्रश्न पूछतीं हैं कि आखिर यह आदमी किस प्रकार उनकी गूढ़तम और अकथ शारीरिक अनुभूतियों से इतना परिचित हो गया कि बच्चे को दूध पिलाने के लिए तैयार माता के स्तन के अन्दर का खिंचाव तनाव तथा प्रवाह और नाच में प्रथम बार अपनी बाहों का प्रदर्शन करनेवाली लड़की की मधुर सिहरन का ऐसा वर्णन कर सकता है मानों इस सब का उसने स्वयं अनुभव किया हो? यदि जानवर "अन्ना करैनिना" पढ़ सकते और उनमें वाक्शक्ति होती तो इतना ही आश्चर्य वे भी उनकी इस अलौकिक अन्तर्बुद्धि पर प्रकट करते जिसके कारण कि पक्षियों को देख कर शिकारी कुत्ते के मन में होनेवाली आकुलता और शिकार के समय घोड़े के मन में तेज़ दौड़ने की आतुरता को वे समझ लेते थे। जिन सब बातों को बड़े बड़े प्राणिशास्त्री तथा कीटशास्त्री काफ़ी अध्ययन के बाद जान पाते हैं, उन्हें टॉलस्टाय अपनी स्वाभाविक समझ से जान लेते हैं। किसी वस्तु पर उसकी विशेष प्रीति या अप्रीति का उनके पर्यवेक्षण पर असर नहीं पड़ता। उनके प्रेम में अनासक्ति है। सर्वथा न भ्रष्ट हो सकने के कारण वे नैपोलियन को उसके निम्नतम सिपाही से अधिक बड़ा मानव नहीं मानते; न इस सिपाही को उसके पीछे दौड़नेवाले कुत्ते से अधिक प्राणवान् मानते हैं, और न इस कुत्ते को ही उन पत्थरों से अधिक महत्वपूर्ण जिन पर वह दौड़ता है।

जो आदमी इतना देखता है और इतनी अच्छी तरह देखता है उसे मौलिक अविष्कार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जो कल्पनापूर्ण ढंग से देखता है उसे सृजनशील कल्पना की ज़रूरत नहीं होती। टॉलस्टाय ने अपना सारा जीवन अपनी इन्द्रियों के प्रयोग में और उनकी अनुभूतियों को इकट्ठा करने में बिताया था। यथार्थ के परे के संसार का स्वप्न वे नहीं देखते थे। उनकी कला कभी ऊपर से नहीं उतरती; वह तो गहराई तक, अन्तरतम भाग तक जाती थी। नाटज़ेल के प्रशंसनीय शब्दों में यह गहराई की वस्तुकला थी, ऊँचाई की नहीं। अपनी समस्त शक्तियों पर नियंत्रण रखते हुए वे कभी भी 'साधारण' के घेरे से बाहर 'चमत्कार' के संसार में नहीं जाते। यहाँ वे स्वप्नदर्शी दास्तोवस्की से एकदम विपरीत हैं। अपार्थिव कल्पना के क्षेत्र में हवाई महल बनाने की अपेक्षा वे सामान्य भूमि पर, जनसाधारण के बीच ही अपनी नींव रखते हैं। इसके अलावा मानव-क्षेत्र में भी टॉलस्टाय को असाधारण और रुग्ण 'टाइप' का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं थी और न शेक्सपियर और दास्तोवस्की की भांति देवता और जानवर के बीच की कल्पना की ही उन्हें ज़रूरत थी। वे यथार्थ की इतनी गहराई तक जाते हैं कि अत्यन्त साधारण किसान भी उन्हें रहस्यमय दिखाई देता है। गहराई तक जाने की क्षमता रखने वाले तीर की भांति किसी भी लक्ष्य से उनका काम चल जाता है—किसान, सिपाही, कुत्ता, घोड़ा चाहे जो हो। कोई मूल्यवान, दुष्प्राप्य सामग्री उन्हें नहीं चाहिए बल्कि पहले पहल जिस पर भी हाथ पड़ जाय उसी से उनका काम चल जाता है। फिर भी वे इन प्राणियों को अपूर्व आध्यात्मिकता प्रदान कर देते हैं! और यह वे उन्हें अलंकृत करके नहीं बल्कि उनके अन्तर का उद्घाटन करके करते हैं! उनकी सारी कलाकारिता सत्य के प्रदर्शन में है। सत्य के सूक्ष्म और तेज अस्त्र के सिवाय वे और कोई उपादान काम में नहीं लाते। लेकिन वे इस अस्त्र का इतनी शक्ति के साथ प्रयोग करते हैं, प्रत्येक घटना, प्रत्येक लक्ष्य में इतनी गहराई तक इसे पहुँचाते हैं कि हमें इस संसार के भीतर एक और संसार दिखाई देने लगता है, अन्तरात्मा की एक ऐसी खान जिसकी तह तक और कोई खनिक नहीं पहुँच सका है। टॉलस्टाय को अपने सृजन के लिए यथार्थ से प्रेरणा मिलती है, स्वप्न लोक से नहीं। मूर्तिकार की भांति उन्हें ढांचा बनाने के लिए मिट्टी और पत्थर ही चाहिए; संगीतकार की भांति वायु से उनका सृजन नहीं चल सकता। यह बात स्वभावानुकूल ही है कि टॉलस्टाय ने कभी कविता की एक पंक्ति भी नहीं लिखी। उनका, एक अति-यथार्थवादी का, कविता से ३ और ६ का सम्बन्ध था। उनकी किताबें केवल विशुद्ध सत्य की ही भाषा बोलती हैं अन्य कोई नहीं; यह उनकी परिसीमा है; किन्तु वे इस भाषा को अन्य किसी कल्पनाशील लेखक की किताबों की अपेक्षा अधिक पूर्णत्व के साथ बोलती हैं। यही उनकी महानता है। टॉलस्टाय के लिए सत्य और सुन्दर एक ही चीज़ हैं।

१२५४

इसीलिए टॉलस्टाय अन्य कलाकारों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्मदर्शी हैं, फिर भी 'द्रष्टा' नहीं हैं। वे सत्य का लेखा-जोखा करने में अद्वितीय हैं फिर भी सृजनशील कल्पना की क्षमता उनमें नहीं है। अपनी बात समझाने के लिए मैं इस बात को दुहराता हूँ। संसार का अनेक रूपों वाला बोधगम्य चित्र उपस्थित करने के महाकर्म में पाँच ज्ञानेंद्रियों के सिवाय और कोई उनका सहायक नहीं। ये इन्द्रियाँ अत्यन्त सूक्ष्म, चौकन्नी और पैनी हैं फिर भी स्थूल, यंत्रवत् और पार्थिव हैं। टॉलस्टाय की कोमल अनुभूतियाँ, दास्तोवस्की की भाँति स्नायुओं द्वारा या शैली और होल्डरलिन की भाँति स्वप्न द्वारा प्राप्त नहीं होतीं। उनके लिए तो समस्त इन्द्रियों का सहकर्म ही यथेष्ट है। उनकी कल्पना हम मधुमक्खियों के काम से कर सकते हैं जो अपने छत्ते से बाहर जा कर बारम्बार एक-एक रजकण लेकर लौटती हैं और इस प्रकार मधुरूपी कला का सृजन करती हैं अथवा दूसरी कल्पना यों कीजिए कि यह पक्षहीन कलाकार एक गंधी है जो अपनी प्रयोगशाला में सुगंधित पुष्पों से निरंतर, धैर्यपूर्वक इत्र निकाला करता है। टॉलस्टाय के लेखों की सरलता सदा लाखों सूक्ष्म पर्यवेक्षणों का फल हुआ करती है। यदि उन्हें किसी के मनोभावों को जानना है तो वे पहले अपनी विषय-वस्तु की शारीरिक आकृति के एक एक चिन्ह का अध्ययन करेंगे। डाक्टर की भाँति उनका निदान मरीज़ की विशेषताओं से प्रारम्भ होता है। उनके उपन्यास में तत्त्व-ग्रहण करने का महान् कार्य तब तक शुरू नहीं होता जब तक कि यह प्रारम्भिक परीक्षण समाप्त न हो जाए। वे अपने एक मित्र को लिखते हैं, : "आप कल्पना नहीं कर सकते कि जिस भूमि में मैं बीज बोना चाहता हूँ उसे तोड़ने और उसमें हल चलाने का काम कितना कठिन है। अपने प्रस्तावित ग्रन्थ में सम्भाव्य घटनाओं और पात्रों के भाग्य के बारे में बार बार विचार करना भयानक रूप से दुष्कर है। घटना-चक्र की हज़ारों सम्भावनाओं का जोड़ तोड़ लगाना और फिर इनमें से केवल एक को छाँटना बड़ा कठिन कार्य है।" और इसी तरीके से अनेक तथ्यों को इकट्ठा करके, उनको जोड़ कर संसृष्ट करना, इसी को बार बार दुहराना और प्रत्येक चरित्र का निर्माण करना जितना यंत्रवत् है उतना काल्पनिक नहीं है। असंख्य दानों को कूट पीस कर चूर्ण बनाना और उसमें से सूक्ष्मतिसूक्ष्म कणों को फिर से छाँट कर, धैर्यपूर्वक मिलाना पड़ता है; तब कहीं मन-अभीष्ट वस्तु (पात्र) का निर्माण होता है।

इस प्रकार टॉलस्टाय अपने पात्रों की शारीरिक विशेषताओं की हर एक बारीकी का अध्ययन करते हैं और एक-एक रेखा के वर्णन से मुख की आकृति बताते हैं; ओष्ठ और अधर का, उनकी विभिन्न दशा का अलग-अलग वर्णन करते हैं। विभिन्न मनोदशाओं में उनके कोनों की सिकुड़नों को भी वे ध्यान से देखते हैं। क्रोध या प्रसन्नता की अवस्था में व्यक्त होने वाली प्रत्येक झुर्री का बड़े कौशल से वर्णन करते हैं। फिर लेखक धीरे धीरे ओष्ठाधर का रंग चित्रित करता है, उनके आकार प्रकार और दृढ़ता के बारे में बताता है, उनके ऊपर स्थित मूछों पर भी उसका ध्यान जाता है। इस सबसे हमें पात्र के होठों की बनावट मिलती है। इसके बाद उनके संचालन का वर्णन मिलता है—पात्र की आवाज़ पर ओठों का और ओठों पर आवाज़ का क्या प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार नाक गाल, ठोड़ी, और बालों का वर्णन भी शरीर-शास्त्र की ऐसी विज्ञता से किया जाता है कि हम आश्चर्य-चकित हो जाते हैं; एक एक बात का सही और सूक्ष्म वर्णन! तत्पश्चात् कलाकार की प्रयोगशाला में सुनने, बोलने, देखने और हिलने-डोलने की क्रियाओं की नाप तोल होती है और संयोग होता है। ऐसा इसलिए कि प्रत्येक मुद्रा का दृष्टि से, दृष्टि का मुस्कराहट से, और मुस्कराहट का स्वर के उतार चढ़ाव से मेल होना ही चाहिए यदि सादी आकृति का साङ्गोपांग साम्य दिखाना है। इस कुल संवीक्षण में से लेखक वर्गफल या घनफल निकालता है। वे इन उपादानों को इस प्रकार छाँटते हैं कि केवल वही बचता है जो अत्यन्त आवश्यक है, बाक़ी अनावश्यक चीज़ों को अलग निकाल फेंका जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि प्रारम्भिक ढेर के विपरीत अन्त में बहुत ही सूक्ष्म परिणाम रह जाता है किन्तु यह सूक्ष्म परिणाम हमें किताब में बार-बार दिखाई देता है जिसका फल यह होता है कि कुछ समय बाद जब यह आकृति रंगमंच पर आती है तो पाठक के दिमाग़ में अपने आप उसकी विशेषताएँ घूम जाती हैं। कितने कुशल कारीगर हैं, टॉलस्टाय! ऊपर से देखने में लगता है मानो किसी चीज़ का लापरवाही से वर्णन कर रहे हैं, किन्तु वस्ताव में वे कितने सिद्धहस्त हैं! एक किताब ही चाहिए उनके इस तरीक़े को पूरी तरह से

दिखाने के लिए, और यह दिखाने के लिए कि उनके लेखन की प्रत्यक्ष कलाहीनता वास्तव में उनकी उस कला का फल है जिसके द्वारा असंख्य कणों को एकता के सूत्र में बाँध कर पात्रों का निर्माण होता है।

शरीर और इंद्रियों के तमाम आवश्यक तत्व प्राप्त होने के बाद ही टॉलस्टाय की प्रयोगशाला में निर्मित मानव साँस लेना, बोलना, जिन्दा रहना प्रारम्भ करता है। टॉलस्टाय की कृतियों में आत्मा, चर्म, स्नायु और माँसपेशियों के आवरण में वन्दिनी बन कर रहती है। अगोचरदर्शी दास्तोवस्की में यह व्यक्तीकरण एकदम विपरीत ढंग से होता है; वह आत्मा से प्रारम्भ होता है। दास्तोवस्की के लिए आत्मा मूल है और वही अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करती है; शरीर हलका-सा भूसा-चोकर है, एक आवरण मात्र जिसके भीतर से कोई ओजपूर्ण तत्व चमकता है। सुख के क्षणों में यह ज्योतित तत्व अपने आवरण को समाप्त कर देता है, अपने आपको स्वतंत्र करके भावनाओं के आकाश में विचरण करने लगता है, भावावेग में बह जाता है। किन्तु मनस्वी टॉलस्टाय के निकट (उस कलाकार के जो न कल्पना में उड़ता है और न स्वप्न लोक में विचरता है) आत्मा के पंख नहीं होते और न उसमें इतनी शक्ति ही होती है कि स्वतंत्रता की साँस ले सके। उनके निकट तो आत्मा शरीर के अन्दर बन्द रहती है गुरुत्वाकर्षण के अकाट्य नियम के अनुसार। इसीलिए उनके सर्वाधिक महत्त्वाकांक्षापूर्ण प्राणी तक परमात्मा की ओर उड़ान नहीं भरते, कभी पंख फैला कर इस पृथ्वी के घेरे के बाहर नहीं जाते। यदि कभी परिस्थितिवश पवित्रता और आत्मशुद्धि की सीढ़ी पर चढ़ना भी चाहते हैं, तो वे बड़ी कठिनाई से सीढ़ी दर सीढ़ी अपने हाड़ माँस का बोझ ढोते हुए ऐसा कर पाते हैं। आत्मा फिर से सीधी उड़ कर परमात्मा में लीन नहीं हो सकती; परिवर्तन के संधिकाल में उसे पृथ्वी पर ही रहना पड़ता है; गुरुत्वाकर्षण-नियम और आदि-पाप के फल का नियन्त्रण उसे सहना पड़ता है। टॉलस्टाय की कृतियों का दुःख का अंधकार इसी बात पर आधारित है कि वे शरीर को आत्मा के मुक़ाबले प्राथमिकता देते हैं। जब हम इस पक्षहीन हास्यहीन लेखक की कृतियों को पढ़ते हैं तो बड़ी वेदना के साथ बार-बार याद आता है कि हम मर्त्यलोक के वासी हैं, हमें अपने पैरों पर ही चलना है, हम 'स्थूल' के बन्धन से निस्तार नहीं पा सकते और जीवन के बीच भी हम सदा मृत्यु के मुख में हैं, अथाह शून्य के मुख में! हम यथार्थ के दास हैं और एक कुहरे में चल रहे हैं जिसका कहीं ओर नहीं छोर नहीं! तुर्गनेव ने टॉलस्टाय को गहरी अन्तर्दृष्टि के साथ लिखा था: "मैं आपके अन्दर अधिक आत्मिक स्वतंत्रता की कामना करता हूँ।" ठीक यही मनोकामना हमारी भी टॉलस्टाय के पात्रों के बारे में होती है। अधिक आत्मिक स्वतंत्रता, आत्मा के पंखों पर उड़ने की शक्ति; परिस्थितियों के जाल से बच निकलने की, आनन्दित होने की, उत्फुल्ल हृदय होने की और निश्चित होने की क्षमता। कम से कम यह तो हम चाहते ही हैं कि उनमें अधिक पवित्र और अधिक शान्तिमय संसार का स्वप्न देखने की शक्ति होती!

उनकी कला पतझड़ की कला है। सारा वायुमण्डल पतझड़ की मुरझाती और सड़ती वनस्पति की तीखी गंध से बोझिल है। आकाश सभी जगह समान रूप से धूमिल है; धूमिल दृश्य पर कभी भूले भटके भी, स्वप्न की मुस्कुराहट के समान बादलों की छाया तैरती नज़र नहीं आती; ऊपर सूर्य का अस्तित्व भी विस्मृत हो चुका है। इसीलिए लेखक का शीतल और साफ़ आलोक भी हृदय को प्रफुल्लित नहीं करता। यह आलोक मधुऋतु की उस आनन्ददायिनी चमक से सर्वथा विपरीत है जो अबाध्य रूप से वनों, मैदानों और मानव हृदयों को नए फूल खिलाने की आशा से जगमगा देती है। टॉलस्टाय को पढ़ते समय हम महसूस करते हैं कि जल्दी ही पतझड़ आनेवाला है, प्रकृति मृतप्राय है. मानव तिनके के समान है, और जल्दी ही प्राणों का साकार रूप यह तिनका नष्ट हो जाएगा। हमें एक संसार दिखाया जाता है जिसमें स्वप्न नहीं, भ्रम नहीं, छल नहीं; यह संसार भयानक रूप से खाली है; यहाँ ईश्वर भी नहीं है, ईश्वर का आविष्कार तो टॉलस्टाय बाद में करते हैं क्योंकि संसार में उसकी आवश्यकता है, प्रयोजन है, ऐसा वे ठीक उसी प्रकार करते हैं, जिस प्रकार कि दार्शनिककार समस्त सृष्टि की रचना के बाद 'राज्य' के प्रयोजन से उसमें परमात्मा की स्थापना करता है। इस संसार का एकमात्र आलोक अनावृत सत्य है। प्रथम दृष्टि में शायद दास्तोवस्की का अध्यात्मिक संसार टॉलस्टय के संसार से अधिक अंधकारपूर्ण, अधिक दुःख, परितापपूर्ण दिखाई पड़े किन्तु दास्तोवस्की इस अंधकार को मादक आनन्द

की किरणों से छेद देता है और हम कुछ समय के लिए कल्पना के स्वर्ग में पहुँच जाते हैं। इसके विपरीत टॉलस्टाय की कला इस मादकता के आनन्द से सर्वथा अपरिचित है। वह जल की भाँति गम्भीर, अर्ध पारदर्शक और मादकताहीन है। यह इतनी निर्मल है कि हम इसकी निम्नतम गहराई तक देख सकते हैं; फिर भी यह झलक हमें अपने आपसे पलायन करना नहीं सिखाती और न हमारे मन में परम आनन्द की तरंगें ही उठाती है। जो टॉलस्टाय की ही भाँति कभी स्वप्न नहीं देखता, जो कभी भी वर्तमान के यथार्थ को भूल कर अपार्थिव सौन्दर्य की कल्पना में नहीं उड़ता, जिसके लिए नग्न सत्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है, वह प्रकृति के पंजे को, भौतिक शरीर के अकाट्य बंधन को, नश्वर शरीर के साथ भविष्य को अद्वितीय ढंग से समझ सकता है; किन्तु उसे कभी भी उस स्वतंत्रता के आलोक की एक झलक भी नहीं मिल सकती जिससे आत्मा को अपने ही अंधकार की दासता से मुक्ति मिले। इन ग्रन्थों से पाठक को गम्भीरता और विचारशीलता मिलती है, जैस विज्ञान की नीरस ज्योति से उसकी यथार्थ की गहरी तह तक पहुँचने की क्षमता से, किन्तु इनसे कभी भी आनन्द और सुख का वरदान नहीं मिलता।

अपने इस निर्दय और भ्रमविचारक पर्यवेक्षण के बारे में, अपनी उस कला के बारे में जिसमें स्वप्न की ज्योतिर्मय स्निग्धता का, संगीत के माधुर्य का अभाव था, यह सुतीक्ष्ण दृष्टिवाला मनुष्य स्वयं क्या सोचता था? उनके मन में कभी इसके लिए मोह नहीं था, क्योंकि जिस जीवन का चित्रण यह कला करती थी उसके प्रति न तो उनमें और न दूसरों में ही आसक्ति का भाव पैदा करती थी। इन निर्मल नेत्रों द्वारा दिखाई देनेवाला अस्तित्व का वह दृष्टिकोण जिसके अनुसार आत्मा केवल मृत्युगह्वर से घिरा हुआ शारीरिक यन्त्र का ही एक छोटा-सा स्पन्दनमय अंग है! कितना निराशाजनक है! कितनी निराशापूर्ण है वह दृष्टि जो इतिहास को निरर्थक अव्यवस्थित घटनाओं का झमेला मात्र समझती है, मानव को केवल एक ढाँचा जो थोड़े से समय के लिए हाड़ माँस का घट बनाता है और प्राणियों की गूढ़ अव्यवस्थित क्रियाओं को जल के प्रवाह या पत्तियों के मुरझाने से अधिक महत्त्व नहीं देती! मामूली घटना-क्रम के इस नीरस वातावरण से कभी भी मधुर संगीत-ध्वनि नहीं निकलती कभी भी इस 'निहिलिज़्म' का भार हलका नहीं होता, मुस्कराहट कभी अपना सम्मोहन इस निरर्थक क्रियाकलाप पर नहीं डालती। यहाँ हमें मिलता है विषाद का निःस्पृह और कठोर गम्भीर्यपूर्ण चित्रण; पागलखाने के नाटक का अबाध विश्लेषण और कटु द्रष्टा का मनोभाव लिए कभी झूठी सांत्वना द्वारा भ्रम में नहीं डाला जा सकता।

क्या आश्चर्य कि निरंतर तीस वर्ष के इस भीषण चित्रण के बाद टॉलस्टाय के मन में यह आकांक्षा उठी कि मानव को पृथ्वी पर उसके दुर्निवार भाग्य का निर्ममतापूर्वक ज्ञान देने के बजाय कुछ और उपाय करें? क्या आश्चर्य कि उनके मन में इच्छा हुई होगी आत्माभिव्यक्ति के किसी ऐसे साधन की जो न केवल उनके अपने कंधों का भार हलका कर सके, बल्कि दूसरों के लिए भी जीवन सह्य हो जाए; ऐसी कला की कामना "जिससे अधिक श्रेष्ठ और उच्चतर भावनाएँ जागृत हों?" क्या यह स्वाभाविक नहीं था कि वे आशा-वीणा के रुपहले तारों को छूने की आकांक्षा करें और ऐसी कला प्रस्फुटित करें जिससे लोगों को पार्थिव तत्त्वों के भार से मुक्ति मिले? व्यर्थ है यह आकांक्षा और व्यर्थ है उसका प्रयास। निर्मम और तीक्ष्ण दृष्टिवाले टॉलस्टाय जिनके नेत्र सदा वस्तुस्थिति पर लगे रहते थे, दूसरे दृष्टिकोण से देख ही नहीं सकते थे; जीवन को मृत्यु आच्छादित ही देख सकते थे, एक अंधकारपूर्ण, अकाट्य भूलभुलैयाँ! उनकी कला जो न असत्यभाषी थी और न असत्य बोलने की इच्छा ही रखती थी, कभी भी सांत्वना नहीं दे सकी क्योंकि जीवन उन्हें केवल दुखांत रूप में दिखाई देता था और उसी का वे वर्णन करते थे, शायद इसीलिए वृद्धावस्था में इस आशा से प्रेरित हुए कि जीवन स्वयं बदला जा सकता है, और स्त्री पुरुषों को श्रेष्ठतर बनाया जा सकता है और उनमें किसी नैतिक आदर्श की स्फूर्ति भरी जा सकती है। स्थूल और पार्थिव के अंधकार पूर्ण क्षेत्र से हटकर आत्मा में एक दिव्य-राज्य की सृष्टि हो सकती है। इस प्रकार अपने द्वितीय चरण में कलाकार टॉलस्टाय केवल जीवन के वर्णन से संतुष्ट नहीं होते; वे अपनी कला को एक नैतिक प्रयोजन प्रदान करते हैं, नैतिक कर्त्तव्य से बाँध देते हैं, उसे आत्मा के परिष्करण और उत्थान के उद्योग में लगाते हैं। अब से, उनके उपन्यास और कहानियाँ केवल जीवन का प्रतिबिम्ब ही उपस्थित

नहीं करतीं, वे उसे ढालती भी हैं। वे सत्कर्म के उदाहरण उपस्थित करती हैं। जिस मानवता को अभी तक सत्य का आभास नहीं मिला है उसमें और नई मनोवांछित मानवता में विभिन्नता दिखाई जाती है। इसलिए यह नई मानवता पुरानी के लिए आदर्श होनी चाहिए, शिक्षाप्रद होनी चाहिए। उनकी कृतियों को अब केवल मनोरंजक और वर्णनात्मक ही नहीं होना है, उन्हें 'स्फूर्तिप्रद' भी होना है, ख़राब उदाहरण उपस्थित करके उन्हें पाठक को चेतावनी देनी है और अच्छे उदाहरण से उसकी हिम्मत भी बढ़ानी है। अब यह नवीन टॉलस्टाय केवल जीवन के वर्णन करने वाले बने रह कर संतुष्ट नहीं होते वे जीवन के 'न्यायाधीश' बन जाते हैं।

यह सैद्धांतिकता हमें अन्ना कैरेनिना (उपन्यास) में ही मिल जाती है। उनके 'अर्ध-चेतन' में तो नैतिक और अनैतिक के फल का विरोध दिखाने की प्रवृत्ति और भी साफ़ नज़र आती है। व्रोंस्की और अन्ना को, जो नास्तिक इंद्रियभोगी, अहंकारी और वासनाओं के गुलाम हैं, सज़ा भुगतनी पड़ती है, उन्हें आत्मिक-द्वेष के अग्निकुण्ड में फेंक दिया जाता है। इसके विपरीत किटी और लेविन का उत्थान होता है। अब यह निर्मोही लेखक प्रथम बार, अपने ही मानस-पुत्रों का पक्ष-विपक्ष ग्रहण करता है। उन्होंने अब एक नैतिक स्तर का आविष्कार कर लिया है। अब से वे अपने विचारों के मानो लेखों में रेखाङ्कित कर देते हैं और अनेक विराम चिन्हों द्वारा उनकी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। यह सैद्धांतिक प्रयोजन प्रारम्भ में गौण रहता है, और धीरे धीरे मुख्य हो जाता है। अन्त में 'क्रूज़र सोनाटा' तथा 'रिज़रैक्शन' आदि रचनाओं में नग्न उपदेश कल्पना के बहुत ही पतले आवरण से ढका दिखाई देता है; अब उपदेश मुख्य है और कलाकार गौण। धीरे धीरे कला को "कला के लिए" देखना छोड़ दिया है। अब उन्हें "मनोहर असत्" (कल्पना) में वहीं तक आनन्द मिलता है जहाँ तक वह सत्य की सेवा करे और जब वे सत्य की बात करते हैं तो उसका अर्थ वही नहीं होता जो पहले होता था, यानी वास्तविकता का चित्रण, यथार्थ का इन्द्रियगत व मनोवैज्ञानिक चित्रण। अब उनका अर्थ होता है उससे जिसे उन्होंने अत्यन्त कठिनाई की घड़ियों में उच्चतर आध्यात्मिक, धार्मिक सत्य के रूप में पाया है। अब से जब वे किसी ग्रंथ को "अच्छा" कहते हैं तो उनका मतलब खूब सजी हुई और आदमियों एवं चीज़ों की कलापूर्ण तसवीरों से नहीं होता जिन्हें प्रतिभाशाली लेखकों ने खींचा हो; उनका मतलब होता है उन पुस्तकों से (जो कला की दृष्टि से भली-बुरी कैसी भी हों) जो सत्कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता देती हों; जो मानव को अधिक धैर्यवान्, विनम्र, उदार तथा अधिक सामाजिक बनाएँ। अब उनका मापदण्ड कलाकार टॉलस्टाय के हाथों से हट कर नैतिकतावादी टॉलस्टाय के हाथों में चला जाता है जिसके लिए कला केवल एक नई धार्मिकता का निर्माण करने का यन्त्र मात्र है, कोई अपना निजी परम लक्ष्य लिए हुए नहीं है।

कला भी अन्य देवियों की भाँति स्वभाव से अधीर और ईर्ष्यालु है, जो उसे त्याग देते हैं उनसे वह प्रतिशोध लेती है। जब उसे किसी ध्येय के बन्धन में बाँधा जाता है, जब किसी अन्य देवी को ऊँचा आसन देकर उसके आधीन कला को बनाया जाता है, तो वह उन लोगों की भी सहायता नहीं करती जो उसके प्रिय पात्र रहे हैं। जहाँ भी टॉलस्टाय ने कला की लक्ष्यहीनता को त्याग दिया है और सैद्धांतिकता अपनाई है, वहाँ उनके पात्रों के चेहरों का रंग फीका पड़ जाता है, वे प्रभावपूर्ण नहीं रहते। तर्क की ठण्डी और धूमिल ज्योति में वे कुम्हला जाते हैं। लम्बे लम्बे तर्कपूर्ण आख्यानों पर पाठक लड़खड़ा जाता है और थक कर वह अन्धकार में मानो बाहर निकलने का मार्ग टटोलता है। यद्यपि वह द्वितीय टॉलस्टाय अपनी पूर्व कृतियों के बारे में घृणा से बात करते हैं, यद्यपि अपनी सद्यः अर्जित नैतिक कट्टरता के स्वर में कहते हैं कि "बचपन" (Childhood) और "युद्ध और शान्ति" ख़राब, बेकार निष्फल किताबें हैं क्योंकि उनमें सौन्दर्य-प्रदत्त आनन्द के सिवा कुछ भी नहीं मिलता (और यह आनन्द निम्न कोटि का है!) किन्तु वास्तव में वे उनकी सर्वोत्तम कृतियाँ हैं जिनका मुक़ाबला उनकी वृद्धावस्था के उपदेशपूर्ण ग्रन्थ नहीं कर सकते। इस "नैतिकता की निरंकुशता" के आगे जितना अधिक समर्पण करते जाते हैं, जितना ही वे अपनी प्रतिभा के मूल-तत्व, गोचर सत्य से हट कर तर्क के मेघलोक में भटकते हैं, उतना ही वे कला की दृष्टि से गिर जाते हैं। ऐण्टियस की भाँति उन्हें पृथिवी-माता के संसर्ग से ही शक्ति मिलती है। अत्यन्त वृद्धावस्था में भी जब तक वे अपने हीरे के समान ज्योतिपूर्ण नेत्रों से गोचर

१६५४

संसार की ओर देखते हैं तब तक प्रतिभापूर्ण रहते हैं। किन्तु जब वे ठोस ज़मीन से ऊपर उठ जाते हैं और आध्यात्मिक आकाश में उड़ने लगते हैं तो उनकी प्रतिभा बड़ी वेदना से गिर जाती है। जो कलाकार भारी भरकम पैरों से ठोस पृथ्वी पर चलने के लिए, उसे जोतने के लिए, समझने के लिए और हमारे युग के किसी भी लेखक की अपेक्षा कहीं अच्छा चित्रण करने के लिए बनाया गया था, उसको आध्यात्मिक आकाश में पंखों के सहारे उड़ने का करुणोत्पादक कठिन प्रयास करते देख बड़ी वेदना होती है।

कितनी संतापपूर्ण है यह विषमता, जो सभी युगों में, सभी कलाकृतियों में निरंतर नवीन होती दिखाई देती है। दृढ़ विश्वास और इस विश्वास को दूसरों तक पहुँचाने के निश्चय से कलाकृति का सौन्दर्य निखरना चाहिए, किन्तु होता यह है कि साधारणतया वे कलाकार को तुच्छ बना कर कला को विफल कर देते हैं। सच्ची कला में अहंभाव होता है, वह 'स्वांतः सुखाय' होती है, उसे अपने सिवाय दुनिया में और कोई आकांक्षा नहीं होती। सच्चे कलाकार को केवल अपनी कृति के बारे में ही सोचना होता है और वह उस मानवता को ध्यान में भी न लाए जिसके लिए उसका सृजन होता है। इसलिए महान् तभी दिखलाई पड़ते हैं जब वे उदासीन, अनासक्त, विरक्त और अभ्रष्ट होते हैं, जब न तो सहानुभूति के चक्कर में पड़ते हैं और न पथभ्रष्ट होते हैं; जब वे इस मनोदशा में गोचर संसार का चित्रण करते हैं। किन्तु जब वे करुणामय हो जाते हैं, जब उनका हृदय पिघल जाता है, जब वे लोगों की सहायता करने की, उन्हें श्रेष्ठ बनाने की, शिक्षण देने की बात सोचते हैं, तब उनकी कला युक्तियुक्त नहीं रहती, और वे स्वयं अपने कल्पना-पुत्रों से कहीं अधिक करुणोत्पादक हो जाते हैं।

—स्टीफ़ ज़्विग
अनु० प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी

गवर्नमेंट कालेज,
सीहोर (भोपाल)

कला का उद्देश्य सृजन है; यह प्रकृति का अनुकरण नहीं है। प्रकृति में सृजन का जो आवेग है वही कलाकार को प्रेरित और संचालित करता है।......

चीन की चित्रकला प्रकृति के दृश्यों के रंगचित्रण में सर्वोत्तम है। इन चित्रों में प्रकृति के रूप में चीन के कलाकारों की आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यंजना है। यूरोपीय चित्रकला यथार्थवादी प्रतिकृतियों के रंगचित्रण में अद्वितीय है। भारतवर्ष ने पशुओं और मनुष्यों के रूप में अपनी अनुपम चित्रकला में अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है।........

हमें कला को एक शिशु की आँखों से देखना चाहिए। किन्हीं पूर्व-विचारों या आलोचक की दृष्टि से किसी कला को नहीं देखना चाहिए। कला को इस प्रकार नहीं समझा जा सकता।

—नन्दलाल बसु

फ्रेञ्च कविता की वर्तमान प्रगति

यूरोप की उन्नत एवं समृद्ध साहित्यिक भाषाओं में फ्रेञ्च भाषा की श्रेष्ठता तथा असाधारण क्षमता निर्विवाद रूप से मानी जाती है। अपने अनुपम सांस्कृतिक एवं परम सुन्दर साहित्यिक रूप के कारण ही फ्रेञ्च भाषा का काव्य-साहित्य अत्यन्त प्रभावपूर्ण और समृद्धिशाली रहा है। विशेषकर फ्रेञ्च काव्य के ओजस्वी भाषा प्रवाह में भावों की जो संगीतात्मक मधुर ध्वनि-प्रतिध्वनि पाई जाती है, वह उसकी असाधारण मौलिक विशेषता है और इस कारण फ्रेञ्च कविता सदैव उच्च स्तर की रही है। प्राचीन काल के कवियों से लेकर आधुनिक कवियों तक की कविताओं में फ्रांस की कलात्मक और सौन्दर्यप्रधान भावनाओं ही की प्रमुखता विशेष रूप से पाई जाती है।

बीसवी शताब्दी के प्रारंभिक काल का सर्वश्रेष्ठ कवि सली प्रुदहोम है। उनका प्रथम कविता-संग्रह "Stances of Poems" नाम से प्रकाशित हुआ। इसी संग्रह में उनकी विख्यात कविता 'ली वेस ब्राइस' है, जिसमें कवि ने हृदय की उपमा टूटे पात्र से दी है। पश्चात् उनकी 'ले सालिच्यूड' और 'ले वैरेई टेंड्रेसेज' नाम कृतियाँ प्रकाशित हुईं। इन काव्यों में कवि ने अपने स्वभाव की अभिव्यक्ति के रूप में विवेक तथा भावों का संघर्ष प्रतिपादित किया है। 'ले जस्टिस' और 'लेबान हूर' नामक दो रचनाएँ उनकी और प्रकाशित हुईं, जिनमें उक्त संघर्ष और भी अधिक उग्र रूप में व्यक्त किया गया है। देशवासियों ने प्रुदहोम को विक्टर ह्यूगो का स्थानापन्न माना और उन्हें फ्रेञ्च एकेडमी का सदस्य चुन लिया गया। 'ले जस्टिस' द्वारा अपने विचार प्रकट करने के लिए कवि ने जो दो माध्यम चुने हैं, उनमें से एक है—'दी सीकर' (जिज्ञासु) और दूसरा 'ए वॉइस' (एक आवाज़) है। प्रुदहोम ने इन्हीं के द्वारा समस्त वस्तुओं की दार्शनिक यथार्थता का विश्लेषण किया है और संसार की सभी वस्तुओं में 'दैवी रूप' की घोषणा की है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि न्याय और निरपेक्षता संसार में नहीं, मनुष्य के हृदय में मिल सकती है, जो उसका पवित्र मन्दिर है।

जिस प्रकार 'ले जस्टिस' में न्याय की खोज के लिए भौतिक प्रकृति के निरीक्षण के दृष्टान्तों पर ध्यान देने को कहा गया है, उसी प्रकार 'ले वानहूर' में चरम आनन्द तक पहुँचने के लिए तीन मार्ग बताए गए हैं, जो क्रमानुसार उत्सुकता, चेतनता, ज्ञान और बलिदान की निष्ठा है। इस काव्य के फ़ास्टस और स्टीला नामक दो पात्र सुख की खोज करते हैं और संसार के माया-मोह और लोभ से आध्यात्मिक उड़ान भर कर—अर्थात् इनसे पृथक् होकर आत्म-बलिदान में सुख की सम्भावना अनुभव करते हैं। सली प्रुदहोम के सहयोगी और समकालीन साहित्यकार अनातं ले फ्रांस ने उनके व्यक्तित्व और काव्य—दोनों की ही मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। कवि प्रुदहोम निराले ढंग के व्यक्ति थे। उनकी अन्तर-दृष्टि स्पष्ट थी। उन्होंने अपने वैज्ञानिक मस्तिष्क से संसार के मायाजाल के विरुद्ध युद्ध जारी कर दिया था और अपने कोमल भावों द्वारा कवि के स्वप्न की गहरी अनुभूति प्राप्त की थी।

प्रुदहोम की समकालीन कवयित्री काउण्टेस दियाँदी बीशाक की कविताएँ भी उच्च श्रेणी की मानी जाती हैं। वह एक अनिन्द्य सुन्दरी और स्वच्छन्द स्वभाव की कवयित्री थी। उसके सौन्दर्य से अनुप्राणित होकर कवि प्रुदहोम कविताओं की रचना करते थे और दोनों मित्र के रूप में दर्शन एवं कला पर विचार विमर्श किया करते थे। प्रायः दोनों की ही कविताएँ एक दूसरे से प्रभावित पाई जाती हैं।

सली प्रुदहोम की श्रेणी के दूसरे प्रसिद्ध कवि फ्रेडरिक मिस्त्राल थे। उन्होंने फ्रांस की प्रादेशिक भाषा में 'मीरियो' नामक महाकाव्य की रचना की। इसकी विशेषता के कारण उन्हें होमर की भांति महाकवि माना गया। 'मीरियो' (Mireio) एक प्रेम-प्रधान रचना है, जो दुःखान्त है। इसके कथानक में कुशल कवि ने प्रॉविन्स प्रान्त के रीति-रिवाज, प्राकृतिक दृश्य, रहन-सहन, बोलचाल जीवन और आचार-विचारों का ऐसा सुन्दर समावेश किया है कि उनका महाकाव्य प्रॉविन्स प्रान्त का एक सवाक् चित्र बन गया है।

फ्राँस की 'फ्रेञ्च एकेडेमी' ने 'मीरियो' पर सर्वप्रथम

१९५४

अपना साहित्यिक पुरस्कार देकर मिस्त्राल को सम्मानित किया। यूरोप की समस्त भाषाओं में 'मीरियो' का अनुवाद हुआ फलस्वरूप यूरोप के समस्त देशों में उनकी रचना लोकप्रिय हुई।

मिस्त्राल के समकालीन कवियों में अनातोले फ्राँस, मेरडे, कैलिया और वोनियर्स प्रमुख हैं। इनमें अनातोले फ्राँस अपने उपन्यासों के कारण ही विशेष प्रसिद्ध हैं। उपन्यास रचना के पूर्व ही उन्होंने कुछ उच्चकोटि की कविताएँ लिखी थीं। मेरडे, कैलिया और वोनियर्स की अधिकांश कविताएँ सौन्दर्यपूर्ण और प्रेमप्रधान हैं। अन्य कवियों में आँरी वारब्यूसे और पालवूर्जे उल्लेखनीय हैं। आँरी वारब्यूसे का कविता-संग्रह 'क्रन्दनकारिणी' नाम से प्रकाशित हुआ, जो अपनी सुन्दर शैली, आकर्षक आन्तरिक उद्गारों और कलामय होने के कारण कवि की सफल कृति है। आँरी वारब्यूसे की विशेष प्रसिद्धि उनकी उच्चकोटि के उपन्यासों की रचना के कारण हुई। पालवूर्जे की अधिकांश कविताएँ मनोवैज्ञानिक हैं। उनकी सरस भाषा निजी शैली और भाव-सौन्दर्य से कविता का आन्तरिक और बाह्य रूप खिल उठा है।

आधुनिक फ्रेञ्च काव्य-क्षेत्र में महिला कवयित्रियों में कोमेंत द नोआइल और जेरादोवील प्रसिद्ध तथा उल्लेखनीय कवयित्रियाँ हैं। इनकी कविताओं में कोमल भावना और संगीत की मधुरता का समावेश सरल तथा सरस रूप में पाया जाता है। इनकी अधिकांश कविताओं में नारी-हृदय की सहज स्वाभाविक प्रवृत्तियों और भावनाओं का मर्म-स्पर्शी चित्रण है। प्रकृति और प्रेम इनके मुख्य विषय हैं।

एडमण्ड रोस्टाण्ड रोमान्टिक कवि थे। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रकृति और जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। अन्य लोकप्रिय कवियों में—जीन जेकस बरनार्ड, आँद्रे ओबे, आँद्र जीद, वालेरी लारबो, रोलाँ दोरजेले, पाल एलुअर और पियरे मासोरलाँ हैं। इन्होंने अपनी कविताओं में मानव-प्रवृत्तियों, मनुष्य स्वभाव और आन्तरिक भावनाओं का ऐसा सुन्दर और कलापूर्ण मौलिक वर्णन किया है, जो उच्चकोटि के साहित्य-सृजन के अनुकूल ही है। इनकी कविताओं में भाषा की प्राञ्जलता, पद-लालित्य, प्रौढ़ता, सरसता, माधुर्य, भावों की अभिव्यक्ति कुशलता आदि काव्य गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। फलस्वरूप इस युग की कविता का असाधारण विकास एवं उन्नति का क्षेत्र विस्तृत हुआ है।

आधुनिक काल की फ्रेञ्च कविता में स्थायी प्राणशक्ति का अभाव नहीं है। वह अपने युग की फ्रेञ्च विचारधाराओं और प्रवृत्तियों का अधिकार पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं। राष्ट्रीय, प्रकृति, मानव-आदर्श, धर्म और विज्ञान से लेकर प्रेम, त्याग, बलिदान, शोक, विरह, आशा-निराशा, आनन्द और मिलन आदि सभी बाह्य जगत् और अन्तर्जगत् के उपकरणों की इन कविताओं में प्रतिध्वनि तथा छाया पाई जाती है। यही कारण है कि आधुनिक कविता का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और उसका स्तर अत्यन्त उच्च है।

महायुद्ध काल में जब जर्मनी ने फ्रांस पर अधिकार कर लिया था, नात्सियों ने अनेक उन प्रतिभाशाली देशभक्त साहित्यकारों की जो नात्सीवाद और फासिज़्म के विरोधी थे, हत्या कर दी। इनमें गेब्रीलपेरी, डेनियल कैसे नोवा, बेन्जामिन क्रोमियो, मैक्स जैकब, ज्यार्ज्स पोलित्जिर, डिसेन्ट एक्सुयरी और सेन्टपाल जैसे प्रतिभाशाली कवि और साहित्यकार थे। इस प्रकार कुल ३९ कवियों और साहित्यकारों का नात्सी अत्याचारियों ने अन्त कर दिया। उस समय कुछ ऐसे साहित्यकार भी थे, जिन्होंने जर्मन नात्सियों को पूर्ण सहयोग दिया। इन अवसरवादी कवियों में मोन्थर नैरड, पाल मोरन्द, डिसेलाइन, गिआनो, जेम्स चारडेन, डो ड्रियू ला रोशले आदि थे। इनसे नात्सियों ने अपने पक्ष का यथेष्ट प्रचार कराया। इस समय फ्रेञ्च कवि और लेखकों का एक और प्रमुख समुदाय था, जो पूर्ण देशभक्त था और जिसने अप्रत्यक्ष रूप से छिप कर बचते हुए अपनी रचनाओं द्वारा निराश और उत्साहहीन फ्रेञ्च जाति में आशा और साहस की शक्ति का संचार किया। इन कवि और साहित्यकारों के नेता थे—अरागों, रोचर मार्टिन डुगार्ड, जीन कैसू, जूलियन बेन्दा, आँद्रे मालरो, जीन पालहन और जेक्स डिकार आदि। इनमें सभी विचारों के साहित्यकार थे। इन्होंने मातृभूमि की स्वाधीनता और कला तथा संस्कृति की रक्षा के लिए एकता का पूर्ण परिचय दिया और यही एकता सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता बन गई।

अपने कवियों के आह्वान पर फ्रांस अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ता ही गया। फ्रांस के इस युग के काव्य ने विद्रोही का रूप धारण कर लिया था। नीचे शहीदों की कब्रें थीं और ऊपर संगीनों की छाया। फ्रांस के इतिहास में साहित्यकारों के इस मनोबल का उदाहरण अद्वितीय है। इस समय की कविताओं और गद्य की प्रत्येक पंक्ति शहीदों के रक्त से

अंकित है । अन्त में फ्रांस को विजय प्राप्त हुई और वह मुक्त हो गया । उसके कवियों की वाणी भी मुक्त हो गई । अरागों, एल्वार्ड, कैसू, जारा, जूनियन बेंदा, लि ओन मूसियाक, लुई मासौं, गाब्रियल अदासियों आदि कवियों ने अपनी देशभक्ति को निभाया और युग के अनुकूल परम्परा की नींव डाली ।

वर्तमान फ्रांस का सर्वश्रेष्ठ कवि लुई अरागों संघर्ष-कालीन फ्रांस की सर्वोत्तम देन है । उसके विषय में अँग्रेज़ी भाषा के समालोचक सीरिल कोनोमी ने लिखा है : "मित्र-राष्ट्रों का यह पहला कवि है, जिसने युद्ध को संगीत के स्वरों में ढाल दिया है ।"

लुई अरागों की कविताओं में फ्रांस के मानसिक उतार-चढ़ाव का हृदयस्पर्शी और प्रभावशाली चित्रण है । फ्रांस की पराजय, पुनर्जागरण और नवोत्थान—सभी के स्वर उनके काव्य में मिलते हैं, किन्तु उनके काव्य ने फ्रांस की मानसिक अवस्था को बदलने में योग दिया है । अरागों ने अपनी कविता में देश को प्रेमिका के रूप में अंकित किया है । यही कारण है कि उनकी कविता में एक विचित्र आकर्षण है और आज वह केवल फ्रांस का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण यूरोप का सर्वाधिक लोकप्रिय कवि है ।

लुई अरागों प्रारम्भ में 'सुररियलिस्ट' (Surrealist) कवि थे । कल्पनामूलक लाक्षणिक अभिव्यंजना उनकी शैली की विशेषता थी । इसी शैली का प्रयोग उन्होंने फ्रांस के स्वाधीनता-संग्राम के विद्रोह-गीतों के लिखने में किया । उन्होंने लोक-रूपकों को अपनाया । शैली में दो लाभ थे, एक तो शत्रु को उन गीतों का समझना सुगम नहीं था, दूसरे वे जनता के लिए ग्राह्य थे, किन्तु अरागों में दूसरा परिवर्तन हुआ है, के सम्बन्ध में । अरागों ने अपने गीतों के लिए परम्परागत छन्दों और लोकगीतों की लयों को ग्रहण है । उनमें नूतन भावों की सशक्त आत्मा स्थापित और एक अमोघ 'शक्ति-बाण' के रूप में उसका किया है ।

इसी प्रकार फ्रांस के लगभग सभी कवियों ने नवीन मार्ग ग्रहण किया है । एक असाधारण परीक्षा को पार कर इन कवियों ने एक नई दमक और एक स्वतन्त्र विस्तार प्राप्त किया है । उनकी ने एक नवीन दिशा ग्रहण की है । उन्होंने नए छन्द, भाव और नए विषय अपनाए हैं तथा जिस कुशलता उन्होंने अपने व्यक्तित्व को नवीन परिस्थितियों के ढाला है, वह वास्तव में आश्चर्यजनक है ।

नवयुग की कविता में जो परिवर्तन प्रस्तुत हुए वे वर्तमान फ्रांस की बाह्य और आन्तरिक प्रगति के चायक हैं । इस परिवर्तन का आधार फ्रेञ्च कविता की परम्परा और वर्तमान युग में मानव-कल्याण के सुगम मार्ग ग्रहण करने की आवश्यकता का आह्वान है यद्यपि आज के कवियों ने भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाए किन्तु उनका लक्ष्य एक ही है और वह है, नवीन शाली फ्रांस का पुनर्निर्माण ।

—गौरीशंकर

राष्ट्रकवि परिषद्
गायघाट, बनारस

गोदावरी

आन्ध्र जाति गोदावरी और उसकी छोटी बहन कृष्णा की उपज है । गोदावरी केवल भौगोलिक दृष्टि से ही पश्चिम और पूर्व भारत को नहीं जोड़ती अपितु उत्तर और दक्षिण को ऐतिहासिक दृष्टि से भी एक करती है । आन्ध्र जाति आर्य और द्राविड़ दोनों का सम्मिश्रण है । गोदावरी के तट पर जो आन्ध्र राज्य था उसमें आर्य और द्राविड़ दोनों सभ्यताओं का सम्मिलन हुआ था जो कि भारतीय सभ्यता की विशेषता है ।

—सर सी. वी. रामभूर्ति

'शकुन्तला' के जर्मन अनुवाद

कालिदास कृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' अथवा 'शकुन्तला' नाटक का सर्वप्रथम जर्मन प्रशंसक योहन वुल्फगांक फ़ॉन गेटे (सन् १७४९-१८३२ ई०) था। उसने सबसे पहले इस रचना का फोर्स्टर कृत जर्मन अनुवाद ही पढ़ा था। इस बात का कहीं कोई प्रमाण नहीं मिलता कि गेटे को संस्कृत-भाषा का इतना पर्याप्त ज्ञान था कि उसने मूल नाटक को या तो पढ़ा अथवा उसका आंशिक अनुवाद ही प्रस्तुत किया हो। 'शकुन्तला' नामक शीर्षक से लिखी उसकी जिस कविता ने कालिदास का नाम जर्मनी में चारों ओर फैला दिया, उस कविता का मूल-जर्मन से अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है :

"यदि तू जानना चाहे,
शैशवकाल की कली को,
वृद्धकाल के पक्व फल को,
यदि तू जानना चाहे,
आकर्षण क्या है, आनंदातिरेक क्या है,
यदि तू जानना चाहे,
आत्म-संतोष क्या है, निकटता क्या है,
यदि तू जानना चाहे,
आकाश पर, धरती पर
कौन-सा वह नाम अंकित है,
तो, हे शकुन्तला,
मैं तेरा ही नाम लूँगा,
यही सारे कथन की इति है।"

बात सीधी-सादी है। अपने युग का प्रवर्त्तक साहित्यकार जिस रचना की इतनी प्रशंसा करे, उसकी ओर औरों का ध्यान क्यों न आकर्षित हो। अतः कालिदास का यह नाटक विश्व-साहित्य की एक अमर रचना स्वीकार किया गया।

यह बात १८ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग की है। तब से पूरी एक शताब्दी तक जर्मन-भाषा में 'शकुन्तला' नाटक के एक दो नहीं, आठ अनुवाद प्रकाशित हुए। यूरोप के शिक्षित समाज में, जिनमें गेटे, हर्डर तथा १९ वीं शताब्दी के आरम्भ के अन्य जर्मन साहित्यकार उल्लेखनीय हैं, 'शकुन्तला' का प्रवेश एवं परिचय सर विलियम जोन्स के लैटिन और अंग्रेज़ी अनुवादों से हुआ। इन अनुवादों का आधार मूल-नाटक का बंगाली-पाठान्तर था। अंग्रेज़ी अनुवाद फ़ेनी कॉलेज कलकत्ता के संस्कृत प्राध्यापक श्री रामेन्द्र मोहन बोस के गंगा तट पर स्थित बाग़ में १७ अगस्त सन् १७८८ ई० को समाप्त हुआ था। सर विलियम जोन्स अपने गुरु पं० रामलोचन की सहायता से मूल संस्कृत का पहले लैटिन और फिर लैटिन से अंग्रेज़ी अनुवाद प्रस्तुत करने में सफल हुए थे। इन अनुवादों के प्रकाशित होने के बाद 'शकुन्तला' का यूरोप की अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ। इन सभी अनुवादों का वर्णन प्रसंगवश आगे दिया गया है। फल यह हुआ कि कालिदास के इस नाटक की अमर कीर्त्ति सदा के लिए स्थापित हो गई, यहाँ तक कि सर जॉन लुबोक्स ने, जो बाद में लार्ड आवेरबुर्व के नाम से प्रसिद्ध हुए, इस रचना को अपनी 'हंड्रेड बेस्ट बुक्स ऑफ़ दी वर्ल्ड' (संसार की सौ सर्वोत्तम पुस्तकें) में स्थान दिया है। सर विलियम जोन्स कृत अंग्रेज़ी अनुवाद के आधार पर सर्वप्रथम जर्मन अनुवाद जार्ज फोर्स्टर ने सन् १७९१ ई० में किया। इस अनुवाद के फलस्वरूप मूल रचना का रसास्वादन जर्मन भाषा-भाषियों ने भली प्रकार तो किया ही, साथ ही उन्हें उस काव्य-सौन्दर्य की कुछ झलक मिली जिसको पाकर गेटे आनन्दातिरेक में झूम उठा था। इस सर्वप्रथम अनुवाद पर ही लोगों ने ऊपर लिखी इन पंक्तियों का मूल्यांकन किया जो उनके युग-कवि की आप्त वाक्य बन चुकी थीं? कोई कमाल तो पैदा करे, फिर प्रशंसकों की कमी कहाँ। संस्कृत-साहित्य का एक अनूठा रत्न उन लोगों के हाथ आ चुका था, फिर अनुवादक भी एक के बाद एक पैदा होने लगे।

प्रसंगवश, जर्मन-भाषा में फोर्स्टर कृत अनुवाद के बाद यूरोप की अन्य भाषाओं में 'शकुन्तला' के जो अनुवाद हुए उनका विवरण इस प्रकार है :

फोर्स्टर कृत जर्मन अनुवाद के प्रकाशन के बाद ही हारलेम निवासी ई० एम० पोस्ट ने फोर्स्टर की रचना का डच भाषा में रूपान्तर प्रस्तुत किया; सन् १७९३ ई० में

एच० वेस्ट ने डेनिश-भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया; १८०३ ई० में ए० ब्रूगीर ने फ्रेंच-भाषा में; १८५५ ई० में डार्मस्टाट निवासी एल० दोरिया ने ब्रूगीर के फ्रेञ्च अनुवाद के आधार पर इटालियन भाषा में; १८२१ ई० में आई० ई० एकेलुंट ने जोन्स और फोर्स्टर दोनों के अनुवादों के आधार पर स्वेडिश-भाषा में; १८३० ई० में ए० शाज़ी कृत प्रसिद्ध फ्रेञ्च अनुवाद प्रकाशित हुआ, अगले बीस वर्षों में हमेरीख़ कृत अन्य डेनिश अनुवाद का प्रकाशन हुआ। अनुवादों की यह जो बाढ़-सी आई थी, इसको देख कर केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राइडर ने लिखा है कि हर्डर की मृत्यु (१८०३ ई०) के बाद से जैसा कि अनेक नए अनुवादों और पुराने अनुवादों के पुनः मुद्रण से प्रमाणित होता है, हज़ारों आदमी ऐसे हुए जिन्होंने कालिदास की कम-से-कम एक रचना तो अवश्य ही पढ़ी; साथ ही हज़ारों ने इस नाटक को यूरोप और अमरीका के रंगमंच पर देखा भी।

सर्वप्रथम जर्मन अनुवाद होने के नाते फोर्स्टर की रचना का महत्व तो है ही, साथ ही वह सफल भी अधिक रही। १८३३ ई० तक उसकी टक्कर और कोई अनुवाद न ले सका, यद्यपि १८०३ ई० में हर्डर का अनुवाद दो बार छपा और हाथों हाथ बिक गया; हर्डर के अनुवाद का एक और मुद्रण १८६० ई० के कुछ पहले भी हुआ। इस बीच में बेर्नहार्ट हिर्त्सेल ने अपना अनुवाद १८३३ ई० में प्रकाशित कराया, किन्तु ये दोनों अनुवाद ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ही महत्वपूर्ण हैं, वैसे सफल दोनों ही रहे, क्योंकि यह दोनों रचनाएँ भावानुवाद थीं।

अभी तक कोई ऐसा जर्मन अनुवाद प्रस्तुत नहीं किया गया था जो मूल-रचना को अधिकाधिक स्पष्ट कर सकता। इस अभाव की पूर्ति १८४२ ई० में वेटलिंग के गद्यानुवाद 'कालिदास : रिंग शकुन्तला' ने की। यह अनुवाद दोहरा है: भावानुवाद के साथ-साथ शब्दानुवाद भी परिशिष्ट रूप में दिया गया है, जिसके फलस्वरूप इस नाटक की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि और भी स्पष्ट हुई। इस अनुवाद में प्रसादगुण का पर्याप्त अभाव है। अतः यह सर्व-साधारण के लिए बोधगम्य नहीं है। भाषा की दुरूहता भावाभिव्यक्ति का माध्यम होने के कारण इस अनुवाद को पांडित्यपूर्ण रूप प्रदान करती है। बाद के कुछ जर्मन अनुवादों ने इसी अनुवाद को अपना आधार बनाया। यह बात इस अनुवाद की प्रामाणिकता को बल देती है। ऐसे एक अनुवादक का नाम एर्न्स्ट मैयर है जिन्होंने 'शकुन्तला' नाटक के दो अनुवाद प्रस्तुत किए। पहला अनुवाद १८५३ ई० में प्रकाशित हुआ जो चम्पू काव्य है मूल रचना के समान छन्द भेद बनाए चलता है। दूसरा अनुवाद जो १८६७ ई० में प्रकाशित हुआ जो आरम्भ से अन्त तक पद्य-बद्ध रचना है। इसी प्रकार एक अन्य अनुवादक एडमुण्ड लोबेडांत्स ने, जो वेटलिंक की रचनाओं को आधार मानकर चला है, लघु गुरु क्रम वाले पंचपदीय वार्णिक छन्द (ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।) में अपना अनुवाद प्रस्तुत किया है। यह अनुवाद भी काफ़ी लोकप्रिय रहा।

सन् १८७७ ई० में लुडविक फ्रीत्से ने अपना नए ढंग का अनुवाद प्रकाशित कराया। इस अनुवाद की विशेषता यह है कि इसमें दार्शनिक पृष्ठ-भूमि की स्पष्टता के साथ-साथ भाषा-प्रवाह आद्योपान्त अक्षुण्ण बना रहता है। इसीलिए यह अनुवाद पिछले सभी अनुवादों से अच्छा माना जाता है। इसी वर्ष फ्रीडरिख़ स्कर्ट का एक अनुवाद अपरिसमाप्त रूप से प्रकाशित हुआ। यह इतना घटिया था कि इसका पूरा प्रकाशन न होना ही भला रहा। अंतिम अनुवाद १८६० ई० में हेर्मन केमिल्लो केल्नर ने प्रस्तुत किया जो सर्वसाधारण की समझ के बाहर नहीं है। भाषा सरल, भाव पूर्णतया व्यक्त दार्शनिक पृष्ठ-भूमि उभरी हुई है। तात्पर्य यह है कि यह अनुवाद उन सभी दोषों से मुक्त है जो वेटलिंक के अनुवाद में मिलते हैं और जिनके विषय में आगे प्रकाश डाला जाएगा। सभी दृष्टिकोणों से यह सफल अनुवाद माना जाता है। अनुवाद गद्य में है, गीतों को पद्यबद्ध किया गया है, साधारणतया शिक्षित मनुष्यों के लिए भी सुगम है।

जर्मन विद्वानों ने मूल रचना के इन चार पाठान्तरों का भेद उपस्थित किया है : बंगाली, देवनागरी, कश्मीरी और दक्षिण भारतीय। पाठान्तरों की प्रामाणिकता पर काफ़ी मतभेद रहा है, किन्तु कोई भी हस्तलिखित प्रति-लिपि १६ वीं शताब्दी के पहले की नहीं है। अतः मूल प्रतिलिपि के विषय में यह बात सर्वमान्य है कि वह किन्हीं अज्ञात कारणों से नष्ट हो चुकी है। पाठान्तरों में काफ़ी भेद होने पर भी कई बातों में बंगाली, कश्मीरी और दक्षिण-भारतीय पाठान्तरों में समानता मिलती है, अतः इन तीनों पाठान्तरों का देवनागरी-पाठान्तर से तुलना करना स्वाभाविक है। देवनागरी-पाठान्तर अन्य

१९५४

पाठान्तरों से, विशेषतः बंगाली-पाठान्तर से विस्तार में काफ़ी भिन्न है। कौनसा पाठान्तर अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक है, इस बात पर अब भी विवादपूर्ण मतभेद चला आता है।

सर विलियम जोन्स के अनुवादों का आधार बंगाली-पाठान्तर था। इस अनुवाद कार्य में पाठान्तर की प्रामाणिकता पर विश्वास लाभ करने के लिए उन्होंने कई एक बंगाली प्रतिलिपियों का निरीक्षण भी किया था और इन पांडुलिपियों को देवनागरी-पाठान्तर से तुलना करने के पश्चात् ही स्वीकार किया। पाठान्तर के विषय में वे लिखते हैं कि बंगाल के लिपिकार पण्डित ही थे और उनकी कथावस्तु में क्षेपक भर देने की आदत ने मूल रचना में काफ़ी पुनरुक्ति और विस्तार को स्थान दिया है। अतः यह स्पष्ट है कि सर विलियम जोन्स के मतानुसार बंगाली-पाठान्तर का देवनागरी-पाठान्तर की अपेक्षा अधिक विस्तारपूर्ण होना केवल बंगाल के पण्डितों के इस पक्षपात का परिणाम है। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राइडर के विचार से बंगाली पाठान्तर ही प्रामाणिक है; वे देवनागरी-पाठान्तर को बंगाली-पाठान्तर का लघु संस्करण मानते हैं।

मूल नाटक के देवनागरी-पाठान्तर का प्रचार एवं प्रचलन वेटलिंक के गद्यानुवाद से आरम्भ हुआ। उससे पूर्व केवल बंगाली-पाठान्तर ही ज्ञात था, जिसके आधार पर फोर्स्टर का अनुवाद अपनी जड़ जमा चुका था। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, फोर्स्टर कृत अनुवाद सर विलियम जोन्स के अंग्रेज़ी अनुवाद पर आधारित है, अतः यह बात स्पष्ट है कि बंगाली पाठान्तर की देन फोर्स्टर को सर विलियम जोन्स से ही प्राप्त हुई। वेटलिंक ने जो देवनागरी-पाठान्तर की खोज प्रस्तुत की इस कारण और भी उनका अनुवाद फोर्स्टर से बढ़ा-चढ़ा माना जाने लगा। वेटलिंक ने अपने अनुवाद की प्रस्तावना में लिखा है: "मैंने इस अनुवाद को प्रस्तुत करने में कठिनाइयों का निर्वाह करते हुए मूल रचना का प्रामाणिक अनुवाद देने का प्रयत्न किया है, केवल उन्हीं स्थलों पर भावानुवाद को स्थान दिया गया है जहाँ शब्दानुवाद बोधगम्य न था। जो कोई इस रचना को किसी अन्य दृष्टिकोण से देखेगा—मुझे इसमें भी सन्देह है कि ऐसा अवसर कभी मिल सकेगा—तो उसका मापदण्ड सफल नहीं होगा।" फल यह हुआ कि वेटलिंक का अनुवाद संस्कृत भाषा-शास्त्रियों के अध्ययन का विषय बन गया और उससे केवल विद्वान् ही लाभ उठाने लगे। विपरीततः पाठकों की एक अपरिमित संख्या के निकट यह रचना अप्रसिद्ध जैसी ही रही। दूसरे देवनागरी पाठान्तर जिसे जर्मन विद्वद्गण मूल रचना का अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक रूप मानते हैं, गद्य में भी बड़ी कठिनता से अनुवाद किया गया। अतः वेटलिंक की रचना दुरुह है, रसास्वादन के स्थान पर दिमाग चाट जाती है—ऐसा जन साधारण का दृष्टिकोण था। और बात है भी कुछ ऐसी ही, जिसका कारण ऊपर लिखा जा चुका है। साधारण शिक्षित समाज में सबसे पहले फोर्स्टर के बाद केल्नर के अनुवाद ने ही लोकप्रियता प्राप्त की है। इस प्रकार वेटलिंक और केल्नर की रचनाओं में महान् अन्तर है। यह अन्तर शब्दों का दुरुह और सरल व्याख्या, प्राचीन भारतीय शब्द-प्रयोग के कौशल और अर्थ की पकड़ में है। दूसरा भेद मूल नाटक में संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के प्रयोग, लोक-प्रचलन, राष्ट्रीय एवं पौराणिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के कारण है, जिनके लिए तद्रूप जर्मन-प्रयोग कठिनता से ही प्राप्त होते हैं। और सबसे बड़ी बात भाषा-प्रवाह की है जो अनुवाद की विशेषता है। कुछेक अनुवादों को छोड़ कर शेष सबमें यह दोष और भी मिलता है कि वे मूल रचना से कथानक में नहीं वरन् भावाभिव्यंजना में बहुत कुछ भटक गए हैं।

ऊपर जिन अनुवादों का परिचय दिया गया है उनमें एक बात और भी देखने को मिलती है। जितने गद्यानुवाद हैं वे तो किसी हद तक ठीक हैं, किन्तु पद्यानुवाद उतने सफल नहीं हो सके। इसका कारण यह है कि संस्कृत छन्दों का जर्मन-भाषा में अनुकरण नहीं किया जा सकता। यह दोनों भाषाओं में छन्द-विधान का भेद है; दोनों के छन्दों का आधार तक भिन्न है। लोवेडांत्स का अनुवाद इसी कारण लोकप्रिय होते हुए भी सफल नहीं कहा जा सका। लघु-गुरु क्रमवाला पंचपदीय वार्णिक छन्द यदि आरम्भ से अन्त तक प्रयुक्त किया जाए - जैसा कि इस अनुवाद में हुआ है—तो अनुवाद मूल रचना से दूर की वस्तु बन जाएगा; उसे अनुवाद कहना युक्तियुक्त नहीं है, इन कठिनाइयों का हल यही उपयुक्त जान पड़ता है, जैसा कि केल्नर ने अपने अनुवाद में प्रयुक्त किया है, कि नाटक को गद्य काव्य के रूप

में चलाया जाए, केवल उसमें स्थान-स्थान पर प्रयुक्त स्वर-साधना, गीत, संगीत, भविष्यवाणी आदि पद्यबद्ध की जाएँ। किन्तु इन पद्यबद्ध अंशों को जर्मन छन्द-शास्त्र के अनुसार ही प्रस्तुत करना उचित है। इस नाते केल्नर का अनुवाद सफल रचना माना जाता है।

डा० मैकडौनल ने इस बात की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है कि कालिदास कृत इस नाटक का गेटे के ऊपर क्या प्रभाव पड़ा था। उन्होंने लिखा है : "यह बात महत्वपूर्ण है कि यूरोपीय नाटकों में से एक अत्यन्त प्रसिद्ध नाटक का आरम्भ संस्कृत के एक विख्यात् नाटक पर आधारित है। 'शकुन्तला' नाटक के नांदी-पाठ से सुझाव पाकर गेटे ने 'फौस्ट' की रंगमंचीय प्रस्तावना उसी योजना पर आधारित की है जिसमें सूत्रधार, नटी और कवि इस विषय में वार्त्तालाप करते हैं कि कौनसा नाटक खेला जाएगा।"[1] यह तुलनामूलक निर्देश यहाँ केवल इसलिए ही अधूरा छोड़ा जाता है कि तत्सम्बन्धी सूचना प्रस्तुत लेख के विषय से भिन्न हो जाएगी।

जब प्रो० शाज़ी ने अपने प्रकाशित फ्रेंच अनुवाद की एक प्रति गेटे के पास भेजी थी तो गेटे ने एक पत्र में (तारीख १-१०-१८३० ई० को लिखा गया) शाज़ी को उसके अनुवाद की प्राप्ति-सूचना के साथ धन्यवाद देते हुए लिखा है : "सर्वप्रथम जब मैं इस गम्भीर रचना से परिचित हुआ था तब से मुझमें इसके प्रति इतनी रुचि बलवती हुई है और मैं इस ओर इतना आकर्षित हुआ हूँ कि मैंने इसका बारम्बार पाठ करना छोड़ा नहीं है...हाँ, वस्तुतः मैंने इस असम्भव कार्य की ओर भी प्रयास किया है कि मैं इसे जर्मन रंगमंच पर प्रस्तुत कर सकूँ, चाहे यह प्रयत्न कितना ही अपूर्ण क्यों न रहे...केवल अब मैं प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ कि समय यह रचना मेरे ऊपर कितना गहरा प्रभाव चुकी थी। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस में कवि ने अपनी अत्यधिक वास्तविक अवस्था पवित्रतम नैतिक प्रयासों को लेकर सर्वश्रेष्ठ वैभव ईश्वर के प्रति सतत-तत्पर भक्ति के साथ सर्वोत्तम प्रस्तुत किया है। इन बातों के होते हुए भी वह उस तक अपनी कलाकृति का एकाधिपति अनुगण रूप में रहता है जहाँ वह लौकिक और विनोदपूर्ण तुलनाएँ का साहस कर सका है, जो कथावस्तु के सम्पूर्ण में आवश्यक कड़ियाँ ज्ञात होती हैं।[2]

ऊपरी लिखित जर्मन अनुवादों के साथ एक बड़े मार्के की है। गेटे कृत 'शकुन्तला' नामक कविता पंक्तियाँ जैसे आप्त वाक्य बन कर उतरी हों। अपनी रचना के परिचयात्मक लेख में उन पंक्तियों का किसी न किसी प्रकार आंशिक प्रयोग करना अनुवादों का प्रचलन बन गया। केल्नर भी अपने अनुवाद के प्राक्कथन को इन पंक्तियों समाप्त करता है : "यदि मेरा अनुवाद मेरे देश कोने-कोने तक फैल जाए, मनुष्य-जाति के उन कारियों का चरित इससे स्पष्ट हो जिनके नाम मूल के मंगलाचरण को अलंकृत करते हैं।"[3] यदि 'शकुन्तला' वस्तुतः अपने इस पूर्वनिश्चित गद्य-रूप में हमारे कवि के शब्दों को लेकर चारों ओर पहुँचे और 'शैशव की कली, वृद्धिकाल के पक्वफल' मनुष्य जाति को करता रहे, तो यह अनुवादक कण्व ऋषि की सुन्दर को उसकी विश्व-यात्रा की द्वितीय शताब्दी के आरंभ पुकार कर कहेगा—'शिवास्ते सन्तु पन्थान!'—तेरी मंगलकारी हो!"

ऐत्मादपुर, आगरा
उ० प्र०

—प्रेमकि

---

[1] डा० मैकडौनल हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृ० ४१६।

[2] विंटरनित्सः गेशीख्टे डेर इन्डीशेन लिटराटूर, खण्ड ३ पृ० २१४।

[3] अनुवादक का संकेत यह है।

या सृष्टिःस्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हवि या च होत्री
ये द्वे काल विधत्तः, श्रुति विषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्व
याभाहुः सर्ववीज प्रकृतिरीशः, यथा प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥१॥
कालिदास अभिज्ञान-शाकु

मेरी यूरोप यात्रा के संस्मरण

गत वर्ष १२ मई को मैं यूरोप यात्रा के लिए रवाना हुआ। जिस जहाज़ से मैंने यात्रा की उसका नाम एस. एस. चुसान था। पन्द्रहवें दिन २६ मई को मैं टिलीबरी बन्दर पहुँचा। टिलीबरी बन्दर से रेलगाड़ी द्वारा लन्दन जाना पड़ता है। रेल का रास्ता डेढ़ घण्टे का है। टिलीबरी बन्दर पर बिजली के ठेलों से गाड़ी में सामान पहुँचाया जाता है। मनुष्य के श्रम का अपव्यय नहीं होता और सामान भी बिजली की सहायता से अधिक ढोया जाता है। मुसाफ़िर रेलगाड़ी में अपने पास अधिक सामान नहीं रखते। ट्रंक और अन्य भारी सामान ब्रेक वान में रखा जाता है। भारतीयों की तरह वे लोग रेलगाड़ियों में भारी ढेर-सा सामान नहीं लादे फिरते। हर एक मुसाफ़िर के पास एक छोटा-सा हैंडबैग या सूट केस रहता है जिसे वह स्वयं अपने हाथ में लेकर स्टेशन पर आता या वहाँ से जाता है। मुसाफ़िरों को चढ़ने उतरने में बिलकुल कठिनाई नहीं होती। मुसाफ़िर स्टेशन आने से पहले अपना अपना सामान अपने हाथ में लेकर डिब्बे के दरवाज़े के पास खड़े रहते हैं और गाड़ी के ठहरने के साथ ही तुरन्त उतर जाते हैं। साधारणतः दो-तीन मिनट से अधिक गाड़ी नहीं ठहरती। भारतीय यात्री को अपनी पुरानी आदत यहाँ पर छोड़नी पड़ती है—स्टेशन पर उतर कर, हमाल को पुकार कर डिब्बे से सामान उतारने के लिए कहिए तो आपको टरमिनस पर ही उतरने का मौक़ा मिल सकेगा। डिब्बे में मुसाफ़िरों की क़तार (क्यू) लगी रहती है और वे जल्दी से उतर जाते हैं। हमालों से मज़दूरी तै करने की आवश्यकता नहीं होती। मज़दूरी निश्चित रहती है अतः हमाल भी मज़दूरी के लिए कभी नहीं झगड़ते और न मुसाफ़िर ही निश्चित दर से उसे कभी कम देते हैं।

इंग्लैण्ड में प्रत्येक आदमी को अपने समय का ख़याल रहता है। स्टेशन पर गाड़ी पहुँचने के बाद केवल पाँच मिनट के भीतर ही सारा प्लेटफ़ार्म ख़ाली हो जाता है और लोग अपने अपने मकानों या आफ़िसों को चले जाते हैं। रास्ते में भी कोई आदमी धीरे-धीरे गज-गति से चलता हुआ नज़र नहीं आता। रेलवे स्टेशन से लोगों को तीव्र गति से बाहर निकलते देख कर एक भारतीय साथी ने मुझसे पूछा: "ये लोग इतने तेज़ क्यों भागे जा रहे हैं, क्या कहीं आग लग गई है?" मुझे लगा जैसे वह व्यक्ति असंख्य भारतीयों की तरह केवल आग लगने के समय ही दौड़-भाग कर सकता है। यहाँ प्रत्येक क्षण की क़ीमत होती है यह हमारे देशवासियों को अभी सीखना बाक़ी है। मैंने उत्तर दिया: "यहाँ के लोग समय की क़द्र करना जानते हैं और वे अपना अमूल्य समय हमारी तरह नहीं खोना चाहते।"

मैंने अनुभव किया कि इंग्लैण्ड का औसत आदमी अधिक ईमानदार है। रेल के डिब्बे में कोई व्यक्ति बिना टिकट लिए नहीं बैठता, वह उसे एक बड़ा पाप और राष्ट्रीय क्षति का कारण समझता है। सड़कों पर अख़बार रखे रहते हैं। जो व्यक्ति अख़बार ख़रीदना चाहता है वह वहाँ पैसे रख कर अख़बार उठा ले जाता है। मैंने यह दृश्य देख कर अपने एक भारतीय मित्र से कहा: "हमारे यहाँ इस प्रकार यदि अख़बार रखे जाएँ तो केवल यही नहीं होगा कि बहुत से लोग बिना पैसे रखे अख़बार उठा कर ले जाएँगे वरन् अख़बारों के साथ अन्य लोगों के रखे हुए पैसे भी बहुत-से लोग उठा ले जाएँगे।" लगभग पांच बजे मैं लन्दन पहुँचा। दो घण्टे बाद जब घूमने के लिए बाहर निकला तो क्या देखता हूँ सड़क के दोनों किनारों पर दूध की बोतलें रखी हुई थीं। प्रत्येक घर के सामने पाँच-दस बोतलें अवश्य थीं। आवश्यकता के अनुसार वहाँ दूध वाले प्रत्येक घर के सामने प्रातःकाल दूध की बोतलें रख देते हैं और दूसरे दिन प्रातः वे जब दूध देने आते हैं तो ख़ाली बोतलें ले जाते हैं। परन्तु, कभी यह शिकायत सुनने में नहीं आई कि उनमें से कुछ बोतलें कम हो गई हैं या किसी ने उन्हें चुराया है। मैंने जब होटल के आदमी से अपने लिए प्रतिदिन दूध की बोतल लेने के लिए कहा और यह हिदायत दी कि दूध अच्छा होना चाहिए तो उसने मुझसे पूछा: "अच्छे दूध का क्या तात्पर्य है?" मैंने कहा: "वह दूध जिसमें पानी न मिलाया गया हो।" यह सुन कर जैसे होटलवाले को कुछ विश्वास नहीं हुआ। उसने मेरे चेहरे की ओर ऐसी दृष्टि से देखा जैसे वह किसी अजीब आदमी

की ओर देख रहा है। उसने मुझसे पूछा : "क्या दूध में भी पानी मिलाया जा सकता है ?" "हाँ।" यह प्रश्न करते समय वह मुझे अजीब आदमी समझ रहा था। वह इस पर भरोसा भी नहीं कर सकता था कि दूध में पानी भी मिलाते हैं। उसकी यह दशा देख कर मैं अपने मन में कहने लगा : यह व्यक्ति नहीं जानता कि हिन्दुस्तान में दूध में ही पानी नहीं मिलाया जाता वरन् पानी में दूध मिलाया जाता है और दूध के नाम से उसे बेचा जाता है। इंग्लैण्ड में दूध भारत से सस्ता मिलता है। एक पौण्ड की बोतल के पाँच या छः आने लगते हैं और यह गाय का शुद्ध दूध होता है। पानी का इसमें अंश भी नहीं रहता। मैंने पश्चिमी यूरोप के बहुत-से देशों में भ्रमण किया परन्तु वहाँ मुझे कहीं भैंस नज़र नहीं आई। सच्चे अर्थ में इंग्लैण्ड आदि देश ही मुझे गो-सेवक नज़र आए।

हम बाज़ार जाते थे और जो वस्तु ख़रीदते उसका दाम चुकाने के लिए एक पौण्ड या दस शिलिंग का नोट देते थे तथा बाक़ी पैसों को 'टिप' के तौर पर लेने के लिए कह देते। परन्तु जैसे ही हम दूकान के बाहर आते तो दूकान का आदमी बाक़ी के पैसे लेकर पीछे दौड़ के वापस करता था। मैं जिस अवसर पर लन्दन गया उस समय क्वीन एलिज़ेबेथ का राज्याभिषेक होने वाला था। मुझे क्वीन्स गार्डन पार्टी में आमन्त्रित किया गया था। मैं वहाँ एक टैक्सी में गया था। टैक्सी का किराया चुकाते समय मेरे हाथ से एक-एक पौण्ड के दो नोट गिर गए। वहाँ बहुत-सी गाड़ियाँ आ रही थीं अतः पुलिस की ओर से जल्दी की जाती थी। मैं बकिंघम पैलेस में प्रवेश कर चुका था और बाग़ में आधे फ़र्लांग के क़रीब चला गया था तब एक पुलिस का आदमी मेरे पास दौड़ता हुआ आया और उसने मुझसे कहा : "दो पौण्ड के ये नोट आपके हाथ से गिर गए हैं।" और उसने दो नोट मेरे हाथ में रख दिए और चला गया। मैं उसे इनाम देने के लिए सोच ही रहा था पर वह तुरन्त ही चला गया। मैं सोचने लगा, यदि हैदराबाद में मेरे हाथ से एकाध नोट गिर जाता तो क्या वह मुझे वापस मिल सकता था ? हैदराबाद आने पर मैंने यही बात यहाँ के एक डिप्टी कमिश्नर आफ पुलिस से पूछी : "आप अपने पुलिस वाले से किसी गिरे हुए नोट को वापस करने के लिए कहते तो क्या आपका विश्वास है कि वह नोट वापस कर देता ?" उन्होंने हँसते हुए उत्तर दि "वह नोट जेब में रखता और बीड़ी चुट्टा पीने में मिनट व्यतीत करके मुझसे आकर कहता : मैंने वे लौटा दिए हैं।"

एक बार टेम्स नदी की सैर करने के लिए दो चार मित्रों के साथ वहाँ गया। हमारे किनारे पहुँचते ही मालूम हुआ कि एक नाव जल्दी ही वाली है इसलिए गड़बड़ी में हम टैक्सी से उतर और मेरे एक मित्र टैक्सी में अपनी नई बरसाती गए। जब हम बोट में बैठे उस समय धूप अच्छी थी पर थोड़ी ही देर बाद यकायक वर्षा शुरू हुई और मेरे मित्र बरसाती ढूँढने लगे और उन्हें ध्यान आया कि बरसा टैक्सी में ही रह गई है। टैक्सी का नम्बर हमने नोट किया था न टैक्सी ड्राइवर का नाम ही हमें ज्ञात था परन्तु मेरे मित्र ने पुलिस अधिकारी को यह सूचना दी कि वे अपनी बरसाती एक टैक्सी में भूल गए हैं चौथे रोज़ ही उनको पुलिस के दफ़्तर से सूचना मि कि आपके विवरण के अनुसार हमें चार-पाँच बरसाति मिली हैं, आप उन्हें देख कर अपनी बरसाती ले जा सक हैं। परन्तु उनमें हमारे मित्र की बरसाती नहीं पन्द्रह दिन बाद एक चिट्ठी और आई और उनकी बरसा उन्हें मिल गई।

साधारणतः इंग्लैण्ड के लोग अनुशासन-प्रिय हैं यहाँ तक कि मैंने देखा दूध पीने वाले बच्चों में अनुशासन पाया जाता है। बिना किसी कारण के किसी भी समय वे नहीं रोया करते। लंदन में जहाँ ठहरा था वहाँ रहने वाली मज़दूरनियों को मैंने देखा कि वे अपने पाँच-सात महीने के बच्चों को रोज़ाना पहिना कर प्रातः सात-साढ़े सात बजे बच्चों की गाड़ि में सुला देती थीं और बारह-साढ़े बारह बजे वा आकर उठा ले जाती थीं और घर में काम करती थीं। उन बच्चों को कभी रोते हुए नहीं सुना। जब मैं कि बच्चे की ओर देखता तो वह सड़क की तरफ़ देखता हु दिखाई देता, किसी को नींद आई तो ऊँघता, भूख ल तो अपने हाथ की बोतल से दूध पी लेता। सुबह और शाम बहुत-से बच्चे इसी तरह रास्तों के किनारों प मकान की दीवारों से लगे दिखाई देते। यह देख क मुझे आश्चर्य होता कि ये छोटे छोटे बच्चे इतनी अधि देर तक शान्तिपूर्वक कैसे रह लेते हैं। हमारे देश

१६५४

तो बच्चों के पास आदमी रहते हुए भी वे रोते रहते हैं और सब को तंग करते हैं। मैं लंदन में अपने एक भारतीय मित्र के बच्चे को देखने के लिए उनके मकान पर गया। वे दो महीने पूर्व अपनी स्त्री और बच्चे को लेकर लंदन आए थे। उनके मकान पर जाने पर जब मैंने उनके बच्चे को भी उसी प्रकार बालगाड़ी में खेलते देखा तो मुझे हर्ष मिश्रित आश्चर्य हुआ कि भारतीय बच्चे भी यहाँ अनुशासन का पालन करते हैं। जब इस सम्बन्ध में मैंने अपने मित्र की पत्नी से पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया: "आरम्भ के आठ-पन्द्रह दिन तो बच्चे ने तंग किया परन्तु अब उसकी आदत पड़ गई है और वह शान्त बैठा रहता है।" यह जान कर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मैंने उन्हें सलाह दी: "आपको बच्चे की यह आदत हिन्दुस्तान लौटने पर भी क़ायम रखना चाहिए और दूसरे बच्चों की भी यही आदत डालनी चाहिए।"

इंग्लैण्ड के होटलों में कभी चोरी की वारदातें नहीं सुनी गईं—न किसी के कपड़े गए और न किसी की जेब से पैसे। मैंने जानबूझ कर दो चार बार कुछ पैसे मेज पर और कुछ मेज की दराज़ में रख छोड़े थे परन्तु उनमें से कभी एक पेनी भी ग़ायब नहीं हुई। होटलों के नौकर जब मुसाफ़िर अपने कमरे में रहता है तो उस समय झाड़ू लगा कर उसे कष्ट नहीं देते। मुसाफ़िर के बाहर जाने के बाद वे कमरा खोल कर बिस्तर लगाने, झाड़ू लगाने और सफ़ाई करने आदि के काम कर लेते हैं। पहली बार जब मैं कमरे को ताला लगा कर चला गया और आने के बाद देखा कि किसी ने कमरा खोल कर सफ़ाई कर रखी है तो मैं थोड़ा परेशान हो गया और मैंने अपने सामान की भी जाँच कर ली। ट्रंक को भी ताला नहीं लगाया हुआ था लेकिन सब सामान जहाँ का तहाँ मिला। होटल के कमरों की दो कुंजियाँ होती हैं जिनमें से एक मुसाफ़िर को दी जाती है और एक नौकर के पास या होटल के मालिक के पास रहती है। नौकर को यदि ज़रूरत पड़े तो वह होटल के मालिक के पास से चाबी लेकर कमरा साफ़ कर देता है। साधारणतया यदि बूट को पालिश कराना होता है तो यह नियम है कि रात में बूट कमरे के बाहर रख दिए जाते हैं और होटल का आदमी सवेरे सवेरे आकर उनको पालिश कर जाता है। दो जगह रात में बाहर रखे हुए जूतों के गुम होने की भी शिकायत आई। बाद में पता चला कि उसका कारण मुसाफ़िरों का आपसी मज़ाक़ था। यह भी सुनने में आया कि होटल के कुछ मुसाफ़िर रात में खूब शराब पीकर आए थे और वे कुछ न कुछ मज़ाक करते रहे थे।

साधारणतः होटल का खर्च सोने-बिछौने और प्रातराश का ही होता है। प्रायः मुसाफिर प्रातः नाश्ता करके चले जाते हैं और सोने के लिए वापस होटल में आते हैं। दोपहर का लंच, शाम की चाय और रात का भोजन सुविधा के अनुसार कर लेते हैं। यूरोप में सायंकाल स्त्री-पुरुषों को घूमने का शौक़ रहता है। छुट्टियाँ आनन्द से बिताने के लिए वे प्रायः बाहर जाते हैं। शनिवार को वे दफ़्तर बाहर जाने की तैयारी करके ही आते हैं और बारह या एक बजे के बाद कहीं भी पन्द्रह, बीस मील के फ़ासले पर छुट्टियाँ मनाने के लिए चले जाते हैं और रविवार की छुट्टी मना कर सोमवार को घर न जाकर सीधे दफ़्तर ही आते हैं। आनन्द पूर्वक छुट्टियाँ मनाने का उन पर एक ज़ुनून सा चढ़ा रहता है—मर्द, औरत बूढ़े, जवान, बच्चे सभी एक जगह खेल-कूद करते हैं। उनकी निवृत्त-मनोदशा (Holiday Mood) भी दर्शनीय होती है। नाव पर यदि थोड़ी ही दूर जाना हो तो वे वहीं पर नृत्य आरम्भ कर देते हैं और उस नृत्य में वृद्ध और वृद्धाएँ भी भाग लेती हैं--उस उम्र के हिन्दुस्तानी लोग उन्हें देखना भी पसंद न करेंगे।

मैंने आरंभ में जहां यह कहा था कि वहां के लोग बहुत व्यस्त रहते हैं और समय की बड़ी क़द्र करते हैं परन्तु किसी से यदि आप किसी स्थान का पता पूछें तो सुननेवाला तुरंत रुक जाता है। आप क्या पूछते हैं इसको वह बड़े ध्यान से सुनता है और ठीक पता बताता है और फिर आप से दुबारा पूछता है जिससे ज्ञात हो कि आप ठीक समझ सके हैं या नहीं। यदि आप ठीक नहीं समझ पाते तो वह आपके साथ चौरास्ते तक आकर समझाता है, और फिर भी आप न समझें तो वह फ़र्लांग भर आपके साथ चल कर ठीक पता बता देगा। ब्रूसेल्स में तो एक आदमी ने प्रायः एक मील मेरे साथ चलकर मुझे अपना निर्दिष्ट स्थान बतलाया। इसका मेरे मन पर यही प्रभाव पड़ा कि अपने देश में विदेशियों की सहायता करना यहाँ के लोग अपना कर्त्तव्य समझते हैं। वे यह नहीं चाहते कि कोई विदेशी उनके देशवासियों के बारे में बुरी भावना लेकर जाए।

भारतीयों के सम्बन्ध में यहाँ के लोग अच्छी भावना रखते हैं। इंग्लैण्ड के समाचार पत्रों में जो समाचार प्रकाशित होते हैं उनमें भारत में धन-धान्य की कमी पर चिन्ता प्रकट की जाती है और हिन्दुस्तान की जनसंख्या का ध्यान करके वे और भी व्यग्र दिखाई पड़ते हैं। दो-चार शहरों में जब वहाँ के लोगों ने इस सम्बन्ध में मुझसे प्रश्न किए तो मैंने उन्हें समझाया कि भारत बहुत बड़ा देश है, वहाँ की भूमि उपजाऊ है और सिंचाई के लिए बड़े बड़े बाँध तैयार किए जा रहे हैं, उनकी सहायता से और पंचवर्षीय योजना को कार्य-रूप में परिणत करने से लाखों एकड़ जमीन की सिंचाई हो जाएगी और भारत की अपनी आवश्यकताएँ तो पूर्ण होंगी ही बाहर के देशों में भी भारत अन्न-धान्य का निर्यात कर सकेगा।

इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ का राज्याभिषेक मैंने वेस्टमिनिस्टर एबे में बैठ कर देखा। भारत में जिस प्रकार धार्मिक उत्सवों पर पाँच-पचास ब्राह्मण बैठे हुए दिखाई देते हैं उसी प्रकार सौ सवा-सौ पादरी बैठे हुए थे और सम्पूर्ण विधि आर्क बिशप केंटरबरी ने की। उस विधि में इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री कहीं नज़र नहीं आए। वेस्टमिनिस्टर ऐबे में तो वे उपस्थित थे परन्तु विधि में उनका कोई स्थान नहीं था। हाँ, एक बार जनता की ओर अवश्य चारों ओर नज़र फेर कर पुरोहित ने पूछा—"क्या आप लोग एलिजाबेथ को अपनी रानी बनाना पसन्द करते हैं?" चारों ओर बैठे हुए लोगों ने अपनी अनुमति प्रकट की। इंग्लैण्ड जाने के पूर्व मेरा विचार था कि अंग्रेज़ लोग धर्म में विशेष आस्था नहीं रखते परन्तु वहाँ पहुँचने के बाद मुझे अपनी धारणा बदल देनी पड़ी। कैम्ब्रिज में मेरे रहने का प्रबन्ध डाउनिंग कॉलेज में किया गया था। वहाँ सुबह, दोपहर में और रात को भोजन के पहले बराबर उसी तरह प्रार्थना की जाती थी जैसे हमारे यहाँ प्राचीन समय में हुआ करती थी। उसके बाद लोग खाना शुरू करते थे। इंग्लैण्ड की प्रथानुसार सबसे श्रेष्ठ आदमी को पहले प्रार्थना करने का अधिकार रहता है। वहाँ हर गाँव में एक गिरजा पाया जाता है जिसे हमेशा अच्छी हालत में रखा जाता है। विधवाओं और ग़रीब लोगों को गिरजों से मदद की जाती है। गिरजे के साथ एक पाठशाला भी होती है। लोगों के हृदय में पादरी के लिए सम्मान का स्थान होता है और ये उसे अपना संरक्षक और मार्ग-दर्शक समझते हैं। यह अवश्य है कि अंग्रेज़ लोग अपनी धार्मिकता का आडम्बर नहीं करते। मैंने इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड में प्रायः १६०० मील की यात्रा बस के रास्ते से की इसी-लिए बहुत-से देहातों को देखने का भी मुझे सौभाग्य मिला। इतनी लम्बी यात्रा में मुझे कहीं नंगा या फटे कपड़े पहने हुए मनुष्य नज़र नहीं आया। वहाँ की जलवायु को देखते हुए कोई आदमी वहाँ फटे कपड़े पहने हुए ज़िन्दा भी नहीं रह सकता। वहाँ भिखारी भी आने-जाने वालों को परेशान नहीं करते और न सड़कों पर ही रोगी या भिखारी नज़र आते हैं। भिखारी या तो सड़क पर किसी वाद्य को बजाता है या मुँह से ही गाता है तथा आने जानेवाले उसे ख़ैरात देते जाते हैं अथवा वह दियासलाई की पेटी बेचता है जिसके लिए ख़रीदनेवाले उसे जान बूझ कर क़ीमत से अधिक पैसे दे कर चले जाते हैं।

इंग्लैण्ड में मैंने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में व्यस्त रहता है और इधर-उधर की बातों में दिलचस्पी नहीं रखता। मैं वहाँ पूरे दो महीने ठहरा था और इस बीच मैंने विद्यार्थियों की एक भी हड़ताल का समाचार नहीं पढ़ा-सुना। वहाँ पाठशालाओं में परीक्षाओं के समय कोई निरीक्षक नहीं रहता और वहाँ के विद्यार्थियों को 'नक़ल' (Copy) करना मालूम तक नहीं है। इंग्लैण्ड का विद्यार्थी अपने पास बैठनेवाले परीक्षार्थी से पूछना या किताब देख कर लिखना पाप समझता है।

स्पीकर विधान-सभा
हैदराबाद

—काशीनाथ सीताराम वैद्य

विचार करने की आदत से बहुत लाभ होते हैं। इससे अन्तर्दृष्टि गहरी और बुद्धि तीव्र होती है। इससे हम में स्फूर्ति और शक्ति उत्पन्न होती है।

—जौबर्ट

अमर वैष्णव कवि चण्डीदास

"सुन रे मानुस भाई ।
सवार ऊपर तुमि सत्य, ताहार ऊपर नाई ॥"
—चण्डीदास

पीयूषवर्षी जयदेव के साथ, जिनका समय ईसा की ११ वीं शताब्दी है, बंगला साहित्य का अभ्युत्थान माना जा सकता है। यद्यपि जयदेव ने अपने सुललित गीति-काव्य "गीत-गोविन्दम्" की रचना संस्कृत में की थी, तथापि एक बंगाली होने के नाते तत्कालीन बंगाली जनता पर उनकी सुमधुर रचना का विशेष प्रभाव पड़ा। कार्यतः समस्त मध्यकालीन बँगला-साहित्य के, जिसे हम "वैष्णव-काव्य" के नाम से ही व्याख्यात कर सकते हैं, जन्मदाता जयदेव ही माने जा सकते हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दी में चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव हुआ, जिनके "हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्" महामन्त्र ने वैष्णवता को नई चेतना प्रदान की। वैष्णव धर्म के माधुर्य से आकृष्ट होकर उन्होंने हरिनाम एवं कृष्णभक्ति प्रचार को ही जीवन का व्रत बनाया। उन्हें राधा-कृष्ण लीला की कहानी पढ़ने तथा सुनने का विशेष अनुराग था। इसीलिए उनके प्रिय अनुचर दामोदर उन्हें चण्डीदास एवं विद्यापति के गीत सुनाया करते थे।

कृतविद्य बंगाली विद्यार्थीगण शिक्षा समाप्त करने के लिए एवं "नव्यन्याय" सीखने मिथिला जाते थे एवं वहाँ अन्य विद्याओं के साथ विद्यापति आदि मैथिल कवियों के गीत कण्ठस्थ करके लौटा करते थे। महाप्रभु के आग्रह और अनुराग के परिणामस्वरूप चण्डीदास और विद्यापति की पदावलियों का प्रचार समूचे बंगाल, आसाम तथा उत्कल में हुआ था। कालान्तर में जगन्नाथपुरी एवं व्रजधाम (वृन्दावन) गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के प्रधान केन्द्र भी बने।

महाकवि चण्डीदास के, जिनकी पदावलि के प्रचार में चैतन्य महाप्रभु ने इतना आग्रह दिखाया, समय के बारे में कुछ भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे प्राक्-चैतन्य-युग में आविर्भूत हुए तथा उनका समय पन्द्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। यश-लोलुप लोगों की भी कमी नहीं, इसलिए द्विज चण्डीदास, बड़ु चण्डीदास आदि कई और "चण्डीदासों" की रचनाएँ उपलब्ध हैं किन्तु इतना तो निश्चित है कि जिस पदावलि की मधुरता पर स्वयं महाप्रभु इतने मुग्ध हुए थे, उसके रचयिता ही बँगला के सर्वश्रेष्ठ वैष्णव गीति-काव्य प्रकार चण्डीदास हैं।

बँगला के वैष्णव कवियों में सब से अधिक प्रसिद्धि चण्डीदास को ही मिली है। बंगाली होते हुए भी जयदेव ने अपने "गीता-गोविन्दम्" की भाषा संस्कृत रखी जो जन-साधारण के लिए अबोध्य थी; विद्यापति की मधुर मैथिल पदावलि के रसास्वादन से भी भाषागत कठिनता के कारण बंगाल की जनता अंशतः वंचित रही परन्तु चण्डीदास की भाषा "ठेठ बंगला" है, जिसे समझने में जनता को कोई कठिनाई नहीं हो सकती थी। उनकी प्रसिद्धि का अन्यतम कारण भी उनकी भाषा है।

अन्य सभी वैष्णव कवियों की तरह चण्डीदास ने भी राधाकृष्ण लीला का मुक्तक-काव्य-रूप में सविस्तार वर्णन किया है। इनके मुक्तक पदों की कथावस्तु सीमित है—इनमें श्रीकृष्ण की बाललीला (बहुत कम) एवं यौवन-लीला का ही सविस्तार चित्रण हुआ है। वर्ण्य-विषय की यह परिमिति बँगला तथा हिन्दी दोनों साहित्यों के वैष्णव कवियों में पाई जाती है, क्योंकि माधुर्य-भाव के उपासक श्रीकृष्ण को केवल गोकुल के कृष्ण-रूप में देखना चाहते हैं, महाभारत के कृष्ण रूप में नहीं।

चण्डीदास के पदों का माधुर्य अद्भुत है; इनमें जयदेव के पदों का-सा नाद-सौन्दर्य तथा विद्यापति के पदों भी भाव-तल्लीनता पाई जाती है। चण्डीदास पर जयदेव का प्रभाव विशेषरूप से परिलक्षित होता है—इनके पदों में भी शृंगार के विस्तृत चित्रण की प्रवृत्ति दिखाई देती है परन्तु आध्यात्मिकता का रंग न चढ़ाते हुए भी यह कहना पड़ेगा कि विद्यापति की तरह, "इनके भक्त-हृदय का रूप वासनामयी कल्पना के आवरण में छिप नहीं जाता।"

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अन्यान्य वैष्णव कवियों की तरह चण्डीदास का वर्ण्य-विषय सीमित है।

सूर आदि अष्टछाप के कवियों ने ही शृंगार-वर्णन के साथ साथ श्रीकृष्ण की बाल-लीला का भी सविस्तार वर्णन किया है। चण्डीदास ने संयोग और विप्रलम्भ शृंगार का ही सविस्तार वर्णन किया है उनका वात्सल्य वर्णन प्रायः नहीं के बराबर है।

जिस प्रकार वल्लभाचार्य के आदर्श पर चलनेवाले अष्टछाप के कवियों ने श्रद्धा की अपेक्षा प्रेम पर अधिक ज़ोर दिया है ("प्रेम पुरुषार्थो महान्"), उसी प्रकार चण्डीदास ने राधाकृष्ण-लीला के आधार पर जिस भक्ति-भावना का प्रचार किया, उसे भी हम "प्रेम-लक्षण भक्ति" के नाम से आख्यात कर सकते हैं।

प्रेम की इस व्यापकता की अभिव्यक्ति एक स्थल पर कवि ने राधिका के द्वारा कराई है :

"सई, पीरिति आखर तिन
जनम अवधि भवि निरवधि
ना जानि राति कि दिन।
पीरिति पीरिति सन जन कहे
पीरिति के मन रीत
रसरे पीरिति रसरे स्वरूप
के ना करे परतीत॥"*

—सखी, प्रीत में केवल तीन ही अक्षर हैं, परन्तु इसी पर मैं रात-दिन की सुधा भूल कर निरन्तर जीवन भर विचार करती रही, परन्तु इसका रहस्य न समझ पाई। 'प्रीत, प्रीत' सभी कहते हैं लेकिन प्रीति की रीति अर्थात् स्वरूप क्या है, भला रस की प्रीति, रस के स्वरूप अर्थात् महत्ता पर किसे विश्वास नहीं ?

चण्डीदास का शृंगार-वर्णन राधा-कृष्ण के 'प्रथम सम्मिलन' से होता है। प्रथम दर्शन में राधा कृष्ण एक दूसरे के रूप पर मुग्ध होते हैं (Love at first sight)। परन्तु इस प्रेमोत्पत्ति में केवल रूपलिप्सा का योग है, उस साहचर्य का नहीं, जिसकी ओर संकेत करके सूर की गोपियाँ उद्धव से कहती हैं :

"लरिकाई को प्रेम अलि कहो कैसे छूटत"

राधिका के अलौकिक सौन्दर्य की स्तुति में कवि श्रीकृष्ण से कहलवाता है :

"कांचन वरणी के बटे से धनी,
धीरे धीरे चलि जाय
हासिर ठमके चपला चमके,
नील साड़ी शोभे गाय॥"

× × ×

मझु मन ताहे काहे ना भूलव
मदन मूरछा पाय
काहार नन्दिनी, काहार रमणी
गोकुले एमन के
कोन् पुण्य-फले, बल बल सखा
से रमा पाइल से॥"

—तप्त कांचन-वर्णा, धीर-गति में चलनेवाली वह रमणी कौन है ? जब हँसती है तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे बिजली चमक रही हो। सुन्दर शरीर पर नीलाम्बरी शोभित है।......मेरा मन उसी की ओर आकृष्ट हो रहा है—भला उसे देख कर मैं क्यों न आत्मविस्मृत हो जाऊँ ? कामदेव भी उसकी छटा देख मूर्छित हो जाता है। हे सखा, बताओ वह किसकी कन्या है, किसकी पत्नी ? गोकुल में कौन ऐसा पुण्यात्मा है ? किस पुण्य के फलस्वरूप उसे ऐसा अलौकिक स्त्री-रत्न प्राप्त हुआ है!

"मरि कोन विधि आनि सुधा-निधि
लेथुई राधिका नामे

× × ×

सकल कलेवर काँपे थरथर
धरने नर जाय चित
कि करि कि करि बुझिते ना पारि
सुनह पराण मित॥"

—ऐसा प्रतीत होता है कि विधि ने अमृत का भाण्डार एकत्रित करके उसी को 'राधा' नाम दे दिया।......उसे देखते ही मेरा सारा शरीर थरथर काँप रहा है। धैर्य नष्ट होता जा रहा है। हे प्राणप्रिय मित्र, सुनो, मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

जो दशा कृष्ण की राधा को देख कर होती है,

---

*मिलाइए—"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय"—**कबीर**

१६५४

ठीक वही दशा राधिका की भी श्रीकृष्ण को देख कर होती है, मीरा जैसे भाव-गद्गद होकर कहती है :

"तात मात भ्रात बन्धु अपनो नहिं कोय"

उसी प्रकार चण्डीदास की राधा भी कह उठती है :

"कि मोहिनी जान बन्धु, कि मोहिनी जान।
अबलार प्राण निते नाहि तोमी हेन ॥
राति कैलुँ दिवस, दिवस कैलुँ राति।
तुमिरते तारिलुँ बन्धु तोमार पीरिति ॥
प्यार कैलुँ बाहिर, बाहिर कैलुँ प्यार।
पर कैलुँ आपन, आपन कैलुँ पर ॥

—हे प्राणप्यारे, तुम्हारे पास कौन-सी मोहिनी है! अबला के प्राण छीनने में तुम्हारे सदृश कुशल कोई और नहीं। तुम्हारे अनुराग के कारण मैंने रात को दिन और दिन को रात बना रखा है, फिर भी तुम्हारे प्रेम के रहस्य को न समझ सकी। तुम्हारे लिए ही मैंने अपनों को पराया और परायों को अपना बनाया 'प्रथम दर्शन' के पश्चात् अभिसार की वेला आती है। राधा ने अभिसार के लिए प्रियतम को गुप्त स्थल पर आने का संकेत दिया है। घनघोर वर्षा के कारण (और लोकलाज के भय से भी!) वह उनसे न मिल सकी। उसे इसी बात का खेद होता है कि :

"ए घोर रजनी मेघेर घटा
केमने आइल बाटे।
आँगिनार कोने बन्धुया तितिछे
देखिया पराण फाटे ॥"

—यह घनान्धकारमयी रात्रि है, आकाश में छाई हुई घटाएँ निरन्तर बरस रही हैं। आँगन के कोने में खड़ा हुआ प्रियतम भीग रहा होगा, यह सोच कर मेरा हृदय फटा जा रहा है।

निदान प्राकृतिक बाधाओं का अतिक्रम करके राधाकृष्ण का मिलन होता है। घनश्याम के दर्शन से हर्षातिरेक के कारण गद्गद होकर राधिका कह उठती है :

"सखि, आमार अंगे यदि मिशाहत कालिया।
बंधु रे राखिताम आमि हियार माझे लुकाइया।
श्याम यदि अंजन हइत।
नयने थुइताम आमि जलदेर मत ॥
अतसी कुसुम हइत श्याम।
आमार कालो केशे लोटने बाँधियाँ राखिताम ॥"

—सखि, यदि कृष्ण मुझ में विलीन हो सकते तो मैं उन्हें हृदय में छिपा कर रखती; यदि अंजन होते तो सदा के लिए आँखों में आँज लेती; यदि अतसी का पुष्प होते तो अपने घने काले बालों के खोंपे में धारण कर लेती!)।

रासलीला वैष्णव-काव्य का एक प्रमुख अङ्ग है। पूर्णचन्द्रप्रकाशोद्भासित यमुना-पुलिन पर गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ रासलीला रचने के लिए एकत्रित होती हैं। कविवर चण्डीदास ने वातावरण का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है :

"शरद्-पूर्णिमा निरमल राति
अजर सकल वन।
मल्लिका मालति विकसित तथि
मातल भ्रमर राग ॥
तरुकुल–डाल फूल भरि भाल
सौरभे पूरिल ताय।
देखि से शोभा जग मन लोभा,
भूमिल नागर राय ॥
निधुबने आछे रतन वेदिका
मणि-माणिक्येते बाँधा।
फटिकेर तरु रहियाछे चारु
ताहाते हीरार छाँदा ॥"

—शारदीय पूर्णिमा की रात्रि में पूर्णचन्द्र के उज्ज्वल, शीतल प्रकाश से सारा वन आलोकोद्भासित हो रहा है। वहाँ मल्लिका, मालती आदि पुष्प खिले हुए हैं जिन पर मदमत्त भ्रमर गूँज रहे हैं। सारे संसार को प्रलुब्ध करनेवाली उस छटा को देख कर नागर श्रीकृष्ण भी मोहित होकर वहाँ आ ही गए! निधुवन में मणि-माणिक्य-जटित रत्नवेदी और स्फटिक का वृक्ष है, जिस पर हीरे की झालर लगी हुई है।

प्रेम के नैराश्य का कवि ने बड़ा सांगोपांग वर्णन किया है। यही नैराश्य आगे चल कर खण्डिता नायिका के भाव में परिवर्तित हो जाता है। श्रीकृष्ण ने श्रीराधा को अभिसार के लिए बुलाया है तथा संकेत-स्थल पर मिलने का संदेश दिया है। "वासक शय्या" राधिका

गुप्त स्थल पर आती है, परन्तु नटनागर नहीं आते—मिलन-रजनी व्यर्थ चली जाती है। राधिका कभी झुँझलाती हैं, कभी विषाद के सागर में डूबती-उतराती है, कभी आशा से उद्ग्रीव हो उठती है :

"बाहिर हइया देख लो सजनी
बँधूर सबद सुनि
पुनः कहे सई—ना आसिले बँधू
मरमे रहल व्यथा
कि बुद्धि करिब पाषाणे बाड़िया
भांगिल आपन माथा ?
फूलेर ए डाला फूलेर ए माला
सेज बिदाइनु फूले।
सबै हैल बासि, आर के न लई
भासाणे यमुना जले॥

× × ×

ताम्बुल विरस; फूलहार फणि
दंशिछे हृदय जेन

× × ×

ललाटेर सिन्दूर मूछि करो दूर
नयानेर काजर रेखा॥"

—सखी, जरा बाहर निकल कर तो देख—प्रियतम के आने का शब्द सुन रही हूँ। पुनः राधिका कहती है कि यदि श्याम न आए तो हृदय में पीड़ा बनी रहेगी। क्या उपाय करूँ—क्या पत्थर पर टकरा कर सर फोड़ लूँ? पुष्प की डाली है, फूलों की यह माला है—फूलों की ही मैंने सेज रची है। सब फूल मुरझा कर बासी हो गए; सखी, अब इनसे क्या लाभ इन्हें यमुना के जल में बहा दे।...अधर का तांबूल रंगहीन हो रहा है। मेरे फूलों की माला नागिन बन कर हृदय को जैसे डस रही है!...माथे का सिन्दूर और आँखों का काजल पोंछ दो!

निराशा की रजनी के पश्चात् प्रभात आता है; श्रीकृष्ण अन्यत्र विहार कर के लौटते हैं—राधिका से उनकी भेंट होती है। राधिका उनींदी एवं अलसाई हुई आँखों तथा शरीर पर रति के विविध चिह्नों से जान लेती है कि प्रियतम अन्य किसी स्त्री से प्रेम करने लगे हैं। इसलिए मान करके प्रियतम को उलाहने देती हुई कहती हैं :

''छुँओना, छुँओना बँधू ऐसाने थाको
मुकु' लइया चाँद मुखखानि देखो॥
नयनेर काजल वयाने लेगे छे
कालर ऊपर काल।
प्रभाते उठिया ओ मुख देखिलाम॥
दिन जाबे आज भाल
अधरेर तांबुल बयाने लेगेछे
घूमे ढुलु-ढुलु आँखि
कुटिल नयने कहिछे सुन्दरी
अधिक करिया तोड़ा
कहे चण्डीदास आपस स्वभाव
छाड़िते ना पारे चोरा॥"

—प्रियतम, मुझे मत छुओ, दूर ही रहो। ज़ दर्पण लेकर अपना चन्द्रमुख तो देखो। नेत्रों में लगे का काला काजल तुम्हारे 'काले' मुख पर कैसी सुन्द झलक दिखा रहा है! रात को न सोने के कारण आँ अलसाई हुई एवं उनींदी हैं। प्रातःकाल सबसे पहले मुख देखा, आज दिन अच्छा बीतेगा! अधर को रं वाला तांबूल मुख पर लगा हुआ है!

मान के कारण आँखें तरेर कर सुन्दरी राधा क्रो पूर्वक ये शब्द कृष्ण से कह रही हैं। चण्डीदास क हैं कि भला चोर कहीं अपना स्वभाव छोड़ सकता है!

इस छन्द में कवि ने किस निपुणता से "गूढ़ोक्ति" एवं "व्याजनिन्दा" अलङ्कारों का प्रयोग किया है, व विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

राधिका के हृदय में उस स्त्री के प्रति उपालम्भ की भावना जाग उठती है जिसने श्याम को इस प्रका "फोड़" लिया और उससे विमुख कराया :

"युवती हइया श्याम भाङ्गाइया
एमति करिल के
आमार पराण जेमति भरिछे
सेमति हउक से॥"

—वह कौन युवती है जिसने स्वयं स्त्री होकर भी श्याम को 'छोड़ कर' मेरी यह दशा की? मेरा अभिशाप है कि कृष्ण के विरह में मेरे हृदय की जो दयनीय दशा है वह दशा उसके हृदय की भी हो!

"सौतिया-डाह" की भावना कविप्रवर चण्डीदा ने राधा के अतिरिक्त अन्य व्रजबालाओं में भी दिखा

१६५४

है। श्रीकृष्ण का राधा पर अत्यधिक प्रेम तथा उसकी ओर अत्यधिक आकर्षण देख कर एक गोपी (ललिता या विशाखा ?) झुँझला कर कृष्ण से कहती है :

"एई पथे निति करो गतायति
नूपुरेर ध्वनि सुनि।
राधा-संगे वास, आमारे नैराश
आमि वंचि एकाकिनी ॥
बँधू है, छाड़िया नाहिक दिब।
हियार माझारे राखिब तोमारे,
सदाई देखिले पाव ॥*

—प्यारे, इसी मार्ग से तुम नित्य यातायात करते हो, मैं तुम्हारे नूपुरों की झनकार सुनती हूँ। राधा के साथ ही तुम विराजते हो और मैं अकेली निराशा में समय काटती हूँ! प्रियतम तुम्हें नहीं छोड़ूँगी—तुम्हें अपने हृदय में बन्द करके रखूँगी ताकि सब समय तुम्हारे दर्शन पा सकूँ!

और सखियों से प्रार्थना करती है :

"सुन सखीगण करिया यतन
लये चलो निकेतने।
आजुकार निशि राधिका रूपसी
वंचुक नागर बिने

—सुनो सखियों, यत्न करके श्याम को निकेतन ले चलो। रूपसी राधिका को आज की रात श्याम से वंचित होकर ही बिताने दो!

इसी प्रसङ्ग में कवि ने श्रृंगार के साथ 'हास्य' का भी समावेश किया है। श्रीकृष्ण उस नायिका के साथ-साथ कुञ्ज की ओर जाने तो लगते हैं पर राधिका के क्रोध की कल्पना करके थर थर काँपने भी लगते हैं :

"एतेक सुनिया करेते धरिया
लइया चलिल वास।
राधा-भये हरि काँपे थरि थरि
भने कवि चण्डीदास ॥"

मैत्री (Compromise) का भी कविवर चण्डीदास ने वर्णन किया है। राधा श्रीकृष्ण से रूठी हुई हैं—सखियाँ मध्यस्थ बनती हैं; अनेक प्रकार से श्रीकृष्ण की प्रशंसा करके उसे मनाना चाहती हैं परन्तु श्री राधा सुगमतापूर्वक नहीं मानतीं, क्योंकि कविवर विद्यापति के शब्दों में :

"सखि हे, ना बोल वचन आन।
भाले भाले हाय अलपे चिह्नलुँ ऐछन कुटिल कान।"

पर राधिका को सखियाँ मना ही लेती हैं। राधिका प्रेमसागर कृष्ण के गुणों का हृदय से अनुभव करने लगती हैं और अपनी ज़िद पर पछताती हुई घनश्याम से कहती हैं :

"सुन हे रसिक राय
तोमा उपेखिया जे सुखे आछिलुँ
निवेदिये तुमा पाय।
कि जानि कि खेने कुमति हईल
गरबे भरियो गेलुँ।"

—सुनो रसिकश्रेष्ठ! तुम्हारी उपेक्षा करके मैं जिस सुख से विपरीत लक्षण से जिस दुःख में—रही, उसे तुम्हारे चरणों में निवेदित करती हूँ। न जाने किस कुलक्षण में मेरी कुबुद्धि जाग उठी, जो मैं इस प्रकार गर्व से भर कर तुम से मान कर बैठी।

इसी संयोग श्रृंगार-वर्णन प्रसंग में 'हृदय के पारखी' सूर ने जिस प्रकार सम्बन्ध-भावना की शक्ति का प्रसार दिखाया है, उसी प्रकार चण्डीदास ने भी; उनकी भी मुरली पर दृष्टि जाती है परन्तु उनकी मुरलीविषयक भावना सूर आदि कवियों से कुछ भिन्न है। सूर की गोपियों को तो मुरली स्पर्द्धा करनेवाली सौत के रूप में दिखाई देती है :

"मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुन री, सखि, जदपि नंदनँदहिं नाना भाँति नचावति ॥"

पर चण्डीदास की राधा तथा अन्य गोपियाँ 'कान्हा' की मुरली पर इसलिए खीझती हैं कि उसी ने स्वर का जादू फैला कर उन्हें लोक-मर्यादा, कुल-मर्यादा, शील-मर्यादा आदि से विमुख कर दिया :

बाँह छुड़ाए जात हो, निबल जानिकै मोहि
हिय तैं जो निकस सकौगे, बली बदौंगो तोहि

—सूर

---

* मिलाइए—औरन संग बातियाँ करत हो,
हम से रहो चित चोरी।"

—मीरा

"सजनी लो सई
खनिक बैसह श्यामेर बांशीर कथा कई
श्यामेर बाँशीटी दुपुरे डाकाति
सरबस हरि लैल

× × ×

कुल-करम, धीरज-धरम
सरम मरम फाँसी
चण्डीदास कहे एई से कारणे
कानु सरबस बांशी ॥"

— सखी जरा बैठ, तुझसे श्याम की मुरली की बात कहूँ। श्याम की बाँसुरी ने दिन दहाड़े डाका डाल कर मेरा सर्वस्व छीन लिया। कुल-कर्म अर्थात् मर्यादा, धैर्य, धर्म, लज्जा, इन सबके लिए यह मुरली फाँसी के समान है। चण्डीदास कहते हैं कि इसीलिए तो मुरली श्रीकृष्ण का सर्वस्व है!

भावुकप्रवर चण्डीदास ने शृंगार के वियोग-पक्ष की भी बड़ी मार्मिक एक व्यापक अभिव्यंजना की है। सच तो यह है कि "बिना दुख के सब सुख निःसार, बिना आँसू के जीवन भार"—कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के इस कथनानुसार वियोग-वर्णन में जो तल्लीनता है वह संयोग-वर्णन में नहीं। आजकल चण्डीदास, विद्यापति आदि कवियों की जो वैष्णव पदावलि (कीर्तन) बंगाल में गाई जाती है उसमें विरह-प्रसंग ही अधिक होते हैं, संयोग के बहुत कम।

चण्डीदास के इस वियोग वर्णन में एक बात विशेष रूप से द्रष्टव्य है। हिन्दी में जिस 'भ्रमर गीत' परम्परा का विकास हुआ वह परम्परा चण्डीदास की रचना में परिलक्षित नहीं होती। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दी के सूर, नन्ददास आदि कवियों ने उद्धव द्वारा निर्गुण का उपदेश दिलाकर तथा उसके उत्तर में गोपियों द्वारा उद्धव को जली-कटी सुनवाकर, सगुण का मण्डन करते हुए जिस प्रेम तत्त्व की व्यंजना की, उस आदर्श पर चण्डीदास तथा अन्य "गौड़ीय वैष्णव" नहीं चले। चण्डीदास का वियोग वर्णन करुणा की एक अखण्ड धारा है, जिसे उद्धव आदि ने निर्गुण की बाँध लगा कर कहीं भी मोड़ने या रोकने का प्रयास नहीं किया है।

श्रीकृष्ण मथुरा जा रहे हैं। ललिता सखी आकर राधा को यह समाचार सुनाती है—पर राधिका को विश्वास ही नहीं होता कि उसका प्रेम-पाश तोड़ कर कृष्ण कहीं अन्यत्र भी जा सकते हैं:

"ललितार कथा सुनि हाँसि हाँसि विनोदिनी
कहिते लागिल धनी राई।
आमारे छाड़िया श्याम मधुपुरे जाबेन
ए कथा तो कभु सुनि नाई॥
तोमरा जे बलो श्याम मधुपुरे जाबेन,
कौन् पथे बँधू पलाइने?
ए बूक चिरिया जबे बाहिर करिया दिन
तबे तो श्याम मधुपुरे जाबे॥"

— ललिता की बात सुन कर हँस कर धनी राधिका ने कहा, मुझे छोड़ कर श्याम मधुपुरी जाएँगे, मैंने नहीं सुना! तुम लोग तो कहती हो कि कृष्ण मथुरा जाएँगे, लेकिन प्रियतम भागेंगे कैसे? वे तो मेरे हृदय में बसे हैं। यदि मैं अपना हृदय चीर कर उन्हें बाहर निकाल दूँ, तभी तो कृष्ण मथुरा जा सकेंगे!

परन्तु श्रीकृष्ण सचमुच मथुरा चले जाते हैं। वियोग के कारण श्री राधा की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है। उसे प्रेम के दुःखदायी स्वरूप की उपलब्धि होती है। और इसीलिए प्रेम करने पर उसे 'पश्चात्ताप' होने लगता है:

"सई के बले पीरिति भालो?
हाँसिते हाँसिते पीरिति करिया
कान्दिते जनम गेलो॥"

—सखी, कौन कहता है प्रेम अच्छा अर्थात् सुखद है। संयोग की दशा में सानन्द मैंने प्यारे से प्रेम का नाता जोड़ा, पर अब उनके वियोग में रोते रोते जीवन बीता जा रहा है।

कवि ने बड़े ही सुन्दर रूपक द्वारा राधा के मुँह से प्रेम की तुलना उसी सरोवर से कराई है जो बाहर से तो बड़ा सुहावना लगता है पर जिसमें स्नान करने के लिए उतरते ही दुःख के मगर जीव को ग्रस लेते हैं। विरह की भयंकर हवा चलने लगती है प्राण संकट में पड़ जाते हैं:

"पीरिति सुखेर सायर देखिया
नाहिते नाँबिलु ताय।

१९५४

नाहिया उठिते फिरिया चाहिते
लागिल दुखेर बाय ॥
देखिते सुन्दर प्रेम सरोवर
निरमल तार जल ।
दुखेर मकर फिरे निरन्तर
प्राण करे टल मल ॥"

कुब्जा पर भी विरहावस्था में राधिका की दृष्टि जाती है। रूपक द्वारा कवि ने श्रीकृष्ण को सुन्दर शुक पक्षी माना है जो अब तक राधिका के नयन फन्दे द्वारा पकड़ा जाकर उसके हृदय पिंजर में बन्द था लेकिन अब विश्वासघात करके मथुरा भाग आया है। कुब्जा ने राधिका का वह धन पकड़ रखा है: कवि राधिका का दूत बन कर कुब्जा के समीप उसे वापस माँगने आता है :

"श्याम शुक पाखी सुन्दर निरखि
राई धरिल नयन फाँदे ।
हृदय-पिंजरे राखिल सादरे
मनो हि शिकल बाँधे ॥
एखन हये अविश्वासी, काटिये आकुनि
पलाये एसेछे पुरे ।
सन्धान करिते पाइनु सुनिते
कुबुजा रखेछे धरे ॥
आपनार धन करिते प्रार्थन
राई पाठाइल मोरे ॥"

वैष्णव प्रवर चण्डीदास का 'भाव-सम्मिलन' वर्णन बड़ा ही अनूठा है। वास्तव में "भाव-सम्मिलन" पुनर्मिलन नहीं—यह तो वियोग की वह दशा है जिसे हम उन्माद कह सकते हैं। वियोगिनी को भ्रम होने लगता है या वह मन ही मन कल्पना करने लगती है कि अब वह वियोगिनी न रही—प्रियतम "अंकम भेंटि गहन्न !" यह सम्मिलन कुछ वैसा ही है जैसा कि सूर की एक गोपी वर्णन करती है :

"हमको सपनेहुं में सोच ।
जा दिन तें बिछुरे नँद नँदन ता दिन तें यह पोच ॥
मनो गोपाल आए मेरे घर, हँसि करि भुजा गही ।
कहा करौं वैरिन भई निन्दिया, निमिष न और रही ॥"

अस्तु, चण्डीदास की राधिका का भी कृष्ण से 'भाव-सम्मिलन' होता है; काल्पनिक आनन्दावस्था में भाव-गद्गद हो वह कह उठती है :

"बहु दिन परे बँधुआ एले
देखा ना हइत पराण गेले ॥
एतेक सहिल अबला बले ।
फाटिया जाइत पाषाण हले ॥

× × ×

एखन कोकिल आसिया करुक गान ।
भ्रमर धरुक ताहार तान ॥
मलय पवन बहुक मन्द
गगने उदय हउक चन्द ॥"

—प्रियतम, बहुत दिनों बाद लौट कर आए; प्राण चले जाने से फिर दर्शन न होते। एक अबला होने के कारण ही मैंने इतना दुःख सहा—पत्थर का हृदय भी इस दुःख से फट जाता। अब मैं संयोगिनी हूँ—अब कोयल पञ्चम स्वर में राग अलापे, भ्रमर गूँजें, शीतल, मन्द, सुगन्धित मलयानिल चले; आकाश में पूर्ण चन्द्र प्रकाश करें।

इन पंक्तियों के साथ मैथिल-कोकिल विद्यापति की इन प्रसिद्ध पंक्तियों का कितना भाव-सादृश्य है :

"आजु रजनी हम भागे पोहायनु
पेखलूँ पिया मुखचन्दा
जीवन-यौवन सफल करि मानलूँ
दश दिश भेल निरदन्दा

× × ×

सोई कोकिल अब लाख लाख डाकऊ
लाख उदय करु चन्दा ।
पाँच बाण अब लाख बाण होऊ,
मलय-पवन बहु मन्दा ॥"

राधिका को कभी कभी यह भी अनुभव होने लगता है कि प्राकृतिक शुभ-शकुनों से प्रियतम के आने का संकेत या पूर्वाभास हो रहा है। इस वर्णन से अंग्रेजी की प्रसिद्ध पंक्तियाँ स्वतः याद आ जाती हैं :

"Hopes Spring Eternal in Human Breast
Man never is but always to be blest !"

"चिकुर फुरिछे तरुन उड़ि छे
पुलक यौवन-भार

वाम अंग आँखि सघने नाचिछे
दुलिछे हियार हार ॥
प्रभात-समय काक कोलाहलि
आहार बाँटिया खाय।
पिया आसिबार कथा बुझाइते।
उड़िया बसिल ताय ॥"

—मेरे केश और वस्त्र हवा से चंचल हो रहे हैं, कुसुमित यौवनयुक्त शरीर पुलकित हो रहा है। बायाँ अंग और बाँई आँख फड़क रही है, हृदय पर रखा हुआ हार चंचल हो रहा है। कौए से प्रियतम की आगमन-वार्त्ता पूछी तो उसने आहार छोड़ कर अन्यत्र बैठ कर बताया था कि प्रिय सब आकर्षण छोड़ कर लौट आएगा।

परम्परानुसार वियोगिनी प्रियतम को उसकी निष्ठुरता के लिए कहीं कहीं कोसती अवश्य है, पर करुणा के कारण हृदय का प्रसार भी होने लगता है। प्रियतम निष्ठुर भले ही हों पर हैं तो वे जीवन-सर्वस्व! राधा यही प्रार्थना करती है कि श्रीकृष्ण जन्म-जन्मान्तर तक उसे प्राप्त होते रहें। वियोगिनी "कीर्त्ति-कुमारी" के हृदय की यह भावना कविवर चण्डीदास की इन सुप्रसिद्ध पंक्तियों में कितनी मार्मिक बन पड़ी है :

"बँधू, किं आर कहिब आमि
जीवने मरणे जनमे जनमे
प्राणनाथ हइओ तुमि।"

—प्रियतम! क्या कहूँ! बस, यह प्रार्थना है कि जीवन में, मृत्यु में, जन्म-जन्मान्तर में, तुम्हीं मेरे प्राणनाथ बने रहना।

निष्कर्षरूप में हम यही कह सकते हैं कि कविवर चण्डीदास की भावुकता अद्वितीय है। वैष्णव कवियों में ये विद्यापति के समकक्ष माने जा सकते हैं। बंगाल के पदावलि-कीर्त्तन के प्रमुख आधार चण्डीदास के पद हैं, जिनकी संगीतात्मकता तथा भावुकता अद्वितीय है।

चण्डीदास ने भक्ति-सम्बन्ध में ब्राह्मण-शूद्र, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन का भेद नहीं किया; उनकी दृष्टि में राधाकृष्ण की अनिर्वचनीय प्रेमलीला का आनन्द लेने का मनुष्य-मात्र को अधिकार है। इसीलिए उन्होंने घोषणा की :

"सुन रे मानुष भाइ
सवार ऊपर तुमि सत्य, ताहार ऊपर नाइ ॥"
—सुन सुन मानुष भाई,
सबके ऊपर तू ही सत्य है, तुझमें शक्ति समा

चण्डीदास द्वारा वर्णित राधाकृष्ण की इस लीला पर "आध्यात्मिकता का रंग" न चढ़ाते हुए कहना पड़ेगा कि निःसन्देह यह प्रेम पार्थिव प्रति से परे अनिर्वचनीय और लोकोत्तर है। उनके प्रेम में कहीं "अश्लीलता" नहीं है; चण्डीदास हैं " शिवं, सुन्दरम्" के सच्चे उपासक!

चण्डीदास ने राधिका के मुँह से प्रेम की अनिर्व नीयता एवं महत्ता की व्याख्या कराई है : "जो धर्म प्रकृत मार्ग न जान कर केवल अर्थहीन अनुष्ठान में हैं, उनसे मेरा कोई सम्पर्क नहीं; मैंने बाह्य अनु त्याग कर धर्म को हृदय के अन्दर ग्रहण किया है। ध में तन्मय होने से बाह्य चिन्तारहित चित्त में ज्योति का आविर्भाव होता है—वह ज्योतिर्मय है (साँवरिया) जो हैं अगम्य, अपार, अवाङ्मनसगोचर यह अनुभव का विषय है, वर्णन का नहीं। सखि तुम लोग परम पति के प्रति सतत अनुरक्त रह संसार में अनासक्त हो भावतन्मय जीवन यापन कर इसी प्रकार प्रकृत प्रेम प्राप्त होता है एवं संसार में रह हुए भी विषयासक्त या पूर्णतः उदासीन नहीं हो पड़ता।" (पद्मपत्रमिवांभसा)

"मरम ना जाने धरम बाखाने
ऐमन आछये जारा।
काज नाहि सखि, तादेर कथाय
बाहिरे रहुन तारा ॥
तोरा पर पति सने शयने स्वपने
सतत करिबि लेहा।
तोरा सिनान करिबि, नीर ना छुँइबि
भाविनी भावेर देहा ॥"

—जयन्त प्रसाद बा

१८५, मैरिस रोड,
अलीगढ़ (उ० प्र०)

अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म का स्वरूप

अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म की कल्पना मुख्य है। वस्तुतः ब्रह्म ही सत्य है, इसके अतिरिक्त सब कुछ—यह बहुत-सी विचित्र वस्तुओं से परिपूर्ण संसार और जीवात्मा भी—असत्य है। यहाँ सत्य का अर्थ सत्ता है और इस प्रकार ब्रह्म के सिवाय इस सारे ब्रह्माण्ड में किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। यह बात कि केवल ब्रह्म ही सत्य है और सब कुछ असत् अर्थात् नहीं है पारमार्थिक दृष्टि से समझनी चाहिए, क्योंकि लोक-व्यवहार की दृष्टि से तो संसार की सत्ता सर्वसाधारण को मान्य ही है। दूसरे शब्दों में जब तक अविद्या का प्रभाव हमारे जीवात्मा पर छाया हुआ है तब तक यह जगत् सत्तावान् प्रतीत होता है, परन्तु ज्यों ही हम अविद्या के काले पर्दे को चीर डालने में समर्थ हो जाते हैं जिसके लिए सम्यग् ज्ञान अतीव आवश्यक है--उसी क्षण यह संसार कपोल-कल्पित सर्प की तरह न जाने कहाँ विलीयमान हो जाता है।

ब्रह्म स्वयंसिद्ध और स्वयंप्रकाश है। ब्रह्म के स्वयंसिद्ध होने का अर्थ यह है कि ब्रह्म के अस्तित्व की सिद्धि किसी अन्य पदार्थ द्वारा सापेक्ष नहीं है अर्थात् उसके अस्तित्व में कोई तरह की शंका का प्रश्न ही नहीं उठता। इसका कारण यह है कि ब्रह्म हमसे कोई पृथक् वस्तु नहीं है क्योंकि वह हममें ही समाया हुआ है। इसी प्रसंग में हमको 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्माऽऽस्मि' आदि श्रुतियों के महावाक्य समझने की ज़रूरत है। इन महावाक्यों का स्पष्ट अर्थ यह है कि ब्रह्म जीवात्मा से बिलकुल अभिन्न है, अर्थात् ब्रह्म और जीवात्मा ये दो शब्द एक ही अखण्ड अर्थ का प्रतिपादन करते हैं। और जब ब्रह्म जीवात्मा ही है—और यह स्पष्ट है कि हम अपनी आत्मा के विषय में किसी प्रकार की शंका नहीं कर सकते क्योंकि शंका करने में भी हमारा आत्मस्वरूप प्रकाशित हो ही जाता है—तब हम ब्रह्म की सत्ता के विषय में किस प्रकार सन्दिग्ध-चित्त हो सकते हैं जब कि वह हमारा आत्मरूप ही है। "य एव हि निराकर्ता तदेव तस्य स्वरूपम्"[1] इस प्रकार ब्रह्म की सत्ता स्वयंसिद्ध है। इसी प्रकार ब्रह्म स्वयंप्रकाश भी है जिसका अर्थ यह है कि ब्रह्म के स्वरूपगत ज्ञान का प्रकाश किसी और वस्तु के सापेक्ष नहीं है।

इसके अतिरिक्त ब्रह्म का स्वरूप ऐसा है कि हमारी बुद्धि उसको ग्रहण नहीं कर सकती। इसका मुख्य कारण यह है कि बुद्धि विषय और विषयी (Object and Subject) की सीमा में बँधी हुई है, जब कि ब्रह्म इस बन्धन से परे है। वह शुद्ध प्रमाता ही है और इस प्रकार प्रमेय न होने के कारण कोई ज्ञान का विषय नहीं हो सकता। यही कारण है कि हम ब्रह्म के अस्तित्व की सिद्धि बौद्धिक युक्तियों द्वारा नहीं कर सकते, क्योंकि उनका स्वरूप हमारे बौद्धिक ज्ञान की परिधि के सर्वथा बाहर ही रहता है।

अद्वैत वेदान्त एकतत्ववादी है। यह तत्व (Reality) स्पष्टतः ब्रह्म ही है। अब प्रश्न यह है कि जब केवल ब्रह्म-मात्र ही सत्य है, तो इस अखिल विश्व में दृष्टिगोचर होनेवाले नाना प्रकार के पदार्थों का क्या महत्व है? क्या वे सब मरु-मरीचिका की तरह असत्य हैं अथवा इनमें कुछ सत्य (सत्ता) का अंश विद्यमान है? अद्वैत के मतानुसार इन नाना प्रकार की अनेकता (Manifoldness) सत्तावान् प्रतीत होती हुई भी असत् के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अपि तु अनेकता का विचार भेद पर अवलम्बित है और इसी कारण भेदरहित अनेकता का नानात्व पिघल कर ऐक्य में लीन हो जाता है अर्थात् अनेकता भेद के बिना सर्वथा अशक्य है। इस प्रकार अनेकता और भेद परस्पर एक दूसरे पर अवलम्बित हैं और इसीलिए भेद के खण्डन के साथ ही साथ अनेकता का खण्डन भी स्वतःसिद्ध है।

इस भेद विचार का निराकरण श्रुति और युक्ति (Argument) दोनों से किया जा सकता है। श्रुति में स्थान-स्थान पर भेद की कल्पना को मिथ्या बतलाया गया है—जैसे उदाहरण के लिए—'नेह नानास्ति

---

[1] शांकर भाष्य—२-३-७.

किंचन। 'मृत्योः स मृत्युं स गच्छति य इह नानेव पश्यति।'[२] 'जहाँ द्वैत है ऐसा प्रतीत होता हैं'[३] किन्तु जब उसके लिए सब परमात्मा ही है तब किस साधन से और किसका वह अवलोकन करे'[४] इत्यादि।

इसी प्रकार युक्ति से भी भेद का खण्डन हो सकता है। प्रथम तो प्रत्यक्ष (Perception) हमको भेद का आभास नहीं होता। यहाँ प्रश्न यह है कि प्रत्यक्ष में हमको वस्तु के स्वरूप (Essential Nature) का ज्ञान होता है अथवा तत्सम्बन्धी भेद का? थोड़े से विचार से मालूम हो सकता है कि किसी वस्तु जैसे घट के प्रत्यक्ष-ज्ञान में हमें उसका स्वरूप ही उपलब्ध होता है, तत्सम्बन्धी भेद नहीं। इसका कारण यह है कि प्रथम तो भेदसंबन्धी ज्ञान वस्तु के स्वरूप पर अवलंबित है और इसीलिए भेद का ज्ञान स्वरूप-ज्ञान के बाद में ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त भेदसम्बन्धी ज्ञान के लिए उन सब प्रतियोगी वस्तुओं (Counter-Entitie's) की स्मृति की आवश्यकता है जो किसी विशिष्ट वस्तु से भिन्न हैं। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रत्यक्ष-ज्ञान एक क्षण-मात्र रहता है जिस अवधि में उन सब प्रतियोगी वस्तुओं का स्मरण सर्वथा असंभव है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्यक्ष में हमें वस्तु का स्वरूपमात्र ही उपलब्ध होता है और इसीलिए भेदसम्बन्धी ज्ञान हमारे प्रत्यक्ष के सर्वथा बाहर ही रह जाता है।

इसके अतिरिक्त स्वयं भेद का स्वरूप (Nature) क्या है? इस सम्बन्ध में दो विकल्प (Alternative) संभव हैं—या तो भेद वस्तु का स्वरूप है अथवा उसका धर्म है। ये दोनों ही विकल्प तर्कसंगत नहीं हैं। प्रथम पक्ष में भेद को वस्तु का स्वरूप मानने का अर्थ यह है कि जब हम किसी वस्तु जैसे घट का प्रत्यक्ष करते हैं तब हम उसके स्वरूपगत सर्वांगीण भेद (जिसमें संसार की सब वस्तुएँ आ सकती हैं क्योंकि घट उन सबसे भिन्न है) जानते हैं, क्योंकि किसी वस्तु के स्वरूप को जाने बिना हम तत्विषयक वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते परन्तु वास्तव में ऐसा सर्वथा असंभव है क्योंकि किसी भी वस्तु को जानते समय जिसमें कुछ क्षण लगते हैं हम उसके सर्वांगीण भेद (जिनमें संसार की सारी वस्तुएँ आ सकती हैं) जान भी कैसे सकते हैं। इन आपत्तियों के कारण भेद वस्तु का स्वरूप नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार भेद वस्तु का धर्म भी नहीं माना जा सकता। इस पक्ष में भेद वस्तु के स्वरूप से पृथक् है इसका अर्थ यह है कि स्वयं भेद वस्तु के स्वरूप से भिन्न है—अर्थात् इस भेद में एक भिन्नत्व गुण वर्तमान है जिससे भेद और स्वरूप की सत्ता पृथक्-पृथक् है लेकिन यह भिन्नत्व गुण (या भेद) वस्तु के स्वरूप से फिर पृथक् है और इसीलिए इसमें एक नया भेद है। इस तीसरे भेद में भी भिन्नत्व गुण की सत्ता माननी पड़ेगी अन्यथा भेद और स्वरूप में कोई अन्तर नहीं रहेगा। इस प्रकार चौथे भेद की व्यवस्था करनी पड़ेगी और फिर पाँचवें की और इस तरह अनवस्था (Infinite regress) का प्रसंग उपस्थित होगा। इसके अतिरिक्त किसी वस्तु के भेद का ज्ञान आकारादि गुणों से भिन्न किसी विशिष्ट वस्तु के ज्ञान पर अवलंबित है और इसी प्रकार आकारादि गुणों से भिन्न वस्तु का ज्ञान उसके भेद-ज्ञान होने पर ही संभव है। इसका अर्थ यह है कि भेद के ज्ञान में अन्योन्याश्रय (vicious circle) का प्रसंग भी उपस्थित होता है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष में हमें भेद का ज्ञान नहीं होता। इसके अतिरिक्त भेद न तो वस्तु का स्वरूप माना जा सकता है और न उसका धर्म (Attribute)। दूसरे शब्दों में भेद विचारासह है और इसीलिए असत्य है; अर्थात् उसकी सत्ता वस्तु में न होकर हमारी कल्पना मात्र में ही है।

अब तक यह सिद्ध किया जा चुका है कि भेद की कोई सत्ता नहीं है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भेद गगन-कुसुम की तरह ही असत् है, क्योंकि गगन-कुसुम तो अत्यन्त असत् है और इसीलिए वह हमारे ज्ञान का विषय नहीं हो सकता, जब कि भेद की प्रतीति सर्वसाधारण के अनुभव की बात है। वास्तव में भेद का असतत्व रज्जु में भासने वाले सर्प की तरह है जो प्रतीत होता हुआ भी असत् है। भेद के असत् होने के साथ अनेकता, जो अन्ततः भेद मूलक ही है—और असत् है। इस प्रकार नानात्व के असत् अर्थात् मिथ्या सिद्ध होने पर केवल ब्रह्म ही एक ऐसा पदार्थ है जो सर्वथा सत् है।

---

[२] बृहदारण्यक उपनिषद् ४—४.१६ [३] बृहदा. उप. ३—५.१५ [४] बृहदा. उप. ४—५.१५

१९५४

अब प्रश्न यह है कि असत् होते हुए भी अनेकता हमको क्यों प्रतीत होती है? अद्वैत के मतानुसार यह अनेकता की प्रतीति नाम रूप के कारण होती है। ये नाम-रूप अन्ततः अविद्या-जन्य हैं और इसीलिए वस्तुतः अविद्या ही अनेकता की जननी है। वास्तव में अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् दोनों में एक ही तत्व वर्तमान है जो अत्यन्त अबाधित है—और वह है शुद्ध सत्ता जिसका दूसरा नाम ब्रह्म है। जगत् के सब पदार्थ घट-पटादि से लेकर चित्त-बुद्धि तक इस शुद्ध सत्ता के विकार हैं। विकार होने के कारण प्रत्येक एक विशिष्ट नाम और रूप सहित है, जैसे घट एक विकार का नाम है जिसमें एक विशिष्ट प्रकार के रूप का समावेश है इसी प्रकार पटादि। इसी तरह चित्त बुद्धि आदि वस्तुएँ शुद्ध-चैतन्य (Pure Consciousness) के विकार हैं। कुछ विशिष्ट नाम और रूप लेकर वास्तव में ये विविध प्रकार के भेद इन्हीं भिन्न भिन्न नाम रूपों को लेकर हैं लेकिन जैसे कि पहले कहा जा चुका है ये सब नाम रूपजन्य भेद मिथ्या है अर्थात् इनकी कोई सत्ता नहीं है और इनकी प्रतीति हमको केवल अविद्या के प्रभाव से ही होती है। यही बात 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्'[५] द्वारा सिद्ध की गई है। इस प्रसंग में मृत्तिका और घट का उदाहरण देकर यह बतलाया गया है कि वास्तव में मृत्तिका ही सत् है और उसके घटादि विकार नाम रूप-मात्र होने के कारण मिथ्या हैं। दूसरे शब्दों में घट-विकार में भी एक तत्व वर्तमान है और वह है मृत्तिका, इसके अतिरिक्त घट केवल नाम रूप मात्र है और इसीलिए मिथ्या है। जो घट के लिए सत्य है, वह प्रायः सब वस्तुओं के लिए भी सत्य है। इस प्रवाह जगत् के सब पदार्थ केवल नाम मात्र हैं जिनका जन्म प्रादुर्भाव हमारे शब्द प्रयोग में ही होता है।

अपि च यह नामरूप का विचार अध्यास (Superimposition) का उदाहरण है। यह इस प्रकार है। वस्तुतः सब पदार्थों में शुद्ध सत्ता ही वर्तमान है—लेकिन हम अविद्या के वशीभूत होकर शुद्ध सत्ता पर नाम और रूप का आरोपण करते हैं जो सर्वथा मिथ्या है। यही अध्यास की कल्पना है। इस प्रकार अध्यास का अर्थ है—मिथ्यारोपण अर्थात् जो नहीं है उसमें उसी का ज्ञान होना—'अध्यासो नाम अतस्मिंस्तद् बुद्धिरिति'[६] जैसे कि शङ्कराचार्य ने कहा है। यह मिथ्यारोपण अविद्या के कारण ही होता है और इसलिए अध्यास भी अन्ततः अविद्या-मूलक है।

उपर्युक्त नाम रूप का अध्यास हमें बहिर्जगत् में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त हमारे अन्तर्जगत् में भी हमें एक विशेष प्रकार के अध्यास की प्राप्ति होती है—जो इस प्रकार है। अद्वैत के अनुसार हमारा अहं पदार्थ (Ego) स्वयमेव एक मूलगत अध्यास का उदाहरण है। अद्वैत के मत में अहं पदार्थ कोई निरवयव (Simple) अथवा अखण्ड (Indivisible) वस्तु नहीं है, अपि तु वह साक्षी और अन्तःकरण का ऐक्य-रूप (Unity) है। साधारणतः हम इस प्रकार के वाक्यों जैसे, 'मैं मोटा हूँ।' 'मैं दुःखी हूँ।' इत्यादि को मिथ्या नहीं समझते अर्थात् हम इनको अपने अहं पदार्थ का स्वरूप ही मानते हैं। लेकिन वास्तव में ऐसा विचार अध्यास का मूलगत रूप है और इसीलिए मिथ्या है। वस्तुतः मोटापन शरीर का धर्म है और इस प्रकार दुःख भी अन्तःकरण का ही गुण है। दूसरे शब्दों में हमारी आत्मा (Self) इन गुणों से जैसे मोटापन दुःखादि से सर्वथा अस्पृष्ट है और इसीलिए इन धर्मों का आत्मा में आरोप करना सर्वथा मिथ्या है। इस तरह हमारा अहं पदार्थ अविद्या-मूलक अध्यास से ग्रसित है। यहाँ अविद्या के दो धर्म ध्यान देने योग्य हैं—ये हैं आवरण और विक्षेप। प्रथम धर्म से वस्तु का स्वरूप हमसे प्रच्छन्न हो जाता है और दूसरे के द्वारा किसी विशेष वस्तु का आरोप होता है। उदाहरण के लिए प्रथम तो आवरण के कारण रज्जु का स्वरूप हमारे सामने प्रकट नहीं होता और फिर विक्षेप द्वारा रज्जु के स्थान पर सर्प की स्थापना होती है। यही कारण है कि हमें रज्जु के स्थान पर सर्प दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार अब तक यह सिद्ध किया जा चुका है कि अनेकता की कोई सत्ता नहीं है। इसके दो मुख्य कारण हैं। प्रथम तो अनेकता भेद-मूलक है परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं कि भेद न तो वस्तु का स्वरूप हो सकता है और न उसका धर्म और इसीलिए अचिन्तनीय होने के कारण असत है। भेद के असत् होने पर अनेकता भी असत् ही है—क्योंकि वह वस्तुतः भेद-मूलक है। इसके अतिरिक्त अनेकता का ज्ञान एक विशिष्ट प्रकार

---

[५] छान्दोग्य उप. ४—१.४

[६] शाङ्कर भाष्य १—१

का अध्यास मात्र इसीलिए अनेकता की कोई सत्ता नहीं है।

इस प्रकार अनेकता के असत् सिद्ध होने पर अद्वैत के मत में एक ब्रह्म ही ऐसा पदार्थ है जो वस्तुतः सत् है। अब प्रश्न यह है—स्वयं ब्रह्म का स्वरूप क्या है? इस विषय में दो प्रकार की कल्पना है—'सगुण और निर्गुण ब्रह्म' को ये दोनों ही कल्पनाएँ श्रुति-सम्मत हैं। जैसे 'येन वा इमानि भूतानि जायन्ते' और 'जन्माद्यस्य यतः' से सगुण ब्रह्म की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार 'नेति नेति' से ब्रह्म का निर्गुणत्व सिद्ध होता है। अद्वैत के मत में निर्गुणत्व ही ब्रह्म का स्वरूप माना जा सकता है, न कि सगुणत्व जो ब्रह्म का तटस्थ लक्षण मात्र है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे कोई ग्रामीण जब रंगमंच पर राजा की भूमिका में उपस्थित होता है। इस दृष्टान्त में ग्रामीण जीवन ही उस मनुष्य का स्वरूप है, जब कि उसका राजकीय रूप स्पष्टतः तटस्थ लक्षण है, क्योंकि उसका बाध अवश्यंभावी है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म का सगुणत्व उसका स्वरूप न होकर उसका तटस्थ लक्षण मात्र है क्योंकि अविद्या के नाश के साथ ब्रह्म का सगुणत्व भी नाश को प्राप्त होता है।

अतएव ब्रह्म वस्तुतः निर्गुणस्वरूप है। परन्तु इस निर्गुणत्व का अर्थ शून्य नहीं है। वास्तव में निर्गुणत्व का अर्थ है सर्वधर्मव्यावृत्ति, अर्थात् ब्रह्म में कोई सापेक्ष धर्मों की सत्ता नहीं है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ब्रह्म में सत्ता का भी अभाव है, क्योंकि ऐसा मानने से ब्रह्म में और माध्यमिकों के शून्य में कोई अन्तर नहीं रहेगा। इसीलिए ब्रह्म में सब सापेक्ष धर्मों का अभाव होते हुए भी शुद्ध सत्ता (या चैतन्य) वर्तमान है जिसके प्रसंग में ही हम सर्वधर्मव्यावृत्ति का कुछ अर्थ समझते हैं। दूसरे शब्दों में बाध (Negation) के लिए एक सत्तात्मक अधिष्ठान (Substratum) अतीव आवश्यक है क्योंकि शून्य में बाध का कोई अर्थ नहीं है। इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म शुद्ध सत्ता अथवा चैतन्य स्वरूप है। यही बात श्रुति में 'नेति-नेति' से सिद्ध की गई है। अद्वैत मत के प्रवर्तक श्री शंकराचार्य के अनुसार 'नेति नेति' का अर्थ यह है कि ब्रह्म में मिथ्यारोपित नाम रूपी अनेकता का अभाव है, न कि ब्रह्म के शुद्धसत्ता रूपी स्वरूप का। इस प्रकार ब्रह्म निर्गुणस्वरूप होकर भी सत्ताविहीन नहीं है। दूसरे शब्दों में सकारात्मक रूप से (Positively) शुद्धसत्ता ब्रह्म का स्वरूप ही है।

अन्त में प्रश्न यह है कि ब्रह्म ज्ञान का विषय है अथवा नहीं और यदि है तो किस प्रकार के ज्ञान का? यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि ब्रह्म के ज्ञान का प्रश्न व्यावहारिक दृष्टि से ही हमारे समक्ष उपस्थित होता है, पारमार्थिक दृष्टि से नहीं। परमार्थ में तो 'केवल' ब्रह्म ही है अतएव ज्ञाता और ज्ञेय का कोई अर्थ नहीं रहता। इसी बात को बृहदारण्यक उपनिषद् में निम्नलिखित शब्दों में कहा गया है : "जब उसके लिए सब ब्रह्म ही है तब कौन किसको देखेगा, कौन किसको सुनेगा इत्यादि" इस प्रकार ब्रह्म के ज्ञान का प्रश्न व्यावहारिक दृष्टि से ही प्रासंगिक (Relevant) है।

वास्तव में ब्रह्म बुद्धि के ज्ञान का विषय नहीं हो सकता। इसके दो कारण हैं। एक तो ब्रह्म बुद्धि के विषय-विषयी भाव से परे है और इसके अतिरिक्त वह शुद्ध प्रमाता ही है, प्रमेय नहीं है और इसीलिए ब्रह्म बुद्धि के ज्ञान का विषय नहीं हो सकता।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमको ब्रह्म की प्रतीति कभी नहीं होती। वास्तव में स्वप्रकाश होने के कारण ब्रह्म हमारी प्रत्येक चिद्रूपी (mental) क्रिया में प्रमाता के रूप में भासता है; लेकिन हम उस दशा में उस प्रमाता के शुद्ध स्वरूप को नहीं पहचानते, क्योंकि उस समय हमारी दृष्टि अविद्या से दूषित रहती है। इस प्रकार ब्रह्मज्ञान के लिए एक ही साधन है—और वह है बुद्धि के विषय-विषयी भाव से ऊपर उठ कर निर्विकल्प, अपरोक्ष ज्ञान की अवस्था में प्रवेश करना। इसी अवस्था का दूसरा नाम है ब्रह्मानुभव। जब किसी मनुष्य को यह अनुभव प्राप्त होता है, तब वह ब्रह्म ही हो जाता है और तब वह श्रुति के साथ कह उठता है 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' इत्यादि।

वास्तव में ब्रह्म-साक्षात्कार का अर्थ कोई नई वस्तु की प्राप्ति नहीं है अपि तु वह हमारे प्रच्छन्न स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा (recognition) मात्र है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे शिकारियों के बीच में पले किसी राजकुमार का अपना राजकीय स्वरूप पहचानना। इसी प्रकार शुद्ध सत्ता रूप ब्रह्म हम प्रतिक्षण हैं, परन्तु शरीर बुद्धि आदि उपाधियों के कारण हम अपने शुद्ध स्वरूप को नहीं पहचानते। यह हम तब पहचानते हैं जब सम्यग् ज्ञान द्वारा शरीरादि उपाधियों का नाश कर हम निर्विकल्प ज्ञान

की अवस्था में प्रवेश करते हैं, जो शुद्ध सत्ता अथवा चैतन्यरूप है। इस अवस्था को पूर्ण रूप से अपना लेना (appropriation) ही ब्रह्म-ज्ञान है—क्योंकि ब्रह्म शुद्ध सत्ता अथवा चैतन्य स्वरूप ही है—और यही मुक्ति है।

इंडियन इन्सटीट्यूट ऑफ फ़िलासफ़ी,
अमलनेर (खानदेश)

—लादूराम जोशी

तमिल कहावतें

तोट्टिल पलक्कम सुडुकाडु मट्टुम
भूले में पड़ी आदत श्मशान तक बनी रहती है

नोयट्र वाल्वे कुरैवट्र सेल्वम
रोगरहित जीवन ही न घटनेवाला धन है

पलयोरिडम पावमोरिडम
पाप करता है कोई, फल भुगतता है कोई

पणमेन्राल पिणमुम वाय तिरक्कुम
'धन' कहने पर मृत शरीर भी मुँह खोलेगा

मण कुदिरैयै नम्बि आट्रिल इरंगिनारपोल
मट्टी के घोड़े पर विश्वास कर नदी में उतर जाना

वीट्टुकु वीडु मणाडुप्पे तविर पोन्नडुप्पु इल्लै
हर घर में मट्टी का चूल्हा है, सोने का नहीं

पल नाळ तिरुडन ओरु नाळ अगप्पडुवान्
कई दिनों का चोर एक दिन पकड़ा जाता है

यानैक्कुम ओरु कालम् , पूनैक्कुम ओरु कालम्
यदि हाथी को एक अवसर मिल जाता है तो
बिल्ली को भी एक अवसर मिल जाता है

अगत्तिन अलगु मुगत्तिल तेरियुम
मन का भाव मुख पर दिखता है

सिकन्दराबाद

—कु. वनिता नटराज

नेपाली साहित्य की भूमिका

नेपाल यदि गौतमबुद्ध और सीता के पवित्र आदर्शों पर गर्व करता है तो गौतमबुद्ध की जन्मभूमि कपिलवस्तु और सीता के पैतृक घर जनकपुर को नेपाल की संपत्ति बनाने का श्रेय भी नेपाल के राजा पृथ्वीनारायण शाह को है। दो सौ वर्ष पूर्व नेपाल अनेक राज्यों में विभक्त था। खास नेपाल आज की काठमाण्डू उपत्यका ही मानी जाती थी। नेपाल की इस अव्यवस्थित स्थिति में नवयुवक गोरखाली राजा दिग्विजय के लिए निकला। इस गाँव के राजा ने राज्य विस्तार की सीमा ५० मील पूर्व काठमाण्डू तक की। इसी बीच अंग्रेजों की बढ़ती दुराशा को रोकने के लिए उसे न केवल विजय यात्रा बन्द करनी पड़ी, बल्कि उसने देशी राजाओं को संयुक्त मोर्चा बनाने का आह्वान किया। इस राष्ट्रीय नौजवान की आकांक्षा यद्यपि उसके जीवनकाल में पूरी न हो सकी तो भी अपने उत्तराधिकारियों के लिए राज्यविस्तार की पृष्ठभूमि उसने तैयार कर दी थी जिसका परिणाम आज का नेपाल है।

इस राजकीय परिचय का तात्पर्य यह कि गोरखाली राजा के साथ गोरखाली भाषा को भी नेपालव्यापी विजय मिली। इसी गोरखाली भाषा का नामान्तर नेपाली भाषा है। नेपाल की अस्त-व्यस्त स्थिति में यद्यपि विभिन्न जातियों की अपनी अपनी भाषाएँ व्यवहार का माध्यम थीं तो भी साहित्य-सम्पन्न भाषा काठमाण्डू उपत्यका (खास नेपाल) में बोली जानेवाली नेवारी भाषा मात्र थी। काठमाण्डू उपत्यका कला और साहित्य से समृद्ध होने पर भी यहाँ के गृहकलह के दुष्परिणाम से पृथ्वीनारायण शाह ने लाभ उठाया।

इस प्रकार नेपाली भाषा (गोरखाली भाषा) राज्य-भाषा होने पर भी साहित्य से वंचित थी। इस समय के असंस्कृत गद्य में शिलालेख और अन्य प्रकार के लेख भी मिलते हैं जिससे नेपाली भाषा का प्रशस्त प्रसार प्रमाणित होता है परन्तु आज से एक शताब्दी पूर्व की नेपाली भाषा में कोई साहित्यांश नहीं मिलता। ठीक सौ वर्ष पहिले मूल गोरखाली क्षेत्र (तनहुं) में नेपाली भाषा के वाल्मीकि का प्रादुर्भाव हुआ। यह क्षेत्र संस्कृत के विद्वानों का समझा जाता था। यद्यपि नेपाली भाषा के आदि कवि भानुभक्त ने संस्कृत का उतना गम्भी अध्ययन नहीं किया था तो भी उसने पण्डितों के समाज में रह कर लिखने पढ़ने की कला सीखी थी। इस समय नेपाली भाषा में कविता करनेवालों का उपहास किया जाता था और ऐसे कवि संस्कृत साहित्य के शत्रु माने जाते थे। भानुभक्त ने इसकी परवाह न की।

पड़ौसी देश भारत एवं नेपाल की राजकीय स्थिति अत्यन्त भयावह थी। नेपाल के शासक जंग बहादुर ने षड्यन्त्र के द्वारा शासन अधिकार में कर लिया था। नेपाल के नामी योद्धा और ख्यातिप्राप्त प्रशासक उनके षड्यन्त्र के शिकार हो गए थे। इसी प्रकार भारत में सन् ५७ के गदर की भयावनी स्थिति थी। दोनों तरफ धन जन की सुरक्षा खतरे में थी। इस समय नेपाल के आदि कवि भानुभक्त ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की गाथा (रामायण) नेपाली जन-भाषा में गाई। इससे जन-साधारण के विचार को स्थायित्व और शान्ति मिली। आर्यावर्त की अस्त-व्यस्त स्थिति को रामायण ने सदा बचाया है।

शताब्दियों से अशान्ति की आंधी में चक्कर खाती हुई भारत-भूमि को सोलहवीं शताब्दी में कुछ शान्ति मिली और शेरशाह सूरी और अकबर जैसे सशक्त प्रशासकों के आधीन कला वैभव का विकास हुआ तो यह रामचरितमानस की ही उपादेयता है। गीता की तरह किसी वर्ग का पक्षपात या सर्वमान्य प्रभुता का प्रति-पादक न होकर किसान से सामन्त तक, मूर्ख से विद्वान तक सभी के लिए अपनी अपनी आकांक्षा और आव-श्यकता के अनुसार आनन्द प्राप्त करने का एक ही साधन रामायण है। तुलसीदास की ही तरह भानुभक्त ने भी नेपाली जनसाधारण की भाषा को अपनी रचना में प्रथम दिया है। तत्कालीन युग की प्रेरणा के अनुसार कवि ने मूलकथा का रूपान्तर नहीं किया है जो कि प्रत्येक रामा-यण लेखक का अपना अपना वैशिष्ट्य है। कवि ने भावों को व्यक्त करने के लिए अलंकार का आश्रय नहीं लिया है। आज की परिमार्जित एवं व्याकरणसंपन्न नेपाली भाषा की दृष्टि से भानुभक्त की रामायण की भाषा पुरानी

१२५४

जड़ पड़ गई है ।

नेपाली साहित्य में रीतिकाल उतना पनप नहीं पाया। यहीं से नाटक साहित्य की भी शुरुआत होती है। नाट्य साहित्य के प्रवर्तकों में शम्भुप्रसाद आदरणीय हैं। आगे नाट्य साहित्य के विकास का परिचय दिया जाएगा।

भानुभक्त (१८७१ वि०) के बाद १९२३ में नेपाली पद्य साहित्य के दूसरे विस्तारक मोतीराम थे। ये नेपाली साहित्य के आदरणीय सेवक हैं। नेपाली साहित्य के भानु भानुभक्त की रश्मि को दिगन्त तक फैलाने के साथ इन्होंने गम्भीर और मनोरंजक कविताएँ भी लिखी हैं। कवि की कविता सुन्दरता को सरलता के साथ प्रवाहित कर देती है। शृंगार-रस के प्रेमी होकर भी वे नैतिक कविताएँ लिखने में पीछे नहीं हैं। मोतीराम से कविशिरोमणि लेखनाथ (१९४१) तक दो प्रसिद्ध शास्त्रीय कवि हुए। संस्कृत साहित्य के धुरंधर विद्वान् पंडित सोमनाथ और पंडित कुलचन्द्र ने यद्यपि नेपाली साहित्य की गौण सेवा की है फिर भी उनकी कविताओं में संस्कृत साहित्य की मधुरिमा है। भाव के पीछे छन्द चलते हैं, अलंकार स्वयं आगन्तुक हैं। इन दो विद्वानों ने संस्कृत साहित्य के महासागर में गोता लगा कर जो रत्न प्राप्त किए वे नेपाली साहित्य का आभास देकर पुनः संस्कृत साहित्य की निधि बन गए।

साधारणतः नेपाली पद्य साहित्य के तीन युग-प्रवर्तक कवि हुए। प्रथम युग के आदि कवि भानुभक्त जितने जन-साधारण प्रिय कवि हुए द्वितीय युग-प्रवर्तक कवि लेखनाथ ने भी रचनाकाल में ही वही लोक-प्रियता प्राप्त की। इनके समय भाषा सुसंस्कृत हो चुकी थी। पण्डितों के लिए भी नेपाली साहित्य की सेवा अपेक्षित होती जा रही थी। कविशिरोमणि लेखनाथ को अपने युग से प्रेरणा मिली थी और उनका मार्ग भी साफ़ था। छन्द और अलंकार सापेक्षित भारतीय रचना की प्राच्य परिपाटी और लय तथा ध्वनि के पदानुसारी आधुनिक पाश्चात्य कवि के प्रभाव के बीच लेखनाथ नेपाली साहित्य के लिए एक कड़ी है। कवि मनोहर प्रकृति के पक्षपाती होने के साथ हिन्दू दर्शन-शास्त्र के विद्वान् हैं। आर्थिक युग की भर्त्सना करते हुए वे सत्य और कलि का संवाद लिखते हैं। कवि ने साहित्य के अन्य क्षेत्र में भी अपना कौशल दिखलाया है परन्तु पद्य में ही उनको अत्यधिक सफलता मिली है। समसामयिक राष्ट्रीय कवि धरणीधर और लेखनाथ भाषा, राष्ट्रीयता और युग की दृष्टि से हिन्दी के कवि मैथिलीशरण गुप्त की श्रेणी में आते हैं। अगल-बगल में टिमटिमाते तारों की कमी नहीं। यद्यपि शैशवावस्था का साहित्य प्रत्येक कवि को सामान्य महत्व देता है इसलिए उस भूमिका में उनका विशद परिचय न हो सका।

पद्य साहित्य के विकास क्रम में बालकृष्ण राम का स्थान गौरवपूर्ण है, यद्यपि नाट्य साहित्य में उनका स्थान सर्वोच्च है।

वर्तमान युग के प्रवर्त्तक लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा (१९६०) सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। साहित्य के हर एक क्षेत्र में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया है। हिन्दी साहित्य के महान् कवि, नाटककार एवं लेखक जयशंकर 'प्रसाद' की प्रतिभा जिस प्रकार बहुमुखी है उसी प्रकार महाकवि देवकोटा 'शाकुन्तल' महाकाव्य के निर्माता हैं, सफल कहानीकार हैं, उच्च कोटि के निबन्ध लेखक हैं, नाटकीय अभिव्यंजना में स्वयं पात्र हैं। नेपाली जनता को राष्ट्रीय नवजागरण का प्रथम पाठ देवकोटा ने ही पढ़ाया। इन्हीं की परिपाटी (स्कूल) में राष्ट्रवादी कवियों की धारा बह चली है। जनप्रिय नेपाली लोकगीत गानेवाले सर्वप्रथम देवकोटा हैं। जहाँ उन्होंने लोकगीत से जन-साधारण में रुचि जागृत की है वहाँ कतिपय निबन्धों से शास्त्रीय विद्वानों का अभिनन्दन भी प्राप्त किया है।

आपकी परिपाटी के पदचालकों में चार कवियों को काफ़ी प्रतिष्ठा मिली है। केदारमान 'व्यथित', सिद्धिचरण माधवप्रसाद घिमिरे, धर्मराज थापा इस युग के उदीयमान नक्षत्र हैं। 'व्यथित' हिन्दी की कवयित्री महादेवी वर्मा से काफी प्रभावित दिखाई देते हैं। 'व्यथित' की कविता में करुणा और पीड़ा के साथ राष्ट्रवादी भावना है। सिद्धिचरण राष्ट्रीयता के साथ साथ साहित्यिक क्षेत्र में उतरे और इन दिनों रो रो कर सामन्तवाद का विरोध करते हैं। जो भी हो साहित्यिक दृष्टि से उनकी कविता में प्रसाद है, ओज है। माधवप्रसाद घिमिरे ललित प्रकृति के प्रेमी हैं। ये नवयुवक कवि साहित्य की किसी नई धारा का प्रतिनिधित्व नहीं करते तो भी कोमल पात्र में जो वीरता और उद्दाम साहस भरते हैं यही उनकी विशेषता है। कवि सिंह गर्जन के लिए अन्धकारपूर्ण अरण्य की पृष्ठभूमि तैयार नहीं करते बल्कि स्रोतों के कलरव में, कोकिल के कूजन में, हरित कुंज की रमणीयता में

कवि आत्मीयता की अनुभूति करता है। अन्य नेपाली कवियों की तरह घिमिरे शहर के वातावरण में नहीं पले। वे वहाँ पले जहाँ-पर्वत शृङ्गों से निकलतीं नदी की धाराएँ आकाश मार्ग से समतल पर टूटती हैं, ऐसी कन्दराओं में जहाँ हिमालय के द्वारा ही सूर्य की रोशनी प्रतिबिम्बित होती है; उन क्षेत्रों में जहाँ कभी हिमालय की विजय होती है तो कभी हरित पहाड़ियों की। इस प्रकार कवि प्रकृति के भक्त नहीं प्रकृति के प्रेमी और सहचर हैं।

काव्यशास्त्र के विद्वान् चाहे जितने प्रकारान्तर के लक्षण प्रस्तुत करें तो भी किसी भी वस्तु का सफल चित्र ही काव्य का निर्विवाद लक्षण है।

घिमिरे के चारों ओर की छटा और देश की [illegible]खर व्यवस्था मिल कर कविता बनती है।

गायक कवि धर्मराज थापा नेपाली जनगीत भयाउरे के अवतार हैं। जनगीत के गायक थापा प्रत्येक नेपाली के परिचित हैं, उर्दू की नक़ल पर नेपाली जनगीत लेखन की परम्परा नेपाली साहित्य की पुरानी प्रथा है, परन्तु नेपाली पहाड़ियों का आत्मा को अभिव्यक्त करनेवाले जनगीत लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा ने लिखे और उनके सफल उत्तराधिकारी थापा हैं। थापा की राष्ट्रीयता की आड़ में कहीं उग्रवाद भी है।

भीमदर्शन और कुलमणि देवकोटा जैसे नए उदीयमान कवि नेपाल साहित्य क्षेत्र में उतरे हैं परन्तु उन लोगों के नई दिशा की ओर कोई स्पष्ट पद्चिह्न नहीं।

नेपाल में पद्य-साहित्य का जितना विकास हुआ उतना गद्य साहित्य का नहीं। गद्य साहित्य में कथा-साहित्य (शार्ट स्टोरी) काफ़ी विकसित हुआ। कथाकारों में विशेष नई प्रवृत्ति विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला के अलावा अन्य कथाकारों का क्षेत्र केवल समान है। कोइराला एकतन्त्रीय सामन्ती व्यवस्था के विरोधी हैं, रोमान्सप्रिय हैं, मनोविज्ञान के पंडित हैं। सामाजिक कथाकारों में पुष्कर शमशेर, बालकृष्ण शमशेर, पूर्णप्रसाद द्विवेदी, पूर्णदास हास्यात्मक वेदना में केशवराज पिंडाली, [illegible] प्रसाद चापागायीं आदि विशिष्ट हैं। नेपाली का [illegible] साहित्य केवल गत २५ वर्ष की देन है।

उपन्यास में रुद्रराज पांडेय सामाजिक रीतियों [illegible] की कुत्सित समस्या पर और लैनसिंह वांगदेल नई टेक[illegible] के साथ देश की कुत्सित व्यवस्था पर चोट करते हैं।

सर्वतोमुखी प्रतिभा के लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा [illegible] निबन्ध में भी पहली सीट तो रिजर्व ही की है फिर [illegible] उन्होंने ख्यातिप्राप्त हृदयचन्द्र सिंह को साथ लिया है। हृदयचन्द्र हास्यकार हैं, समस्या में जकड़े हैं।

नाट्य-साहित्य का अभ्युदय शम्भुप्रसाद के [illegible]वली नाटिका के साथ होता है। परन्तु शम्भुप्रसाद [illegible] लेकर बालकृष्ण शमशेर तक २०-२५ वर्ष के दौरा[illegible] में कोई नाटक नहीं लिखा गया। शमशेर ने अपने [illegible] नाटक लिखे हैं। नाटक लिखने के साथ स्वयं शमशेर कुशल अभिनयी हैं और चित्रकला के ख्यातिप्राप्त पंडित हैं। आपके नाटकों में अंग्रेजी साहित्यकार शेक्सपियर [illegible] प्रशस्त प्रभाव देखा जाता है। आपके पात्र स्वगत भा[illegible] और वार्तालाप अनुष्टुप् छन्दों मे करते हैं। शमशेर शासक परिवार होने के कारण जनभावना और युग [illegible] पर ध्यान नहीं देते तो भी कुत्सित व्यवस्था को [illegible] करने का असफल प्रयास नहीं करते। नैतिक प्रेम [illegible] हिन्दू दर्शन पात्रों का शम्बल है।

दूसरे नाटककार भीमनिधि तिवारी सरलता [illegible] सामाजिक समस्या के लेखक हैं। अन्य कतिपय लेख[illegible] की नाट्य कृतियाँ भी नेपाली साहित्य के भंडार में [illegible] जिनका उल्लेख यहाँ न हो सका।

नेपाली साहित्य केवल एक शताब्दी का है। साहि[illegible] के अस्थिपिंजर को 'रूप' देने का श्रेय गत ३० वर्षों को है। सर्वांगपूर्ण न हो पर भी नेपाली साहित्य सर्वांगसम्पन्न [illegible] गया है। अब आलोचना साहित्य की सामग्री की छा[illegible]बीन की प्रारंभिक दशा में है।

—राजेश्वर देव[illegible]

६५, दूध विनायक,
बनारस शहर (उ० प्र०)

दूसरों के साथ बुराई करने की अपेक्षा अपने साथ की हुई बुराई को सहन करना अच्छा है और दूसरों पर अविश्वास करने की अपेक्षा कभी धोखा खाना भी अच्छा होता है।

—सैमुअल जॉनसन

मनोविश्लेषणवादी समीक्षा के सिद्धान्त

आधुनिक समीक्षा में मनोविश्लेषण विज्ञान की धारा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यद्यपि ऐसे समालोचकों की संख्या जो साहित्य की व्याख्या फ्रायड अथवा एडलर ही के समीक्षा सिद्धान्तों के अनुसार करते हैं, बहुत कम है, पर अधिकतर समालोचक इस बात से सहमत हैं कि मनोविश्लेषण विज्ञान से साहित्य की समीक्षा में पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

स्वयं फ्रायड के कला और कलाकार पर विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। फ्रायड की स्थापना के अनुसार हम अपनी सभ्यता की माँगों के कारण अपना जीवन-यापन कुंठाओं और वर्जनाओं के निरंतर दबाव में करते हैं। वास्तविकता को इदम् (Id) अथवा अवचेतन (Libido) की मांगों के विपरीत पाकर हम बहुधा एक काल्पनिक लोक की सृष्टि करते हैं जिसमें हमारे अपने वास्तविक जगत् के कमियों की पूर्ति हो जाती हैं। जो व्यक्ति अपनी इन कल्पनाओं को प्रयत्न और परिश्रम द्वारा वास्तविकता में परिणत कर लेता है, वह जीवन संघर्ष का सफल योद्धा सिद्ध हो जाता है असफल व्यक्ति अपनी कल्पना के जगत् ही में आश्रय खोजता है। पर यदि इस व्यक्ति के पास रचनात्मक शक्ति है तो वह अपनी कल्पनाओं को कलाकृति के रूप में एक नई वास्तविकता में ढाल देता है। इस प्रकार कलाकार वास्तविकता को एक वर्तुलाकार मार्ग द्वारा प्राप्त करता है। और स्नायु-व्यतिक्रम (न्यूरोसिस) का शिकार होने से अपनी रक्षा करता है। कलाकार जो कि स्नायु-व्यतिक्रम के रोगी की भाँति अन्तर्मुखी व्यक्ति है, किस प्रकार कल्पना जगत् से वास्तविक जगत् में पदार्पण करता है—इसे फ्रायड ने भली भाँति बताया है। वह कहता है : ‘‘कलाकार दूसरों के अचेतन में दबी पड़ी इच्छाओं की तृप्ति का मार्ग उनकी कल्पना में खोल कर उनकी प्रशंसा एवं धन्यवाद का पात्र बन जाता है। इस प्रकार वह अपनी कल्पना द्वारा आदर, सत्कार, नारी का प्रेम इत्यादि सब कुछ पा लेता है जिसे पहले वह केवल अपनी कल्पना में ही पा सकता था।”[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि वास्तविकता जिसे छोड़ने के लिए मजबूर करती है, कला उसकी ही पूर्ति करती है।

अतः फ्रायड के अनुसार कला मानव की आदि प्रवृत्तियों को एक ऐसा मोड़ दे देती है जहाँ उनका बाह्य-जगत् से कोई संघर्ष नहीं होता। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि कला मानव की उन मूल प्रवृत्तियों का उन्नयन है जो समाज द्वारा वर्जित हैं। अपनी कलाकृतियों द्वारा कलाकार अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति करता और उससे विशेष आनन्द अनुभव करता है। फ्रायड कहता है कलाकार का यह आनन्द यद्यपि हमें एक उच्च स्तर का आनन्द प्रतीत होता है पर हमारी मूल प्रवृत्तियों की तृप्ति के आनन्द की तुलना में कम तीव्र और अपूर्ण होता है।”[२] वह आगे कहता है कि कलाकृतियों द्वारा प्राप्त आनन्द उन व्यक्तियों के लिए है जो स्वयं रचनात्मक शक्ति नहीं रखते। “फिर भी” फ्रायड कहता है कि : “कला हमारे ऊपर एक हलके मादक पदार्थ की तरह प्रभाव डालती है और अधिक से अधिक जीवन की कठिनाइयों से क्षणिक आश्रय प्रदान कर सकती है। इसका प्रभाव इतना शक्तिशाली नहीं कि हमारी वास्तविक कठिनाइयों को भुला देने में समर्थ हो।”[3]

फ्राइड इस बात को स्पष्ट करता है कि रचनात्मक कल्पना का मूल स्रोत कलाकार की अवचेतन में दबी प्रवृत्तियाँ होती हैं, और कलाकार की प्रेरणाएँ उसके अन्तर्मन के गहन स्तरों से उठती हैं। फ्रायड कलाकृति और स्वप्न में एक विशेष साम्य पाता है। दोनों ही, फ्राइड के अनुसार, व्यक्ति की उन इच्छाओं की पूर्ति का साधन हैं जिन्हें वह वास्तविक जगत् में पूर्ण करने में असमर्थ रहता है।

अतः कलाकार, स्नायु-व्यतिक्रम के रोगी से जो वास्तविकता से भाग कर कल्पना लोक में पलायन करता

---

[१] सिग्मंड फ्रायड, इन्ट्रोडक्टरी लेक्चरस् ऑन साइको-एनालिसिस (सातवीं आवृत्ति), पृ० ३१५ [२] सिग्मंड फ्रायड, सिवलाइजेशन एण्ड इट्स डिस्कटेंट (वियेना, १९२९) पृ० ३३ [३] वहीं, पृ० ३५

है, अधिक भिन्न नहीं होता। अतएव स्नायु-व्यतिक्रम के बहुत से चिन्ह साहित्य और कला में भी पाए जा सकते हैं। स्नायु-व्यतिक्रम का रोगी, वास्तविकता को कठोर समझ अपने को वास्तविक जगत् के उत्तरदायित्वों से मुक्ति पाने के लिए बहुधा अपनी बाल्यावस्था में पीछे लौट जाने की प्रवृत्ति दिखाता है। उसमें आत्मरति की भावना का विकास होता है और इस प्रकार जीवन के उत्तरदायित्वों से वह पूर्णतया विमुख हो जाता है। आत्मरति की भावना का दूसरा प्रभाव यह होता है कि व्यक्ति समाज द्वारा आरोपित सारे बन्धनों के प्रति विद्रोह करता है। इसी आधार पर फ्रायड जीवित रहने की प्रवृत्ति (Eros) के अतिरिक्त मृत्यु अथवा विनाश की प्रवृत्ति (Thanatos) का भी मानव प्रकृति में अस्तित्व पाता है। समाज द्वारा लगाए गए प्रतिबन्धों के प्रति विद्रोह इस विनाश की प्रवृत्ति की बाह्य-जगत् पर क्रिया है। जब तक यह विनाश की प्रवृत्ति व्यक्ति के बाहरवाली वस्तु का विनाश करने में लगी रहती है, वह जीने की प्रवृत्ति का सहयोग देती है। पर जब इस प्रवृत्ति को किसी बाह्य वस्तु के विनाश करने का अवसर नहीं मिल पाता है तो वह आत्म विनाश करने में जुट जाती है। बाह्य-जगत् पर इस प्रवृत्ति की क्रिया पर-पीड़न (सेडिज़्म) अथवा आत्म-इच्छित वस्तु को पीड़ित करने की लालसा का रूप ले लेती है, और अन्तर्जगत पर आत्म-पीड़न (मेसोकिज़्म) अथवा स्वयं को पीड़ा पहुँचाने की प्रवृत्ति का।

दूसरी बात जिसे फ्रायड स्नायु-व्यतिक्रम में पाता है वह है रोगी के व्यवहार के पीछे आडीपस ग्रन्थि अथवा पितृ-रति ग्रन्थि की क्रियाशीलता। फ्रायड के अनुसार कामवासना का आरंभ युवावस्था से नहीं होता। वह बाल्यावस्था से ही प्रारंभ हो जाता है; और बालक अथवा बालिका दोनों के मातृ-प्रेम अथवा पितृ-प्रेम में कामवासना का ही भाव रहता है इसी मातृ-रति और पितृ-रति को फ्रायड आडीपस ग्रन्थि और इलेक्ट्रा ग्रन्थि के नाम से पुकारता है। यह ग्रन्थि उस स्नायु-व्यतिक्रम के रोगी में अधिक क्रियाशील होती है जो बाल्यावस्था को लौट जाने की प्रवृत्ति अधिक दिखलाता है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि फ्रायड से प्रभावित समालोचक स्नायु-व्यतिक्रम सभी लक्षण जैसे पर-पीड़न, आत्म-पीड़न, मातृ-रति ग्रन्थि आदि साहित्य और कला में ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है।

फ्रायड की भाँति एडलर भी अवचेतन में इच्छाओं को रचनात्मक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है पर वह फ्रायड से इस बात में सहमत नहीं कि चेतन में दबी पड़ी सब इच्छाएँ काममूलक ही हैं। अनुसार जीवन का कार्यक्रम निर्धारित करने में वासना की अपेक्षा अधिकार-भावना का अधिक रहता है। व्यक्ति अपने को दूसरों से हीन समझ अपनी क्षति को पूर्ण करने की चेष्टा करने है। वह यह क्षतिपूर्ति अपनी हीनता के ही क्षेत्र में श्रम और प्रयत्न करके करता है। अथवा वह किसी दूसरे क्षेत्र में परिश्रम करने लगता है जिसमें वह हो सके। इस प्रकार खेल में असफल एक बालक क्षतिपूर्ति उसी क्षेत्र में अधिक श्रम और प्रयत्न और अन्त में अच्छा खिलाड़ी बनकर कर सकता है अथवा अपने को शारीरिक रूप से कमजोर समझकर क्षति की पूर्ति कक्षा में अच्छा विद्यार्थी बन सकता है।

अतः एडलर के अनुसार व्यक्ति की कल्पनाएँ उसकी काम-संबंधी इच्छाओं की पूर्ति का साधन नहीं है वे वास्तव में व्यक्ति का आत्महीनता के भाव से करने का मार्ग है। जब महात्वाकांक्षा अपनी पूर्ति अवसर नहीं पाती, तो व्यक्ति में कल्पना लोक में करने की प्रवृत्ति जागृत हो जाती है। अतः एडलर व्यतिक्रम में काम की अपेक्षा आत्महीनता का हाथ मानता है। वह व्यक्ति जिसमें रचनात्मक होती है अपनी कल्पनाओं को कलाकृत्तियों में डाल स्नायु-व्यतिक्रम से अपने को बचा लेता है। एडलर के अनुसार, आत्महीनता के भाव से व्यक्ति होता है जो अपनी क्षति की पूर्ति कलाकृतियों कर करता है। उसके जीवन में कहीं न कहीं का भाव अवश्य पाया जाना चाहिए। शारीरिक सांसारिक सफलता की प्रतिद्वन्द्वता में हार मान कलाकार मानसिक अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में क्षति पूर्ति करने की चेष्टा करता है।

युङ्ग के अनुसार एडलर की अधिकार भावना और फ्रायड की काम भावना दोनों ही एकांगी हैं। अनुसार अवचेतन में अधिकार भावना और दोनों ही क्रियाशील रहती हैं। वह अवचेतन का

१९५४

उसी विचार से करता है जिस प्रकार शापनहार अपने जीने की प्रवृत्ति (Will to live) का अथवा वर्गसा 'इलान वाइटल' का। युङ्ग के अनुसार रचनात्मक प्रक्रिया इसी अवचेतन की अभिव्यक्ति है जिसे सामाजिक वर्जनाओं द्वारा दमन कर रखा गया है।

अतः यह स्पष्ट है कि मनोविश्लेषण विज्ञान का आज के समीक्षा साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है पर साथ में हमें यह भी मानना पड़ेगा कि यद्यपि मनोविश्लेषण ने हमारी जानकारी की वृद्धि करने में बहुत सहायता दी है, फिर भी रचनात्मक प्रक्रिया के विषय में ऐसी बहुत-सी बातें रह जाती हैं, जो मनोविश्लेषण के क्षेत्र में नहीं आती। थीयोडर रीक कहता है : "मनोवैज्ञानिक होने के नाते हम काव्यात्मक कल्पना में काफ़ी रुचि रखते हैं—उदाहरणार्थ उसकी आवश्यकताओं और उद्देश्यों के विषय में, वह भावात्मक उपकरण जो इसका आधार है, और वे मानसिक प्रक्रियाएँ जो उसे ढालती हैं। रचनात्मक कृतियों के कुछ पक्ष मन विश्लेषण विज्ञान के क्षेत्र में नहीं आते और कुछ अभी इस विज्ञान से अछूते रह गए हैं पर रचनात्मक कल्पना मूलस्रोत ढूँढ निकालने में मनोविश्लेषण विज्ञान की खोजें सबसे महत्वपूर्ण हैं। काव्यात्मक कृति का स्वप्न अथवा दिवास्वप्न से साम्य विशेष महत्व का है। यद्यपि अवचेतन में दबी पड़ी प्रवृत्तियों और काव्य-कृति की प्रेरक शक्तियों के विषय में हमारी अच्छी जानकारी हो गई है, पर अभी बहुत-सी बातें शेष हैं, जिन पर मनोविश्लेषणवाद कोई प्रभाव नहीं डाल सका है।"[४]

६/२२ किशोर सदन, सिविल लाइन,
पुराना कानपुर

—रवीन्द्र सहाय वर्मा

विरोध होना सत्य के लिए बुरा अवश्य हो सकता है परन्तु इससे कोई वस्तु असत्य नहीं हो जाती। बहुत-सी बातें सर्वथा निर्विवाद होती हैं परन्तु उनके विरोध में बहुत कुछ कहा जाता है और बहुत-सी बातें असत्य होती हैं परन्तु उनको बिना किसी विरोध के मान लिया जाता है। विरोध न तो किसी वस्तु के असत्य होने का लक्षण है और न अविरोध से कोई वस्तु सत्य प्रमाणित होती है।

—पैसकल

अनुशासन संगठित और संचालित निःस्वार्थता के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है। अनुशासनहीनता स्वार्थभावना का ही प्रत्यक्ष रूप है।

—सी. बी. फ्राइ

---

[४] थीयोडर रीक, थर्टी इयर्स विद फ्रायड (प्रथम आवृत्ति, १९४२) पृ० २७४

कबीर और चक्रधर का तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तुत लेखक के मन में बहुत वर्षों पूर्व 'सरस्वती' में छपे और अब 'मकरंद' में संग्रहीत डा० बड़थ्वाल के 'कबीर और गांधी' नामक निबन्ध की गहरी छाप है। सन् ४६–४७ में वैसा ही एक निबन्ध 'मौज' के विशेषांक में श्री अ. का. प्रियोळकर का पढ़ा 'चक्रधर और गांधी'। इसी समय से दोनों संतों के तुलनात्मक अध्ययन की बात मेरे मन में थी। डा० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के 'कबीर' और वि. भि. कोतले के 'चक्रधर चरित्र' तथा हरिभाऊ नेने के 'सूत्रपाठ' आदि ग्रन्थों के अध्ययन से मेरा कार्य आगे बढ़ा। यहाँ संक्षेप में मैं दोनों के जीवन और कृतित्व के साम्यस्थल और अन्तर की चर्चा करूँगा।

पहला बड़ा भेद तो यह है कि कबीर थे निर्गुणिये। चक्रधर थे सगुणोपासक, अर्थात् यहाँ तक कि उनके शिष्य और जनता उन्हें श्रीकृष्ण का अवतार मानती। कबीर ने 'मसि कागज नहीं छुआ' तो चक्रधर वेदोपनिषदाधीत थे। कबीर जाति के जुलाहे थे, चक्रधर या हरपालदेव गुजरात के भरवस गांव के मंत्री विशालदेव और मल्हाइसा के पुत्र थे। टॉलस्टाय की तरह चक्रधर पूर्वजन्म के 'काउंट' थे। कबीर का किसी राजघराने से कोई संबन्ध नहीं रहा परंतु भिन्न उत्सों से, मूलबिंदुओं से शुरू हो कर कबीर पन्थ और महानुभावों के आचारधर्म में विलक्षण समानता है। चक्रधर के पंथ में सर्व संग-परित्याग, विकारशून्यता, विकल्पशून्यता, स्वभावमात्रा अटन विजन, नाम माहात्म्य, विरह का माहात्म्य पाया जाता है, कबीर और उसके अनुयायियों में भी इन्हीं सब बातों की वैसी ही महत्ता है। चक्रधर ईश्वरस्वरूप को अव्यक्त, अनादि, अच्युत, अविक्रिय, अनन्त, अमूर्त, आनन्दमय, केवल नित्य, निराभिमानी, निर्गुण तक माना जाता है। कबीर ने जिस तरह से 'गुण में निर्गुण में गुण, बाट छाटि क्या बहिए'[1] कहा उसी प्रकार से ऋतु महानुभावी ग्रंथ 'ज्ञानप्रबोध' में सूत्र है 'प्रकृतिमाजी असौनि न मेळें गुणधर्मां तियेचा'[2]

कबीर और चक्रधर की चिंतनपद्धति में इतना साम्य है कि दृष्टान्त तक दोनों के एक से हैं। कबीर ने कहा है :

> "अवगति की गति का कहूँ, जस का गांव न नांव।
> गुरु विहूँन का पेखिए काक धरिए नांव॥"[3]

और श्वेताश्वेतरोपनिषद् के 'अपाणिपादो ... ग्रहीता' की भांति कबीर का निर्गुण वर्णन विभावना या नकारात्मक है। यथा :

१ "बिन मुख खाइ चरन बिन चालै।
बिन जिह्वा गुण गावै॥"[4]

२ "ना तिस सबदन स्वाद न सोहा।
ना तिहि मात-पिता नहिं मोहा॥"[5]

इसकी तुलना में चक्रधर का एक दृष्टान्त देखिए :

१. कव्हणी एक दुधाचे गुण वीसेख अन्... होते : तेथ जात्यंधु आला होता : तेणें पुसिलें : हां ... दूध तें कैसें : दूध तें पांढरें : पांढरें तें कैसें : पांढरें ... बळहेसारीखें : बळहे ते कैसी : बळहे ते रूंभणे ... सारीखी : रूंभणे तें कैसें : रूभणे तें ऐसें : मणौनि ... वांकुडा करूनि पाहीलें : एक दीसु तेणें रूंभणें कोठां देखीलें ... तथा आंगणीं देखीलें : हातु वांकुडा करूनि पाहिला ... दूध तें हैं भणौनि पेवों लागला : हीरडीया फुटति : ... नीगे : आरे हें काइ करीतासि : ना : दूध पीतायें : ... सांडि : सांडी हें रूंभणें, हीरडया फुटति : ना : माईं... बापें सांगितलें : दूख होय परि न संडी।"

इस दृष्टांत पर केशिराज ने यह दार्ष्टान्... दिया है :

२. तैसे कव्हणी एकु ईश्वराचे गुण विशेखु ... दीत होते : तेथ कठीया बैसला होता : तेणें पुसिलें : हा ... परमेश्वरू तो कैसा : जैसा कैलासवैकुंठीचा ब्रह्मा... महादेवो : ब्रह्मा तो कैसा : जैसा आयुष्येचा ... रामु तो कैसा : मग द्वीभुज : चतुर्भुज : भणौनि ...

---

[1] कबीर ग्रन्थ पृ० १०८-९ [illegible] [2] [illegible] [3] [illegible] [4] क० ग्रं० १५० [5] क० ग्रं० २४३

१६५४

दाखवी। मग तेथ तो राहे : झाड़ी : सड़ा संमार्जन करी : पाला तोडी : तेणें अधिका नरकचि होति। भणौनि हेतुगर्भीत हिंसा[६] ॥

अर्थ १ : कोई एक दूध के गुणों की विशेष प्रशंसा कर रहा था। उसने पूछा : दूध कैसा है? उत्तर मिला : दूध सफ़ेद है। दूध सफ़ेद कैसे हैं? सफ़ेद बगुले जैसा। बगुला कैसा होता है? 'रुंभणें' (लकड़ी के हत्थे-वाले छोटे बक्खर) जैसा। रुंभणा कैसा? हाथ टेढ़ा करके उसने बताया। एक बार उसने वह टेढ़ा बक्खर आंगन में देखा। दूध समझ कर वही पीने लगा। उसके मसूड़े सूज गए, खून निकलने लगा। लोगों ने पूछा : अरे, यह क्या कर रहे हो? उत्तर मिला : दूध पी रहा हूँ। अरे छोड़ दे, छोड़ दे यह बक्खर। मसूड़े छिल जाएँगे। उत्तर मिला : नहीं, मेरे बाप ने कहा है। जब तक दूध नहीं निकलेगा, मैं नहीं छोड़ूँगा।

२. उसी प्रकार से कोई ईश्वर के गुणों का विशेष बखान कर रहा था। वहाँ पुजारी बैठा था। उसने पूछा : यह परमेश्वर कैसा है? जैसे कैलास वैकुंठ के ब्रह्मा विष्णु महादेव। ब्रह्म कैसा है? जैसा अयोध्या का राम। राम कैसा? तो द्विभुज, बाद में चतुर्भुज प्रतिमा दिखलाई। तब वह वहीं रहने लगा। झाड़ू लगाने लगा। गोबर से लीपकर आँगन बनाया। कंद मूल फल तोड़े। इस तरह से और नरक बढ़ गया। इसलिए हिंसा हेतुगर्भित है।

कबीर और चक्रधर के तुलनात्मक अध्ययन के पूर्व दोनों के समय कौन-सी सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियाँ थीं, इनका विचार करें। दोनों के जन्मकाल के विषय में विद्वानों में एकमत नहीं है। परन्तु डा० कोतले चक्रधर का समय शके ११८६ से ११६६ तक मानते हैं। और डा० गोविंद त्रिगुणायत संवत् १४५५ से १५७५ मानते हैं। तात्पर्य यह है कि दोनों के बीच में प्रायः १२४ वर्षों का व्यवधान मात्र है परन्तु दोनों के समय जो राजनैतिक असुरक्षितता और पस्तहिम्मती पाई जाती है, और जैसी सामाजिक असमानता, विशेषतः शूद्रों के प्रति जैसा अन्याय मिलता है उसमें बड़ी समानता है। मैं कुछ उदाहरणों से अपनी बात स्पष्ट करता हूँ :

कबीर : राजनैतिक स्थिति

मुहम्मद तुग़लक (१३२५-५३) के बाद तैमूरलंग आक्रमण (१३६८) और उसके बाद बहलोल लोदी द्वारा देश को एक सूत्र में बांधने का यत्न। सिकन्दर लोदी के धर्मान्तर के विषय में अत्याचार। कबीर के शिष्य बोधन (इलियट एण्ड डाउसन लोधन कहते हैं) को मरण स्वीकार करना पड़ा। इस सारे आक्रमण के फलस्वरूप एक ओर हिन्दू मुस्लिम सामंजस्य की आवश्यकता बढ़ी। "निसरसाह के फलस्वरूप धर्म की ओर हिन्दू समाज की अभिरुचि बढ़ी। धर्म भी सगुणोपासना में असमर्थ होने से निर्गुणोपासना की ओर झुका।"[७]

चक्रधर : राजनैतिक स्थिति

डा० तुलपुले के अनुसार १२७८ के क़रीब रचे गए 'लीलाचरित्र' और 'गोविन्द प्रभु चरित्र' ग्रन्थों से पता चलता है कि यादवकालीन महाराष्ट्र कृषिप्रधान था। किसान कर्ज़ करके अपनी खेती किया करता था। किरसाण या गँवार के अर्थ में 'तंतुकार' एक हीनताद्योतक शब्द था। उस समय गंगातीर से गुजरात और उज्जैन की ओर कपड़े का व्यापार करने वाले 'चाटे' थे; छोटी-छोटी दूकानें चलानेवाले 'दूसी' थे; बैलों पर अनाज ले जानेवाले 'भुसारी' थे, किरानियों को 'वेसजू वेसरु' कहलाते थे; घोड़े बेचनेवालों को 'हेडाऊ' सराफ़ों का भी वर्णन मिलता है। सामाजिक सुरक्षितता बहुत कम थी। बटमार : वोरपेकार थे। राज्यांतर हुआ करते थे, आमणदेव की आँखें निकाल कर रामदेवराय गद्दी पर बैठता था। रात की गश्त करनेवाले 'तगके' थे। महाजनों की ओर न्याय देने का अधिकार था। स्मार्तों को बुला कर, 'निबन्ध' : शास्त्राधार निकलवा कर एक चमार को चूने के ढेर पर बैठा कर ऊपर पानी की पखालें छोड़ी गईं। अपराधियों को कड़ा दंड दिया जाता था।

कबीर : सामाजिक स्थिति

डा. क़ुरैशी के 'एडमिनिस्ट्रेशन सुलतानेत आफ़ देहली' ग्रन्थ के अनुसार 'हिन्दू धर्म की वर्ण-व्यवस्था और जांत पांत इतना बढ़ गया था कि द्विज म्लेंच्छों की छायामात्र से घृणा करते थे।'[८] 'शूद्रों के ब्राह्मण भी शिष्य होने लगे थे' ऐसा लिखा गया है।[९] मुसलमानों में भी विलासिता बढ़ रही थी। फीरोज़ तुग़लक के मन्त्री ख़ानेजहाँ के हरम और मुद्रा विभाग के प्रमुख काजरशाह का प्रपंच करके धनार्जन इसके प्रमाण हैं। इसी कारण से

---

[६] दृष्टान्तपाठ पृ० २० [७] कबीर की विचारधारा ७६ [८] वही पृष्ठ २२७ [९] भारतीय संस्कृति पर इस्लाम के प्रभाव—डा० ताराचन्द पृ० १०४

सुधारक संतों को समाज में बहुत-सा संघर्ष मोल लेना पड़ता था। हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही ओर से।

चक्रधर : सामाजिक स्थिति

यादवकालीन महाराष्ट्र में जाति भेद तीव्र था। ब्राह्मण की स्त्रियाँ कुनबियों के घर में खा नहीं सकती थीं। बनिये के घर में जीमने के बाद भी चक्रधर के पैरों का तीर्थ 'पेट पवित्र करने के लिए' पिया जाता था। एक मंदिर का पुजारी गूजर था। महार अछूत थे, परन्तु उनकी स्त्रियों के साथ सवर्ण विवाह करते थे। श्मशान-वस्त्र के अधिकारी महार 'डोम' थे। मातंग या मांग देवालय के कलश दूर से जोहार करते थे। मांगों के लिए अलग प्याऊ थे, कहीं वे पानी के बिना तिलमिलाते थे। 'शूद्र सुखानुवाद' लीला से जान पड़ता है कि शूद्र अल्पसन्तुष्ट थे। शूद्र शैव पन्थी थे, सोरटी सोमनाथ, आवंढे का नागनाथ, परली के वैजनाथ का अध्ययन करते रहते थे। कोली, ग्वाला, तेली और कुम्हार के उल्लेख मिलते हैं। आन्ध्र देश के 'तिलमारा' तेली लिंगोपासक थे। कोली स्त्री से 'घरवात' या विवाह निन्दास्पद माना जाता था। छूतछात भी बहुत थी।

कबीर : धार्मिक स्थिति

जनसाधारण में सहजयान, वज्रयान, निरंजन पन्थ, बाउल सम्प्रदाय आदि कई नास्तिक मत चल रहे थे। वाममार्ग भी ज़ोरों पर था। उधर शंकर और परवर्ती आचार्यों ने अपने अपने मतवाद प्रचारित करना आरम्भ कर दिया था! शंकर ने विवेक या ज्ञान योग पर बल दिया। अन्य सभी आचार्य भक्तिमार्गी थे।

चक्रधर : धार्मिक स्थिति

बारहवीं शती के अन्त तक शैव मतों का ही प्रभाव था। वैसे अन्ध विश्वास भी थे और ग्राम देवताओं की भी पूजा होती थी। परन्तु बौद्ध प्रभाव कम। नास्तिकता की ओर झुकाव प्रायः नहीं के बराबर था। डा. कोलते के अनुसार जैन महारा में थे, लिंगायत, नाथपंथी, आगमिक, सिद्ध, वैदिक, पयोव्रती, मासोपवासिनी, सब थे।

चक्रधर और कबीर के जीवन में जो दो चार साम्य-स्थल मिलते हैं वे हैं दोनों के सम्बन्ध में चरित विषय की सामग्री का बहुत कम मिलना। दो विवाह, वैराग्य ग्रहण, पर्यटन, गुरु परम्परा मानना, और चमत्कार दिखलाना। दोनों के जीवन में जो स्पष्ट अन्तर के स्थल हैं वे इस प्रकार से हैं : कबीर निरक्षर थे, उनका ज्ञान श्रुतज्ञान था। चक्रधर ने बहुत-सा अध्ययन किया। कबीर ने जाति-पांति का कड़ा विरोध किया। चक्रधर ने छूतछात का थोड़ा-सा विरोध किया है परन्तु अधिकतर वे लीक लीक ही चलते हैं। हाँ, दोनों की स्वभाववृत्ति में बड़ा साम्य मिलता है। अहिंसा के प्रति प्रेम दोनों में बहुत था। भूतमात्र पर अव्याज प्रेम, पशु पक्षियों के प्रति प्रेम कबीर और चक्रधर दोनों में मिलता है। दोनों में बेलाग फक्कड़पन था।

कबीर और चक्रधर के दार्शनिक विश्वासों में जो साम्य या अन्तर है वह इस प्रकार है :

कबीर :

"सर्वभूतै एकै कर जान्या,
चूकै वादविवादा"[१०]
"लोगा भरमि न भूलहू भाई।
खालिकु खलक खलकु महि खालिक पूर
रह्यो सब ठाँई॥"[११]
"जोगी गोरख गोरख करै,
हिन्दू रामनाम उच्चरै।
मुसलमान कहै एक खुदाई,
कबीर का स्वामी घट घट रहा समाई"[१२]
ब्रह्म निराकार है।
"अलख निरंजन न लखे, न कोई निरमय
निराकार है सोई"[१३]
"वेद विवर्जित, भेद विवर्जित,
विवर्जित पाप रु पुन्यं।
ज्ञान विवर्जित, भेद विवर्जित
विवर्जित अस्थूल सून्यं॥
भेष विवर्जित, भीख विवर्जित,
विवर्जित ड्यंभक रूपं।
कहै कबीर तिहुँ लोक विवर्जित
ऐसा तत्व अनूपं॥"[१४]

ब्रह्म का अव्यक्त रूप कभी शब्द है, कभी शून्य है, कभी अनिर्वचनीय तत्व है।

कबीर द्वैत के घोर विरोधी थे। जो द्वैत को मानते

---

[१०] कबीर ग्रन्थ पृ० २६४ [११] वही २६८ [१२] वही २००१ ३ वही २३० [१४] वही १९३

१६५४

हैं वे उनके अनुसार स्थूल बुद्धि है। वे जीव की अनेकता नहीं मानते। जीव ब्रह्म का ही अंश है।

कबीर के मोक्षसम्बन्धी सिद्धान्तों पर बौद्धों के निर्वाण का प्रभाव है। कबीर का आग्रह अन्तर्मुख साधना पर अधिक है, बाह्याचारों पर कम।

अन्तिम बातों में वे चक्रधर के समान ही हैं। उन्होंने निरी अन्धी पाहनपूजा का विरोध किया है। जाँत पाँत वे नहीं मानते थे। स्त्री के प्रति वे चक्रधर से अधिक कठोर हैं। इसी से उनकी कोई भक्ति नहीं।

चक्रधर :

मूल पदार्थ चार : जीव, देवता, प्रपंच, परमेश्वर। ईश्वर ब्रह्म है, जीव अनन्त होने पर भी एक है। ये चारों पदार्थ अव्यक्त हैं। देवता कर्मभूमि की १३ कोटि हैं, अष्टी देवयोनी १३ कोटि हैं, अन्तराल स्वर्ग सत्य कैलास वैकुण्ठ, क्षीराब्धि, अष्टभैरव, विश्व, माया के अलग अलग देवता हैं। माया की देवता एक है। ईश्वर स्वरूप में विरुद्ध धार्मिक है। वह अविक्रिय होकर भी सर्वकर्तृत्व-मय है, निर्गुण होकर भी मायासम्बन्ध से सगुण है। ब्रह्मस्वरूप यथार्थतः अविक्रिय, निर्गुण और सर्वधर्मशून्य है। ईश्वरस्वरूप में दो तरह के गुणधर्म हैं :

१ स्वरूपांग, २ शक्तिरूप। सृष्टि रचना जीव को आनन्द देने के लिए हैं। यह रचना 'प्रपंच' के आधार पर होती है। चक्रधर का दर्शन गीता के समान है। उसमें पूर्ण द्वैत और भक्ति का मिलन है। शंकर का का 'माया' वाद उन्हें मान्य नहीं है। उन पर बौद्ध और जैन दर्शनों का भी प्रभाव है : "दुःखरूपता : पापमूलता : अनित्यता : इये तीन्ही नव्हेति तरि संसारावाचौनि आणिक कांहीं गोमटे असे"[१५]। "संघात" शब्द का उपयोग भी उन्होंने किया है।

देवताओं की उपासना त्याज्य स्त्रीशूद्रों को मोक्ष। प्राप्ति का समानाधिकार। चातुर्वर्ण्य न मानना।

चक्रधर की अनेक भक्तिनें हुई। नागंबा, हंसाबा और कई।

दोनों की भाषा जनसाधारण के अनुरूप, सूत्रात्मक, गठी हुई, पैनी, दृष्टान्त बहुल और उपदेशपूर्ण है। कबीर ने अहिंसा के समर्थन में कहा :

"बकरी पाती खात है, ताकी काढी खाल
जो बकरी को खात है ताको कहा हवाल"

चक्रधर ने अपने अनुयायियों से कहा 'एथौनि तुम्ही ऐसेया होआवे की हा जनु तुमने डोइये डोइये मारील परि तुम्ही डोइंचि ओडवावी की' या 'तुम्ही मारीता पूजीता नमानचि होआवा की मा आचार ६३--६४।

श्री ज्ञानेश्वर की भी अहिंसा पर ज्ञानेश्वरी अध्याय १६ में ११४ वीं ओवी है।

चक्रधर की 'असति परि' भक्ति के आचार धर्म में स्पष्ट कहा है, आहार पर नियन्त्रण रखा जाए और अपना व्यवसाय नित्य की भाँति किया जाए। कबीर ने भी कहा है :

अन्ने बाहर जे नर होवहिं, तीन लोक महिं अपनो खोवहिं॥
अन्ने बिना न होय सुकाल, तजिये अन्न, न मिले गोपाल॥

और एक जगह कहा है कि जो आदमी अपने धन्धे से चिपटा रहा वह धूल हुआ और बिना धन्धे के पाप धुलते भी नहीं :

"जो धन्धे तो धूलि, बिनु धन्धे धूलै नहीं।"

—प्रभाकर माचवे

लक्ष्मीनिवास, मेयो रोड,
सिविल लाइन्स, नागपुर

स्वास्थ्य ही के कारण संसार की समस्त वस्तुएँ आनन्द प्रदान करती हैं। यदि स्वास्थ्य न हो तो कोई वस्तु अच्छी प्रतीत नहीं होती। इसका यह तात्पर्य है कि किसी अन्य प्रकार के सुख के लिए स्वास्थ्य को बलिदान कर देना सबसे बड़ी मूर्खता है चाहे वह सुख धन-लाभ, उन्नति, विद्या और यश का ही क्यों न हो। क्षणिक विषय वासना के सुख के लिए स्वास्थ्य खराब करने की तो बात ही क्या है!

—रीडर्स डाइजेस्ट

---

[१५] चक्रधर विचारधारा पृष्ठ सं. १६१

संस्कृत के महान् पण्डित सूर्यदेव

संस्मरण

अंग्रेज़ों और अंग्रेज़ी की चढ़ती के दिनों में सबसे अधिक यदि किसी की छीछालेदर हुई, यदि किसी की तक़दीर पर साढ़साती आई और यदि किसी की मार्केट वैल्यू सबसे अधिक गिरी तो वह बिचारे संस्कृत के पुराने पण्डित की। अर्थशास्त्र का क़ायदा है कि जो चीज़ कम होती है और जिसकी माँग ज़्यादह होती है उसका दाम बाज़ार में बढ़ जाता है। बिचारे संस्कृत के पुराने पण्डित कम तो थे परन्तु इतने पर भी क्योंकि उनकी कुछ माँग न थी इसलिए बिचारों को मुफ़्त में भी कोई नौकरी देने के लिए तैयार नहीं था। मेकाले ने लिखा था कि एक उस अलमारी से जिसमें संस्कृत की पुस्तकें भरी हों वह अलमारी अच्छी है जिसमें कोई किताब न हो और जो बिलकुल खाली हो। संस्कृत का पुराना पंडित भारतीय संस्कृति और विचारधारा का समर्थक था; उसके लिए हिमालय, गंगा–यमुना, कावेरी और रामेश्वरम् तीर्थ थे और अंग्रेज़ तो ऐसे लोगों को चाहते थे जो न केवल अंग्रेज़ों और अंग्रेज़ीयत के समर्थक हों परन्तु जिनके लिए संसार में सबसे बड़ा तीर्थस्थान इंग्लैण्ड हो। ऐसी अवस्था में इन संस्कृत के पुराने पण्डितों को कौन पूछता ? इन पुराने पण्डितों के इन पुरानेपन, लकीर के फ़कीर होने और उनमें अन्य कई न्यूनताएँ होने पर भी उनमें कई ऐसी विशेषताएँ थीं कि जिन्होंने उन्हें देखा वह उनके सामने श्रद्धा से सिर झुकाए बिना नहीं रह सकता था। इतनी दुर्दशा होने के पश्चात् भी पुराना पण्डित सिर उठा कर चलता था और अपने हृदय में अपने आपको किसी तरह किसी अंग्रेज़ी के विद्वान् से हीन नहीं समझता था। वह अपनी बुरी अवस्था का कारण अपने बुरे दिनों को समझता था परन्तु वह अपने को बुरा नहीं समझता था। इंग्लैण्ड में वर्षों रह चुकने और अंग्रेज़ी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी हमारे देश के बड़े बड़े लोगों में एक तरह की हीनता की मनोवृत्ति (Inferiority complex) पाई जाती है और वे यूरोपीय संस्कृति, सभ्यता और व्यवहार का अन्धानुकरण करने में अपना गौरव समझते हैं। इसके विपरीत संस्कृत का पुराना पण्डित अपने दीन-हीन वेश में, अपने फटे-पुराने कपड़ों में, अपनी निष्ठा में स्थिर था, विश्वास में अटल था और अपनी मर्यादा के सामने बड़े बड़े और अधिकारियों और सत्ताधारियों को हीन और [illegible] समझता था !

इन महान् पण्डितों की कमज़ोरियों, दकियानूसीपन, किसी के हाथ का न खाना, छूआछूत, अन्धविश्वास और प्राचीनता के प्रति अन्धहठ से तो [illegible] परिचित हैं परन्तु उनकी सादगी, सरलता, सहृदयता, निष्कपटता, अगाध और विस्तृत विद्वत्ता, विनय, शालीनता और लिहाज़ से बहुत कम लोग परिचित हैं। वे किसी स्कूल, पाठशाला या कालेज में पढ़े नहीं होते थे परन्तु इस पर भी उनका ज्ञान ठोस होता था। इन पण्डितों की मेधाशक्ति और स्मृतिशक्ति को देख कर आश्चर्य होता था; वे एक चलते-फिरते संस्कृत के पुस्तकालय प्रतीत होते थे। आप कहीं से कोई पंक्ति निकाल लीजिए उन्हें कण्ठस्थ थी और वे बिना किसी पुस्तक की सहायता के उसे समझा देते थे और उसके पूर्वापर प्रकरण को देखने की उनको कोई आवश्यकता अनुभव नहीं होती थी। जिस कार्य को विस्तृत होने के कारण बहुत-से विद्वान् मिल कर करते हैं उसके लिए एक पंडित ही पर्याप्त था। वे सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय को ऐसी सरलता और स्पष्टता से समझाते थे कि उनकी बुद्धि एक विशाल और अगाध समुद्र सी प्रतीत होती थी। उनको यह ज्ञान या तो अपनी वंश-परम्परा द्वारा प्राप्त होता था और या फिर किसी गुरु के द्वारा। निर्धन और दरिद्र होने पर भी, चनों पर गुज़ारा करके भी वे इस ज्ञान को साधना, तप और घोर परिश्रम के द्वारा उपार्जित करते थे। इस समय तो विद्या के उपार्जन के लिए पैसा ही बड़ा साधन समझा जाता है क्योंकि जो पैसा ख़र्च कर सकता है वह ही अपने बच्चों को ऐसे ऊँचे विद्यालयों में भेज सकता है जहाँ उच्च शिक्षित और कठिनाई से प्राप्य अध्यापक प्राप्त हो सकते हैं परन्तु ये पंडित विद्या का उपार्जन धन के बल पर नहीं करते थे। वे अपने उग्र तप, कठोर-साधना और निरंतर परिश्रम से जागरूक रह कर ज्ञान प्राप्त करते थे और

१९५४

इसीलिए वे अपने ज्ञान के स्वयं एक जीवित प्रतीक होते थे। जो उनके इस ज्ञान से ज़रा-सा भी परिचय प्राप्त करता था वह अपने हृदय में इस बात को अनुभव कर सकता था कि संस्कृत के पुराने पंडित होने के क्या अर्थ है और वे कैसे होते हैं !

जब हरिद्वार से तीन मील दूर गुरुकुल-विश्वविद्यालय काङ्गड़ी की स्थापना हुई और संस्कृत के पुनरुज्जीवन के लिए प्रयत्न प्रारम्भ हुए उस समय गुरुकुल-काङ्गड़ी में दूर-दूर से कुछ ऐसे संस्कृत के महान् पंडित आए जिनके स्मरण से न केवल प्रसन्नता होती है अपि तु जिनकी बुद्धि, स्मृति-शक्ति और जिनके ज्ञान पर आज भी आश्चर्य होता है ! इनमें से एक पंडित श्रीयुत सूर्यदेव जी थे । ये छपरा ज़िले के रहने वाले थे । वे जितने दिन गुरुकुल में रहे उनके जीवन, रहन-सहन और व्यवहार में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ । जैसे कि वे पहले दिन थे—आख़िरी दिन तक वे वैसे ही रहे । वे जैसे सत्य-सनातन की एक सजीव मूर्ति थे । उनकी आयु और उनके शरीर में भी किसी प्रकार का परिवर्तन अनुभव नहीं होता था । परिवर्तनशील विश्व में मानों वे ही एक अपरिवर्तनशील थे । न ज़्यादा किसी से मिलते थे, न ज़्यादा बोलते थे, न ज़्यादा हँसते थे—कभी कभी हलका मुसकराते थे, सर्वथा निरीह और निष्कपट थे, हृदय के सरल, बच्चों जैसे भोले, किसी को कुछ न कहने वाले, मृदु स्वभाव, पढ़ाने के लिए सदा तैयार । न किसी क साथ खाते-पीते थे, सब से अलग-सलग रहते थे । कभी कभी पंडित मंडली आकर उनके पास बैठ जाती थी । गंगा के किनारे क बाँध व पास, गुरुकुल-महाविद्यालय के आश्रम के पास जो टिन-शेड बने हुए थे उन्हीं में से दो कमरे उन्होंने लिए हुए थे और वे गर्मी, सर्दी और वर्षा में वहीं रहते थे । वे सदा नंगे सिर रहते थे जिस पर थोड़े से बाल थे । पीछे पतली और बँधी हुई शिखा थी और थे वे नंगे पैर । घुटे हुए सिर जैसे रंग का चमकता हुआ श्याम वर्ण का गोल चेहरा, ललाट चौड़ा और उन्नत, आँखें बड़ी और थीं भुरभुरी, गंगाजमुनी मूँछें । वे घुटनों तक की धोती बाँधते थे । धोती कभी धोबी के पास धुलती नहीं थी । उसके ऊपर वे सफ़ेद कपचा या मिर्ज़ई पहनते थे जिसमें बटनों के स्थान पर बाँधने के लिए बन्द लगे थे । सर्दियों में यह मिर्ज़ई गरम कपड़े की होती थी और इस पर एक दुपट्टा रहता था । बस यही उनकी पोशाक थी । बोली भी वे छपरे की तरफ़ की बोलते थे । क़द के ऊँचे थे; शरीर अच्छा था; न मोटा न पतला । उनके एक छोटे भाई थे । उनका रंग-रूप बिलकुल उन्हीं के जैसा था; ज़रा उनसे पतले और क़द के छोटे थे । वे उनके साथ रहते थे और उनका भोजन बना देते थे । बस यही उनका परिवार था । गुरुकुल के पुस्तकालय से वे ऐसी गहन और कठिन विषयों की पुस्तकें ला कर पढ़ते थे जिन्हें अत्यन्त प्राचीन और दुरूह होने के कारण कोई हाथ लगाने का साहस तक नहीं करता था । इन्हीं पुस्तकों को पुस्तकालय से ले जाने के कारण इस बात का ज्ञान हो सका कि वे न केवल एक महान् विद्वान् हैं अपि तु गुरुकुल के स्वर्गीय कुलपति श्रीयुत आचार्य रामदेव जी के शब्दों में वे एक चलते-फिरते ज्ञानकोश (इन्साइक्लोपीडिया) थे । जब कोई उनसे उनके टिनशेड के कमरे में पढ़ने के लिए आता था, वे अपने तख़्त पर प्रायः लेटे हुए पढ़ाते थे । उनके पास पुस्तक नहीं होती थी । पढ़नेवाला अपनी पुस्तक से पढ़ता जाता था और वे लेटे लेटे व्याख्या करते जाते थे और विषय को सरल और स्पष्ट रूप में समझाने का प्रयत्न करते थे । संस्कृत व्याकरण, साहित्य, अलङ्कार-शास्त्र, वेद, दर्शन और ब्राह्मण-ग्रन्थ सभी विषयों के वे पारंगत विद्वान् थे । पढ़ाने के लिए उनके घर का द्वार सर्वदा खुला था । जो पुस्तकें अत्यन्त दुर्बोध थीं और जिनका नाम लेने से भी बड़े-से-बड़े पंडितों के दिलों में कँपकँपी छूटती थी—उन पुस्तकों को वे किसी परीक्षा के लिए नहीं परन्तु अपने मनोरंजन के लिए पढ़ा करते थे । वे इन पुस्तकों को इस तरह पढ़ा करते थे जैसे कि कोई उपन्यास पढ़ रहा हो । जब वे किसी पुस्तक का हवाला देते थे तो इस प्रकार कहा करते थे : "गुरुकुल के पुस्तकालय (और गुरुकुल का पुस्तकालय विशाल था) में चले जाओ । वहाँ फ़लाने विभाग की फ़लानी अलमारी में फ़लाने खाने में फ़लाने नम्बर पर फ़लानी पुस्तक रखी है—उसके फ़लाने पृष्ठ पर फ़लानी पंक्ति है और उस पंक्ति को देख लो ।" और यह सब बिलकुल ठीक निकलता था उनकी इस अद्भुत स्मृति शक्ति पर बड़ा आश्चर्य होता था परन्तु वे ये सब बातें अत्यन्त सरलता से इस प्रकार कहा करते थे कि जैसे यह कोई अत्यन्त साधारण-सी बात हो । उनमें किसी प्रकार का अभिमान, दंभ या दिखावा नहीं था । उनका जीवन अत्यन्त साधारण और स्वाभाविक था । उनमें किसी प्रकार की बनावट या कृत्रिमता नहीं थी । उनके

इस अत्यन्त साधारणता और सादगी के कारण यह ज्ञात नहीं होता था कि वे कोई महान् और असाधारण पंडित हैं। उनके पास किसी प्रकार की कोई डिग्री या उपाधि नहीं थी। जब वे पहले पहल गुरुकुल में आए तो उनकी सरल वेशभूषा, बातचीत करने की कम आदत और डिग्री आदि के अभाव के कारण उन्हें संस्कृत पढ़ाने के लिए पाँचवीं और छठी श्रेणियाँ दे दी गईं—पीछे तो वे कालेज की सबसे बड़ी कक्षाओं को ब्राह्मण-ग्रन्थ आदि पढ़ाया करते थे। वे जिस प्रकार कालेज के विद्यार्थियों को पढ़ाते थे उसी प्रकार पाँचवीं और छठी कक्षा को पढ़ाते थे। मैंने उनसे इन कक्षाओं में भी पढ़ा था और कालेज की कक्षाओं में भी। उनके लिए दोनों एक समान थे। छोटी कक्षाओं को पढ़ाने में उन्हें किसी प्रकार की हीनता का अनुभव नहीं होता था और उच्च कक्षाओं को पढ़ाते हुए वे किसी प्रकार की उच्चता का अनुभव नहीं करते थे। वे जब छोटी कक्षाओं को पढ़ाते थे उस समय की एक घटना का मुझे प्रायः स्मरण आता रहता है। इस घटना से जहाँ कुछ हँसी आती है वहाँ उनके हृदय की सरलता और मिठास का भी अनुभव होता है। वे आहिस्ता बोलते थे -- ऊँचा बहुत कम बोलते थे। पुराने पंडित थे इसलिए विद्यार्थी पढ़ाई के समय कभी आपस में बातचीत करने लग जाते थे। वे गुस्से में या किसी प्रकार आवेश में आते ही नहीं थे। वे जिस आवाज़ में पढ़ा रहे होते थे उसी आवाज़ में शान्तिपूर्वक विद्यार्थी का नाम लेकर उसे खड़े होने के लिए कहते थे और जब विद्यार्थी खड़े होकर भी आपस में बातचीत करते रहते थे तब वे उसी प्रकार शान्तिपूर्ण आवाज़ में कहते थे : "अच्छा, तो तुम मानोगे नहीं।' आपस में बातचीत करते हो। अच्छा, तुम सब 'वध्य-स्थल' में एक एक करके आते जाओ।" वे पीटने को 'वध' करना कहते थे। एक एक करके विद्यार्थी 'वध्य-स्थल' में बुलाए जाते थे। 'वध्य-स्थल' उनकी मेज़ की दाईं तरफ़ कुर्सी के पास था। बातचीत करनेवाले विद्यार्थियों में से प्रत्येक को वे नाम ले कर अलग अलग बुलाते थे और वहाँ आ जाने पर जिस प्रकार उनका 'वध' करते थे वह उनका पंडिताऊ दंड देने का अपूर्व ढंग था जिससे उनकी दयालुता और हृदय के प्रेम का पता चलता है। वे पंडिताऊ ढंग से कहते थे "तो, तुम मानोगे नहीं। आओ, 'वध्य-स्थल' में खड़े हो जाओ" और वे विद्यार्थी के 'वध्य-स्थल' में खड़े हो जाने के पश्चात् उसकी पीठ पर अपना बायाँ हाथ रख देते थे और फिर अपने उस हाथ पर धीरे-से अपना दायाँ हाथ एक बार मार देते थे और कहते थे : "जाओ, अपने स्थान पर जा कर बैठ जाओ और पढ़ाई के समय बातें मत किया करो।" उनके 'वध्य-स्थल' को जिसने देखा है वह उनके इस पंडिताऊ सरल प्रेम को कैसे भूल सकता है ! उन्होंने कभी किसी विद्यार्थी को किसी नरह का कोई सख़्त शब्द नहीं कहा—मारने-पीटने की तो बात ही क्या थी।

उन दिनों बहुत से अंग्रेज़ अधिकारी गुरुकुल को राज-विद्रोह की संस्था समझते थे। गुरुकुल शहरों से दूर जंगल में था और फिर इस संस्था को चलाने के लिए अंग्रेज़ अधिकारियों ने सरकारी सहायता देने के लिए बहुत प्रयत्न किया जिसे स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वीकार नहीं किया। वे इस संस्था को एक स्वतंत्र संस्था रखना चाहते थे। अंग्रेज़ अधिकारी इस स्वतन्त्रता का अर्थ कुछ और ही समझते थे। वे समझते थे कि यहाँ जंगलों के एकान्त में विद्यार्थी अंग्रेज़ी सल्तनत के खिलाफ़ बग़ावत करने के लिए तैयार किए जा रहे हैं। उनमें भारतीयता के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए संस्कृत आदि विषय पढ़ाए जाते हैं। परिणाम यह हुआ कि इस संस्था को देखने के लिए यू० पी० के राज्यपाल सर जेम्स मेस्टन जो पीछे लार्ड मेस्टन हो गए थे कई बार आए। रेम्जे मैक्डोनल्ड जो बाद में ग्रेट ब्रिटेन के लेबर पार्टी की ओर से प्रथम प्रधान मन्त्री बने थे गुरुकुल पधारे थे और उन्होंने एक लेख में लिखा था जिसका शीर्षक था—'Is this sedition?' क्या यह राज-विद्रोह है ? यह लेख इलाहाबाद के उस समय के प्रसिद्ध पत्र 'पायानियर' में प्रकाशित हुआ था। अन्त में 'रौलेट एक्ट' के समय के प्रसिद्ध वाइसराय लार्ड चेल्म्सफ़ोर्ड हाथी पर बैठ कर गुरुकुल पधारे थे। सारे मार्ग को झंडियों से सजाया गया था। बड़े द्वार पर उनका स्वागत करने के लिए गुरुकुल विश्वविद्यालय के प्राध्यापकगण खड़े थे। वाइसराय से हाथ मिला कर अपने को कौन धन्य न समझता परन्तु उन प्राध्यापकों में अकेले पं० सूर्यदेव ही ऐसे थे जो वाइसराय से हाथ नहीं मिलाना चाहते थे। जब लार्ड चेम्सफ़ोर्ड सब प्राध्यापकों से 'शेक हैण्ड' करते हुए इनके पास आए तो इन्होंने अपने हाथ को पीछे हटाने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु उन्होंने अपना हाथ बढ़ा कर इनका हाथ अपने हाथ में ले ही तो लिया और फिर हँसते हुए आगे बढ़ गए। वाइसराय से हाथ

१९५४

मिलाने पर औरों को तो प्रसन्नता होती परन्तु इससे इनके हृदय को बहुत कष्ट हुआ। वे दुःखी हृदय से गंगा-तट पर आए। गाय का गोबर लाकर कई बार पहले अपने हाथों को मला और गंगा-जल से धोया। फिर गाय के गोबररूपी साबुन को अपने समस्त शरीर पर बार बार लगा कर घण्टे भर तक गंगा में स्नान किया और फिर कहीं उनके चित्त को शान्ति हुई। किसी ने पूछा : "पंडित जी! वाइसराय से तो हाथ मिला कर आपको प्रसन्नता हुई होगी।" उत्तर में उन्होंने कहा : "राम, राम! तुम प्रसन्नता की बात करते हो। हम तो भ्रष्ट हो गए। हमने तो वाइसराय से हाथ मिलाने से बचने की बहुत कोशिशें कीं परन्तु उस म्लेच्छ ने हाथ पकड़ ही लिया।"

आचार्य रामदेव जी भारतीय शिक्षा के साथ अंग्रेजी की शिक्षा के पक्षपाती थे पर वे इनके विषय में प्रायः कहा करते थे : "पं० सूर्यदेव तो एक ज्ञानकोश हैं। वे एक चलते फिरते पुस्तकालय हैं। वे चाहे महाविद्यालय में कुछ न पढ़ाएँ तो भी वह शिक्षणालय धन्य है जहाँ ऐसे महान् पंडित निवास करते हों।" आचार्य रामदेव जी उन्हें अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। वे कहते थे कि संस्कृत के कई शब्दों की कठिनाई को जो कि अन्य कई बड़े पण्डित दूर नहीं कर सके थे उन्होंने हँसते खेलते दूर कर दिया था। जब वे गुरुकुल से चले गए थे तब आचार्य रामदेव जी को बहुत कष्ट हुआ था और उनके गुरुकुल से चले जाने को वे एक अपराध-सा अनुभव करते थे।

अब हमारे देश में संस्कृत भाषा को पुनः शौक से पढ़ा जाने लगा है और कई महान् पंडित इस समय हमारे देश में हैं जिन्हें संस्कृत का गहरा ज्ञान है परन्तु वे संस्कृत के आधुनिक पंडित हैं। हमारे देश से जो कई प्राचीन परम्पराएँ लुप्त हो गई हैं उनमें एक परम्परा प्राचीन पंडितों की भी है। शिक्षा की प्रणाली में परिवर्तन हो जाने के पश्चात् अब उस प्रकार के पण्डितों के होने की भी कम संभावना रह गई है। अंग्रेज़ अधिकारियों ने हमारे देश में बहुत से संग्रहालय बनाए, बहुत से ऐतिहासिक स्थानों के भग्नावशेषों को सुरक्षित रखने के लिए विधान बनाए और इसी प्रकार प्राचीन निधियों को सुरक्षित करने के लिए प्रयत्न किए। उन्होंने संस्कृत के कालेजों की स्थापना भी की परन्तु उनकी शिक्षा-प्रणाली से हमारे देश से प्राचीन पण्डितों की परिपाटी बहुत कुछ उठ-सी गई। पुराने पंडितों का संस्कृत का ज्ञान कितना ठोस और विस्तृत था यह तो वे ही लोग जानते हैं जिन्होंने कभी उनसे संस्कृत के शास्त्र-ग्रन्थ पढ़े हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि वे न तो किसी परीक्षा में पास होने के लिए और न आजीविका के लिए संस्कृत का अध्ययन करते थे। यह तो एकमात्र उनका विद्या का प्रेम था और इसी विद्या के प्रेम के कारण ही अन्य हजारों न्यूनताओं के होते हुए भी पुराने पंडितों के प्रति लोगों में इतना आदर और श्रद्धा थी। कई दशकों के व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी जब मुझे श्रीयुत पं० सूर्यदेव का स्मरण हो आता है तो मेरी आँखों में आँसू भर जाते हैं और मेरा मस्तक उनके चरणों में श्रद्धा-पूर्वक झुक जाता है!

उसमानिया विश्वविद्यालय,
हैदराबाद

—वंशीधर विद्यालङ्कार

मधु

ग्रीस के दार्शनिक डिमोक्रिटस और एलेग्ज़ैण्डर महान् मधु को इतनी महान् वस्तु समझते थे कि उन्होंने यह आदेश प्रदान किया था कि उन्हें मृत्यु के पश्चात् मधु में गाड़ा जाए। अभी कुछ समय हुआ ईजिप्ट की एक पुरानी क़ब्र को खोला गया। उसमें ३३०० वर्ष पुराने मधु के घड़े रक्खे हुए प्राप्त हुए। मधु पुराना होने के कारण धुँधला और काला पड़ गया था परन्तु वह बिलकुल शुद्ध और खाने के योग्य था।

—पीटर नौथैंण्ड

अक्क महादेवी

बारहवीं शताब्दी कर्णाटक के धार्मिक इतिहास का स्वर्ण-युग है। कर्णाटक के उस समय का धार्मिक इतिहास संसार के धार्मिक इतिहास में उच्च स्थान पाने योग्य है। वीरशैव धर्म के प्रवर्त्तक श्री बसवेश्वर ने कर्णाटक के धार्मिक व साहित्यिक क्षेत्रों में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। बसवेश्वर ने अपने सरल व सुन्दर 'वचनों' के द्वारा मुक्ति मार्ग के द्वार को सर्वसामान्य जनता के लिए खोल दिया। उन्हीं के तत्वों के कारण सैकड़ों शिवशरण व शरणाओं ने कर्णाटक की भाव भूमि में भक्ति-भागीरथी बहाई। उन शिवशरणाओं में अक्क महादेवी का नाम सर्वोपरि है।

कर्णाटक में अक्क महादेवी का धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्र में वही स्थान है जो हिन्दी साहित्य में मीराबाई का है। दोनों राजरानियाँ थीं। दोनों की भक्ति मधुर भाव की थी। दोनों ने अपने आराध्यदेव की खोज में घर-बार छोड़ा था। दोनों अपने आराध्यदेव में ऐक्य हो गई थीं। लेकिन अन्तर इतना ही है कि मीराबाई परम वैष्णवी थीं। मीराबाई का आराध्यदेव व्रजराज कृष्णचन्द्र था। अक्क महादेवी शैव थीं। उनका आराध्यदेव चन्न मल्लिकार्जुन था।

नगर प्रान्त में 'उडुतडि' नामक गाँव में महादेवी का जन्म हुआ। उनके माता-पिता सुमति व निर्मल थे। वे भी शिवभक्त थे। महादेवी के मन में बाल्यकाल से ही शिवभक्ति का बीज अंकुरित हो गया था। तभी से भगवान् शिवजी के प्रति भक्ति एवं इस माया संसार के प्रति विराग हो गया था। यौवनावस्था में पदार्पण करते ही बचपन की भावनाएँ विकसित हो गईं। आचार-विचार में श्रद्धा, लिंगपूजा में अनन्य भक्ति दिन-दूनी और रात चौगुनी बढ़ती गई। अपने आराध्यदेव 'चन्न मल्लिकार्जुन' के ध्यान में ही महादेवी अपना समय बिताने लगी।

अक्क महादेवी एक अलौकिक रूपवती थी। उसकी रूप कौमुदी चारों ओर छिटकने लगी। उसके सुनहले रंग का सुडौल शरीर, कमल सदृश मुख, ये सब मिल कर उसके रूप में चार चाँद लगा देते थे।

एक दिन उस देश का राजा 'कौशिक' बन-विहार से अपनी राजधानी वापस आ रहा था। राजदर्शनार्थ स्त्री-पुरुष बहुसंख्या में राजवीथी में खड़े थे। महादेवी भी अपने माता-पिता के साथ एक जगह खड़ी थी। उसी समय राजा की दृष्टि उस पर पड़ी। उस रूप शशि को देख कर वह एकदम मुग्ध हो गया। महल पहुँच कर अपने मन्त्री के साथ उसने महादेवी के पास विवाह का सन्देश भेजा। कौशिक जैन मतावलम्बी था। इसलिए महादेवी के माता-पिता ने अपनी पुत्री का विवाह एक विधर्मी के साथ करना नहीं चाहा, चाहे वह राजा ही क्यों न हो। लेकिन राजा निराश न हुआ। वह आदमी पर आदमी भेजता गया और आखिर यह कहला भेजा कि अगर महादेवी नहीं मानेगी तो उस पर ज़बरदस्ती की जाएगी, और उसके माता पिता के प्राण सुरक्षित न रहेंगे। देवी ने पहले पहल इनकार करना चाहा। लेकिन अपने माता-पिता की चिन्ता आते ही उसने मान लिया। लेकिन उसने एक शर्त लगाई। उसने कहा: "अगर राजा शिवभक्त हो जाएँगे तो मैं उनके साथ विवाह करने के लिए तैयार हूँ।" राजा उसके लिए सब कुछ करने के लिए तैयार था। उसने वचन दे दिया।

महादेवी राजमहलों में आई। महल में आने पर उसकी भक्ति और भी बढ़ गई। वहाँ आने पर देवी को मालूम हुआ कि राजा कैसा आदमी है। वह केवल कामी था। उसे महादेवी की आध्यात्मिक प्रवृत्ति अच्छी न लगी। उसने अपने अंतःपुर की रमणियों को महादेवी को मनाने के लिए भेजा। उन सब स्त्रियों ने महादेवी के पास आ कर कौशिक का गुणगान किया, तरह तरह के प्रलोभन दिए। तब भी उसने कौशिक का तिरस्कार किया और चन्न मल्लिकार्जुन पर उसका जो अविरल अनुराग था उसे इस प्रकार व्यक्त किया:

"गिरि कानन को छोड़,
मयूर घास फूस में खेलता है क्या?
मानस सरोवर को छोड़,
हँस गढ़े में तैरता है क्या?
सुगन्ध रहित पुष्प पर,
भ्रमर मँडराता है क्या?

१६५४

चन्न मल्लिकार्जुन के सिवा मेरा मन,
और किसी को चाहता है क्या ?''

इसे सुन कर उन्हें दंग रह जाना पड़ा। उनमें से कई स्त्रियों ने चन्न मल्लिकार्जुन पर उसके विरह के लिए उसकी अवहेलना की। तब देवी ने उनके उत्तर में यों कहा :

"बाँझ प्रसव वेदना को क्या जानती है ?
विमाता प्रेम को क्या जानें ?
दिलजलों की पीड़ा को सुखी लोग क्या जानें ?
चन्नमल्लिकार्जुन के विरह-शूल से तड़पनेवाली,
मेरी वेदना को आप क्या जानें हे माता ?''

महादेवी ने कौशिक के अनन्य प्रेम पर मुग्ध हो कर उसके साथ विवाह किया था लेकिन राजा केवल वासना का पुजारी था। उसे अपने वचन की सुध ही न रही। महादेवी को ऐहिक जीवन की ओर खींचने का उसने भरसक यत्न किया। उसकी भक्ति में बाधा डाली। उसके संयम का तिरस्कार किया। महादेवी ने जिस विवाह से अपनी जनता के पारमार्थिक उत्कर्ष की कल्पना की थी वह विफल हो गई। इसीलिए उसे अपने जीवन के प्रति घृणा पैदा हुई। उसने अपने मायाबन्धन को दिन-दिन तीक्ष्णतर बनते देखा। इस कृत्रिम जीवन से ऊब कर अपने आराध्यदेव की खोज में निकली। अपने लक्ष्य के सिवा उसे और कुछ नहीं दीख पड़ता था। जीवन की सभी उपाधियों को तज कर 'अपनेपन' का स्मरण करानेवाले वस्त्राभूषणों का भी उसने त्याग किया। उसे अपनी देह की सुध भी जाती रही। इस प्रकार सभी वस्त्राभूषणों को तज कर वह कहती है :

"मंगल ही मेरा मज्जन है। भस्म ही अक्षय हल्दी है मेरे लिए। दिगम्बर ही दिव्यांबर है। शिवपाद-रेणु ही मेरा अनुलेप है। रुद्राक्ष ही दुकूल है मेरे लिए। शिवशरणों के पाद ही मेरा सिर मौर है। चन्न मल्लिकार्जुन ही मेरे पति हैं। मैं उनकी वधू हूँ। अन्य वस्त्रभूषणों से मेरा क्या मतलब ?''

विषयोपभोगों पर विजय पाना आध्यात्मिक साधना की पहली सीढ़ी है। महादेवी भी उन पर विजय पा चुकी थी।

आखिर महादेवी अपने स्त्रीत्व तक को भूल गई। अध्यात्मिक साधना में यह एक महत्वपूर्ण स्थिति है। महात्मा रामकृष्ण परमहंस देव भी अपनी आध्यात्मिक साधना में अपने पुरुषत्व को भूल गए थे। अपने को 'गोपी' समझ कर गोपियों की भाँति वस्त्र पहन कर भगवान् कृष्णचन्द्र की आराधना की थी। महादेवी ने अपने वस्त्रों को भी निकाल फेंका और अपनी केश-राशि को ही वस्त्र बना कर महल से चल पड़ी। महादेवी ठीक जानती थी कि प्रेम शून्य विवाह आत्मा पर अत्याचार है।

पुरुषों के कलुषित व्यवहार से वह ऊब गई थी। भगवान् चन्न मल्लिकार्जुन को छोड़ और किसी पुरुष को अपना पति मानना उसके लिए असह्य था; कल्पनातीत था। इसके लिए "मरणातीत, द्वंद्वातीत शिव को, अनंत एवं अविनाश रूप शशि को छोड़ कर इन पार्थिव एवं नश्वर पतियों को जलाओ" ऐसा कह कर उसने अपने मन की एक निष्ठा और स्थिर प्रतिज्ञा को दिखाया। स्त्रियों को अपनी वासना का मंत्र समझा कर उन पर अत्याचार करनेवाले पुरुष समाज की उसने हँसी उड़ाई है।

लेकिन महादेवी जन्मतः स्त्री थी। स्त्री की हार्दिक-स्निग्धता एवं सुकुमारता को वह कैसे भूल सकती थी। इसलिए उसने अपने स्त्रीत्व का ही आध्यात्मिक प्रगति के अनुकूल उपयोग किया और माधुर्य भावना से भगवान् शंकर की आराधना की।

महादेवी ने समझा था कि कौशिक के साथ विवाह करने से उसकी शिवपूजा में बाधा नहीं पड़ेगी। इसी धैर्य से गुरुदेव परमहंस ने भी शारदामणि के साथ विवाह किया था। लेकिन परमहंस देव जी के जीवन में विवाह बाधा नहीं बना। पत्नी पति की धर्म वैरी नहीं बनी। उनकी धर्म-मैत्री इतनी बढ़ गई थी कि वे अपनी पत्नी को 'भवतारिणी' कह कर पूजा करने लगे। लेकिन महादेवी और कौशिक के जीवन में यह बात न हुई। धर्म स्त्री ने कर्म पुरुष के साथ विवाह किया था। प्रेम काम के हाथ लग गया था। ज्योति अंधकार के पास चली गई थी। महादेवी के लिए सारा संसार ही शिवमय था। 'सर्वं शिवमयं जगत्' उसका मंत्र था। उसने शिव से विवाह किया था न कि कौशिक से। लेकिन जब उसे यह मालूम हुआ कि कौशिक शिव नहीं है, शिव के गुणों से रहित है तब उसे उस शिवशून्य घर का त्याग करना पड़ा।

महादेवी ने अपने जीवन की प्रत्येक घटना को आध्यात्मिक साँचे में ढाला है। अपने सिद्धि-प्रदाता को पति के रूप में देख कर उसने संसार की महान् समस्या

का हल किया। वह ठीक तरह जानती थी कि भगवान् न नाद प्रिय है, न वेद प्रिय है, न वादप्रिय है बल्कि है भक्ति प्रिय। इसलिए उसी भक्ति पंथ के प्रिय प्रेयसी मार्ग में जा कर संसार के प्रधान धर्मों में जिस तत्व को दिखाया उसे आचरण में लाई। इस प्रिय प्रेयसी मार्ग को ग्रहण करने में महादेवी की विश्वदृष्टि का पता लगता है। राजयोग, कर्मयोग, हठयोग और ज्ञानयोग आदि सब व्यष्टि के लिए योग्य रह गए हैं। भक्ति की सार्वत्रिकता को उपनिषद्, कुरान, बाइबल आदि ने मान लिया है।

सभी धर्म व धर्म के ऋजुमार्गगामी, जाति, मत, पंथ व देश काल की परिधियों को लांघ कर एक सीढ़ी पर खड़े हो जाते हैं। भक्ति ही वह सीढ़ी है। उस सीढ़ी पर चढ़कर महादेवी ने अपनी हर एक ऐहिक घटना को आध्यात्मिक रूप दिया है। अपने विवाह का उसने इस प्रकार वर्णन किया है :

"जल के मंडप में, अग्नि के वितान में, ओले के आसन पर पादहीन पति के साथ शिरहीन वधू का विवाह हुआ। कभी न टूटने वाले दांपत्य जीवन में मैंने प्रवेश किया।"

विवाह के बाद पति के लोग ही महादेवी के प्रिय बन्धु बनते हैं। इसलिए पति की खोज करने के लिए उनके बन्धु मित्र शिवशरण व संतों के पास चली।

महादेवी मायापाश से छुटकारा पाने के लिए महल छोड़ जंगल गई। लेकिन अन्तःकरण चतुष्टय की पहली उपाधि ने वहाँ भी उसे न छोड़ा। "माया काया के लिए छाया बन कर, प्राण के लिए मन बन कर, मन के लिए स्मृति बन कर, स्मृति के लिए ज्ञान बन कर सताती थी। उस माया का प्रभाव केवल व्यक्तियों के लिए ही सीमित नहीं था। पुरुष के सामने स्त्री बनी थी, श्रमण के सामने श्रमणा बनी थी। यति के लिए परा[illegible]कि बनी थी।" उस माया से छुड़ाने वाले गुरु के लिए वह लालायित हो उठी।

उस समय कल्याण नगरी शिवशरणों का एक जबर्दस्त अड्डा थी। कल्याण नगरी वीरशैव संतों का संगम क्षेत्र था। बसवेश्वर का शिवानुभव मंडप था उधर। वहाँ रोज ज्ञानियों की ज्ञान चर्चा चलती थी जिसमें बसवेश्वर, सिद्ध राम आदि बड़े बड़े संत भाग लिया करते थे। उस समय के सर्वश्रेष्ठ अद्वैत ज्ञानी अल्लम प्रभु वहाँ के अध्यक्ष थे। महादेवी प्रभुदेव (अल्लम प्रभु) से उपदेश लेने के लिए कल्याण नगरी गई। कल्याण नगरी के शिवशरणों ने महादेवी का स्वागत किया। प्रभुदेव ने महादेवी की परीक्षा करने के लिए तरह तरह के प्रश्न पूछे।

प्रभु ने पूछा :

हे स्त्री तुम क्यों इधर आई? स्त्री का नाम सुनते ही शिवशरण नाराज़ हो जाते हैं। अगर तुम अपने का नाम बताओगी तो बैठ सकती हो।

महादेवी बोली : "भगवान चन्न मल्लिकार्जुन ही मेरे पति हैं और किसी ऐहिक व्यक्ति से मेरा सम्बन्ध नहीं है। सारा संसार ही मेरे माता-पिता हैं।"

फिर प्रभु ने पूछा : "क्या यह सच है कि तुम राजा कौशिक के ऊपर दोषारोपण करके आई हो! दिगम्बरा होकर इस प्रकार आई हो। क्या यह सभ्य महिला के लिए शोभा देता है?"

देवी ने कहा : "देह गोरी हो या काली, वस्त्रसहित हो या रहित इससे क्या? अंतरंग के शुद्ध होने पर, चन्न मल्लिकार्जुन को अपना सर्वस्व अर्पण करने पर, यह देह कैसी भी हो इसकी मुझे क्या परवाह?"

प्रभु ने फिर कहा : "भाव शुद्ध होने पर, वस्त्रों को तज कर अपनी देह को क्यों केशों से ढंक लिया! यह तुम्हारी आन्तरिक लज्जा थी जो बाह्य में इस प्रकार व्यक्त हुई है। यह अच्छा नहीं है।"

महादेवी बोली : "मन्मथ की मुद्रा को देख आप के मन को पीड़ा पहुँचती है ऐसा समझ कर मैंने वैसा किया।"

इस प्रकार दोनों के बीच में बहुत से वाद-विवाद हुए। प्रभुदेव महादेवी के ज्ञान, वैराग्य एवं निरहंकार को देख मुग्ध हो गए। उन्होंने उठ कर उस देवी के चरणों में प्रणाम किया। महादेवी ने वहीं रह कर उस चर्चा में भाग लिया। इस प्रकार शिवानुभव मंडप के शरण गोष्ठी में महादेवी वे अपने हृदय समुद्र को मथ कर अन्तरात्मा के दर्शन कराने वाले अनुभवामृत को प्राप्त किया।

आत्मा ज्ञान को प्राप्त करने के बाद उसने इस प्रकार व्यक्त किया :

> "धरती के अन्दर छिपे हुए ऐश्वर्य की भाँति
> फल में समाए हुए सुप्त स्वाद की भाँति
> शिला में गुप्त हेम की भाँति
> चन्न मल्लिकार्जुन हमारे हृदय में ही है"

१६५४

महादेवी के तन, मन और प्राण चन्न मल्लिकार्जुन में ही विलीन हो गए। उसने उसे यों व्यक्त किया :

"जब तन ही आपके रूप में परिणत हो जाता है तो मैं किसकी सेवा करूँ ?
जब मन ही आपके रूप में मिल जाता है तो मैं किसका स्मरण करूँ ?
जब ज्ञान ही आप में समा जाता है तो मैं किसको जानूँ ?
हे चन्न मल्लिकार्जुन, तुम में, तुम हो कर, तुम से, तुम को मैं भूल गई ।"

लेकिन इतनी साधना करने पर भी उसे शान्ति नहीं मिली। वह एकान्त साधना करने के लिए श्रीशैल की ओर चल पड़ी।

पति की विरह वेदना उसको सताती रहती थी। कभी कभी उसी की प्रतीक्षा करते वह थक जाती थी। सोते जागते, उठते बैठते उसी का स्मरण करने लगी।

लेकिन उसका पति सुलभ साध्य नहीं था। संसार की सूत्र चालन वृत्ति में वह अपनी पत्नी को ही भूल गया था। उसकी बाट जोहते जोहते महादेवी को प्यास लग जाती थी। मलयानिल उष्ण प्रतीत होता था। चन्द्रिका अग्नि की वर्षा करती थी।

वह हर एक पथिक को अपने पति का पता देकर उसे भेज देने को कहती थी। आखिर पागल होकर वन के कण कण से वह पति को दिखाने की प्रार्थना करने लगी।

"हे अलिगण, हे आम्रमंजरी, हे चन्द्रिका, हे कोयल, आप से आँचल पसार कर प्रार्थना करती हूँ कि अगर आप मेरे प्रभु चन्न मल्लिकार्जुन को देखें तो उन्हें कृपया मेरे पास भेज दीजिए" ऐसा कह कर वह रोने लग जाती।

वह प्रकृति की हर एक कणिका से पूछने लगी :

"चहकनेवाले हे शुको, तुमने देखा है क्या ?
तुमने देखा है क्या ?
कल कूजन करनेवाली कोयलो, तुमने देखा है क्या ?
तुमने देखा है क्या ?
गुँजन करके मँडरानेवाले मधुपो, तुमने देखा है क्या ?
तुमने देखा है क्या ?
सरोवर में विहार करनेवाले हंसो, तुमने देखा है क्या ?
तुमने देखा है क्या ?
गिरि गह्वर में विहार करनेवाले, मयूरो, तुमने देखा है क्या ?
तुमने देखा है क्या ?
चन्न मल्लिकार्जुन कहाँ हैं ? तुम बताओ,
तुम बताओ ।"

इस प्रकार उसने अपने प्रियतम को सारे वन में ढूँढ़ डाला।

लेकिन उसका पति इतने से पिघलनेवाला नहीं था। वह बड़ा ही निष्ठुर था वह कठिन चित्तवाला था। उसे किस प्रकार प्रसन्न करें !

"अष्टविधार्चन करके प्रसन्न करें तो वह बहिरंग दूर है।
अंतरंग ध्यान से प्रसन्न करें तो वह वाङ्मनोऽतीत है।
जप स्तोत्रों से प्रसन्न करें तो वह नादातीत है।
भावज्ञान से प्रसन्न करें तो वह मति के लिए अतीत है।
हृदय में रखें तो वह सर्वांगपूर्ण है।"

आखिर वह हार कर उसी से प्रार्थना करने लगी :

"हे भगवान् तुम्हें प्रसन्न करना असाध्य है, इसलिए तुम को स्वयं ही प्रसन्न हो जाना अच्छा है।"

इतने पर भी उसका प्रिय दर्शन नहीं देता फिर भी वह हिन्दू रमणी थी। चाहे उसका पति प्यार करे या न करे पत्नी को प्यार करना चाहिए। वही एक आदर्श हिन्दू नारी का कर्तव्य है न ? महादेवी इसे भली भाँति जानती थी। इसलिए वह निराश नहीं होती क्योंकि विरह में ही प्रेम का जीवन है न ? इसलिए उसकी एक निष्ठा देखिए :

"प्रभु, तुम सुन सको तो सुनो, नहीं तो न सही,
मैं तुम्हारा गान किए बिना नहीं रह सकती।
हे प्रभु तुम प्रसन्न हो जाओ तो प्रसन्न हो जाओ,
नहीं तो परवाह नहीं,
मैं तुम्हारी पूजा किए बिना नहीं रह सकूँगी।
हे देव तुम देख सको तो देखो, नहीं तो न सही
मैं तुम्हें देख आनंदित होकर,
तुम्हारा गान किए बिना नहीं रह सकूँगी।
हे चन्न मल्लिकार्जुन, मैं तुम्हारी पूजा करके,
आनन्द के समुद्र में गोते लगाती हूँ।"

आखिर महादेवी की प्रार्थना सार्थक हो गई। भगवान् चन्न मल्लिकार्जुन ने उसे स्वप्न में दर्शन दिये। उस अनुभूति को महादेवी ने इस प्रकार व्यक्त किया है :

"बहन, सुनो मैंने एक स्वप्न देखा। छोटी छोटी जटाएँ और धवल दाँतों से युक्त जटा-जूटधारी चन्न मल्लिकार्जुन आ कर मुझे ले गया।"

अब महादेवी को अपने पति का स्पष्ट रूप दीख पड़ता है। उसे देख कर आनंदित होकर उसने अपना पति परशिव मूर्त्ति का इस प्रकार वर्णन किया है :

"चमकनेवाली अरुण जटाओं को, मणिमुकुट को, धवल दाँतों को, स्मित वदन की नयन ज्योति को, चौदहों भुवनों में प्रकाशित होनेवाले दिव्य स्वरूप को मैंने देखा। उसे देख कर मेरी आँखों की प्यास बुझ गई। जगदादि-शक्ति के साथ खेलनेवाले चन्न मल्लिकार्जुन को देख कर मैं कृतकृत्य हो गई।"

महादेवी का प्रेम ही प्रिय-दर्शन का मार्ग बना था। प्रेम ही महादेवी का देव था। उसी में अपने आराध्य देव चन्न मल्लिकार्जुन को देखा। आखिर उसी में मिल अपने चिरंतन प्रेम के कारण अमृत पुत्री बनी। अ मल्लिकार्जुन रूपी चिर-ज्योति में उसकी आत्मज्योति गई। श्रीशैल के पिककुलकूजित, अलिकुलगुंजित, वेष्टित कदली वन में वह भगवान् चन्न मल्लिकार्जु एक हो गई।

इस प्रकार अक्क महादेवी संसार के झंझटों से होने का उपाय बता कर धन्य हो गई, मान्य हो अपने आत्मानुभव के कारण शिवशरण और शरणा श्रेणी में विश्व के आध्यात्मिक जीवियों की विरल पं महादेवी ने उच्च एवं अमर स्थान को प्राप्त किया। कासार में पड़ कर तड़पनेवाले लोगों के मुक्ति प रत्नदीप बनी महादेवी।

७५८ बी. बी. गार्डन्स,
मैसूर

—एम. एस. कृष्ण

स्वामी विवेकानन्द और वर्ड्सवर्थ

सन् १८८१ में कलकत्ता के स्कौटिश चर्चेज़ कालेज में अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर श्री डा. विलियम हेस्टी अपनी कक्षा के सम्मुख अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि विलियम वर्ड्सवर्थ की प्रसिद्ध कविता-पुस्तक "दि एक्सकर्शन" में से एक संदर्भ की व्याख्या कर रहे थे। प्रोफ़ेसर ने कहा : "...इस प्रकार का अनुभव चित्त की पवित्रता और ध्यानावस्थिति का परिणाम है। मैंने अपने जीवन में केवल एक ही व्यक्ति देखा है जिसका मन सर्वथा पवित्र और ध्यानावस्थ है और वह व्यक्ति है श्री रामकृष्ण परमहंस। वे दक्षिणेश्वर में निवास करते हैं। यदि आप लोग श्री रामकृष्ण परमहंस के पास जाएँगे तो वे आपको इस संदर्भ का आशय ठीक तरह समझा सकेंगे।

उस कक्षा में एक विद्यार्थी श्रीयुत नरेन्द्रनाथ दत्त थे। वे ही पीछे स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह प्रथम ही अवसर था जब कि नरेन्द्र ने अपने जीवन के भावी गुरु का नाम सुना। वर्ड्सवर्थ के काव्य संदर्भ को समझने के लिए स्वामी विवेकानन्द श्रीयुत रामकृष्ण परमहंस के पास गए और यहीं से उनके जीवन की दिशा बदल गई।"

"त्रिवेणी" में प्रकाशित
एक लेख से

—प्रो. के. स्वामीनाथन

फ़ौज का सिपाही

छोटे से आँगन को पार करके मैंने सीढ़ियों पर पैर रखा ही था कि पीछे से आवाज़ आई :

"मिस्टर होशनाथ"

अपने नाम की यह फ़ज़ीहत देख कर पुकारनेवाले के प्रति मेरा मन कुछ खिन्न सा हो गया। झुँझलाकर कुछ तीखे स्वर में मैंने कहा :

"क्या है ?"

अपने लड़खड़ाते पैरों का सन्तुलन ठीक रखने के लिए, हाथ की मोटी छड़ी को उसने और भी मज़बूती से पकड़ लिया। इस प्रयास में उसके हाथ की छड़ी ज़मीन पर दो एक बार टकरा गई और ठक-ठक की भद्दी आवाज़ कर बैठी। एक हाथ से लड़की को सँभाले, दूसरे से दरवाज़े की चौखट को पकड़े वह खड़ा था। उसकी ख़ाकी पैंएट घिस कर बूढ़े बैल की पीठ की तरह गिंधरोई हो गई थी। क्रीज़ का नाम लेना ही व्यर्थ है, मोटे, ख़ाकी कपड़े का पाजामा सा मालूम होता था। जगह जगह से फट चुका था। पैरों के पास फट कर डोरे डोरे बिखर रहे थे जैसे गिलहरी की पूँछ के बाल हों। कमीज़ भी फटी पुरानी थी। शरीर लम्बा था। मोटे मोटे हाड़। बस एक कल्पना भर की जा सकती है कि जब यह शरीर जवान रहा होगा तब भरा पूरा और रोबीला मालूम होता रहा होगा और कवि पन्त के शब्दों में : "इस खंडहर में बिजली सी उन्मत्त जवानी होगी दौड़ी।" अब बुढ़ापे और गरीबी की मार से उकठे हुए काठ सा लग रहा था। तिस पर लकवे ने उसके शरीर को और भी नाकाम कर दिया था। उसका सिर काफ़ी बड़ा था और उसकी चमकती आँखें ऐसी मालूम हो रही थीं जैसे किसी मिट्टी के बड़े ढेले पर पड़ी हुई सफ़ेद सफ़ेद कौड़ियाँ हों। उसकी मूँछे दोनों ओर से कटी हुई थीं, जैसे नाक के नीचे बड़े बड़े बिखरे बालों का एक गुच्छा हो। वे बड़े बड़े बाल जिनमें आधे पक चुके थे, काफ़ी भद्दे मालूम होते थे। सिर के रूखे रूखे बाल कंघी से संवारे हुए थे परन्तु बीच की माँग ऐसी मालूम हो रही थी जैसे चने के खेत में टेढ़ी मेढ़ी पगडंडी हो।

लकवे से उसके शरीर का आधा हिस्सा नाकाम-सा हो गया था। जब वह बातें करता था तब एक एक शब्द पहले मुँह में गूँजता था और फिर झटके से बाहर निकलता था जैसे तंग मुँहवाले बरतन में अटकी हुई किसी चीज़ को झटका देकर बाहर निकाला जा रहा हो।

अपनी पन्द्रह बीस मिनट की बातचीत में उसने बताया :

"आपके स्कूल जाने के रास्ते में ताड़ के पंखों की दूकानें हैं, ज़रा उनका भाव तो पूछते आइएगा।"

और इसी एक बात को उसने कई प्रकार से, कितनी ही बार समझाया ताकि भाव मालूम करने में दूकानदार मुझे अधिक दाम न बता दे।

पहले यूरोपीय महायुद्ध में फ़ौज में भर्ती होकर वह ईराक, बग़दाद तक गया था। वहाँ वह रेलवे में किसी अच्छी जगह पर था। शायद दो ढाई सौ रुपये उसे तनख़्वाह मिलती थी। लड़ाई ख़त्म होने के बाद वह कलकत्ते चला आया। उस समय उसके पास काफ़ी रुपये थे किन्तु अब ख़ाली हाथ हो चुका था। उसके पुराने कपड़ों में अब भी बदरंग, घिसे-फटे गर्म सूट, मोज़े, स्वेटर आदि पड़े थे जिनके ऊपर उसके सुख और आनन्द के दिनों की तसवीर अंकित थी जो अब भी सहृदयों को अपने करुण द्रावक कहानी से द्रवीभूत कर देती थी।

रुपया पैसा जब ख़त्म हो गया और शरीर लकवे से निकम्मा हो गया तो भी उसने साहस नहीं छोड़ा। फ़ौज का सिपाही था—'न दैन्यं न पलायनम्' का सच्चा प्रतीक। अपने मिलिटरी के पुराने झोले को कंधे पर लटका कर, उसमें कैंची, ताला, छुरे, कंघे, पेन्सिल, क़लम आदि चीज़ें लिए वह बेचता फिरता था और उसके चलने की ताक़त! एक मील का रास्ता तय करने में उसे तीन चार घंटे लग जाते थे। पर वह हिम्मत नहीं हारता था जैसे साहस और कर्मठता का वह सजीव पुतला हो।

एक दिन उसकी और मकान मालिक की तीखी आवाज़ें गूँज रही थीं। मालूम हुआ—उसका छः सात

महीने का किराया बाक़ी है। मकान मालिक कह रहा था:

"देखो, अब इतने महीने हो गए। अगर तुम अब भी भाड़ा नहीं चुका दोगे तो मैं यह कोठरी खाली करवा लूँगा।"

और सिपाही की लड़खड़ाती, पर तीव्र और दृढ़ आवाज़ झटके से निकल रही थी:

"तुमको जो कुछ करना हो, करो। निकलवा दो मुझको इस कोठरी से, पर तुम जबान सँभाल कर बोलो।"

हम लोगों ने उसको समझाया—"ख़ामख़्वाह मकान मालिक से क्यों लड़ाई करते हो। अगर तुम उससे लड़ाई झगड़ा नहीं करोगे तो समझाने बुझाने पर तुमको यहाँ रहने देगा, किन्तु जब तुम उससे लड़ पड़ोगे तो वह कमरा खाली करा लेगा और तुम्हारे पास एक पैसा भी नहीं है, क्या करोगे और कहाँ रहोगे?"

इस पर उसने जवाब दिया:

"हम उसकी कड़ी बातें नहीं सह सकते। हमारा वह अपमान करे और हम जबान भी न खोलें। पास में पैसे नहीं हैं तो क्या?"

हम लोगों को उसकी मूर्खता पर कुछ क्रोध भी आया पर मकान मालिक को समझाया गया—"इतने रुपये तो तुम्हारे यहाँ खर्च हो जाते हैं! इस ग़रीब को यहीं पड़ा रहने दो।"

उसने कहा—

"कई कई महीने के भाड़े मैंने छोड़ दिए हैं पर यह तो हर वक़्त लड़ाई करने के लिए आमादा रहता है। अब कमरा भी मुफ़्त में दूँ और इसकी गालियाँ भी सुनूँ।"

हम लोगों ने कहा: "वह फ़ौज का आदमी रहा है। उसे किसी के सामने झुक कर बातें करने की आदत नहीं रही है।"

किन्तु हम लोगों के समझाने बुझाने का न तो उस पर ही कोई असर पड़ा और न मकान मालिक पर!

और एक दिन उसके कमरे का सारा सामान बाहर बिखरा पड़ा था। चमड़े का बहुत पुराना बैग, बरसों के पुराने कोट, फटी कमीज़ें, टूटा शीशा, टूटी कंघी उसका झोला, जिसमें का कुछ सामान बिखर कर इधर पड़ा था। दरवाज़े का बाज़ू पकड़ कर काँपते लड़खड़ाते क़दमों पर वह खड़ा था। हाथ की मोटी छड़ी को लिए हुए था जो हाथों के काँपने के कारण कुछ खटखट की आवाज़ कर रही थी किन्तु उसका मुँह एकदम गम्भीर था, ऐसा गम्भीर कि जिस पर दैन्यता की कोई छाप नहीं थी। दीनता नहीं थी; विनय नहीं थी; पश्चात्ताप नहीं था; नहीं थी; केवल था आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए सब तरह की कठिनाइयों और परेशानियों को झेलने का दृढ संकल्प।

मकान के और लोगों ने समझाया "ठीक है तुम बरामदे में पड़े रहो। खाने-पीने का ज़िम्मा हम लोगों का रहा।"

परन्तु उसने किसी की न सुनी। आख़िर जिस मकान से वह निकाल दिया गया वहाँ वह फिर कैसे रहे। अपने सारे सामान को वहीं छोड़ कर केवल अपना फटा झोला लेकर वह लड़खड़ाते क़दमों से लकड़ी के सहारे टेकता हुआ बाहर निकल गया।

कुछ दिनों के बाद मैंने उसे एक सड़क के किनारे फुटपाथ पर पड़े हुए देखा। पास जा कर मैंने समाचार पूछा। मुसकराकर उसने कहा:

"मिस्टर होर्शनाथ आजकल मुझे बुखार आ रहा है। दो तीन दिन बारिश में भीग गया और इसी से यह हालत हुई। अब दिन में सामान बेचने भी नहीं जा पाता।"

और दूसरे दिन जब मैं उस रास्ते से गुज़रा तो उसी फुटपाथ पर पड़े, उसने अपनी इह लीला समाप्त कर दी थी। उसके शरीर पर जो फटी ख़ाकी कमीज़ थी, उसे पड़ोस के दूसरे कंगले ने उतार कर पहन ली थी। उसकी छड़ी किसी और के पास थी। फटा झोला शायद किसी दूसरे ने हथिया लिया था, केवल ख़ाकी, फटा हाफ पैंट उसकी देह पर था।

मेरे पैर डगमगा गए। मेरा सिर चकरा गया और फिर जैसे आत्मसम्मान और कर्मठता की एक मूर्ति मेरे सामने खड़ी हो गई—इतनी कर्मठता, इतने आत्मसम्मान की भावना और उसकी रक्षा के लिए इतना अमूल्य बलिदान!

—हर्षनाथ श्रीवा

संकेत-लिपि विद्यालय,
३५, मछुआ बाज़ार स्ट्रीट,
कलकत्ता ७

कला-चर्चा

हैदराबाद के चित्रकार

श्रीमती फ्रेनी बहमन शाह

फ्रेनी बहमन शाह हैदराबाद की कुछ थोड़ी-सी महिला कलाकारों में से एक हैं। उनकी प्रारंभिक शिक्षा रोजरी कानवैण्ट हाई स्कूल में हुई। इसी स्कूल से १९४३ में उन्होंने कैम्ब्रिज सीनियर परीक्षा को पास किया। अध्ययन के कठोर काल में विद्यार्थियों के भावी जीवन की प्रतिभा का पता नहीं चलता यद्यपि कभी कभी उसकी झलक प्राप्त हो जाती है। फ्रेनी बहमन शाह जो अधिकतर फ्रेनी विक्काजी के नाम से पुकारी जाती हैं—रोजरी कानवैण्ट हाई स्कूल में प्रथम विद्यार्थिनी थीं जिन्होंने अपने भावी जीवन के लिए कला को चुना यद्यपि उनके सम्बन्धी और इष्ट लोग कालेज की शिक्षा को उनके लिए अधिक उचित समझते थे। वे कहते थे कि कला तो एक शग़ल या समय काटने की वस्तु है उसके लिए अध्ययन को क्यों छोड़ा जाए। जब वे कानवैण्ट में पढ़ती थीं उसी समय, और कक्षा में पढ़ाई चल रही होती थी वे चुपके चुपके अपनी अध्यापिकाओं के ध्यानपूर्वक (Carricature) हास्यचित्र बनाया करती थीं। ये (Carricature) हास्यचित्र प्रायः (Nuns) ननों के होते थे जो सफ़ेद लटकते हुए कपड़ों में पंखहीन "दिव्य हास्यचित्रों" के समान प्रतीत होते थे।

फ्रेनी विक्काजी कहती हैं : "जो अध्यापिकाएँ मेरी चित्रकला को समझ नहीं सकती थीं वे उसे 'शरारत' समझती थीं! वे मुझे क्रोध में कक्षा से बाहर निकाल देती थीं। मैं इसे बुरा नहीं मानती थी और इससे मुझे अध्यापिकाओं के चेहरे को खिड़की में से और भी अच्छी तरह अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता था और मैं उनके और भी अधिक हास्यचित्र बनाती थी।"

स्कूल के दिनों के हँसी-खुशी के ये खेल भी समाप्त हो गए और अब इस कार्य को गम्भीरता से करने की आवश्यकता थी। भाग्यवश उन्हीं दिनों हैदराबाद में कला-विद्यालय (School of Art) को प्रारम्भ किया गया और कला के विद्यार्थियों को इससे बड़ा लाभ हुआ। कानवैण्ट हाई स्कूल से परीक्षा पास कर वे कला-विद्यालय में प्रविष्ट हो गईं। इससे उनके पिता को बहुत आश्चर्य हुआ। यद्यपि उनके पिता की यह इच्छा थी कि वे कालेज में अपनी शिक्षा को जारी रखें तो भी उनकी तीव्र अभिलाषा को देख कर उन्होंने इनको हर तरह का प्रोत्साहन और सहायता प्रदान की। इस स्कूल में चित्र-कला के साथ उन्होंने मूर्तिकला को भी ऐच्छिक विषय के तौर पर लिया। उस समय कला-विद्यालय में ३० से ४० तक विद्यार्थिनियाँ थीं। पाँच वर्ष के पाठ्यक्रम को पूर्ण करने का बहुत कम विद्यार्थियों में धैर्य और लगन हो सकती है। कुछ विद्यार्थिनियाँ तो कुछ समय के पश्चात् कालेज की शिक्षा प्रारम्भ कर देती थीं या जीवन में स्थिर हो जाती थीं। ऐसे विद्यार्थिनियाँ बहुत कम हैं जिन्होंने पूरे पाँच वर्ष इस स्कूल का अध्ययन समाप्त कर यहाँ से डिप्लोमा प्राप्त किया हो।

फ्रेनी बहमन शाह १९४४ में इस स्कूल में प्रविष्ट हुईं और १९४९ में उन्होंने यहाँ से डिप्लोमा प्राप्त किया। इस समय और बाद में भी हैदराबाद, बम्बई, दिल्ली और मैसूर की चित्र-प्रदर्शिनियों के लिए उनके चित्रों को चुना जाता रहा। उनको हैदराबाद आर्ट सोसाइटी से बहुत-से प्रमाण पत्र (सर्टीफ़िकेट) प्राप्त हुए। आप अधिकतर जल-रंगों में अपने चित्र बनाती हैं। कलाकार के विचारों और भावों के अनुसार जल-रंग उनके चित्रों में सूक्ष्मता और कान्ति उत्पन्न कर देते हैं। वे इस समय कला-विद्यालय में अध्यापिका का कार्य करती हैं और अभी वे बहुत से चित्र बनाना चाहती हैं। उनका एक चित्र है "लैण्ड-स्केप"—प्राकृतिक दृश्य। इसमें प्रकृति की विशालता चित्रित की गई है; इसमें दिन की चमक, मन्द पवन, आकाश में काले मुलायम बादल, उनमें से छन कर

धरती पर पड़ती किरणें और ऊँचा सिर उठाए हुए ताल के वृक्षों का स्पष्ट आभास दिखाई देता है। एक और चित्र है "लोटस लेडी"। इसमें फ़ेनी ने कमल में उसी सुकुमारता का चित्रण किया है जो कि एक नवयुवती के कोमल चेहरे में होती है। यह एक बहुत सुन्दर चित्र है। आँखें, ओंठ, मुख और नवयुवती की उँगलियाँ कोमल कमल-दलों में ही चित्रित की गई हैं।

फ़ेनी कुछ और भी चित्र बनाने के लिए प्रयत्न करती रही हैं। उनमें से कुछ चित्र तैलरंगों में बनाए गए हैं: "फल बेचने वाले", "परिश्रम" और "पिकनिक"। उनका प्रतिकृति (Portrait) का चित्रण भी ओजस्वी है। उनकी "श्री नासिर" की प्रतिकृति उनके विश्वास और कौशल को प्रदर्शित करता है। उनकी एक अन्य सफल प्रतिकृति "फ़कीर" है।

संक्षेप में फ़ेनी ने अपने चित्रों को स्वच्छता, सुन्दरता, कोमलता, विश्वास और शक्ति से निर्मित किया है।

हैदराबाद —**विश्वनाथ मुखर्जी**

॥

(२)

जू पी-ऑन

चीन के प्रसिद्ध चित्रकार जू पी-ऑन (Hsu Pei-Hung) चीन की 'सेन्ट्रल इन्सटीट्यूट ऑफ फाइन आर्ट्स' के डाइरेक्टर थे। हाल ही में इनकी मृत्यु हुई है। 'पीपुल्स चायना' में उन पर एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसका निम्न अंश यहाँ दिया जाता है:

"चुंग शान पार्क में हाल ही में श्री जू पी ऑन की स्मृति में एक प्रदर्शिनी आयोजित की गई जिसमें पिछले तीन दशकों में उनके द्वारा निर्मित ८२६ रंगचित्रणों और चित्रों को दिखाया गया।

जू पी-ऑन का कियाँग प्रान्त (Kiangsu Province) के ईंग (Ihing) नामक गरीब किसान परिवार में सन् १८२५ में जन्म हुआ। उसका पिता मनुष्य की आकृतियों के रंगचित्रण बनाया करता था और गाँव की एक पाठशाला में पढ़ा कर तथा आधे एकड़ जमीन पर खेती करके अपना जीवनयापन किया करता था। जू पी-ऑन ने बचपन में ही अपने पिता से रंगचित्रण कला की शिक्षा प्राप्त की और साथ ही वह खेती के काम में भी अपने पिता का हाथ बटाया करता था। गम्भीर अध्ययन ने शीघ्र ही उसकी कलात्मक प्रतिभा को जागृत कर दिया। सन् १६१२ में २४ वर्ष की आयु में विश्वविद्यालय से सम्बन्धित रंगचित्रण की एक संस्था में उसे प्राध्यापक नियुक्त किया गया। आगामी वर्ष चित्रण कला का अध्ययन करने के लिए उसे की ओर से छात्रवृत्ति देकर फ्रान्स भेजा गया। चीन कला की महान् यथार्थवादी परम्परा से जू पी-ऑन गहरा परिचय था और उसने पश्चिम की यथार्थवादी का भी गम्भीर अध्ययन किया। उसने विविध युगों पाश्चात्य यथार्थवादी कलाकारों और पश्चिम की कला शैलियों से चीनी कलाकारों को परिचित कराया।

चीन में रंगचित्रण कला की यथार्थवादी शैली पश्चिम की यथार्थवादी शैली के समन्वय से जू पी-ऑन अपनी एक नई शैली का निर्माण किया जो कि चीन राष्ट्रीय कला को एक महत्वपूर्ण देन है। स्वयं आधुनिक के किसान परिवार में पैदा होने के कारण सामन्ती और साम्राज्यवादी शोषण का उसे कटु अनुभव था। Landscape प्राकृतिक दृश्यों के रंगचित्रणों में के प्रति उसका उत्कट प्रेम प्रकट होता है। उसने की पहाड़ियों और घाटियों के सुन्दर दृश्य चित्र अंकित किए। यथार्थवादी कलाकार के नाते वह लोक-कला प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखता था। उसने विदेशों को कला से परिचित कराने के लिए फ्रान्स, जर्मनी, रूस आदि में कला प्रदर्शिनियाँ आयोजित कीं। यह सत्य है कि चीन की स्वतन्त्रता के पूर्व कला शिक्षा के प्रति उसके विचार संकीर्ण थे परन्तु वह प्रगतिवादी कलाकार था। उसने बाद में यह स्पष्ट लिया कि जनवादी कला का जनता की माँगों से होना आवश्यक है और वह अपनी उस कमज़ोरी ऊँचा उठ गया जिसने आरम्भ में सौन्दर्य-शास्त्र उसके विचारों को संकीर्ण बना डाला था। सन् १६ में जू पी-ऑन को 'सेण्ट्रल इन्सटीट्यूट ऑफ फाइन आर्ट्स' का डाइरेक्टर बनाया गया। उसने इस संस्था के और विद्यार्थियों दोनों को गाँवों के किसानों और के मज़दूरों के जीवन से परिचित होने के लिए प्रेरित उसने कलाकारों को अनवरत परिश्रम करने और के जीवन को सच्चाई के साथ अपने चित्रों में अंकित का सन्देश दिया। जू पी-ऑन ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी एक चित्र अंकित किया जिसमें कवीन्द्र को मुद्रा में कागज पर लिखते हुए अंकित किया गया है।

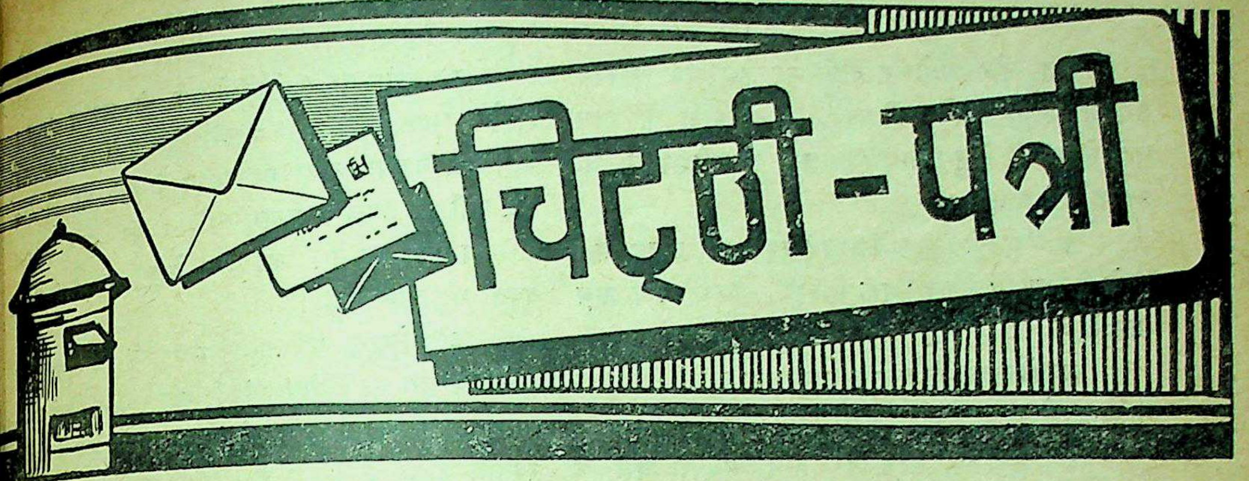

चिट्ठी-पत्री

['चिट्ठी-पत्री' के स्तम्भ को हम अधिक लोकप्रिय बनाना चाहते हैं। साहित्य की गतिविधि और अन्य समस्याओं पर हम 'अजन्ता' के पाठकों के विचारों को जानना चाहते हैं। इस स्तम्भ में वे अपने विचार प्रकाशित करने के लिए भेज सकते हैं। इस स्तम्भ द्वारा लेखकों और पाठकों के बीच में निकट सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस स्तम्भ में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ पत्रों पर विशेष पारिश्रमिक की योजना की गई है। पत्र संक्षिप्त और निर्वैयक्तिक होने चाहिएँ। पत्र अधिक से अधिक 'अजन्ता' के दो कॉलम होने चाहिएँ—सं०]

(१)

गोविन्द रामायण

......मई की 'अजन्ता' में मैंने श्री परशुराम चतुर्वेदी का 'गोविन्द रामायण' शीर्षक लेख देखा। कुछ आश्चर्य हुआ। 'गोविन्द रामायण' मेरे कार्यालय से ७-८ मास पहले प्रकाशित हुई थी। उसी के आधार पर श्री चतुर्वेदी जी ने उक्त लेख लिखा है। उसके दो तीन वाक्य भी उक्त लेख में प्रायः ज्यों के त्यों उद्धृत हैं। फिर भी जाने क्यों, सुयोग्य लेखक ने इस कार्यालय द्वारा प्रकाशित पुस्तक का अपने लेख में उल्लेख नहीं किया... .।

साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,
२०, धर्मकूप, बनारस

—रामचन्द्र वर्मा

(२)

महाकवि पेद्दन्ना

......'अजन्ता' मई ५४ अंक की प्रति अभी अभी मिली। विषयानुक्रम पर निगाह गई। 'महाकवि अलसानि पेद्दन' शीर्षक लेख देख सहज ही कुतूहल बढ़ा। पन्ने पलटकर देखा गया। पृष्ठ ५३-५४ जिन पर लेख छपा है उलटे सिले थे मेरे पास पहुँची प्रति में! खैर, लेख पढ़ गया एक साँस में और रह गया भौंचक दिल थाम के! लेखक महोदय ने इस बात का पूरा प्रमाण (Record) ही प्रस्तुत किया है उन पंक्तियों में कि किसी भी साहित्य, कवि अथवा उसकी कृतियों से पूरा अपरिचित व्यक्ति, उन बातों को ले कर कितने साहस के साथ लिख सकता है, कैसी बहादुरी के साथ लेख के 'अ' से लेकर 'ज्ञ' तक निर्भीक हो कर ऐसे तथ्य प्रस्तुत कर सकता है जो सत्य नहीं है और किस शान के साथ हिन्दी के उच्च कोटि के साहित्यिक पत्रों में उन्हें छपा पाता है! जैसे हिन्दी साहित्य का क्षेत्र कोई 'मूर मार्केट' (Moor Market Madras) हो, जहाँ पर नक़ली, पुरानी, गिलटी लीपा-पोती लगी सभी चीज़ें खप जाती हैं! भाजी और खाजा एक भाव बिकते हैं। यह अन्धेर जितनी जल्दी ख़त्म हो उतना ही शीघ्र साहित्य का उपकार होगा।

मुझे तो लेखक श्री कृष्णशंकर व्यास के, तेलुगु साहित्य तथा उसके महान् कवि, पेद्दन्ना, तिक्कन्ना, वेमना, भट्टमूर्त्ति वगैरह सम्बन्धी अज्ञान या अनभिज्ञता को ले कर उतना आश्चर्य नहीं होता, जितना कि उनके अद्भुत साहस एवं आत्म-विश्वास को देख कर होता है! वह बेचारे हिन्दी-भाषाभाषी तेलुगु साहित्य के बारे में ठीक ठीक जानकारी भी कैसे रख सकेंगे? तेलुगु वातावरण से सैकड़ों मील दूर बनारस में बैठे बैठे? उन्हें चाहिए था कि अपनी चीज़ को प्रकाश में लाने के पूर्व किसी तेलुगु साहित्य के मर्मज्ञ मित्र से ठीक करा लेते। किन्तु उन्होंने तो जैसे उसकी ज़रूरत ही महसूस नहीं की!

बात और आगे न बढ़ा कर हम ऐसे कतिपय उद्धरण प्रस्तुत करेंगे जहाँ पर सत्य की हत्या के साथ साथ लेखक के तेलुगु-साहित्यिक-ज्ञान की दरिद्रता पर भी प्रकाश पड़ जाएगा।

१ "इन्होंने (कृष्णदेवराय) स्वयं कई काव्य ग्रन्थ लिखे हैं जिन में केवल 'मुक्त माल्यद' नामक काव्य ग्रन्थ प्राप्त है।"

कृष्णदेवराय के प्रबन्ध काव्य का नाम 'आमुक्त माल्यदा' है!

२ "महाकवि पेद्दन का जन्म नन्दवरी वंश के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके माता का नाम चोक्कन्नामात्य था।"

'पेद्दना' के वंश का नाम 'नन्दवरीक' था। चोक्कन्नामात्य तो पुरुष का नाम होता है!

३ "परन्तु बाद में वह गन्धर्व कन्या प्रवर का प्रेम पाने में समर्थ होती है! और उन्हें एक पुत्र प्राप्त होता है!"

गन्धर्व कन्या को इन्द्रिय विजयी प्रवराख्य के दर्शन दुबारा नहीं होते। किन्तु प्रवर का रूप धारण कर दूसरा गन्धर्व ही वरूधिनी को धोखा देता है!

४ "उनके (पेद्दना के) आशु कवित्व १ से प्रभावित होकर 'कवि गण्डपे डेर' नामक सुवर्ण कंगन महाराज कृष्णदेवराय ने उपहार स्वरूप प्रदान किया था।"

१ "आशु कवित्व: एक आयोजन जिस में एक व्यक्ति सौ व्यक्तियों के प्रश्नों का उत्तर देता है।" (पृ० ५८)

धारावाही मौखिक काव्य रचना को आशु कविता कहते हैं! सौ व्यक्तियों को पद्य रूप में एक ही व्यक्ति का उत्तर देना 'शतावधान' कहलाता है, आशु कवित्व नहीं!

'कवि गण्डपेण्डेरमु' स्वर्ण कंगन नहीं पैर का कड़ा होता है! आह! पादटिप्पणी दी सो भी गलत-सलत!

५ "इन्होंने (नन्नय भट्टारक) संस्कृत महाभारत के आधार पर एक स्वतन्त्र काव्य लिखने का यत्न किया। इनका 'भारतमु' पूरा भी न हो पाया था कि इनकी मृत्यु हो गई थी। इसके पश्चात् कई कवियों ने इसे पूरा करने का प्रयत्न किया किन्तु किसी को पूरी सफलता न मिली। अन्त में एर्राप्रगडा नामक कवि ने इसे पूर्ण किया।"

इस प्रसंग पर प्रदर्शित लेखक की अज्ञता अ ही है। 'महाभारत' के १८ पर्वों में से प्रारंभिक तीन की रचना नन्नया तथा एर्राप्रगडा ने की थी तो १५ पर्वों का प्रणयन तेलुगु साहित्य की अमर कविब्रह्म तिक्कन्ना ने! यह बात तेलुगु का दूध बच्चा भी जानता है!

६ "तेलुगु कविता परम्परा के मध्यकाल बम्मेर पोतन्ना का विशेष एवं विशिष्ट स्थान केवल नाओं के कारण ही नहीं अपि तु स्वाभाविक रूप से स्वतन्त्र काव्यों के कारण है। इसके अतिरिक्त इस के अन्य कवियों ने भी कतिपय सुन्दर काव्य ग्रन्थों निर्माण किया जिन में भट्टुमूर्ति, वेमना आदि हैं।"

इन दोनों में से तो प्रथम वाक्य का मतलब सर खुजाने पर भी मेरी समझ में न उतरा! दुर्भाग्य भट्टुमूर्ति और वेमना दोनों ही अलसानि पेद्दना के हुए थे। लेखक जी तो उन्हें प्रबन्धकालीन कवि पित पेद्दना के पूर्व ही मध्यकाल में पटक बैठे हैं!

अलम् विस्तरेण! मै तो यही निवेदन करूँगा साहित्य के स्रष्टा लेखक जिनके कंधों पर महान् दायित्व है अपनी सीमाओं को जानें, परखें तदनुकूल करें। तेलुगु साहित्य तथा उसके कवियों को लेकर ऊल जलूल बातें, ऊटपटाँग लेख लिख मारने अ-तेलुगु भाषी विद्वान् और भी हैं जो कि तेलुगु का इतिहास तक प्रस्तुत करने का सपना देखने लगे हैं किन्तु ऐसे महानुभावों से भी यही विनय है कि कमियों की ओर तनिक दृष्टि फेर लें। साथ ही महोदयों को भी उनके उत्तरदायित्व का स्मरण कर हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं जिससे कि भविष्य उनकी पत्रिकाएँ ऐसी अशोभन सामग्री से मुक्त रह सच्ची साहित्यिकता का परिचय देती रहें।

रामूर्ति

गुण्टूर

[हम (गुण्टूर के हिन्दु कालेज के हिन्दी के प्राध्या श्रीयुत राममूर्त्ति रेणु के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने एक विषय की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। हमें अन्य प्रान्तों साहित्य के विषय में पूरी छानबीन के साथ क़लम उठानी चाहि (श्री व्यास जी के लेख से यह ज्ञात होता है कि हिन्दी प्रान्तीय साहित्यों के ज्ञान के प्रति रुचि बढ़ती जा रही है)—

नीर-क्षीर

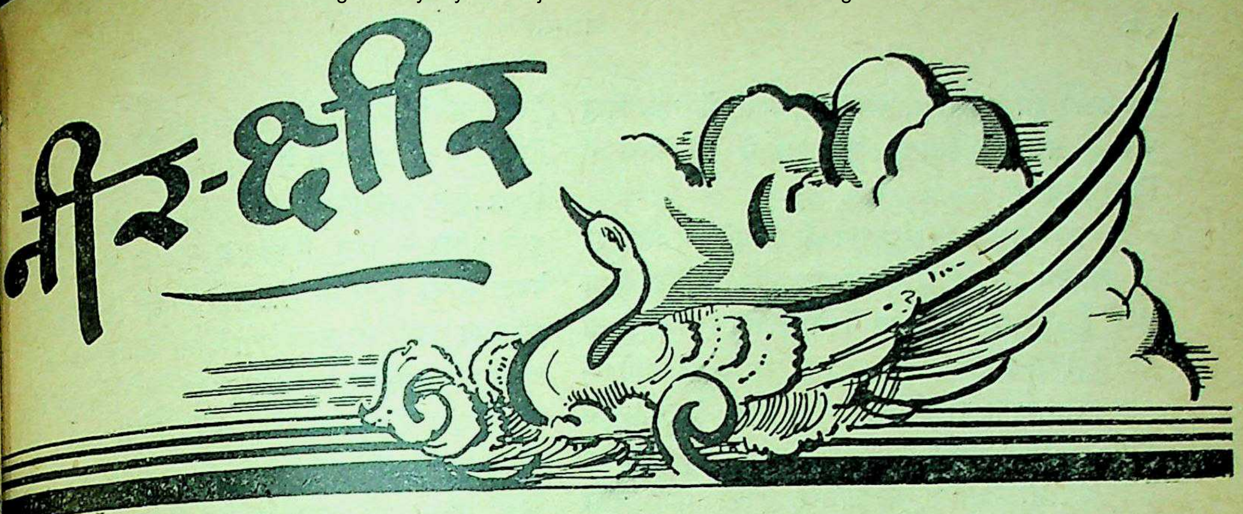

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिएँ।]

हिन्दुस्तान की कहानी

लेखक: मुल्कराज आनन्द
प्रकाशक: राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई
मूल्य: दो रुपए

लेखक के शब्दों में प्रस्तुत पुस्तक..."उन विचारों और घटनाओं की मोटी रूपरेखा है जिन्होंने हमारे देश की कहानी को बनाने में योग दिया......। यह पुस्तक "...बालकों (९ वर्ष से १६ वर्ष तक) के लिए भारत का एक संक्षिप्त प्रारंभिक इतिहास लिखने का बहुत विनम्र प्रयत्न है जो उन्हें गहरा अध्ययन करने की प्रेरणा दे सकेगा।" मुल्कराज आनन्द उपन्यास-क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके हैं इसलिए हमने उनकी इस पुस्तक को दिलचस्पी के साथ पढ़ा यद्यपि समस्त पुस्तक हम कठिनाई से अन्त तक पढ़ सके। लेखक इतिहासकार नहीं है। 'कहानी' होने पर भी पुस्तक में कहानी की सरसता नहीं है। लेखक अशोक, चन्द्रगुप्त और अकबर के युगों को भारत वर्ष के इतिहास के उन्नत युग मानते हैं परन्तु प्रारम्भिक वैदिक युग में जब कि वेद, उपनिषद्, रामायण और महाभारत लिखी गईं उस युग के विषय में उन्होंने जो अपने विचार और भावनाएँ अभिव्यक्त की हैं उनसे यह प्रतीत नहीं होता कि वे समस्त मनुष्य जाति के लिए इस युग को कोई विशेष महत्व प्रदान करते हैं। उनके विचार इस प्रकार के हैं: "......भारतवर्ष के आदिम निवासी द्रविड़ थे।...सबसे पहले आक्रमणकारी आर्य थे।...उन्होंने अमीर द्रविड़ों पर चीलों की तरह झपट्टा (?) मारा।...आर्यों के गीत...खानाबदोशों के गीतों की तरह थे जिन्हें चरवाहे गाया करते हैं। जिस चीज़ के रहस्य को वे समझ नहीं पाते थे उसको वे ईश्वर मान लेते थे।...मातृदेवी, अदिति और परियाँ द्रविड़ों के देवी-देवता हैं। ये गीत बाद में वेदों में इकट्ठे कर दिए गए। ...ये वेद द्रविड़ों के बहुत कुछ आभारी हैं।...उस समय के महान् ऋषियों के चिन्तन से सैकड़ों किताबों (?) का जन्म हुआ जिन्हें उपनिषद् कहते हैं। कभी कभी इन्हें जंगल की किताबें कहा जाता है।...इन किताबों में मृत्यु और जीवन के बारे में तरह तरह के अनुमान इकट्ठे किए गए हैं।"

ऊपर हमने इस पुस्तक में से वैदिक युग के विषय, उनके विचारों को उद्धृत किया है। इसके पश्चात् रामायण और महाभारत की पूरी कथा दी गई है और इन पुस्तकों का एकमात्र यह महत्व बतलाया गया है..."इन महाकाव्यों में कवि की कपोल-कल्पित कथाओं के साथ सही बातें मिली हुई हैं।" महाभारत के विषय में वे लिखते हैं: "महाभारत राजा और रानियों, राजकुमार और राजकुमारियों, ऋषियों और साधारण लोगों के वीरतापूर्ण कार्यों के विषय में लिखी गई अनेक लम्बी कविताओं का संग्रह है। ये सब कविताएँ व्यास ने इकट्ठी की थीं (?) इसके पश्चात् बुद्ध के जीवन का उल्लेख किया गया है। बुद्ध के उपदेशों की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है: "सभी जातियों के लोग—राजकुमारों से लेकर नाई और भंगियों तक उनके शिष्य बने और उनके उपदेश [illegible] के कोने-कोने में फैल गए।" जैन धर्म के विषय में वे लिखते हैं: "...जैन-धर्म लोकप्रिय क्यों नहीं हुआ?...यह

एक कठोर धर्म बन गया, बहुत-सी बातों में यह हिन्दु धर्म की तरह था इसलिए हिन्दु धर्म ने इसे अपने में मिला लिया।"

इसके पश्चात् "हिन्दुस्तान की कहानी" में सिकन्दर का आगमन होता है इसके पश्चात् मौर्य वंश के वर्णन करते हैं। चन्द्रगुप्त के विषय में वे अपनी इस छोटी सी पुस्तक में लिखते हैं: "...चन्द्रगुप्त राज्य के कामों में बड़ा व्यस्त रहता था। जब वह आबनूस के बेलन से मालिश करवाता होता जिसका उसे बहुत शौक़ था, तो उस समय भी वह प्रजा की अर्जियाँ सुनता रहता और उनसे मिलता जाता।" अशोक के विषय में वे लिखते हैं: "उसने चट्टानों और स्तम्भों पर अपने प्रसिद्ध चौदह सिद्धान्त या घोषणाएँ खुदवाई थीं। इन पर अशोक की घोषणाएँ प्राकृत भाषा (?) में खुदी हुई हैं जो उस काल की जन-भाषा थी।" फिर कुषाण और आन्ध्र राज्यों का वर्णन किया गया है। वे लिखते हैं: "आन्ध्र राजा हिन्दु धर्म को फैलाने में लगे हुए थे। उन दिनों दक्षिण भारत के लोग अपने पानी के जहाज़ स्वयं बनाते और दूर तक यात्रा करते थे।" इन राज्यों के पतन के पश्चात् गुप्तों का राज्य प्रारम्भ हुआ। वे लिखते हैं कि चीन के मशहूर यात्री फ़ाहियान ने लिखा है: ..."चाण्डाल और विजातीय लोग कोढ़ियों की तरह अलग रहते थे। जब वे शहर में आते थे उन्हें लोगों को अपने आने की चेतावनी देने के लिए एक लकड़ी का टुकड़ा फटफटाना पड़ता था।" इसी गुप्त काल में उन्होंने कालिदास का वर्णन किया है। उन्होंने "मृच्छकटिक" नाटक को "शकुन्तला" से भी अधिक सुन्दर लिखा है और वे "मृच्छकटिक" का अर्थ "खिलौनागाड़ी" (?) करते हैं। वे लिखते हैं कि "सम्भवतः अजन्ता की गुफ़ाओं की सुन्दर चित्रकारी भी इसी युग में हुई थी।" इसके पश्चात् हूण आते हैं। हूणों के पश्चात् हर्ष और दक्षिण के राज्य आते हैं। लेखक के अनुसार एलोरा के मन्दिर (?) अजन्ता के पश्चात् इसी समय में बनाए गए। शंकराचार्य के विषय में वे लिखते हैं: "उनके प्रहारों (?) के पश्चात् बुद्ध धर्म लगभग लुप्त-सा हो गया।" इसके पश्चात् महमूद ग़ज़नवी आता है। शहाबुद्दीन गौरी को वे 'पठान' कहते हैं और उनके राज्य को "पठान-राज्य"। लेखक ने अमीर खुसरो को "हिन्दी और उर्दू कविता का जन्मदाता" (?) कहा है। तैमूरलंग के आक्रमण के पश्चात् उन्होंने "हिन्दु-धर्म" पर एक छोटा-सा अध्याय लिखा है। लिखते हैं: "इस धर्म में तीन तरह के विश्वास प्र थे।...एक के अनुसार विष्णु सबसे बड़ा देवता था।... दूसरे प्रकार के हिन्दु विश्वास में शिव को ही सबसे ब देवता माना जाता था।...तीसरे प्रकार के विश्वास शक्ति या काली को सबसे बड़ा देवता माना जाता था। बाबर और सूरीवंश के पश्चात् अकबर के राज्य का व किया गया है। अकबर के विषय में वे लिखते हैं "उसे अपने सारे हाथियों के नाम याद थे और अ घोड़ों, हिरनों और कबूतरों तक के नाम याद थे। अकबर के समय ही भारत में ईसाई पादरी आ जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगज़ेब के वर्णन के पश्चात् अंग्रेज़ों के राज्य पर आ जाते हैं और अंग्रेज़ी राज्य फिर वे काँग्रेस और १५ अगस्त १९४७ में प्राप्त स्वतन्त्र का वर्णन करते हैं।

पुस्तक को इस प्रकार सरसरी तौर पर लिखा गया कि उसमें भारतवर्ष के सिलसिलेवार इतिहास का कोई सम चित्र या कहानी प्रस्तुत नहीं हो सकी है। इसमें बहुत बातें ऐसी हैं जो बालकों के हृदय में भ्रान्त धार उत्पन्न कर सकती हैं। हम समझते हैं इस प्रकार पुस्तक के लिखने से न तो मुल्कराज आनन्द और न इ प्रकाशन से 'राजकमल' ही यशस्वी हो सकते हैं।

भारत-दुर्दशा

सम्पादक : लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी,
इलाहाबाद
प्रकाशक : मोतीलाल मोदी एंड सन्स
पृष्ठ संख्या : ८४
मूल्य : डेढ़ रुपया

'भारत-दुर्दशा' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रसिद्ध ना है जो कई विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम रखा जाता है। सम्पादक महोदय ने इस पुस्तक विद्यार्थियों के लिए सांगोपाङ्ग प्रस्तुत करने का प्र किया है। पुस्तक में भारतीय नाट्यकला, हिन्दी ना का इतिहास और हरिश्चन्द्र की नाट्य-कृतियाँ, उन संक्षिप्त जीवनी, 'भारत दुर्दशा' की समीक्षा और अ में टिप्पणियाँ दी गई हैं। पुस्तक को प्रत्येक दृष्टि

१९५४

विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

—वंशीधर विद्यालङ्कार

हैदराबाद दक्षिण

हिन्दी साहित्य और साहित्यकार

लेखक : श्री सुधाकर पाण्डेय
प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
ज्ञानवापी, बनारस सिटी
मूल्य : ११) रुपया

हिन्दी साहित्य के 'गुटका-इतिहासों' की संख्या बढ़ती ही जा रही है। प्रस्तुत पुस्तक भी उसी वर्धमान इतिहासों में से एक है। पर इसके लेखक का दावा 'अनेक' में 'एक' होने का है। वह लिखता है, "हिन्दी साहित्य के सैकड़ों परिचयात्मक इतिहास हिन्दी में लिखे गए हैं "पर इनमें से अधिकांश राष्ट्रीय सम्पत्ति के अपव्यय मात्र हैं। राष्ट्रभाषा के व्यापक प्रसार को ध्यान में रखते हुए आवश्यकता इस बात की थी कि हिन्दी का ऐसा संक्षिप्त इतिहास लिखा जाए तो अपने में पूर्ण होते हुए भी आर्थिक दृष्टि से जनता के लिए क्रय-साध्य हो।"

इसमें सन्देह नहीं, लेखक अपने दूसरे उद्देश्य में अवश्य सफल हुआ है। तीन सौ से अधिक पृष्ठों की पुस्तक का ११) रुपया मूल्य रख कर उसने उसे 'क्रय-साध्य' बना दिया है पर वह अपने प्रथम उद्देश्य में भी सफल हुआ है, यह कहना कठिन है। उसकी इस कृति में भी 'गुरुजनों' का ऋण चुकाया गया है, मित्रों-परिचितों को उठाया बनाया गया है। दल विशेष के दलदल से दूर रहने की भूमिका बाँध कर भी वह मध्यदेशीय विशेष कर काशी के महन्तों के चक्कर में बुरी तरह फँस गया है। यद्यपि वह मानता है कि "हिन्दी केवल मध्यदेश तक ही सीमित नहीं रही अपि तु उसकी महत्ता अखिल भारतीय रही है और समस्त भारत में उसके साहित्य का प्रणयन हो रहा है" तो भी उसके इस इतिहास में समस्त भारतीय दृष्टि का अभाव है। उसने भी वर्तमान दस-पाँच इतिहास-गुटकों का सहारा ले कर ही अपना काम चलाया है! इस इतिहास में लेखक की न तो मौलिक खोज ही दीख पड़ती है और न नवीन शोधित सामग्री का पूर्ण उपयोग ही इसमें किया गया है। आलम के साथ शेख़ का नाम लिया जाता है। शेख़ को उसकी पत्नी कहा जाता है पर इधर 'शेख़' के सम्बन्ध में शोध की गई है कि वह स्त्री नहीं थी। शेख़ किसी स्त्री का नाम नहीं है, वह 'पुरुष' ही है। लेखक ने साहित्यकारों के सम्बन्ध में स्पष्ट, निर्भीक और कड़वी आलोचना करने का संकल्प किया है पर यह संकल्प श्री मैथिलीशरण गुप्त पर लिखते समय खूब सजग रहा है! प्रतीत होता है, उनकी टोपी उछालने में उसका आलोचक खूब अनुप्रेरित हुआ है। प्रमुख साहित्यकारों की सूची में भी कोई सिद्धान्त परिलक्षित नहीं होता। श्यामसुन्दरदास से सूची प्रारम्भ होती है और जयशंकर प्रसाद पर समाप्त हो जाती है! महावीरप्रसाद द्विवेदी लेखक के "स्वस्थ साहित्य का उद्भव करनेवालों में कदाचित् प्रमुख स्थान नहीं रखते। महादेवी वर्मा और दिनकर के पश्चात् "प्रसाद" को रखने में, पता नहीं, लेखक ने किस कसौटी से काम लिया है।

यह इतिहास विद्यार्थियों के उचित मार्ग दर्शन के लिए लिखा गया है पर इसे पढ़ कर वे अपना जाना-पहचाना मार्ग भी भूल सकते हैं। पुस्तक में छपाई की असंख्य अक्षम्य भूलें हैं।

मैंने कहा—(हास्य-रसपूर्ण निबन्धों का संग्रह)

लेखक : श्री गोपाल प्रसाद व्यास
प्रकाशक : आत्माराम एण्ड सन्स,
काश्मीर गेट, दिल्ली
मूल्य : ३) रुपए।

लेखक की हिन्दी में शिष्ट और संस्कारी हास्य लिखने की अपनी एक शैली है। वह अभी तक कविताओं में ही हँसी की फुहारें बरसाया करता था पर अब इस रचना से उसने गद्य के माध्यम से भी पाठकों को गुदगुदाना प्रारम्भ कर दिया है। उसके हास्य में चोटें गहरी नहीं होतीं। इसी से किसी के मर्म को छेद नहीं पातीं—चेहरे पर आड़ी-टेढ़ी शिकन नहीं पैदा करतीं। पर हमें उससे एक शिकायत है। वह यह कि उसके हास्य का आलम्बन बेचारी अबला-पत्नी ही बार-बार बनती रहती है! इससे उसे चाहे सुख मिलता हो पर पाठक ऊब उठता है! पर इस संग्रह में "पत्नी" पर ज़रा दया की गई है—उसके साथ अन्य व्यक्ति और वस्तुओं पर भी "कृपा" दृष्टि हुई है जिससे "मोनोटनी" कम हो गई है! विनोदी चित्रों से व्यंग-लेखों की रोचकता बढ़ गई है।

ज़िन्दगी मुसकराई

लेखक : श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
पृष्ठ संख्या : २९६
मूल्य : ४) रुपया।

लेखक हिन्दी के प्रसिद्ध रेखा चित्रकार और सफल निबन्धकार हैं। उसकी भाषा में जीवन है उसके विषयों में जीवन है। वह सृष्टि और समाज के सामान्यतम व्यापार में साहित्य का असामान्य उपकरण खोज लेता है।

"ज़िन्दगी मुसकराई" शीर्षक ही निबन्धों के विषयों की ओर इंगित करता है। इसमें ४३ विषयों का समावेश है! कुछ के शीर्षक हैं—'धीरे धीरे जियो', 'मरना एक कला', 'एक चान्स', 'विद्यावती के दो बेटे', 'फरमियों के सैलून में', 'रात तकिया ऊँचा था', 'बीमारी एक राहत!'

'धीरे धीरे जियो' लेख के सम्बन्ध में विज्ञप्ति है—"तीन असफलताओं से उनका दिल टूट गया और आत्महत्या के लिए वे पटना स्टेशन पर आए। मेल से उन्हें कटना था—उसके आने में अभी कुछ देर थी। जाने कैसे जेब में अठन्नी पड़ी रह गई और बुकस्टाल से उन्होंने नया जीवन खरीद लिया। उसमें छपा था एक लेख—'धीरे धीरे जियो' पढ़ते ही दुनिया बदल गई। वे घर लौट आए और आज लखपति हैं।"

विज्ञप्ति की सत्यता पर सन्देह करने का कोई कारण हमारे पास नहीं है। फिर भी इन लेखों में 'लखपति' बनने का कोई सस्ता नुस्ख़ा तो हमें नहीं मिला पर ज़िन्दगी को आशान्वित बनाने और उसे एक साहसी कर्मवीर की भाँति भोगने की प्रेरणा इनसे अवश्य मिलती है। हिन्दी में इस कोटि के 'हल्के-फुलके', चटपटे निबन्धों की बड़ी कमी है। लेखक अपने क्षेत्र में एकाकी है। उसके साथियों की संख्या बढ़नी चाहिए।

स्तालिन (एक जीवनी)

लेखक : श्री राहुल सांकृत्यायन
प्रकाशक : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड,
बम्बई – ४
पृष्ठ संख्या : ७७२
मूल्य : तीन रुपया।

इसमें स्तालिन की जीवन घटनाओं का ही संकलन नहीं है, प्रत्युत स्तालिन-युग की सम्पूर्ण झाँकी भी है। किन परिस्थितियों में स्तालिन का प्रादुर्भाव हुआ और किन परिस्थितियों से झगड़ा कर उसने स्वयं तथा अपने राष्ट्र को महान बनाया आदि प्रश्नों का इन पृष्ठों में उत्तर मिल जाता है। पुस्तक के अन्त में हिन्दी-उर्दू कवियों की काव्यमय शोकाञ्जलि भी संकलित कर दी गई है। उनमें श्री नरेन्द्र शर्मा की भी एक रचना है। शर्मा जी ने इसी भक्ति-भाव से भारत-राष्ट्रपिता गाँधी की शोक-स्मृति में अपने नयन गीले किए हैं। पुस्तक सामयिक है, सचित्र है।

धर्मपेठ एक्सटेन्शन,
नागपुर

—विनयमोहन शर्मा

'चाबुक' : एक अध्ययन

लेखक : श्री विनायकराव कोरटकर, विद्यालङ्कार
वाणिज्य तथा वित्तमंत्री, हैदराबाद राज्य
प्रकाशक : हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
पृष्ठ संख्या : १४०
मूल्य : १।।।)

कहानियाँ हमारे व्यक्तिगत जीवन और समाज के प्रतिबिम्ब होती हैं। किसी व्यक्ति के एकाकी जीवन से लेकर सामाजिक लोक-व्यवहार तक क्षण-क्षण तक घटित होते रहनेवाले कर्मों के चित्रण को कहानी के द्वारा हम अपने मानस-पटल पर उतार लेते हैं। यों प्रति-क्षण शुभाशुभ प्रेय और श्रेय-सूचक कार्यों को देख और सुनकर भी हम कुछ काल के पश्चात् उसे अपने मन से निकाल डालते हैं और कर्म-प्रवाह में आगे बढ़ जाते हैं; लेकिन कथाकार उन्हीं घटित क्रियाकलापों में से अपनी कला के योग्य माध्यम चुन कर उसे वह लोकोत्तर रूप दे डालता है कि वैसा सभी नहीं कर सकते। गद्य होते हुए भी कहानी को निबन्ध से भिन्न कोटि में लानेवाले कलाकार का यही कौशल विशेष है, जिसके प्रभाव में आकर एक बार हाथ में लेने के बाद बिना समाप्त किए पुस्तक छोड़ने की इच्छा नहीं होती। उस पुस्तक में कोई नई बात या जादू नहीं होता; हम जिन तथ्यों से पूर्ण अवगत होते हैं, क़रीब क़रीब वे ही उसमें भी अंकित होते हैं। यह क्यों? फिर भी हम उन्हें चाव से पढ़ते चले जाते हैं।

घटना के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ कथा के पात्रों के कर्म द्वारा होने वाले रस-परिपाक अद्भुत

१९५४

या भयानक इत्यादि हमारे अन्तःकरण को चुम्बकीय प्रणाली से स्पर्श करते रहते हैं। घटनाओं के साथ-साथ हम मूल कथा का शीघ्र ही परिचय प्राप्त करना चाहते हैं और इसके बाद 'फिर क्या हुआ?' अन्तःकरण की यह माँग हमें उस काल व्यस्त किए रहती है। यदि कहानी में उपरिलिखित बातें हैं तो समझना चाहिए कि कथाकार अपनी कला में निपुण है और तब कलाकर की क्षमता कौशल के कारण ही उसके कृतृत्व की महत्ता आँकी जाती है। 'चाबुक' इसी प्रकार की कहानियों का एक संग्रह है। इसमें १७ कहानियाँ ग्रथित है। सभी कथानक सामाजिक और नित्यप्रति घटित स्वाभाविक घटनाओं में से ही लिए गए हैं। प्रत्येक कहानी में कथाकार की अनुभूति मूर्त हो उठी है। जिस भाषा-शैली के हम अभ्यस्त हो चुके हैं, निश्चय ही इन कहानियों में हमें वह पूर्ण रूप से नहीं मिलती; लेकिन जिस युग से हम जीवन-क्षेत्र में अग्रसर हो रहे हैं, उसके अनुरूप ही कहेंगे। आज हिन्दी राष्ट्रभाषा पद पर आसीन है। हमारे राष्ट्र की भौगोलिक सीमाएँ संकुचित नहीं, विशाल हैं। विभिन्न प्रादेशिक संस्कृतियों के मध्य विकसित होती हुई हिन्दी भाषा के आज का रूप हमें भाता है। हम तो यही कहते हैं कि विभिन्न प्रादेशिक मुहावरों और रोजमर्रों को आत्मसात करती हुई हिन्दी भारती अपनी असाधारण क्षमता में ही मुखर हो उठी है। यह दोष नहीं है, गौरव की बात है। यहाँ पर जब हम यत्र-तत्र हैदराबाद तथा मराठीपन पाते हैं तो इसे शुभ लक्षण समझ कर इस प्रयोग के लिए भी अपनी स्वीकृति प्रदान करते हैं। यदि ऐसा न करें तो हमारी घेरे के भीतर की संकीर्णता भाषा के विकास में बाधक ही होगी।

'जंगल की कली' और 'परिवर्तन' शीर्षक कहानियों ने हमें इस निश्चय पर पहुँचने को बाध्य किया है कि कथाकार सुखान्त प्रिय है। यह परिपाटी प्राचीन भारतीय कथाकारों की ही है।

सभी कहानियाँ, जिन्हें हम 'मोपोसां' स्कूल की कहने के अभ्यस्त-से हो गए हैं, जीवन की एक घटना को लेकर आगे बढ़ती हैं और अपनी छोटी परिधि में ही पूर्ण हो जाती हैं। यद्यपि कहानी-कला की दृष्टि से 'मोपोसां' की शैली उत्कृष्ट नहीं समझी जाती; क्योंकि संकुचित क्षेत्र होने के कारण यहाँ पर कला अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति करने में अपने को असमर्थ पाती है। फिर भी हिन्दी में इस शैली पर अधिक कहानियाँ गढ़ी जा चुकी हैं। पंडित विनोदशंकर व्यास तो इस 'स्कूल' के आचार्य ही समझे जाते हैं। इस शैली में कथाकारिता का पूर्ण विकास दृष्टिगत नहीं हो पाता; क्योंकि मुख्य घटनाओं के साथ घटित होने वाली गौण घटनाएँ, जो कथा का प्रधान समझी जाने वाली घटनाओं से कभी-कभी बराबरी का टक्कर ले लेती हैं, तिरोहित सी-रह जाती है और सच मानिए कभी-कभी छोटी कहानियाँ पढ़ते समय ऐसा भासित होने लगता है कि हम ललित शैली में गद्य-काव्य मात्र पढ़ कर उसे क्षण में ही समाप्त कर बैठे हैं। 'चाबुक' के कथाकार ने इस दोष से अपनी कहानियों को अलग ही रखा है, यह उसकी अपनी विशेषता है।

कथाकार का व्यंग्य या मीठी चुटकी तो उसकी अपनी शैली है, जिसमें वह काफ़ी सफल हुआ है; लेकिन कथा के मध्य कहीं-कहीं ऐसी घटना उपस्थित हो जाती है जिसे पढ़ते वक्त मालूम पड़ता है कि यह अस्वाभाविक सा हो रहा है; लेकिन जब वह अपनी परिधि में ही पूर्ण हो जाती है तब फिर ऐसा भान होने लगता है कि यह या तो दैवी विधान के कारण ऐसी है या फिर किसी भाँति स्वाभाविक ही है। उदाहरणार्थ—'जंगल की कली' में पंपिनी के मुख से कैप्टन रिचर्डसन के लिए सहानुभूति और फिर दंड की माँग होती है। 'कोर्ट मार्शल' प्रणाली से उसे गोली मारी जा रही है। रिचर्डसन की माँग के अनुसार पहली गोली पंपिनी के हाथ से दागी जाती है। गोली लक्ष्य से पृथक् चली जाती है और पंपिनी के हाथ की पिस्तौल गिर जाती है। वह रिचर्डसन के चरणों पर गिर कर आत्म-समर्पण करती है और उसके मुख से—'नाथ, मुझे क्षमा करो।' ये शब्द निकलते हैं। इसी प्रकार 'पूने का आतिथ्य' में सभी अतिथियों का धर्मशालें में जुटना और 'सभापति का चुनाव' में सभी सभापतियों का एक साथ ही मंच की ओर अभिमुख होना है। घटना प्रधान कहानियों में घटनाओं को अतिरंजित कर देने से भी कहानी के उद्देश्य की पूर्ति तो हो जाती है; लेकिन फिर वह स्थायी नहीं हो पाती। सब मिलाकर, कहानियाँ उत्कृष्ट कोटि की बन पड़ी हैं। आशा है, कथाकार इसी प्रकार की कहानियों से हिन्दी भारती का भण्डार भरते रहेंगे।

गायघाट,
काशी (उ० प्र०)

—गौरीशंकर गुप्त

सामयिक

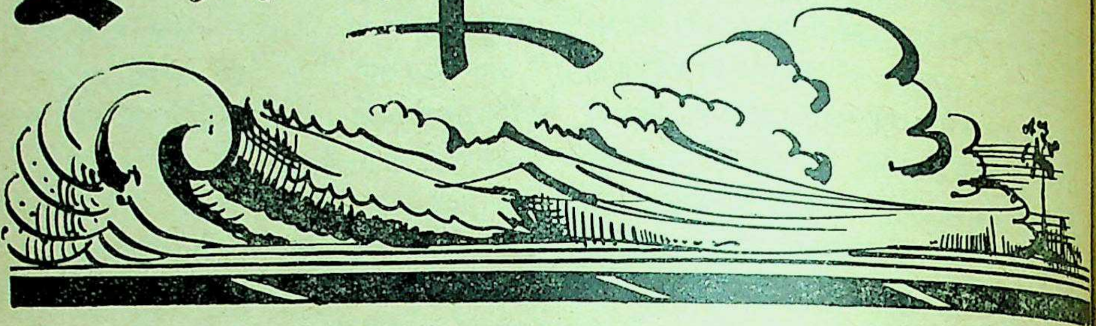

॥

हो चि मिन्ह

विएत मिन्ह के नेता हो चि मिन्ह का एक आकृति-चित्र (Portrait) मद्रास के प्रसिद्ध पत्र 'हिन्दु' के साप्ताहिक संस्करण में प्रकाशित हुआ है। उसमें से कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है :

"२२ अगस्त, १९४५ को जब हो चि मिन्ह विएत नाम गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति बने उस समय उन्होंने अपने ढंग से कहा : 'मैं विएत नाम का राष्ट्रपति इसलिए चुना गया हूँ क्योंकि मेरे पास कुछ नहीं है : न परिवार, न घर, न पैसा। मेरे पास केवल कपड़ों का एक जोड़ा है जो कि मैं पहने हुए हूँ।" हो चि मिन्ह १८९२ में विएत नाम के एक उत्तरी प्रदेश में उत्पन्न हुए। उनके पिता एक सम्भ्रान्त और सुपठित व्यक्ति थे। वे अपने देश पर फ्रांस की विजय से अपने मन में हीनता अनुभव करते थे। उन्होंने प्रारम्भिक राष्ट्रीय आन्दोलनों की सहायता की थी और इस कारण फ्रेंच शासकों ने उन्हें नौकरी से निकाल दिया। उनकी बहन को बन्दूक़ें चुराने के लिए ९ वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया और उनके भाई को 'राजद्रोहियों' को आश्रय देने के कारण अपराधी ठहराया गया। उसका नाम नगुएन अई क्युओक था। 'अई क्युओक' का अर्थ देशभक्त है।

१९११ में नगुएन ने सेगाँव में एक फ्रांसीसी व्यापारी जहाज़ में नौकरी कर ली। वह केबिन बौय बन गया और इधर-उधर घूमने लगा और कई वर्षों तक उसका इसी प्रकार का जीवन रहा। वह अमरीका, पुर्तगाल और जर्मनी गया। जब १९१४ में युद्ध छिड़ गया उस समय वह लन्दन में था और एक रैस्तोरां में कार्य कर रहा था। उसने ब्रिटिश फ़ौज में भरती होने के लिए प्रयत्न किया परन्तु वह सफल न हो सका। उसके पश्चा वह पेरिस चला गया और वहाँ फ़ोटोग्राफ़ी के द्वारा अप जीविका चलाता रहा। उस समय फ्रांस में एक ला उसके देशवासी थे जो कि फ़ौज में भरती करके या दू काम के लिए वहाँ लाए गए थे। उसने उनमें राष्ट् भावना को उभारा। लड़ाई के समाप्त होने प उसने एक घोषणापत्र निकाला जिसमें उसने अपने दे के लिए राजनैतिक और नागरिक स्वतन्त्रताओं की मां की परन्तु उसकी सुनवाई न हुई। उसने फ्रांसी पत्रों में बहुत-से लेख लिखे। उसने स्वयं फ्रेंच भाषा एक पत्र निकाला और एक पुस्तक प्रकाशित की जिस नाम था "फ्रांसीसी उपनिवेशवाद कसौटी पर"। इ पुस्तक से बहुत-से नवयुवकों को प्रेरणा प्राप्त हुई और राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे।...१९३० में उ हिन्द चीन की साम्यवादी पार्टी को संगठित किया। उ तोनकिंग में जहाँ अकाल और दरिद्रता फैली हुई किसानों को राजविद्रोह के लिए संगठित किया। बहुत राजद्रोहियों को फ्रांसीसी पुलिस ने पकड़ कर जेल में डा दिया। अंग्रेज़ शासकों ने नगुएन को फ्रांसीसी अधिकारि के कहने पर हांगकांग में पकड़ लिया। जब वह हांगकां से निकाल दिया गया तब वह ग़ायब हो गया। फ्रां सियों ने उसके पकड़ने के लिए पचास हज़ार पिआस् (एक सिक्का) का इनाम घोषित किया। १९४१ में वह चि मिन्ह के रूप में प्रकट हुआ। इसका अर्थ है : "प्र कनेवाला"। फ्रांसीसी गवर्नर जनरल और सम्राट् दाई ने सारे देश को जापानियों के सुपुर्द कर दि वह १९४० में दक्षिण चीन में चला गया और 'इण्डिपेंडेण्ट लीग' को संगठित करके उसने फ्रेंच जापानी फ़ासिस्टों से लड़ने की तैयारी की। १९४४

१९५४

अक्टूबर महीने में वह हिन्द-चीन में वापस आया और ९ मास के अन्दर उसने तोनकिंग के ९ प्रदेशों को अपने आधीन कर लिया और अनाम और कोचीन चाइना में कमेटियों का जाल बिछा दिया। सितम्बर २, १९४५ को विएत नाम गणतन्त्र की घोषणा की गई और वह इसका प्रथम राष्ट्रपति घोषित किया गया। वह शान्ति के साथ अपने देश के स्वतन्त्रता के प्रश्न को हल करना चाहता था परन्तु उसे सदा निराशा हुई। १९४७ में उसने बैंगकौक में स्थित फ्रांसीसी मन्त्री के द्वारा पुनः शान्ति के लिए प्रयत्न किया। १९४७ में जब भारत और पाकिस्तान को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई उसी समय यहाँ भी हाई कमिश्नर ने युद्ध बन्द करने की योजना बनाई—परन्तु सेगाँव के उच्च सैनिक अधिकारियों ने इसका विरोध किया और हाई कमिश्नर को वापस बुला लिया गया। १९४९ में हो चि मिन्ह ने पुनः घोषणा की कि वह युद्ध नहीं करना चाहता। १९४९ के अन्त में चीन में साम्यवादियों की विजय हुई और अगस्त १९५० से अमरीका ने फ्रांसीसियों को फ़ौजी सहायता देना प्रारम्भ किया। इन कारणों से युद्ध की भयंकरता बढ़ गई और अब लोग हिन्द-चीन की स्वतन्त्रता के लिए हताश होकर लड़ रहे हैं। अपनी संकीर्ण उपनिवेशवाद वृत्ति के कारण फ्रांस अपने एशियाई साम्राज्य को गँवा रहा है। फ्रांस ने हो चि मिन्ह के साथ समझौता करने से इनकार कर दिया जो दोनों देशों में एकता और मैत्री के सम्बन्धों को स्थिर कर सकता था।"

॥

चीनी लिपि का उद्गम और विकास

'पीपुल्स चाइना' में श्री चेन मेंग-चिआ का एक लेख 'चीनी लिपि का उद्गम और विकास' शीर्षक प्रकाशित हुआ है। इसमें से निम्न अंश यहाँ दिया जा रहा है :

"पुरातत्त्वसम्बन्धी तथ्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि चीनी लिपि संसार की प्राचीनतम लिपियों में से है। ईसा से तेरहवीं सदी पूर्व अर्थात् तीन हज़ार वर्ष से भी पहले हान जाति ने इस प्रकार की भाषा का विकास कर लिया था जिसे पर्याप्त विकसित कहा जा सके। यही भाषा आधुनिक चीनी भाषा से पहले चीन में प्रचलित थी।

आरम्भ में चीनी भाषा चित्रमय रूप में लिखी जाती थी। उसमें प्रकृति की प्रक्रियाओं और प्राकृतिक वस्तुओं के यथातथ्य चित्र खींचे जाते थे। इसी आधार पर चीनी लिपि का आगे चलकर विकास हुआ। उदाहरणस्वरूप जिह और यूह इन दो शब्दों का अर्थ सूरज और चाँद होता है। इन शब्दों को सूरज और चाँद के रूप में ही लिखा जाता था। चीनी लिपि ध्वनियों के आधार पर विकसित नहीं हुई वरन् चित्रों के आधार पर विकसित हुई है। इसके अनेक कारण हैं। हान भाषा चीनी में प्रायः सर्वत्र प्रयोग में आती है परन्तु वहाँ अनेक बोलियाँ प्रचलित हैं। एक ही लिखित भाषा के प्रयोग से अनेक बोलियों के होते हुए भी विचारों के आदान-प्रदान में कठिनाई नहीं होती। यद्यपि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लोगों के उच्चारण में भिन्नता पाई जाती है परन्तु फिर भी अर्थ समान रूप से एक ही समझा जाता है। शासक वर्ग का एकाधिकार रखने के लिए सामन्त-युग में शासकों द्वारा दीर्घ काल तक इस वर्णमाला को मान्यता दी गई। कथित प्रवृत्ति ने चीनी लिपि की स्थिति को सुदृढ़ बनाने में सहायता दी।

चीन की साहित्यिक भाषा का वहाँ की बोलचाल की भाषा से गहरा सम्बन्ध रहा है। प्राचीन बोलचाल की भाषा में एकाक्षर शब्दों की मुख्यता रहती थी। चीनी भाषा में प्रत्येक वर्ग का अपना विशिष्ट अर्थ और विशिष्ट रूप होता है अतः उनमें से प्रत्येक के अलग अस्तित्व को पहचाना जा सकता है। चीन की बोलचाल की भाषा में विभक्तियाँ, उपसर्ग या प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता और न शब्दों का रूप, काल, वचन और पुरुष के साथ परिवर्तित होता है। इसी कारण चीनी भाषा का प्रत्येक वर्ण जो किसी शब्द का अर्थ व्यक्त करता है अन्य शब्दों के साथ संधि रूप में प्रयुक्त हो सकता है। वाक्य रचना में वर्ण की चाहे जो स्थिति हो परन्तु चीनी भाषा में वर्णों का रूप नहीं बदलता और उनकी ध्वनि भी नहीं बदलती। चीनी वर्णमाला को सीखने के लिए वर्ण के रूप, ध्वनि (उच्चारण) और अर्थ को जानना आवश्यक होता है।

चीनी लिपि का विकास सुव्यवस्थित रूप से हुआ है। अठारह सौ वर्ष पूर्व चीनी विद्वान् इस निर्णय पर पहुँचे कि शब्दों को छः वर्गों में विभाजित किया जाए। इस विभाजन को हान वंश के प्रसिद्ध भाषाविद् सू शेन (Hsu Shen) ने और भी अधिक वैज्ञानिक रूप दिया।

सु शेन ने १२१ ई० में चीनी भाषा के विकास के इतिहास का अध्ययन करके चीनी शब्दों का एक कोष तैयार किया । यह कोष 'शू वेन चेह जू' (शब्द व्युत्पत्ति कोष) संसार का सबसे प्राचीन शब्द कोष था। सु शेन ने ६००० से अधिक शब्दों को उनके रूप, ध्वनि और अर्थ के आधार पर श्रेणीबद्ध किया । इस विश्लेषण के अनुसार चीनी शब्दों को छः समान वर्गों में विभाजित किया गया है : (१) निर्देशक (२ चित्र-शब्द (३) स्वर ध्वनि समास (४) सांकेतिक शब्द (५) समानार्थ और समान ध्वनि शब्द (६) नवागत शब्द । वर्तमान चीनी विद्वान् छः वर्गों की अपेक्षा तीन वर्गों में ही शब्दों का विभाजन करते हैं : (१) चित्र शब्द (२) नवागत शब्द (३) ध्वनि शब्द । इन तीन प्रकार के शब्दों का एक ही समय निर्माण नहीं हुआ वरन् चीनी लिपि के विकास के साथ ही उनका निर्माण होता रहा ।

जैसा कि उक्त विश्लेषण से प्रतीत होता है सर्व प्रथम चित्र-शब्द बने परन्तु सामाजिक उत्पादन के क्रम में बहुत से नए भाव (Idea) उत्पन्न हुए जिन्हें चित्र-शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता था अतः 'नवागत शब्दों' का प्रयोग आरम्भ हुआ । 'नवागत शब्द' एक प्रकार का चित्र शब्द है जो उसी ध्वनि का प्रतीक है जिसके द्वारा कोई भाव अभिव्यक्त किया जाता है और इस प्रकार वह नूतन भाव का संकेत है । उदाहरण के लिए 'वू' शब्द आरम्भ में किसी प्राचीन अस्त्र का चित्र शब्द था जिसका बाद में प्रथम पुरुष 'मैं' के अर्थ में प्रयोग किया गया क्योंकि दोनों शब्द में ध्वनि-साम्य था ।

नवागत शब्दों में एक कमी थी । यद्यपि आवश्यक ध्वनि-संकेतक थे परन्तु नवीन अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति करने में असमर्थ थे । इस कठिनाई को ध्वनि संकेत के साथ अर्थ संकेतसूचक शब्दों को मिला कर दूर किया गया । इस प्रकार अनेक स्वर-ध्वनि समास शब्दों का प्रयोग आरम्भ हुआ । उदाहरणार्थ प्राचीन शब्द 'की' जिसका अर्थ 'नदी' था उसके साथ बाँई ओर 'शुई' शब्द जोड़ा गया जिसका अर्थ 'प्रवाहमान पानी' है । इस प्रकार से अनेक शब्दों का निर्माण सम्भव है । वे चित्रमय लिपि की परम्परा के वाहक और बोलचाल की और साहित्यिक भाषा की कड़ी हैं । चीनी भाषा में इस प्रकार के अस्सी प्रतिशत से भी अधिक शब्द पाए जाते हैं ।

यिन राजवंश के समय के प्राप्त चिह्नों—नक्का हड्डियों, काँसे के बरतनों, क़ब्र के पत्थरों और बाँस खपच्चियों पर अंकित लेखों के ध्यानपूर्वक अध्ययन भाषा-विज्ञानियों ने प्राचीन काल से चीनी लिपि के विक का अध्ययन प्रस्तुत किया है । प्राचीन लिपि में वू से यिन राजवंश के अंतिम काल तक कुछ परि दिखाई देते हैं । इसके उपरान्त पश्चिम चोऊ (१०२७ से ७७१ ई० पू०) ने प्राचीन लिपि की पर को क़ायम रखा और चीनी भाषा में नए स्वर- समासों और नवागत शब्दों का प्रयोग किया । पश्चि चोऊ वंश के शासकों ने केन्द्रीय शासन पर आ अनेक रजवाड़े स्थापित किए और उनका शासन दीवार से लेकर हुई नदी की घाटी तक फैला हुआ था उनके सेनाधिपति अपनी जागीरों में अपने साथ इतिहा कारों को ले जाते थे जिनके द्वारा चाऊ लिपि सुर रह सकी । यह लिपि यिन वंश की परम्परा से आई और प्राचीन चीन में सर्वत्र फैली हुई थी । 'वसंत औ पतझड़' के काल में (७७० से ४८१ ई० पू०) जब पश्चिमी चोऊ का शासन केवल नाम मात्र को शेष गया था वू, यूह और चू प्रदेशों में यिन चोऊ वर्णमा को अपनाया गया जिनका उद्गम हुआई नदी दक्षिण में हुआ था । युद्धोत्तर राज्यों के काल में (४८१ २२२ ई० पू०) लोहे के औज़ारों का प्रयोग में ला गया और उत्पादन के साधनों में बहुमुखी विकास हु इस समय लिपि में पर्याप्त विकास हुआ । तत्पश्च युद्ध प्रवृत्त राज्यों के काल में चिन वंश के शिह हाँग सम्पूर्ण देश के लिए एक लिपि का प्रसार कि और 'अल्पचिह्न' (Lesser seal) अथवा चिन लिपि सर्वव्यापी प्रयोग का आदेश निकाला । साथ ही उ सरल लिपि के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया कि युद्ध-प्रवृत्त राज्यों के विद्वान् अपनी पुस्तकें लिखते इस सरल-लिपि को बाद में हान वंश के राज्य के विद्वानों ने 'प्राचीन लिपि' का नाम दिया था । वंश की 'अल्पचिह्न' लिपि लिखने में अत्यन्त थी । सैनिक और नागरिक दोनों क्षेत्रों में राष्ट्रीय ए की स्थापना के कारण सरकारी दफ़्तरों में लेखन- अत्यधिक बढ़ जाने से 'अल्पचिह्न' लिपि समय माँग को पूरा नहीं कर सकी और उसके स्थान पर

१९५४

'ली'-लिपि का प्रयोग हुआ जिसमें कि पहले से ही निम्न-स्तर के सरकारी कर्मचारी लिखा करते थे। ली-लिपि अपेक्षाकृत सरल थी अतः सामान्यतया उसी में लिखा जाने लगा। अल्पचिह्न लिपि में केवल महत्वपूर्ण दस्तावेज़ लिखे जाते थे। अल्पचिह्न लिपि का प्रचलन उत्तरोतर कम होता गया और उसका स्थान ली-लिपि ने ग्रहण कर लिया। ली-लिपि बाद में "लेखक" लिपि का विकास हुआ जो कि पूर्वी हान वंश के राज्य काल में ईसा की दूसरी शताब्दी में अस्तित्व में आई और चीन में अभी भी उसका प्रयोग किया जाता है।

अनेक अवसरों पर चीनी लिपि को सरल बनाने का प्रयत्न किया जाता रहा है। अनेक शब्दों के सूक्ष्म रूप बनाए गए हैं। पहले इन रूपों का प्रयोग हाथ की लिखावट में किया जाता था फिर उनके छापे के 'टाइप' ढाले गए। उदाहरणतः 'ली' (प्रथा) शब्द लिखने ने १८ रेखाओं को खींचना पड़ता था। उसका नया रूप केवल ६ रेखाओं से ही लिखा जाता है और इस प्रकार रूप लिखने में बहुत-सा समय बच जाता है। तीसरी शताब्दी से छठी शताब्दी तक शब्दों का रूप सरल होता गया है। शुङ्ग, युआन और मिङ्ग वंशों के राज्य काल में छपे हुए गीतों और कहानियों को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। एक हजार से भी अधिक समय के लिए शब्दों के सूक्ष्मरूप लोकप्रिय रहे हैं यह तथ्य इस बात का सूचक है कि लोगों की अभिरुचि लिपि को सरल बनाने की है।"

॥

उपन्यासकारों की समस्याएँ

श्री आर. के. नारायण तमिल और अंग्रेजी के प्रसिद्ध कहानी लेखक और उपन्यासकार हैं। उनका 'उपन्यास-कारों की समस्याओं' पर ऑल इंडिया रेडियो पर एक भाषण हुआ था। जो "लिसनर" में प्रकाशित हुआ है। इस लेख में से निम्न अंश नीचे दिया जा रहा है :

"......उपन्यास लेखक की समस्याएँ विचित्र होती हैं। उपन्यास अपेक्षाकृत घटनाओं का ही एक रूप है।

परेशानियाँ, चिन्ताएँ ये पहली समस्याएँ है जिनसे उपन्यासकार को दूर रहना चाहिए। उपन्यास लेखक के लिए यह आवश्यक है कि उसके अन्तर बाह्य जीवन में कोई भेद न हो। लेखक का जीवन उसके अन्तर्मन से चालित होता है। उसके लिए यह ठीक नहीं कि जहाज़ के कप्तान की भाँति अधिकार लेकर ही अपने कर्तव्य का पालन करे। उपन्यासकार का जीवन से गहरा सम्बन्ध होता है। उसका मस्तिष्क जीवन से ख़ास सामग्री संग्रह कर उसे अपने प्रयोग में लाने में लीन रहता है। उसे दूसरे अध्याय की योजना बनाने में सदा लगा रहना पड़ता है। कोई उपन्यासकार प्रति दिन क्रम से निश्चित कार्य करने बैठ जाता है या अगर करता है तो उसे एक साथ ही समाप्त कर देता है। वह कितने समय तक बैठता है यह उसके कार्य-लगन का लक्षण नहीं है। अपनी प्रवृत्ति के अनुसार वह सदैव काम में लगा रहता है। उसका दिमाग़ हमेशा काम करता है। जब तक उपन्यास पूरा न हो जाय काम का अन्त नहीं होता यदि किसी उपन्यास में हम ८०००० शब्द पढ़ते हैं तो यह कोई महत्व की बात नहीं है, महत्व उसके पीछे छिपी उपन्यासकार की साधना का है।

बहुत से मनुष्य मुझसे पूछते हैं कि क्या मेरे मस्तिष्क में उपन्यास का पहले से सम्पूर्ण विवरण रहता है? उपन्यास कैसे लिखा जाता है? मैं चाहता हूँ कि प्रश्न का उत्तर सही और संक्षिप्त रूप में दूँ। मैं यह जानता हूँ कि जब मैं लिखने बैठता हूँ तो मेरे सामने दिन भर के अनुभव का अस्पष्ट रूप रहता है। कहना अनुचित न होगा कि मेरे मस्तिष्क की अपेक्षा टाइप राइटर और मेरी अंगुलियाँ अधिक समझती हैं कि उसमें मैं क्या लिखने जा रहा हूँ! अवश्य यह कोई प्रशंसा की बात नहीं है और न मुझे प्रशंसा की आवश्यकता है। प्रतिदिन वे बातें जो उपन्यास लिखते समय लिखता हूँ स्वयं ही मेरे सामने आती हैं अर्थात् अवचेतन मन को क्रियाशील रहने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। उपन्यास लिखने के लिए चेतन और अवचेतन दोनों क्रियाशील रहते हैं। उसमें भावना और बुद्धि का सम्मिश्रण रहता है। बुद्धितत्त्व का सम्बन्ध उपन्यास की शैलीगत विशेषताओं से संबद्ध रहता है। उसका पूरा स्वरूप लेखक के सामने नहीं रहता यद्यपि यह सम्भव है कि भविष्य के स्वरूप का कोई विचार उपन्यासकार के मस्तिष्क में रहे और उस अंश तक उसका मस्तिष्क भाराक्रान्त बना रहे।

जिस दिन उपन्यासकार उपन्यास लिखने बैठता है उस दिन समझना चाहिए कि वह एक ऐसा कठिन काम

करने जा रहा है जो महीनों तक उसे जकड़े रक्खेगा। वह कितना ही शीघ्र लेखक हो परन्तु उसे उस काम में दो वर्ष लग जाएँगे। कुछ महीने उसे रचना को दुहराने में लगेंगे। कभी लेखक अपनी रचना से पूर्णतया संतुष्ट न होने पर उसे पुनः लिखना चाहता है परन्तु इस प्रकार की अपूर्णता तो सदैव बनी रहती है और जब तक बहुत आवश्यक परिवर्तन की जरूरत न हो तब तक ऐसा नहीं करना चाहिए। इस प्रकार महीनों का काम नष्ट हो जाता है। जब उपन्यासकार संतोषजनक रूप से अपनी रचना को समाप्त कर लेता है तो वह उसे प्रकाशक को सौंप देता है। यह उसकी सबसे बड़ी प्रसन्नता का दिन होता है।

वह अपने आपको एक विद्यार्थी की भाँति अनुभव करता है जो अपनी परीक्षा समाप्त कर अपने बीते हुए मेहनत के दिनों को याद करता है, साथ ही फिर आने वाली आनन्द-दायक ग्रीष्म की छुट्टियों पर अपनी दृष्टि डालता है। अपने दो वर्ष के परिश्रम के पश्चात् वह लेखक कितने दिन विश्राम ले सकता है? यदि वह विश्व को अपने अन्तर का सर्वोत्तम देना चाहता है तो उसे उस समय तक विश्राम लेना चाहिए जब तक कि उसके हृदय में फिर कोई नवीन रचना लिखने की प्रेरणा न जागृत हो। अतः उसे विश्राम लेना चाहिए। दूसरी ओर उसकी प्रकाशित रचना को जनता के पास पहुँचाने का प्रबन्ध होना चाहिए तथा उसे जनता से प्रोत्साहन भी मिलना चाहिए। कठोर परिश्रम के बाद जनता के समर्थन से ही लेखक को संतोष मिल सकता है और उसमें स्फूर्ति एवं शक्ति पैदा हो सकती है।

यह बहुत ही आवश्यक है कि उसकी पुस्तकें पुस्तक-भण्डारों में आएँ और जनता पुस्तकों के प्रति अपना उत्साह प्रकट करे। इससे उसके सराहनीय कार्यों में सहायता मिलेगी। दूसरे अभाव में उपन्यासकार प्रायः निराश और हताश हो जाता है और वह अपने आपको शुष्क अनुभव करने लगता है तथा घटिया साहित्य की रचना करने के लिए बाध्य होता है जब कि उसे विश्राम लेना चाहिए। लेखक की स्वतन्त्रता वास्तव में उसे क्या दे सकती है? समाज में जहाँ प्रकाशन कार्य अच्छी प्रकार से संगठित होता है, सुन्दर-पुस्तक अविलम्ब पाठक के पास पहुँच जाती है। इस दृष्टि से हमारे देश में उपन्यासकार को समुचित सुविधाएँ प्राप्त नहीं है। अन्य देशों की तरह यहाँ प्रकाशन का कार्य महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता। बहुत कम प्रकाशकों में प्रकाशन, विज्ञापन और नए लेखकों की रचनाओं में रुचि दिखाई देती है। इसके लिए सब के सहयोग की आवश्यकता है। प्रेस के सहयोग की आवश्यकता इसलिए है कि उसे नई पुस्तकों को सुन्दर आकर्षक रूप में छापना चाहिए और उसके विज्ञापन का प्रबन्ध करना चाहिए। पुस्तक-विक्रेता की आवश्यकता इसलिए है कि वह अपने पुस्तक-भण्डार में अन्य पुस्तकों की अपेक्षा उपन्यासों को अधिक रक्खे, प्रशंसक एवं उत्तरदायित्व समझनेवाली जनता की आवश्यकता इसलिए है कि वह पुस्तकें खरीदे। मैंने "ख़रीदना" शब्द का प्रयोग एक इरादे से किया है। दूसरों से पुस्तकें मांग कर पढ़ना, निश्चय ही पढ़ने का एक भिन्न तरीका है। इस प्रकार के आदमी बिना मूल्य और परिश्रम का फल चुकाए लेखक को बहुत मिलेंगे।

पुस्तक ख़रीदने का आन्दोलन देशव्यापी होना चाहिए। पुस्तक ख़रीदना एवं घर में पुस्तकालय रखना हर नागरिक का धर्म होना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे, एक तो लेखक को अपने परिश्रम का फल मिलेगा, दूसरे हर घर में संस्कृति का एक खास वातावरण उत्पन्न हो सकेगा।"

॥

चीन की समृद्ध लोक-कलाएँ और कारीगरी

मार्च के "पीपल्स चाइना" में "चीन की समृद्ध लोक-कलाएँ और कारीगरी" पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में से निम्न अंश नीचे दिया जा रहा है :

"अभी पिछले दिनों पीकिंग में चीनी की लोक-कलाओं और कारीगरी की एक प्रदर्शिनी हुई जिसमें चीन के लगभग प्रत्येक प्रान्त से ३००० से अधिक हाथ की कारीगरी की वस्तुएँ थीं। इस प्रदर्शिनी को देखने से ज्ञात होता था कि चीन की हाथ की कारीगरी का स्तर कितना ऊँचा है और चीन के साधारण लोग कितने असाधारण कारीगर हैं। इनमें से कई कारीगरी की वस्तुओं के लिए चीन जगत् में चिरकाल से प्रसिद्ध है। चीनी मिट्टी के सुन्दर बर्तन, हाथीदाँत, लकड़ी और पत्थरों का उत्कीर्ण, शानदार रेशमी ज़रीदार कपड़ा, सुन्दर तामचीनी के पात्र, हाथ से बुने हुए वस्त्र, नक़्क़ाशीदार लाख, धातु और कागज़ की वस्तुएँ इत्यादि।

इनमें से बहुत-सी वस्तुएँ लोगों के घरों में बना

हुई थीं जिनका अपने स्थानों से बाहर कम ही प्रदर्शन होता है।

चीन के समृद्ध और भिन्न प्रकार की लोक-कारीगरी का अपना ही लम्बा इतिहास है। कई पीढ़ियों में इनका विकास हुआ है। मट्टी के बरतनों की कला की तो बात ही क्या – बुनाई और कई हस्तोद्योग सहस्रों वर्ष पुराने हैं। कई सदियों से चीन के कारीगर कलापूर्ण और उपयोगी वस्तुओं का निर्माण एक विशिष्ट राष्ट्रीय ढंग पर करते रहे हैं। विगत कई वर्षों में चीन में साम्राज्यवादी विदेशी राज्यों से सस्ता माल धड़ाधड़ आता रहा। उसका परिणाम यह हुआ कि चीन की कारीगरी और हस्तोद्योग की कला अवनत और असंगठित हो गई। चीन के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् लोक-कारीगरी और हस्तोद्योग कला को पुनः उन्नत और संगठित करने का प्रयत्न किया गया। पीकिंग में जो प्रदर्शिनी की गई उसका उद्देश्य चीनी जनता में लोक-कारीगरी और हस्तोद्योग कला को लोकप्रिय बनाना, कारीगरों को पारस्परिक विचार-विनिमय का अवसर प्रदान करना तथा यह देखना था कि उनकी कला और कारीगरी वर्तमान आवश्यकताओं को कितना पूर्ण करती है। चीन की मट्टी के बरतनों का इतिहास २००० वर्ष पुराना है। लैकर की वस्तुएँ २३०० वर्ष पुरानी प्राप्त होती हैं। इस कारीगरी से चीन की लोक-संस्कृति समृद्ध हुई है और वहाँ की जनता में कला की अभिरुचि उत्पन्न हुई है। इस प्रदर्शिनी में अद्भुत कलापूर्ण चीनी के बरतनों का प्रदर्शन किया गया था। एक बड़े कमरे में घास, बाँस और मट्टी की बनी हुई वस्तुएँ प्रदर्शित की गई थीं। चीन में चीनी के बरतन बहुत से स्थानों पर बनाए जाते हैं परन्तु किआंगसी नगर के कुछ परिवार ऐसे हैं जहाँ पीढ़ियों से ये बरतन बहुत अच्छे बनाए जाते हैं। ये बरतन भी कई प्रकार के होते हैं। कई चीनी के बरतन इतने सफ़ेद होते हैं कि हाथी दाँत जैसे सुन्दर प्रतीत होते हैं। कई बरतनों पर हाथों से चित्रकारी का काम किया जाता है। यह चित्रकारी भी कई प्रकार की है। ग्रामों के कई कारीगरों ने चीन के बड़े कवि चु युवान और टुफु की मट्टी की मूर्तियाँ बनाई थीं जो कि बिलकुल सजीव प्रतीत होती थीं। एक कारीगर ने मट्टी के दो तीतर बनाए थे जो हाथ की कारीगरी के सुन्दर नमूने थे। कई बरतनों पर करीगरों ने चीन की लोक-कथाओं को चित्रित किया था। इहसिंग के टी-सेट चीन के समस्त राष्ट्र में पसन्द किए जाते हैं। शान्तुंग प्रदेश के काले रंग के टी-पाट बड़े सुन्दर थे।

चीन का जरीदार रेशमी कपड़ा और साटिन जो कि ग्रामों में बुना जाता है, चीन से बाहर कई देशों में जाता है। इसके बाद छापे के कपड़े थे—कुछ पर फूल, हरी घास, मछली, पक्षी आदि का छापा था। इस प्रदर्शिनी में कई प्रकार के कसीदा काढ़े हुए कपड़े थे। यह चीन की स्त्रियों की प्रिय कला है। इसका भी लम्बा इतिहास है। चीन में बहुत-से स्थान इस कला के लिए प्रसिद्ध हैं। भिन्न भिन्न स्थानों पर क़सीदाकारी भिन्न-भिन्न तरीक़ों से की जाती है। यह क़सीदाकारी इतनी सुन्दर होती है कि एक रंग चित्र-सी प्रतीत होती है। ग्रामों और शहरों में कई प्रकार का सुई का काम किया जाता है। इसकी कई सहयोग-समितियाँ है। चीन में लैकर की वस्तुओं की कला बड़ी महत्वपूर्ण है। लैकर की वस्तुएँ मजबूत और पानी से खराब न हो सकनेवाली बनाई जाती हैं। ये वस्तुएँ भी कई ढंग की होती हैं। फुरील प्रदेश के फूचाऊ में यह कार्य सब से अच्छा होता है। किसी मौडेल पर पतला रेशम का कपड़ा मढ़ दिया जाता है और फिर उस पर लैकर लगा देते हैं और ज्यों ही यह सूख जाता है मौडेल को हटा दिया जाता है। इस प्रक्रिया को बार-बार दुहराने से हम जैसे चाहें वैसी वार्निश दे सकते हैं। पीकिंग की लाख की वस्तुओं में उत्कीर्णन भी किया जाता है और ये समस्त संसार में प्रसिद्ध हैं। लकड़ी और पत्थर का उत्कीर्णन दर्शनीय था। इनमें फूल थे, पक्षी थे और लोक-कथाओं के पात्र थे। कुछ उत्कीर्णनों पर सोने का पतला पत्र भी चढ़ाया गया था। एक पत्थर की मूर्ति "एक अमर माता" में एक कोरिया की महिला की वीरता के संबन्ध को चित्रित किया गया था। प्रदर्शिनी में तामचीनी के बरतन, पुराने रंग चित्रण, खिलौने, बाँस, घास, सन और घास की बनी हुई वस्तुओं को प्रदर्शित किया गया था। बाँस के बने हुए पंखे कागज जितने पतले होते हैं और उनमें प्राकृतिक दृश्य और फूल आदि चित्रित किए जाते हैं। घास के हैट भी बनाए जाते हैं। बाँस की टोकरियाँ और घास के हाथबैग हाथ की अद्भुत कारीगरी को प्रदर्शित करते हैं। किसान अपने बचे हुए समय में इन उद्योगों को करते हैं। इस प्रदर्शिनी को देखने के लिऐ हजारों कारीगर आए थे। इस प्रदर्शिनी को देखने से चीन के लोगों के हाथ की अद्भुत कारीगरी का परिचय प्राप्त होता था।"

सम्पादकीय

ये हिन्दीवाले कौन हैं ?

हमारे देश के बहुत-से राजनीतिज्ञ हमारे देश की भाषाविषयक समस्याओं को हल करने के लिए प्रायः हिन्दी वालों (?) को बहुत-से सत्परामर्श समय और असमय पर दिया करते हैं। सम्भवतः वे अपने आपको इन हिन्दीवालों से पृथक् करके और इन भाषाविषयक उलझनों का उत्तरदायित्व हिन्दीवालों पर डाल कर अपने आपको इस स्थिति में रख लेते हैं जिससे वे यह समझ लेते हैं कि वे इस प्रकार भाषाविषयक समस्याओं को न केवल सुगमता से हल कर सकते हैं अपि तु वे अपने आपको सब आक्षेपों से भी बचा सकते हैं जो कि उन लोगों पर किए जाते हैं जो भाषा-विषयक समस्या को किसी-न-किसी रूप में हल करने में लगे हुए हैं। प्रश्न यह है कि आखिर ये हिन्दीवाले हैं कौन ? क्या जो लोग हिन्दी-भाषी प्रान्तों में रहते हैं और जिनकी मातृभाषा हिन्दी है वे हिन्दीवाले हैं या जो लोग अहिन्दी प्रान्तों में रहते हैं और जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है परन्तु जो हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में शीघ्र-से-शीघ्र समस्त देश में प्रतिष्ठापित हुआ देखना चाहते हैं और उसके लिए लगातार प्रयत्नशील हैं — वे भी इन हिन्दीवालों में अन्तर्गत समझे जाते हैं। यदि हिन्दीवालों में उन अहिन्दी भाषी लोगों को भी अन्तर्गत किया जाता है जो हिन्दी के प्रेमी और प्रचारक हैं तो फिर हमारे राजनीतिज्ञों के उन सत्परामर्शों का जो कि वे हिन्दीवालों को दिया करते हैं कुछ विशेष अर्थ नहीं रह जाता और यदि वे इन हिन्दीवालों में एकमात्र उन्हीं लोगों की गिनती करते हैं जो हिन्दी भाषी राज्यों के निवासी हैं और जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और हिन्दी की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं—तब वे बहुत-से ऐसे कार्यों के लिए उन्हें अनावश्यक रूप से जिम्मेदार बना देते हैं जिनके लिए वे किसी भी प्रकार उत्तरदायी नहीं समझे जा सकते।

पिछले दिनों बम्बई राज्य के शिक्षामन्त्री ने यह घोषणा की कि बम्बई विश्वविद्यालय की परीक्षाओं को अगले वर्ष से हिन्दी में भी संचालित किया जाएगा। इस पर बहुत-से लोग आपत्ति उठा रहे हैं परन्तु क्या इसके लिए हिन्दीवालों को किसी प्रकार जिम्मेदार ठहराया जा सकता है ? अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी का जो भी कुछ कार्य हो रहा है वह अधिकांश में वे लोग ही कर रहे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। इसी प्रकार अहिन्दी राज्यों में हिन्दी भाषा के प्रशिक्षण के लिए वहाँ की सरकारें जो कुछ भी कर रही हैं वह सब अपनी जिम्मेदारी पर स्वयं कर रही हैं—उनकी भाषा विषयक रीति-नीति में हिन्दीवालों का कुछ भी हाथ नहीं है। अहिन्दी भाषी राज्यों में यदि ये हिन्दीवाले कुछ कार्य कर भी सकते हैं तो वे व्यक्तिगत रूप से ही कर सकते हैं। वे प्रशासन के स्तर पर न तो कुछ कर सकते हैं और न कर रहे हैं। किसी भी अहिन्दी प्रान्त में एक भी मंत्री ऐसा नहीं है जिसकी मातृभाषा हिन्दी हो। दक्षिण की यूनिवर्सिटियों में हिन्दी के समस्त प्राध्यापक अधिकांश में वहीं के रहने वाले हैं और जो इक्के-दुक्के वहाँ के रहने वाले नहीं हैं वे भी वर्षों वहाँ रहने के पश्चात् वहीं के रहनेवाले बन गए हैं। हम समझते हैं कि जब से भारतवर्ष के संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया गया है तब से हिन्दी-भाषी प्रदेशों से बहुत कम लोग इधर हिन्दी के कार्य के लिए आए हैं। इसलिए इन हिन्दीवालों को जब मुख़ातिब या सम्बोधित कर उन्हें देश की हिन्दी की समस्त प्रवृत्तियों के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है तो हमें आश्चर्य होता है।

जब ये राजनीतिज्ञ इन हिन्दीवालों को सम्बोधित कर यह कहते हैं कि उन्हें अहिन्दी भाषी प्रान्तों पर हिन्दी के लिए किसी प्रकार की ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं करनी चाहिए तो स्वभावतः ही यह प्रश्न उठता है कि क्या हिन्दी वाले इस स्थिति में हैं कि वे हिन्दी के विषय में अहिन्दी भाषी राज्यों पर किसी प्रकार की ज़ोर-ज़बर्दस्ती कर सकें और यदि वे इस प्रकार की स्थिति में ही नहीं है तो इस प्रकार के प्रश्नों को उठाने का क्या अर्थ हो सकता है ? हिन्दीवालों के पास कोई अपना दल-बल या इस प्रकार के शस्त्रास्त्र नहीं हैं जो किसी भी प्रकार वे कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती कर सकें। फिर एक ओर हिन्दी अकेली है और दूसरी ओर भारतीय गणराज्य की अन्य एक दर्जन भाषाएँ हैं। ऐसी अवस्था में ये दर्जन भाषाएँ ही हिन्दी के साथ ज़ोर-ज़बर्दन्ती कर सकती हैं—हिन्दी बिचारी अकेली है—वह इस स्थिति में ही नहीं है कि वह किसी भी प्रकार अपना बल-प्रदर्शन कर सके। हिन्दी

तो एकमात्र भारतीय समस्त प्रान्तों की सद्भावना और प्रेम के सहारे ही टिक सकती है ।

हिन्दी को संविधान की दृष्टि से भारत की राष्ट्रभाषा बनने से पूर्व ही बहुत-से अहिन्दी भाषी प्रान्तों में वहीं के निवासी हिन्दी के लिए कार्य कर रहे हैं और हमारी सम्मति में यह उनके ही प्रयत्नों का परिणाम है कि हिन्दी को यह स्थिति प्राप्त हुई है । उनके प्रयत्नों के बिना हिन्दी को यह स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती थी । इसलिए आज "हिन्दीवालों" में एकमात्र उन्हीं लोगों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और जो कि हिन्दी-भाषी प्रान्तों के रहने वाले है। हिन्दीवालों में समस्त भारत के लोग सम्मिलित होते हैं इसलिए भाषा विषयक प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करनेवाले हिन्दीवालों और अहिन्दी वालों में किसी प्रकार के भेद को उत्पन्न करने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता—एकमात्र इसके द्वारा कुछ ऐसी भ्रान्त धारणाएँ ही उत्पन्न हो सकती हैं जिनसे भाषाविषयक गुत्थियाँ और भी अधिक उलझ सकती हैं और इससे किसी प्रकार के लाभ होने की कोई सम्भावना नहीं है ।

ये राजनीतिज्ञ हिन्दीवालों को यह भी परामर्श देते हैं कि उन्हें इस या उस प्रकार का साहित्य उत्पन्न करना चाहिए । वे इस प्रकार इस विषय में हिन्दीवालों को संबोधित कर हिन्दी के लिए साहित्य के निर्माण के क्षेत्र को संकुचित कर देते हैं । हिन्दी में साहित्य को उत्पन्न करने का उत्तरदायित्व अब एकमात्र उन्हीं लोगों पर नहीं रह गया है जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और या जो हिन्दी प्रदेशों के रहनेवाले हैं । हिन्दी में साहित्य अब हमारे समस्त देश को उत्पन्न करना होगा और इस प्रकार के प्रयत्न भी हो रहे हैं और हमें इनका स्वागत करना चाहिए । हिन्दी साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उसी दिन वास्तव में राष्ट्रभाषा बन सकेगी जिस दिन उसमें भारतवर्ष की समस्त भाषाओं के महान् साहित्यकारों का सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा । यदि हिन्दी के साहित्यकारों से तात्पर्य एकमात्र उन्हीं से समझा जाएगा जो कि हिन्दी प्रान्तों के निवासी हैं और जिनकी मातृभाषा हिन्दी है तो इससे हिन्दी का क्षेत्र न केवल एकमात्र संकुचित हो जाएगा परन्तु इससे हिन्दी के साहित्य में विस्तार और विशालता उत्पन्न नहीं हो सकेगी । प्रयत्न इस प्रकार के होने चाहिएँ कि भारत के प्रदेशीय भाषाओं के साहित्यकार स्वयं अपने साहित्य को अपनी भाषाओं में प्रस्तुत करने के साथ हिन्दी में भी स्वयं प्रस्तुत करने में अपनी मातृभाषा के समान एक प्रकार के गौरव को अनुभव करें । हिन्दी के साहित्य की सर्वतोमुखी प्रगति और उन्नति का उत्तरदायित्व समस्त देश और राष्ट्र का है और जब तक समस्त प्रदेश चैतन्य और प्रबुद्ध होकर इस विषय में अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण नहीं करेंगे तब तक हमारी राष्ट्रभाषा के साहित्य में सम्पूर्णता और समस्त भारत के प्रदेशों का अंश सम्मिलित नहीं हो सकेगा । वह समय अब आ गया है जब कि अन्य प्रान्तों के हिन्दी के साहित्यकारों को पूर्ण मान्यता दी जानी चाहिए जैसी कि दी भी जा रही है और अब हिन्दी के साहित्यकार हिन्दी के प्रान्तों तक ही सीमित नहीं रह सकते ।

सत्य तो यह है कि हमारे देश की भाषाविषयक समस्याओं को साहित्यकार जितनी सुगमता से अपनी निर्माणात्मक प्रतिभा, कला और कुशलता से हल कर सकते हैं राजनैतिक महानुभाव उस प्रकार नहीं कर सकते । वर्तमान जीवन का सबसे अधिक दुःखद पहलू यह है कि राजनीतिज्ञ ही जीवन के समस्त क्षेत्रों को घेर कर उस पर अपना एकाधिपत्य जमाए हुए हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीति एक वट वृक्ष के समान है जो अपनी छाया में किसी और वृक्ष को पनपने ही नहीं देती ।

अंग्रेज़ी भाषा और हमारे देश का साहित्य

यह समझा जाता है कि दक्षिण के साहित्यकार प्रायः अंग्रेजी के पक्षपाती है । अभी पिछले दिनों हम आन्ध्र देश की प्रसिद्ध सांस्कृतिक और साहित्यिक पत्रिका "त्रिवेणी" के पन्ने उलट रहे थे । यह पत्रिका अंग्रेजी में निकलती है । पुस्तकों की आलोचना में एक पुस्तक थी "डौड्र अण्ड अदर स्टोरीज" । यह पुस्तक लिखी है श्रीयुत आर. के. नारायण ने और इसकी आलोचना की है श्रीयुत मस्ती वेंकटेश आयंगार ने । श्रीयुत आर. के. नारायण तमिल और अंग्रेजी के ख्यातनामा कथाकार और साहित्यकार हैं । उनकी बहुत-सी कहानियों के संग्रह अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुके हैं जिनकी प्रशंसा कई अंग्रेजी साहित्यकारों ने की है । मद्रास के प्रसिद्ध पत्र "हिन्दु" के साप्ताहिक संस्करणों में अंग्रेजी में उनकी कहानियाँ और निबन्ध अकसर प्रकाशित होते रहते हैं । श्रीयुत मस्ती वेंकटेश आयंगार कन्नड़ भाषा के विख्यात कथालेखक और

आलोचक हैं। उनकी कई कहानियों के कन्नड़ से अंग्रेज़ी में अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। उनकी एक कथा का अनुवाद हमने 'अजन्ता' में भी प्रकाशित किया है। इसलिए श्री आर, के. नारायण की कथापुस्तक "डौडू अएड अदर स्टोरीज" की आलोचना के नीचे श्रीयुत मस्ती वेंकटेश आयंगार का नाम पढ़ा तो हम उनकी आलोचना के पढ़ने के लोभ को संवरण न कर सके। अपनी आलोचना में श्री मस्ती वेंकटेश आयंगार ने श्रीयुत आर. नारायण की अंग्रेज़ी के विषय में जो विचार अभिव्यक्त किए हैं उन्हें पढ़ कर हमें यह अनुभव हुआ कि दक्षिण के सभी साहित्यकार अंग्रेज़ी में अपने साहित्य को निर्माण करने के पक्षपाती नहीं हैं। जब कि हमारे देश के कई राजनीतिज्ञ "अंग्रेज़ी हमारी है" के नारे लगा रहे हैं श्रीयुत मस्ती वेंकटेश आयंगार के विचारों को पढ़ कर हमें प्रसन्नता हुई। साहित्य एकमात्र भाषा का नाम नहीं है यद्यपि वह भाषा के रूप में अभिव्यक्त होता है। साहित्य तो वह जीवन है जो भाषा में मूर्त्तिमान् होता है। साहित्य जीवन से स्वतन्त्र वस्तु नहीं हो सकती। जिस भाषा के पीछे जीवन नहीं है उस भाषा में अपनी कोई विशेषता नहीं हो सकती। भारतीय जीवन जिस प्रकार भारतीय भाषाओं में मूर्त्तिमान् हो सकता है वैसा अन्य भाषाओं या अंग्रेज़ी में नहीं हो सकता। भारतीय भाषाएँ निर्बल सही, निर्धन सही परन्तु उनकी भी अपनी ही विशेषता है—ऐसी विशेषता जो संसार की किसी भी सशक्त से सशक्त और समृद्ध से समृद्ध भाषा में नहीं पाई जा सकती। इस भाषा को उपेक्षा की दृष्टि से देखने का अर्थ उस जीवन को उपेक्षा की दृष्टि से देखना है जिससे कि उसका सम्बन्ध है। श्रीयुत मस्ती वेङ्कटेश आयंगार अपनी आलोचना में लिखते हैं।

"........Shri Narain's English has been praised by English people and stands in no need of Indian approval. If, inspite of this, one may presume to say a word or two, the style, so far as an Indian—this Indian can judge, is mostly good and has an ease and natural flow. If after all this I make a suggestion to Shri Narain I hope he will not misunderstand me. That suggestiou is that he should write in some language of our people. A writer of Shri Narain's ability does not need to be told that story-telling is not a matter of the language learnt in the class-room but from daily life and almost any reading. This would be accepted as true anywhere but in our unfortunate country. Writing in the country's language, our author would get one of the highest place in our literature......"

—श्री नारायण जी की अंग्रेज़ी की प्रशंसा स्वयं अंग्रेज़ों ने की है इसलिए उसके विषय में भारतीय लोगों की प्रशंसा की आवश्यकता नहीं। मेरे जैसा एक भारतीय उनकी शैली के विषय में यह कह सकता है कि उनकी शैली अधिकांश में अच्छी है और उसमें सरलता और स्वाभाविकता है। इतने पर भी मैं इस विषय में श्री नारायण से एक निवेदन करना चाहता हूँ। आशा है वे मुझे गलत न समझेंगे। उनसे मेरा निवेदन यह है कि उन्हें अपने देश की किसी भाषा में लिखना चाहिए। श्री नारायण जैसे योग्य व्यक्ति से यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कथा का लिखना या कोई अन्य वस्तु एक मात्र उस भाषा में लिखने की वस्तु नहीं हो सकती जिसे कि स्कूल के कमरों में सीखा गया है। इसे तो प्रतिदिन के जीवन से पढ़ना पड़ता है। इस बात को हमारे अभागे देश के सिवाय सर्वत्र सत्य माना जायगा। यदि श्री नारायण अपने देश की किसी भाषा में लिखेंगे तो वे हमारे साहित्य में एक अत्युन्नत स्थान प्राप्त करेंगे...।

दुःख की बात यह है कि हम भाषा को उससे सम्बद्ध जीवन से पृथक् करके देखते हैं जब कि भाषा को जीवन से किसी भी प्रकार पृथक् नहीं किया जा सकता। जीवन लि भाषा को यदि उससे भिन्न भाषा में अभिव्यक्त किया जाए तो उसमें न केवल स्वाभाविकता होते हुए भी एक प्रकार की अस्वाभाविकता अवश्य रहेगी अपि तु उसके चित्रण में कलात्मक पूर्णता आ ही नहीं सकती। भारतवर्ष के जीवन की अभिव्यक्ति भारतीय भाषाओं में जिस प्रकार हो सकती है उस प्रकार अंग्रेज़ी में नहीं हो सकती। अंग्रेज़ी भाषा चाहे कितनी सशक्त और समृद्ध क्यों न हो वह भारतीय जीवन का अंग नहीं है और इस कारण वह भारतीय जीवन को हज़ार कोशिश करने पर भी भारतीय भाषाओं की तरह सम्पूर्ण रूप मूर्तिमान् नहीं कर सकती

हर प्रकार के काग़ज़ के श्रेष्ठ निर्माता

ٹریڈ مارک رجسٹرڈ

SIRPUR

REGISTERED. TRADE MARK

सिरपुर पेपर मिल्स लिमिटेड

सिरपुर काग़ज़ नगर (सेण्ट्रल रेल्वे) हैदराबाद दक्षिण

जिंग एजेण्टस : **मेसर्स बिरला ब्रदर्स लि.** ८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

Telephone : 4610 [Estd. MARCH 1915] Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :	*Head Office :*	*Branch Office :*
UNIVERSITY BRANCH (ADIKMET)	SHAHRAH-E-OSMANI, HYDERABAD-DECCAN.	THUNGABHADRA PROJECT (MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.

SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
MANAGING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT.

स्वास्थ्य ही सुख की कुंजी है

आयुर्वेद शास्त्र की महानतम् प्राप्ति निरन्तर खरल की प्रक्रिया द्वारा नौ अमूल्य रत्नों की स्वास्थ्य प्रदायिनी शक्ति को विकसित करना है।

कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति
विश्व-विख्यात आविष्कर्त्ता
का
नया आविष्कार

"नवरत्न कल्प"

हीरा, मानिक, मोती, नीलम, पुष्पराग, मूँगा तथा अन्य
बहुमूल्य नौ रत्नों का यौगिक

पूर्णतया विष रहित निरापद औषधि जो सभी ऋतुओं में सभी उम्र के लोगों के लिए उपयोगी है।

हृदय-रोग, मानसिक दुर्बलता, अजीर्ण, रक्तदोष, पागलपन, मधुमेह, उन्माद, बवासीर और श्वास-रोग का शर्त्तिया इलाज

विवरण के लिए आज ही लिखिए

प्रबन्धक : नवरत्न कल्प फार्मेसी
जलंधर शहर (भारत)

तार : नवरत्न

अजन्ता

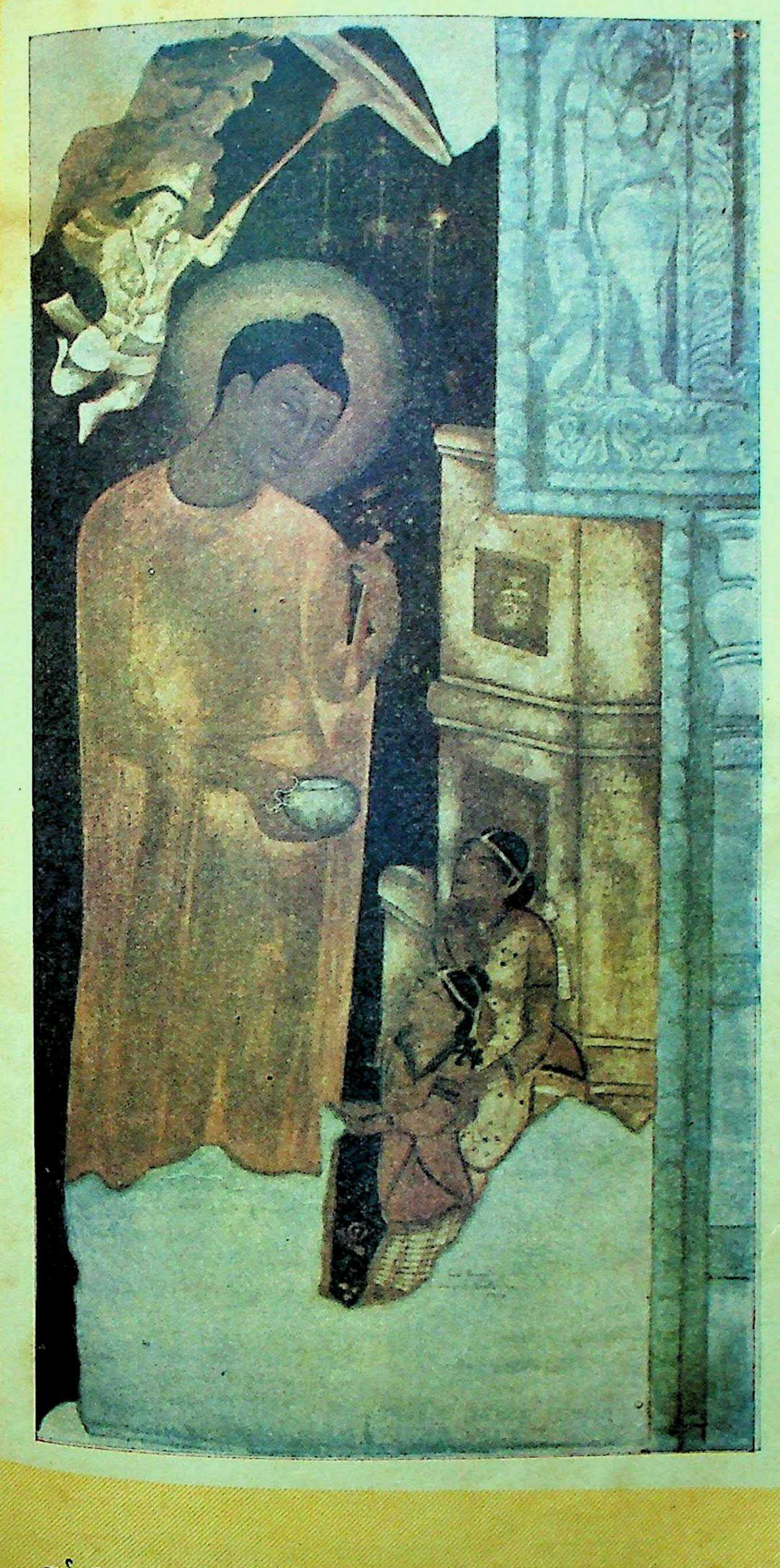

वर्ष ६ जुलाई १९५७ अंक ७

ताज ग्लास वर्क्स

लिमिटेड

पो० आ० सनतनगर, हैदराबाद-द.

काँच के सामान के सर्वश्रेष्ठ निर्माता

सभी प्रकार की सुन्दर और मज़बूत काँच की बोतलें, ग्लोब

और

ग्लास प्राप्त करने का स्थान

मकान की सजावट और सौन्दर्य वृद्धि के लिए

सभी प्रकार के काँच के सामान

हैदराबाद आल्विन मेटल वर्क्स

लिमिटेड

सनतनगर, हैदराबाद-द. १८

सर्वोत्तम स्टील फ़र्निचर के निर्माता

हर प्रकार का फ़र्निचर

मकान, दफ़्तर, दूकान और अस्पतालों के लिए

ख़रीदिए !

राष्ट्र की सुन्दरतम और मज़बूत बसों के निर्माता

जे० बी० ग्लुकोस बिस्कुटों से

विहार के समय अल्प आहार का कार्यक्रम सफलतापूर्वक
सम्पन्न किया जा सकता है।

*

J.B.

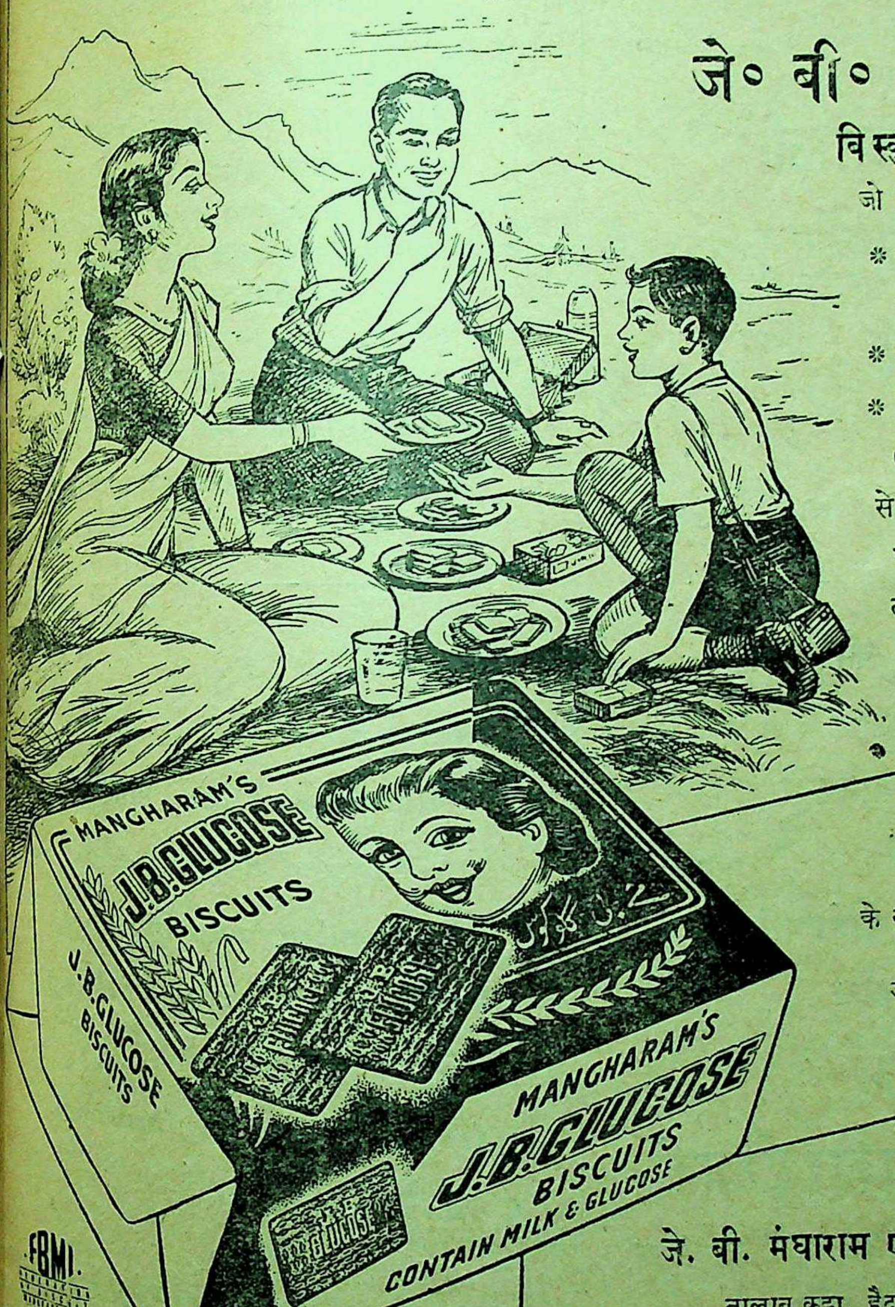
MANGHARAM'S
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
MANGHARAM'S
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
CONTAIN MILK & GLUCOSE
FBMI.

जे० बी० ग्लुकोस

बिस्कुट

जो कि

- * शुद्ध तथा उत्तम गेहूँ का मैदा
- * मलाईयुक्त दूध
- * ग्लुकोस (जीवन शक्तिप्रद)

से तैयार किये जाते हैं।
भट्टी से निकले हुए
ताज़े भुरभुराहटयुक्त
बिस्कुट के लिए

जे० बी०

के सही चिह्न को एक बार

ज़रूर देख लीजिए !

जे. बी. मंघाराम एण्ड कम्पनी
तालाब कट्टा, हैदराबाद द०

स्थानीय एजेण्ट :
के० मोतीराम एण्ड कम्पनी

बेगमबाज़ार, आबिदरोड, हैदराबाद
स्टेशन रोड, सिकन्दराबाद

इसे आप कभी मत भूलिए !

टुवीड्, गेबरडीन, पनामा, सिल्क शर्टिंग

आदि का हमारा नया स्टाक आपकी
पसन्द की अवश्य ही
पूर्ति करेगा ।

आर. पेण्टोजी
क्लॉथ मर्चेण्ट

पत्थरगट्टी, हैदराबाद (दक्षिण)

तार का पताः-'टुवीड्' फो. नं. ४७६९

सिकन्दराबाद में साहित्यिक पुस्तकों
का
एक मात्र प्रतिष्ठान

* **पुस्तक भवन** *

६५९२ महबूब कॉलेज लेन, सिकन्दराबाद
हिन्दी प्रचार सभा, सिकन्दराबाद
नगर शाखा द्वारा स्थापित
सभी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम, पुस्तकालयों के लिए
उत्तमोत्तम ग्रन्थ, और बाल-साहित्य
हमारी विशेषताएँ

❀

निम्न लिखित
प्रकाशकों की पुस्तकें थोक भाव में हमसे लीजिए:-
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

आपके कपड़ों की सुरक्षा
के लिए
सुन्दरतम बनियनों
एवं
मज़बूत मोजों
के निर्माता

दी
हैदराबाद फाइन होजरी
लिमिटेड
इण्डस्ट्रियल एरिया
आजमाबाद-हैदराबाद-दक्षिण.

Education
Start - in - Life
Marriage of your children
Assured without any
embarrassment
Besides a comfortable old age
for you
for All Types Of Insurance

Consult:-

THE
HYDERABAD CO-OPERATIVE
INSURANCE SOCIETY Ltd.
Bashir Bagh Road, Hyderabad-Dn.

FIRE!

ACCIDENT!

MARINE!

The Hyderabad United Insurance Company;

(LIMITED)

Sponsored by

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164.
ABID ROAD, HYDERABAD-Dn.

Telegram: **HUICOL**

Telephone: **5579**

Chairman
L. N. GUPTA Esqr. I. A. S.

General Manager
H. D. MEHTA Esqr.

Branches :

BOMBAY, CALCUTTA, MADRAS, NIZAMABAD & MANCHIRIAL.

'HIND'

साहित्य, संस्कृति और कला का प्रतिनिधि

'जन-साहित्य'

प्रगतिशील परम्पराओं का द्वैमासिक संगम

सम्पादक :

भगवानसिंह 'विमल'   कन्हैयालाल 'चंचरीक'

एक प्रति मूल्य ॥=)   ●   वार्षिक मूल्य ३॥)

प्रथम संख्या के कुछ लेखक और कवि

लेखक : डॉ॰ रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदानसिंह चौहान, डॉ॰ रांगेय राघव

कहानीकार : राजेन्द्र यादव, कृष्णकांत दुबे, नरेश मेहता

कवि : प्रभाकर माचवे, रमानाथ अवस्थी, केदारनाथ अग्रवाल, घनश्याम अस्थाना आदि।

प्रत्येक अंक संग्रहणीय होगा, साल में छः अंक निकलेंगे।

नमूने की प्रति के लिए दस आने का मनीआर्डर भेजें।

जनसाहित्य प्रकाशन, हाथरस (उ॰ प्र॰)

हमारे सुविख्यात प्रकाशन

स्वामी विवेकानन्दजी की सुप्रसिद्ध पुस्तकें

भारत में विवेकानन्द : जैकेट सहित, सचित्र ५) "आज की परिस्थिति के उपयुक्त राष्ट्र-निर्माण संबन्धी वैध एवं ठोस विचारों से भरे, स्वामी जी द्वारा भारत में दिए गए भावयुक्त स्फूर्तिप्रद भाषण"

विवेकानन्द जी के संग में : आकर्षक जैकेट सहित ५।) "स्वामी जी के आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, कला-विषयक तथा भक्ति संबन्धी संभाषणों का रोचक, महान् शिक्षाप्रद तथा पथ प्रदर्शक संग्रह।"

पत्रावली : दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २=) "स्वामी जी के शक्ति सम्पन्न पत्रों का सङ्कलन।"

देववाणी : सचित्र, २=) "अमृततुल्य, आध्यात्मिक अन्तः प्रेरणा से भरे उपदेश।" शक्तिदाई विचार ॥=); भारतीय नारी ॥।); व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १=); मेरे गुरुदेव ॥=); विवेकानन्द जी की कथाएँ १।); कवितावली ॥=)

धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : दो भागों में, सजिल्द, आकर्षक जैकेट सहित, प्रत्येक का २॥।) "धर्म-जीवन की उलझनों का सरस भाषा में सूक्ष्म विवेचन करते हुए उनके परिहार का मार्ग दर्शाया है।"

विवेकानन्द-चरित : हिन्दी में स्वामी जी की एक मात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकट ६)

श्री रामकृष्ण लीलामृत : विस्तृत जीवनी, दो भागों में, महात्मा गांधी की भूमिका सहित, प्रत्येक का ५)

श्रीरामकृष्ण वचनामृत : तीन भागों में, संसार की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित, सजिल्द, जैकेट प्र. भा. ६); द्वि. भा. ६); तृ. भा. ७)

गीतातत्व : स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु भाई स्वामी शारदानन्द कृत, सुन्दर जैकेट सहित, २।=)

स्वामीजी की अन्यान्य लोकप्रिय पुस्तकें

ज्ञान योग ३); भक्तियोग १।=); राजयोग ॥); कर्मयोग १॥=); प्रेम योग १।=); सरल राजयोग ॥); आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १।); हिन्दू धर्म १॥); धर्म रहस्य १); धर्म विज्ञान १॥=); हिन्दू धर्म के पक्ष में ॥=); शिकागो वक्तृता ॥=); मरणोत्तर जीवन ॥); स्वाधीन भारत जय हो १=); प्राच्य और पाश्चात्य १।); वर्तमान भारत ॥)

नए प्रकाशन : जाति, संस्कृति और समाजवाद १); चिन्तनीय बातें १); विविध प्रसङ्ग १=)

विस्तृत सूची पत्र के लिए लिखिए : श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली (अ) नागपुर—१ (म॰ प्र॰)

हिन्दी प्रचार सभा के कुछ प्रकाशन

१ हिन्दी बोध प्रवेशिका	मूल्य	०	१०	०
२ मणियाँ *(जीवन चरित्र)* : ले० श्री राजकिशोर पाण्डेय	,,	०	१०	०
३ तुलसीदास *(नाटक)* : ले० श्री श्रीराम शर्मा	,,	१	२	०
४ गद्यसोपान—भाग १ संकलन	,,	०	१२	०
५ ,, भाग २ ,,	,,	१	०	०
६ ,, भाग ३ ,,	,,	२	०	०
बाल साहित्य माला :				
७ बालपद : ले० श्री पं० वंशीधर जी विद्यालङ्कार	,,	०	८	०
८ बालकों की कहानियाँ : ले० श्री पं० श्रीरामजी शर्मा	,,	०	८	०
९ गाँवों की कहानियाँ : ले० श्री पं० रामनिरंजन जी पाण्डेय	,,	०	८	०
१० दक्षिण के महापुरुष भाग १ : ले० श्री राजकिशोर जी पाण्डेय	,,	०	८	०
११ दो एकाँकी : श्रीमती विमला लूथरा	,,	०	८	०
१२ हैदराबाद के ऐतिहासिक और कला-स्थल : श्रीमती कमलारानी संघी	,,	०	८	०
१३ दक्खिनी का पद्य और गद्य : श्री पं० श्रीराम जी शर्मा	,,	१०	८	०
१४ वजही का रिसाला अलिफ़-बे : ,,	,,	०	४	०
१५ चाबुक *(कहानी-संग्रह)* : ले० श्री पं० विनायकराव जी कोरटकर विद्यालंकार	,,	१	१२	०
१६ विभूतियाँ *(जीवन चारित्र)* : ले० श्री राजकिशोर पाण्डेय	,,	०	१२	०
१७ हिन्दी रचना और निबन्ध : ,,	,,	१	८	०
१८ पञ्चामृत *(तेलुगु)* : *(प्रेस में)* ले० श्री बालशौरि रेड्डी				

कुछ सम्मतियाँ

चाबुक :

१ सत्रह कहानियों के इस संग्रह को हिन्दी कथा साहित्य की एक नई कड़ी कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। प्रत्येक कहानी में सजीव वर्णन और मानवी स्वभाव का अन्वीक्षण है। लेखक ने सरकारी अफसरों में व्याप्त भ्रष्टाचार को, धनाढ्य व्यक्तियों के चटकीले जीवन को काफी निकट से देखा है और परखा है और फिर चुटकियाँ भी बड़े गम्भीर भाव से ली हैं—'आज' बनारस विशेषांक

२ इन कहानियों में आधुनिक कहानी-कला और शिल्प का निखार कम किन्तु वास्तविकता तथा व्यंग्य अधिक है, जिससे कहानियों में रोचकता आ गई है—नवीन प्रकाशन मई १९५४

३ घटना के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ कथा के पात्रों के कर्म द्वारा होनेवाले रस-परिपाक अद्भुत हास्य या भयानक दृश्य इत्यादि हमारे हृदय को चुम्बकीय प्रणाली से स्पर्श करते रहते हैं। प्रत्येक कहानी में कथाकार की अनुभूति मूर्त हो उठी है—अजन्ता जून १९५४

बाल-साहित्य-माला: "बालपद"

बच्चों के प्रारंभिक ज्ञान की वृद्धि करने के सचित्र पद्य इस पुस्तक में हैं—नवीन प्रकाशन मई १९५४

कथा साहित्य में चरित्र चित्रण

का

महत्वपूर्ण प्रयोग

'मेघदूत' के महत्वपूर्ण प्रकाशन के बाद

प्रेरणा का छठा-सातवाँ अंक

'प्रेमचन्द के पात्र'

विशेषांक है

* इस अंक में प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों के सभी महत्वपूर्ण पात्रों पर अधिकार पूर्ण लेख हैं।

* विशेषांक का मूल्य लगभग ४) है।

* प्रेरणा के स्थाई ग्राहकों के लिए वही मूल्य।

शीघ्र ही वार्षिक ग्राहक बन कर
इस सुविधा का लाभ उठाएँ।

आर्डर 'प्रेरणा' के पते से भेजिये।

प्रेरणा : सोजतीगेट, जोधपुर.

'आर्थिकसमीक्षा'

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के आर्थिक, राजनीति
अनुसंधान विभाग का पाक्षिक पत्र।

प्रधान सम्पादक : **श्री आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल**

सम्पादक : **श्री हर्षदेव मालवीय**

हिन्दी में अनूठा प्रयास :

आर्थिक विषयों पर विचारपूर्ण लेख
आर्थिक सूचनाओं से ओतप्रोत

भारत के विकास में रुचि रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लि
अत्यावश्यक तथा पुस्तकालयों के लिए
अनिवार्य रूप से आवश्यक।

वार्षिक चन्दा : ५ रुपए * एक प्रति का ३॥ आना

व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी
७, जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली.

मद्रास, बिहार तथा पंजाब सरकार द्वारा
समस्त स्कूल तथा लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत

देशबन्धुः पुस्तकालय मथुरा एवं ब्रज का निराला मासिक पत्र

* प्रधान सं० कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०
* सम्पादक—ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी
* स० सम्पादक—बैजनाथ दाणी

❀ देशबन्धु ❀

वार्षिक मूल्य ४-०-० :: एक प्रति ०-६-०

नमूना के लिए ०-६-० के टिकट भेजें

ब्रज संस्कृति, ब्रज की ललित कलाएँ, स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, रासलीला, रामलीला, भगत ब्रज के लोक गीत, लोक कहानियाँ, वेशभूषा, लोक व्यवहार आदि पर सुन्दर लेख पढ़िए।

पता—व्यवस्थापक "देशबन्धु" कार्यालय
मथुरा (यू० पी०)

सस्ता, सरल, आकर्षक और शिक्षाप्रद
राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

* कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।

* हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।

* देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं: मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत्, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)–छमाही ३)–एक प्रति ८ आना

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

टेलीफोन नं. २५८७

वार्षिक मूल्य ८ रु.

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम, राष्ट्र-निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए **'सम्पदा'** सबसे उपयोगी पत्र है ।

'सम्पदा' के **योजना अंक** में पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा है **वस्त्र उद्योग अंक** मूल्य १) रु.

अभी से ग्राहक बनिए ।

नमूने के लिए ।।।) **आने के टिकट भेजिए ।**

मैनेजर **'सम्पदा'** *अशोक प्रकाशन मन्दिर*
रोशन-आरा रोड—दिल्ली

सम्पादक

राष्ट्रभारती

मोहनलाल भट्ट
हृषिकेश शर्मा

सस्ती, सुन्दर, साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका । इस पत्रिका को, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान् साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है । ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखा-चित्र और शब्दचित्र । बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, उर्दू, तामिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं ।

वार्षिक चन्दा ६) रुपए । नमूने की प्रति १० आने मात्र।

ग्राहक बनाने वालों को विशेष सुविधा दी जाएगी

पता : व्यवस्थापक,
'राष्ट्रभारती' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
पो० हिन्दी नगर, वर्धा (मध्य प्रदेश)

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र

卐

दर्शन और मनोविज्ञान की
आधुनिक प्रवृत्तियों पर
प्रकाश डालनेवाला
हिन्दी में अपने ढङ्ग का
अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए ।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ **सिद्धगिरि, बनारस**

जीवन साहित्य

हिन्दी के उन मासिक पत्रों में से है जो

१. लोक रुचि को नीचे नहीं, ऊपर ले जाते हैं,
२. मानव को मानव से लड़ाते नहीं, मिलाते हैं,
३. सच्ची और स्थायी शान्ति को असंभव नहीं, संभव बनाते हैं,
४. आर्थिक लाभ के आगे झुकते नहीं, सेवा के कठोर पथ पर चलते हैं,

जीवन साहित्य की सात्विक सामग्री को छोटे बड़े, स्त्री-बच्चे सब निःसंकोच पढ़ सकते हैं । उसके विशेषांक तो एक से एक बढ़ कर होते हैं ।

जीवन साहित्य विज्ञापन नहीं देता । केवल ग्राहकों के भरोसे चलता है । ऐसे पत्र के ग्राहक बनने का अर्थ होता है राष्ट्र की सेवा में योग देना ।

वार्षिक शुल्क के ४) रु. भेज कर ग्राहक बन जाइए ।

ग्राहक बनने पर मण्डल की पुस्तकों पर
आपको कमीशन पाने की भी सुविधा हो जाएगी ।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

'अजन्ता'
की
परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद-द.

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर
इन्स्टीट्यूट ऑफ एशियन स्टडीज़, हैदराबाद-द.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुकर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल आफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

'अजन्ता' की पुरानी फ़ाइलें जिल्द बँध कर तैयार हो गई हैं

◆

'अजन्ता' का प्रकाशन अक्तूबर १९४९ से आरम्भ हुआ। विगत पाँच वर्षों में 'अजन्ता' ने हिन्दी साहित्य के भण्डार को बहुमूल्य रचनाओं से भरा है। 'अजन्ता' के अङ्क इन वर्षों में हिन्दी साहित्य की प्रगति को जानने के लिए संग्रहणीय हैं।

अङ्कों का वास्तविक मूल्य ही जिल्द का मूल्य रखा गया है। ज़िल्द और डाक-व्यय मुफ्त। निजी और सार्वजनिक पुस्तकालय के लिए शीघ्र आर्डर भेजिए।

'अजन्ता', हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली, स्टेशन रोड, :: हैदराबाद-दक्षिण.

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६ जुलाई १९५४ अङ्क ७

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

प्रबन्ध सम्पादक

हरिकृष्ण पुरोहित एम. ए.

संचालक

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के
शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

तार : हिन्दी

फ़ोन : ५,

अनुक्रम

कुमारी
आरसीप्रसाद सिंह १

नये छन्द
नटवरलाल 'स्नेही' ४

झड़ी
रामबहादुर सिंह 'मुक्त' ५

बाष्प-गामिनी
रामावतार चेतन ६

गीत
सुमित्रा कुमारी सिन्हा ७

नवागता से
श्रीहरि ८

गीति-काव्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ
आरसीप्रसाद सिंह ९

लोक-कथाओं का सामाजिक महत्व
हंसराज 'रहबर' १४

बीसवीं सदी के अंग्रेज़ी उपन्यासकार
कृष्णशंकर व्यास २०

भारतीय चित्रकला में नेत्र-चित्रण
महेन्द्रनाथ सिंह २३

तेलुगु कहावतें
जे. बी. भीमसेन 'निर्मल' २६

उस्तरे की धार पर
अवनीन्द्र कुमार विद्यालङ्कार २७

ऐतिहासिक उपन्यास और "झाँसी की रानी"
प्रेमचन्द्र ३२

समकालीन हिन्दी कविता में पावस
सुरेन्द्रमोहन मिश्र ३६

मानसिक रोगों की प्रेम-चिकित्सा
लालजी राम शुक्ल ३९

काश्मीरी लोक-जीवन की एक झाँकी
तिलक ४२

पेरियालवार का पिल्लैतमिल
आनन्दवल्लि परमेश्वरन्

सम्बन्ध (कहानी)
हर्षनाथ श्रीवास्तव

नीलांजन घन आए (संगीत रूपक)
अनिल कुमार

शिमला से एक पत्र
बनारसीदास चतुर्वेदी

कला-चर्चा
विश्वनाथ मुखर्जी

चिट्ठी-पत्री
श्याम परमार, उमाशंकर पाण्डेय, नरसिंहाचार्य
सुभाषचन्द्र शुक्ल, श्यामाचरण दुबे

नीर-क्षीर
गोविन्द रामायण : सन्त इन्द्रसिंह चक्रवर्ती, तेलुगु और उसका साहित्य : हनुमच्छास्त्री 'अयाचित', काश्मीर की लोक-कथाएँ : नन्दलाल चत्ता, आजकल : स. देवेन्द्र सत्यार्थी, आर्य सिद्धान्त दीप : मदनमोहन विद्यासागर, इन्सान की कहानी : मुल्कराज आनन्द, आधुनिक योरप का राजनीतिक दर्शन : श्याम सुन्दर गुप्त एम. ए., एल-एल. बी., बालपद : वंशीधर विद्यालङ्कार, बालकों की कहानियाँ : श्रीराम शर्मा, गावों की कहानियाँ : रामनिरंजन पाण्डेय

सामयिक
(१) अमरीका में नीग्रो पत्र-पत्रिकाएँ
(२) कथाकली
(३) जापान में संस्कृत अध्ययन
(४) आज का अमरीका
(५) सूफ़ी किसे कहते हैं

सम्पादकीय
वंशीधर विद्यालङ्कार

चित्र

बद्ध कुक्कुट : चित्रकार श्री शेषगिरिराव
रायगिरि की चट्टानें : ,, ,,

वार्षिक मूल्य ६) रु०

एक अङ्क का १)

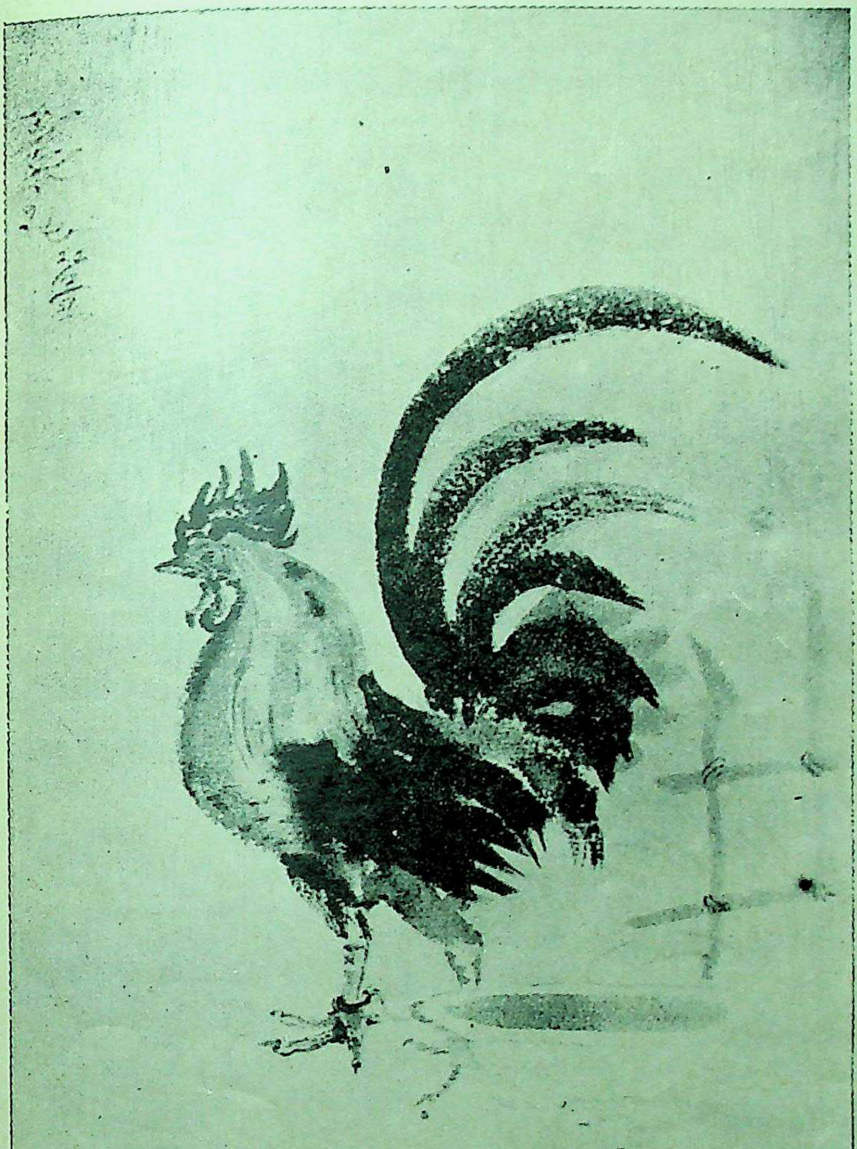

बद्ध कुक्कुट

चित्रकार : **श्री के. शेषगिरिराव**

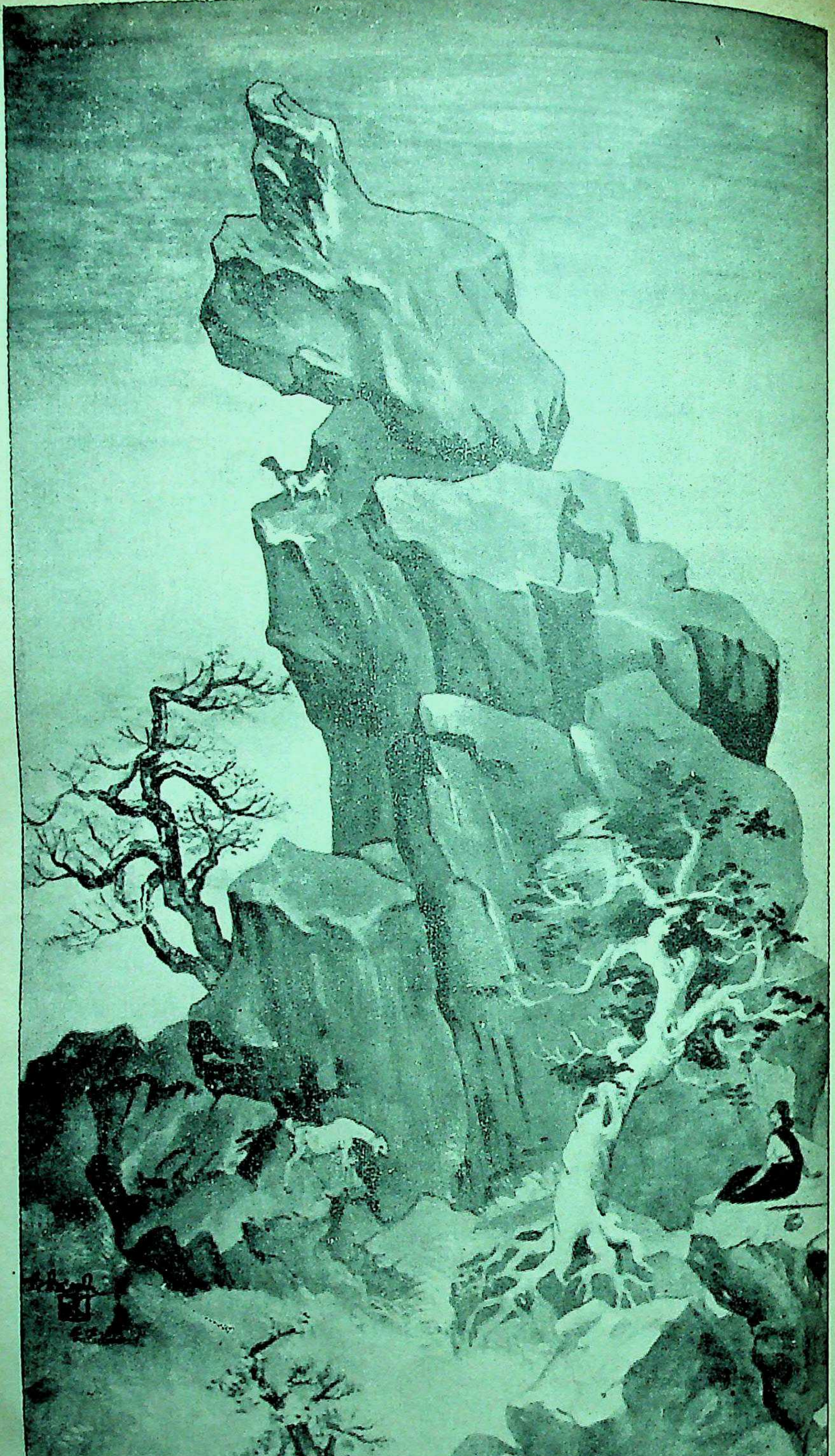

रायगिरि की चट्टानें

चित्रकार : श्री के. शेषगिरिराव

अजन्ता
S.KALANDRE.R

वर्ष ६ जुलाई अङ्क ७

कुमारी

हे किशोरी, हे कुमारी !
तू भुवन-भर की प्रिया है, तू निखिल संसार-नारी !
हे किशोरी, हे कुमारी !

तू जिसे चाहे, हृदय के
नव-कमल-दल पर बिठा ले !
अश्रु से धोए हुए
अभिमान का घूँघट उठा दे !
चाहता तेरे चरण के
ताल पर जग नृत्य करना !
वायुमण्डल दश दिशाओं में
तरंगित गन्ध भरना !
मोर-पंखी कुसुम अञ्चल स्पर्श से उन्मन पुजारी !
हे किशोरी, हे कुमारी !

तू गुलाबी ज्वाल बन कर
तरुण के उर में दहकती
कल्पतरु की सुरभि का
हिल्लोल बन मन में महकती
इन्द्रधनुषी व्योम में तू
तड़िल्लेखा की छटा है !
तू प्रथम आषाढ़ की
अभिमानिनी काली घटा है !
मदन भस्मीभूत हो कर मिट गया, पर तू न हारी !
हे किशोरी, हे कुमारी !

तू अछूती दीप-ज्वाला,
तू गगन की कुसुम-कलिका;
गूँजता अहरह विजन पथ में
चपल आह्वान अलि का
तू विजड़ रोमालि में भी
एक पावन प्राण-धारा !
तू मनोरथ है अरुण,
आनन्द-सागर का किनारा
स्वर्ग की तू पुर-वधू, है देवताओं की दुलारी !
हे किशोरी, हे कुमारी !

ज्योति के सौन्दर्य-वन में
तू खिली मधुमास बन कर
मुस्कुरा उठती कमल-सी
पंखुड़ी पर हास बन कर
मस्त मधुपों के स्वरों में
गीत का गुंजार होता
और शत-शत कामनाओं का
मुखर संसार होता
क्षोभ की निर्मल लहर, तू बुलबुलों की बेक़रारी !
हे किशोरी, हे कुमारी !

तू शिशिर की धूप कोमल,
तरुण शबनम-दल-हृदय में !
एक पुष्पल दाह, जो
आता किसी मादक समय में !
एक पग पड़ता न भू पर,
दूसरा तब तक गगन में

१६५४

कल्पना के फूल खिलते
रोज़ तारों के चमन में
देह की मरकत-लता पर सजग सुषमा-सृष्टि सारी !
हे किशोरी, हे कुमारी !

भूल जाते पथ पथिक भी,
अटल अपना लक्ष्य खो कर !
और काला नाग भी झुक
झूमता है मुग्ध हो कर !
स्वप्न-से जैसे निशा की
माँग में मोती भरे हैं
लाज के आनन्द-कुंकुम से
कनक-परिमल झड़े हैं
अमृत से सींची हुई तू नवल केसर-कुसुम-क्यारी !
हे किशोरी, हे कुमारी !

राजपथ पर जब गहन
सन्देह-सी तू गमन करती,
बाढ़-सी आती, हृदय में
रूप की यमुना उमड़ती
हे विचित्रे ! चित्र तेरा ही
लिखा उर-उर-भवन में
सुमन में अज्ञात सिहरन
और पुलकन है पवन में
शून्य सायंकाल में तू राग है कोई पहाड़ी !
हे किशोरी, हे कुमारी !

मौन आधी रात में तू
अधखिली वेला-कली है !
चाँद का घट ले क्षितिज के
विजन पनघट से चली है !
कर रही झनकार हर पग की
धमक वेला प्रणय की
घोषणा करता जगत् के
मञ्च पर यौवन विजय की
जो हुआ आहत न, ऐसा कौन जग में निर्विकारी ?
हे किशोरी, हे कुमारी !

पोस्ट बॉक्स १०७,
पटना—१.

—आरसीप्रसाद सिंह

नये छन्द

मेघ नहीं, ये नए छन्द हैं कविताओं के
तृषित धरा के लिए व्योम ने भरा कलश है
धैर्य नहीं चातक का उसके मन के वश है
कहते हैं सब लोग कि यह पावन पावस है
संसृति की कविता का यह तो दसवाँ रस है
सजल घनों से, साम्य सरसता में होने से
नृत्य नहीं उन्मद मयूर का रुकता रोके
मेघ नहीं, ये नए छन्द हैं कविताओं के
नया राग है यह 'रिमझिम-रिमझिम' गानों का
है अभिनय स्वर नभ के आनन्दित प्राणों का
एक निराली तान चपल चपला की कड़कन
एक नया ठेका तबलों का—घन का गर्जन
रस-वर्षण में साम्य पयोधर से होने से
अधर खोल देती सीपी स्वाती के धोखे
मेघ नहीं, ये नए छन्द हैं कविताओं के

—नटवरलाल 'स्नेही'

श्री पर्णकुटी प्रकाशन,
नागदा जंक्शन (म. भा.)

झड़ी

[सानट]

घुमड़ रहे हैं धूम धुकारे घन कजरारे
चार दिनों से बरस रहा है इतना पानी
धार बाँध कर हवा चल रही है तूफ़ानी
इस अन्धड़ में पेड़ गिर गए कितने सारे
छप-छप करनेवाले बालक डर के मारे
दुबके भीतर टपक रहे घर है हैरानी
सीलन-सीलन बस्ती की गड़ही उफनानी
नदियाँ नाले तोड़ सके सब कूल कगारे;
छेंके ज्यों अवसाद गाँव को बैठे हैं सब
ऊँघ रहे लें ले अँगड़ाई जैसे लीचड़
डाँगर डहके निकल रहा आँखों से कीचड़
छीछालेदर वारे वारे वर्षा के ढब—
किच-किच पिच-पिच के मारे यह ख़ासी नकदम
फ़िसलन रपटन सड़ियल क्या बरसाती मौसम!

शान्तिनगर, जैकब सर्कल,
बम्बई—११

रामबहादुर सिंह 'मुक्त'

बाष्प-गामिनी

अँगड़ाई ले देह झटक कर खड़ी हो गई
एक सजीव प्रेरणा जैसी,
जाग उठा जीवन
गति का संचार हो गया;
फूट पड़ी थी चहल-पहल
जड़ प्लेटफ़ार्म पर

किन्तु दूसरे ही क्षण
कू की ओर चल पड़ी
झूम रही मदमस्ती में
वह और कहीं के लिए जा चुकी !

मरा हुआ-सा प्लेटफ़ार्म
चुप इधर पड़ा है
और उधर मिट रहे
धुएँ के धुँधले धब्बे
आसमान पर!

—रामावतार चेतन

२३६, कालबादेवी रोड,
बम्बई २

गीत

तुम दाह घृणा का ले कर मन में बैठे हो ?
खिल चटक चाँदनी रातें बीती जाती हैं !

चीनाशुक-पट से झाँक रही है प्रकृति-वधू
कर्पूरी मुखड़ा-फूलों की मुसकान भरा,
यह रूप ज्योति तुम देख नहीं क्यों पाते हो ?
आनन्द-निमन्त्रण प्राणों का कण कण बिखरा !

तुम रोष-अनल की ज्वाल जलाए बैठे हो ?
वय के ऋतु की बरसातें बीती जाती हैं !

जीवन-रथ के सम्मुख है सीमा की रेखा,
क्षणभंगुर हैं तन की मिट्टी के बोझिल स्वर,
चुक जाता शुष्क उपेक्षा का भी तो सम्बल,
फिर 'मैं' का भेद कुहासा भी तो है नश्वर !

तुम चिन्ता के अंगार लिए क्यों बैठे हो ?
साधों की मीठी घातें बीती जाती है !

कुंठाएँ जग की अन्तहीन है अकथ व्यथा,
संघर्षों का तूफ़ान भयंकर आता है,
पर क्षणिक हास से क्यों न लपेटो दिवस रात,
आत्मा का स्वर-प्लावन, अवसाद डुबाता है !

तुम निरानन्द क्यों अन्तराल में दुर्गम हो ?
पुलकन की नीरव बातें बीती जाती हैं ।

—सुमित्रा कुमारी सिन्हा

नवागता से

तुम घायल और पके मन पर मरहम न बनीं,
तुम आतुर हुलसे हुए हृदय की हो न सकीं,
यदि सूना-अँधियारा घर उजियारा न हुआ,
यदि माथे का सिन्दूर तुम्हें प्यारा न हुआ,

यदि अपने ही पैरों के नीचे की धरती
पहचान नहीं पाती हो, पग थर्राते हैं,
यदि अपने सर का ताज बहुत भारी लगता,
तो तुम्हीं कहो जो इतनी दूर चली आई

अब अगला क़दम और अगली मंज़िल क्या है ?
क्या निकला तीर कभी वापस आ पाएगा ?
क्या तोड़ा हुआ फूल डाली पर जाएगा ?
क्या सिंधु-तीर से सरिता लौट सकेगी भी ?

हो तीर अगर तो छिप कर रहो कलेजे में,
हो फूल अगर तो शोभा पाओ मस्तक पर,
हो सरिता तो तुम गले सिन्धु के लग जाओ,
तुम नई ज़िन्दगी हो तो इतना याद रहे—

आगे चलना है, केवल आगे बढ़ना है,
चलनेवाले के पग आगे ही बढ़ते हैं,
तुम जिस पथ पर आई हो, चलकर देखो तो !

मजीदिया इस्लामिया कालेज,
इलाहाबाद

गीति-काव्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

हिन्दी साहित्य में आज गीतों की जैसी बहार देखने में आती है, वैसी पहले किसी भी युग में नहीं देखी गई थी। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो साहित्य का सुकुमार दर्पण किसी निर्मम पाषाण खण्ड से टकरा कर चूर्ण-विचूर्ण हो गया हो और उसके प्रत्येक टुकड़े से भावुक हृदय का प्रतिबिम्ब झलक रहा हो। अथवा यों भी कह सकते हैं कि महाकाव्य-रूपी पूर्ण चन्द्र को अमावस्या के अन्धकार ने पूर्णतः ग्रस लिया है और उसके स्थान पर अनन्त आकाश में सर्वत्र अनगिनत नक्षत्र मोती के दाने के समान बिखर गए हैं।

आज स्थिति ऐसी है कि कोई भी भावुक तरुण साहित्यकार अपने गीत की पंक्तियों को गुनगुनाता हुआ ही साहित्य के द्वार पर पदार्पण करता है और ऐसी बात भी नहीं कि उसके गीतों में निरर्थक शब्द-योजना हो। बल्कि, इसके विपरीत उसके गीत हृदय की करुणा-धारा से सुसिक्त और प्राणों के दुर्दम्य आलोड़न से झंकृत होते हैं। उनमें उनके अन्तर्तम की व्याकुल रागिनी मर्मान्तक स्वरों में फूट उठती है और न केवल उनमें झंझा की उद्दाम गति ही रहती है, वरन् वसन्त का समस्त वन-वैभव भी सुरभि से हिल्लोलित रहता है।

गीतों की यह प्राण-धारा यद्यपि वर्त्तमान युग में सहस्रमुखी होकर प्रवाहित हो रही है, फिर भी साहित्य में यह एकदम नई बात नहीं है। किसी भी साहित्य के मर्म में काव्य की यह अति गोपन पीड़ा मन्द-मधुर स्वर से गूँजती रहती है। वास्तव में देखा जाए, तो हृदय की अज्ञात वाणी जिस छन्द, गति और लय के साथ गीतों की भाषा में मुखरित होती है, उतनी काव्य के अन्य किसी अंग में कदापि नहीं। गीत की स्वर-माधुरी में मानव-मन जितना घुल-मिल जाता है, उतना महाकाव्य अथवा खण्ड-काव्य में नहीं। बड़े-बड़े काव्यों में हृदय-भाग गौण हो जाता है और मस्तिष्क प्रधान। प्रातःकाल की सुनहली धूप में फूलों के अधरों पर ओस की बूँदें प्रकाश का पूर्ण प्रतिबिम्ब लेकर जिस प्रकार जगमगा उठती हैं, उसी प्रकार गीतों में कवि का आकुल अन्तर अपनी स्वाभाविक अवस्था में खुल-खिल कर बोल उठता है।

गीति-काव्य का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना स्वयं कविता का। प्रकारान्तर से सम्पूर्ण वेद को हम गीति-काव्य कह सकते हैं। 'वेदों में सामवेद मैं ही हूँ' गीता में यह कह कर भगवान् ने मानो इस पर अमिट छाप लगा दी है। आदि-काव्य रामायण भी अपनी गेयता के कारण ही सर्वप्रथम इतना प्रसिद्ध हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि गीति-काव्य में कवि-हृदय का प्राकृतिक उद्गार है। पुष्प का सौरभ जिस प्रकार तन्मय होकर अनिल के पंखों पर उड़ जाता है, उसी प्रकार कवि-हृदय का रस-माधुर्य गीत-लहरी के द्वारा अनायास जन-जन के कण्ठ-कण्ठ से उतर जाता है।

आज के इस वैज्ञानिक युग में अनेक साहित्यकारों की यह मिथ्या धारणा है कि काव्य अथवा महाकाव्य का युग समाप्त हो गया और उसके स्थान पर केवल मुक्तक कविताओं अथवा गीतों की रचना ही विकसित होगी। यद्यपि यह सत्य है कि जीवन की इस अति चंचल तथा कोलाहल-पूर्ण धारा में वृहत् काव्यों के योग्य पूर्ण विश्राम, अवकाश एवं मनःस्थिति का अभाव है; तथापि, साहित्य के इतिहास में कोई भी काल ऐसा नहीं रहा है, जब काव्यों के साथ-साथ गीतों का वैभव-विस्तार भी नहीं हुआ हो। एक ओर जब गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरित मानस की रचना हो रही थी, तब उसी समय दूसरी ओर सूरदास जी की पदावली भी भक्त जन के हृदय के तारों को निरंतर झंकृत कर रही थी। क्या प्रबन्ध-काव्य और क्या गीति-काव्य, अन्तर्वीणा की एक-ही रागिनी दो विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। भेद केवल इतना ही है कि एक का स्वर गम्भीर होता है, तो दूसरे का चंचल। स्थायित्व दोनों में समान भाव से उपस्थित होता है। काव्य यदि किसी काल, समाज या व्यक्ति-विशेष का साङ्गोपाङ्ग चित्रण करता है, तो गीत उसके किसी एक क्षण का। पर, उस क्षण में भी महाकाव्य की सम्पूर्ण सत्ता उसी प्रकार अन्तर्हित रहती है, जिस प्रकार बूँद में पारावार अथवा फूल में उपवन। जो सम्बन्ध बिन्दु का सिन्धु से प्रतीत होता है, वही गीत का काव्य अथवा महाकाव्य से है।

इसलिए हम यह भी देखते हैं कि महाकाव्यों की तुलना में गीतों की संख्या अपरिमेय है। केवल यही बात नहीं है कि महाकाव्यों की रचना कठिन है; समय-साध्य और साधना-अपेक्षित है; बल्कि, यह भी एक तथ्य है कि गीत भी अपने स्थान पर उतना ही दुर्लभ है। वास्तव में यह किसी व्यक्तिगत प्रतिभा पर ही निर्भर करता है कि उसके लिए गीत-रचना सुलभ है या काव्य की। रवीन्द्रनाथ या सूरदास ने किसी महाकाव्य की रचना नहीं की; फिर भी उनकी महत्ता किसी महाकवि से कम नहीं। मीरा, विद्यापति और कबीर के केवल स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं; फिर भी उनकी गणना अत्यन्त उच्च कोटि के कवियों में होती है। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने महाकाव्य और काव्य भी लिखे तथा मेघदूत जैसा सरस गीति-काव्य का भी सृजन किया। और कितने ही विद्वानों का अभिप्राय है कि केवल मेघदूत में भी वह प्राण-शक्ति है, जो कालिदास को चिर-काल के लिए अमर कर सके। हमारे सन्त-कवियों ने भी गीतों के द्वारा ही अपने हृदय की विमल भक्ति का उद्घाटन किया; भगवत् प्रेम की शीतल मन्दाकिनी प्रवाहित की। अपने नीति वैराग्यपूर्ण पदों में ही वाणी का वह अमृत भर दिया, जिसका पान कर आज भी दुःख शोक से जर्जर पीड़ित मानव अक्षय शान्ति का लाभ करता है। सच पूछिए, तो हिन्दी साहित्य में मुख्यतः गीतों, पदों, भजनों और मुक्तकों की ही अबाध धारा निरन्तर बहती आई है और आज भी उसी प्रकार बह रही है। रीतिकाल का समस्त साहित्य ही मुक्तक काव्यों की आधार-शिला पर निर्मित हुआ है। बिहारी का प्रत्येक दोहा भाव और कल्पना की दृष्टि से पूर्णरूपेण स्वच्छन्द है और अपने आप में एक स्वतन्त्र चित्र उपस्थित करता है। इसी प्रकार भूषण, मतिराम, देव या पद्माकर का प्रत्येक कवित्त स्वयं अपने आकार प्रकार तथा गठन-बनन में पूर्ण तथा स्वतन्त्र है और गीत का समस्त वैभव विन्यास लेकर प्रस्फुटित हो रहा है। यह बात दूसरी है कि छन्द, विषय, मनोभाव तथा भाषा की दृष्टि से वह आज के गीतों से विभिन्न-सा प्रतीत होता है। पर, ये वस्तुएँ तो ऐसी हैं, जो साहित्य अथवा जीवन के विकास-क्रम में सदैव एक-सी रहती भी नहीं। उनमें परिवर्तन होना ही स्वाभाविक तथा अनिवार्य है। किन्तु, जहाँ तक अभिव्यञ्जना और अन्तर की सूक्ष्म अनुभूतियों तथा मानव मन के अन्तराल में आँखमिचौनी क वाली गहरी सूक्ष्म रेखाओं एवं जीवन के सुख-दु हास-रुदन, मिलन-विरह अथवा सौन्दर्य एवं आनन्द असीम सत्ता और उसके बोध का सम्बन्ध है, वहाँ वह साहित्य भी उतना ही सम्पन्न, विशाल और प्राणवान है, जितना किसी देश या काल का गौरवपूर्ण सा हो सकता है।

यदि जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त मानव जीव एक काव्य है, तो गीत उसमें प्रति क्षण की उठती हु उमंगों का इतिहास है। काव्य यदि सरिता का मन्द प्रवाह है, तो गीत उसकी तरल तरंगें है। काव्य यदि वसन्त ऋतु का असीम वैभव है, तो गीत उसके एक-एक पुष्प की मुस्कान है। काव्य यदि आत्मा का संगीत है तो गीत उसकी ध्वनि-प्रतिध्वनियाँ। कौन कह सकता है कि काव्य और गीत में विभेद है?

गीतों का प्रकृति से निकट का तादात्म्य सम्बन्ध है वे सहज ही हमारे प्राणों के तारों को झंकृत कर देते हैं निशा रानी के एकान्त ज्योत्स्ना-महल में असंख्य तारका-वलियों का दीपक जिस प्रकार जगमगा उठता है, उ प्रकार गीतों की स्वर-लहरियाँ हमारे अन्तस्तल के नि रंगभवन को अपनी किरणों से आलोकित कर देती हैं जहाँ निसर्ग की हृदय-वीणा प्रेम और विरह के सह सहस्र छन्दों में अपनी सुरीली तान छेड़ती है, वहीं की आत्मा अँगड़ाई लेकर जाग उठती है। मधु मास कोकिल-स्वर से जिस प्रकार पल्लव-पल्लव के प्राण अपूर्व सुख के उन्माद में पुलकित हो उठते हैं, प्रकार गीत-श्री मानव-मन की रंगभूमि में उर्वशी अभिनव हाव-भाव एवं साज-सज्जा से अलंकृत होकर करती-सी प्रतीत होती है। यही कारण है कि गीतों की उत्पत्ति हमारे जन-जीवन के सहज-सुकोमल वातावरण होती है, जहाँ वह प्रकृति के चम्पक-हिन्दोल पर झूल है और अपने ही शैशव से चमत्कृत होकर बाल-कुरंगी बन-उपवन में भयभीत डोलती फिरती है।

पर्वत प्रान्त की विमुक्त उपत्यका के समान गीत की आत्मा किसी बन्धन को स्वीकार नहीं कर तो उसके प्राण भी निर्झर की अबाध गति के सम स्वच्छन्द बहना चाहते हैं। उसके अंग-अवयव य किसी षोडशी सुन्दरी के समान सुवर्ण के साँचे में ढले हु से प्रतीत होते हैं, तो उसका भाव-लावण्य भी चम्पा क

१६५४

के समान अनाघ्रात और अछूता ही रह जाता है। मर्मज्ञ हृदय उसके सौरभ से विमुग्ध होते हैं, तो अति अल्पज्ञ-जन भी उसकी रस-माधुरी का पान कर परम तृप्ति का लाभ प्राप्त करते हैं। दूर से आती हुई किसी बाँसुरीवाले की सुरीली तान-सी, गीत की कोई कड़ी हमारे मर्म में उसी प्रकार चुभ जाती है, जिस प्रकार अज्ञात-अपरिचित दशा में किसी युवती के नयन-शर। एक ओर जहाँ गीत के भावों की सहज-सरलता ही उसका प्राण है, वहीं दूसरी ओर व्यञ्जना की कुटिलता उसका एक विशिष्ट गुण। और गीतों की प्राणवत्ता की यही एक मुख्य कसौटी है, जिस पर हम किसी भी युग के श्रेष्ठ गीति-काव्य की भली भाँति परीक्षा कर सकते हैं।

आधुनिक हिन्दी-काव्य में गीतों का जैसा क्रम चल रहा है, वह अभूतपूर्व होते हुए भी विशेष सन्तोषप्रद नहीं है। यद्यपि हम इस बात को स्पष्ट रूप में स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक गीत में काव्य का कुछ न कुछ अंश अवश्य रहता है और प्रत्येक काव्य में संगीत की प्रच्छन्न धारा भी प्रवाहित होती रहती है, फिर भी जिस पुण्य संगम पर काव्य और संगीत का महामिलन सम्भव होता है, वहाँ गंगा-यमुना के प्रकट प्रवाह के साथ-साथ सरस्वती की रहस्यमयी धारा भी कहीं अवश्य उपस्थित रहती है, भले ही उसके अस्तित्व का ज्ञान हमें न हो। और यही सरस्वती की वीणा की वह झंकार है, जो हमें आधुनिक गीत-काव्य में उपलब्ध नहीं होती। कहीं यदि केवल काव्य की समस्त सुषमा पुंजीभूत-सी दिखाई पड़ती है, तो कहीं एकमात्र संगीत का कल-कल स्वर ही मुखरित हो रहा है। आकाश और धरित्री को एक ही आलिङ्गन-पाश में आबद्ध कर लेने वाला वह क्षितिज अभी दूर है, जहाँ काव्य-कला के साथ-साथ संगीत की माधुरी श्रावण की मेघ-माला के समान दिगन्त को आप्लावित करती हुई सी उमड़-घुमड़ कर झूमे और झमाझम बरस पड़े। दक्षिण पवन का मन्द मादक हिल्लोल तो है, पर पुष्पों का सरस सौरभ नहीं, जिस पर चंचरीकों के पुंज-पुंज दल कुंज-कुंज में लहालोट होकर बेसुध हो जाएँ।

हिन्दी-साहित्य में गीतों का वैभव-भाण्डार अक्षय है, इसमें सन्देह नहीं। शृङ्गार और भक्ति, करुण और शान्त, विशेषतः इन रसों की बाढ़ में जन जन के प्राण आप्लावित हो रहे हैं। विद्यापति की पदावली में आज भी वह प्राण-धारा प्रतिध्वनित हो रही है, जिससे विदग्ध-हृदय आत्म-विभोर हो जाता है। मीरा के पदों में आज भी वह तन्मयता देखी जाती है, जो जीवन के तारों को क्षण भर के लिए आकुल-व्याकुल कर देती है। कबीर के निर्गुण पदों में प्रेमी-हृदय का वह स्वर आज भी एक अनिर्वचनीय भावुकता में पुकार उठता है, जिसे सुन कर मन के समस्त बन्धन छिन्न-भिन्न होकर शिथिल पड़ने लगते हैं। भारतेन्दु के पद भी प्रणय और विरह का अपूर्व चित्र उपस्थित करते हैं, जो आज भी नवीन-से प्रतीत होते हैं।

हमारे साहित्य के उद्यान में गीतों के जितने पुष्प हैं, वे तो हैं ही; पर, उनसे कहीं अधिक विशाल भाण्डार तो उन गीतों का है, जो जन-मन के कण्ठ से सहज ही प्रस्फुटित होकर न जाने, जीवन की किस मधुमयी वेला में पृथ्वी तल पर अवतीर्ण हुए। वन-कुसुम के समान वे गीत किसी निर्जन कान्तार में अपनी कोमल सुरभि-छटा को नहीं बिखेरते; बल्कि, ग्राम्य-जीवन की निर्मल पुष्करिणी में नवजात जलजात के समान वे लोल लहरियों से निरन्तर क्रीड़ा करते हैं। जन्म से मृत्यु पर्यन्त ऐसी कोई भी घड़ी नहीं है, जहाँ वे हमारा साथ न देते हों। क्या विवाह और क्या यज्ञोपवीत-संस्कार, क्या मुण्डन और क्या अन्न-प्राशन, लोक-जीवन का ऐसा कोई भी पर्व नहीं, जो गीतों के कल-कल स्वर से मुखरित न होता हो! एक मिथिला-प्रान्त को ही लीजिए, तो उसमें अनेक प्रकार के लोक-गीतों का प्रचलन, अनेक शैलियों और अनेक स्वर-लिपियों में आप प्रस्तुत पाएँगे। कहीं सोहर है, तो कहीं बटगमनी; कभी झूमर है, तो कभी मलार। कहीं बेहुला का गीत है, तो कहीं जट-जटिन का। होली, बारहमासा, नचारी, ब्रह्म, वेताल, काली, सल्हेश, विरहा, चैत, छठ, सामा आदि न जाने कितने प्रकार और भेद से लोक-गीतों की यह सदा-नीरा पयस्विनी तरंगित होकर जन-जीवन को सरल करती रहती है। फिर आधुनिक युग के ग्राम-गीतों में बिदेसिया, जालिमसिंह आदि कथा-प्रधान गीति-काव्यों का भी कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है।

इस प्रकार वर्त्तमान हिन्दी-काव्य की पृष्ठभूमि में जहाँ एक ओर सरस ग्राम-गीतों से लेकर सन्तों की वाणी, पद, भजन, कीर्त्तन आदि का प्रचार है, वहाँ विशुद्ध कल्पना-लोक से निःसृत होकर हवा की तरंगों से अठखेलियाँ करती हुई सिनेमा की वे धुनें भी घर-घर को गुंजित करती हुई चली आ रही हैं, जिनकी मधुर हिलोर

से जवानी की नई उमंगें यदि फिसल जाती हैं, तो क्या हुआ ? सुकुमार बच्चे और परिपक्व बूढ़े लोग भी आहत होकर उसके स्वर में अपना कण्ठ मिला देते हैं। इन गीतों में साहित्य चमत्कार भले ही न हो, पर मर्म की अतल गुहा को सीधे स्पर्श कर लेने की अजेय शक्ति से भला कौन इनकार कर सकता है ?

छायालोक की इस विचित्र लीलाभूमि से निकलते ही गीतों की एक और विशाल धारा भी हमें दृष्टिगोचर होती है, जो कि किसी महानदी के समान अपनी ही मन्द-मधुर गति में ताल-ताल पर थिरकती हुई न जाने किस अनादि काल से बहती हुई आ रही है। और यही है हमारी संगीत-कला की वह विराट् प्रदर्शिनी, जो साहित्य और काव्य से बिलकुल तटस्थ एवं अप्रभावित, अपना उपादान स्वयं ही प्रस्तुत करती है और उसका उपभोग भी आप ही करती है। संगीत के इस रंगमंच पर हमारे देश के बड़े-से-बड़े कलाकार, गायक, वादक, नर्त्तक आदि अवतीर्ण होते चले जा रहे हैं; पर हमारे साहित्य के साथ जिनका कुछ ऐसा सम्बन्ध है कि वे स्वयं तो क्या हमारे काव्य-जगत् से निकट संपर्क स्थापित करेंगे, हम भी उनको किसी प्रकार प्रभावित नहीं कर पाते हैं। ये गुणी-गायक आज भी अपने उन्हीं पुराने ख़याल, ठुमरी, टप्पों और ध्रुपद के गीतों पर ताल और स्वर दिए जा रहे हैं; जो किसी युग में मियाँ तानसेन, बैजू बावरा, सिकन्दर आदि महान् संगीतज्ञों के द्वारा रचे गए थे। इसमें सन्देह नहीं कि वे गीत स्वयं ऐसे कलाकारों के द्वारा निर्मित हुए थे, जो संगीत-कला के पारंगत विद्वान् और विशेषज्ञ थे। इसलिए, उन गीतों में संगीत के लय, ताल और गति का सुन्दर सामञ्जस्य होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी था। और इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि उनमें कहीं कहीं अपूर्व काव्य-रस का चमत्कार भी देखा जाता है। मधुर भावोद्रेक के साथ साथ मनोहर कल्पनाएँ भी प्रस्फुटित हुई हैं। पर, संगीत-शास्त्र के परम्परागत गीतों का अधिकांश समुदाय काव्यगत भावों से बिलकुल उपेक्षित-सा प्रतीत होता है। उनका संस्कार केवल गायक-गुणियों के संकीर्ण घरानों के वायुमण्डल तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उनमें छन्दों की शृंखला भी इस प्रकार भ्रष्ट है कि स्वतन्त्र रूप से न तो कोई उन्हें गा ही सकता है और न उनका साहित्यिक आनन्द ही ले सकता है। मृदङ्ग की मन्द-मन्द तरङ्ग अथवा तबले के धिन-धिन ताल पर ही वे अपनी संगीतात्मक अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं। अन्यथा, अनभ्यस्त कानों के लिए तो वह निरर्थक ता ना-री री के सिवा जो कुछ भी शेष बचता है, वह या तो कला-हीनों के लिए इतना ही विशेष होता है कि एकमात्र तन्द्रा का उपकरण बन जाता है अथवा कौतुक-प्रिय सुजनों के लिए हास्य-विनोद का साधन।

यही वह सरस्वती है, जो आज हमारे साहित्य संगम से बिलकुल ही अन्तर्ध्यान-सी मालूम पड़ती है। एक समय था, जब विद्यापति के पदों को अपने प्रान्त के गुणी-गायक ही नहीं, सुदूर वंगभूमि के महाप्रभु चैतन्य भी अपने कीर्त्तनों में उपयोग करते थे और स्वयं गाते गाते मूर्च्छित भी हो जाते थे। सूरदास आदि अष्टछाप के सभी कवि पद रचते थे और वे न केवल भगवान् की झाँकी के अवसर पर ही गाए जाते थे, बल्कि उनकी तान पर मुग्ध होकर मियाँ तानसेन भी सिर धुनते लगते थे। परन्तु, धीरे-धीरे संगीत और साहित्य का वह सम्बन्ध विच्छिन्न होने लगा और होते-होते यहाँ तक पहुँच गया कि अब तो दोनों की दो पृथक् पृथक् दिशाएँ बन गई हैं, जहाँ ऐसा कोई भी लक्षण नहीं दिखाई पड़ता कि हमारे काव्य की नवीन प्राणधारा संगीत-कला विशारदों के कण्ठ से फूट कर सामाजिक जीवन को रस से तन्मय कर दे। प्रत्युत, इसके विपरीत सत्य तो यह है कि संगीतज्ञ अपनी उसी उच्छिष्ट निधि को सँजोए, गाए हुए गीतों को दुहराते, सूखी हुई धारा में कूदते-फाँदते चले जा रहे हैं। उन्हें इस बात की न तो चिन्ता है और न अवकाश कि हमारे गीतकार, शब्दकार, कवि, भावुक आदि किस अनुभूति के सागर में गोते लगा कर कौन से नए नए मोती ला रहे हैं और भारती का भव्य श्रृङ्गार कर रहे हैं। उन्हें हमारे साहित्य का ज्ञान भी अत्यल्प है और न प्राप्त करने की अभिरुचि है। जहाँ केवल ताना-रीरी से सारा काम आसानी से निकाला जा सकता है, वहाँ विशेष माथापच्ची करने की आवश्यकता ही क्या है ?

पर हमारे देश का संगीत विशाल है। थोड़े-से ही भेद से यह अटक से कटक और हिमालय से कन्याकुमारी तक की समस्त वसुन्धरा को एक सूत्र में बाँध रहा है। संप्रदाय, राजनीति के प्रपंच से तो यह अछूता ही है;

जाति आदि संकीर्ण भेद-भावों से भी यह बहुत ऊपर है। जहाँ स्वर का माधुर्य पूर्णिमा की चन्द्र-ज्योत्सना के समान रिमझिम-रिमझिम बरसने लगता है, वहाँ क्या दक्षिण भारत और क्या उत्तरापथ? क्या हिन्दू और क्या मुसलमान? क्या हिन्दी और क्या उर्दू? क्या बंगाली और क्या बिहारी? क्या गुजराती और क्या पंजाबी? इतना ही नहीं हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का भेद-भाव भी सर्वथा निर्मूल हो जाता है और राँची से लेकर करांची तक का देश एक ही भावावेश में मन्त्र मुग्ध होकर झूमने लगता है। जब तक उस महा-संगीत के प्राणों से हमारे साहित्य का मेल नहीं खाता, जब तक उस 'सरिगमपधनि' की कल-कल ध्वनि-माधुरी से हमारे गीतों का कण्ठ आप्लावित नहीं हो जाता और जब तक भारत-भारती की उस वीणा से हमारे शब्दों का मिलन नहीं होता, तब तक गीत-रचना एक पर्वत-प्रान्त पर पड़ी हुई वारिधारा के समान मधुर होने पर भी व्यर्थ है।

यहाँ हम रेकार्ड अथवा रेडियो द्वारा प्रसारित गीतों पर भी विचार कर सकते हैं। पर, अभी एक तो वह कला हमारे देश में इतनी विकसित नहीं हुई है तथा उसके व्यापक प्रचार या प्रभाव का अधिकांश भविष्य के गर्भ में ही निहित है; और दूसरी बात यह भी है कि सिनेमा की तरह इन दोनों क्षेत्रों का वातावरण भी इतना संकीर्ण है कि उससे तत्काल कोई विशेष आशा भी नहीं है। किन्तु, इन युग-आवश्यक यंत्रों के क्षेत्र में भी सफल क्रान्ति की अपेक्षा है, जो साहित्य के स्तर को ऊँचा उठाने का जितना ही दम्भ करते हैं, उतना ही उसे अधःपतित करने का कलंक-भार ढोते हैं।

हिन्दी में काव्य के जिस अंग को हम आधुनिक गीत की संज्ञा दे सकते हैं, उसकी भी सबसे पहली झलक हमें छायावाद के प्रवर्त्तक कवि 'प्रसाद' में ही मिलती है। 'बीती विभावरी, जाग री!' तथा 'तुम कनक-किरण के अन्तराल से लुक-छिप कर चलती हो क्यों?' आदि गीतों में हमें आज के गीतों का भाव-सौन्दर्य अपनी अपूर्व मादकता में प्रकट होता है। 'निराला' की 'गीतिका' के अधिकांश गीत एक ओर जहाँ नाद के अद्भुत गाम्भीर्य को सहज-सुकुमार छन्दों में तरंगित करते हैं, वहीं दूसरी ओर हृदय की मर्मस्पर्शी वेदनाओं के सजीव-साकार रूप का भी उद्घाटन कर देते हैं। पर, 'निराला' के गीत भी सामासिक पदों से अत्यन्त बोझिल, गहन दार्शनिक विचारों से पूर्णतः दुर्वह और शास्त्रीय संगीत की प्रदर्भ जटिलता से एकान्त ऊहा-पोह में पड़ कर जब जनप्रिय न हो सके तभी 'नए पत्ते' अथवा 'अर्चना' में कवि को पुनः एक बार संगीत और साहित्य की भावभूमि में किसी नए क्षितिज का अनुसन्धान करना आवश्यक जान पड़ा। पंत के गीत आज भी अपनी उसी पुरातन प्राकृतिक सुषमा से रंगीन हैं। ये गीत यद्यपि संगीत की रस-धारा एवं सरस-कोमल शब्दावलियों की झंकार से ओत-प्रोत हैं; तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि उनका कोई सम्वादी स्वर ही कहीं खो गया है। इसके बाद जिन गीतों के राजकुमारों का दल अपूर्व भाव-भंगिमा के साथ साहित्य के क्षेत्र में अपना निराला राग अलापता हुआ आता है, उसके मर्म में वेदना तो है; पर, जीवन की सच्ची और गहरी अनुभूतियों के अभाव के कारण वह अरण्य रोदन-सा प्रतीत होता है। किसी उधार खाए व्यक्ति के समान उसकी करुण पुकार इतनी विवश और दयनीय-सी प्रतीत होती है कि कब उसका आकस्मिक अन्त हो जा सकता है, इसका कोई निश्चय नहीं। इन तरुण स्वरों में अन्तर की आकुल पुकार की अपेक्षा बाह्य संवेदनाओं के दबाव एवं अन्ध-अनुकरण की मात्रा ही अधिक परिलक्षित हो रही है। फिर भी वे एक नया स्वर दे रहे हैं और एक नए क्षितिज की ओर संकेत कर रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं। उनकी भाषा में निखार है, भावों में अर्थ-गौरव है, व्यंजना में ओज और स्फूर्ति है तथा पद-पद से रस का संचार बोलता है। निश्चय ही हमारे भविष्यत् गीतोद्यान के ये सचेतन और जाग्रत भ्रमर हैं, जिनके अविराम गुंजन से निद्रित कलियों की आँखें शीघ्र ही खुलनेवाली हैं। आज इन पर दूना भार है। ये स्वयं गीतों की रचना भी करते हैं और उन्हें स्वर में बाँध कर जन-जन के कर्ण-गह्वरों से अन्तर में उतारने की कोशिश भी करते हैं।

पोस्ट बौक्स—१०७
पटना—१

—आरसीप्रसाद सिंह

लोककथाओं का सामाजिक महत्व

"जब तक पुरुष पुरुषार्थ नहीं करता उसे बड़ाई नहीं मिलती।"—पंचतंत्र

कथा कहानी का उद्देश्य हमेशा से पुरुष को पुरुषार्थी बनाना और उसके मन में जीवन की आस्था उत्पन्न करना है। प्रकृति के विरुद्ध मनुष्य के संघर्ष से भाषा ने जन्म लिया और इस पुरुषार्थ को आगे बढ़ाने और श्रम के बोझ को हलका करने के लिए मनुष्य ने कथा-कहानी की रचना की।

जिस देश में प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष में मनुष्य को जितनी शीघ्र और जितनी अधिक सफलता प्राप्त हुई है, उतना ही उस देश का कथा-साहित्य प्राचीन और उन्नत है। भारत, यूनान और चीन संसार के प्राचीन देश माने जाते हैं जिसका कारण यह है कि इन देशों में पहले पहल मनुष्य को अपने इस संघर्ष में सफलता प्राप्त हुई और पहले पहल इन देशों में सभ्यता का प्रादुर्भाव और प्रसार हुआ। यूनान और चीन की तरह हमारे देश की सभ्यता बहुत पुरानी है और हमारा कहानी साहित्य भी बहुत प्राचीन और उन्नत है। अगर हम अपनी देवमाला को ध्यान से पढ़ें, और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि जैसे जैसे प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष आगे बढ़ा है, कथाओं का रूप भी निखरता आया है। आदि मनुष्य ने जिन देवताओं का निर्माण किया है, वे इस संघर्ष को आगे बढ़ाने में उसकी सहायता करते थे। गोर्की के कथनानुसार हर एक देवता किसी न किसी कला में दक्ष होता था। उदाहरण के तौर पर इन्द्र देवता का वज्र पहाड़ों को तोड़ सकता है और शत्रुओं पर विजय पाता है। आगे चलकर नारद का निर्माण होता है तो वह वीणा बजाने में प्रवीण है। तमाम कलाकृतियों को और समस्त साहित्य को मनुष्य के श्रम ने जन्म दिया है। मनुष्य श्रम के इस महत्व को श्रम का युग स्थापित हो जाने पर ही पहचानेगा और फिर वह श्रम ही को साहित्य की आलोचना का आधार बनाएगा।

जब धीरे-धीरे भाषा का प्रादुर्भाव हुआ तो मनुष्य शब्द की अद्भुत शक्ति देख कर चकित रह गया और इस शक्ति में उसका विश्वास इतना बढ़ गया कि वह समझता था कि शब्दों द्वारा वह भूत-प्रेत और प्रकृति की भयंकर शक्तियों को वस में कर सकता है। इस भावना ने जंत्र मंत्रों की रचना की और जंत्र मंत्रों के रचयिताओं और जाननेवालों का सम्मान होने लगा। देवमाला और लोककथाओं में जंत्र मंत्रों का ज्ञान और अस्त्र शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने और प्रकृति की भयंकर शक्तियों को वश में करने के लिए ही प्रयोग हुआ। वेद पुराण, हमारे कथा-साहित्य के अतुल भण्डार हैं। महाभारत में भी बहुत सी कथाएँ मिलती हैं। लेकिन कथा-सरित् सागर, पंचतंत्र और हितोपदेश विशुद्ध रूप से कथा-साहित्य हैं। हम अपने इस कथा-साहित्य पर गर्व कर सकते हैं। इससे पता चलता है कि हमारे कथा साहित्य की परम्परा कितनी सबल और कितनी प्राचीन है। जब इन कथाओं का इन पुस्तकों में संग्रह हुआ, उससे पहले भी यह कथाएँ लोगों में प्रचलित थीं और अब भी प्रचलित हैं। मेरा बचपन पंजाब के देहात में गुज़रा है और मुझे कथाएँ सुनने का बहुत शौक़ था। मैंने पंचतंत्र और हितोपदेश की बहुत सी कहानियाँ लोगों की ज़बानी सुनी थीं। यह ठीक है कि पुस्तक में दर्ज कथाओं से उनका रूप कुछ बदला हुआ था लेकिन भावार्थ और कथानक वही था। लोगों ने अपनी सुविधा के अनुसार उनमें जो थोड़ा बहुत हेर फेर कर लिया है, उससे उनकी रचना शक्ति का पता चलता है।

हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रांत की अपनी अलग लोककथाएँ हैं और कुछ कथाएँ लगभग सभी प्रान्तों में कही जाती हैं, लेकिन लोगों के स्वभाव और स्थान के अनुसार उनमें थोड़ा सा अन्तर भी आ जाता है। उदाहरण के तौर पर 'पंचतंत्र' में मूर्ख पंडितों की कहानी दर्ज है। यह पंजाब में भी कही जाती है और 'किताबी पंडितों' की कहानी के नाम से आन्ध्र और महाराष्ट्र में भी प्रचलित है। दोनों जगह उसका लक्ष्य

१६५४

भिन्न है, लेकिन मतलब यह है कि कोरा किताबी ज्ञान व्यर्थ है, वह मनुष्य को विद्वान् बनाने के बजाए मूर्ख बनाता है और ख़्वामख़्वाह मुसीबत में डाल देता है। वास्तविक ज्ञान वही है जिसमें सहज बुद्धि और जीवन का अनुभव शामिल हो। देहात में एक चुटकला प्रचलित है कि एक दार्शनिक शहर से गाँव में आया और उसने दीवार पर उपले लगे देख कर पूछा कि वह कौन सा पशु है जो इतने ऊँचे गोबर करता है। सहज बुद्धि देहातियों में उपहास और व्यंग की भावना बड़ी प्रौढ़ और प्रखर होती है। इसमें वे बड़े बड़ों के कान कतरते हैं। चूंकि उनका जीवन सतत संघर्ष में मिट्टी से सोना उगाने में बीतता है, इसलिए कर्म रहित कोरा ज्ञान कभी उनके आदर और सम्मान का विषय नहीं बन पाता। इसी बात को हम यों भी कह सकते हैं कि लोककथाएँ कोरी बुद्धि के मुक़ाबले में श्रम और संघर्ष को प्रतिष्ठित करती हैं। सभी प्रान्तों और लगभग सभी देशों की लोककथाओं में 'मूर्ख' एक सामान्य पात्र है जो मर्यादाओं को न तो समझता है और न ही उनका पालन करता है। इसलिए घरवाले और सगे सम्बन्धी सब उसकी अवहेलना करते हैं। लेकिन वह अपनी ऊलजलूल हरकतें करता हुआ स्वच्छन्द घूमता है। कहानी के अन्त में वह अपनी मूर्खता ही के कारण सब बाधाओं को पार करके विजयी और सम्मानित होता है। इसका मतलब यह है कि मनुष्य मर्यादाओं के लिए नहीं, मर्यादाएँ मनुष्य के लिए हैं। मर्यादाएँ बनती और बिगड़ती रहती हैं, समाज आगे बढ़ता है, मनुष्य आगे बढ़ता है, अगर वह एक बार स्थापित हो गई मर्यादाओं का ग़ुलाम बन कर रहे तो उसकी प्रतिभा कुंठित हो जाती है और किसी प्रकार की उन्नति और सभ्यता का विकास सम्भव नहीं रह जाता। सदा आगे बढ़ने, नए नए सत्य और तथ्य ढूंढ़ निकालने की मनुष्य में जो स्वाभाविक और कभी संतुष्ट न होने वाली भावना पाई जाती है, लोक-कथाओं का यह मूर्ख कहलाने वाला पात्र इसी अमर और अतृप्त भावना का प्रतिनिधित्व करता है। अन्त में उसे इसीलिए विजयी और सम्मानित दिखाया जाता है। लोक कथा के इस विचित्र पात्र ने सदा मनुष्य की जिज्ञासा और उत्सुकता को जीवित रखा है।

सभी प्रान्तों और सभी देशों की लोककथाओं में इसी मूर्ख पात्र से मिलता-जुलता एक सामान्य पात्र और मिलता है। यह पात्र बेकार मनसूबे बाँधता है, निराधार योजनाएँ बनाता है और हवाई-क़िले निर्माण करता है। और चूँकि वह सदा असफल रहता है, इसलिए समाज के व्यंग और उपहास का कारण बनता है। हम इस व्यक्ति को "शेख़चिल्ली" कहते हैं। उपहास और व्यंग का विषय होने के बावजूद यह शेख़चिल्ली लोककथाओं का चिर परिचित और आवश्यक पात्र है और अत्यन्त सर्वप्रिय है। लोग उससे सम्बन्धित कथाएँ बड़े चाव से सुनते सुनाते और फिर हँसी से लोटपोट हो जाते हैं। इसका मतलब है कि शेख़चिल्ली नाम से कहकहे सम्बन्धित हैं। उपहास और व्यंग का विषय होते हुए भी वह हमारे भीतर रच-बस चुका है। हम उस पर हँस सकते हैं, पर उससे घृणा कदाचित् नहीं करते। कारण यह है कि यदि हम अपने मन में झांक कर देखें, आत्म विश्लेषण करें तो यह बात निर्विवाद सत्य है कि हम में से हर एक व्यक्ति के भीतर एक शेख़चिल्ली रहता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसे क्षण अवश्य आते हैं, जब वह व्यर्थ मनसूबे बाँधना, निराधार योजनाएँ बनाना और हवाई क़िले तैयार करना पसन्द करता है। यह वह क्षण होते हैं, जब मनुष्य अपनी वस्तुस्थिति से ऊपर उठना चाहता है, सुन्दर और समृद्ध जीवन की अभिलाषा करता है। उस मूर्ख पात्र के सदृश यह हमारा शेख़चिल्ली भी उन्नति और विकास के मार्ग में मनुष्य का पथ प्रदर्शक है। हास्य और व्यंग का कारण वह इसलिए बनता है कि जैसे जैसे सभ्यता और विज्ञान का प्रसार हो रहा है, मनुष्य ने व्यावहारिक बुद्धि से काम लेना शुरू कर दिया है। कल्पना में वह यथार्थ से ऊपर उठ कर हवा में उड़ता है, लेकिन जब विचार से—व्यावहारिक बुद्धि से काम लेता है तो फिर इस धरती पर आ जाना पड़ता है। सभ्य व्यक्ति को अनुभव ने सिखाया है कि वह अपनी निराधार योजनाओं की चर्चा किसी से न करे, वह नहीं करता इसी से वह उपहास का विषय बनने से बचा रहता है। लेकिन शेख़चिल्ली निराधार योजनाओं की कल्पना करता है, उन्हीं पर जीवित रहता है और उनकी ख़ूब चर्चा करता है।

प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष में मनुष्य ने कर्म और विचार दोनों उपायों से काम लिया है। आदि मनुष्य के पास प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के साधन जब बहुत थोड़े थे तो वह कल्पना अधिक करता था। अब जब कि

उसने अपने इस संघर्ष में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली है, तो वह बहुत कुछ व्यावहारिक हो गया है और कल्पना भी बहुधा इस व्यवहार की सीमा के भीतर ही करता है। आदि मनुष्य के लिए अपनी कल्पना को व्यवहार और ज्ञान से सीमित करना सम्भव नहीं था। उसका ज्ञान बहुत थोड़ा था, साधन थोड़े थे, प्रकृति अबूझ और भयंकर थी, इस लिए उस समय कल्पना को असीम कर के, शेखचिल्ली बन कर ही उसका जीवन सुखी और सन्तुष्ट होता था। जिस मनुष्य ने अलादीन के चिराग़ की कहानी लिखी वह निश्चय ही शेखचिल्ली था। मनुष्य सुन्दर महलों में रहने की अभिलाषा तो करता था, लेकिन उसके पास इसके साधन नहीं थे, इस लिए उस समय सुन्दर महलों का निर्माण कल्पनामात्र अर्थात् जिन्नों की सहायता ही से सम्भव हो सकता था। इसी प्रकार मनुष्य पक्षियों को हवा में उड़ते देखता था तो उसके मन में भी उड़ने की अभिलाषा उत्पन्न होती थी, इसी से उसकी कल्पना ने लकड़ी के कलदार घोड़े का अविष्कार किया, जो उसकी इच्छा के अनुसार, उसे जहाँ चाहे उड़ा कर ले जा सकता था। लेकिन हम देखते हैं कि मनुष्य ने पहले पहल जिन बातों की सिर्फ़ कल्पनामात्र की थी, वही बातें अब सम्भव हैं। हम आसमान को छूनेवाली शानदार इमारतों में रहते हैं, हवाई जहाज़ में उड़ते हैं और महीनों का सफ़र घण्टों में तय कर लेते हैं। इसलिए अनहोनी बातों के स्वप्न देखना और हवाई-क़िले बनाना कोई बुरी बात नहीं है। क़िले पहले हवा में बनते हैं और फिर धरती पर उतर आते हैं। मनुष्य की कल्पना धीरे-धीरे सशक्त और स्वस्थ होती रही है।

कल्पना केवल लोककथाओं का ही नहीं तमाम अच्छे साहित्य का एक आवश्यक अंग है। आज जब हम यथार्थवादी हो गए हैं और हमारी वैज्ञानिक बुद्धि वैचित्र्य और अलौकिकता से सन्तुष्ट नहीं होती, फिर भी यथार्थ के ज्यों के त्यों चित्रण को पसन्द नहीं करते। वही साहित्य आदर और सम्मान के योग्य समझा जाता है, जिसमें वस्तुस्थिति का ऐतिहासिक विश्लेषण करके यथार्थ की गति को दर्शाया गया हो और उसके आधार पर सुन्दर भविष्य के निर्माण की प्रेरणा मिलती हो। यथार्थ में कल्पना का जो यह सम्मिश्रण—भविष्य के निर्माण का प्रोग्राम होता है, इसी को साहित्यिक रोमांस कहते हैं। गोर्की ने साहित्य और संस्कृति के विकास पर अपने एक लेख में इस बात की व्याख्या यों की है:

"एक पौराणिक कथा कल्पना कृति है। इस कल्पना कृति का वास्तविक अर्थ यह होता है कि वस्तुस्थिति में जो आधारभूत सत्य है, बुनियादी सचाई है, उसे एक मूर्ति के रूप में उपस्थित करे। इसी से यथार्थवाद का जन्म हुआ है। लेकिन अगर हम इस बुनियादी सचाई के साथ जिसे हमने वस्तुस्थिति से प्राप्त किया है, उसमें थोड़ी सी वह वस्तु भी मिला दें, जिसकी हम इच्छा करते हैं—जैसे हम अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए कोई उदाहरण मान लेते हैं, और इस प्रकार अपनी इस मूर्ति को और सुन्दर स्पष्ट बनाते हुए तब हम उस रोमांसवाद तक पहुँच जाते हैं, जो समस्त देवमाला (पौराणिक कथाओं) का आधार है और जो अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि उससे वस्तुस्थिति के प्रति क्रांतिकारी रवैया का जन्म होता है, यही वह रवैया है जो संसार को बदलना चाहता है।"

लोककथाओं में यह क्रांतिकारी भावना ओत-प्रोत रहती है। अचल विश्वास, दृढ़ निश्चय और अखण्ड उत्साह क्रांतिकारी भावना की पूर्ति के लिए परम आवश्यक हैं। इस लिए हम देखते हैं कि लोककथाओं का नायक कभी निरुत्साह नहीं होता। वह एक निर्दिष्ट उद्देश्य के साथ आगे बढ़ता है और किसी भय और आपत्ति के कारण उसका क़दम डगमगाता नहीं और वह सदा पाठक की सहानुभूति का पात्र बना रहता है और उसका महान् आशावाद पाठक का आशावाद बन जाता है। शत्रुओं का दमन और प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझना लोककथाओं का विशेष गुण है। और लोककथाएं हमारे साहित्य का विशेष और महत्वपूर्ण अंग हैं। लेकिन हमारे युग के नए बुद्धिजीवी मनुष्य का जैसे जैसे अपनी जनता से सम्बन्ध विच्छेद होता गया है, अपने कथा-साहित्य से भी उसका सम्पर्क छूटता गया है। चूंकि उसका सम्बन्ध अपने अतीत से और अपने साहित्य की परम्परा से कट गया है, इसलिए उसने अपनी मानसिक दरिद्रता को अपने आप से और लोगों से छिपाए रखने के लिए शब्दाडम्बर को अपना लिया है। वह अपने निरे किताबी ज्ञान में मस्त है और दीवार पर उसके लगे देखकर 'इतने बड़े पशु' की कल्पना करने वाला 'दार्शनिक' सा बन गया है। वह जनता को बुद्धू

समझता है और जनता उसका उपहास उड़ाती है। आज यथार्थवाद और प्रगतिवाद के नाम पर भी जिस साहित्य की रचना हो रही है, वह हमारी जनता के लिए बेकार है। इसका कारण यह है कि यूनिवर्सिटियों की शिक्षा पाए हुए हमारे बुद्धि-जीवियों और लेखकों के जीवन में संघर्ष और अनुभव का अभाव है। वे दिमाग़ लगा कर और अपने पुस्तक ज्ञान के आधार पर कहानी बनाते हैं जिससे कहानी बन तो जाती है, लेकिन उसमें न तो सत्य मूर्तिमान् हो पाता है और न भविष्य के लिए कोई दिशा मिलती है, जिसका कारण यह है कि उसमें वस्तुस्थिति का सही विश्लेषण नहीं हो पाता। परिणाम यह होता है कि बुनियादी कमी को शब्दाडम्बर, विचित्र टेकनीक और दुरूह शैली से पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है। बजाय इसके कि हम लोककथाओं से सरलता सीखें और अपनी बात सीधे-सादे ढंग और कम से कम शब्दों में कहने की कोशिश करें, हम लोककथाओं को भी शब्दाडम्बर, और बोझिल उपमाओं और कृत्रिम शैली से रंग देते हैं। पंजाब की एक लोककथा "कबूतरी और कौआ" हमारे एक बहुत बड़े लेखक के नाम से 'हंस' के शांति अंक में प्रकाशित हुई थी। उसके शुरू के दो पैरे यहाँ उद्धृत किए जाते हैं ताकि आप देख सकें कि कृत्रिम शैली कथा-कहानी का गुण नहीं वरन् दोष है।

"कुहरे से लदी हुई, भरी सुबह में सूरज की किरण की तरह बदली के बीच से धीरे धीरे फिसलती हुई कबूतरी बरगद के पेड़ पर अपने घोंसले की ओर उतरने लगी। उसने अपनी चोंच में मज़बूती से दो बालें पकड़ी हुई थीं, जो कि पास के ही एक खेत से उसने ले ली थीं और उनकी आँखों में एक तरल सी रोशनी थी, वह कुछ आँख झपकने की तरह। यह रोशनी उसकी उद्दाम इच्छा की सूचक थी कि वह अपने घर अपने अण्डों के पास पहुँचना चाहती है।

जब वह इतने पास पहुँच गई कि पेड़ दिखने लगा तो अपने बाएँ कंधे पर झुक गई, उसने अपने पंख फैला दिए और हवा को अपने अलिंगन में ले लिया मानो वह आकाश में ही ठहर जाना चाहती हो। उसकी आँखों में लगन थी और उसका दिल अपने घर के खिंचाव को महसूस कर रहा था। दिन की रोशनी, खुली हुई मुस्कराहट उसकी गरदन पर चमक रही थी।"

दो पैरे इसलिए उद्धृत किए गए हैं कि एक पैरा या कुछ पंक्तियाँ देने से यह शंका अथवा एतराज़ हो सकता था कि वह ख़ास तौर पर चुन ली गई हैं। सारी कहानी इसी शैली में लिखी गई है। इन दिनों मनोविश्लेषण का जो रोग लगा है, उससे लेखक और पाठक दोनों ही दलदल में फँस जाते हैं। देखिए यहाँ लेखक ने कबूतरी का भी मनोविश्लेषण किया है। दर असल यह लेखक का अपना मनोविश्लेषण है जो एक बीमार रुझान का सूचक है। इन लोककथाओं को संकलित करते समय पंजाबी में भी कुछ संगृहीत पुस्तकों को पढ़ने का अवसर मिला, उनमें भी यह बीमार रुझान पाया जाता है। लोककथाएँ लोग सदियों से सुनते और सुनाते आए हैं, वे उन्हें ज़बानी याद रखते हैं और उन्हें किसी एक व्यक्ति ने नहीं, बहुत से व्यक्तियों ने रचा है। इन कहानियों का उद्देश्य सदा सत्य को समझाना और संसार को बदलने की क्रान्तिकारी भावना को सबल और प्रौढ़ बनाना रहा है। उनमें इस प्रकार की विडम्बना की गुंजाइश नहीं हो सकती। यह विडम्बना ही कथा साहित्य को निरुद्देश्य बनाती है और क्रान्तिकारी भावना के स्थान पर एक विलासमयी बौद्धिक भावना उत्पन्न करती है।

इसका मतलब यह कदाचित् नहीं है कि कहानी में मनोविश्लेषण होना नहीं चाहिए या लोककथाओं के अलावा जिस कहानी साहित्य की रचना हुई है, उसने मानव संस्कृति और मानव ज्ञान को आगे नहीं बढ़ाया है। कहने का मतलब सिर्फ़ यह है कि कहानी का आधार संघर्ष और अनुभव होना चाहिए ताकि पाठक को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिले और उसके मन में संसार को बदलने और सुन्दर बनाने की भावना और आशा बनी रहे। हमारे साहित्य में आज जो विडम्बना आ गई है और उसमें जो एक निराशावाद का स्वर पाया जाता है उसका कारण यह है कि शासकवर्ग की तरह जनता के शोषण पर पलनेवाला एक बुद्धिवादी वर्ग भी उत्पन्न हो गया है और वह अपने निरुद्देश्य जीवन की भाँति निरुद्देश्य साहित्य का निर्माण कर रहा है क्योंकि अपनी शोषक वृत्ति के कारण उसे अपना भविष्य उद्देश्यहीन और निराशापूर्ण जान पड़ता है। लेकिन लोककथाओं और लोकगीतों का निर्माण वे लोग करते हैं, जो मेहनत करते हैं, जो सचमुच संसार को बदल रहे हैं, जो शोषक नहीं सदा से शोषित हैं और वे इस शोषण को भी

खत्म करना चाहते हैं। उक्त लेख में गोर्की ने लिखा है :

"लोककथाओं में इस बात को समझ लेना ज़रूरी है कि उनमें निराशावाद का नाम तक नहीं है। यद्यपि लोककथाओं के रचयिता बहुत ही भीषण परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करते थे, उनके कठिन और कमर तोड़ देने वाले दास परिश्रम को शोषण विफल बना देता था और उनका व्यक्तिगत जीवन भी सुरक्षित नहीं था क्योंकि उन पर कोई भी अत्याचार किया जा सकता था, फिर भी पूरे समुदाय को अपने अमरत्व और अपने शत्रुओं पर भावी विजय का विश्वास था।"

उनमें यह विश्वास उनके कठिन श्रम ने ही उत्पन्न किया था जैसे जैसे मनुष्य का ज्ञान और अनुभव बढ़ता गया, यह विश्वास दृढ़ से दृढ़तर होता गया। जब हाथ और दिमाग़ का मेल नहीं रहता, जब श्रम और विचार में सम्बन्ध स्थापित नहीं रहता, तो विचार अपने आपको पंगु महसूस करने लगता है, तभी मनुष्य का बढ़ा हुआ ज्ञान भी उसे किसी प्रकार का ढारस नहीं देता, इसी से निराशवाद का जन्म होता है। 'हितोपदेश' में इसी बात को यों प्रस्तुत किया गया है : "उद्योग से भागनेवाले मनुष्य को विज्ञान का विधान कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा सकता, जैसे अँधे के हाथ में रखा हुआ दीपक भी उसे उसकी अभिलषित वस्तु दिखाने में समर्थ नहीं हो सकता।"

लोककथाओं की विशेषता यह है कि वे श्रम और विचार में स्थायी सम्बन्ध स्थापित करती है क्योंकि उनकी रचना श्रमजीवी जनता करती है, इसलिए उनमें साहित्य की परम्परा हमेशा स्वस्थ रहती है। कथासाहित्य का सही मतलब मानवता और सत्य में सम्बन्ध स्थापित करना है और सत्य का रूप हर युग के साथ बदलता रहता है। जब युग बदलता है तो लोककथाओं का स्वरूप भी बदलता है। थोड़े से परिश्रम से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जाने अनजाने कथासाहित्य युग के सत्य को अपने भीतर संजोकर आगे बढ़ता रहा है, और वह मानव संस्कृति के विकास को दर्शाता रहा है। जैसा कि हम पहले कह आए हैं कि जैसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ा है, कथासाहित्य में कल्पना की मात्रा कम और उसी अनुपात से यथार्थ की मात्रा अधिक होती गई है और वह समय की गति और रुचि के अनुसार बदलता रहा है। उपनिषद्, महाभारत और बौद्ध जातक की आख्यायिकाएँ कुतूहल प्रधान है और उनका विषय अध्यात्मवाद की व्याख्या है, लेकिन 'पंचतंत्र' और हितोपदेश की कथाओं का विषय नीति है और इसी मनुष्य का ज्ञान बहुत कुछ व्यवहारिक हो गया है पड़ता है। इन्हीं कहानियों के आधार पर संस्कृत साहित्य के विद्वान् डा० विंटरनित्स ने इस प्रश्न के उत्तर में कि "भारतवर्ष की संसार को मौलिक देन क्या है?" कहा था : "एक वस्तु जिसका नाम मैं तुरन्त और बेखटके ले सकता हूँ, वह पशु, पक्षियों पर ढाल कर रचा हुआ कहानी साहित्य है। इसी से 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' कहानी साहित्य की सर्व प्रथम पुस्तकें मानी जाती हैं और ये पुस्तकें प्रचलित लोककथाओं के संकलन मात्र हैं। इसी परम्परा के आधार पर हमारा कहानी साहित्य सदा आगे बढ़ता रहा है, और आज भी इसी आधार पर हम अपने कथा साहित्य को आगे बढ़ा सकते हैं, इस परम्परा से कट कर हम शून्य में भटक जाएँगे। लोककथाओं को सिर्फ़ सुन अथवा पढ़ लेना ही काफ़ी नहीं, बल्कि उनमें ओत प्रोत युग सत्य को समझने की ज़रूरत है। इसी से हमें अपनी संस्कृति के वास्तविक विकास का बोध होगा।

इस पुस्तक में पंजाब की कुछ प्रसिद्ध और प्रतिनिधि लोककथाएँ संकलित की गई हैं। हमने उनकी भाषा को सरल और सुबोध रखा है, जैसे लोग उन्हें सुनाते समय कहते हैं, वैसा ही रखने का प्रयत्न किया है। देश के विभाजन में पंजाब को बाँट दिया गया है, लेकिन बटवारे की एक कृत्रिम रेखा खींच देने से जन संस्कृति का विभाजन सम्भव नहीं। यह कथाएँ पश्चिमी और पूर्वी दोनों पंजाबों में प्रचलित हैं। शुरू में 'हीररांझा' 'सस्सी पुन्नूँ' 'सोहिनी महीवाल' और 'मिर्जा साहिबाँ' की प्रेम और रोमांस सम्बन्धी लोककथाएँ दी गई हैं। ये मध्यकालीन कथाएँ हैं और समय की रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह भावना को व्यक्त करती हैं। इन कथाओं की विशेषता यह है कि उनमें पुरुष और नारी जीवन में अपना संगी आप चुनने और अपना प्रेम अधिकार मनवाने के लिए संघर्ष करते हैं और उसके लिए आत्म बलिदान देते हैं। समाज की सामंती व्यवस्था में विवाह प्रथा राजनीति ही का एक अंग होती थी। राजे महाराजे और उनके सामंत सरदार अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने के

१९५४

लिए ही विवाह सम्बन्ध स्थापित करते थे । इसमें लड़के लड़कियों की इच्छा को ज़रा भी दखल नहीं होता था । स्वयंवर भी शक्तिशाली राजा से सम्बन्ध स्थापित करने का साधन मात्र था । तुलसी रामायण में सीता पुष्पवाटिका में राम को देख कर उसके रूप लावण्य पर मुग्ध हो जाती है और फिर सोचती है कि यदि वे धनुष न उठा सके तो क्या ? मैं उन्हें कैसे पा सकूँगी ? यह विवशता चिरकाल तक मानव हृदय को कुंठित करती रही । सारे संसार में ऐसा ही रिवाज़ था । तेरहवीं, चौदहवीं सदी में इस जर्जर विवाह प्रथा के विरुद्ध विद्रोह की भावना सजग हुई और इसी से रोमांटिक साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ । चूँकि रोमांस सम्बन्धी साहित्य जर्जर प्रथाओं के विरुद्ध विद्रोह करता है और वह मानव हृदय की स्वतन्त्रता और संस्कृति के विकास को आगे बढ़ाता है, इसलिए उसका यह रोल निश्चय ही प्रगतिवादी है । इसी प्रकार की एक कहानी 'रोडा जलाली' है, जिसका नायक किसी कारण से संसार को त्याग कर फ़क़ीर बन जाता है । लेकिन एक गाँव के किसानों का सुखी जीवन और एक नारी का प्रेम उसे फिर संसार में लौट आने की प्रेरणा प्रदान करते हैं । हमारे बुद्धिजीवी लोग अध्यात्मवाद को बहुत महत्व देते हैं, लेकिन इस कहानी से सिद्ध है कि श्रमजीवी जनता इसे कोरा पाखण्ड समझती है । उनका अध्यात्मवाद उनका श्रम है ।

कथाओं में न सिर्फ़ पंजाब की जनता का सुन्दर चरित्र चित्रण मिलता है, बल्कि उसकी नदियों और मैदानों का भी सुन्दर वर्णन है । किसी प्रान्त की लोककथाओं की विशेषता ही यह होती है कि उसकी परम्परा, संस्कृति और प्राकृतिक सौन्दर्य का सफल वर्णन उनमें हो पाया हो । हीर का अपनी सखियों के साथ चनाब की ओर जाने का दृश्य देखिए ।

“एक दिन की बात है अभी सूर्य नहीं निकला था, घास और पेड़ों पर ओस की बूँदें चमक रही थीं । चनाब नदी से ठण्डी हवा के झोंके आ रहे थे । मौसम बहुत ही सुहावना था । लड़कियों का एक दल हीर के पीछे नाचता गाता चला जा रहा था यह सब लड़कियाँ हीर की सखियाँ थीं और वे चनाब नदी की ओर जा रहीं थीं ।”

यह पंजाब की लोककथा है, इसमें पंजाबी लड़कियों की चंचलता और वहाँ के मैदानों, खेतों और नदियों की छटा है । अगर हम कश्मीर की लोककथाओं को लें तो उनमें कश्मीर की प्राकृतिक छटा मिलेगी । एक कश्मीर लोककथा का एक उद्धरण प्रस्तुत है ।

“एक दिन की बात है, किसी योगी महात्मा का एक चेला, जो प्रति वर्ष अपने स्वामी के लिए गंगाजल झील से पवित्र जल लाया करता था, वापस आते हुए वहाँ ठहरा । उसने जब इस बाग़ के सुन्दर स्रोतों को देखा, तो उसने जल का लोटा वहीं रख दिया और स्वयं बाग़ में गया । वहाँ जाकर वह बेलबूटों और जलाशयों की सुन्दरता को देख कर हैरान हुआ और इसी दशा में एक छायादार पेड़ के नीचे पड़ कर सो गया ।”

इस प्रकार बंगाल, आन्ध्र और महाराष्ट्र की कहानियों में आपको वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का और समुद्र का वर्णन मिलेगा । और यह प्राकृतिक वातावरण और भौतिक स्थिति वहाँ के लोगों के चरित्र और संस्कृति को प्रभावित करती हैं । इसी लिए एक ही लोककथा का विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न रूप होता है । लोककथाओं को समझने के लिए उन्हें बहुत ही ध्यान से पढ़ने की आवश्यकता होती है । जैसे जैसे जनता का युग निकट आएगा उनका आदर बढ़ता रहेगा । गोर्की जनता के लेखक थे, उन्होंने लोककथाओं के महत्व को खूब समझा, अन्त में हम उन्हीं का एक और उद्धरण प्रस्तुत करके इस लेख को समाप्त करते हैं । गोर्की ने लिखा है :

“इसमें सन्देह नहीं कि आप बहुत-सी प्राचीन कथाएँ जानते हैं, लेकिन मैं चाहता हूँ कि उनके सार-तत्व को और गहराई से समझ लिया जाए । इनमें आदि मनुष्य के अपने श्रम को हलका करने की कामना, उत्पादन बढ़ाने की लालसा, अपने चार पाँवों और दो पाँवोंवाले शत्रुओं को हराने की इच्छा और शब्द शक्ति से भूत-प्रेत का अपसरण करनेवाले जादू टोने और मन्त्रों द्वारा प्रकृति के अन्ध प्रकोपों पर प्रभाव डालने की चेष्टा हमें मिलती है । यही उनका सार तत्व है ।”*

अकबर मंज़िल,
उर्दू बाज़ार, दिल्ली

—हँसराज 'रहबर'

---

* 'पंजाब की लोककथाएँ' अप्रकाशित पुस्तक की भूमिका

बीसवीं सदी के अंग्रेज़ी उपन्यासकार

किसी देश का उपन्यास-साहित्य उस देश की राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थिति के अध्ययन में बहुत अधिक सहायक होता है। प्रत्येक शताब्दी के उपन्यास-साहित्य की अपनी विशेषता होती है। इसीलिए आज का उपन्यास ऐलिज़ाबेथ के समय लिखे गए उपन्यासों से भिन्न दीखता है। बीसवीं सदी का अंग्रेज़ी उपन्यास--साहित्य बहुत ही उन्नतिशील अवस्था में है। मुख्यतः इस शताब्दी में राजनीतिक वातावरण, विज्ञान विकास तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का प्रभाव उपन्यासकारों पर पड़ा है। प्रस्तुत निबन्ध में बीसवीं सदी के प्रमुख अंग्रेजी उपन्यासकारों तथा उनकी कृतियों का उल्लेख संक्षेप में किया जाएगा।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हम एच० जी० वेल्स, रोनाल्ड बेनेट, जान गॉलसवर्दी तथा जेम्स कोनार्ड आदि उपन्यासकारों को रख सकते हैं। सर्वप्रथम जब हम वेल्स के उपन्यासों को लेते हैं तो रोमान्स का आज के युग में क्या स्थान है इसका स्पष्ट उल्लेख हमें उनमें मिलता है। वेल्स में सफल कहानी वर्णन की क्षमता भी मिलती है। व्यंगात्मक हास्यचित्र भी उसने बहुत ही सुन्दर ढंग से खींचे हैं। धीरे-धीरे वह उपन्यास-क्षेत्र की सीमा से बहुत आगे बढ़ गया तथा उसने ज्ञान के प्रचार-प्रसार का काम अपने हाथ में ले लिया।

उपन्यासकार बेनेट को एक कुशल शिल्पीकार कहा जा सकता है। वह बालज़ाक के उपन्यासों से बहुत प्रभावित दीखता है। उसका दृष्टिकोण प्रगतिशील रहा है। उसके पात्र यद्यपि साधारण होते हैं फिर भी प्रत्येक पाठक के हृदय में एक सहानुभूतिपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेते हैं। ग्लासवर्दी के उपन्यासों में आत्मचरित वर्णन बहुत अधिक मिलता है। उसने नवीन और प्राचीन पद्धति के बीच के मार्ग को अनुसरण करने का प्रयत्न किया है।

कोनर्ड और जार्ज मूर की रचनाएँ वर्तमान युग से प्रभावित नहीं दीखतीं। इन उपन्यासकारों ने अपने मुख्य विषय के मूल में धर्म और नैतिकता को ही स्थान दिया है। कोनर्ड ने महान् विषयों पर गम्भीर विचार विमर्श किया है तथा साथ ही उनका सजीव एवं ओजपूर्ण शैली में वर्णन भी किया है। कोनर्ड और जाज मूर की रचनाओं में 'दी रॉबर' तथा 'सस्पेन्स' क्रमशः सन् १९२३ तथा १९२५ में प्रकाशित हुई हैं। जार्ज मूर एक आइरिश उपन्यासकार है और उन्होंने मुख्यतः ऐतिहासिक उपन्यास ही लिखे हैं।

वर्जिनिया वुल्फ ने मुख्यतः अपने पात्रों को समयानुसार स्वतन्त्रता से घूमने दिया। उसने घटनाक्रम के बीच की कड़ी जोड़नेवाले 'कानिकलरों' को हटा कर एक नवीन टेकनीक का प्रयोग किया।

जेम्स जोएस ने भाषा का प्रयोग एक नवीन ढंग से किया। उसके उपन्यास युलिसिज़ में हमें आधुनिक उपन्यास की रूपरेखा मिलती है। मार्क्स तथा फ्रायड द्वारा बँधे मनुष्य की क्या शक्ति हो सकती है इसका वर्णन इस उपन्यास में हमें मिलता है। लेकिन उपन्यास की कहानी इतनी लम्बी और पेचीदा है कि उसे छोटे से मस्तिष्क में रखना असंभव दीखता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही अंग्रेजी उपन्यासकार नए टेकनीक के प्रयोग की ओर झुके हैं और उन्होंने एक नवीन दिशा की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया। आरम्भ के सभी उपन्यासकारों का प्रयत्न यही रहा है।

डी० एच० लॉरेन्स : बीसवीं सदी के प्रमुख उपन्यासकारों में डी० एच० लॉरेन्स का मुख्य स्थान है। लॉरेन्स के उपन्यासों में मानवता की भावना सर्वत्र दृष्टिगत होती है। उसकी सहृदयता और कोमलता के दर्शन उसके उपन्यासों में होते हैं। उसे मानव-प्रेम एवं सौन्दर्य का पुजारी कहना अनुपयुक्त न होगा। क्रान्ति के बारे में उसने कहा है "लाल मनुष्य क्रान्ति नहीं करते। ये रौबट ही हैं जो लाल मनुष्यों को जीवन के प्रति इतना महत्वपूर्ण बना देते हैं कि वे क्रान्ति कर सकें।"

लॉरेन्स ने युद्ध और घृणा के वातावरण में उपन्यासों को लिखा है। उनमें हमें रौबर्ट का खोखलापन देखने को मिलता है। दुःख है कि इस उपन्यासकार को लोगों ने गलत समझने का प्रयत्न किया और उस पर अश्लील एवं अशिष्ट मनोविज्ञान के प्रचारक का भू

१९५४

आरोप लगाया। लॉरेन्स जिस वस्तु को स्वयं छोटा समझता था उसके पाठकों ने उसी ओर विशेष ध्यान दिया। यही है उसको गलत समझे जाने का प्रधान एवं प्रमुख कारण।

ई० एम० फोस्टर : जीवित उपन्यासकारों में ई० एम० फोस्टर का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इसने अपना सर्वप्रथम उपन्यास 'वेयर एन्जलस् फीयर ट्रेड' सन् १९०५ में लिखा। फोस्टर की हाल की कृति 'टू चियर्स फार डिमाक्रेसी' बहुत ही सुंदर एवं उच्चकोटि का उपन्यास है। 'एन एक्टिव समर' नामक उपन्यास को प्रथम विश्वयुद्ध के पहले लिखना आरम्भ किया था लेकिन गत चालीस वर्षों में भी यह उपन्यास पूरा न हो सका। इस उपन्यासकार ने उन विषम परिस्थितियों को सुलझाने का प्रयत्न किया है जो आज के युग में पाई जाती हैं। इन विषम परिस्थितियों के सजीव चित्रण में उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली है।

समरसेट माघम : इसका सर्वप्रथम उपन्यास 'लीजा ऑव लेम्बेथ' सन् १८९७ में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद से अब तक बराबर ही उपन्यासों के प्रणयन का कार्य किया है। इस उपन्यासकार ने ब्रिटेन तथा अन्य पश्चिमी देशों की विषम मानवी समस्या को सुलझाने का अथक प्रयत्न किया है। इसके 'दी रोजर्स एज' नामक उपन्यास में भारतीय योग की चर्चा हमें मिलती है। उसके कुछ नए उपन्यासों में मेचेविला, इटली तथा टेरिसार स्पेन का भी उल्लेख मिलता है।

आल्डस हक्सले : हक्सले ने अपने उपन्यासों में मानवता की भावना को बहुत अधिक महत्व दिया है। इसके पात्र मुख्यतः बौद्धिक विनिमय के अस्त्र हैं। पूर्व दर्शन को उसने बहुत अधिक महत्व दिया है और इसका स्पष्ट उल्लेख हमें उसके उपन्यासों में मिलता है। उसे पश्चिमी उपन्यासकारों की परम्परा में शान्तिवाद का अग्रगामी दूत कहना अनुपयुक्त न होगा। उसने अपने नवीन उपन्यास 'ऐप एण्ड एसेन्स' में वर्तमान समाज के बहिष्कार तथा नवीन ढाँचे पर उसके निर्माण पर ज़ोर दिया है। उसने वर्तमान के बुरे दिनों को बराबर ही घृणा एवं हेय दृष्टि से देखा है और भविष्य के विषय में उसका मत है कि परिस्थितियाँ आज से भी भयंकर दीखेंगी। बाद में वह उपन्यास के क्षेत्र तक ही सीमित न रह सका अपि तु वह दार्शनिक और निबन्ध-लेखक के रूप में बहुत अधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है।

तीन 'ग्रीन' उपन्यासकार : एफ० एल० ग्रीन, हेनरी ग्रीन तथा ग्राहम ग्रीन तीन प्रमुख अंग्रेज़ी उपन्यासकार हैं। इन तीनों उपन्यासकारों ने बराबर ही उच्चकोटि के उपन्यास लिखे हैं। एफ० एल० ग्रीन के उपन्यास दास्तोवस्की की उपन्यास परंपरा से प्रभावित दीखते हैं। अपने नवीनतम उपन्यास में उसने वर्तमान युग में दानव का क्या स्वरूप है इसका दिग्दर्शन कराया है। आज के करोड़पतियों में उसने दानव के स्वरूप का दर्शन किया है।

हेनरी ग्रीन के उपन्यास काट्, लविंग, कनक्लूडिंग, नथिंग आदि कुछ भयावह से दीखते हैं पर उनमें चरित्र चित्रण बहुत ही सुन्दर एवं ओजपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है। उसका दृष्टिकोण मानव के प्रति विशुद्ध भावनाओं से ओतप्रोत दीखता है।

ग्राहम ग्रीन की विशेषताओं को देखते हुए उसे तीनों ग्रीन उपन्यासकारों में सर्वश्रेष्ठ कहना अनुपयुक्त नहीं दीखता। उसने कतिपय उच्चकोटि के उपन्यास लिखे हैं जिनमें 'स्टेम्बल ट्रेन', 'ए गन फॉर सेल' तथा 'दी हार्ट ऑव दी मैटर' विशेष उल्लेख्य हैं। उसकी नवीनतम कृति 'दी एण्ड ऑव अफ़ेयर' है। उसके उपन्यासों में मनोरंजन का आधिक्य नहीं है फिर भी उन सबमें टेकनीक की विशेषताएँ मिलती हैं। 'दी एण्ड ऑव अफ़ेयर' नामक उपन्यास का नायक बहुत ही रूखा है लेकिन इस उपन्यास में धोखेबाज़ मित्र और पति का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक हुआ है। इस उपन्यास की नायिका ने बहुत से पाप किए हैं परन्तु उसने पाठकों की सहानुभूति सर्वदा प्राप्त की है। इस शताब्दी के अन्य उपन्यासकारों की तरह विश्वास और श्रद्धा को इसने भी बहुत अधिक महत्व दिया है। इस विश्वास में ही उसकी रचना की श्रेष्ठता निहित है।

महिला उपन्यासकार : इंग्लैण्ड में आधे दर्जन से अधिक महिला-उपन्यासकार हैं जो प्रति वर्ष एक पुस्तक लिखने के नियम का पालन करती हैं। आधुनिक शताब्दी में महिला उपन्यासकारों की संख्या बराबर बढ़ती ही जा रही है। इन महिला उपन्यासकारों की रचना को देखने पर आदा लिवरसन की उपन्यास परम्परा का स्मरण हो आता है जो एडवर्ड काल में प्रचलित थीं।

मिस काम्पटन बर्नेट के उपन्यासों को देखने से उसकी अद्भुत लेखनशैली का अनुमान सहज ही लगाया

जा सकता है। वह निश्चयात्मक रूप को अत्याधिक पसन्द करती है।

उसके उपन्यासों में हास्य एवं व्यंग्य का सजीव चित्र मिलता है। इसके 'ब्रदर एण्ड मास्टर', 'मैन एण्ड वाइफ', 'डाटर एण्ड सन' आदि उपन्यास विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। इनको पढ़ने के बाद पाठक स्वयं ही उसकी विलक्षण प्रतिभा पर मुग्ध हो जाता है।

डारथी रिचर्ड एक अस्सी वर्ष की वृद्धा उपन्यासकार है। इसने एक युवती की भाँति उपन्यासों के प्रणयन का कार्य बड़ी लगन एवं तत्परता से किया है। उसका अंतिम प्रकाशित उपन्यास 'डिम्पल हिल' है।

मिस एलिजाबेथ बोवेन ने कतिपय उच्च कोटि के उपन्यासों का निर्माण किया है। उसके उत्कृष्ट उपन्यासों में 'दी हाऊस इन पेरिस', 'दी डेथ आफ दी हार्ट', 'दी हीट आफ दी डे' हैं। इनमें सादगी तथा देव एवं दानव के स्वरूपों का संक्षिप्त विवरण मिलता है।

छोटी उम्र की उपन्यास लेखिकाओं में मिस ए० एल० बारकार, मेसर्स हेना क्लास, इमास्मिथ तथा स्टीव स्मिथ को रक्खा जा सकता है। इसके अतिरिक्त एलिजाटेलर, एलिजाबेथ लेक तथा मिस जूलिया के उपन्यास उनकी बहुमुखी प्रतिभा के परिचायक हैं। मिस जूलिया का 'दी मैन आन फायर' बहुत ही रोचक तथा सुन्दर उपन्यास है।

मिस वीसी का एक उपन्यास 'आलिबा' जिसका प्रकाशन सन १९४६ में हुआ है एक उच्च कोटि का उपन्यास है जिसके पढ़ने के बाद यह आशा करना अनुचित न होगा कि लेखिका भविष्य में अच्छे उपन्यासों की रचना करेगी। यह लेटेन स्ट्रेणी की बहन है जिसने आंद्रे जीड़ के अंग्रेजी उपन्यासों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। मिस बेटी आकस्विथ का उपन्यास 'ए ब्रोकेन एं गेजमेंट' बहुत ही सुन्दर उपन्यास है। इसके अतिरि बहुत-सी अन्य लेखिकाएँ इस ओर प्रयत्नशील हैं जिन बारे में हम भविष्य में अधिक जान-सुन सकेंगे।

नवोदित उपन्यासकार : ब्रिटेन में आज नवोदि उपन्यासकारों की संख्या बहुत ही अधिक है फिर भ उनमें कतिपय उपन्यासकार प्रतिभासम्पन्न हैं। इमास्मि एक नवयुवक लेखिका है जिसका प्रथम उपन्यास 'अ फार काइ' सन १९५० में प्रकाशित हुआ था। यह ए बहुत सुन्दर उपन्यास है और वस्तुतः इसको पढ़ने के बा यह कहना अनुचित न होगा कि भविष्य में यह सुन्दर उप-न्यासों की रचना करेगी।

माईकेल बर्न का उपन्यास 'चाइल्डहुड एट ओरि-यल' सन् १९५१ में प्रकाशित हुआ है। उसमें न तो केव बच्चों के बारे में लिखा गया है और न ओरियल के बा में ही। अपि तु उन वयस्कों का भी उल्लेख है जो कि बच्चो के खेल में किसी न किसी प्रकार से भाग लेते हैं।

इसी प्रसंग ने दो शब्द ब्रूस मार्शल के बारे कहना अनुचित न होगा। मार्शल के उपन्यास 'एव मैन ए पेनी' में हमें सन् १९१४ से लेकर १९४६ त का क्रमबद्ध इतिहास मिलता है। इस उपन्यास क नायक एक 'कैथोलिक प्रिस्ट' है जो कि सत्य और शान्ति के लिए सर्वदा प्रयत्नशील दीखता है।

प्रत्येक वर्ष ब्रिटेन में लगभग दो हजार उपन्यास प्रकाशित होते रहते हैं और उनमें अच्छे उपन्यासों क चुनाव करना भी एक कठिन कार्य है। नवीन उपन्यास-कारों में फिलिप टायनबी, विलियम सैमसन, पी० एच० न्यूली आदि बहुत ही प्रतिभाशाली उपन्यास लेखक हैं जिनके बारे में भविष्य में हम अधिक जान सुन सकेंगे।

व्यास निवास,
३१।५१ कालभैरव, बनारस

—कृष्णशंकर व्यास

इजराइल के राज्य को मुख्यतया पूर्वी यूरोप के विशेषतया रूस, पोलैण्ड और लिथु-आनिया के यहूदियों ने बनाया है। यहूदियों के अधिकांश स्वप्नद्रष्टा, वक्ता, अग्रणी, नेता और राज्यपुरुष उन्हीं में से थे। १९४८ में जब कि यहूदी राज्य की घोषणा की गई—इसकी आधी जन-संख्या रूस और पोलैण्ड के लोगों की थी।

—आइज़क ड्यूट्शर

भारतीय चित्रकला में नेत्र-चित्रण

मनुष्य की व्यावहारिक भाषाओं में से वाक्शक्ति के अतिरिक्त भी उसकी एक भाषा है, जिसे हम आँखों की भाषा कह सकते हैं। इस भाषा का प्रचलन अतीत से ही हमारे समाज के प्रायः सभी वर्गों में समान रूप से रहा है। हमारे जीवन में इस भाषा की क्या उपयोगिता है, यह किसी से छिपा नहीं है। हृदय के जिन भावों और परिस्थितियों को वाक्शक्ति व्यक्त करने में हार मान बैठती है, उसकी पूर्णाहुति आँखों द्वारा ही होती है। वाक्शक्ति में यदि अमृत का असर है तो आँखों की भाषा में चुम्बक का आकर्षण है। मनुष्य की वाक्शक्ति इतनी समर्थ होते हुए भी नौ रसों को अच्छी तरह नहीं प्रकट कर पाती परन्तु ये आँखें अपनी विभिन्न मुद्राओं से देखते-देखते उनका सचित्र स्वरूप हमारे सामने खड़ा कर देती हैं, और हमें एक स्वर से स्वीकार करना पड़ता है कि आँखों की भाषा और भाव वाक्शक्ति की भाषा और भाव से अधिक सरल, सरस और भावमय होता है। हमारे जीवन में प्रायः

भारतीय चित्रशैली की चार चारु आँखें :—

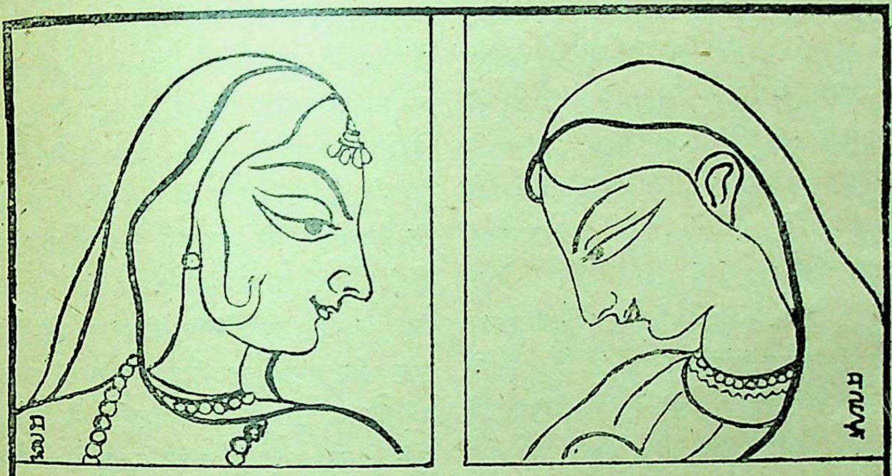

किशनगढ़ - खंजन नयन

कांगड़ा - मीन नयन

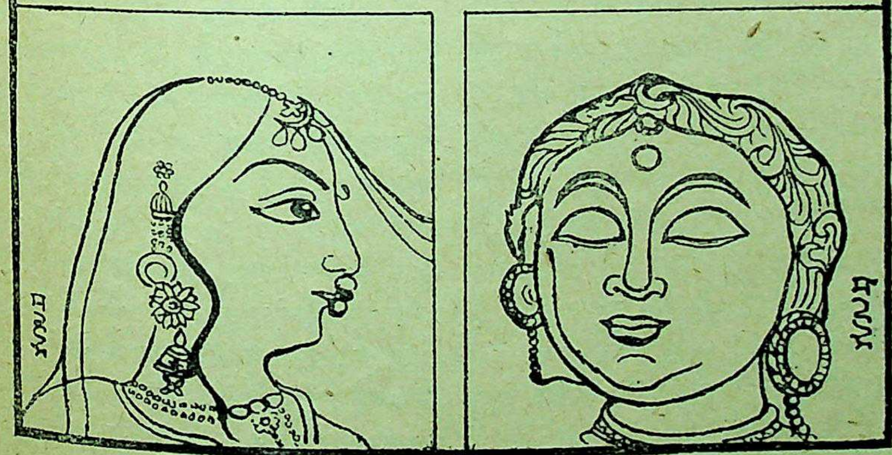

राजस्थानी - मृग नयन

गुप्तकालीन - कमल नयन

ऐसा मौक़ा आता है जब हमारा मुँह अवाक् हो जाता है तब हमारी आँखें ही उसे वाक्शक्ति प्रदान करती हैं। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति न होगा जिसको आँख की भाषा का रस न मिला हो। भरी सभा में दो-दिलों के बात-चीत का माध्यम उनकी आँखें ही तो हैं? आँखों की भाषा की कितनी ही विलक्षणताएँ करामातें हैं, जिन्हें पाठक स्वयं जानते हैं।

नेत्रों की मूक वाक्पटुता पर मुग्ध हो कर ही कवियों ने नेत्र-वर्णन की प्रशंसा में भारतीय काव्यों के पन्ने-पन्ने रंग डाले हैं। विभिन्न कवियों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से आँखों का मूल्यांकन किया है। इन नयनों के रूप-गुण पर उन्होंने अपने को न्यौछावर कर दिया है। आँखों के वर्णन में कमलनयन, मीन-नयन, खंजन-नयन और मृग-नयन को ही अधिक प्रधानता दी गई है। प्राचीन भारतीय चित्रकला में भी इन्हीं आँखों का हृदयहारी आलेखन मिलता है। आँखों के चित्रण में उन चित्रकारों ने जिस सहृदयता का परिचय दिया है, उसे हमें सदा याद रखना होगा। आँखों का ऐसा मनोवैज्ञानिक आलेखन संसार की किसी कला में नहीं मिलता। नेत्र-चित्रण में ही हमें उनकी प्रतिभा का सच्चा दर्शन होता है। रसोत्पत्ति मुँह से अधिक आँखों से होती है इसे वे खूब जानते थे, इसीलिए उन्होंने आँखों के चित्रण में अपनी उदारता का परिचय दिया है। यद्यपि वर्तमान समाज उन आँखों को देख कर एक बार चौंक जाता है और उनकी बड़ी-बड़ी आँखों को आज की छोटी-छोटी आँखों से तुलना कर उन चित्रकारों के प्रति ग़लत धारणा अपने दिल में बैठा लेता है। इस विशालकाय शरीर में आँख जैसी छोटी वस्तु का सम्मान साधारण व्यक्ति नहीं एक कलाकार-हृदय ही कर सकता है। कलाकार छोटी से छोटी जगह से भी अपने मतलब की चीज़ चुन लेता है और अपनी महानता का परिचय छोटी वस्तु द्वारा देता है। चित्र रचना में चित्रकार के कुछ उद्देश्य होते हैं जिनके चित्रण की ओर उसका ध्यान पहले जाता है। भारतीय चित्र आकार में अन्य चित्रों की अपेक्षा बहुत छोटे होते हैं जिन्हें हम पुस्तक चित्र (मिनियेचर पेंटिंग) कहते हैं। ऐसे छोटे चित्रों में यदि उसके अनुपात से हम आँखों का चित्रण करें तो उन आँखों में इतना स्थान कहाँ मिलेगा कि आँखों के विभिन्न भाव और भाषाओं को अच्छी प्रकार व्यक्त कर सकें जिन चित्रों की वाक्शक्ति का एकमात्र मुखस्रोत उनके नेत्र ही हैं। इसलिए प्राचीन भारतीय चित्रों में आँखों का चित्रण और अन्य अंगों के अनुपात से बढ़ा-चढ़ा कर अंकित करने की प्रथा रही है। अन्यथा आज की हमारी छोटी आँखें, चित्र की उन छोटी-छोटी आँखों को साफ़-साफ़ देखने और उनकी भाव-भंगिमा को समझने में धोखा खा सकती हैं। चित्रों के भाव उनकी मुखाकृति से भी समझे जाते हैं पर भारतीय कुशल चित्रकारों ने मुँह को आँख जैसी लम्बी-चौड़ी सीमा में चित्रबद्ध करने की आवश्यकता नहीं समझी क्योंकि मुँह का सौन्दर्य उसकी गोलाई और छोटाई में भला लगता है और आँखों की शोभा उनकी बड़ी आकृति में फबती है। भारतीय चित्र रूप-रस-भाव का संगम है। यहाँ के चित्रों का रूप-सौन्दर्य भी संसार के चित्रों के रूप-सौन्दर्य में एक विशिष्ट स्थान रखता है। रूप विन्यास का विचार कर के ही इन चित्रकारों ने चेहरों की लिखाई की है। आँख के चित्रण जैसी स्वतंत्रता यदि वे मुँह के चित्रण में दिखाते तो इसमें सन्देह नहीं कि उन चित्रों की मुखाकृति अफ्रीका के हब्शियों जैसी न होती। अतः उनका स्वाभाविक झुकाव आँख के चित्रण की ओर ही हुआ। आँख की भाषा और भाव उन्हें अधिक स्पष्ट और प्रभावोत्पादक ज्ञात हुआ। फलस्वरूप रस के परिपाक के लिए इतने बड़े शरीर में उन्हें दूसरा स्थल नहीं दिखाई पड़ा और इस प्रकार से उन्होंने अपनी आँखों की "खुलाई" से हमारी आँखों का परदा खोल दिया।

प्राचीन भारतीय चित्र अपनी बड़ी-बड़ी आँखों के लिए जगत् विख्यात हैं। इसका कारण यह है कि देश-काल-पात्र की सभ्यता के स्रोत में इन चित्रकारों की तूलिका कैसे गतिहीन हो सकती थी। गुप्त काल में भगवान् बुद्ध के जीवनसम्बन्धी घटनाओं को चित्रबद्ध करने का अवसर इन चित्रकारों को मिला। तत्कालीन ग्रन्थों के आधार पर ही इन्होंने अपनी तूलिका से बौद्ध दर्शन का रहस्योद्घाटन किया और कमल पुष्प से प्रेरणा प्राप्त कर बुद्ध भगवान् के अंग-प्रत्यंग को कमल की विभिन्न आकृतियों से सुसज्जित कर दिया। उनके नेत्र-चित्रण में कमल-पुष्प का संपूर्ण इतिहास-विकसित होने की अवस्था से ले कर उसके बन्द होने तक का भरा है, जिसमें करुणा, दया, दुःख, ममता, मोह विरक्ति आदि मनोभावों का चित्रण कमलनेत्रों में बोल उठा है। हृदय की मार्मिक अन्तर्दशाओं का सच्चा 'फ़ोटोग्राफ़' हमारी आँख के कैमरे में ही एकमात्र देखने को मिलता है।

अजन्ता के चित्र, जिसके बेजोड़ नमूने हैं, तथा उनमें कमल-नयनों की भरमार है।

गुप्त काल के बाद चित्रकला के इतिहास में एक ऐसे नूतन अध्याय का प्रारम्भ होता है जहाँ एक चश्म चेहरों (साइड फेसेज़) का आलेखन मिलता है। यहाँ चित्रकारों का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। एक आँख से दोनों आँखों का भाव और भाषा व्यक्त करने का प्रश्न सामने खड़ा हो जाता है। अतः जैन चित्रकारों ने दोनों आँखों के चित्रण की कसर एक आँख के चित्रण में ही निकाल ली। जैन चित्रों में आँख का चित्रण तत्कालीन चित्र शैलियों से कहीं बड़ी आकृति में अंकित हुआ है। उसमें नेत्रों की आकृति परवल जैसी अंकित की गई है। इनके नेत्र उतने वाचाल नहीं हैं फिर भी परम्परा का निर्वाह किसी प्रकार से यहाँ करने का प्रयत्न किया गया है। जैन चित्रों से ही एक प्रकार से एक चश्म चेहरों के चित्रण की प्रथा का श्रीगणेश हुआ और राजपूत कला तक उसी प्रकार चलता रहा। इन चित्रकारों ने एक ओर की मुखाकृति वाले चित्रों में भी किसी-किसी चित्रों से दो आँखों का आलेखन किया है यद्यपि दूसरी आँख मुखाकृति के बाहर चित्रित दिखाई जाती है। इस प्रकार का आलेखन इसलिए मिलता है कि भारतीय कला सदा से प्रतीकात्मक रही है। इसका एक दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि चित्र के पूरे भाव एक आँख से व्यक्त नहीं किए जा सकते। और इस सचाई को भी हम नहीं भूल सकते कि हमारे शरीर में और अंगों की अपेक्षा आँख का महत्व अधिक है। जिस किसी अवस्था में भी आँखों का ऐसा उत्कृष्ट आलेखन मिलता है उससे हमें यही ज्ञात होता है कि हमारी काया का सारा दारोमदार ही इन आँखों पर निर्भर है।

अब हम राजपूत कला के व्यापक क्षेत्र में पहुँचते हैं। चित्रों के विषय की दृष्टि से इस कला का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। राजपूत कला के अन्तर्गत हमें राजस्थानी, जयपुरी, किशनगढ़, बसोली, पहाड़ी आदि चित्र शैलियों का शुद्ध भारतीय आलेखन मिलता है जिसमें आँखों के चित्रण का इतिहास बदलता हुआ-सा नजर आता है। नेत्र-चित्रण की अनेक रूपता की दृष्टि से भी राजपूत चित्रकला स्मरणीय है। इसी शैली ने आँखों को खुल कर बोलने का अवसर दिया है। राजस्थानी चित्रों, जयपुरी तथा बसोली कलमों में आँखों की आकृति मृग की आँखों जैसी बड़ी तथा देखने में भोली भाली लगती हैं। इन शैलियों में वंशी-नाद पर रीझनेवाली सरल चित्त गोपिकाएँ अपनी भोली चितवनों से अनेकों स्वाँग भरती हुई चित्रित की गई हैं। इनकी आँखों में मृगों जैसी ही व्याकुलता है। इन कलमों में मीन नेत्र के भी चित्रण मिलते हैं विशेषतया सफरी मछली की आकृति के जिनमें चंचलता भरी चितवनों का आलेखन अपनी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता रहता है। सचमुच राजस्थानी चित्रों की जान तो उनकी आँखें ही हैं। इन चित्रों में आँखों का आलेखन यदि छोटे रूप में दिखाया जाए तो चित्रों का रूप-सौन्दर्य ही नष्ट हो जाएगा क्योंकि उन चित्रकारों ने आँखों के चित्रण में और अंग प्रत्यंगों के चित्रण से अधिक सावधानी दिखाई है। अतः राजस्थानी चित्रों की बड़ी-बड़ी आँखें ही राजस्थानी चित्र हैं। आँखों का इससे भी आकर्षक चित्रण हमें किशनगढ़ के कलमों में देखने को मिलता है जहाँ कटारदार आँखों का साम्राज्य है। ये वही आँखें हैं जिनकी प्रशंसा में लोकगीत (फोक सांग) की ये पंक्तियाँ "तोरी मदभरी अखियाँ कटारी मारे ना" रसिक ग्रामीण गुनगुनाया करते हैं। इन बांकी चितवनों की आकृति हमें खंजन पक्षी से प्राप्त हुई है। इसीलिए इन्हें खंजन-नयन कहते हैं। इन आँखों के भ्रूचाप में भी खंजन की पूरी प्रतिच्छाया रहती है। इन आँखों में बहुधा चंचलता भरी चालों का अथवा क्रीड़ायुत-व्यापार का मनोरम आलेखन रहता है जो हमारी आँखों को ही नहीं हृदय को भी रसमय कर देता है। इन आँखों का आलेखन हमारी मनोवृत्ति, जो बहुरुपिए के समान है, उसका उपचार भी करता है। मुगलकालीन आँखों में यह माद्दा नहीं है क्योंकि मुगल कलमों की प्रारंभिक रचनाओं में पूर्णतया विदेशी प्रभाव है और आँखों का क्षेत्र एकदम संकुचित हो गया है परन्तु पुनः विकसित मुगलशैली में हिन्दू चित्रकारों के सहयोग से आँखों का आलेखन भारतीय परम्परा के अनुरूप ही होने लगा। चूंकि आँखों का चित्रण भारतीय चित्रकारों के चित्रण-शैली का एक प्रिय विषय बन चुका था अतः कांगड़ा-कलम में इन आँखों का सर्वोत्कृष्ट और सजीव आलेखन मीनाक्ष के रूप में प्रकट होता है इन आँखों की आकृति स्वाभाविकता, कोमलता, चपलता, और उनकी चमकती हुई जानदार छोटी छोटी पुतलियों की हरकतें जीवित मछलियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। नेत्र धारण करने का रहस्य

सौन्दर्य का रस पान करना होता है विशेष कर वह सौन्दर्य जो शब्दों से नहीं व्यक्त होता। उसकी असली अभिव्यक्ति इन बड़ी-बड़ी आँखों द्वारा ही होती है। यह विशेषता प्राचीन भारतीय नेत्र-चित्रण-कला में ही थी। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन भारतीय चित्रों के नेत्र उन चित्रों के दर्पण हैं।

आधुनिक भारतीय कला में अंग्रेजों के साथ यथार्थवादी चित्रकला का ऐसा प्रचार बढ़ा कि भारतीय कला का एक दम कलेवर ही बदल गया। जल रंगों के जगह पर तेल-रंगों का प्रयोग बड़े-बड़े 'कैनवस' पर आदमी को सामने बैठा कर शीघ्रता से 'पोर्ट्रेट पेंटिंग' आकृति चित्रण के रूप में होने लगा और भारतीय कला चित्रण की परम्परा गत चित्रण-शैली जिसमें व्यक्ति को सामने न बिठा कर स्मृति द्वारा उसकी छबि उतारने की प्रथा थी, उसका सर्वथा अन्त हो गया। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि सामने बैठे हुए व्यक्ति का यथार्थ चित्रण ही आना चाहिए और इस प्रकार 'पोर्ट्रेट पेंटिंग' (व्यक्ति-चित्रण) के प्रचार और प्रसार से आँखों का आलेखन भी अपने असली रूप में होने लगा। पाश्चात्य यथार्थवादी चित्र-कला से भारतीय चित्रकला को अपार क्षति हुई। यहाँ के चित्रकारों की पैतृक सम्पत्ति स्मृति-चित्रण-कौशल जो संसार में अन्यत्र दुर्लभ था उसका सदा के लिए लोप हो गया। इस यथाथवादी कला के प्रवाह में भारतीय कला बह चली। इस युग में जलरंगों की टेकनीक (कार्य-शैली) में भी काफ़ी परिवर्तन हुआ और भारतीय चित्रलेखन की प्राचीन कार्यशैली 'टेम्परा' के स्थान पर 'वाश-पद्धति' का प्रचलन हो गया और अब जलरंगों में उनका खूब स्वागत होने लगा। इस प्रकार रूप रंग रेखाओं से भारत की प्राचीन चित्रकला हाथ धो बैठी। फलस्वरूप शीत, वात, गठिया आदि रोग इन चित्रों में आने लगे। इतने प्रकोप पर भला आँखों की क्या दशा होगी बेचारी जहाँ की तहाँ धस गई। तथापि आज के ख्याति प्राप्त चित्रकार श्री यामिनी राय ने आँख के महत्व को पहचाना है और यही कारण है कि अपनी कला-कृतियों में उन्होंने नेत्र-चित्रण को प्रधानता दी है यह हमारे लिए गौरव और प्रसन्नता की बात है।

बी १।६१, अस्सी,
बनारस

—महेन्द्रनाथ

तेलुगु कहावते

आडलेक, मद्दलमीद बड़ि एर्ड्चिदट
नाच न जानै आँगन टेढ़ा

काकी पिल्ल काकीकि मुद्दु — कौवे का बच्चा कौवे को प्यारा
अपना बच्चा सब ही को प्यारा

चेविटिवाडि मुन्दु शंखमु वूदिनट्टु — बहरे के सामने बीन बजाना
भैंस के आगे बीन बजाना

चेट्लु लेनि चोट, आमुदमु चेट्टे महावृक्षमु — जहाँ वृक्ष नहीं, वहाँ अरंडी का पेड़ ही महवृक्ष है
अंधों में काना राजा — निरस्तपादपे देशे एरंडोऽपि द्रुमायते

ओल्ड लैन्सर लाइन्स,
सिकन्दराबाद .

— जे. बी. भीमसेन "निर्मल"

उस्तरे की धार पर

१९५४-५५ का बजट हर साल के बजटों से भिन्न नहीं है। इसका एक उद्देश्य है, पंचवर्षीय नियोजन की पूर्ति के लिए आवश्यक वित्तीय साधनों को जुटाना। बजट को इस कारण अनेक आलोचकों ने 'नियोजन-बजट' भी कहा है। यह ठीक है या नहीं, यह मतभेद का विषय हो सकता है, पर यह तो मानना होगा, कि यह सोद्देश्य है और एक विशेष नीति और लक्ष्य को सामने रख कर बजट बनाया गया है।

बजट को देखने से पहले उसकी पार्श्व-भूमि को देख लेना चाहिए। कोरिया युद्ध की समाप्ति, बर्लिन में चतुर्राष्ट्रों के परराष्ट्र मंत्रियों की कान्फ्रेन्स होने और २५ अप्रैल से जेनेवा में रिपब्लिक चीन समेत पाँच राष्ट्रों के परराष्ट्र मन्त्रियों की कान्फ्रेन्स होने से सम्भावित तृतीय महायुद्ध के बादल छट गए हैं; विश्व के दो प्रबल ब्लाकों के बीच विद्यमान तनाव कुछ शिथिल हो गया है, तथा पूर्वीय और पश्चिमी यूरोप के बीच व्यापार बढ़ने की सम्भावना बढ़ गई है। पर इसके साथ-साथ एक दूसरा चित्र भी है। शीत-युद्ध की सीमा बढ़ कर भारत की सीमा रावी ब्रह्मपुत्रा और भागीरथी के तट तक आ गई है और तुर्की, पाकिस्तान, ईराक, जोर्डन और ईरान का अमरीका के नेतृत्व और सहायता से मध्यपूर्वीय प्रतिरक्षा संघ बनने की सम्भावना बढ़ गई है। इसके बनने से शान्ति क्षेत्र संकुचित हो जाएगा। आग की लपटों के बीच उसकी आँच और जलन से कहाँ तक बचा जा सकता है? इस स्थिति का हमारे बजट पर आज प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाई देता। पर जब मास्को, वाशिंगटन और लन्दन आणविक शस्त्रास्त्रों के बनाने की होड़ कर रहे हैं, तब अन्य देश उनकी झंकार की गूँज से भी बचे रहें, यह सम्भव नहीं। इस प्रसंग में राज्य परिषद् में इस माँग के जवाब में, कि भारत की प्रतिरक्षा शक्ति और सशस्त्र सेनाएँ पूर्णतः सक्षम, शक्तिशाली और आत्मनिर्भर होनी चाहिए, और हवाई सेना का विस्तार करना चाहिए, उप-प्रतिरक्षा मंत्री द्वारा दिया गया यह आश्वासन ध्यान देने योग्य है। उपमन्त्री ने बताया, कि अम्बरनाथ में बन रही 'टूल प्रोटो टाइप' फ़ैक्टरी इसमें बहुत सहायक होगी। कानपुर की एक फ़ैक्टरी ने एक ख़ास क़िस्म की मशीनगन बनानी शुरू कर दी है। इलेक्ट्रानिक फ़ैक्टरी जब उत्पादन करने लगेगी तब सेनाएँ सिगनल-उपकरणों में आत्मनिर्भर हो जाएँगी। आपने यह भी कहा कि सरकार कुछ नए प्रतिरक्षा-उद्योगों को स्थापित करने का विचार कर रही है और 'जेट प्लेन' बनाने के लिए आवश्यक मशीनरी के लिए सरकार विदेशी सरकारों के साथ बात चला रही है। इससे प्रगट है कि निकट भविष्य में प्रतिरक्षा-बजट और बढ़ेगा। यह कितना बढ़ेगा यह कहना कठिन है। अमरीका पाकिस्तान को किस मात्रा में शस्त्रास्त्र की सहायता देगा, उसी अनुपात में यह खर्च बढ़ेगा। देश यह खर्च उठाने को तैयार है क्योंकि संसद् में अनेक सदस्यों ने कहा है कि देश के सैनिक बल को बढ़ाने के लिए, यदि विकास-कार्यक्रम को स्थगित करने की आवश्यकता हो, तो उसके लिए हमें तैयार होना चाहिए। बजट किस वातावरण में तैयार हुआ है यह इससे प्रगट है।

घाटे की ओर : पंचवर्षीय नियोजन के कार्यक्रम को तैयार करने के समय इस बात पर बहुत ज़ोर दिया गया था कि बजट घाटे का न हो। यदि वह बचत का न हो, तो वह घाटे का भी न हो। अतः राज्यों ने ही नहीं बल्कि केन्द्र ने भी अब बजट को सन्तुलित करने की नीति का परित्याग कर दिया है। यथा :

(करोड़ रु० में)

	१९५२ ५३ (वास्तविक)	१९५३ ५४ (बजट)	१९५३-५४ (अनुवीक्षित)	१९५४-५५ (बजट)
आय (राजस्व)	४३५·११	४३९·२६	४१३·६०	४५२·८८
व्यय	३९६·१८	४३८·८१	४३०·६५	४६७·०९
बचत(+) घाटा(−)	+३८·९३	+ ०·४५	−१६·९६	−१४·२१

नोट: १९५४-५५ के बजट अंक अंतिम हैं। नए कर प्रस्तावों से आनुमानिक आय इसमें सम्मिलित है।

इन अंकों को सरकारी नज़र से देखने पर मालूम हो जाएगा कि आय का अनुमान कम करके लगाया गया है। जैसे एक साल पहले १९५२-५३ के अनुवीक्षित बजट में आय का अनुमान ४१८.६४ करोड़ रु० किया गया था। लेकिन आय वस्तुतः हुई है ४३५.११ करोड़ रु० जो कि अनुवीक्षित अनुमान से १६.४७ करोड़ रु० अधिक है। राजस्व आय में वृद्धि का कारण है केन्द्रीय उत्पाद-बलि (एक्साइज़ ड्यूटी) आय-कर से लगभग १८ करोड़ रु० की अधिक आय होना। इसलिए इस बात की बहुत सम्भावना है, कि १९५३-५४ का बजट भी १६.९६ के घाटे से समाप्त न हो, जो कि पाकिस्तान द्वारा कर्ज़ की दो किश्तों की अदायगी न होने के कारण हुआ है। इसके अतिरिक्त आय-कर में भी उसको अभी बक़ाया अपना हिस्सा जमा करना है। इसलिए यदि १९५३-५४ का बजट वस्तुतः बचत का रहे, तो आश्चर्य न मानना चाहिए।

क्या सन्तुलित रहेगा : कार्पोरेशन और आय-कर से होने वाली आय का सदा कम करके अन्दाज़ा किया गया है। जब औद्योगिक उत्पादन बढ़ रहा है, उस समय इन आय-स्रोतों से कम आय होने की आशंका नहीं की जा सकती। औद्योगिक उत्पादन का मासिक औसतन निर्देशांक १९५१ में ११७ के आस पास था, १९५२ में १२९ और १९५३ में १३४ था। पिछले कुछ वर्षों में स्थापित नए उद्योग अब पूर्णरूप से उत्पादन करने लगेंगे इस कारण इन स्रोतों से भी आय बढ़ेगी। १९५२-५३ में इन दोनों स्रोतों से सरकार को १८५ करोड़ रु० की आय हुई। लेकिन १९५३-५४ और १९५४-५५ में इनसे आय का अनुमान १६५ करोड़ रु० केवल किया गया है। आगामी वर्षों में आर्थिक क्रिया-कलाप का ज़ोर और बढ़ेगा, मुनाफ़े की अवस्था भी सन्तोषजनक है, इस कारण सरकार को इन स्रोतों से अधिक आमदनी होगी। इसलिए बहुत सम्भव है कि १९५४-५५ में राजस्व गत-आय ४५२.८८ करोड़ रु० से और अधिक बढ़ जाए और १४.२१ करोड़ का घाटा न रहे और बजट सन्तुलित हो जाए। यह भी आशा करनी चाहिए कि अमरीका में मामूली घटोत्तरी आने से इसका भारतीय बजट पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ेगा।

आय का अनुमान एक और भी जगह कम करके दिखाया गया है। पाकिस्तान से कर्ज़ वापिस मिलने की कोई दूर तक सम्भावना नहीं, पर आय में ९ करोड़ रु० अगले वर्ष भी दिखाए गए हैं और कहा गया है कि इस वर्ष यह किश्त ज़रूर मिलेगी पर बर्मा के साथ वस्तुतः चावल का क़रार हो जाने के बाद भी बर्मा से मिलनेवाले कर्ज़ फेरने के कारण मिलनेवाले लगभग १७ करोड़ रु० को आय में शामिल नहीं किया गया। इस स्थिति में यह आशा करना क्या बहुत है कि १९५४-५५ का बजट १४.२१ करोड़ रु० के घाटे के साथ समाप्त न होगा?

राजस्व स्रोतों में वृद्धि : १९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ। उसके बाद से भारत के राजस्व स्रोतों में बराबर वृद्धि हो रही है। १९४७–४८ में करों से कुल आय १७७.५० करोड़ रु० हुई थी। यह रक़म लगातार बढ़ती गई और १९५१-५२ में ४५९.९९ करोड़ रु० के उच्चांक पर पहुँच गई। यह कोरिया-युद्ध का हमारे बजट पर प्रत्यक्ष प्रभाव था। चालू साल के लिए आगत राजस्व का अनुमान ३६३.५१ करोड़ रु० और नए साल १९५४-५५ के वास्ते ३७९ करोड़ रु० किया गया है। जकात से होने वाली आमदनी की भी यही बात है। यथा :

जकात से आय (करोड़ रु० में)

१९३८-३९	४०.५१
१९४८-४९	१२६.१६
१९५०-५१	१५७.१५
१९५१-५२	१३१.६६
१९५३-५४ (बजट)	१७०.००
१९५३-५४ (अनु)	१६०.००
१९५४-५५ (बजट)	१७५.००

केन्द्रीय उत्पाद-बलि से आय पिछले वर्षों में चौगुनी हो गई। १९४७-४८ में २४.३८ करोड़ रु० थी। १९५४-५५ का बजट अनुमान है १०८.८९ करोड़ रु०। इसमें से राज्यों को १६.२९ करोड़ रु० मिलेगा। पर कार्पोरेशन और आय-कर से होनेवाली आय इस प्रकार की प्रभावशाली नहीं रही। १९४७-४८ में कार्पोरेशन और आय-कर से केन्द्रीय गवर्मेण्ट को ७८.११ करोड़ रु० की आय हुई थी। इसके मुक़ाबले १९५४-५५ का अनुमान १०९.०२ करोड़ रु० किया गया है। १९५१-५२ में इनसे १३४.७४ करोड़ रु० आय हुई थी। युद्ध काल में

१९५४

जब अतिरिक्त लाभ-कर भी लागू था और भारत संयुक्त था तब १९४४-४५ में राज्यों का अंश निकाल कर केन्द्रीय सरकार को इन दोनों स्रोतों से १६४·७४ करोड़ रु० की आय हुई थी ।

शहरों पर भार : इससे प्रगट है कि प्रत्यक्ष करों के विरुद्ध अप्रत्यक्ष करों की ओर, पिछले कुछ सालों से झुकाव ज्यादा रहा है । जनता के जीवन का जीवन-मान बढ़ने के साथ, बहुत-सी वस्तुओं के उपयोग में भी, जिन पर कि यूनियन उत्पादि-बलि ली जाती है, और अधिक वृद्धि होगी । फलतः इससे आमदनी भी और अधिक बढ़ेगी । पिछले साल वित्त-मंत्री ने माना था, कि देहात की अपेक्षा शहरों पर केन्द्रीय उत्पाद-बलि (एक्साइज़ ड्यूटी) का भार काफ़ी अधिक है । शहरों में कुल आबादी का केवल २० प्रतिशत रहता है और वह आज इसका ९०-९५ प्रतिशत भाग उठा रहे हैं । इस अवस्था में क्या यह अधिक उचित न होगा कि केन्द्रीय और राज्यों के वित्त-मंत्री इस कर-भार को शहरों से घटा कर देहातों पर डालने का यत्न करें ?

ख़र्च में कमी नहीं : १९५३-५४ में राजस्व समाहरण में १·५७ करोड़ रु० और मुल्की प्रशासन में २·७ करोड़ रु० की बचत दिखाई गई है । पर यह बचत वास्तविक नहीं । यह समयोजन के कारण है, या कार्यक्रम को शुरू न करने के कारण है । यह बचत सरकार की ओर से बचत करने के प्रयत्न का फल नहीं । कंट्रोलों उठने, नियंत्रणों के समाप्त होने और राशन के विदा होने पर भी वित्त-मंत्री ने किसी प्रकार के व्यय में कमी होने की आशा नहीं दिखाई । यह क्या विस्मय की बात नहीं ?

राष्ट्र-निर्माण और विकास-सेवाओं पर अधिक खर्च करने का उपबन्ध किया गया है । पर इन योजनाओं पर विचारा हुआ सारा खर्च होगा, यह सन्देह है । सामुदायिक विकास की योजनाओं पर किया गया ख़र्च कुछ उत्पादक प्रकृति का होगा, यह सन्दिग्ध है । जब निधि की दुर्लभता हो, उस समय सन्दिग्ध परीक्षणों पर ख़र्च करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं कहा जा सकता ।

१९५४-५५ की आय का अनुमान ४४१·०३ करोड़ रु० और व्यय का अनुमान ४६७·०९ करोड़ रु० किया गया है । इस प्रकार बजट में २६·०६ करोड़ रु० का घाटा रहता है । इसको १४·२१ करोड़ रु० कम करने के लिए ११·८५ करोड़ रु० के नए कर लगाए गए हैं, या पुराने करों को बढ़ा दिया गया है । जूतों, साबुन, सुपारी और मोटे कपड़े पर कर लगाने का उपभोक्ताओं पर प्रभाव पड़ेगा और यह आमदनी बढ़ाने में सहायक न होकर शायद इसको घटाने का भी कारण हो सकता है । सीमेंट पर कर लगाने का मध्यमवर्ग द्वारा किए जा रहे गृह-निर्माण पर प्रभाव पड़ेगा । आयात-कर पर अधिक भरोसा न कर देश में उत्पन्न माल पर लगा उत्पाद-बलि की आय पर अधिक भरोसा करने की नीति निःसंशय फलदायी सिद्ध होगी । उद्योगों के आर्थिक तन्त्र को स्पर्श न करते हुए उत्पाद-बलि का विस्तार कर देश के कर-ढांचे को दृढ़ करने की नीति सर्वथा उचित है और इसमें दो मत नहीं हो सकते ।

नए कर के प्रस्तावों से यह भी मालूम होता है कि प्रत्यक्ष कर लगाने की सीमा पर हम पहुँच गए हैं और अप्रत्यक्ष कर का क्षेत्र भी बहुत सीमित है और इसका जाल और दूर-दूर बिछाना चाहिए । निर्यात बाज़ार घोषित रूप से ख़रीदारों के पक्ष में है, और देश के अन्दर भी ख़रीदार माल सस्ता होने की आशा में माल-ख़रीद का प्रतिरोध कर रहे हैं । इसलिए जकात से और अधिक आय की आशा नहीं की जा सकती । आयात करों पर तो और भी भरोसा नहीं किया जा सकता । देश में औद्योगीकरण की वृद्धि के साथ इससे होनेवाली आय उत्तरोत्तर घटेगी । इस कारण वित्तमंत्री के सामने कर-ढांचा का विस्तार करने के सिवाय और कोई दूसरा मार्ग नहीं । पर यह मार्ग भी अवरुद्ध है । प्रायः सब महत्वपूर्ण वस्तुओं पर कर लगा हुआ है । हाँ, नमक पर कर लगाया जा सकता है । पर यहाँ भावना का प्रश्न है और यह भावना ऐसी है, जिसका सम्मान करना अनिवार्य रूप से आवश्यक है । १९३० के नमक-सत्याग्रह को हम अपने इतिहास के पृष्ठों से निकाल कर ही यह कर लगा सकते हैं ।

हाँ, दारूबन्दी एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ से ५०-६० करोड़ रु० की आय राज्यों को हो सकती है । पर यह मार्ग भी संविधान ने रोक दिया है । राममूर्ति की रिपोर्ट के बाद सर्वथा दारूबन्दी करने की नीति में कोई अन्तर नहीं आया है । फिर राज्यों में कठोर बिक्री कर कर है और इसके भार से औद्योगिक कच्चा माल और खाद्य-सामग्री भी नहीं बचे । अप्रत्यक्ष करों का भार बहुत

अधिक है। इसकी अधिकता का उद्योगों पर प्रभाव पड़ना सम्भव है इसलिए बहुत सावधानी बरतने की ज़रूरत है। वस्त्र-उद्योग पर से निर्यात-कर हटा दिया गया है पर मोटे कपड़े पर उत्पाद-बलि लगाई गई है। यह उद्योग पहले ही अत्यधिक कर-भार से दबा हुआ है। उस पर और अधिक भार डालना उचित नहीं कहा जा सकता। हाँ, जब मोटे कपड़े पर कर है तब नक़ली रेशम इससे मुक्त रहे, यह समझ में आने वाली बात नहीं। इसलिए नक़ली रेशम पर उत्पाद-बलि लगाने का विरोध नहीं किया जा सकता। साबुन पर उत्पाद-बलि लगाने का परिणाम यह होगा कि कुटीर उद्योग के आधार पर अधिक मात्रा में साबुन बनेगा। पर इससे कच्चे माल की बरबादी भी अधिक होगी। बड़े परिणाम पर साबुन बनाने के अनेक लाभ हैं, जो कुटीर उद्योग में नहीं है।

उचित ही है : अगले साल २५० करोड़ रु० की अल्प वित्तीय व्यवस्था की गई है। इस अवस्था में यदि और १५ करोड़ रु० उसमें जोड़ दिए जाते तो कोई हानि न होती। पर ऐसा करना उचित नहीं होता। क्योंकि मूल नीति यह है कि अल्प वित्तीय व्यवस्था का परिणाम न्यूनातिन्यून रहना चाहिए। मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति को रोके रखने के लिए आवश्यक है कि जहाँ तक सम्भव हो, साधनों को करों या अन्य उपायों द्वारा जैसें स्टेट लाटरी—बढ़ाया जाए। जब यह संभव न हो, तभी अल्पवित्तीय व्यवस्था का आश्रय लेना चाहिए। दूसरी बात यह है कि यदि वित्त-मंत्री इस मार्ग का अनुसरण न करते तो राज्यों के सामने वे एक बुरा उदाहरण पेश करते।

साहसपूर्ण, पर : अल्प वित्तीय व्यवस्था का आश्रय लेना अपरिहार्य है। इसमें दो मत नहीं हो सकते, क्योंकि करों और क़र्ज़ों द्वारा आवश्यक द्रव्य राशि नहीं मिल सकती। क्योंकि सीमा पर हम पहुँच गए हैं, जैसा कि निम्न तालिका से प्रगट है :

करों से आय (करोड़ रु० में)

१९५१-५२	४५६·९९
१९५२-५३ (बजट)	३५७·२४
१९५२-५३ (अनु-बजट)	३७६·२९
१९५३-५४ (बजट)	३७०·४४
१९५३-५४ (अनु-बजट)	३६१·००
१९५४-५५ (बजट)	३८८·००

इस हालत में, जब विदेशी आर्थिक सहा विशाल परिमाण में मिलने की उम्मीद नहीं और वह अभीष्ट भी नहीं है, तब जनता के जीवन मान को ऊँचा करने के लिए यह आवश्यक है। अन्य देशों ने युद्ध का ख़र्च पूरा करने के लिए, अल्प वित्तीय व्यवस्था का आश्रय लिया है। भारत इसका अपनी ग़रीबी को दूर करने के लिए इसका आश्रय ले रहा है। इसलि अल्प वित्तीय व्यवस्था का मार्ग अपनाने का विरोध नहीं किया जा सकता। पर प्रश्न तो यह है क्या यह "इस परिमाण" में होना चाहिए ? २५० करोड़ रु० साधारण रक़म नहीं। प्रति वर्ष इस सीमा तक इसका आश्र लेना क्या उचित है ? यह स्मरण रखना चाहिए कि मुद्रास्फीति और पुनस्फीति में कुछ अँशों का ही अन्त है। अतः अल्प वित्तीय व्यवस्था के मार्ग पर चल उस्तरे की धार पर चलने के समान है और आग खेलने के समान है। फिर जब देश में और बा आर्थिक जलवायु अनुकूल न हो, इस परिमाण में इस अपनाना वस्तुतः साहसपूर्ण है।

क़ीमतों का साधारण निर्देशांक गिर रहा है। कोरिया युद्ध से ठीक पहले सब चीज़ों का मूल्य निर्देशांक ३९७·१ था और दिसम्बर १९५१ के अन्त में ४३ पर पहुँच गया था। इसके बाद मूल्य निर्देशांक दिसम्ब १९५२ में गिर कर ३७४·५ पर आ गया। पर दिसम् १९५३ में वह ३९२·६ पर था। पर यही बात श्रमी व के जीवन-निर्वाह व्यय के बारे में नहीं कही जा सकती। जीवन-निर्वाह व्यय की निम्न निर्देशिका देखने योग्य है:

श्रमी वर्ग के जीवन-निर्वाह व्यय का निर्देशांक

	समस्त भारत	बम्बई	अहमदाबाद	कानपुर	नागपुर	कलकत्ता	दिल्ली
१९५१ औसतन	१४४	२३०	२६०	४५१	३९२	३७०	१४२
१९५२ औसतन	१४१	३३७	२५९	४५१	३८०	३५१	१४३
१९५२ दिसम्बर	१३९	३४६	२६२	४४७	३७२	३४६	१३७
१९५३ अगस्त	१५२	३७६	२६५	४६०	१९७	३७३	१४४

१९५४

अगस्त १९५३ को जीवन-निर्वाह निर्देशांक बताना है कि क़ीमतों का स्तर नीचा होने के साथ जीवन-निर्वाह व्यय नहीं घटा है। इस अवस्था में वित्तीय व्यवस्था का इतने बड़े परिमाण में ग्रहण करना वस्तुतः साहस का काम है। पर वित्तमंत्री को विश्वास है कि इसका देश के आर्थिक तंत्र पर कुप्रभाव न पड़ेगा।

इसका एक कारण है कि नियोजन शत प्रतिशत पूरा नहीं हो रहा है। वित्तमंत्री की आशा के ही अनुसार वह ८५ प्रतिशत होगा। नियोजन पर अब तक हुआ ख़र्च भी यही बताता है कि जितना ख़र्च होना चाहिए था, उतना ख़र्च नहीं हुआ। यथा :

(करोड़ रु०)

	बजट अनुमान	अनुवीक्षित अनुमान	वास्तविक
१९५१-५२	×	×	२६२·०३
१९५२-५३	×	३२३·०३	२७१·१८
१९५३-५४	४१३·८०	४११·६१	×

इससे स्पष्ट है कि नियोजन के पहले तीन वर्षों में १००० करोड़ रु० ख़र्च न होकर ९४५ करोड़ रु० से अधिक न होगा। शेष १३५० करोड़ दो वर्षों में ख़र्च करना है। प्रशासन की जैसी मशीनरी है, उसको देखते हुए यह आशा नहीं की जा सकती कि अगले दो वर्षों में इतनी बड़ी रक़म ख़र्च की जा सकेगी। फिर वित्तमंत्री के अनुसार १९५४-५५ में जो २५० करोड़ रु० की अल्प वित्तीय व्यवस्था की जा रही है, उसमें से १०० करोड़ रु० मुद्रासंकोच को ठीक करनेवाला सिद्ध होगा अर्थात् यह राशि उत्पादन को बढ़ाने में लगेगी, और ७५ करोड़ रु० शायद आयात-बचत से प्राप्त हो जाए, या रोकड़ भुगतान की कमी से मिल जाए। इस अवस्था में केवल ७५ करोड़ रु० ही मुद्रास्फीति बढ़ानेवाला होगा और यह सारे देश में फैला होगा और यह १७०० करोड़ रु० कुल धन पूर्ति का बहुत बड़ा अनुपात न होगा। इस कारण देश के अर्थ तंत्र पर इसका प्रतिकूल प्रभाव न पड़ेगा। हम चाहते हैं कि वित्तमंत्री की यह आशा पूरी हो। पर साथ ही इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि राज्यों की सहायता के लिए 'इतने बड़े परिमाण में' यह साहस करना आग की ज्वालाओं के साथ खेलना है।

इतिहास सदन, कनॉट सर्कस,
नई दिल्ली

—अवनीन्द्र कुमार विद्यालङ्कार

मनुष्य जो खाते हैं उससे नहीं
परन्तु, जो कुछ पचा सकते हैं उससे बलवान् बनते हैं;
जो कुछ अर्जन करते हैं उससे नहीं
परन्तु, जो कुछ बचाते हैं उससे धनवान् बनते हैं;
जो कुछ पढ़ते हैं उससे नहीं
परन्तु, जो कुछ स्मरण रखते हैं उससे विद्वान् बनते हैं;
जो कुछ उपदेश देते हैं उससे नहीं
परन्तु, जो कुछ आचरण करते हैं उससे धर्मवान् बनते हैं;
ये बड़े परन्तु साधारण सत्य हैं जिन्हें
अतिभोजी, अतिव्ययी, पुस्तक के कीट
और पाखंडी लोग भूल जाते हैं!

—लार्ड बेकन

ऐतिहासिक उपन्यास और "झाँसी की रानी"

ऐतिहासिक उपन्यास के तत्त्वों की विवेचना करने के पूर्व इतिहास एवं उपन्यास का भेद जान लेना आवश्यक है। जब कि इतिहास विश्व, किसी देश, अथवा देश के किसी एक भू-भाग अथवा समाज की राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक में से किसी एक अथवा सब की घटनाओं एवं उत्थान पतन का क्रमबद्ध विवरण होता है, उपन्यास जीवन एवं जगत् के सत्य का काव्यनिक पर कलात्मक प्रस्तुतीकरण है।

किसी ने कहा है : "उपन्यास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त और सब बातें सच्ची होती हैं और इतिहास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त और कोई बात सच्ची नहीं होती।"

उपन्यास में सत्य होता है किन्तु कल्पनामिश्रित; उसमें कल्पना होती है किन्तु गूढ़ एवं व्यापक सत्य को अंतर्हित किए हुए!

ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और उपन्यास के बीच का साहित्य है! वह इतिहास में उपन्यास है और उपन्यास में इतिहास है। इतिहास के अस्थि-कंकाल में कल्पना एवं कला का प्राणत्व लिए वह एक जीवन है।

तात्विक दृष्टि से इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास के भेद को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :

कथावस्तु : इतिहास की सभी घटनाएँ प्रमाणित होती हैं। इतिहासकार अपनी कल्पना के बल पर उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता, जब कि ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास सिद्ध घटनाओं का मूलाधार रखते हुए भी उपन्यासकार का कल्पना-प्रसूत, किन्तु वैषम्यरहित चरित्रोद्घाटक एवं सहायक उप-कथाओं से अनुरंजित होता है।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण : इतिहास के सभी पात्र प्रमाणित होते हैं—और वे इतिहास के निर्माण में महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय होते हैं, जब कि ऐतिहासिक उपन्यास में प्रमुख पात्रों के ऐतिहासिक होते हुए भी उनका चुनाव एवं संकलन उपन्यासकार की प्रतिभा, रुचि एवं उपयोगिता पर निर्भर रहता है, साथ ही, उसमें उन अनैतिहासिक पात्रों का भी संयोजन होता है जो इतिहास सिद्ध घटनाओं में किसी प्रकार वैषम्य न डालते हुए कथानक को कलात्मक एवं चमत्कारी ढंग से प्रस्तुत हैं, साथ ही प्रमुख ऐतिहासिक पात्रों की इतिहास-चारित्रिक विशेषताओं के स्पष्टीकरण में सहायक होते उपन्यास में कलात्मक रोचकता का सृजन करते हैं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इतिहास में उसका ही उपाय है और वह है, विश्लेषणात्मक। किन्तु ऐ-हासिक उपन्यास में, विश्लेषणात्मक ढंग नहीं अथवा से कम होता है। वहाँ तो लेखक पात्रों के चरित्र नियोजन कथोपकथन, घटना-विधान तथा अन्य द्वारा प्रस्तुत आलोचन के द्वारा ही करता हुआ, अभीष्ट प्रभाव पाठकों के निर्णय पर छोड़ देता है इतिहासकार अपने पात्रों के लिए स्वयं कहता है उपन्यासकार के पात्र स्वयं बोलते हैं। वह तो उपन्या की यवनिका के पीछे बैठा बैठा पाठक की प्रतिक्रिया मनोयोग से देखता भर रहता है। यदि आप उसके को अपना सकें तो उसे संतोष होता है। वह आप संभवतः विवेचना की अपेक्षा साधारणीकरण की अपे रखता है।

कथोपकथन : इतिहास के कथोपकथन का स्था नगण्य होता है, जब कि उपन्यास में कथोपकथन उसकी सजीवता एवं स्वाभाविकता है। दूसरे इतिहासांत कथोपकथन भी प्रामाणिक एवं सत्याधारित होते हैं, कि उपन्यास में प्रयुक्त संवाद पात्रों के चारित्रिक सत्य उद्घाटन करते हुए भी अधिकांश में कल्पित होते हैं।

कथोपकथन के प्रभाव और प्रयोग के कारण एक भी शैली विवरणात्मक होती है और दूसरे अभिनयात्मक।

देश-काल वातावरण : इसकी दृष्टि से इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास एक दूसरे के अधिक निकट होते हैं, किन्तु दोनों के चित्रण में अन्तर होता है। इतिहास देशकाल वातावरण का चित्रण केवल विवरणात्मक ढंग से ही प्रस्तुत करता है, अतः उसमें रोचकता उतनी नहीं होती। ऐतिहासिक उपन्यास में प्र देश-काल और वातावरण ऐतिहासिक होते हुए

१६५४

उसका ज्ञापन पात्रों के वार्तालाप, घटना-विधान एवं चित्रोपम भाषा में होता है। इस दृष्टि से हिन्दी में प्रेमचन्द एवं वृन्दावन लाल वर्मा अद्वितीय हैं। एक की अँगुली पकड़ कर आप भारत के गाँव का उसके एक-एक भाग एवं कार्य का, तथा दूसरे का आँचल पकड़ कर आप बुंदेलखंड की चप्पा चप्पा भूमि का आँखों देखा परिचय प्राप्त कर सकते है।

उपरोक्त तात्विक विवेचन के आधार पर इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास का भेद स्पष्ट हो जाता है। यदि हम उस भेद को एक समग्र दृष्टि से देखें तो प्रतीत होगा कि यह भेद मूल रूप से कल्पना एवं काव्यत्व का है किन्तु फिर भी कल्पना एवं काव्यत्व मिश्रित कोई भी इतिहास न उपन्यास कहला सकता है और न शुद्ध सत्याधारित उपन्यास इतिहास! ऐतिहासिक उपन्यास का उपरोक्त तात्विक विशेषताओं का विश्लेषण करने के पश्चात् अब हम 'झांसी की रानी' की तद्दृष्टि से परीक्षा कर सकते हैं :

सर्व प्रथम यदि हम कथा-वस्तु को लें तो यह तो निश्चित हो जाता है कि लेखक (श्री. वृ. ला. वर्मा) ने उपन्यास की कथावस्तु का चुनाव प्रचलित विकल इतिहास आधार पर नहीं वरन् अपनी मौलिक खोज के आधार पर किया है। लक्ष्मीबाई की समकालीन जो कुछ लिखित-अलिखित, सामग्री उनको सरकारी कार्यालयों, व्यक्तियों एवं जनसाधारण से मिल सकीं, उन्होंने प्राप्त की हैं और उनका विवरण लेखक यत्र-तत्र उपन्यास की पद-सूचनाओं (Foot-notes) में देते चले गए हैं। उनके द्वारा एकत्रित उल्लेखनीय सामग्री ये हैं :

(१) नवाब अली बहादुर का रोज़नामचा, (२) १८५८ में किसी अंग्रेज फ़ौजी अफ़सर द्वारा, ले गवर्नर के पास झाँसी को अधिकृत कर लेने के बाद भेजी गई चिट्ठियाँ। (३) लक्ष्मीबाई द्वारा बानपूर के राजा मदनसिंह को युद्ध में सहायता देने के लिए भेजी गई चिट्ठी। (४) राजा साहब कटेरा की सनद (५) विष्णुराव गोडसे का 'माझा प्रवास'। (६) डा. सावरकर के सेक्रेटरी की पुस्तक 'सतावनी'। (७) कलक्टरी से प्राप्त १८५८ के लोगों के बयान। (८) 'हृदयेश' कवि की कविता। (९) भग्गीदाउती का 'रायसा'। (१०) जनरल रोज़ की डायरी। (११) जॉन रसल का १७१२ में भेजा गया आवेदन-पत्र। (१२) पार मतीस की पुस्तक। (१३) सर जॉन मालकम द्वारा लिखित 'Memoirs of Central India.' (१४) सुखलाल चित्रकार के चित्र। (१५) श्री सी. ए. किंकेड द्वारा लिखी हुई 'Laxmi Bai, Rani of Jhansi.'

उपरोक्त लिखित सामग्री के अतिरिक्त 'झाँसी की रानी' कथावस्तु का आधार है, उन लोगों के वर्णन जिन्होंने झाँसी की रानी को अपनी आँखों देखा और जो कुछ घटनाओं के गवाह रहे।

उपरोक्त बातों से यह प्रमाणित हो जाता है लेखक ने लिखित सामग्री और तत्-श्रुतियों के संकलन में प्रामाणिकता का अधिक से अधिक ध्यान रखा है। संभवतः इस सम्पूर्ण नाटक में कोई ऐसी घटना नहीं है और कोई ऐसा वर्णन नहीं है जो इतिहास सिद्ध न हो, केवल उनका प्रस्तुतीकरण ही लेखक का मौलिक है। अतः 'झाँसी की रानी' इस दृष्टि से चाहे इतिहास न हो—जो होना भी नहीं चाहिए, ऐतिहासिक अवश्य है। उसकी वे घटनाएँ भी जो काल्पनिक प्रतीत होती हैं, वास्तव में ऐतिहासिक हैं—परन्तु अपनी चित्रण-पद्धति की आकर्षणता के कारण उनमें इतिहास की रूक्षता न रह कर औपन्यासिकता आ गई है। हरदी कूंकुं उत्सव इसका प्रमाण है।

पात्र कल्पना में भी कवि ने ऐतिहासिकता का अधिक ध्यान रखा है। प्रमुख पात्र लक्ष्मीबाई, गंगाधर राव, तात्या इत्यादि की तो बात ही क्या, पजनेश, हृदयेश, नारायण शास्त्री, जूही, मोतीबाई, दुर्गा, मुगलखाँ इत्यादि सभी पात्र ऐतिहासिक हैं, चाहे उन्होंने इतिहास में स्थान न पाया हो। स्वयं लेखक के अनुसार 'उपन्यास में जितने पात्र आए हैं, सब वास्तविक हैं।' लेखक ने सम्पूर्ण पात्रों में केवल नारायण शास्त्री की प्रेमिका का नाम 'मछरिया' से बदल कर 'छोटी' करा दिया है। परन्तु यह सत्य होते हुए भी इस उपन्यास के सभी पात्र 'वास्तविक' हैं। उनके क्रिया-व्यापारों, संवादों तथा चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन संबंधी शैली मौलिक और कलात्मक है। और यही लेखक की सफलता है। वे इतिहास के पात्रों के समान निर्जीव नहीं, सचेत हैं। उनमें अपना व्यक्तित्व है, जो अपनी कहानी आप कहता है। यही मुखरित व्यक्तित्व ही उपन्यास के चरित्र-चित्रण की कला है और यहीं इतिहास और उपन्यास में अंतर हो जाता है। इतिहास के चरित्र-चित्रण के समान 'झाँसी की रानी' में चरित्र-चित्रांकन विवरणात्मक और विवर-

णात्मक न हो कर व्यापार-जन्य, एवं अभिनय-प्रसूत है। संवादों की संवेदनशीलता में पात्रों का व्यक्तित्व बोल उठता है। प्रस्तुत उपन्यास के पात्रों को भी प्रमुख और गौण कोटियों में रखा जा सकता है, किन्तु जिस पात्र को जितना प्रकाश में लाया गया है, उसमें वह अपने सीमित व्यक्तित्व में पूर्ण है। पात्र अपने व्यक्तित्व में विशृंखल न हो कर सुगठित एवं स्पष्ट है। उनकी रेखाएँ धूमिल नहीं हैं। और उन रेखाओंका रंग, पाठक के मस्तिष्क को ही नहीं प्रभावित नहीं करता, उसके हृदय-जगत् और भाव-लोक को भी अनुरंजित कर देता है। जूही, खुदाबख़्श, काशीबाई, गुलाम ग़ौस, सुन्दर सभी अपनी समष्टि में, हम से अपनत्व बढ़ा लेते हैं। इतिहास के जिन पात्रों को मस्तिष्क भूल जाता है, उपन्यास के उन्हीं पात्रों को हृदय भुलाए नहीं भूलता। एक अपनी नीरव सत्यता में दुर्ग्राह्य बने रहते हैं, दूसरे अपनी काल्पनिक सरसता में भी आत्मीय। इतिहास के जिन चरित्रों को हम सीख नहीं पाते, उपन्यास के वही चरित्र हमें कुछ सिखा जाते हैं। अपनी इसी विशेषता के कारण 'झाँसी की रानी' के पात्र 'वास्तविक' होते हुए भी औपन्यासिकता लिए हुए हैं।

इसके अतिरिक्त जो प्रमुख तत्त्व उपन्यास को इतिहास बन जाने से बचाए रखता है उसका—कथोपकथन का—भी 'झाँसी की रानी' में इतना समुचित उपयोग हुआ है कि यदि उनको निकाल दिया जाए, तो समस्त उपन्यास एक निर्जीव इतिहास बन जाए। कथोपकथन ही तो किसी उपन्यास को अभिनयात्मकता प्रदान करते हैं और पात्रों में सजीवता भरते हुए चारित्रिक विशेषताओं को स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। चारित्रिक विशेषताएँ ही नहीं—वक्ता के हृदयगत वे समस्त भाव, उल्लास और उच्छ्वास, हास और ह्रास भी वार्तालाप में प्रतिगुंजित हो उठते हैं जिनको इतिहास के सुन्दर से सुन्दर विवेचनात्मक शब्द भी प्रकट नहीं कर सकते।

'झाँसी की रानी' में प्राप्त हुए कथोपकथनों में मार्मिकता है—गति है—प्रवाह है। जहाँ व्यंग है वहाँ वाक्य छोटे किन्तु भाव तीखे हो उठे हैं—प्रभावोत्पादक चमत्कार ऐसे ही स्थलों पर दर्शनीय है। उदाहरणार्थ विवाह के उपरान्त राजमहल के अन्तर्गत गंगाधरराव और रानी लक्ष्मीबाई के प्रथम वार्तालाप में रानी के व्यंग के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा सकते हैं :

"राजा—व्यर्थ है। घर का ही इतना काफ़ी काम स्त्रियों के लिए संसार में है कि उनको घुड़सवारी इत्यादि की ओर खींच ले जाना फूहड़ बनाना है।"

रानी—और नाचना गाना ?

राजा – अकेले में सभी स्त्रियाँ नाचती गाती हैं, परन्तु यदि वे इन विद्याओं को ढंग से सीखें तो शरीर और मन दोनों के लिए काफ़ी कसरत पा सकती हैं।

रानी—हाँ स्वराज्य स्थापित है। अब सिवाय हँसने-खेलने के नर-नारियों के लिए और काम ही क्या बचा है ? देखिए न, किस आराम के साथ झाँसी राज्य का पंचमांश से अधिक अंग्रेज़ों के हाथों दे दिया गया। आपका वह मित्र गार्डन भी नाटकशाला में आता होगा।

राजा – अंग्रेज़ लोग खूब हँसते-खेलते और नाचते गाते हैं।

रानी—और नाचते गाते ही पूरे हिन्दुस्तान को रौंदते चले जाते हैं। खेल तो बढ़िया है।

राजा—हमारे यहाँ फूट है। गाँवों में उचक्के, डाकू और बटमार भरे हुए हैं। अंग्रेज़ों के पास हथियार अच्छे हैं, इस लिए उन्होंने राज्य क़ायम कर लिया।

रानी—नाटकशाला में जो हथियार बनते हैं उनसे क्या अंग्रेज़ नहीं हराए जा सकते ?......

इसी प्रकार अन्यान्य भावों के अनुकूल संवाद भी दर्शनीय हैं। इतने से संभाषण में रानी और गंगाधरराव का चरित्र, तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति, अंग्रेज़ों की कूट-नीति सभी तो एक साथ स्पष्ट हो जाता है, जिसको इतिहास इतने प्रभावपूर्ण ढंग से उपस्थित नहीं कर सकता।

उपन्यासों में, कहा जाता है नामों और तिथियों के अतिरिक्त और सब बातें सच्ची होती हैं—किन्तु झाँसी की रानी में तो घटना के स्थान और तिथियाँ ही सत्य नहीं है, उनका सूक्ष्म से सूक्ष्म निरीक्षण और विवरण भी सत्य है। जिस देश काल और वातावरण को लेखक ने लिखा है, उसके प्रत्येक स्थल, क्षण और स्पन्दन से लेखक का निकटतम परिचय प्रतीत होता है। झाँसी की गली-गली बाज़ार-बाज़ार घर-घर और घर की देहली आंगन इस उपन्यास में साकार हो उठे हैं। उद्यान, उपवनों का नाम ही सत्य नहीं है, उनका एक-एक पौधे और पौधे की पत्ती-पत्ती भी 'वास्तविक' है। दृश्य-विधान में तो वर्मा जी सचमुच अतुल्य लगते हैं। वृन्दावन लाल वर्मा हिन्दी के टॉमस हार्डी हैं, ऐसा मानना ही पड़ेगा।

बालक नाना द्वारा तात्या टोपे से पूछे गए इस प्रश्न पर कि क्या झांसी विठूर से बड़ा है तो उसके उत्तर में तात्या द्वारा दिया वर्णन उसका उदाहरण है। रानी द्वारा अपनी सखियों सहित बेतवा को पार करने का एक दृश्य देखिए :

"लहरों के एक पल्लड़ को चीरा, उस पर के भाग को बेधा कि दूसरा सामने। शब्दमय प्रवाह की निरर्थक भाषा मानों बार-बार कहती थी 'बचो-बचो'। सामने की उथल-पुथल से आगे बढ़े कि बगल से थपेड़ पड़ा। घोड़े आँखें फाड़े नयनों से जल फुफकारते बढ़ रहे थे। वे अपना और अपने सवार का संकट समझ रहे थे। सवार के पैर घोड़े से चिपटे हुए और उनके पैरों के नीचे घोड़े की निस्तब्ध टाप। और टाप के नीचे? न जाने कितनी गहराई। सवार के चारों ओर भँवरें पड़ती जा रही थीं। एक भँवर बनी, पार की कि दूसरी तुरन्त मौजूद।"

इसको शब्द-वर्णन कहें या चित्र? इतिहास कभी इतनी सूक्ष्मता को देखता है? जल के भीतर घोड़ों की 'निस्तब्ध टाप' को केवल साहित्यिक के कान ही सुन सकते हैं। इसी प्रकार युद्ध के समय एक-एक बुर्ज़, क़िले की दीवार, फाटक इत्यादि का वर्णन सब कुछ ऐतिहासिक है। किन्तु इतना होते हुए भी जहाँ लेखक अपनी घटनाओं को और दृश्यों को पुष्ट करने के लिए ऐतिहासिक प्रमाण देने लग जाते हैं, वहाँ लगता है कि इतिहासकार ने उपन्यासकार पर विजय प्राप्त कर ली है। इतिहास के प्रति इतनी सजग प्रतिचेतना मानों बार-बार पाठक को यह सुझा देना चाहती है कि देखो लेखक इतिहास के विरुद्ध कोई बात नहीं कह रहा। यह अनावश्यक प्रतिचेतना यत्र-तत्र उपन्यास की औपन्यासिकता पर आघात पहुँचाती है। पाठक की सरसता, तन्मयता एवं तारतम्यता में झटका-सा लगता है। ये उदाहरण उसकी औपन्यासिक ऐतिहासिकता के ही उदाहरण प्रतीत होते हैं।

किन्तु ऐसे स्थलों को छोड़ कर सम्पूर्ण उपन्यास में लेखक ने जितने कौशल से कल्पना और काव्यत्व का प्रयोग किया है, तथा मानव-भावों का जितना गहन एवं सूक्ष्म अभिनयात्मक चित्रण किया है, वह सब झाँसी की रानी को सम्पूर्ण ऐतिहासिकता के बीच एक श्रेष्ठ उपन्यास के पद पर प्रतिष्ठित करता है। वह न केवल इतिहास है और न उपन्यास और न मात्र दोनों का मिश्रण ही। उस ऐतिहासिक प्रतिचेतना को छोड़ कर जिसके कारण उसकी कथा में सरिता का निर्बाध प्रवाह न रह कर इतिहास के प्रस्तर खण्डों के बीच उलझ-उलझ कर सरकनेवाली स्रोतस्विनी का मंथर-मंथर सरकना प्रतीत होता है। 'झाँसी की रानी' एक सफल ऐतिहासिक उपन्यास ही है, इसमें संदेह नहीं।

वनस्थली विद्यापीठ,
जयपुर

—प्रेमचन्द

गोर्की और साहित्य

लोक-कथा के अध्ययन को गोर्की विशेष महत्व देता था। वह गीतों, क़िस्से-कहानियों और लोकोक्तियों में जातियों के भावों और आशाओं की अभिव्यक्ति देखता था। लोक-कथाओं की सर्जना जनता करती है। उसका यह विश्वास था कि लोक-कथाओं का अध्ययन किए बिना साहित्यिक रचना करना असंभव है। गोर्की जन-भाषा के सम्बन्ध में बहुधा टॉलस्टाय के इन शब्दों का उद्धरण दिया करता था : "प्रत्येक वस्तु सहज, प्राकृतिक और सादगीपूर्ण होती है। उसमें शब्द कम होते हैं और भाव अधिक। वास्तविक बुद्धिमत्ता को शब्द-चित्रण की आवश्यकता नहीं होती।"

सोवियत भूमि से

—अ० म्यासनिकोव

समकालीन हिन्दी कविता में पावस

भारतीय कविता में सदैव से ही प्रकृति वर्णन का विशेष महत्व रहा है। आदि कवि वाल्मीकि से लेकर अब तक के सारे ही कवियों ने किसी-न-किसी रूप में प्रकृति का वर्णन अवश्य ही किया है।

जब भारत की धरती पर हरे-भरे खेत पक कर पीले होने लगते हैं तब वसंत का आगमन पतझर के साथ ही साथ होता है। प्रकृति के इस परिवर्तन का प्रभाव मानव-जीवन पर पड़ता है। वसंत के कोमल-कोमल पत्ते देख कर मानव-मन आत्मविभोर हो उठता है किन्तु यह वसंत का आनन्द अधिक स्थाई नहीं रह पाता। वसंत आता है और चला जाता है, साथ ही छोड़ जाता है असहनीय गरमी। गर्म लू के चपेटे मानव की कोमल भावनाओं पर ऐसी चोट करते हैं कि वह वर्षा की रिमझिम झड़ी देखने के लिए आतुर हो उठता है। किन्तु आज का कवि इस चिलचिलाती धूप से भी प्रेरणा लेता है। श्री भवानीप्रसाद मिश्र की कुछ पंक्तियाँ इसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त होंगी :

"सुहागिन, उठो,
चलो, यह धूप,
हमारा रूप।
इसी से ख़ून हमारा गरम
इसी से बोल हमारे नरम,
इसी से मन में हास
इसी से गान कि जो वर्षा में गूँजेंगे,
इसी से कजली, क़दम हिंडोल,
इसी से मुरज, पखावज, ढोल,
इसी से हास, इसी से रास,
इसी से धरती पर आकाश।
सुहागिन, उठो,
ओढ़ लो धूप
निखारों अपना-अपना रूप !
धूप पर हँसो,
कछौटा कसो,
खेत पर चलो समुन्नत भाल
कांस खोदो काटो जंजाल।"

भवानीप्रसाद मिश्र की 'सुहागिन' कालिदास की 'यक्षिणी' नहीं है वह एक किसान की पत्नी है। उनका जीवन-धन तो उनके खेत हैं। खेतों में तेज़ धूप के बिना अनाज कैसे पकेगा ? इसी धूप से तो उनका ख़ून गरम है। वर्षा में गाये जानेवाले गान इसी धूप की छाँह पर आधारित हैं।

और इधर बिना वर्षा के धरती का क्या हाल है इस बात को स्पष्ट करने के लिए कवि श्री 'नीरज' की कुछ पंक्तियाँ यथेष्ट होंगी :

"निर्जीव पड़े खलिहान, खेत दम तोड़ रहे
हैं सिसक रहे बन, बाग़ कराह रहे सारे,
हो गए पीलिया से पीले सब पेड़ पात
चर गईं लुओं की लपटें चरागाह प्यारे
सूखे-से हैं बीमार कुएँ, वापी, तड़ाग
प्यासे बैठे पनघट पर गीत गगरियों के
ग़श खा कर लेटी हैं ख़ामोश नहर-नदियाँ
हैं ढेर लगे भू पर कंकाल ठठरियों के"

और कवि आगे कहता है :

"आने दो शीघ्र धरा पर सावन की फुहार
अन्यथा समय की प्यास सिन्धु बन जाएगी
यदि जल न मिला तो सत्य मान ओ आसमान
यह मिट्टी शोणित के सैलाब बुलाएगी"

आख़िर आसमान को अपनी क़द में से बरसात की छोड़ना ही पड़ा और धरती पर रिमझिम फुहारों की झड़ी लग गई :

"लो वह आई पुरवाई, छाई वह बहार
वह चमकी बिजली, वह भौंरों ने किया शोर
वे लगे झूमने खेत, थिरकने लगे बाग़
वह कली जी गई, गली हो गई वह विभोर"

१६५४

श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव भी अपनी कविता 'मौसम बदल गया' में पावस का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं। कुछ पंक्तियाँ देखिए :

"मनहूस गुम्बदों को अब छोड़ अबाबीलें,
मेघों के नीचे का श्रृंगार सजाती हैं।
नीचे पावस की परी छमाछम आंगन में
झिल्लियाँ अनोखे बाजों की झनकाती हैं।
गाने को गीत बोवाई का, हलवाओं के
रस्ते में ही हो गए सुरीले आज गले।
वैशाख गया, नभ में काले घन घुमड़ चले;
पानी बरसा लो ताल तलैया उमड़ चले।"

उक्त कविता में अबाबीलों का गुम्बदों को छोड़ कर मेघों के नीचे का श्रृंगार सजाने की कल्पना कितनी वास्तविक है। अब श्री गोपालकृष्ण कौल की कल्पना का भी आनन्द उनकी निम्न पंक्तियों में लीजिए :

"आसमान में उड़ता सागर,
लगा बिजलियों के स्वर्णिम पर
बजा नगाड़े जगा रहे हैं बादल धरती की तरुणाई !
पहली बूँद धरा पर आई !

नीले नयनों-सा यह अम्बर,
काली पुतली से ये जलधर,
करुणा-विगलित अश्रु बहा कर धरती की चिर प्यास बुझाई
बूढ़ी धरती शस्य श्यामला बनने को फिर से ललचाई !
पहली बूँद धरा पर आई !"

कवि को ऐसा प्रतीत होता है जैसे बिजली के स्वर्णिम पंख लगा कर सागर आसमान में उड़ रहा हो। और बादलों की गर्जन ऐसी प्रतीत होती है जैसे धरती की तरुणाई जगाने के लिए बादल नगाड़े बजा रहे हों। नीले नयनों जैसे लगनेवाले आकाश में ये मेघ काली पुतली के समान दिखाई देते हैं।

कवि श्री जितेन्द्र कुमार भी बादल को देख कर सहसा पुकार उठते हैं :

"अंतरिक्ष में बिखरे सहसा
किसके ये काले कुंतल हैं ?
नभ की सरिता में उग आए
किसकी छवि के नील कमल हैं ?
पड़ी दिगन्तों की बाहों में
किसकी छाया अलस शिथिल सी ?
ध्वनित प्रतिध्वनि मेघ-मन्द्र में
सहसा किसके स्वर मोहन हैं ?
घिर आए घन-श्याम गगन में
भर आए मेरे लोचन हैं।"

आकाश के इन मेघों ने वियोगी हृदयों की व्यथा को उभारने में अतीव सफलता प्राप्त की है। महाकवि कालिदास का वियोगी हृदय भी एक बार आषाढ़ का पहला मेघ देख कर किसी से मिलने को आतुर हो उठा था। और इसी आतुरता ने 'मेघदूत' काव्य का निर्माण कराया। कौन जाने कि 'मेघदूत' का नायक यक्ष स्वयं कालिदास की अनुभूतियों का प्रतीक हो। कवि श्रीहरि की कविता नायिका भी कजरारे बादलों को देख कर किसी मिलन कल्पना में तल्लीन हो जाती है :

"इन्द्र धनुष की डोर पकड़ कर
घटा उठेगी आज गगन तक,
वहीं कक्ष में दो आत्माएँ
हो जाएँगी एक अचानक,
जीवन को विस्तार मिलेगा
टूट चलेंगे कूल कगारे।
आँगन में बैठी हूँ नभ पर
देख रही हूँ घन कजरारे।
ये मेरे आँगन में बरसें
वे मेरे जीवन में सरसें,
तप्त धरा की आशाओं से
ये मेरे अरमान न तरसें,
दुःख जिया का, दर्द हिया का
आज किसी को व्यग्र पुकारे।
आँगन में बैठी हूँ नभ पर
देख रही हूँ घन कजरारे।"

कुमारी कमलेश सक्सेना अपनी कविता "बरसो हे घन बरसो" में धरती के लिए ऐसे अमृत-कण माँगती हैं जिससे हमारी नवीन संस्कृति जीवित रहे :

"हटा तृषा का तम अवगुंठन,
गरजो लरजो ज्योति किरण बन,

नष्ट न हो जाए नव संस्कृति
ऐसे अमृत-कण बरसादो ।
बरसो, हे घन बरसो ।

नभ पर चातक के दृग छाए
धरती की छाती अकुलाए
स्वाति बूँद बन हे जीवन-घन
मन की आकुल तृषा बुझा दो
बरसो, हे घन बरसो ।”

अन्त में हम श्री नागार्जुन की कविता “जयति जयति बरसात” की कुछ पंक्तियाँ देकर इस प्रसंग को समाप्त करेंगे । प्रस्तुत सभी कविताएँ स्वतन्त्र भारत के वायुमण्डल में लिखी गई हैं । अतः स्वाभाविक ही है कि इन कविताओं में हमारी वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों का हलका सा स्पर्श है :

“मेघ तुम्हारी दया कि रातों रात
हो गई नई पुरानी दूब
जीवनदाता ! अपने को तुम
ख़ूब उंडेलो ख़ूब
हे गर्भित ! हे भरित ! अहे परिपूर्ण !
दाताओं के दम्भ दुर्ग को
तुम न छोड़ते कर देते हो चूर्ण
मीत, तुम्हारे अक्खड़पन पर मैं प्रसन्न हूँ
क्योंकि अकिंचन हूँ, निरन्न हूँ”

काव्य कुटीर,
चन्दौसी (उ० प्र०)

—सुरेन्द्र मोहन मिश्र

आलोचक के अधिकार

पिछले दिनों एक पत्र के सम्पादकों ने एक अंग्रेज़ आलोचक से एक चित्रपट की कहानी की आलोचना माँगी । उसने अपनी आलोचना में लिखा कि कहानी बहुत अच्छी नहीं है । पत्र का उप-सम्पादक आलोचक के पास आया और उसने पूछा कि “क्या वे इस आलोचना के एक शब्द को निकाल सकते हैं ।” आलोचक ने पूछा : “कौन-से शब्द को” उप-सम्पादक ने कहा : “नहीं शब्द को ।” इसके लिए आलोचक ने इनकार कर दिया । सम्पादकों ने उसकी आलोचना को प्रकाशित किया परन्तु अपनी ओर से बहुत कुछ जोड़ दिया । आलोचक ने अपना रोष प्रकट किया । आलोचक ने ब्रिटिश प्रेस काउन्सिल के पास अपनी शिकायत पेश की । ब्रिटिश प्रेस काउन्सिल ने निर्णय दिया कि जब आलोचक का नाम प्रकाशित किया जाता है तब उसकी अनुमति के बिना उसकी आलोचना में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता ।

मानसिक रोगों की प्रेम–चिकित्सा

सभी प्रकार की रोगों की चिकित्सा का मूलाधार प्रेम है। जो चिकित्सक जितना ही हृदय से रोगी का कल्याण करना चाहता है वह उसे आरोग्य प्रदान करने में उतना ही अधिक समर्थ होता है। जब चिकित्सक पैसे का लोभी हो जाता है तब वह अपनी चिकित्सा-शक्ति को खो देता है। इस कथन की सत्यता की परख शारीरिक रोगों की चिकित्सा में उतनी शीघ्रता से नहीं होती जितनी शीघ्रता से मानसिक रोगों में होती है। काशी मनोविज्ञान-शाला में आए रोगियों के विषय में देखा गया है कि प्रेम और सहानुभूति से ही उनका रोग सरलता से जाता रहा; साधारण बातचीत से ही रोगी के स्वास्थ्य में परिवर्तन हो गए।

रोग दो प्रकार के होते हैं शारीरिक और मानसिक। दोनों प्रकार के रोगों के निवारण के लिए सहानुभूति की आवश्यकता होती है। जिस डाक्टर में रोगी के प्रति घृणा का भाव है वह रोगी को उसके रोग से मुक्त करने में कदाचित् ही समर्थ होता है। मनुष्य का मन भीतरी स्तरों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रत्येक प्रकार के रोग की जड़ में किसी न किसी प्रकार का मानसिक विकार रहता है। यह विकार प्रतीक रूप से शारीरिक अथवा मानसिक रोगों के रूप में प्रकाशित होता है। प्रबल भावना का दमन ही मनोविकार बन जाता है।

मनुष्य के मन में अनेक प्रकार की पाशविक प्रवृत्तियाँ हैं। ये प्रवृत्तियाँ अपना प्रकाशन मनुष्य के आचरण में चाहती हैं परन्तु इन प्रवृत्तियों का प्रकाशन मानवता के प्रतिकूल होता है। धार्मिक और नैतिक शिक्षा भी हमें अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को मनमानी प्रकाशित होने से रोकती हैं। अतः यकायक जब हमारे मन में कोई प्रबल उद्वेग उठता है तो उसे हम बाहर प्रकाशित होने से रोकते हैं। यदि मनुष्य किसी प्रकार के उद्वेग का अनुभव न करे तो उसे कोई रोग ही न हो। मानसिक रोग होना तो असम्भव ही है। इसी तरह यदि हम अपने सभी भले बुरे मनोभावों को प्रकाशित होने दें तो भी हम अनेक मानसिक और शारीरिक रोगों से मुक्त रहें। पर ये दोनों ही अवस्थाएँ मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल हैं। एक अवस्था जीवन की मुक्ति की ही अवस्था है और दूसरी पाशविक जीवन की अवस्था है अतएव उद्वेगों का दमन और इसके कारण बीमारी की उपस्थिति मनुष्य के लिए आवश्यक है।

जब हम किसी व्यक्ति को किसी ऐसे रोग से पीड़ित देखते हैं जो कि उसके कुकर्मों से पैदा हुआ है तो प्रायः हम उससे सहानुभूति नहीं करते। गर्मी, सुज़ाक, आदि रोगों से पीड़ित व्यक्ति के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो जाता है, पर इस तरह हम उसके रोग को और जटिल बना देते हैं। यदि हमारी साधारण बुद्धि जैसी ही बुद्धि उसके चिकित्सक की हुई तो वह रोगी को आरोग्य प्रदान करने में कदापि समर्थ नहीं हो सकता।

हाल ही में लेखक के पास एक न्यूरेस्थीनिया का रोगी आया। इसे अकारण चिन्ता, भय, शारीरिक कष्ट तथा थकावट का अनुभव होता था। ऐसा रोगी दूसरे लोगों से अनेक प्रकार की आशाएँ करता है। वह जीवन से निराश रहता है। वह संसार के प्रत्येक लोगों में स्वार्थ-परायणता ही देखता है। अतएव वह उनसे घृणा करता है। उसका घृणा का भाव दूसरों तक ही सीमित नहीं रहता, वह अपने आप से भी घृणा करने लगता है और उसके मन में आत्म-हत्या की भावना बार-बार आती है। उक्त रोगी की यही दशा थी। पश्चिम के कुछ डाक्टर ऐसे रोगी से सहानुभूति प्रदर्शित करना भूल समझते हैं। अतएव इन्हें कभी-कभी बिजली के झटके से स्वास्थ्य बनाने की चेष्टा की जाती है। इस प्रकार कुछ रोगी स्वस्थ्य भी हो जाते हैं परन्तु उनका रोग स्थाई रूप से नहीं जाता। जब तक रोगी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित नहीं किया जाता और उसको भीतर से दृढ़ नहीं बनाया जाता, रोग नहीं जाता।

उक्त रोगी की आत्म-वेदना को लेखक ने सहानुभूति पूर्वक सुना। उसे कई उदाहरण दे कर प्रोत्साहित किया और अपनी जीवन की समस्याओं को दृष्टि से ओझल न कर के उनको सामना करने की सलाह दी। इस रोगों के मन में न केवल प्रेम-सम्बन्धी अनेक प्रकार की ग्रंथियाँ थीं, वरन् वह अपनी साधारण समस्याओं को हल करने

में अपने आप को असमर्थ पाता था। दोनों प्रकार की बातों को धैर्यपूर्वक सुनने से रोगी का मन हलका हो गया और उसका खोया हुआ आत्म-विश्वास आने लगा। प्रेम से ही मनुष्य को मानसिक बल मिलता है। आरोग्य प्राप्ति के लिए रोगी के मन में प्रेम भावनाएँ उत्पन्न करना आवश्यक है परन्तु यह अपने प्रेम से ही उत्पन्न होती है।

सहानुभूति के द्वारा रोगी के मन में आशा का उत्पन्न करना उस रोग से मुक्त करने के लिए आवश्यक है। मनोविज्ञान के विशेषज्ञ चिकित्सकों ने अपने अनुभव से यह जाना है कि प्रत्येक रोगी अपने प्रयत्न से ही रोग से मुक्त होता है। जब तक रोगी के विचार नहीं बदलते वह रोग से मुक्त नहीं होता। डाक्टर की बाह्य चिकित्सा उसे प्रति विचार बदलने में सहायक होती है। उसका उपचार रोग का बाहरी उपचार मात्र ही सच्ची चिकित्सा प्रायः डाक्टरों के अनजाने होती है। यह चिकित्सा विचारों में परिवर्तन की चिकित्सा है। विचारों का परिवर्तन कई बातों पर निर्भर है। उसमें प्रधान निर्देश और सहानुभूति है। रोग की चिकित्सा में निर्देश के महत्व को बहुत से लोग जानते हैं पर सहानुभूति के महत्व पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला गया है। निर्देश के द्वारा परवश रोगी के विचारों को बदला जा सकता है। इससे रोगी की इच्छा शक्ति दृढ़ न हो कर कमज़ोर हो जाती है। अतः तभी तक वह आरोग्य प्राप्त करता है जब तक उसके निर्देश का प्रभाव रहता है। निर्देश का प्रभाव घट जाने पर उसके रोग-ग्रस्त हो जाने की सम्भावना रहती है।

इस प्रसंग में डाक्टर फ़ायड का अनुभव उल्लेखनीय है। डा. फ्रायड अपनी नई मानसिक रोगों के उपचार की विधि खोजने के पूर्व निर्देश की विधि से ही मानसिक रोगों का उपचार किया करते थे। यह विधि इन्होंने फ्रांस के नैसी नामक नगर के प्रसिद्ध मानसिक चिकित्सक कूपे महाशय से सीखी थी। इस विधि के अनुसार चिकित्सक रोग के कारण की खोज नहीं करता था। वह रोगी को आरोग्य का निर्देश देता था। इस प्रकार के निर्देशों के परिणाम-स्वरूप रोगी के विचारों में परिवर्तन होता जाता था और उससे रोगी को आरोग्य लाभ हो जाता था। यह निर्देश देने की विधि वैसी ही थी जैसे कि एक साधारण सम्मोहक की विधि होती है। हिस्टीरिया, इन्सोमनियाँ आदि मानसिक बीमारि पीड़ित उनके व्यक्ति इस प्रकार के उपचार से म लिए अच्छे हो जाते थे पर कोई कोई रोगी उन्हीं बीमारियों से पीड़ित हो जाते थे। बार-बार करने पर भी उनका रोग जड़ से नहीं जाता था। तक कूपे महाशय के उपचार का उन पर प्रभाव था, तब तक वे आरोग्य बने रहते थे ज्यों ही उनके से अलग हो जाते थे उनकी बीमारी फिर से हो जाती थी।

डाक्टर फ़ायड इस प्रकार की स्थिति देख कूपे की विधि से असंतुष्ट हो गए। उनका निश्चय हो गया कि जब तक रोग के कारण को नहीं जाता उसका ठीक-ठीक उपचार करना सम्भव ही उनकी लगन अब मन के भीतरी पटल की खोज में हो गई। उनके कल के प्रयत्न के फलस्वरूप सिक रोगों के उपचार की नई विधि का आविष्कार यह विधि मनोविश्लेषण की विधि कहलाती है। विधि में निर्देश के लिए स्थान नहीं। चिकित्सक निष्पक्ष वैज्ञानिक के सदृश अपनी दृष्टि रोगी के रखता है। वह जैसा है वैसा ही वह उसे और उसे स्वयं जानने की चेष्टा करता है। मनोवि की विधि से रोगी के दबे मनोभाव बाहर आते ही का अन्त हो जाता है। कुछ मनोविश्लेषण इस पर भी ज़ोर देते हैं कि दलित मनोभावों का चेत समक्ष आना मात्र पर्याप्त नहीं। यदि किसी दलित भाव को सम्मोहन की अवस्था में चेतना के लाया जाए तो वह बाहर आकर भी आरोग्य लाभ के सहायक नहीं होगा।

मानसिक रोगों के उपचार में सबसे आवश्यक चिकित्सक के मन में धैर्य की है। रोगी अपनी ही गाता जाता है और वह चिकित्सक को रोग की गाते-गाते थका देता है। जो चिकित्सक इससे थकता, वरन् रोगी के विचारों को उसके लक्ष हटा कर उसके कारणों पर ले जाता है वह उसे प्रदान करने में समर्थ रहता है। रोगी का मन कारण जानने से भागता है। परन्तु चिकित्सक रोगी का मन उन कारणों पर ले जाता है। इन को जानने से ही रोगी का रोग नष्ट हो जाता है। नैतिक बुद्धि के विरुद्ध होते हैं। जो व्यक्ति

१९५४

आचरण करनेवाले व्यक्ति से घृणा करता है वह रोगी को आरोग्य प्रदान कभी भी नहीं कर सकता। वह निर्देश विधि से रोग को दवा भले ही दे, परन्तु उसे स्थाई लाभ कभी नहीं कर सकता। सहानुभूतिपूर्वक रोगी के पुराने अनुभव सुनने और उनको स्मृति-पटल पर आने देने से सदा के लिए रोग नष्ट हो जाता है।

रोगी को उपयोगी निर्देश देने के लिए भी उसके प्रति प्रेम और सहानुभूति की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर है जो कि मूर्ख बन कर अपना खेल खेल रहा है। इस प्रकार की भावना मन में रखने से रोगी में शीघ्र ही आत्म-विश्वास आ जाता है और उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है। सहानुभूति वह संजीवनी है जिससे मरते हुए व्यक्ति फिर नव-जीवन पा लेते हैं। इसके अभाव में जीवित व्यक्ति भी प्रायः मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

— लालजी राम शुक्ल

सिद्धगिरि,
बनारस

विश्व-बौद्ध-परिषद्

बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् ६ विश्व-बौद्ध-परिषद् हुई हैं। पहली परिषद् बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् ५ वीं सदी ई. पू. में हुई। इसमें ५०० बौद्ध नेता गुफ़ा में एकत्रित हुए थे। इसमें उन्होंने बुद्ध की शिक्षाओं और उपदेशों पर विचार किया था। दूसरी परिषद् इसके १०० वर्ष के पश्चात् हुई थी। इसमें अनुशासन की कठोरता को कम करने पर विचार किया गया था। तीसरी परिषद् २४४ ई. पू. में हुई थी। इसमें अन्य देशों में बौद्ध प्रचारकों को भेजने का निश्चय किया गया था। चौथी परिषद् पहली सदी ई. प. में हुई थी इसमें बौद्ध धर्म हीनयान और महायान दो संप्रदायों में विभक्त हो गया। हीनयान में बुद्ध को महापुरुष और महायान में बुद्ध को दिव्य-पुरुष माना जाता है। सीलोन, बर्मा, लाओस, कम्बोडिया और थाईलैण्ड में हीनयान और चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत, मंगोलिया, नेपाल और भारत में महायान मत प्रचलित हैं। पाँचवी परिषद् १८६८ में मांडले में हुई थी। इसमें "त्रिपिटकों" के पाठ को निश्चित रूप देने का प्रयत्न किया गया था। इन्हें ७२० संगमरमर की शिलाओं पर उत्कीर्ण किया गया था। छठी परिषद् रंगून से ७ मील दूर नए बनाए हुए श्रीमंगल पैगोडा के पास हो रही है और दो वर्ष तक होती रहेगी।

—'टाइम' से

काश्मीरी लोक-जीवन की एक झाँकी

प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से जितनी मनोरम है काश्मीर की धरती उससे भी अधिक दिलचस्प है काश्मीरी लोक-जीवन। धानी रंग के सपाट खेतों की तरह यहाँ के लोग तबीयत से रंगीनी पसन्द और स्वभाव के सरल होते हैं। आड़े-तिरछे, गोल और अन्डाकार, ऊँची-नीची सीढ़ियों वाले जैसे इनके खेत होते हैं कुछ वैसी ही विविधता काश्मीरी लोक-जीवन की रग-रग में रमी हुई है। स्त्रियाँ हैं बदलियों में मुँह छिपानेवाली पहाड़ी चोटियों की तरह लजीली। पुरुष हैं चनार वृक्षों की तरह लम्बे तड़ंगे। और बच्चे, जिनकी हर हरकत में झरनों की उमंगें होती हैं।

सम्पन्नता में विपन्नता यहाँ की एक विचित्र पहेली है। प्रकृति ने जिस काश्मीर को सब कुछ दिया है वहाँ बहुसंख्यक काश्मीरियों को ग़रीबी ही मिली है। उनके जीवन का हर दिन संघर्षपूर्ण होता है। क्या किसान, क्या खेतिहर मज़दूर और क्या कारीगर सभी की जीवन-गाथा युगों की भूख, शोषण और पीड़ा से परिपूर्ण है। किन्तु फिर भी उनके पास एक दौलत है जिसे कोई हमलावर छीन नहीं सका, वह है श्रम और शान्ति-प्रियता। इन्हीं से मिल कर काश्मीरी लोक-जीवन का निर्माण हुआ है और यही हैं काश्मीरी-जन-संस्कृति के मंगल-सूत्र।

कारीगर : भोर से साँझ तक यह श्रमजीवी पेट के धन्धे में लगे रहते हैं। कला के नित नये नमूने गढ़ते हैं। लोहे, लकड़ी, पत्थर हर चीज़ में जैसे जान डाल देते हैं। रेशम का एक एक तार, नम्दे का एक-एक कढ़ाव, पेपरमेशी का एक-एक रंग उनकी कलात्मकता की जीती जागती शहादत हैं। वे रुचि परिवर्तन के कितने कुशल पारखी होते हैं यह तो उनकी अनेकानेक कला-कृतियाँ ही बताती हैं।

बचपन में खाने खेलने के दिन भी इसी काम में बीतते हैं। युवावस्था भी और बुढ़ापे के वे दिन भी जब आँखें साथ नहीं देतीं, हाथ जब जवाब दे जाते हैं या जीवन से नाता टूट जाता है किन्तु कारीगर की साध—जीवन की सर्वश्रेष्ठ कृति उतारने की साध—शायद कभी पूरी नहीं होती, क्योंकि हर कृति के साथ उसकी कल्पना और भी सचेतन हो जाती है। फिर नई पीढ़ी आती है जो इस अधूरे काम को उठाती है। इस तरह एक एक करके पीढ़ियों की शृंखला के बीच कला के इन तानों-बानों का क्रम अदृश्य रूप से चलता जाता है। यही है काश्मीरी-कला की विकास गाथा। यही है इन लोक-कलाकारों के साधनामय जीवन की दर्द-भरी कहानी।

नाविक : ग्रीष्म की सुनहरी धूप के साथ-साथ काश्मीरी धरती और समाँ में एक अजीब जान आ जाती है—हर ओर गतिशीलता और बहारें ही बहारें। हिमाच्छादित गिरि-शिखरों से बहने वाले नदी, नाले और झरनों में जीवन का मादक संगीत गूँजने लगता है। धरती का रोम-रोम हरियाली बन कर खिल जाता है। फूल और तितलियों के इस मौसम में प्रवासियों का प्रवाह आरम्भ होता है और उसी के साथ-साथ काश्मीर के मेहनतकश मज़दूरों, कुलियों और नाविकों की दिनचर्या का एक नया दौर।

नाविकों के लम्बे लबादों में छिपी सिगड़ियाँ (कांगड़ियाँ) उनसे विदा ले जाती हैं और उनके मज़बूत हाथों में होते हैं छोटे-छोटे पतवार। आँधी-पानी से लोहा लेनेवाले उनके चंचल शिकारे अपनी पूरी सजधज के साथ डल झील के किनारे आ लगते हैं और तब? तब ये मेहनतकश प्रवासी की राह में अपनी मासूम निगाहें बिछा देते हैं। कितना मिठास कितनी बेबसी और कितना दर्द होता है उनके इसरार में। प्रवासियों के सम्मुख उलझन होती है, किसका आतिथ्य स्वीकार करें और किसे निराश लौटाएँ।

पहाड़ी कुली : पहाड़ियों के अपने-अपने रंग हैं। कोई एकदम हरी भरी चीढ़ के वृक्षों से लदी हुई, कोई एकदम चट्टानी, कोई स्लेटी लाल, कोई बैंजनी, कोई मटमैली कत्थई कोई एकदम ढालू—कोई हवा में लटकती सी और कोई झीलों के बीच सिर निकाले हुए। यों तो प्रायः सभी काश्मीरी लोगों का इनसे चोली-दामन का साथ है किन्तु पहाड़ी कुलियों का रोटी-रोज़गार सब कुछ

इन्हीं पर निर्भर है।

ये पहाड़ी चढ़ाइयाँ और उनकी मनोरम पृष्ठ-भूमि दूर-दूर के यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। इस तरह भाग्य-रेखाओं की तरह इन टेढ़े-मेढ़े रास्तों में कुलियों का जीवन, उनका वर्तमान और भविष्य एक तरह से बंध-सा जाता है। ये लम्बे-तड़ंगे मज़बूत कुली, भूख और ग़रीबी का बोझ ढोते-ढोते जिनकी कमर टूट चुकी है, अशिक्षा के कारण जिनकी बुद्धि कुंठित हो गई है, पहाड़ी तलहटियों में प्रवासियों की प्रतीक्षा करते रहते हैं।

मौसम जब खराब होता है—बादल और बिजलियाँ जब आकाश पर छा जाती हैं तब ये बेबसी से आकाश की ओर हाथ उठा-उठा कर दुआ करते हैं, मनौतियां मानते हैं, धूप की मुस्कराहट के साथ-साथ इनका धन्धा चल उठता है। भोर से दिन छिपे तक बोझा ढोने और मीलों की मंजिल तय करने पर भी मुंह से उफ़ तक नहीं करते। किसी के पैर में मूँज का स्लीपर है तो कोई नंगे पैरों ही पहाड़ की कंकरीली और सीधी चढ़ानों पर चढ़ते चले जा रहे हैं, केवल इसलिए कि वे छः आने की चप्पल खरीद नहीं सकते।

खेतिहर किसान : "दुनिया भर में किसान का हृदय एक है। उसके सुख-दुःख की कहानी सब जगह एक ही रंग में रंगी हुई है।" देश काल की सीमाओं ने उसके रहन-सहन, वाह्य-चेतना और रूप-रंग में अनेक भेद अवश्य उपस्थित किए हैं किन्तु फिर भी उसकी अनुभूतियों में गहरा साम्य है। काश्मीरी किसान उन सब से अलग नहीं है। उन्हीं की तरह काश्मीरी खेतिहर की प्रत्येक कृषि-प्रक्रिया के साथ-साथ इष्टवन्दना टोने, टोटके और लोकगीतों के तानों-बानों का क्रम चलता रहता है।

उसे ग्रीष्म के बीतने और आषाढ़ के काले बादलों की प्रतीक्षा नहीं होती वरन् ग्रीष्म के आगमन की वह बड़ी व्यग्रता से बाट जोहता है। आठ-नौ महीने की निरन्तर हिमवर्षा से वह ऊब जाता है। खेतों में बरफ़ के अम्बार देखते-देखते उसकी आँखें पथरा जाती हैं। सरिताओं के जल-प्रवाह की भाँति ही उसके जीवन की गति अवरुद्ध हो जाती है और चनार वृक्ष की पत्तियों के साथ-साथ अन्न के गिने-चुने दाने उससे विदा ले चुकते हैं। युग-युग के अनुभव से वह जानता है कि ग्रीष्म के सम्मुख हिमदैत्य टिक न सकेगा।

गरमी की ऋतु के साथ-साथ काश्मीरी किसान के हाथ पैरों में जान आ जाती है। सुनहरी धूप की छाया में वह मिट्टी में अपना श्रम और पसीना मिलाता जाता है। और तब जेठ-आषाढ़ में सचमुच धरती की गोद में सुनहरी फसलें झूलने लगती हैं। कर और साहूकार के ऋण से मुक्त होते ही किसान की पुण्य संचय भावना जाग उठती है। इन दिनों धार्मिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त शादी-विवाहों की धूम मच जाती है और समूची घाटी के ग्रामीण क्षेत्रों में हँसी-खुशी का एक झोंका सा आता है और फिर वही सर्दी, कर्ज़ और हिमपात-ताण्डव-नृत्य।

ख़ानाबदोश चरवाहे : चरवाहों का जीवन तो सचमुच ही प्रकृति की तरह उन्मुक्त है। बादलों की तरह स्वच्छन्द हो कर वे ऊँची-नीची पहाड़ियों और समतल मैदानों में घूमते रहते हैं। उम्र की धूप में जिनके बाल तेज़ी से पक रहे हैं ऐसे वृद्ध और वृद्धाएँ, ज़िन्दगी की ऊबड़ खाबड़ और लम्बी मंज़िलें जिनके सामने हैं ऐसे लड़के-लड़कियाँ, यौवन के भार से बोझिल वे युवक और युवतियाँ जो जीवन के एक मीठे युग से गुज़र रहे हैं, एक अजीब बेफ़िक्री से ढोर चराते हैं।

उनके सम्मुख दर्शन और राजनीति की पहेलियाँ नहीं होतीं। जीवन की अतिशय आशाएँ, आकांक्षाएँ उनसे दूर ही रहती हैं। उनके सम्मुख होती हैं उनकी भेड़-बकरियाँ—कुछ दूध-सी सफ़ेद, कुछ कजरारी और कुछ मटमैली। और वे इन्हीं के साथ-साथ चलते रहते हैं। भेड़-बकरियों का मिमियाना घड़ी भर को नहीं रुकता। चरवाहों के गीत और वेणु की स्वर लहरियों पर जैसे वे दाद देती हों।

यह क्रम चलता रहता है दिन के बाद दिन। वर्षों चलता है, पुश्त-दर-पुश्त चलता है, क्योंकि यही उनकी रोज़ी रोटी है और यही है काश्मीरी कालीन, नम्दे, पट्टू और पशमीने उद्योग की रीढ़। काश्मीर की घाटी में दूध, घी और पनीर की विपुलता का भी यही रहस्य है। देहात का शायद ही कोई घर हो जहां ढोर न पाले जाते हों। बचपन का पहला पाठ ही यह है जिसे पढ़ कर वे घुमक्कड़ और आंधी पाले के अभ्यस्त बनते हैं और आत्मनिर्भरता की दिशा में पहला पग उठाते हैं।

श्रमिक : काश्मीर का यदि कोई सबसे बेबस और अनाथ वर्ग है तो श्रमिक वर्ग। जिसका न घरबार निश्चित

है न आय । सुबह खा कर चले तो सन्ध्या का ठिकाना नहीं । सड़क कूटने से ले कर, पत्थर हटाने और लकड़ी ढोने तक किसी भी काम के लिए वे घाटी के कोने कोने में घूमते फिरते हैं । जब तब वन्य पशुओं का आखेट करते रहते हैं और निर्भयता से निर्जन में रातें गुज़ारते हैं । इन खानाबदोशों के अपने निराले अन्ध-विश्वास हैं, निराली मान्यताएँ और निराले ही व्यवहार ।

लद्दू खच्चरों पर अपना डेरा तम्बू लाद कर युवक और युवतियाँ चल पड़ती हैं क्योंकि उनके बड़े बूढ़े कभी ऐसी ज़िन्दगी से नहीं ऊबते । दिन में उनके आदमी मेहनत मज़दूरी के लिए आसपास के गाँवों की खाक छानते हैं । फिर शाम होते ही आग के इर्दगिर्द बैठ कर राहत की साँस लेते हैं । फ़ाकेमस्ती भी ऐसी कि वे प्रायः भूखे पेट रह कर भी सो जाते हैं बेखबर, बेफ़िक्र । और उनके पालतू कुत्ते सारी-सारी रात जाग कर पहरा देते हैं ।

स्त्रियाँ : इनकी स्त्रियाँ भी शायद अबला नहीं है । गृहिणी के रूप में उनका कार्य हमारी सुशिक्षित कहे जाने वाली बहिनों को सचमुच एक चुनौती है । विवाहित और अविवाहित युवतियाँ, कुल-वधुएं और प्रौढ़ाएं सभी समान रूप से, जीवनयापन में सतत संघर्षशील पुरुषों को सहारा देती हैं । किसान परिवारों की स्त्रियाँ खेत निराने से ले कर फ़सल काटने तक के प्रायः सभी धन्धों में पुरुषों का हाथ बटाती हैं । कारीगर परिवार की स्त्रियाँ भी उनसे किसी तरह पीछे नहीं हैं । ढोर चराना, घरों की लीपपोत, और पशुपालन तो जैसे उनकी विरासत है । कताई, बुनाई, ग्राहस्थ्य और बच्चों की देखभाल, भी वे स्वयं ही करती हैं ।

जंगली फूलों की तरह उनका अपना सौंदर्य है—कृत्रिमता और लीपपोत से अलग-थलग । इन युवतियों के चेहरों पर आत्मविश्वास की दृढ़ता और फ़ाख़्ता जैसी मासूमियत स्पष्ट झलकती है । उनकी भाव-भंगियों में अतृप्त वासना और शोखियाँ नहीं सात्विकता होती है । उन्हें देख कर मन में विकार नहीं आता, पर जी चाहता है उन्हें देखो, देखते रहो । यात्री करते भी यही हैं—एकटक देखते रहते हैं । क्यों ? यह शायद वे स्वयं भी नहीं जानते—किन्तु ज्यों ही इन्हें यह भान होता है कि कोई परदेसी उन्हें घूर रहा है तब वे प्रायः एक मन्द मुस्कान सी बिखेरती हुई चल देती हैं । उनका एक-एक पोज़—जब वे नवागन्तुक को देखती हैं, निगाहें मिलते ही सहम कर एक तरफ हटती हैं, या लापरवाही से अपने काम में जुट जाती हैं—देखने योग्य होता है ।

वेशभूषा के मामले में भी उन्होंने अजीब तबीयत पाई है । दो चार चोटियों का रिवाज़ समझ में आता है पर ये तो सौ-सौ चोटियाँ गूँथती हैं । एक दफ़ा की चोटी महीनों काम देती है । इनके नीचे-नीचे लबादे और घुटनों तक की कमीज़ में बड़ी अजीब-सी गंध मालूम होती है । नहाना-धोना तो शायद इन्होंने सीखा ही नहीं और फिर गोरे-गोरे शरीर पर मैल की तहें भी तो छिपाये नहीं छिपतीं । वेशभूषा से इनमें हिन्दु और मुसल्मान का अन्तर पता चलाना मुश्किल हो जाता है; तो भी पूजा के वस्त्र और होते हैं, दुलहन के कुछ दूसरे ही । शोख रंग के कपड़े इन्हें बेहद पसन्द हैं ।

बच्चों की दुनिया : चंचलता और मासूमियत शिशुता के दो ऐसे पहलू हैं जो अनायास ही मानव हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं । काश्मीर के सुदूर देहातों में पले अथवा शहरी सभ्यता में बड़े हुए इन बच्चों में कुछ ऐसा ही आकर्षण होता है । ग्रामीण लड़के लड़कियाँ, देश-देश और प्रान्त-प्रान्त के निवासी प्रवासियों की वेशभूषा, चाल-ढाल और बातचीत बड़ी उत्सुकता से देखते सुनते हैं । रेडियो, मोटर, कैमरा उनके लिए एकदम नुमाइश है ।

उनके चेहरों पर क्षण-क्षण उभरता भय, कौतूहल और आश्चर्य की रेखायें देखते ही बनती हैं । सहमे-सहमे से, मृगशावक से देखते रहेंगे और यदि भूल से किसी ने इन पर दृष्टि जमाई तो भाग खड़े होते हैं । हाँ इतना अवश्य है कि एक बार हिल जाने पर यह लोग बड़े दिलचस्प और सहृदय दोस्त साबित होते हैं । इनकी कंजी-कंजी आंखें, सुनहरे बाल, वेशभूषा मानस में कुछ ऐसी अंकित हो जाती हैं जो प्रवासी को पुनः पुनः काश्मीर की ओर आकर्षित करती हैं ।

शहरी बच्चे इनकी अपेक्षा अधिक निडर होते हैं । बाग़वान और ग़रीब परिवारों के कुछ बच्चे तो आरम्भ से ही खाने-कमाने की कला सीख लेते हैं । श्रीनगर के निकटस्थ प्रायः सभी वाटिकाओं के द्वार पर प्रवासियों को चेरी, शहतूत और फूलों के गुलदस्ते भेंट कर वे बख़्शीश के लिए अपने छोटे-छोटे सुन्दर से हाथ फैला देते हैं । 'शाब' 'शाब' की रट ल

कभी-कभी तो इतने बच्चे दर्शक को घेर लेते हैं कि बिना डंडे उनसे त्राण पाना कठिन है। स्त्रियों और विशेषकर प्रौढ़ाओं पर इनका आग्रह पूरे वेग से उमड़ पड़ता है, जैसे अनुभव ने इन्हें नारी की सहृदयता का रहस्य बता दिया हो।

शैशव का सीमाओं को पार करने से पहले ही रोटी, रोज़ी और जीवनयापन की समस्याएँ इन फूल से बच्चों पर छा जाती हैं और अधिकांश अपने खाने खेलने और पढ़ने लिखने के दिनों में विभिन्न गृह-उद्योगों अथवा कृषि-कार्य में जुट जाते हैं। इस तरह काश्मीरी लोक-जीवन में छाई चतुर्दिक ग़रीबी, नई पीढ़ी की शिक्षा-दीक्षा और भावी विकास के मार्ग में भी बाधक सिद्ध होती है।

नया काश्मीर जाग रहा है। नव-जागरण की सफलता इस पर निर्भर होगी कि वह लोक-जीवन को कहाँ तक छूता है और भूख एवं ग़रीबी के अभिशाप कब तक किनाराकश होते हैं।*

६, सरोजनी नायडू मार्ग,
लखनऊ

—तिलक

माता का प्रेम

माता का प्रेम
यह वह प्रेम है जिसे कि कभी भूला नहीं जा सकता
यह वह चमत्कारपूर्ण रोटी है जिसे भगवान् बाँटता है
और जो बाँटी जाने से भी बढ़ती जाती है
घर में यह वह मेज़ है जो सदा बिछी रहती है
यह वह महाभोज है जिसमें से परिवार के प्रत्येक
सदस्य को अपना भाग प्राप्त होता है
और जो फिर भी सर्वथा अविभक्त रहता है

झूठ

झूठ बुराई की चरम सीमा है
सफ़ेद झूठ सर्वथा अस्तित्वहीन है
क्योंकि असत्य पूर्णतया असत्य होता है
झूठ बुराई की मूर्ति है
शैतान के दो नाम हैं
एक : शैतान
दूसरा : झूठों का बाप

— विक्टर ह्यूगो

---

* आकाशवाणी लखनऊ से साभार

पेरियालवार का पिळ्ळैत्तमिल

(बाल-मधुरिमा)

भगवान् की लीलाएँ अनन्त हैं और उनके भीतर से उस परम पुरुषोत्तम के वैभव, ऐश्वर्य और रूप-माधुर्य की अनुभूति पानेवाले भक्तवर भी अगणित हो गए हैं। रस-सिद्ध उस भक्त-कवियों ने अपने हृदय में अनुभूत उस माधुर्य को अपने में ही संचित न कर, जो उन्मुक्त वाणी दी है उससे जन, समाज और साहित्य एक साथ ही आर्द्र और पवित्र हो उठे हैं।

तमिल नाड और साहित्य को इस प्रकार के जिन अनगिनत सन्त-भक्तों पर गर्व है, उनमें पेरियालवार का प्रमुख स्थान है। ये आलवार भक्त, तमिल नाड के रामनाथपुरम जिले बसा श्री विल्लिप्पुत्तूर के निवासी विष्णुसिद्ध नाम के थे। पर पेरिय-आलवार (आलवारों में बड़े) ही इनका सम्मानित और अधिक प्रसिद्ध नाम है। क्यों न हो, जब स्वयं श्री स्वरूपाकोदा के पिता होने का सौभाग्य और उस पर साक्षात् श्रीमन्नारायण रंगनाथ के ससुर बनने का अहोभाग्य इन्हें प्राप्त हुआ था! हाँ, दक्षिण की मीरा आण्डाल के पिता ये ही पेरियालवार-विष्णुसिद्ध थे!

पेरियालवार के कुल-देवता थे श्री विल्लिप्पुत्तूर के मंदिर में विराजमान वट-पत्र-शायी भगवान्। और आलवार के भक्ति-तरल हृदय में भी, सप्त लोक अपने में निहित कर शाश्वत-बाल रूप में, अंगूठा चूसनेवाले वही वट-पत्र-शायी, बालकृष्ण तरंगित थे।

अपने ही आंगन में, दिव्य-सौन्दर्य और तेज लिए एक असाधारण शिशु को खेलते किलकारी करते देख, आलवार जी की सहज भक्ति उद्दीप्त हो गई हो, या उस शिशु में हृदयस्थ बालकृष्ण तद्रूप हो गये हों—वे वात्सल्यमयी यशोदा बन कर मुखर हो उठे।

मातृ-वात्सल्य से अभिभूत होकर, बालकृष्ण की रूप-माधुरी, क्रीड़ा-माधुरी, वेणु-माधुरी के जो पाशुरम् या पद पेरियालवार ने कहे हैं वे ही उनके पिळ्ळै-त्तमिल कहलाते हैं।

पिळ्ळै त्तमिल का अर्थ है—बाल माधुर्य—बालकों की उछल-कूद आदि क्रिया-कलापों से हृदय में अनु आनन्द-माधुर्य की अभिव्यक्ति जब भाषा में होती है वह पिळ्ळै त्तमिल कहलाती है। इस प्रकार की का रचना की प्रेरणा, पेरियालवार से पाकर, तमिल साहि में, परवर्ती काल में पिळ्ळै-त्तमिल रचने की परंपरा ही चल पड़ी। लेकिन वह तो आनुवंगिक बात है। पेरिया-लवार के रचित पदों में ४६१ पिळ्ळै त्तमिल की कोटि में रखे जाते हैं।

पेरियालवार की तिरुमोलि (सुवचन) आरंभ होती है—सुन्दर महलों से घिरे तिरुक्कोट्टिमूर में कृष्ण-जन्म के कोलाहल, आनन्द-खुशी के उत्सव के साथ—"व माडंगळ् शूल् तिरुक्कोट्टिमूर।"

मथुरा, गोकुल और वृन्दावन-नन्द, गोप, गोपि सब तिरुक्कोट्टिूर में वही श्री विल्लिप्पुत्तूर में ही, एक फिर से अवतरित हो गए और इनके बीच हमारे आल वात्सल्य की मूर्त्ति—स्वयं यशोदा बने-अपार सुख लूट हैं। यशोदा के मुख से निसृत-से उनके उद्गार गोपाल-कृष्ण की मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत करते हैं। भगवान् का ऐश्वर्य, वैभव और रूप-माधुर्य झिलमिल उठा है। पर यह माधुर्य तो कृष्ण का दैवी है—अलौकिक गुण है—जिसमें अलवार के वात्सल्य का समावेश ऐसा है जैसे धूप में छाया। श्रीकृष्ण के अतुल्य रूप, तेज और पराक्रम के साथ निश्छल आलवार यशोदा बन कर ही अनुभव करते हैं लेकिन उस मातृ अनुभव को पाने के लिए आलवार कृष्ण को अति-मानवीय न बनाते। श्रीकृष्ण में अलौकिकता और उनके भगवान् होने का विश्वास, आलवार के मन में होने पर भी, अन्यान्य शिशु के व्यापारों का वर्णन कर जाते हैं; प्रत्येक पद में वे बाल कृष्ण से अपनी चाही लीला कर दिखाने का अनुरोध करते हैं। पर स्तुति रूप में ही न होकर, मन को गुदगुदानेवाली मधुरिमा भी लिए हुए है।

पेरियालवार कृष्ण यशोदानन्दन मात्र नहीं,

१९५४

लोकनायक श्री पति भी हैं, शेषशायी नारायण भगवान् भी हैं, त्रिविक्रम मूर्त्ति हैं, नप्पिन्नैप्रिय (राधावल्लभ ?) हैं, सब हैं; वे पेरियालवार के कण्णन् मणिवण्णन् (कन्हैयालाल) हैं !

बालकृष्ण को पलने से उठा कर गोद में लेती हुई यशोदा कहती है :

"सखियो, इस शिशु की बातें कुछ न पूछो। पलने में झुलाऊँ तो नन्हें-नन्हें अपने पैर मार कर पलना ही तोड़ डालता है। गोद में लेती हूँ तो अपने भार से कमर तोड़ देता है। अंक में भर लो तो पेट में उसकी लातें खानी पड़ती हैं। इस बालक को उठाने की शक्ति न होने के कारण मैं दुबली हुई जा रही हूँ।"

"किडक्किल तोट्टिल किलिय उदैत्तिडुम्
एडुत्तुक्कोळ्ळिल मरुंगै-इरुत्तिडुम्
ओडुक्किप्पुल्हिल उदरत्ते पाय्न्दिडुम्
मिडुक्किलामैयाल नान् मेलिन्देन् नंगाय् !"

एक हृष्ट-पुष्ट बालक की माँ होने का गर्व और आल्हाद इस पद में जितना ध्वनित है उसी अनुपात में कृष्ण की असाधारण, अप्राकृतिक शारीरिक-शक्ति भी इसमें व्यंजित है। भक्त आलवार—यशोदा बन कर भी—मूलतः अपनी भक्ति की स्थिति को भुलाते नहीं। वात्सलय का प्रवाह तो उमड़ पड़ता है पर वह भगवान् के ऐश्वर्य और वैभव के किनारे नहीं तोड़ता।

माता यशोदा बन कर आलवार, कृष्ण को पलने में झुलाते हैं, लोरियाँ गाते हैं। उसके सौन्दर्य-लावण्य का आँख भर कर पान करते हैं और सखी सहेलियों से भी अंग-अंग के माधुर्य का वर्णन करते हैं :

"मुँह में अंगूठा डाले, बालक के पद-कमलों के दर्शन करो—

प्रवाल से अधरवाली बहनो ! देखो !"

"पेदैक्कुलवि पिडित्तुच्चुवैत्तुण्णुम् पादकमलङ्गळ वन्दु काणीरे—

पवळवायीर वन्दु काणीरे !"

फिर क्रम से पैर की दसों उंगलियाँ, एड़ी, घुटने, जांघ, कटि, नाभि, उदर, वक्ष, बाहु, हथेली, एक-एक के सौन्दर्य को दिखा कर विभोर होते हैं यशोदा बने पेरियालवार।

नीलाकाश में तैरते चाँद से यशोदा कहती है :

"भाल से लटकती मणि दाएँ-बाएँ डोलते हुए, पैरों के पायल झनझनाते हुए मेरा बाल-गोविन्द धूल में खेल रहा है। चन्दा ! तुम्हारी आँखें हों तो यहाँ देख जाओ—

तन्मुहत्तुच्चुट्टि तूङ्गतूङ्गत्तवल्न्दुपोय्
पोन्मुहक्किणकिणियार्प्प प्पुलुदियळैहिरान्
एक महन् गोविन्दन् कूत्तिनै इळमामदी !
निन्मुहम् कण्णुळवाहिल नी इंगे नोक्किप्पो।"

अपने पुत्र की क्रीड़ा विलास को दूसरे देखें और प्रशंसा करें यह कौन माता नहीं चाहेगी ? और अब तो बाल कन्हैया अपने नन्हें हाथ ऊपर उठा कर स्वयं चन्द्र को बुला रहा है। अपने साथ खेलने को बुला रहा है। यशोदा अनुरोध करती है : "तुम मेघों में न छिपो, चाँद ! मंजिल् मरैयादे मामदी ! मेरे लाल के हाथ दुखने न लग जाएँ, तुम दौड़ आओ चन्दा !—कैत्तलम् नोवामे अम्बुली ! कडिदोडि वा !"

किन्तु चन्द्र क्यों सुनने लगा ? यशोदा उसे धमकाती है, सावधान करती है :

"बालकनेन्रु परिभवम् शेम्मेल—
पराडोरुनाळ आलिनिलै वळर्न्द शिरुक्कनिवन्
मेलेलप्पयुन्दु पिडित्तुक्कोद्ळुम् वेहुळुमेल
मालै मदियादे मामदी ! महिल्न्दोडि वा !"

"इसे साधारण बालक समझ कर इसका अपमान करते हो, चन्द्र ? पुरातनकाल से वट-पत्र पर शाश्वत रूप से शोभित यह बालक, तुम पर बिगड़ उठे तो फिर तुम्हारी खैर नहीं। छुन-छुनकर आ जाओ !"

आलवार का भक्त रूप, यशोदा में यहाँ एक बार चमक कर जाता है। पर इसमें बाधा नहीं पड़ती।

जसुमति मन अभिलाष करै—वाली भावना भी पेरियालवार में है। घुटने के बल चले आते श्याम को वे डोलते देखना चाहते हैं। वे विनती करते हैं मेरे लिए एक बार डोल डोल कर आओ, श्याम ! भाल पर तुम्हारे काले केश डोलें लाल मणि डोले, मरकत मणि आभूषण डोलें, एक बार डोल डोल कर आओ लाल ! गोदी में आकर बैठे कृष्ण से फिर माता कहती है—करताल बजाओ, कान्ह ! पर बालक कितना भी रिझाए, माता को तृप्ति नहीं होती। वह तो अब और आगे देखने लगती है—जब उस का बालक लड़खड़ाकर पृथ्वी पर

पैर धरेगा और चल पड़ेगा एक मदमत्त गजराज की भाँति झूम-झूम कर हारावलियों और आभूषणों को झनझनाते हुए मुख-चन्द्र से लार-सुधा टपकाते, मोती-सी दँतुलियाँ दिखाते हुए । यही नहीं, वह दौड़ पड़े, और चुपके-चुपके पीछे से आकर, गलबहियाँ डाल दे, आंखें मूँद दे—पेरियालवार की कामना किस पुत्रवती माता की नहीं है ?

बालकृष्ण अपनी घुँघराली-अलक-राशि से मुँह ढाँप कर माता को डराता है । आँखें सिकोड़ कर, भौंहें तान, मुँह पर दोनों हाथों की उँगुलियाँ फैलाए, यशोदा को डर दिखाते हैं, कृष्ण ! और उस बालमूर्ति की कल्पना कर पेरियालवार आत्म-विभोर हो उठते हैं ।

मातृ-कुल मात्र को मिलनेवाले इस अनिर्वचनीय आनन्द का, अपनी कोख के शिशु को अपना स्तन्य पान कराने पर होनेवाली माता की उस विचित्र अनुभूति का भी आलवार ने चित्रण किया है ।

यशोदा कृष्ण को दुग्ध-पान करने के लिए बुला रही है :

"चाणूर-मल्ल हर ! मेरे प्राण धर ! प्रभु ! मेरी गोद में आ जाओ, मेरे एक स्तन को मुख में लेकर, दूसरे स्तन को अपने हाथ से मरोड़ते हुए अदल-बदल कर बारी बारी से स्तन-पान किये जाओ जिससे कि तुम्हारे मुँह में भर-भर कर दूध तुम्हारे सीने में फैल जाए !

इरुमलैपोलेदिन्दं मल्लर इरुवरङ्गम् एरिशेभ्दाय्-उन्
तिरुमलिन्दु तिल्लुमार्वु तेक्कबन्दु एन् अल्डुल एरि
ओरु मुलैयै वाय् मडुत्तु ओरु मुलैयै नेरुडिकोरडु
इरुमुलैयुम् मुरै मुरैयाय् एाङ्ग एाज इरुन्दुणाये ।"

कैसा स्वाभाविक और यथार्थ चित्र है ! पेरियालवार की इस उक्ति को पढ़ते ही हठात् सूर की यह पंक्ति मन में गूँज जाती है :

"अंचरा तर लै ढाँकि सूर प्रभु जननी दूध पियावति !" मानो सूर ने आलवार का खुला अंचल ढँक दिया हो ! मानो आलवार स्वयं जननी थे और सूर द्रष्टा !

हठी, नटखट, बाल-कान्ह को तरह-तरह के लालच दिखा कर नहलाना, केश संवारना, फूल लगाना, पुचकारना दुलारना आलवार ने वात्सल्य भाव-प्रदर्शन के लिए बड़े ही सरस स्वाभाविक अनुभाव चुने हैं । माता के मन में अपने पुत्र को आभूषण पहनाने की बड़ी है । पर क्रीड़ा-रत कृष्ण पकड़ में कैसे आते वह भी उसके कान छिदाने के लिए बुलाया जा रहा है— मुँह फुला कर कहता है : "मुझे पास बुला कर, हाथ पकड़ कर कान छिदा दो, तुम्हें क्या, दर्द मु होगा ।" यशोदा लालच दिखाती हैं : "नहीं तो, तुम्हारे लिए तुम्हारी ही पसन्द के जामुन ला रखे आ जाओ मेरे बेटे ।"

"वावेन्रु शोलिल एन् कैयैप्पिडित्तु, वलियवे
कादिर्कडिप्पै नोवत्तरिक्किल्नुतर्किकुगु इलुक्कुट्टेन
कादुहळ नोन्दिडुङ्गिल्लेन्
नावर्फलम् कोराडु वैत्तेन् इवै काणाम् नंबी!
......दामोदरा इङ्गे वाराय् !

पर कृष्ण टस से मस नहीं होते । अपनी माँ नहीं जानते ? माखनचोरी की सुनी सुनाई बातों विश्वास कर ऊखल के साथ बाँधनेवाली, उस माँ पकड़ में आ कर अभी कान छिदा कर बँध जाएँ नहीं, कभी नहीं—

यशोदा हंस पड़ती है । कहती है : "देखो, कान्ह ! ये, सामने खड़ी गोपियाँ और कुछ न सुना चलो कान में पहन लो ।"

माता और पुत्र के बीच इस प्रकार का भोला विवाद चलता है आलवार यशोदा में लीन और उसके रस में विलीन ।

माखन-चोरी और तत्संबंधी कृष्ण की शरारतें तक पहुँचती हैं । एक गोपी कहती है—"सुनो, अपने बच्चे की करतूत देखो । मेरी बेटी के हाथ से ज़बर्दस्ती निकाल कर उन्हें, जामुन बेचनेवाली एक गोपी के हाथ देकर उससे जामुन माँग रहा था, भला मानस ! पर चोर को मैंने उसी वक़्त देख लिया मुझे देखते ही अपनी सफ़ाई क्या देता है— लड़की की चूड़ियाँ मैंने तो नहीं चुराईं ! नहीं चुराईं जामुनवाली ।"

सहृदय किसी को भी विमुग्ध-विमूढ़ कर देने यह बाल-स्वभाव का चित्र माता आलवार के हृदय- पर अंकित है और वे सारे उलाहने सुन कर कृष्ण दण्ड देने के उद्देश्य से उन्हें पास बुलाती है । बाहुओं आए कृष्ण को लेकर माता दंड देना भूल

है—विचारती है—आखिर यह जादू कहाँ से सीख आया ? 'करणाविरान् कट्रू कलवि ताने ?'

पुत्र को घर से बाहर, अपने से अलग कर, माता को जैसी जैसी चिन्ताएँ होने लगती हैं, आशङ्काएँ कल्पनाएँ बढ़ने लगती हैं—सबका आलवार को, अनुभव है। माता यशोदा, इस बात को भूल कर, कि अभी-अभी कौए से कह कर बालकृष्ण को गाय चराने के लिए उसने एक छड़ी मँगवाई थी, फिर बैठे-बैठे चिन्ता करने लगती है :

"मैं भी कैसी निर्दयी हूँ कि छोटे-से अपने लाल को बछड़ों के पीछे भेज दिया। हाथ में न छाता दिया, न पैरों के लिए पनहिया। कड़ी धूप और नुकीले कंकड़ों पर, उसे जाने दिया, हाय !"

"कुडैयुम् रोरुप्पुम् कोडादे दामोदरनै नान्
उडैयुम् कडियन ऊन्रु वेम्परल्हलुडै
कडिय वेमू कानिडै कक्कालडि नोव ककरिरन् पिन्
कोडियन् एन् पिळ्ळैयै प्पोक्किनेन् एल्ले पावमे !"

पर माता की चिन्ताओं का शायद कोई अन्त ही नहीं। तभी तो कृष्ण को गाय चराने वन भेज कर भी माता चिन्तित है और उसके सकुशल लौट आने पर भी वह चिन्ताहीन नहीं हो सकती।

अब वह कहती है : "तुम्हें वन भेजते समय, छाता और चप्पल देना भूल गई। कान्ह, तभी तो तुम्हारे अरुण-पद-कमल धूप में झुलस गए हैं और आँखें श्रान्त, लाल हो चली हैं।"

आलवार कैसा घरेलू, स्वाभाविक चित्र उपस्थित करते हैं जब यशोदा द्वारा कहलाते हैं :

"काडुहळूडु पोय् कन्रुहल मेटलु मरियोडि
कार्कोडर्पूच्चूडिवरुहिन्र दामोदरा ! कट्टुत्तूलि काण् !
उन्नुडम्बु, पेडैमयिर्चाय नप्पिन्नै मणाळा ! नीराट्टमैत्तू वैत्तेन
आडियमुदु शेयू, अप्पनुमुरिडलन् उन्नोडुडनेयुरणवान्।"

कानन के अन्दर गाय बछड़ों के पीछे दौड़-भाग कर, तुम्हारा शरीर धूलि-धूसरित हो चला है, काननकुसुम-धारी दामोदर ! मयूरी के समान छविवाले नप्पिन्नै प्रिय ? नहाने के लिए सब तैयार है। चलो, स्नान करके खा लो। तुम्हारे बाबा (नन्द) ने भी खाया नहीं, साथ ही खाएँगे।

पेरियालवार के समस्त पदों में यह बात दर्शनीय है कि जहाँ वे भगवान् के हज़ारों नाम गिनाते हैं, वहीं किसी प्रकार अपनी अपेक्षित बालकृष्ण की मूर्त्ति को और बांछित लीला विधान की सरस स्वाभाविकता को नष्ट नहीं होने देते। ऊपर के पद में दामोदर और नप्पिन्नै नायक के सम्बोधनों से भावाभिव्यक्ति का कोई सम्बन्ध मालूम नहीं होता। उनके बिना भी पद भाव की दृष्टि से पूर्ण और सरस हैं। फिर भी पेरियालवार की वात्सल्य भक्ति की यह विशेषता है कि उसमें बालकृष्ण के प्रति आकर्षण होने पर भी, उसके स्नेह और ममता भरे उद्गारों में अन्ततोगत्वा एक विचित्र गाम्भीर्य और भय का अनुभव है। तभी तो यशोदा बन कर आलवार कहते हैं : "प्रभु, मैंने तुम्हें पहचान लिया है, अब मैं स्तन्य देने से डरती हूँ।"

अत्ता ! उत्तै अरिन्दुक्कोणडेन् उनक्कंजुवन् अम्मम् तरवे।

मुरलीधर गोपाल की वेणु-माधुरी का वर्णन पेरियालवार ने विशेष किया है। 'श्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका' चकित लोक नारी के पेरियालवार ने अद्वितीय अमर चित्र खींचे हैं, लेकिन वह बाल-माधुरी से भिन्न है, पिळ्ळै त्तमिल के अन्तर्गत नहीं, इसलिए यहाँ पर अप्रासंगिक है।

पेरियालवार के अन्यान्य बालकृष्ण के सजीव चित्रण के साथ हमारे सूर के वर्णनों को भी मिला कर देखने की बलवती इच्छा और कुतूहल जाग्रत होता है। विभिन्न काव्यों की अनुभूति और आस्वादन में मन की यह प्रतिक्रिया जहाँ स्वाभाविक है वहाँ यह भी विचारणीय है कि अपने-अपने साहित्य के क्षेत्र में अप्रतिभ और भक्ति के क्षेत्र में अनोखे इन दोनों भक्तवरों की वाणी, नाप जोख से अपनी-अपनी मधुरिमा तो न खो बैठेगी ?

जे. ४१५, विनय नगर,
नई दिल्ली

—आनंदवल्लि परमेश्वरन्

प्रत्येक मनुष्य एक पुस्तक है यदि आपको उसको पढ़ने के ढंग का ज्ञान हो।

—रीडर्स डाइजेस्ट

सम्बन्ध

धन-सम्पत्ति के नाम पर जोखू के पास फूस की एक झोंपड़ी थी। बाप के हाथ का लगाया हुआ महुआ का एक पेड़ था और एक गाय थी। इसके सिवा उसके पास अपना कहने के लिए कुछ नहीं था। अपने घर में अकेला वही बच गया था।

वैसे अपने बचपन में उसने भरा-पूरा परिवार देखा था—माँ, बाप, भाई, बहन, भौजाइयाँ और उनके बच्चे; किन्तु हैज़े की बीमारी में उसका सारा परिवार साफ़ हो गया था। वह बीमारी ही ऐसी थी जिसमें गाँव के गाँव उजाड़ हो गए थे। दवा-दारू का बन्दोबस्त कहीं कुछ हो नहीं पाया था। गाँववालों के पास अपने पैसे से ख़रीदकर दवा कराने की ताक़त न थी। सरकारी मदद के रूप में, गाँव के कुओं में पोटास डाल दी गई थी ताकि हैज़े के कीड़े पानी में नष्ट हो जाएँ किन्तु उस लाल पानी से हैज़े का प्रकोप रुका नहीं, बढ़ता ही गया था। जब पटवारी गाँव के कुओं में लाल-दवा डालने के लिए आया था, गाँव की बूढ़ी औरतों ने तभी अपने कलेजे पर हाथ रख लिया था कि अब गाँव का कल्याण नहीं है। उन लोगों ने स्पष्ट एलान कर दिया था कि हैज़ा-प्लेग कोई रोग नहीं है कि दवा-दारू की जाए। यह तो माता माई का प्रकोप है। कोई चूक हो गई है जिससे माता माई की फ़ौज ने इस गाँव पर हमला कर दिया है। अब गाँव का कल्याण तो पूजा-पाठ देवी की मिन्नत-चिरौरी से ही हो सकता है। इस तरह से सरकारी लाल-दवा कुएँ में डाल कर तो माता माई को और भी नाराज़ करना है किन्तु पटवारी को सरकारी हुकुम देखना था, उसे अपनी नौकरी की बाज़ी पर माता माई को ख़ुश नहीं करना था। वह दवा डाल कर चला गया किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। जब कुएँ में लाल-दवा डाली गई थी उसके पहले ही आधे आदमी तो साफ़ हो चुके थे। बीमारी इस भयंकर रूप से बढ़ चुकी थी कि उसका इलाज एक पैकेट पोटास से नहीं हो सकता था। गाँव के आधे से ज़्यादा आदमी ख़तम हो गए। गाँव की जो बूढ़ियाँ बच गईं थीं, उन्होंने इस भयंकर संहार का एकमात्र कारण माता माई के सामने सरकारी हस्तक्षेप करना ही बतलाया।

इसी हैज़े के भयंकर प्रकोप में जोखू का सारा परिवार ख़तम हो गया था। अकेला वही बच रहा था। उस समय की हलकी-हलकी स्मृति उसे अब भी है। मुश्किल से तीन चार वर्ष का रहा होगा। पहले उसका बड़ा भाई शिकार हुआ था। जोखू को अब भी याद है कि जब उसका भैया नहीं दिखलाई दिया तब रो-रो कर वह अपने भैया को बुलाने के लिए माँ से ज़िद करने लगता था और उसकी माँ बस रोती रहती थी। अपनी माँ के गालों पर ढलके हुए आँसुओं की उसे अब भी याद बनी है। फिर उसे यह भी याद आता है कि एक दिन उसकी माँ चुपचाप आँगन में लेटी है। उसका बापू सिर झुकाए बैठा है। उसके पड़ोस का चाचा मूँज की रस्सी बट रहा है और कोई दूसरा हरे बांस को काट कर उसे रस्सी से सीढ़ी-नुमा बना कर बाँधता जा रहा है। फिर किसी ने उसकी माँ के पैर से गिलट का कड़ा निकाल कर ज़मीन पर फेंक दिया था और जोखू उसे ले कर खेलने लगा था। बस इतना ही उसे याद है। उसके बाद की घटना का रूप दूसरे ही रूप में उसे स्मरण है।

किस तरह से वह बढ़ा, किसने उसे पाला-पोसा इसकी उसे कुछ विशेष याद नहीं है। बस उसे इतना याद है कि जब से वह आठ दस वर्ष का हुआ है तभी से अपनी गुज़र-बसर वह ख़ुद करता रहा है। घास काट कर, दूसरों की बकरियाँ, गाय-भैंस चरा कर वह अपनी भूख को शान्त कर लेता रहा है। जब कुछ और बड़ा हो गया तब थोड़ी बहुत बन्नी-मजूरी कर के, पेट भरने भर को वह कमा लेता रहा, परन्तु काम करने में उसका मन नहीं लगता था, क़ाहिल-सा पड़ा रहता था। अपने बाप के ज़माने का उसके पास घर था जो गिरते-गिरते खण्डहर हो गया था और अब जिस पर केवल फूस पड़ी हुई थी। अकेले जोखू के रहने के लिए यह काफ़ी था।

उसकी उम्र धीरे-धीरे तीस तक पहुँच गई किन्तु उसकी शादी न हो सकी। आख़िर कौन उसकी

१६५४

करता। जगह-ज़मीन उसके पास थी नहीं, घर-द्वार था नहीं और अपना पुरुषार्थ भी नहीं था। अगर वह अच्छा मेहनती मज़दूर ही रहा होता तो भी गाँव में उसका विवाह हो जाना कुछ मुश्किल नहीं था। वह जिस तबक़े का था, उसमें बहुत कम लोगों के पास घर-सम्पत्ति होती है केवल अपने तन का परिश्रम ही उनका सर्वस्व होता है। उसी के बल पर वे शादी-ब्याह करते हैं, लड़के बच्चे होते हैं और गृहस्थी की गाड़ी हँस-रोकर घसीटते चलते हैं। किन्तु जोखू एक नंबर का क़ाहिल था। पड़ा पड़ा अपने छोटे हुक्क़े पर चिलम रख कर गुड़गुड़ाया करता। बस एक गाय पाल रखी थी उसी को चराता, खिलाता-पिलाता और उसका दूध पीता। थोड़ा बहुत बेच कर रोटियाँ भर अनाज ख़रीद लाता, इसमें मुश्किल से ही उसका गुज़र होता। आख़िर देशी नस्ल की गाय कितना दूध देती; सो भी उसका खाना-पीना और सेवा सिफ़ारिश ढंग की नहीं। बहुत होता तो सुबह उठ कर जोखू एक खांची घास ले आता, या मौज में आता तो, तम्बाक़ू चढ़ा कर हुक्क़ा हाथ में ले लेता और गाय को चराने के लिए ले जाता। नहीं तो अक्सर महुए के पेड़ के तने से पीठ टिकाए वह हुक्क़ा गुड़गुड़ाता रहता। सूनी-सूनी आँखों से शून्य में जैसे कुछ ढूँढ़ता रहता और खूँटे से बँधी गाय गले में रस्सी के सहारे खूँटे के चारों ओर चक्कर लगाती ब्याँ...ब्याँ...करती रहती।

कोई भला आदमी उधर से गुज़रता तो भूखी-प्यासी गाय को इस तरह बिबियाते हुए देख कर अपने को रोक नहीं पाता था और कुछ अवहेलना के स्वर में जोखू से कहता :

"गाय को छोड़ कर ज़रा घुमा-फिरा तो लाते। बिचारी प्यासी भी मालूम हो रही है, कैसी उसकी कोख पचकी हुई है। इस जांगर को रख कर क्या करोगे? इस उमर में तुम्हारा यह हाल है। जवानी में तो लोग पहाड़ खोद कर फेंक देते हैं। एक तुम हो कि गोबर के ढेर की तरह पड़े रहते हो। और लोग भी तो हैं। उनको देखो, अकेले अपने तन की मेहनत के बल पर पूरे परिवार की परवरिश कर रहे हैं।"

जोखू पर इन बातों का कोई असर नहीं पड़ता। वह चुपचाप, महुए के तने से पीठ टिकाए निर्विकार भाव से बैठा हुक्क़ा गुड़गुड़ाया करता और खूँटे से बँधी गाय भूखी-प्यासी...ब्याँ...ब्याँ करती रहती। बहुत होता तो दूसरों की लानत-मलामत से उसमें क्षण भर के लिए जोश आता। गाय को चराने के इरादे से उठता। फिर सोचता : "एक फूँक तम्बाक़ू और पी लूँ।" और फिर ताज़ा हुक्क़ा भर कर, उसी तरह महुए के तने से पीठ सटाकर हुक्क़ा गुड़गुड़ाने लगता। समझानेवाला बड़-बड़ाता हुआ आगे बढ़ जाता—"जब इस साले से एक गाय का निर्वाह नहीं होता तब घर-गृहस्थी का क्या निर्वाह करेगा। इसी से कोई इसे पूछता नहीं।"

शादी-ब्याह की बातें सुन कर जोखू के मन में हलकी सी सुरसुरी उठती थी : "अगर वह भी शादी ब्याह कर ले तो कैसा रहे!" कल्पना की डोर उसके सामने खिंच जाती—"तो किसी से वह शादी क्यों न कर ले!"

फिर वह सोचने लगता अब इस उम्र में कुँवारी लड़की से तो उसका ब्याह होगा नहीं; किसी विधवा, या पति से छोड़ी हुई स्त्री को रख ले। ऐसा तो उसकी बिरादरी में बहुत होता है। फिर उसके मन में आता—"घर-गृहस्थी का बोझ उससे नहीं सपरेगा। मँगरू को ही देखो; छुट्टा साँड़ की तरह फिरता था, पर जब से बेटे की जोरू आई, बधिया बैठ गई। ना बाबा ना; मुझ से तो इस जंजाल में नहीं पड़ा जाएगा।"

उम्र बढ़ने के साथ-साथ जैसे जोखू का मन कमज़ोर होता जा रहा हो। पैंतीस की उम्र होते-होते उसके मन में घर बसाने की प्रबल आकांक्षा हो गई। अब वह लोगों से अक्सर शादी-ब्याह के बारे में बातें करता। जहाँ ऐसी कोई बात होती, उसमें पूरी दिलचस्पी लेता। दो एक बार उसने खोल कर कहा भी कि वह जोरू ले आ कर घर बसा लेगा। तब मज़ाक में कुछ लोग कहते—"अरे इस उम्र में शादी किसके लिए करेगा? अब तेरी शादी करने की उम्र है? ज़रा अपना मुँह तो देख!"

तब वह कुछ अनमना सा हो जाता। सोचता : "कैसा है वह कि उसकी शादी अब नहीं हो सकती।" उसकी बहुत इच्छा होती अपना मुँह शीशे में देखने की। पर देखे कहाँ, किससे शीशा माँगे। और आख़िर एक दिन नाई के यहाँ वह दाढ़ी बनवाने गया तो उसकी क़िस्मत में उसे छोटा-सा शीशा दिखलाई दिया। उसे उठा कर उसने देखा। दाढ़ी के बाल तो एक-एक अँगुल सभी के बढ़ जाते हैं पखवारा महीना दिन के पहले तो किसी

की दाढ़ी बनती नहीं। बड़े-बूढ़ों की बात दूसरी है। पर उसे आज तक नहीं मालूम हुआ था कि कब उसकी दाढ़ी के आधे बाल पक गए। काले-काले रूखे बालों के बीच में जगह-जगह बिखरे सफ़ेद बाल ऐसे लगते जैसे घास के मैदान में जगह-जगह काँस का पौधा उग आया हो। उसके सर के बाल भी खिचड़ी हो गए थे। उसे एक धक्का सा लगा। "परन्तु इस उम्र में भी तो लोग शादियाँ करते हैं, वह भी करेगा। पर कौन उससे ब्याह करेगा? खाते-कमाते घर का वह है नहीं। न कोई जगह, ज़मीन, न धन-सम्पत्ति।" उसे अपने ऊपर बड़ी ग्लानि आई। "अगर उसने इतने दिन क़ाहिली में न गुज़ारे होते तो वह भी अपने हाथ-पाँव के बल से खाता-कमाता घर ले कर बैठ गया होता। शादी-ब्याह कर लिया होता। अब तक तो बाल-बच्चे हो गए होते जो उसका हाथ बँटाते।"

उस दिन वह नाई के घर से हजामत बनवाकर आया तो जैसे उसके मन में एक संकल्प दृढ़ हो रहा था—"वह ज़रूर शादी करेगा। और अब भी क्या बीता है; पैंतीस की उम्र भी कोई उम्र है। अभी भी वह काहिली छोड़ दे तो किसी भी जवान से कम मेहनत नहीं कर सकेगा। उसका तो खानदान अपनी मेहनत के लिए गाँव में सरनाम था। उसके बाबू का लोग आज तक बखान करते है, वैसा जँगरैन पूरे गाँव में कोई नहीं था। तो उन्हीं का बेटा होकर क्या वह मेहनती नहीं हो सकता। शादी होनी क्या मुश्किल बात है। सुनते हैं उसके खानदान में किसी की शादी रुकी नहीं थी। वह भी ज़रूर शादी करेगा।"

तब से उसमें नया जीवन जैसे आ गया। गाय अब मोटी हो रही थी। उसका घर-द्वार साफ़ रहता था। मेहनत मजूरी के लिए भी वह हाथ पैर चलाने लगा था। पहले तो लोग उसे अपने यहाँ मज़दूरी पर रखने में डरते थे। क़ाहिल है, मेहनत मशक़्क़त क्या करेगा? किन्तु लोगों का यह भ्रम जल्दी ही मिट गया। जोखू के घर में अब मेहनत-मज़दूरी से जमा होकर थोड़ा अनाज-पानी भी हो गया था। गाय का दूध भी बढ़ गया था। एक और गाय भी उसने अधिया पर ले ली थी।

एक दिन गाँववालों ने देखा कि जोखू एक स्त्री ले आया है। स्त्री पड़ोस के गाँव की थी। उसके पति का इन्तकाल हुए महीना भर बीता था। स्त्री को बीस वर्ष की रही होगी। गोरा रंग, गठा हुआ शरीर, नाक-नक़्शा दुरुस्त। गाँव की औरतों ने देख कर एकमत होकर फ़ैसला किया—"कहने को तो नान्ह जात की लड़की है; पर बड़े-बड़ों के घर में भी क्या ऐसी इन्द्र की परी होगी। पर इसके लच्छण ठीक नहीं लगते हैं।"

गाँव की बूढ़ियों की दूसरी ही धारणा थी—लड़की का पौरा अच्छा नहीं है। अपने खसम को भी जवानी में खा गई। अरे कोई दूर की बात तो है नहीं। पड़ोस के गाँव की ही तो है। हम तो इसका रोंई-रोंई हाल जानती हैं। सुनते हैं इस पर कोई मरी सवार है। जिसके यहाँ जाती है उसे खा जाती है।

किन्तु गाँव के जवानों की और ही राय थी। उनके ख़याल में इस बुढ़ौती में जोखू के भाग जाग उठे। "ख़ुद तो बछिया का ताऊ-सा है पर क़िस्मत का ऐसा धनी निकला कि इस उम्र में परी मिल गई। पर देखें के यहाँ टिकेगी नहीं!"

जब से जोखू की स्त्री रूपा उसके यहाँ आई, जोखू के लिए जैसे मुँहमाँगी मुराद मिल गई। अपनी स्त्री को देखता था, और देखता ही रह जाता था। मन ही मन वह कहता: "बूढ़ी खूसटें कहती हैं कि जिसके यहाँ जाती है उसे खा जाती है। पर बेचारी का मुँह कैसा भोला-भाला है। अभी इसके मर्द को मरे थोड़े ही दिन हुए हैं तो भी इसका रंग ऐसा मालूम होता है कि आग हो आग। कैसा गोरा रंग है। क्या मुँह का पानी है, क्या आँख है, क्या नाक है और क्या सुघड़ शरीर है!" और उस समय जैसे वह मुग्ध हो जाता। चढ़ती जवानी के दिनों की याद, गीत की एक कड़ी बरबस उसके स्वर में गूँज उठती:

जइसे नवै बँसवा कै करीलिया,
वइसे गोरी नय के चल तू ना।

और जैसे उस पर एक मदहोशी छा जाती।

रूपा के आने के बाद से जोखू की क़द्र जैसे गाँव में बढ़ गई हो। पहले उसे कोई अपने यहाँ मजूरी पर रखने के लिए तैयार नहीं होता था। पर अब उसकी पूछ बढ़ गई थी। मुंशी सदासुखलाल अक्सर उधर से गुज़रते और अपनी खिचड़ी मूँछों पर हाथ फेरते, रूपा की ओर एकटक देखते, कहते: "जोखू, मुन्ना की माँ रूपा को

१६५४

बुला रही है, ज़रा भेज दे। शायद कुछ गेहूँ पिसवाना है।"

पण्डित रूपनारायण उधर से गुज़रते तो जोखू का हाल पूछे बिना चले जाना जैसे उन्हें अधर्म सा जँचता। महुए के पेड़ के पास खड़े हो जाते। पहले इधर-उधर नज़रें घुमा कर कुछ ढूँढ़ते और जब झोंपड़ी में रूपा पर उनकी नज़र पड़ जाती तब उसे सुना कर कहते—"जोखू, ज़रा खैनी बनाना। लो यह सुरती और चूना।"

कपड़े के बटुए से सुरती और चूने की डिबिया निकाल कर जोखू की ओर बढ़ा देते। जोखू अनिच्छा पूर्वक कहता: "तो बैठ जाओ महराज।"

पण्डित रूपनारायण चारपाई पर बैठ जाते। जोखू चारपाई के पास ज़मीन पर बैठा, खैनी बनाने लगता और पण्डित रूपनारायण, रूपा पर नज़र गड़ाए कहते—"जोखू, सच बात कहूँ। है तू बड़ा भागवान। मैं तो तुम्हारे ललाट को देख कर पहले ही समझ गया था कि तेरे भाग में लच्छमी बदी है और वही हुआ। सास्तर-पुरान कुछ झूठे थोड़े ही हैं। आदमी को देख कर हम तो उसकी क़िस्मत का हाल खोल कर कह सकते हैं।"

खैनी की पीक वह ज़मीन पर थूकते जाते थे और उनकी नज़र लोलुप की तरह रूपा पर गड़ी रहती। जोखू मन ही मन कुढ़ता रहता।

किन्तु गाँव के नौजवान लड़कों और रसिक जवानों के लिए जोखू की झोंपड़ी जैसे तीर्थस्थान हो गई थी। हर वक्त दो-चार वहाँ पड़े ही रहते थे। किसी को महुए के पेड़ की शीतल छाया बहुत ही भली मालूम होने लगी, तो किसी को महुए के पत्ते की दरकार पड़ गई—सेंक कर आँख पर बाँधने के लिए, या मोच खाए पैर पर बाँधने के लिए। पत्ते तोड़ कर कौड़े पर सेंक कर, वहीं बैठा-बैठा पाँव पर बाँधने लगता। किसी को घर पर आग नहीं मिली, तम्बाकू-चिलम लिए आग खोजता चला आया। और अब तम्बाकू चढ़ा कर वहीं बैठा पी रहा है। किसी को थकान मिटाने के लिए जोखू के दरवाज़े पर का चबूतरा ही जँच गया। कुछ कम उम्र के लड़कों को कौड़ी और गोली खेलने के लिए महुए की छाया से भली और कोई जगह नहीं मिली। हर वक्त वहाँ एक जमघट-सा रहने लगा। जोखू मन ही मन कुढ़ता रहता।

रूपा को आए अभी महीना भर भी नहीं बीता था। दिन भर खेत में मज़दूरी करके एक दिन जोखू लौटा तब देखा कि रूपा घर पर नहीं है। सोचा कहीं किसी के यहाँ काम-धाम करने गई होगी। पर थोड़ी ही देर में उसे मालूम हो गया कि रूपा तो उसके चचेरे भाई टेंगरी के घर बैठ गई। इधर कई दिनों से उसे रूपा पर कुछ शक हो रहा था—टेंगरी से चुपके-चुपके बातें करते भी उसने देखा था। टेंगरी हर वक्त जोखू के महुए के पेड़ के नीचे पड़ा रहता था और जोखू को भैया-भैया कहता रहता था। रूपा से भौजी भौजी कहकर वह मज़ाक करता था और बात-बात पर हे-हे करके हँसता रहता था। कई बार जोखू ने उसे झिड़का भी था—"क्या दाँत निपोर रहे हो।" और तब टेंगरी, रूपा की ओर देख कर फिर ज़ोर से हँस पड़ता था। रूपा भी मुस्करा देती थी। जोखू और भी खीझ उठता था।

दौड़ा-दौड़ा वह टेंगरी के घर गया। दरवाज़े पर ही टेंगरी बैठा था। उसके और भी दो-चार दोस्त-मित्र वहाँ बैठे बतरस कर रहे थे। जोखू ने पूछा:

"रूपा आई है?"

टेंगरी ने कहा: "हाँ, है तो, पर अब तुम्हें उससे मतलब?"

जोखू ने गरम हो कर कहा: "मतलब कैसे नहीं। हमारी जोरू है कि नहीं।"

तब तक रूपा टेंगरी के पास बाहर निकल कर दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। और हाथ मटका कर जोखू से कहा: "अरे वाह रे जोरूवाले, ज़रा अपना मुँह तो जा कर देखो। बन्दर-सा तो मुँह है। मैं अपनी मरजी से तेरे साथ गई थी, अपनी मरजी से चली आई।"

टेंगरी के मित्र हो-हो करके हंसने लगे।

जोखू ने हो-हल्ला मचाना शुरू किया: "कोई राहजनी है कि जिसकी औरत को जो कोई चाहे अपने घर में डाल ले!"

अब की बार टेंगरी ने तड़प कर कहा: "कौन ब्याहता थी तुम्हारी! लाने के बाद तो बिरादरी को भोज-भात भी नहीं दिया था कि तुम्हारी शादी पक्की होती बस तुम्हारे यहाँ महीने भर रही है। बहुत चाहो तो महीने भर का खाना-खर्च ले सकते हो। और क्या करोगे। कोई तुम्हारी ब्याहता तो नहीं कि मुझे बएसी देनी पड़ेगी।"

जोखू सारे गाँव में दुहाई देता फिरा, पर उसकी

कहीं भी सुनवाई नहीं हुई। पर इस घटना पर सभी ने अपनी-अपनी टिप्पणी की।

गाँव के पंचों ने जोखू से साफ़-साफ़ कह दिया: "हम इस बारे में कुछ नहीं कर सकते। तुम्हारी ब्याहता तो थी नहीं। तुम भी तो दूसरे के यहाँ से लाए थे। तिस पर बिरादरी का भोज-भात भी तुमने नहीं दिया। तुम्हारा तो हुक्का-पानी कटा था। तुम जात के बाहर थे। अब हम क्या करें।"

गाँव के इज़्ज़तदार बड़े-बुजुर्गों को, जब से जोखू रूपा को अपने यहाँ लाया था, अपने अपने लड़कों के बिगड़ने का अन्देशा हो गया था। अब उन्होंने सन्तोष की सांस ली। "टेंगरी उसका निर्वाह कर लेगा। औरत थी पट्ठी, भला वह जोखुआ के ताबे की थी!"

बूढ़ियों ने अपनी तरह से इन घटनाओं को आंका। इन्हें इसमें रूपा का असली रूप सामने आया: "अरे अच्छा हुआ, जोखुआ के भाग अच्छे थे, उसको छोड़ कर चली गई। नहीं तो उसे खा जाती। अब वह टेंगरी बड़ा जोमवाला बना है। मैं कहती हूँ, यह डाइन है। अपने जवान खसम को खा गई है, टेंगरी को भी खा जाएगी।"

जवानों का फ़ैसला दूसरा ही था: "छुट्टा सांड़ की तरह खेत चर आई है, अब क्या वह इस मर्दुए जोखू के यहाँ रहती। हाँ, टेंगरी उसे संभाल लेगा।"

किन्तु दूसरा इस बात को तुरन्त काट देता: "अगर नहीं मानते तो बाज़ी बद लो, मैं कहता हूँ उसके यहाँ भी साल भर से ज़्यादा टिक जाए तो जो कहो वह हार जाऊँ। यह तो घूम-घूम कर खेत चर आई है, एक खूँटे से बँध कर नहीं रह सकती।"

पर साल बीतने की बात तो दर-किनार। इस बाज़ी को जीतने-हारने की नौबत जवानों में नहीं आई। साल भी पूरा नहीं हुआ था कि टेंगरी खेत में मेड़ बाँध रहा था और उसी समय उस पर बिजली गिर पड़ी। जहाँ का तहाँ वह ढेर हो गया।

गाँव में पहले भी कई मौतें बिजली गिरने से हो चुकी थीं, किन्तु इस घटना से एक आतंक फैल गया। गाँव की बूढ़ियों ने चिल्ला कर एलान करना शुरू किया कि बिजली तो एक बहाना है। यह रूपा औरत नहीं डाइन है, डाइन। हमने तो पहले ही कहा था कि जिसके यहाँ यह जाएगी, उसे खा जाएगी।

फिर गाँव में इसके कुछ प्रमाण भी मिल शोभा ओझा ने अपनी आँखों देखा था—"आधी के समय गाँव में एक सवारी आई थी, वह गाँव पर हुई थी। उसके सर के बाल मुड़े हुए थे। सर के आँखें अंगारे की तरह चमक रही थीं। वह और नहीं था, मरी थी। किसी डाइन के बुलाने पर ही गाँव में प्रवेश करती है। पहले ऐसा कभी नहीं जब से रूपा गाँव में आई है तभी से मरी की सवारी गाँव में आ रही है।"

किसी बुढ़िया ने भी आधी रात को रूपा के से तरह-तरह की आवाज़ें सुनी थीं। उसको यह विश्वास था कि कम से कम आदमी या आदमज़ाद वे आवाज़ें तो नहीं थीं।

रूपा अब अकेली थी। रूपा के ले आने टेंगरी के घरवालों ने उसे अलग कर दिया था अब जब रूपा ने उसके जवान बेटे को खा लिया तब उस डाइन को कैसे अपने यहाँ रखते।

गाँव के नौजवानों में रूपा के रूप की अब चर्चा थी। मगर टेंगरी की मौत के बाद उसे रखने किसी की हिम्मत नहीं हुई। 'कहीं उसे भी न खा जा

टेंगरी की मौत का समाचार सुन कर जोखू ऐसा लगा जैसे उसके रास्ते का काँटा दूर हो गया अभी तक उसके मन में रूपा की चाह मिटी नहीं और उसी रूपा को उससे छीन कर टेंगरी जोखू छाती पर मूँग दल रहा था। किन्तु टेंगरी की मौत जोखू के मन की आशा-लता पुनः पल्लवित हो उठी उसमें पुनः एक नवजीवन का संचार हुआ। अपनी त्तित झोंपड़ी को झाड़-बुहार कर उसने साफ़ किया। नाई के यहाँ जा कर अपनी दाढ़ी बनवा अपने कपड़ों को पीली मिट्टी में सान कर धोया। ऐसा लगा जैसे उसमें एक उल्लास भर गया हो। उसे बात की पूरी आशा बँध गई कि अब फिर रूपा उस हो जाएगी। मन के इसी भाव को ले कर वह कई बार उधर से गुज़रा भी।

पर गाँववालों और जोखू को ज्यादा दिन है में नहीं रहना पड़ा। पड़ोस के गाँव का, उसी की का झेंगुर उसे अपने यहाँ ले गया। गाँव की बूढ़ियों ने सुना तो जिस जिसने उसे देखा था, छाती हाथ रख लिया—"जवानी का जोश है। डाइन

गया। पर यह उसे भी क्या छोड़ेगी ! इसे तो आदमी का लोहू पीने का चस्का लग गया है ।"

गाँव की बूढ़ियों ने बड़े सब्र से इन्तज़ार करना शुरू किया—"पड़ोस के गाँव के झेंगुर के मरने की ख़बर अब आती है और तब आती है ।" पर ख़बर नहीं आई। जब कभी उस गाँव से झेंगुर गुज़रता तो उसकी ओर बूढ़ियाँ स्नेह और करुणा की नज़रों से देखतीं जैसे उसके बलिदान का दिन तय हो गया हो। कोई-कोई कह भी बैठती—"ऐसे जवान को भी खा जाएगी वह डाइन, भला उसे किस का मोह है ? उसे तो सुन्दर जवानों का ही ख़ून मरी को पिलाने के लिए चाहिए ।"

इस बीच में इन्तज़ार करते-करते कुछ बूढ़ियों का देहान्त हो गया। पर एक दिन गाँव में समाचार आया—"पड़ोस के गाँव का झेंगुर मर गया ।"

रूपा को दो वर्षों तक वह अपने घर में रख पाया था और अब उसकी भी मृत्यु हो गई थी। अब रूपा को रखने के लिए कोई तैयार नहीं होता था। सब लोगों के मन में आशंका समा गई थी। नौजवानों का मन अब भी ललचाता, पर किसे अपनी जान भारी थी। उनके मन में रूपा के डाइन होने में कोई सन्देह नहीं रह गया था—"तीन तीन जवानों को खा गई सो भी एक से एक बढ़ कर होलकर मर्द थे वे ।"

किन्तु एक दिन गाँववालों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। लोगों ने देखा कि जोखू रूपा को लिए चला आ रहा है। पहले तो लोगों ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा, जैसे कोई अनहोनी घटना हो। लोगों को यह विश्वास हो गया कि अब इसकी भी मौत तय है। कुछ लोगों ने ताना मारा: "एक बार छोड़ कर चली गई तो क्या अब टिकेगी ।"

पर जोखू ने कुछ विशेष जवाब नहीं दिया। हर एक को उसने नपे-तुले शब्दों में जवाब दिया: "हमार इससे पुराना सम्बन्ध रह चुका है, तो क्या अब अपने रहते हम इसे भूखों मरने देंगे ?"

संकेतलिपि विद्यालय,
३५, मछुआ बाज़ार स्ट्रीट,
कलकत्ता ७

—हर्षनाथ श्रीवास्तव

जेल का जीवन

मेरे पास जेल के विषय में हज़ारों पत्र आए हैं। इनमें से बहुतों ने अपना पर्याप्त समय जेल में व्यतीत किया है। इन पत्रों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि जेल मनुष्य के अवमान की चरम सीमा है।

एक क़ैदी जिसे आठ वर्ष जेल की सज़ा दी गई थी, अपने जेल के जीवन के विषय में लिखता है :

"मैं न सो सकता हूँ, न पढ़ सकता हूँ और न विश्राम कर सकता हूँ हे ! क्राइस्ट !"

दूसरा क़ैदी लिखता है :

"परमात्मा के लिए, अपने लिए और हम सब के लिए अपने बन्धुत्व के हाथ को बढ़ाइए और मुझे इस नरक से बाहर निकाल लीजिए।"

तीसरा क़ैदी लिखता है :

"मैं अपने बड़े से बड़े और बुरे से बुरे शत्रु को भी जेल की सज़ा नहीं दूँगा।...यह स्थान मनुष्यों को घृणित और विवेकहीन बना देता है।..."

—जार्ज डेरिड्कसन

—फ्रेडरिक थौमस

नीलांजन घन आए

(चिड़ियों की बोली—हवा का झोंका)

नारी स्वर १ : सवेरा हुआ। देखा कितना सुहावना मुखड़ा है! सुनहले बालों में ताज़े गुलाब-सा लाल लाल मुखड़ा!

नारी स्वर २ : यही तो थोड़ी देर बाद ज़हरीली धूप का हलाहल उगलता है। रहने दे इसकी सुन्दरता! अभी तारीफ़ के आसमान में उड़ रही है, देख, कहीं लू-लग कर धरती पर न गिर पड़े।

नारी स्वर १ : धत् पगली! अब लू का नाम लेती है? देखती नहीं सूरज के आसपास मृग की छाया पड़ रही है।

नारी स्वर २ : मृग की छाया?

नारी स्वर १ : अरी...वह जो हलकी चादर जैसी धुँधली-सी लकीर दीख रही है—मानसून की पहली लहर है। और उसकी छाँव में वह काला पक्षी देखा—

नारी स्वर २ : भई, वह तो चील है।

नारी स्वर १ : खूब!

नारी स्वर २ : तो कौआ होगा या कबूतर होगा काले रंग का!

नारी स्वर १ : कभी चातक का नाम सुना है?

नारी स्वर २ : हाँ, कविताओं में एकाध बार। और आज दूसरी बार तुम्हारे मुख से!

नारी स्वर १ : बदली के नीचे पंखों की छाया बना कर वह चातकी उड़ रही है। दो-चार बूँदों से उसकी प्यास भले ही न मिटे, स्नेह का स्वाभिमान जी जाता है। और उसी पर जी जाती है चातकी! ग्रीष्म के अन्त में ज्वाला में जलती हुई पृथ्वी पर मृग की वर्षा की साधारण फुहार जीवन की आशा लेकर बरसती है।

नारी स्वर २ : चातकी अब ठीक हमारे सिर पर उड़ रही है। कितनी मधुर पुकार है उसकी!

नारी स्वर १ : यह उसके हृदय की प्रसन्नता का संगीत है—क्योंकि उसके प्रियतम नीलांजन मेघ घिरनेवाले हैं—(हवा का सरसराता हुआ तेज़ झोंका और बादलों की घुमड़)

(गीत के स्वर उठते हैं)

चातकी का गीत :

आए री घिर बादर नीर भरे!
हमरी इन अँखियन में भरने अंजन बूँद धरे
आए री घिर बादर नीर भरे!
उड़ उड़ हारी हूँ दिन-रैना
पिया गवन की तपन धरे
आए री घिर बादर नीर भरे!
सूख गई मन की हरियाली
जिन नेही की हूक धरे
आए री सखि बादर नीर भरे!
आग लगाते हैं तन मन में
नीलांजन घन रूप भरे
आए री अब बादर नीर भरे!
कसक लिए चाहों की बिजली
उर में फिर फिर दमक भरे
आए री घिर बादर नीर भरे!

(गीत समाप्त होता है।)

पुरुष १ : कौन गा रहा था?

पुरुष २ : कोई तो नहीं।

पुरुष १ : कोई कैसे नहीं? अभी-अभी कानों में कहीं से मीठी-मीठी सुरीली झँकार आ रही थी।

पुरुष २ : ओह! वह!!

पुरुष १ : क्या! था वह?

पुरुष २ : तुमने अभी कहा न......मीठी-मीठी सुरीली झंकार!

पुरुष १ : मैंने कहा नहीं—कह गया!

पुरुष २ : वही स्वाभाविक था। ज्यों का त्यों! वह सच था। वर्षा के आगमन का संवाद देनेवाली चातकी का सुखद स्वर!

पुरुष १ : वर्षा के?

पुरुष २ : हाँ भाई!

पुरुष १ : वर्षा आ रही है?

पुरुष २ : हाँ भाई! वर्षा आ रही है! समन्द का पसीना ले कर बदली उमड़ रही है! सोंधी ह

१९५४

चलेगी—हरियाली फैलेगी। नदी नाले भरेंगे ! कुओं में नए झरने फूटेंगे।

पुरुष १ : (मारे खुशी के) मेरा धान दस गुना होगा। मैंने खेतों में धान बिछा दिया है। (पत्नी को हाँक लगाता है) अरी ओ—!!

नारी स्वर १ : (दूर से हाँक को प्रतिस्वर देती है)

पुरुष १ : (आवाज़ लगा कर) अरे सुनो...!!

पुरुष २ : मैंने चार हल चलाने का इन्तज़ाम कर लिया है।

पुरुष १ : चार ?

पुरुष २ : हाँ ! कपास चारों खेतों में बो दूँगा।

पुरुष १ : खाओगे क्या ?

पुरुष २ : दो खेतों की कपास बेच कर तुम से धान ले लूँगा।

नारी स्वर १ : (आकर) क्या कह रहे थे ?

पुरुष १ : बरसात अच्छी होनेवाली है।

नारी स्वर १ : यह तो मेरी सहेली अभी अभी कह रही थी।

पुरुष २ : उसको कैसे मालूम ?

नारी स्वर १ : तुमको कैसे मालूम ?

पुरुष १ : अभी अभी वह काले पक्षियों का समूह गा उठा था।

नारी २ : हाँ ! वही गा उठा था कि बादल घिर गए हैं।

समूह गान

गा उठी अभी अधीर चातकी !
झूम झूम घन घिरे
आसमान में तिरे
लो हवा मचल पड़ी प्रभात की !
गा उठी अभी अधीर चातकी !
यह हरा भरा अनूप
सृष्टि का नवीन रूप
खिल गई कली सुरंग सात की !
गा उठी अभी अधीर चातकी !
श्याम घटा घिर गई
काजल सी फिर गई
बादल है, छाँह नहीं रात की !
गा उठी अभी अधीर चातकी !

[गीत समाप्ति के साथ ही बादलों की ज़ोरदार घुमड़, बिजलियों की कड़क, तेज़ सनसनाती हवा का झोंका और वर्षा की तेज़ फुहार]

(परदा गिरता है।)

[स्त्री-पुरुषों का सम्मिलित शोर गुल, बैलों के गले की घंटियाँ]

पुरुष २ : क्यों भाई कैसी रही कल की बरसात ?

पुरुष १ : क्या कहने हैं ! खूब खुल कर बरसा भाई !

नारी १ : सबेरे से आसार ही कुछ ऐसे थे।

नारी २ : मैं सोच रही थी आज भी तपेगा। लेकिन एकाएक हवा चली और बादल घिर गए।

पुरुष १ : अब तो मेरा धान अच्छा रहेगा।

पुरुष २ : दो पानी और चाहिएँ।

नारी २ : अभी दो रोज़ और नहीं खुलता आसमान !

पुरुष २ : न खुले ज़रा ठंडी पड़ेगी ज़मीन।

नारी १ : क्या आग तपती थी—बाप रे—बाप !

पुरुष १ : सुना है भैया, इस साल बरसात भी खूब जमनेवाली है।

नारी २ : जमने दो ! नदी-नालों में बाढ़ न आए तो ज़मीन क्या फलेगी ?

उद्‌घोषक : वर्षा के आरंभ में जब मानसून की पहली झड़ लगती है, भारत के गाँवों में, किसानों के समूह में, ऐसी आशा भरी चर्चा सुनने को मिल सकती है। जैसे ही मृग नक्षत्र के चौदह दिन बीते और आर्द्रा की दिन-रात एक करनेवाली झड़ी लगी कि किसान स्त्री-पुरुष बूढ़े-बच्चे अपने कामों में लग गए। काले बादलों का, सात समुन्दरों की तपन का पसीना किसानों-मज़दूरों की कड़ी मेहनत के पसीने में मिल कर एक होता है। तभी खेत फलते हैं—खलिहान जगमगाते हैं। मोती की लड़ियों से—धान की बालों से ! ज्वार के भुट्टों से !! इस सामूहिक जीवन के साथ ही व्यक्तिगत जीवन का एकांगी-पक्ष भी है। जहाँ वर्षा के कजरारे बादलों ने बूँदों में मिलता-जुलता गीतों भरा रुदन दिया है।

(परदा गिरता है।)

नारी : प्रिय तुम न रुके
घिर गई निशा
छा गया तिमिर !

पुरुष : प्रिय तुम न मिलीं
छा गई दिशा
घन घिरा तिमिर !
नारी : तेरे कारण मेरे मन में
बिजली ज्वाल जरी !
पुरुष : तेरे कारण मन में मेरे
नित बरसात भरी !!
नारी : तुम ना आए जल गई दुनिया
सुख की बेल हरी !
पुरुष : तुमने अपने पाश न तोड़े
मेरी स्वर्ग परी !!
नारी : प्रिय तुम न रुके
दोनों : घिर गई निशा
छा गया तिमिर !
पुरुष : प्रिय तुम न मिलीं
दोनों : छा गई दिशा
घन घिरा तिमिर !
नारी : मेरी बरसाती अँखियों में
पावस घिर आया !
पुरुष : बिजली की आँखों में तेरी
अंजन घन भाया !!
नारी : मैं गीत जलन का बनी मधुर
रिमझिम ने गाया !
पुरुष : लो पीकर आग जलन की मैं
सतरंग मुसकाया !!
नारी : प्रिय तुम न रुके
दोनों : घिर गई निशा
छा गया तिमिर !
पुरुष : प्रिय तुम न मिलीं
दोनों : छा गई दिशा
घन घिरा तिमिर !

इतवारी,
नागपुर २

उद्घोषक : यही मध्यरात्रि की काली दुपहरी। शोभित, आषाढ़ मास कवियों को प्रेरणा देता रहा है चिन्तन के नवीन बीज बोने के लिए कल्पना की ऊँ उड़ान भरने के लिए। वर्षाहीन बरसाती रात में भी बदली के बीच एकाध सितारा जगमगाता दीख प है—जैसे पहाड़ी गाँव के डाक बंगले का दीपक! प्रव के उस अकेले तिनके की तरह कवि भी एकाकी टि टिमाता रहता है :

निलय में ज्योतिखण्ड जलते।

विह्वल-सागर की साँसों के
लहरित नभ-चुंबित मेघ-शिखर,
किस व्योमवासिनी को पाने
सिर पर ले बैठे हैं अम्बर ?
रोष भरे नयनों की चिनगी
अम्बर के तारे बलते!
निलय में ज्योतिखण्ड जलते॥

प्रेयसि का असह वियोग कठिन
उठता चिंघाड़ स्याह-जलधर,
वेदना-व्यथित मस्तक अपना
वह पटक चूर्ण करता गिरि पर
जो जीवन सुख से निर्वासित
दुःख तिमिर गुफा में जलते!
निलय में ज्योतिखण्ड जलते॥

तब कन-कन में बिखरा करती
संचित स्मृति-सी बहु अश्रुमाल,
आषाढ़ मास उच्छ्वसित हुआ
रे यही जलद का रुदन काल
बादल के आँसू बीज बने
धरती के तृण-तरु बन पलते!
निलय में ज्योतिखण्ड जलते॥

—अनिल कुमा

मनुष्य के मन में उचितत्व का विचार वर्तमान है। वह प्रकृति के समतुलन में, हमारी प्रणाली की विशेषताओं में, समुद्रों के तल में और शक्तियों की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं में अपने आपको अभिव्यक्त करता है।

—एमर्सन

शिमला से एक पत्र

शिमला
२५।५।१९५४

प्रियवर,

जीवन में पहली बार ही मुझे शिमले के दर्शन करने का अवसर मिला है। इसके पूर्व बन्धुवर श्रीराम जी शर्मा के साथ एक दिन के लिए मसूरी भी गया था। गर्मियों के मौसम में किसी पहाड़ी स्थल पर रहने की लालसा न जाने कितने वर्षों से मेरे मन में चली आ रही है। वह कब पूरी होगी, कह नहीं सकता।

मैं इस बात को मानता हूँ कि जब हमारे सहस्रों ही लेखक और पत्रकार बन्धु आगरे, झाँसी, कानपुर और प्रयाग इत्यादि में तपस्या कर रहे हों शिमला, नैनीताल, मसूरी या दार्जिलिंग में निवास करने की आकांक्षा रखना अपनी बुर्जुआ मनोवृत्ति को प्रकट करना है और इस अपराध को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए भी मुझे कुछ कहना है।

केवल मनोरंजन के लिए की गई यात्रा एक अलग श्रेणी की चीज़ है; स्वास्थ्य-सुधार के लिए पहाड़ों पर निवास उससे भिन्न है और साहित्य-रचना के लिए किसी ठण्डी जगह जाना इन दोनों से भिन्न है। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हम उस आनन्द को अकेले ही भोगने के विरुद्ध हैं। इस प्रसंग में हमें अमरीका के महान् कवि ह्विटमैन की कविता की एक पंक्ति याद आ रही है :

"Claimed nothing to myself which I have not carefully claimed for others on the same terms."

अर्थात् "मैंने अपने वास्ते किसी भी ऐसी चीज़ के लिए दावा नहीं किया, जिसे समान शर्तों पर सावधानी पूर्वक दूसरों के लिए भी न माँगा हो।"

सुना है कि रूस में लेखकों के लिए सुन्दर स्थलों पर निवास सुलभ बना दिया गया है। यही नहीं वहां मजदूरों के लिए भी स्वास्थ्यागारों का निर्माण हो गया है; पर अनेक लोगों को इस बात की प्रबल आशंका है कि रूस में वाणी की स्वाधीनता नहीं; लेखक और कवि वहाँ खरीदे जाते हैं और उन्हें सरकारी नीति का समर्थन करना पड़ता है इत्यादि इत्यादि। इस कथन में सत्य का अंश कितना है, हमें इस वाद विवाद में नहीं पड़ना। यदि विचारों की स्वाधीनता के मूल्य पर इन्द्र के नन्दन वन में में भी रहने का अवसर मिले तो कोई स्वाधीन चेता लेखक उसे दूर से ही नमस्कार कर देगा। फिर भी इस बात की जाँच करने की आवश्यकता है कि रूस में अथवा अन्य देशों में लेखकों को क्या-क्या सुविधाएँ प्राप्त हैं। जहाँ जो भी चीज़ उपयोगी हो वहाँ से उसे ले लेने या उसका अनुकरण करने में कोई हानि नहीं।

यद्यपि हर बात में सरकार का मुँह ताकने की नीति हम लोगों के लिए अगौरवजनक है, तथापि कुछ विषय ऐसे हैं जिनमें सरकार द्वारा थोड़ी-सी सुविधा लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है। मुझे यहाँ शिमला आए कुछ ही घंटे हुए हैं पर बार-बार एक ही विचार मेरे मन में आया है। क्या कोई सार्वजनिक संस्था ऐसा प्रबन्ध नहीं कर सकती जिससे ४) या ५) प्रतिदिन पर लेखकों तथा कवियों के लिए भोजन और निवास का प्रबन्ध कर दिया जाय?[1]

हम जानते हैं कि ऐसी व्यवस्था करना आसान नहीं। कोई साधन-सम्पन्न संस्था ही ऐसा कर सकती है। हाँ, व्यक्तिगत तौर पर दो तीन व्यक्तियों को निमन्त्रण देने में विशेष कठिनाई न होगी, यदि उन स्थानों की हिन्दी संस्थाओं को धनी-मानी सज्जनों का सहयोग प्राप्त हो जाय।

हमें उस दिन बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि साधारण स्थिति के एक साहित्यिक बन्धु (श्री वी. पी. दीक्षित काली बाड़ी, शिमला) से हमें इस प्रकार का न्यौता मिला। उस समय तो हम संकोचवश उनके अनुरोध का पालन नहीं कर सके पर उसके कुछ दिनों के बाद ही हमें

---

[1] मुझे १२) प्रतिदिन के हिसाब से खर्च करने पड़े और मैं दो दिन से अधिक न ठहर सका।

शिमला जाने का अवसर मिल गया और श्री दीक्षित जी से परिचित होने का भी! यदि उन जैसे सहृदय और विचारशील व्यक्ति हमारे साधन-सम्पन्न समाज में कुछ और भी होते तो फिर पर्वत-यात्रा का प्रश्न कुछ अंशों में हल हो ही गया होता! हाँ, एक काम हो सकता है। यदि पार्वत्य प्रदेशों की हिन्दी संस्थाएँ ग्रीष्म-ऋतु में अपने अपने अधिवेशन किया करें तो कितने ही लेखकों और कवियों को वहाँ जाने का मौक़ा मिल सकता है।

पर हम लोगों का भी कुछ कर्तव्य है। पार्वत्य प्रदेशों के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जीवन को समृद्ध बनाने का हमें भरपूर प्रयत्न करना चाहिए। यदि हम शिमला और नैनीताल, मसूरी और पंचवटी में सुदृढ़ साहित्यिक केन्द्र क़ायम कर सकें, इन स्थानों के निवासी लेखकों तथा कवियों के व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो सकें और यही नहीं जिन-जिन प्रदेशों या जनपदों में ये सुन्दर स्थल विद्यमान हैं, उनके सर्वांगीण विकास के लिए यथाशक्ति प्रयत्न कर सकें तभी हमारी पार्वत्य यात्राएँ कल्याणकारी हो सकती हैं। केवल मनोरंजन या स्वास्थ्य लाभ के लिए इन स्थलों की यात्रा करना और यहाँ के मूल निवासियों के लिए कुछ भी न करना, यह भी एक प्रकार का शोषण है और जिससे हमें बचना है।

सुना है कि यहाँ एक हिन्दी प्रचारिणी सभा है जो २७ वर्ष पुरानी है और यहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन का एक अधिवेशन भी हुआ था। पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस केन्द्र के विकास के लिए क्या किया? इस प्रश्न का उत्तर हमें अभी तक नहीं मिला। केवल दो चार साहित्यिक केन्द्रों को सुदृढ़ बनाने से काम नहीं चल सकता। काशी और प्रयाग, पटना और जबलपुर, आगरा और इन्दौर अथवा वर्धा या मदरास की संस्थाएँ हमारा उद्धार नहीं कर सकतीं। शरीर का जब चूना एक जगह इकट्ठा हो जाता है तो कूब निकल आता है। हमारी साहित्यिक संस्थाएँ तब तक हिन्दी माता के शरीर पर कूब की तरह प्रतीत होती रहेंगी, जब तक भारत के नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में छोटे-बड़े साहित्य केन्द्र स्थापित नहीं हो जाते। गौरव दान देने में है, दान लेने में नहीं। क्या कभी किसी एक भी हिन्दी भाषा भाषी साहित्यिक भिक्षु ने समस्त भारत की यात्रा इस उद्देश्य से की है कि जहाँ भी वह पहुँचे साहित्यिक केन्द्र क़ायम करे अथवा मौजूदा केन्द्रों को सुदृढ़ बनावे? क्या सुप्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता राजवाड़े की तरह लगनपूर्वक एक हिन्दी विद्वान् हिन्दी प्रदेश में घूमा है? बंगाल में कुलीन ब्राह्मण अनेकों विवाह किया करते थे और अपनी भिन्न ससुरालों में साल में एक बार चक्कर लगा करते थे। सम्मेलन के अधिकारियों ने शिमला अधिवेशन के बाद वहाँ के साहित्यिक जीवन के लिए क्या कि है? यह प्रश्न बार-बार हमारे मन में उठ रहा है।

इस समय जब कि मैं उच्च भूमि पर स्थित ग्रां होटल के सुन्दर कमरे में बैठा हुआ खिड़की से चारों ओर के मनोहर दृश्यों का निरीक्षण कर रहा हूँ और सायंकालीन चाय की प्रतीक्षा। मेरे मन में एक ही लालसा है यदि हमारे कुछ समानशील साहित्यिक बन्धु इस अवसर पर साथ होते! 'केवला घो भवति केवलादी' अकेला खाने वाला पाप खाता है।

विनीत

बनारसीदास चतुर्वेदी

पुनश्च :

२६-१-५४ अभी अभी प्रातःकाल में माल रोड का लम्बा चक्कर लगा कर लौटा हूँ। इस बार एक दूसरा विचार भी मन में आया — वह यह कि भिन्न-भिन्न जनपदों के रमणीक स्थलों की सूची बनाई जाए और साथ ही यह भी बतलाया जाए कि किस-किस ऋतु में उन स्थलों की यात्रा आनन्दप्रद हो सकती है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं के लिए कौन से भिन्न-भिन्न स्थान उपयुक्त हो सकते हैं। उदाहरणार्थ नवम्बर से लेकर फरवरी तक विन्ध्य प्रदेश की यात्रा बड़ी मनोरंजक बन सकती है। अमर कंटक का सौन्दर्य भी अपनी एक अद्भुत छटा रखता है। हिमालय यदि सुन्दर है तो उसके लक्कड़ दादा विन्ध्य का भी अपना पृथक् व्यक्तित्व है। यदि विन्ध्य-प्रदेश के निवासी शिमले नहीं जा सकते तो वे अमर कण्टक तो जा सकते हैं। और रीवाँ से अमर कण्टक की यात्रा उतनी ही मनोहर है जितनी मनोहर कालका से शिमले की यात्रा। बल्कि हम तो यहाँ तक कहेंगे कि शिमले की घाटी से अजयगढ़ की घाटी कम सुन्दर नहीं है, विस्तार में वह शायद चौथाई ही होगी। उच्चता में सही रमणीकता में विन्ध्य हिमालय का प्रतिद्वन्द्वी सही, पूरक अवश्य है।

पर न सब लोग शिमले जा सकते हैं और अमर कण्टक। अन्ततोगत्वा हम इसी परिणाम पर पहुँचे

हैं, कि जहाँ हम रह रहे हैं उसी स्थान को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करें। "मन चंगा तो कठौती में गंगा" यदि हमारे हृदय में सौन्दर्य की भावना है और सौन्दर्य सृष्टि की अभिलाषा भी, तो हमारा ग्राम भी शिमले की तरह आनन्दप्रद बन सकता है। सुप्रसिद्ध रूसी लेखक चैखव ने लिखा था : "यदि सभी व्यक्ति उस छोटे से भूखण्ड को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करें, जहाँ वे रहते हैं तो यह संसार कितना मनोहर बन जाए!" शिमले में हम कुल जमा दो दिन ही ठहर सके। पर वे दो दिन हमारे लिए काफ़ी विचारोत्तेजक रहे। एक बात और; शिमले के उस साहित्यिक रेगिस्तान में हमें दीक्षित जी का हिन्दी विद्यालय एक नखलिस्तान की तरह प्रतीत हुआ। वहाँ हमारे जो दो-तीन घण्टे व्यतीत हुए उनका हम अपने क्षुद्र जीवन की बहुमूल्य घड़ियों में शुमार करते हैं।

नई दिल्ली

—बनारसीदास चतुर्वेदी

पुनश्च :

न्यूज़ एण्ड व्यूज़ फ्रॉम सोवियट यूनियन, के ७ अगस्त सन् १९५३ के अङ्क से ज्ञात हुआ कि रूस में आठ हज़ार स्वास्थ्यागार और सांस्कृतिक केन्द्र हैं, जहाँ मज़दूरों के सिवाय अन्य व्यक्ति भी स्वास्थ्य और मनोरंजन प्राप्त करते हैं। उनमें अनेकों के साथ पुस्तकालय भी सम्बद्ध हैं। एक लोहे के कारखाने से सम्बन्ध रखने वाले सांस्कृतिक केन्द्र में १७०००० पुस्तकें हैं। व्याख्यान और सिनेमा के लिए बड़े बड़े हॉल हैं और बच्चों के लिए क्रीड़ा-घर भी। इन केन्द्रों में सबसे बड़ा केन्द्र मॉस्को में है, जहाँ वसन्त ऋतु में सहस्रों ही व्यक्ति नित्य प्रति जाया करते हैं।

ऐडीसन की कार्यतत्परता

१८७१ में अमरीका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक आविष्कारकर्त्ता थौमस एल्वा ऐडीसन ने एक १८ वर्ष की लड़की से अपना विवाह किया जो कि न्यूयार्क संडे स्कूल में अध्यापिका थी और उसकी फ़ैक्टरियों में कार्य करती थी। विवाह-संस्कार के कुछ समय पश्चात् वह अपनी विवाह-पार्टी से "कुछ मिनटों के लिए" इजाज़त लेकर अपने कार्य में शीघ्रता से आ कर जुट गया। आधी रात हो गई। उसके एक निकटतम साथी ने देखा कि वह अपने परीक्षणों में बिलकुल खोया हुआ है।

"थौम, तुम्हें अब अपने घर जाना चाहिए" उसने परामर्श दिया।

"मुझे तो अभी बहुत कार्य है" ऐडीसन ने उत्तर दिया।

"परन्तु तुम्हारा आज ही तो अभी अभी विवाह हुआ है"—साथी ने ज़रा फटकारते हुए कहा—"और तुम्हारी पत्नी हनीमून के लिए बोस्टन जाने के लिए तुम्हारा रास्ता देख रही है।"

एडीसन की एकाग्रता भंग हुई। उसने अपनी डेस्क को बन्द कर दिया और कहा—"अरे हाँ, आज तो मैंने विवाह किया था।"

—ऐडीसन की जीवनी से

कला-चर्चा

हैदराबाद के चित्रकार : **श्री के. शेषगिरि राव**

कलाकार को राज्य और सम्पन्न व्यक्तियों की सहायता हमारे देश में प्रायः प्राप्त होती रही है जिससे कला की उन्नति हुई है। श्री एल. एन. गुप्त ने स्थानीय कलाकार श्री विद्याभूषण को पहचाना; और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस कला के उदार प्रेमी की सहायता के बिना श्री विद्याभूषण की कला से जनता अनभिज्ञ रहती।

इसी भाँति श्री के. शेषगिरि राव को नवाब महदी नवाज़ जंग बहादुर ने पहचाना और उनकी सहायता की। श्री राव का कहना है कि मुझे ठीक तरह से याद नहीं किस दिन मैं नवाब साहब के पास गया था परन्तु निस्सन्देह वह दिन स्मरणीय था। नवाब साहब उन्हें अपने पुत्र की भाँति समझते थे और उनको नवाब साहब ने हैदराबाद स्कूल आफ़ आर्ट में चित्रकला की और अधिक शिक्षा प्राप्त करने को भेजा। यही कारण है कि किस प्रकार श्री राव को अपने भविष्य निर्माण का अवसर मिला जो महत्वपूर्ण था और जिसकी प्राप्ति के लिए पर्याप्त परिश्रम करने पर भी कोई साधन न मिल सका था।

नवाब साहब ने कई वर्षों तक लगातार उनकी सहायता की और वे हैदराबाद स्कूल आफ़ आर्ट से प्रथम श्रेणी में उच्च अंकों सहित सफल स्नातक हुए। श्री राव के जीवन के सम्बन्ध में यह पुरानी बात कहना उपयुक्त होगी "कला मनुष्य को जीवन पर्यन्त विद्यार्थी बना देती है।" इस प्रकार श्री राव ने हैदराबाद स्कूल आफ़ आर्ट से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी अपनी शिक्षा को जारी रखा। नवाब साहब की सहानुभूति सदैव श्री राव के साथ थी और फिर उन्होंने उनकी सहायता की। श्री राव अपनी दो वर्षीय शिक्षा के लिए कला-भवन, शान्तिनिकेतन गए। नवाब साहब ने हर प्रकार से उनकी सहायता की। इसके पश्चात् श्री राव हैदराबाद स्कूल आफ़ आर्ट चित्रकार-विभाग में अध्यापक के पद पर नियुक्त किए गए। गत वर्ष उन्हें भित्ति-चित्र एवं कला की और अधिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए वनस्
विद्यापीठ, (राजस्थान) भेजा गया।

दूसरे कलाकारों की भाँति श्री राव को हैदराब
अखिल भारतीय प्रदर्शिनी से बहुत से पुरस्कार मिले हैं
कुछ पुरस्कार उन्हें मैसूर की दशहरा प्रदर्शिनी से मिले हैं
उनकी चित्रकारी दिल्ली एवं मध्यपूर्व देशों में दिख
गई जहाँ उनके चित्रों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की ग

श्री राव ने भिन्न-भिन्न शैलियों में चित्र बनाए
लेकिन काले और श्वेत रंगों में वे अपनी कला को स्व
न्दता से मूर्त्तिमान् करते हैं। चित्रों में भी उनका
"कौए" सफ़ेद और काले रंगों में है। इसमें ग
और बल है।

श्री राव ने रंगीन चित्र भी बनाए हैं और उ
भी उन्हें सफलता प्राप्त हुई है जिसे कि उनके
"गुल मोहर के वृक्ष के नीचे" को देखने से ज्ञात ह
है। इस चित्र में एक स्त्री का चित्र अंकित किया ग
जो कि अपने ख़ाली समय में वृक्ष के नीचे बैठी हुई है
इस चित्र में बिलकुल भारतीय वातावरण है जि
हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। रेशम पर उनका
एक और चित्र है "रायगिरि की चट्टानें"। इ
चट्टानों को एक विशेष रूप से प्रदर्शित किया गया है
इन्हें अत्यन्त सफलतापूर्वक चित्रकार ने अपने चित्र
प्रदर्शित किया है। हैदराबाद राज्य में अनेक स्थानों
ऐसी चट्टानें प्राप्त होती हैं।

श्री राव की शैली में स्पष्टतया ही एक परिव
दिखाई देता है जब कि वे परम्परागत शैली को छोड़
लोक-कला में परीक्षण करने का प्रयत्न करते हैं। "
की आग" इसी श्रेणी का चित्र है। इसी प्रकार
दूसरा चित्र "नाट" है। उन्हें इसमें भी सफलता
हुई है।

श्री राव अभी बिलकुल नवयुवक हैं। वे बी
बीसियों में है। कुछ वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात्

उनकी विशिष्ट शैली का ज्ञान हो सकेगा परन्तु जिस प्रकार चित्रकला में वे परीक्षण कर रहे हैं उनसे उनकी कला अधिकाधिक उन्नत होती जा रही है। श्री राव में प्रतिभा है। हमें विश्वास है कि वे अपनी कला में अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर सकेंगे।

—विश्वनाथ मुखर्जी

हैदराबाद

(२)

यामिनी राय

देही सीरामपुर लेन, बालीगंज, कलकत्ता में यामिनी राय का मकान है। हम जब उसके चारों ओर और उनके बनाए हुए चित्रों पर, जो कि उनके घर के प्रत्येक कमरे में बिखरे पड़े हुए हैं, देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि उनके हृदय में कला का स्रोत कभी समाप्त होनेवाला नहीं है। उनको पानी के लिए किसी अन्य स्रोत के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं कहते हैं: "यदि मुझे प्यास लगी है और मेरे घर में पानी है जिससे मेरी प्यास बुझ सकती है—तो क्या मुझे जल के लिए अपनी प्यास बुझाने के निमित्त किसी दूसरे के घर में जाने की आवश्यकता है।" परन्तु एक समय था जब कि यामिनी राय अपने चित्रों को पश्चिमी शैली में बनाते थे। फिर उनके जीवन में एक ऐसा समय आया जब कि उनकी दृष्टि बंगाली शैली पर पड़ी जिसे कि पुनर्जीवित किया जा रहा था। वह समय था जब कि उनकी दृष्टि स्पष्ट नहीं हुई थी और उनके मन में विचारों का संघर्ष चल रहा था परन्तु जब उन्होंने अपने बचपन के बनाए हुए चित्रों को देखा तो वे अपनी कला के प्रति उद्बुद्ध हो गए और उस समय से उन्होंने सदियों के चित्रण कला के सिद्धान्तों, उदाहरणों और वादों से अपने को मुक्त कर दिया है। वे उस चित्रण कला को अंकित करते हैं जिसमें कि ग्रामीण लोग, अशिक्षित बच्चे अपनी भावनाओं को शिक्षा से सर्वथा अस्पृष्ट रह कर अभिव्यक्त करते हैं। उन्हें अपने इस उद्देश्य में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है यह तो यामिनी राय ही जानते हैं क्योंकि उनका उद्देश्य बिलकुल व्यक्तिगत और आध्यात्मिक है जिससे कि वे अपने शक्तिशाली व्यक्तित्व को पूर्णतया विकसित करना चाहते हैं। उनके आलोचक कहते हैं कि वे बार बार एक ही वस्तु को चित्रित करते हैं जिससे कि उनकी कला में किसी प्रकार की महानता नहीं प्रतीत होती। श्री यामिनी राय उत्तर में कहते हैं—"कला आनन्द है और ऐसा आनन्द है जिस तक प्रत्येक की पहुँच हो सकनी चाहिए। यदि ५० आदमी एक ही चित्र को पसन्द करते हैं तो क्या यह ठीक नहीं है कि उन सब के लिए कलाकार फिर उस चित्र को बनाए।" वास्तविक सत्य तो यह है कि एक कलाकार के लिए एक ही चित्र को पुनः ठीक उसी रूप में चित्रित करना असम्भव है। इसका अर्थ यह है कि उसके प्रत्येक चित्र में नवीनता और मौलिकता होती है। प्रत्येक चित्र स्वयं अपना एक नमूना होता है। इसमें पुनरावृत्ति का प्रश्न ही नहीं है। यामिनी राय नारियल की चटाई पर जो चित्र बनाते हैं वे सर्वथा मौलिक और नवीन हैं। ये चित्र उन्होंने इसलिए बनाए हैं कि सर्वसाधारण भी चित्रकला से वैसे ही आनन्द प्राप्त कर सकें जैसे कि एक व्यक्ति फ़िल्म, नृत्य और मिष्टान्न से प्राप्त करता है। आशा है कि वे कलाकार की अत्यन्त महत्वपूर्ण और आकर्षक कृतियाँ सिद्ध होंगी।

प्रायः उनकी कला के विषय में कहा जाता है: "यामिनी राय की कला के विषय में कहने के लिए है ही क्या? उन्होंने भारतवर्ष की ग्रामीण आदिकालीन चित्रण कला को उन लोगों के लिए प्रस्तुत किया है जो कि उसे देखने का अवसर प्राप्त नहीं कर सकते। उन्होंने इस कला को किसी प्रकार की नवीनता नहीं प्रदान की है।" इसके उत्तर में यामिनी राय कहते हैं: "यदि भिन्न भिन्न आकृति के पात्रों में जल को डाल दिया जाए तो पानी तो वही रहता है परन्तु उसकी आकृति पात्र के अनुसार बदल जाती है। यदि पात्र गोल है तो पानी की आकृति गोल हो जाती है और यदि चपटा है तो चपटी। कला की तुलना पानी से की जा सकती है। हमारी आवश्यकताएँ हमें बाधित करती हैं कि हम उन्हें कई बरतनों में रखें। इसका परिणाम यह होता है कि बहुत से लोग जल को उतनी मुख्यता नहीं प्रदान करते जितनी कि पात्र को। कुछ ही लोगों को जल का विचार रह जाता है परन्तु पात्र और जल में जल ही मुख्य और महत्वपूर्ण है। मैं अपने पात्र को इतना सरल बनाना चाहता हूँ जिससे प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान जल की ओर अनायास आकृष्ट हो सके।"

स्टेट्समैन से

चिट्ठी-पत्री

(१)

अजन्ता के सम्बन्ध में

...मैं आरम्भ से ही 'अजन्ता' की रचनाएँ, सम्पादकीय और पत्र आदि पढ़ता रहा हूँ। मुझे उसके प्रति मोह है। हिन्दी में ऐसी पत्रिकाएँ ही कितनी हैं जो उत्कृष्ट साहित्य और कला-सम्बन्धी सामग्री देती हैं। अहिन्दी क्षेत्र में आपका यह प्रयास वन्दनीय है। आपकी लेखनी का जादू भी मुझ पर असर करता है। बधाई।

बहादुर गंज, उज्जैन

—श्याम परमार

(२)

हिन्दीवाले कौन हैं?

"अजन्ता" के जून के अंक का सम्पादकीय पढ़ कर अत्यन्त हर्ष हुआ। यथार्थ में राजनीतिज्ञों की उपदेशात्मक वृत्ति बढ़ गई है और समस्या तो यह है कि आख़िर हिन्दीवाले कौन हैं? क्या वे हिन्दी भाषी नहीं जो स्वयं हिन्दी में हिन्दीवालों के लिए वृहत् वक्तृता उपदेश के रूप में झाड़ देते हैं? आपके सम्पादकीय ने मेरा ध्यान सामान्य हिन्दी भाषी लोगों की ओर भी आकर्षित किया। जब कि अहिन्दी भाषी बन्धु हिन्दी सीख कर उसे राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन कराने के प्रयत्न में हैं क्योंकि बेचारी हिन्दी तो अकेली है और...वह "समस्त भारतीय प्रान्तों की सद्भावना और प्रेम के सहारे ही टिक सकती है" उसी समय हमारे हिन्दी भाषी जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है उन्हें भी अंग्रेज़ी बोलने का बहुत शौक़ है। अंग्रेज़ी हमारी है यह तो बड़े बड़े नेताओं के वचन हैं। इस अंग्रेज़ी प्रयत्न का अच्छा दिग्दर्शन श्री भदन्त आनंद कौसल्यायन ने "राष्ट्रभारती" के सम्मेलन अङ्क के एक लेख में किया है।

सिंहपुर

—उमाशङ्कर पाण्डेय

(३)

अलसानि पेद्दन्ना

अजन्ता के मई अंक में, पेद्दन के बारे में श्री व्यास जी के लेख को पढ़ने का सौभाग्य मुझे मिला था। मैं तेलुगु भाषा भाषी हूँ तथा तेलुगु साहित्य में मेरा काफ़ी परिचय भी है। उक्त लेख को पढ़ कर मुझे अतीव आनन्द हुआ कि तेलुगु साहित्य के एक महाकवि के प्रति एक अ-तेलुगु साहित्यिक के हृदय में इतनी श्रद्धा है। हाँ, लेख के दो तीन ऐतिहासिक विषयों के बारे में जो हेर फेर हुआ है उस ओर भी मेरा ध्यान अवश्य गया था। लेकिन मेरी धारणा है कि इन दो तीन छोटी मोटी बातों से लेख को कोई क्षति नहीं पहुँची है।

'अजन्ता' के जून अंक में यही लेख श्री रेणु जी की कड़ी व निष्ठुर समालोचना का पात्र बनेगा यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। श्री रेणु जी जैसे विद्वान समालोचक किसी पूर्व-धारणा से (Prejudice) प्रेरित होकर श्री व्यास जी जैसे एक सहृदय लेखक पर इस क़दर टूट पड़े यह सचमुच शोचनीय है।

शायद श्री रेणु जी की धारणा यह हो कि तेलुगु साहित्य के बारे में सिर्फ़ उन जैसे कुछ इने गिने तेलुगु साहित्यिक विद्वान् ही अपने विचार प्रगट करने के हक़दार हैं। अ-तेलुगु साहित्यिकों का, तेलुगु-साहित्य का रसास्वादन करके उस सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त करने की चेष्टा करना, उनकी दृष्टि में अनधिकार चेष्टा प्रतीत होती है।

श्री रेणु जी की समालोचना पढ़नेवाले सहृदय पाठकों को दो बातें स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। एक यह है कि श्री व्यास जी के लेख के विषय तथा प्रस्तुतीकरण के सम्बन्ध में श्री रेणु जी को कोई शिकायत नहीं है। लेख में महाकवि पेद्दन्ना के प्रति तथा उनके काव्य और साहित्य के प्रति न्याय करने में लेखक ने कोई कसर रखी हो इसकी कोई शिकायत श्री रेणु जी ने नहीं की है। फिर भी उनके पत्र से यह पूर्ण रूप से ज़ाहिर हो रहा है कि वे किसी अज्ञात कारण से लेखक से असन्तुष्ट ही नहीं बल्कि क्रुद्ध भी हैं। इसका एकमात्र कारण, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, श्री रेणु जी की पूर्व-धारणा ही हो सकती है।

यह स्पष्ट है कि श्री रेणु जी ने लेख में जो त्रुटियाँ दिखाई हैं वे सचमुच गिनने लायक नहीं हैं। कोई भी सहृदय समालोचक ऐसी बातों से इतना बिगड़ जाए

१९५४

सचमुच अश्चर्य की बात है। श्री रेणु जी चाहते तो उनकी ओर पाठकों की दृष्टि आकृष्ट करके लेखक और लेख के प्रति न्याय करते।

'श्री व्यास जी के लेख के पढ़ने पर किसी भी सहृदय समालोचक की दृष्टि में जो दो त्रुटियाँ पड़ेंगी वे ये हैं :

(१) महाभारत की रचना की पूर्ति करने के विषय में लेखक ने तिक्कन्ना की जगह एर्राप्रग्गड का नाम दिया।

(२) मध्यकालीन कवियों में लेखक ने भट्टुमूर्ति और वेमना को जोड़ा।

श्री रेणु जी सहृदयता दिखाते हुए लेख की इन त्रुटियों को सुधार देते तो लेखक और पाठकों के प्रति बड़ा उपकार होता। लेकिन इन असली त्रुटियों के साथ-साथ कुछ और बेमतलब की गढ़ी हुई त्रुटियों को दिखाने की कोशिश करके श्री रेणु जी ने न तो लेखक के प्रति न्याय किया न पाठकों का ही कोई उपकार किया। अब ज़रा श्री रेणु जी की समालोचना पर दृष्टि डालें।

'आमुक्त माल्यदा' से 'आ' अक्षर तथा 'नंदवरीक' से 'क' अक्षर, लेखक की या कंपोज़ीटर की असावधानी से छूट गई हों तो उस विषय में इस तरह हल्ला मचाने की कोई ज़रूरत नहीं थी। श्री रेणु जी कुछ शान्त मनस्क होकर सोचते तो यह मालूम होता।

(२) इसी तरह 'प्रवर के प्रेम पाने में' के आगे 'कुहना' या 'माया' विशेषण लगाने मात्र से सब ठीक हो जाता। यह तो कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं जिसकी हत्या होने के डर से समालोचक सिहर उठे!

(३) आशु कवित्व के सम्बन्ध में जहाँ तक मैं समझता हूँ श्री व्यास जी ठीक धारणा ही रखते हैं। उन्होंने साफ़ लिखा है कि "पेद्दन्ना ने २६ पंक्तियों की कविता उसी समय की थी जिसमें अद्भुत रचना चातुर्य था। इस आशुकवित्व पर प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें सुवर्ण कंकण प्रदान किया।" इससे हमें साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि लेखक, आशुकवित्व का मतलब, सौ व्यक्तियों के प्रश्नों के उत्तर देने के रूप में नहीं लेता हैं। हाँ, फ़ुट नोट का सवाल है। जो वास्तविकता से परिचित हैं उनको इस फ़ुटनोट से बिगड़ जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। श्री रेणु जी बिना किसी अनावश्यक कटुता के, आसानी से श्री सम्पादक जी की दृष्टि में इसे ला सकते थे। लेकिन वे ऐसा करना नहीं चाहते थे।

(४) श्री रेणु जी का कहना है कि गण्डपेरण्डेर स्वर्ण कंकण नहीं, पैर का कड़ा होता है। जहाँ तक मैं देखता हूँ श्री व्यास जी ने अपने लेख में कहीं यह नहीं कहा कि गण्डपेरण्डेर पैर का कड़ा नहीं है। उन्होंने अपने लेख में पेद्दन्ना के शब्दों में साफ़ कहा है कि '(श्री कृष्ण-देवराय ने) कवि गण्डपेरण्डेर नामक कंकण को अपने हाथों से मेरे पैर में पहनाया।' लेखक का अपराध सिर्फ़ यही था कि उन्होंने गण्डपेरण्डेर का अर्थ स्वर्ण कंकण बतलाया। इससे उनका मतलब बिलकुल यह नहीं था कि गण्डपेरण्डेर हाथ में पहनने का कंकण है। श्री रेणु जी को, शब्द कोश (संक्षिप्त शब्द सागर) देखने से पता लगेगा कि कंकण का अर्थ कंगन भी हो सकता है और कड़ा भी हो सकता है।

(५) श्री व्यास जी के लेख में एक वाक्य है जिसका मतलब लाख सर खुजाने पर भी श्री रेणु जी की समझ में नहीं उतरा। वह वाक्य है—"तेलुगु कविता परम्परा के मध्यकाल में बम्मेर पोतन्ना का विशेष एवं विशिष्ट स्थान केवल रचनाओं के कारण ही नहीं अपि तु स्वाभाविक रूप से प्रणीत स्वतन्त्र काव्यों के कारण है।" मुझ जैसे सामान्य को इसके मतलब समझने में कोई माथापच्ची नहीं करनी पड़ी तो उसका कारण यही हो सकता है कि श्री व्यास जी जैसे अ-तेलुगु साहित्यिकों के प्रति मेरे मन में कोई पूर्व धारणा नहीं है। वाक्य पढ़ते ही किसी भी सहृदय पाठक को उसका मतलब ठीक समझ में आएगा इसमें कोई शक नहीं है।

"तेलुगु कविता परम्परा का एक मध्यकाल है। उस मध्यकाल के कवियों में बम्मेर पोतन्ना का एक विशेष और विशिष्ट स्थान है। उस विशिष्टता का कारण सिर्फ़ उनकी रचनाएँ ही नहीं हैं बल्कि उनके काव्य-रचना का विधान भी है। उनका वह रचना विधान बहुत ही स्वाभाविक (कृत्रिम नहीं) और पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है।"

उपरोक्त वाक्य का यह साफ़-मतलब जब सब लोग आसानी से समझ पाते हैं तो एक श्री रेणु जी ही इसे समझ नहीं सकते हैं तो इसके लिए लेखक कहाँ तक ज़िम्मेदार हो सकते हैं?

अन्त में मेरा नम्र निवेदन यही है कि श्री व्यास जी ने अपने लेख में महाकवि पेद्दन्न के प्रति तथा उनके काव्य के प्रति पूरा-पूरा न्याय ही किया है तथा

आपने उनके लेख को अपनी पत्रिका में उचित स्थान दे कर अपने उत्तरदायित्व का ठीक निर्वहण किया है। सब सहृदय पाठक इसका मुक्तकण्ठ से समर्थन करेंगे।

१६३, हबीबुल्ला रोड,
मद्रास १७

—नरसिंहाचार्य

(४)

लेखकों का कर्त्तव्य

...मैंने अप्रैल माह की 'अजन्ता' पढ़ी। काफ़ी सन्तोष प्राप्त हुआ। आपका सम्पादकीय पढ़ कर मुझे गर्व और साथ ही साथ विश्वास भी हो गया है कि आप लोगों के द्वारा हिन्दी जगत् में बहुत से बड़े कार्य सम्पादित होंगे। आपकी पत्रिका में प्रकाशित कविता "जिन मुश्किलों में मुस्कराना हो मना, उन मुश्किलों में मुस्कराना धर्म है" पढ़ कर मुझे अत्यन्त उत्साह प्राप्त हुआ। इसके लिए योग्य सरस्वती के उस वरद कवि को धन्यवाद देता हूँ। लेखों के अन्त में स्थान स्थान पर सूक्तियाँ पत्रिका के मूल्य को और भी बढ़ा देती हैं।

समाज का संगठन एवं उत्कर्ष चमचमाती तलवारों, तीक्ष्ण बर्छियों और मान पर मिटनेवाले दुर्धर्ष बर्बर योद्धाओं के सहारे नहीं हुआ करता। वरन् इन महायज्ञों के लिए एक सशस्त्र जुझारू सैनिक होता है जो अपनी आहनी क़लम के सहारे संसार को सुमार्ग पर लाता है। यदि कार्ल मार्क्स अपनी महान् रचनाओं के द्वारा स्टालिन और लेनिन आदि मानवता के पुजारी उत्पन्न कर सकता है, तो क्या भारत के अद्वितीय विद्वान् अपने देश के खोए गौरव को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकते ?

इतना शंखनाद होने पर भी भारतीय जनता अब भी अन्धकार में प्रतीत होती है। (भारत की ही नहीं मुझे तो विश्व अन्धकार का पथिक प्रतीत होता है) क्या ऐसे समय में लेखकों का कर्तव्य उसे प्रकाश में लाना नहीं है ? लेखक इतिहास का निर्माता है।

अतः आप जैसे देश के योग्य कलाकारों से मेरा अनुरोध है कि आप समाज को सुमार्ग पर लाने का प्रयास करें। आज साहित्यकारों की लेखनी शृङ्गार सागर में नहीं डूबनी चाहिए। नवीन उत्साही लेखकों को प्रोत्साहन देना चाहिए, क्योंकि साहित्य का भविष्य उन्हीं के पुष्ट स्कन्धों पर रहेगा।

यद्यपि आपकी पत्रिका उच्चकोटि की साहि पत्रिका है फिर भी उसका रुख समाज की ओर है साहित्य समाज का दर्पण होता है अतः आपकी पत्रि सामाजिक रचनाओं से भरी होनी चाहिए ता आपकी पत्रिका समाज में एक रक्तहीन क्रान्ति उत् कर दे और अजन्ता की गुफाओं के समान अजर-अ हो जाए। इस कार्य में ईश्वर आपका सहायक हो।

हरदोई (उ. प्र.)

—सुभाषचन्द्र शु

(५)

यूरोप यात्रा के संस्मरण

...'अजन्ता' का जून का अंक देखा। सामग्री सुरुचिपूर्ण चयन के लिए मेरी बधाई स्वीकार करें। सूर्यदेव जी का संस्मरण बहुत ही सफल और प्रशंस है। पुराने शैली के विद्वानों की उपेक्षा पर आप चोट मार्मिक है। वैद्य जी की यूरोप यात्रा के संस्म भी रोचक हैं; सामान्य बातें बड़ी सरल शैली में गई है। उनकी एक-दो बातों पर कुछ कहना है। वैद्य ने कहा है कि रेल के डब्बे में कोई व्यक्ति बिना टि के नहीं बैठता। इस कथन में निश्चित रूप से अ शयोक्ति है। ब्रिटेन के लोकप्रिय दार्शनिक और लेख स्व० सी० ई० एम० जोड पर इसी अपराध में जुरमा हुआ था। इससे उनकी इतनी बदनामी हुई कि बी० बी सी० ने उन्हें अपने 'बेन्ट ट्रस्ट' के कार्यक्रमों में आ न्त्रित करना बन्द कर दिया। संध्या के समय प्रकाशि होनेवाले तथा रविवार के पत्रों में इस प्रकार के अप का उल्लेख होता ही रहता है और वैद्य जी के 'अच्छे दूध की माँग करने पर होटलवाले को आश्चर्यचकि होने की आवश्यकता न थी। यह सच है कि वहाँ दूध पानी नहीं मिलाया जाता; परन्तु 'अच्छे' और 'क अच्छे' का भेद तो रहता ही है। बोतलों के ढक्कन रंग ही बता देता है कि दूध किस प्रकार की गाय का और उसमें से 'क्रीम' किस अनुपात में निकाला गया है। सामान्य जीवन में ब्रिटेन के लोगों की ईमानदारी औ अनुशासनप्रियता प्रशंसनीय हैं; किन्तु वहाँ के लोग रेलगाड़ियों से 'टायलेट-पेपर' और होटलों से आदि कभी कभी चुराते ही हैं।

उस्मानिया यूनिवर्सिटी,
हैदराबाद

— श्यामाचरण

नीर-क्षीर

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिएँ]

गोविन्द रामायण

सम्पादक और टीकाकार : सन्त इन्द्रसिंह चक्रवर्ती
(पंजाबी विभाग, पटियाला)
प्रकाशक : साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,
२० धर्मकूप, बनारस
मूल्य : चार रुपए।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जहाँ एक ओर वीर रण-कुशल योद्धा और महान् राजनीतिज्ञ थे वहाँ वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता, कवि और साहित्यकार भी थे। कहते हैं कि श्री गुरु गोविन्दसिंह के "दरबार में भिन्न भिन्न भाषाओं और भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ करनेवाले ५२ कवि रहा करते थे।" रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि 'महाभारत' और 'रामायण' की कहानी जनता में लोक-कथा बन गई है और इस कारण इन दोनों पुस्तकों की कथाओं में भी देश और काल के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। कहानी में परिवर्तन होने के साथ पात्रों के चरित्रों में भी परिवर्तन हुआ है। लोक-कथा वह है जो सदा जीवित रहती है और जिस प्रकार जीवन में परिवर्तन होते रहते हैं उसी प्रकार इन कथाओं की बनावट और पात्रों के चरित्र आदि में भी परिवर्तन होता रहता है। तुलसीदास के राम की कहानी में और 'गोविन्द रामायण' की राम की कहानी में और पात्रों के चरित्रों में बहुत भेद है। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न मत और सम्प्रदायवालों ने रामायण लिखी हैं और उनकी रामायणों में भी देश, काल और अवस्था के अनुसार परिवर्तन होता गया है। श्री गुरु गोविन्दसिंह पैदा हुए थे पटना में और उनकी मृत्यु हुई नांदेड़ में। भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों से उनका सम्बन्ध रहा। उनकी 'रामायण' की कहानी के स्रोत कौन कौन से हैं यह एक अनुशीलन का विषय है। 'गोविन्द-रामायण' को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि श्री गुरु गोविन्दसिंह को कई भाषाओं और उनके साहित्यों का ज्ञान था। उनकी इस 'रामायण' में अनेक शैलियों, भाषाओं और साहित्यिक परम्पराओं का सम्मिश्रण और सम्मिलन दिखाई पड़ता है। उनके "चौबोलों" में चार भाषाओं का प्रयोग किया गया है। कहीं अरबी, व्रज, राजस्थानी और पंजाबी भाषाओं का प्रयोग है, कहीं प्राकृत, अपभ्रंश संस्कृत और फ़ारसी आदि भाषाओं का मेल किया गया है। छन्दों की भी यही अवस्था है। उन्होंने अपनी 'रामायण' में सब प्रकार के छन्दों का यहाँ तक कि फ़ारसी के छन्दों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने अपनी साहित्यिक शैलियों के और भाषा के आधार को विस्तृत करने का प्रयत्न किया है। "रामायण" की कहानी में "गाज़ी" और "शहीद" शब्दों का प्रयोग कुछ विचित्र-सा प्रतीत होता है।

"गागड़दंग गाजी जागड़दंग जूटे"
"पागड़दंग ते पाक शाहीद सोये"

फ़ारसी और हिन्दी का चित्र-काव्य :

"सरवे सही चमन रा परचस्त जाँ व तन रा
जिन दिल हरा हमारा। वह मनहरण कहाँ है ?"
"मादर-खुशाल खातिर। पीने हज़ार छावर
आतुर शिताब छाई। वह गुल-चिहर कहाँ है ?"

शम्बूक की तपस्या के विषय में इस 'रामायण' में लिखा है कि वह एक कुएँ के बीच में टाँगें ऊपर करके सिर नीचे लटका कर तपस्या कर रहा था। इसमें उन्होंने दिशा उत्तर लिखी है :

> "हुतो एक शूद्रं दिशा उत्र मद्धं
> भूले कूप अद्धं पर्यो औंध मुक्खं"

'सीता' को उन्होंने सुकुमारी और राजकुमारी ही न बना कर वीर-रमणी बनाया है। वे युद्ध में भी सम्मिलित होती हैं। बनवास जाने के समय वे राम से कहती हैं :

> "शूल सहौं, तन सूक रहौं पर,
> सी न कहौं सिर शूल सहूँगी
> बाघ बघार फनीन फुँकार सु सीस
> गिरै पर सी न कहूँगी।"

उन्होंने लव और कुश और बच्चों को इतना वीर बनाया है कि उन्होंने न केवल रामचन्द्र की सारी सेना को परास्त कर दिया है परन्तु स्वयं भरत, लक्ष्मण और रामचन्द्र को भी युद्ध में पराजित कर दिया है। 'गोविन्द-रामायण' में युद्ध का वातावरण स्पष्टतया अनुभव होता है। इस 'रामायण' का महत्व कई दृष्टियों से है। इस पुस्तक को साहित्य-रत्न-माला, कार्यालय, बनारस ने प्रकाशित कर हिन्दी की अनुपम सेवा की है। इससे 'रामायण' की कहानी के तुलनात्मक अध्ययन में सहायता प्राप्त होगी। इस 'रामायण' को पढ़ने से जहाँ श्री गुरु गोविन्दसिंह के अनेक भाषाओं के ज्ञान और काव्य की प्रतिभा से परिचय प्राप्त होता है वहाँ उनका भारतीय साहित्य और संस्कृति से अगाध प्रेम भी अभिलक्षित होता है। उनका हिन्दी में काव्य लिखना भी भारत की एक राष्ट्रीयता की ओर संकेत करता है जिसके आधार को उन्होंने विस्तृत बनाने का प्रयत्न किया है।

तेलुगु और उसका साहित्य

लेखक : हनुमच्छास्त्री 'अयाचित'
सम्पादक : क्षेमचन्द्र सुमन
प्रकाशक : सरस्वती सहकार, दिल्ली ६
की ओर से
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य : दो रुपए।

प्रस्तुत पुस्तक में १२६ पृष्ठों में तेलुगु भाषा साहित्य के इतिहास, गति-विधियों, प्रवृत्तियों, अनु कार्य और पत्र-पत्रिकाओं आदि का संक्षेप में परि प्रदान किया है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि सहकार-भारती "भारत की लगभग २७ भाषाओं और उपभाषाओं के साहित्यिक विकास की रूप-रेखा का परिचय देनेवाली पुस्तकों का प्रकाशन कर रही है। इस प्रकार की पुस्तकों से भारतीय भाषाओं के साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन में बड़ी सहायता प्राप्त हो सकेगी क्योंकि लेखक हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषाओं के साहि के इतिहास से परिचित है इसलिए अच्छा होता यदि इस पुस्तक में दोनों भाषाओं के साहित्यों पर कुछ तुलनात्मक प्रकाश भी डालते। लेखक ने तेलुगु साहि के काल-विभाजन में एक काल "ह्रास-काल" रक्खा है। इस काल को उन्होंने 'ह्रास-काल' इसलिए कहा है: "आन्ध्रों की केन्द्रित शक्ति नष्ट होकर छोटे-छोटे राज्यों में बिखर गई थी।……उनके राष्ट्रीय जीवन के सामने कोई उच्च आदर्श नहीं था। जीवन निष्क्रिय हो ग था। इस सामाजिक और राजनीतिक पतन का प्रतिबिम्ब ही हमें साहित्य में दृष्टिगोचर होता है।" साहित्य में दे काल और अवस्थाओं के अनुसार साहित्य की र होती है इसलिए साहित्य के इतिहास में जिसमें कि भाषा और साहित्य की निरन्तर और अविच्छिन्न धा का अध्ययन करते हैं वहाँ किसी काल को भी "ह्र काल" तब तक नहीं कहा जा सकता जब तक कि साहि की सृष्टि ही निर्वाणोन्मुख न हो जाए। राष्ट्रों का होता है और ऐसे पतन के समय में साहित्य ही नव-जीवन का संचार करता है। फिर जिस युग में "क्षेमय्या, त्यागराज और लिंगमूर्ति" जैसे सन्त कवि उत्पन्न हुए हों उसे तेलुगु कविता या साहित्य का काल कैसे कहा जा सकता है? त्यागराज ने तेलुगु को आन्ध्र देश में ही नहीं तमिलनाड में भी लोक बना दिया। लेखक ने स्वयं लिखा है: "दक्षिण में महल से झोंपड़ी तक और राजा से रंक तक त्यागराज के पदों की मधुरिमा से अभिभूत हो जाते हैं परन्तु वे इन्हें "ह्रास युग के तुच्छ शृङ्गार रूपी में उगे हुए मनोहर पद्य" समझते हैं। पुस्तक में हरण बहुत कम दिए गए हैं। अन्य भाषाओं के साहि के इतिहासों को प्रकाशित करने में कम-से-कम

१९५४

शुद्ध रीति से प्रकाशित करने की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। "अल्लसानि पेद्दन्न" का नाम पुस्तक में "पेछन्न" छपा हुआ है। पुस्तक के लिखने में परिश्रम किया गया है। आशा है कि लेखक तेलुगु साहित्य और हिन्दी--साहित्य की साहित्यिक परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन भी किसी पुस्तक में प्रस्तुत करेंगे। पुस्तक में यदि तेलुगु के छन्दों, अनुप्रास और शैली आदि पर एक छोटा-सा अध्याय होता तो अच्छा होता। हिन्दी में भारत की प्रदेशीय भाषाओं के साहित्य पर इस प्रकार की पुस्तकों का प्रकाशित होना हम शुभ-लक्षण समझते हैं। इससे न केवल हमें अपने देश की भाषाओं के साहित्य से परिचय प्राप्त हो सकेगा अपि तु उनमें सद्भावना, निकटता और एकता की संवृद्धि हो सकेगी।

काश्मीर की लोक-कथाएँ

लेखक: नन्दलाल चत्ता

प्रकाशक: आत्माराम एण्ड सन्स,
काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

मूल्य: एक रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक में काश्मीर की ९ लोककथाओं को लिखा या संगृहीत किया गया है। कहा नहीं जा सकता कि ये कथाएँ कहाँ तक काश्मीरी हैं क्योंकि इनमें से कई कथाएँ अन्यत्र भी प्रचलित हैं। लोक-कथाएँ चाहे कहीं से आएँ वे धीरे-धीरे देश की जनता की अपनी बन जाती हैं। यद्यपि मूल कथा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता तो भी देश, काल और कल्पना के अनुसार उनके पात्रों, नामों, उनकी पोशाकों, परिस्थितियों, प्राकृतिक दृश्यों और इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं में परिवर्तन हो जाता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति जब कई पीढ़ियों से एक देश में निवास करता है तब वहीं का बन जाता है उसी प्रकार कई पीढ़ियों से कही सुनी जाती हुई ये कहानियाँ जब वहीं के जीवन का अंग बन जाती हैं तब वहीं की बन जाती हैं। इन कहानियों में काश्मीर के लोक-जीवन की झलक दिखाई देती है। इन लोक-कथाओं से जहाँ लोक-जीवन से परिचय प्राप्त होता है वहाँ लोक-कल्पना की उड़ानों का भी ज्ञान होता है। कहानियाँ सरल भाषा में लिखी गई हैं और रोचक हैं।

आजकल (लोक-कथा अंक)

सम्पादक: देवेन्द्र सत्यार्थी

प्रकाशक: पब्लिकेशन्स डिविज़न,
ओल्ड सेक्रेटेरियट,
दिल्ली, ८

मूल्य: एक प्रति आठ आने

किसी भी प्रकार की कथा हो : ऐतिहासिक, पौराणिक, साहित्यिक, घटनासम्बन्धी और काल्पनिक लोक-जीवन का अंग बन कर वह एक अपना विशिष्ट रूप धारण कर लेती है और धीरे धीरे लोककथा के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जिस प्रकार बहुत से प्राणियों के रंग और देह की रेखाएँ अपने चारों ओर के दृश्यों और वातावरण के अनुसार स्वयं बन जाती हैं उसी प्रकार ये लोककथाएँ अपने वातावरण और प्राकृतिक अवस्थाओं से अपने रूप रंग का स्वयं निर्माण कर लेती हैं। 'आजकल' के इस लोक-कथा अंक में लोक-कथाओं के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट लेखकों के लेखों को प्रकाशित किया गया है। इन लेखों में लोककथा का तात्पर्य, विकास और क्षेत्र को स्पष्टतया समझाया गया है। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'कथा' को 'कथं' से बनाया है। 'लोक-कथा' के लिए यदि कोई शब्द लोकजीवन से ही चुना जा सकता तो वह सम्भवतः अधिक उपयुक्त होता। 'आजकल' के इस विशेषांक को पढ़ने से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष के प्रान्तों और अन्य देशों में लोककथाओं के संग्रह करने में कौन कौन से विद्वान् प्रयत्न कर रहे हैं। लोककथाओं में प्रत्येक स्थान की अपनी ही विशेषता होती है इसलिए हिन्दी के जनपदों में ब्रज, बुन्देलखण्डी और भोजपुरी लोककथाओं को पृथक् रूप में दिया गया है। परन्तु इसी प्रकार पंजाब, महाराष्ट्र, बंगाल, गुजरात आदि राज्यों के भिन्न-भिन्न जनपदों को नहीं लिया गया है। इन प्रान्तों के भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न लोककथाएँ प्रचलित हैं और इन्हें भी अपने विशिष्ट जनपद के नाम से ही संयुक्त किया जाना चाहिए। 'आजकल' का लोक-कथा अंक संग्रहणीय है। इसको पढ़ने से न केवल हमें अपने और अन्य देशों के लोक-जीवन की सुन्दर झलक प्राप्त होती है अपि तु मानव जीवन की एकता का भी परिज्ञान होता है। हम इन कथाओं में "मानव" का यथार्थ रूप में दर्शन कर सकते हैं। इस सुन्दर अंक के लिए सम्पादक और प्रकाशक दोनों को बधाई। चित्रों ने अंक को आकर्षक बना दिया है।

आर्य सिद्धान्त दीप

लेखक : मदनमोहन विद्यासागर
प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द,
आर्य साहित्य भवन, नई सड़क, देहली
मूल्य : सवा रुपया

लेखक ने आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रामाणिक परिचय देने के लिए तेलुगु में "आर्य समाज परिचयमु" के नाम से एक पुस्तक लिखी थी। इसी को कुछ बड़ा करके हिन्दी में प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक का यह द्वितीय संस्करण है। लेखक के शब्दों में इस पुस्तक में प्रयत्न किया गया है कि "आर्य सिद्धान्तसम्बन्धी कोई विषय छूट न जाए......आर्यसमाज का यथार्थ विशाल सार्वभौम रूप" प्रस्तुत किया जा सके। इस पुस्तक में लेखक ने अपने विषय को दार्शनिक रूप से प्रस्तुत करने के लिए स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों के "वाक्यों को इकट्ठा करके क्रमबद्ध रूप में लिख दिया है।" पुस्तक के चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय "आर्यसमाज की स्थापना और उद्देश्य" दो पृष्ठों का है। द्वितीय अध्याय ११७ पृष्ठों का है। इसमें जीवन के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए आर्य सिद्धान्तों को ७२ अनुबन्धों में समझाने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक में यही अध्याय है जिसमें आर्यसमाज के मन्तव्यों को अनुच्छेदों में प्रतिपादित किया गया है। तीसरे अध्याय में आर्यसमाज के नियम आदि दिए गए हैं। यह अध्याय चार पृष्ठों का है। चतुर्थ अध्याय में ९ पृष्ठों में "आर्य समाज का क्या सन्देश" है इसे अन्तिम निवेदन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आशा है कि आर्यसमाज के सिद्धान्तों को सर्वसाधारण को समझाने में यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक, आर्य प्रतिनिधि सभा, सुलतान बाज़ार हैदराबाद से प्राप्त हो सकती है।

हैदराबाद

—**वंशीधर विद्यालङ्कार**

इन्सान की कहानी

लेखक : मुल्कराज आनन्द
प्रकाशक : राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई
मूल्य : दो रुपए बारह आने।

'इन्सान की कहानी' में मानव सभ्यता के विकास के इतिहास को सरल भाषा में लिखा गया है। पौने दो सौ पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तक में विभिन्न युगों की विभिन्न स्तरों की सभ्यता की सुस्पष्ट विवेचना सम्भव नहीं थी। अतः लेखक ने सभ्यता के कुछ विशिष्ट अंगों को लेकर कतिपय तथ्यों की सूचना देते हुए अपनी सम्मतियों को व्यक्त किया है। सभ्यता के कुछ महत्त्वपूर्ण अंग छूट गए हैं। उदाहरणः धार्मिक विचारों की मानव सभ्यता के विकास को महत्त्वपूर्ण देन रही है परन्तु उसकी चर्चा इस पुस्तक में नहीं उठाई गई है। सम्भवतः लेखक के विचार में एक ही सभ्यता का अस्तित्व होता है एक से अधिक सभ्यताओं का नहीं और उनकी सम्मति में धर्म सभ्यता का अनिवार्य अंग नहीं रह गया है। वस्तुतः इसे तथ्यों की उपेक्षा और दृष्टि की संकुचितता ही कहा जाएगा। पुनः सभ्यता के विकास का इतिहास घटनाओं का क्रममात्र नहीं है। मानव समाज ने अब तक के सुदीर्घ काल में कुछ शाश्वत मूल्य अवश्य बनाए हैं—सत्य का आग्रह, स्वतंत्रता का प्रेम आदि जिनके आधार पर प्रगति या प्रतिक्रिया को पहचाना जा सकता है। केवल 'वाद' विशेष में विश्वास हमें बहुत दूर नहीं ले जा सकता परन्तु लेखक ने वैसा कोई आधार नहीं माना है विशेष कर जब कि उसकी इसलिए और भी आवश्यकता थी क्योंकि लेखक का मत है : "एक समय था जब मैं सोचा करता था कि जीने की इच्छा इन्सान को हमेशा ज़िन्दगी की राह चुनने को बाध्य करेगी, मौत की नहीं परन्तु आज मुझे इस पर ज़्यादा यक़ीन नहीं है क्योंकि कई चालाक लोग इन्सान को ग़लत रास्ते पर ले जा रहे हैं। और इन्सान के भय, शङ्काएँ और खास कर उनकी पक्षपात की भावनाएँ उसे और भी घबरा देती हैं। यदि हम सतर्क न रहे तो हमारी बुद्धि असफलता ही प्राप्त होगी।"

लेखक ने सृष्टि के आरम्भ से विश्व-इतिहास पर दृष्टि डाली है। मनुष्य द्वारा अन्न उत्पादन के ज्ञान से वे संस्कृति के विकास का आरम्भ मानते हैं "क्योंकि खाद्यान्न पैदा करने में समर्थ होते ही इन्सान को आराम की दूसरी चीज़ों की ज़रूरत पड़ी और वह वे चीज़ें बनाने लगा जो सभ्यता की देन समझी जाती हैं। हमारे जंगली पूर्वजों की 'सभ्यता' हमारी सभ्यता की तरह भले ही न रही हो, लेकिन यह एक तरह की सभ्यता तो थी ही।" लेखक ने संक्षेप में यूनान, मिश्र, बेबीलोन, चीन और भारत की प्राचीन संस्कृतियों की चर्चा की है।

विज्ञान की प्रगति और राजनीतिक विचारधाराओं के विकास का परिचय दिया है। सबसे मनोरञ्जक वे अध्याय हैं जिनमें 'कला' के विकास के सम्बन्ध में लेखक ने अनुभव और विचार प्रकट किए हैं। नृत्य-कला का आरम्भ लेखक के मत में भय पर विजय पाने की प्रेरणा से हुआ। 'अनुकरण' के सिद्धान्त को भी उन्होंने इसी के अन्तर्गत समाविष्ट कर दिया है 'हम किसी चीज़ की नक़ल करें तो हमको उस पर विजय पाने की शक्ति मिल जाती है।' चित्र और मूर्त्ति कला का उद्गम भी वे इसी रूप में बताते हैं। कला के महत्त्व को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है: "मनुष्य की आत्म-प्रेरणा, जो उसे नई नई चीज़ें निकालने और अपने विचारों और भावनाओं को मूर्त रूप देने को प्रोत्साहित करती है, आज दबने लगी है। यह भली भाँति ज्ञात है कि जब मानव की क्रियात्मक शक्ति और कलात्मक विकास रुद्ध हो जाता है तो वह ध्वंस की ओर अग्रसर होता है और उन तमाम चीज़ों का नामोनिशान मिटा देने की धमकी देने लगता है जिनकी रचना दूसरों ने इतने प्रेम, परिश्रम और चाव से की थी।" पुस्तक मानव सभ्यता के विकास का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने लिए उपयोगी है।

आधुनिक योरप का राजनीतिक दर्शन

लेखक : श्यामसुन्दर गुप्त एम. ए; एल-एल. बी.
प्रकाशक : चेतना-प्रकाशन विभाग
१ जमनालाल बजाज नगर
अन्धेरी (पूर्व) बम्बई
मूल्य : दो रुपया

'आधुनिक योरप का राजनीतिक दर्शन' में लेखक ने मैकियावली से मार्क्स से पहले तक के राजनीतिक दार्शनिकों के विचारों का परिचय दिया है। इन विचारकों को लेखक ने पाँच धाराओं में विभाजित किया है--ऐतिहासिक, समझौतावादी, उपयोगितावादी, आदर्शवादी और विज्ञानवादी। ऐतिहासिक विचारधारा के प्रतिनिधि विचारक मैकियावली, मौंटेस्क्यू और बर्क हैं। इन्हें ऐतिहासिक विचारधारा का प्रतिनिधि इसलिए बनाया गया है कि मैकियावली ने ऐतिहासिक अनेक उदाहरणों को लेकर नरेशों की कर्मविधि निर्धारित की, मौंटेस्क्यू ने "अपने विचारों का व्यापक चित्र राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक अवस्थाओं के विशाल पट पर किया" और बर्क ने ऐतिहासिक युग विशेष के अनुसार राज्य तंत्र के विधान को समुचित बताया। इसी प्रकार अन्य विचारकों की दार्शनिक और जीवनसम्बन्धी मान्यताओं के अनुकूल उन्हें विभिन्न धाराओं में वर्ग-गत किया गया है। समझौतावादी धारा के विचारक हाब्स, लाक और रूसो हैं, उपयोगितावादी धारा के बैंथम, जेम्स मिल और जौन स्टुअर्ट मिल, आदर्शवादी धारा के काण्ट, हीगल, ग्रीन और बोशाँक्वे और विज्ञानवादी धारा के कौम्टे, स्पेन्सर और हक्सले हैं। इन विचारकों की जीवनी और रचनाओं का परिचय भी लेखक ने दिया है और उनके विचारों को अत्यन्त सुलझे हुए रूपों में रखा है। वास्तव में ऐसी पुस्तकों की हिन्दी में इस समय अत्यन्त आवश्यकता है जिससे कि हिन्दी पाठकों के ज्ञान का क्षितिज अधिक विस्तृत हो। लेखक ने मार्क्स और उनके बाद के राजनीतिक विचारों पर दूसरी स्वतंत्र पुस्तक लिखने की सूचना दी है।

बालपद

लेखक : वंशीधर विद्यालङ्कार
प्रकाशक : हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
मूल्य : आठ आने

हैदराबाद राज्य के शिक्षा-विभाग ने बाल साहित्य के प्रकाशन को प्रोत्साहन देने के लिए योजना बनाई है उसी के अन्तर्गत हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद द्वारा प्रकाशित यह पहली पुस्तक है। 'बालपद' नाम से जैसा प्रकट होता है इस पुस्तक में बालकोपयोगी कविताओं का संग्रह है। इन कविताओं के रचयिता श्री वंशीधर विद्यालङ्कार हैं। सम्प्रति हमारे राष्ट्र के नव-निर्माणकाल में अच्छे और प्रेरणादायक बाल साहित्य के निर्माण की अत्यधिक आवश्यकता है जो कि हमारे देश की आनेवाली पीढ़ी को नए स्वप्न दे सके, उसमें नई आशा का संचार कर सके और उन्नति के पथ पर बढ़ने के लिए सही मार्ग इंगित कर सके। प्रस्तुत पुस्तक में कवि ने बालकों के लिए युगानुकूल कविताएँ लिखी हैं। इनमें बालकों में उत्साह, प्रकृति प्रेम, श्रम का आदर और राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने की भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं।

'हँसो' शीर्षक कविता में कवि सब दुःख झेल कर भी खुश रहने की सीख देते हैं। 'हल' में उन्होंने

किसान के मुँह से कहलाया है 'श्रम है मेरा बल' और 'सोना-चाँदी उसकी बाँदी' है। 'तीतर' में वे स्वतंत्रता के महत्त्व को खाने, कपड़े और सुरक्षा से बढ़ कर बताते हैं। इसी प्रकार कवि ने राष्ट्रीयता और संगठन के भावों को भी अभिव्यक्त किया है। बाल-मन पर इन भावों और संस्कारों के अंकित होने का बहुत महत्त्व है। विद्यालङ्कार जी का प्रकृति-प्रेम इन 'बालपदों' में भी प्रकट हुआ है। प्रकृति के दृश्यों को देख कर बालकों की उनके सम्बन्ध में जिज्ञासा और उनका समाधान बहुत स्वाभाविक है। प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बालकों में प्रकृति के प्रति यथेष्ट आकर्षण उत्पन्न करने में समर्थ है। इन कविताओं में सरल भाषा में कोमल भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

बालकों की कहानियाँ

लेखक : श्रीराम शर्मा
प्रकाशक : हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
मूल्य : आठ आने

'बालकों की कहानियाँ' बाल-साहित्य-माला की तीसरी पुस्तक है। इसमें श्री श्रीराम जी शर्मा द्वारा लिखित आठ बालकोपयोगी कहानियाँ संग्रहीत हैं। बाल-कहानियों का उद्देश्य बच्चों को नैतिक शिक्षा देना और उनका मनोरंजन करना होता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से ६ से १३ वर्ष की उम्र का समय चरित्र-निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। इस समय समुचित नैतिक शिक्षण की आवश्यकता होती है। परन्तु शुष्क नैतिक शिक्षा का प्रभाव प्रायः उलटा होता है। अतः उसे मनोरंजक बनाने के लिए कहानी का रूप दिया जाता है। कोई भी कहानी बालकों का मनोरंजन तभी कर सकती है जब कि उसमें कुछ न कुछ चमत्कार हो। प्रस्तुत पुस्तक की कहानियाँ इस दृष्टि से एक ही श्रेणी की नहीं हैं। 'गाय का बेटा', 'मूर्ख साथी' और 'चूहे की दुम' का उद्देश्य परोक्ष रूप से शिक्षा देना है परन्तु चमत्कार के अभाव में वे शिथिल-सी हैं। 'गपोड़शंख' और 'रेलगाड़ी' का कथा-अंश पुराना होते हुए भी लेखक ने उनमें नया रस भर दिया है। 'गपोड़शंख' का कविता अंश अवश्य ही बालक कण्ठस्थ कर लेंगे और 'रेलगाड़ी' कहानी में प्लेटफ़ार्म पर देहाती यात्रियों की अपनी बोली में बातचीत आकर्षक वातावरण उत्पन्न कर देती है। 'हँसता पान बोलती गुड़िया...' में अपेक्षित चमत्कार के
साथ बालकों में सहज सहानुभूति जागृत करने की
है। ये कहानियाँ अन्ध-विश्वासों के प्रति
दृष्टिकोण, चारित्रिक दृढ़ता और मनोरंजन की
प्रस्तुत करती हैं और बालकों की कल्पना को जागृत
सन्तुष्ट करने में समर्थ हैं।

गाँवों की कहानियाँ

लेखक : रामनिरंजन पाण्डेय
प्रकाशक : हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
मूल्य : आठ आने।

'गाँवों की कहानियाँ' बाल-साहित्य-माला
चौथी पुस्तक है। इन कहानियों का दृष्टिकोण
वादी है। 'न्याय' शीर्षक कहानी में लेखक ने
राजा का चित्रण किया है जिसके बहुत-सी
प्रजा के लोग भी गाएँ पालते हैं। प्रजा की
करना राजा अपना कर्त्तव्य समझता है अतः
के प्रति प्रेम के कारण प्रजा में से पाँच हज़ार
राजा को अपनी अवैतनिक सेवाएँ देते हैं जिनसे
अपना सारा प्रबन्ध करता है। इस प्रकार न
करों की आवश्यकता होती है न सैनिकों को वेतन
आश्चर्य है गोरक्षा आन्दोलन के उत्साही
अपने आन्दोलन के पक्ष में कभी इस प्रकार
नहीं रखा! लेखक का आश्चर्यवादी दृष्टिकोण 'लक्ष्मी
सरस्वती' में सरस्वती की महत्ता प्रतिपादित
सुगृहिणी में गृहिणी की व्यवस्था एक लकड़हारे
के समकक्ष स्थिति का बना देती है। श्री
जी अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण को इतने सहज
व्यक्त कर देते हैं कि वास्तविकता से उसकी
हीनता स्पष्ट दिखाई दे जाती है। बाल
परिचित व्यक्ति जानते हैं कल्पना लोक में
हुआ बालक चाहे आनन्द का अनुभव कर ले
विक जीवन में उससे आदर्श का पालन करने
जाएगा तो वह कभी यथार्थ को अनदेखा नहीं
कहानियों की भाषा रोचक है और कथानक में
मन को रमा लेने के लिए पर्याप्त आकर्षण है।
तोता' लोककथा के आधार पर लिखी हुई
इस प्रकार की कहानियाँ आज भी बालकों
आकर्षित करती हैं, उन्हें नवीन रूप में ढाल
के सम्मुख रखने की आवश्यकता है।

—हरिकृष्ण

जोधपुर

सामयिक

॥

अमरीका में नीग्रो-पत्र-पत्रिकाएँ

मद्रास के प्रसिद्ध अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र "स्वतन्त्र" में "यूनाइटेड स्टेट्स में नीग्रो प्रेस" लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें से निम्न अंश दिया जाता है :

"......अमरीका में नीग्रो लोगों के लगभग २८० पत्र और पत्रिकाएँ हैं। इसमें से दो तिहाई पत्र साप्ताहिक हैं जिनकी बिक्री लगभग तीस लाख तक है। इनमें २७ पत्र ऐसे हैं जिनमें से प्रत्येक की बिक्री बीस हज़ार है। नीग्रो समाचार पत्रों की सबसे अधिक बिक्री "कोरियर" पत्र की है। यह पिट्सबर्ग से प्रकाशित होता है। इसके १२ संस्करण प्रकाशित होते हैं और इसकी प्रतिदिन दो लाख अस्सी हजार प्रतियाँ बिकती हैं। शिकागो से एक साप्ताहिक पत्र "डिफेण्डर" प्रकाशित होता है। इसकी बिक्री दो लाख है। "आफ्रो-अमेरिकन" पत्र केवल बाल्टीमोर से ही प्रकाशित नहीं होता अपि तु तीन और राज्यों से भी प्रकाशित होता है। केवल बाल्टीमोर के संस्करण की बिक्री एक लाख पच्चीस हज़ार है।

सचित्र मेगज़ीनों में "एबोनी" सबसे अधिक सफल है। यह सुन्दर मासिक पत्र शिकागो से प्रकाशित होता है और इसकी बिक्री तीन लाख बीस हज़ार है। "एबोनी एण्ड आवर वर्ल्ड" ६० पृष्ठ की पत्रिका न्यूयार्क नगर से प्रकाशित होती है। इसके ऊपर के पृष्ठ दो रंगों के होते हैं। न्यूयार्क नगर से एक पत्र "एमस्टरडम न्यूज़" प्रकाशित होता है इसकी बिक्री सत्तर हज़ार है। "जरनल एण्ड दि गाइड" वर्जीनिया से प्रकाशित होता है। इसकी बिक्री तिरसठ हज़ार है। साधारणतया "कोरियर" के २० से २२ तक पृष्ठ होते हैं।...

नीग्रो मासिक "नीग्रो डाइजेस्ट" का प्रकाशन १९५२ में प्रारंभ किया गया था। इसकी बिक्री एक लाख की है। इस पत्रिका में श्रीमती रूज़वैल्ट और अन्य संभ्रान्त अमरीकियों ने एक लेखमाला प्रकाशित की थी जिसका शीर्षक था "यदि हम नीग्रो होते"। इस लेख-माला से इस जेबी साइज़ की पत्रिका की ओर समस्त अमरीकी राष्ट्र का ध्यान आकृष्ट हो गया। "एबोनी" और "नीग्रो डाइजेस्ट" के अधिपति और संचालक सब नीग्रो हैं। इसके अतिरिक्त अमरीका में नीग्रो के सौ छोटे साप्ताहिक हैं। अमरीका में नीग्रो की जन-संख्या एक करोड़ पचास लाख है। इन पत्रों के द्वारा पर्याप्त संख्या के पास समाचार और विचार पहुँचते हैं। इससे नीग्रो से अतिरिक्त जनता को भी नीग्रो लोगों के विचार ज्ञात होते रहते हैं।"

॥

कथाकली

श्रीयुत एम. मुकुन्द राज का "लिसनर" में एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"......कथाकली अभिनय, नृत्य और गीत की सम्मिश्रित कला है। यह एक प्रकार का मूक-नाट्य (Pantomime) है जिसमें शैलूष या नट न बोलते हैं और न गाते हैं। वे अपने भावों और विचारों को हाव-भाव, हस्त-मुद्राओं और मुख की भंगिमाओं से इस प्रकार सजीवता से अभिव्यक्त करते हैं कि उसे साधारण लोग भी सुगमता से समझ लेते हैं। कथाकली की सब से बड़ी विशेषता यही है कि यह एक भाव प्रकाशन की अत्यन्त व्यवस्थित और विस्तृत प्रणाली है जो अत्यन्त अद्भुत और समुन्नत है। इसका उद्भव केरल में हुआ है।

इसकी उत्पत्ति के विषय में कई दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। कोज़ीकोडे में यह कथा प्रचलित है कि किसी ज़ोमोरिन राजा ने एक धार्मिक नाटक का आयोजन किया। इसका नाम "कृष्णनट्टम्" था। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि इसकी ओर त्रावणकोर में कोट्टक्कर के राजा का ध्यान आकर्षित हुआ। कहा जाता है कि उसने ज़ोमोरिन राजा से प्रार्थना की कि वह शैलूष मंडली को वहाँ भेजे परन्तु उसने राज्यसंबन्धी दुर्भावनाओं और ईर्ष्या के कारण उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। इस पर कोट्टक्कर के राजा ने एक अन्य प्रकार के नाटक का आयोजन किया। इसका नाम "रामनट्टम्" था। इसी का नाम बाद में कथाकली पड़ा। उत्तर केरल में यह कथा प्रचलित है। दक्षिण केरल में कोट्टरक्कर के आस पास एक अन्य कहानी प्रचलित है जिससे पता चलता है कि "रामनट्टम्" या कथाकली का आविर्भाव "कृष्णनट्टम्" से पूर्व हुआ। "कृष्णनट्टम्" को लेखक ने १६५३ सन् में लिखा है और "रामनट्टम्" संभवत: १४८३ और १४६१ के मध्य में लिखा गया।

इसमें सन्देह नहीं कि "रामनट्टम्" ही कथाकली का सब से पुराना साहित्य है जो प्राप्त होता है परन्तु कथाकली इससे बहुत अधिक प्राचीन है। कथाकली इतनी अधिक विकसित और समुन्नत कला है कि इसका विकास दो या तीन सदियों में होना असंभव है। मंगलोर के श्री जी. वेंकटाचलम् कहते हैं कि यह एक समस्त राष्ट्र का उत्तराधिकार है जो राष्ट्र जितना प्राचीन है।

सबसे प्राचीन कथाकली का साहित्य या रचना कोट्टक्कर के राजा की कही जाती है। इसमें रामायण की कहानी है। इसको पूर्णतया खेलने में ८ रातों का समय अपेक्षित है। इसके पश्चात् कोट्टयम के पज़हसी राजा (उत्तर मालाबार), उन्नयी वैरियर, इरियम्मन तम्पी और अन्य कई प्रसिद्ध कवियों ने कथाकली के नाटक बनाए। कथाकली के नाटक १५० से कुछ अधिक प्राप्त होते हैं। इन नाटकों में दो दर्जन नाटक अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

कथाकली के समस्त पात्र रामायण या महाभारत से लिए गए हैं। इसलिए उनकी वेशभूषा और बनावट (Make up) यथार्थ के आधार पर नहीं हो सकती। उनमें कल्पनात्मक विचारों का कला के लिए प्रयोग करना पड़ता है। पात्र बहुत हैं और विविध प्रकार के हैं इसके लिए परम्पराएँ भी अनेक और विविध हैं। यद्यपि प्रणाली सम्मिश्रित और कृत्रिम है तो भी के विश्लेषण में इसका असर सरलता से होता है इसकी अपील सीधी हृदय तक पहुँचती है।

कथाकली नाट्यकला और नृत्यकला दोनों परन्तु मुख्यतया यह प्रथम है। इसमें मुख्य वस्तु है और वह भी साधारण प्रकार का नहीं बहुत गम्भीर प्रकार का। यह कला कलात्मक है यथार्थ न प्रत्येक भाव को स्पष्टता के साथ चेहरे पर अभि करना पड़ता है जो बोलने से अधिक प्रभावशाली है। चेहरे के इस भाव को नृत्य के ताल और संगीत लय के साथ एकसम करना पड़ता है। इसका प्र सरल, सुन्दर और हृदयस्पर्शी होता है। कथाक नाट्य एकमात्र आन्तरिक भावनाओं का परिदर्शक होता अपि तु वह बाह्य रूप में भी व्यक्तियों, दृश्यों, प्र और अन्य आस पास की वस्तुओं का उपस्थापक होता है। कथाकली का शैलूष या अभिनयकार वस्तु को चित्रित करते हुए अन्दर और बाहर से वस्तु बनने का प्रयत्न करता है। एक मनुष्य जंगल में गुजरते हुए केवल वहाँ के दृश्यों और शब्दों कथाकली में प्रस्तुत नहीं करता अपि तु वह अपनी और अपने कानों के द्वारा प्राप्त समस्त अनुभवों अपनी नाट्यकला के द्वारा मूर्तिमान् कर देता है।

वह शिकार के लिए भटकते भूखे शेर को, सहचर के विरह में कू-कू करती प्रेम-विह्वल कोयल गगनस्पर्शी पर्वतों को और वन की प्रशान्त स्टेज पर प्रदर्शित करता है और इसी चित्रमय मगाहट में और कवितामय औज्वल्य में कथाकली आधारभूत विस्तीर्णता अभिलक्षित होती है। कली में सबसे बड़ी वस्तु इंगितों की भाषा है जिसे कहा जाता है। गायक पीछे से बातचीत के शब्दों संगीत के रूप में उपस्थित करते हैं जिसके ताल अभिनयकार चेहरे के मूक हाव-भाव, इंगित, चित्रीकरण (Figuration) और मुद्राओं के द्वारा व्यक्त करते हैं। अभिनयकार संगीत की लय और के अनुसार नाट्य करते हैं। मुद्राएँ नृत्य और के साथ-साथ चलती हैं। इन मुद्राओं का वर्णन लक्षण-दीपका" में किया गया है। आधारभूत केवल २४ थीं परन्तु कई वर्षों में इनमें से अधिक मुद्राओं को विकसित किया गया है।

मुद्राओं पर एक कोश तैयार किया जा सके तो यह अपने ढंग की एक ही पुस्तक होगी।

कथाकली में संगीत भी एक आवश्यक अंग है। इसमें आर्केस्ट्रा दो गायक बजाते हैं जो छेंगला और मंजीरों के साथ जिन्हें एलाथलम कहते हैं ताल मिलाते हैं। साथ में छेंडा और मड्डलम बजानेवाले रहते हैं। छेंडा एक प्रकार का ढोल होता है और मड्डलम एक का बड़ा मृदंग होता है जो कि दक्षिण भारत में पाया जाता है।"

॥

जापान में संस्कृत का अध्ययन

मद्रास में अंग्रेजी पत्र "हिन्दु" के साप्ताहिक संस्करण में 'जापान में संस्कृत अध्ययन' पर प्रो. हाजिमी नकामुरा का एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"........१८७६ में टोकियो की इम्पीरियल यूनिवर्सिटी में भारतीय और बौद्ध शास्त्रों के अध्ययन का प्रबन्ध किया गया था। दूसरे विश्व-युद्ध के पश्चात् अब इस यूनिवर्सिटी के नाम के आगे से "इम्पीरियल" शब्द हटा दिया गया है। उस समय से जापान की कई यूनिवर्सिटियों और कालेजों में अत्यन्त उत्साह और रुचिपूर्वक भारतीय और बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया जा रहा है। संसार में भारतवर्ष को छोड़ कर अन्य कोई देश नहीं है जहाँ विद्यार्थियों की इतनी अधिक संख्या संस्कृत का अध्ययन करती हो। हजारों विद्यार्थियों को संस्कृत और पाली का आधारभूत ज्ञान है। इन भाषाओं के विषय में जापान में अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जो कि भारतवर्ष, यूरोप और अमरीका में प्रकाशित पुस्तकों से किसी प्रकार न्यून नहीं हैं। दुःख की बात यह है कि भारतीय विद्यार्थी इन पुस्तकों का उपयोग नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें जापानी भाषा का ज्ञान नहीं है। जापानी विद्वानों की पुस्तकों की विशेषता यह है कि वे भारतीय ग्रन्थों की चीनी और तिब्बती संस्करणों के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित हैं।

डा. हाकुजु ची टोकियो और टोहियो विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। वे जापान की अकादमी के सदस्य हैं। गत वर्ष उन्हें उनके सांस्कृतिक कार्यों के लिए सम्मानित किया गया था। दूसरे डा. यूई हैं। उन्होंने मतिचन्द्र के "दशपदार्थ शास्त्र" का अनुवाद किया है जिसे कि १९१७ में लन्दन में रायल एशियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित किया है। यह एक प्राचीन वैशेषिक दर्शक का ग्रन्थ है जिसका कि चीनी संस्करण प्राप्त होता है। इसके पश्चात् उन्होंने अंग्रेज़ी में कुछ लेख लिखे हैं और जापानी भाषा में भारतीय दर्शन पर ४० पुस्तकें लिखी हैं। हाल ही में उन्होंने वसुबन्धु की "विंशतिका" और "त्रिंशतिका" के के विषय में एक पुस्तक प्रकाशित की है। तीसरे डाक्टर नौशिरो त्सूजी हैं। वे १९५२ में जापान की अकादमी के सदस्य चुने गए हैं। उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों और श्रौतशास्त्रों में क्या सम्बन्ध है इस पर एक पुस्तक प्रकाशित की है। उन्होंने १९५० में भगवद्गीता और १९५३ में वेदों और उपनिषदों को प्रकाशित किया है। इसी क्षेत्र में कोयोसन यूनिवर्सिटी के प्रेज़ीडेण्ट गिशो नाकानो ने "मानव-धर्म शास्त्र" और "याज्ञवल्क्य स्मृति" का जापानी अनुवाद प्रकाशित किया है। टिक्काडो यूनिवर्सिटी के प्रो. हिस्सो सवाई उपनिषदों का अध्ययन कर रहे हैं। क्योटो यूनिवर्सिटी के डिकाई मत्सुओ न्यायशास्त्र का अध्ययन कर रहे हैं।

टोहोकु यूनिवर्सिटी की लैटर्स की फ़ैकल्टी के डीन प्रो. येनशो कानकुरा को मध्य भारत की विचारधारा के इतिहास पर अकादमी की ओर से पारितोषिक प्रदान किया गया। कुछ विद्वानों ने बौद्ध धर्म के तिब्बती संस्मरणों का सूचीपत्र प्रकाशित किया है! प्रो. सुंयुमु यमागुचि ने जो कि क्योटो की ओटानी यूनिवर्सिटी के प्रेज़ीडेण्ट हैं कुछ बौद्ध आदर्शों पर एक पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें वसुबन्धु के "विंशतिका" और "त्रिंशतिका" की विनीत देव की टीका का जापानी अनुवाद दिया गया है। इसमें स्थिरमति की टीका का भी जापानी अनुवाद है। इसमें दिङ्नाग की "आलम्बनपरीक्षा" पुस्तक भी है। पुस्तक में तिब्बती पाठ और उसका संस्कृत में अनुवाद भी दिया गया है। यह पुस्तक जापानी विद्वत्ता की उच्चता को प्रदर्शित करती है। उसके शिष्य श्री शोजू इनाबा ने तिब्बती व्याकरण पर एक अच्छी पुस्तक लिखी है। बौद्ध आदर्शवादों पर अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

कोमाजावा यूनिवर्सिटी के प्रो. कोगन मिजुनो ने पाली और बौद्ध धर्म पर कई मूल्यवान् लेख प्रकाशित किए हैं। प्रो. अरीका हिराकवा 'विनय' का गम्भीर अध्ययन कर रहे हैं। क्योटो यूनिवर्सिटी के प्रो. आशिकाग ने

"सुखवति-व्यूह-सूत्र" के कुछ भाग का सम्पादन किया है। इस पुस्तक की अभी एक पांडु-लिपि प्राप्त हुई है।

दो वर्षों से भारतीय और बौद्ध शास्त्रों के विद्वानों का एक राष्ट्रीय असोसिएशन स्थापित हुआ है। अक्टूबर '५१ में टोकियो यूनिवर्सिटी के कैम्पस में (Campus) इसका उद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ। इस असोसिएशन के ६०० सदस्य हैं जिनमें टोकियो यूनिवर्सिटी के प्रो. शोसोन मियोमोटो मुख्य हैं। इस सोसाइटी के निर्माण करने में उनका बड़ा हाथ है। इसका प्रधान कार्यालय टोकियो यूनिवर्सिटी के भारतीय दर्शन के सेमिनार में है। इसकी ओर से नियमपूर्वक एक पत्र प्रकाशित होता है।

गत वर्ष सांस्कृतिक अनुशीलन के लिए एक और संस्था को प्रारंभ किया गया जिसका नाम है ओकूर्यामा इन्स्टीट्यूट। इसमें भारतीय शास्त्रों का अध्ययन किया जाता है। इसके संस्थापक हैं कुनिहिको ओकुरा और इसके वर्तमान अध्यक्ष यसबुरो शिमोनाका हैं। अभी तो इसमें मुख्यतया भारतीय दर्शन का अध्ययन कराया जाता है। अभी इसमें ३६ विद्यार्थी प्रविष्ट किए गए हैं। इनमें २६ विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है।

बहुत-सी यूनिवर्सिटियाँ भारतीय शास्त्र पर वैज्ञानिक पत्र प्रकाशित करती हैं। यद्यपि जापान स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुका है तो भी उसके मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं। विनिमय की कठिनाई के कारण औसतन जापानी विद्यार्थी भारतीय पुस्तकों को आसानी से नहीं खरीद सकता। साधारण लोगों के लिए भारतवर्ष को चेक भेजना और धन का विनिमय असम्भव-सा है। यदि जापानी पुस्तकों के साथ भारतीय पुस्तकों का परिवर्तन किया जा सके तो बड़ी सुविधा हो जाएगी। वैसे भी भारतीय शास्त्र और संस्कृत के जापानी विद्यार्थी को अपने भारतीय सहकारियों से सहायता की आवश्यकता है।"

॥

आज का अमरीका

प्रिन्सिपल एम. एस. दोरास्वामी अभी अमरीका से लौटे हैं। उन्होंने पिछले दिनों हैदराबाद के रोटरी क्लब में अमरीकी लोगों के विषय में एक भाषण दिया। उसमें से कुछ अंश नीचे दिया जाता है:

"...आज का अमरीका फ़ैण्टैस्टिक : अत्यधिक कल्पनात्मक, वेगवान्, फ़ैबुलस : अविश्वसनीय रूप से धनी और आकर्षक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज विश्व में अमरीका सबसे अधिक धनी देश है। इसका यह नहीं है कि वहाँ की सड़कें सोने की बनी हुई हैं, प्रत्येक अमरीकी अमीर है। अमरीका में भी गरीबी है और वहाँ के शहरों में भी गन्दी गलियाँ हैं। अमरीका का जीवन-स्तर आज विश्व में सब देशों से ऊँचा है। यदि उनकी सभ्यता को जीवन के आराम और सुविधाओं से मापा जाए तो उनका स्तर बहुत ऊँचा है। अमरीका में विश्व की ६% जन संख्या निवास करती है। उनमें से ७०% के पास मोटरें हैं; ५८% के पास टेलीफ़ोन हैं; ४५% के पास रेडियो हैं। वहाँ ३४% रेल मार्ग हैं। अमरीका के लोग विश्व की रेशम की उपज में से ५५% रेशम का, ५३% काफ़ी का, ५१% रबर का उपभोग करते हैं। ये विश्व में ६२% तेल, ५३% अनाज ५०% कपास, ३४% कोयला, ३२% ताँबा, ४३% लोहा और ३२% संसार की अन्य वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं। अमरीकी लोगों ने दो सौ साल में इतनी उन्नति की है जितनी कि अन्य देशों ने छः हजार वर्षों में नहीं की। यह सब इसलिए संभव हुआ है क्योंकि अमरीकी लोग बड़ा कठोर परिश्रम करते हैं।

यह सत्य है कि अमरीकी लोग सफलता के उपासक हैं और उनके जीवन का दृष्टिकोण अत्यन्त भौतिकवादी है। पंडित जवाहरलाल नेहरू को अमरीका में कुछ व्यापारियों ने रात के भोजन पर निमंत्रित किया। उन्होंने नेहरू जी से कहा : "प्रधान मन्त्री महोदय, क्या आप जानते हैं कि "इस खाने की टेबल पर कितना धन उपस्थित है? इसमें कम-से-कम २० खरब डालर के धन के व्यक्ति यहाँ उपस्थित हैं।" व्यापारियों के इन शब्दों को सुन कर नेहरू जी को आश्चर्य हुआ। १६१० में जेम्स डब्ल्यू. जेरल्ड ने कहा था कि अमरीका में ६४ व्यक्ति शासन कर रहे हैं। इन में रौकफ़ैलर, मौर्गन और फ़ोर्ड आदि व्यक्ति थे परन्तु इन में अमेरिका के प्रेज़ीडेण्ट का नाम नहीं था। आज रिपब्लिकन पार्टी के शासन के दिनों में यह बात और भी अधिक सत्य है।

यद्यपि अमरीकी भौतिकवादी है तो भी वह बहुत उदार और दानशील है। अमरीका में दानशीलता बहुत अधिक है और अमरीकी लोग बड़ी प्रसन्नता से दान देते हैं। फ़ोर्ड, कार्नेगी और रौकफ़ैलर के दानों से कितने हस्पताल, यूनिवर्सिटियाँ, स्कूल और

कालेज स्थापित किए गए हैं! मेरे हृदय पर अमरीकी मेल-जोल की प्रवृत्ति का गहरा प्रभाव पड़ा। चाहे आप रेल में यात्रा कर रहे हों या किसी रेस्तराँ में हों और या किसी दवाई के स्टोर में हों अमरीकी कभी ऐंग्लो-सैक्सन की तरह अलग-सलग नहीं रहता। वह आप से मिलता है, आप को अपना परिचय देता है और पाँच मिनट में आपको आधे नाम से पुकारने लग जाता है। पन्द्रह मिनटों में आपको बिअर आदि पिलाता है और घर में खाने का निमन्त्रण देता है। और यह मेल-जोल की प्रवृत्ति ऊपरी नहीं होती। वह बड़े प्रेम से आपसे हाथ मिलाता है और उसकी भाषा भी मीठी और शिष्टतापूर्ण होती है।

बहुत से अमरीकी यह अनुभव करते हैं कि सफलता की उपासना करने में अमरीकी लोगों ने कुछ खो दिया है क्योंकि उनका कोई अपना दर्शन नहीं है इसलिए वे अपना दर्शन चाहते हैं; परम्पराएँ न होने के कारण वे अपनी परम्पराओं का निर्माण करना चाहते हैं। वे अपने प्रत्येक कार्य के लिए नैतिक आधार को ढूँढते हैं। वे भारत की पुरानी संस्कृति से सुख और सन्तोष के मूलमन्त्र को जानना चाहते हैं। अमरीकी लोगों को कैंडी, च्यूइंग गम, सचित्र मैगज़ीनों, टेलीविज़न पर निकम्मे ड्रामों, बरफ़ के पानी, आइस क्रीम खाने पर धन व्यय करने का शौक़ है।..."

॥

सूफ़ी किसे कहते हैं ?

'इस्लामिक कल्चर' में श्रीयुत प्रो. मीर वलीउद्दीन का "सूफ़ी मत क्या है ?" लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"सूफ़ी शब्द के अर्थ में विद्वानों में बड़ा मतभेद है कुछ विद्वान् कहते हैं कि सूफ़ी शब्द सफ़ा अर्थात् चित्त और आचरण की पवित्रता से बना है परन्तु यदि सूफ़ी शब्द को सफ़ा से बनाया जाए तो यह शब्द सूफ़ी नहीं सफ़वई बनेगा। अन्य विद्वान् कहते हैं कि सूफ़ी शब्द सफ़: (परमात्मा के सम्मुख जो सबसे उच्च हैं) से बनाया गया है परन्तु यदि सूफ़ी शब्द को सफ़ से बनाया जाए तो शब्द सफ़ी बनेगा सूफ़ी नहीं। कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि सूफ़ी शब्द अहसाब-उल-सफ़ह से बना है वे सूफ़ी इसलिए कहलाते थे क्योंकि उनमें वही विशेषताएँ थीं जो डेस के लोगों (अहसाब-उल-सफ़ा) में थी। वे केवल उतनी और उन्हीं वस्तुओं को रखते थे जो नितान्त आवश्यक होती थीं। वे ग़रीब रहते थे। उनमें से एक से पूछा गया कि सूफ़ी किसे कहते हैं ? उसने उत्तर दिया : "जो न कुछ रखता है और जिससे न कुछ रखा जाता है" इससे उसका यह अर्थ था कि जो वासनाओं का दास नहीं है। दूसरे ने कहा : "सूफ़ी वह है जो कुछ नहीं रखता और यदि कुछ रखता है तो उसे व्यय कर देता है।" परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि सफ़ह से सुफ़ई शब्द बनेगा सूफ़ी नहीं। अन्तिम मत यह है कि यह शब्द सूफ़ अर्थात् ऊन से बना है। सूफ़ी लोग कोमल या सुन्दर कपड़े नहीं पहनते थे। उन्हें किसी प्रकार के कपड़े पहनने का शौक़ नहीं था। वे एकमात्र तन ढाँकने के लिए कपड़ा पहनते थे। यह कपड़ा सख़्त होता था और या तो बालों का बना हुआ होता था और या फिर सिर्फ़ ऊन का होता था। यदि सूफ़ी शब्द को सूफ़ : ऊन से बनाया जाय तो यह शब्द व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध सूफ़ी बनता है। इब्न ख़ल्दून का मत है कि सूफ़ी शब्द सूफ़ : ऊन से बनाया गया है परन्तु इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि एकमात्र खुरदरे बालोंवाले कपड़ों को पहनने से ही कोई सूफ़ी नहीं बन जाता। हजवारी ने कहा है : "सफ़ा : पवित्रता तो भगवान् की कृपा से प्राप्त होती है और 'ऊन' तो यथार्थ में जानवरों की पोशाक है। इमाम कुशैदी के अनुसन्धान के अनुसार सूफ़ी शब्द का प्रयोग ८२२ ई. प. में होने लगा। परमात्मा के लिए ये लोग अलग रहते थे, पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। इनका समय चिन्तन में व्यतीत होता था और उनकी आँखों में सोना और मट्टी समान होते थे। इब्न-अलि-अद् रुदावरी ने सूफ़ी का लक्षण इस प्रकार किया है : "सूफ़ी अपनी पवित्रता के लिए ऊन पहनता है; वह वीतराग होता है; संसार से उसको वैराग्य होता है। वह पैगम्बर की सेवा में अपने आप को अर्पित कर देता है।" शेख़-उल-इस्माल ज़करिया अन्सारी सूफ़ी के विषय में कहते हैं : "सूफ़ी अपने आप को शुद्ध और पवित्र रखता है वह अपने आचरण को शुद्ध बनाता है और अपने अन्तः और बाह्य जीवन का निजात के लिए निर्माण करता है। सूफ़ी मत का तात्पर्य आत्मशुद्धि से है।"

सम्पादकीय

हिन्दी का व्यक्तित्व और स्वरूप

कहा जा रहा है कि हिन्दी का वर्तमान स्वरूप प्रादेशिक है और इसका राष्ट्रीय स्वरूप अब धीरे धीरे बनेगा। वैसे तो कोई भी महान् भाषा ऐसी नहीं हो सकती जिसका कि एक ही स्वरूप हो। भाषा जब बोल-चाल के रूप में होती है उस समय उसके अनेक रूप होते हैं—हाँ साहित्यिक रूप में उसमें एकरूपता का विकास करना पड़ता है। हिन्दी के राष्ट्रीय स्वरूप में एकरूपता तो रखनी ही पड़ेगी क्योंकि यदि उसमें एकरूपता न होगी तो जिस उद्देश्य के लिए समस्त राष्ट्र में एक भाषा की आवश्यकता है वह निरर्थक हो जाएगा। प्रादेशिक रूप में हिन्दी का क्या एक ही स्वरूप है? वहाँ भी जो उसका एक रूप है वह राष्ट्रीय स्वरूप ही है? इस एकस्वरूपता का यह अर्थ नहीं है कि उसमें जीवन का लचकीलापन, परिवर्तन की शक्ति, नए शब्दों, रूपों, मुहावरों और नई शैलियों और अभिव्यंजनाओं को ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं होनी चाहिए। भारतवर्ष जैसे महान् देश में हिन्दी भाषा और उसके साहित्य की शैलियों पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों के भिन्न-भिन्न स्वास्थ्यकर प्रभाव पड़ने आवश्यक हैं, उनसे भाषा में विस्तृति और विविधता उत्पन्न होगी। जिस समय भारतवर्ष में संस्कृत का प्रचलन था और समस्त प्रान्तों में संस्कृत में साहित्य की रचना होती थी, उस समय उसमें लिखने की ऐसी रीतियों और शैलियों का विकास हुआ था जो कि आधार रूप में प्रान्तीय थीं। संस्कृत के अलंकार शास्त्रों में इन रीतियों को प्रादेशिक नाम दिए गए हैं। एक रीति वैदर्भी है तो दूसरी लाटी। तीसरी गौडी है तो चौथी पांचाली परन्तु शैलियों की इन प्रादेशिक विभिन्नताओं के होते हुए भी उससें संस्कृत भाषा की एकस्वरूपता में कोई विभिन्नता उत्पन्न नहीं हुई। इसी प्रकार हिन्दी जब समस्त भारत में समस्त प्रदेशों की साहित्यिक भाषा बन जाएगी उस समय उसमें मुहावरों, रीतियों और शब्दों की विभिन्नताएँ अपने प्रदेशों की अवस्थाओं और प्रवृत्तियों के अनुसार अवश्य आएँगी परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उससे हिन्दी के वर्तमान स्वरूप में मौलिक भिन्नता आ जाएगी या उसमें आज की एकरूपता नहीं रहेगी। हिन्दी में यदि हम इस आधारभूत एकरूपता की रक्षा नहीं कर सके तो फिर हिन्दी अपने व्यक्तित्व को ही खो बैठेगी। भाषा का भी अपना व्यक्तित्व होता है जिसके नष्ट हो जाने से भाषा का अस्तित्व ही नहीं रहता। परिवर्तन और नवीनता को ग्रहण करने की शक्ति की इसीलिए आवश्यकता है कि भाषा के व्यक्तित्व का विकास हो सके। जो लोग यह समझ रहे हैं कि हिन्दी का राष्ट्रीय स्वरूप हिन्दी के प्रादेशिक स्वरूप से आधारतः भिन्न होगा वे हिन्दी के व्यक्तित्व को अनुभव नहीं करते। हिन्दी के जिस स्वरूप को प्रादेशिक कहा जा रहा है वह वास्तव में प्रादेशिक नहीं है क्योंकि हिन्दी के प्रादेशिक रूप इससे सर्वथा भिन्न हैं—यह तो उसका राष्ट्रीय स्वरूप है जो कि हिन्दी प्रान्तों में एकरूपता प्राप्त कर चुका है। इसके इस राष्ट्रीय स्वरूप को प्रादेशिक कहना न केवल अनुचित है अपि तु भ्रामक भी है। इससे बहुत-सी भ्रान्तियों और निरर्थक वाद-विवादों की आशंका है। हम इस बात को पुनः स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम हिन्दी पर सब प्रकार के स्वास्थ्यकर प्रभावों के पक्षपाती हैं चाहे वे भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के हों और चाहे वे विदेशी हों परन्तु इन प्रभावों को आत्मसात् करने का यह तात्पर्य नहीं हो सकता कि उनके द्वारा हिन्दी के व्यक्तित्व का विकास न होकर उसके अस्तित्व को क्षति पहुँचे। जो लोग संविधान का सहारा लेकर हिन्दी के राष्ट्रभाषा के स्वरूप को विकसित करने का यह अर्थ लगा रहे हैं कि हिन्दी का राष्ट्रभाषा का स्वरूप वर्तमान हिन्दी से मूलतः भिन्न होगा और वर्तमान हिन्दी का स्वरूप राष्ट्रीय नहीं है उनका चिन्तन हमारी सम्मति में ठीक दिशा में नहीं है। इस प्रकार की भ्रान्तियों का निराकरण किया जाना आवश्यक है।

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ

हमने 'अजन्ता' के इसी अंक में "सामयिक" के स्तम्भों में "अमरीका में नीग्रो पत्र-पत्रिकाएँ" लेख का कुछ अंश दिया है। जिन नीग्रो लोगों को प्रत्येक दृष्टि से पिछड़ा हुआ समझा जाता है उनमें पत्र-पत्रिकाओं की बिक्री की संख्या को पढ़ कर आश्चर्य होता है। अमरीका में नीग्रो की जन संख्या "एक करोड़ पचास लाख" है। नीग्रो लोगों की अमरीका में "लगभग २८० पत्र-पत्रिकाएँ हैं।" इनमें से साप्ताहिक पत्र "तीस लाख" तक

१९५४

बिकते हैं। 'एबोनी' मासिक पत्र की बिक्री "तीन लाख बीस हज़ार है।" नीग्रो मासिक "नीग्रो डाइजेस्ट का प्रकाशन १९५२ में प्रारम्भ किया गया। इसकी बिक्री एक लाख की है।" इस पत्रिका में श्रीमती रूज़वेल्ट और अन्य संभ्रान्त अमरीकियों ने एक लेखमाला प्रकाशित की थी जिसका शीर्षक था "यदि हम नीग्रो होते।" अमरीका में नीग्रो लोगों में पत्र-पत्रिकाओं की बिक्री की संख्या कितनी अधिक है! हम जब हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की उनसे तुलना करते हैं तो हमें यह देख कर अत्यन्त दुःख होता है कि साक्षरता में और अपने नवीन साहित्य के अध्ययन में नीग्रो-जनता हमारे देश से बहुत आगे है। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की यद्यपि रूप-रंग, छपाई-सफ़ाई और लेख आदि की दृष्टि से पर्याप्त उन्नति हुई है तो भी उनकी बिक्री बहुत कम है। यदि इन पत्र-पत्रिकाओं की बिक्री अच्छी होती तो वे लेखों और रूप-रंग आदि में और भी अधिक उन्नति कर सकतीं। हिन्दी में अब दैनिक पत्रों की बिक्री बढ़ती जा रही है क्योंकि उनके द्वारा समाचार प्राप्त होते हैं। साप्ताहिक पत्र या मासिक पत्रों की बिक्री से इस बात का पता चलता है कि विचारशील साहित्य की देश में कितनी माँग है। हम समझते हैं कि हिन्दी की अधिकांश पत्रिकाएँ घाटे में चल रही हैं और जो पत्रिका जितने उच्च साहित्य को प्रस्तुत करती है वह उतने ही अधिक घाटे में चल रही है। क्या इसका एकमात्र कारण हमारी आर्थिक दुरवस्था ही है? हमारे देश में जिन लोगों के पास धन है वे साक्षर होने पर भी चिन्तनशील साहित्य पर व्यय नहीं करते। कुछ इसका यह भी कारण है कि हमारे देश की पठित जनता अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं पर जितना व्यय करती है उतना अपने देश की भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं पर नहीं। पठित जनता में यह कुछ विश्वास-सा बैठा हुआ है कि जितना भी मौलिक, सारवान् और नवीन चिन्तन होता है वह अंग्रेज़ी में ही और हमारी पत्र-पत्रिकाओं में तो प्रायः भरती का ही साहित्य रहता है। कुछ सीमा तक यह सत्य भी है। हमारे देश में जहाँ 'शिक्षा' का अर्थ ही "अंग्रेज़ी का ज्ञान" है और जहाँ उन्नत पद अंग्रेज़ी के ज्ञान के आधार पर ही प्राप्त हो सकते हैं—वहाँ हमारी भाषा की पत्र-पत्रिकाओं की यह अवस्था होना स्वाभाविक है। हमारे देश में यदि कोई लेखक अंग्रेज़ी और अपनी भाषा दोनों में लिख सकता है तो वह अंग्रेज़ी में ही लिखने में अपना विशेष गौरव समझता है। यह सही है कि अब अवस्थाओं में परिवर्तन हुआ है परन्तु अभी यह परिवर्तन कुछ विशेष नहीं हुआ है। कुछ इसका यह भी कारण है कि अंग्रेज़ी की पत्र-पत्रिकाओं का साहित्य जितनी सुगमता से प्राप्त हो जाता है उतना हिन्दी का मासिक साहित्य प्राप्त नहीं होता। रेलवे स्टेशनों पर अभी तक ह्वीलर एण्ड कम्पनी और हिगनबोथम कम्पनी आदि का राज्य है। वे अपने स्टालों पर अधिकतर अंग्रेज़ी के साहित्य को बेचते हैं। वे हिन्दी के उसी साहित्य की बिक्री करते हैं जो दाम और विषय दोनों में सस्ता है। उन्हें हिन्दी के अच्छे साहित्य की बिक्री करने में किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं है। रेलवे स्टेशन एक ऐसा स्थान है जहाँ जनता का यातायात रहता है इसलिए रेलवे के अधिकारियों को ऐसी कम्पनियों को ही ठेका देना चाहिए जो केवल अपने धनार्जन करने में ही दिलचस्पी लेनेवाले न हों परन्तु हिन्दी और प्रदेशीय भाषाओं के सुन्दर साहित्य के प्रेमी भी हों। हिन्दी की सुन्दर मासिक पत्र-पत्रिकाओं की बिक्री में इनका बहुत बड़ा हाथ हो सकता है। ह्वीलर और हिगनबोथम जैसी कम्पनियों को हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं और अच्छे साहित्य को बेचने में क्या दिलचस्पी हो सकती है? रेलवे के अधिकारियों को स्टाल का ठेका देते हुए इसी बात पर एकमात्र दृष्टि नहीं रखनी चाहिए कि जो ठेके में सबसे अधिक बिड लगाएँ उन्हें पुस्तकों के स्टाल का ठेका दे दें। उन्हें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ये स्टालवाले जनता तक अपनी भाषाओं के सुन्दर साहित्य को पहुँचानेवाले भी हों। जब तक हमारी पत्र-पत्रिकाओं की पठित जनता तक सुगमता से पहुँच नहीं होती तब तक हमारी पत्र-पत्रिकाओं और विचारशील साहित्य की बिक्री नहीं बढ़ सकती। अच्छे साहित्य को पठित जनता तक पहुँचाने में पुस्तक विक्रेता बहुत कार्य कर सकते हैं और जब तक पुस्तक विक्रेताओं का इस कार्य में संगठित सहयोग प्राप्त नहीं होता तब तक पत्र-पत्रिकाओं की बिक्री की अवस्था में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हो सकता।

हिन्दी में टेलीप्रिण्टर (दूर मुद्रक)

हिन्दी के प्रेमियों को यह समाचार जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि हिन्दी में दिल्ली और पटना के बीच

में टेलीप्रिण्टर (दूर मुद्रक) चालू हो गया है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि अंग्रेज़ी पर समाचार आदि प्राप्त करने में जो हमारी पराश्रितता थी वह बहुत कुछ दूर हो जाएगी। अभी तक यह असंभव था कि हिन्दी में रिपोर्ट और भाषणों को मौलिक रूप से पहुँचाया जा सके। अनुवादों में एक तो समय बहुत-सा व्यतीत हो जाता है—दूसरा उसका कोई निश्चित और प्रमाणित रूप नहीं हो सकता। अब हिन्दी में भाषण आदि अपने मौलिक और प्रामाणिक रूप में प्रकाशित हो सकेंगे। अनुवाद के कारण भाषण आदि के रिपोर्ट करने में जो अशुद्धियां होतीं थीं वे अब न होंगी। अभी तक टेलीप्रिण्टरों के बोर्ड रोमन वर्णमाला में होने के कारण और नागरी लिपि में वर्णों की संख्या के अधिक होने से नागरी लिपि में टेलीप्रिण्टर के बोर्ड का बनना कठिन था। दूसरा इसकी गति भी इतनी तेज़ नहीं थी। दोनों समस्याओं को कुछ सीमा तक हल कर लिया गया है और अब इन टेलीप्रिण्टरों का परीक्षण प्रारम्भ हो गया है। आशा है कि इन परीक्षणों के परिणामस्वरूप नागरी के टेलीप्रिण्टरों में और भी जो त्रुटियां होंगी वे भी धीरे धीरे दूर हो जाएँगी और टेलीप्रिण्टर इतनी अधिक संख्या में बनाए जाएंगे कि हिन्दी की पत्रिकारिता में एक नए युग का अभ्युदय होगा। मशीन-युग में अंग्रेज़ी के प्रचार और स्थिर रखने में टाइपराइटर और टेलीप्रिण्टर आदि इन मशीनों का बहुत बड़ा हाथ है और इसीलिए हिन्दी के प्रेमी बहुत समय से प्रयत्नशील थे कि हिन्दी में टेलीप्रिण्टर बन जाए। इन टेलीप्रिण्टरों के बन जाने के कारण आशा है कि बहुत-से विचारकों के विचारों में भी जो नागरी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि को ग्रहण करना चाहते हैं—परिवर्तन होगा। इन टेलिप्रिण्टरों से न केवल हमारे पत्र-जगत् में क्रान्ति होगी अपि तु इसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों भी गहरा और व्यापक होगा।

केरल में हिन्दी का प्रचार

नागपुर के साप्ताहिक पत्र "सारथि" में अपनी दक्षिण-यात्रा का वर्णन करते हुए नागपुर के हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक और विद्वान् श्री विनयमोहन शर्मा ने अपने लेख "दक्षिण भारत की एक झलक" में लिखा है: "केरल में हिन्दी का इतना अधिक प्रचार है कि गाँव गाँव में हिन्दी बोलने और समझनेवाले स्त्री-पुरुष मिल जाते हैं। केरल में शिक्षित परिवार में जहाँ कन्या को संगीत, चित्रकारी और नृत्य आदि की शिक्षा दी जाती है वहाँ अब हिन्दी भी पढ़ाई जाती है। जिस हिन्दी सीखे वह पूरी संस्कारी (Fully cultured and modern girl) लड़की समझी ही नहीं जाती। विवाह के समय पिता अपने भावी दामाद या समधी से कहता है: "संगीत, चित्रकला आदि के अतिरिक्त मेरी कन्या हिन्दी जानती है।" (Besides music, painting etc. my daughter knows Hindi as well) त्रावणकोर विश्वविद्यालय में प्रति वर्ष इंटरमीडिएट में लगभग ६ हज़ार लड़के-लड़कियाँ हिन्दी लेकर परीक्षा में बैठते हैं।" प्रायः यह कहा जाता है कि दक्षिण में हिन्दी का बहुत विरोध है और यह सत्य भी है परन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि दक्षिण में शनैः शनैः हिन्दी का प्रचार बढ़ता जा रहा है और हिन्दी के अध्ययन के प्रति रुचि बढ़ती जा रही है। यह रुचि विशेष कर महिलाओं में दृष्टिगोचर होती है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि दक्षिण की महिलाओं में हिन्दी के प्रति उत्साह प्रेम और रुचि की इसी प्रकार वृद्धि होती जाएगी तो दक्षिण में हिन्दी का विरोध स्वयं समाप्त हो जाएगा और उन्हें हिन्दी से वैसा ही प्रेम होगा जैसा कि उन्हें अपनी मातृभाषा के साथ प्रेम है।

शोक-प्रकाश

पिछले दिनों हिन्दी के सुयोग्य लेखक और कवि श्री डा० सुधीन्द्र का निधन समाचार पढ़ कर चित्त को बहुत दुःख हुआ। हिन्दी की कोई भी ऐसी प्रतिष्ठित साहित्यिक प्रत्रिका नहीं थी जिसमें उनकी कविताएँ आदि प्रकाशित न होती हों। उनकी मौलिक और अनुवादित कविताएं दोनों सुन्दर थीं। 'अजन्ता' में हमें उनकी कृतियों को प्रकाशित करने में विशेष प्रसन्नता होती थी। हम डा० सुधीन्द्र के परिवार से अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं। हिन्दी को उनसे बहुत आशाएँ थीं।

डा० सुधीन्द्र की मृत्यु का समाचार अभी ताज़ा ही था कि श्री वृन्दावन बिहारी मिश्र की दुःखद मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ। आप 'कल्पना' के संपादकों में से एक थे। इससे पूर्व आप साप्ताहिक 'नागरिक' के सम्पादक थे। हैदराबाद में हिन्दी के साहित्यिक कार्यों में उनका बड़ा सहयोग था। आपके असामयिक निधन से हैदराबाद के हिन्दी-जगत्-की बड़ी क्षति हुई है।

हर प्रकार के काग़ज़ के श्रेष्ठ निर्माता

رجسٹرڈ ٹریڈ مارک

SIRPUR

REGISTERED. TRADE MARK

सिरपुर पेपर मिल्स लिमिटेड

सिरपुर काग़ज़ नगर (सेण्ट्रल रेल्वे) हैदराबाद-दक्षिण

मैनेजिंग एजेण्टस : **मेसर्स बिरला ब्रदर्स लि॰** ८, रायल एक्स्चेंज प्लेस,
कलकत्ता

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

Telephone : 4610 [Estd. MARCH 1915] Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :
UNIVERSITY BRANCH
(ADIKMET)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMANI,
HYDERABAD-DECCAN.

Branch Office :
THUNGABHADRA PROJECT
(MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
MANAGING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT.

हिन्दी के उत्तमोत्तम

तथा उच्च

श्रेणी

के

साहित्य

की

प्राप्ति के लिए एकमात्र

स्थान

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

नामपल्ली रोड : हैदराबाद द.

तार "हि

टेलिफोन नं. ५४५०

***

प्रकाशक :— प्रियबन्धु, हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-द.

अजन्ता

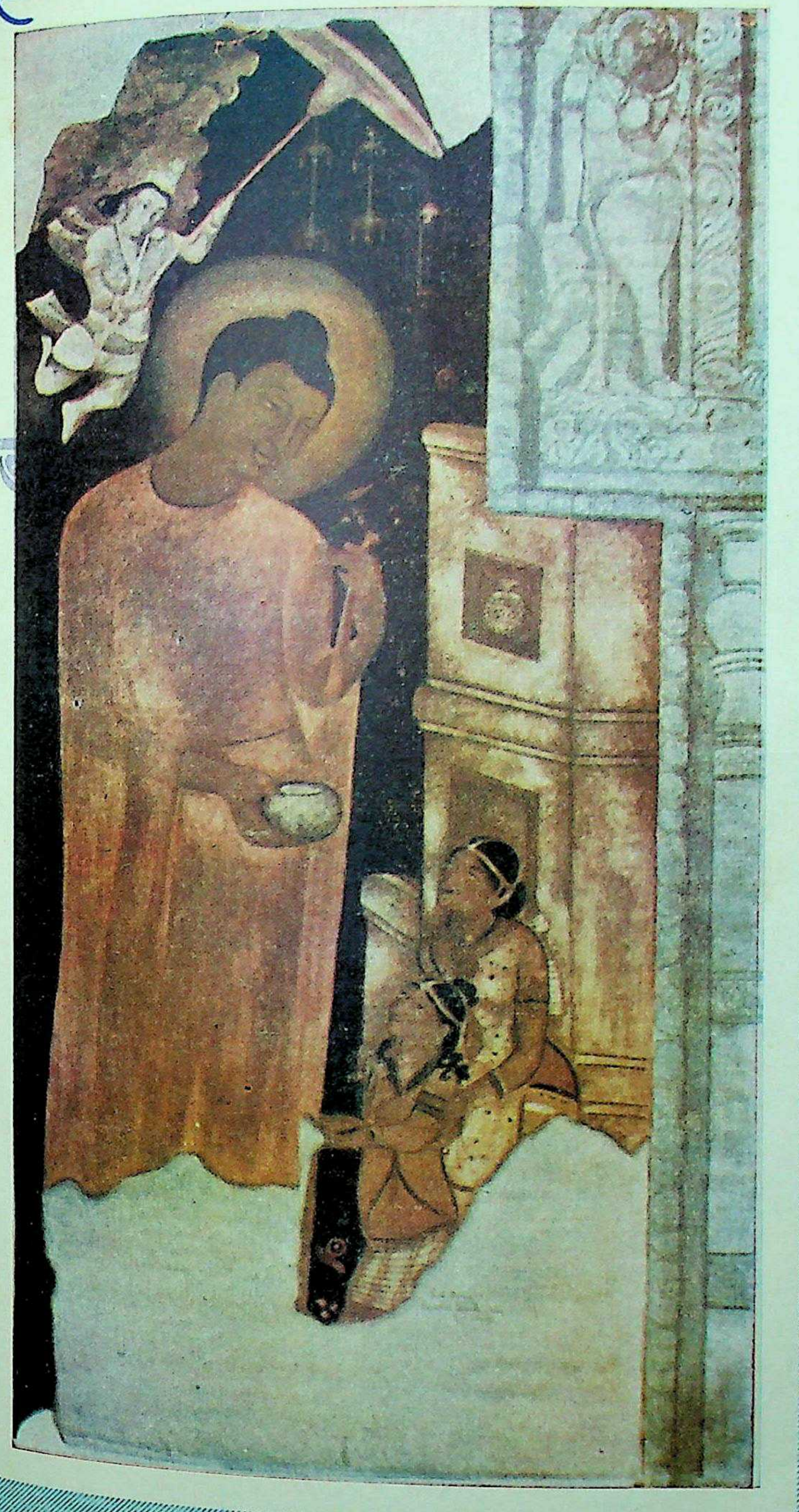

वर्ष ६

अगस्त [illegible] अंक ८

हिन्दी प्रचार सभा के
कुछ प्रकाशन

●

१	**तुलसीदास** *(नाटक)* : ले० श्री श्रीराम शर्मा	,,	१	२ ०
२	**दक्खिनी का पद्य और गद्य** : श्री पं० श्रीराम जी शर्मा	,,	१०	८ ०
३	**चाबुक** *(कहानी-संग्रह)* : ले० श्री पं० विनायकराव जी कोरटकर विद्यालंकार	,,	१	१२ ०
४	**विभूतियाँ** *(जीवन चरित्र)* : ले० श्री राजकिशोर पाण्डेय	,,	०	१२ ०
५	**हिन्दी रचना और निबन्ध** : ,,	,,	१	८ ०
६	**पञ्चामृत** (तेलुगु) : (*प्रेस में*) ले० श्री बालशौरि रेड्डी			

हैदराबाद आल्विन मेटल वर्क्स

लिमिटेड

सनतनगर, हैदराबाद-द. १८

सर्वोत्तम स्टील फ़र्निचर के निर्माता

हर प्रकार का फ़र्निचर

मकान, दफ़्तर, दूकान और अस्पतालों के लिए

ख़रीदिए !

राष्ट्र की सुन्दरतम और मज़बूत बसों के निर्माता

HACA

THE HYDERABAD

AGRICULTURAL CO-OPERATIVE
ASSOCIATION, Ltd.

DISTRIBUTES

Steel and Cement

for Agricultural Purposes at about
130 Centres in the State.

⁂

Supplies and Erects and Services
Oil-Engines, Pumps, Pipes and
Accessories.

⁂

Supplies Fertilizers, Tractor Ploughing,
Implements and other needs of
Agriculturists.

सुन्दर, सस्ती, ऐतिहासिक और गृह

उद्योग धंधे की पुस्तकें

सिलाई कटाई शिक्षा	३)	हिमालय यात्रा	२।)	चित्रकारी शिक्षा
एलेक्ट्रिक गाइड	३)	मीनाकारी शिक्षा	३)	मोटर मेकेनिक टीचर
एलेक्ट्रिक वायरिंग	३)	ढलाई का काम	४)	चित्रकारी पेंटिंग शिक्षा
साइकिल (मरम्मत)	३)	मोटर ड्राइविंग टीचर	४)	इलाज मुफ़्ती
रोग चिकित्सा	२॥)	घड़ीसाजी (मरम्मत)	३)	बाल रोग चिकित्सा
स्त्री रोग चिकित्सा	१॥)	पुरुष रोग चिकित्सा	२)	क्रीम पाउडर बनाना
दस्तकारी (रबर)	२)	गुप्त रोग चिकित्सा	१)	व्यौपार दर्पण
घर का वैद्य	१॥)	धनवान बनने के गुप्त रहस्य	३)	इच्छा स्तंभन के अनुभूत उपाय
पति पत्नी	१)	स्वास्थ्य और संभोग	१॥)	पेटेन्ट दवाओं के नुस्खे
पाक प्रवेशिका	१)	चिकित्सामय कामशास्त्र	१॥)	रेखा विज्ञान
इन्द्रजाल मोहिनी विद्या	२॥)	अभिनेत्री जीवन	१)	भारत माता का सन्देश
महाराणा प्रताप सचित्र	॥)	फिल्मी जलतरंग	१)	वीर शिवाजी सचित्र
झाँसी की महारानी	॥)	मानव धर्म प्रचारक	४)	डॉ० हेडगेवार सचित्र
जन्म भूमि सजिल्द सचित्र	१॥।)	गुरु गोलवालकर	॥)	हारमोनियम तबला गाइड
जादूगरों का उस्ताद	३)	हिन्दी इंगलिश टीचर	३)	मिस्मीरेजम (मोहिनी विद्या)
योग आसन	१)	१४ भाषा घर बैठे सीखो	२॥)	ताश के जादू
वशीकरण विद्या	२)	दुनियां की सैर	२)	साबुन शिक्षा
फिल्मी बाँसुरी पीतल की ट्यूब्ड की		स्वास्थ्य शिक्षा	२॥)	बाँसुरी शिक्षक
हुई मूल्य	३)	फिल्मी तितलियां	१॥)	आसाम बंगाल का जादू
स्टूडियो की कहानियाँ	१॥(	सौन्दर्य श्रृंगार	२॥)	घरेलू विज्ञान
फिल्मी परियां सचित्र रंगीन	२॥)	अकबर बीरबल विनोद	२॥)	श्री वाल्मीकि रामायण

प्रत्येक पुस्तक पर डाक व्यय ॥) आने अलग लेकिन ५) रु० से अधिक की पुस्तकें पेशगी एडवान्स भे कर मंगाने पर डाक व्यय हम देंगे। १०) रु० से अधिक की पुस्तकें मंगाने पर १२½ प्रतिशत कमीशन दिया जाएगा।

चित्रगुप्त कला-प्रकाशन (A. H.), मण्डी रामदास, मथुरा सिटी

FIRE!

ACCIDENT!

MARINE!

**The Hyderabad
United Insurance Company**

(*LIMITED*)

Sponsored by

THE GOVT. OF HYDERABAD.

**Post Box No. 164.
ABID ROAD, HYDERABAD-Dn.**

Telegram: ***HUICOL***

Telephone: ***5579***

Chairman
L. N. GUPTA Esqr. I. A. S.

General Manager
H. D. MEHTA Esqr.

Branches :

BOMBAY, CALCUTTA, MADRAS, NIZAMABAD & MANCHIRIAL.

'HIND'

सुन्दर, सस्ती, ऐतिहासिक और गृह-उद्योग-धंधे की पुस्त

सिलाई कटाई शिक्षा	३)
मीनाकारी शिक्षा	३)
इलेक्ट्रिक गाइड	३)
इलेक्ट्रिक वायरिंग	३)
रेडियो गाइड	३)
मोटर मेकेनिक टीचर	३)
मोटर ड्राइविंग टीचर	४)
चित्रकारी पेंटिंग शिक्षा	३)
घड़ीसाजी (मरम्मत)	३)
साइकिल (मरम्मत)	३)
धनवान बनने के गुप्त रहस्य	३)
व्योपार दर्पण	॥।)
स्वास्थ्य और सम्भोग	१॥)
घर का वैद्य	२॥)
इच्छा स्तम्भन के अनुभूत उपाय	१)
चिकित्सामय कामशास्त्र	१॥)
पेटेन्ट दवाओं के नुस्खे	॥)
पति-पत्नी	१)
पाक प्रवेशिका	१)
अभिनेत्री-जीवन	१)
रेखा विज्ञान (छोटा)	॥)
रेखा विज्ञान (बड़ा)	२॥)
फिल्मी जलतरंग	१)
इन्द्रजाल (मोहिनी विद्या)	२॥)
नवरस चित्रावली	१॥)
हिन्दु पद पादशाही	
मानव धर्म प्रचारक	
भारत माता का संदेश	
महाराणा प्रताप (सचित्र)	
वीर शिवाजी (सचित्र)	
झांसी की महारानी (सचित्र)	
गुरु गोलवालकर (सचित्र)	
डा० हेडगेवार (सचित्र)	
जन्मभूमि (सजिल्द सचित्र)	
हिन्दी इङ्गलिश टीचर	
हारमोनियम तबला गाइड	
१४ भाषा (घर बैठे सीखें)	

प्रत्येक पुस्तक पर डाक खर्च ॥।), लेकिन ५) रु० से अधिक की पुस्तकें पेशगी (ऐडवान्स) भेज कर मँगाने का डाक-व्यय हम देंगे। १०) से अधिक की पुस्तकें ऐडवान्स द्वारा मँगाये जाने पर साढ़े बारह प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

प्रेम विज्ञान मन्दिर (A. H.), सराय बाला, अलीगढ़ सिटी

हमारे सुविख्यात प्रकाशन

स्वामी विवेकानन्दजी की सुप्रसिद्ध पुस्तकें

भारत में विवेकानन्द : जैकेट सहित, सचित्र ५) “आज की परिस्थिति के उपयुक्त राष्ट्र-निर्माण संबन्धी वैध एवं ठोस विचारों से भरे, स्वामी जी द्वारा भारत में दिए गए भावयुक्त स्फूर्तिप्रद भाषण ”

विवेकानन्द जी के संग में : आकर्षक जैकेट सहित ५।) “स्वामी जी के आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, कला-विषयक तथा भक्ति संबन्धी संभाषणों का रोचक, महान् शिक्षाप्रद तथा पथ प्रदर्शक संग्रह।”

पत्रावली : दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २=) “स्वामी जी के शक्ति सम्पन्न पत्रों का सङ्कलन।”

देववाणी : सचित्र, २=) “अमृततुल्य, आध्यात्मिक अन्तः प्रेरणा से भरे उपदेश।” शक्तिदाई विचार ॥=); भारतीय नारी ॥।); व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १=); मेरे गुरुदेव ॥=); विवेकानन्द जी की कथाएँ १।); कवितावली ॥=)

धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : दो भागों में, सजिल्द, आकर्षक जैकेट सहित, प्रत्येक का २॥) “धर्म-जीवन की उलझनों का सरस भाषा में सूक्ष्म विवेचन करते हुए उनके परिहार का मार्ग दर्शाया है।”

विवेकानन्द-चरित : हिन्दी में स्वामी जी की मात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकट ६)

श्री रामकृष्ण लीलामृत : विस्तृत जीवनी, दो भागों में, महात्मा गांधी की भूमिका सहित, प्रत्येक का

श्रीरामकृष्ण वचनामृत : तीन भागों में, संसार की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित, सजिल्द, प्र. भा. ६); द्वि. भा. ६); तृ. भा. ७)

गीतातत्व : स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु स्वामी शारदानन्द कृत, सुन्दर जैकेट सहित, २।=)

स्वामीजी की अन्यान्य लोकप्रिय पुस्तकें

ज्ञान योग३); भक्तियोग १।=); राजयोग ॥); कर्मयोग १॥=); प्रेम योग १।=); सरल राजयोग ॥); आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १।); हिन्दू धर्म १॥); धर्म रहस्य १); धर्म विज्ञान १॥=); हिन्दू धर्म के पक्ष में ॥=); शिकागो वक्तृता ॥=); मरणोत्तर जीवन ॥); स्वाधीन भारत जय हो १=); प्राच्य और पाश्चात्य १।); वर्तमान भारत

नए प्रकाशन : जाति, संस्कृति और समाजवाद १); चिन्तनीय बातें १); विविध प्रसङ्ग १=)

विस्तृत सूची पत्र के लिए लिखिए : श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली (अ) नागपुर—१ (म० प्र०)

Phone. No. 5574

Grams : 'TILISMATH'

ZINDA TILISMATH!

TRADE MARK : "TAJ"

A SURE TREATMENT FOR :—

Headache, Tooth-ache, Stomachache,
Cholera, Malaria, Dysentry,
Plague, Cough, Cold, Coryza

SCORPIAN BITES & ALL SORTS OF BODILY PAINS.

A BOTTLE WITH YOU MEANS

A DOCTOR ALWAYS WITH YOU.

Registered No. 577. C. D. L. No. 1683.

Sold Everywhere or Can Be Had From :

KARKHANA ZINDA TILISMATH

P. O. ZINDA TILISMATH, HYDERABAD.

आपके कपड़ों की सुरक्षा
के लिए
सुन्दरतम बनियनों
एवं
मज़बूत मोजों
के निर्माता

दी
हैदराबाद फाइन होजरी
लिमिटेड
इण्डस्ट्रियल एरिया
आज़माबाद-हैदराबाद-दक्षिण.

हम प्रस्तुत करते हैं अगस्त '५४ में
देशबन्धु
का
❁ कहानी-विशेषांक ❁

सम्पादक :
अवन्तिका के तरुण-तपस्वी प्रौढ़-कलाकार
श्री महेशशरण जौहरी 'ललित'

पृष्ठ संख्या १२८ ★ आकार डिमाई
रंगीन छपाई आकर्षक मुखपृष्ठ

मूल्य छः आने मात्र

देश के अनेक प्रतिष्ठित-अलबेले, मस्त कहानीकारों
की
कहानियों का संग्रह ।

* विज्ञापनदाता अपने विज्ञापन अविलम्ब ही भेजें !
* विक्रेता अपनी प्रतियाँ पेशगी रकम सहित आज ही सुरक्षित करा लें !

प्रकाशक : 'देशबन्धु' कार्यालय, मथुरा

'आर्थिक समीक्षा'

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के आर्थिक, राजनीतिक
अनुसंधान विभाग का पाक्षिक पत्र।

प्रधान सम्पादक : श्री आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल

सम्पादक : श्री हर्षदेव मालवीय

हिन्दी में अनूठा प्रयास :

आर्थिक विषयों पर विचारपूर्ण लेख
आर्थिक सूचनाओं से ओतप्रोत

भारत के विकास में रुचि रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए
अत्यावश्यक तथा पुस्तकालयों के लिए
अनिवार्य रूप से आवश्यक।

वार्षिक चन्दा : ५ रुपए * एक प्रति का ३॥ आना

व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग
अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी
७, जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली.

कथा साहित्य में चरित्र चित्रण
का
महत्वपूर्ण प्रयोग

'मेघदूत' के महत्वपूर्ण प्रकाशन के बाद

प्रेरणा का छठा-सातवाँ अंक

'प्रेमचन्द के पात्र'
विशेषांक है

* इस अंक में प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों के सभी महत्वपूर्ण पात्रों पर अधिकार पूर्ण लेख हैं।
* विशेषांक का मूल्य लगभग ४) है।
* प्रेरणा के स्थाई ग्राहकों के लिए वही मूल्य।

शीघ्र ही वार्षिक ग्राहक बन कर
इस सुविधा का लाभ उठाएँ।
आर्डर 'प्रेरणा' के पते से भेजिये।

प्रेरणा : सोजतीगेट, जोधपुर.

कल्पना

पढ़िए

जिसमें उच्चकोटि के साहित्यिकों और
कलाकारों की रचनाएँ आपको मिलेंगी।

कला-प्रसंग : विनोदबिहारी मुखर्जी

सांस्कृतिक टिप्पणियाँ : दिनकर कौशिक

साहित्यधारा : इस स्तंभ के अन्तर्गत पाठकों, लेखकों आदि द्वारा उठाए गए साहित्यिक प्रश्न आदि हैं।

पुस्तक समालोचना : "कल्पना" अपनी निर्भीक समीक्षा के लिए प्रसिद्ध है।

वार्षिक मूल्य १२) ❀ एक प्रति का १)

पृष्ठ संख्या ८०

८३१, बेगम बाज़ार हैदराबाद

सस्ता, सरल, आकर्षक और शिक्षाप्रद
राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्व

नया पथ
सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

* कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।
* हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।
* देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं: मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)-छमाही ३)-एक प्रति ८ आना

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

टेलीफोन नं. २५८७

वार्षिक मूल्य ८ रु.

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ-शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम, राष्ट्र-निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए **'सम्पदा'** सबसे उपयोगी पत्र है।

'सम्पदा' के **योजना अंक** में पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा है **वस्त्र उद्योग अंक** मूल्य १।) रु.

अभी से ग्राहक बनिए।

नमूने के लिए ।।।) आने के टिकट भेजिए।

मैनेजर **'सम्पदा'** अशोक प्रकाशन मन्दिर
रोशन-आरा रोड—दिल्ली

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

—: विश्व-ज्योति :—

सम्पादक :
श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी. ए.
संचालक : **श्री विश्वेश्वरानन्द**

विश्व हित की साधना के लिए :

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय
(ग) बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा : ८ रुपए

१०) रु. वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ़्त।

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, 'विश्व-ज्योति'
साधु आश्रम, होशयारपुर (पंजाब)

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र

卐

दर्शन और मनोविज्ञान की
आधुनिक प्रवृत्तियों पर
प्रकाश डालनेवाला
हिन्दी में अपने ढङ्ग का
अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ सिद्धगिरि, बनारस

जीवन साहित्य

हिन्दी के उन मासिक पत्रों में से है जो

१. लोक रुचि को नीचे नहीं, ऊपर ले जाते हैं,
२. मानव को मानव से लड़ाते नहीं, मिलाते हैं,
३. सच्ची और स्थायी शान्ति को असंभव नहीं, संभव बनाते हैं,
४. आर्थिक लाभ के आगे झुकते नहीं, सेवा के कठोर पथ पर चलते हैं,

जीवन साहित्य की सात्विक सामग्री को छोटे बड़े, स्त्री-बच्चे सब निःसंकोच पढ़ सकते हैं। उसके विशेषांक तो एक से एक बढ़ कर होते हैं।

जीवन साहित्य विज्ञापन नहीं देता। केवल ग्राहकों के भरोसे चलता है। ऐसे पत्र के ग्राहक बनने का अर्थ होता है राष्ट्र की सेवा में योग देना।

वार्षिक शुल्क के ४) रु. भेज कर ग्राहक बन जाइए।

ग्राहक बनने पर मण्डल की पुस्तकों पर
आपको कमीशन पाने की भी सुविधा हो जाएगी।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

अजन्ता
की
परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर
इन्स्टीट्यूट ऑफ एशियन स्टडीज़, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुकर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल आफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

कहानी

वार्षिक विशेषांक—१९५५

हिन्दी मासिक पत्रों के विशेषांकों में एकदम नए ढंग का विशेषांक

नवीनतम कहानियाँ ∴ नयनाभिराम कवर ∴ सचित्र लेखक-परिचय

और भी बहुत-सी अनूठी सामग्री

पृष्ठ संख्या ४०० ❀❀ मूल्य केवल ढाई रुपए

चार रुपए भेजकर वार्षिक ग्राहक बनानेवालों को
बिना मूल्य

आज ही अपना चन्दा भेजिए

सरस्वती प्रेस ५, सरदार पटेल मार्ग, इलाहाबाद-१

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६ अगस्त १९५४ अङ्क ८

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

प्रबन्ध सम्पादक

हरिकृष्ण पुरोहित एम. ए.

संचालक

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के
शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

तार : हिन्दी

फोन : ५८५१

अनुक्रम

शीर्षक-हीन
    उदयशंकर भट्ट १

देव करो स्वीकार प्रणाम
    मोहनलाल अवस्थी 'मोहन' ७

विजयोन्माद मना है
    नटवरलाल 'स्नेही' ८

रूसो के जीवन का एक अध्याय
    मन्मथनाथ गुप्त ९

भारत की कुछ प्रमुख नृत्य-शैलियाँ
    मदनमोहन शर्मा एम. ए. साहित्य-विशारद १९

मिथ्या का अवधारण तथा भेद
    रामशंकर भट्टाचार्य २३

शक्ति और भक्ति का विस्मृत साधना-केन्द्र : डोंगरगढ़
    मुनिकान्ति सागर २७

मराठी कहावतें
    ललितादेवी ३६

महाकवि सूर का निवास-स्थल गोघाट
    रामनारायण अग्रवाल ३७

१९३९ के बाद की हिन्दी कविता
    डा. रवीन्द्रसहाय वर्मा एम. ए., डी. फिल. ४०

उर्दू कविता में किसान और मज़दूरों का चित्रण
    मनोहर 'प्रभाकर' एम. ए. ४६

घुमक्कड़ बनजारों के लोक-गीत
    श्याम परमार ४८

तेलुगु साहित्य : "कवित्रयमु"
    के. के. आचार्य ५२

एक अतिथि (कहानी)
    स्टीफ़न ज़्विग
    अनु० प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी एम. ए. ५६

कलाचर्चा ६१
    हैदराबाद का कला-विद्यालय
    देवीप्रसाद राय चौधुरी

चिट्ठी-पत्री ६४
    गोविन्दप्रसाद केजरीवाल, आनन्द प्रकाश दीक्षित, डॉ. शंकरराव, विनयमोहन शर्मा, धर्मवीर

नीर-क्षीर ६७
    द्विवेदी पत्रावली : बैजनाथ सिंह 'विनोद', कुमाऊँ के क्रूर शेर : जिम् कॉर्बेट, वीर धर्म की कहानियाँ : जयभिक्खू (बालाभाई वीरचन्द देसाई), एकनाथ व तुलसीदास (तुलनात्मक अध्ययन) जगमोहनलाल चतुर्वेदी, अपने राज अपने आदमी : रामकृष्ण, शेर-ओ-सुखन : अ. प्र. गोयलीय

सामयिक ७३
    [१] आंडाल-तमिल कविता की मीरा
    [१] टी. एस. इलियट
    [३] भारत और चीन की मित्रता
    [४] प्राचीन और मध्यकालीन भारत में शिक्षा

सम्पादकीय ७८
    वंशीधर विद्यालंकार

चित्र

जीवन से आकृति-चित्र
बरतनों, धातु और लकड़ी के कामों के नमूने
मुख्य मन्त्री डॉ. बी. रामकृष्णराव ट्राफी देते हुए

वार्षिक मूल्य ६) रु० एक अङ्क का १)

76441

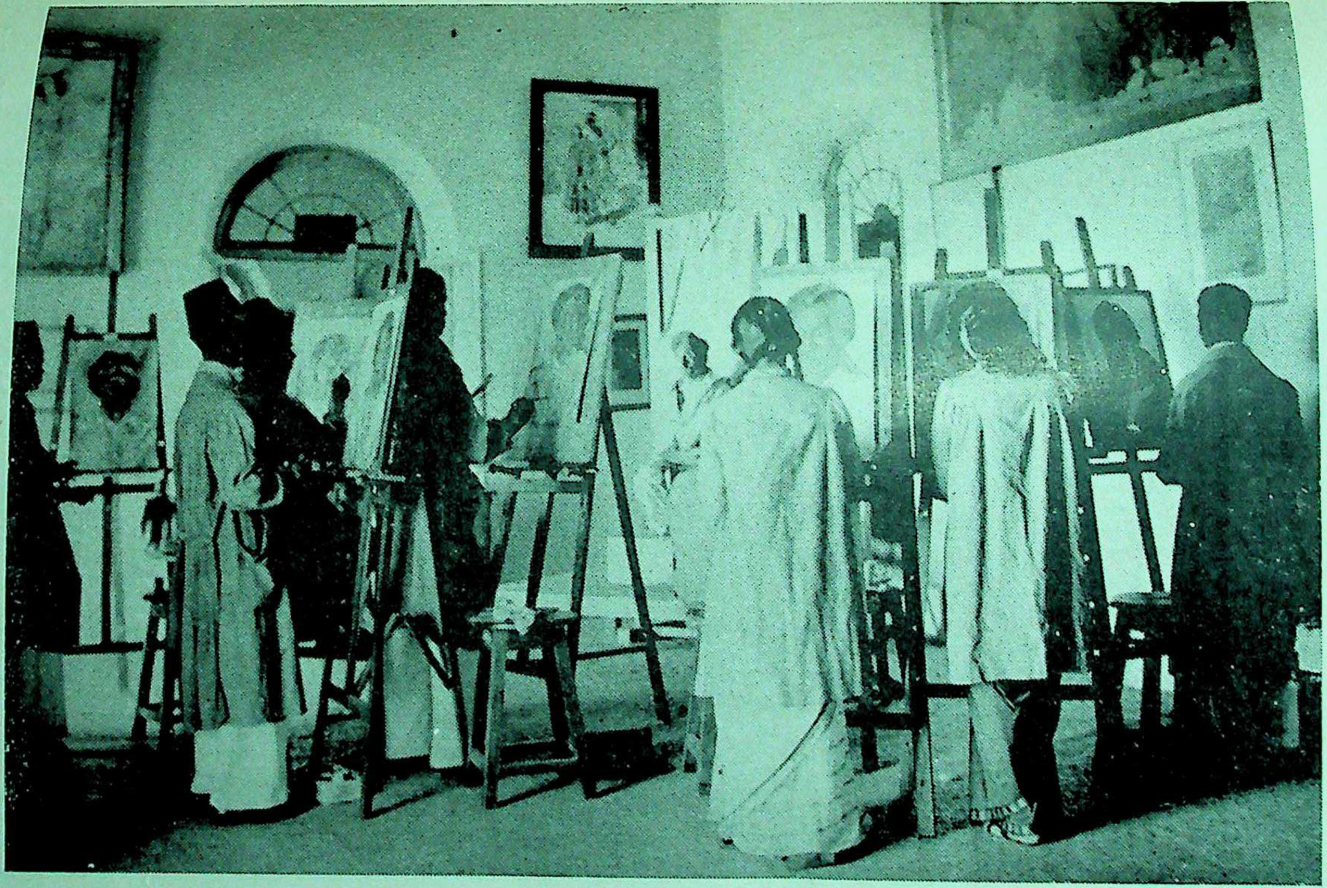

जीवन से आकृति-चित्र

गवर्न्मेंएट स्कूल ऑफ़ आर्ट, हैदराबाद
के विद्यार्थी (चित्र-विभाग)

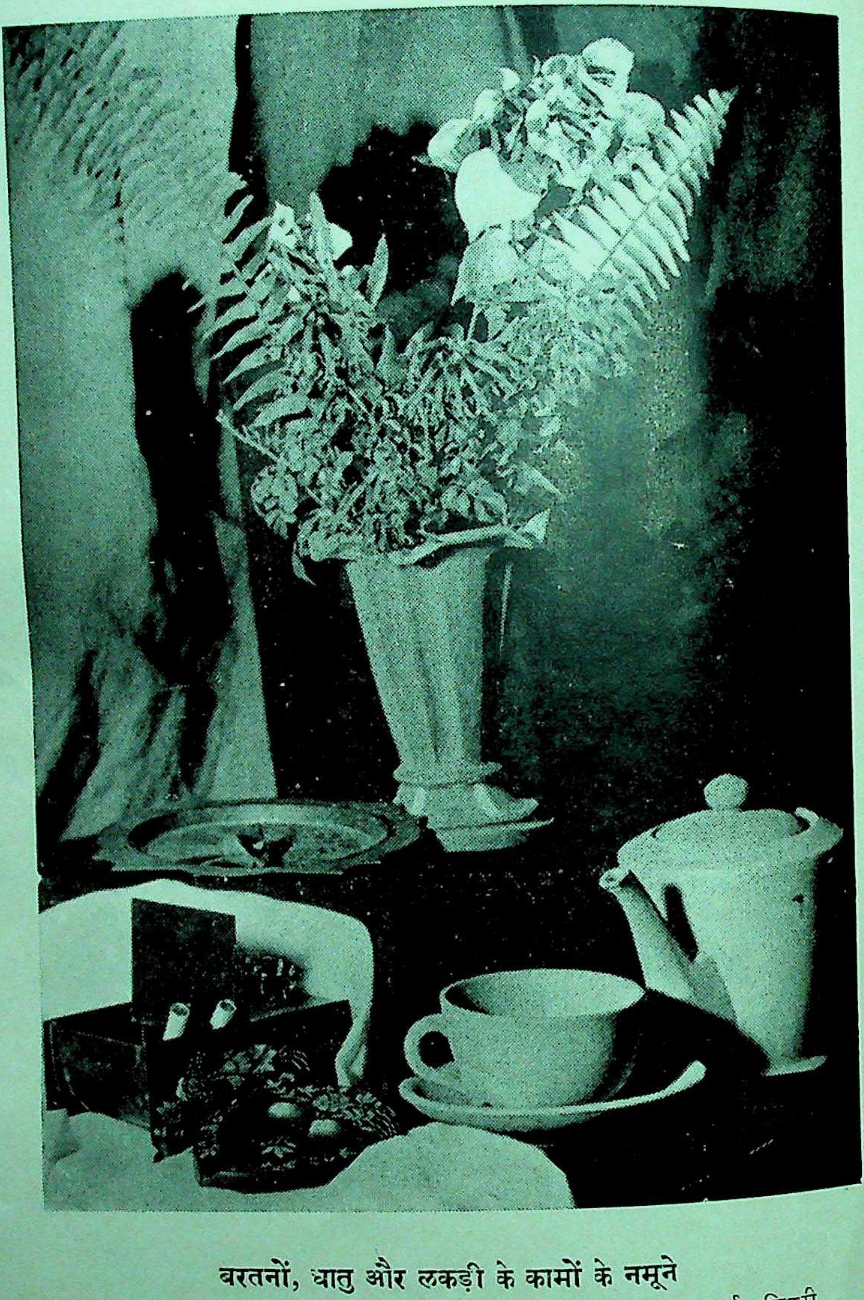

बरतनों, धातु और लकड़ी के कामों के नमूने

गवर्नमेंएट स्कूल ऑफ़ आर्ट, बिदरी

के विद्यार्थियों के द्वारा

अजन्ता
CHALANDRKER

वर्ष ६ | अगस्त | अङ्क ८

शीर्षक-हीन

साँझ हो गई, साँझ हो गई
पल पल चला सुबह का पंथी
करके पार दुपहरी बढ़ता, बढ़ता आया,
दूर दूर तक...
पीले लाल चीथड़े पहने आसमान में—
आकर कहीं खो गया मानों
जीवन जग का वृद्ध हो गया,
दोपहरी की नई चमकती साड़ी में—
नीली पड़ने लगी गगन की देह...
जैसे कोई झार गरल पी मौन हो गया,
भीतर हलका सांसों का व्यापार—
शिथिल तन हार सो गया !
मैं भी दिन भर चला और थक कर बैठा हूँ...
जीवन सरिता के कगार पर...
देख रहा हूँ काल नदी का लम्बा चौड़ा—

दूर दूर तक इन आँखों से परे...
क्षितिज से दूर...
सीमाहीन पाट फैला है!
नए क्षितिज के आंचल से उठ रहे रात के सिर,
तीन ओर से तीन राक्षसी झाँक रही हों...
रह रह फिर फिर,
मेरे मस्तक में घूम रहा है मेरा बीता काल,
मेरा अतीत कंकाल,
खा गए जिसे दिन रात,
दुपहरी, सन्ध्या और प्रभात,
चित्र लिखित से सुख वे, दुख वे,
आज लग रहे हीन दीन वे,
टूटे दाँत साँप से निर्बल...
और मुझे लगता है जैसे
छीन ले गये मुझसे मेरा—
सम्मुख भोजन ग्रास,
अनजाने में धीरे धीरे खाते बैठे पास!
और मैं देख रहा हूँ निर्बल औ' निरुपाय,
वह शैशव की कलिका चितवन,
उमग तरंगित मेरा उपवन,
अंधड़ तूफ़ानी सागर में
मचल-मचल उठते लहरें गिन—
वज्र शक्तिवाले छवि के दिन...
देख रहा हूँ मैं...

सभी गए हैं वे मुझ से छिन!
वे मेरे भीतर के प्यार...उमंगों के मीठे आधार,
देखता आँखें आज पसार...क्या कोई भी स्वर मेरा है,
देखो-देखो उधर अंधेरा है!
मैंने भी गाए जीवन के गीत,
और कुछ लिक्खा समझ पुनीत,
यद्यपि पचास से ऊपर छै बरसात—
आ गईं गईं बनी दिन रात,
किन्तु क्षण कभी कभी आए,
कल्पना के पंख प्रेरणा स्नात;

१९५४

खिले जब मानस के जलजात,
किन्तु लहरों पर अंकन से—
छिप गए स्वयं शून्य स्वन से;
पत्थरों पर प्राणों से लिखे,
खुदे पर मुझको स्थायी दिखे,
कदाचित् वही काल को प्रिय—
माँज रहा है जिसे काल पल की मिट्टी से
स्टेनलेस स्टील से चमक रहे कुछ कुछ,
मूर्त जीवन के वे संचारी प्राण,
नहीं भ्रम है, भ्रम में क्या त्राण ?
चिर अनादि से दिन उगता है, रातें आती हैं
चिर अनादि से कितने आँसू बहे,
सुबह से सन्ध्या तक—
कोई भी कुछ तो कहे ?
और उल्लासों के मधु वात
जिन्हें पी कर भूमें दिन रात
असंख्यों विरह मिलन के गान,
कल्पना प्रवण भाव के द्वन्द्व,
बँधे उतरे छन्दों में बन्द,
अनगिनत रूपसियों के चाँद,
देख कर उफन पड़ा उन्माद,
और बल विक्रम देख अपार—
धरा काँपी दिग्मंडल क्षीण;
मौन मार्तंड शौर्य स्वाधीन;
आज उनमें है क्या बाक़ी,
नदी जल बहा किन्तु तट एकाकी;
नहीं सुन पड़ता कोई स्वर,
स्वयं सब क्षीण स्वयं नश्वर,
आँधियाँ उठीं कई आईं,
जातियाँ उठीं रंग लाईं,
कई आए तट तोड़ गए—
बन कर कृतान्त उद्धूम—
दिशाएँ चीर, तोड़ प्राचीर—
उड़ा नभ तक जिनका मकरन्द,
धूसरित कर लहरों के छन्द;

बहुत थोड़े उनमें मानव,
ले सके केवल कुछ अध्याय—
अनुच्छेद में,
परिच्छेद में,
और कुछ वाक्यों में जा सके लिखे,
बहुत से अलिखे हुए समाप्त,
असंख्यों अगणित पूर्वज आप्त;
देख रहा हूं सतत चित्रपट सरक रहा है—
निकल भविष्यत् के गह्वर से—
धीरे धीरे वर्तमान बनता जाता है,
आशा के कण उपजाता है,
मन में नए स्वप्न भरता सा,
जीवन में उफना उफना सा.
चला जा रहा, बढ़ा जा रहा,
यह पल पल पल छिन छिन छिन छिन,
सब अतीत की ओर !
देख रहा हूँ भरा अमृत है आगत के घट में—
उस रहस्य के पनघट से जो स्वयं भर रहा !
इसीलिए क्रम भङ्ग न होता है जीवन का,
इसीलिए लहरों को पीकर नई लहर बनती जाती है...
एक दीप से कई दीप जलते जाते हैं,
एक प्राण से कई प्राण छनते आते हैं,
एक मृत्यु से कई जगत् उगते आते हैं,
यह अटूट क्रम, यह अटूट जीवन का विभ्रम—
मानव आशा का नया कारवाँ चलता है, चलता जाता है !
देख रहा हूँ मैं...;

प्रकृति में कण कण में है प्राण,
बोलता है जिसमें कल्याण,
सुबह दोपहरी औ' सन्ध्या—
निशा में ज्योत्स्ना की कन्या—
प्रकृति है प्रगतिशील गतिमान्,
विकासोन्मुख मानव का ज्ञान—
चेतना लेता रहता है,
प्रकृति में जीवन बहता है;

१६५४

उसी से मानव है गतिमान्,
उसी से चेतन है यह जगत्,
देख रहा हूँ मैं—;
शक्ति सुषमा का आवृत पुंज–
प्रकृति के कण-कण में है व्याप्त,
उसी में अथ औ' वहीं समाप्त,
नहीं है उससे कुछ भी परे,
नरक है वहीं स्वर्ग भी हरे,
विकृतियाँ जो समाज में हैं,
असंगतियाँ जो मानव में हैं,
उन्हीं से दुख का प्रादुर्भाव,
नए रूपों में रंगों में प्राण प्राण में उत्तरंग है–
उन्मन उन्मन सी उमंग है।
देख रहा हूँ मैं...
बदल रही है धीरे धीरे मन उमंग भय में,
जीवन बदल रहा है धीरे,
किसी ओर को, किसी दिशा को–
सन्ध्या के क्षण में;
किन्तु मैं क्यों भय करूँ...कि जो है अवश–
सभी कुछ परिवर्त्तन के वश,
नया यह कुछ भी नया नहीं;
सभी 'अथ' का है अन्त सभी की इति है यहीं कहीं !
डरूँ फिर मैं ही क्यों, क्यों डरूँ
व्यर्थ की चिन्ता चिन्तन करूँ !
देख रहा हूँ मैं ..

फूट रहे हैं रोम रोम से जीवन नव जीवन
नई उमंगों में अलसाए–
निशा तिमिर में तारक दल,
जैसे कुछ नीतिज्ञ कर रहे लेकर टेलीफ़ोन;
या कि चल पड़े बहुत घरों से लोग,
गगन घूमने गर्मी से आकुल व्याकुल थे
अब तक जो—
देख रहा हूँ मैं;...
वह देखो खग एक गगन में उड़ता उड़ता

उतर रहा है नीचे भू पर—
खोज रहा है नया बसेरा—
अपना डेरा—
धीरे धीरे उतर रहा है लम्बा चक्कर काट—
खाइयाँ काल पन्थ की पाट,
यह पृथ्वी ही तरु की डाली—
इसका श्रम हर
आलिंगन कर इसे दे रही नया पराक्रम—
नया नया उल्लास,
यह 'नव' शब्द प्रतीक सृजन का
स्फूर्ति भर रहा तन में मन में
नए विश्व को ज़िन्दा रखने का उपाय है!
विश्व-मंच पर दो परदे गिरते रहते हैं,
रात, दिवस के 'अथ' के 'इति' के,
गति के, यति के,
दो वर वधू रात दिन मानों आगे पीछे—
काल अग्नि की परिक्रमा में व्यस्त;
दो वर वधू मृत्यु औ' जीवन आगे पीछे,
सृजन-क्षय की परिक्रमा से त्रस्त,
देख रहा हूँ मैं;

पवन समीरित काल नदी में—
बुद-बुद सा जीवन उठता है,
थोड़ी देर नृत्य करता है,
थोड़ी देर केलि करता है,
अगणित रंग रूप में खिल कर—
नई नई उठती लहरों से,
उनकी सुन कर अपनी कह कर
नए बुद बुदे को सहला कर
सो जाता है उस तरंग में मिल
देख रहा हूँ मैं;

ऑल इंडिया रेडिओ,
नई दिल्ली

देव करो स्वीकार प्रणाम

तुम अवतरित हुए भू पर मध्याह्न सूर्य सम
जग की घोर तमिस्रा अपनी मौत मर गई
तुमने खोली आँख जगा मृतकों में जीवन
युग युग से सूनी हिन्दी की गोद भर गई
हर्षित होकर उठी भारती की वर वीणा
आज युगों के बाद उसे निज राग मिल गया
अलंकार भूषित होने के लिए चल पड़े
कविता कामिनि को निज अमर सुहाग मिल गया

काँप रही थी भारत की सांस्कृतिक नाव जब
तुम उसके उद्धार हेतु पतवार हो गए
बसे हमारे मानस में तुम निराकार बन
डूब तुम्हारे मानस में हम पार हो गए
सुन पुकार संतत तृषाकुल उर की कातर
इस साहित्य गगन के तुम घनश्याम बन गए
राम चरित बस गया तुम्हारा प्रति घर घर में
घट घट के भीतर रम कर तुम राम बन गए

राम लखन सीता की चरित त्रिवेणी लाकर
तुमने मरुथल को भी सरस प्रयाग कर दिया
राग छोड़ कर बने विरागी लेकिन तुमने
अपने अमर राग में सरस विराग भर दिया
एक बार पथ दिखलाया तुमने जो, उस पर
बढ़ते रहे सदा हम लेकर नाम तुम्हारा
एक बार अभ्यास कराया था तुमने, पर–
लाखों रावण मार चुका है राम तुम्हारा

चरण गहे तुमने उस प्रभु के जिसने जाकर
वन्य प्राणियों को जीना मरना सिखलाया
स्वयं कष्ट सह कष्ट निवारे जिसने जन के
घृणा पाप से भी पापी को गले लगाया
त्यागी रत्नावली भेंट दें फिर क्या तुमको
और स्वयं है मानस पूर्ण प्रकाम तुम्हारा
हे निष्काम निरीह किन्तु हो जहाँ कहीं भी
देव करो स्वीकार सप्रेम प्रणाम हमारा

पिपरगाँव,
फर्रुखाबाद (उ० प्र०)

—मोहनलाल अवस्थी 'मोहन'

तुलसी-जयन्ती के उपलक्ष में

विजयोन्माद मना है

वह उलूक है कौन कि जिस को रवि का उदय न भाए ?
वह विमूढ़ है कौन, मुक्ति का पर्व न जिसे सुहाए ?
कैसे शक्य कि मुदित नलिन पर अलि-दल नहीं लुभाए ?
नहीं पिकी की पुलक मुखर हो देख आम्र बौराए ?

सहज हर्ष होता, न विजय कहती है—हर्ष मनाओ
नहीं पयोधर ने चातक से जा कर कहा कि गाओ
स्नेह मिला, झनझना उठे मृदु तार हृदय-वीणा के
हुए मुक्ति सह मुकुलित उपवन कविता की क्रीड़ा के

पर्व मनाओ, स्वतन्त्रता की देवी की अनुमति है
किन्तु यहीं पर नहीं हमारे कर्तव्यों की इति है
हो सकता है विजय-विघातक अनवधान प्रहरी का
नाविक का उन्माद, काल हो सकता भरी तरी का

कभी न उत्फुल्लित उपवन की कोई कली विमन हो
आवश्यकता है अतः निरन्तर श्रद्धा का सिंचन हो
मुक्ति-दीप में स्नेह हृदय का बार-बार भरना है
है विजयोत्सव नहीं मना, पर विजयोन्माद मना है

—नटवरलाल 'स्नेही'

श्री पर्णकुटी प्रकाशन,
नागदा जंक्शन (म. भा.)

स्वतन्त्रता के पर्व के अवसर पर

रूसो के जीवन का एक अध्याय

ज़ाँ जाक रूसो और वाल्टेयर १७८९ की फ्रान्सीसी राज्य क्रान्ति के पुरोधाओं में माने जाते हैं। सामाजिक ठेका सिद्धान्त के प्रवर्तक के रूप में रूसो राजनीति शास्त्र में अमर रहेंगे, पर रूसो एक राजनैतिक विवेचक के अतिरिक्त एक मनुष्य भी थे।

राजनीति के विद्यार्थी उनके सिद्धान्त पर अब भी विचार करते हैं, पर मनुष्य के रूप में उन्हें भुला-सा दिया गया है। उन्होंने पुस्तकों और पुस्तिकाओं में अपने सिद्धान्त के रूप में जो कुछ लिखा, वह ऐतिहासिक महत्व रखता है पर बाद के सिद्धान्तों के कारण उनका प्रतिपाद्य सिद्धान्त बहुत कुछ फीका पड़ चुका है। अपने समय में विशेष क्रान्तिकारी सिद्धान्त समझे जाने पर भी वह सिद्धान्त समय की कसौटी पर टिक नहीं सका। स्वाभाविक रूप से उनकी सारी सैद्धान्तिक पुस्तक-पुस्तिकाएँ महत्वहीन हो गईं पर उन्होंने अपनी आत्मकथा के रूप में जो पुस्तक लिखी है, वह उस युग के एक सच्चे मुकुर के रूप में हमेशा अमर रहेगी।

वर्तमान लेख में उसी आत्मकथा के सम्बन्ध में कुछ बताया जाएगा। विश्व-साहित्य में यह पुस्तक अनोखी है और रूसो के सम्बन्ध में सारी बातें बताने के अतिरिक्त हमारे सामने समसामयिक वातावरण का एक सच्चा चित्र उपस्थित करती है। इसी कारण आत्मकथा-साहित्य में इसका स्थान अमर है। रूसो ने पाठक से अपनी गूढ़ से गूढ़ बात भी नहीं छिपाई।

रूसो का जन्म १७१२ में जेनेवा में हुआ था। उनके पिता आइज़क रूसो बहुत ही मामूली सम्पत्ति के अधिकारी थे। उनकी माता एक पादरी की कन्या थीं। माता-पिता की जोड़ी के सम्बन्ध में रूसो ने लिखा है कि चूँकि माता एक सुन्दरी तथा बुद्धिमती स्त्री थीं, इसलिए आइज़क रूसो के लिए उनका हृदय जीतना आसान नहीं था। जब वे ८-९ साल के ही थे, तभी से वे एक साथ घूमा करते थे और दस तक तो यह हालत पहुँच गई कि वे दोनों एक दूसरे से वियुक्त नहीं हो पाते थे। अन्त में इन दोनों की शादी हो गई। रूसो ने यह लिखा है कि उनकी माँ के कई पाणि-प्रार्थी थे, इसलिए यह विवाह आसानी से नहीं हुआ। रूसो के पैदा होते ही उनकी माता का देहान्त हो गया। रूसो के शब्दों में सुनिए: "मुझे कभी मालूम नहीं हुआ कि मेरे पिता ने किस प्रकार यह हानि झेली। वे उन्हें मुझमें देखते थे पर साथ ही वे कभी इस बात को भूल नहीं पाए कि मेरे ही कारण उनको उनसे वंचित होना पड़ा। वे कभी मुझे चूमते नहीं थे, या चूमते थे तो उनके कड़वे दीर्घ श्वासों तथा चौंक-चौंक कर मुझे छाती लगाने से मैं यह जान जाता था कि उन्हें स्नेह के साथ गहन दुःख भी है। यह एक ऐसा दुःख था, जिसके कारण वे मेरी तरफ़ और भी खिंचते थे। जब वे मुझसे कहते थे: "ज़ाँ जाक आओ, हम लोग तुम्हारी माँ के सम्बन्ध में बातें करें" तो मैं यह कहता था: "पर हम लोग रो पड़ेंगे।" इस पर वे आर्तनाद-सा करते हुए कहते थे: "आह; तुम उसे मुझे लौटा दो, उसके लिए मुझे सान्त्वना दो, मेरे हृदय में जो सूनापन है, उसे भर दो। यदि तुम केवल मेरे पुत्र ही होते तो क्या मैं तुमसे इतना प्रेम करता?"

इसके बाद रूसो लिखते हैं: "मेरी माँ के मरने के चालीस वर्ष बाद मेरे पिता जी द्वितीय पत्नी के आलिंगन में बँध कर परलोक सिधारे, पर उनकी ज़बान पर पहली स्त्री का नाम था और उनके हृदय पर उन्हीं का चित्र अंकित था।"

इसी प्रकार रूसो ने सारी आत्मकथा लिखी है, जिसमें हम सर्वत्र पैनी सूझ और अविचलित सत्यनिष्ठा पाते हैं। हम इस लेख में उनकी आत्मकथा का सार संकलन करने नहीं जा रहे हैं; हम केवल कुछ ही दिलचस्प घटनाओं का वर्णन करेंगे। और हाँ कथा की धारावाहिकता को क़ायम रखने की चेष्टा की जाएगी क्योंकि उसके बिना रस का परिपाक नहीं हो पाएगा।

रूसो अपने कथनानुसार मरे से ही पैदा हुए थे। लोगों को उनके बचने की कोई आशा नहीं थी। अपनी एक फूफी के कारण वे बच गए। जिस समय रूसो अपनी आत्मकथा लिख रहे थे, उस समय उनकी यह फूफी ८० साल की उम्र में भी जीवित थीं। उनकी नर्स

जाकलीन भी उस समय तक जीवित थी और रूसो ने यह लिखा है : "जिन हाथों ने जन्म के समय मेरी आँखें खोलीं, वे हाथ ही मृत्यु के समय मेरी आँखों को बन्द कर सकते हैं।"

रूसो ने कैसे पढ़ना लिखना सीखा, यह उन्हें स्मरण नहीं था, पर उन्हें यह स्मरण रहा कि जब वे तथा उनके पिता मिल कर उन उपन्यासों को पढ़ा करते थे जिन्हें रूसो की माँ छोड़ गई थीं। पहले पहल रूसो केवल पढ़ना सीखने के लिए ही पढ़ते थे, पर बाद को उन्हें रस आने लगा। पिता और पुत्र बारी-बारी से एक दूसरे को पढ़ कर सुनाते थे, इस प्रकार रातें समाप्त हो जाती थीं। कई बार जब प्रातःकाल की रोशनी दिखाई पड़ती थी, तब आइज़क लज्जित हो कर कहते थे : "आओ बेटा, अब हम सो जाएँ। मैं तो तुमसे भी अधिक बच्चा निकला।"

पिता के साथ इस प्रकार पढ़ते रहने का नतीजा यह हुआ कि ज़ाँ जाक अब अच्छी तरह अपने विचारों को प्रकट करने में समर्थ हो गए। उनका ज्ञान तो बढ़ ही रहा था। उन्होंने स्वयं लिखा है कि यद्यपि वे अभी तथ्य से कम परिचित थे, पर वे प्रतिफलित करनेवाली भावनाओं से परिचित हो गए। उनका यह कहना है कि इस प्रकार उन्हें मानवी जीवन के सम्बन्ध में बहुत अद्भुत और रोमांचकारी विचार प्राप्त हो गए, जो शायद उतने वास्तविक नहीं थे।

बचपन की शरारतों में भी उन्होंने पूरा भाग लिया। उन्होंने लिखा कि मैं बकवासी और लोभी था, और कभी कभी तो मैं झूठ भी बोल जाता था। मैं फल, मिठाई तथा अन्य किसी प्रकार के खाने की चीज़ भी जब तब चुरा लेता था, फिर भी मैं नटखट या विनाशकारी स्वभाव का था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मैं दूसरों की चुगली करने और पशुओं को कष्ट पहुँचाने में विश्वास नहीं करता था। फिर भी मुझे याद है कि मैंने एक दिन अपनी एक पड़ोसिन के पकाने के बरतनों में पेशाब कर दिया था। उस समय वह गिर्जे में गई हुई थी।

बचपन की शरारतों का यही विवरण है। जिस स्त्री के बरतनों में उन्होंने शरारत की थी, उसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि वह इतनी मोटी और भद्दी थी कि और कुछ सूझ ही नहीं सकता था।

पिता ने उनको कुछ दिनों के बाद अलग कर एक मित्र के साथ कर दिया। उनके पिता और
गोतियर नामक एक कप्तान में लड़ाई हो गई,
इसके फलस्वरूप उनके पिता को जेनेवा छोड़ कर
जाना पड़ा। जिनके साथ रूसो जा कर रहे उनका
लाँ बर्सियर था और वे एक पादरी थे। लाँ बर्सियर के
पास रह कर वे लैटिन तथा "अन्य दुःखपूर्ण बेकार
बातें" सीखने लगे जो शिक्षा के नाम से प्रचलित
लाँ बर्सियर के साथ रह कर वे अपने बाल्यकाल में
से गए। जेनेवा में पढ़ने का शौक़ था, पर अपने
अभिभावक के साथ उन्हें खेलों में अधिक आनन्द
लगा। बात यह है कि पढ़ने के नाम पर उन्हें जो
तथा परिश्रम करना पड़ता था, वह उन्हें पढ़ने की
तरफ़ से हटा रहा था। यहाँ रहते हुए मानव जीवन
भी उनका परिचय बढ़ने लगा। अब तक उनकी भावनाएँ
बहुत कुछ किताबी थीं, पर अब कई तरह की भावनाओं
का उनमें स्फुरण होने लगा। कुमारी लाँ बर्सियर के
कारण उनमें अद्भुत भावनाएँ उत्पन्न हुईं।
बताना भूल गया कि वे अपने चचेरे भाई के साथ
नए स्थान में भेजे गए थे। कुमारी लाँ बर्सियर
बच्चों से प्यार करती थीं पर साथ ही साथ उन
शासन भी करती थीं। बहुत दिनों तक वह केवल
केवल धमकाया करती थीं। धमकियाँ भी रूसो के लिए
नई बात थी, क्योंकि अब तक उन्हें किसी ने धमकाया
नहीं था। धमकियों से ही वे बहुत डर जाते थे।
अन्त में मुझे सज़ा दी गई यानी मैं पीटा गया, तो
पीटना इतना भयंकर नहीं जँचा जितना मैं समझता
और यह अजीब बात हुई कि सज़ा देनेवाली के
मुझे पहले से अधिक प्रेम हो गया। इतना प्रेम
गया कि मुझे अपनी स्वाभाविक शराफ़त और
परायणता पर पूरा ज़ोर देना पड़ा और गाना पड़ा
कि मैं जान बूझ कर पिटने का दूसरा मौक़ा
करूँ। सज़ा की शर्म और कष्ट में मैंने इन्द्रियपरा
का वह मिश्रण पाया जिससे उन्हीं हाथों से पिटने
लिए एक स्वाभाविक इच्छा होती। इसमें कोई
नहीं कि इन सारी बातों में समय से पहले
कामुकता का कुछ पुट था। बात यह है कि वही
यदि कुमारी लाँ बर्सियर के हाथों से न मिल कर
भाई के हाथों से मिलती, तो उसमें कोई आनन्द
आता।"

१९५४

यहाँ पर चलते हुए यह बता दिया जाए कि रूसो ने यह बातें तब लिखीं, जब फ्रायड ने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया नहीं था।

इन अद्भुत भावनाओं से रूसो के मन का विकास हो रहा था, जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है। ये भावनाएँ पागलपन की हद तक पहुँच गईं, पर वे पवित्र बनी रहीं। इसका कारण वे यह बताते हैं कि उन्हें बचपन में बहुत अच्छा वातावरण और शिक्षा मिली। लाँ बर्सियर परिवार में भी अच्छा वातावरण रहता था। वहाँ एक नौकरानी को केवल इसलिए खड़े खड़े निकाल दिया गया था कि उसने बच्चों के सामने एक सन्दिग्ध शब्द का प्रयोग किया था।

रूसो अपने निजी जीवन पर रोशनी डालते हुए लिखते हैं कि उन्हें यौनव्यवहार के सम्बन्ध में किशोरावस्था तक कुछ स्पष्ट ज्ञान नहीं था। इन विषयों में उनके विचारों में अद्भुत और घृणा का सम्मिश्रण होता था। उन्हें वेश्याओं से भय-सा लगता था और वे किसी फ़ायशा औरत को बिना भय तथा घृणा के नहीं देख सकते थे। एक समय वे एक ऐसी जगह से जा रहे थे, जहाँ सड़क में कहीं कहीं से दरारें पड़ गई थीं। लोगों ने उन्हें बताया कि ये ही वे छेद हैं, जिनमें दुष्ट लोग व्यभिचार करते हैं। इस विचार के साथ-साथ उनके मन में कुत्तों के सम्भोग का दृश्य भी आ जाता था, इस प्रकार उनकी अजीब धारणाएँ थीं। इन धारणाओं के कारण वे बहुत दिनों तक अपनी स्वाभाविक इन्द्रियपरायणता से बचे रहे। यदि आकर्षण होता था, तो साथ ही विकर्षण भी ज़ोर मारता था।

रूसो की आत्मकथा का यह हिस्सा मनोवैज्ञानिकों के लिए बहुत सामग्री से पूर्ण है। इन्हीं दिनों उनके सामने बहुत से प्रलोभन भी आए। एक स्त्री मादाम दविल्शों से उनका साबका पड़ा, जो उन्हें कई बार इतने अधिक चुम्बन करती थी कि उनकी साँस रुक जाती थी। इसके साथ ही मादाम की कन्या ने भी उन्हें अपने प्रेमी के रूप में देखना शुरू किया। इस समय रूसो की उम्र केवल ग्यारह वर्ष की थी और उस लड़की की उम्र बाईस वर्ष की। यह सहज मज़ाक था, पर किशोर रूसो ने इसे गम्भीरता के साथ लिया। बाद को लिखते हुए उन्होंने यह स्पष्ट किया कि इस प्रकार एक छोटे लड़के से प्रेम करने के दिखावे की आड़ में दूसरे लोगों से प्रेम करना या इस प्रकार वास्तविक प्रेमियों को प्रलुब्ध करने का अभिप्राय होता है। फिर भी उम्र ने उस समय अपना जौहर दिखलाया और वे ऐसी परिस्थितियों में अपने को डालते रहे, जो उनके कथनानुसार बिलकुल हास्यास्पद थीं। यदि कोई व्यक्ति कुमारी विल्शों के पास आता, तो वे सहन नहीं कर पाते थे। इन्हीं दिनों वे कुमारी गोतों नाम की एक लड़की के सम्पर्क में आए, जो किसी स्कूल में शिक्षिका थी। उन्होंने थोड़े दिनों में ही आविष्कार कर लिया कि कुमारी विल्शों तो उन्हें एक आड़ के रूप में इस्तेमाल करती है। इसी का मानो बदला वे कुमारी गोतों से मिलने के रूप में ले रहे थे। कुमारी गोतों उनसे सब प्रकार की स्वतन्त्रता लेती थी पर उन्हें अपने साथ स्वतन्त्रता लेने नहीं देती थी। दोनों कुमारियों के साथ उनका प्रेम चलता रहा। जब वे एक के साथ होते थे, तब दूसरे की बात बिलकुल भूल जाते थे। पर साथ ही दोनों कुमारियों ने उनमें भिन्न भिन्न प्रकार की भावुकताएँ उत्पन्न कर दी थीं।

प्रेम शब्द का प्रयोग किया गया है, इसलिए भावना का क्या रूप था, यह भी स्पष्ट कर दिया जाए। रूसो लिखते हैं : "कुमारी विल्शों को देखते ही मुझमें आनन्द की लहरें उठने लगती थीं, पर मैं अपने आपे में ही रहता था, पर कुमारी गोतों को देखते ही मेरी आँखें और बातों के प्रति अन्धी हो जाती थीं, और मेरी भावनाओं में उथल-पुथल मच जाती थी। कुमारी विल्शों के साथ घनिष्ठता रक्खे बिना ही मेरा सम्बन्ध घनिष्ठ था, पर कुमारी गोतों के सामने जाते ही मैं अधिकतम अन्तरंगता के समय भी थर-थर काँपा करता था। मेरी ऐसी धारणा है कि यदि मैं उसके साथ अधिक देर तक रहता, तो इससे मेरी मृत्यु हो जाती। अपने हृदय की धड़कनों से ही मेरी साँस बन्द हो जाती। मैं दोनों को समान रूप से नाख़ुश करने से डरता था। एक का आज्ञाकारी था, तो दूसरी के सामने मैं केवल दबता था। मैं कुमारी विल्शों को किसी भी बात के लिए ज़रा भी नाराज़ न करता, पर यदि कुमारी गोतों मुझे आग में कूद पड़ने की आज्ञा देती, तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के उसका पालन करता।"

ऊपर के वर्णन से यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहेगा कि एक पुरुष साथ ही साथ दो स्त्रियों से प्रेम कर सकता है या नहीं। हम इस प्रश्न के अन्तिम निर्णय के पचड़े

में यहाँ नहीं पड़ेंगे।

कुमारी गोतों के साथ रूसो का मिलना जुलना बहुत जल्दी समाप्त हो गया। कुमारी विल्शों के साथ भी उनका सम्बन्ध जल्दी ही समाप्त हो गया, क्योंकि कुमारी ने शादी कर ली। इसके बहुत साल बाद की घटना है कि रूसो अपने पिता के साथ एक झील में नाव चला रहे थे, उस समय कुछ स्त्रियों को देख कर रूसो ने अपने पिता से पूछा: "ये लोग कौन हैं?"

इस पर पिता ने कहा: "क्यों तुम्हारा हृदय तुम्हें नहीं बताता, ये वही कुमारी विल्शों तथा उनकी सहेलियाँ हैं।"

इस पर रूसो ने अपनी नाव का मुँह घुमा दिया। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं: "प्रतिज्ञा तोड़ने तथा बीस साल पुराने झगड़े को उठाने का विशेष कर एक चालीस साल की औरत के साथ झगड़ा करने का कोई अर्थ नहीं होता था, यद्यपि मैं उस समय ऐसी हालत में था कि अच्छी तरह बदला ले सकता था।"

यह स्मरण रहे कि ये सारी बातें उस समय की थीं, जब रूसो अभी अधिक से अधिक एक किशोर थे। स्वयं रूसो ने ही इस युग की बातों को बचपन की बेवक़ूफ़ियाँ बताया है।

रूसो को यह तलाश पड़ने लगी कि क्या करना चाहिए। एक जीविका तो सीखनी ही थी। यह तय हुआ कि रूसो को नगर रजिस्ट्रार के यहाँ दलाली का काम सिखाया जाए। रूसो को यह काम पसन्द नहीं था। उनके शिक्षक भी उनसे प्रसन्न नहीं थे। वे यह कहते रहते थे कि उन्हें तो बताया गया था कि लड़का बड़ा बुद्धिमान् है, पर यह तो एक गधा निकला। अन्त में रूसो वहाँ से निकाल दिए गए। घर और बाहर सर्वत्र रूसो की इज़्ज़त घटी हुई थी। उनके आत्मविश्वास में भी फ़र्क़ पड़ा, और मनोरंजन के स्थान पर अब वे भद्दी बातों की ओर झुकने लगे। रूसो ने इस समय के सम्बन्ध में लिखते हुए यह मन्तव्य किया: 'बहुत ढंग से लालन पालन होने पर भी मुझमें पतन की ओर बहुत ज़बर्दस्त झुकाव अन्तर्निहित रहा होगा, तभी मेरा पतन बहुत जल्दी जल्दी हुआ।"

नक्क़ाशी करने का काम उन्हें नापसन्द नहीं था। वे इस कार्य में प्रवीण हो जाते, पर वे जिस उस्ताद के यहाँ थे, उसका व्यवहार बहुत ही घृणित था, इस कारण इस काम से भी उनका जी ऊब गया। वे अपने कामों में उत्साह लेने लगे थे कि वे नए नए काम करने लगे। एक बार वे कुछ तमग़े बना रहे थे कि उस्ताद ने लिया और जाँच करने पर यह ज्ञात हुआ कि वे तमग़े बना रहे थे, जिनका बनाना ग़ैरक़ानूनी था। मालूम नहीं था कि ऐसा करना ग़ैरक़ानूनी है। कुछ हो दुर्व्यवहार के कारण उनका जी काम से हट गया, वे झूठ, आलस्य और यहाँ तक कि चोरी में फँस जहाँ वे काम करते थे वहाँ वेरी नामक एक अप्रेन्टिस था। वेरी को यह सूझा कि पास के एक बाग़ से रेगस चुरा कर जेब ख़र्च निकालना चाहिए, पर फुर्तीला नहीं था, इसलिए उसने किशोर रूसो को रेगस चुराने के काम के लिए चुना। प्रतिदिन रूसो ऐस्पेरेगस चुरा कर बाज़ार में ले जाते थे, और नाम मात्र मूल्य में बेच देते थे। बात यह है कि भी स्त्री के पास वे उसे बेचते थे, वह भाँप जाती कि यह चोरी का माल है और कहती थी: "चुरा कर हो न?" बस इतने ही पर वे डर जाते थे और भी पैसे मिलते उन्हें ही ग़नीमत जान कर ले जाते। वेरी के हाथ सारे पैसे सौंप देते थे। वेरी एक मित्र साथ खाना खाता था। यह खाना भी रूसो को ही कर लाना पड़ता था। यदि खाने में से कुछ बचता रूसो उसे खाते थे, नहीं तो नहीं। जो शराब आती उसे तो रूसो ने कभी नहीं छुआ।

यह चोरी काफ़ी दिनों तक चलती रही। अजीब चोरी थी कि चोर किसी की तरफ़ से चोरी था, और चोरी के माल का सारा दाम चोरी करानेवाले को सौंप दिया जाता था। एक बार भी रूसो के यह बात नहीं आई कि यदि वे पकड़े गए तो क्या यदि वे वेरी के सम्बन्ध में कह देते, तो उससे कुछ होता क्योंकि वेरी ऊँचे दर्ज़े का अप्रेन्टिस था। है कि इसमें रूसो पकड़े नहीं गए। इससे चोरी में विश्वास बढ़ा, पर वे स्वभाव से चोर नहीं थे। कारण उनकी चोरी सेव आदि की चोरी तक ही रही। कई बार वे पकड़े भी गए और उन पर पड़ी। जब मार पड़ी, तो वे निर्लज्ज हो गए। परिस्थिति थी, जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है: रिपु बहुत ही प्रबल हैं, और जब मैं उनके हूँ, तो मेरे आवेग बड़े प्रबल होते हैं। उस समय

१६५४

सम्मान, भय या लज्जा कुछ नहीं रहती। मैं निन्दक, साहसी, भयानक तथा तीसमारखाँ हो जाता हूँ। किसी लज्जा से मैं नहीं रुकता और न ख़तरे के भय से ही मुझ पर कोई रोकथाम होती है। उस समय जो लक्ष्य मेरे सामने होता है, उसके अलावा विश्व का मेरे लिए कोई अस्तित्व नहीं रह जाता पर यह सारी भावना एक ही क्षण रहती है और अगले ही क्षण मैं सम्पूर्ण विनाश में डूब सा जाता हूँ। जब मैं शान्त होता हूँ, तब मैं आलसी और डरपोक होता हूँ। प्रत्येक बात से मुझे भय लगता है और मैं हतोत्साह हो जाता हूँ।

उड़ती हुई मक्खी से भी मुझे डर लगता है। मैं इतना आलसी हो जाता हूँ कि एक शब्द कहना या किसी प्रकार के इंगित करना भी मेरे लिए कठिन हो जाता है। मैं विविध प्रकार के भय तथा लज्जा का इस प्रकार शिकार हो जाता हूँ कि मैं सब की आँखों से बचना चाहता हूँ। जहाँ क्रिया आवश्यक है, वहाँ मैं अपने को किंकर्तव्यविमूढ़ पाता हूँ। यदि मैं बोलना चाहूँ तो बोल नहीं पाता। यदि कोई मेरी तरफ़ देखता है, तो मैं आँखें मीच लेता हूँ।"

रूसो की भावनाओं का यह वर्णन बहुत दिलचस्प है। उन्होंने इसी सिलसिले में लिखा है कि उन्होंने धन को कभी इतना महत्व नहीं दिया जितना महत्व कि और लोग देते हैं। धन से उन्हें कभी तृप्ति नहीं मिलती। पैसों से जो भी चीज़ उन्होंने ख़रीदी, वह ख़राब मिली। जैसा कि वह कहते हैं—"एक ताज़े अण्डे के लिए मैंने बहुत पैसा दिया, तो वह सड़ा निकला; पका फल ख़रीदा तो वह कच्चा निकला; लड़की को पास बुलाया, तो वह फ़ायशा निकली।"

इस प्रकार से उन्हें पैसों से कोई प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ। फिर भी अजीब बात है कि चीज़ों के प्रेम के सम्बन्ध में वे कुछ अजीब बातें कहते हैं। "मुझे धन से मोह नहीं होता, जितना चीज़ों से होता है। बात यह है कि धन वांछित वस्तु के बीच का बिचवैया तो है पर वस्तु और उसके उपभोग के बीच कुछ नहीं होता। इसलिए जब मैं किसी वस्तु को देखता हूँ तो मुझमें प्रलोभन और लालसा उत्पन्न होती है पर जब मैं यह देखता हूँ कि किस प्रकार उसे प्राप्त किया जा सकता है, तो मैं प्रलुब्ध नहीं होता। मैं एक चोर रहा हूँ और कभी कभी मैं अभी तक ऐसी तुच्छ चीज़ों को चुरा लेता हूँ, जो मुझे प्रलुब्ध करती हैं और उन्हें मैं माँग लेने के बजाय चुरा लेना पसन्द करता हूँ" इत्यादि।

यह सब होते हुए भी रूसो में एक अजीब बात यह रही है कि वे बहुत जल्दी तुच्छ सूत्रों से उकता जाते थे। बुरे काम उन्होंने बहुत किए, पर उन्हें शान्ति नहीं मिली। परिणाम यह हुआ कि वे फिर पढ़ने की ओर झुके। वे काम से समय बचा कर पढ़ते थे, इसलिए मालिक की ओर से विरोध होता था। इससे पढ़ने की प्रवृत्ति और भी अधिक हो जाती थी। मादाम लाँ त्रिव्यू के पुस्तकालय से जो भी पुस्तक मिलती, वे उसे पढ़ते। पढ़ने के सम्बन्ध में यह परिस्थिति थी कि राह चलते पढ़ते, पाख़ाने में पढ़ते, बैठे बैठे पढ़ते, खड़े खड़े पढ़ते, रात जाग कर पढ़ते। पढ़ते हुए पकड़े जाने पर कितनी ही पुस्तकें फाड़ दी गईं, जला दी गईं, जंगले के बाहर फेंक दी गईं। इनकी क्षति पूर्ति करने के लिए उन्हें अपनी कमीज़ें, कपड़े और टाइयाँ देनी पड़ीं। जेब ख़र्च के रूप में जो पैसे मिलते थे, वे तो मादाम की जेब में जाते ही थे।

वे पढ़ने में इतने दत्तचित्त हो गए थे कि उन्होंने सब तरह के दुष्कर्म छोड़ दिए। पढ़ना ही उनके लिए एक मात्र लक्ष्य हो गया। पढ़ने के सम्बन्ध में रुचि से काम लेने का प्रश्न नहीं था। जो भी पुस्तक सामने पड़ जाती, वे उसे पढ़ते थे। ख़ैरियत हुई कि उन दिनों अश्लील पुस्तकें उनके हाथों में नहीं पड़ीं। पड़तीं तो वे उन्हें अवश्य पढ़ते। कुछ भी हो कुछ घटनाचक्र ऐसा हुआ कि तीस साल की उम्र तक उनके हाथों में वैसी ख़तरनाक पुस्तक नहीं पहुँची, जिसे फ़ैशनवाली स्त्रियाँ भी गुप्त रूप से ही पढ़ने की हिम्मत करती हैं।

एक साल के अन्दर ही मादाम लाँ त्रिव्यू का छोटा-सा पुस्तकालय पढ़ डाला गया। यद्यपि पुस्तकें चुनी हुई नहीं थीं, फिर भी उनका असर उनके मन पर अच्छा ही हुआ। एक साल तक तो पढ़ने में व्यस्तता के कारण वे दुष्कर्मों से बचे रहे, इसके बाद उनके मन पर पुस्तकों का असर इस रूप में दिखाई पड़ा कि वे अब ऊँची उड़ान भरने लगे। पढ़ते समय वे जल्दी-जल्दी पढ़ गए थे, किसी बात पर विचार करने का अवसर ही नहीं मिला था। जब पुस्तकालय की पुस्तकें समाप्त हो गईं, तो वे अपने मन की आधी हज़्म की हुई चीज़ों को निकाल कर जुगाली करने लगे। जो बात जिस रूप

में पढ़ चुके थे, उसे दूसरे रूप में बल्कि भिन्न-भिन्न रूप में कल्पना करने लगे। इस प्रकार वे अपने इकरस जीवन से बचे रहे।

उनकी उम्र सोलह साल की हो गई। मित्रगण आते और उन्हें रविवार के दिन पकड़ कर ले जाते। जब वे टहलने जाते तो उन्हें स्थान, काल, पात्र का ध्यान नहीं रहता। कई बार उन्हें अजीब-अजीब परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। उन्हें अपने काम में बहुत अधिक दिलचस्पी नहीं थी। फिर भी वे अपना काम सीखते गए। एक दिन वे ऊब कर भाग निकले और जेनेवा से छः मील दूर कांफियों में पहुँच गए। वे वहाँ के पादरी से मिले, क्योंकि वे एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। पादरी महोदय ने उन्हें खिलाया पिलाया और अपने सम्प्रदाय की बात समझाने लगे। मादाम लाँ त्रिब्यू के पुस्तकालय की बदौलत रूसो पादरी महोदय से अधिक ज्ञान रखते थे। यहाँ तक कि जिस विषय पर वे बात कर रहे थे, उस विषय को भी वे जानते थे, पर उनके अतिथि बन कर और उनकी शराब पी कर उन्होंने उनका प्रतिवाद करना उचित न समझा। यहाँ पर रूसो ने जो बातें उठाई हैं, वे इस घटना से कहीं महत्वपूर्ण हैं। वे लिखते हैं: "मेरी इस नीति को देख कर कोई साधारण व्यक्ति यही कहेगा कि मैं ढोंगी था, पर यह उसकी ग़लती होगी। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं कृतज्ञ था, और कोई बात नहीं। ख़ुशामद बल्कि यों कहना चाहिए कि किसी के साथ हेल मेल रख कर चलना हर समय अवगुण ही हो ऐसी बात नहीं। नौजवानी में तो यह अक़सर गुण ही माना जाता है। इसी से सहृदय व्यवहार पाने पर उसके प्रति प्रेम ही उत्पन्न होता है। हम उसकी बात धोखा देने के लिए नहीं मानते, बल्कि इसलिए मानते हैं कि भलाई के बदले बुराई न की जाए।

वे आगे लिखते हैं कि मेरे व्यवहार में कोई ढोंग का उपादान नहीं था। मैं एक भी मुहूर्त के लिए अपना सम्प्रदाय बदलने नहीं जा रहा था। इस सम्बन्ध में मेरे अपराध की तुलना एक भली स्त्री के नखरों के साथ की जा सकती है। अपने उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए एक भली स्त्री बिना वादा किए इतनी आशाएँ उत्पन्न कर सकती है, जिन्हें वह पूर्ण नहीं करना चाहती।

रूसो इन दिनों एक असहाय अनाथ व्यक्ति की तरह थे। पादरी ने उनसे यह कहा कि तुम आनेसी में जाकर मादाम दवारां से मिलो, वह बड़ी अच्छी महिला है, और तुम्हें सच्चा मार्ग दिखलाएगी। रूसो को उन दिनों मार्ग की बहुत अधिक आवश्यकता नहीं थी, पर भूख से बचने के लिए आवश्यकता थी। इसलिए मादाम दवारां के घर पहुँचने पर उनकी इतनी हिम्मत नहीं हुई कि वे सामने जाकर मिलें, इसलिए उन्होंने चिट्ठी में पादरी साहब की भी चिट्ठी रख दी।

इस प्रकार से सशस्त्र होकर वे उनसे मिलने चले। उन्होंने उस महिला की धार्मिक ख्याति सुन कर यह कल्पना की थी कि वह कोई अधेड़ बदसूरत स्त्री होगी, पर वहाँ तो एक सुन्दरी तरुणी से सामना हुआ। इस पर उनके मन में जो प्रतिक्रिया हुई, यह उनके शब्दों में यों हैं: "एक ही मुहूर्त में मैं उनका हो गया और मुझमें यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि इस प्रकार के प्रचारक जिस सम्प्रदाय का प्रचार करते हैं, वह स्वर्ग में अवश्य ले जाता होगा। उन्होंने मुस्करा कर पत्र के लिए हाथ बढ़ाया और मैंने काँपते हुए हाथों से उन्हें पत्र दे दिया।

मादाम दवारां ने उन्हें घर में बुलाया और कहा कि तुम मेरी प्रतीक्षा करो।

यह घटना उनके जीवन में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। मादाम दवाराँ लोजान के एक प्रसिद्ध खानदान के मोशिये दवाराँ की पत्नी थीं। विवाह सफल सिद्ध नहीं हुआ और इनसे कोई सन्तान भी नहीं उत्पन्न हुई थी। पारिवारिक झगड़े बने रहे, अन्त में मादाम ने राजा का आश्रय लिया और राजा ने उनका एक भत्ता बाँध दिया। फिर जब राजा ने देखा कि इस उदारता की अपख्याति की जा सकती है, तब उन्होंने मादाम को आनेसी में भेज दिया, तब से वह आनेसी में ही रहती थीं।

मादाम को आनेसी में रहते हुए छः साल हो गए थे। उनकी शिक्षा दीक्षा व्यवस्थित रूप से नहीं हुई थी, फिर भी वह उस युग की दृष्टि से उच्च शिक्षिता थीं। ग़रीबों तथा अनाथों के प्रति उस महिला की सहानुभूति बनी रहती। उस युग में इस प्रकार की शिक्षित स्त्रियाँ अक़सर किसी न किसी प्रकार का षडयन्त्र करना पसन्द करती थीं, पर इस महिला की रुचि दूसरी ही बातों में थी। वे कुछ सेवा करना चाहती थीं। प्रश्न यह था कि रूसो का क्या हो। मादाम ने पहले तो रूसो से उनका हाल पूछा और रूसो ने धीरे धीरे सारी बातें बताईं।

कई प्रश्न एक साथ उठ खड़े हुए, जिसमें रूसो के निर्वाह का प्रश्न सबसे बड़ा था। रूसो ने काम तो सीखा था, पर अभी शिक्षा अधूरी थी और रोटी कमाने लायक़ तो किसी प्रकार नहीं थी। यह तय हुआ कि रूसो एक व्यक्ति के यहाँ भेजा जाए, जहाँ सारी व्यवस्था की जाएगी। रूसो इस बात से दुःखी हुए कि इस महिला के साथ रहने का मौक़ा जाता रहा, पर उन्होंने यह तसल्ली कर ली कि उन्हीं की आज्ञा से वे यात्रा कर रहे हैं। मादाम से सफ़र खर्च ले कर रूसो अपने नए स्थान के लिए रवाना हो गए।

वे जब आनेसी से रवाना हो गए, उसके अगले दिन उन्हें ढूँढ़ते हुए उनके पिता आनेसी पहुँचे और वे मादाम दवारां से मिले। वहाँ पर रूसो के पिता मादाम के साथ अपने लड़के की दुःखकर प्रवृत्ति के सम्बन्ध में चर्चा करते रहे, पर जैसा कि रूसो ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में लिखा है, वे रूसो को पकड़ने के लिए रवाना नहीं हुए। रूसो के पिता घोड़े पर थे और रूसो पैदल यात्रा कर रहे थे, इसलिए यदि वे चाहते तो बड़े मज़े में उन्हें पकड़ सकते थे। यात्रा की दिशा भी मालूम थी। रूसो लिखते हैं: "ऐसा मालूम होता है कि मेरे रिश्तेदार मेरे नक्षत्रों के साथ षड्यन्त्र कर मुझे अपने भाग्य के हाथों में सौंप रहे थे। इसी प्रकार की अवहेलना के कारण मेरा भाई भी खो गया और इतनी बुरी तरह खो गया कि यह पता ही नहीं चला कि उसका क्या हुआ।"

रूसो के पिता इस बीच में दूसरी शादी कर चुके थे, और अब वे अपनी स्त्री की रिश्तेदारी में इतने उलझे रहते थे कि उन्हें अपने बेटे के सम्बन्ध में फ़ुरसत नहीं मिलती थी। मुझे तथा मेरे भाई को अपनी माँ की ओर से कुछ आमदनी रहती थी, जो हम लोगों की अनुपस्थिति में पिता को जाती थी। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इसका उन पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव था या इस कारण वे अपने कर्तव्य से च्युत हो गए थे, पर उनके अनजान में किसी न किसी ढंग से उनके जोश पर पानी ज़रूर पड़ जाता था। नहीं तो मेरा विचार है कि उनका जोश बहुत अधिक होगा। रूसो के अनुसार इसी कारण आनेसी तक पहुँचने पर भी उन्होंने लड़के का पीछा नहीं किया। यही कारण है कि भागने के बाद भी रूसो कई बार अपने पिता से मिले, उनका स्वागत भी उसी प्रकार से हुआ, जैसा बाप के यहाँ बेटे का होना चाहिए, पर कभी रूसो के पिता ने अपने बेटे को अपने पास रखने की चेष्टा नहीं की।

इस घटना का वर्णन करते हुए रूसो ने जो मन्तव्य किए हैं, वे बड़े ही मार्के के हैं—मेरे पिता बहुत अच्छे सज्जन थे और मुझ से प्रेम करते थे, फिर भी उनके इस प्रकार के व्यवहार से मैं अपने चरित्र पर सोचने के लिए मजबूर हुआ हूँ और इस प्रकार के विचारों के कारण अपने चरित्र की ईमानदारी क़ायम रखने में मुझे सहायता मिली है। इन विचारों से मुझे सदाचार का बहुत बड़ा गुर मालूम हुआ है। शायद यह एक ही गुर है, जो व्यावहारिक रूप से उपयोगी है, वह गुर यह है कि ऐसी परिस्थितियों से बचा जाए, जिनमें हमारे कर्तव्य हमारे स्वार्थ के विरुद्ध पड़ते हैं और किसी ओर की हानि हमारे लिए लाभकारी है। मुझे इस बात का निश्चय है कि ऐसी परिस्थितियों में चाहे हम जिस प्रकार के उच्च तथा पुण्यात्मक उद्देश्यों से सूत्रपात करें, देर में या सवेर में, अपने अनजान में हम कमज़ोर पड़ते जाते हैं, व्यवहार में दुष्ट और अन्यायी हो जाते हैं, यद्यपि अपने हृदयों में अब भी हम अच्छे और न्यायी बने रहते हैं।

यहाँ पर एक क्षण के लिए रूसो की कथा को रोकते हुए यह मन्तव्य कर देना अनुचित न होगा कि रूसो ने जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है वह बहुत ही मौलिक है और हमें यह समझने में देर नहीं लगती कि सैकड़ों बुराइयों में से गुज़र कर भी वे कैसे एक महापुरुष बने।

रूसो की यात्रा बहुत मज़ेदार रही। उनका साथ एक ऐसे व्यक्ति से हुआ जो धार्मिक होते हुए भी धार्मिक बातचीत तथा अन्य टीमटाम से परिचित होने के कारण मज़े में ज़िन्दगी गुज़ार रहा था। यदि किसी और की जेब में पैसे हैं, तो उस व्यक्ति को कभी पैसों की कमी नहीं होती थी, क्योंकि उसे वह कला आती थी, जिससे दूसरों की जेब का पैसा उसकी जेब में लाया जा सकता है। फिर भी वह आदमी बदमाश नहीं था।

इस व्यक्ति के साथ रखने के कारण रूसो को धर्मों के सम्बन्ध में भी बड़ी अच्छी अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई। यात्रा के सात आठ दिन बड़े मज़े में गुज़रे। वह साथी तो था ही, उसकी स्त्री भी चतुर थी, और उसने

मार्ग में बिचारे रूसो को खूब लूटा, लूटने को धरा ही क्या था, मगर जो कुछ भी था उस महिला के पास चला गया और जब रूसो ट्यूरिन पहुँचे, तो उनके पास न धन था और न कपड़े; बस जीवन-संग्राम में लड़ने के लिए अपनी बुद्धि ही रह गई थी। इसी पूंजी को ले कर वे ट्यूरिन पहुँचे।

फिर भी यौवन की उमंग उनके साथ थी, और उनके मन में यह भावना थी कि उन्हें अपने सम्बन्ध में कुछ फ़िक्र करने की आवश्ययकता नहीं है, क्योंकि दूसरों ने उनका भार ले लिया था। इसके अतिरिक्त उनके मन में इस बात का भी बड़ा जोश था कि इतनी कम उम्र में इतने देशों को देखने का मौक़ा मिला। उन दिनों इटली यूरोप की कला और साहित्य का केन्द्र था।

उनसे जहाँ जाने के लिए कहा गया था, वहाँ वे गए। वहाँ उन्हें रहने के लिए एक कोठरी सी दी गई, इसके एक किनारे पर एक लकड़ी की वेदी रखी हुई थी, जिस पर एक क्रूस रखा हुआ था। कुछ लकड़ी की कुर्सियाँ भी रखी हुई थीं। असल में यह कोई कमरा नहीं बल्कि हौल था। यहाँ चार पाँच सहपाठी दिखाई पड़े, जो देखने में ईश्वर भक्त के बजाय लफंगे मालूम पड़ रहे थे। इनमें से दो तो क्रोट जाति के थे, और अपने को यहूदी या मरक्को के मुसल्मान बताते थे। इन लोगों ने रूसो से कहा कि वे किस प्रकार ईसाइयों को बेवक़ूफ़ बना कर अपना उल्लू सीधा करते थे। जहाँ उन्हें मालूम पड़ता कि ईसाई बनने में फ़ायदा है, वहाँ वे गद्‌गद् होकर ईसाई बन जाते थे और खा पीकर जब देखते थे कि अब आदर घट रहा है तो दूसरी जगह चल देते थे। इसी प्रकार उन लोगों ने सरल धार्मिक लोगों की धर्मप्राणता का फ़ायदा उठा कर सारे स्पेन और इटली का भ्रमण किया था। यहीं पर एक दूसरे फाटक के अन्दर कुछ स्त्रियाँ भी दिखाई पड़ीं, जो रूसो के अनुसार परित्यक्ता वेश्याएँ ज्ञात हुईं। केवल उनमें से एक रूसो को कुछ अच्छी मालूम हुई। वह कुछ सुन्दर भी थी।

रूसो ही के सम्मान में यह छोटा-सा समाज एकत्र हुआ और रूसो को इस बात का मौक़ा दिया गया कि ईश्वर की दया स्वीकार करें। दूसरों से भी रूसो के लिए प्रार्थना करने के लिए अपने दृष्टान्त से आगन्तुक को प्रेरित करने के लिए कहा गया। यह सब करके कुमारियाँ अपने बाड़े में लौट गईं, तब रूसो को यह स्थान देखने का मौक़ा मिला।

अगले दिन प्रातः काल फिर सभा जुड़ी और रूसो अपने मन में सोचने लगे कि आखिर वे जो कुछ करने जा रहे हैं, वह कहाँ तक सही है। पर परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं कि कुछ समझ में नहीं आ रहा था। पीछे लौटने का रास्ता नहीं रह गया था। उन्होंने इस प्रकार अपने मन को समझाया कि वे फ़ौरन कैथलिक संप्रदाय में भर्ती होने नहीं जा रहे हैं, इस बीच में कोई अनहोनी घटना ऐसी हो सकती है, जिससे यह बला टल जाय। रूसो बहुत कुछ पढ़ चुके थे और उन्होंने संप्रदाय परिवर्तन की तारीख़ को टालने के लिए अपने गुरुओं से तर्क वितर्क शुरू किया। वे लिखते हैं: "हमने इस सम्बन्ध में जो प्रयत्न किए, वे बहुत ही हास्यास्पद थे। वे मुझे समझाना चाहते थे और मैंने उन्हें समझाना शुरू किया, हम इतने सरल थे कि यह समझते थे कि यदि हमने इन्हें समझा लिया, तो ये ही प्रोटेस्टेंट हो जाएँगे।

रूसो उनके लिए एक समस्या प्रमाणित हुए। वे यह आशा नहीं करते थे कि इतनी कम उम्र के नौजवान से उन्हें शिकस्त होगी। इस समय जो लोग उनके गुरु के रूप में सामने आए, वे अपनी वाणियों से सरल व्यक्तियों को बहका लेते थे, पर रूसो तो उनसे अधिक पढ़े लिखे थे। अन्त में एक पादरी लाए गए, जो बहुत विद्वान् समझे जाते थे यानी लम्बे लम्बे वाक्य बोलते थे, पर रूसो उनसे भी घबड़ाए नहीं। कई बार तो उस पादरी ने ग़लत उदाहरण दिए। रूसो ने उनकी ग़लती पकड़ ली, पर उसे बताया नहीं। अन्त में जैसा कि रूसो ने लिखा है : "दो कारणों से पादरी की ही जीत हुई। एक तो कारण यह था कि वह मुझ से तगड़ा था और वह जानता था कि मैं उसकी दया पर निर्भर हूँ, इस कारण यद्यपि मैं नौजवान था, फिर भी मैंने उसे ज्यादा पीछे की ओर ढकेलना उचित न समझा। दूसरा कारण यह था कि नवयुवक पादरी ने बाक़ायदा अध्ययन किया था, जब कि मैंने ऐसा नहीं किया था। परिणाम यह हुआ कि उसने ऐसी तर्क पद्धति का प्रयोग किया, जिसका मैं अनुसरण नहीं कर सकता था। जब तर्क में मेरी जीतने की बारी आती थी, और उसके सामने कोई

अज्ञात आपत्ति उपस्थित होती थी, तो वे यह कह कर अगले दिन के लिए तर्क स्थगित कर देते थे कि मैं विषय से हट गया हूँ। इसके अलावा मैं जो भी उदाहरण पेश करता, वे उनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में प्रश्न उठाते, फिर वे उन पुस्तकों को ला कर देते, जिन में वे उद्धरण थे। फिर मेरी विद्वत्ता इस प्रकार की नहीं थी कि मैं लैटिन के बड़े ग्रन्थों में उन उद्धरणों को ढूँढ़ निकालता। मैं पुस्तकों का इस प्रकार प्रयोग करने में अभ्यस्त नहीं था।"

इस प्रकार एक तरफ़ तो वाद-विवाद चलता रहा, और दूसरी तरफ़ उनका उन बदमाशों से साबक़ा पड़ा, जो कैथलिक सम्प्रदाय की सत्ता से प्रभावित हो कर ईसाई बन जाने का ढोंग रच रहे थे। इन बदमाशों में कथित भूतपूर्व मारक्कोवासी उनके पास उठता बैठता था, और उनसे बातें करता था। इस अंश को रूसो के शब्दों में उद्धृत करना चाहिए। वे लिखते हैं :

"वह मेरी छोटी मोटी सेवाएँ करता था, और कभी कभी मेज़ पर कुछ खाने को देता था। अक्सर वह ऐसे तपाक से मुझे चूमता था और चूमते समय उसकी दृष्टि इतनी जोशीली बन जाती थी कि उसे प्रेमात्मक न कह कर जंगली कहना ही अधिक उत्तम होगा। फिर भी मैं यह कह कर उसके चुम्बनों को बरदाश्त करता था कि उसने मुझसे दोस्ती कर ली है, इसलिए उसे क्यों नाराज़ किया जाए, पर वह इतने पर ही नहीं रुका और मेरे साथ अशोभन व्यवहार करने लगा। कई बार उसने मेरे सामने ऐसे अजीबो-ग़रीब सुझाव रक्खे कि मैंने सोचा इसका दिमाग़ फिर गया है। एक रात को वह मेरे बिस्तर पर सोने के लिए तैयार हो गया। पर मैंने इस बहाने से इस पर आपत्ति की कि मेरा बिस्तरा बहुत संकरा था। तब उसने मुझ से कहा कि मैं ही उसके बिस्तरे पर आ जाऊँ। तब भी मैंने इनकार किया, क्योंकि यह दुष्ट इतना गन्दा था और इसके शरीर से खानी तम्बाकू की ऐसी बदबू आती थी कि मेरा सिर घूमने लगता था। अगले दिन प्रातःकाल हम लोग सभा कक्ष में थे। उसने आव देखा न ताव और मेरा प्यार लेना शुरू किया, पर उसने इतना ज़ोर लगाना शुरू किया कि मैं घबड़ा गया। इसके बाद उसने मेरे साथ बहुत ही घिनौनी स्वतन्त्रता लेनी चाही, और मेरे हाथों को भी इस प्रकार से लगाया कि मैं भी उसके साथ वही स्वतन्त्रता लूँ। मैं चिल्ला कर भयंकर रूप से उछल पड़ा, पर मुझ में कोई क्रोध नहीं था, क्योंकि मुझे यह मालूम नहीं था कि बात क्या है। पर मैंने इतने ज़ोर शोर से आश्चर्य और घृणा प्रदर्शित की कि वह मुझे छोड़ कर अलग हो गया। पर जिस समय मैं अलग हो रहा था, उस समय कोई सफ़ेद लेई सी चीज आग जलाने के स्थान की ओर छूट कर ज़मीन की ओर गिरी। इससे मैं बिलकुल घबरा गया और भय और आतंक से बरामदे की ओर भागा। मैं जीवन में इतना परेशान कभी नहीं हुआ था। मैं बिलकुल बीमार था। मैं यह नहीं समझ पाया कि इस हतभाग्य व्यक्ति को क्या हो रहा है। मैंने सोचा कि उसे मिरगी या उससे भी कोई भयंकर रोग का दौरा हो रहा है। मुझे इससे घृणित और अश्लील दृश्य की कल्पना नहीं हो सकती।"

रूसो ने जाकर सबको यह क़िस्सा सुनाया। उन्होंने बूढ़ी नौकरानी से भी यह बात कही, तो उसने उन्हें चुप रहने को कहा। उस बात का इतना प्रचार हो गया कि अगले दिन एक साहब आए और उन्हें व्याख्यान देने लगे। उन्होंने ऐसा कहा कि जैसे यह बहुत मामूली बात हो और उन्हें कुछ शोर नहीं करना चाहिए था। रूसो बेचारे ने तो पहले ही बार ऐसी बात देखी थी, पर वह व्यक्ति ऐसे बात करने लगा मानो रूसो को ऐसे लोगों से बराबर साबक़ा पड़ता रहा है और अबकी बार रूसो ने अनिच्छा के कारण इनकार किया। उसने यह बताया कि यह काम व्यभिचार की तरह बुरा काम है, पर साथ ही उसने यह भी कहा कि अपनी नौजवानी में मैंने अपने को भी ऐसी परिस्थिति में पाया था कि मैं विरोध नहीं कर सकता था, इसलिए मुझे स्वीकार करना पड़ा था। और जब मैंने स्वीकार किया तो देखा इसमें कोई खास पाशविक बात नहीं है। वह अपनी निर्लज्जता को बिलकुल हद तक ले गया और बिलकुल बेशर्मी पर उतारू हो गया। उसने यह मान लिया कि इनकार करने में रूसो की ओर से केवल एक ही कारण हो सकता था, वह कारण था कष्ट का भय। इसलिए उसने रूसो को इतमीनान दिलाया कि यह भय अमूलक है। उसने विश्वास दिलाया कि भय के लिए कोई नींव नहीं थी, इसलिए मुझे अकारण त्रस्त नहीं होना चाहिए वे उस दुष्ट की बातों को द्विगुणित आश्चर्य के साथ सुनते रहे, क्योंकि वह अपने लिए बात नहीं कर रहा था, बल्कि

यह दिखावा कर रहा था कि वह जो कुछ कर रहा है उनकी भलाई के लिए कर रहा है। यह सारा मामला उसे इतना सरल और स्वतः सिद्ध ज्ञात हो रहा था कि उसने रूसो के साथ बातचीत करने के लिए अलग जाने की आवश्यकता नहीं समझी। जिस समय ये बातचीत कर रहे थे, उस समय एक पादरी उनकी बातों को सुन रहा था और उस के रंग-ढंग से यह मालूम हुआ कि वह इन बातों में कोई भय की बात नहीं पा रहा था। इस प्रकार इन लोगों के रंग ढंग का रूसो पर यह असर पड़ा कि उन्होंने अन्त तक यह विश्वास कर लिया कि ऐसी बातें दुनिया में आम तौर से प्रचलित हैं, यद्यपि इन से रूसो का साबका अभी पड़ा।

फिर भी इस घटना का रूसो के मन पर असर पड़ा, कि धर्मी और धार्मिक लोगों पर सन्देह उत्पन्न हुआ। इस घटना से यह भी पता चलता है कि कैथलिक मठधारियों में अप्राकृतिक व्यभिचार इस हद तक प्रचलित था कि वे उसे एक मामूली बात समझते थे। यहाँ यह बता दिया जाए कि कैथलिक सम्प्रदाय के पादरियों को बौद्ध भिक्षुओं की तरह आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण करना पड़ता था। इसी से ज्ञात होता है कि उनमें अप्राकृतिक व्यभिचार का क्यों बोलबाला था।

मज़े की बात यह है कि जिस व्यक्ति ने रूसो पर कदर्य प्रयास किया था, और जिस के सम्बन्ध में इस प्रकार कोहराम मच गया था, वह उस मठ में उसी प्रकार बना रहा, केवल यही नहीं, वह इतना समर्थ बना रहा कि वह रूसो ही को सताता रहा। उस समय से रूसो उस प्रकार के लोगों की संगत से बचने लगे और जैसा कि उन्होंने लिखा है, ऐसे लोगों की बातचीत और रंग ढंग से ही वे समझ जाने लगे कि यह इस क्रिस के पापी जीव हैं।

६६, ओल्ड सेक्रेटेरियट,
दिल्ली—८

—मन्मथनाथ गुप्त

चिन्ता का इलाज

प्रसिद्ध लेखक ऐंड्री गिडे जब अपने को अत्यधिक चिन्ताग्रस्त अनुभव करते थे तब वे पियानो बजाने लग जाते थे। पियानो के महान् संगीत की समलयता में उनकी चिन्ताएँ क्षुद्र बन जाती थीं।

× × ×

टालस्टाय जब चिन्ताओं से व्यथित हो उठते थे तब वे पहाड़ों की घाटियों पर सूर्यास्त के दृश्य को देखा करते थे। वे प्रकृति में इतने अधिक सौन्दर्य को अनुभव करते थे कि वे अपनी क्षुद्र चिन्ताओं के विषय में लज्जित हो जाते थे।

× × ×

सर विन्स्टन चर्चिल गत युद्ध के समय जब स्वतन्त्र संसार के विषय में चिन्ताओं से घिर जाते थे—वे युद्ध से अपना मन हटा कर प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को रंगों में चित्रित करने लग जाते थे।

× × ×

"मैं प्रत्येक दिन के आधार पर जीवन से अधिक से अधिक प्राप्त करने का प्रयत्न करता हूँ। मैं न तो आनेवाले कल की चिन्ता करता हूँ और न गुज़रे हुए कल के विषय में रत्ती भर सोचता हूँ। मैं समझता हूँ कि यदि मनुष्य अपने कार्य में अपना मन पूर्ण रूप से लगाए और वर्तमान से अधिक से अधिक ग्रहण कर सके तो वह अपने जीवन को सुखी बना सकता है।"

—लिनल बैरीमोर

भारत की कुछ प्रमुख नृत्य-शैलियाँ

मानव के मन में संगीत और नृत्य के प्रति स्वभावतः जन्मजात अनुराग होता है। उनका शास्त्रीय विवेचन न समझने पर भी उसे उसमें एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है जो बरबस उसके शारीरिक अवयवों को इधर उधर हिलाने को बाध्य कर देती है। मन में उठती हुई आनन्द की हिलोर के कारण सहज ही हमारे मुँह से एक तान-सी निकल पड़ती है और किसी तान को सुन कर उस पर हमारे हाथ पाँव थिरकने लगते हैं। ऐसा होना संगीत और नृत्य से मनुष्य के सहज लगाव का द्योतक है। यही कारण है कि जब छोटा बच्चा भी ख़ुशी में मस्त होता है तो वह नन्हे नन्हे पाँवों पर थिरकने लगता है और उसके हाथ ताली बजा बजा कर ताल देने लगते हैं।

वैसे देखा जाए तो प्रकृति की प्रत्येक क्रिया में संगीत, ताल तथा लय है। पृथ्वी पर बहनेवाली नदियाँ तथा झरने, उस पर उगे हुए पेड़ों के हिलने डोलने तथा पक्षियों के चहकने में प्रकृति का संगीत एवं उसकी ताल और लय छिपी हुई है। कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत एवं नृत्य के प्रति हमारा जन्म से ही अनुराग है।

यद्यपि संगीत और नृत्य एक दूसरे के पूरक हैं फिर भी यहाँ हम भारतीय प्रमुख-प्रमुख नृत्यों की ही चर्चा करेंगे।

मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर यह माना गया है कि मनुष्य में भाव-प्रकाशन की आकांक्षा जन्म से ही है। सृष्टि के आरंभ में मनुष्य ने अपने भावों को प्रकाशित करने के माध्यम के रूप में शरीर के हाव भावों का ही आश्रय लिया होगा। भाव-प्रकाशन की इन सार्थक मुद्राओं को ही नृत्य कहते हैं। नृत्य का मुख्य उद्देश्य ही यह है कि ताल और स्वर द्वारा अभिनय करके अपने भावों को समझा देना। चाहे वे भाव भरत-नाट्य की मुद्रा में समझाए जाएँ चाहे कथाकली में अथवा अन्य किसी नृत्य में।

नृत्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक कथा जो अत्यन्त प्रचलित है वह इस प्रकार है :

त्रिपुर नामक दैत्य का वध करने पर शिव नाचने लगे और इसीसे नृत्य-कला की सृष्टि हुई। ब्रह्मा ने त्रिपुर के रक्त से मिट्टी सान कर ढोल प्रस्तुत किया एवं त्रिपुर के चमड़े से उसे मढ़ा और शिव के पुत्र गणपति से ताल देने के लिए कहा। तब से ताल की सृष्टि हुई जिसका गीत और वाद्य में बाद में प्रयोग हुआ।

नटेश शिव इसीलिए नृत्य के आदि-देव माने जाते हैं। शिव और पार्वती दोनों ही नृत्य-कला में अत्यन्त प्रवीण थे। पुरुष कठोरता को सहन कर सकता है अतः वह कठोरता का प्रतीक है और नारी कोमलता का प्रतिनिधित्व करनेवाली मानी गई है। इसी भेद को लेकर शिव और पार्वती के नृत्यों के भी दो भेद किए गए। शिव के नृत्य को 'ताण्डव' नृत्य कहा जाता है और पार्वती के नृत्य को 'लास्य'। शिव और पार्वती से नृत्य का यह सम्बन्ध इस बात का द्योतक है कि नृत्य की यह कला अति प्राचीन, व्यापक एवं महत्वपूर्ण रही है। 'ताण्डव' से 'ता' और 'लास्य' से 'ल' लेकर 'ताल' की रचना की गई जिसका संगीत और नृत्य दोनों में काफ़ी महत्व है।

नृत्य-कला के विकास की कहानी भी बड़ी मनोरंजक है। पुराणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पहले ब्रह्मा ने भरत को इसकी शिक्षा दी। भरत ने अन्य ऋषियों को यह कला सिखलाई। भगवान् शिव ने अपने शिष्य तांडु को 'तांडव' नृत्य और पार्वती को 'लास्य' नृत्य सिखलाया। पार्वती ने उषा को और उषा ने गोपियों को नृत्य की शिक्षा दी।

महाभारत काल में गंधर्व जाति इस कला में विशेष निपुण थी। गंधर्वों के राजा चित्रसेन से ही अर्जुन ने यह विद्या सीखी थी जो उसे अज्ञातवास के समय उपयोगी सिद्ध हुई। अर्जुन ने राजकुमारी उत्तरा को इस विद्या की शिक्षा दी थी।

शास्त्रीय विवेचन के अनुसार भारतीय नृत्य प्रधानतः चार परंपराओं में विभाजित किया गया है :

१ मणिपुरी २ कत्थक ३ कथाकली ४ भरत नाट्यम्।

उत्तर भारत और दक्षिण भारत की गायकी की पद्धति के भेद के अनुसार ही नृत्य में भी ये भेद हैं।

मणिपुरी और कत्थक उत्तर भारत की प्रमुख नृत्य शैलियों में से हैं और कथाकली तथा भरतनाट्यम् दक्षिण भारत की नृत्य शैलियों में प्रमुख।

१ मणिपुरी : कहा जाता है कि इस नृत्य की उत्पत्ति रासलीला से हुई है। वैष्णव धर्म के प्रसार एवं प्रचार के साथ साथ नृत्य की वहाँ प्रधानता होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसमें लड़के और लड़कियाँ दोनों भाग ले सकती हैं और रास-मंडल के चारों ओर नाचते हैं। रास में कृष्ण का बाल रूप ही ग्रहण किया जाता है अतः कृष्ण का अभिनय एक लड़का करता है बाक़ी सारा अभिनय युवतियाँ करती हैं। इस नृत्य में पहनी जानेवाली पोशाक का रंग भड़कीला होने के कारण काफ़ी आकर्षक होता है। सिर पर ऊपर उठे हुए जूड़े पर तिकोनी-सी टोपी और उस पर से ओढ़ा हुआ बारीक दुपट्टा या महीन जाली की हलकी चादर जिसे विशेष मुद्रा में आने के पहले युवतियाँ मुँह पर डाले रहती हैं, नर्तिकाओं के सौंदर्य में चार चाँद लगा देते हैं। उनके शरीर पर तंग लाल ब्लाउज़ तथा हरे रंग का घाघरा या हरे रंग का ब्लाउज़ और हरे, लाल या नीले रंग का (जो भी ब्लाउज़ के रंग से मेल खाता हो) घाघरा या लहँगा होता है और उनमें चमकते हुए शीशों के टुकड़े लगे रहते हैं।

अपनी सरलता और आकर्षण के कारण यह नृत्य सारे भारत में प्रचलित हो गया है। इस नृत्य के इतने अधिक प्रचार का कारण रवीन्द्र का शान्ति-निकेतन में इसे स्थान दे देना है। उनकी 'नटीर पूजा' और 'शाप मोचन' जो मणिपुरी नृत्य के अन्तर्गत ही हैं, का जनता में बड़ा मान है।

नभकुमार और नन्दलाल बोस की कन्या गौरी ने शान्तिनिकेतन में इस नृत्य को विशेष लोकप्रिय बनाया है। साधना बोस ने भी इस नृत्य में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। आजकल सिनेमा क्षेत्र तथा नाटकों में भी मणिपुरी नृत्य का विशेष रिवाज़ है।

मणिपुरी नृत्यों के आर्केस्ट्रा में मृदंग या खोल मंजीरे तथा बाँसुरी होती है। कभी कभी नृत्य के समय चार से ले कर छः तक गायिकाएँ सामूहिक गीत गाती हैं। खोल बजानेवाले समूह को 'धुमोन' कहते हैं और इनकी संख्या यथावसर पन्द्रह से ले कर चालीस तक हो जाती है।

२ कत्थक : उत्तर भारतीय नृत्य शैलियों में कत्थक मुख्य है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि 'ताल' और 'स्वर' द्वारा अपने भावों को समझा देना ही नृत्य का मुख्य उद्देश्य है किन्तु मुग़लकाल में यह सिद्धान्त न चल सका। नृत्य की पवित्रता मुग़लकालीन विलासिता के दौर में पी जानेवाली शराब की बोतलों की धारा में बह गई। उस समय तो मानव ने दानव का रूप धारण कर लिया था अतः भगवान् को खुश करनेवाली देवदासियों को शराब की बोतलें ले कर नचाया जाने लगा; समाज नृत्य-कला को भूल गया। नृत्य रहा पर मानवता चली गई और अपनी पायलों की रुनझुन से जो भगवान् को खुश करती थीं उन्हें विलासी सम्राटों को खुश करना पड़ता था। कहने का तात्पर्य यह कि इस काल में नृत्य सिर्फ घुँघरू की झनकार और साधारण भंगिमा रह गई थी। तत्कालीन विलास-प्रिय मुग़ल बादशाहों को ऐसे नृत्य की आवश्यकता थी जो उनका मनोरंजन करे, उनकी विलासिता सहलाए, और जिसे वे आसानी से समझ सकें। उस समय के प्रचलित नृत्य को भारतीय नृत्यकारों ने 'कत्थक' नृत्य के नाम से पुकारा।

यद्यपि धीरे धीरे इस नृत्य में कुछ सुधार होता जा रहा है फिर भी उसकी पहली मुद्रा और वेशभूषा आज भी वैसी ही बनी हुई है जैसी वह मुग़ल काल में थी; वही लम्बी अचकन, चूड़ीदार पाजामा या ज़रीदार साफ़ा या दुपलिया टोपी तथा वासकट।

यह नृत्य 'ताण्डव' है या 'लास्य' इस विषय को ले कर काफ़ी मतभेद है। कुछ विद्वान् तो इसे नृत्य ही नहीं मानते। उनका कहना है कि इसमें पैरों से तबला बजाने की अपेक्षा और क्या है? किन्तु ऐसी बात नहीं है। कत्थक नृत्य भी शास्त्रीय नृत्य है। हाँ, इतना अवश्य है कि यह एकांगी नृत्य है। इसमें शरीर को किसी विशेष प्रकार का श्रम नहीं करना पड़ता। इसमें पदाघात की विभिन्न कलाएँ ही देखने को मिलती हैं। नर्तक या नर्तकी कोई विशेष मुद्रा ले कर खड़े हो जाते हैं। 'हारमोनियम या सारंगी पर बजाते हुए वाद्य पर तबलेवाला अपना जौहर दिखाता है, जैसे ही सम आता है नर्तक अपनी गर्दन से भाव प्रकट करता है और भौंहें, कलाइयाँ लय पकड़ने लगती हैं। ताल पर चलते हुए सलामी होती है फिर नृत्य के तोड़े पर न, बोल चलते

१६५४

लगते हैं। लयकारी पर मुख्य ज़ोर होने के कारण विभिन्न लयों का प्रदर्शन होता है। घुँघरू का कार्य तबले के साथ होता है और हावभाव का कार्य ठुमरी गाकर।

चित्रकारी का भी इस नृत्य से काफ़ी सम्बन्ध रहा है। उदाहरण के लिए गुलाल को बिछा कर नाचते-नाचते पैरों से हाथी, मोर आदि चित्र बना कर दिखाना।

धीमी लय पर इस नृत्य का सौन्दर्य अधिक आकर्षक होता है। उसमें नर्तक की तैयारी को मापा जा सकता है। धीरे-धीरे लय को बढ़ाया जाता है और सवाई, ड्योढ़ी, पौने दूनी, दुगुनी, तिगुनी लय पर बजानेवाले और नाचनेवाले की द्रुतता की होड़-सी लगी रहती है और दोनों पसीने से तरबतर हो जाते हैं।

वैसे तो भारत के सभी भागों में यह नृत्य प्रचलित है पर राजस्थान तो इसका घर ही है। बनारस लखनऊ तथा जयपुर के कत्थक प्रसिद्ध हैं।

इस नृत्य की वेशभूषा और नृत्य के भाव प्रदर्शन में इधर कुछ सुधार हुए हैं।

३. **कथाकली** : कथाकली का अर्थ है 'कहानी का खेल'। यह नृत्य केरल देश में बहुत लोकप्रिय है। इसे प्रकारान्तर से 'नृत्य अभिनय' कहा जाए तो अनुचित न होगा।

इस नृत्य की अपनी विशेषता यह है कि अभिनेता बिना बोले केवल अपनी भाव-भंगी तथा मुद्रा द्वारा ही किसी एक कहानी को नाटक के रूप में प्रस्तुत करता है। दो गायक उस पद्यमय कहानी को गाते, तीन अन्य व्यक्ति मृदंग तथा अन्य वाद्य बजाते हैं। आरम्भ में परदे के पीछे एक प्रार्थना होती है, फिर नायकों के चरित्र का वर्णन होता है, फिर नायकों के चरित्र का वर्णन होता है, जिसे पुरपाड कहते हैं, फिर चमड़े से मढ़े वाद्यों की होड़ होती है इसे 'मोलयालय' कहते हैं। इस प्रस्तावनात्मक अंश में कभी कभी आधी रात तक का समय भी बीत जाता है।

नृत्यों में भारतीय परंपरा के अनुसार केवल अभिनय तथा मुद्रा द्वारा भाव-प्रकाशन की क्रिया का बड़ा महत्व है। नव रसों (श्रृंगार, वीर, करुण, अद्भुत, हास, भय, रौद्र, शान्त तथा बीभत्स) को चतुर अभिनेता मुद्रा द्वारा बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रदर्शित करते हैं। कहा जाता है बीभत्स तथा भयानक रस का प्रदर्शन जैसा कथाकली नृत्य द्वारा होता है वैसा और किसी नृत्य द्वारा नहीं। इस नृत्य में पात्रों की वेशभूषा चरित्र के अनुरूप, प्रदर्शित किए जानेवाले भावों के अनुरूप तथा उद्भूत किए जानेवाले रस के अनुरूप होती है। किसी ने ठीक ही कहा है: "इसमें नृत्य ताल पर आश्रित है, नृत्य भाव पर आश्रित है और नाट्य रसों पर आश्रित है।" कहना न होगा कि यह नृत्य ही एक ऐसा नृत्य है जिसमें नाट्य शास्त्र के दोनों अंगों पर बराबर महत्व दिया गया है।

इस नृत्य में चूँकि दर्शकों में ईप्सित रसों की उत्पत्ति भी कम महत्व नहीं रखती अतः मुद्रा को आँखों द्वारा प्रदर्शित करने के लिए शरीर को आवश्यकतानुसार घुमाने के उपयुक्त लचीला बनाने के लिए काफ़ी परिश्रम एवं साधना करनी पड़ती है।

४. **भरतनाट्यम्** : कहा जाता है कि यह नृत्य सबसे पहले आन्ध्र देश में प्रचलित हुआ था। इस नृत्य के शिक्षक 'नटुवन' कहलाते हैं। वर्तमान युग के श्री मीनाक्षी सुन्दरम् पिलाई इस नृत्य में सब से चतुर माने गए हैं।

प्राचीन भारतीय नाट्य-कला को जीवित रखने में देवदासियों का बहुत कुछ हाथ था। देवदासियाँ पैदा नहीं होती थीं, बनाई जाती थीं। छोटी बालिकाओं की शादी पत्थर की मूर्ति से कर दी जाती थी और उन्हें मन्दिरों में छोड़ दिया जाता था। वहाँ वे 'नटुवन' से नृत्य-कला सीखती थीं। पूजा के समय उनके नृत्य का प्रदर्शन होता था। इस तरह देवदासियों के बीच ही यह कला पनपी और उनके जीवनयापन का साधन हो गई। उन्हीं के साथ इस नृत्य में विकास और पतन का अवसर आया।

हिन्दू नृत्य-कला के सिद्धान्तों का निरूपण 'भरतनाट्य' में पवित्रतम रूप में किया गया है। यह पूरी तरह से नृत्य है, नाट्य नहीं।

इस नृत्य में केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं, पुरुषों का भाग लेना अशुभ-सा माना जाता है। यद्यपि इसमें भी श्रृङ्गार प्रधान है पर चेहरे पर (कथाकली नृत्य की तरह) नक़ाब आदि नहीं लगाई जाती; भाव अभिनय द्वारा ही प्रदर्शित किए जाते हैं। यह 'लास्य' वर्ग का एक उच्च सांस्कृतिक नृत्य है।

इन चार प्रमुख शैलियों के अलावा मोहिनी आत्म नामक नृत्य का प्रचार मालाबार में विशेष रूप से

है। जिस तरह कथाकली नृत्य में विशेष रूप से पुरुष ही भाग लेते हैं उसी तरह इस नृत्य में अधिकतर स्त्रियाँ ही नाचती हैं। कहते हैं कि त्रावणकोर के एक राजकुमार ने इस नृत्य को प्रचलित किया था।

गुजरात में 'गर्बा' नृत्य एक अत्यन्त प्रसिद्ध नृत्य है। शरद् पूर्णिमा और होली के अवसर पर इस नृत्य की धूम-सी मच जाती है। छोटी छोटी बालिकाएँ भी घुँघरू लगे दो डण्डे ले कर अथवा सिर पर मटकी धर कर एक घेरे में खड़ी हो जाती हैं। दो बच्चे राधा और कृष्ण बन कर बीच में खड़े हो जाते हैं। फिर कृष्ण-लीला का कोई गाना गाती हुई, डंडों अथवा हाथों से ताल देकर गोपियाँ कृष्ण-राधा के चारों ओर नाचती हैं।

आश्विन मास की नवरात्रि की प्रथम रात को दो मटकियाँ जिनमें एक बड़ी और एक छोटी होती है, एक पर एक रख दी जाती हैं। ऊपर की मटकी पर चार ज्योति प्रज्वलित कर दी जाती हैं। इस प्रकार 'गर्बा' की स्थापना करके स्त्रियाँ तालियाँ बजा बजा कर गाती हैं और स्थापित किए हुए 'गर्बा' के चारों ओर परिक्रमा करती हैं। नवरात्रि समाप्त होने तक यह प्रतिदिन किया जाता है और प्रति रात 'गर्बा' के कम से कम पाँच नृत्य गीत अवश्य गाए जाते हैं।

इसके अलावा भिन्न भिन्न स्थानों में तरह तरह के लोक-नृत्य प्रचलित हैं जो उत्सवों, पर्वों एवं त्यौहारों के के अवसरों पर नाचे जाते हैं।

नृत्य के पुनरुद्धार के प्रति अब लोगों का उत्साह अवश्य जागृत हो गया है। शास्त्रीय नृत्य-कला अब ईर्ष्यावश गुप्त रखी जानेवाली कला नहीं रह गई है वरन् एक सामाजिक वस्तु बन गई है। परिणामतः इसके लौकिक और शास्त्रीय रूपों में भी क्रमशः विकास, संवर्धन, परिवर्तन एवं परिवर्धन होता जा रहा है। बंगाल और मद्रास प्रान्त में तो नृत्य का घर घर प्रचार है।

भारतीय परम्परा के अनुरूप नृत्य नाट्य की इस कला तथा उसके नियम विधानों को पुनरुज्जीवित करना तथा इसे पाश्चात्य संसार के सामने अपने परिष्कृत रूप में रखने में उदयशंकर ने बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया है।

द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
हिन्दी नगर, वर्धा (म. प्र.)

मदनमोहन शर्मा

पंजाबी की हस्तलिखित पुस्तकें

गुरुमुखी की हस्तलिखित पुस्तकों में जो सबसे पुरानी पुस्तक प्राप्त होती है वह है "जनम साखी"। इसकी मूल प्रति ब्रिटिश म्यूज़ियम में है। "जनम साखी" में गुरु नानक की जीवनी है जिसे कि ४०० वर्ष हुए गुरु नानक के शिष्य भाई पैड़ा मोरवा ने लिखा था। गुरुमुखी में एक और प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक प्राप्त हुई है। यह पंजाबी का प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसका नाम है "हीर वारस शाह" इसे १८२१ में चुनिया, ज़िला लाहौर के निवासी श्री सेवाराम ने लिखा था। इसकी एक और प्रति है जो पश्चिमी पंजाब के स्पीकर मरहूम सर शहाबुद्दीन के संग्रहालय में है। वे पंजाबी के विद्वान् थे। पंजाबी में एक और हस्तलिखित पुस्तक प्राप्त होती है जो कि भाषाशास्त्रियों के काम की है। यह पंजाबी में "रामायण" का अनुवाद है। यह अनुवाद कसूर के श्रीयुत पं. दुनीचन्द ने किया था। इस पुस्तक को जालन्धर की एक फ़र्म से प्राप्त किया गया है।

मिथ्या का अवधारण तथा भेद

'मिथ्या' के विषय में हमारे प्राचीन आचार्यों ने अनेक विचित्र बातें कही हैं, जिनकी एक संक्षिप्त आलोचना यहाँ की जा रही है। यह आलोचना लौकिक दृष्टि के अनुसार की जा रही है, मोक्षदर्शन के अनुसार जो सूक्ष्मविवेचन 'अद्वैतसिद्धि' आदि ग्रन्थों में किया गया है, उसका उल्लेख यहाँ अप्रयोजनीय है।

साधारणरूप से यह सोचा जा सकता है कि 'मिथ्या' का स्वरूपभेद नहीं हो सकता और वह सदैव एक रूप ही रहेगा; पर प्रयोगों की भिन्नता से मिथ्या के अवान्तर भेद हो सकते हैं, जैसा निम्नोक्त उदाहरणों से प्रमाणित होगा।

मिथ्या के कई पर्याय कोष ग्रंथों में पढ़े गए है: मृषा, वितथ, अनृत आदि। अतः इन शब्दों से भी यदि मिथ्यासम्बन्धी किसी रहस्य का उल्लेख प्राचीन आचार्य करते हैं, उसका भी ग्रहण मिथ्या में करना चाहिए। हम यहाँ विभिन्न आचार्यों से दर्शित मिथ्यासम्बन्धी मतों का ही उल्लेख करेंगे, उन सबों का समन्वय दिखाना इस निबन्ध का विषय नहीं है। वस्तुतः 'मिथ्या' के विषय में युग युग में मनुष्यों की धारणा बदलती आई है और एक दृष्टि में जो मिथ्या है, वह अन्य दृष्टि में सत्य हो सकता है, तथा एक अवस्था में जो ज्ञान सत्य समझा जाता है उस अवस्था या शक्ति के परिवर्तन होने से वह ज्ञान मिथ्या प्रतिभात होता है। दर्शन तथा विज्ञान के ग्रन्थों में इन विषयों का विशद विमर्श है। अतः यहाँ विश्लेषण करना व्यर्थ होगा।

(क) मिथ्या का पर्याय 'अनृत' शब्द का प्रयोग वैदिक वाङ्मय में है। वैदिक ऋषि मिथ्या का लक्षण करते हैं: एतद् वाचः छिद्रं यद् अनृतम्[1] अर्थात् जो वाक्य का छिद्र है वह अनृत है। इस वाक्य का तात्पर्य अत्यन्त गम्भीर है, और नीति-शास्त्र की दृष्टि से इसकी उच्चस्तरीय व्याख्या हो सकती है, जिसका उल्लेख यहाँ निष्प्रयोजन है।

वैदिक वाङ्मय में अनृतसम्बन्धी एक प्रसिद्ध वाक्य है: 'सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः'[2] साधारण मनुष्य का अनुभव सामान्य-विषयक होता है, और उसकी सत्यासत्य निर्णायक शक्ति स्वल्प होती है पर देव (विद्वान्; वैदिक परिभाषा) अपनी उच्चस्तरीय ज्ञान-शक्ति के कारण यथावत् ज्ञेय पदार्थ का ज्ञान कर सकता है, तथा निर्भय होकर कह भी सकता है, इस दृष्टि से यह वाक्य संगत होता है।

(ख) वेदांगों में 'शिक्षा' में 'मिथ्या' शब्द का प्रयोग उच्चारण विकलता में किया गया है। पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है: 'मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह'[3] अर्थात् मन्त्रोच्चारण में यदि स्वर या वर्ण का ठीक ठीक उच्चारण न किया जाए, तो वह मन्त्र 'मिथ्याप्रयुक्त' होता है। पूर्वाचार्यों की इस चिन्ता के लिए कुछ वास्तविक कारण था; वह यह कि उच्चारण यदि ठीक से न किया जाए, तो श्रोता को वर्णान्तर की प्रतीति होगी, जिससे वक्ता के विवक्षित अर्थ से अन्य अर्थ का बोध श्रोता को हो सकता है। अतः वह 'मिथ्या' होगा। यह मत आचार्य पाणिनि को भी मान्य था, जो उनका 'मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे'[4] सूत्र से ज्ञात होता है। 'पदं मिथ्या कारयते' अर्थात् 'पद का मिथ्या उच्चारण कर रहा है, वाक्य का अर्थ है कि पद के उच्चारण में स्वर आदि के उच्चारण में दोष हो रहा है। आजकल 'उच्चारण दोष' के लिए 'मिथ्या' शब्द का व्यवहार नहीं किया जाता जाता है।

(ग) श्रुति में अनृतसम्बन्धी अन्य एक रहस्य का भी उल्लेख है। आम्नाय कहता है: 'नानृतं वदेत्'; यह 'अनृत' उल्लेख दो प्रकार के हैं: शब्दानृत और अर्थानृत। शब्दानृत=अपशब्द तथा अर्थानृत=मिथ्यावाक्य। अपशब्द को अनृत क्यों कहा जाता है, इसका विचार मैंने अन्यत्र किया है। मिथ्यावाक्य को अर्थानृत इसलिए कहा जाता है कि यह वाक्य मनोभाव से सम्बन्ध रखता है, (जैसा छल के उदाहरण में दिखाया जाएगा) शब्द से नहीं अतः वह वस्तुतः अर्थ

---

[1] ताण्ड्य ब्राह्मण ८-६-१३. [2] शतपथ ब्राह्मण १-१-१-४. [3] पाणिनीय शिक्षा श्लोक ५२. [4] वही १-३-७१.

(=मनोभाव) पर आश्रित है, सुतरां अर्थानृत है। इन दोनों अनृत के विषय में भट्टोजि दीक्षित ने कहा है: 'शब्दस्य अर्थस्य वा विपरीतप्रतिपत्तिहेतुभूतम् उच्चारणम् अनृतवचनम्'[5]

(घ) अनर्थक वाक्य को भी अनृत कहा जाता था। अप्रयोजनीय पदों को कहने से वह पदसमूह रूप वाक्य तो बनता है, पर वह अर्थबोध में उपकारक नहीं होता, इसलिए उसको भी पूर्वाचार्य 'अनृत' वाक्य कहते थे। कैयटाचार्य ने कहा है: 'आनर्थक्यादनृतं भवति'[6] अर्थात् अनर्थक होने के कारण 'अनृत' है। अनर्थक का अर्थ 'अर्थशून्य' नहीं है, प्रत्युत 'निष्प्रयोजन' है, यह कैयट के वाक्य से ही स्पष्ट हो जाता है। ऐसे अप्रयोजनीय शब्द का अन्य नाम 'व्याज' भी था।

भारतीय मेधा की यह चरम सूक्ष्मता है कि वह अप्रयोजनीय शब्द को 'मिथ्या' कहती है, और 'प्रयोजनवत् कथन' को ही सत्य मानती है। आजकल के इस हीनतम प्रचार के युग में क्या इस मत का आदर होगा?

(ङ) मिथ्या शब्द का व्यवहार 'गीता' में भी है, और इस प्रसंग में आलोच्य है। वहाँ कहा गया है: मिथ्यैव व्यवसायस्ते'[7] तथा मिथ्याचारः स उच्यते[8] इन दोनों की वाक्यों की आलोचना से प्रतीत होता है कि 'मन की चिन्ता तथा व्यवहार यदि एकरूप न हो, वह मिथ्याचार' है। जिसका दूसरा नाम कपटाचार है। उच्चारण दोष जनित मिथ्या को छोड़ कर अन्य सभी मिथ्या का सामान्य लक्षण है—मन का भाव तथा शब्द प्रयोग की असमरूपता। यह असमरूपता अनेक प्रकार की हो सकती है, जिनका एक स्थूल शास्त्रीय-विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। शास्त्र कहता है: 'सत्यान् नास्ति परो धर्मः', अतः सुतरां यह भी सिद्ध होता है कि असत्य अर्थात् मिथ्या से अपकृष्ट अधर्म नहीं है।

(च) पूर्वोक्त मिथ्या आचरणसम्बन्धी है। योगशास्त्र में वाक्य-सम्बन्धी कुछ मिथ्या-भेदों का उल्लेख है।[9] 'सत्य' की व्याख्या में योगभाष्य में कहा गया है: 'सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे यथादृष्टं, यथा अनुमितं, यथा श्रुतं, तथा वाङ्मनश्चेति, परत्र स्वबोधसंक्रान्तये वाग् उक्ता सा यदि न वञ्चिता, भ्रान्ता, वा प्रतिप्रत्तिवन्ध्या वा भवेद् इति।' यहाँ भाष्यकार ने असत्य वाक्य के तीन भेदों का उल्लेख किया है, जिनका विवरण निम्न-प्रकार है:

१. वंचित वाक्य : श्रोता को प्रवंचित करने के लिए जो वाक्य कहा जाता है, वह अवश्यमेव 'मिथ्यावाक्य' है, क्योंकि सत्यवाक्य सुन कर यदि किसी का अनिष्ट हो जाए, तो कोई यह नहीं समझता कि मैं प्रवंचित हो गया हूँ। अतः प्रवंचनामूलक वाक्य मिथ्या ही है।

२. भ्रान्त वाक्य : कभी कभी ऐसा भी होता है कि वक्ता के वाक्य से श्रोता में भ्रान्ति उत्पन्न होती है, अर्थात् श्रोता को भ्रान्त करने के लिए या सत्याच्छादन के लिए जब वक्ता कुछ कहता है, तब भी मिथ्या वाक्य होता है, क्योंकि उससे तत्त्वबोध नहीं होता।

३. प्रतिपत्तिवन्ध्य : जब वक्ता अस्पष्ट तथा अप्रचलित शब्द का प्रयोग करता है, तब उसको 'प्रतिपत्तिवन्ध्य' वाक्य कहा जाता है। ध्यान देना चाहिए कि यह वाक्य स्वरूपतः 'मिथ्या' नहीं होता, पर अपने मनोभाव के आच्छादन के लिए जब वक्ता अस्पष्ट शब्द (युधिष्ठिर की तरह) या अप्रचलित शब्द (जिसका अर्थ लुप्त हो गया हो और जिसका नवीन अर्थ प्रचलित हो गया है) का व्यवहार करता है, तभी वह 'मिथ्या' होता है।

(छ) न्यायशास्त्र में भी शब्द प्रयोग संबंधी 'प्रवञ्चना' मूलक वाक्यों की चर्चा है, जिनको हम वस्तुतः मिथ्या वाक्य कह सकते हैं। इस शास्त्र में 'छल' नामक एक प्रकरण है, जहाँ दुष्ट अभिसन्धि से प्रयुक्त शब्द प्रयोग (पाश्चात्य न्याय का Fallacy of four terms) की समीक्षा की गई है। अन्ततोगत्वा यह भी मिथ्या भाषण में पर्यवसित होता है। संक्षेप में इसका विवेचन किया जा रहा है।

'छल' के लक्षण और भेद के विषय में जरन्नैयायिक जयन्त भट्ट ने कहा है—"परस्य वदतः अर्थविकल्पोपपादनेन वचनविघातः छलम्; तत् त्रिविधम्—वाक्छलं सामान्यच्छलम्, उपचारच्छलं चेति" अर्थात् श्रोता जब वक्ता को मूढ़ बनाने के लिए उससे प्रयुक्त शब्दों के विवक्षित अर्थों में विपर्यय करता है। (जान बूझ कर) तब श्रोता का वाग्व्यवहार 'छल पदवाच्य' होता है। यदि इस वाक्य को मिथ्या वाक्य कहा जाए, तो ठीक ही होगा। इसके तीन भेद हैं: वाक्छल, सामान्य छल तथा उपचार छल। अब इस तीनों का सोदाहरण विवेचन किया जा रहा है:

१. वाक्छल : जब वक्ता किसी साधारण शब्द का प्रयोग करता है, और श्रोता अभिप्रेत अर्थ से अन्य

---

[5] शब्दकौस्तुभ. [6] प्रदीप ८-३-३४. [7] गीता १५-५६. [8] वही ३-६. [9] २-३० योग सूत्र.

१६५४

अर्थ की कल्पना करता है (वक्ता का उपहास करने के लिए या वक्ता के सिद्धान्त में दोष दिखाने के लिए) तब वह एक मिथ्या वाक्य होता है, क्योंकि उसमें शब्द और अर्थ की एकरूपता नहीं है। संस्कृत भाषा में इसका प्रसिद्ध उदाहरण है—'नवकम्बलको माणवकः;' नूतन अर्थ में 'नव' शब्द का प्रयोग किया गया है। पर यदि श्रोता आक्षेप करता है कि माणवक के पास नौ कम्बल कहाँ हैं—तो यह मिथ्या वाक्य होगा।

२. **सामान्य छल** : जो अर्थ संभव या संभावना योग्य हो, उसकी अतिसामान्य या यत्किंचित् सदृशता ले कर असंभव अर्थ की कल्पना कर आक्षेप करने से वह मिथ्यावाक्य होगा, क्योंकि यहाँ वक्ता का शब्द प्रयोग संभव अर्थ का त्याग प्रतिवादी ने स्वेच्छा से आक्षेप करने के लिए किया है। जैसे यदि कहा जाए—'ब्राह्मणो विद्याचरण संपन्नः' अर्थात् ब्राह्मण में विद्या और आचरण यथासंभव है—ऐसा कहना वक्ता का उद्देश्य है, पर इस पर यदि प्रतिवादी कहता है कि विद्या तथा आचरण ब्राह्मण का धर्म नहीं हो सकता, क्योंकि ब्राह्मण शिशु भी ब्राह्मण है, पर उसमें विद्या तथा आचरण नहीं है, तो यह वाक्य 'मिथ्या' होगा।

३. **उपचारछल** : जब वक्ता का शब्द मुख्यार्थ में है, और श्रोता उसकी गौणार्थता की कल्पना कर आक्षेप करता है, तब श्रोता का वाक्य अवश्यमेव एक प्रकार का मिथ्या होता है। उदाहरण स्पष्ट है।[१०]

(ज) वाक्य की तरह कुछ क्रिया भी ऐसी होती हैं, जिनको शास्त्र में 'अनृत' कहा गया है। इस प्रकार का शब्द व्यवहार ही प्रमाणित करता है कि प्राचीन काल में 'मिथ्या' सम्बन्धी चिन्ता वर्तमान-काल से भिन्न प्रकार की थी।

कोषकारों ने कहा है : 'हिंसादोषप्रधानत्वाद् अनृतं कृषिरुच्यते' अर्थात् कृषि कर्म को 'अनृत' कहा जाता है, क्योंकि उसमें हिंसा दोष की प्रचुरता है। रुद्र ने भी इस मत की पुष्टि की है : 'अनृतं कृषौ अपत्ये च'।

इस विषय से मिलता-जुलता विचार भी है। हैम नाममाला में कहा गया है : 'सत्यानृते तु वाणिज्यम्।' नाममाला का यह विचार स्थूल दृष्टि से भाषित हुआ है; इस मत का व्यापक रूप आचार्य शंकर ने दिखाया है : 'सत्यानृते मिथुनीकृत्य जगद् व्यवहाराः प्रवर्तन्ते'[११] अर्थात् जगत् का सब व्यवहार सत्य और मिथ्या के संमिश्रण से चलते हैं। कोई भी व्यावहारिक कार्य विशुद्ध सत्य पर आश्रित नहीं होता, क्योंकि जगत् के मूल में अविद्या है, अतः जागतिक प्रत्येक कार्य में अविद्या का प्रभाव सुतरां मिथ्या का न्यूनाधिक अंश अवश्य रहता है; हम अन्य निबन्ध में इस विषय की उपपत्ति करेंगे।

(झ) अपने भाष्य में शंकराचार्य ने मिथ्यासम्बन्धी कुछ विचार यत्र-तत्र किए हैं यथा : 'सर्वत्र बुद्धिद्वयोरुपलब्धेः, सद्बुद्धिरसद्बुद्धिरिति; यद्-विषयाबुद्धिर्व्यभिचरति तदसत्...'[१२] अर्थात् जिस विषय की बुद्धि का 'अन्यथा भाव' होता है, वह असद् बुद्धि है अब यदि असत् अर्थात् मिथ्या माना जाए तो मिथ्याबुद्धि का एक लक्षण मिल जाएगा, जिससे हम बाद में केवल मिथ्या का लक्षण बना सकते हैं अर्थात् 'अन्यथाभाव' मिथ्या है। शांकर मत की यह दृष्टि श्रुति से भी अनुमोदित है, क्योंकि श्रुति में कहा गया है : 'वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'[१३] अर्थात् विकार या परिणाम केवल वाक्याश्रित है, उपादान कारण ही सत्य है, जिससे ध्वनित होता है कि विकार अर्थात् अन्यथाभाव असत्य है। यहाँ शंकर ने असत् को मिथ्या के पर्यायवाची की तरह पढ़ा है, जैसे इस स्थल के भाष्य के अन्त में उन्होंने कहा है : 'विकारोऽयम् असन्नेव मरीचिजलवन् मिथ्यावभासते'।[१४]

(ञ) वाक्यपदीय में भी असत्यदर्शन की चर्चा है। भर्तृहरि ने स्पष्टतः कहा है :

"प्रसिद्धार्थविपर्यासनिमित्तं यच्च दृश्यते।
यस्तस्माल् लक्ष्यते भेदः तमसत्यं प्रचक्षते।[१५]

अर्थात् प्रसिद्धार्थ विपर्याय रूप हेतु से उत्पन्न जिस पदार्थ का ज्ञान होता है, वह असत्य है। यह कारिका विवेचनीय है। टीकाकार ने कहा है कि कारिका में जो 'यत' शब्द है, उसका अर्थ है—'नैमित्तिक-दर्शन' प्रसिद्धार्थ अर्थात् सत्यरूप अर्थ। विपर्यास निमित्त

---

[१०] न्यायशास्त्र में जो 'निग्रहस्थान प्रकरण' है, वहाँ भी अनेक प्रकार के मिथ्यावाक्यों के उदाहरण मिलते हैं। निग्रहस्थान के २२ भेद शास्त्र में दिखाए गए हैं उनमें शब्द-व्यवहार में चातुर्य तथा किसी न किसी उपाय से अपने पक्ष की रक्षा का उपाय विवृत है। इन उपायों में 'प्रतिज्ञासंन्यास' आदि स्पष्ट ही मिथ्यावाक्य के उदाहरण हैं। जब वादी विपरीतार्थ में प्रतिपद्यमान होता है, तब वह अवश्य ही अनृतभाषण करता है। और विपरीतार्थ प्रतिपद्यमानता निग्रह-स्थान का अर्थ भाग है। [११] शारीरिक भाष्य २-१६. [१२] गीता भाष्य. [१३] छान्दोग्य. [१४] भाष्य २-१६ [१५] वाक्यपदीय २-२९१

अर्थात् इन्द्रियगत दोष। उस इन्द्रियगत दोष से जो भेद अर्थात् विशेष का ज्ञान होता है (जैसे चक्षुरोग के कारण एक चन्द्र के स्थान पर दो चन्द्रों का दर्शन) वह विशेष मिथ्या है। ठीक यही लक्षण योग सूत्र में भी दिया गया है: ‘विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् अतद्रूप-प्रतिष्ठम’[16] अर्थात् जो ज्ञान अतद्रूप प्रतिष्ठ है, उसको ‘मिथ्याज्ञान’ कहा जाता है। इस प्रसंग में यह जान लेना चाहिए कि मिथ्याज्ञान प्रमाण नहीं है, क्योंकि प्रमाण अर्थात् यथाभूत ज्ञान के द्वारा उसका निराकरण होता है। जैसे द्विचन्द्र दर्शन रूप विपर्याय एक चन्द्र दर्शन से बाधित होता है। मनुष्य स्वयं ही समझता है कि द्विचन्द्रदर्शन विपर्यय है, पर एक चन्द्र दर्शन यथार्थ ज्ञान है।

इस मिथ्या का दूसरा नाम ‘वाक्यपदीय’ में ‘उपघातज ज्ञान’ भी कहा गया है।[17] यहाँ भर्तृहरि ने यह भी कहा है कि इस उपघातज ज्ञान से व्यवहार नहीं होता है (न तेन व्यवहारोऽस्ति)। विपर्ययरूप मिथ्याज्ञान की व्यवहार्यता नहीं है, इस विषय में योगदर्शन भी सहमत है, क्योंकि ‘यह मिथ्या है’ ऐसा जानने के बाद पुनः उसके व्यवहार के लिए प्रवृत्ति नहीं होती।

अब मिथ्या सम्बन्धी कुछ रोचक तथ्यों का उल्लेख किया जा रहा है।

(१) ८-१-१ सूत्र-प्रदीप में आचार्य कैयट ने इस प्रकार का उदाहरण दिया है। यदि कोई कहता है ‘सर्वं मिथ्या ब्रवीमि’ (मैं जो कुछ कहता हूँ, मिथ्या कहता हूँ) तो यह वाक्य स्वयं मिथ्या नहीं हो जाता, प्रत्युत यह अन्य वाक्यों का ही मिथ्यात्व नहीं सिद्ध होगा और वक्ता की विवक्षा इसीमें है कि इस वाक्य को छोड़ कर अन्य वाक्य मिथ्या हो। पाश्चात्यन्याय में भी इस समस्या का उल्लेख है।

(२) महायोगी देवल ने कहा था—“तेषां च त्रिविधो मोहः संभवः सर्वपाप्मनाम्, अज्ञानं संशयज्ञानं मिथ्याज्ञानमिति त्रिकम्”[18] अर्थात् सब दुष्ट कर्मों की उत्पत्ति त्रिविध मोह से होती है। उन तीनों का नाम अज्ञान, संशयज्ञान और मिथ्याज्ञान है। इन तीनों में कुछ भेद है, जो नीचे दिखाया जा रहा है:

संशय—एक विषय में जब विरुद्ध अनेक धर्म का ज्ञान होता है। तब उसको ‘संशय ज्ञान’ कहा जाता है, जैसे ‘यह पदार्थ स्थाणु भी हो सकता है, पुरुष भी हो सकता है’। मिथ्याज्ञान विपर्यय को कहते हैं, जिसका स्फुट लक्षण है—‘जिसमें जो पदार्थ नहीं है, उसमें उसका ज्ञान करना’ जैसे शुक्ति में रजत का ज्ञान। अब अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ अज्ञान को मोह विशेष के रूप में कहा गया है और मोह ज्ञान का अभाव नहीं है। अतः अज्ञान अर्थात् ईषत् ज्ञान, तथा सामान्य ज्ञान। यदि किसी विषय का न्यूनतम बोध हो, और उसका विपुल प्रयोग किया जाए, तो उससे हानि ही होगी—आचार्य देवल का यह मत आज भी सत्य है।

(३) मनु ने कहा: “वाच्यर्थाः निहिताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः, तस्माद् यः स्तेनयेद् वाचं स सर्वस्तेयेकृन् नरः” अर्थात् वाक् ही अर्थबोधन का अनन्य उत्कृष्ट साधन है, अतः शब्द व्यवहार में किसी प्रकार का स्तेय अर्थात् चोरी जो करता है, वह सबसे जघन्य चोर है। यहाँ ‘वाक्य का स्तेय’ अन्ततोगत्वा ‘मिथ्या-वाक्य’ में ही पर्यवसित होगा।

(४) बौद्धों के अभिधर्मसार में भी मिथ्यासम्बन्ध कुछ तथ्यों का उल्लेख है। ‘मिथ्या’ को बौद्धशास्त्र में ‘वाग्दुश्चरित’ कहा गया है। उनके दर्शन में ‘मिथ्याजीव’ शब्द का भी व्यवहार है, जिसका अर्थ है—व्यर्थ कर्म। मिथ्यावाक्य के फल से जैसे चित्त अधिकतर मोहग्रस्त होता जाता है उसी प्रकार व्यर्थ कर्म से भी चित्त में असत् संस्कार का संचय अधिक होता है। अतः व्यर्थ कर्म को मिथ्या कहना अनुचित नहीं है।

(५) जो वस्तु त्रिकाल में नहीं है, उसको भी ‘मिथ्या’ कहा जाता है। शंकराचार्य ने अपने उपनिषद् भाष्य में इस मिथ्या का सोदाहरण विवेचन किया है। उनका उदाहरण है: “मृगतृष्णाम्भसि स्नातः खपुष्पकृतशेखरः, एष बन्ध्यासुतो याति शशशृङ्गधनुर्धरः” अर्थात् मृगतृष्णा के जल में नहाकर, आकाश पुष्प का शिरोभूषण बना कर, शशशृङ्ग का धनु हाथ में लेकर यह वन्ध्यापुत्र जा रहा है। यहाँ शशशृङ्ग आदि की सत्ता त्रिकाल में नहीं है—यह स्पष्ट है। शंकर वेदान्त में ‘मिथ्या’ का अन्य अर्थ भी है; जिस पदार्थ को सत् या असत् कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, वह मिथ्या है। हम इस निबन्ध में इस जटिल विषय का उपन्यास नहीं करना चाहते।

—रामशंकर भट्टाचार्य

---

[16] १-८ लक्ष्मण योग सूत्र [17] २-२६६ वाक्यपदीय [18] अपरार्कटीका में उद्धृत पृ० २२२

शक्ति और भक्ति का विस्मृत साधना-केन्द्र : डोंगरगढ़

भारतीय तन्त्र परम्परा एवं तदंगीभूत स्थानों का सर्वांगीण पर्यवेक्षण अद्यावधि नहीं हुआ। तन्त्र परम्परा से मेरा तात्पर्य तन्त्र विषयक विशिष्ट ग्रन्थों के अध्ययन से ही नहीं अपि तु उनका ऐतिहासिक व क्रमिक विकास-समाज का तथा प्रान्तीय धर्ममूलक साम्प्रदायिक विवर्द्धन भी है। तान्त्रिक विषय को, अपेक्षित ज्ञान की अपूर्णता के कारण कुछ लोगों ने अग्राह्य समझ रखा है। कतिपय विज्ञ तो नाम से ही चौंकते हैं परन्तु भारतीय साधना के इतिहास से विदित होता है कि आज का यह उपेक्षित विषय हमारे पूर्वजों के जीवन का महत्वपूर्ण अंग था। श्रमण एवं वैदिक धारा में पूर्ण विश्वास रखनेवाले सम्प्रदाय भी इसके प्रभाव से अपने आपको पूर्णतः बचा नहीं सके हैं। हाँ, साधना पद्धति एवं उपकरणों में अवश्य ही अन्तर है, जो स्वाभाविक भी है।

भारतीय कला ने भी तन्त्र पद्धति के विकास में जो महत्वपूर्ण योग दिया है, उसका समुचित मूल्यांकन आज तक नहीं हो पाया किन्तु इस विषय की सामग्री भारतवर्ष के विभिन्न खण्डहरों में प्रचुर परिमाण में बिखरी पड़ी है। योग विषयक पचासों मुद्राएँ व ध्यान के विभिन्न प्रकार खण्डित प्रतिमाओं में इतने सुरक्षित हैं कि उनमें से कुछ एक का साहित्य में उल्लेख तक दृष्टिगोचर नहीं होता। उचित अन्वेषण न होने का मुझे तो एकमात्र कारण यही जान पड़ा कि महादेश के विभिन्न प्रान्तों में फैले हुए वर्णित तन्त्र परम्परा मान्य स्थानों की एवं तत्सम्बन्धी कलाकृतियों के अनुसन्धान के प्रति हमारी पूर्ण उपेक्षा। तत्स्थानीय ग्राम-वृद्धों द्वारा सुरक्षित किंवदन्तियाँ, लोकगीत आदि से भी हमारी गवेषणा को बहुत बल मिलता है। किस अवशेष का मौलिक रूप क्या है और किन परिस्थितियों में किस नाम से वह पूजा जाता है और उसके साथ किस प्रकार के प्रवाद जुड़ गए हैं तथा स्थानीय जनता के बहुमुखी जीवन विकास में उससे कितनी प्रेरणा मिलती है, सांस्कृतिक परम्परा की जड़ कितनी गहरी दृष्टिगत होती है आदि अनेक विषयों का उद्घाटन उपर्युक्त परम्परा के गम्भीर अध्ययन से हो सकता है। समाज की परिवर्तनशीलता एवं भौतिक जीवन के विकासात्मक तत्व ऐसे लौकिक तीर्थों के इतिहास से प्रकट होते हैं। अतः सामान्य ग्रामों एवं नगरों में जो देवताओं के विभिन्न स्थानों पर जो अवशेष पाए जाते हैं उनका सांस्कृतिक महत्व है। कहना यों चाहिए कि कभी-कभी तो साधारण देव को प्रसन्न करने के लिए जो गीत रचे जाते हैं, उनसे एक स्वतन्त्र साहित्य ही निर्मित हो जाता है जो ग्राम्य जीवन व चिरविश्वासों का प्रतिबिम्ब है।

किसी समय महाकोशल तान्त्रिक साधना का केन्द्र था जैसा कि स्थानीय शिला व ताम्रोत्कीर्णलिपियों, खण्डहरस्थित कलाकृतियों व समसामयिक ग्रन्थस्थ उल्लेखों से सिद्ध है। तन्त्र मान्य प्रसिद्ध देवताओं के स्थान व साधनापीठ, सघनवन या गिरिकन्दराओं में ही पाए जाते हैं। अनुभव किया गया है कि पहाड़ियों पर निवास करनेवाली जातियाँ या निकट में रहनेवाली जनता प्रायः शक्ति या शंकरोपासक होती है एवं वहाँ पर अर्चित देवस्थानों का सम्बन्ध भी किसी न किसी रूप से तान्त्रिक पद्धति से रहता ही है। उनके अपने विश्वास होते हैं। उनके विलक्षण पूजा के प्रकार एवं देवता के स्वरूप कभी-कभी शोधक को भी विस्मित कर देते हैं। जानतिक अज्ञानमूलक प्रबल विश्वासों का पुट उन अवशेषों व स्थान-सम्बद्ध कहानियों पर ऐसा चढ़ जाता है कि कभी कभी तथ्य तक धूमिल हो जाता है। फलतः शोधक के लिए सत्यान्वेषण एक समस्या बन जाती है। इस प्रकार के स्थान महाकोशल में आदिवासियों की संख्या अधिक होने के कारण अनेक उपलब्ध हैं। यदि उन पर समीक्षात्मक प्रकाश डाला जाए तो एक ग्रन्थ सरलतापूर्वक तैयार हो सकता है। यहाँ पर मैं केवल डोंगरगढ़ के दो प्रसिद्ध स्थानों का परिचय दूँगा जिनमें एक शक्तिपीठ है और दूसरा भक्ति का केन्द्र।

बमलाई की ओर : डोंगरगढ़ नाम अत्यन्त सार्थक है। सचमुच यह पहाड़ियों का दुर्गम दुर्ग ही है। इस नाम से जब इसे अभिषिक्त किया गया था तब तो इसकी दुर्गमता कितनी दुर्बोध रही होगी, चतुर्दिक् सघन अटवियों से यह भूभाग परिवेष्टित रहा होगा, इसकी

कल्पना प्रत्यक्षदर्शी ही कर सकता है। प्रकृति के अवशेष स्वरूप आंशिक सौन्दर्य आज भी यहाँ अवशिष्ट हैं। उपत्यकाओं के बीच डोंगरगढ़ का सौन्दर्य उद्दीपित हो उठता है। कलाकार का मन खिल जाता है। अग्रसोची शासकों ने भले ही इसे सुरक्षित स्थान समझ कर चुना हो पर आज तो यह संस्कृति और सौन्दर्यमूलक साधनामय भूभाग के रूप में विख्यात है। लाखों व्यक्तियों की श्रद्धा इससे जुड़ी हुई है। छत्तीसगढ़ी जनता का यह अत्यन्त ख्यातिप्राप्त और मनोकामनापूरक महान् लौकिक तीर्थ है। एक ओर तान्त्रिक परम्परा के अवशेष स्वरूप बमलाई का सिद्ध पीठ है तो दूसरी ओर वैष्णव परम्परा का तपस्वीताल!

विन्ध्य प्रदेश में जो स्थान माता शारदा का है वही स्थान दक्षिण कोशल (छत्तीसगढ़) में माता बमलाई का है। यों तो प्रतिदिन दर्जनों यात्री श्रद्धा के कुसुम चढ़ाते हैं पर नवरात्रि में तो यात्रियों की संख्या हज़ारों पर पहुँच जाती है। अधिकतर ग्रामीण ही आते हैं। वे इसके पुरातन गौरव या इतिहास के प्रति विशेष जागरूक नहीं है किन्तु श्रद्धा में किसी से पीछे नहीं।

बम्बई से कलकत्ता जाते हुए रेल मार्ग से डोंगरगढ़ के निकट पहाड़ी पर बमलाई की गुमटी देखी जा सकती है, पर अपरिचित पर्यटकों को क्या पता कि किसी समय यह स्थान प्रसिद्ध विद्यापीठों में गिना जाता रहा होगा। यों तो मैं भी अपने विहार के सिलसिले में दो बार डोंगरगढ़ हो आया हूँ-१९४३, १९५१-इच्छा रहते हुए भी प्रतिकूल समय के कारण पहाड़ी पर न चढ़ सका। राजनाँदगाँव में ज्ञात हुआ कि बमलाई के स्थान के निकटवर्ती एक उपत्यका में पुरातन प्रतिमाएँ और अन्य शिल्पावशेष अरक्षित उपेक्षित दशा में बिखरे पड़े हैं, अद्यावधि वहाँ किसी भी प्रकार का अन्वेषण नहीं हुआ। शोधक को स्वभावतः उपेक्षणीय स्थान देखने की आकाँक्षा रहती है। भले ही वहाँ अपेक्षित वस्तु उपलब्ध न हो। फलतः राजनाँदगाँव के वयोवृद्ध और जागरूक पाठक पं० रज्जूलाल शर्मा आदि सज्जनों ने निश्चय किया कि जिस समय मैं अपने परमपूज्य गुरुवर्य्य उपाध्याय श्री सुखसागर जी महाराज के साथ डोंगरगढ़ पहुँचू तब वे भी वहाँ आएँ और कुछ दिन रह कर सूचित स्थानों का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाए क्योंकि मैं अपने छत्तीसगढ़ के भ्रमण में न केवल बमलाई ही के सम्बन्ध में अपि तु शक्ति-पूजाविषयक अवशेषों के सम्बन्ध में भी पर्याप्त किंवदन्तियाँ सुन चुका था। मैं पुरातत्व और कला की दृष्टि से भी मुझे जानना था कि वस्तुतः बमलाई का स्थान प्राचीन है या नहीं। इसी निश्चय के अनुसार दिनांक २२ मार्च १९५२ को शर्मा जी मेल से और मैं पैदल डोंगरगढ़ पहुँचा।

दिनांक २३ मार्च प्रातः मैंने ज्येष्ठ गुरुबन्धु मुनि श्री मंगलसागर जी महाराज, पं० श्री राजूलाल जी शर्मा, बाबू घेबरचन्द जैन और बिहारीलाल अहीर (आजमगढ़) आदि सज्जनों के साथ ६ बजे बमलाई की टेकरी की ओर प्रस्थान किया। दूर से पहाड़ी बड़ी ही आकर्षक और सीधी खड़ी प्रतीत होती है। इसे देखते ही मैहर की शारदा माई का चढ़ाव याद आ गया।

डोंगरगढ़ से मेढ़ा जानेवाले गाडीदान के पास से जो मार्ग पहाड़ी पर जाता है वहाँ से कलाकार यदि पहाड़ी का सौन्दर्य देखे तो वह आनन्द विभोर हुए बिना न रहेगा। ऐसे प्रभावोत्पादक और मनमोहक दृश्य बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं। श्मशान घाट पार कर कुछ ऊपर चढ़ेंगे तो एक विशाल जलाशय पर दृष्टि केन्द्रित होगी। पहाड़ी के बहुत बड़े भाग का वर्षाकालीन जल यहाँ एकत्र हो जाता है। जलाशय बँधा हुआ तो नहीं है फिर भी इसकी संयोजना ही कुछ ऐसी है कि जल का अवशिष्ट भाग स्वतः प्रवाहित हो जाता है। सदैव जल रहता है। किसी समय यह सरोवर साधकों की चरणधूलि से पवित्र होता रहा होगा। आज तो वहाँ धोबियों का अड्डा है। पहाड़ी के निकट पिपासा शान्त करने का यही एकमात्र सहारा है। पहाड़ी पर स्वच्छ जल का अभाव है। अतः ऐसे महत्वपूर्ण जलाशय की रक्षा पर सरकार का ध्यान न जाना केवल आश्चर्य ही नहीं अपितु महान् खेद का भी विषय है।

बमलाई की पहाड़ी: यह पहाड़ी यों तो डोंगरगढ़ से लगी हुई है किन्तु ऊपर जाने का मार्ग शहर से लगभग चार फ़र्लांग है। दो मार्गों से पहाड़ी के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा जा सकता है। प्रथम मार्ग तपसी ताल से है। यह सर्वसाधारण के लिए कुछ कठिन पड़ता है। सीधी चढ़ाई के साथ सघन अटवी भी आती है। दूसरा मार्ग उपर्युक्त पंक्तिवर्णित सरोवर से प्रारम्भ होता है। यह सुगम है। यहीं से हम लोग ऊपर चढ़े।

पहाड़ी के सम्मुख जाते ही उसकी विशालता

१९५४

और सघनता का पता चलता है। लगता है मानों वृक्ष लताओं से परिवेष्टित किसी सौन्दर्य सम्पन्न दुर्ग में प्रवेश कर रहे हों। निस्सन्देह सावन भादों में तो यहाँ की प्राकृतिक छवि पूर्ण रूप से खिल उठती होगी। बड़ी बड़ी शिलाएँ एक दूसरी से ऐसी सटी हैं जैसे कि गुफाएँ ही हों। पहाड़ी पर चढ़ने के लिए मार्ग में जहाँ कहीं श्रमसाध्य मार्ग हैं वहाँ सीढ़ियाँ बनी हैं फिर भी कहीं कहीं फिसलनेवाली स्निग्ध शिलाओं को पार कर आगे बढ़ना पड़ता है। मार्ग के आड़े, टेढ़े, घुमाव एवं निश्चित मार्ग का अभाव कभी कभी भूल-भुलैयाँ में डाल सकते हैं। सुकुमार लताओं में लगी पुष्पवल्लरी अपने सौरभ से श्रम का अनुभव नहीं होने देती। जिस समय हम आगे बढ़ रहे थे पीछे की ओर संभ्रान्त परिवार की सुन्दरियाँ हर्षोल्लासपूर्वक वेग से बढ़ी आ रही थीं। उनके कोकिल कण्ठ से माता के यश की संगीत-ध्वनि हमारे हृदयतन्त्री के तारों को झंकृत कर रही थी। उनके सुकुमार और भक्तिसिक्त हृदय में अपार भावना थी। हमारे हृदय में शोषक वृत्ति थी। उनकी भावना स्वार्थमूलक थी। वे माता से सांपत्तिक वैभव विषयक याचना करने जा रही थीं। हम याचक होते हुए भी उस समय उपासक नहीं थे। इस प्राकृतिक सौन्दर्य में संगीत की लहरियों ने भी हमारी थकान को समाप्त कर दिया ; नई स्फूर्ति दी। शब्द तो समझ में नहीं आ रहे थे पर स्वर आज भी हमारे कानों में गूँज रहा है।

इस पहाड़ी पर चढ़ने की अपेक्षा उतरने में ख़ूब सावधानी की आवश्यकता है ख़ास कर मेरे जैसों के लिए। माता के स्थान के अति निकट विश्राम-गृह बना है। नवरात्रि में यहाँ साधक रहते हैं। सम्मुख ही सीमेंट का पक्का टांका बना है। वर्षों के प्रयत्नों के बावजूद भी वहाँ पर जल टहर नहीं पाता। जनता सोचती है कि माता की इच्छा के विरुद्ध यह बनवाया गया है। यहीं से गुमटी को देख कर यात्री को सन्तोष मिलता है। ऊपर छोटी बमलाई का स्थान है। इसे प्रकृति निर्मित गृह ही कहना चाहिए। दोनों ओर पत्थरों का स्वाभाविक जमाव है। उन्हीं के सहारे एक बहुत बड़ा गोल पत्थर टिका हुआ है जो छत का काम देता है। ऊँचाई केवल इतनी ही है कि मस्तक पर गट्ठर लादे मनुष्य जा सके। यहाँ की एक देवी प्रतिमा को ही जो बाएँ कोने में पड़ी है, लोग बमलाई की मूल मूर्ति मानते हैं। कहा जाता है कि प्रतिमा खण्डित हो जाने बाद मूल स्थान से हटा कर यहाँ रख दी।

माता का स्थान : आगे कुछ ही क़दम पर कटघरा लगी सीढ़ियों को पार कर उपत्यका के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचते हैं। यहाँ बमलाई का मुख्य स्थान बना है। किसी समय इसकी परिगणना राष्ट्र के जाग्रत साधना-पीठों में होती थी। पाठकों को आश्चर्य होगा कि लाखों मनुष्यों के आकर्षण का केन्द्र स्थान इतना लघुतम है कि दो व्यक्ति भी गुमटी में सुखपूर्वक नहीं बैठ सकते। सिन्दूर से अभिषिक्त देवी प्रतिमा का, मूर्तिविधान शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन करना कठिन हो जाता है। वस्त्राच्छादित देह अध्येता के लिए और भी एक समस्या बन जाती है। विवेकहीन अर्चन पद्धति के कारण मूर्ति का कलात्मक रूप सुरक्षित नहीं रह सका है। धार्मिक मानस यहाँ भले हों, पल्लवित हों, पर कलाकार को निराश ही होना पड़ता है क्योंकि प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त यहाँ कोई ऐसा आकर्षण नहीं जिस पर कलाकार के हृदयतन्त्री के तार झंकृत हो उठें। वायु के प्रबल वेग से देह तो झूमती है पर देही चिर मौन का प्रतीक बन जाता है।

जहाँ माता का स्थान बना है, सचमुच एक आश्चर्य है। पृष्ठ भाग में गहरी खोह है। दक्षिण कोशल के शिल्पियों ने इतने छोटे स्थान पर अपना उल्लेखनीय वास्तु-नैपुण्य प्रकट कर अमरत्व प्राप्त किया है। बीसों मील तक पहाड़ों की शृंगमालाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। कलातत्व गवेषी पर्यटक को प्राकृतिक सौंदर्य ग्रहणार्थ सूर्योदय से पूर्व ही पहुँच जाना चाहिए।

माता की गुमटी जीर्णोद्धृत है। पुरातन शिल्प कला का पूर्णतः निर्वासन, इसकी प्राचीनता में सन्देह उत्पन्न कर सकता है। संयोग है कि पहाड़ी पर कहीं कहीं प्राचीन अवशेष मिल जाते हैं। तत्रस्थित व्यक्तियों से ज्ञात हुआ कि जीर्णोद्धार अभी अभी हुआ है। अतः इस पूर्व शिल्प की कल्पना के सूत्र वहाँ नहीं मिलते हैं। प्राचीन शिल्पशैली के महत्व को न समझने के कारण विवेकहीन भक्त कभी कभी उनकी शैल्पिक मौलिकता को निर्दयतापूर्वक नष्ट कर डालता है।

टुहनी बमलाई : बमलाई माता की पहाड़ी के ठीक पीछे निम्न भाग में टुहनी बमलाई का स्थान है। तीन जर्जरित दीवालों के अतिरिक्त गृह का कोई चिन्ह

नहीं है । कतिपय अवशेषों के बीच एक देवी मूर्ति अवस्थित है । यह स्थान इतना एकान्त है कि बिना मार्ग-दर्शक के पहुँचना ही असम्भव है । इसकी पूजा केवल नवरात्रि में ही होती है । खूब बलि चढ़ाई जाती है । बकरी का जीवित बच्चा आज भी भूमि में गाड़ा जाता है । मैं नहीं समझ सका कि इस अर्चना पद्धति के पीछे कौन सा वैज्ञानिक सत्य है । इसका नाम टुहनी बमलाई क्यों पड़ा, यह एक प्रश्न है ? मेरा अनुमान है कि अत्यन्त एकान्त में होने के कारण श्रावणी अमावस्या की रात को टोन्ही नारियाँ शायद यहाँ पर अपनी मलीन साधना करती रही होंगी ।

अन्य अवशेष : बमलाई के सम्मुख ही बहुत बड़ी श्याम चट्टान के निकट कतिपय अवशेष बिखरे पड़े हैं । उनकी रचना शैली से ज्ञात होता है कि वे बहुत प्राचीन तो प्रतीत नहीं होते फिर भी उनका अपना महत्व है । वे दक्षिण कोशल की लोककला के प्रतीक हैं । जनजीवन के एक विशिष्ट प्रसंग का इनसे बोध होता है । प्रान्तीय पुरातन वेशभूषा एवं तात्कालिक शस्त्रास्त्रों के अध्ययन में उनकी विशेष उपयोगिता है । कमर में लटकती हुई विशेष ढंग की कटार एवं उठे हुए हाथ में पकड़ा हुआ खड्ग, तनी हुई भौंहें, चक्षुगत ओज, विस्फारित नेत्र एवं तना हुआ भालस्थल सफल योद्धा का स्वरूप उपस्थित करते हैं । अधोवस्त्र में केवल घुटने से ऊपर धोती तथा उत्तरीय वस्त्र हैं । केश लम्बे और गुथे हैं । एक वस्त्रपट्टिका भी भाल स्थल से कनपटी की ओर होती हुई मस्तक के पृष्ठ भाग तक पहुँच गई है । यद्यपि ये कला की दृष्टि से तो बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं पर सोलहवीं शताब्दी के महाकोशलीय वीर पूजा के उत्प्रेरक प्रतीक अवश्य हैं । जुझारों के ये अवशेष इतने खण्डित हो गए हैं कि एक ही प्रतिमा के चार खण्ड हो गए हैं । इस प्रकार की लेखयुक्त अगणित कलाकृतियाँ इतस्ततः बिखरी पड़ी हैं । जनपदीय कला की दृष्टि से ये अन्वेषणीय हैं ।

उपर्युक्त पंक्तियों में मैंने शस्त्रास्त्रों की चर्चा की है यह नाम केवल कटार और खड्ग का ही आया है । मैं स्पष्ट कर दूँ कि इन दो अवशेषों के अतिरिक्त चट्टान के पिछले हिस्से में ६ फीट से कुछ अधिक लम्बी दन्तेश्वरी की एक मूर्ति है । जिसे इस ओर काल कहा जाता है । डोंगरगढ़ के समस्त अवशेषों में यह सर्वोच्च ऊँची । यद्यपि अंगोपांग बुरी तरह क्षत विक्षत हो गए हैं तथा मूर्तिगत सौन्दर्य कलात्मक रूप को सुरक्षित रखने में अ भी सक्षम हैं । सौभाग्य से देवी के १०८ हाथ सुरक्षि हैं । तन्त्र शास्त्र में विभिन्न देवी के रूपों में इतने हाथों वाली काली का न तो विधान दृष्टिगोचर हुआ न मूर्ति ही । विभिन्न हाथों में शस्त्रास्त्रों की प्रचुरता है । यद्यपि भारतीय शस्त्र निर्माण पद्धति, उनके प्रकार, क्रमिक विकास एवं प्रान्तीय शस्त्रविषयक मेरा ज्ञान अत्यन्त सीमित है अतः इस पर अधिक प्रकाश न डालते हु इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि भारतीय शस्त्र निर्माण पद्धति एवं उससे प्रभावित शस्त्र रचना का अध्ययन इस प्रतिमा के समुचित मूल्यांकन के बिना अपूर्ण ही रहेगा । सिरपुर (जिला रायपुर) में भी कतिपय अष्टभुजी मूर्तियाँ सुरक्षित हैं । इनके हाथों के शस्त्रास्त्र अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत करते हैं । आश्चर्य है कि ऐसी कृतियाँ आज भी उपेक्षित हैं ।

दोनों बमलाई स्थानों के अतिरिक्त दो स्थान और भी ऐसे हैं जो सिद्धपीठ बतलाए जाते हैं । वे क लाक्षी और दन्तेश्वरी के हैं । पण्डे से ज्ञात हुआ कि बमलाई सात बहिनें हैं जो यहीं रहती हैं । कुछ गु स्थान भी हैं और कुछ प्रत्यक्ष । लोगों का विश्वास है कि इस पहाड़ी पर बहुत से योगी, साधनार्थ, गुप्तवास करते हैं । कभी कभी घनघोर अटवी में जलती हुई धूनी एवं गड़ा हुआ चिमटा दिखलाई पड़ता है और कभी कहीं मृगछाला भी । विश्वस्त व्यक्तियों से ज्ञात हुआ कि इस प्रकार के प्रवादों के पीछे सत्यांश बहुत कम है। भारत में सर्वत्र देखा गया है कि ऐसे लोक तीर्थों के साथ किंवदन्तियाँ पण्डे लोग ही जोड़ देते हैं ।

बमलाई का मूल रूप : ग्रन्थस्थ तान्त्रिक परंप से अद्यावधि नहीं जाना जा सका कि बमलाई माता का वृत्त क्या था एवं महाकोसल में वह कब से प्रसिद्ध है । ऐतिहासिक साधनों से भी स्पष्ट प्रकाश नहीं मिलता । कालिका पुराण में लिखा है कि विमलादेवी वासुदेव की नासिका हैं । देवीभागवत के मत से देवी का ना विमला है । देवीपुराण में विमलादेवी का रूप इ प्रकार वर्णित है :

"यूथाख्यविमला काय्यां शुद्धहारेन्दुवर्चसः
मुण्डाक्षसूत्रधारी च कमण्डलुकरा वरा
नानासनसमारूढा श्वेतमाल्याम्बरप्रिया

१६५४

दधिद्वो रोदनाहारा कर्पूरमदचार्चिता
सितपंकजहोमेन राष्ट्रयुर्नृपंपवार्द्धिनी ॥"[1]

ज्ञात होता है जानपदीय उच्चारण के कारण विमला का बमलाई या बिलाईरूप हो गया है। विमला की मान्यता न केवल छत्तीसगढ़ तक ही सीमित थी अपि तु समीपवर्ती प्रदेश में भी इसकी प्रसिद्धि रही है।

कौहरगढ़ की बमलाई :— बालाघाट के सुप्रसिद्ध साहित्यक श्रीयुत दयालगिरिजी गोस्वामी से ज्ञात हुआ कि बालाघाट ज़िले में लालबर्रा से चार मील घनघोर अटवी से परिवेष्टित पहाड़ियों के सर्वोच्च शिखर पर भी बमलाई माता का स्थान बना हुआ है। यह पहाड़ी कौहरगढ़ के नाम से प्रसिद्ध है यद्यपि अनवकाश वश मैं इस स्थान का निरीक्षण तो नहीं कर सका हूँ किन्तु गोस्वामी जी बता रहे थे कि माता का वर्णित स्थान इतने घने जंगलों के बीच है कि दिन दहाड़े वनचरों का आवागमन बना ही रहता है। नवरात्रि के दिनों में जब यात्रा भरती है तब भक्तजन सामूहिक रूप से श्रद्धा के पुष्प चढ़ा कर अपने आपको धन्य मानते हैं। निकटवर्ती जनता का विश्वास है कि विमला का मूलस्थान यही है। यहीं से डोंगरगढ़ गमन हुआ। सापेक्षतः महाकोशल के जाग्रत पीठों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ पर जल की बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। वहाँ पत्थर के शस्त्र और पलंग पड़े हैं। इनका सम्बन्ध आल्हा-ऊदल से बतलाया जाता है। गोंड लोग इसे अपनी कुल देवी मानते हैं। प्रसंगतः एक बात का उल्लेख कर देना अत्यावश्यक जान पड़ता है कि डोंगरगढ़ की विमला के पुजारी भी परम्परा से गोंड ही रहते आए हैं। सम्भवतः दन्तेश्वरी के प्रति गोंडों की आस्था प्राचीनकाल से रही है। वे नर-बलि तक देते थे। यदि विमला को काली का भिन्न रूप मान लिया जाए तो बात स्पष्ट समझ में आ सकती है कि यह गोंडों की मान्य देवी रही है। काली के सामने नर-बलि देने की प्रथा महाकोशल में गोंड राजाओं के समय भी प्रचलित थी और काली की विभिन्न प्रतिमाएँ डोंगरगढ़ में विद्यमान हैं। वर्तमान में जो प्रतिमा स्थापित है, उसे यदि तांत्रिक मूर्ति निर्माण पद्धति के प्रकाश में देखने का प्रयत्न करें तो किसी भी प्रकार के निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन ही होगा। अरण्यवासी जातियों में शक्ति के प्रति शुरू से विश्वास रहा है। वे एक ही शक्ति को भिन्न-भिन्न रूपों से मानते आए हैं। ऐसी स्थिति में काली का रूप विमला के नाम से अर्चित हो रहा हो और किसी समय मैना जाति द्वारा वह अधिक समाद्रित हुई हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

बमलाई की स्थापना : यों तो बमलाई की स्थापना पर विचार करने के पूर्व महाकोशल की तान्त्रिक परम्परा का क्रमिक विकास अपेक्षित था किन्तु इस विषय पर मैं अन्यत्र यथोचित प्रकाश डाल चुका हूँ[2] अतः पिष्टपेषण व्यर्थ ही है। केवल उपलब्ध मूर्तियों के आधार पर इतना कहना पर्याप्त होगा कि गुप्तों के समय महाकोशल में शक्ति पूजा उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी थी। भवभूति की रचनाएँ महाकोशल की तात्कालिक तान्त्रिक विकास पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। सोमवंशीय शासन में शैव एवं बौद्ध साधकों का यहाँ बाहुल्य था। कलचुरि और गोंडकाल में कापालिक उन्नत थे। मुझे साधिकार कहना चाहिए कि भारतीय तन्त्र पद्धति को कला के द्वारा रूप देने का जितना सफल प्रयास कलचुरि काल में हुआ उतना सम्भवतः शायद ही कभी हुआ हो। गोंड युग में तन्त्र परम्परा तो अवश्य थी किन्तु साक्षर साधक के अभाव में उसका व्यवस्थित रूप स्वल्प ही सुरक्षित रह सका। अन्वेषण के क्षेत्र में मौखिक और पारम्परिक अर्चन पद्धति ही अधिक उपयोगी नहीं हो सकती।

बमलाई की स्थापना कब हुई और कैसे हुई, इस निर्णय पर पहुँचानेवाले ग्रन्थस्थ व शिलोत्कीर्ण साधन अद्यावधि अनुपलब्ध हैं। माता के मूल स्थान के समीप एवं पहाड़ी के निकट पाए जानेवाले कतिपय अवशेष अवश्य ही काल निर्णायक हो सकते हैं। उनको दो भागों में विभक्त करना होगा। स्थानीय अवशेष भिन्न भिन्न शताब्दियों से सम्बद्ध हैं। प्रथम भाग में वे अवशेष आते हैं जो सोलहवीं शती के पूर्व के हैं। इनमें मन्दिरों के चौखट, स्तम्भ, ईंटे, मूर्तियाँ व कतिपय गढ़ेगढ़ाए पत्थर हैं। दूसरे भाग के अवशेष सत्रहवीं शती बाद के हैं। इन पर गोंडकालीन प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। शैल्पिक दृष्टि से उनका विशेष महत्व न होते हुए

---

[1] हिन्दी विश्वकोष भाग २१ पृष्ठ ४८०

[2] महाकोशलीय तंत्र परम्परा पर एक दृष्टि, महाकोशलीय तंत्र परम्परा का ग्रामीण रूप आदि निबंध।

भी एक काल विशेष के सूचक होने के कारण अध्ययन की दृष्टि से अनुपेक्षणीय नहीं। यहाँ मैं दूसरे भाग पर ही विचार करूँगा।

सूचित स्थान के कुछ निम्न भाग में अवशेषों का ढेर दृष्टिगत होता है। इसमें पुरातन स्तम्भ व गुम्बज़ के अंश हैं। स्तम्भों की लम्बाई साढ़े तीन और गोलाई लगभग डेढ़ फ़ीट है। ऊपर नीचे गोल मध्यभाग चतुष्कोण हैं। यह स्तम्भ निश्चयतः पुरातन स्थान के प्रतीक हैं। स्तम्भों में पारस्परिक संयोजना के लिए ताम्र कीलों के चिन्ह बने हैं। द्वारपाल की आकृतियाँ भी उकेरी हुई हैं। आकृतियों की भाव-भंगिमा बड़ी विद्रूप है। पीठ पर तीरयुक्त तरकस, धनुष, कमर में कटार, हाथ में चौड़ी तलवार और आँखों में तरेर व मस्तक पर लम्बे अव्यवस्थित केशों का जूड़ा, वस्त्र के नाम पर केवल कोपीन, ये सब लक्षण गोंडकालीन वेशभूषा के सूचक हैं। टुहनी बमलाई के स्थान के सम्मुख इस प्रकार की तीन आकृतियाँ अवस्थित हैं। मैंने घनसोर और ओंदगाँव आदि स्थानों पर लेखयुक्त जुझारों के अवशेष देखे हैं। उनकी भूषा व शस्त्रों में पर्याप्त साम्य है। बाजनामठ (जबलपुर) के स्तम्भों को जिन्होंने देखा है, वे इन पंक्तियों के मर्म को समझ सकते हैं। वर्णित स्तम्भों पर मिथुनाकृतियाँ बड़े ही भद्दे रूप में उत्कीर्णित हैं।

गुम्बज़ के त्रुटित अंश ६ खण्डों में फैले हुए हैं जिन्हें सरलतापूर्वक जोड़ा जा सकता है। प्रत्येक भाग की गोलाई ३ फ़ीट से कुछ अधिक प्रतीत हुई। यद्यपि माता का परिष्कृत स्थान ऊपर से तीन फ़ीट से अधिक चौड़ा है। सम्भव है संकुचित स्थान के कारण बाद में भक्तों ने व्यास को बढ़ा दिया हो। खण्डितांश कला की दृष्टि से जितने महत्वपूर्ण हैं, उतने ही तान्त्रिक दृष्टि से भी। ऊपरवाली गुम्बज़ की ६ कलियों पर नवग्रह, नक्षत्र और नवदुर्गा की आकृतियाँ शिल्पी की सुदीर्घकाल व्यापी साधना की स्मृति दिलाती हैं। नवदुर्गा का अंकन मुझे महाकोशल में कहीं भी देखने को नहीं मिला। जीर्णोद्धार करनेवालों की दृष्टि में न जाने उपर्युक्त कलात्मक अंश क्यों नहीं आए। अब भी यदि इन विशृंखलित कलाकृतियों को शिखर में जड़ दिया जाए तो पुरातन कला और तान्त्रिक परम्परा की आंशिक रक्षा हो सकती है।

स्थापना काल : छत्तीसगढ़ में जहाँ कहीं भी गोंड राज्य रहा वहाँ दन्तेश्वरी की पूजा बड़े आदर के साथ की जाती थी और नरबलि भी होती थी, जैसा कि कालीतन्त्र पद्धति से स्पष्ट है। आज भी दन्तेश्वरी के मन्दिर, सूचित भूभाग में पर्याप्त परिमाण में पाए जाते हैं। दन्तेवाड़ा नगर दन्तेश्वरी के नाम से ही सम्बद्ध है। इतने विवेचन के बाद यह तय है कि डोंगरगढ़ की विमला-बमलाई की स्थापना उत्तर गोंड काल में हुई होगी कारण कि उत्तर कोशल में भी तान्त्रिकों के प्रति न केवल गोंड राजवंश का खिंचाव ही था अपितु वे इसके प्रश्रयदाता भी थे। बाजनामठ (जबलपुर) इसका प्रमाण है। दक्षिण कोशल में, उत्तरकोशलीय गोंड परम्परा सत्तात्मक राजनीति से गिर कर भी सांस्कृतिक एवं पारम्परिक दृष्टि से अपने आपको बहुत कुछ सुरक्षित रख सकी और आज भी उत्तरकोशल की अपेक्षा दक्षिणकोशल में गोंड आदि देवी परम्पराओं के उपासकों की संख्या अधिक है। यद्यपि महाकोशल की तन्त्र परम्परा पर विवेचन करने का यह स्थान नहीं है किन्तु इतना कह देना अनिवार्य है कि छत्तीसगढ़ में दो दर्जन से अधिक ऐसे नगर और दुर्ग मिलते हैं जिनके नामकरण के साथ देवियों के नाम जुड़े हैं। इससे शक्ति की व्यापकता की कल्पना की जा सकती है।

'माधवानल कामकन्दला' नाटक में विमला का उल्लेख आया है। इस आधार पर कतिपय लोग मानते हैं कि विक्रमादित्य के समय में भी डोंगरगढ़ में विमला का मन्दिर था, अतः यह स्थान पर्याप्त प्राचीन है। किन्तु प्राप्त अवशेषों के प्रकाश में और इतिहास द्वारा अन्वेषण करने पर उपर्युक्त कथन की सत्यता संदिग्ध हो जाती है। इस परम्परा का सूत्रपात मेरे विचार से इसी लिए हुआ कि किंवदन्ती बताती है कि कामकन्दला का स्थान डोंगरगढ़ था किन्तु मुझे सन्देह है। विस्तार के लिए मेरा "खण्डहरों का वैभव" देखना चाहिए। मुझे ऐसा प्रतीता होता है कि उपर्युक्त किंवदन्ती से प्रभावित नाटक के लेखक के समय विमला का मन्दिर रहा होगा और उसने प्रत्येक वस्तु को प्राचीन प्रमाणित करने के मोह से विमला पीठ को भी उस काल में पटक दिया। साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है। लेखक अपने समय की परम्परा से प्रभावित होता है। यही कारण है कि जिस समय लेखक ने किंवदन्ती सुनी होगी उसी आधार पर अपनी प्रतिभा का मूर्तरूप नाटक के रूप में उपस्थित कर दिया होगा, क्योंकि नाटक कुछ प्राचीन नहीं है अतः उस पर अधिक विचार करना

समुचित नहीं जान पड़ता ।

प्रसंगतः दो बातों का उल्लेख अत्यावश्यक जान पड़ता है । यदि थोड़ी देर के लिए विक्रमकालीन पीठ मान लिया जाए तो सबसे बड़ी समस्या यह खड़ी होगी कि उतने प्राचीन अवशेष वहाँ मिलने चाहिएँ परन्तु वहाँ तो ऐसा एक भी अवशेष अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुआ जो कलचुरि काल से ऊपर जा सके । कलचुरि काल में भी विमला का सिद्धपीठ प्रसिद्ध स्थानों में रहा होता तो रत्नपुर का प्रसिद्ध योगी मकरध्वज (जो उस समय का बहुत बड़ा तान्त्रिक और सिद्ध योगी माना जाता था) वहाँ अवश्य ही यात्रार्थ आता, साथ ही कलचुरिकालीन तान्त्रिक या शासक कहीं न कहीं इसका उल्लेख अवश्य ही करते किन्तु ऐसा नहीं हुआ । दूसरी बात रही इतिहास की । तान्त्रिक परम्परा के पर्यवेक्षण से विदित हुआ है कि ईस्वी की कई शताब्दियों पूर्व दक्षिण कोशल की जनता शक्तिपूजा में विश्वास करती थी किन्तु दक्षिण कोशल में ऐसा एक भी प्राचीन शक्तिपीठ उपलब्ध नहीं हुआ जिसे हम गुप्तकाल के पूर्व का भी प्रमाणित कर सकें ।

पूर्वोल्लिखित विचार को उपर्युक्त प्रमाणों के प्रकाश में देखने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विमला का उपर्युक्त शक्तिपीठ सोलहवीं और सत्रहवीं शती के बीच की कृति है जिसके निर्माण में गोंड जाति का ही प्राधान्य रहा है । आज भी विमला का पुजारी गोंड है । गोंड काली के उपासक रहे हैं—जिसे दन्तेश्वरी भी कह सकते हैं—जो विमला का एक उपनाम है ।

अन्य अवशेष : माता विमला या बमलाई की पहाड़ी में पुराने गृहचिह्न और कहीं-कहीं दुर्ग की ध्वस्त लम्बी दीवारों के अंश दृष्टिगोचर होते हैं । स्थानीय जन प्रवाद तो ऐसा है कि ये सब खण्डित अवशेष माधवानल कामकन्दला के महल या क़िले हैं पर ऐतिहासिक कसौटी पर जनप्रवाद ठीक नहीं उतर सकता । सम्भव है उत्तरकालीन कलचुरि या गोंडों ने अपनी रक्षा के लिए उचित स्थान समझ कर दुर्ग बनवा लिया हो और बाद में उपेक्षित कर दिया हो । पर हाँ, संशोधन की काफ़ी गुंजाइश है ।

तपसीताल : यों तो डोंगरगढ़ में छोटे मोटे कई जलाशय हैं । उनमें तपसीताल या तपस्वी आश्रमस्थ सरोवर का स्थान महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध है । सचमुच यह स्थान आध्यात्मिक साधना की पवित्र भूमि है । प्रकृति के मुक्त वायुमण्डल में साधक आत्मदर्शन करने की प्रेरणा यहाँ प्राप्त कर सकता है । तीनों ओर से घनघोर पहाड़ी व लतावेष्टित वृक्षावली के बीच सुशोभित सरोवर व आश्रम आध्यात्मिक संस्कृति का सुस्मरण कराता है । यों तो निर्जन एकान्त स्थान अन्यत्र भी उपलब्ध होते हैं किन्तु इस तपस्वी आश्रम के पीछे कई साधकों की साधना जुड़ी हुई है ।

माता विमला की पहाड़ी के ठीक पृष्ठभाग में अर्थात् श्रीकृष्ण गोशाला से पूर्व की ओर कुछ ऊँचे स्थान पर यह आश्रम बना हुआ है । प्रवेश करते ही सर्व प्रथम कुछ समाधियों पर दृष्टि केन्द्रित होगी जो पूर्व महन्तों की बताई जाती हैं । सामने ही छोटी सी गोशाला में हृष्ट-पुष्ट कुछ गौएँ बंधी मिलेंगी । निकट ही सामान्य दालान में महन्त की बैठक व जलती हुई धूनी दिखाई पड़ेगी । सम्मुख हनुमानजी, रामचन्द्रजी व शंकरजी के मन्दिर आपको आकृष्ट कर लेंगे । ऐसा लगता है कि पुन्नाग की छाया में पूरा आश्रम चिर-शान्ति का अनुभव कर रहा हो । मन्दिर के ऊपर के भाग में एक विशाल चट्टान पर सुन्दर कुटी बनी हुई है जहाँ साधक आत्मतत्व में निमग्न हो सुखद क्षणों का अनुभव कर सकता है । यहाँ से पहाड़ी का दृश्य इतना आकर्षक लगता है कि मानों अत्यन्त सघन वन में हम लोग खड़े हैं । यद्यपि चमत्कारों में मेरा अधिक विश्वास नहीं है किन्तु इस आश्रम में न जाने किन महान् साधकों की साधना का प्रभाव आज भी विद्यमान है कि कितनी ही रात्रि व्यतीत होने पर सूचित कुटिया में—जहाँ नरभक्षी पशुओं का आवागमन प्रतिदिन बना ही रहता है—एकाकी रहने पर भी हृदय में लेशमात्र भी भय का संचार नहीं होता । मेरा यह अनुभव है ।

आश्रम में ही छोटा सा पर सापेक्षतः अतीव स्वच्छ जलाशय है जिसके कारण इसका नाम तपसीताल या तपस्वी आश्रम पड़ा । मुझे सम्पूर्ण महाकोशल में यही एक ऐसा सरोवर दृष्टिगोचर हुआ जहाँ पर जलचर स्वेच्छापूर्वक विचरण कर सकते हैं । बात यह है कि यहाँ पर बहुत बड़ी मछलियाँ इसलिए हो जाती हैं कि साधकों की पवित्र भूमि होने के कारण, किसी भी अवस्था में इस जलाशय से मछलियाँ पकड़ी नहीं जा सकतीं । साथ ही एक नियम यह भी है कि तपस्वी या मुनि को छोड़ कर कोई भी सांसारिक व्यक्ति इस सरोवर में स्नान

नहीं कर सकता। साबुन लगाना तो सभी के लिए सर्वथा वर्जित है।

कहा जाता है कि बाबा हनुमानदास जी के समय खैरागढ़ महाराज श्रीकमलनारायणसिंह सरोवर में मत्स्य आखेटार्थ आए। दैवयोग से पर्याप्त प्रयत्न करने के बावजूद एक भी मछली होने का आभास तक न मिलने पर वे लौट पड़े। आश्रम के प्रति महाराज के हृदय में बड़ी ममता थी। वर्षासन भी मिला करता था।

आज का यह तपस्वीताल या आश्रम एक शताब्दी पूर्व साधकों का समन्वयात्मक केन्द्र था। कई ज्ञानपिपासुओं ने आत्मदर्शन की प्रेरणा प्राप्त की थी। आदर्शमूलक जीवनयापन करनेवाले आश्रम के भूतपूर्व महन्त न केवल एकान्त वैराग्यवाहक ही थे अपि तु उनमें लोककल्याण और सांस्कृतिक प्रचार की तीव्र भावना भी निहित थी। आतिथ्य भारतीय संस्कृति का मौलिक गुण है एवं तपस्वी आश्रमों की अटूट परम्परा भी। आश्रम में प्रत्येक अतिथि का सत्कार होता था तदर्थ राजा और जनता द्वारा निश्चित वृत्ति लगी हुई थी। महन्त बाबा लालदास जी अग्रसोची थे। गिरती हुई परिस्थिति के कारण आपने जंगमवृत्ति को स्थावर में परिणित कर दी अर्थात् एक गांव आश्रम के नाम पर ले लिया।

तपसी-आश्रम का सांस्कृतिक महत्व निर्विवाद होते हुए भी इसके अतीत पर विस्तृत प्रकाश डालनेवाले साधनों का प्रायः अभाव है। केवल महन्तों की नामावली और पारम्परिक जनश्रुतियाँ ही मार्ग स्पष्ट कर सकती हैं। अभी तक जो नामावली प्राप्त हुई है, वह इस प्रकार है :

बाबा हनुमानदास
|
बाबा निर्मलदास
|
बाबा लालदास
|
बाबा द्वारिकादास
|
बाबा गोदावरीदास
|
बाबा जयकृष्णदास
|
महन्त श्री मथुरादास (वर्तमान)

इन महन्तों का क्रमिक विकास किन वर्षों की अवधि में हुआ, कहना कठिन है किन्तु राजा कमलनारायणसिंह की किंवदन्ती के साथ बाबा हनुमानदास का नाम जुड़ा हुआ है। जिन्हें भूरिया बाबा भी कहते हैं...

अतः इतना तो निश्चित है कि विक्रम की शताब्दी के भीतर ही उपर्युक्त महन्त हुए।

तपसी-आश्रम का इतिहास महन्तों की परम्परा से भी पूर्व का है। कतिपय वयः प्राप्त मनुष्यों से ज्ञात हु कि तपसी-आश्रम आज से ७५ वर्ष पूर्व अत्यन्त जीर्णशीर्ण अवस्था में और सघन वन से परिवेष्टित था। आज वन कटने के बाद भी वहाँ जंगल बना हुआ है त जिन दिनों वन कटाई के व्यवस्थित नियम नहीं थे, उ दिनों इसकी वन-वैभव विषयक भयंकरता और भी भीषणतर रही होगी ! सर्वप्रथम बाबा हनुमानदास य आ कर रहने लगे। वे हनुमान जी के बड़े उपासक एवं रा भक्त थे। इन्होंने आश्रम का उद्धार किया। इससे पूर्व कु तान्त्रिकों का निवास आश्रम में था। तब केवल शिव की पिंडी ही थी एवं कतिपय देविमूर्तियाँ भी। बा हनुमान्दास गोरखपुर के निवासी बताए जाते हैं। इन्हों अपनी लोक-कल्याण मूलक धार्मिक साधना के बल इस आश्रम को छत्तीसगढ़ में नैतिक और सन्त परम्प का केन्द्र बना दिया। कहा यह भी जाता है कि रा के दूधाधारी महाराज भी कभी-कभी यहाँ आ कर हनुमानदास जी से सत्संग करते थे, पर दोनों में पर्याप्त अ भिन्नता है।

उत्तरकालीन कलचुरि शासक और गोंड रा शक्ति के उपासक थे। कबीर के बाद भक्ति की नि धारा की लहर सम्पूर्ण भारत पर छा रही थी, ऐ स्थिति में छत्तीसगढ़ अपवाद कैसे हो सकेगा ! य जहाँ वैष्णव मार्गीय भक्ति धारा का आविर्भाव कब, कै और किनके द्वारा हुआ, अकाट्य प्रमाणों के अभाव निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कहना कठिन है। यों वैष्णव परम्परा कलचुरि पूर्व युग में भी थी जैसा सिरपुर (रायपुर के पास) के राम और लक्ष्मण म राजीम के राजीवलोचन आदि अन्य मूर्तियों से सिद्ध है अशिक्षित जनता निर्गुण परम्परा से शीघ्र प्रभावित न हो सकती। कबीर निर्गुण परम्परा के न केवल उ नक्षत्र ही थे अपि तु भारतीय दार्शनिक और सामा क्रान्ति के स्रष्टा भी थे। उनके विचारों में अल

१६५४

जनता की पुकार एक कण्ठ से उस समय व्यक्त हुई । सम्भव है, रूप के सर्वांगीण बहिष्कार के कारण जनता को सगुण रूपोपासना पद्धति की आवश्यकता थी । उनका भक्ति-सिद्ध-हृदय आत्मिक विकास के लिए एक स्वच्छ और सौंदर्य-सम्पन्न अतुलनीय शक्ति का प्रतीक खोजता था, जहाँ वह अपने आपको श्रद्धापूर्वक भक्ति के माध्यम से समर्पित कर सके ।

महाकोशल के पुराने मठ और पण्डितों के घरों की सम्पूर्ण हस्तलिखित और पारम्परिक दैनंदिनियों के अन्वेषण पर ही भक्ति विषयक परम्परा पर मर्मभेदी प्रकाश पड़ सकता है । ग्रन्थान्त के उल्लेख, संवत् आदि विषय-मूलक-सूचन (जिस प्रान्त में जिस परम्परा का साहित्य लिखित रूप से अत्यधिक प्राप्त होता हो तो समझना चाहिए कि वह परम्परा उन दिनों किसी न किसी रूप में अवश्य ही रही होगी) ही हमारी कल्पना को पुष्ट कर सकते हैं । दुर्भाग्य से मध्यप्रदेश के कलाकारों, लेखकों ने आज के शोध और वैज्ञानिक युग में भी इन पर उचित ध्यान नहीं दिया ।

पुरातन कला-कृतियाँ महाकोशल की वैष्णव मार्गीय भक्ति परम्परा पर आंशिक प्रकाश डालती हैं । प्रायः ऐसा देखा जाता है कि एक परम्परा जब शिथिल होने लगती है तब धीरे-धीरे जनता का ध्यान भी हटता जाता है । नूतनादृत परम्परा पर दृष्टि केन्द्रित होने लगी तब भक्तिमार्ग के प्रति जानतिक आकर्षण अधिक बढ़ गया जो स्वाभाविक था । इसकी पुष्टि में लिखित वाङ्मय तो मेरे अवलोकन में नहीं आया पर हाँ, प्राचीन मूर्ति, पट्टक और चित्र अवश्य ही उपलब्ध हुए हैं जो उपर्युक्त पंक्तिगत तथ्य का समर्थन करते हैं । सोलहवीं शताब्दी के तीन विस्तृत शिला पट्टक महाकोशल के एक ज़मींदार के संग्रह में मैंने देखे थे । इन पर भगवान् कृष्ण के जीवन की एक दर्जन से अधिक महत्वपूर्ण घटनाएँ और रास-लीलाएँ उत्कीर्णित हैं । अहिकालीय दमन, गोवर्धन पर्वतोत्थान, गोचारण आदि बाललीला अंकित हैं । कला की दृष्टि से तो इनका विशेष महत्व नहीं है और न उन दिनों के कलाकारों से ऐसी आशा की जा सकती थी तथापि सांस्कृतिक इतिहास की एक कड़ी तो है ही । वेश-भूषा, क्या नारी क्या पुरुष, सभी की गोंडों की-सी है । इस शिल्प को देख कर अभिजात्य का किंचित् मात्र प्रभाव हमारे मस्तिष्क पटल पर नहीं पड़ता । इस कृति को तात्कालिक वन्य संस्कृति में विकसित भावों का प्रतीक कहें तो लेशमात्र भी अत्युक्त न होगी । प्रसंगतः एक बात की ओर विज्ञों का ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा कि राजीम के पास चम्पारण्य की वल्लभाचार्य की गद्दी भी भक्ति मार्ग की एक कड़ी उपस्थित करती है । यह भी वैष्णवों का बड़ा यात्राधाम है । नागपुर जैन ज्ञान भण्डार में एक पत्र सुरक्षित है जो संवत् १६०८ का लिखित है । इसमें बताया गया है कि चम्पारण्य में महाप्रभु का यात्राधाम है । ऐतिहासिक दृष्टि से यह पत्र बहुत ही महत्वपूर्ण है ।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में तो भक्ति का इतना अधिक प्रचार हो गया था कि शक्ति मूर्तियों के साथ तक कृष्णमूर्ति का निर्माण अनिवार्य था जिस का प्रतीक मुझे घनसोर में उपलब्ध हुआ था । सन्तों की समन्वयवादी उदात्त भावना का ऐसा भव्य प्रतीक भारत में आज तक अनुपलब्ध है । इस ओर रामाश्रयी भक्ति परम्परा का प्रचार पर्यटनशील परिव्राजकों द्वारा हुआ जान पड़ता है । विक्रम संवत् १७०३ और १७०६ की विनय पत्रिका और रामायण की हस्तलिखित प्रतियाँ एवं अन्य सूरसागर के कुछ पद रायपुर के दूधाधारी मठ में मैंने देखे थे । मैं इन पद व प्रतियों का उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि इनका लेखन रायपुर में ही हुआ है । विक्रम संवत् १७०१ का लिखा रास पंचाध्यायी का मराठी भाषान्तर नागपुर के जैन ज्ञान भण्डार में सुरक्षित है । इसमें रासलीला के अतिरिक्त रामलीला और दान-लीला का भी विस्तृत विवेचन है । इसकी रचना रायपुर में ही लक्ष्मण मिश्र नामक पण्डित द्वारा हुई है । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूचित समय तक न केवल भक्ति जन हृदय में घर ही कर चुकी थी अपि तु आत्मसात् होकर साहित्यिक रूप भी धारण कर चुकी थी । इसके प्रचार के लिए स्वतन्त्र मठ भी साधुओं द्वारा स्थापित होने लगे थे । उसी मठ परम्परा का प्रतीक यह तपसी आश्रम जान पड़ता है ।

छत्तीसगढ़ में छुई खदान और राजनाँदगांव आदि के शासक भी वैष्णव थे जो अपने को वैरागी बताते हैं । द्वारिका की छाप लगवा कर कोई भी इस वैरागी जमात में सम्मिलित हो सकता है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में शक्ति और भक्ति परम्परा के दो पुनीत तीर्थों पर यथाशक्य प्रकाश डालने का प्रयास

किया गया है। सचमुच एक ही स्थान पर दोनों विरोधी धाराओं का संगम आज के युग के लिए महान् प्रेरणा का स्रोत बन जाना चाहिए। अन्त में पुरातत्व और अन्वेषण में रुचि रखनेवाले विज्ञों से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे अपने भूभाग के महत्वपूर्ण तीर्थ एवं सौन्दर्य स्थानों पर ऐतिहासिक प्रकाश डाल कर उनका सांस्कृतिक वैभव जनता के सम्मुख उपस्थित करने का कष्ट करें।

'भूपाल-भारती'
लश्कर (ग्वालियर)

—मुनिकान्ति साग

मराठी कहावतें

रात्रि खालले तूप, दिवसा आले रूप
रात में खाया घी और दिन में आया रूप

दिवसा ऊती ऊती, रात्रि चरखा पूनी
दिन भर इधर-उधर फिरते रहे और रात को चरखा पूनी लेकर बैठ गए

चोराने नेले तर उगीच राहिले
सावाने नेले तर घोकत राहिले
चोर ले जाएँ तो चुप रह जाते हैं
सज्जन ले जाएँ तो बार बार दुहराते हैं

वेड़ा कुनबी दूना रावे
त्यांची बाय को तीनदा राबे
मूर्ख कुनबी एक कार्य को दो बार करता है
और उसकी पत्नी तीन बार करती है और फिर भी वे काम नहीं कर पाते

तु कर वटवट, मीं झाले निगरगट
तू बकवास किए जा, मैं चुप हूँ

पाण्याचा पैसा पाण्यांत गेला
पानी का पैसा पानी में गया

व्याजाचे नशेंत मूळ ही गेले, व्याज ही गेले
व्याज के नशे में मूल भी गया और व्याज भी गया

झोपेंत नांही आणि कथेंत ही नांही
नींद में भी नहीं, कथा में भी नहीं

—ललिता देवी

हैदराबाद

महाकवि सूर का निवास-स्थल गोघाट

मथुरा-आगरा के मार्ग पर रुनकुता ग्राम (प्राचीन रेणुका क्षेत्र) के निकट यमुना के तट पर गोघाट नाम का स्थल मुग़ल काल में व्यापारियों का एक मुख्य विश्राम स्थल था। जब यमुना व्यापारियों के लिए यात्रा का मार्ग बनाती थी तब दूर-दूर से यात्री आकर गोघाट और रुनकुता क्षेत्र के पास ठहरते थे। हमारे इस कथन की पुष्टि रुनकुता और गोघाट के बीच बनी सरवर सुलतान की यह दरगाह है जो आज भी हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति के समन्वय की साक्षी बनी खड़ी है। कहा जाता है कि एक बड़े व्यापारी की नाव एक बार यहाँ संकट में पड़ गई थी जिसका भैरव और सरवर सुलतान की कृपा से छुटकारा हुआ। तभी उस कृतज्ञ व्यापारी ने वहाँ भैरव जी के मन्दिर और सरवर सुलतान की दरगाह का एक साथ निर्माण कराया, जिससे वह स्थल हिन्दु और मुसल्मान दोनों के लिए ही पूजनीय बन गया था।

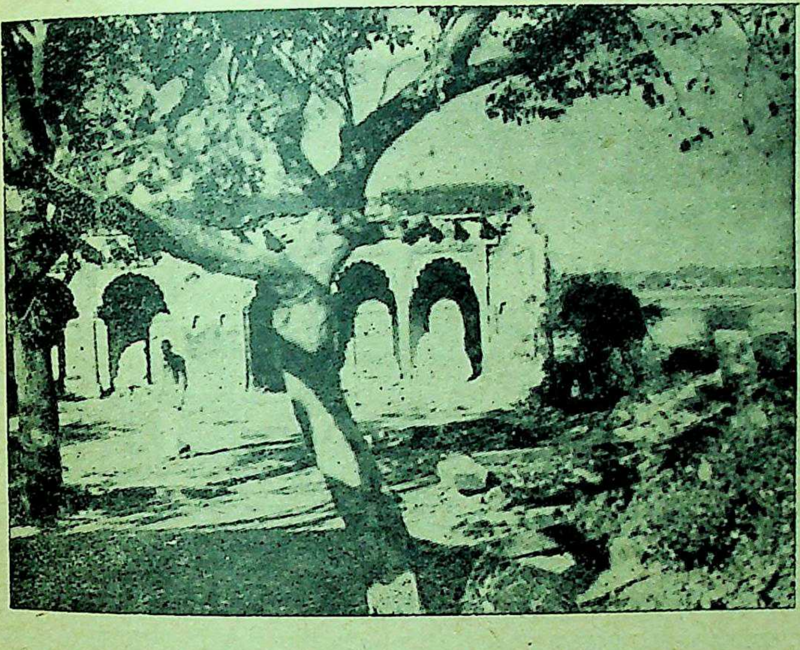

रुनकुता के तपोवन का एक दृश्य

परन्तु आज काल की गति के प्रताप से इस स्थल का वह वैभव उजड़ गया है। पुराने रुनकुता के विशाल खण्डहर पुरातत्व के अमूल्य अवशेष अपने अन्तर में दबे हुए हैं जहाँ आज इस क्षेत्र का पुराना वैभव अचेतन बना सो रहा है। न आज संसार की उसे कोई चिन्ता प्रतीत होती है न शायद संसार को ही अब उसकी कोई चिन्ता या सुधि है।

रेणुका क्षेत्र : कहा जाता है कि परशुराम जी की माता रेणुका का इस क्षेत्र से बड़ा लगाव था। उन्हीं के नाम से इस स्थल को रेणुका क्षेत्र कहा जाता है। गाँव के बड़े बूढ़ों का कहना है कि यहीं कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन ने परशुराम जी के पिता यमदग्नि का वध किया था। इस कथन की साक्षी में यहाँ एक ऊँचे टीलों पर बना हुआ यमदग्नि ऋषि का प्राचीन मन्दिर है जिसमें ऋषि यमदग्नि की एक प्राचीन मूर्त्ति है जो वेषभूषा और केशभूषा एवं केशविन्यास से गुहाकालीन प्रतीत होती है। उनके पार्श्व नें रेणुका जी की मूर्त्ति है और आगे नंदिनी गाय एक ओर बैठी दिखलाई गई है। चारों ओर का वातावरण आज भी वृक्षावली से आच्छादित बड़ा स्वच्छ, नीरव और शान्त है, जिसमें तपोवन की गरिमा अपने सहज रूप में विद्यमान है। इस तपोवन से हट कर कुछ ही मीलों की दूरी पर सींगना गाँव है जो सुप्रसिद्ध शृंगी ऋषि की तपोभूमि थी। दूसरे पार्श्व में भगवान् वेदव्यास जी का आश्रम यहाँ से ५-६ मील दूरी पर है जहाँ इनका मन्दिर बना है।

वर्त्तमान सूरकुटी : इस प्रकार से प्राचीन ऋषियों की इस तपोभूमि के क्षेत्र में ही एक जीर्णशीर्ण कुटी मौन भाव से नतमस्तक खड़ी दीखती है। युगयुगों से वह उपेक्षित और परित्यक्त है। जिस समय हम वहाँ

गए थे, उसकी छत गिरनेवाली थी, परन्तु बाद में आगरा ज़िला बोर्ड ने उसकी मरम्मत करा दी है ऐसा सुना गया । वह एक सीधी सपाट कुटी है जिसमें न कोई जाली है न झरोखा, न किवाड़ है न चौखट; जिसमें न कोई पच्चीकारी है न चित्रकारी तथा जिसके बनाने में न किसी कला का प्रयोग है न कौशल का; फिर भी वह कुटी सहज ही दर्शक की दृष्टि को एक बार अपनी ओर खींच लेती है । सन-सन करते हुए उस बियाबान जंगल में इस अकेली कुटी को आज यमुना भी दूर छोड़ कर आगे बढ़ गई है । बस्ती से भी वह कई मील दूर है । वन की तरुराशि भी अब वहाँ कुटी पर अपनी छाया का छत्र नहीं तानती । नौकाओं द्वारा यात्रा में संलग्न पुराने यात्रियों का आवागमन भी अब वहाँ नहीं होता, फिर भी वह कुटी अतीत के इतिहास का एक मधुर स्वप्न अपने में सँजोये चुपचाप खड़ी है !

सूर का गोघाट पर आगमन : एक दिन वह था जब हिन्दी के सूर का मन इस पावन तपोवन को देख कर रमा था और तब इस कुटी को भी महाकवि के स्पर्श का अमर सौभाग्य प्राप्त हुआ था । यही वह स्थल था जहाँ अपने घर से विरक्त होने के बाद महाकवि सूर आकर बसे थे । श्री हरिराम जी के भावप्रकाश से ऐसा प्रकट होता है कि अपने जन्मस्थान सीही से वैराग्य लेकर आने के उपरान्त पहले महाकवि सूर घूमते हुए मथुरा पहुँचे । सम्भवतः पहले उनका विचार अपने आराध्य देव की जन्मभूमि में बसने का ही था, परन्तु लौकिक प्रसिद्धि से दूर भागनेवाले सूरदास जी को मथुरा के श्रद्धालु नागरिकों से परिपूर्ण वह वातावरण रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ और वह वहाँ से आगे बढ़े तथा यमदग्नि, व्यास और श्रृंगी ऋषि की इस प्राचीन तपोभूमि के आसपास कमनीय कलिन्दजा के तट पर बस गए जहाँ आज भी उनकी उक्त कुटी खड़ी है ।

सूर-वल्लभ सम्मिलन : यद्यपि सूरदास एकान्त में भगवान् का चिन्तन करने के लिए ही मथुरा छोड़ कर यहाँ बसे थे, परन्तु यहाँ भी वह अपने भक्तों की भीड़ से बच नहीं सके । कपूर को कितना ही छिपा कर रखा जाए उसकी सुगन्धि रुक नहीं सकती । फल यह हुआ कि सूरदास जी का यश सौरभ दूर-दूर तक फैल गया । उनकी भक्ति और सिद्धियों की चर्चा दूर दूर फैल गई और वे सूरदास स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हो गए । भक्तों के समूह दूर दूर से उनके दर्शनों को आते और उनके शिष्य-सेवकों का सम्प्रदाय दिन प्रति दिन लगा ।

सूरदास जी ने अपने विनय के पदों का अधिकांश भाग इसी समय गोघाट के यमुना तट पर ही लिखा है । अपनी सुन्दर कविता को सूर यमुना के ललित जब कलित कण्ठ से गाते होंगे तो उस सिद्ध संगीत से कौन बेसुध नही हो जाता होगा ?

वार्ता-साहित्य से प्रतीत होता है कि एक आचार्य वल्लभ भी गोघाट पर पधारे । वल्लभाचार्य महाकवि सूर का प्रत्यक्ष रूप से यह पहला ही साक्षात्कार था, परन्तु विधि के विधान के अनुसार परोक्ष में मणिकांचन सहयोग पहले ही निश्चित था । दोनों एक दूसरे को जान चुके थे ।

नित्य कर्म से निवृत्त होकर जब वल्लभाचार्य निश्चिन्त होकर गद्दी पर तकिया के सहारे बैठे तभी एक सेवक से यह समाचार पाकर महाकवि आचार्य मिलने चले । कुशल-प्रश्न के अनन्तर आचार्य जी कहा कि सूर कुछ गाओ तो सूर ने गाया :

"प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ ।
और पतित सब द्यौस चारि के, हौं तो जनमत ही कौ ।"

वल्लभाचार्य जी सूर की कविता और गायन पर रीझ परन्तु सूर जैसे सिद्ध कवि की वाणी से यह दीनता उद्गार उन्हें नहीं रुचे । वे हँसे और जैसे समुद्र के लिए त्रेता में जामवन्त ने हनुमान् जी को का स्मरण कराया था वैसे ही सूर को भी उनकी का भान कराने के लिए आचार्य बोले : 'जो सूर है कै घिघियात काहे कू औ' कछू भगवत्लीला बरनन करौ ।'

इस प्रकार वल्लभाचार्य जी ने यहाँ गोघाट पर एक वाक्य में ही सूर की काव्य प्रतिभा को उचित प्रदान कर दी जिसके परिणाम स्वरूप सूर-सागर अमर महाकाव्य निर्मित हुआ । सूरदास जी को वल्लभाचार्य जी ने सुबोधिनी सुना कर भागवत का तत्व उन्हें पूर्णतः हृदयंगम करा दिया, जिसका फल हुआ कि सूर के कण्ठ से भगवान् कृष्ण की लीलाओं की निर्झरिणी एक साथ अबाध गति से पड़ी जिसमें स्वयं वल्लभाचार्य विभोर होकर गोते अपने को धन्य मानने लगे । कहा जाता है कि

१६५४

दिशा में दीक्षित होने पर सर्वप्रथम भगवान् कृष्ण के जन्म का यह प्रसिद्ध पद आचार्य जी को सुनाया था :

'ब्रज भयौ महरि कैं पूत जब यह बात सुनीं ।'

आचार्य वल्लभ उस समय सूर से इतने प्रभावित हुए कि फिर वह सूर को छोड़ नहीं सके। गोघाट से वह अपने साथ ही उन्हें गोकुल ले आए और बाद में श्रीनाथ जी की स्थापना गोवर्धन गिरि पर हो जाने से सूर को वहीं रख कर उनकी कीर्तन सेवा का भार सौंप दिया गया। इस प्रकार सूर अपनी गोघाट की इस कुटी को जो आज भी उनकी प्रतीक्षा में आँसू बहाती खड़ी प्रतीत होती है, सदा के लिए अपने जीवनकाल में ही सूनी कर गए।

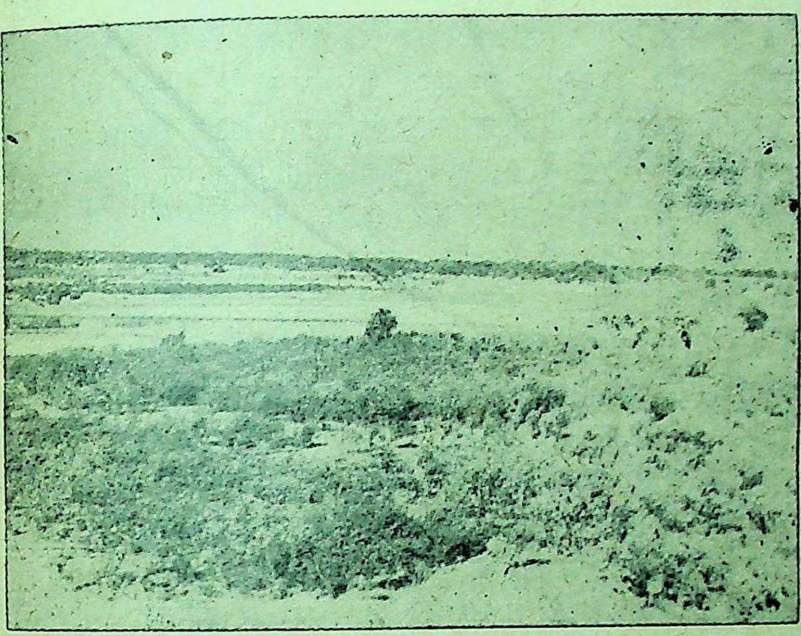

गोघाट के निकट का यमुना तट

गोघाट पर सूर-स्मारक : यह हर्ष की बात है कि सूर की इस सूनी कुटी की ओर गत वर्ष ब्रज साहित्य-मण्डल का ध्यान श्री सिद्धेश्वरनाथ श्रीवास्तव ने वहाँ एक भव्य समारोह करा कर आकर्षित किया और तभी वहाँ सूरदास के स्मारक का शिलान्यास किया गया। अब आगरा के ज़िला बोर्ड और उसके चेयरमैन श्री शिवप्रसाद अग्रवाल के प्रयत्न से यह काम आगे बढ़ रहा है और अभी अभी मुख्य सड़क से सूर कुटी के लिए मार्ग बना कर तैयार करा दिया गया है। सुना यह भी गया है कि उत्तर प्रदेश की सरकार इस स्थल पर सूरदास के नाम पर एक सुन्दर वन बनाने का विचार कर रही है।

गोघाट हिन्दी के साहित्यिकों के लिए एक बहुत बड़ा और महत्व का तीर्थ है। इसका इसलिए बहुत महत्व है कि यहीं इस महाकवि को बालकृष्ण की उन अमरलीलाओं को गाने की प्रेरणा और स्फूर्ति मिली थी जो केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं वरन् विश्व-साहित्य में भी बेजोड़ हैं।

ऐसे महत्वपूर्ण स्थल पर महाकवि सूर का भव्य स्मारक सर्वथा आवश्यक और अभिनन्दनीय है।

१६१६, गली खातियान,
दिल्ली

—रामनारायण अग्रवाल

अपने मानसिक कष्टों का ज़िक्र मत करो। तुम उनके विषय में जितना कम बोलोगे उतना ही तुम उनके विषय में कम सोचोगे और जब तुम उनके विषय में सोचोगे ही नहीं तो फिर वे तुम्हें परेशान नहीं कर सकेंगे।

—सैमुअल जौनसन

१९३९ के बाद की हिन्दी कविता

दूसरे महायुद्ध के बाद की हिन्दी कविता की जो गति-विधि हमारे सामने है वह बहुत कुछ आधुनिक अंग्रेज़ी कविता के अनुरूप है। दोनों में समान प्रवृत्तियों का होना स्वाभाविक ही है क्योंकि १९३९ के पश्चात् भारत का सम्पर्क संसार की विभिन्न मुख्य विचारधाराओं से पूर्णतया स्थापित हो गया था। स्पष्ट है कि इन्हीं विविध विचारधाराओं ने हिन्दी और अंग्रेज़ी कविता की गतिविधि का पिछले वर्षों में निर्देशन का कार्य किया है। अतएव यहाँ पर अच्छा होगा कि हम यह देखें कि इन विचारधाराओं ने कहाँ तक कविता की दिशा को मोड़ा है, और उसे उसके गन्तव्य तक पहुँचाने में सहायता प्रदान की है।

मार्क्सवादी धारा : मार्क्स के अनुसार इतिहास की प्रक्रिया में भौतिकवादी शक्तियाँ ही मूलतः काम करती हैं। समाज में यह भौतिकवादी शक्तियाँ मुख्यतया आर्थिक हो जाती हैं, और उन्हीं की आधार शिला पर समाज का समस्त ढाँचा निर्मित किया जाता है— सभी राजनैतिक, दार्शनिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में इसी आर्थिक विकास का आधार रहता है। मार्क्सवादी आज के संसार को शोषक और शोषित वर्गों में बँटा पाता है, और वह शोषित वर्गों को अपनी परतन्त्रता की बेड़ियाँ तोड़ देने के लिए ललकारता है।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हो भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना १९२७ में हुई थी। १९३५ में फ़ासिस्टों के प्रति विद्रोह की आवाज़ को उठाने के लिए कुछ ऐसे साहित्यकारों की पेरिस में एक बैठक हुई जिन्हें साम्यवादी विचारों से सहानुभूति थी। उसी वर्ष मुल्कराज आनन्द इत्यादि के परिश्रम से भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की भी स्थापना हुई और उसकी प्रारंभिक सभा लन्दन में हुई। दूसरे वर्ष भारत में पहली बार मुंशी प्रेमचन्द के सभापतित्व में इस लेखक संघ की बैठक लखनऊ में हुई। इसके बाद से निरन्तर मार्क्सवादी विचारधारा हिन्दी साहित्य की गति-विधि पर अपना प्रभाव डालती रही है।

यूरोप में मार्क्सवादी विचारधारा का कविता पर गहरा प्रभाव पड़ा है। अंग्रेज़ी कविता में आडेन, स्पैंडर, सैसिल डे लेविस, मेकनीस आदि कवि अपने दृष्टिकोण में मार्क्सवादी रहे हैं। उन्होंने कविता के बाह्य रूप में भी परिवर्तन किया है—वे सब रोमांसवादी प्रतीकों और चित्रों के विरोध में हैं और अपनी कविता की वाणी को आधुनिक वातावरण के अनुरूप ही रखते हैं। उनके प्रतीक और रूपक आज की मशीनों और फ़ैक्ट्रियों से भरे जगत से ही लिए गए हैं। पर इन सब कवियों में हमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं सामाजिक स्वतन्त्रता का द्वन्द्व दिखाई देता है। इन सब के अपने स्वयं के विचार और भावनाएँ हैं पर वे राजनीति में कम्यूनिज़्म को अपनाए हैं। उनकी आत्मा जैसे कभी-कभी उन्हीं के द्वारा आरोपित मार्क्सवादी नियन्त्रण से विद्रोह करने लगती है—इसका आभास बहुधा पाठक को होने लगता है।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के पहले हिन्दी कविता मुख्यतया रोमांसवादी थी। छायावाद के पतन काल में कविता जीवन से दूर जाकर पलायनवादी हो गई थी। दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ काल से नई पीढ़ी के कवियों ने जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित थे इस पतनोन्मुखी रोमांसवादी काव्य के आदर्श को चुनौती दी। सुमित्रानन्दन पन्त ने जो कल तक छायावादी कविता के कर्णधारों में से एक थे १९३८ में "रूपाभ" में नई कविता की दिशा की ओर संकेत किया : "इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं। श्रद्धा अवकाश में पलनेवाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।"

पन्त द्वारा इंगित कविता का यह नया आदर्श वस्तुतः मार्क्सवादी आदर्श है। लेनिन के भी कला पर

१९५४

ही विचार थे : "कला जनता की वस्तु है। उसकी ड़ों को श्रमिकों के जीवन में गहराई तक जाना चाहिए। ...उसे उनके भावों, विचारों और इच्छाओं से अपनी पोषण सामग्री लेना चाहिए।"[१]

कविता के इस नए आदर्श ने कलाकार को एक ार उसके अहम् के खोखले से बाहर निकाल ही तो दिया और वह अपनी प्रेरणा के लिए धरती और उस पर आश्रित जन-मन की ओर देखने लगा। पन्त की 'पुण्य प्रसू' कविता में कवि के लिए यही सन्देश है कि वह 'मृत्यु नीलिमा गगन' का ताकना छोड़ कर इस 'स्वर्गिक भू' और 'मानव पुण्य प्रसू' की ओर देखे। जनवादी मूल्य ही जीवन के सच्चे मूल्य हैं। धर्म, राजनीति और सदाचार की उपयोगिता जनहित ही में है। जो कुछ भी जनजीवन से पृथक् है वह सत्य नहीं हो सकता। वह संस्कृति जहाँ सत्य, सुन्दर और शिव वर्गों के लिए है उसका पतन आवश्यक है :

"धर्म नीति औ' सदाचार का
मूल्यांकन है जन हित......"[२] इत्यादि

पर जन-मन के भावों को ध्वनित करने के लिए कविता के रूप में भी परिवर्तन आवश्यक है। उसके लिए नए छन्द, आभरण और रसविधान चाहिए :

"कवि, नव युग की चुन भाव राशि
नव छन्द, आभरण, रस विधान
तुम बन न सकोगे जन-मन के
जाग्रत भावों के गीत यान !"[३]

कविता की शैली में अनावश्यक जटिलता कवि को पसन्द नहीं। उसकी कविता तो ऐसी होनी चाहिए जो जन-मन पर सीधा प्रभाव डाले :

"तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार !"[४]

मार्क्सवादी विचारधारा का एक बड़ा भारी प्रभाव यह हुआ कि कवि मानवता को सर्वोपरि सत्ता के रूप में देखने लगा और ईश्वर के अस्तित्व के विषय में उसका दृष्टिकोण सन्देहात्मक होता गया। एक स्थल पर गोर्की ने कहा था : 'मेरे विचार से मनुष्य से परे कोई भी वस्तु नहीं, क्योंकि मानव सब विचारों और वस्तुओं का स्वयं निर्माता है, वह चमत्कारिक और प्रकृति की समस्त शक्तियों का भावी स्वामी है।'[५] यही विचार हमें पन्त, नरेन्द्र इत्यादि कवियों में मिलते हैं। पन्त के अनुसार मानवता सब वस्तुओं से ऊपर है :

"देश काल औ' स्थिति से ऊपर
मानवता को करो प्रतिष्ठित !"[६]

सत्य, सुन्दर इत्यादि मूल्यों की किसी दर्शन के संसार में खोज करना अनावश्यक है, वे सब मानवता में ही निहित हैं :

"कहाँ खोजने जाते हो सुन्दरता औ' आनन्द अपार
इस मांसलता से है मूर्तित अखिल भावनाओं का सार।"[७]

मनुष्य की असीम शक्ति में अडिग विश्वास की भावना हमें नरेन्द्र की 'प्रभात फेरी' नामक कविता में मिलती है। भूचाल, तूफ़ान इत्यादि सब मानव की असीम शक्ति के परिचायक हैं। पर्वत, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह सब उसकी महानता को इंगित करते हैं। वह ईश्वर तक का निर्माता है जिसका उसने उसकी उपयोगिता के अनुसार निर्माण किया। ईश्वर की सत्ता मनुष्य की इच्छा के अनुरूप बनती और मिटती है। स्वर्ग मानव की रुचिर कल्पना है और धर्म उसके मस्तिष्क की उपज। ऐसे अनेक विचारों का हमें 'प्रभात फेरी' में दर्शन होता है।

मार्क्सवादी विचारधारा समस्त मानव जाति को दो वर्गों में विभाजित देखती है। वे वर्ग हैं शोषक और शोषित के। शोषितों में श्रमिक, कृषक और नारी वर्गों का नाम लिया जा सकता है। इन तीनों के शोषण के हृदय-विदारक चित्र हमें मार्क्सवादी कविता में मिलते हैं। भारतीय ग्राम तो जैसे इस शोषण का केन्द्र बिन्दु है। वह एक ऐसा स्थान है :

"जहाँ दैव जर्जर असंख्य जन
पशु जघन्य क्षण करते यापन !"[८] इत्यादि

मार्क्सवाद नारी की स्वतन्त्रता की कामना करता

---

[१] 'लिट्रेचर एण्ड मार्क्सिज़्म' एंजिल फ़्लोर्स द्वारा सम्पादित, इलाहाबाद, पृ० १० [२] युगवाणी पृ० ३५ [३] युगवाणी पृ. ६३ [४] ग्राम्या पृ० १०३ [५] 'लिट्रेचर एण्ड लाईफ', १९४६, पृ० ५६ [६] युगवाणी पृ० ३६ [७] वही, पृ० ५५-५६ [८] ग्राम्या १३

है और उसे सामन्तवादी शोषण के अत्याचार से मुक्त करने का प्रयत्न करता है। नारी की स्वतन्त्रता-सम्बन्धी विचार पंत द्वारा गद्य में इस प्रकार प्रकट किए गए हैं :

"सामन्त युग के स्त्री-पुरुष-सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यन्त संकुचित लगता है। उसका नैतिक मान-दण्ड स्त्री की शरीर यष्टि रहा है! उस सदाचार के अंचल छोर को हमारे मध्ययुग की सती और हमारी बाल-विधवा अपनी छाती से चिपकाए हुई है और दूसरे छोर को उस युग की देन वेश्या।...सामन्त युग की नारी नर की छाया मात्र रही है।"९

यही विचार पन्त की अनेक कविताओं में भी ध्वनित हुए हैं। पन्त के अतिरिक्त अंचल की अनेक कविताओं में भी हमें नारी शोषण के हृदयविदारक चित्र मिलते हैं। 'शोषिता', 'दानव', 'आज मरण की ओर' आदि अनेक कविताओं में हमें नारी शोषण का नग्न वर्णन मिलता है।

निराला की 'कुकुरमुत्ता' कविता भी शोषण के प्रति विद्रोह की आवाज़ बुलंद करती है। उनकी कविता में गुलाब पूँजीपति वर्ग का प्रतीक है :

"ख़ून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कै पीटलिष्ट।।"

नरेन्द्र की 'ज्येष्ठ का मध्याह्न' कविता प्रगतिवादी हिन्दी कविता में एक नया चरण है। मध्याह्न पूँजीवादी शोषण का प्रतीक है जिसके आतंक से एक बार सारा संसार व्याकुल हो उठा है :

"ज्यों घेर सकल संसार, कुंडली मार
पड़ा हो अहि विशाल
आक्रान्त धरा की छाती पर
गुमसुम बैठा मध्यान्ह काल !"१०

मार्क्सवास ईश्वर की आस्था में विश्वास नहीं रखता। ईश्वर, मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार, शोषक वर्ग द्वारा निर्मित एक अस्त्र है जिसे शोषितों को सदैव गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ कर रखने के लिए काम में लाया गया है। ऐसे ईश्वर को, नरेन्द्र के अनुसार, व्यथा में पुकारना जीवन में सबसे बड़ी भूल है :

"जिसे तुम कहते हो भगवान.........
जो बरसाता है जीवन में
रोग शोक दुःख दैन्य अपार.........
उसे सुनाने चले पुकार ?"११

मार्क्सवाद के स्वप्न का अवतरित होना रूस ही सम्भव हुआ, अतएव अनेक प्रगतिशील कवियों में रू के प्रति सद्भावनाओं के विचार हमें मिलते हैं। नरे की 'लाल निशान' कविता पुस्तक इस विषय में उल्लेखनीय है। दिनकर की 'दिल्ली और मास्को,' और शि मंगल सिंह 'सुमन' की 'मास्को है दूर अब भी' 'ब जा रही है बढ़ी लाल सेना' इत्यादि कविताएँ इस दृष्टि से अच्छी बन पड़ी हैं।

मार्क्सवाद केवल समाज के शोषण के प्र जागरूक होकर ही मौन नहीं रहता, वह उसके निराकरण का भी उपाय जानता है। यह क्रान्ति का आह्वान कर है। इस क्रान्ति का सुन्दर दिग्दर्शन हमें 'दिनकर' की कविताओं में मिलता है। यहाँ क्रान्ति अपना परि स्वयं देती है :

"मेरे मस्तक पर छत्र मुकुट
वसु-काल-सर्पिणी के शत फन
मुझ चिर कुमारिका के ललाट में
नित्य नवीन रुधिर चंदन।"...१२

'निराला' भी क्रान्ति द्वारा पूँजीवादी संस्कृति के विध्वंस और जनवादी संस्कृति के निर्माण की कल्प रखते हैं :

"जल्द जल्द पैर बढ़ाओ आओ
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला।"...१३

इस दिशा में 'सुमन' की 'एशिया की आग' नाम की कविता विशेष उल्लेखनीय है। इस शक्तिशाली कविता में उस क्रान्ति की आग का उल्लेख है जिससे आज सम एशिया—भारत, बर्मा, इण्डोचीन, चीन आदि—भ उठा है।

मनोविश्लेषणवादी धारा : मार्क्सवाद के अ रिक्त दूसरी महत्वपूर्ण विचारधारा मनोविश्लेषण वि

---

९ आधुनिक कवि : भूमिका, पृ० २३ १० पलाशवन पृ० ६९ ११ प्रभात फेरी पृ० ११० १२ हुंकार, पृ०
१३ बेला

१९५४

की है। मनोविश्लेषण विज्ञान के अनुसार मन एक तैरते हुए हिमपर्वत के समान है जिसका केवल १/९ भाग तो चेतनता की रेखा के ऊपर रहता है और शेष नीचे। हमारे जीवन की अधिकतर कार्य प्रेरणाओं का उद्गम यही ८/९ भागवाला अचेतन मन है। फ्रायड के अनुसार हमारे इस अचेतन मन में वे सब इच्छाएँ और कामनाएँ दबी पड़ी रहती हैं जिनकी पूर्ति हम समाज की वर्जनाओं के कारण अपने चेतन जीवन में नहीं कर पाते। यह दमित इच्छाएँ और प्रवृत्तियाँ फ्रायड के अनुसार अधिकतर यौन-सम्बन्धी (Sexual) होती हैं।

फ्रायड का स्वप्न के विषय में भी एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। स्वप्न को वह एक ऐसी इच्छा की पूर्ति भर मानता है जिसका चेतन जीवन में दमन किया गया है। स्वप्न में वह प्रहरी (Censor) जिसे अवचेतन मन के मुख्य द्वार पर दमित इच्छाओं को अन्दर रखने के लिए नियुक्त किया जाता है, क्षण भर को सुप्त अथवा अर्ध जाग्रत अवस्था में हो जाता है। अवसर पा कर दमित इच्छाएँ कभी नग्न और कभी अर्ध-नग्न अवस्था में आ जाती हैं। अपनी अर्ध-नग्न अवस्था में वे बहुधा भेष बना कर भी आती हैं जिसके कारण स्वप्न बहुधा प्रतीकात्मक हो जाता है।

अचेतन मन में दबी पड़ी इच्छाओं को जानने के लिए मनोविश्लेषणशास्त्री एक विशेष पद्धति का प्रयोग करते हैं जिसे 'फ्री एसोसिएशन' का नाम दिया जाता है। उस व्यक्ति को जिस पर प्रयोग किया जाता है विश्राम की अवस्था में बैठाल देते हैं और उसे इन सब विचारों को जो उसके मस्तिष्क में आते हैं बिना किसी अवरोध के तारतम्य में कह डालने के लिए आदेश दे देते हैं। यह विचार जो बहुधा सुसंबद्ध नहीं होते उसके व्यक्तित्व के विषय में जानने में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।

मनोविश्लेषण विज्ञान का आधुनिक कविता पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ा है। (१) 'सेक्स' को सारी मानव प्रवृत्तियों का केन्द्र बिन्दु स्वीकार करने में (२) अचेतन मन में दबी इच्छाओं को 'फ्री एसोसियशन' की पद्धति द्वारा प्रकाशित करने में। इस प्रकार आज का कवि बहुधा अचेतन में पड़ी इच्छाओं का काव्य-विषय के लिए प्रयोग करता है। वह पुरानी काव्य शैली का भी विद्रोह करता है, और कविता में सुसम्बन्ध विचारों के स्थान पर असम्बन्ध विचारों को प्रश्रय देता है। फलस्वरूप आज की कविता 'फ्री एसोसिएशन' पद्धति अपनाकर छन्द और तुक के पाशों से मुक्त हो अपने विषय और शैली दोनों में असम्बद्ध तथा दुरूह हो गई है।

हिन्दी कविता में 'सेक्स' को समस्त मानवीय प्रवृत्तियों का केन्द्र मानने में अञ्चल सबसे आगे हैं। कम से कम अपने तीन काव्य संग्रहों 'मधूलिका', 'अपराजिता', और 'लालचूनर' में अञ्चल ने अपनी अदम्य काम-वासना को निर्बंध स्वर दिया है। यहाँ पर यह कहना असंगत न होगा कि अञ्चल का इस दिशा में मुड़ने का बहुत कुछ कारण फ्रांसीसी 'नेचरलिस्ट' लेखक जैसे जोला, फ्लावेयर आदि का भी प्रभाव है। मनुष्य की पाविशक प्रवृत्तियों को उघारने और उसे पशु के स्तर तक गिराने में इन फ्रांसीसी 'नेचरलिस्ट' लेखकों ने कोई भी कसर न छोड़ी थी। ऐसी ही कुछ प्रवृति हमें अञ्चल की कविता में मिलती है :

"कहाँ छिपाऊँ अर्द्ध रात्रि सी यह निर्बंध पिपासा"

… … …

"मैं इच्छा के मरुपथ का यात्री चंचल"

… … …

"एक पल ही के दरस में जल उठी तृष्णा अधर में"

इत्यादि अनेक पंक्तियाँ कवि की उद्दाम वासना की प्रतीक हैं।

पर मनोविश्लेषण विज्ञान का वास्तविक प्रभाव हमें 'अज्ञेय' की कविता में मिलता है। अज्ञेय पर कुछ अंग्रेज़ी कवियों का जैसे डी. एच. लारेंस, टी. एस. इलियट और ब्राउनिंग का विशेष प्रभाव पड़ा है। अज्ञेय ने लारेंस की तरह पुरुष और स्त्री का द्वंद्व अपनी कविता में अनेक स्थल पर प्रकट किया है। पुरुष और नारी का प्रेम वास्तव में दो प्रतिद्वंद्वियों का प्रेम है जो एक दूसरे पर विजयी होने का निरंतर प्रयास करते रहते हैं। यह भाव बहुत कुछ प्रसिद्ध मनोविश्लेषक एडलर से प्रभावित प्रतीत होता है जिसके अनुसार जीवन के कार्य-व्यापारों में 'सेक्स' की अपेक्षा 'सेल्फ़ एसर्शन' अथवा अधिकार भावना की प्रवृत्ति का अधिक महत्व है। प्रेमियों का यह द्वंद्व हमें लारेंस के अनेक उपन्यासों में मिलता है। 'अज्ञेय' की काव्य-पुस्तक 'चिन्ता' का विषय भी मुख्यतः पुरुष और नारी का यह द्वंद्व है। उदाहरण के

लिए एक स्थल पर पुरुष कहता है कि : "हम एक दूसरे के आखेट हैं और अनिवार्य, अटल मनोनियोग से एक दूसरे का पीछा कर रहे हैं......और एक निरंतर नित्य तृष्णा की तरह दोनों आत्माएँ एक दूसरे की चाह में छटपटाती रहती हैं, और प्रेम के ज्वाला मय अमृत का, विषाक्त शक्ति का पान करती रहती हैं।"[१३]

पुरुष और नारी का हमें जार्ज बर्नार्ड शॉ के नारी विरोधी विचारों में भी मिलता है। शॉ नारी को प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता था जो कि प्रतिभासम्पन्न पुरुष को अपने पाश में बन्दी कर उसे स्वप्नद्रष्टा से एक मामूली रोटी कमानेवाले व्यक्ति के रूप में परिवर्त्तित कर देती है। अपने प्रसिद्ध नाटक 'मैन एण्ड सुपरमेन' में नारी को एक ऐसी ही बाघिन (टाइग्रेस) के रूप में शॉ ने दिखाया है। शॉ के नारी-सम्बन्धी यह विचार हमें आरसीप्रसाद सिंह की कुछ कविताओं में जो उनकी 'नई दिशा' में संग्रहीत हैं, ध्वनित होते मिलते हैं। बच्चन की 'नागिन' कविता जो उनके कविता-संग्रह 'सतरंगिनी' में है उसमें भी नारी को एक नागिन के रूप में देखा गया है।

मनोविश्लेषण विज्ञान के अनुसार आज का समस्त मानव जीवन समाज की वर्जनाओं के कारण कृत्रिम हो गया है, और व्यक्ति 'सेक्स' को शरीर की माँग समझने के स्थान पर उसे सदैव दमन करने में अपनी क्रियात्मक शक्ति का ह्रास करता रहता है। 'सेक्स' के प्रति यह भावना हमें डी. एच. लारेंस और बर्ट्रेण्ड रसेल के विचारों में मिलती है। लारेंस का तो यह दृढ़ विचार था आज की सभ्यता में मनुष्य का सारा भावात्मक एवं 'सेक्स' सम्बन्धी जीवन अत्यन्त शुष्क एवं क्षुद्र हो गया है। अतएव लारेंस के मतानुसार 'सेक्स' को बिना किसी लज्जा की भावना के एक शारीरिक माँग के रूप में समझना भर चाहिए। रसेल भी 'सेक्स' की प्रवृत्ति को भूख और प्यास ऐसी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के रूप में देखने के पक्ष में है। यह विचार हमें आज के कतिपय हिन्दी कवियों में भी मिलता है। उदाहरण के लिए पन्त प्रेम को स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में देखना चाहते हैं :

"मन में लज्जित, जन से शंकित, चुपके गोपन
तुम प्रेम प्रकट करते हो नारी से, कायर!
क्या गुह्य, क्षुद्र ही बना रहेगा, बुद्धिमान
नर-नारी का स्वाभाविक, स्वर्गिक आकर्षण"[१४]

मनोविश्लेषण विज्ञान के प्रभाव के फलस्वरूप हमें आज कविता में यौन-सम्बन्धी प्रतीक भी देखने को मिलते हैं। इन प्रतीकों के प्रयोग का कारण स्पष्ट है—आज की वर्जनाएँ इतनी कठोर हैं कि चेतन स्तरों में मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन असंभव सा हो जाता है, और वह उनकी पूर्ति या तो स्वप्न के जगत में अथवा कला के जगत में ही कर पाता है। अज्ञेय की 'सावन मेघ' कविता में यौन-सम्बन्धी प्रतीक मिलते हैं यथा :

"घिर आया नभ, उमड़ आए मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोंजो पर झुका-सा
विशद श्वासाहत, चितातुर
छा गया इन्द्र का नील-वक्ष......"[१५]

आज के कुछ हिन्दी कवि स्वप्न की पद्धति पर काव्य के उपकरण और शैली दोनों में असम्बद्धता ला कर काव्य-रचना कर रहे हैं। 'तार सप्तक' में संग्रहीत कुछ कविताएँ स्वप्न की शैली पर लिखी गई हैं जिनके विचार एक दूसरे से असम्बन्धित और शैली भी ऊबड़ खाबड़ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोविश्लेषण विज्ञान ने हमारे काव्य के उपकरण को यथेष्ट प्रभावित किया है। अभी मनोविश्लेषण विज्ञान का प्रभाव क्रियाशील है और फलस्वरूप भविष्य में काव्य के अनेक जटिल स्वरूपों को देखने की हम कामना रखते हैं।

सांस्कृतिक समन्वय की धारा : मार्क्सवादी एवं मनोविश्लेषणवादी विचारधाराओं के अतिरिक्त सांस्कृतिक समन्वय की विचारधारा ने भी आज के काव्य की गति-विधि का निर्देशन किया है। अंग्रेजी काव्य में सांस्कृतिक स्तर पर समन्वय की भावना इलियट और पाउण्ड की कविताओं में मिलती है। हिन्दी में पन्त इस दिशा में सबसे आगे रहे हैं। अपनी 'उत्तरा' की भूमिका में पन्त ने मार्क्सवाद और चेतनवाद के

---

[१३] 'चिन्ता' कविता ४४ [१४] ग्राम्या, पृ० ८६ [१५] तार सप्तक

१६५४

समन्वय की ओर संकेत किया है : “मैं मार्क्सवादी (आर्थिक दृष्टि से वर्ग सन्तुलित) जनतन्त्र तथा भारतीय जीवन दर्शन को विश्वशान्ति तथा लोककल्याण के लिए आदर्श संयोग मानता हूं।...ऐसा कह कर मैं स्वामी विवेकानन्द के सारगर्भित कथन ‘मैं योरप का जीवन सौष्ठव तथा भारत का जीवन दर्शन चाहता हूँ’ की ही अपने युग के अनुरूप पुनरावृत्ति कर रहा हूँ।”[१६] अपने इस विश्वास को पंत ने कविता में भी अनेक स्थल पर प्रकट किया है :

“मनुष्यत्व का तत्व सिखाता,
निश्चय हमको गांधीवाद
सामूहिक जीवन विकास की,
साम्य योजन है अविवाद[१७]
× × ×
परिचय का जीवन सौष्ठव हो
विकसित विश्वतंत्र में विकसित
प्राची के नव आत्मोदय से
स्वर्ण भू तमस तिरोहित !”[१८]

पंत पर उनके जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में बहुधा यह आरोप किया जाता है कि उनका दृष्टिकोण कितनी ही बार परिवर्तित हो चुका है और ‘ग्राम्या’ तथा ‘युगवाणी’ के मार्क्सवादी पंत आज ‘स्वर्णकिरण’, ‘स्वर्णधूलि’ एवं ‘उत्तरा’ में अध्यात्मवादी पंत हो गए हैं। पर यह आरोप पंत पर ठीक नहीं उतरता। इसका स्पष्टीकरण उन्होंने स्वयं ‘उत्तरा’ की भूमिका में निम्नलिखित शब्दों में किया है : “ज्योत्स्ना में मैंने जीवन की जिन वहिरंतर मान्यताओं का समन्वय करने का प्रयत्न किया है तथा नवीन सामाजिकता (मानवता) में उनके रूपांतरित होने की ओर इंगित किया है, युगवाणी और ग्राम्या में उन्हीं के बहिर्मुखी (ऊर्ध्व) संचरण को (जो अध्यात्म का क्षेत्र है) अधिक प्रधानता दी है।”[१९] अतएव पत्र के जीवन-दर्शन में जो विरोधी तत्व हमें दृष्टिगत होते हैं, वे पंत के जीवन-दर्शन के नहीं, वरन् पंत की कतिपय कविता संग्रहों को बिना प्रसंग के अध्ययन करने के कारण हैं।

‘स्वर्णकिरण’ और ‘स्वर्णधूलि’ में पन्त को हम अध्यात्मवादी के रूप में देखते हैं। आध्यात्मिक चेतना को पंत स्वर्णकिरण, स्वर्णभोर, स्वर्णधूलि आदि प्रतीकों द्वारा स्पष्ट करते हैं। स्वर्ण को संभवतः पन्त आत्म-चेतना का प्रतीक मानते हैं, यथा।

“स्वर्णिम पराग स्वर्णिम पराग”[२०]
× × ×
“जयति प्रथम जीवन स्वर्णोदय”[२१]
× × ×
“स्वर्ण वालुका किसने बरसा दी जगती के मरुथल में”[२२]

पन्त के चेतनवाद पर श्री अरविन्द के दर्शन का प्रभाव गहरा है। उनके शब्दों में “विश्व कल्याण के लिए मैं श्री अरविन्द की देन विश्व को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ।”[२३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक हिन्दी काव्य का उपकरण विश्व की नई विभिन्न विचारधाराओं से बहुत प्रभावित है। यही कारण है दूसरे-महायुद्ध के बाद की हिन्दी कविता की गति-विधि बहुत कुछ अंग्रेज़ी कविता के अनुरूप है।

आज हिन्दी कविता के दो वर्ग महत्वपूर्ण हैं। वे हैं प्रगतिवाद और प्रयोगवाद। प्रगतिवादी कवि मार्क्सवादी विचारधारा के अनुगामी हैं और कुछ सीमा तक रूस के नए लेखकों और अंग्रेज़ी के कुछ कवि जैसे आडेन लेवीस आदि से प्रभावित हैं। प्रयोगवादी जिसमें अज्ञेय प्रमुख हैं, अनेक अंग्रेज़ी कवि विशेष कर टी. एस. इलियट, डी. एस. लारेंस, आडेन, स्पैंडर, इत्यादि से प्रभावित हैं। अपनी विचारधारा में वे साम्यवाद और मनोविश्लेषणवाद दोनों ही से प्रभावित हैं। इन विविध विचारधाराओं के पचड़े से निकलने में केवल पन्त कुछ सीमा तक सफल हुए हैं। उनका मुख्यतः सांस्कृतिक समन्वय का दृष्टिकोण है और वे साम्यवाद तथा अध्यात्मवाद दोनों के समन्वय में विश्वकल्याण मानते हैं।

१९३९ के बाद की हिन्दी कविता इस प्रकार अत्यंत गतिशील रही है और वह किसी भी समृद्ध आधुनिक साहित्य के समक्ष रखी जा सकती है। हमें भविष्य में उससे बहुत आशाएँ हैं।

‘किशोर सदन’ ६/३२ सिविल लाइन्स,
पुराना कानपुर

—डॉ. रवीन्द्र सहाय वर्मा

---

[१६] उत्तरा भूमिका, पृ० २१ [१७] युगवाणी [१८] स्वर्णकिरण [१९] उत्तरा भूमिका पृ० २ [२०] स्वर्णकिरण, ५० [२१] वही पृ० ६४ [२२] स्वर्णधूलि, १ [२३] उत्तरा भूमिका, पृष्ठ १६

उर्दू कविता में किसान और मज़दूरों का चित्रण

साहित्य पर देश की परिस्थितियों और समय का बड़ा गहन प्रभाव पड़ता है। सन् १६१४-१८ के महायुद्ध के बाद देश की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों ने ज्यों ही एक मोड़-सा लिया तो देश में हुए अनेक परिवर्तनों के साथ-साथ उर्दू-कविता ने भी अपना परिधान बदला। देश के नेताओं के बलिदानों और त्याग के ऊपर नज़्में लिखी जाने लगीं। डा० इक़बाल जैसे शायर ने "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" के राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत स्वरों में जन-जागृति का अमर सन्देश दिया और ज्यों ज्यों देश में लोक-तन्त्रवाद, ग्रामोद्धार और बेकारी की समस्याओं का नारा बुलन्द हुआ त्यों त्यों उर्दू-काव्य-साहित्य का रुख़ भी शनैः शनैः बदलता गया।

जिन उर्दू शायरों का वर्ण्य-विषय अब तक केवल अपने महबूब की बेवफ़ाई और उसकी तीखी अदायें ही रहा था, उनकी कविताओं के नायक अब देश की संतप्त और पीड़ित जनता के प्रतिनिधि कृषक और मज़दूर भी बनने लगे। यही कारण है कि देश में युगान्तर उपस्थित करनेवाली परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब भी हमें उर्दू कविता में पर्याप्त मात्रा में देखने में आता है।

प्रस्तुत लेख का प्रतिपाद्य यहाँ केवल "उर्दू-कविता में किसान और मज़दूरों के चित्रण" को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना ही है।

पहले आप देश के प्रमुख प्रगतिशील शायर जोश मलीहाबादी की ही कतिपय पंक्तियाँ लीजिए। 'किसान' शीर्षक कविता में सन्ध्याकालीन दृश्य का वर्णन करते हुए वे कहते हैं :

"ख़ून है जिसकी जवानी का बहारे रोज़गार।
जिसके अश्कों पर फ़रागत[1] के तबस्सुम[2] कामदार॥

× × ×

दौड़ती है रात को जिसकी नज़र अफ़लाक[3] पर।
दिन को जिसकी उँगलियाँ रहती हैं नब्ज़े ख़ाक पर॥

× × ×

ख़ून जिसका दौड़ता हैं नब्ज़े इस्तक़लाल[4] में।
लोच भर देता है जो शहज़ादियों की चाल में॥
धूप के झुलसे हुए रुख़ पर मशक़्क़त के निशाँ।
खेत से फेरे हुए मुँह, घर की जानिब है रवाँ॥

× × ×

टोकरा सिर पर, बगल में फावड़ा, तेवर पै बल।
सामने बैलों की जोड़ी, दोश[5] पर मज़बूत हल॥

× × ×

जिसका मस[6] ख़ाशाक[7] में बुनता है इक चादर महीन।
जिसका लोहा मान कर सोना उगलती है ज़मीन॥

× × ×

सोचता जाता है—'किन आँखों से देखा जाएगा।
बेरिदा बीबी का सर, बच्चों का मुँह उतरा हुआ॥

× × ×

"सीमोज़र,[8] नानोनमक,[9] आबोग़िज़ा[10] कुछ भी नहीं।
घर में इक ख़ामोश मातम के सिवा कुछ भी नहीं॥"

अब तनिक 'जंगी तराना', 'वतन' और 'दाव इन्क़लाब' जैसी प्रसिद्ध राष्ट्रीय कविताओं के रचयि शायर शेख़ आशिक हुसैन 'सीमाब' अकबराबादी की पंक्तियों पर भी जरा ग़ौर फ़रमाइए। अपनी 'मज़दूर' शीर्षक कविता में वे बयान करते हैं :

"गर्द चेहरे पर, पसीने में जबीं डूबी हुई।
आँसुओं में कुहनियों तक आस्तीं डूबी हुई॥
पीठ पर नाक़ाबिले बरदाश्त इक बारे गिराँ।
जोफ़ से लरजी हुई सारे बदन की झुर्रियाँ॥
हड्डियों में तेज़ चलने से चटख़ने की सदा।
दर्द में डूबी हुई मजरूह[11] टख़ने की सदा॥

---

१ सुख-चैन २ मुस्कुराहट ३ आकाश ४ दृढ़ता में ५ कन्धे पर ६ स्पर्श करने की शक्ति ७ कूड़ा-करकट में ८ सोना-चाँ
९ रोटी-नमक १० खुराक-पानी ११ घायल

पाँव मिट्टी की तहों में मैल से चिकटे हुए।
एक बदबूदार मैला चीथड़ा बाँधे हुए॥
जा रहा है जानवर की तरह घबराता हुआ।
हाँपता, गिरता, लरजता, ठोकरें खाता हुआ॥
मुजमहिल[12] वामाँदगी से[13] और फ़ाकों से निढाल !
चार पैसे की तवक़्क़ुह[14] सारे कुनबे का ख़याल॥"

मेरठ निवासी शायर अहसान बिनदानिश भी किसान और मज़दूरों के दुःखों की आग सीने में छिपाए चलते थे जो कभी कभी चिनगारियों के रूप में उनकी कविता में प्रकट होती थी। अपनी प्रसिद्ध कविता 'मज़दूर की मौत' में वे उसके घर का कितना दीनतापूर्ण चित्रण करते हैं :

"एक टूटा-सा मकाँ है यासो हिरमा[15] दर किनार।
बामो दर[16] सहमे हुए, ख़स्ता मुँडेरें सोगवार॥
सुरमई छप्पर धुएँ से सहन नाहम वारसा[17]।
ज़र्रा ज़र्रा सर बसर, नासाज़-सा, बीमार-सा॥
ताक है काले धुओं से और घड़ों पर काई है।
नीम जाँ ज़र्रात की डूबी हुई बीनाई है॥

× × ×

फिर उसकी भुखमरी का चित्रण वे इस प्रकार करते हैं :

"देगची ख़ाली है चूल्हे पर दिखाने के लिए।
मुजतरब[18] बच्चों को बहला कर सुलाने के लिए॥"

अपनी 'कुत्ता और मजदूर' शीर्षक कविता में वे आर्थिक विषमता और सरमायादारी पर इस प्रकार अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए नज़र आते हैं :

"कुत्ता इक कोठी के दरवाज़े पै भौंका यक बयक।
रूई की गद्दी थी जिसकी पुश्त से गरदन तलक॥
रास्ते की सिम्त सीना बेख़तर ताने हुए।
लपका इक मज़दूर पर वह सैद[19] गरदाने हुए॥
जो यक़ीनन शुक्र ख़ालिक़ का अदा करता हुआ।
सर झुकाए जा रहा था, सिसकियाँ भरता हुआ॥
पाँव नंगे फावड़ा काँधे पै यह हाले तबाह।
उँगलियाँ ठिठरी हुई धुँधली फ़िज़ाओं पर निगाह॥
जिस्म पर बेआस्ती मैला, पुराना सा लिबास।
पिंडलियों पर नीली-नीली-सी रगें चेहरा उदास॥
ख़ौफ़ से भागा बिचारा ठोकरें खाता हुआ।
संग दिल ज़रदार के कुत्ते से थर्राता हुआ॥
क्या यह एक धब्बा नहीं हिन्दोस्ताँ की शान पर।
यह मुसीबत और ख़ुदा के लाड़ले इन्सान पर॥
क्या है इस दारुल महन में आदमीयत का विक़ार ?
जब है इक मज़दूर से बदतर सग सरमायेदार॥
एक वोह हैं जिनकी रातें हैं गुनाहों के लिए।
एक वो हैं जिन पै शब आती है आहों के लिए॥"

इस प्रकार उर्दू-साहित्य के अनेक शायरों ने किसान और मज़दूरों को अपनी कविता का आधार बनाया है और अभी भी उर्दू-काव्य-धारा में वह प्रवाह जारी है।

जयपुर

—मनोहर 'प्रभाकर'

कोरिया का संगीत

कोरिया का संगीत अनुपम और आश्चर्यजनक है। यही एक ऐसा संगीत है जिसकी भावों की अतिशयता और विविधता यूरोप के श्रेष्ठ और मधुरतम संगीत से की जा सकती है। यदि एक दर्जन कोरिया के लोग इकट्ठे हो जाएँ तो वे मिल कर गाने लग जाएँगे।

—जेम्स मिचेनर

---

[12] बहुत थका हुआ [13] दुर्बलता के कारण [14] आशा [15] निराशा [16] छत और दरवाज़े [17] टूटाफूटा [18] बेचैन

घुमक्कड़ बनजारों के लोक-गीत

बनजारा भारतवर्ष की एक ऐसी घुमन्तू पर व्यापारी जाति है जो मध्यकालीन इतिहास के सूत्रों में उलझी हुई है; किन्तु फिर भी अपने वैशिष्ट्य को लिए हुए आज भी अपने अस्तित्व को घोषित करती है। भारतीय लोकगीत और लोक-कथाओं में बनजारा अपने बैलों पर दूर-दूर तक सामान लाद कर ले जानेवाला पात्र एवं चतुर व्यक्तित्व धारण किए हुए है। बुन्देलखण्ड की एक लोक-कहानी में बुन्देला ठाकुर की दी हुई भेंट एक बनजारा सिंहल के राजा और काबुल के बादशाह तक ले जाता है।¶ यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि बनजारों के दल व्यापारार्थ इतनी लम्बी-लम्बी उड़ान करते थे। 'बनजारा' शब्द के साथ ही व्यापार का अर्थ सन्नद्ध है। 'बणज' या 'बनज' का तात्पर्य वाणिज्य ही है। एक भोजपुरी लोकगीत में 'बनिजरिया' शब्द तो वाणिज्य के अर्थ में ही प्रयुक्त होता आया है :

"पियवा जे चलेला उतर
बनिजरिया कि केई रे छइहें ना।
मोरा उजड़ल बँगलवा
कि केई रे छइहें ना।"

'पति उत्तर देश को वाणिज्य कर्म अर्थात् व्यापार करने जा रहा है, मेरे उजड़े हुए बंगले की कौन मरम्मत करेगा?'§

एक दूसरे गीत में बनजारा के साथ किसी वियोगिनी का पति बारह वर्ष के पश्चात् लौटा है और वह उसी के ग्राम में एक वटवृक्ष के नीचे आकर ठहरा है :

"बारह बरीसवा पर लवटल बनीजारावा,
राम की बारावाँ[1] तरावा[2] ना"∴

मालवी गीतों में बनजारा अपनी 'मोट' के लिए प्रसिद्ध है। मोट बड़े प्रमाण में लाए हुए माल को कहते हैं। 'हल्दी' के नाम से विख्यात एक गीत की प्रथम पंक्ति है :

" आई वणजारा री मोट उतरी बड़तळे
मोलावे लाड़ला लाड़ा रा काकाजी "

—बनजारे की मोट आ कर वट वृक्ष के नीचे उतरी है। लाड़ले दूल्हे के काका उनसे मोल-भाव कर रहे हैं।

राजस्थानी गीतों में बनजारों का बहुत उल्लेख आया है। पहले मालवा से असल तम्बाकू ले जा कर बनजारे राजस्थान में महँगे भाव से बेचा करते थे। 'बड़ोडी तमाकू' नामक गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

"बड़ले उतारां ढोला बपा जारे री पोट,
चोवटे उतारो रे मांजो सौदागिर जो बाणियो रे
मांहारा राज।

कहे रे बणजारा व्हारी तम्बाकू रो मोल,
रुपए री लेसाँ रे असल तम्बाकू मालवी रे,
मांहारा राज।

देसां रे देसां गोरी रूपे री अध टाँक,
मोहोर री देसां रे मांजो, गाढ़ा रे मारू छक पीवे रे
मांहारा राज।"

मालव प्रान्त के बनजारे तीन प्रकार के हैं : १ लबाना, २ बामनिया और ३ राजपूत बनजारा। इन बनजारों में कछवाह, राठोर, चौहान, आदि राजपूतों के गोत्र पाए जाते है जो निसन्देह बनजारों के पूर्वजों के राजपूतों से रक्त-सम्बन्ध को प्रमाणित करते हैं। बामनिया बनजारों में उनकी उत्पत्ति के विषय में एक कथा प्रचलित है :

"मुगलों की सेना में दो राजपूत नौकर थे। उन्होंने किसी मुसलमान स्त्री के साथ काम-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था; इसलिए ज्ञान होने पर मुगलों के भय से वे राजपूताना के जङ्गल में चले गए और रहने लगे। सौभाग्य से एक दिन शिकार खेलते हुए उदयपुर के

¶ शिवसहाय चतुर्वेदी लिखित 'गौने की विदा' संग्रह की 'बुन्देला ठाकुर' शीर्षक कहानी। § भोजपुरी

पृ० १६६।२७६ ∴ वही १२५।२१६ १ वटवृक्ष २ नीचे

१६५४

उधर आ निकले। उन्हें बड़ी प्यास लगी। नौकर दौड़ाए गए। शीघ्र ही पानी की तलाश करता हुआ एक चाकर इनके निकट पहुँचा और यह जान कर कि वे राजपूत हैं, पानी माँग लाया। राणा ने तृप्त हो कर चाकर से पूछा कि ऐसा ठंडा जल कहाँ प्राप्त हुआ। उत्तर पा कर राणा दोनों राजपूतों के पास आए। राणा ने उनसे पूछा "तुम कौन हो?" दोनों राणा के आगमन से भयभीत हो गए थे, अतः डरते हुए उन्होंने अपने को राजपूत बताने की अपेक्षा भाट बताया ता कि राणा उन्हें अपनी शरण में ले कर रक्षा करें। भाट सदैव ही राजपूतों द्वारा रक्षित होते आए हैं। राणा दोनों को अपनी राजधानी में ले आये और उनको बामनिया नामक गांव जागीर में प्रदान कर दिया। अपने को भाट बताने के परिणाम स्वरूप उन्हें राजपूतों से अलग हो जाना पड़ा।" ×

इन्हीं में आगे चल कर रूपा नायक नामक व्यक्ति ने लूट-पाट आरंभ की, जिससे बामनिया की जागीर छीन ली गई। इस तरह स्थान भ्रष्ट हो कर ये लोग व्यापार करने लगे। कहते हैं प्रारंभ में पंचभद्रा से नमक ले जा कर ये हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों में बेचा करते थे। राजस्थान और मालवा में इनका सामान लाद कर ले जानेवाला कारवाँ 'बाळद' कहलाता है। बलद्या मालवी में बैल को कहते हैं और चूँकि बैलों पर ये माल लादते हैं, अतएव बैलों का कारवाँ 'बाळद' कहलाता है।

बामनिया में रूपा नायक की छत्री है। रूपा के वंशज बामनिया बनजारों का आज भी नेतृत्व करते हैं। सैकड़ों गीतों में रूपा की महिमा गाई गई है, और प्रति-वर्ष कई बनजारे बामनिया की यात्रा करते हैं।

मध्य काल की परम्परा के साथ जातियों के इतिहास में बनजारों का सम्बन्ध रोमानी है। पुरुषों का पहराव यद्यपि इतना आकर्षित नहीं करता, पर स्त्रियों का रंग-बिरंगी पहनावा अवश्य ही उनके रंगीन इतिहास का प्रमाण प्रतीत होता है। पुरुष अपने श्वेत ऊँचे साफ़े में लाल 'धजीरा' बाँध कर अपना रंगों के प्रति प्रेम का सबूत देते हैं। स्त्रियों के लिए तो रंगों का प्रयोग स्वाभाविक है जिसे वे ध्वनि प्रधान आभूषणों को धारण कर और भी उत्कर्ष प्रदान करती हैं। उत्तर-भारत में मुलतानी बनजारों की एक शाखा और है। वह अपना सम्बन्ध मुसल्मानों से बताती है। इस शाखा के बनजारों का कहना है कि पहले वे मुलतान (पंजाब) में रहा करते थे और जाति के सरावगी बनिए थे। मुसल्मानी धर्म ग्रहण करने के कारण हिन्दुओं से भिन्न हो गए। यों तो वे कई हिन्दू देवताओं के साथ पीर साहब की भी पूजा करते हैं। क़ाज़ी उनमें विवाह सम्बन्ध क़ायम करता है। अन्य बनजारे हिन्दु देवताओं की तो पूजा करते ही हैं, पर गुरु बाबा नानक को भी मानते हैं। ये नानक रामेश्वर गद्दीवाले हैं। कहते हैं इन्हीं की कृपा से बनजारों ने वाणिज्य ग्रहण किया और 'वाणिज्यारे' (बनजारे) कहलाने लगे।

[२]

मध्यवर्ती भारत के बनजारों के गीतों में राजस्थानी गीतों की अधिकांश प्रवृत्तियों के साथ घुमन्तू वृत्ति के अनेक लक्षण मिलते हैं। मानव के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति इनमें सहज हुई है। 'रास तुड़ावणा' नामक एक विदाई-गीत देखिए :

"रास[1] तोड़ करे रे कुरिया[2] भागी जा
तू सूँ से छूटे कुरिया बाळदा[3]
मो सूँ छूटे माय बाप
सोना रे मड़ा दूँ कुरिया त्हारा सींगड़ा
रुपाया[4] रे मड़ा दूँ त्हारा पाँव
चालता रे चमके नन्द्या[5] त्हारी सींगड़ी
उड़ता रे आवे पूँछ..."

बनजारों में लड़की के विवाह के पश्चात् बैल पर बैठा पति के साथ विदा करते हैं, इसीलिए वह बैलों से प्रार्थना करती है कि तू रास (रस्सी) तुड़ा कर भाग जा। तुझसे तो तेरे केवल बैल-साथी छूटेंगे, पर मुझ से (तेरे रुकने पर) मेरे माँ-बाप छूट जाएँगे। मैं तेरे सींग सोने से और पाँव चाँदी से मढ़ा दूँगी। जब तू चलेगा तो हे बैल, तेरे सींग चमकेंगे और पूँछ उड़ेगी। तू भाग जा।

'ढावला' नामक गीत में बनजारों की व्यापारी-वृत्ति परिलक्षित हुई है :

× 'रिपोर्ट आन दी सेन्सस ऑफ सेन्ट्रल इन्डिया' १९३१, का 'कास्त' परिच्छेद १ बैल बाँधने की रस्सी २ बैल ३ बैल ४ चाँदी ५ जवान ६ बैल (नंदी)।

"डुंवा दी[1] डाँडी जस[2] घूँघरा
मेरा डुंवा लेग्यो समदी चोर
डुँवा रखी दे रे...
दोरी[3] आई बिकऊ झाजा पावणी[4]
कर लो मोल
हम छ पावणा—
दोरी आटे के पाटे छ रुपया साठ
कर लो ब्याई मोल
हम छ पावणा—"

तात्पर्य है : 'कड़छी की डण्डी घुँघरू के अनुरूप है। मेरी कड़छी को समधी चोर ले गया। कड़छी रख दे रे...'

'टोकरी बिकने आई है। हे सुन्दर पाहुनी, इसका मोल कर ले।'

'हम तो अतिथि हैं।—'

'टोकरी का कुल मिला कर मूल्य साठ रुपया है, हे ब्याई, मोल कर ले।'

'हम तो अतिथि हैं।—'

'मालाफेर' नामक गीत में वैरागण स्त्री का चित्र है। वह वस्तुतः विरहिन है जिसका पति परदेश गया है। वह अस्त-व्यस्त और चिन्तातुर है, पर उसके निष्ठुर पति को उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं। गीत है :

"उजड़ खेड़ी की भीत[5] वेरागणवाली क्यूँ खेड़ी[6]
म्हेरा झेणामारूँ[7] ग्या परदेस
वेरागणवाली क्यूँ खेड़ी
म्हेरा सतगरू ग्या परदेस
धुजारण[8] वाली क्यूँ खेड़ी
कीकूँ रे[9] मूरख ढोल गिंवार
त्हेरे को म्हेरी क्या पेड़ी"[10]

गालियों से भरे गीतों को बनजारे 'निवाळी' कहते हैं। मालवी और राजस्थानी में ये 'गाळ' के नाम से पुकारे जाते हैं। देवी-देवताओं के गीत भी बनजारों में बहुत हैं। इसी प्रकार मृत्यु के अवसर पर स्त्रियाँ रोते हुए मृत्युगीत गाती हैं। उदाहरणार्थ एक गीत लीजिए :

"छूट चली नायकण चाड़ी[11]
याँ-अँ-अँ-हाँ-हाँ-(रोने की ध्वनि)
सूता के जाग्यो रे बस्ती का नायक
त्हारी बस्ती में आंवा बोरी[12]
कयल कल-ल-ल-ल
याँ-अँ-अँ-हाँ-हाँ"

"नायकन हम से छूट चली है—(रोना)
हे बस्ती के नायक (पटेल)
तू सो रहा है या जाग रहा है ?
तेरी बस्ती में कुहराम मचा है...(रोना)"

नृत्य के अवसर पर स्त्रियाँ गोलाई में खड़ी हो रास या गरबे के ढंग पर सामूहिक नृत्य करती हैं। स्वतन्त्र रूप से वही नृत्य किए जाते हैं जिनमें गति श निर्वाह हो सके। पुरुषों के नृत्य की गति आरम्भ में धीमी होती है। 'तलवार रमण्या' 'अन्ड्या रमण्या' नृ क्रमशः तलवार और डण्डों के साथ किए जाते हैं। पैं की गति के साथ हाथ की गति पुरुषों के नृत्यों में देखने योग्य होती है। नृत्य के साथ स्त्रियों की भाँति पुरुष गी गाते हैं जो अधिकांश में 'श्री म्हाराज री वेल' के अं होते हैं। इसी वेल में बनजारों का ऐतिह्य वैभव भ है। राजपूतों के शौर्य की कहानी बनजारों की अप कहानी बन गई है। तँवर वंश के सम्बन्ध और पृथ्वीरा चौहान की गज़नवी से जो लड़ाई हुई उसके संकेत भ में अनेक स्थानों पर आए हैं 'श्री म्हाराज री वेल' ए संपूर्ण प्रबन्ध काव्य है जिसे इन पंक्तियों के लेखक ने ऊन (निमाड़) के निकट घोट्या ग्राम के बनजारे नाय से सुन कर लिपिबद्ध किया है। उसमें से नीचे दो छ दिए जा रहे हैं :

"रे...काठी बाँदो रे पिथला पागड़ी
ग्रे...वरली छोड़ो रे लगाम
ऐसो मारो रे हमने ताजणो
जेरी मस्कत धर दूँ पाँव...

× × ×

---

[1] कड़छी [2] जैसे [3] टोकरी [4] सुन्दर पाहुनी [5] दीवार [6] खड़ी [7] पति [8] फटे वस्त्रोंवाली [9] क्या कहूँ [10] तुझे मेरी क्या पड़ी ? [11] नायकन [12] कुहराम

रे...कहो करोनी मनड़ा लोऊ जड़िया
ऐ...माथो रे लेतो तोड़
माथो चढ़ा दूँ मोती मेल में
जिन धड़ धरती रे माय..."

श्रावण के दिनों में बनजारे इस बेल को ढप के साथ नाच कर (और बैठ कर भी) गाते हैं। रे...की धुन दूर तक खिंचती चली जाती है। इसी की उठान पर आगामी चार पंक्तियाँ मय धुन के दौड़ती हैं।§

बहादुरगंज,
उज्जैन

—श्याम परमार

ऐडीसन के विचार

टॉमस एलवा ऐडीसन को जब उसके जन्म-दिवस के उपलक्ष में बधाई दी गई तो उसने कहा : "एक मनुष्य को उसके बूढ़े होने पर बधाई देना क्या अच्छी बात है ?"

× × ×

ऐडीसन से पूछा गया : "आपकी सफलता का रहस्य क्या है ?" उन्होंने उत्तर दिया : "किसी कार्य को लगातार करने की योग्यता।"

उनसे पूछा गया : "प्रतिभा किसे कहते हैं ?"

उन्होंने उत्तर दिया : "दो प्रतिशत प्रेरणा और ९८ प्रतिशत परिश्रम।"

प्रति रात्रि को वे एक काग़ज़ के स्लिप पर आगामी दिवस के कार्य को लिख लिया करते थे। वे कहते थे : "यदि प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न करे तो उसे यह देख कर आश्चर्य होगा कि वह प्रति दिन कितना अधिक कार्य कर सकता है।"

ऐडीसन से जब लम्बी आयु और स्वास्थ्य को अच्छा रखने के रहस्य के विषय में पूछा गया तो उन्होंने कहा—" अधिक दिमाग़ी काम। शारीरिक व्यायाम का मैं अधिक मूल्य नहीं करता। मेरे शरीर का उपयोग यही है कि वह मेरे दिमाग़ को सर्वत्र ले जा सके।"

—ऐडीसन की जीवनी से

---

§ द्रष्टव्य :—उक्त समस्त गीत लेखक द्वारा मई १९५३ में 'निमाड़ संस्कृति-पर्यवेक्षण के अवसर पर प्रथम बार लिपिबद्ध किए गए।'

तेलुगु-साहित्य : "कवित्रयमु"

तेलुगु साहित्य का श्रीगणेश प्रधानतया श्रीमदांध्र महाभारत से होता है; जिसकी रचना तीन सदियों तक तीन महाकवियों द्वारा संपन्न हुई है। इसका प्रणयन ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्ध के अन्तिम से लेकर चौदहवीं सदी के अर्ध-भाग तक होता रहा था। यह महाकाव्य तेलुगु जाति के जातीय जीवन से इतना मिल-जुल गया है कि एक कहावत ही इस पर बन गई है : "तिंटे गारेलु तिनालि; विंटे महाभारतमु विनालि" अर्थात् यदि खायें तो बड़ा खाना चाहिए; सुनें तो महाभारत सुनना चाहिए। तेलुगु जनता रामायण से भी बढ़ कर महाभारत को अधिक पसन्द करती है।

तेलुगु साहित्य में महाभारत से पहले कोई रचना हुई अथवा नहीं; इसे ठीक नहीं कह सकते। यदि हुई भी हो तो उसका कुछ पता नहीं चलता। अतः महाभारत को तेलुगु साहित्य के आदि महाकाव्य का श्रेय दिया गया और उसके प्रणेता नन्नय भट्ट को आदि महाकाव्य-कर्ता का गौरवान्वित पद प्रदान किया।

भारत का आधार संस्कृत का महाभारत है परन्तु वह केवल नीरस अनुवाद न बन कर एक सरल स्वतन्त्र ग्रन्थ के समान सहृदयों को रसप्लावित करता है।

'पृथ्वीराज रासो' की तरह इसका निर्माण भी एक के द्वारा न होकर नन्नय भट्ट, तिक्कन सोमया जी और एर्रा प्रगडा के द्वारा सम्पन्न हुआ; इन्हीं को "कवित्रयमु" कहते हैं। हिन्दी के प्राचीन कवियों के समान तेलुगु के कवियों का भी कालनिर्णय बड़ा पेचीदा है। नन्नय भट्ट का जन्म १०२० ई. एवं निधन १०६३ ई. स. माना जाता है। आप आपस्तम्ब सूत्र तथा मुद्गल गोत्र के हैं। तेलुगु के स्मार्त ब्राह्मणों में नियोगी एवं वैदिकी नामक दो मुख्य शाखाएँ हैं जिनकी पहचान तेरहवीं सदी से स्पष्ट लक्षित होती है। अकसर नियोगी राजकाज में प्रधान पदाधिकारी हुआ करते थे; वैदिकी तो पुरोहित-राजगुरु-का काम करते हैं। नन्नया नियोगी थे अथवा वैदिकी, इसका स्पष्ट रूप से कोई प्रमाण नहीं। जो भी हो आप तेलुगु वाङ्मय की महान् विभूति हैं।

नन्नया राजराज नरेन्द्र के आस्थान कवि एवं कुल-ब्राह्मण (राजगुरु?) थे। राजराज नरेन्द्र वेंगी के शासक थे। आपकी राजधानी "राजमहेंद्रवरमु" थी। राजराज नरेन्द्र के पूर्व में वैदिक धर्म बौद्धादि धर्मों के कारण बहुत शोचनीय दशा में था। जैन और बौद्ध धर्मानुयायी अपने उच्चादर्शों को भूल कर धर्म को पतन की ओर लिए जा रहे थे। जनता को ठीक रास्ते की ज़रूरत थी। राजराज वैदिक धर्म प्रेमी थे। आप धर्म का उद्धार चाहते थे। इसके उपयुक्त व्यक्ति नन्नया के अलावा कोई दूसरा नहीं दीख पड़ता था। अतएव उन्होंने नन्नया को 'भारत' की रचना के द्वारा जनता का उद्धार करने को प्रोत्साहित किया। दोनों का समसामयिक होना प्रजा का अहोभाग्य था। खेद की बात है कि आप से 'महाभारत' का निर्माण संपूर्ण नहीं हो पाया। आरण्य पर्व के चौथे आश्वास के कुछ भाग तक ही आप से रचा गया। रचना के रुक जाने के कई कारण बताते हैं :

(१) मति-भ्रान्ति

(२) आपके आश्रयदाता की मृत्यु

(३) असामयिक निधन

इनमें दूसरे कारण को कई आलोचक सत्य मानते हैं परन्तु मेरी राय में पहला और दूसरा कारण किसी भी परिस्थिति में मुख्य नहीं है; केवल तीसरा कारण ही मुख्य है।

आपने अपनी रचना का कृति-पतित्व-श्रेय राज राजेन्द्र को दिया।

शील और सौन्दर्य का अपूर्व मिलन इस आदि कवि की विशेषता है। रचना में दो-तिहाई संस्कृत के पद और एक-तिहाई तेलुगु के पद मिलेंगे तथापि संयोग इतना अच्छा बन पड़ा है कि कहीं नहीं खटकता। द्रौपदी वस्त्रापहरण के बाद भीमसेन की प्रतिज्ञा शैली परखिए:

"कुरुवृद्धुल् गुरु वृद्धबांधवुलनेकुल्चूचुचुंडुन् मदो
द्धुरुडै द्रौपदिनिट्लु चेसिन खलुन् दुश्शासनुन् लोकभी
कर लीलन् वधियिंचि तद्विपुल वक्षश्शैल रक्तौघनि-
र्झर मुर्वीपति चूचुचुंड ननि नास्वादिंतु नुग्राकृतिन्"

१६५४

अर्थात् कौरवों के वृद्धगण, गुरु, वृद्ध, बांधव समूह आदि के देखते हुए समय में गर्व से उद्धत होकर द्रौपदी को वस्त्रापहरण रूप में अपमान करनेवाले नीच दुःशासन को (मैं) बहुत ही भयंकर रूप से मार कर उसके विशाल वक्ष शैल-रक्तौघ-निर्झर को उर्वीपति दुर्योधन के समक्ष युद्ध में अत्यन्त उग्रता से आस्वादन करूँगा।

उपर्युक्त उद्धरण से जान सकते हैं कि आपकी भाषा कैसी है। आपकी अधिकांश कविता ऐसी ही हैं। परन्तु इसे पाठक संस्कृत-सा नहीं समझेगा। प्रसन्न कथा कलितार्थयुक्ति आपकी रचना में हर जगह मिलती है। आपके दो खिताब हैं—आदि कवि; वागनुशासन (भाषा का अनुशासन करनेवाला)। आन्ध्र शब्द चिन्तामणि (संस्कृत में लिखा तेलुगु भाषा का व्याकरण) इन्द्रविजय और चामुण्डी विलास आपकी रचनाएँ कही जाती हैं पर इनके कर्तृत्व के विषय में बहुत वाद-विवाद है। नन्नय भट्ट का कीर्ति स्तम्भ 'महाभारत' ही है।

आपके प्रति परवर्ती महाकवियों की पूज्य बुद्धि उन्हीं के शब्दों में देखिए :

"...आन्ध्रकवित्वविशारदुंडु विद्यादयितुंडु..."—तिक्कन्ना

अर्थात् तेलुगु कविता के विशारद एवं विद्याओं का नाम।

"...आन्ध्र कविता गुरु नन्नय भट्ट..."—मारन्ना

और

"वाचामांध्रमयीनां यः प्रवक्ता प्रथमोऽभवत्
आचार्यं तं कवींद्राणां वंदे वागनुशासनम्"

इससे जान सकते हैं कि तेलुगु कवियों एवं कविता पर आदि कवि की कितनी धाक बँध गई है। "नानृषिः कुरुते काव्यम्" आप में चरितार्थ दीखता है।

इसके पश्चात् 'महाभारत' का प्रवाह प्रशान्त गोदावरी की पावन धारा से अलग होकर पिनाकिनी की स्रवन्ती में आ पड़ा।

महाकवि तिक्कन्ना सोमयाज़ी नेल्लूर सिंहपुरी में रहा करते थे। आप का समय १२२० से ले कर १३०० ई. तक है। वे आरवेल नियोगी शाखा में पैदा हुए आपस्तम्भ सूत्र और गौतम गोत्र के हैं। "इदं क्षात्रमिदं ब्राह्मयम्" वाली सूक्ति आप के विषय में सत्य है। आपकी प्रतिभा दुधारी तलवार थी। नेल्लूर के राजा मनुमसिद्धि के आस्थान में राजकीय तन्त्र विशारद होने के साथ साथ आप कविता विशारद भी होकर लब्ध नाम हुए। मनुमसिद्धि वरंगल के राजा गणपति देव के समसामयिक थे।

निर्वचनोत्तर रामायण, विजय सेनमु, कृष्णशतक आदि आपकी रचनाएँ हैं परन्तु आपकी ख्याति के लिए महाभारत ही पर्याप्त है। तेलुगु के काव्य प्रायः गद्य पद्यात्मक चम्पू की तरह हुआ करते हैं। पद्य ही अधिक होते हैं और गद्य नाम मात्र का। जिसमें गद्य नाम मात्र का भी नहीं रहता उसे "निर्वचन" कहते हैं। आपकी रामायण उसी तरह की है।

आरण्य पर्व का शेष भाग आपने क्यों पूरा नहीं किया इसका कारण ज्ञात नहीं। विराट् पर्व से ले कर अन्त तक के पन्द्रह पर्वों का आपने प्रणयन किया। सोमयाजी होकर ही इसका निर्माण प्रारम्भ किया। आप आदर्श कवि के गौरव से विभूषित हैं। आपकी रचना में पद योजना नन्नया के ठीक विपरीत पाते है। तत्सम कम और तद्भव अधिक। छोटे छोटे पदों से गम्भीर भावों को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रतिपादित करना आपकी निजी विशेषता है। अर्थगांभीर्य, शैली वैशिष्ट्य और चरित्र-चित्रण के लिए आपका नमूना देखिए जो सन्धि के लिए कृष्ण को भेजते समय युधिष्ठिर द्वारा कहा गया। यह संस्कृत से भी श्लक्ष्ण है।

"पग यडगिंचुटेंतयु शुभंबुदि लेस्स यडंगुने पगं
बग वग गोन्न मार्कोनक पल्ककयुंडग वच्चुने कडुं
देग मोदलेत्ति पोव बग दीर्पग वच्चिन क्रौर्यमोंडुने
मि गतिं दलंचिनं बगकु मेलिमि लेमि धृवंबु केशवा"

अर्थात् वैर को मिटाना बहुत शुभ है; वह अच्छा होगा; क्या विरोध से विरोध मिटेगा? कोई वैर रखे तो उनसे प्रतिकार लिए बिना रहना संभव है? (वैर) समूल नष्ट करने के लिए चढ़ाई करें अथवा (वैरी) वैर निकालने आएँ; ये दोनों क्रूरता को उपजाएँगे, अतएव वैर का किसी प्रकार अच्छा शुभान्त नहीं दीखता है यह अटल सत्य है, केशव!

इसमें युधिष्ठिर की सहज गम्भीरता खूब लक्षित होती है। काकु एवं अन्वय क्रम से भेद करने से इसके और दो तीन अर्थ किए जा सकते हैं।

नन्नया की-सी शैली के कीचक के प्रति द्रौपदी की उक्ति में देखिए :

"दुर्वारोद्यम बाहु विक्रम रसास्तोक प्रतापस्फुर
दुर्वान्ध प्रतीवीर निर्मथन विद्यापारगुल् मत्पतुल्
गीर्वाणाकृतु लेवुरिण्डु निनु दोर्लीलन् वेसंगिट्टि गं-
धर्वुल मानमु प्राणमुं गोनुट तथ्यं बेम्मियिं गीचका"

अर्थात् रे कीचक ! अपने अतुलनीय पराक्रम के गर्व से अन्धे होनेवालों को मज़ा चखानेवाले मेरे पाँच पति देव द्वारा तुम्हारी जान और इज्ज़त के जाने में कोई सन्देह नहीं है।

ऐसी शैली वीर और रौद्र की पुष्टि के लिए ही उनके काव्य में पाई जाती है। आपकी कविता लोकोक्तियों और मुहावरों से भरी पड़ी है। तेलुगु साहित्य में औचित्य निर्वहण और उदात्त शृंगार के लिए तिक्कन्ना का नाम प्रसिद्ध है। पादपूरण के शब्द आप में खोजने पर भी नहीं मिलेंगे। स्वप्न में इष्टदेव का साक्षात्कार पाकर उनके आदेश पर कविता करने की परिपाटी के आप जन्मदाता हैं।

आपने अपनी रचना का प्रयोजन "आन्ध्रावलि मोदमन्द" बताया अर्थात् तेलुगु जनता को आनन्द प्रदान करना ही आपका लक्ष्य है। जातीय भावना का सूत्रपात आप से ही शुरू हुआ। नित्याग्निहोत्री की तेजस्विता रचना में भरी पड़ी है। यथार्थतया उत्तररामायण और महाभारत का अन्त दुखान्त होना चाहिए पर आपने वैसा न करके भवभूति की रचना "उत्तर रामचरित" की तरह अपनी रचनाओं को भी सुखान्त बनाया।

शिव और केशव दोनों में आप अन्तर नहीं देखते जैसा कि तुलसीदास भी इन दोनों को एक ही समझते थे। इतना ही नहीं इस विषय में आप उनसे भी बढ़ गए। अपनी अभेद भावना को साकार करने के लिए "हरिहर नाथ" की कल्पना की। उन्हीं के शब्दों में उनके आराध्य देव को देखिए :

"किमस्थिमालां किमुकौस्तुभंवा
परिष्क्रियायां बहुमन्यसे त्वम्
किं कालकूटः किमुवा यशोदा
स्तन्यं वद स्वादु तव प्रथो मे।"

आपने अपनी महान् कृति "हरिहर नाथ" को अंकित किया। कहा जाता है कि उस वक्त नेल्लूर में "हरिहर नाथ" का मन्दिर था, जिसमें एक ही मूर्ति में दोनों चिह्न पाए जाते थे। पर अब उस मन्दिर का नामो निशान भी नहीं है।

भारत का रचना काल १२७० से १२८० ई. त का माना जाता है।

आपकी दो उपाधियाँ हैं—कविब्रह्म; उभय क मित्र अर्थात् संस्कृत और तेलुगु दोनों के कवियों के मित्र। आप अभय कवि मित्र ही नहीं अभय मर्तामि भी हैं। विश्व साहित्य में स्थान पाने की क्षमता आप कविता में है।

इन दोनों महाकवियों द्वारा जो अधूरा छोड़ा ग उसी आरण्य पर्व शेष को महामना स्वनाम धन्य "एर्र प्रगडा" ने सम्पूर्ण किया। एर्रना असली नाम और प्रगडा मन्त्रित्व सूचक शब्द है। आप भी नियोगी थे। आपका सूत्र आपस्तम्ब और गोत्र श्रीवत्स है। सम १२८० से १३४५ तक माना जाता है। आपका ज स्थान नेल्लूर ज़िले का कंदुकूरु तालुका के अन्तर्ग "गुड्लूर" माना जाता है।

आपकी कृतियाँ नरसिंह पुराण, रामायण, हरिवं तथा आरण्य पर्व शेष हैं। आरण्य पर्व के आश्वासान्त गद्य में आपका नाम तो नहीं है परन्तु प्राचीन क एवं साहित्यालोचक मानते आए हैं कि आरण्य प के चौथे आश्वास के आधे से ले कर आखिरी अन्त त सप्तमाश्वास तक की रचना आपकी ही है। आप कविता में न तो संस्कृत की अधिकता है और न आन्ध के पदों की।

आप भारत के प्रणयन में इतने सजग रहे कि साधारणतः दो महान् कवियों की शैली में दीखनेवाली विभिन्नता आपने न आने दी।

नन्नय भट्ट का आखिरी पद्य यह है :

"शारद रात्रुलुज्वल लसत्तर तारक हार पंक्तुलन
चारु तरंबुलय्ये विकसन्नव कैरव गंध बंधुरो
दार समीर सौरभमु दाल्चि सुधांशु विकीर्यमाणक-
पूर पराग पांडु रुचि पूरमुलं बरि पूरितंबुलै।"

इसके बाद एर्रना की रचना प्रारंभ होती है :

"स्फुर दरुणांशु राग रुचि बोंपिरि वो यिनिरस्त नीरदा
वरणमुलै दलत्कमल वैभव जुंभण मुल्लसिल्ल दु-
द्धरतर हंस सारस मधुव्रत निस्वनमुल्सेलंग ना-
गरपु वेलिंगे वासर मुखंबुलु शारद वेल जूडगन्।"

शरत् कालीन रात्रियाँ उज्ज्वल ताराओं के हारों-पंक्तियों से, खिले हुए कुमुदों के गन्ध से सने समीर सौरभ का धारण कर, चन्द्रमा से बिखराए जानेवाली कर्पूर के रज के समान किरणों से युक्त होकर भाती हैं।

उगते हुए अरुण की अरुणिमा की शोभा बढ़ कर, घटाएँ मेघों से युक्त होकर; फूले हुए कमलों की छवि चौगुनी बन कर, हंसों, सारसों और भौंरों के मधुर रवों से संपन्न हो कर, दिवस का मुख— प्रातःकाल शरत् का समय सुन्दर प्रतीत हो रहा था।

दोनों पद्यों में प्रयुक्त विशेषण, पदान्तरूप और भावाभिव्यञ्जना की प्रणाली इस तरह मिल गई है कि पाठक नहीं पहचान सकेगा कि दोनों के निर्माता अलग हैं। इन सब से बढ़ कर ध्यान देने की बात और एक है जिसे पहचानने पर हमें आश्चर्य होता है। इतने महान् काव्य के निर्माण में हाथ लगाने पर भी एर्रना ने अपने नाम को उसमें व्यक्त नहीं होने किया। महाकाव्य को पूर्ण करना ही आपका पवित्र लक्ष्य था, नाम प्रकट करना नहीं। धन्य है आपका निःस्वार्थ त्याग। आप नहीं चाहते थे तो भी आपकी महान् सेवा को पहचान कर प्रजा 'महाभारत' निर्माताओं में आपको भी मिला कर "कवित्रय" नाम से पूजने लगी।

साहित्य के प्रांगण में तब तक आप लोगों का स्थान अमिट रहेगा जब तक तेलुगु जाति जीवित रहेगी। किसी प्रयोग की प्रामाणिकता में सन्देह हुआ तो आज भी साहित्यिक 'कवित्रय' के प्रयोगों की कसौटी पर कस कर साधुत्वासाधुत्व का निर्णय करते हैं। अतएव कह सकते हैं कि तेलुगु भाषा एवं साहित्य के लिए आपकी देन अनन्य दुर्लभ है।

तेलुगु महाभारत की मंदाकिनी नन्नया से उद्गम पा कर तिक्कन्ना से पूर्णता एवं सौष्ठव प्राप्त करके एर्रना से परिपुष्ट हुई।

१२६, आर. एस स्ट्रीट,
तिरुपति

—के. के. आचार्य

रावण मृत्युशय्या पर पड़ा था। राम ने लक्ष्मण को रावण के पास यह जानने के लिए भेजा कि जीवन में उसकी सफलता का रहस्य क्या था? रावण ने उत्तर दिया : "तुम सफलता के विषय में पूछते हो? पूछो, मैं क्या क्या करना चाहता था और कर न सका। मैं मृत्यु के नाम-व-निशान को मिटा देना चाहता था; मैं चाहता था कि नरक नाम की कोई वस्तु रह न जाए; मैं आकाश और पृथ्वी के बीच में आने जाने के मार्ग को बनाना चाहता था और मैं सोने की लंका के चारों ओर के खारी समुद्र को दूध का समुद्र बना देना चाहता था। मैं इन कार्यों को आनेवाले दिनों के लिए टालता चला गया और आज मैं मृत्युशय्या पर पड़ा हूँ। इसलिए यदि तुम कोई अच्छा कार्य करना चाहते हो तो तुरन्त कर डालो। टाले हुए काम का समय फिर कभी नहीं आता।"

—कृत्तिवास रामायण से

एक अतिथि

सन् १९१८ की गर्मियों में एक रात को स्विज़रलैण्ड के छोटे से नगर विलेन्यूव के पास लेक जेनेवा में एक मछुआ अपनी डोंगी खे रहा था। उसे पानी की सतह पर कोई असाधारण चीज़ उतराती हुई नज़र आई। पास पहुँचने पर उसने देखा कि एक नग्न मानव शरीर लकड़ी के तख़्तों से चिपका हुआ पार लगने की चेष्टा कर रहा है। वह थक चुका था और ठण्ड से सिकुड़ गया था। यह देख कर मछुए को दया आ गई और उसने इस काँपते हुए यात्री को अपनी नाव पर चढ़ा लिया। ठण्ड दूर करने के लिए कोई वस्त्र न होने के कारण उसने उसे अपना जाल अच्छी तरह उढ़ा दिया और बातचीत करने की कोशिश करने लगा। वह अपरिचित शरणार्थी सिकुड़ कर नाव की तली में पड़ रहा। उसने उत्तर तो दिया किन्तु ऐसी भाषा में जिसका एक अक्षर भी मछुए की समझ में नहीं आया। हार कर उसने अपने जाल समेट लिए और स्थल की ओर खेना शुरू किया।

प्रभात के उजाले में जब किनारा साफ़ दिखाई देने लगा तो उस नग्न व्यक्ति के चेहरे पर प्रसन्नता का भाव आ गया। बेतरतीब बढ़ी हुई दाढ़ी-मूछों से आधे ढके उसके चेहरे पर मुस्कराहट आ गई। किनारे की ओर इशारा करके बार-बार 'रोशिया', 'रोशिया' शब्द उसके मुँह से निकलने लगा; उसका भाव प्रश्नसूचक था। जैसे जैसे नाव किनारे की ओर बढ़ती गई उसकी आवाज़ में आत्मविश्वास और खुशी का अनुपात भी बढ़ता गया। अन्त में नाव किनारे लगी। मछुए के घर की स्त्रियाँ रात भर का शिकार उतारने के लिए दौड़ पड़ीं लेकिन पास आते ही उनके मुँह से चीख निकल गई और वे चौंक कर पीछे हट गईं। मछुए के इस अजीब शिकार की खबर गांव भर में फैल गई और किनारे पर लोगों की भीड़ जमा हो गई। गाँव का मुखिया भी आ गया। पद-गौरव और आत्म-सम्मान पूर्ण इस अफसर को युद्ध के दौरान में हेड क्वार्टर से मिले सारे आदेश याद आने लगे। देखते ही उसे विश्वास हो गया कि आगंतुक किसी फ्रांसीसी किनारे से भाग कर आया है। उसने पूछ-ताछ शुरू की लेकि इस बात-चीत में एक व्यवधान बड़ा भारी था— शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि वे एक दूसरे की भाषा एक भी शब्द नहीं समझ सकते। अजनबी को अब पाजामा और एक कोट पहना दिया गया था। त प्रश्नों के उत्तर में उसका केवल एक ही उत्तर होता "रोशिया-रोशिया ?" उसकी आवाज़ में गिड़गिड़ाह थी। बातचीत न चलने पर मुखिया को थोड़ी झुंझला हट आई और उसने शरणार्थी को अपने न्यायालय ओर चलने का इशारा किया। चारों ओर कुतूहलवश लड़के इकट्ठे हो गए थे। बिना नाप के कपड़े पहने अजनबी ने आदेशानुसार काम किया। न्यायालय पहुँचने पर उसे सुरक्षित पहरे में बैठा दिया गया। उसने विरो तो न किया लेकिन फिर से एक बार उसके मुँह उदासी छा गई और वह झुक गया, मानों मार पड़ने इन्तज़ार कर रहा हो।

मछुए के इस आश्चर्यजनक शिकार का समाचा शीघ्र ही आस पास के होटलों में भी पहुंच गया। होटलों में ठहरे हुए यात्रियों को तो मानों मनोरंजन एक साधन ही मिल गया; उनके झुण्ड के झुण्ड देखने के लिए आने लगे। एक महिला ने उसे मिठाई देनी चाही लेकिन उसने संशयवश छुई नहीं। एक यात्री ने उसका चित्र खींच लिया। तमाशे को देख कर वे प्रसन्नतापूर्वक बात-चीत लगे। अन्त में आसपास के सबसे होटल का मैनेजर आया। वह कई देशों में घूम चुका था और कई भा जानता था। उसने इस सहमे हुए अजनबी से बारी से जर्मन, इटालियन अंग्रेज़ी और अन्त में भाषा में बात करनी चाही। रूसी का प्रथम शब्द ही उसके चेहरे पर फिर मुस्कराहट आ गई। उस तुरन्त ही अपनी कहानी शुरू कर दी। उसकी कहानी लम्बी और अव्यवस्थित थी, कहीं कहीं मैनेजर की समझ में भी नहीं आ सकी। उसका सारांश नीचे दिया जाता है :

वह रूस के युद्ध में लड़ा था। एक दिन

लगभग एक हज़ार आदमियों के साथ रेलगाड़ी में भर दिया गया और लम्बी यात्रा के बाद जहाज़ पर सवार करा दिया गया। यह समुद्र-यात्रा रेल-यात्रा से भी लम्बी निकली। समुद्र पार करना पड़ा और (उसी के शब्दों में) उसका पानी इतना गरम था कि उसकी हड्डियाँ तक उबलने को आ गईं। इसके बाद उन लोगों ने भूमि पर फिर पैर रखा और दूसरी रेल-यात्रा प्रारम्भ हो गई। इस यात्रा के बाद फ़ौरन ही इन लोगों को एक पहाड़ी पर हमला करने के लिए भेज दिया गया। इस युद्ध के बारे में वह और कुछ नहीं जानता था क्योंकि प्रारम्भ में ही उसके पैर में गोली लगी और वह गिर पड़ा।

होटल का मैनेजर दुभाषिए का काम कर रहा था; वह प्रत्येक वाक्य का अनुवाद करके श्रोताओं को सुना रहा था। सब लोग समझ गए कि वह रूसी सिपाही है; एक डिवीज़न के साथ उसे साइबेरिया पार करके व्लाडी वोस्टक भेजा गया और वहाँ से जहाज़ में फ्रान्स। जिज्ञासा ने सहानुभूति को जन्म दिया; प्रत्येक श्रोता यह जानने की चेष्टा कर रहा था कि आख़िर वह इस झील तक पहुँचा कैसे।

वह मुस्कराया। उसकी मुस्कराहट में कोई छिपाव-दुराव न था। रूसी ने बताया कि अस्पताल में उसने पूछा कि रूस किधर है। किसी ने उसे उसके देश की दिशा बता दी। इसके बाद जैसे ही उसमें चलने की शक्ति आई, वह अस्पताल से भाग निकला। सूर्य और तारों से उसने दिशा का अनुमान लगाया। वह रात में रास्ता चलता दिन में घास में छिप रहता। भोजन के लिए वह फल इकट्ठे कर लेता था और कभी रोटी भी माँग कर खा लेता था। अन्त में दस रात चलने के बाद वह इस झील पर आ पहुँचा। यहाँ कुछ गड़बड़ी हुई। उसका घर बैकल झील के पास था; उसने समझा कि इस जेनेवा झील के पार ही उसका घर है। एक झोंपड़ी में से वह दो तख़्ते चुरा लाया और इन्हीं के सहारे वह झील पार कर रहा था कि उसे मछुआ मिल गया। उसने अपनी कथा एक उत्सुकतापूर्वक प्रश्न से समाप्त की "क्या मैं कल अपने घर पहुँच जाऊँगा ?"

उसके इस भोलेपन पर सब को हँसी आ गई लेकिन साथ ही उनकी सहानुभूति भी जाग पड़ी। उन्होंने थोड़ा-थोड़ा करके इस कातर, अश्रुपूर्ण भगोड़े के लिए चन्दा जमा किया।

लेकिन तब तक टेलीफ़ोन से ख़बर पाकर एक ऊँचे ओहदे का पुलिस अफ़सर आ गया। रिपोर्ट तैयार करने में उसे कम कठिनाई न पड़ी। कुछ कठिनाई तो दुभाषिए के कारण थी और कुछ इस अजनबी के बेढंगपन से। अपने बारे में सिवाय नाम के उसे कुछ भी नहीं मालूम था और नाम का भी आधा हिस्सा! 'बोरिस', नाम का उत्तरार्ध उसे मालूम नहीं! वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ बड़ी झील से पचास मील की दूरी पर रहता था। वे सब प्रिन्स मेंचर्स्की के 'सर्फ़' (ग़ुलाम) थे। वह अपने को केवल 'सर्फ़' ही बतलाता था, यद्यपि इस प्रथा को विलीन हुए पचास साल से भी ऊपर हो चुके थे।

अब लोगों ने उसके भविष्य के बारे में सोचना शुरू किया; सब के बीच में वह स्वयं सिर झुकाए उदास खड़ा था। कुछ लोगों की राय थी कि उसे बर्न स्थित रूसी दूतावास में भेज देना चाहिए। कुछ कहते थे कि ऐसा करने से उसे फिर फ्रान्स भेज दिया जाएगा। पुलिस अफ़सर यह निश्चित नहीं कर पा रहा था कि उसे युद्ध से भागा हुआ सैनिक माना जाए या बिना प्रमाण-पत्र के मामूली विदेशी। ज़िले के एक हाकिम ने कहा कि उसे खाने और ठहरने के लिए वहाँ के समाज पर निर्भर रहने का कोई अधिकार नहीं। एक फ्रान्सीसी ने कहा कि इस अभागे भगोड़े का मामला बहुत आसान है; या तो उससे काम लिया जाए या उसे देश की सीमा के बाहर छोड़ दिया जाए। दो स्त्रियों ने इसका विरोध किया, दुर्भाग्य के लिए उसे दोष क्यों दिया जाए ? लोगों का घर छुड़ा कर विदेश भेज देना स्वयं एक अपराध है। इसी प्रकार की बहस चल रही थी कि एक डेन्मार्क निवासी ने एक सप्ताह तक इस आदमी के रहने और खाने का ख़र्च देने का भार अपने ऊपर ले लिया। तब तक वहाँ के हाकिम रूसी दूतावास से सलाह भी कर लेंगे। इस हल से सारा झगड़ा ख़त्म हो गया और हाकिमों की भी उलझन मिट गई।

जिस समय यह गरमा-गरम बहस चल रही थी उस समय इस भगोड़े की कातर आँखें होटल के मैनेजर के मुँह पर लगी हुई थीं। वही एक ऐसा व्यक्ति था जो उसे उसके भाग्य-निर्णय के बारे में बता सकता था। उसे

ज्ञात हो गया था कि उसके आने से कई मुश्किलें उठ खड़ी हुई थीं। अब जब झगड़ा शान्त हो गया तो उसने अपने जुड़े हुए हाथ मैनेजर की ओर उठाए जैसे कोई स्त्री देवप्रतिमा की आराधना कर रही हो। इस भाव-भंगिमा से सब द्रवित हो गए। मैनेजर ने उसे बड़े स्नेह से समझाया कि घबड़ाने की कोई बात नहीं है। उसे कुछ दिन वहाँ रहने दिया जाएगा और उसे किसी तरह की तक़लीफ नहीं होगी। जिस चीज़ की भी उसे आवश्यकता होगी, गाँव की सराय में ही भेज दी जाएगी। रूसी ने मैनेजर का हाथ चूमना चाहा लेकिन मैनेजर इस कृतज्ञता-प्रकाशन को समझ न सका और उसने इसे स्वीकार न किया। वह इस शरणार्थी को सराय में ले गया और वहाँ सोने और ठहरने का सब प्रबन्ध करवा दिया। साथ ही उसे समझा भी दिया कि सब काम ठीक हो जाएगा, परेशान होने की कोई ज़रूरत नहीं। फिर मित्रतापूर्वक झुक कर प्रणाम करने के बाद उसने होटल का रास्ता लिया।

जब तक मैनेजर अपने होटल में घुस कर आँखों से ओझल न हो गया, अजनबी उसकी ओर देखता रहा। ज्यों ज्यों वह दूर होता गया त्यों त्यों उसके चेहरे पर उदासी आती गई। केवल वही एक ऐसा व्यक्ति था जो उसकी बात समझ सकता था। जो लोग उसे घेरे थे, उसकी मुद्रा को विनोदपूर्वक देख रहे थे, पर उसका ध्यान इनकी ओर तनिक भी न था। एक आदमी ने धीरे से उसका कंधा पकड़ कर हिलाया और उसे सराय का दरवाज़ा दिखा दिया। सिर झुकाए हुए अजनबी ने अपने इस नए घर में प्रवेश किया। वहाँ किसी ने उसे शराब घर बता दिया और नौकरानी ने एक गिलास ब्राण्डी से उसका स्वागत किया। सुबह उसने यहीं बितायी—सारे समय उसके चेहरे पर उदासी छाई रही। गाँव के बच्चे खिड़कियों से झाँक-झाँक कर उसकी ओर देखते रहे; कभी कभी वे उसे आवाज़ भी देते थे लेकिन वह इस ओर कोई ध्यान नहीं देता था। ग्राहक उसकी ओर आश्चर्य से देखते थे लेकिन वह आँखें नीचे किए बैठा रहा। भोजन के समय सारा कमरा हँसी मज़ाक से गूँज उठा लेकिन रूसी की समझ में उनका एक भी शब्द नहीं आया। उसे यह सोच कर बड़ी व्यथा हो रही थी कि इन लोगों के बीच वह अजनबी था, गूंगा बहरा था, इन आदमियों के बीच जो अपने भावों को एक दूसरे पर सजीव रूप से व्यक्त कर रहे थे! उसके हाथ इतने काँप रहे थे कि वह मुश्किल से ही शोरबा पी सका। तभी उसके गाल पर चिन्ह बनाता हुआ एक आँसू मेज़ पर टपक पड़ा। शरमा कर उसने अपने चारों ओर देखा। दूसरे लोगों ने उसकी मनोव्यथा समझ ली और कमरे में सन्नाटा छा गया धीरे धीरे उसका माथा काली मेज़ से लग गया।

शाम तक वह शराब घर में ही बैठा रहा। लोग आते थे और चले जाते थे, लेकिन न अब उन लोगों में ही उसके प्रति कोई दिलचस्पी थी और न उसे उनकी चिन्ता। वह भट्टी के पास मेज़ पर कोहनी टिकाए बैठा था। उसकी उपस्थिति को सब लोग भूल चुके थे।

शाम के धुँधले में वह उठ कर बाहर चला गया। उसके चले जाने पर किसी ने भी ध्यान न दिया। मूक पशु की भाँति वह धीरे धीरे होटल तक गया और टोपी उतार कर दीन भाव से दरवाज़े की सीढ़ियों पर बैठ गया। इस प्रकार लगभग एक घंटे तक वह किसी का ध्यान आकर्षित किए बग़ैर वहाँ बैठा रहा अन्त में रोशनी से जगमगाते हुए होटल के सामने इस जड़वत् बैठे व्यक्ति पर दरबान की नज़र पड़ी। वह मैनेजर को बुला लाया। मैनेजर के प्रथम शब्द से ही इस रूसी के चेहरे पर एक फिर से मुस्कराहट खेल गई।

"तुम क्या चाहते हो, बोरिस?" मैनेजर ने सहृदयता से पूछा।

"क्षमा कीजिए श्रीमान्, मैं केवल यह जानना चाहता हूँ......कि......कि मैं अपने घर चला जाऊँ!" उसने झिझक कर उत्तर दिया।

मैनेजर ने मुस्करा कर कहा, "हाँ, बोरिस, तुम घर चले जाना।"

"कल ही?"

इस पर मैनेजर के भाव में गम्भीरता आ गई। ये शब्द अत्यन्त विनीत भाव से प्रार्थना के रूप में कहे गए थे; उसकी मुस्कराहट विलीन हो गई।

"नहीं बोरिस, अभी नहीं, जब तक युद्ध समाप्त न हो जाए तब तक नहीं।"

"तो कब तब श्रीमान्? युद्ध कब समाप्त होगा!"

"भगवान् ही जानता है, बोरिस; कोई भी नहीं बता सकता।"

"तो तब मुझे इन्तज़ार करना पड़ेगा! इसके

पहले क्या मैं नहीं जा सकूँगा ?"

"नहीं बोरिस ।"

"क्या मेरा घर बहुत दूर है श्रीमान् ?"

"हाँ, दूर, बहुत दूर ।"

"वहाँ पहुँचने में बहुत दिन लगेंगे ?"

"हाँ, बहुत दिन ।"

"लेकिन मैं खूब पैदल चल सकता हूँ, मज़बूत आदमी हूँ, थकूँगा नहीं ।"

"नहीं बोरिस, तुम ऐसा नहीं कर सकोगे । तुम्हें अपने घर पहुँचने के पहले ही दूसरी सीमा पार करनी पड़ेगी ।"

"सीमा ?" वह व्याकुल हो उठा उसके लिए तो इस शब्द का कोई अर्थ नहीं था । फिर भी ज़ोर देकर उसने कहा : "मैं तैर कर झील पार कर लूँगा ।"

मैनेजर कठिनाई से मुस्कराहट रोक सका, लेकिन उसे इस आदमी के दुर्भाग्य पर बड़ी वेदना हो रही थी । उसने धीरे से कहा, "नहीं बोरिस, तुम्हें यह भी न करने दिया जाएगा । 'सीमा' का अर्थ होता है विदेश । वहाँ के निवासी अपने देश में होकर तुम्हें गुज़रने भी न देंगे ।"

"लेकिन मैं तो उनका कुछ भी बिगाड़ूँगा नहीं । अपनी बंदूक मैं फेंक ही चुका हूँ । जब मैं ईसा के नाम पर उनके देश में से होकर निकलना चाहूँगा तो भी वे मुझे अपने घर अपनी पत्नी के पास जाने से रोकेंगे ?"

मैनेजर का चेहरा और भी उतर गया उसके हृदय में कड़ुवाहट भर गई ।

"नहीं बोरिस वे तुम्हें ईसा के नाम पर भी न गुज़रने देंगे, मानव के लिए अब ईसा के शब्दों का कोई भी मूल्य नहीं रहा ।"

"तो फिर मैं क्या करूँ श्रीमान् ? मैं यहाँ नहीं रह सकता । यहाँ कोई मेरी बात भी नहीं समझता, न मैं ही किसी बात समझता हूँ ।"

"थोड़े दिनों में समझने लगोगे ।"

"नहीं श्रीमान, मैं कभी न समझ सकूँगा । मैं तो सिर्फ़ ज़मीन जोत सकता हूँ और कुछ नहीं जानता । मैं यहाँ क्या करूँगा ? मैं तो अपने घर जाना चाहता हूँ, मुझे रास्ता बता दीजिए, श्रीमान् ।"

"कोई भी रास्ता नहीं है, बोरिस ।"

"लेकिन मुझे अपनी बीबी-बच्चों के पास जाने से कोई भी नहीं रोक सकता । मैं अब सिपाही नहीं हूँ ।"

"हाँ बोरिस, रोक सकते हैं ।"

"लेकिन ज़ार ? ज़रूर वे मेरी मदद करेंगे ।" एकाएक उसके दिमाग़ में यह विचार आया था । आशा से वह कांपने लगा, ज़ार का नाम उसने अत्यंत श्रद्धापूर्वक लिया था ।

"ज़ार अब नहीं हैं बोरिस, उन्हें गद्दी से उतार दिया गया ।"

"ज़ार नहीं रहे ?" वह मैनेजर की ओर देखता रह गया । आशा की किरन छिप चुकी थी; उसकी आँखों से आशा की ज्योति बुझ चुकी थी । उसने उदास हो कर कहा : "तो क्या मैं घर नहीं पहुँच सकूँगा ।"

"अभी नहीं, उसके लिए तुम्हें ठहरना पड़ेगा ।"

"तो क्या बहुत दिन लग जाएँगे ?"

"मालूम नहीं, बोरिस ।"

अँधकार में उसके मुँह पर और भी निराशा छा गई ।

"मैं इतना तो इन्तज़ार कर चुका, श्रीमान् ! मैं कैसे ठहरूँ ? मुझे रास्ता दिखा दीजिए श्रीमान्, मैं कोशिश करूँगा ।"

"कोई भी रास्ता नहीं है बोरिस ! सीमा पर लोग तुम्हें गिरफ्तार कर लेंगे । यहीं ठहरो, हम लोग तुम्हारे लिए कोई काम तलाश कर लेंगे ।"

"लेकिन यहाँ कोई मेरी बात तो समझता ही नहीं । मैं भी किसी की बात नहीं समझता । नहीं, मैं अब यहाँ नहीं रह सकूँगा । सहायता कीजिए श्रीमान् ।"

"मैं कुछ भी नहीं कर सकता बोरिस ।"

"भगवान के लिए मेरी सहायता कीजिए; मेरी सहायता कीजिए, उसके सिवाय मेरे लिए कहीं कोई भी आशा नहीं है ।"

"मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता, बोरिस । अब लोग एक दूसरे की सहायता भी नहीं कर सकते ।"

दोनों एक दूसरे की आँखों की ओर देख रहे थे । बोरिस अपनी टोपी हाथ में लिए उसे मोड़ रहा था ।

"तो वे लोग मुझे मेरे घर से लाए ही क्यों ? मुझसे तो यही कहा गया था कि मुझे रूस के लिए और ज़ार के लिए लड़ना है । लेकिन आप कहते हैं कि रूस बहुत दूर है, और ज़ार, आपने क्या बताया, ज़ार का

क्या हुआ ?"

"ज़ार को गद्दी से उतार दिया गया है।"

" गद्दी से उतार दिया गया !" उसने दुहराया। "तो मैं क्या करूँ, श्रीमान् ? मुझे घर तो जाना ही है; मेरे बच्चे मेरे लिए रो रहे होंगे। मैं यहाँ नहीं रह सकता। मेरी मदद कीजिए श्रीमान्, मेरी मदद कीजिए।"

"मैं कुछ नहीं कर सकता, बोरिस।"

"कोई कुछ नहीं कर सकता ?"

"नहीं, अभी कोई नहीं।"

विषाद से रूसी का सिर और भी झुक गया। इसके बाद उसने वेदना भरे स्वर में कहा, " मैं आपका कृतज्ञ हूँ, श्रीमान्।" और वह चला गया।

धीरे धीरे वह पहाड़ी के नीचे उतर गया। मैनेजर उसकी ओर देखता रहा ; उसे आश्चर्य हो रहा था बोरिस सराय में क्यों नहीं घुसा। वह झील की बढ़ता चला जा रहा था। एक ठंडी साँस लेकर अपने काम पर चला गया।

संयोग की बात है जो मछुआ उस साइबेरि झील में से जीवित निकाल कर लाया था उसी के दिन सुबह उसका मृत शरीर उतराता हुआ मिला। दान का कोट और पाजामा तह करके सम्हाल कर पर ही रख दिया था। टोपी भी पास ही रखी थी और में से जैसा नग्न वह निकला था, वैसा ही फिर घुसा उस विदेशी का नाम और पता कोई जानता नहीं उसकी क़ब्र पर स्मारक की जगह बिना नाम का का क्रौस बना दिया गया।

—स्टीफन ज़्विग

—अनु० प्रकाशचन्द्र चतु

गवर्नमेण्ट कालेज,
सिहोर (भोपाल)

रंग-चित्रण में क्रान्ति उत्पन्न करनी पड़ेगी। अब आप पिकासो या प्राचीन महान् चित्रकारों की तरह चित्र नहीं बना सकते। आपको जीवन और अपने चारों ओर की वस्तुओं की ओर ध्यान देना पड़ेगा।

... मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि मेरे चित्र बिकते हैं या नहीं। मुझे चित्रित करना है और इसीलिए मैं इस ढंग पर चित्र बनाता हूँ।

—जैक स्मिथ (चित्रकार)

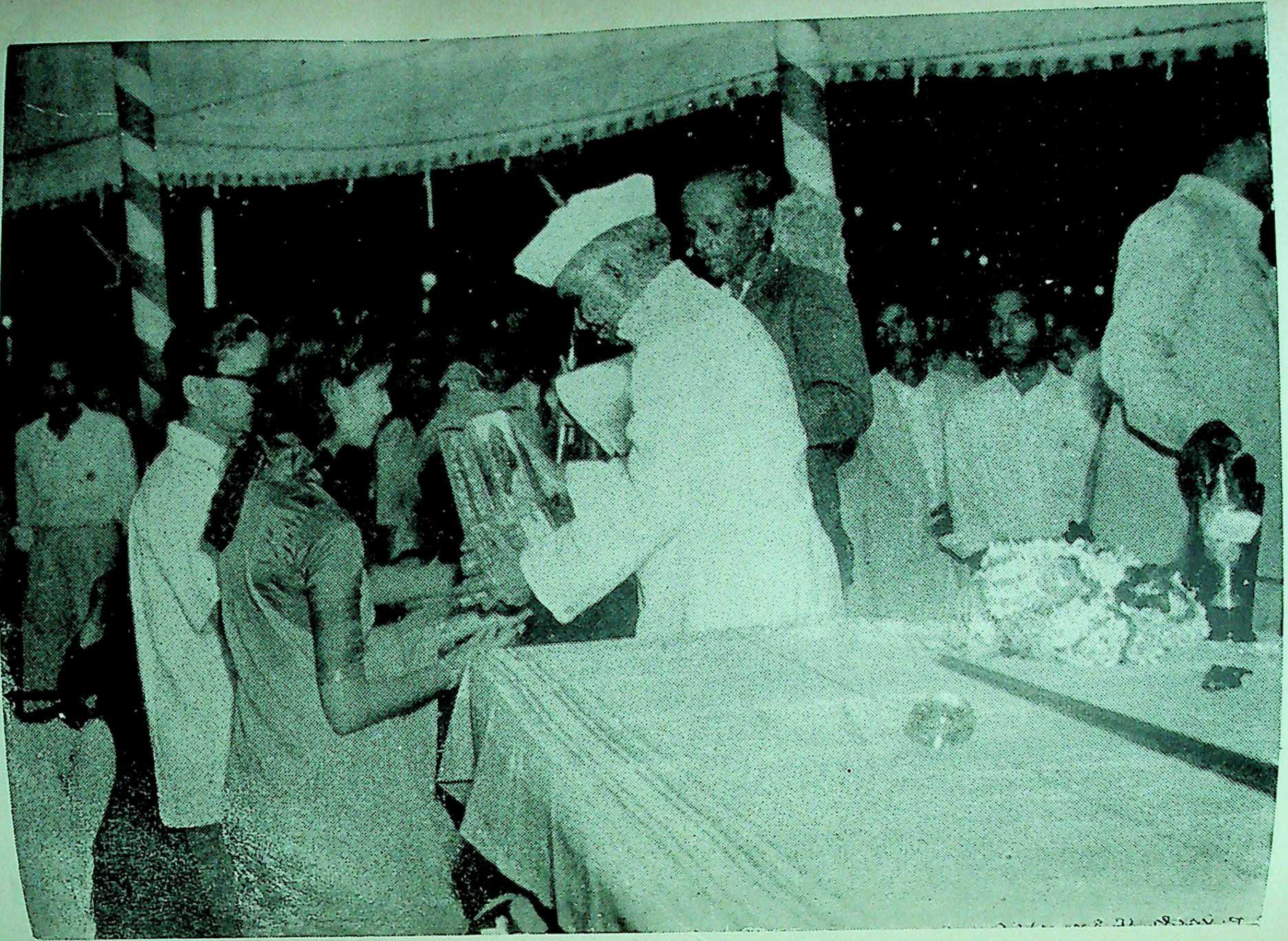

डॉ. बी. रामकृष्णराव, मुख्य मन्त्री, हैदराबाद राज्य, ट्राफ़ी को देते हुए

कला-चर्चा

हैदराबाद का कला-विद्यालय

डा. कुमार स्वामी के कथन के अनुसार "भारतीय कला व्यावसायिक शिल्पकारों के द्वारा उत्पन्न हुई है।" पुराने दिनों में ललित-कला, व्यवहार-कला और सज्जा-कला आदि कला के भेद नहीं थे। व्यवसायी शिल्पकार को आज वह प्रोत्साहन और संरक्षण प्राप्त नहीं होता जो कि प्राचीन काल में प्राप्त होता था। इसी कारण आज जनता की रुचि और देश के सौन्दर्यविषयक मान खराब हो गए हैं। एक ओर प्रतिदिन के जीवन में सौन्दर्य का अभाव और दूसरी ओर कलाकार को जनता से किसी प्रकार का प्रोत्साहन या संरक्षण प्राप्त न होने से यह अवस्था उत्पन्न हुई है। इसलिए सबसे प्रथम आवश्यक वस्तु यह है कि जनता में सौन्दर्य की रुचि उत्पन्न की जाए और दूसरा कलाकार जीवन की प्रतिदिन की आवश्यकताओं में अपनी कला का उपयोग कर सके जिससे उसकी कला का कुछ निश्चित तात्पर्य हो।

इसी बात को मूलतः ध्यान में रख कर एक केन्द्रीय स्कूल के रूप में १६४० में हैदराबाद में गवर्नमेंण्ट स्कूल ऑफ़ आर्ट (कला-विद्यालय) की टैकनिकल शिक्षण के विभाग के अन्तर्गत स्थापना की गई। इसके पूर्व यहाँ इस प्रकार की कोई संस्था नहीं थी जहाँ कला के प्रति रुचि रखनेवाले प्रतिभावान् नवयुवक कला का नियमपूर्वक शिक्षण प्राप्त कर सकें। कला की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को बम्बई या मद्रास जाना पड़ता था। कला की प्रारंभिक और माध्यमिक आलेख की परीक्षाएँ साधारण स्कूलों में होती थीं। कला और शिल्प के लिए हम केन्द्रीय स्कूल की स्थापना और उसमें रंगचित्रण, मूर्ति और हस्तकला में डिप्लोमा के कोर्स के होने से हैदराबाद के विद्यार्थी कला और शिल्प में उच्च शिक्षा सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं। यह विद्यालय ऐसे कलाकारों को उत्पन्न कर रहा है जो कला के प्रसार के लिए कला के और निचले और ऊँचे सेकेंडरी स्कूलों में हस्तोद्योगों के शिक्षक का कार्य कर रहे है। स्कूलों में कला की शिक्षा प्रदान करने से जनता में कला के प्रति रुचि उत्पन्न हो सकेगी और इसीसे सांस्कृतिक उन्नति संभव हो सकेगी। इस कला-विद्यालय में ललित-कलाओं में ही शिक्षा इस प्रकार प्रदान नहीं की जाती कि कलाकार एकमात्र शास्त्रीय कला पद्धतियों से पूर्णतया परिचित हो सके परन्तु इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि प्रत्येक विद्यार्थी अपनी रचनात्मक योग्यता को ठीक ढंग से विकसित कर सके और वह अपने कलाकार के व्यक्तित्व को पहचान सके। इसके लिए भारतीय प्राचीन कला-शैलियों और पश्चिम की आधुनिक पद्धतियों दोनों से प्रेरणा प्राप्त की जाती है और दोनों का पूर्णतया उपयोग किया जाता है।

इस स्कूल के डिप्लोमा के कोर्स में मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है। जिन विद्यार्थियों ने हैदराबाद प्रशासन की फ़र्स्ट ग्रेड आलेख्य परीक्षा पास की है और जो कला के प्रति विशिष्ट रुचि रखते हैं उनके लिए इस नियम को शिथिल कर दिया जाता है। इस स्कूल से डिप्लोमा प्राप्त करने के पश्चात् विद्यार्थियों को प्रशासन के कई विभागों में विशेषतया शिक्षा-विभाग में कला-शिक्षक या हस्तोद्योगों के शिक्षक के रूप में कार्य प्राप्त हो जाता है। कुछ लोगों को कृषि, मैडीकल और जन-स्वास्थ्य और लोक-आयोग विभागों में कलाकार और हस्तोद्योगकार के रूप में कार्य दिया गया है।

स्कूलों में कला की शिक्षा के द्वारा राष्ट्र में कला के प्रति अभिरुचि उत्पन्न की जा सकती है। जनता के जीवन के साथ संपर्क रखने के लिए कला के प्रशिक्षण की नितान्त आवश्यकता है। कला की उन्नति का प्रभाव समाज और राष्ट्र की उन्नति पर पड़ता है। शिक्षक को कलाकार, शिल्पकार होने के साथ बच्चों के मन का अध्ययन भी करना पड़ता है अन्यथा वह न तो शिशु-कला को समझ सकता है और न उसको उन्नत कर सकता है। इसीलिए कला-शिक्षकों का कार्य और भी अधिक महत्वपूर्ण है। यह सत्य है कि शिशु रचनात्मक कलाकार नहीं बन सकता परन्तु वह कला के क्षेत्र

में निश्चित् रूप से आ सकता है। शिक्षा का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी कला को समझ सकें। स्कूल की एक परामर्श-समिति है जिसमें विषय में कई प्रवीण आलोचक और विद्वान् हैं। यह समिति इसलिए बनाई गई है जिससे स्कूल का उचित मार्गदर्शन हो सके। इस परामर्श समिति की सिफ़ारिशों के अनुसार स्कूल का पुनः संगठन किया गया है। कला, वास्तु-कला, मूर्ति कला, व्यापारिक कला, व्यावहारिक कला और डिज़ाइन में अखिल भारतीय टैकनिकल एज्यूकेशन की काउन्सिल की सिफ़ारिशों को ध्यान में रख कर नया पाठ्यक्रम तैयार किया गया है। इस पाठ्यक्रम को तीन स्टेजों में विभक्त किया गया है—इंटरमीडिएट डिप्लोमा, डिप्लोमा और एड्वान्स डिप्लोमा। परामर्श समिति ने यह भी सिफ़ारिश की थी कि जनता की प्रतिदिन परिवर्तित होती हुई रुचि को ध्यान में रख कर कलाकारों को नए-नए डिज़ाइन बनाने चाहिएँ और इसके लिए स्कूल में एक व्यावहारिक कला और डिज़ाइन का एक नया विभाग होना चाहिए। इससे कलाकार और शिल्पकार निकट संपर्क में आ सकेंगे और दोनों को लाभ पहुँचेगा। कलाकार नए डिज़ाइनों को उपस्थित करेंगे और शिल्पकार उन्हें बनाएँगे। इसलिए कलाकारों को शिल्प और शिल्पकारों को कला का और डिज़ाइन का कुछ ज्ञान होना चाहिए। इसलिए व्यावहारिक कला और डिज़ाइन के प्रथम दो वर्षों के पाठ्यक्रम में स्थानीय हस्तोद्योगों का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया है। इस वर्ष से इस नए विभाग को शुरू किया गया है। सरकार ने इस वर्ष सरकारी कला विद्यालय में व्यावहारिक कला और डिज़ाइन में निम्नलिखित प्रशिक्षकों को पूर्ण डिप्लोमा कोर्स के साथ प्रशिक्षण प्रदान करने का निर्णय किया है:

(१) आर्ट टीचर्स ट्रेनिंग कोर्स उनके लिए जिन्होंने इंटरमीडिएट डिप्लोमा परीक्षा को गवर्न्मेन्ट स्कूल ऑफ़ हैदराबाद से उत्तीर्ण किया है या जिन्होंने इसके समकक्ष कोई परीक्षा पास की है।

(२) मैन्यूअल इन्स्ट्रक्टर्स ट्रेनिंग कोर्स उनके लिए जिन्होंने सरकारी कला-विद्यालय से शिल्प में इंटरमीडिएट सर्टिफ़िकेट परीक्षा पास की है या जो इसके समकक्ष परीक्षा में उत्तीर्ण हैं।

(३) ड्राइंग टीचर्स ट्रेनिंग कोर्स उनके लिए जिन्होंने सरकारी कला-विद्यालय की हायर-ग्रेड ड्राइंग परीक्षा पास की है या जो मिडिल होने के साथ किसी इसी के समकक्ष परीक्षा में उत्तीर्ण हैं।

(४) मैन्यूअल टीचर्स ट्रेनिंग कोर्स उनके लिए जैसा कि अनुच्छेद (३) में प्रदर्शित किया गया है।

हैदराबाद राज्य में यह कला-विद्यालय समस्त कलाओं की शिक्षा का केन्द्र रहेगा और इस संस्था का सम्बन्ध इंडिया फ़ाइन आर्ट्स ऍंड क्राफ्टस् सोसाइटी, नई दिल्ली से कर दिया गया है।

जिस मकान में यह विद्यालय इस समय है वह एक रहने का मकान है। यह इस विद्यालय के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसके लिए अभी कोई उपयुक्त स्थान प्राप्त नहीं हो सका है इसलिए उपरोक्त नए विभागों के लिए अस्थायी प्रबन्ध किया गया है। इनमें भी सब श्रेणियों के लिए छात्रों का प्रबन्ध संतोषपूर्ण नहीं है।

स्कूल के कार्य के अतिरिक्त कला के अध्यापक और छात्र कला के क्षेत्र में अन्य कार्य भी करते रहते हैं। इनमें से कुछ कार्यों का यहाँ निर्देश किया जाता है।

विश्व युवक उत्सव कला-प्रदर्शिनी : इस प्रदर्शिनी का १९५३ में हैदराबाद के विद्यार्थियों ने आयोजन किया था। इसमें सब ऊँचे सम्मान यहाँ के विद्यार्थियों को प्रदान किए गए।

शिशु कला-प्रदर्शिनी : अक्तूबर १९५३ में संयुक्त राष्ट्र दिवस को मनाने के उपलक्ष में कला-विद्यालय की ओर से इस प्रदर्शिनी का आयोजन किया गया। इसमें नगर के और ज़िलों के स्कूलों ने अपने प्रदर्शनों को भेजा था—यह विद्यार्थियों के कार्य के नमूनों का विभाग था।

मैसूर में दशहरा कला-प्रदर्शिनी : १९५३ में मैसूर में अखिल भारतीय दशहरा कला-प्रदर्शिनी की गई। इसमें कला-विद्यालय के नए और पुराने विद्यार्थियों को बहुत पारितोषिक प्राप्त हुए।

अखिल भारतीय कला-विद्यालयों की कला-प्रदर्शिनी : भारत में पहले पहल इस प्रकार की कला-प्रदर्शिनी की गई। यह हैदराबाद में जनवरी १९५४ में की गई थी। यह प्रदर्शिनी अब प्रति वर्ष होगी। इस प्रदर्शिनी में एक दर्जन स्कूल सम्मिलित हुए थे जिसमें सर जे. जे. स्कूल ऑफ़ आर्ट, बाम्बे ऍंड फ़ैकल्टी ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स यूनिवर्सिटी ऑफ़ बड़ौदा भी सम्मिलित थे। हैदराबाद के कला-विद्यालय को ५ प्रथम, ३ द्वितीय, ४ तृतीय और ३ को उच्च प्रशंसित प्रमाण-पत्र, ४ को प्रशंसित प्रमाण

पत्र तथा १ को विशेष परितोषिक और १ को विशेष प्रशंसित प्रमाण पत्र प्राप्त हुए। हैदराबाद रोलिंग ट्रॉफ़ी जो कि हैदराबाद प्रसाशन के सूचना-विभाग की ओर से प्रदान की जाती है, इसी कला-विद्यालय को प्राप्त हुई।

वस्तु-विभाग की प्रदर्शिनी : सम्मान्य श्री बी. रामकृष्णराव, मुख्य मन्त्री, हैदराबाद राज्य ने इस विभाग की प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया। इस प्रदर्शिनी को बहुत पसन्द किया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय सामयिक कला-प्रदर्शिनी : जनवरी १९५४ में इस कला-विद्यालय के कुछ छात्रों और अध्यापकों ने अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शिनी में अन्तर्राष्ट्रीय सामयिक कला की प्रदर्शिनी की। इसमें २१ चित्र विदेशों से भिन्न भिन्न राष्ट्रीय संग्रहालयों से मँगवाए गए थे।

अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शिनी १९५४ में प्रदर्शित स्टाल : १९५४ में अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शिनी में इस कला-विद्यालय ने श्री सैयद बिन मुहम्मद के निरीक्षण में एक स्टाल खोला था। इसमें विद्यार्थी वहीं रेखा-चित्र बनाते थे। इसमें मुख्य मन्त्री और अन्य मन्त्रियों के चित्र बनाए गए थे जो पसन्द किए गए और इनमें से बहुत से रेखा-चित्र बिक गए थे। अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शिनी की ओर से इस स्टाल को ४ पारितोषिक प्राप्त हुए थे।

अन्य विभागों के सांस्कृतिक कार्यों में सहायता : १९५४ की अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शनी में गवर्नमेंट स्कूल आफ़ आर्ट ने सूचना और लोक–सम्पर्क विभाग के पटभवन और उसे सजाने में सहायता की।

इसी प्रदर्शिनी में कला-विद्यालय के कुछ विद्यार्थियों ने स्टैटिसटिक्स के नक्शों और मानचित्रों को तैयार करने में एकोनोमिक्स और स्टैटिसटिक्स ब्यूरो की सहायता की।

संसद् के भवन की सजावट : संसद् के स्पीकर ने संसद् के भवन की सजावट के लिए एक कमेटी नियुक्त की है। कला-विद्यालय के प्रिन्सिपल उसके सदस्य नियुक्त किए गए हैं। यह प्रयत्न किया जा रहा है कि इस कार्य का कुछ हिस्सा हैदराबाद के कलाकारों को दिया जाए।

कला विद्यालय की यात्रा : गत वर्ष कला-विद्यालय के अध्यापकों के मार्गदर्शन में रंगचित्रण और मूर्तिकला के विद्यार्थियों का एक दल भित्तिचित्रों और मूर्तियों की अनुकृति बनाने के लिए अजन्ता भेजा गया था। इस विषय में विद्यार्थियों ने जो कुछ कार्य किया है उसका कुछ भाग अजन्ता के पटभवन में प्रदर्शित किया गया। यह कार्य बहुत उत्तम हुआ है। अजन्ता की गुफ़ाओं का नमूना तैयार करने के लिए विद्यार्थियों के एक दल को वहाँ भेजने का विचार किया जा रहा है।

इस वर्ष भी सदा की तरह कुछ चुने हुए विद्यार्थियों को औरंगाबाद, एलोरा, बम्बई, आगरा और दिल्ली अध्ययन-यात्रा के लिए भेजा गया था। इस यात्रा में विद्यार्थियों ने अपने कुछ रेखा-चित्रों, आलेख्यों और रंगचित्रों को बनाया जिन्हें कि अजन्ता के पटभवन में प्रदर्शित किया गया था। इन चित्रों की प्रदर्शिनी के उद्घाटन के अवसर पर माननीय शिक्षा मंत्री श्री गोपालराव एकबोटे ने गवर्न्मेंट स्कूल ऑफ़ आर्ट के कार्य की उन्नति की बहुत सराहना की।

(२)

श्री देवीप्रसाद राय चौधुरी

श्री देवीप्रसाद राय चौधुरी यूनेस्को की ओर से टोकियो में होने वाली आर्ट और कल्चर की सेमिनार के अध्यक्ष और संचालक नियुक्त किए गए हैं। यह उचित ही है कि ऐसे महान् मूर्तिकार को जिसने मद्रास के स्कूल ऑफ आर्ट को इतना उन्नत बना दिया कि उसका नाम सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गया है यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किया गया है। श्री चौधुरी कठोर से कठोर कार्य करने पर भी किसी प्रकार की थकान को अनुभव नहीं करते। वे अपने स्टूडियो में अपने श्रेष्ठ रूप में दिखलाई पड़ते हैं। उनके स्टूडियो में कहीं कैन्वस पर आधे बनाए हुए चेहरे जो कि उत्पन्न होने के लिए प्रयत्न कर रहे होते हैं और कहीं ब्रश और रंग की ट्यूब पड़ी हुई होती हैं। पास में ही उनका ड्राइंग रूम है जिसमें उनकी बनाई हुई मूर्तियाँ और चित्र हैं और उनकी अपनी डिज़ाइन का फ़र्नीचर है। यह आश्चर्यजनक स्टूडियो जहाँ वे लगातार बिना सोए कार्य करते रहते हैं उनकी कला की पृष्ठभूमि है। राय चौधुरी किताबी कलाकार नहीं हैं। उन्होंने परीक्षण के कठोर स्कूल में कला के ज्ञान को प्राप्त किया। वे अनुकरण को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कला का निर्माण उनके लिए किसी विशेष सिद्धान्त का पालन करना नहीं है। उनके रंग और समछन्दता का ज्ञान निर्दोष और पूर्ण है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उन्हें यह आदर प्रदान किया गया है।

—**'स्वतन्त्र' से**

चिट्ठी-पत्री

(१)

आर्यभाषा पुस्तकालय

काशी नागरी प्रचारिणी सभा का आर्यभाषा पुस्तकालय आज से ६० वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था। हिन्दी के विकास में इस पुस्तकालय का बहुत बड़ा योग रहा है। देश के कोने-कोने से यहाँ प्रतिवर्ष छात्र आते रहते हैं। हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों तथा भारतेन्दु और द्विवेदी कालीन पत्र पत्रिकाओं का जितना अच्छा संग्रह इस पुस्तकालय में है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। हिन्दी के प्रायः सभी विद्वान् और डाक्टरगण आर्यभाषा पुस्तकालय के ऋणी हैं। पुरानी पत्र पत्रिकाओं का इतना अच्छा संग्रह होते हुए भी बहुत-सी फ़ाइलें अपूर्ण हैं या एकदम नहीं हैं। अतः जिन सज्जनों के पास ऐसी पत्र पत्रिकाएँ हों, वे आर्यभाषा पुस्तकालय को प्रदान करने की कृपा करें। पुस्तकालय में उन पत्र पत्रिकाओं का उपयोग तथा रक्षा भली भाँति हो सकेगी। इन पत्र पत्रिकाओं के प्रकाश में आने पर हिन्दी के बहुत से अज्ञात तथ्यों का उद्घाटन हो सकेगा। जो सज्जन ऐसी पत्र पत्रिकाओं के प्राप्ति स्थानों की भी सूचना देंगे, उनका भी पुस्तकालय बड़ा कृतज्ञ होगा।

पत्र पत्रिकाएँ संयोजक, आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस १ के पते पर भेजी जा सकती हैं।

आर्यभाषा पुस्तकालय,
काशी

—गोविन्दप्रसाद केजरीवाल

(२)

'अजन्ता' का जुलाई का अंक

...'अजन्ता' के जुलाई अङ्क की कविताएँ बहुत हलकी हैं। आरसीप्रसाद सिंह की एक तीन पृष्ठ की कविता और पाँच पृष्ठ का लेख एक ही अंक में देख कर अच्छा नहीं लगा। उनका लेख भी अपूर्व नहीं है कोई नई बात उसमें देखने को नहीं मिली। केवल शब्दों के आधार पर पुरानी बात को नया रूप देने की विशेष आवश्यकता तो नहीं थी। बिलकुल इधर की प्रवृत्तियों का परिचय भी उसमें नहीं है। हँसराज 'रहबर' का लेख अच्छा है। महेन्द्रनाथ सिंह का लेख सुरुचिपूर्ण है। सुरेन्द्र मोहन जी का लेख लेख नहीं कविताओं का संग्रह है और न इसमें हिन्दी की प्रतिनिधि रचनाएँ आई हैं। लेखक को अपनी ओर से कुछ नहीं कहना है। न कोई विश्लेषण है न कोई वर्गीकरण। शेष के लिए मुझे कुछ नहीं कहना है।

३/१०६ कसिया रोड,
गोरखपुर

—आनन्द प्रकाश दीक्षित

(३)

यूरोप की यात्रा के संस्मरण

आपकी पत्रिका के 'जून' के अङ्क में मैंने मान्यवर काशीनाथराव जी वैद्य द्वारा लिखित 'मेरी यूरोप-यात्रा के संस्मरण' नामक शीर्षक लेख पढ़ा। उन्होंने अपनी दो महीने की इंग्लैण्ड की यात्रा में जो अच्छी बातों का अनुभव किया उनका ज़िक्र इसमें किया है। लेख पढ़ कर सामान्य जनता में संभव है कुछ ऐसे विचार उत्पन्न हों कि इंग्लैण्ड में देवदूत वास करते हैं, आप हम जैसे मानव नहीं, तथा उनके आचार विचार आदर्श हैं, और उनकी तुलना में हम हिन्दुस्तानी बहुत बुरे और पतित हैं। इस प्रकार के संभवनीय आत्मग्लानि को हटाने के लिए मैं अपने निजी अनुभवों के आधार पर निम्न लिखित पंक्तियाँ लिख रहा हूँ :

मेरे विचार में क्या भारत क्या अमरीका और क्या इंग्लैण्ड सब देश के लोगों का मूल स्वभाव एक सा ही है परन्तु पाश्चात्य देशों में विज्ञान तथा उद्योग धन्धों के विकास के कारण आम जीवन स्तर (Standard of Living) इतना ऊँचा होता है कि एक हिन्दुस्तानी यात्री को कई बिलकुल मामूली सी चीजें भी तुलनात्मक दृष्टि से अद्भुत दिखाई देती हैं और वह भौंचक्का-सा रह जाता है। बिना विक्रेता के अखबारों का बिकना एक इसी तरह का दृश्य है। वहा के अखबारों की क़ीमत विशेषतः सायं-दैनिकों का मूल्य लोगों की

आय के लिहाज़ से अत्यल्प होती है (एक या सवा डेढ़ पेनी) इसलिए किसी को अखबारों की चोरी करने का मोह ही नहीं होता। यही बात दूध की बोतलों की है और वैद्यजी ने भी यह स्वीकार किया है कि दूध की क़ीमत वहाँ पर यहाँ की तुलना में काफ़ी कम है।

यूरोप की रेलगाड़ियों में एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे में जाने के लिए अन्दर से प्रवेश द्वार लगे होते हैं जिसके कारण चलती गाड़ी में ही कई-कई बार टिकटों की जाँच सुविधा से हो सकती है। यही कारण है कि यात्री बिना टिकट प्रवास करना नहीं चाहते और अगर कोई करने का यत्न करे तो भी वह असफल होता है तथा आसानी से पकड़ा जा सकता है। ऐसी स्थिति में पाँच पौण्ड प्रति सप्ताह वेतन कमाने वाले सामान्य अंग्रेज़ कर्मचारी पर 'बिना टिकट प्रवास करना एक बड़ा पाप है और राष्ट्रीय क्षति का कारण समझने' के ज्ञान का आरोप करना कहाँ तक उचित है?

लेखक कहते हैं कि वहाँ के होटलों में चोरी कभी नहीं सुनी गई। दुर्भाग्यवश मेरे ही एक मित्र को जो इस समय पटना मेडिकल कालेज में पढ़ाते हैं, बड़ा कटु अनुभव एक लंदन के ख्यातनाम होटल ही में हुआ। उनकी अनुपस्थिति में उनके कमरे से लगभग डेढ़ सौ पौण्ड मालियत की चीजें ग़ायब कर दी गईं। और बाद में भी मेरे उक्त मित्र को उस चोरी के कारण कई झँझटों में उलझना पड़ा।

१६५१ में लंदन में (Festival of Britain) ब्रिटेन का उत्सव नामी जो बड़ा उत्सव कई दिनों तक मनाया गया था उसकी याद भारतीय पाठकों को भी अब तक होगी, क्योंकि उसके सचित्र वर्णन सारे संसार के अखबारों में छपे थे। प्रतिदिन हज़ारों की संख्या में प्रेक्षक इसे देखने आते थे। प्रवेश मूल्य कुछ कम चार रुपए था। इस गड़बड़ से लाभ उठा कर टिकट बेचने के काम पर नियुक्त एक स्त्री क्लर्क बाहर के दो द्वारपालों के साथ षड्यन्त्र रचा कर इस्तमाल किए गए टिकटों को फिर से बेचती थी। कई दिन बाद षड्यन्त्रकारियों के आपसी फूट और झगड़े के कारण इसका भंडाफोड़ हुआ। इस खबर से उस वक्त वहाँ काफ़ी सनसनी फैली थी। यह प्रतिदिन वहाँ के सायं-दैनिकों के छपनेवाले अनेकानेक रहस्यमय घटनाओं में से केवल एक है।

यह सब पढ़ कर यह आक्षेप किया जाना संभव है कि जहाँ गाँव है वहाँ कुछ गन्दगी ज़रूर होगी। उनकी संख्या यहाँ की बनिस्बत बहुत कम होती है। उसका उत्तर यह है कि हमारा खण्ड प्रायः देश इंग्लैण्ड से कोई दस गुना बड़ा है और सब बातें उसी प्रमाण से देखने को मिलती हैं यह हमेशा याद रखना चाहिए। मेरा यह कहने का मतलब नहीं कि पूर्व दिशा में सब कुछ ठीक है (All is well on eastern front) न्यूनताएँ हम में भी हैं और सुधार के लिए काफ़ी जगह भी। मगर सब कुछ कहने के बाद भी मुझे ऐसा लगता है कि इतनी दीर्घ दासता तथा शिक्षा के अभाव के बावजूद नैतिक स्तर हमारा किसी की तुलना में कम ऊँचा नहीं।

हिमायत नगर,
हैदराबाद-दक्षिण

—**डॉ० शंकरराव**

(४)

शिष्टमण्डल

काशी नागरी प्रचारिणी सभा का एक शिष्टमण्डल दशहरे की छुट्टियों में दक्षिण भारत की यात्रा करेगा। मण्डल का मुख्य उद्देश्य भाषागत विचार विनिमय तथा सद्भावना स्थापन होगा। शिष्टमण्डल के सदस्य हैं सर्वश्री डॉ० अमरनाथ झा, आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर', डॉ० राजबली पाण्डेय तथा गोविन्दप्रसाद केजरीवाल संयोजक। इस सम्बन्ध में शीघ्र ही एक विशेष विवरण प्रकाशित होगा।

काशी

—**गोविन्दप्रसाद केजरीवाल**

(५)

हिन्दी का व्यक्तित्व

आपने जुलाई की 'अजन्ता' में हिन्दी के व्यक्तित्व और स्वरूप में राष्ट्रभाषा के स्वरूप पर सामयिक सुझाव दिए हैं। अहिन्दी क्षेत्रों की यात्राओं में मैंने लोगों से सुना है कि उत्तर की हिन्दी को वे बदल देंगे और उसके स्थान पर अपनी हिन्दी को प्रतिष्ठित करेंगे। जहाँ तक भाषा की शैलियों से आशय है, उनके निश्चय का स्वागत होना चाहिए। भाषा किसी व्यक्ति विशेष के प्रयत्न से परिवर्तित नहीं होती, वह तो युग विशेष की सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों से अपने आप परिवर्तित

होती जाती है। दैनिक संस्कृत से ले कर आधुनिक देशी भाषाओं तक न जाने कितने नाम और रूप आर्य-भाषा ग्रहण करती आई है। हिन्दी जब समस्त राष्ट्र में व्याप्त हो रही है तब यह बहुत स्वाभाविक है कि उसकी अनेक प्रान्तीय शैलियाँ प्रचलित हो जाएं पर इसका यह अर्थ नहीं है कि ये शैलियाँ वर्तमान स्टेन्डर्ड हिन्दी की प्रकृति के विपरीत विकसित होंगी। हिन्दी की मूल प्रवृत्ति और प्रकृति को केन्द्र बिन्दु बना कर उनका विकास होगा और होना चाहिए। विभिन्न शैलियों में प्रादेशिकता की झलक मात्र होगी। यदि हिन्दी को मनमाने ढंग से ज़बरन गढ़ा गया तो वह सचमुच बाज़ारू हो जाएगी। उसमें सार्वदेशिक साहित्य का निर्माण नहीं हो सकेगा। साहित्यक भाषा में तो एकरूपता अपेक्षित होती है। उदारहण के लिए मैं एक ही वाक्य को प्रस्तुत करता हूँ:

स्टेन्डर्ड हिन्दी में "राम परीक्षा में असफल या 'फेल' हो गया" कहा और लिखा जाता है पर पूर्वी हिन्दी में इसे कहेंगे:

"राम परीक्षा फेल कर गया।"

और सुदूर दक्षिण केरलीय हिन्दी में बोलेंगे:

"राम परीक्षा हार गया।"

इस तरह के प्रादेशिक भेदों से कोई हानि नहीं होगी। हाँ, वाक्य रचना —व्याकरण— को हमें सुरक्षित रखना होगा। तभी राष्ट्रभाषा का साहितियक रूप स्थिर रह सकेगा।

नागपुर **—विनयमोहन शर्मा**

(६)

'अजन्ता' के जुलाई के अंक में "हिन्दी का व्यक्तित्व और स्वरूप" पर आपका सम्पादकीय पढ़ा। अहिन्दी भाषी प्रान्तों के साहित्यकार जब हिन्दी में साहित्य-रचना करेंगे तो उसमें अपनी प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों, मुहावरों और साहित्यिक शैलियों को हिन्दी में प्रचलित करने का प्रयत्न करेंगे। इनमें से कई शब्द और मुहावरे हिन्दी में बेमेल प्रतीत होंगे; कई शब्द जिनके लिङ्ग प्रादेशिक भाषाओं में हिन्दी से भिन्न हैं प्रादेशिक भाषा के व्याकरण के अनुसार प्रयुक्त किए जाएँगे। साहित्यिक शैलियों में भी इसी प्रकार सम्मिश्रण होगा। जब अन्य प्रान्तों के अहिन्दी भाषी साहित्यकार हिन्दी में अपने विचारों को अभिव्यक्त करेंगे तो उसमें वे अपने और अपनी भाषा के व्यक्तित्व की छाप भी अवश्य छोड़ेंगे। इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि हिन्दी की एकरूपता, व्यक्तित्व और स्वरूप को किसी प्रकार की क्षति पहुँचे। इसके व्यक्तित्व और स्वरूप की रक्षा करने के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा। इस समय भी प्रादेशिक भाषाओं के जो साहित्यकार हिन्दी भाषा में अपनी रचनाएँ कर रहे हैं वे अपनी भाषा की विशेषताओं को हिन्दी में कुछ-न-कुछ जाने और अनजाने रूप में ला रहे हैं। अभी तो इसका परिणाम अनुभव नहीं हो रहा है परन्तु धीरे-धीरे इसे अनुभव किया जाएगा और उस समय इन प्रभावों को ग्रहण करते हुए भी हिन्दी के व्यक्तित्व को स्थिर रखने का प्रयत्न करना होगा।

अमरीका में यूरोप के सब देशों से लोग जा कर बसे थे। कोई वहाँ इटली से गया तो कोई जर्मनी से, कोई फ्रांस से, कोई रूस से। अमेरिका में जब अंग्रेज़ी को राष्ट्रभाषा बनाया गया तो इन सब को अंग्रेज़ी को अपनी भाषा बनाना पड़ा। इस समय भी यूरोप के भिन्न भिन्न देशों से गए हुए लोग अपनी परिधि में अपनी भाषाओं को बोलते हैं यद्यपि वे साधारणतया अंग्रेज़ी का ही प्रयोग करते हैं। यूरोप के इन समस्त देशों से जा कर अमरीका में रहने और एक भाषा को ग्रहण करने के बावजूद भी अमरीका की अंग्रेज़ी वह नहीं रह सकी जो कि इंग्लैण्ड के लोगों की है जिसे इंग्लैण्ड के लोग वहाँ ले गए थे। वहाँ की अंग्रेज़ी में यूरोप के इन देशों की भाषाओं के शब्द और मुहावरे सम्मिलित हो गए और धीरे-धीरे अमरीका की अंग्रेज़ी का इन समस्त प्रभावों के कारण अपना ही एक विशिष्ट व्यक्तित्व और स्वरूप बन गया परन्तु इतने पर भी अंग्रेज़ी की एकरूपता अक्षुण्ण रही। हम समझते हैं कि इसी प्रकार हिन्दी में प्रादेशिक भाषा के शब्द, मुहावरे और शैलियों से हिन्दी के व्यक्तित्व का विकास होगा। हिन्दी में ही अनेक उप-भाषाएँ हैं और जब इन उप-भाषाओं को बोलने और प्रयुक्त करनेवाले साहित्यकार हिन्दी में इनकी विशेषताओं को ले आते हैं और उनमें भी लिङ्ग और अन्य व्याकरण सम्बन्धी विभिन्नताएँ आ जाती हैं तो फिर प्रादेशीय भाषाओं के विषय में तो ऐसा होना अनिवार्य ही है।

जम्मू —[illegible]

नीर-क्षीर

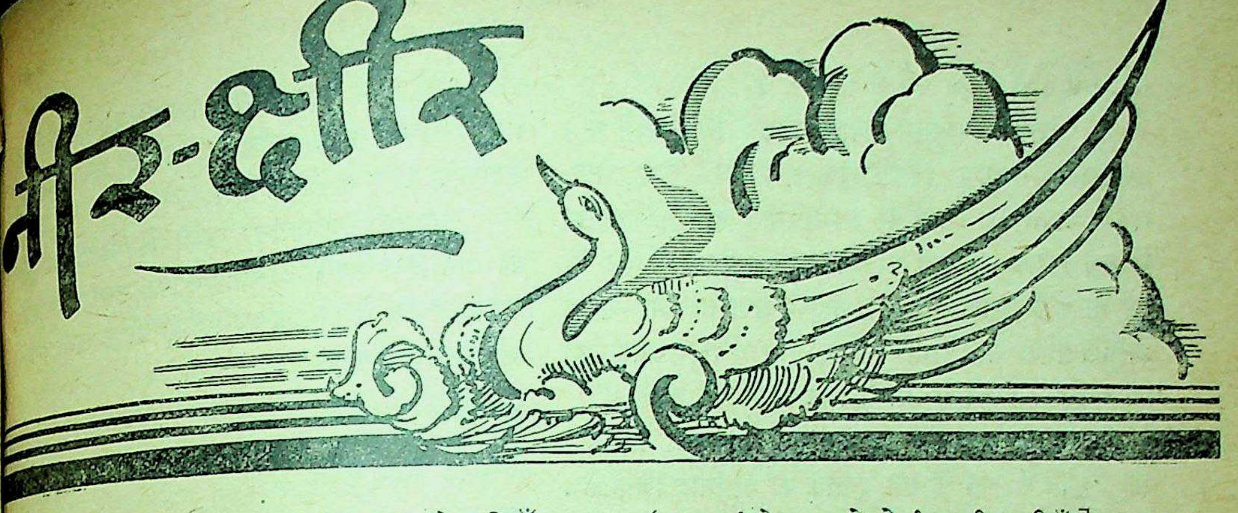

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिएँ]

द्विवेदी पत्रावली

सम्पादक : बैजनाथ सिंह 'विनोद'
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
मूल्य : ढाई रुपए।

पत्र-लिखना एक आर्ट है परन्तु साधारणतया आर्ट में एक प्रकार की बनावट या कृत्रिमता होती है—पत्र लिखने के आर्ट में किसी प्रकार की बनावट नहीं होती। उसमें एक इस प्रकार की सरलता और सादगी होती है जो लेखक के व्यक्तित्व का सुगमता से परिदर्शन करा देती है। श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' ने प्रस्तुत पुस्तक में महावीरप्रसाद द्विवेदी के पत्रों का संग्रह किया है जो उन्होंने श्रीधर पाठक, राधाकृष्ण दास, पद्मसिंह शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, राय कृष्णदास, लल्लीप्रसाद पाण्डेय, केशवप्रसाद मिश्र, देवीदत्त शुक्ल और किशोरीप्रसाद वाजपेयी को लिखे थे। कुछ विविध पत्रों का भी संग्रह किया गया है। इन पत्रों को पढ़ने से महावीर प्रसाद द्विवेदी की निर्भीकता, स्पष्टवादिता, खरापन, हृदय की कोमलता और कर्तव्यनिष्ठा का परिचय प्राप्त होता है। प्रायः द्विवेदी जी के पत्र छोटे हैं। उनमें किसी प्रकार का तक़ल्लुफ़ या ऊपरी शिष्टाचार नहीं है। वे जो कुछ लिखते हैं अपने हृदय की सचाई से लिखते हैं। छोटे पत्र इस बात के प्रमाण हैं कि उनमें किसी प्रकार का दिखावा नहीं है और वे एक कर्मशील व्यक्ति थे। वे अपने पत्र को एकदम प्रारम्भ कर देते हैं और उन्हें जो कुछ कहना है बातचीत के ढंग पर कह डालते हैं। वे उसके लिए किसी प्रकार की भूमिका नहीं बाँधते। वे स्वयं भी स्पष्टवादी हैं और दूसरों की स्पष्टवादिता को पसन्द करते हैं। छोटे पत्रों से एक और बात का भी स्पष्ट रूप से पता चलता है कि वे कल्पनात्मक नहीं क्रियात्मक व्यक्ति थे। उनकी साहित्यिक रुचि भी जितनी व्यावहारिक प्रतीत होती है उतनी काल्पनिक नहीं। वे शहरों से ग्राम को पसन्द करते हैं और प्रकृति के बड़े अध्ययनशील हैं। उन पर शहरों की तड़क-भड़क और आडम्बर या सभ्यता का विशेष प्रभाव नहीं है। कहीं कहीं उनके पत्रों में रूखापन भी है। कई व्यक्तियों के साथ विचारों में विरोध या भेद होने के कारण उन्होंने उनके प्रति कटुता न होते हुए भी पर्याप्त कठोरता प्रदर्शित की है। इस कठोरता से यह ज्ञात होता है कि वे अपनी कर्तव्यनिष्ठा में कठोर थे परन्तु जब वे अपने पत्र में ग़रीबों और दुखियों के विषय में लिखते हैं तो ज्ञात होता है कि उनका हृदय कितना उदात्त और कोमल है। वे जिनमें लिखने की प्रतिभा को अनुभव करते हैं उन्हें प्रोत्साहन देते हैं। उन्हें संस्कृत का, फ़ारसी का, उर्दू का और अंग्रेज़ी साहित्य का ज्ञान है और वे स्थान-स्थान पर इनके साहित्यों में से उद्धरण देते हैं। उनका पुस्तकालय काफ़ी विशाल था। यह संभव है कि उनके साहित्यिक विचारों से किसी का मतभेद हो परन्तु उनके पत्रों को पढ़ने से उनके गम्भीर व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त होता है।

उनके पत्रों में कई ऐसी बातें भी हैं जो संभवतः उन्होंने गम्भीर विचारपूर्वक नहीं लिखी हैं। पत्र लिखते समय जो उनके मन में विचार उठा उसे ही उन्होंने लिख दिया। उन्होंने एक पत्र श्रीयुत राधाकृष्ण दास को

लिखा है। वे अपने पत्र में लिखते हैं :

"आपका 'रहिमन-बिलास' हम आज देखते थे। उसका ८५ वाँ पद्य विचारणीय है। दाँत, केश, नख, मनुष्य अपने ही स्थान पर शोभा पाते हैं—यह समझ में नहीं आया—मनुष्य की शोभा यदि अपने ही घर में हुई तो कोई प्रशंसा की बात नहीं—नख से कोई शोभा अगुलियों की नहीं होगी—दाँत, केश दूसरी जगह नहीं जा सकते—काटने से उनकी गिनती कूड़े में होगी।"

रहीम खानखाना का यह दोहा मौलिक नहीं है। यह उन्होंने संस्कृत के एक श्लोक का अनुवाद किया है :

"स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ता केशा नखा नराः"

स्थानभ्रष्ट का अर्थ यहाँ घर का नहीं है क्योंकि घर से भ्रष्ट होने का तो कोई अर्थ ही नहीं है। स्थान का अर्थ है स्थिति-पोज़ीशन-ओहदा पद आदि। सब जानते हैं कि जब तक मनुष्य किसी स्थिति या पोज़ीशन में रहता है तब तक उसकी पूछ रहती है। अपने पद से मनुष्य हटा कि फिर उसे कौन पूछता है ? 'Authority forgets a dying king' जो राजा मर रहा है उसे अधिकारी नहीं पूछते। गिरे हुए नखों, केशों और दाँतों को कौन पूछता है ? वे तो फेंके ही जाते हैं इसी प्रकार स्थानभ्रष्ट व्यक्तियों को भी कोई नहीं पूछता।

पता नहीं श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने यह कैसे लिख दिया कि यह विचारणीय है। इसी प्रकार कुछ अन्य बातों के विषय में भी लिखा जा सकता है। यद्यपि उन्होंने हिन्दी भाषा को व्याकरण दृष्टि से बहुत सँवारा तो भी उनकी भाषा कई जगह स्वयं कुछ विचित्र-सी प्रतीत होती है। एक पत्र में वे लिखते हैं :

"लाला देवराज के सिवा और लोगों ने भी "सरस्वती" को लूटना शुरू किया है। बम्बई के कई गुजराती अखबार उसके लेख गड़प कर रहे हैं।"

यहाँ लूटने से यह अर्थ स्पष्टतया अनुभव नहीं होता कि "सरस्वती" के लेखों को लेखक चुरा कर बिना किसी प्रकार की स्वीकृति या आभार-प्रदर्शन के प्रकाशित कर रहे हैं। "गड़प करना" शब्द कुछ विशेष अभिव्यंजक नहीं है।

इसी प्रकार वे एक पत्र में लिखते हैं :

"बहुत दिन से आपकी कौशल्यशालिनी लेखनी ने कोई नूतन ग्रन्थ हिन्दी साहित्य के कोश में नहीं स्थापन किया।" इस वाक्य में "कौशल्यशालिनी" और "कोश में नहीं स्थापन किया" अभिव्यंजनाएँ कु विशेष रुचिकर नहीं प्रतीत होतीं। इसी प्रकार और उदाहरण दिए जा सकते हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ने 'द्विवेदी-पत्रावली' को प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य का उपकार किया है। आशा है कि वे इसी प्रकार द्विवेदी जी के अन्य पत्रों भी प्रकाशित करेंगे।

कुमाऊँ के क्रूर शेर

लेखक : जिम् कॉर्बेट
अनुवादक : रमेशचन्द्र पाण्डे
प्रकाशक : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,
बम्बई
मूल्य : साढ़े तीन रुपए।

शिकार के क़िस्से-कहानियों में जहाँ एक ओ साहस, वीरता और कुशलता का परिचय प्राप्त होता है वहाँ दूसरी ओर प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन, जंगलों, पहाड़ों, नदियों, नालों, झाड़ियों और ऋतुओं का वर्णन मिलता है और प्राणियों के स्वभाव, मनोवृत्ति आदि का अध्ययन होता है। ये क़िस्से क्योंकि अपने अनुभवों के आधार पर लिखे जाते हैं इसलिए उनमें एक प्रकार की चित्रणकुशलता और सजीवता होती है। कालिदास ने शिकार के विषय में लिखा है "ईदृग्विनोदः कुतः" ऐ विनोद अन्यत्र कहाँ प्राप्त होता है और उसने स्वयं शिकार का वर्णन बड़ी चित्रमयता और सजीवता से कि है। प्रस्तुत पुस्तक में कुमाऊँ के आदमखोर शेरों शिकारों का वर्णन बड़ी सरस और चित्रमय भाषा में कि गया है। लेखक ने लिखा है कि शेर साधारणतया मनुष्य का माँस नहीं खाता। वह ज़ख्मी होने की दशा में, असाधारण अवस्थाओं में ही ऐसा करता है। लेख लिखते हैं : "वह शेर जो परिस्थितियों से विवश हो अपना अनुकूल भोजन प्राप्त नहीं कर पाता और अ होकर अप्राकृतिक भोजन करता है। शेर की असमर्थता मुख्य कारण है उसकी वृद्धावस्था अथवा घाव। शेर प्राकृतिक शिकार मनुष्य नहीं है।" लेखक किस प्र रेत में या अन्यत्र कहीं मही पर पड़े हुए शेर के के निशानों को देख कर पहचान लेते हैं कि वह जवान है या बूढ़ा और किस अवस्था में है, उ घाव लगा है या कोई और शिकायत है। शेर के शि

पता भी लेखक आसानी से लगा लेते हैं। इसके अतिरिक्त वृक्षों पर नाखूनों के खुरचने के चिन्हों से भी यह पता लग जाता है : खुरचनेवाला पशु नर है या मादा; पशु किस दिशा में गया है, उसकी माँद किस ओर है और कितनी दूर है; किस प्रकार की लाश पर वह जा रहा है और क्या अभी उस पशु ने मनुष्य-माँस खाया है? साथ ही शेर के खाँदों से भी कई बातें मालूम हो जाती हैं। लेखक शेर की-सी बोली बोलना जानते हैं। लेखक एक अचूक शिकारी हैं, वे शेर का शिकार करने में सिद्धहस्त हैं इसलिए यह पुस्तक अनुवाद होने पर भी अत्यन्त रोचक है। अनुवाद की भाषा कहीं कहीं बोझिल प्रतीत होती है परन्तु फिर भी भाषा में प्रवाह है और अनुवाद सुन्दर है। पुस्तक के अन्त में शिकारियों की भाषा में प्रयुक्त विशेष शब्दों की सूची उनके अर्थों के साथ दी गई है। जिस प्रकार जासूसी उपन्यासों की अपनी ही एक विशेषता होती है उसी प्रकार शिकार की कहानियों की भी अपनी ही एक विशेषता होती है। आशा है कि यह पुस्तक न केवल शिकारियों द्वारा अपि तु अन्य पाठकों द्वारा भी बड़े शौक़ से पढ़ी जाएगी।

वीर धर्म की कहानियाँ

लेखक : जयभिक्खू (बालाभाई वीरचन्द देसाई)
प्रकाशक : गुर्जर ग्रन्थ कार्यालय,
गांधी रास्ता : अहमदाबाद
मूल्य : दो रुपए।

श्री जयभिक्खू गुजराती के एक लब्ध प्रतिष्ठ लेखक हैं। उनका जैन-साहित्य का अध्ययन गम्भीर और विस्तृत है। वे अपने विषय में लिखते हैं : "मैं गुजराती भाषा में कम-से-कम बीस साल से लिख रहा हूँ! इससे पहले बनारस, आगरा और शिवपुरी में करीब दस साल विद्योपार्जन के लिए रहने के कारण हिन्दी भाषा में लिखता रहा। लेखन-व्यवसाय का प्रारम्भ ही हिन्दी भाषा से हुआ और फिर गुजरात में आकर बस जाने से गुजराती में लिखने का मुहावरा हो गया। मेरी कहानियाँ और उपन्यास गुजरात में प्रिय हुए, किन्तु मेरी हमेशा की आकांक्षा रही कि इन कथाओं का राष्ट्रभाषा में भी रूपान्तर हो।" लेखक ने गुजराती में "वीर धर्म नी वातो" नामक कथा-संग्रह चार भागों में लिखा है। इसमें ४४ कहानियाँ हैं। इन कहानियों में से यह पहले भाग की १४ कहानियों का अनुवाद इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। यह हिन्दी अनुवाद मूल गुजराती से पार्श्वनाथ विद्याश्रम, काशी के श्री मोहनलाल मेहता ने किया है।

हिन्दी में जैन-साहित्य का साहित्य की दृष्टि से जैसा गम्भीर अध्ययन होना चाहिए था दुर्भाग्य से वैसा अभी तक हुआ नहीं है। जिस प्रकार भारतवर्ष की अन्य भाषाओं के साहित्यों को उसकी देन है उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी उसकी देन है। आशा है कि इस कहानी संग्रह को पढ़ने से उस साहित्य को साहित्य की दृष्टि से पढ़ने की रुचि हिन्दी भाषा-भाषियों और साहित्यकारों में जाग्रत होगी।

ये समस्त कहानियाँ जैन-पुराण, इतिहास और प्रबन्ध आदि पर आधारित हैं। इस पुस्तक की प्रत्येक कहानी किसी-न-किसी महान् उद्देश्य से अनुप्राणित है; जो चरित्र इन कथाओं में चित्रित किए गए हैं वे महान् हैं और जीवन को महान् बनानेवाले हैं। लेखक की लेखनी में शक्ति है, उसका जैन साहित्य का अध्ययन विस्तृत है; वह जो कुछ लिखता है गहरी अनुभूति से लिखता है और लिखते हुए अपने ही एक वातावरण को उत्पन्न कर लेता है। यह सत्य है कि इन कहानियों में उसकी धार्मिक प्रवृत्ति स्पष्टतया दिखलाई पड़ती है तो भी इन कहानियों में जो कुछ प्रस्तुत किया गया है वह मानव-जीवन को गहराई से चित्रित करता है। इन कहानियों को पढ़ने से जहाँ हमें प्राचीन इतिहास की झलक प्राप्त होती है वहाँ एक प्रकार की नई प्रेरणा और शक्ति भी प्राप्त होती है। प्रथम कहानी में कवि का स्वतन्त्रता का प्रेम कवि के जीवन के बलिदान के रक्त से अभिषिक्त होकर जिन शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है वे वीरतापूर्ण हैं :

> "स्वतंत्रो देव ! भूयासं सारमेयोऽपि वर्त्मनि
> मा स्म भूवं परायत्तः त्रैलोक्यस्यापि नायकः।"

"मुझे पराधीन होकर त्रिलोक का राजा होने की अपेक्षा स्वतन्त्र रह कर गली का कुत्ता बनना पसन्द है।" कई कहानियों में किसी अत्यन्त छोटी घटना से किसी महान् आत्मत्याग का उपक्रम किया गया है। मनुष्य की वीरता उद्दंडतापूर्वक शस्त्र चला कर दूसरों के संहार

करने में नहीं है परन्तु नम्रभाव से स्वेच्छापूर्वक चुपचाप कष्टों के सहन करने में और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक त्याग और आत्म-बलिदान करने में है। इसी प्रकार की वीरता का इस "वीर धर्म की कहानियाँ" पुस्तक में प्रतिपादन किया गया है और ये कहानियाँ न केवल हिन्दी-संसार में शौक़ से पढ़ी जाएँगी अपि तु उन्हें हिन्दी-साहित्य में अपना ही एक विशिष्ट स्थान प्राप्त होगा।

पुस्तक के अनुवाद में गुजराती के शब्द मुहावरे और गुजराती में संस्कृत के शब्द जिन अर्थों में प्रयुक्त किए जाते हैं उन्हीं अर्थों में इस अनुवाद में भी प्रयुक्त हुए हैं। यह स्वाभाविक है। संस्कृत के शब्द भारत की भिन्न भिन्न प्रान्तीय भाषाओं में भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होने लग गए हैं। कथाओं की भाषा में प्रवाह है और कहानियों को पढ़ने में रस और आनन्द प्राप्त होता है। आशा है कि लेखक की अन्य कहानियों का अनुवाद भी इसी प्रकार हिन्दी में प्रकाशित होगा।

एकनाथ व तुलसीदास (तुलनात्मक अध्ययन)
लेखक: जगमोहनलाल चतुर्वेदी
प्रकाशक: श्री एकनाथ संशोधन मन्दिर,
पैठण, औरंगाबाद।

प्रायः भारत की समस्त भाषाओं में एक समान विचारधाराएँ प्रवाहित होती रही हैं। इनके तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्टतया अनुभव होता है कि भारतीय संस्कृति आधार रूप से एक ही है। भाषा के भेद से उस संस्कृति में किसी प्रकार का भेद नहीं उत्पन्न हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका श्रीयुत डॉ० रा. द. रानाडे ने लिखी है। लेखक ने पुस्तक के तीन भाग किए हैं। प्रथम में 'तुलसीदास और एकनाथ के जीवन की झाँकी' है; दूसरे में 'एकनाथ और तुलसीदास के काव्य की झलक' है और तीसरे में दोनों कवियों का "अध्यात्म-दर्शन" है। एकनाथ और तुलसीदास दोनों का जन्म मूल-नक्षत्र में हुआ था। और भी कई बातें दोनों के जीवन में समान हैं। 'देशी भाषा' का शब्द मराठी के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। जनार्दन स्वामी ने एकनाथ को आज्ञा दी है "देशी भाषेंत या ग्रन्थावर तूं टीका लिही" अर्थात् देशी भाषा में इस ग्रन्थ पर तुम टीका लिखो। तुलसीदास के मुख्य ग्रन्थ बारह हैं और नाथ के सात। दोनों भक्त-कवि हैं। दोनों के काव्यों में न केवल विचारों की अपि तु काव्य और वर्णन की समानताएँ भी हैं। लेखक ने इस प्रकार की समानता को कई उदाहरण देकर प्रदर्शित किया है। वैसे तो विषय की समानता होने पर वर्णन में समानता कुछ न कुछ अनिवार्य-सी हो जाती है। लेखक ने इस समानता को सीता की सुन्दरता, सीता-वियोग, कैकेयी और दशरथ की बातचीत आदि के दोनों के काव्यों से प्रदर्शित किया है। दोनों कवि एक ही बात को भिन्न भिन्न रूप से कहते हैं। सीता-वियोग के समय एकनाथ ने जिस प्रकार राम की मति-भ्रान्ति को चित्रित किया है वह अत्यन्त मार्मिक है। वे सीता के वियोग में इतने अधिक पागल हो गए हैं कि प्रत्येक वस्तु को सीता के रूप में देखते हैं। यहाँ तक कि वे लक्ष्मण से कहने लग जाते हैं कि तू ही मेरी सीता है। "लक्ष्मणासी म्हणे तूं सीता, तूंचि माझी निज कांता।"

पता नहीं लेखक ने 'जोहार-प्रणाम' शब्द को "जयहर" से किस प्रकार बनाया है (पृष्ठ सं. ६५)। नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागर' में इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के जुषण अर्थात् सेवन से बनाई गई है। यह भी कुछ उपयुक्त नहीं प्रतीत होती। कलकत्ता से प्रकाशित "पाइअसद्दमहण्णवो" (प्राकृत शब्द महार्णव) प्राकृत के कोश में जोहार शब्द को देसी शब्द लिखा गया है और इसका अर्थ प्रणाम करना है (पृष्ठ सं. १२४८)। इस शब्द के आधार पर लेखक ने महारों का सम्बन्ध उत्तर भारत से कर दिया है (?)। कई स्थानों पर दोनों कवियों के काव्यों में जो समानता जिस प्रकार प्रदर्शित की है वह कुछ ठीक नहीं प्रतीत होती। उदाहरण के लिए भारूड़ और रूपक रहस्यों और उलटबासियों के साथ तुलना कहाँ तक की जा सकती है? "रूपक-रहस्यों" से संभवतः उनका अभिप्राय रहस्यवाद के रूपकों से है। समानता प्रदर्शित करने के लिए जो उन्होंने उदाहरण दिए हैं वे भी भिन्न भिन्न प्रकार के हैं। हाँ, वे इन दोनों में इस प्रकार समानता प्रदर्शित कर सकते थे कि दोनों कवि साधारण लोक जीवन के द्वारा अपने विषय को इतना स्पष्ट करना चाहते हैं कि अध्यात्मवाद के रहस्य को साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ सके। डॉ० रानाडे ने पुस्तक की भूमिका में दोनों कवियों की पारस्परिक तुलना करते हुए लिखा है: "...काव्य की दृष्टि से दोनों ऊँचे दर्जे के कवि माने जा सकते हैं। तुलसीदास का काव्य काव्य की दृष्टि

ने कुछ सरस उतरेगा किन्तु परमार्थ का साक्षात्कार प्रतिपादन श्री एकनाथ का श्रेष्ठ माना जाएगा।" श्री जगमोहन चतुर्वेदी ने यह अच्छा किया है कि अपनी पुस्तक में दोनों कवियों की कुछ समानताओं को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है और किसी प्रकार किसी की किसी विषय में श्रेष्ठता प्रतिपादन करने का प्रयत्न नहीं किया। 'अध्यात्म दर्शन' में लेखक ने दोनों कवियों के ईश्वर, सगुण-निर्गुण, गुरु नाम-महिमा आदि पर विचारों का परिदर्शन किया है। यदि वे अध्यात्म विषय पर दोनों सन्त महापुरुषों के विचार और दर्शन का कुछ विस्तृत अवलोकन करा सकते तो उपयुक्त होता। पुस्तक को आलोचना की दृष्टि से नहीं लिखा गया है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के पश्चात् भारतीय भाषाओं के साहित्य के पारस्परिक गम्भीर अध्ययन की आवश्यकता बढ़ गई है और यह इसी दिशा की ओर एक प्रयत्न है। इस प्रयत्न के लिए हम श्री जगमोहन चतुर्वेदी की इस पुस्तक का अभिनन्दन करते हैं।

अपने राज अपने आदमी

लेखक : रामकृष्ण
प्रकाशक : ऋता प्रकाशन, २५, रामतीर्थनगर, लखनऊ
मूल्य : दो रुपए।

लेखक ने अपनी इन कहानियों को चार पाँच वर्ष पूर्व लिखा था। लेखक के कथनानुसार "इन कहानियों में सुन्दर की अपेक्षा सत्य का सहारा अधिक लिया गया है और इससे पढ़नेवालों को इनमें कटुता का आभास शायद कुछ ज़्यादह मिले।" इन कहानियों में उसने जीवन का सही ख़ाका पेश करने प्रयत्न किया है और सही चीज़ के चित्रण में सुन्दरता का वहीं तक सहारा लिया जा सकता है जहाँ तक वह सत्य के असली रूप पर पर्दा डालने की कोशिश न करे।

पुस्तक में ६ कथाएँ हैं। कथा की भाषा में प्रवाह है। इन कथाओं में आर्थिक और सामाजिक विषमताओं को प्रदर्शित किया गया है और ये विषमताएँ किसी एक घटना का उल्लेख करते हुए प्रदर्शित की गई हैं। कहानियों को कुछ ऐसे ढंग से लिखा गया है कि कहीं उसमें गद्य-काव्य और कहीं निबन्ध की शैली का सम्मिश्रण हो गया है। वर्तमान समाज की विषमतामूलक रूढ़ियों ने मनुष्य को इतना स्वार्थपरायण बना दिया है कि समाज या व्यक्ति का किसी प्रकार का स्वास्थ्यपूर्ण विकास असंभव-सा हो गया है—इन कहानियों में इसी बात को किसी-न-किसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये कहानियाँ समस्या को तो सामने लाती हैं और इनको पढ़ने से यह भी अनुभव होता है कि विषमताओं को दूर किया जाना चाहिए परन्तु लेखक अपनी कहानियों में एकमात्र समस्याओं को ही प्रदर्शित कर पाता है उनके समाधान को नहीं। समस्या-प्रधान कहानियाँ सच्ची घटनाओं के आधार पर लिखी जाने पर भी बहुत कुछ एकांगी-सी होती हैं; वे उसके दूसरे पहलू को ओझल-सा कर देती हैं और एक ही बात को कुछ इस प्रकार असाधारण-सा कर देती हैं कि वह घटना सच्ची होती हुई भी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होती है और कहानी प्रोपेगैण्डा मालूम होने लग जाती है। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर एक ओर लेखक का नाम और दूसरी ओर प्रकाशक का नाम छापा गया है। 'रूप और ऋतु' कथा को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यह विषमता की समस्या भी मनुष्य के रक्त में है जो अवस्थाओं के परिवर्तित होते ही फिर अपने आपको उसी रूप में प्रदर्शित करने लग जाती है और आज जो नए विचारों का पक्षपाती है वह कल स्वयं पुराने विचारों का बन जाता है। और भी कई कहानियों में लेखक ने इस बात को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। ऐसी अवस्था में इस समस्या के जो भी समाधान होंगे—वे सामयिक ही होंगे और समय के परिवर्तित और अनुकूल होते ही पुनः वही रूढ़ियाँ मानव-जीवन को ग्रस्त कर लेंगी। इसका क्या इलाज है?

शेर-ओ-सुख़न (लखनऊ स्कूल के वर्तमान शायर)
[भाग दूसरा]

सम्पादक : अ० प्र० गोयलीप
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
मूल्य : तीन रुपए।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ने अनेक सुन्दर और उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन करके हिन्दी-साहित्य के भंडार को परिपूर्ण प्रयत्न किया है। 'शेर-ओ-सुख़न' के दूसरे भाग में लखनऊ के १५ कवियों की कविताओं के शेर-ओ-सुख़न का संग्रह किया गया है। पुस्तक में प्रारम्भ से (?) ई० स० १६५३ की इश्क़िया उर्दू शायरी को सम्मिलित किया गया है। इसमें जो प्रथम कवि दिए गए हैं वे हैं मौलाना अली हैदर तबा तबाई 'नज़्म' जिनका जन्म लगभग ई० स० १८५० में हुआ।

इसलिए इसका प्रारंभ १९ वीं सदी को समाप्ति के पश्चात् का ही समझना चाहिए। पिछले ५० वर्षों में लखनऊ में जो ग़ज़ल-गो शायर हुए हैं उनके कुछ कलाम का इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। इस संग्रह से पूर्व ९६ पृष्ठ का एक आलोचनात्मक सिंहावलोकन लिखा गया है जिसमें ग़ज़ल के लक्षण और विकास पर प्रकाश डाला गया है। इस सिंहावलोकन से उर्दू की शायरी के इतिहास और स्थिति को समझने में सहायता प्राप्त होती है। इस संग्रह में पहले कवियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और फिर उनका कलाम। अरबी और फ़ारसी के शब्दों के अर्थ प्रत्येक पृष्ठ पर ग़ज़लों के साथ दिए गए हैं। हम समझते हैं कि इस प्रकार के सिलसिलेवार संग्रह अभी तक संभवतः उर्दू में भी नहीं हैं। हिन्दी में उर्दू कविता के इस प्रकार संग्रहों से जहाँ उर्दू कविता हिन्दी में सम्मिलित हो सकेगी वहाँ हिन्दी जनता को उर्दू के साहित्य से परिचिति भी प्राप्त हो सकेगी। यदि उर्दू के गद्य-साहित्य के संग्रह भी इसी प्रकार प्रकाशित किए जाएँ तो उर्दू-गद्य से भी हिन्दी-संसार को परिचय प्राप्त हो सकेगा।

उर्दू के ग़ज़लों का रंग इश्किया और फिर सूफ़िया होकर धीरे धीरे मानव-जीवन की अन्य, अवस्थाओं को प्रतिबिम्बित और चित्रित करने लग गया। ग़ज़ल की शैली क्योंकि भारतवर्ष की कविता की शैली नहीं थी और क्योंकि इसका क्षेत्र सीमित था इसलिए इनमें स्वाभाविक रूप से ही कृत्रिमता और अस्वाभाविकता कुछ सीमा तक पहले से ही विद्यमान थी और ज्यों ज्यों इस शैली का विकास होता गया यह कृत्रिमता और भी अधिक बढ़ती चली गई और यदि इसका रंग वर्तमान अवस्थाओं के अनुसार परिवर्तित न होता तो ग़ज़ल एकमात्र एक मसनूई वस्तु बन जाती। जिस समय कविता एक छोटे-से दायरे में सीमित हो जाती है तो वह अपने लिए एक ख़ास तरह के शब्द, परिभाषा और अभिव्यंजनाओं को चुन लेती है और चुन लेने के पश्चात् वह उन्हीं के साथ एकरूपता स्थापित कर लेती है। जो कवि भी लिखता है वह उन्हीं भावों को, उन्हीं शब्दों को, उन्हीं परिभाषाओं और अभिव्यंजनाओं को किसी-न-किसी रूप में दुहराता रहता है। दरबार के लिबास की तरह इस प्रकार की कविता के शब्दों का भी अपना ही एक विशिष्ट लिबास बन जाता है। उर्दू के ग़ज़लों में 'हाली' के बाद से एक नया रंग आ गया है परन्तु उनमें अभी पिछली विशेषताएँ बहुत कुछ वैसी ही क़ायम है ज़रा-से हेर फेर से अपने को उसी तरह प्रस्तुत कर रही है।

संग्रह करने में परिश्रम किया गया है परन्तु पुस्तक में जिन इश्किया ग़ज़लों का संग्रह किया गया है अधिकांश में पुरानी परिपाटी की ही हैं क्योंकि यह वर्तमान समय के कवियों का है इसलिए अच्छा होता इस पुस्तक में ऐसी ग़ज़लों का संग्रह किया जाता जिन आज की वर्तमान ग़ज़लों और पुरानी ग़ज़लों की वि षता का स्पष्टतया कुछ आभास मिल जाता। पुस्तक ऐसी ग़ज़लों को भी संगृहीत किया गया है जो अत्य साधारण हैं और जिनसे इस पुस्तक के कलेवर में ही वृ हुई है और जो ग़ज़लों की पुरानी परिपाटी के शब्दों के इधर उधर के हेर-फेर मात्र हैं। उनमें शब्दों की जितनी लताफ़त और बारीक़ियाँ हैं उतनी भावों की लताफ़त और बारीकियाँ नहीं।

इस संग्रह में बहुत-से शेर हैं जिनमें सादगी है और सूक्ष्मता के साथ गहराई है:

"उसकी बेदाद का नहीं शिकवा
मेरा ही शौक़ मेरा क़ातिल था।

× × ×

आते-आते आयगा उनको ख़याल
जाते-जाते बेख़याली जाएगी।

× × ×

साक़िया! चश्मे करम का वक़्त होगा कौन-सा
जामे दिल ख़ाली है, जामे ज़िन्दगी लबरेज़ है।

क्या लखनऊ में वर्तमान काल में उर्दू में एक ऐसे कवि नहीं हुए जिन्होंने 'हाली' के विचारों अनुसार या उनके ढंग पर जदीद ढंग में ग़ज़लें कही हों लखनऊ के इन उर्दू के शायरों के संग्रह को पढ़ने कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ उर्दू में ग़ज़ल क वाले अभी तक उर्दू साहित्य की पुरानी दुनिया में और सम्पादक महोदय ने अपनी भूमिका में इस दौर में ग़ज़ल के जिस "कायाकल्प" का ज़िक्र कि वे सम्भवतः उससे बिलकुल अपरिचित हैं। अ होता कि यदि इस संग्रह में ग़ज़ल की इस "कायाक के भी कुछ नमूने दिए जाते। उर्दू के 'शेर-ओ-सु का यह संग्रह संग्रहणीय और पठनीय है।

—वंशीधर विद्याल

हैदराबाद

सामयिक

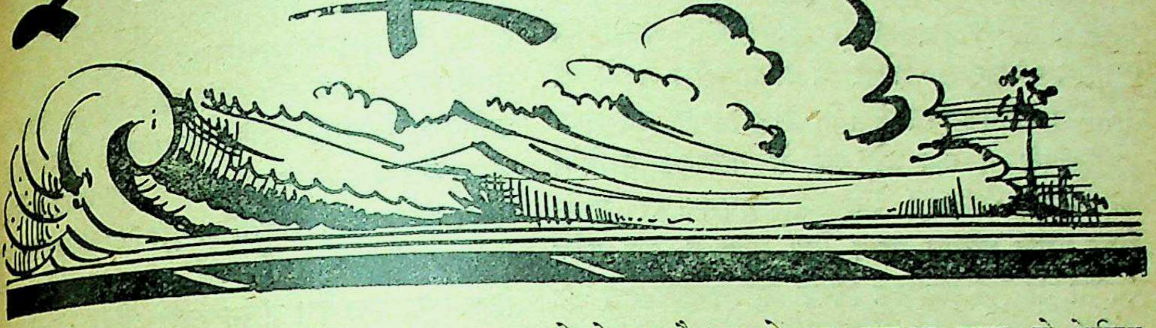

||

आंडाल-तमिल कविता की मीरा

मद्रास के प्रसिद्ध पत्र "हिन्दु" में श्री रामस्वामी आयंगार का 'प्रसिद्ध भक्त कवि आंडाल' पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"आंडाल का जन्मोत्सव २ अगस्त को उसके जन्म-स्थान विल्लुपुथुर में और अन्य स्थानों में धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन लाखों नर-नारी उसकी पूजा करते हैं और भक्तिपूर्वक उसके गीतों को गाते हैं। भक्ति के साहित्य में तीन महिलाओं के नाम प्रसिद्ध हैं जो कि कृष्ण के प्रेम की साक्षात् मूर्ति हैं। इनमें एक राधा है दूसरी मीरा और तीसरी आंडाल। आंडाल को गोदा के नाम से भी स्मरण किया जाता है। इसे तमिल में "कोदाइ" कहा जाता है। आंडाल आजन्म कुमारी ही रही। उसने विवाह नहीं किया। वह किसी मनुष्य से विवाह नहीं करना चाहती थी। वह भगवान् कृष्ण से विवाह करना चाहती थी। तमिलनाड में गोदा को कृष्ण की सनातन पत्नी कहा जाता है। आंडाल को भूदेवी अर्थात् पृथ्वी का अवतार कहा जाता है। वह बचपन से ही अन्य बालिकाओं के समान नहीं थी। वह जब छोटी थी तभी से कृष्ण के नाम को तुतला कर बोलती थी, और कृष्ण के शंख, पद्म और चक्र के चित्र बनाती थी! वह दिन रात राम और कृष्ण की कहानियाँ सुनती थी। कृष्ण ने उसके छोटे-से हृदय पर ऐसा प्रभाव उत्पन्न किया था कि वह एकमात्र उसी का चिन्तन करती थी। ज्यों-ज्यों वह बड़ी होने लगी उसका कृष्ण के प्रति प्रेम भी बढ़ता चला गया। वह एक मात्र कृष्ण से ही विवाह करना चाहती थी। उसे स्वप्न आया कि उसका विवाह श्रीकृष्ण से हो गया है। उसने इस अद्भुत स्वप्न को श्रेणिक गान में लिखा है। उसे श्रीरंगम के भगवान् रंगनाथ ने बुलाया था और वह विल्लुपुथुर से श्रीरंगम को चली गई। वह भगवान् में विलीन हो गई। उसकी सुन्दरता और मधुरता श्रीरंगम की सुन्दरता के साथ मिल गई।

उसने १७३ गीत लिखे हैं। ये गीत अत्यन्त मधुर और पवित्र हैं। उसकी "तिरुप्पवई" अत्यन्त प्रसिद्ध है। ये तमिल के अत्यन्त कोमल और मधुर गीत हैं। 'तिरुप्पवई' में ३० पद्य हैं और इसके अतिरिक्त उसके १४३ गीत हैं। इसमें शृंगाररसपूर्ण माधुर्य-भक्ति है। यह शृंगार अत्यन्त पवित्र और तीव्र है। आंडाल का शृंगार भक्ति है। उसकी यह भक्ति उसके पदों की प्रत्येक पंक्ति में दिखाई देती है। वह एकमात्र कृष्ण की प्रिया ही नहीं है उसकी आत्मा भगवान् से मिलने के लिए अत्यन्त आतुर है।

आंडाल में संस्कृत और तमिल संस्कृति का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। उसने गीतों की माला (पामलाई) और फूलों की माला (पूमलाई) को गूँथा है। उसके गीतों का लोगों के हृदयों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।"

||

टी. एस. इलियट

श्रीयुत डा. रांजी साहनी का एक लेख अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि 'टी. एस. इलियट' पर 'लिसनर' में प्रकाशित हुआ है। इसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"जब कोई मनुष्य ख्यात या कुख्यात हो जाता है तो उसके चारों ओर बहुत-सी दन्तकथाएँ इकठी हो जाती हैं। टी. एस. इलियट के विषय में अनेक प्रकार की बातें कही जाती हैं : 'वह शक्तिसंपन्न पुरुष है, वह एक

बना हुआ व्यक्ति है, वह एक विचारशील संभ्रांत व्यक्ति है, वह कापीकार है' और इसी तरह की अनेक बातें उसके विषय में प्रचलित हैं।

बहुत वर्ष हुए स्वर्गीय प्रो. हैराल्ड लस्की की यहाँ एक रविवार को दोपहर में दावत थी। लस्की को मैंने कुछ प्रशंसक विद्यार्थियों के सम्मुख कहते हुए सुनाः "ब्लूम्सबरी में एक भद्दे रूप से परिस्कृत कमरे में की कल्पना कीजिए। मेज़ के शीर्षभाग पर साहित्यिक मुग़ल इलियट खान बैठा हुआ है; एक दर्जन रंगहीन चेहरों के नवयुवक जिनके नाख़ून और बाल एक भारतीय फ़कीर जैसे लम्बे हैं उसकी ओर आशापूर्ण दृष्टि लगाए हुए हैं। मास्टर चुप है; संभवतः वह कौमा के तत्व पर विचार कर रहा है। अन्त में वह अपना सिर उठा कर कहता है : "सज्जनों! मैं समझता हूँ कि मुझे बियर का एक और गिलास पीना होगा।"

उपर्युक्त कहानी का तात्पर्य यह है कि एक तो इलियट की ख्याति अधिकांश में काल्पनिक है और दूसरा वह साधारणतया चुप रहता है और जब वह मुँह खोलता है तो उसकी बातें सुनने के योग्य नहीं होतीं।

हमें इलियट के विषय में उसकी कृतियों के आधार पर अपने विचार बनाने चाहिएँ। मैं अपने लेख में एकमात्र उसकी कृतियों के विषय में ही लिखूँगा। उसके अन्य कार्यों के विषय में उसी हद तक उल्लेख किया जाएगा जहाँ तक कि उनका उसकी कलात्मक रचनाओं से सम्बन्ध है।

स्टर्जमूर ने मुझ से कहा था कि जिस प्रकार ए. ई. को अच्छाई का प्रेम लिखने के लिए प्रेरित करता है उसी प्रकार टी. एस. इलियट को बुराई का भय लिखने के लिए प्रेरित करता है। इस उक्ति में पर्याप्त सत्यता है परन्तु यह पूर्णतया सत्य नहीं है। इलियट बुराई को पूर्णतया अनुभव करता है। सत्य तो यह है कि बुराई की उपेक्षा न करना मानसिक शक्ति का लक्षण है। इलियट उस पीढ़ी का है जो प्रथम विश्वयुद्ध के कष्टों में से गुज़री थी। जो उसने देखा था वह उसकी किसी प्रकार उपेक्षा नहीं कर सकता था। वह किसी भी प्रकार मनुष्य की अच्छाई को मानकर नहीं चल सकता था। जो कुछ उसने देखा था उससे उसके मन को आघात पहुँचा था। बुराई एक वास्तविकता—एक ऐसी अत्यन्त भयानक वास्तविकता थी जिसकी कि कल्पना की जा सकती है।

इलियट ने मनुष्य जीवन की निर्दय स्पष्टता से परीक्षा की। उसने देखा कि मनुष्य जीवन मलिन हो गया है और सड़ाँद की ओर जा रहा है। अच्छाई बहुत कम रह गई है। इस अनुभव से वह चिन्तित हो गया। उसने आँख उठाई और चारों ओर दृष्टिपात किया तो अधिकांश में लोगों को सोते हुए पाया। इलियट ने हमें कठोर और भयानक वस्तुस्थिति के प्रति जाग्रत करने का प्रयत्न किया। हमें वस्तुओं को पूरी तरह आँखें खोल कर देखना चाहिए। इस विषय में वह इतना अंग्रेज़ नहीं जितना कि फ्रेंच है। जीवन कलह और विरोध से पूर्ण हैं परन्तु वह "नृत्य के शान्त और अविचल बिन्दु"—'अनन्त क्षोभ के हृदय में केन्द्रीय शान्ति' को ढूँढ़ता है। यह खोज लम्बी और थका देनेवाली है। अन्त में इलियट अनुभव करता है कि मनुष्य के अस्तित्व में कोई भय नहीं है—एकमात्र वही भय है जो कि हम इसके लिए उत्पन्न करते हैं। आधुनिक संसार का शैतान इच्छा है। यह इसलिए क्योंकि हमारी प्रवृत्तियाँ स्वार्थपरक हैं :

"मैंने अपनी आत्मा से कहा : चुप हो जाओ
और अपने पर अन्धकार को आने दो
यह अन्धकार परमात्मा का अन्धकार होगा
मैंने अपनी आत्मा से कहा : चुप हो जाओ
और बिना किसी आशा के प्रतीक्षा करो
क्योंकि प्रतीक्षा करना अब तो बुरी वस्तु की
प्रतीक्षा करनी होगी; बिना प्रेम के प्रतीक्षा करो
क्योंकि प्रेम ग़लत वस्तु का प्रेम होगा;
अभी तक भी विश्वास है
परन्तु यह विश्वास, प्रेम और आशा सब
प्रतीक्षा में हैं
सत्यता पूर्वक जीवित रहने के लिए हमें मरना
सीखना चाहिए"

इलियट विचार करना समाप्त नहीं करता। जो लगातार विचार करता रहता है वही इस प्रकार लिख सकता है :

"मूक कुहासे के बीच में
बजती हुई घंटी
समय बतला रही है परन्तु इस समय को नहीं
उस समय को जो कि समयमापक
यंत्रों से अधिक पुराना है

उस समय से अधिक पुराना जिसे कि
चिन्ताग्रस्त स्त्रियाँ गिन सकती हैं
जागते हुए, भविष्य का अनुमान करते हुए
भूत और भविष्य को अलग अलग करते हुए
और फिर एकत्रित करते हुए
रात और प्रातःकाल में
जब कि भूत बिलकुल मिथ्या बन जाता है
और भविष्य भविष्यहीन बन जाता है,......
जब कि समय ठहर जाता है,
और समाप्त नहीं होता......"

और फिर :

"हममें से बहुतों के लिए एकमात्र एक उपेक्षित क्षण है—
वह क्षण जो कि समय और असमय में
अपने को अवस्थाओं के अनुकूल बना लेता है
जो प्रकाश की किरणों में जगमगाता है
जो जंगली थाइम पौधों जैसा अदृश्य
जो शीत में बिजली की चमक के समान
जो एक जल-प्रपात-सा
या उस संगीत-सा
जो कि इतना सूक्ष्म है कि सुनाई नहीं पड़ता
परन्तु वह स्वयं ही वह संगीत है
जब तक संगीत रहता है।"

यहाँ विचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं और अपना ही एक संगीत उत्पन्न करते हैं। मैं कोमल मधुर स्वरों को नहीं परन्तु मंजीरों की आवाज़ को सुनता हूँ। और कौन-सा आधुनिक अंग्रेज़ी का कवि हमारे हृदयों पर यह प्रभाव उत्पन्न करता है।

यद्यपि इलियट तर्कशील है परन्तु वह तर्कशीलता की सीमा को जानता है। वह स्पष्ट रूप से कहता है :

"जो ज्ञान हम एकमात्र प्राप्त कर सकते हैं
वह है विनम्रता का ज्ञान
विनम्रता अन्तहीन है"

गेटे ने इसी बात को कहा है :

"तुमको अवश्य त्याग करना होगा"

संक्षेप में तर्क एक साधन-आश्चर्यजनक साधन है परन्तु इसका उपयोग इतना बड़ा नहीं है जितना कि साधारणतया लोग समझते हैं। यह श्रद्धा या विश्वास है जो कि आत्मा को शक्ति प्रदान करता है। श्रद्धा सचमुच अत्यन्त सुन्दर वस्तु है—इसके ठीक या ग़लत होने से कुछ बनता बिगड़ता नहीं।

इलियट की कविता के विषय में कहा जाता है कि उसकी कविता अस्पष्ट है। उसने इसके विषय में मुझे समझाते हुए कहा कि अस्पष्टता तीन प्रकार की होती है : एक तो अस्पष्टता इस प्रकार की होती है कि लेखक ऐसे विषय में कहता है जिसको कि वह स्वयं नहीं जानता। दूसरी अस्पष्टता इस प्रकार की होती है कि लेखक अपने को अधिक चतुर दिखाने के लिए जान-बूझ कर शब्दों को धुंधला कर देता है। तीसरी अस्पष्टता इस प्रकार की होती है कि जब कि भाषा में ऐसे विचारों को अभिव्यक्त किया जाता है जिनके लिए उपयुक्त शब्द प्राप्त नहीं होते। हमें इस बात को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इलियट की अस्पष्टता तीसरे प्रकार की है। वह ऐसी बातें कहता है जिन्हें कि भाषा में किसी भी प्रकार अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। वह समझता है कि शब्द हमारे अन्दर की आग की एक धुंधली चमक है :

"इनको अभिव्यक्त करने की शैली
अधिक सन्तोषपूर्ण नहीं;
हमेशा कविता के ढंग का एक गोलमोल अध्ययन
शब्दों और अर्थों के साथ
एक असह्य कुश्ती
कविता का क्या अस्तित्व
यह वह वस्तु नहीं जिसकी आशा थी"

इलियट की कविता में जो अन्धकार है उसका कारण प्रकाश का अभाव नहीं परन्तु उसके विचारों का वस्तुओं की रात में लुप्त हो जाना है। इलियट की कविता के विषय में कहा जाता है कि यह गद्यात्मक है। इसमें शेक्सपियर, शैली या स्विनबर्न का संगीत नहीं है। यह बिलकुल सत्य है किन्तु बात यहीं समाप्त नहीं होती। फ्रेंच कविता को लीजिए। अंग्रेज़ों की दृष्टि से वह भी गद्यात्मक है। इलियट फ्रेंच स्कूल का है। इसलिए वह गद्यात्मक प्रतीत होता है। सत्य तो यह है कि उसने फ्रेंच कविता की कठोर और कठिन समलयता को अंग्रेज़ी में प्रचलित करने का प्रयत्न किया है। फ्रेंच लोगों को अंग्रेज़ी कविता बहुत अधिक रंगीन और अभिव्यक्तिहीन प्रतीत होती है। मुझ से एमिली लिगोई ने कहा : "कीट्स

की कविता में विशेषणों को हटा दीजिए और इसमें कुछ अवशिष्ट नहीं रह जाता।" मैं समझता हूँ कि समस्त अंग्रेज़ी कविता की यही अवस्था है।

इलियट का फ्रेंच के महान् साहित्यकारों के समान कविता की आवरणहीन अस्थियों में विश्वास है। वह अपनी कविता के रंग-रूप में ही नहीं वह कल्पना में भी फ्रेंच है। प्रकृति और शिक्षा दोनों ने उसे इस प्रकार का बनाया है।

इलियट की अंग्रेज़ी साहित्य को क्या देन है? यह है फ्रान्स की स्पिरिट को अपनी बनाई हुई मातृभूमि को ले जाना। क्या आश्चर्य कि बहुतों को इलियट का प्रभाव अपूर्व प्रतीत होता है।"

॥

भारत और चीन की मित्रता

मद्रास के अंग्रेज़ी साप्ताहिक पत्र "स्वतन्त्र" में श्रीयुत के. एस. वेंकटरामन का 'भारत और चीन की मित्रता' पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"चीन और भारतवर्ष की मित्रता अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। २७५ ई. पू. से स्थल के मार्ग से सबसे पूर्व दोनों का सम्बन्ध हुआ यद्यपि चीनी अनुलेखों को देखने से यह ज्ञात हुआ है कि दोनों देशों में सबसे पूर्व सम्बन्ध ७६ ई. प. में हुए। ईसा से दो शती पूर्व बौद्ध धर्म बैक्ट्रियाना से ऑक्सस से परे गुजरात के समुद्र पर्यन्त फैला हुआ था। इस प्रदेश में कुशान जो एक चीनी जाति के लोग थे, राज्य करते थे। इनमें से कनिष्क मुख्य था। दोनों देशों में निरन्तर सम्बन्ध बने हुए थे। यात्री न तो ठण्डे और गर्म रेगिस्तान की परवाह करते थे और न ऊँचे पहाड़ों की जो मंगोलिया और भारतवर्ष के बीच में थे। दो मार्गों से आना जाना होता था। भूमि के मार्ग से इस महान् देश को कैथे और समुद्र के मार्ग से चीन कहा जाता था। जिस प्रकार ईरान के लोगों ने भारतवर्ष को हिन्दुस्तान का नाम दिया है उसी प्रकार हिन्दुओं ने इस महान् देश को चीन का नाम दिया था।

समुद्र के मार्ग के ज्ञान होने के पश्चात् भी बहुत से लोग स्थल के मार्ग से आते थे। इनमें से फ़ाहियान, हियान च्वांग, आइ-त्सिंग का नाम प्रसिद्ध है। उन्होंने अपनी यात्रा का जो वर्णन किया है उससे भारतवर्ष के गौरवपूर्ण इतिहास के कुछ पृष्ठों का पता लग सका है। भारतवर्ष की बहुत-सी पुस्तकें जो भारतवर्ष में प्राप्त नहीं थीं उन पुस्तकालयों से प्राप्त हुई हैं जो तुर्किस्तान की रे में, कई शताब्दियाँ पूर्व, दब गई थीं। संस्कृत मंगोलिया से ईस्ट इण्डीज़ तक फैली हुई थी।

चीनी तुर्किस्तान में खोतान और तारिम Bas में हिन्दु राज्य थे। समुद्र-मार्ग से कम्बोडिया भारत और चीन के बीच में जहाज़ों के ठहरने का स्थान था। यह एक हिन्दु राज्य था जहाँ कौण्डिन्य राजाओं का राज्य था। चौथी शती से यहाँ ब्राह्मण-धर्म और बौद्धों के संप्रदाय प्रचलित हो गए थे जिस प्रकार दक्षिण देश में हरि-हर मत था इसी प्रकार यहाँ हर-बुद्ध का मत विकसित हुआ था। यहाँ संस्कृत हज़ारों वर्षों तक संस्कृ और बोलचाल की भाषा रही।

बिहार में नालन्दा विश्वविद्यालय में चीन के सु से विद्यार्थी आकर पढ़ा करते थे। मध्य-युग में यह अपने ढंग की सबसे बड़ी यूनिवर्सिटी थी। एक चीनी यात्री ने तीसरी शती में उन्हें श्री विजय अर्थात् सुमा में रहने के लिए कहा क्योंकि वहाँ संस्कृत पढ़ने की सुविधाएँ थीं।

भारतवर्ष और चीन दोनों देशों की विशे सहिष्णुता है। नागापटम् के पास एक बौद्ध मन्दिर था जिसे चीनी पैगोडा कहा जाता था और जो चीनी लोगों के उपयोग के लिए था। काँची में पल्लव राजा नरसिंह पोतवर्मा ने चीनी यात्रियों के लिए एक म मठ बनवाया था। उसने चीन के सम्राट् से उसका न रखने की प्रार्थना की थी। उन्होंने एक पत्थर भेजा जि पर कोई-होसे (जो धर्म की ओर प्रवृत्ति उत्पन्न करता है) लिखा था। यह पत्थर मन्दिर के सामने लगा दि गया था।

कैण्टन में तीन हिन्दु मन्दिर थे जो हिन्दुओं के उपयोग के लिए थे। क्योंकि बहुत-से हिन्दु जो व्या करते थे यहाँ रहते थे। हम यहाँ कुछ महान् व्यक्तियों का उल्लेख करते हैं जो भारत से चीन गए थे। बोधि ५२० ई. प. में चीन पहुँचा था। दूसरे भारतीय रांची थे। इन्होंने "रत्नकूट" का चीनी भाषा में अनु किया था। एक और भारतीय वज्र बोधि थे। ये महान् सन्त थे। इन्होंने बहुत-सी पुस्तकों का संस्कृत

चीनी भाषा में अनुवाद किया था।

चीन से भारतवर्ष में बहुत-से यात्री आए। इनमें एक युआन च्वाँग (ह्यूिन टी-साँग) थे। ये विद्वान् थे और इन्होंने समस्त भारत में भ्रमण किया था। ६४२ ई. प. में पुलकेशी और हर्ष ने इनको सम्मानित किया था। वे हर्ष की राजसभा में थे। जब वे जाने लगे तो उन्हें कई ऊँट रत्न आदि भेंट में दिए गए परन्तु उन्होंने इन सबको लेने से इनकार कर दिया और वे केवल पुस्तकों को अपने साथ ले गए। चीन के इतिहास में इस बात का वर्णन प्राप्त होता है कि भारतीय राजा चीन में अपना दूत भेजते थे और वहाँ के सम्राट् को बहुमूल्य उपहार भेजते थे और इसी प्रकार चीन के सम्राट् भेजते थे।"

॥

प्राचीन और मध्यकालीन भारत में शिक्षा

श्रीयुत सुधनसन घोष के लेख में से कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है :

"यदि हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक और कला और धर्म का विश्लेषण किया जाए तो यह पता लग सकेगा कि न केवल प्राचीन आर्य जो कि अधिक सभ्य थे शिक्षित होते थे अपि तु द्रविड़ लोग भी शिक्षित लोग थे। यह सत्य है कि उन दिनों की शिक्षा-प्रणाली आज से भिन्न थी। प्रत्येक बालक को विशेष आयु के समय जब कि वह शिक्षा के योग्य होता था शिक्षा-ग्रहण करनी पड़ती थी। आर्यों के तीनों वर्णों के बालकों के लिए यह आयु भिन्न-भिन्न थीं। धर्म-शास्त्रों को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि शिक्षक बालकों को प्रार्थना करना और यज्ञ आदि की शिक्षा देता था। इसके पश्चात् उसे व्याकरण, सरल गणित, ज्योतिष, पुराण आदि पढ़ाए जाते थे। एक गुरु के पास पाँच से अधिक शिष्य नहीं होते थे और वह उन्हें अपने घर में ही पढ़ाता था। जन-संख्या की वृद्धि के साथ शिक्षा के केन्द्रों में भी वृद्धि होती गई। शिक्षा के केन्द्रों को मठ और टोल्स कहा जाता था। प्राथमिक शिक्षा टोल्स में और उच्च शिक्षा मठों में प्रदान की जाती थी। धीरे धीरे यही मठ विश्वविद्यालय बन गए। इनमें नालन्दा, विक्रमशिला, जगद्दल और तक्षशिला का नाम प्रसिद्ध है। इन विश्वविद्यालयों में दूर विदेशों से भी विद्यार्थी पढ़ने के लिए आया करते थे। इन विश्वविद्यालयों में वाद-विवाद, रथ की भाग-दौड़, कुश्ती, धनुर्विद्या और अभिनय की शिक्षा भी पाठ्यक्रम में थी।

मुसल्मानों के आक्रमण के समय जब कि हिन्दु और बुद्ध शिक्षा-प्रणाली समस्त देश में फैली हुई थी मुसल्मानों की अपनी ही शिक्षा-प्रणाली थी जिसे कि वे अपनी मातृभूमि से अपने साथ लाए थे। जब मुहम्मद ग़ौरी ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाई तो उसने मन्दिरों को तोड़ कर मसजिदें बनाईं और मुसल्मानों की शिक्षा के लिए मक़तबों और मदरसों की स्थापना की। कुतुबुद्दीन बादशाह ने बिहार में स्थित विक्रमशिला विश्वविद्यालय पर आक्रमण किया और वहाँ से शिक्षकों को भगा दिया। तुग़लक बादशाहों ने शिक्षा के प्रचार में बहुत कार्य किया। फ़िरोज़ तुग़लक ने दिल्ली में एक यूनिवर्सिटी बनाई जिसमें विद्यार्थियों के आवास का भी प्रबन्ध था। फ़िरोज़ तुग़लक की मृत्यु के पश्चात् शिक्षा की ओर कम ध्यान दिया गया और तैमूर लंग ने इन शिक्षणालयों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। सिकन्दर लोदी ने सबसे पूर्व अपनी हिन्दु प्रजा को फ़ारसी की शिक्षा देनी प्रारंभ की। जो मुसल्मानी राज्य देहली से स्वतन्त्र हो गए थे उन्होंने भी ग्रामों में मदरसे बनवाए। इन स्वतन्त्र राज्यों में अहमदनगर, मालवा, गोलकुंडा और बीजापुर मुख्य थे। फिर भी मुग़लों से पूर्व मुसल्मान बादशाह शिक्षा की व्यवस्था ठीक तरह न कर सके। हुमायूँ ने दिल्ली में एक मदरसा बनवाया। अकबर ने व्यवस्थित शिक्षा-प्रणाली को प्रचलित किया। उसने हिन्दु और बौद्ध ग्रन्थों का फ़ारसी में अनुवाद कराया। मुसल्मान विद्यार्थी हिन्दु और बौद्ध संस्कृति के ज्ञान को प्राप्त करने लगे। हिन्दु और मुसल्मानों के लिए एक ही शिक्षा-प्रणाली थी। भेद इतना ही था कि मुसल्मान कुरान पढ़ते थे और हिन्दु वेदान्त और पतंजलि को। जहाँगीर और शाहजहाँ इस शिक्षा-प्रणाली को कुछ विशेष उन्नत न कर सके। औरंगज़ेब ने हिन्दु मंदिरों और शिक्षणालयों को तुड़वाया—उसने एकमात्र मुसल्मानों में शिक्षा के विकास के लिए प्रचुर धनराशि को व्यय किया। नादिरशाह ने दिल्ली के पुस्तकालयों को लूटा और वह सब पुस्तकों को ईरान ले गया। बादशाह बनते और बिगड़ते थे परन्तु साधारण प्रजा में शिक्षा चलती ही रहती थी इसलिए प्रत्येक घर में बच्चों को शिक्षा देना एक कर्तव्य समझा जाता था।"

सम्पादकीय

भारतीय भाषाओं में निकटतम संबन्ध की आवश्यकता

हमारे देश की भाषाएँ यद्यपि आपस में अत्यन्त निकट हैं तो भी वे बहुत से कारणों से जिनमें राजनैतिक कारण ही मुख्य हैं, एक दूसरे से पर्याप्त दूर हो गई हैं। इन भाषाओं में एक समान विचारधारा प्रवाहित होती रही है, इनका प्रेरणा स्रोत प्रायः एक-सा रहा है, ये किसी न किसी अंश में एक दूसरे से प्रभावित होती रही हैं, इनकी वर्णमाला, शब्दावली और वाक्यविन्यास एक-सा है और इन सबमें एक ही जैसा साहित्य और संस्कृति है। इतनी समानताओं के होने के बावजूद आज उनमें इस प्रकार की दूरी उत्पन्न हो गई है कि हमारे देश की वे एक महान् समस्या बन गई हैं। बहुत से विचारक इन भाषाविषयक विभिन्नताओं को इतना महत्व प्रदान करने लग गए हैं कि वे इनके आधार पर बहुत सी विभिन्न संस्कृतियों की कल्पना करते हैं। भाषा के आधार पर प्रान्तों के विभाजन के आन्दोलन में उग्रता इसीका एक परिणाम है।

अब समय आगया है जब कि भारत की समस्त भाषाओं को एक प्लैटफ़ार्म पर लाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए अन्यथा भय है कि कहीं इन भाषाओं में जो दूरी उत्पन्न हो गई है वह और भी अधिक बढ़ती न चली जाए। यह एक प्लैटफ़ार्म हिन्दी का ही प्लैटफ़ार्म हो सकता है। हिन्दी के राष्ट्र-भाषा होने का अर्थ यही है कि हमारे समस्त देश में न केवल राजनैतिक एकता हो अपि तु सांस्कृतिक एकता भी और यह तभी सम्पन्न हो सकती है जब कि भारत के समस्त राज्यों की भाषाओं में स्वतंत्रतापूर्वक विचार-विनिमय, आदान-प्रदान और एकता की अनुभूति हो। हिन्दी को इन भाषाओं में, एकता की अनुभूति को जाग्रत, प्रोत्साहित और संवर्धित करना चाहिए। अभी तक हमारे देश में इन भाषाओं के अपने अलग-अलग प्लैटफ़ार्म हैं और वे होने भी चाहिएँ परन्तु इन समस्त भाषाओं का एक ऐसा भी प्लैटफ़ार्म होना चाहिए जहाँ कि भारत की समस्त भाषाओं के विद्वान् प्रतिनिधि एक स्थान पर एकत्रित होकर अपनी समान भाषाविषयक समस्याओं पर इस प्रकार विचार करें कि इन भाषाओं में जो दूरी उत्पन्न हो गई है वह दूर हो सके और इन सब भाषाओं में निकटतम स्नेहमय संबन्ध स्थापित हो सकें। इन भाषाओं में इस प्रकार के संबन्ध उसी समय स्थापित हो सकेंगे जब कि इनके साहित्यकारों और विद्वानों में निकटतम संबन्ध होंगे और यदि ये एक प्लैटफ़ार्म पर नियमपूर्वक एकत्रित किया जा सके तो इस प्रकार की निकटता सुगमता से स्थापित हो सकेगी। जिस प्रकार हमारे देश में राजनीति का एक प्लैटफ़ार्म है इसी प्रकार समस्त भाषाओं का भी एक प्लैटफ़ार्म होना चाहिए और यह जितना शीघ्र हो सकेगा उतना ही इन भाषाओं में पारस्परिक मेल-जोल और एकत्व की भावना पुष्ट हो सकेगी। इससे हमारे देश में भाषाविषयक जो ग़लतफ़हमियाँ उत्पन्न हो गई हैं उन्हें दूर करने में सहायता प्राप्त हो सकेगी। भाषा के कारण देश के वातावरण में जो क्षोभ और कटुता इसके परिणामस्वरूप आ गई है वह शान्त हो सकेगी।

इन भाषाओं के बहुत-से प्रश्न एक-से हैं और इन प्रश्नों को यदि भारत की समस्त भाषाओं के विद्वान् प्रतिनिधि आपस में मिल कर हल करें तो इन सब का समाधान इन समस्त भाषाओं में एक समान ही हो सकेगा। यदि इन प्रश्नों को प्रत्येक भाषा अपने आप अलग-अलग हल करेगी तो सम्भव है कि इन भाषाओं में ये समाधान भिन्न-भिन्न प्रकार से किए जाएँ और इससे इन भाषाओं में दूरी और अलगाव की वृद्धि हो। इन समस्त भाषाओं में एकसमान पारिभाषिक शब्दावली का प्रयुक्त किया जाना और इसी प्रकार भाषा के अन्य क्षेत्रों में जहाँ एकसमानता को स्थापित किया जा सकता है वहाँ प्रकार की एकसमानता उत्पन्न करना—आदि प्रश्नों पर सम्मिलित रूप से गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। इस समय तो यह अवस्था है कि के बहुत-से साधारण शब्द जो इन समस्त भाषाओं एकसमान प्रयुक्त होते हैं वे भी भिन्नार्थवाची हो गए हम कभी इस विषय पर विस्तार रूप से किसी लेख प्रकाश डालेंगे। यह सत्य है कि भारत की समस्त

१९५४

में संस्कृत की शब्दावली एकसमान प्रयुक्त होती है परंतु अंग्रेज़ी राज्य के समय जब अंग्रेज़ी पारिभाषाओं और शब्दों के लिए इन सब भाषाओं में शब्दों की आवश्यकता थी, उस समय इनके साहित्यकारों और विद्वानों ने संस्कृत से शब्द लेकर उन्हें नए अर्थ प्रदान कर दिए जो कि अब इन भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं। इन शब्दों के अर्थों में भिन्नता हो जाने के कारण ये शब्द अपनी एकसमानता को खो चुके हैं और इस समय इन शब्दों की संख्या बढ़ती जा रही है। इस प्रकार के शब्दों की संख्या पहले भी बहुत अधिक है। यदि हम इन शब्दों के अर्थों के विस्तार में जाएँ तो हमें इन शब्दों के भिन्न अर्थों को देख कर आश्चर्य होता है और विश्वास नहीं होता कि ये शब्द इन भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। हम यह मानते हैं कि स्थानीय प्रभावों के कारण शब्दों का नए अर्थों में प्रयुक्त होना और उनसे विविध मुहावरे बनाना स्वाभाविक है परन्तु संस्कृत के इन शब्दों का भिन्न अर्थों में प्रयोग स्वाभाविक प्रक्रिया से नहीं हुआ है—संस्कृत के इन शब्दों को ये नवीन अर्थ इन भाषा के साहित्यकारों ने प्रदान किए हैं। ये शब्द एकमात्र पारिभाषिक या इसी प्रकार के ही नहीं हैं—साधारण बोल-चाल के भी हैं। इन शब्दों में भी एकसमानता को उत्पन्न करने की आवश्यकता है।

क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा या कोई अन्य हिन्दी की सम्मान्य संस्था वर्ष में इस प्रकार के आयोजन करे जिसमें भारतवर्ष की समस्त भाषाओं के विद्वान् सम्मिलित होकर इन समस्त भाषाओं के एकसमान प्रश्नों पर एक साथ मिल-जुल कर विचार-विनिमय कर सकें। यदि यह सम्भव नहीं है तो हम समझते हैं कि अखिल भारतीय हिन्दी-परिषदों या सम्मेलनों में एक इस प्रकार की कान्फ्रेंस का आयोजन नियमपूर्वक किया जाना चाहिए जिसमें समस्त भारतीय भाषाओं की एक सदृश समस्याओं पर इन भाषाओं के विद्वान् प्रतिनिधि एक स्थान पर एकत्रित होकर विचार कर सकें और उनका समाधान इस प्रकार कर सकें जिससे इन भाषाओं की दूरी दूर हो और ये परस्पर एक दूसरे के इतने अधिक निकट आ सकें कि अपने में एक प्रकार की अभिन्नता को अनुभव करें। यह कार्य हिन्दी की परिषदों, सभाओं और सम्मेलनों द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है और उन्हें इस कार्य को करना चाहिए।

इन सम्मिलित आयोजनों में इस बात पर भी उच्च स्तर पर विचार किया जा सकता है कि हिन्दी के भाषाविषयक कौन-से ऐसे प्रश्न या कठिनाइयाँ हैं जिन पर हिन्दीभाषियों को गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और यदि इसके लिए वे अपनी भाषा की दृष्टि से कोई समाधान उपस्थित करें तो उस पर भी सम्मिलित रूप से विचार किया जाना चाहिए। यदि इस प्रकार के आयोजन होंगे तो हमें विश्वास है कि हमारे देश में हिन्दी के लिए न केवल स्वास्थ्यकर वातावरण उत्पन्न हो सकेगा अपि तु भाषाविषयक कटुता भी दूर हो सकेगी और भारतीय भाषाओं में पारस्परिक निकटतम सम्बन्ध स्थापित हो सकेंगे।

इण्डो-चाइना में समझौता

इण्डो-चाइना में जब से युद्ध के बन्द होने की घोषणा हुई है विश्व के शान्तिप्रिय प्रायः समस्त राष्ट्रों ने सन्तोष की गहरी साँस ली है। १८ सितम्बर १९३१ को जापान ने मंचूरिया में युद्ध प्रारम्भ किया था और तब से इतने समय के पश्चात् अब यह समय आया है कि एशिया में इस समय कहीं युद्ध नहीं हो रहा है। संभव है कि यह युद्ध का बन्द होना विश्व में शान्ति की पूर्वभूमिका हो। इण्डो-चाइना में इतने दिनों तक भी जो युद्ध चलता रहा उसका मुख्य कारण अमेरिका के द्वारा लगातार दी गई आर्थिक और शस्त्रास्त्र की सहायता थी। अमेरिका उस सहायता को और बढ़ा कर देने के लिए तैयार था परन्तु अब एकमात्र धन और शस्त्रास्त्रों की सहायता के आधार पर भी युद्धों को जारी रखना कठिन हो गया है। पहले विश्व-युद्धों में एशिया के लोग अधिक संख्या में युद्धों में भेजने के लिए सुगमता से प्राप्त हो जाते थे। अब वैसी अवस्था नहीं रह गई है। कोरिया के युद्ध में यदि एशिया के देशों से अमेरिका को लड़ने के लिए आदमी प्राप्त हो सकते तो कोरिया में युद्ध बन्द होने की संभावना नहीं थी। कोरिया में अमेरिका के असंख्य धन और शस्त्रास्त्र बल के लगाने पर भी जब अमरीकी लोग बड़ी संख्या में मारे गए और इससे अमरीका की जनता में असन्तोष फैलने लग गया और युद्ध में भाग लेने के लिए अमरीकी लोगों में कुछ विशेष उत्साह न रह गया उस समय अमरीका को सिंगमैन री के विरोध के बावजूद भी कोरिया में युद्ध को बन्द करने के लिए

समझौता करना पड़ा। इण्डो-चाइना में भी यही अवस्था हुई। जब तक वियतनाम के लोग फ़ौजों में भरती होकर मरने कटने के लिए फ्रान्स को मिलते रहे तब तक इण्डो-चाइना में युद्ध चलता रहा। अब जब कि युद्ध में फ्रान्सीसी लोगों का अधिक संख्या में सफ़ाया होने लगा, वियतनाम के फ़ौज में भरती हुए लोग वियत-मिह्न की फ़ौजों में जा कर मिलने लग गए और किसी भी देश से फ़ौज में भरती करने के लिए आदमियों का मिलना असम्भव हो गया। अमरीका की धन और शस्त्रास्त्र की विपुल सहायता और बढ़ावे के बावजूद भी फ्रान्स के लिए इण्डो-चाइना युद्ध को बन्द करने के लिए शीघ्र समझौता करने के सिवाय अन्य कोई मार्ग ही नहीं रह गया था। फ्रान्स को यदि अपने देश से युद्ध में भाग लेने के लिए जन-बल प्राप्त हो सकता तो यह युद्ध अब भी जारी रहता। फ्रान्स की जनता इण्डो-चाइना की लड़ाई से तंग आ गई थी और उसके पास लड़ाई में मुफ्त में कटवाने के लिए जन-बल का अभाव होता जा रहा था। एशिया में जिन सुरक्षा योजनाओं को अमरीका की ओर से बनाया गया और अब कौमनवेल्थ का नाम ले कर इंग्लैण्ड की ओर से जो सुरक्षा की योजनाएँ बनाई जा रही हैं उनका मुख्य उद्देश्य एशिया के लोगों को बाह्य आक्रमण से बचाना या उनको सुरक्षित करना नहीं है, उसका मुख्य उद्देश्य है कि इन देशों को किसी प्रकार युद्ध की विभीषिका से अपने गुट्ट में लाकर आर्थिक और शस्त्रास्त्र की सहायता देकर इन देशों से कम्यूनिस्ट देशों के विरुद्ध लड़ाई में भाग लेने के लिए अधिक से अधिक संख्या में जन-बल प्राप्त करना। इसी उद्देश्य को मुख्यतया दृष्टि में रख कर एशिया में सुरक्षा-योजनाओं के दाँव-पेंच खेले जा रहे हैं और अमरीका एशिया के देशों को आर्थिक सहायता देने के लिए तैयार है। एशिया के देशों में पारस्परिक जो झगड़े होते हैं उन्हें ये देश बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। और एशिया के लोगों पर दक्षिण आफ्रिका में जो अत्याचार हो रहे हैं उन पर तो इन देशों की दृष्टि नहीं पड़ती और इस विषय में वे मौन-साधना कर लेते हैं परन्तु वे इन देशों की सुरक्षा की योजनाएँ बनाते हैं। यह क्या आश्चर्य की बात नहीं है? स्पष्ट ही है कि ये योजनाएँ वे अपने स्वार्थों को दृष्टि में रख कर बना रहे हैं। एशिया के देश अब यद्यपि परतन्त्र नहीं रह गए हैं तो भी वे अभी तक पूर्णतया संगठित नहीं हैं; आर्थिक दृष्टि से उनकी अवस्था विशेष सन्तोषजनक नहीं है; वे शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं और अभी तक पीढ़ियों की दासता की परम्पराओं से वे अपने आपको मुक्त नहीं कर सके हैं इसलिए उन्हें आर्थिक सहायता का प्रलोभन दे कर सुरक्षा-योजना के नाम पर अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए फाँसने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। यह इन देशों की सुरक्षा की योजना नहीं अमरीका आदि देशों की आत्मरक्षा की योजना है। इसके अतिरिक्त वे यह चाहते हैं कि युद्ध का क्षेत्र एशिया बने जिसमें लड़ें तो एशियाई शक्तियाँ और वे भी इन्हीं के शस्त्रास्त्रों के बल पर परन्तु यदि विनाश हो तो एशिया का और एशिया के जन-बल का। इन योजनाओं का यही परिणाम हो सकता है।

इण्डो-चाइना में लड़ाई के बन्द हो जाने से जहाँ फ्रान्स में प्रसन्नता प्रकट की जा रही है वहाँ अमरीका के पत्र इस समझौते के प्रति गहरा असन्तोष प्रकट कर रहे हैं। वे इसे समझौता नहीं फ्रान्स की हार समझ रहे हैं। इस विषय में अमरीका का साप्ताहिक पत्र 'टाइम' लिखता है: "जिनेवा में कम्यूनिस्टों को वह सब कुछ मिल गया जिसे वे चाहते थे; इण्डो-चाइना का बड़ा भाग उन्हें प्राप्त हो गया; उन्हें विश्राम का अवसर प्राप्त हो गया और उनकी सैनिक विजय हो गई यद्यपि वे भी लड़ने से हताश हो गए थे। अब लाल चीन को एशिया के महाद्वीप में अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने का अवसर प्राप्त हो गया है; अब वे संयुक्त-राष्ट्र-संघ में सदस्यता के लिए दबाव डालेंगे और वे चीन की जनता पर और भी अधिक बल का प्रयोग करेंगे। यह समझौता स्वतंत्र संसार की प्रबल हार है। ...यह शान्ति एक झटके में टूटनेवाली शान्ति है जिसे कि भयानक मूल्य देकर खरीदा गया है...।"

यदि इण्डो-चाइना में युद्ध का बन्द होना स्वतन्त्र संसार की प्रबल पराजय है तो क्या कोरिया में युद्ध का बन्द होना स्वतन्त्र संसार की पराजय नहीं थी? कोरिया में सिंगमैन री युद्ध को जारी रखने के लिए अमरीका से हर प्रकार से कह कह कर हार गया और अमरीका ने कोरिया की लड़ाई में समझौता कर लिया और उसे किसी प्रकार अपनी हार नहीं समझा। अब इण्डो-चाइना में फ्रान्स और व्रियत-मिह्न में समझौता हो जाने और युद्ध के बन्द हो जाने पर क्यों वह इतना अधिक संक्षुब्ध हो गया है?

हर प्रकार के काग़ज़ के श्रेष्ठ निर्माता

ٹریڈ مارک
رجسٹرڈ
SIRPUR
REGISTERED. TRADE MARK

सिरपुर पेपर मिल्स लिमिटेड

सिरपुर काग़ज़ नगर (सेण्ट्रल रेल्वे) हैदराबाद-दक्षिण

जिंग एजेण्ट्स : **मेसर्स बिरला ब्रदर्स लि.** ८, रायल एक्स्चेंज प्लेस,
कलकत्ता

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

Telephone : 4610 [Estd. MARCH 1915] Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :	*Head Office :*	*Branch Office :*
UNIVERSITY BRANCH (ADIKMET)	SHAHRAH-E-OSMANI, HYDERABAD-DECCAN.	THUNGABHADRA PROJECT (MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTRES and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
MANAGING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT.

प्रकाशक : प्रियबन्धु, हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-द.

जे० बी० ग्लुकोस बिस्कुटों से

विहार के समय अल्प आहार का कार्यक्रम सफलतापूर्वक
सम्पन्न किया जा सकता है।

*

J.B.

जे० बी० ग्लुकोस
बिस्कुट
जो कि

- शुद्ध तथा उत्त
  का मैदा
- मलाईयुक्त दूध
- ग्लुकोस
  (जीवन शक्ति

से तैयार किये जा
भट्ठी से निकले हु
ताज़े भुरभुराहट
बिस्कुट के लि

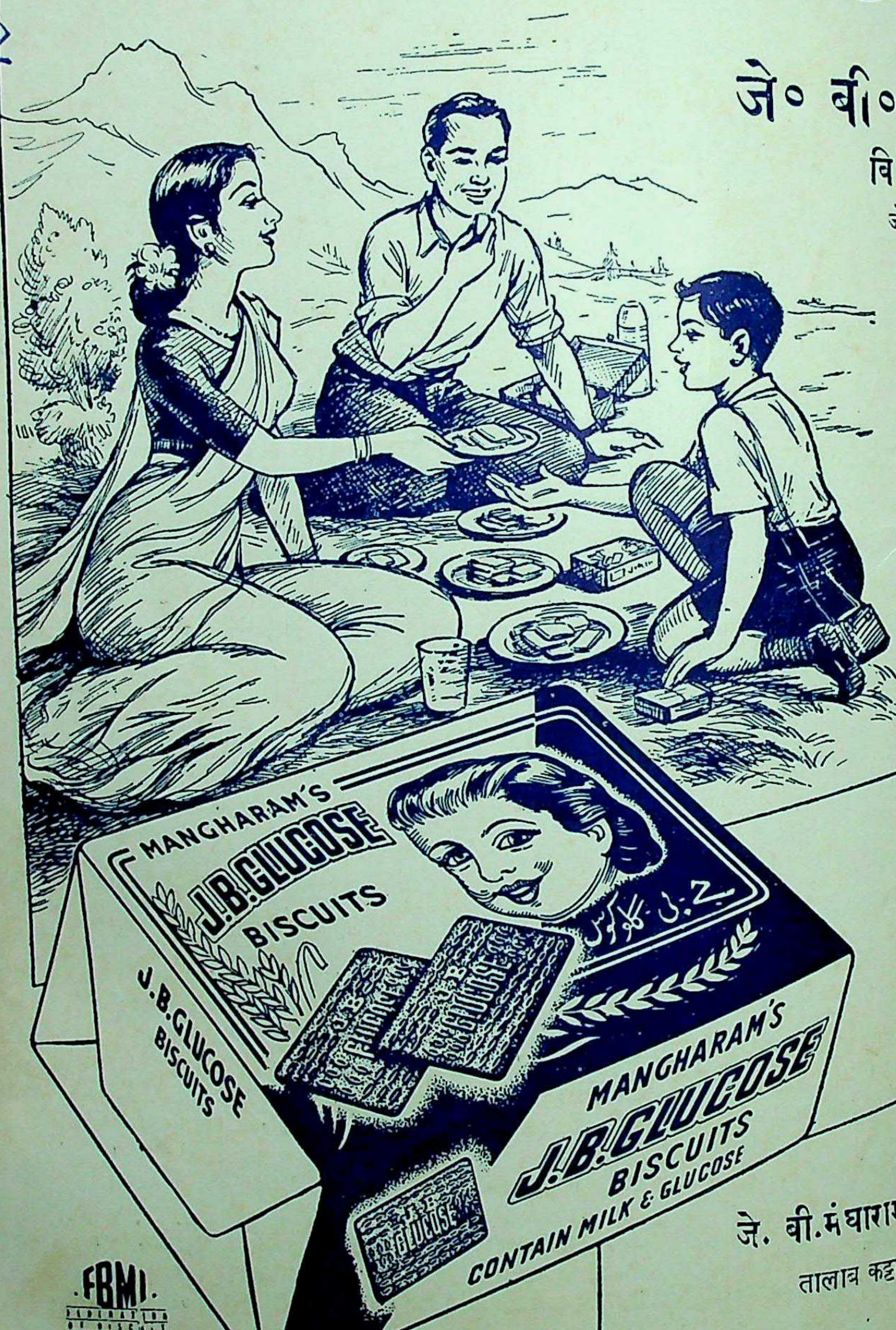
MANGHARAM'S
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
MANGHARAM'S
J.B.GLUCOSE
BISCUITS
CONTAIN MILK & GLUCOSE
J.B. GLUCOSE

जे० बी०

के सही चिह्न को

ज़रूर देख लीजि

जे. बी. मंघाराम एण्ड कम्पनी
तालाब कट्टा, हैदराबाद द०

FBMI
FEDERATION OF BISCUIT MANUFACTURERS OF INDIA

स्थानीय एजेण्ट :
के० मोतीराम एण्ड कम्पनी

बेगमबाज़ार, आबिदरोड, हैदरा
स्टेशन रोड, सिकन्दराबाद

अजन्ता

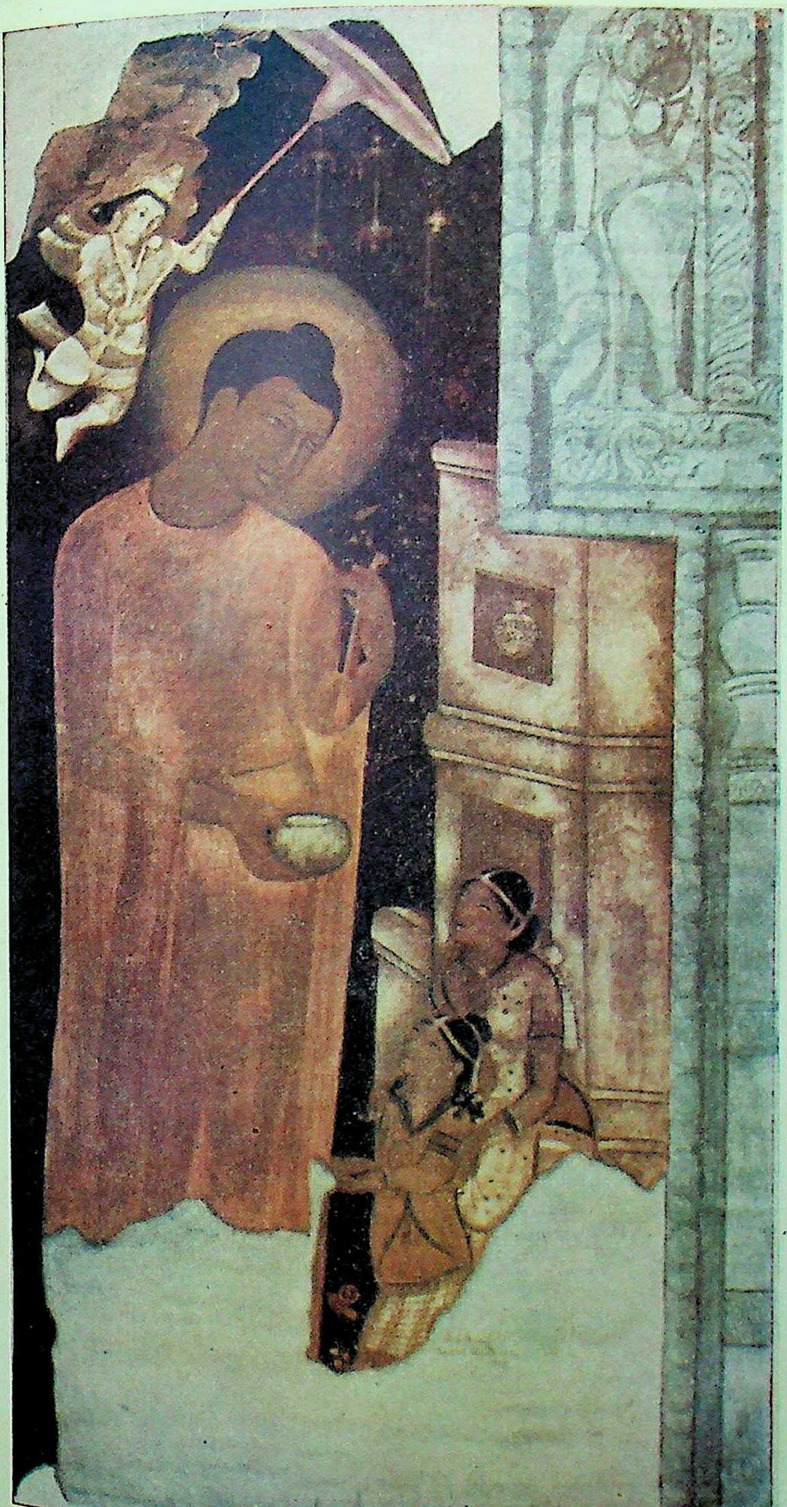

वर्ष ६ सितम्बर १९५६ अंक ९

हैदराबाद

आल्विन मेटल वर्क्स

लिमिटेड

सनतनगर, हैदराबाद द.—१८

★

सर्वोत्तम स्टील फ़र्नीचर के निर्माता

हर प्रकार का फ़र्नीचर

मकान, दफ़्तर, दूकान और अस्पतालों के लिए

ख़रीदिए !

राष्ट्र की सुन्दरतम और मज़बूत बसों के निर्माता

FIRE!

ACCIDENT!

MARINE!

The Hyderabad United Insurance Company

(*LIMITED*)

Sponsored by

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164.
ABID ROAD, HYDERABAD-Dn.

Telegram: **HUICOL** *Telephone:* **5579**

Chairman
L. N. GUPTA Esqr. I. A. S.

General Manager
H. D. MEHTA Esqr.

Branches :

BOMBAY, CALCUTTA, MADRAS, NIZAMABAD & MANCHIRIAL.

'HIND'

सस्ता, सरल, आकर्षक और शिक्षाप्रद

राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

* कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।

* हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।

* देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं: मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत्, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)-छमाही ३)-एक प्रति ८ आना।

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

आ गई !!

जल्दी की

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) की

'राष्ट्रभाषा रत्न' गाइड

(भाग १)

१० प्रसिद्ध लेखकों द्वारा इसमें—यशोधरा, गुप्त, सं० झाँसी की रानी, हिन्दी साहित्य का इतिहास, सामान्य भाषा विज्ञान, भारतीय शासन, नागरिक शा और राष्ट्रभाषा व्याकरण नामक पुस्तकों की टी आलोचना तथा सरल प्रश्नोत्तर दिए गए हैं।

लगभग १००० पेज की सजिल्द पुस्तक का मू डाक व्यय सहित १०) है। वी. पी. नहीं भेजी जाय मूल्य मनीआर्डर से भेजें।

दूसरा भाग (शेष पुस्तकों के लिए) दिसम्बर '५ तक तैयार हो जाएगा। आर्डर नोट करा दें।

पता :—

तेजनारायण टंडन, विद्या-मंदिर,
रानीकटरा, लखनऊ

हमारे सुविख्यात प्रकाशन

स्वामी विवेकानन्दजी की सुप्रसिद्ध पुस्तकें

भारत में विवेकानन्द : जैकेट सहित, सचित्र ५। "आज की परिस्थिति के उपयुक्त राष्ट्र-निर्माण संबन्धी वैध एवं ठोस विचारों से भरे, स्वामी जी द्वारा भारत में दिए गए भावयुक्त स्फूर्तिप्रद भाषण"

विवेकानन्द जी के संग में : आकर्षक जैकेट सहित ५।) "स्वामी जी के आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, कला-विषयक तथा भक्ति संबन्धी संभाषणों का रोचक, महान् शिक्षाप्रद तथा पथ प्रदर्शक संग्रह।"

पत्रावली : दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २=) "स्वामी जी के शक्ति सम्पन्न पत्रों का सङ्कलन।"

देववाणी : सचित्र, २=) "अमृततुल्य, आध्यात्मिक अन्तः प्रेरणा से भरे उपदेश।" शक्तिदाई विचार ।।=); भारतीय नारी ।।।); व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १=); मेरे गुरुदेव ।।=); विवेकानन्द जी की कथाएँ १।); कवितावली ।।=)

धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : दो भागों में, सजिल्द, आकर्षक जैकेट सहित, प्रत्येक का २।।।) "धर्म-जीवन की उलझनों का सरस भाषा में सूक्ष्म विवेचन करते हुए उनके परिहार का मार्ग दर्शाया है।"

विवेकानन्द-चरित : हिन्दी में स्वामी जी की एक मात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकट ६)

श्री रामकृष्ण लीलामृत : विस्तृत जीवनी, दो भागों में, महात्मा गांधी की भूमिका सहित, प्रत्येक का ५)

श्रीरामकृष्ण वचनामृत : तीन भागों में, संसार की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित, सजिल्द, जैकेट प्र. भा. ६); द्वि. भा. ६); तृ. भा. ७)

गीतातत्व : स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु भाई स्वामी शारदानन्द कृत, सुन्दर जैकेट सहित, २।=)

स्वामीजी की अन्यान्य लोकप्रिय पुस्तकें

ज्ञान योग ३); भक्तियोग १।=); राजयोग ।।); कर्म योग १।।=); प्रेम योग १।=); सरल राजयोग ।।); आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १।); हिन्दू धर्म १।।); धर्म रहस्य १); धर्म विज्ञान १।।=); हिन्दू धर्म के पक्ष में ।।=); शिकागो वक्तृता ।।=); मरणोत्तर जीवन ।।); स्वाधीन भारत जय हो १=); प्राच्य और पाश्चात्य १।); वर्तमान भारत ।।);

नए प्रकाशन : जाति, संस्कृति और समाजवाद १); चिन्तनीय बातें १); विविध प्रसङ्ग १=)

विस्तृत सूची पत्र के लिए लिखिए : श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली (अ) नागपुर—१ (म० प्र०)

जीवन साहित्य

हिन्दी के उन मासिक पत्रों में से है जो

१. लोक रुचि को नीचे नहीं, ऊपर ले जाते हैं,
२. मानव को मानव से लड़ाते नहीं, मिलाते हैं,
३. सच्ची और स्थायी शान्ति को असंभव नहीं, संभव बनाते हैं,
४. आर्थिक लाभ के आगे झुकते नहीं, सेवा के कठोर पथ पर चलते हैं,

जीवन साहित्य की सात्विक सामग्री को छोटे बड़े, स्त्री-बच्चे सब निःसंकोच पढ़ सकते हैं। उसके विशेषांक तो एक से एक बढ़ कर होते हैं।

जीवन साहित्य विज्ञापन नहीं देता। केवल ग्राहकों के भरोसे चलता है। ऐसे पत्र के ग्राहक बनने का अर्थ होता है राष्ट्र की सेवा में योग देना।

वार्षिक शुल्क के ४) रु. भेज कर ग्राहक बन जाइए।

ग्राहक बनने पर मण्डल की पुस्तकों पर
आपको कमीशन पाने की भी सुविधा हो जाएगी।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र

दर्शन और मनोविज्ञान की

आधुनिक प्रवृत्तियों पर

प्रकाश डालनेवाला

हिन्दी में अपने ढङ्ग का

अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ सिद्धगिरि, बनारस

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

—: विश्व-ज्योति :—

: सम्पादक :
श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी. ए.
संचालक : **श्री विश्वेश्वरानन्द**

विश्व हित की साधना के लिए :

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय
(ग) बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा : ८ रुपए

१०) रु. वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, 'विश्व-ज्योति'
साधु आश्रम, होशयारपुर (पंजाब)

वार्षिक मूल्य ८ रु. **टेलीफोन नं. २५८७**

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ-शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम, राष्ट्र-निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए 'सम्पदा' सबसे उपयोगी पत्र है।

'सम्पदा' के **योजना अंक** में पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा **है वस्त्र उद्योग अंक** मूल्य १।) रु.

अभी से ग्राहक बनिए।

नमूने के लिए ।।।) आने के टिकट भेजिए।

मैनेजर 'सम्पदा', अशोक प्रकाशन मन्दिर
रोशन-आरा रोड—दिल्ली

'अजन्ता'

की

परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद-द.

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर
इन्स्टीट्यूट ऑफ़ एशियन स्टडीज़, हैदराबाद-द.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुकर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल आफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

कहानी

वार्षिक विशेषांक—१९५५

हिन्दी मासिक पत्रों के विशेषांकों में एकदम नए ढंग का विशेषांक

नवीनतम कहानियाँ ∴ नयनाभिराम कवर ∴ सचित्र लेखक-परिचय

और भी बहुत-सी अनूठी सामग्री

पृष्ठ संख्या ४०० ❀❀ मूल्य केवल ढाई रुपए

चार रुपए भेजकर वार्षिक ग्राहक बनानेवालों को

बिना मूल्य

आज ही अपना चन्दा भेजिए।

सरस्वती प्रेस ५, सरदार पटेल मार्ग, इलाहाबाद-१

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६
सितम्बर १९५४
अङ्क ९

सम्पादक
वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

संचालक
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के
शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

तार : **हिन्दी**

फोन : ५४५०

अनुक्रम

निशीथ-आह्वान
आरसीप्रसाद सिंह १
श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्
जगन्नाथ एम. ए. ३
चाँदनी का क़फ़न
रमाकान्त श्रीवास्तव ५
मित्र से भेंट
श्रीहरि ६
कल और आज
कुमार जितेन्द्र तिवारी ७
चार रुबाइयाँ
मनोहर प्रभाकर एम. ए ८
हिन्दी में पत्रकारिता
इन्द्र विद्यावाचस्पति ९
महान् ग्रीक-विचारक प्लेटो
रामनन्दन प्रसाद सिंह एम. ए. ११
भारत में कृषि-वित्त
कृष्णशंकर व्यास बी. कॉम. २०
शिव-रुद्र
आदित्य मिश्र २४
विजयनगर नरेश हरिहर के मन्त्री ठाकरसी
अगरचन्द नाहटा २९
तुलसी का जन्म-स्थान
चन्द्रवती पांडे ३५
श्रव्य-काव्य में रस-कल्पना का आधार
आनन्द प्रकाश दीक्षित ३८
'निर्गुण' जी की कहानी-कला
प्रकाशचन्द्र गुप्त ४१
चम्बे दिए धारे
घनश्याम सेठी ४३
अनन्त हिम-प्रदेश में
विराज ४८
वीरेशलिंगम् पन्तुलु
हनुमच्छास्त्री 'अयाचित' एम. ए. ५१
नागराज-सुश्रुवा, श्वसुरम् अथवा शेषनाग
सत्यवती मल्लिक ५८
और दीप बुझ गया (कहानी)
कुमारी उषा ६१
कला-चर्चा ६५
श्री सईद बिन मुहम्मद
मैक्सिको की कला
चिट्ठी-पत्री ६७
गोविन्द प्रसाद केजरीवाल, हरिशंकर शर्मा, रामगोपाल शुक्ल, वंशीधर विद्यालंकार, रामनिरंजन पाण्डेय
नीर-क्षीर ७०
बाहर-भीतर : डॉ. देवराज, मालवी और उसका साहित्य : श्याम परमार, विद्रोही ब्रानपुर : वासुदेव गोस्वामी, आज के कवि : ललित मोहन अवस्थी, आर्थिक समीक्षा : प्र० स० श्रीमन्नारायण अग्रवाल, पीताम्बर का खून : सूर्या कमलानी, नागिन : सूर्या कमलानी, अपराधों की छाया में : सूर्या कमलानी
सामयिक ७५
अंग्रेज़ी भाषा का विकास
रंगों के द्वारा चिकित्सा
मैं कविता कैसे लिखता हूँ ?
पुर्तगाल की नीग्रो सेनाएँ
चीन में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार
पंजाब की लोक-कथाएँ
सम्पादकीय ८०
वंशीधर विद्यालंकार

चित्र

स्वावलम्बी : श्री सईद बिन मुहम्मद
सौजन्य : चित्रकार श्री सईद बिन मुहम्मद

वार्षिक मूल्य ६) रु०

एक अङ्क का १)

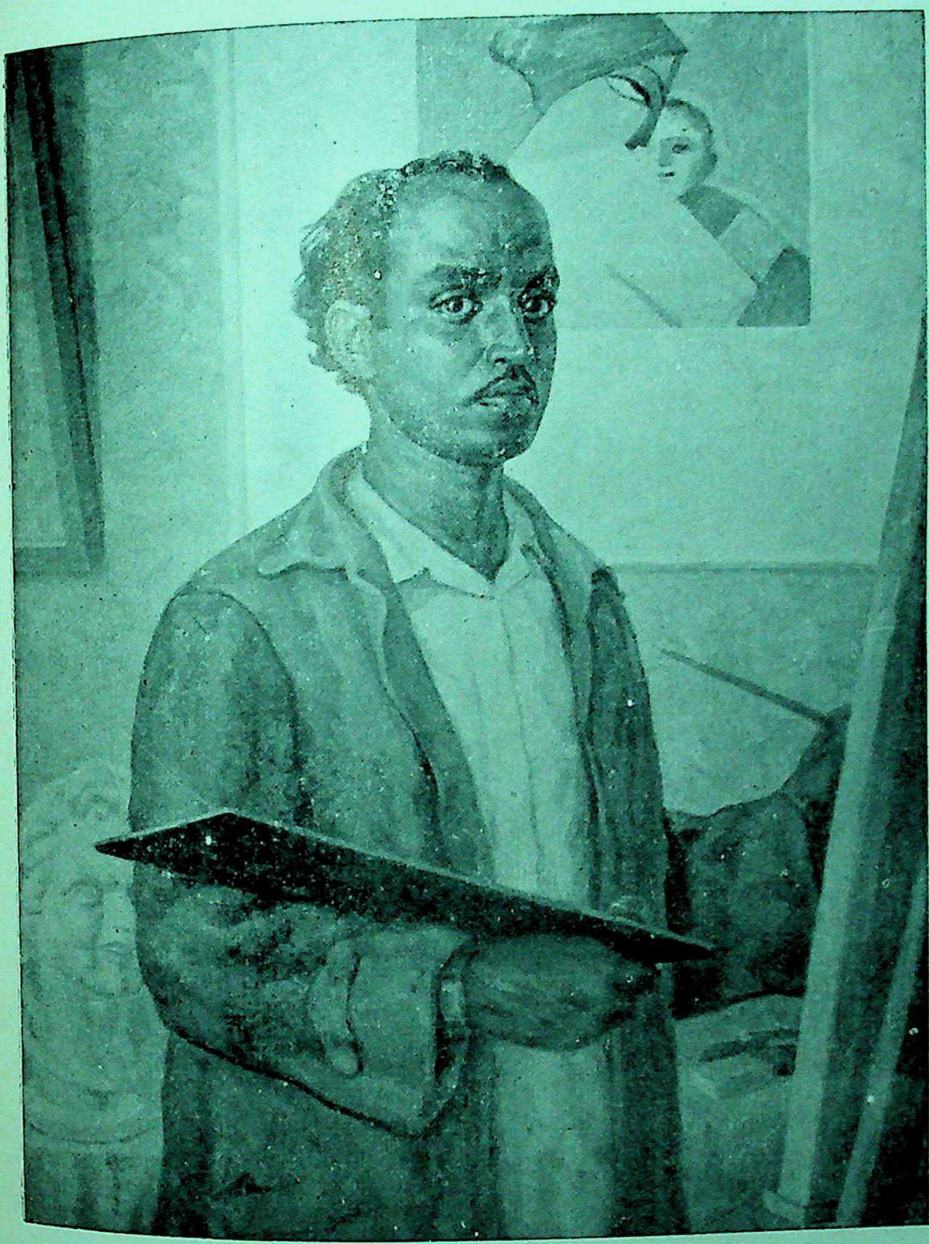

स्वावलम्बी

सईद बिन मुहम्मद

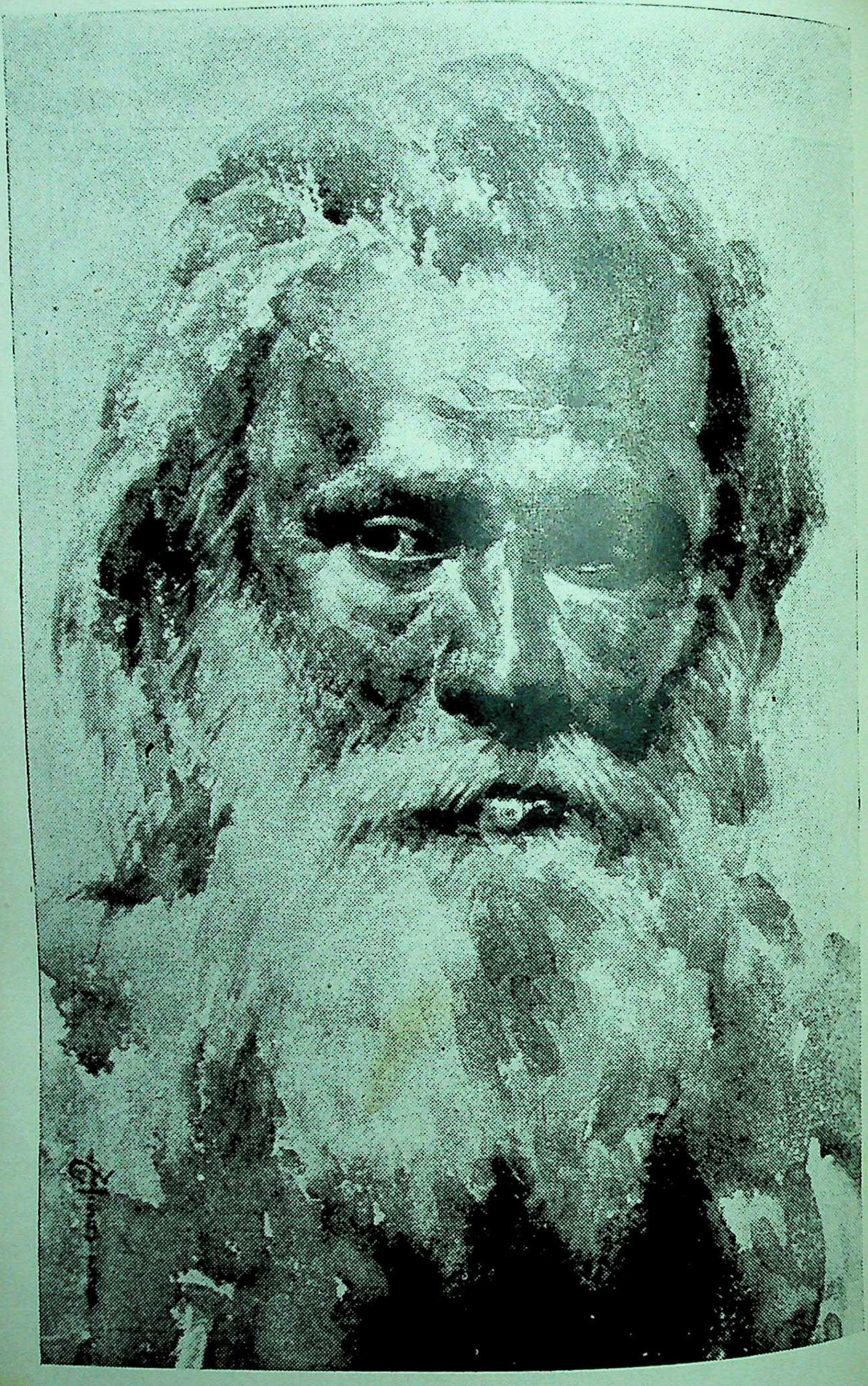

सौजन्य

चित्रकार : सईद बिन मुहम्मद

वर्ष ६ | सितम्बर | अङ्क ९

निशीथ-आह्वान

तुम मिलोगे जब नहीं, आकाश से भी
प्राण ! आधी रात में तुमको पुकारूँगी !

मेघ का हुंकार सुन कर स्वप्न में
कल्पना जब चौंक कर जग जायगी
तार टूटेंगे मिलन के, नींद भी
जब न आश्रय लोचनों में पायगी,
पूर्णिमा के पूर्ण शशि की जगमगाती-सी
आरती आकुल तुम्हारी मैं उतारूँगी !
प्राण ! आधी रात में तुमको पुकारूँगी !

ढूँढ़ते तुमको फिरेंगे ज्योति के
शलभ-दल अविराम छाया लोक में !
अश्रु के मोती लुटा दूँगी तरल
मैं तुम्हारे चिर-विरह के शोक में !

क्षुब्ध मैं तत्क्षण बनूँगी रंगिनी झंझा,
खोज कर जिस दिन तुम्हें सर्वत्र हारूँगी !
प्राण ! आधी रात में तुमको पुकारूँगी !

मुक्त मैं मन्थन करूँगी सिन्धु का,
कल्पतरु झकझोर डालूंगी प्रवर !
खोल दूँगी द्वार मैं वैकुण्ठ का,
सूर्य का पथ, वायु की गति रुद्ध कर !
जब न मानेगी हठीली चेतना मेरी,
पी हलाहल मैं तुम्हारी स्मृति बिसारूँगी !
प्राण ! आधी रात में तुमको पुकारूँगी !

यूथिका—वन में करूँगी नृत्य मैं,
दूत भेजूँगी प्रथम आषाढ़ में !
मैं खिलूँगी रक्त संध्या पुष्प-सी,
घेर लूँगी मैं धरा को बाढ़ में !
रौंद डालूँगी जगत् उन्मादिनी बन कर,
जय-पराजय मैं नहीं कुछ भी विचारूँगी !
प्राण ! आधी रात में तुमको पुकारूँगी !

मृत्यु को दूँगी अमर वरदान मैं,
प्रीति माँगेगी प्रलय-अनुरागिनी !
बाँध ममता-पाश में जब विश्व को
चूम लेगी घोर तम की नागिनी !
रागिनी आनन्द की अन्तिम बजा कर मैं,
दिव्य उस सौन्दर्य पर सर्वस्व वारूँगी !
प्राण ! आधी रात में तुमको पुकारूँगी !

जब प्रथम मधुमास में उल्लासमय
काम की वन में लगेगी आग-सी !
रूप—वीणा की मधुर झंकार में
जब बजेगी एक दीपक-राग-सी !
मोह-मूर्च्छा से सजग तत्काल होकर मैं
शिशिर के उच्छ्वास-सी जग से सिधारूँगी !
प्राण ! आधी रात में तुमको पुकारूँगी !

पोस्ट बॉक्स १०७,
पटना—१

—आरसीप्रसाद सिं

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्

आसव से प्राण नहीं मिलता
मिलता है प्राण वेदना से !

वेदना मेघ की तिमिरमयी फिर भी वह बरसाती पानी
रवि की पीड़ा सर्वांग जलन पर उससे जग जाते प्राणी
शशि की वेदना कलंकमयी पर वही सरसता का दानी
वेदना सभी की है महान्, वेदना सभी की कल्याणी !
वैभव से दान नहीं होता
होता है दान भावना से !

बादल ऊपर से ही काले पर रजनी अन्तर से काली
तड़िता-सी तड़प बादलों में पर निशा वेदना से ख़ाली
जब अन्तर ही काला अपना तब क्या कर सकती उजियाली
रजनी का मान न हो सकता वह लाख मनाए दीवाली !
उत्सव से त्राण नहीं मिलता
मिलता है त्राण साधना से !

कब गति अस्थिर मंज़िल अस्थिर कब पग अस्थिर कब मग अस्थिर
पर जब अपना मन ही अस्थिर तब सबके सब लगभग अस्थिर
तब गति अस्थिर तब पग अस्थिर तब मग अस्थिर तब जग अस्थिर
सबके सब एक साथ अस्थिर सबके सब विलग-विलग अस्थिर
कलरव से ध्यान नहीं हटता
हटता है ध्यान वासना से !

कल्पना सत्य है यदि उसका आधार वेदना है कोई
वेदना सत्य है यदि उसका उपहार कल्पना है कोई
कब अम्बर का इस धरती पर विस्तार वंचना है कोई
अम्बर से स्वर्ण विहान सुलभ साकार ज्योत्स्ना है कोई
सम्भव से गान नहीं मिलता
मिलता गान है कल्पना से !

कब धरती से ऊपर उठ कर धरती को जाते भूल जलद
व्यापक सेवा के हेतु मेघ लेते हैं इतना ऊँचा पद

सेवा विहीन पद देता मद सेवा विलीन पद गौरवप्रद
रिमझिम करते हैं घन उदार टिमटिम करता तारों का मद
गौरव अभिमान नहीं लाता
आता अभिमान वंचना से !

सब जगह धर्म का ही प्रचार धार्मिकता का न प्रचार कहीं
सब कहीं कर्म का ही प्रसार सात्विकता का न प्रसार कहीं
सब ओर वर्म की ही पुकार निर्भयता की न पुकार कहीं
सब ठौर मर्म पर ही विचार मार्मिकता पर न विचार कहीं
उद्भव उत्थान न कर सकता
यदि वह अनजान चेतना से !

भगवान् के लिए उच्चवाद याचना के लिए निम्नवाद
साधना के लिए सजग तर्क भावना के लिए जड़ प्रमाद
जब माँग स्वयं नीची अपनी तब कब सम्भव ऊँचा प्रसाद
तब कब मिट सकता है विवाद तब कब मिट सकता है विषाद
मानव न महान् योजना से
है मनुज महान् याचना से !

पाषाण मूर्ति भी उच्च माँग पर चिर अदीनता भर देती
सर्वोच्च शक्ति भी निम्न माँग की कब दरिद्रता हर लेती
है अन्य नहीं कोई नाविक याचना स्वयं नौका खेती
वह दृष्टि धन्य, वह दृष्टि धन्य, याचना जहाँ जिससे चेती
नित तव आह्वान प्रेरणा का
नित नव निर्माण प्रेरणा से !

जड़ प्रकृति मात्र पर तुच्छ विजय को नर विज्ञान समझ बैठा
सस्ती भावुकता को अपनी कवि सुन्दर गान समझ बैठा
मस्ती को आसव प्रिय मानव कितना आसान समझ बैठा
भोजन ही को समझा जीवन सांसों को प्राण समझ बैठा
अनुभव से ज्ञान नहीं मिलता
मिलता है ज्ञान प्रार्थना से !

२५, रामतीर्थ नगर,
लखनऊ

चाँदनी का कफ़न

साँझ होते ही
न जाने किस बधिक ने
खून कर डाला उजाले का
क्षितिज पर रक्त के छींटे
छिटक कर पड़ गए हैं
दिग्वधुओं के नयन के नीर को छू कर
समीरण नम हुआ है
औ' उसासों से प्रकम्पित
पेड़ की फुनगी
तड़पती लाश
अब तक प्राण कुछ-कुछ शेष हैं
पहन काला वस्त्र शिर से पाँव तक
रात है मातम मनाती
मरसिया पढ़ती
सुरों में झिल्लियों के
दूर से ही देखते तारक तमाशा,
किन्तु आकर चाँद ने डाला तुरत ही
चाँदनी का कफ़न झीना

—रमाकान्त श्रीवास्तव

मित्र से भेंट

ओ हो हो हो, भाई, तुम हो,
कहाँ रास्ता भूल गए हो—
आज अचानक इधर आ गए,
धन्य भाग्य सौ साल बाद जो आज मिले हो,
कहो, कुशल तो है भाभी जी तो अच्छी हैं,
बच्चे कैसे हैं, करते हो कहाँ काम क्या,
आओ चलें दो क़दम उस चौराहे तक तो,
यार, पानवाली देती है पान ग़ज़ब का,
हाँ, तो मुझे बताओ किस होटल में ठहरे,
कब तक रुके रहोगे बोलो !
[आज सभी का बुरा हाल है,
मध्यम वर्गी हम जैसे तो मरे हुए हैं,
अब तो नहीं नौकरी में कुछ मज़ा रह गया,
अगर एक मेहमान ठहर जाए दो दिन तक,
समझो पिटा दिवाला घर का ।
पानी-भोजन बड़ी बात है, पान बहुत है,
(... ... ...,
... ...,
चुप बेदिल ! बेबस, बेशर्म न बोल ज़रा तू !)]
हाँ, तो मिलते रहो यहाँ ठहरे हो जब तक,
मैं भी चाहूँगा तुम से हो भेंट रोज़ ही,
हाँ तो भई, चलो, मुझको जाना है जल्दी,
अजब परेशानी है, मुझको बहुत काम हैं,
अच्छा भाई, चलता हूँ, आदाब-अर्ज़ है !

× × ×

ये मेरी दो शक्लें हैं भीतर बाहर की
जिन को सदा अकेले में देखा करता हूँ,
कभी खूब अपने पर हँसता
और कभी रोना आता है

मजीदिया इस्लामिया कालेज,
इलाहाबाद (यू० पी०)

कल और आज

कल जब मैंने तुम्हें न जाना
प्यार मुझे तुम देने आई
किन्तु आज जब जान चुका हूँ
तुमने मेरी सुधि बिसराई
यह कैसी विधि की विडम्बना

कल तक पास खड़ी थीं मेरे
मैंने किन्तु न आहट पाई
आज दूर जब चली गईं तुम
याद तुम्हारी सहसा आई
यह कैसी विधि की विडम्बना

कल तक गूँज रही थी तेरे
सुमधुर गीतों की मधुराई
किन्तु आज जब सुनने बैठा
सूनी की सूनी अमराई
यह कैसी विधि की विडम्बना

कला महाविद्यालय,
बिलासपुर

—कुमार जितेन्द्र तिवारी

चार रुबाइयाँ

तुम नहीं थे स्वप्न का संसार था वह
दो निमिष को रूप का बाज़ार था वह
भावनाओं में न बँध पाया कभी जो,
रूपसी, मेरे हृदय का प्यार था वह

तुम हँसे ऐसे कि जैसे फूल झरते
तृषित उर की क्यारियों में नीर भरते
मौत से जी उठे, जी, जी, कर मरे फिर,
यों न जाने हम कभी मरते न मरते

दिल दिया तुम को न लेकिन ले सके तुम
भीख जो माँगी न वह भी दे सके तुम
ज़िन्दगी की नाव जो मझधार में है,
प्रीत की पतवार से ना खे सके तुम

मानता हूँ प्रिय अभी नादान हो तुम
लहलहाते एक पर उद्यान हो तुम
हरिण तुम अज्ञात युत कस्तूर-सौरभ,
एक अनजाने अरे वरदान हो तुम

—मनोहर प्रभाकर

'अमर-ज्योति' साप्ताहिक,
जयपुर (राजस्थान)

हिन्दी में पत्रकारिता

यदि हिन्दी के सामयिक पत्रों के प्रारम्भिक इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें एक विशेष बात दिखाई देती है। समझा जाता है कि यूरोप में सामयिक पत्र का सूत्रपात रोम के निवासियों की समाचार-सम्बन्धी उत्सुकता से हुआ। उनकी उत्सुकता को सन्तुष्ट करने के लिए दिन भर के समाचार लिख कर नगर के सार्वजनिक स्थान पर चिपका दिए जाते थे। वह हस्तलिखित बुलेटिन समाचार पत्रों के बीज बन गए। भारत में 'कलकत्ता नगर' नाम का सबसे पहला समाचार पत्र कलकत्ते से अंग्रेज़ी में निकला। वह भी समाचार जिज्ञासा का ही फल था परन्तु हिन्दी में जो पहले सामयिक पत्र निकले वे समाचार जिज्ञासा के फल न हो कर, साहित्य-निर्माण की प्रेरणा से उत्पन्न हुए थे। हिन्दी के आधुनिक युग में नाम लेने योग्य पत्रकार कौन थे? भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं॰ प्रतापनारायण मिश्र, पं॰ बालकृष्ण भट्ट तथा ऐसे ही अन्य साहित्य-महारथी।

उन्होंने आधुनिक हिन्दी के साथ ही साथ हिन्दी के सामयिक पत्रों की भी बुनियाद रखी। जैसे मनुष्य अपने जन्म से प्राप्त हुई विशेषताओं से जीवन भर में भी पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकता वैसे ही हिन्दी के सामयिक पत्र फिर चाहे वे दैनिक हों या मासिक, अपने जन्म से प्राप्त साहित्यिक प्रवृत्ति से आज तक भी मुक्त नहीं हो सके। हिन्दी के सामयिक पत्रों की यह एक सनातन परम्परा हो गई है कि वे हिन्दी भाषा के समर्थन, संवर्धन और समालोचन को अपने कर्तव्य का एक मुख्य अंश मानते हैं। यह प्रवृत्ति हिन्दी पत्रों के जन्मदाताओं की देन है।

कुछ आगे चल कर हिन्दी में मुख्य रूप से समाचार देनेवाले पत्र भी प्रकाशित होने लगे। कालाकांकर से प्रकाशित होनेवाला "हिन्दुस्तान" हिन्दी का पहला दैनिक-पत्र था। उसके सम्पादक स्वनामधन्य पं॰ मदनमोहन मालवीय थे। इधर हिन्दी में समाचार-पत्रों का निकलना प्रारम्भ हुआ और उधर भारत में राष्ट्रीय जागृति का सुप्रभात आ पहुँचा। फलतः शुरू से ही हिन्दी पत्रों की परम्परा यह हो गई कि वह राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रबल समर्थक बन गए। ज्यों ज्यों देश में स्वतन्त्रता का आन्दोलन तीव्र होता गया त्यों त्यों हिन्दी पत्रों की टोन भी तीव्र होती गई। हिन्दी के पत्रकार अपना मुख्य धर्म-सा मानने लगे कि देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में उन्हें सेना की अगली पंक्ति में रहना चाहिए। लोकमान्य तिलक और गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे निर्भय पत्रकारों को अपना लक्ष्य मान कर हिन्दी के साधारण से साधारण पत्रकारों ने भी लगभग ४० वर्षों तक स्वाधीन पत्रकारिता का नमूना पेश किया।

स्वाधीनता आन्दोलन के उस युग में हिन्दी के पत्र मुख्य रूप से राष्ट्रीय सेना के सिपाही से बन गए थे। स्वाभाविक ही था कि उन पर अंग्रेज़ी सरकार का दण्ड बड़े ज़ोर से पड़ता। वह दण्ड खूब गर्जन-तर्जन के साथ पड़ा। फिर भी सामान्य रूप से हिन्दी के पत्रकारों के चरण अपने मार्ग से विचलित न हुए और इस प्रकार हिन्दी की पत्रकारिता की साहित्यिक परम्परा के साथ-साथ स्वाधीनता की परम्परा ओत-प्रोत हो गई।

समय ने पलटा खाया और भारत ने नए युग में प्रवेश किया। उस युग ने हिन्दी के समाचार-पत्रों को कई प्रकार की सफलता का प्रसाद दिया। वे निरन्तर घोषणा करते रहे थे कि भारत की राष्ट्रभाषा होने की योग्यता केवल हिन्दी में है। देश ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया। वे देश की स्वाधीनता के समर्थक थे। देश में सर्वथा स्वाधीन गणतन्त्र की स्थापना हो गई। इस प्रकार उसके दो प्रधान उद्देश्य सिद्ध हो गए और हिन्दी के समाचार-पत्रों के लिए तथा सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य के लिए देश का विशाल क्षेत्र खुल गया।

परन्तु जैसे गुलाब के फूल के साथ कांटे का होना अनिवार्य है ऐसे ही बड़ी से बड़ी भलाई के साथ संकट लगा रहता है। समुद्र-मन्थन से अमृत उपलब्ध हुआ तो विष का घट भी उद्भूत हो गया। इसी प्रकार यह नया युग पत्रकारिता के लिए अनेक सफलताओं के साथ-साथ बहुत से संकट भी ले कर आया है। हिन्दी पत्रकारिता का भविष्य इस पर अवलम्बित है कि वह उन

संकटों के जाल को काट कर अपने अब तक स्वीकार किए हुए मार्ग पर चलती रह सकती है या नहीं ?

वे संकट कौन से हैं ? एक ऐसे छोटे-से सिपाही पत्रकार के दृष्टिकोण से जो लगभग ३५ वर्ष तक युद्ध की अगली पंक्ति में रहा है, मुझे हिन्दी पत्रकारिता के सम्मुख ये तीन संकट दिखाई देते हैं। पहला संकट यह है कि कहीं हम लोग सुलभ सन्तोष के शिकार न हो जाएँ। कहीं हिन्दीवाले यह न समझ बैठें कि अब तो मोर्चा फ़तह हो गया है और अब चादर तान कर सोने का समय आ गया है। अभी नई दिल्ली बहुत दूर है—मार्ग में पहाड़ भी हैं और नदियाँ भी हैं; झाड़, झंखाड़ और खाइयाँ भी हैं। मोर्चा अभी फ़तह नहीं हुआ, अभी मोर्चे में प्रवेश हुआ है।

दूसरा संकट यह है कि भारत के पत्रकार की नगरी में उस संक्रामक रोग का प्रवेश हो गया है जिससे यूरोप और अमेरिका परेशान हैं। वह रोग है कि पत्रकारिता के क्षेत्र में पूंजी के चरण-कमल पड़ गए हैं। यह माना हुआ मन्तव्य है कि साधारण मनुष्य लोहे की ज़ंजीर को आसानी से तोड़ सकता है परन्तु चाँदी की ज़ंजीर का तोड़ना दुष्कर हो जाता है क्योंकि तोड़नेवाले की इच्छा-शक्ति निर्बल हो जाती है। ऐसी आशंका होती है कि जिन पत्रकारों ने राक्षसी दमन को हंसते-हंसते सह कर अपनी स्वाधीनता की रक्षा की थी, अब वे कहीं लक्ष्मी की पुष्पमाला के बदले में आत्मा न बेच बैठें। पराधीन भारत में विशुद्ध पत्रकारिता एक कठोर तप था। डर है कि कहीं स्वतन्त्र-भारत में वह वकालत की तरह एक पेशा न बन जाए। तप को पेशा बना देने की शक्ति यदि किसी में है तो लक्ष्मी में है। सभी पत्रकारों के लिए यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या वे नई परिस्थितियों में अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेंगे जिसके बिना पत्रकारिता संसार के लिए अभिशाप सिद्ध हो रही है ? हिन्दी के पत्रकार के लिए यह प्रश्न अधिक आवश्यक है क्योंकि अब पूँजी की दृष्टि विशेष रूप से उसी की ओर है। इस संकट को यदि न रोका गया तो एक तीसरा संकट पैदा हो जाएगा। यह सम्भव है कि सभी हिन्दी पत्रों की नौका अन्य अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के समाचार पत्रों के जहाज़ के साथ-साथ अपनी स्वाधीन सत्ता को ही खो बैठे। ऐसी दशा हमारी बदली हुई परिस्थिति हिन्दी पत्रों के लिए सिद्ध हो सकती है।

ये तो हैं सम्भावित संकट, इनसे बच कर चलना हिन्दी पत्रों का कर्तव्य है। यदि वे ऐसा कर सकें और संकटों की मार से बच जाएँ तो यह बात निर्विवाद से कही जा सकती है कि हिन्दी-पत्रकारिता का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। देखने में अनेक विघ्न-बाधाएँ हैं, परन्तु जैसे इसमें कोई सन्देह नहीं कि दो और दो होते हैं वैसे ही यह भी असन्दिग्ध है कि कुछ वर्षों के पश्चात् भारत में सरकारी तौर पर हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले लेगी। उस दिन हिन्दी के पत्र भारतीय के प्रधान व्याख्याकार और प्रतिनिधि बन जाएँगे। यह पद जितना ही ऊँचा होगा उसे प्राप्त करना या प्राप्त करने के योग्य बनना उतना ही कठिन होगा। उस पद को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि जिस दिन हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर पूरी तरह प्रतिष्ठित होनेवाली है उससे पहले ही हिन्दी के समाचार-पत्र उन साधनों से सम्पन्न हो जाएँ जिसके बिना राष्ट्र का पथ-दर्शक और प्रतिनिधि बनना असम्भव है। हमें उससे पूर्व समाचार पत्रों के लिए उपयुक्त शब्द-बोध को इतना पूर्ण और परिष्कृत कर लेना होगा कि पाठकों को हमारा अभिप्राय समझने और हमें प्रत्येक अभिप्राय को प्रगट करने में कोई कठिनाई न हो। हमें अपने लेखों में स्वाधीन विचार की वह भावना ओत-प्रोत कर देनी होगी जिसके बिना किसी स्वाधीन राष्ट्र का नेतृत्व नहीं किया जा सकता। हमें छपाई, समाचार संग्रह आदि की व्यवस्थाओं को इतना उन्नत कर लेना होगा कि ज़िम्मेदारी की आने पर हम अपने आपको अशक्त न पाएँ। यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस वैज्ञानिक घुड़दौड़ के युग में कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता जब तक उसे वैज्ञानिक साधनों की सुविधा प्राप्त न हो। हिन्दी पत्रों पर उत्तरदायित्व आ जाए जो आज अंग्रेज़ी पत्रों पर पड़ा हुआ है उससे पूर्व यह आवश्यक है कि हिन्दी उस बोझ को उठाने के लिए उद्यत हो जाएँ।

जवाहरनगर,
दिल्ली

—इन्द्र विद्यावाचस्पति

महान् ग्रीक-विचारक प्लेटो

ग्रीस के इतिहास में प्लेटो और अरस्तू का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है, जिनकी प्रकाण्ड विद्वत्ता और प्रतिभा ने ग्रीस देश का मस्तक ऊँचा उठाया है। महान् विचारक प्लेटो का जन्म एक कुलीन परिवार में हुआ था, जब कि एथेन्स के प्रजातन्त्र का पतन निकट था। आठ वर्षों तक उसने सुकरात की पाठशाला में शिक्षा ग्रहण की, फिर सुकरात की मृत्यु के बाद वर्षों तक यूरोपीय महादेश की सैर की। भ्रमण समाप्त हो चुकने के बाद उसने अपनी एकेडमी स्थापित की, जहाँ कि अध्ययन और अध्यापन का कार्य सुव्यवस्थित ढंग से चलने लगा।

प्लेटो के विचारों पर सुकरात की छाप स्पष्टतः दिखाई देती है, और यह सर्वथा स्वाभाविक भी था। सुकरात की ठोस शिक्षण-पद्धति के कारण उसके चारों ओर शिष्यों की एक मण्डली जुट गई थी जिनमें सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाशाली व्यक्ति प्लेटो ही था। अपने योग्य गुरु की भाँति प्लेटो भी व्यक्ति के व्यावहारिक सुधार का पक्षपाती था, और अपने इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने एकेडमी में वार्त्तालाप के माध्यम से शिक्षा आरम्भ की जिससे कि व्यक्ति के नैतिक और सांस्कृतिक अभ्युत्थान में उसे बड़ी आसानी हुई।

प्लेटो के राजनीतिक-दर्शन का अध्ययन करते हुए हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि उसके गुरु सुकरात की मृत्यु एथेन्स की प्रजातन्त्रीय व्यवस्था के हाथों हुई थी। अतः प्लेटो स्वभावतः उस व्यवस्था से क्षुब्ध था और एथेन्स की जनता के सामूहिक तथा वैयक्तिक जीवन से उसे घृणा हो गई थी। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप उसने अपनी अमर-कृति 'रिपब्लिक' में एक ऐसे आदर्श राज्य का चित्र खींचा है जो प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण हो। अनेक विद्याओं पर अधिकार होने के कारण प्लेटो की कृतियों में राजनीति, समाज-विज्ञान, नीतिशास्त्र और अध्यात्मविद्या का सुन्दर समन्वय हो पाया है जिससे उसके राजनीतिक-दर्शन की गहनता बढ़ गई है और साधारण पाठक उसकी गहराई तक पहुँच नहीं पाते। प्लेटो के तर्कों में यत्र-तत्र काव्यात्मक ऊँचाई भी देखने को मिलती है जिससे कि प्लेटो की प्रतिभा पर मुग्ध रह जाना पड़ता है।

प्लेटो की रचनाएँ उस काल की हैं जब कि राजनीतिक, सामाजिक और बौद्धिक-क्षेत्र में ग्रीस पतन की ओर बढ़ता जा रहा था और उसमें फूट की दरार बढ़ती जा रही थी। अवश्य ही इस पतन का सारा श्रेय उन सोफ़िस्टों को प्राप्त है जिनके उपदेशों ने ग्रीक-जीवन में भूकम्प ला दिया था। यह नहीं कहा जा सकता कि प्लेटो पर इन सोफ़िस्टों का प्रभाव नहीं था, किन्तु इतना तो मानना पड़ेगा कि प्लेटो के विचारों की प्रेरणाभूमि के रूप में हमें सुकरात की ओर ही देखना होगा बल्कि प्लेटो के दर्शन का तो आधार ही है सुकरात का यथार्थवादी सिद्धान्त, जो यथार्थ को ही सर्वस्व मानता है, किन्तु इतना होते हुए भी गुरु और शिष्य के सत्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण में पर्याप्त असमानता दिखाई देती है।

प्लेटो का मुख्य उद्देश्य न्याय और गुण को बढ़ावा देना था। अतः उसने राजनीति-विज्ञान को केवल इसीलिए अपनाया कि राज्य के द्वारा ये कार्य सुगमतापूर्वक सम्पादित किए जा सकते थे। उसकी धारणा थी कि एक आदर्श और सर्वभाँति सम्पन्न राज्य ही व्यक्ति के गुणों को ऊँचाई तक ले जा कर योग्यतम नागरिकों की सृष्टि कर सकता था। उसके अनुसार आदर्श राज्य में राजनीति तथा धर्मशास्त्र का समुचित समन्वय आवश्यक था, लेकिन सच पूछिए तो उसने राजनीति-विज्ञान को धर्मशास्त्र के सामने अत्यन्त गौण स्थान का अधिकारी सिद्ध किया जिसका आगे चल कर अरस्तू आदि विचारकों ने पूरी तरह विरोध किया था।

प्लेटो के राजनीतिक-दर्शन पर विचार करने के लिए हमें विशेषतः उसकी प्रमुख कृतियों का सहारा लेना पड़ता है। इन कृतियों में 'रिपब्लिक' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है जिसकी रचना ईसा के ३८६ वर्ष पूर्व हुई थी। इस अमर-कृति में शिक्षा-शास्त्र, धर्मशास्त्र और राजनीति-शास्त्र की एक साथ झाँकी देखने को मिलती है। दूसरी प्रमुख कृति 'दी पोलिटिक्स' है जिसकी

रचना ईसा के ३८० वर्ष पूर्व हुई थी। और तीसरी प्रसिद्ध कृति 'दी लॉज' है जिसका प्रकाशन प्लेटो की मृत्यु के बाद हुआ था किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि ४० वर्ष की अवस्था में लिखी गई उसकी प्रसिद्ध कृति 'रिपब्लिक' ग्रीक-दर्शन और साहित्य की मुकुट-मणि है। वही उसकी विचारधारा का केन्द्र-बिन्दु और राजनीतिक-दर्शन का आधार-स्तम्भ है। उसमें तत्कालीन ग्रीस के नगर-राज्यों का ही स्पष्ट चित्रण नहीं है, वरन् एक आदर्श राज्य की कल्पना भी है जिसमें तत्कालीन समस्त दुर्बलताओं को मिटा सकने की युक्तियाँ बताई गई हैं किन्तु अगर कोई यह समझे कि प्लेटो की यह आदर्श-राज्य की कल्पना आकाश-कुसुम मात्र है तो यह उसकी भूल होगी क्योंकि प्लेटो के सभी विचार तथ्य और तर्क, अनुभव और प्रयोग के आधार पर आधारित हैं।

'रिपब्लिक' के पाँच मुख्य भाग हैं। प्रथम और दूसरे अध्याय के आरंभिक अंशों में विस्तृत भूमिका के साथ-साथ मानव-जीवन, न्याय और नैतिकता के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किए गए हैं। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्यायों में राज्य के गठन और शिक्षा-पद्धति पर विस्तृत रूप से विचार व्यक्त किए गए हैं। पाँचवें, छठें, और सातवें अध्यायों में आदर्श-राज्य का चित्र खींचा गया है जो साम्यवाद और दर्शन के मूल तत्वों पर आधारित होगा। फिर आठवें और नवें अध्यायों में राज्य और व्यक्ति के भ्रष्ट स्वरूप का वर्णन किया गया है। दसवाँ अध्याय दर्शन और कला के पारस्परिक सम्बन्धों तथा आत्मा के स्वरूप पर प्रकाश डालता है। वस्तुतः 'रिपब्लिक' की वास्तविक महत्ता दूसरे, छठे और आठवें पर अवलंबित है। प्लेटो ने एक सत्यनिष्ठ ग्रीक की भाँति न्याय को ही सर्वोपरि स्थान दिया है और एक ऐसे राज्य की कल्पना की है जिसमें न्याय का ही राज्य हो। उसकी दृष्टि में राज्य, व्यक्ति का ही वृहत्तम स्वरूप है, अतः व्यक्ति और राज्य के गुण समान हैं।

उसका विश्वास था कि व्यक्ति संक्षिप्त रूप में समाज के गुणों से ही युक्त है। सच पूछिए तो स्वरूप-विधान की दृष्टि से 'रिपब्लिक' धर्मशास्त्र पर आधारित रचना है जिसमें व्यक्ति राज्य का एक सदस्य है और राज्य एक नैतिक समाज है। इस कृति में प्लेटो ने सोफ़िस्टों के विचारों का खण्डन भी किया है और तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार की निन्दा की है। एक आदर्शवादी चिन्तक होने के नाते उसकी यह धारणा थी कि आदर्श-राज्य की स्थापना का स्वप्न भी पूरा किया जा सकता है अगर दर्शन के विकास और दार्शनिकों के निवास के लिए कोई उत्तम स्थान प्राप्त हो सके। इस प्रकार पूरी तरह विचार करने पर वह आदर्शवादी की अपेक्षा विचारवादी अधिक सिद्ध होता है।

यह सोचते हुए कि आदर्श ही सत्य है, प्लेटो ने 'रिपब्लिक' में आदर्श-राज्य की स्थापना पर ज़ोर दिया है जो सर्वदेशीय और सर्वकालीन है। इस प्रक्रिया में उसने राज्य की तुलना व्यक्ति से की है और तीन आधार-स्तम्भों की कल्पना की है। पहले उसने राज्य द्वारा संचालित शिक्षा पर ज़ोर दिया है फिर अभिभावकों के बीच सम्पत्ति और स्त्रियों का साम्यवाद और अन्त में दर्शन द्वारा शासित राज्य स्थापित करने की राय दी है। राज्य का सूत्र उसने दार्शनिक-शासक के हाथों सौंपने का परामर्श दिया है जो विवेक का मूर्त्त रूप और गुणों की दृष्टि से प्रेरणा-भूमि सिद्ध होता है। इसी आवश्यकता को दृष्टि में रख कर प्लेटो ने अपनी शिक्षा-पद्धति का श्रीगणेश किया था जिससे कि दार्शनिक-अभिभावकों की परम्परा स्थापित हो सके। उच्च-वर्गों में साम्पत्तिक और पारिवारिक साम्यवाद का जो स्वरूप उसने अंकित किया था, वह इसी दृष्टि से कि जिसमें ये अभिभावक आर्थिक और सांसारिक लोगों से तटस्थ रह कर राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्य को भलीभाँति निभा सकें। राज्य में उसने तीन वर्गों का अस्तित्व स्वीकार किया है। जिसमें पहला वर्ग दार्शनिक अभिभावकों का है; दूसरा वर्ग है साधारण अभिभावकों का और तीसरा वर्ग साधारण जनों का जिनकी चेतना उतनी उद्बुद्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त आदर्श राज्य में उसने स्त्री और पुरुषों के समान अधिकार तथा कला पर राज्य का नियंत्रण आवश्यक बतलाया है।

प्लेटो ने जिसे आदर्श-राज्य बतलाया है उस राज्य में भी कई दुर्बलताएँ आज बताई जा सकती हैं। सम्पत्ति के साथ-साथ स्त्रियों को भी साम्यवाद के घेरे में लपेट लेना सरासर अन्याय है, भ्रष्टाचार की सीमा है। उसने गुलामी प्रथा का भी कहीं विरोध नहीं किया है और तीसरे वर्ग को अनादर की दृष्टि से देखा है जो मानवतावादी दृष्टिकोण से सर्वथा अनुचित है। उसका

साम्यवाद भी मानव-स्वभाव के विपरीत है, और केवल उच्च-वर्ग के हाथों में सत्ता का केन्द्रीकरण राज्य के राष्ट्रों की दृष्टि से घातक है।

'रिपब्लिक' के उपशीर्षक से पता चलता है कि प्लेटो ने न्याय को शीर्ष-स्थान का अधिकारी बताया है क्योंकि उसकी दृष्टि में पतन की खाई की ओर बढ़ते हुए एथेन्स को बचाने का एकमात्र साधन न्याय ही था। एथेन्स की राजनीति में जिस प्रकार स्वार्थ का प्राबल्य हो गया था, उसको देखते हुए प्लेटो का चित्त ऊब गया था। एक सच्चे राष्ट्रभक्त होने के नाते उसका दृढ़ विश्वास था कि कुछ मान्यताओं की उपेक्षा कर राज्य के प्रति समस्त नागरिकों की निष्ठा होनी चाहिए और इसके साथ-साथ राज्य में न्याय को सर्वश्रेष्ठ स्थान मिलना चाहिए। उसने न्याय के कई सिद्धान्तों का उल्लेख किया है तथा न्याय के विकास-क्रम पर ध्यान रखते हुए नैतिकता की चर्चा की है। इन विश्लेषणों में उसने अपने सिद्धान्त भी निश्चित किए हैं। उसका न्याय अवश्य ही थीरासमकत की भांति सामर्थ्यवानों की शक्ति न हो कर दार्शनिक नीतियों पर आधारित हैं। उसने स्पष्टतः कहा है कि राज्य का न्याय नागरिकों की कर्त्तव्य-भावना पर आधारित होना चाहिए। इस प्रकार उसने न्याय के क्षेत्र में अधिकार की अपेक्षा कर्त्तव्य पर अधिक बल दिया है। उसने आगे चल कर यह भी कहा है कि न्याय एक गुण है जो व्यक्ति और राष्ट्र के नैतिक-जीवन को पवित्रता प्रदान करता है बल्कि राज्य तो न्याय का ही मूर्त्त रूप है। दूसरे शब्दों में अगर राज्य यथार्थ है तो न्याय उसकी मूल-भावना है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्लेटो का राज्य-विभाजित समाज, राज्य द्वारा संचालित शिक्षा, दार्शनिक नृपतियों द्वारा शासन, साम्यवादी व्यवस्था द्वारा आर्थिक चिन्ता का गृह-झंझटों से उनकी मुक्ति और स्त्री वर्ग को पुरुषों के बराबर अधिकार—इन्हीं आधार-शिलाओं पर अवलम्बित है।

अब जब कि हम प्लेटो की इस न्याय-व्यवस्था का मूल्यांकन करते हैं तो स्पष्टतः कहना पड़ता है कि उसमें कुछ ऐसी दुर्बलताएँ हैं जिनका परिष्कार अत्यावश्यक कहा जा सकता है। प्लेटो की न्याय-व्यवस्था में अधिकार को विस्मृत कर कर्त्तव्य की शिक्षा दी गई है किन्तु सच पूछिए तो एक स्वस्थ समाज के लिए दोनों का समन्वय आवश्यक है। फिर राज्य की समस्त शक्ति को दार्शनिक नृपति के हाथों में केन्द्रीभूत बता कर उनको असीमित अधिकार दिया जाना भी घातक है। साथ ही उसकी साम्यवादी व्यवस्था में मानव-मनोविज्ञान के मूल तत्वों की उपेक्षा की गई है और अन्ततः यह कहा जा सकता है कि उसका न्याय-सिद्धान्त एक स्थिर सिद्धान्त है जिसमें विकास और परिवर्त्तन के लक्षण दिखाई नहीं देते।

अपने नागरिकतासम्बन्धी सिद्धान्तों में प्लेटो ने स्पष्टतः बताया है कि कौन से गुण हैं जो राज्य के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्यों को निश्चित करते हुए उन्हें आदर्श नागरिक बनाते हैं। उसके अनुसार आदर्श नागरिक के लिए शारीरिक-सौन्दर्य, बौद्धिक-जिज्ञासा, ज्ञान-प्राप्ति की योग्यता और इच्छा, सौन्दर्य को आँकने की क्षमता, पाप से घृणा, विचारों की मौलिकता और अपने बन्धुओं के प्रति प्रेम—ये ही आवश्यक गुण हैं। अवश्य ही ये गुण ग्रीकों के लिए निर्धारित किए गए थे, असभ्यों के लिए नहीं।

प्लेटो ने बताया है कि इस सुदृढ़ न्याय-व्यवस्था के लिए उपयुक्त भौतिक और बौद्धिक वातावरण भी आवश्यक है तथा राज्यभक्ति से प्रेरित व्यक्ति के लिए भी उचित है कि वह यथाशक्ति राज्य की सेवा करे! प्लेटो का विश्वास था कि राज्य के प्रति ऐसी निष्ठा उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार राज्य के माध्यम से हो। इस प्रकार जनता की शिक्षा, प्लेटो की न्याय-व्यवस्था का ही पूरक अंग है। उसकी दृष्टि में शिक्षा का अर्थ बाह्य-ज्ञान का संचय नहीं, वरन् आत्मा के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करना है जिससे कि व्यक्ति की आँखें प्रकाश प्राप्त करने में समर्थ हों। इस प्रकार की शिक्षा, जिसका उद्देश्य उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करना है, एक प्रक्रिया है जिसका जीवन भर अन्त नहीं हो सकता। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि आदर्श नागरिक का जीवन संयम, अनुशासन और चिन्तन का जीवन होना चाहिए जिसमें सत्य की खोज सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य के रूप में अधिष्ठित हो। इस प्रकार अपने कुछ विचारों में वह पूर्णतः आधुनिक विचारक प्रतीत होता है। सच पूछिए तो वही पहला विचारक है जिसने स्त्रियों को पुरुषों की पंक्ति में अधिकार की दृष्टि से ला बिठाया है। यहाँ तक

कि अपने आदर्श राज्य के लिए उसने स्त्री-निरीक्षकों की आवश्यकता पर बल दिया है। अवश्य ही अपने इस विचार के कारण वह अन्य ग्रीक-विचारकों से पूर्णतः भिन्न प्रतीत होता है। अरस्तू या अन्य ग्रीक-विचारकों की अपेक्षा प्लेटो ने शिक्षा-विभाग को अन्य विभागों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण बताया है। शिक्षा के उस स्वरूप के लिए प्लेटो को स्पार्टा से पूर्णतः प्रेरणा मिली थी और इसी आधार पर उसने स्पष्टतः घोषणा की थी कि एथेन्स की विशृङ्खल संगठन-व्यवस्था के सहारे नहीं, वरन् स्पार्टा की सुव्यवस्थित शिक्षा-पद्धति के आधार पर ही एथेन्स का उद्धार हो सकेगा।

उचित रूप से विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि प्लेटो की शिक्षा-व्यवस्था पूर्णतः प्रगतिशील और व्यवस्थित है। उसके अनुसार बचपन में शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो केवल ज्ञान-वर्द्धक ही न हो, वरन् बालक को जीवन की किसी दिशा विशेष की ओर आकृष्ट करने में समर्थ हो। युवावस्था की शिक्षा लिए उसने शारीरिक, बौद्धिक दोनों प्रकार से विकासोन्मुख होना आवश्यक बतलाया है। इस स्थान पर उसने आत्मा के विकास के लिए संगीत और शारीरिक विकास के लिए जिमनास्टिक को उपयुक्त माध्यम बतलाया है। उसके अनुसार शिक्षा का अन्तिम स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसके सहारे शिक्षार्थी अपने जीवन में आगे बढ़ सके और अपनी जीवन-नैया को खे सके। प्लेटो ने शिक्षा को अनिवार्य सिद्ध करते हुए यह परामर्श दिया है कि सत्रह-अठारह वर्षों तक प्रारंभिक शिक्षा का काल होना चाहिए जिसमें संगीत और जिमनास्टिक के साथ-साथ विज्ञान की शिक्षा भी दी जानी चाहिए। सत्रह-अठारह वर्षों से ले कर बीस की अवस्था तक केवल जिमनास्टिक की शिक्षा मिलनी चाहिए, तदनन्तर आवश्यक परीक्षा के बाद अभिभावक वर्ग के लिए बीस से पैंतीस वर्ष की अवस्था तक उच्च शिक्षा मिलनी चाहिए। यह काल दो भागों में विभाजित किया जा सकता है जिसमें बीस से तीस वर्षों तक अपने व्यवसाय की शिक्षा की ओर उसकी प्रवृत्ति होनी चाहिए। इस अवधि में पूर्णतः वैज्ञानिक कोर्स की व्यवस्था के साथ-साथ सैनिक-शिक्षा को भी उसने अनिवार्य बतलाया है। तीस वर्ष की अवस्था में पुनः परीक्षा के बाद उत्तीर्ण होनेवालों को अभिभावक बनने के लिए पाँच वर्षों तक हिसाब, ज्योतिष और तर्कशास्त्र की शिक्षा की भी उसने व्यवस्था की है।

'रिपब्लिक' के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में प्लेटो की उस शिक्षा-पद्धति के दर्शन होते हैं जिसमें स्पार्टा और एथेन्स की विभिन्न पद्धतियों का समन्वय प्रस्तुत किया गया है। उसकी शिक्षा-पद्धति में शिक्षा के कई सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं जिनमें व्यक्ति के साथ-साथ समाज के उत्थान की ओर भी ध्यान दिया गया है। इसके अतिरिक्त सैद्धान्तिक और व्यावहारिक शिक्षा का परामर्श देकर शारीरिक और आत्मिक शक्तियों के विकास पर भी पूरा बल दिया गया है। जन-सेवा से अलग होने के बाद भी उसने ज्ञान और शिक्षा को आवश्यक बतलाया है, क्योंकि उसके बाद भी व्यक्ति को लोक-कल्याण की भावना से अनुप्राणित होकर इस दिशा में प्रयास करना ही चाहिए।

प्लेटो की यह शिक्षा-प्रणाली शासक-वर्ग को ही व्यवस्थित करने के लिए निर्धारित की गई है जिसमें इस बात की ओर ध्यान रखा गया है कि शासक-वर्ग को विस्तृत ज्ञान और सांस्कृतिक आचरण से युक्त किया जाए, जिससे कि दार्शनिक भी राजनीतिज्ञ हो सकें। उसने अभिभावक वर्ग की विशेष चर्चा की है, क्योंकि उसका यह दृढ़ विश्वास था कि अभिभावक वर्ग ही, जो कि शासकों का वर्ग है, राज्य की रीढ़ है। अतः उच्च शिक्षा द्वारा शिक्षित योग्य अभिभावकों द्वारा ही सुदृढ़ राज्य की स्थापना—प्लेटो का उद्देश्य रहा है।

प्लेटो के राज्यसम्बन्धी सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित हैं कि 'व्यक्ति' और 'राज्य' दोनों सर्व भाँति समान हैं। अन्तर इतना ही है कि राज्य व्यक्ति का वृहत्तर रूप है, वह व्यक्तियों का समन्वित स्वरूप है। जर्मन आदर्शवादियों के अनुसार उसका विश्वास था कि राज्य मानव के गुणों का सर्वश्रेष्ठ रूप है। राज्य की संस्थाएँ व्यक्ति के विचारों और नैतिक सिद्धान्तों को व्यक्त करती हैं। उसके अनुसार मानव की आत्मा तीन भागों में विभाजित कर दी जा सकती है। वे हैं भूख, विवेक और चेतना। इन्हीं से सम्बन्धित राज्य के तत्व इस प्रकार हैं—आर्थिक तत्व जिसकी अभिव्यक्ति मज़दूरों और कारीगरों के रूप में होती है; दार्शनिक तत्व जिसकी अभिव्यक्ति शासक वर्ग के रूप में होती है और सैनिक तत्व जिसकी अभिव्यक्ति सैनिकों के माध्यम से होती है।

प्लेटो का यह विभाजन भारतीय वर्णाश्रम धर्म से मिलता-जुलता है जिसके अनुसार ब्राह्मण ज्ञान का केन्द्र, क्षत्रिय शक्ति का केन्द्र और वैश्य अर्थ-वाणिज्य का केन्द्र है। भारतीय व्यवस्था के शूद्रों को प्लेटो के दासों की पंक्ति में रखा जा सकता है। इस प्रकार प्लेटो ने राज्य की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है, जो अवश्य ही उस काल की दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती है। इतना ही नहीं, प्लेटो ने राज्य के विकास की आर्थिक व्याख्या भी बड़े ही स्पष्ट शब्दों में की है जिसमें बतलाया है कि व्यक्ति की आवश्यकताएँ अनेक हुआ करती हैं, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता, क्योंकि उसके पास न तो उतना समय है और न साधन ही। इसीलिए व्यक्ति के बीच सहयोग की आवश्यकता प्रतीत होती है। इस प्रकार प्लेटो के अनुसार राज्य के निर्माण में सर्वश्रेष्ठ कारण आर्थिक-प्रेरणा ही है जिससे प्रेरित होकर मनुष्य एक दूसरे से मिल कर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आर्थिक-व्यवस्था का सूत्रपात करते हैं। फिर वे शीघ्र ही इस तथ्य की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं कि कुछ व्यक्ति किसी विशेष दिशा में अधिक प्रयत्नवान् और प्रतिभा-संपन्न हुआ करते हैं। अतः मज़दूरों में विशिष्टता प्रारम्भ होती है, किन्तु मनुष्य केवल 'रोटी' के सहारे ही जी नहीं पाता, वरन् उसकी अधिकार-रक्षा के लिए सैनिक-वर्ग का उदय होता है, जो युद्ध की कला में कुशल होता है। अन्ततः एक ऐसे वर्ग का उदय होता है, जो राजनीतिक सिद्धान्तों पर विशेषाधिकार प्राप्त कर शासन की कला में विशिष्टता प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्लेटो की विचारधारा के अनुसार आर्थिक-सहयोग के आधार पर ही राज्य का विकास हुआ है और मानव के तीन मूल तत्वों के आधार पर समाज में विशिष्टता का प्रादुर्भाव हो सका है, जिसके फलस्वरूप ही मज़दूरों, सैनिकों और दार्शनिकों का वर्ग विकास प्राप्त कर पाया है। इन वर्गों में शासक वर्ग का गुण है बुद्धिमत्ता, सैनिक वर्ग का गुण है साहस और राज्य का गुण है न्याय, बुद्धि, साहस तथा आत्मसंयम।

प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य में व्यक्तियों और वर्गों के लिए कार्य की विशिष्टता पर ज़ोर दिया है। सुकरात के इस सिद्धान्त से कि ज्ञान ही गुण है, प्लेटो की इस विशिष्टता का सूत्रपात हुआ है। उसका विश्वास था कि श्रम का विभाजन, कार्य की विशिष्टता, और सेवाओं के आदान-प्रदान से ही स्वस्थ और सुसंगठित राष्ट्र की अवतारणा हो सकती है, क्योंकि इससे व्यक्ति और वर्ग के बीच का संघर्ष मिट जाता है। इसी भाँति अगर शासन का कार्य विशेषज्ञों के हाथों में सौंप दिया जाता है, तो आर्थिक अराजकता और क्रान्ति की संभावनाएँ मिट जाती हैं।

यह सत्य है कि प्लेटो ने कार्य की विशिष्टता के आधार पर जो विभाजन प्रस्तुत किया है, उससे राज्य का कार्य सुचारु रूप से चल सकता है, किन्तु इसके साथ-साथ जो दुर्बलताएँ आ गई हैं, उनकी ओर से प्लेटो ने आँखें मूँद ली हैं। उसकी सबसे बड़ी भूल तो यह थी कि उसने मानव की पूर्णता की ओर ध्यान नहीं दिया है। वस्तुतः मानव का व्यक्तित्व एक जटिल वस्तु है जिसको स्पष्टतः खण्डों में विभाजित कर सकना असंभव है।

ऐसे बहुत-से मानव मिलेंगे जिनमें एक साथ ही तीनों तत्वों का समन्वय देखा जाता है। अगर प्रत्येक व्यक्ति को केवल एक ही कार्य करने का अधिकार सौंपा जाए, तो उसका व्यक्तित्व पूर्णतः विकास प्राप्त नहीं कर सकता। अतः यह क्षति केवल व्यक्तिगत ही न होकर जातिगत होगी। इसके अतिरिक्त प्लेटो के विभाजन के फलस्वरूप तो राज्य अनेक खण्डों में विभाजित हो जाता है जिससे कि यह व्यवस्था आगे चल कर नष्ट-भ्रष्ट और नौकरशाही के रूप में बदल जाएगी।

प्लेटो की इस व्यवस्था में शासन की शक्ति केवल दार्शनिक वर्ग के हाथों में दी जाने की चर्चा की गई है, जिसका अर्थ यह होता है कि राज्य का उच्चतम-स्तर एक वर्ग-विशेष में जाकर सीमित हो जाएगा और अन्य वर्ग इस अधिकार से वंचित रह जाएँगे। मानव-मनोविज्ञान बतलाता है कि शीघ्र या कुछ समय बाद वे दार्शनिक जाति के हितों को अपने साथ एक कर देंगे जिससे असन्तोष और द्रोह का प्रादुर्भाव होगा, क्रान्ति की संभावनाएँ प्रकट होंगी और अन्त में राजकीय व्यवस्था उलट दी जाएगी। वस्तुतः जिस राज्य में सर्व-साधारण का सहयोग नहीं होता, वह राज्य आदर्श नहीं कहा जा सकता किन्तु प्लेटो की राजकीय व्यवस्था में यह जन-सम्पर्क संभव नहीं है, इसलिए उसकी यह

व्यवस्था दोष-रहित नहीं कही जा सकती।

प्लेटो ने अपनी अमर कृति 'रिपब्लिक' के पाँचवें और छठे अध्याय में इसका स्पष्टतः उल्लेख किया है कि जब तक दार्शनिकों को नृपति नहीं बनाया जाता, या नृपतियों और राजकुमारों में दार्शनिक की बुद्धिमत्ता नहीं आती, तब तक इन नगर-राज्यों से बुराइयों का निष्कासन असम्भव है। इसी छोटी-सी पंक्ति से प्लेटो की राजकीय व्यवस्था का अनुमान लगाया जा सकता है। प्लेटो की दृष्टि में नृपति को ज्ञानवान् होना चाहिए और इस ज्ञान का स्रोत है दर्शनशास्त्र। दार्शनिकों के शासन से प्लेटो ने यह आशा की थी कि इससे राजनीतिक स्वार्थों का अन्त हो जाएगा, और दार्शनिक-शासक अपने कर्तव्यों को निभा सकेंगे, क्योंकि वे अपने पद को अवसर न मान कर पवित्र कर्तव्य मानेंगे। अतः वे ही दार्शनिक-शासक सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की भावना से परिचालित होकर राज्य का कल्याण कर सकेंगे और अपने ज्ञान की दीपशिखा के आलोक में अज्ञान में पड़ी जनता के हृदय से अन्धकार को भगा सकेंगे। अपने आदर्श राज्य की कल्पना के प्रयत्न में प्लेटो ने सुकरात और काल्विन की भाँति अध्यात्मवाद द्वारा समर्थित शिष्ट-जन-सत्ता राज्य को प्रश्रय दिया है। प्लेटो ने बताया कि मानव की असमानता के कारण सरकार की आवश्यकता प्रतीत होती है, जिसके फ़लस्वरूप शासन का सूत्रपात होता है किन्तु सरकार शासन के हेतु जिन क़ानूनों का निर्माण करती है, उनमें दार्शनिक की विकसित बुद्धि का अगर योग नहीं होता तो वह श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। अतः सरकार का सर्वश्रेष्ठ रूप तो वह है जिसमें विवेकयुक्त नृपति-दार्शनिक की आज्ञा ही क़ानून होती है। प्लेटो का यह दार्शनिक-नृपति स्वार्थों और क़ानूनों के बन्धन से ऊपर है, वही श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ है और उसी की सरकार श्रेष्ठ सरकार है। जिस प्रकार एक चिकित्सक चिकित्सा के नियमों के भार से दबा नहीं रह सकता, उसी प्रकार यह दार्शनिक-नृपति भी क़ानून के भार से दबा नहीं रह सकता। इस प्रकार प्लेटो के प्राप्त विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि वह राज्यतंत्र का पक्षपाती है और न्याय उसके राज्य की आधार-शिला है।

यह दार्शनिक सम्राट् इस अर्थ में स्वतन्त्र कहा जा सकता है कि उस पर लिखित क़ानूनों का कोई बन्धन नहीं होता किन्तु वह निरंकुश भी नहीं है क्योंकि उसे सामाजिक नियमों के प्रति निष्ठा, और राज्य के मूल तत्त्वों के प्रति आदर का भाव सिखाया गया है। ये मूल-तत्त्व इस प्रकार हैं—राज्य में सम्पत्ति का संचार, राज्य का विस्तार, न्याय के नियम और शिक्षा पद्धति। इस प्रकार जब हम दार्शनिक-सम्राट् की भक्ति पर गहराई के साथ विचार करते हैं. तो कहना पड़ता है कि यद्यपि उसकी शक्ति अपरिमित है, किन्तु सामाजिक व्यवस्था के सामने वह पूर्णतः नतमस्तक है।

अब, जब कि हम प्लेटो के 'राज्य' सम्बन्धी विचारों पर विहंगम दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्लेटो ने राज्य का जो स्वरूप अंकित किया है, वह प्रजातंत्र की समानता और स्वतन्त्रता के विरुद्ध जा पड़ता है क्योंकि इसमें समस्त राजकीय सत्ता थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में सौंप दी गई है जिसके फलस्वरूप उसका पतन निरंकुश-राज्यतंत्र के रूप में अवश्यम्भावी है। उसकी शिक्षा-पद्धति भी व्यावहारिकता की अपेक्षा ज्ञान पर अधिक आधारित है, क्योंकि तर्कशास्त्र और अंकगणित से व्यावहारिकता की शिक्षा नहीं मिलती। फलतः प्लेटो का दार्शनिक-अभिभावक निरसंदेह विचारक तो होगा, किन्तु यह भी संभव है कि वह जन-जीवन के प्रश्नों से कहीं दूर न रह जाए। संकट की घड़ियों में वह शीघ्र-निर्णय में भी पीछे पड़ जा सकता है, और उसकी कार्य-पद्धति उसे अप्रिय तथा दुर्बल भी सिद्ध कर सकती है। इसके अतिरिक्त क़ानून के बन्धनों से मुक्त होकर वह दार्शनिक शासक निरंकुश-शासनाधिकारी के रूप में भी बदल सकता है।

प्लेटो ने अपने आदर्श-राज्य में एक नई व्यवस्था का स्वरूप अंकित किया है, जिसमें दो वर्गों को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। इसी व्यवस्था में सम्पत्तिगत और पारिवारिक साम्यवाद की चर्चा की गई है। अवश्य ही प्लेटो की इस व्यवस्था के पीछे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी थी जिससे कि प्लेटो को प्रेरणा मिली थी। वह ऐतिहासिक तथ्य है कि तत्कालीन स्पार्टा में साम्यवादी व्यवस्था थी जिसमें राज्य के नागरिकगण एक साथ बैठ कर भोजन करते थे और स्त्रियाँ राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से पतियों द्वारा कुछ काल के लिए अन्य पुरुषों को उधार दी जाती थीं। क्रीट और एथेन्स में भी साम्यवादी विचारधारा के आधार पर कार्य-व्यापार चलते

है। यूरीपीडिस ने भी अपनी कृति 'प्रोटीसिलॉस' में स्त्रियों के साम्यवाद की स्पष्ट घोषणा की है।

इस विचारक के अनुसार समाज ही सर्वस्व है जिससे अलग होकर व्यक्ति का कोई महत्व नहीं रह जाता। उसके अनुसार प्रत्येक नागरिक को चाहिए कि वह अपने व्यक्तित्व को राज्य में विलीन कर दे जिससे कि राज्य की अधिकाधिक सेवा की जा सके। राज्य की सेवा के अतिरिक्त उसे न तो कोई अवसर और न कोई प्रेरणा दी जा सकती है जिससे कि वह अन्य कार्य कर सके। प्लेटो के अनुसार उसे निजी सम्पत्ति की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि निजी सम्पत्ति की इच्छा के अभ्युदय के साथ वैयक्तिक महत्वाकांक्षाओं के उभरने की आशंका है, और आगे चलकर व्यक्ति तथा राज्य के स्वार्थों में टक्कर हो सकती है। इसी संघर्ष को हटाने और पूर्ण सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से प्लेटो ने साम्यवाद की स्थापना की थी किन्तु आज के साम्यवाद से सर्वथा भिन्न प्लेटो का साम्यवाद एक आध्यात्मिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए एक प्रयत्न मात्र था। इस साम्यवाद का निरूपण शासक-वर्ग को दृष्टिपथ में रखते हुए किया गया था, क्योंकि प्लेटो को यह आशंका थी कि पूर्ण राजनीतिक अधिकारों से युक्त इन दार्शनिक अभिभावकों को अगर आर्थिक शक्ति भी दी जाएगी तो ये दार्शनिक भी भ्रष्टाचार से बच नहीं सकेंगे। तभी तो प्लेटो ने शासक-वर्ग के लिए न केवल वैयक्तिक सम्पत्ति को अनावश्यक बतलाया, वरन् उन्हें पारिवारिक बन्धनों से भी ऊपर रखा क्योंकि उसकी दृष्टि में परिवार-प्रथा और पारिवारिक भावना व्यक्ति की महत्वाकांक्षाओं को पनपने के लिए जल का कार्य करती है। उसने पिता, माता, भाई, बच्चे जैसे सम्बन्धों को नगण्य बतलाया और अभिभावक वर्ग में विवाह का भी निषेध किया। उसकी यह धारणा थी कि उपयुक्त बच्चों को जन्म देने के हेतु राज्य ही उपयुक्त समय पर स्त्री-पुरुषों का चुनाव करेगा जिनके सम्पर्क से स्वस्थ और श्रेष्ठ बच्चे उत्पन्न होंगे। दुर्भाग्यवश जो बच्चे अनुपयुक्त सिद्ध होंगे, वे नष्ट कर दिए जाएँगे। इस प्रकार प्लेटो न केवल साम्यवाद का प्रथम आचार्य है, वरन् सन्तति-शास्त्र का प्रथम ग्रीक व्याख्याता भी है।

इतना विश्लेषण कर चुकने के बाद जब हम प्लेटो के साम्यवाद की जाँच-पड़ताल करते हैं तो कहना पड़ता है कि वैयक्तिक सम्पर्क के विनाश की घोषणा कर प्लेटो ने मानव-मनोविज्ञान के आधारभूत तत्वों की उपेक्षा की है। सभी कालों और स्थानों में मनुष्य की आन्तरिक इच्छा वैयक्तिक सम्पत्ति प्राप्त करने की रही है जिसके माध्यम से उसके व्यक्तित्व का विकास होता गया है। इस प्रकार सम्पत्ति पर समाज के अधिकार की बात चला कर उसने मानव-स्वभाव और प्राचीन परम्परा की उपेक्षा की है। उसका यह साम्यवाद मानव की स्वतन्त्रता, समानता की भावना के विरुद्ध है और जीवन की अनेक रूपता का उपहास कर अत्यधिक केन्द्रीकरण पर ज़ोर देता है। प्लेटो के इस साम्यवाद में निम्न-वर्गों की भी कोई चर्चा नहीं मिलती, अतः निश्चित रूप से यह अर्द्ध-समष्टिवाद कहा जा सकता है।

प्लेटो द्वारा प्रस्तावित पत्नियों का समष्टिवाद भी मानव की मूल यौन-प्रवृत्तियों की उपेक्षा करता है, अतः वह पूर्णतः अव्यावहारिक है। यह सत्य है कि मानव एक व्यक्तिमात्र है किन्तु इसकी भी तो एक सीमा है। उसकी समष्टिगत भावना उसकी जातिगत और पैतृक-भावनाओं को पूर्णतः नष्ट करने की सामर्थ्य नहीं रखती। अतः व्यक्तिविशेष से यह आशा करना कि वह राजकीय भक्ति के सिवा अन्य भावनाओं को कुचल देगा पूर्णतः असामयिक और दुरारूढ़ कल्पना है। पारिवारिक प्रथा सभ्यता के इतिहास की आवश्यक संस्था है किन्तु आश्चर्य तो यह है कि प्लेटो ने इस स्वस्थ-संस्था के विनाश की बातें की हैं।

पुनः अल्पकालीन विवाहों के द्वारा जनता के लिए बच्चे उत्पन्न करना स्त्रियों को पशु की कोटि में पहुँचा देता है। साथ ही ऐसी व्यवस्था में नैतिक, बौद्धिक और शारीरिक रूप से अत्यन्त विकसित प्रतिमाओं का विकास भी असंभव दिखाई देता है, क्योंकि माता-पिता-हीन बच्चों के विकास का क्रम रुक जाएगा और वे मानवता के लिए देन सिद्ध नहीं हो सकेंगे। प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने भी उसकी साम्यवादी व्यवस्था की भर्त्सना करते हुए कहा है कि साम्यवाद आत्यंतिक एकता पर ज़ोर देता है, और जीवन की बहुरूपता पर कुठार चलाने का कार्य करता है। उसके अनुसार सम्पत्ति पर समाज का अधिकार हो जाने से दानशीलता और उदारता की भावनाएँ मिट जाएँगी। अतः सच्ची एकता साम्यवाद के द्वारा नहीं वरन् शिक्षा के माध्यम से प्राप्त

की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त पत्नियों के साम्यवाद से समाज की सामंजस्य-प्रियता घट जाएगी और व्यभिचार का राज्य उपस्थित हो जाएगा। निकट सम्बन्धियों में भी अनुचित कार्य चलने लगेगा, जिससे समाज पूर्णतः उच्छृंखल और विशृंखल हो जाएगा। फिर राज्य द्वारा स्त्री-पुरुष के जोड़ों का चुनाव भी तो साधारण कार्य नहीं है।

राज्यों के विभिन्न प्रकार की चर्चा करते हुए प्लेटो ने बताया कि केवल एक नृपति द्वारा शासित एकतंत्र राज्य ही सर्वश्रेष्ठ होता है, जिसका नृपति दार्शनिक और न्यायप्रिय होता है। दार्शनिक नृपति की दूरदर्शी दृष्टि राज्य को उन्नति के शिखर तक पहुँचा देती है। उसके बाद गुटतन्त्र की स्थापना होती है जिसमें थोड़े से धनी व्यक्तियों का शासन-यन्त्र पर अधिकार हो जाता है और वे अपने वर्ग के हित में शासन-यन्त्र को परिचालित करते हैं। यह व्यवस्था बहुमत के मन में असन्तोष पैदा करती है, जिसके फलस्वरूप बहुमत द्वारा गुटतन्त्र को उलट कर प्रजातन्त्र की स्थापना की जाती है। इस प्रकार जब प्रजातन्त्र की स्थापना हो जाती है तब जनता स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने लगती है, जिससे कि अराजकता फैलने लगती है। तभी किसी शक्तिशाली व्यक्तित्व का उदय होता है जो अशान्ति और अराजकता का अस्त कर अनुत्तरदायित्वपूर्ण और स्वार्थी शासन की स्थापना करता है जिसे निरंकुश-तन्त्र कहते हैं। प्लेटो ने यद्यपि इस निरंकुश-तन्त्र को निकृष्ट बतलाया है, किन्तु उसने प्रजातन्त्र की भी भर्त्सना की है, क्योंकि उसने अपनी आँखों के सामने अपने नगर-राज्य एथेन्स में प्रजातन्त्र का दुरुपयोग देखा था। इतिहास बतलाता है कि एथेन्स की तत्कालीन सरकार पूर्णतः भ्रष्ट हो चुकी थी, जब कि प्रजातन्त्र के नाम पर वहाँ भीड़ का शासन था और स्वार्थ-लिप्सा से जन-नायक जर्जरित हो चुके थे। न्याय सामर्थ्यवानों की शक्ति के रूप में बदल गया था और वैयक्तिक महत्वाकांक्षाओं तथा गुटबन्दी के कारण जन-जीवन दूषित हो चला था। अवश्य ही इस प्रकार की दूषित प्रणाली की प्रतिक्रिया प्लेटो के मन पर अंकित थी, जो कि सुकरात की हत्या से और भी दृढ़ हो चुकी थी।

इसीलिए उसने प्रजातन्त्र को व्यक्तिवाद तथा सामाजिक पतन के अर्थ में सीमाबद्ध कर दिया है। प्लेटो की दृष्टि में वह अयोग्य व्यक्तियों का शासन है, जिससे उज्ज्वल भविष्य की कल्पना नहीं की जा सकती।

प्लेटो अपनी अन्य कृतियों की अपेक्षा 'लॉज' में अधिक व्यावहारिक है। इस कृति में उसने स्पष्टतः कहा है कि राज्य की आदर्श-व्यवस्था के लिए आदर्श दार्शनिक नृपतियों की प्राप्ति कठिन है, इसलिए क़ानून की स्थिति अनिवार्य है। इस उक्ति से पता चलता है कि बढ़ती हुई अवस्था के साथ प्लेटो की आदर्शवादिता पर व्यावहारिकता का आवरण चढ़ता जा रहा था, जिसका मूर्तिमान् रूप है 'लॉज'। यहाँ आकर उसे स्पष्टतः स्वीकार करना पड़ा है कि निजी सम्पत्ति और पारिवारिक-जीवन, ये आवश्यक मानवीय संस्थाएँ हैं जिनकी स्थिति अनिवार्य है। इसलिए निजी सम्पत्ति और विवाह आदि को मान्यता मिलनी चाहिए किन्तु उस पर राज्य का नियंत्रण आवश्यक है। यहाँ आकर शिक्षा-व्यवस्था में राजकीय नियन्त्रण के प्रश्न पर भी उसकी वाणी नम्र हो चली है—अवश्य ही यह उसकी बढ़ती हुई अवस्था के अनुभवों का परिणाम है।

सम्पत्ति और राजनीतिक शक्ति के प्रश्न पर लिखते हुए प्लेटो ने बताया कि राज्य का कर्तव्य है कि व्यक्ति के अधिकार की ज़मीनों पर नियन्त्रण करे, प्रत्येक वर्ग की सम्पत्ति की सीमा निर्धारित करे। उसका विश्वास है कि धनी और ग़रीब में सम्पत्ति की जितनी अधिक विषमता रहेगी, उतना ही संघर्ष तीव्र होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि प्लेटो ने 'रिपब्लिक' में साम्यवाद की जो मंज़िलें निश्चित की हैं, 'लॉज' में वह उनसे काफ़ी दूर रह गया है। फलतः उसकी व्याख्या अधिक व्यावहारिक और युक्ति-संगत हो चली है।

प्लेटो ने 'लॉज' में शासन-यन्त्र पर नियंत्रणों की चर्चा करते हुए बताया है कि राज्य की सर्वोच्च सत्ता सैंतीस सदस्यों की एक समिति के हाथों में होनी चाहिए, जिसके सदस्य पचास वर्ष से अधिक और सत्तर वर्ष के भीतर हों। प्लेटो के अनुसार ये व्यक्ति क़ानून के आविर्भावक होंगे और चुनावों के द्वारा उनका निर्वाचन होगा। फिर एक शासक-समिति तीन सौ साठ सदस्यों की होनी चाहिए, जो सैंतीस सदस्योंवाली समिति की आज्ञा का पालन करेगी। न्याय-व्यवस्था के लिए जूरी-प्रथा की स्थापना होनी चाहिए जिसमें प्रत्येक नागरिक भाग ले सकेंगे। पुनः दस व्यक्तियों की एक समिति भी आवश्यक

१९५४

है जो यह देख-रेख किया करेगी कि राज्य-कार्यों में, न्याय व्यवस्था में विधान पूरी तरह लागू है या नहीं ? इस दस व्यक्तियोंवाली समिति के सहायतार्थ बीस पादरियों की एक समिति चाहिए, और दूसरी समिति बीस नवयुवकों की जो वृद्ध सदस्यों की अनुदारता और पुरातन के प्रति आग्रह को सीमित करने का यत्न करेंगे।

इस प्रकार 'लॉज' के गहरे अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि प्लेटो ने यद्यपि आरंभिक कृतियों में स्पार्टा और वहाँ की संस्थाओं से प्रेरणा ली थी, किन्तु आगे की रचनाओं में उसने स्पार्टा और एथेन्स—दोनों नगर-राज्यों के विधान की उल्लेखनीय बातों का भी समावेश किया था। 'रिपब्लिक' के कई विचार—चाँदी और सोने पर प्रतिबन्ध, भोजन की सामूहिक व्यवस्था, युवक-युवतियों की सैनिक-शिक्षा, स्त्री-पुरुषों के अधिकार की समानता, और दुर्बल बच्चों का विनाश—स्पार्टा के नगर-राज्य से ही अनुप्राणित हैं। किन्तु 'लॉज' में वह स्पार्टा की अपेक्षा एथेन्स से ही अधिक प्रभावित दीख पड़ता है, क्योंकि इसमें उसने जिस विधान की चर्चा की है, वह पूरी तरह एथेन्स के साँचे पर है किन्तु उसके कई विचार सर्वकालीन हैं—यथा शिक्षा-व्यवस्था, स्त्रियों के अधिकार की चर्चा, क़ानून और न्याय की प्रधानता, इसके अतिरिक्त उसकी ठोस दार्शनिकता, जीवन के मूल तत्वों की पकड़ और व्यावहारिक गतिशीलता, ये ऐसी बातें हैं जो सदा के लिए प्लेटो को महान् चिन्तकों की श्रेणी में ला बिठाती हैं।

अगर प्लेटो की प्रतिभा और उसके व्यक्तित्व का हम मूल्यांकन करते हैं तो कहना पड़ता है कि वह पाश्चात्य जगत् का सर्वप्रथम और सुसम्बद्ध राजनीतिक-दार्शनिक हुआ है। अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में जब कि वह आशावादिता से ओत-प्रोत था, उसने एक आदर्श राज्य की कल्पना की, जहाँ न्याय और गुण का राज्य होगा तथा दार्शनिक शासक की छाया होगी। इस आदर्श-राज्य के लिए वैयक्तिक सम्पत्ति और पारिवारिक बन्धनों को भी तिलांजलि दे दी गई है, किन्तु बढ़ती हुई अवस्था में जब कि उसके विचारों में स्थिरता आने लगी और चारों ओर उसने जीवन का अस्त-व्यस्त स्वरूप पाया, सीराकस में आदर्श-राज्य की स्थापना में भी सफलता नहीं मिली, तो उसकी आँखें खुलीं। मुख्यतः उसने कल्पना को छोड़ यथार्थ की ओर अपने पाँव बढ़ाए। यह सत्य है कि उसने प्रजातन्त्र की आलोचना की है, किन्तु इस तथ्य को हम ओझल नहीं कर सकते कि दो हज़ार वर्षों के बाद आज भी प्रजातन्त्रीय पद्धति निर्दोष और निष्कलंक नहीं हो सकी है। उसके कई विचार यूरोपियन थे जिनकी आलोचना अरस्तू ने भी की है। उदाहरणार्थ पत्नियों को साम्यवाद के आंचल में लपेट लेना उसकी हिमालय जैसी भूल है किन्तु उसके सिद्धान्तों को आज के मापदण्ड से नहीं, बल्कि उस युग की चेतना के आलोक में देखना होगा। आगे चलकर सर थॉमस मोर ने भी अपनी 'यूटोपिया' में 'रिपब्लिक' का उल्लेख किया है, जिसमें उसने सम्पत्तिगत साम्यवाद और स्त्रियों की स्वाधीनता का नारा बुलन्द किया है। यूरोपीय नवजागरण और मानवतावादी आन्दोलन पर भी प्लेटो के प्रभाव को भुलाया नहीं जा सकता। इस प्रकार उसकी चिन्ताधारा को जब हम कसौटी पर परखते हैं तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह श्रेष्ठ कोटि का उपयोगितावादी तत्ववेत्ता हुआ है जिसकी चिन्ताधारा में सामाजिक कल्याण को प्रमुख स्थान मिला है। विचारक रूसो पर भी प्लेटो का प्रभाव स्पष्ट है, और जर्मन, अंग्रेज़ आदर्शवादी विचारकों को भी उसने बहुत दूर तक प्रभावित किया है। वह ग्रीक-जगत् का दार्शनिक सूर्य है।

नावकोठी,
मुंगेर (बिहार)

—रामनन्दन प्रसाद सिंह

सुदूर पूर्व में एक बार एक राजनीतिज्ञ ने दो चीनी कुलियों को बहुत ही जोर-शोर से विवाद करते हुए देखा। उसने एक प्रेक्षक से पूछा कि इनमें मार-पीट क्यों नहीं हो रही। उत्तर मिला : "जो पहले मार-पीट करेगा वह इस बात को स्वीकार कर लेगा कि उसके विचार समाप्त हो गए हैं और उसके पास अब कोई युक्ति अवशिष्ट नहीं रही है।"

भारत में कृषि-वित्त

भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। कृषि-विकास के लिए सुव्यवस्थित कृषि-वित्त की नितान्त आवश्यकता रहती है पर भारत में कृषि-वित्त की बहुत अधिक कमी है। कृषि-वित्त की कमी के कई कारण हैं जिनमें से छोटे किसानों के पास जोखिम उठा सकने की शक्ति का न होना प्रमुख एवं अग्रगण्य है। भारत में १०० एकड़ से अधिक खेत रखनेवालों की संख्या केवल १,५६,८२४ है। अधिकतर किसानों के पास तो पाँच एकड़ से भी कम भूमि है। मद्रास में ८१·२ प्रतिशत, पंजाब में ६३·७ प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में ८२ प्रतिशत तथा उड़ीसा में ७६·२ प्रतिशत किसानों के पास एक से पाँच एकड़ भूमि है। हाल के अन्वेषण से पता चलता है कि केवल ६ प्रतिशत खेतिहरों के पास २० एकड़ से अधिक भूमि है। औसत किसान की प्रतिवर्ष की आय केवल ५०० रु० की है। ऐसी स्थिति में कृषि-वित्त की आवश्यकता स्पष्ट है।

कृषि-वित्त की आवश्यकता : वस्तुतः कृषि-वित्त का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत है। बीज के ख़रीदने और बोने से लेकर अपनी उपज को बेचने तक की आवश्यक पूँजी को कृषि-वित्त के अन्तर्गत रखना अनुपयुक्त न होगा। रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया के अनुसार भारत में लगभग ८०० करोड़ रु० की आवश्यकता है। यह अनुमान इस आधार पर आधारित है कि सूखी भूमि के लिए लगभग २० रुपए की आवश्यकता पड़ती है और उपजाऊ के लिए लगभग ६० रु० की। इसके अतिरिक्त नेशनल इनकम कमेटी ने इस प्रकार अनुमान लगाया है :

		(करोड़ रुपयों में)
आवश्यक व्यय :	बीज	३१३·०
	जानवरों का भोजन	२७६·०
	खाद आदि	५२·३
	लगान एवं सिंचाई	५३·१
	अतिरिक्त व्यय	१४·३
	औज़ारों की सुरक्षा	१०७·८
	सिंचाई पर अतिरिक्त व्यय	४·६
	बैलादि पर अतिरिक्त व्यय	६५·६
	कुल व्यय	८६०·०

इन दोनों अनुमानों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि हमारी कृषि-वित्त की आवश्यकता लगभग ६०० करोड़ के है। रिज़र्व बैंक ने कतिपय आवश्यक व्यय को छोड़ दिया है। संक्षेप में हम कृषि वित्त की आवश्यकता में इसे निम्नांकित भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) छोटे पैमाने पर वित्त कृषि के आवश्यक कार्यों के लिए (२) मध्यम पैमाने पर कुएँ खोदने तथा पशुओं को ख़रीदने के लिए (३) बड़े पैमाने पर ज़मीन तथा कृषि के औज़ारों को ख़रीदने के लिए। कृषि-वित्त की आवश्यकता पर ध्यान रखते हुए अब हमें देखना है कि हमारे पास साधन क्या हैं।

कृषि-वित्त के साधन : भारत में कृषि-वित्त के साधनों की कमी है। किसानों द्वारा कृषि-वित्त के हेतु केवल एक करोड़ रुपया संचित हो पाता है जो निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाएगा :

	करोड़ रु० में
कोऑपरेटिव बैंक में जमा	५६·१७
कृषि सोसाइटियों में	३·६३
बहु-योजनावाली सोसाइटियों में	१·१८
ग़ैर कृषि सोसाइटियों में	३२·५३
अन्य क़िस्म के बैंकों में	५·६७
कुल जमा	६६·४८

पोस्टल सेविंग-बैंक्स ने भी कृषि-वित्त के एकत्रीकरण में कुछ सहयोग प्रदान किया है लेकिन इतनी थोड़ी पूँजी से क्या हो सकता है? इसलिए हमें अन्य साधनों की ओर दृष्टि डालनी पड़ेगी। अन्य साधनों में निम्नांकित साधन प्रमुख हैं : १ सरकारी फंड्स २ को-ऑपरेटिव सोसाइटीज़ ३ कमर्शियल बैंक ४ इण्डीजेनियस बैंक ५ ऋणदाता ६ अन्य साधन। निम्न पंक्तियों में हम प्रत्येक साधन पर वृहद् पैमाने पर विचार-विनिमय प्रस्तुत करेंगे। इनकी आवश्यकता और इनकी सेवाओं पर भी प्रकाश डालना आवश्यक दीखता है।

कृषि-वित्त की वर्तमान स्थिति : भारत में हम मिला कर ४१२ करोड़ रुपयों की कृषि-वित्त उपलब्ध

१९५४

है। निम्न तालिका से स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है:

साधन	करोड़ रु० में
ग्रामीण बचत	१००
तकावी ऋण	१५
अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन	१४
सरकारी समितियाँ	६०
बैंक्स	२३
ऋणदाताओं द्वारा	२००
कुल	४१२

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राप्य-कृषि-वित्त हमारी आवश्यकता की रक़म की केवल आधी है। इस रक़म द्वारा हमें अपनी वर्तमान दशा का ज्ञान होता है और साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि कृषि-विकास के लिए हमारी कृषि-वित्त का बढ़ान भी बहुत आवश्यक है।

जहाँ एक ओर सन् १९३१ से १९५१ में २२ मिलियन कृषिकों की वृद्धि हुई है वहीं कृषि-वित्त में कोई विशेष बढ़ोतरी नहीं हुई है। कृषि-वित्त की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करते समय आवश्यक है कि हम कृषकों के ऋण पर भी एक सरसरी दृष्टि डालें।

कृषि-वित्त की कमी ही किसानों की ऋण बढ़ोतरी का कारण है। श्री एच० उल्फ़ ने 'कोऑपरेशन इन इण्डिया' में कहा है: "सारा देश महाजनों की मुट्ठी में है। यह ऋण की ज्यादा रक़म है जो कृषि-विकास के प्रयास में रोड़े अटकाती है।" ऋण के सम्बन्ध में निम्न अनुमान लगाए गए हैं:

१८८० फ़ेमीन कमीशन	एक तिहाई किसान
१९११ एडवर्ड मेकलगन	३०० करोड़ रुपए
१९२४ श्री एम. एल. डारलिंग	६०० " "
१९२९ सेण्ट्रल बैंक इनक्वायरी कमेटी	९०० " "
१९३५ डॉ. आर. एल. मुकर्जी	१२०० " "
१९३८ श्री. वी. एस. मनेमन	१८०० " "
१९४५ गॉडगिल कमेटी	२००० " "

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ओर तो हमें आवश्यक कृषि-वित्त की केवल आधी रक़म प्राप्य है और दूसरी ओर लगभग २००० करोड़ रुपए का ऋण है। वर्तमान कृषि-वित्त को बढ़ाने की समस्या तो बहुत विकट है ही साथ ही साथ इतने बड़े ऋण को कम करना भी मुश्किल ही दीखता है। अभी हाल में इस ऋण को चुकाने के लिए बॉण्ड्स चलाने की योजना पर विचार-विमर्श हुआ था पर वस्तुतः यह केवल काग़ज़ी योजना ही दीखती है।

ऋणदाता: भारत में कृषि-वित्त को प्रदान करने वालों में ऋणदाताओं का स्थान प्रमुख एवं प्राचीनतम है। फ़ेमीन इनक्वायरी कमीशन के अनुसार मद्रास में लगभग ९० प्रतिशत ऋण देने का कार्य ये ऋणदाता करते हैं। सेन्ट्रल इनक्वायरी कमीशन के मतानुसार भी ऋणदाताओं ने ग्रामीण जनता को आर्थिक सहायता प्रदान करने में सहयोग दिया है। लेकिन जहाँ एक ओर ऋणदाताओं ने ग्रामीणों को धन दिया है वहीं उनकी लोभ की वृत्ति उन्हें इन भोले ग्रामीणों को ठगने के लिए बाध्य करती है। वे प्रायः बहुत ऊँचे दर से ब्याज लेते हैं। उन पर नियन्त्रण करने के लिए सरकार ने क़ानून बनाए हैं और रजिस्टर्ड उधार देनेवाले ऋणदाताओं की तालिका में रखने के पहले प्रत्येक ऋणदाता को कतिपय शर्तें पूरी करनी होती हैं। ऋणदाताओं का भी वर्गीकरण कर दिया गया है और ऋणदाता निम्न क़िस्म के ही हो सकते हैं: १. अमीर ऋणदाता जिसमें बड़े ज़मींदार अथवा धनी किसान सम्मिलित किए जा सकते हैं। २. अढ़तिया या व्यापारी किसान जिनमें स्थानीय व्यापारी, गल्लेवाले एवं अन्य क़िस्म के व्यापारी सम्मिलित होते हैं। ३. तीसरी क़िस्म होती है पेशेवर ऋणदाताओं की जिनकी संख्या बहुत अधिक होती है। 'अधिक अन्न उपजाओ' कमेटी ने सन् १९५२ में निम्न रिपोर्ट दी है जिसके द्वारा हमें ऋणदाताओं की संख्या के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है:

राज्य	ऋणदाताओं की संख्या	ऋण की रक़म
बम्बई	२५,२२६	९·४४
बिहार	२९,९८४	१५·८९
मध्यप्रदेश	९,१९६	……
पंजाब	२७६	……
हैदराबाद	१५,८७५	……
मैसूर	३४९	……
कुल	८०,९०६	२५·३३

आय-कर द्वारा भी ऋणदाताओं की संख्या के सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगता है। सन् १९४८-४९ में उन ऋणदाताओं की संख्या जिनको कर देना पड़ा लगभग ८,८०० थी और कुल रक़म जो उन्हें आय-कर के रूप में देनी पड़ी थी वह लगभग ५·६५ करोड़ की थी। सन् १९५१–५२ में ऋणदाताओं की संख्या लगभग १३,५१९ हो गई और आय-कर में इन ऋणदाताओं द्वारा दी जानेवाली रक़म ८·४९ करोड़ हो गई। इन सब तथ्यों द्वारा यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि भारत में लगभग ३ से ५ लाख ऋणदाता हैं। इन ऋणदाताओं द्वारा प्रतिवर्ष लगभग २०० करोड़ की रक़म प्रदान की जाती है।

इधर कतिपय वर्षों से ऋणदाताओं ने उधार देने से हाथ खींच लिया है। इसके कई कारण हो सकते हैं, जिनमें इनके पास पूँजी का कम होना भी हो सकता है। वस्तुतः इनको रिज़र्व बैंक से सहायता प्रदान की जानी चाहिए। इनका प्रचार-प्रसार भारत के सभी भागों में होना चाहिए।

सरकारी सहायता : यद्यपि सरकारी सहायता कृषकों को बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं है फिर भी प्रत्येक राज्य की सरकार ने यथाशक्ति कृषकों को सहायता प्रदान करने की व्यवस्था की है। तकावी के कर्ज़े दिए जाते हैं और साथ ही साथ भूमि-सुधार-क़ानून के अंतर्गत लम्बे अर्से के लिए भी ऋण दिए जाते हैं। इन्हीं दोनों क़ानूनों के अंतर्गत ऋण दिया जाता है। सिंचाई कमीशन के अनुसार तकावी ऋण की रक़म ६ करोड़ रुपए बताई जाती है। अधिक अन्न उपजाओ खोज कमेटी के अनुसार यह रक़म १५ करोड़ रुपए बताई जाती है लेकिन यह रक़म बहुत ही थोड़ी है और सरकार से अधिक सहायता की अपेक्षा है।

कमर्शियल बैंक : भारत में ऐसी संस्थाओं की स्थापना केवल व्यापार के कार्यों के लिए होती है। इनकी पूँजी सीमित होती है इसलिए उसे कृषि के क्षेत्र में लगाना संभव नहीं हो पाता और यही कारण है कि ये कृषि-वित्त को बढ़ाने में बहुत कम सहायता प्रदान करते हैं। सन् १९५३ के मार्च तक सब मिला कर इन बैंकों ने ६१७·३८ करोड़ रुपए ऋण स्वरूप दिए थे जिनमें से कृषि-कार्य के लिए केवल २३·०८ करोड़ रुपए ही दिए गए हैं। यह रक़म बहुत ही थोड़ी है। अन्य देशों में इस प्रकार की संस्थाओं ने कृषि-कार्य में अत्यधिक सहयोग प्रदान किया है और भारत में भी इस प्रकार की संस्थाओं को आगे बढ़ कर हाथ बँटाना चाहिए।

सहकारी समितियाँ : भारत में सहकारी समितियाँ कृषि-विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। कतिपय समितियाँ केवल कृषि-विकास-कार्य में संलग्न हैं। कुछ कृषि-उत्पादन की विक्रय-व्यवस्था करती हैं। कोऑपरेटिव प्लानिंग कमेटी के अनुसार आगामी दस वर्षों में ग्रामों की ५० प्रतिशत जनता को सहकारी समितियों में सम्मिलित हो जाना चाहिए। आज सहकारी समितियों की स्थिति अच्छी नहीं है यद्यपि इनके कार्यों को बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

इन समितियों के अतिरिक्त कोऑपरेटिव बैंकों तथा यूनियन बैंकों ने भी कृषि-वित्त को बढ़ाने में सहयोग प्रदान किया है। अधिकतर ये बैंक सहकारी समितियों को ही ऋण देते हैं परन्तु कतिपय बैंक व्यक्ति विशेष को भी ऋण देते हैं। निम्नांकित तालिका से सहकारी-समितियों की स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है :

	ऋण (दिया)	ऋण (बाक़ी)
एग्रिकल्चर क्रेडिट सोसाइटीज़	३८७१·५७	३४८१·८८
मल्टी परपज़ सोसाइटीज़	४००·४८	३६९·०६
लैंड मार्टगेज बैंक	२०२·१९	१०४५·०६
कोऑपरेटिव बैंक	१४७८·८४	४०२·०१

वस्तुतः यह रक़म बहुत ही कम है। यूरोपीय देशों में सहकारी समितियों ने बहुत अधिक प्रगति की है। भारत में सहकारी आन्दोलन बहुत ही निम्न स्तर पर है। कृषि के विकास के लिए आवश्यक है कि इसका सुव्यवस्थित संगठन किया जाए।

अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन : इस योजना के अन्तर्गत कृषकों को यथासंभव सहायता प्रदान की जाती है। सिंचाई-योजना आदि के लिए भी इस योजना के अन्तर्गत पैसे की व्यवस्था की जाती है। सन् १९४३ से ले कर १९५२ तक इस योजना के अन्तर्गत लगभग ६२·१० करोड़ रुपए का ख़र्च हुआ है। निम्न तालिका से पूरा विवरण मिल जाता है :

	(करोड़ रुपए में)
१९४३—४७	१५·२२
१९४७—४९	१०·२४
१९४९—५१	३६·६४
कुल व्यय	६२·१०

'अधिक अन्न उपजाओ' कमेटी के अनुसार वर्तमान सहायता से केवल कृषि के कतिपय अंगों का विकास संभव है।

कृषि-विकास की नई योजना : पंचवर्षीय योजना में कृषि-विकास पर ३६१ करोड़ रुपए का व्यय अनुमानित है। यह व्यय इस प्रकार किया जाएगा :

	(करोड़ रु. में)
कृषि	१८४·२२
पशु-पालन	२२·२९
वन	११·७०
सहकारी आन्दोलन	७·११
मछलियाँ	४·६४
ग्राम-विकास	१०·४७
सामुदायिक विकास योजना	९०·००
अन्य विभिन्न कार्य	३०·००
कुल	३६०·४३

यह योजना कृषि-विकास के कार्यों में बहुत अधिक सहयोग प्रदान करेगी। सरकारी ऋणों एवं सहकारी आन्दोलन द्वारा सन् १९५५-५६ तक १०० करोड़ रुपए की बढ़ोतरी संभव है। उस समय तक मध्यम पैमाने पर उपलब्ध होनेवाली रक़म लगभग २५ करोड़ रुपए होगी। लगभग ५ करोड़ रुपए लम्बे पैमाने पर उपलब्ध होनेवाले ऋण के लिए नियत है।

कृषि-वित्त की सुसंगठित व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि कृषि-वित्त कॉरपोरेशन की स्थापना की जाए। कृषि-विकास कॉरपोरेशन की स्थापना भी आवश्यक दीखती है। वस्तुतः इन दोनों संस्थाओं की सहायता से कृषि-विकास के कार्यों में बहुत अधिक सहायता प्राप्त होगी। इन संस्थाओं की स्थापना के साथ ही साथ छोटे पैमाने पर बैंकों का संगठन भी आवश्यक दीखता है। मुख्यतः इन सब योजनाओं के पीछे—ग्रामीण जनता की बचत बढ़ाने की आदत डालना ही मुख्य उद्देश्य है और उसीसे कृषि-वित्त की बढ़ोतरी भी संभव है।

३१/५१ कालभैरव,
नारस १

—कृष्णशंकर व्यास

किंग जार्ज षष्ठ की एक प्रिय प्रार्थना

प्रभो !
शक्ति दो
उन वस्तुओं को शान्तिपूर्वक ग्रहण करने की
जिनमें मैं कोई परिवर्तन नहीं कर सकता;

साहस दो
उन वस्तुओं को परिवर्तित करने का
जिनमें मैं परिवर्तन कर सकता हूँ;

बुद्धि दो
जिससे मैं विवेक कर सकूँ

शिव-रुद्र

> "अकिंचनः सन् प्रभवः स संपदां
> त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः
> स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
> न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः"[1]

यह वर्णन आज की भारतीय जनता का नहीं है बल्कि भारतीय देवलोक की एक अप्रतिहत प्रतिभा का है जिसकी उपमा अन्य देशों के प्राचीन और मध्यकालीन देवलोकों में मिलना आसान नहीं है।

"न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः" कह कर महाकवि ने उस प्रतिभा के अन्तर्निहित आत्मविरोधों की ओर संकेत किया है। जितनी भी वीभत्सता की कल्पना आप कर सकते हों करते हुए जितनी भी सौन्दर्य की भावना आपके अन्दर हो, दोनों को एक में मिला देने से —समझ में सरलता से नहीं आता—क्या बनेगा?

भारतीय देवलोक की सब प्रतिमाएँ सागर-मन्थन से निकले हुए अमृत को पीकर अमर हुई हैं लेकिन एक ऐसा भी देवता है जो कालकूट पीकर भी अमर रहा है। यह वह प्रतिमा है जिसको स्तोत्रकारों ने एक हज़ार नामों से पुकारा है और अमर कोश में भी जिसको ४८ नामों से अभिहित किया गया है।

राम और कृष्ण साहित्य के साथ-साथ शिव-साहित्य की भी एक परम्परा अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही है। इस पूरे साहित्य की छानबीन करते हुए अध्ययन करना सरल बात नहीं है। मोहनजोदाड़ो के भग्न नगरों से लेकर वेद, महाकाव्य, इतिहास, आगम-पुराण, योग-दर्शन, साहित्य, ललित-कलाएँ, लोककथाएँ और वस्तु तथा शिल्प-कला तक में यह प्रतिमा अपने विशिष्ट रूपों को लेकर व्याप्त है—अगर इसके यथार्थ को जाननेवाले लोग न हों तो आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

इतिहासकारों का मत है कि 'शिव' आर्यजाति का नहीं वरन् उस जाति का देवता है जो आर्यों के भारत आने के प्रथम इस भूमि पर वास करती थी और जिन्हें आर्यों को पराजित करना पड़ा था। सिन्ध-प्रदेश खुदाई द्वारा पाए गए भग्न नगरों में जो वस्तुएँ हैं उनमें लिङ्ग, बैल आदि की भी मूर्तियाँ है। इस से इस देवता की प्राचीनता की स्थापना हो जाती है। वेदों में किसी जाति को "शिश्नदेवाः" संज्ञा दी गई है लेकिन इससे सिर्फ़ इतना ही मालूम होता है कि में उस समय एक कोई ऐसी जाति थी जो इस की उपासना 'लिङ्ग' रूप में करती थी। इस पूजा विधान कैसा था? क्या यह व्यक्तिगत पूजा थी जैसी मध्यकाल के योगीजन करते थे या समूहगत पूजा थी कि यूनान में "बाकस" की पूजा की जाती थी। पता नहीं लगता। महाभारत के अनुशासन में इस बात का उल्लेख मिलता है कि इस की संज्ञा 'जलोद्भव' भी है। इसका यह अर्थ कि वह 'समुद्र' से आया था, जिस प्रकार से यह है कि 'बाकस' समुद्र से आया था, ठीक होगा, कहना नहीं है। 'शिव' की पूजा में एक प्रकार की 'बाकस' पूजा का तत्व मध्यकाल तक माना जाता है। आर्य जो 'यज्ञ' की उपासना करते थे उस पूजा को अपने श्रेष्ठ स्वभाव के कारण या विजातीय होने के अच्छा नहीं समझते थे। शिव के गणों की भी को आर्य लोग भूल नहीं सके थे। शिव और गण अच्छे लड़ाकू थे। ये लोग आँधी की तरह पर हमला करते थे। धनुष [पिनाक], त्रिशूल और उनके मुख्य अस्त्र थे। शिव और उनके गण लड़े थे क्योंकि यह स्पष्ट लिखा है कि पहले शिव का भाग नहीं लगता था—बाद में [शायद] और शिव के उपासकों में सन्धि हो जाने के आर्यों को शिव-भाग लगाना पड़ा था।

प्राचीन भारत के विषय में एक ग्रन्थ है मेगस्थनीज़ और एर्रीअन ने जो कुछ देखा उसका उल्लेख किया है। उसमें [पृष्ठ ३४] वह यह

---

१ कुमार संभव ५-७७ २ अध्ययन १७

१९५४

है कि भारत के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों के मुख से मैंने यह कहते हुए सुना है कि बहुत प्राचीन काल में, जब लोग सिर्फ़ देहातों में ही रहते थे, डिओनिसस अपनी सेना ले कर भारत में आया था। यह डिओनसस और कोई नहीं 'बाकस' ही था। इसने मानव-जाति को 'मदिरा' का स्वाद सब से पहले दिया था और स्वयं नृत्य-गान और अन्य क्रीड़ाओं में निपुण था। वह शक्ति के प्रतीक को भी धारण करता था। उसने पूरे भारत को जीत लिया, क्योंकि उन दिनों कोई भी ऐसा नगर नहीं था जो उसकी सेना का सामना कर सकता। गर्म मैदानों में रहने के कारण उसकी सेना में भयंकर बीमारी फैलने लगी। तब वह उनको पर्वतों पर ले गया जहाँ पर ठण्डी वायु चलती थी और शीतल पानी के झरने बह रहे थे। जिस पर्वत पर डिओनिसस अपनी सेना को ले जा कर रहा था उसका नाम "मेरोस" था। वहाँ रहने के बाद उसने उपयोगी पौधों [औषधियों ?] का प्रचार करना आरंभ किया। उसने भारतवासियों को मदिरा कैसे बनाना चाहिए यह सिखाया और साथ ही साथ अन्य उपयोगी कलाओं को भी सिखाया। उसने बड़े-बड़े नगरों की नींव को रखा और स्वयं शासक बना। जन-हित में अनेक अच्छे कामों को करते हुए उसने न्याय, विधान और न्यायालयों की स्थापना की। यह भी कहा जाता है कि उसके साथ में नारियों का भी एक झुण्ड था। वह अपनी सेना को लगातार तैयार रखता था। उसकी सेना ढोल मंजीरा ले कर गाती हुई चलती थी।

इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर यह भी लिखा हुआ है कि डिओनिसस जब भारत में अपना आक्रमण कर रहा था तब उसकी सेना मैदानों की गरमी से परेशान हो उठी और उसने एक ऐसे पर्वत को अपने निवास के लिए चुना जिसकी तीन चोटियाँ थीं। एक का नाम 'कोरासिबिल' (Korasibil) दूसरे का 'कैन्डरस्क' (Kanddske) और तीसरे का 'मीरोज़' (Meros) था। तीसरी चोटी पर वह स्वयं जा कर रहा। उसके बाद भी उसकी सेना मैदानों में आक्रमण करने उतरती थी और उनको नष्ट करती थी क्योंकि उनके पास फेंक कर मारनेवाले अस्त्र थे और वे ऊपर से उनकी वर्षा करते थे।

यह भी कहा जाता है कि डिओनिसस ने सबसे पहले बैलों को हल में जोता था और उसने बहुत-सी भारतीय घुमक्कड़ जातियों को किसान जाति में बदल दिया था। उसने उनको खेती करने के औज़ार दिए थे। भारत के लोग और भी देवताओं की उपासना करते हैं लेकिन डिओनिसस की उपासना ढोल और मंजीरा बजा कर ही करते हैं—क्योंकि देवता ने उनको ऐसा ही करने के लिए कहा था। उसने उनको नृत्य करना भी सिखाया था जिसको यूनानी भाषा में 'कोरडाक्स्' (Kordax) कहतेहैं। उसने भारतीयों को देवता के गौरव की रक्षा में लम्बे केशों को रखने की और साफ़ा बाँधने की शिक्षा दी थी।

तो क्या यह मानना चाहिए कि 'शिव' अनार्यों का या आर्यों का समुद्र के रास्ते से आया हुआ देवता था ?

वेदों में जिस देवता को 'रुद्र' के नाम से पुकारा गया है—जो मरुत का पुत्र कहा गया है क्या उसका कोई सम्बन्ध उस शिव से था जिसकी पूजा अनार्य लोग लिङ्ग के प्रतीक से करते थे या भारतीय डिओनिसस से जिसकी सेना का आतंक भारत के मैदानों में फैल चुका था ? जिसने बार-बार मानव जाति को अपने आक्रमणों से रुलाया था—क्या यही उसका रुद्रत्व था ? निरुक्त, सायणभाष्य और वृहदारण्यक उपनिषद् तीनों में 'रुद्र' को रोने-रुलानेवाला कहा गया है।

"रुद्रो रौतीत सतो रोरूयमाणो द्रवतीत वा, रोदयते वा। यदरुत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्"[३]

"रोदयति सर्वमन्तकाले इति रुद्रः"[४]

"कतमे रुद्रा इति; दशेमे पुरुषे प्राणाः, आत्मैकादशः; ते यदास्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति; तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति।"[५]

इन तीनों अर्थों में उस शिव की कोई चर्चा नहीं है जिसकी पूजा अनार्य लोग 'लिङ्ग' के प्रतीक से करते थे। मुख्य रूप से वेदों में रुद्र के दो आत्मविरोधी रूप आते हैं। एक उनका रुद्र, भयङ्कर, तूफ़ान के समान चलनेवाला, अग्नि के समान जलनेवाला, तीक्ष्ण बाणोंवाला और दुर्जेय धनुषवाला चित्र सामने आता है और उसका दूसरा चित्र कल्याणकारी, ब्रह्मद्विषों को मारनेवाला (सरस्वती जिसका धनुष खींचती है), औष-

---

[३] निरुक्त १०-५ [४] सायण ऋ० १—११४-१ [५] वृहदारण्यक ३-९-४

धियों और पशुओं के स्वामी के रूप में आता है। निरुक्त के नैघण्टु काण्ड में दोनों इस तरह से दिए गए हैं :

"एक एव रुद्रो वतस्थे न द्वितीयो
रणे निघ्नन्पृतनास शत्रून ।
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोता
प्रत्यङ् जनान्त्संचुकोचान्तकाले"[६]

यह उसका भयङ्कर और विराट् रूप है।

"सोम रुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा
तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अवस्थतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति
तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥"[७]

इस तरह से रुद्र के दो विभिन्न रूप चारों वेदों में बिखरे हुए हैं। अनुमान लगाना सहज है कि रुद्र और कोई नहीं है स्वयं सूर्य है। एक ओर सूर्य प्रखर है, जलानेवाला है, अन्धकार रूपी शत्रु को नष्ट करनेवाला है, उसके सामने शत्रु ठहर नहीं सकता—दूसरी ओर उसकी सहायता से जल बरसता है, वनस्पतियाँ उगती हैं, औषधियाँ बढ़ती हैं, अन्न उपजता है और प्राणियों की सम्पत्ति बढ़ती है। जो विद्वान् देवलोक की प्रतिमाओं को प्रकृति के अनुरूप मानते हैं वे रुद्र को 'सूर्य' या 'अग्नि' ही मानते है। यास्क से भी ऋग्वेद[८] की व्याख्या में लिखा है : "अग्निरपि रुद्र उच्यते।" सायण ने जहाँ पर रुद्र के अनेक अर्थ दिए हैं वहाँ पर यह भी एक अर्थ दिया है कि "रुणद्धि आवृणोतीत रुद्अन्धकारादि, तं द्रणाति विदारयतीत रुद्रः" अर्थात् अन्धकार का जो नाश करता हो वह रुद्र है। उसकी प्रखरता से सुर और असुर सभी आतंकित थे। लोहे, सोने और चाँदी के नगरों को (त्रिपुरदहन) उसने जला कर भस्म कर दिया था। आर्य लोग अग्नि और सूर्य के उपासक भी थे—इसीलिए बहुत सम्भव है कि प्रखर सूर्य की उपासना रुद्र के नाम से करते हों। लेकिन इस अर्थ में रुद्र की उपासना का अर्थ 'शिश्नदेव' की उपासना नहीं हो सकता और न उसका सम्बन्ध 'बाकस' से ही मिलाया जा सकता है।

इस युग में रुद्र का विशेष काम त्रिपुरदहन है जिसको इन्द्र का वज्र भी परास्त नहीं कर सका था। त्रिपुरदहन क्या है—बताना उतना ही कठिन है जितना यह बताना कि विष्णु ने तीन क़दमों में ही सब नाप लिया था। फिर भी पुराणों तक में इस महाकाव्य का वर्णन विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। महाभारत के 'द्रोणपर्व' में रुद्र अथवा शिव के विषय में तीन महत्वपूर्ण कथाएँ लिखी हैं। एक है दक्षयज्ञ कथा, दूसरी है त्रिपुरदहन और तीसरी है इन्द्र को परास्त करना। दक्षयज्ञ में शिव का भाग नहीं था। "उस समय जब भगवान् रुद्र प्रचण्ड धनुष को धारण कर भयंकर बाणों को चलाने और महाभयानक शब्द के सहित सिंहनाद करने लगे तब उस समय देवता लोग सम्पूर्ण स्थानों में भ्रमण करके भी किसी स्थान में सुखपूर्वक निवास करने में समर्थ नहीं हुए।......तब सम्पूर्ण देवता लोग भगवान् से भयभीत होकर विशेष रूप से उनके लिए यज्ञ का भाग स्थापित करके उन्हीं के शरणापन्न हुए।' आर्यों के यज्ञों में अग्नि और सूर्य दोनों का ही भाग अवश्य होता होगा इसलिए यहाँ पर 'रुद्र' को अग्नि और सूर्य का पर्यायवाची नहीं माना जा सकता।

दूसरी कथा में कमलाक्ष की स्वर्ण की नगरी, तारकाक्ष की चाँदी की नगरी और विद्युन्माली की लोहे की नगरी को विराट् रथ पर सवार होकर रुद्र ने नष्ट कर दिया है। और तीसरी कथा में इन्द्र ने जब पार्वती की गोद में एक अद्भुत बालक देख कर उस पर वज्र मारने के लिए अपना हाथ उठाया तो रुद्र ने उसकी भुजा को स्तब्ध कर दिया था।

इसी पर्व में शिव का जो रूप दिया गया है वह दर्शनीय है क्योंकि उसमें उसका व्यक्तित्व स्पष्ट रूप में आता है।

"......वे पिनाक, वज्र, प्रकाशमान शूल, परश्वध, गदा और दीर्घ खड्ग धारण करनेवाले हैं। उनके ललाट पर चन्द्रमा और सिर पर जटा शोभित है। उनका वर्ण श्वेत है। वे व्याघ्राम्बर पहननेवाले महादेव और दण्डधारी हैं। उनके गले में सर्पों का यज्ञोपवीत शोभित है और भुजा मनोहर अङ्गद से भूषित हैं...वे वृषभवाहन हैं, त्रिनेत्र हैं।"[९]

"वामन, जटिल, मुण्ड, हयग्रीव, महोदर, महाकाय,

---

६ १-१५ ७ ८-१० ८ १-२७-१० ९ द्रोण-२०२

महोत्साह और महाकर्ण आदि विकृतानन, विकृत चरण, विकृत वेश, अनेक रूपधारी दिव्य मूर्तिवाले उनके बहुत से पारिषद हैं।" इसी अध्याय में उनको पिङ्गल नेत्र, पिङ्गल केश, वेगवान, बहुरूप और उष्णीषधारी भी बताया गया है जो डिओनिसस के वर्णन से मेल खाता है।

'महाभारत' और 'रामायण' में शिव या रुद्र का कैलाश पर्वत पर होना निश्चित हो गया है। रावण शिव से वरदान और चन्द्रहास नाम का खड्ग साथ-साथ लेता है। उनका पिनाक तोड़ कर ही राम सीता से विवाह करते हैं। परशुराम का क्षत्रियनाशक फरसा शिव ने ही दिया था। 'महाभारत' में तो रुद्र जैसे शास्त्रागार ही हो गए थे। वनपर्व में अर्जुन ने विशेष कष्ट सह कर उनसे अस्त्र और विद्या प्राप्त की थी। उस समय उन्होंने किरातवेषधारी शिव को देखा था जो "महामेघ की शिखा के समान शरीर बना कर उत्तम धनुष और सर्प के समान बाणों को धारण करके देहधारी अग्नि के समान वेग से आ रहा था। उसके साथ में किरातिनी रूप में उमा, नाना रूपधारी भूत और अनेक स्त्रियाँ थीं।" अनेक अस्त्रों के स्वामी होने के कारण 'रुद्र' को क्षत्रिय देवता उपनिषद् में भी कहा गया है :

यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणि—इन्द्रः, वरुणः, सोमः, रुद्रः, पर्जन्यः, यमो मृत्युरीशान इति।[10]

'महाभारत' के अनुशासन पर्व में शिव का रूप कुछ अन्य विशेषताओं के साथ में भी दिया गया है।[11] उसमें वह अनेक रूपधारी और अनेक मुख, बाहु, कटि और नयनोंवाला कहा गया है। उसका शरीर भस्म के द्वारा पाण्डु वर्ण और अर्धचन्द्र से विभूषित है। वह नाग की बनी हुई मौञ्जी मेखला धारण करता है—साँपों का जनेऊ पहनता है और गजाम्बर धारण करता है। वह हँसता, गाता, मनोहर रीति से नाचता और भूतों से घिर कर विचित्र बाजा बजाया करता है···वह रौद्र रूप से तीनों नेत्रों के द्वारा लोगों को त्रासित कर के अत्यंत भयंकर हास्य किया करता है···वह ऊर्ध्वकेश, महालिङ्ग, नग्न और विकृतनेत्र है।

किसी विपक्षी पर शरवर्षा कर उसको परास्त करने वाला यह अनार्य-आर्य रुद्र नहीं है वरन् शस्त्रों का गुरु और वरदान देनेवाला योगी है। रूप की विचित्रता और डियोनिसस या बाकस का रूप भी वह अपने साथ लिए हुए है। समय के साथ-साथ शस्त्रों के शिक्षक और वरदान देने का रूप नष्ट होता जाता है—एक ओर वे योगी और दूसरी ओर नटराज, अर्धनारीश्वर, नृत्य, वाद्य, नाट्य, संगीत, वास्तु, शिल्प, व्याकरण आदि शास्त्रों के अधिष्ठाता बनते हैं।

अपने इस युग में मदन-दहन, विषपान, गंगा को धारण करना और कार्तिकेय कुमार को जन्म देने के अलौकिक कर्म करते हैं। पौराणिक काल में शिव-रुद्र—उनका डिओनिसस का रूप, वीभत्सतम और सुन्दरतम रूप में अपनी चरम सीमा को छूते-से दिखाई देते हैं। यह समय छठी शताब्दि से ले कर १५ वीं शताब्दि तक का है। इस युग में आ कर जैसे शिव की सारी शक्तियाँ मूर्तमान् हो उठीं। महात्मा बुद्ध की अहिंसा और संन्यास सामाजिक हिंसा को ढँकने में जब असमर्थ हो गए तब 'रुद्र' और शैव मत फिर से भारत में प्रतिष्ठित हुए। महादेव का नाम ले कर लोग युद्ध में उतरते थे नाटक के रंगमञ्च पर उतरते थे, श्मशान की साधनाओं में उतरते थे और योगासन की पुष्ट समाधि में भी लीन होते थे। वैष्णव धर्म कुछ भद्र लोगों के घेरे में ही स्थापित हो कर रहा क्योंकि इतने विरोधी तत्वों को एकात्मता का रूप देना उसके लिए असंभव था—लेकिन शैवों और शाक्तों ने भूत-प्रेतादिकों से ले कर शुद्ध अखण्ड समाधि में लगे योगेश तक की उपासना को किया। सामुद्रिक विद्या से ले कर वशीकरण, उच्चाटन, जादू-टोना तक और दूसरी ओर दार्शनिक विचारों से ले कर मोक्ष तक की साधना इस धर्म ने की। साथ-ही-साथ लोक-कथाओं में शिव-पार्वती की बात-चीत भी घुल मिल गई।

मध्यकाल के अन्तिम काल में शिव कथाकार के रूप में अवतरित होते हैं। जगत् के कल्याण के लिए पार्वती प्रश्न करती हैं और शिव उसका उत्तर देते हैं। शैवागमों का यही रूप है। वैसे तो शैवागमों की संख्या धार्मिक दृष्टि से अनन्त है फिर भी उनमें से मुख्य २८ आगम हैं। हर आगम के चार भाग हैं : विद्या, क्रिया, योग, चर्या। इन चारों का अन्योन्याश्रय का सम्बन्ध है लेकिन दुर्भाग्य से अभी तक कोई भी आगम चारों पदों

---

[10] बृहदारण्यक १-४-११ [11] अध्याय १४

से युक्त नहीं मिला है। कुछ "ग्रन्थ" लिपि में ही प्राप्त हैं। इस दिशा में 'शिवागम सिद्धान्त पीरपालन संघ' ने 'मृगेन्द्रम्' आदि प्रकाशन कर अच्छा काम किया है। कश्मीर से लेकर सेतुबन्ध रामेश्वरम् तक अनेक शैव सम्प्रदाय और दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ जिनकी चर्चा तक इस छोटे लेख में नहीं हो सकती। देश-काल और स्वप्रकृतियों के अनुसार महाभयंकर भैरव से लेकर सुन्दर नृत्यरत शिव-प्रतिमाओं की स्थापना देश के प्रत्येक भाग में की गई। आज भी लिङ्गार्चन की परम्परा खो नहीं गई है, और दक्षिण में कलास्रोत शिव-प्रतिमाओं की कमी नहीं है। देश के अनेक मध्य-कालीन राजाओं और सन्तों ने शिव-मत का प्रचार और विस्तार नगरों-नगरों और गाँवों-गाँवों में किया, भव्य मन्दिरों की रचना की गई, कलाकारों और साहित्यकारों ने इस देवता को वाणी का पूरा गौरव सौंपा। अन्धविश्वासों की वीभत्सता, पुरोहित वर्ग का दम्भ, राजवर्ग की कूटनीतिज्ञता, कलाकारों का सौन्दर्य और भारतीय जन-वर्ग की विद्रोही भावना को एक साथ लेकर यह प्रतिमा मध्यकाल और आधुनिक काल की चौखट पर आ कर खड़ी होकर जैसे यह प्रश्न करने लगी : 'बोलो! मुझे क्या कहते हो?'

तभी विद्रोही महाकवि नज़रुल ने कहा कि मैं शिव के ताण्डव नृत्य का प्रथम कम्पन हूँ—वे शक्तियाँ सँभलें जो जन-प्रतिभा को अन्धकार में डुबाने की कोशिश कर रही हैं। महाकवि निराला ने जैसे रुद्र का नया मंत्र रचा :

"नाचो हे, रुद्रताल,
आँचों जग ऋजु-अराल
झरे जीव जीर्ण-शीर्ण,
उद्भव हो नव प्रकीर्ण,
करने को पुनः तीर्ण
हों गहरे अन्तराल !!
फिर नूतन तन लहरे,
मुकुल गन्ध बन छहरे
उरु तरु-तरु का हहरे
नव मन, सायं-सकाल"

अन्धविश्वास नहीं, पुरोहितों का दम्भ नहीं, राजवर्ग की कूटनीतिज्ञता नहीं, जन-विद्रोह का प्रतीक बन कर रुद्र नई कविता में अवतीर्ण हुआ। जीवन कला और क्रीड़ा है अगर कला के उत्साह और क्रीड़ा की सहजता के साथ उसे स्वीकार किया जाए। आज के भारतीय जीवन में 'रुद्र' विद्रोह की भी प्रतिमा है और कला की भी। अत्याचारी के हाथों में नहीं, कल्याण के हाथों में शक्ति होना चाहिए, यही भारतीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण साधना है। एक दिन 'अशिव भी शिवधाम कृपाला' का भेष भी शिव होकर रहेगा।

—आदित्य मिश्र

रक्ताभ कार्यालय, रकाबगंज,
लखनऊ

"......जो केवल कूड़ा-करकट है जिनमें केवल चोरी करने के सिवा और कोई शक्ति नहीं, वे ही टोकरियों गंदगी से......साहित्य को दूषित और भाराक्रान्त कर रहे हैं पर जिन्होंने संसार में सत्य की उपलब्धि की है, अपने जीवन से जिन्होंने स्नेह और प्रेम के स्वरूप का अनुभव किया है, वे अन्तराल में ही पड़े रहते हैं।......केवल हृदय में अनुभव करने से ही किसी चीज़ को भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। सभी चीज़ों को कुछ-न-कुछ सीखना पड़ता है और यह सीखना सदा अपने आप नहीं होता।......"

'शरत्-पत्रावलि' से —शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

विजयनगर नरेश हरिहर के मन्त्री ठाकरसी

दक्षिण भारत का जैन इतिहास बड़ा गौरवशाली है। आचार्य भद्रबाहु से अब तक लगभग २३०० वर्षों से यहाँ जैन-धर्म का निरन्तर प्रचार रहा है। मध्यकाल के कई राजवंश जैन-धर्म के अनुयायी एवं समर्थक रहे हैं। संस्कृत और प्राकृत भाषा के अतिरिक्त अन्तस्थ लोक भाषा कन्नड़ और तमिल में भी जैन विद्वानों द्वारा रचित साहित्य बहुत विशाल एवं महत्वपूर्ण है। उत्कर्ष के बाद अपकर्ष प्रकृति का स्वाभाविक नियम है, इसके अनुसार दक्षिण में जैन धर्म के उत्कर्ष के बाद लिंगायत आदि संप्रदायों का जब वहाँ ज़ोर हुआ तो जैनों पर बहुत अत्याचार हुए। हज़ारों जैन मार डाले गए, बहुत-सों ने धर्म-परिवर्तन कर लिया और जो रहे वे हत प्रभाव से हो गए। फलतः दक्षिण के मूल निवासी जैनों में अब वह तेज़ और प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। आर्थिक दृष्टि से भी वे साधारण ही हैं।

दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य मध्यकाल में बड़ा समृद्ध और प्रतापी था। उसके शासक शैव आदि होते हुए भी बड़े धर्म सहिष्णु थे, फलतः उनके समय में भी जैन-धर्म खूब फूला फला। इन शासकों ने जैन मन्दिर आदि को पर्याप्त दान दिया। इनकी रानियों में से भी एक जैन थीं और मन्त्री भी जैन रहे हैं। उनके समय में जैन साहित्य अच्छे परिमाण में रचा गया जिसका उल्लेख भी वसुदेव उपाध्याय रचित 'विजयनगर साम्राज्य के इतिहास' के पृ. १३६ में इस प्रकार मिलता है। "धर्म प्रचार के लिए जैन कवियों ने देशी भाषा कन्नड़ को अपनाया। इन लोगों ने संस्कृत छन्दों का समावेश देशी छन्दों के स्थान पर किया। पम्प, बाहुबली आदि जैन कवियों को इस भाषा में अधिक सरलता मालूम होती थी अतएव उन्होंने धर्मनाथ की जीवनी चम्पू शैली में लिखी। नेमिनाथ का चरित प्रायः बहुतों ने लिखा। मधुर एक प्रसिद्ध जैन कवि था जो हरिहर के मन्त्री के दरबार में रहता था। विजयनगर में रत्नाकर सबसे बड़ा जैन कवि हो गया है, उसने दस हज़ार छन्द कन्नड़ भाषा में लिखे। उनमें आदिनाथ के पुत्र भरत का वर्णन किया गया है तथा संसार की अनेक बातों का वर्णन करते हुए विशेषतया योग का विवरण प्रस्तुत किया गया है। जनता में जैन धर्म पर विश्वास पैदा करने के लिए तरह-तरह की कहानियाँ लिखी गईं। सन् १४२४ के समीप भास्कर ने 'जीवन्धर चरित्र' नामक ग्रन्थ लिखा। कल्याणकीर्ति की ज्ञान 'चन्द्राम्युदयमु' नामक पुस्तक प्रसिद्ध है। विद्यानन्द तथा यशकीर्ति आदि जैन पण्डितों ने कन्नड़ भाषा में अनेक ग्रन्थों पर टिप्पणी लिखी।"

इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १६५ में जैन मत शीर्षक के नीचे जो वक्तव्य लिखा है वह भी उपयोगी होने से यहाँ दिया जाता है।

"दक्षिण भारत में चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भद्रबाहु ने जैन-मत का प्रचार किया। जैन-धर्म के आचार्य इस मत को फैलाने के लिए समय-समय पर प्रयत्न करते रहे। जैन-धर्म का प्रचार कर्णाटक में विशेष कर हुआ। कन्नड़ साहित्य की उन्नति में जैनियों का प्रधान हाथ था। तमिल भाषा में भी जैनियों के अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। विजयनगर के शासकों ने इस मत का कभी विरोध नहीं किया। लेखों में वर्णन मिलता है कि विजयनगर की राजसभा में जैनियों की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। इनको ऊँचे-ऊँचे पद भी मिलते थे। बुक्क की सभा में वड्चप्प नामक जैन-मन्त्री भी था। मैसूर के श्रवण बेलगोला के लेख में इसका उल्लेख मिलता है। हरिहर द्वितीय का प्रसिद्ध मन्त्री इरुगप्प भी जैनी था। इरुगप्प न्याय-कुशल और चतुर पुरुष था, इसने नानार्थ रत्नमाला नामक कोश की रचना की। इससे भी अधिक जैन-धर्म का समर्थन इस घटना से किया जा सकता है कि संगम के वंशज देवराय प्रथम ने भीमादेवी नामक जैन स्त्री से विवाह किया था। राजाओं ने जैन मन्दिरों को दान दिया। काँची के पास विजयनगर राज्य में इसने एक विशाल जैन-मन्दिर का निर्माण कराया। इसे तेलिग मन्दिर के नाम से पुकारते थे। श्रवण बेलगोला के लेख से पता चलता है कि इसके दो पुत्र विजयनगर सेना में सेनापति के पद पर थे। भूपाल ने जैन-मन्दिर तैयार कराया। वेनूर में स्थित जैन साधु भुजबल की

विशाल मूर्ति अब तक वर्तमान है। ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि वैष्णव होते हुए भी विजयनगर नरेशों में धार्मिक सहिष्णुता की भावना बड़ी प्रबल थी। बुक्कराय ने भी जैनियों से वैष्णवों के समान ही व्यवहार किया तथा इन धर्मों के द्वेष को भी शान्त किया।

मैसूर राज्य में जैन-मत का प्रचुर प्रचार था। वहीं वैष्णव लोग भी अपने मत का प्रचार करते थे। अतएव समय समय पर उनमें पारस्परिक झगड़ा हो जाया करता था। बुक्कराय के समय में इस झगड़े ने वृहद् रूप धारण कर लिया। सब जैनियों ने मिल कर वैष्णवों की शिकायत राजा के पास की कि विष्णु-भक्तों ने उनके धार्मिक कृत्यों में विघ्न उपस्थित किया है। जैनियों के कथनानुसार वैष्णव लोग दोषी थे। राजा बुक्क ने निष्पक्ष होकर इस मामले पर विचार किया। एक सभा बुलाई गई, इस सभा में जैनियों और वैष्णवों के समस्त प्रतिनिधि सम्मिलित थे। ये प्रतिनिधि श्रीरंगम् तथा काँची से सभा में भाग लेने आए थे। राजा ने उस पर विचार कर यह घोषणा की कि जैनी सदा की भाँति अपने गीत-वाद्य तथा कलश के अधिकारी रहेंगे और यदि वैष्णवों द्वारा हानि पहुँचाई गई तो यह अत्यन्त अनुचित कार्य समझा जाएगा। इस घोषणा का सदा पालन होता रहा।"

उपर्युक्त विजयनगर साम्राज्य से सम्बन्धित एक जैन ऐतिहासिक रास प्राप्त हुआ है जिसके अनुसार जूनागढ़ के सोरठिया पोरवाड़ ठाकरसी साह विजयनगर पहुँचे और वहाँ के राजा हरियड़ (हरिहर) के मंत्री बने। उसने मंगलपुर के पण्डीराय का उपद्रव शान्त करने की लिए आक्रमण भी किया था। इस रास की प्रतिलिपि हमें जैन-साहित्य के महारथी स्वर्गीय मोहनलाल दलीचन्द देसाई के संग्रह से अपूर्ण रूप से प्राप्त हुई है जो उनकी स्वयं नक्ल की हुई है। इसमें १६२ वें पद्य से रास अधूरा रह जाता है इसलिए आगे का इतिवृत्त प्राप्त नहीं होता। ऐतिहासिक दृष्टि से यह कृति बहुत महत्वपूर्ण होने से इसके ऐतिहासिक सार को यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। सर्व प्रथम वस्तु छन्द में 'न्यान' कवि ने सरस्वती, आदिनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर जिनेश्वर को नमस्कार कर दोहा चौपाई में ठाकरसी साह के रास का प्रारंभ किया है।

"सोरठीय प्राग्वाट" नामक निर्मल ज्ञाति जैन और शिव शासन में प्रौढ़ पुण्य-कार्यों से प्रसिद्ध है। पुराणों में इस ज्ञाति के कण्व ऋषि के हाथ से स्थापित होने की कथा है। अठारह हज़ार ब्राह्मण और छत्तीस हज़ार वणिकों का उल्लेख अस्पष्ट है।

विश्वकर्मा ने चाऊतपा नगरी समृद्ध की और प्रथम युग में मान्धाता, कृत-युग में कण्वालय, त्रेता में कल्मषनाथ, द्वापर में कंपिलसुर, कलियुग में कल्पद्रुम इस प्रकार चारों युगों में स्थान के भिन्न-भिन्न नाम प्रसिद्ध हुए।

इस ज्ञाति के 'रतन' (श्रेष्ठी) ने रैवताचल का उद्धार कर नेमिनाथ प्रभु को स्थापित किया। पचास क्रोड़ स्वर्ण व्यय कर आचंद्रार्क कीर्ति विस्तृत की। जावड़ भावड़ ने १६ लक्ष स्वर्ण खर्च कर शत्रुंजय पर आदिनाथ प्रभु को स्थापित किया। इसी सुकृतकारी जाति के ठाकरसी साह का गुणग्राम अब वर्णन किया जाता है।

भरतखण्ड में महिमामय सोरठ देश है, यहाँ के लोग दयालु और पंचरत्न सहित व दारिद्र रहित हैं। जहाँ पाँच कृष्ण और तीन नाथों का निवास है। जहाँ के मंडन नेमिकुमार हैं ऐसे गिरनार पर गंगा जैसे पानीवाले गजेन्द्रकुण्ड, सहस्रावन, लाखा आराम अविक विश्राम हैं जिससे यह अभिनव कैलाश जैसे सुशोभित है। निर्मल नीरवाली सरिता स्वर्ण रेखा के तट पर जूनागढ़ है। यहाँ का राजा खेंगार बड़ा शूरवीर और प्रतापी था। इनका ठाकरसी नामक प्रधान मंत्री बड़ा गम्भीर और बुद्धिशाली था जिसका "मतिमेरहर" विरुद था। राजा प्रधान के साथ एक बार चौपट पासे खेल रहा था, हारे हुए रुष्ट राजा ने मंत्री को देसोटा (देश निकाला) दे दिया। राजाओं का क्या विश्वास, सौ वर्ष की प्रीति एक क्षण में तोड़ते नहीं हिचकते। अमात्य ठाकरसी अपने समस्त परिवार को लेकर समुद्र तट पर आया। जहाज़ बोझाई हो रहा था, मंत्री भी अपने समुदाय के साथ जहाज़ में बैठा और १० दिन में 'मलबारि' आकर उतरा। महाराष्ट्र, दक्षिण और मलबार तीनों एक से हैं। पग पग पर वापी, कूप, तालाब और दानशालाएँ हैं। इलायची, सुपारी, नारियल, आम, फणस, केला आदि वृक्ष तथा औषधियाँ आदि वनस्पति का यहाँ बाहुल्य है। मलबार की चतुर सुंदर स्त्रियाँ नाना वस्त्रालंकार धारण कर और चन्दन का विलेपन करती हैं। यहाँ जैन और शैव लोग निवास करते हैं। मंदिरों पर स्वर्ण कलश,

और घण्टाओं के शब्द व वेद-पाठियों की ध्वनि गुंजायमान है। इसके निकट ही दक्षिण देश का विजयनगर है। अब विजयनगर की महिमा सुनिए :

इस प्रौढ़ नगरी के अभेद्य प्राकार और ऊँचे धवल-गृह हैं। ब्रह्मपुरी, सन्यासी मठ, दिगम्बर जैन मंदिर तथा औषधशालाएँ भी हैं। रात-दिन विद्याध्ययन और स्थान-स्थान पर व्यास कथा कहते हैं। टूंकभद्रा (तुंगभद्रा) नदी का निर्मल जल नगरी के नीचे से प्रवाहित हो रहा है। यहाँ का राजा हरियड़ बड़ा शूर वीर और प्रतापी है। उसकी कई राजा सेवा करते हैं और सेना भी विस्तृत है। इसके आठ मंत्री, पाँच पुरोहित और सात सामंत हैं। इस प्रकार राजा दक्षिण और मलबार दोनों देशों का शासन सुखपूर्वक संचालन करता है। इसके निकटस्थ वाकनउरपुर नामक प्रसिद्ध नगर में मंत्रीश्वर गया। इस नगर में प्रवेश करते ही ठाकरसी साह को शुभ शकुन हुआ और वह हर्षपूर्वक एक मकान लेकर उसमें निवास करने लगा।

कुछ दिन बाद ठाकरसी साह ने सोचा, किसी भी व्यापार का आश्रय लिए बिना वणिक् पुत्रों को निकम्मे बैठे रहना उचित नहीं। इस देश में समुद्री व्यवसाय है अतः प्रवहण में माल भर कर अपने सहोदर 'विजउ' को कणयापुर भेजा। कणयापुर के राजा की रूपवती रानी का नाम जयसेना था। पूर्व कर्म के उदय से रानी के शरीर में शाकिनी की बाधा थी। राजा ने मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, औषधि आदि अनेकों उपचार कराये। किसी से कुछ लाभ नहीं हुआ और इस तरह बारह वर्ष बीत गए। राजा ने ढंढोरा पिटाया कि जो रानी को नीरोग कर देगा राजा उसका दुःख दारिद्र्य दूर कर देगा। इसी अवसर पर 'वीजउ' कणयापुर गया और जाकर राजा से मिला। ढंढोरे का कोलाहल सुन कर उसने कहा : 'क्या बात है' राजा ने रानी के छल-छिद्र-बाधा का वृत्तान्त कहा। 'वीजउ' ने हँस कर कहा : "इसकी क्या चिन्ता है, मैं अभी ठीक कर देता हूँ—बुलाइये रानी साहब को।" राजा उसे रानी के पास ले गया, बीजा की वीर विद्या सिद्ध थी। उसके प्रभाव से रानी स्वस्थ हो गई। जो बारह वर्ष तक अबोल रही अब सहर्ष बोलने लगी। राजा ने मनोवांछित वस्तु माँगने को कहा। बीजा अश्वपरीक्षक (शालिहोत्र) भी था उसने वही अश्वरत्न माँगा जो राजा के यहाँ अकेला खड़ा था और धूप सुगंधि चामर आदि से आराधित और पटकूल आदि से सुशोभित था। राजा ने वचनबद्ध होकर बीजा को अश्वरत्न समर्पण कर दिया। बीजा उसे ले जहाज़ मार्ग से वाकनउर नगर के बन्दरगाह में पहुँचा। बधाऊ ने ठाकुरसी साह को खबर दी, ठाकुरसी साह समुद्र तट पर आए और जहाज़ में से उतर कर बीजा ने उन्हें प्रणाम किया। ठाकरसी साह अश्वरत्न को देख कर अत्यन्त प्रमुदित हुए। बछराज के नन्दन ठाकरसी ने सोचा कि यह कल्प वृक्ष के सदृश अश्वरत्न हमें मिला है तो मालूम होता है कि अब हमारा पूर्वकृत पुण्य प्रगट हुआ है।

ठाकरसी ने अश्वरत्न को उत्सवपूर्वक ले जा कर अपने घर में बाँधा। फिर वह राजा को भेंट करने के लिए अश्वरत्न को ले कर विजयनगर गया और राजा हरियड़ से मिला, राजा अश्वरत्न को देख कर चित्त में चमत्कृत हुआ और शालिहोत्र लोगों को तत्काल बुलाया और पण्डितों से इस अश्व की जाति पूछी। उन्होंने कहा कि इन्द्र और सूर्य के सिवा यह तीसरा अश्व जो आपने प्राप्त किया है ऐसा चौथा घोड़ा कहीं भी सुनने में नहीं आता। राजा ने आनंदित होकर ठाकरसी का बहुत आदर किया और उसे अपने सब मंत्रियों के ऊपर प्रधान पद किया। ठाकरसी साह राजा के पास अब प्रेमपूर्वक रहने लगा और लघुभ्राता (बीजा) को 'वाकनुरि' रखा।

इधर सोरठ देश में क्या हुआ कि मन्त्री के आने के बाद असुर सेना ने जूनागढ़ पर आक्रमण किया, रास्ते घाट सब बन्द कर दिए। राजा ने सखेद किसी तरह दस-बारह वर्ष बिताए आख़िर अपने राज्य में बुद्धिशाली मंत्री ठाकरसी का अभाव महसूस करते हुए सोरठ देश को छोड़ा और समुद्री मार्ग से मलबार आया। जब ठाकरसी ने राजा खेंगार का आगमन सुना तो स्वागत पूर्वक जाकर मिला और सोरठपति को नमस्कार किया। फिर उन्हें बहुत सी भेंटें दीं और अच्छे स्थान में उतारा करवाया। सोरठ नरेश खेंगार की सेवा में रहने से ठाकरसी साह दरबार में न जा सके तो राजा हरियड़ ने मंत्री की अनुपस्थिति का कारण पूछा। चुग़लखोर पुरोहित ने कहा : "महाराज! सोरठपति खेंगार यहाँ आया हुआ है, ये राजा साहजी का पहले का स्वामी है अतः उनकी सेवा करता है। वास्तविक बात तो ये है कि खेंगार बड़ा योद्धा और प्रतापी है। उसने आपका राज्य लेने के लिए पहले मंत्री को भेजा और फिर स्वयं आया

है।" विजयनगर का स्वामी हरियड़ यह सुन कर कुपित हुआ और धूर्त पुरोहित की बात सत्य मान कर तत्काल साह ठाकरसी को बुलाने के लिए सात दूतों को भेजा। मंत्रीश्वर ठाकरसी राजा का बुलावा जाने पर बहुत-सी भेंट योग्य वस्तुएँ लेकर राजा खेंगार को विजयनगरपति से मिलाने के लिए साथ ले गया। सिंहद्वार पर दोनों नरेश्वर मिले। खेंगार के साथ में प्रौढ़ परिवार था। हरियड़ के मन में पुरोहित के वचनों से भय बैठा हुआ था अतः कपट पूर्वक अपने यहाँ भोजन करने के लिए न्यौता दिया।

राजा हरियड़ ने नाना प्रकार के भोजन तैयार करवाए और सोरठपति का काम तमाम करने के लिए खीर में विष डलवा दिया। रसोई तैयार होने पर हरियड़ ने सवार भेजा। उसने मन्त्री से पुरोहित की चुग़ली और विष-भोजन की प्रच्छन्न बात का चुपके से इशारा कर दिया। मन्त्री सावधान हो गया और उसने सोरठपति को बचाने के लिए एक उपाय सोचा। वह तत्काल हरियड़ के पास गया और कहा—स्वामिन् इनमें नीच जाति के लोग भी हैं अतः इनके लिए उद्यान-भोज ही उपयुक्त होगा। राजा ने इसे हित वार्ता मान कर भोजन सामग्री भेज दी। मन्त्री ने रसोई को बदल कर भोजन कराया और इस प्रकार सोरठ नरेश की रक्षा की।

मन्त्री ठाकरसी ने दो लाख रुपए और बहुत-सी सामग्री देकर राजा खेंगार को विदा किया। उसने गुहिलवाड़ जा कर एक लाख के घोड़े ख़रीदे और सैन्य एकत्र कर गढ़ गिरनार पहुँचा। यवनों पर आक्रमण कर खेंगार ने उन्हें भगा दिया और दुर्ग में प्रवेश कर अपना अधिकार कर लिया। यादवपति खेंगार ने अपने पिता का नाम रखा और दुष्टों को निकाल कर क्षत्रवट उज्ज्वल किया।

इधर राजा खेंगार को रवाना करने के बाद साह ठाकरसी दक्षिण नरेश हरियड़ की सेवा में पूर्णतः उद्यत रहने लगा। राजा ने पूछा कि तुम्हें तुम्हारे पूर्व स्वामी ने कैसे छोड़ा? (और फिर तुम्हारे पास कैसे आया?) मन्त्री ने कहा—स्वामिन्! घर पर आए हुए अभ्यागत को कैसे निकाला जाए। राजभ्रष्ट होकर राजा खेंगार आया और दस बीस दिन रह गया! आप इस बात को धैर्य-पूर्वक सोचें। चुग़लखोरों के वचन से आप कान के कच्चे न हों। तब राजा हरियड़ ने पूछा—खेंगार राज्य कैसे हुआ? मन्त्री ने कहा—यवनों के प्रबल आक्रमण से गढ़ छोड़ कर सोरठपति यहाँ आया था।

इसी अवसर पर सोमेश्वर-शिव की यात्रा से लौटे हुए यात्रियों से पूछ कर राजा ने अपने मन का सन्देह दूर किया और ठाकरसी साह के वचनों की प्रतीति हुई। पुरोहित ने वचनों को पापपूर्ण ज्ञात कर मन्त्री से पूछा : तुमने यादव खेंगार को कैसे जिमाया? मन्त्री ने कहा : भोजन के बाद क्षत्रिय और खेंगार एक घड़ी भी नहीं ठहरे और घोड़े पर सवार हो विदा हो गए। यह सुन हरियड़ के मन में ख़ूब पश्चात्ताप हुआ और उसने सोचा कि दुष्ट के वचन से मैंने बिना विचारे बड़ा ही अकार्य किया। अवश्य ही सोरठपति के प्राण संकट में हुए और मेरे कुल को कलंक लगा। पुण्य के बिना किसी के घर अतिथि नहीं आते और मैंने अतिथि के साथ यह अविचारपूर्ण व्यवहार किया। मन्त्री ठाकरसी ने राजा को पश्चात्ताप करते देख कर बात की वास्तविकता बता कर उसे निश्चिन्त किया। राजा और मन्त्री की परस्पर प्रीति में वृद्धि हुई।

एक बार भरी सभा में दूत ने आकर चिल्लाते हुए ख़बर दी कि कन्नड़ा पंडी राय अपने ग्रामों को लूट खसोट कर औरत-बच्चों को कष्ट देकर अन्याय कर रहा है। राजा ने जब कन्नोड़े पंडी राय की बात सुनी तो वह चिन्तित होकर निश्वास डालने लगा। मन्त्री ने कहा : ऐसी क्या बात है स्वामिन्! राजा ने कहा : जैसे चूहा दीपक की बाट को ले जाता है वैसे ही यह कन्नड़ा पण्डी राय मेरे राज्य में उत्पात मचाता है। रात-दिन मेरे हृदय में यह कांटे की तरह चुभ रहा है, कैसे वह दूर किया जाए?

मन्त्रीश्वर ऐसा सुन कर उठा और नमस्कार कर कहने लगा : मुझे उस दुष्ट का नाम और पता बतलाइए। राजा ने कहा : मंगलपुर का पण्डी राय उद्दण्ड है जो न तो किसी का पायनामी है और न किसी को दण्ड देता है। मन्त्री ने कहा : आपके प्रताप से सब ठीक होगा। उस ने मस्साणी को बुला कर घोड़ों को तैयार करने की आज्ञा दी। अब काछेला, केवी, मकराणा, लखाहिला, माहरि, हरमज्जी, दस्कारी, दलदूअण, महुगा, मुलतानी, खुरासानी, सिन्धुआ, सोरठी, पारकरा, हाडावट आदि नाना जाति के घोड़ों पर ज़ीन कस के सुभट लोग हरि

१९५४

के मन्त्री ठाकरसी की सेना में जाने की लिए सुसज्जित होने लगे।

इसके बाद रास अपूर्ण रह जाता है। अतः इस रास की कहीं पूर्ण प्रति किसी सज्जन को मिले तो हमें सूचित करने की कृपा करें।

ऐतिहासिक पर्यालोचन : प्रस्तुत रास के अनुसार सोरठिया पोखाड़ ठाकरसी साठ जूनागढ़ के राजा खेंगार के मंत्री थे और किसी कारणवश महाराजा के रुष्ट हो जाने पर समुद्रमार्ग से दक्षिण प्रान्त के वाकनउरपुर में पहुँचे और व्यापारादि करते हुए वहाँ के नरेश्वर हरियड़ के मंत्री बन गए। मंगलपुर के पण्डीराय के उपद्रव को शान्त करने के लिए इन्होंने ससैन्य आक्रमण करने की तैयारी की। प्राप्त रास में यहीं तक का वर्णन आता है, पर रचना अपूर्ण ही प्राप्त हुई है इसलिए इस आक्रमण की सफलता और परवर्त्ती शुभ कार्यों को जानने के लिए इसकी पूर्ण प्रति की प्राप्ति अत्यावश्यक है।

यहाँ सर्वप्रथम जूनागढ़ के खेंगार की जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है जिससे ठाकरसी के समय का निर्णय हो सके। हमारे इतिहासज्ञ विद्वान् मित्र हिन्दू कालेज, दिल्ली के प्रोफेसर डा. दशरथ शर्मा से पूछने पर उन्होंने खेंगार का निम्नोक्त वर्णन भेजा है :

"यह खेंगार जैन साहित्य में पर्याप्त विख्यात राजा महीपाल का पुत्र था। इसके राज्य की घटनावली से प्रतीत होता है कि यह सूरवीर और मनस्वी था। अपने देश को स्वतन्त्र करने की इसके हृदय में प्रबल अभिलाषा थी। "मीराते-मुस्तफ़ाबाद" में लिखा है कि उसने सोमनाथ से मुसलमानों को निकाल बाहर किया और अनेक धर्म स्थानों का अधिकार राजपूतों को दे दिया। प्रायः इसी समय गुलाम सेनापति तक़ी ने दिल्ली के विरुद्ध विद्रोह किया। खेंगार ने उसे सहायता दी, मुहम्मद बिन तुगल इस समय दक्षिण में था। उधर से विजय की आशा छोड़ वह उत्तर की तरफ़ मुड़ा। खेंगार की भी बारी आई लगभग एक साल तक गिरनार के दुर्ग में रह कर खेंगार लड़ता रहा। अततः सन् १३४६ (वि. सं-१४-५-६) में इसे गिरनार छोड़ना पड़ा। इसके कितने समय बाद खेंगार ने ठाकरसी आदि की सहायता लेकर पुनः अपने राज्य पर अधिकार किया यह अभी इतिहास से अनिश्चित है।" रास में ही खेंगार के दक्षिण जाने, ठाकरसी के सत्कार करने और उसकी सहायता से खेंगार के पुनः राज्याधिकार पाने की महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है।

रास का दूसरा ऐतिहासिक उल्लेख ठाकरसी के बाकनउरपुर जाने और राजा हरियड़ के मंत्री बनने का है। बाकनउरपुर दक्षिण कन्नड़ (तुलुव प्रदेश) का प्रसिद्ध बन्दरगाह रहा है। यहाँ देश-विदेश से अनेक जहाज़ आते और साफ़ किए हुए चावल, ओमुज, अदत, कन्नानूर, कालीकट आदि स्थानों के ले जाते। अतः ठाकरसी का व्यापार के लिए यहाँ आना व सफलता प्राप्त करने का उल्लेख ठीक ही है।

हरियड़ नामक विजयनगर साम्राज्य के दो शासक हो गए हैं। खेंगार की समकालीनता को देखते हुए यह हरियड़ विजयनगर साम्राज्य का स्थापक हरिहर प्रथम ही हो सकता है। इसने सन् १३३६ से १३६४ तक राज्य किया। इसके ८ मंत्री, ५ पुरोहित और ७ सामन्त होना सामान्य-सी बात है। ये महामण्डलेश्वर पद से विभूषित थे। दूसरे हरिहर का सर्व प्रथम लेख सन् १३७२ का प्राप्त है। इसका विरूद नामक महाराजाधिराज था। सन् १४०४ में इसकी मृत्यु हुई। इसका मंत्री इरुगाप्प जैन था।

रास का अन्य ऐतिहासिक उल्लेख ठाकरसी के भ्राता बीजा जहाज़ मार्ग से व्यापारार्थ कण्णयापुर गये और तत्रकीय राजमहिषी जयसेना को शाकिनी के कष्ट से मुक्त किया व राजा के यथेच्छ वस्तु मांगने पर उसने अन्य कुछ भी न माँग कर इनका अश्वरत्न प्राप्त किया जिसे ठाकरसी साह ने विजयनगर नरेश हरियड़ को भेंट कर प्रधान पद प्राप्त किया। बीजा (ठाकरसी का भ्राता) बाकनउरपुर में रहने लगा, रास में यहीं तक का उल्लेख है।

कण्णयापुर और वहाँ की रानी जयसेना के सम्बन्ध में डा. दशरथ शर्मा ने लिखा है कि कण्णयापुर संभवतः दक्षिण कन्नड़ (तुलुव प्रदेश) के कुन्दापुर तालुक़े का कल्याणनगर है। यहाँ महाराजाधिराज वीर बल्लाल की पट्टमहिषी कृष्णाई तायीका सन् १३४६ का एक लेख वर्त्तमान है। इसे रानी जयसेना मानने की इच्छा होती है किन्तु यह भी संभव है कि वह किसी सामन्त राजा जयसिंह की रानी रही होगी। जिस राजा जयचन्द से बीजा ने अश्वरत्न प्राप्त किया था। रास में मंगलपुर के पंडीराय के उपद्रव को शान्त करने के लिए ठाकरसी के ससैन्य आक्रमण का उल्लेख मिलता है। इस पण्डीराय के सम्बन्ध में दशरथ जी ने लिखा है कि हरिहर प्रथम के समसामयिक दो राजाओं ने पाण्ड्य राज की

उपाधि धारण की थी, इन में एक भी दक्षिण कन्नड़ाधिपति (तुलुव प्रदेश का स्वामी) वीर पाण्डयदेव जिसने सन् १३४६ तक राज्य किया है। इसके विरुद पाण्ड्य-चक्रवर्ती, अरिराय वासवशंकर और राजा गजाङ्कुश आदि थे। मंगलोर (मंगलपुर) के पाण्डयेश्वर मन्दिर में सन् १३६० का इस राजा का एक लेख वर्त्तमान है।

होयसाल राजा वीर बल्लाल तृतीय ने भी इसी प्रकार पाण्ड्य चक्रवर्ती आदि विरुदों को धारण किया था। संभवतः सन् १३४० के आसपास उसने दक्षिण कन्नड़ अर्थात् तुलुव प्रान्त पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। इनमें से किस राजा पर ठाकरसी ने आक्रमण किया यह बताना कठिन है।

कन्नड़ शब्द अधिकतर होयसाल वंशियों के लिए प्रयुक्त होता है। यदि कन्नड़ पण्डीराज वीर बल्लाल तृतीय हो तो हमें यह मानना पड़ेगा कि विजयनगर के संस्थापक हरिहर प्रथम को केवल मुसल्मानों से ही नहीं अपि तु दक्षिण के प्रबल शासक वीर बल्लाल तृतीय से भी मोर्चा लेना पड़ा था और उसे पराजित करने में ठाकरसी ने अच्छी सहायता की हो किन्तु वीर बल्लाल की मृत्यु सन् १३४२ में हो चुकी थी। उस समय शायद ठाकरसी दक्षिण भी न पहुँचा हो इसलिए अधिक युक्तिसंगत यही है कि मंगलोर के पण्डीराय को आलुपेन्द वीर पाण्ड्यदेव मानें। मंगलोर का पितृक्रमागत अधिकारी यही था और संभवतः इसी के समय दक्षिण कन्नड़ के शासकों ने विजयनगर की आधीनता स्वीकार की। दक्षिण कन्नड़ प्रदेश का आधिपत्य होने के कारण पाण्ड्यराज कन्नोड़ा या कन्नड़ कहा जा सकता है।

रास नायक ठाकरसी के सम्बन्ध में ऐतिहासिक पर्यालोचन करने के पश्चात् रास के रचना के विषय में भी विचार कर लेना आवश्यक है। रास अपूर्ण प्राप्त होने से जो उसके अन्त में रचना-काल और स्थान दिया होगा, वह प्राप्त नहीं है।

रास में इस के रचयिता का नाम ज्ञान कवि आता है। जैन गुर्जर कवियों में इस नाम के दो कवियों का उल्लेख है पर वास्तव में वे दोनों कवि एक ही हैं। इस ग्रन्थ के भाग १ पृ० ४८० में उल्लिखित ज्ञान कवि को ज्ञानदास मान लिया गया हो जो ठीक नहीं है। इस ग्रन्थ के तृतीय भाग के पृ० ५४३ में सोरठगच्छ के ज्ञानचन्द्र सूरि के ग्रन्थों का विवरण है वही भाग एक वाले ज्ञान कवि हैं। पृ० ६५८ में उल्लिखित लौंका गच्छीय ज्ञानदास वे नहीं है क्योंकि पृ० ४८० में ज्ञानरचित स्त्री चरित्र रास रत्नाकरपुर में रचा गया लिखा है और तीसरे भाग के पृ० ५४५ में वेताल पच्चीसी का जो विवरण छपा है उसमें भी उसका रचना-स्थान रत्नाकरपुर बतलाया है अतः ये दोनों कवि एक हैं।

ज्ञानचंद्र सूरि की परम्परा सोरठ के मंगलपुर-मांगलोर से सम्बन्धित थी। रासनायक ठाकरसी भी उसी सोरठ के जूनागढ़ निवासी थे और उनकी जाति भी सोरठिया पोरवाल थी, संभव है सोरठगच्छ से उसका गुरु शिष्य सम्बन्ध भी हो। ज्ञानचन्द्र सूरि का समय सन् १५६५ से १५९९ तक का है अतः इस रास की रचना भी इसी समय के बीच में होनी चाहिए। ठाकरसी के समय का जो ऊपर निर्णय किया गया है तदनुसार यह रास उसके लगभग १५०-२०० वर्ष पश्चात् रचा गया है। श्री ज्ञानचंद्र सूरि के पास संभव है कि ठाकरसी साह संबन्धी कोई रचना हो या मौखिक परम्परा से वृतान्त जानने को मिला हो।

रचना चरितनायक के पीछे की होने से उसमें दिए हुए इतिवृत्त में कुछ आगे पीछे और अतिशयोक्ति भी हो पर उसके मूल तथ्य इतिहास से अवश्य ही संबन्धित हैं, इस में कोई सन्देह नहीं। अतः यह रास ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

—अगरचन्द नाहटा

नाहटों की गवाड़,
बीकानेर

हम जीवन का गीत गाएँगे
हम जीवन में शक्ति लाएँगे

—नज़रुल इस्लाम

तुलसी का जन्म-स्थान

तुलसी के जन्म-स्थान के विषय में अब तक जो विवाद मैदान में अपना जौहर दिखाता रहा है वह कुछ मन्द भी न होने पाया था कि एक और सुर सुनाई पड़ने लगा। प्रसन्नता की बात है कि प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० माताप्रसाद गुप्त ने उसको पकड़ा और उसकी पकड़ में लिख ही तो दिया :

"८. जन्म-तिथि के संबन्ध में जिस प्रकार का मतभेद ऊपर हमने देखा है, उससे भी अधिक मतभेद जन्म-स्थान के संबन्ध में है। कवि की कृतियों में कोई भी ऐसा उल्लेख अथवा अन्य प्रकार का साक्ष्य नहीं मिलता जिससे प्रश्न पर कोई निश्चित प्रकाश पड़ता हो।

'कवितावली' में आई हुई निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत करते हुए :

'बानर विभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि,
तुलसी तिहारो घर जायो है घर को ॥'

पं० चन्द्रबली पांडे कहते हैं :

'निश्चय ही तुलसीदास का घर कहीं अवध में था, और वहीं था कहीं उनका जन्म-स्थान भी।'

प्रश्न यहाँ पर यह है कि उद्धरण में आए हुए 'घर' शब्द की व्याप्ति कितनी है—क्या 'अवध' मात्र 'घर' शब्द की सीमा के अन्तर्गत आवेगा ? इस प्रसंग में इसी प्रकार की उक्ति कबीर जी की भी उद्धृत की जा सकती है :

'कहि कबीर गुलाम घर का जीआइ भावै मारि।'

बनारस या मगहर कहीं भी कबीर जी का जन्म हुआ हो, किन्तु न उनका घर अवध में था और न था वहीं कहीं उनका जन्म-स्थान, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। अवतारवाद के विरोधी होने के कारण अवध से वे उस प्रकार का भावात्मक नाता भी नहीं जोड़ सकते थे जैसा तुलसीदास। इसलिए उपर्युक्त पक्तियों से जो निष्कर्ष पांडे जी ने निकाला है, उससे सहमत होने में कठिनाई प्रतीत होती है।"[1]

हम डाक्टर गुप्त के आभारी हैं कि उन्होंने इस मत को इस योग्य समझा कि यह उनके विचार का लक्ष्य बना परन्तु हम उनकी उस मेधा और उस जानकारी को क्या कहें जिसमें तथ्य-ग्रहण की क्षमता नहीं। पहले आप कबीर की फबती को देख लें। डा० माताप्रसाद गुप्त को पता नहीं कि कभी 'अवध' की सीमा कुछ और थी और कभी कुछ और। उनको तो बस आज का 'अवध' 'अवध' दिखाई देता है। उनकी समझ में 'अवध' की सीमा अबाध रूप से सदा यही रही है। तपस्वी को पता क्या कि अंग्रेज़ी शासन का अवध उक्त 'अवध' से भिन्न है। कारण यह कि आप का अध्ययन ही कितना जो इतना समझ सकें कि 'अवध' की व्याप्ति कब कितनी रही है। अधिक क्या ? यदि आप 'श्रीमहाराज-चरित्र' का पाठ भी कभी ठिकाने से कर लेते तो अपनी कठोर अज्ञानता का प्रदर्शन इस प्रकार न करते। कारण कि वहाँ पढ़ने को मिल जाता यह कि :

"राम धाम मंडल जो गावा।
नगर अनूप अवध छबि छावा ॥
तासु चारि दिशि चारि दुआरे।
ते दश दश जोजन बिस्तारे ॥
पूरब गोरखपुर श्रुति गावा।
दक्षिण जमनपुरहु मन भावा ॥
उत्तर बहराइच मन भावन।
फाटक चारि अवध के पावन ॥
तिन द्वारन रक्षक बलवाना।
मतमयंद अंगद हनुमाना ॥
पच्छिम द्वार सोह जेहि ठाऊँ।
सो जग विदित लषनपुर नाऊँ ॥"[2]

तात्पर्य यह कि डा० गुप्त की फबती उन्हीं पर ठीक बैठती है। उन्हें पता होना चाँहिए कि 'मगहर' 'अवध' के भीतर था और 'कबीर' के समय भी उसकी

---

[1] तुलसीदास, तृ० सं०, सन् १९५३, पृष्ठ १४०-१ [2] श्रीमहाराज-चरित्र, बड़ा स्थान, अयोध्या, पृष्ठ ५

यही स्थिति थी। हाँ, जौनपुर के प्रभुत्व में आ जाने से अवश्य 'अवध' की महिमा शासन की दृष्टि में घट गई थी किन्तु उसकी स्थिति में कोई अन्तर न था। तुलसीदास के समय में तो गोरखपुर सूबा अवध का अंग ही था फिर यह डा० गुप्त की उड़ान कैसी?

अच्छी बात है। छोड़िए डा० गुप्त की फबती को और लीजिए उनके तर्क को ही। कबीर 'अवतारवाद के विरोधी' थे। सो तो ठीक। 'अवध से वे उस प्रकार का भावात्मक नाता भी नहीं जोड़ सकते थे जैसा तुलसीदास' तो और भी अच्छा। परन्तु इससे विरोध में आपका बन क्या गया विपरीत आपके बना यह कि इसी से कबीर में कोई ऐसी ध्वनि नहीं, पर तुलसी में है। कबीर का पूरा पद है:

'फुरमानु तेरा सिरै ऊपरि फिरि न करत बीचार।
तुही दरीआ तुही करीआ तुझै तै निसतार॥
बंदे बंदगी इकतीआर।
साहिबु रोसु धरउ कि पिआरु॥१॥
नामु तेरा आधारु मेरा जिउ फूलु जई है नारि।
कहि कबीर गुलामु घर का जीआइ भावै मारि॥२॥'[3]

सुख-सुविधा के लिए इसका अर्थ दिया गया है:

"तेरा आज्ञा-पत्र मेरे सिर-माथे है। उस पर फिर मैं क्या विचार करूँगा? तू ही नदी है, तू ही कर्णधार है और तुझी से मेरा निस्तार होगा। ऐ बन्दे, तेरा अधिकार तो केवल वन्दना करने में ही है। स्वामी चाहे क्रोध करे या प्यार करे। तेरा नाम ही मेरा आधार है। (इसका परिणाम यह होगा कि) आग भी फूल की भाँति हो जाएगी। कबीर कहता है कि मैं तो तुम्हारे घर का गुलाम हूँ। चाहे मारो, चाहे जिलाओ।"[4]

पाठक मनोयोग के साथ 'घर का गुलाम' का अर्थ समझें और देखें कि इसकी बिसात कितनी जो इसको प्रमाण में रखा गया है। इस जन के इस कथन की तोड़ में—

'तुलसीदास स्वयं इस सम्बन्ध में मौन हैं, अथवा कुछ कहते भी हैं तो यही:

"धरम के सेतु जग मंगल के हेतु,
भूमि भार हरिबे को अवतार लियो नर को।
नीति और प्रतीति प्रीति-पाल चालि प्रभु मान,
लोक बेद राखिबे को पन रघुबर को।
बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि,
तुलसी तिहारो घर जायौ है घर को॥"[5]

"'अंग जरै अनुचर को' में जो खीझ है वही 'तुलसी तिहारो घर जायौ है घर को' को और भी सशक्त बनाती है और बताना चाहती है कि इस 'घर जायौ है घर को' का रहस्य भी कुछ और ही है। हाँ, स्मरण रहे, तुलसी लोक और वेद दोनों की रक्षा को रघुबर का 'पन' बताते हैं, कुछ केवल वेद ही को नहीं, जिससे इस लौकिक सम्बन्ध की उपेक्षा की जाए। तुलसी को जहाँ जो अभिमान होता है वह 'घर जाया' लगाव का और न घर का 'घर-जाया' लगाव का। निश्चय ही तुलसीदास का घर कहीं अवध में ही था और वहीं था कहीं उनका जन्म-स्थान भी।"[6]

आश्चर्य होता है यह देख कर कि एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय के डाक्टर ने इसको उक्त रूप में समझने का कष्ट किया है और पता नहीं किस शब्द-शक्ति के बल पर क्या कौतुक रच दिया है? उसको इतना बोध कहाँ कि सुबुद्ध ढंग से इस पद्य की परख करे और विवेचन में सत्य का विज्ञापन करे। विपरीत इसके उन्होंने तो स्पष्ट ही खुल कर लिख दिया कि पूरा पद्य नहीं केवल उसकी कुछ 'पंक्तियाँ उद्धृत' की गई हैं और कहा गया जो कुछ सो सब 'घर' की व्याप्ति के आधार पर परन्तु पाठक भली भाँति देख सकते हैं कि वस्तुतः बात ऐसी है नहीं। इसमें पूरे छन्द को समझने का प्रयत्न किया गया है और कहा गया है कि वास्तव में यह 'प्रसंग' विचारणीय है। इसमें 'लौकिक सम्बन्ध' का आग्रह किया गया है कुछ दिखाने के लिए ही। भक्त तो वानर (सुग्रीव) और विभीषण भी हैं। भक्ति के नाते राम की दृष्टि में सभी भक्त बराबर हैं किन्तु लोक की दृष्टि से तो उनमें

---

[3] संत कबीर, साहित्य भवन, इलाहबाद, पृ० ७२ [4] वही, परिशिष्ट, पृष्ठ ३१ [5]. कवितावली, उत्तरकाण्ड पृष्ठ १२
[6] तुलसीदास, शक्ति कार्यालय, पृष्ठ २३-४

बड़ा भेद है न ? कहाँ 'घर' का 'घरजाया' तुलसी और कहाँ दूर के सुग्रीव और विभीषण ? फिर भी यहाँ उपेक्षा और वहाँ ऐसी असीम कृपा। यह तो जल-भुनने की बात हुई। अवतार 'नर' का लिया काम 'वानर' का किया। अच्छी गति रही। भाव यह कि यह विमर्श-भूमि है कुछ किसी विद्यालय की कक्षा-भूमि नहीं कि बिना पढ़े जी में जो कुछ आया कह दिया। इसके एक एक अक्षर पर विचार कर सोच-समझ कर फिर लिखिए कि वस्तुतः इसका रहस्य क्या है और क्या है तुलसी के इस कथन का आशय भी। हमारी समझ में तो इसका अर्थ तभी खुलता है जब हम 'घर का गुलाम' के मुहावरे से आगे बढ़ तुलसी के इस कथन की ध्वनि को समझते और सचमुच उनको अवध का जनमा मान लेते हैं। नहीं तो इसका अर्थ क्या ?

डा० माताप्रसाद गुप्त की देख-रेख में जो 'तुलसी-शब्दसागर' हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है उसको देखने का प्रयत्न निष्फल गया। पता नहीं उसमें 'घरजायो' का अर्थ क्यों नहीं दिया गया। प्रतीत होता है कि उसके संपादक महोदय ने इसके अर्थ को समझने की चेष्टा न की और 'सभा' संस्करण के अर्थ को भी टाल दिया। अथवा कह लें, देखा नहीं। उसमें 'घरजाया' का अर्थ 'गुलाम' दिया गया है यही डा० गुप्त के लिए पर्याप्त है। यह 'घरजाया' है क्या ? इसका समाधान डा० गुप्त के यहाँ संभव कब ? किन्तु महात्मा तुलसीदास इसकी शक्ति को जानते और इसकी स्थिति को पहचानते हैं, तभी तो अपने राम से अंत में खीझते और खुल कर कहते हैं :

"तुलसी तिहारो घरजायउ है घर को।"

'घरजायउ' से कवि को संतोष नहीं। तभी तो फिर 'घर को' का प्रयोग करता है ? पता नहीं प्राध्यापक महोदय ने कभी 'साभिप्राय प्रयोग' का नाम सुना है वा नहीं। कारण कि प्राध्यापन का काम तो यों ही बट्टेखाते में चला करता है अन्यथा ऐसी अनुपम योग्यता का परिचय इस अनुपम ढंग से क्यों दिया जाता ? कबीर का उदाहरण इस प्रसंग में किस काम का निकला पाठक इसे पहले देख चुके हैं। 'घर का गुलाम' मुहावरा बन चुका है। कबीर के यहाँ वह इसी रूप में है परन्तु तुलसी के यहाँ वह निरा मुहावरा नहीं, वह तो मूल को पकड़े हुए है और अभिधार्थ के साथ चलता है। 'घरजाया' के बाद 'है' का आना और फिर उसके पश्चात् 'घर को' का विधान कर जाना किसी महत्त्व का द्योतक है। हमारी समझ में 'सो प्रसंग' की व्याख्या इसी में सटीक बैठती है। आशा है डाक्टर माताप्रसाद गुप्त जी कुछ साहित्य-शास्त्र के सहारे इस 'प्रसंग' को समझाने का प्रयत्न करेंगे कुछ छात्रों को बहकाने की दृष्टि से नहीं।

जी, अच्छा होगा यहीं 'सूर' के 'खानाजाद' को भी देख लेना। कहते हैं :

"मन बिगर्यौ येउ नैन बिगारे।
ऐसौ निठुर भयौ देखौ री, तब तैं टरत न टारे॥
इंद्री लई, नैन अब लीन्हे, स्यामहिं गीधे भारे।
ये सब कहा कौन हैं मेरे, खानाजाद बिचारे॥
इतने तैं इतने मैं कीन्हे, कैसैं आजु बिसारे।
सुनहु सूर जे आपु स्वारथी, ते आपुन हीं मारे।२२२६।"[७]

'सूर' के 'खानाजाद' को समझने का प्रयत्न करें और देखें यह कि क्या इसका अर्थ कुछ और बोलता दिखाई नहीं देता और रूढ़ार्थ को ही सब कुछ समझ लेता है। हमारी दृष्टि में तो ऐसा आता है कि सूर का 'खानाजाद' तुलसी का 'घरजाया' है और फलतः दोनों अपने-अपने स्थान पर अपने अभिधार्थ के साथ ही !

जो हो, इतना तो अत्यंत स्फुट है कि उक्त डाक्टर महोदय ने इस जन के पक्ष को उड़ाने का जो प्रयत्न किया है उसमें उन्हीं की प्रतिभा के पंख उखड़ गए हैं। पता नहीं उद्धरण देने में सचाई के पर क्यों कतर दिए गए हैं। क्या फबती की उमंग में ऐसा किया गया है ? हम जानना चाहते हैं कि डा० गुप्त महोदय के यहाँ इस पद्य का अर्थ क्या बैठता है ? देखें उसका प्रकाशन कब दृष्टिपथ में आता है—साथ ही 'अवध' की सीमा भी।

—चन्द्रबली पांडे

मंगलकरण, लंका,
बनारस

---

[७] सूरसागर, दशम स्कंध, पृष्ठ १००६

श्रव्य-काव्य में रस-कल्पना का आधार

काव्य में रस-प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में आचार्यों में परस्पर भेद है। एक दल के विचारक केवल दृश्य-काव्य की रसास्वादनीयता को ही स्वीकार करते हैं और दूसरे दल के अनुगामी श्रव्य तथा दृश्य, दोनों को ही रसमय मानते हैं। दृश्य-काव्य की रसात्मकता के पक्ष में मुख्यतः दो तर्क उपस्थित किए जा सकते हैं। एक, रस की कल्पना सर्वप्रथम नाट्य के सम्बन्ध में ही की गई है। दूसरे, चित्रवत् अथवा प्रत्यक्ष होने के कारण दृश्य-काव्य का प्रभाव अधिक मार्मिक और स्थायी हो सकता है। ऐसी अवस्था में प्रेक्षक की तल्लीनता उसकी अनुभूति को रसात्मक बना देती है।

इस सम्बन्ध में दिया गया प्रथम तर्क निश्चय ही संगत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भरत ने नाट्य को ही लक्ष्य मान कर केवल उसी के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। काव्य के अन्य भेदों से रस के सम्बन्ध का उन्होंने न तो खण्डन ही किया है और न मण्डन ही। अतएव, उनका विचार एक विशेष दृष्टिकोण की सूचना तो देता है, व्यापकता का निषेध नहीं करता।

चित्रवत्ता के सम्बन्ध में आचार्य अभिनव ने भी विचार किया है। उन्होंने स्वीकार किया है कि नाट्य में भाषा, वेष तथा प्रवृत्ति आदि के कारण और उसके प्रत्यक्ष होने के कारण भी उसका प्रभाव शीघ्र और मार्मिक होता है। आचार्य वामन के द्वारा दशरूपक को काव्यों में सर्वश्रेष्ठ बता कर उसकी जो प्रतिष्ठा की गई है उसकी ओर अभिनव ने ध्यान दिया है। चित्रवत्ता को उन्होंने रसोत्कर्ष में सहायक माना है। अतएव कहा जा सकता है कि चित्रवत्ता के आधार पर दशरूपक को सर्वश्रेष्ठ कहने का तात्पर्य वस्तुतः केवल इतना कहना था कि दृश्य-काव्य में रसोत्कर्ष की सम्भावना अन्य काव्यों की अपेक्षा सबसे अधिक है। भाव यह है कि यदि श्रव्य चित्रवत् हो तो उसमें रसोत्कर्ष की पूर्ण सम्भावना है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नाट्य के अतिरिक्त प्रबन्ध आदि में भी चित्र का गुण उपस्थित हो जाए तो उसे रसमय स्वीकार कर सकते हैं। अभिनव ने स्पष्ट रूप से इस बात का मण्डन करते हुए कहा है कि काव्यानुभूति का सम्बन्ध वस्तुतः सहृदय से है। सहृदय यदि काव्य का अभ्यास किए हुए है, उसके कुछ प्राक्तन संस्कार हैं तो परिमित भावादि के उन्मीलन के द्वारा श्रव्य के विषय का साक्षात्कार किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में सहृदय पूर्वापर सम्बन्ध समझ कर अमुक स्थान पर अमुक के सम्बन्ध में अमुक बात कही गई है या अमुक इसका वक्ता है अथवा अमुक दृश्य उपस्थित किया गया है, आदि की कल्पना करके रसास्वाद कर सकता है।[1]

अभिनव के कथन का तात्पर्य वस्तुतः यह है कि दृश्य-काव्य यदि सभी बातों को प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित कर देता तो श्रव्य-काव्य में इसी दृश्य की उपस्थिति के लिए सहृदय की कल्पना अपेक्षित है। उस कल्पना का आधार काव्य का अभ्यास आदि कहा जा सकता है। कल्पना के सहारे सहृदय कवि के चित्रों का प्रत्यक्षवत् ही आनन्द लेता चलता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि उसकी यह कल्पना दृश्य-काव्य के समान प्रेक्षक की कल्पना से कुछ विशेष प्रवृद्ध कोटि की हो। श्रव्य-काव्य में चित्रों की उपस्थिति और उनकी प्रभाव-शालिता के दो चार उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि यदि चित्रवत्ता ही दृश्य-काव्य की श्रेष्ठता और

---

[1] किन्तु समप्राधान्य एव रसास्वादस्योत्कर्षः। तच्च प्रबन्ध एव भवति, वस्तुतस्तु दशरूपक एव। यदाह वामनः "सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्धि चित्रम्। चित्रपटवद् विशेष साकल्यात्।". तद्रूपसमर्पणाया तु प्रबन्धे भाषावेषप्रवृत्त्यौचित्यादि कल्पनात्, तदुपजीवनेनमुक्तके। तथा च तत्र सहृदयाः पूर्वापरमुचितम् परिकल्प्य ईदृगत्र वक्ता अस्मिन्नवसरे इत्यादि बहुतरं पीठवन्धरूपम् विदधते। तेन ये काव्याभ्यासप्राक्तन पुण्यादिहेतुबलात् इति सहृदयाः, तेषां परिमितविभावानु-लने अपिपरिस्फुट एव साक्षात्कार कल्पः काव्यार्थःस्फुरति। अतएव तेषां काव्यमेव प्रतीत्युत्पत्तिकृद् अनपेक्षित नाट्यवर्ति।

—अभिनवभारती

१६५४

रम्यता का आधार है तो श्रव्य-काव्य भी उससे किसी प्रकार भी हीन नहीं है। यह भी कहा जा सकता है कि दृश्य-काव्य यदि स्थूल बुद्धि को विशेष सरलतापूर्वक ग्राह्य है तो श्रव्य-काव्य में सूक्ष्म कल्पना अपेक्षित है। अभिप्राय यह कि दृश्य-काव्य का आधार भौतिक है जब कि श्रव्य-काव्य सूक्ष्म के क्षेत्र में विचरण कराता है। यदि सूक्ष्मता के आधार पर पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार काव्य-कला का सर्वश्रेष्ठ स्थान स्वीकार कर लिया जाए तो निश्चय ही उसी आधार पर दृश्य-काव्य की अपेक्षा श्रव्य श्रेष्ठ सिद्ध होगा।

श्रव्य-काव्य में कल्पना किस प्रकार चित्र उपस्थित करती है और उसका कैसा प्रभाव पड़ता है इसका विचार करने के लिए हम महाकवि कालिदास, तुलसी, बिहारी, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, प्रसाद तथा निराला आदि संस्कृत और हिन्दी के **अनेकानेक** प्रतिष्ठित कवियों के उदाहरण ले सकते हैं। कालिदास का 'मेघदूत' उनकी रमणीय कल्पना के सहारे जिन अदृश्य चित्रों को गोचर कराता है वह कितने मार्मिक हैं, इस सम्बन्ध में उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। चित्रकारों ने मेघदूत की उस सजल कल्पना के आधार पर अनेक रम्य चित्र उपस्थित किए हैं। हिन्दी में महादेवी वर्मा की 'यामा' और 'दीपशिखा' इस बात के प्रमाण हैं कि उनके गीत चित्रों की भूमिका पर ही निर्मित हैं। इस बात की पुष्टि में पूर्वोक्त कवियों के कतिपय चित्र प्रस्तुत किए जा रहे हैं। कालिदास का दृश्य-काव्य 'शाकुन्तल' ही लीजिए जिसके छठे अङ्क में वियोगी दुष्यन्त अपने द्वारा चित्रित शकुन्तला तथा उसकी दोनों सखियों के चित्र में कतिपय त्रुटियों का संकेत करता है और उन त्रुटियों के मार्जन की इच्छा प्रकट करते हुए सर्वथा एक नवीन चित्र की कल्पना करने लगता है। वह चाहता है कि उस चित्र में वह मालिनी सरिता अङ्कित करे जिसके सैकत-तट पर हंस-मिथुन विश्राम कर रहा हो और उसके दोनों पार्श्वों में पावन हिमालय की श्रेणियाँ अङ्कित हों जिन पर हरिण निःशंक भाव से सुखासीन हों। दूसरी ओर एक वृक्ष अङ्कित किया जाए जिसकी शाखाओं से वल्कल लटक रहे हों और उसकी छाया में कृष्णमृग के सींग से अपने बाएँ नयन को मृगी खुजला रही हो। कालिदास ने इस सरस कल्पना को निम्न पंक्तियों में मानों प्रत्यक्ष रूप में अङ्कित ही नहीं किया है, इन पंक्तियों के श्रोता के मन को भी बाँध लेने की शक्ति इन चार पंक्तियों में भर दी है :

'कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरो र्निमातुमिच्छाम्यधः
शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्।'६, १७

दृश्य-काव्य में श्रव्य-काव्य के द्वारा इस चित्र का उद्घाटन यह प्रमाणित करता है कि चित्रों की उपस्थिति के लिए दृश्य-काव्य भी श्रव्य-काव्य का आभारी है। स्वयं भरत ने नाट्य को 'दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्' कह कर दृश्य में श्रव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया है। यह श्रव्य-कथानक को आगे बढ़ाने के लिए कथोपकथन के रूप में भी हो सकता है और जहाँ तहाँ प्रेक्षक को अन्तर्वृत्ति में लीन करने के हेतु इस प्रकार के रम्य चित्रों का आकलन भी उसके अन्तर्गत हो सकता है। बिना इस प्रकार के चित्रों के दृश्य की मर्मस्पर्शिता में पूर्णता नहीं आती।

हिन्दी कवियों में तुलसी का 'राम-वनगमन-वर्णन' हृदय को किस प्रकार प्रभावित करता आया है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। सलोने राम और गोरे लक्ष्मण के बीच विधुवदनी सीता जी ग्राम-मार्ग से निकली जा रही हैं। उन्हें देख-देख कर ग्राम-नारियाँ विचार करने लगती हैं कि ऐसी सलोनी मूर्ति और ऐसे कोमल कलेवर वाले इन सुकुमार जनों को किसने वनवास दे दिया है। सचमुच वह रानी बिलकुल अज्ञान ही है जिसने ऐसा किया है। अपने हृदय में उत्पन्न कौतूहल की शान्ति के हेतु वे सीता से प्रश्न कर बैठती हैं : 'क्यों मान्ये, यह सांवरी सूरतवाले तुम्हारे कौन हैं?' सीता, लज्जा की मूर्ति सीता किस शिष्टता से उस सांवले का परिचय देती हैं, तुलसी ने इस का मोहक चित्र श्रव्य-काव्य को दो पंक्तियों मात्र में कर दिया है :

"सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने,
सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दे सैन तिन्हें,
समुझाइ कछू मुसकाइ चली॥"

श्रृंगारी कवि बिहारी के प्रेमियों की पारस्परिक रीझ-खीझ का भी एक चित्र अँकन करने योग्य है :

"कहत, नटत, रीझत, खिझत,
मिलत, खिलत, लजियात।
भरे मौन में करत हैं,
नयनन ही सों बात ॥"

आधुनिक कवि पन्त चित्रमय कल्पनाओं से ही अपने काव्य की सज्जा करते हैं। उन की रचना 'नौका-विहार' में एक प्रत्यक्ष किन्तु मुखर चित्र का आकर्षण एक एक पंक्ति में सजा हुआ है। यथा,

"दो बाहों से दूरस्थ तीर, धारा का कृश कोमल शरीर।
आलिंगन करने को अधीर।"

इसी प्रकार अन्य अनेक कवियों की असंख्य पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं।

अभिनव गुप्त के गुरु आचार्य भट्टतौत ने श्रव्य-काव्य में प्रत्यक्षवत्ता का गुण स्वीकार किया है और कहा है कि कुशल कवि अपने वर्णन के माध्यम से सहृदयों के सम्मुख मानों चित्र ही उपस्थित करता है। अतएव नाट्य की-सी चित्रमयता होने पर काव्य-मात्र में रसोद्बोध असंभव नहीं है।[2] यह चित्रवत्ता विशेषतः विभावादि के स्पष्ट और सविस्तार वर्णन द्वारा लाई जा सकती है और उन चित्रों का प्रत्यक्षवत् ही उद्घाटन किया जा सकता है।[3]

श्रव्य-काव्य में जहाँ चित्रमयता में दृश्य-काव्य से स्थूल और सूक्ष्म का भेद है वहाँ उसकी एक और भी विशेषता है। दृश्य-काव्य में संगीत एवं वाद्य-यन्त्रों का अत्याधिक सहारा लिया जाता है। नृत्य उसका एक विशेष उपकरण है, किन्तु, श्रव्य-काव्य में जब रणन करते हुए अक्षरों की पायलों की झनकार का मृदुल संगीत श्रोता के कानों में गूँजने लगता है तब कौन कह सकता है कि उसका हृदय अनन्य भाव से तरंगित नहीं हो उठता। मुरली का एक-एक स्वन शब्द के माध्यम से जब तैरता हुआ मानस तक उतर जाता है, तब कौन कह सकता है कि भावुक का हृदय अधीर भाव से दोलित नहीं हो जाता। निश्चय ही श्रव्य-काव्य सूक्ष्मता में दृश्य-काव्य से ऊपर है और चित्रवत्ता में उससे कम प्रभावात्मक नहीं है।

दृश्य-काव्य का मार्ग संकलन भय की सीमा से घिरा है। वह निश्चय ही निरापद नहीं है। किन्तु, श्रव्य-काव्य उन्मुक्ति का सूचक है, जहाँ लेखक एक-एक साँस, चरण की एक-एक गति, एक-एक दृश्य और एक-एक घटना का वर्णन करता है किन्तु कहीं भी उसे संकलन भय की बाधा नहीं सताती। पाठक दर्शक की भाँति छूटे हुए दृश्यों की चिन्ता नहीं करता, उसके सामने सब कुछ प्रस्तुत है, केवल उसमें सजगता की आवश्यकता है कि वह कवि की कल्पना को ग्रहण कर सके।

जहाँ तक मार्मिकता का प्रश्न है, यदि दृश्य-काव्य के दृश्य प्रेक्षक के मानस-पटल पर सदैव के लिए अंकित हो जाते हैं तो श्रव्य-काव्य की मोहक पंक्तियाँ सहृदय की जिह्वा पर अनन्त काल तक रहती हैं। वह उसके मन में सदैव गूँजती रहती हैं। दृश्य-काव्य का आनन्द उतने समय तक रहता है जब तक दृश्य आँखों के सामने रहता है। श्रव्य की पंक्तियाँ मन में सदा के लिए पैठ और बैठ जाती हैं। उन्हें गुनगुनाकर चाहे जब उनका रस लिया जा सकता है किन्तु, दृश्य-काव्य में प्रयुक्त दृश्यों का वर्णन उस आस्वाद की दृष्टि से कालान्तर में अदृश्य हो जाता है।

महिम भट्ट के अनुसार काव्य, चाहे वह दृश्य हो अथवा श्रव्य, का उद्देश्य केवल एक ही है: आनंद! विधि-निषेध तथा व्युत्पत्ति या सदाचार एवं उपदेश के अनुसार दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। केवल उपाय-मात्र में भिन्नता पाई जाती है, फलभेद नहीं पाया जाता।[4]

—आनन्दप्रकाश दीक्षित

३/१०६ कसियारोड,
गोरखपुर (उत्तर-प्रदेश)

---

[2] प्रयोगत्वमनापन्ने काव्ये नास्वादसंभवः ।—अभिनवभारती [3] वर्णनोत्कलिकाभोगप्रौढ़ोक्त्यासम्यगर्पिताः । उद्यानका
चन्द्राद्याः भावाः प्रत्यक्षवत्स्फुटाः ॥—अभिनवभारती [4] सामान्येन उभयमपि च तद् शास्त्रवद् विधिनिषेधविषयव्यु
फलम् । केवलं व्युत्पाद्यजन जाड्या जाड्य तारतम्यापेक्षया काव्यनाट्यशास्त्ररूपोऽयम् उपायमात्रभेदः न फलभेदः ।—व्यक्तिविवे

'निर्गुण' जी की कहानी कला

श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र हिन्दी में अनेक वर्षों से कहानियाँ लिखते आ रहे हैं। आपकी कहानियाँ 'माया' में बराबर छपती थीं, और अनेक वर्ष आप उसके सम्पादक भी रहे हैं। आपके अनेक कहानी-संग्रह छप चुके हैं, जिन में 'पूर्त्ति', 'टीला', 'कच्चा, धागा' 'बहू जी' आदि उल्लेखनीय हैं। 'निर्गुण' जी प्रेमचन्द की परम्परा के हिन्दी में आज प्रमुख कहानी-लेखक हैं, किन्तु फिर भी आपकी कहानियों का हिन्दी की साहित्यिक दुनिया को बहुत कम ज्ञान है। आपकी कहानियों में से अनेक, जैसे 'आसरा', 'बच्चे', 'पड़ौसी', 'चूड़ियाँ', 'साबुन', 'रावण' आदि निस्संदेह हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से हैं। यदि आपकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों का एक संकलन तैयार किया जाए, तो निश्चय ही प्रेमचन्द की कहानियों को छोड़ कर वह अन्य किसी भी प्रतिष्ठित हिन्दी कहानीकार की तुलना में अच्छा ठहर सकता है। आपकी कहानियाँ अधिकतर 'माया' के पन्नों तक सीमित रही हैं, इसी कारण साहित्य-जगत् का ध्यान आपकी ओर अधिक नहीं खिंचा है। किन्तु जिन-जिन साहित्यकारों ने आपकी रचनाएँ पढ़ी हैं, वे सभी आपकी कला के मर्म-स्पर्शी और हृदय-द्रावक गुण से प्रभावित हुए हैं। ऐसे साहित्यकारों में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी और श्री नागार्जुन का उल्लेख हो सकता है।

'निर्गुण' जी का जीवन संघर्षों में बीता है। आप बदायूँ के निवासी हैं। छात्र-जीवन आपका खुर्जा में बीता। बाद में जब आप काशी में शिक्षा पा रहे थे तभी आपने 'माया' का कार्य-भार सँभाला। 'माया' लोकप्रिय कहानी-पत्रिका होते हुए भी बड़ी डावाँडोल स्थिति में थी और उसके मालिक पत्रिका बन्द करने की बात सोच रहे थे। युद्ध के दौर में 'माया' ख़ूब जम गई और आज हिन्दी के सभी पत्र-पत्रिकाओं में सबसे अधिक समृद्ध है। 'निर्गुण' जी काशी में पढ़ रहे थे, और 'माया' का सम्पादन भी कर रहे थे। आपके जीवन का यह काल बहुत संघर्ष और पीड़ा से भरा था। आज-कल 'निर्गुण' जी गवर्नमैण्ट संस्कृत कॉलेज, बनारस में अध्यापक हैं।

हम 'निर्गुण' जी की कहानियाँ पढ़ कर सोचते हैं, यह हमारी पृथ्वी रत्न-गर्भा है। 'निर्गुण' जी के समान ही न जाने और भी कितने गुदड़ी के लाल यहाँ अज्ञात पड़े होंगे। किसी और देश में इनकी प्रतिभा की कितनी भारी प्रतिष्ठा होती।

'निर्गुण' जी ने भारतीय जीवन की पीड़ा को उसके व्यापक रूप में देखा है। आप उदासी भरी शाम का वर्णन करते हैं, जब व्यथा से बोझिल बादल आकाश में लदे खड़े हों, अथवा इतनी नीरवता हो, कि पत्ता तक न खटकता हो; जब लगता हो कि आकाश का हृदय फूट कर बह निकलेगा। आपने गाँव की साँझों का वर्णन किया है, और शहर की सन्ध्या का भी, जब एकाकिनी को संसार में अपना कोई दिखाई नहीं पड़ता। 'निर्गुण' जी भारतीय जीवन की इस सर्वव्यापी व्यथा का कोई कारण नहीं बताते, किन्तु आप इसे दिशि-दिशि में व्याप्त देखते हैं।

'निर्गुण' जी ने ग्राम-जीवन के सजीव चित्र बार-बार खींचे हैं। 'मुन्शी जी', 'आसरा', 'पड़ौसी', 'रावण', 'केले के तीन पेड़' आदि इस चित्रण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आप ग्राम-जीवन का कोई अंश ले लेते हैं, और उसका बड़ा मर्म-स्पर्शी, हृदयग्राही चित्र उतारते हैं। आपने प्रेमचन्द के समान ग्राम-जीवन में किसान का संघर्ष और विद्रोह तो नहीं देखा, किन्तु व्यक्तियों का और परिवारों का करुण क्रन्दन आपने निरन्तर सुना है। प्रेमचन्द के बाद ग्राम-जीवन का इतना कुशल चित्रकार हिन्दी कहानी को नहीं मिला। उपन्यास के क्षेत्र में अवश्य नागार्जुन का 'बलचनमाँ' ऐसा ही अपूर्व प्रयास है। 'बलचनमाँ' में नागार्जुन बिहार के खेतिहर किसान के संघर्षमय जीवन पर एक मर्मबेधी दृष्टि डालते हैं; नागार्जुन की दृष्टि करुणा से भीगी है, किन्तु आधार आत्म-कथा होते हुए भी वह निर्मम यथार्थवादी रहे हैं।

'निर्गुण' जी का ग्राम्य-चित्रण यदि बरबस हमें प्रेमचन्द का स्मरण दिलाता है, तो गृहस्थ-जीवन के आपके व्यथा भरे चित्र उसी मात्रा में हमें शरद् की कला का स्मरण कराते हैं। वास्तव में ग्राम की पृष्ठभूमि हो, अथवा शहर की, 'निर्गुण' जी गृहस्थ-जीवन की मर्म-व्यथा पर ही दृष्टि रखते हैं, और व्यक्ति के चरित्र

को कथा का केन्द्र-बिन्दु बनाते हैं। प्रेमचन्द अथवा शरद् बाबू के नाम याद आना दुस्साहस न होकर वास्तविकता मात्र है, इसका उदाहरण 'आसरा', 'साबुन', 'चूड़ियाँ', 'बच्चे', 'मुन्शी जी' आदि कहानियाँ हैं। इन कहानियों की अपनी दुर्बलताएँ और सीमाएँ हैं, किन्तु उनमें बसी जीवन-दृष्टि, उनकी अनुभूति और मर्म-व्यथा निर्विवाद है।

'साबुन' शीर्षक कहानी को लीजिए। इसमें एक गृहस्वामिनी का चित्रण है, जो अपना सर्वस्व निछावर करके पूरे परिवार का पालन-पोषण करती है। विशेष रूप से अपने देवर को वह पुत्र के समान देखती है और अनेकों बार लड़ाई-झगड़ा होने पर भी उसकी सुख-शान्ति के हेतु अनेकों बलिदान करती है। कितनी कोमल और सूक्ष्म अनुभूति इस चित्रण में है, यह हम कहानी पढ़ कर ही हृदयंगम कर सकते हैं।

'निर्गुण' जी के पात्र मन का अन्तरतम स्पर्श करते हैं, क्योंकि कथाकार की अनुभूति में वास्तविकता और सच्चाई है और उसकी दृष्टि करुणा से विगलित होकर सर्वत्र पड़ी है। 'पड़ौसी' में दो विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में वैमनस्यता होते हुए भी अन्त में विजय मनुष्यता की ही होती है। 'रावण' शीर्षक कहानी में एक मुसल्मान शिल्पी रामलीला के लिए कठोर बीमारी की अवस्था में भी रावण की मूर्ति बनाता है और भयंकर वर्षा से उसकी रक्षा करते हुए प्राण त्यागता है।

'निर्गुण' जी के वर्णन अतिरंजित नहीं होते। उन्हें पढ़ कर पाठक को कभी यह नहीं लगता कि कलाकार ने किसी भी तरह की खींचतान की है। वह कोई निष्कर्ष निकालने के लिए चरित्रों और घटनाओं को तोड़ते-मरोड़ते नहीं हैं। यह कहानियाँ कलाकार के हृदय को बेध कर निकली हैं, इसी कारण इनमें इतना जीवनरस है; मानों कलाकार ने अपने हृदय के रक्त से इन्हें लिखा है।

'निर्गुण' जी ने अपनी कहानियाँ अधिकतर 'माया' के लिए ही लिखी थीं। इसकी स्पष्ट छाप भी आपकी कला पर है। आपकी कला निरन्तर विकास के पथ पर है। जो कहानियाँ आपने पिछले दिनों में लिखी हैं, वे लगभग निर्दोष हैं, किन्तु पूर्व-काल की कहानियों में हमें दोष भी मिलते हैं। एक स्त्री और पुरुष के मिलन के साथ ही उनमें प्रेम का अंकुर फूट निकलता है। 'बहू जी' और 'कच्चा धागा' शीर्षक संग्रहों में हम यह दोष पाते हैं। जीवन में स्त्री पुरुष के प्रेम सम्बन्धों के अतिरिक्त और भी अनेक हृदय-ग्राही सम्बन्ध हैं, इसका परिचय हम लेखक के अन्य प्रकाशनों में पाते हैं। इसके उदाहरण के रूप में हम 'बच्चे' शीर्षक कहानी को ले सकते हैं।

अन्य कहानियों में घटना-बाहुल्य अधिक है। जीवन की धारा साधारणतया इतनी वेगवती नहीं होती जितनी हम 'माया' की कहानियों में पाते हैं। 'मुन्शी जी' अथवा 'केले के तीन पेड़' मर्मस्पर्शी कहानियाँ होते हुए भी इस दोष से सर्वथा मुक्त नहीं हैं। जीवन की स्वाभाविक मन्द गति में भी हम अनन्य करुणा देख सकते हैं, यह "बच्चे" के समान कहानियाँ सिद्ध करती हैं।

'निर्गुण' जी की कला का विकास-क्रम यह स्पष्ट करता है कि वे करुणा के साथ संयम और अधिकाधिक प्रौढ़ता और गहराई की ओर निरन्तर बढ़ रहे हैं।

भारतीय जीवन आज सामान्य मनुष्य के लिए दुःख, पराजय और निराशाओं का केन्द्र-स्थल बन रहा है। 'निर्गुण' जी की कहानियाँ पाठक का ध्यान बरबस ही इस विडम्बना की ओर खींचती हैं और उसके समस्त शान्ति-संतोष को हिला कर उसके हृदय को मथ डालती हैं। इस प्रकार वे उसे श्रेष्ठतर मनुष्य और नागरिक बनाती हैं।

'निर्गुण' जी आज के हिन्दी कहानीकारों में अद्वितीय हैं, क्योंकि हमारे समस्त जीवन की करुणा और व्यथा जितनी सजीवता से उभर कर उनकी कहानियों में आई है, वह अन्यत्र इस तीव्रता और गहराई में हम नहीं पाते। यह कहा जा सकता है कि उनकी कला और शिल्प में कोई नूतनता नहीं है। वह सीधे-सादे ढंग से कहानी कहते चले जाते हैं। भाषा को नहीं निखारते, बहुत बनाव-सिंगार नहीं करते। अतएव उनकी कहानियाँ प्रेमचन्द की कला तक ही सीमित हैं, और आगे नहीं बढ़ सकीं। कठिनाई यह है कि जो प्रेमचन्द की कला से आगे बढ़ने का भ्रम रखते हैं, उन्होंने शायद गद्य-गीत और निबन्ध तो अधिक लिखे हैं, लेकिन कहानियाँ कम लिखी हैं। यदि कोई कहानीकार सफलतापूर्वक प्रेमचन्द के पथ पर चल सका है और उनकी परम्परा निर्वाह कर रहा है, तो अवश्य उसका अभिनन्दन होना चाहिए।

—प्रकाशचन्द्र गु

चम्बे दिए धारे[*]

लोक-साहित्य जन-साधारण की ऐसी सम्पत्ति है, जिसे वे सदा सीने में छिपाए रहते हैं। लोक-गीत, लोक-कथाओं और लोकोक्तियों की तरह लोक-साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। लोक-गीतों में आँखें देखती हैं और दिल गाते हैं। यह गीत जन-साधारण की भावनाओं और परम्पराओं के जीते-जागते चित्र हैं। इन चित्रों की सरलता, सजीवता, कलात्मकता और यथार्थता एवं जीवन से सम्पर्क देख कर वर्तमान के 'प्रतिभाशाली' और 'विभिन्नवादी' कवियों को भी चकित रह जाना पड़ता है क्योंकि यह गीत गाँवों के भाटों, कृषकों, गडरियों और मीरासियों के मस्तिष्क की उपज हैं और स्पष्ट है कि उन लोगों ने फ्रॉयड के दर्शन का अध्ययन नहीं किया था और न ही वे मार्क्स के साहित्यिक दृष्टि-कोणों से ही अभिज्ञ थे। यह गीत शताब्दियों से, समय की गति के साथ-साथ चल कर मौखिक परम्परा द्वारा हम तक पहुँचे हैं। यद्यपि इनमें मुहावरों की चाशनी और शब्दों का हेर-फेर, भाषा का पांडित्य और अवास्तविक भावनाओं का उतार-चढ़ाव नहीं है, तथापि विस्मृति की गोद में पड़े हुए यह गीत प्राकृतिक सौन्दर्य भावनाओं की अथाह गहराई और सचाई, तथा सजीव कल्पना के प्रतीक हैं। यह गीत मनुष्य की प्राकृतिक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति करते हैं, जो आज भी ऐसी ही हैं, जैसी आज से एक हज़ार वर्ष पूर्व थीं। इन गीतों में काफ़ी ऐसे हैं, जो कुछ हेर-फेर के साथ पड़ौसी पंजाब में भी प्रचलित हैं। शताब्दियों से यही गीत डोंगरों के हृदयों के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति का माध्यम बने हुए हैं और उनके जीवन के प्रत्येक पहलू का प्रतिनिधित्व यह गीत बड़ी अतिशयता के साथ करते हैं। इन गीतों में डोंगरों के दैनिक जीवन के प्रत्येक पहलू को छुआ गया है—सुख-दुःख, हँसी-खुशी, ब्याह-शादी, चक्की की घुमर-घुमर, चर्खे की घूँ-घूँ, विरह में जलती ललनाओं की उतावली प्रतीक्षा, और माताओं की लोरियाँ—सभी कुछ इन गीतों में मिलता है। और वे डोंगरे भी जो अब शहरों में रहते हैं, बड़े-बड़े होटलों में चिकने फ़र्शों पर थिकरते हैं, यदा-कदा जब कभी कोई डोंगरी लोक-गीत सुन लेते हैं तो चौंक उठते हैं, जैसे वे एक लम्बी अवधि के बाद अपने आप में आए हों।

गाँव के खुले वातावरण में जब रात के समय नीले आकाश पर चाँद-तारे चमकते हैं तो लोक-गीत की स्वर-लहरी सुन कर, श्रोता गीत में खो जाता है। उस समय उसे ऐसा अनुभव होता है कि सारी सृष्टि गीत के माधुर्य में बस गई है और गायक दिन भर का थका-माँदा, अपने दुःख-दर्द को भूल कर गीत के सरल, सुन्दर एवं कल्पनामय संसार में आश्रय ले रहा है—और अपने तैरते हुए स्वर के अतिरिक्त सब कुछ भूल चुका है। गीत डुग्गर समाज का एक अंग है, और सच तो यह है कि संगीत डोंगरों की घुट्टी में है और वे उसे बड़ी मेहनत के साथ अपनी साहित्यिक कृतियों में संजोते हैं क्योंकि गीत अथवा कहानी के तत्व से कहीं अधिक संगीत ही हमारी आत्मा के तार हिलाता है।

अन्धेरी रात में जब कोई परदेशी किसी विरहन का द्वार खटखटाता है तो भीतर से आवाज़ सुनाई पड़ती है :

"बार बो कुण खड़ा सज्जनां
बो बखलया मानुआ बो"

अर्थात् बाहर यह कौन परदेशी खड़ा है, क्या कोई भटका हुआ बटोही है ?

परदेशी उत्तर देता है :

"बार बो मैं खड़ा बू रानिए,
बो मैं बखला मानू बो;
आंगने तेरे, चम्बा फुल्ल खिड़या—
लाई बो लेना काले केसें।"

---

[*] इस सम्बन्ध में मेरे कई लेख 'नई धारा' 'हिन्दुस्तान' और 'आजकल' (उर्दू) में भी प्रकाशित हो चुके हैं। यह लेख इसी सिलसिले की एक कड़ी है।

—बाहर मैं खड़ा हूँ ओ बहू रानी। मैं हूँ एक भटका हुआ मुसाफ़िर; तुम्हारे आंगन में चम्पा की कलियाँ विकसित हैं, इन्हें अपनी वेणी में गूँथ लो।

भीतर से विरह-पीड़ित, क्लान्त, और दुःखी स्वर में उत्तर मिलता है :

"जली वो जान चम्बे फुल्ल परदेसिया,
जली वो जान काले केस;
जिन्हें कारण असें चम्बा लाया;
ओ सज्जन परदेस।"

—अरे परदेशी, यह काले केश जल जाएँ और चम्पा की यह कलियाँ भी झुलस जाएँ। जिस साजन को रिझाने के लिए यह पौधा लगाया था, वह तो परदेस चला गया।

उत्तर मिलता है :

"के वो जलन चम्बे फुल्ल नी लेरित,
के वो जलन काले केस ?
जिन्हें कारण तुसें चम्बा लाया,
ओ सज्जन इस देस।"

—क्यों जलें यह चम्पा की कलियाँ और तुम्हारे काले कुन्तल ? जिस साजन को रिझाने के लिए तुम ने चम्पा का पौधा लगाया था, वह साजन तो स्वदेश लौट आया है।

विरह के निम्नांकित गीतों में कितनी कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति की गई है :

"सखियो नी ए बेंसी कुण बजाए अर्दा ए
दुःखें दे मारें दिलेंच
एह तुगान कुण ठुवाए अर्दा ए
हुन वाज न जे कर चुप होई
तां मेंह तड़पी-तड़पी वरी मरी जांग
हुन तान जे कर गूँजी भ्रि
अऊँ मौन दा राग सुनांग
पिपल दी घनेली छायाच
जे कर भ्री गुँजी देद कोई
मैं प्राणे उप्री खली जांग
पर खुली न जाए कुते भेद कोई
बदनामी थीं मन घबराए अर्दा ए
ए बेंसी कुण बजाए अर्दा ए
इस मनेंच प्यार दा दर्द
सौ जतनें कन्ने था मठा पोआ
भ्री बेंसी दी इस तान कन्नें
एह दुःख मेरे जी दा हरा होआ
कुण तान थीं बाण चभोए अर्दा ए
ए बेंसी कुण बजाए अर्दा ए

अर्थात् सखियो री, क्यों कोई बाँसुरी बजाता है! दुःखों के मारे दिलों में, रह-रह कर, यह कौन तू उठाता है ? अब भी यदि बाँसुरी के स्वर मौन न हुए, मैं तड़प-तड़प कर प्राण दे दूँगी। यदि अब भी बाँसु की तान गूँजी तो मैं प्राणों पर खेल जाऊँगी—पर ऐसा करने से कोई भेद न खुल जाए। बदनामी से मैं ब डरती हूँ। इस हृदय में प्यार का दर्द सौ जतन करने शान्त हुआ था परन्तु बाँसुरी की इन तानों ने सोए हुए दर्द को पुनः जगा दिया। यह कौन है जो से मेरा हृदय बेध रहा है ? सखियो री, यह बाँ कौन बजा रहा है ?

"गिल्ले गोटे लाए चुल्ले
धूएँ भाने रोनी आँ
पुछे नई ननान कुते
कुस दा ए दुःख तुगी
कोदे पिछे रोई-रोई
मिलदा जे सुख तुगी
धुआँ-धार पाई
चुल्ले मुण्ड बैठी दी मैं
अत्थरुएं दे मोतिएं दा
हार पई परोनियां
धर्म आरतें ओधी एं तूं
मां—पियो जिन दे कन्ने लाया
मन आखे नई, जिधे कन्ने था तू प्यार पाया
कोधा ए शरीर, कोधी आत्मा अन्ने प्यार मेरा
किन्ना किन्ना चिर बैठी
सोच दी जे रौनी आँ।"

अर्थात् चूल्हे में गीले उपले जला कर धुआँ कर लि है और अब इसी बहाने रो रही हूँ। यदि ऐसा न करूँ ननद रोते हुए देख कर पूछेगी कि मुझे किस का सता रहा है। किस के लिए रो-रो कर मुझे सुख मि है। धुआँ-धार कर के चूल्हे के सन्निकट बैठी मैं

अश्रुओं की माला पिरोती रहती हूँ—इन अश्रुओं की जो मोतियों के समान हैं। धर्मानुसार मैं उसी की हूँ, जिसके साथ मेरा बन्धन माता-पिता द्वारा हुआ है। परन्तु मन कहता है—नहीं, तुम उसी की हो जिसके साथ तुमने प्यार किया था। यह शरीर किसका है और किस की आत्मा से मुझे प्यार है? घण्टों बैठी यही सोचती रहती हूँ।

विरह का एक और गीत है। एक विरहन सास के अत्याचारों से सताई हुई, चक्की को अपनी सहेली बना कर अपने मन का बोझा हलका करते हुए कहती है:

"मेरे हत्थ छोन्धे
तेरे भाग जागी पौन्दे न
मेरे तेरे किछ
अरमान जागी पौन्दे न
तेरे बाझूँ इस घर
हिर्बी नईं, होर कोई
दमें अस जागदियां
बाकी सब सोन्दे न
पुड़ तेरे दौं
पक्के पत्थरां-च- घुड़े दे
मन मेरे दो,
मेरी छातियां-च-जड़े दे
इक मन मसरी दी
अखियें-च-चुभदा
दुआ मन रौन्धा
डूँगी सोंचें-च-डुब्बा दा
इक मन इनें मेरा
पिञ्जरे-च-पायदा
दुआ परदेसी कैन्ते
कन्ने-कन्ने लाए दा
कैदियें बिचारेंगी जे
चक्कियां नईं थौन्दियां
मनें दियां गूढ़ियां गल्लां
कियां हुन्दियां
तेरे कच्छ बौनी आं ते
दुःख जन्दे बिस्सरी
मनां गीं जलानेवाली
अग जन्दी हिस्सरी
जिन्द जिन दे बस
मेरा मन उन दे बस नईं
भागें दी लकीर
मोइये मेरी अती बिस्सली।"

अर्थात् मेरे हाथों का स्पर्श पाते ही तेरी चेतना जाग उठती है। मेरी-तेरी दोनों की अभिलाषाएँ एक साथ साकार हो उठती हैं। तुम्हारे अतिरिक्त यहाँ मेरा कोई और स्नेही नहीं है। देखो मैं और तुम जाग रहे हैं, शेष सब सोए पड़े हैं। पक्के पत्थर से काट कर जिस प्रकार तुम्हारे दो पाट बने हुए हैं, उसी प्रकार मेरे भी दो मन हैं, जो मेरे वक्ष में जड़े हुए हैं। एक मन तो मेरी सास की आँखों में कांटों के समान चुभता रहता है और दूसरा मन सदैव गहरी चिन्ता और सोच में डूबा रहता है। एक मन को इन लोगों ने बन्दी बना रक्खा है और दूसरा हमेशा मेरे प्रवासी प्रियतम के साथ रहता है। मेरे जैसे अभागे बन्दियों को यदि चक्की का सहारा भी नहीं होता, तो वह अन्तर की यह व्यथा भला किस से कहते—कौन सुनता इसे? मैं जब तेरे सन्निकट बैठती हूँ, तो अपने सब दुःख भूल जाती हूँ; मन को सदा जलाती रहनेवाली विरहाग्नि भी उतनी देर के लिए शान्त हो जाती है। अरी मैं सच कहती हूँ, मेरा शरीर ही इनके बस में है, मन पर इनका कोई अधिकार नहीं चल सकता। मेरा दुर्भाग्य है कि मेरे भाग्य की रेखाएँ इतनी विषम हैं।

सैनिक पति की प्रतीक्षा में डुग्गर की ललना बैठी गुनगुनाती रहती है:

"चिट्टी-चिट्टी चादर चन्नां कडनी आं कसीदा
इक बेरि मिल चन्नां श्री दा नसीबा
चिट्टी-चिट्टी चादर चन्नां मच्छी कण्डे सीनियां
इक बेरि मिल चन्नां दिखी-दिखी जीनियां
चन्न माढ़ा चढ़या तवियें दे पार
कोधे हत्थ भेजां चन्नां मोतिए दा हार।"

जीवन के प्रत्येक पहलू को इन लोक-गीतों का स्पर्श मिला है। इन गीतों में बहुत अधिक प्रतिभा एवं चमत्कार नहीं है किन्तु सरल, स्वाभाविक तथा सजीव भावनाओं की अभिव्यक्ति अधिकता के साथ इन गीतों में हुई है। नीचे दो गीत उदाहरणार्थ दिए जा

रहे हैं, इन में निर्धन तथा श्रमिक जनता के कठिन जीवन की झांकियाँ देखने को मिलती हैं :

"दगां भर कुसे गी मन्दयां नईं बोलना
चन्ने दी चाननी ते चन्ने कन्ने
हत्थे दियां दित्तियां कठन होई जंदियां
खोलनियां पौंदियां दन्दे कन्नें
साढ़ा ते कम था कत्तना पिंजना
कन्ने था तुम्बने तम्बने या
घा भार ढोई के लक त्रुटि जन्दा
दस्सो जे राह हुन थम्मने दा।"

अर्थात् तनिक भी बुरे बन कर किसी से पेश न आओ। चाँद की चाँदनी सदा चाँद के साथ ही रहती है। बिना सोचे समझे दी हुई गाँठें बड़ी सख़्त हो जाती हैं। फिर दाँतों से खोलनी पड़ती हैं। बहन हमारा काम तो कातना, तूमना और बुनना था; अब बोझ उठा-उठा कर कमर टूट गई है। कोई संभलने का रास्ता बताए।

"भुन खाकी ज़मीन ते अपर नीला छत्तर
असें गी के डर वे या बत्तर
घुड़ क्यां मारां, चोरी कप सां लकड़
चोरी माढ़ी पटिये दी, ते पया लई कोई पकड़
भुखी माढ़ी ज़िन्दगी ते नंगी माढ़ी जान
सारे होए माढ़े दुश्मन, राजा हवे जां खान
कम करी करी मरां मैं, कोठा तुवारे राजा
माढ़े घर वेन्ती ते उस दे घर बाजा"

अर्थात् नीचे मटियाली धरती है, ऊपर नीलाम्बर है। हम गर्मी-सर्दी किसी वस्तु से नहीं डरते। मैं झूठ क्यों बोलूँ; मैं तो चोरी से लकड़ी काटूँगा। मैं अपने पेट के लिए चोरी करूँगा, चाहे मुझे कोई पकड़ ही क्यों न ले। मैं भूखा हूँ और मेरा शरीर वस्त्र-हीन है। सब बड़े पेट वाले मेरे दुश्मन हैं—चाहे वे राजा (भूमिदार) हैं या खान (सूदख़ोर)। कठिन श्रम मैं करूँ और बड़ी हवेली राजा की बनती है। मेरे घर में कुदाल रहती है और भूमिदार मज़े लूटता है।

डोंगरी में बहन-भाई के गीत भी बहुत प्रसिद्ध हैं। इन गीतों को केवल बहनें गाती हैं और जब कोई विवाहित बहन अपने सुसराल में प्रवासी भाई की याद में चक्की की घुमर-घुमर में, या चर्खे की घूँ-घूँ पर तार चढ़ाते हुए निम्नांकित गीत गाती है तो बहन-भाई पवित्र सम्बन्ध सृष्टि का सब से बड़ा वरदान प्रतीत लगता है :

"चम्बे दिये धारे बिन नीठड़ी होयां
चम्बे दिये धारे बिन नीन्दड़ी होयां
घा बड़ी-बड़ी करी, पूलड़े बनांदयागी
हत्थवें दे छालड़ेंगी दिखी-दिखे गादयागी
दिखी ले भ्रा मेरा हाल, दिखी ले भ्रा
चम्बे दिये धारे बिन नीठड़ी होयां
बोई थी जदूं डोली विच पाई विदा कीति
दुधे नायां, पुत्रें फलयां, भाभिए ने सीस दित्ती
भ्राऊ मी कि दित्ते अत्थरु"

अर्थात् ए चम्बे की धारा (हिमाचल प्रदेश एक नदी) तनिक नीची हो कर बहो। घास काट-काट पूले बना रही हूँ और हाथों के छालों को देख-देख रो रही हूँ। देख ले भैया, मेरा हाल देख ले। मेरा ब्याह हुआ था तो तुमने मुझे डोली में बिठा विदा किया था। भाभी ने मुझे आशीष दी थी तू ने भैया, मुझे अपने अश्रु दिए थे।

निम्नांकित गीत में देवर और भाभी के उभरते हैं :

"देर भाभी दा चलया चाकरी,
कोई भाभिया गी सद्यो रसोई अन्दरा
मन्दा नहीं बुझियां भाभिये मोइये,
नथ बो कडाई दयां कुंजी जन्दरा
सरने खड़ोई भाया दिखन लगी,
अखियें—च—जन्दा चली बो नीर चन्दरा।"

अर्थात् भाभी का देवर परदेस नौकरी करने रहा है। कोई भाभी को बुला लाए। दुःखी मत भाभी ('मोइये' पंजाबी और डोंगरी भाषा में प्यार एक गाली है) तुम्हारे लिए मैं पेचोंवाली नथ दूँगा। भाभी उदास हो कर बाहर देखने लगी। से कई दुष्ट नीर बह चले।

कुछ अन्य गीतों की छटा देखिए :

"तू रीज बो घुड़ोलुआ बो
तू मेरे सज्जणों दा लाया

१९५४

अो रेजोनो घुड़ोलुआ वो
थोड़ा अज रीजेआं
थोड़ा कल रीजेआं
रीजेआं घुलोलुआ वो ।"

अर्थात् प्रियतम के पीने को शराब का घड़ा लगा रखा है । अरे शराब के घड़े तू जल्दी पक जा । तुझे अपने प्रियतम के लिए लगाया है । थोड़ा आज पकना । थोड़ा कल पकना—ऐ शराब के घड़े, अब तू जल्दी पक जा ।

"अँखियें पर बस नई चले, घूंघटे-च-गोरी जले
गोरी तूं भाए न दिनें दा जुवाला
अत्थरु परोन्दे रौन्दे तारयां दी माला
पर सूना ऐ रौन्दा मनें दा शिवाला
जदों तोड़ न सूरज ढले, घूंघटे-च-गोरी जले
दिल ने सुनी लई दिले दी कहानी
नच्ची पइयां खुशियां ते गाई पई जवानी
बैठी ए चुप-चुप चम्बे दी रानी
हथें ऊपर मेन्धी मले, घूंघटे-च-गोरी जले
जवानां, ननदें कोलों बची के रैना
दिखी, भाली के सेजे उप्रा जाना
तौल नहीं करनी, गोरी दा घुन्ड उठवाना
तारयां दी छां थल्ले, घूंघटे-च-गोरी जले ।"

अर्थात् नयनों पर बस नहीं है । घूँघट में गोरी जल रही है । गोरी को दिन का उजाला अखरने लगा है । मन का शिवाला उसका सूना है, इसलिए तारों (अश्रुओं) की माला पिरोती रहती है । आज दिल ने दिल की कहानी सुनी है, खुशियाँ नाच उठी हैं, और जवानी गा रही है । चुप-चाप गोरी दुलहन बन कर सेजरिया पर बैठी है । हाथों पर मेंहदी रची हुई है । घूँघट में गोरी जल रही है । ओ अलबेले दुलहा, ननदों से आँचल बचा कर चलना, सावधान रहना । जल्दी न मचाना और सेज पर जा कर धीरे से गोरी का घूँघट उठा देना ।—'तारों की छाऊँ तले, घूँघट में गोरी जले—'

अनुवाद में मूल गीत की बहुत सी कलात्मक बारीकियों को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । आज डोंगरी के यह लोक-गीत और समूची जाति का अनुभव हज़ारों लोक-कथाएँ, मैले हीरे के समान उपेक्षा की धूल में पड़े हैं । यह गीत अपने माधुर्य, कोमलता, सरलता और संगीत तत्व में अपना जवाब नहीं रखते—आवश्यकता है केवल डुग्गर के कला-पारखियों की जो इन्हें परखें, संवारें और सुधारें । नहीं तो इनकी दशा भी पहाड़ी चित्र-कला की सी ही होगी । (आज डोंगरों का यह वैभव एक भूली कहानी बन चुका है ।)

सुख-दुःख, हँसी-खेल, और मेलों–ठेलों के अवसरों पर यही गीत डोंगरों का साथ देते हैं । खेतों और चरागाहों में यही गीत श्रमक जनता के हमदम हैं । फ़सल काटते, बोते, और खेतों में हल चलाते समय डोंगरे यही गीत गाते हैं । अप्रैल और मई का झुलसता हुआ सूर्य उन्हें कमज़ोर नहीं बना सकता, बरफ़ के तोदे और बर्फ़ानी हवाओं के थपेड़े उन के नग़मों को नहीं रोक सकते । यह रंगीन और जादूकार गीत डोंगरों को हर देश की उपेक्षा करना सिखाते हैं । उन का देश मनोहर है, रंगीन है—और है प्राकृतिक दृश्यों से भरपूर ! और उन के गीत अपने देश से भी अधिक रंगीन हैं ! डुग्गर संगीत और गीत का देश है ।

सेठी ब्रदर्स,
श्रीनगर

—घनश्याम सेठी

सुरुचि सुशिक्षित व्यक्ति की पहचान है
कल्पना निर्माणकारी व्यक्ति की पहचान है
आवेशों का सन्तुलन प्रौढ़ व्यक्ति की पहचान है

अनंत हिम-प्रदेश में

जहाँ सदा, बारह महीने अक्षय हिम का साम्राज्य बना रहता है, वहाँ के अत्यन्त शीतल जलवायु की हम गरम प्रदेशों में रहनेवाले लोग सरलता पूर्वक कल्पना भी नहीं कर सकते। हिमालय और आल्पस् की ऊँची चोटियों पर बैठे हिम-देवता प्रतिवर्ष हज़ारों साहसी व्यक्तियों को आकर्षित और आमंत्रित करते हैं और भयंकर अट्टहास करते हुए उनमें से सैकड़ों की बलि ले लेते हैं।

मेरे दादा शिकार खेलते हुए इन बरफ़ीली चट्टानों में दब गए थे, मेरे पिता भी बरफ़ की एक गहरी खाई में गिर पड़े थे। मैं जानता हूँ कि मेरी क़ब्र भी एक दिन इसी ठण्डी बरफ़ में बनेगी, परन्तु फिर भी किसी तरह इन पहाड़ी हिरनों के शिकार के व्यसन को छोड़ नहीं सकता आल्प्स् की पहाड़ियों में एक शिकारी ने एक पर्यवेक्षक से कहा था। कुछ वर्ष बाद जब वह पर्यवेक्षक फिर उस पहाड़ी गाँव में गया तब तक शिकारी की भविष्यवाणी पूरी हो चुकी थी।

चारों ओर दूर-दूर तक बरफ़ ही बरफ़। रुपहली, चमकती, और झिलमिलाती हुई ठंडी बरफ़। देखने में बड़ा सुन्दर दृश्य प्रतीत होता है, परन्तु मृत्यु का यही स्वरूप है। इस शीतलता में रक्त भी जैसे जम कर ठंडा होने लगता है। ठंडी होने के अतिरिक्त इस बर्फ़ में पग-पग पर संकट है। पहाड़ी के ऊपर से लुढ़कते हुए बरफ़ के विशाल ढोके, और ताज़े तुषार के नीचे ढकी हुई गहरी डरावनी दरारें। मृत्यु किसी ओर से भी आ सकती है। इन पर्वतीय हिम-प्रदेशों में बरफ़ीली मृत्यु का ग्रास बननेवाले लोगों की सूची में नित्य ही नए-नए नाम लिखे जाते हैं, फिर भी शिकार बनने का साहस करनेवाले नए लोग आते ही रहते हैं।

इस बरफ़ के प्रदेश में पहुँचने से पहले ही वनस्पतियाँ नीचे छूट जाती हैं। ग्रीष्म ऋतु में पकनेवाले मीठे फल और वसन्त में खिलनेवाले रंगीन सुगन्धित फूल, आँखों को शीतल करनेवाली हरी-हरी लताएँ और वृक्ष, कुछ भी इन हिम-प्रदेशों में नहीं होता। होता है इस सब के बदले बरफ़, केवल बरफ़।

विशाल ऊँची और फैली हुई पहाड़ों की चोटि पर बरफ़ को देख कर जो दूर से बादलों के साथ खाती सी दीख पड़ती है, हृदय कुछ आतंकित होता है परन्तु बादल कुछ मिनटों में ही अपना आ बदल लेते हैं, जब कि ये हिमशिखर सदा उसी एक में खड़े रहते हैं।

यूरोप के पर्वतों में हिम-प्रदेश ६००० फ़ीट ऊँचाई से प्रारम्भ होता है। हिमालय में १८००० फ़ी से ऊपर हिम-प्रदेश है, परन्तु ध्रुवों के निकट समुद्र से ही हिम-प्रदेश प्रारम्भ हो जाता है। स्वीडन के पर स्पिट्ज़बर्गन इस दृष्टि से विचित्र स्थान है, समुद्र, समुद्र-तट और उसके साथ लगा पहाड़ कुछ बिलकुल बरफ़ से ढके रहते हैं।

ऊँचे पहाड़ों में बरफ़ के विशाल ढेर जो कई मीलों लम्बे होते हैं, धीरे-धीरे नीचे की ओर खिसक हैं। खिसकने की यह गति बहुत मन्द होती है; चौबी घण्टे में केवल एक फ़ुट। परन्तु जिस प्रकार रेलगाड़ी के शक्तिशाली इंजन मिल कर भी बरफ़ उस विशाल ढेर को हिला नहीं सकते, उसी तरह हिमस्तूप की इस मन्द परन्तु अनिवार्य गति को भी शक्ति द्वारा रोका नहीं जा सकता। मीलों लम्बा, गज़ चौड़ा और सैकड़ों गज़ मोटा यह स्तूप गरजता गुर्राता हुआ इसी मन्द गति से नीचे की ओर है। इस विशाल हिम-खण्ड के नीचे पड़ी हुई भार और गति के प्रभाव से टूटती हैं और उनके का शब्द खूब ज़ोरदार होता है। इसी को 'ग्लेशियर की गुर्राहट' कहा है।

सर्दियों के दिनों में ये पर्वतीय हिम-प्रदेश अपे कृत कम खतरनाक होते हैं, क्योंकि बरफ़ जम कर बनी रहती है, परन्तु जब बसन्त में वह पिघलना प्रा होती है, उस समय वह किसी चालाक हिंस्र पशु भी अधिक डरावनी होती है। गरमी के प्रभाव बरफ़ की बड़ी-बड़ी चट्टानें टूट-टूट कर अनि दिशाओं में गिरती हैं। पैरों के नीचे जमी बरफ़ पिघलने के कारण डरावनी दरारें बन जाती हैं।

१९५४

समय में वायुमण्डल का मामूली कम्पन भी इन हिम-शिलाओं को स्थानभ्रष्ट करने का कारण बन जाता है। अनेक बार अनेक यात्री केवल इसलिए मृत्यु के शिकार बन गए क्योंकि वे ऐसे हिम-प्रदेशों में आपस में ज़ोर-ज़ोर से बातें करते चल रहे थे। बात करने की आवाज़ से वायु में कम्पन हुआ और उतने मात्र से ही पिघलती हुई बरफ़ की सूक्ष्म रूप से संतुलित शिलाएँ विचलित होकर गिरनी प्रारम्भ हो गईं। जब किसी भी कारण से ऊँचे पर्वत-शिखर से एक भी हिम-शिला विचलित होकर गिरती है, तब काण्ड वहीं खत्म नहीं हो जाता। ये शिलाएँ बोझ में सैकड़ों मन की होती हैं। वे गिरते-गिरते अन्य शिलाओं को भी विचलित कर देती हैं। इनके गिरने पर इतना भयंकर शब्द होता है जैसे कई तोपें एक साथ छोड़ी गई हों। इस प्रचण्ड शब्द की तरंगों से अन्य शिलाएँ विचलित हो जाती हैं, और इस प्रकार यह सिलसिला प्रायः घण्टों तक चलता है। भयंकर शोर और अनिश्चित रूप से गिरती हुई हिम-शिलाओं के बीच में फँसे हुए यात्री वास्तविक विपत्ति के पूर्व ही हिम्मत खो बैठते हैं।

ऐसे प्रदेशों में यात्रा करना जब अनिवार्य ही होता है तब यात्राएं रात को की जाती हैं और इस बात की पूरी सावधानी बरती जाती है कि किसी प्रकार का शोर न हो। घोड़ों के गले में बँधी घण्टियां खोल कर कपड़ों में बाँध ली जाती हैं और यात्री लोग चुपचाप चलते हैं। इतनी सावधानी के बाद भी प्रतिवर्ष कितने ही यात्री इन हिम-शिलाओं के शिकार बनते हैं। कई बार सैकड़ों आदमी एक साथ ही इनके नीचे दब जाते हैं। इस प्रकार की सब से अधिक दुःखद घटना पन्द्रहवीं शताब्दी में हुई थी, जब कि चार सौ जर्मन सिपाही एक ऐसी ही हिम-शिला के नीचे दब कर मर गए थे।

एक बार हम मनाली से आगे व्यास-कुंड गए। व्यास-कुंड एक छोटी-सी झील है जो हिम-प्रदेश में स्थित है। हमारा पथ-प्रदर्शक एक स्थान पर पहुँच कर रुक गया और बोला कि इससे आगे जाने से देवता कुपित होते हैं। बहुत समझाने-बुझाने पर भी वह आगे नहीं बढ़ा। उसने अँगुली के संकेत से हमें जाने का मार्ग बता दिया। हम चले गए। दृश्य अत्यन्त रमणीय था। हम थोड़ी देर वहाँ बैठे। चीनी मिलाकर बरफ़ खाई। अचानक ही वहाँ हवा चलनी प्रारम्भ हुई। उस समय दो बजे थे। पथ-प्रदर्शक ने बता दिया था कि हवा विपत्ति की पूर्व सूचना है। हमने तुरन्त लौटना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु लगता था कि देवता सचमुच कुपित हो गए हैं। चारों ओर से बरफ़ की चट्टानों के गिरने का 'धमाधम' शोर सुनाई पड़ने लगा। हमने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा और जल्दी से, जल्दी उस हिम-प्रदेश से निकलने की कोशिश की। दो-तीन बार हमारे बिलकुल सामने आकर बरफ़ की चट्टानें गिरीं और हमारे पीछे छूटे हुए रास्ते पर भी हिम-शिलाएँ आकर गिरीं। इस विचार से ही कि कहीं ये आधा मिनट पहले गिरी होतीं तो, हमें घबराहट होने लगी। ऐसा मालूम हुआ कि मानों हिम-देवता अपने प्रदेश में अवैध रूप से घुस आए लोगों को हिम-शिलाएँ फेंक-फेंक कर मार रहे हैं। उस शिलावर्षण से निकल कर जब हम सकुशल अपने डेरे पर पहुँच गये तो हमें लगा कि जैसे मौत के मुँह से बच कर निकल आये हैं।

परन्तु इन पर्वतीय हिम प्रदेशों की भयंकरता बहुत तुच्छ जान पड़ती है, जब हम इनकी तुलना ध्रुवों के निकटस्थ हिम प्रदेशों से करते हैं। इन प्रदेशों के बाहरी छोर तक भी मनुष्य बहुत कम पहुँच पाते हैं। यहाँ, क्या समुद्र और क्या स्थल, सभी जगह एक ऐसी ही बरफ़ की सफ़ेद चादर सदा बिछी रहती है। किसी भी प्रकार धूल, मिट्टी, पेड़-पौधे इसकी सफ़ेदी में कोई दाग़ लगा नहीं पाते। ठंड इतनी अधिक होती है कि पारा भी जम जाता है। यहाँ छः महीने दिन और छः महीने रात रहती है। लम्बी रातों में जब कभी चन्द्रमा की चाँदनी बरफ़ की रुपहली सतह पर छिटकती होगी, उस सौन्दर्य की केवल कल्पना ही की जा सकती है।

यहाँ बरफ़ के मैदान सर्वत्र समतल नहीं हैं। कहीं कहीं देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी ने तूफ़ान में ऊँची-ऊँची लहरें उठाते हुए विक्षुब्ध महासागर को जादू के ज़ोर से पल भर में जमा दिया है और वे लहरें अब उसी मुद्रा में चिरकाल के लिए स्थिर हो गई हैं। इन दृश्यों के सौन्दर्य को बिना आँखों से देखे पूरी तरह हृदयंगम कर पाना कठिन है। स्पिट्ज़बर्गन ऐसे दृश्यों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान है।

पर्वतीय हिम-प्रदेशों को यात्री लोग तीन-चार दिन में पार कर लेते हैं, परन्तु ध्रुवों के ये प्रदेश महीनों

की यात्रा के बाद भी पार नहीं किए जा सके। इन प्रदेशों की खोज करनेवाले यात्रियों को आठ-आठ सौ मील यात्रा करने के बाद भी बरफ़ का अन्त दिखाई नहीं पड़ा। सरदी, थकान और खाद्य का नितान्त अभाव, इन प्रदेशों की मुख्य कठिनाइयाँ हैं।

कभी-कभी इन प्रदेशों के छोर पर से बड़े-बड़े हिमखण्ड, जो "आइसबर्ग" कहलाते हैं, टूट कर समुद्र में बह चलते हैं। आइसबर्ग से बड़ा कोई भी चल-पदार्थ कहीं नहीं देखा। ये बरफ़ के छोटे से पहाड़ के समान हैं जो समुद्र में तैरते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाते हैं। बरफ़ जब पानी में पड़ी होती है, तब उसका केवल आठवाँ भाग पानी के ऊपर रहता है, शेष सात भाग पानी में डूबे रहते हैं। आइसबर्गों का जितना भाग पानी से ऊपर दीखता है वही अत्यन्त विस्मयजनक होता है, फिर पानी में डूबे हुए उससे और सात गुने अधिक भाग की कल्पना केवल कल्पना ही बन कर रह जाती है परन्तु यह वैज्ञानिक सत्य है कि जब बरफ़ का आठवाँ भाग पानी के ऊपर दीख रहा हो तो शेष भाग पानी के नीचे अवश्य होगा।

न खेल, न मकान, ट्राम, मोटर, रेल कुछ भी नहीं; न खाने को अनाज और न पहनने को कपड़े, ऐसे इस बियाबान खून तक जमा देनेवाले प्रदेश में भी मनुष्य निवास करते हैं। ये लोग 'एस्किमो' कहलाते हैं। आज कल मनुष्य कहने से जिस पढ़े-लिखे मनुष्य का भान होता है, उससे एस्किमो उतना ही भिन्न है जितना चीता; बिल्ली से। ये एस्किमो माँस के आहार पर जीवन-निर्वाह करते हैं और शीत से आत्मरक्षा के लिए पशुओं की खालें ओढ़ कर रहते हैं, जिससे देखने में ये भी पशु ही जान पड़ते हैं। इनका उस प्रदेश में कठोर जीवन व्यतीत करना इतना आश्चर्यजनक नहीं है जितना यह तथ्य कि ये हमारे शहरों के जीवन की अपेक्षा अपने जीवन को अधिक पसन्द करते हैं, और उसे छोड़ कर समशीतोष्ण जलवायु के प्रदेशों में रहना पसन्द नहीं करते। प्रकृति के चमत्कारों की जैसे कोई सीमा ही नहीं है। केदारनाथ की यात्रा पर जाते हुए जब हम गौरीकुण्ड पहुँचे, तो हमें वहाँ गरम पानी का एक कुण्ड मिला। गौरीकुण्ड ५ हज़ार फ़ीट से अधिक ऊँचाई पर स्थित है और वहाँ बहती हुई मन्दाकिनी नदी का पानी बरफ़ जैसा ठंडा था परन्तु इस गौरीकुण्ड के गरम पानी में से भाप उठ रही थी और यह इतना गरम था कि इसमें हाथ डालना कठिन था। हमें यह बड़ा आश्चर्यजनक मालूम हुआ था परन्तु दक्षिण ध्रुव प्रदेश में स्थित माउण्ट ऐरेबस नामक ज्वालामुखी इसकी अपेक्षा कहीं अधिक आश्चर्यजनक है, क्योंकि माउण्ट ऐरेबस तलहटी से लेकर चोटी तक बरफ़ से ढका हुआ है और चोटी पर ज्वालामुखी का आग और धुआँ उगलनेवाला मुख है जो सदा सक्रिय रहता है। आग और बरफ़ का यह अविराम चलता हुआ संघर्ष देखने की चीज़ है।

ध्रुव प्रदेश की खोज के लिए जो यात्री-दल गए हैं, उन्होंने उस प्रदेश का जो कुछ वर्णन किया है वह काफ़ी रोमांचकारी है। पहली बात तो यह है कि इन यात्री-दलों में से कुछ तो वापस लौट ही नहीं सके। इससे उन वर्णनों की भयंकरता की पुष्टि हो जाती है, जो उस प्रदेश की ऋतु की भयंकरता के सम्बन्ध में लौटने वाले यात्रियों ने किए हैं। लम्बी, अंधेरी और कल्पनातीत रूप से ठंडी रातों का कष्टपूर्ण वर्णन यात्रियों ने कई बार किया है। इनमें से अनेक यात्रियों के अंग सर्दी के कारण गल गए। अंग्रेज़ी में इसे "फ्रास्ट बाइट" कहते हैं और यह कष्ट सर्दी के दिनों में कभी-कभी यूरोपवासियों को भी भुगतना पड़ जाता है।

इन हिम-प्रदेशों में पानी नहीं मिलता। आवश्यकता होने पर आग जला कर बरफ़ को ही गरम करके पानी बनाना पड़ता है। इस पानी में कपड़ों को धोने यदि पाँच मिनट हवा में टाँग दिया जाए तो वे तुरन्त सूख जाते हैं। कपड़ों का पानी जम कर बरफ़ बन जाता है, जो झटका देने पर कपड़े से अलग हो जाती है।

—विरा

साहित्य मंदिर, ४।१६ रूपनगर,
दिल्ली ६

सद्व्यवहार की पहचान है बुरे व्यवहार को चित्त को प्रसन्न रखते हुए सहन कर लेना।

वीरेशलिंगम् पन्तुलु

(१८४८–१९१९)

श्री वीरेशलिंगम् पन्तुलु नवीन आन्ध्र के निर्माताओं में सर्वप्रथम थे। वे आन्ध्र की एक महान् विभूति थे। श्री पन्तुलु जी का जन्म गोदावरी नदी के तट पर राजमहेन्द्रवर नामक शहर में सन् १८४८ में नियोगी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता सुब्बाराय जी और माता पुन्तमांबा थे। इनका आस्पद 'कंदुकूरु' था।

श्री वीरेशलिंगम् का जन्म ऐसे समय हुआ था जब कि तेलुगु प्रान्त पर अंग्रेज़ों का शासन तो जम गया था, परन्तु उनकी विचारधाराओं को अपनाने में लोग अपनी-अपनी साम्प्रदायिक कट्टरता के कारण आगा-पीछा कर रहे थे। इस नवीन सभ्यता एवं जागृति को अपनाकर प्राचीन रूढ़िवाद एवं अन्धविश्वासों को प्रबल आघात पहुँचाने के लिए एक महान् व्यक्ति की आवश्यकता थी। संक्षेप में वीरेशलिंगम् पन्तुलु ने इसी आवश्यकता की पूर्ति की। वे आन्ध्र प्रदेश के राममोहनराय सिद्ध हुए। राममोहन राय समाज-सेवी एवं सुधारक थे। उन्होंने बंग-साहित्य की भी सेवा की थी। श्री पन्तुलु समाज के सेवक और सुधारक थे। उन्होंने तेलुगु-साहित्य की महान् सेवा की। इस लेख में पन्तुलु जी के त्रिमुखी व्यक्तित्व पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

जीवन की संक्षिप्त रूपरेखा : पन्तुलु बचपन से ही प्रखर बुद्धि के थे। जब ये चार वर्ष की आयु के थे तभी इनके पिता की मृत्यु हो गई। इसलिए इनका पालन-पोषण चाचा वेंकटरत्नम् के यहाँ हुआ। बचपन में ही इन्होंने तेलुगु के कई उत्तम काव्य कण्ठस्थ कर लिए थे। इससे इनकी रुचि तेलुगु भाषा एवं साहित्य में पहले से दृढ़ हो गई। जब ये तीसरे फ़ार्म में पढ़ रहे थे तब इन्होंने 'सुमनोमनोरंजन' नामक काव्य ग्रन्थ को नक़ल करके पढ़ा था। विद्वानों से श्री पन्तुलु जी ने सुन रखा था कि तेलुगु के प्रबन्धों में 'वसुचरित्रमु' का स्थान बहुत ऊँचा है परन्तु कोशिश करने पर भी पन्तुलु के हाथ वह काव्य बहुत समय तक नहीं आया। घर में तालपत्रों की किताबें पड़ी हुई थीं। उनको खूब टटोला। जब पता नहीं चला तो मन बेचैन हो उठा। आख़िरकार एक प्रति ख़रीदने के लिए उन्होंने अपनी माता से प्रार्थना की। घर में पैसे की तंगी बहुत थी। माता यह भी जानती थी कि 'वसुचरित्र' कोई पाठ्य-पुस्तक नहीं है, इसलिए माता ने लड़के की प्रार्थना अनसुनी कर दी परन्तु बालक वीरेशलिंगम् हाथ पर हाथ रख कर नहीं बैठ गए। उनके मन में किसी न किसी प्रकार यह काव्य पढ़ने की लालसा बनी रही। काव्य साढ़े चार रुपयों में प्राप्त होता था। वीरेशलिंगम् के पास आठ आने से अधिक नहीं थे। माता से लाख कहने पर भी काम बनने की आशा नहीं थी। इसलिए बालक को एक उपाय सूझ पड़ा। उन्होंने एक दूकानदार को आठ आने दिए और हर महीने आठ आने देने की शर्त पर पुस्तक ख़रीदने की अपनी इच्छा प्रगट की। बालक की अदम्य लालसा को देख कर दूकानदार बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। प्रतिदिन बालक वीरेशलिंगम् दुकान पर जा बैठता था और काव्य को बड़ी दिलचस्पी के साथ घंटों तक पढ़ता था। कुछ दिनों के पश्चात् उनकी माता को यह समाचार मिला। उसे इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई कि बालक ने पैसे किताब में लगा दिए और इसी कारण उसने पाठशाला में जाना भी छोड़ दिया। दूसरे दिन माता ने बाक़ी पैसे दे कर किताब मँगवा ली जिसे बालक ने बड़े चाव से पढ़ा। इस घटना से हम सहज ही में अंदाज़ा लगा सकते हैं कि वीरेशलिंगम् बचपन से ही कितने विद्याव्यसनी थे।

जब इनकी उम्र १५ वर्ष की थी तब ये एक दिन प्रातःकाल आँगन में जाकर एक सेव के पेड़ पर चढ़ कर फल तोड़ने लगे। पैर फिसल गया तो नीचे गिर पड़े। एक पैर में गहरी चोट लगी। रुधिर की धारा बह निकली मगर उन्होंने उफ़ तक न की। उन्होंने अत्यन्त धैर्य और शान्ति के साथ चोट पर कपड़े की पट्टी को बाँध दिया और चुपचाप घर के एक कमरे के कोने में जा लेटे। भोजन के समय न

दिखाई देने पर बड़ी तलाश के बाद घरवालों ने देखा कि कमरे के कोने में पन्तुलु लेटे हुए हैं। कमरे में ख़ून की छींटे पड़े हुए थे। उनकी चोट का इलाज कराया गया। यह घटना पन्तुलु जी के मन की दृढ़ता और सहनशीलता पर प्रकाश डालती है।

बचपन से ही इनमें परदुःख-कातरता थी। सन् १८६७ ई० में ये मैट्रिक की तैयारी कर रहे थे। उन दिनों पाठशाला के प्रधान अध्यापक वैयापुरि मुदलियार थे। श्री मुदलियार में जहाँ बहुत-से अच्छे गुण थे वहाँ एक अवगुण भी था। वे ज़रा-सी बात पर झल्ला उठते थे। कविता अच्छी तरह नहीं पढ़ा सकते थे। इस पर श्री वीरेशलिंगम् ने अपने मन में निश्चय किया कि दूसरे विद्यार्थियों के हस्ताक्षर लेकर शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के पास शिकायत भेजी जाए। निवेदन-पत्र तैयार हुआ। कई विद्यार्थियों ने हस्ताक्षर भी किए। यह ख़बर हेडमास्टर के कानों तक पहुँच गई। दूसरे दिन वे आपे से बाहर हो गए और उन्होंने एक बालक को ख़ूब मारा-पीटा और वीरेशलिंगम् को भी फटकारा। श्री पन्तुलु प्रत्येक वर्ग में अपने शील, अध्ययन और सद्व्यवहार के बल पर सब से प्रथम रहते थे परन्तु, जब उन्होंने अपनी आँखों से यह सब कुछ देखा तो उनसे नहीं रहा गया। झट अपने वर्ग से बाहर निकल आए। उनके साथ दूसरे विद्यार्थी भी वर्ग छोड़ कर बाहर आ गए। शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के पास दरख़्वास्त भेजी गई। सरकार ने पूछताछ की और श्री मुदलियार को स्थानान्तर कर दिया गया। विद्यार्थी-जीवन की इस घटना से वीरेशलिंगम् के चरित्र की दृढ़ता एवं निर्भीकता पर प्रकाश पड़ता है।

सन् १८६८ ई० में उनके चाचा की मृत्यु हो गई और पन्तुलु की शिक्षा-दीक्षा समाप्त हुई। सन् १८७० में उन्होंने मैट्रिक परीक्षा को पास किया। तब तक पन्तुलु की अभिरुचि बढ़ चुकी थी और वे बड़ी लगन के साथ तेलुगु में कविता लिखने लगे। इन दिनों आपका विश्वास था कि कविता में कुशलता पाने के लिए ईश्वर की उपासना, पूजा, जाप और व्रत-नियम आवश्यक हैं। अतः शिवरात्रि के पवित्र दिन सवेरे-सवेरे कोटिलिंग क्षेत्र की गोदावरी में नहा कर दिन भर अनशन रखते थे और आधी रात तक मार्कंडेय स्वामी के मंदिर में जप-ध्यान में समय बिताते थे। इन दिनों पन्तुलु ने मार्कंडेय गो... गोपाल देव पर दो शतक लिखे। उस समय की कवि... के उदाहरण रूप में निम्नलिखित पद्य लिया ... सकता है :

“श्रीरमणी हृल्लोला, कारुण्यलतालवालकांचन चेला
घोराहव जयशीला, श्री राजमहेंद्रवर पुरी गोपाला!

अर्थात् लक्ष्मीदेवी के हृदय के प्रेमी! करुणा की लता के अलवाल! हेम वस्त्र धारी! युद्ध में जय पाने वाले! राजमहेंद्रवरपुर में विराजमान गोपाल!

प्राचीन परम्परा के अनुसार भूत-प्रेतों में इनका विश्वास था। एक बार इन्हें केशवचन्द्र सेन के भाष... का संग्रह पढ़ने को मिला। इनके हृदय पर इस पुस्त... का ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा। इनके मन में रूढ़िग्रस्त विश्वा... के विरुद्ध तरह-तरह के भाव पैदा होने लगे। विद्या... जीवन में वे ताश खेलना सीख गए थे। वीरेशलिंगम् में यह दोष आ गया था। उनके पड़ोस में एक समवयस्क विद्यार्थी था जिसके साथ वे मिल-जुल कर रहा करते थे। दिल बहलाने के लिए कभी-कभी दोनों आपस में ताश खेलते थे। क्रमशः खेलनेवालों की संख्या बढ़ती गई। एक दिन वीरेशलिंगम् को ताश खेलने के लिए ए... साथी के घर जाना पड़ा। उस समय एक नवयुव... कन्या इनके साथ ताश खेलने बैठी थी। इस घटना ने पन्तुलु के हृदय में ताश के विरुद्ध विद्रोह की भाव... उठ खड़ी हुई। फलतः इन्होंने उन मित्रों की मैत्री ... छोड़ दी।

सन् १८७४ ई. में पन्तुलु ने 'विवेक वर्धिनी' नाम... एक मासिक पत्रिका का संपादन आरम्भ किया। भारत की अभ्युन्नति की साधना पत्रिका का ध्येय था। सम... समय पर साहित्यिक समालोचनाएँ भी निकलती थीं। साहित्य-सेवा की प्रारंभिक दशा में अष्टावधान आ... कविता चमत्कार भी इन्होंने दिखाया परन्तु बुद्धि ... यह अकारण बलात्कार इन्हें पसन्द नहीं था। अ... इन्होंने यह व्यवसाय शीघ्र ही छोड़ दिया। अपनी पत्रि... के द्वारा साहित्य-सेवा के अतिरिक्त वे अधिकारियों ... भी खुले तौर पर आलोचना किया करते थे। कभी-कभी ... इन्हें अदालत में जाकर पैरवी करनी पड़ती थी ... सभी प्रकार की यातनाओं को देशवासियों की भलाई ... लिए ये सहर्ष सहन करते थे। सन् १८८० से १८८...

१९५४

तक समाज सुधार की बुनियाद पन्तुलु जी ने बड़ी हिम्मत के साथ डाली क्योंकि उन दिनों सामाजिक व्यवस्था में थोड़ा-सा परिवर्तन लाना भी बड़ा कठिन था। आन्ध्र प्रान्त में बाल-विवाहों की प्रथा का प्रचार था। इसके परिणाम स्वरूप बाल-विधवाओं की संख्या प्रति दिन बढ़ती जाती थी। सामाजिक व्यवस्था इतनी ख़राब थी कि लोग बाल-विधावाओं के अधःपतन को तो सह सकते थे परन्तु उनके पुनर्विवाहित होने को नहीं।

पन्तुलु ने अपनी आँखों से सैकड़ों बाल-विधवाओं की बुरी दशा देखी जो सामाजिक अत्याचार से पीड़ित थीं। कुसुम कोमल इन बालाओं की दीन दशा पर इनका करुणापूर्ण हृदय उमड़ पड़ा और इन्होंने विधवाओं की दशा सुधारने का बीड़ा उठाया। 'पुनर्विवाहित संघ' नामक एक सभा की स्थापना की। कई पुनर्विवाह इस सभा के द्वारा सम्पन्न हुए। पन्तुलु ने यह अनुभव किया कि बालिकाओं में शिक्षा-दीक्षा के अभाव में कोई परिवर्तन लाना कठिन है। इस आवश्यकता को अनुभव कर उन्होंने १८८१ ई. में एक बालिका पाठशाला की स्थापना की। इन सभी कार्यों का निर्वाह ये जी जान से करते थे और उनमें अपना तन, मन और धन सब कुछ लगा देते थे। ये कार्य विद्रोहात्मक समझे जाने लगे और पन्तुलु की समाज में निन्दा की जाने लगी परन्तु कर्मवीर व्यक्ति के लिए मान-अपमान और निन्दा-स्तुति सब एक समान होते हैं, इसलिए ये अपना कार्य शान्तिपूर्वक करते रहे।

इनके पर्य्यवेक्षण में सन् १८८१ ई. में आन्ध्र प्रान्त में प्रथम स्त्री-पुनर्विवाह सम्पन्न हुआ। उस समय विवाह में बाधा डालने की चेष्टा की गई। पर क्षुब्ध सागर की लहरों में चट्टान की भाँति ये अविचल रहे और इन्होंने सभी बाधाओं पर विजय प्राप्त की।

विधवाओं की दीन दशा सुधारने के लिए पन्तुलु ने जिन मुसीबतों का सामना किया, जिन सामाजिक अपमानों को सहन किया, और जिस प्रकार इन्होंने प्रचलित रूढ़ियों के ख़िलाफ़ बग़ावत के झण्डे को ऊँचा उठाया—यह सब एक लम्बी कहानी है। इसमें संदेह नहीं कि पन्तुलु की इस उदार सेवा-वृत्ति के कारण ही कई विधवाओं के जीवन में परिवर्तन हुआ और वे फिर जीवन के लोक में प्रवेश कर सकीं! उन दिनों देश भर में रेल की पटरियाँ नहीं बिछी थीं। फिर भी इनका यशोगान दूर-दूर प्रान्तों में फैल गया। इन्होंने बहुत-सी विधवाओं का विवाह कराया।

सीतम्मा ज़िला गंजाम के आस्का ग्राम में रहनेवाली एक बाल-विधवा थी। वहाँ से राजमहेन्द्रवर तक लोग रेलगाड़ी द्वारा ही आ-जा सकते थे। इस बालिका को अपने भाई द्वारा अख़बार पढ़ते समय यह ज्ञात हुआ कि राजमहेन्द्रवर में विधवा का पुनर्विवाह सम्पन्न होता है। यह सुन कर सीतम्मा के मन में विवाह की लालसा जाग उठी परन्तु वह अपने मन की इच्छा लज्जा और भय के कारण अपने घरवालों पर प्रकट नहीं कर सकती थी। उसी गाँव में उसकी एक सहेली थी और वह भी विधवा थी। दोनों ने आपस में सलाह मशवरा किया और दोनों सब की आँख बचा कर राजमहेन्द्रवर के लिए चल पड़ीं। दोनों घर से निकल कर विजयनगर तक आ पहुँचीं। सहेली की हिम्मत टूट गई। वह आगे नहीं बढ़ सकी परन्तु सीतम्मा राजमहेन्द्रवर तक अकेली आ गई। पास में एक पैसा भी नहीं था। इस छोटी उम्र की लड़की की हिम्मत से यही लक्षित होता है कि सामाजिक आचार-विचारों के भय से हृदय की नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ सदा के लिए नहीं दबाई जा सकतीं। वास्तव में, प्रवृत्तियों का स्वाभाविक विकास होना अच्छा है। सीतम्मा का विवाह सन् १९९३ ई० दिनांक २३ जून को तेलुगु के प्रसिद्ध कवि आदिपूडि सोमनाथराव के साथ सम्पन्न हुआ। विधवा शरणालय में विधवाओं की शिक्षा-दीक्षा का भी उचित प्रबन्ध किया जाता था। श्री पन्तुलु जी अपने सेवा-मार्ग में इस प्रकार अग्रसर न हो पाते यदि उन्हें अपनी धर्म-पत्नी श्रीमती राजलक्ष्मी की हार्दिक सहायता न प्राप्त होती। कभी-कभी उन्हें अनाथ शिशुओं का पालन भी करना पड़ता था। ऐसे अवसरों पर श्रीमती राजलक्ष्मी मातृप्रेम से भरे हृदय के साथ इन शिशुओं का पालन-पोषण करती थीं। संभवतः इस दम्पति के इतने वात्सल्य—भाव का कारण यह भी था कि इनकी कोई अपनी संतान नहीं थी।

उन दिनों रईसों के घरों में विवाह के समय पर एक बुरी प्रथा प्रचलित थी। ऐसे अवसरों पर बड़ी शान के साथ वेश्याओं के नाच कराए जाते थे। जिन विवाहों में ऐसे नाच का प्रबन्ध न होता, वे लोगों की आँखों में नहीं जँचते थे। अतः वे ऋण लेकर भी वेश्याओं के नाच का प्रबन्ध करते थे। विवाह में उपस्थित सज्जन

इन वेश्याओं के नाच को देख कर बहुत प्रसन्न होते थे। समाज के इस बुरे रिवाज़ पर पन्तुलु का हृदय बेचैन हो उठा। कुछ स्त्रियों को इस जघन्य वृत्ति के लिए नियुक्त करना उनकी आँखों में घोर पाप से कम नहीं था। अतः उन्होंने इस प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाई और अपने इने-गिने मित्रों द्वारा इस प्रथा को जहाँ तक हो सका रोकने का प्रयत्न किया।

राजामहेन्द्रवर में आम तौर पर सभा-समावेश चलाने के लिए कोई भवन नहीं था। पन्तुलु जी ने टाउन हाल का निर्माण करा कर इस कमी की पूर्ति की। कहा जाता है कि समस्त आन्ध्र प्रान्त में यह पहला 'टाउन हाल' था। इसकी देखादेखी दूसरे शहरों में भी ऐसे भवनों का निर्माण हुआ। इसके अलावा पन्तुलु जी ने एक प्रार्थना समाज की स्थापना की जहाँ लोग इकट्ठे हो कर सामूहिक रूप से प्रार्थना कर सकें। पन्तुलु के धार्मिक विश्वासों पर बंगाल के ब्रह्म-समाज का बहुत प्रभाव पड़ा था। कई साल तक वे दक्षिण भारत के ब्रह्म-समाज के अध्यक्ष रहे। ब्रह्म-समाज के दो प्रधान सिद्धान्त थे—१ ईश्वर एक है, वही सारे विश्व का पिता है। २ समस्त विश्व-मानव आपस में भाई-भाई हैं। इन सिद्धान्तों में पन्तुलु जी का गहरा विश्वास था।

पन्तुलु जी का यशोगान चारों ओर फैलने लगा। उन्हें अनुभव हुआ कि अपने विस्तृत कार्यों के निर्वाह के लिए राजमहेंद्रवर की अपेक्षा मद्रास अधिक उपयुक्त क्षेत्र है। इस उद्देश्य से वे सपरिवार सन् १८९७ ई० में मद्रास चले आए। सन् १८९८ ई० में मद्रास में इंडियन नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। पन्तुलु जी इस सभा में उपस्थित हुए। इसी में महादेव गोविन्द रानाडे के द्वारा पन्तुलु जी को "दक्षिण भारत का विद्यासागर" की उपाधि प्रदान की गई। तदुपरांत वे बहुत-सी जगहों में सामाजिक सुधार-सम्बन्धी सभाओं के अध्यक्ष बनाए गए। मद्रास में भी बड़ी तत्परता के साथ उन्होंने विधवाओं को आश्रय दिया और उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया। मद्रास में कई वर्ष तक वे प्रेसीडेन्सी कालेज में तेलुगु के प्राध्यापक रहे। इसी बीच उनके मन में पुनः राजमहेंद्रवर लौटने का विचार हुआ और सन् १९०५ ई० में वे फिर राजमहेन्द्रवर लौट आए।

साहित्य-सेवा : यह कहना कठिन है कि वीरेशलिंगम् पन्तुलु जी सामाजिक धरातल पर महान् थे या साहित्यिक धरातल पर। वास्तव में, इनकी महानता क्षेत्रों में बराबर है। यह देख कर आश्चर्य होता है जहाँ वे समाज की बिगड़ी व्यवस्था को आजीवन सु रने में लगे रहे वहाँ वे साहित्य के क्षेत्र में भी, महत्त्वपूर्ण तथा अनुपम कार्य कर सके। हमारा आश्च यह जानते हुए दुगना हो जाता है कि पन्तुलु जी के स तक साहित्य की अवस्था में कुछ विशेष परिवर्तन हुआ था। उन्होंने इसमें नवचेतना को उत्पन्न कि जिस दृढ़ता के साथ वे सामाजिक सुधार के लिए आ बढ़े, उससे भी अधिक दृढ़ता के साथ उन्होंने साहि के नवीन मार्गों पर क़दम बढ़ाया।

जहाँ तक कविता का क्षेत्र है, कवि परंपरा के पालन में और बुद्धि वैचित्र्य के प्रदर्शन में लगे हु थे। इन से पहले ठेठ तेलुगु के साहित्य में 'तेलगना और मूचिंमचि तिम्मकवि ने काव्यों का प्रणयन कि गद्य की कड़ियों के बिना पूर्ववर्ती तिक्कन्ना ने 'उ रामायण' की रचना की। ओष्ठ्य अक्षरों (प, फ, ब भ, व) के बिना दो महानुभावों ने काव्य लिखे। वीरे लिंगम् के हृदय में यह इच्छा पैदा हुई कि इन तीनों शै का एक ही काव्य में बुद्धि वैचित्र्य का प्रदर्शन कि किया जाए। फलतः इन्होंने "शुद्धांध्र निरोष्ठ्य निर्व नैषध" नामक काव्य लिखा। इसमें 'नैषधीय चरि की काव्य वस्तु ली गई। इसमें एक साथ संस्कृ शब्दों का, ओष्ठ्य अक्षरों का तथा गद्यांश का नि था। यह बड़े ही प्रयास का काम था। पन्तुलुजी अ प्रयत्न में सफल हुए।

"एल्लचो नाराक केदुरु चूचुचुतुंडु
नेलतुक येदनेंत तलके नोक्को
ए रेड् नन्नोंटि निलुदाट नीकुंडु
कन्नतल्लि यदेंत कलगे नोक्को
तोडुनीडललागु तोलगनि चेलिकांडु
सोलिनन् गनकेंत तूलिरोक्को
ने जेरुट येरिं गि नेनरुन जनदेंचु
कोडुकुलु ताडेंत कुंदिरोक्को
कूडि येल्लरिदि तेलिसि कोन्नयंत
गटकटा तात नीचेत गडकु नेडु
च्चिक्कगा जेसे नेनेद्दि सेयुदिंक
हालि नन्नेलु रेडने ननद नैति।"

१६५४

'नैषधीय चरित' में राजा नल के प्रति हंस की यह उक्ति है :

"मेरी पत्नी जो हमेशा मेरे आगमन की प्रतीक्षा करती है, न जाने कितनी व्याकुल होगी ? रात के समय बाहर न जाने देनेवाली मेरी माँ न जाने कितनी घबराती होगी ? छाया की भाँति हमेशा मेरे साथ रहनेवाले प्रिय मित्र कितने व्याकुल होंगे ? मेरी संतान भी बहुत व्याकुल होगी। हाय ! विधाता ने आज मुझे तेरे आधीन कर दिया। मैं क्या करूँ ? हे राजन् ! मैं विवश हूँ।"

'रसिक जन मनोरंजन' इनका द्वितीय काव्य ग्रन्थ था। यह भी ठेठ तेलुगु में है। पत्र-पत्रिकाओं और पण्डितों ने इन दोनों काव्यों का आदर किया था। उस समय तक तेलुगु में जितने व्याकरण थे, वे सब संस्कृत व्याकरण के आधार पर रचे गए थे और सुकुमार छात्रों के लिए अनुपयोगी थे। अतः पन्तुलु ने अंग्रेज़ी व्याकरण के अनुसार तेलुगु में भी संग्रह-व्याकरण की रचना की। उन्होंने बालकों के शील-सुधार के लिए 'नीति-दीपिका' नामक एक कृति छन्दों में लिखी। तेलुगु साहित्य में पुराने ज़माने में गर्भ-कविता के लिए भी काफ़ी स्थान था। एक ही छन्द में अनेक छन्दों की सफल आयोजना गर्भ-कविता की विशेषता है। सभी छन्दों का निर्वाह पिंगल शास्त्र के अनुसार ठीक रहता है। एक बार इन्होंने आशु रूप में एक छन्द कहा जिसमें दो और छन्द उपस्थित थे :

"विनय मोप्पारग विन्नविंचेद निदे
न्यायंबुगा जूचि मीयेड गड्डु
समय लीलं दग सादसा ननल
विद्यासं विवादं बुलो सरलिग
विजय मव्वारिकि वीकमै गलिगेनो,
सामान्य धीमै सुधी मदेभ
नियममुलमेच्चग नीतितो नुड्डुवुडी
जाल्पाकुलै सज्जनुलपोसंग
वेड्डुदुलकु विद्यकूडदु कलुगुनधमु
दान निजसुगाननि यन दारेलमिनि
दल पडिननु नायुंलु चेप्पु पलुकुलने
वलचुनु गनुपरुपन् माकु लक्ष्यसुलुग—?

"नय मोप्पारग विन्नविंचेद निदे न्यायंबुगा जूचि मी
दयलीलं दग सारसाननल विद्यासं विवादं बुलो
जयमन्वारिकि वीकमै गलिगेना सामान्य धीमै सुधी
चय मुलमेच्चग नीतितो नुड्डुवुडी
जाल्पाकुलै सज्जनुल्।"

"वेलदुलकु विद्यकूडदु
कलुगुनधमु दान निजमुगाननि यनदा
रेलमिनि दलपडि ननु ना
युंलु चेप्पु पलु कुलनेवल युनु गन परुपन्"

इन के मन में आगे चल कर समस्त महाभारत को भी ठेठ तेलुगु में लिखने की इच्छा पैदा हुई परन्तु ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी। थोड़े ही दिनों में पन्तुलु जी ने तेलुगु साहित्य में अपेक्षाकृत गद्य-ग्रन्थों के अभाव का कटु अनुभव किया। इसलिए उन्होंने अपना काव्य-व्यवसाय छोड़ कर तेलुगु साहित्य के भण्डार को गद्य-ग्रन्थों से भर देने की सफल चेष्टा की। यह तो सच है कि पन्तुलु जी से पहले 'जैमिनी भारत' 'नीति चन्द्रिका' आदि गद्य-ग्रन्थ बहुत थोड़ी संख्या में उपलब्ध थे परन्तु इनका प्रचार लोगों में काव्यों की अपेक्षा बहुत कम था। और तो और उन दिनों समाज में शिक्षा की ओर लोगों की रुचि बढ़ती जा रही थी। उनकी साहित्यिक अभिरुचि को संतृप्त करने के लिए काव्यों की अपेक्षा गद्य-कृतियाँ अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती थीं। दूरदर्शी पन्तुलु ने साहित्य के विविध अंगों की श्री समृद्धि में अपनी रचनाओं द्वारा पूरी सहायता पहुँचाई। तेलुगु के गद्य-साहित्य के विकास में इनकी साहित्यिक सेवा बड़ी उच्च कोटि की थी। पूर्ववर्ती 'चिन्नय्य सूरि' ने संस्कृत के 'पंचतन्त्र' में से दो तन्त्रों का अनुवाद गद्य में किया था। 'विग्रह एवं संधि' तन्त्रों का अनुवाद करके पन्तुलु जी ने पूर्ववर्ती लेखक के साहित्यिक प्रयास को आगे बढ़ाया।

उस समय तक तेलुगु साहित्य में उपन्यासों का नितान्त अभाव था। इस अभाव की पूर्ति के लिए अंग्रेज़ी की 'विकार आफ़ वेकफ़ील्ड' के आधार पर 'राजशेखर चरित्र' नामक एक उपन्यास पन्तुलु जी ने लिखा। 'विकार आफ़ वेकफ़ील्ड' और इसमें कोई समानता नहीं थी, फिर भी उक्त उपन्यास से 'राजशेखर चरित्र' के लिए काफ़ी प्रेरणा मिली। इसकी रचना सन् १८७८ ई. समाप्त हुई। इसी पुस्तक से तेलुगु साहित्य में उपन्यासों का सूत्रपात हुआ। इसका आदर तेलुगु भाषा-भाषियों में ही नहीं, अंग्रेज़ी, कन्नड़ आदि भाषा-भाषियों में भी हुआ। सन् १८८६ ई. में

अचिनसन नामक एक अंग्रेज़ ने 'फार्ट्चून हील' नाम से इसका अनुवाद करके लन्दन में प्रकाशित किया था। उन दिनों 'लन्दन टाइम्स' का वक्तव्य इस प्रकार था: 'Fortune's wheel' is an almost unique example of a Hindu novel' इसकी विशेषता यह है कि इसमें तत्कालीन सामाजिक जीवन एवं सामाजिक कुरीतियों की बुराई का यथार्थ चित्रण किया गया था। 'राजशेखर चरित्र' का रूपान्तर कन्नड़ में भी हुआ।

सन् १८७५ ई. में इन्होंने महाकवि कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का अनुवाद किया। परवर्ती कवियों में एकाधिक ने इसका अनुवाद किया फिर भी वीरेशलिंगम् के अनुवाद की सी सरसता उन अनुवादों में नहीं पाई जाती। इस नाटक का प्रदर्शन आन्ध्र प्रान्त की कई जगहों में रंगमंच पर बड़ी सफलता के साथ हुआ। अनूदित पद्यों में से विशेषकर निम्न लिखित दो पद्य आज भी बहुत-से लोगों की ज़बान पर हैं:

"चल्लनिवै, श्रमं बुड्डप जालिन तामरपाकु वीवनल्
मेल्लन गोंचु वीचुदुनो, मिक्किलि शीतलमैन वायुवुल्
सल्ललितारुणाब्ज सदृशंबगु नीचरणद्वयंबु नो
पल्लवपाणि! ना तोडल पैनिडि हायिग वट्टु बाडनो"

"किं शीतलैः क्लमविनोदिभि रार्द्रवातान्
संचारयामि नलिनीदलतालवृंतैः
अंके निधाय करभोरु! यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ।"

अर्थात् राजा दुष्यन्त मैं पद्म दल रूपी वीजनों के द्वारा शीतल तथा श्रमहारी मन्द पवन का संचार करूँ अथवा अरुण-पद्म सदृश तुम्हारे चरणों को अपने अंक पर रख कर उनका मृदुल संवाहन करूँ:

"कोंदल मेदे डेंदमु शकुंतल तानिपु डेगुनंच्चयो
क्रंदुग बाष्परोधमुन कंठमुनुं जेडे दृष्टि मांद्यमुन्
बोंदे नोकिंत पेंचिन तपोधनुले इट्टकुंद नेंतगा
गुंदुदुरो तमंत गनु कूतुल बायु गृहस्थुलक्कटा।"

"यास्यत्यद्य शकुंतलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कंठया
कण्ठः स्तंभितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिंताजडं दर्शनम्
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः"

यह कण्व की उक्ति है: "आज शकुंतला जाएगी इससे मेरा मन आकुल है। कण्ठ बाष्प से गदगद है और दृष्टि में मांद्य आ गया है। सिर्फ़ पालन करने से ही तपोधन ऐसे चिंतित हो उठते हैं तो, पुत्री वियोग-वेदना से असली गृहस्थ कितने दुःखित होते होंगे।"

अन्य अनुवादों में 'प्रबोध चंद्रोदय' और विकाग्निमित्र' प्रसिद्ध हैं। मौलिक नाटकों में हरिश्चन्द्र' और 'दक्षिण गो ग्रहण' मुख्य हैं। ये जागृति के अग्रदूत थे। अतः इन्होंने अंग्रेज़ी नाटक उपन्यासों के अनुसरण पर कई किताबें लिखीं।

उन्होंने शैरिडन के 'दि रैवल्स' नामक नाटक अनुवाद 'कल्याण कल्पवल्ली' नाम से किया। आफ़ वेनिस्' का भी सफल अनुवाद किया। समाज में स्त्रियों पर जो अत्याचार होते हैं उनका दुःखद वर्णन करते हुए उन्होंने अंग्रेज़ी के 'गुलिवर्स ट्रैवल्स' के अनुकरण पर 'सत्यराज पूर्वदेश यात्रा' नामक एक पुस्तक लिखी। इसमें अन्ध-विश्वासों पर व्यंग्यात्मक ढंग से आक्रमण किया गया। इसका अनुवाद अंग्रेज़ी तथा कन्नड़ दो भाषाओं में हुआ।

दूरदर्शी वीरेशलिंगम् ने यह सोचा कि इन भाषाओं में विज्ञान-सम्बन्धी किताबें बिलकुल नहीं हैं। विज्ञान से प्रभावित होकर देशी भाषाओं में विज्ञान-संबंधी रचनाओं की आवश्यकता अनुभव की। इन्होंने शरीर विज्ञान पर एक किताब लिखी। इस प्रकार तेलुगु में वैज्ञानिक साहित्य की बुनियाद भी इन्हीं के हाथों पड़ी। ज्योतिर्विज्ञान पर भी इनकी एक रचना निकली जिससे वैज्ञानिक ढंग पर सूर्य और चन्द्र-ग्रहण के बारे में लोगों में जो अंध-विश्वास हैं वे दूर हो सकें।

इन सभी रचनाओं में पन्तुलु की उत्तम कृति (Master Piece) 'कवुल चरित्रमु' है जिसमें आन्ध्र साहित्य के उस समय तक के कवियों का और उनकी कृतियों का प्रामाणिक रूप से वर्णन हुआ है। पन्तुलु ने स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखा: "मेरी सभी रचनाओं में यही अत्युत्तम है। इसके लिए मैंने जितना अनुसंधान कार्य किया और जितनी कड़ी मेहनत की उतनी दूसरी कृतियों के लिए नहीं।" अंग्रेज़ी में जानसन की 'लाइव्स आफ़ पोइट्स' के अनुसरण पर साहित्य की यह महान् रचना पूरी हुई। उन दिनों ऐसे कार्य के लिए सामग्री का मिलना अत्यन्त कठिन था। बहुत-सी सामग्री तालपत्र के ग्रन्थों में बिखरी पड़ी थी। ऐसे हज़ारों ग्रंथों का अनुसंधान एवं समालोचनात्मक अध्ययन करके ऐसे अनमोल

१९५४

की रचना करना वीरेशलिंगम् पन्तुलु जैसे कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति का ही काम था । इसकी उपादेयता आजकल भी वैसी ही बनी हुई है । यह बड़े हर्ष का विषय है कि अपनी बहुमुखी प्रतिभा के अनुरूप ही पन्तुलु जी ने तेलुगु साहित्य के समालोचना के क्षेत्र में भी पदार्पण किया । इनकी समालोचनात्मक प्रतिभा के उदाहरण में नन्नय भट्ट कृत व्याकरण की समीक्षा ली जा सकती है । छन्द नियमों के प्रति इनकी प्रवृत्ति बड़ी उदार थी । तेलुगु लिपि में दो प्रकार के 'र' वर्ण हैं । दूसरे 'र' वर्ण को शकटरे कहते हैं । छन्द शास्त्र की कट्टरता के अनुसार इन दोनों वर्णों में 'यति-मैत्री' नहीं हो सकती । प्रायः प्रत्येक छंद में चरण के प्रथम अक्षर के साथ चरण के बीच में किसी निश्चित् स्थान पर सजातीय वर्ण का उपयोग करना चाहिए । यह विधान 'यति-मैत्री' कहलाता है । वीरेशलिंगम् के अनुसार दोनों 'र' वर्ण सजातीय हैं । अतः दोनों में यति-मैत्री की स्थापना हो सकती है । कविता की प्रारंभिक दशा में बुद्धि-वैचित्र्य के प्रदर्शन की ओर इनका मन चाहे भले ही रहा हो परन्तु परिपक्व अवस्था में इन्होंने रसपूर्ण रचनाओं की प्रधानता मानी । अतः कविता में निकृष्ट कवियों के द्वारा प्रदर्शित भाँति-भाँति के चमत्कारों की भर्त्सना उन्होंने बड़े कठोर शब्दों में की ।

"सुंदर बहु रस पुष्टि न
मंदानंदंबु बुधुल मदि किड देनिन्
छंदोबद्धं बगु पद
बृन्दाटोपंबु ता गवित्वं बगुने"
"रसमुलु कावे प्राणमु
लसमान कवित्वकांत कवनीस्थलिलो
रसहीनमैन कवितकु
बोसगिंचु नलंकृति शवमुन किडु तोडवौ

अर्थात्—यदि पंडितों के हृदय रसपुष्टि के कारण आनन्द से संतृप्त हों तो, वह कविता किस काम की है जो केवल छन्द-नियमों से भरी हुई है ।

कविता के लिए रस ही प्राण है । रसहीन कविता में आयोजित अलङ्कार, शव पर अलंकृत आभूषणों की भाँति ही शोभा नहीं दे सकते ।

इससे यह स्पष्ट है कि पांडित्यपूर्ण-कृतियों की अपेक्षा वे भावुक एवं सुकुमार रचनाओं का आदर करनेवाले थे ।

सामाजिक कुरीतियों का खण्डन इन्होंने केवल भाषणों द्वारा ही नहीं अपि तु अपने लेखों द्वारा भी किया था । इसके लिए इन्होंने प्रहसनों को अपनाया । उन दिनों ये प्रहसन देख कर लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे । इनमें आदमी की कमज़ोरियों पर सूक्ष्मता और व्यंग्य के साथ चोट की जाती थी । इनमें ब्रह्मचर्य प्रहसन, महामहोपाध्याय प्रहसन, पुनर्मरण प्रहसन आदि उल्लेखनीय हैं । इनके अतिरिक्त इन्होंने कई प्राचीन ग्रन्थों का संपादन करके भली-भाँति प्रकाशन किया । इनके संपादित ग्रन्थों में 'प्रभावती प्रद्युम्नमु' 'कविराज मनोरंजन' 'आन्ध्र भाषा भूषण' 'जैमिनीवास' आदि मुख्य हैं । संक्षेप में तेलुगु साहित्यिक क्षेत्र का कोई भाग भी ऐसा नहीं था, जो पन्तुलु जी से अछूता रह गया हो । इन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा के द्वारा साहित्य-देवी के मंदिर को नए-नए अलंकारों और वेष-भूषाओं से अलंकृत करके जगमगाया । आज भी इन महान् विभूति के आभूषणों की जगमगाहट से तेलुगु साहित्य का मंदिर देदीप्यमान है । नाटक, उपन्यास, आत्मकथा, विज्ञान तथा हितोपदेशक रचनाएँ इन सभी दिशाओं में पन्तुलु जी ने पहले-पहल अग्रसर होकर तेलुगु साहित्यिक क्षेत्र को समुज्ज्वल एवं विस्तृत किया । ये आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे कला कृतियाँ लिखनेवाले नहीं थे । ये सामाजिक स्तर को कुरीतियों के पंक से निकाल कर उन्नत बनानेवाले कर्मशील समाज-सेवी तथा सुधारक भी थे । इनकी रचनाएँ अधिकांश में कलात्मक होती हुई भी समाज के लिए उपयोगी हैं । इन्होंने कला का उपयोग कला के लिए न करके प्रधानतया समाज के कल्याण के लिए ही किया था । इस प्रकार ये एक ओर उत्तम कलाकार और दूसरी ओर समाज सुधारक थे । एक ही व्यक्ति में इन दोनों का मेल अत्यन्त दुर्लभ है । सन् १९१९ ई० में इकहत्तर वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हुई ।

हिन्दी साहित्य में इनकी तुलना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से कुछ सीमा तक की जा सकती है ।

—हनमच्छास्त्री 'अयाचित'

एस. वी. आर्ट्स कालेज,
तिरुपति (आन्ध्र)

"नागराज-सुश्रुवा, श्वसुरम् अथवा शेषनाग"

बहुत काल पूर्व की बात है बिजबोर के समीप एक विस्तृत सुन्दर उद्यान में निर्मल जल से पूरित एक सरोवर था। सुनते हैं कि उसमें नाग-सुश्रुवा का निवासस्थान था। एक दिन लम्बी यात्रा से लौटते समय थके-मांदे विशाखा पण्डित नामक युवक ने वहीं सघन तरुओं की छाया में आसन जमा विश्राम करना चाहा।

यद्यपि मधुर वसन्त के दिन नहीं थे, फूल, पत्ते मुरझा से गए थे, सामने पहाड़ों की बरफ़ पिघल कर नदी-नालों में बह गई थी और उनकी नंगी नीली चोटियाँ दिखाई दे रही थीं, फिर भी मन्द-मन्द सुशोभित पवन ने जो कश्मीर की उपत्यका में निरन्तर बहती रहती है, उसकी सम्पूर्ण थकान हर ली। कुछ विश्राम कर वह पुनः चश्मे से थोड़ा जल लाया और थैले से सत्तू निकाल कर भोजन करने बैठा। सहसा उन शीतल झोकों के साथ ही नूपुरों की मधुर ध्वनि सुनाई दी। आश्चर्य-चकित हो, भोजन छोड़ वह इधर उधर देखने लगा। कुछ समझ में न आया, किन्तु देखा पास ही की एक गुहा में से नीले परिधान पहने श्वेत कमलों से नेत्रों वाली दो सुन्दर कन्याएँ चली आ रही हैं। वायु के वेग से लहराते, उन रूपवती कन्याओं के कन्धों पर पड़े आँचल के छोर, चारों दिशाओं को शोभायमान कर रहे थे।

वे बालिकाएँ भी तनिक दूरी पर बैठ गिने-चुने दाल के दानों का भोजन करने लगीं। ब्राह्मण उन सुन्दर कन्याओं को ऐसा किंचितमात्र दाल का आहार करते देख अत्यन्त लज्जा अनुभव करने लगा। उसने खाना छोड़ दिया, और उन्हें अपने भोजन में से खाने का निमंत्रण दिया। पुनः अत्यन्त स्नेहपूर्वक चश्मे से जल का पात्र भर लाया। कन्याएँ खा पी, तथा सरोवर के शीतल जल से मुँह-हाथ धो विश्राम करने लगीं तो उसने पत्तों का एक पंखा तैयार किया, और उनके पास बैठ धीमे-धीमे हवा करने लगा। पंखा करते-करते वह कहता जाता था कि किन्हीं भूतकाल के सुकर्मों का ही फल है जो इनसे भेंट हो सकी। पुनः उनके जागने पर उसने अपनी उत्सुकता उन दोनों के जन्म, जाति, देश आदि के बारे में प्रकट की और यह भी पूछा कि वे ऐसी क्षुधातुर क्यों हैं और किसलिए उन्हें इस निम्न कोटि के भोजन पर निर्वाह करना पड़ता है।

"हम लोग नागराज सुश्रुवा की कन्याएँ हैं, यदि बढ़िया भोजन न मिले तो जीवनयापन के लिए साधारण दाल-भात खाने में क्या बुराई है ?" कन्याओं में से एक ने उत्तर दिया और बतलाया कि "मेरा नाम इरावती है। मेरे पिता की इच्छा मेरा विवाह एक विद्याधर से करने की है, और यह मेरी छोटी बहन चन्द्रलेखा है।"

पण्डित विशाखा इन सुकुमारी कन्याओं का आत्म-वृतान्त जानने के लिए उनसे पूछने लगा तो बालिकाओं ने उत्तर दिया कि यह प्रश्न तो उनके पिताजी से ही किया जाना उचित है, वही इसके कारण को भली-भाँति जानते हैं।

ब्राह्मण ने पूछा : "वे कहाँ मिलेंगे ?"

"ज्येष्ठ मास के कृष्ण-पक्ष की द्वादशी को तक्षक यात्रा के त्यौहार के अवसर पर वे अवश्य ही यहाँ आएँगे। उनके सिर पर मणि-मरकतों से झिलमिलाता मुकुट है, इससे तुम्हें स्वयं भी उन्हें पहचानने में कोई कठिनाई न होगी, वैसे हम दोनों भी साथ-साथ ही रहेंगी।" इतना कह कर वे दोनों चली गईं।

त्यौहार का समय आ पहुँचा। गाने बजानेवाले, भाँति-भाँति से नाचनेवाले तथा प्रत्येक दर्शक आ एकत्रित हुए। पण्डित विशाखा ने कन्याओं के कथनानुसार उनके पिता को पहचान लिया। इधर कन्याओं ने भी नागराज को ब्राह्मण के विषय में पूर्व ही से बतला दिया था, अतः उसने आगे बढ़ कर विशाखा का स्वागत किया। तब बातचीत के सिलसिले में ब्राह्मण ने नागराज से ऐसी दयनीय स्थिति का कारण पूछा।

नाग सुश्रुवा ने एक साँस लेकर उत्तर दिया : "हे ब्राह्मण ! स्वाभिमानी और बुद्धिमान् मनुष्य जिन्हें भले-बुरे की पहचान होती है, चिल्ला-चिल्ला कर दूसरों के प्रकट करने की अपेक्षा अपने दुःख को छिपा रखना ही उचित समझते हैं और एक सहृदय व्यक्ति भी यदि दूसरे का दुःख दूर कर सकने में समर्थ न हो, तो अपने

१६५४

दुःखी होकर ही रह जाता है।

किन्तु एक साधारण व्यक्ति छोटी से छोटी बात को भी बहुत महत्व देता है और दुःख से विचलित हो उठता है, और जब कभी विपत्ति में फँस जाता है तो जो कुछ भी ऊँच-नीच उपाय हो अपनी मुक्ति के लिए काम में लाता है। वह सोचता है कि उसके दुःख मानों निरन्तर बने रहेंगे। वह अपने कष्टों को दूसरों पर चिल्ला-चिल्ला कर प्रकट करता है।

पर उन सहिष्णु व्यक्तियों का दुःख, जो कभी किसी पर प्रकट नहीं करते उसे अतिरिक्त इसके कि कोई नौकर-चाकर या बच्चा किसी को कह दे, कौन जान सकता है?

चूँकि मेरी पुत्रियों ने मेरे दुःख की बात तुम तक पहुँचा दी है सो अब तुम से कुछ भी नहीं छिपा रखूँगा। देखता हूँ, तुम ही उसे दूर करने में सहायक हो सको।

"देखो ब्राह्मण, उस वृक्ष के तने में एक फ़क़ीर रहता है जो निरन्तर धान के खेतों की रखवाली किया करता है, उसी के भय के मारे, हम यहाँ भाग आए हैं, और क्योंकि वह स्वयं नया अन्न नहीं खाता इसीलिए हमें भी भूखा रहना पड़ता है। यदि तुम उसकी प्रतिज्ञा भंग करने में कुछ भी सामर्थ्य रखते हो तो उसे किसी प्रकार नए धान में से कुछ दाने खिला दो। किसी के अहसान का बदला कैसे चुकाया जाता है यह हम लोग भली-भाँति जानते हैं।"

नागराज की कथा सुन कर ब्राह्मण यह सोचता हुआ चला गया कि वह कैसे इस कार्य में सफल हो सकता है। अतः एक दिन जब कि साधु के लिए कुछ खाने को पकाया जा रहा था, विशाखा ने स्थान देख लिया और आँखें बचा कर मुट्ठी भर नए धान बर्तन में डाल दिए। भोजन तैयार हुआ और महात्मा ने खाया......बस क्या था...इस विशेष धार्मिक बँधन से मुक्त होते ही नागराज वृक्ष से उतरे, ताज़े फलों द्वारा स्वयं तथा पुत्रियों को तृप्त किया और उनके सब दुःख दूर हो गए।

तब उसने ब्राह्मण को घर पर निमन्त्रित किया और कन्याओं को अपने दयालु अतिथि का भली प्रकार आतिथ्य-सत्कार करने का आदेश दिया। ब्राह्मण बड़े आनन्द से उनके घर कई दिन रहा, किन्तु बाद में जाने की इच्छा प्रगट की।

ब्राह्मणों और नाग जातियों में विवाह-सम्बन्ध नहीं होते फिर भी विपुल धन सम्पदा देकर नागराज ने अपनी छोटी कन्या चन्द्रलेखा का विवाह विशाखा से कर दिया—वर-वधू ने मनोहर उद्यान एवं सरोवर से विदा ली।

इस प्रकार पण्डित विशाखा चन्द्रलेखा सहित नरपुर आए और आनन्द से दिन व्यतीत करने लगे। राजा नर जिसका दूसरा नाम किन्नर भी था, इस समय नरपुर-नगरी में राज्य कर रहा था। वितस्ता के तीर पर इस राजा ने इस सुन्दर नगरी की स्थापना की थी। इस शहर में ऊपर तरह-तरह के फूलों-फलों से पूरित दुकानों से सुसज्जित चौड़ी सड़कें और नीचे रंगीन किश्तियों से नदी का वक्ष हमेशा शोभायमान रहता था।

राजा नर ने विशाखा की अनुपम सुन्दर पत्नी चन्द्रलेखा की प्रशंसा सुनी तो मुग्ध हो गया। उस दुर्बुद्धि राजा को प्रजा का भी भय न था। एक दिन तो उसका यह व्यवहार अपनी चरम-सीमा तक पहुँच गया। एक दिवस जब चन्द्रलेखा अपने घर के बरामदे में बैठी केश सुखा रही थी तो आँगन में सूख रही शाली पर घोड़े को चरते देखा। चन्द्रलेखा ने घोड़े को हटाने के लिए नौकरों को पुकारा, किन्तु किसी को पुकार सुनाई नहीं दी, तब वह घोड़े को हटाने के लिए स्वयं उठी और एक हाथ से लगाम थाम कर दूसरे से उसको धक्का दिया।

चन्द्रलेखा के हाथों की सुनहली छाप राजा के घोड़े की पीठ पर अंकित हो गई।

राजा तक यह ख़बर पहुँची तो वह और भी उमड़ पड़ा। उसने अपने कुछ अनुचरों को बड़े प्रलोभन देकर सन्देश भेजा, किन्तु सुन्दरी चन्द्रलेखा पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। तब वह कामातुर निर्लज्ज राजा स्वयं उसके पति से चन्द्रलेखा को माँगने गया तो भी परिणाम में उसने गालियों के अलावा और कुछ न पाया। अन्त में हार कर उसने कुछ सिपाहियों को लड़की को ज़बरन भगा लाने के लिए भेजा।

सैनिक पण्डित विशाखा के मुख्य द्वार पर प्रहार कर रहे थे कि पति-पत्नी दूसरे दरवाज़े से बाहर निकल गए, और सीधे नागराज को उन्होंने राजा नर की ओर से किए गए दुर्व्यवहार की कथा सुनाई। नाग सुश्रुवा सुन कर अत्यन्त दुःखित एवं क्रोधित हुए। यहाँ तक कि क्रोध में आकर उन्होंने सम्पूर्ण नगरी को भस्म करना

प्रारम्भ किया। उस भयंकर अग्नि की लपटों में से बचने के लिए जो लोग शंकराचार्य की शरण में आए वे भी झुलस जाने के कारण मर गए। वितस्ता का प्रवाह मृत शरीरों और अस्थियों से रुक गया। राजा नर भयभीत होकर जंगलों में भाग गया।

इस प्रलयंकारी घटना का समाचार जब नाग सुश्रुवा की बहन रामायणी को मिला, तो वह अपनी पर्वतीय गुहा से भाई की सहायता के लिए निकल आई किन्तु एक योजन दूर ही से उसने अपने भाई की सफलता का समाचार सुन लिया।

वे पत्थर और वृहत् चट्टानें जिन्हें वह नगर उजाड़ने के अपने लिए साथ लाई थी पूरे पाँच योजन के घेरे में फेंक कर चली गई। आज भी उन पत्थर एवं चट्टानों से निर्मित गाँव-सा वह घेरा रामायणपल्ली के नाम से प्रसिद्ध है।

अनेक प्राणियों का नाश करने के उपरान्त नागराज स्वयं भी उद्विग्न हो गए और अन्य लोग भी उनकी निन्दा करने लगे। अतः उन्होंने उस सुन्दर शीतल सरोवर का निवास छोड़ दिया, और सुदूर ऊँचे पर्वतीय शिखर पर एक बड़ा सा गड्ढा खोद कर रहने लगे; वह गड्ढा बढ़ते-बढ़ते एक मीलों लम्बा चौड़ा नील हरित वर्ण सरोवर बनता गया। आस पास गिरि-शिखरों से आकर अनेक नाग, नागि भी सम्मिलित हो गईं।

समीप ही के एक पर्वताञ्चल में एक और सुश्रुवा ने अपने जामातृ के लिए खोदा, जिसको ब्राह्मण हुए भी नागराज ने स्नेहपूर्वक नाग ही बना लिया था।

यह दोनों सरोवर, श्वसुरनाग अथवा शेषनाग त जामातृनाग के नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं और प्र वर्ष श्री अमरेश्वर (अमरनाथ) की यात्रा को जाते सम यात्री इनका दर्शन करते हैं।

रही राजा नर की बात, अज्ञानी लोग भले ह इसे पाप न समझें किन्तु इस दुष्कृत्य के कारण जि बुरी गति से उस नृप ने मृत्यु पाई वैसी किसी को न न हो क्योंकि जो राजा अपनी प्रजा की रक्षा के ब उलटा उन पर अत्याचार करता है, उसे अवश्य ही ऐ सज़ा मिलती है। कहा भी गया है: "साध्वी स्त्री, ब्राह्म तथा भगवान् का कोप तीनों लोकों का नाश कर देता है। आज भी चक्रधर की पहाड़ी के नीचे उस भस्मी नगरी के अवशेष, तालाब, सरोवर आदि आने जा वाले लोगों को उस राजा की पाप-वासना की स्मृ दिलाते हैं।

—सत्यवती म

कनॉट सर्कस,
नई दिल्ली

एक रात मदीना में ख़लीफ़ा उमर अपने एक साथी के साथ प्रजा की स्थिति का निरीक्षण करते हुए घूम रहे थे। वे एक कुटिया के पास से गुज़रे। अन्दर से आवाज़ आ रही थी। एक बुढ़िया अपनी बेटी से कह रही थी : "क्यों न दूध में पानी मिला दो। हम ग़रीब लोग हैं और हमें पैसे की बहुत ज़रूरत है।" "परन्तु माँ! तुम ख़लीफ़ा की आज्ञा भूल गई हो। उसकी आज्ञा है कि दूध में पानी बिलकुल न मिलाया जाए।" लड़की ने उत्तर दिया। बूढ़ी माँ ने कहा: "यहाँ देखता कौन है कि हम पानी मिला रहे हैं।" लड़की ने उत्तर दिया : "कोई नहीं देख रहा, है किन्तु हमें इस तरह की बेईमानी नहीं करनी चाहिए।" साथी ने कहा—"इस लड़की को एक हज़ार दीनार इनाम दिया जाना चाहिए।" ख़लीफ़ा ने कहा—"मैं इसको इससे बड़ा इनाम दूँगा। यह लड़की मेरी पुत्रवधू होगी।" ख़लीफ़ा ने उसे अपनी पुत्रवधू बनाया।

और दीप बुझ गया

अब कभी सोचती हूँ कि गाँव की उस छोटी-सी दुनियाँ में मेरे लिए कौन-सा आकर्षण था, तो दीदी-माँ का धुँधला-सा चेहरा स्मृति-पटल पर सजग हो उठता है। झोंपड़ियों से घिरा वह छोटा-सा तालाब—उसके एक ओर मन्दिर था और दूसरी ओर पाठशाला। श्वेत वसना दीदी माँ ही उस मन्दिर की पुजारन थीं और उस पाठशाला की एकमात्र अध्यापिका भी।

पहली बार उस गाँव में मैं कब आई थी, सो तारीख तो याद नहीं, हाँ इतना याद पड़ता है कि एम. ए. का कन्वोकेशन होनेवाला था, जब सुधा ने अपने इस परिचित गाँव में मुझे आमन्त्रित किया था। वह अपनी छुट्टियाँ प्रायः इसी गाँव में बिताया करती थी। बात-बात पर उसके मुंह से 'दीदी माँ' का नाम सुन कर, उनसे मिलने की उत्सुकता मुझे भी काफ़ी थी। उस दिन एम. ए. में जब दोनों ही रायल डिवीज़न में पास हुए तो निश्चय किया गया कि इस बार छुट्टियाँ भी इकट्ठी ही बिताई जाएँ और इस गाँव के प्रोग्राम पर दोनों ही राज़ी हो गए।

डेढ़ दिन का सफ़र कैसे मज़े में कट गया सो पता भी न चला। स्टेशन से बैलगाड़ी में बैठ कर गाँव तक पहुँचना था, यह भी जीवन का, एक अमूल्य अनुभव था। गाँव में सुधा के मामा का छोटा-सा, बग़ीचे से घिरा, कच्चा बंगला था। उसी में जाकर सामान रखा। नहा-धोकर जब ज़रा स्वस्थ हुए तो सुधा बोली :

"चल री मधुलिका ! तुझे दीदी माँ से मिला लाऊँ।" हम लोग एक टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी पर, आस-पास के काँटों से पाँव बचाते दीदी माँ के तालाब की ओर बढ़े। दीदी माँ मन्दिर से पूजा करके लौट रही थीं।

"अरे तू कब आई सुधा ?" उन्होंने पूछा

"अभी तो आई हूँ दीदी माँ—और ये हैं मधुलिका—"

"ओ ! तो आप हैं मधु बहिन, तेरी सहपाठिनी—बातें तो बहुत सुनी थीं, पर मिलने का अवसर आज ही मिला।" उस प्रौढ़ा नारी से अपने लिए 'आप' सम्बोधन सुन कर कुछ अटपटा-सा लगा किन्तु मैंने मुस्करा कर हाथ जोड़ दिए।

"चलो, अन्दर चलें" वे बोलीं और खड़ाऊँ पहने, मुसकराती-सी, सीढ़ी चढ़ती हुई, अपनी पाठशाला की ओर बढ़ीं। हम दोनों भी उनके पीछे-पीछे ऊपर चढ़ते गए।

पाठशाला बस दो कमरों में ही सीमित थी। छोटी-सी दरी पर गाँव के छोटे-छोटे बालक बैठे थे। साफ़ रखने का प्रयत्न करने पर भी उनके मटमैले कपड़े उनके शरीर से ज़्यादा रंगीन होने की होड़-सी लगा रहे थे। सुधा को देख सबके मुँह पर एक परिचित का-सा भाव उमड़ आया।

"दीदी माँ, यह बच्चों में बाँट दीजिए" सुधा ने बच्चों के लिए लाई हुई मिठाई की टोकरी उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा।

"दीदी माँ, जब सुधा बहन जी आती हैं तो हमारे लिए ज़रूर कुछ न कुछ लाती हैं।"—एक छोटा-सा बालक बोला।

"हाँ बेटा, तुम अच्छे लड़के बनोगे, ख़ूब मन लगा कर पढ़ोगे तो सुधा हमेशा तुम्हें ऐसे ही प्यार किया करेगी—और तुम अपनी दोनों बहनों को बैठाओ न। वह देखो तुम्हारी मधु बहिन जी—". हम सब मुसकरा दिए।

"दीदी माँ, अभी तो मधु को, घूम-फिर कर सारा गाँव दिखा दूँ—फिर दोनों आएँगे।" सुधा बोली और नमस्कार करके हम दोनों वहाँ से आ गए। रास्ते में मैं सोचती जा रही थी...

"दीदी माँ के मुँह पर कितनी शालीनता है—कितनी गम्भीरतापूर्ण मुसकराहट ! कोमलता का भी समावेश है और श्वेत वर्ण की शुभ्रवसना नारी !—"

"अगर मुझे मालूम होता कि तू ऐसा सोचा करेगी तो तुझे कभी फ़िलॉसफ़ी में एम. ए. न करने देती।—" सुधा बोली। और मेरे विचारों का तारतम्य टूट गया। मैं अपने विचारों में खोई खोई-सी घर तक

चुपचाप पहुँच गई थी सो कुछ झेंप भी चढ़ी और अपनी झेंप को मुसकराहट में छिपा मैं फिर सोचने लगी—

"दीदी माँ के माँ-बाप कहाँ हैं ? ये अकेली क्यों रहती हैं—पढ़ी-लिखी कितनी हैं ? आदि"

"अरे बाबा बैठ मधु ! तू उन्हीं के बारे में सोचे जा रही है न, अभी उनकी कथा सुना दूँगी तुझे।" और घसीट कर सुधा ने मुझे फ़र्श पर बिछी चाँदनी पर बैठा लिया।

खाना खा-पीकर सुधा बोली :

"क्यों मधु, कैसी लगीं दीदी माँ ?"

"जैसी कल्पना की थी ठीक वैसी ही हैं।"

"अपनी कल्पना पर ही गर्व है यह क्यों नहीं कहती कि, सुधा ! तूने तो हूबहू वैसा ही शब्द-चित्र खींच दिया था जैसी वे हैं।"

"अच्छा बाबा यही सही" मैंने हँस कर कहा : "तुम्हारे शब्द-चित्र ही बड़ी पटुता से अभिव्यक्त किए गए थे, मैं कौन-सा अपनी कल्पना को महत्व देती हूँ। अच्छा यह तो बता आखिर इस गाँव में ये कहाँ से आ टपकीं ? इनके कोई है भी कि नहीं ?"

तकिए पर अपना सिर रख कर सुधा लेट गई और फिर मुझे भी खींच कर लिटा लिया, और बोली :

"दीदी माँ रहने वाली तो बम्बई की हैं—अपने ही कालेज में पढ़ा करती थीं – कभी बीस साल पहले ! बी० ए० करके एम० ए० में दाखला लिया था इन्होंने ! एक दिन छुट्टी के बाद कालेज पर बस का इन्तज़ार कर रही थीं। दो घण्टे बीत गए और उन्हें कोई बस नहीं मिली। रात्रि का अँधकार फैलने लगा था। घर भी इनके कालेज से काफ़ी दूर था। तब तक बम्बई में 'लोकल ट्रेन्स' नहीं चली थीं।

एक युवक मोटर ड्राइव करता उधर आ निकला। दीदी माँ को इतना घबराया देख उसने कार रोक ली और बोला :

"आपको किधर जाना है, मैं छोड़े चलता हूँ।"

"दादर" रुआँसी सी वे बोलीं।

"बैठिए" युवक ने मोटर का दरवाज़ा खोल कर कहा। दीदी माँ घबराई हुई तो थीं ही—बैठ गईं। मोटर सुनसान सड़क से होकर समुद्र की ओर चल दी। उन्होंने शोर मचाया तो युवक ने एक हाथ से मोटर का ह्वील थामा और दूसरे से दीदी का मुँह पकड़ रखा। उसके बलिष्ठ हाथ के सम्मुख घबराई हुई दीदी माँ का कुछ वश न चला।

दो घण्टे बाद जब उनको होश आया तो उन्होंने अपने को दादर के चौराहे पर पड़े पाया। हाँफती-हाँफती दीदी माँ घर पहुँचीं तो पिता उनकी ढूंढ में लगे थे। माँ तो उनकी थीं ही नहीं। उन्होंने शुरू से अन्त तक का सारा किस्सा कह सुनाया। पिता सोच विचार कर इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस समय चुप ही रहा जाए तो अच्छा है क्योंकि पन्द्रह दिन बाद उनकी शादी होने वाली थी।

घर में रौनक बढ़ती गई। बाजे बजे और खूब धूमधाम से बरात आई। दीदी माँ दुलहन बनी वरमाला ले मण्डप की ओर बढ़ीं—किन्तु दूल्हे की शक्ल देख उनको अपना होश न रहा। वरमाला तोड़ कर फेंक दी और दूल्हे के मुँह पर ज़ोर से एक चपत रसीद की। लड़का हक्का-बक्का खड़ा रह गया। बरात में हलचल मच गई। दीदी माँ दौड़ती हुई अपने कमरे में जा घुसीं। इससे पहले तो दोनों ने एक दूसरे को देखा न था और जब देखा तो पहचाना कि यह वही मोटर वाला लड़का था और दीदी—कालेज की घबराई सी लड़की।

"इतने नीच इतने पतित आदमी से मैं ब्याह करूँगी ? छिः !" और दीदी माँ को शादी करने से ही नफ़रत हो गई। पहले तो दीदी माँ के पिता बड़े लाल पीले हुए किन्तु सारी घटना जान कर उनका क्रोध जाता रहा और वे बोले : "आज तूने मेरी बेटी होने लायक़ काम किया है।"

आँधी की तरह सारी बरात में समाचार फैल गया। कोई लड़की की हिम्मत की सराहना करता तो कोई लड़के का पक्ष लेता। ख़ैर बरात लौट गई।

दीदी माँ के पिता ने उसी दिन से ऐसी चारपाई पकड़ी कि फिर उठ न सके। दीदी माँ का एक छोटा भाई भी है। वह तब आठ साल का था। पिता काफ़ी रुपया छोड़ गए थे। उनके बाद ये तो यहाँ रहने लगीं और अपने भाई को बी० ए० तक पढ़ा कर विलायत भेज दिया। दो साल बाद वह भी इंजीनियर बन कर आ जाएगा।" इतना कह कर सुधा चुप हो गई।

"सुधी ! कितनी हिम्मती हैं वे ! अपना तमाम जीवन अकेले ही काटेंगी ?" मैं बोली।

"हम तुम जैसी थोड़े ही हैं कि आधा मील

१९५४

अकेले चलना भारी मालूम होता है।"

धीरे धीरे दिन बीतते गए। दीदी माँ से मेरी घनिष्ठता भी बढ़ती गई। 'आप' की परिधि 'तुम' और फिर 'तू' तक फैल गई थी—उन्हीं दिनों छुट्टियाँ खत्म होने के कारण हमें लौटना पड़ा।

कन्वोकेशन हुआ। साल भर में कितने ही परिवर्तन हो गए। सुधा का ब्याह हुआ—वह सुसराल चल दी। मैं कालेज में पढ़ाने लगी। सुधा के जाने के बाद मुझे लगा, मैंने बहुत कुछ खो दिया है। कालेज के जीवन में अब वह सरसता न थी। सुधा की कमी सदैव खलती रहती थी। यों ही दो साल बीत गए। अतीत के स्वप्नों के मध्य कभी-कभी दीदी माँ का चेहरा उभर आता था। साल भर से कालेज का अध्यापन कार्य छोड़ कर मैंने काँग्रेस के क्रियात्मक क्षेत्र में पदार्पण किया था। ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता को मिटा डालने का निश्चय था। काम करते-करते स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया सो सोचा इस बार दीदी माँ के दर्शन ही कर आऊँ।

गाँव पहुँची तो दीदी माँ विशेष प्रसन्न दिखाई दीं। "अरे आ मधु! बड़े दिनों में आई।" और दीदी माँ पाठशाला के पास के कमरे से एक केले के पत्ते पर कुछ मीठा रख कर लाईं।

"ले, खा मधु! मुँह मीठा कर। हमारा वीनू आज कल में यहाँ आ जाएगा।" वनप्रिय उनके भाई का नाम था—जिसे लाड़ में वे वीनू कहा करती थीं—"कल उसका तार आया है। एक महीना हुआ उसे अमेरिका से चले—और आज बम्बई पहुँचा होगा—तो कल आ ही जाएगा।" और झुर्रियों से भरे उनके मुँह पर एक विशेष प्रसन्नता की कान्ति चमक उठी।

नीलाकाश पर कालिमा पुतती गई। दीदी माँ ने उठ कर दीपक जलाया। रात अँधेरी थी, मैं सोने चली गई। पर दीदी माँ दीपक जलाए अपने मन्दिर में बैठी रहीं—'अब आएगा वह, अब आएगा और रात बीत गई। अगला दिन भी बीत गया पर वह नहीं आया।'

"...देख री मधु" दीदी माँ एक कागज़ों का पुलन्दा खोलती हुई बोलीं: "इतना बड़ा था वह, जब बापू की मृत्यु हुई थी" एक फ़ोटो मेरी ओर बढ़ा कर उन्होंने कहा: "और अब उसने यह फ़ोटो भेजी थी—कितना बड़ा हो गया है। घर आएगा—उसके लिए अच्छी सी बहू छाँटूँगी। फिर चिट्ठियाँ निकाल-निकाल कर दिखाने लगीं।"

"देख, पहले ऐसा लिखता था—फिर लिखाई और अच्छी हो गई और फिर अब तो उसे टाइप करना भी आता है। मेरा प्यारा भैया!"

न जाने कितनी देर तक बैठी वे बुदबुदाती रहीं और फिर उनके कपोलों से हर्षाश्रु चू गए।

"अब तक नहीं आया वह" दीपक की लौ काटती हुई वे बोलीं: "मधु! मुझे तंग करना चाहता है। खूब सता कर आएगा। बड़ा हो गया होगा, इंजीनियर, पर मेरे लिए तो उतना ही छोटा है। मुझसे खेल करता है, छकाना चाहता है। अपनी दीदी का जी वो क्या जाने? कब से उसके आने के इन्तज़ार में जी रही हूँ—अब तो बाल भी पकने लगे—"अपने कपोलों पर ढुलकते हुए आँसू पोंछती हुई दीदी माँ बड़ी देर तक वीनू को याद कर कुछ न कुछ कहती रहीं।

मैं सोचने लगी "दीदी माँ अपनी भावुकता में बहती जा रही हैं। उनके दिल की वीनू क्या जाने? बेचारी कितनी प्रसन्न हैं? वीनू भी तो खुश होगा अपनी दीदी माँ से मिल कर—"

दीदी माँ की आवाज़ से मेरी विचार-शृङ्खला टूट गई "देख तो उसने मुझे चिट्ठी में लिखा था" वह पढ़ कर सुना रही थीं—"दीदी माँ, तुम मुझको बहुत याद आती हो। कितने बरस हो गए तुमने एक फ़ोटो तक नहीं भेजा। तुमको वायलेन बजाने का शौक़ है न! मैं तुम्हारे लिए एक नया वायलेन लाऊँगा। तुम्हारी चिट्ठी पढ़ कर लगता है जैसे तुम मेरे ही सामने बोल रही हो।"

"कैसा भोला है! वो क्या जाने इस पढ़ाने के शौक़ में मेरे पुराने सारे शौक़ खो गए हैं। वह मेरा वायलेन है न मधु! उसे मैं घण्टों बैठी वीनू को सुनाया करती थी। जब वह नया वायलन लाएगा तो सालों बाद फिर से बजाऊँगी। उसे आसावरी सुनने का शौक़ था।" कहते-कहते दीदी माँ की आँखें डबडबा आईं। तभी दरवाज़े पर भारी बूटों की आवाज़ सुन कर दीदी माँ उठीं—दरवाज़ा खोला। डाकिया खड़ा था। तार लेकर दीदी माँ दौड़ी-दौड़ी मेरे पास आईं—

"ले मधु, जल्दी से पढ़—बम्बई का तार है। उसने लिखा होगा "मैं कल आऊँगा" मैंने लिफ़ाफ़ा फाड़ा और पढ़ कर चुप रह गई।

"बोल न मधु! क्या लिखा है?" वे पूछ रही

थीं—मैं कैसे कहती कि तुम्हारा वीनू हवाई दुर्घटना से सदैव के लिए प्रस्थान कर गया है।

“मधु बोलती क्यों नहीं ? अरे मैं भी कैसी पागल हूँ, खुद ही क्यों नहीं पढ़ लेती ?” काँपते हाथों में तार ले, उन्होंने दीपक के झिलमिलाते प्रकाश में पढ़ा...और...और स्तब्ध-सी वे जैसे पत्थर की प्रतिमा बन गईं। उनकी आँखें शून्य में ताकती रह गईं। कागज़ उनके हाथ से गिर कर न जाने कितनी दूर उड़ गया। चारों ओर वीनू की फ़ोटो और चिट्ठियाँ बि पड़ी थीं। मेरी दृष्टि वायलेन पर जा टिकी।

“नया वायलेन लाएगा वह!” “घण्टों बैठी गुन करती थी” मेरे कानों में गूँज गया।

मैं सोचती रह गई। स्वप्नों के संसार को मा साकार नहीं बना सकता। बेचारी दीदी माँ के आँ की सूनी डगरिया पर एक ही आशा-दीप तो झिलमिला उठता था—और वह भी आज बुझ गया।

—कुमारी

चन्द्रालोक, जवाहर नगर,
दिल्ली

तमिल कहावतें

आडमाट्टादवळुक्कू कूड़म कोणल
नाच न जाने आँगन टेढ़ा

अलवुक्कु मिञ्जिनाल अमिर्दमुम विषम्
हद से अधिक अमृत भी विष है

कळ्ळनै नम्बलाम कुब्बनै नम्बलागादु
डाकू पर विश्वास किया जा सकता है पर गिडडे आदमी पर नहीं

विळैयुम पयिर मुळैयिले तेरियुम
उगनेवाले पौधे को अंकुर से ही जाना जा सकता है

वल्लवनुक्कू पुल्लुम आयुदम
योग्य मनुष्य के हाथ में तृण भी शस्त्र है

किणट्रु तवळैक्कु उलगमेन्न तेरियुम
कुएँ के मेंढक को दुनिया का क्या पता ?

वेयिलिलिरुन्दाल दान निलनिल अरुमै तेरियुम
धूप में रहने पर ही छाँव की क़ीमत मालूम होती है

पुलिक्कु पिरन्ददु पूनैयागुमा ?
शेर का बच्चा क्या बिल्ली होगा ?

६५४०/सी, मार्केट स्ट्रीट,
सिकन्दराबाद

—कुमारी वनिता

कला-चर्चा

हैदराबाद के चित्रकार : श्री सईद बिन मुहम्मद

श्रीयुत सईद बिन मुहम्मद का जन्म हैदराबाद राज्य के महबूबनगर ज़िले में एक ग़रीब, दकियानूसी और संकीर्ण विचारोंवाले परिवार में हुआ। अभी उनकी आयु पाँच वर्ष की ही थी कि उन्होंने अपने मकान की दीवारों पर कोयले से अपनी ख़ाम ख़याली से चित्र बनाने प्रारंभ कर दिए। उनके कठोर और ज़िद्दी पिता ने उन्हें कई बार चेतावनी दी और इतना पीटा कि वे बेदम हो गए परन्तु इतने पर भी उनका चित्र-कला से प्रेम न केवल ज्यों का त्यों बना रहा अपि तु और भी गहरा हो गया। सईद के पिता ग़रीबी के कारण हैदराबाद चले आए और सईद को पास के स्कूल में तो जाना नसीब न हुआ—हाँ, आजीविका के लिए कठोर श्रम अवश्य करना पड़ा। सईद के बड़े भाई उनकी बुद्धि से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने सईद की शिक्षा के लिए और भी अधिक परिश्रम करना प्रारम्भ किया। वे दार-उल-शफ़ा स्कूल में प्रविष्ट हुए और यहाँ उन्हें सबसे प्रथम श्री गंगाधरराव पाठक ने आलेख्य और चित्र-कला की शिक्षा दी। सईद ने आलेख्य में बहुत जल्दी उन्नति की। १९३८ में उन्होंने मद्रास की हायर ग्रेड ड्राइंग, आलेख्य, रंग-चित्रण, और शिक्षकों के प्रशिक्षण की परीक्षा को पास किया और शिक्षा-सम्मेलनों में उनके कार्य की प्रशंसा की गई और उन्हें पदक प्रदान किए गए।

सईद बचपन से ही अपने दृष्टिकोण में यथार्थवादी थे। वे सस्ते अनुकरण और कापी करने को घृणा की दृष्टि से देखते थे। चाहे कितना ही ख़राब क्यों न हो परन्तु वे अपने परिश्रम से अपना चित्र मौलिक रूप से तैयार करते थे। उनको अपनी कला में इसी कारण सफलता प्राप्त हुई। उनकी प्रारंभिक शिक्षा में उनकी दरिद्रता और दकियानूसी पारिवारिक जीवन उनके आगे न बढ़ने का कारण बनी और सईद अब भी इसकी ख़राबियों से परिचित हैं। उनकी काग़ज़ और पेन्सिल की आवश्यकता को भी पूरा नहीं किया जाता था। पुराने ढर्रे की तो यह अवस्था थी कि जब वे मद्रास अध्यापकों के प्रशिक्षण की परीक्षा के लिए जा रहे थे उस समय उन्हें पहली बार मित्रों ने आग्रहपूर्वक कमीज़ और पतलून पहनाई थी। जब अपनी परीक्षा में उन्हें शानदार सफलता प्राप्त हुई तो उनके पिता ने प्रसन्न होने के बजाय उन्हें गालियाँ दीं और कहा कि तू फिरंगी हो गया है। सईद के पिता इतने पुराने विचारों के थे कि उन्होंने उन्हें अंग्रेज़ी पढ़ने नहीं दी और उनकी सफलता में यह एक अड़चन थी जिसे कि उन्होंने अपनी कला की टेकनीक को उर्दू और हिन्दुस्तानी में निर्मित किया और इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। सईद को उसी स्कूल में नौकरी मिल गई और वे वहाँ आलेख्य के शिक्षक नियुक्त हो गए। उस समय उनकी आयु १८ वर्ष की थी। ज्यों ही हैदराबाद में स्कूल ऑफ़ आर्ट की स्थापना हुई कि सईद ने अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। वे इस स्कूल में प्रविष्ट हो गए और उन्होंने ख़ान बहादुर सैयद अहमद के संवीक्षण में चित्रकला को सीखना प्रारम्भ किया। इसी स्कूल में उन्हें स्वर्गीय सुकुमार देऊसकर ने चित्रकला की शिक्षा प्रदान की। दोनों के तत्वावधान में सईद ने चित्रकला में अति शीघ्र उन्नति की। उन्हें कला-प्रदर्शनियों में बहुत से पारितोषिक प्राप्त हुए। सईद ने १९४५ में स्कूल ऑफ़ आर्ट की विशेषता के साथ डिप्लोमा की परीक्षा को उत्तीर्ण किया और इसके लिए उन्हें छतारी सुवर्ण-पदक प्रदान किया गया।

सईद के लिए यह बड़े सम्मान की बात है कि उन्हें उसी स्कूल ऑफ़ आर्ट में कला का अध्यापक नियुक्त किया गया जिस स्कूल में उन्होंने पाँच वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की थी। वहाँ उन्हें अध्यापक का कार्य करते हुए लगभग आठ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। स्वर्गीय सुकुमार देऊसकर ने जो कि इस स्कूल के प्रिन्सिपल थे उनके चित्रों की और अध्यापन कार्य की बहुत प्रशंसा की थी। वे कहते हैं उनमें स्वाभाविक रूप से अपने को अभिव्यक्त करने की क्षमता है और उन्होंने पूर्व और पश्चिम दोनों चित्रों

के टेकनीक में कुशलता प्राप्त की है।

सईद ने जनता में कला की रुचि को जाग्रत करने और कला को लोकप्रिय बनाने के लिए एक संस्था चलाई है जिसका नाम है "आर्ट व्यू"। इस संस्था में वे विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से चित्रकला और डिज़ाइन बनाना सिखाते हैं।

आकृति-चित्रण के विभाग में उनकी विशेषतया रुचि है। इसमें उन्होंने विशेष दक्षता प्राप्त की है। जल के रंगों में तो उनकी अपनी ही एक विशेषता है। उनकी आकृति-चित्रों को अखिल भारतीय प्रदर्शनियों में कई वर्षों से प्रदर्शित किया जाता रहा है। इसमें से एक चित्र काहिरा की चित्र-प्रदर्शनी में ऑल इण्डिया फ़ाइन आर्ट और क्राफ्ट सोसाइटी ने बेचा था। उनका एक और सुन्दर चित्र है: "तीन प्राणी"। यह चित्र तेल के रंगों में बनाया गया है। इसमें तूलिका की सजीव और साहसपूर्ण सफ़ाई दृष्टिगोचर होती है। तीसरा चित्र उनका स्वयं का आकृति-चित्र है। इसे १९५३ की अखिल-भारतीय-कला-प्रदर्शनी में जो हैदराबाद में हुई थी, प्रदर्शित किया गया था। इसका उद्घाटन भारत-गणराज्य के उप-राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन् ने किया था। इस प्रदर्शनी में सईद को प्रथम इनाम और देऊसकर सुवर्ण-पदक प्रदान किया गया था। इस चित्र को देख कर डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा था: "आपका आकृति-चित्र स्वयं आपसे अधिक अच्छा है।" एक ग्रुप फ़ोटो में डा. राधाकृष्णन् सम्मिलित हुए थे जिसमें कि हैदराबाद राज्य के मुख्य मन्त्री श्रीयुत डॉ. बी. रामकृष्णराव, हैदराबाद आर्ट सोसाइटी के अध्यक्ष तथा शिक्षा-सचिव श्रीयुत एल. एन. गुप्त और अपने आकृति-चित्र के साथ कलाकार सईद स्वयं उपस्थित थे।

सईद के कई अत्यन्त सुन्दर चित्र सालार जंग म्यूज़ियम, मोअज़्ज़म जाह बहादुर और हैदराबाद सरकार के संग्रहों में हैं। इस समय सईद आधुनिक चित्रकला में प्रयोग कर रहे हैं और इन प्रयोगों में उन्हें सफलता प्राप्त हो रही है।

प्रिन्सिपल, कला-विद्यालय,
हैदराबाद

—विश्वनाथ मुखर्जी

(२)

मैक्सिको की कला

मैक्सिको की कला अत्यन्त प्राचीन है। इस बात का जानना कठिन है कि मैक्सिको में इस कला प्रादुर्भाव और विकास किस समय और किस प्र हुआ—उस कला का जिसका कि इस प्रकार प्राचीन वास्तु-कला की प्रवृत्तियों से किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं है। ये प्रवृत्तियाँ आधारतः अनुष्ठानसम्बन्धी हैं या मतविशेष की प्रतीत होती हैं। उस युग में कि यातायात के साधन नहीं थे और सामान एक स्था से दूसरे स्थान तक नहीं ले जाया जा सकता था— बड़े मन्दिरों और शहरों का निर्माण किस प्रकार किया सका होगा इसे समझना कठिन है। लोग सोने बहुत सुन्दर आभूषण बनाते और पहनते थे। यह समझा जाता है कि मैक्सिको की कला की ये प्रवृत्तियाँ आधा रूप में आनुष्ठानिक हैं। इतनी शताब्दियाँ व्यतीत हो के पश्चात् भी यह कला आज की-सी प्रतीत होती और आज के मानव-हृदय को गहराई से प्रभावि करती है। प्राचीन कला में प्रायः मनुष्य ने अ सौन्दर्य-कला की अभिव्यक्ति धार्मिक पृष्ठभूमि में है परन्तु फिर भी यह अभिव्यक्ति सजीव है वैयक्तिक है।

मैक्सिको की मूर्त्तियों और बरतनों में एक प्र की सजीवता है और वे आजकल के किसी भी पाश्चा कलाकार की कृतियों की सुन्दर कला के समान प्र होती हैं। उनमें स्थितियों और अवस्थाओं की भ सेक्स के पूर्ण विस्तार की ओर शारीरिक से बहुत बल न होना और बाहरी बनावट अपेक्षा स्वाभाविकता स्पष्टतया दीख पड़ती है। ऐसा छोटा-सा बरतन है जिसको इस प्रकार गया है कि एक कुत्ता जिसके बाल नहीं हैं अंगों को सिकोड़े हुए और सिर को हाथ हुए सो रहा है। एक कटोरे के ऊपर ऐसा किया हुआ है कि एक कीट (कीड़ा) फूल पर सा प्रतीत होता है। एक मट्टी की छोटी मूर्ति है यह एक बौने की मूर्त्ति है जिसे कि पंखों से गया है। प्राणियों के चित्रण करने में मैक्सिको प्राचीन कलाकार अत्यन्त कुशल हैं। बन्दरों के महान् कलाकारिता से बनाए गए हैं। इनकी भी महान् कलाकार की कृतियों से तुलना की सकती है। इसमें बन्दरों की अनेक प्रकार की अवस्था का चित्रण किया गया है।

चिट्ठी-पत्री

(१)

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के शिष्टमण्डल की यात्रा का उद्देश्य तथा संक्षिप्त कार्यक्रम

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना देश की बौद्धिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता तथा अभ्युत्थान के लिए हुई थी। इसके लिए योग्य माध्यम अपने देश की भाषा और लिपि ही हो सकते थे। भारतीयता को दृष्टि में रखते हुए सभा ने नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के द्वारा अपना कार्य प्रारम्भ किया। सभा ने विगत साठ वर्षों में भाषा, साहित्य और भारतीय संस्कृति की श्रीवृद्धि के लिए जो कार्य किए हैं, वह सर्व विदित ही हैं। भारतीय स्वातन्त्र्य के फलस्वरूप भारत के संविधान में हिन्दी को राज्य-भाषा का स्थान प्राप्त हुआ है। अब आवश्यकता इस बात की है कि वह अपनी प्रतिष्ठा के सर्वथा योग्य बने और उसमें ऐसे साहित्य का निर्माण हो, जिसमें समस्त भारत के जीवन सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़े और जिसे भारत का सच्चा राष्ट्रीय साहित्य कहलाने का गौरव प्राप्त हो।

ऐसे राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण करने के लिए यह परमावश्यक है कि देश की समस्त प्रादेशिक भाषाओं में प्राप्त उत्तम रचनाओं की प्रवृत्ति और प्रवृत्तियों को हिन्दी में लाया जाए। यह महान् और उपयोगी कार्य तभी संभव हो सकता है जब कि हिन्दी और हिन्दीतर प्रदेशों के साहित्यिकों के बींच में निकट संपर्क स्थापित हो जाएँ। अतः सभा का यह उद्देश्य है कि शीघ्रातिशीघ्र देश की समस्त सम्पन्न भाषाओं के विद्वानों, कवियों, लेखकों, साहित्य-सेवियों, कलाकारों तथा पत्रकारों को एक दूसरे के निकट संपर्क में लाने का प्रयत्न करे। इस उद्देश्य की सिद्धि केवल पत्र-व्यवहार तथा ग्रन्थावलोकन से ही नहीं हो सकती। जब तक एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्तों में जाकर वहाँ की धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन दशाओं को निकट से न देखेंगे तब तक सम्पर्क स्थापित होना सम्भव नहीं है। इस दिशा में दक्षिण भारत में शिष्टमण्डल का भेजा जाना सभा का प्रथम प्रयास है।

दक्षिण भारत भारतवर्ष का एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण अंग है। भारतीय संस्कृति के निर्माण में उसका बहुत बड़ा योग रहा है। दक्षिण भारत की प्रधान चार भाषाएँ हैं तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम्। ये भाषाएँ प्राचीन हैं और उनका अपना प्रौढ़ साहित्य भी है। स्थापत्य, मूर्ति-चित्र, संगीत आदि कलाओं में दक्षिण भारत का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। दक्षिण का संगीत जो कर्नाटक संगीत के नाम से प्रसिद्ध है, जगत् की संगीत पद्धतियों में अपनी विशिष्टता रखता है। मन्दिरों के लिए तो दक्षिण भारत की ख्याति सर्व विदित ही है। मध्ययुग में दक्षिण के महान् आचार्यों ने सारे भारत के धार्मिक जीवन में नूतन-युग की सृष्टि करके भारतीय जनता की जो सेवा की है वह उल्लेखनीय है। मुस्लिम और अंग्रेज़ी शासनकाल में भी दक्षिण भारत ने अपने व्यक्तित्व को बनाए रखने का प्रयत्न किया है। अब यह आवश्यक है कि साधारणतया दूसरे प्रदेशों के लोग दक्षिण भारत की विशेषताओं से परिचित हों और समग्र भारत की विशालता और सांस्कृतिक वैभव को समझ सकें। शिष्टमण्डल की यह हार्दिक कामना है कि दक्षिण भारत के प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्रों में भ्रमण करके वहाँ की सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक जीवन का वह साक्षात्कार और अनुभव करे।

सारे देश के हित की दृष्टि से दक्षिण भारत ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में सहर्ष स्वीकार ही नहीं किया किन्तु गत छत्तीस वर्षों से वह काम करके दिखाया है, जिससे समस्त राष्ट्र को प्रोत्साहन मिला है। शिष्टमण्डल यह चाहता है कि दक्षिण के इस वृहत् लोकप्रिय कार्य की गतिविधि का पूर्ण परिचय प्राप्त किया जाए और हिन्दी के कार्यकर्ताओं के सामने जो समस्याएँ हैं, उन्हें हल करने का प्रयत्न हो।

शिष्टमण्डल यह जानने के लिए उत्सुक है कि दक्षिण भारत ने अपनी सामाजिक, धार्मिक और शैक्षणिक समस्याओं को किस तरह सुलझाने का प्रयत्न किया है और उसमें उसे कहाँ तक सफलता मिली है।

शिष्टमंडल के सदस्यः—इसमें निम्नलिखित सदस्य

सम्मिलित होंगे : १. डा. अमरनाथ झा, २. आचार्य चन्द्रबली पांडेय, ३. डा. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, ४ डा. धीरेंद्र वर्मा, ५. डा० राजबली पांडेय, ६. कविवर रामधारीसिंह 'दिनकर' ७. गोविन्दप्रसाद केजरीवाल। आवश्यकता पड़ने पर अन्य लोगों का भी सहयोग प्राप्त किया जाएगा।

यात्रा के स्थान : शिष्टमंडल दिल्ली, हैदराबाद, बम्बई होता हुआ निम्नलिखित प्रमुख स्थानों की यात्रा करना चाहता है तथा लौटते समय उत्कल भी जाएगा। यात्रा अक्टूबर १९५४ के प्रथम सप्ताह में प्रारम्भ होगी।

कर्नाटक : बैंगलौर, मैसूर, और निकट के कुछ केन्द्र।

तमिलनाड : मद्रास, त्रिचनापल्ली, मदुरा तथा निकट के कुछ स्थान, जैसे रामेश्वरम्, धनुष्कोटि, आदि।

केरल : एर्नाकुलम्, त्रिवेंद्रम्, कन्याकुमारी आदि।

आंध्र : कर्नूल, विजयवाड़ा, गुंटूर।

विस्तृत कार्यक्रम बाद में प्रकाशित होगा।

नागरी प्रचारिणी सभा,
काशी

—गोविन्दप्रसाद केजरीवाल

(२)

अजन्ता के सम्बन्ध में

हैदराबाद से आ कर मैं बड़े संकट में पड़ गया। एक मित्र के प्रेम-पूर्ण आग्रह से उनके साथ उनकी कार द्वारा शिमला चला गया। वापसी में एक दुर्घटनावश मेरे शरीर में सख़्त चोट आई। करवट तक बदलना दूभर हो गया। चलने-फिरने की तो बात ही क्या! प्रायः दो महीने चारपाई पर पड़ा रहा। अब चोट को आराम है। चलने-फिरने लगा हूँ। परसों घर से बाहर निकला।

आपने जो महान् पण्डित सूर्यदेव जी के संस्मरण लिखे हैं वे बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। उनसे कितनी ही नई बातें मालूम हुईं। लेखन-शैली बड़ी प्रौढ़ और सजीव है। आपको बधाई। सम्भव हो तो गुरुवर काशीनाथ जी और आचार्य पं. गंगादत्त जी आदि के संस्मरण लिखिए, महत्त्वपूर्ण होंगे।

लोहामंडी,
आगरा

—हरिशंकर शर्मा

(३)

आज लगभग चार महीने बाद कलम हाथ में पकड़ी है। इस बीच आपकी 'अजन्ता' ने बड़ा प्रोत्साहन दिया। बिस्तर पर लेटे-लेटे ऊब जाने पर 'अजन्ता' ही दिन काटने का सहारा रही।

'अजन्ता' के सभी अंक ध्यान से पढ़ता आ हूँ। रचनाओं के चयन में आपकी प्रौढ़ रुचि औ विद्वत्ता का यथेष्ट परिचय मिलता है। अक्सर तो साधा लेखकों की बड़ी अच्छी रचनाएँ 'अजन्ता' में देखने मिल जाती हैं। इधर 'अजन्ता' बराबर अपने स्तर को रख सकी है। यह सभी हिन्दी प्रेमियों के लिए गौरव बात है। आशा है वह दिनों-दिन उन्नति करेगी।

कोतवाली रोड
हरदोई (उ० प्र०)

—रामगोपाल शुक्ल

(४)

बैंगलौर, हवाई-ज़हाज़ से

हैदराबाद से बैंगलौर हवाई-जहाज़ में जा रहा हूँ। सारे हवाई-जहाज़ में मैं अकेला यात्री हूँ। हवाई-जहाज़ में यात्री बहुत बातचीत नहीं कर सकते क्योंकि घर्राते हुए पंखों की आवाज़ इतनी तुमुल होती है कि वह कान के पर्दों से टकराती रहती है। जिस प्रकार चौंधिया देनेवाले प्रकाश को आँखें नहीं देख सकतीं उसी प्रकार घोर तुमुल आवाज़ को भी कान नहीं सु सकते। बिचारी होस्टेस को एक बात आहिस्ता से कह पड़ती है और वह भी कई बार इशारों से और तब व समझ में आती है। हम बातचीत उसी अवस्था में क सकते हैं जब कि कोई हमारी बात को सुननेवाला हो और जब हमारी बात को कोई सुननेवाला ही न हो तो हमारी ज़बान स्वयं बन्द हो जाती है। ज़बान और कान दोनों में इस प्रकार का सम्बन्ध है कि एक का दूसरे के बिना कार्य कर सकना असम्भव है। अन्धे सूरदास होते हैं और सुन्दर गाने गाते हैं परन्तु बहरा मधुर गानेवाला नहीं हो सकता—कारण यह है कि वह ध्वनि की सुन्दरता और विशेषता को समझ नहीं सकता।

आकाश और पृथ्वी में हवाई जहाज़ के पंखों की तुमुल ध्वनि एक ही प्रकार लगातार उठ रही है— नहीं कह सकता कि गूँज रही है। बहरा और गूँगा बना हुआ मैं हवाई-जहाज़ के आइने में से लगातार धरती देख रहा हूँ। जब हम धरती पर होते हैं तब हमारी दृष्टि आकाश पर रहती है और जब हम आकाश में होते हैं तब हमारी दृष्टि स्वभावतः धरती की ओर रहती है। हवाई-जहाज़ से धरती कितनी स्वच्छ, साफ़, व्यवस्थित, सुन्दर, हरी भरी और आकर्षक प्रतीत होती है। कहीं किसी प्रकार

की गन्दगी या मलिनता अनुभव ही नहीं होती। बल खाते हुए लम्बे-लम्बे रास्ते जो ऊपर से पगडंडियों के समान प्रतीत होते हैं—एक दम साफ़-सुथरे प्रतीत होते हैं। ग्रामों के मकान अत्यन्त सुव्यवस्थित, बाक़ायदा, खास नमूने के और सुन्दर प्रतीत होते हैं और पेंच खा कर चलती हुई नदियाँ जो पानीदार मार्ग-सी दीखती हैं दोनों ओर चलती हुई-सी प्रतीत होती हैं। अभी तक कवि अपनी कविताओं को धरती पर बैठ कर लिखता रहा है और इसलिए उसने आकाश को इतना अधिक महत्व दे डाला है, जब कवि अपनी कविता को आकाश में बैठ कर बनाएगा तो वह एकमात्र धरती के ही गीत गाएगा। उसे धरती के अतिरिक्त कुछ दृष्टिगोचर ही नहीं होगा। आकाश में शून्यता के सिवाय और क्या है? मार्ग में एक पक्षी तक से भी कहीं भेंट नहीं होती। हाँ बादल—इधर बादल - उधर बादल। बादलों को चीरता हुआ हवाई-जहाज़ बाहर प्रकाश में आ जाता है और कभी जब बादलों के झुण्ड के झुण्ड हवाई-जहाज़ के नीचे होते हैं तो हमें ऊपर नीचे माया के समान फैली हुई धुन्ध दृष्टिगोचर होती है जिसकी शून्यता में निर्विकल्प समाधि में आत्मा की तरह एकमात्र हवाई-जहाज़ का ही अस्तित्व रह जाता है।

हवाई-जहाज़ की यात्रा एकदम मोनोटोनस होती है और वह जितना अधिक ऊँचा उड़ता है उतनी ही अधिक वह मोनोटोनस होती है। हाँ, जब वह नीचे आ जाता है और धरती साफ़ नज़र आने लगती है तब यात्रा में रंगीनी आने लग जाती है। यह ठीक ही है कि हवाई-जहाज़ से यात्रा शीघ्र समाप्त हो जाती है। यदि यह यात्रा बहुत लम्बी हो जाए तो इस शून्यता की सैर केवल योगी ही कर सकेंगे।

मैं जब हैदराबाद से चला तभी मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। मुझे हवाई-जहाज़ में किसी प्रकार की मतली अनुभव नहीं होती फिर भी तबीयत के ठीक न होने से मैं सुस्त था। होस्टेस वैजिटेरियन लंच लाई। मैंने टमाटर का गरम सूप तो पी लिया परन्तु मटर आदि की सब्ज़ी, फल और बिस्कुट आदि मुझ से कुछ खाया नहीं गया। आइस-क्रीम भी मैंने नहीं खाई। होस्टेस की बात तो मुझे सुनाई नहीं पड़ी-वह इशारों से कह रही थी कि मैं कुछ खा लेता तो अच्छा था।

डेढ़ घण्टे के अन्दर हवाई-जहाज़ धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा और मुझे अनुभव हुआ कि यात्रा अब कुछ ही मिनटों में समाप्त होने को है। पृथ्वी पर जो कार्य घण्टों में होता है आकाश में वह कार्य मिनटों में हो जाता है। बैंगलौर के मकान, फ़ैक्टरियाँ, तालाब और उद्यान नज़र आ रहे थे। देखते ही देखते हवाई-जहाज़ ने धरती का स्पर्श किया और वह शीघ्र ही अपने नियत स्थान पर ठहर गया और उसके फड़फड़ाते हुए पंख धीरे-धीरे निश्चल और निस्तब्ध हो गए। मैं हवाई-जहाज़ की सीढ़ियों से नीचे उतरने लगा। बैंगलोर आ गया था।

माडर्न हिन्दु होटल,
बैंगलोर

—वंशीधर विद्यालंकार

(५)

वेदपाठी सखाराम बालकृष्ण भट्ट

उस्मानिया यूनिवर्सिटी में एक वेदपाठी की स्मरण-शक्ति देख कर आश्चर्य चकित रह गया। आपका नाम श्री सखाराम बालकृष्ण भट्ट येड्डरकर है। आप वेदाचार्य हैं। आपकी आयु इस समय अड़सठ वर्ष की होगी। साँगरी के पास कुरुन्दवाड़ एक स्टेट थी; आज कल वह बम्बई प्रा त में विलीन हो गई है। पंडित सखाराम जी इस रियासत के नृसिंहवाड़ा ग्राम के निवासी हैं।

पंडित सखाराम जी ने नरसोबा की वाड़ी में अपने गुरु से दस साल की आयु से ही वेद की शिक्षा पाई। ऋग्वेद की दस हज़ार पाँच सौ बावन ऋचाएँ उनकी संख्या के संकेतों के साथ इन्होंने कण्ठस्थ कर ली हैं।

ऋग्वेद का विभाजन आठ अष्टकों में हुआ है। प्रत्येक अष्टक में आठ-आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय वर्गों में विभाजित है। चौंसठ अध्यायों में कुल वर्गों की संख्या दो हज़ार चौबीस है। प्रत्येक वर्ग में कुछ छन्द होते हैं। इन ऋचाओं की कुल संख्या १०५५२ है।

आप ऊपर, नीचे कहीं से अष्टक और वर्ग आदि का हवाला देकर मन्त्र पूछिए। मन्त्र, अष्टक और वर्ग का आपको बिलकुल ठीक उत्तर मिलेगा। श्री सखाराम जी समस्त "भगवद्गीता" के श्लोक, अध्याय आदि को इसी प्रकार ठीक बतलाते हैं।

विद्यानगर,
हैदराबाद

—रामनिरंजन पाण्डेय

नीर-क्षीर

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिएँ]

बाहर-भीतर
लेखक : डाक्टर देवराज,
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली
मूल्य : एक रुपया चौदह आने

यह राजकमल कथा साहित्य की सातवीं पुस्तक है। जैसा कि पुस्तक के नाम से स्पष्ट है इस पुस्तक में मन के अन्तर्द्वन्द्व की कथा को जो बाहर और भीतर भिन्न भिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है लिखने का प्रयत्न किया गया है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक उपन्यास है "घरे बाहिरे"। उसमें मन के अन्तर्द्वन्द्व का अध्ययन अत्यन्त सूक्ष्मता से किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में हमें मन के अन्तर्द्वन्द्व का आभास तो प्राप्त होता है परन्तु उसका गहन अध्ययन नहीं। संभवतः इसका कारण है कि लेखक अपनी दृष्टि बुद्धि की ओर रखना चाहता है और वह अपनी अन्तर्भावनाओं की ओर दृष्टिपात करने से घबराता है। वह लिखता है : "मेरी बुद्धि कुछ कहती है और मेरे भीतर की वृत्तियाँ कुछ और।...मुझे अतीत की ओर देखना पसन्द नहीं है" परन्तु इतने पर भी—"मैं जैसे विवश हूँ—अपनी ही संवेदना से लाचार। लगता है जैसे चेतना के भीतर कुछ तहें हैं जहाँ बुद्धि का स्वच्छन्द संचार और शासन संभव नहीं है।" लेखक ने जिन "चेतना के भीतर की कुछ तहों" की ओर निर्देश किया है वह अपनी कथा में उनका सूक्ष्मता से परिदर्शन नहीं करा सका है। वह इस विषय में न तो अपने हृदय की भावनाओं की ओर न "भाभी" के हृदय की भावनाओं की गहराई में प्रवेश कर सका है जो कि इस समस्त अन्तर्द्वन्द्व के मूल स्रोत हैं। अध्ययन की इस सूक्ष्मता के अभाव के कारण 'भाभी' का या अपने चरित्र का विश्लेषण सूक्ष्मता के साथ नहीं हो पाया है। कथा में जब अन्तर्द्वन्द्व का समय आता है तो एक ओर उनकी "अनायास सफलता...सुस्पष्ट सामाजिक ज़रूरतें और धनी बनने का निश्चय" उनके "आन्तरिक संघर्ष को बहुत कुछ मृदुल" कर देता है और दूसरी ओर उनके अन्यत्र विवाह के कारण उनकी भाभी का "दिमाग़ ख़राब हो जाता है। वे किसी से बोलती चालती नहीं।" इसलिए उनके मन के अन्तर्द्वन्द्व की गहराइयों में लेखक को प्रविष्ट होने की गुंजाइश ही नहीं रह गई है और इसके पश्चात् तो समाज आ पहुँचता है जिसको कि वे "अपनी सफलता और असफलता, उन्नति और अवनति के आँकने का अन्तिम अधिकार" सौंप देते हैं। वे अपने मन की व्यथामात्र का अपनी कहानी के द्वारा आभास मात्र प्रदान करते हैं। 'भाभी' के जीवन को भी जिस तरह उन्होंने चित्रित किया है वह भी एकमात्र उनके अपने विचारों की दृष्टि में ही अधिकता प्रकाशित होने के कारण एकांगी हो गया है। लेखक इस बात को बिल- कुल अनुभव नहीं करता कि उसका भी एक दूसरा पहलू हो सकता है जिसकी ओर उसकी दृष्टि गई तक नहीं है। वे अपनी व्यथा में इस बात को भूल-से गए हैं कि समाज एकमात्र उन्हीं का नहीं है उनकी 'भाभी' का भी है और यदि समाज उनके मार्ग में बुद्धि-वाद को ले आता है तो वह 'भाभी' के मार्ग में 'बुद्धिवाद' को और भी अधिक प्रबलता से ला सकता है। यदि उनकी अपनी विवशताएँ हैं तो 'भाभी' की भी अपनी विवशताएँ

१६५४

ताएँ हो सकती हैं जिन्हें कि लेखक अनुभव तक नहीं करते। वे उनकी ओर से समस्त विचारों को एकदम एक रूप में ही देखते हैं और संभवतः इसीलिए वे उनकी "बुद्धि को बिगाड़ कर" उनकी विवशताओं को बढ़ाते नहीं, एकदम समाप्त-सा कर देते हैं और अपनी लाचारियों पर एक गहरी साँस लेते हैं।

कहानी में डा. भल्ला का चरित्र-चित्रण मनोरंजक है।

मालवी और उसका साहित्य

लेखक : श्याम परमार
सम्पादक : क्षेमचन्द्र 'सुमन'
प्रकाशक : सरस्वती सहकार, दिल्ली ६
(राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)
मूल्य : दो रुपए

लेखक के अनुसार : "माल्वी और उसका साहित्य" अपने विषय की प्रथम पुस्तक है। अभी तक लेखक मालवी-लोकसाहित्य के विषय में सामग्री एकत्रित करता रहा है और उसने इस विषय में अनेक लेख लिखे हैं। इस पुस्तक में उसने 'मालवी-साहित्य' पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। पहले मालव की सीमा और क्षेत्र पर विचार किया गया है। उसकी सम्मति में मालवा एक उन्नत पहाड़ी भू-भाग है। वह एक ही भाषा, संस्कृति और जन का द्योतक नहीं है। इसमें चार भाषाएँ बोली जाती हैं। मालवी भाषा को बोलनेवालों की संख्या "लगभग चालीस लाख कूती जाती है।" मालवी का सबसे प्रथम प्रयोग उन्होंने "कुवलयमाला" (८ वीं शताब्दि) में प्रदर्शित किया है। इसके लिए इस पुस्तक में से एक श्लोक को उद्धृत किया गया है। एक-मात्र "भाउअ, भइणी तुम्हें" इन शब्दों से मालवी भाषा के प्रयोग को प्रदर्शित किया गया है। यदि लेखक अधिक गहराई से खोज करेंगे तो हो सकता है प्राकृत और अपभ्रंश में उन्हें मालवी देशी भाषा का आभास इससे पूर्व भी प्राप्त हो जाए। कालिदास का एक नाटक है "मालविकाग्निमित्रम्"। इस नाटक में उन्होंने अपनी नायिका को 'मालविका' नाम दिया है और इससे मालवा का महत्व प्रतीत होता है। मालवा की कला आदि का भी कालिदास के हृदय में विशेष आदर प्रतीत होता है। अपने 'मेघदूत' में उन्होंने बादल को रास्ता लम्बा होने के बावजूद भी मालवा के रास्ते से भेजा है और उज्जयिनी को विशेष रूप से देखने का आग्रह किया है। संभव है "मालविकाग्निमित्र" की प्राकृत में उन्हें 'मालवी' देशी भाषा का कुछ प्राचीन आभास प्राप्त हो सके। लेखक ने बारहवीं और तेरहवीं शताब्दि में मालवी को अपभ्रंश से अलग किया है।

लेखक ने मालवी में तीन प्रकार के साहित्यों का परिदर्शन किया है। माच (मंच) साहित्य, सन्त-साहित्य और लोक-साहित्य। माचों में "वस्त्राभूषण" अथवा अभिनय का महत्व गौण है। प्रधान वस्तु संगीत है।" यह एक प्रकार का "लोक-गीति-नाट्य" है। "माच रात्रि के मध्य में आरम्भ होकर सूरज की प्रथम किरण के साथ समाप्त होते हैं।" इसके पश्चात् उसने मालवी में "सन्त-साहित्य" पर प्रकाश डाला है। इसमें निर्गुणी को 'पन्थी' और सगुणी को 'भजनी' कहा गया है। इस साहित्य में लेखक ने मालवी में अनूदित "दुर्गा सप्तशती" और "शुक्रनीति" का भी उल्लेख किया है। सन्त-साहित्य के पश्चात् लोक-साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। मालवी लोक-साहित्य के विषय में वह लिखता है : "मालवा प्रदेश के नैसर्गिक विभव की भाँति उसका लोक-साहित्य भी अत्यन्त समृद्ध और हृदयग्राही है।" मालवी लोक-साहित्य को उन्होंने पद्य और गद्य दो भागों में विभक्त किया है। गीत-साहित्य में मुक्तक और प्रबन्ध दोनों प्रकार के गीत हैं। गीतों में एक प्रकार का गीत 'किलगी-तुर्रा' है। इसका विकास "संभवतः मुसल्मानी काल में हुआ है।" लेखक ने आधुनिक मालवी-साहित्य उसके गद्य और पद्य दोनों के नमूने प्रस्तुत किए हैं और मालवी-साहित्य को प्रगतिशील बनाने के लिए जो प्रयत्न किए जा रहे हैं उनका उल्लेख किया है। इस पुस्तक से मालवा के जनपद साहित्य को और भी विस्तृत रूप से पढ़ने की अभिलाषा जाग्रत होती है। जनपद के साहित्य को इस प्रकार प्रकाश में लाने का प्रयत्न प्रशंसनीय है और इसके लिए लेखक और सरस्वती सहकार दोनों बधाई के पात्र हैं। अच्छा होता यदि लेखक अपनी इस पुस्तक में 'मालवा' जनपद के महत्व पर भी कुछ प्रकाश डालता। मालवा का हमारे देश की संस्कृति और साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है जो कि मालवा के विषय में प्रसिद्ध बहुत-सी प्रचलित कहावतों आदि से ज्ञात होता है।

विद्रोही बानपुर
(सन् ५७ के ग़दर का एक विस्तृत अध्याय)
लेखक : श्री वासुदेव गोस्वामी
प्रकाशक : सहयोगी प्रकाशन मन्दिर लिमिटेड,
दतिया (विन्ध्य प्रदेश)
मूल्य : सवा रुपया

सन् १८५७ के ग़दर में बुन्देलखण्ड में बानपुर के राजा मर्दनसिंह ने एक ओर जहाँ अंग्रेज़ों को शरण प्रदान की वहाँ दूसरी ओर उन्होंने अपने सैनिकों को अंग्रेज़ों का साथ छोड़ कर स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। सैनिक आक्रमण की योजनाएँ बनाई गईं। मर्दनसिंह ने बड़ी वीरता से अंग्रेज़ी फ़ौजों पर आक्रमण किया। राजा मर्दनसिंह की वीरता की प्रशंसा अंग्रेज़ी सेनानियों ने की है। मर्दनसिंह रानी लक्ष्मीबाई को अपने युद्ध की प्रगति से सूचित रखते थे। इस विषय में प्रस्तुत पुस्तक में ऐतिहासिक सामग्री को एकत्रित किया गया है। इसमें लेखक ने बुन्देलखण्ड के राजाओं ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह करने में जो अदम्य वीरता दिखलाई है, इस पुस्तक को पढ़ने से कुछ उसका आभास प्राप्त होता है। सन् ५७ के ग़दर की बहुत-सी वीरता की कहानियाँ अभी तक अज्ञात पड़ी हुई हैं। आशा है कि भविष्य में इस प्रकार से उनको भी इतिहास के विस्तृत प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया जाएगा।

आज के कवि
लेखक : ललितमोहन अवस्थी
प्रकाशक : करेण्ट पब्लिशर्स,
दि माल, कानपुर
मूल्य : तीन रुपए

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने हिन्दी की नई पीढ़ी के चौदह 'प्रगतिशील और ग़ैर-प्रगतिशील' कवियों की जीवनी, विचारधारा और कविता के अध्ययन को प्रस्तुत किया है। इन चौदह कवियों के चुनाव के विषय में लेखक लिखते हैं : "मैंने नई पीढ़ी के लगभग प्रत्येक वर्ग व विचारधारा के प्रतिनिधि कवियों को लेना चाहा है। द्वितीय महायुद्ध के दौरान में, या सन् १९४० के आस-पास या पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में जो नए कवि हिन्दी में आए हैं यानी जिन्होंने कवि-सम्मेलनों, पत्र-पत्रिकाओं और अपने कविता-संग्रह के प्रकाशन के अपनी प्रतिभा का पर्याप्त प्रदर्शन (?) किया है।" है कि लेखक के चयन के इस आधार पर भी बहुत-से कवि छूट गए हैं। यद्यपि "आज के कवि" पुस्तक में "ग़ैर-प्रगतिशील" कवियों को भी सम्मिलित किया है परन्तु अधिकांश में इस पुस्तक में प्रगतिशील कवियों को ही लिया गया है और जिन ग़ैर-प्रगतिशील कवियों को लिया गया है उनकी कविता के अध्ययन में इस को प्रदर्शित किया गया है कि उनकी कविता की विचारधारा "जर्जर और विकारग्रस्त" है। कवियों का परिचय देते समय भी लेखक ने बहुत-से कवियों के विषय में लिखा है कि वे किसान-परिवार से आए हैं। उनके पिता किसान थे—या वे जेलों में रहे हैं। एक कवि का परिचय देते हुए लेखक लिखते हैं: "सरस्वती का वरदान आपको पैतृक ऋण के रूप में प्राप्त हुआ है..." इस वाक्य का यह अर्थ नहीं प्रतीत होता कि कविता उन्हें आनुवंशिक रूप में प्राप्त हुई है। कवियों के परिचय में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है।

लेखक के विचारों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि कविता भी अब राजनीतिक वर्गों में विभक्त हो रही है और जब वे यह लिखते हैं कि इस पुस्तक में उन्होंने 'ग़ैर-प्रगतिशील' या "प्रत्येक वर्ग की विचारधारा" के कवियों को सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है उस समय उनका यह तात्पर्य प्रतीत होता है कि इसमें साम्यवादी, समाजवादी, कॉंग्रेस आदि विचारधारा के कवियों को भी लिया गया है। कविता के साथ भी अब राजनीति के ब्राण्ड लग रहे हैं। विद्रोह की आवाज़ अधिकांश में वर्तमान शासन, पूँजीवाद, सरमायेदारी या उस विचार-प्रणाली के विरोध में उठाई गई है जो आर्थिक दृष्टि से वर्ग-भेद पर आधारित है— परन्तु अन्य सैकड़ों सामाजिक और अन्य विषम समाज को जर्जरित और क्षीण कर रही हैं। उनके प्रति 'विद्रोह' की आवाज़ कम सुनाई देती है। स्त्रियों की असमानता, हमारे समाज की जाति-व्यवस्था, ऊँच-नीच का भाव और इसी प्रकार की अन्य विषमताओं के प्रति हमें इन कवियों की कविता में वह विद्रोहात्मक स्वर सुनाई नहीं देता जो सरकार और आर्थिक शोषण के विरोध में सुनाई पड़ता है। आर्थिक शोषण के विरोध में कविता में यह विद्रोहात्मक

१९५४

और भी अधिक बलवान् हो जाएगा यदि वह समाज की अन्य विषमताओं को भी अपने अन्दर सम्मिलित कर लेगा। यदि इस स्वर को भी राजनीति तक ही एकांगी बनाया गया तो फिर यह कविता साहित्य के क्षेत्र की न बन कर राजनैतिक वस्तु बन जाएगी। राजनीति मूल्यवान् वस्तु को सस्ती, साधारण और एक प्रकार के प्रोपैगैण्डा के रूप में प्रस्तुत कर देती है।

'आज के कवि' पुस्तक को पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि प्रायः सब नवीन कवियों के हृदय से एक ही प्रकार का स्वर उठ रहा है, उसके रूप और शब्दों में भेद है परन्तु वास्तविकता वही है :

"हम उन्हें धरती दिलाना चाहते हैं
जो यहाँ सोना उगाना चाहते हैं।

× × ×

मुफ़्तखोर महलों में हँसते,
हम जीने के लिए तरसते।
मिट्टी पानी बिके, मगर हम
मेहनत अपनी बेच न सकते।

× × ×

लगा, आवाज़ लगा,
ग़फ़लत में सोनेवाले शोषित इन्सानों को
लगा, आवाज़ लगा

× × ×

भगतसिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की
देशभक्ति के लिए आज भी सज़ा मिलेगी फाँसी की

× × ×

हम पैसरमी हलधर किसान
हम अपनी छाती के बल ते धरती मा फारु चलाइत है
माटी के नान्हे कन-कन मा हम ही सोना उपजाइत है

× × ×

न छेड़ो मुझे मैं सताया हुआ हूँ
प्रकृति के पटल पर नियति तूलिका से
अधूरा बना कर मिटाया हुआ हूँ।"

'आज के कवि' पुस्तक को पढ़ने से अनुभव होता है कि हिन्दी में कविता की धारा, जीवन और वेग के साथ प्रवाहित हो रही है। कहीं कहीं तो अभिव्यंजनाएँ बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। यह सत्य है कि 'आज के कवि' पुस्तक में बहुत से कवि छूट गए हैं परन्तु जिन कवियों का भी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है उन्हें पढ़ने से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि हिन्दी-कविता जीवन के नवीन मार्ग पर अग्रसर हो रही है। यह पुस्तक लिख कर लेखक ने हिन्दी साहित्य की सेवा की है। इससे वर्तमान कवियों की रचनाओं को पढ़ने की रुचि जाग्रत होती है। अच्छा होगा यदि हिन्दी के अन्य वर्तमान कवियों पर भी इसी का अध्ययन प्रस्तुत किया जाए।

आर्थिक-समीक्षा (स्वाधीनता अंक)
प्रधान सम्पादक : श्रीमन्नारायण अग्रवाल
सम्पादक : हर्षदेव मालवीय
प्रकाशक : अ. भा. काँग्रेस कमेटी, दिल्ली
मूल्य : वार्षिक पाँच रुपया, एक प्रति ३॥ आना
यह अंक छः आना

हिन्दी में अपने ढंग का यह एक ही पत्र है जो देश के आर्थिक प्रश्नों पर गम्भीर विचारों को प्रस्तुत करता है। इसके लेख पठनीय, मननीय और संग्रहणीय होते हैं। अभी इस पत्र ने दो विशेषांकों को प्रकाशित किया है। एक आर्थिक-अंक और दूसरा स्वाधीनता-अंक। दोनों अंकों में विशिष्ट लेख प्रकाशित किए गए हैं। हम योग्य सम्पादकों को यह निर्देश देंगे कि वे इस पत्र में एक 'चिट्ठी-पत्री' के स्तम्भ को प्रारम्भ करें जिसमें कि वे आर्थिक प्रश्नों का उत्तर दिया करें। आशा है यह पत्र हिन्दी में लोकप्रिय होगा।

हैदराबाद —**वंशीधर विद्यालंकार**

पीताम्बर का खून
लेखिका : सूर्या कमलानी
प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद
मूल्य : एक रुपया

इस १४० पृष्ठों के जासूसी उपन्यास में लेखिका ने एक राज-परिवार के स्वामिभक्त नौकर पीताम्बर के खून का रहस्योद्घाटन कराया है। पीताम्बर राजकुमारी सरिता की उसके राज्य-लोलुप चाचा से रक्षा करने के लिए उसको छुपा कर पूना के एक गर्ल्स होस्टल में भरती करा देता है, और स्वयं बम्बई में घड़ीसाज़ का काम

करते हुए उसका व्यय संभालता है । राज्य का राजमुकुट भी बम्बई के एक टूटे मकान में छिपा कर रखा गया है जिसका भेद पुखराज जड़े लाकेट में बन्द है और वह लाकेट पीतल की गेंद में छिपा दी गई है, जिसको पीताम्बर ने अपने पलंग में लगा रखा है । अनूप नामक एक पत्रकार मित्र, पीताम्बर के खूनी का पता लगाने में समर्थ होता है । इस काम में मिस्टर चौधरी नामक वृद्ध जासूस से उसको सहायता मिलती है । अन्त में अपराधियों को सज़ा मिलती है और अनूप और सरिता की सगाई हो जाती है ।

जासूसी उपन्यासों में चरित्र–चित्रण पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना घटनाओं की नवीनता और रहस्यपूर्णता पर । फिर भी लेखिका ने बाँके गुरू और सलमा का अच्छा चरित्र-चित्रण किया है । भाषा सरल और चुस्त है यद्यपि 'पकड़े गए' की जगह 'धरे गए' जैसी पद रचनाएँ कुछ खटकती हैं । अंग्रेज़ी के शब्दों का बाहुल्य देखते हुए पता चलता है कि पुस्तक साधारण पाठकों के लिए लिखी गई है । गर्ल्स होस्टल की व्यवस्थापिका से अकारण अशिष्टता प्रदर्शित कराई गई है । अनूप के साहस के प्रदर्शन के लिए अच्छा होता यदि बाँके गुरू और मिस्टर चौधरी को उसका या उसके पिता का मित्र न बनाया गया होता । ऐसे स्थलों को छोड़ बाक़ी उपन्यास मनोरंजक और स्वाभाविक प्रतीत होता है ।

नागिन

लेखिका : सूर्या कमलानी
प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद
मूल्य : एक रुपया

नागिन लेखिका की बाद की रचना होते हुए भी प्रौढ़ नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि लेखिका ने घटनाओं को दिलचस्प बनाने की चेष्टा तो की है किन्तु जासूसों की चतुराई प्रदर्शित करने की ओर उनका ध्यान नहीं गया है । यह दोष उनके सभी उपन्यासों में समान रूप से पाया जाता है । प्रस्तुत उपन्यास में राव साहब मुरारी राव और खान बहादुर दो जासूस हैं । मुरारी राव को तो जान बूझ कर बुद्धू बनाने की कोशिश की गई है किन्तु खान बहादुर में भी कोई असाधारण प्रतिभा देखने में नहीं आती । सोना नामक एक लड़की नागिन के रूप में चित्रित की गई है जिसने अपने रूप के आकर्षण से अनेक सेठ-साहूकारों की हत्या कराई और डाक्टर और जेलर से भी चोरी आदि अपराध करा... में समर्थ हुई । अन्त में उसका परदा फ़ाश हुआ ... फिर भी वह पुलिस के हाथ न आई और आत्म... करके उसने अपनी जीवन-लीला समाप्त की । ... साधारण हैं । 'सुअक्कड़' 'लन्तरानी' 'पच्छाहीं' ... शब्द कानों में खटकते हैं ।

अपराधों की छाया में

लेखिका : सूया कमलानी
प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद
मूल्य : एक रुपया

मनोवैज्ञानिक चित्रण और भाषा की दृष्टि ... लेखिका का यह उपन्यास उनकी श्रेष्ठ रचनाओं में से है । जासूसी उपन्यास होते हुए भी इसमें पुलिस और जा... की शिथिलता दिखलाई पड़ती है और अपराधी ... स्वयं पत्र-सम्पादकों के नाम पत्र लिखने और पुलिस ... फ़ोन करने पर भी वह न तो पकड़ा जाता है और ... पुलिस को उसके पकड़ने के लिए यथेष्ट सूत्र ही ... होते हैं । उपन्यास की विशेषता सुनील नामक एक ... के चरित्र-चित्रण में और घटना क्रम से एक अप... करने के बाद दूसरा अपराध करने के लिए विवश ... में है । सुनील 'बुल नेवी स्टोर्स' नामक कम्पनी ... मैनेजिंग क्लर्क था । उसने अपनी सारी पूँजी कम्पनी ... लगा रक्खी थी । वह चरित्रवान्, साहसी और ई... दार था । इसी बीच कम्पनी का दिवाला निकला ... कम्पनी के मालिक ने उसे पाँच सौ रुपए देकर ... विदा ली । इन रुपयों को जेब में कर अपनी अवस्था ... विचार करते-करते अचानक उसके जी में आया कि ... न इन रुपयों को लेकर वह अपने मालिक की प्रे... ऐक्ट्रेस के पास जाए और उसके साथ कम से कम ... दिन के लिए आनन्द का जीवन बिताए । प्रमीला ... प्रस्ताव को सुन कर अपनी हँसी न रोक सकी और ... से जब उसकी हँसी बरदाश्त न हुई तो उसने उसे ... पलंग पर डाल उसके मुख में तौलिया ठूँस दिया ... उसे पलंग से बाँध दिया । दम घुटने से प्रमीला की ... हो गई । यहीं से अपराधों का क्रम प्रारंभ होता है । ... न्यास का अन्त तक बहुत स्वाभाविक रीति से ... किया गया है । भाषा शुद्ध और मुहावरेदार है ।

—बैजनाथ चतुर्वेदी ...

सिकन्दराबाद

सामयिक

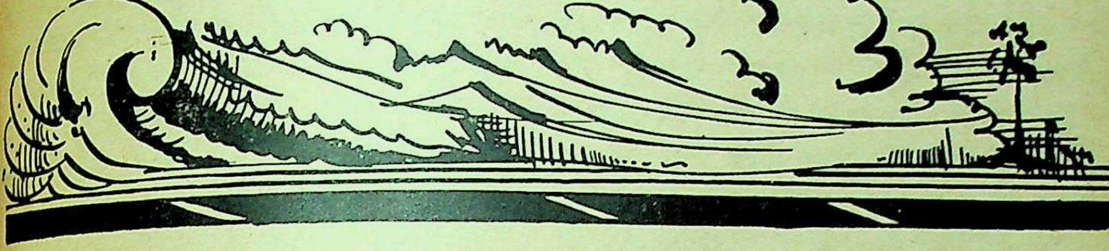

॥

अंग्रेज़ी भाषा का विकास

श्रीयुत अर्नेस्ट वीक्ले ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है "दि इंग्लिश लैंग्वेज"। इस पुस्तक में अंग्रेज़ी भाषा के विकास पर प्रकाश डाला गया है इसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"अंग्रेज़ी भाषा का इतिहास इस बात को प्रदर्शित करता है कि भाषा के इतिहास और इसको बोलने वाले लोगों के इतिहास में गहरा सम्बन्ध होता है। अंग्रेज़ी भाषा की बनावट और उसके विकास पर इंग्लैंड पर प्रारम्भ में हुए तीन महान् आक्रमणों का निश्चित् रूप से प्रभाव पड़ा है : ऐंग्लो-सैक्सन, वाइकिंग और नौर्मन और इसके साथ चौथा आक्रमण लैटिन का हुआ जो कि महान् सेएट ऑगस्टाइन के समय के प्रारम्भ में हुआ और जिससे कि अंग्रेज़ी भाषा अब भी सजीव और समृद्ध हो रही है।

अंग्रेज़ी भाषा के विकास की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें से अनावश्यक अंश को हमेशा दूर किया जाता रहा है। सबसे पूर्व इसमें से विभक्तियों को निकाला गया। ये बहुत लम्बी-चौड़ी थीं। इसके कारण अंग्रेज़ लोगों का भाषा-विषयक आलस्य, अनावश्यक विस्तारों में जाने की राष्ट्रीय अन्तमता, सामूहिक आबद्धता (Regimentation) के लिए अरुचि और योजना की अपेक्षा काम निकाल लेने की गहरी प्रवृत्ति है। इनका अंग्रेज़ी भाषा के निर्माण और विकास में बड़ा हाथ है। अंग्रेज़ों में व्याकरण के लिंग का स्वाभाविक लिंग ने स्थान प्राप्त कर लिया है। डेफ़िनेट आर्टिकल को एक रूप तक सीमित कर दिया गया है; संज्ञा के साथ विशेषण के लिंग और वचन की समयोजना को अनावश्यक समझा गया है। आधुनिक अंग्रेज़ी में उस स्थान पर कठिनाई से दो शब्द रक्खे जाते हैं जहाँ कि एक से काम निकल जाता है। बम (Bomb) संज्ञा और क्रिया दोनों रूपों में प्रयुक्त होता है, किस (Kiss) धातु संज्ञा के लिए भी प्रयुक्त होती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आधुनिक अंग्रेज़ी में हम संज्ञा को क्रिया के रूप में और क्रिया को संज्ञा के रूप में, विशेषणों को संज्ञा के रूप में और संज्ञा को विशेषणों के रूप में प्रयुक्त करने लगे हैं। अंग्रेज़ों की यह प्रवृत्ति है कि किसी लम्बे शब्द के पहले अक्षरों पर बल देते हैं और शेष को छोड़ देते हैं। अंग्रेज़ कम शब्दों से काम निकालना चाहते हैं। कुछ अंग्रेज़ी शब्दों का सरलीकरण बड़ा साहसिक है और भाषा के नियमों को तोड़ देता है।

अंग्रेज़ी में अन्य भाषाओं के शब्दों को बिना किसी तक़ल्लुफ़ या झिझक के ले लिया जाता है। न तो किसी प्रकार का आवेशात्मक लगाव या भाषा को शुद्ध रखने के सिद्धान्त या अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात् करने में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित करते हैं। भाषा में शुद्धता रखने के लिए डा० ब्रिजेस ने एक सोसाइटी को स्थापित किया था परन्तु भाषा में यह शुद्धता सर्वथा असंभव है। रस्किन ने अंग्रेज़ी के विषय में कहा है 'ऐसी संकर (Mongrel) भाषा जैसी कि अंग्रेज़ी'। अंग्रेज़ों ने बोर लोगों की तरह नए प्राणियों और नई वनस्पतियों के लिए शुद्ध नए डच शब्दों को नहीं बनाया। उन्होंने उनके लिए वहीं के स्थानीय शब्दों को अपनी भाषा में ग्रहण कर लिया जैसे कि, डिंगो और ओकाफ़ी आदि अंग्रेज़ी में बोलनेवाले अपने विचारों को समर्थ रूप से अभिव्यक्त करने के लिए विदेशी भाषा के शब्दों और मुहावरों को इस प्रकार आत्मसात् कर लेते

हैं जैसे कि वे उनकी अपनी भाषा के शब्द और मुहावरे हों।"

॥

रंगों के द्वारा चिकित्सा

प्राचीन काल से भिन्न-भिन्न भावों को भिन्न-भिन्न रंग प्रदान किए जाते रहे हैं। रागिणियों के भी भिन्न भिन्न रंग निर्धारित किए गए हैं। रंगों द्वारा चिकित्सा के विषय में परीक्षण किए जा रहे हैं। इस विषय में एक चिकित्सक के एक लेख का निम्न अंश दिया जा रहा है :

"रंगों द्वारा चिकित्सा के विषय में कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अभी इस विषय पर पूर्णतया परीक्षण नहीं हो सके हैं। रंगों के विषय में ज्योतिषियों के ये विचार रहे हैं कि इनका मानव के जीवन और भविष्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक ग्रह का अपना ही एक रंग है और जिन व्यक्तियों का उन ग्रहों में जन्म होता है, उनके लिए उस रंग की वस्तुओं का पहनना अनुकूल होता है। बहुत-से चिकित्सकों का विचार है कि भिन्न भिन्न रंगों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगियों की चिकित्सा में लाभ होता है। वे यह समझते हैं कि एक बीमार के अच्छा होने में कमरे के रंग का भी प्रभाव पड़ता है। निम्न कोटि के जीवाणुओं के विषय में देखा गया है कि लाल या पीले रंग में वह शीघ्रतया विकसित हो जाते हैं। ऊदे या नीले रंग की किरणों से बीज शीघ्रतया अंकुरित हो जाते हैं। रेशम के कीड़ों को पालनेवालों ने यह परीक्षण किया है कि यदि उनके अंडों को ऊदे (Violet) रंग के काँच के बरतन में रखा जाए तो उनकी उत्पत्ति सुगम हो जाती है।

अभी रंगों के द्वारा चिकित्सा की पद्धति परीक्षण की अवस्था में है। एक डाक्टरी रिपोर्ट से ज्ञात हुआ है कि एक बीमार बहुत उदास था। उसे लाल रंग के कमरे में रखा गया और तीन घंटे के अन्दर ही वह हँसने, खेलने और बातचीत करने लग गया।

रंगों का हमारे मस्तिष्क और विचारों पर क्या प्रभाव पड़ता है—इसे बतलाना बहुत कठिन है। एक डाक्टर ने इस प्रभाव को समझने का प्रयत्न किया है। वह कहता है :

लाल रंग का प्रेम, स्नेह और विषय-वासना पर प्रभाव पड़ता है।

लाल रंग का आवेश और क्रोध पर प्र पड़ता है।

गहरे लाल रंग का पाशविक-प्रकृति का पर प्र पड़ता है।

चमकीले लाल रंग का साहस और विश्वास प्रभाव पड़ता है।

फीके नारंगी रंग का कम समझने की शक्ति प्रभाव पड़ता है।

भूरे-से नारंगी रंग का दुनियावी समझदारी प्रभाव पड़ता है।

हलके पीले रंग का साधारण बुद्धि (Comm sense) पर प्रभाव पड़ता है।

हमारे धर्मग्रन्थों में पाप का रंग गहरा लाल गया है; शरारती और उपद्रवी को शहदी लाल में चि किया गया है और मेफ़िस्टोफ़िलीज़ (शैतान) साधार तया काले-लाल रंग के कपड़ों में होता है।

एक अमरीकन डाक्टर एक पत्र में लि है कि पीला और सुनहरा रंग बौद्धिक विशेषता, उपयोगिता, लाल विषयिता, नीला आध्यात्मि और धार्मिक प्रवृत्ति को प्रकट करता है। जब हम हो जाते हैं तो नीले पड़ जाते हैं।

प्रकृति रंगों से पूर्ण है : फूल, फलों के दीवानी तितलियाँ, पक्षी इस संसार को रंगीन बनाते हैं डाक्टर लोग वैज्ञानिक ढंग से इस बात का पता रहे हैं कि रंगों द्वारा बीमारियों की किस प्रकार चि की जा सकती है।"

॥

मैं कविता कैसे लिखता हूँ ?

श्री हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने एक लेख है "तुम आश्चर्य करते हो कि मैं कविता कैसे लि हूँ ?" इस लेख में से कुछ अंश नीचे दिया रहा है :

"मेरे मित्र और शत्रु दोनों हैरान होकर पूछते कि मैं कविता कैसे लिखता हूँ। कई लोग कहते हैं "तुक मिलाना और पंक्तियों में बिठाना बड़ा कठिन है।" अन्य लोग कहते हैं कि कविता लिखने के पटुता की आवश्यकता है परन्तु बात ऐसी नहीं है सत्य तो यह है कि कविता अपने को स्वयं लिखती है कवि भावनाओं और मानसिक अवस्थाओं का

बन जाता है। वह बज उठता है परन्तु "पद्य" एक भिन्न वस्तु है। इसे उत्पन्न किया जा सकता है ठीक उसी तरह जैसे कि एक बग़ीचे या आदत को बनाया जाता है। इसमें कुछ धैर्य और अनुशासन की आवश्यकता है। विदेशों की कई यूनिवर्सिटियों में पद्य का लिखना भी शिक्षा का एक अंग है। इससे संस्कृति पूर्ण होती है।

हम यहाँ कविता के विषय में कहना चाहते हैं। कविता तो घटित होती है फूलों के समान, बादलों के समान। बस यह तो एकमात्र घटित होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि कवि की उपचेतना ने कवि के ज्ञान के पीछे और परे जाने का प्रयत्न नहीं किया है। कई बार ऐसा होता है कि बैठे-बैठे एक पंक्ति बन जाती है जो कि हमारे किसी पिछले अनुभव या कई वर्ष पूर्व की किसी मानसिक अवस्था को मूर्तिमान् कर देती है। उदाहरण के लिए मुझे स्मरण है कि मेरी माता की मृत्यु हुए पाँच वर्ष हुए थे। मैं एक दिन सायंकाल अत्यन्त उदास बैठा हुआ आकाश को देख रहा था। प्रकाश क्षीण होता चला जा रहा था और तारे निकल रहे थे। मेरे हृदय में एक दम एक गहरी वेदना जाग्रत हो गई और मुझे अपनी माता का स्मरण हो आया। उस समय मैंने अपनी माता की मृत्यु को अत्यन्त गम्भीरता से अनुभव किया। मैंने उनसे अलग होने के कष्ट को इतनी गहराई से पहले कभी अनुभव नहीं किया था। वह वेदना कविता के रूप में प्रकट हो गई। शब्द एकदम मेरे मन के सामने आने लगे और देखते-देखते कविता तैयार हो गई। मुझे कई अवसरों पर ऐसा अनुभव हुआ है।

कवि बहुत संवेदनशील होता है। वह कई तारों वाली वीणा होता है। ज़रा-से वायु के स्पर्श से वह बज उठता है। जिस प्रकार वायु में एक पत्ता निरन्तर काँपता रहता है ठीक उसी प्रकार कवि की आत्मा कम्पित होती रहती है। वह अपने पूर्ण अस्तित्व से देखता है; वह अपनी पूर्ण सत्ता से अनुभव करता है। उसकी प्रकृति उसके चारों ओर फैली हुई प्रकृति का एक अंग होती है। एक मृत पक्षी को देखते ही उनके हृदय में पुरानी कब्रों और मृत उद्यानों की स्मृति ताज़ा हो जाती है। एक झड़ता हुआ पत्ता उस के लिए वैसा ही है जैसे कि एक गिरता हुआ तारा। उसके लिए यह एक प्रतीक है, ऐसा प्रतीक जो कि जुदाई के शाश्वत सत्य का प्रतीक है। इससे ज्ञात होता है कि जीवन असंख्य अन्तिम नमस्कारों की प्रक्रिया है। कवि एक मात्र "आँखों से" नहीं देखता जैसा कि ब्लेक कहता है। कई बार उसे अपनी दृष्टि उपहासास्पद प्रतीत होती है क्योंकि "आँखों के द्वारा" देखना "आँखों से" देखने से भिन्न है।

कई जापानी कवियों ने एक फूल को एक "क़ैदी तितली" और तितली को एक ऐसा फूल कहा है जो स्वतंत्रता से हवा को चूमता है और स्वर्ग की ओर उड़ रहा है। जब मैं बच्चा था तब कविता मेरे पास अत्यन्त सुगमता से आ जाती थी। पंक्तियाँ बहती हुई दिमाग़ में आती थीं और हृदय में संगीत बज उठता था। मुझे ऐसा अनुभव होता था कि मेरी शिराएँ तक कविता के साथ गतिमान् हो उठी हैं। मैं जब आठ वर्ष की आयु का था उसी समय से महान् कवियों की कविताओं को पढ़ा करता था। मैं जो कुछ पढ़ता था उस सबको पूर्णतया समझ नहीं पाता था। मैं इतना अवश्य समझता था कि मैं जो कुछ पढ़ रहा हूँ वह वास्तव में महान् है और प्रेरणा देनेवाला है। मेरी आयु ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी मैं कविता को अधिकाधिक समझने लगा परन्तु एक प्रकार की कविता ऐसी भी होती है जिसे समझने की आवश्यकता नहीं है। उसे तो अनुभव करने की आवश्यकता होती है। तारों के निकलने को कौन समझता है? एक वैज्ञानिक अधिक से अधिक हमें कुछ बातें बता सकता है परन्तु वह भी घटनाओं को सम्पूर्णतया नहीं समझ सकता। कवि घटनाओं को देखता है परन्तु समझता नहीं है। कौन समुद्र की उमड़ती हुई लहरों को समझ सकता है जब कि चाँद का प्रकाश उन्हें चाँदी के समान जगमग कर रहा हो। देखते-देखते मनुष्य जैसे सो जाता है और उसकी चेतना विशालता को स्पष्ट रूप में प्रत्यक्षतया अनुभव करने लगती है। इसी प्रकार कुछ कविताएँ ऐसी होती हैं जो इसी प्रकार चमत्कारपूर्ण होती हैं। संसार की महान् कविताएँ जीवन के जादू के मन्त्र होती हैं। क्रान्तिकारी कविताएँ भी उतनी नहीं होतीं जितनी कि वे दीखती हैं। वे समस्त राष्ट्र में जीवन को उत्पन्न कर देती हैं। यह बात नहीं है कि समस्त राष्ट्र इन कविताओं को समझता है। इनमें शब्दों और संगीत का कम्पन होता है जो कि प्रभाव उत्पन्न करता है।

मैंने सुना है कि कई लोग शब्दकोशों और विचित्र शब्दों के मेल से कविता लिखते हैं परन्तु यह कहा नहीं जा सकता कि इस प्रकार के तरीक़ों को कोई सच्चा

और प्रेरणा प्रदान करनेवाला कवि जीवन का सन्देश और अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए ग्रहण कर सकता है ।"

॥

पुर्तगाल की नीग्रो सेनाएँ

'बाम्बे क्रानिकल' में पुर्तगाल की नीग्रो सेनाओं पर श्री कैसीमीर ली ज्यूने का एक लेख प्रकाशित हुआ है । इसमें से निम्न अंश दिया जाता है :

"गोआ, दमन और दियू में कई हज़ार आफ्रीकी सेना लाई गई है । सेना तो नीग्रो लोगों की है परन्तु इसके समस्त सार्जेण्ट और अफ़सर यूरोपीय हैं । पुर्तगाली सेना में किसी आफ्रीकी या एशियाई को कॉर्पोरल Corporal से बड़ा पद नहीं दिया जा सकता ।

पुर्तगाल ने अपने उपनिवेशों के रहनेवालों को सदा युद्धों में तोप के चारे (Cannon fodder) की तरह प्रयुक्त किया है । जब गोआ में मराठों और राने लोगों ने विद्रोह किया था और पुर्तगालियों को अरब सागर में लगभग फेंक दिया था, उस समय पुर्तगालियों ने भारतीयों को धोखा देकर और नीग्रो लोगों की सेना की सहायता से अपने आप को किसी प्रकार बचा लिया था । गोआ के लोग नीग्रो लोगों से घृणा करते हैं परन्तु वास्तव में उनकी स्थिति दयनीय है । ये आफ्रीकी लोग स्वयं पुर्तगाली शासकों से घृणा करते हैं । पुर्तगाली शासक उनसे उतना अधिक बुरा व्यवहार करते हैं जितना कि वे भारतीयों से भी नहीं करते ।

इन बिचारों को मोज़ाम्बिक़ी और अंगोला से अपने बाल-बच्चों से ज़बर्दस्ती अलग करके लाया गया है । उन्हें अपने ग्रामों से बेड़ी पहना कर लाया गया, आपाधापी में सैनिक शिक्षा प्रदान की गई और भारत को पैक कर दिया गया ।

पुर्तगाली आफ्रीकी उपनिवेशों में इनसे अभी तक भी ज़बर्दस्ती बेगार ली जाती है और उन्हें दास के रूप में रखा जाता है । उनके भाइयों को खानों के अन्दर गन्नों के खेतों और शक्कर की फ़ैक्टरियों में भेजा जाता है जिनसे पुर्तगालियों को कल्पनातीत धनराशि प्राप्त होती है ।

आफ्रीकी सैनिक को जो पुर्तगाली बरदी पहनता है १५) प्रति मास नाममात्र का वेतन दिया जाता है । इसमें से काँट-छाँट होने के पश्चात् मुश्किल से उसे १०) प्राप्त होते हैं । उसे जो राशन दिया जाता है वह किसी काम का नहीं होता : उबाली हुई मकई और निकृष्ट मांस । पुर्तगाली अफ़सर जो कि सैनिकों के भोजन की व्यवस्था करते हैं अत्यन्त शीघ्र धनी हो जाते हैं । इससे आफ्रीकियों में गहरा असन्तोष है और उन्हें अपने कार्य से घृणा है ।

पुर्तगाली यह नहीं चाहते कि आफ्रीकी सैनिक पुर्तगाली भाषा अच्छी तरह बोलने लग जाएँ । पुर्तगाली लोगों को इनसे सम्बन्ध स्थापित नहीं करने दिया जाता । केवल कैबो, Corporal ही कुछ टूटी-फूटी पुर्तगाली बोल सकता है ।

एगुआडा क़िला और अन्य जेलों के सन्तरी सर्वथा अशिक्षित हैं । इन जेलों में राजनैतिक क़ैदियों को रखा जाता है । इन पर ज़बर्दस्त पहरा रहता है । जब कोई पुर्तगाली अफ़सर निकट नहीं होता तब नीग्रो लोग झुक कर भारतीयों से इशारों से बातचीत करते हैं और कहते हैं कि हम भी भारतीयों की तरह काले रंग के हैं । उन्हें भारतीयों से किसी प्रकार की कोई शिकायत नहीं है ।

पुर्तगाली आफ्रीकी सैनिकों के साथ अत्यन्त क्रूरता का व्यवहार करते हैं । उन्हें ज़रा-ज़रा सी बात पर सख़्त सज़ा दी जाती हैं और कोड़े लगाए जाते हैं । इस कारण उनकी हिम्मत टूट गई है । इस बात के प्रमाण हैं कि पुर्तगाल का सालाज़ार दास-प्रथा और बेगारी का समर्थक है । पुर्तगाली उपनिवेश विशाल हैं । केवल अंगोला का क्षेत्र ही समस्त यूरोप का आधा है । इन उपनिवेशों की आर्थिक अवस्था बहुत ख़राब है । ये उपनिवेश बिलकुल उपेक्षित अवस्था में हैं । अंगोला और अन्य उपनिवेशों में दास-प्रथा है । प्रत्येक ग्राम को एक निश्चित संख्या बेगारी के लिए देनी पड़ती है । उन्हें बहुत कम पैसा दिया जाता है और यदि कोई किसी प्रकार की चूँ-चा करता है तो उसे निर्दयता से कोड़े लगाये जाते हैं ।

गोआ में भी गैंडे के चमड़े का कोड़ा जिसे "कैवलमैरिनहो" कहा जाता है पुर्तगाली साम्राज्य शक्ति का चिन्ह है । इस कोड़े की मार बड़ी भयानक होती है । इससे रुधिर की शिराएँ फट जाती हैं।..."

॥

चीन में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार

नये चीन में सबसे अधिक परिवर्तन महिलाओं के जीवन में हुआ है । उन्हें पुरुषों के समान अधिकार

प्रदान किए गए हैं। नए चीन के प्रशासन का यह एक बहुत बड़ा कारनामा है। "डैकन हैरल्ड" में प्रकाशित एक लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"चीन के वर्तमान प्रशासन ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर का दर्जा दिया है। यह उसके शानदार कामों में से एक है। स्त्रियों को अब वही वेतन दिया जाता है जो कि पुरुषों को जब कि वे दोनों एक ही कार्य करते हैं। स्त्रियों के लिए नया क़ानून बनाया गया है। फिर भी चीन जैसे प्राचीन और महान् देश में पुरानी रीतियों के दूर होने में कुछ समय लग जाएगा। नए नियमों के अनुसार महिलाओं के लिए अब माता-पिता नहीं ढूँढ़ेंगे और वे अपने जीवन-संगी का स्वयं चुनाव कर सकेंगी। इससे जहाँ बाल-विवाह की प्रथा बन्द हो जाएगी वहाँ स्त्रियों पर पतियों और सासों की हुकूमत का भी प्रश्न नहीं रह जाएगा।

पुराने नियमों के अनुसार चीन में अभी तक पुरुष ही स्त्रियों को तलाक़ दे सकता था। दुःखी विवाहित स्त्रियाँ अपने पतियों को छोड़ नहीं सकती थीं और अपने भरण-पोषण के लिए उन्हें कार्य करना पड़ता था। अब स्त्रियों को भी यह अधिकार प्राप्त हो गया है। नए नियमों में जीवन-संगी को स्वतंत्रतापूर्वक चुनने और स्त्रियों और बच्चों की न्यायपूर्ण हितों की रक्षा और स्त्री और पुरुष की समानता के आधार पर दोनों को सब समान अधिकार दिए गए हैं। कोई घर में किसी रखैल को नहीं रख सकेगा; विधवाओं के पुनर्विवाह में कोई किसी प्रकार की दस्तंदाज़ी नहीं कर सकेगा; विवाहों पर दहेज के दिए जाने को बन्द कर दिया गया है और पुरुष के विवाह की आयु २० और स्त्री की विवाह की आयु १८ रक्खी गई है।

पहले स्त्रियाँ एकमात्र घर का काम-काज ही करती थीं परन्तु वे अब सब प्रकार के कार्य कर सकती हैं। जो स्त्रियाँ पहले एक मात्र सीने-पिरोने का ही कार्य करती थीं अब वे रेल के इंजनों को चला रही हैं; लोहे के बड़े-बड़े कारख़ानों में कार्य करती हैं और उन्हें इस कार्य के लिए वही वेतन दिया जाता है जो कि पुरुषों को दिया जाता है।"

॥

पंजाब की लोक-कथाएँ

"स्टेट्समैन" में श्रीयुत शमशेरसिंह नरुला ने पंजाब की लोक-कथाओं पर एक लेख लिखा है। इसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"पंजाब की सबसे प्राचीन लोक-कथाएँ वीरों की हैं जिनमें अमानुषी शक्ति थी। इन कहानियों में राजा रिसालु की कथा अत्यन्त लोक-प्रिय है। रिसालु के वीर काव्य में बहुत-सी कहानियों का संग्रह है जिसके भिन्न-भिन्न रूप हैं। राजा शालिवाहन की दो पत्नियाँ थीं; रानी अछरा और रानी लोना। रानी अछरा का बेटा था पूरण। दूसरी की कोई सन्तान नहीं थी। लोना ने राजा के मन को पूरण के ख़िलाफ़ कर दिया और उसने उसके हाथ-पैर काट कर उसे एक कुएँ में फेंक दिया। गुरु गोरखनाथ ने उसे कुएँ में से निकाला और उसको हाथ पैर पुनः प्रदान किए। इस कारण पूरण ने अपना समस्त जीवन प्रार्थना में व्यतीत करने का निश्चय किया। वह साधु हो गया और उसे पूरण भक्त कहा जाने लगा। पूरण भक्त की माँ रोते-रोते अन्धी हो गई थी। उसने उसकी आँखें ठीक कर दीं। उसने दूसरी रानी को एक चावल का दाना दिया और कहा कि उसे एक पुत्र होगा। यदि उसका पिता उसे १२ वर्ष तक नहीं देखेगा तो वह महान् बनेगा। यही पुत्र रिसालु था। उसे राजा की दृष्टि से बचाने के लिए तहख़ाने में एक घोड़े के बच्चे के साथ रक्खा गया जो कि उसी समय उत्पन्न हुआ था। जब रिसालु ११ वर्ष का था वह तहख़ाने से भाग गया। उसने पानी भरनेवाली स्त्रियों के घड़ों को फोड़ दिया। स्त्रियों ने राजा के पास शिकायत की। राजा ने उन्हें धातु के घड़े दिए। इन्हें भी उसने अपने तीरों से तोड़ डाला। फिर वह अपनी तक़दीर को आज़माने के लिए बाहर निकला। उसने वीरता के बहुत-से कारनामे किए। उसने अपनी शक्ति का कभी दुरुपयोग नहीं किया। वह वीर और उदार था।

दूसरे प्रकार की पंजाबी लोक-कथाएँ नीतिकथाएँ हैं। ये कहानियाँ उपदेशात्मक हैं। ये कथाएँ "हितोपदेश" के ढंग की हैं। एक और लोक-कथा एक नाई की है जिसकी पत्नी अत्यन्त चतुर थी। इसकी चतुराई के कारण राजा ने नाई को अपना वज़ीर बनाया और कहा : "जब तक उसकी पत्नी जीवित है वह कभी किसी प्रकार की मूर्खता नहीं करेगा।" इस प्रकार की कहानियाँ पंजाब के प्रत्येक ग्राम में बड़ के वृक्ष की छाया में बैठ कर सुनी जाती हैं।"

सम्पादकीय

हिन्दी : भारतीय भाषाओं की स्वतन्त्रता का चार्टर

क्योंकि हमारे देश में इस समय समस्त राज-काज की भाषा अंग्रेज़ी है और शीघ्र ही निकट भविष्य में हिन्दी उसका स्थान लेनेवाली है इसलिए अंग्रेज़ी के विषय में जो राजनैतिक मान्यताएँ या विचार सर्व-साधारण में प्रचलित हैं उन्हें हिन्दी के साथ भी उसी प्रकार सम्बद्ध किया जा रहा है परन्तु अंग्रेज़ी और हिन्दी में इस बात की समानता होते हुए भी कि वह हमारे देश की राज-काज की भाषा हो रही है—दोनों भाषाओं में किसी प्रकार की अन्य कोई राजनैतिक समानता नहीं है। हमारे देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में हिन्दी के प्रति जो बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ फैल रही हैं या उत्पन्न की जा रही हैं उनका मुख्य कारण यह है कि अंग्रेज़ी के साथ जिस राजनीति का सम्बन्ध था उसी का हिन्दी के साथ सम्बन्ध जोड़ा जा रहा है। सत्य तो यह है कि अंग्रेज़ी के साथ हिन्दी को इस प्रकार जोड़ना सर्वथा अनुपयुक्त है।

अंग्रेज़ी हमारे देश की भाषाओं की परतन्त्रता का चार्टर थी—हिन्दी भारतीय भाषाओं की स्वतन्त्रता का चार्टर है; अंग्रेज़ी देश की भाषाओं को उनका समुचित स्थान और गौरव प्रदान नहीं कर सकती थी, हिन्दी देश की समस्त भाषाओं को उनका समुचित स्थान और गौरव प्रदान करना चाहती है; अंग्रेज़ी और प्रान्तीय भाषाओं में किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है, हिन्दी और इन भाषाओं में भारतीयता का अटूट सम्बन्ध है। एक की उन्नति में दूसरे की उन्नति है और दोनों भारतवर्ष के जन-जीवन की प्रतीक हैं। अंग्रेज़ी ने हमारे देश की महान् भाषाओं में किसी प्रकार की सामंजस्यता और एकता को स्थापित नहीं किया, हिन्दी उनमें सामंजस्य और एकता को स्थापित करना चाहती है। अंग्रेज़ी अपनी महानता से हमारी भाषाओं को महान् नहीं बना सकी, इस समय भी हमारे देश की भाषाएँ अंग्रेज़ी के सम्मुख अपने आप को हीन और अपरिपूर्ण समझती हैं, हिन्दी उन्हें उनकी महानता का अनुभव कराना चाहती है और उनकी महानता में केवल अपना पूर्ण सहयोग देना चाहती है अपि तु उनकी महानता में अपने को महान् अनुभव करती है। अंग्रेज़ी भारतीय भाषाओं से दूर-दूर रहती थी परन्तु हिन्दी इन भाषाओं से निकटतम सम्बन्धों को स्थापित करना चाहती है। इन सम्बन्धों को स्थापित किए बिना हिन्दी अपने उद्देश्य में किसी प्रकार सफलता प्राप्त नहीं कर सकती।

प्रान्तीय भाषाओं को हिन्दी से किसी प्रकार की आशंका या भय नहीं करना चाहिए क्योंकि हिन्दी उन्हें किसी प्रकार अपदस्थ नहीं करना चाहती या उनके महत्त्व को किसी भी प्रकार कुछ भी कम नहीं करना चाहती। प्रान्तीय भाषाओं को अपने क्षेत्रों में पूर्ण स्वतन्त्रता है परन्तु जहाँ समस्त देश या अपने प्रान्त से बाहर का प्रश्न है वहाँ इनको हिन्दी का सहारा लेने की आवश्यकता होगी। समस्त भारत को दृष्टि में रखते हुए जब भारत की समस्त भाषाएँ आपस में मिल-जुल कर कार्य करेंगी और हिन्दी को अपनाएँगी तभी वे हिन्दी को विकसित और समृद्ध बना सकेंगी और उसे उसका समुचित स्थान प्रदान कर सकेंगी।

हिन्दी भारतीय भाषाओं की स्वतंत्रता का चार्टर है। वह उन्हें हर प्रकार की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करने आई है; वह उन्हें उनका यथोचित आदर पूर्ण रूप से प्रदान करना चाहती है; वह उनके विकास और उन्नति में किसी प्रकार की रुकावट या बाधा उपस्थित नहीं करना चाहती। वह उनकी उन्नति में अपनी उन्नति और उनके गौरव में अपना गौरव समझती है। प्रान्तीय भाषाओं की विशेषता, शैलियों आदि को हिन्दी अपने में उसी प्रकार ग्रहण कर लेगी जैसे कि वे उसकी अपनी ही हों। हिन्दी कुछ समय के पश्चात् इस देश में अंग्रेज़ी का स्थान ग्रहण कर लेगी—इसका यह अर्थ कदापि न समझना चाहिए कि जिस प्रकार अंग्रेज़ी ने प्रान्तीय भाषाओं को किसी प्रकार पनपने नहीं दिया था उसी प्रकार हिन्दी भी इन भाषाओं को किसी प्रकार पनपने नहीं देगी। ऐसा समझना हिन्दी के साथ अन्याय करना है।

हिन्दी की क्षमता

अभी पिछले दिनों राजस्थान विश्वविद्यालय के दीक्षान्त-भाषण के अवसर पर हिन्दु यूनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर श्रीयुत सी. पी. रामस्वामी अय्यर ने अंग्रेज़ी की हिमायत करते हुए कहा कि जब तक हिन्दी के द्वारा पूर्ण क्षमता के साथ अध्यापन का कार्य नहीं हो सकता तब तक हमें अंग्रेज़ी को किसी प्रकार नहीं छोड़ना

...अन्यथा शिक्षा का मान जो कि हमारे देश में ...ही गिर रहा है, अब और भी अधिक गिर जाएगा। ...तः हमारे देश में अंग्रेज़ी का ज्ञान और शिक्षा ...मान पर्यायवाची समझा जाता है। इसीलिए ज्यों-ज्यों ...ग्रेज़ी के ज्ञान में शिथिलता आ रही है बहुत-से शिक्षा-...स्त्री यह अनुभव कर रहे हैं कि शिक्षा का स्तर भी उसी ...पात से हमारी यूनिवर्सिटियों में गिरता जा रहा है।

अब प्रश्न यह है कि हिन्दी या हमारे देश की ...न्य भाषाएँ कब इस स्थिति में आ सकेंगी और वे ...नी सक्षम हो सकेंगी जितनी कि अंग्रेज़ी है? यदि ...न्दी में अध्यापन का कार्य ही प्रारम्भ नहीं किया जाएगा, ...हिन्दी में क्षमता की वृद्धि किस प्रकार हो सकेगी? ...बच्चा कभी गिरता ही नहीं वह कभी अपने पैरों के ...चल ही नहीं सकता। यदि कोई यह कहे कि जब ...च्चे के पैरों में शक्ति आ जाएगी तभी उसे खड़ा ...दिया जाएगा तो ऐसी स्थिति को किस प्रकार उत्पन्न ...जा सकता है? बच्चा जब बार-बार गिरता है तभी ...के पैरों में यह शक्ति उत्पन्न होती है। यदि वह गिरेगा ...नहीं तब वह खड़े होने के योग्य भी नहीं बन सकेगा। ...या भारत की अन्य भाषाओं को सक्षम बनाने के लिए ...में पर्याप्त समय तक परीक्षण करने पड़ेंगे और इन परी-...क्षणों से कुछ समय तक यह संभव है कि हमारे शिक्षा के ...कुछ में अवनति भी हो जाए। आगे बढ़ने के लिए ...बार कुछ पीछे हटना भी अनिवार्य होता है। अंग्रेज़ी ...अपनी प्रारंभिक अवस्था में इतनी सक्षम नहीं थी ...तनी कि वह अब है। यदि श्रीयुत सी. पी. रामस्वामी ...अय्यर के अनुसार उस समय की प्रतीक्षा की जाएगी ...कि हिन्दी और इन भाषाओं में अध्यापन की पूर्ण ...क्षमता उत्पन्न हो जाएगी और तब तक अंग्रेज़ी के द्वारा ...शिक्षा प्रदान की जाएगी तब संभवतः उस अवसर का ...ना ही कठिन हो जाएगा। अभी हमारे शिक्षा-शास्त्रियों ...के दिमाग़ से अंग्रेज़ी का मोह छूटा नहीं है और ...क्षान्त भाषणों के अवसर पर विश्वविद्यालयों के उप-...कुलपतियों की अंग्रेज़ी के प्रति निष्ठा का किसी-न-...किसी रूप में प्रदर्शन होता रहता है। सत्य तो यह है कि ...रंभ में हमें असमर्थ और टूटी-फूटी बोली से भी कार्य ...निकालना होगा परन्तु जब उसी का प्रयोग लगातार और ...व्यापक रूप में होने लग जाएगा तब हिन्दी और अन्य भारतीय ...भाषाओं में स्वयमेव शक्ति और समर्थता उत्पन्न हो जाएगी।

हिन्दी-शिक्षा-समिति

समस्त भारत में विशेषतया अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी के प्रचार को अधिक समुन्नत और संगठित करने के लिए केन्द्रीय प्रशासन के शिक्षा मन्त्रालय ने समस्त राज्यों के शिक्षा-मन्त्रियों की नई दिल्ली में अभी कुछ समय हुआ एक सभा निमन्त्रित की थी जिसमें हिन्दी-शिक्षा-समिति की एक नई योजना स्वीकृत की गई है। इस योजना के अनुसार इस शिक्षा-समिति में अहिन्दी राज्यों का एक-एक प्रतिनिधि रहेगा और इसके सदस्यों की कुल संख्या १७ होगी। अहिन्दी राज्यों में हिन्दी का कार्य करनेवाली संस्थाओं को जो सहायता प्राप्त होगी वह केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय से राज्य सरकारों को दी जाएगी और राज्य सरकारों के द्वारा संस्थाओं को प्राप्त हो सकेगी।

अच्छा होता यदि केन्द्रीय प्रशासन हिन्दी के सम्बन्ध में अब तक किए हुए कार्य को एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कर देता जिससे यह सुगमता से ज्ञात हो सकता कि केन्द्रीय प्रशासन के शिक्षा-मन्त्रालय ने समस्त देश में हिन्दी के प्रचार को संगठित और समुन्नत करने के लिए अभी तक क्या उद्योग किया है; उसने इस में विषय किन संस्थाओं की आर्थिक सहायता की है और इस आर्थिक सहायता के परिणामस्वरूप क्या कार्य किस किस परिमाण में सम्पन्न हुआ है। शिक्षा-मन्त्रियों की बैठक में शिक्षा-मन्त्री श्रीयुत मौलाना आज़ाद ने एकमात्र सरसरी तौर पर इस विषय में कुछ चर्चा की और अधिकतर हिन्दी-शिक्षा-समिति की नवीन योजना के विषय में निर्णय किए गए। हम समझते हैं कि इस बात की आवश्यकता है कि केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय से हिन्दी के कार्य के सम्बन्ध में पृथक् रूप से एक हैण्ड-बुक प्रकाशित हो जिसमें एकमात्र इस बात का विवरण ही न दिया गया हो कि शिक्षा-मन्त्रालय ने हिन्दी के विषय में नई दिल्ली में मीटिंग बुलाई और ये निर्णय किए अपितु जिसके द्वारा हमें यह भी निश्चित् रूप से ज्ञात हो सके कि हिन्दी के कार्य के विषय में जो निर्णय किए गए उनके अनुसार क्रियात्मक रूप से ये ठोस क़दम उठाए गए। हमें निर्णयों के अतिरिक्त इस बात की जानकारी की भी बहुत आवश्यकता है कि हिन्दी के विषय में हमारे देश में क्या कार्य हो रहा है। ज्यों-ज्यों १५ वर्ष की अवधि समाप्त होती जा रही है—इस बात को प्रामाणिक रूप से जानने की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ती

जा रही है। यदि इस प्रकार की पुस्तिकाओं का प्रकाशन होगा जिनके द्वारा समस्त देश को प्रामाणिक रूप से हिन्दी के कार्य को संगठित रूप से समुन्नत करने का पूर्ण विवरण प्राप्त हो सके तो हिन्दी के विषय में जो बहुत असन्तोष फैल रहा है वह स्वयं दूर हो जाएगा।

इसके साथ-साथ हम यह भी चाहते हैं कि केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय या केन्द्रीय हिन्दी-शिक्षा-समिति के द्वारा, समस्त भारत में व्याप्त हिन्दी का कार्य करनेवाली संस्थाओं का विवरण एक पुस्तिका में प्रकाशित किया जाए। इन संस्थाओं में कुछ पुरानी और कुछ नई संस्थाएँ हैं। कुछ ऐसी संस्थाएँ भी हैं जो संभवतः संगठित रूप से कार्य नहीं कर रही हैं। इस पुस्तिका में कम-से-कम उन संस्थाओं का विवरण और कार्य का परिचय प्रामाणिक रूप से अवश्य दिया जाना चाहिए, जो हिन्दी के विषय में संगठित रूप से कार्य कर रही हैं। इससे जहाँ हिन्दी के प्रचार के कार्य के विषय में सही सूचना प्राप्त हो सकेगी वहाँ इन संस्थाओं के कार्य में भी अधिक प्रगति हो सकेगी। लोक-सभा की बहसों या शिक्षा-मन्त्रालय के वक्तव्यों से तो अधिकतर यही ज्ञात होता है कि अमुक संस्था को इतनी आर्थिक सहायता दी गई। इन सब बातों का और हिन्दी के कार्य का ज्ञान यदि एक पुस्तिका के रूप में व्यवस्थित रूप से दिया जा सके तो उपयुक्त होगा। वैसे तो हिन्दी का कार्य करनेवाली प्रत्येक संस्था अपना वार्षिक विवरण प्रकाशित करती ही है परन्तु शिक्षा-मंत्रालय की ओर से इस प्रकार के विवरण के प्रकाशन में यह लाभ होगा कि हमें केन्द्रीय प्रशासन की ओर से हिन्दी के कार्य का पूर्ण विवरण एक ही स्थान पर प्रामाणिक रूप से प्राप्त हो सकेगा।

हिन्दी का शिष्टमंडल

हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि अक्टूबर मास में, दशहरे के अवसर पर नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी की ओर से हिन्दी का एक शिष्टमंडल दक्षिण-भारत की यात्रा के लिए आ रहा है। हमने इस विषय में नागरी-प्रचारिणी-सभा के द्वारा प्राप्त सूचनाओं को 'अजन्ता' के 'चिट्ठी-पत्री' के स्तम्भों में प्रकाशित किया है जिससे कि इस शिष्टमंडल के प्रोग्राम और कार्य के विषय में आवश्यक सूचना प्राप्त हो सकेगी। इससे पूर्व भी हिन्दी के एक शिष्ट-मंडल ने दक्षिण की यात्रा की थी। अच्छा होता यदि उस शिष्ट-मंडल की यात्रा का विवरण प्रकाशित हो जाता जिससे इस सम्बन्ध में उनके अनुभवों का ज्ञान हो सकता। आशा है कि इस शिष्टमंडल की दक्षिण की यात्रा का विवरण प्राप्त होगा जिससे कि उनकी यात्रा के सामचारों के साथ हिन्दी के सम्बन्ध में दक्षिण में उनके अनुभवों पर भी प्रकाश पड़ सकेगा।

नागरी-प्रचारिणी-सभा हिन्दी की एक पुरानी और गण्य-मान्य संस्था है और उसने इस शिष्टमंडल के लिए जिन विद्वानों को चुना है वे सब हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। यह शिष्टमंडल दक्षिण-भाषाओं के साहित्यकारों से निकट सम्बन्ध में आकर न केवल उनके हिन्दी के प्रति विचारों को जान सकता है अपितु हिन्दी के विषय में प्रामाणिक रूप से बहुत-सी ऐसी बातों पर प्रकाश डाल सकता है जिससे देश में भाषा विषयक कटुता का वातावरण दूर हो और दक्षिण के साहित्यकारों और शिक्षित जनता में हिन्दी के प्रति आस्था की वृद्धि हो। हिन्दी का जहाँ यह कार्य है कि वह समस्त भारत को एक भाषा के सूत्र में आबद्ध करे वहाँ उसका यह भी एक कार्य है कि वह भारत की समस्त भाषाओं और साहित्यकारों में निकट और स्वास्थ्यकर सम्बन्धों की स्थापना करे और विदेशी शासन के द्वारा हमारी भाषाओं में जो दूरी आ गई है उसे पाट कर उनमें पारस्परिक आदान-प्रदान और स्नेह की संवृद्धि करे।

हमने दक्षिण देश की यात्राओं में इस बात का अनुभव किया है कि यदि हिन्दी के विद्वान् दक्षिण की भाषाओं के साहित्यकारों से अपना सम्बन्ध स्थापित करें तो एक तो वे प्रत्यक्ष रूप से यह जान सकेंगे कि इन भाषाओं के साहित्यकार किस प्रकार अपनी भाषा के साहित्य की उन्नति में लगे हुए हैं और दूसरा वे अपने इस कार्य के साथ किस प्रकार हिन्दी के प्रचार और समुन्नति में अपना सहयोग प्रदान कर सकते हैं। शिष्टमंडल का प्रोग्राम इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि जहाँ वे दक्षिण में हिन्दी की संस्थाओं से अपना सम्बन्ध स्थापित करें वहाँ तेलुगु, कन्नड़, तमिल और मलयालम की संस्थाओं के भी निकट सम्पर्क में आएँ। उन साहित्यिक संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में वे हिन्दी के सम्बन्ध में अपने विचारों को अभिव्यक्त करें और साथ ही प्राध्यापकों, साहित्यकारों और विद्यार्थियों से प्रश्नोत्तर के रूप में विचार-विनिमय करें। हमें पूर्ण विश्वास है कि शिष्टमण्डल को अपने कार्य में सफलता प्राप्त होगी।

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

Telephone : 4610 [Estd. MARCH 1915] Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :
UNIVERSITY BRANCH
(ADIKMET)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMANI,
HYDERABAD-DECCAN.

Branch Office :
THUNGABHADRA PROJECT
(MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTRES and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.

SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
MANAGING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT

दक्खिनी का पद्य और गद्य

लेखक—श्रीराम शर्मा

प्रकाशक—हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

मूल्य—१०-८-०

दक्खिनी हिन्दी के लगभग एक सौ लेखकों की रचनाओं का संकलन इस संग्रह में किया गया है, दक्खिनी के सम्बन्ध में एक विस्तृत भूमिका साथ में है। भाषा-विज्ञान के पण्डित डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी ने इस पुस्तक की विद्वत्ता पूर्ण प्रस्तावना लिखी है।

दक्खिनी हिन्दी का अध्ययन हिन्दी के विकास को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

Regd.

हिन्दी के उत्तमोत्तम
तथा
उच्च श्रेणी
के

सा
हि
त्य

की
प्राप्ति के लिए एकमात्र
स्थान

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

नामपल्ली रोड ::: हैदराबाद द.

तार

टेलीफ़ोन नं. ५४५०

प्रकाशक : प्रियबन्धु हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-द.

अजन्ता

76442

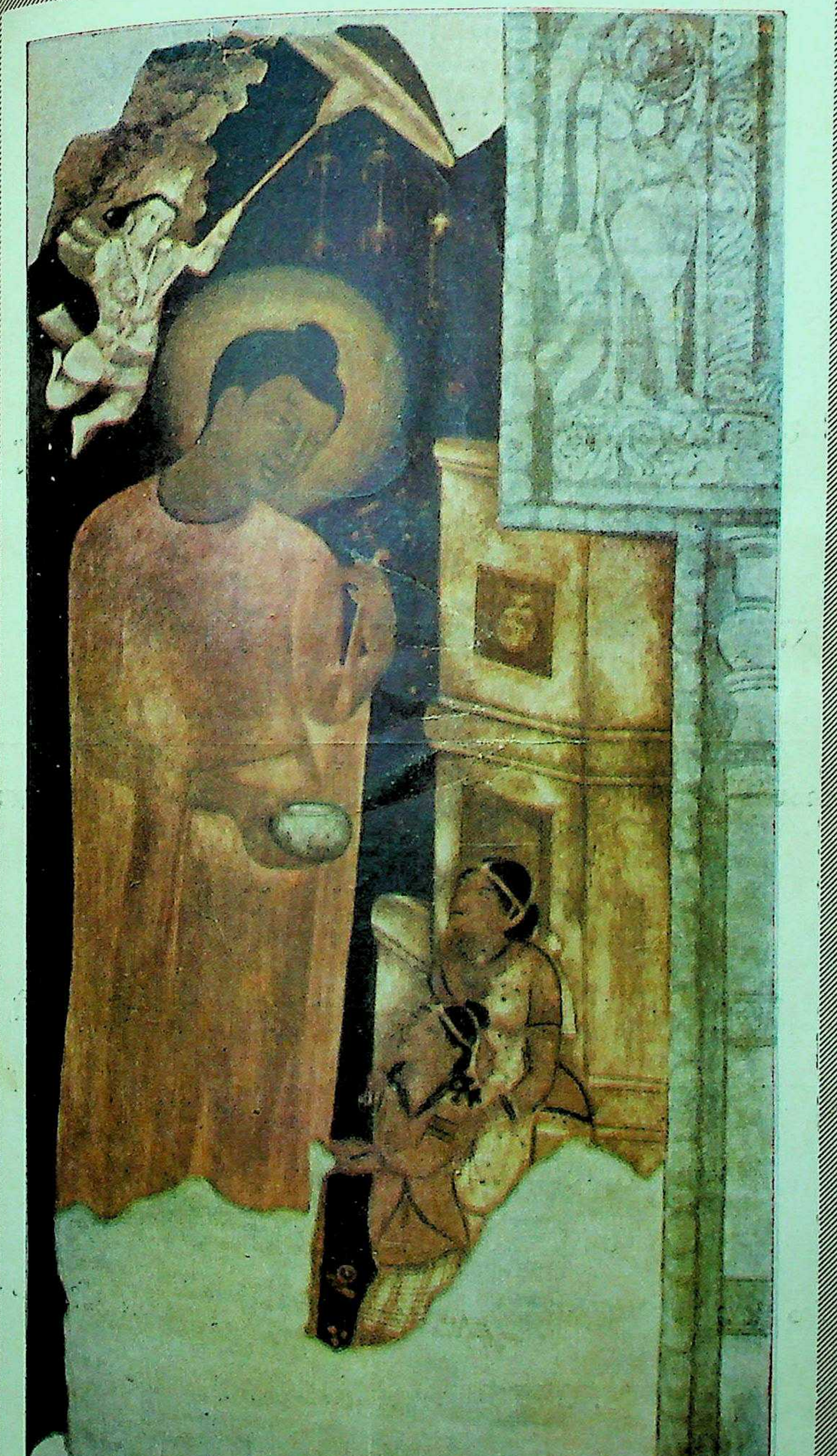

वर्ष ३

अक्तूबर १९५५ अंक १०

हैदराबाद आल्विन मेटल वर्क्स

लिमिटेड

सनतनगर, हैदराबाद-द.—१८

सर्वोत्तम स्टील फ़र्नीचर के निर्माता

हर प्रकार का फ़र्नीचर

मकान, दफ़्तर, दूकान और अस्पतालों के लिए

ख़रीदिए !

राष्ट्र की सुन्दरतम और मज़बूत बसों के निर्माता

फोन नं० ५५७४ तार : तिलस्मात

ज़िन्दा तिलस्मात

(ट्रेडमार्क 'ताज')

सर का दर्द, दांत का दर्द, पेट का दर्द, हैज़ा, मलेरिया, पेचिश, प्लेग, खांसी, सर्दी, जुक़ाम, बिच्छू का काटना एवं तमाम शारीरिक दर्दों का शर्तिया इलाज।

ज़िन्दा तिलस्मात की एक बोतल रखना, इसका अर्थ है
आप डाक्टर को अपने साथ रखते हैं।

रजिस्टर्ड नं० ५७७ ::: सी डी. टाल नं० १६८३

प्रत्येक स्थान पर बेचा जाता है
या
कारखाना ज़िन्दा तिलस्मात
हैदराबाद-द. से मँगाइए।

पो० ज़िन्दा तिलस्मात

ACCIDENT ! *MARINE !* *FIRE !*

THE HYDERABAD UNITED INSURANCE COMPANY
(LIMITED)

Sponsored by

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164.

ABID ROAD, HYDERABAD-Dn.

Telegram: *HUICOL* Telephone: *5579*

Chairman
L. N. GUPTA Esqr. I. A. S.

General Manager
H. D. MEHTA Esqr.

Branches: BOMBAY, CALCUTTA. MADRAS, NIZAMABAD & MANCHIRIYAL.

हमारे सुविख्यात प्रकाशन

स्वामी विवेकानन्दजी की सुप्रसिद्ध पुस्तकें

भारत में विवेकानन्द : जैकेट सहित, सचित्र ५) "आज की परिस्थिति के उपयुक्त राष्ट्र-निर्माण संबन्धी वैध एवं ठोस विचारों से भरे, स्वामी जी द्वारा भारत में दिए गए भावयुक्त स्फूर्तिप्रद भाषण"

विवेकानन्द जी के संग में : आकर्षक जैकेट सहित ५।) "स्वामी जी के आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, कला-विषयक तथा भक्ति संबन्धी संभाषणों का रोचक, महान् शिक्षाप्रद तथा पथ प्रदर्शक संग्रह।"

पत्रावली : दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २=) "स्वामी जी के शक्ति सम्पन्न पत्रों का सङ्कलन।"

देववाणी : सचित्र, २=) "अमृततुल्य, आध्यात्मिक अन्त: प्रेरणा से भरे उपदेश।" शक्तिदाई विचार ।।=); भारतीय नारी ।।।); व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १=); मेरे गुरुदेव ।।=); विवेकानन्द जी की कथाएँ १।); कवितावली ।।=)

धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : दो भागों में, सजिल्द, आकर्षक जैकेट सहित, प्रत्येक का २।।।) "धर्म-जीवन की उलझनों का सरस भाषा में सूक्ष्म विवेचन करते हुए उनके परिहार का मार्ग दर्शाया है।"

विवेकानन्द-चरित : हिन्दी में स्वामी जी की एक मात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी, आकर्षक जैकट ६)

श्री रामकृष्ण लीलामृत : विस्तृत जीवनी, दो भागों में, महात्मा गांधी की भूमिका सहित, प्रत्येक का ५)

श्रीरामकृष्ण वचनामृत : तीन भागों में, संसार की प्राय: सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित, सजिल्द, जैकेट प्र. भा. ६); द्वि. भा. ६); तृ. भा. ७)

गीतातत्व : स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु भाई स्वामी शारदानन्द कृत, सुन्दर जैकेट सहित, २।=)

स्वामीजी की अन्यान्य लोकप्रिय पुस्तकें

ज्ञान योग३); भक्तियोग १।=); राजयोग ।।); कर्मयोग १।।=); प्रेम योग १।=); सरल राजयोग ।।); आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १।); हिन्दू धर्म १।।); धर्म रहस्य १); धर्म विज्ञान १।।=); हिन्दू धर्म के पक्ष में ।।=); शिकागो वक्तृता ।।=); मरणोत्तर जीवन ।।); स्वाधीन भारत जय हो १=); प्राच्य और पाश्चात्य १।); वर्तमान भारत ।।)

नए प्रकाशन : जाति, संस्कृति और समाजवाद १); चिन्तनीय बातें १); विविध प्रसङ्ग १=)

विस्तृत सूची पत्र के लिए लिखिए : श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली (अ) नागपुर—१ (म० प्र०)

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

१. दक्खिनी का पद्य और गद्य—ब्रज, अवधी और राजस्थानी आदि की तरह दक्खिनी भी हिन्दी की एक विशेष शैली है। खड़ी बोली के लिए इस शैली का विशेष महत्व है। दक्खिनी में ही खुसरो और कबीर की परम्परा को आगे बढ़ाया गया। हिन्दी खड़ी बोली के गद्य का सबसे पुराना नमूना दक्खिनी में ही मिलता है। इस संकलन में लगभग सा लेखकों की अप्रकाशित रचनाओं का संग्रह है। यह संकलन १२वीं शती से १९वीं शती तक हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक नई कड़ी जोड़ने वाला है। पुस्तक की भूमिका भाषा-विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने लिखी है। संकलन-कर्त्ता हैं श्रीराम शर्मा। पृष्ठ संख्या लगभग छः सौ। मूल्य दस रुपये आठ आना।

२. पञ्चामृत (तेलुगु)—तेलुगु के पुराने पाँच प्रतिनिधि-महाकवियों का परिचय तथा उनकी उत्कृष्ट रचनाओं को नागरी लिपि में देकर अर्थ दिया गया है। इस पुस्तक के द्वारा हिन्दी-भाषी लोग तेलुगु के काव्य का आनन्द ले सकते हैं। लेखक तथा अनुवादक श्री बालशौरि रेड्डी। मूल्य चार रुपये

३. सबरस—गोलकुण्डा के विद्वान् लेखक वजही की दक्खिनी शैली में लिखी गई हिन्दी-गद्य की सबसे पहली और उत्कृष्ट रचना। शब्दों के लिए विस्तृत टिप्पणी और विवेचनापूर्ण भूमिका। यह पुस्तक आज से चार सौ वर्ष पहले लिखी गई थी। प्रस्तुतकर्ता—श्रीराम शर्मा। पृष्ठ संख्या लगभग तीन सौ, डेमी साइज। मूल्य पाँच रुपये।

४. कालिदास और उनकी कृतियाँ— उस्मानिया विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष आचार्य वंशीधर विद्यालंकार की अंग्रेजी में लिखी हुई विद्वत्तापूर्ण पुस्तक।

५. चाबुक—(कहानी-संग्रह) श्री विनायकराव विद्यालंकार की कहानियों का संकलन। प्रत्येक कहानी समाज की वर्तमान बुराइयों पर तीखा व्यंग्य लिये हुए है। इस कहानी-संग्रह ने हिन्दी के कथा-साहित्य की श्रीवृद्धि की है। कहानियों में हैदराबाद और उसके आसपास का जीवन अंकित हुआ है। मूल्य पौने दो रुपये।

६. तुलसीदास—(नाटक) गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर लिखा गया नाटक। नाटक रंगमंच के उपयुक्त है।

व्यवस्थापक **पुस्तक-विक्रय-विभाग, हिन्दी प्रचार सभा**

बाल-साहित्य-माला

बाल-साहित्य-माला के अन्तर्गत सभा ने निम्न छः पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अठपेजी क्राउन साइज, ष्ठ, रंगीन सचित्र छपाई। आकर्षक मुख पृष्ठ। प्रत्येक का मूल्य आठ आना।

१. **बालपद** (७ से १० वर्ष तक के बालकों के लिए कविताए) कवि—श्री वंशीधर विद्यालंकार।

२. **गाँवों की कहानियाँ** (उत्तर-भारत के गाँवों में कही जाने वाली आकर्षक कहानियाँ) लेखक-गनिरंजन पाँडे एम० ए०।

३. **दक्षिण के महापुरुष** (दक्षिण के ५ महापुरुषों का बालोपयोगी जीवन-चरित्र) लेखक श्री किशोर पाँडे एम० ए०

४. **बालकों की कहानियाँ** (बच्चों के लिए मनोरंजक कहानियाँ) लेखक-श्रीराम शर्मा।

५. **दो एकांकी** (७ से १० वर्ष तक की आयु के बालकों के खेलने के लिए प्रभावशाली एकांकी) लेखक—श्री विमला लूथरा एम० ए०।

६. **हैदराबाद के ऐतिहासिक और कला-स्थल** (अजन्ता से लेकर हैदराबाद के चार मीनार का परिचय इस पुस्तक में मिलेगा) लेखक—कमला रानी संघी।

१. दक्खिनी का व्याकरण	श्रीराम शर्मा
२. दक्खिन का इतिहास	श्रीराम शर्मा
३. सैफुल मुलूक	सं० श्री राजकिशोर पाण्डेय एम. ए'
४. कुतुब मुश्तरी	सं० श्री विमला वाघ्रे एम. ए.
५. रहीम का अप्रकाशित काव्य : दम्पती बिलास	
६. पंचामृत	(मराठी)
७. मराठी साहित्य का इतिहास	

सभी पुस्तकों पर उचित कमीशन दिया जाता है। पत्र-व्यवहार निम्न पते पर कीजिये।

सभा, नामपल्ली रोड, हैदराबाद—१

कल्पना

पढ़िए

जिसमें उच्चकोटि के साहित्यिकों और कलाकारों की रचनाएँ आपको मिलेंगी।

कला-प्रसंग : विनोदबिहारी मुखर्जी

सांस्कृतिक टिप्पणियाँ : दिनकर कौशिक

साहित्यधारा : इस स्तंभ के अन्तर्गत पाठकों, लेखकों आदि द्वारा उठाए गए साहित्यिक प्रश्न आदि हैं।

पुस्तक समालोचना : "कल्पना" अपनी निर्भीक समीक्षा के लिए प्रसिद्ध है।

वार्षिक मूल्य १२) ❀ एक प्रति का १)

पृष्ठ संख्या ८०

८३१, बेगम बाज़ार हैदराबाद

सुरुचिपूर्ण, मनोरंजक, एवं शिक्षाप्रद
पाठ्य सामग्री के लिए
अवश्य पढ़िए

भाग्यलक्ष्मी

(पाक्षिक)

मूल्य : केवल चार आने

नमूने की प्रति केवल दो आने के डाक टिकट भेज कर मंगाइए।

: पता :

'भाग्यलक्ष्मी'—:: शिवपुरी ::—लखनऊ

नोट : 'भाग्यलक्ष्मी' में हिन्दी पहेलियों पर अधिकार पूर्ण एवं सारगर्भित टिप्पणियाँ भी रहती हैं।

क्या आप अब तक 'आपका-स्वास्थ्य' के ग्राहक नहीं बने हैं ?

'आपका स्वास्थ्य'
आपके और आपके परिवार के स्वास्थ्य का रक्षक है !

'आपका स्वास्थ्य'
आपका ज्ञान-वर्धन करता है।

'आपका स्वास्थ्य'
आपको सभ्य जगत की गतिविधि से परिचय कराता है।

'आपका स्वास्थ्य'
स्वस्थ मनोरंजन भी है।

'आपका स्वास्थ्य'
इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित हिन्दी में स्वास्थ्य पर एक मात्र प्रमाणिक पत्रिका है।

शीघ्र ही छः रुपए भेज कर ग्राहक बनिए—
वी. पी. भेजने का नियम नहीं है।

व्यवस्थापक—**आपका स्वास्थ्य**—बनारस १

इसे पढ़ना न भूलें !

पाठक परेशान—क्या पढ़ें ?
एजेण्ट परेशान—क्या मँगाए ?
व्यवसायी परेशान—कहाँ विज्ञापन दें ?
एक निदान—'गल्प भारती'
'गल्प भारती'
'गल्प भारती'

स्वस्थ मनोरंजन और बौद्धिक उन्नति
के लिए

गल्पभारती

वार्षिक ४॥)

एक प्रति ।=) *

सं० काशीनाथ
८, इण्डियन मिरर स्ट्रीट
कलकत्ता १२

पूजा अंक अक्तूबर १९५४

सस्ता, सरल, आकर्षक और [illegible]

राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

- कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।
- हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।
- देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं : मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत्, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)-छमाही ३)-एक प्रति ८ आना

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

'आर्थिक समीक्षा'

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के आर्थिक, राजनीतिक अनुसंधान विभाग का पाक्षिक पत्र।

प्रधान सम्पादक : **श्री आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल**

सम्पादक : **श्री हर्षदेव मालवीय**

हिन्दी में अनूठा प्रयास :

आर्थिक विषयों पर विचारपूर्ण लेख

आर्थिक सूचनाओं से ओतप्रोत

भारत के विकास में रुचि रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यावश्यक तथा पुस्तकालयों के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक।

वार्षिक चन्दा : ५ रुपए * एक प्रति का ३।। आना

व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग
अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी
७, जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली.

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

—: विश्व-ज्योति :—

: सम्पादक :

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी. ए.

संचालक : **श्री विश्वेश्वरानन्द** वैदिक शोध संस्थान

विश्व हित की साधना के लिए :

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय
(ग) बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा : ८ रुपए

१०) रु. वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ़्त।

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, 'विश्व-ज्योति'
साधु आश्रम, होशयारपुर (पंजाब)

वार्षिक मूल्य ८ रु. **टेलीफोन नं. २५८७**

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ-शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम, राष्ट्र-निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए 'सम्पदा' सबसे उपयोगी पत्र है।

'सम्पदा' के **योजना अंक** में पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा है **वस्त्र उद्योग अंक** मूल्य १।) रु.

अभी से ग्राहक बनिए।

नमूने के लिए ।।।) आने के टिकट भेजिए।

मैनेजर **'सम्पदा',** *अशोक प्रकाशन मन्दिर*
रोशन-आरा रोड—दिल्ली

'अजन्ता'

की

परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद-द.

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर
इन्स्टीट्यूट ऑफ़ एशियन स्टडीज़, हैदराबाद-द.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुकर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल आफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्व विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र
दर्शन और मनोविज्ञान की
आधुनिक प्रवृत्तियों पर
प्रकाश डालनेवाला
हिन्दी में अपने ढङ्ग का
अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ सिद्धगिरि, बनारस

छप गई !! जल्दी करें !!

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) की

'राष्ट्रभाषा रत्न' गाइड
(भाग १)

१० प्रसिद्ध लेखकों द्वारा इसमें—यशोधरा, स्कंदगुप्त, सं० झाँसी की रानी, हिन्दी साहित्य का इतिहास, सामान्य भाषा विज्ञान, भारतीय शासन, नागरिक शास्त्र और राष्ट्रभाषा व्याकरण नामक पुस्तकों की टीकाएँ, आलोचना तथा सरल प्रश्नोत्तर दिए गए हैं।

लगभग १००० पेज की सजिल्द पुस्तक का मूल्य डाक व्यय सहित १०) है। वी. पी. नहीं भेजी जायगी। मूल्य मनीआर्डर से भेजें।

दूसरा भाग (शेष पुस्तकों के लिए) दिसम्बर' ५४ तक तैयार हो जाएगा। आर्डर नोट करा दें।

पता :—
तेजनारायण टंडन, विद्या-मंदिर,
रानीकटरा, लखनऊ

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६

अक्तूबर १९५४

अङ्क १०

सम्पादक
वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

संचालक
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के
शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

तार : हिन्दी
फोन : ५४५०

अनुक्रम

ओ लोहार सुन १
विनोद रस्तोगी
आदमी पूरा नहीं बना ३
विद्यावती मिश्र
पत्रकारिता का आदर्श ४
हरिशंकर शर्मा
गीत ५
दीप्ति
गांव का झुटपुटा ६
रमाकान्त श्रीवास्तव
तुम्हारी स्मृति ८
वंशीधर विद्यालंकार
चीन का राष्ट्र कवि-'ली-पो' ९
घनश्याम सेठी
आधुनिक जापान की अर्थ-व्यवस्था १९
कृष्ण शंकर व्यास
मलयालम् कहावतें २२
सुधाकर
जर्मन साहित्य पर नीत्शे का प्रभाव २३
प्रेमकिशोर
भारतीय संगीत तथा उसके कुछ महान् साधक २८
मदनमोहन शर्मा
नियोजन-काल में राज्यों की वित्तीय व्यवस्था ३२
अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार
कबीर साहब की सौंदर्य-भावना ४७
परशुराम चतुर्वेदी
सिद्धवाँ ५२
सत्यवती मल्लिक
आण्डाळ की भक्ति-भावना
आनन्दी ५४
शबनम मुस्करा उठी (कहानी)
जगदीश किशोर चतुर्वेदी 'शलभ' ६०
कला-चर्चा
श्री शिव प्रसाद देव शर्मन ६४
चिट्ठी पत्री ६६
परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी, श्रीकृष्ण खण्डेलवाल, रामगोपाल शुक्ल, एन. दत्त
नीर-क्षीर ६९
वेदों के चुने हुए फूल : प्रियव्रत वेदवाचस्पति, अक्षर-रचना : के. सी. आर्यन, बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, दिवालोक : शम्भूनाथसिंह, लोकविजय : सन्तराम बी. ए., सरल भाषा विज्ञान : जगमोहनशंकर एम. ए., स्तालिन : कृष्ण कुमार, बाल-गोपाल : रघुनाथ तिवारी, हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान : सम्पूर्णानन्द, मुकुट : नित्यानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, साहित्य-परिचय : मदनमोहन शर्मा, व्यवहारिक ज्ञान : संतराम बी. ए.
सामयिक ७५
[१] काज़ी नज़रुल इस्लाम, जनता का कवि
[२] नज़रुल इस्लाम की एक कविता
[३] मेसीडोनिया की कविता में क्रान्तिकारी महिला
[४] मधु प्रकृति की स्वास्थ्यप्रद मिठाई
[५] अध्ययन और स्मरण
[६] नकल न कीजिए
सम्पादकीय ८०
वंशीधर विद्यालंकार

चित्र :

चित्र

१ शिव का विषपान :
२ श्रीयुत शिवप्रसाद देव शर्मन महामहिम श्रीयुत के. एम. मुन्शी और श्री लीलावती मुन्शी को शिवधाम दिखा रहे हैं।

चित्रकार : श्री शिवप्रसाद देव शर्मन

एक अङ्क का १) रु०
वार्षिक मूल्य ६) रु०

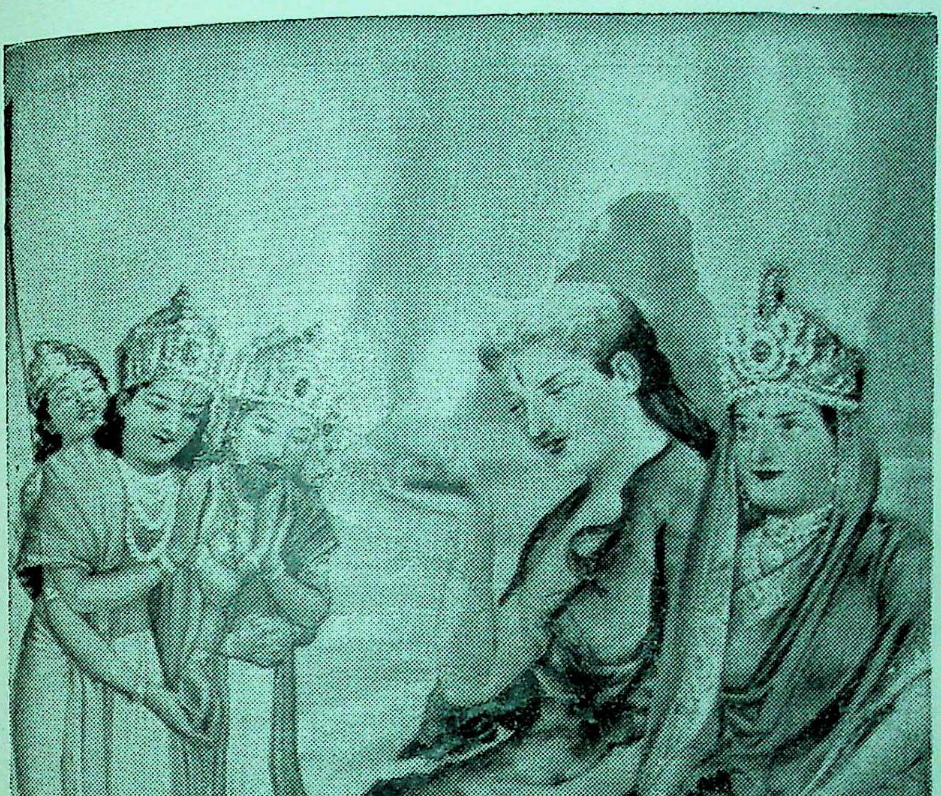

शिव का विषपान

चित्रकार : श्री शिवप्रसाद देव शर्मन

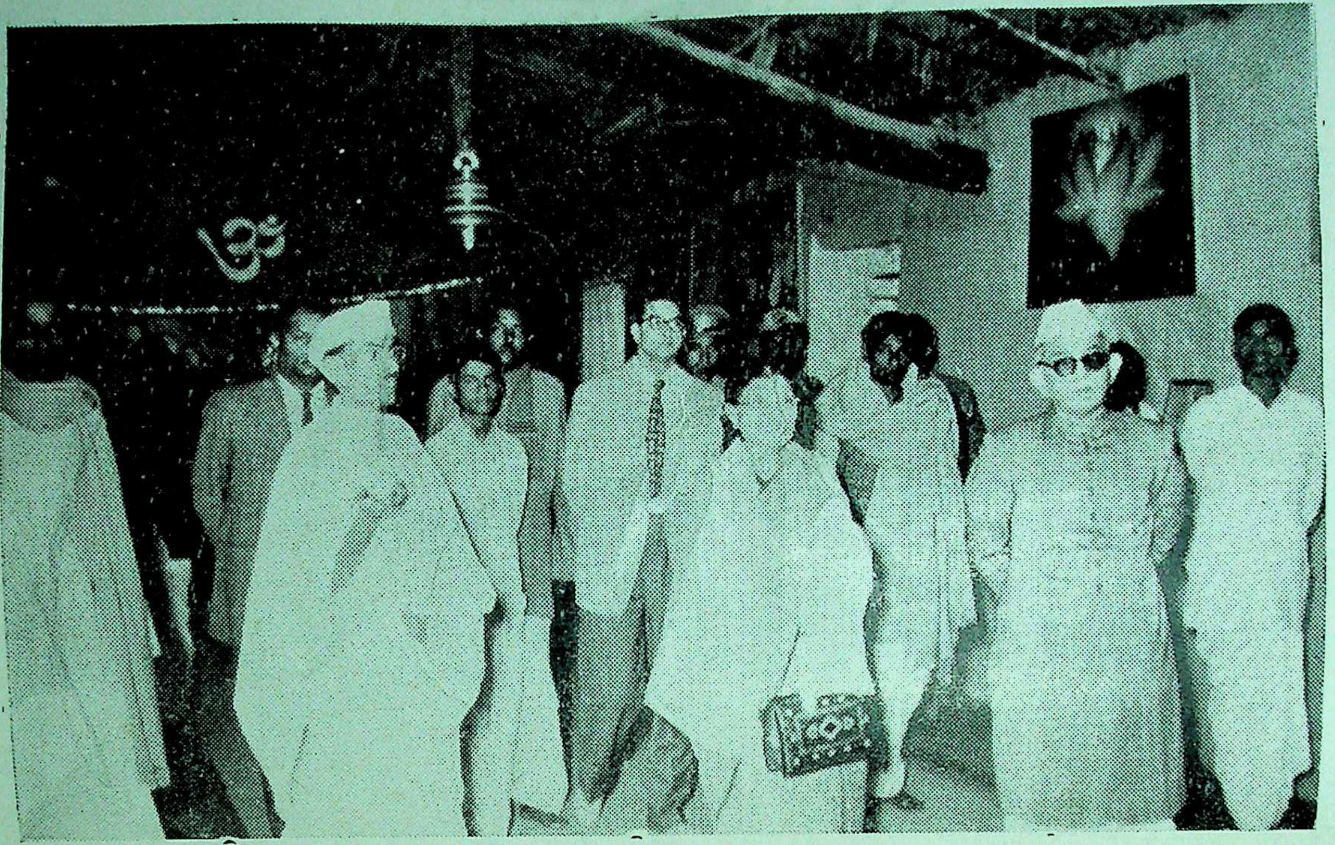

श्रीयुत शिवप्रसाद देव शर्मन महामहिम श्रीयुत् के. एम. मुन्शी और
श्री लीलावती मुन्शी को शिवधाम दिखा रहे हैं

अजन्ता

वर्ष ६ अक्तूबर अङ्क १०

ओ लोहार सुन !

गर्म हो रहा लोहा,
भट्ठी सुलग रही है,
धौंक रहा तू जिसे निरन्तर,
जिसकी ख़ूनी लपटों की गर्मी से—
चेहरा लाल हुआ है,
आँखें चमक रही हैं,
और पसीने से तन भीग रहा है
लाल हो गया लोहा जैसे अंगारा हो !

इस लोहे को पीट पीट कर—
क्या तलवार, तीर, काँता, बरछी—
का तू निर्माण करेगा ?
अथवा तोप बनाएगा,
या टैंक बना कर ही दम लेगा ?
नहीं चाहिए युद्ध,
व्यर्थ यह अस्त्र-शस्त्र हैं

बहुत ख़ून बह चुका,
लाल सारी धरती है;
मानव गिद्ध, शृगाल, श्वान बन—
मानव की बोटी को काफ़ी नोच चुका है;
देख चुके हम महा युद्ध की विभीषिकाएँ,
अंधा, लंगड़ा और अपाहिज मानव—
उसका जीवित फल है !

अरे ! हमारी सन्तानों को मुक्त छोड़ दे,
छीन न चैन और सुख उनका;
उनके शान्ति-कुसुम में क्यों काँटे बोता है ?
इस लोहे से क्या तू—
सुदृढ़ तिजोरी का निर्माण करेगा ?
ऐसी सुदृढ़ तिजोरी जिसमें पवन न पहुँचे !

नहीं चाहिएँ हमको अब ऐसी तिजोरियाँ,
जिनमें कागज़ के टुकड़ों का रूप ग्रहण कर—
क़ैदी हो जायें दीनों की रूक्ष रोटियाँ;
जिनमें भाग्य करोड़ों का बन्दी हो जाए;
जिनके फ़ौलादी पंजों में फँस कर दम—
घुट जाए जन-जीवन-यौवन का !

ओ लोहार सुन—
इस लोहे को दे तू रूप नुकीले हल का,
जिससे हम धरती को जोतें,
बोयें बीज और फिर सींचें,
फ़सलें ऐसी उगें न जैसी उगीं आज तक !

इस लोहे को दे तू रूप तेज़ हँसिये का,
जिससे फ़सलें कटें,
नाज़ का ढेर लगे घर-खलिहानो में !
हो धन-धान्य-पूर्ण यह वसुधा,
नए प्रांत की नई सभ्यता संबल पाए,
मानव मानव सा जीवन व्यतीत कर पाए,
दिन में होली, और—
रात में दीपावलियाँ नित्य मनाए !

—विनोद रस्तोगी

७/१४०, स्वरूपनगर,
कानपुर

आदमी पूरा नहीं बना !

आदमी पूरा नहीं बना !
उल्टी-सीधी खड़ी हो गई मिट्टी की प्रतिमा,
मिल न सकी है किन्तु मनुजता की उसको गरिमा,
राम कब उससें अभी रमा,
कुंभकार का सत्य नहीं हो पाया है सपना !
आदमी पूरा नहीं बना !!

कंपित कर, पद मंद, बन गया किन्तु विशाल उदर,
मूर्छित प्राण, मूक आत्मा, अधरों पर अगणित स्वर,
सिंधु पर जैसे चपल लहर,
स्वयं नियति ने संघर्षों से रँगा इसे कितना !
आदमी पूरा नहीं बना !!

क्षमता से है अधिक मनुज में अब भी दुर्बलता,
कर्तव्यों से कहीं प्रबल है उसमें भावुकता,
नियति का उसको नहीं पता,
स्वार्थ, अहं, हिंसा, असत्य का बन्दी मौन-मना !
आदमी पूरा नहीं बना !!

माना स्वयं पूर्णता भ्रम है चल मन की माया,
किन्तु कला को आत्म-तुष्टि की यदि न मिली छाया,
सिद्धि फल कब उसने पाया,
कलाकार कृति में भर पाया रूप कहाँ अपना !
आदमी पूरा नहीं बना !!

—विद्यावती मिश्र

पत्रकारिता का आदर्श

निर्भय, निष्पक्ष, सत्य आलोचन करना,
पीड़ित प्राणों के कष्ट-क्लेश दुख हरना,
सद्भाव, स्नेह, सुख जन-जीवन में भरना,
कर्त्तव्य कर्म ध्रुव ध्येय ध्यान में धरना,
सिद्धान्त हेतु ही जीवन-जन्म बिताना—
तुम पत्रकारिता का आदर्श निभाना

जो छोह-मोह से सत्य न लिख पाते हैं,
भ्रम-भयवश निश्चित पथ से हट जाते हैं,
जो चाटुकारिता से गुण-गण गाते हैं,
वे सच्चे पत्रकार कब कहलाते हैं,
यश-लिप्सा, धन-धन्धे में मत फँस जाना—
तुम पत्रकारिता का आदर्श निभाना

संक्षिप्त सरल भाषा में भाव सुझाओ,
दृढ़ युक्ति-प्रमाणों से सम्पुष्ट बनाओ,
हित-अनहित का विश्लेषण कर दिखलाओ,
सद्ज्ञान-भानु की रम्य रश्मि छिटकाओ,
अध्ययनशीलता की उमंग उमगाना—
तुम पत्रकारिता का आदर्श निभाना

गम्भीर विवेचन से पथ निश्चित करना,
फिर उसी लक्ष्य साधना में जीना-मरना,
जो उठें हृदय में भाव न उन्हें छिपाना,
मिथ्या प्रवाह में कहीं नहीं बह जाना,
निज भूल मान लेना, न व्यर्थ अड़ जाना—
तुम पत्रकारिता का आदर्श निभाना

पुर, नगर, ग्राम घर-घर सन्देश सुनाना,
सब भाँति सुरुचि-सम्पन्न भाव दरशाना,
है सत्य, शुद्ध, शिव, सुन्दर यह वर वाणी,
मानव ही क्यों जग-जीवन की कल्याणी,
इस कलित कला की उज्वल ज्योति जगाना —
तुम पत्रकारिता का आदर्श निभाना

—हरिशङ्कर शर्मा

लोहामंडी,
आगरा

गीत

प्राण अपरिचित ! मुझमें तुममें
सच कहती सम्बन्ध कहीं है !

बार बार लगता है मानो
कोई दूर पुकार रहा है,
निज पुकार की वंशी पर
मम उर के राग सँवार रहा है,
अलि पुकार के इंगित पर फिर
प्राणों का संगीत सिहरता—
सच कहती हूँ उस पुकार
इन गीतों में सम्बन्ध कहीं है !

बार बार कुछ अनजाना सा
उर को छेड़ छेड़ छुप जाता,
झीने घन-पट ओट इन्दु ज्यों
झलक झलक ओझल हो जाता,
मिल कर भी अप्राप्य सदा के !
तुमको क्या खोना क्या पाना—
सच कहती पर इसी खेल से
मेरा चिर सम्बन्ध कहीं है !

बार बार छल रहा निरन्तर
युग युग से इक छल आकर्षक,
शलभों सा सर्वस्व लुटाते
जिस पर तन मन से आराधक,
किन्तु कभी ऐसा भी होता
छलनेवाला ही छल जाता—
सच कहती इस छल से मेरे
'सब कुछ' का सम्बन्ध कहीं है !

मुझको तो विश्वास, मुझे तुम
एक दिवस अपना ही लोगे,
किन्तु कदाचित् तुमको ही भय
जैसे तुम मुझको खो दोगे,
तभी न रचते रहते बन्धन
नित्य, निरन्तर मुझे बाँधने—
सच कहती मेरी विमुक्ति का
बन्धन से सम्बन्ध कहीं है !

—दीप्ति

गाँव का झुटपुटा

उड़ गया जवानी के रंग-सा
पश्चिमी क्षितिज का रंग गुलाबी
उतर रहा झुटपुटा गगन का
श्रम से शिथिल गाँव के ऊपर
डूब रहा है मुखर हार का
सुनसान के अतल गर्त में धीरे धीरे
दहशत की मारी नागिन-सी
अँधियारे के बिल के अन्दर
घुसी जा रही है पगडंडी

लौट रहे हैं बैल खेत से
चौरासी की “खनन-खनन”
महुओं के रस में घुली जा रही
अपने दिल का दर्द पपिहरा खोल रहा है
प्रिय से दूर सुहागिन का मन डोल रहा है
भूखे बैलों की चिन्ता से
और झुटपुटे के बढ़ने से
घास छीलते जल्दी-जल्दी हाथ
शिथिल से हुए जा रहे

झनक चूड़ियों की भी धीमी पड़ती जाती
दिन की भूखी इच्छाओं-सी
उड़ती फिरतीं अभी भुजैलें
सोंधी-सोंधी महक आ रही
दूर ईख के खेतों की भूभुर माटी की
कुइयाँ के पानी से सिंचित
मरे ढोर की बास
माँद से स्यारों को खींचे ले आती

गाँव का झुटपुटा

उजियारे का मरघट सूना
"हुआ—हुआ" से गूँज रहा है
एक कौर की आश लगाए
काट रहे चक्कर घर-घर के श्वान अपालित
पीपल की ऊँची फुनगी पर
गिद्ध झाड़ते पखने अपने
काँधे से रस्सी लटकाए
शिर पर पानी के कलशे धर
बिछुओं की तालों से,
अपने क़दम मिलातीं
चली जा रहीं ग्राम युवतियाँ
पनघट पर से अपने घर को

चढ़ी दाल में कई उबालों के आने से
सुलग रहे अध बुझे ऊपले
आँखे मलते नींद भरे बालक
आँगन में मचल रहे हैं
धरी हुई लोइयाँ थाल में सिंकने को हैं
परवशता के खूँटों पर गइयाँ औ, भैंसें
हुँकर रही हैं

दूर बँधे बच्चों के ऊपर
ममता भरी निगाह डाल कर,
क्षण-क्षण बढ़ते अँधियारे पर
दीप तिर रहे सँझबाती के
गो-घृत के दीपों से
तुलसी माता की हो रही आरती
पनडुब्बे-से अँधियारा
अवगाह रहे हैं चमगादड़

१०६/१ सीसामऊ,
कानपुर

—रमाकान्त श्रीवास्तव

तुम्हारी स्मृति

मुझे क्यों स्मृति तुम्हारी इस तरह प्रतिक्षण सताती है ?
जिधर देखूँ तुम्हारी मूर्ति मुझको नज़र आती है

हज़ारों कोशिशें करता तुम्हें दिल से भुलाने की
मगर जितना भुलाऊँ याद उतनी अधिक आती है

न कोई चिन्ह बिजली बादलों में छोड़ती अपना
तुम ऐसी कर्म-रेखा, जो मिटाए मिट न पाती है

बनाने से कभी क्या कुछ बना है जो कि बन जाए
कुछ ऐसी बात है जो बात कोई बन न पाती है

नयन में है तुम्हारी छवि, श्रवण में है तुम्हारा स्वर
व्यथा दिल की धड़कनों में तुम्हारी रट लगाती है

हुआ जो दूर आँखों से हृदय से दूर हो जाता,
नज़र से दूर, फिर भी दूर दिल से हो न पाती है

ज़रा से एक झोंके से हवा के, बुझ गए दीपक
हज़ारों आँधियाँ, यह लौ चमकती, बुझ न पाती है

—वंशीधर विद्यालंकार

४५१, हिमायत नगर
हैदराबाद १

चीन का राष्ट्रीय कवि—'ली-पो'

आज, संसार की गति की तीव्रता, और समय के राजनैतिक कोलाहलों में, यह यथार्थता, एक भूली हुई कहानी प्रतीत होती है, कि संसार की, सब से प्राचीन सभ्यताओं में से, एक का सम्बन्ध, एशिया के पूर्वी भाग से है, और इस गौरवपूर्ण संस्कृति के अवशेषों को भी आज, संसार की कुछ स्वार्थी और लोभी शक्तियाँ मिटा देने की चिन्ता में हैं।

चीन का अतीत बहुत ही गौरवपूर्ण रहा है। आठवीं शताब्दि में चीन ने कला और साहित्य—दोनों क्षेत्रों में प्रशंसनीय प्रगति कर ली थी। चीन के इस सर्वतोमुखी उत्कर्ष का साहित्यिक प्रतिनिधित्व तत्कालीन काव्य-रचनाओं में मिलता है। उस समय नाटकों तथा लघु-कथाओं का प्रचलन नहीं था। कविता ही पूर्ण रूप से साहित्य पर छाई हुई थी। प्रमाण स्वरूप चीन में "त्यांग वंश का काव्य-संग्रह" आज भी मौजूद है। जिसके नौ सौ भाग हैं और उन नौ सौ भागों में, अड़तालीस हज़ार नौ सौ कविताएँ हैं, जिन्हें लगभग ढाई हज़ार कवियों ने रचा, परन्तु यह भी स्मरण रहे, कि इस संग्रह का सम्पादन अठारहवीं शताब्दि में, माँचू सम्राट् के आदेशानुसार, फ्यू-हाङ् ने किया था। अर्थात् एक हज़ार वर्ष तक जिन कवियों की रचनाएँ नष्ट होने से बच गईं थीं, वही उक्त संग्रहों में एकीकृत की जा सकीं। कवियों की इस विशाल सूची में थु-फु और ली-पो का स्थान सर्वोपरि है। थु-फु भौतिकवादी थे और उनकी रचनाएँ वस्तुपरक होती थीं परन्तु ली-पो अपनी असाधारण प्रतिभा, भाषा और भाव की अद्भुत अभिव्यक्ति रचना-चातुर्य और शैली में नवीकृतत्व आदि गुणों के आधार पर इतने लोक-प्रिय हुए (और हैं) कि उनके प्रादुर्भाव को चीनी काव्य-क्षेत्र में एक चमत्कार से कम नहीं समझना चाहिए। उक्त गुणों की कवि में इतनी प्रचुरता थी कि उनके समकालीन कवियों में से कोई भी उनकी प्रतिस्पर्धा करने को उद्यत न था। बारह शताब्दियाँ गुज़र जाने पर भी ली-पो की लोक-प्रियता और महत्ता असंदिग्ध और बेजोड़ है।

कवि के विषय में कुछ कहने से पहले यह आवश्यक है कि हम संक्षेप में तत्कालीन चीन की सामयिक और राजनैतिक प्रवृत्तियों का जायज़ा लें।

त्यांग वंश का शासन काल (सातवीं और आठवीं शताब्दी) चीनी साहित्य और सभ्यता का स्वर्ण-काल माना जाता है। ताई-सांग ने, जो इस वंश का दूसरा सम्राट् था, अपने तेईस वर्षीय शासन में विद्रोही प्रदेशों को पराजित किया। मंगोलिया और तिब्बत पर अधिकार कर के अपने राज्य को बढ़ाया। तत्पश्चात् साम्राज्ञी वू-हू ने, (जिनकी गणना चीन के सर्वश्रेष्ठ शासकों में होती है) सातवीं शताब्दि के अन्तिम चौथाई में चीन का सम्मान बनाए रखने के लिए भरसक प्रयत्न किया। साम्राज्ञी के पश्चात् सन् ७१३ में सवान-सोंग ने शासन सम्भाला, और बयालीस वर्ष तक राज्य किया।

चीन के लिए यह युग राजनैतिक सत्ता और देश की समृद्धि का युग था। राज्य की सीमाएँ साईबेरिया से लेकर हिमालय की घाटियों तक और कोरिया से लेकर अब्बीज़ सागर तक फैली हुई थीं। समस्त एशिया से चीन के व्यापारिक सम्बन्ध थे। यह युग चीन की सम्पन्नता का युग था। हवांग-हू और यंग-सी-क्यांग की घाटियों में धान और बाजरे के लहलहाते हुए खेत थे, चमकते हुए खलिहान थे, बल खाती हुई नदियाँ थीं, और पानी से लबालब भरी झीलें थीं। चीन में सवान-सोंग के शासन-काल में, एक बार पुनः सुख, चैन और शान्ति व्यापक हो गई थी, जो गत चार शताब्दियों में निरन्तर युद्धों से नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी।

बौद्ध-मत त्यांग वंश से कई शताब्दियों पहले ही चीन में प्रवेश कर चुका था और देश भर में सर्वत्र बौद्ध मठों का एक जाल-सा फैला हुआ था। चीन निवासियों की संस्कृति में बौद्ध आदर्श और भावनाएँ पूर्ण रूप से समाविष्ट हो चुकी थीं। इसी काल में प्रसिद्ध बौद्ध प्रचारक और पर्यटक 'ह्यून-सांग' ने, भारत में अपनी प्रसिद्ध तीर्थ-यात्रा की। भारत से लौटते हुए वह संस्कृत के हज़ारों ग्रन्थ अपने साथ ले गया। यह पुस्तकें आज तक तत्कालीन 'हान-लिन-एकेडेमी' में सुरक्षित हैं जो चीन में सदा साहित्यिक प्रगति का मुख्य साधन रही

हैं। और जिसमें तब भी केवल प्रतिभाशाली छात्र ही प्रविष्ट हो सकते थे। राज्य की व्यवस्था और अनुशासन में यह संस्था सहयोग देती थी।

'सवान-सोंग' को कला और कविता के प्रति बड़ा अनुराग था। वह स्वयं भी एक प्रवीण संगीतज्ञ था, और अपने प्रमुख दरबारी कवियों की रचनाओं को भी वह स्वयं ही सुर पर बाँधता। उसने राज-भवन में एक संगीतशाला स्थापित की थी, जिसमें पुरुषों तथा स्त्रियों को रागविद्या की शिक्षा दी जाती थी। इतिहास-लेखक यहीं से चीनी नाटक का श्रीगणेश समझते हैं। सम्राट् कलाकारों और गायकों को खूब प्रोत्साहित करते। दरबार में 'ली-पो' और 'थू-फु' सम्राट को अपनी कविताएँ सुनाते और 'लीं-को-ए-आई-नीयस' उन कविताओं को गा कर सम्राट् को प्रसन्न करती। 'यांग-को-ए-आईफीयन', जिसे महल की तीन हज़ार रानियों में सब से सुन्दर माना जाता था, हर समय सम्राट् की पालकी के साथ रहती। आज भी सवान-सोंग को 'रंगीला सम्राट्' (मिन्ग-हू-आङ्) कह कर याद किया जाता है।

परन्तु उस युग का यह शाब्दिक चित्र तब तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक कि इस चित्र के दूसरे रुख को भी न जाँच लिया जाए। यह 'सवान-सोंग' के कमज़ोर व्यक्तित्व का ही परिणाम था कि उसके जीवन-काल ही में, शासन के लिए, उसकी औलाद में ठन गईं। वैसे तो सत्ता-प्राप्ति का यह संघर्ष, त्यांग वंश के प्रारंभिक काल से ही, दरबार की अवस्था को शान्ति से कोसों दूर रखता था। विभिन्न शत्रु ऐसे थे जो इस ताक में रहते कि कब अवसर हाथ आए और वे अनुचित लाभ उठाएँ। कोई समय ऐसा न था कि सीमा के विद्रोह पल भर को रुके हों, राज्य सेना सदा सीमा पर ही व्यस्त रहती। इन झगड़ों में हज़ारों, लाखों सैनिक काम आ जाते। दक्षिण-पूर्वी चीन में तिब्बती सरदारों को और दक्षिण-पश्चिमी सीमा प्रान्त में मंगोल सरग़नों को खुश करने के लिए, सुकोमल और अत्यन्त रूपवती राजकुमारियों का सम्बन्ध इन उजड्ड और असभ्य व्यक्तियों से कर दिया जाता परन्तु फिर भी सीमा के विद्रोह चलते रहे, और इसी सम्बन्ध में सन् ७५१ में, 'गोनी' मरुस्थल के प्रदेश में तीस हज़ार घर उजड़ गए। 'यन-नाङ्' में मंगोलों के विरुद्ध छः वर्षीय युद्ध में दो लाख चीनी मृत्यु को प्राप्त हुए। इन सबके अन्त में और सबसे बढ़ कर, 'एन-लू-शान' का विद्रोह था, जिसने एक भयङ्कर तूफ़ान के समान त्यांग शासन की नींवें तक झँझोड़ कर रख दीं।

'एन-लू-शान' एक कित्तन वंशीय सैनिक था, जिस के, सम्राट् की हरम की प्रमुख रानी 'यांग-को-ए-आई-फ़ीयन' के साथ कुछ अनैतिक सम्बन्ध थे। रानी की कुनीति के कारण, उसे उत्तर के सीमा प्रान्तों का गवर्नर बना दिया गया था। यहाँ उसे देश की उत्कृष्ट सेना का नायकत्व करने का अवसर मिला। और अपनी उमंगों को छिपाए वह उपयुक्त अवसर की ताक में रहा। इस बीच शाही दरबार की अवस्था दिनों दिन शोचनीय हो रही थी, जिस का मूल कारण 'यांग-को-ए-आईफ़ीयन' के प्रति सम्राट् का अच्छा प्रेम था। 'यांग-को-ए-आई-फ़ीयन' का भाई 'यांग-को-ओचिंग' राज्य का मुख्य मन्त्री बना दिया गया था। दूसरे शब्दों में वाजिद अली शाह के शासन की-सी हालत थी।

कालान्तर सन् ७५५ में 'एन-लो-शान' ने जनता को 'यांग-को-ओचिंग' के पंजों से मुक्ति दिलाने के आवरण में विद्रोह कर दिया। उसने शीघ्र ही 'लो-यांग' और हवांग-हो' के उत्तर के समस्त इलाके को अपने आधीन कर लिया। तत्पश्चात् वह राजधानी की ओर बढ़ा—फलस्वरूप एक दिन प्रातःकाल जब मूसलाधार वर्षा हो रही थी, सम्राट् 'सवान-सोंग' को महल छोड़ कर, अपनी जान बचाने के लिए, भेष बदलने पर बाध्य होना पड़ा। जो कुछ स्वामी भक्त सैनिक सम्राट् के साथ थे, उन्होंने इस विपत्ति की जड़ 'यान-को-ओचिंम' को उस के सब सम्बन्धियों सहित मृत्यु के घाट उतार दिया। यहाँ तक कि सम्राट् की प्रेयसी भी इस प्रतिद्रोह का शिकार होने से न बच सकी। उसे सम्राट् की बाहों से खींच कर विलग कर दिया गया। एक सरदार ने उसे गला घोंट कर मार डाला, और एक गढ़ा खोद कर उसे बिना किसी संस्कार के दफ़ना दिया गया। सम्राट् उस दुःखान्त संक्षोभ और क्लेश को सीने में लिए, 'शोह' प्रान्त की ओर चला गया।

सम्राट् के पुत्र 'सु-सोंग' ने शत्रुओं का सामना करने के लिए एक सेना तैयार की, और सन् ७५७ में 'एन-लू-शान' को राजधानी से निकाल बाहर किया। तदुपरान्त उसके अपने बेटे ही ने उस की हत्या कर दी। सन् ७६२ तक सभी छोटे-बड़े विद्रोही प्रदेश पराजित हो गए। यहाँ से आगे हमें इतिहास का

१९५४

देने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसी वर्ष सम्राट् 'सवान-सोंग' राजधानी में लौट आया, और फिर, कुछ समय के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई।

यह ज़माना था, और यह थे हालात। यदि एक ओर देश में सम्पन्नता, समृद्धि, सभ्यता और खुशहाली थी तो दूसरी ओर लम्बे-लम्बे युद्ध थे। उस ज़माने और उपर्युक्त हालात में, 'ली-पो' और उसके समकालीन कवियों ने जन्म लिया। इन हालात ने किस प्रकार कवियों की आत्मा को छुआ है, कैसे उनके विवेक को झिंझोड़ा है और फलस्वरूप उन की रचनाओं में कितनी सजीवता, वास्तविकता और भावना आ पाई है, यह उस ज़माने के साहित्य को पढ़ने से ज्ञात होता है।

ली-पो का जन्म एक साधारण आर्थिक साधनों—वाले घराने में हुआ था। कवि उच्च वंशीय था और पाँचवीं शताब्दि में उसके पूर्वज 'लियांग' प्रान्त[1] के शासक रह चुके थे। कुछ काल के लिए, समय चक्र की गति के साथ यह शाही परिवार मंगोलिया के मरुस्थल में भी जीवन-निर्वाह करता रहा। स्वयं 'ली-पो' ने भी इस बात का उल्लेख कई स्थानों पर किया है। कवि का जन्म 'शोह' में हुआ। यह प्रदेश चीन के सुन्दरतम इलाक़ों में से एक है और 'यंग-सी' नदी में मिल जानेवाली अधिकतर झीलें और नदियाँ इसी प्रदेश में से होकर गुज़रती हैं। कवि "यांग-चो" जो 'मिंग' के शासक-काल में गुज़रा है, और जिसने सर्वप्रथम 'ली-पो' की रचनाओं का अध्ययन और समीक्षा की है, के कथनानुसार कवि का जन्म ७०१ में हुआ और मृत्यु सन् ७६२ में। कई विद्वानों का मत है कि कवि का जन्म सन् ६९९ में हुआ और कुछ ऐसे भी हैं, जो कवि का जन्म सन् ७०५ में भी मानते हैं।

अभी 'ली-पो' छः वर्ष ही का था कि उसने पढ़ना-लिखना सीख लिया और दस वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते, उसने न केवल कनफ्यूशस के विधि-विधान और इतिहास के ग्रन्थ रट डाले बल्कि कविता का स्फुरण भी प्रतिभाशाली बालक को होने लगा। इस प्रकार 'ली-पो' के महाकवि होने के लक्षण परलक्षित हो गए, परन्तु न जाने क्यों, सांसारिक व्यवहारों से कवि को अरुचि हो गई और अठारह वर्ष की आयु में उसने उत्तर पर्वतीय प्रदेश 'ससो-चो-एन' पर स्थित एक आश्रम में रहना आरम्भ कर दिया। प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में विभिन्न सुख होते हैं अतः प्राकृतिक सौन्दर्य में रह कर कवि एकान्त साधना में रत हो गया। स्थानीय गवर्नर ने कवि की ख्याति देख कर उसे एक उच्च पद के लिए आमंत्रित किया परन्तु प्रकृति उपासक ने यह सम्मान ठुकरा दिया। 'ली-पो' ने एक स्थान पर लिखा है:

"मेरे जीवन के बीस वर्ष, मैं कैसे बताऊँ, किस प्रकार बीते हैं,
मेरा सम्पर्क उन ऊँचे-ऊँचे उड़नेवाले बादलों के साथ रहा है,
मेरे हृदय में सदा स्वतन्त्रता की लालसा रही है,
मैं प्रकृति का उपासक ठहरा, मेरा दिल इन पर्वतों से लगा है।"

सन् ७२१ में कवि, जो एक पर्यटक भी था, 'यंग सी' नदी के किनारे-किनारे होता हुआ 'तुंग-तिंग' के सरोवर के सन्निकट उस प्रदेश में जा पहुँचा, जो नदी के तट की उत्तरी दिशा में अवस्थित है। यहाँ वह तीन वर्ष ठहरा और उसका विवाह भी एक भूतपूर्व मंत्री 'सू' की पोती से हो गया। तदुपरान्त वह सपत्नीक उत्तर की ओर अवस्थित 'शान-तोन' प्रदेश की ओर चला। 'शान-तोन' में ली-पो ने अपने जीवन की एक दीर्घ अवधि कविता कहते-कहते व्यतीत कर दी। उसने स्वयं लिखा है :

"मैं तीस वर्ष का हूँ, और बिना किसी थकान के काव्य-रचना कर रहा हूँ।
मेरे घर के सामने से गाड़ियाँ और घोड़े आ-जा रहे हैं।"

उसके इस निखट्टूपन से ऊब कर उसकी पत्नी उसे छोड़ कर चली गई। यहीं से उसके जीवन में एक आकस्मिक परिवर्तन हुआ। मदिरा और संगीत की ओर विशेष झुकाव हो गया। उदार-हृदय तो कवि था ही, किन्तु धन का दान और भोग, दोनों ही से वह भिन्न था। वह फिर घर से निकल पड़ा। इस बार कवि ने लम्बी-लम्बी यात्राएँ कीं और वह 'पो-यांग' नगर में जा पहुँचा। वहाँ 'ली-पो' के मित्र 'तींग-साऊ-ची' ने दिल खोल कर कवि का स्वागत और अभिनन्दन किया। उसने

---

[1] वर्तमान 'क्रांसो' प्रान्त

नदी के किनारे 'ली-पो' के लिए एक विशेष मदिरालय बनवा दिया। एक कविता में 'ली-पो' ने उक्त स्थान और समय का उल्लेख किया है, वह कहता है :

> "गीत मेरे, जहाँ सोने से भी मँहगे थे,
> क़हक़हों का मोल जहाँ मोती और हीरे थे
> वहाँ प्रतिक्षण गुज़रता था, मेरा मस्ती की हालत में
> वहाँ बढ़ कर था मैं दुनिया के सारे बादशाहों से"

सन् ७३८ में 'ली-पो' को पुनः अपने उपर्युक्त मित्र की ओर से 'पिंग-चाव'[1] आने का निमंत्रण मिला। 'ली-पो' के मित्र के पिता यहाँ के प्रमुख सैनिक-अधिकारी थे। 'ली-पो' अपने मित्र के साथ यहाँ खूब घूमा-फिरा। यहाँ 'ली-पो' एक युवक सिपाही 'को-ओसो-आई' के सम्पर्क में आया, जिसने कवि के जीवन के अन्तिम दिनों में उसके प्राणों की रक्षा की। सन् ७४० में 'ली-पो' 'शान-तोन' लौट आया। यहाँ उसका परिचय 'थु-फु' से हुआ। और दोनों महाकवियों में सहोदर भाइयों का-सा निष्पाप, सच्चा स्नेह और अनुराग उत्पन्न हो गया। 'थु-फु' 'ली-पो' का समुचित सम्मान करते थे। समस्त जीवन भर, वह एक-दूसरे को अपनी कविताएँ भेजते रहे। चीन के साहित्यिक इतिहास में दोनों महाकवियों की यह मित्रता, सदा स्मरणीय रहेगी। दोनों कवियों की रचनाओं से इनकी परस्पर मित्रता की गहराई का ज्ञान होता है।

सन् ७४१ में 'ली-पो-' ने दक्षिणी प्रदेशों की भी सैर की। उसने पुरातन महलों को देखा और उन झीलों के किनारों पर बैठ कर काव्य-रचना की जिनमें कमल के फूलों की अधिकता थी। 'येन' के प्रदेश में, 'ली-पो' का परिचय, 'हू-पुन' नामक विद्वान् से हुआ, जो राजधानी में 'सवान्-सांग' द्वारा आमंत्रित था। वह 'ली-पो' को भी अपने साथ लेता गया। 'हो-ची-चांग' और 'हू-पुन' की सहायता से, 'ली-पो' का प्रवेश सम्राट् की राज-सभा में हुआ और धीरे-धीरे 'ली-पो' सम्राट का अन्तरंग बन गया।

सम्राट् ने 'ली-पो' को बड़े स्नेह एवं सम्मान से अपने पास रखा और उसे 'हान-लिन एकेडेमी का सदस्य भी बना दिया। कवि का केवल एक काम था कि वह काव्य-रचना करता रहे और काव्य-प्रेमी, रसिक, संगीतज्ञ, सौन्दर्य और कला के उपासक सम्राट् को अपनी रचनाओं का रसास्वादन कराता रहे।

कवि दरबारी ठकुरसुहातियों से परिचित न था। दरबार के कड़े अनुशासन में भी वह खूब डट कर, पिए हुए आता, और निग्रहानुग्रहसमर्थ सम्राट् की भी सुनी-अनसुनी कर जाता। संक्षेप में अपने उच्छृंखल जीवन का परित्याग उससे नहीं हुआ। नगर के कवियों से कवि की खूब पटती थी। उन्हें भी वह खूब मदिरापान कराता था। ली पो के मित्र और सहयोगी थु-फु ने अपनी एक कविता में ली-पो और उसके मित्रों के जीवन का मार्मिक चित्रण करते हुए लिखा है :

> "ची-चांग' घोड़े पर तो सवार होता है
> परन्तु झूमता रहता है
> जैसे जल की लहरों पर नाव
> झूमती रहती है, हिलोरें ले-ले कर डोलती रहती है
> यदि वह इसी मस्ती के जलवे में, किसी समय
> आँखें झपकता हुआ
> किसी अन्धेरे कुएँ में जा गिरे,
> तो उसकी तह में पहुँच कर
> मज़े से गहरी निद्रा में सो जाएगा।"

> "सो-चीन धर्मात्मा व्यक्ति है
> भगवान् बुद्ध की प्रतिमा के सम्मुख बैठा वह
> अपनी आत्मा की शुद्धि में मगन रहता है
> परन्तु जब उसे पता चलता है, किसी ऐसे स्थान का
> जहाँ प्याले छलकते हों
> तो वह आत्म-शुद्धि की उपर्युक्त झमेले छोड़
> उसी ओर भागता है
> क्योंकि आत्मा की शुद्धि तो यों भी हो सकती है"
> "चाँग-सो बड़ा प्रसिद्ध चित्रकार है,
> मदिरा का रसपान कर के उसे
> अपनी कला पर पूर्ण अधिकार हो जाता है
> वह निर्भीक हो कर,
> राजकुमारों के सामने,
> अपनी टोपी उतारकर फेंक देता है
> और फिर एक ही पल में,

---

[1] 'शान्सी प्रदेश में अवस्थित, वर्तमान 'सी-आन'

वह तूलिका हाथ में थाम कर,
पर्दे पर, बादलों के झुरमुट अंकित कर देता है"

"और ली-पो की बात ?—उसकी तो यह हालत है
कि एक प्याला पी कर,
सौ पद्य लिख लिया करता है
प्रायः वह अपने इन मित्रों के साथ,
राजधानी की किसी मदशाला में ही पड़ा ऊँघता रहता है
मदिरा ही उसके प्राण और मन में समाई हुई है
सम्राट् का बुलावा आने पर,
वह अनुशासन को ठुकरा देता है और कहता है
—आलीजाह, मैं तो मद का—देवता हूँ।"

परन्तु ह्वान-सोंग ली-पो की सब गुस्ताखियों को क्षमा करता रहा। उसे कवि की रचनाओं के प्रति अनुराग हो चला था। ली-पो की कविता में वह प्रतिभा और चमत्कार था, कि उसके सब ऐब उससे ढके रहते थे। सम्राट् उस की कविताओं पर विमुग्ध हो चुके थे। एक बार एक ऐसे ही अवसर पर जब सम्राट् अलूचों की फुलवारी में, अपनी प्रेयसी के साथ बैठे, अपने चतुर्दिक दृश्यों की सुन्दरता का रस ले रहे थे—उन्हें ली-पो की याद आई। 'ली-पो' को जब सम्राट् के सामने लाया गया तो वह मदिरा के नशे में चूर था। होश में आने पर उसने रानी के सामने रखे हुए पुष्पों को आलम्बन बना कर बड़ी सुन्दर कविताएँ लिखीं। राजसभा में इन कविताओं को प्रसिद्ध गायिका 'लो-को-एआयीनीयस' ने गाया और स्वयं सम्राट् ने इन्हें सुर पर बाँधा—

"उड़ते हुए बादलों की-सी शोभा उसके पहरावे में है
और उस के मुखड़े पर एक फूल की-सी चमक
यह तो स्वर्गिक सौन्दर्य है,
जो ऊँचाई पर से ही दृष्टिगोचर होता है—
हिमाच्छादित पर्वतों की चोटियों पर
या जब चाँदनी छिटकी हुई हो
तो परियों के शीश-महल में
परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है
कि मैं तो उसे पृथ्वी पर ही
एक फुलवारी में देख रहा हूँ
पुष्पाच्छादित झाड़ियों पर से वसंत की
मन्द-मन्द पवन बह रही है
और शबनम की बूँदें पत्तों पर चमक रही हैं..."

"वह अलूचों की फुलवारी में
कटहरे का सहारा ले कर, झुकी हुई खड़ी है
वसन्त की पवन से जो उमँगें हृदय में जन्म लेती हैं
उन का अटूट क्रम अब समाप्त हो चुका है
मासूम फूल, फूलों की रानी से मिल कर हर्ष
विभोरित हो उठे हैं
—और सम्राट् इस दृश्य को
मुस्कुराते हुए देख रहे हैं
"वह तो एक शाखा है
विकसित कलियों से लदी हुई
जिस पर शबनम की अगणित बूँदों का बसेरा है
वह तो उस अप्सरा के रूप वाली है
जिस ने एक कहानी में
अपने को अदृश्य रख कर
किसी राजा का मन दुखाया था
ज़रा कहिए तो सही, कि हान के महल में
एक पुराने राजा की प्रियेसी को छोड़ कर
कोई भी है,
जो रूप और सौन्दर्य में इस की समानता कर सके ?"

उपर्युक्त अन्तिम गीत के कारण रानी ली-पो पर कुपित हो गई। "काऊ-ली-शेख" राजसभा का एक उच्चाधिकारी था। एक बार ली-पो अत्यधिक मदिरापान करके दरबार में आया, और उससे उलझ पड़ा, तब सम्राट् की आज्ञानुसार उसे कवि के जूते खोलने पड़े थे। जिसे उसने अपना तिरस्कार समझा था। वह अपने अपमान का बदला लेने के लिए उपयुक्त अवसर की ताक में था। 'काऊ-ली-शेख' ने रानी से जाकर कहा कि ली-पो ने अपनी कविता में रानी की तुलना हान वंश के महल की जिस सुन्दरी से की है, वह 'फ़ाई-यान' है, जो सुन्दर होते हुए भी इस योग्य न थी कि रानी जैसी रमणी का उपमान बन सके—और कभी 'फ़ाई-यान' कभी साम्राज्ञी के पद को प्राप्त न हो सकी थी। और यह भी उसने कहा, कि 'ली-पो' ने यह लिख कर रानी पर व्यंग्य कसा है। नारी अन्त में नारी है, जाल स्वयं भी बुनती है, और दूसरों के बुने हुए जाल में उलझ भी जाती है। और फिर 'यांग-को-आईफीएन' कोई

महिषी तो थी नहीं, जाल बुन कर अपने यौवन और सौन्दर्य के ताने-बाने से, उसने सम्राट् को फँसाया था। यह बात उसे खटक गई। सहिष्णुता की तो रानी में शून्यता थी ही, वह ली-पो को दरबार से निकलवा देने पर तुल गई। जब कभी भी सम्राट् ने उसे किसी उच्च पद पर नियुक्त करना चाहा, रानी ने विरोध किया। यह हालत देख कर ली-पो के निष्पाप हृदय पर चोट पड़ी, और उसने सम्राट् से प्रार्थना की कि वह पर्वतों को लौट जाना चाहता है। रानी के कहने में आकर सम्राट् ने कवि की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। ली-पो उस समय पैंतालीस वर्ष का था और राजधानी में आए उसे तीन वर्ष हो चुके।

'ली-पो' ने फिर अपना पर्यटक का जीवन आरम्भ कर दिया। वह देश भर में फिरता रहा। 'शान-तून' में उसकी भेंट 'सोंग-ची' से हुई, यह 'ली-पो' के उन्हीं साथियों में से एक था, जिनका उल्लेख 'थु-फु' ने अपनी कविता में किया है। पुरानी मित्रता ताज़ी हुई और 'ली-पो' का समय फिर मज़े में कटने लगा। 'सोंग-ची' नानकन में किसी उच्च-पद पर नियुक्त था। यही वह दिन थे जब 'ली-पो' की कविता में स्वच्छ और स्वतन्त्र मनोवृत्ति की स्वस्थ भावना फूटी, और उसे विश्व में सर्वत्र प्राण ही प्राण दिखाई पड़ने लगे। उसने ताव धर्म की पलायनवादी मनोवृत्ति का सहारा लिया और यही कारण है कि उनकी रचनाओं में सन् ७५५ से आगे परिहारवादी (Escapist) प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो उठी हैं।

सन् ७५५ 'ली-पो' के जीवन में एक विशेष महत्व रखता है। इस वर्ष 'एन-लू-शान' ने विद्रोह करके बहुत खून कराने के पश्चात् 'तो-यांग' नगर पर अधिकार कर लिया। 'ली-पो' को भी इस भगदड़ में नगर का परित्याग करना पड़ा। कहा जाता है विद्रोहियों में और सम्राट् की सेना में इतना भयङ्कर युद्ध हुआ कि 'लू' नदी रक्त से लाल हो उठी। 'ली-पो' ने उन दिनों में जो कुछ लिखा उसका एकमात्र विषय विद्रोह, अशान्ति और परस्पर युद्ध ही थे :

"नदी के तट पर, चुनती है नीलोफ़र
किरणों से बना पानी, चमकता-सा दर्पण
प्रतिबिम्ब इसमें दिखा, सुन्दरता की देवी का
सुगन्ध से भरपूर है, दामन जो फूलों का
बहती पवन से आहट हुई और थर्रा
किन्तु सहसा किनारे पर, दो-चार सवार आए
शाखों के पत्तों पर, तलवारें चमकाए
इन सब ने उन्हें देखा, मन काँप उठा भय से"

राजकुमार 'युन्-वाङ्' इस विद्रोह से लाभ उठाने की सोच रहा था। वह उन दिनों 'क्यांग-सी' प्रान्त का गवर्नर था। उसने 'ली-पो' को एक उच्च पद पर नियुक्त कर दिया। परन्तु सन् ७५७ में विद्रोह दब गया और राजकुमार के साथ-साथ 'ली-पो' को भी मृत्यु-दण्ड की आज्ञा सुना दी गई। परन्तु न्यायाधीशों में से एक 'सोंग-सो' 'ली-पो' को दरबार में देख चुके थे। उन्होंने राजधानी जा कर सम्राट् से न केवल मृत्यु-दण्ड की आज्ञा रद्द करवाई, बल्कि यह आज्ञा भी सम्राट् से ले ली कि उसे किसी उच्च पद पर नियुक्त कर दिया जाए। अभाग्यवश सन्देश ले जानेवाला दूत निश्चित स्थान पर पहुँचने से पूर्व ही मारा गया। और मृत्यु-दण्ड की आज्ञा ज्यों की त्यों बनी रही। इस गाढ़े अवसर पर एक दैवी चमत्कार के रूप में 'को-ओसो-आई', जो "अब सेनापति के उच्च पद पर था", को इस बात का पता चला। उसने कवि को मृत्यु से बचा लिया, परन्तु उसे 'यून-आङ्' प्रान्त से सदा के लिए पृथक् कर दिया गया।

तदुपरान्त चार वर्ष तक 'ली-पो' अपने चार अन्य साथियों के साथ जीवन के दिन दुःख, सुख में व्यतीत करता रहा। सन् ७६२ में नानकन के समीप एक गाँव में वह अपने एक मित्र के पास रहने लगा। कवि की ख्याति अब चारों ओर फैल चुकी थी, और जहाँ कहीं भी वह जाता, जनता उसके स्वागत के लिए उत्सुक रहती, और उसके प्रति सम्मान एवं श्रद्धा मिश्रित स्नेह दिखाती। यहीं सन् ७६२ के अन्तिम दिनों में उसका देहान्त हो गया।

कवि की मृत्यु के विषय में भी कई किम्वदन्तियाँ और आख्यान चीन में प्रचलित हैं। विल्किस ने ली-पो की लग-भग एक हज़ार उत्कृष्ट रचनाओं का फ्रांसीसी अनुवाद किया है। उसी के संग्रह से नीचे एक आख्यान का अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है...

"उस रात चाँद की चमक इतनी तेज़ थी कि

१६५४

चाँदनी दिन के उजाले के समान दिखाई दे रही थी। ली-पो बजरे में बैठा नदी के पानी की चंचलता को देख रहा था और मदिरापान कर रहा था कि एकाएक उसे दूर किसी के गाने की आवाज़ सुनाई दी। प्रतिक्षण वह आवाज़ सन्निकट आती गई। अचानक जल में हलचल मच गई और पानी की सतह से जल के दो सोते फूट पड़े। धीरे-धीरे इन सोतों में से दो देवताओं का अविर्भाव हुआ। बजरे में बैठे हुए कवि के साथियों ने देखा कि कवि उन से विदा ले कर, देवताओं के संग चल पड़ा। एक बार संगीत और गायन की ध्वनि सुनाई देने लगी, और धीरे-धीरे दूर होती चली गई, और जाने वाले एक धुन्धलके में अदृश्य हो गए!"

लो-पो के घरेलू जीवन के विषय में चीनी साहित्य का इतिहास मौन है। इस ओर, अधिकतर, चीनी साहित्य (विशेषकर ली–पो के काव्य साहित्य) के आलोचकों ने भी अरुचि दिखाई है। ली–पो के जीवन का थोड़ा सा वृतान्त स्वयं उस की रचनाओं में यत्र–तत्र बिखरा हुआ मिलता है, या फिर चीन के प्रसिद्ध आलोचक 'वे-आई-काऊ' ने थोड़ा-सा प्रकाश, इस विषय पर, कवि के एक स्फुट गद्य के संग्रह की भूमिका लिखते समय डाला है। उन के कथनानुसार "ली–पो ने सर्वप्रथम एक 'सू' वंश की स्त्री से ब्याह किया। जिससे एक पुत्री और पुत्र हुए। कन्या अपने विवाह के शीघ्र बाद ही मर गई। ली-पो ने एक 'ली' वंश की स्त्री के साथ भी विवाह किया, परन्तु उस ने ली-पो से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। तदुपरान्त 'लूह' की एक कन्या के साथ इन का विवाह हुआ, उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिस का नाम 'पू-ली' रखा गया............सन् ७६३ में उस के बड़े पुत्र की मृत्यु हो गई। दूसरा पुत्र घर छोड़ कर कहीं चला गया। निम्नांकित, ली–पो की एक कविता है, जिसे उसने न जाने अपनी किस पत्नी को संकेत भर के लिखा है।--

"मैं एक वृक्ष हूँ, किसी गहरी एवं अन्धेरी कन्दरा में
कोई नहीं जिस से बात ही कर सकूँ कभी
तुम अ-चे' दूर आकाश पर एक चाँद हो
तुम एक क्षण राह चलते चलते रुक गए
मेरी ओर एक दृष्टि दौड़ाई
फिर——— !
जैसे आए थे, वैसे चले गए
कोई भी ऐसा भयङ्कर शस्त्र इस संसार में नहीं है
जो जल की धारा को काट कर, उसे रोक दे
मेरे विचार भी उसी प्रकार ही हैं, जैसे जल की धारा,
सदा यह तुम्हारे साथ-साथ बह रहे हैं"

'ली-पो' के घुमक्कड़ जीवन के प्रति उसकी पत्नियों को जो शिकायत रही होगी, उसकी अभिव्यक्ति उपर्युक्त कविता में 'ली-पो' ने कितनी अतिशयता के साथ की है।

प्रकृति की गोद में जीवन व्यतीत करने की लालसा 'ली-पो' के मन में, ताव धर्म से प्रभावित होकर उत्पन्न हुई थी। धन, दौलत और समाज की लालसा को छोड़ देना, यही ताव धर्म के दार्शनिकों के जीवन बिताने का ढंग था। इसी पूर्ण मुक्ति और पूर्ण स्वतन्त्रता की छाप 'ली-पो' के काव्य पर स्पष्ट रूप से अंकित मिलती है। परन्तु जैसे 'त्यांग-वंश की परम्परा' के लेखक ने लिखा है कि "मुक्ति या तो पूर्ण भोग से मिलती है या पूर्ण त्याग से"—ली-पो ने भी योग को नहीं प्रत्युत भोग को अपनाया। जहाँ उसकी कविता में आत्मा और परमात्म के गीत, रम्य नदी-सरोवर, गगन चुम्बी, हिमाच्छादित शिखर, कविता से भरी निर्जनता और छलकता हुआ मधुकलश सभी का समावेश है, वहाँ ताव धर्म के अन्ध विश्वासों की भी एक झलक हमें देखने को मिलती है। ताव-धर्मी विचारधारा के अनुसार स्वर्ग पूर्वी समुद्रों में किसी स्थान पर स्थित है। 'ली-पो' की विभिन्न रचनाओं में ऐसे काल्पनिक स्वर्गों की झलक मिलती है।

"समुद्रों की यात्रा करनेवाले उस द्वीप का वर्णन करते हैं, जो पूर्व में बहुत दूर स्थित है। यह द्वीप समुद्र की धुन्धली लहरों की वीरानियों में खोया हुआ है।"

"इस द्वीप का स्वप्न देखने के लिए मैं एक चाँदनी रात में झील के दर्पण जैसे जल पर होता हुआ चल दिया। चाँद भी झील की तह में मेरे साथ-साथ दौड़ता रहा। उस स्थान पर आज भी भूतपूर्व राजकुमारों के महल हैं। मैंने वहाँ बन्दरों की तीखी आवाज़ें सुनी, सोतों से फूटते हुए रंगीन पानी को देखा और राजकुमारों की खड़ाऊँ पहन कर, बादलों की सीढ़ी पर चढ़ता ही चला गया।"

"सीढ़ियाँ समाप्त हो गई तो मैंने देखा कि सहस्रों

मोड़ मेरे सन्मुख फैले हुए थे, और रास्ते अत्यन्त पेचीदे थे। मैंने देखा फूलों से बनी हुई दीवारें, पथिकों को रोकने के लिए बनाई गई थीं।"

"ऊपर बादलों के झुरमुट एकत्रित हो रहे थे, और मुझे बरसने की धमकियाँ दे रहे थे। और नीचे हज़ारों धाराओं में बँटा हुआ, रेलता हुआ पानी, धुन्धलके को तोड़ कर उसमें अदृश्य हो रहा था। एक ओर कानों के परदे फाड़ देनेवाला कोलाहल सुनाई दिया। फूलों की दीवारें चूर-चूर हो गईं। आकाश की ओर जानेवाला द्वार खुल गया, उस द्वार से मैंने देखा, सूर्य, चाँद और तारे बस्ती के महलों पर चमक रहे थे।"

पवन पर सवार, धनक वस्त्र धारण किए हुए, फूलों से टूट कर गिरती हुई पंखड़ियों के समान, अप्सराएँ मेरे सन्निकट उतरीं। उनके साथ ही सुन्दर पक्षी भी थे जो रबाब बजा रहे थे, और परियाँ गीत गा रहीं थीं। मैं आश्चर्य-चकित रह गया और मेरे हृदय पर एक अन्य भय की कैफ़ियत छा गई। मैंने अपने आपको थामने का प्रयत्न किया, परन्तु मैंने देखा मैं अपने बिस्तर पर जगा हुवा हूँ।

"उस काल्पनिक संसार की चमक समाप्त हो चुकी है।"

"यही हाल जीवन की सब ख़ुशियों का भी है। सुख-दुःख बहते हुए पानी के समान बह जाते हैं। मैं तुम्हें छोड़ कर चला जाऊँगा, कब लौटूँगा? यह मत पूछो। मुझे मनोहर और प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर पर्वतों पर जाने दो। यहाँ मेरा दम घुटता है। प्रकृति मुझे जीवन दान देगी।"

परन्तु संसार से अरुचि और भोग-विलास के त्याग की भावनाएँ उसके सीधे जीवन पर ही हावी हैं। क्योंकि वह नगर, और नगर की मधुशाला का भी मतवाला था। वह घुमक्कड़ तबीयत और उद्विग्न मस्तिष्क का आदमी था। परन्तु "वी-आई-हाऊ" के कथनानुसार "जितना दिन उजियाला होगा, उतना ही साया भी गहरा होगा।" ली-पो एक प्यारे व्यक्तित्व का स्वामी, लोकप्रियता उसकी दासी थी। जहाँ भी जाता उसका ला-उवायलीन उसके लिए मित्र उत्पन्न कर देता—राजा हो या राजकुमार, तत्व धर्म का अनुयायी हो अथवा कनफ्यूशस के विधान का प्रचारक दरबारी हो या विद्वान्, नगर का शिक्षित हो या गाँव का गँवार, ली-पो हर व्यक्ति के प्रति एकसे खलूस का ही प्रदर्शन करता। चाहे वह राजा को सम्बोधित करके कह रहा हो अथवा किसी बाज़ारी मधुशाला में गानेवाले के सारंगिये को।

'एन-लू-शान' का विद्रोह और उसके पश्चात् जो कुछ हुआ, उसका प्रभाव कवि के मानसिक पटल पर से जीवन के अन्तिम क्षण तक भी न मिट सका। उसके जीवन की अन्तिम घड़ियाँ क्लेश, अशान्ति दुःख और दुविधा से परिपूर्ण थीं। जीवन में ली-पो ने मूर्धन्य होने का प्रयत्न भी कम नहीं किया। यश, कीर्ति, सम्पत्ति और शान्ति प्राप्त करने का भी प्रयत्न उसने किया। परन्तु उनके नीचे की धरती गीली मिट्टी के समान डर कर के पैरों के नीचे से निकल-निकल जाती रही। असफलताओं ने गहरे कचोके उसके हृदय पर लगाए—फलतः पलायनवाद और परिहार की विचारधारा उसके मन में गहरी उतरती गई। आध्यात्मिकता ने उसे सान्त्वना दी, शान्ति प्रदान की! चीन का इतिहास तो ली-पो के सम्मुख था ही, थोड़े से चिन्तन और अध्ययन के पश्चात् उसे ज्ञात हो गया कि समय-चक्र के सामने किसी की पेश नहीं चलती। यही कारण है कि उसका काव्य उदास-उदास है, उन्माद एवं हर्ष के दौरों में भी वह उदासी के चक्कर से बरी नहीं है:

"तुम देखो लपकते शोलों को
तुम देखोगे इनमें भव्य महल
किन्तु जब ढूँढोगे राजों को
झट ओझल हो जाएँगे महल
बाहर रात है जोबन पर
हर ओर अँधियारा छाया है

………………

मैं हर्षित इसकी मस्ती पर
भगवान् के खेल दिखाती है
किन्तु तुम देखो शोलों को
देखोगे बीते राजों को
देखोगे उनके महलों को
और बीते उनके शासन को
तुम क्या जानो कितने सपने
इन शोलों और लपेटों में समाए हैं
आओ देखो यह सपने तुम

जल्दी ही सवेरा आएगा
फिर काम करोगे अपने तुम
यह जादू सब मिट जाएगा..."

("अलाव पर")

"प्रियतम यहाँ थे तुम,
तो मैंने घर को फूलों से सजाया था
परन्तु तुम्हारे अभाव में आज सेज सूनी है
बिछौना लपेटा हुआ है
मैं रात भर जागती रहती हूँ
वह सुगन्ध जिसको छोड़ कर गए थे,
आज भी महसूस होती है
मैं निःश्वास छोड़ती हुई,
तुम्हारी याद में जलती रहती हूँ
पेड़ की शाखाओं से, मुरझा कर,
पत्ते धरती पर गिरे जा रहे हैं
मैं तुम्हारी याद में रोती रहती हूँ
हरी मखमल पर धरती की
चमकती शबनम की बूँदें"

["विरह"—एक स्फुट गद्य-गीत"]

"एक सुनहरे घरौन्दे में तेरा बचपन व्यतीत हुआ
यौवन आया, जवानी और सौन्दर्य
तेरे चेहरे पर दमकने लगे
—और शाही महल में तुझे
क़ैद कर लिया गया
रेशमी और मखमली वस्त्र से तू सजाई गई
एक मोतिया की वेणी से तुम्हारे
काले, लहराते केश बाँध दिए गए
जिस प्रकार काले बादलों में से सूर्योदय होता है
वैसे ही तो सम्राट् के सम्मुख उदय हुई
परन्तु !—
नृत्य और संगीत के वह क्षण
कितने जल्दी गुज़र गए
थक कर तू लौटी
उन क्षणों की स्मृति मन में समोए,
जो सम्भवतः आकाश पर जा कर
उषा की सेज पर सो गए हैं
भोर की प्रतीक्षा में......

["हरम"—एक स्फुट गद्य-गीत]

"छाई है उदासी
पतझड़ की हवाओं में
गिरे थे जो पत्ते
उड़े मिल कर सारे
हुए वह इकट्ठे
बना ढेर उनसे
मगर फिर से उड़ के
हवाओं में बिखरे
कहाँ है ? वहाँ है ?
बता तू कहाँ है ?
मेरे दिल की मस्ती
बता तू कहाँ है ?
मुझे कब नज़र
आए भी तेरी सूरत ?"

(पतझड़)

"कौन-सी यह ऋतु है
किसका यह गीत है
आमों से आया था
एक कोयल का गीत था
बैठे बैठे गाती थी
गीत सुनाए जाती थी
और हवाएँ आती थी
गीत सुन कर जाती थी
प्याला मेरा मीत था
कोयल का गीत था
मैं दहलीज़ पर अपनी
मस्ती में सोया था
सपनों में खोया था
एकाएक नींद गुम हो गई
जाग उठा, मैं जाग उठा
और लो, फिर सुना नग़मा
फूलों में एक पक्षी का
—यह कोयल का गीत था
कोयल जब कूक चुकी
मन में हूक हूक उठी
सोच एक मुझे आई
साथ अपने दुःख लाई
फिर भरा प्याला मैंने
और उठा कर उसको

अधरों से भिड़ा कर उसको ज़ोर से लगा गाने
मन को अपने बहलाने
प्रतीक्षा थी इसकी
कि आकाश पर हो चन्दा"

["बहार का एक दिन"]

"चारों ओर बसन्त की बहार छाई हुई है
मैं मधुकलश को लिए हुए
वसन्त के बोझ से घने एक वृक्ष के,
नीचे बैठा हूँ, अकेला—
—मेरे सब साथी कहाँ हैं ?
देखो आकाश से मुझे चाँद देख रहा है
मैंने भी उसे देखा
और प्याले को हाथ में उठा कर कहा —
यह देखो मेरे आगे मेरा साया दौड़ रहा है
अरे हम तीन हैं—मैं अकेला नहीं हूँ
आज की रात हम तीनों साथी हैं
प्याला—शराबी—और शराबी का साया..."

["चाँद, मैं और मेरा साया"—एक गद्यगीत]

"तुमसे तो यह डसनेवाले काँटे अच्छे, हँसते फूलो
चँचल काँटे-लाँबी दूब की ठण्डी छाँव के मतवाले
अपनी जलती जिह्वा से चाट-चाट कर दुखते छाले
जो हर राही का दामन थाम के कहते—
ओ जानेवाले चलते-चलते जब तुम एक दिन
फाँद के यह गुम-सुम वीराना,
दूर किसी झरने के किनारे
डरते-डरते छेड़ो कोई धीमा-धीमा मस्त तराना
हमने ही विष को रस में बदला था भूल न जाना..."

["काँटे-कलियाँ"]

यद्यपि ली-पो की यह इच्छा थी की मृत्यु के पश्चात् उसे एक विशेष-स्थान 'हरे टीले' पर दफ़नाया जाय। परन्तु मृत्यु के पश्चात् उसके अवशेषों को 'असदर' पहाड़ी पर गाड़ा गया। कवि की मृत्यु के उन्नीस वर्ष बाद 'ताङ्-तू' के गवर्नर ने उस पहाड़ी पर एक स्मारक बनवाया। सन् ८५५ में जब चीन के सन्त कवि 'पो-चो-आई' उपर्युक्त स्मारक के दर्शनों के लिए आए तो उन्होंने उसे भग्नावशेष अवस्था में देखा। इस सम्बन्ध में उनकी निम्नलिखित कविता बहुत प्रसिद्ध है:

"साई शेख नदी के तट पर
ली-पो की ढेरी है
दूब के उन क्रमहीन मदानों के बीच
जो बादलोंवाले आकाश के नीचे
फैलते चले गए हैं
आह, घास-फूस से ढकी हुई इस धरती के गर्भ में
उस मनुष्य के अवशेष पड़े हैं
जिसकी रचनाओं ने एक समय था कि
चारों दिशाओं में धूम मचा दी थी
सभी कवि अभागे होते हैं
किन्तु ऐ चीन के गौरव,
तुझ से बढ़ कर अभागा कोई नहीं"

सन् ८८१ में 'फान-चो-आङ्-चीन' ने कवि के अवशेषों को हरे टीले में मुन्तकिल कर दिया।

अनेक शताब्दियाँ बीत जाने पर आज भी इस महाकवि की ख्याति और लोकप्रियता ज्यों की त्यों अक्षुण्ण बनी हुई है, और आज भी चीन का चित्रकार मस्ताने कवि की मस्तानी भाव भंगिमाओं का चित्रण करने में अपना गौरव समझता है।*

—घनश्याम सेठी

C/o
सेठी ब्रदर्स, अमीरा कदल
श्रीनगर (काश्मीर)

---

*[नोट :—ली-पो द्वारा रचित प्रायः सभी रचनाओं का अनुवाद यूरोप की प्रमुख भाषाओं में हो चुका है। अठारहवीं शताब्दी में इनकी सभी रचनाओं का गम्भीर अध्ययन किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में जोज़फ़ एडकिन्ज़ द्वारा किया गया, ली-पो की कविताओं का और फिर स्फुट गद्य का अनुवाद 'जनरल आफ़ पेकिंग ओरियन्टल सोसाइटी' द्वारा प्रकाशित हुआ। हाल ही में ली-पो की रचनाओं के फ्रांसीसी अनुवाद (प्रॉमलेन) और अंग्रेज़ी अनुवाद (आर्थर वेली) फिर प्रकाशित हुए हैं। ये निस्सन्देह एडकिन्ज़ द्वारा किए गए अनुवाद से बहुत सुन्दर और सरल बन पड़े हैं। कीलिंग, और मॉलें द्वारा किए गए फ्रेंच अनुवाद भी बहुत सुन्दर हैं।]

आधुनिक जापान की अर्थ-व्यवस्था

पिछले महायुद्ध में जापान की अर्थ व्यवस्था प्रायः छिन्न भिन्न हो गई थी। सन् १९४५ में उसे बिना शर्त आत्मसमर्पण करने के साथ ही साथ अपने अधीनस्थ आधे साम्राज्य को भी खोना पड़ा था। लगभग ८½ करोड़ की आबादीवाले इस भूभाग के निकट अपनी भूमि का केवल १५.५ प्रतिशत हिस्सा ही कृषि कार्य के योग्य है। सन् १९४५ से लेकर सन् १९४८ तक यहाँ के निवासियों को अपनी आय का लगभग ७० प्रतिशत केवल भोजन की सामग्री जुटाने में व्यय करना पड़ता था। सन् १९४८ से विकास के कुछ स्पष्ट चिन्ह दीखने लगे हैं। इसका मुख्य कारण अमेरिका से प्राप्त होने वाली सहायता रही है। सन् १९४५–५० के बीच जापान को अमेरिका से लगभग २ अरब डालर की सहायता प्राप्त हुई है।

अमरीकी सहायता का प्रभाव : अमरीकी पूँजी से जापान ने अपनी टूटती हुई अर्थ व्यवस्था को संभालने का प्रयत्न किया। प्रतिवर्ष नियमित रूप से अमेरिका ५० करोड़ डालर बराबर देता रहा है। प्रवासियों के आगमन के कारण तथा अमरीकी फ़ौजी अड्डों के होने के कारण जापानी उद्योगों को बराबर प्रोत्साहन मिलता रहा है।

अमरीकी सहायता और मार्ग दर्शन के फलस्वरूप जापान ने सन् १९४९ की समाप्ति के पहले विशाल मुद्रास्फीति को अपने वश में कर लिया। सन् १९५० में औद्योगिक उत्पादन के स्तर में सन् १९३४–३६ से लगभग ८६.६ प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। यद्यपि जापान युद्ध से पहले की स्थिति को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाया था परन्तु फिर भी उसने पहले के जीवन-यापन के स्तर का ७० प्रतिशत वापस पा लिया था।

कोरिया युद्ध का प्रभाव : जापान के औद्योगिकों को कोरिया युद्ध से बहुत अधिक लाभ हुआ है। अमरीकी फ़ौजों के उपयोग में आने वाली अधिकतर सामग्री जापान के कारखानों में ही बनती थी। इसी युद्ध के फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन का दशमांक जो युद्ध पूर्व के स्तर का ८६.६ प्रतिशत था मई सन् १९५१ तक १३१.५ प्रतिशत हो गया। निम्न तालिका में सन् १९४९–५१ के बीच जापान में होने वाली उत्पादन वृद्धि का हमें स्पष्ट विवरण मिलता है :

कच्चा लोहा	१२०
इस्पात	६०
इलेक्ट्रीलिटिक तांबा	५०
कास्टिक सोडा	२०
इलेक्ट्रोलिटिक प्रणाली	६०
गैस प्रणाली	७०
कार्बाइड	८०
कपास की कताई	७०
सीमेण्ट	३०

इसी तरह जापानियों को अमरीकी मुद्रा प्राप्त करने में बहुत अधिक सहायता कोरिया युद्ध ने प्रदान की। अमेरिका द्वारा जापान को कुल मिला कर सन् १९५१ में ५९,२०,००,००० डालर तथा १९५२ में ८२,४०,००,००० डालरों की आमदनी हुई। वस्तुतः यह आय जापान की अर्थ-व्यवस्था में नई क्रान्ति लाने का प्रधान कारण रही है। जापान ने अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ करने का भरसक प्रयत्न किया है पर वह अभी तक युद्ध पूर्व की स्थिति तक नहीं पहुँच सका है।

वर्तमान स्थिति की एक झलक : जापान की वर्तमान आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है। जापान को अपने आवश्यक खाद्यान्नों का २० प्रतिशत विदेशों से मँगाना पड़ता है। इसका मूल्य लगभग ५०,००,००० डालर होता है। इसे अपने स्थापित उद्योगों के लिए ८७ प्रतिशत कच्चा माल बाहर से मँगाना पड़ता है। अधिकतर जापान को अपने उद्योगों के विकास के लिए डालर क्षेत्र पर ही आधीन रहना पड़ता है। निम्नांकित आँकड़ों से डालर क्षेत्र हुए सन् १९५१–५२ में होनेवाले आयात का औसत स्पष्ट हो जाएगा :

चावल	४७.७
गेहूँ	९९.७
चीनी	५५.७
कच्चा लोहा	५०.९

कोयला	७५·३
पेट्रोलियम	६७·४
कपास	६४·२
सोयाबीन	६५·१
नमक	३६·६
उगदी	७६·६
ऊन	६·६
खाल और चमड़ा	३६·६

इस तालिका से स्पष्ट है कि जापान को अधिकतर वस्तुओं के लिए डालर क्षेत्र पर निर्भर रहना पड़ता है। कोरियाई युद्ध में यदि इतने अधिक डालर जापान के हाथ न लगे होते तो निश्चय ही जापान को मुश्किल दिनों का सामना करना पड़ता।

खाद्यान्नों की कमी पूरी करने के लिए जापान को प्रतिवर्ष ३० से ३५ लाख टन खाद्यान्न की व्यवस्था करनी होती है। युद्ध के पहले तो चावल की कमी को वह कोरिया और फ़ारमोसा से लेकर पूरी कर लेता था। अब उसे दक्षिणी-पूर्व एशिया से केवल ५ लाख टन खाद्यान्न प्राप्त होते हैं और उसे अमेरिका कनाड़ा एवं आस्ट्रेलिया का सहारा लेना पड़ता है।

जापान ने समुद्र से भोजन प्राप्त करने के लिए मछली उद्योग को विकसित करने का पूरा प्रयत्न किया है। लेकिन पिछली लड़ाई की हार के कारण उसे ३ लाख टन के मछली पकड़ने के जहाजों से हाथ धोना पड़ा है। साथ ही उत्तरी क्यूराइल्स, दक्षिणी सखालियन कोरिया और फ़ारमोसा के किर्नाख से भी हाथ धोना पड़ा है। इन क्षेत्रों से लगभग ३२० करोड़ मछली पकड़ी जातीं थी लेकिन अब तो जापान इस क्षेत्र में प्रवेश भी नहीं पा सकता। अब जापानी मछुओं को बड़ी नरमी से काम लेना पड़ता है।

गत मार्च में हाइड्रोजन बम का जो विस्फोट हुआ था उसका भी बुरा प्रभाव पड़ा है। प्रशांत महासागर के विकनी क्षेत्र की ही मछलियाँ नहीं मरी अपितु आस पास के क्षेत्र की मछलियाँ भी रेडियो एक्टिव हो गई। इससे जापानी मछुओं की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई है।

जापान ने बड़े परिश्रम से लोहा, फ़ौलाद, जहाज़ निर्माण रसायन हलकी धातु एवं मोटर आदि का उद्योग आरम्भ किया था। इस उद्योग से बनी चीज़ें फ़ौजों और नौ सेना के काम आती थी पर उनके (फ़ौजों के) न रहने से ये उद्योग समाप्त प्राय हैं। सन् १६४६ में जापान ने फिर जहाज़ बनाने का उद्योग आरम्भ कर दिया है। आज उसके पास लगभग १०० गोदाम हैं जिनमें ८,००,००० टन के जहाज़ तैयार होते हैं।

लड़ाई के बाद से उसने कपड़े के उत्पादन की ओर विशेष ध्यान दिया हैं। सन् १६४५ में उसने लगभग ५ करोड़ ५० लाख वर्ग गज़ कपड़ा तैयार किया था। सन् १६५० में जापान ने १५२ करोड़ ४० लाख वर्ग गज़ कपड़ा तैयार किया। कपड़े के उत्पादन में इतनी अधिक बढ़ोतरी का कारण अमेरिका से मँगाई हुई मशीने हैं। यद्यपि ये मशीनें थोड़ी महँगी अवश्य होती हैं पर ब्रिटेन की मशीनों से बहुत अधिक उपयोगी होती हैं। जापान को फिर से अपने बाज़ारों को वापस लेने में बहुत अधिक श्रम करना पड़ता है। वह कपड़े के उत्पादन व्यय को कम करने का प्रयत्न कर रहा है।

जापान मोटर एवं रेडियो उद्योग के विकास का हर संभव प्रयत्न कर रहा है। वह हलकी और सस्ती बेबीकार तथा हल्के तेज चलनेवाले डिज़ल इंजन की मोटर तैयार करने की योजना बना रहा है। वह सस्ते एवं सुन्दर डिज़ाइन के रेडियो सेट बनाने का भी प्रयत्न कर रहा है। रेडियो सैट और उसके आवश्यक पुज़ों को भी वह एक ही जगह बनाने की योजना बना रहा है। निसंदेह जापान औद्योगिक विकास के हर संभव प्रयत्न कर रहा है।

व्यापारिक स्थिति : जापान की व्यापारिक स्थिति धीरे धीरे सुधर रही है। युद्ध से पूर्व जापान का एशिया के साथ जो व्यापार होता था उसमें ६४ प्रतिशत निर्यात और ५३ प्रतिशत आयात होता था। लेकिन सन् १६५१ में स्थिति का भी बदल चुकी है। अब एशिया के साथ जापान का ५१ प्रतिशत निर्यात और २८ प्रतिशत आयात का व्यपार होता है। निम्न दो सरणियों से जापान के विदेशी व्यापार की स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है।

जापान का विदेशी व्यापार :

सन् १६३४—३६·

	निर्यात	आयात
एशिया	६४ प्रतिशत	५३ प्रतिशत
आस पास के देश	४४ प्रतिशत	३७ प्रतिशत

१९५४

दक्षिणी एशियाई देश	१७ प्रतिशत	२५ प्रतिशत
अन्य देश	१९ प्रतिशत	२५ प्रतिशत
योग	१००	१००

सन् १९५१

	निर्यात	आयात
एशिया	५१ प्रतिशत	२८ प्रतिशत
आस पास के देश	९ प्रतिशत	४ प्रतिशत
दक्षिणी एशियाई देश	३ प्रतिशत	२० प्रतिशत
उत्तरी अमेरिका	१६ प्रतिशत	४६ प्रतिशत
अन्यदेश	३३ प्रतिशत	२६ प्रतिशत
योग	१००	१००

सन् १९३४-३६ में जब एशिया के साथ जापान अ६४ प्रतिशत निर्यात और ५३ प्रतिशत आयात व्यापार होता था तो निस्संदेह यह जापान के विदेशी व्यापार का महत्वपूर्ण भाग था। लेकिन उस समय कोरिया और फ़ारमोसा जापान के उपनिवेश थे। एशियाई देश जापान को अनाज और कच्चा माल देते थे। और जापान उन्हें औद्योगिक उत्पादन तथा सूती वस्त्र देता था। इस व्यापार में जापान का व्यापारिक संतुलन पक्ष में ही हुआ करता था। इसके विपरीत अमेरिका से कच्ची कपास के अधिक आयात होने के कारण जापान का व्यापारिक संतुलन विपक्ष में रहता था और इसी कमी की पूर्ति दक्षिणी पूर्वी एशिया से होने वाले व्यापार से होती थी। यह थी युद्ध के पूर्व की स्थिति।

परन्तु आज की स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। आज जापान को खाद्यान्न २० प्रतिशत बाहर से मंगाना पड़ता है और उद्योगों के लिए ८७ प्रतिशत कच्चा माल मंगाना पड़ता है। विशेषता यह है कि उन को छोड़ कर अन्य वस्तुओं के लिए जापान को प्रायः डालर क्षेत्र पर निर्भर रहना पड़ता है।

जापान के निर्यात की वस्तुओं में सबसे महत्त्वपूर्ण वस्त्रादि होते हैं और उनमें भी सूती वस्त्र का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। सूती कपड़ों को अधिकतर दक्षिणी पूर्वी एशियाई देश खरीदते हैं। युद्ध से पहले जापान का सबसे अधिक निर्यात २ अरब ७० करोड़ गज़ का था पर अब तो यह १ अरब गज से भी कम का है। इसका मुख्य कारण यह है कि एशियाई देशों ने स्वयं ही वस्त्र के मामले में आत्मनिर्भर होने का प्रयत्न किया है। भारत में पहले जहाँ ९० करोड़ गज़ का आयात होता था वहाँ लगभग १ अरब गज का अब निर्यात होने लगा है। यद्यपि पाकिस्तान २५ करोड़ गज वस्त्र मँगाता है पर वह भारत का आधा भी नहीं है।

जापान में मशीनरी के उद्योग को विकसित करने से निर्यात में वृद्धि की संभावना है। युद्ध पूर्व मशीनरी का निर्यात ५ प्रतिशत था जो अब लगभग ११ प्रतिशत है। परन्तु इस प्रतिशत में भी बहुत अधिक वृद्धि की संभावना है।

भावी विकास की योजना : जापान आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने की योजना को किस प्रकार निर्मित करे यह विकट समस्या है। उसके सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ हैं और उनको दूर करने के यथासंभव प्रयत्न को कार्यान्वित करना जापान के लिए बहुत ही आवश्यक दीखता है।

सबसे पहले जापान के सम्मुख कोकिंग कोयला तथा कच्चे लोहे की समस्या है। युद्ध के पूर्व फ़िलिपाइन्स तथा पूर्वी मालवा से जापान में आनेवाले कुल कच्चे लोहे का आधा भाग जाता था। सन् १९४२ में चीन ने ४० लाख टन कच्चा लोहा दिया। सन् १९५१ में जापान ने लगभग ४० लाख टन कच्चा लोहा मँगाया जिसमें आधा दक्षिण-पूर्व-एशिया से आया। इसी वर्ष जापान का इस्पात उत्पादन भी ४३ लाख टन तक पहुँच गया। जापान अब प्रतिवर्ष ५० लाख टन इस्पात का उत्पादन करना चाहता है जिसके लिए उसे ७० लाख टन कच्चा लोहा मंगाना पड़ेगा। इसके लिए उसे चीन और भारत का आश्रय लेना होगा क्योंकि अमरीकी लोहा बहुत ही महंगा पड़ता है और उत्पादित वस्तुएँ भी अपेक्षाकृत अधिक महंगी पड़ेंगीं।

कोकिंग कोयला भी जापान को काफ़ी मात्रा में अन्य देशों से मँगाना पड़ता है। युद्ध के पूर्व जापान को कोयला चीन से मिल जाता था परन्तु अब उसे अमेरिका पर निर्भर रहना पड़ता है। लेकिन यदि चीन से व्यापार-विनिमय शीघ्र ही आरम्भ नहीं होता तो निश्चय ही जापान के लोहे और इस्पात के उद्योग पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा।

तीसरी आशाजनक स्थिति मशीनरी उद्योग के

विकास में दीखती है। इसमें ट्रैक्टरों, बुल्डोज़रों, जहाजों एवं ट्रकों आदि की उत्पादन क्षमता का विकास करना आवश्यक है। दक्षिणी-पूर्वी- एशिया के आर्थिक विकास की योजना जैसे-जैसे कार्यान्वित होती जाएगी वैसे ही वैसे जापान को मशीनरी उद्योग पर विशेष ध्यान देना होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जापान का आर्थिक पुनरुत्थान एशियाई देशों के सहयोग पर निर्भर है। उसे दक्षिणी पूर्व एशियाई देशों के आर्थिक विकास में सहायक बनना होगा। उसे आपसी सहयोग की भावना को अपनाना होगा और अमरीकी सहायता का भरोसा छोड़ना होगा। अन्त में हम भारतन् कुमारप्पा के उद्धरण द्वारा अपने मत की पुष्टि करते हैं :

"जापान अपनी आज की भयंकर आर्थिक स्थिति से बाहर निकलने का रास्ता ढूँढ़ सकता है लेकिन आज तो उसे अपनी अर्थ रचना को मजबूत और स्थायी आधार पर खड़ा कर सकने की संभावना दूर की चीज़ मालूम होती है। जापान ठीक समझता है, जब वह अपनी वर्तमान पराधीनता के जुए को उतार कर फेंक सके......दोनों शक्ति गुटों से अलग रहने की नीति का अनुसरण कर सके......"

व्यास-निवास, ३१/५१,
कालभैरव, बनारस

—कृष्ण शंकर व्यास

मलयालम् कहावतें

अरमन रहस्यम् अङ्ङाटियिल परस्यम्
राजमहल का रहस्य बाज़ार की खुली बात

मुट्टत्ते मुल्लय्कु मणमिल्ल
प्रांगण के मोतियों में सुगन्धि नहीं है

मटियन मल चुमक्कुम
सुस्त आदमी को पहाड़ उठाना पड़ेगा

वेणमेंकिल चक्क वेरिलुम् काय्कुम्
चाहे तो कटहल जड़ में भी लगेगा

मूत्तवर चोल्लुम् मुतु नेल्लिक्क आद्यम् कय्कुम्, पिन्ने मधुरिय्कुम्
बूढ़ों की बातें पक्का आँवला है जो पहले कड़वा लगता है, फिर मधुर

कारस्करत्तिन कुरु पालिलिट्टाल कालान्तरे कय्पु शमिप्पतुण्टो
दीर्घ काल दूध में रखने पर भी कुचले का कड़वापन दूर नहीं होता

अल्पानु ऐश्वर्यम् वन्नाल अर्ध रात्रिय्कु कुटपिटिय्कुम्
छोटा धनी होने पर आधी रात में छतरी तान कर चलेगा

गुलज़ार हौज़,
हैदराबाद

—सुधाकर

जर्मन साहित्य पर नीत्शे का प्रभाव

नीत्शे (१८४४–१६००) के निकट मनुष्य संसार का आदर्श नहीं है। मनुष्य में उसने अपने लिए विशिष्टता लाभ करने की अदम्य अधिकार-लालसा के दर्शन किए। अतः संसार का मूलभूत नियोजक यही अधिकार-लालसा है। किन्तु इस सार्वभौमिक लालसा का रूप कुटिलता पूर्ण है, क्योंकि संसार मनुष्य की, उसकी आशाओं और अभिलाषाओं की लेशमात्र चिन्ता नहीं करता। मनुष्य की प्रबल लालसा-प्रवृत्ति उसे उन्नति की ओर अग्रसर करने का सतत यत्न करती है, इससे अन्य प्राणियों पर चाहे कुछ भी प्रभाव पड़, उसी प्रकार संसार की लालसा-प्रवृत्ति भी प्राणिमात्र के सुख-दुःख का विचार न करते हुए उपरिगामी रहती है। यह संसारिक प्रवृत्ति व्यक्ति को नष्ट प्रायः करने पर उतारू रहती है। वह न उसके अस्तित्व की चिन्ता करती है और न उसकी योजनाओं, न उसके संघर्षों से परिचित ही रहती है। फलस्वरूप संसार और मनुष्य में वैमनस्य-सा रहता है जिससे जीवन दुःखद हो जाता है। अन्त में मृत्यु मनुष्य की सारी लालसाओं को समाप्त करके उसे अपने संघर्ष में ही पिस जाने देती है।

नीत्शे के विचार आदर्शवादियों की आशावादी धारणाओं के विपरीत संसार के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं। आदर्शवाद संसार की व्याख्या मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों को लेकर इस ढंग से व्यक्त करता है जिससे मनुष्य की मान्यताएँ स्वीकार की जा सकें। मनुष्य का सारतत्व मनस् है, अतः आदर्शवाद की दृष्टि में संसार का सारतत्व भी मनस् है और इसी कारण यह मनस् मनुष्य की मान्यताओं से सहानुभूति रखता है। नीत्शे इसी ढंग से विचार विमर्श उपस्थित करने के बाद मनुष्य क सारतत्व उसकी अधिकार-लालसा को मानता है, किन्तु जब वह इस लालसा को सार्वलौकिक दृष्टि से आंकता है, जब वह अधिकार-लालसा को संसार का सार-तत्व स्वीकार करता है तो उसे यही निराशावादी परिणाम मिलता है कि संसार मनुष्य और उसकी मान्यताओं की कतई चिन्ता नहीं करता।

इस विचार धारा से जो निष्कर्ष निकलते हैं उनके अनुसार नीत्शे के निकट मनुष्य की समानता और सभी आवश्यक तत्वों का जो प्रजातन्त्र के पोषक हैं कोई मूल्य नहीं। सांसारिक संघर्ष में प्रबल अधिकार-लालसा ही क्रियाशील रहती है, जहाँ सर्व शक्तिशाली विजय लाभ करते हैं और यह उन्हीं का जन्मसिद्ध अधिकार भी है। यदि अन्य प्राणी अपेक्षाकृत कमज़ोर हैं और उनमें जीवन रक्षा की क्षमता नहीं है तो यह भला है। कमज़ोरों को किसी प्रकार नष्ट होना है ताकि शक्तिशाली मनुष्य उनका स्थान छीन सकें। अतः मनुष्यों में भेद होना स्वाभाविक है, और नीत्शे की धारणा है कि इन भेदों की अधिकता होनी चाहिए। इसी प्रकार दास प्रथा को वह पूर्णतया स्वाभाविक मानता है, साथ ही स्त्रियाँ भी जो पुरुष से कमज़ोर होती है पुरुष के समान अधिकार लाभ नहीं कर सकतीं। वह उन सारे नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक तत्वों को समूल उड़ा देना चाहता है जो समानता की आधारभूत विचार धाराएँ रही हैं। समाज को वह एक ऐसा रणस्थल समझता है जहाँ शक्तिशाली मनुष्य बल प्रदर्शित करके अपनी अभिलाषाओं को सफल बनाएँ, कमज़ोर हार मान कर भाग जाएँ और बिलकुल मिटा दिए जाएँ। प्रकृति के गुण भी असमानता से परिपूर्ण हैं अतः मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति में समानता की बात करना अनधिकार चेष्टा ही है।

नीत्शे के अंतिम दशाब्द में जर्मन साहित्यिक क्षेत्र में जो प्रमुख प्रश्न उपस्थित हुआ वह यह था, कि काव्य-विमुख संसार में कवि का क्या स्थान है? १८६० में इस प्रकार के कल्पना-पूर्ण आन्दोलन का आरंभ बड़े ज़ोर शोर से हुआ जिसके प्रमुख प्रतिनिधि कवि ह्यूगो फ़ॉन होफमंस्टाल, राइनर मारिआ रिल्के और स्टेफन जॉर्ज थे। इस काल के जर्मन गीति-काव्य में कवि का आत्मज्ञान अत्यंत जागरूक रहा है। नीत्शे भी यह बात स्वतः-सिद्ध मानता था कि सभ्यता और संस्कृति कलाकार को ही जन्म देती है। किन्तु १६ वीं शताब्दी के उत्तरकाल की कविता ने, चाहे वह पूर्वी, पश्चिमी या दक्षिणी जर्मनी से संभव हुई, कलाकार के प्रति एक अत्यंत सतर्क दृष्टि-

कोण उपस्थित किया जैसा कि नीत्शे की रचना 'डी गेबुर्ट डेर ट्रागाडी' (शोकान्तक नाटकों का आविर्भाव, १८७२) से स्पष्ट है, उस काल के ज्ञानवान् मनुष्य एक ऐसे समाज में पल रहे थे जो काल्पनिक लोक से दूर क्रियात्मिक रचनाओं की ओर ध्यान दे रहा था। कैसर ने नाटककारों को आश्रय देना छोड़ दिया था; इसी प्रकार साहित्य का सृजनात्मक क्षेत्र बौद्धिक खोजों के कारण अधोगामी हो रहा था। जैविक विचारधाराएँ और बुर्जुआ प्रभाव खुले मैदान में बढ़ रहे थे। तभी नीत्शे की विचारधारा जड़ जमा रही थी; इस विचारधारा के साथ जर्मन जाति के विगत विवेक रहित विचार-संपादन, नैतिकता और मनुष्य के प्रारब्ध के प्रश्न उलझे हुए थे।

एक तरह नीत्शे का ढंग फ्रांसीसी नीतिज्ञों की परम्परा जैसा रहा है। उसका स्वरूप यथा क्रम चलनेवाले दार्शनिक जैसा नहीं है, वरन् वह हठधर्मी सामाजिक और सांस्कृतिक आलोचक है जो विभिन्न दिशाओं में मनुष्य की स्थिति को स्पष्ट करता हुआ अपने सूत्र वचनों का अधिकतम प्रभाव डालना चाहता है; वह मानवीय अस्तित्व की भूत और वर्तमान धारणाओं को व्यक्त करके विभाजन करता है, उन पर शंकाएँ उपस्थित कर के उन्हें समूल उड़ा फेंकता है। उसका लक्ष्य विशेषतः इन तीन बातों के विरोध में रहा है: (१) यूरोपीय विवेकवाद की परम्परा, (२) १९ वीं सदी का वैज्ञानिक पदार्थवाद, और (३) आदर्शवादी और ईसाई दर्शनों की धारणाएँ। इन तीनों विषयों पर उसके विचार विमर्श जितने नियत हैं उतने ही भविष्य वक्ता भी, और और उसने जिन साधारण अथवा दुरूह शून्यवादी बातों को ललकारा है वे सब बुर्जुआ मान्यताओं के मूल पर कुठाराघात करतीं हैं, जैसा कि उसकी रचनाओं 'उन्साइट गेमैस्से बैट्राख टुंगेन' (असामयिक विचार, १८७३), 'मैन्शलिक़ेस' अलज़ूमैंशलिख़ेस' (मानवीय, सब कुछ मानवीय, १८७६), 'अल्सो श्प्राख़ ज़रथुस्त्र' (ज़रथुस्त्र के प्रवचन, १८८३-८५), 'येनसैट्र् फ़ॉन गुट उंट बोसे' (भला-बुरा का दूसरा पक्ष, १८८६), 'त्सूर गेनिएलोजी डेर मुराल' (नैतिकता की परम्परा, १८८७) और एक्के होमो' (मनुष्य सुन, १८८३) से स्पष्ट है।

कार्ल मार्क्स की भाँति नीत्शे अपनी तमाम नैतिक धारणाओं को उनके प्रत्यक्ष रूप से आँकता है। मार्क्स भी अपनी कुछेक धारणाओं के लिए हेगल का ऋणी है, विशेषतः यह विचार कि परिवर्त्तन का अर्थ है अवस्था का अपेक्षाकृत भला होना। मार्क्स का कथन है कि एक प्रकार का समाज जो कभी भला लग सकता है आवश्यक रूप से परिवर्त्तित होकर आगे एक ऐसे अन्य ढाँचे में आजाएगा जो और भी भला होगा। इस विचार धारा का आधार हेगल से इस प्रकार लिया गया है: हेगल ने सम्पूर्ण जगत् को मनस् का प्रकृति से ईश्वर तक विकास माना है। प्रत्येक स्थान पर चाहे वह प्रकृति में हो अथवा मनुष्य के मस्तिष्क में हो हमें प्रकटीकरण की एक अनवरत क्रिया देखने को मिलती है। प्रत्येक-वस्तु अपने स्वभाव से विरोधी वस्तु का त्याग करती है। बीज फूल के रूप में उगता है। फिर भी प्रकृति में विरोधी भाव समाप्त नहीं होते, अपि तु प्रकृति उन पर क़ाबू पाकर उन्हें इकाई में उपस्थित करने का प्रयत्न करती है। सारा ब्रह्माण्ड एक इकाई है, यहाँ भी वही विवेकपूर्ण सिद्धान्त क्रियारत रहता है। मनस् का अस्तित्व प्रत्येक स्थान पर है। इस इकाई में विकास है और यह विकास नैयायिक विधि से सम्पन्न होता है। सर्वप्रथम हमें एक वस्तु ज्ञात होती है जिसे हम 'पूर्व-पक्ष' कहते हैं। फिर इसी वस्तु की विरोधी वस्तु से प्रतिकूलता प्राप्त होती है, जिसे हम 'अर्थ-विपरीतता' कहते हैं। ये दोनों अन्ततोगत्वा एक 'संयोग' में लय होते हैं जो एक नवीन 'पूर्व-पक्ष' का रूप धारण करके इस नैयायिक विधि को पुनः आरम्भ करता है। सारा ब्रह्माण्ड अपनी इकाई में इसी विधि का क्रम है। अतः यह विकास-क्रम वास्तविकता है। इस इकाई में प्रकृति और मनुष्य समान रूप से प्रभावित होते हैं, प्रकृति और मनुष्य के मनस् की विधियाँ समान हैं, किन्तु प्रकृति में यह क्रम अचेत रहता है। ब्रह्माण्ड की यह इकाई एक विचार विधि है और प्रत्येक विचार की भाँति यह विकसित होती रहती है—पूर्व-पक्ष, अर्थ विपरीतता, संयोग। इसी आधार पर समाज का परिवर्तन दो विरोधी भावों के संयोग पर जो स्वरूप उपस्थित करता है उसमें विकास स्पष्ट दिखाई देता है। यह धारणा आधुनिक समाजवाद का आधार है। उदाहरणार्थ, एक समाज में निजी सम्पत्ति की व्यवस्था रही है एक ऐसे रूप में परिवर्तित होगा जिसमें समाजवाद प्रबल रहेगा। अतः सारी नैतिक मान्यताओं का प्रत्यक्ष स्वरूप विकसित का भविष्य होना चाहिए, ऐसा नीत्शे का मत था। नीत्शे

१६५४

ने आधुनिक युग की असीम संकटमय अवस्था का पूर्व लाभ करके अपनी रचना 'डेर विल्लैत्सूर माख्ट' (शक्तिलाभ की लालसा, १८८८) में यह विवाद उत्थित किया है कि मान्यताओं का प्रश्न निश्चयता के प्रश्न से अधिक आधारभूत है। उन सिद्धान्तों के पुनर्निर्माण द्वारा जो तत्कालीन विश्व की परिस्थितियों में मान्यताओं के प्रत्यक्षीकरण में सहायक थे, नीत्शे ने अपने जलते प्रश्नों का ताँता बाँध दिया था, किन्तु इससे उसके विचारों की विषमता का परिचय ही मिला—इन प्रश्नों का महत्व अतिशयोक्ति-पूर्ण है। अधिकार, लालसा, अनैतिकता, विशिष्ट मनुष्य और शाश्वत पुनरागमन उसकी मान्यताओं का केवल धुँधला चित्र उपस्थित करते हैं। साधारणतया इन धारणाओं को ग़लत भी समझा गया है। × नीत्शे की रचनाएँ बहुत हैं, उनमें इतने नाना प्रकार के उपदेश भरे पड़े हैं जिनको सही ढंग से समझाना बहुत कठिन है। इन उपदेशों की भाषा लचकदार है और उनका लक्ष्य उसकी आवेग-पूर्ण बौद्धिक गहनता के साथ मानवीय प्रकृति की सारी अंतिम निर्णीत मान्यताओं, विवेचना के जैविक कारण और सर्वोपरि उस समाज के प्रति अपने नैतिक अनुग्रह की ओर है जो उस समय नष्टप्राय अवस्था में साँस ले रहा था। नीत्शे की रचनाओं का सांस्कृतिक महत्व कुछ भी रहा हो, उसके अपने प्रश्नों के उचित समाधान का अभाव दूसरे लोगों को इतना प्रभावित कर सका कि वे अपनी खोजों द्वारा उन प्रश्नों का हल दे सके और तत्सम्बन्धी परिभाषाओं की रचना में लग गए। इन बातों से निष्कर्ष यह निकलता है कि नीत्शे की स्थिति उस क्रिया-पूरक जैसी रही है जो दूसरों में परिवर्तन और प्रतिक्रिया उपस्थित करता रहता है किन्तु स्वयं न तो कोई ठीक उत्तर देना चाहता है और न दे सकता है।

किन्तु साहित्यिक क्षेत्र में नीत्शे की रचनाओं का समस्त यूरोप पर अत्यंत प्रभाव पड़ा है। उसका काव्य यह महत्व ला सकने में सर्वथा असमर्थ रहा, यद्यपि उसने 'ज़रथुस्त्र' की रचना में अद्वितीय कौशल दिखाया है, किन्तु वह प्रारंभिक रूप में कवि न था। नीत्शे की कविता अपूर्व सूक्ष्मग्राही और संगीतमय मस्तिष्क की अभिव्यंजना है, उसमें संक्षिप्त, यद्यपि लौकिक, उपदेशात्मक वृत्ति की प्रचुरता है, और उसमें वही चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली अर्द्ध-पारदर्शक अंतर्दृष्टि का वेग मौजूद है जो उसके गद्य में पाया जाता है। किन्तु परवर्ती साहित्य-कारों पर नीत्शे का जो प्रभाव पड़ा है इसका कारण उसका रचना-कौशल नहीं है, वरन् उसका विशिष्ट दार्शनिक ढंग है। इस महान् विचारक की रचनाओं में छायावादी, संकेतवादी और अभिव्यक्तिवादी सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से अपना-अपना स्वरूप देखा। आरंभ के छायावादियों का, जिनमें गोंकोर्ट-बंधु (एडमोंड लुई, अंतोनी, हूट और यूले अल्फ्रेड हूट) और फ्रांसीसी चित्रकार मोने से लेकर रेनोय तक प्रसिद्ध हैं, मसला यह था कि वे कलाकारों की व्यक्तिगत सूक्ष्मज्ञान का नवीन अध्ययन उपस्थित करें। यदि कलाकार का समाज में व्यक्तित्व और कर्म-प्रधान लेखन सामग्री का केन्द्रीय उपादान बन सके तो कवि का मानवीय स्वभाव और उसका संसार के मूल्यांकन का ढंग अनेक नवीन तथा उच्चतम विचारधाराओं को जन्म दे सकता है, ऐसी उन लोगों की धारणा थी। जर्मनी में एडुअर्ड फ़ॉन हार्टमन ने, जो 'अचेतन तत्व' का दार्शनिक कहा जाता है, १८६९ में ही अहम् के वृत्तीय व्यक्तित्व को परमाणु संबन्धी क्षण भंगुर प्रत्यक्षीकरणों में विभाजित किया था जो माख, वुंट और फ्रॉइट के परिवर्ती मनोवैज्ञानिक अध्ययन और विशेषतः बर्गसन के अंतर्ज्ञान और अध्यात्म द्वारा ज्ञान के नवीन उपलब्ध माने गए। इसी प्रकार संकेतवादी वौदेलेर, मलार्मे, लीबेरमन, सेसन्ने और देबुसी तथा अभिव्यक्तिवादी जॉर्ज हाइम, जॉर्ज ट्राक्ल, एर्न्स्ट श्टाडलर, आगस्ट श्ट्राम की रचनाएँ योरुप में १९ वीं सदी के अन्त की बौद्धिक कृतियाँ मानी जाती हैं।

नीत्शे के उत्तराधिकारी स्टीफ़न जॉर्ज (१८६८—१९३३) जो जर्मनी के आधुनिक कवियों में एक प्रमुख

× अधिकांशतः आरम्भ में उसकी विचार धारा, कि "मनुष्य को अपनी शक्ति और विकास के लिए अधिकतम बल संचय करके 'विशिष्ट मनुष्य' बनना चाहिए" को अधिकार-लालसा नाम देकर 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले मसले के अर्थ में गलत समझा गया, किन्तु अधिकार-लालसा की धारणा एक निराशावादी दार्शनिक सिद्धान्त है, जैसा कि पीछे सिद्ध किया जा चुका है।

व्यक्तित्व है, की रचनाओं में गत अर्द्ध शताब्दी के स्थिरीभूत आदेशों का लोक-विरुद्ध तनाव हमें स्पष्ट देखने को मिलता है। उनकी रचनाएँ अधिक नहीं है, किन्तु वे पूरी सावधानी के साथ प्रत्येक सामाजिक मान्यताओं को ललकारतीं हैं। जॉर्ज ने अपना रचना-क्रम निर्णीत मान्यताओं के विरोध में एक संयुक्त मोर्चे को स्थापित करके आरंभ किया, साथ ही उसकी राष्ट्रीय उत्थान की भावनाओं ने उसे एक अग्रदूत का स्थान भी प्रदान किया है। उसकी रचनाओं के यही दो रूप हैं जिन्हें अलग नहीं रखा जा सकता। उसकी धारणाएँ हेतुवाद तथा पदार्थवाद की विरोधिनी हैं और वह कुछेक भावपूर्ण एवं बौद्धिक साधनों को उनकी उचित व्यवस्था में देखना पसंद करता है। जैसी कि नीत्शे की माँग थी, वह भी शरीर (लाइब्र), मनस् (ज़ीले) और आत्मा (गाइश्ट) को एक रूप करके उनको विवेक के एक पृथक् अवयव में उपस्थित करना चाहता था।

गत अर्द्ध शताब्दी में जितना अधिक जर्मन दर्शन समृद्ध हुआ है उतना पहिले कभी संभव नहीं हुआ। इस काल में सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और सौन्दर्यशास्त्र संबन्धी सिद्धांत पूर्ण उत्तरदायित्व और सूक्ष्मदर्शी चिंतन के साथ स्थापित किए गए हैं। इस काल की जागृति के लिए नीत्शे ने भविष्यवाणी करते हुए अपील की थी: "अब जरूरी यह है कि अलैक्ज़ेंडर नाम-धारी पादरियों की विरोधी संतति पैदा हो जिसमें प्रत्येक धागे को एकत्रित करने, उन्हें फिर से बुनने के लिए आवश्यक अटूट शक्ति भरी हो ताकि चारों ओर की हवा में उन धागों को बिखरने से बचाया जा सके।

राजनीतिक क्षेत्र में नीत्शे का जो प्रभाव पड़ा उससे २० वीं शताब्दी के आरंभ में ही चारों ओर असंतोष स्पष्ट दिखाई देने लगा था। इस काल की सारी प्रवृत्तियाँ जर्मन के बाह्य और आंतरिक जीवन में अपूर्व परिवर्तन की भावना से संभव हुई। इन तमाम राजनीतिक विचारधाराओं के वर्गीकरण पर, चाहे वे उदार दलवाले हों अथवा सनातनी विचार पोषक, यह बात स्पष्ट होती है कि एक लम्बे पैमाने पर क्रांति की भावनाएँ घर कर चुकी थीं। अतिविख्यात राजनीतिक दलों का सांस्कृतिक सम्बन्ध और उत्तेजना-पूर्ण पारिभाषिक शब्दावली उतनी ही निन्दनीय हैं जितनी कि ललित कलाओं की ओर छायावादी और संकेतवादी कवियों का वैयक्तिक स्वभाव। इन राजनीतिक मतभेदों का स्पष्ट दिग्दर्शन उस काल के सैनिकों के निमित्त छपने वाले व्यंग्यपूर्ण साप्ताहिक पत्रों में किया जा सकता है। दक्षिण जर्मनी के व्यंग्यकार अपने सहज ज्ञान के बल पर सांस्कृतिक दंभ के प्रत्येक रूप का खाका खींचा करते थे। म्यूनिखसे १८९६ में 'युगेण्ट' और 'सिम्पलीत्सिसीमुस' नामक पत्र प्रकाशित होते रहे, जिनमें सजीव और अत्यंत तीखी सामाजिक आलोचनाएँ पठनीय थीं। इन पत्रों के आरंभिक लेखकों के नाम कार्ल क्राउस (जो बाद में आस्ट्रिया से सांस्कृतिक निराशवाद पर प्रकाशित 'डी फाकेल,' १८९९ पत्र का संपादक रहा और लुडविक टोमा हैं। उत्तरी जर्मनी में प्रमुख लेखक पॉल एर्न्स्ट था जो राजनीति में समाजवादी किन्तु स्वभाव में सनातनी और लेखन में नवीन साहित्य का सृजनकर्त्ता था। इसकी प्रसिद्ध रचना त्सुज़म्मेनब्रुख डेस डॉइत्शेन इडियालिस्मुस' (जर्मन आदर्शवाद का पूर्ण ह्रास, १९१८) को पढ़ कर यह स्पष्ट होता है कि उसकी विचारधारा पर नीत्शे की अमिट छाप है, उसका सारा साहित्य इस बात को प्रदर्शित करता है कि साहित्यिक जीवन की गति राजनीतिक क्षेत्र में होनी चाहिए। उसके निकट कवि की रचनाएँ तभी सार्थक हो सकती हैं जब वे सामाजिक परिणामों की ओर अपने आदर्श उपस्थित करें। इसी युग का एक प्रमुख साहित्यकार टौमसमन भी अपनी बौद्धिक धारणाओं के लिए नीत्शे का उतना ही ऋणी है जितना कि वह अन्य जर्मन दार्शनिकों की परम्परा का, उसकी रचनओं में ऐतिहासिक तारतम्य और आध्यात्मिक क्रम का एक सजीव सामंजस्य मिलता है। दूसरे, एक और कवि हर्मन ने हैसे से नीत्शे के पुराने सांस्कृतिक कथानक जरथुस्त्र को लेकर' ज़रथुस्त्रास वीडरकेह्र' (ज़रथुस्त्र का पुनरागमन, १९२०) नामक रचना प्रस्तुत की है, जो नीत्शे की क्रांतिपूर्ण मान्यताओं के प्रभाव का एक अच्छा उदाहरण है। ऐसी क्रांतिपूर्ण विचारधाराओं की बहुमुखी प्रगति को देखकर यही भास होता है कि २० वीं सदी के आरंभ के दो दशाब्द जर्मनी में और साधारणतः यूरोप भर में नीत्शे और स्टीफ़न जॉर्ज से प्रभावित हुए थे।

इन सांस्कृतिक आलोचनाओं की गति धीमे-धीमे बढ़ती चली गई, यहाँ तक कि इनसे राजनीतिक क्षेत्र अत्यधिक प्रभावित हुआ; इस परिवर्तनशील अवस्था का पहला अन्त प्रथम विश्व-युद्ध पर आकर हुआ। १९१४

१८५४

१८४४ का समय जर्मनी के लिए तीसवर्षीय क्रांति एक क्रमबद्ध काल माना जा सकता है जिसमें प्रत्येक ब्द में बहिरंग क्रियाएँ और आध्यात्मिक संदर्भ अपने लग-अलग आदर्श लेकर प्रकट हुए। प्रथम विश्वयुद्ध के फलस्वरूप १६ वीं शताब्दी की पिछड़ी मान्यताओं की समाप्ति की चरमावस्था आ पहुँची थी; १६१८ का जनीतिक विश्लेषण और परिवर्त्ती आर्थिक संकटों ने र्मन-जाति को पूर्णतया नष्ट कर दिया था; बाद में १६२५ से १६३४ तक इस जाति के आंतरिक साधन एक बार फिर युद्ध के लिए प्रवृत्त होने को संभल चुके थे; तत्पश्चात् नाज़ी युग ने अपनी असीम निर्दयता से क्रांतिपूर्ण मान्यताओं को खाक में मिला के छोड़ा। इस युग के सांस्कृतिक जीवन का चित्रण करना एक अलग विषय ही है, किन्तु हमें यहाँ पर यह स्पष्ट करना है कि नात्सी विचारधारा भी नीत्शे की अधिकार-लालसा से प्रभावित हुई थी।

तमादपुर,
आगरा

—प्रेमकिशोर

शिल्प-प्रसंग

पूजनीय गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ जब मैं (१६२४) चीन गया था तब एक दिन गुरुदेव के निमंत्रित करने पर वहाँ के बड़े बड़े चित्रकारों का समागम हुआ था। गुरुदेव ने तब मुझ से कहा : "नन्दलाल, यह तुम्हारे लिए परम सुअवसर है। तुम्हें कला के बारे में जो कुछ जानना हो इन मनीषियों से जान लो।"

तब मैंने उन चीनी चित्रकारों से दो प्रश्न किए थे। मेरा प्रथम प्रश्न था—चित्रकार के साथ समाज का योग कहाँ तक होता है ? और दूसरा प्रश्न यह था—अच्छे चित्रकार जीवन-निर्वाह किस तरह करते हैं ? इनके उत्तर में उन्होंने कहा, आत्मानन्द के लिए रचना करने वाला (Amateur Artist) शिल्पी समाज को आनन्द देता है, जो आनन्द समाज का प्राण है। सिर्फ आनन्द के लिए ऐसे शिल्पी शिल्प-सृष्टि करते हैं, इसलिए स्वार्थ शून्य और निर्लिप्त भाव से वे आनन्द दे सकते हैं।

दूसरे प्रश्न का उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया—"आत्मानन्दी शिल्पियों को जीवन निर्वाह के लिए कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। ये ही लोग सम्मानजनक आत्मानन्दी शिल्पी पद के अधिकारी होते हैं जो या तो देश के राजा हैं, या किसी राज्य के मंत्री, कर्मी, सेनाध्यक्ष आदि हैं। बड़े जमींदार, व्यवसायी, सर्व त्यागी, सन्यासी, भिक्षु आदि भी ऐसे शिल्पी होते हैं। ये लोग स्वार्थशून्य और स्वाधीन भाव से शिल्प चर्चा कर समाज को अपनी साधना का फल दे सकते हैं। किसी के लिए वे अपना मत नहीं बदलते हैं। केवल अपनी साधना के द्वारा स्वमत गठन करते हैं। ये लोग देश के शिल्प के ऐतिह्य को बदल सकते हैं; कारण ये निन्दा-स्तुति से परे रहते हैं। इन्होंने साधना के द्वारा सत्य का संधान पाया है, इसीलिए ये ऐसा कर सकते हैं। ऐसे शिल्पियों के लिए शिल्प द्वारा अर्थोपार्जन का प्रश्न ही नहीं उठता। पेशेवर (Professional) शिल्पियों का स्थान आत्मानन्दी शिल्पियों के नीचे है, क्योंकि उनको समाज का मनोरंजन करके अर्थोपार्जन करना पड़ता है। पेशेवर शिल्पियों को शिल्प के नाना कौशल (Technique) सिखाने पड़ते हैं, कारण जन साधारण प्रायः चमत्कारपूर्ण कला-कौशल देख कर ही चित्रकार के सम्बन्ध में धारणा बनाते हैं। आत्मानन्दी और पेशेवर शिल्पियों के सिवाय और दो प्रकार के चित्रकार चीन में हैं। एक हैं नकली, जो लोग बार-बार एक ही चित्र की नक़ल करके अर्थोपार्जन करते हैं; कोई मौलिक चित्र वे नहीं बना सकते। दूसरे हैं 'जाली' शिल्पी। ये बड़े चित्रकारों के चित्रों की नक़ल करके उस पर अपना नाम और मोहर लगा देते हैं।"

'विश्व-भारती' से
शान्ति-निकेतन

—नन्दलाल बसु

—अनु० राधेश्याम पुरोहित

भारतीय संगीत तथा उसके कुछ महान् साधक

भारतीय संस्कृति में अत्यन्त पुरातन युग से संगीत का महत्त्व माना गया है। सामवेद के कारण वैदिक काल में ही संगीत का गौरवपूर्ण स्थान था। उस समय संगीत का प्रयोग गंधर्वों द्वारा होता था इसलिए उसे गांधर्व विद्या कहा गया है।

संगीत से पानी बरसने और दीपक जलने की बात सुनी जाती है। संगीत से मनोरंजन होता है। संगीत मनुष्य पर ही नहीं पशु पक्षियों पर भी एक अद्‌भुत असर करता है। संगीत की तन्मयता गाने वाले ही नहीं वरन् सुनने वाले को भी इतना लीन कर देती है कि दोनों अपने आपको भूल जाते हैं। संगीत से जीव-जन्तु तक मोहित हो जाते हैं। साँप और हिरन तो संगीत के कारण बन्धन तक में आ जाते हैं। यह बात प्रत्यक्ष देखी सुनी है। संगीत की मदद से कभी कभी पागलों के पागलपन का भी इलाज हुआ है। संगीत के द्वारा सुलाने के प्रयोग प्रति घर में होते रहते हैं। लोरी गाकर बच्चों को सुलाने की परम्परा भारत में अति प्राचीन है। गाकर सुलाने और उन्हें उठाने की परम्पराओं का भी उल्लेख है।

संगीत भक्ति-मार्ग का सहारा है। उत्सव आदि शुभ कार्यों का आरम्भ और अन्त संगीत से होता है। रामदास स्वामी ने भगवान् से प्रार्थना की थी कि हे राम! संगीत और आलाप की मिठास मुझे दे दे। संगीत सम्राट् तानसेन तथा बैजू बावरा के गुरु हरिदास को कौन संगीत प्रेमी नहीं जानता? जिन्होंने संगीत के द्वारा जमुना का जल तक स्तम्भित कर दिया था। भक्त शिरोमणि सूर का संगीत तथा मीरा की संगीतमय तन्मयता किसे ज्ञात नहीं!

राष्ट्र की उन्नति में भी संगीत एक अच्छा सहायक सिद्ध हुआ है। किसी राज्य की शासन सत्ता या वहाँ के लोगों के आचार विचारों का पता उस राष्ट्र के संगीत द्वारा मालूम किया जा सकता है। जिस प्रकार साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है वैसे ही संगीत समाज की संस्कृति का हृदय होता है।

संगीत के निर्माण का इतिहास बड़ा ही मनोरंजक है। संगीत का आधार नाद है जो ब्रह्मा का स्वरूप है। नाद का आदि स्थान भगवान् शिव का डमरू है और उसकी सत्ता वेद से भी पूर्ववर्ती मानी गई है। अन्य शास्त्रों की तरह संगीत शास्त्र भी भारतीय ऋषियों की परिपक्व बुद्धि का परिचायक है। कहते हैं कि सबसे पहले भगवान् शंकर ने पाँच प्रकार के राग बना कर सुनाए (भैरव, हिंडोल, श्री, मेघ और दीपक) और उन्हें सुन कर पार्वती ने छठा राग मालकोश बनाया। इन छहों रागों का वैद्यक मतानुसार छठों ऋतुओं से पूरा सम्बन्ध है। इसी आधार पर रागों के गाने का समय निश्चित किया गया है।

यद्यपि संगीत शास्त्र के आद्याचार्यों की नामावली में भगवान् शंकर और मुनिराज नारद आदि कई प्रागैतिहासिक आचार्यों का उल्लेख मिलता है तथापि नाट्य और काव्य-शास्त्र की ही भाँति संगीत-शास्त्र के भी इतिहास प्रसिद्ध प्रथम आचार्य होने का गौरव भरत मुनि को प्राप्त है। इनके लिखे हुए नाट्य-शास्त्र में संगीत शास्त्र से सम्बन्धित नाद, श्रुति, स्वर, मूर्च्छना, ग्राम और राग रागिनियों का विस्तार पूर्वक वर्णन दिया गया है। वैदिक काल से ही भारतीय संगीत में गायन, वादन और नर्तन (नृत्य) तीनों का समावेश किया जाता रहा है किन्तु इस लेख में संगीत से हमारा तात्पर्य गायन से होने के कारण उसी पर यहाँ चर्चा की जाएगी।

कुछ लोगों ने भारतीय संगीत की विकास धारा को चार उत्थानों में बाँटने का प्रयत्न किया है—प्रथम उत्थान को 'वैदिक संगीत' कहा गया है और उसका आरम्भ वेदों ही की भाँति अनादि और अपौरुषेय माना है। इसके आरम्भ की तिथि निश्चित करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। इस काल में संगीत का उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति था; आजकल की तरह मनोरंजन नहीं और यही कारण था कि इस युग का संगीत मुख्यतः धर्म और अर्चनामूलक था। यह संगीत सांसारिक आनन्द के साथ साथ स्वर्गीय लोकोत्तर आनन्द की भी सृष्टि करता था।

द्वितीय उत्थान का आरम्भ भरतमुनि के नाट्य

१९५४

शास्त्र के रचना काल से माना गया है। उस समय तक वैदिक संगीत के स्थान पर गांधर्व संगीत का पूरा प्रचार हो चुका था और इस पर कई ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। यह संगीत ऐतिहासिक हिन्दू युग में अपनी उन्नति की चरम सीमा को पहुँच कर आठवीं शताब्दी के लगभग पतनोन्मुखी हुआ और तत्कालीन देशी संगीत ने उसका स्थान ग्रहण किया।

मतंग मुनि कृत 'बृहद्देशी' के रचना काल (आठवीं सदी) के साथ साथ भारतीय संगीत का तीसरा उत्थान माना जाता है पर ऐसा कहा जाता है कि विदेशी हमलों के कारण इसका पूर्ण विकास न हो पाया और न इसकी रूप रेखा को जानने का कोई साधन ही बच रहा।

अमीर खुसरो से लेकर तानसेन के युग तक भारतीय संगीत का चौथा उत्थान माना जाता है। इसे हम आधुनिक युग भी मान सकते हैं। वास्तव में इस समय जो मार्ग संगीत के नाम से प्रसिद्ध है वह उसी युग का संगीत है। संस्कृत के कवि कोकिल जयदेव तथा शारंगदेव की रचनाओं से सिद्ध है कि उनके समय में संगीत का देशव्यापी प्रचार था। शारंगदेव के समय तक शुद्ध भारतीय संगीत पद्धति का प्रचार था। इसके उपरांत मुसलमानों के मेल-जोल से भारतीय संगीत पर विदेशी रागों का भी प्रभाव पड़ा जिसके परिणामस्वरूप भारतीय एवं मुग़ल पद्धति मिश्रित गायन पद्धति प्रचलित हुई। इसे ही हिन्दुस्तानी अथवा उत्तर भारतीय संगीत के नाम से पुकारा जाता है। प्राचीन भारतीय गायन पद्धति के अवशेष आज भी दक्षिण की कर्नाटक की पद्धति (जो कर्नाटक प्रदेश में प्रचलित है) में देखने को मिलते हैं। इस पद्धति पर अभी भी विदेशी प्रभाव बहुत कम पड़ पाया है। इसे दक्षिण भारतीय संगीत के नाम से भी पुकारा जाता है। वास्तव में देखा जाए तो इन दोनों प्रणालियों का उद्गम स्थान वेद होने के कारण इनमें मूलभूत कोई अन्तर नहीं है। हाँ, शैली का अन्तर अवश्य है। उत्तर भारत में संगीत का आरम्भ विलम्बित काल से होता है। यह संगीत का प्राचीन सम्प्रदाय है। यह पद्धति अनादि काल से भारतीय संगीत में चली आ रही है। समस्त भारत के संगीतज्ञ इसी पद्धति का अनुसरण करते हैं, किन्तु दक्षिण भारत के कुछ संगीतज्ञों ने अब द्रुतकाल से संगीत का आरम्भ करना शुरू किया है। कहने का तात्पर्य यह कि प्राचीन सम्प्रदाय मन्द और शनैः शनैः गति के स्वर से आरम्भ करता है और अर्वाचीन सम्प्रदाय क्षिप्र और तेज गति के स्वर से। दक्षिण के संगीत में दशविध गमकों का प्रयोग होता है; उत्तर भारत के संगीत में इनमें से कुछ का प्रयोग नहीं होता। कहना चाहें तो कह सकते हैं कि उत्तर और दक्षिण भारत का संगीत एक वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। श्री पारूर ए. सुन्दरम् ऐयर ने काफ़ी वर्षों की खोज एवं अध्ययन के बाद एक ऐसी सूची तैयार की जिनमें प्रयुक्त होने वाले स्वर एक ही होने पर भी वह राग उत्तर और दक्षिण में भिन्न-भिन्न नाम से प्रचलित है। उत्तर में जो भैरवी है वह दक्षिण में टोडी है और उत्तर भारत में जो टोडी है वह दक्षिण भारत वालों के लिए शुभ पन्थुरावली है।

भारतीय संगीत पर विदेशी प्रभाव सर्व प्रथम चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में अमीर खुसरो के समय में प्रकट हुआ। मुस्लिम जाति संगीत प्रेमी जाति नहीं है पर भारत में आने पर यहाँ के संगीत वैभव का इन पर काफ़ी असर पड़ा और संगीत के प्रति इनके मनमें रुचि पैदा हुई। क्रमशः तत्कालीन मुग़ल बादशाह और अमीर-उमरा संगीत प्रेमी होने लगे और उनमें से कुछ तो संगीत के एकांत साधक और आश्रयदाता भी हुए। इस तरह के तत्कालीन मुस्लिम शासकों में सबसे प्रसिद्ध सुलतान अलाउद्दीन खिलजी हुए। इन्हीं के दरबार में रहने वाले अमीर खुसरो अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी के विद्वान् होने के साथ साथ गायक और गान-विद्या के आचार्य थे। अमीर ख़ुसरो ने ख़याल का निर्माण किया।

हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक काल-क्रमानुसार भारत की सांस्कृतिक उन्नति की चरम सीमा का काल भक्ति काल था। अष्टछाप के भक्त कवियों की संगीत लहरी ने तत्कालीन जनता का मन मुग्ध कर लिया था और उनके पद गाकर और सुन कर आज भी हमारा मन अलौकिक आनन्द से विभोर हो उठता है। यद्यपि अष्टछाप के सभी कवि-सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीनस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास, नन्ददास आदि उच्च कोटि के संगीतज्ञ थे किन्तु इन सबमें सूरदास जी सर्व श्रेष्ठ थे। मीरा की स्वर लहरी का आज भी कौन क़ायल नहीं! उस समय व्रजमण्डल में एक से एक उत्कृष्ट संगीतज्ञ विद्यमान थे। ऐसे ही

भक्तों में हरिदास जी भी एक थे। ये गाने में बड़े निपुण थे और तानसेन तथा बैजू बावरा के गुरु थे।

तानसेन का नाम भारत के घर घर में प्रचलित है। वह भारतीय गायन 'ध्रुपद' का सबसे बड़ा ज्ञाता और समर्थक था। भारतीय संगीत में 'ध्रुपद' के समान सरल, गम्भीर और महत्वपूर्ण दूसरा कोई राग नहीं हैं। 'ध्रुपद' में भाषा और अपभ्रंश के स्वरों का समावेश है। तानसेन ने बहुत से पुराने रागों के नवीन संस्करण करने के साथ साथ स्वयं कुछ नए रागों का भी निमाण किया। भारतीय संगीत के परम्परा की रक्षा करते हुए उस के नव विकास में तानसेन ने जो कार्य किया है वह अत्यंत ही महत्व पूर्ण है। राग 'मल्हार' जिसका परिष्कार तानसेन ने किया था 'मियाँ की मल्हार' के नाम से प्रसिद्ध है। 'दरबारी कान्हड़ा' तो स्वयं उसकी अपनी सृष्टि थी।

'शिवसिंह सरोज' में दिए गए तानसेन के जीवन-वृत्तान्त के अनुसार उसका जन्म सम्वत् १५८८ बताया गया है। तत्कालीन फ़ारसी ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार उसकी मृत्यु अप्रैल ९९७ हिजरी में हुई। तानसेन गौड़ ब्राह्मण था तथा मकरन्द पाण्डेय उसके पिता का नाम था। तानसेन ने अपनी प्राथमिक शिक्षा स्वामी हरिदास से पाई थी। इसके पश्चात् उसने सूफ़ी सन्त शेख़ मुहम्मद से भी शिक्षा ग्रहण की। कहा जाता है कि अकबर के दरबार में आने के पश्चात् सन् १९६२ में तानसेन मुसल्मान हो गया था। किन्तु उसके पद इस बात के साक्षी हैं कि अपने स्वभाव और हृदय से वह सदैव हिन्दू ही रहा।

तानसेन एक बहुत बड़ा गायक होने के साथ साथ एक बड़ा कवि भी था पर ऐसा मालूम होता है कि तानसेन की ख्याति संगीतज्ञ के रूप में इतनी बढ़ गई थी कि उसकी काव्य-प्रतिभा को प्रकाश में आने का अवसर ही नहीं मिला। तानसेन के 'ध्रुपद' और 'रागमाला' के पद भारतीय काव्य के उज्वल रत्न हैं।

तानसेन के 'ध्रुपद' देवता के मन्दिर में, वियोग के क्षणों में, प्रेम के उन्माद में, रात की सघनता में गाने के लिए उपयुक्ततम है। बाणभट्ट की महाश्वेता और मेघदूत की दक्षिणी अपने वियोग के क्षणों में अपनी वीणा से जिस राग का आलाप किया करती थी वह ध्रुपद का पूर्ण रूप रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इसमें संदेह नहीं कि प्रकृति का वह सारा संगीत जो पुरुष को रिझाने के लिए होता है, ध्रुपद से कुछ न कुछ अवश्य सम्बन्धित है।

कीर्तन प्रेमियों का कहना है कि पखवाज के साथ ध्रुपद में जो तन्मयता आती है वह किसी दूसरी राग में सम्भव नहीं। वस्तुतः 'ध्रुपद' मनुष्य के हृदय का स्वर है और तानसेन उसका स्वरकार, गीतकार!

स्व. उस्ताद फ़ैयाज़ खां हिन्दुस्तानी संगीत के एक दिग्गज थे। उनका कसा हुआ समृद्ध गम्भीर स्वर बरबस श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें मन्त्र-मुग्ध सा बना देता था। भावानुकूल शब्दोचार की शैली और त्वरित रसोत्पत्ति करके महफ़िल में रंग भर कर उसे अपने जैसा बनाने की अपूर्व शक्ति फ़ैयाज़ में थी। फ़ैयाज़ खां की गायकी मलुहा के दार, दरबारी कानड़ा, मेघ मल्हार, मियाँ की मल्हार, हेम, हेमकल्याण आदि में विशेष प्रकर्ष पाती थी। आपकी भैरवी 'वंदे नंद कुमारम्' अत्यंत प्रसिद्ध है। फ़ैयाज़ खां विलम्बित गाने में परिपूर्ण थे। उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा था, 'मुझे तान पर आने में एक घंटा लगता है'। बम्बई, दिल्ली, लखनऊ आदि रेडियो स्टेशन से आप बराबर गाते थे।

वंश परम्परा के गायकों में उस्ताद बड़े गुलाम अली खां का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बड़े गुलाम अली एक खानदानी संगीतज्ञ हैं। अपने चाचा द्वारा अल्प-शिक्षा प्राप्त करने पर चाचा की शीघ्र मृत्यु से इन्हें बड़ा दुःख हुआ और संगीत की पैतृक प्रशस्ति को कायम रखने की इनकी इच्छा जागृत हुई। नियमित रूप से पर्याप्त समय तक गायन का अभ्यास करके अल्प समय ही में इन्होंने आश्चर्यजनक उन्नति की। अपनी नैसर्गिक स्वर-लहरी में अभ्यस्त कण्ठ से निकली हुई मधुर वाणी एवं अनवरत साधना के बल पर सधा हुआ सुस्वर श्रोताओं के हृदयों पर अपना अमिट प्रभाव डालता है। यद्यपि भारत विभाजन के परिणामस्वरूप आप पाकिस्तान चले गए हैं फिर भी आपने भारतीय संगीत सम्मेलनों में भाग लेना बन्द नहीं किया। ख़ां साहब की गायकी 'खयाल' अंग की है। ठुमरी गायन में तो ख़ां साहब अपना सानी नहीं रखते। कोकिला कण्ठी लतामंगेशकर ने आप ही से संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। संगीत महारथियों में ख्याति प्राप्त स्व. बन्देअली ख़ां साहब

१९५४

वीणाकार' अपनी वीणा पर केवल ठुमरी ही बजाया करते थे।

शरीर और स्वर में मोहिनी, तान में तरलता लिए स्वर सम्राट् युवक कलाकार कुमार गंधर्व को हम नहीं भूल सकते। कुमार का कण्ठ उन्हें अनुपम स्वर्गीय देन है। शास्त्रीय संगीत एवं हलकी फुलकी चीज़ दोनों में वे समान रूप से रस पैदा कर सकते हैं। उनकी कला में जादू है और स्वर में अनुपम मोहिनी शक्ति। कुमार गंधर्व से आप तान अलाप सुनिए या स्वर-संधान; आप सुध बुध खोकर मोहित हुए बिना न रहेंगे। स्वर के सौंदर्य के साथ कला की कमनीयता और तान की तरलता के साथ शास्त्रीय संगीत का जो सौष्ठव कोमल कलाकार कुमार गंधर्व में विद्यमान है वह वास्तव में ईश्वर प्रदत्त ही है। आजकल आप लोक गीतों में शास्त्रीय राग रागिनियों के स्वरूप को खोज कर उनका रूप निश्चित कर रहे हैं। निस्सन्देह कोई शापित मानव-रूपी गन्धर्व ही हैं।

किसी ने ठीक ही कहा है कि सच्चा संगीत वह है जो श्रोता को आनन्द विभोर कर दे, जो उसके मन को अपनी स्वर लहरियों में उसी प्रकार बाँध ले जिस प्रकार कमल की पंखुड़ियों में भौंरा बँध जाता है। वह संगीत क्या जिसे सुनते सुनते मन उसमें रम न जाए, खो न जाए—ऐसा खो जाए कि फिर सुधि ही न रहे। पं० ओंकारनाथ ठाकुर ऐसे ही संगीतज्ञों में से हैं। शास्त्रीय संगीत को जनता तक ले जाने वाले संगीतज्ञों में आपका स्थान प्रमुख है। दिल्ली के गत सांस्कृतिक समारोह के समय श्री स्व॰ विष्णु दिगम्बर द्वारा स्थापित गन्धर्व महाविद्यालय की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर शास्त्रीय संगीत के प्रति आम जनता की अरुचि की दलील को लचर सिद्ध करते हुए ओंकारनाथ जी ने अपने शास्त्रीय संगीत की पक्की रागों से जनता को मुग्ध कर लिया था। आप एक मात्र गलेबाज़ी के प्रदर्शन को अपने संगीत में स्थान नहीं देते। आपकी कला जनता के लिए है।

उसी तरह श्री श्रीराम मराठे, श्रीमती माणिक वर्मा, उस्ताद रहीमुद्दीन खां आदि भी संगीत साधना में रत हैं और अपनी सुरीली तान द्वारा वह संगीत प्रस्तुत करते हैं जो श्रोता के मन के एक एक तार को झंकृत कर देता है तथा जिसको सुनते-सुनते श्रोतागण कुछ क्षणों के लिए अवश्य ही अपने अस्तित्व को भूल जाते हैं। यही संगीत का सच्चा रूप है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
वर्धा

—मदनमोहन शर्मा

नई दिल्ली का राष्ट्रीय संग्रहालय

नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में कई सुन्दर, कलात्मक वस्तुएँ संगृहीत की गई हैं। इनमें मुख्य ये हैं: तिब्बत के साम-ए मठ का ध्वज-चित्र, बैजनाथ (गढ़वाल) की पार्वती की मूर्ति, एक कलापूर्ण काश्मीरी शाल जिसके किनारों पर खमसाँ-ये-जामी के दृश्य अंकित हैं। इनके अतिरिक्त शारदा भाषा के ५०० बहु मूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ और कूच विहार के नारायणी संग्रह से प्राप्त सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के भी हैं।

श्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय संग्रहालय को आज़ाद हिन्द फौज की कुछ वस्तुएँ प्रदान की हैं जिनमें श्री सुभाषचन्द्र बोस की तलवार भी है। उन्होंने गुप्त वंशीय राजाओं के दो सिक्के भी दिए हैं जो उन्हें उत्तर प्रदेश के राज्यपाल से प्राप्त हुए थे। पुरातत्व विभाग में और भी ऐतिहासिक वस्तुएँ हैं।

—'हिन्दुस्तान' से

नियोजन-काल में राज्यों की वित्तीय व्यवस्था

प्रथम पंचवर्षीय नियोजन का यह चौथा वर्ष है। इसको सफल बनाने की ज़िम्मेदारी भारतीय संघ के २१ घटक राज्यों पर है। इस कारण से भी वित्तीय राज्यों की वित्तीय और आर्थिक स्थिति और उनकी स्थिरता का बड़ा महत्व है। नियोजन के कारण उनकी आर्थिक स्थिति में क्या अन्तर आया। उनके आय के स्रोतों में क्या परिवर्तन हुए। उनका खर्च कितना बढ़ा, राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में कितना खर्च बढ़ा इसका चित्र वांछनीय और आवश्यक है वहाँ यह एक नवीन आशा और नूतन उमंगों को पैदा करता है। इसकी प्रगति का एक माप है कि विकास कार्यों में कितना खर्च हो रहा है, यह बढ़ रहा है या घट रहा है और इसको कैसे पूरा किया जा रहा है। इस दृष्टि से भी राज्यों की आर्थिक स्थिति का अवलोकन करना लाभदायक सिद्ध होगा।

घाटे का : पहली बात जो सामने आती है वह यह है कि १९५१-५४ के तीन सालों में 'क' और 'ख' राज्यों का बजट घाटे का है और १९५४-५५ में यह घाटा और भी अधिक होने की सम्भावना है। तीन सालों में इन राज्यों का घाटा ३३.९ करोड़ रु. है और १९५४-५५ के घाटे का अनुमान है ३५.८३ कोटि रु.। इस घाटे का प्रभाव राज्यों के नगदी रोकड़ पर पड़ा है और वह बराबर छीनता जा रहा है। राज्यों द्वारा ली हुई सिक्युरिटीज़ पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। इन राज्यों से तीन सालों में इन स्रोतों से ६१.७८ करोड़ रु. और १९५४-५५ द्वारा १८.५४ कोटि रु. लिया गया है। राज्यों की महानिधि का भी घटना जारी है। यह घाटा मुद्रास्फीति के कारण उत्पन्न अन्तर को पूरा करने की सूचक नहीं है। राज्य अपनी सिक्युरिटीज़ जनता को या केन्द्रीय सरकार को बेचते हैं। पिछली अवस्था में वित्तीय उत्तरदायित्व का भार केन्द्र पर आ जाता है। केन्द्रीय सरकार की आर्थिक ज़िम्मेदारी इस कारण बराबर बढ़ती जा रही है।

'क' और 'ख' राज्यों के बजट के आर्थिक स्थिति का जो चित्र पेश करते हैं वह यह है :

(करोड़ रुपयों में)

		१९५१-५२	१९५२-५३	१९५३-५४ (ब. अ.)	१९५३-५४ (अनु. अ.)	१५५४-५५ (ब. अ.)
राजस्व	'क' राज्य	३१५.६०	३२९.२२	३५०.५१	३५७.४९	३६६.७७
	'ख' राज्य	१०६.७०	१०८.१२	११५.२९	११२.२१	१२१.७६
योग		४२२.३०	४३७.३४	४६५.८०	४६९.७०	४८८.५३
व्यय	'क' राज्य	३०९.११	३२९.३६	३६२.९३	३७१.६४	४००.८८
	'ख' राज्य	१००.५३	१०४.८७	११८.६२	११५.८४	१२७.६४
योग		४०९.६४	४३४.२३	४८१.५५	४८७.४८	५२८.५२
घाटा (–) या बचत (+)	'क' राज्य	+ ६.४९	– ०.१४	–१२.४२	–१४.१५	–३४.११
	'ख' राज्य	+ ६.१७	+ ३.२५	– ३.३३	– ३.६३	– ५.८८
योग		+१२.६६	+ ३.३९	–१५.७५	–१७.७८	–३९.९९

१९५४

		१९५१-५२	१९५२-५३	१९५३-५४	१९५३-५४	१५५४-५५
				(ब. अ.)	(अनु. अ.)	(ब. अ.)
पूँजी गत :						
उपलब्धि	'क' राज्य	१३१·१८	१४०·४५	१५२·४६	१४२·१२	२०२·४६
	'ख' राज्य	३५·०७	१८·०२	४२·६६	३९·८०	५८·११
	योग	१६६·२५	१५८·४७	१९५·४२	१८१·९२	२६०·६०
खर्च	'क' राज्य	१४६·९२	१२७·४७	१६१·०८	१५०·४४	१९६·६१
	'ख' राज्य	४२·५४	२३·५१	४५· ७	४६·८१	५९·८३
	योग	१८९·४६	१५०·९८	२०७·०५	१९७·२५	२५६·४४
घाटा (–) या बचत (+)		–२३·४१	+ ७·४८	–११·६३	–१५·३३	+ ४·१६
कुल घाटा		–१०·५५	+१०·६०	–२७·३८	–३३·११	–३५·८३

इससे स्पष्ट है कि यदि राज्यों की आय बढ़ी है तो इसके साथ-साथ उनका खर्च भी बढ़ा है और इस कारण उनका घाटा भी प्रतिवर्ष बढ़ता जाता है। नियोजन की सफलता के लिए प्रारम्भ में इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि बजट बचत के होने चाहिएँ किन्तु यह दूसरे ही साल नहीं निभ सका। इसका कारण है आय के साधनों का परिमित होना।

इसको देखने से यह भी मालूम होगा कि कुल उपलब्धि की आय-व्यय में अधिक वृद्धि हुई है। १९५१-५२ में कुल उपलब्धि थी ५५१·३२ करोड़ रु. और १९५४-५५ के लिए अनुमान है ७२०·५९ करोड़ रु. इसके मुक़ाबले में कुल खर्च १९५१-५२ में था ५९९·११ करोड़ रु. और १९५४-५५ का अन्दाज़ा है ७८४·९६ करोड़ रु.

राज्यों की उपलब्धि में बढ़ती होने का मुख्य कारण यह है कि केन्द्रीय सरकार से अधिक अनुदान और कर्ज़ मिलता है। यह मुख्यतः विकास के लिए राज्यों को दिया गया है। १९५१-५२ में केन्द्र से राज्यों को अनुदान में मिला था २२·७५ करोड़ रु. और १९५४-५५ में यह बढ़ कर हो गया है ४१·६३ करोड़ रु.। इसी अर्से में केन्द्रीय सरकार से मिलनेवाला कर्ज़ ३२·३९ करोड़ रु. से बढ़ कर १५४·१९ करोड़ रु. हो गया। आय-कर और उत्पाद बलि (एक्साइज़) की आय से राज्यों का भाग ५२·६४ करोड़ रु. (१९५१-५२) से बढ़ कर ७१.९७ करोड़ रु. (१९५४-५५) हो गया है। इस बढ़ती का मुख्य कारण है कि केन्द्रीय उत्पाद बलि (एक्साइज़) की आय में से राज्यों को १९५२-५३ से हिस्सा मिलने लगा है।

इस काल में राज्यों ने करों और कर्ज़ से अपनी आय बढ़ाने का प्रयत्न कम किया है। करों से राज्यों की आय १२५१-'१२ में २२७·२६ करोड़ रु· थे और १९५३-५४ (अनु. अ.) में २४५·३२ करोड़ रु. आय वृद्धि का कारण है भू-राजस्व। ज़मींदारी का अन्त हो जाने से इसमें वृद्धि हुई है। 'क' राज्यों को भू-राजस्व से १९५१-५२ में आय थी ३३·०५ करोड़ और १९५३-५४ में ४९·६४ करोड़ रु. और १९५४-५५ में ५२·१० करोड़ रु. होने की आशा है। 'ख' राज्यों को भू-राजस्व से १४.९४ करोड़ रु. आय १९५१-५२ में थी। यह १९५३-५४ में १७.९३ करोड़ रु. और १९५४-५५ में यह १९·६६ करोड़ रु. हो गई। बिक्री कर से भी आय बढ़ी है। 'क राज्यों की बिक्री कर से आय १९५१-५२ में ४७·८५ करोड़ रु. थी। १९५४-५५ में इससे ४०·९४ करोड़ रु. होने की आशा है। इससे मालूम होता है आय का यह स्रोत भी अब अधिक सहायक नहीं हो सकता। यही बात 'ख' भाग के राज्यों के साथ लागू होती है। १९५०-५२ में बिक्री-कर से इनको आय थी ६·४० करोड़ रु. और १९५४-५५ में आशा है ८·७६ करोड़ रु. की होगी। मोटर गाड़ियों और पेट्रोल पर

बिक्री-कर से भी आमदनी बढ़ी है। यही बात राज्य उत्पाद बलि के बारे में कही जा सकती है किन्तु करों से होने वाली आय में उल्लेख योग्य वृद्धि नहीं हुई है। १९५४-५५ में करों से कुल आय २४७·०४ करोड़ रु. होने की आशा है। नए कर प्रस्तावों से केवल ३ करोड़ रु. की आमदनी होने की आशा है।

इन वर्षों में करों में वृद्धि हुई है या उनका क्षेत्र बढ़ाया गया है। नए कर नहीं लगाए गए हैं। नए कर या दर परिवर्तन नौ राज्यों में हुआ है, जैसे जनमंगल शुल्क, भू-राजस्व पर प्रभार (सर चार्ज), बागान की पैदावार की आय पर कर, वादे के लेन-देन पर कर, शिक्षा सैस, बिक्री कर में वृद्धि या इसका विस्तार, नहरी-पानी कर, मोटर गाड़ी कर, बिजली शुल्क और स्टाम्प।

अकर गत आय राज्यों की बढ़ी है। १९५१-५२ में यह ११०·६६ करोड़ रु. थी। १९५४-५५ में ११९·७८ करोड़ रु. होने की आशा है। वन को छोड़ कर शेष सब स्रोतों से आय बढ़ी है। दीर्घकालिक कर्ज़ से राज्यों को १९५१-५२ में १०·८० करोड़ रु. आय थी। इससे अगले साल ११·२४ करोड़ रु. हुई। पर १९५३-५४ में यह बढ़ कर ३६·१४ करोड़ रु. हो गई या कुल ५८·१८ करोड़ रु. हो गई। १९५४-५५ में २५·९१ करोड़ रु. की आशा की गई है। पर 'नेशनल प्लॉन लोन' के जारी होने से राज्यों ने इस वर्ष स्वतः बाज़ार से कर्ज़ न लेने का निश्चय किया है। राज्यों को इसमें से हिस्सा मिल जाएगा। अनिधि कर्ज़ १९५१-५४ में १४·७३ करोड़ रु. था और १९५४-५५ के लिए ६·८२ करोड़ की बजट में व्यवस्था की गई है। १९५१-५४ के मध्य अल्पकालिक कर्ज़ मिला १९·७५ करोड़ रु. और १९५४-५५ में ०·८३ करोड़ रु. आने की आशा है।

ख़र्च में हुई वृद्धि में से तीन चौथाई का कारण राष्ट्र निर्माण और विकास के कार्य हैं। १९५१-५२ में इन पर ख़र्च होता था ३२२·८० करोड़ रु. अब १९५४-५५ में ख़र्च होगा ४८९·१५ करोड़ रु.। मुल्की प्रशासन के व्यय में कोई भारी अन्तर नहीं आया है। १९५४-५५ में ११४·९२ करोड़ रु० होगा। राजस्व पर प्रत्यक्ष मांग इन दिनों बढ़ी है और वह ३५·५७ करोड़ रु. से बढ़ कर ५४·६५ करोड़ रु. हो गई। ख़र्च के मुख्य मदें हैं बहुमुखी नदी घाटी योजनाएँ और सिंचाई की योजनाएँ। निर्माण और विकास ख़र्च का बड़ा भाग इनमें लग रहा है। 'क' राज्यों का मुल्की प्रशासन पर १९५१-५२ में ख़र्च का ८७·८७ करोड़ रु था। १९५४-५५ में ९१·१८ करोड़ होने की आशा है। इसके मुक़ाबले में विकास व्यय १९५१-५२ में ११९·३२ करोड़ था, और १९५४-५५ में १६२·०८ करोड़ रु. होगा। मुल्की काम पर भी ख़र्च बढ़ा है। 'क' राज्यों का इस मद पर १९५१-५२ में ख़र्च था ३१·९७ करोड़ रु. और १९५४-५५ में होने की आशा है ४२·९४ करोड़ रु.। 'ख' राज्यों का मुल्की प्रशासन का व्यय घटा है। १९५१-५२ में था २५·९८ करोड़ रु. और १९५४-५५ में होने की आशा है ३·७७ करोड़ रु.। इसके मुक़ाबले में विकास कार्यों पर १९५१-५२ में ख़र्च था ३७·८३ करोड़ रु. और १९५४-५५ में होगा ५६·९१ करोड़ रु.। इसी प्रकार 'ख' राज्यों का मुल्की कामों का ख़र्च बढ़ा है। १९५१-५२ में इसका ख़र्च था ८·९५ करोड़ रु. और १९५४-५५ में इस पर होगा १३·९८ करोड़ रु.।

'क' राज्य

समस्त 'क' राज्यों का आय-व्यय चार सालों में इस प्रकार रहा : (करोड़ रुपयों में)

	१९५१-५२	१९५२–५३	१९५३–५४ (ब. अ.)	१९५३–५४ (अनु. अ.)	१९५४-५५ (ब. अ.)
राजस्व	३१५·६०	३२९·२२	३५०·५१	३५७·४९	३६६·७७
व्यय	३०९·११	३२९·३६	३६२·९३	३७१·६४	४००·८८
बचत (+) या घाटा (–)	+ ६·४९	– ०·१४	–१२·४२	–१४·१५	–३४·११
घाटा (राजस्व महा-निधि से घाटा को पूरा करने के लिए घटा कर)	(– २·३०)	(–१२·०५)	(–१८·०४)	(–२१·०९)	(–४०·७२)

१६५४

राज्यों ने युद्ध काल में अपनी बचत का राजस्व महानिधि में संचय किया था और युद्धोत्तर काल की योजनाओं को पूरा करने के विचार से इस निधि की स्थापना की थी। इस निधि की अब क्या अवस्था होगी इसकी कुछ कुछ कल्पना ऊपर की तालिका से की जा सकती है। इस निधि की स्थिति पर निम्न तालिका अच्छा प्रकाश डालती है :

राजस्व महानिधि (लाख रुपयों में)

अन्त में

	१६५०-५१	१६५१-५२	१६५२-५३	१६५३-५४ (अनुवीक्षित)	१६५४-५५ (बजट)
आसाम	१०१	६६	२०१	१०६	१५०
बिहार	१४५०	८५०	२०५	......	... ..
बम्बई	१३२०	११२६	८७०	८२६	५७६
मध्यप्रदेश	११३४	१०५५	१००६	८७१	४५४
मद्रास	२३३२	६४२	......	......	......
उत्तर प्रदेश	१२६०	१२६६	१००४	७४८	७४८
योग	७६४५	५३७४	३२४३	२५५७	१६३१

'क' राज्यों को १६५१-५५ के अर्से में ४७·२० करोड़ रु. का घाटा है। पूँजीगत घाटा इस में केवल ५·२६ करोड़ रु. है और ४१·६१ करोड़ रु. राजस्व गत है। १६५४-५५ में ३४·११ करोड़ रु. का घाटा है। और यह अब तक के इतिहास में चरम सीमा का है। १६५२-५३ में केवल तीन राज्यों, मद्रास (६·६८ करोड़ रु.), बम्बई (५·६४ करोड़ रु.) और पश्चिमी बंगाल (१·४८ करोड़ रु.) को घाटा रहा। शेष सब राज्यों को बचत रही। उत्तर प्रदेश का बजट सन्तुलित रहा। १६५२-५३ के अन्दर कर-गत आय में ४·०३ करोड़ रु. की और अकर गत आय में ३·७१ करोड़ रु. की कमी रही। दूसरी ओर विकास कार्यों का ख़र्च भी ८·०६ करोड़ रु. घट गया।

१६५३-५४ के अनुवीक्षित अनुमान को देखने से मालूम होगा कि आय ३५७·४६ करोड़ रु. और खर्च ३७१·६४ करोड़ रु. रहा। दोनों में क्रमशः ६·६८ रु. और ८·७१ करोड़ की वृद्धि रही। पश्चिमी बंगाल को सबसे अधिक (११·७५ करोड़ रु.) घाटा रहा और बिहार को सर्वाधिक बचत (१·२४ करोड़ रु.) रही, उत्तर प्रदेश का बजट संतुलित रहा। आसाम, बम्बई, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल का कुल घाटा १६·०७ करोड़ रु. रहा और बिहार, मध्य प्रदेश और पंजाब की कुल बचत १·६२ करोड़ रु. रही।

१६५२-५३ की १६५३-५४ के साल से तुलना करने पर ज्ञात होगा कि १४·०१ करोड़ रु. का घाटा रहने का मुख्य कारण यह है कि आय में तो केवल २८·२७ करोड़ रु. की वृद्धि हुई। कर-व्यय में वृद्धि हुई ४२·२८ करोड़ रु. की, पश्चिम बंगाल के ख़र्च में ११·६३ करोड़ रु. की वृद्धि हुई। लेकिन उसकी आय में इसके मुताबिक कोई वृद्धि नहीं हुई। अन्य प्रदेशों के ख़र्च में भी १६५२-५३ की तुलना में वृद्धि हुई। यथा :

	(करोड़ रु. में)	विकास कार्य के व्यय में वृद्धि
उत्तर प्रदेश	८·७१	२·५६
बिहार	७·११	४·६६
मध्य प्रदेश	५·७१	४·४५
बम्बई	३·६२	
उड़ीसा	३·१५	
पश्चिमी बंगाल	११·६३	७·४१

उत्तर प्रदेश, मद्रास और बम्बई की क्रय में क्रमशः ८·७१ करोड़ रु., ७·३३ करोड़ रु. और ७·६७ करोड़ रु. वृद्धि हुई। उत्तर प्रदेश की आय वृद्धि का मुख्य कारण भू-राजस्व रहा और बम्बई की आय वृद्धि का मुख्य कारण बहुमुखी बिक्री कर है।

१९५४-५५ में राज्यों का कुल घाटा ३४·११ करोड़ रु. है। एकमात्र बम्बई ने ०·१६ करोड़ रु. की बचत दिखाई है। अन्यथा सब राज्यों ने घाटा दिखाया है। पश्चिमी बंगाल का घाटा है १३·३८ करोड रु. और यह सबसे अधिक है। मद्रास का सब से कम है ०·५८ करोड़ रु.। आन्ध्र, आसाम, मद्रास, पंजाब और उड़ीसा ने बजट के घाटे को पूरा करने के लिए नए कर लगाए हैं।

विभिन्न प्रदेशों द्वारा लगाए गए नए करों का विवरण इस प्रकार है :

१ **आन्ध्र :**	आनुमानिक आय की आशा (लाख रुपयों में)
(क) पानी दर में वृद्धि	
(ख) कुछ व्यावसायिक फ़सलों के बन्दोबस्त पर वृद्धि	
(३) सिंचाई से लाभ उठाने वाली ज़मीन पर 'जनमंगल शुल्क'	
(४) बिक्री-कर कानून के अन्दर व्यापारी की परिभाषा में संशोधन	१००

२ **आसाम :**	
(क) कृषि आयकर की दर में वृद्धि	
(ख) व्यापार, पेशों, वृत्तियों और रोज़गारों के कर में वृद्धि	
(ग) सिगरेट और सिगार सदृश्य वस्तुओं पर बिक्री-कर की दर में वृद्धि	
(घ) गांठों और पेटियों में सड़कों और जल मार्ग से ले जाने वाले जूट और तैयार चाय पर शुल्क	...

३ **मध्यप्रदेश :**	
मनोरंजन कर की कुल वसूली में अधिकतया दर के अन्दर ३३⅓ प्रतिशतसे कमी की गई और २५ प्रतिशत ठहराया गया	...

४ **मद्रास :**	
(क) ५०० रु. से कम के बन्दोबस्त से ऊपर के पट्टेदारों के कुल भू-राजस्व पर प्रभार (सरचार्ज) बागान इससे मुक्त रखे गए।	
(ख) चाय, काफ़ी, रबड़ और इलायची सदृश बागानों की पैदावार पर कृषि आय-कर का शुल्क	
(ग) १ जनवरी १९४७ के बाद से जिन ज़मीनों को सिंचाई से लाभ हुआ है, उन पर जन मंगल कर	
(घ) कोर्ट फ़ीस एक्ट में संशोधन	
(ङ) सोने और चांदी के बर्तनों और मूल्यवान असली और नक़ली पत्थरों को विलासिता की सामग्री में सम्मिलित करना और अधिक ऊँचा कर लगाना	
(च) १६ नं. से ऊपर के सूती कपड़ों रेशमी और ऊनी कपड़ों पर प्रति रुपया १ आना ३ पा. और अधिक बिक्री-कर	४०

मद्रास ने जहाँ नए कर लगाए हैं वहाँ कुछ हटाए भी हैं :

(क) मांस, मछली, शाक-सब्जी, फल और अण्डे बिक्री-कर से मुक्त किए गए

(ख) हाथ के करघे के कपड़े को प्रति रुपया १½ पा. बिक्री-कर से मुक्त किया गया

५ **पंजाब :**	
(क) मोटर गाड़ी कर दर में वृद्धि	१२
(ख) मद्रास के ढंग पर तमाशा-कर	५
(ग) सम्पत्ति शुल्क के भाग	१४
(घ) ज़मीन के कर ब दोबस्त के कारण भू-राजस्व में वृद्धि	३०
योग	६१

१९५४

६ उड़ीसा :

(क) हीराकुंड सिंचाई योजना से लाभ उठाने वालों पर जन मंगल कर

(ख) शिक्षा सैस ...

सर्व योग २०१

केन्द्रीय सरकार से लिए गए कर्ज़ को चुकाने में राज्यों ने ४·६१ करोड़ रु. अधिक दिया। आसाम और उड़ीसा की ही राशि केवल कम रही। स्थायी कर्ज़ें में विशुद्ध उपलब्धि रही २४·१६ करोड़ रु. की और जमा और उत्पन्न में २०·८३ करोड़ रु. रहा। केन्द्रीय सरकार से कर्ज़ में १३४·३३ करोड़ रु. मिलने की आशा है, जो कि १९५३-५४ की तुलना में २० करोड़ रु. से अधिक है।

'क' राज्यों के खर्च को देखने से मालूम होता है कि मुल्की प्रशासन के खर्चे में अधिक वृद्धि नहीं हुई है। पर मुल्की काम और विकास के कार्यों के खर्च में पर्याप्त वृद्धि हुई है। नीचे तुलनात्मक विवरण दियागया है :

लाख रुपयों में

	कुल व्यय		मुल्की प्रशासन		मुल्की काम		विकास कार्य	
	१९५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५
आसाम	१०९३	१६७०	२३२	२६६	२०४	४४५	३५८	६२४
बिहार	३२८२	३९७३	८९४	८६४	६५०	७७४	१२३४	१६२०
बम्बई	६२५८	७२१९	२००७	१९२६	३००	४६२	२५७८	२९८८
मध्य प्रदेश	१८२२	३०६८	५०८	५८३	२४४	३९९	६००	१०७८
मद्रास	६४४४	४५१८	१७९३	११६७	७६३	३७६	२९३४	२४०६
आन्ध्र	...	२४०२	...	६४९	...	२५४	...	१२३०
उड़ीसा	१०८६	१४८६	३०३	३७०	१७४	१७२	४३३	६१९
पंजाब	१६४५	२३१४	५११	५२०	१३९	२९६	५८५	७८४
उत्तर प्रदेश	५५५०	८१०७	१४९५	१६१४	३२१	४९८	१९४९	२७७०
पश्चिम बंगाल	३७३१	५३३१	१०४४४	११५०	४०२	६१८	१२५१	२०८९
योग	३०९११	४००८८	१८१८७	९१०९	३१९७	४२९४	११९२२	१६२०८

१९५१-५२ में मद्रास और आन्ध्र संयुक्त थे। १९५४-५५ में दोनों अलग थे। इन दोनों के अंकों को मिला कर मद्रास की १९५१-५२ से तुलना की जा सकती है। इसको देखने से मालूम होगा कि बम्बई को छोड़ कर शेष सब प्रदेशों का मुल्की प्रशासन व्यय बढ़ा है। इसका अर्थ है कि पुलिस का खर्च बढ़ा है, और क़ानून व्यवस्था मँहगी होती जा रही है। मुल्की कामों और विकास कार्यों के खर्च की वृद्धि इस बात की सूचना है कि देश का नव-निर्माण तेज़ी से हो रहा है। विकास कार्यों का यदि विस्तृत ब्यौरा देखा जाए तो मालूम होगा कि चार सालों में शिक्षा, चिकित्सा, खेती, उद्योग, सिंचाई, बिजली योजना, सामुदायिक विकास परिकल्पना पर खर्च बढ़ा है। सामुदायिक विकास परिकल्पना का आरम्भ १९५२-५३ में हुआ। प्रारम्भ में इसका खर्च ८० लाख रु. था पर १९५४-५५ में इसका व्यय १०·१२ करोड़ रु. है और यह इसकी व्यापकता की सूचना देता है। यही बात बिजली योजनाओं की है। १९५०-५१ में इन पर खर्च हुआ ४५५ लाख रु. और १९५४-५५ में ६९२ करोड़ रु. होगा। गाँव-गाँव में बिजली पहुँचाने का जो यत्न है उसको देखते हुए यह प्रयास महान् न मालूम होगा। शिक्षा, चिकित्सा, खेती, उद्योग और सिंचाई पर किए परिश्रम में पिछले चार सालों में खर्च हुआ इसका तुलनात्मक विवरण नीचे दिया गया है :

(लाख रुपयों में)

	शिक्षा		चिकित्सा व स्वास्थ्य		खेती पशु चिकित्सा सहकारिता ग्राम विकास		उद्योग		सिंचाई	
	१९५१-५२	१९५४-५५	१९५१-५२	१९५४-५५	१९५१-५२	१९५४-५५	१९५१-५२	१९५४-५५	१९५१-५२	१९५४-५५
आसाम	१७२	२८३	७८	११०	८८	९४	७	२०	१६	३३
बिहार	३५८	६७२	२०१	२९१	२३६	२१४	३७	३२	२२७	१४८
बम्बई	१२१०	१४११	४३३	५०२	३७२	२९०	६६	१११	१७२	१७८
मध्यप्रदेश	२९३	४६६	८५	१३३	१३०	२०६	८	३२	४२	८५
मद्रास	११०१	८५४	५१८	३८५	४५५	३२१	२०२	१७५	३२२	२४१
आन्ध्र	……	४२२	…..	१५७	…..	१५६	…..	५०	…..	२०६
उड़ीसा	१२५	१८८	६८	९५	८०	११७	२५	२६	१००	४७
पंजाब	१८८	२५६	८५	१२७	९९	९६	२६	५६	११५	११४
उत्तर प्रदेश	७४३	९४६	३०६	३९०	५०४	५०९	९०	२७३	२५६	३३५
प. बंगाल	३३६	६५६	४३०	५४१	२५८	२८६	७९	८२	१०७	२२७
योग	४५२६	६१५७	२२०४	२७३१	२२१४	२२८९	५४३	८५७	१३५७	१६१४

१९५४

इस तालिका को देखने से ज्ञात होगा कि शिक्षा और चिकित्सा एवं स्वास्थ्य पर सब प्रदेशों ने खर्च बढ़ाया है। स्वास्थ्य और चिकित्सा पर पश्चिमी बंगाल सबसे अधिक खर्च कर रहा है। बम्बई का स्थान दूसरा है। आबादी तथा विस्तार में उत्तर प्रदेश सबसे आगे है पर स्वास्थ्य और चिकित्सा पर खर्च करने में उसका स्थान तीसरा है। खेती पर बिहार और पंजाब ने अपना खर्च घटाया है। बिहार ने उद्योग और सिंचाई पर खर्च घटाया है। उत्तर प्रदेश ने उद्योग पर खर्च लगभग तीन गुना कर दिया है। सिंचाई पर उत्तर प्रदेश सबसे अधिक खर्च कर रहा है। मद्रास, पश्चिमी बंगाल और आन्ध्र का इसके बाद क्रमशः स्थान है। इससे प्रगट है कि राष्ट्र विकास के कार्यों में उत्तरोत्तर खर्च बढ़ रहा है।

'ख' राज्य : 'ख' राज्य एक समय सामन्तशाही के गढ़ थे। अब ये लोकतंत्र से दृढ़ बनाए जा रहे हैं। इस दिशा में इन्होंने कितनी प्रगति की है और इनके बजट इस विषय में बताते हैं यह देखना कम रसप्रद नहीं है। ये राज्य इस बात के लिए यत्नशील हैं कि 'क' और 'ख' राज्यों के मध्य विद्यमान अन्तर का अन्त कर दिया जाए। इनके बजट क्या यह बात बताते हैं कि विकास की अवस्था में ये 'क' राज्यों के समकक्ष हैं। इस दृष्टि से भी इनके बजटों का अध्ययन करना आवश्यक है।

१९५१-५२ से १९५४-५५ तक के वर्षों में इन राज्यों को कुल घाटा ३२·२६ करोड़ का रहा जिसमें से २९·६९ करोड़ रु० पूँजीधन था। 'ख' राज्यों की राजस्व आय धन बजट का लेखा इस प्रकार है :

करोड़ रु० में

					योग	
	१९५१-५२	१९५२-५३	१९५३-५४	१९५३-५४	१९५१-५५	१९५४-५५
			(ब. अ.)	(अनु. अ.)		(ब. अ.)
राजस्व आय	१०६·७०	१०८·१२	११५·२९	११२·२१	३२७·०३	१२१·७६
व्यय	१००·५३	१०४·८७	११९·३३	११५·८४	३२१·२४	१२७·६४
बचत (+) या घाटा (−)	+६·१७	+३·२५	−४·०४	−३·६३	+५·७९	−५·८८
महानिधि से हस्तान्तरण करने के बाद बचत (+) या घाटा (−)	(+५·९७)	(+३·२५)	(−५·८०)	(−४·४७)	(+४·७५)	(−७·३२)

आय और व्यय के अन्दर बराबर वृद्धि हो रही है, आय के अन्दर २८·३८ करोड़ रु. की और व्यय में २५·७१ करोड़ रु. की वृद्धि हुई है। फलतः १९५१-५२के समान अब बजट भी बचत का नहीं रहा है और घाटे का चल रहा है। खर्च में वृद्धि का एक मुख्य कारण विकास कार्य है। इस पर इन वर्षों में ३०·५४ करोड़ रु. व्यय हुआ है।

१९५२-५३ में ३·२५ करोड़ रु० की बचत रही क्योंकि खर्च में ६·३१ करोड़ रु० की कमी हुई। सौराष्ट्र और मध्य भारत के बजट घाटे के रहे। शेष पाँच राज्यों में हैदराबाद (१·४२ करोड़ रु०) और राजस्थान (२·२१ करोड़ रु०) को बचत रही। पर १९५३-५४ में मैसूर ने २·३८ करोड़ रु. का व हैदराबाद ने १·५१ करोड़ रु. का घाटा दिखाया है। इन राज्यों की आय के बढ़ाने में केन्द्रीय सरकार से मिला अनुदान और सुरक्षा महानिधि से ली गई राशि मुख्य कारण रहे हैं। अन्यथा करों से तो इन राज्यों की आय में ०·६५ करोड़ रु० की ही वृद्धि हुई

है। विकास कार्यों में ४१·२७ करोड़ रु० से बढ़ा कर ख़र्च ४८·२४ करोड़ रु० हो गया। इस प्रकार मुल्की कामों में ख़र्च १०·०२ करोड़ रु० से बढ़ कर १३·५५ करोड़ रु० हो गया। १६५४–५५ में भी ख़र्च ११·८० करोड़ रु० बढ़ा है और इसमें से ६·१० करोड़ रु० विकास-कार्यों में ख़र्च बढ़ा है। फलतः आय-व्यय के मध्य का अन्तर ३·६३ करोड़ रु० से बढ़ कर ५·८८ करोड़ रु० हो गया है। मध्य भारत ने बचत की आशा प्रगट की है और राजस्थान ने सन्तुलित बजट पेश किया है। शेष सबका बजट घाटे का है। मैसूर का घाटा ३·०६ करोड़ रु० है। बेलरी ज़िला मैसूर में मिलाया गया है और मैसूर का घाटा इस कारण है। भाषावार प्रदेश बनाने की माँग का परिणाम मैसूर के लिए लाभ कर सिद्ध नहीं हुआ। इसी कारण वह प्रस्तावित संयुक्त कर्नाकट में मिलने के लिए उत्साह नहीं प्रगट कर रहा। हैदराबाद, मैसूर और पेप्सु ने कर प्रस्ताव किए हैं या करों में परिवर्तन किए है। इनके वर्ष भर में १·२५ करोड़ रु० आय होने की आशा है।

कुल राजस्व आय में ६·५५ करोड़ रु० की वृद्धि हुई है। इसका एक बड़ा कारण केन्द्रीय सरकार से अनुदान में ४·३५ करोड़ रु० का मिलना है। यह 'गाडगिल कमेटी' की सिफ़ारिशों का परिणाम है।

नए कर और दर का प्रस्ताव १९५४-५५

हैदराबाद :	आनुमानिक आय की आशा (लाख रु. में)
१ मोटरगाड़ी के कर में २० प्रति टन वृद्धि	२·५
२· गन्ने पर २ रु० प्रति टन से ४ रु० प्रति टन सैस वृद्धि	७·५
	१०·०

मैसूर :

१ शुष्क क्षेत्र के यू० राजस्व पर प्रभार १२½ प्रतिशत सिंचित क्षेत्र के बन्दोबस्त पर ५० प्रतिशत और बागान पर ६६⅔ प्रतिशत प्रभार	
२ काफ़ी और बागान की अन्य ज़मीनों के बन्दोबस्त पर १० प्रतिशत वृद्धि	
३ जल-कर में ५० प्रतिशत वृद्धि	
४ बिजली के प्रभार में १० से २० प्रतिशत वृद्धि	
५ सिंचाई पम्प पर, यदि अन्न धान्य की फ़सल हो तो ६ प्रतिशत वृद्धि और अन्यों पर १½ आना वृद्धि	
६ मद्रास के स्तर पर स्टाम्प और रजिस्ट्रेशन फ़ीस में वृद्धि	
७ होटलों की ७५०० या इससे अधिक की आमदनी पर बिक्री-कर में १० प्रतिशत वृद्धि	
८ मोटे कपड़े को छोड़ कर करघे और सूती मिल के कपड़ों पर २ आना प्रति रुपया बिक्री-कर	१००

पेप्सु :

१ मोटर गाड़ियों की रजिस्ट्रेशन फ़ीस, अस्थायी परमिट आदि का शुल्क पंजाब के समान	०·५०
२ पंजाब के समान प्रथम श्रेणी की म्युनिसिपैलिटियों में अचल सम्पत्ति पर पंजाब के समान कर	८·००
३ वादे के सौदे पर शुल्क	०·५०
४ पंजाब के समान मोटर गाड़ी से माल और यात्री ले जाने पर क़र	६·०० से ८·००
	१५·०० से १६·००
सर्व योग	१२५ से १२६

गाड़गिल कमेटी की सिफ़ारिशों के अनुसार निम्न अनुदान मिला है :

१९५४

(लाख रुपयों में)

	एक प्रश्न अनुदान	तदुद्देशीय अनुदान
१ मध्यभारत	१००	१००
२ पेप्सु	५०	६०
३ राजस्थान	१५०	१५०
४ सौराष्ट्र	१००	९०
	४००	४००

'ख' राज्यों के आय-कर में से ७·४४ करोड़ रु. मिलता है। इनकी आय के मुख्य साधन भू-राजस्व, बिक्री-कर उत्पाद-बलि और स्टाम्प हैं। स्टाम्प की आमदनी १९५१-५२ में ३·१६ लाख रु. थी और १९५४-५५ में ३·३८ करोड़ रु.। चार सालों में केवल २२ लाख रु. की वृद्धि हुई है। अतः राज्य चुंगी की आय बराबर घटती जा रही है। चार सालों में ९·८९ करोड़ से घट कर ५·८४ करोड़ रुपए रह गई है। इसका अन्त होना निश्चित है। शेष से आय बराबर बढ़ी है। यथा :

(लाख रुपयों में)

	कुल आय		बिक्री-कर		भू-राजस्व		उत्पाद बलि	
	१९५१-५२	५४-५५	१९५१-५२	५४-५५	१९५१-५२	५४-५५	१९५१-५२	५४-५५
हैदराबाद	२९८७	२७९६	१०६	२००	४८२	५०९	१०१६	९७८
मध्य भारत	११४९	१५१०	९१	१४०	२५३	३३८	१८५	१९६
मैसूर	१८३१	२१२१	१३७	१५७	१३१	१३७	२०७	१५७
पेप्सु	६०९	७३३	४६	४७	९०	१४२	२३५	१९०
राजस्थान	१५१५	२१५५	...	...	३१५	४७१	२९९	३१७
सौराष्ट्र	७५२	११३३	१६	७०	१५२	२९७	१७	६
त्रावनकोर-कोचीन	१७९१	१७२८	२४४	२६०	७१	७२	२४०	२१२
योग	१०६३४	१२१७६	६४०	८७४	१४९४	१९६६	२१९९	२०५६

इसको देखने से मालूम होगा कि एक मात्र हैदराबाद की आमदनी घटी है और शेष सब की बढ़ी है। हैदराबाद की आय घटने का कारण है उत्पाद बलि की आय में कमी होना। मैसूर, पेप्सु, सौराष्ट्र और त्रावनकोर-कोचीन की भी उत्पाद बलि से होने वाले आय में कमी हुई है। इसके विपरीत बिक्री-कर की आय सब की बढ़ी है और सौराष्ट्र की तो चौगुनी से भी अधिक हो गई है। जिन राज्यों में ज़मींदारी का अन्त कर दिया गया है उनकी भू-राजस्व की आय भी बढ़ी है। त्रावनकोर-कोचीन की आय में इस स्रोत से बहुत अल्प आय बढ़ी है। जमींदारी प्रथा आज भी वहाँ मौजूद है। उसका परिणाम हमारे सामने है।

पूँजीगत बजट : नियोजन के चार वर्षों में पूँजीगत बजट का कुल घाटा २१·६१ करोड़ रु. है। यद्यपि विकास योजनाओं पर ख़र्च इस काल के अन्दर १५·५१ (१९५१-५२) करोड़ से बढ़ कर ४३-८३ करोड़ रु. (१९५४-५५) हो गया है। इस अच्छी स्थिति का कारण यह है कि केन्द्र से जहाँ पहले ६·७० करोड़ रु. कर्ज़ मिला था वहाँ अब ३५·१७ करोड़ रु. मिला है। राज्य व्यापार से ८·५५ करोड़ रु. की आमदनी हुई और इसके

कारण भी घाटे में कमी हुई। १९५३-५४ में लम्बी मुद्दत का १२·१४ करोड़ रु. का कर्ज़ लिया।

१९५२-५३ में 'ख' राज्यों ने केन्द्रीय सरकार से ११·८७ करोड़ रु. कर्ज़ लिया। छोटी मुद्दत का कर्ज़ लिया १०·३५ करोड़ रु. और इसमें से आधा लिया त्रावनकोर-कोचीन ने। विकास कार्यों पर १९५२-५३ में २०·९० करोड़ रु. ख़र्च हुआ पर १९५२-५३ में १९ करोड़ रु. ही हुआ और इस प्रकार १·९० करोड़ रु. कम ख़र्च हुआ।

१९५३-५४ में पूँजीगत बजट के अन्दर ६·९५ करोड़ रुपए घाटा रहने का अनुमान है। हैदराबाद, मध्य भारत, मैसूर, सौराष्ट्र और त्रावनकोर-कोचीन ने १२·१४ करोड़ रु. कर्ज़ लिया। लेकिन इस पर भी छोटी मुद्दत के कर्ज़ लेने की ज़रूरत बनी रही। केन्द्र से पिछले साल की तुलना में १६·७६ करोड़ रु. अधिक कर्ज़ मिला।

विकास कार्यों पर ख़र्च १२·०१ करोड़ रु. से बढ़ कर १४·७० करोड़ रु. हो गया। संघ सरकार का १·६५ करोड़ रु. कर्ज़ चुकाया गया। १९५४-५५ में घाटा १·७९ करोड़ रु. होने का अनुमान है। कर्ज़ केन्द्रीय सरकार से ६·५४ करोड़ रु. अधिक मिला है और जमा भी ७·९४ करोड़ रु. अधिक होने की आशा है। मध्य भारत ने ज़मींदारों को मुआवज़ा देने के लिए २·२० करोड़ रु. का उपबन्ध किया है।

संघ राज्यों के बनने से मुल्की प्रशासन-व्यय में कमी आई है। पर मुल्की आय और विकास कार्यों का ख़र्च बढ़ा है। यथा :

(लाख रुपयों में)

	कुल व्यय		मुल्की प्रशासन		मुल्की काम		विकास कार्य	
	१९५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५
हैदराबाद	२८१९	२९०२	९०१	५६७	१५९	१९९	८३६	१०१३
मध्य भारत	११३१	१४६६	३६६	३१७	१०२	२०६	४०७	७२३
मैसूर	१८३५	२४३०	२१२	२८३	२१३	२९१	१०४०	१४८९
पेप्सू	४६६	७४०	१६४	१६३	६७	८८	१२६	२६८
राजस्थान	१५७६	२१५५	५१७	५८५	८८	१७३	५२२	८८२
सौराष्ट्र	८६३	११८१	२५९	२१०	९१	१७६	३२९	५३१
त्रावणकोर-कोचीन	१३६३	१८६०	१८०	२४८	१८२	२६५	५२३	७८५
योग	१००५३	१२७६४	२५९९	२३७३	९०२	१३९८	३७८३	५६९१

'ख' राज्यों में राजस्थान और मैसूर को छोड़ कर शेष सब राज्यों का प्रशासन-व्यय घटा है। और यह इन राज्यों के लिए श्रेय की बात है। रज़ाकारों के बाद हैदराबाद ४५४ लाख रुपए मुल्की प्रशासन व्यय में कमी कर सका है। यह एक उल्लेख योग्य बात है। मुल्की काम में सब ने ख़र्च बढ़ाया है। यही बात विकास के कार्यों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। विकास कार्यों के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, खेती, पशु-पालन, ग्राम विकास, उद्योग, सिंचाई, विद्युत योजना, सामुदायिक विकास परिकल्पना और अकाल निवारण आदि का समावेश होता है। सामुदायिक विकास परिकल्पनाओं में ३४३ लाख रु. व्यय १९५४-५५ में होने की आशा है, १९५२-५३ के अन्दर इस मद में केवल ९ लाख रु. ख़र्च हुआ था। विद्युत योजनाओं में १९५१-५२ में ६ लाख रु. व्यय हुआ था। वह अब बढ़ते-बढ़ते १९५४-५५ में १७२ लाख रु. तक पहुँच गया है। विकास कार्य के अन्तर्गत जन मंगल के अन्य कामों पर पिछले चार सालों में ख़र्च कितना बढ़ा है, यह निम्न तालिका में देखिए :

विकास के कुछ कार्यों के व्यय का विवरण

(लाख रुपयों में)

	कुल खर्च		शिक्षा		स्वास्थ्य व चिकित्सा		खेती, पशुपालन व ग्राम विकास सहकारिता		उद्योग		सिंचाई	
	१९५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५	५१-५२	५४-५५
हैदराबाद	८३६	१०१३	४०९	५१०	१४७	१९८	११४	१२०	२४	२३	११२	१०७
मध्य भारत	४०७	७२३	१५९	२३१	१०४	१३६	७४	१५२	२५	४७	४१	८३
मैसूर	१०४०	१४८९	२८५	३७८	१११	१५०	१२०	१४४	४३२	६३९	९०	५८
पेप्सु	१२६	२६८	६०	११५	३२	६४	२१	४५	२	८	...	३
राजस्थान	५२२	८८२	२३०	३३५	१४४	१९५	४९	९९	१३	४७	५४	८८
सौराष्ट्र	३२९	५२१	११३	१५८	६४	८४	३५	७५	१६	२५	३७	५३
त्रावनकोर-कोचीन	५२३	७८५	२४८	३३२	११६	१३३	४२	५६	५१	२६	६२	९१
योग	३७८३	५६९१	१५०४	२०५९	७१८	९६०	४५५	६९१	५६३	८१५	४०६	४८३

इस तालिका को देखते हुए पेप्सु पर दृष्टि का रुक जाना स्वाभाविक है। विकास कार्यों में उसका खर्च दुगुने से भी अधिक हो गया है। शिक्षा विस्तार पर सब प्रदेशों ने खर्च बढ़ाया है, किन्तु पेप्सु का शिक्षा व्यय लगभग दुगुना हो गया है। राजस्थान १०५ लाख रु., त्रावनकोर-कोचीन ८४ लाख रु., मैसूर ने ८३ लाख रु. और हैदराबाद ने १०१ लाख रु. शिक्षा व्यय बढ़ाया है। 'ख' राज्यों ने शिक्षा विस्तार पर जितना ध्यान दिया है, उतना जनता के स्वास्थ्य और चिकित्सा की ओर ध्यान नहीं दिया है। अकेले पेप्सु ने इसका खर्च दुगुना किया है, अन्य सब ने समस्या और आवश्यकता को देखते हुए अल्प ही वृद्धि की है। हैदराबाद ने ५१ लाख रु ही चार साल के अन्दर बढ़ाए हैं। खेती में भी पेप्सु ने अपना खर्च दुगुने से अधिक कर दिया है। यही बात मध्य भारत के बारे में भी कही जा सकती है। राजस्थान ने भी अपना खर्च खेती पर दुगुना कर दिया है। सौराष्ट्र का भी कृषि व्यय दुगुने से अधिक हो गया है। उद्योग की ओर मैसूर का ध्यान विशेष रूप से है। हैदराबाद ने तो अपना खर्च ही घटा दिया है। मध्य-भारत और पेप्सु का भी ध्यान उद्योग वृद्धि की ओर गया है। राजस्थान भी इस क्षेत्र में आगे बढ़ा है। पर त्रावनकोर-कोचीन ने उद्योगों पर अपना खर्च लगभग आधा कर दिया है। बेकारी को दूर करने के लिए उद्योग-वृद्धि आवश्यक है। सिंचाई का खेती और पैदावार की दृष्टि से बहुत महत्व है। किन्तु इस मद में अधिक वृद्धि नहीं हुई है।

'ग' राज्य : 'पार्ट सी स्टेट्स' (अमेण्डमेण्ट) एक्ट, १९५४ द्वारा 'ग' राज्यों को अधिक वित्तीय और आर्थिक अधिकार दिए गए हैं। केन्द्र का वित्तीय नियन्त्रण काफ़ी शिथिल हो गया है। इनका १९५३-५४ (अनु. आ.) का बजट ३३·३८ लाख और १९५४-५५ का ७६·३० लाख रु. का घाटा दिखाता है। घाटे का एक मुख्य कारण विकास कार्य है। 'ग' राज्यों की आय का विवरण नीचे दिया गया है :

१९५४-५५ (हज़ार रुपयों में)

	कुल राजस्व आय	भू-राजस्व	उत्पाद बलि	स्टाम्प	बिक्री-कर	अन्य कर
भोपाल	३२३१९	५२६४	१५७५	३५४	……	४६२
कुर्ग	११७४३	४८१	१०६४	१२१०	……	८१२
दिल्ली	४५८३१	३६२	११४०४	४१८५	११२४८	५५०१
हिमाचल प्रदेश	२९६३२	१८८८	१५३२	३२०	……	१७६
विंध्य प्रदेश	४७७०२	९९४९	३०६३	६००	१८००	७०९
योग	१६७२२७	१७९४४	१८६३८	६६६९	१३०४८	७६६०

इसको देखने से मालूम होगा कि दिल्ली और विंध्य प्रदेश को और किसी 'ग' राज्य ने बिक्री-कर को अपनी आय बढ़ाने का साधन नहीं बनाया। दिल्ली को छोड़ कर शेष सब की आय का मुख्य स्रोत भू-राजस्व है। उत्पाद बलि दूसरा आय का साधन है। स्टाम्प दिल्ली को छोड़ कर और किसी राज्य की आय का मुख्य स्रोत नहीं है। विंध्य और हिमाचल प्रदेश के बजट केवल बचत के हैं और इनकी बचत क्रमशः ११ और १४ हज़ार रु. की बचत की है। भोपाल का बजट भी ८ हज़ार रु. की बचत है। कुर्ग को २९११ हज़ार का और दिल्ली को ४५४ हज़ार रु. का घाटा है। इनके व्यय का विवरण इस प्रकार है :

१९५४-५५ (हज़ार रुपयों में)

	मुल्की प्रशासन	मुल्की व्यय	विकास कार्य	कुल व्यय
भोपाल	४६३८	४०६४	१७६०२	२६६३४
कुर्ग	१०८५	२०७०	८७८३	११६३८
दिल्ली	५६७५	२४४५	२७३५७	३५७७७
हिमाचल प्रदेश	५०५८	५३६०	१३५४८	२३६६६
विंध्य प्रदेश	६१६२	८८७१	१८१८२	३६२१५
योग	२६२१८	२२८४०	८५७७२	१३४८३०

मुल्की प्रशासन व्यय में विंध्य प्रदेश को छोड़ कर ने वृद्धि की है। विकास राज्यों में अपनी आय का लगभग आधा व्यय कर रहे हैं और उनके कुल खर्च का बड़ा भाग इस पर खर्च हो रहा है। दिल्ली इसमें सबसे आगे है। वह अपने कुल व्यय का आधे से अधिक विकास कार्यों पर खर्च कर रही है। विकास कार्यों पर ये किस प्रकार खर्च कर रहे हैं, यह नीचे की तालिका से ज्ञात होगा :

विकास कार्यों पर १९५४–५५ में व्यय

(हज़ार रुपयों में)

	शिक्षा	स्वास्थ्य व चिकित्सा	खेती, पशुपालन सहकारिता ग्राम विकास	उद्योग	सिंचाई	बिजली योजना	सामुदायिक विकास	कुल योग
भोपाल	५१२४	४५४६	३०३५	११२२	६५०	१०४१	२३२७	१७८४८
कुर्ग	२२३५	१३५८	१६०१	२४६	४२४	६०१	२३१५	८७८३
दिल्ली	१६०७१	७७१२	२२२७	१२५	५६४	......	६२८	२७३५७
हिमाचल प्रदेश	४१८५	२२६३	२८६४	२५४६	......	३	१६५४	१३५४५
विंध्य प्रदेश	८६११	३३६८	३७१८	३५६	......	४५	१६७७	१८१०५
योग	३६२२६	१९२८०	१३४७५	४३९८	१६६८	१६९०	८६०१	८५६३८

इससे प्रकट है कि शिक्षा पर सब राज्यों का ध्यान मुख्य रूप से है। स्वास्थ्य व चिकित्सा को खेती के बाद ध्यान दिया गया है। उद्योगीकरण की ओर हिमाचल प्रदेश को छोड़ कर और किसी का विशेष रूप से ध्यान नहीं गया है। सामुदायिक विकास की परिकल्पना सब 'ग' राज्यों में लोकप्रिय है। विंध्य और हिमाचल प्रदेश

पर्वतीय प्रदेश हैं । इनके सामने सिंचाई की समस्या ही नहीं है ।

दिल्ली में अभी तक बिजली कर नहीं है । हिमाचल प्रदेश और विंध्य प्रदेश में भी बिजली कर नहीं है । मोटर-स्पिरिट पर भोपाल, दिल्ली और विंध्य प्रदेश में कोई कर नहीं है । भोपाल ने अपनी आय बढ़ाने के लिए कृषि आय कर लगाने का और विंध्य प्रदेश ने रजिस्ट्रेशन और स्टाम्प शुल्क में संशोधन करने का निश्चय किया है । इससे एक बात प्रगट है कि 'ग' राज्य अन्य अनेक करों से मुक्त है, जो कि 'क' और 'ख' राज्यों में इस समय लगे हुए हैं । इन करों से बचे रहने के लिए यदि ये लोग अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए रखना चाहें तो कोई आश्चर्य न मानना चाहिए । छठा अजमेर राज्य भी 'ग' श्रेणी का है । किन्तु उसके बजट का विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं हो सका ।

इतिहास सदन, कनाट सर्कस
नई दिल्ली

राज्यों के बजटों का सिंहावलोकन करने से एक बात स्पष्ट हो जाएगी कि राज्यों का ध्यान शिक्षा-विस्तार, खेती की पैदावार बढ़ाने, सिंचाई और सामुदायिक परिकल्पनाओं की ओर विशेष रूप से गया है । स्वास्थ्य और चिकित्सा को अभी प्रमुखता नहीं दी गई है । उद्योगीकरण की ओर क़दम रुक-रुक कर बढ़ रहा है । राज्यों के आर्थिक तंत्र का मुख्य आधार और सम्बल भू-राजस्व, आय-कर और उत्पाद बलि में मिला अंश और केन्द्रीय सरकार द्वारा मिला अनुदान और क़र्ज़ हैं । आर्थिक दृष्टि से भारत व्यावहारिक रूप से संघात्मक नहीं है, बल्कि एकावयवी (यूनिटरी) राज्य है । क्या प्रशासन व्यय को, जो कि प्रति वर्ष बढ़ रहा है, घटाने के लिए यह अधिक अच्छा न होगा, कि राजनीतिक दृष्टि से भी भारत एक एकावयवी राष्ट्र हो जाए ?

—अवनीन्द्र कुमार विद्यालङ्कार

१९५२ की गणना के अनुसार विश्व में सबसे अधिक अशिक्षितों की संख्या अफ्रीका में है । वहाँ ७५ से ८५ प्रतिशत व्यक्ति अशिक्षित हैं; एशिया (रूस के अतिरिक्त) में ६५ से ७५ प्रतिशत व्यक्ति, दक्षिण अमेरिका में ४० से ५० प्रतिशत व्यक्ति, ओसीनिया में १० से १५ प्रतिशत व्यक्ति और यूरोप में ५ से १० प्रतिशत व्यक्ति अशिक्षित हैं ।

१९५२ में प्रथम संस्करण को दृष्टि में रखते हुए निम्न देशों में पुस्तकों के प्रकाशन की संख्या निम्न प्रकार थी :

युनाइटेड किंगडम	१३,१५० पुस्तकें
पश्चिमी जर्मनी	१०,५३६ "
फ्रान्स	१०,४१० "
जापान	९,६४३ "
युनाइटेड स्टेट्स	९,३९९ "

—(बेसिक फ़ैक्ट्स एण्ड फ़िगर्स युनेस्को)

कबीर साहब की सौंदर्य-भावना

'सौंदर्य' शब्द के प्रयोग से यदि किसी 'रूप' के ही गुण विशेष का बोध होना समझा जाय तो, कबीर साहब जैसे निर्गुण एवं निराकार की उपासना करनेवालों के सम्बन्ध में उसकी भावना का प्रश्न उठाना ही आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। कबीर साहब ने अपने अनुभूत परम तत्व का परिचय देते समय स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उस अनुपम तत्व की किसी इयत्ता अथवा रूपरेखा की परख पाना संभव नहीं है। वे कहते हैं :

"लाधा है कछू लाधा है,
ताको परिचय को न लहै।
अबरन एक अकल अविनासी
घटि घटि आपि रहे। टेक।
तोल न मोल माप कछु नाहीं,
गिणंती ग्यान न होइ।
ना सो भारी नां सो हलका,
ताको पारिष लैष न कोई[1]

तथा

जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप वास थैं पतला, ऐसा तत्व अनूप॥"[2]

और उन्होंने एक स्थल पर यहाँ तक कह डाला है

"मैं का जाणौं राम कूँ, नैनूं कबहूँ न दीठ॥"[3]

परन्तु वास्तव में, सौंदर्य का आधार कभी केवल रूप ही नहीं हो सकता और न इसी कारण हमें उसकी अनुभूति केवल नेत्रों के ही साधन से उपलभ्य है। व्यापक रूप से देखने पर पता चल सकता है कि सौंदर्य का न्यूनाधिक अनुभव हमारे लिए किसी भी प्रमुख इंद्रिय विषय के माध्यम द्वारा संभव है, जहाँ कहीं भी हमारी यह इंद्रियाँ आकृष्ट हो सकें और उत्तरोत्तर अधिक आनन्द लेती हुई, उसमें रमने लग जाएँ वहीं इसका कोई न कोई आधार बन सकता है। अतएव रूप, रस, गन्ध, शब्द एवं स्पर्श पर सौंदर्य के समान ही हमारे अंतःकरण सम्बन्धी भाव सौंदर्य तक की भी कल्पना की जा सकती है।

कबीर साहब ने जिस 'कछु' (कुछ वा अनिर्वचनीय) के 'लाधा' (उपलब्ध वा अनुभूत) होने की चर्चा अपनी उपर्युक्त पंक्तियों में की है उसके अनुभव का साधन किसी भी इंद्रिय विशेष को, पृथक् रूप में, ठहराना उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। कबीर साहब के अनुसार वह तत्व ऐसा नहीं जिसका अनुभव उसे केवल कहीं बाहर समझ कर किया जा सकता है। वह तत्त्वतः अपने निज वा आप की अनुभूति का विषय है जिस कारण उसके अनुभव में हमारी प्रत्येक इंद्रिय की मूल प्रेरक शक्ति स्वभावतः काम करती रह सकती है। इसी लिए कबीर साहब को भी उसका वर्णन करते समय विभिन्न प्रकार के विशेषणों का प्रयोग करना पड़ता है तथा वैसी दशा में भी अपना तृप्त वा संतुष्ट होना नहीं प्रकट करते। उसकी अनुमति के समय उनके भीतर एक ऐसे विचित्र सौंदर्य की भावना जाग्रत होती है जिसका परिचय वे बार बार देते हैं किन्तु इसमें वे कभी अपने को कृतकार्य नहीं समझते। ऐसे समय उन्हें अपने नेत्रों द्वारा किसी अनुपम तेज के दर्शन होते हैं, रसनेंद्रिय द्वारा किसी अकथनीय रसास्वाद का अनुभव होता है, कर्णेन्द्रिय द्वारा किसी विचित्र स्वर-माधुर्य की प्रतीति होती है, घ्राणेन्द्रिय द्वारा कोई अपूर्व सुगन्धि उपलब्ध होती है और अपनी स्पर्शेंद्रिय द्वारा वे उसके गाढालिंगन तक का अनुभव प्राप्त करते हैं। अन्त में वे अपने अन्तः करणों द्वारा उपलब्ध किसी ऐसी भी अनुभूति की ओर संकेत करते दीख पड़ते हैं जिसमें उनके संपूर्ण स्वत्व का ही लय हो जाता है और वे अवाक् बन कर रह जाते हैं। अतः वे कहते हैं :

"आया था संसार में देषण को बहु रूप
कहै कबीरा संत हौ पड़ि गया नजरि अनूप॥"[4]

---

[1] कबीर ग्रन्थावली 'पद १६६' पृ० १४४
[2] वही, सा. ४ पृ० ६०
[3] वही, सा. १ पृ० १७
[4] क० ज० सा० २४ पृ० १४

कबीर साहब की साखियों के 'परचा' वाले 'अंग' में तथा अन्यत्र उनके अनेक पदों द्वारा भी, हमें उनकी सौंदर्य अनुभूति का पता चलता है। वे उस 'अनंत' को जहां किसी अपूर्व ज्योति-पुंज के रूप में देखने का अनुभव करते हैं वहाँ उनका कहना है :

> "कबीर तैज अनंत का, मानौं ऊगी सूरज सेणि*
> पति संगि जागी सुन्दरी कौतिग दीठा तेणि
> कौतिग दीठा देह बिन रवि ससि बिना उजास
> साहब सेवा मांहि है बेपरवाहीं दास
> पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान
> कहिबे कूं सोभा नहीं देख्या ही परवान"

अर्थात् उस परमज्योति का अनुभव करते समय साधक को ऐसा जान पड़ा जैसे अनेक सूर्यों का प्रकाश हो रहा है। किन्तु फिर भी उस रहस्यमय दृश्य का प्रकाश किसी सूर्य अथवा चंद्रमा के कारण प्रकट होता नहीं समझ पड़ता था और न वह किसी शरीर के रूप में सीमित ही था। उस पर ब्रह्म के तेज के विषय में कुछ अनुमान करते नहीं बनता। उसका सौंदर्य अनिर्वचनीय है और वह देखते ही बनता है कि मैंने तो उस अपने स्वामी का केवल एक ही अंग देख पाया किन्तु वह मेरे नेत्रों में सदा के लिए बस गया, जैसे :

> "कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ
> तेजपुंज पारस घणाँ नैनूं रहा समाइ॥" ५

परन्तु कबीर साहब 'अनन्त' के उस तेज को केवल साधारण ज्योति के ही सदृश बतला कर कहीं रह जाते उसे वे एक प्रकार की ऐसी चाँदनी की भी समता देते हैं जो बिना किसी चन्द्रमा के अस्तित्व के भी व्याप्त हो रही हो और जो इसी कारण अत्यंत अपूर्व एवं आकर्षक हो। उनका कहना है :

> "मन लागा उन मन्न सौं,
> गगन पहुँचा जाइ।
> देख्या चन्द विहूणा चाँदिणां तहाँ
> अलख निरंजन राइ॥' ६

इसी प्रकार उसे ही एक अपनी अन्य साखी में वे 'दीपक' × बतलाते हैं तथा अपने एक पद में उसकी अनुभूति की ओर संकेत करते हुए कहते हैं :

> "अनभै कथा कवन सौ कहिए,
> है कोई चतुर ववेकी।
> कहे कबीर·गुर दिया पलीता,
> सो झल बिरलै देखी॥" ७

अर्थात् ऐसा कौन चतुर एवं ज्ञानसंपन्न है जिसके समक्ष अपनी उस रहस्यमयी अनुभूति का वर्णन किया जाए। सद्गुरु की प्रेरणा की सहायता द्वारा उस झल (अर्थात् केवल सूक्ष्म रूप में प्रकट होकर अपनी झलक दिखा जाने वाली ज्योति) के दर्शन किसी बिरले साधक ने ही किए होंगे। फिर कबीर साहब ने उसे एक अन्य स्थल पर किसी एक ऐसे 'मोती' के भी सदृश ठहराया है जिसे उत्पन्न करने के लिए न तो किसी समुद्र की आवश्यकता पड़ती है, न, किसी सीप की ओर न स्वाति के बूँद की ही और जो संयोगवश किसी 'शून्य' के शिखर पर अविर्भूत होता पाया जाता है। जैसे :

> "सायर नाहीं सीप बिन स्वाति बूँद भी नाहिं
> कबीर मोती नीपजैं सुन्नि सिषर गढ़ मांहि॥"८

नेत्रों के साधन द्वारा होने वाले उसके अनुभव में कबीर साहब ने उसे सदा स्वच्छ, उज्ज्वल एवं निर्मल ही बतलाया है और इस विषय में यह भी कहा है :

> "जा कारणि मैं ढूँढ़ता, सनमुख मिलिया आइ
> धन मैली पिव ऊजला, लागि न सक्कौं पाइ॥"

इसी प्रकार कबीर साहब ने उस तत्व को रसनेन्द्रिय द्वारा भी अनुभव में आकर अपने सौन्दर्य से अभिभूत करनेवाला कहा है। इस दशा में वे उसे या तो 'हरिरस' 'रामरस' अथवा 'राम अमल' का नाम देते हैं और उसकी मादकता का वर्णन करते हैं अथवा उसे केवल शुद्ध नीर ही बतलाते हैं। जब वे इसे 'राम रसायन' का नाम देते हैं तो इसे 'प्रेमरस' भी कह डालते हैं

---

५ क० ग्रं० पृ० १५ ६ क० ग्रं० पृ० १३ ७ क० ग्रं० पद ८ पृ० ९१ * दिवि सूर्या सहस्रस्य भवेद्युगपदस्थिता। यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥ (गीता श्लो० १२ अ० ॥) × 'कबीर ग्रंथावली' सा० ३५, पृ० १५ ८ क० ग्रं० पृ० १३।

कहते हैं कि पीते समय यह अत्यन्त मीठा एवं मधुर ता है। उनका यह भी कहना है कि 'हरिरस' के पीने की पहचान यही है कि इसकी खुमारी कभी नहीं ती। जैसे :

"राम रसाइन प्रेम रस पीवत अधिक रसाल
... ...

तथा :

हरिरस पीया जांणिये जे कबहूं न जाइ खुमार
मैंमता घूमत रहै नाहीं तन की सार॥"[९]

इस खुमारी अर्थात् मादकता के ही कारण इसे उन्होंने राम अमल भी कहा है। जैसे :

"मैंमता अविगत रता अकलप आसा जीति
राम अमल माता रहै, जीवन मुकति अतीति॥"[१०]

अर्थात् जब इसको मादकता भिन जाती है तो की दशा मतवाले हाथी जैसी हो जाती है और उस अज्ञान में लीन रह कर 'जीवन मुक्त' बन जाता है। कबीर साहब ने इस 'रामरस' का वर्णन देशी शराब भी किया है और इसकी तैयारी में किए जाने वाले का भी वर्णन कहीं कम और कहीं विस्तार के किया है। एक अपने पद में वे कहते हैं :

"छाकि पर्यो आतम मतिवारा
पीवत रामरस करत विचारा॥"
"बहुत मोल मँहगै गुड़ पावा,
लै कसाव रसराम चुवावा
तन पाटन में कीन्ह पसारा,
माँगि माँगि रस पीवै विचारा॥
कहै कबीर फावी मतवारी,
पीवत रामरस लगी खुमारी॥"[११]

कबीर साहब के ऐसे वर्णनों से स्पष्ट है कि इस रसायन को वे साधारण मदपान जैसा नहीं समझते। इसके पूर्व के एक पद (पद ७०) में वे बतलाते हैं कि इसके पान से काम एवं क्रोध दोनों ही जाते रहे, योगिनी अर्थात् कुंडलिनी जाग्रत हो गई तथा अनाहत शब्द गूँजने लगा। इसी प्रकार उन्होंने ७२ वें पद में भी कहा है कि "सद्गुरु की कृपा से मुझे सुषुम्ना के निकट अमृत फल अनायास ही उपलब्ध हो गया है और ज्योति में ज्योति अन्तर्हित हो गई।" इस रसायन की यही विशेषता है कि जब अपनी रसनेंद्रिय इसके सौन्दर्य में पूर्णतः रम जाती है तो वह कभी तृप्त होने का नाम तक नहीं लेती। उनका कहना है कि मैंने अपने कमंडलु रूपी शरीर में इस स्वच्छ एवं निर्मल जल को पूरा पूरा भर लिया और तन मन जीवन भर पीता रह गया किन्तु अभी तक मेरी प्यास नहीं दूर हो सकी। जैसी :

"काया कमंडलु भर लिया, उज्जल निर्मल नीर
तन मन जीवन भरि पिया प्यास न मिटी सरीर॥"[१२]

इन उपर्युक्त रूप सौन्दर्य एवं रसमाधुर्य के अनुभव का एक प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि साधक उस तत्व की ओर पूर्ण रूप से लग जाता है और एकांत में प्रेम भाव के जाग्रत हो जाने से फिर उसकी अनुभूति के विषय में पूछने पर वह कह उठता है :

"नैनूँ रमइया रमि रह्या दूजा कहां समाइ।"[१३]

और इसी प्रकार वह किसी अन्य रस के अनुभव की जिज्ञासा करने पर भी हमें शीघ्र बतला देता है :

"रामरस पाईया रे ताथैं बिसरि गये रस और।"[१४]

कबीर साहब के अनुसार उस परम तत्त्व का अनुभव प्राप्त करते ही अपने भीतर किसी विचित्र कमल का फूल विकसित हो उठता है। वह बिना किसी जल के भी पूर्ण विकास पाता हुआ दीख पड़ता है और अपने मन का मधुप उसकी सुगंधि से आकृष्ट हो उसके चतुर्दिक् मंडराने लग जाता है।* प्रेम भाव के उक्त प्रकार प्रकट होते ही अपने भीतर सर्वत्र उजाला हो उठता है विचित्र कस्तूरी की सी गंध फैल जाती है और अपनी वाणी तक सुवासित हो जाती है।

"प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास
मुखि कस्तूरी महमहीं वाणी फूटी वास॥"[१५]

उक्त प्रकार कमल के विकसित होने के साथ ही

---

[९] क० ग्रं० पृ० १६ [१०] कं० ग्रं० पृ० १७ [११] क. ग्र. पृ. १११ [१२] क० ग्रं० पृ० १७ [१३] क० ग्रं० पृ० १६ [१४] क० ग्रं० पृ० १११
* 'कबीर ग्रन्थावली' सा० ५, ६ एवं ७, पृ० १२-३ [१५] क० ग्रं० पृ० १३

जब निर्मल सूर्य भी उदय होता है और सारा अंधकार मिट जाता है तो अनहद की भेरी भी शब्द करने लग जाती है। जैसे :

"कबीर कँवल प्रकासिया ऊग्या निर्मल सूर
निसि अंधियारी मिट गई बाजे अनहद तूर ॥"[१६]

कबीर साहब ने ऐसी दशा के अवसरों पर उपलब्ध होनेवाली स्वानुभूति अथवा परमात्मोपलब्धि के विषय में बतलाया है कि वह दृढ़ अभिन्न हृदय मित्रों या आत्मीयों के उस गाढालिंगन-सी प्रतीत होती है जिसमें दोनों मिलनेवालों में से किसी को भी अपनी तृप्ति का धैर्य नहीं बँध पाता। वे वस्तुतः एक हो जाते हैं। जैसे

"अंक मेरे भरि भेटिया मन मैं नाहीं धीर+
कहै कबीर तें क्यूँ मिलै जब लग दोइ सरीर"[१७]

यह अधीरता ही सूचित करता है कि साधक की स्पर्शेंद्रिय पूर्णतः रम गई है।

कबीर साहब के अनुसार इस प्रकार उस परम तत्त्व के अनुपम सौन्दर्य द्वारा अपनी इंद्रियों के प्रभावित हो जाने पर सहज समाधि की दशा प्राप्त होती है जिसमें सर्वत्र उसी एकमात्र का अनुभव होने लग जाता है और अपने में एक विभिन्न-सा परिवर्तन भी आ जाता है। कबीर साहब का कहना है कि उस समय गोविन्द के चरणों में प्रीति जम जाती है और अपने चित्त में निरन्तर वही निवास करने लग जाता है। माया का ताप दूर हो जाता है, मन में सन्तोष होने लगता है और नाम अपना आधार बन जाता है। उस समय कुछ ऐसा भी लगता है कि वह मेरा स्वामी जल एवं स्थल सर्वत्र पूरा पूरा व्याप्त है और जिधर आँखें उठाता हूँ वहाँ केवल वही अन्तर्यामी ही दीख पड़ता है। जैसे

"चरन कमल ह्यो लागी प्रीति
गोविन्द बसै नितानित चीति
माया तपति बुझ्या अंगारु
मन सन्तोष्र नाम आधारु
जल थल पूरि रहै प्रभु स्वामी
जित पेखौं नत अन्तर्यामी[१८]

उसके विषय में कहा नहीं जा सकता कि वह निकट है अथवा दूर है क्योंकि वह अतीत होता हुआ भी सब के घटों में व्याप्त हो रहा है। जहाँ देखता हूँ वहाँ सर्वत्र वही व्यापक रूप में विद्यमान है और उससे रहित कोई स्थान ही नहीं दीख पड़ता। जैसे :

"कथ्यौ न जाइ नियरै अरु दूरी
सकल अतीत रह्या घट पूरी
जहाँ देखौं तहाँ राम समाना
तुम बिन ठौर और नहिं आना ॥"[१९]

परन्तु इस दशा से भी कहीं अधिक स्थायी एवं महत्वपूर्ण वह स्थिति है जिसमें अपने जीवन के भीतर कायापलट आ जाती है। उस अज्ञेय, अखण्ड एवं अनुमेय तत्त्व का अनुभव करते ही उसके द्वारा हमारा सर्वांग ओतप्रोत हो जाता है और हम अपनी ही दशा का वर्णन करने में अपने को सक्षम नहीं पाते, प्रत्युत ऐसा लगता है कि हमारी मन्त्र मुग्ध अवस्था उस गूँगे की-सी हो गई है जो मिष्टान्न का स्वाद बतला नहीं पाता और भीतर ही भीतर आह्लादित होकर अपने भाव केवल संकेतों द्वारा व्यक्त करने लग जाता है।...अपना शरीर कांच से कंचन का बना हुआ दीखने लगता है बिना कुछ कहे सुने ही मन में पत्यारा आ जाता है और अपने आप उस तत्त्व में, जल में जल के समान लय पा जाते हैं। जैसे :

"अविगत अकल अनूपम देख्या कहतां कह्या न जाई
सैन करे मन ही मन रहसै गूंगे जानि मिठाई ॥
... ...
देखत कांच भया तन कंचन बिन बानी मन माना
उद्या विहंगम खोज न पाया, ज्यूं जल जलहि समाना"[२०]

यह स्थिति ऐसी है जब अपने चंचल मन की भी चंचलता दूर हो जाती है और उस पर किसी प्रकार का शासन करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। कबीर साहब इसी कारण अपने मन को सम्बोधित करते हुए उससे कहते

---

[१६] क० ग्रं० पृ० १६ + सुखेन ब्रह्म संस्पर्श मत्यन्तं सुखमश्नुते। 'गीता' श्लो० २८ अ० ६। [१७] क० ग्र० पृ० १६।
[१८] आदि ग्रन्थ रागगउड़ी ४०। [१९] क० ग्र० पृ० २३५। [२०] क० ग्र० पद ६ पृ० ६०

है कि "अब मैंने तुझे पूरी छूट दे दी और अब शांति पा गया।"+ जैसे

"रे मन जाहि जहाँ तोहि भावै
अब न कोई तेरे अंकुस लावै
जहां जहां जाइ तहाँ तहां रामा
हरि पद चीन्हि किया विश्रामा"

इस प्रकार हम अपने आप को एक बार देख लेने मात्र से ही किसी प्रकार के तर्क वितर्क अथवा अपने दैनिक व्यवहार की व्याख्या से भी कोई प्रयोजन नहीं रह जाता और अपना इसके पहले का जीवन आमूल परिवर्तित हो कर नष्ट सा हो जाता है। कबीर साहब का कहना है कि उस प्रभु के साथ भेंट करते ही मैंने अपने आप को खो दिया। जैसे

"अब क्या कीजे ग्यान विचारा निज निरखत गंत व्यौहारा
... ...
कहै कबीर सो पाया प्रभू भेंटत आप गंवाया"[21]

और अन्त में यहाँ तक अपने जीवन में परिवर्तन आ जाता है कि कबीर साहब के ही शब्दों में अपने शरीर में जो अनेक प्रकार की उपाधि आ गईं जान पड़ती थीं वह सुखप्रदायिनी सहज समाधि का रूप ग्रहण कर लेतीं हैं, भयावनी मृत्यु राम के रूप में परिवर्तित हो जाती है। दुःख सभी विस्मृत हो जाते हैं और ऐसा लगता है कि मैं पूरे सुख में ही विश्राम कर रहा हूँ जितने शत्रु थे वे सभी मित्र बन जाते हैं और जो अभी तक विधर्मी और भ्रष्टाचारी प्रतीत होते थे वे सभी अपने परिचित आत्मीय हो जाते हैं; सहज सुख का अनुभव करते ही न किसी से डरना पड़ता है और न किसी को डराना ही।

"अब हम सकल कुसल करि पानाँ।
स्वाँति भई तब गोव्यंद जानाँ ॥टेक॥
तन में होती कोटि उपाधि
उलटी भई सुख सहज समाधि ॥
जम थैं उलटि भया है राम
दुःख बिसरया सुख कीया विश्राम ॥
वैरी उलटि भए हैं मीनां
साषत उलटि सजन भए चीता ॥
... ...
कहै कबीर सुख सहज समाऊँ
आप न डरों और न डराऊँ ॥"[21]

अतएव, कबीर साहब की सौन्दर्य-भावना का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और उसकी प्रेरणा का उत्स भी अत्यन्त गम्भीर एवं मौलिक है। इसका आधार किसी भौतिक पदार्थ अथवा किसी भी रूपरेखा की परिधि में आनेवाली वस्तु तक सीमित नहीं। फिर भी उसके साधन का काम किसी भी इंद्रिय से लिया जा सकता है और इसकी अनुभूति इतनी गहराई तक जा सकती है जहाँ अन्य सभी इंद्रियों में भी सामान्य मूल प्रेरक शक्ति रहा करती है। इस प्रकार के सौन्दर्य में न केवल रूप रसादि जैसे विषयों का आकर्षण है अपि तु उसके साथ एक विचित्र आत्मीयता की भी विशेषता है। उसमें हमारी इंद्रियों को अपने अपने अनुभवों द्वारा भली भांति रमने का पूरा अवसर मिलता है जिस कारण उसके रंग में आचूड़ रंग तक रंग जाती है। ये उसके द्वारा इतनी अभिभूत हो जाती हैं कि ये उसके हाथ बिक-सी जाती हैं और इन पर उनका स्वतन्त्र एकाधिकार जम जाया करता है। बाह्य वस्तुओं का सौन्दर्य उनके कुछ काल तक विलग हो जाने पर अथवा उनके अभाव में बहुत कुछ अस्पष्ट और धुँधला तक पड़ जा सकता है तथा उसका विस्मृत हो जाना भी संभव है, किन्तु जिस आत्मतत्व के सौन्दर्य की चर्चा कबीर साहब करते हैं उनके विषय में ऐसे किसी प्रश्न का उठना भी अस्वाभाविक है। यह सौन्दर्य न केवल किसी के मन पर ही शासन करता है, अपि तु उसके प्रत्येक व्यापार एवं चेष्टा तक को परिचालित करने लग जाता है। यह उसके सम्पूर्ण जीवन में कायापलट-ला देता है और उसे और का और बना देता है। ऐसी दशा में उसका प्रभाव किसी योग समाधि की-सी सीमित अवधि तक ही नहीं रहा करता; वह सारे जीवन को सहज समाधि में पलट देता है और उसके लिए स्वयं पारसमणि भी बन जाता है।

—**परशुराम चतुर्वेदी**

बलिया

---

[20] क०ग्र०पृ० १८४ [21] क.ग्रं.पृ. ९३ + यत्र यत्र मनोयाति, ज्ञेयं तत्रैव चिन्तयेत्। चलित्वा पास्यते कुत्र, सर्वं शिवमयं जगत् ॥

सिद्धवाँ

एक था सिद्धवाँ; वह दिन में तो तप करता था शाम को रोज़ जाता था माराज (महाराज) एकदम शंकराचार्य जी की पहाड़ी पर। उधर रोज़ के वक्त बच्चे खेलने को आते थे, बहुत खुश होते थे, नाचते थे, गाते थे। सिद्धवाँ ने बच्चों से पूछा : "बालको !, तुमको क्या आनन्द आता है ! किसके साथ खेलते हो ?" तो माराज ! बच्चे बोलने लगे : "हम नहीं जानते कौन है लेकिन एक साधु है और बैल पर चढ़ कर आता है" बच्चे फिर प्रसन्न होकर नाचने लगे। अब सिद्धवाँ मन में सोचने लगा, "माराज, कि मैं दिन भर तप करता हूँ मुझे किसी के भी दर्शन नहीं होते।" उसने फिर बच्चों से कहा : "बालको, मुझे भी साधु को दिखलाओगे।"

अच्छा कल फिर इधर आना।

अब माराज ! सिद्धवाँ को चैन न था वह रात भर सोचता है, सारी उमर जिसके लिए आराधना और तपस्या की वह मुझ को नज़र नहीं आया। इन छोटे बच्चों के साथ कौन खेलता है ? भगवान् शंकर की क्या माया है ?

बस महाराज ! वह अगले दिन फिर शंकराचार्य जी की पहाड़ी पर गया। लड़के फिर उसी तरह खेल में लगे थे, उन्होंने सिद्धवाँ को झट से कहा : "देख देख तुम्हें साधु महाराज नज़र आते हैं कि नहीं ?" उसने बहुत इधर उधर देखा, लेकिन कुछ नज़र नहीं आया।

बालकों ने कहा अच्छा तो यह ले बैल की पूँछ पकड़, इसको ज़ोर से पकड़ना तो खुद ही नज़र आएँगे।

बस माराज ! सिद्धवाँ को और क्या था, उसने उसने बैल की पूँछ ऐसी ज़ोर से पकड़ ली कि छोड़ी ही नहीं। नज़र तो उसको अब भी कुछ नहीं आया पर भी वह चलता ही गया, चलता ही गया—चलते चलते जंगल आ गया, रात हो गई—तब आवाज़ आई, भाई तू कौन है ? कहाँ तक साथ चलेगा ?

"मैं सिद्धवाँ हूँ माराज ! मैं वर्षों से तप करता हूँ, पर सिद्धि प्राप्त नहीं हुई, बच्चों को आप दर्शन देते हैं लेकिन मुझे क्यों नहीं दिखाई देते, प्रभो ! मैं जाग गया हूँ आप ही भगवान् शंकर हैं मैं नहीं छोड़ूँगा—अब मैं कभी नहीं लौटूँगा।"

"सिद्धवाँ, एक काम करो अभी तुम्हारी तपस्या पूरी नहीं हुई, देखो महाशिवरात्रि के दिन तुम इसी तरह चलते, चलते, शेषनाग जी तक आना, वहीं तुमको दर्शन प्राप्त होगा।"

बस महाराज, सिद्धवाँ ने खुश होकर पूँछ छोड़ दी। और फिर दिन रात घोर तप करने लगा। गर्मी गई, पतझड़ आया, शीतकाल आया और दिन-दिन, घण्टे-घण्टे, पल-पल गिनते-गिनते महाशिवरात्रि को कुछ दिन ही बाक़ी रहे तो उसने छोटा सा बिस्तर वग़ैरह तय्यार किया लेकिन शेषनाग तक, रास्ता माराज ! कैसा खौफ़नाक है, जंगल है, चढ़ाई है मील-मील तक सब जगह बरफ़ ही बरफ़ है उफ़, कैसी ठण्डी तेज़ हवा चली है उन दिनों उसने क्या काम किया माराज ! एक कुली को ठीक किया, साथ के वास्ते। कुली का नाम था सुभाना। कहा-चल दोस्त! तू एक बोरी में कोयला भर ले और माराज एक कांगड़ी ले एक अँगीठी, भात और चाय पकाने के वास्ते। अब जी दोनों खूब चादर, लोई-वोई लपेट कर चलते हैं और जाते-जाते कोई एक महीना लग जाता है, बड़े बड़े ऊँचे पहाड़ हैं, रास्ता कहीं भी नज़र नहीं आता—कभी काले काले बादल आते हैं तो कभी बरफ़ पड़ने लगती है पैरों में कड़कशु (सुन्न, हो जाना) लगता है, और कभी बिलकुल अँधेरा और डम-डम डमरू बजने लगता है। तो भी वे हारते नहीं, ऊपर ही ऊपर चलते जाते हैं।

आख़िर, एक दिन बहुत चढ़ाई पार करके सामने कुछ नीला नीला पानी दिखाई देता है—सिद्धवाँ तो माराज ! खुशी से एकदम नाच उठता है। और पागल के माफ़िक दौड़ता है। सुभाना को तो कुछ नज़र में नहीं आता, वह पूछता है। तुमको क्या नज़र पड़ता है! क्या है ?

"देखो, देखो भाई ! मेरा तो जन्म सफल हो गया, वह देख शंकर पार्वती शेषनाग सरोवर में किश्ती के अन्दर बैठ कर सैर करते हैं अब तो साक्षात् दर्शन हो गया भगवान्। आप ही तो वह सन्यासी थे। शंकर! मैं तब से आपके पीछे पीछे आता हूँ। भगवान् शंकर

१९५४

ने सिद्धवाँ को दूर से ही देख लिया, उन्होंने कहा तेरी साधना सफल हो गई। अब कुछ परवाह मत कर। उन्होंने किश्ती किनारे पर लगाई, और सिद्धवाँ को अपने साथ बिठा कर ले गए।

अब रहा माराज! यह बेचारा सुभाना, शंकर भगवान् ने उसे आवाज़ देकर कहा: "जा भाई तू यह बोरी लेकर घर जा बहुत काम आएगी।"

पर माराज! सुभाना ने कुछ भी न पाया—और सिद्धवाँ के एकदम ग़ायब हो जाने से वह तो बिलकुल हैरान था, अब ख़ाली कोयले की बोरी घर को ले जाने की बात सुन कर रोने जैसा हो गया। वह पहले ही थका भी तो बहुत था—और अब उसको तो उतना ही वापसी में और चलना था, ख़फ़ा होकर उसने सारी बोरी को उधर रास्ते में ही गिरा दिया और दौड़ता दौड़ता किसी तरह घर तक पहुँचा।

अब जो! घर पहुँच कर उसको बीवी ने रोता देखा तो पूछा क्यों जी क्या हुआ? सिद्धवाँ के साथ, यात्रा में क्या इनाम मिला।

सुभाना को तो, और भी गुस्सा आया, उसने कोयले की बोरी को ज़ोर से पटक कर कहा कुछ भी नहीं! न कुछ देखा न पाया, सिर्फ़ दर-बदर चलना ही चलना और क्या।

लेकिन माराज! बोरी पटकी कि, उसमें से फ़ौरन दो-तीन हीरे, जवाहारात, नीचे गिर पड़े।

बीवी ने कहा: "बेवक़ूफ़, सारी बोरी तू कहाँ फेंक आया शंकर-भगवान् ने तेरे कोयले को असल में जवाहरात ही बना दिया था। जा फिर दौड़ कर, बोरी भर कर ले आ। जिधर गिराया था।

बस जी! वह सुभाना दुबारा जाता है, फिर वही ख़ौफ़नाक जंगल है बर्फ़ ही बर्फ़ है नदियाँ है, उसने सब बन और पर्वत, चोटियाँ तक छान डालीं, लेकिन अब तो उधर क्या कुछ भी नहीं माराज। नमस्कार। भगवान् शंकर आपका कल्याण करें।

कनाट सर्कस
दिल्ली

—सत्यवती मल्लिक

पंतजा-सिला

"...हमारी सरकार के कुछ आधारभूत सिद्धान्त हैं। हमारे देश में इन सिद्धान्तों को पंतजा-सिला के नाम से कहा जाता है। पंतजा-सिला शब्द संस्कृत भाषा के पंच शिला शब्द के आधार पर बनाया गया है। इंडोनेशिया की विचारधारा को ठीक रीति से समझने के लिए वहाँ के राष्ट्रपति सुकर्ण के न्यायशास्त्र को समझना होगा। इस न्यायशास्त्र में पाँच सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है: १. ईश्वर पर विश्वास २. समस्त विश्व में मानव जाति का सम्मान ३. प्रजातंत्र ४. राष्ट्रीयता ५. सामाजिक न्याय। ये पाँच सिद्धान्त हमारे देश में पंतजा-सिला के नाम से प्रसिद्ध हैं।

हम अन्य पंतजा-सिला या आधारभूत सिद्धान्तों की चर्चा करते हैं जो वर्तमान समय में हमारे सन्मुख आ रहे हैं। उन सिद्धान्तों को भी पंतजा-सिला का नाम दिया जा सकता है। ये इस प्रकार के सिद्धान्त हैं कि उनका विरोध करना या उन्हें नापसन्द करना तब तक असम्भव है जब तक अपनी ही मनोवृत्ति दूषित न हो।"

—डा० अली शस्त्रमिजोयो

आण्डाळ की भक्ति-भावना

तिरुप्पावै और तिरुमोलि में

भगवान् ने अवतार लिया। मनुष्य रूप धारण किया। मानव ने उसकी भक्ति की, देव पदवी पाई ! यही नहीं वह स्वयं भगवान् के रूप में पूजित भी हो चला ! धर्म-प्राण इस देश की श्रद्धा और भक्ति की यह चरम सीमा है। भक्त की भक्ति जहाँ होती है वहाँ भक्त स्वयं आराध्य बन जाते हैं !

भक्त आण्डाळ के साथ भी यही हुआ।

......'कोदां वन्दे श्री रङ्गनायकीम्' श्रीरंग के भगवान् की रंगनाथ की देवी बन कर वे चिर वन्दनीय हो गई हैं। भगवान् के साथ उनका विधिपूर्वक विवाह जो हुआ था।

आण्डाळ के नाम से प्रसिद्ध भक्त कोदा देवी (कोदै पिराट्टि) तमिल संसार के बाहर सर्वथा अपरिचित नहीं हैं। उनकी छोटी-सी मधुर जीवन कहानी सर्वविदित है। श्री विल्लिप्पुत्तूर के दिव्य क्षेत्र में, निष्णात विष्णु भक्त पेरियालवार विष्णुसिद्ध की वे सुपुत्री थीं। जनक सुता सीता की भाँति वे अयोनिजा ही प्रकट हुई थी। उन्हें भगवान् का दिया असाधारण वरदान समझ कर, भक्त पिता ने अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम के साथ उनका पालन-पोषण किया। पर भगवान् को करनेवाली अपनी असाधारण कन्या की भक्ति को, स्वयं भक्त होकर भी पेरियालवार पहले न समझ सके थे। बरसों की भक्ति से उन्हें जो अनुभव सिद्ध न हुआ, भगवान् से अनन्य होने का भान नहीं हुआ, उसे बाल कोदा ने सहज ही प्राप्त कर लिया और पिता सहित सारे संसार को समझा भी दिया।

पिता मंदिर के भगवान् के लिए तरह तरह के सुगन्धित फूलों की मालाएँ गूँथ कर रखते और उन्हें कोदा आप पहन कर देखती और उन मालाओं के बीच अपनी शोभा में भगवान् के सौन्दर्य की कल्पना करती, रीझती, खुश होती। भगवान् की वस्तु का उपयोग, संभोग मनुष्य करे ? कोदा के अनुचित व्यवहार से भक्त पिता बहुत खिन्न हुए। पर उन्हें सपने में दिव्य सौन्दर्य संपन्न भगवान् की वाणी जब सुनाई दी : "तुम्हारी पुत्री की पहनी मालाएँ ही हमें अत्यन्त प्रिय हैं"—तब आलवार का भक्त हृदय नाच उठा। 'मेरी पुत्री की पहनी मालाएँ मेरे नारायण को भाती हैं ? मेरी पुत्री की ? उसका प्रभु पर ऐसा प्रभाव है ! सचमुच वह आण्डाळ (प्रभाव करनेवाली) है। उस दिन से सर्व गन्ध भगवान् को आण्डाळ की विशेष गन्ध-युक्त मालाएँ ही अर्पित की जाने लगीं। वे शूडिक्कोडुत्त नाच्चियार हैं, आमुक्तमाल्यदा हैं पहनी माला देनेवाली देवी हैं।

आण्डाळ देवी के प्रियतम यशोदानन्दन श्रीकृष्ण हैं। व्यक्ति के चरित्र के विकास पर परिस्थितियों के प्रभाव को महत्व देनेवाले इस युग में आण्डाळ की भक्ति का श्रेय उनके पिता पेरियालवार को निस्संकोच दिया जा सकता है। भक्ति की दीक्षा उन्हें पिता से ही मिली। भगवान् के ऐश्वर्य, वैभव और सौन्दर्य का गुण-गान बचपन से आलवार के मुख से सुन सुन कर धीरे धीरे आण्डाळ अपने भावों को भी रूप देने लगी। पर आराध्य एक होने पर भी पिता पुत्री की आराधना में कितना अन्तर आ गया ? पिता ने जिसे पुत्र समझा, पुत्री ने उसे पति समझा। "गुरु गुड़ रह गए पर चेला चीनी बन गया।"

पिता पेरियालवार विष्णुसिद्ध द्वारा श्री विल्लिप्पुत्तूर गोकुल बनाया जा चुका था। वहाँ के नर नारी गोप गोपी बन चुके थे। उसी वातावरण में आण्डाळ गोपी की भावना लेकर नहीं, स्वयं गोपी बनकर समा गई। उनके सामने श्रीमद्भागवत की गोपियों का आदर्श था। न गोपियों ने कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए कात्यायनी व्रत किया था। उन्हीं के अनुकरण पर, व्रत रखने आण्डाळ, अपने साथ सखियों को गीतों से बुलाती है। यही गीत तिरुप्पावै-तीसी के नाम से विख्यात हैं।

उक्त कात्यायनी व्रत का उल्लेख श्रीमद्भागवत में इस प्रकार है :

"हेमन्ते प्रथमे मासे नन्दव्रजकुमारिकाः
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्।
...   .
भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः"

१६५४

हेमन्ते प्रथमे मासि—अगहन के महीने में किया जाने वाला यह व्रत तमिलनाड में पावै नोन्बु (कन्या व्रत) के नाम से प्रसिद्ध है। अगहन के इस पुण्य महीने में कन्याओं की टोलियाँ बड़े सवेरे ही नदी तट पर जाती हैं, स्नान करती हैं, और स्वच्छ और शुद्ध मन से, वहीं नदी की रेत से देवी कात्यायनी की प्रतिमा बना कर पूजती हैं। यह अगहन मास का स्नान, 'पावै व्रत' कन्याओं की टोली, भक्तों के लिए आलम्बन हैं। नदी में स्नान करने के लिए जाती हुई कन्याएं, सोती अपनी सखियों को जगाती हुई, भगवान् का गुणगान करती हुई जाती हैं। जागती कन्याओं में और सोती अलसाती सखियों में लाक्षणिक अर्थ बिठा कर, भक्तों ने सुन्दर गेय पद रचे हैं जो कि 'तिरुप्पावै' के नाम से प्रसिद्ध हैं। पावै के दो अर्थ हैं: पावै का अर्थ कन्या भी है और पावै का अर्थ पुतली या प्रतिमा भी। पावै पूजा (प्रतिमा की पूजा) के लिए। पावै (कन्या) को संबोधित कर रचे तिरुप्पावै के प्रत्येक पद का अन्त 'एम्पावाय्' से होता है। पदों के चयन के यह सारा पद समूह 'तिरुप्पावै' कहलाता है।

आण्डाळ ने इसी परम्परा को लेकर अपना तिरुप्पावै रचा है। यों तो इसके तीसों पद अगहन मास के स्नान का बुलावा हैं पर इसमें भक्ति का जो दिव्य सन्देश हुआ है उसे वैष्णव धर्म के संस्थापक श्री रामानुजाचार्य ने लेकर आज तक समस्त भक्तवर हृदय से ग्रहण करते आ रहे हैं।

नालाइर दिव्य प्रबन्धम् (तमिल वैष्णव भक्त कवियों का साहित्य) के चार हज़ार पदों में आण्डाळ के तिरुप्पावै के पद श्री रामानुज को इतने प्रिय थे, उनका वे इतना मनन करते थे, कि वे तिरुप्पावै जीयर (तिरुप्पावै सन्त) के नाम से पुकारे जाने लगे थे। आज भी विष्णु मन्दिरों में, वैष्णव गृहों में, अगहन मास के तीसों दिन प्रातःकाल तिरुप्पावै के तीसों पदों का बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ गायन होता है।

'कृष्णस्तु भगवान स्वयं'—इसीलिए आण्डाळ के प्रियतम यशोदानन्दन कृष्ण ही नहीं वे वटपत्रशायी, शंख चक्र धारी, त्रिविक्रम वामन, लक्ष्मीपति आदि सभी अर्थ और विभव के अवतार भी हैं। उनके कृपा पात्र बनने के लिए वे अपने तिरुप्पावै के प्रत्येक पद द्वारा उनका आह्वान करती हैं और साथ ही अपनी सखियों की ओर से, समस्त भक्त जनों की ओर से प्रभु से निवेदन समर्पित करती हैं:

"आज हो या कल अनवरत सातों जन्मों में भी हम तुम्हारे अपने हैं, गोविन्द ! तुम्हारे सेवक हैं। हमारी समूची भावनाएँ, वासनाएँ तुम्हारी ओर उन्मुख हो जाएँ।"

"............गोविन्दा,
एट्रैक्कुम् एलेल् पिरविक्कुम् उन् तन्नोडु
उट्रोमे आवोम् उनक्के नाम् आट् शेय्वोम्
मट्रै नम् कामंगळ माट्रेलो एम्पावाय् ॥२९॥"

"इसी उद्देश्य को लेकर हमने यह पावै-व्रत रखा है। व्रतकाल में हम घी का सेवन, नहीं करतीं, दूध नहीं पीतीं, स्नान के पश्चात् काजल नहीं लगातीं, फूलों से सिंगार नहीं करतीं। तन, मन, वचन से बुरे कार्य में प्रवृत्त नहीं होतीं। हमारा उद्धार होने की आशा है।"

"...नेय्युण्णोम् पालुण्णोम् नाट् काले नीराडि
मैयिट्टेलुदोम्, मलरिट्टु नाम् मुडियोम्
शेय्यादन शेय्योम् तीक्कुरलै च् चेन्शेदोन्
ऐयमुम् पिच्चैयुम् आन्दनैयुम् कै काट्टि
उय्युमारेण्णि उहन्देतोरेम्पावाय् ॥२॥"

इस प्रकार कात्यायनी व्रत का आधार लेकर आण्डाळ तिरुप्पावै में अपनी भक्ति को, लोकव्यापी दिखातीं हैं। इसमें उनकी भक्ति ऐसी लोक-संग्रह की भावना और कल्याण कामना को लेकर चली है कि विमुग्ध हो जाना पड़ता है। वे कहती हैं:

"त्रिविक्रम भगवान् का गुण गान करती हुई हम कन्याएँ कात्यायनी देवी की पूजा करती हैं, इस कामना के साथ कि संसार में, मास में तीन बार वर्षा हो। पानी भर जाए; खेत लहलहाएँ; और उनके पास, वर्षा के कारण भरे पानी में मछलियाँ तैरें; कमल खिलें और उनमें भौंरे गुजार करें; गो-धन बढ़े और गायों के दूध से भरे थनों से बहती अजस्र धारा से घड़े के घड़े भरते जाएँ; सब जगह समृद्धि सम्पन्न हो।"—३

यह व्रत की महिमा है या आण्डाळ देवी के भक्ति की गरिमा ? उनके 'तिरुप्पावै' का महत्व अकारण नहीं है।

तिरुप्पावै के सम्बन्ध में जो एक बात और उल्लेखनीय है वह है उसके सम्बोधन की उक्तियाँ। सखियों को जगाती हुई आण्डाळ के सम्बोधन बड़े ही

स्वाभाविक, सहज और आकर्षक हैं।

“पक्षी चहक रहे हैं। मुर्गा बोल रहा है। तालाबों में कमल खिल रहे हैं। कुमुद कुम्हला गए। मन्दिरों में प्रातः पूजा के लिए शंखनाद होने लगा। घरों से ग्वालिनों के दही मथने की आवाज़ आने लगी...”

प्रातः काल के इस सुरम्य शान्त वातावरण में, मधुर मधुर कीर्तन करती हुई कन्याएँ जा रही हैं और जाते जाते, द्वार द्वार पर सखियों को भी जगाने रुक जाती हैं।

तब का उनका सम्बोधन कन्यासुलभ, हास, परिहास, विनोद, ताना, चुटकी सब के पुट से कैसे भरा हुआ होता है। एक उदाहरण देखिए :

“कैसी भारी नींद में पड़ी हो सखि ! उस दिन प्रभु के बाण खाकर मरते हुए कुम्भकर्ण ने वसीयत में अपनी नींद तुम्हें दे दी क्या? यह कैसा नशा है, मेरी रानी उठकर द्वार खोलो”—(१०)

“पोट्र पत्रै तरुम पुण्णियनाल् पण्डु ओरु नाळ
कूट्रत्तिन वाय् वीलन्द कुम्भकर्णनुम्
तोट्रुम् उनक्के पेरुन्दुयिल तान तन्दानो
आट्र अनन्दलुडैयाय् ! अरूंकमे !
तेट्रमाय् वन्दु तिरवेलो एम्पावाय्”

‘तिरुप्पावै’ में आण्डाळ अपनी भक्ति का दर्शन ही नहीं अपने समय के जीवन का भी दर्शन कराती हैं।

तिरुप्पावै के अतिरिक्त जो रचना आण्डाळ के नाम की बतलाई जाती है वह नाच्चियार तिरुमोलि (देवी के सुवचन) जिस में इन के १४३ पद संगृहीत है। यदि आण्डाळ ने तिरुप्पावै में संग भक्ति की है तो तिरुमोलि में उनकी एकान्त भक्ति साधना के समय के उद्गार हैं। ये उद्गार क्या हैं, तन, मन, प्राण, सर्वतोभावेन, पुरुषोत्तम को आत्म समर्पण करने के लिए आकुल, व्याकुल आण्डाळ देवी के नारी हृदय की पुकार है, जो कि कुल कानि मान-मर्यादा, कथ्य अकथ्य सब का परित्याग करना चाहती हैं। परमात्मा से मिलने के लिए, वारिधि ने बूँद में समा जाने के लिए, जीवात्मा की चिर पुकार, मानो यहाँ साकार, और स्थूल हो उठी है और आण्डाळ देवी स्वयं जीवात्मा स्वरूप में तड़प रही हैं।

पत्नी भाव से इस प्रकार की भक्ति करने की एक परिपाठी है, जिसे अन्य आलवार भक्तों ने भी अपनाया है। निस्सन्देह उनकी भी बड़ी तीव्र भक्ति थी पर अपने पुरुष शरीर में नारी भावना को लेकर निकले उनके हृदयोद्गार, स्वाभाविक प्रतीत होने पर भी कल्पित ही हैं। प्रियतम के संयोग वियोग से प्रेयसी नारी के तन मन की जो प्रतिक्रिया होती है, उसका अनुभव अपने कल्पित नारी शरीर में आलवार भक्त कर ही नहीं सकते थे। यही कारण है कि आण्डाळ के उद्गार पूरे वेग के साथ ऊँचाई से गिरनेवाली निर्झरिणी के समान हैं और उनके मुक़ाबले में आलवार भक्तों के उसी ढंग के उद्गार तराई से ऊपर की ओर प्रयत्न से बहाई जानेवाली जलधारा के समान हैं।

नाच्चियार तिरुमोलि की कोदा विरहिणी गोपिका हैं। प्रियतम से मिलाने के लिए वे कामदेव से प्रार्थना करती हैं—अनंगदेव ! वेंकटवर्कु एन्नै विदि क्किट्टिए ! हाँ, वह कामदेव को यह बात साफ़ साफ़ कह देती है :

“मानिड वर्केन्रू पेच्चुप्पडिल
वालकिल्लेन कण्डाय् मन्मदने !”

मैं मनुष्य की नहीं होनेवाली हूँ, अनंग ! मेरे अग प्रत्यंग उस पुरुषोत्तम शंखचक्रधारी के लिए ही विकसित हुए हैं। मेरे प्रेम को सफल बनाते हुए तुम्हें इसका विचार रखना होगा।

वे कामदेव को प्रियतम कृष्ण की पहचान कैसे देती हैं देखिए :

“करुवुडै मुहिल वण्णान् कायावण्णान्,
करुविळै पोल वण्णान् कमल वण्ण :
तिरुवुडै मुहत्तिनिल तिरुक्कण्हळाल
तिरुलवे नोक्केनष्करूळ कण्डाय् ।”

“नीर भरे घनश्याम—काया (फूल विशेष) वर्ण वाले—करविळै (फूल विशेष) रंगवाले कमल की का लिए अपने श्री मुख की दो नेत्रों की दृष्टि मुझ प डालें—ऐसी व्यवस्था करो, कामदेव !”

अनंग से कोई काम बनता न देख विरहिणी श देखती है। पृथ्वी में गोल गोल रेखाएँ बना कर अं गिनती हैं। दुहरे अंक आने पर मिलन होगा, ऐ विश्वास है। प्रेयसी मिन्नत करती है—ओ मिलन देवता—तुम मेल करा देना—कूडिडु नी कूडले!

१९५४

सहसा भाव दशा बदल जाती है। आण्डाळ अपनी सखियों सहित रेत में घरौंदा बना कर खेल रही है। जाने कहाँ से नटखट कन्हैया आ पहुँचता है और उन घरौंदों को कुचल डालता है। झुंझला कर आण्डाळ कहती है—अपने कंगनधारी हाथों से बड़े यत्न पूर्वक रेत एकत्रित कर हमने घरौंदे बनाए। आँखों से हमें भेदते ही हो, इन्हें भी क्यों कुचलते हो, ओ क्षीर सागर शयन!

"एंगळ शिट्रिल वन्दु शिदयेले—
हमारे घरौंदे ढहाओ न!"

पर उस घनश्याम मुख का जादू ही क्या है हम उसके बोल और काम के वशीभूत हुए जा रहे हैं?—

"पेय्युमामुहिल पोल् वण्णा?
उन् तन् पेच्चुम शेय्हैयुम्
मैयलेट्रि मयक्क उन् मुहम्
माय मन्दिरम् तान को, लो?

हमारे आंगन में मुखड़ा दिखा कर मुस्कुराते हो, इस रेत के घर के साथ हमारे चित्त को भी अस्तव्यस्त कर जाने का इरादा है, गोविन्द?

"मुट्रत्तूडु पुहुन्दु निन् मुहम्
काट्टि पुन्मुरुवल शेय्दु
शिट्रिलोडु एङ्गळ शिन्दैयुम्
शिदैक कडवैयो गोविन्दा?"

एक और दृश्य। यमुना में गोपियाँ स्नान कर रहीं हैं। तट पर के उनके वस्त्र कुछ बग़ल में दबाए, कुछ पगड़ी सा सिर पर बाँधे, कृष्ण वृक्ष पर बैठे हैं। गोपियों की तरफ़ से आण्डाळ व्यग्र होकर बोलती हैं:

"अच्छी सीख मिली कन्हैया! यमुना तट पर अब कभी नहीं आएँगी। सखी समेत मिन्नत करती हैं। हमारे चीर लौटा दो—तुहिलै पणित्तरुळाय्।"

जल में खड़े हमारे पैर दुखने लगे हैं। मुँह अंधेरे ही हम नहाने आई थीं। अब सब उजला हो चला सब लोग आने जाने लगे हैं। खिलवाड़ न करो। पूतना का दूध पीनेवाले! निर्लज्ज! चीर दे दो।

यमुना तीर में उस दिन गोपियों की जो दयनीय अवस्था हुई थी, उसका यथावत् अनुभव कर आण्डाळ देवी, (दस पदों में) चीर लौटा देने की प्रार्थना करती है। पर एक और भावावेश आ जाता है। तब न यमुना तीर है, न गोपियाँ, न कृष्ण ही। आण्डाल का हृदय भर भर आता है। भाव लोक से प्रभु कहाँ एकाएक अदृश्य हो चले? वह उन्हें बाहर खोजने लगती है। बाहर प्रकृति में, प्रकृति के खिले फूलों में, घिरे बादलों में, चमकती बिजली में, बरसती वर्षा में, घुमड़ते सागर में, वह सर्व व्यापी तो सर्वत्र व्याप्त उसे निहार ही रहा है। वह फिर आकर मुखड़ा क्यों नहीं दिखाता?

"ओ कोकिला! कूकती जाओ, रात दिन उन के नाम ले लेकर कूक उठो। जिससे कि प्रवाल के अधर वाले मेरे माधव मेरे पास आ जाएँ—कुयिले! पन्नि एप्पोदुम् इरुन्दु विरैन्दु एन् पवळवायन् वर क्कूवाय्। मेरी आँखे लगती नहीं हैं कोकिल! तुम कूको, अपने तोते से तुम्हारी दोस्ती करा दूँगी!१ तुम मेरी बात नहीं मानोगी? नारायण को यहाँ नहीं बुलाओगी? मैं तुम्हें यहाँ से भगा दूँगी देखना।"२

"एन कोलक्किळियै उन्नोडु तोळमै कोक्कुवन कुचिले।१
कुयिले! इन्दु नारायणनै वरक्कूवायेल
इगुत्तै निन्रुम् तुरप्पन।"२

कभी लाड़ प्यार से, कभी लालच दिखाकर, और कभी धमकाकर, कोयल से अपनी साध पूरा करने का प्रयत्न करती हैं विरहिणी आण्डाळ।

किन्तु काले मेघों में क्या जादू है कि उनके सामने वह कातर हो जाती हैं, वाणी गद्गद हो उठती हैं:

"विण्णील मेलाप्पु विरित्रार्योल मेहंगाळ्
आकाश में नीले वितान से फैले मेघ।
मामुत्त निधि शोरिउम् मामुहितव्हाळ्
मोती बरसाने वाले मेघ।
मिन्नाहत्तेलुहिन्द् मेहंगाळ
सीने में बिजली छिपाये मेघ।
वान् कोंण्डु किळन्देंलुन्द मामुतिलव्हाळ्
आकाश को निगलने से उठे काले मेघ।
जलम् कोण्डु किळन्देंलुन्द तण्मुहिळ्
नीर भर कर ऊँचे चले ओ शीतल मेघ।
काहीलत्तु एलुहिन्र कामुहिलहाळ!
सावन के ओ सांवले मेघ!

मेघों की सरसता की ओर कितने प्रकार से संकेत करती हैं ! सरस सहृदय व्यक्ति से सहानुभूति और सहायता शीघ्र मिलती है उनसे विह्वल हो कर आण्डाल कहती है :

> "एन्नें नलम् कोण्ड नारणर्कु
> एन नडलै नोय चेप्पिमिने"

मेरे सर्वस्व चुरानेवाले उस नारायण से मेरी व्यथा कह देना।

जब देखो तब गोपाल के अधरामृत का पान करनेवाली मुरली की ओर गोपियों का विशेष ध्यान जाता रहा है। पर अपने प्रियतम का अधिकतर शंखचक्रधारी नारायण के रूप में स्मरण करनेवाली आण्डाल देवी पांचजन्य शंख की ओर आकर्षित होती है। उसे सम्बोधित कर कहती है :

तुम बड़े भाग्यशाली हो, शंख !

समुद्र में जन्मे। पंचजन असुर के पेट में पले। फिर भी तुम्हें प्रभु ने वास दिया अपने उन्नत हस्त में। राजहंस की तरह वासुदेव के करकमल में विराजमान हो। उनके मुख मधु का सेवन करते हो। नित प्रतिदिन प्रभु के कान के पास खड़े क्या रहस्य कहते हो, पांचजन्य ! कि देवियाँ देखती रह जाती हैं, पर माधव के अधरामृत के तुम्हीं एक भागी हो ?

लालसा वश एक बात पूछती हूँ, धवल शंख ! यह तो बतलाओ उस प्रवाल सम अधर का मिठास कैसा है ? कपूर की सुगन्धि लिए ? कमल का सुवास लिए ? माधव के श्रीमुख का स्वाद कैसा है... वास कैसा है।

आण्डाल की इस स्वाद जिज्ञासा में, रसिक वर उनकी भक्ति की जिज्ञासा करते हैं। पद देखिए :

> "कर्पूरम् नारुमो कमलप्पू नारूमो
> तिरुप्पवळ च्चेव्वाय दान तित्तित्तिरुक्कुमो
> मरुप्पोशित्र माधवनतन् वाय् चुवैयुम् नाट्रमुम्
> विरुप्पुट्रु केट्किन्रेन शोल् आलिवेण्शंगे !

मानो प्रभु के अधरामृत की कल्पना मात्र से आण्डाळ के मुख में पानी भर आया हो और वह उसे संभाल न पा रही हैं।

एकाएक दशा विपरीत हो चली। विरहिणी को तब तक की सहेली प्रकृति उसकी शत्रु बन चली। गाती कोयलों से, नाचते मोरों से, खिलते फूलों से कहती है : मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। अपना नाचना, गाना, फूलना, खिलना अब बन्द करो। अपना कला-प्रदर्शन उस दिन दिखाओ जब उस पुरुषोत्तम से मेरा मिलन होगा।

जड़ प्रकृति पर अपने विलाप प्रलाप का कोई प्रभाव पड़ते न देख, लाचार होकर विरहिणी आखिर सखी सहेलियों की ही शरण जाती है। माता पिता बन्धु जनों की लाज छोड़ कर मन खोल देती है—विरह असहनीय हो चला है। उन्मत्त हो कहती है :

"आयुप्पाडिक्के एन्नै उयुत्तिडुमिन—मुझे गोकुल पहुँचा दीजिए। मेरा रहस्य मुझ तक सीमित नहीं रह गया है। वह लोक विदित है। पर मैं लोक-मर्यादा, कुल-कानि छोड़ दूँ इसके पहले कोई उपाय कर दीजिए। मेरा माधव मुझे अपनी ओर खींच रहा है। मुझे बुला रहा है। मुझ से अब रहा नहीं जाता। यौवन और सौन्दर्य से भरे पूरे मेरे अंग प्रत्यंग, गोविंद के साथ संभोग के लिए छटपटा रहे हैं। मैं कुछ अप्रिय व्यवहार कर न बैठूँ जिससे कि आप को लज्जित होना पड़े। द्वारके के पास मुझे पहुँचा दीजिए।

आण्डाळ के विरहाधिक्य को प्रकट करने वाले इन पदों में अकथनीय दर्द है, प्यास है। वैसे तो नाच्चियार तिरुमोलि के समस्त उद्गार; जैसे पहले ही आ गया आण्डाळ के अपने ऐकान्तिक हार्दिक अनुभूति से ओतप्रोत हैं।

पर प्रेम-निवेदन जहाँ "एन्नै उयत्तिडुमिन्—(मुझे पहुँचा दो) का रूप धारण करता है वहाँ हृदय द्रावक हो चला है। भक्त मीरा ने भी कहा पर थोड़े में कह दिया : "घायल की गत घायल जाणै, और न जाणै कोय"—पर आण्डाल अपने घाव को खरोच-खरोच कर दिखाती है। दिल दहल उठता है।

पर इस पीड़ा का अन्त भी होना चाहिए। आण्डाल को गोपाल मिले मीरा की तरह ही सपने में। नारायण के साथ अपने विधिपूर्ण विवाह का वर्णन वह बड़ी रुचि के साथ करती हैं।

जनश्रुति है कि भक्त पेरियालवार ने आण्डाल देवी का श्रीमन्नारायण से विवाह अपने हाथों कराया था। उसका विवाह न भी हुआ हो तो भी आण्डाल

ने अपने विवाह का जो वर्णन स्वयं अपने मंगल गीतों में किया है उनमें उस अलौकिक विवाह का भव्य दृश्य नहीं है, यह कौन कह सकता है ?

पुरुषोत्तम भगवान् के साथ आण्डाल के मिलन के सम्बन्ध में कहा जाता है कि 'वह सम्मिलन दिव्य था, जैसे कावेरी सागर से जा मिलती है, उसी प्रकार आण्डाळ की दिव्य आत्मा भी सशरीर, उस परम पुरुष में विलीन हो गई।"

आण्डाळ के तिरुप्पावै और तिरुमोलि उनके उस महामिलन के लिए उनकी प्रक्रिया और प्राप्ति के सजीव, अमर साक्षी हैं।

मद्रास

—आनन्दी

दखनी की कहावतें

एक नूर आदमी, हज़ार नूर कपड़ा,
लाख नूर ज़ेवर, करोड़ नूर नखरा।

नखरा करी नवा, पीठ को बाँधा तवा।

सोलह हाथ की साड़ी, आधी टाँग उघाड़ी।

श्याम सुन्दर बेटी, चूल्हा फूँकन बैठी,
नकटा चपटा बेटा, जा कचहरी बैठा।

घर न दार, चावड़ी बिराड़[1]।

अम्मा री अम्मा, मैं किस वक़्त निकम्मा,
दिन को कातूँ कातना, रात को कसीदा होय।

जोरू पूछे सूम की, क्यों रे बदन मलीन,
क्या गाँठी का खुल पड़ा, क्या काहू को दीन,
देते लेते और के देखे, वा से[2] बदन मलीन।

सारी उमर सेवी कासी, अन्त समय जम की फांसी।

मरन चले सुख का सामना।

लंगड़ी घोड़ी, लगाम तोड़ी।

पास न कौड़ी, लाल बाग़ दौड़ी।

मुँह फेरे दरिद्री, हाथ फिरे लछमी।

हैदराबाद

—ललितादेवी

---

[1] सामान [2] इस कारण

शबनम मुस्करा उठी

भींगी भींगी रात, नशीली चाँदनी, ऊपर आसमान पर झूलता हँसिया जैसा चाँद ! सड़क के दोनों ओर मेंहदी के झुरमुट, झुरपुटों के पार से आती रात-रानी के फूलों की सुगन्ध—दूर दरियाके पार से आती संगीत की मधुर ध्वनि पछुवा हवा के झोकों के साथ गूँज रही है। आवाज़ कुछ पहचानी सी जैसे किसी स्वप्निल परी का सुमधुर गीत जो रोज़ ही सुना जाता हो।

दिनेश सुनता चला जा रहा है मौन उस पहचाने से संगीत के स्वर को। स्वर में कुछ खिंचाव है, आकर्षण है। दिनेश चला जा रहा है, उसे जाना ही पड़ रहा है।

बंगले के सामने ठिठक गया दिनेश। 'नेमप्लेट' पढ़ी, यहीं का बुलाना था उसे। वह फाटक के अन्दर घुसा और गीत की अन्तिम कड़ी रुक गई। प्रकोष्ठ में प्रवेश किया, घुसते ही देखा नृत्य प्रारम्भ हो गया। पायल बजने लगी 'छुम छनन्नन...' धीमे-धीमे पर सधे हुए नर्तकी के पैर थिरकने लगे। निःस्तब्धता छा गई, सब देख रहे थे उसकी ओर। दिनेश भी ठिठक गया और शान्त, गम्भीर मुद्रा में अपनी नज़रें नर्तकी पर गड़ा दीं ! नर्तकी नवयौवना थी, जुही की कली की तरह। उसकी मृणाल-सी बाहें, मोरनी जैसी थिरक कर कुमुदनी जैसी उसकी अंगुलियाँ मिल जातीं। नृत्य करते-करते उसके रतनारे नयन एक बार दिनेश पर जाकर रुक गए। दृष्टि पड़ते ही चौंक-सी गई, पर उसने नृत्य करना बन्द न किया। नृत्य चलता रहा, पर दिनेश ने स्पष्ट लखा कि उसकी गति में वह तन्मयता न रही जो प्रारम्भ में थी। वह सहम गया, नज़रें न मिलाई। नज़रों का बड़ा असर होता है।

धीरे-धीरे नृत्य थमता गया व मीठी-सी झन् के साथ पायल रुक गई। नर्तकी मुस्करा कर खड़ी हुई, अपनी शरबती आँखों को दर्शकों पर टिका दिया। रुपयों की बौछार-सी हो पड़ी और सारा ग़लीचा रुपयों से भर गया। उसने झुक कर सबको अभिवादन किया, और खास तौर पर दिनेश की ओर देख कर कुछ याचना की हौले-हौले मुस्करा कर ! दिनेश ने भी जी भर देखा और देख कर मुँह फेर लिया। मुख पर घृणा मुस्करा उठी।

× × ×

बनारस आए दिनेश को एक सप्ताह भी नहीं बीता कि वह फिर अपनी ग़मगीनी समेट लाया। दशाश्वमेध घाट पर बैठ कर गंगा की लहरों से खेलने की सोच कर आया था—अपने को बदलने की, पर आज उसकी उदासी फिर मुस्करा कर खड़ी हो गई। सामने घूमता रहा बड़ी देर तक निरुद्देश्य, फिर हॉस्टल लौट आया।

आज एक युग बाद, युग ही कहा जाए उसको वह बहुत पुराना ज़माना हो गया जब उसने रजनी से प्यार किया था। उसने उसे देखा रूप का व्यापार करते, रुपयों की ढेरी पर सौन्दर्य के दाम लगाते। उसे विश्वास नहीं हो रहा है अपनी आँखों पर—क्या यह संभव है कि पुष्प से ज्यादा सरल, वायु सी निश्छल रजनी अपने को बेचने कोठे पर आगई। वह उमस उमस कर खीझ उठा। वह मालूम करेगा यह क्या है ? क्या रजनी इतनी पतित हो गई ? मेरी आशाओं पर उसने कुठाराघात किया। पर इसका दोषी कौन है ? क्या वह स्वयं नहीं ? उसने आँखों को हाथों से ढक लिया और सिसक सिसक कर रो उठा। हॉस्टल की छत पर रजनी मुस्कराने लगी—कभी वह राक्षसी का रूप रख उसकी गर्दन दबाने आगे बढ़ती, कभी नग्न सौन्दर्य ले उसे आह्वान करती, कभी मुस्करा कर अन्य सिगरेट के धुएँ उड़ाते नौजवानों के साथ किल्लोल करती दिखाई देती। वह सिहर उठा, खिड़की खोल दी और बाहर उगे चाँद को देखने लगा। वहाँ सिसक रही थी। चाँद के बीच रजनी का उदास चेहरा दिखाई दिया कुछ भीख माँगता सा। वह चीख उठा, सीने को ज़ोर से दबा कर—रजनी ! मेरी रजनी रानी !!

× × ×

रेस्टराँ में बैठा दिनेश सुबह का नाश्ता कर रहा है, पास में बैठा उमेश उसकी मुर्दनी सूरत पर मन ही हँस रहा है। सोच रहा है वह कि यह दिनेश भी आदमी है। कभी गम्भीर हो जाता है तो उसकी गम्भीरता चरम सीमा पर पहुँच जाती है, और जब कभी मन

तों में मिलकर सौंन्दर्य टटोलता फिरता है तो किसी आधुनिक मनचले भंवरे से अधिक नहीं। कभी दर्द के अथाह समुद्र में गोते खाता है तो कभी सुख में विभोर हो मदिरा के पात्रों के साथ साक़ी बाला को भी अधरों के प्याले में भर कर मदिरा पिलाता है। पूछ ही बैठा आखिर उमेश इस चुप्पी से खीझ कर—" क्यों ख़ाक-तार! यह मुर्दनी और हवाइयाँ चाँद से चेहरे पर क्यों छाई हुई हैं।"

'कुछ नहीं' छोटा-सा जवाब था, जिसमें दिल की टीस बाहर निकलने का आसरा देख रही थी।

"हाँ कुछ नहीं, फिर भी कुछ अवश्य!" उमेश बोल उठा।

दिनेश ने इस पर सूखी हँसी हँस अपनी टाई की गाँठ ठीक करते हुए, पूछा: "क्यों कल रात को जो लड़की तुम्हारे यहाँ नाचने आई थी, वह कहाँ रहती है?"

"तो यह बात है। कौन रजनी? मर मिटें क्या? क्या जवानी है उसकी भी मालूम होता है कि गदराया अनार।"

कान सिहर उठे। उसकी रजनी की ऐसी तारीफ़ें कुटिल वाक्यों में कुटिल वासना। वह चीख़ उठा, जवानी नहीं उसका मकान कहाँ हैं? मैं मिलना चाहता हूँ उससे।

"बड़ा कड़ा चार्ज है। एक बार के कम से कम पच्चीस रुपये लेती है। क्यों क्या ज्यादा अच्छी लगी? वह क्या, तुम कान क्यों मूँद रहे हो? पागल! विश्वास नहीं हो रहा है। चलो, जब चलना ही है तो रुपए क्या देखना।"

"चुप रहो उम्मीं! मैं चला जाऊँगा। पता बताओ? मुझे उसकी सूरत का मोल नहीं करना, ज़रूरी बातें करना है कुछ......"

"पुरानी दोस्ती मालूम देती है"—उम्मी खिलखिला पड़ा।

"जी हाँ। बहुत पुरानी, इतनी कि...मुँह में ही बुदबुदा गया दिनेश! चेहरे पर कुछ निश्चय के भाव थे दृढ़ निश्चय के। वह उठा उमेश से हाथ भी नहीं मिलाया, कुछ लटकती सी चाल से चल दिया उससे मिलने—नर्तकी से!

× × ×

रात भर सो न सकी नर्तकी। सुबह से अनमनी सी हो रही थी। छत पर गई, एक बार सूर्यदेव की तरफ़ देखा, फिर एक उसाँस भरी। उसाँस छोड़ कर दिल कुछ शांत हुआ। गाने लगी धीरे धीरे:

साधनाएँ आज मुसकातीं अलि
आज कोई आ रहा है।

गाने की कड़ियों में हृदय के कंपन के स्वर गूँज रहे थे। वेदना उकस उकस कर बिखरी पड़ रही थी। वह कमरे में आ, आँखें मूँद कर सोचने लगी—क्या जमाना था वह जब सदैव ही वह दिनेश के अंक में लिपटी रहती। दिनेश कहता पगली, वह कहती पागल–वह मारता वह भाग जाती, फिर मनाता दिनेश, वह मान करती! उस दिन उसके आँसुओं को दिनेश ने अपने ओठों से पोंछ दिया था। अधरों पर अपने अधर रख दिए थे। सिहर उठी रजनी ज्यादा न सोच सकी। दिल में दर्द उठ गया, बेचैन हो गई। सामने शीशा लगा था उसके सामने गुदगुदी कुर्सी पर बैठ, अपनी प्रतिमा से बोल उठी: 'आज कोई है आनेवाला।' प्रतिमा हँस उठी। क्या वास्तव में दिनेश मेरे पास आएगा—शायद न आवे। मुझ घृणामयी के पास! वेश्या के पास!! वह रोने लगी, मुँह ढँप कर। संसार में उसका अपना कोई न रहा। दिनेश यह भी छलिया है कायर, नहीं वह उससे नहीं मिलेगी। हृदय में द्वंद्व छिड़ गया।

इतने में ही कॉलिंग बैल बज उठी। 'धक्' से कलेजा धड़का। रजनी ने भृत्य को पुकारा—"रहीम!"

नौकर अन्दर आया। आदेश दिया "जाकर देखो कौन साहब हैं? पूछें तो कहना अभी मिलने की फ़ुरसत नहीं है।" रहीम बाहर चला गया।

थोड़ी देर बाद लौटा रहीम बोला: "हुज़ूर! एक साहब कुछ खोए खोए से अन्दर आने की ज़िद कर रहे हैं। नाम नहीं बताते, कहते हैं कि रजनी से ही काम है। कहिए तो भगा दूँ, वैसे सूरत से शरीफ़ मालूम पड़ते हैं।"

"अच्छा उन्हें नीचे वाले कमरे में बिठाल दो। मैं अभी आती हूँ। वह अन्दर गई ड्रेसिंग रूम में। धड़कते दिल से साड़ी पहनी दूसरी। काली साड़ी, गोरे चाँद से मुखड़े पर! लटों को खोल दिया, कंधों पर लहरा उठीं, लटें मानों घटाएँ छाई हों। सुन्दर मख़मली

दो पट्टे लगे सैण्डिल, जिनमें गोरे पैर चमक रहे थे। हाथ में रुमाल लिए भीगी पलकों पर लगाए उसने प्रवेश किया।

"कहिए !" स्वर में कुछ अपरिचित सा आह्वान।

"रजनी ! क्या कह रही हो तुम ? मुझे स्वप्न तो नहीं दिख रहा। तुम और यहाँ" –दिनेश ने डूबते आहत स्वर में कहा।

"हाँ यहाँ ! क्यों अचम्भा क्यों हो रहा है। दुनिया में मजबूर इन्सान मजबूरियों का सामना करता करता उनमें उलझ कर वह भी गया है। मुझे मेरी मजबूरियों ने नर्तकी बनाया, कला को मैंने मूल्य पर रखा। कला को बेचा फिर, फिर......"

"फिर खुद को बेच दिया क्यों पिशाचिनी ! वेश्या !!"

"चुप रहो दिनेश ! तुम्हें ऐसा कहते शर्म नहीं आती। उस दिन जब रात के बारह बजे मैं तुम्हारे दरवाज़े पर गई थी। मेरे हाथों में थी तुम्हारे बच्चे की मूर्ति—मैंने कहा था तुम्हारा लाल ! तब तुमने मालूम है मुझे ढकेल कर दरवाज़ा बन्द कर दिया था। ज्यादा सिर पटकने पर तुमने...तुमने निर्दयी मुझे क्लोरो फ़ार्म सुँघा कर कार में रख दूर बहुत दूर जंगल में जाकर पटक दिया। मैं उठी, सवेरा हो गया था। मेरे बच्चे की लाशं भी छिन गई थी मुझ से।"

"मुझे माफ़ करो रजनी !"—दिनेश बीच में ही बोल उठा।

"माफ़ तो उसी दिन कर दिया था जब मालूम हुआ कि उस समय तुम एक और युवती की यौवन की गहराइयों में समाए हुए थे। मुझे तुम्हारी खबर हमेशा मिलती रही कि तुम कहाँ हो ? क्या कर रहे हो ? मालूम हुआ था कि सरोज ने तुम्हें धोखा दिया और तुम नारी जाति से घृणा करते हुए मसूरी चले गए। जहाँ तुम रात दिन कहानियाँ व कविताएँ लिखते रहे, जिसमें नारी जाति को गालियाँ देते रहे। मैं मौन सुनती रही, फिर मैंने तुम्हारी ओर से रुख फेर लिया। किन्तु तुम्हें कल देख एक बार फिर पुराना ज़माना याद आ गया। पर अब आप मुझ से क्या चाहते हैं ?"

"तुम्हारे अधरों में यह प्रश्न रजनी ! मैं तुमसे प्यार करता था और अब भी करता हूँ मुझे तुमसे यह नहीं पूछना है कि यह सब कैसे और क्या हुआ ! यह मेरे समय का दोष था, किन्तु अब मैं चाहता हूँ कि तुम मेरी हो जाओ " दिनेश ने यह कहते हुए अपनी आँखें रजनी पर गड़ा दीं।

रजनी उसकी ओर देख नीचा सिर कर बोली: "अब तुम्हारी नहीं हो सकती हूँ। बहुत दूर आ चुकी हूँ दिनेश ! तुम इस ऊपर से चमकती रजनी को देख कर उसके आंतरिक कलुषित रूप को न भूल जाओ। आजकल तुम क्या कर रहे हो, क्या शादी नहीं की ?"

"शादी ! वह तो बरबादी का नाम कभी की ब चुकी रजनी ! अब तो केवल तुम्हारा भरोसा है। चाहे तो अपनाओ, चाहे जीवन को एक बबूला समझ क मिट जाने दो।"

"दिनेश क्या बक रहे हो तुम ! तुम नहीं जानते कि मैं एक वेश्या हूँ। इस वाराणसी में बनारस की इन गलियों में मेरे नाम की मोहर कितने कलुषित अधरों में अंकित की जा चुकी है। मेरे हाव भाव में व पवित्रता नहीं रह गई दिनेश ! जो मुझ में पहले थी। मैं अपने लिए नहीं, तुम्हारी आशाओं की मुसकान के लिए तुम्हारी नहीं बन सकती। मैं तुम्हें अंधकार में नहीं ढकेलूँगी। मैं तुम्हें सदैव ही आराध्य समझती रही, अब जूठन न दूँगी।"

"तुम्हारी मर्ज़ी !, कह आ पड़ा दिनेश। वह क्या करे ? उसके चमकते रूखे बाल जो एक बार मुँह पर आए उसने सिर के एक झटके से हटाए। रजनी ने देखा 'आँसू'। वह दौड़ी और दिनेश के आँसू अपने रुमाल से पोंछ दिए। उसे जकड़ लिया अपनी बाँहों में और कह 'रंज न करो जो होना था सो हो चुका। जाओ मेरी अभिलाषा है कि जाकर किसी सुन्दरी, विदुषी लड़की से शादी कर लो।"

शादी ! अच्छा कर लूँगा रजनी ! ज़रूर क लूँगा। चल दिया दिनेश इतना कह कर लड़खड़ाता हुआ, पागल की तरह। देखती रही रजनी जब तक कि वह दिखता रहा।

× × ×

और कुछ दिन बाद :

जब मौसम की बेरुखी से ऊब कर घने कुहरे से भरी ठण्डी सुबह में थाम के मीठे मीठे घूंट लेती रजनी 'इलस्ट्रेटेड वीकली (Illustrated Weekly) के पृष्ठ पलट रही थी, उसकी नज़र नव विवाहित दम्पति

१९५४

के एक जोड़े पर अटक गई। उसने देखा, दिनेश का चित्र अनमना सा, मुरझाया सा चेहरा लिए एक युवती के साथ जो खिली ज्योत्स्ना की तरह, नव विकसित नवयौवना थी। दिनेश का चेहरा कुम्हलाया था। चेहरे की मुर्दनी में रजनी को अपना प्रतिबिम्ब झलकता प्रतीत हुआ। वही जिम्मेवार है इसकी? उसे अलका का जीवन संभालना होगा। हटना होगा उसके रास्ते से। यह उसका कर्तव्य है वह जल क्यों रही है? उसीने तो दिनेश को शादी की सलाह दी थी। दूसरे ही क्षण उसने अपने ओंठ किसी दृढ़ निश्चय में काट लिए।

वह पागल की तरह उठी और शोफ़र के साथ चल पड़ी। कार फुल-स्पीड में छोड़ दी गई। रात्रि के पिछले प्रहर जब शशि-रश्मियाँ आकाश में बिदाई ले रहीं थी रजनी की कार दिनेश के पोर्च में रुकी। पुराना पहचाना गाँव जहाँ उसने बचपन के दिन बिताए थे। थोड़ी देर को उस बरगद के पेड़ ने उसके सपने हरे कर दिए, पर दूसरे ही क्षण वह कार से बाहर आई। सोचने लगी। 'आज वह वह न रही। पुरानी बातें पुराने दिनों के साथ ही क्यों न दफ़ना दी गईं।

दिनेश गैलरी में खड़ा धुआँ उड़ा रहा था इतनी रात गए दिल के अरमानों का सिगरेट पी पीकर! हरसिंगार के फूलों की महक भी आ रही थी। पर वह सुगंध उसे बहला न रही थी। उसे उसकी खबर भी नहीं थी, वह अपने ग़म में ग़मग़ीन था कि धुंधलके में ही रजनी को पहचान दिनेश वहाँ से खिसक गया।

अन्दर गई रजनी। पहले कमरे में झाँका, चित्र वाली लड़की बैठी थी अनमनी सी, उनींदी। नयनों में सुरमई चमक थी सिन्दूरी रंग में रंगी, मानों माथे का सिन्दूर आँखों में उतर आया हो उस मासूम अलका की सूरत देखती वह पहुँची दिनेश के कमरे में, जो अलका की चमक से भागना चाह रहा था। दिनेश एकाएक बनकर बोल उठा, मानों रजनी का आना उसे मालूम नहीं "ओह, रजनी! इतनी रात गए क्या बधाई देने आई हो।"

"हाँ दिनेश, मैंने सोचा बहू को कुछ भेंट दे आऊँ तुमने तो शादी में बुलाया नहीं, पर मैं कैसे रुक सकती थी।"

"भेंट! क्या कह रही हो रजनी। काश! तुम स्वयं ही........"

बीच में ही टोक कर बोल पड़ी रजनी—"मर चुकी रजनी! अब वह तुम्हें अलका को सौंपने आई है। यह उसकी अन्तिम इच्छा है। कितनी सुन्दर है मेरी बहू जैसे आसमान का चाँद!"

दिनेश चीख उठा—"तुम पहेली हो रजनी, सपना हो तुम। समुद्र की तरह तुम गम्भीर हो, सरल—तूफ़ानी।" इतने में ही अलका ने प्रवेश किया!

दिनेश ने बताया कि यह है अलका और बिना कुछ उत्तर दिए रजनी ने दौड़ कर अलका को लिपटा लिया और प्रेम-चिन्ह अंकित कर दिया उसके काश्मीरी सेव जैसे गालों पर।

रात ढल रही थी। सवेरा हो रहा था। उषा गीत गा रही थी। शबनम मुस्करा उठी जब दिनेश ने पहली बार अलका को बांहों में भींज लिया और उसके प्रकाश में झूम उठा। बाहर से आवाज़ आई रजनी की—"मैं जा रही हूँ दिनेश! सवेरा हो गया है।"

चतुर्वेदी भवन,
३३१, भाट गल्ली, उज्जैन (म० प्र०)

—जगदीश किशोर चतुर्वेदी 'शलभ'

भ्रातृ भावना

साम्यवादी यह विश्वास रखते हैं कि यदि सब लोग सम्पत्ति का समानतापूर्वक उपभोग करें तो उनमें परस्पर भ्रातृभाव स्थापित हो जाएगा। यह धारणा भ्रान्त प्रतीत होती है। एक सेव को बराबर बाँट कर खाने से मनुष्यों में भ्रातृभाव नहीं उत्पन्न होता परन्तु यदि मनुष्यों में आपस में भ्रातृभाव हो तो वे स्वयं एक दूसरे के साथ सेव बाँट कर खाएँगे।

—फुल्टन जे. शीन

कला-चर्चा

भारतीय कलाकार : शिव प्रसाद देव शर्मन

यह कहा जाता है कि कलाकार उत्पन्न होते हैं, बनाए नहीं जाते। जब हम अपने देश और विश्व के महान् कलाकारों के विषय में विचार करते हैं तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वास्तविक कलाकारों में कुछ जन्मजात विशिष्ट गुण होते हैं जो कि अन्य कलाकारों में नहीं होते। प्रारम्भ से ही इनके जीवन में अपनी ही एक विशेषता होती है। मुझे इस विषय में एक प्रसिद्ध पाश्चात्य चित्र का स्मरण हो आता है जिसका शीर्षक था "टिटिअन का रंग में प्रथम प्रयास"। इस चित्र में एक १० वर्ष का बच्चा जिसके बाल सुनहले, गाल गुलाबी और रंगीन पोशाक है एक उद्यान में एक वृक्ष की छाया के नीचे बैठा हुआ है और अपने सामने की मडोना की प्रस्तर मूर्ति को देख रहा है और एक काग़ज़ पर विविध फूलों को काग़ज़ पर मल मल कर उसे बनाने का प्रयत्न कर रहा है। इसे देख कर विश्व में यह कौन समझ सकता था कि भविष्य का एक महान् कलाकार उस दिन प्रातःकाल रंगों के प्रथम पाठ को सीखने का प्रयत्न कर रहा था। आज विश्व के कला के महान् आचार्यों में उनकी गणना की जाती है।

अभी कुछ दिन हुए हैदराबाद आर्ट सोसाइटी की व्यवस्था में विक्टोरिया अलबर्ट म्यूज़ियम के श्रीयुत आर्चर का अजन्ता-पटभवन में एक ज्ञानपूर्ण व्याख्यान हुआ था। इस व्याख्यान में उन्होंने पूर्व और पश्चिम दोनों के महान् चित्रकारों के कुछ चित्रों को प्रदर्शित किया था। उन्होंने अपने व्याख्यान को समाप्त करते हुए कहा था कि कलाकार चाहे वे किसी देश, जाति या धर्म या समय के हों सदा प्रकृति, जनता, दर्शन और धर्म से प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं। ये सब चित्र एक ही जैसे होते हैं क्योंकि वे एक ही प्रकार की प्रेरणा और विचार-धारा के आधार पर बनाए हुए होते हैं। यह सत्य है कि समय और परिस्थितियों के भेद के कारण कलाकार उनका भिन्न रूप से नामकरण करते हैं।

४५ वर्ष हुए पूर्व बंगाल के एक संभ्रान्त घराने में एक छोटे ग्राम में श्रीयुत शिवप्रसाद देव शर्मन का जन्म हुआ था। वहाँ के दृश्य बड़े मनोरम थे; ग्राम के चारों ओर हरे-भरे चरागाह, आम्र-कुञ्ज, नदी के किनारे और उसके मोड़। वहाँ के निवासी सरल और आडम्बर-हीन। उनका पहला प्रयास काग़ज़ और रंगों से नहीं परन्तु मिट्टी से प्रारम्भ हुआ। वे नदी के किनारों से मट्टी को इकट्ठा कर लेते थे और उस मट्टी से अपने ग्राम के फूल, पक्षी और पशु इत्यादि को अपने ढंग से बनाया करते थे। इन्हें बनाते हुए उन्होंने सहसा यह अनुभव किया कि क्यों न इन्हें रँगा जाए और उन्होंने अपने बनाए हुए मौडलों को रँगना प्रारम्भ कर दिया। यह उनके कला के जीवन का प्रारम्भ था।

उनके माता-पिता बंगाल से बनारस चले आए और वे एकदम नए शहरी वातावरण में आ गए परन्तु उनके सृजनात्मक मन पर इस दूसरे स्थान पर आते ही कुछ प्रभाव न पड़ा और वे वहाँ के स्थानीय महान् कलाकारों से मिले जिनके मार्ग-दर्शन से उन्हें बहुत सहायता प्राप्त हुई।

वर्ष व्यतीत हो गए और उन्होंने २५ वर्ष की आयु में बनारस में अपना एक स्टूडियो खोला। उनकी कला इतनी उच्च कोटि की थी कि उसे देखने के लिए शासकवर्ग, अधिकारी, राजा-महाराजा, संभ्रान्त व्यक्ति और जनता देखने के लिए आने लगी। पंडित राजेन्द्रनाथ विद्याभूषण, प्रमथनाथ तर्कभूषण और फणीन्द्रनाथ तर्कवागीश जैसे दार्शनिकों और विद्वानों ने नवयुवक शिवप्रसाद की दर्शन, पुराण और धर्म के अध्ययन में बड़ी अभिरुचि पाई। यह अध्ययन और उनका चित्र-कला का कार्य साथ साथ उन्नति करता रहा। उन महाराजाओं और सम्भ्रान्त व्यक्तियों का कार्य करते हुए नवयुवक शिवप्रसाद प्रकृति और मनुष्य के रूप का अध्ययन करते रहे। उन्होंने जो स्वर्गीय महाराजा पी. एन. टागौर, महारानी पी. एन. टागौर, बनारस के महाराजा के आकृति-चित्र बनाए। दरभंगा के महाराजा, महाराजा, राजा साहब जौनपुर, मधुबनी के साहब और राजा शिउहर के पूर्णाकृति चित्र

इनमें उन्हें बहुत सफलता प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त उन्होंने हमारे देश के कई संभ्रान्त व्यक्तियों और कला प्रेमियों के कई चित्र बनाए। पुराणों और कालिदास के महाकाव्यों से उन्होंने कैन्वस पर तैल-रंगों, जल-रंगों और हाथी दाँत के पर बहुत से लघु चित्रों को बनाया। उन्होंने स्वर्गीय कासिम बाज़ार के स्वर्गीय महाराजा मणीन्द्र चन्द्र नन्दी का जो हाथी-दांत पर चित्र बनाया है वह हाथी-दाँत पर लघु आकृति-चित्रों का अत्यन्त सुन्दर नमूना है। इसमें उन्होंने हाथी-दाँत पर जो आकृति-चित्र बनाया है उसकी रेखाओं की सूक्ष्मता, सुनहरे रंग और अत्यन्त कोमल फ़िनिश उन लघु-चित्रों का स्मरण दिलाते हैं जिन्हें मुग़ल ज़माने के महान् चित्रकारों ने बनाया था।

"समस्त कलाओं की कला, पूर्ण जीवन के नियोजन और उसके त्याग के साहस में है।" शिवप्रसाद के जीवन पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा।

उन्होंने अनुभव किया कि बनारस में हज़ारों मंदिरों में जिनमें भगवान् विश्वनाथ और अन्नपूर्णा के मंदिर भी सम्मिलित हैं कोई एक भी मन्दिर इस प्रकार का नहीं है जहाँ शिवपुराण की कथाओं को चित्रित किया गया हो जिससे दर्शक और तीर्थ-यात्री दर्शन करने के साथ महान् भित्ति-चित्रों और हाथी दाँत के लघुचित्रों से उनके जीवन की लीला को भी आँखों से प्रत्यक्ष कर सकें। पिता की मृत्यु के पश्चात् वे अपने छोटे भाई की सहायता करते रहे। परिस्थितियों के अनुकूल होने के कारण उनके छोटे भाई उच्च स्थिति में पहुँच गए। शिवप्रसाद ने अपने जीवन के मिशन को पूर्ण करने की योजना को कार्यान्वित करने की सोची। १५ वर्षों के पश्चात् उन्होंने अपने स्टूडिओ के होते हुए भी चित्रकार के कार्य को छोड़ दिया!

उन्होंने हिन्दू यूनिवर्सिटी के बनारस के सीमान्त पर एकड़ भूमि ख़रीदी और अपनी आमदनी से बचा कर भगवान् शिव का एक कच्चा मन्दिर बनाया। इसका नाम उन्होंने शिवधाम रक्खा। उन्होंने सृष्टि के प्रारम्भ से पुराणों से भगवान् शिव के जीवन की लीलाओं को स्वयं चित्रित किया। भगवान् विष्णु और ब्रह्मा के पारस्परिक संघर्ष से सृष्टि को बचाने के लिए उनका ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में आविर्भाव, उनका भगवती सती के साथ विवाह, दक्ष प्रजापति के अभिमान का भङ्ग करना, मदन-दहन, समुद्र-मन्थन के पश्चात् विश्व के कल्याण के लिए विषपान इत्यादि को सुन्दर रूप में चित्रित करने की योजना बनाई। उन्होंने बड़े कैन्वसों पर १०'×१२', ६'×८' ४½'×६½' की साइज़ में अपने आदर्श के अनुसार कुछ चित्र बनाए हैं। हाथी-दाँत पर उन्होंने कुछ लघु रंगचित्र बनाए हैं। इन चित्रों को 'शिवधाम' में प्रदर्शित किया जा रहा है। इन महान् रंगचित्रों के अतिरिक्त वे वहाँ वेद-विद्यालय का निर्माण करना चाहते हैं। इसमें एक पुस्तकालय और संग्रहालय होगा। वहाँ एक गोशाला, एक अतिथिशाला और एक बड़ा तालाब भी बनाया जाएगा। यह सब धर्म और जाति के लोगों के लिए होगा। इसमें हाथी-दाँत के लघु-चित्र और जल रंग-चित्र होंगे जो हज़ार वर्षों तक जीवित रहेंगे। जब ये पूर्ण हो जाएँगे तो ये चित्र देखने के योग्य होंगे। हाथी-दाँत के लघुचित्र बहुमूल्य या अमूल्य होंगे क्योंकि इस तरह की कला की कला के क्षेत्र से बहुत कुछ लोप हो चुका है। यहाँ एक चित्र-विद्यालय की भी स्थापना की जाएगी। एक अनाथालय भी रहेगा जहाँ प्रथम सहायता का केन्द्र भी रहेगा।

शिवप्रसाद कला को एक साधन मात्र समझते हैं। उन्हें अब 'पुजारी जी" के नाम से पुकारा जाता है। यह एक व्यक्ति के लिए बहुत बड़ा कार्य है। इस सम्बन्ध में पुजारी जी उत्तर प्रदेश के मंत्रियों और राज्यपाल, पश्चिम बंगाल के राज्यपाल, मद्रास के राज्यपाल और हैदराबाद राज्य के मंत्रियों और धनी-मानी लोगों से मिल चुके हैं। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्रीयुत के. एम. मुन्शी अपनी पत्नी श्रीमती लीलावती मुन्शी के साथ २१ नवम्बर, १९५३ को 'शिवधाम' देखने के लिए पधारे थे। उन्होंने 'शिवधाम' की पूरी योजना में गहरी रुचि प्रदर्शित की और उस पर अच्छी तरह विचार किया। उत्तर प्रदेश के कई मंत्री भी 'शिवधाम' को देख चुके हैं।

शिव प्रसाद ने अपने जीवन को अब इस महान् कार्य के लिए समर्पित कर दिया है। जब यह कार्य पूर्ण हो जाएगा तो कई हज़ार वर्ष तक जीवित रहेगा और यह 'शिवधाम' लोगों के लिए शान्ति और आनन्द का धाम होगा।

प्रिन्सिपल, स्कूल ऑफ़ आर्ट, **—विश्वनाथ मुखर्जी**
हैदराबाद

चिट्ठी पत्री

(१)

गोविन्द रामायण

अभी उस दिन आपकी सेवा में एक पत्र भेज चुका हूँ जो मिल चुका होगा। यह पत्र मैं एक दूसरे उद्देश्य से लिख रहा हूँ और इसे आप चाहें तो पूरे अथवा अधूरे रूप में प्रकाशित भी कर सकते हैं।

इधर मुझे बनारस से प्रकाशित होनेवाले 'हिन्दी प्रचारक' का अगस्त वाला अंक मिला है जिसके पृष्ठ १७ पर हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री रामचन्द्र वर्मा के एक, 'अजन्ता' के जून वाले अंक में प्रकाशित पत्र का कुछ अंश उद्भूत किया गया है। पत्र में लिखा है कि मैंने "मई की 'अजन्ता' में 'गोविन्द रामायण' शीर्षक लेख प्रकाशित कराया है वह उनके कार्यालय से प्रकाशित 'गोविन्द रामायण' के आधार पर है और 'उसके दो-तीन वाक्य भी उस लेख में प्रायः ज्यों के त्यों उद्धृत हैं।' श्री वर्मा जी को इसीलिए आश्चर्य है कि उसमें 'न जाने क्यों' उनके 'कार्यालय द्वारा प्रकाशित पुस्तक का' उल्लेख नहीं किया गया। उद्धृत पत्र के अन्त में '......' छपा है इस कारण सम्भावना है कि मूल पत्र में कुछ अन्य बातें भी रही होंगी। संयोगवश मेरे पास इस समय 'अजन्ता' का 'जून १९५४' वाला अंक नहीं है और एकाध मित्रों के यहाँ पूछने पर भी उस प्रति का पता नहीं चल सका है। अस्तु!

'हिन्दी प्रचारक' के उस अंक में, श्री वर्मा जी के पत्र का उद्धरण देकर मेरी पुस्तक 'मानस की रामकथा' के सम्बन्ध में भी कुछ बातें कही गई हैं और उसके गद्य "$\frac{3}{4}$" को "श्री बुल्के की पुस्तक का संक्षिप्तीकरण" बतलाया गया है तथा इस प्रकार की आशंका प्रकट की गई है कि "मानस की रामकथा वाली प्रवृत्ति हिन्दी के लिए शुभकर" नहीं होगी। 'हिन्दी प्रचारक' के सम्पादक महोदय ने, किसी 'जिज्ञासु' विद्यार्थी द्वारा लिखित इस अंश को अपने पत्र में स्थान देते समय, यह भी नोट कर दिया है "इस सत्य को सभी ग्रहण कर हिन्दी के हित के लिए काम करें इसी भावना से इसे प्रकाशित किया जा रहा है।" फिर भी मेरे विचार में यह अंश वस्तुतः भावावेश में लिखा प्रतीत होता है और मुझे विश्वास है कि यदि "जिज्ञासु-विद्यार्थी" महोदय, मेरी पुस्तक 'मानस की रामकथा' को ध्यानपूर्वक आदि से अन्त तक पढ़ कर एक बार फिर विचार करेंगे तो उन्हें इस प्रकार आशंकित हो उठने का कदाचित् कोई अवसर ही नहीं आ सकेगा। मैंने उसमें यथास्थल उन सभी लेखकों और विद्वानों के प्रति अपना आभार प्रदर्शन कर दिया है जिनसे सहायता ली गई है। पाद-टिप्पणियों में उनके नामों का ग्रन्थों का उल्लेख कर दिया गया है और श्री बुल्के की पुस्तक 'रामकथा' की चर्चा उसके पृष्ठ ५ एवं ५६ (पाद-टिप्पणी) में विशेष रूप से भी कर दी गई है तथा ५ वें पृष्ठ के मेरे एक वाक्य को इस अंश में उद्धृत भी किया गया है। स्पष्ट है कि मेरी पुस्तक तथा श्री बुल्के की पुस्तक के वर्ण्य विषय सर्वथा एक ही नहीं हैं। मेरी पुस्तक उस लेखक द्वारा प्रतिपादित विषय के केवल एक सीमित रूप को ही लेकर चर्चा करती है जिस कारण उसका उपयोग सर्वत्र अपेक्षित भी नहीं है। उक्त अंश के लेखक महोदय यदि एक बार मेरी पुस्तक के गद्य भाग को फिर पढ़ लेंगे तो कदाचित् उसका $\frac{3}{4}$' अंश, उनके भी अनुमान से, केवल श्री बुल्के की 'रामकथा' पर ही आश्रित नहीं जँचेगा। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि, केवल थोड़ा सा भी ध्यान देने पर उसमें मेरे मुख्य उद्देश्य, निश्चित दृष्टिकोण तथा तुलनात्मक अध्ययन का उन्हें भी पता लग जाएगा। अपनी पुस्तक के दूसरे खण्ड में जो मैंने 'मानस की रामकथा' का संक्षिप्त मूल रूप दिया है उसमें भी कुछ विशेषता होगी। मैंने उसमें केवल रामकथा वाले ही अंश को और गोस्वामी जी के ही शब्दों में, यथा संभव व्यवस्थित रूप में देने की चेष्टा की है। इसका प्रथम संस्करण सन् १९३४ ई. में ही प्रकाशित हो चुका था जिसकी चर्चा भी 'प्रस्तावना' में कर दी गई हैं। अब की बार उसके मूल पाठ का संशोधित रूप दिया गया है जिसके आधार डा० गुप्त का संस्करण तथा 'सभा' का संस्करण हैं। इस बात का भी उल्लेख उक्त 'प्रस्तावना' के पृष्ठ ५ पर किया गया है जो

१९५४

पढ़ लिया जा सकता है। मेरी पुस्तक जैसी है वैसी पढ़ने पर स्वयं जँचेगी। मैं उसके लिए केवल उतना प्रोत्साहन चाहता हूँ जितना मुझे न्यायतः मिलना चाहिए न अधिक और न कम। इतना लिखने का मेरा अभिप्राय केवल यही है कि मेरे इस कार्य में कोई पाठक व्यर्थ की किसी 'प्रवृत्ति' को ढूँढ़ने का कष्ट न करे।

मैं इन बातों की ओर उतना ध्यान भी नहीं देता यदि मुझे श्री वर्मा जी के नोट पर भी कुछ लिखना न होता। श्री वर्मा जी ने अपने वक्तव्य में केवल 'गोविन्द रामायण' नाम के शीर्षक की चर्चा की है जो भ्रमात्मक है। मेरे 'अजन्ता' वाले लेख का वास्तविक शीर्षक 'गोविन्द रामायण की रामकथा' है। मैंने अपने उस लेख में श्री वर्मा जी के कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'गोविन्द रामायण' के संस्करण को अपना विषय नहीं बनाया है। गुरु गोविन्द सिंह जी की उक्त रचना में आया हुआ रामायण का एक तुलनात्मक अध्ययन मात्र प्रस्तुत किया है। उस ग्रन्थ से पहले पहल परिचित होने वालों के लिए उसके सम्बन्ध में कुछ और भी कहना आवश्यक हो गया। इसलिए मुझे कतिपय अन्य बातों का भी उल्लेख कर देना पड़ा। मैंने श्री वर्मा जी के कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'गोविन्द रामायण' नाम की पुस्तक अवश्य देखी थी और पढ़ी भी थी। मुझे श्री गुरु गोविन्द सिंह जी की इस सुन्दर कृति को नागराक्षरों में प्रकाशित (और वह भी सटीक संस्करण के रूप में) देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने अपना भ्रम निवारण करने के लिए उसके नागरी वाले पाठ का उपयोग किया है और मुझे यह कहने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं कि मैंने उसके 'प्राक्कथनों' तथा 'दो शब्द' तक से कुछ न कुछ प्रेरणा अवश्य ग्रहण की है। मैंने, उसके अनुवाद के साथ अनेक स्थलों पर मतभेद रखते हुए भी, उसके अनुवाद को आधार बनाया है। फिर भी मेरा प्रधान लक्ष्य 'गोविन्द रामायण' की 'रामकथा' का ही अध्ययन रहा, इस कारण और विशेषतः इसलिए भी कि, मेरा लेख कोई वैसा उल्लेखनीय प्रयत्न भी न था जिसके मूल स्रोतादि की ओर पाठकों की दृष्टि का फेरना उतना आवश्यक होता, मैंने श्री वर्मा जी के संस्करण का उल्लेख नहीं किया। यदि श्री वर्मा जी को इसके कारण कुछ कष्ट पहुँचा हो तो कथन द्वारा दूर हो जाना चाहिए। मैं तो यह भी समझता हूँ कि जिस 'उल्लेख' की आवश्यकता प्रतीत होती थी उससे यह संभवतः अधिक ही है कम नहीं।

आशा है, आप सानंद होंगे।

बलिया

—परशुराम चतुर्वेदी

---

(२)

नवीन कहानी लेखक

सितम्बर मास की 'अजन्ता' में प्रथम बार 'निर्गुण' जी की कहानी कला के बारे में लेख पढ़ने को मिला। बरसों से निर्गुण जी कहानियाँ लिखते आ रहे हैं जिनकी गणना हिन्दी की सर्व श्रेष्ठ कहानियों में की जा सकती है, फिर भी हिन्दी संसार उनसे भलीभांति परिचित नहीं। जिनके ऊपर किसी भी साहित्य को गर्व हो सकता है उनकी रचनाएँ "अधिकतर पुस्तक के पन्नों तक ही सीमित हैं।" तथा "'निर्गुण' जी के समान ही न जाने कितने और भी गुदड़ी के लाल यहाँ अज्ञात पड़े होंगे।" लेकिन इन 'गुदड़ी के लालों' का आविष्कार करके चमकाने का काम कौन करेगा?

यदि प्रारम्भ से ही नवीन लेखकों को आगे लाने की चेष्टा की जाए और लेखन, प्रकाशन आदि के बारे मार्ग दिखाया जाए और सुविधाएँ प्राप्त हों तो साहित्य की श्री वृद्धि ही होगी, हानि नहीं। इस विषय में उदाहरण स्वरूप, मैं अंग्रेज़ी साप्ताहिक 'जान ओ लंडन' का उल्लेख करूँगा। इस पत्रिका में एक स्तम्भ 'पच्चीस वर्ष से नीचे लेखकों की कहानियाँ' निकला करता है। पच्चीस वर्ष से कम उम्र वाले लेखक की एक अच्छी कहानी प्रति मास प्रकाशित होती है और इस स्तम्भ के लिए आई हुई कहानियों की आलोचना भी निकलती है। इस आलोचना के साथ साथ प्रोत्साहन, परामर्श, सुधार आदि भी रेजिनाल्ड मूर नियमित रूप से करते हैं। जो कहानी इस साप्ताहिक में प्रकाशनीय समझी जाती है उस पर दस पौंड और जिन कहानियों का उल्लेख मात्र रेजिनाल्ड मूर की समीक्षा में आ जाता है उन पर १—१ पौंड पारिश्रमिक दिया जाता है। इस स्तम्भ के अन्तर्गत रचनाएँ भेजने के लिए नवीन लेखकों से अनुरोध आपको इस पत्रिका के प्रत्येक अंक में मिल जाएगा।

जो अंक मेरे सामने हैं उसमें से रेजिनाल्ड मूर के परामर्श का एक नमूना पेश करता हूँ: "कितने ही नवीन लेखकों की एक ग़लत धारणा है कि प्रकाशनी

लघुकथा का सर्जन करने के लिए यही काफ़ी है कि एक "विचार' की पीठ पर कुछ चरित्रों को लाद कर उसे एक ढालू पहाड़ी पर से लुढ़का दिया जाए। इसके बाद लेखक को परवाह नहीं कि यह पुलिंदा कहाँ जाता है और उसका क्या होता है; झाड़ियों में उलझ कर रह जाता है या कि किसी दूसरे 'विचार' में फँस जाता, या सामने किसी दीवाल या चट्टान से टकरा कर रचना चूर चूर हो जाती है। लेखक ने तो छः टाइप किए हुए पृष्ठों के मान पर उसे चालू कर दिया; अब ये छः पृष्ठ पाठकों के लिए हृदयस्पर्शी, स्फूर्तिप्रद, और ज्ञानवर्द्धक होते हैं या नहीं उससे उसे कोई सरोकार नहीं— — ।

"हमें जो लोग कहानियाँ भेजते हैं उनमें से कितने ही लेखकों का ज्ञान पर्याप्त होता है किन्तु वे अपने आप से यह प्रश्न नहीं पूछते कि 'आगे और क्या संभावना है ?" और इस प्रकार एक अच्छी रचना को विकसित नहीं होने देते। अथवा सफल चरित्र चित्रण से इसलिए नष्ट कर डालते हैं उनके पास एक पूर्वनिर्मित कथानक होता है जिसे वे अपने पात्रों के शरीर पर जड़ देते है, चाहे वे पात्र जीवित रहें या उनका दम घुट जाए।—यह सब या तो आलस्य का परिणाम होता है या आत्मविश्वास की कमी का।"

इसके बाद मूर ने अन्य कहानी लेखकों के लिए कुछ निषेध भी दिए हैं।

हिन्दी में हर हफ्ते और हर महीने बहुत सी कहानियाँ प्रकाशित होती हैं; नवीन लेखकों की रुचि शायद कहानी लिखने की ओर ही अधिक है। फिर भी शिकायत रहती है कि अच्छी कहानियाँ नहीं निकल रहीं। शायद कारण यही है कि नवीन लेखकों को परामर्शदाता तो क्या, सहृदय पाठक भी (रेल–यात्रियों के सिवाय) मुश्किल से मिलता है। फलतः या तो उनकी प्रतिभा अविकसित रह जाती है या उन्हें समुचित स्थान पाने के लिए बरसों तक उपेक्षा का 'वनवास' भुगतना पड़ता है। गुण-ग्राही जौहरी का कर्त्तव्य कौन निभाएगा ?

सीहोर (भोपाल) —**प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी**

(३)

महान् ग्रीक विचारक प्लेटो

...'अजन्ता' के सितम्बर अंक में 'महान ग्रीक विचारक प्लेटो' एक रचना छपी है जिसमें एक स्थान पर गम्भीर भूल रह गई है। पृष्ठ संख्या ११ की अंतिम पंक्ति में "दी पोलिटिक्स" के स्थान पर "दी पोलिटिक्स" होना चाहिए। "पोलिटिक्स" तो अरस्तू की प्रसिद्ध पुस्तक है।......

सम्पादक, पुस्तकालय—संदेश,
पटना—५

—**श्रीकृष्ण खण्डेलवाल**

(४)

हिन्दी में पत्र कारिता

...'अजन्ता' के 'कला-चर्चा' स्तम्भ ने ध्यान बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसकी चर्चा बड़ी मधुर लगी। उसके पश्चात् इन्द्र विद्यावाचस्पति के लेख में साहित्य में पूँजी के आगमन की चेतावनी पढ़ी। स्थिति वास्तव में गम्भीर है। आज तो लगभग सभी अच्छे प्रेस, पत्र और पत्रिकाएँ पूँजीपतियों के हाथ में हैं। कला की कुँजी तिजोरी में बन्द है। लेखक खरीदे जा रहे हैं।

कल ही यहाँ से एक प्रतिष्ठित पत्र के सम्पादक गए हैं। उन्होंने भी इस संकट की भयंकरता का ज़िक्र किया। उन्होंने देश के सभी बड़े शहरों के लेखकों यहाँ तक कि फ़िल्मी लेखकों की भी दयनीय दशा का वर्णन किया। सोचता हूं कि जब लेखक दुकानदार बन जाएगा तो कला बिकने लगेगी। उसे किसी भी भाव पर खरीदा जा सकेगा। तब कला कहाँ मिलेगी? जीवन कहाँ मिलेगा ? यदि हमारी उगती पौद के इस संकट का डट कर मुक़ाबला न किया गया तो कौन जानता है कि समाज का क्या हाल हो ?

कोतवाली रोड,
हरदोई

—**रामगोपाल शुक्ल**

(५)

'अजन्ता' के सितम्बर अंक में श्री आदित्य मिश्र का 'शिव-रुद्र' पर लेख पढ़ा। लेख मौलिक व खोजपूर्ण है। इस लेख को पढ़ने से यह अनुभव होता है कि देश, समय और अवस्था के अनुसार न केवल 'रामायण' और 'महाभारत' आदि कहानियों और उसके पात्रों में परिवर्तन होता रहा है अपि तु हमारे साहित्य में देवताओं के व्यक्तित्व का भी विकास होता रहा है।...

कलकत्ता

नीर-क्षीर

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक ‘अजन्ता’ के नाम से भेजी जानी चाहिएँ]

वेदों के चुने हुए फूल

लेखक : प्रियव्रत वेदवाचस्पति
प्रकाशक : प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी,
हरिद्वार
मूल्य : चार रुपए

यह पुस्तक गुरुकुल स्वाध्याय-मंजरी का २३ वाँ पुष्प है। इसमें “वेद, ईश्वर, सृष्टिप्रलय, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, राष्ट्रनिर्माण आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले वेदमन्त्रों और सूक्तों का संग्रह किया गया है और उनकी विशद और मौलिक व्याख्या की गई है।” पुस्तक को ६ खंड या अध्यायों में विभक्त किया गया है। लेखक ने पहले भूमिका में वेदों के अध्ययन की आवश्यकता और भारतीय संस्कृति की विशेषताओं और महत्व पर प्रकाश डाला है। वे यदि वेदों के विषय में भारतीय तथा यूरोप और अमेरिका आदि के विद्वानों के वेद और भारतीय संस्कृति के सम्बन्धी विचारों पर कुछ व्यवस्थित रूप से प्रकाश डाल सकते तो अच्छा होता। यह सत्य है कि इस युग में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने “वेदों के पठन-पाठन को परम धर्म” के रूप में परिणत किया है तो भी वेदों के अध्ययन की ओर यूरोप के बहुत से विद्वानों ने भी विश्व के विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है। लेखक ने “वेद को ईश्वरीय ज्ञान” स्वीकार किया है परन्तु वे इस बहस में इस लिए नहीं पड़े हैं क्योंकि उनके विचारों में “यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाए कि वेद प्राचीन ऋषियों की रचना है तो भी वेद का महत्व कुछ कम नहीं रह जाता है। हमारी उपनिषदें और गीता तथा इसी कोटि के दूसरे अनेक ग्रंथ ऋषियों की रचना होते हुए भी कम महत्व नहीं रखते हैं।” परन्तु यह प्रश्न एक मात्र महत्व पर समाप्त नहीं होता। इसके साथ वेदों के समय का प्रश्न जुड़ा हुआ है जिसकी ओर भूमिका में लेखक का ध्यान नहीं गया है। ईश्वरीय ज्ञान की दृष्टि से वेद सृष्टि के आदि में हुए हैं। बहुत-से विचारक सृष्टि को अनादि मानते हैं यद्यपि स्वामी दयानन्द ने सृष्टि-संवत् का भी निर्धारण किया है। इन विचारों के आधार पर संभवतः सृष्टि का जो संवत् है वही वेदों का समय होगा। बहुत से पाश्चात्य विचारक, तिलक और अन्य भारतीय विद्वानों ने वेदों के समय पर जो कुछ विचार किया है यदि लेखक अपनी भूमिका में कुछ उस पर भी विचार अभिव्यक्त करते तो अच्छा होता क्योंकि वेदों का महत्व जहाँ अन्य दृष्टियों से है वहाँ इसलिए भी है क्योंकि वेद मनुष्य के पुस्तकालय की अत्यन्त प्राचीन पुस्तकें हैं। बहुत-से विचारक चारों वेदों को एक समय का नहीं मानते और एक वेद में मंत्रों के निर्माण और संग्रह को भाषा के भिन्न स्तर, विकास और तुलना के द्वारा भिन्न भिन्न समयों का मानते हैं। इसी कारण भाषा शास्त्र के विद्वान् वेदों के अध्ययन को भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझते हैं।

पुस्तक में संगृहीत वेद-मंत्रों को पढ़ने से वेदों में भाव और विचारों की महानता का स्पष्टतया अनुभव होता है। इन्हीं भावों और विचारों की महानता के कारण वेदों की कविता महान् है और उसमें मानव-जीवन को महान् बनाने की प्रेरणा और शक्ति है। “सत्येनोत्तभिता भूमिः, सत्येनोत्तभिता द्यौः” यह पृथ्वी सत्य के आधार पर

खड़ी हैं और यह आकाश सत्य के आधार पर खड़ा है। इसी प्रकार "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" हम संसार को सदा मित्र की आँखों से देखें और "अभयं नो अस्तु"—हम सदा अभय रहें—ये विचार और भावनाएँ कितनी महान् और उदात्त हैं। लेखक ने अपनी इस पुस्तक में बहुत-से संगीतमय और महत्वपूर्ण वेदमंत्रों का संग्रह किया है जिनकी भाषा जितनी सरल और स्पष्ट है उनका अर्थ भी उतना ही सरल और स्पष्ट है। इस सरलता और स्पष्टता से अर्थ की गम्भीरता और विस्तृति का भी सरलता से अनुभव होता है। वेद या अमृतमयी वाणी किसको चाहती है; कौन शाश्वत कविता की वाणी के रहस्य और मर्म को समझ सकता है? इस विषय में लेखक ने एक बड़े सुन्दर मंत्र को अपने संग्रह में दिया है:

"यो जागार तमृचः कामयन्ते,
यो जागार तमु सामानि यन्ति
यो जागार तमयं सोम आह,
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥"

ऋचाएँ उसी की कामनाएँ करती हैं जो जागता रहता है; जो जागता है साम उसी के पास जाते हैं। जो जागता रहता है सोम उसको कहता है कि मैं तुम्हारा मित्र हूँ। जिसकी आँखें खुली हुई हैं और जो विश्व के सूक्ष्म से सूक्ष्म रहस्य को समझने की क्षमता रखता है वाणी या कविता के मर्म को भी वही समझ सकता है। वर्ड्सवर्थ की यह उक्ति: "The heart that watcheth receiveth" "हृदय जो प्रतीक्षा करता है प्राप्त करता है और कबीर का यह कहना "जिन ढूँढा तिन पाइयाँ" का यही तात्पर्य है।

वेदों में शरीर की ओर भी कम ध्यान नहीं दिया गया है:

"वाङ म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः
अपलिताः केशा, अशोणा दंताः बहु बाह्वोर्बलम"

मेरे मुख में वाणी, नासिका में प्राण, आँखों में देखने की शक्ति, कानों में सुनने की शक्ति, केशों का कालापन, दाँतों की निर्मलता और बाहुओं में बल सदा विद्यमान रहे। इसी प्रकार अन्य बहुत-से मन्त्रों को इस संग्रह में से उद्धृत किया जा सकता है जिनसे जीवन की महानता का अनुभव होता है। महान् वाणी या कविता वही है जो जीवन से प्रेम करना सिखाती है और उसे महान् और शक्तिशाली बनाती है। "वेदोद्यान के चुने हुए फूल" पुस्तक में वेद मन्त्रों का जो संग्रह दिया गया है उनसे भारतीय विचार और भावनाओं की महानता का एक स्पष्ट आभास प्राप्त होता है।

अक्षर-रचना (रेखा का अक्षर-रचना भाग)
लेखक: के. सी. आर्यन
प्रकाशक: रेखा प्रकाशन,
४६८९, बल्लीमारान, देहली
मूल्य: साढ़े तीन रुपए

'अक्षर-रचना' 'रेखा' पुस्तक का एक भाग है जिसे अलग पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया है। यह प्रसन्नता का विषय है कि हमारे कलाकारों का ध्यान देवनागरी के अक्षरों की ओर आकृष्ट हुआ है। इन अक्षरों को सुन्दर और विविध रूप से लिखने की आवश्यकता है। 'अक्षर-रचना' की कला की ओर सम्भवतः सबसे पूर्व कानपुर के श्रीयुत गौरीशङ्कर भट्ट का ध्यान आकृष्ट हुआ था और उन्होंने नागरी के वर्णों को सुन्दरता और विविधता से लिखने का प्रयत्न किया था। अब इस ओर श्रीयुत किशनचन्द आर्यन का ध्यान आकृष्ट हुआ है। उन्होंने देवनागरी की वर्णमाला को अनेक सुन्दर रूपों में बनाने का प्रयत्न किया है। उनकी 'रेखा' पुस्तक की कला की श्री नन्दलाल बोस और श्री रविशङ्कर रावल आदि कलाकारों ने प्रशंसा की है। उनकी 'रेखा' पुस्तक में "देवनागरी लिपि के प्राचीनतम ब्राह्मी रूप से लेकर आज के रूप तक की कहानी" का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में देवनागरी के अक्षरों को विविध शैलियों में कलात्मक रूप से लिखने का प्रयत्न किया गया है। लेखक ने "प्राचीन और नवीन पद्धतियों का तुलनात्मक निरीक्षण कर उसका विश्लेषण किया है और फिर प्रत्येक अक्षर की रचना के मूल नियमों को निर्धारित किया है।" यह पुस्तक अपने क्षेत्र में अपने ही ढंग की है। आशा है कि इससे भारतीय कलाकारों का ध्यान अक्षर-रचना की कला की ओर आकृष्ट होगा और वे देवनागरी अक्षरों को कला की दृष्टि से पूर्ण बनाने का प्रयत्न करेंगे।

१९५४

बाबा बटेसरनाथ

लेखक : नागार्जुन

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन
दिल्ली

मूल्य : एक रुपया चौदह आने

यह राजकमल कथा साहित्य की आठवीं पुस्तक है। कथा की दृष्टि से इस पुस्तक में किसी विशेष कथा का विवरण प्राप्त नहीं होता। पुस्तक में बाबा बटेसरनाथ, एक पुराना बरगद का वृक्ष, ग्राम के अन्दर हुई अनेक घटनाएँ एक एक करके सुनाते हैं। ग्राम से आगे बढ़ कर ये घटनाएँ हमारे समस्त देश तक फैल जाती हैं। ग्रामों में ज़मींदारों के ज़ुल्म, अकाल, धार्मिक अंध-श्रद्धा और पशुओं की बलि, भूत-प्रेत आदि को भगाना, पानी की बाढ़, बीभाथ, नील की खेती, रेल, अंग्रेज़ों और अंग्रेज़ी का आगमन और प्रभाव इत्यादि का बाबा बटेसर ने बड़ी सजीव और चित्रपूर्ण भाषा में वर्णन किया है। जब वे सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन का वर्णन करते हैं उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हम इन आन्दोलनों का कोई संक्षिप्त विवरण पढ़ रहे हों—उस समय यह अनुभव नहीं होता कि हम कोई कहानी पढ़ रहे हैं। पुस्तक के अन्तिम अध्यायों में कहानी को जो रूप देने का प्रयत्न किया गया है और जिस प्रकार वे ग्राम के अन्दर किसानों की सभा बना कर संगठित करते हैं उसे पढ़ने से यह स्पष्टतया अनुभव होता है कि लेखक ने अपनी कहानी में एक विशेष विचारधारा को उत्प्राणित करने का प्रयत्न किया है। उन अध्यायों ने कथा को बहुत कुछ राजनैतिक रूप प्रदान कर उसे एकाङ्गी-सा बना दिया है और साहित्य में जब एकांगीपन आ जाता है तब वह प्रेरणात्मक और प्रगतिशील हो कर भी एक प्रकार का प्रोपेगैण्डा-सा प्रतीत होने लग जाता है जो लेखक की दृष्टि से आवश्यक होता हुआ भी कथा-साहित्य की दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता।

क्योंकि लेखक की दिलचस्पी "पर्यटन और देहातियों से गप्पें लड़ाने में है" इसलिए लेखक ने पुस्तक में जहाँ पुस्तक के वातावरण को ग्रामीण रखा है वहाँ उसकी भाषा में भी सजीवता है। यद्यपि उसकी भाषा में कई विचित्र मुहावरों का प्रयोग है और कई शब्द जो एक लिंग में प्रयुक्त होते हैं वे भिन्न लिंगों में प्रयुक्त हुए हैं तो भी लेखक की भाषा मैथिल, मधुवनी और दरभंगा के आसपास के जीवन के वातावरण का स्पष्टतया अनुभव होता है। उसकी भाषा बोलचाल की भाषा है, उसमें पुस्तकों की भाषा का प्रयोग कम है और इसी कारण उसकी भाषा में प्रवाह, नवीनता और आकर्षण है। इस प्रकार की भाषा लिखने पर लेखक का पूर्ण आधिपत्य है। भाषा की सजीवता के कारण पुस्तक की कहानी जिसमें कुछ विशेष प्लाट नहीं है, जो प्रतिदिन की घटनाओं की बनी हुई है और एक विशेष विचारधारा की प्रतिनिधि है—बहुत दिलचस्प और आकर्षक बन गई है। भाषा की सजीवता के कारण पुस्तक में हम लेखक के व्यक्तित्व को अनुभव करते हैं यद्यपि उसमें कुछ अभिव्यंजनाएँ नवीन प्रतीत होती हैं जैसे : "बाज़ारू मुस्कान, बेधक दृष्टि को धकेलते हुए-से, चन्दनकान्त आलोक, शहरी चालाक," आदि। ग्राम के जीवन के कुछ ऐसे चित्रण हैं जो यथार्थ होते हुए भी चित्रण में विशेष सौन्दर्य को उत्पन्न नहीं करते। पुस्तक को पढ़ने से लेखक की पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। कई जगह उसके विचार गम्भीर हैं परन्तु कई स्थानों पर वे मर्यादा का उल्लंघन कर गए हैं।

दिवालोक

लेखक : शम्भूनाथ सिंह

प्रकाशक : साधना मन्दिर, काशी

मूल्य : दो रुपए

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक की ४२ कविताओं का संग्रह किया गया है। इन कविताओं की रचना १९४५ से १९५० तक की गई है। लेखक की भावनाओं में कोमलता है और वह उन्हें संगीतमय शब्दों और आकर्षक रंगों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। कहीं कहीं वह अपनी भावनाओं को सरल और स्पष्ट शब्दों में भी लिखता है। कविता-संग्रह में कई कविताएँ सुन्दर हैं और कइयों में कई पंक्तियों में सुन्दरता और अर्थ गौरव है परन्तु कई कविताओं में शब्दों में जैसा संगीत, माधुर्य और रंगीनी है उनमें भावनाओं और निरीक्षण शक्ति की वैसी गम्भीरता का परिचय प्राप्त नहीं होता। 'प्रश्न' कविता में भावना की तीव्रता अनुभव होती है :

> "तुम्हीं ने कभी अंक में भर लिया था,
> ज्वलित प्राण से प्राण ज्योतित किया था
> बुझी लौ तुम्हारी, रहा जगमगा मैं

भला था तभी जब बुझा-सा दिया था
तुम्हारे प्रणय-दीप को ज्योति बन कर,
जलन है जलाती न मेरी कभी क्या ?"

'आकाश-वेल' कविता में एक मस्ती अनुभव होती है यद्यपि कहीं कहीं शब्दों में शिथिलता है। और 'कवि-दर्शन' कविता में भावनाओं में जहाँ हर्ष हैं वहाँ सरलता और अतिशयता भी है :

"जब तुम्हें देख लेता हूँ मैं !
खुल जाते शत शत रोम-नयन

...................·······

बह जाता लहरों में जीवन

....

गति से भर जाते शिथिल चरण,
खुल जाते जग के जड़-बन्धन
स्वरमय बन जाता मौन-मिलन
जीवन फिर बन जाता जीवन
खोई दुनिया फिर मिल जाती है
जब तुम्हें देख लेता हूँ मैं"

इस प्रकार 'स्वयं से दूर' में पुराने भाव किस प्रकार नवीन हो उठे हैं :

"तुम्हारे पास ज्यों ज्यों आ रहा मैं
स्वयं से दूर होता जा रहा मैं

....

प्रभा अपनी अमित बरसा रहीं तुम
नयन की ज्योति खोता जा रहा मैं

....

मुझे बेसुध बनातीं जा रहीं तुम
मगर सुधि-भार ढोता जा रहा मैं"

कई स्थानों पर कवि की कल्पना--मूर्तियों में कल्पना तो है पर काव्य नहीं हैं। उनमें निरीक्षण की गहराई नहीं है। 'सागर की पूर्णिमा' में :

"लहरों के मधुवन में जैसे
मधु ऋतु का पहला फूल खिला"

समुद्र में लहरों के उठने को 'लहरों का मधुवन' कहना और चाँदनी के प्रकाश को 'मधु ऋतु का पहला फूल' कहना उचित नहीं प्रतीत होता। इसी प्रकार आगे उसी कविता में :

"'जल की तमपूर्ण गुफ़ा ज्योतित'

....

चल जल के शीश-महल में, लो
बिजली का दीप–स्तम्भ हिला।"

समुद्र और "जल की तमपूर्ण गुफ़ा" एवं लहरों और "चल-जल का शीश-महल" दोनों में विशेष साम्यता नहीं प्रतीत होती। 'आज' कविता में 'झमक, गमक, चमक और थमक' की तुक तो मिल गई है परन्तु समस्त कविता की रचना बेतुकी हो गई है। 'हिमालय-सम्बन्धी पाँच सानेट' में भी लेखक अपनी भावनाओं को जिस प्रकार कविता में कुछ गतिमान् कर सका है वह उस प्रकार हिमालय को चित्रित नहीं कर सका है।

लोक विजय

लेखक : सन्तराम बी. ए.
प्रकाशक : विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन,
साधु आश्रम, होशिआरपुर (पंजाब)
मूल्य : तीन रुपए चार आने

सर्वदानन्द विश्व ग्रन्थमाला की यह ११ वीं पुस्तक है। इस पुस्तक को लेखक ने सर्वसाधारण के उच्च चरित्र को निर्माण करने के लिए और जनता को अपनी अन्तरशक्ति को अनुभव कराने के ऊँचे उद्देश्य से लिखा है। लेखक ने जीवन और समाज के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। लोक-राज का स्वरूप, जात-पाँत, धर्म, शिक्षा, राज्य, लेखन-कला, पुस्तकालय, चिट्ठी-लिखना, सार्वजनिक भाषण और महात्मा आदि भिन्न-भिन्न विषयों पर लेखक ने स्पष्टतापूर्वक अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। लेखक अपनी इस पुस्तक के विषय में स्वयं लिखते हैं : "यह पुस्तक विशेषज्ञों के लिए नहीं लिखी गई, और न यह कोई साहित्यिक रचना है। यह औसतन मनुष्य के लिए प्रारम्भिक गुटका है। यह उन लोगों के लिए लिखी गई है जो......राष्ट्र तथा मानव-समाज की सच्ची सेवा करना चाहते हैं।...यह पुस्तक ऐसी नहीं जिसे कथा-कहानी की तरह पढ़ डाला जाए। यह एक रिफ़रेन्स बुक (संकेत पुस्तक) है।" आशा है कि इस पुस्तक को जनता में न केवल उसी दृष्टि से पढ़ा जाएगा जिस दृष्टि से कि इसे लिखा गया है अपि तु उस पर गम्भीरता से विचार किया जाएगा जिससे जीवन उन्नत, चरित्रवान् और कर्मशील बन सकेगा।

सरल भाषा-विज्ञान
लेखक : जगमोहन शंकर, एम. ए.
प्रतापनारयण टंडन, बी. ए.
प्रकाशक : विद्यामंदिर, रानी कटरा,
लखनऊ
मूल्य : सवा दो रुपया

"भाषा-विज्ञान के व्यापक महत्वों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक की रचना की गई है। इसमें भाषा-विज्ञान के तत्वों को प्रश्न और उत्तर के रूप में सरलता और स्पष्टता से समझाने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक में भाषाशास्त्र पर २८ प्रश्न किए गए हैं जिनमें भाषा-विज्ञान की उपयोगिता, भाषा की उत्पत्ति से ले कर हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी और राष्ट्रभाषा के स्वरूप को भी सम्मिलित किया गया है। इस बात का प्रयत्न किया गया है कि पुस्तक जहाँ परीक्षार्थियों के लिए उपयोगी हो वहाँ साधारण पाठकों को भी भाषा-विज्ञान का ज्ञान सुबोध और सुगम रीति से करा सके।

. . .

स्तालिन
लेखक : कृष्ण कुमार
प्रकाशक : करेण्ट पब्लिशर्स,
दि माल, कानपुर
मूल्य : आठ आने

यह स्तालिन की छोटी-सी जीवनी है। स्तालिन विश्व के युग निर्माताओं में से एक है। पुस्तक में स्तालिन के जीवन के प्रत्येक पहलू पर संक्षेप से सरल और सजीव भाषा में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। स्तालिन के जीवन के विषय में एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र ने लिखा था "शुरू में चट्टान काट कर बनाई गई एक खुरदरी मूर्ति धीरे-धीरे अन्त में राष्ट्रनिर्माता, राज-निर्माता और शक्तिनिर्माता की निर्दोष संगमरमर की मूर्ति बनती गई जिसने सदा अथक रूप से अपने देश की और समस्त देशों की जनता के लिए परिश्रम किया।"

बाल-गोपाल
सम्पादक : रघुनाथ तिवारी
प्रकाशक : शिशु-कल्याण-केन्द्र,
मध्य प्रदेश, नागपुर
मूल्य : वार्षिक मूल्य, साढ़े चार रुपए
एक प्रति का छः आने

मध्यप्रदेश शिशु-कल्याण-केन्द्र, नागपुर से "बाल-क्षेत्र में सेवा की भावना से" बालकों के लिए इस मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया है। पहले अंक में इस पत्र में भगवान् तिलक, अगस्त का महत्व, बुध तारा, साँची और अन्य बालोपयोगी लेख हैं। बालोपयोगी साहित्य को ऊँचे स्तर पर प्रकाशित करने की परम आवश्यकता है। आशा है कि इस पत्र के द्वारा बालकों के लिए अच्छा साहित्य प्रस्तुत हो सकेगा।

हैदराबाद —**वंशीधर विद्यालंकार**

हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान
लेखक : श्री सम्पूर्णानन्द
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
मूल्य : एक रुपया

६२ पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तिका में विद्वान् लेखक ने हिन्दू समाज के एक महत्वपूर्ण अंग पर प्रकाश डाला है। समाज में स्त्रियों का स्थान, कन्यादान और उसका महत्व, कन्यादान की वैधता आदि विषयों पर शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लेखक के विचार से कन्यादान में उदात्त भावों की अभिव्यक्ति नहीं होती। कन्यादान से न किसी स्वत्व का सर्जन होता है, न विसर्जन, न हस्तान्तरण। न ही कन्या कोई चल या अचल सम्पत्ति है कि उसका दान किया जाए।' लेखक का अभियोग है कि 'हिन्दू समाज के सहज नेताओं, ब्राह्मणों ने हमारे बहुत से कृत्यों और संस्कारों को, जिनमें कन्यादान भी एक है, तमाशा बना डाला है। कुछ थोड़े-से वैदिक मन्त्रों में बहुत से अनुष्टुप् श्लोक मिला दिए गए......वैदिक देवताओं को पुराने देव-देवियों ने दबा लिया।' लेखक कहते हैं : "कन्यादान का महत्व इस बात से है कि कन्या का पिता वर को अधिकार नहीं वरन् कर्तव्य सौंपना चाहता है। देने-लेने का इस प्रसंग में यही अर्थ है।"

पुस्तक में जो निष्कर्ष निकाले गए हैं सब स्थलों पर उनका पिछले वक्तव्यों से मेल नहीं बैठता। १० वें पृष्ठ पर लिखा है 'सम्पत्ति उसके (कन्या के) पास न पीहर में थी न ससुराल में।' वहीं बादवाले अनुच्छेद में—'क्रमशः लड़की की सम्पत्ति पर पिता के अधिकार ढीले होते गए, परन्तु पति के अधिकार बढ़ाए नहीं गए। फलतः स्त्री अपनी सम्पत्ति की स्वतन्त्र स्वामिनी हो गई।'—यह

निष्कर्ष निकाला गया है। स्त्री के पास सम्पत्ति कहाँ से आई इसका उल्लेख पहले कहीं भी नहीं किया गया है।

मुकुट

लेखक : श्री नित्यानन्द हीरानन्द वात्स्यायन
प्रकाशक : हिन्दी भवन,
जालन्धर और इलाहाबाद
मूल्य : डेढ़ रुपया

वात्सायन जी ने यह द्वि-अंकी नाटक लिख कर दो अंकों वाले नाटकों के अभाव की पूर्त्ति की है। नाटक मनोरंजक और अभिनेय है। पात्रों की संख्या अधिक नहीं, साधारण सामग्री, वेशभूषा आदि से दो घंटे में इसका सफल अभिनय हो सकता है।' लेखक के इस वक्तव्य से कि 'अभिनय की सफलता तो अभिनेताओं पर होती है, उनके वेश आदि पर नहीं' सहमत होना कठिन है। नाटक में कलात्मक वातावरण की गुंजाइश को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कथावस्तु साधारण है। मिल मालिक और मज़दूरों का वेतन वृद्धि के लिए झगड़ा और कांग्रेस एम. एल. ए. की भ्रष्टता—और गीत अनाकर्षक, तथापि सजीव कथोपकथन और घटनाओं को प्रस्तुत करने की नाटकीय शैली नाटक को आद्योपान्त पढ़ने को विवश करते हैं। भाषा चुस्त और मुहावरेदार है।

साहित्य–परिचय

लेखक : श्री मदनमोहन शर्मा
प्रकाशक : राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा
मूल्य : एक रुपया

पुस्तक विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है। लेखक के शब्दों में 'राष्ट्र भाषा कोविद के विद्यार्थी जो साहित्य की देहरी पर खड़े हो कर उसके विशाल भवन में झाँकने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें साहित्य का रूप दिखाने की दृष्टि से ही इस पुस्तक की रचना की गई है।' साहित्य के विविध अङ्गों का प्रारम्भिक परिचय प्राप्त करने के लिए पुस्तक उपयोगी है। संस्कृत के आचार्यों और लक्षण ग्रन्थ लिखने वालों के प्रसिद्ध उद्धरण स्थान-स्थान पर दिए गए हैं।

साहित्य के वर्गीकरण के लिए नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण सभी स्थलों पर लक्षित नहीं होता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग ऐसा होना चाहिए कि उनमें पूर्ण स्पष्टता हो। एक शब्द का प्रयोग एक ही अर्थ में होना चाहिए। 'काव्य' शब्द का प्रयोग प्राचीन पारिपाटी के अनुसार 'कविता' और 'साहित्य' दोनों अर्थों में किया गया है। "श्रव्य काव्य तीन भागों में बाँटा गया। १ गद्य २ पद्य' ३ चम्पू। इन तीनों में जिसे पद्य कहा गया है, उसी को कविता कहते हैं।" आगे चल कर पद्य और गद्य का अन्तर तो समझाया गया है, किन्तु पद्य और कविता का अन्तर कहीं भी स्पष्ट नहीं किया गया है। आज आलोचक 'पद्य' और 'कविता' का समान अर्थ में प्रयोग नहीं करते। इसी प्रकार पृष्ठ २२ में प्रबन्ध-काव्य को तीन भागों में बाँटा गया है '१ महाकाव्य २ काव्य और ३ खण्ड काव्य।' यहाँ दूसरा भेद 'काव्य' फिर एक नवीन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार के वर्गीकरण विद्यार्थियों के लिए भ्रामक सिद्ध होंगे। गद्य साहित्य का वर्गीकरण और विवेचन इस दृष्टि से अधिक सन्तोषप्रद है।

व्यवहारिक ज्ञान

लेखक : श्री सन्तराम बी. ए.
प्रकाशक : विश्वेश्वरानन्द प्रकाशन, होशियारपुर।
मूल्य : दो रुपए बारह आने।

इस पुस्तक में स्वास्थ्य, भोजन, गृह सजावट, रोगी की सेवा, कपड़े धोना, पशुपालन, संगीत, नृत्य, यात्रा, शिष्टाचार आदि अनेक आवश्यक विषयों की सरल भाषा में जानकारी दी गई है। लेखक ने यह पुस्तक सामान्य मनुष्य, विशेषतः नवयुवक और नवयुवतियों को दृष्टि में रखकर लिखी है।' साधारण ज्ञान की वृद्धि और दैनन्दिन जीवन में सुविधा के विचार से पुस्तक उपयोगी है। 'सादा औषध' अध्याय के नुस्खे प्रकाशित करने के पहले यदि किसी अनुभवी डाक्टर को दिखा लिए गए होते, तो अच्छा होता। मसूड़े फूलने पर 'दांत और गाल के बीच चने या अरहर की कच्ची दाल भरकर सो जाओ', 'जुकाम हो जाए तो हल्का जुलाब लो या दो तीन उपवास करो।' इस तरह के उपचार कहाँ तक निर्भरशील हैं कहा नहीं जा सकता। इसी प्रकार 'कला प्रेमियों को कौन नगर देखने चाहिएँ' के उत्तर में भारत के किसी नगर का कला-संग्रह का ज़िक्र न कर केवल विदेशी नगरों की जानकारी देना पुस्तक की उपयोगिता को सीमित करते हैं। यात्रा, डाकघर, सिनेमा आदि विषयक जानकारी अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती है।

—वैजनाथ चतुर्वेदी

सिकन्दराबाद

सामयिक

II

काज़ी नज़रुल इस्लाम, जनता का कवि

बंगाल के प्रसिद्ध जन-कवि श्रीयुत नज़रुल इस्लाम पर "पाकिस्तान टुडे" में एक लेख प्रकाशित हुआ है। नज़रुल इस्लाम को विद्रोही कवि कहा जाता है। इसका कारण यह है कि उसने "विद्रोही" पर एक प्रसिद्ध कविता लिखी है। उक्त पत्र के लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"ज़िला बर्दवान के सब-डिविज़न असनसोल में छुरिलिया नामक एक ग्राम है। नज़रुल इस्लाम का जन्म इसी ग्राम में हुआ था। कहते हैं कि उसके पूर्व-पुरुष बर्दवान में बिहार से आए थे। उससे पूर्व उसके पिता को चार सन्तानें हुई जिनकी मृत्यु हो गई नज़रुल इस्लाम पाँचवाँ था। माँ बाप ने लाड़-प्यार से उसका नाम "दुखु मिआँ" रख दिया। उन्होंने उसका यह नाम इस लिए रक्खा था कि उसे की नज़र न लगे।

नज़रुल बचपन में ही अपनी आयु से बड़ा प्रतीत होता था और शरारती था। वह अपनी कक्षा में सर्वप्रथम रहता था। वह अपने बचपन की शरारतों से सारे गाँव को तंग करता था। गाँववालों ने उसका नाम 'खेपा' अर्थात् पागल रख दिया था। उसने ग्राम की प्राथमिक-शाला की पढ़ाई औरों से पूर्व ही समाप्त कर ली और वह शीघ्र ही "छोटा उस्ताद जी" बन गया।

उसने जो कथा-गीत (Ballad) लिखे हैं वे मुसलमान कवियों के द्वारा हज़ारों की संख्या में लिखे हुए "पंथी" गीतों का स्मरण दिलाते हैं। ये गीत ग्रामीण जनता को वर्षों से आनन्द प्रदान करते रहे हैं। नज़रुल 'पंथी'-साहित्य' की उपज है। कम-से-कम उसकी बचपन की कविताएँ इसी प्रकार की थीं। नज़रुल ने अपनी बाद की कविता में बहुत-से अरबी फ़ारसी शब्दों का प्रयोग किया है।

१९१६ ई० में जब कि उसकी आयु १७ वर्ष की थी वह चुपके से कलकत्ता चला गया और वहाँ वह ४९ वीं बंगाल रैजिमैंएट में सम्मिलित हो गया। वह सेना में एक साधारण सैनिक बना। वह कराची गया और वहाँ से मेसोपोटामिया। यहाँ वह हवलदार बना दिया गया। वह बंगाली साहित्य में ४९ वें बंगाल रैजिमेंएट के हवलदार की स्थिति में एक कवि के रूप में प्रकट हुआ। जब ४९ वीं बंगाल रैजिमैंएट को तोड़ दिया गया तब यह 'हवलदार-कवि' फिर कलकत्ता में आया। वह १९१८-१९१९ में मुस्लिम बंगाली लिटररी एसोसिएशन के कार्यालय में रहने लगा और उसने यहाँ रह कर अपनी कविताएँ लिखीं।

उसकी कविताएँ उग्र और ओजस्वी थीं। उनमें उत्साह और कर्मशीलता थी। वह समस्त बंगाल में घूमा। उसकी कविताओं का समस्त बंगाल में स्वागत हुआ और उससे जनता में जागृति उत्पन्न हुई। जब वह २२ वर्ष की आयु का था उसने एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया। इस पत्र का नाम "धूमकेतु" था। उसके उग्र लेखों से ब्रिटिश शासन क्रुद्ध हो गया और उसने नज़रुल को राजविद्रोह के अपराध में गिरफ्तार कर लिया। न्यायालय में उसने एक वक्तव्य दिया जिसे पढ़ने से उसकी अन्तरात्मा की एक झलक दिखाई देती है। यह वक्तव्य बंगाली में था जिसे कि बाद में एक लघु पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया यद्यपि नज़रुल ने अपनी सफ़ाई पेश की तो भी उसे एक वर्ष का कारावास का दंड दिया गया। वह प्रसन्नतापूर्वक जेल में चला गया। वह लिखता और गाता रहा।

उसने जेल में अपनी कविता की एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है : "शिकल परार गान" (बन्दी के गीत)। जब वह जेल से छूटा तो वह २० वर्ष तक बंगाली साहित्य को समृद्ध करता रहा। उसके ५०० गीत रिकार्ड किए जा चुके हैं।

उसकी रचनाओं का बंगाली साहित्य में सदा आदर किया जाता रहेगा। उसने ऐसी कविताएँ लिखी हैं जिनसे जनता में जागृति और नव-चेतना उत्पन्न हुई है। उसकी बहुत-सी कविता-पुस्तकों को जैसे कि 'बिषेर बाँशी' (विष की वंशी), 'अग्नि-वीणा', 'भंगेर गान' (विनाश का गान), 'प्रलय शिक्षा' (प्रलय की आग) आदि को ब्रिटिश सरकार ने ज़ब्त कर लिया था। इन पुस्तकों का बंगाली काव्य-साहित्य में बहुत आदर है।"

नज़रुल इस्लाम की एक कविता

युवकों का प्रयाण

"बढ़े चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो
आकाश में बाजे बज रहे हैं
नीचे दुःखी धरती है
नवयुग के नव युवक पुकार रहे हैं
बढ़े चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो
अरुण के दरवाज़ों को तोड़ कर
हम महान् प्रभात को लाएँगे
हम अँधकार को दूर कर देंगे और
विन्ध्याचल को नीचा कर देंगे
बढ़े चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो
हम जीवन के गीत गाएँगे
कर्म की घाटी को हरा-भरा कर देंगे
हम जीवन में नव-शक्ति लाएँगे
युवकों की भुजाओं में वीरता का संचार करेंगे
नवयुवको !, बढ़े चलो, बढ़े चलो
सुनो
मृत्यु के द्वार पर
सबके लिए जीवन की आशा है
तोड़ दो, बन्धन तोड़ दो
आगे आगे-आगे चलो दूर
उस जीवन की ओर जो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है
बढ़े चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो"

॥

मेसीडोनिया की कविता में क्रान्तिकारी महिला

जुलाई, १९५४ के "माडर्न रिव्यू" में श्रीयुत आर. पी. सिंह का "मेसीडोनिया की कविता में क्रान्तिकारी महिला" पर एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"......"मेसीडोनिया पर जब नात्सियों ने अधिकार कर लिया तब वहाँ के लोगों ने स्वतंत्रता के लिए उनके विरुद्ध विद्रोह किया। इसके परिणामस्वरूप मेसीडोनिया के साहित्य में ऐसे गीतों की रचना हुई जिसमें विद्रोहियों की वीरता का वर्णन किया गया है। इन कविताओं के संगीत ने मेसीडोनिया की महिलाओं और लड़कियों को स्वतंत्रता के युद्ध में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किया। मेसीडोनिया की स्त्रियाँ जो 'दासों की दास' थीं वीरता के साथ स्वतंत्रता के युद्ध में सम्मिलित हुईं और उनका मेसीडोनिया की कई कविताओं में वर्णन किया गया। इनमें से एक कविता है 'सैनिक लड़की' :

"ओह, मैं कितनी सुखी और प्रसन्न हूँ
मैं सैनिक-लड़की बन गई हूँ
मैं फैसिस्ट आक्रान्ता के विरुद्ध युद्ध करूँगी
मैं अपने देश को स्वतंत्र करूँगी
अपनी गृहभूमि के लिए, अपने मेसीडोनिया के लिए"

स्वतंत्रता के युद्ध में मेसीडोनिया की महिलाओं का उत्साह देख कर स्थानीय कवियों और गायकों ने बहुत-सी ऐसी कविताओं और गीतों की रचना की जिनमें महिलाओं की वीरता और निःस्वार्थ सेवा का वर्णन किया गया है। निम्न पंक्तियों में मिलेवा कोसोवाका का वर्णन किया गया है जिससे कि मेसीडोनिया की वीर-स्त्रियाँ फड़क उठती हैं :

"मिलेवा, ओह मेरी सखी
रस्पाके में उन्होंने तुम्हें घायल किया
रस्पाके से हस्पताल तक
सारे मार्ग में रुधिर ही रुधिर था
मेरी मिलेवा कहाँ चली गई ?
और ओरमान पर्वत ने मुझे उत्तर दिया—
जब उसकी आत्मा विदा ले रही थी

मिलेवा ने मुझे ये शब्द कहे—
ओकोसोवो की मेरी सहेलियो
मेरे लिए तुम दुःख मत करना या रोना नहीं
मैंने अपना जीवन देश की
स्वतंत्रता के लिए दे दिया है"

एक अन्य कविता में एक मेसीडोनिया की लड़की जंगल में जाने के लिए अपनी माँ से कहती है :

"मान जाओ, प्यारी माँ, मान जाओ
मुझे अपने मन की इच्छा पूर्ण करने दो
मैं सैनिक बन जाऊँगी
और कोजज़क पहाड़ में जाऊँगी
वहाँ अपने नेता कार्पोस को देखूँगी
अपने साथ मशीन गन ले जाऊँगी
और फासिस्ट शैतानों को भून डालूँगी"

॥

मधु-प्रकृति की स्वास्थ्यप्रद मिठाई

मद्रास के अंग्रेज़ी साप्ताहिक 'स्वतंत्र' में श्रीमती वी. एस. शान्तालक्ष्मी का 'मधु प्रकृति की स्वास्थ्यप्रद मिठाई' लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"......लन्दन के पत्र 'दि डेली टेलिग्राफ़' में यह समाचार प्रकाशित हुआ है कि इटली के पुरातत्व शास्त्री जिनमें प्रो. सेस्ट्रिअरी मुख्य हैं, पेअस्टम नगर की खुदाई कर रहे हैं। यह नगर नैपल्स से दक्षिण में ५० मील दूरी पर है। खुदाई में एक मन्दिर निकला है। इसमें आठ बड़े घड़े रक्खे हुए हैं जिन पर ताँबा चढ़ा हुआ है। इन घड़ों में मधु भरा हुआ है जो कि ६०० वर्ष पूर्व ई. पू. के समय का प्रतीत होता है।

शताब्दियों तक ऐतिहासिक और पूर्व-ऐतिहासिक युग में मनुष्य मधु से मिठास प्राप्त करता रहा है। यह मनुष्य का अत्यन्त प्रिय भोजन था और यह दवाई के भी काम में आता रहा। जब शक्कर खाई जाने लगी तब मधु का उपयोग कम हो गया और यह एकमात्र दवाइयों के काम में उपयोग आने लगी।

मनुष्य ने रोटी, गेहूँ, चावल, और दूध से पूर्व ही मधु को अपने भोजन के रूप में उपयोग किया था। यह फलों और मधु का संचय कर लेता था। मधु एक पवित्र वस्तु समझी जाती थी। यह आनन्द का प्रतीक समझी जाती थी। देवताओं को जो वस्तुएँ भेंट में जाती दी थीं उनमें मधु भी था। धार्मिक कृत्यों में भी इसके उपयोग को आवश्यक समझा जाता था।

समय के व्यतीत होने के साथ मधु को प्रेम की संजीवनी समझा जाने लगा। इस बात में कुछ विशेष तथ्य नहीं है। यह सत्य है कि मधु जल्दी पच जाता है और उससे चुस्ती और शक्ति प्राप्त होती है। ग्रीस के पहलवानों को ओलिम्पिक खेल के पश्चात् शहद में पानी मिला कर पीने के लिए दिया जाता था। रोगों के इलाज के लिए पहले मधु एक आवश्यक वस्तु समझा जाता था और उसके द्वारा वस्तुओं की लेन-देन भी होती थी। रोमन लोगों का यह भी विश्वास था कि मधु के खाने से स्वास्थ्य अच्छा होता है और आयु लम्बी होती है।

शक्कर को इस प्रकार तैयार किया जाता है कि उसमें से पोषक तत्व का नाश हो जाता है। मधु तो मक्षिका के द्वारा फूलों के इसको संचित करने से बनता है। इसको खाने से सहनशक्ति बढ़ती है। मधु फलों के रस और दूध से भी शीघ्र पच जाता है। इसको पचाने के लिए पाचन-शक्ति को कुछ विशेष श्रम नहीं करना पड़ता। मधु में ताँबा, लोहा और मनगनीज़ भी अल्प मात्रा में होता है जिनसे रक्त पर असर पड़ता है। बहुत-से फूलों के पराग में विटामिन-सी होता है जो कि फलों या सब्ज़ियों से मात्रा में अधिक होता है। जिस प्रकार सन्तरे और नींबू खट्टे होते हैं परन्तु वे अम्लता को कम करने-वाले होते हैं उसी प्रकार मधु में भी ज़रा-सी खटाई होती है परन्तु वह अम्लता को दूर करता है।

मधु का चिकित्सा में बहुत उपयोग होता है। यह फुर्ती और शक्ति प्रदान करता है और यह हृदय को भी शक्ति प्रदान करता है। यह एक उत्तम घरेलू है दवा है। यह गैस और पेट के कष्टों को दूर करता है और अच्छा दस्तावर है।

कभी कभी नींबू, मधु और शुद्ध ग्लैसरीन को खाने से गायकों के गले को लाभ होता है; मधु, फटकरी और पानी से यदि गले में गरारे किए जाएँ तो उससे गले की सूजन, मुख और मसूड़े को लाभ होता है। गरम दूध और शहद सूखे गले के लिए अच्छा है। आँखों की लाली के लिए भी मधु बहुत उपयोगी है। कमल के फूल का मधु से मोतियाबिन्द को लाभ पहुँ-

चाता है। कहते हैं कि यदि प्रातःकाल एक चमचा मधु और थोड़े से बादाम प्रतिदिन खाए जाएँ तो उससे मुख का रंग साफ़ हो जाता है। यदि शहद को बिना किसी वस्तु के साथ मिला कर खाया जाए तो मुटापा कम होता है। यदि शरीर कहीं जल जाए और उस पर प्रचुर मधु लगाया जाए तो जलन शीघ्र ही कम हो जाती है, घाव अच्छा हो जाता है और उसका दाग़ तक नहीं रहता।

यद्यपि रसायन शास्त्र की बहुत उन्नति हो गई है तो भी अभी मधु जैसी कोई अच्छी और पौष्टिक भोज्य वस्तु नहीं बनाई जा सकी है। पुराने लोगों का मधु में बहुत विश्वास था। अभी एक डाक्टर ने अपने भाषण में कहा था: "मधु प्रकृति की वह स्वास्थ्यप्रद मिठाई है जिसे हमें भगवान् ने दिया है। यह विटामिनों से पूर्ण है। यह हिम के समान शुद्ध है। हमारे वृद्ध पुरुष यह विश्वास रखते हैं कि जो मधु को स्वच्छंदता से खाते हैं वे बहुत अधिक प्रेमी प्रकृति के हो जाते हैं वे क्योंकि समझते हैं कि कटु स्वभाव का इलाज मधु है। क्या आश्चर्य है कि बुद्धिमान् सर्वत्र अपनी पत्नियों को "हनी" कहते हैं।"

॥

अध्ययन और स्मरण

मद्रास के अंग्रेज़ी पत्र 'हिन्दु' के साप्ताहिक संस्करण में श्रीयुत डैविड गनस्टन का "अध्ययन और स्मरण" पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है:

"पुस्तक-लेखकों की उन पुस्तकों के विषय में स्मृति जिन्हें वे पढ़ते हैं प्राय: अच्छी नहीं होती परन्तु कई साहित्यिक महारथियों की अध्ययन और स्मरण की शक्ति विलक्षण और अद्भुत होती है। यद्यपि पठन और स्मरण में एक प्रकार की निकटता है तो भी तेज़ और अनथक पढ़ने वाले हमारी कल्पना को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। लार्ड मैकाले ने अध्ययन और स्मरण में अपना रिकार्ड स्थापित कर दिया है। उसके जीवन के दिनों में उसके समान भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रभूत अध्ययन करने वाले अन्य व्यक्ति का मिलना कठिन था।

टी. ई. लारेन्स जिनको अरब का कहा जाता है, इतना अध्ययन करनेवाले थे कि विश्वास नहीं होता। उनके अध्ययन के विषय में बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। उन्होंने औक्सफ़ोर्ड यूनियन लाइब्रेरी की समस्त पुस्तकों को पढ़ डाला था। उस समय इस पुस्तकालय में ५०,००० पुस्तकें थीं। उन्हें इन पुस्तकों को पढ़ने में छः वर्ष लगे थे। इस हिसाब से उन्होंने प्रतिदिन औसतन २० पुस्तकें पढ़ी होंगी। वे प्रतिदिन १८ से २० घण्टे तक अध्ययन करते थे। यह सर्वथा अविश्वसनीय प्रतीत होता है परन्तु इस विषय में कोई संदेह नहीं है कि वे औसतन बड़ी द्रुत गति से पढ़ते थे। और प्रति वर्ष हज़ारों पुस्तकें पढ़ डालते थे।

औस्कर वाइल्ड भी बड़ी द्रुत गति से पढ़ते हैं। वे औसतन एक बड़े विक्टोरियन उपन्यास को एक घंटे में समाप्त कर डालते थे। एक बार वे एक प्रकाशक के कार्यालय में बैठे हुए थे उन्होंने एक नए उपन्यास की पाँडुलिपि को ३५ मिनटों में समाप्त कर दिया। पुस्तकों को समाप्त करने के पचात् वे इसमें से समस्त वाक्यों को उद्धृत कर सकते थे। टौमस बर्क ने सिसिलिया के ५ खडों को ३ दिन में पढ़ डाला था और गिब्बन उसके खंडों को एक दिन में ही पढ़ गया था।

सी. एस. फोरेस्टर जिन्होंने कि "कैप्टेन हॉर्नब्लोअर" उपन्यासों को लिखा है कहते हैं कि वे एक दिन में औसतन एक बड़ी पुस्तक को एक दिन में पढ़ लेते हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी के लम्बे उपन्यास "गौन विद दि विण्ड" को १$\frac{1}{2}$ दिन में समाप्त किया था। एलडुअस हक्सले बहुत अधिक पढ़ने और शीघ्र पढ़ने का ढंग जानते हैं। कुछ समय से उनकी आँखें खराब हो गई हैं इसलिए वे अब पुस्तकों के पढ़ने में असमर्थ हो गए हैं। जॉर्ज सेन्ट्सबरी और एंड्रयू लैंग ने इतना अधिक पढ़ा था जितना कि उनके सब सहयोगी मिल कर भी अध्ययन न कर सके थे। लैंग के विषय में कहा जाता है कि जब उसके हाथ में कलम नहीं होती थी तो एक पुस्तक होती थी।

साहित्य-सम्पादकों और आलोचकों इत्यादि को भी लगातार और शीघ्र पढ़ना पड़ता है। उनका कार्य ही इस प्रकार का होता है। इस सम्बन्ध मेंह में एडवर्ड गार्नेट और ईलिस रैबर्ट्स के नामों का स्मरण हो आता है। एक उपन्यास के आलोचक को प्रति सप्ताह २० उपन्यास तक पढ़ने पड़ जाते हैं।

इस द्रुत गति से पढ़ने का रहस्य एक तो वास्तविक

टैक्नीक में है और दूसरा मानसिक फुर्ती में। जिसे शीघ्र पढ़ने का अभ्यास हो जाता है वह प्रत्येक शब्द पर अपने ध्यान को केन्द्रित नहीं करता। वह पंक्तियों से ही आशय को समझता जाता है। द्रुत पाठक साधारणतया जो कुछ पढ़ते हैं उसको स्मरण नहीं रख सकते। जो विशिष्ट मुहावरे या घटनाएँ होती हैं वे ही उनके मन में रह जाती हैं शेष को वे भूल जाते हैं।

विलक्षण स्मृति भी प्रकृति की एक विचित्रता होती है। दूसरे लोग उसे समझ ही नहीं सकते। इसका महान् उदाहरण लार्ड मैकाले है। कहते हैं कि वे एक समाचार पत्र का एक पृष्ठ पढ़ जाते थे और शीघ्र ही पढ़ने के पश्चात् वे उसके प्रत्येक शब्द को वर्षों तक दुहरा और उद्धृत कर सकते थे। उनकी स्मरण शक्ति "फ़ोटोग्राफ़िक" थी। उनका मन जो कुछ वे पढ़ते थे अपनी स्मृति में उसकी फ़ोटोग्राफ़ी ले लेता था। इससे यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार वे दूसरों को बिलकुल ठीक रूप से यह बता सकते थे। "गिब्बन की" डिक्लाइन एण्ड फ़ॉल" का २५७ वाँ पृष्ठ खोलो। तुम्हें वहाँ इस विषय का अच्छा वर्णन मिलेगा" और या "पेपीज़ ने २४ अप्रैल' १६६४ को इस विषय पर यह कहा था।" और उनकी बातें जो कि वे एक मात्र स्मृति के आधार पर कहते थे बिलकुल ठीक होती थी। दृष्टि से देखा जाए तो यह बात भी हमें साधारण ही प्रतीत होती है कि उन्हें मिल्टन का "पेराडाइज़ लौस्ट" पूर्ण रूप से कंठस्थ था।

स्वर्गीय विलियम टैम्पल कैण्टरबरी के आर्च विशप थे। उनकी स्मरण शक्ति भी इसी प्रकार 'फ़ोटोग्राफ़िक' थी। वह उसके बोलने और लिखने लिखाने दोनों के काम में आती थी। सिडनी वेब की स्मृती भी इसी प्रकार की थी। उनके विषय में यह रिकार्ड किया गया है कि एक दिन प्रातःकाल वे ज़ुकाम और सर्दी से पीडित थे और वे कार्य नहीं कर सकते थे। वे लेटे हुए "प्रिंसिपल्स आफ़ एकोनौमिक्स" पुस्तक को पढ़ रहे थे। लंच के समय तक उन्होंने सारी पुस्तक पढ़ डाली और अपनी स्मृति के आधार पर वे उस पुस्तक के पृष्ठों में से उपयुक्त उद्धरणों को लिख सकते थे

उपन्यासकार ए. ई. डब्लू. मैसन की स्मरण भी इसी प्रकार की थी। वे पहले से कहानियों के पात्र आदि की रूप में कभी अपनी नोट नहीं लिखते थे और वे समस्त प्लाट, चरित्र, स्थितियों इत्यादि सब वस्तुओं को अपने दिमाग़ में ही बना लेते थे। वे सब उसके दिमाग़ में रहते थे और समय आने पर वे उन्हें अपनी कहानियों में लिखते थे। कई बार उन्हें लिखने में कई वर्ष लग जाते थे परन्तु उनके दिमाग़ में सब बातें बिलकुल ताज़ी रहती थीं। वे अपनी सब कहानियों को इसी प्रकार लिखते थे। लिखने तक सब बातें उनके दिमाग में रहती थीं।

टैनीसन अपनी कविता की पंक्तियों को पहले अपने दिमाग़ में बना लेते थे और फिर काग़ज़ पर लिखते थे। इसी कारण उनकी बहुत-सी कविताएँ जो उनके दिमाग़ में थीं और जिन्हें वे भूल गए और पुनः स्मरण न कर सके काग़ज़ पर लिखने से रह गई और नष्ट हो गई।"

॥

नकल न कीजिए

'नकल न कीजिए' लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

...शैली कोई ऐसी वस्तु नही है जिसे लेख अथवा लेखक से अलग करके देखा जा सके। वह तो स्वाभाविक होती है, और स्वाभाविक ही होनी चाहिए। यह 'रूज़' या 'लिपिस्टिक' (गाल और ओठों की लाली) की तरह ऊपर से धारण करने की चीज़ नहीं है। लेखन या लेखक पर इसे बाहर से कभी लादना नहीं चाहिए। (केवल 'पैरोडी' को छोड़ कर।) विशुद्ध शैली कलाकार और विषय में से ही निकलती है।...कृत्रिम शैली अपनाना ठीक वैसा ही है—जैसे कि किसी के उतरे हुए पुराने कपड़े पहनना। किसी लेख को सजीव बनाने की बजाए यह उसे निर्जीव बना देती है।...

वास्तविक लेखन कला शैली में नहीं है, खास तौर पर, जानबूझ कर नक्ल की गई शैली में, जो या तो कान द्वारा अपनाई जाती है या आँख द्वारा। **वास्तविक लेखन कला तो इसमें है कि आपके पास कुछ कहने के लिए हो, आप उसे रह देने के लिए व्याकुल हो रहे हों, और साफ़ तौर पर कह दें।** यह वस्तविकता यह ईमानदारी, और केवल यही, मेरी राय में लेखन कला की आत्मा है।

एच. जी. वैल्स ने कहा है : "जो बात चलने में है वही लिखने में भी है। जहाँ आपको जाना है सीधे और सबसे निकट रास्ते से जाइए।

सम्पादकीय

क्या यह हिन्दी लादना है ?

संसदीय हिन्दी परिषद् के दूसरे वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रधान मन्त्री श्रीयुत जवाहरलाल नेहरू ने अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए कहा : "...आप लोग जो यह कहते हैं कि मैं संसद् में हिन्दी क्यों नहीं बोलता हूँ इससे मुझे चोट लगती है क्योंकि मैं हिन्दी में बोलना चाहता हूँ लेकिन फिर भी ऐसा नहीं करता । यह अनुचित बात है लेकिन मुझे संसद् में ऐसा वायु मंडल तैयार करना है । संसद् के एक तिहाई सदस्य हिन्दी नहीं समझते इसलिए हिन्दी बोल कर मैं तिहाई सदस्यों को हिन्दी विरोधी नहीं बनाना चाहता । हिन्दी बोलने का असर इन पर हिन्दी लादना होगा । इस तरह वे हिन्दी के विरोधी हो जाएँगे ।......" प्रश्न यह है कि क्या संसद् में एक तिहाई सदस्यों के सामने जो कि हिन्दी नहीं समझते हिन्दी बोलना क्या उन पर हिन्दी का लादना है ? यदि हिन्दी को अ-हिन्दी भाषी प्रदेशों के शिक्षणालयों में अनिवार्य विषय बना कर पढ़ाया जाए तो भी यह हिन्दी को लादना है और इस प्रकार हिन्दी को अ-हिन्दी भाषी प्रदेशों में जिस किसी रूप में अनिवार्य रूप से लाया जाएगा—वह हिन्दी का लादना ही होगा और यदि इस प्रकार लादने की युक्ति को दूर तक खींचा जाएगा तब हमें धीरे धीरे ही क्यों न हो इन प्रदेशों में हिन्दी का शिक्षण देना और यहाँ तक कि हिन्दी में बोलना भी मुश्किल हो जाएगा । यदि एक तिहाई पर हिन्दी बोलने से हिन्दी लादी जाती है तो अन्य सदस्यों पर जो अंग्रेज़ी में बोलना अवाञ्छनीय समझते हैं अंग्रेज़ी लादी जाती है । फिर जो भाषण लोकसभा में दिए जाते हैं वे क्या उतने ही सदस्यों के लिए होते हैं जो कि संसद् के सदस्य हैं ? इन भाषणों को तो समस्त राष्ट्र सुनता है । संसद् क्योंकि भारत की सबसे बड़ी राष्ट्रीय प्रतिनिधि संस्था है इसलिए उस संस्था में एक विदेशी भाषा में देना विचित्र-सा प्रतीत होता है । अंग्रेज़ों के समय विधान सभाओं के भाषण अंग्रेज़ों को सुनाने के लिए अंग्रेज़ी में दिए जाते थे परन्तु अब जब कि राजसत्ता जनता के हाथ में आ गई है अंग्रेज़ी में भाषण क्या इंग्लैण्ड और अमेरिका के लोगों को सुनाने के लिए दिए जाते हैं ? भारत की कितनी जनता है जो अंग्रेज़ी में भाषणों को समझ सकती है ? क्या भारतीय जनता पर यह अंग्रेज़ी का लादना नहीं है ? अंग्रेज़ी में बोलने से अंग्रेज़ी को अच्छी तरह समझ सकनेवाले कुछ थोड़े-से व्यक्ति प्रसन्न हो सकते हैं परन्तु यदि वास्तव में वे भारतीय राष्ट्र की जनता के प्रतिनिधि हैं तो वे हिन्दी में भाषण सुनने से हिन्दी के विरोधी नहीं बन सकते और यदि वे हिन्दी के विरोधी बनते हैं तो वे भारत के समस्त राष्ट्र को एक राष्ट्र के रूप में नहीं देखते । हिन्दी के विरोधी वे ही लोग हो सकते हैं जो राष्ट्रीयता के विरोधी हैं और क्या ऐसे लोगों को अंग्रेज़ी बोल कर हिन्दी के पक्ष में किया जा सकता है ? श्री जवाहरलाल नेहरू का संसद् के एक तिहाई सदस्यों के सम्मुख अंग्रेज़ी बोलने का यह अर्थ है कि वे अंग्रेज़ी में बोल कर उनमें हिन्दी के प्रति विरोध को उत्पन्न नहीं होने देते ! क्या अंग्रेज़ी में बोल कर संसद् में हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया जा सकता है ?

लज्जाजनक बात ?

इसी सिलसिले में उन्होंने कहा : "मेरा सिर शर्म से झुका जाता है जब एक भारतीय दूसरे भारतीय से विदेशी भाषा अंग्रेज़ी में बात करता है और ख़ास कर विदेशों में । मैंने पिछले २५ वर्षों से विदेशों में किसी भारतीय विद्यार्थी, किसी भारतीय या भारतीय संस्था में अंग्रेज़ी में भाषण नहीं किया चाहे वे लोग हिन्दी समझें या न समझें हो । बाद में थोड़े में अंग्रेज़ी में कह देता हूँ क्योंकि दक्षिण भारतीय शिकायत करते हैं कि वे हिन्दी नहीं समझते ।" हमने अपने देश में चीनी और रूस के ऐसे विद्वानों और राजपुरुषों को देखा है जो विदेशी लोगों के सामने अंग्रेज़ी जानते हुए भी अपनी ही भाषा में बोलते हैं ; पीछे से उसका अनुवाद अंग्रेज़ी में कर दिया जाता है । यदि विदेशों में भारतीयों के लिए आपस में अंग्रेज़ी में बोलना लज्जाजनक है तो हमें यह समझ में नहीं आता कि अपने देश में एक भारतीय का दूसरे भारतीय से अंग्रेज़ी में बोलना क्यों शर्मनाक नहीं है ? विदेशों में तो इस प्रकार का वातावरण होता है कि वहाँ विदेशी भाषा में बोलना सुविधाजनक होता है; बहुत-से भारतीय विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के लिए इंग्लैण्ड या अमेरिका जाते है । वहाँ उन्हें अपनी समस्त शिक्षा और व्यवहार अंग्रेज़ी के द्वारा करना पड़ता है । इस कारण यदि सभा-सोसा

१९५४

इटियों में भी वे अंग्रेज़ी का व्यवहार करें तो यह समझा जा सकता है और यदि यह लज्जाजनक बात है तो अपने ही देश में भारतीय परस्पर अंग्रेज़ी के बिना कार्य न चला सकें तो यह और भी अधिक शर्म की बात है। जब भारतीयों को अपने ही देश में पारस्परिक व्यवहार में अंग्रेज़ी का प्रयोग आवश्यक प्रतीत होता है और उन्हें इसमें कुछ विशेष लज्जा अनुभव नहीं होती तो उन्हें विदेशों में परस्पर अंग्रेज़ी में व्यवहार करने में लज्जा क्यों होगी ? अन्ततः विदेशों में जा कर एकमात्र विदेशियों को दिखाने के लिए ही तो भारतीय आपस में हिन्दी में नहीं बोल सकते। यदि अंग्रेज़ी में बोलना लज्जाजनक भी है तो क्या इसी कारण विदेशों में भारतीय अंग्रेज़ी के व्यवहार को छोड़ सकते हैं जब कि वे देखते हैं कि स्वयं अपने देश में ही अंग्रेज़ी के बिना कार्य नहीं चल सकता और वे यह भी अनुभव करते हैं कि अंग्रेज़ी के बिना वे कार्य कर सकने में असमर्थ हैं। इसका इलाज विदेशों में नहीं अपने ही देश में पहले करना पड़ेगा। महात्मा गान्धी जब दक्षिण आफ्रिका में भारतीयों की स्थिति और सम्मान के लिए युद्ध कर रहे थे तो उन्होंने इस बात को अनुभव किया था कि भारतवर्ष के सम्मान की लड़ाई दक्षिण आफ्रिका में नहीं भारतवर्ष में ही लड़ी जा सकती है। उन्होंने यह अनुभव किया जब तक स्वयं भारत में ही भारतीयों का आदर नहीं है और उनकी स्थिति सम्मानजनक नहीं है तब तक दक्षिण आफ्रिका या विदेश में उनके सम्मान के लिए युद्ध करने से कुछ विशेष लाभ नहीं हो सकता। इसी प्रकार जब हम अपने देश में ही यह अनुभव करते हैं कि अंग्रेज़ी के बिना हमारा कार्य नहीं चल सकता तब विदेशों में इसे और भी अधिक तीव्रता से अनुभव किया जाता है कि वहाँ तो उनका कार्य अंग्रेज़ी के बिना चल ही नहीं सकता। यदि हम यह चाहते हैं कि विदेशों में भारतीय परस्पर हिन्दी में बोलें तो उन्हें पहले भारत में हिन्दी में व्यवहार करना होगा। जब हमारे देश में हिन्दी का आदर बढ़ेगा तो हम स्वयं विदेशों में हिन्दी बोलने में गौरव को अनुभव करेंगे।

काम्प्लेक्स कहाँ है ?

स्थिति का विश्लेषण करते हुए प्रधान मंत्री ने कहा : "हिन्दी की तरक्की क्यों नहीं हो रही है ? इसका मुख्य कारण है हिन्दी वालों में काम्प्लेक्स आ गया है जैसा कि बंगला, मराठी, गुजराती, तेलुगु और तमिल वालों में नहीं है। शायद वह हिन्दी-उर्दू के पुराने झगड़े से आ गया है। अंग्रेज़ी हुकूमत में उर्दू-परस्ती होती थी। उस ज़माने के कशमकश में 'काम्प्लेक्स' आ गया।... और बातों में गाड़ी आगे चलती है कभी तेज़ और कभी धीरे चलती है लेकिन इस हिन्दी के मामले में हम हवाई चक्कर में क्यों पड़ गए। इसकी वजह यह मालूम होती है कि बजाय हिन्दी को आगे बढ़ाने के हम एक दूसरे को ढकेलते हैं।...हिन्दी वालों में 'काम्प्लेक्स' (वहम) है जो बजाए आगे बढ़ने के पकड़ कर पीछे ले जाता है।"

यह बात तो नहीं है कि जब से हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हुई है हिन्दी ने उन्नति नहीं की है। हिन्दी का प्रकाशन लगातार उन्नति कर रहा है। यह सत्य है कि हिन्दी का झगड़ा उर्दू से नहीं है परन्तु हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत किए जाने के पश्चात् भी उसे अभी वास्तविक युद्ध लड़ना है और वह युद्ध है अंग्रेज़ी से। यद्यपि मराठी, तेलुगु और तमिल आदि भाषावालों को भी अंग्रेज़ी से युद्ध करना पड़ेगा परन्तु उनको अंग्रेज़ी से वह युद्ध नहीं करना पड़ेगा जो हिन्दी को करना पड़ेगा। प्रधान मन्त्री ने जिस 'काम्प्लेक्स' (वहम) की ओर निर्देश किया है वह 'काम्प्लेक्स' (वहम) हिन्दी वालों में अंग्रेज़ी के कारण उत्पन्न हो गया है। हमारे देश में सुशिक्षित लोगों का यह विश्वास है कि अंग्रेज़ी के बिना कार्य नहीं चल सकता और जब तक उनका अंग्रेज़ी के प्रति यह मोह रहेगा तब तक हिन्दी की गाड़ी सन्तोषजनक रीति से आगे नहीं बढ़ सकेगी। हमारे देश में यूनिवर्सिटियों में जितने दीक्षान्त-भाषण होते हैं उनमें यूनिवर्सिटियों के उपकुलपति प्रायः अंग्रेज़ी के गीत गाते हैं और उनके भाषणों को पढ़ने से यह अनुभव होता है कि वे यह समझते हैं कि यदि हमारे देश में अंग्रेज़ी का स्तर नीचा हो गया तो समस्त शिक्षा का स्तर नीचा हो जाएगा क्योंकि भारतीय भाषाओं में अभी वह सलाहियत या योग्यता नहीं है कि उनके द्वारा भारत में शिक्षण के स्तर को ऊँचा रखा जा सके। हमारे देश में हिन्दी की उन्नति में सबसे अधिक बाधक वस्तु हिन्दी वालों में 'काम्प्लैक्स' (वहम) इतना नहीं है जितना कि हमारे देश में अंग्रेज़ी के समर्थकों का (Inferiority complex) इन्फ़ीरिओरिटी काम्प्लैक्स

(हीनता की मनोवृत्ति)। जिसदिन हमारे देश के सुशिक्षित व्यक्तियों के दिमाग से अंग्रेज़ी का यह मोह छूट जाएगा उस दिन हिन्दी की प्रगति स्वयं होने लग जाएगी। इसका यह परिणाम है कि हिन्दी में जो आज कार्य हो रहा है उस पर भी उनकी दृष्टि विशेष रूप से नहीं पड़ती। फिर यदि थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाए कि हिन्दीवालों में यह 'काम्प्लेक्स' या वहम है तो क्या एकमात्र यही वस्तु देश में हिन्दी की उन्नति में सबसे अधिक बाधक बनी हुई है? हिन्दी की उन्नति के मार्ग में जो अन्य रुकावटें हैं उन पर उनके भाषण में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया। उनके भाषण को पढ़ने से ऐसा अनुभव होता है कि हमारे देश में अन्य भाषाओं की तो उन्नति हो रही है परन्तु एकमात्र हिन्दीवाले "हवाई चक्कर" में पड़े हुए हैं परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है। हिन्दी की उन्नति के अवरोध का समस्त उत्तरदायित्व इस "हवाई चक्कर" पर ही नहीं डाला जा सकता। इसके अन्य भी बहुत-से कारण हैं जिनमें हमारे देश के शिक्षा शास्त्रियों का अंग्रेज़ी के प्रति मोह मुख्य है।

अनुवादों के विषय में

अनुवादों के विषय में प्रधान मन्त्री ने कहा: "एक भाषा से सही अनुवाद दूसरी भाषा में हो ही नहीं सकता।...अनुवाद करना बहुत कठिन कार्य है। मेरी अंग्रेज़ी किताब का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ है। जब मुझे कोई व्यक्ति अनुवाद को पढ़ कर सुनाता है तब मुझे ऐसा लगता है कि मैंने तो ऐसा लिखा नहीं है। मेरी किताब का महादेव देसाई ने गुजराती में कुछ ठीक अनुवाद किया है क्योंकि उन्होंने मेरी विचार धारा को समझ कर अनुवाद किया न कि शब्दों को।" सचमुच अनुवाद करना अत्यन्त कठिन कार्य है। यह एकमात्र शब्द कोशों के आधार पर नहीं किया जा सकता। उसके लिए तो लेखक के विचारों की आत्मा में प्रवेश करना पड़ता है और यदि उस आत्मा तक पहुंच न हो तो अनुवाद में शब्द भले ही ठीक बैठ जाएँ परन्तु उसमें लेखक की अपनी बात नहीं आती। इसीलिए साहित्य की किसी भी महान् कृति का ठीक तरह अनुवाद नहीं हो सकता परन्तु अनुवाद न कर सकने पर भी अनुवाद तो करने ही पड़ते हैं क्योंकि इसके बिना कार्य ही नहीं चल सकता।

क्या ही अच्छा होता यदि हमारे प्रधानमन्त्री स्वयं कुछ अपनी पुस्तकों को हिन्दी में लिखते। वह उनकी हिन्दी-साहित्य को एक मौलिक देन होती क्योंकि उसमें उनकी अपनी ही एक विशिष्ट शैली और भाषा होती। महात्मा गान्धी, गुरुदेव और तिलक ने अपनी पुस्तकों को अपनी मातृभाषा में लिखा और उससे उन भाषाओं में नवीनता और मौलिकता उत्पन्न हुई। यदि श्री जवाहरलाल नेहरू मौलिक रूप से हिन्दी में कुछ अपनी पुस्तकें लिखें तो उनकी हिन्दी-साहित्य को बहुत बड़ी देन होगी। इससे हिन्दी समृद्ध होगी और फिर उन पुस्तकों का अनुवाद संसार की अन्य भाषाओं में होगा और इससे उन देशों में भी हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ेगी।

रचनात्मक कार्य

अपने भाषण में श्री जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दी के लिए जो परामर्श दिया है उस पर पूर्ण रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्होंने कहा: "......वे कलह और झगड़ों में न पड़ कर रचनात्मक कार्य करें—जो ग़लत रास्ते जानेवालों को चाहे सरकार हो या और कोई दूसरा, सलाह दें तो उन्हें रचनात्मक सलाह दें। इसी रास्ते पर चल कर ही हिन्दी की सच्ची सेवा हो सकती है। हिन्दी भाषा-भाषी अपने प्रदेश में ऐसा वायुमंडल तैयार करें कि अहिन्दी भाषा भाषी हिन्दी के विरोधी न बनें बल्कि हिन्दी की ओर खिंचें।"...जो लोग हिन्दी को साहित्यिक, सांस्कृतिक और अन्य दृष्टियों से समृद्ध भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं उन पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है और वे इस उत्तरदायित्व को महान् रचनात्मक कार्यों के द्वारा ही पूर्ण कर सकते हैं। हिन्दी के कार्य को अब एकमात्र राजनैतिक दृष्टि से ही आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। यदि हिन्दी को एकमात्र राजनीति के बल के सहारे आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया जाएगा तो एक तो इसमें विशेष सफलता प्राप्त नहीं होगी और यदि सफलता प्राप्त भी होगी तो भी वह टिकाऊ नहीं होगी। हमारी कार्य-प्रणाली रचनात्मक होनी चाहिए और इससे हिन्दी में शक्ति और बल स्वयं उत्पन्न हो जाएगा। हिन्दी के साहित्य की समृद्धि और विस्तार एकमात्र साधना के आधार पर ही हो सकेगा और यह साधना जितनी महान् होगी हिन्दी का भविष्य भी उतना ही महान् होगा।

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

[Estd. MARCH 1915]

Telephone : 4610

Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :
UNIVERSITY BRANCH
(ADIKMET)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMANI,
HYDERABAD-DECCAN.

Branch Office :
THUNGABHADRA PROJECT
(MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTRES, and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.

SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
MANAGING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT

हर्ष के साथ—

रेशमी साड़ियां, ऊनी वस्त्र, शार्क-स्किन्स, शर्टिङ्गस,

चोलीखन्स और वस्त्र-सामग्री ख़रीद कर दशहरा

और दिवाली के त्यौहार मनाइए।

बूलचन्द एण्ड को०

आबिद रोड,
सिल्क पैलेस
हैदराबाद-द.

Regd.

हिन्दी के उत्तमोत्तम
तथा
उच्च श्रेणी
के
साहित्य
की
प्राप्ति के लिए एकमात्र
स्थान

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

नामपल्ली रोड ::: हैदराबाद द.

तार

टेलीफ़ोन नं. ५४५०

प्रकाशक : **प्रियबन्धु** हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-द.

अजन्ता

५-२२.५६

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

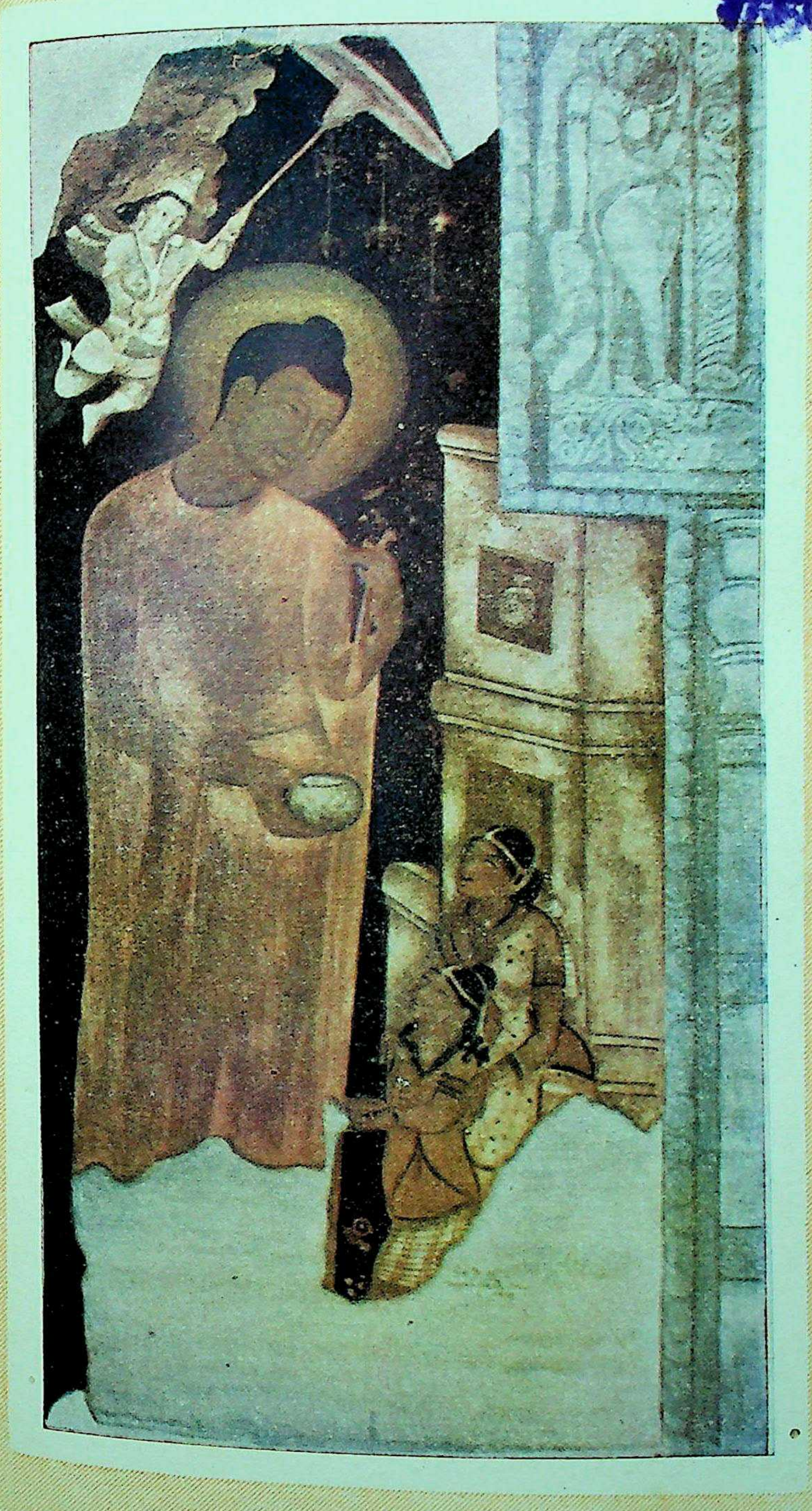

वर्ष ६ नवम्बर १९५४ अंक ११

हैदराबाद

आल्विन मेटल वर्क्स

लिमिटेड

सनतनगर, हैदराबाद द.—१८

★

सर्वोत्तम स्टील फ़र्नीचर के निर्माता

हर प्रकार का फ़र्नीचर

मकान, दफ़्तर, दूकान और अस्पतालों के लिए

ख़रीदिए !

राष्ट्र की सुन्दरतम और मज़बूत बसों के निर्माता

FIRE ! **ACCIDENT !** **MARINE !**

THE HYDERABAD
UNITED INSURANCE COMPANY
(LIMITED)

Sponsored by
THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164.
ABID ROAD, HYDERABAD-Dn.

Telegram: **HUICOL**
Telephone: **5579**

Chairman
L. N. GUPTA Esqr. I. A. S.

General Manager
H. D. MEHTA Esqr.

Branches: BOMBAY, CALCUTTA. MADRAS, NIZAMABAD & MANCHIRIYAL.

HIND'

भारती

साहित्य, संस्कृति, कला, शिक्षा, ग्रामविकास तथा समाजसेवा की
श्रेष्ठ कोटि की मासिक पत्रिका

प्रधान सम्पादक : **श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द**
प्रबन्ध सम्पादक : **श्री हरिहरनिवास द्विवेदी**

आचार्य विनोबा, डा० भगवान दास, डा० काटजू, आचार्य नरेन्द्र देव, राजर्षि टंडन आदि के आशीर्वादों से संवलित

सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', रामाधारी सिंह 'दिनकर', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, वासुदेवशरण अग्रवाल, जे. सी. कुमारप्पा, बनारसी दास चतुर्वेदी, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, भगवतशरण उपाध्याय, राहुल सांकृत्यायन, के० एम. मुन्शी, मोहन सिंह सेंगर, वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्रकुमार आदि की रचनाओं से सुशोभित

वार्षिक मूल्य ६), एक प्रति का ।।।)

क्रपया उत्कृष्ट रचनाएँ भेजिए, ग्राहक बनिए, विज्ञापन दीजिए, एजेन्सी लीजिए, ग्राहक बनाइए ।

लिखिए

व्यवस्थापक : 'भारती', सराफ़ा, ग्वालियर (म० भा०)

१. दक्खिनी का पद्य और गद्य—व्रज- अवधी और राजस्थानी आदि की तरह दक्खिनी भी हिन्दी की एक विशेष शैली है। खड़ी बोली के लिए इस शैली का विशेष महत्व है। दक्खिनी में ही खुसरो और कबीर की परम्परा को आगे बढ़ाया गया। हिन्दी खड़ी बोली के गद्य का सबसे पुराना नमूना दक्खिनी में ही मिलता है। इस संकलन में लगभग सौ लेखकों की अप्रकाशित रचनाओं का संग्रह है। यह संकलन १२वीं शती से १९वीं शती तक हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक नई कड़ी जोड़ने वाला है। पुस्तक की भूमिका भाषा-विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने लिखी है। संकलन-कर्त्ता हैं श्रीराम शर्मा। पृष्ठ संख्या लगभग छः सौ। मूल्य दस रुपए आठ आना।

२. पञ्चामृत (तेलुगु)—तेलुगु के पुराने पाँच प्रतिनिधि-महाकवियों का परिचय तथा उनकी उत्कृष्ट रचनाओं को नागरी लिपि में देकर अर्थ दिया गया है। इस पुस्तक द्वारा हिन्दी-भाषी लोग तेलुगु के काव्य का आनन्द ले सकते हैं। लेखक तथा अनुवादक श्री बालशौरि रेड्डी। मूल्य चार रुपए।

३. सबरस—गोलकुण्डा के विद्वान् लेखक वजही की दक्खिनी शैली में लिखी गई हिन्दी-गद्य की सबसे पहली और उत्कृष्ट रचना। शब्दों के लिए विस्तृत टिप्पणी और विवेचनापूर्ण भूमिका। यह पुस्तक आज से चार सौ वर्ष पहले लिखी गई थी। प्रस्तुतकर्त्ता—श्रीराम शर्मा। पृष्ठ संख्या लगभग तीन सौ, डेमी साइज। मूल्य पाँच रुपए।

४. कालिदास और उनकी कृतियाँ—उस्मानिया विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष आचार्य वंशीधर विद्यालंकार की अंग्रेजी में लिखी हुई विद्वत्तापूर्ण पुस्तक।

५. चाबुक—कहानी-(संग्रह) श्री विनायकराव विद्यालंकार की कहानियों का सकलन। प्रत्येक कहानी समाज का वर्तमान बुराइयों पर तीखा व्यंग्य लिए हुए है। इस कहानी-संग्रह ने हिन्दी के कथा-साहित्य की श्रीवृद्धि की है। कहानियों में हैदराबाद और उसके आसपास का जीवन अंकित हुआ है। मूल्य पौने दो रुपए।

६. तुलसीदास—(नाटक) गोस्वामी तुलसीदास कें जीवन पर लिखा गया नाटक। नाटक रंगमंच के उपयुक्त है।

व्यवस्थापक : **पुस्तक-विक्रय-विभाग, हिन्दी प्रचार**

बाल-साहित्य-माला

बाल-साहित्य-माला के अन्तर्गत सभा ने निम्न छः पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अठपेजी क्राउन ाइज, ३२ पृष्ठ, रंगीन सचित्र छपाई। आकर्षक मुख पृष्ठ। प्रत्येक का मूल्य आठ आना।

१. **बालपद** (७ से १० वर्ष तक के बालकों के लिए कविताएँ) कवि—श्री वंशीधर विद्यालंकार।

२. **गांवों की कहानियाँ** (उत्तर-भारत के गाँवों में कही जाने वाली आकर्षक कहानियाँ) लेखक—श्री रामनिरंजन पाँडे एम० ए०

३. **दक्षिण के महापुरुष** (दक्षिण के ५ महापुरुषों का बालोपयोगी जीवन-चरित्र) लेखक—श्री राजकिशोर पाँडे एम० ए०

४. **बालकों की कहानियाँ** (बच्चों के लिए मनोरंजक कहानियाँ) लेखक—श्रीराम शर्मा।

५. **दो एकांकी** (७ से १० वर्ष तक की आयु के बालकों के खेलने के लिए प्रभावशाली ो एकांकी) लेखक—श्री विमला लूथरा एम० ए०।

६. **हैदराबाद के ऐतिहासिक और कला-स्थल** (अजन्ता से लेकर हैदराबाद के चार मीनार क का परिचय इस पुस्तक में मिलेगा) लेखक—कमला रानी संघी।

प्रेस में

१. **दक्खिनी का व्याकरण**	श्रीराम शर्मा
२. **दक्खिन का इतिहास**	श्रीराम शर्मा
३. **रहीम का अप्रकाशित काव्य : दम्पती बिलास**	
४. **पंचामृत**	(मराठी)
५. **मराठी साहित्य का इतिहास**	

सभी पुस्तकों पर उचित कमीशन दिया जाता है। पत्र-व्यवहार निम्न पते पर कीजिए।

सभा, नामपल्ली रोड, हैदराबाद—१

राष्ट्रीय नव निर्माण का मासिक

'युगारम्भ'

सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक, आर्थिक, समाजिक, शैक्षणिक और नैतिक समीक्षा के अतिरिक्त लेख, कहानी एकांकी आदि।

सम्पादक

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

प्रकाशक

साहित्य प्रेस जबलपुर

वार्षिक मूल्य ६) * **एक प्रति ॥)**

सुरुचिपूर्ण, मनोरंजक, एवं शिक्षाप्रद
पाठ्य सामग्री के लिए
अवश्य पढ़िए

भाग्यलक्ष्मी

(पाक्षिक)

मूल्य : केवल चार आने

नमूने की प्रति केवल दो आने के डाक टिकट भेज कर मंगाइए।

: पता :

'भाग्यलक्ष्मी'—:: शिवपुरी ::—लखनऊ

नोट : 'भाग्यलक्ष्मी' में हिन्दी पहेलियों पर अधिकार पूर्ण एवं सारगर्भित टिप्पणियाँ भी रहती हैं।

प्रेरणा

राजस्थान का प्रमुख साहित्यिक-सांस्कृतिक
हिन्दी मासिक

विचारोत्तेजक लेख, भावपूर्ण कविताएँ, सुन्दर कहानियाँ एवं राजस्थानी कला और संस्कृति के परिचय के लिए

'प्रेरणा'
सर्वोत्तम साधन है

प्रधान सम्पादक : **देवनारायण व्यास**

१, मिनर्वा बिल्डिंग, जोधपुर

एक प्रति १) * वार्षिक १०)

इसे पढ़ना न भूलें !

पाठक परेशान—क्या पढ़ें ?
एजेण्ट परेशान—क्या मँगाए ?
व्यवसायी परेशान—कहाँ विज्ञापन दें ?
एक निदान—'गल्प भारती'
'गल्प भारती'
'गल्प भारती'

स्वस्थ मनोरंजन और बौद्धिक उन्नति के लिए

गल्पभारती

वार्षिक ४॥)

एक प्रति ।=) *

सं० काशीनाथ
८, इण्डियन मिरर स्ट्रीट
कलकत्ता १३

पूजा अंक अक्तूबर १९५४

सस्ता, सरल, आकर्षक और शिक्षाप्रद

राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

* कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।

* हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पथ को हासिल है।

* देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं: मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत्, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)-छमाही ३)-एक प्रति ८ आना

नया पथ कार्यालय,

३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

परिचमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

—: विश्व-ज्योति :—

: सम्पादक :

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी. ए.

संचालक : **श्री विश्वेश्वरानन्द** वैदिक शोध संस्थान

विश्व हित की साधना के लिए :

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय
(ग) बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा : ८ रुपए

१०) रु. वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता :

व्यवस्थापक, 'विश्व-ज्योति'

साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब)

'आर्थिक समीक्षा'

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के आर्थिक, राजनीतिक अनुसंधान विभाग का पाक्षिक पत्र।

प्रधान सम्पादक : **श्री आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल**

सम्पादक : **श्री हर्षदेव मालवीय**

हिन्दी में अनूठा प्रयास :

आर्थिक विषयों पर विचारपूर्ण लेख

आर्थिक सूचनाओं से ओतप्रोत

भारत के विकास में रुचि रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यावश्यक तथा पुस्तकालयों के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक।

वार्षिक चन्दा : ५ रुपए * एक प्रति का ३॥ आना

व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी

७, जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली.

वार्षिक मूल्य ८ रु. **टेलीफोन नं. २५८७**

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ-शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम, राष्ट्र-निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए 'सम्पदा' सबसे उपयोगी पत्र है।

'सम्पदा' के योजना अंक में पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा है **वस्त्र उद्योग अंक** मूल्य १।) रु.

अभी से ग्राहक बनिए।

नमूने के लिए ।।।) आने के टिकट भेजिए।

मैनेजर 'सम्पदा', *अशोक प्रकाशन मन्दिर*

रोशन-आरा रोड—दिल्ली

'अजन्ता'
की
परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर
इन्स्टीट्यूट ऑफ़ एशियन स्टडीज़, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुकर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल ऑफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद-द.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

मनोविज्ञान
काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र
दर्शन और मनोविज्ञान की
आधुनिक प्रवृत्तियों पर
प्रकाश डालनेवाला
हिन्दी में अपने ढङ्ग का
अकेला पत्र
सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**
वार्षिक मूल्य : ४) रुपए।
मिलने का पता :
व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ सिद्धगिरि, बनारस

छप गई !! जल्दी करें !!
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) की
'राष्ट्रभाषा रत्न' गाइड
(भाग १)

१० प्रसिद्ध लेखकों द्वारा इसमें—यशोधरा, स्कंद-गुप्त, सं० झाँसी की रानी, हिन्दी साहित्य का इतिहास, सामान्य भाषा विज्ञान, भारतीय शासन, नागरिक शास्त्र और राष्ट्रभाषा व्याकरण नामक पुस्तकों की टीकाएँ, आलोचना तथा सरल प्रश्नोत्तर दिए गए हैं।

लगभग १००० पेज की सजिल्द पुस्तक का मूल्य डाक व्यय सहित १०) है। वी. पी. नहीं भेजी जायगी। मूल्य मनीआर्डर से भेजें।

दूसरा भाग (शेष पुस्तकों के लिए) दिसम्बर' ५४ तक तैयार हो जाएगा। आर्डर नोट करा दें।

पता :—
तेजनारायण टंडन, विद्या-मंदिर,
रानीकटरा, लखनऊ

१९५४

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६ नवम्बर १९५४ अङ्क ११

सम्पादक
वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

संचालक
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के
शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

अनुक्रम

गीत
    कुमार जितेन्द्र तिवारी १
ऐक्य-दर्शन
    भागवतप्रसाद सिंह २
तन मन प्राण हमारा
    उपेन्द्र ३
दो कविताएँ
    जगन्नाथ ४
प्यार की असीमता
    कमलप्रसाद 'कमल' ५
अब तक तुमको पहचान नहीं मैं पाई
    विद्यावती मिश्र ६
एक सावन साँझ
    नरेश मेहता ७
गीत
    निराला ८
प्रेमचन्द और मज़दूर
    हंसराज रहबर ९
नए चीन का नया कहानी साहित्य
    कृष्णवल्लभ जोशी १३
दखनी कहावतें
    ललिता देवी १५
रंगों के मनोवैज्ञानिक प्रभाव
    कुमार शील चतुर्वेदी १६
संस्कृत साहित्य में पदार्थ प्रतिपादन की पद्धतियाँ
    रमाशंकर महाचार्य १९
वीसलदेव रास सम्बन्धी कतिपय भ्रान्तियों का संशोधन
    अगरचन्द नाहटा २६
"चकत्ता की पम्परा" एक परिचय
    मुनिकान्ति सागर ३६
हिन्दी की समस्याएँ
    सुन्दरलाल ४४
कल के हवाई जहाज़
    पीटर मैसफील्ड ४६
हरियाणा ग्राम्य-गीतों में माधुर्य कल्पना
    बालमुकुन्द मिश्र ४७
सर्वज्ञ कवि
    मा. देवगौड "बोमण्णा" ५१
आन्ध्र देश में नाथ-पन्त
    सेतु माधवराव पगड़ी ५५
खिलौने वाला
    अनु० विश्वनाथ मुखर्जी ५६
    प्रबोधकुमार सान्याल
कला-चर्चा ६४
चिट्ठी-पत्री ६७
    सुशीला प्रभाकर, प्रबोधकुमार मजूमदार, शिवनन्दन प्रसाद, बी. भीमसेन 'निर्मल'
नीर-क्षीर ६९
    भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : गुरुमुख निहाल सिंह अनु० सुरेश शर्मा, जीवट की कहानियाँ : श्यामनारायण कपूर, शतदल (काव्य-संग्रह) : लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', मराठी सन्तों का सामाजिक कार्य : डा० विष्णु भिकाजी कोलते, पद्मावत की कथा : रोशनलाल सिंहल, पहली पंचवर्षीय योजना : योजना कमीशन भारत सरकार, भारतीय संस्कृति का उत्थान : डा० रामजी उपाध्याय एम. ए., डी. फिल्.
सामयिक ७५
    चौसर से इलियट तक
    अन्तिम पर्दा : हाइड्रोजन बम
    जापान की कविता
    क्षेत्रज्ञ के पद
    १५ वीं सदी के रूस यात्री का ब्रहमनी राज्य का वर्णन
संपादकीय ८०
    वंशीधर विद्यालंकार

चित्र : विश्व-शान्ति के वीर सेनानी श्री जवाहरलाल नेहरू : राजा दीनदयाल के सौजन्य से
जल-प्रपात : विश्वनाथ मुखर्जी : जबलपुर कलानिकेतन में संगृहीत
श्रीयुत लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस. हैदराबाद राज्य प्रदर्शिनी का उद्घाटन कर रहे हैं
हैदराबाद में भारतीय कला और संस्कृति के वर्णनात्मक चित्रों की प्रदर्शिनी

वार्षिक मूल्य ६) रु०
एक अङ्क का ।) ॥

विश्व-शान्ति के वीर सेनानी
श्री जवाहरलाल नेहरू

राजा दीनदयाल के
सौजन्य से

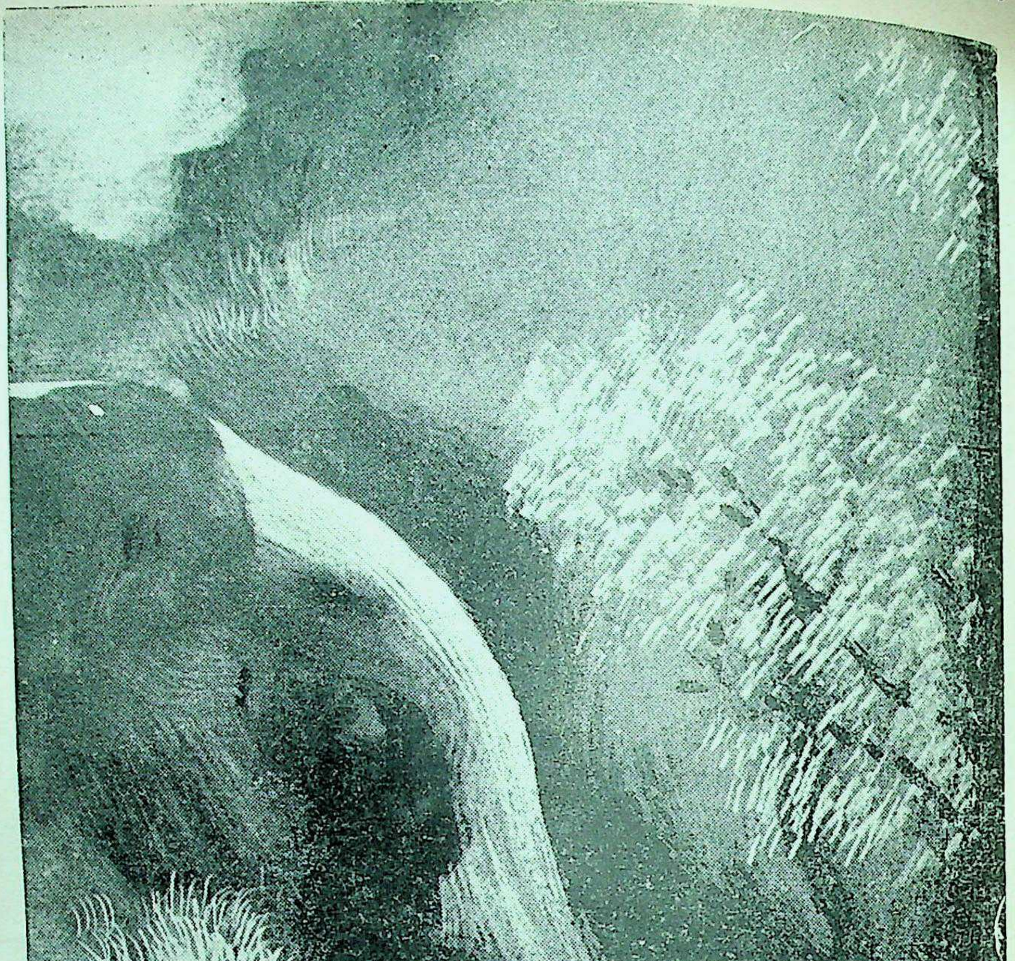

जल-प्रपात

चित्रकार : विश्वनाथ मुखर्जी
जबलपुर कलानिकेतन में संगृहीत

अजन्ता
S. NALANDKER

वर्ष ६ | नवम्बर | अङ्क ११

गीत

प्यार मैंने भी किसी का पा लिया है

शुष्क जीवन में सरसता आ चुकी है
ज़िन्दगी मेरी किसी को भा चुकी है
साथ चलने को कठिन जीवन डगर पर
ज़िन्दगी मेरी किसी को पा चुकी है
आज प्राणों ने किसी को, मुग्ध हो अपना लिया है

अब नहीं संघर्षमय जीवन अकेला
आज इसमें आ चुकी मधुमास-बेला
अब सुखद मधु प्रात औ' दिन रात होंगे
चाँद भी हर रात का होगा नवेला
आज मैंने ज़िन्दगी का दुःख सब दफ़ना दिया है

नेशनल रेडियो सर्विस, सदर बाज़ार,
बिलासपुर (म. प्र.)

—कुमार जितेन्द्र तिवारी

ऐक्य-दर्शन

इस एक विटप पर एक नीड़ तेरा भी है, मेरा भी है !

तू–मैं हैं जाने–पहचाने,
तू 'तू', मैं 'मैं' से अनजाने;
यह क्या विभेद कैसी समता,
क्यों घृणा–द्वेष, कैसी ममता ?
सम्मिश्रण द्वय का नीर-क्षीर तेरा भी है, मेरा भी है !

हैं पावस–ग्रीष्म–वसन्त एक,
हम दोनों का अथ-अन्त एक;
इस काल-धुरी पर चक्र रूप
हम घूर्णित चिर, विस्मृत स्वरूप;
पर अचल लक्ष्य पर चढ़ा तीर तेरा भी है; मेरा भी है !

हैं भिन्न रूप, हैं भिन्न व्यष्टि,
पर एक सदा है जग-समष्टि;
है एक चेतना का प्रकाश,
है सृष्टि जहाँ पाती विकास;
इस मिट्टी से निर्मित शरीर तेरा भी है, मेरा भी है !

इस एक विटप पर एक नीड़ तेरा भी है, मेरा भी है !

—भागवत प्रसाद सिंह

निपनिया,
बरौनी (मुंगेर)

तन मन प्राण हमारा

आज देश भर दुहराता है जिस की अमर कहानी
जो निर्भय बढ़ता जाता है लिये प्रकृति दीवानी

जिस अन्तर में रही सुलगती मर मिटने की ज्वाला
जिसने सौ-सौ बार कण्ठ से पिया हलाहल प्याला

रहा समझता जो जीवन को माटी भरा खिलौना
बन्द सीखचों में हँस हँस कर हुआ सिंह का छौना

जिसके सरल नीति-शास्त्रों से फटी प्रपंची माया
स्वयं 'विजय' ने आकर जिसको अपने गले लगाया

जिसकी स्वार्थ-हीन सेवाओं का ऋण जन जन पर है
एक सुखद सन्देश सनातन जिसका हर अक्षर है

जिसके शान्ति-प्रेम की लय से स्तब्ध विश्व की वाणी
जिसके सरस मधुर सपनों में मग्न मुक्ति-कल्याणी

जिसके वक्र भृकुटि नर्त्तन से बनती 'वज्र-निशानी'
अन्यायी भी हो जाता है बरबस पानी–पानी

जिसने एक 'कर्म' ही केवल अपना सम्बल जाना
अन्य किसी के आगे झुकना बस 'दुर्बलता' माना

जिसके कमल-करों की छाया से धरती शीतल है
गौरव यश वैभव जननी का सुख सुहाग अविचल है

'भारत-भाग्य-रूप-रथ' का जो कुशल 'सारथी' प्यारा
वीर 'जवाहर लाल' दुलारा तन-मन प्राण हमारा

प्रेम विद्यालय,
कानपुर

—उपेन्द्र

श्री जवाहरलाल नेहरू के जन्म दिन के उपलक्ष में

दो कविताएँ

१

चरण तो मिले पर शरण हो न पाया
हुआ प्रात पर जागरण हो न पाया

पुरानी वही ज़िन्दगी चल रही है
अभी दूसरा संस्करण हो न पाया

अभी खिन्न मन है अभी खिन्न तन है
अभी हार का विस्मरण हो न पाया

सुमन हँस रहे हैं विमन सभ्यता वश
सुमन से विलग अश्रुकण हो न पाया

अभी दूर ही दूर से है लड़ाई
अभी दुर्ग पर आक्रमण हो न पाया

अभी चाहता हूँ समर्थन जगत् से
अभी आचरण आचरण हो न पाया

प्रगति तो बनी चरण दासी हमारी
मगर शान्ति का अवतरण हो न पाया

छिपाया गया सत्य नित नव कला से
मगर आवरण आवरण हो न पाया

२

मिलन तो हुआ पर मिलन हो न पाया
मिलन से विरह का निधन हो न पाया

अभी अन्य की दृष्टि से देखता हूँ
अभी नयन अपना नयन हो न पाया

सुरभि को न अपनी बिखेरो सुमन हे
अभी आँधियों कों शमन हो न पाया

प्रकृति की कृपा से न कुछ भी कमी है
मनुज से मनुज का सृजन हो न पाया

कली नित प्रणय दान देती पवन को
कली का मगर यह पवन हो न पाया

अभी राह का प्रश्न उठता नहीं है
अभी चाह का अध्ययन हो न पाया

अभी बात छेड़ों न तुम जागरण की
अभी पूर्ण अपना शयन हो न पाया

मिले धूल में अश्रु निकले सुमन बन
विमल आँसुओं का पतन हो न पाया

हरिकिशन कुटिया,
राय स्टेट,
रानी खेत (उ. प्र.)

प्यार की असीमता

है सरल सीमा गगन की बाँधना
थाह पाना सिन्धु की आसान है
प्यार की सीमा नहीं बाँधी गई
बुद्धि इसमें आज तक हैरान है

बँध न पाया बाहुओं में व्योम की
प्यार वह बन्दी पलक की कोर में
तर्जनी से विश्व को जो बाँध ले
वह बँधा है अंचलों के छोर में

प्यार सीमित आँसुओं की बूँद में
प्यार सागर में समा सकता नहीं
आप अपने को विना खोये 'कमल'
कौन इसकी थाह पा सकता कहीं

प्यार की इस पुण्य पावन धार में
सैकड़ों की ज्ञान गरिमा बह गई
अन गिनत मानी मिटे इस राह में
याद भी जिनकी न बाक़ी रह गई

यह पहेली प्यार की अनबूझ है
मानिनी ! टुक मान अपना छोड़ दे
गीत पैमाने हमारे प्यार के
आज अपना प्यार इनसे माप ले

—कमलप्रसाद 'कमल'

अब तक तुमको पहचान नहीं मैं पाई !

तुम पुण्य देव मंदिर की रुचि देहली पर
वर्षों से अपने श्रद्धा सुमन चढ़ाते,
संकोच कौन सा तुम्हें रोक देता है
जिससे न कभी भी तुम प्रतिमा तक आते,
अपने तक सीमित क्या रहस्य रखने को, इस विधि से तुमने अपनी भक्ति छिपाई !
अब तक तुमको पहचान नहीं मैं पाई !

वंदन करते तुम इतने धीमे धीमे
प्रतिमा तक उसकी भाषा पहुँच न जाये,
अंतस् के बाहर पर अधरों के भीतर
रुक रुक कर तुमने गीत बहुत से गाये,
भक्तों की जय जय, घण्टों के मृदु स्वर में, बस क्षीण रागिनी तुमने एक मिलाई !
अब तक तुमको पहचान नहीं मैं पाई !

जब अपनी सुख-दुख की बातें कह कह कर
सबने बतलाई प्रभु से फल की इच्छा,
तुम छिपे निकट ही किसी शून्य खंडहर में
अपलक नयनों से करते रहे प्रतीक्षा,
जिस पथ पर से हों लौटे सभी पुजारी, मस्तक पर उस ही पथ की धूल लगाई !
अब तक तुमको पहचान नहीं मैं पाई ।

बोलो तुम कब तक यों ही बने रहोगे
यों भूले भूले से भटके भटके से
उन्मुक्त द्वार है, लक्ष्य दीप प्रस्तुत है
प्रिय है, मंदिर है, फिर कैसे अटके से,
स्वीकार आज दैवत्व करे लेता यह, है आज मनुजता ने उस पर जय पाई !
अब तक तुमको पहचान नहीं मैं पाई !

—विद्यावती मिश्र

दुर्विजय गंज, (धानमंडी)
लखनऊ

एक सावन साँझ

धूप उजली धुली है यह प्राण ! सावन साँझ की !!
पीत गोट किनार चाँदी
अंग केलों से लिपट
ये श्याम मेघनियाँ बनीं रसवान चुँदरी !
हुमस
रसबस
पींख गोरे चँवर छहरे
मेघ नीलम मोर के !
पींख गोरे चँवर पश्चिम पार छहरे
अस्त के आकाश में
ज्यों धूप के हों राजसी जस
[पीत चन्दन पींख के पंखे गगन के हाथ में]
बाट से
उस सटी गंधियाती हुई लखराँव में
पड़ गये होंगे हिंडोले
अँजुरिया सी अँगवाली नार के !!
षोडषी नदियाँ हुईं,
ढँक गए होंगे सभी अँग दूब मखमल से
भरे अंग की वधू जैसी डूँगरी के !!
चल पड़े होंगे कहारों संग डोले
गाँव की चौपाल से कड़ियाँ मिलन की
खेत काँकड़ तक सुनाई पड़ रही होगी !
दूर काले कोस में
इन भरी रातों बीच
मेरा सुन रहा है मन
हलकी रागिनी की इमनऽऽ
कोई कह सके इन बिजलियों के संग
सुनाई दी मधुर झंकार आवन झाँझ की !!
धूप उजली धुली हैं प्राण सावन साँझ की !!

—नरेश मेहता

गीत

बादल रे, जी तड़पे
किए उपाय सैकड़ों तन के;
मन के, चरण मिले सज्जन के,
व्यर्थ प्रार्थना जैसे अब है,
पञ्जर पिञ्जर करके

अब अँधियाली ही बढ़ती है
छाया पर छाया चढ़ती है,
प्राणों के घन श्याम गगन से
बूदों कभी न बरसे

छिप जाती है छवि बिजली में,
सरसर से दबती है ही में,
बूदों की छन छन से उन्मन,
प्राण न मेरे तरसे

—निराला

इलाहाबाद.

प्रेमचन्द और मज़दूर

"मैं भी मज़दूर हूँ,
तुम फावड़ा चलाते हो,
मैं कलम चलाता हूँ।
हम दोनों एक हैं।..."

—प्रेमचन्द

प्रेमचन्द श्रमजीवी वर्ग में उत्पन्न हुए थे और अपनी जीविका कमाने के लिए वे जीवन पर्यन्त घोर परिश्रम करते रहे। इसलिए वे स्वभावतः अपनी गणना श्रमजीवी मज़दूर वर्ग में करते थे। मेहनत का शोषण चाहे किसी भी रूप में हो वे इसे सामाजिक अन्याय समझते थे। इस सामाजिक अन्याय का अन्त करने के लिए वे ऐसी राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे, जिसमें श्रम का शोषण न हो।

बीसवीं सदी के आरम्भ में जब प्रेमचन्द ने लिखना शुरू किया तब हमारा राष्ट्रीय आंदोलन दिन दिन उग्र रूप धारण करता जा रहा था, उस समय मज़दूर वर्ग हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक महत्वपूर्ण अँग बन चुका था। सन् १९०२ में हमारे देश में कारखानों की संख्या १५३३ थी, जिनमें ५४१६३४ मज़दूर काम करते थे। इसके अतिरिक्त लाखों मज़दूर वे थे, जो खानों, वर्कशापों और रेलवे में काम करते थे। उन सबका सामान्य रूप से शोषण होता था। इस शोषण के विरुद्ध उनके मन में रोष और घृणा बढ़ती जाती थी, अतः इस शोषण का अन्त करने की आशा दिलाने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनों की ओर उनका ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक था। सन् १९०८ में जब राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता लोकमान्य तिलक को बन्दी बना कर ६ वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया तो इस अन्याय और दमन के विरुद्ध बम्बई, नागपुर और दूसरे शहरों के मज़दूरों ने हड़ताल की। यह हड़ताल इतनी संगठित और व्यापक थी कि मज़दूरों के मार्क्सवादी नेता लेनिन ने इस बारे में लिखा : "भारतीय मज़दूर पहले ही इतना [illegible] और संगठित है कि वह वर्ग चेतना के आधार पर जनवादी राजनीतिक संघर्ष लड़ सकता है, जिसका मतलब है कि दमन के एंग्लो रूसी साधन असफल सिद्ध हुए हैं।"

लेकिन हमारे राजनीतिक नेताओं का इस ऐतिहासिक सत्य की ओर ध्यान नहीं गया और राष्ट्रीय आन्दोलन बुद्धिवादी मध्यवर्ग के नेतृत्व में चलता रहा। उन्होंने मज़दूरों को संगठित करने और उन्हें आन्दोलन में लाने की बात नहीं सोची। बल्कि ये मध्यवर्गी नेता भी राष्ट्रीय आन्दोलन का एक रूप निश्चित नहीं कर सके। वे आप ही उग्र दल और उदार दल में बँट गए। प्रेमचन्द का ध्यान भी मज़दूरों की ओर नहीं गया। वे भी किसानों और मध्यवर्ग के बारे में लिखते रहे।

जब पहला विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ तो अंग्रेज़ों के लिए हिन्दुस्तान में अपने कारखानों का तैयार माल भेजना और यहाँ से कच्चा माल ले जाना कठिन ही नहीं, प्रायः असम्भव हो गया। युद्ध की इस परिस्थिति और बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने उन्हें मज़बूर कर दिया कि वे हिन्दुस्तान में उद्योगीकरण की रफ्तार को तेज़ करें और हम देखते हैं कि युद्ध के अन्त अर्थात् सन् १९१८ में कारखानों की तादाद ३,४३६ तक जा पहुँची, जिनमें १,१२२,४२२ मज़दूर काम करते थे। युद्ध में श्रमजीवी जनता की लूट खसोट और बढ़ती है, जिससे उसके लिए जीवन निर्वाह मुश्किल हो जाता है और विद्रोह की भावना बल पकड़ती जाती है। कहना नहीं होगा कि युद्ध के बाद हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन शिक्षित मध्यवर्ग से निकल कर जन साधारण में फैल गया था। उसने जीवन के समस्त स्तम्भों को छू लिया और सामूहिक क्रान्ति का रूप धारण कर लिया था। इस क्रान्तिकारी भावना का सबसे बड़ा आधार उस समय का मज़दूर आन्दोलन था।

सन् १९१८ में मज़दूरों की जो हड़तालें शुरू हुई सन् १९१९ और १९२० में उनमें दिन दिन तीव्रता और उग्रता उत्पन्न होती रही। जनवरी सन् १९१९ में बम्बई की तमाम कपड़ा मिलों में हड़ताल हुई और उसमें एक लाख पच्चीस हज़ार मज़दूरों ने भाग लिया।

अप्रैल में घृणित रौलट ऐक्ट के विरुद्ध जो आम हड़ताल हुई, उसमें हिन्दुस्तान भर के मज़दूरों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया और यह सिद्ध कर दिया कि वे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में सबसे आगे हैं। उनका यह संघर्ष बढ़ता ही रहा। सन् १९२० के पहले छः महीने में २०० हड़तालें हुईं, जिनमें १५ लाख मज़दूरों ने भाग लिया।

इस संघर्षोन्मुख परिस्थिति में लाखों ट्रेड यूनियनें स्थापित हुईं और संगठित ट्रेड यूनियन आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ, जो इसके उपरान्त हमारे स्वतन्त्रता संग्राम का एक अविच्छिन्न अंग बन गया।

लेकिन सन् १९२०-२१ और १९३०-३२ में असहयोग और सविनय अवज्ञा के जो आन्दोलन चले, उनकी रूपरेखा और कार्यक्रम ऐसा नहीं था कि मज़दूर और किसान इस शोषण व्यवस्था का अन्त करने के लिए समूचे और संगठित रूप से भाग ले सकें बल्कि उन्हें जान बूझकर अलग छोड़ दिया गया और आन्दोलन शहरों और गाँवों में भी मध्यवर्ग तक सीमित रखा गया।

फिर भी हमारे देश का मज़दूर आन्दोलन एक सामाजिक और ऐतिहासिक सत्य के रूप में आगे बढ़ता रहा। सन् १९३० में प्रसिद्ध मेरठ षड्यन्त्र केस बना, जिसमें सभी मज़दूर नेता फाँस लिए गए और उन्हें लम्बी लम्बी सज़ाएँ मिलीं। इसी मज़दूर आन्दोलन के आधार पर आगे चल कर समाजवादी और साम्यवादी पार्टियाँ बनीं और समाजवाद का प्रचार हुआ

अब किसी भी नेता और किसी भी सजग लेखक का मज़दूरों और उनके आन्दोलन की ओर उदासीन रहना सम्भव नहीं था।

प्रेमचन्द का ध्यान भी लगभग इसी युग में मज़दूर समस्या की ओर आकर्षित हुआ। लेकिन प्रेमचन्द विशेषतः किसानों और मध्यवर्ग के लेखक थे और यथार्थवादी होते हुए भी एक आदर्शवादी दृष्टिकोण रखते थे, इसलिए मज़दूरों के प्रति उनका रुख अन्त तक स्पष्ट नहीं हो सका। उन्होंने मज़दूरों को एक ऐतिहासिक सत्य और क्रान्ति के अग्रदूत के रूप में कभी ग्रहण नहीं किया। चूँकि वे मेहनत के शोषण से घृणा करते थे और मज़दूर की मेहनत का शोषण होता है इसलिए वे मज़दूर के हित की बात करते थे।

प्रेमचन्द ने उद्योगीकरण की समस्या को पहले पहल "रंगभूमि" में उठाया है। जनसेवक एक नया उद्योगपति है और पाण्डेपुर में सिगरेट का कारखाना लगाना चाहता है। सूरदास इस उपन्यास का आदर्श पात्र है। प्रेमचन्द इसी आदर्श पात्र के द्वारा सिगरेट के कारख़ाने का...देश के उद्योगीकरण का विरोध करते हैं। क्योंकि उनका ख़याल है कि इससे ग्रामीण समाज की प्राचीन व्यवस्था नष्ट हो जाएगी। गाँव के नौजवान और किसान मज़दूर बनेंगे तो उनका नैतिक पतन होगा। कारख़ाने के साथ मज़दूर बस्तियाँ बनेंगी, शराब का ठेका होगा, वेश्याएँ आएँगी और व्यभिचार फैलेगा।

उद्योगीकरण के प्रति यह दृष्टिकोण सर्वथा अवैज्ञानिक और रूढ़िवादी है। प्रेमचन्द ऐतिहासिक विकास के इस सिद्धान्त को नहीं समझ पाए थे कि उद्योगीकरण से समाज और संस्कृति का विकास होगा और इसमें पतन के बजाय देश का कल्याण निहित है। किसान मज़दूर बन जाएँ तो उनका रूढ़िवाद और परम्परागत सामन्तवादी संस्कारों से पिण्ड छूटता है और नए आर्थिक सम्बन्ध उन्हें अधिक क्रान्तिकारी बना देते हैं। शोषण से मुक्त जिस समाज का वे स्वप्न देखते आए हैं, क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की संगठित शक्ति से ही उसका निर्माण सम्भव था। युग के इस अटल सत्य को न समझ कर उन्होंने मज़दूर को हमेशा दया के पात्र और असहाय समझा। 'कर्मभूमि' में मज़दूरों को अच्छे मकान दिलाने के लिए जो आन्दोलन चलता है उसका नेतृत्व सुखदा, डा॰ शान्तिप्रसाद और मध्य वर्ग के दूसरे लोग करते हैं और वह इसी दयाभाव से प्रेरित है।

लेकिन प्रेमचन्द यथार्थवादी थे। उन्होंने समाज के भिन्न-भिन्न स्तरों को और उसमें होनेवाले परिवर्तनों को भली प्रकार समझ लिया था। इसीलिए वे शोषितों और शोषकों का चरित्र-चित्रण बड़ा ही सच्चा और सही करते हैं। 'रंगभूमि' में जनसेवक नए उद्योगपति वर्ग का प्रतिनिधि है। वह पक्का स्वार्थी और धूर्त है। उसके लिए पैसा धर्म, पैसा लोकलाज और पैसा ही सन्तान है। वह पैसे के लिए इन सब चीज़ों का किसी भी क्षण परित्याग कर देने के लिए तैयार रहता है।

'कर्मभूमि' में सुमेर भी इसी वर्ग का एक छोटा-सा प्रतिनिधि है। सुखदा जब म्युनिसिपल बोर्ड से मज़दूरों के लिए नए मकान बनाने के लिए हड़ताल का प्रस्ताव

लती है, तो वह बड़ी ही चतुराई और नम्रता से उसका विरोध करता है क्योंकि भावी हड़ताल में वह अपने स्वार्थ की हानि देखता है। प्रेमचन्द लिखते हैं :

"सुमेर की जूते की दूकान थी। तीन-चार चमार नौकर थे। खुद जूते काट दिया करता था। घासवालों और सईसों को सूद पर रुपए भी उधार दिया करता था। मोटी आँखों के पीछे से बिज्जू की तरह ताकता हुआ बोला : हड़ताल होना तो हमारी बिरादरी में मुश्किल है बहू जी! यों आपका गुलाम हूँ और जानता हूँ कि आप जो कुछ करेंगी, हमारी ही भलाई के लिए करेंगी, पर हमारी बिरादरी में हड़ताल होना मुश्किल है बेचारे दिन भर घास काटते हैं, साँझ को बेच कर आटा दाल जुटाते हैं, तब कहीं चूल्हा जलता है। कोई सईस है, कोई कोचवान है। बेचारों की नौकरी जाती रहेगी। अब तो सभी जाति वाले सईसी, कोचवानी करते हैं। उनकी नौकरी दूसरे उठा लें तो बेचारे कहाँ जाएँगे।"

इन्दु मियाँ ने सुमेर का समर्थन किया और सुखदा का प्रस्ताव स्वीकार नहीं हो सका बात भी ठीक थी क्योंकि सईस, कोचवान, घासवाले, बहिश्ती फुटकर मज़दूर हैं। वे अपने जीवन-निर्वाह के लिए पुरानी सामन्ती सामाजिक व्यवस्था से बँधे हुए होते हैं। इसी कारण वे दीन, दुःखी होते हुए भी क्रान्तिकारी नहीं हो पाते। वे कल कारखानों में काम करनेवाले मज़दूरों की तरह क्रान्तिकारी नहीं होते और उनका संगठन भी आसान नहीं है। लेकिन 'कर्मभूमि' के सारे आन्दोलन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है। उसका आधार भावुकता पर है। इसी भावुकता के नाते दूसरे दिन हड़ताल होती है, पदाधिकारी झुकते हैं और मज़दूरों को मकान मिलते हैं। यहाँ प्रेमचन्द का अभिप्राय मज़दूरों पर दया दर्शाने से कहीं अधिक सुखदा को यश दिलाना और उसे त्याग की मूर्त्ति सिद्ध करना जान पड़ता है।

हड़ताल के नेताओं को जो सफलता प्राप्त हुई है उसमें यथार्थ कम और रोमांसवाद अधिक है। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में माँगें मनाने के लिए केवल दबाव से काम लिया जाता था। हड़ताल भी जहाँ दबाव का काम देती है, प्रेमचन्द उसका समर्थन करते हैं, लेकिन जहाँ वह क्रान्ति का पथ ग्रहण करने लगती है, तो वे असमंजस में पड़ जाते हैं और अहिंसावादी दर्शन की आड़ लेकर पीछे हट जाते हैं और प्रायः हड़ताल को संगठित करने में पहले ही से बड़ी सावधानी से काम लेते हैं।

'डामुल का कैदी' कहानी मिल मज़दूरों, उनका शोषण और हड़ताल के बारे में लिखी गई है। इस कहानी में मज़दूरों का संघर्ष अपने वास्तव और उग्र रूप में हमारे सामने आता है। हड़ताल सिर्फ़ दबाव डालने के लिए नहीं की जाती आर्थिक कारणों से उत्पन्न होती है। यह कहानी सन् १९३० में लिखी गई थी। सेठ खूबचन्द तमाम उद्योगपतियों की तरह धन का लोभी है। उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य धन कमाना और उसकी रक्षा करना है। इसके लिए उसने मंदिर बनवाया है, अफसरों को रिश्वत देता है, मज़दूरों पर दमन करता है और देश के राष्ट्रीय आन्दोलनों में चन्दे देता है। 'स्वदेशी खरीदो' के आन्दोलन के कारण उसकी मिल के कपड़े का दर बढ़ गया है और उसने लाखों कमाए हैं। लेकिन अनाज के दर गिर गए हैं और बेकारी बढ़ गई है, इसलिए उसने पुराने आदमियों को निकाल कर सस्ती मज़दूरी पर नए आदमी रख लेने की सोच कर मज़दूरी घटाने की घोषणा कर दी है।

इसके परिणामस्वरूप हड़ताल होती है। लेकिन मज़दूरों का नेता गोपीनाथ एक बार फिर प्रयत्न करता है कि किसी प्रकार सुलह हो जाए और हड़ताली मज़दूर काम पर लौट जाएँ। लेकिन लाख मिन्नत आरज़ू करने पर भी सेठ जी एक नहीं सुनते, उन्होंने मज़दूरी घटाने का फैसला कर लिया है। हार कर वह मज़दूर साथियों से कहता है :

"वे मज़दूरी घटाने पर तुले हुए हैं, चाहे कोई काम करे, या न करे।......साथियो! प्रण कर लो कि किसी बाहरी आदमी को मिल में नहीं घुसने देंगे, चाहे वह अपने साथ फौज़ लेकर ही क्यों न आए। कुछ परवा नहीं, हमारे ऊपर लाठियाँ बरसें, गोलियाँ चलें।"

जब तक मज़दूरों पर लाठियाँ और गोलियाँ चलती हैं, कहानी ठीक ढंग से आगे बढ़ती है लेकिन जब मज़दूर इस अत्याचार का मुँह तोड़ जवाब देने के लिए प्रत्याक्रमण करते हैं, तो गोपीनाथ बीच में पड़ कर खुद घायल हो जाता है और कहानी यथार्थवाद को त्याग कर रहस्यवाद में खो जाती है। क्रान्ति से भयभीत आदर्शवादी हमेशा रहस्यवाद की शरण लेता है।

फिर जब प्रेमचन्द फ़िल्म में गए तो उन्होंने अपनी पहली फ़िल्म कहानी "मिल मज़दूर" नाम से लिखी

क्योंकि अब देश की जनता का मज़दूर समस्या की ओर अधिक से अधिक ध्यान आकर्षित होने लगा था। इस फ़िल्म में भी मिल-मालिकों के निर्दयतापूर्ण व्यवहार, मज़दूरों की दरिद्रता, लूट-खसोट और उसके कुपरिणामों को भलीभाँति दर्शाया गया। लेकिन इस सारी विषमता का एकमात्र हल मिल-मालिक और मज़दूर में समझौता बताया और इस फ़िल्म में एक समझौता कमेटी मौजूद थी।

अंग्रेज़ सरकार ने फ़िल्मों पर जो सेंसर बैठा रखा था, उसने इस फ़िल्म को भी दिखाने नहीं दिया। पंजाब में चूँकि कारखाने और मज़दूर बहुत ही कम थे, इसलिए वहाँ दिखाने की आज्ञा मिली थी। लेकिन बाद में वहाँ भी बन्द कर दिया।

प्रेमचन्द ने देखा कि वे जिस उद्देश्य से फ़िल्म में आए हैं वह पूरा नहीं होगा, इसलिए फिर बनारस लौट गए। वहाँ उन्होंने अपना सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'गोदान' जो अधूरा पड़ा था पूरा किया। इस उपन्यास में भी मिल मालिकों की लूट-खसोट, दमन और अत्याचार और उसके विरोध में मज़दूरों की हड़ताल का उल्लेख है।

चन्द्रप्रकाश खन्ना की शक्कर की मिल है। गोबर उसी में मज़दूरी करता था। प्रेमचन्द लिखते हैं :

"उधर गोबर के कारखाने में भी आये दिन एक न एक हँगामा उठता रहता था। अब की बजट में शक्कर पर ड्यूटी लग गई थी। मिल के मालिकों को मज़दूरी घटाने का अच्छा अवसर मिल गया। ड्यूटी से अगर पांच की हानि थी, तो मज़दूरी घटा देने से दस का लाभ था। इधर महीनों से इस मिल में भी यही मसला छिड़ा हुआ था। मज़दूरों का संघ हड़ताल करने को तैयार बैठा था। इधर मजूरी घटी और उधर हड़ताल हुई।'

मिस्टर खन्ना मज़दूरों की हड़ताल से बौखला उठते हैं : वे अपना वेतन और नफ़ा बनाए रखना चाहते हैं, बल्कि बेकारी का फ़ायदा उठा कर और ड्यूटी का बहाना करके उसे और बढ़ाना चाहते हैं। इसलिए मज़दूरों की हड़ताल को असफल बनाने के लिए मिस्टर मेहता से सलाह लेते हैं। लिखा है :

उनकी ओर देखकर मेहता ने कहा : "क्या यह ज़रूरी था कि ड्यूटी लग जाने से मज़दूरों का वेतन घटा दिया जाए? आपको सरकार से शिकायत करनी चाहिए थी। अगर सरकार ने नहीं सुनी, तो उसका दण्ड मज़दूरों को क्यों दिया जाए? क्या आपका विचार है कि मज़दूरों को इतनी मज़दूरी दी जाती है कि उसमें चौथाई कम कर देने से उन्हें कष्ट न होगा? आपके मज़दूर बिलों में रहते हैं...गंदे, बदबूदार बिलों में... जहाँ आप एक मिनट भी रह जाएँ तो आपको कै हो जाए। कपड़े जो वे पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोंछेंगे। खाना जो वे खाते हैं, आपका कुत्ता भी न खाएगा।"

मेहता की यह आवाज़ प्रेमचन्द की आवाज़ है। वे शोषण को समाप्त करके मज़दूरों की हालत को अच्छा बनाना चाहते थे। 'गोदान' में उनकी दशा को सुधारने के लिए वे समझौते और सुधारवाद का नुस्खा इस्तेमाल नहीं करते। लेकिन यही शोषित मज़दूर वर्ग भावी क्रांति का अग्रदूत है, यह बात वे देख नहीं पाए थे। गोर्की और प्रेमचन्द में यही अन्तर है। रूस में १९०५ की असफल क्रांति में सक्रिय भाग लेकर और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण करके गोर्की ने यह देख लिया था कि क्रांति अवश्य होगी और उसका नेतृत्व मज़दूर ही इस समाज का सबसे शोषित वर्ग है और उसी को क्रांति की सबसे अधिक आवश्यकता है। लेकिन प्रेमचन्द इस ऐतिहासिक सत्य को इसलिए देख नहीं पाए क्योंकि हमारे देश में उस समय मज़दूरों का नेतृत्व मूलतः सुधारवादी ढंग से हो रहा था। यह प्रेमचन्द की मानसिक परिधि थी। उन्होंने हमेशा उद्योगपतियों के ढोंग और लूट-खसोट का भांडा फोड़ किया, मज़दूरों से हमेशा सहानुभूति प्रकट की; लेकिन कुंठित दृष्टिकोण के कारण वे उनके ऐतिहासिक रोल को समझने में असमर्थ रहे। अब विचार और कला के दृष्टि से सुन्दर साहित्य निर्माण करने और प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने का अर्थ यह है कि हम मज़दूर वर्ग के इस ऐतिहासिक रोल को और देश की औद्योगीकरण पर निर्भर नई संस्कृति और नई वैज्ञानिक विचार धारा को समझें, तभी अंध विश्वास और साम्प्रदायिकता का नाश होगा, तभी नए हिन्दुस्तान में सैक्युलर स्टेट का प्रादुर्भाव होगा।

—हंसराज 'रहबर'

अकबर मंज़िल, उर्दू बाज़ार
दिल्ली

नए चीन का नया कहानी साहित्य

धरती से जूझने वाला आदमी अपेक्षातर लोहे और मशीन से जूझने वाले से अधिक भावुक और संवेदनशील होता है । चीन के लोग, पीली मिट्टी के आदमी भी अधिकतर धरती से ही सोना बनाते हैं इसलिए स्वभावतः ही उनकी कला पाश्चात्य कला की अपेक्षा अधिक हृदयहारी होती है; उसमें अपने आपको भुला देने का बल अधिक होता है ।

कहानी साहित्य अन्य देशों के साहित्य की तरह ही चीन में भी सबसे अधिक प्रिय और जीवन्त साहित्य रहा है। चीनी जन क्रान्ति के पूर्व कितने ही चीनी लेखकों ने जापानी साम्राज्यवादियों के अत्याचार और शोषण को वाणी देने का प्रयत्न किया था और इस प्रयत्न के साथ-साथ वहाँ के लेखकों ने बराबर चीन के नव जागरण को भी अपनी कहानी कला में समुचित स्थान दिया । इन लेखकों ने पुरानी सामन्तीय मान्यताओं, रूढ़ियों और तद् युगीन दकियानूसी कला-मूल्यों का तीव्र विरोध किया और ये सब नए प्रगतिशील मूल्यों की सृष्टि और प्रचार व्यस्त हो गए ।

इन प्रगतिशील लेखकों के समानान्तर में लेखकों का एक दूसरा वर्ग ऐसा भी था जो कला के म्रियमाण मूल्यों को अपनी रेशमी और रूमानी भाषा और झूठे भावों द्वारा लोगों को अफ़ीम खिलाया करता था और परियों के सुनहले देश की सैर कराता फिरता था । किन्तु जब क्रूर जापानी साम्राज्यवादियों ने सन् १९३२ में मंचूरिया पर आक्रमण किया तब वहाँ के भावुक और कल्पनाशील हृदय वेदना से आतंकित हो उठे । उसके नानकाई के खण्डहर उसे उद्वेलित करने लगे और उसे मालूम हुआ कि उसका देश उसकी सहस्रों वर्षों की पुरातन संस्कृति उसकी कला और साहित्य—उसकी सारी पुरातन थाती कितनी बुरी तरह से छीनी जा रही है ।

इन अप्रगतिशील और दकियानूसी विचारों का विरोध कर साहित्य में स्वस्थ्य जीवन मूल्यों का उन्मेष पहली बार किसी ने किया तो वह था वहाँ का महान् कहानीकार लूशिन ! जिसने चीन की जनता को गोर्की की तरह ही फ़ासिस्टों और साम्राज्यवादियों की चालाकियों और साज़िशों से आगाह किया । और सही पूछा जाए तो चीन के नए साहित्य का नवयुग इसी लेखक से समझना चाहिए । माओत्सेतुंग ने चीन के इस कलाकार के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है : "Lu-Shin's path is the path of the Chinese people's new culture."

लूशिन ने अपनी कहानियों में परम्परागत, रूढ़िबद्ध, काल्पनिक और वायवी पात्रों को हटा कर जीवित जनजीवन के पात्रों को अपनी कहानियों में प्रवेश दिया और वहाँ के साधारण वर्ग—किसान और मज़दूर वर्ग की मूक पीड़ा को कहानियों में बाँधने का प्रयत्न किया । अपनी एक अद्वितीय कलाकृति आहक्यू की सही कहानी में उन्होंने बताया कि नगरों और कस्बों में किस बुरी तरह से पश्चिम की झूठी संस्कृति छाई हुई है—आज के शहर किस तरह से झूठ और चालाकियों के केन्द्र बने हुए हैं—वे किस तरह गाँवके भोले और निरक्षर ग्रामवासियों पर अपनी नौकरशाही की धाक जमाते हैं ।

चीन की नई जनक्रान्ति के और नई सामाजिक व्यवस्था के बाद तो वहाँ के कहानी साहित्य में सर्वथा एक नए प्राणों का संचार हो गया और एक साथ कई कहानीकार जिन्होंने गहराई से जनता में घुल मिल कर उनसे अभिन्न बन कर काम किया था और अपने नए प्रगतिशील विचार और नव निर्माण की विस्तृत योजनाओं को कहानी में बाँधने लग गए । इन कहानीकारों में माओतुन, तिंगलिंग, चाउ-शु-ली, लिउ-पाय-यु, कोंगचो, आदि की कहानियाँ तो एक साथ वहाँ के बुद्धिजीवी और सर्वहारा वर्गों की प्रिय बन गई । इन समस्त लेखकों ने लूशिन की परम्परा को आगे बढ़ाने और उसे समृद्ध करने का यत्न किया ।

चीन में आज निर्माण वेला है वहाँ आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक निर्माण कार्य हो रहे हैं जिनमें कि वहाँ की कोटि कोटि जनता खुले हाथों श्रमदान कर रही है; इस नव निर्माण के सम्बन्ध में हज़ारों की तादाद में कहानियाँ, कविताएँ, नाटक और उपन्यास

लिखे जा रहे हैं। इन्हीं कहानियों में जिनमें एक ओर अपने देश के नवनिर्माण की भावनाएँ हिल्लोरें ले रही हैं वहाँ दूसरी ओर कितनी ही कहानियों ने साम्राज्यवादियों और विश्वशान्ति के दुश्मनों से होशियार रहने के लिए भी ऐलान किया है।

वहाँ की जनता नए निर्माण द्वारा एक परिवर्तन के दौर से गुज़र रही है और कलाकारों ने इस भावना को बहुत ही सहज ढंग से अभिचित्रित किया है।

लीना ने अपनी एक कहानी 'प्यार' में सहज ही बड़े ढंग से एकमात्र मि. चाओ के मुँह से इस नवजीवन की ओर संकेत करते हुए लिखा है : मैं आसपास की जनता से मिला हूँ और मैं सचमुच में यह विश्वास करने लग गया हूँ कि संसार बदल गया है।"

इन्हीं कहानियों में हेनफ़ेग की एक कहानी बहुत ही सुन्दर, प्रिय और सहज बन पड़ी है जो कि वहाँ की राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है। यह कहानी एक मशीन चलानेवाले की है। अपनी घायल अवस्था में भी उस मशीन मैन को इस बात की फ़िक्र रहती है कि कहीं उसका देश शत्रुओं के पंजों में न आ जाय? वह उसी अवस्था में आत्म मोह को दूर फेंक कर सक्रिय हो जाता है।

इस राष्ट्रीय विशेषता के साथ साथ हेनफ़ेग के कथा साहित्य की दूसरी विशेषता है पात्रों की यथार्थता। वह अपने पात्रों को कभी भी अलौकिक तथा किसी अपर दुनिया का पात्र नहीं बनाता और वह मनुष्य की शहज़ोरियों के साथ साथ उसकी कमज़ोरियों को भी नज़रन्दाज़ नहीं करता। उसका पात्र हिन-चिङ्ग साधारण सिपाही है और जनता के लाभ को ही वह सर्वोपरि मानता है; मनुष्य की समस्त कमज़ोरियों के चित्रण के साथ साथ जीवन का दुष्प्राप्य तत्व सहज ही कहानी को शक्ति और माँसलता से युक्त कर देता है।

चीनी साहित्य में वहाँ का आधुनिक लेखक च-एन-तेङ्ग की दो कहानियाँ "जहाँ जीवित ही दफ़ना दिए गए" और "जमाई" बहुत ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। च-एन-तेङ्ग मुक्ति सेना का एक साधारण सिपाही था जो मुक्ति सेना में भर्ती न होने के पूर्व न तो कोई खास लिखना ही जानता था और न उसे किसी प्रकार के साहित्य का ही ज्ञान था किन्तु पश्चात् चीनी जनता के जीवित सम्पर्क से उसकी प्रतिभा पल्लवित हो उठी और वह जन भाषा में मुहावरेदार और व्यंगमयी शैली द्वारा अपनी अनुभूति को—मुक्तियुद्ध के अनुभूत सत्य को वाणी देने लगा।

चाऊ-शी-ली ने भी उन तमाम दक़ियानूसी और प्रतिक्रियावादी विचारों की जो कि वहाँ की सामन्तीय ह्रासोन्मुखी संस्कृति के अवशेष अप्रगतिशीलता का उद्घाटन करके चीन के क्रांतिकारी नवनिर्माण की ओर लोगों का ध्यान केन्द्रित किया। अपनी 'मैरेज रजिस्टर्ड' नामक कहानी में उसने उन तमाम विवाह सम्बन्धी कानूनों और प्रथाओं का खोखलापन सिद्ध करते हुए बतलाया कि वे कानून और प्रथाएँ स्त्रियों के लिए कितने घातक और ख़तरनाक थे और आज के नए चीन के कानूनों ने किस तरह स्त्रियों को सामन्तीय दासता से निकाल कर उसे मुक्त विहगिनी बना दिया। कहानी का यही वस्तु विधान कु-यु ने भी अपनी एक कहानी 'विवाह तिथि' में लिया है। जिसमें दो पात्र अपने देश की सेवा सुश्रूषा में इतने व्यस्त हैं कि वे अपने विवाह की तिथि भी निश्चित नहीं कर पाते हैं।

इसी तरह चीन के नव-निर्माण पर यह ताओ और वेङ्ग-ली-यी की कहानियाँ भी अपना अपना महत्व रखती हैं और चीन की जनता को उसके देश के नवनिर्माण में श्रमदान देने के लिए आह्वान करती है। बहुत सी कहानियाँ ऐसी भी हैं जो चीन के जनजीवन से कुछ दूर सी हट गई हैं अतएव स्वभावतः ही उनमें उस शक्ति और माँसलता का अभाव मिलेगा जो हमें लू-शिन की कहानी 'प्यार' और आह क्यू की 'सही' कहानी में तथा चेन तेङ्ग की कहानी 'जहाँ जीवित दफ़नाए गए' में मिलती है। एङ्-मिंग की कहानी 'एकता' जो कि बुद्धिजीवियों और सर्वहारा के आपसी सम्बन्धों की समस्याओं को लेकर चली है, बहुत ही काल्पनिक और वायवी मालूम होती है—उसमें असामान्य और काल्पनिक पात्रों की विपुलता ने उसे चीनी जनजीवन से दूर कर दिया है।

चीन अपने निर्माण के दौर से गुज़र रहा है—सर्वहारा और बुद्धिजीवी एक-दूसरे के निकट आ रहे हैं और उनमें नए नए सम्बन्ध स्थापित हो रहे हैं। लीना ने अपनी एक कहानी 'प्यार' में कोरिया और चीनी जनता के एक दूसरे के सम्बन्धों का बहुत ही स्वस्थ ढंग से उद्घाटन किया है। ली-ना चीनी जनता के जीवन के निकट है। एतदर्थ उसके चीनी जनजीवन सम्बन्धी शब्दचित्र

बहुत ही मार्मिक बन पड़े हैं। उसकी एक कहानी जिसका प्रमुख पात्र फू एक बूढ़े किसान चाओ का लड़का है; वह शहर में काम करता है; उसका बूढ़ा बाप वात्सल्य की अनन्यता के कारण उसे अपने से दूर नहीं रखना चाहता है। वह स्वप्न देखता है कि जब वह कुछ पैसे बचा लेगा तब वह अपने लड़के का विवाह करेगा किन्तु फू को अब किसी गाँव में जाने की इच्छा नहीं रहती। उसका पिता अपने वात्सल्य रस से अभिभूत होकर शहर जाने का निश्चय करता है जहाँ उसका लड़का कारखाने में काम कर रहा था। किन्तु फिर उसके विचारों में आलोड़न-प्रत्यालोड़न होता है और वह अपने पुत्र की इस तत्परता पर गर्व करता है कि उसका पुत्र देश के नव-निर्माण में व्यस्त है। थोड़े दिनों के बाद चाउ को भी चीन की जनवादी सरकार ज़मीन दे देती है; अब वह राष्ट्र का हो जाता है और उसका वात्सल्य विशेष से सामान्य हो जाता है।

फू भी अन्य स्ययंसेवकों के साथ कोरिया जाने को तत्पर हो गया। उसका बूढ़ा बाप चाउ जिसे कि केवल फू का ही विश्वास और आश्रय था—फू को पहुँचाने आया; किन्तु जब वहाँ के मन्त्री ने कहा कि फू नहीं जा रहा है; चाउ स्तब्ध हो गया; उसके बूढ़े गालों की झुर्रियों में कुछ अधिक बुझापन आ गया। उसने अपने बेटे के लिए सेक्रेटरी से कोरिया जाने के लिए वकालत की। फू कोरिया गया। जाते समय उसके बूढ़े बाप चाउ के ये शब्द थे—"फू तुम्हें वहाँ पर 'चीनी जनता के सच्चे बेटे हो' इस बात का सबूत देना है।

इसके बाद उक्त कहानी का समग्र चित्रण एक वियोगमय शान्ति के लिए हुआ है—जो बहुत ही मार्मिक और हृदयहारी है। फू की आँखों के आँसू और बूढ़े की वेदना मिली मुस्कराहट चीन की जनशक्ति का विश्व-शान्ति की चाह का एक भव्य प्रतीक है। कथानक के साथ-साथ उक्त कहानी के शिल्प में भी वही शक्ति है।

इस तरह हम देखते हैं कि चीन का साहित्य सच्चे अर्थों में जनता का साहित्य है। उसमें विश्व शान्ति का प्रबल उद्घोष है और उसमें चीन के ही नहीं अपि तु विश्व के शोषितों और पीड़ितों के प्रति एक तीव्र संवेदना और हमदर्दी है।

'भोपाल समाचार'
भोपाल

—कृष्ण वल्लभ जोशी

दखनी कहावतें

ज़रे दीदम फ़ौलादे नरम्

नकटी बेटी ब्याही,
पूछ-पूछ के लाज लगाई।

कंगनों कलैयों मान नहीं, पीला सुतड़ा कहाँ बाँधूँ

पढ़े न लिखे, नाम मेरा मुहम्मद फ़ाजिल

जीते माता-पिता से जंगम जंगा
मरे पहुँचाए गंगा

मुँह देखी माया

हैदराबाद

—ललिता देवी

रंगों के मनोवैज्ञानिक प्रभाव

यह यथार्थ है कि मियां तानसेन अपने विभिन्न रागों से वस्तुओं में आकर्षण पैदा कर देते थे, उनके रागों से मनुष्य ही नहीं जड़ और चेतन तक प्रभावित हो जाते थे, भगवान् श्री कृष्ण की मोहिनी बाँसुरी को सुन कर जहाँ एक ओर गोपियों का हृदय हिल जाता था वहाँ वनचरों के झुण्ड भी खिंचे चले आते थे। यह तो हुई ख़ैर संगीत की बात जिसकी आवाज़ दूर तक पहुँच सकती है। किन्तु अन्य कलाएँ जैसे चित्रकला, शिल्पकला भी अपना प्रभाव अवश्य डालतीं हैं। बहुत खेद के साथ कहना पड़ता है कि जो लोग संगीत के स्वरों से तानसेन के बाद से आज तक उस स्वर्गीय तान को पकड़ने के प्रयत्न में लगे हैं, उसी प्रकार चित्रकला में रंगों के विषय में भी लोग क्यों नहीं खोज करते। जब कि गांव का एक अदना व्यक्ति भी यह अनुभव कर सकता है कि रंगों का बहुत अधिक प्रभाव मनुष्य के चेतन मन पर पड़ता है। सावन की हरी-भरी घास, हरा वातावरण अधिक ठंडक न देने पर भी कुछ थोड़ी ठंडक बढ़ा देती है। सावन का अन्धा यदि गर्मी में भी उस दृश्य की कल्पना कर ले तो पसीना सूख जाता है। रंगों के प्रभाव तो हम प्रकृति से ही अनुभव करते हैं। संध्या के समय में वर्षा के मौसम में सूर्य का प्रकाश कुछ इस प्रकार का होता है जब हमें सफेद रंग के बल्ब की रोशनी हरी प्रतीत होती है किन्तु उस प्रकाश का सबसे बड़ा प्रभाव मनुष्य वर्ग पर पड़ता है जब कि वह मनुष्य मन को शिथिल कर देती है और मनुष्य का मुख उदास हो जाता है। सफेद उदासी से भरे बादलों की बदली में हम उतने प्रफुल्लित नहीं होते जितना कि एक दम नीली घटाओं के आने पर। आख़िर ये सब प्रभाव रंगों द्वारा ही तो होते हैं तो फिर क्या कारण है जो आज के चित्रकार उस दिशा में प्रयत्न नहीं कर रहे हैं, संभव है किसी चित्र में प्रयुक्त रंगों से कमरा ठण्डा हो जाए, गरम हो जाए अथवा जिसके कक्ष में वह चित्र रहे वह हमेशा उदास रहे या प्रसन्न रहे।

प्राचीन चित्रकला के शास्त्रों में यह निर्देशित है कि कभी भी परिवार वाले घरों में चित्र नहीं बनाना चाहिए, इसका कारण उन विद्वानों ने चाहे जो समझा हो किन्तु मैं तो यह कहने को पूर्णतः सन्नद्ध हूँ कि इसका बस एक ही कारण है और वह है "रंगों" के मनोवैज्ञानिक प्रभाव। संभव है कोई चित्रकार उदासी से भरा वातावरण चित्रित करना चाहता है और घर में बैठ कर वह चित्र रचना करे, हो सकता है उन रंगों के मनोवैज्ञानिक प्रभाव परिवार के सदस्यों पर पड़े। मैंने इसी प्रकार का एक चित्र देखा था जिसका शीर्षक था "दीया बुझ गया" चित्र में एक बुझते दीए के धुएँ का चित्रण था और उसमें एक स्त्री आकृति बनी थी। उस चित्र को देख कर मैं ऊबने सा लगा और इसका कारण मुझे अनुभव हुआ कि यह अवश्य ही उस चित्र के रंगों का ही प्रभाव है। जो हो किन्तु इतना निश्चित है कि ये प्रभाव अवश्य पड़ते हैं। भारतीय चित्रकला में विरहिणी अथवा जलने वाली नायिका के वस्त्र प्रायः लाल होते हैं। लाल रंग यौवन का प्रतीक हैं, हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार श्री जयशंकर प्रसाद की नायिका हमेशा उगते सूर्य की लाली के समान अथवा लाल फूलों के समान या लाल वातावरण से घिरी होती है, प्रसिद्ध आसावरी रागिनी में अड़हुल के लाल फूल के समान वस्त्र पहने नायिका सांपों से खेलती प्रदर्शित की जाती है। अब प्रश्न उठ सकता है कि ये लाल रंग क्यों प्रयुक्त होते हैं, मनोविज्ञान के प्रयोगों द्वारा यह निश्चित हुआ है कि लाल रंग अधिक देखते रहने से मनुष्य की चित्तवृत्ति अपने काबू में नहीं रहती इसके अतिरिक्त यह हलचल, इन्द्रियोत्तेजन, लालच, कामोद्दीपक प्रभाव डालता है। इसके प्रभाव का अनुभव करने का सरल ढंग यह है कि वरमिलियन रंग से एक काग़ज़ पर चार इंच के घेरे में रंग भर दीजिए फिर एक पतला ब्रश लेकर उस पर फूल का डिज़ाइन बनाने का प्रयत्न कीजिए, केवल तीन चार ही मिनट में आपकी आँखें उस रंग पर उड़ती सी पड़ने लगेंगी, ऐसे स्थान पर चिनगारी उड़ती सी प्रतीत होगी।

हमारे देवताओं को हमेशा पीताम्बर पहनाया जाता है उनका शरीर नीला मान लिया गया है, नीला रंग शान्ति देनेवाला माना गया है। यदि पूर्ण रूप से

१६५४

नीले रंग का वैज्ञानिक अध्ययन कर उस रंग से चित्र में भगवान् का शरीर रंगा जाए तो यह निश्चित है कि उस चित्र के आगे बैठ कर पूजा करनेवाला मनुष्य अपने में शान्ति का अनुभव करेगा। हमारे देश के तिरंगे झण्डे के रंगों का भी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पण्डित नेहरू ने संसद् में झण्डे को प्रेषित करते समय कर किया था और उन्होंने उन रंगों के प्रभावों को बताया था।

प्राचीन भारतीय शैली के चित्रों में रंगों का प्रयोग ही तो है, उनके प्रयुक्त रंगों द्वारा हमारा सहज ज्ञान तत्काल यह अनुभव कर लेता है कि चित्रकार क्या प्रदर्शित करना चाहता है और दर्शक उन्ही रंगों द्वारा उत्पन्न वातावरण में खो जाता है। प्राचीन चित्रकारों ने रंगों के प्रयोग में कभी भी भूल नहीं की कि अशुभ स्थान पर शुभ रंगों का प्रयोग किया हो या शुभ स्थान पर अशुभ रंगों का, इन चित्रों में सारा वातावरण रंगों से खेलता-सा प्रतीत होता है।

आज के मनोवैज्ञानिकों ने चित्रकारों से अधिक रंगों का ज्ञान उपार्जित कर लिया है। आज का मनोवैज्ञानिक आपके वस्त्र के रंगों का चुनाव देख कर यह सरलता से बता देगा कि आपके विचार आपकी चाल-चलन स्वभाव किस प्रकार का है। महामना मालवीय के उज्वल वस्त्रों में उनका सहज मृदु स्वभाव तथा उनके साफ़ हृदय का पता सहज ही लग जाता था। गौतम बुद्ध के पीत वस्त्रों में ज्योति का आभास होता है। प्रसिद्ध चित्रकार श्री रामचन्द्र शुक्ल ने पीले रंग के प्रभाव के बारे में अपनी पुस्तक 'शिल्प लोक' में लिखा है : "पीत रंग ज्योति का द्योतक है, इसके देखने से मन में ज्ञान के प्रकाश का बोध होता है। इसका प्रभाव सीधे मस्तिष्क पर पड़ता है और भावों को प्रेरित करता है तथा पारलौकिकता की ओर मन को ले जाता है......। महात्मा बुद्ध ने रंगों की पुस्तक का अध्ययन न किया होगा वरन् सहज मनोवैज्ञानिक प्रभाव ने ही उन्हें इसके लिए प्रेरित किया होगा। रंगों के प्रभावों का हम दैनिक जीवन में भी अनुभव करते हैं, भैंसे का लाल या काला रंग देख कर बिगड़ उठना, मोर का नीली घटाओं को देख कर उसके स्फूर्तिदायक प्रभाव से नाच उठना, भौंरे का फूलों पर बैठना इसके अतिरिक्त हम यह भी अनुभव करते हैं कि नीले, बसन्ती या सफ़ेद रंगों के वस्त्र पहननेवाली स्त्री या पुरुष के प्रति मन अधिक आकर्षित होता है। यह भी रंगों का ही प्रभाव है जो हम कभी कभी कहते हैं कि गोरों के लिए हरे, नीले और काले रंगों का चयन और सांवली रंगों के लिए सफ़ेद या हलके रंगों का चुनाव। गर्मी के दिनों में लोग अपने घरों में हरे तथा नीले बल्बों का अधिक प्रयोग करते हैं और कभी-कभी हमने सफ़ेद बल्ब के लिए लोगों को यह कहते भी सुना होगा कि : "भाई, ये बत्ती बुझा दो गर्मी और अधिक लग रही है" वास्तव में बल्ब उतनी अधिक गर्मी नहीं कर रहा है जितना कि उसका प्रकाश मानव मन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाल रहा है। इस प्रकार की बहुत-सी घटनाओं में हम रंगों के बारे में अपने दैनिक जीवन में अनुभव करते हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए पत्रों में एक समाचार निकला था जिसमें कहा गया था कि अमेरीका में एक ऐसे रंग का आविष्कार किया गया है कि जिसको कमरे में रंग देने से कमरा ठण्डा प्रतीत होता है। तो वास्तव में यह रंग की विशेषता है जिसका प्रभाव मानस मस्तिष्क तथा मन पर पड़ता है और व्यक्ति अपने में ठण्डक का अनुभव करता है। अजन्ता के नग्न चित्रों को देख कर दर्शक के मन में कभी कुत्सित भावना नहीं उठती क्योंकि चित्रकार का मस्तिष्क भक्ति तथा धर्म में इतना डूबा था कि उसकी तूलिका उन रंगों का प्रयोग न कर सकी जो मनुष्य को उत्तेजित कर दें। किन्तु यदि आज के व्यावसायिक चित्रकार उस प्रकार चित्र बनाएँ तो दर्शक कह देता है कितना सुन्दर है और उसकी भावना गन्दी हो जाती है। इन्हीं कारणों से आज चित्रकला में दर्शक सौन्दर्य ढूँढ़ता है। रंगों के बेढंगे चुनाव के कारण दर्शक शारीरिक बनावट की ही ओर अधिक ध्यान देता है और वह हमेशा चेहरे की ही खोज करता है। इस प्रकार हमारी भारतीय कला का ह्रास होता जा रहा है। वास्तव में न तो चित्र में शारीरिक सौन्दर्य द्वारा प्रभाव डालने की आवश्यकता है न सुन्दर चेहरे बनाने की। हमें तो रंग द्वारा दर्शक के हृदय को आन्दोलित करना है, उनके भावों तथा विचारों को बदलना है। आज के गिरते समाज को उठाने के लिए हमारे चित्रकार को चित्रकला के लिए मनोविज्ञान की भी सहायता लेनी चाहिए तभी हमारी लोक शैली की परम्परा आगे बढ़ सकेगी।

रंगों के ऊपर खोज करने की आवश्यकता आज के चित्रकारों के लिए आवश्यक है। अवनीन्द्रनाथ

ठाकुर, नन्दलाल बोस ने रंगों के विभिन्न प्रयोग किए, उसके पश्चात् इस दिशा में कोई कार्य न हो सका। इस सम्बन्ध में चित्रकार राचशु का विचार है कि रंगों के अध्ययन के लिए एक प्रयोगशाला का निर्माण किया जाए, जिनमें वैज्ञानिक ढंग से रंगों के अनुपात, उनके प्रभाव, मिश्रण इत्यादि पर बृहत् खोज की जाए, वास्तव में इसी प्रकार की किसी प्रयोगशाला की स्थापना एक चित्रकार द्वारा हो तो संसार के इतिहास में तथा चित्रकला के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण कदम होगा और एक बार फिर भारतीय चित्रकला अजन्ता के रंगों की पुनरावृत्ति कर सकेगी जो कि आज तक वज्रलेप के समान चमकता हुआ आज के वैज्ञानिक संसार पर व्यंग्य की हंसी हंस रहा है और गर्व के साथ भारतीय तथा पश्चिमी देशों को चुनौती दे रहा है।

आज के चित्रकारों को व्यर्थ के सौन्दर्य के पीछे न पड़ कर कोई ठोस कदम उठाना चाहिए। उन्हें रंगों का अध्ययन करना चाहिए जो कि दर्शक के थके हृदय को शान्ति दे सकें, इस उजड़ते संसार को एक बार फिर अपनी शक्ति से शान्ति की ओर खींच सकें। आज संसार में शान्ति के सारे प्रयत्न निष्फल हो चुके हैं, अब है केवल कला, और कला में रंगों के मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा ही सफलता तथा शन्ति हो सकती है।

४३, उत्तर वेनिया,
बनारस

—कुमार शील चतुर्वेदी

तिरुवल्लुवर : विश्व मानव का महान् कवि

तमिल में एक छन्द है जिसे कुरल कहा जाता है। यह बहुत छोटा होता है। इसमें दो पंक्तियाँ होती हैं और अन्त में तुक रहती है। तमिल साहित्य में इस प्रकार के छन्द की सबसे उत्तम रचना तिरुवल्लुवर की समझी जाता है। उसने १३०० कुरल लिखे हैं ये देखने में छोटे हैं परन्तु इनमें जिन विचारों को अभिव्यक्त किया गया है वे बहुत गहरे हैं। तमिल अकादमी के विद्वानों ने इन कुरलों की बहुत प्रशंसा की है। एक विद्वान् ने लिखा है कि तिरुवल्लुवर के कुरल राई के समान हैं परन्तु उनमें सात समुद्रों को भर दिया गया है। एक अन्य आलोचक लिखते हैं कि जिस प्रकार विष्णु ने वामन अवतार लेकर पृथ्वी और आकाश को अपने छोटे पैरों से माप लिया था उसी प्रकार तिरुवल्लुवर ने मानव-विचार के समस्त क्षेत्र को अपने लघु कुलरों में माप लिया है। जैनी, बौद्ध, शैव और वैष्णव सभी उनके कुरलों का आदर करते हैं तिरुवल्लुवर के कुरल को "तामिल वेद कहा जाता है। उनकी कृति को "तिरुकूल" कहा जाता है। कई ईसाई पादरियों ने इनके कुरलों का यूरोपीय भाषा में अनुवाद किया। है। सबसे पूर्व फ़ादर बेसची ने इनका अनुवाद लैटिन में किया; लैटिन से इसका अनुवाद डा. ग्रोल ने जर्मन भाषा में किया और फिर डा. पोप ने इनका अनुवाद अंग्रेजी में किया। डा. पोप इनके विषय में अपनी एक कविता में लिखते हैं :

"सब वस्तुएँ नश्वर हैं
परन्तु तेरी कीर्ति अमर है
तू विश्व मानव का महान् कवि है।"

संस्कृत-साहित्य में पदार्थ प्रतिपादन की पद्धतियाँ

हमारे दर्शन विज्ञान आदि शास्त्रों में प्रमेय पदार्थों का प्रतिपादन जिस रूप से किया गया है, उसके विशदीकरण के लिए यह निबन्ध लिखा जा रहा है। इस प्रसंग में यह जान लेना चाहिए कि उपलब्ध संस्कृत वाङ्मय के सभी ग्रन्थ महाभारत काल से अधिक प्राचीन नहीं है, और जो ग्रन्थ प्राक् महाभारत कालीन हैं, कालानुसार उन ग्रन्थों के पाटों में निरन्तर संस्कार किया गया है, सुतरां आज हम उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर यह नहीं कह सकते हैं कि पृथु वैन्य, पुरूरवा, मनु, रामचन्द्र आदि के काल में प्रमेय पदार्थ का प्रतिपादन किस रूप से किया जाता था। किंच प्राचीनतम काल की ग्रन्थरचना रीति (चाहे वह लिखित रूप हो या श्रुतरूप हो) परवर्त्तिकालिक रीति से विलक्षण थी, अर्थात् प्राचीनतम काल में ग्रन्थ कलेवर विपुल होता था, और बाद में स्मृति तथा मेधा के क्रमिक ह्रास के कारण ग्रन्थरचना में संक्षेप किया गया था, जिसके अवश्यंभावी फल स्वरूप प्रमेय प्रतिपादन की पद्धति में भी अल्प या अधिक मात्रा में परिवर्तन या परिवर्धन अवश्यमेव किया गया होगा। अतः इस निबन्ध में जो पद्धति विचारित होगी, वह महाभारत काल से अर्वाचीन काल की पद्धति है—ऐसा समझना ही न्यायसंगत होगा।

निबन्ध में संक्षिप्तता लाने के लिए उदाहरण-बाहुल्य नहीं किया गया है, यद्यपि यह समझना चाहिए कि एक शास्त्र में जो सत्य है, वह उसके समान-तन्त्र में पूर्णतः लागू हो सकता है, यदि विपरीत कारण न हो।

(क) शास्त्रीय प्रतिपादन-रीति मूलतः तीन भाग में विभाजित हो सकती है. जैसा कहा गया है 'शास्त्रमपि उपदेश—व्याख्यान—विचार—रूपेण त्रिविधम्'[1] (दर्शनोदय) शास्त्रकारों की शास्त्रारंभ प्रतिज्ञा ही इस सिद्धान्त को ज्ञापित करतीहै। क्योंकि शास्त्रों में अनुशासन व्याख्या (अथातो दर्शपूर्णमासौ व्याख्यास्यामः) तथा जिज्ञासा (अथातो धर्मजिज्ञासा) शब्द का व्यवहार है, और पूरे शास्त्र की रचना पद्धति भी शास्त्रारंभ-प्रतिज्ञा के अनुसार नियमित है।

प्रतिपादन पद्धति का प्रकार भेद मूलतः श्रोतृवर्ग अर्थात् शिष्यों के कारण होता है, जैसा प्रत्येक पद्धति के विवरण में दिखाया गया है। हम देखते हैं कि जिस पद्धति से हम स्वयं किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करते हैं, दूसरों को उस ज्ञान को देने के समय कुछ भिन्न पद्धति का आश्रयण करना पड़ता है। इस तत्व के अनुसार ही शास्त्र में अनुमान के दो भेद किए गए हैं. स्वार्थानुमान तथा परार्थानुमान। जिस पद्धति से कोई व्यक्ति अपने लिए अनुमान करता है, वह पद्धति पर को समझाने के समय (=प्रतिपादन काल में) बदल जाती है। अपने लिए जो अनुमान किया जाता है (स्वार्थानुमान) वह प्रतिपादन-पद्धति में गिना नहीं जा सकता क्योंकि प्रतिपादन पर के लिए ही होता है। वस्तुतः ज्ञानात्मक स्वार्थानुमान प्रतिपादन के समय (=परार्थानुमान काल में) शब्दात्मक हो जाता है (न्यायबिन्दुटीका), और वस्तुतः पञ्चावयव अनुमान पदार्थानुमान में ही सार्थक होता है, स्वार्थानुमान तो तीन अवयव से ही पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतिपादन के वैशिष्ट्य के कारण ही अवयव—अनुमान पञ्चावयव में परिणित होता है—प्रतिपादन पद्धति की यह सर्वाधिक विशिष्टता है।

(ख) आर्षशास्त्र में पदार्थों का जो परिचयात्मक उपदेश है, उसके दो मौलिक भेद भी किए जा सकते हैं (१) स्वरूप-प्रतिपत्ति के लिए, तथा (२) किसी कार्य विशेष के लिए। वस्तुसत्ता का यथावत् ज्ञान करना प्रथम पद्धति का स्वरूप है, पर द्वितीय पद्धति में किसी कार्य सिद्धि के अनुकूल विवरण दिया जाता है, स्वरूपानुरूप नहीं। संस्कृत भाषा का वर्ण संबन्धी उपदेश इसका एक प्रमुख उदाहरण है। आचार्य कैयट ने कहा है : "प्रयोजनार्थो हि वर्णानामुपदेशो न स्वरूप प्रत्तिपत्त्यर्थः"[2] अर्थात् पाणिनीय वर्णोपदेश किसी विशेष प्रकार के कार्य के लिए ही है वर्ण स्वरूप ज्ञान के लिए नहीं। यदि सूक्ष्म विचार किया जाय, तो ज्ञात होगा कि इन दो प्रकार के उपदेशों (प्रतिपादन पद्धति) में भिन्नता है। जब किसी इष्ट कार्य के लिए किसी

---

[1] अथ योगानुशासनम्—१।१ योगसूत्र

[2] प्रदीप, प्रत्याहारसूत्र ५

विषय का उपदेश किया जाता है, तो कार्यों की प्रकृति के अनुसार उपदेश में विलक्षणता होगी, अर्थात् यह उपदेश उपदिश्यमान वस्तु सत्ता की अपेक्षा उपदेशक की रुचि के अधिक सन्निकट होगा, पर स्वरूप प्रतिपत्त्यर्थक उपदेश एक रूप ही होगा, क्योंकि ज्ञाता के भेद के अनुसार ज्ञेय पदार्थ में भिन्नता नहीं होती।

ऋषियों की प्रतिपादन पद्धति के विचारकों को बार बार इसका विचार करना चाहिए कि पदार्थ गणना संबन्धी उपदेश कार्यार्थ है या स्वरूपज्ञानार्थ है। यदि कार्यार्थ है तो वह सापेक्ष है, कार्य प्रकृति के अनुसार है, सुतरां वह अमौलिक है और अपूर्ण भी, क्योंकि जिस कार्य के लिए ऐसा उपदेश किया गया है उस कार्य के परिवर्तन आदि होने से उस उपदेश में भी परिवर्तन करना अनिवार्य होगा, और इस परिस्थिति में यदि परिवर्तन नहीं किया जाय, तो असंगत आचरण होगा (जो श्रद्धाजाड्य होने के कारण निन्दनीय हों), पर स्वरूप प्रतिपत्त्यर्थक उपदेश परिवर्तित नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञात परिणाम ज्ञेय परिणाम का निर्धारक नहीं हो सकता।

यह शैली धर्मशास्त्र में भी चरितार्थ होती है। धर्माचरण के कुछ नियम हैं, जो किसी अवस्था विशेष के प्रति निर्भरशील हैं, और कुछ हैं जो निरपेक्ष धर्म को लक्ष्य कर प्रवर्तित होते हैं। प्रथम प्रकार के उपदेशों का परिवर्तन आदि हो सकता है, पर द्वितीय प्रकार का नहीं।

'कार्यार्थ' तथा 'स्वरूप निर्देशक' प्रतिपादन रीति के नामान्तर भी हैं। ऋक् तन्त्र में कहा गया है 'एवम् उत्पन्नानां वर्णानाम् उपदेशोद्देशा, उद्देशे संज्ञानकरणम् उपदेशे प्रत्याहारः सिद्धः।' यहाँ कार्यार्थ प्रतिपादन को उपदेश कहा गया है। अन्यत्र कैयट ने कहा है : स्वरूप ज्ञान के लिए अपूर्व उच्चारण का नाम उपदेश है'[3] और नागेश ने कहा है गुणों के साथ बोध करना उपदेश है (तथैव)

(ग) विषय प्रतिपादन पद्धति का अन्य प्रकार का उल्लेख आचार्य वात्स्यायन ने किया है—'त्रिविधा चास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिः, उद्देश लक्षण परीक्षा च,'[4] अर्थात् न्यायशास्त्र से पदार्थों का उद्देश, लक्षण, तथा परीक्षा की जाती है। प्रमेयों का नाम निर्देश उद्देश, अन्य व्यावृत्ति पूर्वक स्वरूप दिखाना लक्षण, तथा संशय-निराकरणात्मक विचार परीक्षा है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने से पता चलेगा कि किसी भी शास्त्र का व्यापार इन तीनों का अतिक्रमण नहीं कर सकता है। कभी कभी इन तीनों के साथ कुछ अवान्तर विभाग भी जोड़ दिया जाता है, पर वह अमौलिक प्रतीत होता है। कातन्त्र व्याख्या में कविराज ने कहा है। 'उद्देशोऽथ विभागश्च लक्षणा च त्रिधा मतम् परीक्षा च चतुर्धेति केचित् केचित् प्रचक्षते।'[5] यहाँ 'विभाग' भी प्रतिपादन पद्धति में गणित हुआ है, पर विभाग कोई मौलिक पदार्थ नहीं है, वह उद्दिष्ट पदार्थों का ही मानसिक संनिवेश विशेष है' अतः वात्स्यायन ने उसका उल्लेख नहीं किया।[6]

(घ) शान्ति पर्व में शास्त्र रचना सम्बन्धी एक गम्भीरार्थक वचन मिलता है। यथा : "उत्सर्गेणापवादेन ऋषिभिः कपिलादिभिः, अध्यात्म चिन्तामाश्रित्य शास्त्राण्युक्तानि भारत"[7] अर्थात् ऋषियों ने अध्यात्म चिन्ता का आश्रय कर उत्सर्ग-अपवाद से शास्त्रों की रचना की है।

उत्सर्ग=वह नियम जो अधिक स्थल पर लागू होता है, और अपवाद=जहाँ औत्सर्गिक नियम का बाधक। तत्वचिन्तात्मक प्रत्येक शास्त्र में उत्सर्गापवाद रीति का ही बहुत व्यवहार है। इन दोनों प्रकार के नियमों के परस्पर सम्बन्ध के विषय में मीमांसादि शास्त्र में अनेक तथ्य हैं, जो तत् तत् ग्रन्थ में ही देखना चाहिए।

(ङ) शास्त्र व्यवहार्य पदार्थों के प्रतिपादन में प्राचीन आचार्यों की दो प्रसिद्ध रीति का उल्लेख इस प्रकार मिलता है : "ऋषयोऽथुपदेशस्य नान्तं यान्ति पृथक्त्वशः, लक्षणेन तु सिद्धानाम् अन्तं यान्ति विपश्चितः"[8] में उद्धृत अर्थात् 'एक-एक पदार्थ का पृथक्-पृथक् कर उपदेश करने से उसका अन्त नहीं हो सकता है, अतः ऋषियों ने लक्षणों

---

३ ६-१-४५ ४ न्यायभाष्य ५ प्रतिपादन योग्य विभाजनीय पदार्थों का नाम से कथन 'उद्देश'; संज्ञा से विभाजन करना 'विभाग'; अन्य-व्यावृत्ति पूर्वक स्वरूप दिखाना 'लक्षण'; तथा संशय में स्वरूप का निर्णय करना 'परीक्षा'। ६ निरुक्त व्याख्या में प्रतिपादन पद्धति के प्रकार भेद के विषय में दुर्गाचार्य ने कहा है : "इह शास्त्रे व्याख्या शैलीऽयं द्रष्टव्या उद्देशः, निर्देशः, प्रतिनिर्देश इति, तत्र उद्देशः सूत्रस्थानीयः,XXनिर्देशो वृत्तिस्थानीय :,XXप्रति निर्देशो वार्त्तिकस्थानीयः" (१-१) दुर्ग के उदाहरणों में इन तीनों पद्धतियों का स्वरूप इस प्रकार होता है, विषय का उल्लेख (उद्देश); विषय का विभागीकरण (निर्देश); प्रत्येक विभाग के लक्षणादि (प्रतिनिर्देश) ७ ३५०-६ ८ शाबर भाष्य २-१-७

से उपदेश किया'। इस मत में युक्ति यह है कि पदार्थ यदि एक-एक कर गणित हो, तो उसकी संख्या अनन्त होगी, और अनन्त कोई 'समग्र' पदार्थ नहीं है कि किसी रूप से उसका पूर्ण ज्ञान हो जाए, अतः "पृथक्-त्वशः उपदेश" वस्तुतः कार्यकर नहीं है, इसलिए गणनात्मक प्रतिपादन की अपेक्षा 'लक्षणात्मक उपदेश' संक्षिप्त तथा अधिक कार्यकर है।

लक्षणात्मक प्रतिपादन केवल दर्शन में ही नहीं, अन्य शास्त्र में भी इसकी उपयोगिता प्रचुर है। पातञ्जलि ने कहा है कि प्रत्येक शब्द की पृथक् पृथक् उपदेशात्मक पद्धति प्राचीन काल में थी, पर उससे शब्दविद्या पूर्ण रूप से अधिगत नहीं होती थी, अतः बाद में लक्षणात्मक उपदेशों का प्रवर्तन किया गया। लक्षणात्मक उपदेश= सामान्य तथा विशेष नियमों का समुच्चय। (पस्पशाह्निक) पृथक् पृथक् गणनात्मक उपदेश का नाम 'प्रतिपद पाठ-रीति' था—यह भी भाष्य सन्दर्भ से विज्ञात होता है।

वस्तुतः अति प्राचीन काल से ही पदार्थ-प्रति-पादन पद्धति (शास्त्र प्रणयन) की दो धाराएँ मिलती हैं। एक—समास पद्धति, तथा दूसरी—व्यास पद्धति। दुर्गाचार्य ने भी कहा है: "समास—विस्तराभ्याँ हि शास्त्राणि प्रणीयन्ते"[९] 'और संक्षेप विस्तार से पदार्थ प्रतिपादन करना एक शिक्षणीय विद्या की तरह हो गया था, और इसीलिए महाभारत में कहा गया है: "समास—विस्तर—विदां न तेषां वेत्सि निश्चयम्"[१०] किस प्रकार से सिद्धान्तों का विस्तार किया जाता था, यह एक महत्वपूर्ण आलोचनीय विषय है, क्योंकि विस्तार या उपबृंहण करना इच्छामात्र से नहीं होता था, वह एक धार्मिक कार्य था, जिसके लिए नियम उपनियम थे "धर्मेणाधिगतो येषां वेद सपरिबृंहणः—"[११] प्रतिपादन पद्धति के इस विशिष्ट अंश का परिचय मैंने अन्य लेख में किया है, अप्रासंगिक होने के कारण यहाँ पुनः उन नियमों का उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

ज्योतिष आदि शास्त्र में पदार्थ विचार लौकिक ज्ञान शक्ति से ही किया जाता है, समाधि आदि के बल पर नहीं। उनमें हम देखते हैं कि वहाँ साधारण नियम (वर्तमान गणित विद्या के अनुसार Generalia tion) ही कहा गया है, परन्तु उन नियमों की सिद्धि के लिए जिस विचार पद्धति की आवश्यकता थी, उसका सर्वथा अभाव है (और यदि कहीं भी उस विचार पद्धति का उल्लेख भी है, तो वह आंशिक या प्रासंगिक है)। इन ग्रन्थों में हम सूक्ष्म वैज्ञानिक गणना श्लोकाकार में अभ्रान्त रूप से पाते हैं, पर कहीं भी विचार प्रक्रिया (Method of Procedure) का दर्शन नहीं मिलता।

यह पद्धति केवल ज्योतिष में ही नहीं, अन्य शास्त्र में भी दीख पड़ती है। आयुर्वेद में ऐसे अनेक तथ्यों का उल्लेख है, जिसका प्रमाणीकरण उन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। सांख्य शास्त्र में जितने पदार्थ माने गए हैं, उन पदार्थों की सिद्धि के लिए जो युक्ति प्रणाली थी उन सबों का विशद उल्लेख नहीं मिलता; कहीं कहीं आभासमात्र मिलता है, पर वर्तमान कालीन ज्यामिति आदि विद्या में स्वीकृत सिद्धान्तों के लिए जिस प्रकार उपपत्ति मिलती है, ज्योतिष आदि शास्त्रों में उस प्रकार की पद्धति उपलब्ध नहीं होती। यहाँ यह जान लेना चाहिए कि उन उपपत्ति अंशों के अनुल्लेख के कारण ही कुछ पाश्चात्य गवेषक कहते हैं कि भारतीय प्राचीन ज्योतिष सिद्धान्तों का मूल देशान्तर की ज्योतिष-विद्या रही होगी, और भारतीय आचार्यों ने वहाँ से केवल सिद्धान्त-अंश को ले लिया है, और अप्रयोजन समझ कर प्रमाण अंश को छोड़ दिया है, और यही कारण है कि ज्योतिष शास्त्र ग्रन्थ में केवल सिद्धांत ही मिलते हैं, उपपत्ति अंश नहीं मिलते।

इसके उत्तर में हम लोगों का वक्तव्य है कि उपपत्ति-शून्य प्रमेयमात्रोल्लेख प्राचीन आचार्यों की एक प्रसिद्ध पद्धति है, जो सहेतुक है। यह कहना मूर्खता है कि हमारे आचार्य उपपत्ति न जान कर केवल प्रमेय का ही उपदेश करते थे। (अन्य निबन्ध में इसको प्रमाणित किया गया है) वस्तुतः प्रमेय संबन्धी उपपत्ति-अंश गुरुशिष्यानुक्रम से मौखिक रूप से चला आता था, और ग्रन्थ में लाघव करने के लिए आचार्यगण उपपत्ति-अंश को लिखते नहीं थे। किंच किसी प्रमेय की उपपत्ति कई प्रकारों से की जा सकती है, अतः प्रमेय स्वरूप की तरह उपपत्ति का स्वरूप निश्चित नहीं है शास्त्र में प्रमेय अंश ही मुख्य होता है, और मेधावी व्यक्ति उपपत्तिओं का ऊहन भी कर सकता है, सुतरां शास्त्र में

---

[९] १-२ निरुक्त टीका [१०] शान्ति १९ अ. [११] मनु १२-१०९

प्रमेय अंश ही दिया गया है।

वस्तुतः हमारे दर्शन ग्रन्थों में अनेक विषयों की सिद्धि के लिए युक्ति का न्यूनमात्र उल्लेख भी नहीं मिलता। युक्तिप्रणाली पूर्ण रूप से ग्रन्थस्थ पदार्थ प्रतिपादन रीति में कदाचित् ही उपलब्ध होती है, इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि प्राचीनतम काल में आगम-प्रमाण से पदार्थ ज्ञान कराया जाता था। (विशेष कर दर्शन में), और आगम प्रमाण में युक्ति की आवश्यकता नहीं रह जाती, इसी लिए पतञ्जलि जब चित्तरोध के प्रतिपादन में कहते हैं "अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध :"[१३] तब वह अपने प्रतिपाद्य विषय के लिए युक्ति नहीं देते। क्योंकि उनको योगविद्या आगम-प्रमाण से मिली थी। एक बात और जाननी चाहिए। हमें प्रतीत होता है कि प्राचीनतम आर्ष ग्रन्थों में प्रमेय पदार्थों का उल्लेख करना ही पर्याप्त समझा जाता है, क्योंकि प्रमेय ही प्रधान अर्थ होता है प्रमाण नहीं, प्रमाण तो बदल सकते हैं, पर प्रमेय बदल नहीं सकते और प्रमाण के बिना भी यदि प्रमेय ज्ञान हो जाय, तो भी प्रमाता को कुछ हानि नहीं है, शायद इसी लिए प्राचीन आचार्य प्रमाणों का उल्लेख करने से विरत रहते थे पर प्रमाणों का ज्ञान नहीं था, ऐसा नहीं कहा जा सकता, जैसा बाद में दिखाया गया है।

हमारे शास्त्र में सामान्य रूप से उपदेश दिया गया है, अर्थात् अनेक विशेष तथ्यों का उल्लेख नहीं किया गया है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक शास्त्र का जो विशद और पूर्णतम मत था, उसका सामान्य मात्र ही ग्रन्थ में सुरक्षित रखा गया, अधिक अंश लिखित रूप में है। और यह प्राचार्यों की प्रतिपादन शैली की एक विशिष्ट पद्धति है। प्रमेय पदार्थों का जो यथार्थ स्वरूप है, उसका सामान्य वर्णन मात्र हमारे दार्शनिक ग्रन्थ में मिलता है, विशेष विवरण नहीं। स्वयं भर्तृहरि ने भी इस मत का उल्लेख किया है—"सामान्येनोपदेशश्च शास्त्रे लध्वर्थमाश्रितः"[१४]

दर्शनशास्त्रों से सामान्य उपदेश के कुछ निदर्शन उपस्थित किए जा रहे हैं :

सांख्य में जो भूत तन्मात्र आदि जड़ बाह्य पदार्थों का उपदेश हैं, उन सबों की आकृति, परिमाण, गतिवेग आदि के विषय में कुछ भी विवरण दिया नहीं गया। तन्मात्र आदि के विषय में आजकल सर्वत्र विपर्यस्त धारणा दीख पड़ती है, पर यदि इसकी आकृति आदि के विषय का भी उपदेश रहता, तो इन पदार्थों के स्वरूप के विषय में कुछ भी विप्रतिपत्ति होने की संभावना नहीं रहती। शास्त्रों में जो 'पदार्थ-परीक्षा' (संशय-निराकरण=परीक्षा) है, वह भी आध्यात्मिक पदार्थों का विशेष ज्ञान नहीं देती, हाँ लौकिक पदार्थों के विषय में कुछ विशेष ज्ञान अवश्य देती है।

दर्शनशास्त्र का उपदेश सामान्य क्यों है, इसके लिए निम्नोक्त युक्ति द्रष्टव्य है। दर्शन शास्त्र की पद्धति अनुमान प्रमाण से पदार्थस्वरूप का निश्चय कराती है, और अनुमान नियमतः सामान्य विषयक होता है (सामान्यमात्रे कृतोपक्षयम् अनुमानं न विशेषप्रतिपत्तौ समर्थम्—[१५] अतः दर्शनशास्त्र में विशेष उपदेश की आशा करना व्यर्थ है।

सामान्योपदेश के स्वरूप में निम्नोक्त बातें अवधातव्य हैं। दर्शनादि विचारात्मक शास्त्र में एक चिन्ता धारा मात्र दी जाती है, परन्तु उस चिन्ता धारा से जितने प्रमेय प्रमित हो सकते हैं, उन सबों का उल्लेख नहीं किया जाता, न ही उल्लिखित पदार्थों का पूर्ण विवरण ही दिया जाता है और वस्तुतः यह दोषावह नहीं है, क्योंकि ज्यामिति-शास्त्र में जैसे साधारण निर्वाचन और प्रमाण का एकांश पाने से कोई भी व्यक्ति बाक़ी अंश का ऊहन कर सकता है, दर्शन में भी वही प्रक्रिया चरितार्थ होती है। एक उदाहरण लीजिए—सांख्य दर्शन की चिन्ताधारा का स्वरूप 'सत्कार्यवाद' है, और वह प्रकृति-पुरुष रूप दो मौलिक पदार्थों को मानता है; अब सत्कार्यवाद की युक्ति प्रणाली से प्रकृति—पुरुष से जितने पदार्थ सिद्ध होंगे! वे सब सांख्य-संमत हैं; चाहे सांख्य के किसी भी ग्रन्थ में उसका उल्लेख हो या न हो। किंच सांख्य के किसी भी ग्रन्थ में यदि ऐसे किसी पदार्थ का उल्लेख हो, जो 'सत्कार्यवाद' की युक्ति से सिद्ध नहीं होता है, तो वह सांख्यीय पदार्थ नहीं है यह भी सिद्ध हुआ। इसी दृष्टि से विज्ञान भिक्षु ने कहा है कि कालार्कभक्षित सांख्य शास्त्र की पूर्ति मैं करूंगा[१६] यही कारण है कि किसी भी दर्शन के ग्रन्थों में पदार्थ गणना

---

[१३] योग सूत्र भाष्य १–७ द्रष्टव्य १–१२ [१४] वाक्यपदीय २।१७८ [१५] योग भाष्य १-२५ [१६] (कालार्कभक्षित सांख्यशास्त्रं ज्ञानसुधाकरम् XXX५५ पूरयिष्ये वचोऽमृतैः—सांख्यभाष्य) ॥

आदि में कुछ न कुछ भिन्नता रहती है जहाँ आजकल के अर्वाग् दर्शी व्यक्ति समझते है कि ऐसे स्थलों का कारण मत-विरोध या दृष्टिकोण में भी भिन्नता है, पर वास्तव में सत्य यह है कि वे दो पदार्थ उस दर्शन से सदैव मान्य है, और उसके अनुल्लेख से यह प्रमाणित नहीं होता कि वह पदार्थ प्राचीन काल में स्वीकृत नहीं था। भारतीय दर्शन के अध्येता को यह पहले ही जान लेना चाहिए कि किसी पदार्थ का किसी से अनुल्लेख यह नहीं प्रमाणित करता कि वह पदार्थ उस आचार्य से ज्ञात नहीं है, यदि किसी आचार्य की स्वीकृत युक्तिप्रणाली से वह पदार्थ सिद्ध न हो सके, तभी यह कहा जा सकता है कि वह पदार्थ उस आचार्य से अस्वीकृत था।

हम देखते हैं कि प्राचीन न्याय में योगि-प्रत्यक्ष का उल्लेख नहीं है, पर इससे यह नहीं सिद्ध होता कि गौतम आदि योगि-प्रत्यक्ष को नहीं मानते थे, क्योंकि गौतम यदि आर्षप्रत्यक्ष नहीं मानते तो वे स्वयं ऋषि न होते, पर वात्स्यायन को लक्ष्य कर कहा है 'तस्येति शब्द-विशेषमधिकुरुते भगवान् ऋषिः'[१७]

अनुल्लेख मात्र से पदार्थ निवारण नहीं होता—इसका दूसरा उदाहरण वैशेषिक दर्शन से दिया जा रहा है। प्राचीनतम वैशेषिक शास्त्र में 'अभाव' पदार्थ का उल्लेख नहीं है, तथा प्रशस्त पाद ने 'षट् पदार्थ' शब्द का ही व्यवहार किया है (षट्पदार्थ में अभाव गणित नहीं होता) अतः सामान्य दृष्टि से यह प्रतीत होता है कि प्राचीन वैशेषिकों से अभाव पदार्थ स्वीकृत नहीं था, और किसी आचार्य ने अभाव पदार्थ को जोड़ दिया है। पर यह बात असम्यक् है क्योंकि न्याय वैशेषिक का 'आरंभवाद' तब तक सिद्ध नहीं हो सकता, जब तक 'अभाव' को एक स्वतन्त्र पदार्थ न माना जाय (यहाँ इसका विचार नहीं किया जायगा) अतः अनुल्लेख होने पर भी उसके स्वीकार में बाधा नहीं है, जैसा आचार्य श्रीधर ने कहा है-'अभावस्य पृथगनुपदेशः, भावपारतन्त्र्यात् न तु अभावात्' [१८] वल्लभाचार्य ने भी और तर्क पूर्ण रीति से पूर्वोक्तमत (अनुल्लेख अस्वीकार का ज्ञापक नहीं है) को दिखाया है, यथा—'अभावस्य च समान-तन्त्र सिद्धस्य अप्रतिषिद्धस्य× × अविरोधात् अभ्युपगमसिद्धान्तसिद्धत्वात्'[१९]

यहाँ पदार्थ स्वीकार में तीन युक्ति वल्लभ ने दी है (अर्थात् अनुल्लेख होने पर भी यदि ये तीन बात घटती हों, तो 'उस शास्त्र में वह पदार्थ प्रतिपादित है' ऐसा मानना चाहिए), यथा (१) समानतन्त्र स्वीकृति, (२) अप्रतिषेध, (३) अविरोध। पूर्वोत्तर मीमांसा से भी इस विषय के प्रमाणीकरण के लिए उदाहरण दिया जा सकता है, पर निबन्ध में संक्षेप के लिए इस प्रघट्टक को यहाँ समाप्त किया जा रहा है।

सामान्योपदेश की दूसरी विशिष्टता है— 'प्रयोजन सापेक्ष विश्लेषण'। हम हठयोग आदि शास्त्रों में शरीर संस्थान आदि विषय में जो विवरण पाते हैं, उसमें केवल मूल वस्तु का उल्लेख है, वर्तमान काल के शारीर विद्या शास्त्र में उन विषयों के जितने अधिक विभाग आदि मिलते हैं, वे सब हठयोग आदि में नहीं मिलते। इसका कारण यह है कि भारतवर्ष में प्राचीनतम काल में सब दार्शनिक तथा वैज्ञानिक शास्त्रों का अन्तिम लक्ष्य था चित्तवृत्ति निरोधपूर्वक कैवल्य -प्राप्ति, अतः शरीर, जीव, जड़द्रव्य आदि के विषय में उतनी ही गवेषणा ऋषियों ने की, जितना ज्ञान साक्षात् या परम्परा रूप से मोक्ष ज्ञान में सहायक हो। किंच इन विषयों के सदृश ज्ञान की अपेक्षा आजकल है, अति-प्राचीन काल में तादृश अपेक्षा नहीं थी, अतः जितना प्रयोजन था, उसके अनुसार उपदेश दिया गया है। इसके साथ साथ यह भी स्मरणीय है कि ग्रन्थ में वर्णित उपदेश तो संक्षेप में लिखे ही जाते थे, इससे यह प्रमाणित नहीं हो सकता कि इससे अधिक ज्ञान इन ग्रन्थकारों का नहीं था। ग्रन्थ प्रतिपादित विषय को देखकर हम तर्क बल से यह भी कह सकते हैं कि ग्रन्थानुक्त और कितने विषय ग्रन्थकार को ज्ञात थे। इस विषय में हम अपने उपलब्ध ज्योतिष ग्रन्थों में अनुल्लिखित कुछ तथ्यों के विषय में कह सकते हैं कि क्योंकि उनके कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो इन अनुल्लिखित विषयों को नहीं मानने से प्रमाणित नहीं हो सकते, अतः वह अनुक्त विषय भी हमारे पूर्वजों को ज्ञात था, यह मानना होगा।[२०]

सामान्योपदेश की तृतीय विशेषता है—अनेक क्षुद्र

---

[१७] न्यायभाष्य २-१-५७

[१८] न्यायलीलावती

[१९] न्यायलीलावती

[२०] 'शास्त्रों में अनुक्त तथ्यों की ऊहन पद्धति' शीर्षक लेख में इसका सविशेष विचार मैंने किया है

विषय में परिमाण सम्बन्धी निर्धारणों का अनुल्लेख। जैसे हमारे पूर्वाचार्य जानते थे कि पृथिवी पदार्थों का आकर्षण करती है, पर उस आकर्षण का परिणाम (जैसा न्यूटन ने दिखाया है) क्या है, इस विषय में कुछ उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में नहीं है। यदि पूर्वाचार्य प्रदर्शित ऐसा एक भी तथ्य मिल जाए, जिसका प्रमाणीकरण आकर्षण परिणाम के ज्ञान के बिना संभव नहीं है, तभी हम मान सकते हैं कि यह परिमाण अनुल्लिखित होता हुआ भी विज्ञात था, अन्यथा नहीं। जहाँ तक हम लोगों का अध्ययन है, हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान कालिक वैज्ञानिक ग्रन्थों में परिमाण निर्धारण के विषय में जो सर्वतोमुखी प्रचेष्टा दीख पड़ती है, वह प्राचीन काल में नहीं थी, क्योंकि तात्कालिक जीवन धारण प्रणाली में या परम पुरुषार्थ की सिद्धि में इस प्रकार के ज्ञानों की आवश्यकता नहीं थी।

(ज) आचार्यों के इतिहास आदि शास्त्र में प्रमेय पदार्थ की गणना में भी एक अवधातव्य पद्धति दीख पड़ती है वह है 'वर्जनात्मक पद्धति', अर्थात् पुराणादि में किसी घटना या वंश परम्परा का जो विवरण दिया गया है, वह सर्वतोभाव से पूर्ण है—ऐसा समझना चाहिए। हम देखते हैं कि एक ही घटना जब भिन्न भिन्न पुराण में वर्णित होती है, तब किसी में कुछ अधिक या किसी में कुछ कम विवरण मिलता है। आधुनिक पद्धति के आलोचक ऐसे विसदृश विवरणों को देखकर उन घटनाओं की सत्यता में सन्देह करते हैं, पर यदि वे आचार्यों की प्रतिपादन पद्धति के रहस्य को जानते, तो इन विवरणों में कुछ असमंजसता का बोध नहीं होता।

प्राचीन आचार्य 'समास-व्यास-पद्धति' को पसंद करते थे। "इष्टं हि विदुषां लोके समास-व्यास-धारणम्"[21] और जिस तत्व के प्रतिपादन के लिए जिस घटना का जितना अंश उपयोगी समझते थे, उतने का ही सविशेष विवरण देते थे, और बाकी का परिहार या संक्षिप्त विवरण मात्र कर देते थे। इसीलिए किसी भी एक घटना के विभिन्न पुराणों के उल्लिखित विवरणों में समानता नहीं रहती। कदाचित् ऐसे अल्प-विभिन्न विवरणों के लिए अन्य कारण भी होते हैं, पर मुख्य कारण यही है। वस्तुतः रामायण, पुराण आदि में वर्णित ऐतिहासिक घटना, एक जागतिक घटना के विवरण के लिए ही कही नहीं गई है; उस घटना का आश्रय कर नानाविध ज्ञानोपदेश तथा पुरुषार्थ सिद्धिकारक आचरण आदि का विवरण दिया गया है. और घटना वहाँ गौण है। यह मत पुराण निर्माण प्रयोजन तथा पौराणिक विवरणों की तुलना से प्रमाणित होता है।

ठीक यही सत्य वंश-गणना में भी समान रूप से चरितार्थ होता है। पुराणों की वंश-तालिका एक दूसरे से कहीं कहीं नहीं मिलती। इससे वंशावली कल्पित नहीं हो जाती। हमारे आचार्य शुद्ध ऐतिहासिक विवरणों को व्यर्थ समझते थे, और किसी तथ्यों के उपदेश से सम्बन्धित करके ही ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करते थे। उनकी तात्कालिक बुद्धि में जो प्रतिपादनीय रूप से विज्ञात होता था, उसीको वे कहते थे, बाक़ी छोड़ देते थे,-क्योंकि किसी भी जागतिक व्यापार का विवरण विवरण के लिए ही करना उनकी दृष्टि में पुरुषार्थ साधक नहीं था, और प्राचीन आचार्यों का यह नियम था कि कोई भी विषय यदि पुरुषार्थ सिद्धि में सार्थक है, तो उसका प्रतिपादन होना चाहिए, अन्यथा नहीं, 'अतः प्रवक्ता ऋषि अपने इष्टार्थ प्रतिपत्ति के लिए जितना साधक समझते थे, उतना कहते थे, बाक़ी को निष्प्रयोजन समझकर छोड़ देते थे। यदि इस पद्धति को माना न जाए, तो हमारा इतिहास-पुराण-वाङ्मय एक असंलग्न प्रलाप मात्र रह जाएगा, पर पुराण वक्ताओं के जो अनन्य साधारण गुणवत्ता का उल्लेख मिलता है, उससे इस प्रकार की धारणा निराकृत होती है।

उपर्युक्त मत की पुष्टि के लिए कुछ प्रमाण दिए जा रहे हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है—"एते इक्ष्वाकु भूपालाः प्राधान्येन मयेरिताः"[22] अर्थात् यह जो इक्ष्वाकु राजाओं की गणना की गई है, वह प्रधान राजाओं की गणना है। इससे भी स्पष्टतर प्रमाण ब्रह्माण्ड पुराण में है, यथा—"बहुत्वात् नामधेयानां परिसंख्या कुले कुले, पुनरुक्तिबहुत्वाच्च न मया परिकीर्तिताः"[23] अर्थात् जितने नाम गिनाए गए हैं, वे अपूर्ण हैं, क्योंकि नाम बहुसंख्यक हैं इत्यादि।

हम लोगों ने प्रत्येक पद्धति के स्वरूप विचार के साथ साथ उस पद्धति के कारण के विषय में भी संक्षि

---

२१ महाभारत आदि १।५१ २२ ४।५।११३ । २३ ३।७४

१६५४

आलोचना की है। पद्धति-भेद का कारण दो प्रकार का है,—वक्तृसापेक्ष तथा श्रोतृसापेक्ष। ग्रन्थ में लाघव करना या वक्ता के प्राक्तन संस्कार के अनुसार जो शैली-भेद होता है, वह वक्तृसापेक्ष है, पर कभी कभी श्रोतृ संस्कार के अनुसार भी पद्धति में परिवर्तन करना अनिवार्य होता है, और चूँकि आचार्यगण श्रोता के चित्त-स्तर के अनुसार प्रतिपादन पद्धति में परिवर्तन करते हैं, अतः उनको 'सुहृत्' शब्द से विशेषित किया जाता है। 'अर्थवाद पद्धति' मूलतः श्रोतृसापेक्ष पद्धति है, और वस्तुतः ऐसी एक भी वक्तृसापेक्ष पद्धति नहीं हो सकती, जिसमें श्रोतृ सापेक्षता न्यूनतम रूप में भी न हो, क्योंकि प्रतिपादन अपने लिए नहीं किया जाता, वह मूलतः दूसरे के लिए ही होता है। श्रोता (=प्रतिपत्ता) मूलतः दो प्रकार के होते हैं, जैसा मेधातिथि ने कहा है: "द्वये च प्रतिपत्तारः न्यायप्रतिसरणाः प्रसिद्धि प्रतिसरणाश्च"[२४]। अतः प्रतिपादन पद्धति भी दो प्रकार की होती है, न्यायबहुला[२५] तथा स्थूल विवरण परायण, जिसमें तर्क की अपेक्षा नहीं है और रुचिर रीति से तरलमति श्रोता के लिए स्थूल विवरण मात्र दिया जाता है।

आचार्यों को अपने उपदेश को सार्थक रूप से देने के लिए कई प्रकार से प्रमित पदार्थ का प्रतिपादन करना पड़ता है। इस विषय में बोधिचित्तविवरण का निम्नोक्त श्लोक विचारणीय है:

> "देशानां लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगा।
> भिद्यते बहुधा लोक उपायैर्बहुभिः पुनः॥"

तात्पर्य यह है कि लोकनाथों की जो देशना है, वह श्रोतृ वर्ग के संस्कार के अनुसार है, अतः भिन्न-भिन्न प्रकार से उपदेश किया जाता है।

टीकमणि संस्कृत कालेज,
बनारस

—**श्री रामशंकर भट्टाचार्य**

भारतवर्ष के हीरे

पूर्व काल से ही भारतीयों को नव रत्नों का पता था। इन रत्नों में हीरे को प्रमुख स्थान प्राप्त था। संस्कृत और हिन्दी आदि भाषाओं में कई कहावतें हीरों के आधार पर बनी हुई हैं। १८ वीं सदी के पूर्व भाग तक विश्व में हीरों के लिए भारतवर्ष का नाम प्रसिद्ध था और सब देशों को हीरे यहाँ से भेजे जाया करते थे। इसके अनन्तर पहले दक्षिण अमरीका में हीरों का पता चला और फिर १९ वीं सदी के उत्तरार्ध में दक्षिण आफ्रीका में हीरों की खान निकली। इस समय विश्व में सबसे अधिक हीरे दक्षिण आफ्रिका में ही पाए और समस्त विश्व को भेजे जाते हैं। अब भारतवर्ष में भी हीरे बाहर से आते हैं तो भी विश्व में हीरों के लिए भारतवर्ष का नाम सदा प्रसिद्ध रहेगा। विश्व के कई महान् हीरे भारतवर्ष के हैं जिन्हें कि गोलकुण्डा, कोल्लूर और पन्ना से प्राप्त किया गया था। इनमें से कुछ प्रसिद्ध हीरों के नाम हैं: को-हेनूर, रीजेण्ट, ग्रेट मुग़ल, ओरलोफ़, निज़ाम और होप। प्रेम, पाप और षड्यन्त्र की बहुत-सी कथाएँ इन हीरों के नाम के साथ सम्बद्ध हो गई हैं।

---

[२४] मनुभाष्य १।१

[२५] तर्क जाल जटिल

वीसलदेव रास संबन्धी कतिपय भ्रान्तियों का संशोधन

हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल या आदिकाल की प्राचीन रचनाओं में पृथ्वीराज रासो के पश्चात् बीसलदेव रास को स्थान प्राप्त है। वैसे बीसलदेव रास के दो संस्करणों में जो उसका रचना काल (१०७३-७७ एवं संवत् बार बारोतरा १२१२) दिया मिलता है उसे ठीक माना जाय तो पृथ्वीराज रासो से भी यह रचना और प्राचीन जा ठहरती है। हिन्दी भाषा की प्राचीन रचना की अनुपलब्धि के कारण ही हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में इस रास को महत्त्व पूर्ण स्थान मिल सका, अन्यथा वास्तव में देखा जाय तो यह राजस्थानी भाषा का ही प्राचीन लोक काव्य है। इसकी भाषा बोल चाल की राजस्थानी है और कई शताब्दियों तक संभवतः यह मौखिक रूप में ही लोक काव्य के रूप में प्रचारित रहा है। सोलहवीं शताब्दी में जैन कवियों ने विशेष संभव है कि इसे मौखिक रूप में सुन कर लिपिबद्ध कर लिया हो। सतरहवीं शताब्दी की अनेक प्रतियें मैंने इस रास की जैन भंडारों में निकाली हैं, जिनसे यह स्पष्ट है कि उस समय तक इस रास के छोटे बड़े, खंड विभक्त और अविभक्त ऐसे तीन चार प्रकार के संस्करण प्रसिद्ध हो गए थे। अब तक इस रास की प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन प्रति सं. १६३३ की लिखित मिली है। इस प्रति में २४६ पद्य हैं और रचना काल सूचक पद्य में सं. १०७७ के श्रावण शुक्ला पंचमी को इस रास को रचे जाने का उल्लेख मिलता है। यह प्रति आगरे में जैन पं. सीहा द्वारा लिखी गई है। इसके पश्चात् सं. १६६६ फाल्गुन बदी १ सोमवार को फूलखेड़ा में लिखित उस प्रति को स्थान प्राप्त है जिसमें यह रास चार खंडों में विभक्त हैं और चार खंडों के पद्यों की संख्या ३१६[१] है। इसमें रचना काल "बार सै बहत्तरां" बतलाया गया है। इसके पश्चात् तीसरी प्रति सं. १६८१ की मिली है जिसमें पद्य संख्या २०० है और रचना काल सूचक कोई पद्य नहीं है। इसके परवर्ती प्रति सं. १६८५ की बालोतरा के खरतर गच्छीय ज्ञान भण्डार में है। इसमें पद्य संख्या २४८ है और रचना काल 'संवत् सहस तिहुतरइ' (१०७३) दिया गया है। पाँचवीं प्रति जिसमें लेखन संवत् का निर्देश तो नहीं है, पर कागज और लिपि को देखते हुए वह भी १७ वीं शताब्दी की ही लिखित निश्चित होती है। इसमें पद्य संख्या ३१० है और रचना काल "संवत् तेर सतोतरइ" दिया है। १७ वीं शताब्दी की ही दो अन्य प्रतियें संक्षिप्त संस्करण की और मिली हैं जिनमें रचना काल का सूचक पद्य नहीं है और पद्यों की संख्या २००-२०२ मिलती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही शताब्दी में इस काल की लिखी हुई प्रतिएँ अनेक मिली हैं और उनमें रचना काल और पद्यों की संख्या की दृष्टि से तीन चार संस्करण बन जाते हैं।

(१) संक्षिप्त संस्करण--जिसमें दो सौ के करीब पद्य मिलते हैं और रचनाकाल का निर्देश नहीं है।

(२) मध्यम संस्करण—इसमें करीब २४० से ५० पद्य मिलते हैं और रचना काल सं. १०७३—७७ लिखा मिलता है।

(३) बृहत् संस्करण—जिसमें ३१० संख्या तक पद्य मिलते हैं। इसमें सबसे बड़ी संख्यावाले संस्करण में रचना काल सं. १३०७ लिखा मिलता है।

ये तीनों संस्करण खण्ड विभक्त नहीं हैं। चौथा संस्करण जो नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित हुआ था--चार खण्डों में विभक्त है। इसके तीन खण्ड का पाठ तो उपर्युक्त अविभक्त संस्करण में मिल जाता है। चौथा खण्ड अलग से पीछे से जोड़ा हुआ लगता है जो उपर्युक्त तीनों संस्करणों में नही पाया जाता।

उपर्युक्त विवरण से यह अत्यन्त स्पष्ट है कि यह रास पहले मौखिक रूप में ही प्रसिद्ध रहा है। १७ वीं

---

[१] डा. मोतीलाल मेनारिया के "राजस्थानी भाषा और साहित्य" में २१६ पद्य होना छपा है वह स्मृतिदोष या मुद्रण की अशुद्धि के कारण ही समझना चाहिए।

76441

१९५४

शताब्दी में जब जैन विद्वानों ने इसे लिपिबद्ध किया, यह कई रूपों में उन्हें सुनने को मिला। जहाँ जहाँ इसके पद्य उन्हें सुनने को मिले, उन्होंने उतने को ही लिपिबद्ध अपने संग्रह में रख लिया और उनमें से जो जो प्रतिएँ जिनके देखने में आईं वे उनकी प्रतिलिपि करते गए। फलतः १८ वीं, १९ वीं शताब्दी में भी इन्हीं संस्करणों की प्रतिलिपिएं होती गईं। अब तक विविध स्थानों से मुझे इस रास की ३० प्रतियों का पता चला है जिनमें से १९ प्रतियों का सर्वप्रथम विवरण मैंने कलकत्ते की राजस्थान रिसर्च सोसाइटी से सन् १९३९ में प्रकाशित 'राजस्थानी' नामक त्रैमासिक पत्रिका के तीसरे अंक में प्रकाशित किया था और विशेष ज्ञातव्य के रूप में सात अन्य प्रतियां जो उसके बाद प्राप्त हुई थीं उनका विवरण 'राजस्थान भारती' के वर्ष ३ अंक १ में प्रकाशित किया था। उसके बाद और भी कुछ प्रतियां प्राप्त हुई हैं उनमें से महत्वपूर्ण प्रतियों के आधार से एक संस्करण तैयार करना मैंने प्रारम्भ किया था पर अनेक कारणों वश देरी होती देख डा. धीरेन्द्र वर्मा के कथन से डा. माताप्रसाद गुप्त से सम्पादित करवा कर हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय प्रयाग से हाल ही में मैंने प्रकाशित करवाया है। इसमें गुप्त जी ने अपनी संपादन पद्धति के आधार से १२८ पद्यों को मूल माना है और शेष १६१-२२ पद्यों को परिशिष्ट में पाठ भेद के साथ दे दिया है। अन्यों का केवल निर्देश करके प्राप्त समस्त प्रतियों में ३४३ पद्यों के होने का सूचन कर दिया है।

सर्व प्रथम जानकारी : प्रस्तुत वीसलदेव रास का हिन्दी संसार को सर्व प्रथम परिचय सन् १९०० में मिला जब कि इसकी सं १६६९ की लिखित प्रति जयपुर की विद्या प्रचारिणी जैन सभा में प्राप्त हुई। इसका विवरण हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट सन् १९०० के पृष्ठ ७७ में प्रकाशित हुआ था। सन् १९०१ में बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में वीसलदेव रासो के नाम से एक परिचायक लेख प्रकाशित किया और उसके कुछ बातों के प्रतिवाद में सन् १९०२ में श्री रामनारायण दूगड़ ने इसी पत्रिका में एक लेख छपवाया। इसके पश्चात् कई वर्षों तक इसकी चर्चा नहीं हुई।

रचना काल सम्बन्धी भ्रम का प्रारंभ : 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के प्राचीन संस्करण के ५ वें भाग के पृष्ठ १३५ से १४४ में बाबू श्यामसुन्दरदास का 'वीसलदेव रास' लेख छपा था उसमें आपने इस ग्रन्थ के प्राप्ति की कथा प्रारम्भ में ही इस प्रकार बतलाई है :

"सन् १८०० ईस्वी में हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का अनुसंधान करते करते मुझे जयपुर में 'वीसलदेव रास' नामक एक अतिप्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुआ। यह ८ इंच लम्बे और ८ इंच चौड़े देशी कागज़ के पन्नों पर कुछ मारवाड़ी से मिलते हुए नागरी अक्षरों में लिखा हुआ है। सब मिल कर ३२ पृष्ठ हैं और श्लोक संख्या लगभग ६२४ है। देखने में यह जीर्ण और लिखावट अशुद्ध है। इस समय यह ग्रन्थ विद्या प्रचारिणी जैन सभा जयपुर के अधिकार में है। मैंने इस ग्रन्थ के प्रथम पृष्ठ का फोटो और समस्त ग्रन्थ की नक़ल ले ली है। आशा है कि यह टिप्पणी सहित नागरी प्रचारणी ग्रन्थ माला में प्रकाशित हो।"

फिर वीसलदेव रास की कथा का सारांश देकर रचनाकाल के सम्बन्ध में लिखते हैं "यह इस विचित्र-प्राचीन ग्रन्थ का सारांश है। ग्रन्थ कर्त्ता का नाम नरपति नाल्ह है, अपने ग्रन्थ बनाने का समय वह इस प्रकार लिखता है—

"संमत बारह मैं बिहोतरा मझार,
जेठवदी नौमी बुधवार।"

गणना करने पर शक संवत् की जेठ वदी को बुधवार पड़ता है इससे यह ग्रन्थ ईस्वी सन् १२८८ का बना जानना चाहिए। समस्त ग्रन्थ में कवि वर्तमान काल का प्रयोग करता है जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि नरपति नाल्ह वीसल देव के राज्य काल में वर्तमान था।

इससे श्यामसुन्दरदास जी ने बिहोतर शब्द से बीसोतर अर्थात् १२२० शक संवत् मान कर ग्रन्थ के रचना काल के प्रबन्ध में सर्वप्रथम भ्रम उत्पन्न किया सिद्ध है।

सं. १९६४ में नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने के लिए मिश्रबन्धुओं को प्रेरणा की और उन्होंने सं. १९६९ तक उसे तैयार कर 'मिश्रबन्धुविनोद' नाम से प्रकाशित किया। उन्होंने भी इस रास का रचना काल बाबू श्याम सुन्दर दास जी के अनुक्रम में शक सं १२२० अर्थात् वि. सं. १३५४

बतलाते हुए लिखा कि "नरपति नाल्ह ने इसका समय १२२० लिखा है, पर जो तिथि उन्होंने बुधवार ग्रन्थ निर्माण की लिखी है, वह १२२० सं. बुधवार को नहीं पड़ती परन्तु १२२० शके बुधवार को पड़ती है इससे सिद्ध होता है कि यह रासो १२२० शके में बना जिसका सं. १३५४ पड़ता है।" आश्चर्य है कि मिश्रबन्धुओं ने भी इसके बाद इस रास के उदाहरण रूप जो पद्य नीचे उद्धृत किए हैं उन्हीं में रचना काल सं. १२७२ का सूचक 'बारह सै बहोत्तरां' वाला पद्य भी है। पता नहीं उनका ध्यान उस पाठ की ओर क्यों नहीं गया। बहत्तरां से ७२ स्पष्ट होने पर भी सुधार नहीं कर पूर्व भ्रान्ति को दुहराया जाना उचित नहीं प्रतीत होता।

इसके पश्चात् कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चॉन्सलर सर आशुतोष मुकर्जी का ध्यान विश्वविद्यालयों की उच्च शिक्षा में भारत की प्रान्तीय भाषा को प्राचीन रूपों के विकास और साहित्य के इतिहास को पाठ्यक्रम में रखने की ओर गया। उन्होंने कई स्थानों में जाकर अनेक विद्वानों से इस विषय में चर्चा की और रायसाहब दिनेशचन्द्र सेन से बंगला भाषा और साहित्य सम्बन्धी दो खण्ड तैयार करवा कर विश्वविद्यालय से प्रकाशित करवाए। इसी प्रकार का प्रयत्न अन्य प्रान्तीय भाषाओं और साहित्य के सम्बन्ध में किए जाने के लिए उन्होंने सन् १९१८ में अपनी योजना प्रकाशित की। तदनुसार लाला सीताराम बी. ए. साहित्य-रत्न ने 'Selections from Hindi literature, book---1 Bardic Poetry नामक एक ग्रन्थ तैयार किया जो कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही सन् १९२१ में प्रकाशित हुआ। इसमें चन्दबरदाई, नाल्ह, केशोदास, और भूषण, गोरेलाल, मान, मुरलीधर, जोधराज, सूदन और पद्माकर, इन दश कवियों के काव्यों का आंशिक संग्रह ३४५-५५ पृष्ठों में किया गया है, जिसमें से दूसरे कवि नाल्ह के 'वीसलदेव रास' का चतुर्थ खंड लिया गया है। उन्होंने मिश्रबन्धुओं के वीसलदेव रास का रचना काल सं. १३५४ बताए जाने का विरोध करते हुए "बारह सै बहोत्तरां" वाले पद्य को उद्धृत करते हुए इस ग्रंथ का रचना काल विक्रम संवत् १२७२ होना बतलाया है।

संवत् १९८२ में श्री सत्यजीवन वर्मा एम्. ए. ने इस ग्रन्थ को संपादित कर नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित करवाया है, उसमें ग्रन्थ का रचना काल सं. १२१२ होना सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनका वक्तव्य इस प्रकार है। "लाला सीताराम ने अपने Barich selections नामक-पुस्तक में इसे १२७२ वि. सं. माना है जो ठीक नहीं है क्योंकि गणना करने से वि. सं. के १२७२ में जेष्ठ बदी नवमी, बुधवार को नहीं पड़ती। बारह सै बहोत्तर का स्पष्ट अर्थ १२१२ होगा। बहोत्तर यह 'बरहोत्तर' 'द्वादशोत्तर' का रूपान्तर है जिसका अर्थ होगा द्वादशोत्तर बारह सै अर्थात् १२१२। गणना करने पर वि. सं. १२१२ में ज्येष्ठ बदी नवमी को बुधवार पड़ता है। अतः गणना से भी यह ठीक उतरता है।" उन्होंने ओझा जी के पत्र का भी उल्लेख किया है कि राजपूताने में वि. सं. ही लिखा जाता था। शक संवत् नहीं। अतः यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि वि. सं. १२१२ में नरपति नाल्ह ने वीसलदेव रास की रचना की। "वीसलदेव चतुर्थ का राज्यकाल १२१० से २० शिला–लेखों से निश्चित है और नरपति नाल्ह ने सर्वत्र वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग किया है। इस लिए सं. १२१२ ही माननीय है।"

तदनन्तर श्री गजराज ओझा ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' वर्ष १४ अंक १ (पृष्ठ) में प्रकाशित अपने एक लेख में बीकानेर के उधसरे खरतर गच्छी ज्ञान-भण्डार में उनके अवलोकित 'वीसलदेव रास' की एक हस्तलिखित प्रति में सं. १०७३ (सहस तेहोत्तर पाठ) होने का उल्लेख किया। इस समय से पूर्व तो 'वीसलदेव रास' के किसी अन्य संस्करण होने की किसी ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। गजराज ओझा के इस उल्लेख से केवल रचना काल की भिन्नता (सूचक पद्य) का ही परिचय मिला। उस प्रति के भी सूक्ष्म निरीक्षण के अभाव में संस्करण की भिन्नता की स्पष्टता वे न कर सके।

'वीसलदेव रास' से हमारा परिचय तथा विभिन्न संस्करणों का प्रथम पता : सं. १९८५ से हमने जैन भण्डारों की हस्तलिखित प्रतियों के अवलोकन का कार्य आरंभ किया और 'वीसलदेव रास' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ हमको देखने को मिलीं। एक-दो वर्ष बाद ही हमने हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह का काम भी प्रारम्भ कर दिया। तब ही से 'पृथ्वीराज रासो' की सुन्दर हस्तलिखित पाँच छः प्रतियाँ हमारे संग्रह में भी जमा हो गई। प्रकाशित ग्रन्थ से हस्तलिखित प्रतियों के मिलाने पर हमें इस रास के विविध संस्करणों और अनेक पाठ-

भेदों को देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ और फिर जहाँ कहीं भी 'पृथ्वीराज रासो' और 'वीसलदेव रास' की प्रतियाँ देखने को मिलीं उनका संग्रह करते गए। उसीका परिणाम सन् १९३४ में अपनी 'राजस्थानी पत्रिका' के अंक में प्रकाशित दो तीन "पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ" एवं "वीसलदेव रास और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ" लेखों को प्रकाश में लाया गया। लगते हाथ मैंने हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल की मानी जानेवाली समस्त रचनाओं को भी विशेष रूप से शोध करके "वीरगाथाकालीन रचनाओं पर विचार" और मिश्र बन्धु विनोद की भद्दी भूलें" आदि लेखों द्वारा इस काल का नामकरण ही ग़लत है बतलाते हुए इस काल की मानी जानेवाली समस्त रचनाओं में से कोई भी भाषा मूल रूप में सुरक्षित नहीं मिलती यह सिद्ध किया। बहुत-सी रचनाएँ तो परवर्त्ती हैं। भ्रमवश ही उन्हें स्वयं न देख कर दूसरों के किए गए उल्लेखों के आधार पर ही इस काल की रचनाएँ मान ली गई हैं" इत्यादि बातों को स्पष्ट किया। 'पृथ्वीराज रासो' और 'वीसलदेव रास' के विविध संस्करणों का पता सर्वप्रथम इन पंक्तियों के लेखक के लेख द्वारा प्रकाश में आया। 'खुमाण रासो' और 'संवतसार' जो आठवीं और बारहवीं शताब्दी की रचनाएँ मानी जाती रही हैं, उन ग्रन्थों की मूल प्रतियों की खोज कर के अध्ययन द्वारा उनका समय १८ वीं और १९ वीं शताब्दी का सिद्ध किया गया।

अभी कुछ विद्वानों की ओर से 'वीसलदेव रास' के सम्बन्ध में कुछ नई भूल-भ्रान्तियों का प्रचार हुआ या हो रहा देखकर ही प्रस्तुत लेख को तैयार कर प्रकाशित करना आवश्यक समझा गया। इन भूल-भ्रान्तियों के प्रचार में श्री मोतीलाल मेनारिया के "राजस्थानी भाषा और साहित्य" प्रधान है अतः उसकी बातों पर विचार करके फिर हाल ही में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के 'पाटल' जनवरी ५४ के अंक में प्रकाशित 'वीसलदेव रास' नामक लेख की कुछ भ्रान्तियों पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

डा. मोतीलाल मेनारिया ने अपने 'राजस्थानी भाषा और उसके रचयिता व रचना-काल के सम्बन्ध में कुछ भ्रामक बातें कहीं हैं; उन पर यहाँ क्रमशः विचार किया जा रहा है :

(१) आपने नरपति नाल्ह की जाति व्यास बतलाते हुए, इसी जाति का "दूसरा नाम सेवक या भोजक जाति है", लिखा है। पर यह ठीक नहीं है। सेवक या भोजक शाकद्विपी ब्राह्मण हैं और व्यास इनसे भिन्न प्रकार के ब्राह्मण हैं। ये दोनों जातियाँ आज भी अलग-अलग रूप में सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

(२) 'वीसलदेव रास' में उसके रचयिता के रूप में नरपति और नाल्ह दोनों नामों का प्रयोग हुआ है। मेनारिया जी के मतानुसार नरपति कवि का नाम है और नाल्ह उसका अवटंक। 'पाटल' में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपने लेख 'वीसलदेव रासो में मेनारिया जी के कथन को सही मान कर लिखा है कि "अब यह निश्चित हो चुका है कि नरपति यह नाम है और नाल्ह रचनाकार का अल्ल या आस्पद है।" पर वास्तव में यह भ्रामक कल्पना है। नाल्ह नाम का अवटंक या आस्पद होना अभी तक कोई हमारी जानकारी में नहीं आया। जब कि 'नल्ह' या नाल्हसिंह नामक व्यक्ति के नाम के रूप में तो 'विजयपाल रासो' के कर्त्ता भी प्रसिद्ध हैं। नाल्ह, नल्ह, जल्ह, कल्ह, पल्ह, रल्ह, छल्ह, मुल्ह ऐसे नामवाले और भी अनेक कवि या व्यक्ति हमारी जानकारी में हैं। उदाहरणार्थ हमारे द्वारा सम्पादित 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में 'जिनदत्त सूरि स्तुति' नामक बारहवीं शताब्दी की रचना प्रकाशित हुई है— उसका रचयिता पल्ह नामक कवि था।

"जिणदत्त सूरि पर पल्ह भणु तत्तवंतु सलहियइ धर
वक्खाणियइ त परम तत्तु जिण पाड पणासइ
आ रहियइ ते 'वीरनाहु' कई पल्हु पयासइ।"

हमारे इसी ग्रन्थ में 'साधु कीर्त्ति जय पताका गीत' छपा है, जिसका रचयिता 'जल्ह' कवि है। इसी नामवाले कवि के रचित बुद्धि रासो का विवरण मेंनारिया जी के सम्पादित राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (प्रथम भाग) में प्रकाशित है। सुप्रसिद्ध 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता चन्द्र कवि के पुत्र का नाम भी जाल्ह था।

मेरे द्वारा सम्पादित इसी खोज विवरण के दूसरे भाग में जहाँगीर के राज्य में रचित "दिल्ली राज वंशावली" का विवरण प्रकाशित हुआ है, जिसका रचयिता 'कल्ह' कवि है।

"आदितवार कहै 'कल्ह' कातिक वदि प्रतिपदा"

ऐसे ही अन्य नाम छल्ह, मल्ल आदि भी प्रसिद्ध

हैं। नाल्ह नामवाले अन्य व्यक्तियों का भी हमें पता है। हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जिन कीर्त्ति रत्न सूरि छन्द में 'नाल्है' साह का नाम आता है।

"'नाल्है'[2] साह निकालनै थाप्यो जिनभद्र सूरि"

कवि छल्ह की क्षेत्रपाल द्विपदिका, रल्ह के छप्पय एवं गुन्ह के भोज पण्डित की दिया चौपई हमारे संग्रह में है।

ये तो केवल दो चार उदाहरण ही दिए गए हैं, खोज करने पर व्यक्तियों के नाम के रूप में 'नाल्ह' संज्ञा बहुत-से स्थानों में प्रयुक्त मिलेगी। अतः 'नाल्ह' को अवटंक, अल्ल या आस्पद मानना ठीक नहीं है

अब समस्या रहती है कि एक ही ग्रन्थ में कवि ने अपना नाम कहीं नरपति और कहीं नाल्ह क्यों दिया? इसके सम्बन्ध में विचार करने पर मुझे यही संगत जान पड़ता है कि 'नरपति' कवि का साहित्यिक नाम है, अर्थात् जन्मपत्री और लिखने-पढ़ने में व्यवहृत होनेवाला है और 'नाल्ह' नाम बोलचाल का, घरेलू लाड़-प्यार से प्रसिद्धि प्राप्त नाम है। बड़े नाम का संक्षिप्तीकरण तो प्रयत्न लाघव (सुख-सुख) की दृष्टि से हुआ ही करता है, जिस प्रकार जसराज का जस्सा, उदयराज का उदै आदि। वैसे राजस्थान में तो अनेक क्षेत्रों में व्यक्तियों के लाड़-प्यार और लिखा-पढ़ी के भिन्न-भिन्न दो नाम प्रसिद्ध रहा करते हैं। ब्राह्मण जाति में तो यह प्रणाली और भी अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ आप बोलचाल के नाम बड़े ही विचित्र से ऐसे सुनेंगे जो मूल नाम से सर्वथा भिन्न होते हैं; उदाहरणार्थ हमारी राजस्थान रिसर्च इन्स्टीट्यूट के चपरासी के लिखा-पढ़ी का नाम रामनारायण है पर जिस गली में वे रहते हैं, वहाँ इस नाम से पूछने पर चन्द व्यक्ति ही उनके घर का पता भले ही बता सके जब कि उनके प्रसिद्ध नाम रीडां से आप जिस किसी को भी पूछेंगे, तुरन्त आपको घर दिखा देगा।

श्रीयुत भवानी शंकर याज्ञिक ने, अपने आलम और रसखान निबन्ध में भी लिखा है कि "एक ही कवि की दो छाप होना अविश्वसनीय नहीं है। सूर, सूरश्याम, आनन्दघन, घनानन्द जैसी मिलती-जुलती छापें तो बहुत प्रसिद्ध हैं। परन्तु किसी-किसी कवि की दो-दो छापें सर्वथा भिन्न होती थीं" नागर-पंडित, उदैनाथ-कवींद्र, नृपसंभु-संभुराज, आनन्द-चन्द, कालिदास-महाकवि, दत्त-गुरुदत्त आदि इसके उदाहरण हैं।

जैन कवियों ने अपना संक्षिप्त और पूरा तथा गृहावस्था व दीक्षा का भिन्न नाम एक ही रचना या अपनी भिन्न-भिन्न रचनाओं में प्रायः प्रयुक्त किया है। उदाहरणार्थ 'खुमाण रासो' के रचयिता ने अनेक स्थानों में अपना प्रसिद्ध नाम दलपत तो कहीं-कहीं दीक्षा नाम दौलतविजय दिया है। कहीं दौलतविजय का संक्षिप्त रूप दौलत भी प्रयुक्त पाया जाता है। इसी प्रकार राजस्थानी जैन कवि धर्मवर्धन ने अपनी रचनाओं में कहीं धर्मसी कहीं धर्मसील, कहीं धर्मधनी दिया है। कविवर जिनहर्ष ने कहीं अपने नाम का जस्ता कहीं जसराज तो कहीं जिनत इस प्रकार यथारुचि अपने साहित्यिक और बोलचाल के नामों का प्रयोग किया है; उसी प्रकार नरपति ने अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार कहीं नरपति और कहीं नाल्ह का प्रयोग किया लगता है, वास्तव में ये दोनों हैं नाम ही। अवटंक तो व्याप्त है।

(३) मेनारिया जी और विश्वनाथ प्रसाद जी ने इस रास की सबसे प्राचीन प्रति सं. १६६६ की बतलाई है, पर जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ कि ईस्वी सं. १६६३ की प्रति उपलब्ध हो चुकी है, जिसका उल्लेख मैंने अपने 'राजस्थान भारती' वर्ष ३, अंक १ में प्रकाशित 'वीसलदेव रास की कतिपय नवीन प्रति में' किया था और उस प्रति के एक पत्र का फोटो भी हिन्दी परिषद् प्रयाग से प्रकाशित 'वीसलदेव रास' में छप चुका है।

(४) मेनारिया जी ने 'वीसलदेव रास एक गीत काव्य है', इसे कपोल-कल्पना बतलाते हुए—वीसलदेव रास गीत काव्य नहीं है, यह राजस्थान में कभी गाया नहीं गया, न आज गाया जाता है और न इसमें गीत काव्य के लक्षण मिलते है"—लिखा है।

इसका कुछ प्रतिवाद विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया है; पर सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि अन्य लोकगीत काव्यों की भाँति वीसलदेव रास में भी प्रत्येक पद्य के अन्त में एक टेक या ध्रुवपद रखा गया है। कहीं कहीं पाठान्तर 'भुवणनइ देषडंके कवि तलइ'।

---

[2] पादप भण्डार सूची के पृ. २०१ में 'नाल्ह' शब्द व्यक्तिवाचक नाम के रूप में प्रयुक्त मिलता है।

हय से भुवण 'मोहीवर कामिणी' और कहीं 'कइभवण मइ देखौं रवि तलइ' ऐसा पाठ भी मिलता है। पर उपलब्ध समस्त प्रतियों में यह टेक है ज़रूर ही। प्रत्येक पद्य के अन्त में उस ध्रुवक को दुहराना गीति काव्य की ही विशेषता है। राजस्थान में कभी गाया नहीं गया, यह लिखना अति साहस है। जैसा कि मैं लेख के अन्त में बतलाऊँगा—यह रास गीत के रूप में इतना प्रसिद्ध रहा है कि इसकी चाल या शैली में जैन कवियों ने अपने कई रास बनाएँ हैं, जिनमें 'सील रास' तो आज भी ढाल के रूप में गाया जाता है। 'वीसलदेव रास' के गाने का प्रचार पीछे से छूट गया हो उसकी चाल में बनाए हुए रास जब आज भी गाए जाते हैं, तब मेनारिया जी का उक्त कथन सर्वथा अग्राह्य हो जाता है। दूसरी बात यह भी है कि यह रास छन्द शास्त्रोक्त किसी छन्द में नहीं बनाया गया, यह तो लोक प्रचलित लोकगीतों के किसी देश में ही बनाया गया स्पष्ट है।

(५) इस रास के निर्माण काल के सम्बन्ध में लिखते हुए मेनारिया जी ने सोलहवीं शताब्दी के नरपति नामक गुजरात के कवि की भाषा व रचना शैली की एकता बतलाते हुए इसे १६ वीं शताब्दी की रचना बतलाई है। पर वास्तव में यह मत मेरा ही था। सन् १९४० में प्रकाशित 'वीसलदेव रास' और उनकी हस्तलिखित प्रतियों' में (राजस्थानी, वर्ष ३ अंक ३) मैंने अपने यह विचार व्यक्त किए थे और १६ वीं शताब्दी के नरपति कवि का सर्व प्रथम सूचन ही मैंने अपने इस लेख में किया था। मेनारिया जी ने उसी आधार से गुजराती कवि नरपति के साथ इनकी तुलना की है और दोनों कवियों की एकता अनुमानित की है; पर वास्तव में वह सही नहीं है। क्योंकि गुजराती कवि नरपति की समस्त रचनाओं का भली भाँति अध्ययन करने पर इनकी भाषा, रचना शैली, में 'वीसलदेव रास' की भिन्नता स्पष्ट नज़र आती है। और विशेष उल्लेख योग्य बात तो यह है कि गुजराती नरपति कवि ने कहीं भी अपने साथ नाल्ह शब्द का प्रयोग नहीं किया, जब 'वीसलदेव रास' में इस संज्ञा का प्रयोग कई बार हुआ है। गुजराती नरपति कवि की रचना के संपादक व मेरे मित्र डा० भोगीलाल सांडेसरा व अन्य गुजराती भाषा तत्वविद् पं. केशवराम शास्त्री से भी मैंने दोनों कवियों की भाषा के सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने भी यह मत व्यक्त किया है कि दोनों कवि एक नहीं हैं। इनकी भाषा और शैली में काफ़ी अन्तर है। राजस्थानी भाषा विशेषज्ञ मेरे मित्र प्रो० नरोत्तमदास जी स्वामी का भी यही मत है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जब दोनों कवियों की एकता सिद्ध नहीं होती तो 'वीसलदेव रास' का निर्माण काल १६ वीं शताब्दी माना जाना भी सिद्ध नहीं होता। मैंने पहले इस रास की भाषा की तुलना १६ वीं शताब्दी के जैन कवियों की अन्य रचनाओं से की थी; पर 'वीसलदेव रास' की भाषा बोल-चाल की है और जैन कवियों की भाषा में कुछ साहित्यिक व कुछ प्राचीन मत विदित होता है, इसलिए वह इसके रचनाकाल के १६ वीं शती में होने का मेरा पूर्व मत अधिक पुष्ट नहीं प्रतीत हुआ। मुझे कुछ ऐसी रचनाएँ भी प्राप्त हुई जो बोलचाल की भाषा में रची गई हैं, उनकी तुलना मैंने उसी समय के रचित अन्य साहित्यिक रचनाओं की भाषा से की तो बोल-चाल की व साहित्यिक भाषा का अन्तर स्पष्ट हो गया। इधर दूसरी दृष्टि से भी विचार करें तो 'वीसलदेव रास' की सत्रहवीं शताब्दी की भिन्न-भिन्न संस्करणों की कई प्रतिएँ प्राप्त हैं और उन संस्करणों में पद्य संख्या रचनाकाल आदि का बहुत अधिक अन्तर है। इसीलिए इतने भिन्न प्रकार के संस्करणों के प्रचलित होने में कुछ अधिक समय अर्थात् लम्बा समय लगना चाहिए। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस समस्या पर विचार करते हुए मुझे अपने पूर्व मत पर पुनर्विचार करने का अनुरोध किया है। मुझे उनकी युक्तियाँ कुछ विचारणीय लगती हैं, इसलिए उन्होंने जो इसका रचना काल १४ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना है, वह संगत ही लगता है।

१६ वीं शताब्दी के अन्त व १७ वीं के प्रारम्भ में 'वीसलदेव रास' के छन्द व शैली में रचित दो जैन कवियों की रचनाएँ मुझे प्राप्त हो चुकी हैं, अतः जैन कवियों को १६ वीं शताब्दी में यह रास मौखिक रूप से प्राप्त हो चुका था और उस समय तक काफ़ी प्रसिद्ध रहा है, सिद्ध होता है।

(६) 'वीसलदेव रास' की भाषा के सम्बन्ध में गुजराती कवि नरपति को इसके रचयिता मानने के कारण मेनारिया जी को यहाँ तक लिखना पड़ा है कि इसकी भाषा गुजराती राजस्थानी का मिश्रण है। मालूम होता है कि मूल ग्रन्थ गुजराती में था, जिस पर बाद में किसी ने राजस्थानी का रंग चढ़ाया है। आचार्य विश्व-

नाथप्रसाद मिश्र ने भी लिख दिया है कि राजस्थानी के अनुसार रासो शब्द का व्यवहार ठीक जान पड़ता है। रास शब्द रासिक से अर्ध मागधी प्रवृत्ति के अनुसार बनेगा, जैसा कि मैं अन्यत्र कह चुका हूँ जैनों ने यह रूप सुरक्षित रखा है। इससे यह सिद्ध है कि यह रचना शुद्ध राजस्थानी या गुर्जर राजस्थानी की नहीं है, अपितु जैन प्रभावापन्न गुर्जर राजस्थानी की है।

पर इन दोनों विद्वानों के ये मत ठीक नहीं हैं। मेनारिया जी ने तो गुजराती नरपति की एकता के कारण ही मूल ग्रन्थ गुजराती में रचे जाने और बाद में उसमें राजस्थानी का रंग चढ़ाया गया लिखा है, पर जब गुजराती नरपति, 'वीसलदेव रास' के रचयिता से भिन्न हैं, तब उनका यह मत स्वयं असिद्ध हो जाता है। उन्होंने बाद में राजस्थानी का रंग चढ़ाया लिखा है इससे यह तो स्पष्ट है कि इसके वर्तमान रूप को तो ये राजस्थानी ही मानते हैं। मूल रूप गुजराती मानने का जो कारण था, वह तो स्वयं दूषित है। मिश्र जी ने 'रास' शब्द का प्रयोग जैनों से अधिक किया है, और राजस्थान के अन्य कवियों ने रासो शब्द का प्रयोग, केवल इसी आधार पर 'वीसलदेव रास' की भाषा को जैन प्रभावापन्न गुर्जर राजस्थानी मान लिया है। वास्तव में वे जैन कवियों के रास संज्ञक ग्रन्थों की भाषा से इस रास की भाषा का मिलान करते और 'वीसलदेव रास' में जैन भाषा का प्रभाव बतलाते, तब तो इस सम्बन्ध में विशेष विचार करनें की आवश्यकता होती, अन्यथा उनका जो आधार है, वह कोई सबल नहीं है। यद्यपि रास संज्ञक रचनाएँ जैन कवियों की अधिक मिलती हैं, पर राजस्थान के जैनेतर कवियों ने केवल 'रासो' संज्ञक ही रचनाएँ की हों, यही बात नहीं है। हमारे संग्रह में राजस्थान के जैनेतर कवियों के रचित 'राम सीता रास', 'चूड़लो रास' आदि कई रास संज्ञक रचनाएँ भी हैं, अतः वीसलदेव रास में 'रास' शब्द देख कर ही उसे जैन प्रभावापन्न गुर्जर राजस्थानी बतलाना ठीक नहीं। वीसलदेव रास की भाषा वास्तव में बोल-चाल की राजस्थानी ही है।

यद्यपि इस रास को संग्रह करके सुरक्षित रखने वाले जैन नहीं हैं, और अब वीसलदेव रास की जितनी प्रतियाँ मिली हैं, सभी जैन यतियों से लिखित हैं, फिर भी एक बात जैन यतियों की विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उन्होंने जैनेतर कृतियों में अपनी ओर से 'सेल-मेल' (प्रक्षेप) नहीं किया है। जिस रूप में जो रचना उन्हें प्राप्त हुई, उसको उसी रूप में प्रतिलिपि करके संग्रहीत एवं प्रचारित करते रहे। 'वीसलदेव रास' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। जैन यतियों द्वारा संग्रहीत करने पर भी इसमें जैनियों की कोई बात नहीं घुसेड़ी गई। वे चाहते तो भाषा परिवर्तन ही नहीं बीच-बीच में जैनों का सम्बन्ध भी जोड़ सकते थे; पर उन्होंने वैसा कोई भी प्रयत्न नहीं किया। यह सच है कि लोक-कथाओं को श्वे. जैन विद्वानों ने खूब अपनाया है और उनको श्रमण संस्कृति के साँचे में ढाल दिया है; पर अपना यह कार्य स्वतन्त्र मौलिक रचना द्वारा ही किया है। किसी जैनेतर रचना में अपनी ओर से सेल मेल करके उसे जैन घोषित करने का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया।

यहाँ प्रसंग का आवश्यक स्पष्टीकरण भी दिया जाता है कि अभी तक हिन्दी के विद्वानों ने 'वीसलदेव रास' को सर्वत्र 'वीसलदेव रासो' ही लिखा है। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित संस्करण की मूल आधारित प्रति में 'वीसलदेव रास' लिखा हुआ होने पर भी श्री सत्यजीवन वर्मा ने 'पृथ्वीराज रासो' आदि इसी शब्द के अधिक परिचय व प्रभाववश सम्पादित ग्रन्थ का नाम 'वीसलदेव रासो' लिखा था। यद्यपि ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने स्वयं इसकी 'रास' ही संज्ञा दी थी।

(१) वीसलदेव 'रास' प्रगासताँ
नाल्ह कहइ जिणि आबइ ही खोडि।५।
(२) कुकठ कुमाणसाँ जिण कहइ 'रास'।३।
(३) 'रास' प्रगासँउ बीसलदेव राउ।८-६।
(४) गायो हो 'रास' सुणै सब कोइ।१०।
'रास' रसायण सुणै सब कोइ।१०।
(५) 'रास' प्रगासण इन विधि होइ।११।

'वीसलदेव रास' की समस्त उपलब्ध प्रतियों में लेखन प्रशस्ति आदि में भी सर्वत्र इसकी संज्ञा 'रास' ही मिलती है, रासो नहीं।

श्री मोतीलाल मेनारिया जी ने रासो शब्द का शुद्ध रूप 'रासौ' लिखा है और आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी। रासो पर वास्तव में जब मूल कवि के प्राचीन प्रतिलिपि के लेखकों ने इसे रास ही लिखा है, तो रासो पर रासौ लिखते रहना उचित नहीं कहा जा सकता। डा० माताप्रसाद गुप्त ने हिन्दी परिषद् से प्रकाशित संस्करण में ग्रन्थ का नाम 'वीसलदेव रास' ही लिखा है

और वही ठीक है ।

(७) आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने लेख में वीसलदेव रास में आए हुए "मूँग फळी सी आंगळी" इसका दूसरा अर्थ 'चीणिया बादाम' मानने पर रचना परवर्ती सिद्ध होने का लिखा है । पर वास्तव में यहाँ मूँगफळी का अर्थ चीनिया बादाम (ग्राउण्ड नट-मौम फली) मानना संगत नहीं और न आवश्यक ही है । चीनिया बादाम की फली मोटी, बेडौल व नाटी होती है--अतः कवि ने जो अंगुली के लिए मूँगफली की उपमा दी है, वह चिणिया बादाम के अर्थ में नहीं--पर मूँग (मुद्‌ग) की फली के अर्थ में है । राजस्थान के सभी लोकगीत आदि में अंगुली के लिए उसी मूँग की फली की उपमा दी गई है, क्योंकि वह पतली और लम्बी होती है । मूँग की फली में अंगुली जैसे पौर भी होते हैं, अतः अंगुली की सुन्दरता व स्वरूप साम्य के लिए यही उपमा समीचीन कही जा सकती है । चीणिया बादाम खुरदरा व भद्दा होता है । राजस्थानी चित्रकला में भी नारी की अंगुली को खूब पतला और नुकीला चित्रित किया जाता रहा है, अतः इसके दूसरे अर्थ को मान कर इस रचना को परवर्ती बताने का कोई हेतु नहीं रह जाता ।

(८) आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'वीसलदेव रास' के प्रकाशित संस्करण के एक भ्रान्त पाठ के आधार से बड़ी विचित्र कल्पना कर डाली है । आपने लिखा है कि : "दूसरे स्थान पर 'पटई पोथी रामा की छै' आया है; रामा अर्थात् रामायण की पोथी । यह रामायण कौन-सी हो सकती है ? वाल्मीकि रामायण से तात्पर्य नहीं जान पड़ता, तो क्या तुलसी रामायण की बात है ? ऐसा हो तो रचना बहुत परवर्ती माननी पड़ेगी ।" अर्थात् इस आधार से तो वीसलदेव रास का रचनाकाल तुलसी रामायण के भी पीछे का जान पड़ता है । पर वास्तव में बात यह है नहीं, जैसा कि पहले कई बार लिखा जा चुका है कि इस रास की प्राप्ति ही सं. १६३३ की लिखित उपलब्ध है, जब कि तुलसी रामायण की रचना भी नहीं हुई थी ।

मैंने आचार्य मिश्र के जब इस वक्तव्य को पढ़ा तो बड़े विचार में पड़ गया । सोचा इस पाठ की 'वीसलदेव रास' में क्या संगति हो सकती है ? 'पोथी रामा की छै' इसका तो सीधा अर्थ है कि "पुस्तक रामा नामक व्यक्ति की है", पर 'वीसलदेव रास' में यह पाठ आया कहाँ से ? यह एक समस्या थी । सौभाग्य से जिस संवत् १६६९ की लिखित प्रति के आधार से नागरी प्रचारिणी सभा का संस्करण तैयार किया गया था, वह मूल प्रति ही घूमती फिरती हमारे संग्रह में आ पहुँची है, अतः मूल प्रति को देख कर ही निर्णय कर लेना उचित प्रतीत हुआ ।

वास्तव में बात यह है कि इस प्रति में तीसरे खंड के पद्यांक ४५ के बाद कुछ स्थान खाली छूट गया था, ४६ वाँ पद्य दूसरे पत्र से आरम्भ होता है । ४५ वाँ पद्य जिस पत्र के अन्तिम पंक्ति के रूप में आया है, वहाँ कुछ स्थान रिक्त देख कर प्रति के लेखक रामा ने यह पुस्तक मेरी है, इस बात की सूचना करनेवाले 'पोथी रामाँ की छै' ये शब्द लिख दिए हैं । इसके आगे और पीछे के रिक्त स्थान में दोनों ओर --डैश लगे हुए हैं; मालूम होता है कि पहली डैश को छूटे हुए पाठ का चिन्ह समझ कर इस ग्रन्थ के सम्पादक श्री सत्यजीवन वर्मा एम० ए० "पटई" ये तीन अक्षर अपनी ओर से पाठ की पूर्ति के रूप में जोड़ दिए और यही ग़लती आचार्य विश्वनाथप्रसाद जैसे विद्वान् को भ्रम में डालने का कारण बन गई ।

सं० १६६९ की 'वीसलदेव रास' की उक्त प्रति एक बहुत बड़ा संग्रह गुटका है, इसमें अनेक ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र, प्राचीन काव्य आदि संग्रह किए गए हैं—इस प्रति का संग्राहक और लेखक रामाँ नामक चर्म घोष गच्छ का जैन यति है इसलिए इस प्रति में और भी अनेक स्थानों में 'पोथी रामाँ की' 'पोथी रामाँ की छै' ये शब्द लिखे दिखते हैं —इस पाठ से तुलसी रामायण का कोई सम्बन्ध नहीं । आशा है इतने स्पष्टीकरण के बाद कोई विद्वान इन भ्रमों को नहीं दुहराएँगे ।

'वीसलदेव रास' के कारण रचनाकाल सूचक जो भिन्न प्रकार के तीन पद्य मिलते हैं, उनको लेकर इस ग्रन्थ के रचनाकाल सम्बन्धी कई मत प्रसिद्ध हो गए हैं । अतः उन पर भी विचार कर लेना आवश्यक है ।

श्री सत्यजीवन वर्मा ने 'बारह सौ बहोत्तराँ' पाठ होने पर भी १२७२ के जेठ बदी ९ को रास में सूचित बुधवार नहीं पड़ता, इसलिए १२१२ सही माना । तब माननीय डाक्टर गौरीशंकर जी ओझा चैत्रादि विक्रम सं० १२७२ के जेठ बदी ९ को शुक्रवार था अर्थात् कार्तिक आदि विक्रम संवत् के अनुसार चैत्रादि १२७३ में उक्त

तिथि को बुधवार आता है, यह लिखते हुए इसका रचना काल कार्तिकादि विक्रम संवत् १२७२ यानी चैत्रादि १२७३ को ठीक माना है, ओझा जी ने 'बहत्तराँ' शब्द से १२ का अर्थ लेना ठीक नहीं समझा क्योंकि राजस्थानी भाषा में 'बहत्तराँ' का अर्थ १२ नहीं, ७२ होता है। ओझा जी की यह बात तो ठीक ही थी। पर, इसी संस्करण की अन्य प्रति में 'बारह सौ बारोत्तर' पाठ भी पाया गया है, उसे ठीक मानने पर सत्यजीवन जी के १२१२ का पक्ष भी समर्थित हो जाता है।

डाक्टर रामकुमार वर्मा ने श्री गजराज ओझा के मतानुसार उन्हीं को प्राप्त बड़े उपासरे बीकानेर की प्रति में 'वीसलदेव रास' का रचनाकाल सूचक 'सहस तिहोत्तरि' पाठ को ठीक मानते हुए, महाराजा भोज के समय की संगति भी इससे बैठ जाती है— समझ कर "इस रास का रचनाकाल १०७३ मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए" लिख दिया।

इस दूसरे संस्करण की प्राप्त अन्य प्रतियों, में 'सहस तिहोत्तरि' के स्थान पर 'सहस सतिहतरइ' पाठ भी मिलता है। इसके अनुसार रचना काल १०७७ हो जाता है।

रचना काल को सूचित करनेवाले तीसरे प्रकार के पद्य में 'तेर सतोतरइ' सावण सुदी पंचमी हस्त नक्षत्र रविवार बतलाया गया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस पद्य के 'सत्तोतर' शब्द से १३७७ अर्थ की संगत करके उस समय को अधिक संगत माना है।

वास्तव में मेरी खोज से प्राप्त कई प्रतियों में संवत् के उल्लेखवाले उपर्युक्त तीनों प्रकार के कोई भी पद्य जब नहीं मिलते तो ये तीनों ही पद्य शंकित हो जाते हैं। पूरा निर्णय तो और किसी प्राचीन प्रति के प्राप्त होने पर ही हो सकेगा, क्योंकि तीनों प्रकार के रचना काल सूचक पद्य और उन पद्यों से रहित ये सभी संस्करण सत्रहवीं शताब्दी में ही लिखे मिलते हैं। एक ही शताब्दी की भिन्न-भिन्न प्रतियाँ और विभिन्न प्रकार के निर्देश शंकास्पद ही कहे जा सकते हैं।

इस प्रकार संक्षेप में 'वीसलदेव' रास सम्बन्धी कुछ भ्रमों का निवारण करते हुए अब एक नवीन जानकारी के रूप में इस रास की देशी चाल और शैली में रचित कतिपय रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है।

प्रथम रचना 'वैरागर ऋषि रक्स' है, जो एक ऐतिहासिक राजस्थानी काव्य है। श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के लूँकागच्छ के एक आचार्य वैरागर ऋषि का जीवन वृन्तान्त इसमें ग्रथित किया गया है।

इन आचार्य का समय १६ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है, इसीलिए इसकी रचना १६ वीं शताब्दी के अन्त की प्रतीत होती है। मुझे प्राप्त प्रति भी १७ वीं शताब्दी की है। इसका प्रारंभिक पद्य इस प्रकार है :

"पहिल प्रणाम करूँ जिण राम,
सिद्ध सवै निज वन्दिस्युं भाव।
सगुण आचारज पद नमउं
पछइ मन सुद्धि बान्दिस्युं श्री उवज्झाइ,
साध चलण चित्त लाइस्यौं।
इण परि बन्दता पातक जाइ।१।"
सगुण सिरोमणि गुण निलउ ॥टेक॥

इस रचना में ९० पद्य हैं।

दूसरी रचना नागपुरीय तपागच्छ के आचार्य विजयदेव सूरि रचित 'झील राक्स' है, यह जालौर में रचा गया है। आचार्य विजयदेव सूरि का समय सत्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ ही है। इस का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है :

"पहिलउँ प्रणाम करूँ जिन राम,
लागूँ जी गोयम गण हर पाय।
सुगुरु वाणी वली सँभलउ।
भूलउ जी अक्षर आणिज्यों ठाइ,
रास मभणु रसियामणु,
जिण सुणि सील रयण हीयइ फिर थाइ,
कोयल जिम कलिरव करइ।
मास वस त जिमि अम्बा पसाइ।"
सील अखंडित अविज्या ॥टेक॥

संवत् १६६९ की जिस प्रति में वीसलदेव रास है, उसी प्रति में 'वीसलदेव रास' के टीक बाद ही यह रचना सं० १६६९ के फागुन बदी २ को फूलखेड़ा में लिखी राजा रामचन्द के राज में लिखी गई है। इसकी पद्य संख्या ७७ है। यह छप भी चुका है यह बहुत प्रसिद्ध रचना है, इसकी पचासों हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं जिनमें से सबसे प्राचीन सं. १६१२ की है। यह जोधपुर भण्डार से प्राप्त जिनचन्द्र सूरि की लिखित है।

१९५४

तीसरी रचना किसी जैनेतर कवि की प्रतीत होती है नाम है 'राम जी सीता जी कौ रास', इसकी पद्य संख्या ३४ है प्रति हमारे संग्रह में है। सं० १७३३ के चैत बदी ३ को जोधपुर में मुनि मनोहर ने आर्या मेही के पठनार्थ इस प्रति को लिखा है। पत्रों की संख्या २ है। आद्य पद्य इस प्रकार है :

"गवरिना नन्दन गुणह मण्डाइ,
मति बुधि दोया रूडा गौर कुमार।
भूलो जी अन्तर आणज्यो ठाँव,
श्री राम हो राम रघुवर दे।१।"

अन्त का पद्य इस प्रकार है :

"आवि सीता जी सील पसाइ,
सील बड़ी सती इण संसार।
सियलइ पामइ जी सिव सुखकार,
लखमण राम जी हर्ष अपार।
श्री राम हो राम रघुवर दे। टेक।"

इन रचनाओं में पंक्तियों की संख्या में कमी वेशी है, वैसे 'वीसलदेव रास' में भी कहीं कहीं ऐसी गड़बड़ी पाई जाती है पर इन रचनाओं की शैली 'वीसलदेव रास' की ही है। विशेषतः 'भूलो जी अन्तर आणज्यो ठाँव' यह पंक्ति तो 'वीसलदेव रास' का अनुकरण ही प्रतिभासित होता है। खोज करने पर इस शैली की और भी रचनाएँ मिलेंगीं। मालूम होता है कि 'वीसलदेव रास' जिस लोकगीत की चाल या देशी छन्द-में लिखा गया है, वह छन्द काफ़ी प्रसिद्ध और लोकप्रिय था। जैन कवियों ने ऐसे लोक प्रसिद्ध हज़ारों लोकगीतों की देशियों में अपनी रचनाएँ की है।*

नाहटों की गवाढ़,
बीकानेर

—**अगरचन्द नाहटा**

यदि हम संग मरमर पर कार्य करेंगे तो वह विनष्ट हो जाएगा;
यदि हम पीतल पर कार्य करेंगे तो समय उसे मिटा देगा;
यदि हम मन्दिरों को खड़ा करेंगे तो ये धूलिसात् हो जाएँगे;
परन्तु यदि हम अमरणशील मनों पर कार्य करेंगे और
उनमें न्याययुक्त सिद्धान्तों का प्रवेश कराएँगे तो
हम जीवन के ऐसे टुकड़ों पर कार्य करेंगे
जिन्हें समय न केवल मिटा नहीं सकेगा
अपि तु अधिकाधिक चमकाता जाएगा।

—**डेनियल वेब्स्टर**

---

* देखे जैन गुर्जर कविओं भा. ३ का परिशिष्ट

"चकत्ता की परम्परा" एक परिचय

"चकत्ता की परम्परा" एक ऐसी नवोपलब्ध ऐतिहासिक कृति है जिसमें मुग़लकालीन इतिहास और तत्सम्बन्धी अनेक तथ्यपूर्ण ज्ञातव्यों का, बड़ी ही सजगता से संकलन किया गया है। मुग़ल इतिहास पर प्रकाश डालनेवाली कृतियों में इसका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें न केवल मुग़ल शासकों की वैयक्तिक प्रशस्ति ही है अपितु तात्कालिक भौगोलिक, राजकीय पद, शाही व्यवस्था, नैतिक उपदेश और अन्य सम सामयिक कतिपय राजा और वंशों का भी सांकेतिक उल्लेख है। ऐतिहासिक अनुसन्धान में प्रवृत्त विज्ञों के लिए इसमें बहुत सी ऐसी मौलिक सामग्री भरी है कि यदि सभी का समीक्षात्मक विवेचन किया जाए तो एक ग्रन्थ तैयार हो सकता है।

नामकरण : मुग़लों को चकत्ता कहा गया है। हिन्दी के कवि भूषण ने अपने एक छन्द में इस शब्द का व्यवहार इस प्रकार किया है :

> "चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठे बार बार।"

अकबर के युग में यह शब्द मुग़लों का पर्यायवाची समझा जाता था। चकत्ता का इतिहास इससे भी प्राचीन है। 'चंगेज़' मंगोल शासकों में बड़ा महत्वाकांक्षी था। सन् १२१६ तक उसने अपने पौरुष से उत्तरी और मध्य एशिया से पश्चिमी एशिया तक तुर्कों को मिटा कर अपना राज्य स्थापित किया। सन् १२२६ में उसकी मृत्यु हुई। चंगेज़ खाँ के वंशज भी प्रतापी शासक थे। सीता तारीम का काण्ढ़ा, वंक्षु सीर का दोआब, बलख़ और ग़ज़नी प्रान्त चंगेज़ के तरुण पुत्र चग़तई को दे दिए थे। अतः उस सारे भू-भाग का नाम ही चग़तई पड़ गया। आगे चल कर वहाँ के तुर्क भी चग़तई तुर्क कहलाने लगे। बाबर की माता भी चंगेज़ के वंशज की पुत्री थी। इसी से न केवल बाबर के वंशज ही अपितु उनके सरदार भी 'मुग़ल' कहलाने लगे। चग़तई शब्द क्रमशः अपभ्रष्ट होते होते अकबर के समय में 'चकत्ता' हो गया। परम्परा का तात्पर्य उनकी वंशावली से है।

प्रसंगतः यहाँ पर एक बात का स्पष्टीकरण वांछनीय है कि चकत्ता की परम्परा का प्रेरणा स्रोत क्या है? १३ वीं शती के देवगिरि के यादव राजा के मन्त्री हेमाद्रि ने अपने जीवन काल में 'मेस्तक' द्वारा जो ज्ञानवर्द्धक प्रथा का सूत्रपात किया, उसी प्रथा का ज्ञानमूलक संस्करण प्रस्तुत "चकत्ता की परम्परा" है। हेमाद्रि ने मेस्तकों में राजा तथा महापुरुषों के जीवन और प्रेरणाशील व्यक्तियों को ही लिपिबद्ध न किया अपितु जनोपयोगी सामयिक सभी आवश्यक बातों को एकत्र कर, अन्वेषकों का मार्ग सरल किया। इसी परम्परा में मैं ठक्कुर फेरू[1] को भी रखूँगा जिसने रत्नपरीक्षा, द्रव्यपरीक्षा (मुद्राशास्त्र), गणित सार जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ लिख कर अलाउद्दीन कालीन भारत के तथ्यों को लिपिबद्ध किया। मुग़लों के संसर्ग से संग्रहात्मक शैली में निखार आ गया। तारीख़ का प्रभाव पड़ा। इसी के संक्षेप रूप को "परम्परा" द्वारा सुरक्षित रखा जाने लगा।

वर्ण्य विषय : प्रस्तुत ग्रन्थ पर विचार करने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि सजग संकलन कर्त्ता ने इसमें किन किन विषयों का समावेश किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए मैं उन्हें निम्न भागों में विभक्त कर रहा हूँ :

१ बादशाह के चरित्र और तत्कालीन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ।[2]

२ शासकीय व्यवस्था, तदनुकूल पद, और अन्य शाही विभाग एवं वस्त्रों के प्रकार।

३ शासित प्रदेश का विस्तार और प्रान्तीय विभाजन।

४ तत्कालीन ऐतिहासिक प्रवाद।

५ अन्य राजवंश व स्फुट पद्यावली।

प्रथम विभाग में तैमूर से लगाकर अहमदशाह

---

[1] विशाल भारत मई-जून १९४७ [2] मुग़लकालीन "सभा शृंगार" नामक ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति मेरे संग्रह में है उसमें तात्कालिक वस्त्र, शस्त्र और शासकीय पदों का व्यापक उल्लेख है।

१९५४

और राजा सूर्यमल तक के समस्त बादशाहों का सारगर्भित परिचय व अन्य ऐतिहासिक विवरण सीमित शब्दावली में प्रस्तुत है। संकलनकर्त्ता की जागरूक वृत्ति और इतिहास के प्रति उनके प्रबल प्रेम का पता तो तब चलता है जब कि चार शताब्दी से भी अधिक काल के विस्तृत व संघर्षपूर्ण इतिवृत्त को एकत्र करते समय कोई भी महत्वपूर्ण बात छूटने नहीं पाती। इसके विपरीत कतिपय नवीन तथ्यों की ओर भी संकेत किया है। इसकी वर्णन शैली बिलकुल इतिहास विषयक शोधप्रधान ग्रन्थों के अनुकूल है। प्रत्येक घटना का क्रमिक अंकन इस बात की पुष्टि करता है। यद्यपि इसमें प्रयुक्त संवत् भ्रामक हैं पर तथ्य संकलन सावधान वृत्ति का परिचायक है। इस कृति के पारायण करते समय ऐसा लगता है मानों कोई फ़ारसी तारीख़ का हिन्दी संस्करण पढ़ रहे हों। सौभाग्य की बात है कि यह कृति हिन्दी में है। इसका उपयोग अद्यावधि इतिहास लेखन कार्य में नहीं हुआ है। अतः इस पर प्रस्तुत प्रबन्ध द्वारा अन्वेषकों का ध्यान उस ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ।

भाषा और वर्णन शैली का परिचय मिल सके तदर्थ कृति का आदि भाग उद्धृत कर रहा हूँ :

आदि भाग :

"श्री गणेशाय नमः श्री राधावल्लभाय नमः
अथ श्री चिकित्सा (त्ता) की परम्परा लिंजते"

संवत् १४४४ (?) में तैमूर साहि कीरा ऊपवे की लूँटी मुलतान हो। थली (सिंध) की राह ७२००० सवारां से दिल्ली आऊ। राह में पचास हज़ार आदिमी पकरे। दिल्ली आई मारि डारे। इकबालसां भज्यौ। दिली कतल भई। लूटी के पीछे हरदुवार (हरद्वार) का मेला कतल करि पाहार (पहाड़) की राह (कांगढ़ा होकर) हुइ जंबू कै राजा को पकरि के, सिजर खां को लाहौर का मुलतान वकसि आऐ, आपन देस समर करि कद कौ, (समरकन्द) गऐ। बीच में केऊ बेर पटनौ की पातसाही हिन्दुस्तान में हो गई।

संवत् १५५१ (?) में बावर (बाबूर) पातस्याह जहीरुदी तैमूर के वंस में पाचई जाईगे काबुल में फतै करि आपना वनौ वस्तं करा। तहाँ वहाँ बड़ौ भूकम्प भयौ। बोहोत हवेली गिरी। बोहोत लोग दबि मरे। एक दिन में तीनि बेर धरती कांपी। एक मौस ले दिन में तीनि बेर रांति जह उपद्रव रहो। ऐसांई सर्व ठौर भयौ। भूमि फूटी जल निकसौ। पातस्याह चारि बार हिन्दुस्थान आई गऐ। पांचवे बेर आगरे लौ फतै करि राना सांगा बाहनि आयौ ताहि भगाई दियो। फेरि कितने काल पीछे आगरे में रोग सौ परलोक भऐ, तिनिको मुरदा काबुल मे भयो। पांच वर्ष पातसाही करी।

संवत् १६८० (?) हुमाऊँ जहीं रुन्दी तसत बैठे। गढ कालिंजर फतै करि, गुजरात मैं सुलतांन बहादुर को भजाई के सेरखां जोतपुर (जौनपुर) रहतास, चन्हाड़, (चुनार) पटना, बंगाल। ऐ सब लेके कितने काल पीछे सेरखां सौ पराज भाई, भ्रष्ट हुई भांजै, गंगाजी में गिरै। फेरी एक संकानै पीढी का ढिवा को आधे दिन आगरे में बादस्याही दई, चाम के दाम चलाऐ। निदान अमर कोट में राजा प्रसाद पास गऐ, तहाँ अकबर को जन्मृ भयौ। कोई काल वहाँ वसै पीछै संधार में जाई लूटे। अकबर पकरे गऐ। आपु और वेगम भाजे सो हिरात गऐ। सौ हिराने के हाकिम ने इराने के बातस्याह के हुकुम सौं इनकी बड़ी जापत्ती सिस्टाचारी, करी। पातस्याह जादौ ईरान के साम्हुनै आयौ.........फेरि अनेग जुध करि पठानौ से दिल्ली लई। कोठे परतै गिरि परलोक भयौ.........।

उद्धृत अंश में उल्लिखित घटनाओं की प्रमाणिकता का ज्ञान निम्न विवेचन से हो सकता है।

मंगोलों पर भारत का आक्रमण : भारत पर मंगोलों की दृष्टि प्रारम्भ से ही लगी हुई थी। चंगेज़ ने अफ़गानिस्तान को सर कर भारत होकर कामरूप देश से वापिस जाने का विचार किया था! पर यहाँ की उष्णता उसके लिए असह्य थी। लौट जाना पड़ा। अलाउद्दीन के समय में तरंगी नामक मंगोल सरदार ने दिल्ली को घेरा दिया था। पर क़िले से अपरिचित होने के कारण परेशान होकर लौट गया। सन् १३०४ और उसके बाद सिंध पर भी दो बार मंगोल आक्रमण पर वे ग़ाज़ी तुग़लक द्वारा विफल कर दिए गए। यह वही ग़ाज़ी तुग़लक है जिसने ई० स० १३२० में खुसरो को मार कर दिल्ली का सिंहासन हथिया लिया था और जो आगे चलकर गयासुद्दीन नाम से प्रसिद्ध हुआ। मुहम्मद तुग़लक के समय में भी मंगोलों की एक सेना पंजाब लाँघ कर यमुना तक चली आई थी। जब वह दक्षिण में पहाड़ जीतने की धुन में था तब भी हुलागू

नामक मंगोल ने लाहौर पर अधिकार कर लिया था पर बाद में उसके वज़ीर ने उसे निकाल बाहर किया।

फ़ीरोज़ शाह के वंशजों की अकर्मण्यता के कारण दिल्ली का शासन छिन्न-भिन्न हो गया था। इस समय मध्य एशिया में एक ऐसा विजेता वीर उत्पन्न हुआ जिसने सन् १३७० ई० में चंगेज़ खां के मध्य एशिया के दो राज्यों को उखाड़ फेंका। वह था चग़तई प्रदेश का एक तुर्क और नाम था उसका तैमूर। उसके विशाल साम्राज्य की राजधानी समरकन्द थी।

तैमूर : दिल्ली की दयनीय अवस्था सुनकर उसने सं० १३८६ में भारत पर चढ़ाई की और कपिश पर अधिकार कर सिंध और तुलम्बा की ओर बढ़ा और लूट मार करता तथा राज्यों को नष्ट भ्रष्ट करता हुआ पाक पट्टन और भटनेर के मार्ग से दिल्ली आया। उसके प्रथम दिल्ली आगमन से ही "चकत्ता की परम्परा" का प्रारम्भ होता है। वह दिल्ली से मेरठ होता हुआ हरद्वार पहुँचा। उसके साथ ७२००० हज़ार सवार और ५०००० कैदी थे। इन्होंने दिल्ली में साथ के कैदियों को और हरद्वार के मेले में उपस्थित जनता को कत्ल किया। बाद में वह कांगड़ा होकर जम्मू पहुँचा। उस समय लाहौर में शिखी या शेखा खाकर का अधिकार था। जिसे उसने पकड़वा कर मार डाला और इसके पुत्र जसधर को पकड़ ले गया। तदनन्तर वह सिंध पार कर बन्नू होते हुए समरकन्द पहुँचा। "चकत्ता की परम्परा" में जम्मू के राजा को पकड़ने का उल्लेख प्रसाद जन्य जान पड़ता है। तैमूर जाते समय मुलतान का अधिकार सैयद खिजर खां को दे गया था। जब कि परम्परा में लाहौर भी सौंपने की चर्चा है। यह सम्भव भी जान पड़ता है। कारण, वहाँ के राजा का उसके द्वारा मारा जाना और पुत्र जसरथ को साथ ले जाना इतिहास प्रसिद्ध है। पटना की पातशाही का जो संकेत परम्परा में है वह इब्राहीम शर्की से सम्बद्ध है। सन् १४००—३६ तक वही एकमात्र उत्तर भारत का सम्राट् था।

तैमूर की मृत्यु के बाद जसरथ भाग आया और उसने सुल्तान सिकन्दर[३] की सहायता से मध्य व उत्तरी पंजाब में राज क़ायम किया।

इब्राहीम शर्की के बाद सन् १४५१ में शाह बहलाल लोदी ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। तदनन्तर पठानों का आधिपत्य रहा। इन्हीं लोगों से मुग़लों ने शासन छीना।

बाबर : तैमूर के वंशज बाबर ने सन् १५०६-२० में अपने पैर जमाने शुरू कर दिए थे। उत्तर पश्चिम भारत में महाराना सांगा का प्रभुत्व था। तैमूर अपने वीरोचित आक्रमण से काशगर से इजियन सागर तक सर्व देशों पर प्रभुत्व स्थापित कर चुका था। पर उसके वंशज समस्त अधिकृत राष्ट्र को न संभाल सके, केवल खुरासान अर्थात् उत्तरी ईरान और वंक्षुसीर के प्रदेश काबुल व ग़ज़नी शेष रह गया। वंक्षुसीर में तीन राज्य छोटे छोटे थे। समरकन्द, हिसाब, वदख्शां तथा फरगाना कुल मिला कर पाँच राज्य थे। फ़रगाना के शासक उमर शेख का पुत्र बाबर था। इसका जन्म १४८३ में हुआ था। बाबर के समय में जो उपद्रव हुए जिनका संकेत "चकत्ता की परम्परा" में मिलता है, अन्यत्र नहीं।

११ वर्ष की उम्र में बाबर फरगाना में गद्दी पर बैठा। पर उजबक नेता मुहम्मद शैवानी ने फरगाना से तैमूरियों का प्रभुत्व नष्ट कर दिया। बाबर जान बचा कर काबुल की ओर भागा। वहां का शासक उसका चाचा था। दुर्भाग्य से सं० १५०१ अर्थात् दो वर्ष पूर्व ही वह मर चुका था। कन्दहार के मंगोल काबुल हड़प बैठे। बाबर ने सन् १५०४ में उनसे उसे वापस छीन लिया। तैमूर के राज्य वंशज के नाम पर केवल बाबर ही काबुल की गद्दी पर जी रहा था। शैबानी के काबुल पहुँचने पर वह भाग कर जलालाबाद गया। शैबानी ईरान में युद्ध क्षेत्र में घोड़ों और योद्धाओं के बीच कुचल कर ज्यों ही मरा त्यों ही बाबर समरकन्द में शाह के सामन्त के रूप में गद्दी पर जा बैठा। फिर उजबकों ने उसे परास्त किया। इसलिए वह सन् १५१३, १५१४ में अपने देश को अन्तिम नमस्कार कर काबुल आया और पांच वर्ष में वहाँ पर समुचित व्यवस्था कर सं० १५१६ में भारत की ओर चला। कपिश इस्लाम विरोधी बाजौर बंदूक से अपरिचित थे। उनका पराभव स्वाभाविक था। वह सिंध पार कर नमक की पहाड़ियाँ लांघते और आक्रमणों को झेलते हुए स्यालकोट पहुँचा। साथ ही कंदहार

---

[३] यह शहाबुद्दीन का पौत्र था।

को भी जीता। इधर दिल्ली के पठानों का बुरा हाल था। सरदार व अन्य प्रान्तों में विद्रोही भावना व्याप्त थी। इस दुर्बल स्थिति को देखकर सांगा ने बाबर के पास दूत भेजे और दिल्ली पर आक्रमण करने को प्रेरित किया। शर्त यह थी कि दोनों एक साथ हमला करें। बाबर दिल्ली की ओर से और सांगा आगरे की ओर से आगे बढ़े। बाबर ने आते ही लाहौर और दीपालपुर पर अधिकार कर लिया। दूसरे वर्ष यमुना के किनारे तक आया। यद्यपि इब्राहीम पानीपत तक लड़ने को गया था पर बाबर की तोपों ने उसकी सेना को अल्प समय में ही तहस-नहस कर दिया। इधर मुहम्मद लोदी को दिल्ली का सुलतान घोषित किया गया पर वे तुर्क दिल्ली की गरमी कब तक सहन कर सकते थे। बाबर ने क्षेत्र अनुकूल देख कर दिल्ली और आगरा को सर कर लिया। यह देख कर अवध व जौनपुर के सरदारों ने स्वयं अपने आपको बाबर की सेवा में अर्पित कर दिया। उधर सांगा से युद्ध ठना। जिस चाल से बाबर अपने जीवन की प्राथमिक लड़ाई में शेबानी की चाल[४] से हारा था उसी के प्रयोग से उसने सांगा की फ़ौज को परास्त कर दिया। उत्तरी भारत का सम्राट् बन गया और सन् १५३० में आगरा में कालगति को प्राप्त हुआ उसका शव काबुल भेजा जाकर दफ़नाया गया।

हुमायूँ : बाबर के समय के पश्चिमी भारत में बहादुर शाह का प्रभुत्व था। हुमायूँ के गद्दीनशीन होते ही उसे अपने भाई कामरान को बदख़्शां, काबुल, कन्दहार और पंजाब सौंपने पड़े। हुमायूँ को पिता के दो अपूर्ण कार्यों को करना था: पश्चिमी राजस्थान पर अधिकार और पूर्वीय अफ़गान विद्रोह की शान्ति। फरवरी सन् १५३५ में बहादुरशाह को गुजरात में न पाकर हुमायूँ ने मालवा और गुजरात को अपने अधिकार में ले लिया। पूरी व्यवस्था भी न कर पाया कि अस्करी विद्रोह के कारण उसे लौटना पड़ा। फलतः सन् १५३६ में बहादुरशाह ने अपने प्रदेश ले लिए। उसके पास पुर्तगालियों की शक्ति अच्छी थी। सन् १५३७ में वह चल बसा। हुमायूँ की विजय का वर्णन नरहरि ने सुन्दर रीति से किया है।

इधर बिहार में शेर खाँ का प्रभुत्व था उससे जागीरदार अप्रसन्न थे। पर जनता प्रसन्न थी। हुमायूँ को गुजरात गया जानकर उसने राज्य वृद्धि के लोभ से मुँगेर और भागलपुर को जीत कर गौड़ पर धावा बोल दिया। हुमायूँ के गुजरात से लौटने पर चुप हो गया। हुमायूँ जब बंगाल पर चढ़ाई करने लगा तब वह अपने परम विश्वस्त व्यक्तियों को बंगाल में छोड़ कर स्वयं चुनार आया ताकि रसद आदि का समुचित प्रबन्ध कर मुग़लों से निपट सके। इधर हुमायूँ भी चुनार फ़तह करने में लग गया और उधर शेर खाँ ने चतुराई से शरणार्थी के रूप में रोहतास का सुदृढ़ दुर्ग और दक्षिण बिहार का पहाड़ी प्रदेश हस्तगत कर लिया। अप्रैल १५३८ में चुनार से हुमायूँ गौड़ चला तो शेर खाँ झाड़खण्ड होते हुए रोहतास चल दिया। बंगाल और बिहार पर बादशाह ने अधिकार किया। शेर खाँ झाड़खण्ड में छिप गया। शीतकाल में पुनः शेर खाँ द्वारा बिहार और जौनपुर ले लिए जाने पर बादशाह हुमायूँ का बंगाल से सम्बन्ध विच्छेद हो गया। वह पुनः बंग पर आक्रमणार्थ गया। इधर शेर खाँ ने अपनी सेना रोहतास में समेट ली और उसने कर्मनाशा के पास चौसर ग्राम में हुमायूँ से लड़ने का निश्चय किया। हुमायूँ ने संधि के लिए दूत भेजे पर वे सफल न हो सके। फलतः एक रात को जब मुग़ल सेना आराम से सो रही थी तब शेर खां ने करारा हमला किया। सैनिकों ने नदी में कूद कर जान बचाई। हुमायूँ स्वयं मुसीबत से अपनी रक्षा एक भिश्ती द्वारा कर सका। इसी ऋण के फलस्वरूप उसने भिश्ती को आधे दिन का राज दिया था, और उस भिश्ती ने चमड़े का सिक्का चलाया था। जैसा कि प्रस्तुत परम्परा से अवगत होता है।

अब तो शेर खाँ बंगाल, बिहार, जौनपुर और अवध का सर्वेसर्वा बन गया और सन् १५३९ में गौड की गद्दी पर बैठ कर अपने आपको शेरशाह बादशाह के नाम से घोषित कर दिया।

हुमायूँ के पास अब केवल रुहेलखण्ड और यमुना का दक्षिणी भाग शेष रहा। बाबर का मौसेरा भाई मिर्ज़ा हैदर अब हुमायूँ के पास आया। इधर हुमायूँ ने कामरान से अत्यन्त विनम्र शब्दों में शेर खाँ से लड़ने के लिए सहायता माँगी। लेकिन कामरान पर इसका

---

[४] इस चाल को "तुलगुमा" कहा जाता है। यह मंगोलों की ख़ास चाल थी।

तनिक भी प्रभाव न पड़ा। इस आपसी वैमनस्य का संवाद सुनकर शेर खाँ ने सदा के लिए मुग़लों को भारत से निकाल देने की प्रबल इच्छा से विशाल सेना के साथ १७ मई सन् १५४० में आक्रमण किया और कन्नौज के पास युद्ध हुआ। मुग़लों के तोपखाने के जमने से पूर्व ही शेर खां ने ऐसा जमकर हमला किया कि मुग़लों के पैर उखड़ गए। हुमायूं सिन्ध में उमरकोट चला गया। वहाँ से कामरान के भय से ईरान चला गया, जहाँ के शासन की सहायता से उसने कन्दहार जीता और कामरान से काबुल भी छीना। सं० १५५० तक उसने दो बार काबुल को खोकर प्राप्त किया। बदख़्शां भी उसे मिल गया।

विक्रमादित्य हेमू को बंगाल की ओर उलझा हुआ देख हुमायूँ ने दिल्ली ले ली और अपने १३ वर्षीय बालक अकबर को, बैराम खां के संरक्षण में पंजाब का शासक नियुक्त किया और ६ माह बाद कोठे से गिर कर सदा के लिए चल बसा।

तीन सम्राटों के परवर्ती शाहों का परिचय सापेक्षतः विस्तृत है। उपर्युक्त वर्णन का समर्थन तात्कालिक हिन्दी साहित्य से भी होता है। नरहरि महापात्र के छन्द इस दृष्टि से विशेष उपामेय हैं। वे स्वयं कतिपय बादशाहों से सम्बद्ध थे।

शासन व्यस्थापकों की सूची : राष्ट्र का चिरस्थायित्व उसकी आन्तरिक व्यवस्था पर निर्भर है। उचित संचालन के अभाव में प्रबल राष्ट्र या सम्राट् तक का सिंहासन कभी भी धराशायी हो सकता है। मुग़ल कालीन शासकीय प्रणाली पर तात्कालिक तवारीखे व बादशाहों के वैयक्तिक चरित्र पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। आधुनिक विज्ञ अन्वेषकों ने भी उस पर गम्भीरता के साथ विचार किया है। अतः उस पर अधिक लिखना पिष्टपेषण मात्र होगा। इतना संकेत अवश्य करना चाहूँगा कि मुग़ल राज्य व्यवस्था पर जैनुलाबिदीन, हुसैन शाह बंगाली और शेरशाह की शासन पद्धति का बहुत प्रभाव है। चकत्ता की परम्परा में अकबर वाले प्रकरण में राजा टोडरमल (जो शेरशाह के दरबार के भी रत्न थे) कृत राजकीय प्रबंध विषयक एक लम्बी सूची दी है जिसमें राजकीय पदाधिकारियों, अमीर उमराव, विभागीय प्रबन्धक आदि प्रशासनिक ज्ञातव्य संग्रहीत हैं। शाही महलों का प्रबन्ध विशेष रूप से होता था। इसके लिए टोडरमल ने ३६ विभागों का उल्लेख किया है पर इस ग्रन्थ में एक अलग से जो सूची दी है उसमें ४५ विभाग हैं जो केवल बादशाहों की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए ही थे। सम्भव है अकबर के बाद संख्या बढ़ गई हो। सूबों और परगनों की व्यवस्था रखनेवाले पदाधिकारियों की मर्यादा क्षेत्र पर प्रकाश डालनेवाली एक तीसरी सूची भी संगृहीत है। शाही वैभव और शासन पद्धति की दृष्टि से ये सूचियाँ महत्वपूर्ण हैं। अहमदशाह तक टोडरमल पद्धति कुछ परिवर्तन के साथ चलती रही।

वस्त्र व उनके प्रकार : "चकत्ता की परम्परा" की परम्परा के लेखक की दृष्टि बहुत व्यापक जान पड़ती है। उसने मुग़ल-कालिक प्रचलित वस्त्रों की नामावली इस प्रकार दी है :

सूती वस्त्रों की जातियाँ : सरबन्द, तनसुख, तनजेब, तरदाम, आनाबानी, सबंनम, संजरखानी, दुदांमी, दोरिया, चारखाना, फुलकारी, खासा, मलमल, सिरीसाफ, करपुर, बाकता, भडौची, महमूदी, औरंगजेबी, नादरस्याही, खैराबादी, हमरू, सीर, सरक लाल, छींटकलन्दरा, अललस, मिश्र, लुंगी, सन्दली, हलाहचा, मुसजर, दरियाई, खीनखाब, जरबफत, ताड़पत्री, सूसी, अम्बर, बुलबुल, चरम, सरणा, ताफ़ता, कसबु, आड़ा, सीपी, पचतिलिया, सोला गजिया, झिलमिल गुलबदन।

विलायती वस्त्र के नाम : देबा, परनिया, हरी, कंत्ता, काकुम, समूर, संजाब, पोस्ती।

साल के भेदः : अलवान, चारहसीऐ, खलिलखानी, पलेदार, बूटेदार, अलफी, बबरी; मुरकी।

बसमीन के भेद : साला, धूमा, भोलीद, परी, संजाव, समूर, पोस्ती, सकरलात, दरुया, मखनल।

साल के रंग : मदारी, लाल मदीं, नांफरवांनी' असमानी, बनफस, काखताई, सुरमई, तूसी, काकुरी, सफ़री संदली, बादामी तुरंजी, अुतरी, गुलाबी, सफलता, नारंगी, उनामी लाखी, किरमजी, कासनी, अगरवांनी, जाफ़रानी, चंपई, कपासी, जोंजी, नासपाल, अनवी, सीसनई, काछी, जर्मुदी, अंवेऊवा।

जरी के प्रकार : तास, आसवारी, नीमजर मुकेस, बादला, कालाबतून, सितार।

वस्त्र संस्कार भेद : कारकोच, चिकन, कसीदा, कूलमकारी, बसमां, छीपा, जरदोज़, बाँधनू, लहरिया, रंगदार, सुजनी, तारतोड़, मुकेसी, डांक, ऊतू, चनांबट।

आभूषण जड़ा व संस्कार : जड़ाव, पच्चीकारी, अकसी, मट्ठक, मनछत, संवाद, सादैकारी, कोफ़त, तहनिसा, जरनिसा, मुलम्मा, बरत, सवक्का, जिला, घडत, भरत ।

भौगोलिक सीमा : बादशाही प्रदेश पूर्व से पश्चिम की ओर ३०२२ मील था । प्रति दिन २४ मील के अनुपात से चला जाए तो १२६ दिन में मार्ग तय किया जा सकता था । मार्ग में मुख्यतया ये बड़े नगर आते हैं । सिलहट, ढाका, जहाँगीर नगर, गढ़ी, मुँगेर, पटना, बनारस, प्रयाग, सहजादपुर, कड़ा, जहाँनाबाद, कोरडी, इटावा, शिकोहाबाद, आगरा, मथुरा, दिल्ली, सरहिन्द, लाहौर, अटक, पेशावर, काबुल और ग़ज़नी ।

उत्तर से दक्षिण २८१४ मील था । २४ मील प्रति दिन के हिसाब से ११७ दिन लग सकते थे । मुख्य नगर मार्ग में ये पड़ते थे—छोटी कश्मीर, लाहौर, दिल्ली, आगरा, ग्वालियर, सिरौंज, उज्जैन, बुरहानपुर, नौरंगाबाद, बीजापुर, चैंजी, और सेतुबन्ध रामेश्वर । प्रत्येक नगर का फ़ासला कोसों के अनुपात से दिया है । परन्तु मुझे इसकी सचाई पर शंका है, क्योंकि आगरा ग्वालियर के बीच का अन्तर ९८ मील का बताया है जब कि है केवल ७३ मील का अन्तर ।

प्रान्तों का विभाजन और क्षेत्रफल : मुग़लों द्वारा शासित प्रदेश १२ प्रान्तों में विभक्त था । मुग़ल शासन प्रणाली के अनुसार एक ऐसा अधिकारी प्रत्येक प्रगणक परगने में रहा करता था जो देश विदेश की नूतन ज्ञातव्य बातें संगृहीत करता था । सब परगनों के प्रामाणिक विवरणों के आधार पर ही प्रस्तुत परम्परा में प्रत्येक प्रान्त का साधिकार परिचय कराया गया है । परिचय क्या है इस युग की दृष्टि से इतिहास है । प्रत्येक प्रान्त की लम्बाई, चौड़ाई, चौहद्दी, नदी, पहाड़, जंगल, जानवर, कुंड, सरोवर, तीर्थ स्थान, जिले, परगने, क्षेत्रफल, मुख्य नगर एवं दुर्ग, सोना, चांदी आदि धातुओं की खदानें, वस्त्र, जनता का रहन सहन और प्रान्तीय शासन में पड़ने वाले देशी राजाओं के छोटे मोटे प्रदेशों का भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत है । इस विवरण में जो क्षेत्रफल दिया है वह राजा टोडरमल की श्रमशीलता का परिणाम है, कारण कि दिल्ली प्रान्त का क्षेत्रफल नहीं दिया गया है, केवल संकेत कर दिया है कि राजा टोडरमल ने वहाँ की भूमि को नापा नहीं है । इस प्रकार सर्वांगपूर्ण वर्णन पर 'आइने अकबरी' का स्पष्ट प्रभाव है । आगरा और मालवा प्रान्त का वर्णन 'आइने अकबरी' के वर्णन से मिलता जुलता है । सभी प्रान्तों का पूरा परिचय तो देना सम्भव नहीं है अतः निम्न कोष्ठक में आवश्यक ज्ञातव्य दिए जा रहे हैं :

संख्या	नाम	लम्बाई चौड़ाई (मीलों में)	सरकार	परगने	क्षेत्रफल
१	बंगाल	८००=४००	२४	७००	
२	बिहार	२४०=२२०	९	१९०	२४४४१२० बीघे
३	इलाहाबाद	३२०=२४४	१०	१७७	३९६८०००) ३
४	अवध	२७०=२३०	५	१३८	१०७०१०८०)
५	आगरा	३५०	१३	२०३	२७८६२१८९।३
६	मालवा	४९०=४६०	१२	३०१	२४२६६०२१) ६
७	खानदेश	१५०=१००	०	३२	१३६४७०६२
८	बरार	४००=१२०	१३	१४४	२००६८१९०) २
९	गुजरात	६०४=५२०	९	१९८	१६९३६६७७) ३
	झालावाड़	१४०=८०			
	सोरठ	२५०=१४४			
	कच्छ	५६=२००			
	सालेर	१२०=८०			
१०	अजमेर	३३६=३००	७	१९७	२१४३५९४१९
११	दिल्ली	३३०=२८०			
१२	लाहौर	३६०=३९०	५	२००	१०१०००७५।४

बारह प्रान्तों में प्रमुख नगरों पर "भूगोल पुरान" "आशो बे हिन्दुस्तान" "कुल्लियाते तालिब" 'आइने अकबरी' आदि फ़ारसी तवारीखों के अतिरिक्त जैनों द्वारा रचित नगर वर्णनात्मक[5] साहित्य में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। आइने अकबरी को छोड़कर अन्य ग्रन्थों का समुचित उपयोग इतिहास लेखन में अद्यावधि नहीं हुआ है। अतः उनका विशेष महत्व है।

मुग़लकालीन भारत के ऐतिहासिक प्रवाद : प्रवाद भले ही विशुद्ध इतिहास की कोटि में न आते हों पर प्रसंग विशेष के स्पष्टीकरण में उनकी उपयोगिता सर्व विदित है। व्यक्ति की परख के लिए एक उसके जीवन की एक घटना काफ़ी है। उनका चरित्र, उसकी विशालता, उसका वैदुष्य आदि अनेक मानवीय गुणों का वास्तविक परिचय इन प्रवादों से मिलता है। मुग़लों का वैभव पूर्ण जीवन, भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी आस्था, उनका मानव पक्ष, कला और विद्या के प्रति आकर्षण, न्याय प्रशासनिक चातुर्य, परम-सहिष्णुता और महत्वाकांक्षा आदि अनेक विषयों से सम्बद्ध १५० से भी अधिक ऐतिहासिक प्रवादों का प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलन है। कहीं कहीं तो उसमें इतनी सजीवता और स्वाभाविकता आगई है कि मानों वे प्रसंग उन व्यक्तियों के, वर्णित जीवन के ही पूरक हों। प्रधानता तैमूर, हुमायूँ, अकबर, बीरबल, तानसेन, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब, महावत खाँ, मुनव्वर खाँ, आसफ़ खाँ, सादुल खाँ, अमीर खाँ, सीदी पोलाद खाँ, निजामुद्दीन, औलिया, हसनअली खाँ, अलीमर्द खाँ, अब्दुर्रहीम खानखाना, अब्दुला खाँ, फर्रुखसियर, शाहआज़म, खुसरो, महम्मद-शाह, जयसिंह, मानसिंह, रामसिंह, अभयसिंह, राठौड़, शिवसिंह, शेखावत, रामकृष्ण, महाराज बखतसिंह, नूरबीबी, नूरजहाँ, जोधाबाई आदि दर्जन पर्यटकों से भी प्रवादों का सम्बन्ध है। उपर्युक्त शीर्षक से मैंने उन सब का अनुवाद और वैयक्तिक परिचय युक्त भूमिका के साथ एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी तैयार कर लिया है।

स्फुट : जयपुर नरेश माधवसिंह के उज्वल व्यक्तित्व का विशद परिचय बडी ही भाववाही भाषा में दिया गया है। उससे केवल इतना ही ज्ञात हो सका कि महाराजा का गोस्वामी व्रजभूषण जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था और इनसे हिन्दी में शतरंज पर एक मौलिक ग्रन्थ लिखा था।

आमेर के राजाओं के नाम और सीसोदियों के कुछ महापुरुषों का सांकेतिक उल्लेख भी संग्रहीत है। सोलह श्रृंगार राग रागिनी और नैतिक उपदेश भी पदावली हैं।

प्रति परिचय : अभी जो प्रति मेरे सम्मुख है वह १०६ पत्रों की है। प्रत्येक पृष्ठ पर १७, १६ पंक्तियां अंकित है। यह प्रति प्राचीन प्रति की प्रतिलिपि है जैसा कि इसकी पुष्पिका से एवं बीच बीच में छूटे हुए पाठों से अवगत होता है। लेखन प्रशस्ति इस प्रकार है :

लिसत लघुमति अर्जुनदास काइस्थ श्रीवास्त (व) वासी बागरमऊ के तातै फेरी देस भदावर[6] कस्बा मींड के जथां प्रति देसी तथां सो लिसी, अक्षर मात्रा भूलचूक होई सौ संजन देसि सुधारिवी मौ को कृपा करी दोसु मति देवि।

संवत् १६०४ मिति अगहन सुदी १० दसमी गुरुवार कौ सम्पूर्ण भई मौजे कनाथ गांव में श्री बाबा रामदास जंगा कौ बैठी लिसी। देसै सुनै वांचे तांकौ हमारी डंडौत प्रनाम। श्री राम राम, श्री सीताराम, श्री राधाकृस्न जी सदा सहाइ रहे।

---

[5] नगर वर्णनात्मक साहित्य पर विस्तृत भूमिकायुक्त एक ग्रन्थ मैंने तैयार किया है जो शीघ्र ही प्रेस में जायगा।

[6] यह प्रति भदावर प्रान्त में लिखी गई है जिनका अपना ऐतिहसिक महत्व है यह प्रदेश राजपूतों का केन्द्र है। अनुमान है कि किसी बड़े परिवार में कृति रही होगी जिस पर से प्रतिलिपि की गई। भदावर सम्बन्धी निम्न पद्य प्राचीन हस्त प्रति में दृष्टिगोचर हुए हैं।

पहिले गई गुजरात के देराहि अंतर बेद तें मारी मगाई।
बूँदी ते हाड्न काढ दई तब पंचमहालहि घात लगाई।
आई उथाई तबै मांझकीयाय कै खंड बुंदेल की थाह न पाई।
ढूँढत देस फिर सिगरे तब गाजि कै झूंठ भदावर आई।

कविगंग के शब्दों में :
आवत जात मझांवत बेहड खाल तपै उठना फटिवै है,
गंग कहे सुनु शाह अकबर अब भूमि भदावर भाव न देहै।

भूषण :
भूल परी अब भूषण पै तब भूषण भूली भदावर आए।

ठाकुर कवि ने भदावर को अपने छंदों में याद किया है।

१९५४

रचना काल : अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस मूल्यवान् कृति का समय क्या हो सकता है? सम्पूर्ण कृति में लेखक ने कहीं भी रचनाकाल की ओर संकेत तक नहीं किया न अपना परिचय देना ही उसने उचित समझा, परन्तु ग्रन्थ के वर्णित विषय से समय निर्धारण में पर्याप्त सहायता मिलती है। "चकत्ता की परम्परा" वहाँ समाप्त होती है जिन दिनों राजा सूर्यमल जाट का प्रताप दैनंदिन बढ़ता ही जा रहा था। अतः इसका रचना समय निश्चित रूप से सन् १७५६ के पूर्व और १७६३ के बाद का नहीं हो सकता। यही सूर्यमल का अस्तित्वकाल है। दो और ऐतिहासिक तथ्य ग्रन्थ में हैं जिनसे उल्लिखित काल का समर्थन होता है। महाराज माधवसिंह के वर्णन में सूचित किया है। "आपने आमेर का राज्य पाया"। तात्पर्य कर्ता ने आगरे राज्य प्राप्ति के बाद उसकी प्रशित की गई है। इनको २ जनवरी सन् १७५१ आमेर = (जयपुर) का सिंहासन मिला और १७६८ में इहलोक लीला समाप्त की। ऐतिहासिक प्रवादों में बख़्तसिंह राठौड़ का भी एक प्रसाद है। इसको सन् १७५१ में मारवाड़ का सिंहासन प्राप्त हुआ। इन दिनों ऐतिहासिक तथ्यों का अन्तर्भाव सूचित समय में हो जाता है। तथापि बख़्तसिंह जी का राज्यकाल सं० १७५१ से प्रारम्भ होता है पर राजा सूर्यमल के बढ़ते हुए प्रताप का जहाँ तक प्रश्न है, सन् १७५६-१७६३ के बीच ही है। इसका रचना काल माना जाना उचित ही है। इसकी भाषा बुन्देली हिन्दी है अतः बहुत सम्भव है कि बुन्देलखण्ड के राजाओं ने ही वैयक्तिक ज्ञान प्राप्त्यर्थ किसी लेखक से इसकी रचना करवाई हो। कारण कि इसकी जितनी भी प्रतियाँ अद्यावधि उपलब्ध हुई हैं वे बुन्देलखण्ड या तत्समीपवर्ती प्रदेश में ही। २ प्रतियाँ ओरछा के राजकीय पुस्तक संग्रहालय में, १ प्रति शिवपुरी (मध्यभारत) के पटवारी के पास तथा २ प्रतियाँ ग्वालियर सुप्रसिद्ध गवेषक श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव[७] जी के निजी संग्रह में हैं। एक प्रति तो मोड़ी में लिखित हैं जो विशेष महत्व की है! इसमें मुग़लों के परगनों की आमदनी, अधिकारियों का वेतन, गाव आदि अनेक ज्ञातव्य संगृहीत हैं। इन सब का लेखक एक ही होगा या नहीं कहा जा सकता। पाँच प्रतियों के आधार पर यदि एक सुन्दर समीक्षात्मक संस्करण तैयार किया जाए तो निःस्सन्देह हिन्दी के ऐतिहासिक साधानों में वृद्धि होगी और यह प्रमाणित होगा कि, इतिहास पर भी, हिन्दी के समर्थ लेखकों में, उपेक्षित ज्ञान की अपूर्णता के युग में, लेखनी चलाकर भाषा साहित्य को सर्वांग पूर्ण बनाने का सफल प्रयास किया था।

लश्कर (ग्वालियर)

—**मुनि कान्तिसागर**

सफल मनुष्य

—अपनी ग़लतियों को भूल जाता है परन्तु उनके कारणों को नहीं भूलता।

—सबसे प्रथम विचारक होकर ही सन्तुष्ट नहीं होता परन्तु सबसे प्रथम कार्यरूप में परिणत कर सन्तुष्ट होता है।

—वह आज के स्वप्नों को कल की मृगतृष्णा नहीं बनाता।

---

[७] मैं श्री भालेराव जी का बहुत आभारी हूँ जिनने अपनी हस्तप्रत मुझे अध्ययन के लिए दी।

हिन्दी की समस्याएँ

हिन्दी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने के उपरान्त उसके ऊपर एक महान् उत्तरदायित्व आ पड़ा। विदेशी सरकार ने हिन्दी को सर्वथा उपेक्षा की दृष्टि से देखा। इससे सबसे बड़ा नुक़सान यह हुआ कि हिन्दी में राष्ट्रभाषा के उपयुक्त साहित्य का अभाव हो गया। कहानी, कविता और उपन्यासादि तो ख़ूब लिखे गए परन्तु राजनीति, समाजनीति, अर्थविज्ञान, भूगोल, वाणिज्य इत्यादि विषयों पर प्रायः कुछ भी नहीं लिखा गया। इसीलिए हमारे नेताओं को हिन्दी को पन्द्रह वर्ष का वनवास दे सकने का साहस हो पाया। हम इसके लिए किसी को दोष नहीं दे सकते। यदि किसी को दोष दिया जा सकता है, तो वह है हमारी परतंत्रता। परन्तु स्वतंत्रता के बाद भी राष्ट्रभाषा अपने समुचित मार्ग पर सुगमतापूर्वक अग्रसर हो रही है? इस प्रश्न का उत्तर हमें नकारात्मक ही मिलता है। आज हिन्दी के पथ में कई बाधाएँ खड़ी हैं। आज राष्ट्रभाषा हिन्दी का मार्ग कहीं दुष्कर है।

हिन्दी पर साम्राज्यवाद का आरोप : आज अहिन्दी भाषी लोगों के हृदय में एक भ्रम घर कर गया है। उनका विचार है कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी उन पर बलात् लादी जा रही है। हिन्दी को वे अपनी प्रादेशिक भाषाओं की शत्रु समझ बैठे हैं। इस शंका का समाधान समय समय पर हिन्दी के विद्वानों एवं साहित्यकारों ने किया है। हम नीचे इस समस्या पर हिन्दी के उदाहरण दे रहे हैं।

आज से कई वर्ष पूर्व स्व० प्रेमचन्द ने अपनी दक्षिण भारत यात्रा के अवसर पर एक जगह भाषण में कहा था कि जिस प्रकार दक्षिण वालों ने अंग्रेज़ी जैसी विदेशी भाषा को अपनाकर भारतवर्ष में अपना प्रभुत्व कायम किया, उसी तरह यदि वे हिन्दी को अपनाएँ तो भारत को नई दिशा सुझा सकते हैं।

और आज भी श्रीयुत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल डंके की चोट से कहते है कि हिन्दी का मोर्चा प्रादेशिक भाषाओं से कदापि नहीं है। यदि कहीं इसकी होड़ है तो अंग्रेज़ी से; वह भी अंग्रेज़ी साहित्य से नहीं अपि तु भारतवर्ष भर में व्याप्त अंग्रेज़ी भाषा से भारत की राष्ट्रभाषा के नाते है। उन्होंने अपने एक लेख में तो यहाँ तक लिखा है कि भले ही किसी दूसरी प्रादेशिक भाषा को राष्ट्रभाषा मान लिया जाए परन्तु वह भाषा भारतीय होनी चाहिए। स्वतंत्र भारत विदेशी भाषा नहीं सहन कर सकता।

हिन्दी के वयोवृद्ध पत्रकार और साहित्यकार माखनलाल चतुर्वेदी जी ने साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' के एक लेख में लिखा है कि हिन्दी (साहित्य) को प्रादेशिक भाषा के नाते उतने ही अधिकार हैं जितने किसी दूसरी प्रादेशिक भाषा को प्राप्त हैं। परन्तु राष्ट्रभाषा के नाते इसके अधिकार कुछ बढ़ जाते हैं। उन्होंने सुझाव दिया है कि हिन्दी साहित्य को और राष्ट्रभाषा हिन्दी को दो अलग सत्ताएँ माना जाए। हिन्दी भाषी लोग साहित्य के उत्कर्ष की बात सोचें किन्तु राष्ट्रभाषा के विकास का उत्तरदायित्व सरकार पर ही है।

महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक होते हुए भी मातृभाषाओं के प्रबलतम पक्षपाती हैं।

जब हिन्दी के उच्च कोटि के साहित्यिक ऐसी सद्भावनाएँ रखते हैं तो हिन्दी साम्राज्यवाद का यह नारा खोखला मालूम पड़ता है। हो सकता है यह नारा भाषा से उतना सम्बन्ध नहीं रखता हो जितना कि राजनीति से। आज हमारे देश में प्रायः ऐसा वातावरण बन चुका है कि भाषा और राजनीति को इकठे मोर्चे पर रखा जा रहा है। हालांकि दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं है।

हम डा० अग्रवाल के शब्दों में ही कहेंगे कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा तो अहिन्दी भाषी लोग ही बनाएँगे, हमें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

वस्तुतः हिन्दी किसी भी प्रादेशिक भाषा को ऐसी निगाह से नहीं देखती। आज तो वह सभी के सहयोग से अपने साहित्य में विश्वात्मा की प्रतिष्ठा करना चाहती है। इस समय तो प्रत्येक भारतीय भाषा को अपना अनुपम से अनुपम रत्न देकर राष्ट्रभाषा की झोली भरनी चाहिए। हिन्दी सभी का सहयोग चाहती है, किसी पर

साम्राज्य नहीं ।

केन्द्रीय सरकार की उपेक्षा : हम पन्द्रह वर्ष के वनवास वाली बात ऊपर कह चुके हैं । इसका कारण भी अपनी समझ के अनुसार लिख चुके हैं । परन्तु एक प्रश्न रह रह कर भी राष्ट्रभाषा प्रेमियों के हृदय में रह रह कर उठ जाता है, वह है; क्या इस वनवास के उपरान्त हिन्दी का सिंहासनारोहण हो सकेगा ?

आखिर यह दुर्भावना क्यों ? इसका एक ही उत्तर हमारी समझ में आ रहा है । वह है कि जिस रवैये से केन्द्रीय सरकार चल रही है या जो नीति हिन्दी के विकास के लिए उसने अपनाई है वह असंतोष जनक है । गत संसद अधिवेशन में इस शंका ने उग्र रूप धारण कर लिया था जिसके फलस्वरूप संसद भवन में हिन्दी समर्थकों और शिक्षा मंत्री के बीच खूब झड़पें चलीं । परन्तु इससे तो कुछ भी रचनात्मक नहीं बन पाया, सब कुछ तू तू मैं मैं ही रह गया ।

यह बात यहाँ तक बढ़ गई है कि राष्ट्रभाषा के शुभचिंतक उसके विकास के लिए केन्द्र में अलग मंत्रालय की माँग रख रहे हैं ।

वास्तव में सरकार स्वाधीनता के सात वर्षों में राष्ट्रभाषा का आधा रूप भी नहीं बना सकी । कहा तो बड़े लच्छेदार शब्दों में जाता है कि १९६५ में हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले लेगी । परन्तु हमें पता नहीं चलता यह सब कैसे होगा ? आज तक सरकार का आधा काम-काज हिन्दी में हो जाना चाहिए था, परन्तु आज भी हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के 'विजिटिंग कार्ड' पर प्रश्न चिन्ह लगाया जाता है, और जिस हिन्दी को मौलाना साहब ईजाद कर रहे हैं लोगों में उसका स्वागत नहीं है । तात्पर्य यह है कि आज तक केन्द्रीय सरकार कोई भी निश्चय नहीं कर सकी कि राष्ट्रभाषा का रूप क्या होगा ? यदि यही निश्चय करते करते आठ साल गुज़र जाएं तो बाकी सब कब होगा ?

पता नहीं मौलाना साहब कहीं से जादू की छड़ी ले आएँ जिसे वे २६ जनवरी १९६५ को सुबह उठते ही घुमाएँगे और केन्द्रीय सरकार के सभी काग़ज़ अंग्रेज़ी से हिन्दी में हो जाएँगे और उस दिन संसद में मौलाना साहब हिन्दी में व्याख्यान देंगे । यह सब तब हो सकेगा यदि मौलाना के पास सचमुच ही ऐसी कोई जादू की छड़ी हो । अन्यथा यह सब स्वप्नवत् है । हाँ, दिल बहलाने के लिए तो यह खयाल हम हिन्दीवालों के लिए अच्छा ही है । अस्तु ।

हिन्दी पत्रकारिता : अच्छा सरकार की बातें यहीं छोड़ अब हम तनिक अपने ऊपर दृष्टिपात करें । आज के युग के लोक जीवन में पत्रकारिता महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । प्रजातन्त्र में तो इसे लोकमत का 'बैरोमीटर' कहा जाता है । यदि राष्ट्रभाषा का विकास चाहते हो तो हिन्दी पत्रकारिता को उत्कर्ष दिलाओ । यही हमारी राय है । क्योंकि राष्ट्रभाषा के अनुकूल वातावरण बना सकने में हिन्दी पत्रकारिता ही एकमात्र उपाय है ।

आज भी हिन्दी पत्रकारिता दुर्दशा में है । यदि हम निष्पक्ष भाव से देखें कि यह दोष किसका है ? इसका उत्तरदायित्व हिन्दी पत्रकारों पर है अथवा पाठकों पर ? तो हम निर्भीक होकर कह सकते हैं कि इसमें सारा दोष पाठकों का ही है । हिन्दी के पत्रकार तो वर्षों से अपना लहू पसीना बना कर राष्ट्रभाषा की सेवा में निरत है । परन्तु हिन्दी के बड़े बड़े समर्थक विद्वान् आज भी अंग्रेज़ी के मोहपाश से मुक्त नहीं हो पाए हैं । आज भी अंग्रेज़ी पत्रों की मांग अधिक है । उनमें ही अधिक विज्ञापन प्रकाशित होते हैं । हालांकि हिन्दी पत्र बहुधा अंग्रेज़ी पत्रों से सस्ते होते हैं परन्तु फिर भी लोग अंग्रेज़ी दैनिक पढ़ने में अपना गौरव समझते हैं ।

हिन्दी पत्रकारिता तब तक उत्कर्ष नहीं प्राप्त कर सकती जब तक कहीं हिन्दी पत्रकारिता की शिक्षा का आयोजन न हो जाए । मान्यवर पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी के सत्प्रयत्नों से आगरा विश्वविद्यालय में हिन्दी पत्रकारिता की शिक्षा का आयोजन हो रहा था परन्तु हिन्दी में पत्रकारिता पर उच्च साहित्य उपलब्ध न हो सकने के कारण यह अनुष्ठान भी चालू नहीं किया जा सका । आज हिन्दी पत्रकारों की माँग है, किन्तु शोक हिन्दी संसार ! तुझ में इतना भी सामर्थ्य नहीं कि तू एक पत्रकार विद्यालय खोल सके इसीलिए तो आज हिन्दी पत्रकारिता पर अंग्रेज़ी का प्रभाव है जो राष्ट्रभाषा के लिए ही हानिप्रद है । हमें हाल ही में श्री नैमियर का लेख 'हिन्दी पर अंग्रेज़ी का प्रभाव' पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इस लेखक ने हिन्दी संसार के समक्ष एक प्रस्ताव रखा है कि इसके साहित्यकार हिन्दी पढ़ें, हिन्दी में लिखें और हिन्दी में सोचें । तभी हिन्दी साहित्य में मौलिकता आ सकेगी । यही विचार हिन्दी पत्रकारिता पर भी लागू होते हैं ।

इस वर्ष स्वाधीनता अंक साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में हिन्दी पत्रकारों पर लिखते हुए चतुर्वेदी जी ने एक संकेत दिया है कि हिन्दी पत्रों में सरकारी विज्ञापन बहुत ही कम छपते हैं। जब तक सरकार इस पक्षपात की नीति को छोड़ेगी नहीं हिन्दी पत्रकारों का भला नहीं हो सकता और ना ही हिन्दी पत्रकारिता का विकास हो सकता है।

सरकार की बात तो अलग; हम हिन्दी प्रेमियों से आग्रह करेंगे कि वे हिन्दी पत्रों में विज्ञापन दिलवाने के लिए आन्दोलन चलाएँ। कभी कभी हमें खयाल आता है कि विनोबा भावे जी का अनुकरण करते हुए क्यों न हिन्दी समर्थक एक 'विज्ञापन दान यज्ञ' चलाएँ। इस दिशा में जगह जगह की हिन्दी संस्थाएँ बहुत कुछ कर सकती हैं। उन्हें हिन्दी पत्रों से सम्बन्ध स्थापित करके अपने क्षेत्र में विज्ञापन ले सकने की योजना बनानी चाहिए।

ऐंग्लोमोनिया : हमने इस शीर्षक से एक कहानी पढ़ी थी। जिसमें भारतीय उच्च वर्ग के गृहस्थों में छूत की बीमारी अंग्रेज़ियत पर प्रकाश डाला गया था। यहीं ऐंग्लोमोनिया है। जो हिन्दी की सबसे बड़ी अवरोध शक्ति है।

समाज की उच्चवर्ग सत्ताधारी शक्ति से निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिए उसकी भाषा, वेशभूषा और सभी कुछ ग्रहण करने की कोशिश करता आया है। मुग़लकाल में समाज का यही वर्ग उर्दू और फ़ारसी का क़ायल था, और अंग्रेज़ों के ज़माने में यही अंग्रेज़ियत से जा चिपका। इसी वर्ग का अनुसरण मध्यम वर्ग किया करता है। परन्तु चोर को मारने से पहले, इस दिशा में तो कम से कम हम चोर की माँ को ही मारना उचित समझेंगे। यदि आज की सत्ता शक्ति अर्थात् हमारे लोक नेता हिन्दी को अपना लें तो यह बीमारी दूर हो सकती है परन्तु हमें तो लगता है कि सत्ताधारी शक्तियाँ स्वयमेव इस बीमारी में फँस रही हैं।

शिक्षा-पद्धति : यदि भारत राष्ट्रभाषा के विकास का चिन्तक है तो उसे मैकाले की शिक्षा पद्धति को बदलना ही पड़ेगा। जब तक राष्ट्रभाषा में शिक्षा न दी जाए, तब तक हिन्दी में विज्ञान, वाणिज्य, भूगोल इत्यादि विषयों पर मौलिक साहित्य का अभाव बना ही रहेगा। यही शिक्षा पद्धति हमारी समस्याओं की जड़ है। यदि इसमें वांछित परिवर्तन कर दिए जाएँ तो हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में शीघ्र ही विकास हो सकता है।

हिमाचल हिन्दी साहित्य परिषद्
मण्डी हि. मा. प्र.

—सुन्दरलाल

कल के हवाई जहाज़

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आनेवाले ५० वर्षों के अन्दर लन्दन से न्यूयार्क १ घण्टे के अन्दर पहुँच जाया करेंगे। हवाई जहाज़ों के द्वारा यात्रा रेल की तृतीय श्रेणी की यात्रा से भी बहुत सस्ती होगी। मेरा विश्वास है कि भविष्य में हवाई जहाज़ शहर में कहीं भी उतर सकेंगे और ऐरोड्रोमों की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी। कोई ऐसा मार्ग निकल आएगा कि हवाई जहाज़ एक तो बिना शब्द किए उड़ सकेंगे—दूसरा वे सीधे ऊपर जा सकेंगे।

—पीटर मैसफ़ील्ड

हरियाणा ग्राम्य-गीतों में माधुर्य कल्पना

हरियाणा बोली में 'राजबाला अजीतसिंह' एक संगीत रूपक है, जो एक ग्राम्य लोक-साहित्यात्मक रचना है, और जिसके लेखक हैं प्रसिद्ध ग्राम्य लेखक : 'हृदय-राम पुलस्त्य' वा 'दादा कहौंड निवासी' 'पण्डितजी'।

ग्राम्य लेखक, 'पण्डितजी' की अनेक कृतियाँ समय समय पर आकाशवाणी दिल्ली द्वारा, सांगीत मण्डलियों के तमाशों के ज़रिए और पुस्तकाकार रूप में प्रकाश में आ चुकी हैं, इन्हीं रचनाओं और उनकी आकर्षक बातचीतों ने ही उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त करवाई है।

रूपक के गीत—हरियाणा बोली, सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। आशा-निराशा और जीवन के माधुर्य भावों के संगीत भरे गीतों में जीवन का एक शानदार चित्र इस प्रकार उभर कर हमारे सम्मुख आता है : ग्राम्य-गीतों में मानव भावनाओं का बहुत सीधे-सादे ढंग में चित्रण हुआ मिलता है, और इस दृष्टि से मनुष्य के सच्चे भावों और अनुभूतियों का एक अक्षय भण्डार इन ग्राम्य-गीतों और लोक-कथाओं में विद्यमान है। इनकी भाषा पर मुलम्मा नहीं चढ़ा होता। अतः ग्राम्य-गीतों में भाव और भाषा दोनों ही बातें स्वाभाविक एवं प्रवाहपूर्ण रहती हैं। विभिन्न स्थानों का जलवायु जैसे अन्तरमय होता है, और वहाँ के लिए वह स्वाभाविक भी होता है, उसी प्रकार विभिन्न स्थानों की बोली भी निजी और वहाँ के लिए नैसर्गिक, स्वाभाविक एवं सरस होती है। अतः ग्राम्य-गीतों की सरसता का रस अनुभव करने के लिए बोली की सरसता के मूल का हलका ज्ञान रहना भी आवश्यक है। भारतवर्ष की लोक-भाषाओं में रोहतक और हरियाणा की बोली को, भाषा विज्ञान शास्त्र की दृष्टि से, खड़ी भाषा माना जाता है, लेकिन उस खड़ी भाषा के ग्राम्य-गीतों में जो सरसता है, वह अन्य लोक-भाषाओं के लोक ग्राम्य-गीतों से कम नहीं है। शर्त है, उसकी सरसता के मूल के ज्ञान की।

ग्राम्य-गीतों के मूल में अधिकांशतः अन्तर कथाएँ सन्निहित पाई जाती हैं, जिनका आधार केवल कल्पनामात्र नहीं, बल्कि उनमें परम्परा और अनेकों पीढ़ियों का अनुभव छिपा होता है। हम सभी ने अपने घरों में एक न एक दिन देखा होगा, कि माँ-बाप किस तरह अपनी लड़की के होने वाले पति की हारी-बीमारी, हानि या अचानक धनवान् से दरिद्र हो जाने पर चिन्तित हो जाते हैं। लड़की की मँगनी करते समय लड़का धन-धान्य से पूर्ण हो और यदि एक दिन वह अचानक ग़रीब हो जाए, तो माँ-बाप के सामने लड़की के भविष्य और अपनी मान-मर्यादा के प्रश्न आ खड़े होते हैं। उस चिन्ता में उनके दिन की चैन और रात की नींद हराम हो जाती इसी चिन्ता और परेशानी का स्वाभाविक चित्रण इस गीत में किया गया है :

"स्याणी बेटी घरां बाप के सादा बाना होया करे
ब्याह शादी जब अच्छी लागे किमें टोड़ ठिकाना होया करे

तेरे सुसुर ने लाये थे वह सारे बाग़ उजाड़ दिये
कर्मों की आंधी आई फल फूल पात सब झाड़ दिये
गैन्दा मोगरा और चम्बेली के सारे पेड़ पाड़ दिये
के बूझैगी मेरी लाड़ली राम नै खेल बिगाड़ दिये

जब चिड़िया चुग जा खेत फेर तो न्यूँ पछताना होया करे
ब्याह शादी जब अच्छी लागै किमें टोड़ ठिकाना होया करे

जाये रोये नै खोस लई नगरी तेरे प्रियतम प्यारे की
लकड़ी बेच गुजर करै न्यूं कट जागी उमर कंवारे की
माटी के मांह मिल जागी चन्दा सी स्यान बिचारे की
पिता के घर पै सुलगैगी यों सदा पूर बनजारे की

जोड़ी जोगम जोग मिलादे ओ बाबल स्याणा होया करे
ब्याह शादी जब अच्छी लागै किमें टोड़ ठिकाना होया करे

तेरे बाप नै सुनी रात से जल पिया ना अन्न खाया
नाई नेवगी बुलवाये और राजगुरू को बुलवाया
माड़ा मन करके क्यूँ बोल्या ज बेटी का बर ना पाया
माटी में मिल जा राणी यों कंचन बरगी काया

फल बिन सूना तर वर रानी के रस बिन गाना होया करे
ब्याह शादी जब अच्छी लागै किमें टोड़ ठिकाना होया करे

लड़की के विवाह की चिन्ता सरदर्द बन जाती है। परिश्रम के अनन्तर से ढूँढ़ पाया गया लड़का भी जब

किसी कारण से लड़की के योग्य, या मान-मर्यादा योग्य नहीं रह जाता, तब तो दर्द सर को फाड़ने लगता है। उठते-बैठते बस एक ही बात एक ही चर्चा रहती है। एक दिन लड़की भी जब यह जान जाती है, कि उसके मा-बाप उसके कारण परेशान हैं, और उसके पिता, उसके पति के अकस्मात् मान-मर्यादा हीन हो जाने के कारण वहाँ उसे नहीं ब्याहना चाहते, तो उसके अन्तस् में निहित भारतीय संस्कृति की पतिव्रत-धर्म की भावना, उभर आती है। भारत में, जिसे स्वप्न में भी एक बार पति रूप में स्वीकार कर लिया उसे कर लिया, फिर तो ज़िन्दगी और मौत उसी के साथ है। यहाँ तो विधि अनुसार उसका पति निश्चित हो चुका है, केवल फेरे पड़ने की देर थी। पतिव्रत धर्म की भावना लड़की के अन्तस् से उभरती और वह माँ से कहती है :

"पिता की तो अक्ल बौरा गई है। क्या वह यहाँ की पतिव्रता नारियों को भूल गए हैं? अरे! भाग्य में जो कुछ लिखा है उसे कौन मेट सकता है।" हरियाणे की लड़की की भावना किस सरसता और गम्भीरता से उद्भासित होती है :

मेरे पिता की अक्कल डूबगी कर दिया खोटा चाला
जो कुछ लिख दिया मेरे करम में ना कोई मेटन आला

× × ×

अच्छे कुल में जन्म लिया मैं अपना धर्म निभाऊँ
पतिव्रता हो गई नार यहाँ लाखों ही गिनवाऊँ
पति मिला नहीं वही मुझे तो जहर मँगा के खाऊँ
देके वचन पलट ज्या उनका भिड्या करै सै ताला

× × ×

सूर शेर पतिव्रता ये पीछे को हटते ना
धन सुख दुःख विद्या और बेटे बाँटे से बटते ना
और पति की नहीं जरूरत मेरी शादी का टाला

× × ×

धन दुःख सुख और कंगाली ये अपना लहना हो सै
देश पिया के जाके री माता सब कुछ सहना हो सै
एक नथली और चूड़ा सुहाग का यही तो गहना हो सै
जीवन प्राण तेरी बेटी का वो ही बनै रखवाला

उपर्युक्त गीत :

सूर शेर पतिव्रता ये पीछे को हटते ना
धन सुख दुःख विद्या और बेटे बाँटे से बटते ना॥

—की उक्ति वृन्द और रहीम आदि की उक्तियों से किसी प्रकार कम नहीं हैं, बल्कि किसी सीमा तक भाषा की स्वाभाविकता ने उसमें ओज के साथ और भी सरसता भर दी है।

पतिव्रत धर्म के सम्मुख तो स्वयं यमराज को भी झुकना पड़ा था फिर मनुष्य की तो बिसात ही क्या! बाप को जब अपनी लड़की के हठ का पता चलता है तो वह विवश हो ग़ुस्से में उबल पड़ता है, और लड़के के नाम एक पाती लिखता है, कि अगर वह किसी प्रकार रुपया एकत्र कर• अपनी मर्यादा उनके बराबर कर ले, तो अपनी राजकुमारी जैसी पुत्री का ब्याह अब भी उसके साथ करने को वह तैयार है। पतिव्रत के साथ-साथ पत्नीव्रत भी तो भारतीय संस्कृति का एक आदर्श है। लड़का पत्र पाता है। अपनी प्राण-प्रिया को वरने के लिए रुपए की जुगत करने की कोशिश में घर से निकल पड़ता है। मारा-मारा बेचारा एक सेठ की शरण जाता है और बड़ी आशा के साथ, कर्ज़ की फ़रमाइश करता हुआ अपनी अवस्था का वर्णन किस खूबी से करता है :

दो पाट्टों में जान फँसी बुरा हाल सै मेरा
एक ओड़ नै कुआँ दिखे एक औड़ नै झेरा

गरीब आदमी कर्मों का मारा आग्या तेरी शरण में
तेरे भरोसे कर के बैठ्या लाला जी कठिन प्रण में
घर में सुन कपास नहीं आ गई जान मरण में
होनी के चक्कर में लाला आज दिया पटक धरण में
तेरे भाग तै बस उयागा लाला जी मेरा डेरा

भीजी लाकड़ी की तरियाँ यो घुण ने खा राख्या सै
बेटी वाले नै परशराम की ज्यूँ फरसा ठा राख्या सै
मेरे पिता नै भुजबल तै नाम ऊँचा पा राख्या सै
नहीं किसी का दोष कर्म हीणा लिख्या राख्या सै
कर्म हीण का विवाह जो करे सै बाह बड़ती का फेरा

हरिश्चन्द्र नै सर्व राज किया दान लालाजी
पत्थर की सी समझ लियो मेरी जबान लालाजी
तेरे घरां पहुँचा दूँगा दान और मान लालाजी
हृदयराम कली जुड़ी भगवान् लालाजी
तेरे भाग्य ने बँधवा लूँगा शीश पै सेहरा

उयर्युक्त गीत में भावनाओं का ज्वार उठा जा रहा है। प्रेमी के हाथ से उसकी प्रेमिका छूटी जा रही है।

उसे पाने के लिए कितनी विवशता से अन्तिम प्रयत्न में वह झुका जा रहा है। विवशता की दीनता यहाँ स्वयं बोल रही है।

निराशा में जब आशा फलवती होती है, खुशी का जोश दूना हो जाता है। लड़का बरात लेकर लड़की के द्वार पर पहुँचता है और लड़की के घर का आँगन मँगलाचरण से गूँज उठता है। चुहल और चुटकियों के वातावरण में, बराबर की लड़कियाँ वर की खूबियों का कितने घुमाव से वर्णन करती हुई कहती हैं, हमारी लाडो को तो चन्द्रमा जैसा सुन्दर, वेद और पुराणों का ज्ञाता, वीर, दानी वर चाहिए। यानी जो वर द्वार पर आया है वह ऐसा है :

"हमारी लाडो है राजबाला
इक चन्द्रमा सा वर माँगती है।

हो श्याम गोरा हो ब्रह्म ज्ञानी
हो धर्म रक्षक हो वीर दानी
हो ब्रह्मचारी और वेद ज्ञानी
यह रानी ऐसा वर माँगती है

हो यज्ञ करता और रहे कराता
और वेद पढ़ता रहे पढ़ता पढ़ता
ऐसे पिया से हो जाए नाता
ऐसा वह कन्या वर माँगती है

है धन्य वह कुल है धन्य नारी
ऐसे पिया पै जाऊं मैं वारी
हो प्रेम अहिंसा का वह पुजारी
ऐसा यह देवी वर माँगती है"

बरात के स्वागत के उपरान्त बरात की विदा की घड़ियाँ शीघ्र आ जाती हैं। कुछ क्षण पहले का उत्साह-पूर्ण वातावरण विदाई की वेला से भारी हो जाता है। बेटी को विदा पहले माँ ही तो करती है। आज तक उसने बेटी को सँवारा है अतः मोह भविष्य के बारे में भी उसके हृदय में चिन्ता पैदा कर देता है। हरियाणा की एक माँ के, अपनी बेटी के विदा के क्षण के, कितने सील भरे उद्गार हैं :

"सदा सुहागन रहियो बेटी छुटगे महल अटारी
यह सुई तागे मेंहदी नाले यह कण्ठी और चोटी सै
यह शीशे बन्दर बाल पोथिए बोर तेरीं मोटी सै
यह तोसक तकिए झालर के म्हारी इतनी ही पोटी सै
उमर तलक तेरे खान पीन की बाबल नै ओटी सै
यह चर्खा पीढ़ा रंग रंगीला लेजा राजकुमारी

सीता, अनुसूइया की ज्यूं समय बिताइए बेटी
किसी बात का फिकर नहीं सदा मौज उड़ाइए बेटी
तीजां तै पहले मंगवालूं मत बबराइए बेटी
हरियाली बन्नी मेरी ना कुल लजाइये बेटी
दूधों नहाओ पूतों फलो तेरे पिया की उमर हो हजारी

घी की जोत बालिए बेटी अपने चौबारे मैं
भूल बिसर के मतन्या घालिए पीढ़ा गलियों मैं
निन्दा चुगली मतना करियो कदे किसी के बारे मैं
मनोकामना पूरी होजा हो प्रीतम की प्यारी"

अपनी माँ की ही भांति, हरियाणे की चतुर बेटी भी सावधान है, जिसे अपने कर्तव्य का भली प्रकार ज्ञान है विदा के क्षणों में उसके कोमल और प्रेममय हृदय में एक प्रकार के संकोच और झिझक के भावों का संघर्ष मचा हुआ है। एक ओर हृदय उमगता है तो दूसरी ओर ठिठक जाता है। भविष्य के स्वप्न मन में रह-रह कर उभर रहे हैं। विगत जीवन की सरस-स्मृतियों का वर्णन करते हुए, वह अपनी विह्वल माँ के आँचल में, जैसे सिर छुपाये, सुबकते हुए साहस कर सँभलती हुई कहती है :

"बाल अवस्था चौदह साल तक रही सखियों के साथ
तावली बुलाइए री माँ जोड़ रही हाथ
दुःख सुख कहूँगी किसके आगे
भाग्य मेरा जागै या ना जागै
जी लागै या ना लागै से परदेशां की बात तावली...
मैं बालम चाहूँ थी इसा पता नहीं इसका सुभाव सै किसा
कौनसी दिशा में मेरे पिया की बिलात !
आज मैं छोड़ चली सूं पीहर
मनै सै एक बात का डर
सासू जी के घर ठैरा करैं दो तीन रात

विदा के अनन्तर बधू अपने वर के साथ, अपने नए घर पहुँचती हैं और उसकी दिनचर्या का प्रथम पृष्ठ

आरम्भ होता है, अभाव की मार से पीड़ित पुरुष का मन कराह उठता है :

टोटे के माहा शादी हो जा तो
कई जन्म का रोग हो सै
+ \+
जिस घर में ना दीवा-बाती
उस घर में तो सोग हो सै ।

अपनी नव-विवाहिता पत्नी को पति अपनी यथार्थ अवस्था का ज्ञान करा देता है । दीनता की बात करते करते वह सकुचा जाता है, अपने आपको अपनी पत्नी के सम्मुख छोटा अनुभव करने लगता है । मगर उसकी पत्नी भारतीय पतिव्रताओं की भाँति उसे भगवान् ही मानती है और अपने पति के मुँह पर हाथ धर, उसे आगे बोलने से रोकती है :

सूर्य के प्रकाश बिना, कदे होता दूर अन्धेरा ना
मात पिता हों जन्म देन के, मेरे कर्म का बेरा ना

धन बिन धर्म पुरुष बिन नारी
गंगा बिन अस्नान किसा
दल बिन हाथी, चक्र बिन राजा
तम्बू बिना सामान किसा
सुख बिन नींद, चमक बिन हंसी
पूरे गुरु बिन ज्ञान किसा
बिन पुत्र परिवार नहीं और
ज्ञान बिना सनमान किसा
देख गैर के महल हवेली
अपना बसेगा डेरा ना

वह त्रिलोकी का नाथ एक तै इक्कीस भी तो कर दे सै
धनवाले तै भीख मंगवादे निर्धन नै वाहे ज़र दे सै
कोई दुनियां में खर्च करै कोई जोड़ जोड़ कै घर दे सै
वह अकल मन्द बाबल क्यों ना जो हीरो कै बेटी नै वर दे सै
म्हारी जोड़ी जोगम जोग मिली
के होगा बाहवड़ती का फेरा ना

तू बड़े घरां का बालक सै मैं हीणे कुल की छोरी सूं
बियाबान मैं रह लूंगी मैं शेर बबर की गोरी सूं
थारी हारी हारी बात सुनी मैं परेशान सी होरी सूँ
दो मन लकड़ी ले आया तेरे खुल्या पेची सेहरा ना

और इस प्रकार पारस्परिक सहयोग के बीच संयोग वियोग की राहों पर सुख-दुःख के गीत गाते हुए जीवन नाच उठा :

डर लगै अंधेरी रात
घटा रिमझिम रिमझिम बरसैं
उठ रही तान मस्तानी
भरे ताल तलैया पानी
फल फूल मस्त हैं पात
हम झूलैं सजन झुलावैं
और गीत खुशी के गावैं
पिया बिन सूखी बरसात
हो पटड़ी रंग रंगीली
रेशम की डोरी पीली
हो डोर धणी के हाथ

—बालमुकुन्द मिश्र

कृपाशंकर मन्दिर, चाँदनी चौक,
दिल्ली—६

प्रशिया के राजा फ्रेडरिक दि ग्रेट ने राज्य की ओर से एक सहभोज दिया था जिसमें बहुत से दरबारी और सभ्रान्त व्यक्ति उपस्थित थे । राजा ने पूछा कि क्या कारण है कि मैं इतने कर वसूल करता हूँ तो भी मेरी आमदनी घटती ही जाती है । एक बूढ़े सेनापाति ने कहा : "राजन् ! मैं आपको प्रदर्शित करता हूँ कि रुपया कैसे घट जाता है ।" उसने बरफ़ के एक बड़े टुकड़े को उठाया और फिर पास के व्यक्ति के हाथ में रख दिया और कहा कि सब उसे पास के व्यक्ति के हाथ में रखते जाएँ । अन्त में जब उस बरफ़ के टुकड़े को राजा के हाथ में रखा तो वह मटर के एक दाने जितना रह गया था ।

—क्रिश्चियन साइन्स मौनीटर

'सर्वज्ञ' कवि

कन्नड़ साहित्य के आकाश में एक अनुपम, अद्वितीय और अपूर्व तारा सोलहवीं शताब्दी के लगभग चमका जो 'सर्वज्ञ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और कर्नाटक के सर्व साधारण का मार्गदर्शक और साथी बनकर सब का प्रिय हो गया। कर्नाटक का एक भी बच्चा ऐसा नहीं जो उनके नाम से परिचित न हो। कुछ लोग 'सर्वज्ञ' को 'कन्नड़ जनपद साहित्य शिरोमणि' भी कहते हैं। 'सर्वज्ञ' इनका असली नाम नहीं प्रतीत होता। यह तो इनका काव्य-नाम मालूम होता है। 'सर्वज्ञ' नाम भी इनका सार्थक है यह बात इनके वचनों को समझने से मालूम हो जाती है। कर्नाटक के शिवशरणों की परम्परा में इनकी गिनती है। हिन्दी में एक कबीर ही ऐसे हैं जो 'सर्वज्ञ' की बराबरी कर सकते हैं या यों कह देने से इनके स्वभाव का सम्यक् परिचय थोड़े में हिन्दी भाषियों को हो जाएगा कि 'सर्वज्ञ' कन्नड़ के 'कबीर' हैं।

नीचे के सब उदाहृत वचन 'चन्नप्पा उत्तंगी' के 'सर्वज्ञ वचनगळु' से लिए गए हैं। यह उनका एक संग्रह है इस लेख में कन्नड़ के इस 'कबीर' के बारे में कुछ परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

संग्रह तो अनेकों पद्धतियों में विभक्त है। उनमें गुरुपद्धति, लिंगपद्धति, भक्तिपद्धति, ज्ञानपद्धति, शिवयोगपद्धति, कालज्ञानपद्धति, ब्राह्मणपद्धति, नीतिपद्धति और स्त्री पद्धति आदि मुख्य हैं।

पीठिका प्रकरण के कुछ वचन इनके जन्म और पूर्वजन्म के बारे में हैं जो इस प्रकार हैं: *

पूर्व-जन्म स्मरण:

"मुन्न कैलासद्लि। पन्नगधरनाळु।
ऍन्नय पॅसरु पुष्पदत्तनु ऍन्दु।
मन्निपरु दयदि 'सर्वज्ञ"

ऊपर के वचन का तात्पर्य: 'पहले कैलास में मैं शिवजी का सेवक था। मेरा नाम 'पुष्पदत्त' था। शिव दया से मुझे देखते हैं।

फिर आगे कहते हैं:

"अंदिना पूदत्त। बंद् वररूचियागि।
मुंदॅ अव सालॅ सर्वज्ञ नँदॅनिसि
निंद्वनु नानॅ सर्वज्ञ॥"

"तब का 'पूदत्त' ही वररुचि के नाम से आया। फिर सालॅ सर्वज्ञ के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ!"

इनमें अवश्य ज्ञातव्य विषय यही है कि 'सर्वज्ञ' सामान्य आदमी नहीं बल्कि अवतार पुरुष है।

फिर इनके जन्म के बारे में प्रकाश डालनेवाले वचन इस प्रकार है:

"मक्कळिल्लवु ऍन्दु। अक्क मल्लम्मनु।
दुक्कव बसवरस गरु पलु काशिय।
मुक्कणॅ-नॉलिद् सर्वज्ञ॥"
"मासूर् बसवरस। कूसनी शन केळॅ।
काशिय अभवनॉळु पडॅद् वरवदुवॅ।
सूसितॅन्तॅनलु सर्वज्ञ॥"

मासूर के मल्लम्मा-बसवरस को जब बहुत दिनों तक बच्चे नहीं हुए तो इस दुःख के निवारण के लिए बसवरस ने काशी के देव की पूजा की। काशी गए और त्रिनेत्र को अपनी भक्ति से सन्तुष्ट कर वर पाया और वापस आते समय 'अम्बलूर' नामक गाँव में पहुँचे:

"अम्बलूरॉळगॅ-सॅव। कुबार सालॅ यति।
इंबिन कॅळॅय माळियॉळु बसवरस।
निंबिट्टनॅन्न सर्वज्ञ॥"

---

* सूचना: यहाँ एक बात बता देना आवश्यक है कि हिन्दी में 'ए' आर 'ओ' के ह्रस्व रूप न होने के कारण वचनों को हिन्दी में लिखना कठिन है। अतः ह्रस्व 'ए' और 'ओ' को 'ऍ' और 'ऑ' इस तरह लिख कर तथा 'बारह-खड़ी' में उन्हीं का यथोचित प्रयोग किया जाएगा। इन चिन्हों का मद्रास हिन्दी प्रचार सभा ने प्रयोग प्रारम्भ किया।

'उस गाँव में रात को वे एक कुम्हार के यहाँ ठहरे कुम्हार की एक लड़की 'माळि' थी। उसने इनकी परिचर्या की है। वह सुन्दर थी। उससे इन्हें प्रेम हो गया। इन दोनों का संपर्क जो हुआ उसी के फलस्वरूप 'सर्वज्ञ' का जन्म उस 'माळि' के ही गर्भ से हुआ।

इस प्रकार शिवजी के वर से उत्पन्न यह 'सर्वज्ञ' उसी कुम्हार के घर में पलते हैं। मगर बाद में गृह त्याग कर, सारे कर्णाटक को ही अपना गृह मान कर भ्रमण करने लगते हैं। पूर्व जन्म का स्मरण रहता ही है। अपना कर्तव्य भी समझते हैं। मार्ग भ्रष्ट, कर्तव्य-भ्रष्ट और लक्ष्य-भ्रष्ट जनता को सन्मार्ग दिखाते हुए वे सब के गुरु बन जाते हैं। जहाँ जाते हैं; वहीं कुछ न कुछ समाज की त्रुटि या दोष देखते हैं और जन जीवन को प्रतिबिंबित करनेवाले अपने वचनों को कह कर उन्हीं के द्वारा कलुषित जीवन को पवित्र बनाने का प्रयत्न करते हैं। इनके ज्ञान और भक्ति की बातें सुन जनता निहाल हो जाती है। इनका विनय भी सराहनीय है :

"सर्वज्ञ नॅम्बुवनु। गर्व दिन्दादवनॅ।
सर्वरॉळु ऑन्दॉन्दु नुडिग लितु विद्यद।
पर्वतवॅ आय सर्वज्ञ ॥"

'सर्वज्ञ गर्व से सर्वज्ञ नहीं बना बल्कि वह सबसे एक एक बात सीख कर विद्या का पहाड़ हो गया।'

फिर आगे कहते हैं : 'मुझे स्वयं कुछ कहना नहीं आता। जब कहने की आज्ञा हुई तो कह सका।' काल-लोचन के भक्तों का नौकर होकर कह दिया' इस तरह के वचन जब सर्वज्ञ के मुँह से निकलते हैं तो बड़े से बड़ा अभिमानी भी नम्र हो जाता है। समाज भी ऐसे निरभिमानी गुरु को पा कर अपने दोषों की चिकित्सा करा लेने में आनन्द का अनुभव करता है। इस वचन में देखिए साहित्य के बारे में :

"ऎल्ल बल्लवरिल्ल। बल्लवरु बहळिल्ल।
बल्लिदरु इन्दु बलविल्ल, साहित्य।
वल्लरि गिल्ल सर्वज्ञ ॥"

'सब जानने वाले नहीं, जानने वाले बहुत नहीं। बलवान् के रहते लाभ नहीं। साहित्य सब के लिए नहीं।'

"फिर 'कृषिकर्म' के बारे में :

'कोटि विन्धगळल्लि। मेटि विधवॅ लेसु।
मेटियिं राटि नडॅदुदल्लदॅ देश।
दारवे कॅडुगु सर्वज्ञ ॥"

करोड़ विद्याओं में कृषि विद्या ही श्रेष्ठ है। (मेटि = खलिहान के बीच में स्थित स्तंभ) और मेटि से ही राटि (रहँट) चलता है यानी कृषिकर्म से ही सब कुछ यथाविधि सम्पन्न हो सकता है। इसके बिना देश की स्थिति ही बिगड़ जाती है।' यह ठीक ही है कि अगर हम लोग कृषिकर्म को तिलांजलि दे दें तो भूखों मर जाएँ। साथ ही देश की कोई प्रगति न हो। तभी सर्वज्ञ 'अन्न' के बारे में यों कहते हैं :

"अन्न देवर मुन्दॅ। इन्नु देवरु उँटॅ ?
अन्नबुन्टादरुणलुन्दु जगदोळगॅ।
अन्नवे दैव सर्वज्ञ ॥"

"अन्न देवता के समान अन्य कौन देवता है? अन्न से ही तो हमें भोजन प्राप्त होता है और हम सब काम कर सकते हैं। वही न रहे तो हम क्या कर सकते हैं? इसलिए अन्न ही देवता है।" इससे मालूम होता है कि वह कैसे जन सामान्य को अन्न की महत्ता अपने सरल सुबोध वचनों द्वारा समझाकर 'कृषिकर्म' से किसानों के मन के लगाव को बढ़ाने में समर्थ होते।

इतना तो इनका सामान्य परिचय हुआ। अब आगे चल कर वे वचन उद्धृत किए जाएँगे जो गुरु पद्धति, भक्ति पद्धति, ज्ञान पद्धति और योग पद्धति के अन्तर्गत हैं। साथ ही एक बात की ओर संकेत कर देना ठीक होगा कि योग पद्धति के जितने वचन हैं उनको देख कर यही मालूम होता है कि 'नाथ सम्प्रदाय' का प्रखर प्रभाव इन पर पड़ा होगा। तभी तो 'सर्वज्ञ' 'नाद, बिन्दु' सहस्रों कमल, चक्र, नाड़ी आदि के बारे में और उनसे प्राप्त अनुभव के बारे में बड़े ही गम्भीर रूप से बहुत कुछ कहते हैं जो जनसामान्य की समझ में एकदम न आने का विषय है।

शिवशरणों में इनके पहले भी कुछ लोग प्रसिद्ध हुए जिनमें 'अक्क महादेवी, अल्लम प्रभु और चन्न बसवेश्वर' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके भी कुछ ऐसे ही वचन हैं जिनमें रहस्यात्मक दार्शनिकता का पुट मिला हुआ है। इनमें भी योग के इन्हीं पारिभाषिक शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है। यह भी कहा जाता है

कि इन शरणों का नाथ पंथीय योगियों से मेल-मिलाप रहता था। इन संदर्भों को देख कर आश्चर्य नहीं कि 'सर्वज्ञ' भी इस सम्प्रदाय के प्रभाव से परे न रह सके। इससे यह भी पता चलता है कि 'नाथ सम्प्रदाय' का देश भर में बोलबाला था। 'सर्वज्ञ' के कुछ वचनों को उद्धृत किया जाता है :

गुरु पद्धति के कुछ नमूने (वचन) :

"गुरु बिना विस्तरद् परिय नानेनॅबॅ ।
मरव ब्रह्माडदॉ रहॉळगनव बॅळगि ।
परिपूर्णनप्प सर्वज्ञ ॥"

गुरु के विस्तार के बारे में क्या कहूँ। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर सर्वत्र परिपूर्ण हो शोभायमान है।

"हर तन्नॉळिर्दु गुरु । तोरदिरॅ हिळिडदे ।
मरदॉळगॅ अग्नि इरुतिर्दु तन्न ता ।
नरियदेकॅद सर्वज्ञ ॥"

ईश्वर अपने अन्दर है उसी तरह जैसे काठ के अन्दर अग्नि होती है। यदि गुरु उसे न बताएँगे तो वह कैसे उसको समझ सकेगा ?

"विद्य कलितॉडॅ इल्ल । बुद्धि कलितोडे इल्ल ।
उद्योग मडिदोडे इल्ल, गुरुमुखवु ।
इद्दल्लदिल्ल सर्वज्ञ ॥
मंडे बोळादॅांड । दंड कोल्विडिदॅांडॅ ।
हॅडतिय बिट्टु नडेदाड गुरुमुखव ।
कंडल्लदिल्ल सर्वज्ञ ॥
तंदॅगू गुरुविगू । ऑदु अंतरउंड ।
तंदॅ तोरुवनु सद्गुरुव, गुरुराय ।
बंधनब कळॅव सर्वज्ञ ॥
गुरुविंगॅ दैवके । हिरिदु अंतरउंटु ।
गुरुतोर्व दैवदॅडॅयनु, दैवता ।
गुरुवतोरुवदॅ सर्वज्ञ ॥"

विद्या सीखने से नहीं; बुद्धिमान् होने से नहीं; उद्योग करने से नहीं; गुरुमुख के बिना कुछ नहीं। सिर मुण्डवाने से भी, दण्ड ग्रहण करने से भी, स्त्री को छोड़ विरक्त होने से भी कुछ नहीं होगा। गुरुमुख देखे बिना उद्धार नहीं।

'पिता और गुरु में एक अन्तर है। पिता सद्गुरु को दिखाते हैं। गुरु ही बन्धन को तोड़ते हैं।'

'गुरु और दैव में बड़ा अन्तर है। गुरु दैव को दिखाते हैं। मगर दैव गुरु को दिखा नहीं सकता।'

अब ज्ञान पद्धति के कुछ वचन :

"मण्णिनलि कल्लिनलि । मुळ्ळिन मॉनॅयल्लि ।
ऍल्लि नॅनॅदल्लि शिवनिर्प अव नीनि ।
द्दलियॅ इर्प सर्वज्ञ ॥"
"सण्ण मळलॉळगॅ । नुण्णनॅय शिलॅयॉळगॅ ।
बण्णिसुट बरॅद पटदॉळगॅ इरुवात ।
तन्नॉळगॅ इनॅ सर्वज्ञ ॥"
"आने कन्नडियॅाळगॅ । तानडगि इप्पंतॅ ।
ज्ञानउळ्ळवर हृदयदलि परशिवनु ।
तानडगि इहनु सर्वज्ञ ॥"
"मुत्तु नी रॅाळुपुट्टि । मत्त नीरप्पुदे ।
सत्यवनरिद ज्ञानी संसारवनु ।
मत्तॅ हॅाद्दुवनॅ सर्वज्ञ ॥"
"तन्न तानरिदंगॅ । मुन्न हॅाद्दु मायॅ ।
उन्नतदॅाळिप्प गजवेरि बप्पवन ।
कुन्नि कच्चुवये सर्वज्ञ ॥"
"वारणासिगे होद कारणवदेनय्य ।
कारणिक पुरुषनॅाळ गिरलु अलॅबुदकॅ ।
कारणव हेळु सर्वज्ञ ॥"
"बल्लॅनॅबुव मातु । ऍल्लवू हुसि काणॅा ।
बल्लॅर बल्लॅनॅनबेड, सुम्मनिर ।
बल्लवनेबल्ल सर्वज्ञ ॥"
"बॅाम्मवनु अरिदिहॅर : सुम्मनिद्दिर बेकु ।
बोम्मवनरिदु उसुरियॅर कळहोगि ।
कॅम्मि सत्तॅत्त सर्वज्ञ ॥"
"सत्तहागिरु ऍबु । दॅत्तणद बटगळवु ।
कत्तॅ मानवरु अरिथॅरॅल, इदु महा ।
तत्वद मातु सर्वज्ञ ।"

मिट्टी में, काँटे की नोक में पत्थर में, जहाँ कहीं उसका ध्यान करते हो वहीं शिव है। वह तो तुम जहाँ हो वहीं है।

सूक्ष्म वालु-कणों में, चिकनी शिला में, रंगों से युक्त चित्र में रहनेवाला अपने अन्दर नहीं है क्या ?

जिस तरह हाथी दर्पण में छिपा हुआ है (प्रतिबिम्बित होकर) उसी तरह ज्ञानी के अन्दर शिव

छिपा हुआ उसके हृदय में प्रतिबिम्बित होता है।

ज्यों मोती पानी में उत्पन्न होकर भी फिर पानी नहीं होता उसी तरह 'सत्य' को जाननेवाला ज्ञानी फिर संसार को प्राप्त नहीं होता।

अपने स्वरूप को जो पहचानता है उसका माया कुछ नहीं कर सकती। हाथी के ऊपर सवारी करनेवाले को क्या कुत्ता काट सकता है?

जब 'कारण-पुरुष' अपने ही अन्दर है तब वाराणसी जाने की क्या ज़रूरत? इस तरह घूमने का क्या प्रयोजन हो सकता है बताओ?

'जानता हूँ' यह बात झूठ है। अगर 'जानता है' तो यह न कह कि मैं 'जानता हूँ'। जो चुप रहना 'जानता है' वही 'जानता है'।

जो 'परब्रह्म' को जानता है वह चुप रहता है। उसे यदि कोई जान कर बताए तो चोरी करते खाँसने की वजह पकड़ा जाकर मरनेवाले चोर की तरह उसकी गति होगी।

'मृतक जैसा रह' यह कहाँ की गाली है? मूर्ख लोग इसे समझ नहीं सकते। यह तो महातत्व की बात है।

योग और शिवयोग पद्धति के कुछ वचन :

"अष्टदल कमलदलि। कट्टि तिरुगुव हंस
मॅट्टुव दळद नडुविनलि इरुवुदनु।
मुट्टुवनॅ योगि सर्वज्ञ॥
कुंडलिय भेदद। कंद नाडिय नडुवॅ।
मंडिसुत्तिर्प हंसन हत्तिरॅवॅ।
कंडिहुदु सुळुवु सर्वज्ञ॥
कट्टि जाडन उंकॅ मुट्टुवुदु मूरूर।
बट्टॅयु नाल्कु पद मूरु अवनूरु।
बॅट्टद मेलॅ सर्वज्ञ॥
तन्न नाभिय ऑळगॅ। वह्निमण्डल उंटु।
वह्नि मंडलद ऑळगणा नाडियलि।
तन्न काणॅद परमार्थ सर्वज्ञ॥
नादद बळिविडुदु। अय्यिसुव परमन।
हादियनु अरिदु सुखियागु जनुमद॥
हादि गॉळवेड परमार्थ सर्वज्ञ॥
मूरन्नु आरन्नु। वेरिर्द एळन्नु।
सीरिर्द ऎंटन्नु हरिदडॅ शिवलोक।
सूरे काणय्या सर्वज्ञ॥
कुंडलिय कंडात। हॅंडतिगॅ ऑलिवने।
कंडितदॉळिप्प शिवयोगी माँसद
पिंडकॉलिच्चुवनॅ सर्वज्ञ॥
बिन्दु नादव नुंगि। इंदुरवियनु नुंगि।
संदिर्द मनव निजनुंगिदा योगि।
इंदुधरनकु सर्वज्ञ॥
नवद्वारगळ मुच्चि। शिवध्यानदॉळगिरलु
नवखंड पृथ्वियॉळगण मातॅल्ल।
किविय ऑळगॅ इहुदु सर्वज्ञ॥
ऎत्तिता प्राणवनु। नॅत्तिय कोनॅवरॅगॅ।
चित्तद मर्मवरिदिर्प शिवयोगि।
गॅत्तणदु केडु सर्वज्ञ॥
कुंडलिय सर्पवनु। अंडलॅय अरिदिहॅ।
मंडलवु मूरु वशवागि ता जवन।
गंडनागिक्कु सर्वज्ञ॥
बिंदु नादव दांटि। आँदागि शिवनल्ली।
बंधुरदबॅळग कंड शिवयोगिगॅ।
बंधनवु बयलु सर्वज्ञ॥

अष्टदल कमल में बन्ध कर घूमनेवाला हंस जिस दल को स्पर्श करता है, उसके बीच में रहनेवाले को (जो रहता है वहाँ वह) छूनेवाला ही योगी है।

कुंडलिनी के भेद को (जगाने को) और सुषुम्ना नाड़ी के बीच विराजमान हंस को जानने से, उसी के पास सूक्ष्म दिखाई देता है।

मकड़ी के जाल को बुन कर तीन लोकों को छूता है। मार्ग चार हैं, पद तीन हैं और उसका वासस्थान पहाड़ पर है।

नाभि के अन्दर अग्निमण्डल है। अग्निमंडल के अन्दर की नाड़ी में अपने को पहचान--परमार्थ यही है। 'न्याय के मार्ग पर ले जानेवाले श्रेष्ठ के मार्ग को पहचान कर सुखी हो; जन्म के मार्ग के आधीन न हो यही परमार्थ है।

तीन को, छः को अलग रहता सात को और दिखा आठ को चीरने पर शिवलोक लुट जाता है। जिसने कुंडलिनी देखी हो, क्या वह कभी स्त्री के वश में हो सकता है? दृढ चित्त शिवयोगी क्या कभी मांस के पिण्ड के वश में हो सकता है?

बिन्दु नाद को निगल कर, इंदु रवि, को निगल

कर चंचल मन को भी जो योगी निगल जाता है, वह स्वयं इंदुधर है।

नव द्वारों को बन्द कर, शिवध्यान में रहो तो नव खण्ड पृथ्वी की सभी बातें अपने ही कानों में गूँजती हैं।

प्राणों को ऊर्ध्वमुख करके ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाने वाले को और चित्त के मर्म को जाननेवाले शिव योगी को कैसे आपत्ति पड़ सकती है?

कुण्डलिनी सर्प को घुमाना जानने पर, तीनों लोक वश में आकर यम का भी स्वामी हो सकता है।

बिन्दु नाद को लाँघ कर शिव में एकता प्राप्त हो सुन्दर प्रकाश को देखनेवाले शिव योगी का बन्धन छूट जाता है।

यह है अत्यन्त संक्षेप में 'सर्वज्ञ' कवि का परिचय। इन उपरोक्त पद्धतियों के अलावा और भी बीसियों पद्धतियाँ हैं जिनका क्रमशः परिचय दिया जाएगा।

६३६, इट्टिगिगुड,
मैसूर

—मा. देवे गौड 'बोम्मणा'

आन्ध्र देश में नाथ-पन्थ

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती में आन्ध्र देश में पाशुपत शैव सम्प्रदाय प्रचलित था। इस सम्प्रदाय की स्थापना "श्वेत" नामक आचार्य ने की। इस सम्प्रदाय के २८ आचार्य हुए। पाशुपत सम्प्रदाय के मुख्य स्थान श्रीशैलम्, त्रिपुरान्तकम् और दाक्षाराम नामक स्थान थे। पाशुपत शैव सम्प्रदाय के साथ साथ उस समय आन्ध्र देश में नाथ-सम्प्रदाय भी लोकप्रिय था। इस सम्प्रदाय को सिद्धों का सम्प्रदाय कहा जाता था। नाथ-पंथी नौ नाथों के भक्त थे। आन्ध्र साहित्य में नौ नाथों के नाम निम्न प्रकार हैं: आदिनाथ, मीननाथ या मच्छिन्द्रनाथ, गोरखनाथ, कौरांगी, मेघनाथ, विरूपाक्षनाथ, सिद्ध नागार्जुन, खानिकनाथ और व्यालि सिद्ध। मीननाथ ने योगशास्त्र की शिक्षा शिव से प्राप्त की थी। "हठयोग-प्रदीपिका" में मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ को हठयोग का प्रवर्तक कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाथ-सम्प्रदाय का तन्त्र-सम्प्रदाय से भी सम्बन्ध था।

कवि गोरन्ना ने तेलुगु में "नव-नाथ चरित" कविता में लिखा है। श्रीगिरि कवि ने नव नाथों के चरित्र पर एक पद्य-प्रबन्ध लिखा है। करनूल ज़िले में श्रीशैल के प्रसिद्ध शैव पीठ भिक्षामठ के अधिपति मुक्ति शान्त राय की आज्ञा से गोरन्न कवि ने "नव-नाथ चरितम्" की रचना की। इस पुस्तक में यह वर्णन आता है कि नागार्जुन सिद्ध ने मलयालम्, आन्ध्र, पांड्य और चोल देश में सिद्ध सम्प्रदाय का प्रचार किया था। कहा जाता है कि ये "रसयोग-शास्त्र" के निर्माता थे। इनके एक शिष्य रसयोग के प्रयोग से समस्त श्रीशैल को सोने का बना देना चाहते थे परन्तु श्री विष्णु ने ब्राह्मण का वेश धारण कर उसका वध कर डाला। इस प्रकार की दन्तकथा प्रचलित है। आन्ध्र देश में नाथ सम्प्रदाय का बहुत साहित्य उपलब्ध होता है। जक्कन कवि के "विक्रमार्क चरित्र" में नव नाथों का उल्लेख है। कहते हैं कि आन्ध्र देश में प्रत्येक ग्राम में सार्वजनिक इमारतों में नव नाथों का चरित्र पढ़ा जाता था।........

मराठी 'प्रतिष्ठान' से

—सेतु माधवराव पगड़ी

खिलौने वाला

गाँव के मैदान के बीच ट्रेन भक-भक करती, आँखों से ओझल हो गई। केवल उसकी अस्पष्ट आवाज़ चारों तरफ़ विशाल मैदान में गूँजती रही। उसके बाद रह गया स्टेशन और उसके चारों तरफ़ बसने वाला गाँव और सुनसान मैदान।

मलिना ने कहा : "पूर्ण बाबू, उतर तो पड़े आप यहाँ। अब बतलाइए, चलिएगा कहाँ ?"

पूर्ण बाबू बोले : "ज़रा ठहरो। मैं स्टेशन मास्टर से पूछ कर अभी आता हूँ।"

वीणा चौधरी ने कहा : "यह भी पता लगाते आइएगा, कि यहाँ पर कुछ 'डाब' (हरा नारियल) मिल सकता है या नहीं ?"

"आप लोग ज़रा रुकी रहिए। मैं अभी आया।" कह कर, बड़े उत्साह के साथ पूर्ण बाबू चले गए।

औरतें इधर-उधर के दृश्य देख कर, कोई उत्साह प्रकट नहीं कर सकीं। स्टेशन भी बहुत छोटा था। इतना छोटा, जिसकी कल्पना तक वे नहीं कर सकी थीं।

थोड़ी देर बाद पूर्ण बाबू लौट आए। कहा : "एनातपुर यहाँ से पाँच मील दूर है। वहाँ से नाव पर सवार होकर जाना पड़ेगा।"

मलिना चौंक कर, बोली : "पाँच मील दूर हम जाएँगे कैसे ?"

पूर्ण बाबू ने कहा : "पैदल जाने का एक ही रास्ता है। दक्षिणी गाँव का चक्कर लगा कर जाना पड़ेगा।"

आभा ने कहा : "क्या यह बात आपको पहले से ज्ञात नहीं थी।"

पूर्ण ने कहा : "औरतें जब साथ रहती हैं तब यही हाल होता है। समझीं आप ?"

वीणा ने कहा : "डाब मिला ?"

पूर्ण ने उत्तर दिया : "नहीं, डाब क्या, चाय भी नहीं मिली।"

आभा ने चुटकी लेते हुए कहा : "यहाँ रईसी नहीं चल सकती। एक लोटा पानी पी लो। प्यास मिट जाएगी।"

वीणा ने कहा : "पानी, और यहाँ का! अगर मलेरिया हो गया, तो ?"

मलिना ने कहा : "अगर मलेरिया का इतना डर था, तो कांग्रेस की स्वयंसेविका बन कर यहाँ आने की आवश्यकता ही क्या थी ?"

आभा ने कहा : "पूर्ण बाबू, आपने तो हमें मार डाला। कहाँ एनातपुर, कहाँ कुमार टोले का मेला। आते समय बड़े भैया ने ठीक ही कहा था, कि यमपुरी से भी यह दुर्गम यात्रा होगी।"

वीणा ने कहा : "मैदान क्या है, जैसे अथाह समुद्र।" कह कर, वह चारों तरफ़ तृषित दृष्टि से देखने लगी।"

साधारण फ़्लैग-स्टेशन था। अभी तक यहाँ मुसाफ़िर खाना भी नहीं बनाया गया है। जलपान की व्यवस्था हो सकना कठिन है। स्टेशन के पास से एक पगडंडी गाँव की ओर साँप की तरह बल खाती हुई चली गई है। स्टेशन मास्टर नए आए हैं। इसलिए अपरिचित व्यक्तियों का आतिथ्य सत्कार कर सकने में असमर्थ हैं। फिर ये लोग राजनैतिक व्यक्ति भी तो हैं। केवल दया करके यह अवश्य बतला दिया उन्होंने कि यहाँ से कितनी दूर पैदल जाने पर बैलगाड़ी प्राप्त होगी, और प्यासी—वीणा की प्यास भी मिटा दी। उनकी कर्तव्य बुद्धि ने इससे अधिक करने का उन्हें परामर्श नहीं दिया। वे क्षमा मांग कर चले गए।

सारी रात गाड़ी में जागते ही बीती है, इसलिए किसी तरह जल्द से जल्द एनातपुर पहुँचना ही होगा। स्टेशन की सीमा के बाहर पहुँच कर, बड़ी कठिनाई से पूर्ण बाबू को सवारी के लिए दो बैलगाड़ियाँ मिलीं। किसी प्रकार वे कुमार टोला के मेले में पहुँच भर जाएं। वहाँ हर तरह की सहूलियत रहेगी। मेला गांव में हो रहा है। इसलिए औरतों में काफ़ी उत्साह है। उस छोटे-से क़स्बे में पहुँचने के लिए सात कोस नदी में नाव द्वारा जाना पड़ता है। इसलिए इस बार शहर में मेला न होकर, गांव में ही हो रहा है। ये इसी ज़िले की लड़कियाँ है, और कालेज की सहपाठिनी भी। इन्हें इच्छा हुई, कि मातृ-भूमि की कुछ सेवा की जाए। कार्य-कर्ताओं के लिए तकलीफ़ या हैरानी का तो प्रश्न उठता ही नहीं। दर असल समस्या है गाँव की। गाँव को अलग करके,

किसी प्रकार के कल्याणकारी कार्य के लिए अग्रसर होना उचित नहीं।

फ़सल कट गई थी। मैदान के बीच से बैलगाड़ियाँ चली जा रही थीं। सिर पर फूस का छाजन है। रह रह कर तेल के अभाव में पहिए चुरर-मुरर की आवाज़ कर उठते हैं। चार बैलों के साथ किस तरह दुर्बल स्वास्थ्य वाले ये गाड़ीवान जूझ रहे हैं, यह देखकर स्पष्ट होता जा रहा है, कि इन्हें लेकर अधिक दूर तक जाना सम्भव नहीं। मलिना अपने बैग से समाचार पत्र निकाल कर पढ़ने की कोशिश करने लगी। लेकिन उस ऊबड़ खाबड़ भूमि पर गाड़ी की ऐसी गति हो उठी, कि अपने को ही सम्भाले रहना मुश्किल हो गया। ये कलकत्ते की लड़कियाँ हैं। गाँव के वातावरण तथा बैलगाड़ी की सवारी की ये अभ्यस्त नहीं हैं। फिर भी कांग्रेस के कार्य के लिए ये जा रही हैं। शिल्प प्रदर्शनी में जाकर इन लोगों को भाषण देना है। इस विषय का ये लोग गहरा अध्ययन कर चुकी हैं, और शिक्षा द्वारा पुरस्कृत हो चुकी हैं।

सिर पर सूर्य की किरणें अट्टहास कर रहीं थी। पास में कहीं जलाशय भी नहीं दिखलाई दे रहा था। इसलिए क्षुधा या तृष्णा की चर्चा करना ही व्यर्थ था। सभी गन्तव्य स्थान तक पहुँचने के लिए उत्सुक थीं। पूर्ण बाबू सब देख और समझ रहे थे। आगे वाली गाड़ी में पूर्ण और आभा थे। उनकी गपशप की आवाज़ बन्द हो चुकी थी।

दो कोस के बाद एक लड़का जाता दिखाई दिया। उसे देखकर पूर्ण बाबू ने ज़ोर से पुकारा : "अरे, बेटा! ज़रा सुनो तो।"

अन्दाज़न बारह वर्ष का, कंकाल-सा वह बालक भयभीत दृष्टि से निहारता हुआ, गाड़ी के पास आया।

पूर्ण ने पूछा : "यहाँ से एनातपुर कितनी दूर है?"

लड़के ने अँगुली से इशारा करते हुए, कहा : "वह है, मेरे मकान के पास।"

मलिना ने प्रश्न किया : "वहाँ खाने पीने का सामान मिलता है, या नहीं?"

लड़के ने पूछा : "आप लोगों को क्या चाहिए?"

"चूड़ा, फरुई, चना और दूध।"

"दूध तो न मिलेगा। बाक़ी सामान मिल जाएगा।"

"बाज़ार है वहाँ?"

लड़के ने कहा : "शनिवार को वहाँ हाट लगती है। आज तो गुरुवार है।"

लड़कियों ने एक दूसरे की ओर देखा। अर्थात् चूड़ा, लावा जैसी सूखी चीज़ों के अलावा और किसी चीज़ के मिलने की आशा नहीं। आभा ने कहा : "अच्छा, यह तो बताओ, एनातपुर से कुमार टोला कितनी दूर है, भाई?"

'भाई' शब्द सुनकर लड़का अपने आप में संकुचित सा हो उठा। बोला : "नाव द्वारा जाने से तीन कोस पड़ेगा।"

"वहाँ कब तक पहुँचा जा सकता है?"

अन्दाज़ा लगाते हुए, लड़के ने कहा : "क्या आप लोग मेले में जाएंगे?"

सभी ने सोत्साह कहा : "हाँ हाँ! तुम तो सब जानते हो: भाई।"

"मैं भी वहाँ खिलौने बेचने जाता हूँ।"

कौतूहल का दूसरा नाम है 'नारी'। नाना प्रकार के प्रश्नों की झड़ी लग गई। लड़के का नाम था फ़क़ीर। उसके परिवार में केवल दादा जी हैं। वे खिलौने बनाया करते हैं। आजकल रंग नहीं मिल रहा है। उसके दादा जी बीमार हैं, फिर भी खिलौने बनाते रहते हैं। और वह उन्हें कुमार टोला की हाट में जाकर बेचता है।

दोनों गाड़ियों के बीच फ़क़ीर चलने लगा। जब गाड़ियाँ एनातपुर पहुँचीं, तब दिन के तीन बज गए थे।

बँसवाड़ी के पास एक बड़ी झाड़ी थी। उसी स्थान पर पहुँच कर, बैलगाड़ियाँ रुक गईं। कलकत्ता तथा अन्य शहरों से आजकल नर-नारियों के दल नित्य इस राह से गुज़रते रहते हैं, इसलिए नवागत व्यक्तियों को देखकर, गाँव के लोग कौतूहलवश आ आ कर भीड़ लगाने लगे। वे सुसज्जित, तेजस्वी और स्वस्थ नारियाँ इस अन्धकार पूर्ण गाँव के लिए सचमुच बड़े आश्चर्य की वस्तु थीं। विशेष कर गाँव के बच्चे विस्मय से चकित हो रहे थे।

धूप की गर्मी के कारण उनकी आकृतियाँ लाल हो उठी थीं। बँसवाड़ी की छाया में आकर; मानों उन्हें जीवन मिला। खद्दर की साड़ी, ब्लाउज़ इत्यादि श्रान्त शरीर को भार से लग रहे हैं। लेकिन कोई उपाय भी तो नहीं है। कारण कि गाँव की दरिद्रता के बीच शौक़ीनी दिखाना अनुचित है। इस बीच उन लोगों ने गाँव के बच्चों को हिला मिला लिया है। उन लोगों के

पास रबर के खिलौने, बाजे, टीन की गाड़ियाँ, चाकलेट और कपड़ों के टुकड़े हैं। वह सब बच्चों को बांट दिया गया इसके बाद सब लोग आराम के साथ घास की हरियाली पर लेट कर बातचीत करने लगे।

तभी फ़क़ीर को यहाँ साथ लिए पूर्ण बाबू आए। बोले: 'चलिए, मलिना बहन। आप लोग भी आइए।'

"कहां?"

"फ़क़ीर के घर में जगह मिल गई है। यह लड़का बड़ा अच्छा है। चलिए, हम लोग वहीं विश्राम करें।"

आने को तो वे लोग फ़क़ीर के यहाँ आ गए, लेकिन तभी एक नई समस्या उपस्थित हो गई। उन लोगों ने यह नहीं देखा था कि पूर्व की ओर घटाएँ छा गई हैं, और बाँस के पेड़ हिल-हिल कर आँधी का सन्देश सुना रहे हैं।

मलिना ने कहा: "पूर्ण बाबू, उधर देख रहे हैं।" क्या ऐसी हालत में नाव की ठीक सवारी होगी?"

आभा और वीणा तो जैसे कुछ कह ही नहीं सकीं।

रहने के लिए एक ही कमरा है। बग़ल के कमरे में पहले गाएँ रहती थीं, लेकिन आजकल उनके अभाव में वह जानवरों के रहने योग्य भी नहीं रह गया है। इधर उधर कहीं जाने की राह भी नहीं है। चारों तरफ़ जंगल-सा है। पास ही एक छोटी-सी पोखरी है। उसके चारों तरफ़ वृक्ष पंक्तिवार खड़े हैं। झोपड़ी में दरवाज़ा या बाँस का टट्टर भी नहीं है। घर के भीतर की दशा देखने पर यह पता नहीं चलता, कि इसमें कोई रहता है। पता नहीं, कैसे लोग इतनी दरिद्रता के बीच जीवन कार्य चलाते हैं। अगर ये लोग देश-सेवा के लिए यहाँ तक न आते, तो इस दशा का वर्णन सुन कर विश्वास भी न होता।

गाँव के एक छोर से फ़क़ीर चावल ख़रीद कर लाया। पश्चिम के गौशाला वाले कमरे से किसी वृद्ध की आवाज़ सुनाई दी—"बाबू, चावल लाया?"

सभी बूढ़े के कमरे में आ गईं। सामने गीली मिट्टी का अम्बार लगा था उसके अलावा कुछ और सामान था। वृद्ध एक मैले बिछौने पर लेटा था। ठुड्डी, कमर और पिण्डलियों पर जैसे चमड़े का आवरण मात्र हो। वृद्ध के शरीर पर कहीं माँस का नाम न था। औरतों को पास आया देख कर, वृद्ध उत्साह प्रकट करने ही जा रहा था, कि खाँसी का प्रबल वेग उमड़ पड़ा।

मलिना ने व्यस्त भाव से कहा—"नहीं-नहीं, आप उठिए मत, दादा जी। हम सब बैठ जाती हैं।"

बूढ़े ने कहा—"आज सात महीने से बुखार रहता है। उसके ऊपर यह खाँसी। गाँव में दवा भी तो नहीं मिलती, बेटी।"

लड़कियाँ चुप रहीं। बूढ़े ने कहा—"इस पोखरी में जब तक पानी रहेगा, तब तक बुखार नहीं छूटेगा। सभी के यहाँ की ढेकियाँ बन्द हैं। घर घर में आँव की बीमारी है।"

इधर बातचीत चल ही रही थी, कि उधर बाहर मेघ गरज उठे। औरतें सहम गईं। अगर पानी के कारण यहाँ रुकना पड़ा, तो मरण हो जाएगा। यहाँ समय बिता देने पर वहाँ का काम पूरा नहीं होगा। मेले में काफ़ी काम करना है। भाषण देने हैं, नोटिसें भी बाँटनी हैं, कलकत्ते रिपोर्ट भेजनी है।

वृद्ध बातें करता हुआ, एकटक वीणा को देख रहा था। यह देख कर, वीणा बोली: "मेरी तरफ़ इस तरह क्यों देख रहे हैं आप?"

वृद्ध ने कहा: "ज़रा तुम अपने बालों की लटें को हटा लो तो बेटी।"

"क्यों?"

ज़रा व्याधि-ग्रस्त वृद्ध के चेहरे पर हास्य की रेखा खेल गई। उसकी आँखों में एक प्रकार की निविड़ता का भाव था। औरतें उत्सुकता के साथ कुछ और प्रश्न करना चाहती थीं, कि उसी समय बाहर पूर्ण बाबू की आवाज़ सुनाई पड़ी।

मलिना, आभा और वीणा बाहर चली आईं। पूर्ण बाबू चावल दाल, सब्जी और लकड़ी लाए थे। फ़क़ीर ने सब सामान सिर से उतार कर रख दिया।

पूर्ण बाबू ने कहा: "साधारण तौर से यहां किसी तरह पेट भरने के अलावा कोई चारा नहीं है।"

आभा ने कहा: "नाव कब छूटेगी, पूर्ण बाबू?"

पूर्ण बाबू ने कहा: "आज नाव नहीं जाएगी। आसमान का रंग-ढंग ठीक नहीं है। इसके अलावा अगर अभी चल भी दिया जाए तो रात के दो बजे के पहले हम वहाँ पहुँच भी तो नहीं सकते। इस समय तो किसी तरह चलना नहीं हो सकता।

फ़क़ीर ने हँसकर कहा: "आप लोगों को किसी प्रकार की तकलीफ़ न होगी। मैं अभी जाकर नदी से

पानी लाता हूँ ।"

पूर्ण ने कहा : "तू रहने दे । बुखार की हालत में तुझे जाने की ज़रूरत नहीं । मैं चला जाता हूँ ।"

फ़कीर ने हँसते हुए, कहा : "बुखार तो बरसात शुरू होने के समय से ही है । इससे मेरा कुछ न बिगड़ेगा, बाबू ।"

लड़के की आँखों से मानों निरुपाय करुणा बरस रही थी । उसकी ओर देखते हुए, वीणा ने कहा : "नदी का रास्ता मुझे बता दो । मैं जाकर पानी लाऊँगी ।"

अन्य औरतें भी अवस्था के अनुसार व्यवस्था करने में लग गई ।

कुछ देर बाद, वीणा वृद्ध के पास आकर, बोली : "बीमारी की हालत में आप क्यों इतनी मेहनत कर रहे हैं ?"

"यों ही बेटी" वृद्ध ने कहा : "देखो, पहचानती हो इसे ?"

"खिलौना बना रहे हो ? बहुत सुन्दर है ।"—कहती हुई, वीणा सामने आकर, बैठ गई । सहसा खिलौने की तरफ़ एकटक आँखें गड़ाकर, देखती हुई बोल उठी : "अरे, यह तो मेरी शकल की है ।"

अधिक उम्र होने के कारण, वृद्ध का हाथ काँप रहा था । हँस कर खिलौने की नाक पर अगुली रखते हुए, उसने कहा : "ठीक रूप में लाने का प्रयत्न कर रहा हूँ । उन लोगों की भी मूर्तियाँ बनाई हैं, बेटी ।"

वीणा अवाक् होकर देखती रह गई । वृद्ध मलिना और आभा की मूर्तियाँ बना चुका था । आँखों के कोण, भ्रू रेखा, चिबुक पर गड्ढे, कण्ठ का उतार चढ़ाव और अधरों पर बिलीन होती हास्य की रेखा सब कुछ खिलौने में ठीक-ठीक बनाया गया था । सिर के पीछे विशेष ढंग से जूड़े का रूप भी बिलकुल ठीक था । मेघ-गर्जन सुनकर वीणा बाहर की ओर देखने लगी । उन खिलौनों को वृद्ध ने कितना वास्तविक सजीव रूप प्रदान किया था । इस दम घोंटने वाले गाँव के दुःख दारिद्र्यमय जीवन के प्रति मलिना की करुण समवेदना वृद्ध की आँखों से छिपी नहीं रही ।

पानी की बौछार कुटिया में आ रही थी । अन्धकार हो गया था । इसी समय हाथ में जलती मोमबत्ती लिए, आभा भीतर आई । बाक़ी महिलाएँ भी साथ थीं । सब के पीछे पूर्ण था । शिल्पी की कला पर सब लोग विस्मित तथा मुग्ध हो उठे । वृद्ध ने कहा—"यह कोई कठिन काम नहीं है, बेटी । सभी बना सकते हैं; ऐसी मूर्तियाँ कोशिश करने पर तुम भी बना सकती हो । आख़िर दस्तकारी ही तो है न ?"

पूर्ण ने कहा : "खिलौना तो हर कोई बना सकता है, पर आपकी तरह उनमें प्राण फूँक देना सहज नहीं ।"

"प्राण ?" वृद्ध ने पूर्ण की ओर देखा । उसकी कमज़ोर आँखों में आश्चर्य, कौतूहल और असीम जिज्ञासा उत्पन्न हो गई । कहा : "प्राण कहाँ है इनमें भइया ?"

"क्यों, आपके बनाए ये खिलौने जीवित प्रतिमाएँ ही तो हैं ।"

वृद्ध को यह बात ज्ञात नहीं थी, कि उसके बताए खिलौने में कहाँ प्राण या जीवन है । उसके यहाँ कई पुश्त से खिलौने बनाने का कार्य होता चला आ रहा है, पर आज के पहले उसने कभी ऐसी बातें नहीं सुनी थीं । ये लोग शहर के रहनेवाले हैं, इसलिए दुर्बोध भाषा में बातचीत करते हैं । वृद्ध अवाक् हो देखता ही रह गया ।

बाहर बड़े ज़ोर का पानी बरस रहा था । फ़कीर एक कोने में सिकुड़ा हुआ था । उसे बुखार आ गया है, यह बात सभी जानते थे । इसलिए आभा उठ कर, साथ में लाया हुआ एक बिछावन बिछाने लगी । बिछा कर बोली : "फ़कीर, आओ, इस बिछावन पर बैठ जाओ, भाई । बूढ़े दादा, आप इस समय क्या खाएंगे ?"

बिलकुल अपनों जैसा व्यवहार-अप्रत्याशित आत्मीयता-वृद्ध इन अभिजात तरुण-तरुणियों के बीच हक्का-बक्का सा बैठा है । फ़कीर इन लोगों की आज्ञा का पालन अक्षरशः कर रहा है । धीरे-धीरे वह बिछावन पर जा कर बैठ गया । वीणा बड़े उत्साह के साथ दादा और पोते के लिए भोजन परोस कर लाई । वृद्ध ने कहा : "ज़रा सावधानी से आओ जाओ, बेटी । आंगन में रात के समय तीन चार साँप चलते फिरते हैं ।"

किन्तु इस बात की परवाह किसी ने नहीं की । महज़ एक रात ही तो रहना है । सभ्यता से बहुत दूर, जगत् जीवन से कितनी दूर है यह स्थान । अगर इसे अरण्य कहा जाए, तो ग़लत होगा, क्योंकि न तो यहाँ कहीं श्री है न शोभा । अगर कल्पना की जाए, कि जंगल झाड़ियों से घिरे हुए एक स्थान पर कुछ श्मशानचारी रह रहे हैं, तो एनातपुर मूर्तिमान् हो उठेगा । शाम के बाद यहाँ भूत लोटने लगते हैं । चारों ओर

मेंढ़कों की टर्र टर्र, मच्छर और कीट पतंगों का उपद्रव, अँधकार भरा वातावरण। ऐसा लग रहा था जैसे दम घुट जाएगा। इन सब कारणों से अभ्यागतों की मनः स्थिति ख़राब हो गई।

भोजनादि के बाद वृद्ध पुनः इन लोगों के पास आकर बैठ गया। बोला : "आप लोग लौटते समय इधर से ही जाएँगी, बेटी ?"

मलिना ने कहा : "एक और रास्ता ज़रूर है। पर मेरी इच्छा है कि लौटते समय इधर से ही जाऊँ। आप लोगों को एक बार देखती जाऊँगी। कहिए, ठीक है न ?"

वृद्ध इस पर विश्वास नहीं कर सका। बोला : "हम लोग तो ग़रीब आदमी हैं, बेटी। शायद इससे आप लोगों को कोई तकलीफ़ हो।"

वीणा ने कहा : "क्या कह रहे हैं आप ? हमारा भारतवर्ष तो ग़रीब देश ही है।"

मलिना ने कहा : "अच्छा, अगर हम लोग इस गाँव में आ कर काम करें, तो कैसा हो ?"

वृद्ध : "कार्य। कैसा कार्य, बेटी ?"

"गाँव में रचनात्मक कार्य। जैसे मान लीजिए कि आप लोग बीमारियों से पीड़ित हैं, आपको अन्न वस्त्र नहीं मिल रहा है। पानी का अभाव है। राह-घाट और बाज़ार नहीं हैं, इन सब बातों की व्यवस्था करना।"

वृद्ध अवाक् रह गया। उधर फ़क़ीर चुपचाप बिछौने पर जाकर बैठ गया। इन लोगों की बातचीत से वह विचित्र अनुप्रेरणा प्राप्त कर रहा था। लेकिन वह स्पष्ट रूप से कुछ नहीं समझ पा रहा था।

मलिना ने कहा : "मैं ठीक से समझाए देती हूँ। जैसे आपके गाँव में हम लोग कुछ लेकर रह गए, और यहीं के लोगों की सहायता से कार्य करने लगे— सूत कातना, चरखा चलाना वग़ैरह। प्राथमिक खर्च हम सब ही देंगे।"

पूर्ण ने कहा : "जैसे मान लीजिए कि आप खिलौने बनाते हैं। आपकी तरह के कारीगरों से खिलौने बना कर बाहर भेजा जाए तो कुछ आमदनी होगी। इसके बाद कारखाना खोल दिया जाएगा।"

सहसा वृद्ध की आँखें जल उठीं। पर वह चुप ही रहा। उसके जीवन में मानों एक अप्रत्याशित सुयोग आ गया है। 'लेकिन ये लोग हैं कौन ?' क्यों इतना पर्याप्त ममत्व दिखा रहे हैं ? क्यों मेरे मन में कुहुक पैदा कर रहे हैं ? आख़िर यह मोह-जाल क्यों ? वृद्ध का रुग्ण मस्तिष्क चक्कर-सा खा गया। वह अपलक देखता रहा। खाँसी का वेग बढ़ गया। हृत्पिण्ड जैसे स्थान च्युत होकर उछलने लगा। इस गाँव की तब तो रंगत ही बदल जाएगी। वह कारख़ाने का मालिक होगा। उसके नाति को तब कोई दुःख न होगा। आज सात बरस से वह अपनी झोपड़ी को नई सनई से छवा भी न सका। तीन बरस से नए कपड़े नहीं ख़रीद सका। वह चार गाएँ ख़रीदेगा, फ़क़ीर की शादी करेगा, उसके दुलहिन के लिए चाँदी के गहने गढ़ाएगा। जाड़ों के लायक बिछावन बनवाएगा। यही सब सोचते-सोचते फटे चिथड़े बिछौने पर लेटा हुआ वृद्ध आनन्द से कांपने लगा।

अचानक खाँसी का वेग उमड़ आया। और वह खाँसने लगा, कि सारा बदन पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगा। फ़क़ीर दौड़ता हुआ आया और वृद्ध के शरीर से लिपट गया।

पूर्ण बाबू की बग़ल में बैठी हुई नारियाँ वृद्ध की यह करुण दुर्दशा देखती रही थीं। रोग और दरिद्रता का यह दृश्य नया नहीं है। ये लोग काँग्रेसी हैं। भारत की तरुण, उत्पीड़ित और दरिद्र मानवता से इन लोगों का परिचय है। इसलिए ये लोग देशवासियों के कष्टों को दूर करने के लिए अग्रसर भी हुए हैं। ये लोग रचनात्मक कार्य करेंगे और इन अभागों के आँसू पोछेंगे।

मलिना उठ खड़ी हुई। उसकी आँखों में आँसू भर आए थे। बोली : "दादा, तुम आशीर्वाद दो कि हम लोग तुम्हारे गाँव में आकर रचनात्मक कार्य कर सकें, तुम लोगों के कष्ट दूर कर सकें।"

क्या कहा इस लड़की ने ? यह कौनसी भाषा है ? यह किस देवता की कृपा है ? वृद्ध स्तब्ध दृष्टि से इधर उधर देखता हुआ, खांसी का वेग सम्हालने लगा। आज यदि उसके बदन में जवानी की सी ताक़त होती, तो वह इन सब बच्चों को गोद में बैठा कर रो पड़ता।

मलिना, वीणा और आभा कोठरी के बाहर चली गईं। बगल के कमरे में किसी प्रकार रात व्यतीत कर उन्हें सुबह प्रस्थान करना है। कुमार टोला तक जाने में इतना विलम्ब होगा इसका अनुभव उन्हें न था। वहाँ देश के गण्य-मान्य नेता पधार रहे हैं। समाचारपत्रों के सम्वाद दाता पहले से पहुँच चुके हैं। इन लोगों ने यह निश्चय कर लिया है कि मेले की समाप्ति के पश्चात

एनातपुर होकर अवश्य जाएँगे, अन्य रास्ते से नहीं । इस गाँव में लौट कर इस वृद्ध कलाकार के लिए कुछ करना ही होगा। वह चाहे जैसे हो । इस असाधारण शिल्पी की कला को ये लोग जनता के सामने प्रदर्शित अवश्य करेंगे। इसके लिए एक कारखाना खोला जाएगा । इन मरणोन्मुख जीवन यात्रियों के लिए हम लोग कुछ न कुछ अवश्य ही करेंगे ऐसा इन लोगों ने निश्चय किया है ।

अपने बिछावन को इन लोगों ने फ़क़ीर को भेंट कर दिया है । इसके लिए इन लोगों के मन में किसी प्रकार की उकण्ठा नहीं है । आज की रात किसी प्रकार बगल वाले कमरे में गुज़ार लेंगे । ये लोग सोने ही जा रहे थे, कि सहसा फ़क़ीर संकुचित भाव से दरवाज़े के समीप आ खड़ा हुआ ।

पूर्ण बाबू ने बढ़ कर पूछा : ''क्या है फ़क़ीर ?''

फ़क़ीर ने विनय-भरे स्वर में कहा : ''मुझे एक कुर्ता चाहिए ।''

आभा ने कहा : ''कुर्ता ! कुर्ता, धोती, जूता, सब कुछ मिलेगा, तुम्हें फ़क़ीर ! यह ले ! तब तक इसे ले जाकर ओढ़।'' कह कर, आभा ने अपना रैपर उसे ओढ़ा कर, उसकी चिबुक पकड़ कर, प्यार से हिला दिया ।

मलिना ने कहा : ''कल सुबह हम लोग चले जाएँगे, भाई । लेकिन कुछ दिन बाद हम इधर से ही लौटेंगे । तब तक के लिए मैं कुछ रुपए दिए जाती हूँ । उससे अपना काम चलाना ।...क्यों, ठीक है न ?''

फ़क़ीर ने काँपते हुए स्वर में पूछा : ''आप लोग फिर आइएगा ?''

''ज़रूर आएंगे, और तेरे दादा के बनाए सभी खिलौने खरीद कर ले जाएँगे । फिर देखना, तुम लोगों को कितना मिलता है । हम ज़रूर, आएँगे ?''

दस रुपए का नोट लेकर, फ़क़ीर पुनः अन्धकार में विलीन हो गया ।

वीणा ने कहा : ''बड़ा अच्छा लड़का है । लौटती बेर कुछ दिनों के लिए इसे अपने साथ ले चलेंगे ।''

पूर्ण बाबू ने कहा : ''बूढ़े की हालत तो बड़ी नाज़ुक है, शायद ही बचे ।''

इधर कोठरी में आ फ़क़ीर अपने दादा से लिपट गया ।

दादा ने कहा : ''क्या है, राजा बेटा ?''

''कहा है, कि मुझे कुर्ता देंगे । हम लोगों के खिलौने खरीद कर ले जाएँगे । लो ये रुपये ।''

वृद्ध ने कहा : ''इतना दिया ?''

फ़क़ीर ने कहा : ''वे लोग फिर आएँगे, और इसी रास्ते से जाएँगे ।''

''सचमुच, आएँगे, बेटा ?''

''हाँ, आएँगे फिर । तुम्हें तो ज़ोर का बुखार आ गया है । इतना बुखार ।''

''क्यों न आए बेटा ?'' सोते-सोते वृद्ध चंचल हो उठा । कहा—''क्यों न आए बुखार ?'' न जाने क्या बात हो गई । बता तो...मैं...मैं...बता नहीं पा रहा हूँ न जाने...न जाने क्या हो गया है ।

आनन्द की प्रबल उत्तेजना वृद्ध के मुँह से इसी प्रकार प्रकट होने लगी । शरीर में शक्ति कम होने के कारण उस उत्तेजना से वृद्ध थका-सा हो गया । उस समय बुखार की अधिकता से उसका शरीर तवे की तरह जल रहा था ।

फ़क़ीर सो गया था । अचानक दो घण्टे के बाद उसकी आँखें खुलीं, तो देखा—दादा, उन खिलौनों को फिर एकाग्र चित्त से संवार रहे हैं । रुग्ण शरीर झुक गया है । गर्दन तक ऊपर नहीं उठ पा रही है । श्रान्त अंगुलियाँ ठीक से कार्य नहीं कर पा रही हैं । कमर में भी ताक़त नहीं रह गई है । फिर भी यह ज़रा व्याधिग्रस्त कारीगर काम करने के लोभ को त्याग नहीं पाता । अति यत्न से उस सूक्ष्म कार्य की समाप्ति हो रही थी ।

एनातपुर के अधिकांश निवासी इस बात को जान गए थे कि इस गाँव में एक कारखाना खुलेगा । फ़क़ीर ने ही इस बात का प्रचार किया था । उधर बँसवाड़ी के पास कारखाना बनेगा । बबूल के पेड़ों के पास कपड़े बुनने की मशीन पैठाई जाएगी । शिवजी के मन्दिर के पास दवाखाना खुलेगा । शहर में नावों द्वारा माल मँगाया जाएगा । बहुत से कपड़ों के थान आएँगे; टीन के खिलौने आएँगे । बाज़ार में पक्की सड़क बनेगी, और उस पर मोटरें चला करेंगी । उसका फूस का मकान टीन का बन जाएगा । फ़क़ीर गाय रखेगा, कुर्त्ता पहनेगा, पैरों में जूते पहनेगा । अब उसे और उसके दादा को कोई तकलीफ़ न होगी ।

फ़क़ीर ने उन लोगों को रहने के लिए कमरा साफ़ कर रखा था । घर से पोखर तक झाड़-झंखाड़ साफ़ कर रखा है । पानी भर कर रख लिया है । ये लोग फिर एनातपुर आनेवाले हैं न । उसके दादा जब से ये

खिलौने बना चुके हैं तभी से बिछौने पर पड़े हुए हैं। अभी तक उठ नहीं सके। बुखार में बेहोश से रहते हैं। इधर बुखार बढ़ गया है। अब उन लोगों के आने का भी समय हो गया है। इधर से ही जाने का रास्ता है।

मेला समाप्त हो गया है। दल के दल लोग वापस आ रहे हैं। बहुत से लोग सामान खरीद कर ले जा रहे हैं। बहुत से लोग पैसा कमा कर ले जा रहे हैं। वह नित्य घाट पर जाकर उनकी प्रतीक्षा करता है दिन दिन भर।

नहीं आज भी वे लोग नहीं आए। शाम हो गई है। नहीं तट का पथ दूर तक धूल से भर गया है। अभी तक उन लोगों की नाव वापस नहीं आई। सात दिन के भीतर आने को कह गए थे। आज एक मास हो गया। शायद ग़रीब फ़क़ीर की याद उन्हें भूल गई हो, इसके बाद एक दिन एक बड़ी नौका तट पर आई। शायद इसी नाव पर वे लोग आए हों। ज़रूर इसी पर आए हैं। दुनिया भर का सामान लाने वाले हैं वे। छोटी नाव पर कैसे आते? धन दौलत से भरी, ऐश्वर्य से परिपूर्ण नौका तट पर लगी। फ़क़ीर के लिए प्रतीक्षा असह्य सी हो उठी।

पर वह नौका आई, और चली गई। पानी बरसता रहा। फ़क़ीर वृक्ष के नीचे प्रतीक्षा में बैठा ही रह गया। आज भी उसे बुखार आ गया है। सारा बदन काँप रहा है।

वीणा बहन कह गई है—"फ़क़ीर, तू दूसरों की सेवा करना। गाँव की उन्नति के लिए पिल पड़ना, और भूखों प्यासों की मदद करना।" उनकी इस आज्ञा का पालन उसने अक्षरशः किया है। उनके दिए बिछावन को उसने हाबू मियाँ को दे दिया है। चादर दे आया है बीमारी से पीड़ित विधवा नारी को। घर का सारा अन्न भूखों को बाँट चुका है। नक़द रुपए भी ग़रीबों को बाँट चुका है। इस समय उसके पास कुछ नहीं है। पूर्ण रूप से वह खाली हो चुका है। उसने अपने आपको इसलिए खाली कर दिया है कि उन लोगों के आते ही वह पुनः सम्पदावान् बन जाए। दूसरों की तकलीफ़ दूर करके आज वह प्रसन्न है।

बुखार की बेहोशी में वह घर वापस आया। श्रावण की वर्षा शुरू हो गई थी। फूस के छप्पर से अविरल गति से पानी कोठरी में चू रहा था। दादा का बिछावना सब भींग गया था। फिर भी वे चुपचाप पड़े थे। उनकी आकृति मुर्दे की तरह हो गई है। केवल रह रह कर हिल उठते हैं। इन दो महीनों में नाना प्रकार के प्रश्नों से उन्होंने अपने नाती को हैरान कर डाला है। सब प्रश्नों का एक ही प्रकार का उत्तर उसने दिया है—'वे लोग आएँगे, और अवश्य आएँगे।' वृद्ध की आँखें प्रतीक्षा से पथरा गई हैं। वे लोग आएँगे, इस बात का वृद्ध को विश्वास हो गया है—वीणा, आभा, मलिना और पूर्ण ग़रीबों के साथी हैं; असहायों के सेवक हैं; दूसरों के दुःख हर्ता हैं। वे आएँगे, अवश्य आएँगे। उन्हें आना ही होगा। इस गाँव को नया जीवन प्राप्त होगा। यह स्वप्नों का स्वर्ग बन जाएगा। यहाँ के निवासियों को अब कोई कष्ट न होगा। इन सबके लिए उन्हें आना ही होगा।

फ़क़ीर व्यग्रता से, उत्कण्ठा से, काल्पनिक आनन्द से अपने मकान के चारों तरफ चक्कर काटा करता है। और जब प्रतीक्षा की घड़ी समाप्त हो जाती है तो वापस आकर अपने दादा के अस्थि पंजर जैसे बदन पर हाथ फेरने लगता है। कभी सान्त्वना देते हुए कहता—"तुम इतनी चिन्ता क्यों करते हो दादा? वे आएँगे ज़रूर आएँगे।

वृद्ध इस बात का उत्तर नहीं देता। वह ऐसी बातें अनेक बार सुन चुका है। अपनी आंखें वह खोलना चाहता है, पर खोल नहीं पाता। उनमें प्रकाश का अभाव हो गया है। चारों तरफ़ अन्धकार-सा दीख पड़ता है।

और एक दिन सान्त्वना देते हुए झट फ़क़ीर ने कह ही डाला—"दादा वे लोग आएंगे—खबर भिजवाई है।"

वृद्ध आंखें खोल कर देखना चाहता है। दादा की भयावह स्थिति देख कर फ़क़ीर डर जाता है मानो दादा मृत्यु को परे हटा उन लोगों के स्वागत के लिए उठ बैठना चाहता है। फ़क़ीर ने घबड़ा कर, कहा—"उठो मत दादा। उन लोगों ने चिठी भेजी है, कि हम लोग जल्दी ही आएँगे।'

यह बात सुन कर, दादा न जाने किधर देख रहे हैं। फ़क़ीर यह रूप देख कर, और भी घबड़ाया। इन महीनों के बीच कब उन की आँखों की ज्योति खो गई, फ़क़ीर यह नहीं जान सका है। वृद्ध अन्धे की तरह हाथ से टटोलने लगता है। मानो वह कहना चाहता है, कि "राजा भैया, तू मुझे कुछ दिन और जीवित रख ले, जब तक वे लड़कियाँ वापस न आ जाएँ। उनके आने के बाद तुझे उनको सौंप कर, मैं चिर विश्राम करूँगा।'

मेले में से कुछ आदमी अब भी वापस आ रहे हैं। पर उनमें से कोई भी मलिना बहन का हाल चाल

नहीं देता। जाते समय वे लोग अपनी स्मृति स्वरूप एक मोम बत्ती छोड़ गए हैं। फ़कीर ने उसे यत्न के साथ पास रख छोड़ा है। जब वे लोग आएँगे, उसी से प्रकाश कर, उन्हें रास्ता दिखाएगा।

तो क्या सचमुच वे लोग आएँगे! कहीं दूसरे रास्ते से वापस न चले गए हों! वे लोग बड़े आदमी हैं, काम-काज वाले हैं। गरीबों की सेवा करते हैं, उनके दुःख दर्द के साथी बनते हैं। दान करते हैं, दया करते हैं! देशवासियों के आह्वान पर सब काम काज छोड़ कर उन्हें चल देना पड़ता है। फ़कीर और उसके दादा की तरह न जाने कितने लोगों की सेवा करते होंगे। वे लोग अवश्य उसे भूल गए होंगे। वह तो कहो, कि वह आप भाग्यवान था कि उस की कुटिया को पवित्र करने वे लोग चले आए थे।

अब फ़कीर को उन लोगों को ले कर कोई गर्व नहीं रह गया है। आभा बहन उसके मन में पिपासा जगा गई है। और क्षुधा जगा गई है वीणा बहन। फ़कीर को बड़ा होना है। इसी प्रकार वह अपने जीवन में उन्नति करेगा, और एक दिन उन लोगों के कथनानुसार उनके सामने गर्व से जा कर खड़ा होगा।

बाहर ज़ोरों से पानी बरस रहा था। पानी की बौछारों के कारण अर्द्ध नग्न झोंपड़ी झूले सी हिलने लगी। एक एक कर बहुत से पुआल उड़ गए। पोखर के किनारे वाला बाँस का जंगल हर-हर करता, काँप रहा था। वृद्ध मानो अथाह सागर में बहता चला जा रहा था। अपने बचाने के लिया वह चारों तरफ़ हाथ पैर फेंक रहा था आज कई दिनों से उसके पेट में अन्न का दाना भी नहीं गया; फिर भी वह जीवित है। वह शिल्पी है, वह मूर्तिकार है। वह मूर्तियों में प्राण प्रतिष्ठा कर सकता है।

आखिर हार कर, आज फ़कीर ने उस मोम बत्ती के टुकड़े को जलाया। वृद्ध की आकृति से उसे भय अनुभव हो रहा था उसके मुंह से विचित्र प्रकार का आर्त नाद सुनकर उसका कलेजा धड़कने लगता है। दादा की मुखाकृति, उसकी आँखें सब आज दानव की सी प्रतीत हो रही थीं। वह सहसा चिल्ला उठा "दादा। दादा"।

लड़खड़ाते, अवरुद्ध से स्वर में वृद्ध कुछ बड़बड़ा उठा। उसने उठने का प्रयत्न किया, पर मुँह के बल गिर पड़ा फिर सब शान्त।

फ़कीर चीख उठा—"दादा।"

कोई उत्तर नहीं। व्याकुल कण्ठ से फ़कीर ने पुनः पुकारा। वृद्ध ज़रा हिल उठा। अभी तक ये मरे नहीं हैं। काश, ये लोग अब भी आ जाएँ, तो दादा बच जाएँ। हाथ की जलती मोमबत्ती भी समाप्त हो रही है।

सहसा वर्षा का वेग बढ़ गया। और झोंपड़ी का एक भाग गिर पड़ा। फ़कीर चिल्ला उठा "दादा। दादा।" देखो वे लोग आ गए।

दादा निस्पन्द भाव से सोए रहे।

फ़कीर रो पड़ा "अरे, यह देखो, आ गए। दादा, वे आ गए हैं। नहीं देख रहे हो? देखो मेरे दादा। ज़रा आँखें खोल कर देखो, यह तुम्हारे सामने खड़े हैं।"

वृद्ध को विश्वास नहीं होता।

सहसा फ़कीर अपनी जगह से उठ कर, उन प्राणमय चारों मूर्तियों को उठा लाया, और मृत्यु पथ यात्री शिल्पी के ज्योति हीन नेत्रों के सामने करके बोला "यह रहे। यह आगए वे लोग।......ज़रा आँखें खोल कर देखो तो, दादा।"

खिलौनों की तरफ एक बार आँखें उठा कर क्षीण दृष्टि से देखने पर वृद्ध ने समझा—हाँ, सचमुच वे लोग आ गए हैं। अन्धकार के कारण छोटे और अस्पष्ट हैं। तो वे लोग आ ही गए। बूढ़ा देखता रहता है। वे लोग झूठें नहीं हैं। वे उसके समीप, बहुत समीप खड़े हैं।

फ़कीर वृद्ध के मुँह के पास खिलौनों को पकड़े, बैठा रहा है। मृत्यु पथ के यात्री के आनन पर शान्ति और आनन्द की आभा फूट पड़ी है। यद्यपि उसकी ज़बान बन्द हो गई है पर मानों मौन भाषा में उसने कह दिया कि "फ़कीर आपका है। इसे अब अपने पास रक्खें। एक दिन यह भी मेरी तरह खिलौना बनाएगा: और आपका वह स्वप्न पूरा हो जाएगा।"

इसके बाद? इसके बाद उस अन्धकारमय वातावरण में फ़कीर अकेला बैठा रह गया और मानो समस्त एनातपुर उसकी कण्ठ कली में प्रवेश कर फटे स्वर में रो रहा है।

—अनु० विश्वनाथ मुखर्जी

—प्रबोध कुमार सान्याल

किरण साहित्य मण्डल, सिद्धगिरि बाग,
बनारस

कला-चर्चा

हैदराबाद में भारतीय कला और संस्कृति के वर्णनात्मक चित्रों का प्रदर्शन

शुक्रवार, १५ अक्तूबर, १९५४ को ५-३० बजे सायंकाल महिला-नव-जीवन-मंडल, हैदराबाद के भवन में हैदराबाद राज्य के शिक्षा-सचिव श्रीयुत लक्ष्मीनारायण गुप्त, आई. ए. एस. ने भारतीय कला और संस्कृति के वर्णनात्मक चित्रों की प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया। इसमें २०० चित्रों को प्रदर्शित किया गया था। प्रदर्शिनी का उद्घाटन करते हुए श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त ने कहा : "भारतीय कला और संस्कृति पर एक विस्तृत सूची-पत्र की आवश्यकता को दीर्घ काल से अनुभव किया जा रहा है।" उन्होंने शारदा उकील स्कूल ऑफ़ आर्ट, नई दिल्ली के सेक्रेटरी श्री योगेश्वरदयाल को जो कि चित्रों को अपने साथ लाए थे और इस अवसर पर भवन में उपस्थित थे, बधाई देते हुए कहा कि सर्व-साधारण जनता इन चित्रों के द्वारा ५००० वर्ष की अपने देश के प्राचीन महान् सांस्कृतिक निधि को देख सकती है।

इन २०० चित्रों की प्रदर्शिनी को भारतीय-प्रशासन के शिक्षा मंत्रालय के उत्तरदायित्व में नई दिल्ली में शारदा उकील-कला-विद्यालय की ओर से संयोजित किया गया था। हैदराबाद आर्ट सोसाइटी की सहायता से इस प्रदर्शिनी को हैदराबाद और सिकन्दराबाद के संयुक्त नगरों में गवर्नमेंट स्कूल ऑफ़ आर्ट की ओर से संयोजित किया जा रहा है।

इस अवसर पर श्री योगेश्वरदयाल ने इस प्रदर्शिनी के महत्व को बतलाते हुए कहा : "इस प्रदर्शिनी का महत्व इस बात में है कि यह १८ वीं सदी की शानदार घटनाओं को चित्रित करती है। इसके द्वारा जनता को यह पता लग सकता है कि हमारे देश की कला की कितनी महान् निधियाँ हमारे समस्त देश में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रारंभिक अवशेष अज्ञात भूतकाल में विनष्ट हो गए हैं परन्तु मोहेनजोदारो और हरप्पा की खुदाइयों से यह ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में एक संवर्धनशील सभ्यता थी जो कि ३००० वर्ष ई० पू० के समय की है और जो कि मेसोपोटेमिया की सुमेरी सभ्यता की समसामयिक है। गुप्त काल भारतीय कला का सुवर्ण-काल था। इसी काल में ऐसी मूर्तियों और चित्रों का निर्माण हुआ जो विश्व की सभ्यता में बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त करने के योग्य हैं।"

प्रारंभ में समागत अतिथियों का स्वागत करते हुए गवर्नमेंट स्कूल ऑफ़ आर्ट के प्रिन्सिपल श्रीयुत विश्वनाथ मुखर्जी ने कहा : "गवर्नमेंट स्कूल ऑफ़ आर्ट, हैदराबाद ने प्रतिभावान् व नवयुवकों को कला के क्षेत्र में अवतीर्ण करने में सहायता प्रदान की है। अभी कुछ ही वर्षों में समसामयिक कला के क्षेत्र में हैदराबाद ने काफ़ी प्रगति की है। इस राज्य की कलात्मक परम्परा प्रसिद्ध है जिसे "दखनी कलम या शैली" के नाम से कहा जाता है। इसके साथ दक्षिण और उत्तर के जिन प्रभावों का सम्मिलन हुआ उससे सर्वथा एक नवीन शैली का विकास हुआ। उन चित्रों को जिन्हें कि प्रदर्शिनी के लिए यहाँ श्री योगेश्वर दयाल लाए हैं हम कला और संस्कृति के सम्मिलन का सुगमता से अध्ययन कर सकते हैं।

जिस समय कि आज के महान् राष्ट्रों का कहीं पता न था भारतवर्ष कला और संस्कृति के रहस्यों से अच्छी तरह परिचित था और उसकी सभ्यता बहुत उच्च थी। अभी तक हमें स्कूलों और कालेजों में इतिहास की पुस्तकों और वर्णन के द्वारा सिखलाया जाता रहा है परन्तु इस प्रदर्शिनी में इसे आँखों के द्वारा दिखलाने का सफल प्रयत्न किया गया है। इस प्रदर्शिनी में सिन्धु नदी की घाटी से लेकर १८ वीं सदी तक की दीर्घकालीन भारतीय-सभ्यता का चित्रों द्वारा प्रदर्शन किया गया है। इस प्रदर्शिनी में २०० चित्र हैं। भारतीय सभ्यता के आदि काल के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। मोहेनजोदारो और हरप्पा की खुदाइयों से यह ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में एक प्रगतीशील सभ्यता थी जो ३००० वर्ष ई. पू. प्राचीन थी और जो कि मैसोपोटोमिया की सुमेरी सभ्यता की समकालीन थी।

भारतवर्ष के प्राक् ऐतिहासिक कला के इस शानदार अध्याय और युग प्रवर्तक मौर्य काल चतुर्थ से तृतीय शताब्दी के जिसमें सम्राट् अशोक के शिलालेख

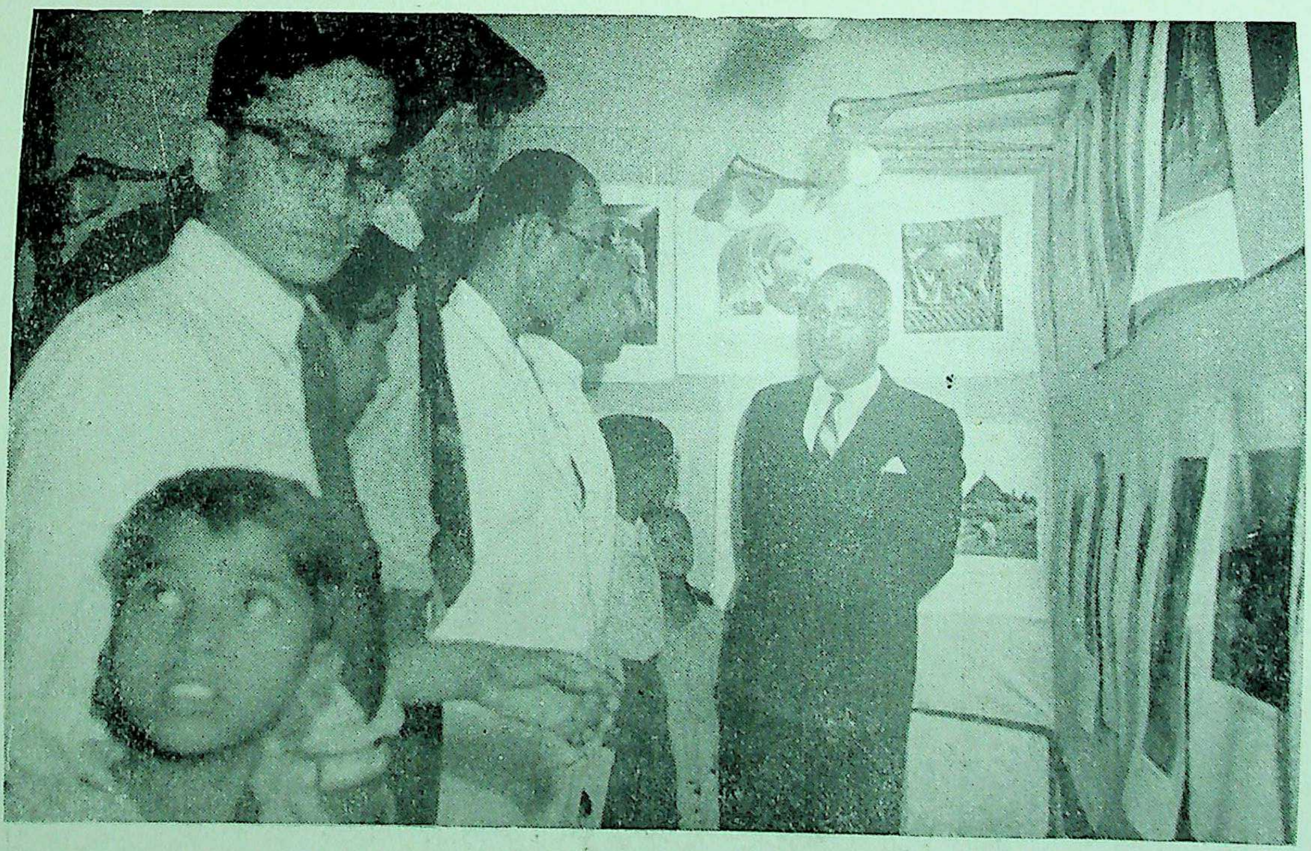

हैदराबाद में भारतीय कला और संस्कृति के वर्णनात्मक चित्रों की प्रदर्शिनी

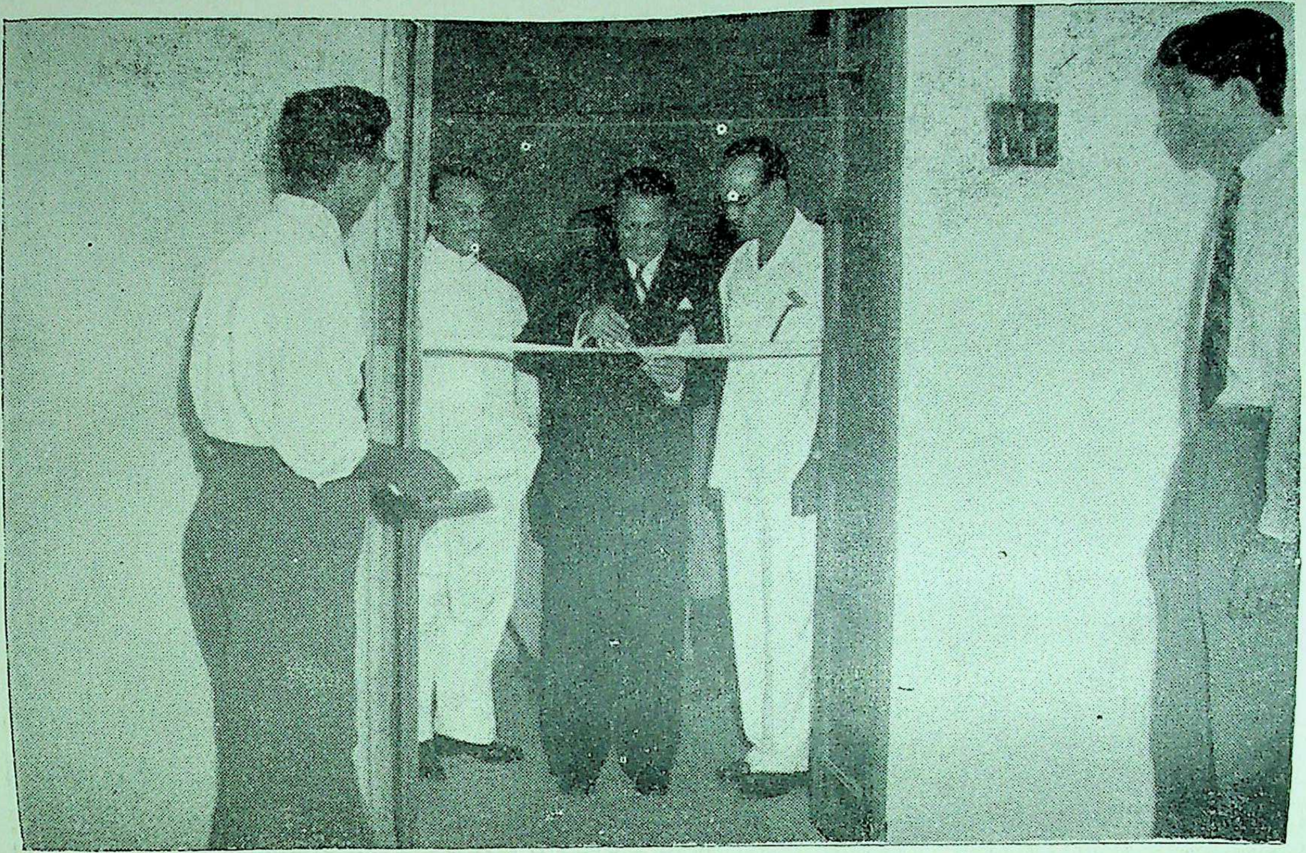

श्रीयुत लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस. शिक्षा-सचिव, हैदराबाद राज्य प्रदर्शिनी का उद्घाटन कर रहे हैं।
उनके बाईं ओर प्रिन्सिपल श्री विश्वनाथ मुखर्जी और दाईं ओर श्री योगेश्वर दयाल,
सेक्रेटरी, शारदा उकील स्कूल आफ़ आर्ट नई दिल्ली हैं।

प्राप्त होते हैं—के मध्य में जो २००० वर्ष की जो परम्परा है उसके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

ईसा पूर्व की द्वितीय शताब्दी में मौर्य कला जनता की कला बन गई थी जिसका हमें भारहुत और सांची के स्तूपों से पता चलता है। अमरावती और नागार्जुन कोण्डा के संग मरमर के सुन्दर स्तूपों में जो कि बाद में बनाए गए हैं कला की उन्हीं परम्पराओं का प्रचलन रहता है।

इसके तीन सौ वर्ष के पश्चात् ईसा की प्रथम शताब्दी में हिन्दुकुश से लेकर गंगा तक कुशान राज्य की स्थापना होती है। कुशान राजाओं के समय भारतीय राजत्व में धर्म का सम्बन्ध स्थापित होता है। मथुरा में कला के एक नए युग का प्रारम्भ होता है और पहले पहल बुद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्म के अवतारों की कलात्मक मूर्तियों का निर्माण होता है।

ज्यों ज्यों कलात्मक संवेदनशीलता का विकास होता है त्यों त्यों उसमें संयम और श्रेणिक विचारों का सम्मिलन होता है गुप्त काल की चौथी और पाँचवीं शताब्दी भारतीय मूर्ति और चित्रकला का स्वर्ण युग है। इस समय की कला विश्व की सभ्यता में उच्च स्थान प्राप्त करने के योग्य है। मध्य-युग की कला में गुप्त काल की यही शैली अधिक अलंकारपूर्ण हो गई है। ८ वीं सदी में एलोरा और हस्ति गुफ़ाओं का निर्माण हुआ। इससे एक ऐसे कला-युग का प्रारम्भ हुआ जिसका चरम विकास हमें खजुराहो, भुवनेश्वर, महाबालिपुरम और कोनारक के मन्दिरों में दिखलाई पड़ता है।

१४ वीं शताब्दी के अन्त तक यह परम्परा समाप्त हो जाती है मोधेरा और आबू पर्वत में अत्यन्त अलंकार पूर्ण मन्दिरों के रूप में स्थानीय शैलियों का आविर्भाव होता है। दक्षिण भारत में ताँबे की मूर्तियों में यह कला अपने को अभिव्यक्त करती है। भारतवर्ष में इस्लाम के आने के पश्चात् कला में एक नई शैली का विकास होता है। उस समय के कुछ चित्रों के फ़ोटो इस प्रदर्शिनी में सम्मिलित किए गए हैं।

यह प्रदर्शिनी अब तक आगरा, अमृतसर, बम्बई और मैसूर में संयोजित की जा चुकी है। आगरा में यह प्रदर्शिनी सैण्ट जौन कालेज में हुई थी और इसका उद्घाटन आगरा विश्व विद्यालय के वाइस चान्सलर ने किया था। अमृतसर में नहर के मन्त्री ने इसका उद्घाटन किया था और इसे देखने के लिए बहुत सी जनता आई थी। बम्बई में सर जे. जे. स्कूल ऑफ़ आर्ट के सहयोग से इस प्रदर्शिनी को संयोजित किया गया था। इसका उद्घाटन सर कोवास जहाँगीर ने किया था जिसने इस सम्बन्ध में शारदा उकील कला विद्यालय के कार्य की बहुत प्रशंसा की थी। मैसूर में इस प्रदर्शिनी को देखने वालों की संख्या एक लाख से ऊपर पहुँच गई थी। जिन महानुभावों ने इसे देखा था उनमें सम्मान्य श्री डी. पी. करमारकर, केन्द्रीय वाणिज्य मन्त्री, श्री आर. आर. दिवाकर, राज्यपाल बिहार और भारतवर्ष में रूस के महादूत भी थे।

दो महान् भारतीय कलाकारों का निधन

गवर्नमेण्ट स्कूल आफ़ आर्ट में लखनऊ कला-विद्यालय के प्रिन्सिपल श्री ललित मोहन सेन और हैदराबाद स्कूल आफ़ आर्ट के स्थापक-प्रिन्सिपल खान बहादुर सैयद अहमद की मृत्यु का समाचार अत्यन्त दुःख के साथ सुना गया। इन दोनों भारतीय महान् कलाकरों की मृत्यु अक्तूबर मास में हुई। उनकी मृत्यु से भारतीय कला की जो क्षति हुई है उनकी किसी प्रकार पूर्ति नहीं की जा सकती। इस सम्बन्ध में गवर्नमेंट स्कूल आफ़ आर्ट और हैदराबाद आर्ट सोसाइटी की एक आवश्यक सम्मिलित सभा हुई। इस में श्री ललितमोहन सेन, प्रिन्सिपल, स्कूल आफ़ आर्ट, लखनऊ की मृत्यु के प्रति शोक प्रदर्शित किया गया। उनकी आयु ५८ वर्ष की थी। उनकी मृत्यु हृदय-गति के रुक जाने से हुई। उनका नाम समस्त भारत वर्ष तथा बाहर भी प्रसिद्ध था। श्री विश्वनाथ मुखर्जी ने अपने संक्षिप्त भाषण में उनके हृदय और मस्तिष्क के गुणों को बतलाया। दो मिनट तक सब मौन रहे और स्कूल को दिवंगत आत्मा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए आधे दिन के लिए बन्द कर दिया गया। शोक-प्रस्ताव उनके परिवार के पास भेजा गया।

खान बहादुर सैयद अहमद (६५) हैदराबाद स्कूल आफ़ आर्ट के स्थापक-प्रिन्सिपल की मृत्यु १६ अक्तूबर १९५४ को हुई वे कुछ समय से बीमार थे। हैदराबाद स्कूल ऑफ आर्ट सोसाइटी ने उनकी मृत्यु के प्रति शोक का प्रस्ताव पास किया। हैदराबाद स्कूल आफ़ आर्ट के प्रिन्सिपल श्री विश्वनाथ मुखर्जी ने खान बहादुर की कला की सेवाओं की प्रशंसा की। उनका मृत्यु समाचार

स्कूल में बड़े दुःख के साथ सुना गया और सर्वत्र स्कूल में शोक छा गया। वे हैदराबाद राज्य के प्रमुख कलाकारों में से एक थे और वे हैदराबाद के कला-विद्यालय के स्थापक-प्रिन्सिपल थे। स्वर्गीय ख़ान बहादुर सैयद अहमद औरंगाबाद में १८८९ में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने बचपन में ही कला के प्रति अपनी कुशल प्रतिभा का परिचय दिया था। बम्बई स्कूल आफ़ आर्ट से रंग-चित्रण में डिप्लोमा प्राप्त कर लेने के पश्चात् उन्होंने १९११ में इलाहाबाद में भारतीय कला-प्रदर्शिनी में अपने चित्रों को प्रदर्शित किया। सर अकबर हैदरी की सहायता और प्रोत्साहन से उन्होंने हैदराबाद स्कूल आफ़ आर्ट को प्रारम्भ किया। उन्हें जल-रंग में चित्र बनाना प्रिय था और एलोरा और अजन्ता से उनका परिचय निकट और गम्भीर था। वे अजन्ता के क्यूरेटर रहे थे। समस्त जीवन पर्यन्त उनके हृदय में अजन्ता के प्रति आकर्षण रहा। उन्होंने अजन्ता-भित्ति चित्रों के सैकड़ों चित्र बनाए जो कि समस्त विश्व के प्रसिद्ध संग्रहालयों में हैं। उनका नाम अजन्ता की कला के साथ सदा स्मरण किया जाता रहेगा।

(२)

यूनैस्को वर्ल्ड आर्ट सीरीज़ में श्रीयुत मदनजीत सिंह ने "पेंटिंग्स फ्राम दि एजण्टा केव्स" पुस्तक प्रकाशित की है। इसे न्यूयार्क ग्राफ़िक सोसाइटी ने इटली में प्रकाशित किया है। इस पुस्तक का मूल्य ७५) है। इस पुस्तक में ३२ चित्र प्रकाशित किए गए हैं। इसमें रंगीन फ़ोटो-चित्र हैं और प्रत्येक चित्र के साथ संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इन चित्रों को देखने से यह अनुभव होता है कि अजन्ता के चित्र संसार की महान् चित्रकला के अत्युत्तम नमूने हैं। यह पुस्तक एकमात्र अंग्रेज़ी में ही नहीं इटालियन, फ्रेंच, स्पेनिश और जर्मन भाषाओं में भी एक साथ प्रकाशित की गई है। जिनकी आँख सुन्दरता को ज़रा भी परख सकती है वे इन चित्रों को निस्सन्देह पसन्द करेंगे। इस पुस्तक में अजन्ता के भित्ति-चित्रों की कुल ३२ प्लेटें दी गई हैं। अजन्ता में इतने अधिक चित्र हैं कि एकमात्र ३२ चित्रों से ही अजन्ता के समस्त भित्ति-चित्रों का प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता क्योंकि अजन्ता का एक-एक चित्र अपने में सर्वथा पूर्ण है और अपना स्वयं ही एक श्रेष्ठ नमूना है। श्री मदनजीत सिंह ने इस पुस्तक में चित्रों का जो चुनाव किया है—उसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। कई चित्र तो ऐसे हैं जो एक ही प्रकार के हैं; अच्छा होता कि यदि विविध प्रकार के चित्रों के प्लेट दिए जा सकते। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन पुस्तकों में अजन्ता के जो चित्र दिए गए हैं वे अत्यन्त उत्तम हैं। वे इतने उत्तम चित्र हैं कि विश्व का बड़े से बड़ा कुशल चित्रकार भी उससे अच्छा चित्र बना सकेगा इसमें सन्देह है। इन चित्रों में एक चित्र दुष्ट ब्राह्मण का है जिसको 'विश्वन्तर जातक' से लिया गया है; एक चित्र है "पटभवन में दो प्रेमी" और अन्य पाँच चित्रों की प्लेटें हैं—इन चित्रों को 'महाजनक जातक' से लिया गया है। इसमें पूर्ण विस्तार से प्रदर्शित किया गया है कि राजा अपने प्रासाद में विराजमान हैं और उसके सामने गायक वृन्द और नृत्यकार गा-बजा रहे हैं और आनन्दमय नृत्य कर रहे हैं। ये चित्र और अन्य चित्र कुछ इस प्रकार के हैं जो इस पुस्तक के मूल्य के लिए उचित प्रतीत होते हैं। इस पुस्तक की भूमिका भारतवर्ष के प्रधान मन्त्री श्रीयुत जवाहरलाल नेहरू ने लिखी है। प्रधान मन्त्री की इस भूमिका ने इस पुस्तक के महत्व को और भी अधिक बढ़ा दिया है। यूनेस्को चित्रकला की सीरीज़ में प्रथम स्थान अजन्ता के चित्रों को दिया गया है। अजन्ता के चित्रों को प्रथम स्थान देकर यूनेस्को ने भारतवर्ष की महान चित्रकला को एक प्रकार विश्व की ओर से महान् श्रद्धांजलि अर्पित की है। यह पुस्तक इस कला की प्रथम पुस्तक है। इन चित्रों को जो भी देखेगा वह अत्यन्त सरलता से अनुभव कर सकेगा कि भारत वर्ष के चित्रकार कितने महान् थे और उनके ये चित्र प्रत्येक संग्रहालय में रखने के योग्य हैं। इन चित्रों को इस पुस्तक में प्रस्तुत करने में रंगीन फ़ोटोग्राफ़ी और रंगीन मुद्रण कला की नवीनतम आधुनिक प्रणालियों का अनुसरण किया गया है और इस कारण इन चित्रों की आकर्षकता और उपादेयता और भी अधिक बढ़ गई है। श्री मदनजीत सिंह ने इस पुस्तक को जिस आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। इन चित्रों का आलेखन अद्भुत है। रंगों के विधान का चुनाव आश्चर्यजनक है और भावाभिव्यक्ति अपूर्व है। यह पुस्तक अभी यूरोप की भाषाओं में प्रकाशित की गई है। इसे जहाँ यूरोप की अन्य भाषाओं में प्रकाशित किया जाना चाहिए, वहाँ एशिया की महान् भाषाओं में भी इस पुस्तक का प्रकाशन किया जाना चाहिए।

चिट्ठी-पत्री

(१)

'अजन्ता' के सम्बन्ध में

अखिल-भारतीय-पत्र-प्रदर्शिनी के लिए पत्र समय पर मिल गया। सहयोग के लिए आभारी हैं। 'अजन्ता' को बहुत काफ़ी पसन्द किया गया। सम्मान पत्र और रौप्य पदक कुछ काल के उपरान्त आप की सेवा में भेजे जा रहे हैं।

हिन्दी-संसद्, —सुशीला प्रभाकर
श्रीनगर (काश्मीर) साहित्य मंत्री

(२)

......क़रीब दो साल से 'अजन्ता' का नियमित पाठक हूँ। निस्सन्देह पत्रिका का स्तर हिन्दी पत्र-जगत् में बहुत ही उच्च है और अन्य पत्र-पत्रिकाओं के लिए अनुकरण-योग्य है।

द्वारका-निवास,
बाबूगंज,
लखनऊ —प्रबोधकुमार मजूमदार

(३)

अगस्त मास का 'अजन्ता' मिला। धन्यवाद। अंक पसन्द आया। सामग्रियों के चयन में जो उदारता दिखाई है, वह आपके व्यक्तित्व की जैसे विशेषता हो। 'भारत की कुछ प्रमुख नृत्य शैलियाँ', 'मिथ्या का अवधारण तथा भेद' 'शक्ति और भक्ति का विस्तृत साधना-केन्द्र : डोंगरगढ़' 'महाकवि सूर का निवास स्थल गोघाट' '१९३६ के बाद की हिन्दी–कविता'—— आदि निबन्ध एक ओर तो 'अजन्ता' के व्यापक दृष्टिकोण के प्रमाण हैं, तो दूसरी ओर निबन्धकारों के हृदय-मंथन के रत्न भी। फैलाव और गहराई दोनों देश और काल की तरह समनस हैं। श्री उदयशंकर भट्ट की कविता 'शीर्षक हीन' में जो दीप्ति और द्रवणशीलता है, उल्लास और प्रवाह है, वह मानों एक समरस द्रष्टा की तटस्थ किन्तु फिर भी संवेदनशील दृष्टि में झूलते हुए चित्रों को प्रकाश, प्रेषणीयता, और गतिशील स्पन्दन से भर रही है। कहानी का अभाव कुछ खटकता है। मेरी सम्मति में कहानियों की ओर कुछ और अधिक ध्यान दिया जाए तो उत्तम हो। मैं आश्वस्त हूँ कि 'अजन्ता' पुस्तकीय महत्व रखता है।

भागलपुर, बिहार —शिवनन्दन प्रसाद

(४)

तेलुगु और उसका साहित्य

मैंने श्री हनुमच्छास्त्री 'अयाचित' की लिखी "तेलुगु और उसका साहित्य" पुस्तक पढ़ी है। अभी पिछले दिनों 'अजन्ता' में मैंने इसकी आलोचना पढ़ी थी। मैं स्वयं तेलुगु भाषी हूँ। मुझे यह पुस्तक पढ़ कर निराशा हुई। 'अजन्ता' में प्रकाशित उनके तेलुगु साहित्य सम्बन्धी लेखों को पढ़ते हुए, मैंने यह आशा की थी कि एक ऐसी पुस्तक, उनकी लेखनी से निकलेगी जो अन्य भाषा भाषियों के सामने तेलुगु साहित्य का प्रभावशाली रूप उपस्थित कर सकेगी। खेद के साथ लिखना पड़ता है कि यह पुस्तक इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं करती। ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन से उत्साही लेखकों के लिए एक प्रकार से, इस विषय पर लिखने का मार्ग बन्द-सा हो जाता है।

यह पुस्तक जहाँ उन तेलुगु भाषा भाषियों के मन में जो हिन्दी पढ़ लिख लेते हैं खेद उत्पन्न करेगी वहाँ तेलुगु न जानने वाले अन्य भाषा भाषियों को बहुत कुछ भ्रम में डाल देगी। इस पुस्तक में उत्तर सरकार (Northern Sircar) का अर्थ सागर सीमा (?) और रायलु सीमा का अर्थ पर्वत प्रदेश बताया गया है। यह उन शब्दों का अर्थ नहीं अनर्थ है। 'रायलु सीमा' शब्द राल्ल (पत्थर) सीमा से निकला है।

तेलुगु और आन्ध्र शब्दों की व्युत्पत्ति पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला गया है। तेलुगु प्राकृतोत्पन्न है या द्राविड़ी? इस पर लेखक ने 'जो कुछ हो' से अन्त किया है। यह एक विशिष्ट प्रश्न है। यद्यपि यह पुस्तक "भारत की २७ भाषाओं और उप भाषाओं के साहित्यिक विकास की रूप रेखा का परिचय देनेवाली है" तथापि भाषा की व्युत्पत्ति आदि पर एक अध्याय रहना अत्यन्त आवश्यक है। यदि लेखक मानते हैं कि तेलुगु, आर्य-कुल की है तो उन्हें उसका यथोचित रीति से प्रतिपादन करना चाहिए था।

नन्नय भट्ट के पहले जो अज्ञात साहित्य है, उस पर तो एक ही परिच्छेद है। नन्नय भट्ट ने अपने 'महाभारत' के अनुवाद में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है, इस युग में भी ९९ प्रतिशत वैसी ही भाषा का प्रयोग हो रहा है। जिस भाषा के सर्व प्रथम कवि की भाषा इतनी पुष्ट और प्रौढ़ हो और जिसने व्याकरण की रचना की हो क्या वह भाषा, उस कवि के जन्म के पहले चार पाँच शताब्दियों से नहीं चल रही होगी? महान् अशोक के समय से ही दक्षिण में आन्ध्रों का बोलबाला हो गया था, तब उनकी भाषा कौन-सी रही होगी? यदि आन्ध्र "सम्भवतः आर्य क्षत्रिय थे" तो उनकी भाषा "निस्सन्देह कोई प्राकृत विशेष" कैसे हो सकती थी?

महाकवि श्री नाथ का जो तेलुगु के एक-देशी पद्य (सीस पद्यमु) के अनन्य लेखक माने जाते हैं, एक उदाहरण भी नहीं दिया गया।

वेमन्ना और कबीर की तुलना करते हुए लेखक ने लिखा है कि "कबीर की सामाजिक साधना में हिन्दु-मुसलमानों की एकता प्रधान है जब कि वेमन्ना के सामने ऐसा कोई विकट प्रश्न ही नहीं था।" उस समय के इतिहास एवं वेमन्ना के पदों से यह पता चलता है कि उस युग में दक्षिण में शैव और वैष्णवों के झगड़े चल रहे थे। इतिहास एवं लेखक के रचनाओं की पृष्ठभूमि पर ही तुलना की जा सकती है।

सूरदास और पोतन्ना की तुलना करने का जो प्रयत्न किया गया है वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है! सूरदास गीति कवि थे। यद्यपि उन्होंने भागवत की कथा को अपना आधार बनाया किन्तु वे उसका अनुवाद नहीं करने बैठे थे। कृष्ण अवतारी लीलाओं का गान करना उनका लक्ष्य था। अवतार भी लीलाओं के अंश हैं। पोतन्ना ने तो संस्कृत के महाभागवत का 'क्रम-विधान' से अनुवाद किया। तब दोनों की तुलना कैसे की जा सकती है? लेखक ने यहाँ तक कहने का साहस किया कि "फलतः पोतन्ना के ग्रन्थ में जो सम्पूर्णता और सर्वांगीणता है वह सूरदास के ग्रन्थ में कहाँ?" सब अपने-अपने स्थान पर संपूर्ण एवं सर्वांगीण हैं। तुलना के दृष्टिकोण या लोकप्रियता के दृष्टिकोण से पोतन्ना और गोस्वामी तुलसीदास जी समान हैं। सूरदास की तुलना गीति काव्य की दृष्टि से तेलुगु में त्यागराजु से की जा सकती है यद्यपि सूर के आराध्य कृष्ण हैं और त्यागराजु के राम।

इसी स्थान पर उन्होंने लिखा कि "पोतन्ना सेव्य सेवक-भाव के भक्त थे।" हिन्दी में तुलसी की भक्ति-भावना सेव्य-सेवक भाव की है न कि सूर की। सूर तो भक्ति भावना में उद्धव के अवतार माने जाते हैं। उनकी भक्ति भावना सख्य भाव की है।

इस पुस्तक की सब से अधिक खटकने वाली बात यह है कि सन् १६५० से १९०० तक के युग को ह्रास काल कहा गया है। शृंगारिक भावनाओं से भरे रहने के कारण' उसे किस दृष्टिकोण से (शायद नैतिक ?) ह्रास काल कहा गया समझ में नहीं आता।

अँग्रेज़ी के सुप्रसिद्ध कवि बायरन ने रतिक्रीड़ा का सांगोपांग वर्णन किया है। क्या ये सब ह्रासकाल के कवि कहे जाएँगे?

हमें खेद है कि जिस काल में सुन्दर लाक्षणिक ग्रन्थ लिखे गए, द्व्यर्थि काव्य (उदाहरण के लिए 'यादव राघव पांडवीयमु' जिसमें कृष्ण, राम और पांडवों की कथा, एक साथ श्लेष से निकलती है) एवं ठेठ तेलुगु की अनुपम रचनाएँ लिखी गई हैं उस युग को लेखक ने ह्रास काल कहा है। ध्यान देने योग्य विषय यह है कि इसी काल में क्षेत्रज्ञ एवं त्यागराजु जैसे महान् कवि पैदा हुए थे जिन पर तेलुगु साहित्य को महान् गर्व है। त्यागराजु तो तेलुगु साहित्य के 'सूर' हैं।

तेलुगु साहित्य की यह परिचयात्मक पुस्तक अतेलुगु भाषियों के लिए लिखी गई है, अतः इसे अत्यन्त सावधानी से लिखा जाना चाहिए था। यह पुस्तक अनेक त्रुटियों से पूर्ण है। The first impression is the best impression. खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि इस पुस्तक के द्वारा तेलुगु साहित्य का भ्रम पूर्ण रूप ही अन्य भाषा भाषियों के सामने प्रस्तुत हो सका है यद्यपि लेखक ने इसके लिए परिश्रम किया है।

कवियों का परिचय बहुत संक्षिप्त है, नाम अशुद्ध लिखे गए हैं; उदाहरणों का अत्यन्त अभाव है, तेलुगु छन्दों और लिपि का परिचय नहीं दिया गया है और ऐसी अनेक त्रुटियाँ इस पुस्तक में हैं। आशा है कि लेखक महोदय अगले संस्करण में इन त्रुटियों को सुधारने का प्रयत्न करेंगे।

—बी. भीमसेन "निर्मल"
साहित्यरत्न

हैदराबाद पब्लिक स्कूल,
बेगमपेट, हैदराबाद

नीर-क्षीर

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम भेजी जानी चाहिएँ]

भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास

[१६००–१९१९]

लेखक : गुरुमुख निहाल सिंह
अनुवादक : सुरेश शर्मा
प्रकाशक : आत्माराम एण्ड सन्स
काश्मीर गेट, दिल्ली—६
मूल्य : दस रुपए

यह पुस्तक Landmarks in Indian constutional and national devolopement" का हिन्दी अनुवाद है। लेखक के अनुसार "इस पुस्तक का उद्देश्य सम्पूर्ण ब्रिटिश युग (१६००-१९४७) के भारत के वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास का विवरण देना है। इस अध्याय को दो खण्डों में बांटा गया है : (१) सन् १६०० से १९१९ तक (२) सन् १९१९ से १९४७ तक।" पुस्तक का यह प्रथम खण्ड है। लेखक इतिहास और राजनीति के अध्ययन को एक वस्तु नहीं समझते। वे चाहते हैं "अध्ययन में आर्थिक और भौगोलिक कारणों को तथा मनोवैज्ञानिक एवं जीव-वैज्ञानिक सिद्धान्तों को उचित स्थान मिलना चाहिए और विषय का विवेचन ऐतिहासिक तथा समाज-वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर होना चाहिए।" इस पुस्तक को लिखने में बहुत-से समाचार पत्रों, सामयिक रिपोर्टों, कमेटियों और कमीशन की रिपोर्टों, गज़ट और राजनैतिक लेखकों और विदेशी यात्रियों द्वारा लिखी हुई पुस्तकों से सहायता ली गई है। प्रस्तुत पुस्तक में भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना और विस्तार, ब्रिटिश शासन व्यवस्था का विकास, देश का विभाजन, फूट डाल कर राज्य करने की नीति, भीषण साम्प्रदायिक दंगे, सत्याग्रह और अहिंसात्मक असहयोग आदि वर्तमान देश की राजनीतिक और इतिहास की घटनाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। प्रतिनिधि संस्थाओं का प्रारम्भ और वैधानिक विकास पर भी पूर्णतया प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। लेखक ने अपने प्रत्येक कथन को युक्ति और आवश्यक प्रमाणों के द्वारा पुष्ट किया है। यह संभव है कि बहुत-से विचारक उनके विचारों और परिणामों से सन्तुष्ट या सहमत न हों और उनका दृष्टिकोण उनसे सर्वथा भिन्न हो परन्तु इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि उन्होंने जो कुछ लिखा है—निष्पक्ष होकर लिखा है और उनके लिखने में एक सूत्रता, क्रम और प्रामाणिकता स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है। भारत में साम्प्रदायिकता की नींव किस प्रकार पड़ी और उसका भारतीय राजनैतिक जीवन पर क्यों यह प्रभाव पड़ा कि अन्त में देश का विभाजन हुआ—लेखक ने इस विषय की विस्तारपूर्वक विवेचना की है। क्रान्ति, दमन और सत्याग्रह के आन्दोलन का पूर्ण इतिहास देने का प्रयत्न किया गया है। इन समस्त आन्दोलनों का इतिहास अत्यन्त रोचक और संयत भाषा में लिखा गया है। यह पुस्तक इतिहास और राजनीति दोनों दृष्टियों से लिखी गई है। रौलट एक्ट का आन्दोलन और जलियानवाला बाग़ के हत्याकांड को पढ़ कर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारे देशवासियों ने अपने देश की स्वतन्त्रता को कितने मँहगे दामों में वर्षों की कठोर साधना के पश्चात् प्राप्त किया है—उसका आभास इस पुस्तक को पढ़ने से प्राप्त होता है। इस पुस्तक में एक ओर उन आन्दोलनों का इतिहास है जो ब्रिटिश शासन काल में समय समय पर समस्त देश में चले वहाँ दूसरी ओर उनके परिणाम स्वरूप यहाँ की शासन-व्यवस्था में जो वैधानिक परिवर्तन हुए उनका भी सविस्तार वर्णन दिया गया है। आन्दोलनों के मूल कारण, पृष्ठभूमि और उनकी गति-विधियों के विश्लेषण करने का भी प्रयत्न किया गया है। आन्दोलनों के इतिहास जहाँ वर्णनात्मक है वहाँ वैधानिक-विकास को विधान की दृष्टि से लिखा गया है। पुस्तक का अनुवाद सरल, सरस और प्रवाहमयी भाषा में किया गया है—यद्यपि इसमें कहीं कहीं ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जिन्हें समझने में कुछ कठिनाई होती है। यदि ऐसे शब्दों के साथ उनके अंग्रेज़ी पर्यायवाची

शब्दों को दिया जाता तो उपयुक्त होता। क्योंकि नए शब्द हैं, बनाए गए हैं और उनका भाषा में साधारणतया प्रयोग नहीं होता इसलिए यह आवश्यक था कि पुस्तक के अन्त में इस प्रकार के शब्दों की सूची दे दी जाती और साथ ही स्पष्टता से समझाने के लिए उनकी व्याख्या भी कर दी जाती। हिन्दी-जगत् इस पुस्तक के द्वितीय खण्ड की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करेगा।

जीवट की कहानियाँ

लेखक : श्यामनारायण कपूर
प्रकाशक : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
बम्बई
मूल्य : ढाई रुपए

प्रस्तुत पुस्तक में "ज्ञान विज्ञान की खोज में अपने प्राण उत्सर्ग करनेवाले महान् साहसी और पराक्रमी व्यक्तियों की अद्भुत वीरतापूर्ण सच्ची घटनाएँ" अत्यन्त रोचक, सरस और प्रवाहमयी भाषा में लिखी गई हैं। जिस प्रकार महान् "जीवट" व्यक्तियों की ये वीरतापूर्ण कहानियाँ हैं वैसे ही उनकी भाषा में भी जीवटपना और वीरता है। मनुष्य के हृदय में ऐसी अदम्य शक्ति और साहस है कि उसे न तो समस्त हिमालय की बरफ़ ठण्डा कर सकती है और न ज्वालामुखी की उगलती हुई आग भस्म कर सकती है। वह पहाड़ों की ऊँचाई, समुद्र की गहराई, रेगिस्तान और जंगलों की कठिनाइयाँ और किसी भी प्रकार बाधा के सम्मुख सिर झुकाना नहीं जानती। वह अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफलता प्राप्त करके ही विश्राम करना जानती है। इन कहानियों को पढ़ कर मनुष्य जीवन पर अभिमान होता है, मानव जीवन से प्रेम होता है और मानव की संकल्प शक्ति को बल प्राप्त होता है। पुस्तक को एक बार पढ़ कर कई बार पढ़ने की इच्छा होती है। मनुष्य के हृदय में "आश्चर्य" की भावना प्राकृतिक सौन्दर्यों और अन्य महान् वस्तुओं को देखकर अवश्य उत्पन्न होती है परन्तु यह भावना अदम्य, सच्ची वीरता, पौरुष, उत्साह के महान् कारनामों में अपनी सफलता को अनुभव करती है। पुस्तक उपादेय और संग्राह्य है। इस पुस्तक में यदि हिमालय आदि के चित्रों को भी रंगीन और आकर्षक रूप से दिया जा सकता तो पुस्तक की उपादेयता बढ़ जाती। पुस्तक का यह ७ वाँ संशोधित और परिवर्धित संस्करण है। इससे इस पुस्तक की लोकप्रियता का पता चलता है।

शतदल (काव्य-संग्रह)

लेखक : लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'
प्रकाशक : नव साहित्य-निकेतन,
लखनऊ
मूल्य : दो रुपए

श्री लक्ष्मीशंकर मिश्र अपनी इस पुस्तक में संगृहीत कविताओं के विषय में कहते हैं : "शतदल की प्रत्येक पंखुड़ी में जीवन की संवेदनशील कोमलता और प्रेमानुभूति की अरुणिमा के दर्शन होंगे।...मैंने जीवन के दैन्य, पलायन एवं सामाजिक विषमताओं से उत्पन्न विवशता और दुर्बलताओं में अधिक न उलझ कर मानव की प्रेरक शक्तियों में ही अपनी आस्था प्रकट की है।" इन कविताओं में उन्होंने हिन्दी के अपने प्रिय छन्द घनाक्षरी और सवैया का प्रयोग किया है। इन दोनों छन्दों के प्रयोग के विषय में वे लिखते हैं: "कोमल, मार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए मुझे ये छन्द ही सबसे अधिक प्रिय लगे।"

इस पुस्तक की भूमिका में श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इन दोनों छन्दों के विषय में लिखा है कि प्रत्येक भाषा की कविता के कुछ अपने ही छन्द होते हैं। सवैया और घनाक्षरी व्रजभाषा के अपने ही छन्द हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन दोनों छन्दों का व्रज भाषा के साथ जिस प्रकार अपनापा है वैसा हिन्दी की अन्य बोलियों के साथ नहीं। फिर भी खड़ी बोली की कविता में इन दोनों छन्दों ने निस्सन्देह अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। श्री लक्ष्मीनारायण 'निशंक' का इन छन्दों में लिखने पर पर्याप्त अधिकार है। उनकी भाषा में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं है, वह गठित है और प्रवाहमय है। उनकी भावनाओं में समरसता और कोमलता है। यद्यपि उनकी उक्तियों में 'मार्मिकता' है परन्तु विलक्षणता नहीं तो भी उन्होंने जो कुछ कहा है अपनी संवेदनशीलता के आधार पर कहा है। उनकी कविता के विषय वही हैं जिनसे कि हम सुपरिचित हैं परन्तु इन्हें पढ़ने से यह अनुभव होता है कि वे निसर्गतः उनके अपने हृदयजन्य हैं और इसी कारण उनमें एक प्रकार का आकर्षण है। उनकी कविताओं में उनकी

कल्पनामय रंगीनी नहीं है जितनी कि सरलता और सादगी। संभवतः इसीलिए उन्होंने अपनी "मानव" कविता में कहा है :

"भावना में रस घोल सका नहीं,
कल्पना में ही सदा पला मानव।"

'भ्रमर' को उन्होंने देखिए कि कैसा 'बड़भागी' बताया है :

"वाटिका है, सुखद बसन्त है, प्रभात भी है,
प्रिय पास में है, मधुपात्र भी न खाली है।"

देखिए 'तुम' कविता :

"चाहा लोचनों ने पुतली में ही छुपाना तुम्हें,
तुम निरमोही अश्रुधार बन निकले,
भावना ने निज कल्पनाओं में छुपाया, किन्तु
तुम कविता के उद्गार बन निकले
विकल हृदय ने छिपाया अपने में तुम्हें,
चपल, रुके न, व्यथाभार बन निकले
प्राणाधार प्राणों ने छुपाया बार बार, किन्तु
जान गया विश्व जब प्यार बन निकले।"

'अपने विश्वास' का एक सवैया देखिए :

"जिससे कुछ भी हुई आशा मुझे,
सबका वही एक सहारा बना
उमड़ा उर में जिसके लिए प्यार,
वही सब का ही दुलारा बना
पथदर्शन मान लिया जिसको,
जगती का वही ध्रुवतारा बना
अपना लिया मैंने 'निशंक' जिसे,
वही विश्व के प्राण का प्यारा बना"

कई कविताओं में कई पंक्तियाँ मधुर हैं परन्तु कहीं कहीं कविता छन्द में होते हुए भी पढ़ने में कुछ गद्य-सी प्रतीत होती है। श्री निशंक की कविताएँ 'अजन्ता' में प्रकाशित होती रहती हैं। हम उनके इस कविता-संग्रह का अभिनन्दन करते हैं। आशा है कि जिस "आत्म-विश्वास" को उन्होंने "अपने जीवन का संबल" बनाया है वह इसी प्रकार उनकी "कविता का प्राण" बना रहेगा।

मराठी सन्तों का सामाजिक कार्य

लेखक : डॉ० विष्णु भिकाजी कोलते
प्रकाशक : हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
बम्बई ४
मूल्य : डेढ़ रुपया

प्रस्तुत पुस्तक हेमचन्द्र-मोदी पुस्तकमाला की आठवीं पुस्तक है। महाराष्ट्रीय पाँच सन्तों पर डॉ० विष्णु भिकाजी कोलते ने काशी विद्यापीठ में जो व्याख्यानमाला दी थी इस पुस्तक में उन्हीं को प्रकाशित किया गया है। इस व्याख्यानमाला को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि सन्तों का साहित्य मूलतः समाज के सुधार के लिए था; वे अपने काव्य द्वारा समाज में नव चेतना और नई शक्ति को जाग्रत करना चाहते थे और समाज का समतामूलक और न्यायमूलक नव निर्माण करना चाहते थे। हिन्दी और संभवतः मराठी या अन्य भारतीय साहित्यों में कविता के उस युग को जब जनता की भाषा में काव्य का निर्माण प्रारम्भ हुआ और मुसल्मानों का आक्रान्ताओं के रूप में आगमन हुआ, भक्ति-काल का युग कहा जाता है परन्तु वास्तविकता यह है कि यह साहित्य एकमात्र भक्ति का साहित्य नहीं है। इस साहित्य के द्वारा समाज में एक प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न हुई। इससे पूर्व हमारे देश में जिस साहित्य का निर्माण हो रहा था वह साधारण जनता के लिए नहीं था। जनता के इस साहित्य के नेता अत्यन्त साधारण पुरुष थे और जब वे अपने को "छोटी जाति" का कहते हैं तो इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि वे अपने को किसी प्रकार हीन या छोटा समझते हैं क्योंकि वे तो सामाजिक समता में विश्वास रखते हैं। वे इसके द्वारा अपनी अत्यन्त साधारणता का प्रदर्शन करना चाहते हैं अन्यथा साधारण लोगों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ सकता। काव्य की यह प्रवृत्ति भक्ति के रूप में इसीलिए अभिव्यक्त हुई कि भारतीय समाज उस समय धार्मिक अनुष्ठान आदि पर ही अधिकांश में आधारित था। डॉ० कोलते के इन व्याख्यानों को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि यह साहित्य जनता में इसीलिए लोकप्रिय हुआ क्योंकि उसका उनके जीवन से सम्बन्ध था। जिस कविता या साहित्य का जन-जीवन से सम्बन्ध नहीं होता वह कभी लोकप्रिय नहीं हो सकता। जनता में साधारण लोगों की संख्या ही अधिक होती है और जब वे प्रभावित हो जाते हैं तो उच्च वर्ग के लोग

जो अपने आप को साधारण जनता से पृथक् और उच्च समझते हैं धीरे धीरे उससे प्रभावित होने लगते हैं और अन्त में उन्हें जनता के साथ मिलना पड़ता है।

डॉ० कोलते ने अपनी व्याख्यानमाला में "महाराष्ट्र" की तो व्याख्या की है परन्तु "सन्त" शब्द की पूर्णतया व्याख्या नहीं की। यद्यपि उन्होंने आचार्य शंकर के एक सुभाषित और ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ और नामदेव के उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि सन्त धर्मरक्षण के लिए अवतीर्ण होते हैं; संसार को सन्मार्ग पर लाना और ग़रीबों का उद्धार करना उनका कार्य है। 'सन्त' शब्द के पीछे इतिहास है और इसके अर्थ भी समय के अनुसार बनते और विकसित होते रहे हैं। अच्छा होता यदि डॉ० कोलते इस शब्द के ऊपर ज़रा विस्तार से प्रकाश डालते। भक्ति-साहित्य में सन्त शब्द ने एक प्रकार की पारिभाषिकता प्राप्त कर ली है और इस कारण जहाँ इसके इतिहास को देने की आवश्यकता है वहाँ इस शब्द के अर्थ के क्रमिक विकास पर भी उदाहरणों के साथ प्रकाश डालने की आवश्यकता है। डॉ. कोलते ने 'सन्त' शब्द की जो व्याख्या की है वह सन्तों के जीवन का उद्देश्य हो सकता है परन्तु इससे 'सन्त' शब्द के अर्थ स्पष्ट नहीं होते। लेखक ने अपनी प्रस्तुत पुस्तक में इन सन्तों के जीवन को संक्षेप से देते हुए उस समय की सामाजिक अवस्थाओं और प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। समाज का सबसे बड़ा प्रश्न जीवन की अस्वाभाविक विषमताओं का प्रश्न है और जिस समय ये विषमताएँ जितनी उग्र हो जाती हैं, समाज में परिवर्तन की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक गति से बढ़ जाती है। इस पुस्तक में महाराष्ट्र के सन्तों की जीवनी को पढ़ते हुए स्वभावतः बहुत-से स्थानों पर मध्यकालीन हिन्दी के भक्त कवियों का स्मरण हो आता है क्योंकि उनके जीवन में भी ठीक उसी प्रकार की घटनाएँ घटी हैं। नामों का भेद है शेष घटनाएँ लगभग वहीं हैं। इसी प्रकार महाराष्ट्र सन्तों और हिन्दी के भक्त कवियों में एक ही प्रकार की विचारधारा प्रवाहित हो रही है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का अध्ययन बड़ा उपयोगी है। नामदेव और एकनाथ की कविता के जो हिन्दी के उदाहरण लेखक की पुस्तक में दिए गए हैं उनमें दक्खन की बोलचाल का प्रभाव स्पष्टतया अभिलक्षित होता है :

"हीन दीन जात मोरी पँढरी के राया
ऐसा तुमने नामा दरजी काय कू बनाया
टाल बिना लेकर नामा राउल में आया
पूजा करते बम्हन उन्ने बाहर ढकाया"[1]

इस कविता की भाषा अन्यत्र दूसरे रूप में प्राप्त होती है। संभव है कि बोलचाल में भाषा इस तरह की बन गई हो। बोलचाल के कारण बहुत से शब्द स्थानीय रूप धारण कर लेते हैं।

इसी प्रकार एकनाथ की कविता में :

"तुरुक कहे वो बात सही। खुदा कू तो ज्याँत नहीं
बन्दे खुदा की नहीं जुदाई।"

… … …

हिन्दु-मुसल्मान दोई
खुदा ने पैदा किया भाई
तुर्क की निष्ठा पाई
हिन्दु कू पकड़ कर मुसल्मान करो"[2]

शनै : शनैः इन सन्तों का प्रभाव सामाजिक क्षेत्र से निकल कर राजनैतिक क्षेत्र में आ पहुँचता है। सन्त तुकाराम के विषय में लेखक ने लिखा है : "तुकाराम की विशेषता यह है कि उन्होंने भक्ति-सम्प्रदाय के लोगों में ओज निर्माण किया। पूर्वकालीन सन्त केवल सद्गुणों की मूर्ति थे। तुकाराम में सद्गुणों के साथ ओज भी था।...उन्होंने वैष्णवों को बहादुर बनाने की कोशिश की।" तुकाराम की वाणी में जो राजनीति प्रविष्ट हुई उसका सन्त रामदास की वाणी में विस्तार होता गया और उससे शिवाजी जैसी महान् शक्ति का उदय हुआ। सिक्खों की शक्ति को निर्माण करने में हिन्दी के भक्त कवियों की वाणी ने ऐसा ही कार्य किया। सन्तों की वाणी देश की सामाजिक विषमताओं से प्रारम्भ हो कर हिन्दु-मुस्लिम वैषम्य और फिर धीरे-धीरे मुसल्मान बादशाहों के अत्याचारों को दूर करने का साधन बनी और उसके द्वारा राजनीति के क्षेत्र में शिवाजी और सिक्खों की महान् शक्ति का अभ्युदय हुआ। इस दृष्टि से सन्तों और भक्तों के साहित्य को एकमात्र भक्ति, मत, सम्प्रदाय धर्म, या दर्शन की दृष्टि से ही देखना

---

[1] पृष्ठ ४४ [2] पृष्ठ ७५

उनके क्षेत्र को सीमित करना है। जब कविता या साहित्य का जन-जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है उस समय उसकी प्रवृत्तियाँ जन-जीवन की प्रवृत्तियों पर ही निर्भर करती हैं। जन-जीवन स्वयं उसका निर्माण करता है। डा. कोलते की यह पुस्तक एक व्याख्यान माला के रूप में होने के कारण अपने अन्दर विषय के बहुत से पहलुओं का समावेश नहीं कर सकी है। पुस्तक को पढ़ कर विषय के विस्तार में जाने की इच्छा होती है और इसलिए हम डा. कोलते से यह प्रार्थना करते हैं कि वे इस विषय में और अधिक विस्तार से लिखें। इससे वे मराठी और हिन्दी दोनों के साहित्यों की सेवा करेंगे। पुस्तक की भाषा में मराठी की शब्द योजना है और वह स्वाभाविक है। हम डा. कोलते की इस पुस्तक का अभिनन्दन करते हैं। हमें विश्वास है कि वे हिन्दी साहित्य को इसी प्रकार विस्तृत और समृद्ध करते रहेंगे।

पद्मावत की कथा

लेखक : रोशनलाल सिंहल,
महेन्द्र कालेज पटियाला
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स,
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६
मूल्य : एक रुपया चार आना

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि जायसी की प्रसिद्ध रचना "पद्मावत" को संक्षिप्त कथा के रूप में लिखा गया है। आवश्यकता के अनुसार लेखक ने कथा को लिखते हुए जायसी की उक्तियों को भी उद्धृत किया है। पुस्तक में 'पद्मावत' की कथा को सरल और रोचक ढंग से लिखा गया है। इस पुस्तक को पढ़ने से 'पद्मावत' की कथा का संक्षेप से परिचय प्राप्त हो जाता है। राजपाल एण्ड सन्स ने सुलभ अमर साहित्य की सीरीज़ में 'पद्मावत' की कहानी को सुलभ रूप में प्रकाशित कर एक बड़े अभाव की पूर्ति है। यह पुस्तक जहाँ विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है वहाँ साधारण पाठकों को भी इसके द्वारा 'पद्मावत' की कथा से परिचिति प्राप्त हो सकती है और उन्हें "पद्मावत" महाकाव्य की एक झलक प्राप्त हो सकती है। आशा है कि वे इसी प्रकार हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के अमर साहित्यों को भी संक्षिप्त रूप में प्रकाशित करेंगे।

हैदराबाद

—**वंशीधर विद्यालंकार**

पहली पँचवर्षीय योजना
(जनता संस्करण)

सम्पादक : योजना कमीशन, भारत सरकार
प्रकाशक : पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
सूचना और प्रसार मंत्रालय, दिल्ली
मूल्य : दो रुपए

पहली पंचवर्षीय योजना, श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में, तैयार की गई है इसका उद्देश्य १९५०-५१ से ले कर १९५५-५६ तक के पाँच वर्ष में भारत की सर्वांगीण उन्नति करना है। सन् १९५१ की जनगणना और १९५०-५१ के आय-व्यय के बजट को आधार मान कर उत्पादन और उपभोग की वृद्धि के आनुमानिक आँकड़े दिए गए हैं। चित्र और ग्राफ़ों के द्वारा विषय को अत्यधिक स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है।

भारत में पानी, बिजली, खनिज पदार्थ और अन्य ऐसी सामग्रियों के साधन हैं जिन को प्रयोग में लाना अभी बाक़ी है। बहुत-सी ऐसी ज़मीन है जिस को खेती के योग्य बनाया जा सकता है और बहुत-से ऐसे उद्योग धन्धे हैं जिन का विकास किया जा सकता है। ऐसा करने के लिए पूंजीगत निर्माण के साधनों को उक्त दिशाओं में मोड़ना होगा। जिस जनशक्ति का उपयोग अभी नहीं हो रहा है या कम हो रहा है उसका पूर्ण उपयोग करने के लिए आवश्यक टैकनिकल शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के सहयोग के अतिरिक्त जनसाधारण में वृद्धि के आन्दोलन के लिए उमंग पैदा करनी होगी। जनता को और सरकारी कर्मचारियों को एक ओर तो कठोर परिश्रम करना होगा और दूसरी ओर अपने उपभोग की आवश्यकताओं को कम करना पड़ेगा। यही पंचवर्षीय योजना का सारांश है।

इस योजना में एक ओर तो स्थानीय छोटे-मोटे सुधार और उत्पादन के कार्यों के लिए स्थानीय साधनों को जुटाने और बेकार जनशक्ति का उपयोग करने का परामर्श दिया गया है और दूसरी ओर बड़ी बहुमुखी योजनाओं के लिए पूँजी की बड़ी रक़मों की व्यवस्था की गई है। हमारी राष्ट्रीय आमदनी सन् १९५०-१९५१ में ९००० करोड़ रुपए कूती गई है जिसका केवल २ प्रतिशत अंश बचत में आता है और बाक़ी उपभोग में चला जाता है। पंचवर्षीय योजना के अन्त में अर्थात

सन् १९५५-५६ तक यह आमदनी बढ़ कर १०,००० करोड़ रुपए हो जाएगी। प्रत्येक वर्ष जो आमदनी बढ़ती है, जनसंख्या की वृद्धि को ध्यान में रखते हुए, यदि उसका २० प्रतिशत भी पूँजी निर्माण के लिए प्राप्त हो तो पूँजी की दर बढ़ कर राष्ट्रीय आमदनी का ६¾ प्रतिशत हो जाएगी। इससे अधिक वृद्धि के लिए लोगों को बहुत अधिक कष्ट उठाने पड़ेंगे और शायद आर्थिक व्यवस्था का ढाँचा भी ख़तरे में पड़ जाएगा।

इस योजना का आनुमानिक व्यय २०६९ करोड़ रुपये केवल राष्ट्रीय और प्रान्तीय सरकारों द्वारा लगाए गये टैक्सों और दूसरी आमदनी के साधनों से प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए इन सरकारों ने घाटे का बजट बनाया है और जनता से ऋण लेना प्रारम्भ कर दिया है। इन टैक्सों के कारण उपयोग की सामग्रियों के दाम इतने बढ़ गए हैं, और मँहगाई इस क़दर है कि साधारण स्थिति के लोगों का जीवन बहुत कष्टमय हो रहा है। दूसरी ओर सरकारों का ऋण बढ़ता ही जा रहा है और कुछ प्रान्तीय सरकारें अपने सीमित साधनों की ओर ध्यान न दे कर बड़ी बड़ी योजनाएँ प्रस्तुत कर रही हैं। इस प्रकार एक चिन्तात्मक परिस्थिति पैदा हो रही है। यदि पंचवर्षीय योजनाएँ कार्यान्वित हो सकीं तो उनसे जो अतिरिक्त आमदनी होगी उससे जन-साधारण का जीवन कुछ अधिक सुगम हो सकेगा किन्तु सरकारों को ऋणमुक्त होने में बहुत अधिक समय लगेगा। सन्तोष का विषय है कि इस काल में पौण्ड पावने के अतिरिक्त बाहरी सहायता लेने में और वह भी बिना किसी राजनैतिक गुटबन्दी में पड़े हुए, केन्द्रीय सरकार सफल हुई है। अब तक जो योजनाएँ कार्यान्वित हो चुकी हैं उनका बाहर और भीतर सब जगह अच्छा प्रभाव पड़ा है। खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि हुई है, और सरकारों में जनता की आस्था बढ़ी है। इससे सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ है कि सरकारों को ऋण प्राप्ति में सफलता हुई है, केन्द्रीय सरकार को घाटे का बजट रख कर भी मुद्रा-निर्माण के ख़तरे को मोल लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी, अन्यथा जो वर्तमान मुद्रा का अवमूल्यन होता और उससे सामग्रियों के मूल्यों में जो वृद्धि होती उससे वर्तमान मुद्रा में सार्वजनिक विश्वास कम हो जाता और योजनाओं को पूरा करने में कठिनाई होती। अभी जो ३६५ करोड़ रुपए की कमी पड़ रही है उसमें से कोलम्बो योजना, टेकनीकल सहयोग क़रार, और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से क़र्ज़ आदि के रूप में १५६ करोड़ रुपए की व्यवस्था हो चुकी है और बाक़ी २०९ करोड़ रुपए की व्यवस्था करने में केन्द्रीय सरकार सचेष्ट है।

पंचवर्षीय योजना से भारत के प्रत्येक प्रान्त को ही नहीं वरन् प्रत्येक ज़िले और समष्टि रूप में सारे देश को जो लाभ होनेवाला है उसको देखते हुए, राष्ट्रीय सरकार जितने परिश्रम और त्याग की प्रत्येक देशवासी से अपेक्षा रख रही है। वह सर्वथा उचित है। उसके साहस और दूरदर्शिता की जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। पंचवर्षीय योजना राष्ट्र को आत्म निर्भर और सशक्त बनाने की ओर सफल क़दम है।

भारतीय संस्कृति का उत्थान

लेखक : डॉ० रामजी उपाध्याय, एम. ए. डी. फिल.

प्रकाशक : रामनारायण लाल, प्रयाग

मूल्य : ढाई रुपए

इस पुस्तक को प्राचीन भारतीय संस्कृति का उत्थान कहना अधिक समीचीन होगा क्योंकि जिस संस्कृति के उत्थान अथवा विकास का दिग्दर्शन इसमें कराया गया है वह बौद्ध और जैन काल तक आकर समाप्त हो जाती है। पुस्तक उपयोगी है और प्राचीन भारत की राजनीति, समाज व्यवस्था, नारी का स्थान, दास प्रथा, धर्म, दर्शन, भाषा, साहित्य और अन्य देशों से सम्बन्ध आदि विषयों का मनोरंजक वर्णन प्रस्तुत करती है। काल-निर्णय जैसे विवादास्पद विषयों की आधार पुस्तकों या विद्वानों के मतों का उल्लेख भी यदि इस पुस्तक में हुआ होता तो इसकी उपयोगिता बढ़ जाती। यूरोपियन नृतत्ववेत्ताओं के दृष्टिकोण से मानव कोटि के जीवधारियों का प्रादुर्भाव पाँच लाख वर्ष मानना ठीक नहीं प्रतीत होता, उसी प्रकार सतयुग २९५० से २३०० ई० पूर्व तक, त्रेता २३०० से १९०० ई० पूर्व तक, इस तरह का काल-निर्णय कहाँ तक प्रमाणित है नहीं कहा जा सकता। पुस्तक में सहायक ग्रन्थों का कहीं भी उल्लेख नहीं है। व्यक्तित्व का विकास, संस्कार, शिल्प और चित्रकला आदि विषयों पर अच्छी सामग्री दी गई है। महाकाव्य आदि के लक्षण, और अनेक चित्रों से पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है।

—ब्रजनाथ चतुर्वेदी

सिकन्दराबाद

सामयिक

॥

चौसर मे इलियट तक

अभी पिछले दिनों आक्सफ़ोर्ड में "आधुनिक भाषाओं और साहित्यों के अन्तर्राष्ट्रीय फ़ेडरेशन" में बहुत से लेख पढ़े गए थे जिनका विषय था "साहित्य पर विज्ञान का प्रभाव।" ये लेख १४ वीं शती के साहित्य से लेकर आज के साहित्य तक थे। इन लेखों के विषय में लंदन के "दि टाइम्स" पत्र में जो कुछ प्रकाशित किया गया है उसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"...टैनेस्सी यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर रोस्को ई. पार्कर ने इंग्लैण्ड के प्रारंभिक वैज्ञानिक गद्य को चौसर और ट्रेविज़िया के अनुवादों से उद्धृत किया। उन दिनों की पाठक-जनता जिनके लिए कि वे लिखते थे न केवल श्रेणिक भाषाओं से अनभिज्ञ थी अपि तु वह बहुत-से अंग्रेज़ी शब्दों का अर्थ भी नहीं समझती थी। ये लेखक अंग्रेज़ी में लैटिन से अपना मार्ग बनाते थे और अपनी कठिन बातों को स्पष्ट और साधारण वाक्यों में समझाने का प्रयत्न करते थे। रेनेस की यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर रौबर्ट डैवरिल ने इस विषय पर लेख पढ़ा कि १७ वीं शती के अंग्रेज़ी नाटककारों की Physiology (शरीर-शास्त्र) और Pathology (निदानशास्त्र) में क्या दिलचस्पी थी। जौन फ़ोर्ड ने अपने नाटकों में डाक्टरी के केसों (बीमारों) को अपना पात्र चुना है और उनकी डाक्टरी पद्धति से परीक्षा की है और ठीक दवाइयों से इलाज किया है। जेरूसेलम के प्रोफ़ेसर हिरम पेरी ने अपने लेख में कहा कि दाँते ने जब अपनी "डिवाइन कौमेडी" लिखनी प्रारंभ की और जब उसे समाप्त किया तो इस बीच में विश्व के विषय में जो उनके विचार थे उनमें परिवर्तन हो गया था। इसका कारण यह था कि दांते ने जेल में जा कर विश्व के विषय में वैज्ञानिक अध्ययन किया था। कोलोरैडो की यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर हैनरी पैटिट ने ऑगस्टस सीज़र के समय के अंग्रेज़ी लेखकों के विषय में यह निदर्शित किया कि वे "इंद्रियों के प्रेय मार्ग" से अभिभूत थे।

१९ वीं शती पर बहुत से लेख पढ़े गए। सीराक्यूज़ यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर अलबर्ट जे. जार्ज ने फ्रेंच रोमांसी साहित्य पर औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव को निदर्शित किया। उस समय पाठक-जनता की संख्या में वृद्धि हो गई थी। इसलिए उस समय के लेखकों ने तात्कालिक प्रश्नों को गद्य में लिखना प्रारंभ किया। "फ़ैक्टरी" उस युग की प्रतीक बन गई। "भरे हुए गन्दे घरों में ग़रीब श्रमिक", "फ़ैक्टरियों के लालची मालिक" "कठोर बौस (अधिकारी) इत्यादि पुस्तकें लिखी गई जिनमें उन्होंने उस समय की अवस्थाओं और प्रश्नों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया।

इसी में से नए उपन्यास का जन्म हुआ। यूनिवर्सिटी कालेज, स्वॉनसी डा० गार्नेट रीस ने "उपन्यासों की रचना पर विज्ञान का प्रभाव" पर अपना लेख पढ़ा। उन्होंने कहा : जुलेस बर्न और एच. जी. वैल्स ने "अपने उपन्यासों को विज्ञान की पद्धति देने का प्रयत्न किया।" ब्रूसेल्स की यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर ने अपने लेख में "बैलजियन रोमान्सी कविता" पर रेलवे इंजन के प्रभाव को निदर्शित किया। इसका प्रथम प्रभाव तो मुग्धकारी आश्चर्य का पड़ा। एक स्त्री-कवि उसके वेग से सिर में चक्कर अनुभव करती थी और आकाश में जा पहुँचती थी। अन्य कवि जिनमें कि ह्यूगो भी एक है रेलवे-इंजन को एक राक्षस समझते थे जो जानवरों जैसी आवाज़ करता था परन्तु शीघ्र ही यह नवयुग को लानेवाला उन्नति का प्रतीक बन गया जो कि भिन्न राष्ट्रों को निकट ला रहा था और विश्व बन्धुत्व के नव प्रभात के उदय की सूचना दे रहा था।

बिरमिंघम की यूनिवर्सिटी की मिस ई. काउटाइस्लौफ़ ने '२० वीं सदी का रूसी किस प्रकार लिखता है' इस विषय पर प्रकाश डाला। उसने कहा कि वह विषय को साहित्यिक आलोचना की दृष्टि से नहीं परन्तु सामाजिक महत्व की दृष्टि से लिखता है। रूस से साहित्यिक मासिक पत्रों में वैज्ञानिक परिकल्पनाओं प्रोजेक्टों और उनसे लाभ आदि पर लेख प्रकाशित किए जाते हैं और

वैज्ञानिक कथाओं और उपन्यासों में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के जीवन का वर्णन किया जाता है। इसको "कल का साहित्य" कहा जाता है। यह न तो पलायनवादी साहित्य है और न इसमें सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक और दार्शनिक प्रश्नों को उपस्थित किया जाता है। इसका मुख्य विषय प्रकृति पर विजय है जिसके साथ रूस के नए ढंग के मानव का सम्बन्ध है।

ब्रिस्टल यूनिवर्सिटी के प्रो. ए. क्लौस ने यह निदर्शित किया कि वैज्ञानिक विचारों का साहित्यिक आलोचना पर क्या प्रभाव पड़ा है। आलोचना किस ढंग की होनी चाहिए इसे प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने टी. सी. इलियट की "दी वेस्ट लैण्ड" की पाँच विभिन्न शैलियों का उदाहरण दिया : फ्रयूड के अनुसार यह पुस्तक कलात्मक वन्ध्यात्व का प्रतीक है; व्यक्तिगत जीवन के वृत्तान्त की दृष्टि से यह पुस्तक इलियट की प्रबुद्धता से पूर्व की मन की अवस्था की प्रतीक है; सामाजिक दृष्टि से यह पुस्तक बूर्जुआ श्रेणी के ह्रास और निराशा की प्रतीक; मार्क्सवाद की दृष्टि से यह सरमायादारी के नाश की प्रतीक और जंगियन दृष्टि से यह पुस्तक मृत्यु और पुनर्जन्म की प्रतीक है।"

॥

अन्तिम पर्दा : हाईड्रोजन बम

अमेरिका के प्रसिद्ध पत्र "यूनिटी" के जनवरी-फरवरी १९५४ के अंक में श्रीयुत मैनफ्रेड ए. कार्टर ने "अन्तिम पर्दा" शीर्षक से एक लेख लिखा है जिसमें उन्होंने अणुबम और हाइड्रोजन बम के परिणामों को प्रदर्शित किया है। इस लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"...हम अणुबमों के विषय में लेख पढ़ते हैं और हम यह भी पढ़ते हैं कि हमारी सेना आवश्यकता पड़ने पर यूरोप या पूर्व में इन बमों का प्रयोग करेगी। इसके लिए रौकेट और हवाई जहाज़ तैयार हैं। हमारा खेल समाप्त हो रहा है। हम अन्तिम पर्दे के निकट हैं। अब या तो नया खेल होना चाहिए और या अन्धकार हो जाएगा।

चारों ओर भय का राज्य है। अणुबम के विषय में एक छोटी-सी सूचना हमारे भय को बढ़ा देती है। १९४७ में "मौचुअरी साइन्स" में कहा गया था : "अणुबम गिरने के पश्चात् मुर्दे रैडियो-सक्रिय हो जाएँगे और इन्हें उठाने, गाड़ने या जलानेवालों को सीसा-लगे कपड़े पहनने होंगे परन्तु एक अन्य पुस्तक में इसे ग़लत कहा गया है।

न्यू जर्सी की डोरौथी बर्न्स की रैडियो-सक्रिय के विष से ९ मास के बाद मृत्यु हो गई। उसने दो लाख डालर का केस किया था परन्तु न्यायालय के इस विषय में किसी प्रकार की कार्यवाही करने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई। अप्टन, न्यूयार्क में वैज्ञानिकों की एक सभा हुई थी जिसमें इस बात पर विचार किया गया था कि अणुबम की शक्ति से जो क्षति पहुँचती है उसका प्रभाव कितने समय तक रहता है परन्तु जिसका प्रभाव पीढ़ियों तक चला जाता है उसे किस प्रकार मापा जा सकता है? हमें कहा जाता है कि हम भाग्यवान् हैं क्योंकि रैडियो-सक्रिय मछलियों ने जिन मछलियों को विषाक्त कर दिया था वे अन्यत्र कहीं जा नहीं सकती थीं। रेड क्रास के अधिकारियों ने हिसाब लगाया है कि बम गिरने पर एक नगर के लिए उतने ताज़े लाल रक्त की आवश्यकता होगी जितनी कि समस्त द्वितीय विश्वयुद्ध में आवश्यकता हुई थी। और इतने डाक्टर कहाँ से आएँगे?

हम बमबारों की गति के विषय में पढ़ते रहते हैं। एक वैज्ञानिक ने हमें बतलाया है कि एक रात में ४½ करोड़ व्यक्तियों का नामोनिशान मिट सकता है। हमारे बड़े बड़े वैज्ञानिकों का मत है कि एक हाइड्रोजन बम संसार के बृहत्तम नगर को धूलिसात् और वायु को विषाक्त कर सकता है। प्रो. आइनस्टीन समझते हैं कि एक हा. बम से विश्व के समस्त जीवन का नाश हो सकता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि इन बमों से किसी प्रकार रक्षा नहीं की जा सकती। ग्लेन मार्टिन वायुयानों का निर्माण करते हैं। उनका कहना है कि अमेरिका ने एक ऐसे रैडियो-सक्रिय बादल को बनाया है जो उसका नाश कर देता है जो कि उस बादल के संसर्ग में आता है। वह कहता है कि इसका प्रभाव अणुबम से बहुत अधिक है क्योंकि यह उस समस्त क्षेत्र को अनन्त काल के लिए रैडियो-सक्रिय कर देगा। यह बादल वायु से फैल जाता है।

हाईड्रोजन एक बला है—मुसीबत है। एक पोलिस—राज्य में रहना अच्छा है परन्तु विश्व को हा. बम से रक्षा करना ठीक नहीं है। बर्टरैण्ड रसल कहते हैं कि अब शक्ति के आधार पर ही कार्य नहीं हो सकता।

हा. बम का अर्थ संसार का विनाश है। हमें अब नए शान्तिपूर्ण विश्व का निर्माण करना चाहिए अन्यथा हा. बम विश्व के खेल का अन्तिम पर्दा होगा। हमें हा. बम को बनाना ग़ैर-क़ानूनी घोषित करना होगा। आज विश्व की अधिकांश जनता चाहे वह अमेरिका की हो या रूस की या चीन की––शान्ति चाहती है। विश्व-विनाश का पाप सबसे महान् पाप है। हमारी आधुनिक सभ्यता के नाटक का यह अन्तिम दृश्य है जिसके कि ऊपर पर्दा पड़नेवाला है।

||

जापान की कविता

मद्रास के अंग्रेज़ी पत्र "हिन्दु" के साप्ताहिक संस्करण, २७ जून १९५४ के मेगज़ीन-विभाग में श्रीयुत मुंगारा कृष्णमूर्ति का "जापान की कविता" पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"अपने छोटे छोटे द्वीपों से जो कि सदा भूकम्प, बाढ़, अग्नि के प्रकोपों का सदा शिकार बनते रहते हैं और जिन पर अभी कुछ समय हुआ इन्सान एक बड़ी मुसीबत लाया था––जापान का द्वीप समुद्र में सुशोभित है। साधारणतया एक जापानी किस तरह अपने "दुःख के समुद्र" का नियन्त्रण करता है? वह उसे पूरी तरह बाढ़ में आने देता है और चुपचाप सहन कर लेता है। यदि वह कवि है तो वह उसे एक साहित्यिक आँसू––'कविता के मोती' के रूप में टपका देता है।

एक जापानी के लिए कविता सौन्दर्य तृप्ति या बुद्धिगत विनोद से अधिक एक प्रकार का नैतिक अनुशासन है। वह उसके लिए मन्दिर की घंटी है––वह एक संगीतज्ञ का वीणा-वादन नहीं है। यही कारण है कि जापानी कविता में आवेशात्मक अतिशयता या सूक्ष्म गम्भीरता नहीं है। इसमें मानव-हृदय की धड़कन है––पिए हुए आँसू हैं। जापानी कविता में सहन किया हुआ दुःख आकर्षण और प्रेरणा प्रदान करता है।

जापानी महान् कलाकार कनो होगाई ने "दिव्यता" का एक रंगीन चित्र बनाया है। दिव्यता करुणा के रूप में आविर्भूत होती है। यह सृष्टि का महान् संगीत है जिसे कि कनो होगाई की प्रतिभा ने कुशलता पूर्वक चित्रित किया है। यही संगीत हमें जापानी कविता में सुनाई पड़ता है। मैं चियो का एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। चियो जापान की सबसे महान् कवयित्री है। वह १७ अक्षरों के होक्को शैली के लिखने में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। आप देखेंगे कि उसने किस प्रकार मानव-माँ के आँसू की एक बूँद को वैसी ही अमरत्व की आभा प्रदान की है जैसी कि कानो होगाई ने विश्व-माता की आँसू की एक बूँद को चित्रित करके। चियो अपने छोटे पुत्र की मृत्यु के विषय में लिख रही है। उसका बेटा गर्मी की ऋतु में खेतों में, रंगदार पंखोंवाली मक्खियों के पीछे भागता-फिरता था। कभी-कभी वह भागता भागता अपने घर से इतना दूर निकल जाता था कि उसका घर वापस आना बहुत कठिन हो जाता था। इस कविता में चियो के आँसू की एक बूँद कविता के मोती के रूप में परिणत हो गई है :

"क्या कोई मुझे बतला सकता है––
कि
चमकदार पंखोंवाली मक्खियों को पकड़नेवाला
मेरा प्यारा बेटा
कितनी दूर आज भटक कर चला गया है"

सचमुच ऐसी कविता बहुत कम लिखी जाती है और यह अति संक्षिप्त होती है। यह उतनी ही छोटी होती है जैसी कि चैरी का फूल। चैरी का फूल जापान का राष्ट्रीय फूल है। यह फूल अप्रैल के प्रारम्भ में दिखाई देता है और बहुत ही कम दिनों तक रहता है। शेष समस्त वर्ष तक चैरी में न पत्ते होते हैं और न फल। इसका फूल ही सब कुछ होता है वह भी मुश्किल से एक सप्ताह तक रहता है परन्तु जब वह चैरी के वृक्षों पर खिल उठता है तो अन्य कोई वस्तु आँखें नहीं देखना चाहतीं। यह विश्व की एक सबसे महान् विभूति प्रतीत होती है। इसके लिए सर्दी के दीर्घ कष्टों को झेलना भी भारी नहीं प्रतीत होता––इन फूलों को देख कर सब कष्ट महान् आनन्द में परिणत हो जाते हैं।

कुछ ही दिन तक रहने वाले चैरी के फूल और कुछ ही पंक्तियों की जापानी कविता, दोनों में बहुत समानताएँ हैं। दोनों के द्वारा जापानी लोगों के जीवन की महानता में अमिट विश्वास अभिव्यक्त होता है––यद्यपि दोनों का जीवन संकटों से घिरा हुआ है। जापानियों के लिए चैरी का लगभग समस्त वर्ष तक सूखे रूप में खड़ा

रहना ही बड़ा सत्य नहीं है परन्तु इस वृक्ष का कुछ ही दिनों के लिए फूलों की विभूति से जगमगा उठना—उनके लिए महान् सत्य है। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है। इसमें जापानियों की भावना, जापानी कविता और चैरी के फूलों का सौन्दर्य मूर्त्तिमान् हो गया है :

> "यदि संयोग वश कोई अपरिचित व्यक्ति
> यमैतो के द्वीपों की स्पिरिट के विषय में प्रश्न करे
> तो जाओ उसे सुन्दर पर्वतीय चैरी के फूलों पर
> हँसते हुए प्रातःकाल के सूर्य को दिखा दो"

॥

क्षेत्रज्ञ के पद

क्षेत्रज्ञ तेलुगु साहित्य का एक अमर गायनकार और कवि है। उसके पद त्यागराज की तरह आन्ध्र देश और तमिलनाड दोनों में लोक प्रिय हैं। अभी पिछले दिनों राजमुन्दरी से क्षेत्रज्ञ के पदों पर संगीत के पूर्ण विवरण के साथ एक पुस्तक प्रकाशित की गई है। यह पुस्तक तेलुगु और तमिल दोनों लिपियों में प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक के विषय में "स्वतंत्र" की आलोचना में से निम्न अंश दिया जाता है :

"...कर्नाटक संगीत की त्रिमूर्ति के पश्चात् वाक्गेयकार क्षेत्रज्ञ की गणना की जा सकती है। गत कुछ वर्षों से जनता की रुचि पदों के प्रति पुनः जागृत हुई है। शृंगार रस और उसमें दिव्य-लीला का वर्णन दोनों में एक विशेष प्रकार का आकर्षण होता है। जिस युग में क्षेत्रज्ञ का अभ्युदय हुआ था वह युग विलासिता का था—इसलिए बहुत-से कवियों ने अपनी रचनाएँ विलासिता के रंग में पूर्ण शृंगार रस में कीं परन्तु तेलुगु साहित्य में जिन महाकवियों ने पदों की रचना की है उन्होंने उसमें दिव्य अंश को सम्मिश्रित कर उसे पवित्र बना दिया है। पद उस प्रेममय कविता को कहते हैं जिसमें संगीत होता है और यद्यपि इसमें शृङ्गार लीलाओं का वर्णन होता है तो भी वे रचनाएँ शृङ्गार से भिन्न होती हैं। पदों में एक प्रकार का अपना ही सौन्दर्य होता है जिसको अनुभव करने के लिए उनका अध्ययन सूक्ष्मता से किया जाना आवश्यक है। क्षेत्रज्ञ ने अपने एक पद "वेडुकाटो" में स्वयं इस बात को कहा है कि उसने हज़ारों पदों की रचना की थी परन्तु शिष्य परम्परा के अभाव के कारण उसके बहुत-से पद लुप्त हो गए। वर्त्तमान समय में पदगान की कला बहुत कुछ लुप्त हो गई है। एकमात्र वीणाधनम् वंश के लोगों ने अभी तक इस परम्परा को कुछ जीवित रक्खा है। पिछले कुछ समय से इन पदों को स्वर की लिपि में लिखा जा रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में पदों को स्वर लिपि में लिखा गया है।

सबसे प्रथम पुस्तक जिसमें क्षेत्रज्ञ के पद सम्मिलित किए गए थे—"संगीत सर्वार्थसार संग्रहमु" थी। इसे १८८५ में गीर्वाण भाषा रत्नाकर मुद्राक्षर शाला मद्रास ने प्रकाशित किया था इस पुस्तक में जिन रागों को प्रदर्शित किया गया है वे प्रस्तुत पुस्तक से भिन्न हैं। उदाहरणार्थ 'संग्रहमु' पुस्तक में "वेडुकाटो" और "सामिगा रारा" में यदुकुल काम्भोजी और गोपिका राग प्रदर्शित किया गया है जब कि प्रस्तुत पुस्तक में उनका राग देवगान्धारी और हिंडोला वसन्त लिखा गया है। प्रस्तुत पुस्तक में क्षेत्रज्ञ के ७८ पदों में से ४३ पद दिए गए हैं जिन्हें स्वरों के साथ दिया गया है।"

॥

१५ वीं सदी के रूस यात्री का बहमनी राज्य का वर्णन

२० अक्टूबर की "सोवियत भूमि" में एक रूसी यात्री "आफ़ानासी निकितन का भारत-भ्रमण" लेख प्रकाशित हुआ है। आफ़ानासी निकितन अपनी भारत की यात्रा में बहमनी राज्य में भी आया था। इस लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है:

"अब से चार सौ पचासी वर्ष पहले सन् १४६६ की गर्मियों में त्वेर नगर का आफ़ानासी निकितन नामक सौदागर भारत के भ्रमण के लिए निकला। यह भ्रमण चार वर्ष तक जारी रहा। आफ़ानासी निकितन भारत जानेवाला पहला यूरोपवासी था और उसने अपने इस भ्रमण का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक एक डायरी में लिखा। इस लौटने के बाद उसके संस्मरण "युग—कथा" नामक रूसी ऐतिहासिक दस्तावेज़ों में शामिल कर लिए गए।

त्वेर नामक प्राचीन रूसी नगर (जिसका नाम अब कालिनिन है) से सन् १४६६ में रवाना हो कर निकितन सौदागरों के एक कारवान के साथ वोल्गा नदी के रास्ते चला। आस्त्राखान से कैस्पियन सागर के किनारे चलता हुआ वह दरबेन्त पहुँचा, वहाँ से बाकू गया और वहाँ से जहाज़ पर फ़ारस (ईरान) के लिए रवाना हो गया।

६ अप्रैल को वह एक छोटे-से जहाज़ पर अपने घोड़े के साथ सवार हुआ जिसे कि उसे भारत में बेचना था। भारतीय महासागर के तट के किनारे यात्रा करते हुए मालाबार के प्रथम बन्दरगाह चाउल पहुँचने में छः सप्ताह का समय लग गया। रास्ते में निकेतन मस्कत, कलात और दियू में ठहरा।......उसने गुजरात के एक प्रमुख शहर कम्बायता का वर्णन किया है। गुजरात उस समय भारत के स्वतंत्र मुस्लिम राज्यों में से एक था।...चाउल से पश्चिमी घाट पार करके निकितन ने दकन के पठार के भीतरी भाग में प्रवेश किया। उसने जुन्नार के शहर और क़िले का जो बहमनी राज्य के सब से बड़े शहरों में से एक था...विस्तृत विवरण दिया है। जुन्नार के सूबेदार असदख़ान ने आफ़ानसी निकितन को इस्लामी मत का अनुयायी बनाने की कोशिश की पर आफ़ानसी ने इसका विरोध किया।...१५ सितम्बर १४६९ को वह मध्ययुगीन बहमनी राज्यों की राजधानी बीदर पहुँच गया। वहाँ से वह अल्लन्द के मेले में गया।...निकितन ने बीदर के बारे में बहुत काफ़ी लिखा है। इस राजधानी शान-शौक़त देख कर वह दंग रह गया। उसने सुलतान के महल की स्थापत्य कला, पत्थर पर भारतीय कारीगरों द्वारा की गई आश्चर्यजनक खुदाई, शहर के जीवन, दरबार के जीवन और विभिन्न त्योहारों का हाल लिखा है। सुलतान के दरबार और स्थानीय अमीर-उमरा के ऐश्वर्य से तुलना करते हुए...आफ़ानासी निकितन ने उत्पीड़ित भारतीय जनता की दुर्दशा का वर्णन किया है। उसने लिखा है: "देश काफ़ी घना बसा हुआ है; गाँवों में रहनेवाले बहुत ग़रीब हैं और बोयार (शासक मुस्लिम वर्ग के अमीर उमरा) धन-दौलत और ऐश-आराम का जीवन व्यतीत करते हैं।" निकितन कई भारतीय दस्तकारों और किसानों से मिला। जब उन्हें मालूम हुआ कि वह रूसी है और उन्होंने समझ लिया कि वह सद्भावनाएँ ले कर आया है तो शहर के सीधे-सादे निवासियों और किसानों ने बड़ी आवभगत के साथ उसका स्वागत किया और बड़ी ख़ुशी के साथ उसे अपने रीति-रिवाज़ों, धर्म, दस्तकारी और व्यापार से परिचित कराया। निकितन के शब्दों में "उन्होंने अपने खाने-पीने, व्यापार, पूजा-उपासना और अन्य चीज़ों के बारे में कुछ भी नहीं छुपाया।" हिन्दुस्तानियों ने शिव का त्योहार दिखाने के लिए अपने मित्र को पर्वत आने का निमन्त्रण दिया। पर्वत में कई मन्दिर थे। इनके भग्नावशेषों का पता पिछली शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चला है। अपने वृत्तान्त में निकितन ने एक मुख्य मन्दिर, धार्मिक संस्कारों और देवताओं का वर्णन किया है। निकितन हनुमान् की एक मूर्ति से विशेष रूप से प्रभावित हुआ और उसने उसका विस्तार से वर्णन किया है। उसने विभिन्न जातों, उनकी परम्पराओं और खान-पान के विषय में भी लिखा है। पर्वत से वह बीदर लौट आया। उसके वृत्तान्तों में मालाबार तट पर स्थित भारतीय राज्यों के खिलाफ़ बहमनी सुलतान द्वारा छेड़ी गई लड़ाइयों का विस्तृत विवरण मिलता है।... आफ़ानसी निकितन ने विजयनगर के घेरे में सुलतान की फ़ौज़ों की असफलता का उल्लेख किया है। विजयनगर १४ वीं शताब्दी में एक शक्तिशाली भारतीय राज्य की राजधानी था, इतिहासकारों ने इस सैनिक आक्रमण को बहुत ग़लत ढंग से पेश किया है लेकिन निकितन ने बड़े विस्तार के साथ इस घटना का आँखों देखा वर्णन किया है। इस विवरण का इस दृष्टि से और भी महत्व है कि सुलतान के इस असफल अभियान के बाद से ही बहमनी राज्य का सितारा डूबने लगा।...दक्कन का दौरा करते हुए निकितन रायचूर गया जो हैदराबाद से १०७ मील दूर है। उसने मालाबार तट पर स्थित भारतीय समृद्ध शहर कालीकट का वर्णन किया है और लंका तथा अन्य स्थानों का उल्लेख किया है। अपने देश की याद ने उसे सन् १४७२ में अपने देश को वापम जाने के लिए बाध्य किया। वह दाबुल से ज़हाज़ पर सवार होकर फ़ारस के लिए चल पड़ा। दाबुल मालाबार के तट पर एक बहुत बड़ा बन्दरगाह था। स्मालेंम्स पहुँचने के पूर्व ही उसका देहान्त हो गया। दूसरे सौदागर उसके भ्रमण-वृत्तान्त को मास्को के युवराज ग्रैण्ड प्रिन्स के दरबार में लाए।...पुर्तगाल, हालैण्ड और ब्रिटेन से पूर्व निकितन हिन्दुस्तान में एक छोटी-सी नाव में आया था। निकितन के भ्रमण-वृत्तान्त में १५ वीं शताब्दी के भारत के बारे में महत्वपूर्ण और विविध प्रकार की सामग्री प्राप्त होती है।...उसके भ्रमण-वृत्तान्त में बहुत-से ऐसे बहुमूल्य तथ्य मिलते हैं जो प्राचीन भारतीय जीवन को समझने के लिए आवश्यक हैं और जिनका समकालीन यात्रियों ने उल्लेख नहीं किया है। निकितन का भ्रमण-वृत्तान्त १५ वीं शताब्दी का एक ऐतिहासिक स्मारक है।"

सम्पादकीय

भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए रुचि उत्पन्न कीजिए :

भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में हमें एक नया स्लोगन या नारा बनाना पड़ेगा और वह यह है कि भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए रुचि उत्पन्न कीजिए। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हमारे देश की शिक्षित जनता की अपने देश की भाषाओं के प्रति रुचि ही नष्ट हो गई है; वह भारतीय भाषाओं के विषय में उस प्रकार तीव्रता या गहराई से अनुभव नहीं करती जिस प्रकार कि वह अंग्रेज़ी या यूरोपीय भाषाओं के विषय में अनुभव करती हैं। जब से हमारे देश में फ़ारसी और इसके पश्चात् अंग्रेज़ी राजभाषाएँ बनीं और उनको राजगद्दी पर आसीन होने का अवसर मिला––हमारी शिक्षित जनता का सम्बन्ध उन्हीं भाषाओं से बन गया और हमारे देश की भाषाएँ अपने देश में ही अपदस्थ हो गई और उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा। उनके प्रति पठित लोगों की रुचि विनष्ट हो गई और जब एक वस्तु के प्रति रुचि और आकर्षण ही नहीं रहता तब उस वस्तु में चाहे कितनी ही विशेषताएँ क्यों न हों उसकी ओर सुगमता से ध्यान आकृष्ट नहीं होता––उसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है। भारतीय भाषाओं के लिए रुचि उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता है और इसके लिए हमें यह नारा बुलन्द करना पड़ेगा कि भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए रुचि उत्पन्न कीजिए। हमारी देशी भाषाओं में आवश्यक पारिभाषिक शब्द नहीं हैं या उनमें वैसा विशाल साहित्य नहीं है जैसा कि अंग्रेज़ी में है। ये सब बातें इसीलिए हमारे मन में उठती हैं क्योंकि हम अपनी भाषाओं के प्रति उदासीन हैं। यदि हमारी भाषाओं में साहित्य नहीं है या पारिभाषिक शब्द नहीं हैं तो इसका इलाज यह नहीं है कि हम इन भाषाओं को इस दृष्टि से असमर्थ या अयोग्य समझ लें––इसका इलाज तो यह है कि हम साहित्य और परिभाषाओं के निर्माण करने में लग जाएँ।

भारतीय भाषाओं में अनेक कमियों और त्रुटियों के होते हुए भी उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे हमारे देश की भाषा हैं; वे हमारे देश की मिट्टी से निकली हैं; हम उन्हें जैसा चाहें वैसा बना सकते हैं और यदि हम उनकी ओर ध्यान नहीं देंगे और उपेक्षा और उदासीन वृत्ति रखेंगे तो उनकी किसी भी प्रकार उन्नति संभव नहीं हो सकती।

एक भारतीय को इस बात में गौरव अनुभव करना चाहिए कि वह अपने देश की अधिक से अधिक भाषाओं और उनके साहित्यों से भली भाँति परिचित हो। हम अपने देश की जितनी भाषाओं और उनके साहित्यों से परिचित हो सकें उतना ही हमें उन्हें जानने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे हममें सच्ची भारतीयता उत्पन्न होगी। भारतवर्ष की अनेक भाषाओं के ज्ञान का महत्व जहाँ अन्य दृष्टियों से है वहाँ संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में इसकी अत्यधिक आवश्यकता है। यह सत्य है कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और हमारे देश का राज-काज इसी भाषा के द्वारा होगा परन्तु भारतवर्ष जैसे महान् और विशाल देश में अन्य भारतीय भाषाओं के ज्ञान की भी आवश्यकता है। यह आवाज़ उठाई जा रही है कि हिन्दी के साथ दक्षिण देश की या भारतवर्ष की एक अन्य भाषा का ज्ञान अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए परन्तु यह सब राजनैतिक दृष्टि से कहा जा रहा है। साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से भी इसकी परम आवश्यकता है। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में जो भी साहित्यकार अखिल भारतीय दृष्टि से महान् और भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि होगा वह भारतवर्ष की कई भाषाओं और उनके साहित्यों को जाननेवाला होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि हमारे देश के साहित्यकार अन्य भारतीय भाषाओं के ज्ञान को प्राप्त करें। हिन्दी के साहित्यकारों के लिए तो यह और भी अधिक आवश्यक है क्योंकि हिन्दी के साथ समस्त भारत का सम्बन्ध है। संस्कृत के इतना विशाल और महान् बनने का यह भी एक कारण था कि उसके साथ देश की समस्त प्राकृत भाषाओं का सम्बन्ध जुड़ गया था और संस्कृत के महान् साहित्यकारों के लिए प्राकृत भाषाओं का ज्ञान उतना ही

आवश्यक था जितना कि संस्कृत का। 'साहित्य-दर्पण' के लेखक श्री विश्वनाथ कविराज ने अपने विषय में लिखा है : "अष्टादशभाषावारविलासिनीभुजंग"। वे १८ भाषाओं के ज्ञाता थे। इसी प्रकार संस्कृत के अन्य साहित्यकारों के विषय में कहा जा सकता है। संस्कृत के नाटककारों के लिए तो संस्कृत के साथ प्राकृत और अपभ्रंश का ज्ञान आवश्यक था। 'पृथ्वीराज रासो' में चन्द ने षट् भाषा के ज्ञान का वर्णन किया है। विद्यापति संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देशी इन सब भाषाओं के पण्डित थे। इसके लिए इस बात की आवश्यकता है कि हमारे साहित्यकारों और शिक्षित जनता का ध्यान भारतीय भाषाओं की ओर आकृष्ट हो। भाषा की समस्या को हल करने के लिए हमें भारतीय भाषाओं के अध्ययन के प्रति अधिकाधिक रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। हिन्दी के प्रेमियों का यह कर्तव्य है कि वे जहाँ राष्ट्रभाषा के लिए कार्य करें वहाँ उन्हें समस्त भारतीय भाषाओं के अध्ययन में रुचि को भी जाग्रत करना चाहिए।

भारतवर्ष का सम्मान— क्या अंग्रेज़ी के कारण?

आजकल हमारे देश की यूनिवर्सिटियों के दीक्षान्त समारोहों के अवसर पर जो भाषण दिए जाते हैं उनमें अंग्रेज़ी की शिक्षा पर जितना बल दिया जाता है उतना किसी अन्य विषय पर नहीं। दीक्षान्त भाषण देनेवाले महोदय को भारतवर्ष की शिक्षण संस्थाओं से सबसे बड़ी शिकायत यही रहती है कि अब अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा ठीक ढंग से नहीं दी जा रही है। भारतीय भाषाओं के विकास के सम्बन्ध में इन भाषणों में कुछ विशेष नहीं कहा जाता। भारतीय भाषाएँ शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार प्रगति कर रही हैं; उनके प्रयोग करने में किस प्रकार सफलता प्राप्त हो सकती है—इन विषयों पर क्रियात्मक रूप से कोई विचार नहीं किया जाता। पिछले दिनों पूना में पूना विश्वविद्यालय का दीक्षान्त-समारोह हुआ। इस अवसर पर मैसूर राज्य के प्रसिद्ध राज्य-पुरुष सर मिर्ज़ा इस्माइल ने दीक्षान्त-भाषण दिया। इस भाषण में जहाँ उन्होंने अंग्रेज़ी की शिक्षा की ओर हमारे देश के शिक्षा-शास्त्रियों के ध्यान को विशेष रूप से आकर्षित किया है वहाँ उन्होंने अपने भाषण में यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि आज भारतवर्ष का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो सम्मान है उसका कारण अंग्रेज़ी है। वे अपने भाषण में इस बात की घोषणा करते हैं और पूछते हैं कि संयुक्त-राष्ट्रसंघ में **यदि हमारे राजनीतिज्ञ हिन्दी में भाषण देते तो क्या भारतवर्ष को वह स्थान और प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती थी जो कि उसे आज प्राप्त हुई है।** हम उनके भाषण के शब्दों को अनुवाद के रूप में उद्धृत करते हैं :

"...विश्व के साथ प्रत्येक प्रकार के सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए हमारे लिए अंग्रेज़ी का ज्ञान अनिवार्य है। **क्या कोई इस बात की कल्पना कर सकता है कि यदि हमारे देश के प्रतिनिधि विदेशों में जाकर हिन्दी में लिखते और बोलते तो वे भारतवर्ष को यह अन्तर्राष्ट्रीय स्थान प्राप्त करा सकते थे जो कि उसे आज** 'प्राप्त हुआ है? ...केवल अंग्रेज़ों और अमरीकी लोगों के लिए ही नहीं अपि तु समस्त महाद्वीपी देशों के लिए अंग्रेज़ी का ज्ञान एक शिक्षित व्यक्ति के निर्माण के लिए एक आधारभूत अंग है......"

भारतवर्ष में जब अंग्रेज़ों का राज्य था उस समय भी भारतवासी विदेशों में जाते थे और उस समय भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में वे अंग्रेज़ी में भाषण देते थे। हम सर मिर्ज़ा इस्माइल महोदय से पूछना चाहते हैं कि उस समय जब कि भारतवासी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में अंग्रेज़ी में ही लिखते पढ़ते थे तो भारतवर्ष को यह अन्तर्राष्ट्रीय स्थान क्यों प्राप्त नहीं हुआ था? फिर ऐसे अन्य भी देश हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में अंग्रेज़ी अच्छी तरह लिखते और पढ़ते हैं—उन्हें उच्च अन्तर्राष्ट्रीय पद क्यों प्राप्त नहीं हो जाता? क्या इसका यह स्पष्ट अर्थ नहीं है कि एकमात्र अंग्रेज़ी में लिखने और बोलने के कारण भारतवर्ष या किसी भी देश को अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान नहीं प्राप्त हो सकता? दक्षिण आफ्रिका में जो भारतीय वहीं के निवासी बन गए हैं वे क्या दक्षिण आफ्रिका में अंग्रेज़ी नहीं बोलते या अमेरिका में नीग्रो लोग अंग्रेज़ी में सब शिक्षा दीक्षा प्राप्त करके अंग्रेज़ी में नहीं लिखते पढ़ते? तो फिर क्या कारण है कि उन्हें अपने ही देश में वह सम्मान प्राप्त नहीं होता जो कि गोरे लोगों को प्राप्त होता है। इससे यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि अंग्रेज़ी को अत्यन्त कुशलता पूर्वक लिखने और पढ़ने से ही यूरोप या अमेरिका आदि देशों में सम्मान प्राप्त नहीं हो सकता। सर मिर्ज़ा इस्माइल स्वयं अपने भाषण में इस बात को स्वीकार करते हैं कि भारतवर्ष में अब अंग्रेज़ी के ज्ञान का मान Standard

घटता जा रहा है और संभवतः इससे पहले अंग्रेज़ी का ज्ञान इस समय से अच्छा था। प्रश्न यह है कि जिस समय भारतवर्ष में अंग्रेज़ी का दौर-दौरा था और चारों तरफ़ उसी का बोलबाला था उस समय भारतवर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में क्यों यह सम्मान प्राप्त नहीं हुआ? अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में यह अनुभव किया जा रहा है कि अब इंग्लैण्ड और अमरीका विश्व का नेतृत्व करने में असमर्थ हैं जब कि ये दोनों देश अंग्रेज़ी बोलते हैं।

और फिर सम्मान का क्या अर्थ है? जब अपने ही देश में एक साधारण आदमी अभी तक सिर उठा कर इज्ज़त से नहीं चल सकता तो विदेशों में उसके सम्मान और असम्मान का प्रश्न ही क्या उठता है?

भारतवर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में यह सम्मान इसलिए प्राप्त हुआ है कि आज भारतवर्ष एक स्वतंत्र देश है और उसने यह स्वतंत्रता शान्तिमय उपायों से अपने बल के आधार पर प्राप्त की है और वह उसे बिना किसी की सहायता लिए स्थिर रख सका है। भारतवर्ष विश्व में शान्ति की स्थापना करना चाहता है और उसके लिए वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में अपना समस्त बल लगा कर प्रयत्न कर रहा है। यही उसके सम्मान का कारण है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अब एकमात्र यूरोप के बड़े राष्ट्रों और अमेरिका की ही गिनती नहीं होती उसमें एशिया के राष्ट्रों की भी गिनती होने लगी है। अभी हमारे देश के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू चीन गए थे। क्या चीन में उन्हें जो सम्मान प्राप्त हुआ वह उनके अंग्रेज़ी में बोलने और लिखने के कारण प्राप्त हुआ? चीन में इस बार श्री जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दी में भाषण दिए। क्या रूस में भारतवर्ष की जो प्रतिष्ठा है वह अंग्रेज़ी के कारण? रूस ने तो अभी एक हिन्दी और रूसी कोश निर्माण किया है और वहाँ संस्कृत और हिन्दी की पुस्तकों का रूसी भाषा में अनुवाद किया जा रहा है। भारतवर्ष की प्रतिष्ठा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अंग्रेज़ी के कारण नहीं हो सकती। भारतवर्ष की यदि प्रतिष्ठा है तो वह हिन्दी में बोलने पर भी होगी और सत्य तो यह है कि भारतवर्ष की सच्ची प्रतिष्ठा उसी दिन होगी जब वह प्रतिष्ठा हिन्दी में बोलने पर भी होगी। भारतवर्ष के सम्मान का मुख्य कारण है कि वह राजनैतिक दृष्टि से विश्व में आज अपना स्वतंत्र स्थान रखता है। जिस दिन आर्थिक, सैनिक और अन्य दृष्टियों से भी भारतवर्ष की अपनी स्वतंत्र स्थिति हो जाएगी, जिस दिन भारतवर्ष विश्व में पूर्णतया अपने पैरों के बल पर खड़ा हो जाएगा—उस दिन उसकी विश्व में प्रतिष्ठा होगी। यदि यह प्रतिष्ठा एकमात्र अंग्रेज़ी के ज्ञान के आधार पर प्राप्त हो सकती तो इसे प्राप्त करने में कोई विशेष कठिनाई न होती।

हमारा उपर्युक्त पंक्तियों को लिखने का यह अर्थ नहीं है कि हम अंग्रेज़ी को अपने देश के शिक्षणालयों में उचित रीति से पढ़ाए जाने के पक्षपाती नहीं हैं। हमारे देश के विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए और वह प्राप्त किया भी जा रहा है। हमारे देश के शिक्षणालयों में अंग्रेज़ी का अध्ययन बहुत कुछ पहले की तरह अभी तक चल रहा है। भेद इतना है कि अब भारतीय भाषाओं की उपेक्षा नहीं की जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में जो उनका उचित स्थान है वह उन्हें देने का प्रयत्न किया जा रहा है। हमें इस बात को भूलना नहीं चाहिए कि शिक्षा शास्त्रियों के सम्मुख आज अंग्रेज़ी के ज्ञान से भी बड़ा प्रश्न उपस्थित है और वह है भारतवर्ष की समस्त जनता को साक्षर और सुशिक्षित करना। अब शिक्षा को प्राप्त करना कुछ थोड़े-से लोगों का ही पूर्णाधिकार नहीं बन सकता और जब समस्त जनता को साक्षर और सुशिक्षित करने का प्रश्न उपस्थित है तो उसके सामने अंग्रेज़ी का अध्ययन इतना महत्वपूर्ण नहीं रह सकता। हम सर मिर्ज़ा इस्माइल से पूछते हैं कि यदि हमारे देश की समस्त जनता अपनी भाषाओं द्वारा साक्षर और सुशिक्षित हो तो वह किस सम्मान की भाजन होगी क्या वह सम्मान हमारे देश के कुछ व्यक्ति विदेशों में अच्छी-से-अच्छी अंग्रेज़ी में लिख पढ़ कर प्राप्त कर सकते हैं? आज शिक्षा के क्षेत्र से सर्वसाधारण जनता को निर्वासित नहीं किया जा सकता और जब समस्त जनता की शिक्षा का प्रश्न है तो हम भारतीय भाषाओं की किसी भी प्रकार उपेक्षा नहीं कर सकते। यदि हमारे देश की अल्प संख्या अंग्रेज़ी में ज्ञान प्राप्त कर ले तो भी अंग्रेज़ी में हमारा कार्य हो सकता है परन्तु जहाँ समस्त देश का प्रश्न है वहाँ भारतीय भाषाओं को मुख्यता देनी ही पड़ेगी। हमें समझ में नहीं आता कि सर मिर्ज़ा इस्माइल को अंग्रेज़ी का महत्व बतलाने के लिए उसकी हिन्दी के साथ इस प्रकार तुलना करने की क्या आवश्यकता थी?

The Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.,

Telephone : 4610
[Estd. MARCH 1915]
Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :
UNIVERSITY BRANCH
(ADIKMET)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMANI,
HYDERABAD-DECCAN.

Branch Office :
THUNGABHADRA PROJECT
(MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTRES and within the HYDERABAD STATE.
7. PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B. A., B. L.,
MANAGING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I. A. S.
PRESIDENT

फोन नं० ५५७४
तार : तिलस्मात

ज़िन्दा तिलस्मात

(ट्रेडमार्क 'ताज')

सर का दर्द, दांत का दर्द, पेट का दर्द, हैज़ा, मलेरिया, पेचिश, प्लेग, खांसी, सर्दी, जुक़ाम, बिच्छू का काटना एवं तमाम शारीरिक दर्दों का शर्तिया इलाज।

ज़िन्दा तिलस्मात की एक बोतल रखना, इसका अर्थ है
आप डाक्टर को अपने साथ रखते हैं।

रजिस्टर्ड नं० ५७७ ::: सी डी. टाल नं० १६८३

प्रत्येक स्थान पर बेचा जाता है
या

कारखाना ज़िन्दा तिलस्मात

पो० ज़िन्दा तिलस्मात
हैदराबाद-द. से मँगाइए।

हिन्दी के उत्तमोत्तम

तथा

उच्च श्रेणी

के

साहित्य

की

प्राप्ति के लिए एकमात्र

स्थान

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

नामपल्ली रोड ::: हैदराबाद द.

तार "हिन्दी

टेलीफ़ोन नं. ५४५०

प्रकाशक : प्रियबन्धु हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-द.

अजन्ता

22-48

[illegible]

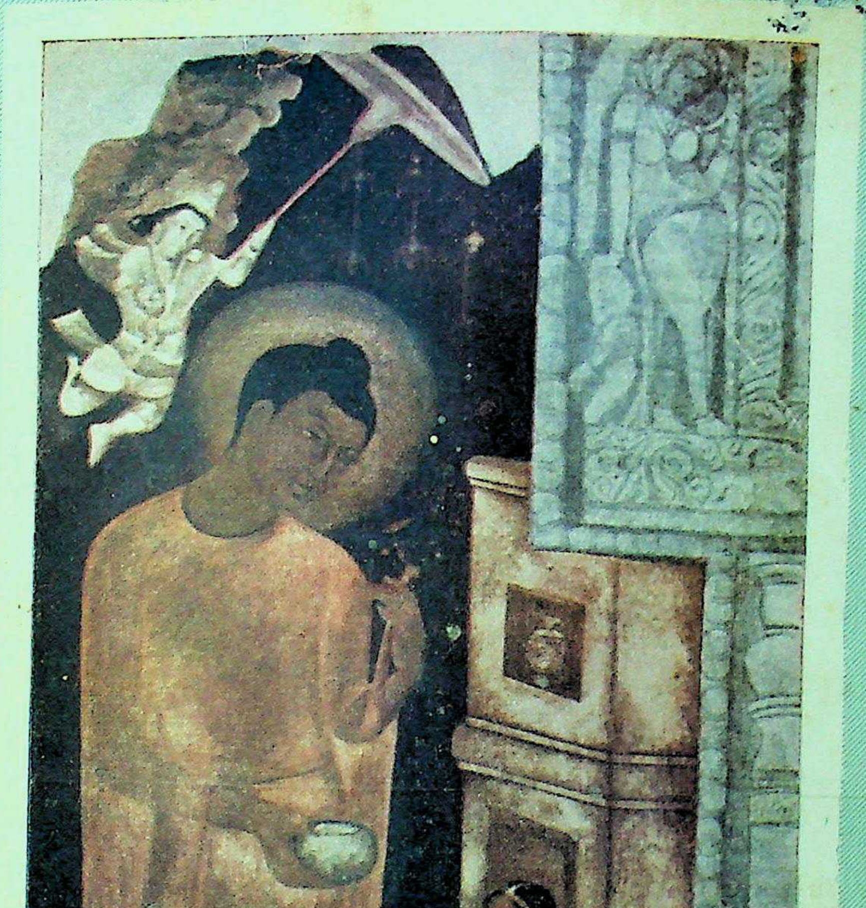

वर्ष ६

दिसम्बर १९५४

अंक १२

हैदराबाद आल्विन मेटल वर्क्स
लिमिटेड

सनतनगर, हैदराबाद द.—१८

सर्वोत्तम स्टील फ़र्नीचर के निर्माता

हर प्रकार का फ़र्नीचर

मकान, दफ़्तर, दूकान और अस्पतालों के लिए

ख़रीदिए !

राष्ट्र की सुन्दरतम और मज़बूत बसों के निर्माता

फोन नं० ५५७४ तार : तिलस्मात

ज़िन्दा तिलस्मात
(ट्रेडमार्क 'ताज')

सर का दर्द, दांत का दर्द, पेट का दर्द, हैज़ा, मलेरिया, पेचिश, प्लेग, खांसी, सर्दी, जुक़ाम, बिच्छू का काटना एवं तमाम शारीरिक दर्दों का शर्तिया इलाज।
ज़िन्दा तिलस्मात की एक बोतल रखना, इसका अर्थ है
आप डाक्टर को अपने साथ रखते हैं।

रजिस्टर्ड नं० ५७७ ::: सी डी. टाल नं० १६८२

प्रत्येक स्थान पर बेचा जाता है
या
कारखाना ज़िन्दा तिलस्मात
हैदराबाद-द. से मँगाइए।
पो० ज़िन्दा तिलस्मात
१६५

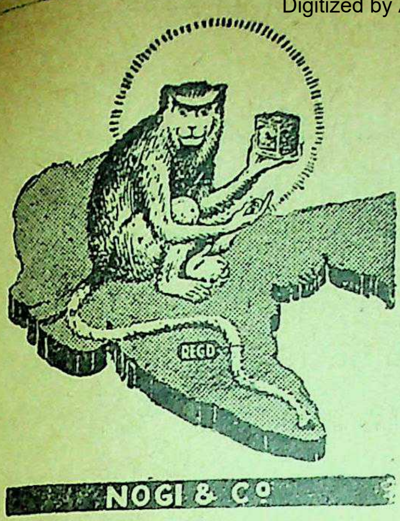

* मसूड़ों से खून और पीप निकलना

* मसूड़ों का सूजना

* दाँतों का दर्द करना

* मुह से बदबू आना

* दाँतों पर सदैव पीलापन रहना आदि दाँतों की संपूर्ण व्याधियाँ

बंदर छाप काला दंतमंजन

इसके प्रतिदिन के सेवन से हमेशा के लिए दूर होंगी। आज ही प्रयोग कीजिए।

सब जगह मिलता है

नोगी ॲण्ड कं०, बम्बई नं० ४

स्थापना १९११

हैदराबाद शाखा : सेंट्रल बैंक के सामने

FIRE ! *ACCIDENT !* *MARINE !*

THE HYDERABAD UNITED INSURANCE COMPANY

(LIMITED)

Sponsored by

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164.

ABID ROAD, HYDERABAD-Dn.

Telegram: ***HUICOL*** Telephone: ***5579***

Chairman
L. N. GUPTA Esqr. I. A. S.

General Manager
H. D. MEHTA Esqr.

Branches : BOMBAY, CALCUTTA, MADRAS, NIZAMABAD & MANCHIRIYAL.

'HIND'

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

१. दक्खिनी का पद्य और गद्य—ब्रज अवधी और राजस्थानी आदि की तरह दक्खिनी भी हिन्दी की एक विशेष शैली है। खड़ी बोली के लिए इस शैली का विशेष महत्व है। दक्खिनी में ही खुसरो और कबीर की परम्परा को आगे बढ़ाया गया। हिन्दी खड़ी बोली के गद्य का सबसे पुराना नमूना दक्खिनी में ही मिलता है। इस संकलन में लग-भग सौ लेखकों की अप्रकाशित रचनाओं का संग्रह है। यह संकलन १२ वीं शती से १९ वीं शती तक हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक नई कड़ी जोड़ने वाला है। पुस्तक की भूमिका भाषा-विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने लिखी है। संकलन-कर्त्ता हैं श्रीराम शर्मा। पृष्ठ संख्या लगभग छः सौ। मूल्य दस रुपए आठ आना।

२. पञ्चामृत (तेलुगु)—तेलुगु के पुराने पाँच प्रतिनिधि-महाकवियों का परिचय तथा उनकी उत्कृष्ट रचानाओं को नागरी लिपि में देकर अर्थ दिया गया है। इस पुस्तक द्वारा हिन्दी-भाषी लोग तेलुगु के काव्य का आनन्द ले सकते हैं। लेखक तथा अनुवादक श्री बालशौरि रेड्डी। मूल्य चार रुपए।

३. सबरस—गोलकुण्डा के विद्वान् लेखक वजही की दक्खिनी शैली में लिखी गई हिन्दी-गद्य की सबसे पहली और उत्कृष्ट रचना। शब्दों के लिए विस्तृत टिप्पणी और विवेचनापूर्ण भूमिका। वह पुस्तक आज से चार सौ वर्ष पहले लिखी गई थी। प्रस्तुतकर्त्ता—श्रीराम शर्मा। पृष्ठ संख्या लगभग तीन सौ, डेमी साईज। मूल्य पाँच रुपए।

४. कालिदास और उनकी कृतियाँ—उस्मानिया विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष आचार्य वंशीधर विद्यालंकार की अंग्रेजी में लिखी हुई विद्वत्तापूर्ण पुस्तक।

५. चाबुक—(कहानी-संग्रह) श्री विनायकराव विद्यालंकार की कहानियों का संकलन। प्रत्येक कहानी समाज की वर्तमान बुराइयों पर तीखा व्यंग्य लिए हुए है। इस कहानी-संग्रह ने हिन्दी के कथा-साहित्य की श्रीवृद्धि है। कहानियों में हैदराबाद और उसके आसपास का जीवन अंकित हुआ है। मूल्य पौने दो रुपए।

६. तुलसीदास—(नाटक) गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर लिखा गया नाटक। नाटक रंगमंच के उपयुक्त है।

व्यवस्थापक : **पुस्तक-विक्रय-विभाग, हिन्दी प्रचार**

अजन्ता

बाल-साहित्य-माला

बाल-साहित्य-माला के अन्तर्गत सभा ने निम्न छः पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अठपेजी क्राउन साइज, ३२ पृष्ठ, रंगीन सचित्र छपाई। आकर्षक मुख पृष्ठ। प्रत्येक का मूल्य आठ आना।

१. **बालपद** (७ से १० वर्ष तक के बालकों के लिए कविताएँ) कवि वंशीधर विद्यालंकार।

२. **गाँवों की कहानियाँ** (उत्तर भारत के गाँवों में कही जाने वाली आकर्षक कहानियाँ, लेखक-श्री रामनिरंजन पाँडे एम० ए०।

३. **दक्षिण के महापुरुष** (दक्षिण के ५ महापुरुषों का बालोपयोगी जीवन-चरित्र) लेखक श्री राजकिशोर पाँडे एम० ए०।

४. **बालकों की कहानियाँ** (बच्चों के लिए मनोरंजक कहानियाँ) लेखक-श्रीराम शर्मा।

५. **दो एकांकी** (७ से १० वर्ष तक की आयु के बालकों के खेलने के लिए प्रभावशाली दो एकांकी) श्री विमला लूथरा एम० ए०।

६. **हैदराबाद के ऐतिहासिक और कला-स्थल** (अजन्ता से लेकर हैदराबाद के चार मीनार तक का परिचय इस पुस्तक में मिलेगा) लेखक—कमला रानी संघी।

प्रेस में

१. दक्खिनी का व्याकरण	श्रीराम शर्मा
२. दक्खिनी का इतिहास	श्रीराम शर्मा
३. रहीम का अप्रकाशित काव्य : दम्पती विलास	
४. पंचामृत	(मराठी)
५. मराठी साहित्य का इतिहास	

सभी पुस्तकों पर उचित कमीशन दिया जाता है। पत्र-व्यवहार निम्न पते पर कीजिए।

सभा, नामपल्ली रोड, हैदराबाद—१

पुस्तकालय-साहित्य की अनुपम कृति

पुस्तकालय–संदेश का विशाल विशेषांक

प्रकाशन मास : मई १९५५
विशेषांक की एक प्रति का मूल्य १॥)

३१ मार्च १९५५ तक ३) भेज कर वार्षिक ग्राहक बननेवालों को यह विशेषांक मुफ़्त मिलेगा

प्रधान परामर्शदाता होंगे
पुस्तकालय विज्ञान के विश्वविख्यात विद्वान
डा० शि. रा. रंगनाथन्

आज ही ग्राहक बनिए अथवा १॥) भेज कर विशेषांक की प्रति रिज़र्व कराइए

वार्षिक मूल्य ३)

पता : पुस्तकालय-संदेश (मासिक) पो० पटना विश्वविद्यालय, पटना–५.

The Hyderabad State Co-operative Bank Ltd.,

Telephone : 4610 [Estd. MARCH 1915] Telegram : DOMINBANK

(Apex Bank for the Co-operative Movement in the State)

Sub Offices :	*Head Office :*	*Branch Office :*
UNIVERSITY BRANCH (ADIKMET)	SHAHRAH-E-OSMANI, HYDERABAD-DECCAN.	THUNGABHADRA PROJECT (MUNIRABAD)

1. CURRENT ACCOUNTS opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVINGS DEPOSITS accepted and interest allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest allowed at 1½% per annum.
4. FIXED DEPOSITS accepted. For Revised Rates apply to the Bank.
5. 3 YEAR CASH CERTIFICATES issued in denominations of Rs. 100, 500, 1,000 & 5,000 at 4% Compound Interest. Earlier encashment facilities offered. Particulars can be had from the Bank.
6. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTRES and within the HYDERABAD STATE.
7 PENSIONS, MANSABS, etc, collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.

SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULTS available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

Md. Ghulam Ghouse
M. A., B. SC., C. A. I. I. B.,
MANAGER.

A. H. Venkat Rao.
B A, B L
MANAGING DIRECTOR.

L. N. Gupta,
I A S
PRESIDENT

जीवन का सुख

स्वस्थ व्यक्तियों को ही मिलता है।

अपना कष्ट हमें लिखें।

बिना दवा के ही ठीक कर देंगे।

* * *

श्री कुशल भवन, नाभा (पेप्सू)

हिन्दी के प्रतिभाशाली लेखकों और प्रबुद्ध पाठकों की
अपनी पत्रिका

युग चेतना

वार्षिक मूल्य ६) अर्धवार्षिक ३॥)

सम्पादक : **डा० देवराज**, एम. ए. डी. फिल.,
लखनऊ विश्वविद्यालय

"युग चेतना" [मासिक] का प्रकाशन हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नए युग का प्रारम्भ करेगा।

इसका पहला अंक जनवरी, १९५५ में प्रकाशित होगा।
इसका प्रत्येक अंक स्थाई-साहित्य की कोटि का
अतएव संग्रहणीय होगा।

पता : युग चेतना कार्यालय, चौक, लखनऊ

जीवन साहित्य

आज हमारा देश और हमारा शासन खादी और ग्रामोद्योगों को पुनः प्रोत्साहन दे रहा है, क्योंकि वह अनुभव कर रहा है कि इन दोनों का देश के करोड़ों नर-नारियों की सुख-समृद्धि से अटूट सम्बन्ध है।

इन दोनों का विशद विवेचन
'जीवन साहित्य' के आगामी
"खादी और ग्रामोद्योग" विशेषांक
में पढ़िए
दर्जनों महत्वपूर्ण लेख, सुन्दर छपाई,
आकर्षक आवरण, १०० पृष्ठ।

यह विशेषांक जनवरी के अन्त में प्रकाशित होगा और उसके लिए "जीवन साहित्य" के ग्राहकों को अतिरिक्त कुछ नहीं देना पड़ेगा। पत्र का वार्षिक मूल्य केवल ४ रुपया है।

व्यवस्थापक
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

क्या आप अब तक 'आपका-स्वास्थ्य' के ग्राहक नहीं बने हैं?

'आपका स्वास्थ्य'
आपके और आपके परिवार के स्वास्थ्य का रक्षक है।

'आपका स्वास्थ्य'
आपका ज्ञान-वर्धन करता।
आपको सभ्य जगत की गतिविधि से परिचित कराता है।

'आपका स्वास्थ्य'
स्वस्थ मनोरंजन का भी साधन है।

'आपका स्वास्थ्य'
इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित हिन्दी में स्वास्थ्य सम्बन्धी एक मात्र प्रामाणिक पत्रिका है।

शीघ्र ही छः रुपए भेज कर ग्राहक बनिए—
वी. पी. भेजने का नियम नही है।

व्यवस्थापक-**आपका स्वास्थ्य**-बनारस १

राष्ट्रीय नव निर्माण का मासिक

'युगारम्भ'

सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक और नैतिक समीक्षा के अतिरिक्त लेख, कहानी एकांकी आदि।

सम्पादक

व्योहार राजेन्द्रसिंह

प्रकाशक

साहित्य प्रेस जबलपुर

वार्षिक मूल्य ६) * **एक प्रति ॥)**

सुरुचिपूर्ण, मनोरंजक, एवं शिक्षाप्रद
पाठ्य सामग्री के लिए
अवश्य पढ़िए

भाग्यलक्ष्मी

(पाक्षिक)

मूल्य : केवल चार आने

नमूने की प्रति केवल दो आने के डाक टिकट भेज कर मंगाइए।

: पता :

'भाग्यलक्ष्मी'—:: शिवपुरी ::—लखनऊ

नोट : 'भाग्यलक्ष्मी' में हिन्दी पहेलियों पर अधिकार पूर्ण एवं सारगर्भित टिप्पणियाँ भी रहती हैं।

प्रेरणा

राजस्थान का प्रमुख साहित्यिक-सांस्कृतिक
हिन्दी मासिक

विचारोत्तेनक लेख, भावपूर्ण कविताएँ, सुन्दर कहानियाँ एवं राजस्थानी कला और संस्कृति के परिचय के लिए

'प्रेरणा'
सर्वोत्तम साधन है

प्रधान सम्पादक : **देवनारायण व्यास**

१, मिनर्वा बिल्डिंग, जोधपुर

एक प्रति १) * **वार्षिक १)०**

इसे पढ़ना न भूलें!

पाठक परेशान—क्या पढ़ें?
एजेण्ट परेशान—क्या मँगाए?
व्यवसायी परेशान—कहाँ विज्ञापन दें?
एक निदान—'गल्प भारती'
'गल्प भारती'
'गल्प भारती'

स्वस्थ मनोरंजन और बौद्धिक उन्नति
के लिए

गल्पभारती

वार्षिक ४॥)

एक प्रति ।=) *

सं० काशीनाथ
८, इण्डियन मिरर स्ट्रीट
कलकत्ता १३

पूजा अंक अक्तूबर १९५४

सस्ता, सरल, आकर्षक और [illegible]
राजनीति, साहित्य और विज्ञान सम्बन्धी लेखों का समन्वय

नया पथ

सचित्र हिन्दी मासिक पत्र

* कठिन से कठिन विषय को जनता की भाषा में रखना ही नया पथ का उद्देश्य है।

* हिन्दी के चोटी के लेखकों, कवियों, कहानीकारों और विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग नया पंथ को हासिल है।

* देश-विदेश की राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर विचार-पूर्ण लेखों तथा कहानियों और कविताओं के अलावा इसके विशेष स्तम्भ हैं : मार्क्सवाद की पाठशाला, सिनेमा-जगत, पुस्तक परिचय, सरल विज्ञान, महीने का महत्व आदि।

चन्दा : वार्षिक ६)–छमाही ३)–एक प्रति ८ आना

नया पथ कार्यालय,
३१४, वल्लभभाई पटेल रोड, बम्बई ४.

'आर्थिक समीक्षा'

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के आर्थिक, राजनीतिक
अनुसंधान विभाग का पाक्षिक पत्र।

प्रधान सम्पादक : **श्री आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल**
सम्पादक : **श्री हर्षदेव मालवीय**

हिन्दी में अनूठा प्रयास :

आर्थिक विषयों पर विचारपूर्ण लेख
आर्थिक सूचनाओं से ओतप्रोत

भारत के विकास में रुचि रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए
अत्यावश्यक तथा पुस्तकालयों के लिए
अनिवार्य रूप से आवश्यक।

वार्षिक चन्दा : ५ रुपए * एक प्रति का ३॥ आना

व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग
अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी
७, जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली.

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

—: विश्व-ज्योति :—

: सम्पादक :
श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी. ए.
संचालक : **श्री विश्वेश्वरानन्द** वैदिक शोध संस्थान

विश्व हित की साधना के लिए :
(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय
(ग) बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा : ८ रुपए

१०) रु. वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, 'विश्व-ज्योति'
साधु आश्रम, होशयारपुर (पंजाब)

वार्षिक मूल्य ८ रु.　　　टेलीफोन नं. २५८७

सम्पदा

(उद्योग, व्यापार, और अर्थ-शास्त्र का उत्कृष्ट हिन्दी मासिक)

उद्योग, व्यापार, कृषि, बैंक, बीमा, श्रम, राष्ट्र-निर्माण आदि देश की प्रायः सभी आर्थिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए **'सम्पदा'** सबसे उपयोगी पत्र है।

'सम्पदा' के **योजना अंक** में पंचवर्षीय योजना पर ग्राफ़ों और चित्रों से प्रकाश डाला गया है—मूल्य १) रु.

'सम्पदा' का **भूमि सुधार अंक** भारत की भूमि समस्या एवं विविध चित्रों, ग्राफ़ों और तालिकाओं से युक्त अंक का मूल्य १) रु.

और अब प्रकाशित हो रहा है **वस्त्र उद्योग अंक** मूल्य १।) रु.

अभी से ग्राहक बनिए।

नमूने के लिए ।।।) आने के टिकट भेजिए।

मैनेजर 'सम्पदा', *अशोक प्रकाशन मन्दिर*
रोशन-आरा रोड—दिल्ली

'अजन्ता'

की

परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी; नई दिल्ली

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार
वित्त, वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री, हैदराबाद-द

डा० भगवतशरण उपाध्याय एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर
इन्स्टीट्यूट ऑफ़ एशियन स्टडीज़, हैदराबाद-द.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई. ए. एस.
शिक्षा-सचिव, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुखर्जी
प्रिन्सिपल, स्कूल ऑफ़ आर्ट, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य एम. ए., पी-एच. डी.
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक दैनिक 'मिलाप'

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान-शाला का मासिक पत्र
दर्शन और मनोविज्ञान की
आधुनिक प्रवृत्तियों पर
प्रकाश डालनेवाला
हिन्दी में अपने ढङ्ग का
अकेला पत्र

सम्पादक : **लालजीराम शुक्ल**

वार्षिक मूल्य : ४) रुपए।

मिलने का पता :

व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान'
६१/२५ सिद्धगिरि, बनारस

कल्पना

पढ़िए
जिसमें उच्चकोटि के साहित्यिकों और
कलाकारों की रचनाएँ आपको मिलेंगी।

कला-प्रसंग : विनोदबिहारी मुखर्जी

सांस्कृतिक टिप्पणियाँ : दिनकर कौशिक

साहित्यधारा : इस स्तंभ के अन्तर्गत पाठकों को, लेखकों आदि द्वारा उठाए गए साहित्यिक प्रश्न आदि हैं।

पुस्तक समालोचना : "कल्पना" अपनी निर्भीक समीक्षा के लिए प्रसिद्ध है।

वार्षिक मूल्य १२) * एक प्रति का १ रु)

पृष्ठ संख्या ८०

८३१, बेगम बाज़ार हैदराबाद

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६ दिसम्बर १९५४ अङ्क १२

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

संचालक

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

तार : हिन्दी

फोन : ५४५०

बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के
शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

अनुक्रम

शिशु
सीता १
कविर्मनीषी
उमाकान्त मालवीय २
गीत
चतुर्वेदी बन्धु ३
पर मुझे तुम याद आते हो सदा
डा० सुधीन्द्र ४
माडल
रामावतार चेतन ५
जीवन के इस सूने पथ पर
निशंक ७
गीत
बैजनाथ भारद्वाज ८
बंगला साहित्य में राम कथा
प्रबोध कुमार मजूमदार ९
आधुनिक जर्मन नाटक और रंगमंच
गौरीशंकर ओझा १६
सोवियत का महान् जन गायक सुलेमान स्तालस्की
महादेव साहा १८
राज्य की आदर्शवादी व्याख्या
रामनंदन प्रसाद सिंह २६
कला और शिक्षा
रामचन्द्र शुक्ल ३०
महा कौशल का ऐतिहासिक वैभव रत्नपुर
राजेन्द्रलाल गुप्त ३३
रवीन्द्र संगीत
ले० : शान्तिदेव घोष
अनु : राधेश्याम पुरोहित ३६
सूफ़ीमत और उसका हिन्दी कविता पर प्रभाव
डा. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ३८
अमृतराय का "बीज" भावी समाज रचना की रूपरेखा
नयन तारा सहगल ४४
राजा काम्भोज
बालशौरि रेड्डी ५४
प्रतीक
श्रीराम शर्मा 'राम' ५६
कला-चर्चा
विश्वनाथ मुखर्जी ६४
चिठ्ठी-पत्री ६६
उदयशङ्कर भट्ट, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
एन. रंगनाथ
नीर-क्षीर ६८
तमिल और उसका साहित्य : पूर्ण सोमसुन्दरम्
शिञ्जनी : (द्वितीय संस्करण) रामगोपाल 'रुद्र'
प्रकृति सन्देश : मुरारीलाल शर्मा 'सुरस' एम. ए.
ऋषि श्री अरविन्द की एक कविता का सारांश
अनु. नारायणदास, अशोकवन : गोकुलचन्द्र
शर्मा, आज का मानव जीवन और उसकी समस्याएँ : आचार्य रामेश्वर गुप्त, नीम-चकायन :
रामेश बेदी. ७४
सामयिक
स्पैण्डर की कविता, सोवियत रूस का लेखक
फ़रण्ड प्रेज़ीडेण्ट हो ची मिन्ह ७८
सम्पादकीय
वंशीधर विद्यालंकार

चित्र

रंगोली : चित्रकार : श्रीयुत एच. ए. गाडे, बम्बई
बलीवर्द : चित्रकार : श्रीयुत एच. ए. गाडे, बम्बई

वार्षिक मूल्य ६) रु०

एक अङ्क का १) रु०

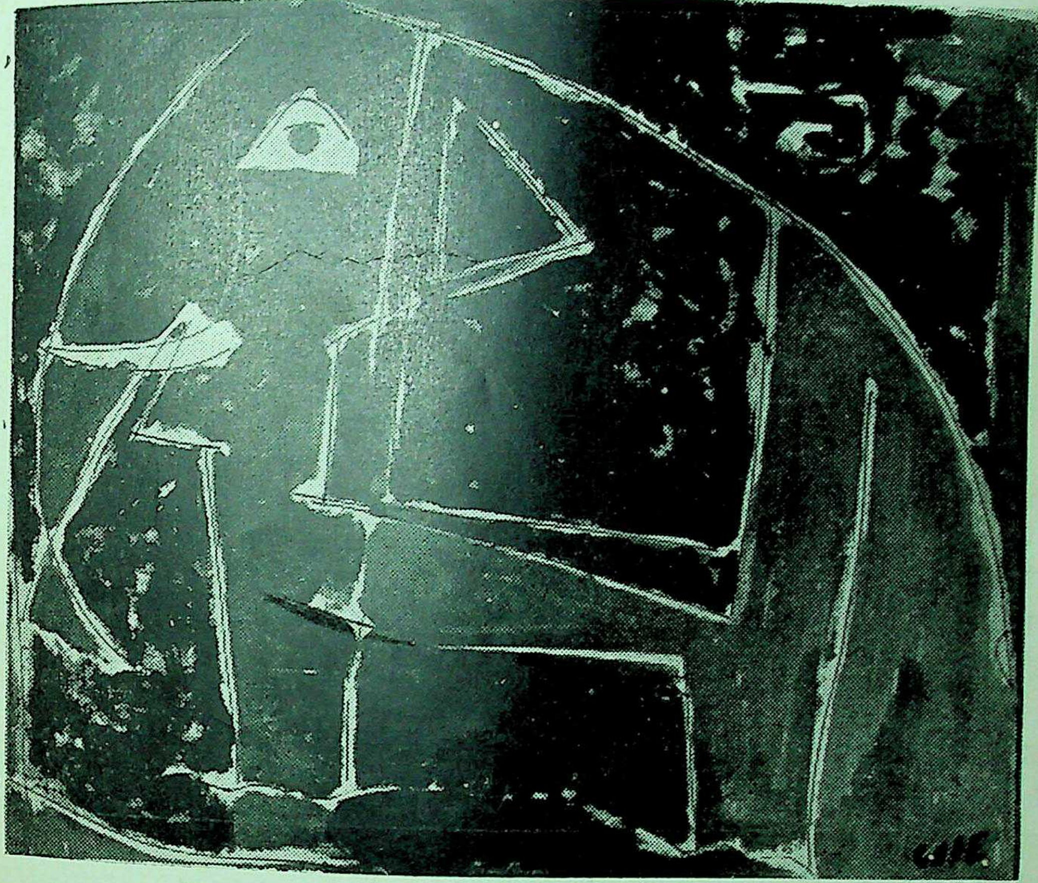

रंगोली

चित्रकार : श्रीयुत एच. ए. गाडे
बम्बई

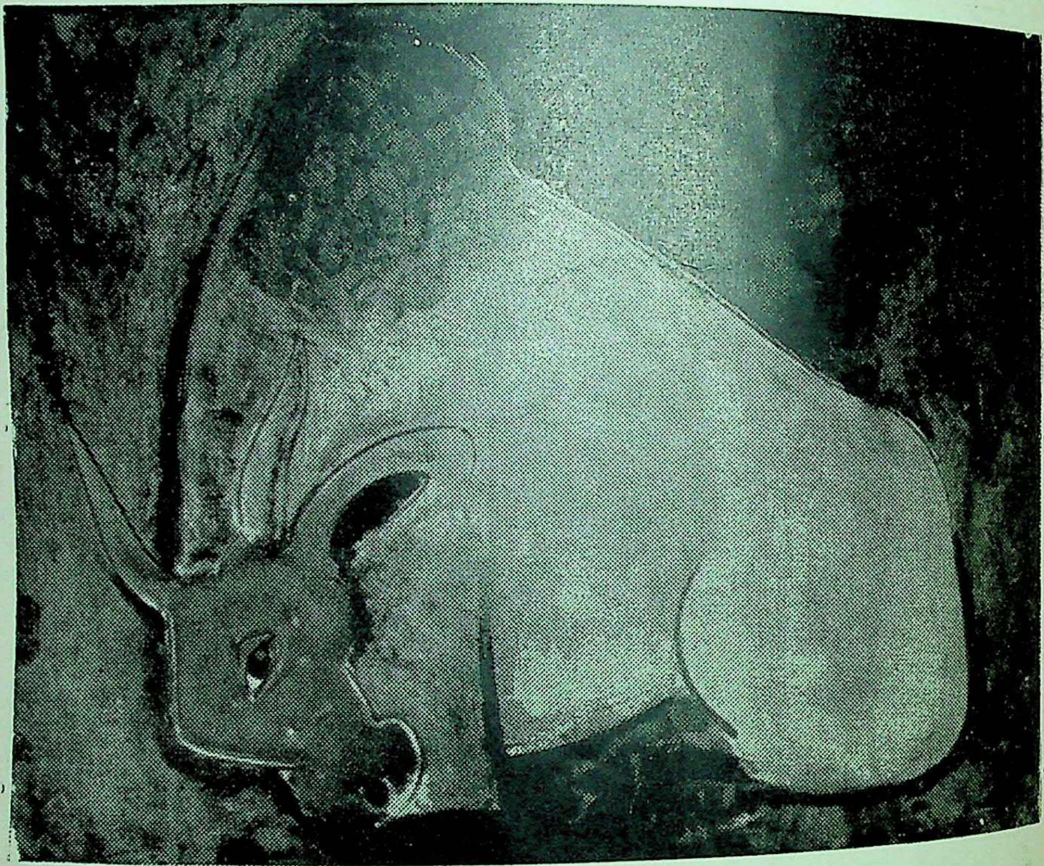

बलीवर्द

चित्रकार : श्रीयुत एच. ए. गाडे
बम्बई

अजन्ता

वर्ष ६ दिसम्बर अङ्क १२

शिशु

कैसे नारी का ममतामय, हृदय चरम सुख पाता
यदि आधार न उसका बन कर, शिशु मुसकाता आता

जीवन मरु के नीरस पथ पर कैसे नारी चलती?
शिशु की प्यार भरी चितवन यदि नहीं सुधा रस भरती

अम्मा क्यों रोती हो? लो यह, देखो सुग्गा प्यारा
इन शब्दों में खो जाती है माँ की आँसू धारा

सचमुच स्वर्ग शून्य होगा, यदि बच्चे वहाँ न होंगे
अथवा स्वर्ग वहाँ हो कैसे, बच्चे जहाँ न होंगे

६, दरियागंज,
दिल्ली

—सीता

कविर्मनीषी......?

एक लहर पर बुद बुद करते चार बुलबुले
बोले कवि से, "हमें सीख दो चिर जीवन की
हम भी जीने को प्यासे हैं, देख न पाए
मेंहदी रची सलोनी झाँकी मधु यौवन की

हम सुनते कवि स्वयं ब्रह्म है नई सृष्टि का
वह मधु निर्मित नए स्वर्ग का निर्माता है
उसने नश्वरता को भी अमरत्व दे दिया
वह मरघट पर बैठ सृजन को अपनाता है।"

एक हरित तृण ने सोचा कुछ रुक कर सुन ले
परम अभागे चार बुलबुलों का यह मातम
किन्तु कहीं से एक लहर ने उसे फेंक कर
दूर कर दिया और बह चला तिनका बेदम

कविर्मनीषी तौल रहा अपनी क्षमता को
नाप रहा है अपनी सीमाओं की दूरी
और पी गया प्राण बुलबुलों के झंझानिल
तोड़ न पाया कवि सीमाओं की मजबूरी

—उमाकान्त मालवीय

७६२, अहियापुर,
इलाहाबाद—३

माडल

व्यक्ति-चित्र निर्माण प्रदर्शन
का उपक्रम था
ईज़ल पर कनवास पट्टिका
पास मेज़ के तैल रंग के ट्यूब
तूलिकाएँ, प्लेट इत्यादि धरे थे
हट कर बाईं ओर ऊँचाई पर थोड़ी सी
'माडल' के बैठाने को स्टूल रखा था
इन सब के सम्मुख बैन्चों पर
नौजवान कुछ दर्शक कलाकार बैठे थे
विद्यालय के !

चित्रकार गुरु जी भी आए
दृष्टि डाल पैनी सारे दर्शक समूह पर
एक सुडौल, रूप वाली सुन्दर छात्रा से
किया निवेदन
'माडल' बन 'कृतार्थ करने को।'

नौजवान छात्रा जैसे झटके से जागी
एक अप्रत्याशित स्थिति से
डरी डरी सहमी सहमी सी
गड़ी जा रही सी धरती में
दुबकी दुबकी ठगी ठगी सी
बन्धन में आई हिरनी सी
असहज गति से पलक चलाती
छाया जैसी नीरव चल कर
जा बैठी ऊँचे स्टूल पर

और उसी के साथ साथ चल
सभी दर्शकों और प्रदर्शक जी की आँखें
अटक गईं उसके ही चेहरे पर एक टक से

उसकी सहेलियाँ साथी
मुसका कर उसको घूर रहे थे

और भार से लज्जा के
वह दबी जा रही थी बेचारी
निश्चय ही वह रोक न पाई
उनकी मुसकानों के उत्तर
ओठ काटती थी रह रह कर
पर ओठों की हरकत प्रायः
नहीं दबाने से दबती थी
चला यही छै सात मिनट
तब ओठों पर कुछ काबू आई

फिर भी पन्द्रह मिनटों तक
दृढ़ होकर ठहर नहीं वह पाई
लेकिन उसके पीछे
उसकी वह चञ्चल मुसकान रुक गई
पलकों के अतिरिक्त कलेवर अचल हो गया
नई परिस्थितियों की
जैसे आदी अपने आप हो गई
लगातार फिर वह घण्टे भर
बैठी वहाँ रही प्रतिमा सी
कुछ हलकी सी लिए उदासी

ऐसे ही, जब हम दुनिया के आगे आए
तो सकुचाए, बहुत अधिक झिझके, शरमाए
किन्तु बाद में
धीरे धीरे झेंप मिट गई
हलकी सी गम्भीर उदासी साथ टिक गई

—रामावतार चेतन

कालबादेवी रोड,
बम्बई—२

जीवन के इस सूने पथ पर

जीवन के इस सूने पथ पर,
ले अपना पागलपन चलता
डगमग पग होते हैं फिर भी
सुधि संबल पर स्वयं सँभलता

कहाँ छिपाऊँ मद-होशी को
पी कर रूप-सुधा मनमानी ?
मेरी क्षण भर की खामोशी भी
बनती मेरी नादानी

एक एक जल बिन्दु नयन का
लेकर प्यास ढुलक जाता है
आज मुझे तट की लहरों में ही
मंझधार नज़र आता है

कौन न देगा वार हृदय को
रूप जहाँ पर मुसकाता हो ?
और जहाँ पर तुम्हें खोजने में
मानव खुद खो जाता हो

पा कर तुम्हें भूल जाता हूँ
प्रिय कैसा व्यवहार करूँ मैं
अपनी बेहोशी रोकूँ, या
तुमको जी भर प्यार करूँ मैं

तुम्हें मनाने में मेरे—
उर के अरमान बिखर जाते हैं
मेरे आकुल भाव हृदय के
तुम तक कहाँ पहुँच पाते हैं ?

कैसे मानूँ बात किसी की
जब दुनिया करती मनमानी
अपनी ही आवाज़ न मुझ से
जाती जीवन में पहचानी

हे मेरे स्वप्नों के स्वामी !
सम्मुख आज सत्य बन जाओ
अपने में लय करो मुझे, या
मुझ में ही तुम लय हो जाओ

कान्यकुब्ज कालेज,
लखनऊ

—निशंक

गीत

तुम्हारे रूप के शशि पर हुआ शिशु प्राण का पागल
कहो मैं दोष किसको दूँ

कलानिधि के इशारे से जलधि के प्राण खिल जाते
निशा के एक चुम्बन से गगन के गान खिल जाते
किरण के स्पर्श भर से कंज के अरमान खिल जाते
तुम्हारी मुस्कराहट में खिले यदि प्राण के पाटल
कहो मैं दोष किसको दूँ

धरा के श्वास अम्बर को क्षितिज पर खींच लाते हैं
तरंगों के तरल रुनझुन किनारों को बुलाते हैं
शिखा के यान पर दीपक पतंगों को झुलाते हैं
लुभाते प्राण के शिखि को तुम्हारे नैन के बादल
कहो मैं दोष किसको दूँ

तुम्हारे बैन जिनमें मधुकरी का सा मधुर गुंजन
तुम्हारे नैन जिनमें नरगिसों की पाँख-सी सिहरन
कली-सा तन, किरण-सा मन कि विद्युत-सा अजर यौवन
तुम्हारी गोद में विश्वास ने यदि पा लिया सम्बल
कहो मैं दोष किस को दूँ

नं ३, न्यू कैंणट रोड,
देहरादून

—कैलाश भारद्वाज

बंगला-साहित्य में रामकथा

भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य में राम की कथा एक भव्य सांस्कृतिक प्रतिष्ठान के रूप में ग्रहण की गई है। हिन्दी साहित्य में रामचरितमानस की प्रतिष्ठा जिस प्रकार से साधारण जीवन में निहित है उसी प्रकार से अन्य भाषाओं में भी प्रतिभाओं ने इस कथा से जनता के हृदय को प्लावित और विकसित किया है। वाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण का अनुवाद सभी आधुनिक भाषाओं में हो सका है जिससे रामकथा और भी लोकप्रिय हुई है।

बंगला साहित्य में कृत्तिवास ओझा द्वारा रची गई रामायण का वही स्थान है जो हिन्दी साहित्य में तुलसी के रामचरितमानस का है। ठीक उसी प्रकार से लगभग साढ़े पाँच सौ वर्षों से बंगाल के साहित्य प्रेमियों को ऊँचे आदर्शों की ओर उन्मुख होने और उनकी भावना को रसमय बनाने का प्रयास किया है।

बंगला साहित्य में अनेक प्रतिभाओं ने रामकथा का प्रतिपादन किया है जिसमें कविचन्द्र, रामगोविन्द दास उर्फ हनुमन्तदास, महानन्द चक्रवर्त्ती, भवानीशंकर वन्द्य, भिक्षु रामचन्द्र, जगतराम, रामप्रसाद वन्द्य, "द्विज" भवानी नाथ, "द्विज" सीतासुत, कृष्णदास, कैलास बसु, शिवचन्द्र सेन, फ़कीर राम, रामानन्द घोष इत्यादि अठारहवीं शताब्दी के प्रमुख राम-कथा रचयिताओं में हैं फिर भी इन सबके बीच में पन्द्रहवीं शताब्दी के कृत्तिवास की रचना अधिक लोकप्रिय हुई है।

उस समय ब्राह्मणों के आधिपत्य में संस्कृत में काव्य की रचना ही श्रेय और भाषा में रचना हेय समझी जाती थी। गौडेश्वर की सभा में जयदेव के 'गीतगोविन्द' की ललित संस्कृत पदावली की आवृत्ति या नैषधादि काव्य के अलंकार रहस्य या दर्शन की सूक्ष्म तथा जटिल समस्याओं को सुलझाने में पंडित और कवि लोग लगे हुए थे। साहित्य की भाषा जनता की भाषा से बहुत दूर हो गई थी।

इसलिए जब बंग देश की विजय के उपरान्त वहाँ के मुसलमान शासकों ने यह देखा कि हिन्दू समाज पर 'महाभारत' और 'रामायण' का असामान्य प्रभाव है तब उन्होंने उन्हें भाषा में अनुवाद करवाने का बीड़ा उठा लिया और उन्हीं के उत्साह के कारण बहुत से "हिन्दू धर्मशास्त्र" बंगला में अनूदित हो सके।, उसके बाद भाषा में रचना लोकप्रिय होती गई और उसकी परम्परा की स्थापना भी हो गई। गौंडेश्वर नसीर खाँ सन् १३२५ ई० तक राज्य करते रहे। इन्होंने 'महाभारत' के अनुवाद का संकलन कराया था। इसकी प्रशंसा कवि विद्यापति तक ने की है।

कृत्तिवास ने भी गौंडेश्वर के आदेश से 'रामायण' का अनुवाद बंगला काव्य में किया परन्तु यह प्रश्न अब भी विवादास्पद है कि वह गौंडेश्वर हिन्दू था या मुसलमान क्योंकि बंगला साहित्य के इतिहास लेखक डा० दीनेशचन्द्र सेन अनुमान करते हैं कि वे मुसलमान थे और डा० सुकुमार सेन ऐसा अनुमान करते हैं कि वे हिन्दू थे।* अपने वर्णनों में कहीं भी कृत्तिवास ने यह उल्लेख नहीं किया है कि गौडेश्वर हिन्दू थे या मुसलमान।

कृत्तिवास ओझा का जन्म भागीरथी तटवर्ती फुलियाँ गाँव में सन् १४३३ ई० के माघ पंचमी के दिन हुआ था। बारह साल की उम्र में वे बड़ी गंगा यानी पद्मा नदी के तट पर विद्याभ्यास के लिए गए। वहाँ पर विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन के उपरान्त वे बंगाल की राजधानी गौड़ गए। राजा का प्रसाद न मिलने पर किसी भी पंडित का समादर नहीं होता था। इसलिए राजमहल में पहुँच कर द्वारपाल के हाथ उन्होंने स्वरचित पाँच श्लोक भेज दिए। राजा इस समय पात्रमित्र सभासदों के साथ राजमहल के प्रांगण में धूप का सेवन कर रहे थे। श्लोक पढ़ कर वे मुग्ध हो गए और उन्होंने कृत्तिवास को बुला भेजा। राजा के सामने पहुँच कर कृत्तिवास ने उसी समय सात श्लोकों की रचना कर राजा को आशीर्वाद भी दिया और अभिवादन भी किया। कृत्तिवास के पांडित्य और कवित्व से मुग्ध होकर राजा ने विधिपूर्वक उनकी संवर्धना की। सभासदों ने कृत्तिवास को उपदेश दियो कि

---

* पृ० ११६ बंगभाषा ओ साहित्य–डा० दीनेशचन्द्र सेन। पृ० ८ बांगला साहित्येर कथा–डा० सुकुमार सेन।

पुरस्कार माँग ले पर वे ब्राह्मण पंडित होकर इतनी आसानी से कैसे दान ले लेते? उन्होंने गर्व से 'स्वर्णगामी' के पुरस्कार का प्रत्याख्यान करते हुए उत्तर दिया कि वे किसी का दान ग्रहण नहीं करते हैं। सिर्फ़ गौरव को स्वीकार करते हैं। उनके निर्लोभ आचरण से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें बंगला भाषा में रामायण काव्य रचना करने के लिए अनुरोध किया। गौडेश्वर का आदेश पाकर कृत्तिवास ने सात खण्डों में 'रामायण-पांचाली' की रचना की।

आज जिस रामायण को कृत्तिवास रामायण मान कर जनता पढ़ती है उसकी भाषा को देखने से पता चलता है कि वह भाषा पन्द्रहवीं शताब्दी की नहीं है बल्कि आधुनिक है। मूल रामायण की कथावस्तु से कहीं कहीं कुछ भिन्न कथावस्तु का दर्शन कर यह सन्देह होने लगता है कि क्या कृत्तिवास जैसे शास्त्रज्ञ पंडित अनुवाद कार्य में वाल्मीकि की सीमा का अतिक्रम कर गए थे?

कृत्तिवास की 'रामायण' में विभिन्न आख्यानों में और उनमें प्रयोग किए हुए उपमान और उपमेयों की विवेचना करने पर हम देखते हैं कि उन्होंने जैमिनी भारत, अध्यात्म रामायण, श्रीमद्भागवत, उत्तर रामचरित, महावीर चरित, रघुवंश और विभिन्न पुराण और उपपुराणों से उपादानों को संग्रह कर अपने 'रामायण' में उनका प्रयोग किया है।

त्रिपुरा, श्रीहट्ट, नोआखाली इत्यादि जगहों पर जो कृत्तिवास-रामायण मिली हैं उनमें वीरबाहु, तरणीसेन इत्यादि का युद्ध, राक्षसों के द्वारा युद्ध क्षेत्र में श्री रामचन्द्र का स्तव पाठ करना और श्रीराम द्वारा चंडी की पूजा इत्यादि मूल ग्रन्थ से बाहर के विषय दिखाई नहीं पड़ते। तरणीसेन वध का सुमधुर और करुण उपाख्यान, सौ नीलकमलों में एक खो जाने पर श्री रामचन्द्र द्वारा अपने कमलनेत्र का उत्सर्ग कर चंडी की पूजा का आयोजन करना इत्यादि घटनाएँ पूर्व बंग में प्राप्त कृत्तिवास रामायण में नहीं हैं। इस कारण से ये कथाएँ उस समय के शाक्त और वैष्णवों के द्वन्द्व से निकली हुई मालूम होती हैं। वैष्णवों ने राक्षस वीरों के द्वारा राम का स्तवपाठ कराया है और शाक्तों ने राम द्वारा चंडीपूजा करा कर उसका बदला लिया है। इसी तरह से विभिन्न दलों की चेष्टा से कृत्तिवास के मूल अनुवाद का रूप ऐसा हो गया। हालाँ कि इस कारण उसे विकृत नहीं कहा जा सकता क्योंकि बंगदेश के तात्कालिक जीवन की मूल-नीति का उल्लंघन नहीं किया गया है। वैष्णवी नीति उस समय बंगाल के समाज में प्रचलित थी और उसी वैष्णवी नीति द्वारा ही 'रामायण' और 'महाभारत' का अनुवाद प्रभावित हुआ था। कृत्तिवास की रामायण पर यह प्रभाव कहाँ तक था यह देखना आवश्यक है।

रावण पुत्र वीरबाहु राम से युद्ध करने के लिए लड़ाई के मैदान में आकर :

"धरणी लुटाए रहे जुड़ि दुई कर।
अकिंचने कर दया राम रघुवर॥"

अर्थात् दोनों हाथ जोड़ते हुए भूमि पर लोट कर वीरबाहु ने कहा : "हे राम रघुवर इस अकिंचन पर दया कीजिए।" कविगुरु वाल्मीकि ने कहीं पर भी राक्षस वीर की इस दीन वैष्णव के रूप में कल्पना नहीं की थी। विभीषण के सिवा मेघनाद-पत्नी सुलोचना को ही राम का स्तव करते तुलसी के मानस में पाते हैं—सो भी क्षेपक में पर कृत्तिवास रामायण में तो वीरबाहु तरणीसेन इत्यादि राक्षस वीर रणक्षेत्र में युद्ध करने के लिए आकर पहले राम का स्तवपाठ करते हैं और उसके बाद अस्त्र संभालते दिखाई पड़ते हैं। तरणीसेन (विभीषण का पुत्र) युद्धक्षेत्र में आकर राम के शरीर में विश्वरूप का दर्शन करता है। जब युद्धक्षेत्र में वह राम का स्तवपाठ करता है तब राम भी अपने भक्त के ऊपर कैसे अस्त्र चलाएँ सोच कर सीता का उद्धार किए बिना ही अयोध्या लौट जाने की बातें करते हैं लेकिन तरणी को रामचन्द्र जी की हाथों से मरने की साध है—वह राम को युद्ध से विमुख देख कर उन्हें कटु शब्दों से उत्तेजित कर युद्ध में आह्वान करता है और अन्त में विभीषण के उपदेश से राम जब ब्रह्मास्त्र प्रयोग कर उसका मुंड काट देते हैं तब उसका कटा मुंड भी राम-राम नाम उच्चारण करने लगता है।

वाल्मीकि रामायण के राम कृत्तिवास रामायण में भक्त के आराध्य अवतार के रूप में आते हैं—वे वंशीधारी कृष्ण के समान हैं, उनके नयन प्रेमाश्रुपूर्ण हैं—भक्त की आँखों में आँसू देख कर वे तीर को तूणीर में रख कर रो पड़ते हैं। वाल्मीकि के राम कठिन भुजावाले तथा राक्षसों के लिए कराल मूर्त्तिवाले हैं और कृत्तिवास के राम कोमल शरीर वाले हैं किन्तु राम और लक्ष्मण के

भ्रातृप्रेम, कौशल्या के शोक, सीता के गृहवधू के लजीले मुखड़े के वर्णन में कृत्तिवास ने अनुवाद में मूल से अधिक सुन्दर रूप का वर्णन किया है। भक्तों के प्रति जिस वैष्णवी कोमलता और करुणा हम कृत्तिवास के राम में पाते हैं, भविष्य में वैष्णव पदावलियों में उसी की पूर्णता पाई गई है।

कृत्तिवास की रामायण में दो उल्लेख योग्य चरित्रों का भी हम दर्शन करते हैं जिनकी तुलना हम पश्चिम की पौराणिक कथाओं के चरित्र में पाते हैं—और संस्कृत काव्यों में कहीं पर उनका उल्लेख नहीं मिलता है। एक है भस्मलोचन का चरित्र। यह एक राक्षस योद्धा था जिसने अपनी कठोर तपस्या से ब्रह्मा को तुष्ट कर उनसे यह वर लिया था कि वह जिसकी ओर देखेगा वही भस्म हो जाएगा। भस्माक्ष के युद्ध स्थल पर चमड़े का चश्मा पहन कर आते देख कर विभीषण ने राम को यह उपदेश दिया कि वे दर्पण दिखा कर उसका विनाश करें। राम ने दर्पण बाण का प्रयोग किया और भस्माक्ष अपनी प्रतिच्छाया को देख कर स्वयं जलकर मर गया। गैलिक देवता (Balor) बैलर के साथ भस्मलोचन का बड़ा आश्चर्यजनक सादृश्य है। वह भी हमेशा आँखों को ऐनक से ढक कर रखता था और लड़ाई के मैदान में शत्रुओं के सामने वह ऐनक खोल कर उनकी ओर देखता था। और एक चरित्र महिरावण का है जो अपने मंत्रबल से सभी मनुष्यों को निद्रामग्न कर सकता था और गैलिक उपाख्यान में राजा लाड (King Ludd) के राज्य में एक चोर में यह गुण वर्त्तमान था। इन पौराणिक उपाख्यानों में ये समानता इस बात की द्योतक है कि दोनों देशों में इन उपाख्यानों का आदान प्रदान उस युग में हो रहा था।

तुलसीदास ने 'रामायण' की रचना ऐसे समय में की थी जब हिन्दू समाज मुसल्मान शासकों के आधीन अपने धर्म के आदर्श से च्युत होने लगे थे और उन्होंने परम पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र के जीवन का चित्रण लोक धर्म की प्रतिष्ठा की ओर दृष्टि रख कर किया। उनके सम-सामयिक कृत्तिवास का भी उद्देश्य तदनुरूप था। उन्होंने अपनी रामायण के किष्किन्धा काण्ड में लिखा है :

"श्रीरामेर आगे षाटि हाजार वत्सर ।
अनागत वाल्मीकि रचिल कविवर ॥
वाल्मीकि वन्दिया कृत्तिवास विचक्षण ।
लोकत्राण हेतु रचिलेन रामायण ॥"

श्रीराम से साठ हज़ार साल पूर्व कविवर वाल्मीकि ने उस अनागत की जीवन कथा की रचना की थी। वाल्मीकि की वन्दना कर विचक्षण कृत्तिवास ने लोकत्राण के हेतु रामायण की रचना की।

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि कृत्तिवास ने किस महान् उद्देश्य को अपना आदर्श मानकर रामायण की रचना की थी।

कृत्तिवास ने रामायण के अतिरिक्त और तीन ग्रन्थों की रचना की थी—वे इतने प्रसिद्ध और लोकप्रिय नहीं हुए। उनका नाम है—शिवरामेर युद्ध। योगाद्यार वन्दना, रुक्मांगद राजार एकादशी।

बंगाल की प्राचीन राम-कथाओं में कृत्तिवास के बाद 'अनन्त रामायण' का स्थान है। यह वृक्ष के छाल (वल्कल) पर लिखी गई थी और इसकी भाषा भी प्राचीन है। लेखक का निवास स्थान या उस सम्बन्ध का कोई तथ्य उनकी पांडुलिपि में नहीं मिलता है। कुछ शब्दों के प्रयोग से वे श्रीहट्ट के निवासी मालूम पड़ते हैं। पर उनकी रामायण की भाषा में कहीं कहीं पर हिन्दी शब्दों के प्रयोग से यह अनुमान किया जाता है कि वह बंगाल के पश्चिमोत्तर सीमान्त के निवासी थे। कुछ हिन्दी शब्द जो कि बंगला में प्रयोग नहीं किए जाते और अनन्त रामायण में मिले हैं, ऐसे हैं : और, कैलोहू (किया), भैल (हुआ), बड़ा, हुआ, न जीनो (नहीं जीएँगे) पिंधई (पहनते) इत्यादि। ये शब्द कुछ मैथिली भोजपुरी क़िस्म के हैं। अनन्त-रामायण की भाषा बहुत ही जटिल है। अनन्त कवि ने अपने को ग्रन्थ में मूर्ख 'और' महामूढ़' कहकर अपना विनय प्रकाश किया है किन्तु ग्रन्थ को पढ़ने पर यह ज्ञात होता है कि वे संस्कृत शास्त्र में विशेष पंडित थे और वाल्मीकि के अतिरिक्त आध्यात्म रामायण और महानाटक की छाया सी उनकी 'अनन्त-रामायण' पर पड़ी है।

कृत्तिवास और अनन्त के बाद राम-कथा रचनेवालों में हम चन्द्रावती नामक एक महिला को पाते हैं जिनकी रचना में हमें मौलिकता और कवित्व शक्ति का दर्शन होता है। यह रामायण बहुत से गीतों की समष्टि है। मैमनसिंह ज़िले की औरतें विवाह-वासर वर-अभिषेक

तथा अन्यान्य मंगल उत्सवों में रामायण के इन गीतों को गाती हैं। इन्होंने रामायण के अतिरिक्त और गीत-पुस्तकों की रचना भी की थी—जो समान रूप से मैमन सिंह जिले में लोकप्रिय हैं। प्राचीन बंग-साहित्य में चन्द्रावती का स्थान महत्वपूर्ण है।

इनका जीवन भी वियोगान्त काव्य सा करुण रहा। सन् १५५० में इन्होंने जन्मग्रहण किया था। इनके पिता वंशीदास सुकवि थे—और प्रसिद्ध 'मनसा-मंगल' के रचयिता थे। शैशव में चन्द्रावती जिस पाठशाला में पढ़ती थीं वहीं पर जयचन्द्र नाम का एक ब्राह्मण बालक भी पढ़ता था। दोनों एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हुए और बाद में उन दोनों का विवाह ठीक हुआ। लेकिन इसी बीच एक मुसलमान युवती के प्रेम में पड़ कर चंचल मति जयचन्द्र ने इस्लाम धर्म को वरण कर लिया। चन्द्रावती पर यह संवाद वज्र के समान गिरा लेकिन मूर्त्तिमयी शुचिता चन्द्रावती ने इसके बाद शादी नहीं की—हालाँ कि योग्य वर की कोई कमी नहीं थी। कई साल के बाद जयचन्द्र ने अनुशोचना भरे शब्दों में एक पत्र लिखकर चन्द्रावती से मिलने की अनुमति माँगी। इस पत्र का उत्तर भेजा गया पर मिलने की अनुमति नहीं दी गई। एक दिन चन्द्रावती शिव मन्दिर में थीं और जयचन्द्र उन्मत्त सा उस गाँव में आकर मन्दिर का दरवाज़ा खोलने के लिए उससे विनति करता रहा लेकिन चन्द्रावती ने दरवाज़ा नहीं खोला। शिव मन्दिर के प्रांगण में एक लाल रंग का सन्ध्यामालती फूल खिला हुआ था—उसके रस से मन्दिर की दीवाल पर एक कविता लिखकर जयचन्द्र ने फुलेश्वरी नदी में कूद कर आत्मविसर्जन किया। चन्द्रावती ने संयम व्रत रख कर जीवन काटा था—उन्होंने उस व्रत को तोड़कर अपने प्रियतम को मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया। किन्तु उनकी आत्महत्या के कारण शोक का प्रहार वह सह नहीं सकीं; एक दिन शिवजी की आराधना में बैठ कर वह बेहोश हो गई—और फिर होश में न आई। वह शिवमंदिर अब भी जीर्ण अवस्था में वर्तमान है और उस प्रान्त में चन्द्रावती की प्रेम कहानी आज भी किसी ने नहीं भुला दी है।

असमय में मृत्यु होने के कारण चन्द्रावती की रामायण असम्पूर्ण रही। इसमें सीता वनवास तक का वर्णन है।

इस रामायण की भाषा प्रवाहमयी, कवित्वमयी और संगीतमयी है। इसमें कुछ चरित्र ऐसे मिलते हैं जो कृत्तिवास या वाल्मीकि की रामायण में नहीं हैं—जैसे कैकेयी की कन्या कुकुआ जिसके षड्यन्त्र से सीता का वनवास हुआ।

द्विज मधुकंठ, द्विज दुर्गाराम, षष्टीवर और गंगादास (पिता और पुत्र) इन चारों ने भी सरल पद्य में रामायण की रचना की थी जो अब अप्राप्य हैं।

"लक्ष्मण-दिग्विजय" नामक ग्रन्थ के कवि भवानीदास ने किसी राजा जयचन्द्र की आज्ञा से इस ग्रन्थ की रचना की थी। इस 'लक्ष्मण-दिग्विजय' पुस्तक में ५००० श्लोक हैं और इसमें लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न द्वारा विभिन्न देशों पर विजय का वर्णन है। 'राम-स्वर्गारोहण' नाम से इनका और एक ग्रन्थ है।

पंचकोट के राजा रघुनाथ सिंह भूप के आदेश से जगतराम राय ने रामायण का अनुवाद किया था। यह रामायण सन् १७६० ई० में समाप्त हुई थी। इससे बीस साल पूर्व उन्होंने 'दुर्गापंच रात्रि' नामक एक काव्य की रचना की थी—इसमें रामचन्द्र द्वारा किष्किन्धा में दुर्गोत्सव का वर्णन किया गया है। दुर्गा षष्ठी, सप्तमी और अष्टमी के गीत इन्होंने स्वयं लिखे थे और नवमी दशमी के गीतों को इनके पुत्र रामप्रसाद ने लिखा था।

'सारदा-मंगल' नाम से शिवचन्द्र सेन ने एक रामायण की रचना की थी। श्री रामचन्द्र की दुर्गापूजा रामायण में सारदा की माहात्म्य ज्ञापिका है इसलिए उन्होंने अपनी रामायण का नाम 'सारदा-मंगल' रखा था।

नित्यानन्द नामक एक ब्राह्मण ने (जिसका नाम बाद में 'अद्भुताचार्य' पड़ा) भी एक रामायण की रचना की थी। कहा जाता है कि सात साल की उम्र में जब इनका यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं हुआ था तभी रामचन्द्र ने इनको स्वप्न में दर्शन देकर रामायण रचना करने की आज्ञा दी थी। वह स्वयं पढ़े लिखे नहीं थे, सिर्फ़ दैवशक्ति द्वारा ही उन्होंने रामायण का अनुवाद किया था—और इसलिए उन्हें अद्भुताचार्य की उपाधि मिली।

उनके द्वारा लिखी गई रामायण में एक नई और अजीब बात मिली है—इसमें सीता को काली माई का अवतार मान कर, वाल्मीकि की सीता से भिन्न एक सीता

१९५४

का चरित्र लाया गया है ।

इनकी रामायण कृत्तिवास के रामायण से भी बड़ी है और यह अनुमान लगाया जाता है कि १७ वीं शताब्दी के बिलकुल प्रारम्भ में ही लिखी गई थी ।

कवि चन्द्र ४६ ग्रन्थों के रचयिता थे और ये सभी ग्रन्थ रामायण, महाभारत और भागवत की कथावस्तु को लेकर ही रचे गए थे । रामायण से संबंधित जो खंडित ग्रन्थ मिले हैं, वे हैं—रामायण-लंकाकाण्ड खंडित, अंगद रायबार, रावणवध, अध्यात्म-रामायण खंडित, कुम्भकणर रायबार और लक्ष्मणेर शक्तिशेल ।

शङ्कर नामक कवि ने भी रामायण का संक्षिप्त अनुवाद बंगला में किया था जिसका सुन्दरकाण्ड तक प्राप्य है ।

लक्ष्मण वन्द्योपाध्याय ने अध्यात्म रामायण का बंगला में अनुवाद किया है ।

राममोहन की रामायण एक आधुनिक रचना है क्योंकि सन् १८३८ ई० में यह समाप्त हुई थी ऐसा प्रमाण मिला है । कहा जाता है कि पिता के आदेश से इन्होंने अपने घर पर राम-सीता के विग्रह की प्रतिष्ठा की थी और हनुमान के आदेश से जीवगण के कल्याण के लिए रामायण की रचना की ।

> "कृपा करि आदेश करिला हनुमान ।
> रामायण रचि कर जीवेर कल्याण ॥"

रघुनन्दन गोस्वामी ने 'राम-रसायन' नामक एक रामायण की रचना की थी जो कृत्तिवास के रामायण के बाद विशेषरूप से उल्लेख योग्य है । इनकी रचना भी प्राचीन नहीं है—आज से क़रीब डेढ़ सौ साल पहले उन्होंने इसकी रचना की थी । कवि ने वाल्मीकि का अनुसरण अधिकांश क्षेत्रों में किया है पर विशेष द्रष्टव्य यह है कि उन्होंने तुलसीदास के 'राम चरित मानस' से भी किसी किसी अंश को ग्रहण किया है । इनकी रचना में संस्कृत शब्दों की भरमार के कारण काव्य श्रुतिकटु हो गया है । इस काव्य में हिन्दी शब्दों का भी यत्र तत्र प्रयोग देखा गया है । पर इस काव्य के बाद बंगला साहित्य में हिन्दी का प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता ।

'राम रसायन' के उत्तरकाण्ड में सीता वर्जन, लक्ष्मण वर्जन, सीता का पाताल-प्रवेश इत्यादि करुणरसात्मक अंश छोड़ दिए गए हैं । इस बात से यह प्रमाणित होता है कि कवि वैष्णव धर्म से प्रभावित थे । जिन कारणों से चैतन्य-चरितामृत तथा चैतन्य भागवत में चैतन्य महाप्रभु का तिरोधान वर्णन नहीं किया गया है उन्हीं कारणों से 'राम-रसायन' में उत्तरकाण्ड के ये करुण अंश छोड़ दिए गए हैं ।

ऊपर लिखे हुए अनुवादों के अतिरिक्त द्विज दयाराम कृत 'तरणी-वध', फ़क़ीरराम कविभूषण कृत 'लंकाकाण्ड', भिकन शुल्क दास कृत 'अरण्यकाण्ड', द्विज तुलसी कृत 'रायबार', काशीनाथ कृत 'कालनेमीर रायबार इत्यादि और अन्यान्य बहुत से कवियों के रामायण के विच्छिन्न अंश मिले हैं ।

बुद्धदेव कृत 'रामलीला' का बंगाल रामकथा-साहित्य में विशेष स्थान है । बुद्धदेव का प्रकृत नाम रामानन्द घोष है जिन्होंने अपने को शूद्र कह कर परिचय दिया है और अपने को बारम्बार गौतम बुद्ध का अवतार कह कर गर्व के साथ घोषणा की है । इन्होंने अपने ग्रन्थ में अपने बारे में कुछ तथ्यों का प्रकाश किया है जिन्हें स्वर्गीय दीनेश चन्द्र महाशय ने यों लिखा है : (१) उनकी दानशीलता और कवित्व यश जगत् प्रसिद्ध है, (२) उनकी विराट् भक्त-मण्डली उनका आदेश पालन करने के लिए तैयार है, अरण्यकाण्ड के अन्त में उन्होंने लिखा है कि वे जराग्रस्त हैं और शायद रामायण को समाप्त नहीं कर पाएँगे, (४) मुसलमानों के हाथों से दारुब्रह्म का उद्धार कर सम्पूर्ण राज्य पर वह क़ब्जा करेंगे—और इसीलिए महाकाली की इच्छा से वह बुद्ध के द्वितीय अवतार के रूप में संसार में आविर्भूत हुए हैं; (५) वे स्वयं बुद्धदेव हैं—भूमण्डल में पापों की अधिकता देख कर अवतार लिए हैं; दारुब्रह्म को मुसलमानों के हाथों से मुक्ति देकर जिस रोज़ सिंहासन पर अभिषिक्त किया जाएगा उसी रोज उस विग्रह के सामने वे इस 'रामलीला' का पाठ करेंगे और इसीलिए वे इसकी रचना कर रहे हैं; (७) वैष्णवों और मुसलमानों को दमन करना ही उनका उद्देश्य है ।

यह ग्रन्थ खंडित मिला है । आदिकाण्ड और लङ्काकाण्ड के कुछ पन्ने नहीं मिले हैं । उत्तरकाण्ड शायद लिखा ही नहीं गया था । ग्रन्थ रचना का समय सन् १६६७ ई० के बाद ही अनुमान किया जाता है जब औरंगज़ेब के हुक्म से अकरम खाँ ने पुरी धाम पर आक्रमण कर जगन्नाथ की मूर्ति के दोनों नेत्र जो बहुमूल्य माणिक्य थे निकाल लिए और पुरी धाम के दो प्रधान

स्तम्भों को भी तोड़ डाला था।

इस रामायण से और स्टर्लिंग के उडिष्या के इतिहास से हमें यह पता चलता है कि वहाँ पर तार्ा तक महायान को मानने वाले बौद्ध धर्मावलम्बियों का ज़ोर था जिन्होंने वैष्णवों के हाथों से जगन्नाथ देव का मंदिर भी छीनने की कोशिश की थी। इस ग्रन्थ से यह भी पता चलता है कि सत्तरहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में बौद्ध शक्ति फिर से सिर ऊँचा करने का प्रयत्न कर रही थी।

रामानन्दी या बुद्धदेव कृत रामायण की रचना सरस तथा मनोरम है। आदिकाण्ड में उन्होंने कालिदास के 'रघुवंश' का अनुसरण विस्तार से किया है किन्तु इतनी सुन्दर रचना होने पर भी यह लोकप्रिय नहीं बन सकी क्योंकि बौद्ध धर्म की शिक्षा बंगाल में उस समय बुझने ही को थी।

सत्तरहवीं और अठ्ठारहवीं शताब्दी के उपरान्त रामकथा के लेखकों में माइकेल मधुसूदन दत्त ही एकमात्र उल्लेख योग्य कवि हैं जिन्होंने मेघनाद वध काव्य (सन् १८६१) की रचना कर बंगला साहित्य को एक अतुलनीय अलंकार से सज्जित किया।

यह बात सत्य है कि होमर, वर्जिल, दांते, तास्सो, मिल्टन इत्यादि विदेशी कवियों के आदर्श से अनुप्राणित होकर वे महाकाव्य रचना की ओर झुके थे किन्तु कथा-वस्तु उन्होंने अपने देश और धरती से ही ली। रामायण काव्य के असाधारण माधुर्य से मधुसूदन का कवि-हृदय भरा हुआ था। भारतवर्ष के सभी कवियों की प्रिय चरित्र सीता के बारे में यह वाक्य वे बार बार कह कर भी नहीं अघाते थे, "अनुक्षण मने मोर पड़े तव कथा, वैदेही।" अर्थात् हे वैदेही—हर क्षण तुम्हारी बात ही मुझे याद आती रहती है। या "के से मूढ़ भू भारते, वैदेही सुन्दरि, नाहि आर्द्रे मन यार तव कथा स्मरि, नित्यकान्ति कमलिनी तुमि भक्ति जले।" अर्थात् हे वैदेही सुन्दरी! ऐसा कौन सा मूर्ख इस भारत भूमि पर है जिसका मन तुम्हें याद कर करुणार्द्र न हो जाता हो। तुम भक्ति-जल में नित्यकान्ति कमलिनी सी हो।

बंगला साहित्य में 'मेघनाद-वध काव्य' प्रथम वीर रसात्मक काव्य था।

उन्नीसवीं शताब्दी में बंगला साहित्य में गद्य युग का आगमन हुआ। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बंगला गद्य साहित्य के जनक कहे जाते हैं—जिस तरह हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी। इन्होंने गद्य में 'सीतार वनवास' (सन् १८६०) नामक एक पुस्तक की रचना की। यह पुस्तक उस समय के बंगला गद्य-रचनाओं में एक आदर्श मानी जाती थी।

बंगाल नाटक-साहित्य के प्रारम्भ में नाटककारों ने या तो पौराणिक उपाख्यानों को लिया जिसमें रामायण से ज़्यादा महाभारत ही उन्हें उपयोगी सिद्ध हुआ, या तो शेक्सपीयर के अंग्रेज़ी नाटकों को ही अपना आदर्श मान कर आगे बढ़े।

पौराणिक नाटकों में भक्ति रस का पुट देकर मनोमोहन वसु (१८३१ से १९२१) ने बंगाली नाटकों में जान डाल दी। उनकी प्रथम नाट्य-रचना 'रामाभिषेक नाटक' (१८७७) विशेष रूप से प्रशंसित हुआ था।

बंगला साहित्य में प्रथम महिला नाट्यकार कामिनी सुन्दरी देवी ने 'रामेर वनवास' नामक नाटक की रचना की थी। 'सीतार वनवास' नामक एक नाटक (१८६६) उमेशचन्द्र मित्र ने भी इसी समय लिखा था।

'मेघनाद वध' का अवलम्बन कर विभिन्न नाट्यकारों ने नाटक लिखे—उनमें त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय ही सबसे प्रथम थे।

गिरीशचन्द्र घोष और क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद भी पौराणिक नाटकों की रचना में अत्यन्त सफल रहे। गिरीशचन्द्र के प्रायः अस्सी नाटकों में राम-कथा विषयक नाटक हैं; 'सीतार वनवास', 'सीता हरण', 'रावण वध' और 'लक्ष्मण वर्जन'। क्षीरोद प्रसाद ने भी असंख्य नाटक लिखे थे जिनमें राम-कथा विषयक नाटक 'रघुवीर' उल्लेख योग्य है।

समय की गति, अब लेखक और कवियों की दृष्टि अतीत से वर्तमान की ओर खींच रही थी। वैज्ञानिक अग्र गति के साथ पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान के प्रवेश के कारण सामाजिक और राजनैतिक पट परिवर्तन हो चुका था और बंगाल के लेखक और कवियों की रचनाओं के विषयवस्तु भी बदलते जा रहे थे।

फिर भी रामकथा बंगला साहित्य में एक अनुपम स्थान पर अधिकार किए हुए है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने राम के चरित्र का वर्णन इन पंक्तियों में कितना सुन्दर और सम्पूर्ण किया है :

"संपदे के थाके भये, विपदे के एकान्त निर्भीक,
के पेयेछे सब चेये, के दियेछे ताहार अधिक,

के लयेछे निज शिरे, राजभाले मुकुटेर सम,
सविनये सगौरवे धरामाझे दुःख महत्तम।"

कौन ऐश्वर्य में डर के साथ रहता है, विपद में कौन बिलकुल निडर रहता है; सबसे ज़्यादा किसे मिला है और उससे भी ज़्यादा किसने दिया है, किसने अपने सिर पर विनय और गौरव के साथ दुनिया में सबसे बड़े दुःख को राजमुकुट सा ग्रहण किया है।

रामचन्द्र के महान् चरित्र का चार पंक्तियों में इससे सुन्दर और क्या वर्णन हो सकता है?

द्वारका-निवास, बाबूगंज
लखनऊ

—प्रबोधकुमार मजुमदार

दखनी की कहावतें

मैं रानी तू रानी,
कौन भरे कुए का पानी

कथा में अड़कथा

बिन पूछा मूहूरत,
तेरस न तीज

अगर भगवान् ने दो सींग भी
दिए तो सहन करना होगा

ये सूरत और मसूर की दाल

सत्तू मन मत्तू
कद घोलूँ कद खाऊँ

धान भाई भल्ले
कुत्ते खाए चल्ले

वकत न सकत
तीत्री चढ़ी तखत

जिस सुनने से कान टूटे
वह सुनना क्या काम का

सोने की छुरी है तो क्या
पेट में घोप लें

ननद का नाता
सूली का काँटा
मुझे नहीं भाता

हलते जुलते मजनूँ आए
बैल गँवा कर रस्सी लाए

चचा चले गुजरात
उसकी दाढ़ी मेरे हाथ

तेली जोड़े धार धार
कुप्पा लुढ़के एक ही बार

हैदराबाद

—ललितादेवी

आधुनिक जर्मन नाटक और रंगमंच

यूरोप की प्रमुख भाषाओं में जर्मन भाषा और उसके साहित्य का महत्त्व अपने विकास-काल से ही अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण रहा है। बीसवीं शताब्दी में साहित्य के अन्य मुख्य अंगों की भाँति यूरोप में नाटक-साहित्य और रंगमंच की उन्नति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। आधुनिक युग के गौरवशाली नाटककार बर्नार्ड शा, हेनरिक इब्सन, मॉरिस मेटरलिंक, जार्नसन और जॉन गाल्सवर्दी आदि ने अपने असाधरण नाटकों द्वारा युगान्तर उत्पन्न कर दिया। फलस्वरूप यूरोप की प्रमुख भाषाओं के साहित्य में नाटक रचना के साथ ही रंगमंच की उन्नति के प्रति भी विशेष उत्साह प्रदर्शित किया गया। जर्मन साहित्य में इस काल में अनेक सुन्दर एवं महत्वपूर्ण नाटकों की रचना हुई और साहित्य का यह कलात्मक अंग नवीन दृष्टिकोणों तथा विभिन्न मौलिक शैलियों से समृद्ध एवं परिपुष्ट हुआ।

आधुनिक जर्मन नाटककारों में सर्वाधिक लोकप्रिय नाटककार गहर्टि हाप्टमन हैं। हाप्टमन ने कुछ नाटक ऐसे लिखे हैं, जो सामाजिक समस्याओं से परिपूर्ण हैं और कुछ काव्यात्मक हैं। इन रचनाओं का जर्मन साहित्य में विशेष स्थान है।

हाप्टमन का प्रथम नाटक (Before Sunrise) 'सूर्योदय के पूर्व' प्रकाशित हुआ। उनका दूसरा नाटक (The Weavers') 'जुलाहा' अतीव लोकप्रिय सिद्ध हुआ। इसमें तत्कालीन यूरोप के जटिल जीवन का मर्मस्पर्शी दिग्दर्शन है। नाटक में एक ओर पूँजीपतियों के कठोर हृदय का वर्णन है और दूसरी ओर दरिद्र जुलाहों की दरिद्रता का चित्रण है।

(The Sunken Bell) 'दि संकन बैल' हाप्टमन की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसी पर उन्हें नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इसमें भारतीय उपनिषदों का तत्त्व दृष्टिगोचर होता है। इस नाटक का आधार जर्मनी की ट्यूटानिक पौराणिक कथा है। नाटक का नायक हेनरिक—एक शिल्पी है, जो घंटियाँ बनाने का कार्य करता है। उसके कार्य में उसकी पत्नी मैग्डा सहायता करती है। हेनरिक, नये प्रकार की घंटियाँ बनाना चाहता है, किन्तु वह सफलता प्राप्त नहीं कर पाता। यही उसकी चिन्ता का कारण है। हाप्टमन ने इस दम्पत्ति को पुरुष और प्रकृति के रूप में चित्रित किया है, जो मिलकर नवीन सृष्टि करने की चिन्ता में हैं। इस नाटक के प्रदर्शन में अधिक सफलता इसलिए नहीं मिली कि इसमें रूपक और अध्यात्मवाद का आधिक्य है। इसलिए दर्शकों की अपेक्षा पाठकों को इसमें अधिक आनन्द प्राप्त होता है।

हाप्टमन के 'The Assumption of Hunnele' नामक नाटक में पूँजीवाद-विरोधी विचार प्रकट किए गए हैं। विरोध होते हुए भी इस नाटक का अमेरिका में सफलतापूर्वक अभिनय किया गया। उनके 'पर्सीवल' नामक नाटक में मानवता की अन्तर्दृष्टि के साथ-साथ नैतिकता और धार्मिकता की पुट है। हाप्टमन के अन्य नाटकों में—'हेनरी आफ़ आड', 'ए लगा' और 'पोएट लोर' सफल एवं उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। अनेक आलोचकों ने हाप्टमन की तुलना गाल्सवर्दी से की है; क्योंकि दोनों ही नाटककार आदर्शवादी हैं और वे भौतिक एवं आध्यात्मिक सत्य का अन्वेषण करते हैं। दोनों ही सामाजिक बन्धनों का अतिक्रमण करते हैं। वे सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करते हैं और दोनों की ही विचारधारा तथ्यवादिता की ओर प्रवाहित है। हाप्टमन के नाटकों ने केवल जर्मन नाटक-साहित्य के भंडार की ही वृद्धि नहीं की, अपि तु उनके अभिनय द्वारा आधुनिक जर्मन रंगमंच में नवीनता और लोकप्रियता की वृद्धि हुई।

जर्मन के आधुनिक नाटककारों में हाप्टमन के उपरान्त हरमान सदरमन का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वह प्रकृतिवादी नहीं थे। उनके नाटक विचार प्रधान हैं। सदरमन के नाटकों के कथानक अतीव प्रभावपूर्ण और चरित्र-चित्रण सजीव है। उनके नाटकों में (The Distruction of Sodom) (The Joy of Living) 'डिस्ट्रक्शन ऑफ़ सोडोम' 'दि जोय ऑफ़ लिविङ्ग' तथा (Magda) 'मागद' मुख्य हैं, जो अपनी प्रभावपूर्ण विशेषता के कारण प्रख्यात हैं हरमान सदरमन के नाटक रंगमंच पर सफल अभिनय के फलस्वरूप अतीव लोकप्रिय

सिद्ध हुए ।

प्रोफ़ेसर फ्रॉंक विदेकाइंड ने, जो इब्सन और हाप्टमन के नाटकों से प्रभावित थे, अनेक सुन्दर एवं सफल नाटकों की रचना की । उनके प्रारंभिक नाटकों में The Awakening of Spring अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। विदेकाइण्ड ने लगभग दो दर्जन नाटकों की रचना की। उनके कुछ नाटक उच्चकोटि के हैं। अपने नवीन नाटकों में वह बड़े प्रतिभाशाली सिद्ध हुए। विदेकाइण्ड के नाटकों में गोर्की का यथार्थवाद और टालस्टॉय का आदर्शवाद—दोनों ही पाए जाते हैं।

वाल्तर हार्सन लेवर के नाटकों पर विदेकाइण्ड की रचनाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। The Son 'पुत्र' नामक नाटक रंगमंच पर अभिनय की दृष्टि से जर्मनी में अतीव लोकप्रिय सिद्ध हुआ।

आर्थर शींज़लर आस्ट्रिया निवासी नाटककार ने जर्मन भाषा में लगभग तीस नाटकों की रचना की। Chain flirtation dance तथा Anatol उनकी अत्यन्त सफल कृतियाँ हैं। उनके अन्य नाटकों में Light O' Love, The call of life The sisters और The lonely way उल्लेखनीय हैं। शींज़लर के नाटकों में मौलिक प्राणशक्ति पाई जाती है। उनके पत्रों का व्यक्तित्व आकर्षक है। शींज़लर भावनावादी नाटककार है। उनके नाटकों में नृत्यों और गीतों का समावेश अपनी सुन्दरता के कारण एक चमक उत्पन्न करता है। नूतन भाव, आकर्षक शैली, प्रभावोत्पादक कथानक और कला के सम्मिलन से शींज़लर के नाटकों की अपनी विशेषता है। रंगमंच पर भी उनके नाटकों ने पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की। उनका एकांकी नाटक The green cockatoo अतीव सुन्दर कृति है।

आधुनिक युग के अन्य नाटककारों में रिचार्ड वाश, मैक्स हैबल, हार्ट लेबन, लुड विग फुल्ड, मैक्स ड्रेयर, हर्श फेल्ड और फ्रांक वेडकिंड के नाम उल्लेखनीय हैं।

जर्मनी के आधुनिक रंगमंच की उन्नति में जार्ज कैसर रचित Die Burger von clains वाल्टर हसेन क्लेवर कृत Der sohn, रेयनहार्ड गोयरिंग लिखित Seeschlocht और Scapa flow रिटज़वान अनरूह कृत Ein geschlecht और Platy आदि नाटकों का सहयोग महत्त्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय है। इनके अतिरिक्त रेयन हार्ड सौर्जे, कार्ल स्टेर्नहीम, अर्न्स्ट टालर, पालकौर्न फेल्ड, हान्स जोस्ट एवं वरफेल आदि के नाटकों का भी आधुनिक जर्मन नाटक साहित्य तथा रंगमंच की उन्नति में उल्लेखनीय स्थान है।

वर्तमान जर्मन नाटकों में भी साहित्य के वही मूल तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं, जो जर्मन उपन्यासों, कहानियों और काव्यों में विद्यमान हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् वाइलैरड हार्जफीडे ने फ्रांस के पतन पर एक ऐसा नाटक लिखा है, जो विश्व-नाट्य-साहित्य में अनुपम माना जा सकेगा। युद्ध काल के पूर्व जो जर्मन साहित्यकार अमेरिका भाग गए थे, उनमें से लियोनहर्ड फ्रेंक, अलफ्रेड और फ्रेड्रिक थोरबर्ग ने कुछ नात्सीवाद विरोधी एवं आदर्शवादी नाटकों की रचना की, किन्तु परिवर्तित मौलिक शैली के नाटक अभी युद्धोत्तर जर्मनी में नहीं लिखे जा रहे; क्योंकि वहाँ अभी अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण नहीं हुआ है।

—गौरीशंकर ओझा

---

*पू॰ सम्पादक 'मध्यभारत संदेश' (साप्ताहिक)
लश्कर (ग्वालियर)

यदि मैं किसी प्रकार युवावस्था में प्रवेश कर सकूँ और मुझे यह निर्णय करने की छूट हो कि अपनी जीविका के उपार्जन को स्वयं चुन सकूँ तो मैं एक वैज्ञानिक, प्राध्यापक या शिक्षा शास्त्री बनने की अपेक्षा एक मिस्त्री या फेरीवाला बनना कहीं अधिक पसन्द करूँगा क्योंकि मुझे इतना तो आश्वासन रहेगा कि मैं वर्तमान परिस्थितियों में बची-खुची स्वतन्त्रता का रसास्वादन कर सकूँगा।

—प्रो॰ आइनस्टीन

सोवियत का महान् जनगायक सुलेमान स्तालस्की

(१८६८-१९३७)

संसार के सामाजिक इतिहास की महानतम घटना १९२७ की नवम्बर की क्रान्ति ने सोवियत जनता के जीवन को सभी दृष्टियों से ऐश्वर्यमय बनाया है। क्रान्ति के बाद लोक-साहित्य और विशेषकर लोकगीतों में जो प्राचुर्य जन-जीवन में समृद्धि के साथ ही आया है उसके बारे में अन्यत्र लिखा जाएगा। यहाँ संक्षेप में हम काकेशस के तीन संघ-प्रजा तंत्रों [आज़ुर्बाइजान, गुर्जी (जार्जिया) और अर्मनी] के महान् जनगायक सुलेमान स्तालस्की के बारे में कहना चाहते हैं। सुलेमान स्तालस्की सोवियत जनता की सृजनी प्रतिभा एवं सोवियत संस्कृति का परिचायक है।

१९३४ में अखिल सोवियत लेखक सम्मेलन हो रहा था। केन्द्रीय सोवियत विधान सभा के विशाल हॉल में सारे देश के सांस्कृतिक नेता उपस्थित थे। लम्बा काकेशीय बेशमेत पहने एक लम्बा वृद्ध मंच पर आया। गोर्की समेत सारे हाल के उपस्थित जन समुदाय ने खड़े होकर उनका अपूर्व स्वागत किया। भाषण नहीं, जनगीत से उसने अपना अभिनन्दन सुनाया।

सुलेमान मौखिक जनगीत के महान् प्रतिनिधि थे। उनके गीतों से परिचित होने पर हमें पता चलेगा कि वर्ग या समाज की सामाजिक राजनीतिक बाधाओं के दूर होते ही जनता की सृजनी प्रतिभा की धारा किस उद्दाम गति से फूटती है।

अपने गीत में सुलेमान ने अपने महान् नेताओं लेनिन-स्तालिन को याद किया, 'झंझा के उद्गाता' गोर्की को, 'नवम्बर क्रान्ति की तलवार उठानेवाले' मजदूर वर्ग को, लेखकों को, 'नवीन गायकों को', भविष्य को सभी को समेट लिया। 'पहाड़ी हवा की भांति ताज़ी समाजवादी ज़िन्दगी का उन्होंने अभिनन्दन किया :

"Our day is fresh as mountain air
Through the years of hopes
accomplished,
In flaming purple dressed,
We have reached the age of youth.
My great country
Has been set free from bondage.
We have awakened from our evil sleep,
We have awakened—and hither
have we come."

जनगीतों में प्रायः सब कुछ जन समूह का होता है, व्यक्ति विशेष का नहीं। लेखकों के सम्मेलन में अपने सम्मान को सुलेमान ने अपनी व्यक्तिगत जीवन की घटना, साहित्य की घटना नहीं बल्कि सामाजिक तात्पर्य-पूर्ण घटना ही माना :

"Through the vast space of
mountain lands
The token of greeting was given
to the poet,
And here ami I, Suleyman Stalsky,
Come to the glorious congress of
singers."

निरक्षर गायक सुलेमान ने यहाँ एक बड़ी सामाजिक प्रमीति का परिचय दिया है। सोवियत लेखकों के सम्मेलन में बराबरी की हैसियत से एक सम्मानित अतिथि के रूप में एक अशुग (गायक) का निमंत्रित होना, साहित्य में कितनी बड़ी ऐतिहासिक घटना है इसे उस समय कितने ही लेखक भले ही न समझ पाए हों मगर एक सच्चे जनकवि की अनुभूति से सुलेमान ने इसे भलीभांति जान लिया था।

कलात्मक साहित्य और मौखिक जनकाव्य में जो सतत घनिष्ट सम्बन्ध चला आ रहा है अखिल सोवियत लेखक सम्मेलन में इस अशुग की उपस्थिति ने एक ज़बर्दस्त मुहर लगादी। इस सम्मेलन के बाद सुलेमान की सृजनी प्रतिभा में एक नया क्रम दिखाई पड़ा। दागस्तान के अशुग का नाम बहुजातिक सोवियत संघ के कोने-कोने में फैल गया, सभी जगह उसकी रचनाएँ बड़े चाव से पढ़ी और समादृत होने लगीं। कज़ाकस्तान के विश्व विख्यात अकिन (गायक) जम्बूल जबायेफ़ ने लिख भेजा :

"Ashng Suleman,
Nightingale of Daghestan,
Pour forth your joyful trills at dawn...
Everywhere is the nightingale's
song of yearning.
Not in Cages—
On the fresh branches of the poplars,
In the mountains of Daghestan,
in the gardens of Kazakhstan,
The nightingales sing
more merrily evry day."

सम्मेलन में सुलेमान के आगमन, उनके अपूर्व स्वागत से जनकला के महारथियों की ओर सारे देश का ध्यान आकर्षित हुआ, जनकला के प्रति लोगों की रुचि ज़ोरों से बढ़ती गई। सुलेमान के नाम के साथ ही कज़ाक अकिन (गायक) जम्बूल का नाम भी पत्रों में छपने लगा। मास्को में दस दिन व्यापी कज़ाक कला प्रदर्शनी हुई। जम्बूल पधारे। स्तालिन ने क्रेमलिन में निमंत्रित कर उन्हें सम्मानित किया। सारे देश की जनता में उनका नाम और उनकी कृतियाँ फैलने लगीं। लेखक संघ ने कितने ही प्रतिभाशाली कज़ाक अकिनों और ज़िरशियों को अपना सदस्य बनाया, भिन्न-भिन्न जातियों के जन कलाकार अपने संघों के लेखक संघों में सम्मिलित किए गए। उनकी कला का उनके क्षेत्र की तथा बाहर की जनता रसास्वादन करने लगी।

सोवियत जनता के दैनन्दिन जीवन पर जन कलाकारों का प्रभाव कितना अर्थपूर्ण है उसका पता सुलेमान के जीवन से ही चल जाता है। जनता से चोली दामन का सम्बन्ध रखते हुए सुलेमान ने अपना सृजन जारी रखा। सुलेमान की जवानी में उनके गाँव अशगस्ताल में एक अशुगी आया। सुलेमान ने जनगीत की कला उहीं से सीखी। जन-कवियों का सृजन कभी स्वान्तः सुखाय नहीं होता। कोई गीत तैयार होते ही वह किसी पेड़ के नीचे बैठे या खेत-खलिहानों से लौटते अपने गाँववालों को उसे सुनाते। आगे चल कर सुलेमान को यह भी याद न रहा कि कब उनके गीत गाँव और ज़िले वालों की पंचायती सम्पत्ति बन गए। जन कवि के जनता से इस सीधे सम्पर्क से उनकी ख्याति ही नहीं बढ़ी बल्कि उनकी समग्र रचनाओं पर भी इसका हितकर प्रभाव पड़ा। उनके श्रोता मूक प्रतिमाएँ नहीं थीं: उनकी प्रतिक्रिया को देख कर अशुग अपने विचारों, भावों को कसौटी पर कसता, उनकी रोशनी में चित्रों और भाषा को सँवारता, गीत को और भी प्रभावशाली बनाता। जनकवियों की स्मृतिशक्ति प्राचीन श्रुतिधरों को मात कर देती है। सुलेमान की स्मृतिशक्ति भी अनहोनी-सी ही थी। एक बार जिस गीत को रचते वह सदा के लिए स्मृति पट पर अंकित हो जाता। फिर भी जब कभी वह कहीं कोई कड़ी भूल जाते तो एक ही साथ कई ग्रामीण श्रोता उसे तत्काल पूरा कर देते। यह बात भी उनके सृजन की जन-प्रकृति को प्रकट करती है।

सुलेमान की कान्तिकारी सृजनी कला की नींव कान्ति के पहले ही पड़ चुकी थी। साम्राज्यवादी औपनिवेशिक गरीब किसान के जीवन की सारी तकलीफ़ें जहालतें सुलेमान को भी एक-एक करके झेलनी पड़ीं। सुलेमान के पिता ने अपनी रखैल के कारण गर्भवती व्याहता को घर से निकाल दिया। माँ भी नवजातक को पति के दरवाज़े पर पटक कर चली गई। माँ की सौत ने उनका लालन-पालन किया। झक्की पिता के कारण बचपन में ही भविष्य के महान् जनगायक का दुःख जीवन और आघातों से छलनी हो गया था। तेरह साल की अवस्था में ही वह अपने गाँव से दूर मज़दूरी करने चले गए। गंजा * में एक अंग्रेज़ के चाय के बग़ीचे में मलेरिया की कंपकंपी के अन्दर एड़ी-चोटी का पसीना एक करके वह किसी तरह गुज़र करते रहे। इसके बाद तीस साल की उम्र तक वे मध्य एशिया में रेल की सड़क बनाते बाकू की तेल की खानों में काम करते रहे। इसके बाद वह गाँव लौटे, एक ग़रीब अनाथा से ब्याह किया। तब से नवम्बर क्रान्ति तक वह लगातार अशगस्ताल में रह कर घोर कड़ी मशक़्क़त से अपने कष्टमय जीवन की नाव खेते रहे।

सुलेमान की प्राक्-क्रान्ति युग की रचनाओं का प्रधान उपादान गरीबों, मेहनतकशों की ज़िन्दगी है। गीति काव्यमय उड़ान उनकी रचनाओं में शायद ही मिले। जनकवि के रूप में या तो वह जनता के दुःखों के और नहीं तो उसके क्रोध और क्षोभ के कवि हैं। इस दृष्टि से उनका 'बुलबुल' गीत महत्वपूर्ण है :

---

१२ वीं सदी के महान् फ़ारसी कवि निज़ामी की जन्मभूमि—लेखक

"You sing of the blooming garden,
Your world is green, O nightingale.
Enamoured to distraction of the flowers
Is it possible you do not notice
The suffering, the torments of the poor,
Their laments and groans,
O nightingale?
Your melodies grate harshly on the ear,
O nightingale enamoured of flowers.

मध्य युगीन फ़ारसी काव्य से परिचित लोगों को सहज ही मालूम हो जाएगा कि उमर खय्याम, निज़ामी, सादी, हाफ़िज़, जामी, सदकी ने बुलबुल को लेकर अनगिनत चीज़ें लिखी हैं पर क्या उनमें किसी ने भी बुलबुल की दृष्टि जनजीवन के कष्टों की ओर भी कभी फेरी थी। सुलेमान को ही इस सनातन काव्य उपादान को जनजीवन की ओर यथार्थता के साथ जोड़ने का श्रेय प्राप्त है। अर्थव्यंजक और अलंकारिक शैली में ही नहीं बल्कि रोज़मर्रा के जनजीवन से लिए गए प्राणियों के ज़रिए उन्होंने ठोस और प्रत्यक्ष चित्र उपस्थित किए हैं। ग़रीब किसानों की दृष्टि में खुशहाली के प्रतीक और रोष के कारण 'सामोवार' (चायदान) को समर्पित उनकी रचना बड़े मार्के की है :

"You drink water,
you heal the whole world,
And the tea is sweet,
and there is cheese with the bread.
But I am quite bereft of a samovar—
The samovar and
I are not on friendly terms........
This is the news
that went about among us :
You only show honour to the man
Who has money to count over;
For the poor—the frosty cold is
their only samovar."

गाँव के सठिआए बूढ़े, काज़ी, मुल्ला, ज़मींदार जिनसे किसानों का रोज़ पाला पड़ता है, सुलेमान उन पर सीधा वार करता है, कभी-कभी तो किसी खास अत्याचारी का नाम तक लेकर वार होता है, सारी स्थानिकता के बावजूद गीतों की विशेषता या सामाजिक महत्व को तिलांजलि नहीं दे देते। अपने गांव के 'हस्सा' नामक अक्सकाल (चौधरी) पर 'गांव चौधरी' गीत में इस प्रकार प्रहार किया है :

"They say that Hassah is even ready
To betray us, at the end of all.
But his staff is too severe,
He is just like a piercing thorn,
O people.
Wither shall one flee from
there misfortunes ?
These is no recourse against
this aksakaly.
Thus Suleyman has spoken, the poet.
For surely he has suffered too,
O people."

अंतिम पंक्ति बड़े मार्के की है, गायक श्रोताओं को जता देता है कि वह उनसे अलग नहीं बल्कि उनके भाग्य का सहभागी है और इसी हैसियत से वह उन्हें गीत सुना रहा है। उनसे अलग उसका अस्तित्व नहीं है।

अपने "मुल्ला" गीत में सुलेमान ने मुल्लाओं द्वारा किसानों की लूट पर चोट की है। ऐसा लगता है जैसे कोई हमारे गांवों का ही चित्र उपस्थित कर रहा है :

"There is no truth in
the eyes of the mullah.
You are only a hearth of envy.
Having thrust your lever deep
in the earth,
You want to blow us up, mullahs."

जनता के उत्पीड़कों के प्रति हम कभी-कभी सुलेमान को वक्रोक्तियाँ करते देखते हैं। यहाँ तक की मुल्लों, हुक्कामों, धनियों का बाहरी हाव भाव भी उन्हें पसंद नहीं है। अपनी मातृभाषा लेज़गीय के प्रति अत्यधिक प्रेम होने के कारण स्थानीय धनियों को जब वे रूसी अधिकारियों की भाषा नक़ल करते देखते तो उबल पड़ते। इसे वह मातृभाषा के प्रति द्रोह समझते। अपने एक गीत में उन्होंने दिखाया है कि जनता के स्वार्थों के प्रति विश्वासघात करके किस तरह से वहाँ के धनी शासकवर्ग के हुक्कामों से सांठ गांठ किया करते थे :

"See : for bags of money
The officials have became your friends.

The walk along, they do not see
the poor people,
They have become arrogant donkeys.
Toadies ! Timeservers !
You do not answer us "Salaam,"
But "G'morning"......
Absolutely a disgrace !
You have become dondies
in your speech.....
You follow after bribes and ranks,
And do not give us a chance to breathe.
"get out ! get out !"
you shout at the poor man,
Such proud rascals you have become !

धनियों, मुल्लों, शासकों, काज़ियों आदि के जुल्मों से जनकवि विक्षुब्ध हो उठता है। जनता के प्रति उनकी घृणा को देख कर उसकी अन्तर्दृष्टि उस दिन की ओर जाती है जिस दिन जनता अपने शोषकों और उत्पीड़कों का खात्मा कर देगी। क्रान्ति के चार साल पहले रचे 'विचारक' नामक गीत में वह कहता है :

"Enough of plundering
evreything and evreybody !
Enough of waiting
for earthly consolations.
Terrible is your transgression !
A great punishment awaits you, judges.
For centuries you have plundered us,
for centuries !
You have pillaged the poor man
long enough !
From Suleyman's bow there flies
against you
The powerful arrow of
indignation, judges."

अत्याचारी ज़ार के जल्लादों की तनिक भी परवाह किए वग़ैर इस दुस्साहस के साथ चुनौती देना किसी सुलेमान जैसे तपे हुए फ़ौलाद का ही काम था।

जन कवि क्रान्ति के लिए काम कर रहा था, उसके स्वागत के लिए तैयार बैठा था। ज़ार के तख़्त के उलटने, उसकी क़ैद और ज़ार के फ़ौज़ी अफ़सरों के विचार को उसने और कितने ही लोगों की तरह सच्ची आज़ादी समझी। फरवरी की बूर्जुआ क्रान्ति के स्वागत में उसने गाया :

"Into my village the morning light
has brought
The news of the overthrow of the tsar
Not without reason
did they throw down the tyrant
And today the Duma is ruling....
The people have driven out the offlcials
And they are fleeing in all directions.
They babble foolishly, although
they have not
Taken into their mouths
A single drop of anything.
"How refractory and proud
your spirit was
When you have stripped the
people bare,
Leaving them to rot in prison,
depriving them of their rights,
You drove out those who
sought to present their grievances.
You shouted at them,
as if they had been dogs, "get out !"
Oppressive was your kulak,
oppressive was he !
Now you have become soft as silk,
And caressing in your speech.
Now you see, Suleyman,
Life has become easier for the peasants,
Now the invitation for freedom
has been given—
Now a different time has come."

बहुत थोड़े समय के अन्दर ही जन जीवन के घनिष्ठ सम्पर्क में रहनेवाले सुलेमान की आँखों के सामने से केरन्स्की सरकार का धोखा दूर हो गया। उन्होंने अच्छी तरह देख लिया कि यह सरकार पूँजीपतियों की है। गाँवों में बसनेवाली जनता को इससे कोई राहत नहीं मिल सकती। वहाँ ज़ार के ज़माने की सारी लूट खसोट पहले की ही भाँति कायम है। पहले वाले कौवे ही जनता के सिर पर मंडरा रहे हैं। शब्दाडम्बर के पीछे काकेशस के पूँजीवादी राष्ट्रीयतावादियों को ही पुचकारा

जा रहा है । जन कवि गा उठा :

"Everyday we have a new prince
over us.
He wants to plunder the coucasus.
More than once has
the thorn bush pierced us
With its thorns, now in broad daylight.
And they all speak fairly,
But they diffuse a deadly poison.
The she goat, which brings forth young
Is now being replaced by the he-goats.
I, Suleyman have caught a
glimpse of life
It bids me to forsake the assembly.
There is no top to them, and no bottom
Now it is nothing but talk and talk."

जनकवि का मोह दिन ब दिन दूर होता गया । दाग़स्तान में सोवियत सरकार क़ायम होने पर ही उन्होंने समझा कि अब जनता की सच्ची सरकार बनी है ।

मध्ययुगीन यूरोपीय इतिहास के पाठक जानते हैं कि ग़लत प्रचारों से गुमराह होकर ईसाई लोग यहूदी लोगों पर तरह तरह के अत्याचार करते थे । ज़ारशाही रूस में भी इसकी कमी नहीं थी । अपने देश की जनता को छन्दबद्ध वाणी देनेवाला कवि यहूदियों के दुःख दर्द को कैसे नज़रन्दाज़ कर सकता था । बूर्जुआ-राष्ट्रवादी जिन घिनौने स्वार्थों से प्रेरित होकर इस तरह के अत्याचार के लिए जनता को उभाड़ते थे सुलेमान ने उसका भंडा फोड़ किया ।

सुलेमान का इस विषय पर रचा गीत पढ़ कर उसकी स्वच्छ सामाजिक दृष्टि, वर्ग-चेतना और साथ ही जिस साहस से वह यहूदी जनता का समर्थन करता है उसके सामने मस्तक टेक देना पड़ता है, सच्चा जन गायक कितना संवेदनशील होता है, वह किस तत्परता के साथ अपने को शिक्षित करता है, उसके गीतों का कितना गहरा असर होता है इसका पता क्रान्ति के बाद वाले वर्षों में सुलेमान, जम्बूल आदि अशुग-अकिन के गीतों से चलता है । कुछ दिन पहले लेखक तथा आलोचक इन्हें पूछते तक नहीं थे । उन्हें कुछ ही वर्षों के अन्दर अभूतपूर्व सम्मान मिलने लगा । यह बात शोषकहीन समाज-व्यवस्था में ही संभव है । जो लोग यहूदियों पर अत्याचार करने के लिए आगे बढ़ते थे उनको सम्बोधन करके सुलेमान ने कहा :

"I will speak out my opinion
You are absolute crooks!
You know how to distroy a
Jewrish dwelling.
And drag the bedding out,
laughing the while!....
No, it is not far the faith
that you are hostile to them
Your own inhumanity—there
lies the trouble!
You know how to catch
all their chickens, without fear
And withont trouble whatever.
Suleyman, the poor peasant,
knows everything,
But he cannot in any possible way
convince you
Forgetting where the real enemy lies,
You know how to kill the Jew at once."

सुलेमान शत्रु को पहचानते थे । सब कुछ देख सुन कर वह इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि सर्वहारा मज़दूर वर्ग का रास्ता ही सारी ग़रीब मेहनतकश जनता का रास्ता है । गंजा में अंग्रेज़ मालिक के चाय बग़ीचे का मज़दूर, समरकन्द रेल मज़दूर, बाकू का तेल-खान का मज़दूर सुलेमान क्षण भर के लिए भी ग़रीब किसान सुलेमान को नहीं भूला । बोलशेविक क्रान्ति के पहले के काकेशस की दशा देखकर वह झल्ला कर गाता है :

"You give word to everybody,
But that word is nothing but a lie.
You are lying,
you are just like a saddle,
Which serves everybody,
you wicked Caucasus."

सुलेमान निर्णायक परिवर्त्तनों का इन्तज़ार कर रहे थे । अपने चारों ओर के जीवन से उन्हें घोर असन्तोष था । जनकवि की अनुभूति से वह इतना तो समझ गए थे कि समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण से ही सारी-

सामाजिक बुराइयाँ दूर हो सकती हैं। लेकिन क्रान्ति के विज्ञान से अभी तक वह एक प्रकार से अपरिचित से ही थे।

सोवियत लेखक कापिएक एफेन्दी को १९३६ में उन्होंने 'अपनी दास्ताँ' लिखाई थी। उसमें वह अपने उस समय की मनोदशा का वर्णन नीचे लिखे शब्दों में करते हैं :

"मैंने काफ़ी सोचा-विचारा। लोग दूर-दूर से घोड़ों पर चढ़ कर मेरे पास सलाह के लिए आते। मैं झट उनके प्रश्नों का कोई तैयार शुदा जवाब नहीं दे बैठता। मैं अच्छी तरह जानता था कि मुँह से निकले शब्द क़दम नहीं हैं। अगर जवाब देने में आदमी कहीं चूक गया तो वह चारों खाने चित दिखाई पड़ेगा। उठ खड़े होने की उसकी शक्ति जाती रहेगी।

एक दिन विदेशी आक्रमणकारी* कस्सुम केन्त पहुँचे और मेरे गाँव के तीन आदमियों को फाँसी पर लटका दिया। क्यों? पता चला वे बोलशेविक थे और बाकू से हमारी मदद को आए थे।

ओह! मैंने सोचा कि भूमि हमारी है, पहाड़ हमारे हैं और जिस जनता को शत्रु मार रहे हैं वह भी हमारी है। संसार में यह क्या हो रहा है? इसका मतलब तो यही होता है कि बोलशेविक हम स्वयं ही है और विदेशी हमारे ऊपर शासन कर रहे हैं।

उसी दिन सड़क पर अपने पुराने मालिक से मुलाकात हुई। उसने कहा : "सुलेमान तुमने काशिम बे के सम्मान में कोई गीत क्यों नहीं रचा? क्या तुम उसे बोलशेविकों के लिए रख छोड़ रहे हो?"

मैं कुछ नहीं बोला।

मालिक ने कहा : "संसार चक्रवत् है, सब कुछ चक्राकार में घूम रहा है।"

मैंने उसे जवाब दिया : "वह उलटी दिशा में घूम रहा है।"

मालिक ने कहा : "कुछ देर ठहरो। तुम्हारी गर्दन जरूर ही फाँसी के फंदे को बुला रही है। क्यों, है न?"

मैंने कहा : "नहीं! फंदे को मोटी गर्दन चाहिए, लेकिन मेरे तन में तो हाड़ और चमड़े के सिवा कुछ रह ही नहीं गया है।"

उसी दिन से पहली बार मेरा खून बोलशेविकों की तरह बोलने लगा। मैंने बाधा नहीं दी, उसे अपना काम करने दिया। उसकी आवाज़ मेरी आवाज़ बन गई।

जनकवि की अन्तरात्मा 'खून की पुकार' सुनने के लिए न जाने कितने दिनों से प्रतीक्षा कर रही थी। उसने अपनी सारी सृजनी प्रतिभा क्रान्ति को समर्पित की। अपनी समग्र शक्ति से शोषकों की सड़ी-गली पुरानी दुनिया को धिक्कारते हुए गा उठा :

"We know your purposes,
Perish old world!
We are your long time enemies,
Perish, old world!
The pain of all peoples and tribes,
As tribute, as tax, you have
exacted from us,
Explode with those rusty laws of yours
Go up in smoke,
and disappear from our eyes!
Perish, old world!"

सुलेमान क्रान्ति में मज़दूर वर्ग की महान् भूमिका के बारे में दिन ब दिन अधिकाधिक सजग होते गए। अपने मज़दूर नामक गीत में उन्होंने अपने विजयी ऋचा गाई है :

"Labour is the beginning of
all beginnings
Laying bare his dagger for brotherhood
The father of labour, the workingman,
Has own freedom for us.
From his cradle he has had
A blood tie with the peasantry,
That is why the first helper
Of the peasant is the workingman....
You are not clever at deceit,

---

* क्रान्ति के बाद ही नवजात सोवियत राष्ट्र पर चौदह विदेशी साम्राज्यवादी ताक़तों ने हमला करके शिशु को सौर में मार डालना चाहा था। चार वर्षों तक घनघोर युद्ध करके लाल सेना ने इन्हें मार भगाया। सुलेमान का संकेत इन्हीं हमलावरों से है।—लेखक

You see the truth, Suleyman—
Though his garment be soiled and torn,
Strong in spirit is the workingman."

सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में होनेवाली क्रान्ति का सुलेमान ने हृदय से स्वागत किया। धीरे धीरे वह अपने दाग़स्तान, अपने काकेशस और अपनी सोवियत भूमि के ओजस्वी गायक बने। समाजवादी नवीन निर्माण सारे सोवियत जनता का अपूर्व भाईचारा, नया सामूहिक श्रम उनके गीतों का विषय बन गया।

१९२१ में क्रान्ति के महान् नेता लेनिन की मृत्यु से ज़बर्दस्त सदमा पहुँचा। जनकवि ने अपनी व्यथा को मूर्त्त रूप देते हुए गाया :

"Lenin, our father, has passed away,
And the cold day is dead today.
The wise man has departed.
O pain at the heart!
What a cold day it is today.
Death has come to one man but thereby
The vast world has become small to us
This cold day, today,
Has brought me enough
anguish for many and many a day
There has fallen from the nighty trunk
The purple leaf.
Death has borne away
Our leader, our teacher, our eagle....
And indeed—it is cold day today.
And Suleyman's grief oppresses him.
He sings a sorrowful song
And with him the labouring people
Are afflicted,...it is a cold day today."

सोवियत जनता के साथ सुलेमान को भी इस बात से ढाढ़स मिलता है कि लेनिन के कामों का भार उनके सुयोग्य शिष्य और विश्वासी सहकर्मी स्तालिन के कंधों पर पड़ा है। वह गाते हैं :

"When he went away,
when life was extinguished
For Vladimir Lenin
in the hour of despondency
The great world became narrow with us
And the flame is in our hearts even now
And the horde of flattering enemies.
Was rejoicing at the time.
But our government is always strong—
A master builder is with us now."

गाँवों में सामूहिक खेती के संगठन, समाजवादी पुनर्निर्माण में सुलेमान आगे बढ़ कर हाथ बटाते हैं। कुलकों (जमींदारों) द्वारा इसके रास्ते में डाले गए अड़ंगों का वह पर्दाफ़ाश करते हैं। दुश्मनों पर उनका प्रहार प्रारंभिक गीतों ही की तरह करारा है। वह दुश्मन से डट कर निपट लेना चाहते हैं। 'पुराने शत्रु पर कभी विश्वास न करो' इस गीत में वह गाते हैं :

"No, an old enemy is
not a brother to you—
He cannot but be harsh.
When the day breaks,
you will not be glad,
Kindness cannot come from
such a one as he.....
On his old wounds—such is my advice
Strike him, strike him back.
In the bog, which has been rotting
for three hundred years.
There cannot be any wholesome water.
Slam your door shut in kulak's face,
And put no faith in his trickeries
With him you may expect
nothing but losses—
With an enemy,
it can't be any other way."

यहाँ ऐसा लगता है मानो जननायक गोर्की का शत्रु आज आत्म समर्पण नहीं करता तो उसे समाप्त ही कर देना विधेय है इन शब्दों को दोहरा रहा है। यों तो गोर्की और सुलेमान के जीवन में अद्भुत साम्य दिखाई पड़ता है। दोनों की जवानी एक ही तरह घोर संघर्षों में बीती। दोनों जनता के समुद्र की मछली थे। दोनों ने आजीवन जनता के लिए प्राणपात किया। लेखक सम्मेलन में पहली मुलाक़ात में ही दोनों एक दूसरे से अभिन्न हृदय हो गए। इस घटना को छन्द में बाँधते हुए सुलेमान ने कहा :

"My heart was fired with joy

At the honour who showed me.
O profound mind, O kindly aspect !
The convrsation was a genial one.
I thought for the pattern of my rhymes
He has shown me this honour......
I turn new to my songs, and fervently
I sing of workmen peasants.
And Suleyman has become young again
Gorky has shown me such honours."

यहाँ इन पंक्तियों में सुलेमान की महत्वाकांक्षा नहीं बल्कि अपने श्रम की स्वीकृति पाने वाले जनगायक का गौरवमय स्वाभिमान बोल रहा है।

एक गीत में सुलेमान स्तालस्की कहते हैं कि गीत रचना उनके लिए कठिन काम है। गीत की अन्तिम कड़ी में इसका कारण भी बता दिया है :

"I, Suleyman, have no knowledge of books
But there is one thing that I have
thoroughly grasped
Verse comes with difficulty,
with difficulty,
These cannot be a single emply verse."

सुलेमान बड़े स्नेह, कोमलता और सन्तोष के साथ शिशुओं, युवकों, विद्यार्थियों के जीवन की सराहना करते हैं। वह देखते हैं कि शिक्षा, संस्कृति, सुखी जीवन की सारी गारंटी उन्हें मिल गई है।

सुलेमान के जीवनीकारों ने नीचे लिखी घटना का उल्लेख किया है। लेखक-सम्मेलन से देश लौटने के बाद वह घोड़े पर चढ़ कर आस-पास के गाँवों में घूम रहे थे। सभी उनके मुँह से मास्को, स्तालिन आदि के गीत सुनना चाहते थे। एक स्कूल के फाटक पर बच्चों के एक गिरोह से उनकी मुलाक़ात हुई। एक ने एक किताब खोल कर आनन्द भरी हँसी के साथ साथियों से कहना शुरू किया : "देखो यही आदमी घोड़े पर चढ़ा चला आ रहा है। वह यहाँ पहुँच ही गया। हम उसे जानते हैं।" सुलेमान ने स्नेह भरे नेत्रों से बच्चे की ओर देखते हुए कहा : "देखो तुम कितने भाग्यवान हो। यहाँ आने के पहले से ही सुलेमान तुमसे बातें कर रहा था।" इसके बाद लम्बी साँस लेकर कहा : "लेकिन किताबें मुझ से इस तरह बात नहीं करतीं।"

स्तालिन पर दागस्तानी सुलेमान् का गीत सारी सोवियत जनता की अपनी संपत्ति बन गई है। इस गीत में उन्होंने अपना हृदय उँडेल दिया है। सुलेमान कहता है :

"जीवन बढ़ता है आगे,
दल§ करता है नेतृत्व महानों का,
श्रमिकों का महाप्रयाण,
साथ तुम्हारे उनका ध्वज स्तालिन !

तव तरुणाई में चमकी,
तव ज्योति दिखाती श्रमिकों की,
नेतृत्व जहाँ तव शोक नहीं,
जीवन है सुखमय स्तालिन !

वर्षों बीते और कमी नहीं,
जब से हमको त्राण दिया;
आया दुर्भग वत्सर कोई,
उत्तुंग शिखर से तुमको,
है साफ़ दीखता दूर क्षितिज, स्तालिन !

अरि भुज को तुमने भग्न किया,
दृढ़ किया हमारे भुज को,
और पूर्ण विजय माला को,
दे दिया शीर्ष दुर्बल को।
एक कुंजी नवजीवन की स्तालिन !

तेरा, ओ मेरे युग प्रसिद्ध !
जिसका है नाम,
है सुन्दर कृतियों की संज्ञा।
तेरा कि जिसने शब्द सुने,
ओ समझे मन दुखियों के,
तेरा गाता हूँ मैं यश स्तालिन ! *

अलीमुद्दीन स्ट्रीट,
कलकत्ता १६

—महादेव सहाय

---

§ सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी—लेखक, * मित्रवर राहुल सांकृत्यायन का किया हुआ यह उनकी पुस्तक का अनुवाद 'सोवियत-भूमि' (पृ. सं. २००-२०१) बनारस, सं० १९९५ से ली गई है।

राज्य की आदर्शवादी व्याख्या

दार्शनिक आदर्शवाद की परम्परा में राज्य की आदर्शवादी व्याख्या का स्थान महत्त्वपूर्ण है। आज से कुछ वर्षों पूर्व तक इंग्लैण्ड की राजनीतिक विचारधारा के क्षेत्र में इस सिद्धान्त का बोलबाला था। वस्तुतः इस सिद्धान्त का व्यवस्थित रूप से सूत्रपात जर्मन दार्शनिक हीगेल की कृतियों में हुआ था, पीछे चलकर टी. एच. ग्रीन ने इसे लोकप्रियता प्रदान की तथा डा० बोसक्वे ने अपनी कृति 'दी फिलोसोफिकल थ्योरी आफ दी स्टेट, में इसे ठोस आधार प्रदान किया।

किन्तु इस विचारधारा के बीज हमें ग्रीक दार्शनिकों की कृतियों में भी दिखाई पड़ते हैं, जिनमें राज्य को स्वतःपूर्ण सत्ता और सम्पूर्ण समाज अभिन्न माना गया है! प्लेटो और अरस्तू की कृतियों में तो स्पष्टतः राज्य को स्वतःपूर्ण सत्ता और सम्पूर्ण समाज से अभिन्न माना गया है। दूसरे राज्यों से सम्पर्क की चर्चा के प्रसंग में इन विचारकों ने दो राज्यों के बीच शत्रुता की स्थिति की कल्पना की है। ग्रीनीज के मतानुसार राज्यों के परस्पर सम्बन्ध में शत्रुता का होना सर्वथा प्राकृतिक और अनिवार्य है। दार्शनिक ग्रौटियस ने राज्य को समस्त बाध्य बन्धनों से पूर्ण स्वतन्त्र और हॉब्स ने दो राज्यों को एक दूसरे का शत्रु घोषित किया है।

इस प्रकार राज्य को समस्त मानव समाज के तुल्य समझ कर उसकी व्याख्या की गई। कुछ विचारकों ने इस प्रक्रिया में दो सम्बन्धों की चर्चा की है—पहला सम्बन्ध है व्यक्ति का राज्य के नागरिक के रूप में, और दूसरा है समस्त मानव जाति के सदस्य के रूप में। जबसे राज्य को व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं, इच्छाओं की पूर्ति का साधन माना जाने लगा, तब से राज्य जिन अधिकारों की माँग करने लगा है, उनके आधार के रूप में राज्य की आदर्शवादी व्याख्या ही रही है।

मानव-स्वभाव का जो विवेचन ग्रीक विचारधारा में प्रस्तुत किया गया है, वही राज्य की पूर्णता का द्वितीय स्रोत बताया जा सकता है। राजनीतिक विचारधारा के कई लेखकों ने बताया है कि व्यक्ति के स्वभाव का आवश्यक और वास्तविक रूप वही है, जो समाज के प्रादुर्भाव के पूर्व प्रकृति राज्य में प्रकट था। फलतः समाज को अप्राकृतिक स्वरूप बताया गया है जो कि व्यक्ति द्वारा सम्पन्न सामाजिक संविदा सिद्धान्त पर आधारित है, जिसे व्यक्ति ने प्रकृति राज्य की सुरक्षा रहित स्थिति से बचने के लिए सम्पन्न किया था। यही वस्तुतः सामाजिक संविदा सिद्धान्त है। किन्तु ग्रीक दार्शनिक प्लेटो तथा अरस्तू ने इससे सर्वथा भिन्न विचार मानव और समाज के सम्बन्ध में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार मानव एक सामाजिक तथा राजनीतिक प्राणी है, इसलिए समाज में रहना उसके लिए अनिवार्य है। उसका साथियों से सर्वथा पृथक् जीवन, अप्राकृतिक जीवन है अतः उसका समुचित विकास तो साथियों के बीच ही संभव है। समाज में रह कर ही व्यक्ति अपने साथियों के साथ विचार-विमर्श करते हुए, सामाजिक कर्तव्य तथा आवश्यकताओं का निर्वाह करते हुए अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। इसके अतिरिक्त समाज में रहकर ही वह हिंसा तथा अन्याय से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो सकता है, जिसके लिए उसे समाज का ऋण स्वीकार करना ही पड़ेगा।

इस ग्रीक विचारधारा को देख चुकने के बाद जब हम हीगेल की कृतियों का सहारा लेते हैं, तो पता चलता है कि उसने अपने राजनीतिक दर्शन में पूरे विस्तार के साथ यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि राज्य ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्रष्टा है। उसके अनुसार, मानव, समाज के सदस्य के रूप में जिस स्वतन्त्रता का उपभोग करता है, वह उस स्वतन्त्रता से भी अधिक सत्य और वास्तविक है, जो उसे समाज में आने के पूर्व प्रकृति राज्य की अस्त-व्यस्त स्थिति में प्राप्त थी। यह स्वतन्त्रता, जो केवल इस समाज में आकर ही संभव हो सकी, व्यक्ति के हृदय में स्थित स्वातन्त्र्य भावना का चरमोत्कृष्ट रूप है जिसकी कल्पना समाज के आविर्भाव के पूर्व सर्वथा असंभव थी। हीगेल के शब्दों में मानव ने अपने व्यक्तित्व के बाह्य स्वरूप को, विचार के आन्तरिक स्वरूप के स्तर पर ला पहुँचाया है। यह वास्तविक स्वतन्त्रता, जो कि समाज की देन है और उसी में व्याप्त है, वस्तुतः गति-

पूर्ण और विकासोन्मुख है। इसका प्रत्यक्षीकरण सर्व प्रथम कानून के रूप में, फिर आन्तरिक नैतिकता के शासन में जो कि व्यक्ति को समाज द्वारा प्राप्त हो चुकी है, और सामाजिक संस्थाओं तथा उन प्रभावों के रूप में स्पष्ट है जिनसे व्यक्तित्व को बढ़ने की प्रेरणा मिलती रही है।

इस प्रकार राज्य, व्यक्ति को स्वतन्त्रता का वह स्वरूप प्रदान करता है जो अन्यथा अलभ्य थी। हीगेल की तो मान्यता है कि राज्य भी स्वतः एक व्यक्तित्व है, जो इच्छा शक्ति से पूर्ण है। यह राज्य, उन समस्त नागरिकों की इच्छा शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, जिन्होंने आपस में मिलकर समाज में रहने की सहमति दी है। इस प्रक्रिया में एक नई सत्ता का अभ्युदय होता है जो कि व्यक्तियों के इच्छाशक्ति के योग से भी ऊपर एक 'सामान्य इच्छाशक्ति' है तथा व्यक्तियों के व्यक्तित्वों के योग से भी श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण 'राज्य का व्यक्तित्व' है। इसी 'सामान्य इच्छाशक्ति' तथा राज्य के व्यक्तित्व के विषय में प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा तथा व्यक्तित्व का विकास होता है।

जहाँ तक राज्य के व्यक्तित्व का प्रश्न है, यह स्पष्ट है कि एक व्यक्ति होने के नाते राज्य के अपने अधिकार हैं, जो कि संघर्ष के क्षणों में व्यक्ति के अधिकारों को भी कुचल सकते हैं। इस मान्यता के अनुसार व्यक्ति के अधिकार तो राज्य से ही प्राप्त हैं, अतः उसे वैसे अधिकार हो ही नहीं सकते, जिनका राज्य से संघर्ष हो सके। इस प्रकार हीगेल के अनुसार 'सामान्य इच्छाशक्ति' के स्वप्न, राज्य के व्यक्तित्व और अधिकार आदि का विवेचन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राज्य स्वतः चेतनासम्पन्न नैतिक तत्व तथा यथार्थ व्यक्ति हैं।

इस विचारधारा के फलस्वरूप तीन निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं जो इस प्रकार हैं :

पहली बात तो यह है कि राज्य कभी अप्रतिनिधि रूप में कार्य कर नहीं सकता। अतः वह पुलिस का सिपाही, जो कि डकैतों को गिरफ़्तार करता है, और मैजिस्ट्रेट, जो कि उसे सज़ा देते हैं—वस्तुतः वे दोनों उस डकैत की इच्छाशक्ति को अभिव्यक्त करते हैं, क्योंकि वे तो उस राज्य के अधिकारी वर्ग हैं जो कि उस डकैत की इच्छाशक्ति का भी प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि वह राज्य का सदस्य है।

पुनः वही स्वतन्त्रता सत्य है जो कि व्यक्ति को राज्य के माध्यम से प्राप्त होती है, और वह असत्य जो कि उसे एकाकी व्यक्ति के रूप में प्राप्त होती है! वस्तुतः स्वतन्त्रता और क़ानून में तादात्म्य की भावना है, इसलिए क़ानून की आज्ञा का पालन करके ही वास्तविक स्वतन्त्रता की प्राप्ति हो सकती है।

दूसरा निष्कर्ष यह प्राप्त किया जा सकता है कि व्यक्ति एकाकी मानव के रूप में व्यवहार नहीं कर सकता, क्योंकि वह तो राज्य का एक अविच्छिन्न अंग है। अतः उसकी इच्छाशक्ति भी राज्य की इच्छाशक्ति का अंश मात्र है। डा० बोसंक्वे के अनुसार, जब व्यक्ति राज्य के विरुद्ध विद्रोह का झगड़ा खड़ा करता है, उस स्थिति में भी उसकी 'इच्छा', राज्य की इच्छा से सर्वथा पृथक् नहीं होती, बल्कि उसकी यह इच्छाशक्ति तो 'राज्य' से ही प्राप्त की गई है, जो कि राज्य की 'इच्छा-शक्ति' के अनुरूप है। अतः विद्रोह की स्थिति में राज्य का आपस में ही विरोध हो जाता है, और उसकी भक्ति क्षीण होने लगती है!

तीसरा निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि राज्य अपने समस्त नागरिकों की सामाजिक-नैतिकता का प्रतिनिधित्व करता है! जिस प्रकार राज्य में समस्त व्यक्ति के व्यक्तित्व, राज्य से ही विकास प्राप्त कर, उसी में विलीन हो जाते हैं, वही स्थिति सामाजिक नैतिकता की भी है। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं होता कि राज्य स्वयं नैतिकतापूर्ण है तथा अपने कार्यों में नैतिक सम्बन्धों द्वारा बाध्य है। क्योंकि नैतिक सम्बन्धों के लिए दो दलों की आवश्यकता प्रतीत होती है, किन्तु राज्य के अतिरिक्त तो इस विचारधारा में दूसरी पार्टी हो हीं नहीं सकती। अन्ततः समस्त दलों का समन्वय ही तो 'राज्य' के रूप में ही आकार प्राप्त कर सका है। डा० बोसंक्वे इस विचारधारा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि राज्य, किसी वृहत् समाज में निश्चित कार्य नहीं करता वरन् वही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च समाज है; वह सुसंगठित नैतिक-जगत् का आवश्यक भाग नहीं, वरन् समस्त विश्व का अभिभावक है। पुनः दृढ़ विश्वास के साथ वह घोषणा करता है कि "नैतिक अपराधों के अर्थ में यह देखना कठिन है कि किस प्रकार राज्य चोरी या हत्या का कार्य करता है।"

राज्य की सम्पूर्णता, निरंकुशता की दौड़ का यह क्रम है। सिद्धान्त की दृष्टि से समस्त कालों में, और व्यावहारिक दृष्टि से युद्ध काल में राज्य, नागरिकों के जीवन पर स्वभावतः अधिकार प्राप्त कर लेता है। सिद्धान्त या क़ानून की दृष्टि से भी इसका विरोध नहीं किया जा सकता, क्योंकि जो शासन करते हैं, वे शासितों से भिन्न सत्ता के रूप में देखे नहीं जा सकते। इसके अतिरिक्त शासकों की आज्ञा में आज्ञापालकों की वास्तविक इच्छा की ही प्रेरणा होती है। जब वे अनिच्छापूर्वक उस आज्ञा का पालन करते हैं, उस स्थिति में भी उन्हीं की प्रेरणा गतिशील होती है। संकट-काल में राज्य मनमाना कार्य कर सकता है, तथा संकटकालीन स्थिति के निर्णय करने का अधिकार भी उसी को प्राप्त है। आवश्यकता पड़ने पर वह समस्त नागरिकों को जीवन-दान के लिए भी आह्वान करने का वह अधिकारी है। इस दृष्टि से युद्ध-काल में ही राज्य का सर्वशक्तिशाली स्वरूप प्रकट होता है, जब कि राज्य की यह आदर्शवादी व्याख्या राज्य को समस्त शक्ति का केन्द्र और शक्ति-पुञ्ज सिद्ध करने में पूर्ण सफल दिखाई पड़ती है। हीगेल के अनुसार 'युद्ध की स्थिति में ही राज्य अपने वैयक्तिक रूप में सर्वशक्तिशाली प्रतीत होता है, जब कि देश और राष्ट्रीयता की भावना ही व्यक्ति के स्वाधीनता के अपहरण का कारण बनती है।

यह सत्य है कि कुछ अंग्रेज विचारकों ने इस सिद्धान्त की उलझनों को मानने से इनकार किया है तथा बर्नहार्डी और ट्राटस्की के अत्यन्त कठोर तर्कों का सहारा नहीं लिया है। टी. एच. ग्रीन ने जो कि स्वतंत्रता का पुजारी था; स्पष्टतः बताया कि अन्य अधिकारों के अतिरिक्त व्यक्ति को जीने का अधिकार भी प्राप्त है, किन्तु युद्ध की स्थिति में राज्य शक्ति-वृद्धि के कारण, इस अधिकार को आघात पहुँचता है उसकी दृष्टि में युद्ध अपेक्षाकृत सापेक्षभाव से सत्य और उपयुक्त हो सकता है, पूर्णतः उचित कदापि नहीं हो सकता। उसके अनुसार युद्ध, एक पूर्ण विकसित राज्य की निशानी नहीं होकर उसकी दुर्बलता का प्रमाण है। किन्तु ग्रीन ने कुछ तत्सम्बन्धी मूल प्रश्नों को सुलझाने की चेष्टा नहीं की, यथा व्यक्ति किसी युद्ध का मूल्यांकन करते हुए उसमें भाग लेने के औचित्य-अनौचित्य पर विचार कर सकता है या न इसके अतिरिक्त उसने उस सीमा-रेखा का स्पष्टीकरण नहीं किया है जहां पहुँचकर राज्य जीने के अधिकार को कुचल कर उन व्यक्तियों को बाध्य कर सकता है, जो कि युद्ध को ग़लत सिद्ध करते हैं।

कुछ अंग्रेज़ विचारकों ने इस सिद्धान्त के लिए कुछ सुधार भी प्रस्तुत किए हैं। कुछ तारतम्यहीनता की ओर इंगित किया है, फिर भी इस आदर्शवादी व्याख्या की मूल और सामान्य प्रवृत्ति पूर्णतः स्पष्ट है। यह राज्य, उनके अनुसार प्राकृतिक, आवश्यक और मानव-संगठन का अंतिम रूप है। अपने सम्पूर्ण विकास के कारण यह क्रम में सर्वशक्तिमान् और पूर्ण स्वतंत्र है जिस स्थिति में राज्य की यह शक्ति न्यून दिखाई देती है, वह निन्दनीय है। इसके अतिरिक्त राज्य की अपनी वास्तविक इच्छा और वास्तविक व्यक्तित्व है, जो कि व्यक्ति की इच्छाशक्ति और व्यक्तित्व का सर्वोत्कृष्ट समन्वित रूप है और दैवी-शक्तियों से युक्त है। इस प्रकार राज्य अपनी शक्ति तथा व्यक्तित्व की आराधना और त्याग के कारण अपने व्यक्तित्व का विस्तार कर लेता है जिसमें व्यक्ति के क्षुद्र उद्देश्य और मानवीय स्वार्थों का अन्त हो जाता है। हीगेल का कहना है कि इस प्रक्रिया में राज्य, व्यक्ति को, जिसकी इच्छा आत्म केंद्रित होने की रहती है, विश्व-जनीत तत्त्वों के धरातल पर पहुँचा देता है।

कुछ लोगों ने यह कह कर इसका विरोध किया है कि कोई भी राज्य इस कार्यों को सम्पन्न कर रखने में सहायक नहीं होता, जिसके उत्तर में राज्य की आदर्शवादी व्याख्या करने वालों ने कहा है कि वे वर्तमान राज्य की व्यवस्था का वर्णन न करते, वरन् उनका ध्यान तो आदर्श राज्य के आवश्यक गुणों की ओर है।

आज की राजनीतिक विचारधारा में, राज्य की आदर्शवादी व्याख्या की; जिसके अनुसार राज्य को पूर्ण सत्ता बताया गया है; काफ़ी आलोचना की गई है। इसे सैद्धान्तिक दृष्टि से दुर्बल, असत्य और विदेश-नीति के क्षेत्र में अनेक उत्पातों का मूलकारण बताया गया है! कुछ सूत्रों ने तो राज्य के अस्तित्व को ही अनावश्यक बतलाया है, या इस प्रकार की किसी भी सत्ता को निष्प्रयोजन बतलाया है। मानव-समाज और राज्य की अभिन्नता की जो चर्चा की गई है, उससे भी कई निष्कर्षों को बल मिला है! मान लीजिए कि नागरिकों के सम्बन्ध में अगर राज्य की सर्वशक्ति सम्पन्न सत्ता को स्वीकार कर लिया जाय, तो इस सिद्धान्त की पुष्टि तो तभी हो सकती है जब कि यह स्वीकार कर लिया जाय कि राज्य की

'इच्छाशक्ति' उन व्यक्तियों की इच्छाशक्ति का प्रतिनिधित्व करती है जिनके योग से इसका निर्माण हुआ तथा जिसकी इच्छाशक्ति से व्यक्तियों की इच्छा शक्ति का विकास हो सका है! यहाँ से आगे चलने पर हम देखते हैं कि कहीं भी इसकी चर्चा नहीं मिलती कि राज्य, दूसरे राज्य में रहनेवाले नागरिकों की 'इच्छाशक्ति, का भी प्रतिनिधित्व करता है! अतः अन्य राज्यों के लिए भी किसी राज्य विशेष को सर्वशक्ति सम्पन्न नहीं कहा जा सकता, तथा सम्पूर्ण विश्व का अभिभावक नहीं समझ कर, सुसंगठित नैतिक-जगत् का एक अंग मात्र कहा जा सकता है! इससे यह सिद्ध होता है कि दूसरे राज्यों के साथ किए गए व्यवहार में राज्य को अनैतिक कार्यों के लिए उचित ठहराया नहीं जा सकता! अतः अगर दो व्यक्तियों के आपसी सम्पर्क में नैतिकता के सिद्धान्त को ही मार्ग प्रदर्शक मान लिया जाता है, तो इसके लिए कोई कारण नहीं बताया जा सकता कि व्यक्तियों के समूह के बीच भी इसे ही क्यों न मार्ग प्रदर्शक मान लिया जाए ?

हम लोग इस मान्यता को स्वीकार कर ले सकते हैं कि समाज में रह कर ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है, और समाज में रह कर ही वह सच्ची स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकता है। किसी मरुभूमि में रह कर भी व्यक्ति स्वतन्त्रता की उपलब्धि कर सकता है, वहाँ वह अपनी इच्छानुसार कार्य करने में स्वतन्त्र है, फिर भी उसकी स्वतन्त्रता का विशेष महत्व नहीं होता, क्योंकि वहाँ तो कोई ऐसा कार्य दिखाई ही नहीं देता जिसे करने में गौरव प्राप्त कर सके। यहाँ 'राज्य' के सर्वशक्तिमान् होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

व्यक्तिवाद के समर्थकों के अनुसार वस्तुतः राज्य का अस्तित्व व्यक्ति के लिए है, न कि व्यक्ति का अस्तित्व राज्य के लिए। स्वतन्त्रता का अर्थ भी व्यक्ति के लिए ही है, इसके अतिरिक्त समाज और राज्य की भलाई का कोई अर्थ और महत्व तब तक नहीं होता, जब तक कि इसके साथ व्यक्ति की भलाई भी निहित नहीं हो, जिसके योग से राज्य का निर्माण हो सका है। इस तथ्य के सिद्ध हो जाने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि जो सिद्धान्त व्यक्ति की उपेक्षा कर राज्य की भलाई का प्रतिपादन करता है, वह पूर्णतः गलत है। सच पूछिए तो राज्य की आदर्शवादी व्याख्या, जिसमें राज्य को 'सम्पूर्ण सत्ता' बताया गया है, व्यक्ति की स्वाधीनता के सर्वथा विरुद्ध है क्योंकि जब व्यक्ति और राज्य के बीच संघर्ष उत्पन्न होता है, तो उस स्थिति में यह राज्य का पक्ष ग्रहण करता है।

इस प्रकार हम यह कहने को बाध्य हो जाते हैं कि इस आदर्शवादी व्याख्या में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य, तथा जन जीवन की कुछ महत्वपूर्ण मान्यताएँ उपेक्षित रह जाती हैं। डा० बोसवे ने स्पष्टतः कहा है कि आवश्यकता पड़ने पर राज्य वैधानिक तरीक़ों से अपने सिवा अन्य राजनीतिक सत्ताओं के प्रति प्रदर्शित भक्ति की अभिव्यक्ति को भी रोक सकने की क्षमता रखता है। यह राज्य की ओर से व्यक्ति पर अत्याचार ही माना जा सकता है।

बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में यद्यपि राज्य के बाह्य कार्य बढ़ते गए, किन्तु व्यक्ति के जीवन पर उसका बन्धन अधिक जटिल नहीं रहा बल्कि व्यक्ति को तो राज्य की सत्ता का भान इन वर्षों में तभी होता था जब कि उसे कर देना पड़ता था, जूरी में शामिल होने की नौबत आती थी या वोट देने की घड़ी आ पहुँचती थी। इसी क्रम में राज्य की आदर्शवादी व्याख्या के विरोधियों की संख्या बढ़ने लगी। कम्यूनिज़्म के प्राण मार्क्स ने तो यहाँ तक कहने का साहस किया कि एक समय ऐसा भी आएगा, जब कि वर्ग-विहीन समाज की स्थापना होगी और तब राज्य की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी। अराजकतावादी चिन्तकों ने भी राज्य को व्यर्थ बताया। महात्मा गान्धी ने राजकीय सत्ता को केन्द्रित किए जाने के सर्वथा विपरीत विकेन्द्रित समाज की संभावनाओं और पंचायत राज्य का स्वरूप सामने रखा। गोल्ड सोशलिज़्म ने भी राज्य के स्थान पर समुदाय द्वारा कार्य-भार चलाने का विचार प्रस्तुत किया। अतः आज राज्य की बढ़ती हुई भक्ति के विरुद्ध काफ़ी जनमत तैयार हो चुका है, अनेक 'वादों' की सृष्टि हो चुकी है और व्यक्ति की स्वातन्त्र्य पिपासा अमिट होती जा रही है।

नावकोठी, ज़िला मुंगेर,
बिहार

—रामनन्दन प्रसाद सिंह

कला और शिक्षा

कला शब्द इतना व्यापक है कि इसमें मनुष्य के सभी शारीरिक तथा मानसिक कार्य अन्तर्हित हैं। कला की व्यापक परिभाषा में मनुष्य का प्रत्येक कार्य जो वह जागृत अवस्था में चेतनता के साथ करता है, कला कहलाता है। सुविधा के लिए मनुष्य ने अपने कार्यों को विभागों में विभक्त कर दिया है और उसी के अनुसार विविध कलाओं तथा विज्ञानों का प्रादुर्भाव हुआ है। इन सभी कला एवं विज्ञानों का मनुष्य ने स्वयं आविष्कार किया है। जैसे जैसे आवश्यकता पड़ती गई मनुष्य ने नई नई कलाओं तथा विज्ञानों का आविष्कार किया। यह कार्य मनुष्य की सुख पाने की अभिलाषा पर ही आधारित रहा है। सुख की खोज मनुष्य को आदि काल से और निरन्तर है। इसी के आधार पर वह खोज करता चला जा रहा है। मनुष्य के सारे कार्य तथा व्यवहार इसी सुख पर केंद्रित हैं।

सुख भी तीन प्रकार के प्रधान हैं—ऐंद्रिय सुख, मानसिक सुख तथा आत्मिक सुख। भारतवर्ष में आत्मिक सुख पर बहुत विचार हुआ है और इसी आत्मिक सुख को आनन्द कहा है। यही आनन्द जिसकी चरम सीमा परम आनन्द है, यही हमारे यहाँ मनुष्य के जीवन का लक्ष्य माना गया है। इस प्रकार के कई मत हैं जिनका प्रतिपादन करना दर्शन की जटिलता में पड़ना है जो हमारे रास्ते को सरलता से और भी जटिल बना देता है। भारत में कोई एक मत नहीं है और न कहीं इनका समन्वय होता है। इस दार्शनिक पक्ष पर अन्यत्र कहीं विचार होगा। यहाँ तो हमें इतना ही समझ लेना आवश्यक है कि मनुष्य को सुख की अभिलाषा है, जिसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, यदि वह पहले ही से दर्शनों की जटिलता में फँस नहीं गया है तो। यह भी सत्य है कि इसी सुख के प्राप्ति के लिए ही हम प्रत्येक कार्य करते हैं। यहाँ हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या दुःख का जीवन में कोई स्थान नहीं? दुःख भी तो सत्य है? यह तो साफ़ ही है कि दुःख पाने के लिए मनुष्य कोई कार्य नहीं करता परन्तु वह दुःखी भी होता है। बहुत से लोग जो ऐन्द्रिय तथा शारीरिक सुख में विश्वास नहीं करते वे शरीर तथा इन्द्रियों को दुःख देते हैं, स्वयं ऐसा कार्य करते हैं जिससे दुःख हो। ऐसे व्यक्तियों में अधिकतर वे प्राचीन हठयोगी या महात्मा आते हैं जो योग में विश्वास करते हैं, परन्तु यह भी बिलकुल साफ़ है कि वे किसी अज्ञात सुख या आनन्द की प्राप्ति के लिए ऐसा करते हैं। इनका भी कोई लक्ष्य होता है, उसी की प्राप्ति के प्रयत्न में वे ऐसा करते हैं और लक्ष्य की प्राप्ति का विचार उन्हें सुख देता है, तभी वे अपना यह दुःख झेलते जाते हैं; यही मानसिक सुख की प्राप्ति की चरम सीमा है, क्योंकि ऐसी सीमा पर साधारण विकारहीन मनुष्य नहीं पहुँच सकता, इसलिए इसे यहीं समाप्त कर देना ही उचित है।

मानसिक सुख जहाँ तक शारीरिक तथा ऐन्द्रिय सुख से सम्बंधित है, केवल वही मानसिक सुख भी साधारण मनुष्य के लिए हितकर है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का मानसिक स्तर एक ही समय में एक-सा नहीं होता। अधिकतर व्यक्तियों का अर्थात् साधारण मनुष्यों का मानसिक स्तर एक समय में एक स्थान पर क़रीब क़रीब एक-सा होता है। प्रजातंत्र राज्य में या प्रजातंत्र दर्शन में इसी साधारण वर्ग का जिनकी संख्या अधिक होती है, अधिक महत्वपूर्ण योग होता है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि कम संख्या के व्यक्तियों का या व्यक्ति का योग नहीं होता। उनका भी महत्व है, पर समाज के लिए यह आवश्यक नहीं कि व्यक्तिगत विचार के आधार पर समाज अपने को बदल देगा। व्यक्तिगत विचार का मूल्य अधिक केवल उस व्यक्ति के लिए है; उसे स्वतंत्रता है कि वह उसका आनन्द ले।

साधारण व्यक्ति अधिकतर अपने सुखों की सीमा शारीरिक तथा ऐन्द्रिय आवश्यकताओं के आधार पर बनाता है, मानसिक तथा हार्दिक सुख भी, जहाँ तक शारीरिक सुख तथा ऐन्द्रिय सुख का प्रश्न है महत्वपूर्ण है और आवश्यक है अर्थात् सुख की आवश्यकता मनुष्य को हर प्रकार से है।

शिक्षा भी एक कला है, जिसका लक्ष्य मनुष्य को आनन्द या सुख प्रदान करना है। शिक्षा एक तरीक़ा है

जिसके द्वारा मनुष्य सुख पाने के तरीकों का ज्ञान प्राप्त करता है। शिक्षा पाना मनुष्य का लक्ष्य नहीं है अपि तु सुख है। शिक्षा केवल साधन है। इसलिए, यह कहना कि मनुष्य को शिक्षा की आवश्यकता है, अशुद्ध है, सत्य तो सुख प्राप्ति है। सुख की प्राप्ति के लिए शिक्षा भी एक माध्यम है, जैसे मनुष्य की अन्य कलाएँ। शिक्षा महत्वपूर्ण नहीं है; सुख है सुख पाने के अनेकों माध्यम हैं जो विभिन्न कलाओं के रूप में समाज में प्रचलित हुए हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कला मनुष्य को सुख या आनन्द प्रदान करती है जिसके लिए प्रत्येक प्राणी लालायित है। कलाओं के आधार पर ही मनुष्य अपने जीवन को तथा समाज को सुखी बना सकता है। सुख का आधार कला है। जीवन सुख पर आधारित है। जीवन का आधार कला है। व्यक्तियों का समाज सुख चाहता है, इसलिए समाज के सुख का आधार कला है। कला के बल पर समाज प्रगतिशील होता है, उन्नतिशील बनता है और उसका विकास होता है, इसलिए विकास का आधार कला है और यही विकास शिक्षा का लक्ष्य है। पाश्चात्य शिक्षा शास्त्री डिवी भी इसी विचार को मानते हैं और पाश्चात्य देशों में इस विचार के अनुसार कार्य भी हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं, मनुष्य के विकास के लिए कलाओं को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। शिक्षा तो केवल एक अंग है। हम पहले कह चुके हैं कि शिक्षा तो केवल एक तरीक़ा है जिसके अनुसार कार्य को हम करते हैं परन्तु सुख मिलता है कलाओं से। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि शिक्षा का ध्येय कलाओं को प्रेरित करना है, ताकि मनुष्य सुख प्राप्त कर सके। शिक्षा का कार्य कलाओं का प्रचार करना है जिसे करके ही वह मनुष्य को सुखी बना सकती है या हम यह कह सकते हैं कि कला का कार्य करना ही शिक्षा है, क्योंकि जब तक कला का कार्य नहीं होगा शिक्षा ही नहीं होगी। कला का कार्य करके ही मनुष्य शिक्षित हो सकता है। यह ध्यान में रखना होगा कि कला का कार्य केवल मानसिक नहीं है बल्कि शारीरिक तथा ऐन्द्रिय भी है। यही भूल है हमारे आधुनिक शिक्षा की तथा कोक्षा शास्त्रियों की।

हमारी वर्तमान शिक्षा अति मानसिक रूप धारण करती जा रही है और अपने पथ से हटती जा रही है, अपने को अति संकीर्ण करती जा रही है। शारीरिक तथा ऐन्द्रिय सुख की अवहेलना करके बौद्धिक पक्ष पर लकीर बन रही है। यही है हमारी वर्तमान शिक्षा की विकृति। यहीं शिक्षा कला न होकर कुछ और हो रही है।

प्राचीन समय में जब से भारतीय सभ्यता में वेदों तथा श्रुतियों का प्रादुर्भाव हुआ, मनुष्य ने जीवन के कार्यों के करने के बहुत से नियम विचार के रूप में शब्दों में प्राप्त किए। मनुष्य को प्रत्येक कार्य करने के तरीक़े बताए गए और इन तरीक़ों को बरतना मनुष्य के लिए आवश्यक समझा गया, इसीलिए इसकी भी आवश्यकता पड़ी कि कुछ लोग इस कार्य का भार सम्भालें जो मनुष्य को कार्य करने के नियम (जो शब्दों में थे) उन्हें बतावें अर्थात् इन्हीं का प्रचार करें अर्थात् यही शिक्षा का कार्य हुआ। इस कार्य को किस प्रकार कुशलता से किया जाए यही शिक्षकों तथा शिक्षा शास्त्रियों का कार्य हुआ, यही उनकी कला हुई। इस प्रकार शिक्षा का कार्य शब्दों के रूप में कार्य करने के नियमों का बताना हुआ अर्थात् मनुष्य के अन्दर शब्दों द्वारा बौद्धिक विकास करना हुआ यही शिक्षा का लक्ष्य धीरे धीरे हो गया और उसी का अति विकृत रूप आज हमारे सम्मुख है जिसे हम वर्तमान आधुनिक शिक्षा कहते हैं। शिक्षा का कार्य केवल शब्दों के द्वारा सूक्ष्म ज्ञान देना हो गया। यह ज्ञान श्रुति पर आधारित है, अर्थात् बोलकर या पुस्तकों में लिख कर।

इस प्रकार शिक्षा कला के पथ से अवरुद्ध हुई जा रही है। हम कह सकते हैं कि वह अपना कार्य ही नहीं कर रही है : इस प्रकार की शिक्षा के प्रचार का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य बौद्धिक सूक्ष्म कल्पनाओं में उड़ने लगा, वह धरातल से उठकर निराधार हो गया। निराधार मनुष्य कब तक टँगा रह सकता है। एक न एक समय कल्पना के टूटते ही वह ज़मीन पर आ गिरेगा, ऐसा न हो कि वह चकनाचूर हो जाए। ऐसा न हो कि उसे नीचे उतरने का मौक़ा ही न मिले और टँगा का टँगा रह जाए। ऐसा न हो कि उसे यथार्थ का, सत्य का पता ही न लगे। ऐसा न हो कि इस चक्कर में वह अपने को ही भूल जाए, अपनी स्थिति को ही भूल जाए। ऐसा न हो कि वापस आना चाहने पर भी वापस न आ सके।

परन्तु ऐसा नहीं है। प्रकृति अपना कार्य करती है चाहे उसके रहस्य को कोई समझे या न समझे।

उसके नियम वही जानती है और उसी के अनुसार मनुष्य भी बदला करता है। पूर्वी देशों की भाँति यूरोप तथा पश्चिमी देश पिछली सदियों में दर्शन के अतिरिक्त विज्ञान की बौद्धिक सीमा पर चढ़ने लगे। जिस प्रकार पूर्वी देशों में मनुष्य अति दार्शनिक होते जा रहे थे उसी प्रकार पश्चिम देश अति वैज्ञानिक होते गए जिसका एक परिणाम भयंकर महायुद्ध और दूसरा असामंजस्य है।

मनुष्य का विकास केवल बौद्धिक गुणों से नहीं हो सकता। उसके लिए इसे शारीरिक, ऐन्द्रिय तथा हार्दिक गुणों की भी आवश्यकता है जो हमें कला के कार्य में प्राप्त है। इसलिए यदि हम कहें कि मनुष्य के लिए शिक्षा से अधिक महत्व कलाओं का है तो अनुचित न होगा। हमें सबसे पहले कला का कार्य करना चाहिए और उसे अच्छी प्रकार करने के लिए शिक्षा उसमें सहायक हो सकती है क्योंकि शिक्षा प्राप्त अनुभवों का ज्ञान जिसकी आवश्यकता कला के कार्य में है। कला का कार्य करके भी हमें अनुभव होता है और अनुभव के आधार पर हम कला का कार्य करते हैं। अनभव ही सुख है वही आनन्द है।

कला, कल्पना और कार्य में सामंजस्य उत्पन्न करती है। यह सामंजस्य मनुष्य को मनुष्य बनाता है। यही हमें करना है, यही कला करती है, यही शिक्षा है।

टीचर्स ट्रेनिंग कालेज
हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस

—रामचन्द्र शुक्ल

छत्तीस गढ़ी पहेलियाँ

पर्रा भर लाई, गने ले नइ सिराई।
उत्तर : आकाश के तारे

पेड़ हे खसखस, पान बहेरा।
फूलै क़दम, कस फरे केरा॥
उत्तर : सेमर

छितका कुरिया माँ बाघ गुर्रावै।
उत्तर : आटा पीसने की चक्की

बिना हाथ बिना गाड़े के खांधा ऊपर जाय,
ओकर मुँह मा हत्या लागै ठाड़े मनखे खाय॥
उत्तर : बन्दूक

फूँले फूल गुलाब के रहे नगर मा छाय,
न माली के बाग मा न राजा घर जाय।
उत्तर : सूरज

राघवेन्द्र नगर
बिलासपुर (म० प्र०)

—राजेन्द्रलाल गुप्त

महाकौशल का ऐतिहासिक वैभव : रत्नपुर

इतिहास के बिखरे हुए पन्ने केवल हमारे अतीत की शानदार कहानी ही नहीं होते, वे हमें देते हैं, भावी जीवन का सौभाग्य गढ़ने के लिए अमित प्रोत्साहन। सदियों की व्यथा से कभी कभी जब हमारा मन हीनता और दीनता की ग्लानि से भर उठता है, तब देश भर के चारों ओर बिखरे हुए उजाड़ नगरों और भग्न प्रासादों के शिला-खण्ड हमारी आँखों के सामने घूम जाते हैं, मानो हमें विश्वास दिलाते हैं—जिसका भूत इतना शानदार रहा हो, उसका भविष्य अवश्य ही महान् होगा।

भौगोलिक स्थिति : मध्यप्रदेश के अन्तर्गत बिलासपुर ज़िले से १६ मील की दूरी पर प्राकृतिक सौन्दर्य से सुसज्जित रत्नपुर पहाड़ी के अँचल में बसा हुआ है। यहाँ प्रतिदिन मोटर लारियाँ चलती रहती हैं। इसका क्षेत्रफल ११०६६ एकड़ और मनुष्य संख्या ५००० के लगभग है। क्षेत्रफल की दृष्टि से इससे बड़ा गाँव ज़िले के अन्तर्गत दूसरा नहीं है। यह उजड़ा और बिखरा बिखरा-सा महाकौशल का ऐतिहासिक वैभवपूर्ण रत्नपुर अपने अतीत की अनेक चित्ताकर्षक गौरव-गरिमा लिए खड़ा है।

ऐतिहासिक महत्व : प्राचीन दन्त-कथा के अनुसार रत्नपुर छत्तीस गढ़ की प्राचीन राजधानी है। महाभारत में इसका नाम रत्नावती पुरी मिलता है। विद्वानों का कथन है कि महाभारत की मयूरध्वज वाली घटना यहीं हुई थी, सो उनका दिग्दर्शन मात्र हमसे सुन लीजिए : "एक बार मयूरध्वज ने अश्वमेध यज्ञ के लिए अपना घोड़ा छोड़ा और उसका पुत्र ताम्रध्वज उसकी रक्षा के हेतु सेनासहित साथ में था। उधर उसी तरह पांडु-वंशी युधिष्ठिर ने अपना घोड़ा छोड़ा था उसकी रक्षा कृष्ण और अर्जुन करते हुए साथ में थे। संयोग से वह घोड़ा रास्ते में ताम्रध्वज को मिल गया। उसने पांडवी सेना से युद्ध किया और कृष्ण और अर्जुन को मूर्च्छित कर दिया। इसी तरह पांडवी सेना को जीत कर ताम्रध्वज वह घोड़ा रत्नपुर ले गया। कृष्ण और अर्जुन को जब होश आया तब उन्होंने जान लिया, कि घोड़ा रत्नपुर वाले ले गए, जो कि कृष्ण के परम भक्त थे। इसलिए उसकी परीक्षा लेने के हेतु अर्जुन और कृष्ण ब्राह्मण वेश में रत्नपुर गए। राजा ने उनका सत्कार किया और पूछा कि, "उनका आगमन किस उद्देश्य से है हुआ?" कृष्ण ने कहा : "महाराज, जब मैं इस पुत्र को लेकर आपके यहाँ आ रहा था, रास्ते में एक सिंह ने मेरे पुत्र को भक्षण करने के हेतु पकड़ लिया और जब मैंने छोड़ देने की सविनय याचना की तो उसने यह शर्त रखी है कि राजा मयूरध्वज का आधा शरीर वह ला दे तब उसे वह प्राणदान देकर छोड़ देगा। इसलिए मैं आपके पास आया हूँ।" राजा इस पर स्वयं राज़ी हो गया और अपने शरीर को पुत्र और रानी की ओर से काट कर देने की आज्ञा दी। राजा का शरीर काटा गया, और अन्त में प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण जी ने अपनी दैविक शक्ति से उसे पुनः जिला दिया।" यह कथा सारे देश में प्रचलित है! सूक्ष्म रीति से अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि इसके निर्माण का श्रेय रत्नदेव नामक राजा को है। वर्तमान काल में महाकौशल में यही नगर शेष रह गया है जो अपने प्राचीन खण्डहरों, शिल्प, चित्र एवं नक़्क़ाशी के उज्वल नमूने को क़ायम रखने में सफल हुआ है। आज भी यहाँ के कला की प्रत्येक रम्य कृति में असंख्य प्राणियों को पुलकित करने की अद्भुत क्षमता है। छोटे बड़े मिल कर दो ढाई सौ सरोवर अपनी अपनी विशेषताओं के लिए असंख्य आत्माओं को आनंदित कर रहे हैं। खूँटा धार जलाशय प्राकृतिक दृश्यों से आच्छादित मनोरम रमणीय और दर्शनीय है, जिसका विवरण आप आगे पढ़ेंगे।

भैरव जी मंदिर के दक्षिणवर्ती द्वार को ही प्रमुख प्रवेश द्वार माना जाता है। राम टेकड़ी पर श्री रामचन्द्र जी, उसकी तलहटी पर श्री वृद्धेश्वर महादेव तथा पश्चिमवर्ती दिशा में श्री महामाया जी का मंदिर विशेष उल्लेखनीय है। श्री महामाया का मंदिर सबसे प्राचीन है। इसके विषय में एक कथावस्तु इस प्रकार है : "एक समय राजा रत्नदेव अपनी राजधानी तुमान को छोड़ इधर शिकार खेलने आ पहुँचे और रात हो जाने पर एक वट वृक्ष के ऊपर चढ़ कर रात बिताने लगे। उस वृक्ष के नीचे महामाया की सभा हुआ करती थी; उस रात राजा रत्नदेव ने

सभा देख ली। महामाया ने स्वप्न में राजा को वहाँ बस्ती बसाने की आज्ञा दी। स्वप्न का पालन कर उसने वहाँ नगर बसाया और उसे राजधानी भी बनाया।" उस वट वृक्ष के वंशज आज भी अपनी शाखा फैलाए हुए मंदिर की छत्रछाया बने खड़े हैं, मंदिर के निकट हरी-भरी वनस्थली लताओं से अलंकृत सुखद कन्दराएँ तथा चमकते शीतल एवं स्वच्छ जल के सरोवर सब एक दूसरे से मिल कर सौन्दर्य को बढ़ा रहे हैं जिन्हें देखकर मानव हृदय को अगाध शांति मिलती है।

दक्षिण में कुछ दूरी पर पूर्वदिशोन्मुख पाली ग्राम में अतीव मनोमुग्धकारी महत्वपूर्ण एवं सुविख्यात प्राचीन शिव मंदिर के अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं। गर्भगृह के द्वार पर कोमल कमनीय रमणियों की दो प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। भीतरी भाग के थापे पर अनेक आकर्षित चित्र उत्कीर्ण हैं। मंदिर के चारों ओर सुधर वनस्थली का अपूर्व दृश्य देखते ही बनता है।

हैहयवंशी : कई इतिहासकारों का अनुमान है कि हैहयवंशी छत्तीसगढ़ के प्राचीन राजा थे, जो सहस्त्रबाहु को अपना आदि पुरुष मानते हैं। ये कलचुरियों के नाम से प्रसिद्ध थे। चेदि राज्य का शासन भार इनके ही हाथों में था। चेदि राज्य चंबल नदी से लगा कर करवी (चित्रकूट के नैऋत्य) तक था। कुछ लोगों का अनुमान है कि चेदि शासन के नाम पर चेदिशगढ़ था, जिसका अपभ्रंश रूप छत्तीसगढ़ है। कुछ लोग रत्नपुर और रायपुर हैहय वंशी नरेशों के (१८+१८=३६) गढ़ होने की बात कहते हैं, जो बाद में रत्नपुरी की शाखा के राजा कल्याणसाय के समय ४८ हो गए।

कोकलदेव तृतीय के पुत्र कलिंगराज ने तुमान ग्राम में जो काजा ज़मींदारी के अन्तर्गत है, अपनी राजधानी बना कर, हैहय नरेशों की शाखा की नींव डाली जो रत्नपुरी शाखा कहलाई। कलिंगराज देव के प्रपौत्र रत्नदेव प्रथम ने अपनी राजधानी तुमान से हटा कर रत्नपुर में स्थापित की और जो अधिक काल तक कौशल की राजधानी हुई। मराठों के छत्तीसगढ़ विजय के उपरांत भी उन्होंने रत्नपुर में ही अपनी राजधानी बसाई। रत्नदेव ने लगभग १०५० में रत्नपुर की नींव डाली और ऐसा अनुमान है कि इन्हीं के नाम पर रत्नपुर नाम पड़ा। रत्नदेव का पौत्र जाजल्देव प्रथम (१११४) हुआ। रत्नपुर के एक शिलालेख से प्रतीत होता है कि इस शाखा में उधराजा हुए, जिन्होंने १७३२ तक शासन किया। अतएव छत्तीसगढ़ भाग में पहले आने का श्रेय चेदि वंश के कलिंगराज को ही है।

प्रथम जाजल्देव बड़ा पराक्रमी था। उसने बुन्देलखण्ड के राजाओं से मित्रता की और केवल कालान्तरों के मण्डलेश्वरों से कर लेने लगा। त्रिपुरी वाले परिवार से भी अपना सम्बन्ध रखा। तुमान और रत्नपुर के बीच पाली नामक गाँव का शिव जी का मंदिर और तालाब निर्माण का श्रेय इन्हीं को है। जगपाल जिसके परिवार ने इनकी सेवा तीन पीढ़ी तक की, एक पराक्रमी और वीर योद्धा था। उसने रत्नपुर राज्य के विस्तार को दुरुग, कांकेर, नवागढ़ तक बढ़ाया। रत्नपुर के राजाओं में ११७६ के लगभग प्रताप मल्लदेव का उल्लेख करना आवश्यक है। इसके दो ताम्रलेखों का पता लगा है तथा चक्राकार और षट्कोण ताम्र सिक्कों की भी प्राप्ति हुई है।

राज्य प्रबन्ध : कल्याणसाय जहाँगीर के सामन्त नरेश थे और इस कारण उन्हें राज्य प्रबन्ध का कुशल अनुभव था। उस समय मुसलमान राज्य भारत में प्रभावशाली सुसंगठित राज्य था। सन् १६२० के लगभग कल्याणसाय जहाँगीर के दरबार से पूर्ण अधिकार और सम्मान सहित आठ साल बाद लौटे और सामन्त नरेश माने गए।

मराठी सत्ता : सन् १६४० के लगभग रघुनाथसिंह देव के शासन काल में भोंसला नरेश रघु जी प्रथम के सेनापति भास्कर पन्त ने रत्नपुर को जीत लिया और वे सामन्त नरेश बना दिए गए। उनके मरने के उपरान्त मोहनसिंह राजा हुए जो सन् १६५० में मरे और रत्नापुर का राज्य मराठा राज्य में सम्मिलित कर लिया।

भोंसला नरेश रघुजी प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र बिम्बाजी ने स्वयं रत्नपुर में रह कर सन् १७५८ से १८८७ तक छत्तीसगढ़ में राज्य किया। पर १८१८ तक यहाँ का शासन कार्य सूबेदारों के द्वारा होता रहा। अन्तिम शासक रघु जी तृतीय की मृत्यु के बाद १८५३ सन् के लगभग डलहौज़ी नीति के अनुसार समस्त छत्तीसगढ़ ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। अंग्रेज़ी शासन में छत्तीसगढ़ की राजधानी रत्नपुर से उठ कर रायपुर चली गई, उसके बाद ही

रत्नपुर का पतन प्रारम्भ हुआ ।

अनुपम कलाकृति : महाकौशल के इतिहास में मध्यकाल कला और साहित्य का समृद्धिशाली काल माना जाता है । यहाँ के प्राचीन खण्डहर, आकर्षक प्रतिमाएँ, शिल्पकला के उत्तमोत्तम प्रतीक बड़े प्रिय और भले लगते हैं । शायद इसलिए कि वे प्राचीन यशभरी गाथाएँ सुनाते हैं । वहाँ पर चलते फिरते हम अनुभव करते हैं कि हमारे पैरों के नीचे बिखरे हुए इन धूल-कंकरों के हृदय में कितना सुख-दुःख भरा पड़ा है और इन्होंने कहीं हमसे अधिक संसार देखा है । यहाँ के खण्डहर की बनावट मुसलमानी तर्ज़ की है । यहाँ के बहुतेरे मन्दिर, खण्डहर इत्यादि हैहय वंशी राजाओं के बनवाए हुए हैं । ये राजा शिव जी को माननेवाले थे, अतएव यहाँ शिव जी के मन्दिर अधिक हैं । रत्नपुर तथा उसके समीपवर्त्ती स्थानों में जैन धर्म सम्बन्धी शिला लेख पाए जाते हैं । यहाँ के क़िले पत्थर चूने के बने हुए हैं । क़िले हाथी क़िले नाम से अधिक प्रचलित हैं, क्योंकि इसकी बनावट आकार बैठे हुए हाथी की भाँति प्रतीत होता है । क़िले के पत्थरों का आकार-प्रकार एवं उसकी चित्र-विचित्र आकर्षक कारीगरी वास्तव में दर्शनीय है और न जाने खण्डहर के वैभवपूर्ण अंचल में कितना ऐश्वर्य छिपा है ।

नयनाभिराम दृश्य : चारों ओर पहाड़ियों से घिरी हुई खारून नदी को बाँध कर खूँटा घाट जलाशय का विस्तृत खज़ाना बनाया गया है । पहाड़ी के ऊपर एक मनोरम विश्रांति गृह है । यहाँ से चारों ओर दृष्टिपात करने से प्रकृति को अपार रूप सज्जा देख कर दर्शक आत्मविभोर हो जाता है । ऊपर से देखने पर नीचे का दृश्य बड़ा लुभावना लगता है । झाड़ियों से लिपटी हुई लताओं में खिले पुष्प, प्रकृति के अपरूप लावण्य का प्रदर्शन कर रहे थे । पेड़ों की डालियों में लगे फल तथा रंग बिरंगे जंगली फलों से प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य वैभव निखर रहा है । खारून नदी के बहते हुए प्रवाह का नयनाभिराम दृश्य भी ऊपर से हमें साफ़ दिखाई देता है । खूँटा घाट का चप्पा-चप्पा मनो मुग्धकारी है । यात्रियों के लिए सूर्योदय का दृश्य हृदय में गुदगुदी पैदा कर देता है । वह एक ऐसा दृश्य है जिसको देखने के उपरान्त अन्य किसी दृश्य को देखने की अभिलाषा नहीं रह जाती । सुन्दरता से अलंकृत पर्वत माला की गोदी में विश्रांति करते हुए भुवन-भास्कर उषा काल के आते ही आलस्य त्याग अंगड़ाई लेते हुए उदय होते हैं और उस समय उनका लाल मुख ऐसा प्रतीत होता है मानो साक्षात् भगवान् अपने प्रिय दर्शकों की कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर साकार रूप में प्रकट हुए हैं । जीवन में इतना नयनाभिराम दृश्य हमने पहले कभी न देखा था । जिस ओर दृष्टि डालिए—उसी ओर सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की अमर झांकी मिलेगी । इस शोभा को देखने के लिए हज़ारों नरनारी श्रद्धापूर्ण हृदय से यहाँ आते हैं और मन तथा प्राण को शीतल कर परम सुख और शांति का लाभ प्राप्त करते हैं ।

अर्वाचीन काल : समय का परिवर्तन आज भी उन प्राचीन खण्डहरों में अंकित भित्तिचित्र को मिटाने में असमर्थ है । दूर दूर से यात्री श्रद्धा से यहाँ के प्राचीन संस्कृतियों का अध्ययन करने आते हैं । जो रत्नपुर एक दिन समृद्धिशाली सम्पन्न विद्या और सभ्यता का केन्द्रस्थल था, वही रत्नपुर की दशा आज अधोगति की ओर है । फूट और वैर-भाव ने अपने पैर फैलाने प्रारम्भ कर दिए हैं । मिथ्या, अभिमान, ईर्षा और द्वेषाग्नि की ज्वाला बढ़ती जा रही है । जिस स्थान पर कभी कथा, वार्ता, यज्ञ, वेदपुराण आदि हुआ करते थे, वहाँ आज मदार और एरंड के वृक्ष खड़े हुए हैं । जिन स्थानों पर धार्मिक वार्तालाप हुआ करता था, वहाँ आज जंगली कबूतरों के मधुर स्वर सुनाई देते हैं । खण्डहरों में अब उल्लू और गीदड़ों के निवास स्थान बने हुए हैं । विधवा स्त्री के हृदय की भांति आज खण्डहरों की दीवारें विदीर्ण हो रही हैं, तथा तटवर्ती झुण्डों में लगातार झींगरों के शब्द सुनाई पड़ते हैं ।

राघवेन्द्र नगर, विलासपुर
मध्यप्रदेश

—राजेन्द्रलाल गुप्त

बातचीत की चतुरता स्वयं इसे दिखलाने की अपेक्षा दूसरों में देखने में है । जो व्यक्ति आपसे बातचीत कर अपने और अपनी सूझ से प्रसन्न चला जाता है वह आपसे पूर्णतया सन्तुष्ट होता है ।

—ला ब्रुयर

रवीन्द्र संगीत

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पन्द्रह वर्ष की उम्र से लेकर मृत्यु के पहले तक असंख्य गीत लिखें हैं। किन्तु, फिर भी, वे केवल गीतकार के रूप में ही परिचित नहीं हैं। उनका जीवन विचित्र रूप में प्रकाशित हुआ है। रवीन्द्रनाथ जिस तरह गीतकार के रूप में प्रसिद्ध हैं उसी तरह कवि, नाट्यकार, साहित्यिक, अभिनेता, शिक्षक, आत्म-साधना के साधक, देश प्रेमिक तथा चित्रकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। उनका यह जीवन परिपूर्ण मनुष्यत्व का जीवन था। उनके इस परिपूर्ण जीवन के समग्र रूप को प्रकाशित करने की शक्ति मुझ में नहीं है, इसलिए इस लेख में मैं उनके गीतों के बारे में ही कुछ लिखूँगा।

हमारे इस विशाल देश के संगीत को प्रधानतः दो भागों में बाँटा गया है। प्राचीन काल से ही एक भाग का नाम है 'मार्ग' संगीत और दूसरे भाग का 'देशी' संगीत। 'मार्ग' संगीत में रागिनी, तान, आलाप प्रकृति का उग्र प्रकाश देखा जाता है। और जिन गीतों में ये सब नहीं रहते हैं, वे 'देशी' संगीत के रूप में परिचित होते हैं। 'मार्ग' संगीत नियम के कठोर बन्धन में जकड़ा रहता है। और देशी गाने स्वतन्त्र होते हैं।

'मार्ग' संगीत और 'देशी' संगीत कभी भी परस्पर विरोधी नहीं रहे। ये सदा एक दूसरे के पूरक रहे हैं। जब कभी किसी देशी गीत का सुर उस्तादों को अच्छा लगा तो वे उसे लेकर विश्लेषण करते, और फिर उसकी मूलस्वर गठन पद्धति भी निकाल लेते थे। इसीके साथ उसके आरोहण और अवरोहण के स्वर, वादी, संवादी तथा विवादी स्वर भी स्थिर कर लेते थे। इस प्रकार 'देशी' संगीत के सुर को किसी राग रागिनी का नाम दे दिया जाता था। विभिन्न छन्द, तान और विस्तार में उस रागिनी को विचित्र रूप में प्रकाश करना उनके लिए इस तरह सरल होता था। और ऐसा देखा गया है कि देशी संगीत के मूल सुर से बनी हुई रागिनी पुनः गीतकारों को देशी संगीत रचना में प्रेरणा देती है। अर्थात् एक ही सुर कभी 'मार्ग' संगीत के रूप में प्रकाशित होता है तो कभी 'देशी' संगीत के रूप में।

'हिन्दुस्थानी संगीत में तानसेन का स्थान' नामक पुस्तक में उन्नीसवीं शताब्दी के सेनवंश के काल में विख्यात संगीतज्ञ प्यार खाँ ने किस प्रकार 'तिलक कामोद' रागिनी की सृष्टि की, इसकी घटना निम्न प्रकार वर्णित है:

एक बार प्यार खाँ जब गाँव में घूम रहे थे तो कोई स्त्री देहाती गीत गाती हुई चक्की पीस रही थी। यह स्वर प्यार खाँ को जँच गया। इसी के आधार पर उन्होंने 'तिलक कामोद' रागिनी की सृष्टि की। प्यार खाँ का यह अमर संगीत देश, विहाग और कामोद, इन तीनों रागों का मिश्रण होकर 'तिलक कामोद' बन गया है। किन्तु, इस राग की प्रेरणा एक देहाती गीत ने ही दी थी।

ऐतिहासिक कहते हैं कि आज हम जिसे उच्चांग का हिन्दुस्तानी संगीत कहते हैं वह एक समय उत्तर भारत के विभिन्न गाँवों में देशी संगीत के रूप में प्रचलित था। किन्तु, जब से उस्तादों ने इन्हें उच्चांग संगीत के दल में भर्ती कर लिया तभी से वे 'उच्चांग संगीत' के रूप में परिचित हो गए। और जिन्हें उस्तादों ने ग्रहण नहीं किया वैसे गीत आज 'पद', 'दोहा', 'गीत', 'चैती', 'कजरी' प्रभृति नाना प्रकार के देशी संगीत के दल में ही रह गए। उच्चांग हिन्दी गाने में छन्द ही प्रधान होता है। कथा के रस में मिला कर सुर का नाना विचित्र तानों में विस्तार किया जाता है।

इसका कारण यह है कि कथाहीन एक तरह के स्वर की साधना भारतवर्ष में बहुत दिनों से चली आई है। इसी से आलाप संगीत और यंत्र संगीत का विकास हुआ है। इस संगीत को गम्भीर साधना सापेक्ष मानते हुए जो लोग कथाहीन राग रागिनी में पटु होते हैं उन्हीं पर हम संगीत में सब से बड़े शिल्पी के रूप में श्रद्धा करते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत वास्तव में कथाहीन सुर की साधना भूमि है और 'मार्ग' संगीत भी देशी संगीत के समन्वय से एक विशेष धारा के संगीत में गण्य है।

देशी संगीत में कथा की प्रधानता होती है। रागिनी, छन्द उसके साथ मिला कर कथा के रस को प्रभावान् करते हैं। गुरुदेव रवीन्द्र के गीत 'देशी' संगीत पद्धति के गीत है। इसलिए आज 'रवीन्द्र संगीत

१६५४

सर्वसाधारण का अपना संगीत हो रहा है। मैंने पहले ही कहा है कि 'देशी' संगीत और 'मार्ग' संगीत एक दूसरे से अलग होते हुए भी परस्पर एक दूसरे के परिपूरक हैं। अब देखना यह है कि रवीन्द्र संगीत में उच्चांग संगीत का कितना प्रभाव है। स्वर योजना और छन्द वैचित्र्य में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने उच्चांग संगीत की राग रागिनी और छन्द से बहुत सहायता ली है। हिन्दी उच्चांग संगीत में प्रायः सौ प्रचलित और अप्रचलित मिश्रित राग रागिनियों से जिस तरह उन्होंने गीत रचना के समय सहायता ली थी उसी तरह छन्द, ताल भी लिए थे। उच्चांग हिन्दी संगीत के प्रति गुरुदेव का अनुराग रहते हुए भी उन्होंने बंगाल के कुछ संगीतों से भी सहायता ली है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के गीतों की और एक विशेषता है—उनकी विषय विचित्रता। बंगाल में पिछले दो सौ वर्षों में जितने भी संगीतकार हुए हैं उन सभी के गीतों को एक साथ लेकर यदि हम विचार करें तो उसमें हमें विषय-विचित्रता नहीं मिलेगी। इन गीतकारों के गीतों का विषय प्रायः एक सा है। और जिन्हें प्रेम के गीतों में ख्याति मिली है उनके भक्तिमूलक गीत उतने सफल नहीं हुए। भक्ति या पूजा विषयक गीतों के सिद्ध रचयिता को लौकिक गीतकार के रूप में सम्मान नहीं मिला। इस प्रकार हम देखते हैं कि संगीत का विषय सीमाबद्ध था किन्तु गुरुदेव के गीतों में इसका व्यतिक्रम देखा गया है। उनके गीत जैसे एक दो विषय में सीमाबद्ध नहीं हैं उसी तरह भाव के क्षेत्र में भी बहुमुखी हैं। उनके धर्म या अध्यात्म अनुभूति के गीत, नाना रसों में प्रेम के गीत, जातीय संगीत और ऋतु संगीत हमारे देश की चिरकाल की सम्पदा हो गई है। इसके अलावा भी उनके ६ पूर्णांग गीतिनाट्यों (वाल्मीकि प्रतिभा, काल मृगया, माया का खेल, चित्राङ्गदा, श्यामा और चंडालिका) की रचना संगीत के इतिहास में एक नए अध्याय की सूचना प्रदान करती है।

इसके अलावा उल्लेखनीय विषय ये हैं—जैसे, खेल के गीत, रास्ते के गीत, जन्म दिन के गीत, विवाह और उत्सव के गीत, मृत्यु की वेदना में सांत्वना के गीत, हंसी के गीत, खेती के गीत, फ़सल काटने के गीत, वृक्षारोपण के गीत, नव वर्ष और वर्ष शेष के गीत तथा नाना प्रकार के अनुष्ठान और उत्साह के गीत भी हम उनकी रचना में पाते हैं अर्थात् मनुष्य के इस नीरस और वास्तविक जीवन को नाना ओर से रवीन्द्रनाथ ने संगीत रस में डुबा दिया है।

गुरुदेव के गीतों का प्रकृत रस पाना कठिन है। इसका कारण यह है कि आज हम आधुनिक संगीत से ऐसे मंत्र मुग्ध हैं कि शास्त्रीय संगीत से मुँह मोड़ रहे हैं। रवीन्द्र संगीत का प्रकृत रस का स्वाद हम तभी पा सकेंगे जब हम गुरुदेव के गीतों का काव्य रस और भारतीय संगीत की राग-रागिनियों तथा रस की एकत्र चर्चा करें। तब हम रवीन्द्र संगीत को पूर्णांग गीतों के रूप में समझ सकेंगे।*

शान्ति-निकेतन,
बंगाल

—अनु० राधेश्याम पुरोहित

—ले० शान्तिदेव घोष

मानवीय आवेशों का प्रत्येक पहलू कहानी का आधार है......। कहानी लिखना अत्यन्त सुगम है। कहानी का अन्त सोच लीजिए और वहाँ तक कहानी लिख डालिए।......कहानी लिखने का प्रथम नियम है कि उस कहानी से आप को आनन्द प्राप्त होना चाहिए। इस विषय में दूसरा कोई नियम नहीं है।......

—विलियम सिडनी पोर्टर

---

* शान्ति-निकेतन संगीत भवन के अध्यापक श्री शान्तिदेव घोष ने 'रवीन्द्र संगीत' पर एक पुस्तक लिखी है। प्रस्तुत लेख उनके एक लेख का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद है।

सूफ़ीमत और उसका हिन्दी कविता पर प्रभाव

सूफ़ी शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जाती है : (१) ग्रीक शब्द सोफ़ी या Sophia से, जिसका अर्थ है ज्ञान। परमात्मा के प्रेमी तथा उपासक होने के कारण उन्हें ज्ञानी समझा जाता होगा। कुछ लोग इसका उद्गम फ़ैलसूफ Philosophy से करते हैं। इसका अर्थ भी ज्ञान है। (२) अरबी शब्द 'सूफ़' से जिसका अर्थ होता है—ऊन अथवा बाल। सूफ़ी फ़क़ीर प्रायः ऊन के लबादे (फ़िर्क़ा कम्बल) लपेटे रहते थे। कुछ लोगों का कहना है कि इनके पूर्वज पहले सुफ्फ़ा अर्थात् हज़रत साहब के साथी थे। इसलिए ये सूफ़ी कहे जाने लगे। हमारे विचार से 'सूफ़ी' शब्द में दोनों ही भाव अन्तर्हित है। परमात्मा के प्यारे साधक जो ऊन का लबादा लपेटे रहते थे, वे सूफ़ी कहे जाने लगे होंगे। सूफ़ी नाम का प्रयोग सबसे पहले कुफ़ा के आबू हाशिम के लिए हुआ था। उनकी मृत्यु सन् ७७८ में हुई।

इस सम्प्रदाय का हज़रत अली अर्थात् मुहम्मद साहब के २०० वर्ष बाद अधिक विकास हुआ। इनके स्वतन्त्र विचारों के कारण इन पर अनेक अत्याचार हुए, परन्तु बाद में इनके उच्च विचार धीरे धीरे अपनाए जाने लगे।

सूफ़ी वस्तुतः ईरान का मत ही नहीं है। वेदान्ती, भक्ति-मार्गी, कुछ अंशों में बौद्ध तथा पश्चिमीय रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय वाले तथा सूफ़ी, प्रायः सब के विचार एक से ही हैं। वे मूलतः एक है—केवल नाम का भेद है।

सूफ़ी का प्रमुख ध्येय अपने अहं को मिटाना है। मौलाना रूमी ने इस बात को बहुत ही अच्छी तरह एक उदाहरण द्वारा व्यक्त किया है : "किसी ने प्रियतम के दरवाज़े पर जाकर खटखटाया। अन्दर से एक आवाज़ ने पूछा, 'तू कौन है ?' उसने कहा, 'मैं'। आवाज़ ने कहा, 'इस घर में 'मैं' और 'तू' दो नहीं समा सकते।' और दरवाजा नहीं खुला। वह दुःखी प्रेमी वापस जंगल में तप करने चला गया। साल भर कठिनाइयाँ सह कर वह लौटा और उसने फिर दरवाज़ा खट खटाया। फिर उससे वही प्रश्न किया गया 'तू कौन है !' प्रेमी ने जवाब दिया 'तू'। दरवाज़ा खुल गया।"

इस सत्य की प्राप्ति के लिए सूफ़ियों ने प्रेम का रास्ता बताया है। उस रास्ते को समझने के लिए सूफ़ियों के ये सिद्धान्त समझ लेने चाहिए कि, (१) परमात्मा का अस्तित्व ही यथार्थ है, शेष सब माया है। (२) सम्पूर्ण बाह्य सृष्टि सारहीन है। (३) सत्य की प्राप्ति ही जीवन का उद्देश्य है। (४) इस की प्राप्ति बुद्धि या तर्क द्वारा नहीं हो सकती है। (५) इसकी प्राप्ति आत्म-प्रकाश द्वारा हो सकती है जो योगाभ्यास द्वारा संभव है। (६) इस अभ्यास के लिए गुरु चाहिए। (७) गुरु बहुत खोजने के बाद मिलता है। तथा (८) गुरु में पूर्ण विश्वास अत्यन्त आवश्यक है।

सूफ़ी के निकट मतमतान्तर ऊँच नीच, हिन्दु मुसल्मान आदि का कोई मूल्य नहीं। वह तो सारे संसार की विविधता में एकता देखता है, जहाँ कहीं उसे अपने प्रियतम का आभास मिल जाता है, वहीं वह अपना मस्तक झुका देता है। एक सूफ़ी ने कहा है :

"मर्द आशिक रा न बाशद इल्लते
आशिकां रा न देहे मिल्लते
मज़हबे इश्क अज़ हमा दीनता जुदास्त
आशिक रा मज़हब व मिल्लत खुदास्त"

अर्थात् प्रेमी का लगाव संसारी इल्लत से परे है। उसका मज़हब कोई नहीं। सब दीनों से अलग वह भगवत प्रेम ही से सरोकार रखता है।

सूफ़ी मत सहृदयता और पूर्ण समर्पण भावना से आकण्ठ भरा हुआ धर्म है। वैष्णव भक्ति की साकारोपासना के अन्तर्गत नवधा भक्ति के नफ़्स के साथ जिहाद (धर्म युद्ध) विरति पक्ष में और जिक्र और मुराकबत, स्मरण और ध्यान, नवधा-भक्ति पक्ष में ठहरते हैं। कविता, संगीत, नृत्य, पूजा, प्रचुर आदि साधनों द्वारा परमात्मा की प्राप्ति 'सायुज्य मुक्ति' इसका ध्येय है।

सूफ़ी मत आध्यात्मिक प्रवृत्तियों से भरा हुआ धर्म है। सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति तक साधक को चार, अवस्थाओं में हो कर गुज़रना पड़ता है। (१) शरीयत—

इसमें परमात्मा के नियमों में पूरी आस्था रख कर विधिवत् आचरण करना पड़ता है। यह हुआ हमारे यहाँ का शास्त्र-सम्मत व्यवहार। (२) तरीक़त—मनसा, वाचा, कर्मणा सब प्रकार ईश्वरीय नियमों का पालन करने की प्रतिज्ञा करना, यह तौबा कहा जाता है। यह हमारे जप, तप, दान तीर्थादि के समान है। (३) हक़ीक़त-उपासना के प्रभाव से सत्य का सम्यक् बोध जिसे साधक तत्व दृष्टि सम्पन्न और त्रिकालज्ञ हो जाता है। इन तीन दशाओं को हम क्रमशः कर्म काण्ड, उपासना काण्ड तथा ज्ञान काण्ड कह सकते हैं। (४) मारिफ़त—अर्थात आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति। इस अवस्था में साधक तर्क बुद्धि का सर्वथा त्याग करके अपने आपको परमात्मा के भरोसे 'पुष्टि पर' छोड़ देता है। इसे स्वर्ग-अपवर्ग किसी की भी इच्छा नहीं रह जाती है। बस, इनके बाद अन्त में साधक का अहं (फ़ना) का परमात्मा के साथ तदाकार हो जाता है।

सूफ़ी मत के अन्तर्गत साधक 'फ़ना' का परमात्मा 'बक़ा' में मिल जाना वैसा ही है जैसा भारतीय अद्वैतवाद के अन्तर्गत जीवात्मा और परमात्मा में पारमार्थिक भेद न होना। सूफ़ियों के इस अद्वैतवाद-अनहलक़ 'मैं ब्रह्म हूँ' के ही कारण हल्लाज ख़लीफ़ा के हुक्म से मंसूर को फाँसी पर चढ़ना पड़ा था। पैग़म्बरी एकेश्वरवादियों के निकट 'मै ब्रह्म हूँ, जैसी बातें करना कुफ्र की बात हैं।

उपासना के व्यवहारिक क्षेत्र में सूफ़ी तीन बातें लेकर चलते हैं—(१) वे परमात्मा को अनन्त सौन्दर्य और अनन्त गुणों का सागर मानते हैं (२) वे परमात्मा की भावना प्रियतमा (माशूक़) के रूप में करते हैं तथा (३) वे लौकिक प्रेम को पारलौकिक प्रेम तक पहुँचने का प्रथम सोपान मानते हैं

सूफ़ी अपने आपको आशिक और परमात्मा को माशूक़ समझते हैं। इश्क दो प्रकार का होता है—हक़ीक़ी और मजाज़ी। हक़ का अर्थ है परमात्मा और मजाज का 'दुनिया'। अतः इश्क हक़ीक़ी हुआ परमात्मा का प्रेम, जिसे इश्क़ कामिल भी कहते हैं और इश्क मजाज़ी हुआ दुनियावी प्रेम, अर्थात् सांसारिक एवं दुनियावी जीवधारियों एवं वस्तुओं के प्रति आकर्षण। परमात्मा हुआ माशूक़ हक़ीक़ी तथा मनुष्य हुआ माशूक़ मजाज़ी। सूफ़ियों ने इश्क मजाज़ी को इश्क हक़ीक़ी का आवश्यक अंग माना और इश्क हक़ीक़ी का पाठ पढ़ाने के लिए इन्होंने इश्क मजाज़ी का पाठ पढ़ाया, यानी माशूक़ मजाज़ी में माशूक़ हक़ीक़ी की तसवीर दिखाने की कोशिश की। फलतः सूफ़ी कवियों की कविताएँ आशिक-माशूक़ों की कविताओं से भर गई। फ़ारसी के प्रमुख सूफ़ी कवियों के नाम इस प्रकार हैं: सनाई, उमर ख़य्याम, निज़ामी, उरीदुद्दीन अत्तार, रूमी, शेख़-सादी, शब्सतरी, हाफ़िज़ तथा जामी। आगे चल कर सूफ़ियों का पतन हो गया। वे इश्क मजाज़ी को ही इश्क हक़ीक़ी मान बैठे। वे परमात्मा के स्थान पर किसी लड़के के प्रेम में बंधने लगे। इन कवियों ने अपने माशूक़ की ख़ूबसूरती का ख़ूब बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करना शुरू किया और वे मयख़ाने में जाम पी कर माशूक़ के साथ झूमने लगे। हिन्दी की कविता पर सूफ़ी धर्म के प्रत्येक रूप का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

ईसा की १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ये भावुक मुसलमान सूफ़ी कवि हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में प्रेम की, पीर की कहानियाँ लेकर उतरे। इनमें कतबन, मंझन, मलिक मुहम्मद जायसी, उस्मान, शेख़ नबी, कासिम शाह, नूर मुहम्मद मुख्य हैं। इनके लिखे हुए ग्रन्थ क्रमशः इस प्रकार है: 'मृगावती', 'मधुमालती', 'पद्मावत्', 'चित्रावली ज्ञानदीप', हंस जवाहिर तथा इन्द्रावती। नूर मुहम्मद की एक और रचना 'अनुराग बाँसुरी' भी मिलती है।

इन सूफ़ी कवियों की रचनाओं के कथानक हिन्दू समाज में प्रचलित कहानियाँ थीं तथा प्रेम की पीर इनकी अपनी चीज थी। इन कहानियों द्वारा प्रेम मार्ग के त्याग और कष्ट का निरूपण करके साधक को भगवत् प्रेम का स्वरूप दिखाया गया है। इन कवियों के मतानुसार यह सारा जगत् एक ऐसे रहस्यमय सूत्र प्रेम सूत्र में बँधा है, जिसका अवलम्बन करके जीव उस प्रेममूर्ति तक पहुँचने का मार्ग पा सकता है। सूफ़ी सब रूपों में उसकी छिपी ज्योति देख कर मुग्ध होते हैं। मंझन लिखते है कि:

"देखत ही पहिचानेउ तोहीं
एहि रूप जेहि छन्दर्यो मोहीं
एही रूप बुत अहै छपाना
एही रूप सब सृष्टि समाना
एही रूप सकती और सीऊ

एही रूप त्रिभुवन कर जीऊ
एही रूप प्रगटे बहु भेसा
एही रूप जग रंक नरेसा।"

—मधु मालती

नूर मुहम्मद की रचना में अवधी के अतिरिक्त संस्कृत तथा व्रजभाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग पाया जाता है :

"नगर एक मूरतिपुर नाऊँ।
राजा जीव रहै तेहि ठाऊँ
का बरनों वह नगर सुहावन।
सबै सुहावन सब मन भावन
इहै सरीर सुहावन मूरतिपुर
इहै जीव राजा, जिव जाहु न दूर।"

हिन्दी भाषा में कविता करने के कारण नूर मुहम्मद को तो एक तरह से इस बात का सबूत देने की आवश्यकता पड़ गई थी, कि वे इस्लाम के पक्के अनुयायी थे :

"यह बांसुरी सुनै जो कोई
हिरदय-स्रोत खुला जेहि होई
+ \+ \+
जहं इसलामी मुख सों निसरी बात
जहाँ सकल सुख मंगल, कष्ट नसात"

इन कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्धि मलिक मुहम्मद जायसी को मिली। इन्होंने अपने 'पद्मावत' में चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहल द्वीप की पद्मिनी की प्रेम कहानी को लेकर अपने ग्रन्थ की रचना की और उसके अन्तर्गत सूफ़ी धर्म में पाए जाने वाले प्रेम तत्व का बहुत ही सुन्दर निरूपण किया। जायसी ने पद्मिनी के स्वरूप का मनोमुग्धकारी वर्णन किया है :

"सरवर तीर पद्मिनी आई
खोंपा छोरि केस मुख लाई
ससि मुख, अंग मलिय गिरि बासा
नागिन झाँपि लीन्ह चहूँ पासा
ओनई घटा परी जग छाहा
खसि कै सरन लीन्ह जन राहा
मूल चकोर दीठि मुख लावा
मेघ घटा मँह चँद देखावा"

पद्मिनी का यह स्वरूप लोकोत्तर भावना में मग्न करनेवाला है। संसार के प्रत्येक पदार्थ में उसका रूप प्रतिबिम्बित हो रहा है :

"नयन जो देखा कमल भा, निरमल नीर सरीर
हंसत जो देखा हँस भा, दसन जोति नग हीर।"

यह भाव भारतवर्ष के अद्वैतवादी विचार धारा के एकदम निकट आ जाता है : सर्व खल्विदं ब्रह्मः, तथा :

"मैं जान्यो निरधार, यह जग कांची कांच सो
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जहां।"

—बिहारी

इस अनन्त सौन्दर्य के विरह में समस्त सृष्टि व्याकुल सी दिखाई पड़ती है :

"सूरज बूढ़ि उठा होई ताता
औ मजीठ टेसू बन राता
भा बसंती रातीं बनसपती
औ राते सब जोगी जती
भूमि जो भींजि भएउ सब गेरू
और राते सब पंखि पखेरू
राती, सती, अगिनि सब काया
गगन मेघ राते तेहि छाया"

पृथ्वी और स्वर्ग, जीव और ईश्वर, दोनों एक थे, बीच में न जाने किसने इतना भेद डाल दिया :

"धरती सरग मिले हुत दोऊ
कोई निनार कै दीन्ह बिछोऊ"

इसी प्रकार योगी रतनसेन के कठिन मार्ग के वर्णन में साधक के मार्ग के विघ्नों काम, क्रोध आदि विकारों की व्यंजना की गई है :

"ओहि मिलान जो पहुँचे कोई
तब हम कहब पुरुष भल सोई
है आगे परतब के बाटा
विषम पहार अगम सुठि घाटा
बिच-बिच नदी खोह औ नारा
ठाँवहि ठाँव बैठ बट्मारा।"

ग्रन्थ का उपसंहार करते समय जायसी ने उसे अन्योक्ति बता कर अपने दृष्टिकोण को बिलकुल स्पष्ट कर दिया है :

"तन चितउर मन राजा कीन्हा
हिय सिंघल, बुधि पद्मिनि चीन्हा
गुरु सुआ जेहि पन्थ देखावा
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा
नागमती यह दुनिया धंधा
बांचा सोइ न एहि चित बंधा
राघव दूत सोई सैतानू
माया अलादीन सुलतानू
प्रेम-कथा एहि भांति विचारहु
बूझि लेहु जौ बूझै पारहु
तुरकी अरबी हिन्दुई भाषा जेती आहिं
जेहि मँह मारग प्रेम कर सबै सराहैं ताहिं

× × ×

कँह सुरूप पद्मावती रानी
कोइ न रहा जग रही कहानी
धनि सोई जस कीरति जासू
फूल मरै पै मरै न बासू।"

सूफ़ी मुसल्मान कवियों ने हिन्दी के उस स्वरूप को अपनाया जो यहाँ की जनता में प्रचलित था। फलतः प्रेम की पीर से भारतवासी अत्यधिक प्रभावित हुए। हिन्दी की कविता में भी दाम्पत्य भावना आगई, सूफ़ियों और भारतीयों की दाम्पत्य-भावना में एक अन्तर था। सूफ़ी परमात्मा को माशूक या पत्नी मानते थे, परन्तु भारतवासियों ने उसे पति रूप में ग्रहण किया। इसका भी एक कारण है। भारतवर्ष में त्याग और समर्पण नारियों के हिस्से में रहा है। जीव अथवा साधक समर्पण-भावना से ओतप्रोत होने के कारण श्रद्धा-रूपा पत्नी ही हो सकता है, विश्वास-रूपी पुरुष नहीं। भारतीय संस्कृति में नारी श्रद्धा है और पुरुष विश्वास। विश्वास रूपी पुरुष की उपासना के लिए जीव को पत्नी बनना पड़ा।

पति-पत्नी भाव के विपर्यय के साथ सूफ़ियों की दाम्पत्य-प्रेम-भावना हमें हिन्दी के अनेक कवियों में मिलती है। जैसे, कबीरदास ने अपने आप को राम की बहुरिया या पत्नी कहा है:

"हरि मोर पीउ मैं राम की बहुरिया
पीउ मोरा बड़ा मैं तनकी लहुरिया।"

राम की बहुरिया कभी तो प्रियतम से मिलने की विह्वलता प्रकट करती है:

"कब की बैठी जोवती बाट तिहारी राम
जिय तरसै तुव मिलन कूँ मन नाहीं विश्राम"

कभी मार्ग की कठिनाइयों का उल्लेख करने लग जाती है:

"मिलना कठिन है, कैसे मिलूँगी प्रिय जाय
समुझि सोच पग धरौं जतन से बार-बार डगि जाय
ऊँची गैल, राह रपटीली, पांव नहीं ठहराय"

और कभी अपना विरह-दुःख निवेदन करने लगती है:

"जैसे जल बिन मीन तलपै,
ऐसे हरि बिन मोर जियरा कलपै'

कबीर के पदों में कहीं-कहीं ऐसी बातों की चर्चा हो गई है, जिन्हें सामान्यतया अश्लील समझा जाता है:

"ये अंखिया अलसानी, पिय हो सेज चला

× × ×

धीरे पाँव धरौं पलंगा पर जागत ननद जिठानी"

कबीरदास के नाम की आड़ में आज कल बहुत से अश्लील गानों को 'कबीर' का कह कर सबके सामने गा दिया जाता है।

निर्गुण पन्थी अन्य अनेक सन्तों ने भी इसी प्रकार दाम्पत्य प्रेम को व्यक्त करने वाली रचनाएँ लिखी हैं। दरिया साहब और दादू तो खालिस सूफ़ी ही मालूम पड़ते हैं। यथा:

"विरहिन रोवै रात दिन, झूरै मन ही मांहि
दादू औसर चलि गया—प्रीतम पाए नाहिं
दरस कारंन बिरहिनी, वैरागिनि होवै
दादू विरह वियोगिनी हरि–मारग जोवै"

—दादू दयाल

हमारे वैष्णव भक्त कवियों पर भी सूफ़ी विचार धारा का प्रभाव परिलक्षित होता है। वैष्णवों के बीच रागानुगा अथवा प्रेम लक्षणा भक्ति परकीया प्रेम आदि पर सूफ़ी धर्म का स्पष्ट प्रभाव है। कृष्ण और गोपियों के प्रेम-प्रकर्ष द्वारा इसी दाम्पत्य-प्रेम की व्यंजना हुई है। मतवाली मीरा तो पुकार-पुकार कर गाती फिरती थी कि:

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई
जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोई"

मीरा की आँखें श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी में हठात् उलझ गई थीं :

"या मोहन के मैं रूप लुभानी
सुन्दर बदन कमल दल लोचन
बाँकी चितवन मंद मुसकानी
जमना के तीरे धेनु चरावै
बंसी में गावै मीठी बानी"

वे कभी तो यह कहती हैं कि "सखी री मैं तो सांवर के रंग राती" और कभी वह गाने लगतीं हैं कि :

"बाबुल वैद बुलाइया रे पकड़ दिखाई म्हारी बाँह
मूरख वैद मरम नहीं जाने करक करेजे मांह"

उनकी विरहानुभूतियाँ हिन्दी साहित्य की अक्षुण्ण निधि हैं :

"सखी मेरी नींद नसानी हो
पिया को पंथ निहारत सब रेन बिहानी हो" आदि :

सूरदास आदि कृष्ण भक्त कवियों की वाणी में भी हमें सूफ़ी-विचारधारा के दर्शन हो जाते हैं। सूरदास की गोपियों का कृष्ण-वियोग में तड़पना मानों सूरदास का श्रीकृष्ण दर्शन के लिए अधीर हो उठना है। यथा :

"पिया बिना नागिन कारी रात
कबहुँ जागिनी होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात
मन्त्र नहिं फुरे जन्त्र नहिं लागत आयु सिरानी जात
सूरस्याम बिन बिकल विरहिनी मुरी मुरी करवट खात"

भक्तवर नागरीदास ने तो इस प्रसंग को लेकर "इश्क-चमन" ही लिख डाला :

"सब मज़हब सब इलम अरु सव ऐश के स्वाद
अरे! इश्क के असर बिनु ये सब ही बरबाद
आया इश्क लपेट में, लागी चश्म चपेट
सोई भया खलक में और भरैं सब पेट"

रसखान मियाँ तो अपने आपको कृष्ण की पत्नी ही मान बैठे थे। कृष्ण के अधरामृत का निरन्तर पान करती रहनेवाली मुरलिया तो उनकी सौत ही थी। देखिए :

"मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गूंज की माल गरे पहिरौंगी
ओढ़ पीताम्बर लै लकुटी बन गौधन ग्वालन संग फिरौंगी
भाव तो मेरी सोई रसखान सो तेरे कहे सब स्वांग करौंगी
या मुरली मुरलीधर की अधरान-धरी अधरा न धरौंगी"

रसखान यद्यपि मुसल्मान थे तथापि भारत वर्ष में रहने के कारण उन्होंने भी भगवान् की भावना माशूक के रूप में नहीं बल्कि पति के रूप में की है।

मुसल्मान कवयित्री बीबी ताज तो कृष्ण से शादी करने के लिए हिन्दुस्तानी होने को-अपना मज़हब छोड़ने तक को तैयार थीं। सुनिए उनकी यह दर्दभरी वानी :

"सुनो दिल जांनी मांड़े दिल की कहानी,
तुव दस्तहू बिकानी बदनामी हू सहूंगी में।
देव-पूजा ठांनी, मैं निवाज हूँ भुलाँनी,
तजे-कलमा-कुरान, तांड़े गुनन गहूंगी में।
सांवला सलोना सिर 'ताज' सिर कुल्लेदार,
तेरे नेह-दाग में, निधाग हां दहूंगी में।
नंद के फरजंद, कुरबान तांड़ी सूरत पर,
तेरे नाल प्यारे, हिन्दुवांनी बन रहूंगी मैं।"

हज़रत नफ़ीस, कारेखाँ, मौलाना आज़ाद अजीमावादी, लाल मूसा, मियाँ वाहिदअली, आलमखाँ, आगरे के मियाँ नज़ीर, महबूब, बिलग्राम निवासी सैयद अब्दुल जलील आदि अनेक मुसल्मान कवि कृष्ण प्रेम के दीवाने हो गए हैं। वे ख़ुदा को माशूक मानने वाले रास्ते को छोड़ कर कृष्ण को पति मानने वाले रास्ते पर चलने लगे थे। और होता भी क्यों न? मुसल्मानी दरबारों में आदर एवं आश्रय पानेवाले रीतिकालीन कवि, वृन्दावन में रहनेवाले कृष्ण-भक्ति में आकण्ठ निमग्न रहनेवाले कवि सब के सब महाकवि देव कें समान यही कामना किया करते थे कि 'सांवरे लाल को सांवरी रूप में नैनन को कजरा करि राखो।"

यह भावना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय तक चली आई। भारतेन्दु लिखते हैं :

"देखन देउं न आरसी सुन्दर नन्द कुमार
मोहित ह्वै निज रूप पै जनि मोहि देहु बिसार।"

अंग्रेज़ी राज्य और अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव के कारण इस भावना में थोड़ा सा परिवर्तन हो गया। प्रेम के आलम्बन बदल गए, परन्तु भावना का मूल रूप आज

तक व्याप्त है। जैसे :

"भरा नैनों में मन में रूप
किसी छलिया का अमल अनूप।"—प्रसाद

यहाँ जीवात्मा प्रियतम के विरह में विकल है। महादेवी वर्मा तो अपने प्रियतम की प्राप्ति के लिए युगों से पथिक बनी हुई चली आई हैं :

"युग युगान्तर की पथिक मैं हूँ, कभी लूँ छाह तेरी
ले फिरूँ सुधि दीप-सी फिर राह में अपनी अँधेरी।"

सूफ़ियों के इस प्रेम की पीर ने सुमित्रानन्दन पन्त पर गहरी छाप लगाई है। उन्हें समस्त विश्व विरह-वेदना से व्याप्त दिखाई देता है :

"गगन के उर में घाव
देखती ताराएँ भी राह
बँधा विद्युत छवि में जलवाह,
चन्द्र की चितवन में भी चाह।"

तारागण आकाश के नेत्र बन कर उन्हें मौन संकेत करते हैं और झरना कुछ गहरी बात कहता हुआ सुनाई देता है :

"सौरभ का फैला केश जाल
करती समीर परियां विहार
गीली केशर मद झूम झूम
पीते तितली के नव कुमार
मर्मर का मधुर संगीत छेड़
देते हैं हिल पल्लव अजान।"

सूफ़ी धर्म-भावना ने हिन्दी साहित्य को एक विशेष विचार धारा दी और वह विचार धारा मूल रूप में अभी तक एक प्रच्छन्न धारा के रूप में अविच्छिन्न रूप से व्याप्त है। यह बात दूसरी है कि वाद ग्रस्त हो जाने के फलस्वरूप उसके बाह्य रूप में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है।

शीतला गली,
आगरा

—डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

नागौर अंडवार : मुसलमान सन्त

नागौर अंडवार एक मुसलमान संत हुए हैं। इनका समय १५ वीं सदी कहा जाता है। इनका नाम तमिलनाड के तंजोर जिले में प्रत्येक हिन्दु और मुसलमान के घर में अत्यन्त आदर-पूर्वक लिया जाता है। इनको नागौर की मसजिद में दफ़नाया गया था। इस स्थान पर प्रति वर्ष लाखों यात्री तीर्थयात्रा के लिए आते हैं। यहाँ प्रति वर्ष उनके नाम पर कन्दूरी उत्सव मनाया जाता है।

ये उत्तर प्रदेश में अवध के मानिकपुर स्थान के रहने वाले थे। इन्होंने अपने समय की उच्च से उच्च धार्मिक शिक्षा प्राप्त की थी। अपने ३०० शिष्यों के साथ ये समस्त भारतवर्ष और लंका में घूमे। अन्त में वे नागौर में रहने लगे। कुछ समय के पश्चात् ये पूर्व की ओर यात्रा के लिए चले गए। मौलमीन, बर्मा में उनकी मृत्यु हुई। कहा जाता है कि मौलमीन में मृत्यु के पश्चात् नागौरी-में वे पुनः आविर्भूत हुए और उनकी आज्ञा से उनके शरीर को नागौर में दफ़नाया गया।

—'हिन्दु' से

अमृतराय का "बीज" : भावी समाज रचना की रूपरेखा

अमृतराय को पहले पहल मैंने एक कहानीकार के रूप में जाना था। बात आज से कुछ साल पहले की है। उन दिनों मैं पेरिस में थी, और रेडिओ फ्रान्स ने भारत के आधुनिक गल्प साहित्य के सम्बन्ध में एक बातचीत प्रसारित करने के लिए मुझे आमंत्रित किया था। हिन्दी के जो दो नए ग्रन्थ उन दिनों मेरे हाथ लगे थे, वे थे भगवतशरण उपाध्याय कृत 'खून के धब्बे' और अमृतराय का 'इतिहास'। इन दोनों ही लेखकों के नाम से तब तक मैं अपरिचित थी। रेडिओ का आमन्त्रण मिलने के बाद असल में मैंने भारत में अपने एक मित्र को हिन्दी की कुछ नई किताबें भेजने के लिए लिखा था, और स्वयं एक प्रगतिशील रचनाकार होने के नाते उन्हें सम्भवतः यही दो पुस्तकें मिलीं जो मुझे भेजना उन्होंने ठीक समझा। कहना न होगा कि पैकेट खोलने पर पहले मुझे कुछ निराशा हुई, लेकिन बाद में जैसे जैसे मैं उन पर नज़र डालती गई, वे मुझे भली लगती गईं। भगवतशरण की किताब ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर लिखी गई थी। उसे कथा साहित्य के अन्तर्गत किसी भी तरह लाना उचित न था, और उसी से अपने रेडिओ भाषण में मुझे केवल अमृतराय की कृति से ही सन्तोष करना पड़ा था। वह पहला अवसर था जब मैं अमृतराय की रचना शैली से परिचित हुई। बाद में, भारत वापस लौटने पर, मैंने उनकी अन्य पुस्तकें पढ़ीं। 'हंस' उन दिनों शायद निकल रहा था, और उसमें भी अक्सर अमृत की कुछ चीज़ें पढ़ने को मिल जाया करती थीं। फिर एकाएक वह बन्द हो गया, और इस तरह कुछ दिनों के लिए अमृत की लेखनी से जो एक मानसिक सम्पर्क स्थापित हो गया था, उसे स्थगित होना पड़ा। लेकिन इसके अर्थ यह कदापि नहीं कि उस सम्पर्क की पूरी तरह समाप्ति हो गई, या उनकी रचनाओं के प्रति मेरा जो मोह था, उसमें कोई कमी आई। 'हंस' की पुरानी फ़ाइलें इस बीच मैंने मँगाई। 'लाल धरती' और 'तिरंगे कफ़न' नामक उनके संग्रह मैंने देखे। कई स्थलों पर अमृत के दृष्टिकोणों से मैं सहमत न थी, लेकिन तब भी उनकी लेखनी में एक ऐसी तल्ख़ सचाई थी जिससे सहज ही आँखें मूँदना भी सम्भव नहीं था। सच में तो उनकी इसी चीज़ ने मुझ पर पहले भी सबसे अधिक प्रभाव डाला था, और बाद के अध्ययन द्वारा उस प्रभाव की पुष्टि ही हुई, उसमें कमज़ोरी नहीं आई।

मैं मानती हूँ कि अन्य देशों के साहित्य के मुक़ाबले में भारतीय साहित्य के बारे में मेरी जानकारी बहुत ज़्यादा नहीं है। एक दृष्टि से यह मेरी काफ़ी बड़ी कमी है, और पिछले कुछेक वर्षों से मैं इस कमी को अधिक से अधिक दूर करने की कोशिश भी करती रही हूँ। लेकिन उन अवसरों पर जब अन्य भाषाओं के साहित्य से अपने भाषा ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन मुझे प्रस्तुत करना होता है, यह कभी कभी मेरी सहायक भी सिद्ध हो जाती है। विदेश के लगभग प्रत्येक प्रमुख साहित्यकार की चीज़ें मैंने पढ़ी हैं, और अगर मैं कहूँ कि अमृत की रचनाओं का माध्यम उनमें किसी से भी हेय नहीं है, तो मैं अपने को धोखा नहीं दूँगी। मानव को ऊँचा उठने की प्रेरणा, उसमें एक विकासोन्मुख संकल्प शक्ति का अवतरण, जो मेरे ख़याल में किसी भी युग के साहित्यकार का सबसे बड़ा ध्येय रहा है, अमृत की रचनाओं में अपने पूरे ज़ोरशोर के साथ मौजूद है। उनके रचना-माध्यम का यह सबसे पुरज़ोर पहलू है, और शायद सबसे तीखा भी। यही वजह है कि कभी कभी वह लोगों को पसन्द नहीं आता, और लोग उन्हें किसी दल विशेष से सम्बद्ध समझने लगते हैं।

'बीज' अमृत का पहला, और शायद अकेला उपन्यास है। 'शायद' मैं इसलिए कह रही हूँ क्योंकि पिछले दिनों मैंने सुना था कि वे 'ऋषियों की पुण्य भूमि' या कुछ इसी तरह के किसी नाम से एक नए उपन्यास की तैयारी कर रहे हैं, और मुझे पता नहीं कि उसमें अभी तक कितनी प्रगति हुई है। बहर हाल, आज जब मुझे अमृत की उपन्यास कला पर अपने विचार प्रकट करने हैं, मैं अपने सामने सिर्फ़ 'बीज' को ही देखती हूँ: 'बीज', जिसे आगामी मानव के सुख स्वप्नों का आधार स्थल बनाने का प्रयत्न सम्भवतः उन्होंने अपनी पूरी शक्ति के साथ किया है।

अमृत का यह उपन्यास पिछले साल, शायद आज ही कल के दिनों में, मुझे पढ़ने को मिला था। तब मेरे एक दोस्त ने मुझ से कहा था कि उनके फ़ीचर सिंडिकेट के लिए मैं इसकी समीक्षा लिखूँ। उसे लिखना मैंने शुरु भी किया था, पर जब जब मैं आगे बढ़ने की कोशिश करती, मुझे यही लगता जैसे मैं अभी उपन्यास के तल तक नहीं पहुँच सकी हूँ, उसकी कई बातों को साफ़ और सुलझे दिमाग़ से समझने का प्रयत्न नहीं कर सकी हूँ। इसी तरह दिन बीतते गए, और इस बीच उपन्यास को भी मैं दुहराती तिहराती गई। अन्तिम बार अध्ययन समाप्त करने के बाद मुझे लगा कि जैसे मैंने यह पहला उपन्यास पढ़ा हो जिसमें मानव मनोविज्ञान की गुत्थियों को ज़मीन पर बैठ कर सुलझाने की चेष्टा की गई हो। शुरु में किसी ने मुझ से कहा था कि 'बीज' ने प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाया है। तब मैं उनकी इस बात को हंसी में टाल गई थी, क्योंकि मैं समझती थी कि प्रेमचन्द की संवेदना शक्ति को अपनी लेखनी में लाना आज के साहित्यकार के बूते के बाहर की बात है। 'बीज' पढ़ने के बाद भी एक हद तक यह बात सही ही लगी। लेकिन उसके साथ ही जो नई चीज़ मुझे मालूम थी वह यह थी कि मानव के उच्चतर विकास के लिए संवेदना ही काफ़ी नहीं है, उससे भी बड़ी एक चीज़ है जो हमें अपनी उन्नति के लिए अपेक्षित है, और वह है जीवन की समस्याओं का सही मूल्यांकन कर उनकी पूर्ति का सीधा रास्ता निकालना। इस दृष्टि से 'बीज' अवश्य प्रेमचन्द की परम्परा को एक हद तक आगे बढ़ाने में समर्थ हो सका है। प्रेमचन्द ने अपने किसी भी ग्रन्थ में समस्या का निश्चित हल देने की चेष्टा नहीं की; यहाँ तक कि उनके अन्तिम उपन्यास 'गोदान' का नायक भी जीवन के संघर्षों से हारने के बाद ही इस लोक से मुक्ति पा सका है। प्रेमचन्द के पात्र जीवन संग्राम में लड़ते लड़ते इतना थक चुके थे कि उनकी दृष्टि ही उत्तर संघर्ष कालीन स्थिति तक नहीं पहुँच सकती थी। वैसे यह प्रेमचन्द की कमी नहीं है, क्योंकि जिस युग और समाज के लिए उन्होंने अपने साहित्य की सर्जना की थी, वह युग ही, बौद्धिक उत्थान की दृष्टि से, इतना विकसित नहीं था कि एक निश्चित घेरे के बाहर कुछ सोच सकता। तब मानव के मानसिक धरातल का उद्वेलन ही साहित्यकार का सबसे बड़ा कर्त्तव्य था, और प्रेमचन्द उसमें खरे उतरे। लेकिन आज, जब देश की राजनीतिक और सामाजिक, दोनों ही स्थितियाँ परिवर्त्तित हो चुकी हैं और हमें आगे बढ़ते हुए अपने प्रत्येक पग को एक रचनात्मक दृष्टिकोण से देखना है, प्रेमचन्द की संवेदना शक्ति अधिक उपयोगी भी नहीं साबित हो सकती। अमृतराय ने इस परिस्थिति को पूरी तरह समझा, और उसके सुलझाव में अपना योग भी दिया। 'बीज' के शुरु के ही पन्नों में हमें इस दिशा की ओर एक संकेत मिलता है, कुछ इस तरह का भाव कि यह ज़िन्दगी एक बहुत बड़ी अमानत है...जब यह ज़िन्दगी मिली है तो उसे इस तरह जियो कि वह किसी मंज़िल पर पहुँचे, कि तुम्हें भी इस बात का एहसास हो कि तुमने अपनी ज़िन्दगी को कौड़ी के मोल बिकने नहीं दिया।[1] इसी से कुछ लोगों को 'बीज' का चौखटा शायद कुछ रूखा लगे, लेकिन वह हम में जिस नई चेतना शक्ति का उद्भव करता है, उससे भी इनकार नहीं किया जा सकता।

'बीज' में पात्रों की कमी नहीं है। कहना चाहिए कि उनकी बहुलता ही है। लेकिन तब भी वह खलते नहीं, बुरे नहीं लगते। वैसे यह कहा जा सकता है कि पात्रों की बहुलता उपन्यास तत्व की सूक्ष्मता की अपरिचायक है। मैं मानती हूँ कि किसी विशेष धरातल के चित्रण के लिए इस प्रकार की सूक्ष्मता अत्यावश्यक है। शरत की अधिकांश रचनाएँ इसी पथ पर चली थीं। यह भी मानती हूँ कि अमृतराय ने 'बीज' को अगर कुछ कण्डेन्स्ड फ़ार्म दे दिया होता, तो पुस्तक अधिक प्रभावशाली बन सकती थी। लेकिन तब भी जीवन की जिस वृत्ति या वृत्तियों का चित्रण 'बीज' के लेखक ने करना चाहा है, उसमें वह सूक्ष्मता व्यावहारिक भी नहीं थी। सच में तो 'बीज' एक उपन्यास नहीं; छोटे छोटे कई उपन्यासों का एक समूह है। यही कारण है कि कई जगहों पर उसकी श्रृंखलाएँ भटक जाती हैं, उनकी कण्टीनिउटी नहीं रहती। क्या विस्तार को छोटा कर अमृत इस आलोचना से सहज ही मुक्त हो सकते थे? लेकिन तब शायद 'बीज' में मानव विज्ञान के विभिन्न चरणों का वह चित्रण न हो पाता जिस पर भावी समाज रचना की बुनियाद खड़ी होती है, जो लेखक के

---

[1] पृष्ठ २४

स्वप्न का आधार-बिन्दु है। इस तरह रचना कौशल की दृष्टि से जो अमृतराय की कमी है, रचनात्मक दृष्टिकोण से वही उनकी ख़ूबी बन कर प्रकट होती है। वैसे मैं साफ़ कह दूँ कि यह मेरे अपने विचार नहीं हैं। मैं अगर अमृत की जगह होती तो शायद उपन्यास का रूप ही दूसरा होता। सम्भव है, वैसा करने से उपन्यास के प्रभाव की परिधि में कुछ अन्तर पड़ जाता, लेकिन उसको अधिकतम रोचक बनाने के उद्देश्य से उस कमी को मैं सहर्ष स्वीकार कर लेती।

हिन्दी में प्रेमचन्द के अलावा मैंने 'अज्ञेय' और जैनेन्द्र को काफ़ी पढ़ा है। उनकी साहित्यिक प्रतिभा की मैं क़ायल हूँ। मैं मानती हूँ कि हिन्दी को उन्होंने बहुत कुछ दिया है। लेकिन जहां 'अज्ञेय' की रचनाशक्ति गतिविहीन उड़ान भर कर ही सन्तोष कर लेती है और जैनेन्द्र साफ़ सुथरी वाक्यावलियों के बीच भी पाठक की भावनाओं को अपने जाल में इस तरह जकड़ लेते हैं कि उसे अपने धरातल का आर पार ही नहीं सूझता, अमृत इन 'ख़ूबियों' से मुक्त हैं। 'बीज' की सर्वाधिक उल्लेखनीय बात शायद यही है कि उसके पात्रों ने कभी जमीन पर भी दौड़ना नहीं चाहा, आकाश में उड़ने की तो बात ही दूर है। वे तो धरती पर चले हैं, और वह भी धीरे धीरे, जिससे रास्ता भी तय हो जाए और थकान भी न लगे। सत्य, उषा, प्रफुल्ल, वीरेन्द्र, प्रमिला, सभी इसके उदाहरण हैं। और तो और, उन्होंने कभी अपने दिल को भी नंगा करने की कोशिश नहीं की, क्योंकि जैसे आत्मीय से आत्मीय आदमी के आगे भी नंगा होने से इन्सान झिझकता है, उसी तरह दिल को भी नंगा होने में झिझक होती है : यानी उन लोगों को जिनके पास दिल होता है—दिल, यानी दिल चमड़े का पट्टा नहीं जो कलाई पर बाँधा जाता है।[२]

इसी दिल को पूर्णतः संयमशील रखने के लिए ही सम्भवतः लेखक ने 'बीज' में तीन डायरियों का समावेश किया है, जो मेरे ख़याल में प्रस्तुत उपन्यास का सर्वश्रेष्ठ अंग हैं। मानव धारणाओं की मनोविज्ञानिक प्रगति का जो दिग्दर्शन हमें इन डायरियों के गिने चुने पन्नों में मिलता है, वह शायद और कहीं न मिल सके। अमृत इस दृष्टि से बहुत कामयाब कहे जा सकते हैं कि जिस चीज़ के वर्णन में काफ़ी से ज़्यादा पन्नों के रंगने की सम्भावना थी, उसे उन्होंने कुछ ही पृष्ठों में समेट कर रख दिया, और वह भी पूरी सफलता के साथ। सत्य, उषा और राज के मानसिक धरातल का जो चित्र हमें शुरू के इन पन्नों में मिल जाता है, वह अन्त तक लगभग एक सा रहता है, और इसी से आगे के हिस्सों में हमें उनकी मनोविज्ञानिक पृष्ठभूमि के साथ माथापच्ची करने की ज़रूरत नहीं महसूस होती।

'बीज' को आसानी के साथ दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है; एक तो उसका राजनीतिक धरातल वाला अंग, और दूसरा वह हिस्सा जिसमें अमृत ने आज की घरेलू ज़िन्दगी चित्रित करने की कोशिश की है। कहना न होगा कि दूसरे हिस्से में, पहले के मुक़ाबले, वह हद से ज़्यादा सफल रहे हैं। बल्कि मैं यहाँ तक कह सकती हूँ कि राजनीति सम्बन्धी बहुतेरा हिस्सा अगर पुस्तक से अलग किया जा सकता तो पुस्तक जन जीवन में अधिक खप सकती थी। राजनीतिक अंग को एक दूसरे उपन्यास की शक़्ल दी जा सकती थी, या उसके मूल सिद्धान्तों को रख कर बाकी चीज़ें निकाली जा सकती थीं। यों जिस 'बीज' को लेकर अमृत ने आगे बढ़ने का प्रयत्न किया है, उसमें, इस कांट छांट से सम्भवतः कुछ कमी आ जाती। लेकिन तब भी अपने समस्त विचारों को एक साथ पाठक के गले मढ़ना मोह की दृष्टि से भले ही लाभदायक लगे, ठोस प्रभाव डालने में वह कभी सफल नहीं होता। अमृत की सबसे बड़ी ग़लती मेरे ख़याल में यही है कि उन्होंने पिछले दस या पन्द्रह बरसों में संजोयी अपनी सब पूँजी एक साथ पाठक तक पहुँचाने की कोशिश की है। इससे उसका सामयिक प्रभाव लोगों में तत्क्षण भले ही दिखाई दे जाए, लेकिन उसे स्थायित्व नहीं मिल सकता, यह भी निश्चित बात है।

सबसे पहले मैं 'बीज' के पात्रों को लेती हूँ। ड्रामाई नुक़्ते से देखा जाए तो कह सकती हूँ कि वीरेन्द्र उपन्यास की पूरी कहानी का सूत्रधार है, उषा और सत्य नायिका नायक हैं, दमयन्ती और साहनी साहब खल विभाग के प्रमुख पात्र हैं, राजेश्वरी और महेन्द्र (या नरेन्द्र या सुरेन्द्र या कोई भी इन्द्र) साथ चलने वाली कहानी के कलाकार हैं, और पार्वती और प्रमिला

---

[२] पृष्ठ १

ऐसी पात्राएँ हैं जो कुछ ही क्षणों के लिए रंगमंच पर आने के बावजूद भी दर्शक पर इतना अधिक प्रभाव जमा लेती हैं कि अन्त तक उनकी याद नहीं भूलती। यही बीज प्रफुल्ल बाबू के बारे में भी कही जा सकती है, जो मेरे खयाल में, प्रमुख न होते हुए भी उपन्यास के सर्वाधिक प्रांजल पात्र हैं। कहा जा सकता है कि 'बीज' के बोने में आन्तरिक रूप से लोगों को जितनी सहायता प्रफुल्ल बाबू से मिली, उतनी अन्य किसी से नहीं। उनकी अनेक उक्तियाँ मुझे बड़े बड़े दर्शन ग्रन्थों से भी अधिक प्रभावोत्पादक लगीं; ज़िन्दगी के पन्क्चुएशन मार्क्स की तरह जब किसी मोड़ पर कोई टेढ़ा सवाल पेश हुआ, उसको हल करने की प्रेरणा प्रफुल्ल बाबू से ही मिली, और सौ में निन्नानवे बार लोग उसमें सफल भी हुए।

प्रफुल्ल बाबू के बारे में जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात कही जा सकती है वह यह है कि उन्हें जितनी लगन देश की राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति थी, उससे कुछ भी कम अपने या साथियों के घर और परिवार में न थी। उनका देश प्रेम "हिन्द" नाम की किसी निरी भौगोलिक इकाई तक सीमित नहीं था, बल्कि उनके लिए देश प्रेम का मतलब था यहाँ की मिट्टी से प्यार यहाँ के रहने वालों से प्यार, यहाँ के फल फूल से प्यार[3] और इसी से शायद मानव भावनाओं का जितना विराट् रूप हमें प्रफुल्ल बाबू के चरित्र में देखने को मिलता है, उतना किसी दूसरे में नहीं। यह शब्द यद्यपि उन्होंने एक स्थान पर अपने बेटे के बारे में कहे थे, लेकिन मेरे खयाल में उनकी खुद की तसवीर भी इससे भिन्न न होगी।

'बीज' के प्रफुल्ल बाबू दर असल एक ऐसे अजेय मानव समाज के प्रतिबिम्ब हैं जिसने उच्चतर मानव कल्याण की भावना के समक्ष कभी भी अपनी कमज़ोरियों से हार नहीं मानी, भले ही उस कमज़ोरी का ताल्लुक सीधे-सीधे उनकी हार्दिक भावनाओं से ही क्यों न हो। सूरत शकल से देखने में पुरानी दुनियाँ के आदमी, लेकिन मन में एक ऐसी आग जो बड़ी से बड़ी प्रलयंकर समस्या को भी अपने दामन में छिपाने के लिए तैयार हो: प्रफुल्ल बाबू का यह स्वरूप एक ऐसे भावी मानव की ओर संकेत करता है जिसको देख कर देश के सुखस्वप्न की हमारी लहर कभी मन्द नहीं पड़ सकती। किसी स्थान पर मैंने पढ़ा था कि मन जब अन्तःकरण के दल में रहता है तो प्रकृति के तद्रूप हो जाता है। प्रफुल्ल बाबू को भी यदि किसी संज्ञा विशेष के साथ जोड़ा जा सकता है तो वह है अन्तःकरण की संज्ञा। प्रफुल्ल दा जैसे शक्तिवान अन्तःकरण के व्यक्ति—मैं यह नहीं कहती कि उनकी तरह के व्यक्ति इस दुनियाँ में नहीं हैं—लेकिन अगर उनके जैसे शुद्ध अन्तःकरण के व्यक्ति किसी समाज में दो चार भी हो जाएँ तो उस समाज की प्रगति अवरुद्ध करना किसी के भी बस की बात नहीं है—भले ही वह व्यक्ति कितना ही शक्तिशाली हो।

प्रफुल्ल बाबू के बाद उपन्यास में सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व सम्भवतः वीरेन्द्र का ही है। "उसमें कहीं भी तो कोई खास बात नहीं, रत्ती भर भी तो बनावट नहीं। जो कमज़ोरी है, वह भी अच्छे शीशे के बर्तन में रक्खे पानी की तरह साफ झलक रही है, वीरेन्द्र को कोई ग़म नहीं है उसको और न कोई ग़रज़ उसे ढाँकने से—वह बेहद ह्यूमन आदमी है, अपनी ताक़त में भी और अपनी कमजोरी में भी-"[4] वीरेन्द्र का यह चित्र उसके प्रति हमारी आदर भावना भरने में चाहे समर्थ न हो सके, लेकिन ऐसे व्यक्ति का साथ पाने की इच्छा तो हर एक को होगी। वैसे प्रफुल्ल दा के विपरीत वीरेन्द्र में अहंभावना का शायद कुछ अंश है और इसी से अपने व्यक्तित्व को वह कभी भूल नहीं पाता। उसे हमेशा इस बात की याद रहती है कि उसके भीतर एक आग है, और उस आग का उचित इस्तेमाल उसे करना है। प्रफुल्ल दा की गति सहज, स्वाभाविक थी। उसमें किसी भी तरह की बाहरी पालिश का नितान्त अभाव था, या शायद उसकी आवश्यकता ही नहीं थी। लेकिन वीरेन्द्र की गति में पालिश है, और जन जीवन में वह पालिश का महत्व समझता भी है। इसी लिए उसमें स्वाभाविकता तो, है लेकिन प्रफुल्ल दा जैसा सहज वह नहीं बन पाया है। या साधरण जनवर्ग के बीच अपने को तो वह आसानी से खपा लेगा, लेकिन निश्चित बुद्धि विवेक से स्तर के व्यक्ति उसके पास जाते हुए डरेंगे, उन्हें कुछ ऐसा लगेगा जैसा वीरेन्द्र हम से बहुत ऊँचा व्यक्ति है, उसका सामीप्य प्राप्त करने की योग्यता हम में नहीं है।

---

[3] पृष्ठ ४४९ [4] पृष्ठ ३२७

एक वाक्य में कहा जाता है कि वीरेन्द्र और प्रफुल्ल बाबू में वही अन्तर है जो युद्ध और युद्धोत्तरकालीन दो व्यक्तियों में होता है। "लड़ाई बड़ी ज़ालिम चीज़ है सत्य बाबू," वीरेन्द्र ने एक बार कहा था, "बहुत बार उसमें अपने मन को मारना पड़ता है।"[५] या "लड़ाई का भी एक विज्ञान होता है, उसका काम कोरी भावना या आवेश से नहीं चल सकता।"[६] इन वाक्यों से साफ़ पता चलता है कि प्रफुल्ल बाबू की तरह वीरेन्द्र अभी तक अपने विकास की उस चरम रेखा तक नहीं पहुँच सका है जहाँ आकर मन और मस्तिष्क एकाकार हो जाते हैं: उन दोनों के बीच किसी संघर्ष का सवाल ही नहीं पैदा होता। वैसे एक सैनिक के लिए यह विचारधारा उपयुक्त नहीं बैठती, और उस दृष्टि से वीरेन्द्र अपने पथ में एक खरा व्यक्ति है। उसके अन्तर की अग्निशिखा की पावनता से इनकार नहीं किया जा सकता, उसे हम अगम बुद्धिशाली भी कह सकते हैं, लेकिन उसका अन्तःकरण शायद इतना सुलझा नहीं है कि वह प्रकृति के तद्रूप हो सके—और इसी जगह पर वह प्रफुल्ल दा से उन्नीस बैठता है। प्रफुल्ल दा ने समाज को भी व्यक्ति की तरह देखा था; वीरेन्द्र व्यक्ति को भी समाज के रूप में देखता है—यह अन्तर दोनों के आन्तरिक भाव विन्यास का है। सही दोनों हैं, लेकिन दोनों के स्तर में भिन्नता है।

मैं कह चुकी हूँ कि वीरेन्द्र उपन्यास का सूत्रधार है। प्रफुल्ल दा के रहते हुए भी उसे इस पद पर प्रतिष्ठित करने का एकमात्र कारण यही है कि उपन्यास की मूल विचारधाराओं के निर्माण में आधार स्वरूप जितना प्रभाव वीरेन्द्र का पड़ा है उतना अन्य किसी का नहीं—यहाँ तक कि प्रफुल्ल दा को भी वीरेन्द्र के बताए हुए मार्ग को ही अपनाना पड़ा है। कह सकते हैं कि सम्पूर्ण उपन्यास अगर एक बड़ी टीका है, तो उसके मुख्य सूत्रों की रचना वीरेन्द्र ने की है। उपन्यास के नायक, सत्यवान की विशृंखलित विचारधाराओं को पूरी तरह रेनोवेट कर उसमें एक पूर्णतः वैज्ञानिक चेतना का समावेश करना, मेरे ख़याल में, वीरेन्द्र जैसे व्यक्ति के लिए ही मुमकिन था। उस चेतना शक्ति को विकसित करने की शक्ति तो प्रफुल्ल दा में थी, लेकिन मूल रूप से वे उसका निर्माण नहीं कर सकते थे—यह एक निश्चित सत्य है।

सत्यवान के भौतिक व्यक्तित्व के निर्माण में मूल रूप से इन्ही दो व्यक्तियों का योग रहा है। यों उस चीज़ का बीज शुरू में उसमें नहीं था, ऐसी बात नहीं है। तब भी उसके बहिरंग में कुछ ख़ास आकर्षण न होते हुए भी कोई ऐसी चीज़ थी जो उसके व्यक्तित्व को रुचिकर बनाती थी।[७] लेकिन वह रुचिरता शायद इतनी पक्की न थी जो कालान्तर तक क़ायम रह सकती, और इसीसे उसे वीरेन्द्र और प्रफुल्ल दा के सहयोग की ज़रूरत पड़ी। वीरेन्द्र ने जहाँ उसके अपने राजनीतिक मानदण्ड का उचित मूल्यांकन करने की दीक्षा दी, वहीं प्रफुल्ल दा ने उसमें समाज के रूढ़िगत ढेरों को उखाड़ फेंकने का मन्त्र फूँका: और इन दोनों के सम्मिलित प्रयत्नों के बाद जब लोगों ने सत्य का रूप देखा, तो वह कुन्दन था।

क्रम बद्धता से अगर देखें तो सम्पूर्ण उपन्यास में सर्वाधिक परिष्कृत व्यक्तित्व हमें सत्यवान का ही मिलेगा, क्योंकि उसे ही सबसे ज़्यादा आँच में तपना पड़ा है। सत्यवान जैसे अपने प्रति पूरी ईमानदारी बरतने वाले व्यक्ति बहुत कम होते हैं, ख़ास तौर पर जब उस ईमानदारी से खुद अपना नुक़सान हो रहा हो। उसकी इस ईमानदार प्रवृत्ति की सबसे पहली झलक हमें उस पत्र में मिलती है जो उसने प्रथम बार उषा को लिखा है। "मैं तुम्हें चाहता हूँ अपनी जान की तरह, यह बिलकुल ठीक है, मगर वह आधी बात है। तुम भी अगर सचमुच मुझे चाहती हो तभी हामी भी भरना—मुझमें कोई भी जवाब सुनने की ताक़त है। मैंने क्षणिक आवेश में आकर तुम्हें नहीं लिखा है—इसलिए कि मेरे मन में शक्ति है।"[८] —यह शब्द अपने प्रति किसी बहुत ही ईमानदार व्यक्ति के लिए लिखना संभव था। इसी तरह माँ से अलग होने की बात "जो शुरू में कुछ कष्ट कर लगती है, लेकिन बाद में लगता है जैसे आज की अनेक पारिवारिक जटिलताओं के तह में वही चीज़ छिपी हुई हो" को "फोड़े की सफ़ाई की उपमा देना "जिससे ज़ख़्म नासूर न बनें[९] सत्यवान की उस अन्दरूनी सफ़ाई की द्योतक है जिसके लिए बहुत सुलझे हुए दिमाग़ की आवश्यकता होती है।

वस्तुतः सत्यवान की जो सबसे बड़ी ख़ूबी है और जिसके कारण उसे उपन्यास के नायक होने का गौरव

---

७ पृष्ठ १२ ८ पृष्ठ १६६ ६ पृष्ठ २२१

प्राप्त हुआ है, वह है शायद सत्य दर्शन के प्रति उसकी वह अमिट पिपासा जो हमेशा प्रगति ही करती गई, जिसका अन्त कभी न आया। मेरे ख़याल में उस के रूप में अमृत ने जन साधारण को एक ऐसे नवयुवक का चित्र देने की कोशिश की है जो हर तरह आदर्श है—विचार में भी और व्यवहार में भी। वह सिर्फ़ उतना ही समझता है जितना समझने की ज़रूरत होती है, उतना ही सोचता है जितना सोचने से किसी चीज़ का असली रूप उसे मालूम हो सके। रूढ़ियों का वह भरपूर विरोध करना जानता है—वह रूढ़ियाँ चाहे नई हो या पुरानी, और उस विरोध के फलस्वरूप जो कठिनाइयाँ सामने आएँ, उन्हें भी पूरी तरह स्वीकार करने में वह पूर्णतः समर्थ है। यही वजह है कि माँ का मोह उसे अपने बृहत्तर विकास की दिशा से न हटा सका, और न ही पत्नी के क्षणिक आवेश उसको सत्य के पथ से विचलित करने में सफल हो सके।

लोगों को इस बात की शिकायत है कि माँ के साथ भी सत्य ने वही सहानुभूति जन्य व्यवहार क्यों नहीं किया, जो पत्नी के साथ उसने किया था। शिकायत निराधार नहीं, लेकिन उसके कारण हैं। पहला, और शायद सबसे बड़ा कारण यह है कि उषा की मान्यताएँ जहाँ निरी कमज़ोरियों पर आधारित थीं, वहाँ माँ की कमज़ोरियाँ भी समय के कड़े रस्सों में बँध कर उनके संस्कारों में इस क़दर घुल मिल गई थी कि उसमें से उन्हें निकालना आसान काम नहीं था। समय की आँच में जब कोई मान्यता पकनी शुरु होती है और अबाध गति से पकती जाती है तो एक समय ऐसा आता है जब उसका कोई अपना अस्तित्व शेष नहीं रहता, और तब, काका कालेकर के शब्दों में उसमें सुधार का सिर्फ़ एक रास्ता बचता है, और वह है उसको 'मरण देना'। 'बीज' में सत्य को माँ की यही स्थिति है—अंशतः नहीं, पूरी तरह।

उषा की स्थिति भिन्न थी। पहले तो अभी उसमें इतनी जड़ता नहीं आ पाई थी जिससे उसका 'निर्माण' करने में कोई कठिनाई होती, और दूसरे वह सिर्फ़ देखने सुनने में ही नहीं, अपने विचार व्यवहार तक में इतनी भोली थी कि शुरु में उसे देख कर यही लगता था जैसे वह बिलकुल बच्ची हो। माँ की काई ज़मीन की अंग बन चुकी थी, उसको हटाना तब तक सम्भव नहीं था जब तक ज़मीन को ही न खोद डाला जाए। उषा की काई अभी पानी के ऊपर तैर रही थी और उसको बिना किसी ख़ास मेहनत के, सिर्फ़ यह देखते हुए कि काई के टुकड़े टूट कर तल में न बैठने लगें, उठा कर बाहर फेंका जा सकता था। इसी से 'बीज' में जहाँ कहीं भी उससे सम्बन्धित समस्याएँ आई हैं, उन्हें देख कर यही लगता है जैसे वह गुलाब की पंखड़ियों पर पड़ी ओस की बूँदें हों, जो या तो बहुत ही आसानी के साथ झाड़ी जा सकती हैं, और या जब सूरज़ की रोशनी उन पर पड़ेगी तो वह अपने आप सूख जाएँगी। ज़रूरत सिर्फ़ रोशनी पड़ने की है, वह किसी व्यक्ति के द्वारा पड़े, या परिस्थितियों के द्वारा।

उषा "बीज" की दो प्रमुख महिला पात्रों में से एक है। दूसरी है राजेश्वरी—"हिन्दू समाज के प्रति एक मूर्त्त अभियोग की पाषाण प्रतिमा, जिसके पास अपनी अभिव्यक्ति भी नहीं, जो मूक, निःशब्द दुःख सहन करना ही जानती है।"[10] ग़ौर से देखा जाए तो दोनों ही बिलकुल औसत मानवी लगती हैं, लेकिन तब भी जीवन के प्रति उन दोनों के अप्रोचेज़ में जो भिन्नता थी, वही उनको दो अलग अलग किनारों पर ले गई। उषा का ज़ीवन सीधा सादा था, उसमें कोई लाग लपेट नहीं थी और न ही हृदय और जिह्वा में कोई भिन्नता, वह जो सोचती थी उसको बिना हिचक लोगों के सामने रख देती थी, जैसे कह रही हो—यह है मेरा आज का रूप, यह हैं मेरी आज की आस्थाएँ, अब तुम बताओ मुझे किस जगह पर, किस तरह फेर बदल करनी है। राज में यह स्पष्टवादिता नहीं है, क्योंकि जीवन के प्रति आस्था नहीं है। इस अनास्था के कारण ही उसकी छाती में वैसी दरारें पड़ सकीं जैसी गर्मी के दिनों में सूखी हुई तलइयों की छाती में पड़ जाती हैं[11] और वह एक लाश बन कर रह गई और उसके चेहरे पर मौत के दस्तख़त दिखाई देने लगे।

एक तरह से देखा जाय तो राजेश्वरी ही उपन्यास की सर्वाधिक विवादग्रस्त पात्रा लगती है कुछ लोगों का ख़याल है कि अगर उसके चरित्र का विकास ठीक तरह किया जाता, तो उसका व्यक्तित्व अधिक प्रभा-

---

[10] पृष्ठ ६६ [11] पृष्ठ २०२

वशाली बन सकता था। पहले मेरा भी यही विचार था, क्योंकि किसी भी पात्र का उचित परिष्कार किए बिना, आगे का रास्ता न मिल सकने के कारण, उसे मौत के कुएँ में ढकेल देना सामान्य धारणाओं के अनुसार चाहे कितना ही ठीक हो, प्रगतिवादी दृष्टिकोण तो मैं उसे हरगिज़ नहीं कह सकती। लेकिन तभी मुझे लगा कि इसके सिवाय उसका अन्त और हो भी क्या सकता था? कछुआ जब अपना सिर भीतर काठी के अन्दर समेट ले[12] तो किसी को भी उसकी दवा करना सम्भव नहीं हो सकता—और राजेश्वरी शुरू से अन्त तक ऐसी ही बनी रही। अपने अन्दर घुल घुल कर मरना व्यक्ति की अपनी दृष्टि में चाहे जितनी बड़ी तपस्या हो, लेकिन परोक्ष रूप से उससे उसके मानसिक विकास में बाधा ही पड़ती है—यह एक निश्चित तथ्य है। राज की सब से बड़ी ग़लती यह थी कि उसने कभी अपने को खोला नहीं, अपनी आन्तरिक भावनाओं का उचित प्रदर्शन नहीं किया—अकेले में भी नहीं, सबके सामने तो दूर की बात है। इस दृष्टि से वह उन व्यक्तियों के लिए अच्छी खासी उदाहरण है जो अपने दिल को ताले में बन्द रखना संसार का सबसे बड़ा संयम समझते हैं—जिनके विचार में मन को मारना ही दुनिया की सब से बड़ी विजय होती है। राज के रूप में अमृत ने जिस पात्रा का निर्माण किया है वह एक आदर्श पात्रा न होते हुए भी शायद सर्वाधिक शिक्षाप्रद पात्रा है—ख़ास तौर पर आजकल के ज़माने के लिए, जब घुल घुल कर अपनी जान देना एक फ़ैशन बनता जा रहा है।

तब भी मैं अमृत को जीवन संग्राम में एक हारा हुआ खिलाड़ी समझती, अगर राज की समकक्षता में उन्होंने प्रमिला को न ला खड़ा किया होता। दोनों के प्रारम्भिक जीवन की रेखाएँ देखी जाएँ तो उनमें बहुत कम विभिन्नता मिलेगी। दर्द किसी के जीवन में कम नहीं रहा है—दोनों को ही अपने जीवन की उन चरम निराशामय परिस्थितियों से टक्कर लेनी पड़ी है जिनके बीच पहुँच कर आम तौर से हर एक आदमी सफल नहीं हो सकता। लेकिन दर्द के उन चौखटों ने प्रमिला के लिए जहाँ एक आवश्यक आपरेशन से अधिक महत्व नहीं रक्खा, राज के लिए वही नासूर बन गए और अन्त में वह उसकी जान लेकर ही माने। दोनों के दर्दों में फ़र्क़ नहीं था, लेकिन एक में जहाँ उससे निखार आया—जैसे मिलावट सब क्षार हो गई हो और दमकता हुआ कुन्दन निकल आया हो।[13] वहीं दूसरी एक सीली हुई दियासलाई की तरह ऐसे फुस्स से जल कर ख़त्म हो गई, कि न रोशनी हुई, और न धुआँ निकला।[14]

यह संक्षेप में, 'बीज' के पात्रों की झलक है। कथा वस्तु को मैंने इसलिए नहीं लिया क्योंकि 'बीज' कहानी की दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना उसके प्रति अपने मनोविज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए, और इसीसे अत्यधिक विस्तृत होते हुए भी वह गौण बन कर रह गया है।

'बीज' को ध्यानपूर्वक देखने से लगता है जैसे उसकी वैचारिक गठन का ताना बाना पहले बुन लिया गया हो, और बाद में, आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार, उससे मिलती जुलती कहानी उसमें जोड़ दी गई हो। इसीसे अनेक स्थलों पर उसकी कथावस्तु कुछ ज्यादा जमी नहीं लगती और शंका होने लगती है कि कहीं यह पूरी की पूरी पुस्तक किसी विशेष विचारधारा का प्रचार मात्र न हो। एक सीमा तक यह बात ग़लत भी नहीं है, क्योंकि पुस्तक के अधिकांश तर्क कम्युनिस्ट विचार शैली पर आधारित हैं, और उससे लोगों को उपर्युक्त शिकायत करने का मौका आसानी से मिल भी सकता है। लेकिन तब भी 'बीज' के लेखक के कम्युनिज़्म की धारणा शायद उससे कुछ अलग है जो साधारण कम्युनिज़्म विरोधी व्यक्ति समझते हैं और जिसे मौक़े बेमौक़े अपने आक्रोश का साधन भी वे बनाते हैं। मसलन अपने कम्युनिस्ट साथियों के प्रति ही लेखक की यह छींटाकशी कि "कहने को तो हैं कम्युनिस्ट, मगर उनके घर को जाकर देखिए तो सब उसी पुराने रंग में रंगे हुए—मैं पूछता हूँ आपका कम्युनिज़्म किस काम का अगर आप अपने घर में कोई तब्दीली नहीं ला पाते?—मैं तो भइया, ऐसे कम्युनिज़्म का हामी नहीं।"[15] यह प्रमिला द्वारा कहलाया हुआ उनका वाक्य कि, "कम्युनिस्ट नाम से नहीं, काम से होता है—कम्युनिस्ट का बिल्ला लगाने से थोड़े ही जादू हो जाएगा।"[16] कम्युनिज़्म के प्रति लेखक की साफ़ और सुलझी मनो-

---

१२ पृष्ठ ३ १३ पृष्ठ ४३१ १४ पृष्ठ ३७० १५ पृष्ठ २१८ १६ पृष्ठ ४०१,

प्रति का दिग्दर्शन कराते हैं। अपने को कम्युनिस्ट कहने में वह झिझकता नहीं, लेकिन कम्युनिज़्म उसके विचार में दुनिया को बदलने का एक वैज्ञानिक हथियार है, और वर्ग संघर्ष मार्क्सवाद की प्रयोगशाला का तैयार किया हुआ कोई रसायन नहीं—समाज की एक नंगी हकीक़त है जिस पर मार्क्सवाद ने सिर्फ़ अपनी रोशनी फेंकी है।''[१७]

'अपने इन्हीं मानदण्डों को लेकर लेखक ने 'बीज' का निर्माण किया है। गो मुख्य रूप से 'बीज' को हम एक राजनीतिक उपन्यास कह सकते हैं, लेकिन उसकी राजनीति सूत्र रूप में है—एक सीमा के बाहर उसका विस्तार नहीं किया गया है। मानव भावनाओं को परिष्कृत करने के लिए आधार रूप से राजनीति की सहायता ली गई है, लेकिन उसका फ़ायदा मिला है मानव के व्यक्ति को, उस समाज को, जिसकी वह ईट है। इसीसे उसके तीन चौथाई पन्ने घर और घर की समस्याओं से परिपूर्ण हैं, क्योंकि अन्ततः वही चीज़ें तो राजनीति को स्वच्छ और पावन बनाती हैं।

उपन्यास के सर्वाधिक रोचक प्रसंग सम्भवतः वे हैं जिनमें सत्य और उषा के बीच की घरेलू बातचीत का वर्णन है—सिर्फ़ रोचक ही नहीं, शायद सबसे अधिक उपयोगी भी। जैसा मैं पहले ही कह चुकी हूँ, बीज के पन्नों में अमृत की कलम सबसे ज़्यादा वहाँ चमकी है जहाँ उन्होंने 'घर' को लिया है। उषा की आन्तरिक प्रतिभा को जागृत करने में जितना योग परिस्थितियों का रहा है, उससे कहीं अधिक सत्य का—सत्य : जिसका इस सिद्धान्त में अटल विश्वास था कि कोई भी शब्द जो वायु मण्डल में फेंका जाता है, व्यर्थ नहीं जाता।[१८] अपने इसी विश्वास के साथ सत्य हमेशा आगे बढ़ा है, और चूँकि उसका दिमाग़ साफ़, मान्यताएँ वैज्ञानिक और विचारशैली मनोवैज्ञानिक थी, इससे उसे हर मोड़ पर सफलता भी मिली।

'बीज' के उपयोगी पहलुओं पर लोगों के विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं। मुझ से अगर कोई पूछे कि इसकी किस चीज़ ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया, तो मैं उसका सेहरा 'बीज' की मनोवैज्ञानिक गठन पर बाँधूगी। पारिवारिक मनोविज्ञान का जितना साफ़ और सही चित्रण मुझे 'बीज' में मिला उतना अन्य किसी भी पुस्तक में नहीं। 'बीज' से हमें इस बात की प्रेरणा मिली कि हम ज़िन्दगी के असली चेहरे को देखने की ताक़त अपने में लाएँ, झूठे रंगमहलों की भूल-भूलइयों में न पड़ें। जो हक़ीक़त है उसको क़बूल करें और फिर उसीके मुताबिक अपनी ज़िन्दगी समाज की ज़िन्दगी के साँचे में ढालें और फिर जी लगा कर काम करें ताकि उस साँचे को तोड़ कर हम एक नया साँचा ढाल सकें।[१९]

उषा के पूरे जीवन को सत्य ने इसी साँचे में ढालने की कोशिश की है। यही वजह है कि अपने प्रारंभिक दिनों में साहनी साहब के धन वैभव को तृषित नेत्रों से देखने वाली उषा अन्त में यह कहने कि हिम्मत कर सकी कि 'इतनी पीड़ा के संसार में, जिसमें छोटी-बड़ी इतनी चिटख-चिटख कर जल रही हैं, हम अपने छोटे से घोंसले की बात नहीं कर सकते।[२०] ''उसकी चाह मेरे अन्दर है, लेकिन मेरी समझ में अब यह आने लगा है कि उस तक पहुँचने की हमारी राह वह नहीं होगी जो साहनी साहब की है।''[२१] उषा की यह पूर्ण कायापलट सत्य के उस मनोवैज्ञानिक अप्रोच पर आधारित है, जो शायद आज की दुनिया के विकास का पथ भी है, और पाथेय भी।

इस स्थान पर मैं उपन्यास के एक अंश को उद्धृत करने का लोभ नहीं संवरण कर पा रही हूँ। बात तब की है जब सत्य के जेल जाने के बाद उषा ने भंगी बस्ती के लड़कों को पढ़ाना शुरू किया था। उसका छोटा बच्चा, अरुण उसके साथ ही जाता था। एक दिन शाम को जब वह बस्ती में जा रही थी, अपने घर के पास ही रास्ते में दमयन्ती मिल गई। दमयन्ती ने पैर बढ़ाते हुए कहा—बेबी को भी आप अपने संग ही ले जाती हैं?

उषा ने बनावटी भोलेपन से पूछा—क्यों, नहीं ले जाना चाहिए?

दमयन्ती ने कहा—आप भी कैसी बातें करती हैं? कुछ समझती ही नहीं। हज़ार बीमारियाँ होती हैं—बेबी को क्यों न छोड़ दिया कीजिए यहीं, अजीत के संग खेलता रहेगा आया हई।

उषा ने मज़ाक किया—नहीं, वहीं अच्छा है। राजकुमारों के संग खेलता है।

---

[१७] पृष्ठ ५५ [१८] पृष्ठ ३०६ [१९] पृष्ठ ३०२ [२०] पृष्ठ ४५५ [२१] पृष्ठ ५०४

दमयन्ती—राजकुमारों के संग ?

उषा—और नहीं तो क्या। कल को उन्हीं का तो राज होगा।[२२]

मैं नहीं जानती कि ऊपर की सीधी सादी सी लगने वाली गूढ़तम बात का असर आप पर क्या पड़ा है, लेकिन मुझे तो यह पढ़ने के बाद खुशी के इतने अधिक आँसू आ गए थे कि शायद कई मिनटों तक मैं अविरल रोती रही थी।

"बीज" के अनेक वाक्य ऐसे हैं जो आसानी से रटे जा सकते हैं। "अपनी तकलीफ़ को सारी दुनियाँ की तकलीफ़ के साथ एक कर दो—खुद अपनी तकलीफ़ से छुटकारा पाने का और कोई रास्ता नहीं है।"[२३] "स्वेच्छा से वरण किए गए दुःख से विवेक जगता है, और परवश दुःख से मर जाता है।"[२४] और बर्नर्ड शॉ का उद्धरण कि "तुम्हारा मन जिस काम की गवाही दे उससे अपनी ज़िन्दगी को इतना भर दो कि तुम्हें यह सोचने का अवकाश ही न मिले कि तुम सुखी हो या नहीं।"[२५] आदि उक्तियाँ आज के परेशान और दुःखी मानव में एक नई चेतना की लहर दौड़ाती हैं। इसी तरह प्रमिला द्वारा कहा हुआ वाक्य कि "मनुष्य ईंट की तरह भी पकता है और फल की तरह भी।"[२६] और उषा के पिता जी की बात कि "ज़िन्दगी बरक़रार रहे इसके लिए यह उजड़ना भी जरूरी है—कुछ उजड़े न तो नया कुछ बसे न।"[२७] अपने ढंग के नए दृष्टिकोण हैं, और वह हममें शायद एक नई ताज़गी भरने में भी समर्थ हो सकें।

ब्लैक मार्केट को लेखक ने "युद्ध का जारज पुत्र"[२८] कहा है। "ब्लैक मार्केट आज कल की लड़ाई का एक ज़रूरी नतीजा होता है, वैसा ही ज़रूरी नतीजा जैसा लड़ाई के मैदान में लाशों का गिरना। फ़र्क बस इतना है कि लड़ाई के मैदान में लाशें गिरती हैं राइफ़ल से और मशीनगन से और भीतर देश में लाशें गिरती हैं भूख से और ठिठुरन से।...असल बात शायद यह है कि लड़ाई खुद पैसा कमाने का एक विराट् ब्लैक मार्केट है। इसलिए यह भी ब्लैक मार्केट और वह भी ब्लैक मार्केट, सारा मामला गठ जाता है—यहाँ से वहाँ तक चाँदी ही चाँदी है।"[२९]

विश्व युद्धों के सम्बन्ध में पुस्तक भर में शायद यह लेखक की अकेली उक्ति है। लेकिन तब भी इन गिनी चुनी पंक्तियों में एक ऐसी कड़वी सच्चाई है और युद्ध के प्रति एक ऐसी असीम घृणा है जो न केवल हममें दुनिया के शांति आन्दोलनों को चिरंजीवी रखने की प्रेरणा भरती है वरन् लड़ाई के असली सौदागरों के चेहरों का पर्दा फ़ाश भी करती है। एक दृष्टि से वह हमें इस बात की अदृश्य चेतावनी सी देती है कि हार ही संहार का उपसंहार है—भले ही प्रत्यक्ष रूप से संहार का शब्द हमें हार से ज़्यादा बड़ा लगता हो। युद्ध सम्बन्धी अमृत का यह सूत्र वाक्य अकेला होते हुए भी पुस्तक का सबसे ताक़तवर वाक्य है—इसलिए और भी कि उसका सम्बन्ध पूरे विश्व की मानवता से है, "हिन्द नामक किसी भौगोलिक इकाई" भर से नहीं।

सत्य तो यह है कि 'बीज' को सूत्रों की पुस्तक कहा जा सकता है, लेकिन दुःख यही है कि उसका लेखक स्वयं ही उन सूत्रों की व्याख्या करने का लोभ भी संवरण नहीं कर पाया है। और इसी जगह पर उसे अपेक्षाकृत कम सफलता भी मिली है, क्योंकि सूत्रकार की सारी प्रतिभा, सारी पूँजी तो सूत्रों के निर्माण में ही खत्म हो जाती है, आगे वह करे भी तो क्या ? वैसे मैं यह नहीं कहती कि अपनी व्याख्याओं में अमृत पूर्णतः असफल रहे हैं, लेकिन अच्छा होता यदि वे इस काम को किसी आगे के मौक़े लिए छोड़ देते। यों यह मैं पहले ही मान चुकी हूँ कि इससे उसके लाभ की परिधि में कुछ अन्तर पड़ने की सम्भावना हो सकती थी, लेकिन तब उस परिधि के जितने अंश पर उसका प्रभाव पड़ता, वह अपेक्षाकृत अधिक ठोस और व्यक्ति के अन्तर तक घर कर लेने वाला होता।

कुछ शब्द मैं 'बीज' की भाषा शैली के बारे में भी कहना चाहती हूँ। कई लोगों का खयाल है कि साहित्यिक दृष्टि से उसकी भाषा खरी नहीं है, उसके स्तर में कमी है। ऐसा कई माने हुए लोगों का विचार है इससे मैं उसे विशेष रूप से ले रही हूँ। उनकी इस शिकायत के उत्तर में मैं केवल एक ही उद्धरण देना काफ़ी समझूँगी। एक बार गांधी जी से किसी ने सवाल किया था कि, उनकी दृष्टि में, स्वतन्त्रता मिलने के बाद, भारत

---

२२ पृष्ठ ५०४ २३ पृष्ठ ८८ २४ पृष्ठ २४७ २५ पृष्ठ ४८५ २६ पृष्ठ ३६१ २७ पृष्ठ २३३ २८ पृष्ठ ८० २९ पृष्ठ २

की राष्ट्रभाषा का स्वरूप क्या होगा। उनके इस सवाल के जवाब में दिया गया बापू का उत्तर मुझे अभी तक याद है, क्योंकि उस समय में वहाँ उपस्थित थी। बापू ने कहा था : "राष्ट्रभाषा किसी एक भाषा से थोड़े ही बनेगी ? वह तो हिन्दुस्तान के लोग बोलते हैं, बातचीत करते हैं, उसका मिश्रण होगा तब राष्ट्रभाषा पैदा होगी।"

यह जवाब में अपनी ओर से उन भाषा धुरंधरों को देना चाहूँगी जिन्हें "बीज" की भाषा स्तरपूर्ण नहीं लगी है, जो उसमें व्याकरण सम्बन्धी गलतियाँ ढूँढ़ना चाहते हैं। बापू की राष्ट्र भाषा की परिभाषा अगर सही है—और मैं मानती हूँ कि वह सही है तो "बीज" की भाषा शुरू से आख़िर तक राष्ट्र भाषा है। साधारण बोलचाल की भाषा की परिधि को उसमें कहीं भी तो नहीं लाँघा गया है।—लोगों की दृष्टि में यह 'बीज" की खामी हो सकती है, लेकिन मेरे ख़याल में यही उसकी सबसे बड़ी खुसूसियत है।

"बीज" को मैंने भावी समाज रचना की रूपरेखा कहा है। उसका सबसे बड़ा कारण यही है कि उसमें हमें भावी मानव की तसवीर दिखाई देती है—एक ऐसे मानव की तसवीर जो अभी तक हमारा स्वप्नबिन्दु था। उस मानव में लोगों को गलतियाँ दिखाई दे सकती हैं, उससे भी ज़्यादा कमियाँ मिल सकती हैं जिनके बीच होकर आजकल हम लोग निकल रहे हैं, लेकिन अगर उस मानव का दिमाग संग मरमर के पत्थर की तरह शुभ्र और पहाड़ी नदियों के पानी की तरह निर्मल है, तो कोई भी कमज़ोरी अधिक दिनों तक उसका साथ नहीं दे सकती। और मैं मानती हूँ कि "बीज" के मानव का बीज ऐसा है, क्योंकि वह मानव जीवन में आस्था रखने वाला मानव है, क्योंकि वह शान्तिप्रिय और प्रगतिशील मानव है, और उसे इस बात का विश्वास है कि "इस मन्वन्तर के बाद जब इस नई धरा का जन्म होगा, नई बस्ती बसेगी, नए अलाव लगेंगे, नए फूल खिलेंगे, नए चाँद और सूरज धरती की कोख से निकल कर किरणों की वल्गा अपने हाथों में लेंगे, तब उस रथ पर सब सवार होंगे, सब, सारी धरा, वह रथ आज का यह रथ नहीं होगा जिस पर कोई एक पुरुष श्रेष्ठ बैठ कर असंख्य मानवों को अपने पहिए तले रौंदता है।"[३०] और क्योंकि उसमें ऐसा करने की शक्ति और तड़प है, इसलिए वह अमर और अजेय है।

नई दिल्ली

—नयनतारा सहगल

मराठी की कहावतें

दुसऱ्याचे मर्जीतून उतरणें वाईट
घोड़े से गिरना अच्छा परन्तु नज़रों से गिरना बुरा

दुसऱ्याचे दुःख जाणील तो मायाळू
जो दूसरों का दुःख जानता है वही दयालु है

चार दिवस सुखाचे, मग दुःखाचा डोंगर
चार दिन सुख के फिर दुःख का पहाड़

प्रेमांत नियम कुठला ?
प्रेम में नियम कहाँ ?

मानला तर देव नाहीं तर दगड
मानो तो देव नहीं तो पत्थर

शिवराज गढ़ (सौराष्ट्र)

—अनवर आगेवान

---

[३०] पृष्ठ ४५३

राजा काम्भोज

[ईसा से एक हज़ार वर्ष पूर्व उत्तर हिन्दुस्तान में काम्भोज राज्य पर आन्ध्र राज्य शासन करते थे। यह कथा उस समय की है। परन्तु काल प्रवाह में इसमें अनेक परिवर्तन हो गए हैं। तेलुगु लोक-कथाओं में यह सबसे प्राचीन और प्रथम कथा मानी जाती है। इसमें अनेक अद्भुत और चमत्कार पूर्ण घटनाओं का समावेश किया गया है। जो उस समय की जनता की मनोवृत्तियों का परिचय कराती है]

उत्तर भारत में काम्भोज राज्य पर आन्ध्र राजा शासन करते थे। उनकी राजधानी साम्बपुरी थी। राजा काम्भोज की छः रानियाँ थीं। संतान न होने के कारण काम्भोज राजा ने नेत्रवादी नगर की राजकुमारी माणिक्य देवी से सातवाँ विवाह किया। उनकी रानियों ने संतान प्राप्ति के लिए अनेक व्रत, पूजा एवं तीर्थ-यात्राएँ भी कीं परन्तु कोई प्रयोजन न हुआ।

एक दिन काम्भोज राजा विनोदार्थ अपने दल-बल सहित शिकार खेलने निकले। उनके साथ जनता का अपार प्रवाह उमड़ता देख देवता भी इस विनोद को देखने आए। राजा के वैभव पर देवता मुग्ध थे, किन्तु राजा के संतानहीन होने की बात उन्हें खटकी और देवताओं ने इसकी अवहेलना की। देवताओं के ये शब्द राजा के कानों में पड़े। आहत अभिमान से चोट खाए राजा नगर में वापस लौटे। दरबार बुलाया। सामंत, मंत्रिगण तथा सातों रानियाँ उसमें उपस्थित थीं। भरी सभा में राजा ने रानियों को सम्बोधित करके कहा: "हमारे कोई संतान नहीं है। संतानहीन होकर मैं जीवित रहना नहीं चाहता। इससे अच्छा यही होगा कि तुम लोग भी अपनी जीवन-लीला को ख़त्म करो। मैं भी मृत्यु का स्वागत करूँगा। इसी में हमारे लिए शान्ति है।"

रानिंयों ने प्राण-त्याग करने के निमित्त जंगल की राह ली। हिंस्र पशुओं के समक्ष जाने पर वे दूर भागती थीं। अन्त में विवश हो कर रानियों ने कुँए में कूद कर प्राण-त्याग ने का निश्चय किया। वे कुँए में कूदने ही वाली थीं कि पार्वती जी ने प्रत्यक्ष हो कर कहा: "तुम लोग नगर में वापस चली जाओ। तुम्हारे सन्तान होगी।" रानियाँ नगर को वापस चली आईं।

पार्वती ने स्वयम्भू के पास पहुँच कर निवेदन किया: "स्वामिन्! क़ाम्भोज राजा के कोई सन्तान नहीं है। उन्हें सन्तान देकर सन्तुष्ट कीजिए।" ब्रह्मा ने उनकी प्रार्थना सुन ली। राजा की परीक्षा लेने के निमित्त वृद्ध ब्राह्मण का वेश धर कर साम्बपुरी के राज दरबार में पहुँचे। राजा ने दण्डवत् करके आगन्तुक विप्र का स्वागत किया। उस भूसुर का वृत्तान्त जानने के लिए आगमन का कारण पूछा तो वृद्ध ब्राह्मण ने यों उत्तर दिया: मैं काशी निवासी हूँ। आपके दर्शन करने तथा आपसे भोजन सामग्री प्राप्त करने के लिए यहाँ आया हूँ।" राजा ने आश्चर्य चकित होकर पूछा: राज्य भर में मैंने अनेक अन्नशालाएँ खोल रखी हैं। उनमें यात्रियों को सदा भोजन दिया जाता है। वहाँ आपको भोजन नहीं मिला?" ब्राह्मण वेषधारी स्वयम्भू ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया: मैं आपके दर्शन भाग्य का लाभ उठा कर आप ही से भोजन पदार्थ प्राप्त कर अपने पापों का परिहार करना चाहता हूँ।" राजा अत्यन्त खिन्न होकर बोले: "हे भूसुरोत्तम! मैं सन्तान विहीन महापापी हूँ। मुझसे भोजन पदार्थ ग्रहण करने पर मेरा कलंक आप पर लगेगा।" ब्राह्मण ने शान्त चित्त होकर कहा: "हे पृथ्वी-पति! आपके पिता ने अपनी शरण में आए हुए एक सर्पराज का निर्दयतापूर्वक संहार किया था। उसी का पाप फल आप भोग रहे हैं। यदि आप 'रामलिंग स्वामी' को प्रतिष्ठित करके उनकी आराधना करेंगे तो आपके पापों का परिहार होकर मनोरथ पूर्ण होगा।"

राजा अत्यन्त आनंदित होकर विप्रवर के लिए स्वयं खाद्य पदार्थ लाने महल में गए। लौट कर देखते क्या हैं? ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया है।

ब्राह्मण के कहने के अनुसार राजा ने रामलिंग स्वामी को अत्यन्त वैभव के साथ प्रतिष्ठित किया। उनकी पूजा अर्चना का उचित प्रबन्ध कराया। उनकी छः रानियों ने भगवान् की पूजा अर्चना की, परन्तु सातवीं रानी महा-

महिषी माणिक्य देवी से जब कहा गया कि वह भी विष्णु कुण्ड में स्नान करके भगवान् की आराधना करे तो उसने उत्तर दिया : "स्नान करने से केवल शरीर धुल जाएगा । परन्तु भाग्य में जो बदा ही नहीं उसकी प्राप्ति कैसे सम्भव होगी ?" यह कह माणिक्य देवी ने मूर्त्ति का परिहास किया और उस मूर्त्ति का आलिंगन करने को उद्यत हो गई । इस पर भगवान् ने अप्रसन्न होकर छः रानियों को पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया । माणिक्य देवी तो इससे वंचित रही । माणिक्य देवी के व्यवहार से कुपित होकर काम्भोज राजा ने उसे नगर के बाहर एक झोंपड़ी में रखा । छः रानियाँ पुत्रवती हुईं । उन राजकुमारों की जन्मकुण्डलियों को देख कर ज्योतिषी ने बताया कि इसमें कोई भी लड़का राज्य का हक़दार नहीं हो सकेगा । आचारानुसार उन बच्चों के नामकरण संस्कार हुए । उन छठों राजकुमारों का 'शतवृद्धि राजा' नाम रखा गया ।

माणिक्य देवी उन शिशुओं को अपने बच्चे ही मान कर प्यार करती थी । यह अन्य रानियों से देखा नहीं गया । उन्होंने माणिक्य देवी पर यह दोषारोपण किया कि उसने छठों राजपुत्रों को विष देकर मारने का षड्यंत्र रचा, परन्तु बच्चे बाल बाल बच गए । इससे माणिक्य देवी को और भी कड़ी यातनाएँ भोगनी पड़ीं । उसको जेलखाने में क़ैद किया गया । माणिक्य देवी ने इन सब घटनाओं का कारण दैविक कोप समझ कर 'शिवपंचाक्षरी' का जाप किया । इससे प्रसन्न होकर शंकर जी ने उसे बंधन-मुक्त किया और वर माँगने को कहा, तो माणिक्य देवी ने एक महिमा मंडित पुत्र रत्न की कामना प्रकट की ।

माणिक्य देवी गर्भवती हुई । कुछ ही दिनों में उसने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया । देवताओं ने उस बालक की जन्म कुण्डली बनाकर बताया कि इस बालक के जीवन में चार प्राण-संकट हैं । पहला संकट उस समय उपस्थित होगा, जब कि यह बालक अपने पिता के व्रण-निवारणार्थ औषध की खोज में राक्षसपुरी में प्रवेश करेगा । दूसरा संकट वेश्या के हाथ में, तीसरा योजनगंधी के महल में और चौथा अपने भाइयों को बन्धन-मुक्त कर वापस लौटते वक्त ।" उस अबोध बच्चे के भावी संकटों का परिचय दे कर उस बालक का देवताओं ने "चेरबन्दी राजा"* नामकरण किया । इसके उपरान्त माणिक्य देवी को समझा-बुझाकर कि वह क़ैद में है, बालक का पालन-पोषण करना कठिन होगा । १२ वर्ष तक लड़का देवलोक में ही पलेगा माणिक्य देवी पर एक ऐसा मन्त्र फूँका जिससे १२ वर्ष तक अपने पुत्र का स्मरण उसे व्याकुल न करे ।

कैलास में १२ वर्ष के भीतर उस बालक ने समस्त प्रकार की विद्याएँ सीखीं । १२ वर्ष के समाप्त होते देख देवताओं ने उस बालक को अपनी माता को सौंप दिया ।

अब काम्भोज राजा का हाल सुनिए । राजा पुत्रोत्साह का पूरा आनन्द ले भी नहीं पाए कि उनकी पीठ पर एक भयंकर व्रण निकल आया । वह ऐसा मालूम होता था कि जान लेकर के ही छोड़ेगा । व्रण को जान कर गाहक बनते देख राजा ने अनेक वैद्यों से चिकित्सा कराई । परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । यह समाचार सुन कर राजकुमार चेरबन्दी ने अपनी माता माणिक्य देवी से आज्ञा ली और पीठ पर दवाइयों की पेटी बाँधे साँवपुरी में प्रवेश किया । वहाँ सबके देखते-देखते एक कुष्ठ रोगी को स्वस्थ बनाया । फिर क्या था, उसका नाम सारे नगर में फैल गया । उसकी अचूक दवाइयों की घर-घर में प्रशंसा होने लगी ।

राजकुमार चेरबन्दी पीठ पर दवाइयों की पेटी बाँधे, हाथ में चक्रवर्ती राजाओं का छत्र धारण किए राज वीथी में दवाइयाँ बेच रहा है । उसकी ध्वनि नगर की गली-गली में गूँज रही है । उसके स्वर में अपनी ओर आकर्षित करने वाला सुरीलापन है । वह ज़ोर से चिल्ला रहा है :

"मंदुलु मंदुलु मंदुलंट्टनु,
मन्चुल मायल मंदु लंट्टनु
मंदुललोनु राम-लक्ष्मणुल मंदु
आट्टकु मंदु, मरि पोट्टकु मंदु
अग्निज्वाला व्रण तीपुकि मंदु
मेहपु व्याधिकि मंदु उन्नदि

---

* 'चेर' शब्द का अर्थ तेलुगु में 'जेल' होता है । जेलखाने को 'चेरसालं' कहते हैं । बालक की माता जेल (चेर) में बन्दी है । अतः उस लड़के का नाम करण का अर्थ हुआ 'जेलखाने के बन्दी' । राजपुत्र होने के कारण नाम के साथ राजा जोड़ा गया ।

ओल्लु पोट्टुलकु मंदु उन्नदि
शिरोवायुवुकि मंदु उन्नदि
मनोव्याधिकि मंदु उन्नदि
काटिलोपलि जिल्लेडु वेरु
एटि ओड्डुन मुनगवंक
पेद्द गब्बिलालनु पेरुगल मंदु उन्नदि
ई मंदु गोने पुरायात्मु लेव्वरो ?
ई मंदु गोने धर्मात्मु लेव्वरो ?"

"औषधियाँ, मौहोषधियाँ, जादू भरी औषधियाँ,
औषधियों में राम-लक्ष्मण औषधि
शरीर औषधि, पीड़ा हरण औषधि
अग्निज्वाल व्रण निवारणौषधि
मेह रोग औषधि
शरीर दुःख हरण औषधि, शिरौषधि
मनो रोग औषधि, कब्रिस्तान का अर्क औषधि
नदी तट-स्थित सहिजन (मुनगा) गोंद
चमगादड़ नामी औषधि
इस औषध को मोल लेनेवाला पुरायात्मा कौन ?
इस औषध को खरीदने वाला धर्मात्मा कौन ?"

काम्भोज राजा के कानों में ये बातें पड़ीं। न मालूम उस युवक के स्वर में कैसी मोहक शक्ति थी। इन बातों को सुनने पर राजा ने आधे व्रण भरने का अनुभव किया।

राजकुमार चेरबन्दी सारे नगर में घूम कर एक भोजनशाला (होटल) में पहुँचा। उस युवक के मुखमंडल पर विचित्र प्रकार की अलौकिक कान्ति को दमकते देख भोजनशाला की मालकिन ने नगर की सारी गुप्त बातें सुनाईं। उसने कहा—"काम्भोज राजा ने अपनी पट्ट महिषी माणिक्य देवी को निष्कारण अनेक यातनाएँ दीं। उसके पापों का फल राजा को व्रण के रूप में सता रहा है। वैद्य ने सलाह दी है, किसी नवयुवती या नवयुवक के दिमाग का लेप करने पर व्रण भर जाएगा। इससे नगर के सभी युवती-युवक भयभीत होकर अन्य राज्यों में भाग गए हैं। तुम तो अभी किशोर हो, इस प्रकार नगर की गलियों में घूमना तुम्हारे लिए हानिकर होगा।" भला राजकुमार इन बातों को कब मानने वाला था !

चेरबन्दी की अचूक दवाइयों का समाचार राजमहल में पहुँचते देरी न लगी। काम्भोज राजा के छहों पुत्रों ने वैद्य वेषधारी चेरबन्दी का स्वागत किया। बेचारी भोजन शाला की मालकिन लक्ष्म्मा युवक वैद्य के प्राण-भय की आशंका करके इस दृश्य को देखते मूर्त्तिवत् खड़ी रही। युवक वैद्य के दर्शन मात्र से राजा की पीड़ा जाती रही। चेरबन्दी ने राजा के व्रण की चिकित्सा के लिए फ़ीस के मद्दे १२ हज़ार रुपए और दवाइयों की क़ीमत १२ हज़ार कुल २४ हज़ार रुपए की माँग की। काम्भोज राजा ने इतनी बड़ी रक़म देने में असमर्थता प्रकट की और कहा—दवाइयों के नाम बताइए, हम ही मँगाएँगे। युवक ने सभी असाध्य वस्तुओं की सूचियाँ बताईं—न हिलने वाले वृक्ष का पत्ता, कुएँ का अचंचल जल, आकाश में विचरनेवाला पक्षी, प्रवाल लता का दूध, भालू का मक्खन, बाघ का दिमाग़, और मलाई, वल्मीक का शहद, मनुष्य का दूध, बरगद का तेल, बोलनेवाला पान, उछलनेवाली सुपारी, गवाही देने वाला चूना, अंतरिक्ष का निर्मल जल, तथा कन्या के नेत्र की पुतली।

इन सब अप्राप्य वस्तुओं के नाम सुन कर राजा चिंतित हुए और धन ही देने का वचन दिया। परन्तु युवक वैद्य ने मोल-भाव करना प्रारंभ किया। उसने शर्त रखी कि 'काम्भोज राजा अपना समस्त धन और साथ में राजगद्दी भी दें एवं राजमुद्रा उसके हाथ में पहना दी जाए।' राजा ने उसकी सभी शर्तों की पूर्त्ति करने का वादा किया। चेरबन्दी ने चिकित्सा प्रारम्भ की, अब अर्थ व्रण तो भर गया है। आगे को चिकित्सा के लिए बोलने वाला औषध चाहिए जो योजनगंधी के पास है। वैद्य ने उसकी माँग की।

औषध के खोज में काम्भोज राजा के छः पुत्र रवाना हुए। मार्ग-मध्य में उन्हें तपस्या में लीन एक योगी मिले। राज कुमारों ने समझा—कि ये योगी सभी प्रकार के औषधों का ज्ञान रखते हैं। तपस्वी को पुकारा। ध्यान-समाधि में लीन उस योगी ने कोई उत्तर नहीं दिया। राज कुमारों ने जब उन्हें तंग करना प्रारम्भ किया तो यतिवर ने कुपित होकर उन्हें उचित दण्ड देने के निमित्त सलाह दी : "तानेपुरी में योजनगंधी नामक एक वारांगना है। उसके पास 'निर्मल' नाम का औषध है। उसके लेपन से व्रण भर सकता है।"

राज कुमार योजनगंधी के महल में पहुँचे। परन्तु

शर्त के अनुसार उसके प्रश्नों का उचित उत्तर न दे सकने के कारण उसके यहाँ दास बन कर काम करने लगे। योजनगंधी के पास इस प्रकार के ग़ुलाम सैकड़ों की संख्या में थे।

अवधि को बीतते देख अपने छः पुत्रों का पता न पाकर काम्भोज राजा बहुत दुःखी हुए। इस पर चेरवंदी ने राजा को सान्त्वना दी और उस औषधराज की खोज में स्वयं निकले। जाने के पूर्व अपनी माता माणिक्य देवी का आशीर्वाद प्राप्त किया।

अब चेरवन्दी की कहानी सुनिए। चेरवन्दी मार्ग भूल कर राक्षसपुरी में पहुँचा। वहाँ के राक्षस मानव मात्र को पाकर उसका संहार करके पर्व की तरह आनन्द मनाते थे। वे लोग कहीं से एक ब्राह्मण बालिका को उठा लाए और पाल पोस कर बड़ा किया। अब वह विवाह के योग्य हो गई थी। विवाह करने की उसकी बड़ी इच्छा थी, पर करें तो क्या करे। योग्य वर भी चाहिए। अचानक वहाँ चेरवन्दी को देख उस पर मोहित हो गई। राजकुमार ने अपने आगमन का समाचार सुनाया। ब्राह्मण पुत्री रत्नगंधी ने उस औषध को देने का वचन दिया। राक्षसों से चेरवन्दी की रक्षा करने के निमित्त मन्त्र द्वारा ब्राह्मण पुत्री रत्नगंधी ने उसे स्वर्ण की छिपकली बना दिया। राक्षसों के आने पर उनसे प्रतिज्ञा कराई, राजकुमार की रक्षा का आवश्यक प्रबन्ध कराकर उसे फिर पुरुष बना दिया। राक्षसों ने बड़े वैभव के साथ दोनों का परिणय किया। चेरवन्दी ने अपनी पत्नी से जब औषध माँगी तो उसने कहा : "मैंने केवल आपको प्राप्त करने के लिए यह जाल रचा है। वह औषध तो मेरे पास नहीं है। उसे प्राप्त करने का तरीक़ा मैं जानती हूँ, वह सात समुन्दरों के बीच में स्थित योजनगंधी के महल में है। मैं एक मान्त्रिक घोड़ा दूँगी। उस पर सवार हो कर तुम सात समुद्र के तट पर पहुँच जाओ। वहाँ एक वीरभद्र स्वामी का मंदिर है। उनको प्रसन्न करोगे तो वे ही उस औषध को प्राप्त करने का उपाय बताएँगे।"

चेरबन्दी ने रत्नगंधी (ब्राह्मण पुत्री) से बिदा ली और मान्त्रिक घोड़े की सहायता से समुद्र तट पर पहुँच कर वीरभद्र स्वामी को प्रसन्न किया। वीरभद्र स्वामी ने कहा : "हे वत्स! मैं तुम्हारे आगमन का कारण जानता हूँ। उस निर्मल औषध को योजनगंधी अपने केश-लटों में छिपाए हुए है। उसके लिए छः महीने जागरण और छः महीने निद्राकाल है। उसके निद्राकाल के पूरे होने में अभी तीन दिन शेष हैं। उसके जागने के पूर्व ही तुम्हें उस औषध को प्राप्त करना होगा। ये स्वर्ण पादुकाएँ तुम्हें सहायता देंगी।" वीरभद्र स्वामी ने स्वर्ण पादुकाएँ देकर चेरवन्दी को रवाना किया।

राजकुमार चेरवन्दी योजनगंधी को महल पर पहुँच कर देखता क्या है? वहाँ राक्षस पहरा दे रहे हैं। राक्षसों ने जब चेरवन्दी को रोका तो उसने राक्षसों को बहकाने के लिए युक्तिपूर्ण उत्तर दिया : "मैं योजनगंधी का पति और राक्षस कुल का गुरु हूँ। तुम लोग मुझे क्या जानो?" राक्षस चेरवन्दी की बातों में आ गए। महल के भीतर पहुँच कर चेरबन्दी सौन्दर्य-राशि योजनगंधी पर मुग्ध हुआ। अपने आगमन की सूचना देनेवाला एक पत्र लिख कर रख दिया और अपने कर्तव्य का स्मरण करके योजनगंधी के केश-लटों में हाथ बढ़ाने ही वाला था कि वह निर्मल औषध बोलने लगा। राजकुमार चेरवन्दी का दिल धड़क रहा था कि कहीं ये शब्द सुन कर योजनगंधी जाग उठेगी तो जान की ख़ैर नहीं! फिर साहस बटोर कर औषध को निकाला, उसे अपनी कमर में बाँध लिया। वहाँ और ठहरना उचित न समझ कर मान्त्रिक घोड़े को इशारा किया, तो उसने राजकुमार को वीरभद्र स्वामी के पास पहुँचा दिया।

उधर योजनगंधी जागृत हुई। औषध की चोरी का समाचार समझते देर नहीं हुई। उस चोर को उचित दण्ड देने के निमित्त जादू-टोने वाली पालकी में चढ़ कर गगनवीथी में मेघों के मध्य से रवाना हुई। इधर चेरबन्दी वीरभद्र स्वामी से वार्तालाप कर रहा है। वीरभद्र ने अपनी दिव्य दृष्टि से योजनगंधी को देखा। वीरभद्र ने उसके घमण्ड को दूर करने लिए ३२ अस्त्र धारण कर अपने रथ को आगे बढ़ाया। वे उसके समक्ष जा कर खड़े हुए। वीरभद्र ने योजनगंधी से सारी बातें सुन लीं। योजनगंधी भी चेरबन्दी के सौन्दर्य-रूप पर मोहित हुई। वीरभद्र ने उन दोनों का विवाह किया। युवक ने जब वीरभद्र से अपने भाइयों का वृत्तान्त पूछा तो वीरभद्र ने कहा : "तुम्हारे सब भाई (छः भाई) एक वेश्या (दूसरी योजनगंधी) के जाल में फँस कर उसके दास बने हुए हैं। राजकुमार ने पूछा : "हे भगवन् उन्हें छुड़ाने का मार्ग बताइए।"

वीरभद्र ने उस युवक के मनोरथ को पूर्ण करने के

उद्देश्य से एक संहार दण्ड तथा एक जादूभरी कैंची दी. और कहा : "तुम्हारे तानेपुरी पहुँचने पर वह जादूगरनी वेश्या पहले मांत्रिक चारपाई तदुपरान्त खिलौने वाली कुर्सी लगाएगी। इन दोनों के सूत्रों (तंतुओं) को इस कैंची से काट डालना। उस वेश्या के पास एक दो नहीं पूरी ३३ विद्याएँ हैं। यदि तुम इस संसार दण्ड को दिखाओगे तो उस सभी विद्याओं में तुम उत्तीर्ण हो जाओगे। इससे वह हार मानेगी, तब तुम अपने भाइयों को बंधन मुक्त कर सकोगे।" वीरभद्र स्वामी की बातों को चेरबन्दी ने ध्यान से सुना। योजनगन्धी को वीरभद्र की सेवा में छोड़ यांत्रिक घोड़े पर सवार हुआ।

चेरबन्दी तानेपुरी-वेश्या योजनगंधी के महल में पहुँचा। वेश्या ने अपनी ३३ विद्याओं को जीतने की बात कही। राजकुमार ने एक-एक-विद्या में विजयी होने पर एक लाख वरहालु× पुरस्कार माँगा। वेश्या ने मान लिया। उसने माँत्रिक चारपाई और कुरसी लगाई तो चेरबन्दी ने उनकी तन्तुओं को काट डाला। वेश्या की हार होते देख उसकी नौकरानियों ने अपने वेतन की माँग की। अब वेश्या का दिल धड़कने लगा। अब तक वह आठ लाख रुपए हार चुकी है। उसने धैर्य के साथ तीसरी विद्या सूक्ष्म चटाई बिछाई। राजकुमार ने संहार दंड फेरा तो वह जल कर भस्म हो गई। रेशम का तकिया लगाया, उसकी भी वही हालत हुई। इस विनोद को देखने को वीरभद्र स्वामी प्रत्यक्ष हुए। वेश्या वनिता ने स्वामी से निवेदन किया—"हे प्रभु! मैं तो तुम्हारी भक्त हूँ। मेरा अपमान होते आप कैसे देख सकते हैं?"

इस पर हँस कर वीरभद्र ने कहा—"मैंने तुम्हें अनेक विद्याएँ सिखाईं। परन्तु तुमने कभी मेरे लिए उत्सव व पूजा-अर्चना नहीं कराई। यही तुम्हारी हार का कारण है। तुम मुझे भुलाई है।"

वेश्या के हार जाने पर चेरबन्दी ने अपने भाइयों सहित अनेक लोगों को, जो उस वेश्या के दास बने हुए थे, मुक्त किया। उस वेश्या के साथ विवाह करके तानेपुरी की गद्दी ली। वहाँ उसके भाइयों को जब मालूम हुआ कि यही माणिक्य देवी का पुत्र है तो छहों राजपुत्रों ने ईर्ष्यावश चेरबन्दी को मारने का निश्चय किया। मार्ग-मध्य में उनके भाइयों ने चेरबन्दी का शिरच्छेदन किया तो योजनगंधी ने तत्काल औषध देकर उसे जीवित किया। भाइयों की कृतघ्नता पर चेरबन्दी को अत्यन्त दुःख हुआ।

चेरबन्दी अपनी तीनों पत्नियों सहित माता माणिक्य देवी के जेलखाने के पास आया। माणिक्य देवी अपनी तीनों बहुओं को देख आनन्द विभोर हो गई। इसके उपरान्त चेरबन्दी अपने पिता काम्भोज राजा के पास पहुँचा। योजनगंधी ने राजा के व्रण पर औषध का लेपन किया। राजा ने तत्काल ही अपने को पूर्ण स्वस्थ पाया। इस पर महानंदित होकर राजा ने पूछा: "वह स्त्री कौन है?" चेरबन्दी ने गद्‌गद होकर उत्तर दिया: "आपकी बहू!" राजा को विश्वास न हुआ। तब चेरबन्दी ने अपना वृत्तान्त सुनाया। "मैं क़ैद में स्थित माता माणिक्य देवी का पुत्र हूँ।" राजा आश्चर्य चकित होकर क़ैदख़ाने के पास जाकर देखता क्या है? क़ैदखाना अनेक भव्य महलों से पूर्ण एक महा नगर बना हुआ है। काम्भोज राजा माणिक्य देवी से मिले। माणिक्य देवी ने बीती घटनाओं का वर्णन किया: "मेरे जेलखाने में रहते समय देवताओं ने मुझे एक पुत्र रत्न को अपने दैवी प्रसाद से प्रदान किया है। चेर (जेल) में बन्दी रहने के कारण देवताओं ने उस पुत्र का नामकरण 'चेरबन्दी' किया है। यही आपका पुत्र है।"

काम्भोज राजा को भला इन अद्भुत घटनाओं पर विश्वास कैसे होता? उसने कहा: "यदि यह बात सत्य है तो यह समुद्र के उस तट पर पहुँच जाए!" माणिक्य देवी की ओर से ही देवताओं ने उसी क्षण यह कार्य करके दिखाया।

इस पर पूर्ण संतुष्ट होकर काम्भोज राजा ने माणिक्य देवी से क्षमा माँगी। पुत्र को गले लगाया और राजकुमार चेरबन्दी का पट्टाभिषेक किया।

—आलशौरि रेड्डी

हिन्दी प्रचार सभा,
मद्रास

× चार रुपए को तेलुगु में एक वरहा कहते हैं। 'वरहालु, वरहा का बहु वचन है। यह प्राचीन समय में आन्ध्र में रुपए गिनने का क्रम था। जैसे अमेरिका में डालर है। डालर का मूल्य ३॥।) हैं, और वरहा का मूल्य ४) है।

प्रतीक

संस्कृतनिष्ठ पण्डित याज्ञवल्क्य जी अब इतने वृद्ध हो गए कि बिना ऐनक लगाए पढ़ नहीं सकते। घर से कहीं जाते, तो लाठी का सहारा लेते। कमर झुक गई। बाल सफ़ेद हो गए। मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गईं। गाल पिचक गए। दाँत ग़ायब। इस रूप में अवशता के शिकार बने हुए याज्ञवल्य जी अपने नैतिक कर्म, पूजा-पाठ आदि से शिथिल हो गए हों, ऐसी बात भी नहीं। कर्म में उनकी पूर्ण आस्था। विवेक सजग। यही कारण था कि दूर पर्वतीय प्रान्त से आकर पंडित जी उस अपरिचित नगर में ऐसे जमे कि फिर उखड़ नहीं सके। नगर के अधिकाँश नर-नारियों के स्नेह भाजन बनने में समर्थ हो गए। लगभग चालीस वर्ष उन्हें उस नगर में रहते हो गए। नगर में जब कभी किसी आर्यसमाजी पंडित से शास्त्रार्थ होता, तो याज्ञवल्क्य जी अपने मोटे मोटे पोथे लेकर उस पंडित से वाक्-युद्ध करते। नगर का उत्सुक समाज देखता कि याज्ञवल्क्य पंडित जिन अकाट्य प्रमाणों को उपस्थित करते, वे सिद्धान्ततः सभी की समझ में आ जाते। उस शास्त्रीय युद्ध में पंडित जी हारते नहीं, अपि तु अपूर्व क्षमता का प्रदर्शन करते हुए विजयी बनते। कहीं यज्ञ, कथा अथवा ब्रह्म भोज होता, तो क्या मजाल कि उस अवसर पर पंडित याज्ञवल्क्य निमन्त्रित न किए जाते। उनका सर्वत्र सम्मान था। राज-दरबार में भी उन्हें प्रायः देखा जा सकता था।

किन्तु यह भी कैसी विचित्र बात थी कि इतने दिन उस नगर में पंडित याज्ञवल्क्य को रहते हो गए, लेकिन उनके जन्म स्थान तथा पारिवारिक परम्परा के विषय में किसी को कुछ ज्ञात नहीं, साठ वर्ष का लम्बा समय उन्होंने अविवाहित रह कर बिता दिया। ज्योतिष-शास्त्र के ज्ञाता, वेद-वेदाङ्गों के प्रकाण्ड पंडित, जिनका नित्य का काम ही यह कि समाज के नर-नारियों को बताते, तुम्हारे भाग्य में धन है या नहीं, सन्तान अथवा विवाह। लोगों का विश्वास था कि पंडित जी की बात में बल है, उनके पास विद्या है। फलस्वरूप, पंडित जी ने हज़ारों रुपया उपार्जित किया। भाग्य की बात कि यश भी पाया, रुपया भी पाया।

पंडित याज्ञवल्क्य के पास एक अनुचर था, रामदीन! वह पंडित जी के लिए भोजन बनाता, स्नान कराता और अन्य सेवा-कार्य करता। रामदीन काफ़ी दिनों से था। एक प्रकार से वही उस घर का मालिक था किन्तु पंडित जी की कृपणता, पाई पाई का हिसाब रखने की वृत्ति के कारण रामदीन भी परेशान था। वह भी अब वृद्ध हो चला था। पंडित जी का प्रेम, क्रोध, घृणा और ताड़ना—ये जितने भी मन के गुण तथा अवगुण थे, सभी को पाने का अभ्यस्त वह रामदीन हो गया। पंडित जी फटकार रहे हैं, गाली दे रहे हैं, तो क्या मजाल कि रामदीन सिर उठा कर देख ले। मुँह से कुछ कह दे।

उस नगर के लोगों की यह धारणा भी प्रायः निश्चित हो गई थी कि पंडित याज्ञवल्क्य के जब आगे-पीछे कोई नहीं, तो उस कृपण भाव से जोड़े गए धन का इस उपयोग के अतिरिक्त और तो कुछ होगा ही नहीं कि चोर लूटें, अथवा वह जहाँ गाड़ कर रखा गया है वहीं पड़ा रहे—व्यर्थ चला जाए। यद्यपि समाज, धर्म और देश के लिए पंडित जी के विचार सर्वत्र सराहे जाते। किसी यज्ञ-मण्डप में जब पंडित जी उपदेश देते, तो बताते, यह जीव, यह जगत् एक मधुर कल्पना है। जिसका शनैः शनैः सांस्कृतिक ढंग पर विकास हुआ है। पंच-तत्व का शरीर प्रकृति ने हमें इसीलिए प्रदान किया है कि सृष्टि के सुन्दरतम निर्माण में हमारा अधिकतम उपयोग हो। हमारा सर्वस्व जन-कल्याण के लिए अर्पित हो किन्तु स्वयं पंडित जी के लिए विवशता की बात यह कि वह जिस प्रकार के उपदेश जनता को प्रदान करते, तो स्वयं उनका उपयोग करने में अपने को असमर्थ पाते। वह जिस धन का उपार्जन करते, उसे गाड़ कर रखते। अपनी आवश्यकताओं पर भी कम-से-कम व्यय करते। जो वस्त्र वह पहना करते, वे प्रायः मैले रहते। कदाचित् ही कोई कपड़ा वह धोबी को धोने के लिए देते। जब तक वस्त्र, पैरों का जूता फट कर स्वयं बेकार न हो जाए, तो क्या मजाल कि पंडित याज्ञवल्क्य

उसे छोड़ दें, अथवा उसके प्रति अरुचि प्रकट कर दें। इसलिए लोगों की यह धारणा भी थी कि पंडित याज्ञवल्क्य कृपण हैं ही, दरिद्र भी हैं। न स्वयं खाते पहनते हैं, न दूसरों को देख कर प्रसन्न होते हैं। एक यह भी कारण था कि उनके बुढ़ापे की असमर्थता दीनता में परिणत हो गई थी। चेष्टा मलीन लगती थी।

एक दिन प्रातःकाल के समय पंडित याज्ञवल्क्य अपने मकान के बाहरी हिस्से में हुए किसी यजमान का जन्मकुण्डली बना रहे थे। जन्म-पत्र पड़ा था उसे विधिवत् अनेक रंगों से कुण्डलियाँ खींच कर सुन्दर ढंग से बनाया गया। वह किसी कुलीन और धनाढ्य परिवार की था। उसको बनाने में पंडित जी दत्तचित्त थे। उसी समय एक भिखारिन की लड़की वहाँ आई। उसकी करुण वाणी बरबस ही पंडित जी के काम में अवरोह कर बैठी। ध्यान बँट गया। हाथ की कलम रुक गई। उन्होंने मुँह उठा कर लड़की की ओर देखा। तपाक से जैसे चिढ़ कर कहा : "क्या है ! यहाँ क्या रखा है ! चल भाग यहाँ से !" और उन्होंने अपना मुँह जन्म-पत्र पर झुका दिया।

किन्तु लड़की ने फिर कहा "बाबा, एक पैसा—"

पैसे का नाम सुनते ही, पंडित जी के माथे में बल पड़ गए। कान खड़े हो गए। उन्होंने अपने चश्मे को आँखों पर ठीक किया और लड़की को घूर कर कहा—"क्या कहा, पैसा ! हुँ ! तेरा बाप कमा कर रख गया होगा !"

पंडित जी के बात करने का ढंग देख कर, लड़की सकपकाई, डरी। वह सहमते हुए स्वर में बोली : "बाबा मेरा बाप कहाँ है ?"

मानो इतना सुनना भी रुचिकर नहीं लगा। तुरन्त ही चीख़ कर कहा : माँ तो होगी—बदज़ात !"

गाली सुन कर, जैसे लड़की के मन पर चोट लगी परन्तु कितनी विवश थी वह कि इतनी अशोभनीय बात सुन कर भी, उसकी आँखें ज़मीन की ओर झुक गईं। पैर का अंगूठा ज़मीन पर चलाया और बोली : "बाबा, मेरी तो माँ भी मर गई।"

"तो मैं क्या करूँ ? माँ बनूँ ? बाप बनूँ ?"

बस-बस, लड़की के मुँह से निकला : "बाबा—"

"बाबा की बच्ची !" सचमुच पंडित जी को क्रोध आ गया। उन्होंने हाथ में पकड़ी हुई कलम को रख दिया और चीख़ कर कहा : "तू क्यों मेरा सिर खपाने आई है। दुनिया पड़ी है। गधों से भरी है।"

लड़की ने इतना सुना और अपने पैरों को उठा, वहाँ से धीरे-धीरे चल, वह स्थान छोड़ दिया। वह तो चली गई, किन्तु पंडित जी के मन की गति बिगड़ गई, उन्होंने अपना मस्तक पकड़ लिया। उसी समय एक पड़ौसी युवक ने आ कर पूछा : "क्या हुआ, पंडित जी ? किस बात पर नाराज़ हुए ? क्या रामदीन पर ?"

पंडित जी बोले : "अजीब कठिनाई है। कभी काम करने बैठो, तो इन कम्बख़्त भिखारियों के कारण परेशानी होती है।"

'कोई भिखारी आया होगा ? तुमसे माँग बैठा होगा ?"

'हाँ, वह आती है न, लड़की ! यहाँ खड़ी हो कर बोली, पैसा दो।' कह कर पंडित जी ईर्षित ढंग से मुसकुराए और बोले : "इन भिखारियों ने तो यह समझ लिया है कि पैसा मुफ़्त में आता है...रास्ते पर पड़ा हुआ उठाया जाता है।"

पड़ौसी ने सुना और ही-ही कर के हँसता हुआ बोला : "पंडित जी भीख मांगना भी एक धन्धा है। गङ्गा किनारे की झोंपड़ी में वह कुबड़ी औरत रहती थी न, ठीक काँटे पर तुला बीस हज़ार रुपया उसके पास था। दिन में भीख माँगती और रात में लोगों के साथ बैठ कर सुल्फ़ा-गाँजा पीती। वह जब मरी, तो लाला हज़ारीलाल के पास अपना जमा किया रुपया छोड़ गई। उसी रुपए से तो लाला ने बाज़ार में अपनी दुकान चमका दी। नई इमारत बनवा ली।"

पंडित जी ने कहा : "भिखारी बदमाश होते हैं। दिन में भीख माँगते हैं और रात में चोरी भी करते हैं। भीख माँगते समय दाँत गिड़गिड़ानेवाले क्रूर और ज़ालिम बन कर आदमी का गला भी घोंट देते हैं। ख़ून भी करते हैं।"

पंडित जी ने कुछ और समीप मुँह ले जा कर कहा : "ये भिखारी जार भी होते हैं। उनकी औरत..."

पंडित जी ने मानो चंचल बन कर कह : "हूँ, हूँ, भिक्षा-वृत्ति समाज का कोढ़ है।"

तुरन्त ही पड़ौसी ने कहा : "इस कोढ़ का विकास भी सभ्य-समाज के गर्भ से हुआ है। क्या उसी का श्राप है।"

बात सुनी, तो पंडित याज्ञवल्क्य को अच्छा नहीं

लगा। मन में युवक को मूर्ख कहा। युवक फिर बोले : "पंडित जी, भिक्षा-वृत्ति का जन्म ही आर्थिक दासता और शोषण के द्वार से हुआ है। पूँजी नियमन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।"

जैसे चिढ़ कर पंडित जी बोले : "तो क्या तुम्हारे कहने का यह अर्थ है कि जिसके पास पैसा हो, वह उसे बखेर दे, बाँट दे!"

हँस कर, जल्दी से युवक बोला : "हाँ, पंडित जी, पैसे का यही अर्थ है। यही उपयोग।"

अभी तुम ना समझ हो! कुछ पुस्तकों में पढ़ लिया है न, तो उसी को मुँह से निकाल बैठते हो! पैसा किस कठिनाई से उपार्जित किया जाता है, इतना क्या आसानी से समझ सकते हो। अभी तो दुनिया में आए हो, ज़रा चलो, आगे बढ़ो, तो समझोगे कि जिन्दगी क्या है,—इस सफ़र की कठिनाइयाँ क्या है।

इतना सुन कर, युवक तनिक मौन रह गया। तदनन्तर बोला : "आप ठीक कहते हैं, पंडित जी! अभी अधिक कहाँ चला हूँ। अनुभव भी कम पा सका हूँ।" कहते हुए वह खड़ा हो गया और बोला : "परन्तु इतना तो मैं ज़िन्दगी के इस प्रथम चरण में ही समझ पाया हूँ कि पैसा जनता का है। जिन्होंने जनता से छीना है, उन्हीं ने इस जनता को भूखी और भिखारी बना दिया है। दिखता तो है कि देश का शासन एक है, तो आर्थिक दासता के बन्धन बाँधने वाले अधिक हैं। उन्हीं के हाथ में समाज की रोटी है, कपड़ा है। रहने को मकान...।"

मानो आसमान से पृथ्वी पर गिर कर पंडित जी ने युवक की ओर देखा। कुछ कहना भी चाहा। परन्तु उनका बोल गले में ही रह गया।

जाते हुए, पड़ोसी युवक ने फिर कहा : "आज के विश्व में यही सबसे बड़ा असन्तोष है। प्रतिरोध और प्रतिक्रिया की आवाज़ें उठ रही हैं। लोग चिल्ला रहे हैं।"

एकाएक पंडित जी के मुँह से निकला : "क्या क्रांति! ख़ून!"

युवक गम्भीर बन बोला : "हाँ, क्रांति! बदला!"

मानो सहमकर पंडित जी ने कहा : "बदला!"

युवक पैर उठा कर भी फिर रुका और बोला : "पंडित जी, बदला लेना ही आज के मानव की भावना है। भूखा है न समाज, नंगा है, दयनीय और अपाधित बन गया है, तो भला ऐसे विक्षुब्ध जन समूह को टुकड़ा फेंक कर क्या फुसलाया जा सकता है। वह तो वांछित वस्तु माँग रहा है। अपना स्वत्व मांग रहा है।" उसने कहा : "इस मनुष्य ने अधिकार पाकर नारी भी ठगी है। धर्म का मन्त्र तो हमने बहुत सुना जीवन में उतार कर देखा। परन्तु जो उसके सूत्रधार थे, उन्होंने उसी का आश्रय लेकर समाज को ठगा, हीन और क़ायर बनाया, जानवर बना दिया, पंडित जी! तो भला ऐसे हमारा बेड़ा कैसे पार हो सकता है।" वह कहने लगा : "सदा के समान आज भी साम्राज्यवादी और सामन्तवादियों से मनुष्य घिरा है। मानव तृषित, पीड़ित और क्षुभित बना हुआ है। सभी जगह नर-नारियों का क्रय-विक्रय होता है। आपके ग्रन्थ जिस युग को धर्मयुग और सतयुग के नाम से पुकारते हैं, उस युग में भी राजा हरिश्चन्द्र सपरिवार धर्म की महारानी काशी में ब्राह्मण और भंगी के हाथों विके थे।" वह मुसकुराया और बोला : "परन्तु समय की चाल तेज़ है। हवा तेज़ है। परिवर्तन हो रहा है। विचारों में बग़ावत आ गई हैं। वह चिल्ला रही है। जैसे मानव को झिंझोड़ रही है। हमारी हृदय हीनता, कायरता और सड़ाँद भरे इस प्रमादपूर्ण जीवन की पगडंडियाँ आँधी के कारण मिट गई हैं, नई बनने लगी हैं। देखते हैं न आप, जीवन के सभी ओर असन्तोष है, चीत्कार है,—जैसे कोलाहल! परन्तु मैं स्वयं किसी महाप्रलय की आशंका से नहीं डर रहा, ऐसी सम्भावना भी नहीं करता। अपि तु देखता यह हूँ कि जब जीवित हूँ, इन्सान हूँ, तो ज़रूर, दूर से आता हुआ प्रकाश मैं भी पा सकता हूँ। वेदना में भी जीवन पाता हूँ—समर्पण का भाव पाता हूँ, पंडित जी! शायद यही मानव की संस्कृति है—यही अनुभूति! तो मैं मानव को अन्धकार का अम्बर चीर कर आगे बढ़ते पाता हूँ।" कहते हुए वह रुका और बोला : "सम्पर्क करना इन्सान का स्वभाव है—कर्म है! परन्तु वह संघर्ष अथवा अर्चन जन-कल्याण के लिए हो, तो मानव ही देवता है, मानव ही भगवान......।"

पंडित जी कुछ कहें, अपना मत दें कि इससे पूर्व ही, युवक चला गया। वह दूर हो गया। किन्तु उसकी पीठ पर ही, याज्ञवल्क्य ने दाँत भींच कर कहा मूर्ख! उपदेशक बना है—नाच न आवे आँगन टेढ़ा! कम्बख़्त पैसेवालों को कोसता है। सरमायेदारी का नाश करने कल्पना करता है—निर्बुद्धि! इतना कहते हुए पंडित जी

उठे, तो उनकी आँखों में अंधेरा था। मन में रोष। शरीर में भारीपन। उन्होंने लाठी उठाई और चल पड़े। जब वह गंगा के समीप पहुँचे, तो देखते हैं, वही भिखारिन गोद में कुछ लिए खा रही है और सूनी आँखों से रास्ते के विशाल पथ की ओर देख रही है। कदाचित् पंडित जी को देख कर ही, वह दूसरी ओर देखने लगी है। इतना समझ याज्ञवल्क्य जी उसके समीप से निकलते हुए परवस ठिठक गए और बोले: "अरी तू अकेली है, सच!

अचरज के साथ लड़की ने उन्हें देखा और कहा: "हाँ, मेरा कौन है!"

"क्या खा रही है, तू?" पंडित जी ने पूछा।

लड़की ने दिखा दिया, कुछ चने, कुछ रोटियों के टुकड़े।

एकाएक पंडित जी ने कहा—"बस!"

लड़की ने मत नहीं दिया। पंडितजी की ओर देखा।

किन्तु पंडित का मुँह हरे आसमान की ओर था। जैसे उनके अन्तर का परमेश्वर एकाएक चीख उठा। उसका निनाद सभी ओर गूँज उठा। उनका मन कातर और खिन्न बन गया। फिर उन्होंने गंगा तट की ओर चलना आरम्भ कर दिया। वहाँ पहुँच कर जब संध्या की, आत्मशान्ति के लिए प्रार्थना की, तो तभी वह लड़की उन झूठे टुकड़ों को खाती हुई मानो सामने आकर खड़ी हुई। सच, कितनी विभिन्न! कितनी कातर! निदान पंडित जी का ध्यान नहीं बँधा। वह अन्य दिनों की अपेक्षा जल्दी उठ खड़े हुए। लाठी उठाई और चल दिए। किन्तु जब वह लड़की को उसके स्थान पर न पा सके, इधर उधर देख कर भी न देख सकें, तो खिन्न मन लिए लौटे। भोजन किया और पड़ गए। किन्तु याज्ञवल्क्य के जीवन में यह पहला दिन था कि जब उनके मन में दया, अनुभूति और ममता का सोता हुआ समुद्र ठाठें मारने लगा। वह मानो पंडित जी को कहीं से कहीं बहा कर ले जाने लगा। रात आ गई, घोर—अन्धेरी! गीदड़ चीखने लगे। दूर किसी जलाशय के किनारे बैठे हुए चकुवे की वाणी भी कानों में आई। सच, कितनी कितनी चंचल, कितनी आल्हाददायी! सोचा पंडित जी ने अर्ध वह चकवी से मिल सकेगा। चकवा-चकवी... प्रेमी-प्रेमिका......।

उस समय परवस ही, पंडित याज्ञवल्क्य अपने चालीस वर्ष पूर्व के अतीत पर पहुँच गए थे। तब वह अपने गांव में थे। युवक, सुन्दर। वहीं पर उनका एक निम्न वर्ग की युवा लड़की से प्रेम हुआ। जब वह गर्भवती हो गई, तो उसने अपने प्रेमी याज्ञवल्क्य से विवाह कर लेने और कहीं दूर चले चलने के लिए कहा। परन्तु याज्ञवल्क्य ने लड़की की बात को स्वीकार नहीं किया। लड़की का प्रस्ताव ठुकरा दिया। तब युवक याज्ञवल्क्य को लोक लाज का भय भी सताने लगा। सो, अवस्था गम्भीर थी। दोनों के सामने प्रतिष्ठा और लोक-लाज की बात थी। एक दिन की बात कि सन्ध्या के झुटपुटे में याज्ञवल्क्य ने उस युवती को साथ लिया और पहाड़ की ऊँचाई पर पहुँच गया। युवती सोचती कि थी याज्ञवल्क्य उसे ले कर कहीं दूर जाएगा। किन्तु जब वह दोनों पहाड़ पर चढ़े, तो नीचे सर्पिणी के समान बहती हुई नदी की धार को लक्ष कर उस युवती को जोर से धक्का दे दिया।

धक्का लगते ही, वह नीचे गई, चीखी-चिल्लाई। नदी में जोर का 'छप्प' शब्द सुन कर याज्ञवल्क्य सन्तोष किया उसके मन का भय दूर हुआ। वह लौट पड़ा। वह कुछ दूर ही चला कि किसी व्यक्ति ने टकोर दिया। सुनते ही याज्ञवल्क्य इतने जोर से भाग खड़ा हुआ कि भूल गया, गांव जा रहा है, या कहाँ जा रहा है। निदान, वह गाँव तो गया नहीं। रात भर चला। थक गया। दूसरे दिन रेलगाड़ी में बैठ गया।

तभी एकाएक मन पर झटका खा कर पंडित याज्ञवल्क्य अवरुद्ध स्वर में चीख पड़े—"अरी राधा!" और जैसे उन्होंने अभी राधा को धक्के दे कर उसके प्राण लिए हों। वह फूट-फूट कर रो पड़े।

× × ×

सदा की भाँति, एक दिन प्रातःकाल में जब याज्ञवल्क्य जी गंगा स्नान के लिए जा रहे थे, तो उसी समय रास्ते में भीड़ लगी देखी। बात सुनी, कि किसी गुण्डे ने भिखारिन लड़की की हत्या कर दी। चौंक कर पंडित जी समीप पहुँचे, तो देख कर खो गए कि वही पुरानी लड़की। लोग लज्जा, घृणावश देख नहीं सके कि उसके पेट में छोटा-सा गर्भ भी था। वह भी माँस का लोथड़ा बाहर निकल आया था। पुलिस ने लाश पर कब्जा कर लिया। किसी गुण्डे ने उसके पेट में छुरा मार दिया था। इतना देखा, तो पंडित जी खड़े नहीं रह

सके। वे गङ्गा भी नहीं जा सके : घर लौट आए। आते ही, बहुत-सी पुस्तकें फाड़ दीं। ठाकुर जी को उठा कर सड़क पर फेंक दिया। उनके पास जो संचित धन था, वह भी फेंकना शुरू कर दिया। मुहल्ला एकत्र हो गया। पंडित जी चीखे, चिल्लाए। समझते हो, भिखारिन लड़की का किसने खून किया,—क्यों किया! वह आदमी कायर था। उस लड़की को किसी पापी ने मारा। वह नराधम था, नीच था। मनुष्य भी पिशाच बन गया...जिसने उसे ठगा, उसीने वध कर दिया...रे, नराधम!

और उस दिन मुहल्ले की भीड़ के सामने ही, पंडित जी ने ज़ोर-ज़ोर से कहा : "मैं भी खूनी हूँ...मैं भी एक नारी का हत्यारा हूँ...मैं भी अपना पाप छिपाए फिरता हूँ...

परन्तु लोगों को कुछ कहने और परिस्थिति समझने का अवसर मिले कि इससे पूर्व, पंडित याज्ञवल्क्य का प्राण जाने कहाँ-के कहाँ उड़ गए...

१२७, पार्लिमेण्ट हाउस,
नई दिल्ली

—श्रीराम शर्मा 'राम'

सन्तरों के विषय में

सन्तरों को पकने में छः मास लगते हैं। सन्तरों के बारे में कई बार ये विज्ञापन दिए जाते हैं कि ये सन्तरे वृक्ष पर पकाए हुए हैं। प्रत्येक सन्तरा एकमात्र पेड़ पर ही पकता है। आम, टमाटर, केला और अन्य फलों के समान सन्तरा वृक्ष से तोड़ लेने के पश्चात् कभी नहीं पकता।

यदि हमें बेहतरीन सन्तरा ख़रीदना हो तो उसे आँखों से देख-भाल कर ख़रीदने से काम नहीं चल सकता। हमें उसे हाथों में लेकर परखना चाहिए। सन्तरा जितना अधिक भारी होता है उसमें रस उतना ही अधिक होता है। मोटे छिलकेवाले सन्तरों में उतना रस नहीं होता जितना कि पतले छिलकेवाले सन्तरों में होता है। फल के आकार और उसके स्वाद और कोटि में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता।

सन्तरों में कम-से-कम २३ आधारभूत भोजन तत्व होते हैं। उनमें उच्च कोटि का विटामिन-सी होता है। उनमें फल-शर्करा, फ़ासफ़ोरस, लोहा, और अन्य स्वास्थ्य के लिए उपयोगी वस्तुएँ होती हैं। डाक्टरों का विचार है कि मोटापा घटाने के लिए सन्तरों को खाना चाहिए। पेट के अल्सर में भी सन्तरा बड़ा उपयोगी है। इन बीमारियों में विटामिन-सी की कमी होती है।

सन्तरे का रस निकालने के लिए सन्तरे को धीरे धीरे नरमी से दबाना चाहिए। आख़िरी बूँद तक रस निचोड़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। सन्तरे के रस को पीने से पूर्व छानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसके गूदे में विटामिन-सी होता है। सन्तरे का रस बहुत समय तक ख़राब नहीं होता।

सन्तरे के वृक्ष मेडीटरेनियन समुद्र के देशों, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेण्ड, जापान, ब्राज़िल, भारतवर्ष, दक्षिण आफ्रिका और चीन में बहुतायत से होते हैं।

(रीडर्स डाइजेस्ट से)

—टी. ई. मर्फ़ी

कला—चर्चा

कलाकार गाडे के चित्रों का प्रदर्शन

हैदराबाद आर्ट सोसाइटी, समसामयिक भारतीय कला को लोकप्रिय बनाने के लिए पिछले कई वर्षों से प्रयत्न कर रही है जिसके परिणामस्वरूप कला प्रेमी जनता को आधुनिक भारतीय कलाकारों की कृतियों से परिचित होने के अनेक अवसर प्राप्त होते रहते हैं। अजन्ता-पटभवन में पिछले दिनों बम्बई के प्रसिद्ध कलाकार श्रीयुत एच. ए. गाडे के सुन्दर चित्रों का प्रदर्शन किया गया। श्रीयुत एच. ए. गाडे प्रगतिशील वर्ग के हैं। इस प्रदर्शनी का उद्घाटन श्रीयुत नवाब मेहदी नवाज़ जंग ने किया। श्रीयुत गाडे में कलाकार की नम्रता है और इसलिए वे अपनी कृतियों की प्रशंसा में स्वयं कुछ नहीं कहते। वे अपने इन चित्रों के विषय में सिर्फ़ यही कहते हैं कि उनके नए नए चित्रों में उनकी अपनी शैली निश्चित रूप से विकसित हुई है। नए चित्र उनके पहले चित्रों पर आधारित हैं और इनमें उनके अपने पहले चित्रों की विशेषताएँ हैं। अभी तक उनका कोई ऐसा चित्र नहीं है जो उन्हें विशेष रूप से प्रिय हो। संभवतः उनका स्वप्न-शिशु अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ। वे अपनी कला के विषय में यही कहते हैं कि उनके मन और अभिव्यक्ति में परिवर्तन हुआ है परन्तु उनका व्यक्तित्व ज्यों-का-त्यों रहा है और अधिक पूर्ण हुआ है। जब कि उनका ध्यान नए गाडे पर जो कि इन चित्रों में चित्रित हुआ है—अज्ञात रूप से केन्द्रित है—वे अपने पिछले चित्रों को देख कर उत्साह अनुभव करते हैं। श्रीयुत गाडे १५ वर्षों से चित्र बना रहे हैं और उन्होंने भारतीय कला में अपना एक विशिष्ट स्थान बना-लिया है। उनका एक चित्र राष्ट्रीय कला गैलरी, नई दिल्ली में प्रदर्शित किया जाता है।

इस प्रदर्शन में उनके ५० चित्रों का प्रदर्शन किया गया है उनके बहुत-से चित्र बहुत-से लोगों को वैसे ही समझ में नहीं आते जैसे कि प्रगतिशील विचारधारा के कलाकारों के बहुत-से चित्र समझ में नहीं आते। कलाकार के भावों और कुशलता को खोजना पड़ता है। गाडे के चित्रों को देखकर विचार करना पड़ता है। उनमें एक प्रकार का आकर्षण है। संभवतः कैन्वस पर यह एक प्रकार की 'इम्प्रेशनिज़्म है जिसमें बिना विस्तार के प्रभाव उत्पन्न कर दिया जाता है। इन चित्रों को देखकर मन प्रभावित होता है परन्तु वह यह अभिव्यक्त नहीं कर सकता कि उसका वह क्या प्रभाव अनुभव करता है? विविध प्रकार के इन चित्रों की प्रधान विशेषता यह प्रतीत होती है इनमें कला संक्षिप्त रूप में दिखाई पड़ती है। विस्तार के बिना ही इनसे मन संवेदनशील और प्रभावित होता है। फिर भी इनमें प्रकृति के दृश्य और आकृतियाँ स्पष्ट और सुन्दर रूप में चित्रित हुई हैं। आकर्षक कैन्वेसों पर रंग उभरे हुए हैं—उनमें जहाँ चमकदार रंग हैं वहाँ मध्यम रंग भी हैं और इस कारण उनका प्रभाव आकर्षक है। एक तर्फ़ मानव आकृतियाँ कोणाकार हैं और उनमें विचित्र आकर्षक सौन्दर्य है। ऐसा अनुभव होता है कि जब चित्रकार इन चित्रों का निर्माण कर रहा था तब उसके मन में कई भिन्न प्रकार के भाव उठ रहे थे। इन चित्रों में जो व्यक्तित्व है वह गाडे का अपना व्यक्तित्व है। उसका साहसपूर्ण हस्तकौशल, उसके चमकदार रंग, उसकी बदलती हुई मानसिक अवस्थाएँ और उसके आन्तरिक विचार सब मिलकर एक व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। ऐसा अनुभव होता है कि इन चित्रों में रंगों के बन्द (Patches) और साहसिक यत्नहीन रेखाएँ उनके व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं या वे उनके व्यक्तित्व को अभी तलाश कर रही हैं। वे एक स्थिर और एकरूप व्यक्तित्व की ओर जा रही हैं। इस चित्रों में हरा रंग उनकी पहली कृतियों की अपेक्षा हलका है और इसी प्रकार के आधुनिक चित्रों में पहले चित्रों की अपेक्षा पूर्वापर के मेल की भी कुछ कमी प्रतीत होती है। इनमें अ-गुजराती शैली का व्यक्तिगत रूप और ढंग से निर्माण किया जा रहा है जो कि सम्भवतः अधिक स्थिर रहेगी।

इनमें किसी एक चित्र को चुनना कठिन है परन्तु कुछ चित्र जो आँखों को विशेषतया आकृष्ट करते हैं—वे हैं: "दीवारें", "लाल रास्ता", "जुदाई", "हाथी",

“वृषभ” और “महाद्वार”। कला प्रेमी इन सुन्दर कृतियों को देख कर प्रसन्न होंगे। ‘अजन्ता’ के इस अंक में श्री गाडे के दो चित्र ‘रंगोली’ और ‘बलीवर्द’ के फ़ोटो को प्रकाशित किया गया है।

आधुनिक चित्रण-कला की शैली

श्रीयुत सईद बिन मुहम्मद ने मुअज़्ज़म जाही रोड, हैदराबाद में अपनी एक कला-संस्था चला रक्खी है जिसका नाम ‘आर्ट व्यू’ है। वहाँ वे विद्यार्थियों को स्वयं कला की शिक्षा प्रदान करते हैं। पिछले दिनों उन्होंने श्रीयुत एच. ए. गाडे को अपनी संस्था में अपनी कला पर भाषण देने के लिए निमंत्रित किया। श्रीयुत एच. ए. गाडे, बम्बई के प्रोग्रेसिव ग्रुप के कलाकार हैं। अपने भाषण में श्रीयुत गाडे ने आधुनिक चित्रण कला के विषय में कहा : “चित्रण कला की आधुनिक प्रवृत्तियों में कोई नवीनता नहीं है। सदियों पूर्व प्लेटो ने अपने शिष्यों के सम्मुख इसकी व्याख्या की थी। मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि आधुनिक चित्रण कला में हैदराबाद के लोगों में मैं जो दिलचस्पी देख रहा हूँ वह मुझे बम्बई में भी दिखलाई नहीं पड़ती। जिस कला के द्वारा सौन्दर्यात्मक आनन्द की अनुभूति हो मैं उसे आधुनिक कला के नाम से कहता हूँ। उनसे संस्था में इस सम्बन्ध में कुछ प्रश्न किए गए जिनका कि उन्होंने उत्तर दिया। उन्होंने अपनी चित्र-निर्माण शैली का प्रदर्शन किया। वे अपनी शैली में स्थान को उत्पन्न करते हैं और फिर शीघ्र ही तूलिका द्वारा उसे रंगों से भर देते हैं। एक चित्र उन्होंने पाँच मिनट के अन्दर तैयार कर दिया।

कला समाचार :

अखिल हैदराबाद छात्र संघ सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के उपलक्ष में राजा प्रतापगीर जी की कोठी में रंगचित्रों, मूर्तियों और नक्शों के प्रदर्शन को आयोजित किया गया था। गवर्नमेंट स्कूल आफ़ आर्ट के प्रिन्सिपल श्रीयुत विश्वनाथ मुकर्जी ने १३ नवम्बर को ८ बजे रात्रि के समय इस प्रदर्शन का उद्घाटन किया था। इस प्रदर्शन में कुछ रंग चित्र वाश और टैम्प्रा पद्धति में थे, कुछ शीर्ष, कुछ व्यापारी कला और मूर्तियों के नमूने थे। इन प्रदर्शनों से यह ज्ञात होता था कि गवर्नमेंट स्कूल आफ़ आर्ट के छात्र कितने ऊँचे दर्जे का कार्य करते हैं। इस प्रदर्शन में एक स्कीम दिखाई गई थी जिसमें हैदराबाद के शिक्षणालयों के छात्रों और शौकिया चित्रकारों के रंगचित्रों को प्रदर्शित किया गया था। इस पैनेल में कुछ बहुत ही सुन्दर प्रदर्शन थे। जो नक़्शे इस प्रदर्शन में दिखलाए गए थे उनसे राज्य में शिक्षा के विस्तार का ज्ञान होता था। छात्र संघ के मन्त्री ने इस प्रदर्शन के उद्घाटन के अवसर पर कहा कि अखिल हैदराबाद विद्यार्थी संघ भिन्न-भिन्न स्कूलों और कालेजों में कला-अध्ययन-मण्डलियों और कला-सभाओं की स्थापना की योजना को बना रहा है और इसके लिए उन्होंने श्री विश्वनाथ मुखर्जी, प्रिन्सिपल, गवर्नमेंट स्कूल ऑफ़ आर्ट, हैदराबाद से सहयोग की प्रार्थना की।

हैदराबाद आर्ट सोसाइटी के तत्वावधान में २६ नवम्बर को अजन्ता-पटभवन में स्थानीय कलाकार श्रीयुत बद्रीनारायण के चित्रों का प्रदर्शन किया गया। इसका उद्घाटन हैदराबाद राज्य के शिक्षा-मन्त्री श्री गोपालराव एकबोटे ने किया। श्री बद्रीनारायण ने नियमित रूप में कला की शिक्षा कहीं प्राप्त नहीं की है। उनके चित्रों का प्रदर्शन हमारे देश और विदेशों में कई स्थानों पर कई बार किया जा चुका है। अगले अंक में इस प्रदर्शन का विस्तृत विवरण दिया जाएगा।

राज्य की समसामयिक आर्ट गैलरी : कुछ नए रंग-चित्रों का क्रय :

इन दिनों हैदराबाद के प्रशासन ने कुछ प्रसिद्ध भारतीय कलाकारों के चित्रों को हैदराबाद संग्रहालय की समसामयिक आर्ट गैलरी में सम्मिलित करने के लिए खरीदा है। इन चित्रों को श्रीयुत लक्ष्मीनारायण गुप्त, शिक्षा-सचिव, श्रीयुत विश्वनाथ मुखर्जी प्रिन्सिपल, गवर्नमेंट स्कूल ऑफ़ आर्ट, श्रीयुत ख़्वाजा मुहम्मद अहमद, क्यूरेटर, हैदराबाद संग्रहालय और कुछ प्रसिद्ध स्थानीय कलाकारों की सलाह और विचार से चुना गया है। इनमें से एक बहुत सुन्दर चित्र श्रीयुत जवाहरलाल नेहरू, भारत के प्रधान मन्त्री का है। यह श्रीयुत शिवप्रसाद देव शर्मन का बनाया हुआ है जो कि इस देश के महान् आकृति चित्रकार हैं। दूसरे जो चित्र इस गैलरी के लिए खरीदे गए हैं वे हैं “बलीवर्द”, “दीवार” और “महाद्वार”। ये चित्र बम्बई के प्रसिद्ध कलाकार श्रीयुत एच. ए. गाडे के बनाए हुए हैं। इन चित्रों को “अजन्ता पटभवन” बाग़े आम में प्रदर्शित किया गया है।

कला विद्यालय,
हैदराबाद.

—विश्वनाथ मुखर्जी

चिट्ठी-पत्री

(१)

लोक गीतों के लेखों के सम्बन्ध में

आप के पत्र की मंगल कामना करता हुआ एक सुझाव भेज रहा हूँ। उम्मीद है रुचेगा।

प्रायः अपने पत्र में विभिन्न जातियों के लोक-गीत सम्बन्धी लेख छपते हैं—जिन्हें कोई नहीं पढ़ता। बिलकुल नीरस विवेचन होता है उनका। जरूरत इस बात की है कि विभिन्न जातियों के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित जानकारी पूर्ण रोचक लेख छापने की। भील, गौंड, बनजारे, नागा आदि जो पिछड़ी हुई नस्लें हैं उनके सामाजिक जीवन सम्बन्धी लेख आपके पत्र में पढ़ने को नहीं मिलते आशा है इस ओर ध्यान देंगे।

आलइंडिया रेडियो,
नई दिल्ली

—उदयशंकर भट्ट

[हम श्री उदयशंकर भट्ट के सुझाव का स्वागत करते हैं। हम यह तो नहीं कह सकते जैसा कि उन्होंने अपने पत्र में लिखा है......"......लोकगीत सम्बन्धी लेख छपते हैं—जिन्हें कोई नहीं पढ़ता।" यह तो हम नहीं कह सकते कि इन लोकगीत सम्बन्धी लेखों को कोई नहीं पढ़ता क्योंकि प्रति मास इस प्रकार के लोकगीत सम्बन्धी लेख पर्याप्त संख्या में हमारे पास आते हैं। यदि इन लेखों को कोई पढ़नेवाला न हो तो लोकगीत सम्बन्धी लेख इतनी संख्या में नहीं लिखे जा सकते। हम अपने पत्र में कठिनाई से लोकगीत सम्बन्धी एक ही लेख प्रकाशित कर पाते हैं। लोकगीतों में जहाँ गीतों में लोक जीवन अपने ही रूप-रंग में चित्रित रहता है वहाँ गीतों की भी अपनी ही विशेषताएँ होती हैं। इस प्रजासत्तात्मक युग में लेखकों का ध्यान लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक-कहावतों, पहेलियाँ और लोक-जीवन की ओर स्वभावतः आकृष्ट होता है। जिस प्रकार लोक-जीवन के अनेक पहलू हैं उसी प्रकार इन गीतों के भी अनेक पहलू हैं। हम मानते हैं कि लोकगीतों में ऐसे गीतों को संग्रह करने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए जिनमें लोक-जीवन की विविधता चित्रित की गई हो। हम लोकगीतों को संग्रह करनेवाले महोदयों और इस विषय के लेखकों का ध्यान श्री उदयशंकर भट्ट के पत्र की ओर आकर्षित करते हैं। यदि वे इस विषय में अपने विचार लिखेंगे तो हम उन्हें सहर्ष प्रकाशित करेंगे—सं.]

(२)

अजन्ता के सम्बन्ध में

... 'अजन्ता' आपके सम्पादन काल से बराबर देखता आ रहा हूँ। उसमें मैंने लिखा भी है। मेरा यह निश्चित मत है कि "सरस्वती" के पश्चात् "अजन्ता" ही ऐसी पत्रिका है जिसमें बिना किसी भेद-भाव के छोटे-बड़े और महान् लघु कृती कलाकारों और सुधी विद्वानों की रचनाओं को स्थान मिलता है। कला-चर्चा और सामयिक चर्चावाले स्तम्भ "अजन्ता" के अनूठे हैं। कई अछूते विषयों पर पहली बार "अजन्ता" में पढ़ने को मिल जाता है। अर्वाचीन और प्राचीन के समन्वय की जो आपकी दृष्टि है वह सर्वथा स्तुत्य है। मेरी बधाई स्वीकार करें। 'अजन्ता' से पुराना सम्बन्ध होने के कारण यद्यपि उसकी प्रशंसा में खुद लिखना असंगत-सा है तथापि इस वर्ष के नवम्बर के अंक में सर्व श्री अगरचन्द नाहटा, मुनि कान्तिसागर, हंसराज 'रहबर', रामशंकर भट्टाचार्य, कुमार शील चतुर्वेदी, विद्यावती मिश्र, भागवत प्रसाद सिंह आदि की रचनाओं ने मुझे विवश कर दिया कि मैं आपको यह पत्र लिखूँ।

मुझे आशा है 'अजन्ता' अपनी परम्परा की रक्षा में सतत निरत रहेगी।

गोकुलपुरा,
आगरा

—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

(३)

गज पर्व

भारत भूमि में पर्वों का इतिहास अपना ही एक अलग अस्तित्व रखता है। पर्वों का मनाना एक जातीय वैशिष्ट्य बन गया है। दक्षिण-भारत में अनेक जाति उपजातियाँ पाई जाती हैं। ब्राह्मणों की अनेक उपजातियाँ

हैं। उनमें स्मार्त, अय्यंगार, माध्व आदि मुख्य हैं। अय्यंगार जाति में भी दो तीन उपजातियाँ हैं। तो भी आचार व्यवहारादि में परस्पर कुछ विशेष भिन्नता नहीं पाई जाती।

गज पर्व को विशेषतः अय्यंगार लोग मनाते हैं। यह पर्व बहुत ही ज़ोर शोर के साथ मनाया जाता है। यह प्रतिवर्ष कार्तिक मास पूर्णिमा को मनाया जाता है। उस दिन सब प्रातःकाल ही मिट्टी के हाथी बनाते हैं। और उसे फूलों से सजा कर पूजते हैं। उसको 'गज लक्ष्मी' कह कर पुकारते हैं। इसके बाद ब्राह्मणों को बुला कर दान धर्मादि आचार मनाते हैं। भक्ष-भोज के बारे में तो कहना ही क्या ?

शाम को सब स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं और "सुसंगलियों" (सिंदूर से सुशोभित स्त्रियों) को दान देती हैं।

इस तरह तीन दिन का त्यौहार मनाया जाता है। चौथे दिन गज को बिदा देते हैं। बिदा देने का ढंग दर्शनीय होता है। संध्याकाल में, अच्छे मुहूर्त को शोध कर, घर की एक स्त्री, गज को एक चाँदी के थाल में रख लेती हैं। दूसरी अन्य स्त्रियाँ भक्ष-भोज्यों को पात्रों में भर कर, उनको लेकर, घर से निकलती हैं। आगे एक बालक "लक्ष्मी पद" गाते हुए चलता है। घर के सब लोग इस तरह किसी बाग़ में पहुँचते हैं। वहाँ एक पेड़ के नीचे बैठ जाते हैं और पेड़ की तलहटी में गज को प्रतिष्ठित करने के बाद सब हिल-मिल कर कुछ खाते हैं। इसके बाद नृत्य गीत होते हैं और खुशी खुशी सब घर पहुँचते हैं। इस तरह बहुत धूम-धाम से गज पर्व मनाया जाता है।

हर एक पर्व को मनाने के लिए ऐतिहासिक या पौराणिक करण तो होते ही हैं। गज पर्व की पूर्वकथा संक्षेप में यों है :

विश्वविख्यात महाभारत के नायक पाँडव और कौरव अपने अपने राज्यों में सुख से दिन बिता रहे थे। एक दिन व्यास महर्षि हस्तिनापुर आए और गांधारी से मिले। कुशल प्रश्नों के उपरान्त गांधारी ने मनोवेदना के साथ उनसे निवेदन किया ! महर्षि, मैं सदा दुःखी और चिन्तित रहती हूँ। इसके दूर करने का क्या उपाय है। महर्षि ने कहा कि तुम ऐसे एक गज की पूजा करो जो इंद्र के ऐरावत गज से मिलता जुलता हो। तुम्हें सकल सिद्धि होगी।

गांधारी की इच्छापूर्त्ति के लिए सबने बहुत दौड़ धूप की। पर कहीं भी ऐसा हाथी न मिला जो कि ऐरावत के समान हो सके। तब निरुपाय हो, सब एक कुम्हार के पास गए और उससे अमूल्य मिट्टी ले आए। महल के चित्रकार ने ऐसा हाथी बना दिया कि उसके सामने इन्द्र का ऐरावत, भी साधारण-सा गज प्रतीत होता था। गांधारी ने अपने सब रिश्तेदारों को आमन्त्रण दिया, परन्तु कुन्ती को विधवा कह कर निमन्त्रण न दिया।

यह उपेक्षा कुन्ती को बुरी मालूम हुई और वे बहुत दुःखी हुईं। अर्जुन ने उनसे दुःख का कारण पूछा। माता ने अपने पुत्र से सब हाल कहा। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि मैं आपकी इच्छा को पूर्ण करके दिखाऊँगा। तुरन्त उन्होंने धनुष को टंकारित करके, बाण की नोक के द्वारा स्वर्ग में इन्द्र को पत्र भेजा। बाण जाकर इन्द्र के चरणों के पास जा गिरा। इन्द्र ने पत्र को पढ़ा और पुत्र को कहला भेजा कि तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी परन्तु ऐरावत को स्वर्ग से ले जाने का प्रबन्ध स्वयं तुम्हें करना पड़ेगा। अर्जुन प्रसन्न हो गया। उसने अपने सब रिश्तेदारों को आमन्त्रण भेजा कि हम ऐरावत की पूजा करेंगे, आप सब आकर पूजा को सम्पन्न कीजिए। वह गांधारी को जा कर स्वयं आमंत्रण दे आया।

पूजा का समय समीप आ गया। अर्जुन के सम्मुख समस्या थी कि वह ऐरावत को स्वर्ग से भूलोक में किस प्रकार लाए उसी समय कृष्ण वहाँ आते हैं और अर्जुन से द्रोणाचार्य की प्रार्थना करने को कहते हैं। अर्जुन बड़े भक्ति भाव से गुरु का ध्यान करता है। तुरन्त ही उसे धनुर्विद्या के रहस्य की याद आ जाती है और वह बाणों की सीढ़ी स्वर्ग तक पहुँचती है, उससे ऐरावत भूलोक आ पहुँचता है। उसका जुलूस निकाला जाता है। जुलूस के बाद पूजा होती है। पूजा के बाद ऐरावत को यथा स्थान पहुँचा दिया जाता है। श्री कृष्ण अर्जुन की मातृ भक्ति की तारीफ़ करते हुए कहते हैं कि "जो इस पर्व को आज से सदा प्रतिवर्ष मनाएँगे उन्हें सर्व सिद्धि होगी। विशेषतः स्त्रियों की इष्ट सिद्धि होगी क्योंकि आदर्श महिला कुन्ती की इष्टसिद्धि इसी के द्वारा सम्पन्न हुई।"

कहा जाता है कि उस दिन से यह पर्व मनाया जा रहा है।

नं. बी. ३८, सीगेबेली
बैंगलूर—२

—एन. रंगनाथ

नीर-क्षीर

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम भेजी जानी चाहिएँ]

तमिल और उसका साहित्य

लेखक : श्री पूर्ण सोमसुन्दरम्
सम्पादक : श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली
मूल्य : दो रुपए।

भारतीय भाषाओं के अध्ययन के प्रति जो लेखक और प्रकाशक प्रयत्न कर रहे हैं वे एक महान् कार्य कर रहे हैं और इसकी परम आवश्यकता है। श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने 'सरस्वती सहकार' नामक संस्था की स्थापना कर उसके द्वारा 'भारतीय साहित्य परिचय' नामक जो पुस्तक माला प्रकाशित करनी प्रारंभ की है वह एक स्तुत्य प्रयत्न है। प्रस्तुत पुस्तक में श्री पूर्ण सोमसुन्दरम् ने 'गत ढाई हज़ार वर्षों से तमिल साहिळ में समय-समय पर जो नई-नई प्रवृत्तियाँ प्रबल होती आई हैं उन पर तथा उनकी पार्श्वभूमि पर यथासंभव प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।' लेखक के अनुसार 'कम-से-कम पैंतीस शताब्दियों से तमिळ भाषाओं में उच्च कोटि की साहित्य-रचना होती रही हैं। उन्होंने तमिळ देश और लोगों के विषय में प्रचलित वादों की चर्चा की है जिसमें तमिळ लोगों का संबन्ध क्रीट के आदिवासियों से जोड़ा गया है। क्रीट के आदिवासियों का नाम तर्मिलाइ था और मध्य एशिया के लिशियन लोग जो उनके वंशज थे अपने को 'त्रिमिल्लि' कहा करते थे। उन्होंने इस बात पर प्रकाश नहीं डाला कि तमिळ भाषा में 'तमिळ' शब्द का क्या अर्थ है? उनके प्रारंभिक परिचय से इस बात का ज्ञान नहीं होता कि 'तमिळ' भाषा का विकास किस प्रकार हुआ? वे इस निष्कर्ष पर तो पहुँचते हैं कि 'तमिळ पूर्णतः स्वतंत्र, मौलिक तथा द्राविड़-भाषा समूह की प्रधान सदस्य भाषा है और वह विकासशील है।' परन्तु वे इसे प्रमाणित नहीं करते। जब कि तमिळ लोगों का सम्बन्ध क्रीट, चीन, ईजिप्ट और आफ्रीका आदि भिन्न देशों से जोड़ा जाता है ऐसी अवस्था में उनकी भाषा का स्वतन्त्र और मौलिक विकास किस प्रकार हुआ इस पर इस पुस्तक में कुछ प्रकाश नहीं डाला गया। लिपि के विषय में भी ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ नहीं लिखा गया। वर्तमान तमिळ लिपि किस समय प्रचलित हुई और उसमें समय-समय पर क्या परिवर्तन हुए और उस लिपि तथा भारतीय लिपियों में क्या समानताएँ हैं इस पर भी विशेष रूप से लिखा नहीं गया है। उनकी पुस्तक को पढ़ने से यह ज्ञान नहीं होता है कि क्या जिस प्रकार तमिळ भाषा 'स्वतन्त्र और मौलिक' है उसी प्रकार इस भाषा की लिपि भी 'स्वतन्त्र और मौलिक' है? तमिळ वर्णमाला की विशेषताओं के विषय में लिखा गया है कि उसमें 'महाप्राण व्यंजन होते ही नहीं।' लेखक ने लिखा है : 'तमिळ का एक व्यंजन विशिष्टाक्षर कहलाता है क्योंकि यह केवल तमिळ में पाया जाता है। इसका उच्चारण फ़ारसी के एक विशिष्ट अक्षर (?) और नागरी के 'ष' के बीच का होता है।' यह कुछ समझ में नहीं आया कि फ़ारसी का यह विशिष्ट अक्षर कौन-सा है और उसका उच्चारण कैसा होता है? तमिळ साहित्य को उन्होंने सात कालों में विभक्त किया है! पता नहीं यह विभाजन उन्होंने स्वयं किया है या इस प्रकार का विभाजन तमिळ साहित्य के इतिहासकार करते हैं। उन्हें इस बात पर प्रामाणिक रूप से प्रकाश डालना चाहिए था कि तमिळ-साहित्य के इतिहासकार इस साहित्य का किस प्रकार क्रमिक विकास प्रदर्शित करते हैं।

उन्होंने लिखा है कि तमिळ भाषा के पिता 'अगत्तियनार' थे। इन्होंने तमिळ-भाषा का व्याकरण ग्रन्थ लिखा है। 'अगत्तियनार' कौन थे? इसके विषय में कुछ विशेष नहीं लिखा गया है। संभवतः कई विचारक इन्हें 'अगस्त्य' मुनि समझते हैं और यदि इस मत में कुछ सत्यता हो तो साहित्य के क्षेत्र में 'तमिळ' का प्रादुर्भाव एक ऐसे मुनि से होता है जिसका आर्य परम्परा से सम्बन्ध है। इसी प्रकार संघकाल के तमिळ के व्याकरण लेखक तोलकाप्पियर् के विषय में यह लिखा गया है :

यह दन्तकथा प्रचलित है कि वे महर्षि जमदग्नि के पुत्र और परशुराम के भाई थे और वे तमिळ के प्रथम व्याकरणाचार्य अगत्तियनार के शिष्य थे। व्याकरण के नियमों का सूत्र रूप में लिखा जाना भी संस्कृत की-परम्परा के संबन्ध को प्रदर्शित करता है। ईसा की प्रथम शताब्दी में ही तमिळ के साहित्य में 'कार्तिकेय के मन्दिरों का वर्णन मिलता है। कार्तिकेय को 'भगवान् मुरुगन' कहते हैं। वे लिखते हैं कि कपिलर संघ-काल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वे संस्कृत और तमिळ के पारंगत विद्वान् थे। यदि वे इस समय के तमिळ और संस्कृत के सम्बन्ध पर कुछ प्रकाश डाल सकते तो वह हमारे देश के साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए बहुत उपयोगी होता। तिरुवळ्ळुवर के विषय में भी यह कहा जाता है कि वे संस्कृत और तमिळ के विद्वान् थे। उनकी रचनाओं में आश्रम-व्यवस्था, हवि और यज्ञ आदि का वर्णन पाया जाता है। संघोत्तर काल या काव्य काल में जिन पंच बृहत् काव्यों का उल्लेख किया गया है उसमें दो के संस्कृत में नाम हैं: 'जीवक-चिन्तामणि' और 'कुण्डल केशि'। 'शिलाधिदारम्' को तमिळ भाषा में रचित प्रथम मौलिक 'बृहत् काव्य' कहा गया है। इसके रचयिता 'इळंगों' 'जैन मुनि' हैं। यदि वे उस समय की वैष्णव, शैव और जैन प्रभावों और परंपराओं पर कुछ विस्तृत प्रकाश डाल सकते तो इन मत और संप्रदायों से प्रभावित अन्य भारतीय साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन में सहायता प्राप्त हो सकती। इसी प्रकार 'मणिमैकलै' में बौद्ध धर्म की महत्ता का ओजस्वी चित्र कवित्वमय तूलिका से खींचा गया है।' ईसा की ९ वीं शताब्दी की पुस्तक 'जीवक-चिन्तामणि' के कवि जैन-मुनि हैं। 'जीवक-चिन्तामणि' यद्यपि शृंगार-रस काव्य है तो भी इसमें 'बड़े मार्मिक ढंग से जैन धर्म का प्रचार किया गया है।' तमिळ साहित्य के इतिहास को पढ़ने से प्रतीत होता है कि उन्हीं दिनों वैष्णव मत भी वहाँ प्रचलित था। भक्ति-काल में उन्होंने शैव और वैष्णव कवियों को लिया है। शैव कवियों में प्रथम स्थान कारैकाल अम्मैयार नाम की सन्त नारी को दिया गया है। इन्होंने कैलाश में विराजमान भगवान् शिव का अत्यन्त ओजपूर्ण भाषा में वर्णन किया है। शिव भक्त कवियों में माणिक्कवाचर् को कई विद्वान् ईसा की चौथी शती का और कई आठवीं शती का मानते हैं। कहते हैं कि शिव भक्त कवि सम्बन्दर ने 'तमिळ भाषी प्रदेश में वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की। तमिळ में वैष्णव सन्त कवियों को 'आळवार' कहा जाता है। तमिळ में वैष्णव सन्त कवि पेरियाळवार का समय ईसा की छठी शताब्दी समझा जाता है। इनमें तीन सन्त आदि भक्त कहलाते हैं। ये वैष्णव सन्त बारह हैं। इनका चार हज़ार कविताओं का बृहत् संग्रह 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' कहलाता है।' इन कवियों का चक्रधर विष्णु उपास्य देव है। इन्हीं कवियों में आण्डाळ भी है जिनका कृष्ण-प्रेम मीरा की तरह प्रसिद्ध है।

११ वीं शताब्दी में महाकवि कम्बन् ने अपनी 'रामायण' की रचना की। यद्यपि तमिळ में कम्बन् से पूर्व भी 'रामायण' की रचनाएँ हुईं। ९ वीं शताब्दी के पास 'जैनों की एक रामायण लिखी गई' परन्तु तमिळ में कम्बन् की रामायण प्रसिद्ध है। कम्बन् की महत्ता इसमें है कि 'उन्होंने संस्कृति और तमिळ-काव्य-शैलियों का समन्वय किया। ...अपने बहुभाषा ज्ञान एवं अगाध पाण्डित्य के बल पर कम्बन् ने तमिळ भाषा में एक नया ही सौंदर्य उत्पन्न किया और उसकी अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ा दिया।' बंगला में कृत्तिवास ने 'रामायण' १५ वीं शताब्दी में लिखी और तुलसीदास का 'राम-चरित-मानस' इसके काफ़ी पीछे लिखा गया। ऐसा ज्ञात होता है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं से तमिळ में 'रामायण' सबसे पूर्व लिखी गई। कम्बन् की 'रामायण' में १०५०० वृत्त-कविताएँ हैं। कम्बन् ने अपनी 'रामायण' की कथा में जो कुछ जोड़ दिया है वह उसकी कल्पना का या समय का प्रभाव है इस पर लेखक ने कुछ विशेष रूप से नहीं लिखा। कम्बन् के समय वैष्णव सन्त कवियों की अमर कविताओं ने पुरुषोत्तम राम को अवतार पुरुष राम का रूप दे दिया था।"

कम्बन् ने 'रामायण' की कथा में जो परिवर्तन किए हैं उनका कारण कुछ तो समय की प्रेरणा है और दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि राम का जीवन लोक कथाओं के रूप में सदा परिवर्तित होता रहा है और कम्बन् ने इसका लोक-जीवन से संग्रह किया है। भारतीय भाषाओं में जितनी भी "रामायण" प्राप्त होती हैं उनके तुलनात्मक अध्ययन की परम आवश्यकता है।

यह आश्चर्य की बात है कि मध्यकाल में जब कि अन्य भारतीय भाषाओं में विशेष रूप से गति पैदा हुई— तमिळ भाषा में उस समय लेखक के अनुसार "सृजनात्मक साहित्य-रचना में अवरोध-सा दिखाई देने लगा। चौदहवीं शताब्दी के अन्त से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के

अन्त तक प्रायः यही स्थिति रही।" इस काल में अनेक टीका-ग्रन्थ लिखे गए और तमिळ में "विशुद्ध गद्य-साहित्य का निर्माण, इन्हीं टीकाकारों" से आरम्भ हुआ। लेखक यदि "मणि-प्रवाल" शैली पर कुछ विस्तार से लिख सकते तो तमिळ और संस्कृत दोनों भाषाओं के सम्मिलन के सम्बन्ध में कुछ अधिक प्रकाश पड़ सकता। लेखक लिखते हैं : "ईसा की ९ वीं शताब्दी में जैन आचार्यों ने अनेक गद्य-ग्रन्थ मणि-प्रवाल तमिळ व संस्कृत-मिश्रित भाषा में लिखे जिनमें "श्री पुराणम्" और 'गद्य-चिन्तामणि' उल्लेखनीय हैं। चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् तमिळ भाषी प्रदेश की राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन हुआ और आन्ध्रों, मुसलमानों और मरहठों का प्रभुत्व हुआ। इसी समय "सिद्ध कवि" कहलानेवाले वैरागी सन्तों का उदय हुआ। ये सिद्ध कवि योग-साधना में लीन रहते थे और अपने "उद्गारों" को गीतों के रूप में व्यक्त किया करते थे। इन गीतों की भाषा ठेठ बोल-चाल की भाषा होती थी। इनमें गूढ़ यौगिक प्रक्रियाओं का भी उल्लेख है। संभवतः यह नाथ पन्थियों का तमिळ साहित्य पर प्रभाव है। अठारहवीं शताब्दी में एक मुसलमान कवि उमरु पुलवर ने पैग़म्बर मुहम्मद साहब का चरित्र "शीरा पुराणम्" काव्य में लिखा और इतालवी पादरी बेस्की ने "तेम्बावणि" एक काव्य लिखा जिसमें ईसामसीह का जीवन लिखा। लेखक ने यह प्रदर्शित नहीं किया कि इस समय तमिळ भाषा में अरबी और फ़ारसी शब्दों और साहित्यिक शैलियों का कैसा सम्मिश्रण हुआ। आधुनिक काल में तमिळ में नाटकों की रचना हुई। तमिळ साहित्य में नाटकों का अत्यन्त अभाव था। शेक्सपियर की शैली के आधार पर पद्य-नाटक लिखे गए। आधुनिक युग में महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती ने तमिळ साहित्य में नव जीवन को उत्पन्न किया। लेखक ने उपन्यास साहित्य, नाटक-साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है।

१२८ पृष्ठ की इस पुस्तक में वे तमिळ-साहित्य के विषय में जितनी भी अधिक से अधिक सूचना दी जा सकती है लेखक ने उसे इस पुस्तक में देने का प्रयत्न किया है। लेखक बहुत-सी आवश्यक बातों पर प्रकाश नहीं डाल सके हैं। उन्हें तमिळ पद्यों के छन्द और तुक आदि के विषय में विवेचना करनी चाहिए थी इसी प्रकार ढाई हजार वर्ष के इस साहित्य में तमिळ भाषा में क्या परिवर्तन हुए इस पर भी प्रकाश डाला जाना चाहिए था। इस पुस्तक को पढ़ने से तमिळ साहित्य के विषय में और भी अधिक जानने की इच्छा प्रबल हो उठती है। सोमसुन्दरम् से प्रार्थना करते हैं कि वे तमिळ भाषा और साहित्य के भिन्न भिन्न पहलुओं पर हिन्दी में विस्तृत विवेचना करें। इस प्रकार के विवेचनों से हमें भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य के विकास और इतिहास को यथार्थ रूप से समझने में बहुत सहायता प्राप्त हो सकेगी।

शिञ्जिनी (द्वितीय संस्करण)

लेखक : श्री रामगोपाल "रुद्र"
प्रकाशक : चाणक्य प्रकाशन,
चाणक्य चैत्य, देवेन्द्रनाथ लेन,
पटना—४
मूल्य : दो रुपया

इस कविता-पुस्तक के लेखक श्री रामगोपाल ने यद्यपि अपना उपनाम "रुद्र" रक्खा है और उससे यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः उनकी कविता में 'रुद्र' के दर्शन होंगे परन्तु इस पुस्तक की कुछ कविताओं को छोड़ कर कहीं 'रुद्र' रूप का दर्शन नहीं होता। कविता में उनका स्वरूप शिव, कल्याणमय, मधुर और कोमल है। परन्तु हाँ उनकी वाणी में समर्थता, ओज और शक्ति है। 'शिंजिनी' में श्री 'रुद्र' की ३७ कविताओं का संग्रह किया गया है, इनमें से कई कविताओं को बार बार पढ़ने को इच्छा होती है। कविताओं को पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है कि जैसे हमारा कवि से हार्दिक सम्बन्ध स्थापित हो गया है। कविता के शब्द सरल हैं परन्तु उनमें गति और प्रेरणा है, उनमें जीवन और शक्ति है। कवि ने अपनी कविता के शब्दों में अपने प्राणों की प्रतिष्ठा की है। कई कविताओं को पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है कि जैसे हम प्रत्यक्षतः उन्हें कवि-मुख से एकान्त में बैठे सुन रहे हैं। उनकी कविता उनके ही शब्दों में :

"हर अक्षर है टुकड़ा दिल का,
दिल टूटा हुआ मैं जुटा रहा हूँ
कोई गाना नहीं, यह एक फ़िसाना है
जीवन का जो सुना रहा हूँ। ...

... ...

"एक आग जो राखों के नीचे है दबी है पड़ी,
दिल फूँक जगा रहा हूँ।"

... ...

वे चाहते हैं :

"जो देख सको तो देखो मेरे भाव,
हृदय मेरा पावन।"

'आश्वस्त' कविता में वे कहते हैं :

"मैं क्या जानूँ गीत और धुन ?
तुम से ही सब कुछ पाया था,
दुहराता हूँ आज वही लय,
सुर से जो तुमने गाया था।
राग नहीं रह गए,
मगर आवाज़ नहीं मैं खो पाया हूँ।"

'कविता' के विषय में वे कहते हैं :

"करेंगे क्या भला लेकर विरह के गीत, कव्वाली ?
हमारा सर न ऊँचा कर सकेगी रीति व्रजवाली
हमें तो चाहिए वे गान, जो हों शक्ति के सोते"

"व्रजवाली रीति" शब्द यद्यपि समझ में आता है तो भी ज़रा खटकता है। हमारे ही खेल हमें उलझाए हुए हैं। उनका यह कहना कितना सरल, स्पष्ट और मार्मिक है :

"अचरज है अपने ही खेलों ने
कितना खेल खिलाया है"

'नया साल' कविता में वे कहते हैं :

"शान्ति शान्ति उसका भी स्वर है
जो अशान्ति का स्वयं निकर है
न्याय न्याय उसकी पुकार है
स्वयं अनय में जो तत्पर है
इस बीसवीं सदी ने देखो,
कैसा स्वाँग रचाया साथी"

उनकी 'थोड़ा-सा प्यार नहीं मिलता', 'यह सब कुछ आज तुम्हारा है', 'साधना-गीत' और इसी प्रकार अन्य कई कविताओं में उनके हृदय की "शिंजिनी" कोमल, करुण परन्तु सशक्त आवाज़ में बज रही है— ऐसी आवाज़ में जिसकी गूँज देर तक सुनाई देती रहती है। "भैरवी जगा रहीं" कविता में नवीनता, अनूठापन, नृत्य और संगीत है :

"तलहटी की रेत में
बाजरे के खेत में
भोरे भोरे छोहरियाँ भैरवी जगा रहीं"

प्रकृति सन्देश

लेखक : मुरारिलाल शर्मा 'सुरस', एम. ए.
प्रकाशक : आलोक प्रकाशन,
आगरा
मूल्य : बारह आना

यह श्री मुरारिलाल शर्मा 'सुरस' की प्रथम रचना है। पुस्तक की भूमिका में नागपुर विश्व विद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष श्री विनयमोहन शर्मा लिखते हैं : "इस कृति का महत्व उसकी काव्य चमत्कृति या परिष्कृति न्यूनता से नहीं आँका जा सकता। यह उसका प्रथम प्रयास है। अतः स्वभावतः उसमें अनघड़ता है पर फिर भी वह मिठास से रिक्त नहीं है। उसमें तल्लीनता है। वह निश्छल बालक के समान प्रकृति से बातें करता है।" सूर्योदय, बादल, सरिता, समुद्र, कोकिल, बादलों की पंक्ति आदि को देख कर श्री सुरस के हृदय में जो विचार उठे हैं उन्होंने उन्हें इस कविता में लिखा है। इन्हें देख कर उनके हृदय में कभी कुछ विचार आते हैं और कभी कुछ। और वे विचार जिस प्रकार उठते हैं उन्होंने अपनी कविता में उन्हें उसी प्रकार रिकार्ड करने का प्रयत्न किया है। 'रजत ज्योत्स्ना' के विषय में वे कहते हैं :

"शुभ्र चन्द्र की रजत ज्योत्स्ने,
धरा व्योम में फैली हो
सब वृक्ष श्वेत, सब पक्ष श्वेत,
तुम लिए एक ही शैली हो"

कविता के विचारों में नैरन्तर्य न होने के कारण भाषा में प्रवाह नहीं है। भाषा और पद-योजना में भी शिथिलता है। कविता में विचार और भावनाएँ हैं परन्तु इनमें प्रकृति की सुन्दरता और सरसता प्रतिबिम्बित नहीं हो पाई है।

ऋषि (श्री अरविन्द की एक कविता का सारांश)
अनुवादक : श्री नारायणदास
प्रकाशक : श्री अरविन्द चक्र
३४, कमला क्लब, कानपुर
मूल्य : ६ आना

प्रस्तुत पुस्तक श्री अरविन्द के (Collected poems & Plays) से ली गई है। अनुवाद की भाषा में प्रवाह है और गम्भीर विचारों को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है कि वे रहस्यमय होते हुए भी समझ में आते हैं। इस कविता में ऋषि मनु को जीवन का वास्तविक अर्थ समझाते हैं। वे 'तत्वमसि' शब्द की व्याख्या करते हैं। ऋषि कहते हैं : "हम अपने आपको ही प्यार करते हैं, अपने आप से ही घृणा करते हैं, अपना ही संहार करते हैं...।' "जब तक निर्दिष्ट ध्येय प्राप्त नहीं हो जाएगा तब तक यह महान् लीला और संघर्ष इसी भाँति चलते रहेंगे।" ऋषि मनु को उपदेश देते हैं : "जब तक यह जीवन है तब तक तो इसको उसी का नाटक, पृथ्वी को इस नाटक का रंगमंच और स्वयं को केवल एक अभिनेता समझ कर अपना अभिनय निपुणता पूर्वक करते रहो। कर्म भी करो, प्रेम भी करो और ज्ञान भी प्राप्त करो।...राजन्! न तो प्रेम करने से डरो और न सुख-भोग से ही डरो। मृत्यु तो केवल एक द्वार है और दुःख, शोक भी अज्ञानियों को उद्विग्न करनेवाली कल्पना मात्र है। अहं की भावना से मुक्त हो कर प्रेम में ही उच्चतर आनन्द की उपलब्धि करो।"

इस कविता में ऋषि श्री अरविन्द ने मनु के रूप में समस्त मानव जाति को जीवन का सन्देश दिया है।

हैदराबाद **—वंशीधर विद्यालंकार**

अशोकवन
लेखक : गोकुलचन्द्र शर्मा
प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन मन्दिर,
इलाहाबाद।
मूल्य : डेढ़ रुपया

इस खण्ड काव्य में सीता का अशोकवन के बन्दी जीवन का बारह सर्गों में वर्णन किया गया है। अशोक वन का जीवन न तो गत्यात्मक हो सकता है और न इतना विस्तृत ही कि उससे बारह सर्गों के लिए सामग्री मिल सके। अतएव कवि ने सरमा के प्रश्न करने पर सीता से अशोक वन में आने से पूर्व की सम्पूर्ण कथा कहलवाई है अन्त राम को पुनः अयोध्या पहुँचा कर हुआ है। कथा में कुछ भी नवीनता दृष्टिगोचर नहीं होती। रामायण की सुपरिचित कथा को एक बार फिर दोहराने से कवि का क्या अभिप्राय है समझ में नहीं आता। केवल अशोक वन और लङ्का दहन प्रसंग का विस्तृत वर्णन करना अधिक आकर्षक होता। हर्ष का विषय है कि कवि की भाषा प्राञ्जल है और शैली में व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक है। वन का वर्णन सुन्दर है। स्थान स्थान पर सुभाषित और सूक्तियों से स्वच्छता और गम्भीरता आई है। उदाहरण के लिए निम्नांकित पंक्तियां लीजिए :

तन की पीड़ा सुखद सदा है, मन का मल जो हर ले
तोष यही है पर पीड़न को भाव तुम्हारे बदले
... ...
यही भूमि बस जाय स्वर्ग जो मन में सुमति बसा ले
मिटें सभी के स्वार्थ-समुद्भव कल्पित कष्ट-कसा ले

कवि के हृदय पर तुलसीदास के मानस की अमिट छाप निम्नांकित वर्णनों से स्पष्ट हो जाती है :

बन्दर की होती है अति ही प्रबल पूँछ पर ममता
... ...
नहीं निशान कहीं जलने का दमकी उज्वल काया
... ...
त्रिजटा रुकी, त्रास बहु देतीं गई चेरियाँ वासों को
... ...
कटते पल-पल शीश विकल था ध्यान हटा वैदेही से

कवि ने छन्दोबद्ध भाषा में जो कथनोपकथन उपस्थित किए हैं वे बड़े रोचक बन पड़े हैं। अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ देकर पुस्तक को सुबोध बनाने का प्रयत्न किया गया है।

आज का मानव जीवन और उसकी समस्याएँ
लेखक : आचार्य रामेश्वर गुप्त
प्रकाशक : चेतना प्रकाशन विभाग, बम्बई
मूल्य : दो रुपए

पुस्तक वनस्थली विद्यापीठ के अध्यापक श्री गुप्त के पन्द्रह निबन्धों का संग्रह है जिनमें से कुछ सामयिक पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। भूमिका के रूप में 'मैं क्या विश्वास करता हूँ' निबन्ध लिखा गया है जिससे प्रकट

होता है कि लेखक ने भारतीय विषयों का ज्ञान मूल पुस्तकों को पढ़ कर नहीं वरन् उन पर अंग्रेज़ी में लिखे गए भाष्यों और आलोचनाओं से प्राप्त किया है। लेखक ने बौद्धधर्मानुयायी कलाविद् आनन्दकुमार स्वामी के मत का उल्लेख किया है, 'पुनर्जन्म कोई पुराना भारतीय सिद्धान्त नहीं, यह तो लोक प्रचलित एक विश्वास मात्र है।' और इस आधार पर आप विचार प्रकट करते हैं, 'वस्तुतः लोक प्रचलित पुनर्जन्म और उस पर आधारित कर्मवाद के विश्वास ने मानव को पिछले कई हज़ार वर्षों से इतना भयातुर और उसकी चेतना को इतना जड़वत् बना रक्खा है कि उसकी कल्पना नहीं की जा सकती।' उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा पुरस्कृत दो भागों में चौदह सौ पृष्ठों की 'मानव की कहानी' नामक पुस्तक का संकलनकर्त्ता जो भली भाँति जानता है कि संसार की प्राचीन सभ्यताएँ आधुनिक विचारों की सम्मति में चार हज़ार वर्षों से अधिक पुरानी नहीं। यदि लिखें कि 'लोक प्रचलित पुनर्जन्म' ने मानव को 'पिछले कई हज़ार वर्षों से भयातुर कर रक्खा है' और फिर भी विश्वस्त हो कि पुनर्जन्म कोई पुराना भारतीय सिद्धान्त नहीं, तो फिर उनके विचारों का क्या मूल्याङ्कन किया जा सकता है ?

सभी निबन्धों में अंग्रेज़ी भाषा में लिखी गई पुस्तकों से उद्धरण दिए गए हैं। और अंग्रेज़ी पारिभाषिक शब्दों को कोष्ठों में रख कर उनका कुछ कच्चा पक्का अनुवाद भी देने का प्रयत्न किया गया है। Known and further knowable 'प्राप्त और प्रगतिशील' Suplies value का 'अतिरिक्त कीमत', Organism का 'मनुष्य प्राणी', Objectively का 'स्वतन्त्ररूप से' आदि, इस प्रकार के अनुवाद उपयुक्त नहीं प्रतीत होते।

खाद्य-समस्या, जन संख्या का प्रश्न, धर्म की आवश्यकता, युद्ध आदि जिन समस्याओं पर विचार किया गया है उनका कोई समाधान लेखक ने न तो अपनी ओर से उपस्थित किया है और न दूसरों का सुझाया हुआ हल ही पेश किया है। केवल समस्याओं की सूचना और उनके कारणों का दिग्दर्शन कराने मात्र से समाज का क्या हित हो सकता है समझ में नहीं आता। खाद्य समस्या को लेकर लेखक ने जिस अन्धकारपूर्ण भविष्य का चित्र खींचा है वह तो भ्रमपूर्ण सिद्ध हो चुका है 'इन सब योजनाओं को प्रतिफलित करने में वर्षों लगेंगे—तब तक क्या मानव की भूख प्रतीक्षा ही किया करेगी ? फिर पैदावार जितनी बढ़ेगी उससे कहीं अधिक तो जन-संख्या बढ़ जाएगी।'' 'युद्ध ?' शीर्षक निबन्ध का लेखक ने इस प्रकार अन्त किया है 'किन्तु यदि मानव-मन स्वभाव से ही अभी तक द्वन्द्व मुक्त नहीं है—तो द्वन्द्व होगा ही। और इतना निश्चित है कि इस टक्कर में अन्ततो गत्वा विजय उस शक्ति की होगी जो मानव प्रगति में सहायक है'। पुस्तक में मानव-जीवन पर विचार इसी प्रकार किया गया है।

सिकन्दराबाद

—बैजनाथ चतुर्वेदी

नीम : बकायन

लेखक : रामेश बेदी
प्रकाशक : हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट,
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार
मूल्य : दो रुपए

श्री रामेश बेदी ने आयुर्वेद के सम्बन्ध में कई पुस्तकें लिखी हैं। वे भारतीय-द्रव्यगुण-ग्रन्थमाला का उपयोगी प्रकाशन कर रहे हैं। वे इस माला में त्रिफला, अंजीर, सोंठ, तुलसी, लहसुन, शहद, मिर्च (काली, सफ़ेद और लाल), देहाती इलाज, साँपों की दुनिया पर नौ पुस्तकें प्रकाशित कर चुके हैं। उन्हें इन पुस्तकों पर उत्तर प्रदेशीय सरकार और अखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल ने पुरस्कार प्रदान किया है। प्रस्तुत पुस्तक भारतीय द्रव्य-गुणमाला की दसवीं पुस्तक है। इस पुस्तक में पहले नीम और फिर बकायन (महानीम) की आवश्यकता, विशेषता और गुणों को समझाने का प्रयत्न किया गया है। भारतवर्ष में यह वृक्ष अति प्राचीन है। नीम भूत-प्रेत को भगाने और मांगलिक समारोहों में काम में आता है। कहीं कहीं इसकी पूजा भी की जाती है। नीम के पत्ते और छाल जहाँ सब प्रकार की बीमारियों को दूर करने में काम में आती हैं वहाँ वराह मिहिर इसे चट्टान के तोड़ने में भी उपयोगी बतलाते हैं। नीम के रासायनिक संघटन का विस्तार से विवरण दिया गया है। पुस्तक में नीम सम्बन्धी सब उपयोगी विषयों पर वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला गया है। पुस्तक की भाषा सरल और लिखने का ढंग रोचक है। लेखक ने जो कुछ लिखा है सप्रमाण लिखा है। इससे नीम द्वारा चिकित्सा का भी ज्ञान होता है।

सामयिक

॥

स्पैण्डर की कविता

मद्रास के अंग्रेज़ी पत्र "हिन्दु" के साप्ताहिक संस्करण में श्री का. ना. सुब्रह्मण्यम् का "स्पैण्डर की कविता" पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें से निम्न अंश दिया जाता है :

"तीसियों में जिस पीढ़ी के लोगों में साहित्यिक चेतना जागृत हुई उनके लिए ऑडेन, स्पैण्डर, ल्यूइस, मैकनीस और ईशरवुड के नामों में एक विशेष प्रकार का जादू था जो कि विश्व की नई खिड़कियों को खोल देता था। ये सब लेखक एक ही विचार धारा के नहीं थे, परन्तु उनकी रचनाओं में इलियट की बंजर भूमि की प्रतिक्रिया एक विशिष्ट रूप में दृष्टिगोचर होती थी। उनका संसार ऐसे मनुष्यों का बना हुआ था जो किसी भी प्रकार अप्रामाणिक नहीं थे। स्पेन की क्रान्ति ने एक मात्र अपने समय के बैलों से लड़नेवालों को ही अपनी लपेट में नहीं लिया था परन्तु इस की लपेट में बहुत-से कवि भी आ गए थे।... बहुत से कवि आज विश्व में इस प्रकार के हैं जो मार्क्सवाद से प्रभावित नहीं हैं।

कवियों को महायुद्ध के पश्चात् के विश्व में भयंकर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। उनके सम्मुख मानवता के मूल्य को पुनः अंकित करने का महान् प्रश्न था। तीसियों में आधुनिकता ही सबसे बड़ा उद्देश्य थी जो कि भविष्य को ढूँढ़ रही थी और वह आकर्षक नहीं प्रतीत होता था। ऑडेन और स्पैण्डर इन प्रश्नों पर अपनी कविताओं में विचार करते रहे। स्पैण्डर की कविता में संगीत, विचारशीलता और सामाजिकता अधिक है। स्पैण्डर इस बात को स्वीकार करते हैं कि उन्हें राजनीति में गहरी दिलचस्पी है। "फ़ारवर्ड फ्राम रिअलिज़्म (१९३७ में प्रकाशित) में वे मार्क्सवाद को स्वीकार करने के लिए युक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं यद्यपि इसमें सन्देह है कि वे स्वयं कभी कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य बने थे। १९४२ में उन्होंने एक और पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम है "लाइफ़ एण्ड दि पोइट"। इस पुस्तक में उन्होंने साम्यवाद को स्वीकार न करने की बहुत अच्छी युक्तियाँ दी हैं। जो कुछ साम्यवाद उन्होंने माना था वह 'भौतिकवाद' नहीं था परन्तु वह एक प्रकार का परोपकारवाद था। स्पैण्डर का साम्यवाद ग़रीबों, पादाक्रान्त और शोषित लोगों के प्रति करुणा से उत्पन्न हुआ था। वे "लाइफ़ एण्ड दि पोइट" में कहते हैं : "राजनीति का अन्तिम उद्देश्य राजनीति नहीं है परन्तु वह एक प्रकार का कार्य है जिसे कि विशिष्ट राजनैतिक ढाँचे में किया जाना चाहिए। ये कार्य विज्ञान, कला और धर्म हैं जिनके लिए राजनैतिक साधनों का प्रयोग होना चाहिए। एक सोसाइटी जो राजनीति को ही सबसे बड़ी वस्तु समझती है—एक मशीन के समान है जो बिना किसी उद्देश्य के चलती है।"

स्पैण्डर की एक कविता है जो कि उन्होंने तीसियों में लिखी थी। वह इस प्रकार है :

"उनमें मेरी करुणा-शीतल समीर की तरह,
संचरित होती है
पत्थर की दीवारों में
ग्रीष्म के पत्तों या एक स्वर के लिए विकल
पत्थरों के कानों में
नहीं, नहीं, नहीं
क्रोध के लिए अब किसी प्रकार का अवसर नहीं है
किसी वस्तु का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता
परन्तु उस दुःख के लिए करुणा जिसे कि वे
अनुभव नहीं कर सकते"

अपनी 'पोयम्स ऑफ़ डैडिकेशन में जो कि उन्होंने चालीसियों में प्रकाशित की थी वे लिखते हैं :

"मेरा रोना किस काम में आएगा!
यह सर्जन का वह चाकू नहीं है जो
बढ़ते हुए कोशों को काट सकता है
तुम्हारे जीवन के मूल पर
यह एक मात्र सिद्ध कर सकता है
उस प्रेम की अतिशयता को
जो कि माँस से दूर गहरी हड्डियों तक जा पहुँचा है,
अकेले में हाइना की तरह चिल्लाते हुए,

ओह, मेरा दुःख एक विचार है,
एक स्वप्न है
जिसे कल की तेज़ हवा उड़ा ले जाएगी
यह प्रति दिन जागृत नहीं होता—
उन घटनाओं के प्रति जो सत्य रूप
हैं
और जो केवल प्रतीत नहीं होतीं !
जीवन के विस्तार के चारों ओर जो कठोर सत्य हैं"
ग़रीबी से सताई हुई, निराशा कुरूपता
इस घटना का कि तुम शीघ्र ही मर जाओगे'

(एलिजी फ़ार मार्जरेट)

परन्तु स्टीफ़न स्पैण्डर जब "दूसरे का शरीर बन जाने की आवश्यकता" या "फ़र्नीचर स्मृतियों के सामान को लादे हुए" या "बच्चा इसको एक कल्पप्रद खिलौने की तरह संग्रह करता हुआ" या "स्त्री भूमि कोमलता के मीलों में अपने हलके अंगों को सन्तुष्ट करती हुई" के विषय में लिखते हैं तो इसमें उनके शब्दों के साथ कौशल का पता चलता है। वे ऐसे महान् कलाकार हैं जो भाषा की खोज करते रहते हैं और यह प्रत्येक कवि करता है। उसका संगीत "आन्तरिक चिन्तन के द्वारा विश्व-जनीन अनुभूति" को ढूँढ़ रहा है। उन्होंने १९३९ में ही लिखा था कि उन्होंने जान-बूझ कर इस प्रकार के लिखने को छोड़ दिया है जो कि 'अधिकांश में व्यक्तिगत " है। उनकी श्रेष्ठ कविताएँ क़ैदियों, बेरोज़गारों, प्रारंभिक स्कूल के बच्चों, नगर का पतन और युद्ध निर्वासितों पर पराजित" विषयों पर हैं।

स्पैण्डर ने अभी कुछ दिन हुए "एनकाउण्टर" में यौवन का लक्षण इस प्रकार किया है : "मेरे विचार में युवक होना "एकमात्र जवानी की आयु में "होना नहीं है। जवानी को एक व्यक्ति की समसामयिक मन और संवेदनशीलता के विकसित करने की क्षमता से मापा जाना चाहिए।" स्पैण्डर इस समय इंडो-इंगलिश मुहावरे के अनुसार ४५ वर्ष का युवक है। स्पैण्डर की कविताओं और उसके अन्य कार्यों में "समसामयिक मन और संवेदनशीलता" के प्रमाण प्राप्त होते हैं। वे सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के आन्दोलन की ओर से "एनकाउण्टर" नामक पत्र का सम्पादन कर रहे हैं।

स्टीफ़क स्पैण्डर तीसियों में "न्यू वस" और "न्यू राइटिंग" में नियम-पूर्वक लिखते रहे। लड़ाई के वर्षों में वे "हौराइज़न" को सम्पादित करने में काइरिल कौनोली की सहायता करते रहे। स्पैण्डर ने "एनकाउण्टर" में अभी सम्पादकीय में "नई शैली से लिखा था : "नई शैली में लिखने का तात्पर्य है ऐसे किसी क्षेत्र की आधुनिक अनुभूति की अभिव्यक्ति करना जिससे वर्तमान जीवन की महानता का व्यक्तिगत रूप से ज्ञान होता है।"

॥

सोवियत रूस का लेखक फ़ण्ड

आर्थिक कारणों से लेखकों की जो दुर्दशा होती है अपने देश में मानों उसका कोई अन्त नहीं। यह समस्या रूस में भी भयंकर रूप में थी। अतः लेखक व्यवसाय में लगे हुए व्यक्तियों की सहायतार्थ "आवश्यकता ग्रस्त लेखक फ़ण्ड" नामक संस्था वहाँ सन् १८५९ में स्थापित की गई। इसके व्यवस्थापकों में तुर्गनेव और चर्नीशेवस्की जैसे महान् लेखक भी थे। किन्तु सीमित साधनों के कारण यह सहायता भी सीमित ही रहती थी। आज लेखकों की सुविधा के लिए सोवियत रूस में जो फ़ण्ड है उसका विवरण "सोवियत लिटरेचर" के प्रस्तुत अंक में निकला है।

"सोवियत लेखक फ़ण्ड" कई प्रकार के सोवियत यूनियन के लेखकों की सेवा करता है। इसी के तरीक़े पर 'संगीत निधि' 'कलाकार फ़ण्ड' आदि कई अन्य संस्थाएँ चल रही हैं।

लेखक फण्ड की सदस्यता 'लेखक संघ' के सदस्यों के लिए खुली हुई है। साथ ही इस 'फ़ण्ड' की प्रबन्ध कारिणी समिति को यह अधिकार है कि होनहार लेखकों को (जो अभी तक 'लेखक' के स्तर पर नहीं पहुँच पाए हैं) को सदस्यता दे। ऐसे लेखक जो अब साहित्यिक कार्य करने में किसी भाँति असमर्थ हो गए हैं उन्हें भी इस फ़ण्ड की सदस्यता देने का अधिकार इस समिति को है। दिवंगत साहित्यकारों के परिवार के सदस्यों को भी यह फ़ण्ड सहायता देता है। कुल मिला कर आज जिन व्यक्तियों को यह फ़ण्ड सुविधाएँ देता है उनकी संख्या १२,००० है। इस संस्था की शाखाएँ तमाम सोवियत यूनियन में फैली हुई हैं। सन् १९५३ में इसका बजट ३७,०००,००० रूबल का था।

यह संस्था अपने सदस्यों की निम्न प्रकार से सेवा

करती है :

यदि किसी लेखक को अपने साहित्य कार्य के लिए देश के किसी दूरस्थ भाग की यात्रा करनी है तो संस्था उसकी यात्रा का पूरा खर्च देती है। ये यात्राएँ तीन चार महीने तक की हो सकती हैं।......

यदि अपनी कृति को समाप्त करने में किसी लेखक को धन की कमी महसूस होती है—तो यह फ़गड उसे कर्ज़ भी देता है, और कभी कभी आर्थिक सहायता भी। यह कर्ज़ प्रचुर धनराशि का होता है और इसकी मियाद ३,४ वर्ष तक होती है। पिछले तीन वर्षों में इस निधि में से १०,०००,००० रूबल का कर्ज़ लेखकों को दिया गया।

बहुत से लेखक अपना साहित्य कार्य करने के लिए नगर के कोलाहल से दूर चले जाना चाहते हैं। इसके लिए सुन्दर और शांतिपूर्ण स्थलों में 'लेखक केन्द्र' स्थापित किए हैं जहाँ उन्हें सभी सुविधाएँ मिलती हैं यहाँ लेखक गण निर्विघ्न अपना काम कर सकते हैं। इस प्रकार के बीस से अधिक 'लेखक केन्द्र' मास्को, लेनिनग्राद तथा अन्य बड़े नगरों के निकट तथा सागर तटों पर स्थापित किए गए हैं। साथ ही इस फ़गड ने बड़ी संख्या में नगर के बाहर अपने सदस्यों के लिए कुटीर स्थापित किए हैं। मास्को के निकट सौ से ऊपर कुटीर गोर्की की सलाह पर बनवाए गए थे। लेनिनग्राद के लेखकों के लिए तथा देश के अन्य भागों में भी ये वासस्थान तैयार हो रहे हैं।

लेखन सामग्री के प्रबन्ध के लिए इस फगड के अपने पुस्तक भगडार हैं जहाँ से लेखकों को बिना अधिक खोजबीन और खर्चे के सब ग्रन्थ मिल जाते हैं। पुराने संस्करणों का भी प्रबन्ध हो जाता है। जिन किताबों की लेखकों को आवश्यकता नहीं रह जाती उनका विनिमय भी हो जाता है।

यह फ़गड दवादारू की भी मदद दिलवाता है। मास्को से लगभग साठ मील दूर एक लेखक सैनेटोरियम है। यदि किसी सदस्य को दूसरे सैनेटोरियम में भेजने की आवश्यकता होती है—तो उसका भी इंतज़ाम फ़गड के खर्चे पर हो जाता है। इस संस्था के अपने चिकित्सालय हैं जहाँ सदस्यों को मुफ़्त में दवादारू और सलाह मिल जाती है। इस प्रकार का सबसे बड़ा चिकित्सालय मास्को नगर में है जहाँ एक हज़ार से अधिक सदस्य रहते हैं। अन्य नगरों में भी यह व्यवस्था है।

अपाहिज सदस्यों की सहायता इस फ़गड का एक महत्वपूर्ण काम है। बीमारी का भत्ता दिया जाता है। सदा के लिए अपाहिज और वृद्ध लेखकों को यह संस्था सरकारी सहायता तथा पेंशन दिलवाती है। लेखक की मृत्यु पर उसके परिवार का इंतज़ाम किया जाता है और अंत्येष्टि तथा स्मारक का खर्च भी फ़गड से दिया जाता है।

सदस्यों के बच्चों की शिक्षा के लिए इस फ़गड के निजी किंडर गार्डन तथा ग्रीष्मकालीन शिक्षणालय हैं। उनके स्वास्थ्य और मनोरंजन केन्द्रों का भी प्रबन्ध इस संस्था की ओर से होता है।

फ़गड की आय सबसे पहले प्रकाशन संस्थाओं से आती है। प्रकाशन संस्थाओं से मुनाफ़े पर ६ प्रतिशत और थियेटर तथा मनोरंजन गृहों से मुनाफे पर २½ प्रतिशत इस फ़गड को प्राप्त होता है। केवल इतने से ही २०,०००,००० रूबल की वार्षिक आय हो जाती है। इसके अलावा कुटीरों पुस्तक भगडारों आदि से भी आय होती है।

इस फगड को स्वीकृति देते समय सोवियत सरकार ने इसे अनेक अधिकार तथा सुविधाएँ प्रदान की थीं। इसकी सम्पत्ति तथा साधनों पर कोई टैक्स नहीं लगता।"

॥

प्रेज़ीडेगट हो ची मिन्ह

अमरीका के साप्ताहिक पत्र "टाइम" में 'विदेशी समाचार' के स्तम्भों में इंडो-चाइना की वर्तमान अवस्था पर प्रकाश डालते हुए प्रेज़ीडेगट हो ची मिन्ह के जीवन की घटनाओं का भी उल्लेख किया गया है। अपनी चीन यात्रा में भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू इंडो-चाइना में हो ची मिन्ह से भी मिले थे। इस लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"...हो का वास्तविक नाम क्या है और उनकी आयु कितनी है इसे कोई ठीक तरह नहीं बतला सकता। कोई कहता है कि वे १८६० में, कोई १८६२ में और १८६४ में उत्पन्न हुए। उनका नगुयेन तात या नगुएन सिन्ह हुई या नगुयेन वान थाम्ह था। उनके पिता फ्रांस सरकार की नौकरी में थे और अच्छे पढ़े लिखे थे। फ्रांस का विरोध करने के कारण उन्हें नौकरी से बरख़ास्त कर

दिया गया । २० वर्ष तक हो को नगुयेन अई कुओक कहा जाता था जिसका अर्थ है—"देशभक्त नगुयेन" । हो ची मिन्ह का अर्थ है "वह जो प्रकाश या ज्ञान प्रदान करता है" । उनका यह नाम द्वितीय विश्वयुद्ध में पड़ा ।

एक साम्यवाद के विरोधी वियत नामी से हो के विषय में पूछा गया कि क्या आपने कभी हो ची मिन्ह से भेंट की है ? उन्होंने उत्तर दिया : "वह एक आदर्श क्रांतिकारी है । उसका व्यक्तित्व सर्वथा निर्दोष और बेदाग है । वह अत्यन्त साधारण कपड़े पहनता है । वह बड़ा समझदार है । वह फ्रेंच, रशियन, इंग्लिश, चीनी और वियत नामी भाषाएँ बोलता है । उसमें असीम धैर्य है । उसने क्रान्ति के लिए अपने समस्त जीवन को बलिदान कर दिया ।" उसके विषय में श्री जवाहरलाल नेहरू कहते हैं : "साधारण रूप से चाहने योग्य और मित्रतापूर्ण...एक सच्चा व्यक्ति जो शान्ति चाहता है ।" एक अमरीकी ने द्वितीय विश्वयुद्ध में जापानियों के विरुद्ध युद्ध करने में हो के साथ काम किया था । वह हो के विषय में कहता है : "हो एक अच्छा गाई है ।"

हो ची मिन्ह एक दुबला-पतला आदमी है । उसका वजन १ मन १० सेर है । वह मृदु और शनैः शनैः बोलता है और दूसरे को एकदम निरस्त्र कर देता है । वह कुरसियों के किनारे पर बैठता है और उसके हाथ उसकी गोदी में चुपचाप आबद्ध रहते हैं । वह अपने अनुयायियों को आदेश देता है : "आपको जनता के सम्मुख गरीबी, दीनता और संयम का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए ।" हो ची मिन्ह प्रतिदिन १६ से १८ घंटों तक कार्य करता है ।...

हो ची मिन्ह कवि है । वह लिखता है :

> "एकाएक मैं शरद् की बांसुरी को
> बजते हुए सुनता हूँ
> धीरे से एक इशारे के समान
> परदा पड़े हुए पहाड़ों में"

वह अपने को विश्व का व्यक्ति समझता है । वह मज़ाक में कहता है : "मास्को वीर है परन्तु पेरिस जीवन का आनन्द है ।" हो ची मिन्ह दयालु स्वभाव का है । वह अपने साथियों को "छोटा भाई" कहता है और वे उसे 'चाचा हो' कहते हैं । वह समुद्र में तीन वर्ष पर्यन्त रहा और उसने जहाज़ पर इन तीन वर्षों में टॉलस्टाय, ज़ोला, शेक्सपियर और मार्क्स को पढ़ डाला । उसे समुद्री बीमारी थी । उसे अपनी ८००० मील की फ्रांस की प्रथम यात्रा में केवल दस फ्रैंक मिले थे । १९१४ में लंदन में वह एक गुप्त सोसाइटी का सदस्य बना जिसका नाम "दि ओवरसीज़ वर्कर्स" था । यद्यपि उसका स्वास्थ्य अत्यन्त साधारण था वह बरफ़ हटाता था और कोयले भरता था; उसे लंदन की कालेटन होटेल रिस्टोराँ में काम मिल गया था । वहाँ वह झाड़ू देता था और चांदी के बर्तनों को साफ़ करता था । । इसके पश्चात् पेरिस में वह फ़ोटोग्राफ़र की दुकान में सहायक बन गया । प्रति दिन प्रातःकाल वह अपनी होटल के कमरे में जिसमें किसी प्रकार का फ़र्नीचर नहीं था चावल पकाता था, आधा सौसेज या मछली खा लेता था । सायंकाल वह किसी एशियाई क्लब में चला जाता था । वह विद्वानों, कलाकारों और भविष्य में होने वाले कैबिनट के मिनिस्टरों से ज्योतिष और हिपनौटिज़्म पर बातचीत करता था । वह काउई से उसके सिद्धान्त "प्रति दिन मैं प्रत्येक दृष्टि से बेहतर और बेहतर होता जा रहा हूँ" सहमत था । हो को यदि प्रतिक्षण किसी की चिन्ता थी तो अपने देश इंडो-चाइना की । वह कहता था : "मैं क्रांतिकारी हूँ ।" उसने पेरिस में एक लाख वियत नामी लोगों में विद्रोह भावना को उत्पन्न किया । धीरे धीरे उसकी विचारधारा उग्र होती चली गई । वह समाजवादी था और उसके पश्चात् साम्यवाद में विश्वास करने लगा । उसने अपनी नई पार्टी का नाम वियत मिन्ह रखा । युद्ध के दिनों में उसने दस हज़ार व्यक्तियों की गुरिला फ़ौज तैयार की । उन्होंने जंगलों में इतनी अच्छी तरह संगठित रूप से कार्य किया कि उनका नाम "काली वर्दी के मनुष्य" प्रसिद्ध हो गया । उन्होंने जब हनोई पर आक्रमण किया था तब फ्रांसीसियों को यह चेतावनी दी थी : "प्रत्येक उन दस आदमियों के लिए जिनको कि तुम मारोगे हम तुम्हारे एक आदमी को मार डालेंगे और इतने पर भी अन्त में हार तुम्हारी ही होगी ।" अन्त में हनोई से फ्रांसीसियों को हटना पड़ा । इस समय इंडो-चाइना में यह अवस्था है कि सेगाँव में रह कर भी फ्रेंच सर्वथा उदासीन हो गए हैं । एक फ्रांसीसी पत्रकार ने कहा : "निस्सन्देह समस्त इंडो-चाइना हमारे हाथ से अब चला गया है ।"

सम्पादकीय

हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महत्व

अब समय आ गया है जब कि हमें हिन्दी के अन्तर्राष्ट्रीय महत्व को समझ कर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में उसके अधिकाधिक प्रयोग के लिए आवश्यक प्रयत्न करना चाहिए। जब तक अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में हिन्दी के महत्व को अनुभव नहीं किया जाता तब तक उसका महत्व राष्ट्रीय क्षेत्र में भी पूर्णतया अनुभव नहीं किया जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में हिन्दी के प्रयोग को धीरे-धीरे बढ़ाया जाना चाहिए। अब यदि हम हिन्दी की असमर्थता और सीमाओं की ओर ही एकमात्र दृष्टि रख कर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसके व्यवहार की वृद्धि का प्रयत्न नहीं करेंगे तो हम हिन्दी को सशक्त, महान् नहीं बना सकेंगे। भाषा को एकमात्र साहित्य और ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से ही नहीं देखा जाना चाहिए। उसके और भी पहलू हैं। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में एक भाषा का प्रचलन एकमात्र उसके साहित्य और ज्ञान-विज्ञान के आधार पर ही नहीं होता इसके और भी बहुत-से कारण होते हैं। हम देखते हैं कि विदेशों के व्यापारी अपने माल को भिन्न-भिन्न देशों में खपाने के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओं में अपने माल के विवरण और विशेषता को उन उन देशों की भाषाओं में प्रकाशित करना आवश्यक समझते हैं। वे तो अपने माल का अधिकाधिक विक्रय करना चाहते हैं। इसके लिए वे यह थोड़ा ही देखते हैं कि ज़िस भाषा में वे अपने माल का विज्ञापन प्रकाशित कर रहे हैं उसमें उनके विज्ञापन को देने की समर्थता है या नहीं या फिर उसमें विस्तृत साहित्य या ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें हैं या नहीं। वे तो किसी भी प्रकार टूटी-फूटी उस देश की भाषा में अपने माल के विवरण और विशेषता को प्रकाशित कर देते हैं और इस प्रकार उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त होती है। प्रत्येक प्रचार के क्षेत्र में हमें इसी प्रकार की अवस्था का अनुभव होता है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में यह अनुभव किया जाएगा कि हिन्दी में व्यवहार करना आवश्यक और अनिवार्य है तो वे हिन्दी का प्रयोग अपनी आवश्यकताओं को अनुभव कर स्वयं करेंगे और वह प्रयोग प्रारंभ में चाहे कितना ही सीमित और टूटा-फूटा क्यों न हो धीरे धीरे स्वयं सुधरता और उन्नत होता चला जाएगा। ऐसा प्रतीत होता है कि विदेशों में अब हिन्दी के महत्व को अनुभव किया जा रहा है परन्तु हम अपने ही देश में हिन्दी के महत्व को नहीं समझ पा रहे हैं। हिन्दी को यह महत्व भारतवर्ष का अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में जो महत्व है उसके आधार पर प्राप्त हो रहा है और ज्यों ज्यों अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भारतवर्ष का महत्व बढ़ेगा त्यों त्यों हिन्दी के ज्ञान के महत्व की भी अभिवृद्धि होगी। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में यदि हिन्दी की प्रतिष्ठा हुई तो राष्ट्रीय क्षेत्र में हिन्दी के विषय में जो आए दिन वाद-विवाद चलते रहते हैं उनकी भी समाप्ति हो ज़ाएगी।

दिल्ली के दैनिक "हिन्दुस्तान" के रविवारीय संस्करण में डा० सत्यकेतु विद्यालंकार के जो पत्र प्रकाशित हो रहे हैं उन्हें पढ़ कर यह अनुभव होता है कि चीन में वहाँ के लोग हिन्दी के महत्व को अनुभव करते हैं परन्तु हमारे देश के जो लोग प्रतिनिधि-मण्डलों में वहाँ जाते हैं वे उस देश में भी जहाँ वे हिन्दी से कार्य निकाल सकते हैं और जहाँ उनसे यह आशा की जाती है कि वे हिन्दी का ही प्रयोग करेंगे वहाँ भी वे अंग्रेज़ी का ही प्रयोग करते हैं। चीन और रूस के विश्वविद्यालयों में हिन्दी को स्थान दिया गया है और वहाँ अनेक विद्यार्थी हिन्दी के ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। श्रीयुत डॉ० सत्यकेतु अपने एक पत्र में लिखते हैं: "भारत में रहते हुए हम समझते हैं कि अंग्रेज़ी संसार की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है पर चीन जा कर ऐसा अनुभव होता है कि वहाँ हमारा अंग्रेज़ी का ज्ञान कुछ काम नहीं दे सकता। रेलवे स्टेशन पर एक भी शब्द अंग्रेज़ी में नहीं लिखा था। वहाँ न कोई अंग्रेज़ी बोलता है और न कोई समझता है। चीन के भारत-चीन मैत्री संघ की ओर से कुछ दुभाषिए यहाँ (शुम चुन) भेजे गए थे क्योंकि चीन के लोग भली भाँति जानते हैं कि भारतीय अभी चीनी भाषा से सर्वथा अपरिचित हैं। ये दुभाषिए अंग्रेज़ी का अच्छा ज्ञान रखते थे। मुझे प्रसन्नता होती

यदि हमारी सहायता के लिए ऐसे दुभाषिए आते जो हिन्दी बोल सकते। **पर अभी वह समय नहीं आया है जब कि भारत के लोग अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी हिन्दी के प्रयोग को महत्व दें।** संभवतः इस क्षेत्र में चीनी लोग हमसे बहुत आगे बढ़े हुए हैं। पीकिंग पहुँच कर मुझे मालूम हुआ कि यहाँ की यूनिवर्सिटी में हिन्दी की पढ़ाई का अच्छा प्रबन्ध है। हिन्दी की शिक्षा के लिए यहाँ पाँच अध्यापक नियुक्त हैं, जिन्हें भारत से निमन्त्रित किया गया है। अस्सी चीनी विद्यार्थी हिन्दी की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं जिनमें से कुछ हमारी राष्ट्रभाषा का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। पीकिंग पहुँचने पर जब भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के स्वागत के लिए एक सहभोज का आयोजन किया गया तो चीन-भारत मैत्री-संघ के अध्यक्ष महोदय ने अपना भाषण चीनी में दिया **पर उसका अनुवाद अंग्रेज़ी में न करके हिन्दी में किया गया।** वह दुभाषिया जो चीनी भाषण का हिन्दी में अनुवाद करने का कार्य कर रहा था; एक चीनी नवयुवक था। उसकी शुद्ध और मुहावरेदार हिन्दी को सुन कर मुझे आश्चर्य हो रहा था। उसका उच्चारण भी एकदम भारतीय था। यदि यही सज्जन दुभाषिए का काम करने के लिए हमें शुम चुन रेलवे जंक्शन पर मिल जाते तो कितना उत्तम होता। पर शायद भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के लिए उनका विशेष उपयोग न होता **क्योंकि उसके प्रायः सभी सदस्य हिन्दी का बहिष्कार करने में ही राष्ट्रीय गौरव का अनुभव कर रहे थे।"**

प्रायः यूरोप, आस्ट्रेलिया और अमेरिका आदि के विश्वविद्यालय अंग्रेज़ी आदि सिखाने के लिए प्रति वर्ष अनेकों छात्रवृत्तियाँ दिया करते हैं। क्या यह सम्भव नहीं है कि इसी प्रकार हमारा केन्द्रीय-प्रशासन विदेशों के विद्यार्थियों को हिन्दी सिखलाने के लिए विशेष सुविधाएँ और छात्रवृत्तियाँ प्रदान करें जिससे विदेशों में हिन्दी जाननेवाले लोगों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती चली जाए। ज्यों ज्यों भारतवर्ष में राष्ट्रभाषा का प्रयोग बढ़ता जाएगा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी हिन्दी के ज्ञान के क्षेत्र को विस्तृत करने की आवश्यकता भी बढ़ती जाएगी। केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय को इस प्रकार की सूचनाओं को भी समय समय पर प्रसारित करना चाहिए जिनसे इस बात का प्रामाणिक रूप से ज्ञान हो सके कि किन किन देशों की यूनिवर्सिटियों में हिन्दी की शिक्षा प्रदान की जा रही है और वहाँ कितने विद्यार्थी हिन्दी की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इसी प्रकार यह सूचना भी प्रसारित की जानी चाहिए कि विदेशों से कितने विद्यार्थियों को भारतवर्ष में हिन्दी सिखलाने के लिए निमन्त्रित किया गया और हिन्दी के लिए विदेशों के विद्यार्थियों को कितनी छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं। यदि अन्य देश भी हिन्दी सिखाने के लिए अपने विद्यार्थी यहाँ भेजते हैं और उन्हें छात्रवृत्तियाँ देते हैं तो इसका विवरण भी प्राप्त होना चाहिए।

079512

एशिया के देश जिन पर अभी तक यूरोप के देशों की प्रभुता थी—अब जागृत हो रहे हैं और अपना शासन अपने हाथों में सँभाल रहे हैं। धीरे धीरे अपने पड़ोसी देशों की ओर भी उनका ध्यान आकर्षित हो रहा है। हमें विश्वास है कि आनेवाले वर्षों में विश्व का, विशेषकर एशियाई देशों की भारतवर्ष में दिलचस्पी अधिकाधिक जागृत होगी और ज्यों ज्यों यह दिलचस्पी बढ़ेगी वे यहाँ की राष्ट्रभाषा में भी अधिक दिलचस्पी लेंगे। कहीं ऐसा न हो कि वे लोग तो हमारी राष्ट्रभाषा में दिलचस्पी लें और हमें उसमें जो दिलचस्पी होनी चाहिए वह हम में न हो। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार और व्यवहार के प्रति भी जो कुछ प्रयत्न किए जा सकते हैं किए जाने चाहिएँ। यदि विदेशों में ऐसी संस्थाएँ हों जो हिन्दी सिखलाने का प्रयत्न करती हों तो उन्हें भी केन्द्रीय प्रशासन द्वारा प्रोत्साहन और सहायता दी जानी चाहिए। भारतवर्ष की उन्नति और प्रगति के साथ हिन्दी के महत्व की अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में वृद्धि अनिवार्य है परन्तु इसके लिए भी आवश्यक प्रयत्न करने पड़ेंगे। जिस प्रकार विश्व के जागृत और प्रतिष्ठित देशों ने विश्व में अपनी भाषा के ज्ञान को विस्तृत और प्रसारित करने का प्रयत्न किया है उसी प्रकार हमें भी इस दिशा में प्रयत्न करने पड़ेंगे। हिन्दी का जहाँ राष्ट्रीय महत्व है वहाँ इसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व भी है और इसकी किसी भी प्रकार उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

अ-हिन्दी राज्यों में हिन्दी : जनता का अन्दोलन

जिस प्रकार विश्वविद्यालयों के दीक्षान्त भाषणों में अंग्रेज़ी के विषय में कुछ-न-कुछ कहने का फ़ैशन-सा हो गया है इसी प्रकार हिन्दी के लिए आयोजित समारोहों और सभा-सम्मेलनों में यह कहने की कुछ प्रथा-सी पड़ गई है कि हिन्दी को बलपूर्वक, जबर्दस्ती कहीं लादा नहीं

जाना चाहिए । इसका प्रारम्भ अ-हिन्दी भाषी राज्यों में ऐसे व्यक्तियों द्वारा हुआ जो या तो अंग्रेज़ी के हिमायती हैं और या जो हिन्दी के विरोधी हैं । उसके बाद कुछ राजनीतिज्ञों ने जिनसे यह प्रश्न किया जाता था कि वे हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए क्या ठोस क़दम उठा रहे हैं—हिन्दी के जबर्दस्ती लादे जाने के विषय में बोलना प्रारम्भ किया । वे इसके द्वारा संभवतः एक तो हिन्दी के विरोधियों की आशंकाओं को निर्मूल करना चाहते थे और दूसरा हिन्दी के कार्य के विषय में केन्द्रीय प्रशासन से प्रश्न करनेवालों को अप्रतिभ और चुप करा देना चाहते थे । अब हिन्दी के राज्यों में हिन्दी के समर्थकों ने भी हिन्दी भाषी राज्यों की सभाओं और सम्मेलनों में इसी आवाज़ को बुलन्द करना प्रारम्भ कर दिया है । संभवतः इस बात को डंके की चोट से कह कर कि हिन्दी को किसी पर लादा नहीं जाना चाहिए—वे उन अ-हिन्दी भाषी महानुभावों को जो हिन्दी के विरोध में बोलते रहते हैं चुप करा देना चाहते हैं । वे शायद उन्हें यह प्रदर्शित कराना चाहते हैं कि हिन्दी के हामी स्वयं हिन्दी को किसी पर किसी भी प्रकार जबर्दस्ती लादने के समर्थक नहीं हैं और इस प्रकार अपनी सम्मति में वे हिन्दी के इस विरोध को शान्त कर देना चाहते हैं ।

परन्तु इस बात का दूसरा पहलू भी है । यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी-विरोधी इस प्रकार की घोषणाओं से चुप हो जाएँगे क्योंकि जिन्होंने विरोध ही करना है वे अपनी अड़ लगाए ही रक्खेंगे और हिन्दी का विरोध करते ही रहेंगे । हिन्दी के कर्णधार यह उद्घोषित करके इस बात को स्वीकार कर लेते हैं कि हिन्दी के प्रचार और प्रसार करनेवालों में ऐसे लोग और कार्यकर्ता हैं जो कि हिन्दी को दूसरों पर जबरन लादना चाहते हैं । प्रश्न यह है कि क्या हिन्दी भारतवर्ष के किसी भी राज्य में किसी भी हिन्दी संस्था या कार्यकर्ता द्वारा किसी पर लादी जा रही है ! यदि वह लादी जा रही है तो उसका प्रमाण दिया जाना चाहिए और यदि इस बात के लिए कोई प्रमाण नहीं है तो ऐसी बात को कहने से लाभ ही क्या है ? कोई निराधार बात ज़ोर ज़ोर से सख़्त अलफ़ाज़ में कहने पर साधार नहीं बन सकती । अ-हिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी का प्रायः समस्त प्रचार और कार्य अ-हिन्दी लोगों द्वारा ही हुआ और हो रहा है । वे इस कार्य को जिस लगन और उत्साह से कर रहे हैं उसे देख कर प्रसन्नता होती है । हिन्दी को राष्ट्रभाषा के स्वरूप में स्वीकृत किए जाने के कारण भी अधिकांश में अ-हिन्दी भाषी लोग ही हैं । यदि उनकी ऐसी उच्च भावनाएँ और उदात्त दृष्टि न होती तो क्या हिन्दी को यह पद और गौरव प्राप्त हो सकता था और अ-हिन्दी भाषी प्रदेशों में पिछली आधी शती से हिन्दी के प्रचार का जो प्रशंसनीय कार्य हुआ है वह क्या इतने विस्तृत परिमाण में हो सकता था ? अ-हिन्दी भाषी प्रान्तों में जब हिन्दी का कार्य प्रारम्भ किया गया था उस समय केन्द्रीय या प्रादेशिक राज्यों द्वारा उसे न तो किसी प्रकार की सहायता प्राप्त थी और न किसी प्रकार का प्रोत्साहन । हमें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अ-हिन्दी भाषी राज्यों में विशेषतया दक्षिण के राज्यों में हिन्दी को यदि अ-हिन्दी भाषी जनता का सहयोग प्राप्त न होता तो वहाँ हिन्दी के कार्य में किसी भी प्रकार कुछ भी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती थी । हिन्दी का आन्दोलन मुख्यतया जनता का ही आन्दोलन था और जो आन्दोलन जनता का हो उसके विषय में यह कहना भ्रमपूर्ण और ग़लत है कि उसे किसी ने जनता पर लादा है । हिन्दी की जो संस्थाएँ दक्षिण में या अन्य प्रान्तों में धीरे धीरे खड़ी हो गई हैं वे एकमात्र जनता के सहयोग के आधार पर । इन संस्थाओं को जो कुछ सरकारी सहायता प्राप्त हुई है वह इसी आधार पर कि उन्हें जनता का कितना सहयोग प्राप्त है । फिर इस बात को भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि एकमात्र सरकारी सहायता के आधार पर ही इस प्रकार की संस्थाओं को खड़ा नहीं किया जा सकता । जिनको क़दम क़दम पर जनता की सद्भावना, सहानुभूति और सहायता की आवश्यकता है । दक्षिण देश में भी हिन्दी की संस्थाएँ जनता के बल पर ही खड़ी हुई हैं और वही उनका सबसे महान् अवलम्ब है । जिस दिन हिन्दी को जनता का यह सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं होगा उस दिन यदि प्रशासन चाहे वह केन्द्रीय हो या प्रान्तीय एकमात्र धन की प्रचुर राशि के दान द्वारा ही इन संस्थाओं को जीवित, जागृत और विशाल नहीं बना सकेगा । ऐसी अवस्था में यह कहना कहाँ तक न्याय्य और उचित है कि हिन्दी को किसी पर बलपूर्वक लादा नहीं जाना चाहिए । इस जनसत्ता के युग में "बलपूर्वक" और "लादना" किसी प्रकार संभव ही नहीं हो सकता ।

अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शनी

हैदराबाद

पहली जनवरी '५५ से १० फरवरी, १९५५ तक

हैदराबाद सरकार की संरक्षता में

१. हैदराबाद तथा अन्य सरकारों के विभाग
२. व्यापार विभाग
३. प्रतियोगिता विभाग
४. अंतर्राष्ट्रीय विभाग
५. सांस्कृतिक विभाग
६. मनोरंजन विभाग

भारत में विविध उद्देश्यों की सबसे बड़ी प्रदर्शनी

१९५४ की प्रदर्शनियों में सबसे उत्तम

१,१०० दूकानें—२०,००० औसत दैनिक दर्शकों की संख्या

मैन्युफैक्चर्स और उद्योगपातियों को उनकी वस्तुओं के विज्ञापन एवं विक्रय के लिए सुन्दर अवसर।

सूची तथा जानकारी के लिए

अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शनी

मुकर्रमजाही रोड, हैदराबाद (दक्षिण)

को लिखिए.

फोन नंबर : ४५५३

*

तार : प्रदर्शनी

76440

नए और भिन्न

हमारी विलायत से आयात की गई नई मशीनरी ऐसे विभिन्न प्रकार के बिस्कुट तैयार करती है जो क्वालिटी, स्वाद और डिज़ाइन में अनुपम हैं। ये बिस्कुट विटामिनों से भरपूर हैं और स्वाद तथा खस्तापन में किसी विदेशी बिस्कुट से कम नहीं हैं।

जे० बी० गुलुकोस
जे० बी० क्राउन
जे० बी० क्वीन मैरी
जे० बी० वनीला क्रीम
जे० बी० कस्टर्ड क्रीम
जे० बी० स्ट्रॉबेरी क्रीम
जे० बी० लेमन क्रीम

सर्वाधिकार सुरक्षित

आज ही खरीदिए !! =❀= अब यह नए और भिन्न हैं

जे० बी० मंघाराम एण्ड कं०
हैदराबाद (दक्षिण)

लोकल एजेण्ट : के० मोतीराम एण्ड कं०
आबिद रोड, हैदराबा
स्टेशन रोड, सिकन्दराबाद

—*—

नोट : जे० बी० गुलुकोस बिस्कुट उत्तम क्वालिटी के साथ नए रूप में तैयार किए जाते हैं। कुछ समय के लिए रैपर वही रहेगा

379512

प्रकाशक : प्रियबन्धु, हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, नामपल्ली रोड, हैदराबाद (दक्षिण)

Regd. 41

र भिन्न हैं

ोड, हैदराबा

ए रैपर वही रहेगा

ा)

Gurukul Kangri Library

Compiled
1999-2000